2260

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीमन्महर्षिगर्गाचार्यप्रणीता

श्रीगर्ग-संहिता

[दशखण्डात्मिका]

(सम्पूर्ण, सानुवाद)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

अनुवादक

पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री पाण्डेय 'राम'
पं० श्रीगदाधरजी शर्मा एवं पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल

2260 Grag Sanhita sanuwad_Section_1_1_Front

सं० २०७९ चतुर्थ पुनर्मुद्रण २,०००
कुल मुद्रण ८,०००

❖ मूल्य—₹ 400
(चार सौ रुपये)

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये
गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org
gitapressbookshop.in

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (0551) 2334721, 2331250, 2331251
web : gitapress.org e-mail : booksales@gitapress.org

2260 Grag Sanhita sanuwad_Section_1_1_Back

सम्पादकीय निवेदन

शिखिमुकुटविशेषं नीलपद्माङ्गदेशं
विधुमुखकृतकेशं कौस्तुभापीतवेशम्।
मधुररवकलेशं शं भजे भ्रातृशेषं
व्रजजनवनितेशं माधवं राधिकेशम्॥

(गर्गसंहिता १०।५९।१३)

'जिनके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट विशेष शोभा देता है, जिनका अंगदेश (सम्पूर्ण शरीर) नील-कमलके समान श्यामल है, चन्द्रमाके समान मनोहर मुखपर कुंचित केश सुशोभित हैं, कौस्तुभमणिकी सुनहरी आभासे जिनका वेश कुछ पीतवर्णका दिखायी देता है (अथवा जो पीताम्बरधारी हैं), जो (मुरलीकी) मधुर ध्वनिरूपी कलाके स्वामी हैं, कल्याणस्वरूप हैं, शेषावतार बलराम जिनके भाई हैं तथा जो व्रजवनिताओंके वल्लभ हैं, उन राधिकाके प्राणेश्वर माधवका मैं भजन करता हूँ।'

गर्गसंहिता षोडशकलापूर्ण भगवान् श्रीकृष्णके चारु चरितोंका सर्वमान्य प्राचीन इतिहासग्रन्थ है। समस्त वैष्णव-सम्प्रदायोंमें इसकी कथाओं एवं प्रमाणोंको बड़ी आदर-बुद्धिसे ग्रहण करनेकी परम्परा रही है, कारण इस ग्रन्थके प्रणेता महर्षि गर्गकी गणना वेदोंसे लेकर महाभारत, तदनन्तर पाणिनिमुनिकृत 'अष्टाध्यायी' तक सर्वत्र सम्मानपूर्वक की गयी है। ऋग्वेदका एक सूक्त (६।४७) आपके ही द्वारा दृष्ट है। इसी प्रकार महामुनि पाणिनिने 'गर्गादिभ्यो यञ्' (अष्टाध्यायी ४।१।१०५)- में आपकी गणना अनेक ऋषियोंसे पूर्व ही की है। इतना ही नहीं, श्रीमद्भागवतके कई प्राचीन टीकाकारोंने गर्गसंहिताके श्लोकोंको प्रमाणरूपमें उद्धृत किया है। महर्षि गर्ग आंगिरसगोत्रके परम शिवभक्त थे। आपका वह आश्रम, जिसमें आपने गर्गसंहिताका प्रणयन किया, उसकी स्थिति हिमाचलके वायव्यकोणमें गर्गाचलशिखरपर मान्य है। आप महाराज पृथु एवं यदुवंशियोंके गुरु रहे (महाभारत शान्ति० ५९।११ तथा भागवत १०।८)। ज्योतिषपर भी आपके ग्रन्थ 'गर्गमनोरमा' एवं 'बृहद्गर्गसंहिता' प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत गर्गसंहिता, इन्हीं महर्षि गर्गकी अप्रतिम रचना है, जो दशखण्डात्मिका अर्थात् दस खण्डों (१-गोलोकखण्ड, २-वृन्दावनखण्ड, ३-गिरिराजखण्ड, ४-माधुर्यखण्ड, ५-मथुराखण्ड, ६-द्वारकाखण्ड, ७-विश्वजित् खण्ड, ८-बलभद्रखण्ड, ९-विज्ञानखण्ड एवं १०-अश्वमेधखण्ड)-में विभक्त है।

यह सम्पूर्ण संहिता अत्यन्त मधुर श्रीकृष्णलीलासे परिपूर्ण है। श्रीराधाकी दिव्य माधुर्यभावमिश्रित लीलाओंका इसमें विशद वर्णन है। श्रीमद्भागवतमें जो कुछ सूत्ररूपमें कहा गया है, गर्गसंहितामें वही विशद वृत्तिरूपमें वर्णित है। एक प्रकारसे यह श्रीमद्भागवतोक्त श्रीकृष्णलीलाका महाभाष्य है। श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी परिपूर्णताके सम्बन्धमें महर्षि व्यासने 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—इतना ही कहा है, महामुनि गर्गाचार्यने—यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि। तं वदन्ति परे साक्षात् परिपूर्णतमं स्वयम्॥—कहकर श्रीकृष्णमें समस्त भागवत-तेजोंके प्रवेशका वर्णन करके उनकी परिपूर्णतमताका वर्णन किया है।

श्रीकृष्णकी मधुरलीलाकी रचना हुई है दिव्य 'रस' के द्वारा; उसी रसका रासमें प्रकाश हुआ है। श्रीमद्भागवतमें उस रासके केवल एक बारका वर्णन पाँच अध्यायोंमें किया गया है; किंतु इस गर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डमें, अश्वमेधखण्डके प्रभासमिलनके समय और उसी अश्वमेधखण्डके दिग्विजयके अनन्तर लौटते समय—इस प्रकार तीन बार कई अध्यायोंमें उसका बड़ा सुन्दर वर्णन है। परम प्रेमस्वरूपा, श्रीकृष्णसे नित्य अभिन्नस्वरूपा शक्ति श्रीराधाजीके दिव्य आकर्षणसे श्रीमथुरानाथ एवं श्रीद्वारकाधीश

श्रीकृष्णने बार-बार गोकुलमें पधारकर नित्यरासेश्वरी, नित्यनिकुंजेश्वरीके साथ महारासकी दिव्य लीला की है—इसका विशद वर्णन इसमें हुआ है। इसके माधुर्यखण्डमें विभिन्न गोपियोंके पूर्वजन्मोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है, इसके सूत्र रामकथासे भी जुड़े हैं। गर्गसंहितामें और भी बहुत-सी ऐसी नयी-नयी कथाएँ हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं।

यह संहिता भक्त-भावुकोंके लिये परम समादरकी वस्तु है; क्योंकि इसमें श्रीमद्भागवतके गूढ़ तत्त्वोंका स्पष्ट रूपमें उल्लेख है।

उपासनाकी दृष्टिसे भी जहाँ माधुर्यखण्डके अन्तर्गत 'श्रीयमुना-पंचांग' (कवच, स्तोत्र, पटल, पूजा-पद्धति एवं सहस्रनाम) निबद्ध है, वहीं बलभद्रखण्डके अन्तर्गत 'श्रीबलभद्र-पंचांग' दिया गया है। संहिताके अंतिम अश्वमेधखण्डमें श्रीगर्गाचार्यद्वारा प्रणीत 'श्रीकृष्णसहस्रनामस्तोत्र' भी दिया गया है। ग्रन्थमें इसी प्रकार बीच-बीचमें कई सुन्दर स्तोत्र तथा तीर्थमाहात्म्य इत्यादि गुम्फित हैं।

गोलोक, अवतारतत्त्व, भूगोल-वर्णन, तीर्थ-परिचय, संगीत, मन्दिर-निर्माण, भक्तियोग, यज्ञ, उपासना, ज्ञान इत्यादि विषयोंपर भी महत्त्वपूर्ण सामग्री इस ग्रन्थमें समाहित है। सम्पूर्ण संहितामें विविध विषयोंका वर्णन भगवान् श्रीकृष्णकी मधुरातिमधुर लीलाओंके परिप्रेक्ष्यमें ही विन्यस्त है; जिससे कृष्णभक्तोंके लिये इसका अक्षुण्ण महत्त्व है।

गीताप्रेसद्वारा सर्वप्रथम संवत् २०२६ विक्रमीमें गर्गसंहिताका प्रकाशन कल्याणके विशेषांक (वर्ष ४४ अंक १, जनवरी १९७० ई०)-में 'अग्निपुराण-गर्गसंहिता-अंक' में किया गया था, जिसमें इसके नौ खण्ड प्रकाशित किये गये थे। शेष अंतिम अश्वमेधखण्डका प्रकाशन इसके अगले वर्ष कल्याणके विशेषांक (वर्ष ४५)-में किया गया था। तबतक देवनागरीमें छपी श्रीवेंकटेश्वर प्रेसकी पुस्तकमें कई अध्याय नहीं थे। स्वर्गीय श्रीपंचानन तर्करत्न महोदयद्वारा सम्पादित बंगला लिपिमें छपी पुस्तकमें वे अध्याय प्राप्त हुए हैं, उनका अनुवाद भी इसमें दिया गया। स्थानाभावके कारण दोनों वर्ष मूल श्लोक न देकर, श्लोकांकसहित सम्पूर्ण अनुवाद दिया गया था। बादके वर्षोंमें वही सम्पूर्ण सामग्री एक ग्रन्थाकार जिल्दमें प्रकाशित होती रही।

पिछले कई वर्षोंसे विद्वान् पाठकोंका निरन्तर यह आग्रह था कि सम्पूर्ण ग्रन्थ मूल संस्कृत श्लोकोंके साथ प्रकाशित किया जाय, जिससे गर्गाचार्यजी की मूलवाणी सुरक्षित हो सके। भगवत्कृपासे अब सम्पूर्ण मूलपाठसहित गर्गसंहिताका सानुवाद संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें स्थान-स्थानपर अपेक्षित संशोधन इत्यादि करके परिमार्जित करनेकी भी चेष्टा की गयी है।

आशा है, प्रेमी पाठकोंको इससे प्रसन्नता होगी तथा वे इसका अधिकाधिक लाभ उठायेंगे।

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीहरि: ॥

श्रीगर्ग-संहिताकी विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

श्रीगर्गसंहितामाहात्म्य

१- गर्गसंहिताके प्राकट्यका उपक्रम १७

२- नारदजीकी प्रेरणासे गर्गद्वारा संहिताकी रचना; सन्तानके लिये दुखी राजा प्रतिबाहुके पास महर्षि शाण्डिल्यका आगमन.................. १९

३- राजा प्रतिबाहुके प्रति महर्षि शाण्डिल्यद्वारा गर्गसंहिताके माहात्म्य और श्रवण-विधिका वर्णन २२

४- शाण्डिल्यमुनिका राजा प्रतिबाहुको गर्गसंहिता सुनाना; श्रीकृष्णका प्रकट होकर राजा आदिको वरदान देना; राजाको पुत्रकी प्राप्ति और संहिताका माहात्म्य........................ २५

(१) गोलोकखण्ड

१- शौनक-गर्ग-संवाद; राजा बहुलाश्वके पूछनेपर नारदजीके द्वारा अवतार-भेदका निरूपण ३१

२- ब्रह्मादि देवोंद्वारा गोलोकधामका दर्शन ३५

३- भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें श्रीविष्णु आदिका प्रवेश; देवताओंद्वारा भगवान्की स्तुति; भगवान्का अवतार लेनेका निश्चय; श्रीराधाकी चिन्ता और भगवान्का उन्हें सान्त्वना प्रदान करना ४१

४- नन्द आदिके लक्षण; गोपीयूथका परिचय; श्रुति आदिके गोपीभावकी प्राप्तिमें कारणभूत पूर्वप्राप्त वरदानोंका विवरण ४६

५- भिन्न-भिन्न स्थानों तथा विभिन्न वर्गोंकी स्त्रियोंके गोपी होनेका कारण एवं अवतार-व्यवस्थाका वर्णन................................ ५२

६- कालनेमिके अंशसे उत्पन्न कंसके महान् बल-पराक्रम और दिग्विजयका वर्णन ५६

७- कंसकी दिग्विजय—शम्बर, व्योमासुर, बाणासुर, वत्सासुर, कालयवन तथा देवताओंकी पराजय ६२

८- सुचन्द्र और कलावतीके पुण्यका वर्णन, उनका वृषभानु तथा कीर्तिके रूपमें अवतरण...... ६७

९- गर्गजीकी आज्ञासे देवकका वसुदेवजीके साथ देवकीका विवाह करना; विदाईके समय आकाशवाणी सुनकर कंसका देवकीको मारनेके लिये उद्यत होना और वसुदेवजीकी शर्तपर उसे जीवित छोड़ना ७१

१०- कंसके अत्याचार; बलभद्रजीका अवतार तथा व्यासदेवद्वारा उनका स्तवन............. ७४

११- भगवान्का वसुदेव-देवकीमें आवेश; देवताओंद्वारा उनका स्तवन; आविर्भावकाल; अवतार-विग्रहकी झाँकी; वसुदेव-देवकीकृत भगवत्-स्तवन; भगवान्‌द्वारा उनके पूर्वजन्मके वृत्तान्तवर्णनपूर्वक अपनेको नन्दभवनमें पहुँचानेका आदेश; कंसद्वारा नन्दकन्या योग-मायासे कृष्णके प्राकट्यकी बात जानकर पश्चात्तापपूर्वक वसुदेव-देवकीको बन्धनमुक्त करना, क्षमा माँगना और दैत्योंको बाल-वधका आदेश देना............................. ७९

१२- श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवकी धूम; गोप-गोपियोंका उपायन लेकर आना; नन्द और यशोदा-रोहिणीद्वारा सबका यथावत् सत्कार; ब्रह्मादि देवताओंका भी श्रीकृष्णदर्शनके लिये आगमन.... ८८

१३- पूतनाका उद्धार................................ ९३

१४- शकटभंजन; उत्कच और तृणावर्तका उद्धार; दोनोंके पूर्वजन्मोंका वर्णन ९६

१५- यशोदाद्वारा श्रीकृष्णके मुखमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन; नन्द और यशोदाके पूर्व-पुण्यका परिचय; गर्गाचार्यका नन्द-भवनमें जाकर बलराम और श्रीकृष्णका नामकरण-संस्कार करना तथा वृषभानुके यहाँ जाकर उन्हें श्रीराधा-कृष्णके नित्य-सम्बन्ध एवं माहात्म्यका ज्ञान कराना......................... १०३

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१६-	भाण्डीर-वनमें नन्दजीके द्वारा श्रीराधाजीकी स्तुति; श्रीराधा और श्रीकृष्णका ब्रह्माजीके द्वारा विवाह; ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन तथा नव-दम्पतीकी मधुर लीलाएँ...........	१११
१७-	श्रीकृष्णकी बाललीलामें दधि-चोरीका वर्णन..	११८
१८-	नन्द, उपनन्द और वृषभानुओंका परिचय तथा श्रीकृष्णकी मृद्भक्षण-लीला...........	१२२
१९-	दामोदर कृष्णका उलूखल-बन्धन तथा उनके द्वारा यमलार्जुन-वृक्षोंका उद्धार	१२४
२०-	दुर्वासाद्वारा भगवान्की मायाका एवं गोलोकमें श्रीकृष्णका दर्शन तथा श्रीनन्दनन्दनस्तोत्र...	१२८
	(२) वृन्दावनखण्ड	
१-	सन्नन्दका गोपोंको महावनसे वृन्दावनमें चलनेकी सम्मति देना और व्रजमण्डलके सर्वाधिक माहात्म्यका वर्णन करना..........	१३५
२-	गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्ति तथा उसका व्रजमण्डलमें आगमन..........................	१४०
३-	श्रीयमुनाजीका गोलोकसे अवतरण और पुनः गोलोकधाममें प्रवेश	१४५
४-	श्रीबलराम और श्रीकृष्णके द्वारा बछड़ोंका चराया जाना तथा वत्सासुरका उद्धार........	१४८
५-	वकासुरका उद्धार	१५१
६-	अघासुरका उद्धार और उसके पूर्वजन्मका परिचय	१५५
७-	ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, गोवत्सों एवं गोप-बालकोंका हरण	१५७
८-	ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णके सर्वव्यापी विश्वात्मा स्वरूपका दर्शन................................	१६०
९-	ब्रह्माजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति ..	१६४
१०-	यशोदाजीकी चिन्ता; नन्दद्वारा आश्वासन तथा ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान देना; श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णका गोचारण........	१७०
११-	धेनुकासुरका उद्धार	१७४
१२-	श्रीकृष्णद्वारा कालियदमन तथा दावानल-पान.	१७८
१३-	मुनिवर वेदशिरा और अश्वशिराका परस्परके शापसे क्रमशः कालियनाग और काकभुशुण्ड होना तथा शेषनागका भूमण्डलको धारण करना...........	१८१
१४-	कालियका गरुड़के भयसे बचनेके लिये यमुना-जलमें निवासका रहस्य...............	१८४
१५-	श्रीराधाका गवाक्षमार्गसे श्रीकृष्णके रूपका दर्शन करके प्रेम-विह्वल होना; ललिताका श्रीकृष्णसे राधाकी दशाका वर्णन करना और उनकी आज्ञाके अनुसार लौटकर श्रीराधाको श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थ सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देना.......................................	१८७
१६-	तुलसीका माहात्म्य, श्रीराधाद्वारा तुलसीसेवन-व्रतका अनुष्ठान तथा दिव्य तुलसीदेवीका प्रत्यक्ष प्रकट हो श्रीराधाको वरदान देना....	१९२
१७-	श्रीकृष्णका गोपदेवीके रूपसे वृषभानु-भवनमें जाकर श्रीराधासे मिलना......................	१९५
१८-	श्रीकृष्णके द्वारा गोपदेवीरूपसे श्रीराधाके प्रेमकी परीक्षा तथा श्रीराधाको श्रीकृष्णका दर्शन........	१९९
१९-	रासक्रीड़ाका वर्णन	२०४
२०-	श्रीराधा और श्रीकृष्णके परस्पर शृङ्गार-धारण, रास, जलविहार एवं वनविहारका वर्णन	२०८
२१-	गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्णका वन-विहार, रास-क्रीड़ा; मानवती गोपियोंको छोड़कर श्रीराधाके साथ एकान्त-विहार तथा मानिनी श्रीराधाको भी छोड़कर उनका अन्तर्धान होना..	२१२
२२-	गोपाङ्गनाओंद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन; भगवान्का उनके बीचमें प्रकट होना; उनके पूछनेपर हंसमुनिके उद्धारकी कथा सुनाना तथा गोपियोंको क्षीरसागर-श्वेतद्वीपके नारायण-स्वरूपोंका दर्शन कराना	२१६
२३-	कंस और शङ्खचूडमें युद्ध तथा मैत्रीका वृत्तान्त; श्रीकृष्णद्वारा शङ्खचूडका वध	२२०
२४-	रास-विहार तथा आसुरिमुनिका उपाख्यान .	२२४
२५-	शिव और आसुरिका गोपीरूपसे रासमण्डलमें श्रीकृष्णका दर्शन और स्तवन करना तथा उनके वरदानसे वृन्दावनमें नित्य-निवास पाना....	२२८
२६-	श्रीकृष्णका विरजाके साथ विहार; श्रीराधाके भयसे विरजाका नदीरूप होना, उसके सात	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	पुत्रोंका उसीके शापसे सात समुद्र होना तथा राधाके शापसे श्रीदामाका अंशत: शङ्खचूड होना..	२३२
	(३) गिरिराजखण्ड	
१-	श्रीकृष्णके द्वारा गोवर्धनपूजनका प्रस्ताव और उसकी विधिका वर्णन	२३९
२-	गोपोंद्वारा गिरिराज-पूजनका महोत्सव.......	२४२
३-	श्रीकृष्णका गोवर्धन पर्वतको उठाकर इन्द्रके द्वारा क्रोधपूर्वक करायी गयी घोर जलवृष्टिसे रक्षा करना	२४५
४-	इन्द्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति तथा सुरभि और ऐरावतद्वारा उनका अभिषेक	२४९
५-	गोपोंका श्रीकृष्णके विषयमें संदेहमूलक विवाद तथा श्रीनन्दराज एवं वृषभानुवरके द्वारा समाधान..	२५१
६-	गोपोंका वृषभानुवरके वैभवकी प्रशंसा करके नन्दनन्दनकी भगवत्ताका परीक्षण करनेके लिये उन्हें प्रेरित करना और वृषभानुवरका कन्याके विवाहके लिये वरको देनेके निमित्त बहुमूल्य एवं बहुसंख्यक मौक्तिक-हार भेजना तथा श्रीकृष्णकी कृपासे नन्दराजका वधूके लिये उनसे भी अधिक मौक्तिकराशि भेजना	२५५
७-	गिरिराज गोवर्धनसम्बन्धी तीर्थोंका वर्णन...	२५८
८-	विभिन्न तीर्थोंमें गिरिराजके विभिन्न अङ्गोंकी स्थितिका वर्णन	२६२
९-	गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्तिका वर्णन	२६३
१०-	गोवर्धन-शिलाके स्पर्शसे एक राक्षसका उद्धार तथा दिव्यरूपधारी उस सिद्धके मुखसे गोवर्धनकी महिमाका वर्णन	२६८
११-	सिद्धके द्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन तथा गोलोकसे उतरे हुए विशाल रथपर आरूढ़ हो उसका श्रीकृष्ण-लोकमें गमन	२७१
	(४) माधुर्यखण्ड	
१-	श्रुतिरूपा गोपियोंका वृत्तान्त, उनका श्रीकृष्ण और दुर्वासामुनिकी बातोंमें संशय तथा श्रीकृष्णद्वारा उसका निराकरण	२७७
२-	ऋषिरूपा गोपियोंका उपाख्यान—वङ्गदेशके मङ्गल-गोपकी कन्याओंका नन्दराजके व्रजमें आगमन तथा यमुनाजीके तटपर रासमण्डलमें प्रवेश	२८२
३-	मैथिलीरूपा गोपियोंका आख्यान; चीरहरण-लीला और वरदान-प्राप्ति	२८३
४-	कोसलप्रान्तीय स्त्रियोंका व्रजमें गोपी होकर श्रीकृष्णके प्रति अनन्यभावसे प्रेम करना...	२८५
५-	अयोध्यावासिनी गोपियोंके आख्यानके प्रसङ्गमें राजा विमलकी संतानके लिये चिन्ता तथा महामुनि याज्ञवल्क्यद्वारा उन्हें बहुत-सी पुत्री होनेका विश्वास दिलाना	२८७
६-	अयोध्यापुरवासिनी स्त्रियोंका राजा विमलके यहाँ पुत्रीरूपसे उत्पन्न होना; उनके विवाहके लिये राजाका मथुरामें श्रीकृष्णको देखनेके निमित्त दूत भेजना; वहाँ पता न लगनेपर भीष्मजीसे अवतार-रहस्य जानकर उनका श्रीकृष्णके पास दूत प्रेषित करना............	२८९
७-	राजा विमलका संदेश पाकर भगवान् श्रीकृष्णका उन्हें दर्शन और मोक्ष प्रदान करना तथा उनकी राजकुमारियोंको साथ लेकर व्रजमण्डलमें लौटना...........................	२९२
८-	यज्ञसीतास्वरूपा गोपियोंके पूछनेपर श्रीराधाका श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये एकादशी-व्रतका अनुष्ठान बताना और उसके विधि, नियम और माहात्म्यका वर्णन करना................	२९६
९-	पूर्वकालमें एकादशीका व्रत करके मनोवाञ्छित फल पानेवाले पुण्यात्माओंका परिचय तथा यज्ञसीतास्वरूपा गोपिकाओंको एकादशी-व्रतके प्रभावसे श्रीकृष्ण-सांनिध्यकी प्राप्ति	३००
१०-	पुलिन्द-कन्यारूपिणी गोपियोंके सौभाग्यका वर्णन	३०२
११-	लक्ष्मीजीकी सखियोंका वृषभानुओंके घरोंमें कन्यारूपसे उत्पन्न होकर माघमासके व्रतसे श्रीकृष्णको रिझाना और पाना	३०४
१२-	दिव्यादिव्य, त्रिगुणवृत्तिमयी भूतल-गोपियोंका वर्णन तथा श्रीराधासहित गोपियोंकी श्रीकृष्णके साथ होली	३०७

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१३-	देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ	३०९
१४-	कौरव-सेनासे पीड़ित रंगोजि गोपका कंसकी सहायतासे व्रजमण्डलकी सीमापर निवास तथा उसकी पुत्रीरूपमें जालंधरी गोपियोंका प्राकट्य	३११
१५-	बर्हिष्मतीपुरी आदिकी वनिताओंका गोपीरूपमें प्राकट्य तथा भगवान्‌के साथ उनका रासविलास; मांधाता और सौभरिके संवादमें यमुना-पञ्चाङ्गकी प्रस्तावना	३१४
१६-	श्रीयमुना-कवच	३१६
१७-	श्रीयमुनाका स्तोत्र	३१८
१८-	यमुनाजीके जप और पूजनके लिये पटल और पद्धतिका वर्णन	३२०
१९-	यमुना-सहस्रनाम	३२१
२०-	बलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरका वध तथा उसके पूर्वजन्मका परिचय	३४९
२१-	दावानलसे गौओं और ग्वालोंका छुटकारा तथा विप्रपत्नियोंको श्रीकृष्णका दर्शन	३५२
२२-	श्रीकृष्णका नन्दराजको वरुणलोकसे ले आना और गोप-गोपियोंको वैकुण्ठधामका दर्शन कराना	३५४
२३-	अम्बिकावनमें अजगरसे नन्दराजकी रक्षा तथा सुदर्शन-नामक विद्याधरका उद्धार	३५६
२४-	अरिष्टासुर और व्योमासुरका वध तथा माधुर्यखण्डका उपसंहार	३५७
	(५) मथुराखण्ड	
१-	कंसका नारदजीके कथनानुसार बलराम और श्रीकृष्णको अपना शत्रु समझकर वसुदेव-देवकीको कैद करना, उन दोनों भाइयोंको मारनेकी व्यवस्थामें लगना तथा उन्हें मथुरा ले आनेके लिये अक्रूरजीको नन्दके व्रजमें जानेकी आज्ञा देना	३६३
२-	केशीका वध	३६६
३-	अक्रूरका नन्दग्राम-गमन, मार्गमें उनकी बलराम-श्रीकृष्णसे भेंट तथा उन्हींके साथ नन्द-भवनमें प्रवेश; श्रीकृष्णसे बातचीत और उनका मथुरा-गमनके लिये निश्चय, मथुरा-यात्राकी चर्चा सब ओर फैल जानेपर गोपियोंका विरहकी आशङ्कासे उद्विग्न हो उठना	३६८
४-	श्रीकृष्णका गोपियोंके घरोंमें जाकर उन्हें सान्त्वना देना तथा मार्गमें रथ रोककर खड़ी हुई गोपाङ्गनाओंको समझाकर उनका मथुरापुरीकी ओर प्रस्थित होना	३७२
५-	अक्रूरको भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार तथा उनकी स्तुति; श्रीकृष्णका ग्वालबालोंके साथ पुरी-दर्शनके लिये जाना, नागरी स्त्रियोंका उनपर मोहित होना तथा भगवान्‌के हाथसे एक रजकका उद्धार	३७६
६-	सुदामा माली और कुब्जापर कृपा; धनुर्भङ्ग तथा मथुराकी स्त्रियोंपर श्रीकृष्णके मधुर-मोहन रूपका प्रभाव	३८१
७-	मल्लक्रीड़ा-महोत्सवकी तैयारी; रङ्गद्वारपर कुवलयापीडका वध तथा श्रीकृष्ण और बलरामका चाणूर और मुष्टिकके साथ मल्ल-युद्धमें प्रवृत्त होना	३८६
८-	चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लोंका तथा कंस और उसके भाइयोंका वध	३९१
९-	श्रीकृष्णद्वारा वसुदेव-देवकीकी बन्धनसे मुक्ति; श्रीकृष्ण और बलरामका गुरुकुलमें विद्याध्ययन तथा गुरुदक्षिणाके रूपमें गुरुके मरे हुए पुत्रको यमलोकसे लाकर लौटाना; श्रीअक्रूरको हस्तिनापुर भेजना तथा कुब्जाका मनोरथ पूर्ण करना	३९६
१०-	धोबी, दर्जी और सुदामा मालीके पूर्वजन्मका परिचय	४०१
११-	कुब्जा और कुवलयापीडके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन	४०४
१२-	चाणूर आदि मल्ल, कंसके छोटे भाइयों तथा पञ्चजन दैत्यके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन	४०६
१३-	श्रीकृष्णकी आज्ञासे उद्धवका व्रजमें जाना और श्रीदामा आदि सखाओंका उनसे श्रीकृष्ण-	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	विरहके दु:खका निवेदन	४०९
१४-	उद्धवका श्रीकृष्ण-सखाओंको आश्वासन; नन्द और यशोदासे बातचीत तथा उनकी प्रेम-लक्षणा-भक्तिसे चकित होकर उद्धवका उन्हें श्रीकृष्णके चरित्र सुनाना	४१३
१५-	गोपाङ्गनाओंके साथ उद्धवका कदली-वनमें जाना और वहाँ उनकी स्तुति करके श्रीकृष्णद्वारा भेजे गये पत्र अर्पित करना	४१८
१६-	उद्धवद्वारा श्रीराधा तथा गोपीजनोंको आश्वासन	४२३
१७-	श्रीकृष्णको स्मरण करके श्रीराधा तथा गोपियोंके करुण उद्गार	४२६
१८-	गोपियोंके उद्गार तथा उनसे विदा लेकर उद्धवका मथुराको लौटना	४३२
१९-	श्रीकृष्णका उद्धवके साथ व्रजमें प्रत्यागमन और यमुना-तटपर गौओंका उनके रथको चारों ओरसे घेर लेना; गोपोंके साथ उनकी भेंट; नन्दगाँवसे नन्दरायजी एवं यशोदाका गोपों एवं गोपियोंको लेकर गाजे-बाजेके साथ उनकी अगवानीके लिये निकलना तथा सबके साथ श्रीकृष्णका नन्दनगरमें प्रवेश	४३५
२०-	श्रीकृष्णका कदली-वनमें श्रीराधा और गोपियोंके साथ मिलन; रासोत्सव तथा उसी प्रसङ्गमें रोहिताचलपर महामुनि ऋभुका मोक्ष	४३९
२१-	श्रीकृष्णकी द्रवरूपताके प्रसङ्गमें नारदजीका उपाख्यान	४४५
२२-	नारदका अनेक लोकोंमें होते हुए गोलोकमें पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णके समक्ष अपनी कलाका प्रदर्शन करना तथा श्रीकृष्णका द्रवरूप होना	४४९
२३-	श्रीकृष्णका व्रजसे लौटकर मथुरामें आगमन	४५३
२४-	बलदेवजीके द्वारा कोल दैत्यका वध; उनकी गङ्गातटवर्ती तीर्थोंमें यात्रा; माण्डूकदेवको वरदान और भावी वृत्तान्तकी सूचना देना; फिर गङ्गाके अन्यान्य तीर्थोंमें स्नान-दान करके मथुरामें लौट जाना	४५५
२५-	मथुरापुरीका माहात्म्य एवं मथुराखण्डका उपसंहार	४६४

(६) द्वारकाखण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	जरासंधका विशाल सेनाके साथ मथुरापर आक्रमण; श्रीकृष्ण और बलरामद्वारा उसकी सेनाका संहार; मगधराजकी पराजय तथा श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरामें विजयी होकर लौटना	४७१
२-	मथुरापर जरासंध और कालयवनका आक्रमण; भगवान्का युद्ध छोड़कर एक गुफामें जाना और वहाँ गये हुए कालयवनको मुचुकुन्दके दृष्टिपातसे दग्ध कराना; मुचुकुन्दको वर देकर बदरिकाश्रमकी ओर भेजना और स्वयं म्लेच्छ-सेनाका संहार करके जरासंधके सामनेसे भागकर श्रीकृष्ण-बलरामका प्रवर्षण-गिरि होते हुए द्वारका पहुँचना और जरासंधका उस पर्वतको जलाकर मगधको लौट जाना	४७५
३-	बलदेवजीका रेवतीके साथ विवाह	४८०
४-	श्रीकृष्णको रुक्मिणीका संदेश; ब्राह्मण-सहित श्रीकृष्णका कुण्डिनपुरमें आगमन; कन्या और वरके अपने-अपने घरोंमें मङ्गलाचार; शिशुपालके साथ आयी हुई बारातको विदर्भराजका ठहरनेके लिये स्थान देना	४८२
५-	रुक्मिणीकी चिन्ता; ब्राह्मणद्वारा श्रीहरिके शुभागमनका समाचार पाकर प्रसन्नता; भीष्मकद्वारा बलराम और श्रीकृष्णका सत्कार; पुरवासियोंकी कामना; रुक्मिणीकी कुल-देवीके पूजनके लिये यात्रा, देवीसे प्रार्थना तथा सौभाग्यवती स्त्रियोंसे आशीर्वादकी प्राप्ति	४८६
६-	श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका अपहरण तथा यादव-वीरोंके साथ युद्धमें विपक्षी राजाओंकी पराजय	४९०

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
७-	श्रीकृष्णके हाथोंसे रुक्मीकी पराजय तथा द्वारकामें रुक्मिणी और श्रीकृष्णका विवाह.	४९४
८-	श्रीकृष्णका सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके साथ विवाह और उनकी संततिका वर्णन; प्रद्युम्नका प्राकट्य तथा रति और रुक्मीकी पुत्रीके साथ उनका विवाह........	४९९
९-	द्वारकापुरीके पृथ्वीपर आनेका कारण; राजा आनर्तकी तपस्या और उनपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा.................................	५०२
१०-	द्वारकापुरी, गोमती और चक्रतीर्थका माहात्म्य; कुबेरके वैष्णवयज्ञमें दुर्वासामुनिद्वारा घण्टानाद और पार्श्वमौलिको शाप	५०५
११-	गज और ग्राह बने हुए मन्त्रियोंका युद्ध और भगवान् विष्णुके द्वारा उनका उद्धार.........	५०९
१२-	महामुनि त्रितके शापसे कक्षीवान्का शङ्खरूप होकर सरोवरमें रहना और श्रीकृष्णके द्वारा उसका उद्धार होना; शङ्खोद्धार-तीर्थकी महिमा	५१२
१३-	प्रभास, सरस्वती, बोधपिप्पल और गोमती-सिन्धु-संगमका माहात्म्य	५१४
१४-	द्वारका क्षेत्रके समुद्र तथा रैवतक पर्वतका माहात्म्य	५१७
१५-	यज्ञतीर्थ, कपिटङ्कतीर्थ, नृगकूप, गोपीभूमि तथा गोपीचन्दनकी महिमा; द्वारकाकी मिट्टीके स्पर्शसे एक महान् पापीका उद्धार	५२०
१६-	सिद्धाश्रमकी महिमाके प्रसङ्गमें श्रीराधा और गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्ण और उनकी सोलह हजार रानियोंका समागम	५२४
१७-	सिद्धाश्रममें श्रीराधा और श्रीकृष्णका मिलन; श्रीकृष्णकी रानियोंका श्रीराधाको अपने शिविरमें बुलाकर उनका सत्कार करना तथा श्रीहरिके द्वारा उनकी उत्कृष्ट प्रीतिका प्रकाशन	५२९
१८-	सिद्धाश्रममें व्रजाङ्गनाओं तथा सोलह सहस्र रानियोंके साथ श्यामसुन्दरकी रासक्रीड़ाका वर्णन तथा श्रीराधाके मुखसे वृन्दावनके रासकी उत्कृष्टताका प्रतिपादन	५३२
१९-	लीला-सरोवर, हरिमन्दिर, ज्ञानतीर्थ, कृष्ण-कुण्ड, बलभद्र-सरोवर, दानतीर्थ, गणपति-तीर्थ और मायातीर्थ आदिका वर्णन	५३७
२०-	इन्द्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, सूर्यकुण्ड, नीललोहित-तीर्थ और सप्तसामुद्रक-तीर्थका माहात्म्य ..	५४१
२१-	तृतीय दुर्गके द्वार-देवताओंके दर्शन और पूजनकी महिमा तथा पिण्डारक-तीर्थका माहात्म्य	५४२
२२-	सुदामा ब्राह्मणका उपाख्यान	५४५

(७) विश्वजित्‌खण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	अविक्षितपुत्र राजर्षि मरुत्तके यज्ञानुष्ठानका वर्णन तथा भगवान् श्रीविष्णुद्वारा उन्हें वरकी प्राप्ति और उग्रसेनके रूपमें उनका प्रादुर्भाव....	५५५
२-	राजा उग्रसेनके राजसूय-यज्ञका उपक्रम; प्रद्युम्नका दिग्विजयके लिये बीड़ा उठाना और उनका विजयाभिषेक......................	५५९
३-	प्रद्युम्नके नेतृत्वमें दिग्विजयके लिये प्रस्थित हुई यादवोंकी गजसेना, अश्वसेना तथा योद्धाओंका वर्णन	५६१
४-	सेनासहित यादव वीरोंकी दिग्विजयके लिये यात्रा	५६५
५-	यादव-सेनाकी कच्छ और कलिङ्गदेशपर विजय	५६८
६-	प्रद्युम्नका मरुधन्वदेशके राजा गयको हराकर मालवनरेश तथा माहिष्मती पुरीके राजासे बिना युद्ध किये ही भेंट प्राप्त करना	५७१
७-	गुजरातनरेश ऋष्यपर विजय प्राप्त करके यादव-सेनाका चेदिदेशके स्वामी दमघोषके यहाँ जाना; राजाका यादवोंसे प्रेमपूर्ण बर्ताव करनेका निश्चय, किंतु शिशुपालका माता-पिताके विरुद्ध यादवोंसे युद्धका आग्रह	५७४
८-	शिशुपालके मित्र द्युमान् तथा शक्तका वध .	५७८
९-	भानुके द्वारा रङ्ग-पिङ्गका वध; प्रद्युम्न और शिशुपालका भयंकर युद्ध तथा चेदिदेशपर प्रद्युम्नकी विजय....................................	५८१

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१०-	यादवसेनाका कोङ्कण, कुटक, त्रिगर्त, केरल, तैलंग, महाराष्ट्र और कर्नाटकआदि देशोंपर विजय प्राप्तकर करूष देशमें जाना तथा वहाँ दन्तवक्त्रका घोर युद्ध	५८५
११-	दन्तवक्त्रकी पराजय तथा करूषदेशपर यादवसेनाकी विजय	५९०
१२-	उशीनर आदि देशोंपर प्रद्युम्नकी विजय तथा उनकी जिज्ञासापर मुनिवर अगस्त्यद्वारा तत्त्वज्ञानका प्रतिपादन	५९३
१३-	शाल्व आदि देशों तथा द्विविद वानरपर प्रद्युम्नकी विजय; लङ्कासे विभीषणका आना और उन्हें भेंट समर्पित करना	५९८
१४-	सह्यपर्वतके निकट दत्तात्रेयका दर्शन और उपदेश तथा महेन्द्रपर्वतपर परशुरामजीके द्वारा यादवसेनाका सत्कार और श्रेष्ठ भक्तके स्वरूपका निरूपण	६०३
१५-	उड्डीश-डामर देशके राजा, वङ्गदेशके अधिपति वीरधन्वा तथा असमके नरेश पुण्ड्रपर यादवसेनाकी विजय	६०७
१६-	मिथिलाके राजा धृतिद्वारा ब्रह्मचारीके रूपमें पधारे हुए प्रद्युम्नका पूजन; उन दोनोंका शुभ संवाद; प्रद्युम्नका राजाको प्रत्यक्ष दर्शन दे, उनसे पूजित हो शिविरमें जाना	६११
१७-	मगधदेशपर यादवोंकी विजय तथा मगधराज जरासंधकी पराजय	६१६
१८-	गया, गोमती, सरयू एवं गङ्गाके तटवर्ती प्रदेश, काशी, प्रयाग एवं विन्ध्यदेशमें यादवसेनाकी यात्रा; श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंका हस्तलाघव तथा विवाह; माथुर, शूरसेन आदि जनपदों एवं नन्द-गोकुलमें प्रद्युम्न आदिका समादर	६२१
१९-	यादवसेनाका विस्तार; कौरवोंके पास उद्धवका दूतके रूपमें जाकर प्रद्युम्नका संदेश सुनाना; कौरवोंके कटु उत्तरसे रुष्ट यादवोंकी हस्तिनापुरपर चढ़ाई	६२६
२०-	कौरवोंकी सेनाका युद्धभूमिमें आना; दोनों ओरके सैनिकोंका तुमुल युद्ध और प्रद्युम्नके द्वारा दुर्योधनकी पराजय	६२९
२१-	कौरव तथा यादव वीरोंका घमासान युद्ध; बलराम और श्रीकृष्णका प्रकट होकर उनमें मेल कराना	६३४
२२-	अर्जुनसहित प्रद्युम्नका कालयवन-पुत्र चण्डको जीतकर भारतवर्षके बाहर पूर्वोत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान	६३८
२३-	यादवसेनाका बाणासुरसे भेंट लेकर अलकापुरीको प्रस्थान तथा यादवों और यक्षोंका युद्ध	६४३
२४-	यादव-सेना और यक्ष-सेनाका घोर युद्ध	६४८
२५-	प्रद्युम्नका एक युक्तिके द्वारा गणेशजीको रणभूमिसे हटाकर गुह्यकसेनापर विजय प्राप्त करना और कुबेरका उनके लिये बहुत-सी भेंट-सामग्री देकर उनकी स्तुति करना; फिर प्राग्ज्योतिषपुरमें भेंट लेकर प्रद्युम्नका विरोधी वानर द्विविदको किष्किन्धामें फेंक देना	६५३
२६-	किम्पुरुषवर्षके रङ्गवल्लीपुरमें किम्पुरुषोंद्वारा हरिचरित्रका गान; वहाँके राजाद्वारा भेंट पाकर यादव-सेनाका आगे जाना; मार्गमें अजगर-रूपधारी शापभ्रष्ट गन्धर्वका उद्धार; वसन्त-तिलकापुरीके राजा शृङ्गारतिलकको पराजित करके प्रद्युम्नका हरिवर्षके लिये प्रस्थान	६५९
२७-	यादवसेनापर गीधोंका आक्रमण तथा उसके निवारणार्थ प्रद्युम्नद्वारा गरुड़ास्त्रका प्रयोग; दशार्णदेशपर विजय तथा दशार्णमोचनतीर्थमें स्नान	६६४
२८-	उत्तरकुरुवर्षपर यादवोंकी विजय; वाराहीपुरीमें राजा गुणाकरद्वारा प्रद्युम्नका समादर	६६७
२९-	प्रद्युम्नकी हिरण्मयवर्षपर विजय; मधुमक्खियों और वानरोंके आक्रमणसे छुटकारा; राजा देवसखसे भेंटकी प्राप्ति तथा चन्द्रकान्तानदीमें स्नान	६७२
३०-	रम्यकवर्षमें कलङ्क राक्षसपर विजय; नैःश्रेयसवन, मानवी नगरी तथा मानवगिरिका दर्शन; श्राद्धदेव मनुद्वारा प्रद्युम्नकी स्तुति	६७४

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
३१-	रम्यकवर्षमें मन्मथशालिनी पुरीके लोगोंद्वारा श्रीकृष्णलीलाका गान; प्रजापति व्यति-संवत्सरद्वारा प्रद्युम्नका पूजन; कामवनमें प्रद्युम्नका अपने कामदेव-स्वरूपमें विलय	६७९
३२-	भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाके द्वारा प्रद्युम्नका पूजन तथा स्तवन; यादव-सेनाकी चन्द्रावती-पुरीपर चढ़ाई; श्रीकृष्णकुमार वृकके द्वारा हिरण्याक्ष-पुत्र हृष्टका वध	६८५
३३-	संग्रामजित्‌के हाथसे भूत-संतापनका वध	६९०
३४-	अनिरुद्धके हाथसे वृक दैत्यका वध	६९६
३५-	साम्बद्वारा कालनाभ दैत्यका वध	६९९
३६-	दीप्तिमान्‌द्वारा महानाभका वध	७०१
३७-	श्रीकृष्ण-पुत्र भानुके हाथसे हरिश्मश्रु दैत्यका वध	७०३
३८-	प्रद्युम्न और शकुनिके घोर युद्धका वर्णन	७०६
३९-	शकुनिके मायामय अस्त्रोंका प्रद्युम्नद्वारा निवारण तथा उनके चलाये हुए श्रीकृष्णास्त्रसे युद्ध-स्थलमें भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव	७११
४०-	शकुनिके जीवस्वरूप शुकका निधन	७१७
४१-	शकुनिका घोर युद्ध, सात बार मारे जानेपर भी उसका भूमिके स्पर्शसे पुनः जी उठना; अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा युक्तिपूर्वक उसका वध	७२२
४२-	श्रीकृष्णका यादवोंके साथ चन्द्रावतीपुरीमें जाकर शकुनि-पुत्रको वहाँका राज्य देना तथा शकुनि आदिके पूर्व जन्मोंका परिचय	७२६
४३-	इलावृतवर्षमें राजा शोभनसे भेंटकी प्राप्ति; स्वायम्भुव मनुकी तपोभूमिमें मूर्तिमती सिद्धियोंका निवास; लीलावतीपुरीमें अग्नि-देवसे उपायनकी उपलब्धि; वेदनगरमें मूर्ति-मान् वेद, राग, ताल, स्वर, ग्राम और नृत्यके भेदोंका वर्णन	७२९
४४-	रागिनियों तथा रागपुत्रोंके नाम और वेद आदिके द्वारा भगवान्‌का स्तवन	७३३
४५-	रागिनियों तथा राग-पुत्रोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन और उनका द्वारकापुरीके लिये प्रस्थान	७३७
४६-	यादवों और गन्धर्वोंका युद्ध, बलभद्रजीका प्राकट्य, उनके द्वारा गन्धर्वसेनाका संहार, गन्धर्वराजकी पराजय, वसन्तमालती नगरीका हलद्वारा कर्षण; गन्धर्वराजका भेंट लेकर शरणमें आना और उनपर बलरामजीकी कृपा	७४१
४७-	यादव-सेनाके साथ शक्रसखका युद्ध और उसकी पराजय	७४४
४८-	शक्रसखका प्रद्युम्नको भेंट अर्पण, प्रद्युम्नका लीलावतीपुरीके स्वयंवरमें सुन्दरीको प्राप्त करना तथा इलावृतवर्षसे लौटकर भारत एवं द्वारकापुरीमें आना	७४९
४९-	राजसूय यज्ञमें ऋषियों, ब्राह्मणों, राजाओं, तीर्थों, क्षेत्रों, देवगणों तथा सुहृद्-सम्बन्धियोंका शुभागमन	७५४
५०-	राजसूय-यज्ञका मङ्गलमय उत्सव; देवताओं, ब्राह्मणों तथा अतिथियोंका दान-मानसे सत्कार	७५६

(८) बलभद्रखण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	श्रीबलभद्रजीके अवतारका कारण	७६१
२-	श्रीबलभद्रजीके अवतारकी तैयारी	७६३
३-	ज्योतिष्मतीका उपाख्यान	७६६
४-	रेवतीका उपाख्यान	७६९
५-	श्रीबलराम और श्रीकृष्णका प्राकट्य	७७४
६-	प्राड्विपाकमुनिके द्वारा श्रीराम-कृष्णकी व्रजलीलाका वर्णन	७७७
७-	श्रीराम-कृष्णकी मथुरा-लीलाका वर्णन	७७९
८-	श्रीराम-कृष्णकी द्वारका-लीलाका वर्णन	७८५
९-	श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन	७८९
१०-	श्रीबलभद्रजीकी पूजा-पद्धति और पटल	७९२
११-	श्रीबलराम-स्तोत्र	७९६
१२-	श्रीबलराम-कवच	७९७
१३-	बलभद्र-सहस्रनाम	७९९

(९) विज्ञानखण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	द्वारकामें वेदव्यासजीका आगमन और उग्रसेनद्वारा उनका स्वागत-पूजन	८१५

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२-	व्यासजीके द्वारा गतियोंका निरूपण	८१८
३-	सकाम एवं निष्काम भक्तियोगका वर्णन	८२१
४-	भक्त-सन्तकी महिमाका वर्णन	८२४
५-	भक्तिकी महिमाका वर्णन	८२७
६-	मन्दिर-निर्माण तथा विग्रहप्रतिष्ठा एवं पूजाकी विधि	८२९
७-	नित्यकर्म और पूजा-विधिका वर्णन	८३१
८-	पूजा-विधिका वर्णन	८३४
९-	पूजोपचार तथा पूजन-प्रकारका वर्णन	८३६
१०-	परमात्माका स्वरूप-निरूपण	८४२

(१०) अश्वमेधखण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	अश्वमेध-कथाका उपक्रम; गर्ग-वज्रनाभ-संवाद	८४९
२-	श्रीकृष्णावतारकी पूर्वार्धगत लीलाओंका संक्षेपसे वर्णन	८५३
३-	जरासंधके आक्रमणसे लेकर पारिजात-हरणतककी श्रीकृष्णलीलाओंका संक्षिप्त वर्णन	८५८
४-	पारिजातहरण	८६२
५-	देवराज और उनकी देवसेनाके साथ श्रीकृष्णका युद्ध तथा विजयलाभ; पारिजातका द्वारकापुरीमें आरोपण	८६५
६-	श्रीकृष्णके अनेक चरित्रोंका संक्षेपसे वर्णन	८७०
७-	देवर्षि नारदका ब्रह्मलोकसे आगमन; राजा उग्रसेनद्वारा उनका सत्कार; देवर्षिद्वारा अश्वमेध-यज्ञकी महत्ताका वर्णन; श्रीकृष्णकी अनुमति एवं नारदजीद्वारा अश्वमेध-यज्ञकी विधिका वर्णन	८७३
८-	यज्ञके योग्य श्यामकर्ण अश्वका अवलोकन	८७८
९-	गर्गाचार्यका द्वारकापुरीमें आगमन तथा अनिरुद्धका अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके लिये कृतप्रतिज्ञ होना	८८०
१०-	उग्रसेनकी सभामें देवताओंका शुभागमन; अनिरुद्धके शरीरमें चन्द्रमा और ब्रह्माका विलय तथा राजा और रानीकी बातचीत	८८४
११-	ऋत्विजोंका वरण-पूजन; श्यामकर्ण अश्वका आनयन और अर्चन; ब्राह्मणोंको दक्षिणादान; अश्वके भालदेशमें बँधे हुए स्वर्णपत्रपर गर्गजीके द्वारा उग्रसेनके बल-पराक्रमका उल्लेख तथा अनिरुद्धको अश्वकी रक्षाके लिये आदेश	८८८
१२-	अश्वमोचन तथा उसकी रक्षाके लिये सेनापति अनिरुद्धका विजयाभिषेक	८९२
१३-	अनिरुद्धका अन्तःपुरसे आज्ञा लेकर अश्वकी रक्षाके लिये प्रस्थान; उनकी सहायताके लिये साम्बका कृतप्रतिज्ञ होना; लक्ष्मणाका उन्हें सम्मुख युद्धके लिये प्रोत्साहन देना; श्रीकृष्णके भाइयों और पुत्रोंका भी श्रीकृष्णकी आज्ञासे प्रस्थान करना तथा यादवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका विस्तृत वर्णन	८९४
१४-	अनिरुद्धका सेनासहित अश्वकी रक्षाके लिये प्रयाण; माहिष्मतीपुरीके राजकुमारका अश्वको बाँधना तथा अनिरुद्धका राजा इन्द्रनीलसे युद्धके लिये उद्यत होना	९००
१५-	अनिरुद्ध और साम्बका शौर्य; माहिष्मती-नरेशपर इनकी विजय	९०४
१६-	चम्पावतीपुरीके राजाद्वारा अश्वका पकड़ा जाना; यादवोंके साथ हेमाङ्गदके सैनिकोंका घोर युद्ध; अनिरुद्ध और श्रीकृष्णपुत्रोंके शौर्यसे पराजित राजाका उनकी शरणमें आना	९०७
१७-	स्त्री-राज्यपर विजय और वहाँकी कुमारी रानी सुरूपाका अनिरुद्धकी प्रिया होनेके लिये द्वारकाको जाना	९१२
१८-	राक्षस भीषणद्वारा यज्ञीय अश्वका अपहरण तथा विमानद्वारा यादव-वीरोंकी उपलङ्कापर चढ़ाई	९१७
१९-	यादवों और निशाचरोंका घोर युद्ध; अनिरुद्ध और भीषणकी मूर्च्छा तथा चेतना एवं रणभूमिमें बकका आगमन	९२०
२०-	बक और भीषणकी पराजय तथा यादवोंका घोड़ा लेकर आकाशमार्गसे लौटना	९२३
२१-	भद्रावतीपुरी तथा राजा यौवनाश्वपर	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	अनिरुद्धकी विजय	९२७
२२-	यज्ञके घोड़ेका अवन्तीपुरीमें जाना और वहाँ अवन्तीनरेशकी ओरसे सेनासहित यादवोंका पूर्ण सत्कार होना	९३०
२३-	अनिरुद्धके पूछनेपर सान्दीपनिद्वारा श्रीकृष्ण-तत्त्वका निरूपण; श्रीकृष्णकी परब्रह्मता एवं भजनीयताका प्रतिपादन करके जगत्‌से वैराग्य और भगवान्‌के भजनका उपदेश	९३३
२४-	अनुशाल्व और यादव-वीरोंमें घोर युद्ध	९३६
२५-	अनुशाल्वद्वारा प्रद्युम्नको उपहारसहित अश्वका अर्पण तथा बल्वल दैत्यके द्वारा उस अश्वका अपहरण	९४०
२६-	नारदजीके मुखसे बल्वलके निवासस्थानका पता पाकर यादवोंका अनेक तीर्थोंमें स्नान-दान करते हुए कपिलाश्रमतक जाना और वहाँ कपिलमुनिको प्रणाम करके सागरके तटपर सेनाका पड़ाव डालना	९४३
२७-	यादवोंद्वारा समुद्रपर बाणमय सेतुका निर्माण.	९४६
२८-	यादवोंका पाञ्चजन्य उपद्वीपमें जाना; दैत्योंकी परस्पर मन्त्रणा; मयासुरका बल्वलको घोड़ा लौटा देनेके लिये सलाह देना; परंतु बल्वलका युद्धके निश्चयपर ही अडिग रहना	९४७
२९-	यादवों और असुरोंका घोर संग्राम तथा ऊर्ध्वकेश एवं अनिरुद्धका द्वन्द्वयुद्ध	९५२
३०-	ऊर्ध्वकेश और अनिरुद्धका तथा नद और गदका घोर युद्ध; ऊर्ध्वकेश और नदका वध	९५६
३१-	वृकद्वारा सिंहका और साम्बद्वारा कुशाम्बका वध.	९६०
३२-	मयका बल्वलको समझाना; बल्वलकी युद्धघोषणा; समस्त दैत्योंका युद्धके लिये निर्गमन; विलम्बके कारण सैन्यपालके पुत्रका वध तथा दुखी सैन्यपालको मन्त्रिपुत्रोंका विवेकपूर्वक धैर्य बँधाना	९६३
३३-	श्रीकृष्णकी कृपासे दैत्यराजकुमार कुनन्दनके जीवनकी रक्षा	९६७
३४-	दैत्यों और यादवोंका घोर युद्ध; बल्वल, कुनन्दन तथा अनिरुद्धका अद्भुत पराक्रम	९७३
३५-	बल्वलके चारों मन्त्रिकुमारोंका वध; बल्वल-द्वारा मायामय युद्ध तथा अनिरुद्धके द्वारा उसकी पराजय	९७७
३६-	श्रीकृष्णपुत्र सुनन्दनद्वारा दैत्यपुत्र कुनन्दनका वध	९८१
३७-	भगवान् शिवका अपने गणोंके साथ बल्वलकी ओरसे युद्धस्थलमें आना और शिवगणों तथा यादवोंका घोर युद्ध; दीप्तिमान्‌का शिवगणोंको मार भगाना और अनिरुद्धका भैरवको जृम्भणास्त्रसे मोहित करना	९८५
३८-	नन्दिकेश्वरद्वारा सुनन्दनका वध; भगवान् शिवके त्रिशूलसे आहत हुए अनिरुद्धकी मूर्च्छा; साम्बद्वारा शिवकी भर्त्सना; साम्ब और शिवका युद्ध तथा रणक्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णका शुभागमन	९९०
३९-	भगवान् शंकरद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन; शिव और श्रीकृष्णकी एकता; श्रीकृष्णद्वारा सुनन्दन, अनिरुद्ध एवं अन्य सब यादवोंको जीवनदान देना तथा बल्वलद्वारा यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका लौटाया जाना	९९४
४०-	यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका व्रजमण्डलमें वृन्दावनके भीतर प्रवेश; श्रीदामाका उसे बाँधकर नन्दजीके पास ले जाना; नन्दजीका समस्त यादवों और श्रीकृष्णसे सानन्द मिलना; यादव-सेनाका वृन्दावनमें और श्रीकृष्णका नन्दपत्तनमें निवास	९९७
४१-	श्रीराधा और श्रीकृष्णका मिलन	१००१
४२-	रासक्रीड़ाके प्रसङ्गमें श्रीवृन्दावन, यमुना-पुलिन, वंशीवट, निकुञ्जभवन आदिकी शोभाका वर्णन; गोपसुन्दरियों, श्यामसुन्दर तथा श्रीराधाकी छबिका चिन्तन	१००४
४३-	श्रीकृष्णका श्रीराधा और गोपियोंके साथ विहार तथा मानवती गोपियोंके अभिमानपूर्ण वचन सुनकर श्रीराधाके साथ उनका अन्तर्धान होना	१०१३
४४-	गोपियोंका श्रीकृष्णको खोजते हुए वंशीवटके	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	निकट आना और श्रीकृष्णका मानवती राधाको त्यागकर अन्तर्धान होना	१०१५
४५-	गोपाङ्गनाओंद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए उनका आह्वान और श्रीकृष्णका उनके बीचमें आविर्भाव	१०१९
४६-	श्रीकृष्णके आगमनसे गोपियोंको उल्लास; श्रीहरिके वेणुगीतकी चर्चासे श्रीराधाकी मूर्च्छाका निवारण; श्रीहरिका श्रीराधा आदि गोपसुन्दरियोंके साथ वन-विहार, स्थल-विहार, जल-विहार, पर्वत-विहार और रास-क्रीड़ा	१०२३
४७-	श्रीकृष्णसहित यादवोंका व्रजवासियोंको आश्वासन देकर वहाँसे प्रस्थान	१०२७
४८-	अश्वका हस्तिनापुरीमें जाना; उसके भाल-पत्रको पढ़कर दुर्योधन आदिका रोषपूर्वक अश्वको पकड़ लेना तथा यादव-सैनिकोंका कौरवोंको घायल करना	१०२९
४९-	यादवों और कौरवोंका घोर युद्ध	१०३३
५०-	कौरवोंकी पराजय और उनका भगवान् श्रीकृष्णसे मिलकर भेंटसहित अश्वको लौटा देना	१०३७
५१-	यादवोंका द्वैतवनमें राजा युधिष्ठिरसे मिलकर घोड़ेके पीछे-पीछे अन्यान्य देशोंमें जाना तथा अश्वका कौन्तलपुरमें प्रवेश	१०४२
५२-	श्यामकर्ण अश्वका कौन्तलपुरमें जाना और भक्तराज चन्द्रहासका बहुत-सी भेंट-सामग्रीके साथ अश्वको अनिरुद्धकी सेवामें अर्पित करना और वहाँसे उन सबका प्रस्थान	१०४६
५३-	उद्धवकी सलाहसे समस्त यादवोंका द्वारकापुरीकी ओर प्रस्थान तथा अनिरुद्धकी प्रेरणासे उद्धवका पहले द्वारकापुरीमें पहुँचकर यात्राका वृत्तान्त सुनाना	१०४९
५४-	वसुदेव आदिके द्वारा अनिरुद्धकी अगवानी; सेना और अश्वसहित यादवोंका द्वारकापुरीमें लौटकर सबसे मिलना तथा श्रीकृष्ण और उग्रसेन आदिके द्वारा समागत नरेशोंका सत्कार	१०५२
५५-	व्यासजीका मुनि-दम्पती तथा राज-दम्पतियोंको गोमतीका जल लानेके लिये आदेश देना; नारदजीका मोह और भगवान्-द्वारा उस मोहका भंजन; श्रीकृष्णकी कृपासे रानियोंका कलशमें जल भरकर लाना	१०५६
५६-	राजाद्वारा यज्ञमें विभिन्न बन्धु-बान्धवोंको भिन्न-भिन्न कार्योंमें लगाना; श्रीकृष्णका ब्राह्मणोंके चरण पखारना; घीकी आहुतिसे अग्निदेवको अजीर्ण होना; यज्ञपशुके तेजका श्रीकृष्णमें प्रवेश; उसके शरीरका कर्पूरके रूपमें परिवर्तन; उसकी आहुति और यज्ञकी समाप्तिपर अवभृथस्नान	१०६२
५७-	ब्राह्मणभोजन, दक्षिणा-दान, पुरस्कार-वितरण, सम्बन्धियोंका सम्मान तथा देवता आदि सबका अपने-अपने निवास-स्थानको प्रस्थान	१०६६
५८-	श्रीकृष्णद्वारा कंस आदिका आवाहन और उनका श्रीकृष्णको ही परमपिता बताकर इस लोकके माता-पितासे मिले बिना ही वैकुण्ठ-लोकको प्रस्थान	१०६९
५९-	गर्गाचार्यके द्वारा राजा उग्रसेनके प्रति भगवान् श्रीकृष्णके सहस्र नामोंका वर्णन	१०७१
६०-	कौरवोंके संहार, पाण्डवोंके स्वर्गगमन तथा यादवोंके संहार आदिका संक्षिप्त वृत्तान्त; श्रीराधा तथा व्रजवासियोंसहित भगवान् श्रीकृष्णका गोलोकधाममें गमन	११०२
६१-	भगवान्के श्यामवर्ण होनेका रहस्य; कलियुगकी पापमयी प्रवृत्ति; उससे बचनेके लिये श्रीकृष्णकी समाराधना तथा एकादशी-व्रतका माहात्म्य	११०६
६२-	गुरु और गङ्गाकी महिमा; श्रीवज्रनाभद्वारा कृतज्ञता-प्रकाशन और गुरुदेवका पूजन तथा श्रीकृष्णके भजन-चिन्तन एवं संहिताका माहात्म्य	११११
✿	श्रीगोविन्दस्तोत्रम्	१११७

चित्र सूची

(रंगीन चित्र-फलक)

विषय	फलक-संख्या
१- वृन्दावनमें सौन्दर्य-माधुर्य-निधि भगवान् श्रीकृष्ण	१
२- गोपियोंद्वारा क्षीरसागरमें लक्ष्मीरूपिणी राधाके साथ शेषशायी अष्टभुज श्रीकृष्णके दर्शन	२
३- राजा विमलके यज्ञमें श्रीकृष्णका पूजन	२
४- कन्याओंको श्रीकृष्णार्पण करनेपर विमलको भगवत्-स्वरूपकी प्राप्ति	२
५- अक्रूरद्वारा श्रीकृष्ण-बलरामका स्तवन	३
६- कुब्जाद्वारा श्रीकृष्णका सत्कार	३
७- रुक्मिणी आदिका श्रीराधाजीसे मिलन	३
८- श्रीराधाके हृदयमें श्रीकृष्णचरणोंकी नित्य स्थिति	३
९- श्रीराधाकृष्णका विवाह	४
१०- श्रीराधाकृष्ण-युगलकी झाँकी	४
११- श्रीबलरामजी	४
१२- श्रीयमुनाजी	४
१३- पारिजातहरण एवं इन्द्रपराजय	५
१४- बृहस्पतिका शचीको समझाना	५
१५- उग्रसेनद्वारा नारद-तुम्बुरुका स्वागत	५
१६- उग्रसेनद्वारा श्रीकृष्ण-बलरामका स्तवन	५
१७- दैत्य राजकुमार कुनन्दनकी तोपके मुखसे रक्षा	६
१८- तोपके गोलेसे सैन्यपालकी मृत्यु	६
१९- रणभेरीके समय श्रीकृष्णका शुभागमन	६
२०- भगवान् शिवद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन	६
२१- नन्दरायका श्रीकृष्णको हृदयसे लगाना	७
२२- माता यशोदाके चरणोंमें आँसू बहाते हुए श्रीकृष्ण	७
२३- कदलीवनमें वियोग-व्यथित श्रीराधाका श्रीकृष्णसे मिलन	७
२४- गोलोकधाममें श्रीराधा-कृष्णकी दिव्य झाँकी	८

(सादे चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान् मुरलीमनोहर	२९
२- वर्षा-तूफानमें नन्दकी गोदमें श्रीकृष्ण	३०
३- नन्दके द्वारा राधा-स्तुति	३०
४- ब्रह्माजीके द्वारा श्रीराधाकृष्ण-स्तुति	३०
५- राधाका बालकृष्णको यशोदाकी गोदमें देना	३०
६- गोपियोंके मध्य शृंगारमूर्ति श्रीकृष्ण	१३३
७- श्रीकृष्णका सखी-वेशमें राधासे मिलना	१३४
८- सखी-वेशधारी कृष्णके साथ राधाका वन-विहार	१३४
९- सखी-वेशमें कृष्णका राधासे वार्तालाप	१३४
१०- श्रीकृष्णका राधासे प्रकट-मिलन	१३४
११- गिरिराजरूपमें श्रीकृष्ण	२३७
१२- श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धनधारण	२३८
१३- देवराज इन्द्रद्वारा श्रीकृष्णस्तवन	२३८
१४- ऐरावतद्वारा श्रीकृष्णका अभिषेक	२३८
१५- प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव	२७५
१६- गोपियोंद्वारा देवी कात्यायनीका पूजन	२७६
१७- भगवती यमुनाजी	२७६
१८- विप्रपत्नियोंद्वारा भगवद्दर्शन एवं नैवेद्य-अर्पण	२७६
१९- माता-पिताको कंसके कारागारसे मुक्त करते श्रीकृष्ण	३६१
२०- अक्रूरजीका श्रीकृष्णचरण-चिह्नोंको देखकर भावुक होना	३६२
२१- श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरा-गमन	३६२
२२- मथुराके दर्जीपर श्रीकृष्णकी कृपा	३६२
२३- श्रीकृष्णद्वारा कुवलयापीड हाथीका वध	३६२
२४- रुक्मिणीको श्रीराधाजीकी महिमा बताते श्रीकृष्ण	४६९
२५- विश्वकर्माजीद्वारा निर्मित द्वारकापुरी	४७०
२६- मुचुकुन्दकी क्रोधाग्निसे भस्म कालयवन	४७०
२७- जरासन्धके भयसे भागते कृष्ण-बलराम	४७०
२८- श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणी-हरण	४७०
२९- कृष्णद्वारा सोलह हजार एक सौ कन्याओंका वरण	४७०
३०- श्रीकृष्णका सुदामाकी भेंट स्वीकार करना	४७०
३१- यादव वीरोंसे भयभीत शिशुपालकी सेनाका पलायन	५५३
३२- महाराज उग्रसेनद्वारा श्रीकृष्णसे परामर्श	५५४
३३- राजा मरुत्तद्वारा भव्य यज्ञका आयोजन	५५४
३४- भगवान् बलभद्र	७५९
३५- श्रीबलभद्रद्वारा द्विविद वानरका वध	७६०
३६- राजा रेवतद्वारा बलरामजीको रेवतीका पाणिग्रहण कराना	७६०
३७- बलरामजीद्वारा हस्तिनापुरपर क्रोध	७६०
३८- श्रीबलभद्रद्वारा बल्वल दैत्यका वध	७६०
३९- परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण	८१३
४०- सत्त्वगुणी, रजोगुणी एवं तमोगुणीकी गति	८१४
४१- त्रिविध पूजन	८१४
४२- सखियोंके साथ श्रीकृष्णका स्वागत करतीं श्रीराधाजी	८४७
४३- यादवसेनाका विमानद्वारा उपलंकामें पहुँचना	८४८
४४- अनिरुद्धका भीषणपर प्रहार	८४८
४५- हाथीको चबाता हुआ बक	८४८
४६- भीषणद्वारा यज्ञीय अश्वका समर्पण	८४८

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

श्रीगर्गसंहितामाहात्म्य

पहला अध्याय

गर्गसंहिताके प्राकट्यका उपक्रम

वृष्णीनां कृष्णदेवानामाचार्याय महात्मने।
श्रीमद्गर्गकवीशाय तस्मै नित्यं नमो नमः॥ १

शौनक उवाच

श्रुतं तव मुखाद् ब्रह्मन् पुराणानां च विस्तरात्।
श्रेष्ठं श्रेष्ठं च माहात्म्यं कर्णयोः सुखवर्धनम्॥ २

गर्गस्य च मुनेरद्य संहितायाः प्रयत्नतः।
अस्माकं वद माहात्म्यं साररूपं विचार्य च॥ ३

अहो धन्या भागवती मुनेर्गर्गस्य संहिता।
राधामाधवयोर्यस्यां महिमा बहु वर्णितः॥ ४

सूत उवाच

अहो शौनक माहात्म्यं नारदाच्च मया श्रुतम्।
उक्तं सम्मोहने तन्त्रे शिवायै च शिवेन वै॥ ५

कैलासशिखरे शुभ्रे यत्राक्षयवटाजिरे।
तीरे चालकनन्दाया नित्यं संराजते हरः॥ ६

शङ्करं चैकदा देवं गिरिजा सर्वमङ्गला।
सिद्धानां शृण्वतां तत्र पप्रच्छ वाञ्छितं मुदा॥ ७

पार्वत्युवाच

यदेवं ध्यायसे नाथ तस्यापि चरितं परम्।
जन्मकर्मरहस्यं च कथयस्व ममाग्रतः॥ ८

जो श्रीकृष्णको ही देवता (आराध्य) माननेवाले, वृष्णिवंशियोंके आचार्य तथा कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, उन महात्मा श्रीमान् गर्गजीको नित्य बारंबार नमस्कार है॥ १॥

शौनकजी बोले—ब्रह्मन्! मैंने आपके मुखसे पुराणोंका उत्तम-से-उत्तम माहात्म्य विस्तारपूर्वक सुना है, वह श्रोत्रेन्द्रियके सुखकी वृद्धि करनेवाला है। अब गर्गमुनिकी संहिताका जो साररूप माहात्म्य है, उसका प्रयत्नपूर्वक विचार करके मुझसे वर्णन कीजिये। अहो! जिसमें श्रीराधा-माधवकी महिमाका विविध प्रकारसे वर्णन किया गया है, वह गर्गमुनिकी भगवल्लीला-सम्बन्धिनी संहिता धन्य है॥ २—४॥

सूतजी कहते हैं—अहो शौनक! इस माहात्म्यको मैंने नारदजीसे सुना है। इसे सम्मोहन-तन्त्रमें शिवजीने पार्वतीसे वर्णन किया था। कैलासपर्वतके निर्मल शिखरपर, जहाँ अलकनन्दाके तटपर अक्षयवट विद्यमान है, उसकी छायामें शंकरजी नित्य विराजते हैं॥ ५-६॥

एक समयकी बात है, सम्पूर्ण मङ्गलोंकी अधिष्ठात्री देवी गिरिजाने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शंकरसे अपनी मनभावनी बात पूछी, जिसे वहाँ उपस्थित सिद्धगण भी सुन रहे थे॥ ७॥

पार्वतीने पूछा—नाथ! जिसका आप इस प्रकार ध्यान करते रहते हैं, उसके उत्कृष्ट चरित्र तथा जन्म-कर्मके रहस्यका मेरे समक्ष वर्णन कीजिये॥ ८॥

पुरा त्वन्मुखतः साक्षाच्छ्रुतं नाम्नां सहस्रकम्।
श्रीमद्गोपालदेवस्य तत्कथां वद मे हर॥ ९

महादेव उवाच

कथा गोपालकृष्णस्य राधेशस्य महात्मनः।
गर्गस्य संहितायां च श्रूयते सर्वमङ्गले॥ १०

पार्वत्युवाच

बहूनि च पुराणानि संहितादीनि शङ्कर।
सर्वान् विहाय गर्गस्य त्वं प्रशंससि संहिताम्॥ ११

तस्यां का भगवल्लीला विस्तरेण तदुच्यताम्।
कृतवान् संहितां गर्गः केन सम्प्रेरितः पुरा॥ १२

किं पुण्यं किं फलं चास्याः श्रवणेनापि लभ्यते।
पुरा कैः कैर्जनैर्देव श्रुता मम वद प्रभो॥ १३

सूत उवाच

इति प्रियाया वचनं निशम्य
प्रसन्नचित्तो भगवान् महेशः।
विचार्य गर्गस्य कृतां कथां च
प्रत्याह वाक्यं सदसि स्थितः सः॥ १४

महादेव उवाच

शृणु देवि सविस्तारं माहात्म्यं पापनाशनम्।
राधामाधवयोश्चापि संहितायाः प्रयत्नतः॥ १५

पूर्वं चरित्रं स्वस्यापि ब्रह्मणा प्रार्थितो मुदा।
राधायै कथयामास प्रव्रजन् भूतलं हरिः॥ १६

ततः शेषेण भगवान् गोलोके प्रार्थितः पुनः।
तस्याग्रे कथयामास समस्तां स्वकथां हरिः॥ १७

शेषो ददौ ब्रह्मणे च ब्रह्मा धर्माय संहिताम्।
धर्मः सम्प्रार्थितः प्राह स्वपुत्राभ्यां कथामृतम्॥ १८

नरनारायणाभ्यां च ह्येकान्ते सर्वमङ्गले।
नारायणो नारदाय सेवने निरताय च॥ १९

कष्टहारी शंकर! पूर्वकालमें मैंने साक्षात् आपके मुखसे श्रीमान् गोपालदेवके सहस्रनामको सुना है। अब मुझे उनकी कथा सुनाइये॥ ९॥

महादेवजी बोले—सर्वमङ्गले! राधापति परमात्मा गोपालकृष्णकी कथा गर्गसंहितामें सुनी जाती है॥ १०॥

पार्वतीने पूछा—शंकर! पुराण और संहिताएँ तो अनेक हैं, परंतु आप उन सबका परित्याग करके गर्गसंहिताकी ही प्रशंसा करते हैं, उसमें भगवान्‌की किस लीलाका वर्णन है, उसे विस्तारपूर्वक बतलाइये। पूर्वकालमें किसके द्वारा प्रेरित होकर गर्गमुनिने इस संहिताकी रचना की थी? देव! इसके श्रवणसे कौन-सा पुण्य होता है तथा किस फलकी प्राप्ति होती है? प्राचीनकालमें किन-किन लोगोंने इसका श्रवण किया है? प्रभो! यह सब मुझे बताइये॥ ११—१३॥

सूतजी कहते हैं—अपनी प्रिया पार्वतीका ऐसा कथन सुनकर भगवान् महेश्वरका चित्त प्रसन्न हो गया। उस समय वे सभामें विराजमान थे। वहीं उन्होंने गर्गद्वारा रचित कथाका स्मरण करके उत्तर देना आरम्भ किया॥ १४॥

महादेवजी बोले—देवि! राधा-माधवका तथा गर्गसंहिताका भी विस्तृत माहात्म्य प्रयत्नपूर्वक श्रवण करो। यह पापोंका नाश करनेवाला है। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण भूतलपर अवतीर्ण होनेका विचार कर रहे थे, उसी अवसरपर ब्रह्माके प्रार्थना करनेपर उन्होंने पहले-पहल राधासे अपने चरित्रका वर्णन किया था॥ १५-१६॥

तदनन्तर गोलोकमें शेषजीने (कथा-श्रवणके लिये) प्रार्थना की। तब भगवान्‌ने प्रसन्नतापूर्वक पुनः अपनी सम्पूर्ण कथा उनके सम्मुख कह सुनायी। तत्पश्चात् शेषजीने ब्रह्माको और ब्रह्माने धर्मको यह संहिता प्रदान की। सर्वमङ्गले! फिर अपने पुत्र नर-नारायणद्वारा आग्रहपूर्ण प्रार्थना किये जानेपर धर्मने एकान्तमें उनको इस अमृतस्वरूपिणी कथाका पान कराया था॥ १७—१८$^1/_2$॥

पुनः नारायणने धर्मके मुखसे जिस कृष्ण-चरित्रका श्रवण किया था, उसे सेवापरायण

जगाद कृष्णचरितं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः।
ततश्च प्रार्थितः प्राह गर्गाचार्याय नारदः॥ २०

नारायणमुखाल्लब्धां सर्वां श्रीकृष्णसंहिताम्।
इति श्रुत्वा परं ज्ञानं हरेर्भक्तिसमन्वितम्॥ २१

चकार पूजनं गर्गो नारदस्य महात्मनः।
उवाच नारदो गर्गं त्रिकालज्ञं च पार्वति॥ २२

नारद उवाच

मया तुभ्यं श्रावितं च यशः सङ्क्षेपतो हरेः।
वैष्णवानां प्रियं गर्ग त्वमेतद्विपुलं कुरु॥ २३

सर्वेषां कामदं शश्वत्कृष्णभक्तिविवर्धनम्।
मम प्रियं कुरु विभो शास्त्रं तु परमाद्भुतम्॥ २४

वचसा मम विप्रेन्द्र कृष्णद्वैपायनेन च।
सर्वशास्त्रात्परं श्रेष्ठं श्रीमद्भागवतं कृतम्॥ २५

ब्रह्मन् यथा भागवतं गोपयिष्याम्यहं तथा।
त्वत्कृतं श्रावयिष्यामि बहुलाश्वाय भूभृते॥ २६

नारदसे कहा। तदनन्तर प्रार्थना किये जानेपर नारदने नारायणके मुखसे प्राप्त हुई सारी-की-सारी श्रीकृष्णसंहिता गर्गाचार्यको कह सुनायी। यों श्रीहरिकी भक्तिसे सराबोर परम ज्ञानको सुनकर गर्गजीने महात्मा नारदका पूजन किया। पर्वतनन्दिनि! तब नारदने भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंके ज्ञाता गर्गसे यों कहा॥ १९—२२॥

नारदजी बोले—गर्गजी! मैंने तुम्हें संक्षेपसे श्रीहरिकी यशोगाथा सुनायी है। यह वैष्णवोंके लिये परम प्रिय है। अब तुम इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करो॥ २३॥

विभो! तुम ऐसे परम अद्भुत शास्त्रकी रचना करो, जो सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, निरन्तर कृष्णभक्तिकी वृद्धि करनेवाला तथा मुझे परम प्रिय लगे। विप्रेन्द्र! मेरी आज्ञा मानकर कृष्णद्वैपायन व्यासने श्रीमद्भागवतकी रचना की, जो समस्त शास्त्रोंमें परम श्रेष्ठ है॥ २४-२५॥

ब्रह्मन्! जिस प्रकार मैं भागवतकी रक्षा करता हूँ, उसी तरह तुम्हारे द्वारा रचित शास्त्रको राजा बहुलाश्वको सुनाऊँगा॥ २६॥

॥ इति श्रीसम्मोहनतन्त्रे पार्वती-हरसंवादे श्रीगर्गसंहितामाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीसम्मोहन-तन्त्रमें पार्वती-शंकर-संवादमें 'श्रीगर्गसंहिताका माहात्म्य' विषयक प्रथम अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

नारदजीकी प्रेरणासे गर्गद्वारा संहिताकी रचना; संतानके लिये दुखी राजा प्रतिबाहुके पास महर्षि शाण्डिल्यका आगमन

महादेव उवाच

श्रुत्वा देवर्षिवचनं गर्गाचार्यो महामुनिः।
विनयावनतो भूत्वा प्रहसन्निदमब्रवीत्॥ १

गर्ग उवाच

त्वया ब्रह्मन् वचश्चोक्तं कठिनं सर्वतः स्फुटम्।
तथापि च करिष्यामि त्वं करोषि कृपां यदि॥ २

इत्येवमुक्तो भगवान् नारदः सर्वमङ्गले।
स्ववीणां वादयन् गायन् ब्रह्मलोकं ययौ मुदा॥ ३

महादेवजीने कहा—देवर्षि नारदका कथन सुनकर महामुनि गर्गाचार्य विनयसे झुककर हँसते हुए यों कहने लगे—॥ १॥

गर्गजी बोले—ब्रह्मन्! आपकी कही हुई बात यद्यपि सब तरहसे अत्यन्त कठिन है—यह स्पष्ट है, तथापि यदि आप कृपा करेंगे तो मैं उसका पालन करूँगा॥ २॥

सर्वमङ्गले! यों कहे जानेपर भगवान् नारद हर्षातिरेकसे अपनी वीणा बजाते और गाते हुए ब्रह्मलोकमें चले गये॥ ३॥

गर्गाचले कविर्गर्गः शास्त्रं चक्रे महाद्भुतम्।
निरूपितं च संवादं देवर्षिबहुलाश्वयोः॥ ४

नानाकृष्णचरित्रैश्च विचित्रैः परिपूरितम्।
श्लोकैर्द्वादशसाहस्रैः सुधामिष्टैरलङ्कृतम्॥ ५

यच्छ्रुतं गुरुवक्त्राच्च यद् दृष्टं श्रीहरेर्महत्।
तत्सर्वं चरितं गर्गः संहितायां समादधे॥ ६

श्रीगर्गसंहितानाम्ना कथाभूत्कृष्णभक्तिदा।
यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वकार्यं च सिद्ध्यति॥ ७

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापं प्रणश्यति॥ ८

वज्रस्यापि सुतो राजा प्रतिबाहुर्नृपो ह्यभूत्।
तस्य राज्ञः प्रिया देवी मालिनी नाम वर्तते॥ ९

मथुरायां कृष्णपुर्यां भार्यया सहितो नृपः।
सन्तानार्थे विधानेन बहून् यत्नांश्चकार ह॥ १०

गावश्च बहवो दत्ताः सुपात्रेभ्यः सवत्सकाः।
तथा तेन कृता यज्ञा दक्षिणाभिः प्रयत्नतः॥ ११

गुरवो ब्राह्मणा देवाः पूजिता भोजनैर्धनैः।
पुत्रो न जातस्तदपि ततश्चिन्तातुरोऽभवत्॥ १२

तावुभौ दम्पती नित्यं चिन्ताशोकपरायणौ।
पितरोऽस्य जलं दत्तं कवोष्णमुपभुञ्जते॥ १३

राज्ञः पश्चान्न पश्यामो योऽस्माकं तर्पयिष्यति।
इत्येवं स्मरतस्तस्य दुःखिताः पितरोऽभवन्॥ १४

न बान्धवा न मित्राणि नामात्यसुहृदस्तथा।
शोचयन्त्यस्य भूपस्य न गजाश्वाः पदातयः॥ १५

नैराश्यं भूपतेस्तस्य नित्यं मनसि वर्तते।
जनस्य सुतहीनस्य नास्ति वै जन्मनः फलम्॥ १६

तदनन्तर गर्गाचलपर जाकर कविश्रेष्ठ गर्गने इस महान् अद्भुत शास्त्रकी रचना की। इसमें देवर्षि नारद और राजा बहुलाश्वके संवादका निरूपण हुआ है। यह श्रीकृष्णके विभिन्न विचित्र चरित्रोंसे परिपूर्ण तथा सुधा-सदृश स्वादिष्ट बारह हजार श्लोकोंसे सुशोभित है॥ ४-५॥

गर्गजीने श्रीकृष्णके जिस महान् चरित्रको गुरुके मुखसे सुना था, अथवा स्वयं अपनी आँखों देखा था, वह सारा-का-सारा चरित्र इस संहितामें सजा दिया है। वह कथा 'श्रीगर्गसंहिता' नामसे प्रचलित हुई। यह कृष्णभक्ति प्रदान करनेवाली है। इसके श्रवणमात्रसे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका वर्णन किया जाता है, जिसके सुनते ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं—॥ ६—८॥

वज्रके पुत्र राजा प्रतिबाहु हुए, [जो प्रजा-पालनमें तत्पर रहते थे।] उस राजाकी प्यारी पत्नीका नाम मालिनी देवी था। राजा प्रतिबाहु पत्नीके साथ कृष्णपुरी मथुरामें रहते थे। उन्होंने संतानकी प्राप्तिके लिये विधानपूर्वक बहुत-सा यत्न किया॥ ९-१०॥

राजाने सुपात्र ब्राह्मणोंको बछड़े-सहित बहुत-सी गायोंका दान दिया तथा प्रयत्नपूर्वक भरपूर दक्षिणाओंसे युक्त अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया। भोजन और धनद्वारा गुरुओं, ब्राह्मणों और देवताओंका पूजन किया, तथापि पुत्रकी उत्पत्ति न हुई। तब राजा चिन्तासे व्याकुल हो गये॥ ११-१२॥

वे दोनों पति-पत्नी नित्य चिन्ता और शोकमें डूबे रहते थे। इनके पितर (तर्पणमें) दिये हुए जलको कुछ गरम-सा पान करते थे॥ १३॥

'इस राजाके पश्चात् जो हमलोगोंको तर्पणद्वारा तृप्त करेगा—ऐसा कोई दिखायी नहीं पड़ रहा है। इस राजाके भाई-बन्धु, मित्र, अमात्य, सुहृद् तथा हाथी, घोड़े और पैदल-सैनिक—किसीको भी इस बातकी कोई चिन्ता नहीं है।'—इस बातको याद करके राजाके पितृगण अत्यन्त दुखी हो जाते थे। इधर राजा प्रतिबाहुके मनमें निरन्तर निराशा छायी रहती थी। (वे सोचते रहते थे कि) पुत्रहीन मनुष्यका जन्म निष्फल है॥ १४—१६॥

गृहं शून्यं ह्यपुत्रस्य दुःखितं च मनः सदा।
देवमानुषपितृणां नानृणत्वं सुतं विना॥ १७

पुत्रमुत्पादयेत्प्राज्ञस्तस्मात्सर्वप्रयत्नतः।
यशस्तेषां भूमिलोके परलोके गतिर्भवेत्॥ १८

येषां तु पुण्यकर्तृणां पुत्रजन्म गृहे भवेत्।
आयुरारोग्यसम्पत्तिस्तेषां गेहे प्रवर्धते॥ १९

एवं विचिन्त्य मनसा न शर्म लभते नृपः।
श्वेतान् स्वमूर्धजान् दृष्ट्वा चक्रे शोकमहर्निशम्॥ २०

तस्यैकदा मधुपुरे शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः।
स्वेच्छया स उपागच्छत्प्रतिबाहुं विलोकितुम्॥ २१

तं दृष्ट्वा सहसा राजा प्रत्युत्थानासनादिभिः।
निवेद्य मधुपर्कादींश्चकार पूजनं मुदा॥ २२

उदासीनं नृपं दृष्ट्वा कृत्वा विस्मयमेव च।
ऋषिस्तमभिनन्द्याथ स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥ २३

पप्रच्छ कुशलं राज्ये सप्तस्वङ्गेषु भूपतेः।
निवेदितुं स्वकुशलं प्रत्याह नृपसत्तमः॥ २४

राजोवाच

पूर्वदोषेण यद्दृष्टं स्वदुःखं किं ब्रवीम्यहम्।
ऋषयस्त्वादृशा ब्रह्मन् किं न जानन्ति साम्प्रतम्॥ २५

सौख्यं न राष्ट्रे न पुरे मम नैव तु दृश्यते।
किं करोमि क्व गच्छामि पुत्रप्राप्तिः कथं भवेत्॥ २६

राज्ञः पश्चान्न पश्यामो योऽस्माकं पालयिष्यति।
इत्येवं स्मरतः सर्वा दुःखिता मेऽभवन् प्रजाः॥ २७

उपायं वद मे ब्रह्मंस्त्वं साक्षाद्दिव्यदर्शनः।
येनापि निष्कलः पुत्रो वंशकर्ता भविष्यति॥ २८

जिसके पुत्र नहीं है, उसका घर सूना-सा लगता है और मन सदा दुःखाभिभूत रहता है। पुत्रके बिना मनुष्य देवता, मनुष्य और पितरोंके ऋणसे उऋण नहीं हो सकता। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह सभी प्रकारके उपायोंका आश्रय लेकर पुत्र उत्पन्न करे। उसीकी भूतलपर कीर्ति होती है और परलोकमें उसे शुभगति प्राप्त होती है॥ १७-१८॥

जिन पुण्यशाली पुरुषोंके घरमें पुत्रका जन्म होता है, उनके भवनमें आयु, आरोग्य और सम्पत्ति सदा बनी रहती है। राजा अपने मनमें यों लगातार सोचा करते थे, जिससे उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी। अपने सिरके बालोंको श्वेत हुआ देखकर वे रात-दिन शोकमें निमग्न रहते थे॥ १९-२०॥

एक समय मुनीश्वर शाण्डिल्य स्वेच्छापूर्वक विचरते हुए प्रतिबाहुसे मिलनेके लिये उनकी राजधानी मधुपुरी (मथुरा)-में आये। उन्हें देखकर राजा सहसा अपने सिंहासनसे उठ पड़े और उन्हें आसन आदि देकर सम्मानित किया। पुनः मधुपर्क आदि निवेदन करके हर्षपूर्वक उनका पूजन किया॥ २१-२२॥

राजाको उदासीन देखकर महर्षिको परम विस्मय हुआ। तत्पश्चात् मुनीश्वरने स्वस्तिवाचनपूर्वक राजाका अभिनन्दन करके उनसे राज्यके सातों[१] अङ्गोंके विषयमें कुशल पूछी। तब नृपश्रेष्ठ प्रतिबाहु अपनी कुशल निवेदन करनेके लिये बोले— ॥२३-२४॥

राजाने कहा—ब्रह्मन्! पूर्वजन्मार्जित दोषके कारण इस समय मुझे जो दुःख प्राप्त है, अपने उस कष्टके विषयमें मैं क्या कहूँ? भला, आप-जैसे ऋषियोंके लिये क्या अज्ञात है? मुझे अपने राष्ट्र तथा नगरमें कुछ भी सुख दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किस प्रकार मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो?॥ २५-२६॥

'राजाके बाद जो हमारी रक्षा करे—ऐसा हमलोग किसीको नहीं देख रहे हैं।' इस बातको स्मरण करके मेरी सारी प्रजा दुखी है। ब्रह्मन्! आप तो साक्षात् दिव्यदर्शी हैं; अतः मुझे ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे मुझे वंशप्रवर्तक दीर्घायु पुत्रकी प्राप्ति हो जाय॥ २७-२८॥

१. राजा, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, दण्ड या बल और सुहृद्—ये राज्यके सात अङ्ग माने गये हैं।

महादेव उवाच

इति श्रुत्वा वचो देवि दुःखितस्य नृपस्य च।
उवाच मुनिशाण्डिल्यः कश्मलं शमयन्निव॥ २९

महादेवजी बोले—देवि! उस दुखी राजाके इस वचनको सुनकर मुनिवर्य शाण्डिल्य राजाके दुःखको शान्त करते हुए-से बोले॥ २९॥

॥ इति श्रीसम्मोहनतन्त्रे पार्वती-हरसंवादे श्रीगर्गसंहितामाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीसम्मोहन-तन्त्रमें पार्वती-शंकर-संवादमें 'गर्गसंहिताका माहात्म्य' विषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

राजा प्रतिबाहुके प्रति महर्षि शाण्डिल्यद्वारा गर्गसंहिताके माहात्म्य और श्रवण-विधिका वर्णन

शाण्डिल्य उवाच

उपायाश्च कृता राजन् बहवश्च पुरा त्वया।
परन्तु तैः सुतो ह्येको न जातः कुलदीपकः॥ १

तस्माच्छृणु विधानेन भार्यया सहितः शुचिः।
धनदां पुत्रदां राजन् मुक्तिदां गर्गसंहिताम्॥ २

सर्वं ददात्यसौ विष्णुर्लघूपायेन वै कलौ।
पुत्रादिसुखसम्पत्तीः संहिताश्रोतृणां नृणाम्॥ ३

नरेन्द्र शश्वन्मुनिसंहिताया
नवाहयज्ञेन जनाः पुनीताः।
इहैव सौख्यं परमाप्नुवन्त-
स्ततस्तु गोलोकपुरं व्रजन्ति॥ ४

रोगी पुमान् रोगगणात्प्रमुच्यते
भीतो भयाद्बन्धनगश्च बन्धनात्।
श्रुत्वा कथां निर्धन एति वैभवं
मूर्खो भवेत्पण्डित एव सत्वरम्॥ ५

विप्रोऽथ विद्वान् विजयी नृपात्मजो
वैश्यो निधीशो वृषलोऽपि निर्मलः।
श्रुत्वा कथां प्राप्तमनोरथो भवेत्
स्त्रीणां जनानामतिदुर्लभापि हि॥ ६

निष्कारणो भक्तियुतः शृणोति हि
सर्वामिमां वै मुनिगर्गसंहिताम्।
विजित्य विघ्नान् प्रविजित्य नाकपान्
गोलोकधामप्रवरं प्रयाति सः॥ ७

शाण्डिल्यने कहा—राजन्! पहले भी तो तुम बहुत-से उपाय कर चुके हो, परंतु उनके परिणामस्वरूप एक भी कुलदीपक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। इसलिये अब तुम पत्नीके साथ शुद्ध-हृदय होकर विधिपूर्वक 'गर्ग-संहिता' का श्रवण करो। राजन्! यह संहिता धन, पुत्र और मुक्ति प्रदान करनेवाली है॥ १-२॥

यद्यपि यह एक छोटा-सा उपाय है, तथापि कलियुगमें जो मनुष्य इस संहिताका श्रवण करते हैं, उन्हें भगवान् विष्णु पुत्र, सुख आदि सब प्रकारकी सुख-सम्पत्ति दे देते हैं। नरेश! गर्गमुनिकी इस संहिताके नवाह-पारायणरूप यज्ञसे मनुष्य सद्यः पावन हो जाते हैं। उन्हें इस लोकमें परम सुखकी प्राप्ति होती है तथा मृत्युके पश्चात् वे गोलोकपुरीमें चले जाते हैं॥ ३-४॥

इस कथाको सुननेसे रोगग्रस्त मनुष्य रोग-समूहोंसे, भयभीत भयसे और बन्धनग्रस्त बन्धनसे मुक्त हो जाता है। निर्धनको धन-धान्यकी प्राप्ति हो जाती है तथा मूर्ख शीघ्र ही पण्डित हो जाता है। इस कथाके श्रवणसे ब्राह्मण विद्वान्, क्षत्रिय विजयी, वैश्य खजानेका स्वामी तथा शूद्र पापरहित हो जाता है। यद्यपि यह संहिता स्त्री-पुरुषोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है, तथापि इसे सुनकर मनुष्य सफलमनोरथ हो जाता है॥ ५-६॥

जो निष्कारण अर्थात् कामनारहित होकर भक्तिपूर्वक मुनिवर गर्गद्वारा रचित इस सम्पूर्ण संहिताको सुनता है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंपर विजय पाकर देवताओंको भी पराजित करके श्रेष्ठ गोलोकधामको चला जाता है॥ ७॥

प्रबन्धकल्पना गर्गसंहितायाश्च दुर्लभा।
सहस्रजन्मपुण्येन लभ्यते भूतले नृप॥ ८

श्रीगर्गसंहितायाश्च दिनानां नियमो न हि।
सर्वदा श्रवणं चोक्तं भुक्तिमुक्तिकरं कलौ॥ ९

राजन्! गर्गसंहिताकी प्रबन्ध-कल्पना परम दुर्लभ है। यह भूतलपर सहस्रों जन्मोंके पुण्यसे उपलब्ध होती है। श्रीगर्गसंहिताके श्रवणके लिये दिनोंका कोई नियम नहीं है। इसे सर्वदा सुननेका विधान है। इसका श्रवण कलियुगमें भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाला है॥ ८-९॥

न जाने समयेनापि प्रभाते किं भविष्यति।
प्रोक्तं तु संहितायाश्च नवाहश्रवणं ततः॥ १०

ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण चैकभुक्तेन भूपते।
एकान्नेन हविष्येण फलाहारेण वा पुनः॥ ११

समय क्षणभङ्गुर है; पता नहीं कल क्या हो जाय; इसलिये संहिता-श्रवणके लिये नौ दिनका नियम बतलाया गया है। भूपाल! श्रोताको चाहिये कि वह ज्ञानपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एक बार एक अन्नका या हविष्यान्नका भोजन करे अथवा फलाहार करे॥ १०-११॥

मिष्टान्नं पूरिकां चैव गोधूमस्य यवस्य वा।
अश्नीयात्सैन्धवं कन्दं दधि दुग्धं विधानतः॥ १२

विष्णुप्रसादं भुञ्जीत नाप्रसादं नृपोत्तम।
श्रद्धया तु प्रकुर्वीत श्रवणं सर्वकामदम्॥ १३

उसे विधानके अनुसार मिष्टान्न, गेहूँ अथवा जौकी पूड़ी, सेंधा नमक, कंद, दही और दूधका भोजन करना चाहिये। नृपश्रेष्ठ! विष्णुभगवान्‌के अर्पित किये हुए भोजनको ही प्रसादरूपमें खाना चाहिये। बिना भगवान्‌का भोग लगाये आहार नहीं ग्रहण करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक कथा सुननी चाहिये; क्योंकि यह कथा-श्रवण सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ १२-१३॥

भूमिशायी भवेत्प्राज्ञः क्रोधलोभविवर्जितः।
कथां गुरुमुखाच्छ्रुत्वा सर्वकामफलं लभेत्॥ १४

गुरुभक्तिविहीनानां नास्तिकानां च पापिनाम्।
अवैष्णवानां दुष्टानां कथायाश्च फलं न हि॥ १५

बुद्धिमान् श्रोताको चाहिये कि वह पृथ्वीपर शयन करे और क्रोध तथा लोभको छोड़ दे। इस प्रकार गुरुके श्रीमुखसे कथा सुनकर वह सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है। जो गुरु-भक्तिसे रहित, नास्तिक, पापी, विष्णुभक्तिसे रहित, श्रद्धाशून्य तथा दुष्ट हैं, उन्हें कथाका फल नहीं मिलता॥ १४-१५॥

सुमुहूर्ते कथारम्भं स्वगृहे कारयेन्नरः।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रान् समाहूय स्वकान् स्वकान्॥ १६

मण्डपं कदलीखण्डैः प्रकुर्याद्भक्तितः सुधीः।
अग्रे तु कलशं धृत्वा जलपूर्णं सपल्लवम्॥ १७

विद्वान् श्रोताको चाहिये कि वह अपने परिचित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभीको बुलाकर शुभ मुहूर्तमें अपने घरपर कथाको आरम्भ कराये। भक्तिपूर्वक केलेके खंभोंसे मण्डपका निर्माण करे। सबसे पहले पञ्चपल्लवसहित जलसे भरा हुआ कलश स्थापित करे॥ १६-१७॥

पूर्वं विनायकं पूज्य तत्पश्चात्तु नवग्रहान्।
ततश्च पुस्तकं पूज्य वक्तारं परिपूजयेत्॥ १८

फिर पहले-पहल गणेशकी पूजा करके तत्पश्चात् नवग्रहोंकी पूजा करे। तदनन्तर पुस्तककी पूजा करके विधिपूर्वक वक्ताकी पूजा करे और उन्हें

सुवर्णदक्षिणां दत्वा ह्यशक्तो रजतस्य वा।
कलशे श्रीफलं धृत्वा मिष्टान्नं तु निवेदयेत्॥ १९

प्रकुर्यादार्तिकं भक्त्या सम्पूज्य तुलसीदलैः।
समाप्तिदिवसे राजन् प्रदक्षिणमुपाचरेत्॥ २०

परदाररतं धूर्तं वादिनं शिवनिन्दकम्।
अवैष्णवं क्रोधपरं वक्तारं तु न कल्पयेत्॥ २१

वादी च निन्दको मूर्खो गाथायां भङ्गमाचरेत्।
दुःखदाता च सर्वेषां स तु श्रोता हतः स्मृतः॥ २२

गुरुशुश्रूषणे रक्तो विष्णुभक्तः कथार्थवित्।
गाथां श्रोतुं मनो यस्य स श्रोता श्रेष्ठ उच्यते॥ २३

शुद्धः स आचार्यकुलप्रजातः
श्रीकृष्णभक्तो बहुशास्त्रवेत्ता।
कृपाकरः सर्वजनेषु नित्यं
सन्देहहारी कथितः स वक्ता॥ २४॥

वरणं ब्राह्मणानां तु यथाशक्त्या च कारयेत्।
कथाविघ्ननिवृत्त्यर्थं द्वादशाक्षरविद्यया॥ २५

कथां तु धीरकण्ठेन वाचयेत् प्रहरत्रयम्।
कथायास्तत्र विश्रामो द्विवारं कारयेद् बुधः॥ २६

लघुशङ्कादिकं कृत्वा भूत्वा नीरेण वै शुचिः।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च मुखप्रक्षालनं चरेत्॥ २७

नवाहे पूजनं चोक्तं खण्डे विज्ञानके नृप।
पुस्तकं पूजयित्वा च पुष्पनैवेद्यचन्दनैः॥ २८

सुवर्णरजताद्यैश्च वाहनाद्यैः सदक्षिणैः।
वस्त्रभूषणगन्धाद्यैर्वाचकं पूजयेत्सुधीः॥ २९

विप्रान् वा नवसाहस्त्रांस्तथा नवशतान्नृप।
तथा नवनवं वापि पायसैर्वा नव द्विजान्॥ ३०

सुवर्णकी दक्षिणा दे। असमर्थ होनेपर चाँदीकी भी दक्षिणा दी जा सकती है। पुनः कलशपर श्रीफल रखकर मिष्टान्न निवेदन करना चाहिये॥ १८-१९॥

तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक तुलसीदलोंद्वारा भलीभाँति पूजन करके आरती उतारनी चाहिये। राजन्! कथासमाप्तिके दिन श्रोताको प्रदक्षिणा करनी चाहिये॥ २०॥

जो परस्त्रीगामी, धूर्त, वकवादी, शिवकी निन्दा करनेवाला, विष्णु-भक्तिसे रहित और क्रोधी हो, उसे 'वक्ता' नहीं बनाना चाहिये। जो वाद-विवाद करने-वाला, निन्दक, मूर्ख, कथामें विघ्न डालनेवाला और सबको दुःख देनेवाला हो, वह 'श्रोता' निन्दनीय कहा गया है॥ २१-२२॥

जो गुरु-सेवापरायण, विष्णुभक्त और कथाके अर्थको समझनेवाला है तथा कथा सुननेमें जिसका मन लगता है, वह श्रोता श्रेष्ठ कहा जाता है। जो शुद्ध, आचार्य-कुलमें उत्पन्न, श्रीकृष्णका भक्त, बहुत-से शास्त्रोंका जानकार, सदा सम्पूर्ण मनुष्योंपर दया करनेवाला और शङ्काओंका उचित समाधान करनेवाला हो, वह [उत्तम] वक्ता कहा गया है॥ २३-२४॥

द्वादशाक्षर मन्त्रके जपद्वारा कथाके विघ्नोंका निवारण करनेके लिये यथाशक्ति अन्यान्य ब्राह्मणोंका भी वरण कराना चाहिये। विद्वान् वक्ताको तीन प्रहर (९ घंटे)-तक गम्भीर स्वरसे कथा बाँचनी चाहिये। कथाके बीचमें दो बार विश्राम लेना उचित है। उस समय लघुशङ्का आदिसे निवृत्त होकर जलसे हाथ-पैर धोकर पवित्र हो ले। साथ ही कुल्ला करके मुख-शुद्धि भी कर लेनी चाहिये॥ २५—२७॥

राजन्! नवें दिनकी पूजा-विधि विज्ञानखण्डमें बतलायी गयी है। उस दिन उत्तम बुद्धिसम्पन्न श्रोता पुष्प, नैवेद्य और चन्दनसे पुस्तककी पूजा करके पुनः सोना, चाँदी, वाहन, दक्षिणा, वस्त्र, आभूषण और गन्ध आदिसे वक्ताका पूजन करे॥ २८-२९॥

नरेश! तत्पश्चात् यथाशक्ति नौ सहस्र या नौ सौ या निन्यानबे अथवा नौ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके खीरका भोजन कराये। तब कथाके फलकी प्राप्ति

भोजयेत्तु यथाशक्त्या कथायाश्च फलं लभेत्।
कथायास्तत्र विश्रामे कीर्तनं कारयेद्बुधः॥ ३१

स्त्रीजनैः पुरुषैः सार्धं विष्णुभक्तिसमन्वितैः।
कांस्यशङ्खमृदङ्गाद्यैर्जयशब्दैरितस्ततः ॥ ३२

श्रीगर्गसंहितायाश्च पुस्तकं गुरवे जनः।
निधाय स्वर्णसिंहे च दद्यात्सोऽन्ते हरिं व्रजेत्॥ ३३

इति ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।
संहिताश्रवणेनापि भुक्तिर्मुक्तिः प्रदृश्यते॥ ३४

होती है। कथा-विश्रामके समय विष्णु-भक्तिसम्पन्न स्त्री-पुरुषोंके साथ भगवन्नाम-कीर्तन भी करना चाहिये। उस समय झाँझ, शङ्ख, मृदङ्ग आदि बाजोंके साथ-साथ बीच-बीचमें जय-जयकारके शब्द भी बोलने चाहिये॥ ३०—३२॥

जो श्रोता श्रीगर्गसंहिताकी पुस्तकको सोनेके सिंहासनपर स्थापित करके उसे वक्ताको दान कर देता है, वह मरनेपर श्रीहरिको प्राप्त करता है। राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें गर्गसंहिताका माहात्म्य बतला दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो? अरे, इस संहिताके श्रवणसे ही भुक्ति और मुक्तिकी प्राप्ति देखी जाती है॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीसम्मोहनतन्त्रे पार्वतीहरसंवादे श्रीगर्गसंहितामाहात्म्ये श्रवणविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीसम्मोहन-तन्त्रमें पार्वती-शंकर-संवादमें 'श्रीगर्गसंहिताके माहात्म्यके अन्तर्गत श्रवणविधिका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

शाण्डिल्यमुनिका राजा प्रतिबाहुको गर्गसंहिता सुनाना; श्रीकृष्णका प्रकट होकर राजा आदिको वरदान देना; राजाको पुत्रकी प्राप्ति और संहिताका माहात्म्य

महादेव उवाच

इदं वचः श्रीमुनिशस्य श्रुत्वा
प्रहस्य राजावनतस्तु सम्यक्।
कुरु त्वं सपुत्रं मुने मां शरण्यं
त्वरं श्रावय त्वं हरेः संहितां च॥ १

महादेवजी बोले—[प्रिये!] मुनीश्वर शाण्डिल्यका यह कथन सुनकर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने विनयावनत होकर प्रार्थना की—'मुने! मैं आपके शरणागत हूँ। आप शीघ्र ही मुझे श्रीहरिकी कथा सुनाइये और पुत्रवान् बनाइये'॥ १॥

श्रुत्वा भूपवचश्चकार सुखदं पारायणं मण्डपं
कृत्वा श्रीयमुनातटे मुनिवरः श्रुत्वाययुर्माथुराः।
पूर्णेनाथदिने तथा परदिने राजाथ दानं त्वदा-
द्विप्रेभ्यो वरभोजनं बहुधनं श्रीयादवेन्द्रो महान्॥ २

राजाकी प्रार्थना सुनकर मुनिवर शाण्डिल्यने श्रीयमुनाजीके तटपर मण्डपका निर्माण करके सुखदायक कथा-पारायणका आयोजन किया। उसे सुनकर सभी मथुरावासी वहाँ आये। महान् ऐश्वर्यशाली यादवेन्द्र श्रीप्रतिबाहुने कथारम्भ तथा कथा-समाप्तिके दिन ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराया तथा बहुत-सा धन दान दिया॥ २॥

शाण्डिल्याय मुनीन्द्राय रथाश्वान् द्रविणं महत्।
गोगजादीनि रत्नानि सम्पूज्य प्रददौ नृपः॥ ३

तत्पश्चात् राजाने मुनिवर शाण्डिल्यका भलीभाँति पूजन करके उन्हें रथ, अश्व, द्रव्यराशि, गौ, हाथी और ढेर-के-ढेर रत्न दक्षिणामें दिये॥ ३॥

श्रीमद्गोपालकृष्णस्य ममोक्तं सर्वमङ्गले।
सहस्रनाम शाण्डिल्यः सर्वदोषहरं जगौ॥ ४

कथावसाने राजेन्द्रः शाण्डिल्येन प्रणोदितः।
दध्यौ भक्त्या व्रजपतिं श्रीमन्मदनमोहनम्॥ ५

ततः प्रादुरभूत्कृष्णः प्रियया पार्षदैः सह।
वंशीवेत्रधरः श्यामः कोटिमन्मथमोहनः॥ ६

दृष्ट्वागतं तं शाण्डिल्यो राज्ञा च सर्वश्रोतृभिः।
प्रणामं तु चकाराशु स्तुतिं चक्रे विधानतः॥ ७

शाण्डिल्य उवाच

वैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं
नमस्कृतं देवगणैः परं वरम्।
गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं
गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्॥ ८

प्रतिबाहुरुवाच

गोलोकनाथ गिरिराजपते परेश
वृन्दावनेश कृतनित्यविहारलील।
राधापते व्रजवधूजनगीतकीर्ते
गोविन्द गोकुलपते किल ते जयोऽस्तु॥ ९

राज्युवाच

वृन्दावनेश राधेश पुरुषोत्तम माधव।
भक्तानां त्वं तु सुखदस्त्वामहं शरणं गता॥ १०

सर्वे श्रोतार ऊचुः

श्रीनाथ हे जगन्नाथ ह्यपराधं क्षमस्व नः।
सुपुत्रं देहि भूपायास्मभ्यं भक्तिं स्वपादयोः॥ ११

महादेव उवाच

इति श्रुत्वा स्तुतिं देवि भगवान् भक्तवत्सलः।
उवाच प्रणतान् सर्वान् मेघगम्भीरया गिरा॥ १२

सर्वमङ्गले! तब शाण्डिल्यने मेरे द्वारा कहे हुए श्रीमान् गोपालकृष्णके सहस्रनामका पाठ किया, जो सम्पूर्ण दोषोंको हर लेनेवाला है। कथा समाप्त होनेपर शाण्डिल्यकी प्रेरणासे राजेन्द्र प्रतिबाहुने भक्तिपूर्वक व्रजेश्वर श्रीमान् मदनमोहनका ध्यान किया॥ ४-५॥

तब श्रीकृष्ण अपनी प्रेयसी राधा तथा पार्षदोंके साथ वहाँ प्रकट हो गये। उन साँवरे-सलोनेके हाथमें वंशी और बेंत शोभा पा रहे थे। उनकी छटा करोड़ों कामदेवोंको मोहमें डालनेवाली थी। उन्हें सम्मुख उपस्थित देखकर महर्षि शाण्डिल्य, राजा तथा समस्त श्रोताओंके साथ तुरंत ही उनके चरणोंमें लोट पड़े और पुनः विधिपूर्वक स्तुति करने लगे॥ ६-७॥

शाण्डिल्य बोले—प्रभो! आप वैकुण्ठपुरीमें सदा लीलामें तत्पर रहनेवाले हैं। आपका स्वरूप परम मनोहर है। देवगण सदा आपको नमस्कार करते हैं। आप परम श्रेष्ठ हैं। गोपालनकी लीलामें आपकी विशेष अभिरुचि रहती है—ऐसे आपका मैं भजन करता हूँ। साथ ही आप गोलोकाधिपतिको मैं सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ॥ ८॥

प्रतिबाहु बोले—गोलोकनाथ! आप गिरिराज गोवर्धनके स्वामी हैं। परमेश्वर! आप वृन्दावनके अधीश्वर तथा नित्य विहारकी लीलाएँ करनेवाले हैं। राधापते! व्रजाङ्गनाएँ आपकी कीर्तिका गान करती रहती हैं। गोविन्द! आप गोकुलके पालक हैं। निश्चय ही आपकी जय हो॥ ९॥

रानी बोली—राधेश! आप वृन्दावनके स्वामी तथा पुरुषोत्तम हैं। माधव! आप भक्तोंको सुख देनेवाले हैं। मैं आपकी शरण ग्रहण करती हूँ॥ १०॥

समस्त श्रोताओंने कहा—हे जगन्नाथ! हमलोगोंका अपराध क्षमा कीजिये! श्रीनाथ! राजाको सुपुत्र तथा हमलोगोंको अपने चरणोंकी भक्ति प्रदान कीजिये॥ ११॥

महादेवजीने कहा—देवि! भक्तवत्सल भगवान् इस प्रकार अपनी स्तुति सुनकर उन सभी प्रणतजनोंके प्रति मेघके समान गम्भीर वाणीसे बोले—॥ १२॥

श्रीभगवानुवाच

मुनीन्द्र शृणु मद्वाक्यं राज्ञा सर्वजनैः सह।
वचनं युष्मदादीनां सफलं च भविष्यति॥ १३

गर्गेण कथिता ब्रह्मन्नाम्नेयं गर्गसंहिता।
सर्वदोषहरा पुण्या चतुर्वर्गफलप्रदा॥ १४

ये ये मनोरथं यं यं वाञ्छन्ति मनुजाः कलौ।
तं तं दास्यति सर्वेभ्यः श्रीमुनेर्गर्गसंहिता॥ १५

शिव उवाच

इत्युक्त्वा राधया सार्धं माधवोऽन्तरधीयत।
मुनिभूपादयः सर्वे श्रोतारश्च मुदं ययुः॥ १६

शाण्डिल्यश्च मुनिर्द्रव्यं माथुरान् ब्राह्मणान् पृथक्।
दत्वा राजानमाश्वास्य त्वरं चान्तर्दधे प्रिये॥ १७

ततो भूपतिना राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम्।
सूतिकाले सुतो जातो गुणवान् पुण्यकर्मतः॥ १८

हृष्टो राजा ब्राह्मणेभ्यः कुमारस्य च जन्मनि।
गोभूसुवर्णवस्त्राणि गजाश्वादीनि दत्तवान्॥ १९

दैवज्ञैश्च स्वपुत्रस्य सुबाहुं नाम चाकरोत्।
प्रतिबाहुर्नृपश्रेष्ठः कृतकृत्यो बभूव ह॥ २०

श्रीगर्गसंहितां श्रुत्वा भुक्त्वा सर्वसुखानि च।
प्रतिबाहुर्ययावन्ते गोलोकं योगिदुर्लभम्॥ २१

स्त्रियं पुत्रं धनं वापि वाहनं च यशो गृहम्।
राज्यं सौख्यं च मोक्षं च दद्याच्छ्रीगर्गसंहिता॥ २२

इति सर्वां कथां देव्यै कथयित्वा च शङ्करः।
तूष्णीं बभूव मुनयः पुनस्तं प्राह पार्वती॥ २३

श्रीभगवान्ने कहा—मुनिवर शाण्डिल्य! तुम राजा तथा सभी लोगोंके साथ मेरी बात सुनो—'तुम-लोगोंका कथन सफल होगा।' 'ब्रह्मन्! इस संहिताके रचयिता गर्गमुनि हैं, इसी कारण यह 'गर्गसंहिता' नामसे प्रसिद्ध है। यह सम्पूर्ण दोषोंको हरनेवाली, पुण्यस्वरूपा और चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके फलको देनेवाली है॥ १३-१४॥

कलियुगमें जो-जो मनुष्य जिस-जिस मनोरथकी अभिलाषा करते हैं, श्रीगर्गाचार्यकी यह गर्गसंहिता सभीकी उन-उन कामनाओंको पूर्ण करती है'॥ १५॥

शिवजीने कहा—देवि! ऐसा कहकर माधव राधाके साथ अन्तर्धान हो गये। उस समय शाण्डिल्य मुनिको तथा राजा आदि सभी श्रोताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ। प्रिये! तदनन्तर मुनिवर शाण्डिल्यने दक्षिणामें प्राप्त हुए धनको मथुरावासी ब्राह्मणोंमें बाँट दिया। फिर राजाको आश्वासन देकर वे भी अन्तर्हित हो गये॥ १६-१७॥

तत्पश्चात् रानीने राजाके समागमसे सुन्दर गर्भ धारण किया। प्रसवकाल आनेपर पुण्यकर्मके फलस्वरूप गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय राजाको महान् हर्ष प्राप्त हुआ। उन्होंने कुमारके जन्मके उपलक्ष्में ब्राह्मणोंको गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र, हाथी, घोड़े आदि दान दिये और ज्यौतिषियोंसे परामर्श करके अपने पुत्रका 'सुबाहु' नाम रखा॥ १८—१९ १/२॥

इस प्रकार नृपश्रेष्ठ प्रतिबाहु सफलमनोरथ हो गये। राजा प्रतिबाहुने श्रीगर्गसंहिताका श्रवण करके इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग किया और अन्तकाल आनेपर वे गोलोकधामको चले गये, जहाँ पहुँचना योगियोंके लिये भी दुर्लभ है॥ २०-२१॥

श्रीगर्गसंहिता स्त्री, पुत्र, धन, सवारी, कीर्ति, घर, राज्य, सुख और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। मुनीश्वरो! इस प्रकार भगवान् शंकरने पार्वतीदेवीसे सारी कथा कहकर जब विराम लिया, तब पार्वतीने पुनः उनसे कहा—॥ २२-२३॥

पार्वत्युवाच

श्रीगर्गसंहितायाश्च कथां वद ममाग्रतः।
अद्भुतं चरितं यस्यां श्रूयते माधवस्य हि॥ २४

इति श्रुत्वा कथां सर्वां भवान्यै भगवान् भवः।
गर्गस्य संहितायाश्च कथयामास हर्षितः॥ २५

पुनरूचे हरः साक्षाच्छृणु त्वं सर्वमङ्गले।
बिल्वकेशवने सिद्धपीठे गङ्गार्धयोजने॥ २६

श्रीमद्भागवतादीनि संहितादीनि वै कलौ।
गोकुलस्थैर्विष्णुजनैर्वारं वारं च श्रोष्यसि॥ २७

सूत उवाच

इतीतिहासं रुद्रस्य मुखाच्छ्रुत्वा महाद्भुतम्।
वैष्णवी भगवन्माया प्रसन्नाभूच्च शौनक॥ २८

सकृच्छ्रोतुं हरेर्गाथां बिल्वकेशवने मुने।
स्वात्मानं प्रकटं कर्तुं कलेरादौ मनो दधे॥ २९

तस्माच्छ्रीरूपिणी तत्र नाम्ना वै सर्वमङ्गला।
गङ्गाया दक्षिणतटे प्रादुर्भूता भविष्यति॥ ३०

श्रीगर्गसंहितायाश्च माहात्म्यं कथितं मुने।
शृणोति यश्च पठति पापदुःखैः स मुच्यते॥ ३१

पार्वतीजी बोलीं—[नाथ!] जिसमें माधवका अद्भुत चरित्र सुननेको मिलता है, उस श्रीगर्गसंहिताकी कथा मुझे बतलाइये। यह सुनकर भगवान् शंकरने हर्षपूर्वक अपनी प्रिया पार्वतीसे गर्गसंहिताकी सारी कथा कह सुनायी॥ २४-२५॥

पुनः साक्षात् शंकरने आगे कहा—'सर्वमङ्गले! तुम मेरी यह बात सुनो—गङ्गातटसे अर्ध योजन (चार मील)-की दूरीपर बिल्वकेश वनमें जो सिद्धपीठ है, वहाँ कलियुग आनेपर गोकुलवासी वैष्णवोंके मुखसे श्रीमद्भागवत आदि संहिताओंकी कथा तुम्हें बारंबार सुननेको मिलेगी'॥ २६-२७॥

सूतजी कहते हैं—शौनक! इस प्रकार महादेवजीके मुखसे इस महान् अद्भुत इतिहासको सुनकर भगवान्‌की वैष्णवी माया पार्वती परम प्रसन्न हुईं। मुने! उन्होंने श्रीहरिकी कथा सुननेकी इच्छासे कलियुगके प्रारम्भमें अपनेको बिल्वकेश वनमें प्रकट करनेका निश्चय किया॥ २८-२९॥

इसी कारण वे लक्ष्मीका रूप धारण करके 'सर्वमङ्गला' नामसे वहाँ गङ्गाके दक्षिण तटपर प्रकट होंगी। मुने! श्रीगर्ग-संहिताका जो माहात्म्य मैंने कहा है, इसे जो सुनता है अथवा पढ़ता है, वह पाप और दुःखोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३०-३१॥

॥ इति श्रीसम्मोहनतन्त्रे पार्वतीहरसंवादे श्रीगर्गसंहितामाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीसम्मोहन-तन्त्रमें पार्वती-शंकर-संवादमें 'श्रीगर्गसंहिता-माहात्म्यविषयक' चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

॥ गर्गसंहिता-माहात्म्य सम्पूर्ण॥

श्रीगर्ग-संहिता

[प्रथम खण्ड]

गोलोकखण्ड

भगवान् मुरलीमनोहर

वर्षा-तूफानमें नन्दकी गोदमें श्रीकृष्ण

[गोलोकख० अ० १६]

नन्दके द्वारा राधा-स्तुति

[गोलोकख० अ० १६]

ब्रह्माजीके द्वारा श्रीराधाकृष्ण-स्तुति

[गोलोकख० अ० १६]

राधाका बालकृष्णको यशोदाकी गोदमें देना

[गोलोकख० अ० १६]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

गोलोकखण्ड

पहला अध्याय

शौनक-गर्ग-संवाद; राजा बहुलाश्वके पूछनेपर नारदजीके द्वारा अवतार-भेदका निरूपण

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ १

भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती तथा महर्षि व्यासको नमस्कार करनेके पश्चात् जय (श्रीहरिकी विजय-गाथासे पूर्ण इतिहास-पुराण)-का उच्चारण करना चाहिये॥ १॥

शरद्विकचपङ्कजश्रियमतीव विद्वेषकं
मिलिन्दमुनिसेवितं कुलिशकञ्जचिह्नावृतम्।
स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्ततापत्रयं
चलद्द्युति पदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः॥ २

मैं भगवान् श्रीराधाकान्तके उन युगल चरण-कमलोंको अपने हृदयमें धारण करता हूँ, जो शरद्ऋतुके प्रफुल्लित कमलोंकी शोभाको अत्यन्त नीचा दिखानेवाले हैं, मुनिरूपी भ्रमरोंके द्वारा जिनका निरन्तर सेवन होता रहता है, जो वज्र और कमल आदिके चिह्नोंसे विभूषित हैं, जिनमें सोनेके नूपुर चमक रहे हैं और जिन्होंने भक्तोंके त्रिविध तापका सदा ही नाश किया तथा जिनसे दिव्य ज्योति छिटक रही है॥ २॥

वदनकमलनिर्यद्यस्य पीयूषमाद्यं
पिबति जनवरोऽयं पातु सोऽयं गिरं मे।
बदरवनविहारः सत्यवत्याः कुमारः
प्रणतदुरितहारः शार्ङ्गधन्वावतारः॥ ३

जिनके मुखकमलसे निकली हुई आदिकथारूपी सुधाका बड़भागी मनुष्य सदा पान करता रहता है, वे बदरीवनमें विहार करनेवाले, प्रणतजनोंका ताप हरनेमें समर्थ, भगवान् विष्णुके अवतार सत्यवतीकुमार श्रीव्यासजी मेरी वाणीकी रक्षा करें—उसे दोषमुक्त करें॥ ३॥

कदाचिन्नैमिषारण्ये श्रीगर्गो ज्ञानिनां वरः।
आययौ शौनकं द्रष्टुं तेजस्वी योगभास्करः॥ ४

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय शौनको मुनिभिः सह।
पूजयामास पाद्याद्यैरुपचारैर्विधानतः॥ ५

एक समयकी बात है, ज्ञानिशिरोमणि परमतेजस्वी मुनिवर गर्गजी, जो योगशास्त्रके सूर्य हैं, शौनकजीसे मिलनेके लिये नैमिषारण्यमें आये। उन्हें आया देख मुनियोंसहित शौनकजी सहसा उठकर खड़े हो गये और उन्होंने पाद्य आदि उपचारोंसे विधिवत् उनकी पूजा की॥ ४-५॥

शौनक उवाच

सतां पर्यटनं धन्यं गृहिणां शान्तये स्मृतम्।
नृणामन्तस्तमोहारी साधुरेव न भास्करः॥ ६

तस्मान्मे हृदि सम्भूतं सन्देहं नाशय प्रभो।
कतिधा श्रीहरेर्विष्णोरवतारो भवत्यलम्॥ ७

श्रीगर्ग उवाच

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन् भगवद्गुणवर्णनम्।
शृण्वतां गदतां यद्वै पृच्छतां वितनोति शम्॥ ८

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण महादोषः प्रशाम्यति॥ ९

मिथिलानगरे पूर्वं बहुलाश्वः प्रतापवान्।
श्रीकृष्णभक्तः शान्तात्मा बभूव निरहङ्कृतिः॥ १०

अम्बरादागतं दृष्ट्वा नारदं मुनिसत्तमम्।
सम्पूज्य चासने स्थाप्य कृताञ्जलिरभाषत॥ ११

श्रीबहुलाश्व उवाच

योऽनादिरात्मा पुरुषो भगवान् प्रकृतेः परः।
कस्मात्तनुं समाधत्ते तन्मे ब्रूहि महामते॥ १२

श्रीनारद उवाच

गोसाधुदेवताविप्रवेदानां रक्षणाय वै।
तनुं धत्ते हरिः साक्षाद्भगवानात्मलीलया॥ १३

यथा नटः स्वलीलायां मोहितो न परस्तथा।
अन्ये दृष्ट्वा च तन्मायां मुमुहुस्ते न संशयः॥ १४

शौनकजीने कहा—साधुपुरुषोंका सब ओर विचरण धन्य है; क्योंकि वह गृहस्थ-जनोंको शान्ति प्रदान करनेका हेतु कहा गया है। मनुष्योंके भीतरी अन्धकारका नाश महात्मा ही करते हैं, न कि सूर्य। भगवन्! मेरे मनमें यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि भगवान्‌के अवतार कितने प्रकारके हैं? आप कृपया इसका निवारण कीजिये॥ ६-७॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—ब्रह्मन्! भगवान्‌के गुणानुवादसे सम्बन्ध रखनेवाला आपका यह प्रश्न बहुत ही उत्तम है। यह कहने, सुनने और पूछनेवाले—तीनोंके कल्याणका विस्तार करनेवाला है। इसी प्रसङ्गमें एक प्राचीन इतिहासका कथन किया जाता है, जिसके श्रवणमात्रसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ८-९॥

पहलेकी बात है, मिथिलापुरीमें बहुलाश्व नामसे विख्यात एक प्रतापी राजा राज्य करते थे। वे भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त, शान्तचित्त एवं अहंकारसे रहित थे। [एक दिन] मुनिवर नारदजी आकाशमार्गसे उतरकर उनके यहाँ पधारे। उन्हें उपस्थित देखकर राजाने आसनपर बिठाया और भलीभाँति उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार पूछा—॥ १०-११॥

श्रीबहुलाश्वजी बोले—महामते! जो भगवान् अनादि, प्रकृतिसे परे, परम पुरुष और सबके अन्तर्यामी ही नहीं, आत्मा हैं, वे शरीर कैसे धारण करते हैं? (जो सर्वत्र व्यापक है, वह शरीरसे परिच्छिन्न कैसे हो सकता है?) यह मुझे बतानेकी कृपा करें॥ १२॥

श्रीनारदजीने कहा—गौ, साधु, देवता, ब्राह्मण और वेदोंकी रक्षाके लिये साक्षात् भगवान् श्रीहरि अपनी लीलासे शरीर धारण करते हैं। [अपनी अचिन्त्य लीलाशक्तिसे ही वे देहधारी होकर भी व्यापक बने रहते हैं। उनका वह शरीर प्राकृत नहीं, चिन्मय है।] जैसे नट अपनी मायासे मोहित नहीं होता और दूसरे लोग मोहमें पड़ जाते हैं, वैसे ही अन्य प्राणी भगवान्‌की माया देखकर मोहित हो जाते हैं, किंतु परमात्मा मोहसे परे रहते हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है॥ १३-१४॥

वृन्दावनमें सौन्दर्य-माधुर्य-निधि भगवान् श्रीकृष्ण [अश्वमेधख० अ० ४०]

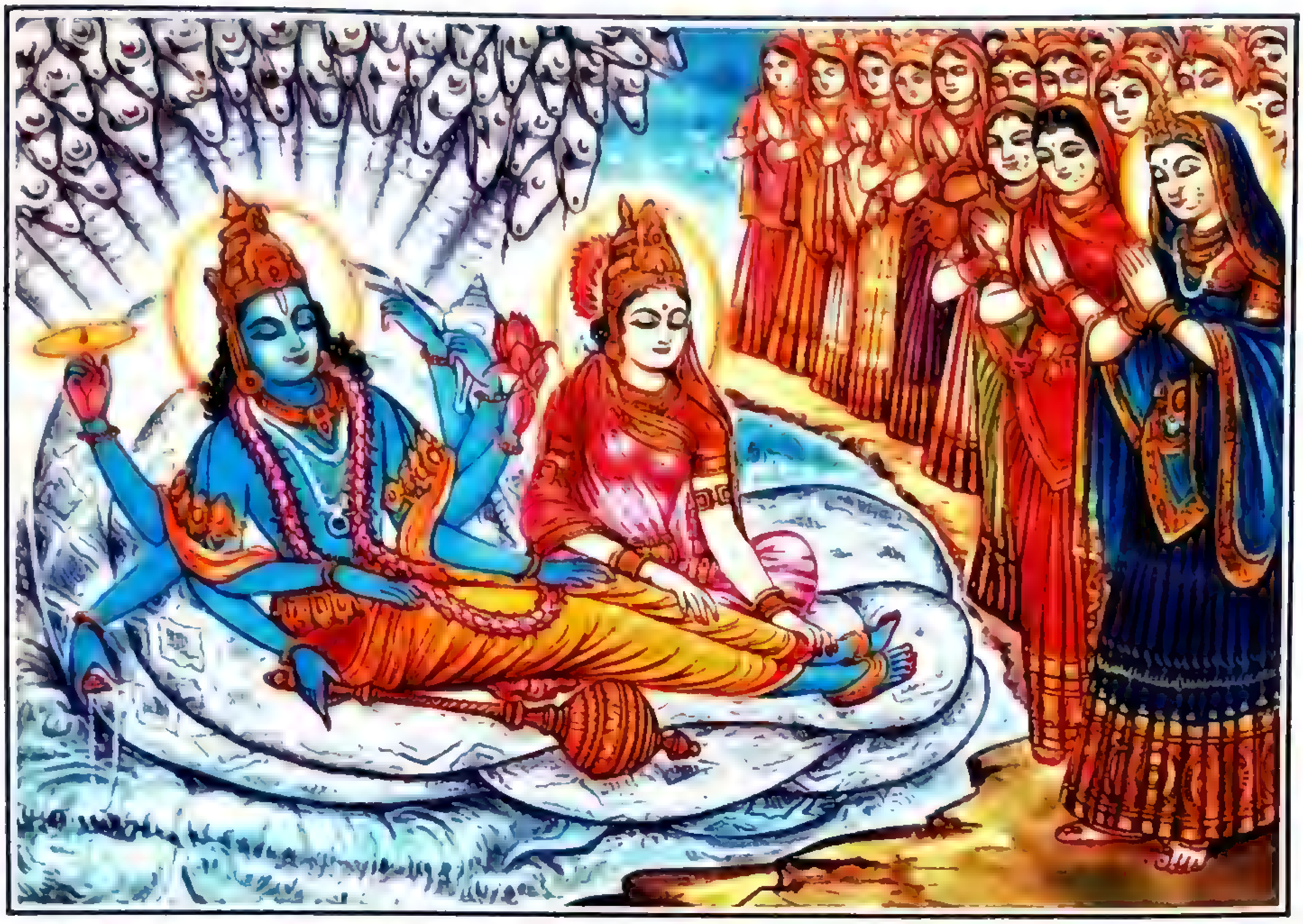

गोपियों द्वारा क्षीरसागरमें लक्ष्मीरूपिणी राधाके साथ शेषशायी अष्टभुज श्रीकृष्णके दर्शन

[वृन्दावनख० अ० २२]

राजा विमलके यज्ञमें श्रीकृष्णका पूजन

[माधुर्यख० अ० ७]

कन्याओंको श्रीकृष्णार्पण करनेपर विमलको भगवत्स्वरूपकी प्राप्ति [माधुर्यख० अ० ७]

अक्रूरद्वारा श्रीकृष्ण-बलरामका स्तवन
[मथुराख० अ० ५]

कुब्जाद्वारा श्रीकृष्णका सत्कार
[मथुराख० अ० ९]

रुक्मिणी आदिका श्रीराधाजीसे मिलन
[द्वारकाख० अ० १७]

श्रीराधाके हृदयमें श्रीकृष्णचरणोंकी नित्य स्थिति
[द्वारकाख० अ० १७]

श्रीराधाकृष्णका विवाह [गोलोकख० अ० १६]

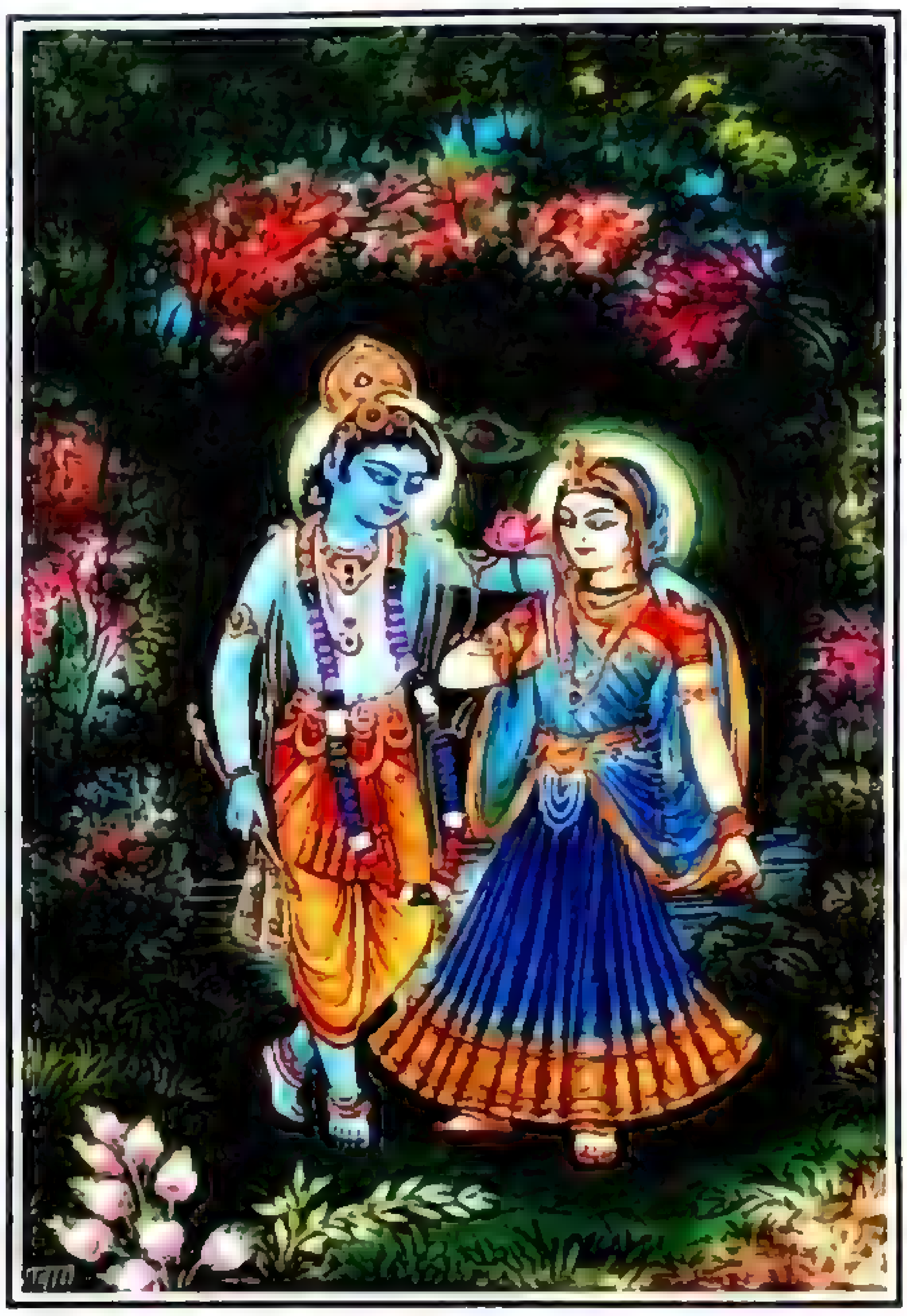

श्रीराधाकृष्ण-युगलकी झाँकी [गोलोकख० अ० १६]

श्रीबलरामजी [बलभद्रख० अ० ८]

श्रीयमुनाजी [माधुर्यख० अ० १९]

पारिजातहरण एवं इन्द्रपराजय
[अश्वमेधख० अ० ५]

बृहस्पतिका शचीको समझाना
[अश्वमेधख० अ० ५]

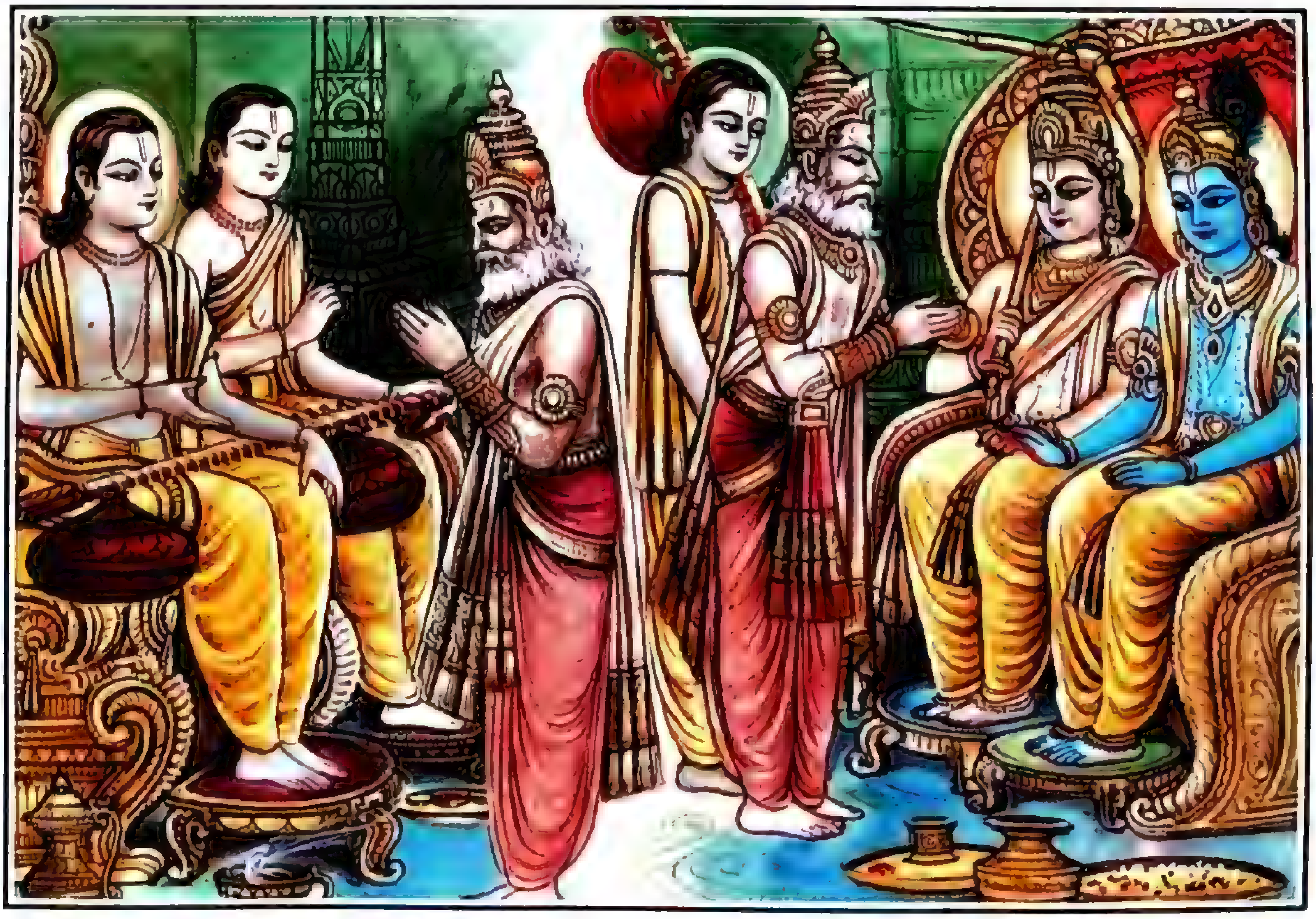

उग्रसेनद्वारा नारद-तुम्बुरुका स्वागत
[अश्वमेधख० अ० ७]

उग्रसेनद्वारा श्रीकृष्ण-बलरामका स्तवन
[अश्वमेधख० अ० ७]

दैत्य-राजकुमार कुनन्दनकी तोपके मुखसे रक्षा
[अश्वमेधख० अ० ३३]

तोपके गोलेसे सैन्यपालकी मृत्यु
[अश्वमेधख० अ० ३३]

रणभेरीके समय श्रीकृष्णका शुभागमन
[अश्वमेधख० अ० ३८]

भगवान् शिवद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन
[अश्वमेधख० अ० ३९]

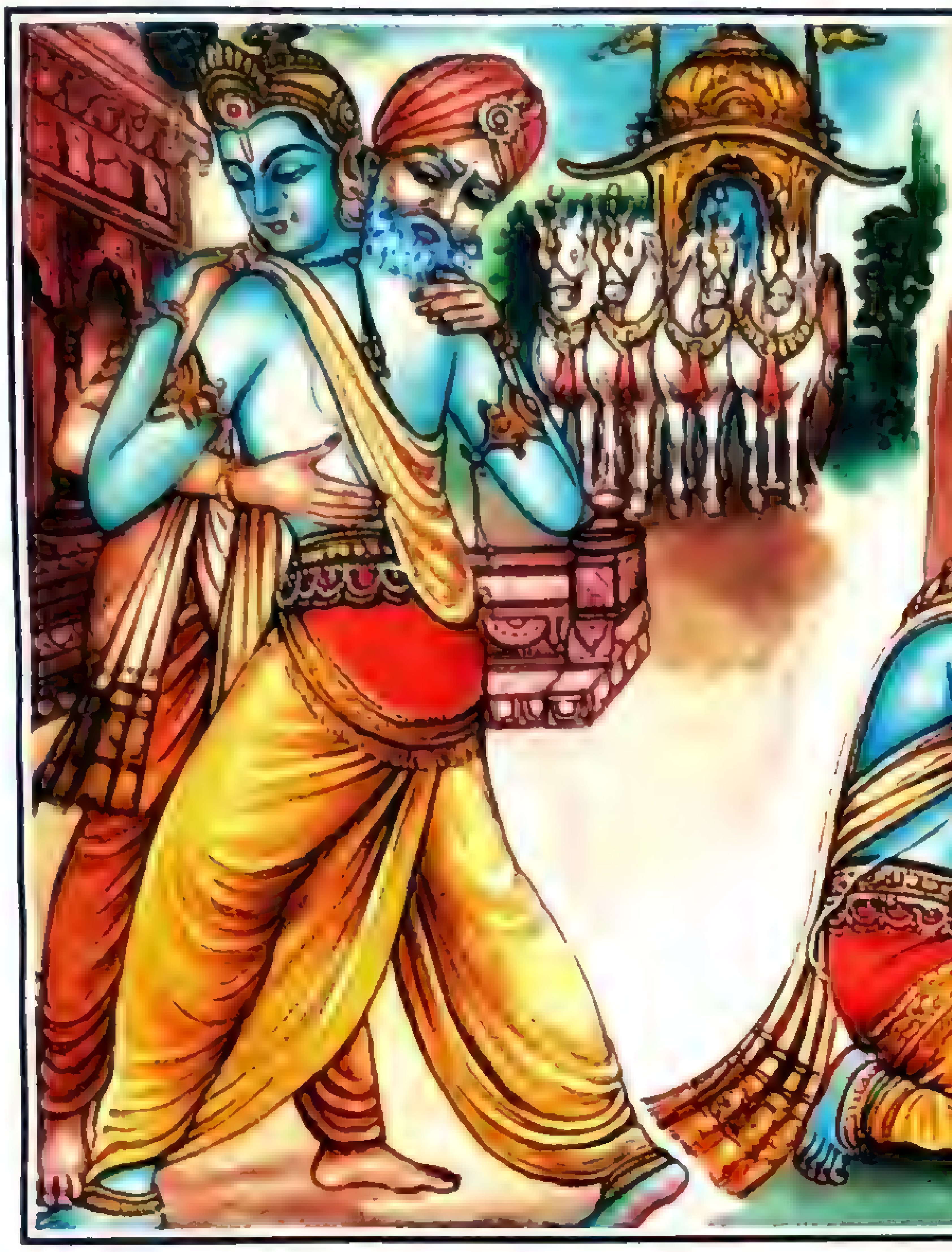

नन्दरायका श्रीकृष्णको हृदयसे लगाना

[अश्वमेधख० अ० ४०]

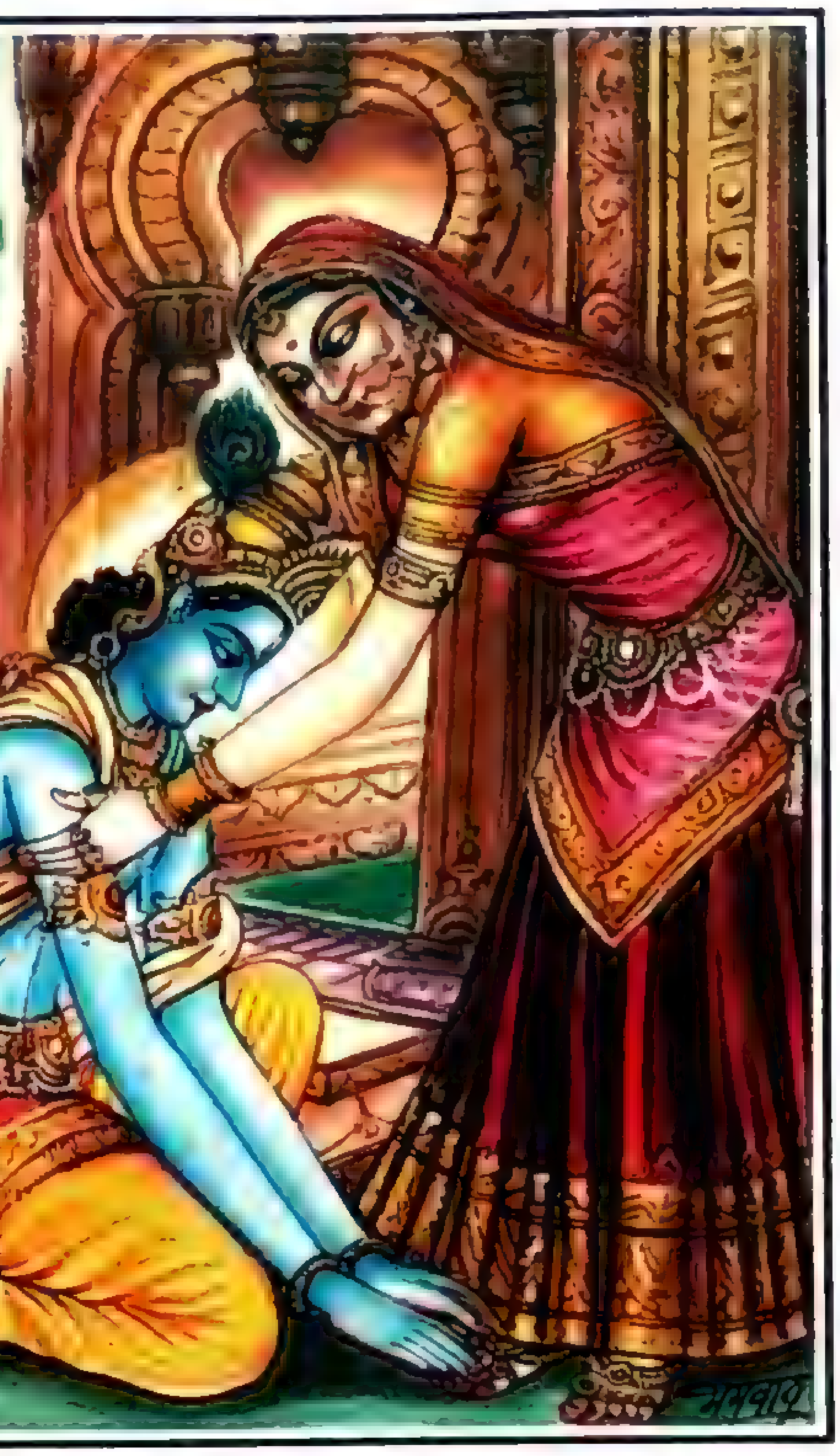

माता यशोदाके चरणोंमें आँसू बहाते हुए श्रीकृष्ण

[अश्वमेधख० अ० ४०]

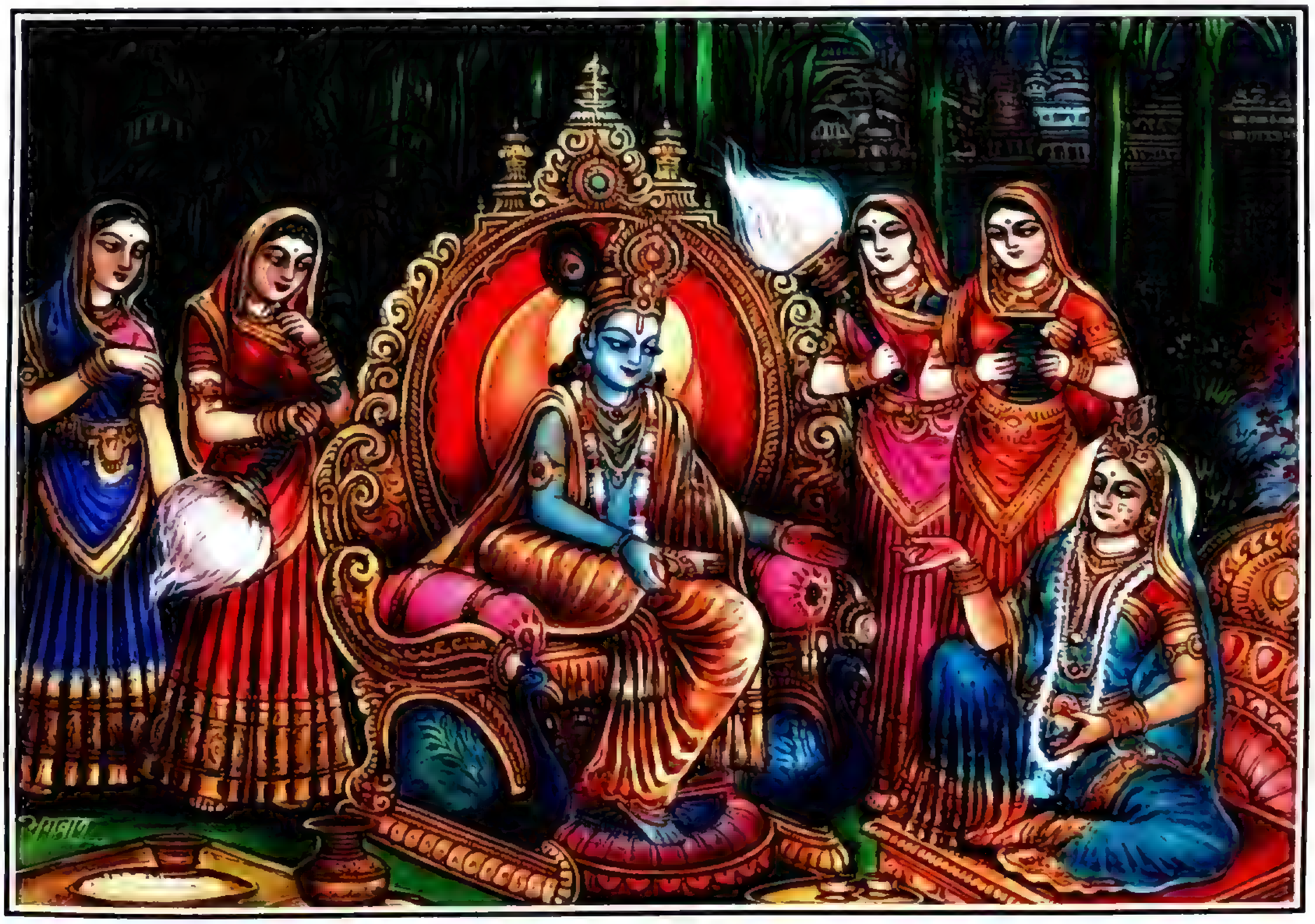

कदलीवनमें वियोग-व्यथित श्रीराधाका श्रीकृष्णसे मिलन [अश्वमेधख० अ० ४१]

गोलोकधाममें श्रीराधा-कृष्णकी दिव्य झाँकी [गोलोकख० अ० २]

श्रीबहुलाश्व उवाच

कतिधा श्रीहरेर्विष्णोरवतारो भवत्यलम्।
साधूनां रक्षणार्थं हि कृपया वद मां प्रभो॥ १५

श्रीनारद उवाच

अंशांशोंऽशस्तथावेशः कला पूर्णः प्रकथ्यते।
व्यासाद्यैश्च स्मृतः षष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम्॥ १६

अंशांशस्तु मरीच्यादिरंशा ब्रह्मादयस्तथा।
कलाः कपिलकूर्माद्या आवेशा भार्गवादयः॥ १७

पूर्णो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपाधिपो हरिः।
वैकुण्ठोऽपि तथा यज्ञो नरनारायणः स्मृतः॥ १८

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते॥ १९

कार्याधिकारं कुर्वन्तः सदंशास्ते प्रकीर्तिताः।
तत्कार्यभारं कुर्वन्तस्तेंऽशांशा विदिताः प्रभोः॥ २०

येषामन्तर्गतो विष्णुः कार्यं कृत्वा विनिर्गतः।
नानावेशावतारांश्च विद्धि राजन् महामते॥ २१

धर्मं विज्ञाय कृत्वा यः पुनरन्तरधीयत।
युगे युगे वर्तमानः सोऽवतारः कला हरेः॥ २२

चतुर्व्यूहो भवेद्यत्र दृश्यन्ते च रसा नव।
अतः परं च वीर्याणि स तु पूर्णः प्रकथ्यते॥ २३

यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि।
तं वदन्ति परे साक्षात्परिपूर्णतमं स्वयम्॥ २४

पूर्णस्य लक्षणं यत्र यं पश्यन्ति पृथक् पृथक्।
भावेनापि जनाः सोऽयं परिपूर्णतमः स्वयम्॥ २५

श्रीबहुलाश्वजीने पूछा—प्रभो! संतोंकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुके कितने प्रकारके अवतार होते हैं? यह मुझे बतानेकी कृपा करें॥ १५॥

श्रीनारदजी बोले—राजन्! व्यास आदि मुनियोंने अंशांश, अंश, आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम—ये छः प्रकारके अवतार बताये हैं। इनमेंसे छठा—परिपूर्णतम अवतार साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। मरीचि आदि 'अंशांशावतार', ब्रह्मा आदि 'अंशावतार', कपिल एवं कूर्म प्रभृति 'कलावतार' और परशुराम आदि 'आवेशावतार' कहे गये हैं। नृसिंह, राम, श्वेतद्वीपाधिपति हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ और नर-नारायण—ये 'पूर्णावतार' हैं एवं साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही 'परिपूर्णतम' अवतार हैं। असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति वे प्रभु गोलोकधाममें विराजते हैं॥ १६—१९॥

जो भगवान्के दिये सृष्टि आदि कार्यमात्रके अधिकारका पालन करते हैं, वे ब्रह्मा आदि 'सत्' (सत्स्वरूप भगवान्)-के अंश हैं। जो उन अंशोंके कार्यभारमें हाथ बँटाते हैं, वे 'अंशांशावतार' के नामसे विख्यात हैं। परम बुद्धिमान् नरेश! भगवान् विष्णु स्वयं जिनके अन्तःकरणमें आविष्ट हो, अभीष्ट कार्यका सम्पादन करके फिर अलग हो जाते हैं, राजन्! ऐसे नानाविध अवतारोंको 'आवेशावतार' समझो। जो प्रत्येक युगमें प्रकट हो, युगधर्मको जानकर, उसकी स्थापना करके, पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं, भगवान्के उन अवतारोंको 'कलावतार' कहा गया है॥ २०—२२॥

जहाँ चार व्यूह प्रकट हों—जैसे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न एवं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तथा जहाँ नौ रसोंकी अभिव्यक्ति देखी जाती हो एवं जहाँ बल-पराक्रमकी भी पराकाष्ठा दृष्टिगोचर होती हो, भगवान्के उस अवतारको 'पूर्णावतार' कहा गया है। जिसके अपने तेजमें अन्य सम्पूर्ण तेज विलीन हो जाते हैं, भगवान्के उस अवतारको श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष साक्षात् 'परिपूर्णतम' बताते हैं। जिस अवतारमें पूर्णका पूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होता है और मनुष्य जिसे पृथक्-पृथक् भावके अनुसार अपने परम प्रिय रूपमें देखते हैं, वही यह साक्षात् 'परिपूर्णतम' अवतार है॥ २३—२५॥

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि।
एककार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह॥ २६

पूर्णः पुराणः पुरुषोत्तमोत्तमः
परात्परो यः पुरुषः परेश्वरः।
स्वयं सदानन्दमयं गुणाकरं
कृपाकरं तं शरणं व्रजाम्यहम्॥ २७

श्रीगर्ग उवाच

तच्छ्रुत्वा हर्षितो राजा रोमाञ्ची प्रेमविह्वलः।
प्रमृज्य नेत्रेऽश्रुपूर्णे नारदं वाक्यमब्रवीत्॥ २८

श्रीबहुलाश्व उवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णः केन हेतुना।
आगतो भारते खण्डे द्वारावत्यां विराजते॥ २९

तस्य गोलोकनाथस्य गोलोकं धाम सुन्दरम्।
कर्माण्यपरिमेयानि ब्रूहि ब्रह्मन् बृहन्मुने॥ ३०

यदा तीर्थाटनं कुर्वञ्छतजन्मतपःपरः।
तदा सत्सङ्गमेत्याशु श्रीकृष्णं प्राप्नुयान्नरः॥ ३१

श्रीकृष्णदासस्य च दासदासः
कदा भवेयं मनसार्द्रचित्तः।
यो दुर्लभो देववरैः परात्मा
स मे कथं गोचर आदिदेवः॥ ३२

श्रीनारद उवाच

धन्यस्त्वं राजशार्दूल श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः।
तुभ्यं च दर्शनं दातुं भक्तेशोऽत्रागमिष्यति॥ ३३

त्वां नृपं श्रुतदेवं च द्विजदेवो जनार्दनः।
स्मरत्यलं द्वारकायामहो भाग्यं सतामिह॥ ३४

[इन सभी लक्षणोंसे सम्पन्न] स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि श्रीकृष्णने एक कार्यके उद्देश्यसे अवतार लेकर अन्यान्य करोड़ों कार्योंका सम्पादन किया है। जो पूर्ण, पुराण पुरुषोत्तमोत्तम एवं परात्पर पुरुष परमेश्वर हैं, उन साक्षात् सदानन्दमय, कृपानिधि, गुणोंके आकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं शरण लेता हूँ॥ २६-२७॥

श्रीगर्गजी बोले—यह सुनकर राजा हर्षमें भर गये। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे प्रेमसे विह्वल हो गये और अश्रुपूर्ण नेत्रोंको पोंछकर नारदजीसे यों बोले—॥ २८॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—[महर्षे!] साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वव्यापी चिन्मय गोलोकधामसे उतरकर जो भारतवर्षके अन्तर्गत द्वारका-पुरीमें विराज रहे हैं—इसका क्या कारण है? ब्रह्मन्! उन भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर बृहत् (विशाल या ब्रह्मस्वरूप) गोलोकधामका वर्णन कीजिये। महामुने! साथ ही उनके अपरिमेय कार्योंको भी कहनेकी कृपा कीजिये। मनुष्य जब तीर्थयात्रा तथा सौ जन्मोंतक उत्तम तपस्या करके उसके फलस्वरूप सत्सङ्गका सुअवसर पाता है, तब वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको शीघ्र प्राप्त कर लेता है। कब मैं भक्तिरससे आर्द्रचित्त हो मनसे भगवान् श्रीकृष्णके दासका भी दासानुदास होऊँगा? जो सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं, वे परब्रह्म परमात्मा आदिदेव भगवान् श्रीकृष्ण मेरे नेत्रोंके समक्ष कैसे होंगे?॥ २९—३२॥

श्रीनारदजी बोले—नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अभीष्ट जन हो और उन श्रीहरिके परम प्रिय भक्त हो। तुम्हें दर्शन देनेके लिये ही वे भक्तवत्सल भगवान् यहाँ अवश्य पधारेंगे। ब्रह्मण्यदेव भगवान् जनार्दन द्वारकामें रहते हुए भी तुम्हें और ब्राह्मण श्रुतदेवको याद करते रहते हैं। अहो! इस लोकमें संतोंका कैसा सौभाग्य है!॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णमाहात्म्यका वर्णन' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

ब्रह्मादि देवोंद्वारा गोलोकधामका दर्शन

श्रीनारद उवाच

जिह्वां लब्ध्वापि यः कृष्णं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः॥ १

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि श्रीकृष्णागमनं भुवि।
अस्मिन् वाराहकल्पे वै यद्भूतं तच्छृणु प्रभो॥ २

पुरा दानवदैत्यानां नराणां खलभूभुजाम्।
भूरिभारसमाक्रान्ता पृथ्वी गोरूपधारिणी॥ ३

अनाथवद्रुदन्तीव वेदयन्ती निजव्यथाम्।
कम्पयन्ती निजं गात्रं ब्रह्माणं शरणं गता॥ ४

ब्रह्माथाश्वास्य तां सद्यः सर्वदेवगणैर्वृतः।
शङ्करेण समं प्रागाद्वैकुण्ठं मन्दिरं हरेः॥ ५

नत्वा चतुर्भुजं विष्णुं स्वाभिप्रायं जगाद ह।
अथोद्विग्नं देवगणं श्रीनाथः प्राह तं विधिम्॥ ६

श्रीभगवानुवाच

कृष्णं स्वयं विगणिताण्डपतिं परेशं
साक्षादखण्डमतिदेवमतीवलीलम्।
कार्यं कदापि न भविष्यति यं विना हि
गच्छाशु तस्य विशदं पदमव्ययं त्वम्॥ ७

श्रीब्रह्मोवाच

त्वत्तः परं न जानामि परिपूर्णतमं स्वयम्।
यदि योऽन्यस्तस्य साक्षाल्लोकं दर्शय नः प्रभो॥ ८

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तोऽपि हरिः पूर्णः सर्वैर्देवगणैः सह।
पदवीं दर्शयामास ब्रह्माण्डशिखरोपरि॥ ९

श्रीनारदजी कहते हैं—जो जीभ पाकर भी कीर्तनीय भगवान् श्रीकृष्णका कीर्तन नहीं करता, वह दुर्बुद्धि मनुष्य मोक्षकी सीढ़ी पाकर भी उसपर चढ़नेकी चेष्टा नहीं करता। राजन्! अब इस वाराहकल्पमें धराधामपर जो भगवान् श्रीकृष्णका पदार्पण हुआ है और यहाँ उनकी जो-जो लीलाएँ हुई हैं, वह सब मैं तुमसे कहता हूँ; सुनो॥ १-२॥

बहुत पहलेकी बात है—दानव, दैत्य, आसुर-स्वभावके मनुष्य और दुष्ट राजाओंके भारी भारसे अत्यन्त पीड़ित हो, पृथ्वी गौका रूप धारण करके, अनाथकी भाँति रोती-बिलखती हुई अपनी आन्तरिक व्यथा निवेदन करनेके लिये ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। उस समय उसका शरीर काँप रहा था॥ ३-४॥

वहाँ उसकी कष्टकथा सुनकर ब्रह्माजीने उसे धीरज बँधाया और तत्काल समस्त देवताओं तथा शिवजीको साथ लेकर वे भगवान् नारायणके वैकुण्ठधाममें गये। वहाँ जाकर ब्रह्माजीने चतुर्भुज भगवान् विष्णुको प्रणाम करके अपना सारा अभिप्राय निवेदन किया। तब लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु उन उद्विग्न देवताओं तथा ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले— ॥५-६॥

श्रीभगवान्ने कहा—ब्रह्मन्! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही अगणित ब्रह्माण्डोंके स्वामी, परमेश्वर, अखण्डस्वरूप तथा देवातीत हैं। उनकी लीलाएँ अनन्त एवं अनिर्वचनीय हैं। उनकी कृपाके बिना यह कार्य कदापि सिद्ध नहीं होगा, अतः तुम उन्हींके अविनाशी एवं परम उज्ज्वल धाममें शीघ्र जाओ॥ ७॥

श्रीब्रह्माजी बोले—प्रभो! आपके अतिरिक्त कोई दूसरा भी परिपूर्णतम तत्त्व है, यह मैं नहीं जानता। यदि कोई दूसरा भी आपसे उत्कृष्ट परमेश्वर है, तो उसके लोकका मुझे दर्शन कराइये॥ ८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर परिपूर्ण भगवान् विष्णुने सम्पूर्ण देवताओंसहित

वामपादाङ्गुष्ठनखभिन्नब्रह्माण्डमस्तके ।
श्रीवामनस्य विवरे ब्रह्मद्रवसमाकुले ॥ १०

जलयानेन मार्गेण बहिस्ते निर्ययुः सुराः ।
कलिङ्गबिम्बवच्चेदं ब्रह्माण्डं ददृशुस्त्वधः ॥ ११

इन्द्रायणफलानीव लुठन्त्यन्यानि वै जले ।
विलोक्य विस्मिताः सर्वे बभूवुश्चकिता इव ॥ १२

कोटिशो योजनोर्ध्वं वै पुराणामष्टकं गताः ।
दिव्यप्राकाररत्नादिद्रुमवृन्दमनोहरम् ॥ १३

तदूर्ध्वं ददृशुर्देवा विरजायास्तटं शुभम् ।
तरङ्गितं क्षौमशुभ्रं सोपानैर्भास्वरं परम् ॥ १४

तं दृष्ट्वा प्रचलन्तस्ते तत्पुरं जग्मुरुत्तमम् ।
असंख्यकोटिमार्तण्डज्योतिषां मण्डलं महत् ॥ १५

दृष्ट्वा प्रताडिताक्षास्ते तेजसा धर्षिताः स्थिताः ।
नमस्कृत्वाथ तत्तेजो दध्यौ विष्ण्वाज्ञया विधिः ॥ १६

तज्ज्योतिर्मण्डलेऽपश्यत्साकारं धाम शान्तिमत् ।
तस्मिन् महाद्भुतं दीर्घं मृणालधवलं परम् ।
सहस्रवदनं शेषं दृष्ट्वा नेमुः सुरास्ततः ॥ १७

तस्योत्सङ्गे महालोको गोलोको लोकवन्दितः ।
यत्र कालः कलयतामीश्वरो धाममानिनाम् ॥ १८

राजन्न प्रभवेन्माया मनश्चित्तं मतिर्ह्यहम् ।
न विकारो विशत्येव न महांश्च गुणाः कुतः ॥ १९

ब्रह्माजीको ब्रह्माण्ड-शिखरपर विराजमान गोलोकधामका मार्ग दिखलाया। वामनजीके बायें पैरके अँगूठेसे ब्रह्माण्डके शिरोभागका भेदन हो जानेपर जो छिद्र हुआ, वह 'ब्रह्मद्रव' (नित्य अक्षय नीर)-से परिपूर्ण था। सब देवता उसी मार्गसे वहाँके लिये नियत जलयानद्वारा बाहर निकले। वहाँ ब्रह्माण्डके ऊपर पहुँचकर उन सबने नीचेकी ओर उस ब्रह्माण्डको कलिङ्गबिम्ब (तूँबे)-की भाँति देखा॥ ९—११॥

इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से ब्रह्माण्ड उसी जलमें इन्द्रायण-फलके सदृश इधर-उधर लहरोंमें लुढ़क रहे थे। यह देखकर सब देवताओंको विस्मय हुआ। वे चकित हो गये। वहाँसे करोड़ों योजन ऊपर आठ नगर मिले, जिनके चारों ओर दिव्य चहारदीवारी शोभा बढ़ा रही थी और झुंड-के-झुंड रत्नादिमय वृक्षोंसे उन पुरियोंकी मनोरमता बढ़ गयी थी॥ १२-१३॥

वहीं ऊपर देवताओंने विरजानदीका सुन्दर तट देखा, जिससे विरजाकी तरंगें टकरा रही थीं। वह तट-प्रदेश उज्ज्वल रेशमी वस्त्रके समान शुभ्र दिखायी देता था। [दिव्य मणिमय] सोपानोंसे वह अत्यन्त उद्भासित हो रहा था। तटकी शोभा देखते और आगे बढ़ते हुए वे देवता उस उत्तम नगरमें पहुँचे, जो अनन्तकोटि सूर्योंकी ज्योतिका महान् पुंज जान पड़ता था॥ १४-१५॥

उसे देखकर देवताओंकी आँखें चौंधिया गयीं। वे उस तेजसे पराभूत हो जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये। तब भगवान् विष्णुकी आज्ञाके अनुसार उस तेजको प्रणाम करके ब्रह्माजी उसका ध्यान करने लगे। उसी ज्योतिके भीतर उन्होंने एक परम शान्तिमय साकार धाम देखा। उसमें परम अद्भुत, कमलनालके समान धवल-वर्ण हजार मुखवाले महान् शेषनागका दर्शन करके सभी देवताओंने उन्हें प्रणाम किया॥ १६-१७॥

राजन्! उन शेषनागकी गोदमें महान् आलोकमय लोकवन्दित गोलोकधामका दर्शन हुआ, जहाँ धामाभिमानी देवताओंके ईश्वर तथा गणनाशीलोंमें प्रधान कालका भी कोई वश नहीं चलता। वहाँ माया भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, सोलह विकार तथा महत्तत्त्व भी वहाँ प्रवेश नहीं कर

तत्र कन्दर्पलावण्याः श्यामसुन्दरविग्रहाः।
द्वारि गन्तुं चाभ्युदितान् न्यषेधन् कृष्णपार्षदाः॥ २०

देवा ऊचुः

लोकपाला वयं सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
श्रीकृष्णदर्शनार्थाय शक्राद्या आगता इह॥ २१

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा तदभिप्रायं श्रीकृष्णाय सखीजनाः।
ऊचुर्देवप्रतीहारा गत्वा चान्तःपुरं परम्॥ २२

तदा विनिर्गता काचिच्छतचन्द्रानना सखी।
पीताम्बरा वेत्रहस्ता सापृच्छद्वाञ्छितं सुरान्॥ २३

शतचन्द्राननोवाच

कस्याण्डस्याधिपा देवा यूयं सर्वे समागताः।
वदताशु गमिष्यामि तस्मै भगवते ह्यहम्॥ २४

देवा ऊचुः

अहो अण्डान्युतान्यानि नास्माभिर्दर्शितानि च।
एकमण्डं प्रजानीमोऽथोऽपरं नास्ति नः शुभे॥ २५

शतचन्द्राननोवाच

ब्रह्मदेव लुठन्तीह कोटिशो ह्यण्डराशयः।
तेषु यूयं यथा देवास्तथाण्डेऽण्डे पृथक् पृथक्॥ २६

नाम ग्रामं न जानीथ कदा नात्र समागताः।
जडबुद्ध्या प्रहृष्यध्वे गृहान्नापि विनिर्गताः॥ २७

ब्रह्माण्डमेकं जानन्ति यत्र जातास्तथा जनाः।
मशकाश्च यथान्तःस्था औदुम्बरफलेषु वै॥ २८

सकते हैं; फिर तीनों गुणोंके विषयमें तो कहना ही क्या है! वहाँ कामदेवके समान मनोहर रूप-लावण्य-शालिनी, श्यामसुन्दरविग्रहा श्रीकृष्णपार्षदा द्वारपालका कार्य करती थीं। देवताओंको द्वारके भीतर जानेके लिये उद्यत देख उन्होंने मना किया॥ १८—२०॥

देवता बोले—हम सभी ब्रह्मा, विष्णु, शंकर नामके लोकपाल और इन्द्र आदि देवता हैं। भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनार्थ यहाँ आये हैं॥ २१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—देवताओंकी बात सुनकर उन सखियोंने, जो श्रीकृष्णकी द्वारपालिकाएँ थीं, श्रेष्ठ अन्तःपुरमें जाकर देवताओंकी बात कह सुनायीं। तब एक सखी, जो शतचन्द्रानना नामसे विख्यात थी, जिसके वस्त्र पीले थे और जो हाथमें बेंतकी छड़ी लिये थी, बाहर आयी और उन देवताओंसे उनका अभीष्ट प्रयोजन पूछा॥ २२-२३॥

शतचन्द्रानना बोली—यहाँ पधारे हुए आप सब देवता किस ब्रह्माण्डके अधिपति हैं, यह शीघ्र बताइये। तब मैं भगवान् श्रीकृष्णको सूचित करनेके लिये उनके पास जाऊँगी॥ २४॥

देवताओंने कहा—अहो! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है, क्या अन्यान्य ब्रह्माण्ड भी हैं? हमने तो उन्हें कभी नहीं देखा। शुभे! हम तो यही जानते हैं कि एक ही ब्रह्माण्ड है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं॥ २५॥

शतचन्द्रानना बोली—ब्रह्मदेव! यहाँ तो [विरजा नदीमें] करोड़ों ब्रह्माण्ड इधर-उधर लुढ़क रहे हैं। उनमें भी आप-जैसे ही पृथक्-पृथक् देवता वास करते हैं। अरे! क्या आपलोग अपना नाम-गाँवतक नहीं जानते? जान पड़ता है—कभी यहाँ आये नहीं हैं; अपनी थोड़ी-सी जानकारीमें ही हर्षसे फूल उठे हैं। जान पड़ता है, कभी घरसे बाहर निकले ही नहीं। जैसे गूलरके फलोंमें रहनेवाले कीड़े जिस फलमें रहते हैं, उसके सिवा दूसरेको नहीं जानते, उसी प्रकार आप-जैसे साधारण जन जिसमें उत्पन्न होते हैं, एकमात्र उसीको 'ब्रह्माण्ड' समझते हैं॥ २६—२८॥

श्रीनारद उवाच

उपहास्यं गता देवा इत्थं तूष्णीं स्थिताः पुनः।
चकितानिव तान् दृष्ट्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत्॥ २९

श्रीविष्णुरुवाच

यस्मिन्नण्डे पृश्निगर्भोऽवतारोऽभूत्सनातनः।
त्रिविक्रमनखोद्भिन्ने तस्मिन्नण्डे स्थिता वयम्॥ ३०

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा तं च संश्लाघ्य शीघ्रमन्तःपुरं गता।
पुनरागत्य देवेभ्योऽप्याज्ञां दत्वा गता पुरम्॥ ३१

अथ देवगणाः सर्वे गोलोकं ददृशुः परम्।
तत्र गोवर्धनो नाम गिरिराजो विराजते॥ ३२

वसन्तमानिनीभिश्च गोपीभिर्गोगणैर्वृतः।
कल्पवृक्षलतासङ्घै रासमण्डलमण्डितः॥ ३३

यत्र कृष्णा नदी श्यामा तोलिकाकोटिमण्डिता।
वैदूर्यकृतसोपाना स्वच्छन्दगतिरुत्तमा॥ ३४

वृन्दावनं भ्राजमानं दिव्यद्रुमलताकुलम्।
चित्रपक्षिमधुव्रातैर्वंशीवटविराजितम्॥ ३५

पुलिने शीतले वायुर्मन्दगामी वहत्यलम्।
सहस्रदलपद्मानां रजो विक्षेपयन्मुहुः॥ ३६

मध्ये निजनिकुञ्जोऽस्ति द्वात्रिंशद्वनसंयुतः।
प्राकारपरिखायुक्तोऽरुणाक्षयवटाजिरः॥ ३७

सप्तधा पद्मरागाग्राजिरकुड्यविभूषितः।
कोटीन्दुमण्डलाकारैर्वितानैर्गुलिकाद्युतिः॥ ३८

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] इस प्रकार उपहासके पात्र बने हुए सब देवता चुपचाप खड़े रहे, कुछ बोल न सके। उन्हें चकित-से देखकर भगवान् विष्णुने कहा—॥ २९॥

श्रीविष्णु बोले—जिस ब्रह्माण्डमें भगवान् पृश्निगर्भका सनातन अवतार हुआ है तथा त्रिविक्रम (विराट्-रूपधारी वामन)-के नखसे जिस ब्रह्माण्डमें विवर बन गया है, वहीं हम निवास करते हैं॥ ३०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर शतचन्द्राननाने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और स्वयं भीतर चली गयी। फिर शीघ्र ही आयी और सबको अन्तःपुरमें पधारनेकी आज्ञा देकर वापस चली गयी। तदनन्तर सम्पूर्ण देवताओंने परमसुन्दर धाम गोलोकका दर्शन किया। वहाँ 'गोवर्धन' नामक गिरिराज शोभा पा रहे थे॥ ३१-३२॥

गिरिराजका वह प्रदेश उस समय वसन्तका उत्सव मनानेवाली गोपियों और गौओंके समूहसे घिरा था, कल्पवृक्षों तथा कल्पलताओंके समुदायसे सुशोभित था और रासमण्डल उसे मण्डित (अलंकृत) कर रहा था। वहाँ श्यामवर्णवाली उत्तम यमुना नदी स्वच्छन्द गतिसे बह रही है। तटपर बने हुए करोड़ों प्रासाद उसकी शोभा बढ़ाते हैं तथा उस नदीमें उतरनेके लिये वैदूर्यमणिकी सुन्दर सीढ़ियाँ बनी हैं॥ ३३-३४॥

वहाँ दिव्य वृक्षों और लताओंसे भरा हुआ 'वृन्दावन' अत्यन्त शोभा पा रहा है; भाँति-भाँतिके विचित्र पक्षियों, भ्रमरों तथा वंशीवटके कारण वहाँकी सुषमा और बढ़ रही है। वहाँ सहस्रदल कमलोंके सुगन्धित परागको चारों ओर पुनः-पुनः बिखेरती हुई शीतल वायु मन्द गतिसे बह रही है॥ ३५-३६॥

वृन्दावनके मध्यभागमें बत्तीस वनोंसे युक्त एक 'निज निकुञ्ज' है। चहारदीवारियाँ और खाइयाँ उसे सुशोभित कर रही हैं। उसके आँगनका भाग लाल वर्णवाले अक्षयवटोंसे अलंकृत है॥ ३७॥

पद्मरागादि सात प्रकारकी मणियोंसे बनी दीवारें तथा आँगनके फर्श बड़ी शोभा पाते हैं। करोड़ों चन्द्रमाओंके

पतत्पताकैर्दिव्याभैः पुष्पमन्दिरवर्त्मभिः।
जातभ्रमरसङ्गीतो मत्तबर्हिपिकस्वनः॥ ३९

बालार्ककुण्डलधराः शतचन्द्रप्रभाः स्त्रियः।
स्वच्छन्दगतयो रत्नैः पश्यन्त्यः सुन्दरं मुखम्॥ ४०

रत्नाजिरेषु धावन्त्यो हारकेयूरभूषिताः।
क्वणन्नूपुरकिङ्किण्यश्चूडामणिविराजिताः॥ ४१

कोटिशः कोटिशो गावो द्वारि द्वारि मनोहराः।
श्वेतपर्वतसङ्काशा दिव्यभूषणभूषिताः॥ ४२

पयस्विन्यस्तरुणयश्च शीलरूपगुणैर्युताः।
सवत्साः पीतपुच्छाश्च व्रजन्त्यो भव्यमूर्तिकाः॥ ४३

घण्टामञ्जीरसंरावाः किङ्किणीजालमण्डिताः।
हेमशृङ्ग्यो हेमतुल्यहारमालाः स्फुरत्प्रभाः॥ ४४

पाटला हरितास्ताम्राः पीताः श्यामा विचित्रिताः।
धूम्राः कोकिलवर्णाश्च यत्र गावस्त्वनेकधा॥ ४५

समुद्रवद्दुग्धदाश्च तरुणीकरचिह्निताः।
कुरङ्गवद्विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डिताः शुभाः॥ ४६

इतस्ततश्चलन्तश्च गोगणेषु महावृषाः।
दीर्घकन्धरशृङ्गाढ्या यत्र धर्मधुरन्धराः॥ ४७

मण्डलकी छवि धारण करनेवाले चँदोवे उसे अलंकृत कर रहे हैं तथा उनमें चमकीले गोले लटक रहे हैं। फहराती हुई दिव्य पताकाएँ एवं खिले हुए फूल मन्दिरों एवं मार्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ भ्रमरोंके गुंजारव संगीतकी सृष्टि करते हैं तथा मत्त मयूरों और कोकिलोंके कलरव सदा [श्रवणगोचर] होते हैं॥ ३८-३९॥

वहाँ बालसूर्यके सदृश कान्तिमान् अरुण-पीत कुण्डल धारण करनेवाली ललनाएँ शत-शत चन्द्रमाओंके समान गौरवर्णसे उद्भासित होती हैं। स्वच्छन्द गतिसे चलनेवाली वे सुन्दरियाँ मणिरत्नमय भित्तियोंमें अपना मनोहर मुख देखती हुई वहाँके रत्नजटित आँगनोंमें भागती फिरती हैं। उनके गलेमें हार और बाँहोंमें केयूर शोभा देते हैं। नूपुरों तथा करधनीकी मधुर झनकार वहाँ गूँजती रहती है। वे गोपाङ्गनाएँ मस्तकपर चूड़ामणि धारण किये रहती हैं॥ ४०-४१॥

वहाँ द्वार-द्वारपर कोटि-कोटि मनोहर गौओंके दर्शन होते हैं। वे गौएँ दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं और श्वेत पर्वतके समान प्रतीत होती हैं। सब-की-सब दूध देनेवाली तथा नयी अवस्थाकी हैं। सुशीला, सुरूपा तथा सद्गुणवती हैं। सभी सवत्सा और पीली पूँछकी हैं। ऐसी भव्य-रूपवाली गौएँ वहाँ सब ओर विचर रही हैं॥ ४२-४३॥

उनके घंटों तथा मञ्जीरोंसे मधुर ध्वनि होती रहती है। किङ्किणीजालोंसे विभूषित उन गौओंके सींगोंमें सोना मढ़ा गया है। वे सुवर्ण-तुल्य हार एवं मालाएँ धारण करती हैं। उनके अङ्गोंसे प्रभा छिटकती रहती है। सभी गौएँ भिन्न-भिन्न रंगवाली हैं—कोई उजली, कोई काली, कोई पीली, कोई लाल, कोई हरी, कोई ताँबेके रंगकी और कोई चितकबरे रंगकी हैं। किन्हीं-किन्हींका वर्ण धुएँ-जैसा है। बहुत-सी कोयलके समान रंगवाली हैं॥ ४४-४५॥

दूध देनेमें समुद्रकी तुलना करनेवाली उन गायोंके शरीरपर तरुणियोंके करचिह्न शोभित हैं, अर्थात् युवतियोंके हाथोंके रंगीन छापे दिये गये हैं। हिरनके समान छलाँग भरनेवाले बछड़ोंसे उनकी अधिक शोभा बढ़ गयी है। गायोंके झुंडमें विशाल शरीरवाले साँड़ भी इधर-उधर घूम रहे हैं। उनकी लंबी गर्दन और बड़े-बड़े सींग हैं। उन साँड़ोंको साक्षात् धर्मधुरंधर कहा जाता है॥ ४६-४७॥

गोपाला वेत्रहस्ताश्च श्यामा वंशीधराः पराः।
कृष्णलीलां प्रगायन्तो रागैर्मदनमोहनैः॥ ४८

गौओंकी रक्षा करनेवाले चरवाहे भी अनेक हैं। उनमेंसे कुछ तो हाथमें बेंतकी छड़ी लिये हुए हैं और दूसरोंके हाथोंमें सुन्दर बाँसुरी शोभा पाती है। उन सबके शरीरका रंग श्यामल है। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाएँ ऐसे मधुर स्वरोंमें गाते हैं कि उसे सुनकर कामदेव भी मोहित हो जाता है॥ ४८॥

इत्थं निजनिकुञ्जं तं नत्वा मध्ये गताः सुराः।
ज्योतिषां मण्डलं पद्मं सहस्रदलशोभितम्॥ ४९

इस 'दिव्य निज निकुञ्ज' को सम्पूर्ण देवताओंने प्रणाम किया और भीतर चले गये। वहाँ उन्हें हजार दलवाला एक बहुत बड़ा कमल दिखायी पड़ा। वह ऐसा सुशोभित था, मानो प्रकाशका पुञ्ज हो॥ ४९॥

तदूर्ध्वं षोडशदलं ततोऽष्टदलपङ्कजम्।
तस्योपरि स्फुरद्दीर्घं सोपानत्रयमण्डितम्॥ ५०

सिंहासनं परं दिव्यं कौस्तुभैः खचितं शुभम्।
ददृशुर्देवताः सर्वाः श्रीकृष्णं राधया युतम्॥ ५१

उसके ऊपर एक सोलह दलका कमल है तथा उसके ऊपर भी एक आठ दलवाला कमल है। उसके ऊपर चमचमाता हुआ एक ऊँचा सिंहासन है। तीन सीढ़ियोंसे सम्पन्न वह परम दिव्य सिंहासन कौस्तुभ-मणियोंसे जटित होकर अनुपम शोभा पाता है। उसीपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्रीराधिकाजीके साथ विराजमान हैं। ऐसी झाँकी उन समस्त देवताओंको मिली॥ ५०-५१॥

दिव्यैरष्टसखीसङ्घैर्मोहिन्यादिभिरन्वितम्।
श्रीदामाद्यैः सेव्यमानमष्टगोपालसेवितैः॥ ५२

हंसाभैर्व्यजनान्दोलचामरैर्वज्रमुष्टिभिः।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशैः सेवितं छत्रकोटिभिः॥ ५३

वे युगलरूप भगवान् मोहिनी आदि आठ दिव्य सखियोंसे समन्वित तथा श्रीदामा प्रभृति आठ गोपालोंके द्वारा सेवित हैं। उनके ऊपर हंसके समान सफेद रंगवाले पंखे झले जा रहे हैं और हीरोंसे बनी मूँठवाले चँवर डुलाये जा रहे हैं। भगवान्‌की सेवामें करोड़ों ऐसे छत्र प्रस्तुत हैं, जो कोटि चन्द्रमाओंकी प्रभासे तुलित हो सकते हैं॥ ५२-५३॥

श्रीराधिकालङ्कृतवामबाहुं
स्वच्छन्दवक्रीकृतदक्षिणाङ्घ्रिम्।
वंशीधरं सुन्दरमन्दहासं
भ्रूमण्डलामोहितकामराशिम्॥ ५४

भगवान् श्रीकृष्णके वामभागमें विराजित श्रीराधिकाजीसे उनकी बायीं भुजा सुशोभित है। भगवान्‌ने स्वेच्छापूर्वक अपने दाहिने पैरको टेढ़ा कर रखा है। वे हाथमें बाँसुरी धारण किये हुए हैं। उन्होंने मनोहर मुसकानसे भरे मुखमण्डल और भ्रुकुटि-विलाससे अनेक कामदेवोंको मोहित कर रखा है॥ ५४॥

घनप्रभं पद्मदलायतेक्षणं
प्रलम्बबाहुं बहुपीतवाससम्।
वृन्दावनोन्मत्तमिलिन्दशब्दै-
र्विराजितं श्रीवनमालया हरिम्॥ ५५

उन श्रीहरिकी मेघके समान श्यामल कान्ति है। कमल-दलकी भाँति बड़ी विशाल उनकी आँखें हैं। घुटनोंतक लंबी बड़ी भुजाओंवाले वे प्रभु अत्यन्त पीले वस्त्र पहने हुए हैं। भगवान् गलेमें सुन्दर वनमाला धारण किये हुए हैं, जिसपर वृन्दावनमें विचरण करनेवाले मतवाले भ्रमरोंकी गुंजार हो रही है॥ ५५॥

काञ्चीकलाकङ्कणनूपुरद्युतिं
लसन्मनोहारिमहोज्ज्वलस्मितम्।
श्रीवत्सरत्नोत्तमकुन्तलप्रियं
किरीटहाराङ्गदकुण्डलत्विषम् ॥ ५६

पैरोंमें घुँघरू और हाथोंमें कंकणकी छटा छिटका रहे हैं। अति सुन्दर मुसकान मनको मोहित कर रही है। श्रीवत्सका चिह्न, बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए किरीट, कुण्डल, बाजूबंद और हार यथास्थान भगवान्‌की शोभा बढ़ा रहे हैं॥ ५६॥

दृष्ट्वा तमानन्दसमुद्रमग्नवत्-
प्रहर्षिताश्चाश्रुकलाकुलेक्षणाः।
ततः सुराः प्राञ्जलयो नतानना
नेमुर्मुरारिं पुरुषं परायणम्॥ ५७

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे दिव्य दर्शन प्राप्तकर सम्पूर्ण देवता आनन्दके समुद्रमें गोता खाने लगे। अत्यन्त हर्षके कारण उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। तब सम्पूर्ण देवताओंने हाथ जोड़कर विनीत-भावसे मुर दैत्यके शत्रु उन परम पुरुष श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम किया॥ ५७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगोलोकधामवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगोलोकधामका वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें श्रीविष्णु आदिका प्रवेश; देवताओंद्वारा भगवान्‌की स्तुति; भगवान्‌का अवतार लेनेका निश्चय; श्रीराधाकी चिन्ता और भगवान्‌का उन्हें सान्त्वना प्रदान करना

श्रीबहुलाश्व उवाच

मुने देवा महात्मानं कृष्णं दृष्ट्वा परात्परम्।
अग्रे किं चक्रिरे तत्र तन्मे ब्रूहि कृपां कुरु॥ १

श्रीबहुलाश्वजीने पूछा—मुने! परात्पर महात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन प्राप्तकर सम्पूर्ण देवताओंने आगे क्या किया, मुझे यह बतानेकी कृपा करें॥ १॥

श्रीनारद उवाच

सर्वेषां पश्यतां तेषां वैकुण्ठोऽपि हरिस्ततः।
उत्थायाष्टभुजः साक्षाल्लीनोऽभूत्कृष्णविग्रहे॥ २

तदैव चागतः पूर्णो नृसिंहश्चण्डविक्रमः।
कोटिसूर्यप्रतीकाशो लीनोऽभूत्कृष्णतेजसि॥ ३

रथे लक्षहये शुभ्रे स्थितश्चागतवांस्ततः।
श्वेतद्वीपाधिपो भूमा सहस्रभुजमण्डितः॥ ४

श्रिया युक्तः स्वायुधाढ्यः पार्षदैः परिसेवितः।
सम्प्रलीनो बभूवाशु सोऽपि श्रीकृष्णविग्रहे॥ ५

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] उस समय सबके देखते-देखते अष्ट भुजाधारी वैकुण्ठाधिपति भगवान् श्रीहरि उठे और साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें लीन हो गये। उसी समय कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी, प्रचण्ड पराक्रमी पूर्णस्वरूप भगवान् नृसिंहजी पधारे और भगवान् श्रीकृष्णके तेजमें वे भी समा गये। इसके बाद सहस्र भुजाओंसे सुशोभित, श्वेतद्वीपके स्वामी विराट् पुरुष, जिनके शुभ्र रथमें सफेद रंगके लाख घोड़े जुते हुए थे, उस रथपर आरूढ़ होकर वहाँ आये॥ २—४॥

उनके साथ श्रीलक्ष्मीजी भी थीं। वे अनेक प्रकारके अपने आयुधोंसे सम्पन्न थे। पार्षदगण चारों ओरसे उनकी सेवामें उपस्थित थे। वे भगवान् भी उसी समय श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें सहसा प्रविष्ट हो गये। फिर

तदैव चागतः साक्षाद्रामो राजीवलोचनः।
धनुर्बाणधरः सीताशोभितो भ्रातृभिर्वृतः॥ ६

दशकोट्यर्कसङ्काशे चामरैर्दोलिते रथे।
असंख्यवानरेन्द्राढ्ये लक्षचक्रघनस्वने॥ ७

लक्षध्वजे लक्षहये शातकौम्भे स्थितस्ततः।
श्रीकृष्णविग्रहे पूर्णः सम्प्रलीनो बभूव ह॥ ८

तदैव चागतः साक्षाद्यज्ञो नारायणो हरिः।
प्रस्फुरत्प्रलयाटोपज्वलदग्निशिखोपमः ॥ ९

रथे ज्योतिर्मये दृश्यो दक्षिणाढ्यः सुरेश्वरः।
सोऽपि लीनो बभूवाशु श्रीकृष्णे श्यामविग्रहे॥ १०

तदा चागतवान् साक्षान्नरनारायणः प्रभुः।
चतुर्भुजो विशालाक्षो मुनिवेषो घनद्युतिः॥ ११

तडित्कोटिजटाजूटः प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलः।
मुनीन्द्रमण्डलैर्दिव्यैर्मण्डितोऽखण्डितव्रतः॥ १२

सर्वेषां पश्यतां तेषामाश्चर्यमनसा नृप।
सोऽपि लीनो बभूवाशु श्रीकृष्णे श्यामसुन्दरे॥ १३

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं च स्वयं प्रभुम्।
ज्ञात्वा देवाः स्तुतिं चक्रुः परं विस्मयमागताः॥ १४

देवा ऊचुः

कृष्णाय पूर्णपुरुषाय परात्पराय
यज्ञेश्वराय परकारणकारणाय।
राधावराय परिपूर्णतमाय साक्षाद्
गोलोकधामधिषणाय नमः परस्मै॥ १५

वे पूर्णस्वरूप कमललोचन भगवान् श्रीराम स्वयं वहाँ पधारे। उनके हाथमें धनुष और बाण थे तथा साथमें श्रीसीताजी और भरत आदि तीनों भाई भी थे॥ ५-६॥

उनका दिव्य रथ दस करोड़ सूर्योंके समान प्रकाशमान था। उसपर निरन्तर चँवर डुलाये जा रहे थे। असंख्य वानरयूथपति उनकी रक्षाके कार्यमें संलग्न थे। उस रथके एक लाख चक्कोंसे मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि निकल रही थी। उसपर लाख ध्वजाएँ फहरा रही थीं। उस रथमें लाख घोड़े जुते हुए थे। वह रथ सुवर्णमय था। उसीपर बैठकर भगवान् श्रीराम वहाँ पधारे थे। वे भी श्रीकृष्णचन्द्रके दिव्य विग्रहमें लीन हो गये॥ ७-८॥

फिर उसी समय साक्षात् यज्ञनारायण श्रीहरि वहाँ पधारे, जो प्रलयकालकी जाज्वल्यमान अग्निशिखाके समान उद्भासित हो रहे थे। देवेश्वर यज्ञ अपनी धर्मपत्नी दक्षिणाके साथ ज्योतिर्मय रथपर बैठे दिखायी देते थे। वे भी उस समय श्यामविग्रह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लीन हो गये॥ ९-१०॥

तत्पश्चात् साक्षात् भगवान् नर-नारायण वहाँ पधारे। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्याम थी। उनके चार भुजाएँ थीं, नेत्र विशाल थे और वे मुनिके वेषमें थे। उनके सिरका जटा-जूट कौंधती हुई करोड़ों बिजलियोंके समान दीप्तिमान् था। उनका दीप्तिमण्डल सब ओर उद्भासित हो रहा था। दिव्य मुनीन्द्रमण्डलोंसे मण्डित वे भगवान् नारायण अपने अखण्डित ब्रह्मचर्यसे शोभा पाते थे॥ ११-१२॥

राजन्! सभी देवता आश्चर्ययुक्त मनसे उनकी ओर देख रहे थे। किंतु वे भी श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णमें तत्काल लीन हो गये। इस प्रकारके विलक्षण दिव्य दर्शन प्राप्तकर सम्पूर्ण देवताओंको महान् आश्चर्य हुआ। उन सबको यह भलीभाँति ज्ञात हो गया कि परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं परिपूर्णतम भगवान् हैं। तब वे उन परमप्रभुकी स्तुति करने लगे॥ १३-१४॥

देवता बोले—जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष, परसे भी पर, यज्ञोंके स्वामी, कारणके भी परम कारण, परिपूर्णतम परमात्मा और साक्षात् गोलोकधामके अधिवासी हैं, इन परम पुरुष

योगेश्वराः किल वदन्ति महः परं त्वं
तत्रैव सात्वतजनाः कृतविग्रहं च।
अस्माभिरद्य विदितं यददोऽद्वयं ते
तस्मै नमोऽस्तु महतां पतये परस्मै॥ १६

श्रीराधावरको हम सादर नमस्कार करते हैं। योगेश्वर लोग कहते हैं कि आप परम तेज:पुञ्ज हैं; शुद्ध अन्त:करणवाले भक्तजन ऐसा मानते हैं कि आप लीलाविग्रह धारण करनेवाले अवतारी पुरुष हैं; परंतु हमलोगोंने आज आपके जिस स्वरूपको जाना है, वह अद्वैत—सबसे अभिन्न एक अद्वितीय है; अत: आप महत्तम तत्त्वों एवं महात्माओंके भी अधिपति हैं; आप परब्रह्म परमेश्वरको हमारा नमस्कार है॥ १५-१६॥

व्यङ्ग्येन वा न न हि लक्षणया कदापि
स्फोटेन यच्च कवयो न विशन्ति मुख्याः।
निर्देश्यभावरहितं प्रकृतेः परं च
त्वां ब्रह्म निर्गुणमलं शरणं व्रजामः॥ १७

कितने विद्वानोंने व्यञ्जना, लक्षणा और स्फोटद्वारा आपको जानना चाहा; किंतु फिर भी वे आपको पहचान न सके; क्योंकि आप निर्दिष्ट भावसे रहित हैं। अत: मायासे निर्लेप आप निर्गुण ब्रह्मकी हम शरण ग्रहण करते हैं॥ १७॥

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्ति परे च कालं
केचित्प्रशान्तमपरे भुवि कर्मरूपम्।
पूर्वे च योगमपरे किल कर्तृभाव-
मन्योक्तिभिर्न विदितं शरणं गताः स्मः॥ १८

किन्हींने आपको 'ब्रह्म' माना है, कुछ दूसरे लोग आपके लिये 'काल' शब्दका व्यवहार करते हैं। कितनोंकी ऐसी धारणा है कि आप शुद्ध 'प्रशान्त' स्वरूप हैं तथा कतिपय मीमांसक लोगोंने तो यह मान रखा है कि पृथ्वीपर आप 'कर्म' रूपसे विराजमान हैं। कुछ प्राचीनोंने 'योग' नामसे तथा कुछने 'कर्ता' के रूपमें आपको स्वीकार किया है। इस प्रकार सबकी परस्पर विभिन्न ही उक्तियाँ हैं। अतएव कोई भी आपको वस्तुत: नहीं जान सका। (कोई भी यह नहीं कह सकता कि आप यही हैं, 'ऐसे ही' हैं।) अत: आप (अनिर्देश्य, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय) भगवान्‌की हमने शरण ग्रहण की है॥ १८॥

श्रेयस्करीं भगवतस्तव पादसेवां
हित्वाथ तीर्थयजनादि तपश्चरन्ति।
ज्ञानेन ये च विदिता बहुविघ्नसङ्घैः
सन्ताडिताः किल भवन्ति न ते कृतार्थाः॥ १९

भगवन्! आपके चरणोंकी सेवा अनेक कल्याणोंको देनेवाली है। उसे छोड़कर जो तीर्थ, यज्ञ और तपका आचरण करते हैं, अथवा ज्ञानके द्वारा जो प्रसिद्ध हो गये हैं; उन्हें बहुत-से विघ्नोंका सामना करना पड़ता है; वे सफलता प्राप्त नहीं कर सकते॥ १९॥

विज्ञाप्यमद्य किमु देव अशेषसाक्षी
यः सर्वभूतहृदयेषु विराजमानः।
देवैर्नमद्भिरमलाशयमुक्तदेहै-
स्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय॥ २०

भगवन्! अब हम आपसे क्या निवेदन करें, आपसे तो कोई भी बात छिपी नहीं है; क्योंकि आप चराचरमात्रके भीतर विद्यमान हैं। जो शुद्ध अन्त:करणवाले एवं देहबन्धनसे मुक्त हैं, वे (हम विष्णु आदि) देवता भी आपको नमस्कार ही करते हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तम भगवान्‌को हमारा प्रणाम है॥ २०॥

यो राधिकाहृदयसुन्दरचन्द्रहारः
श्रीगोपिकानयनजीवनमूलहारः।

जो श्रीराधिकाजीके हृदयको सुशोभित करनेवाले सुन्दर चन्द्रहार हैं, गोपियोंके नेत्र और जीवनके मूल

गोलोकधामधिषणध्वज आदिदेवः
स त्वं विपत्सु विबुधान् परिपाहि पाहि॥ २१

वृन्दावनेश गिरिराजपते व्रजेश
गोपालवेषकृतनित्यविहारलील ।
राधापते श्रुतिधराधिपते धरां त्वं
गोवर्धनोद्धरण उद्धर धर्मधाराम्॥ २२

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो भगवान् साक्षाच्छ्रीकृष्णो गोकुलेश्वरः।
प्रत्याह प्रणतान् देवान् मेघगम्भीरया गिरा॥ २३

श्रीभगवानुवाच

हे सुरज्येष्ठ हे शम्भो देवाः शृणुत मद्वचः।
यादवेषु च जन्यध्वमंशैः स्त्रीभिर्मदाज्ञया॥ २४

अहं चावतरिष्यामि हरिष्यामि भुवो भरम्।
करिष्यामि च वः कार्यं भविष्यामि यदोः कुले॥ २५

वेदा मे वचनं विप्रा मुखं गावस्तनुर्मम।
अङ्गानि देवता यूयं साधवो ह्यसवो हृदि॥ २६

युगे युगे च बाध्येत यदा पाखण्डिभिर्जनैः।
धर्मः क्रतुर्दया साक्षात्तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ २७

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तवन्तं जगदीश्वरं हरिं
राधा पतिप्राणवियोगविह्वला।
दावाग्निना दुःखलतेव मूर्च्छिता-
श्रुकम्परोमाञ्चितभावसंवृता ॥ २८

श्रीराधोवाच

भुवो भरं हर्तुमलं व्रजेर्भुवं
कृतं परं मे शपथं शृणु त्वतः।

आधार हैं तथा ध्वजाकी भाँति गोलोकधामको अलंकृत कर रहे हैं, वे आदिदेव भगवान् आप संकटमें पड़े हुए हम देवताओंकी रक्षा करें, रक्षा करें॥ २१॥

भगवन्! आप वृन्दावनके स्वामी हैं, गिरिराजपति भी कहलाते हैं। आप व्रजके अधिनायक हैं, गोपालके रूपमें अवतार धारण करके अनेक प्रकारकी नित्य विहार-लीलाएँ करते हैं। श्रीराधिकाजीके प्राणवल्लभ एवं श्रुतिधरोंके भी आप स्वामी हैं। आप ही गोवर्धन-धारी हैं, अब आप धर्मके भारको धारण करनेवाली इस पृथ्वीका उद्धार करनेकी कृपा करें॥ २२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करनेपर गोकुलेश्वर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रणाम करते हुए देवताओंको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—॥ २३॥

श्रीकृष्णभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मा, शंकर एवं (अन्य) देवताओ! तुम सब मेरी बात सुनो। मेरे आदेशानुसार तुमलोग अपने अंशोंसे देवियोंके साथ यदुकुलमें जन्म धारण करो। मैं भी अवतार लूँगा और मेरे द्वारा पृथ्वीका भार दूर होगा। मेरा वह अवतार यदुकुलमें होगा और मैं तुम्हारे सब कार्य सिद्ध करूँगा॥ २४-२५॥

वेद मेरी वाणी, ब्राह्मण मुख और गौएँ मेरा शरीर हैं। आप सभी देवता मेरे अङ्ग हैं। साधुपुरुष तो हृदयमें वास करनेवाले मेरे प्राण ही हैं। अतः प्रत्येक युगमें जब दम्भपूर्ण दुष्टोंद्वारा इन्हें पीड़ा होती है और धर्म, यज्ञ तथा दयापर भी आघात पहुँचता है, तब मैं स्वयं अपने-आपको भूतलपर प्रकट करता हूँ॥ २६-२७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—जिस समय जगत्पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी क्षण 'अब प्राणनाथसे मेरा वियोग हो जायगा' यह समझकर श्रीराधिकाजी व्याकुल हो गयीं और दावानलसे दग्ध लताकी भाँति मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। उनके शरीरमें अश्रु, कम्प, रोमाञ्च आदि सात्त्विक भावोंका उदय हो गया॥ २८॥

श्रीराधिकाजीने कहा—आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भूमण्डलपर अवश्य पधारें; परंतु मेरी एक प्रतिज्ञा है, उसे भी सुन लें—प्राणनाथ!

गते त्वयि प्राणपते च विग्रहं
कदाचिदत्रैव न धारयाम्यहम्॥ २९

यदा त्वमेवं शपथं न मन्यसे
द्वितीयवारं प्रददामि वाक्पथम्।
प्राणोऽधरे गन्तुमतीव विह्वलः
कर्पूरधूलेः कणवद्गमिष्यति॥ ३०

श्रीभगवानुवाच

त्वया सह गमिष्यामि मा शोकं कुरु राधिके।
हरिष्यामि भुवो भारं करिष्यामि वचस्तव॥ ३१

श्रीराधिकोवाच

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी।
यत्र गोवर्धनो नास्ति तत्र मे न मनःसुखम्॥ ३२

श्रीनारद उवाच

वेदनागक्रोशभूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम्।
गोवर्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि॥ ३३

तदा ब्रह्मा देवगणैर्नत्वा नत्वा पुनः पुनः।
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं समुवाच ह॥ ३४

श्रीब्रह्मोवाच

अहं कुत्र भविष्यामि कुत्र त्वं च भविष्यसि।
एते कुत्र भविष्यन्ति कैर्गृहैः कैश्च नामभिः॥ ३५

श्रीभगवानुवाच

वसुदेवस्य देवक्यां भविष्यामि परः स्वयम्।
रोहिण्यां मत्कला शेषो भविष्यति न संशयः॥ ३६

श्रीः साक्षाद् रुक्मिणी भैष्मी शिवा जाम्बवती तथा।
सत्या च तुलसी भूमौ सत्यभामा वसुन्धरा॥ ३७

दक्षिणा लक्ष्मणा चैव कालिन्दी विरजा तथा।
भद्रा ह्रीर्मित्रविन्दा च जाह्नवी पापनाशिनी॥ ३८

रुक्मिण्यां कामदेवश्च प्रद्युम्न इति विश्रुतः।
भविष्यति न सन्देहस्तस्य त्वं च भविष्यसि॥ ३९

आपके चले जानेपर एक क्षण भी मैं यहाँ जीवन धारण नहीं कर सकूँगी। यदि आप मेरी इस प्रतिज्ञापर ध्यान नहीं दे रहे हैं तो मैं दुबारा भी कह रही हूँ। अब मेरे प्राण अधरतक पहुँचनेको अत्यन्त विह्वल हैं। ये इस शरीरसे वैसे ही उड़ जायँगे, जैसे कपूरके धूलिकण॥ २९-३०॥

श्रीभगवान् बोले—राधिके! तुम विषाद मत करो। मैं तुम्हारे साथ चलूँगा और पृथ्वीका भार दूर करूँगा। मेरे द्वारा तुम्हारी बात अवश्य पूर्ण होगी॥ ३१॥

श्रीराधिकाजीने कहा—[परंतु प्रभो!] जहाँ वृन्दावन नहीं है, यमुना नदी नहीं है और गोवर्धन पर्वत भी नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिलता॥ ३२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[श्रीराधिकाजीके इस प्रकार कहनेपर] भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने धामसे चौरासी कोस भूमि, गोवर्धन पर्वत एवं यमुना नदीको भूतलपर भेजा। उस समय सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माजीने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार प्रणाम करके कहा—॥ ३३-३४॥

श्रीब्रह्माजीने पूछा—भगवन्! मेरे लिये कौन स्थान होगा? आप कहाँ पधारेंगे? तथा ये सम्पूर्ण देवता कहाँ उत्पन्न होकर किन गृहोंमें रहेंगे और किन-किन नामोंसे इनकी प्रसिद्धि होगी?॥ ३५॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—मैं स्वयं वसुदेव और देवकीके यहाँ प्रकट होऊँगा। मेरे कलास्वरूप ये 'शेष' रोहिणीके गर्भसे जन्म लेंगे—इसमें संशय नहीं है। साक्षात् 'लक्ष्मी' राजा भीष्मकके घर पुत्रीरूपसे उत्पन्न होंगी। इनका नाम 'रुक्मिणी' होगा और 'पार्वती' 'जाम्बवती' के नामसे प्रकट होंगी। 'तुलसी' 'सत्या'के रूपमें अवतरित होंगी और 'पृथ्वी' 'सत्यभामा'के रूपमें प्रकट होंगी॥ ३६-३७॥

यज्ञपुरुषकी पत्नी 'दक्षिणा देवी' वहाँ 'लक्ष्मणा' नाम धारण करेंगी। यहाँ जो 'विरजा' नामकी नदी है, वही 'कालिन्दी' नामसे विख्यात होगी। भगवती 'लज्जा' का नाम 'भद्रा' होगा। समस्त पापोंका प्रशमन करनेवाली 'गङ्गा' 'मित्रविन्दा' नाम धारण करेंगी॥ ३८॥

जो इस समय 'कामदेव' हैं, वे ही रुक्मिणीके गर्भसे 'प्रद्युम्न' रूपमें उत्पन्न होंगे। प्रद्युम्नके घर तुम्हारा

नन्दो द्रोणो वसुः साक्षाद्यशोदा सा धरा स्मृता।
वृषभानुः सुचन्द्रश्च तस्य भार्या कलावती॥ ४०

भूमौ कीर्तिरिति ख्याता तस्यां राधा भविष्यति।
सदा रासं करिष्यामि गोपीभिर्व्रजमण्डले॥ ४१

अवतार होगा। [उस समय तुम्हें 'अनिरुद्ध' कहा जायगा], इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। ये 'वसु' जो 'द्रोण' के नामसे प्रसिद्ध हैं, व्रजमें 'नन्द' होंगे और स्वयं इनकी प्राणप्रिया 'धरा देवी' 'यशोदा' नाम धारण करेंगी। 'सुचन्द्र' 'वृषभानु' बनेंगे तथा इनकी सहधर्मिणी 'कलावती' धराधामपर 'कीर्ति' के नामसे प्रसिद्ध होंगी। फिर उन्हींके यहाँ इन श्रीराधिकाजीका प्राकट्य होगा। मैं व्रजमण्डलमें गोपियोंके साथ सदा रासविहार करूँगा॥ ३९—४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे आगमनोद्योगवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'भूतलपर अवतीर्ण होनेके उद्योगका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

नन्द आदिके लक्षण; गोपीयूथका परिचय; श्रुति आदिके गोपीभावकी प्राप्तिमें कारणभूत पूर्वप्राप्त वरदानोंका विवरण

श्रीभगवानुवाच

नन्दोपनन्दभवने श्रीदामा सुबलः सखा।
स्तोककृष्णोऽर्जुनोंऽशुश्च नवनन्दगृहे विधे॥ १

विशालर्षभतेजस्वीदेवप्रस्थवरूथपाः।
भविष्यन्ति सखायो मे व्रजे षड् वृषभानुषु॥ २

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मन्! 'सुबल' और 'श्रीदामा' नामके मेरे सखा नन्द तथा उपनन्दके घरपर जन्म धारण करेंगे। इसी प्रकार और भी मेरे सखा हैं, जिनके नाम 'स्तोककृष्ण', 'अर्जुन' एवं 'अंशु' आदि हैं, वे सभी नौ नन्दोंके यहाँ प्रकट होंगे। व्रजमण्डलमें जो छः वृषभानु हैं, उनके गृहमें विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरूथप नामके मेरे सखा अवतीर्ण होंगे॥ १-२॥

श्रीब्रह्मोवाच

कस्य वै नन्दपदवी कस्य वै वृषभानुता।
वद देवपते साक्षादुपनन्दस्य लक्षणम्॥ ३

श्रीब्रह्माजीने पूछा—देवेश्वर! किसे 'नन्द' कहा जाता है और किसे 'उपनन्द' तथा 'वृषभानु' के क्या लक्षण हैं?॥ ३॥

श्रीभगवानुवाच

गाः पालयन्ति घोषेषु सदा गोवृत्तयोऽनिशम्।
ते गोपाला मया प्रोक्तास्तेषां त्वं लक्षणं शृणु॥ ४

नन्दः प्रोक्तः सगोपालैर्नवलक्षगवां पतिः।
उपनन्दश्च कथितः पञ्चलक्षगवां पतिः॥ ५

वृषभानुः स उक्तो यो दशलक्षगवां पतिः।
गवां कोटिर्गृहे यस्य नन्दराजः स एव हि॥ ६

श्रीभगवान् कहते हैं—जो गोशालाओंमें सदा गौओंका पालन करते रहते हैं एवं गो-सेवा ही जिनकी जीविका है, उन्हें मैंने 'गोपाल' संज्ञा दी है। अब तुम उनके लक्षण सुनो। गोपालोंके साथ नौ लाख गायोंके स्वामीको 'नन्द' कहा जाता है। पाँच लाख गौओंका स्वामी 'उपनन्द' पदको प्राप्त करता है। 'वृषभानु' नाम उसका पड़ता है, जिसके अधिकारमें दस लाख गौएँ रहती हैं, ऐसे ही जिसके यहाँ एक करोड़ गौओंकी रक्षा होती है, वह 'नन्दराज' कहलाता है॥ ४—६॥

कोट्यर्धं च गवां यस्य वृषभानुवरस्तु सः।
एतादृशौ व्रजे द्वौ तु सुचन्द्रो द्रोण एव हि॥ ७

सर्वलक्षणलक्ष्याढ्यौ गोपराजौ भविष्यतः।
शतचन्द्राननानां च सुन्दरीणां सुवाससाम्।
गोपीनां मद्व्रजे रम्ये शतयूथो भविष्यति॥ ८

श्रीब्रह्मोवाच

हे दीनबन्धो हे देव जगत्कारणकारण।
यूथस्य लक्षणं सर्वं तन्मे ब्रूहि परेश्वर॥ ९

श्रीभगवानुवाच

अर्बुदं दशकोटीनां मुनिभिः कथितं विधे।
दशार्बुदं यत्र भवेत्सोऽपि यूथः प्रकथ्यते॥ १०

गोलोकवासिन्यः काश्चित्काश्चिद्वै द्वारपालिकाः।
शृङ्गारप्रकराः काश्चित्काश्चिच्छय्योपकारिकाः॥ ११

पार्षदाख्यास्तथा काश्चिच्छ्रीवृन्दावनपालिकाः।
गोवर्धननिवासिन्यः काश्चित्कुञ्जविधायिकाः॥ १२

मे निकुञ्जनिवासिन्यो भविष्यन्ति व्रजे मम।
एवं च यमुनायूथो जाह्नवीयूथ एव च॥ १३

रमाया मधुमाधव्या विरजायास्तथैव च।
ललिताया विशाखाया मायायूथो भविष्यति॥ १४

एवं ह्यष्टसखीनां च सखीनां किल षोडश।
द्वात्रिंशच्च सखीनां च यूथा भाव्या व्रजे विधे॥ १५

श्रुतिरूपा ऋषिरूपा मैथिलाः कौसलास्तथा।
अयोध्यापुरवासिन्यो यज्ञसीताः पुलिन्दकाः॥ १६

यासां मया वरो दत्तो पूर्वे पूर्वे युगे युगे।
तासां यूथा भविष्यन्ति गोपीनां मद्व्रजे शुभे॥ १७

श्रीब्रह्मोवाच

एताः कथं व्रजे भाव्याः केन पुण्येन कैर्वरैः।
दुर्लभं हि पदं तासां योगिभिः पुरुषोत्तम॥ १८

पचास लाख गौओंके अध्यक्षकी 'वृषभानुवर' संज्ञा है। 'सुचन्द्र' और 'द्रोण'—ये दो ही व्रजमें इस प्रकारके सम्पूर्ण लक्षणोंसे सम्पन्न गोपराज बनेंगे और मेरे दिव्य व्रजमें सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाली शतचन्द्रानना गोप-सुन्दरियोंके सौ यूथ होंगे॥ ७-८॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—भगवन्! आप दीनजनोंके बन्धु और जगत्के कारण (प्रकृति)-के भी कारण हैं। प्रभो! अब आप मेरे समक्ष यूथके सम्पूर्ण लक्षणोंका वर्णन कीजिये॥ ९॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्माजी! मुनियोंने दस कोटिको एक 'अर्बुद' कहा है। जहाँ दस अर्बुद होते हैं, उसे 'यूथ' कहा जाता है। यहाँकी गोपियोंमें कुछ गोलोकवासिनी हैं, कुछ द्वारपालिका हैं, कुछ शृङ्गार-साधनोंकी व्यवस्था करनेवाली हैं और कुछ शय्या सँवारनेमें संलग्न रहती हैं॥ १०-११॥

कई तो पार्षदकोटिमें आती हैं और कुछ गोपियाँ श्रीवृन्दावनकी देख-रेख किया करती हैं। कुछ गोपियोंका गोवर्धन गिरिपर निवास है। कई गोपियाँ कुञ्जवनको सजाती-सँवारती हैं तथा बहुतेरी गोपियाँ मेरे निकुञ्जमें रहती हैं। इन सबको मेरे व्रजमें पधारना होगा। ऐसे ही यमुना-गङ्गाके भी यूथ हैं॥ १२-१३॥

इसी प्रकार रमा, मधुमाधवी, विरजा, ललिता, विशाखा एवं मायाके यूथ होंगे। ब्रह्माजी! इसी प्रकार मेरे व्रजमें आठ, सोलह और बत्तीस सखियोंके भी यूथ होंगे॥ १४-१५॥

पूर्वके अनेक युगोंमें जो श्रुतियाँ, मुनियोंकी पत्नियाँ, जनकपुर एवं कोसलदेशकी निवासिनी सुन्दरियाँ, अयोध्याकी महिलाएँ, यज्ञमें स्थापित की हुई सीता और पुलिन्दकन्याएँ थीं तथा जिनको मैं पूर्ववर्ती युग-युगमें वर दे चुका हूँ, वे सब मेरे पुण्यमय व्रजमें गोपीरूपमें पधारेंगी और उनके भी यूथ होंगे॥ १६-१७॥

श्रीब्रह्माजीने पूछा—पुरुषोत्तम! इन स्त्रियोंने कौन-सा पुण्य-कार्य किया है तथा इन्हें कौन-कौन-से वर मिल चुके हैं, जिनके फलस्वरूप ये व्रजमें निवास करेंगी? कारण, आपका वह स्थान तो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है॥ १८॥

श्रीभगवानुवाच

श्वेतद्वीपे च भूमानं श्रुतयस्तुष्टुवुः परम्।
उशतीभिर्गिराभिश्च प्रसन्नोऽभूत्सहस्रपात्॥ १९

श्रीहरिरुवाच

वरं वृणीत यूयं वै यन्मनोवाञ्छितं महत्।
येषां प्रसन्नोऽहं साक्षात्तेषां किं दुर्लभं हि तत्॥ २०

श्रुतय ऊचुः

वाङ्मनोगोचरातीतं ततो न ज्ञायते तु तत्।
आनन्दमात्रमिति यद्वदन्तीह पुराविदः॥ २१

तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः।
श्रुत्वैतद्दर्शयामास स्वं लोकं प्रकृतेः परम्॥ २२

केवलानुभवानन्दमात्रमक्षरमव्ययम्।
यत्र वृन्दावनं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः॥ २३

मनोरमनिकुञ्जाढ्यं सर्वर्तुसुखसंयुतम्।
यत्र गोवर्धनो नाम सुनिर्झरदरीयुतः॥ २४

रत्नधातुमयः श्रीमान् सुपक्षिगणसंवृतः।
यत्र निर्मलपानीया कालिन्दी सरितां वरा।
रत्नबद्धोभयतटी हंसपद्मादिसंकुला॥ २५

नानारासरसोन्मत्तं यत्र गोपीकदम्बकम्।
तत्कदम्बकमध्यस्थः किशोराकृतिरच्युतः॥ २६

दर्शयित्वा च ताः प्राह ब्रूत किं करवाणि वः।
दृष्टो मदीयो लोकोऽयं यतो नास्ति परं वरम्॥ २७

श्रुतय ऊचुः

कन्दर्पकोटिलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः।
कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षिप्तान्यसंशयम्॥ २८

श्रीभगवान् बोले—पूर्वकालमें श्रुतियोंने श्वेतद्वीपमें जाकर वहाँ मेरे स्वरूपभूत भूमा (विराट् पुरुष या परब्रह्म)-का मधुर वाणीमें स्तवन किया। तब सहस्रपाद विराट् पुरुष प्रसन्न हो गये [और बोले—]॥ १९॥

श्रीहरिने कहा—श्रुतियो! तुम्हें जो भी पानेकी इच्छा हो, वह वर माँग लो। जिनके ऊपर मैं स्वयं प्रसन्न हो गया, उनके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है?॥ २०॥

श्रुतियाँ बोलीं—भगवन्! आप मन-वाणीसे नहीं जाने जा सकते; अतः हम आपको जाननेमें असमर्थ हैं। पुराणवेत्ता ज्ञानीपुरुष यहाँ जिसे केवल 'आनन्दमात्र' बताते हैं, अपने उसी रूपका हमें दर्शन कराइये। प्रभो! यदि आप हमें वर देना चाहते हों तो यही दीजिये॥ २१$^{1}/_{2}$॥

श्रुतियोंकी ऐसी बात सुनकर भगवान्ने उन्हें अपने दिव्य गोलोकधामका दर्शन कराया, जो प्रकृतिसे परे है। वह लोक ज्ञानानन्दस्वरूप, अविनाशी तथा निर्विकार है। वहाँ 'वृन्दावन' नामक वन है, जो कामपूरक कल्पवृक्षोंसे सुशोभित है॥ २२-२३॥

मनोहर निकुञ्जोंसे सम्पन्न वह वृन्दावन सभी ऋतुओंमें सुखदायी है। वहाँ सुन्दर झरनों और गुफाओंसे सुशोभित 'गोवर्धन' नामक गिरि है। रत्न एवं धातुओंसे भरा हुआ वह श्रीमान् पर्वत सुन्दर पक्षियोंसे आवृत है। वहाँ स्वच्छ जलवाली श्रेष्ठ नदी 'यमुना' भी लहराती है। उसके दोनों तट रत्नोंसे बँधे हैं। हंस और कमल आदिसे वह सदा व्याप्त रहती है॥ २४-२५॥

वहाँ विविध रास-रङ्गसे उन्मत्त गोपियोंका समुदाय शोभा पाता है। उसी गोपी-समुदायके मध्यभागमें किशोर वयसे सुशोभित भगवान् श्रीकृष्ण विराजते हैं। उन श्रुतियोंको इस प्रकार अपना लोक दिखाकर भगवान् बोले—'कहो, तुम्हारे लिये अब क्या करूँ? तुमने मेरा यह लोक तो देख ही लिया, इससे उत्तम दूसरा कोई वर नहीं है'॥ २६-२७॥

श्रुतियोंने कहा—प्रभो! आपके करोड़ों कामदेवोंके समान मनोहर श्रीविग्रहको देखकर हममें कामिनी-भाव आ गया है और हमें आपसे मिलनेकी उत्कट

यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामिनीत्वेन गोपिकाः।
भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाजनि नस्तथा॥ २९

श्रीहरिरुवाच

दुर्लभो दुर्घटश्चैव युष्माकं तु मनोरथः।
मयानुमोदितः सम्यक् सत्यो भवितुमर्हति॥ ३०

आगामिनि विरिञ्चौ तु जाते सृष्ट्यर्थमुद्यते।
कल्पे सारस्वतेऽतीते व्रजे गोप्यो भविष्यथ॥ ३१

पृथिव्यां भारते क्षेत्रे माथुरे मम मण्डले।
वृन्दावने भविष्यामि प्रेयान् वो रासमण्डले॥ ३२

जारधर्मेण सुस्नेहं सुदृढं सर्वतोऽधिकम्।
मयि सम्प्राप्य सर्वा हि कृतकृत्या भविष्यथ॥ ३३

श्रीभगवानुवाच

ताश्च गोप्यो भविष्यन्ति पूर्वकल्पवरान्मम।
अन्यासां चैव गोपीनां लक्षणं शृणु तद्विधे॥ ३४

सुराणां रक्षणार्थाय राक्षसानां वधाय च।
त्रेतायां रामचन्द्रोऽभूद्वीरो दशरथात्मजः॥ ३५

सीतास्वयंवरं गत्वा धनुर्भङ्गं चकार सः।
उवाह जानकीं सीतां रामो राजीवलोचनः॥ ३६

तं दृष्ट्वा मैथिलाः सर्वाः पुरन्ध्र्यो मुमुहुर्विधे।
रहस्यूचुर्महात्मानं भर्ता नो भव हे प्रभो॥ ३७

ता आह राघवेन्द्रस्तु मा शोकं कुरुत स्त्रियः।
द्वापरान्ते करिष्यामि भवतीनां मनोरथम्॥ ३८

तीर्थं दानं तपः शौचं समाचरत तत्त्वतः।
श्रद्धया परया भक्त्या व्रजे गोप्यो भविष्यथ॥ ३९

इति ताभ्यो वरं दत्वा श्रीरामः करुणानिधिः।
कोसलान् प्रययौ धन्वी तेजसा जितभार्गवः॥ ४०

इच्छा हो रही है! हम विरह-ताप-संतप्त हैं—इसमें संदेह नहीं है। अतः आपके लोकमें रहनेवाली गोपियाँ आपका सङ्ग पानेके लिये जैसे कामिनीभावसे आपकी सेवा करती हैं, हमारी भी वैसी ही अभिलाषा है॥ २८-२९॥

श्रीहरि बोले—श्रुतियो! तुमलोगोंका यह मनोरथ दुर्लभ एवं दुर्घट है; फिर भी मैं इसका भलीभाँति अनुमोदन कर चुका हूँ, अतः वह सत्य होकर रहेगा। आगे होनेवाली सृष्टिमें जब ब्रह्मा जगत्‌की रचनामें संलग्न होंगे, उस समय सारस्वत-कल्प बीतनेपर तुम सभी श्रुतियाँ व्रजमें गोपियाँ होओगी॥ ३०-३१॥

भूमण्डलपर भारतवर्षमें मेरे माथुरमण्डलके अन्तर्गत वृन्दावनमें रासमण्डलके भीतर मैं तुम्हारा प्रियतम बनूँगा। तुम्हारा मेरे प्रति सुदृढ़ प्रेम होगा, जो सब प्रेमोंसे बढ़कर है। तब तुम सब श्रुतियाँ मुझे पाकर सफल-मनोरथ होओगी॥ ३२-३३॥

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्माजी! पूर्व कल्पमें मैंने वर दे दिया है, उसीके प्रभावसे वे श्रुतियाँ व्रजमें गोपियाँ होंगी। अब अन्य गोपियोंके लक्षण सुनो॥ ३४॥

त्रेतायुगमें देवताओंकी रक्षा और राक्षसोंका संहार करनेके लिये मेरे स्वरूपभूत महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी अवतीर्ण हुए थे। कमललोचन श्रीरामने सीताके स्वयंवरमें जाकर धनुष तोड़ा और उन जनकनन्दिनी श्रीसीताजीके साथ विवाह किया॥ ३५-३६॥

ब्रह्माजी! उस अवसरपर जनकपुरकी स्त्रियाँ श्रीरामको देखकर प्रेमविह्वल हो गयीं। उन्होंने एकान्तमें उन महाभागसे अपना अभिप्राय प्रकट किया—'हे प्रभो! आप हमारे परम प्रियतम बन जायँ।' तब श्रीरामने कहा—'सुन्दरियो! तुम शोक मत करो। द्वापरके अन्तमें मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा॥ ३७-३८॥

तुमलोग परम श्रद्धा और भक्तिके साथ तीर्थ, दान, तप, शौच एवं सदाचारका भलीभाँति पालन करती रहो। तुम्हें व्रजमें गोपी होनेका सुअवसर प्राप्त होगा'॥ ३९॥

इस प्रकार वर देकर धनुर्धारी करुणानिधि श्रीरामने अयोध्याके लिये प्रस्थान कर दिया। उस समय मार्गमें अपने प्रतापसे उन्होंने भृगुकुलनन्दन परशुरामजीको

मार्गे च कौसला नार्यो रामं दृष्ट्वातिसुन्दरम्।
मनसा वव्रिरे तं वै पतिं कन्दर्पमोहनम्॥ ४१

मनसापि वरं रामो ददौ ताभ्यो ह्यशेषवित्।
मनोरथं करिष्यामि व्रजे गोप्यो भविष्यथ॥ ४२

आगतं सीतया सार्धं सैनिकैः सहितं रघुम्।
अयोध्यापुरवासिन्यः श्रुत्वा द्रष्टुं समाययुः॥ ४३

वीक्ष्य तं मोहमापन्ना मूर्च्छिताः प्रेमविह्वलाः।
तेपुस्तपस्ताः सरयूतीरे रामधृतव्रताः॥ ४४

आकाशवागभूत्तासां द्वापरान्ते मनोरथः।
भविष्यति न सन्देहः कालिन्दीतीरजे वने॥ ४५

पितुर्वाक्याद्यदा रामो दण्डकाख्यं वनं गतः।
चचार सीतया सार्धं लक्ष्मणेन धनुष्मता॥ ४६

गोपालोपासकाः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
ध्यायन्तः सततं मां वै रासार्थं ध्यानतत्पराः॥ ४७

येषामाश्रममासाद्य धनुर्बाणधरो युवा।
तेषां ध्याने गतो रामो जटामुकुटमण्डितः॥ ४८

अन्याकृतिं ते तं वीक्ष्य परं विस्मितमानसाः।
ध्यानादुत्थाय ददृशुः कोटिकन्दर्पसन्निभम्॥ ४९

ऊचुस्ते यस्तु गोपालो वंशीवेत्रे विना प्रभुः।
इत्थं विचार्य मनसा नेमुश्चक्रुः स्तुतिं पराम्॥ ५०

परास्त कर दिया था। कोसल-जनपदकी स्त्रियोंने भी राजपथसे जाते हुए उन कमनीय-कान्ति रामको देखा। उनकी सुन्दरता कामदेवको मोहित कर रही थी। उन स्त्रियोंने श्रीरामको मन-ही-मन पतिके रूपमें वरण कर लिया॥ ४०-४१॥

उस समय सर्वज्ञ श्रीरामने उन समस्त स्त्रियोंको मन-ही-मन वर दिया—तुम सभी व्रजमें गोपियाँ होओगी और उस समय मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा॥ ४२॥

फिर सीता और सैनिकोंके साथ रघुनाथजी अयोध्या पधारे। यह सुनकर अयोध्यामें रहनेवाली स्त्रियाँ उन्हें देखनेके लिये आयीं। श्रीरामको देखकर उनका मन मुग्ध हो गया। वे प्रेमसे विह्वल हो मूर्च्छित-सी हो गयीं। फिर वे श्रीरामके व्रतमें परायण होकर सरयूके तटपर तपस्या करने लगीं। तब उनके सामने आकाशवाणी हुई—द्वापरके अन्तमें यमुनाके किनारे वृन्दावनमें तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे, इसमें संदेह नहीं है॥ ४३—४५॥

जिस समय श्रीरामने पिताकी आज्ञासे दण्डकवन-की यात्रा की, सीता तथा लक्ष्मण भी उनके साथ थे और वे हाथमें धनुष लेकर इधर-उधर विचर रहे थे। वहीं बहुत-से मुनि थे। उनकी गोपाल-वेषधारी भगवान्के स्वरूपमें निष्ठा थी। रासलीलाके निमित्त वे भगवान्का ध्यान करते थे॥ ४६-४७॥

उस समय श्रीरामकी युवा अवस्था थी—वे हाथमें धनुष-बाण धारण किये हुए थे। जटाओंके मुकुटसे उनकी विचित्र शोभा थी। अपने आश्रमपर पधारे हुए श्रीराममें उन मुनियोंका ध्यान लग गया। (वे ऋषिलोग गोपाल-वेषधारी भगवान्के उपासक थे) अतः दूसरे ही स्वरूपमें आये हुए श्रीरामको देखकर सबके मनमें अत्यन्त आश्चर्य हो गया। उनकी समाधि टूट गयी और देखा तो करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर श्रीराम दृष्टिगोचर हुए॥ ४८-४९॥

तब वे बोल उठे—'अहो! आज हमारे गोपालजी वंशी एवं बेंतके बिना ही पधारे हैं।'—इस प्रकार मन-ही-मन विचारकर सबने श्रीरामको प्रणाम किया और उनकी उत्तम स्तुति करने लगे॥ ५०॥

वरं वृणीत मुनयः श्रीरामस्तानुवाच ह।
यथा सीता तथा सर्वे भूयाः स्म इति वादिनः॥ ५१

श्रीराम उवाच

यथा हि लक्ष्मणो भ्राता तथा प्रार्थ्यो वरो यदि।
अद्यैव सफलो भाव्यो भवद्भिर्मत्प्रसङ्गतः॥ ५२

सीतोपमेयवाक्येन दुर्घटो दुर्लभो वरः।
एकपत्नीव्रतोऽहं वै मर्यादापुरुषोत्तमः॥ ५३

तस्मात्तु मद्वरेणापि द्वापरान्ते भविष्यथ।
मनोरथं करिष्यामि भवतां वाञ्छितं परम्॥ ५४

इति दत्वा वरं रामस्ततः पञ्चवटीं गतः।
पर्णशालं समासाद्य वनवासं चकार ह॥ ५५

तद्दर्शनस्मररुजः पुलिन्द्यः प्रेमविह्वलाः।
श्रीमत्पादरजो धृत्वा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यताः॥ ५६

ब्रह्मचारीवपुर्भूत्वा रामस्तत्र समागतः।
उवाच प्राणसन्त्यागं मा कुरुत स्त्रियो वृथा॥ ५७

वृन्दावने द्वापरान्ते भविता वो मनोरथः।
इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी तु तत्रैवान्तरधीयत॥ ५८

अथ रामो वानरेन्द्रै रावणादीन्निशाचरान्।
जित्वा लङ्कामेत्य सीतां पुष्पकेण पुरीं ययौ॥ ५९

सीतां तत्याज राजेन्द्रो वने लोकापवादतः।
अहोऽसतामपि भुवि भवनं भूरिदुःखदम्॥ ६०

यदा यदाकरोद्यज्ञं रामो राजीवलोचनः।
तदा तदा स्वर्णमयीं सीतां कृत्वा विधानतः॥ ६१

यज्ञसीतासमूहोऽभून्मन्दिरे राघवस्य च।
ताश्चैतन्यघना भूत्वा रन्तुं रामं समागताः॥ ६२

तब श्रीरामने कहा—'मुनियो! वर माँगो।' यह सुनकर सभीने एक स्वरसे कहा—'जिस भाँति सीता आपके प्रेमको प्राप्त हैं, वैसे ही हम भी चाहते हैं'॥ ५१॥

श्रीराम बोले—यदि तुम्हारी ऐसी प्रार्थना हो कि जैसे भाई लक्ष्मण हैं, वैसे ही हम भी आपके भाई बन जायँ, तब तो आज ही मेरेद्वारा तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है; किंतु तुमने तो 'सीता' के समान होनेका वर माँगा है। अतः यह वर महान् कठिन और दुर्लभ है; क्योंकि इस समय मैंने एकपत्नी-व्रत धारण कर रखा है। मैं मर्यादाकी रक्षामें तत्पर रहकर 'मर्यादापुरुषोत्तम' भी कहलाता हूँ। अतएव तुम्हें मेरे वरका आदर करके द्वापरके अन्तमें जन्म धारण करना होगा और वहीं मैं तुम्हारे इस उत्तम मनोरथको पूर्ण करूँगा॥ ५२—५४॥

इस प्रकार वर देकर श्रीराम स्वयं पञ्चवटी पधारे। वहाँ पर्णकुटीमें रहकर वनवासकी अवधि पूरी करने लगे। उस समय भीलोंकी स्त्रियोंने उन्हें देखा। उनमें मिलनेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न होनेके कारण वे प्रेमसे विह्वल हो गयीं। यहाँतक कि श्रीरामके चरणोंकी धूल मस्तकपर रखकर अपने प्राण छोड़नेकी तैयारी करने लगीं॥ ५५-५६॥

उस समय श्रीराम ब्रह्मचारीके वेषमें वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'स्त्रियो! तुम व्यर्थ ही प्राण त्यागना चाहती हो; ऐसा मत करो। द्वापरके शेष होनेपर वृन्दावनमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' इस प्रकारका आदेश देकर श्रीरामका वह ब्रह्मचारीरूप वहीं अन्तर्हित हो गया॥ ५७-५८॥

तत्पश्चात् श्रीरामने सुग्रीव आदि प्रधान वानरोंकी सहायतासे लङ्कामें जाकर रावण-प्रभृति राक्षसोंको परास्त किया। फिर सीताको पाकर पुष्पक विमानद्वारा अयोध्या चले गये। राजाधिराज श्रीरामने लोकापवादके कारण सीताको वनमें छोड़ दिया। अहो! भूमण्डलपर दुर्जनोंका होना बहुत ही दुःखदायी है॥ ५९-६०॥

जब-जब कमललोचन श्रीराम यज्ञ करते थे, तब-तब विधिपूर्वक सुवर्णमयी सीताकी प्रतिमा बनायी जाती थी। इसलिये श्रीरामके भवनमें यज्ञ-सीताओंका

ता आह रघुवंशेन्द्रो नाहं गृह्णामि हे प्रियाः।
तदोचुस्ताः प्रेमपरा रामं दशरथात्मजम्॥ ६३

कथं चास्मान्न गृह्णासि भजन्तीर्मैथिलीः सतीः।
अर्धाङ्गीर्यज्ञकालेषु सततं कार्यसाधिनीः॥ ६४

धर्मिष्ठस्त्वं श्रुतिधरोऽधर्मवद्भाषसे कथम्।
करं गृहीत्वा त्यजसि ततः पापमवाप्स्यसि॥ ६५

श्रीराम उवाच

समीचीनं वचः सत्यो युष्माभिर्गदितं च मे।
एकपत्नीव्रतोऽहं हि राजर्षिः सीतयैकया॥ ६६

तस्माद्यूयं द्वापरान्ते पुण्ये वृन्दावने वने।
भविष्यथ करिष्यामि युष्माकं तु मनोरथम्॥ ६७

श्रीभगवानुवाच

ता व्रजेऽपि भविष्यन्ति यज्ञसीताश्च गोपिकाः।
अन्यासां चैव गोपीनां लक्षणं शृणु तद्विधे॥ ६८

एक समूह ही एकत्र हो गया। वे सभी दिव्य चैतन्य-घनस्वरूपा होकर श्रीरामके पास गयीं॥ ६१-६२॥

उस समय श्रीरामने उनसे कहा—'प्रियाओ! मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता।' वे सभी प्रेमपरायणा सीता-मूर्तियाँ दशरथनन्दन श्रीरामसे कहने लगीं—'ऐसा क्यों? हम तो आपकी सेवा करनेवाली हैं। हमारा नाम भी मिथिलेशकुमारी सीता है और हम उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली सतियाँ भी हैं; फिर हमें आप ग्रहण क्यों नहीं करते? यज्ञ करते समय हम आपकी अर्धाङ्गिनी बनकर निरन्तर कार्योंका संचालन करती रही हैं॥ ६३-६४॥

आप धर्मात्मा और वेदके मार्गका अवलम्बन करनेवाले हैं, यह अधर्मपूर्ण बात आपके श्रीमुखसे कैसे निकल रही है? यदि आप स्त्रीका हाथ पकड़कर उसे त्यागते हैं तो आपको पापका भागी होना पड़ेगा'॥ ६५॥

श्रीराम बोले—सतियो! तुमने मुझसे जो बात कही है, वह बहुत ही उचित और सत्य है। परंतु मैंने 'एकपत्नीव्रत' धारण कर रखा है? सभी लोग मुझे 'राजर्षि' कहते हैं। अतः नियमको छोड़ भी नहीं सकता। एकमात्र सीता ही मेरी सहधर्मिणी हैं। इसलिये तुम सभी द्वापरके अन्तमें श्रेष्ठ वन वृन्दावनमें पधारना, वहीं तुम्हारी मनःकामना पूर्ण करूँगा॥ ६६-६७॥

भगवान् श्रीहरिने कहा—ब्रह्मन्! वे यज्ञ-सीता ही व्रजमें गोपियाँ होंगी। अन्य गोपियोंका भी लक्षण सुनो॥ ६८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे भगवद्ब्रह्मसंवादे उद्योगप्रश्नवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत भगवद्ब्रह्म-संवादमें 'अवतारके उद्योगविषयक प्रश्नका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न स्थानों तथा विभिन्न वर्गोंकी स्त्रियोंके गोपी होनेका कारण एवं अवतार-व्यवस्थाका वर्णन

श्रीभगवानुवाच

रमावैकुण्ठवासिन्यः श्वेतद्वीपसखीजनाः।
ऊर्ध्वं वैकुण्ठवासिन्यस्तथाजितपदाश्रिताः॥ १

भगवान् श्रीहरि कहते हैं—वैकुण्ठमें विराजनेवाली रमादेवीकी सहचरियाँ, श्वेतद्वीपकी सखियाँ, भगवान् अजित (विष्णु)-के चरणोंके आश्रित ऊर्ध्व-

श्रीलोकाचलवासिन्यः श्रीसख्योऽपि समुद्रजाः।
ता गोप्योऽपि भविष्यन्ति लक्ष्मीपतिवराद् व्रजे॥ २

काश्चिद्दिव्या अदिव्याश्च तथा त्रिगुणवृत्तयः।
भूमिगोप्यो भविष्यन्ति पुण्यैर्नानाविधैः कृतैः॥ ३

यज्ञावतारं रुचिरं रुचिपुत्रं दिवस्पतिम्।
मोहिताः प्रीतिभावेन वीक्ष्य देवजनस्त्रियः॥ ४

ताश्च देवलवाक्येन तपस्तेपुर्हिमाचले।
भक्त्या परमया ता मे गोप्यो भाव्या व्रजे विधे॥ ५

अन्तर्हिते भगवति देवे धन्वन्तरौ भुवि।
ओषध्यो दुःखमापन्ना निष्फला भारतेऽभवन्॥ ६

सिद्ध्यर्थं तास्तपस्तेपुः स्त्रियो भूत्वा मनोहराः।
चतुर्युगे व्यतीते तु प्रसन्नोऽभूद्धरिः परम्॥ ७

वरं वृणीत चेत्युक्तं श्रुत्वा नार्यो महावने।
तं दृष्ट्वा मोहमापन्ना ऊचुर्भर्ता भवात्र नः॥ ८

श्रीहरिरुवाच

वृन्दावने द्वापरान्ते लता भूत्वा मनोहराः।
भविष्यथ स्त्रियो रासे करिष्यामि वचश्च वः॥ ९

श्रीभगवानुवाच

भक्तिभावसमायुक्ता भूरिभाग्या वराङ्गनाः।
लतागोप्यो भविष्यन्ति वृन्दारण्ये पितामह॥ १०

जालन्धर्यश्च या नार्यो वीक्ष्य वृन्दापतिं हरिम्।
ऊचुर्वाऽयं हरिः साक्षादस्माकं तु वरो भवेत्॥ ११

आकाशवागभूत्तासां भजताशु रमापतिम्।
यथा वृन्दा तथा यूयं वृन्दारण्ये भविष्यथ॥ १२

वैकुण्ठमें निवास करनेवाली देवियाँ तथा श्रीलोकाचलपर्वतपर रहनेवाली, समुद्रसे प्रकटित श्रीलक्ष्मीकी सखियाँ—ये सभी भगवान् कमलापतिके वरदानसे व्रजमें गोपियाँ होंगी। पूर्वकृत विविध पुण्योंके प्रभावसे कोई दिव्य, कोई अदिव्य और कोई सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंसे युक्त देवियाँ व्रजमण्डलमें गोपियाँ होंगी॥ १—३॥

रुचिके यहाँ पुत्ररूपसे अवतीर्ण, द्युलोकपति रुचिरविग्रह भगवान् यज्ञको देखकर देवाङ्गनाएँ प्रेम-रसमें निमग्न हो गयीं। तदनन्तर वे देवलजीके उपदेशसे हिमालय पर्वतपर जाकर परम भक्तिभावसे तपस्या करने लगीं। ब्रह्मन्! वे सब मेरे व्रजमें जाकर गोपियाँ होंगी॥ ४-५॥

भगवान् धन्वन्तरि जब इस भूतलपर अन्तर्धान हुए, उस समय सम्पूर्ण ओषधियाँ अत्यन्त दुःखमें डूब गयीं और भारतवर्षमें अपनेको निष्फल मानने लगीं। फिर सबने सुन्दर स्त्रीका वेष धारण करके तपस्या आरम्भ की। चार युग व्यतीत होनेपर भगवान् श्रीहरि उनपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—'तुम सब वर माँगो।' यह सुनकर स्त्रियोंने उस महान् वनमें जब आँखें खोलीं, तब उन श्रीहरिका दर्शन करके वे सब-की-सब मोहित हो गयीं और बोलीं—'आप हमारे पतितुल्य आराध्यदेव होनेकी कृपा करें'॥ ६—८॥

भगवान् श्रीहरि बोले—[ओषधिस्वरूपा स्त्रियो!] द्वापरके अन्तमें तुम सभी मनोहारिणी लता-रूपसे वृन्दावनमें रहोगी और वहाँ रासमें मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा॥ ९॥

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! भक्तिभावसे परिपूर्ण वे बड़भागिनी वराङ्गनाएँ वृन्दावनमें 'लता-गोपी' होंगी। इसी प्रकार जालंधर नगरकी जो स्त्रियाँ वृन्दापति भगवान् श्रीहरिका दर्शन करके मन-ही-मन संकल्प करने लगीं—'ये साक्षात् श्रीहरि हम सबके स्वामी हों।' उस समय उनके लिये आकाशवाणी हुई—'तुम सब शीघ्र ही रमापतिकी आराधना करो; फिर वृन्दाकी ही भाँति तुम भी वृन्दावनमें भगवान्की

समुद्रकन्याः श्रीमत्स्यं हरिं दृष्ट्वा च मोहिताः।
ता हि गोप्यो भविष्यन्ति श्रीमत्स्यस्य वराद् व्रजे॥ १३

आसीद्राजा पृथुः साक्षान्ममांशश्चण्डविक्रमः।
जित्वा शत्रून्नृपश्रेष्ठो धरां कामान् दुदोह ह॥ १४

बर्हिष्मतीभवास्तत्र पृथुं दृष्ट्वा पुरस्त्रियः।
अत्रेः समीपमागत्य ता ऊचुर्मोहविह्वलाः॥ १५

अयं तु राजराजेन्द्रः पृथुः पृथुलविक्रमः।
कथं वरो भवेन्नो वै तद्वद त्वं महामुने॥ १६

अत्रिरुवाच

गोदोहं कुरुताश्वद्य पृथ्वीयं धारणामयी।
सर्वं दास्यति वो दुर्गं मनोरथमहार्णवम्॥ १७

मनोरथं प्रदुदुहुर्मनःपात्रेण ताश्च गाम्।
तस्माद्गोप्यो भविष्यन्ति वृन्दारण्ये पितामह॥ १८

कामसेना मोहनार्थं दिव्या अप्सरसो वराः।
नारायणस्य सहसा बभूवुर्गन्धमादने॥ १९

भर्तृकामाश्च ता आह सिद्धो नारायणो मुनिः।
मनोरथो वो भविता व्रजे गोप्यो भविष्यथ॥ २०

स्त्रियः सुतलवासिन्यो वामनं वीक्ष्य मोहिताः।
तपस्तप्ता भविष्यंन्ति गोप्यो वृन्दावने विधे॥ २१

नागेन्द्रकन्या याः शेषं भेजुर्भक्त्या वरेच्छया।
सङ्कर्षणस्य रासार्थं भविष्यन्ति व्रजे च ताः॥ २२

प्रिया गोपी होओगी।' मत्स्यावतारके समय मत्स्यविग्रह श्रीहरिको देखकर समुद्रकी कन्याएँ मुग्ध हो गयी थीं। श्रीमत्स्यभगवान्‌के वरदानसे वे भी व्रजमें गोपियाँ होंगी॥ १०—१३॥

मेरे अंशभूत राजा पृथु बड़े प्रतापी थे। उन महाराजने सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीसे सारी अभीष्ट वस्तुओंका दोहन किया था। उस समय बर्हिष्मती नगरीमें रहनेवाली बहुत-सी स्त्रियाँ उन्हें देखकर मुग्ध हो गयीं और प्रेमसे विह्वल हो अत्रिजीके पास जाकर बोलीं—'महामुने! समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ महाराजा पृथु बड़े ही पराक्रमी हैं। ये किस प्रकारसे हमारे पति होंगे? यह बतानेकी कृपा कीजिये'॥ १४—१६॥

अत्रिजीने कहा—तुम सब शीघ्र ही आज इस गौको दुहो। यह सम्पूर्ण पदार्थोंको धारण करनेवाली धारणामयी धरणी देवी है। तुम्हारे सारे मनोरथोंको—चाहे वे समुद्रके समान अगाध, अपार एवं दुर्गम ही क्यों न हों—अवश्य पूर्ण कर देगी॥ १७॥

ब्रह्मन्! तब उन स्त्रियोंने मनको दोहन-पात्र बनाकर उस गायसे अपने मनोरथोंका दोहन किया। इसी कारणसे वे सब-की-सब वृन्दावनमें गोपियाँ होंगी। बहुत-सी श्रेष्ठ अप्सराएँ, जिनका रूप अत्यन्त मनोहर था और जो कामदेवकी सेनाएँ थीं, भगवान् नारायण ऋषिको मोहित करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर गयीं। परंतु उन्हें देखकर वे भी अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उनके मनमें भगवान्‌को पति बनानेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी। तब सिद्धतपस्वी नारायण मुनिने कहा—'तुम व्रजमें गोपियाँ होओगी और वहीं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा'॥ १८—२०॥

ब्रह्मन्! सुतल देशकी स्त्रियाँ भगवान् वामनको देखकर उन्हें पानेके लिये उत्कट इच्छा प्रकट करने लगीं। फिर तो उन्होंने तपस्या आरम्भ कर दी। अतः वे भी वृन्दावनमें गोपियाँ होंगी। जिन नागराज-कन्याओंने शेषावतार भगवान्‌को देखकर उन्हें पति बनानेकी इच्छासे उनकी सेवा-समाराधना की है, वे सब बलदेवजीके साथ रासविहार करनेके लिये व्रजमें उत्पन्न होंगी॥ २१-२२॥

कश्यपो वसुदेवश्च देवकी चादितिः परा।
शूरः प्राणो ध्रुवः सोऽपि देवकोऽवतरिष्यति॥ २३

वसुश्चैवोद्धवः साक्षाद्दक्षोऽक्रूरो दयापरः।
हृदीको धनदश्चैव कृतवर्मा त्वपाम्पतिः॥ २४

कश्यपजी वसुदेव होंगे। परम पूजनीया अदिति देवकीके रूपमें अवतार लेंगी। प्राण नामक वसु शूरसेन और 'ध्रुव' नामक वसु देवक होंगे। 'वसु' नामके जो वसु हैं, उनका उद्धवके रूपमें प्राकट्य होगा। दयापरायण दक्ष प्रजापति अक्रूरके रूपमें अवतार लेंगे। कुबेर हृदीक नामसे और जलके स्वामी वरुण कृतवर्मा नामसे प्रसिद्ध होंगे॥ २३-२४॥

गदः प्राचीनबर्हिश्च मरुतो ह्युग्रसेन उत्।
तस्य रक्षां करिष्यामि राज्यं दत्वा विधानतः॥ २५

युयुधानश्चाम्बरीषः प्रह्लादः सात्यकिस्तथा।
क्षीराब्धिः शन्तनुः साक्षाद्भीष्मो द्रोणो वसूत्तमः॥ २६

पुरातन राजा प्राचीनबर्हि गद एवं मरुत देवता उग्रसेन बनेंगे। उन उग्रसेनको मैं विधानतः राजा बनाऊँगा और उनकी भलीभाँति रक्षा करूँगा। भक्त राजा अम्बरीष युयुधान और भक्तप्रवर प्रह्लाद सात्यकिके नामसे प्रकट होंगे। क्षीरसागर शंतनु होगा। वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण साक्षात् भीष्मपितामहके रूपमें उत्पन्न होंगे॥ २५-२६॥

शलश्चैव दिवोदासो धृतराष्ट्रो भगो रविः।
पाण्डुः पूषा सतां श्रेष्ठो धर्मो राजा युधिष्ठिरः॥ २७

भीमो वायुर्बलिष्ठश्च मनुः स्वायम्भुवोऽर्जुनः।
शतरूपा सुभद्रा च सविता कर्ण एव हि॥ २८

दिवोदास शलके रूपमें एवं भग नामके सूर्य धृतराष्ट्रके रूपमें अवतीर्ण होंगे। पूषा नामसे विख्यात देवता पाण्डु होंगे। सत्पुरुषोंमें आदर पानेवाले धर्मराज ही राजा युधिष्ठिरके रूपमें अवतार लेंगे॥ २७-२८॥ वायु देवता महान् पराक्रमी भीमसेनके तथा स्वायम्भुव मनु अर्जुनके वेषमें प्रकट होंगे। शतरूपाजी सुभद्रा होंगी और सूर्यनारायण कर्णके रूपसे अवतार लेंगे। दोनों अश्विनीकुमार नकुल एवं सहदेव होंगे। धाता महान् बलशाली बाह्लीक नामसे विख्यात होंगे। अग्निदेवता महान् प्रतापी द्रोणाचार्यके रूपमें अवतार लेंगे। कलिका अंश दुर्योधन होगा। चन्द्रमा अभिमन्युके रूपमें अवतार लेंगे। पृथ्वीपर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा साक्षात् भगवान् शंकरका रूप होगा॥ २९-३०॥

नकुलः सहदेवश्च स्मृतौ द्वावश्विनीसुतौ।
धाता बाह्लीकवीरश्च वह्निर्द्रोणः प्रतापवान्॥ २९

दुर्योधनः कलेरंशोऽभिमन्युः सोम एव च।
द्रौणिः साक्षाच्छिवस्यापि रूपं भूमौ भविष्यति॥ ३०

इत्थं यदोः कौरवाणामन्येषां भूभुजां नृणाम्।
कुले कुले च भवत स्वांशैः स्त्रीभिर्मदाज्ञया॥ ३१

ये येऽवतारा मे पूर्वं तेषां राज्ञ्यो रमांशकाः।
भविष्या राजराज्ञीषु सहस्राणि च षोडश॥ ३२

इस प्रकार तुम सब देवता मेरी आज्ञाके अनुसार अपने अंशों और स्त्रियोंके साथ यदुवंशी, कुरुवंशी तथा अन्यान्य वंशोंके राजाओंके कुलमें प्रकट होओ। पूर्व समयमें मेरे जितने अवतार हो चुके हैं, उनकी रानियाँ रमाका अंश रही हैं। वे भी मेरी रानियोंमें सोलह हजारकी संख्यामें प्रकट होंगी॥ ३१-३२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र ब्रह्माणं कमलासनम्।
दिव्यरूपां भगवतीं योगमायामुवाच ह॥ ३३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! कमलासन ब्रह्मासे यों कहकर भगवान् श्रीहरिने दिव्यरूपधारिणी भगवती योगमायासे कहा—॥ ३३॥

श्रीभगवानुवाच

देवक्याः सप्तमं गर्भं सन्निकृष्य महामते।
वसुदेवस्य भार्यायां कंसत्रासभयात्पुनः॥ ३४

नन्दव्रजे स्थितायां च रोहिण्यां सन्निवेशय।
नन्दपत्न्यां भव त्वं वै कृत्वेदं कर्म चाद्भुतम्॥ ३५

भगवान् श्रीहरि बोले—महामते! तुम देवकीके सातवें गर्भको खींचकर उसे वसुदेवकी पत्नी रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दो। वे देवी कंसके डरसे व्रजमें नन्दके घर रहती हैं। साथ ही तुम भी ऐसे अलौकिक कार्य करके नन्दरानीके गर्भसे प्रकट हो जाना॥३४-३५॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा ब्रह्मा देवगणैर्नत्वा कृष्णं परात्परम्।
भूमिमाश्वास्य वाणीभिः स्वधाम च समाययौ॥ ३६

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं विद्धि मैथिल।
कंसादीनां वधार्थाय प्राप्तोऽयं भूमिमण्डले॥ ३७

श्रीनारदजी कहते हैं—परमश्रेष्ठ राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके वचन सुनकर सम्पूर्ण देवताओं-के साथ ब्रह्माजीने परात्पर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और अपने वचनोंद्वारा पृथ्वीदेवीको धीरज दे, वे अपने धामको चले गये। मिथिलेश्वर जनक! तुम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको साक्षात् परिपूर्णतम-परमात्मा समझो। कंस आदि दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ही ये इस धराधामपर पधारे हैं॥ ३६-३७॥

रोममात्रं तनौ जिह्वा भवन्त्वित्थं यदा नृप।
तदापि श्रीहरेस्तस्य वर्ण्यते न गुणो महान्॥ ३८

नभः पतन्ति विहगा यथा ह्यात्मसमं नृप।
तथा कृष्णगतिं दिव्यां वदन्तीह विपश्चितः॥ ३९

शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतनी जिह्वाएँ हो जायँ, तब भी भगवान् श्रीकृष्णके असंख्य महान् गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। महाराज! जिस प्रकार पक्षीगण अपनी शक्तिके अनुसार ही आकाशमें उड़ते हैं, वैसे ही ज्ञानीजन भी अपनी मति एवं शक्तिके अनुसार ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी दिव्य लीलाओंका गायन करते हैं॥ ३८-३९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे अवतारव्यवस्थावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अवतार-व्यवस्थाका वर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

कालनेमिके अंशसे उत्पन्न कंसके महान् बल-पराक्रम और दिग्विजयका वर्णन

श्रीबहुलाश्व उवाच

कंसः कोऽयं पुरा दैत्यो महाबलपराक्रमः।
तस्य जन्मानि कर्माणि ब्रूहि देवर्षिसत्तम॥ १

राजा बहुलाश्वने कहा—देवर्षिशिरोमणे! यह महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न कंस पहले किस दैत्यके नामसे विख्यात था? आप इसके पूर्वजन्मों और कर्मोंका विवरण मुझे सुनाइये॥ १॥

श्रीनारद उवाच

समुद्रमथने पूर्वं कालनेमिर्महासुरः।
युयुधे विष्णुना सार्धं युद्धे तेन हतो बलात्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पूर्वकालमें समुद्र-मन्थनके अवसरपर महान् असुर कालनेमिने भगवान् विष्णुके साथ युद्ध किया। उस युद्धमें भगवान्ने उसे बलपूर्वक मार डाला। उस समय

शुक्रेण जीवितस्तत्र सञ्जीविन्या च विद्यया।
पुनर्विष्णुं योद्धुकाम उद्योगं मनसाकरोत्॥ ३

तपस्तेपे तदा दैत्यो मन्दराचलसन्निधौ।
नित्यं दूर्वारसं पीत्वा भजन् देवं पितामहम्॥ ४

दिव्येषु शतवर्षेषु व्यतीतेषु पितामहः।
अस्थिशेषं सवल्मीकं वरं ब्रूहीत्युवाच तम्॥ ५

कालनेमिरुवाच

ब्रह्माण्डे ये स्थिता देवा विष्णुमूला महाबलाः।
तेषां हस्तैर्न मे मृत्युः पूर्णानामपि मा भवेत्॥ ६

ब्रह्मोवाच

दुर्लभोऽयं वरो दैत्य यस्त्वया प्रार्थितः परः।
कालान्तरे ते प्राप्तः स्यान्मद्वाक्यं न मृषा भवेत्॥ ७

श्रीनारद उवाच

कौमारेऽपि महामल्लैः सततं स युयोध ह।
उग्रसेनस्य पत्न्यां कौ जन्म लेभेऽसुरः पुनः॥ ८

जरासन्धो मागधेन्द्रो दिग्जयाय विनिर्गतः।
यमुनानिकटे तस्य शिबिरोऽभूदितस्ततः॥ ९

द्विपः कुवलयापीडः सहस्रद्विपसत्त्वभृत्।
बभञ्ज शृङ्खलासङ्घं दुद्राव शिबिरान्मदी॥ १०

निपातयत्स शिबिरान् गृहांश्च भूभृतस्तटान्।
रङ्गभूम्यामाजगाम यत्र कंसोऽप्ययुध्यत॥ ११

पलायितेषु मल्लेषु कंसस्तं तु समागतम्।
शुण्डादण्डे सङ्गृहीत्वा पातयामास भूतले॥ १२

पुनर्गृहीत्वा हस्ताभ्यां भ्रामयित्वोग्रसेनजः।
जरासन्धस्य सेनायां चिक्षेप शतयोजनम्॥ १३

शुक्राचार्यजीने अपनी संजीवनी-विद्याके बलसे उसे पुनः जीवित कर दिया। तब वह पुनः भगवान् विष्णुसे युद्ध करनेके लिये मन-ही-मन उद्योग करने लगा॥ २-३॥

उस समय वह दानव मन्दराचल पर्वतके समीप तपस्या करने लगा। प्रतिदिन दूबका रस पीकर उसने देवेश्वर ब्रह्माकी आराधना की। देवताओंके कालमानसे सौ वर्ष बीत जानेपर ब्रह्माजी उसके पास गये। उस समय कालनेमिके शरीरमें केवल हड्डियाँ रह गयी थीं और उसपर दीमकें चढ़ गयी थीं। ब्रह्माजीने उससे कहा—'वर माँगो'॥ ४-५॥

कालनेमिने कहा—इस ब्रह्माण्डमें जो-जो महाबली देवता स्थित हैं, उन सबके मूल भगवान् विष्णु हैं। उन सम्पूर्ण देवताओंके हाथसे भी मेरी मृत्यु न हो॥ ६॥

ब्रह्माजीने कहा—दैत्य! तुमने जो यह उत्कृष्ट वर माँगा है, वह तो अत्यन्त दुर्लभ है; तथापि किसी दूसरे समय तुम्हें यह प्राप्त हो सकता है। मेरी वाणी कभी झूठी नहीं हो सकती॥ ७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! फिर वही कालनेमि नामक असुर पृथ्वीपर उग्रसेनकी स्त्री (पद्मावती)-के गर्भसे उत्पन्न हुआ। कुमारावस्थामें ही वह बड़े-बड़े पहलवानोंके साथ कुश्ती लड़ा करता था। [एक समयकी बात है—] मगधराज जरासंध दिग्विजयके लिये निकला। यमुना नदीके निकट इधर-उधर उसकी छावनी पड़ गयी॥ ८-९॥

उसके पास 'कुवलयापीड' नामका एक हाथी था, जिसमें हजार हाथियोंके समान शक्ति थी। उसके गण्डस्थलसे मद चू रहा था। एक दिन उसने बहुत-सी साँकलोंको तोड़ डाला और शिविरसे बाहरकी ओर दौड़ चला। शिविरों, गृहों और पर्वतीय तटोंको तोड़ता-फोड़ता हुआ वह उस रङ्गभूमि (अखाड़े)-में जा धमका, जहाँ कंस भी कुश्ती लड़ रहा था। उसके आनेपर सभी शूरवीर भाग चले। उसे आया देख कंसने उस हाथीकी सूँड़ पकड़ी और पृथ्वीपर गिरा दिया॥ १०—१२॥

इसके बाद उग्रसेनपुत्र कंसने कुवलयापीडको पुनः दोनों हाथोंसे पकड़कर घुमाया और जरासंधकी सेनामें,

तदद्भुतं बलं दृष्ट्वा प्रसन्नो मगधेश्वरः।
अस्तिप्राप्ती ददौ कन्ये तस्मै कंसाय शंसिते॥ १४

अश्वार्बुदं हस्तिलक्षं रथानां च त्रिलक्षकम्।
अयुतं चैव दासीनां पारिबर्हं जरासुतः॥ १५

द्वन्द्वयोधी ततः कंसो भुजवीर्यमदोद्धतः।
माहिष्मतीं ययौ वीरोऽथैकाकी चण्डविक्रमः॥ १६

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशलकस्तथा।
माहिष्मतीपतेः पुत्रा मल्ला युद्धजयैषिणः॥ १७

कंसस्तानाह साम्नापि दीयध्वं रङ्गमेव मे।
अहं दासो भवेयं वो भवन्तो जयिनो यदि॥ १८

अहं जयी चेद्भवतो दासान् सर्वान् करोम्यहम्।
सर्वेषां पश्यतां तेषां नागराणां महात्मनाम्॥ १९

इति प्रतिज्ञां कृत्वाथ युयुधे तैर्जयैषिभिः।
यदागतं स चाणूरं गृहीत्वा यादवेश्वरः॥ २०

भूपृष्ठे पोथयामास शब्दमुच्चैः समुच्चरन्।
तदायान्तं मुष्टिकाख्यं मुष्टिभिर्युधि निर्गतम्॥ २१

एकेन मुष्टिना तं वै पातयामास भूतले।
कूटं समागतं कंसो गृहीत्वा पादयोश्च तम्॥ २२

भुजमास्फोट्य धावन्तं शलं नीत्वा भुजेन सः।
पातयित्वा पुनर्नीत्वा भूमिं तं विचकर्ष ह॥ २३

अथ तोशलकं कंसो गृहीत्वा भुजयोर्बलात्।
निपात्य भूमावुत्थाप्य चिक्षेप दशयोजनम्॥ २४

दासभावे च तान् कृत्वा तैः सार्धं यादवेश्वरः।
मद्वाक्येन ययावाशु प्रवर्षणगिरिं वरम्॥ २५

जो वहाँसे सौ योजन दूर थी, फेंक दिया। मगधनरेश जरासंध कंसके इस अद्‌भुत बलको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने 'अस्ति' तथा 'प्राप्ति' नामकी अपनी दो परमश्रेष्ठ कन्याओंका विवाह उसके साथ कर दिया। उस जरापुत्रने एक अरब घोड़े, एक लाख हाथी, तीन लाख रथ और दस हजार दासियाँ कंसको दहेजमें दीं॥ १३—१५॥

कंस द्वन्द्वयुद्धका प्रेमी था। अपने बाहुबलके मदसे अकेला ही द्वन्द्वयुद्धके लिये उन्मत्त रहता था। वह प्रचण्डपराक्रमी वीर माहिष्मतीपुरीमें गया। माहिष्मती-नरेशके पाँच पुत्र प्रख्यात मल्ल थे और मल्लयुद्धमें विजय पानेका हौसला रखते थे। उनके नाम थे—चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल॥ १६-१७॥

कंसने सामनीतिका आश्रय ले प्रेमपूर्वक उनसे कहा—'तुमलोग मेरे साथ मल्लयुद्ध करो। यदि तुम्हारी विजय हो जायगी तो मैं तुम्हारा सेवक होकर रहूँगा; और कदाचित् मेरी विजय हो गयी तो तुम सबको भी मैं अपना सेवक बना लूँगा।' वहाँ जितने भी नागरिक महान् पुरुष थे, उन सबके सामने कंसने इस प्रकारकी प्रतिज्ञा की और विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले उन वीरोंके साथ मल्लयुद्ध आरम्भ कर दिया॥ १८—१९$^{1}/_{2}$॥

ज्यों ही चाणूर आया, यादवेश्वर कंसने उच्चस्वरसे गर्जना करते हुए उसे पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा। उसी क्षण मुष्टिक भी वहाँ आ गया। वह रोषसे मुक्का ताने हुए था। कंसने उसे भी एक ही मुक्केसे धराशायी कर दिया॥ २०—२१$^{1}/_{2}$॥

अब कूट आया, कंसने उसके दोनों पैर पकड़ लिये और जमीनपर दे मारा। फिर भुजाओंपर ताल ठोंकता हुआ शल भी दौड़कर आ पहुँचा। कंसने उसे एक ही हाथसे पकड़ा और जमीनपर पटककर घसीटने लगा। इसके बाद कंसने तोशलके दोनों हाथ बलपूर्वक पकड़ लिये और जमीनपर पटक दिया। फिर तत्काल उठाकर दस योजनकी दूरीपर फेंक दिया। इस प्रकार यादवेश्वर कंस उन सभी वीरोंको अपना सेवक बनाकर, मेरे (नारदजीके) कहनेसे उन योद्धाओंके साथ उसी क्षण श्रेष्ठ पर्वत प्रवर्षणगिरिपर जा पहुँचा॥ २२-२५॥

तस्मै निवेद्याभिप्रायं युयुधे वानरेण सः।
द्विविदेनापि विंशत्या दिनैः कंसो ह्यविश्रमम्॥ २६

द्विविदो गिरिमुत्पाट्य चिक्षेप तस्य मूर्धनि।
कंसो गिरिं गृहीत्वा च तस्योपरि समाक्षिपत्॥ २७

वहाँ वह वानर द्विविदको अपना अभिप्राय बताकर उसके साथ बीस दिनोंतक अविराम युद्ध करता रहा। द्विविदने पर्वतकी चट्टान उठाकर उसे कंसके मस्तकपर फेंका, किंतु कंसने उस शिलाखण्डको पकड़कर उसीके ऊपर चला दिया॥ २६-२७॥

द्विविदो मुष्टिना कंसं घातयित्वा नभो गतः।
धावन् कंसश्च तं नीत्वा पातयामास भूतले॥ २८

मूर्च्छितस्तत्प्रहारेण परं कश्मलमाययौ।
क्षीणसत्त्वश्चूर्णिताऽस्थिर्दासभावं गतस्तदा॥ २९

तब द्विविद कंसपर मुक्केसे प्रहार करके आकाशमें उड़ गया। कंसने भी उसका पीछा करके उसे पकड़ लिया और लाकर जमीनपर पटक दिया। कंसके प्रहारसे द्विविदको मूर्च्छा आ गयी। उसकी सारी उत्साह-शक्ति जाती रही। हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं। फिर तो वह भी कंसका सेवक बन गया॥ २८-२९॥

तेनैवाथ गतः कंस ऋष्यमूकवनं ततः।
तत्र केशी महादैत्यो हयरूपो घनस्वनः॥ ३०

मुष्टिभिस्ताडयित्वा तं वशीकृत्यारुरोह तम्।
इत्थं कंसो महावीर्यो महेन्द्राख्यं गिरिं ययौ॥ ३१

तदनन्तर कंस द्विविदके साथ वहाँसे ऋष्यमूक-वनमें गया। वहाँ 'केशी' नामसे विख्यात एक महादैत्य रहता था, जिसकी घोड़ेके समान आकृति थी। वह बादलके समान गर्जता था। उसे मुक्कोंकी मारसे अपने वशमें करके कंस उसपर सवार हो गया। इस प्रकार वह महान् पराक्रमी कंस महेन्द्रगिरिपर जा पहुँचा॥ ३०-३१॥

शतवारं चोज्जहार गिरिमुत्पाट्य दैत्यराट्।
पुनस्तत्र स्थितं रामं क्रोधसंरक्तलोचनम्॥ ३२

प्रलयार्कप्रभं दृष्ट्वा ननाम शिरसा मुनिम्।
पुनः प्रदक्षिणीकृत्य तदङ्घ्र्योर्निपपात ह॥ ३३

दानवराज कंसने उस पर्वतको उखाड़कर सौ बार ऊपरको उठा लिया। फिर वहाँ रहनेवाले मुनिवर परशुरामजीको, जिनके नेत्र क्रोधसे लाल थे और जो प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी थे, उन मुनिको देखकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और बार-बार उनकी प्रदक्षिणा की। फिर उनके दोनों चरणोंमें वह लेट गया॥ ३२-३३॥

ततः शान्तो भार्गवोऽपि कंसं प्राह महोग्रदृक्।
हे कीट मर्कटीडिम्भ तुच्छोऽसि मशको यथा॥ ३४

अद्यैव त्वां हन्मि दुष्ट क्षत्रियं वीर्यमानिनम्।
मत्समीपे धनुरिदं लक्षभारसमं महत्॥ ३५

तब अत्यन्त उग्र दृष्टिवाले परशुरामजीकी क्रोधाग्नि शान्त हो गयी। वे बोले—'रे कीट! रे बँदरियाके बच्चे! तू मच्छरके समान तुच्छ है। तू बलके घमंडमें चूर रहनेवाला दुष्ट क्षत्रिय है। मैं आज ही तुझे मौतके मुखमें भेजता हूँ। देख, मेरे पास यह महान् धनुष है। इसकी गुरुता लाख भार (लगभग तीन लाख मन)-के बराबर है॥ ३४-३५॥

इदं च विष्णुना दत्तं शम्भवे त्रैपुरे युधि।
शम्भोः करादिह प्राप्तं क्षत्रियाणां वधाय च॥ ३६

यदि चेदं तनोषि त्वं तदा च कुशलं भवेत्।
चेदस्य कर्षणं न स्याद् घातयिष्यामि ते बलम्॥ ३७

त्रिपुरासुरसे युद्धके समय भगवान् विष्णुने यह धनुष भगवान् शंकरको दिया था। फिर क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये यह शंकरजीके हाथसे मुझे प्राप्त हुआ। यदि तू इसे चढ़ा सका, तब तो कुशल है; यदि नहीं चढ़ा सका तो तेरे सारे बलका विनाश कर दूँगा'॥ ३६-३७॥

श्रुत्वा वचस्तदा दैत्यः कोदण्डं सप्ततालकम्।
गृहीत्वा पश्यतस्तस्य सज्जं कृत्वाथ लीलया॥ ३८

आकृष्य कर्णपर्यन्तं शतवारं ततान ह।
प्रत्यञ्चास्फोटनेनैव टङ्कारोऽभूत्तडित्स्वनः॥ ३९

ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह।
विचेलुर्दिग्गजास्तारा ह्यपतन् भूमिमण्डले॥ ४०

धनुः संस्थाप्य तत्कंसो नत्वा नत्वाह भार्गवम्।
हे देव क्षत्रियो नास्मि दैत्योऽहं ते च किङ्करः॥ ४१

तव दासस्य दासोऽहं पाहि मां पुरुषोत्तम।
श्रुत्वा प्रसन्नः श्रीरामस्तस्मै प्रादाद्धनुश्च तत्॥ ४२

श्रीजामदग्न्य उवाच

यत्कोदण्डं वैष्णवं तद्येन भङ्गीभविष्यति।
परिपूर्णतमेनात्र सोऽपि त्वां घातयिष्यति॥ ४३

श्रीनारद उवाच

अथ नत्वा मुनिं कंसो विचरन् स मदोन्मदः।
न केऽपि युयुधुस्तेन राजानश्च बलिं ददुः॥ ४४

समुद्रस्य तटे कंसो दैत्यं नाम्ना ह्यघासुरम्।
सर्पाकारं च फूत्कारैर्लेलिहानं ददर्श ह॥ ४५

आगच्छन्तं दशन्तं च गृहीत्वा तं निपात्य सः।
चकार स्वगले हारं निर्भयो दैत्यराड् बली॥ ४६

प्राच्यां तु बङ्गदेशेषु दैत्योऽरिष्टो महावृषः।
तेन सार्धं स युयुधे गजेनापि गजो यथा॥ ४७

शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप कंसमूर्धनि।
कंसो गिरिं सङ्गृहीत्वा चाक्षिपत्तस्य मस्तके॥ ४८

परशुरामजीकी बात सुनकर कंसने उस धनुषको, जो सात ताड़के बराबर लंबा था, उठा लिया और परशुरामजीके देखते-देखते उसे लीलापूर्वक चढ़ा दिया। फिर कानतक खींच-खींचकर उसे सौ बार फैलाया। उसकी प्रत्यञ्चाके खींचनेसे बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान टंकार शब्द होने लगा॥ ३८-३९॥

उसकी भीषण ध्वनिसे सातों लोकों और पातालोंके साथ पूरा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये और तारागण टूट-टूटकर जमीनपर गिरने लगे। फिर कंसने धनुषको नीचे रख दिया और परशुरामजीको बारंबार प्रणाम करके कहा—'भगवन्! मैं क्षत्रिय नहीं हूँ। मैं आपका सेवक दैत्य हूँ। आपके दासोंका दास हूँ। पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये।' कंसकी ऐसी प्रार्थना सुनकर परशुरामजी प्रसन्न हो गये। फिर वह धनुष उन्होंने कंसको ही दे दिया॥ ४०—४२॥

श्रीपरशुरामजी बोले—यह धनुष भगवान् विष्णुका है। इसे जो तोड़ देगा, वही यहाँ साक्षात् परिपूर्णतम पुरुष है। उसीके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी॥ ४३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर बलके मदसे उन्मत्त रहनेवाला कंस मुनिवर परशुरामजीको प्रणाम करके भूतलपर विचरने लगा। किन्हीं राजाओंने उसके साथ युद्ध नहीं किया—सबने उसे कर देना स्वीकार कर लिया। अब कंस समुद्रके तटपर गया। वहाँ 'अघासुर' नामक एक दानव रहता था, जो सर्पके आकारका था। वह फुफकारता और लपलपाती जीभसे चाटता-सा दिखायी देता था। वह आकर कंसको डँसने लगा। यह देख पराक्रमी दैत्यराजने निर्भयतापूर्वक उसे पकड़ा और धरतीपर पटक दिया। फिर उसे अपने गलेकी माला बना लिया॥ ४४—४६॥

उन दिनों पूर्वदिशावर्ती बंगदेशमें 'अरिष्ट' नामक दैत्य रहता था, जिसकी आकृति विशालकाय बैलके समान थी। उस दैत्यके साथ कंस इस प्रकार जा भिड़ा, जैसे एक हाथीके साथ दूसरा हाथी लड़ता है। वह दानव अपनी सींगोंसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उठाता और कंसके मस्तकपर पटक देता था। कंस भी उसी पर्वतको हाथमें लेकर अरिष्टासुरपर दे मारता था॥ ४७-४८॥

जघान मुष्टिनारिष्टं कंसो वै दैत्यपुङ्गवः।
मूर्च्छितं तं विनिर्जित्य तेनोदीचीं दिशं गतः॥ ४९

प्राग्ज्योतिषेश्वरं भौमं नरकाख्यं महाबलम्।
उवाच कंसो युद्धार्थी युद्धं मे देहि दैत्यराट्॥ ५०

अहं दासो भवेयं वो भवन्तो जयिनो यदि।
अहं जयी चेद्भवतो दासान् सर्वान् करोम्यहम्॥ ५१

श्रीनारद उवाच

पूर्वं प्रलम्बो युयुधे कंसेनापि महाबलः।
मृगेन्द्रेण मृगेन्द्रोऽद्रावुद्भटेन यथोद्भटः॥ ५२

मल्लयुद्धे गृहीत्वा तं कंसो भूमौ निपात्य च।
पुनर्गृहीत्वा चिक्षेप प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति॥ ५३

आगतो धेनुको नाम्ना कंसं जग्राह रोषतः।
नोदयामास दूरेण बलं कृत्वाथ दारुणम्॥ ५४

कंसस्तं नोदयामास धेनुकं शतयोजनम्।
निपात्य चूर्णयामास तदङ्गं मुष्टिभिर्दृढैः॥ ५५

तृणावर्तो भौमवाक्यात्कंसं नीत्वा नभो गतः।
तत्रैव युयुधे दैत्य ऊर्ध्वं वै लक्षयोजनम्॥ ५६

कंसोऽनन्तबलं कृत्वा दैत्यं नीत्वा तदाम्बरात्।
भूमौ स पातयामास वमन्तं रुधिरं मुखात्॥ ५७

तुण्डेनाथ ग्रसन्तं च बकं दैत्यं महाबलम्।
कंसो निपातयामास मुष्टिना वज्रघातिना॥ ५८

उत्थाय दैत्यो बलवान् सितपक्षो घनस्वनः।
क्रोधयुक्तः समुत्पत्य तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसच्च तम्॥ ५९

निगीर्णोऽपि स वज्राङ्गो तद्गले रोधकृच्च यः।
सद्यश्चच्छर्द तं कंसं क्षतकण्ठो महाबकः॥ ६०

उस युद्धमें दैत्यराज कंसने मुक्केसे अरिष्टासुरपर प्रहार किया, जिससे वह दानव मूर्च्छित हो गया। इस प्रकार उस अरिष्टासुरको पराजित करके उसके साथ ही कंस उत्तर दिशाकी ओर चल दिया। प्राग्ज्योतिषपुरके स्वामी महाबली भूमिपुत्र 'नरक' के पास जाकर युद्धार्थी कंसने उससे कहा—दैत्येश्वर! तुम मुझे युद्ध करनेका अवसर दो। यदि संग्राममें तुम्हारी जीत हो गयी तो मैं तुम्हारा सेवक बन जाऊँगा। साथ ही मुझे विजय प्राप्त होनेपर तुम सबको मेरा भृत्य बनना पड़ेगा॥ ४९—५१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! प्राग्ज्योतिषपुरमें सर्वप्रथम महापराक्रमी प्रलम्बासुर कंसके साथ इस प्रकार युद्ध करने लगा, जैसे किसी पर्वतपर एक उद्भट सिंहके साथ दूसरा उद्भट सिंह लड़ता हो। कंसने उस मल्लयुद्धमें प्रलम्बासुरको पकड़ा और पृथ्वीपर दे मारा। फिर उसे उठाकर प्राग्ज्योतिषपुरके स्वामी भौमासुरके पास फेंक दिया॥ ५२-५३॥

तदनन्तर 'धेनुक' नामसे विख्यात दानवने आकर कंसको रोषपूर्वक पकड़ लिया। उसने दारुण बलका प्रयोग करके कंसको दूरतक पीछे हटा दिया। तब कंसने भी धेनुकासुरको सौ योजन पीछे ढकेल दिया और सुदृढ़ घूँसोंसे मारकर उसके शरीरको चूर-चूर कर दिया। तदनन्तर भौमासुरकी आज्ञासे 'तृणावर्त' कंसको पकड़कर लाख योजन ऊपर आकाशमें ले गया और वहीं युद्ध करने लगा॥ ५४—५६॥

कंसने अपनी अनन्तशक्ति लगाकर बलपूर्वक उस दैत्यको आकाशसे खींचकर पृथ्वीपर पटक दिया। उस समय तृणावर्तके मुँहसे खूनकी धार बह चली। इसके बाद महाबली 'बकासुर' आकर अपनी चोंचसे कंसको निगल जानेकी चेष्टा करने लगा। कंसने वज्रके समान कठोर मुक्केसे प्रहार करके उसे भी धराशायी कर दिया। बलवान् बकासुर फिर उठ गया। उसके पंख सफेद थे। वह मेघके समान गम्भीर गर्जना करता था। क्रोधपूर्वक उड़कर तीखी चोंचवाले उस बकासुरने कंसको निगल लिया॥ ५७—५९॥

कंसका शरीर वज्रकी भाँति कठोर था। निगले जानेपर उसने उस दानवके गलेकी नलीको रूँध

कंसो बकं सङ्गृहीत्वा पातयित्वा महीतले।
कराभ्यां भ्रामयित्वा च युद्धे तं विचकर्ष ह॥ ६१

दिया। फिर महान् बली बकासुरने कण्ठ छिद जानेके कारण कंसको मुँहसे बाहर उगल दिया। तदनन्तर कंसने उस दैत्यको पकड़कर जमीनपर पटका और दोनों हाथोंसे घुमाता हुआ उसे वह युद्धभूमिमें घसीटने लगा॥ ६०-६१॥

तत्स्वसारं पूतनाख्यां योद्धुकामामवस्थिताम्।
तामाह कंसः प्रहसन् वाक्यं मे शृणु पूतने॥ ६२

स्त्रिया सार्धमहं युद्धं न करोमि कदाचन।
बकासुरः स्यान्मे भ्राता त्वं च मे भगिनी भव॥ ६३

बकासुरकी एक बहन थी। उसका नाम था— 'पूतना'। वह भी युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गयी। उसे उपस्थित देखकर कंसने हँसते हुए कहा—'पूतने! मेरी बात सुन लो। तुम स्त्री हो, मैं तुम्हारे साथ कभी भी लड़ नहीं सकता। अब यह बकासुर मेरा भाई और तुम बहन होकर रहो'॥ ६२-६३॥

ततोऽनन्तबलं कंसं वीक्ष्य भौमोऽपि धर्षितः।
चकार सौहृदं कंसे साहाय्यार्थं सुरान् प्रति॥ ६४

तदनन्तर महान् पराक्रमी कंसको देखकर भौमासुरने भी पराजय स्वीकार कर ली। फिर देवताओंसे युद्ध करनेके समय सहायता प्रदान करनेके लिये वह कंसके साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव करने लगा॥ ६४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कंसबलवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कंसके बलका वर्णन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

कंसकी दिग्विजय—शम्बर, व्योमासुर, बाणासुर, वत्सासुर, कालयवन तथा देवताओंकी पराजय

श्रीनारद उवाच

अथ कंसः प्रलम्बाद्यैरन्यैः पूर्वं जितैश्च तैः।
शम्बरस्य पुरं प्रागात्स्वाभिप्रायं न्यवेदयत्॥ १

शम्बरो ह्यतिवीर्योऽपि न युयोध स तेन वै।
चकार सौहृदं कंसे सर्वैरतिबलैः सह॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर कंस पहलेके जीते हुए प्रलम्ब आदि अन्य दैत्योंके साथ शम्बरासुरके नगरमें गया। वहाँ उसने अपना युद्ध-विषयक अभिप्राय कह सुनाया। शम्बरासुरने अत्यन्त पराक्रमी होनेपर भी कंसकेसाथ युद्ध नहीं किया और उन सभी अत्यन्त बलशाली असुरोंसहित कंसके साथ मैत्री स्थापित कर ली॥ १-२॥

त्रिशृङ्गशिखरे शेते व्योमो नाम्नासुरो बली।
कंसपादप्रबुद्धोऽभूत् क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ३

कंसं जघान चोत्थाय प्रबलैर्दृढमुष्टिभिः।
तयोर्युद्धमभूद्घोरमितरेतरमुष्टिभिः॥ ४

त्रिकूट पर्वतके शिखरपर व्योमनामक एक बलवान् असुर सो रहा था। कंसने वहाँ पहुँचकर उसके ऊपर लात चलायी। उसके प्रहारसे व्योमासुरकी निद्रा टूट गयी और उसने उठकर सुदृढ़ बँधे हुए जोरदार मुक्कोंसे कंसपर आघात किया। उस समय उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। कंस और व्योमासुरमें भयंकर युद्ध छिड़ गया। वे दोनों एक-दूसरेको मुक्कोंसे मारने लगे॥ ३-४॥

कंसस्य मुष्टिभिः सोऽपि निःसत्त्वोऽभूद् भ्रमातुरः।
भृत्यं कृत्वाथ तं कंसः प्राप्तं मां प्रणनाम ह॥ ५

हे देव युद्धकाङ्क्षास्ति क्व यामि त्वं वदाशु मे।
प्रोवाच तं तदा गच्छ दैत्यं बाणं महाबलम्॥ ६

प्रेरितश्चेति कंसाख्यो मया युद्धदिदृक्षुणा।
भुजवीर्यमदोन्नद्धः शोणिताख्यं पुरं ययौ॥ ७

कंसके मुक्कोंकी मारसे व्योमासुर अपनी शक्ति और उत्साह खो बैठा। उसको चक्कर आने लगा। यह देख कंसने उसको अपना सेवक बना लिया। उसी समय मैं (नारद) वहाँ जा पहुँचा। कंसने मुझे प्रणाम किया और पूछा—'हे देव! मेरी युद्धविषयक आकाङ्क्षा अभी पूरी नहीं हुई है। मुझे शीघ्र बताइये, अब मैं कहाँ, किसके पास जाऊँ?' तब मैंने उससे कहा—'तुम महाबली दैत्य बाणासुरके पास जाओ।' मुझे तो युद्ध देखनेका चाव रहता ही है। मेरी इस प्रकारकी प्रेरणासे प्रेरित हो बाहुबलके मदसे उन्मत्त रहनेवाला कंस शोणितपुर गया॥ ५—७॥

बाणासुरस्तत्प्रतिज्ञां श्रुत्वा क्रुद्धो ह्यभून्महान्।
तताड लत्तां भूमध्ये जगर्ज घनवद् बली॥ ८

आजानुभूमिगां लत्तां पातालान्तमुपागताम्।
कृत्वा तमाह बाणस्तु पूर्वं चैनां समुद्धर॥ ९

कंसकी युद्धविषयक प्रतिज्ञाको सुनकर महाबली बाणासुर अत्यन्त कुपित हो उठा। उसने मेघके समान गम्भीर गर्जना करके पृथ्वीपर बड़े जोरसे लात मारी। उसका वह पैर घुटनेतक धरतीमें धँस गया और पातालके निकटतक जा पहुँचा। ऐसा करके बाणने कंससे कहा—'पहले मेरे इस पैरको तो उठाओ!'॥ ८-९॥

श्रुत्वा वचः कराभ्यां तामुज्जहार मदोत्कटः।
प्रचण्डविक्रमः कंसः खरदण्डं गजो यथा॥ १०

तया चोद्धृतयोत्खाता लोकाः सप्ततला दृढाः।
निपेतुर्गिरयोऽनेका विचेलुर्दृढदिग्गजाः॥ ११

उसकी यह बात सुनकर मदोन्मत्त कंसने दोनों हाथोंसे उसके पैरको उखाड़कर ऊपर कर दिया। उसका पराक्रम बड़ा प्रचण्ड था। जैसे हाथी गड़े हुए कठोर दण्ड या खंभेको अनायास ही उखाड़ लेता है, उसी प्रकार कंसने बाणासुरके पैरको खींचकर ऊपर कर दिया। उसके पैरके उखड़ते ही पृथ्वीतलके लोक और सातों पाताल हिल उठे, अनेक पर्वत धराशायी हो गये और सुदृढ़ दिग्गज भी अपने स्थानसे विचलित हो उठे॥ १०-११॥

योद्धुं तमुद्यतं बाणं दृष्ट्वागत्य वृषध्वजः।
सर्वान् सम्बोधयामास प्रोवाच बलिनन्दनम्॥ १२

कृष्णं विनापरं चैनं भूमौ कोऽपि न जेष्यति।
भार्गवेण वरं दत्तं धनुरस्मै च वैष्णवम्॥ १३

अब बाणासुरको युद्धके लिये उद्यत हुआ देख भगवान् शंकर स्वयं वहाँ आ गये और सबको समझा-बुझाकर युद्धसे रोक दिया। फिर उन्होंने बलिनन्दन बाणसे कहा—दैत्यराज! भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर भूतलपर दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है, जो युद्धमें इसे जीत सकेगा। परशुरामजीने इसे ऐसा ही वर दिया है और अपना वैष्णव धनुष भी अर्पित कर दिया है॥ १२-१३॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा सौहृदं हृद्यं सद्यो वै कंसबाणयोः।
चकार परया शान्त्या शिवः साक्षान्महेश्वरः॥ १४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर साक्षात् महेश्वर शिवने कंस और बाणासुरमें तत्काल बड़ी शान्तिके साथ मनोरम सौहार्द स्थापित कर दिया॥ १४॥

अथ कंसो दिक्प्रतीच्यां श्रुत्वा वत्सं महासुरम्।
तेन सार्धं स युयुधे वत्सरूपेण दैत्यराट्॥ १५

पुच्छे गृहीत्वा तं वत्सं पोथयामास भूतले।
वशे कृत्वाथ तं शैलं म्लेच्छदेशांस्ततो ययौ॥ १६

मन्मुखात्कालयवनः श्रुत्वा दैत्यं महाबलम्।
निर्ययौ सम्मुखे योद्धुं रक्तश्मश्रुर्गदाधरः॥ १७

कंसो गदां गृहीत्वा स्वां लक्षभारविनिर्मिताम्।
प्राक्षिपद्यवनेन्द्राय सिंहनादमथाकरोत्॥ १८

गदायुद्धमभूद् घोरं तदा हि कंसकालयोः।
विस्फुलिङ्गान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः॥ १९

कंसः कालं सङ्गृहीत्वा पातयामास भूतले।
पुनर्गृहीत्वा निष्पात्य मृततुल्यं चकार ह॥ २०

बाणवर्षं प्रकुर्वन्तीं सेनां तां यवनस्य च।
गदया पोथयामास कंसो दैत्याधिपो बली॥ २१

गजांस्तुरङ्गान् सुरथान् वीरान् भूमौ निपात्य च।
जगर्ज घनवद्वीरो गदायुद्धे मृधाङ्गणे॥ २२

ततश्च दुद्रुवुर्म्लेच्छास्त्यक्त्वा स्वं स्वं रणं परम्।
भीतान् पलायितान् म्लेच्छान्न जघानाथ नीतिमान्॥ २३

उच्चपादो दीर्घजानुः स्तम्भोरुर्लघिमा कटिः।
कपाटवक्षाः पीनांसः पुष्टः प्रांशुर्बृहद्भुजः॥ २४

पद्मनेत्रो बृहत्केशोऽरुणवर्णोऽसिताम्बरः।
किरीटी कुण्डली हारी पद्ममाली लयार्करुक्॥ २५

तदनन्तर पश्चिम दिशामें महासुर वत्सका नाम सुनकर कंस वहाँ गया। उस दैत्यराजने बछड़ेका रूप धारण करके कंसके साथ युद्ध छेड़ दिया। कंसने उस बछड़ेकी पूँछ पकड़ ली और उसे पृथ्वीपर दे मारा। इसके बाद उसके निवासभूत पर्वतको अपने अधिकारमें करके कंसने म्लेच्छ-देशोंपर धावा किया॥ १५-१६॥

मेरे मुखसे महाबली दैत्य कंसके आक्रमणका समाचार सुनकर कालयवन उसका सामना करनेके लिये निकला। उसकी दाढ़ी-मूँछका रंग लाल था और उसने हाथमें गदा ले रखी थी। कंसने भी लाख भार लोहेकी बनी हुई अपनी गदा लेकर यवनराजपर चलायी और सिंहके समान गर्जना की॥ १७-१८॥

उस समय कंस और कालयवनमें बड़ा भयानक गदा-युद्ध हुआ। दोनोंकी गदाओंसे आगकी चिनगारियाँ बरस रही थीं। वे दोनों गदाएँ परस्पर टकराकर चूर-चूर हो गयीं। तब कंसने कालयवनको पकड़कर उसे धरतीपर दे मारा और पुनः उठाकर उसे पटक दिया। इस तरह उसने उस यवनको मृतक-तुल्य बना दिया॥ १९-२०॥

यह देख कालयवनकी सेना कंसपर बाणोंकी वर्षा करने लगी। तब बलवान् दैत्यराज कंसने गदाकी मारसे उस सेनाका कचूमर निकाल दिया। बहुत-से हाथियों, घोड़ों, उत्तम रथों और वीरोंको धराशायी करके गदा-युद्ध करनेवाला वीर कंस समराङ्गणमें मेघके समान गर्जना करने लगा॥ २१-२२॥

फिर तो सारे म्लेच्छ सैनिक रणभूमि छोड़कर भाग निकले। कंस बड़ा नीतिज्ञ था; उसने भयभीत होकर भागते हुए म्लेच्छोंपर आघात नहीं किया। कंसके पैर ऊँचे थे, दोनों घुटने बड़े थे, जाँघें खंभोंके समान जान पड़ती थीं। उसका कटिप्रदेश पतला, वक्षःस्थल किवाड़ोंके समान चौड़ा और कंधे मोटे थे। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट, कद ऊँचा और भुजाएँ विशाल थीं। नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान प्रतीत होते थे। सिरके बाल बड़े-बड़े थे, देहकी कान्ति अरुण थी। उसके अङ्गोंपर काले रंगका वस्त्र सुशोभित था। मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार और वक्षपर कमलोंकी माला शोभा दे रही थी। वह प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ता था॥ २३—२५॥

खड्गी निषङ्गी कवची मुद्गराढ्यो धनुर्धरः।
मदोत्कटो ययौ जेतुं देवान् कंसोऽमरावतीम्॥ २६

चाणूरमुष्टिकारिष्टशलतोशलकेशिभिः।
प्रलम्बेन बकेनापि द्विविदेन समावृतः॥ २७

तृणावर्ताघकूटैश्च भौमबाणाख्यशम्बरैः।
व्योमधेनुकवत्सैश्च रुरुधे सोऽमरावतीम्॥ २८

खड्ग, तूणीर, कवच और मुद्गर आदिसे सम्पन्न धनुर्धर एवं मदमत्त वीर कंस देवताओंको जीतनेके लिये अमरावती पुरीपर जा चढ़ा। चाणूर, मुष्टिक, अरिष्ट, शल, तोशल, केशी, प्रलम्ब, बक, द्विविद, तृणावर्त, अघासुर, कूट, भौम, बाण, शम्बर, व्योम, धेनुक और वत्स नामक असुरोंके साथ कंसने अमरावतीपुरीपर चारों ओरसे घेरा डाल दिया॥ २६—२८॥

कंसादीनागतान् दृष्ट्वा शक्रो देवाधिपः स्वराट्।
सर्वैर्देवगणैः सार्धं योद्धुं क्रुद्धो विनिर्ययौ॥ २९

तयोर्युद्धमभूद्घोरं तुमुलं रोमहर्षणम्।
दिव्यैश्च शस्त्रसङ्घातैर्बाणैस्तीक्ष्णैः स्फुरत्प्रभैः॥ ३०

कंस आदि असुरोंको आया देख, त्रिभुवन-सम्राट् देवराज इन्द्र समस्त देवताओंको साथ ले रोषपूर्वक युद्धके लिये निकले। उन दोनों दलोंमें भयंकर एवं रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध होने लगा। दिव्य शस्त्रोंके समूह तथा चमकीले तीखे बाण छूटने लगे॥ २९-३०॥

शस्त्रान्धकारे सञ्जाते रथारूढो महेश्वरः।
चिक्षेप वज्रं कंसाय शतधारं तडिद्द्युति॥ ३१

मुद्गरेणापि तद्वज्रं तताडाशु महासुरः।
पपात कुलिशं युद्धे छिन्नधारं बभूव ह॥ ३२

त्यक्त्वा वज्रं तदा वज्री खड्गं जग्राह रोषतः।
कंसं मूर्ध्नि तताडाशु नादं कृत्वाथ भैरवम्॥ ३३

इस प्रकार शस्त्रोंकी बौछारसे वहाँ अन्धकार-सा छा गया। उस समय रथपर बैठे हुए सुरेश्वर इन्द्रने कंसपर विद्युत्के समान कान्तिमान् सौ धारोंवाला वज्र छोड़ा। किंतु उस महान् असुरने इन्द्रके वज्रपर मुद्गरसे प्रहार किया। इससे वज्रकी धारें टूट गयीं और वह युद्धभूमिमें गिर पड़ा। तब वज्रधारीने वज्र छोड़कर बड़े रोषके साथ तलवार हाथमें ली और भयंकर सिंहनाद करके तत्काल कंसके मस्तकपर प्रहार किया॥ ३१—३३॥

सक्षतो नाभवत्कंसो मालाहत इव द्विपः।
गृहीत्वा स गदां गुर्वीमष्टधातुमयीं दृढाम्॥ ३४

लक्षभारसमां कंसश्चिक्षेपेन्द्राय दैत्यराट्।
तां समापततीं वीक्ष्य जग्राहाशु पुरन्दरः॥ ३५

परंतु जैसे हाथीको फूलकी मालासे मारा जाय और उसको कुछ पता न लगे, उसी प्रकार खड्गसे आहत होनेपर भी कंसके सिरपर खरोंचतक नहीं आयी। उस दैत्यराजने अष्टधातुमयी मजबूत गदा, जो लाख भार लोहेके बराबर भारी थी, लेकर इन्द्रपर चलायी। उस गदाको अपने ऊपर आती देख नमुचिसूदन वीर देवेन्द्रने तत्काल हाथसे पकड़ लिया और उसे उस दैत्यपर ही दे मारा॥ ३४—३५ १/२॥

ततश्चिक्षेप दैत्याय वीरो नमुचिसूदनः।
चचार युद्धे विदलन्नरीन् मातलिसारथिः॥ ३६

कंसो गृहीत्वा परिघं तताडांसेऽसुरद्विषः।
तत्प्रहारेण देवेन्द्रः क्षणं मूर्च्छामवाप सः॥ ३७

इन्द्रके रथका संचालन मातलि कर रहे थे और देवेन्द्र शत्रुदलका दलन करते हुए युद्धभूमिमें विचर रहे थे। कंसने परिघ लेकर असुरद्रोही इन्द्रके कंधेपर प्रहार किया। उस प्रहारसे देवराज क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये॥ ३६-३७॥

कंसं मरुद्गणाः सर्वे गृध्रपक्षैः स्फुरत्प्रभैः।
बाणौघैश्छादयामासुर्वर्षासूर्यमिवाम्बुदः॥ ३८

उस समय समस्त मरुद्गणोंने गीधके पंखवाले चमकीले बाणसमूहोंसे कंसको उसी तरह ढक दिया, जैसे वर्षाकालके सूर्यको मेघमालाएँ आच्छादित कर देती हैं॥ ३८॥

दोःसहस्रयुतो वीरश्चापं टङ्कारयन्मुहुः।
तदा तान् कालयामास बाणैर्बाणासुरो बली॥ ३९

बाणं च वसवो रुद्रा आदित्या ऋभवः सुराः।
जघ्नुर्नानाविधैः शस्त्रैः सर्वतोऽद्रिं यथा गजाः॥ ४०

ततो भौमासुरः प्राप्तः प्रलम्बाद्यसुरैर्नदन्।
तेन नादेन देवास्ते निपेतुर्मूर्च्छिता रणे॥ ४१

उत्थायाशु तदा शक्रो गजमारुह्य रक्तदृक्।
नोदयामास कंसाय मत्तमैरावतं गजम्॥ ४२

अङ्कुशास्फालनात् क्रुद्धं पातयन्तं पदैर्द्विषः।
शुण्डादण्डस्य फूत्कारैर्मर्दयन्तमितस्ततः॥ ४३

स्रवन्मदं चतुर्दन्तं हिमाद्रिमिव दुर्गमम्।
नदन्तं शृङ्खलां शुण्डां चालयन्तं मुहुर्मुहुः॥ ४४

घण्टाढ्यं किङ्किणीजालरत्नकम्बलमण्डितम्।
गोमूर्धचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखम् ॥ ४५

दृढेन मुष्टिना कंसस्तं तताड महागजम्।
द्वितीयमुष्टिना शक्रं स जघान रणाङ्गणे॥ ४६

तस्य मुष्टिप्रहारेण दूरे शक्रः पपात ह।
जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा गजोऽपि विह्वलोऽभवत्॥ ४७

पुनरुत्थाय नागेन्द्रो दन्तैश्चाहत्य दैत्यपम्।
शुण्डादण्डेन चोद्धृत्य चिक्षेप लक्षयोजनम्॥ ४८

पतितोऽपि स वज्राङ्गः किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
स्फुरदोष्ठोऽतिरुष्टाङ्गो युद्धभूमिं समाययौ॥ ४९

कंसो गृहीत्वा नागेन्द्रं सन्निपात्य रणाङ्गणे।
निष्पीड्य शुण्डां तस्यापि दन्तांश्चूर्णीचकार ह॥ ५०

यह देख एक हजार भुजाओंसे युक्त बलवान् वीर बाणासुरने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए अपने बाण-समूहोंसे उन मरुद्गणोंको घायल करना आरम्भ किया। बाणासुरपर भी वसु, रुद्र, आदित्य तथा अन्यान्य देवता एवं ऋभुगण चारों ओरसे टूट पड़े और नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा उसपर उसी प्रकार प्रहार करने लगे, जैसे हाथी पर्वतपर आघात करते हैं॥ ३९-४०॥

इतनेमें ही प्रलम्ब आदि असुरोंके साथ गर्जना करता हुआ भौमासुर आ पहुँचा। उसके उस भयानक सिंहनादसे देवतालोग मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। उस समय देवराज इन्द्र शीघ्र ही उठ गये और लाल आँखें किये ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो उस मदमत्त गजराजको कंसकी ओर उसे कुचल डालनेके लिये प्रेरित करने लगे॥ ४१-४२॥

अंकुशकी मारसे कुपित हुआ वह गजराज शत्रुओंको अपने पैरोंसे मार-मारकर युद्धभूमिमें गिराने लगा। वह अपनी सूँड़से निकले फूत्कारोंसे उनका मर्दन कर रहा था। झरते हुए मदजल तथा चार दाँतोंवाले, हिमालयके समान दुर्गम उस गजराजकी लौह शृंखलाएँ झंकार कर रही थीं तथा वह बार-बार अपनी सूँड़को घुमा रहा था। उसके गलेमें घंटे बँधे हुए थे, वह किङ्किणीजाल तथा रत्नमय कम्बलसे मण्डित था। गोरोचन, सिन्दूर और कस्तूरीसे उसके मुख-मण्डलपर पत्ररचना की गयी थी। कंसने निकट आनेपर उस महान् गजराजके ऊपर सुदृढ़ मुक्केसे प्रहार किया। साथ ही उसने समराङ्गणमें देवराज इन्द्रपर भी दूसरे मुक्केका प्रहार किया। उसके मुक्केकी मार खाकर इन्द्र ऐरावतसे दूर जा गिरे। ऐरावत भी धरतीपर घुटने टेककर व्याकुल हो गया। फिर तुरंत ही उठकर गजराजने दैत्यराज कंसपर दाँतोंसे आघात किया और उसे सूँड़पर उठाकर लाख योजन दूर फेंक दिया। कंसका शरीर वज्रके समान सुदृढ़ था। वह उतनी दूरसे गिरनेपर भी घायल नहीं हुआ। उसके मनमें किंचित् व्याकुलता हुई; किंतु रोषसे ओठ फड़फड़ाता अत्यन्त जोशमें भरकर वह पुनः युद्धभूमिमें जा पहुँचा। कंसने नागराज ऐरावतको पकड़कर समराङ्गणमें धराशायी कर दिया और उसकी सूँड़ मरोड़कर उसके दाँतोंको चूर-चूर कर दिया॥ ४३—५०॥

अथ चैरावतो नागो दुद्रावाशु रणाङ्गणात्।
निपातयन्महावीरान् देवधानीं पुरीं गतः ॥ ५१

गृहीत्वा वैष्णवं चापं सज्जं कृत्वाथ दैत्यराट्।
देवान् विद्रावयामास बाणौघैश्च धनुःस्वनैः ॥ ५२

ततः सुरास्तेन निहन्यमाना
विदुद्रुवुर्लीनधियो दिशान्ते।
केचिद्रणे मुक्तशिखा बभूवु-
र्भीताः स्म इत्थं युधि वादिनस्ते ॥ ५३

केचित्तथा प्राञ्जलयोऽतिदीनवत्
सन्न्यस्तशस्त्रा युधि मुक्तकच्छाः।
स्थातुं रणे कंसनृदेवसम्मुखे
गतेप्सिताः केचिदतीव विह्वलाः ॥ ५४

इत्थं स देवान् प्रगतान्निरीक्ष्य तान्
नीत्वा च सिंहासनमातपत्रवत्।
सर्वैस्तदा दैत्यगणैर्जनाधिपः
स्वराजधानीं मथुरां समाययौ ॥ ५५

अब तो ऐरावत हाथी उस समराङ्गणसे तत्काल भाग चला। वह बड़े-बड़े वीरोंको गिराता हुआ देवताओंकी राजधानी अमरावती पुरीमें जा घुसा। तदनन्तर दैत्यराज कंसने वैष्णव धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर बाण-समूहों तथा धनुषकी टंकारोंसे देवताओंको खदेड़ना आरम्भ किया। कंसकी मार पड़नेसे देवताओंके होश उड़ गये और वे चारों दिशाओंमें भाग निकले। कुछ देवताओंने रणभूमिमें अपनी शिखाएँ खोल दीं और 'हम डरे हुए हैं (हमें न मारो)'—इस प्रकार कहने लगे ॥ ५१—५३ ॥

कुछ लोग हाथ जोड़कर अत्यन्त दीनकी भाँति खड़े हो गये और अस्त्र-शस्त्र नीचे डालकर उन्होंने अपने अधोवस्त्रकी लाँग भी खोल डाली। कुछ लोग अत्यन्त व्याकुल हो युद्धस्थलमें राजा कंसके सम्मुख खड़े होनेतकका साहस न कर सके। इस प्रकार देवताओंको भगा हुआ देख वहाँके छत्र-युक्त सिंहासनको साथ लेकर नरेश्वर कंस समस्त दैत्योंके साथ अपनी राजधानी मथुराको लौट आया ॥ ५४-५५ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे दिग्विजयवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'दिग्विजयवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

सुचन्द्र और कलावतीके पुण्यका वर्णन, उनका वृषभानु तथा कीर्तिके रूपमें अवतरण

श्रीगर्ग उवाच

श्रुत्वा तदा शौनक भक्तियुक्तः
श्रीमैथिलो ज्ञानभृतां वरिष्ठम्।
नत्वा पुनः प्राह मुनिं महाद्भुतं
देवर्षिवर्यं हरिभक्तिनिष्ठः ॥ १

बहुलाश्व उवाच

त्वया कुलं कौ विशदीकृतं मे
स्वानन्ददोर्जद्यशसामलेन ।
श्रीकृष्णभक्तक्षणसङ्गमेन
जनोऽपि सत्स्याद् बहुना किमुस्वित् ॥ २

श्रीराधया पूर्णतमस्तु साक्षाद्
भूत्वा व्रजे किं चरितं चकार।

श्रीगर्गजी कहते हैं—शौनक! राजा बहुलाश्वका हृदय भक्तिभावसे परिपूर्ण था। हरिभक्तिमें उनकी अविचल निष्ठा थी। उन्होंने इस प्रसङ्गको सुनकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ एवं महाविलक्षण स्वभाववाले देवर्षि नारदजीको प्रणाम किया और पुनः पूछा— ॥ १ ॥

बहुलाश्वने कहा—[भगवन्!] आपने अपने आनन्दप्रद, नित्य वृद्धिशील, निर्मल यशसे मेरे कुलको पृथ्वीपर अत्यन्त विशद (उज्ज्वल) बना दिया; क्योंकि श्रीकृष्णभक्तोंके क्षणभरके सङ्गसे साधारण जन भी सत्पुरुष—महात्मा बन जाता है। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ! देवर्षे! श्रीराधाके साथ भूतलपर अवतीर्ण हुए साक्षात् परिपूर्णतम भगवान्ने व्रजमें कौन-सी लीलाएँ कीं—यह मुझे कृपापूर्वक

तद्ब्रूहि मे देवऋषे ऋषीश
त्रितापदुःखात्परिपाहि मां त्वम्॥ ३

श्रीनारद उवाच

धन्यं कुलं यन्निमिना नृपेण
श्रीकृष्णभक्तेन परात्परेण।
पूर्णीकृतं यत्र भवान् प्रजातो
युक्तो हि मुक्तो भवतो न चित्रम्॥ ४
अथ प्रभोस्तस्य पवित्रलीलां
सुमङ्गलां संशृणुतां परस्य।
अभूत्सतां यो भुवि रक्षणार्थं
न केवलं कंसवधाय कृष्णः॥ ५
अथैव राधां वृषभानुपत्न्या-
मावेश्य रूपं महसः पराख्यम्।
कलिन्दजाकूलनिकुञ्जदेशे
सुमन्दिरे सावततार राजन्॥ ६
घनावृते व्योम्नि दिनस्य मध्ये
भाद्रे सिते नागतिथौ च सोमे।
अवाकिरन् देवगणाः स्फुरद्भि-
स्तन्मन्दिरे नन्दनजैः प्रसूनैः॥ ७
राधावतारेण तदा बभूवु-
र्नद्योऽमलाम्भाश्च दिशः प्रसेदुः।
ववुश्च वाता अरविन्दरागैः
सुशीतलाः सुन्दरमन्दयानाः॥ ८
सुतां शरच्चन्द्रशताभिरामां
दृष्ट्वाथ कीर्तिर्मुदमाप गोपी।
शुभं विधायाशु ददौ द्विजेभ्यो
द्विलक्षमानन्दकरं गवां च॥ ९
यद्दर्शनं देववरैः सुदुर्लभं
यज्ञैरवाप्तं च न जन्मकोटिभिः।
सविग्रहां तां वृषभानुमन्दिरे
लक्षन्ति लोका ललनाप्रलालनैः॥ १०
प्रेङ्खे खचिद्रत्नमयूखपूर्णे
सुवर्णयुक्ते कृतचन्दनाङ्गे।
आन्दोलिता सा ववृधे सखीजनै-
र्दिने दिने चन्द्रकलेव भाभिः॥ ११

बताइये। ऋषीश्वर! इस कथामृतद्वारा आप त्रिताप-दुःखसे मेरी रक्षा कीजिये॥ २-३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वह कुल धन्य है, जिसे परात्पर श्रीकृष्णभक्त राजा निमिने समस्त सद्गुणोंसे परिपूर्ण बना दिया है और जिसमें तुम-जैसे योगयुक्त एवं भव-बन्धनसे मुक्त पुरुषने जन्म लिया है। तुम्हारे इस कुलके लिये कुछ भी विचित्र नहीं है। अब तुम उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी परम मङ्गलमयी पवित्र लीलाका श्रवण करो। वे भगवान् केवल कंसका संहार करनेके लिये ही नहीं, अपितु भूतलके संतजनोंकी रक्षाके लिये अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने अपनी तेजोमयी पराशक्ति श्रीराधाका वृषभानुकी पत्नी कीर्ति-रानीके गर्भमें प्रवेश कराया। वे श्रीराधा कलिन्दजाकूलवर्ती निकुञ्जप्रदेशके एक सुन्दर मन्दिरमें अवतीर्ण हुईं॥ ४—६॥

उस समय भाद्रपदका महीना था। शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथि एवं सोमका दिन था। मध्याह्नका समय था और आकाशमें बादल छाये हुए थे। देवगण नन्दनवनके भव्य प्रसून लेकर भवनपर बरसा रहे थे। उस समय श्रीराधिकाजीके अवतार धारण करनेसे नदियोंका जल स्वच्छ हो गया। सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न—निर्मल हो उठीं। कमलोंकी सुगन्धसे व्याप्त शीतल वायु मन्दगतिसे प्रवाहित हो रही थी॥ ७-८॥

शरत्पूर्णिमाके शत-शत चन्द्रमाओंसे भी अधिक अभिराम कन्याको देखकर गोपी कीर्तिदा आनन्दमें निमग्न हो गयीं। उन्होंने मङ्गलकृत्य कराकर पुत्रीके कल्याणकी कामनासे आनन्ददायिनी दो लाख उत्तम गौएँ ब्राह्मणोंको दान कीं। जिनका दर्शन बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, तत्त्वज्ञ मनुष्य सैकड़ों जन्मोंतक यज्ञ करनेपर भी जिनकी झाँकी नहीं पाते, वे ही श्रीराधिकाजी जब वृषभानुके यहाँ साकाररूपसे प्रकट हुईं और गोप-ललनाएँ जब उनका लालन-पालन करने लगीं, तब सर्वसाधारण लोग उनका दर्शन करने लगे। सुवर्णजटित एवं सुन्दर रत्नोंसे खचित, चन्दननिर्मित तथा रत्नकिरण-मण्डित पालनेमें सखीजनों-द्वारा नित्य झुलायी जाती हुई श्रीराधा प्रतिदिन शुक्ल-पक्षके चन्द्रमाकी कलाकी भाँति बढ़ने लगीं॥ ९—११॥

श्रीरासरङ्गस्य विकासचन्द्रिका
दीपावलिर्या वृषभानुमन्दिरे ।
गोलोकचूडामणिकण्ठभूषणा
ध्यात्वा परां तां भुवि पर्यटाम्यहम्॥ १२

श्रीराधा क्या हैं—रासकी रङ्गस्थलीको प्रकाशित करनेवाली चन्द्रिका, वृषभानु-मन्दिरकी दीपावली, गोलोक-चूड़ामणि श्रीकृष्णके कण्ठकी हारावली। मैं उन्हीं पराशक्तिका ध्यान करता हुआ भूतलपर विचरता रहता हूँ॥ १२॥

बहुलाश्व उवाच

वृषभानोरहो भाग्यं यस्य राधा सुताभवत्।
कलावत्या सुचन्द्रेण किं कृतं पूर्वजन्मनि॥ १३

राजा बहुलाश्वने पूछा—[मुने!] वृषभानुजीका सौभाग्य अद्भुत है, अवर्णनीय है; क्योंकि उनके यहाँ श्रीराधिकाजी स्वयं पुत्रीरूपसे अवतीर्ण हुईं। कलावती और सुचन्द्रने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यकर्म किया था, जिसके फलस्वरूप इन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ?॥ १३॥

श्रीनारद उवाच

नृगपुत्रो महाभागः सुचन्द्रो नृपतीश्वरः।
चक्रवर्ती हरेरंशो बभूवातीव सुन्दरः॥ १४

पितॄणां मानसीकन्यास्तिस्त्रोऽभूवन् मनोहराः।
कलावती रत्नमाला मेनका नाम नामतः॥ १५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! राजराजेश्वर महाभाग सुचन्द्र राजा नृगके पुत्र थे। परम सुन्दर सुचन्द्र चक्रवर्ती नरेश थे। उन्हें साक्षात् भगवान्‌का अंश माना जाता है। पूर्वकालमें (अर्यमा-प्रभृति) पितरोंके यहाँ तीन मानसी कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। वे सभी परम सुन्दरी थीं। उनके नाम थे—कलावती, रत्नमाला और मेनका॥ १४-१५॥

कलावतीं सुचन्द्राय हरेरंशाय धीमते।
वैदेहाय रत्नमालां मेनकां च हिमाद्रये।
पारिबर्हेण विधिना स्वेच्छाभिः पितरो ददुः॥ १६

सीताभूद्रत्नमालायां मेनकायां च पार्वती।
द्वयोश्चरित्रं विदितं पुराणेषु महामते॥ १७

पितरोंने स्वेच्छासे ही कलावतीका हाथ श्रीहरिके अंशभूत बुद्धिमान् सुचन्द्रके हाथमें दे दिया। रत्नमालाको विदेहराजके हाथमें और मेनकाको हिमालयके हाथमें अर्पित कर दिया। साथ ही विधि-पूर्वक दहेजकी वस्तुएँ भी दीं। महामते! रत्नमालासे सीताजी और मेनकाके गर्भसे पार्वतीजी प्रकट हुईं। इन दोनों देवियोंकी कथाएँ पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं॥ १६-१७॥

सुचन्द्रोऽथ कलावत्या गोमतीतीरजे वने।
दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैस्ततापं ब्रह्मणस्तपः॥ १८

अथो विधिस्तमागत्य वरं ब्रूहीत्युवाच ह।
श्रुत्वा वल्मीकदेशाच्च निर्ययौ दिव्यरूपधृक्॥ १९

तं नत्वोवाच मे भूयाद्दिव्यं मोक्षं परात्परम्।
तच्छ्रुत्वा दुःखिता साध्वी विधिं प्राह कलावती॥ २०

तदनन्तर कलावतीको साथ लेकर महाभाग सुचन्द्र गोमतीके तटपर 'नैमिष' नामक वनमें गये। उन्होंने ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये तपस्या आरम्भ की। वह तप देवताओंके कालमानसे बारह वर्षोंतक चलता रहा। तदनन्तर ब्रह्माजी वहाँ पधारे और बोले—'वर माँगो।' राजाके शरीरपर दीमकें चढ़ गयी थीं। ब्रह्मवाणी सुनकर वे दिव्य रूप धारण करके बाँबीसे बाहर निकले। उन्होंने सर्वप्रथम ब्रह्माजीको प्रणाम किया और कहा—'मुझे दिव्य परात्पर मोक्ष प्राप्त हो।' राजाकी बात सुनकर साध्वी रानी कलावतीका मन दुखी हो गया॥ १८—२०॥

पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम्।
यदि मोक्षमसौ याति तदा मे का गतिर्भवेत्॥ २१

एनं विना न जीवामि यदि मोक्षं प्रदास्यसि।
तुभ्यं शापं प्रदास्यामि पतिविक्षेपविह्वला॥ २२

श्रीब्रह्मोवाच

त्वच्छापाद्भयभीतोऽहं मे वरोऽपि मृषा न हि।
तस्मात्त्वं प्राणपतिना सार्धं गच्छ त्रिविष्टपम्॥ २३

भुक्त्वा सुखानि कालेन युवां भूमौ भविष्यथः।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये द्वापरान्ते च भारते॥ २४

युवयो राधिका साक्षात्परिपूर्णतमप्रिया।
भविष्यति यदा पुत्री तदा मोक्षं गमिष्यथः॥ २५

श्रीनारद उवाच

इत्थं ब्रह्मवरेणाथ दिव्येनामोघरूपिणा।
कलावतीसुचन्द्रौ च भूमौ तौ द्वौ बभूवतुः॥ २६

कलावती कान्यकुब्जे भलन्दननृपस्य च।
जातिस्मरा ह्यभूद्दिव्या यज्ञकुण्डसमुद्भवा॥ २७

सुचन्द्रो वृषभान्वाख्यः सुरभानुगृहेऽभवत्।
जातिस्मरो गोपवरः कामदेव इवापरः॥ २८

सम्बन्धं योजयामास नन्दराजो महामतिः।
तयोश्च जातिस्मरयोरिच्छतोरिच्छया द्वयोः॥ २९

वृषभानोः कलावत्या आख्यानं शृणुते नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः कृष्णसायुज्यमाप्नुयात्॥ ३०

अतः उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—पितामह! पति ही नारियोंके लिये सर्वोत्कृष्ट देवता माना गया है। यदि ये मेरे पतिदेवता मुक्ति प्राप्त कर रहे हैं तो मेरी क्या गति होगी? इनके बिना मैं जीवित नहीं रहूँगी। यदि आप इन्हें मोक्ष देंगे तो मैं पतिसाहचर्यमें विक्षेप पड़नेके कारण विह्वल हो आपको शाप दे दूँगी॥ २१-२२॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—देवि! मैं तुम्हारे शापके भयसे अवश्य डरता हूँ; किंतु मेरा दिया हुआ वर कभी विफल नहीं हो सकता। इसलिये तुम अपने प्राणपतिके साथ स्वर्गमें जाओ। वहाँ स्वर्गसुख भोगकर कालान्तरमें फिर पृथ्वीपर जन्म लोगी। द्वापरके अन्तमें भारतवर्षमें, गङ्गा और यमुनाके बीच, तुम्हारा जन्म होगा। तुम दोनोंसे जब परिपूर्णतम भगवान्‌की प्रिया साक्षात् श्रीराधिकाजी पुत्री-रूपमें प्रकट होंगी, तब तुम दोनों साथ ही मुक्त हो जाओगे॥ २३—२५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्माजीके दिव्य एवं अमोघ वरसे कलावती और सुचन्द्र—दोनोंकी भूतलपर उत्पत्ति हुई। वे ही 'कीर्ति' तथा 'श्रीवृषभानु' हुए हैं। कलावती कान्यकुब्ज देश (कन्नौज)-में राजा भलन्दनके यज्ञकुण्डसे प्रकट हुईं। उस दिव्य कन्याको अपने पूर्वजन्मकी सारी बातें स्मरण थीं॥ २६-२७॥

सुरभानुके घर सुचन्द्रका जन्म हुआ। उस समय वे 'श्रीवृषभानु' नामसे विख्यात हुए। उन्हें भी पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही। वे गोपोंमें श्रेष्ठ होनेके साथ ही दूसरे कामदेवके समान परम सुन्दर थे। परम बुद्धिमान् नन्दराजजीने इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध जोड़ा था। उन दोनोंको पूर्वजन्मकी स्मृति थी ही, अतः वह एक-दूसरेको चाहते भी थे और दोनोंकी इच्छासे ही यह सम्बन्ध हुआ। जो मनुष्य वृषभानु और कलावतीके इस उपाख्यानको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है॥ २८—३०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीराधिकाजन्मवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीराधिकाके जन्मका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

गर्गजीकी आज्ञासे देवकका वसुदेवजीके साथ देवकीका विवाह करना; विदाईके समय आकाशवाणी सुनकर कंसका देवकीको मारनेके लिये उद्यत होना और वसुदेवजीकी शर्तपर उसे जीवित छोड़ना

श्रीनारद उवाच

तत्रैकदा श्रीमथुरापुरे वरे
पुरोहितः सर्वयदूत्तमैः कृतः।
शूरेच्छया गर्ग इति प्रमाणिकः
समाययौ सुन्दरराजमन्दिरम्॥ १

हीरारखचिद्धेमलसत्कपाटकं
द्विपेन्द्रकर्णाहतभृङ्गनादितम्।
इभस्रवन्निर्झरगण्डधारया
समावृतं मण्डपखण्डमण्डितम्॥ २

महोद्भटैर्वीरजनैः सकञ्चुकै-
र्धनुर्धरैश्चर्मकृपाणपाणिभिः।
रथद्विपाश्वध्वजिनीबलादिभिः
सुरक्षितं मण्डलमण्डलीभिः॥ ३

ददर्श गर्गो नृपदेवमाहुकं
श्वाफल्किना देवककंससेवितम्।
श्रीशक्रसिंहासन उन्नते परे
स्थितं वृतं छत्रवितानचामरैः॥ ४

दृष्ट्वा मुनिं तं सहसासनाश्रया-
दुत्थाय राजा प्रणनाम यादवैः।
संस्थाप्य सम्पूज्य सुभद्रपीठके
स्तुत्वा परिक्रम्य नतः स्थितोऽभवत्॥ ५

दत्वाशिषं गर्गमुनिर्नृपाय वै
पप्रच्छ सर्वं कुशलं नृपादिषु।
श्रीदेवकं प्राह महामना ऋषि-
र्महौजसं नीतिविदं यदूत्तमम्॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं— [राजन्!] एक समयकी बात है, श्रेष्ठ मथुरापुरीके परम सुन्दर राजभवनमें गर्गजी पधारे। वे [ज्यौतिष-शास्त्रके] बड़े प्रामाणिक विद्वान् थे। सम्पूर्ण श्रेष्ठ यादवोंने शूरसेनकी इच्छासे उन्हें अपने पुरोहितके पदपर प्रतिष्ठित किया था। मथुराके उस राजभवनमें सोनेके किवाड़ लगे थे, उन किवाड़ोंमें हीरे भी जड़े गये थे। राजद्वारपर बड़े-बड़े गजराज झूमते थे। उनके मस्तकपर झुंड-के-झुंड भौंरे आते और उन हाथियोंके बड़े-बड़े कानोंसे आहत होकर गुञ्जारव करते हुए उड़ जाते थे। इस प्रकार वह राजद्वार उन भ्रमरोंके नादसे कोलाहलपूर्ण हो रहा था। गजराजोंके गण्डस्थलसे निर्झरकी भाँति झरते हुए मदकी धारासे वह स्थान समावृत था। अनेक मण्डप-समूह उस राजमन्दिरकी शोभा बढ़ाते थे॥ १-२॥

बड़े-बड़े कवचयुक्त उद्भट वीर हाथोंमें धनुष, ढाल और तलवार धारण किये राजभवनकी सुरक्षामें तत्पर थे। रथ, हाथी, घोड़े और पैदल—इस चतुरङ्गिणी सेना तथा माण्डलिकोंकी मण्डलीद्वारा भी वह राजमन्दिर सुरक्षित था॥ ३॥

मुनिवर गर्गने उस राजभवनमें प्रवेश करके इन्द्रके सदृश उत्तम और ऊँचे सिंहासनपर विराजमान राजा उग्रसेनको देखा। अक्रूर, देवक तथा कंस उनकी सेवामें खड़े थे और राजा छत्र-चँदोवेसे सुशोभित थे तथा उनपर चँवर डुलाये जा रहे थे। मुनिको उपस्थित देख राजा उग्रसेन सहसा सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। उन्होंने अन्यान्य यादवोंके साथ उन्हें प्रणाम किया और सुभद्र-पीठपर बिठाकर उनकी सम्यक् प्रकारसे पूजा की। फिर स्तुति और परिक्रमा करके वे उनके सामने विनीतभावसे खड़े हो गये। गर्ग मुनिने राजाको आशीर्वाद देकर समस्त राजपरिवारका कुशल-मंगल पूछा। फिर उन महामना महर्षिने नीतिवेत्ता यदुश्रेष्ठ देवकसे कहा— ॥ ४—६॥

श्रीगर्ग उवाच

शौरिं विना भुवि नृपेषु वरस्तु नास्ति
चिन्त्यो मया बहुदिनैः किल यत्र तत्र।
तस्मान्नृदेव वसुदेववराय देहि
श्रीदेवकीं निजसुतां विधिनोद्वहस्व॥ ७

श्रीनारद उवाच

कृत्वा तदैव पुरि निश्चयनागवल्लीं
श्रीदेवकः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः।
गर्गेच्छया तु वसुदेववराय पुत्रीं
कृत्वाथ मङ्गलमलं प्रददौ विवाहे॥ ८

कृतोद्वहः शौरिरतीव सुन्दरं
रथं प्रयाणे समलङ्कृतं हयैः।
सार्धं तया देवकराजकन्यया
समारुहत्काञ्चनरत्नशोभया ॥ ९

स्वसुः प्रियं कर्तुमतीव कंसो
जग्राह रश्मींश्चलतां हयानाम्।
उवाह वाहांश्चतुरङ्गिणीभि-
र्वृतः कृपास्नेहपरोऽथ शौरौ॥ १०

दासीसहस्रं त्वयुतं गजानां
सत्पारिबर्हं नियुतं हयानाम्।
लक्षं रथानां च गवां द्विलक्षं
प्रादाद्दुहित्रे नृप देवको वै॥ ११

भेरीमृदङ्गोद्धरगोमुखानां
धुन्धुर्यवीणानकवेणुकानाम् ।
महत्स्वनोऽभूच्चलतां यदूनां
प्रयाणकाले पथि मङ्गलं च॥ १२

आकाशवागाह तदैव कंसं
त्वामष्टमो हि प्रसवोऽञ्जसास्याः।
हन्ता न जानासि च यां रथस्थां
रश्मीन् गृहीत्वा वहसेऽबुधस्त्वम्॥ १३

कुसङ्गनिष्ठोऽतिखलो हि कंसो
हन्तुं स्वसारं धिषणां चकार।
कचे गृहीत्वा शितखड्गपाणि-
र्गतत्रपो निर्दय उग्रकर्मा॥ १४

श्रीगर्गजी बोले—[राजन्!] मैंने बहुत दिनोंतक इधर-उधर ढूँढ़ा और सोचा-विचारा है। मेरी दृष्टिमें वसुदेवजीको छोड़कर भूमण्डलके नरेशोंमें दूसरा कोई देवकीके योग्य वर नहीं है। इसलिये नरदेव! वसुदेवको ही वर बनाकर उन्हें अपनी पुत्री देवकीको सौंप दो और विधिपूर्वक दोनोंका विवाह कर दो॥ ७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! गर्गजीके उक्त आदेशको ही शिरोधार्य करके समस्त धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीदेवकने सगाईके निश्चयके लिये पानका बीड़ा भेज दिया और गर्गजीकी इच्छासे मङ्गलाचारका सम्पादन करके विवाहमें वसुदेव-वरको अपनी पुत्री अर्पित कर दी॥ ८॥

विवाह हो जानेपर विदाईके समय वसुदेवजी घोड़ोंसे सुशोभित अत्यन्त सुन्दर रथपर सुवर्ण-निर्मित एवं रत्नमय आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न नववधू देवकराज-कन्या देवकीके साथ आरूढ़ हुए वसुदेवके प्रति कंसका बहुत ही स्नेह और कृपाभाव था। वह अपनी बहनका अत्यन्त प्रिय करनेके लिये चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आकर गमनोद्यत घोड़ोंकी बागडोर अपने हाथमें ले स्वयं रथ हाँकने लगा। हे नृप! उस समय देवकने अपनी पुत्रीके लिये उत्तम दहेजके रूपमें एक हजार दासियाँ, दस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, एक लाख रथ और दो लाख गौएँ प्रदान कीं॥ ९—११॥

उस विदाकालमें भेरी, उत्तम मृदङ्ग, गोमुख, धुन्धुरि, वीणा, ढोल और वेणु आदि वाद्योंका और साथ जानेवाले यादवोंका महान् कोलाहल हुआ। उस समय मङ्गलगीत गाये जा रहे थे और मंगलपाठ भी हो रहा था। उसी समय आकाशवाणीने कंसको सम्बोधित करके कहा—'अरे मूर्ख कंस! घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लेकर जिसे रथपर बैठाये लिये जा रहा है, इसीकी आठवीं संतान अनायास ही तेरा वध कर डालेगी—तू इस बातको नहीं जानता'॥ १२-१३॥

कंस सदा दुष्टोंका ही साथ करता था। स्वभावसे भी वह अत्यन्त खल (दुष्ट) था। लज्जा तो उसे छू नहीं गयी थी। वह निर्दय होनेके कारण बड़े भयंकर कर्म कर डालता था। उसने तीखी धारवाली तलवार हाथमें उठा ली, बहनके केश पकड़ लिये और उसे मारनेका निश्चय कर लिया॥ १४॥

वादित्रकारा रहिता बभूवु-
रग्रे स्थिताः स्युश्चकिता हि पश्चात्।
सर्वेषु वा श्वेतमुखेषु सत्सु
शौरिस्तमाहाशु सतां वरिष्ठः॥ १५

उस समय बाजेवालोंने बाजे बंद कर दिये। जो आगे थे, वे चकित होकर पीछे देखने लगे। सबके मुँहपर मुर्दनी छा गयी। ऐसी स्थितिमें सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीवसुदेवजीने कंससे कहा— ॥ १५ ॥

श्रीवसुदेव उवाच

भोजेन्द्र भोजकुलकीर्तिकरस्त्वमेव
भौमादिमागधबकासुरवत्सबाणैः ।
श्लाघ्या गुणास्तव युधि प्रतियोद्धुकामैः
स त्वं कथं तु भगिनीमसिनात्र हन्याः॥ १६

ज्ञात्वा स्त्रियं किल बकीं प्रतियोद्धुकामां
युद्धं कृतं न भवता नृपनीतिवृत्त्या।
सा तु त्वयापि भगिनीव कृता प्रशान्त्यै
साक्षादियं तु भगिनी किमु ते विचारात्॥ १७

श्रीवसुदेवजी बोले—भोजेन्द्र! आप इस वंशकी कीर्तिका विस्तार करनेवाले हैं। भौमासुर, जरासंध, बकासुर, वत्सासुर और बाणासुर—सभी योद्धा आपसे लड़नेके लिये युद्धभूमिमें आये; किंतु उन्होंने आपकी प्रशंसा ही की। वे ही आप तलवारसे बहनका वध करनेको कैसे उद्यत हो गये? बकासुरकी बहन पूतना आपके पास आकर लड़नेकी इच्छा करने लगी; किंतु आपने राजनीतिके अनुरूप बर्ताव करनेके कारण स्त्री समझकर उसके साथ युद्ध नहीं किया। उस समय शान्ति-स्थापनके लिये आपने पूतनाको बहनके तुल्य बनाकर छोड़ दिया। फिर यह तो आपकी साक्षात् बहन है। किस विचारसे आप इस अनुचित कृत्यमें लग गये?॥ १६-१७॥

उद्वाहपर्वणि गता च तवानुजा च
बाला सुतेव कृपणा शुभदा सदैषा।
योग्योऽसि नात्र मथुराधिप हन्तुमेनां
त्वं दीनदुःखहरणे कृतचित्तवृत्तिः॥ १८

मथुरानरेश! यह कन्या यहाँ विवाहके शुभ अवसरपर आयी है। आपकी छोटी बहन है। बालिका है। पुत्रीके समान दयनीय—दयापात्र है। यह सदा आपको सद्भावना प्रदान करती आयी है। अतः इसका वध करना आपके लिये कदापि उचित नहीं है। आपकी चित्तवृत्ति तो दीन-दुःखियोंके दुःख दूर करनेमें ही लगी रहती है॥ १८॥

श्रीनारद उवाच

नामन्यतेत्थं प्रतिबोधितोऽपि
कुसङ्गनिष्ठोऽतिखलो हि कंसः।
तदा हरेः कालगतिं विचार्य
शौरिः प्रपन्नः पुनराह कंसम्॥ १९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वसुदेवजीके समझानेपर भी अत्यन्त खल और कुसङ्गी कंसने उनकी बात नहीं मानी। तब वसुदेवजी, यह भगवान्‌का विधान है, अथवा कालकी ऐसी ही गति है— यह समझकर भगवत्-शरणापन्न हो, पुनः कंससे बोले— ॥१९॥

श्रीवसुदेव उवाच

नास्यास्तु ते देव भयं कदाचिद्
यद्देववाण्या कथितं च तच्छृणु।
पुत्रान् ददामीति यतो भयं स्यान्
मा ते व्यथास्याः प्रसवप्रजातात्॥ २०

श्रीवसुदेवजीने कहा—राजन्! इस देवकीसे तो आपको कभी भय है नहीं। आकाशवाणीने जो कुछ कहा है, उसके विषयमें मेरा विचार सुनिये। मैं इसके गर्भसे उत्पन्न सभी पुत्र आपको दे दूँगा; क्योंकि उन्हींसे आपको भय है। अतः व्यथित न होइये॥ २०॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा स निश्चित्य वचोऽथ शौरेः
कंसः प्रशंस्याशु गृहं गतोऽभूत्।
शौरिस्तदा देवकराजपुत्र्या
भयावृतः सन् गृहमाजगाम॥ २१

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश! कंसने वसुदेवजीके निश्चयपूर्वक कहे गये वचनपर विश्वास कर लिया। अतः उनकी प्रशंसा करके वह उसी क्षण घरको चला गया। इधर वसुदेवजी भी भयभीत हो देवकीके साथ अपने भवनको पधारे॥ २१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वसुदेवविवाहवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वसुदेवके विवाहका वर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

कंसके अत्याचार; बलभद्रजीका अवतार तथा व्यासदेवद्वारा उनका स्तवन

श्रीनारद उवाच

भीतः पलायते नायं योद्धारः कंसनोदिताः।
अयुतं शस्त्रसंयुक्ता रुरुधुः शौरिमन्दिरम्॥ १

शौरिः कालेन देवक्यामष्टौ पुत्रानजीजनत्।
अनुवर्षं चाथ कन्यामेकां मायां सनातनीम्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] कंसने सोचा, वसुदेवजी भयभीत होकर कहीं भाग न जायँ—ऐसा विचार मनमें आते ही उसने बहुत-से सैनिक भेज दिये। कंसकी आज्ञासे दस हजार शस्त्रधारी सैनिकोंने पहुँचकर वसुदेवजीका घर घेर लिया। वसुदेवजीने यथासमय देवकीके गर्भसे आठ पुत्र उत्पन्न किये, वे क्रमशः एक वर्षके बाद होते गये। फिर उन्होंने एक कन्याको भी जन्म दिया, जो भगवान्‌की सनातनी माया थी॥ १-२॥

कीर्तिमन्तं सुतं ह्यादौ जातमानकदुन्दुभिः।
नीत्वा कंसं समभ्येत्य ददौ तस्मै परार्थवित्॥ ३

सत्यवाक्यस्थितं शौरिं दृष्ट्वा कंसो घृणी ह्यभूत्।
दुःखं साधुस्तु सहते सत्ये कस्य क्षमा न हि॥ ४

सर्वप्रथम जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम कीर्तिमान् था। वसुदेवजी उसे गोदमें उठाकर कंसके पास ले गये। वे दूसरेके प्रयोजनको भी अच्छी तरहसे समझते थे, इसलिये वह बालक उन्होंने कंसको दे दिया। वसुदेवजीको अपने सत्यवचनके पालनमें तत्पर देख कंसको दया आ गयी। साधुपुरुष दुःख सह लेते हैं, परंतु अपनी कही हुई बात मिथ्या नहीं होने देते। सचाई देखकर किसके मनमें क्षमाका भाव उदित नहीं होता?॥ ३-४॥

कंस उवाच

एष बालो यातु गृहमेतस्मान्न हि मे भयम्।
युवयोरष्टमं गर्भं हनिष्यामि न संशयः॥ ५

कंसने कहा—[वसुदेवजी!] यह बालक आपके साथ ही घर लौट जाय, इससे मुझे कोई भय नहीं है। परंतु आप दोनोंका जो आठवाँ गर्भ होगा, उसका वध मैं अवश्य करूँगा—इसमें कोई संशय नहीं है॥ ५॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो वसुदेवस्तु सपुत्रो गृहमागतः।
सत्यं नामन्यत मनाग्वाक्यं तस्य दुरात्मनः॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] कंसके यों कहनेपर वसुदेवजी अपने पुत्रके साथ घर लौट आये, परंतु उस दुरात्माके वचनको उन्होंने तनिक भी सत्य नहीं माना॥ ६॥

तदाम्बरादागतं मां नत्वा पूज्योग्रसेनजः।
पप्रच्छ देवाभिप्रायं प्रावोचं तं निबोध मे॥ ७

नन्दाद्या वसवः सर्वे वृषभान्वादयः सुराः।
गोप्यो वेदऋचाद्याश्च सन्ति भूमौ नृपेश्वर॥ ८

वसुदेवादयो देवा मथुरायां च वृष्णयः।
देवक्याद्याः स्त्रियः सर्वा देवताः सन्ति निश्चयः॥ ९

सप्तवारप्रसंख्यानादष्टमाः सर्व एव हि।
ते हन्तुः संख्ययायं वा देवानां वामतो गतिः॥ १०

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा तं मयि गते कृतदैत्यवधोद्यमे।
कंसः कोपावृतः सद्यो यदून् हन्तुं मनो दधे॥ ११

वसुदेवं देवकीं च बद्ध्वाथ निगडैर्दृढैः।
ममर्द तं शिलापृष्ठे देवकीगर्भजं शिशुम्॥ १२

जातिस्मरो विष्णुभयाज्जातं जातं जघान ह।
इति दुष्टविभावाच्च भूमौ भूतं ह्यसंशयम्॥ १३

उग्रसेनस्तदा क्रुद्धो यादवेन्द्रो नृपेश्वरः।
वारयामास कंसाख्यं वसुदेवसहायकृत्॥ १४

कंसस्य दुरभिप्रायं दृष्ट्वोत्तस्थुर्महाभटाः।
उग्रसेनानुगा रक्षां चक्रुस्ते खड्गपाणयः॥ १५

उग्रसेनानुगान् दृष्ट्वा कंसवीराः समुत्थिताः।
तैः सार्धमभवद्युद्धं सभामण्डपमध्यतः॥ १६

उस समय आकाशसे उतरकर मैं वहाँ गया। उग्रसेनकुमार कंसने मुझे मस्तक झुकाकर मेरा स्वागत-सत्कार किया और मुझसे देवताओंका अभिप्राय पूछा। उस समय मैंने उसे जो उत्तर दिया, वह मुझसे सुनो। मैंने कहा—नन्द आदि गोप वसुके अवतार हैं और वृषभानु आदि देवताओंके। नृपेश्वर कंस! इस व्रजभूमिमें जो गोपियाँ हैं, उनके रूपमें वेदोंकी ऋचाएँ आदि यहाँ निवास करती हैं॥ ७-८॥

मथुरामें वसुदेव आदि जो वृष्णिवंशी हैं, वे सब-के-सब मूलतः देवता ही हैं। देवकी आदि सम्पूर्ण स्त्रियाँ भी निश्चय ही देवाङ्गनाएँ हैं। सात बार गिन लेनेपर सभी अङ्क आठ ही हो जाते हैं। तुम्हारे घातककी संख्यासे गिना जाय तो यह प्रथम बालक भी आठवाँ हो सकता है; क्योंकि देवताओंकी 'वामतो गति' है॥ ९-१०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[मिथिलेश्वर!] उससे यों कहकर जब मैं चला आया, तब देवताओंद्वारा किये गये दैत्यवधके लिये उद्योगपर कंसको बड़ा क्रोध हुआ। उसने उसी क्षण यादवोंको मार डालनेका विचार किया। उसने वसुदेव और देवकीको मजबूत बेड़ियोंसे बाँधकर कैद कर लिया और देवकीके उस प्रथम-गर्भजनित शिशुको शिलापृष्ठपर रखकर पीस डाला॥ ११-१२॥

उसे अपने पूर्वजन्मकी घटनाओंका स्मरण था, अतः भगवान् विष्णुके भयसे तथा अपने दुष्ट स्वभावके कारण भी उसने इस भूतलपर प्रकट हुए देवकीके प्रत्येक बालकको जन्म लेते ही मार डाला। ऐसा करनेमें उसे तनिक भी हिचक नहीं हुई। यह सब देखकर यदुकुल-नरेश राजा उग्रसेन उस समय कुपित हो उठे। उन्होंने वसुदेवजीकी सहायता की और कंसको अत्याचार करनेसे रोका। कंसके दुष्ट अभिप्रायको प्रत्यक्ष देख महान् यादव वीर उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। वे उग्रसेनके पीछे रहकर, खड्गहस्त हो उनकी रक्षा करने लगे॥ १३—१५॥

उग्रसेनके अनुगामियोंको युद्धके लिये उद्यत देख कंसके निजी वीर सैनिक भी उनका सामना करनेके लिये खड़े हुए। राजसभाके मण्डपमें ही उन दोनों दलोंका परस्पर युद्ध होने लगा॥ १६॥

द्वारदेशेऽपि वीराणां युद्धं जातं परस्परम्।
खड्गप्रहारैरयुतं जनानां निधनं गतम्॥ १७

कंसो गृहीत्वाथ गदां पितुः सेनां ममर्द ह।
कंसस्य गदया स्पृष्टाः केचिच्छिन्नललाटकाः॥ १८

भिन्नपादा भिन्नमुखाश्छिन्नाशाश्छिन्नबाहवः।
अधोमुखा ऊर्ध्वमुखाः सशस्त्राः पतिताः क्षणात्॥ १९

वमन्तो रुधिरं वीरा मूर्च्छिता निधनं गताः।
सभामण्डपमारक्तं दृश्यते क्षतजस्त्रवात्॥ २०

इत्थं मदोत्कटः कंसः सन्निपात्योद्भटान् रिपून्।
क्रोधाढ्यो राजराजेन्द्रं जग्राह पितरं खलः॥ २१

नृपासनात्सङ्गृहीत्वा बद्ध्वा पाशैश्च तं खलः।
तन्मित्रैश्च नृपं सार्धं कारागारे रुरोध ह॥ २२

मधूनां शूरसेनानां देशानां सर्वसम्पदाम्।
सिंहासने चोपविश्य स्वयं राज्यं चकार ह॥ २३

पीडिता यादवाः सर्वे सम्बन्धस्य मिषैस्त्वरम्।
चतुर्दिशान्तरं देशान् विविशुः कालवेदिनः॥ २४

देवक्याः सप्तमे गर्भे हर्षशोकविवर्धने।
व्रजं प्रणीते रोहिण्यामनन्ते योगमायया॥ २५

अहो गर्भः क्व विगत इत्यूचुर्माथुरा जनाः॥ २६

अथ व्रजे पञ्चदिनेषु भाद्रे
स्वातौ च षष्ठ्यां च सिते बुधे च।
उच्चैर्ग्रहैः पञ्चभिरावृते च
लग्ने तुलाख्ये दिनमध्यदेशे॥ २७

सुरेषु वर्षत्सु सुपुष्पवर्षं
घनेषु मुञ्चत्सु च वारिबिन्दून्।
बभूव देवो वसुदेवपत्न्यां
विभासयन्नन्दगृहं स्वभासा॥ २८

राजद्वारपर भी उन दोनों दलोंके वीरोंमें परस्पर युद्ध छिड़ गया। वे सब लोग खुलकर एक-दूसरेपर खड्गका प्रहार करने लगे। इस संघर्षमें दस हजार मनुष्य खेत रहे। तदनन्तर कंसने गदा हाथमें लेकर पिताकी सेनाको कुचलना आरम्भ किया। उसकी गदासे छू जानेसे ही कितने ही लोगोंके मस्तक फट गये, कितनोंके पाँव कट गये, नख विदीर्ण हो गये, बाँहें कट गयीं और उनकी आशापर पानी फिर गया। कोई औंधे मुँह और कोई उतान होकर अस्त्र-शस्त्र लिये क्षणभरमें धराशायी हो गये॥ १७—१९॥

बहुत-से वीर खून उगलते हुए मूर्च्छित हो कालके गालमें चले गये। वहाँ इतना रक्त प्रवाहित हुआ कि सारा सभामण्डप रँग गया॥ २०॥

राजराजेश्वर! इस प्रकार दुष्ट एवं मदमत्त कंसने कुपित हो उद्भट शत्रुओंको धराशायी करके अपने पिताको कैद कर लिया। उन्हें राजसिंहासनसे उतारकर उस दुष्टने पाशोंसे बाँधा और उनके मित्रोंके साथ उन्हें भी कारागारमें बंद कर दिया। मधु और शूरसेन प्रदेशोंकी सारी सम्पत्तियोंपर अधिकार करके कंस स्वयं सिंहासनपर जा बैठा और राज्यशासन करने लगा॥ २१—२३॥

समस्त पीड़ित यादव सम्बन्धीके घरपर जानेके बहाने तुरंत चारों दिशाओंमें विभिन्न देशोंके भीतर जाकर रहने लगे और उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। देवकीका सातवाँ गर्भ उनके लिये हर्ष और शोक दोनोंकी वृद्धि करनेवाला हुआ, उसमें साक्षात् अनन्तदेव अवतीर्ण हुए थे। योगमायाने देवकीके उस गर्भको खींचकर व्रजमें रोहिणीकी कुक्षिके भीतर पहुँचा दिया। ऐसा हो जानेपर मथुराके लोग खेद प्रकट करते हुए कहने लगे—'अहो! बेचारी देवकीका गर्भ कहाँ चला गया? कैसे गिर गया?'॥ २४—२६॥

व्रजमें उस गर्भको गये पाँच ही दिन बीते थे कि भाद्रपद शुक्ला षष्ठीको, स्वाती नक्षत्रमें, बुधके दिन वसुदेवकी पत्नी रोहिणीके गर्भसे अनन्तदेवका प्राकट्य हुआ। उच्चस्थानमें स्थित पाँच ग्रहोंसे घिरे हुए तुला लग्नमें, दोपहरके समय बालकका जन्म हुआ। उस जन्म-वेलामें जब देवता फूल बरसा रहे थे और बादल वारिबिन्दु बिखेर रहे थे, प्रकट हुए अनन्तदेवने अपनी अङ्गकान्तिसे नन्दभवनको उद्भासित कर दिया॥ २७-२८॥

नन्दोऽपि कुर्वन् शिशुजातकर्म
ददौ द्विजेभ्यो नियुतं गवां च।
गोपान् समाहूय सुगायकानां
रावैर्महामङ्गलमातनोति ॥ २९

द्वैपायनो देवलदेवरात-
वसिष्ठवाचस्पतिभिर्मया च।
आगत्य तत्रैव समास्थितोऽभूत्
पाद्यादिभिर्नन्दकृतैः प्रसन्नः ॥ ३०

नन्दराज उवाच

सुन्दरो बालकः कोऽयं न दृश्यो यत्समः क्वचित्।
कथं पञ्चदिनाज्जातस्तन्मे ब्रूहि महामुने॥ ३१

श्रीव्यास उवाच

अहोभाग्यं तु ते नन्द शिशुः शेषः सनातनः।
देवक्यां वसुदेवस्य जातोऽयं मथुरापुरे॥ ३२

कृष्णेच्छया तदुदरात्प्रणीतो रोहिणीं शुभाम्।
नन्दराज त्वया दृश्यो दुर्लभो योगिनामपि॥ ३३

तद्दर्शनार्थं प्राप्तोऽहं वेदव्यासो महामुनिः।
तस्मात्त्वं दर्शयास्माकं शिशुरूपं परात्परम्॥ ३४

श्रीनारद उवाच

अथ नन्दः शिशुं शेषं दर्शयामास विस्मितः।
दृष्ट्वा प्रेङ्खस्थितं प्राह नत्वा सत्यवतीसुतः॥ ३५

श्रीव्यास उवाच

देवाधिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते।
नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः॥ ३६

धराधराय पूर्णाय स्वधाम्ने सीरपाणये।
सहस्रशिरसे नित्यं नमः सङ्कर्षणाय ते॥ ३७

नन्दरायजीने भी उस शिशुका जातकर्मसंस्कार करके ब्राह्मणोंको दस लाख गौएँ दान कीं। गोपोंको बुलाकर उत्तम गान-विद्यामें निपुण गायकोंके संगीतके साथ महान् मङ्गलमय उत्सवका आयोजन किया। देवल, देवरात, वसिष्ठ, बृहस्पति और मुझ नारदके साथ आकर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास भी वहाँ बैठे और नन्दजीके दिये हुए पाद्य आदि उपहारोंसे अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ २९-३०॥

नन्दरायजीने पूछा—[महर्षियो!] यह सुन्दर बालक कौन है, जिसके समान दूसरा कोई देखनेमें नहीं आता? महामुने! इसका जन्म पाँच ही दिनोंमें कैसे हुआ? यह मुझे बताइये॥ ३१॥

श्रीव्यासजी बोले—नन्द! तुम्हारा अद्भुत सौभाग्य है, इस शिशुके रूपमें साक्षात् सनातन देवता शेषनाग पधारे हैं। पहले तो मथुरापुरीमें वसुदेवसे देवकीके गर्भमें इनका आविर्भाव हुआ। फिर भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे इनका देवकीके उदरसे कल्याणमयी रोहिणीके गर्भमें आगमन हुआ है। नन्दराय! ये योगियोंके लिये भी दुर्लभ हैं, किंतु तुम्हें इनका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है। मैं महामुनि वेदव्यास इनके दर्शनके लिये ही यहाँ आया हूँ, अतः तुम शिशुरूपधारी इन परात्पर देवताका हम सबको दर्शन कराओ॥ ३२—३४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] तदनन्तर नन्दने विस्मित होकर शिशुरूपधारी शेषका उन्हें दर्शन कराया। पालनेमें विराजमान शेषजीका दर्शन करके सत्यवतीनन्दनने उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की— ॥ ३५॥

श्रीव्यासजी बोले—भगवन्! आप देवताओंके भी अधिदेवता और कामपाल (सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाले) हैं, आपको नमस्कार है। आप साक्षात् अनन्तदेव शेषनाग हैं, बलराम हैं; आपको मेरा प्रणाम है। आप धरणीधर, पूर्णस्वरूप, स्वयं-प्रकाश, हाथमें हल धारण करनेवाले, सहस्र मस्तकोंसे सुशोभित तथा संकर्षणदेव हैं, आपको नमस्कार है॥ ३६-३७॥

रेवतीरमण त्वं वै बलदेवोऽच्युताग्रजः।
हलायुधः प्रलम्बघ्नः पाहि मां पुरुषोत्तम॥ ३८

बलाय बलभद्राय तालाङ्काय नमो नमः।
नीलाम्बराय गौराय रौहिणेयाय ते नमः॥ ३९

धेनुकारिर्मुष्टिकारिः कुम्भाण्डारिस्त्वमेव हि।
रुक्म्यरिः कूपकर्णारिः कूटारिर्बल्वलान्तकः॥ ४०

कालिन्दीभेदनोऽसि त्वं हस्तिनापुरकर्षकः।
द्विविदारिर्यादवेन्द्रो व्रजमण्डलमण्डनः॥ ४१

कंसभ्रातृप्रहन्तासि तीर्थयात्राकरः प्रभुः।
दुर्योधनगुरुः साक्षात्पाहि पाहि जगत्प्रभो॥ ४२

जय जयाच्युत देव परात्पर
स्वयमनन्त दिगन्तगतश्रुत।
सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रवराय ते
मुसलिने बलिने हलिने नमः॥ ४३

इह पठेत्सततं स्तवनं तु यः
स तु हरेः परमं पदमाव्रजेत्।
जगति सर्वबलं त्वरिमर्दनं
भवति तस्य जयः स्वधनं घनम्॥ ४४

श्रीनारद उवाच

बलं परिक्रम्य शतं प्रणम्य तै-
र्द्वैपायनो देवपराशरात्मजः।
विशालबुद्धिर्मुनिबादरायणः
सरस्वतीं सत्यवतीसुतो ययौ॥ ४५

रेवतीरमण! आप ही बलदेव तथा श्रीकृष्णके अग्रज हैं, हलायुध हैं एवं प्रलम्बासुरके नाशक हैं। पुरुषोत्तम! आप मेरी रक्षा कीजिये। आप बल, बलभद्र तथा तालके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आप नील-वस्त्रधारी, गौरवर्ण तथा रोहिणीके सुपुत्र हैं; आपको मेरा प्रणाम है। आप ही धेनुक, मुष्टिक, कुम्भाण्ड, रुक्मी, कूपकर्ण, कूट तथा बल्वलके शत्रु हैं॥ ३८—४०॥

कालिन्दीकी धाराको मोड़नेवाले और हस्तिनापुरको गङ्गाकी ओर आकर्षित करनेवाले आप ही हैं। आप द्विविदके विनाशक, यादवोंके स्वामी तथा व्रजमण्डलके मण्डन (भूषण) हैं। आप कंसके भाइयोंका वध करनेवाले तथा तीर्थयात्रा करनेवाले प्रभु हैं। दुर्योधनके गुरु भी साक्षात् आप ही हैं। प्रभो! जगत्‌की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ४१-४२॥

अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले परात्पर देवता साक्षात् अनन्त! आपकी जय हो, जय हो। आपका सुयश समस्त दिगन्तमें व्याप्त है। आप सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और फणीन्द्रोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। मुसलधारी, हलधर तथा बलवान् हैं; आपको नमस्कार है॥ ४३॥

जो इस जगत्‌में सदा ही इस स्तवनका पाठ करेगा, वह श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होगा। संसारमें उसे शत्रुओंका संहार करनेवाला सम्पूर्ण बल प्राप्त होगा। उसकी सदा जय होगी और वह प्रचुर धनका स्वामी होगा॥ ४४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पराशरनन्दन विशाल-बुद्धि बादरायण मुनि सत्यवतीकुमार श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास उन मुनियोंके साथ बलरामजीको सौ बार प्रणाम और परिक्रमा करके सरस्वती नदीके तटपर चले गये॥ ४५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे बलभद्रजन्मवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'बलभद्रजीके जन्मका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान्‌का वसुदेव-देवकीमें आवेश; देवताओंद्वारा उनका स्तवन; आविर्भावकाल; अवतार-विग्रहकी झाँकी; वसुदेव-देवकीकृत भगवत्-स्तवन; भगवान्‌द्वारा उनके पूर्वजन्मके वृत्तान्तवर्णनपूर्वक अपनेको नन्दभवनमें पहुँचानेका आदेश; कंसद्वारा नन्दकन्या योगमायासे कृष्णके प्राकट्यकी बात जानकर पश्चात्तापपूर्वक वसुदेव-देवकीको बन्धनमुक्त करना, क्षमा माँगना और दैत्योंको बाल-वधका आदेश देना

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
विवेश वसुदेवस्य मनः पूर्वं परात्परः॥ १

सूर्येन्दुवह्निसङ्काशो वसुदेवो महामनाः।
बभूवात्यन्तमहसा साक्षाद्यज्ञ इवापरः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! तदनन्तर परात्पर एवं परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण पहले वसुदेवजीके मनमें आविष्ट हुए। भगवान्‌का आवेश होते ही महामना वसुदेव सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि के समान महान् तेजसे उद्भासित हो उठे, मानो उनके रूपमें दूसरे यज्ञनारायण ही प्रकट हो गये हों॥ १-२॥

देवक्यामागते कृष्णे सर्वेषामभयङ्करे।
रराज तेन सा गेहे घने सौदामिनी यथा॥ ३

तेजोवतीं च तां वीक्ष्य कंसः प्राह भयातुरः।
प्राप्तोऽयं प्राणहन्ता मे पूर्वमेषा न चेदृशी॥ ४

जातमात्रं हनिष्यामीत्युक्त्वास्ते भयविह्वलः।
पश्यन् सर्वत्र च हरिं पूर्वशत्रुं विचिन्तयन्॥ ५

फिर सबको अभय देनेवाले श्रीकृष्ण देवी देवकीके गर्भमें आविष्ट हुए। इससे उस कारागृहमें देवकी उसी तरह दिव्य दीप्तिसे दमक उठीं, जैसे घनमालामें चपला चमक उठती है। देवकीके उस तेजस्वी रूपको देखकर कंस मन-ही-मन भयसे व्याकुल होकर बोला—'यह मेरा प्राणहन्ता आ गया; क्योंकि इसके पहले यह ऐसी तेजस्विनी नहीं थी। इस शिशुको जन्म लेते ही मैं अवश्य मार डालूँगा।' यों कहकर वह भयसे विह्वल हो उस बालकके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा। भयके कारण अपने पूर्वशत्रु भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए वह सर्वत्र उन्हींको देखने लगा॥ ३—५॥

अहो वैरानुबन्धेन साक्षात्कृष्णोऽपि दृश्यते।
तस्माद्वैरं प्रकुर्वन्ति कृष्णप्राप्त्यर्थमासुराः॥ ६

अथ ब्रह्मादयो देवा मुनीन्द्रैरस्मदादिभिः।
शौरिगेहोपरि प्राप्ताः स्तवं चक्रुः प्रणम्य तम्॥ ७

अहो! दृढ़तापूर्वक वैर बँध जानेसे भगवान् कृष्णका भी प्रत्यक्षकी भाँति दर्शन होने लगता है। इसलिये असुर श्रीकृष्णकी प्राप्तिके उद्देश्यसे ही उनके साथ वैर करते हैं। जब भगवान् गर्भमें आविष्ट हुए, तब ब्रह्मादि देवता तथा अस्मदादि (नारद-प्रभृति) मुनीश्वर वसुदेवके गृहके ऊपर आकाशमें स्थित हो, भगवान्‌को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे॥ ६-७॥

देवा ऊचुः

यज्जागरादिषु भवेषु परं ह्यहेतु-
हेतुः स्विदस्य विचरन्ति गुणाश्रयेण।
नैतद्विशन्ति महदिन्द्रियदेवसङ्घा-
स्तस्मै नमोऽग्निमिव विस्तृतविस्फुलिङ्गाः॥ ८

देवता बोले—जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंमें प्रतीत होनेवाले विश्वके जो एकमात्र हेतु होते हुए भी अहेतु हैं, जिनके गुणोंका आश्रय लेकर ही ये प्राणिसमुदाय सब ओर विचरते हैं तथा जैसे अग्निसे निकलकर सब ओर फैले हुए विस्फुलिङ्ग (चिनगारियाँ) पुनः उसमें प्रवेश नहीं करते, उसी प्रकार महत्तत्त्व, इन्द्रियवर्ग तथा उनके अधिष्ठाता देव-समुदाय जिनसे प्रकट हो पुनः उनमें प्रवेश नहीं पाते, उन परमात्मा आप भगवान् श्रीकृष्णको हमारा सादर नमस्कार है॥ ८॥

नैवेशितुं प्रभुरयं बलिनां बलीयान्
माया न शब्द उत नो विषयीकरोति।
तद्ब्रह्म पूर्णममृतं परमं प्रशान्तं
शुद्धं परात्परतरं शरणं गताः स्मः॥ ९

बलवानोंमें भी सबसे अधिक बलिष्ठ यह काल भी जिनपर शासन करनेमें समर्थ नहीं है, माया भी जिनपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती तथा नित्यशब्द (वेद) जिनको अपना विषय नहीं बना पाता, उन परम अमृत, प्रशान्त, शुद्ध, परात्पर पूर्ण ब्रह्मस्वरूप आप भगवान्‌की हम शरणमें आये हैं॥ ९॥

अंशांशकांशककलाद्यवतारवृन्दै-
रावेशपूर्णसहितैश्च परस्य यस्य।
सर्गादयः किल भवन्ति तमेव कृष्णं
पूर्णात्परं तु परिपूर्णतमं नताः स्मः॥ १०

मन्वन्तरेषु च युगेषु गतागतेषु
कल्पेषु चांशकलया स्ववपुर्बिभर्षि।
अद्यैव धाम परिपूर्णतमं तनोषि
धर्मं विधाय भुवि मङ्गलमातनोषि॥ ११

जिन परमेश्वरके अंशावतार, अंशांशावतार, कलावतार, आवेशावतार तथा पूर्णावतारसहित विभिन्न अवतारोंद्वारा इस विश्वके सृष्टि, पालन आदि कार्य सम्पादित होते हैं, उन्हीं पूर्णसे भी परे परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको हम प्रणाम करते हैं। प्रभो! अतीत, वर्तमान और अनागत (भविष्य) मन्वन्तरों, युगों तथा कल्पोंमें आप अपने अंश और कलाद्वारा अवतार-विग्रह धारण करते हैं। किंतु आज ही वह सौभाग्यपूर्ण अवसर आया है, जब कि आप अपने परिपूर्णतम धाम (तेजःपुञ्ज)-का यहाँ विस्तार कर रहे हैं! अब इस परिपूर्णतम अवतारद्वारा भूतलपर धर्मकी स्थापना करके आप लोकमें मङ्गल (कल्याण)-का प्रसार करेंगे॥ १०-११॥

यद्दुर्लभं विशदयोगिभिरप्यगम्यं
गम्यं द्रवद्भिरमलाशयभक्तियोगैः।
आनन्दकन्द चरतस्तव मन्दयान-
पादारविन्दमकरन्दरजो दधामः॥ १२

आनन्दकन्द! देवकीनन्दन! आपकी जो चरणरज विशुद्ध अन्तःकरणवाले योगियोंके लिये भी दुर्लभ और अगम्य है, वही उन बड़भागी भक्तोंके लिये परम सुलभ है, जो अपने निर्मल हृदयमें भक्तियोग धारण करके, सदा प्रीतिरसमें निमग्न हो, द्रवित-चित्त रहते हैं। शिशुरूपमें मन्द-मन्द विचरनेवाले आपके चरणारविन्दोंके मकरन्द एवं परागको हम सानुराग सिरपर धारण करें, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है॥ १२॥

पूर्वं तथात्र कमनीयवपुष्मयं त्वां
कन्दर्पकोटिशतमोहनमद्भुतं च।
गोलोकधामधिषणद्युतिमादधानं
राधापतिं धरमधुर्यधनं दधामः॥ १३

आप पहलेसे ही परम कमनीय कलेवरधारी हैं और यहाँ इस अवतारमें भी उसी कमनीय रूपसे आप सुशोभित होंगे। आपका रूप कोटिशत कामदेवोंको भी मोहित करनेवाला और परम अद्भुत है। आप गोलोकधाममें धारित दिव्य दीप्ति-राशिको यहाँ भी धारण करेंगे। सर्वोत्कृष्ट धर्मधनके धारयिता आप श्रीराधावल्लभको हम [हृदयमें] धारण करते हैं॥ १३॥

श्रीनारद उवाच

नत्वा हरिं तदा देवा ब्रह्माद्या मुनिभिः सह।
गायन्तस्तं प्रशंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा॥ १४

अथ मैथिलराजेन्द्र जन्मकाले हरेः सति।
अम्बरं निर्मलं भूतं निर्मलाश्च दिशो दश॥ १५

श्रीनारदजी बोले—उस समय मुनियोंसहित ब्रह्मा आदि सब देवता श्रीहरिको नमस्कार करके उनकी महिमाका गान तथा स्वभावकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये। मिथिला-सम्राट् बहुलाश्व! तदनन्तर जब श्रीहरिके प्राकट्यका समय आया, आकाश स्वच्छ हो गया। दसों दिशाएँ निर्मल हो गयीं॥ १४-१५॥

उज्ज्वलास्तारका जाताः प्रसन्नं भूमिमण्डलम्।
नदा नद्यः समुद्राश्च प्रसन्नापः सरोवराः॥ १६

सहस्रदलपद्मानि शतपत्राणि सर्वतः।
विकचानि मरुत्स्पर्शैः पतद्गन्धिरजांसि च॥ १७

तारे अत्यन्त उद्दीप्त हो उठे। भूमण्डलमें प्रसन्नता छा गयी। नदी, नद, सरोवर और समुद्रके जल स्वच्छ हो गये। सब ओर सहस्रदल तथा शतदल कमल खिल उठे। वायुके स्पर्शसे उनके सुगन्धयुक्त पराग सब दिशाओंमें फैलने लगे॥ १६-१७॥

तेषु नेदुर्मधुकरा नदन्तश्चित्रपक्षिणः।
शीतला मन्दयानाश्च गन्धाक्ता वायवो ववुः॥ १८

ऋद्धा जनपदा ग्रामा नगरा मङ्गलायनाः।
देवा विप्रा नगा गावो बभूवुः सुखसंवृताः॥ १९

उन कमलोंपर भ्रमर गुंजार करने लगे। मयूर मधुर ध्वनि करने लगे। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगी। जनपद और ग्राम सुख-सुविधासे सम्पन्न हो गये। बड़े-बड़े नगर तो मङ्गलके धाम बन गये। देवता, ब्राह्मण, पर्वत, वृक्ष और गौएँ—सभी सुख-सामग्रीसे परिपूर्ण हो गये॥ १८-१९॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्जयध्वनिसमाकुलाः।
यत्र तत्र महाराज सर्वेषां मङ्गलं परम्॥ २०

विद्याधराश्च गन्धर्वाः सिद्धकिन्नरचारणाः।
जगुः सुनायका देवास्तुष्टुवुः स्तुतिभिः परम्॥ २१

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। साथ ही जय-जयकारकी ध्वनि सब ओर व्याप्त हो गयी। महाराज! जहाँ-तहाँ सब जगह सबका परम मङ्गल हो गया। गायन-कलामें निपुण विद्याधर, गन्धर्व, सिद्ध, किंनर तथा चारण गीत गाने लगे। देवता लोग स्तोत्र पढ़कर उन परम पुरुषका स्तवन करने लगे॥ २०-२१॥

ननृतुर्दिवि गन्धर्वा विद्याधर्यो मुदान्विताः।
पारिजातकमन्दारमालतीसुमनांसि च॥ २२

मुमुचुर्देवमुख्याश्च गर्जन्तश्च घना जलम्।
भाद्रे बुधे कृष्णपक्षे धात्रर्क्षे हर्षणे वृषे।
ववेऽष्टम्यामर्धरात्रे नक्षत्रेशमहोदये॥ २३

देवलोकमें गन्धर्व तथा विद्याधरियाँ आनन्दमग्न होकर नाचने लगीं। मुख्य-मुख्य देवता पारिजात, मन्दार तथा मालतीके मनोरम फूल बरसाने लगे और मेघ गर्जना करते हुए जलकी वृष्टि करने लगे। भाद्रपद मास, कृष्णपक्ष, बुधवार, रोहिणी-नक्षत्र, हर्षण-योग तथा वृष लग्नमें, वव करणमें अष्टमी तिथिको आधी रातके समय

अन्धकारावृते काले देवक्यां शौरिमन्दिरे।
आविरासीद्धरिः साक्षादरण्यामध्वरेऽग्निवत्॥ २४

चन्द्रोदय-कालमें, जबकि जगत्में अन्धकार छा रहा था, वसुदेव-मन्दिरमें देवकीके गर्भसे साक्षात् श्रीहरि प्रकट हुए—ठीक उसी तरह, जैसे अरणिकाष्ठसे अग्निका आविर्भाव होता है॥ २२—२४॥

स्फुरदच्छविचित्रहारिणं
विलसत्कौस्तुभरत्नधारिणम्।
परिधिद्युतिनूपुराङ्गदं
धृतबालार्ककिरीटकुण्डलम्॥ २५

चलदद्भुतवह्निकङ्कणं
तडिदूर्जद्गुणमेखलाचितम्।
मधुभृद्ध्वनिपद्ममालिनं
नवजाम्बूनददिव्यवाससम्॥ २६

कण्ठमें प्रकाशमान स्वच्छ एवं विचित्र मुक्ताहार, वक्षपर शोभा-प्रभा-समन्वित सुन्दर कौस्तुभमणि तथा रत्नोंकी माला, चरणोंमें नूपुर तथा बाहोंमें बाजूबंद धारण किये भगवान् मण्डलाकार प्रभापुञ्जसे उद्भासित हो रहे थे। मस्तकपर किरीट तथा कानोंमें कुण्डल-युगल बालरविके सदृश उद्दीप्त हो रहे थे। कलाइयोंमें प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिमान् अद्भुत कङ्कण हिल रहे थे। कटिकी करधनीमें जो डोर या जंजीर लगी थी, उसकी प्रभा विद्युत्के समान सब ओर व्याप्त हो रही थी। कण्ठदेशमें कमलोंकी माला शोभा पाती थी, जिसके ऊपर मधु-लोलुप मधुकर मँडरा रहे थे। उनके श्रीअङ्गोंपर जो दिव्य पीतवस्त्र था, वह नूतन (तपाये हुए) जाम्बूनद (सुवर्ण)-की शोभाको तिरस्कृत कर रहा था॥ २५-२६॥

सतडिद्घनदिव्यसौभगं चलनीलालकवृन्दभृन्मुखम्।
चलदंशुतमोहरं परं शुभदं सुन्दरमम्बुजेक्षणम्॥ २७

कृतपत्रविचित्रमण्डनं सततं कोटिमनोजमोहनम्।
परिपूर्णतमं परात्परं कलवेणुध्वनिवाद्यतत्परम्॥ २८

श्यामसुन्दर विग्रहपर सुशोभित वह पीताम्बर विद्युद्विलाससे विलसित नीलमेघके सौभाग्यपूर्ण सौन्दर्यको छीने लेता था। मुखके ऊपर शिरोदेशमें काले-काले घुँघराले केश शोभा पाते थे। मुखचन्द्रकी चञ्चल रश्मियाँ वहाँका सम्पूर्ण अन्धकार दूर किये देती थीं। वह परम सुन्दर शुभद आनन प्रफुल्ल इन्दीवर-सदृश युगल नेत्रोंसे सुशोभित था। उसपर विचित्र रीतिसे मनोहर पत्ररचना की गयी थी, जिससे मण्डित अभिराम मुख सदैव करोड़ों कामदेवोंको मोहे लेता था। वे परिपूर्णतम परात्पर भगवान् मधुर ध्वनिसे वेणु बजानेमें तत्पर थे॥ २७-२८॥

तमवेक्ष्य सुतं यदूत्तमो
हरिजन्मोत्सवफुल्ललोचनः।
अथ विप्रजनेषु चाशु वै
नियुतं सन्मनसा गवां ददौ॥ २९

हरिमानकदुन्दुभिः स्तवैः
स्तवनं तं प्रणिपत्य विस्मितः।
अकरोदुदितप्रभूदयो
गतभीः सूतिगृहे कृताञ्जलिः॥ ३०

ऐसे पुत्रका अवलोकन करके यदुकुलतिलक वसुदेवजीके नेत्र भगवान्के जन्मोत्सवजनित आनन्दसे खिल उठे। फिर उन्होंने शीघ्र ही ब्राह्मणोंको एक लाख गो-दान करनेका मन-ही-मन संकल्प किया। सूतिकागारमें प्रभुका आविर्भाव प्रत्यक्ष हो गया, इससे वसुदेवजीका सारा भय जाता रहा। वे अत्यन्त विस्मित हो, हाथ जोड़कर आदि-अन्तरहित श्रीहरिको प्रणाम करके, स्तोत्रोंद्वारा उनका स्तवन करने लगे॥ २९-३०॥

श्रीवसुदेव उवाच

एको यः प्रकृतिगुणैरनेकधासि
हर्ता त्वं जनक उतास्य पालकस्त्वम्।
निर्लिप्तः स्फटिक इवाद्यदेहवर्णै-
स्तस्मै श्रीभुवनपते नमामि तुभ्यम्॥ ३१

एधःसु त्वनल इवात्र वर्तमानो
योऽन्तःस्थो बहिरपि चाम्बरं यथा हि।
आधारो धरणिरिवास्य सर्वसाक्षी
तस्मै ते नम इव सर्वगो नभस्वान्॥ ३२

भूभारोद्भटहरणार्थमेव जातो
गोदेवद्विजनिजवत्सपालकोऽसि।
गेहे मे भुवि पुरुषोत्तमोत्तमस्त्वं
कंसान्मां भुवनपते प्रपाहि पापात्॥ ३३

श्रीवसुदेवजी बोले—भगवन्! जो एकमात्र अद्वितीय हैं, वे ही परब्रह्म परमात्मा आप प्रकृतिके सत्त्वादि गुणोंके कारण अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं। आप ही संहारक, आप ही उत्पादक तथा आप ही इस जगत्‌के पालक हैं। हे आदिदेव! हे त्रिभुवनपते परमात्मन्! जैसे स्फटिकमणि औपाधिक रंगोंसे लिप्त नहीं होती, उसी प्रकार आप देहके वर्णोंसे निर्लिप्त ही रहते हैं। ऐसे आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है॥ ३१॥

जैसे ईंधनमें आग छिपी रहती है, उसी तरह आप अव्यक्तरूपसे इस सम्पूर्ण जगत्‌में विद्यमान हैं; तथा जैसे आकाश सबके भीतर और बाहर भी रहता है, उसी प्रकार आप सबके भीतर और बाहर भी स्थित हैं। आप ही पृथ्वीकी भाँति इस समस्त जगत्‌के आधार हैं, सबके साक्षी हैं तथा वायुकी भाँति सर्वत्र जानेकी शक्ति रखते हैं। आप गौ, देवता, ब्राह्मण, अपने भक्तजन तथा बछड़ोंके पालक हैं और उद्भट भूभारका हरण करनेके लिये ही मेरे घरमें अवतीर्ण हुए हैं। इस भूतलपर समस्त पुरुषोत्तमोंसे भी उत्तम आप ही हैं। भुवनपते! पापी कंससे मुझे बचाइये॥ ३२-३३॥

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं श्यामसुन्दरम्।
ज्ञात्वा नत्वाथ तं प्राह देवकी सर्वदेवता॥ ३४

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलापते! सर्व-देवतास्वरूपिणी देवकीको भी यह ज्ञात हो गया कि मेरे घरमें परिपूर्णतम भगवान् साक्षात् श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ है। अतः वे भी उन्हें नमस्कार करके बोलीं—॥ ३४॥

श्रीदेवक्युवाच

हे कृष्ण हेऽविगणिताण्डपते परेश
गोलोकधाममधिषणध्वज आदिदेव।
पूर्णेश पूर्ण परिपूर्णतम प्रभो मां
त्वं पाहि पाहि परमेश्वर कंसपापात्॥ ३५

श्रीदेवकीने कहा—हे सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण! हे अगणित ब्रह्माण्डोंके स्वामी! हे परमेश्वर! हे गोलोक-धाममन्दिरकी ध्वजा! हे आदिदेव! हे पूर्णरूप ईश्वर! हे परिपूर्णतम परमेश! हे प्रभो! आप पापी कंसके भयसे मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ३५॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान् कृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम्।
सस्मितो देवकीं शौरिं प्राह स वृजिनार्दनः॥ ३६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पिता-माताकी ओरसे किया गया वह स्तवन सुनकर पापनाशन साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुसकराते हुए देवकी तथा वसुदेवजीसे बोले—॥ ३६॥

श्रीभगवानुवाच

इयं च पृश्निः पतिदेवता च
त्वं पूर्वसर्गे सुतपाः प्रजार्थी।
ब्रह्माज्ञया दिव्यतपो युवाभ्यां
कृतं परं निर्जलभोजनाभ्याम्॥ ३७

कालेऽथ मन्वन्तरके व्यतीते
तपः परं तत्तपसः प्रजार्थी।
तदा प्रसन्नो युवयोरभूवं
वरं परं ब्रूत मया तदोक्तम्॥ ३८

श्रुत्वा युवाभ्यां कथितं तदैव
भूयात्सुतस्त्वत्सदृशः किलावयोः।
तथास्तु चोक्त्वाथ गते मयि प्रजा-
पती ह्यभूतं स्वकृतेन दम्पती॥ ३९

न मत्समः कोऽपि सुतो जगत्यलं
विचार्य तद्धामभवं परेश्वरः।
श्रीपृश्निगर्भो भुवि विश्रुतः पुन-
र्द्वितीयकालेऽहमुपेन्द्रवामनः ॥ ४०

तदाभवं ह्यद्यतने परात्परो
नीत्वाथ मां प्रापय नन्दमन्दिरम्।
अतो न भूयाद्भयमौग्रसेनतः
सुतां समादाय सुखी भविष्यथः॥ ४१

श्रीनारद उवाच

तूष्णीं भूत्वा हरिस्तत्र तद्द्वयः पश्यतोस्तयोः।
दृश्यं ह्यप्रकटं कृत्वा बालोऽभूत्कौ यथा नटः॥ ४२

प्रेङ्खे धृत्वाथ तं शौरिर्यावद् गन्तुं समुद्यतः।
तावद् व्रजे नन्दपत्न्यां योगमायाजनि स्वतः॥ ४३

तया शयाने विश्वस्मिन् रक्षकेषु स्वपत्सु च।
द्वार उद्घाटिताः सर्वाः प्रस्फुटच्छृङ्खलार्गलाः॥ ४४

निर्गते वसुदेवे च मूर्ध्नि श्रीकृष्णशोभिते।
सूर्योदये यथा सद्यस्तमोनाशोऽभवत्स्वतः॥ ४५

श्रीभगवान्‌ने कहा—पूर्वसृष्टिमें ये माता पतिव्रता पृश्नि थीं और आप प्रजापति सुतपा। आप दोनोंने संतानके लिये ब्रह्माजीकी आज्ञासे अन्न और जलका त्याग करके बड़ी भारी तपस्या की थी। एक मन्वन्तरका समय बीत जानेपर भी प्रजाकी कामनासे आपकी तपस्या चलती रही, तब मैं आप दोनोंपर प्रसन्न होकर बोला—'आपलोग कोई उत्तम वर माँग लें'॥ ३७-३८॥

मेरी बात सुनकर आप तत्काल बोले—'प्रभो! हम दोनोंको आपके समान पुत्र प्राप्त हो।' उस समय 'तथास्तु' कहकर जब मैं चला आया, तब आप दोनों दम्पती अपने पुण्यकर्मके फलस्वरूप प्रजापति हुए। संसारमें मेरे समान तो कोई पुत्र है नहीं—यह विचारकर मैं स्वयं परमेश्वर ही आपका पुत्र हुआ। उस समय भूतलपर मैं 'पृश्निगर्भ' नामसे विख्यात हुआ। फिर दूसरे जन्ममें जब आप कश्यप और अदिति हुए, तब मैं आपका पुत्र वामन आकारवाला उपेन्द्र हुआ। उसी प्रकार इस वर्तमान जन्ममें भी मैं परात्पर परमेश्वर आप दोनोंका पुत्र हुआ हूँ। पिताजी! अब आप मुझे नन्दभवनमें पहुँचा दें। इससे आप दोनोंको कंससे कोई भय नहीं होगा। नन्दरायकी पुत्रीको यहाँ ले आकर आप सुखी होइयेगा॥ ३९—४१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर भगवान् वहाँ मौन हो, उन दोनोंके देखते-देखते वर्तमान स्वरूपको अदृश्य करके, बालरूप हो पृथ्वीपर पड़ गये—जैसे किसी नटने क्षणभरमें वेष-परिवर्तन कर लिया हो। शिशुको पालनेमें सुलाकर ज्यों ही वसुदेवजी ले जानेको उद्यत हुए, त्यों-ही महावनमें नन्दपत्नीके गर्भसे योगमायाने स्वतः जन्मग्रहण किया॥ ४२-४३॥

उसीके प्रभावसे सब लोग सो गये। पहरेदार भी नींद लेने लगे। सारे दरवाजे मानो किसीने खोल दिये। साँकल और अर्गलाएँ टूट-फूट गयीं। श्रीकृष्णको माथेपर लिये जब वसुदेवजी गृहसे बाहर निकले, उस समय उनके भीतरका अज्ञान और बाहरका अँधेरा स्वतः दूर हो गया—ठीक उसी तरह, जैसे सूर्योदय

घनेषु व्योम्नि वर्षत्सु सहस्रवदनः स्वराट्।
निवारयन् दीर्घफणैरासारं शौरिमन्वगात्॥ ४६

ऊर्म्यावर्ताकुलावेगैः सिंहसर्पादिवाहिनी।
सद्यो मार्गं ददौ तस्मै कालिन्दी सरितां वरा॥ ४७

नन्दव्रजं समेत्यासौ प्रसुप्तं सर्वतः परम्।
शिशुं यशोदाशयने निधायाशु ददर्श ताम्॥ ४८

तत्सुतां समुपादाय पुनर्गेहाञ्जगाम सः।
तीर्त्वा श्रीयमुनां शौरिः स्वागारे पूर्ववत्स्थितः॥ ४९

सुतं सुतां वा जातं चाज्ञात्वा गोपी यशोमती।
परिश्रान्ता स्वशयने सुष्वापानन्दनिद्रया॥ ५०

अथ बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षकाः समुपस्थिताः।
ऊचुः कंसाय वीराय गत्वा तद्राजमन्दिरम्॥ ५१

सूतीगृहं त्वरं प्रागात्कंसो वै भयकातरः।
स्वसाथ भ्रातरं प्राह रुदती दीनवत्सती॥ ५२

श्रीदेवक्युवाच

सुतामेकां देहि मे त्वं पुत्रेषु प्रमृतेषु च।
स्त्रियं हन्तुं न योग्योऽसि भ्रातस्त्वं दीनवत्सलः॥ ५३

तेऽनुजाहं हतसुता कारागारे निपातिता।
दातुमर्हसि कल्याण कल्याणीं तनुजां च मे॥ ५४

होनेपर अन्धकारका तत्काल नाश हो जाता है। आकाशमें बादल घिर आये और वे जलकी वृष्टि करने लगे। तब सहस्र मुखवाले स्वयंप्रकाश शेषनाग अपने फनोंसे छत्रछाया करके गिरती हुई जलकी धाराओंका निवारण करते हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे॥ ४४—४६॥

उस समय यमुनामें जलके वेगसे बहनेके कारण ऊँची लहरें उठतीं और भँवरें पड़ रही थीं। वे सिंह और सर्पादि जन्तुओंको भी बहाये लिये जाती थीं; किंतु सरिताओंमें श्रेष्ठ उन कलिन्दनन्दिनी यमुनाने वसुदेवजीको तत्काल मार्ग दे दिया। नन्दरायजीका सारा व्रज गाढ़ी नींदमें सो रहा था। वहाँ पहुँचकर वसुदेवजीने अपने परम शिशुको यशोदाजीकी शय्यापर शीघ्र सुलाकर उस दिव्य कन्याको देखा। यशोदाजीकी उस कन्याको गोदमें लेकर वसुदेवजी पुनः अपने घर लौट आये। वे यमुनाजीको पार करके पूर्ववत् अपने घरमें स्थित हो गये॥ ४७—४९॥

उधर गोपी यशोदाको इतना ही ज्ञात हुआ कि उसे कोई पुत्र या पुत्री हुई है। वे प्रसव-वेदनाके श्रमसे अत्यन्त थकी होनेके कारण अपनी शय्यापर आनन्दकी नींद लेती हुई सो गयी थीं। इधर बालकके रोनेकी आवाज सुनकर पहरेदार राजभवनमें उपस्थित हुए और जाकर वीर कंसको बालकके जन्मनेकी सूचना दी। यह समाचार कानमें पड़ते ही कंस भयसे कातर हो तुरंत सूतीगृहमें जा पहुँचा। उस समय सती-साध्वी बहन देवकी दीनकी तरह रोती हुई भाईसे बोलीं॥ ५०—५२॥

श्रीदेवकीने कहा—भैया! आप दीन-दुःखियोंके प्रति स्नेह और दया करनेवाले हैं। मैं आपकी बहन हूँ, तथापि कारागारमें डाल दी गयी हूँ। मेरे सभी पुत्र मार डाले गये हैं। मैं वह अभागिनी माँ हूँ, जिसके बेटोंका वध कर दिया गया है। एकमात्र यह बेटी बची है, इसे मुझे भीखमें दे दीजिये। यह स्त्री है, इसका वध करना आप-जैसे वीरके योग्य नहीं है। कल्याणकारी भाई! इस कल्याणी कन्याको तो मेरी गोदमें दे ही दीजिये। यही आपके योग्य कार्य होगा॥ ५३-५४॥

श्रीनारद उवाच

अश्रुमुख्या मोहितया समाच्छाद्यात्मजां बहु।
प्रार्थितोऽङ्काद्विनिर्भर्त्स्य तां स आचिच्छिदे खलः॥ ५५

कुसङ्गनिरतः पापः खलो यदुकुलाधमः।
स्वसुः सुतां शिलापृष्ठे गृहीत्वाङ्घ्र्योर्न्यपातयत्॥ ५६

कंसहस्तात्समुत्पत्य सानंशा चाम्बरे गता।
शतपत्रे रथे दिव्ये सहस्रहयसेविते॥ ५७

चामरान्दोलिते शुभ्रे स्थितादृश्यत दिव्यदृक्।
सायुधाष्टभुजा माया पार्षदैः परिसेविता।
शतसूर्यप्रतीकाशा कंसमाह घनस्वना॥ ५८

श्रीयोगमायोवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
जातः क्व वा तु ते हन्ता वृथा दीनां दुनोषि वै॥ ५९

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा तं ततो देवी गता विन्ध्याचले गिरौ।
योगमाया भगवती बहुनामा बभूव ह॥ ६०

अथ कंसो विस्मितोऽभूच्छ्रुत्वा मायावचः परम्।
देवकीं वसुदेवं च मोचयामास बन्धनात्॥ ६१

कंस उवाच

पापोऽहं पापकर्माहं खलो यदुकुलाधमः।
युष्मत्पुत्रप्रहन्तारं क्षमध्वं मे कृतं भुवि॥ ६२

हे स्वसः शृणु मे शौरे मन्ये कालकृतं त्विदम्।
येन निश्चाल्यमानो वा वायुनेव घनावलिः॥ ६३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! देवकीके मुँहपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। उसने मोहके कारण बेटीको आँचलमें छिपाकर बहुत विनती की—वह बहुत रोयी-गिड़गिड़ायी; तो भी उस दुष्टने बहनको डाँट-डपटकर उसकी गोदसे वह कन्या छीन ली। वह यदुकुलका कलङ्क एवं महानीच था। सदा कुसङ्गमें रहनेके कारण उसका जीवन पापमय हो गया था। उस दुरात्माने अपनी बहनकी बच्चीके दोनों पैर पकड़कर उसे शिलापर दे मारा॥ ५५-५६॥

वह कन्या साक्षात् योगमायाका अवतार देवी अनंशा थी। कंसके हाथसे छूटते ही वह उछलकर आकाशमें चली गयी। सहस्र अश्वोंसे जुते हुए दिव्य 'शतपत्र' रथपर जा बैठी। वहाँ चँवर डुलाये जा रहे थे। उस शुभ्र रथपर बैठकर वह दिव्य रूप धारण किये दृष्टिगोचर हुई। उसके आठ भुजाएँ थीं और सबमें आयुध शोभा पा रहे थे। वह मायादेवी अपने पार्षदोंसे परिसेवित थी। उसका तेज सौ सूर्योंके समान दिखायी देता था। उसने मेघगर्जनातुल्य गम्भीर वाणीमें कहा—॥ ५७-५८॥

श्रीयोगमाया बोलीं—कंस! तुझे मारनेवाले परिपूर्णतम परमात्मा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तो कहीं और जगह अवतीर्ण हो गये। इस दीन देवकीको तू व्यर्थ दुःख दे रहा है॥ ५९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उससे यों कहकर भगवती योगमाया विन्ध्यपर्वतपर चली गयीं। वहाँ वे अनेक नामोंसे प्रसिद्ध हुईं। योगमायाकी उत्तम बात सुनकर कंसको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने देवकी और वसुदेवको तत्काल बन्धनमुक्त कर दिया॥ ६०-६१॥

कंसने कहा—बहन और बहनोई वसुदेवजी! मैं पापात्मा हूँ। मेरे कर्म पापमय हैं। मैं इस यदुवंशमें महानीच और दुष्ट हूँ। मैं ही इस भूतलपर आप दोनोंके पुत्रोंका हत्यारा हूँ। आप दोनों मेरे द्वारा किये गये इस अपराधको क्षमा कर दें। मेरी बात सुनें। मैं समझता हूँ, यह सब कालने किया-कराया है। जैसे वायु मेघमालाको जहाँ चाहे उड़ा ले जाती है, उसी तरह कालने मुझे भी स्वेच्छानुसार चलाया है॥ ६२-६३॥

विश्वस्तोऽहं देववाक्ये देवास्तेऽपि मृषागिरः।
न जानामि क्व मे शत्रुर्जातः कौ कथितोऽनया॥ ६४

मैंने देववाक्यपर विश्वास कर लिया, किंतु देवता भी असत्यवादी ही निकले। इस योगमायाने बताया है कि 'तेरा शत्रु भूतलपर अवतीर्ण हो गया है'। किंतु वह कहाँ उत्पन्न हुआ है, यह मैं नहीं जानता॥ ६४॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं कंसस्तदङ्घ्र्योश्च पतितोऽश्रुमुखो रुदन्।
चकार सेवां परमां सौहृदं दर्शयंस्तयोः॥ ६५

अहो श्रीकृष्णचन्द्रस्य परिपूर्णतमप्रभोः।
दानदक्षैः कटाक्षैश्च किन्न स्याद्भूमिमण्डले॥ ६६

प्रातःकाले तदा कंसः प्रलम्बादीन् महासुरान्।
समाहूय खलस्तेभ्योऽवददुक्तं च मायया॥ ६७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर कंस बहन और बहनोईके चरणोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। उसके मुँहपर अश्रुधारा बह चली। उसने उन दोनोंके प्रति सौहार्द (अत्यन्त स्नेह) दिखाते हुए उनकी बड़ी सेवा की। अहो! परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके दया-दान-दक्ष कटाक्षोंसे भूतलपर क्या नहीं हो सकता? तदनन्तर प्रातःकाल दुरात्मा कंसने प्रलम्ब आदि बड़े-बड़े असुरोंको बुलाया और योगमायाने जो कुछ कहा था, वह सब उनसे कह सुनाया॥ ६५—६७॥

कंस उवाच

जातो मे ह्यन्तकृद्भूमौ कथितो योगमायया।
अनिर्दशान्निर्दशांश्च शिशून् यूयं हनिष्यथ॥ ६८

कंसने कहा—[मित्रो!] जैसा कि योगमायाने बताया है, मेरा विनाश करनेवाला शत्रु पृथ्वीपर कहीं उत्पन्न हो चुका है। अतः तुमलोग जो दस दिनके भीतर उत्पन्न हुए हैं और जिनको जन्म लिये दससे अधिक दिन निकल गये हैं, उन समस्त बालकोंको मार डालो॥ ६८॥

दैत्या ऊचुः

सज्जस्य धनुषो युद्धे भवता द्वन्द्वयोधिना।
टङ्कारेणोद्गता देवा मन्यसे तैः कथं भयम्॥ ६९

गोविप्रसाधुश्रुतयो देवा धर्मादयः परे।
विष्णोश्च तनवो ह्येषां नाशे दैत्यबलं स्मृतम्॥ ७०

जातो यदि महाविष्णुस्ते शत्रुर्यो महीतले।
अयं चैतद्वधोपायो गवादीनां विहिंसनम्॥ ७१

दैत्योंने कहा—महाराज! जब आप द्वन्द्व-युद्धमें उतरे थे, उस समय रणभूमिमें आपके चढ़ाये हुए धनुषकी टंकार सुनकर सब देवता भाग खड़े हुए थे, फिर उन्हींसे आप भय क्यों मान रहे हैं? गौ, ब्राह्मण, साधु, वेद, देवता तथा धर्म और यज्ञ आदि जो दूसरे-दूसरे तत्त्व हैं, वे ही भगवान् विष्णुके शरीर माने गये हैं; इन सबके विनाशमें दैत्योंका बल ही समर्थ माना गया है। यदि महाविष्णु, जो आपका शत्रु है, इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है तो उसके वधका यही उपाय है कि गौ-ब्राह्मण आदिकी विशेषरूपसे हिंसाका अभियान चलाया जाय॥ ६९—७१॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं महोद्भटा दुष्टा दैतेयाः कंसनोदिताः।
दुद्रुवुः खं गवादिभ्यो जघ्नुर्जातांश्च बालकान्॥ ७२

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! कंसने दैत्योंको यह करनेकी आज्ञा दे दी। इस प्रकार उसका आदेश पाकर वे महान् उद्भट दुष्ट दैत्य आकाशमें उड़ चले और गौ, ब्राह्मण आदिको पीड़ा देने तथा नवजात बालकोंकी हत्या करने लगे॥ ७२॥

आसमुद्राद्भूमितले विशन्तश्च गृहे गृहे।
कामरूपधरा दैत्याश्चेरुः सर्पाखवो यथा॥ ७३

उत्पथा उद्भटा दैत्यास्तत्रापि कंसनोदिताः।
कपिः सुरापोऽलिहतो भूतग्रस्त इवाभवन्॥ ७४

वैदेह मैथिलनरेन्द्र उपेन्द्रभक्त
धर्मिष्ठमुख्य सुतपो जनक प्रतापिन्।
एतत्सतां च भुवि हेलनमङ्ग राजन्
सर्वं छिनत्ति बहुलाश्व चतुष्पदार्थान्॥ ७५

समुद्रपर्यन्त समस्त भूमण्डलमें वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दैत्य सर्पों और चूहोंकी तरह घर-घरमें घुसने और विचरने लगे। उद्भट दैत्य तो स्वभावसे ही कुमार्गगामी होते हैं, उसपर भी उन्हें कंसकी ओरसे प्रेरणा प्राप्त हो गयी थी। एक तो बंदर, फिर वह शराब पी ले और उसपर भी उसे बिच्छू डंक मार दे तो उसकी चपलताके लिये क्या कहना? यही दशा उन दैत्योंकी थी, वे भूतग्रस्त-से हो गये थे। विदेहकुलनन्दन, मैथिलनरेश, विष्णुभक्त, धर्मात्माओंमें मुख्य, परम तपस्वी, प्रतापी, अङ्ग, राजन्, बहुलाश्व जनक! भूमण्डलपर साधु-सन्तोंकी यह अवहेलना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका सम्पूर्णतया नाश कर देती है॥ ७३—७५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णचन्द्रजन्मवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णचन्द्र-जन्म-वर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवकी धूम; गोप-गोपियोंका उपायन लेकर आना; नन्द और यशोदा-रोहिणीद्वारा सबका यथावत् सत्कार; ब्रह्मादि देवताओंका भी श्रीकृष्णदर्शनके लिये आगमन

श्रीनारद उवाच

अथ पुत्रोत्सवं जातं श्रुत्वा नन्द उषःक्षणे।
ब्राह्मणांश्च समाहूय कारयामास मङ्गलम्॥ १

सविधिं जातकं कृत्वा नन्दराजो महामनाः।
विप्रेभ्यो दक्षिणाभिश्च मुदा लक्षं गवां ददौ॥ २

क्रोशमात्रं रत्नसानून् सुवर्णशिखरान् गिरीन्।
सरसान् सप्तधान्यानां ददौ विप्रेभ्य आनतः॥ ३

मृदङ्गवीणाशङ्खाद्या नेदुर्दुन्दुभयो मुहुः।
गायकाश्च जगुर्द्वारे ननृतुर्वारयोषितः॥ ४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर गोष्ठमें विद्यमान नन्दजीने अपने घरमें पुत्रोत्सव होनेका समाचार सुनकर प्रातःकाल ब्राह्मणोंको बुलवाया और स्वस्तिवाचनपूर्वक मङ्गल-कार्य कराया। विधिपूर्वक जातकर्म-संस्कार सम्पन्न करके महामनस्वी नन्दराजने ब्राह्मणोंको आनन्दपूर्वक दक्षिणा देनेके साथ ही एक लाख गौएँ दान कीं। एक कोस लंबी भूमिमें सप्त-धान्योंके पर्वत खड़े किये गये। उनके शिखर रत्नों और सुवर्णोंसे सज्जित किये गये। उनके साथ सरस एवं स्निग्ध पदार्थ भी थे। वे सब पर्वत नन्दजीने विनीतभावसे ब्राह्मणोंको दिये॥ १—३॥

मृदङ्ग, वीणा, शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे बारंबार बजाये जाने लगे। नन्दद्वारपर गायक मङ्गल-गीत गाने लगे। वाराङ्गनाएँ नृत्य करने लगीं॥ ४॥

पताकैर्हेमकलशैर्वितानैस्तोरणैः शुभैः।
अनेकवर्णैश्चित्रैश्च बभौ श्रीनन्दमन्दिरम्॥ ५

रथ्या वीथ्यश्च देहल्यो भित्तिप्राङ्गणवेदिकाः।
तोलिकामण्डपसमा रेजुर्गन्धिजलाम्बरैः॥ ६

पताकाओं, सोनेके कलशों, चँदोवों, सुन्दर बंदनवारों तथा अनेक रंगके चित्रोंसे नन्द-मन्दिर उद्भासित होने लगा। सड़कें, गलियाँ, द्वार-देहलियाँ, दीवारें, आँगन और वेदियाँ (चबूतरे)—इनपर सुगन्धित जलका छिड़काव करके सब ओरसे वस्त्रों और झंडियोंद्वारा सजावट कर दी गयी थी, जिससे ये सब चित्रमण्डप या चित्रशालाके समान शोभा पा रहे थे॥ ५-६॥

गावः सुवर्णशृङ्ग्यश्च हेममालालसद्गलाः।
घण्टामञ्जीरझङ्कारा रक्तकम्बलमण्डिताः॥ ७

पीतपुच्छाः सवत्साश्च तरुणीकरचिह्निताः।
हरिद्राकुङ्कुमैर्युक्ताश्चित्रधातुविचित्रिताः॥ ८

गौओंके सींगोंमें सोना मढ़ दिया गया था। उनके गलेमें सुवर्णकी माला पहना दी गयी थी। उनके गलेमें घंटी और पैरोंमें मञ्जीरकी झंकार होती थी। उनकी पीठपर कुछ-कुछ लाल रंगकी झूलें ओढ़ायी गयी थीं। इस प्रकार समस्त गौओंका शृङ्गार किया गया था। उनकी पूँछें पीले रंगमें रँग दी गयी थीं। उनके साथ बछड़े भी थे, उनके अङ्गोंपर तरुणी स्त्रियोंके हाथोंकी छाप लगी थी। हल्दी, कुङ्कुम तथा विचित्र धातुओंसे वे चित्रित की गयी थीं॥ ७-८॥

बर्हपुष्पैर्गन्धजलैर्वृषा धर्मधुरन्धराः।
इतस्ततो विरेजुः श्रीनन्दद्वारि मनोहराः॥ ९

गोवत्सा हेममालाढ्या मुक्ताहारविराजिताः।
इतस्ततो विलङ्घन्तो मञ्जीरचरणाः सिताः॥ १०

मोरपंख और पुष्पोंसे अलंकृत तथा सुगन्धित जलसे अभिषिक्त धर्मधुरंधर मनोहर वृषभ श्रीनन्दरायजीके द्वारपर इधर-उधर सुशोभित थे। गौओंके सफेद बछड़े सोनेकी मालाओं और मोतियोंके हारोंसे विभूषित हो, इधर-उधर उछलते-कूदते फिर रहे थे। उनके पैरोंमें भी मञ्जीर बँधे थे॥९-१०॥

श्रुत्वा पुत्रोत्सवं तस्य वृषभानुवरस्तथा।
कलावत्या गजारूढो नन्दमन्दिरमाययौ॥ ११

नन्दा नवोपनन्दाश्च तथा षड् वृषभानवः।
नानोपायनसंयुक्ताः सर्वे तेऽपि समाययुः॥ १२

उष्णीषोपरि मालाढ्याः पीतकञ्चुकशोभिताः।
बर्हगुञ्जाबद्धकेशा वनमालाविभूषणाः॥ १३

नन्दरायजीके यहाँ पुत्रोत्सवका समाचार सुनकर वृषभानुवर रानी कलावती (कीर्तिदा)-के साथ हाथीपर चढ़कर नन्दमन्दिरमें आये। व्रजमें जो नौ नन्द, नौ उपनन्द तथा छः वृषभानु थे, वे सब भी नाना प्रकारकी भेंट-सामग्रीके साथ वहाँ आये। वे सिरपर पगड़ी तथा उसके ऊपर माला धारण किये, पीले रंगके जामे पहने, केशोंमें मोरपंख और गुञ्जा बाँधे तथा वनमालासे विभूषित थे॥ ११—१३॥

वंशीधरा वेत्रहस्ताः सुपत्रतिलकाञ्चिताः।
बद्धबर्हपरिकरा गोपास्तेऽपि समाययुः॥ १४

नृत्यन्तः परिगायन्तो धुन्वन्तो वसनानि च।
नानोपायनसंयुक्ताः श्मश्रुलाः शिशवः परे॥ १५

हाथोंमें वंशी और बेंतकी छड़ी लिये, सुन्दर पत्र-रचनाके साथ तिलक लगाये, कमरमें मोरपंख बाँधे गोपालगण भी वहाँ आ गये। वे नाचते-गाते और वस्त्र हिलाते थे। मूँछवाले तरुण और बिना मूँछके बालक भी भाँति-भाँतिकी भेंट लेकर वहाँ आये॥ १४-१५॥

हैयङ्गवीनदुग्धानां दध्याज्यानां बलीन् बहून्।
नीत्वा वृद्धा यष्टिहस्ता नन्दमन्दिरमाययुः॥ १६

पुत्रोत्सवं व्रजेशस्य कथयन्तः परस्परम्।
प्रेमविह्वलभावैः स्वैरानन्दाश्रुसमाकुलाः॥ १७

जाते पुत्रोत्सवे नन्दः स्वानन्दाश्र्वाकुलेक्षणः।
पूजयामास तान् सर्वांस्तिलकाद्यैर्विधानतः॥ १८

बूढ़े लोग हाथमें डंडा लिये अपने साथ माखन, दूध, दही और घीकी भेंट लेकर नन्दभवनमें उपस्थित हुए। वे आपसमें व्रजराजके यहाँ पुत्रोत्सवका संवाद सुनाते हुए प्रेमसे विह्वल हो नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते थे। पुत्रोत्सव होनेपर श्रीनन्दरायजीका आनन्द चरम सीमाको पहुँच गया था, उनके नेत्र हर्षके आँसुओंसे भरे हुए थे। उन्होंने अपने द्वारपर आये हुए समस्त गोपोंका तिलक आदिके द्वारा विधिवत् सत्कार किया॥ १६—१८॥

गोपा ऊचुः

हे व्रजेश्वर हे नन्द जातः पुत्रोत्सवस्तथा।
अनपत्यस्येच्छतोऽलमतः किं मङ्गलं परम्॥ १९

दैवेन दर्शितं चेदं दिनं वो बहुभिर्दिनैः।
कृतकृत्याश्च भूताः स्मो दृष्ट्वा श्रीनन्दनन्दनम्॥ २०

हे मोहनेति दूरात्तमङ्कं नीत्वा गदिष्यसि।
यदा लालनभावेन भविता नस्तदा सुखम्॥ २१

गोप बोले—हे व्रजेश्वर! हे नन्दराज! आपके यहाँ जो पुत्रोत्सव हुआ है, यह संतानहीनताके कलङ्कको मिटानेवाला है। इससे बढ़कर परम मङ्गलकी बात और क्या हो सकती है? दैवने बहुत दिनोंके बाद आज आपको यह दिन दिखाया है, हमलोग श्रीनन्द-नन्दनका दर्शन करके आज कृतार्थ हो जायँगे। जब आप दूरसे आकर पुत्रको गोदमें लेकर मोदपूर्वक लाड़ लड़ाते हुए 'हे मोहन!' कहकर पुकारेंगे, उस समय हमें बड़ा सुख मिलेगा॥ १९—२१॥

श्रीनन्द उवाच

भवतामाशिषः पुण्याज्जातं सौख्यमिदं शुभम्।
आज्ञावर्ती ह्यहं गोपा गोपानां व्रजवासिनाम्॥ २२

श्रीनन्दने कहा—बन्धुओ! आपलोगोंके आशीर्वाद और पुण्यसे आज यह आनन्ददायक शुभ दिवस प्राप्त हुआ है, मैं तो व्रजवासी गोप-गोपियोंका आज्ञापालक सेवक हूँ॥ २२॥

श्रीनारद उवाच

श्रीनन्दराजसुतसम्भवमद्भुतं च
श्रुत्वा विसृज्य गृहकर्म तदैव गोप्यः।
तूर्णं ययुः सबलयो व्रजराजगेहा-
नुद्यत्प्रमोदपरिपूरितहृन्मनोऽङ्गाः॥ २३

आनन्दमन्दिरपुरात्स्वगृहाद्व्रजन्त्यः
सर्वा इतस्तत उत त्वरमाव्रजन्त्यः।
यानश्लथद्वसनभूषणकेशबन्धा
रेजुर्नरेन्द्र पथि भूपरि मुक्तमुक्ताः॥ २४

झङ्कारनूपुरनवाङ्गदहेमचीर-
मञ्जीरहारमणिकुण्डलमेखलाभिः।
श्रीकण्ठसूत्रभुजकङ्कणबिन्दुकाभिः
पूर्णेन्दुमण्डलनवद्युतिभिर्विरेजुः॥ २५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीनन्दरायजीके यहाँ पुत्र होनेका अद्भुत समाचार सुनकर गोपियोंके हर्षकी सीमा न रही। उनके हृदय, उनके तन-मन परमानन्दसे परिपूर्ण हो गये। वे घरके सारे काम-काज तत्काल छोड़कर भेंट-सामग्री लिये तुरंत व्रजराजके भवनमें जा पहुँचीं। नरेन्द्र! अपने घरसे नन्दमन्दिरतक इधर-उधर बड़ी उतावलीके साथ आतीं-जातीं सब गोपियाँ रास्तेकी भूमिपर मोती लुटाती चलती थीं। शीघ्रतापूर्वक आने-जानेसे उनके वस्त्र, आभूषण तथा केशोंके बन्धन भी ढीले पड़ गये थे; उस दशामें उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। झनकारते हुए नूपुर, नये बाजूबंद, सुनहरे लहँगे, मञ्जीर, हार, मणिमय कुण्डल, करधनी, कण्ठसूत्र, हाथोंके कंगन तथा भालदेशमें लगी हुई बेंदियोंकी नयी-नयी छटाओंसे उनकी छवि पूर्णिमाकी नूतन ज्योत्स्नाके समान देखते ही बनती थी॥ २३—२५॥

श्रीराजिकालवणरात्रिविशेषचूर्णै-
गोंधूमसर्षपयवैः करलालनैश्च।
उत्तार्य बालकमुखोपरि चाशिषस्ताः
सर्वा ददुर्नृप जगुर्जगदुर्यशोदाम्॥ २६

नरेश्वर! वे सब-की-सब राई-नोन, हल्दीके विशेष चूर्ण, गेहूँके आटे, पीली सरसों तथा जौ आदि हाथोंमें लेकर बड़े लाड़से लालाके मुखपर उतारती हुई उसे आशीर्वाद देती थीं। यह सब करके उन्होंने यशोदाजीसे कहा— ॥ २६ ॥

गोप्य ऊचुः

साधु साधु यशोदे ते दिष्ट्या दिष्ट्या व्रजेश्वरि।
धन्या धन्या परा कुक्षिर्ययायं जनितः सुतः॥ २७

इच्छायुक्तं कृतं ते वै दैवेन बहुकालतः।
रक्ष बालं पद्मनेत्रं सुस्मितं श्यामसुन्दरम्॥ २८

गोपियाँ बोलीं—यशोदाजी! बहुत उत्तम, बहुत अच्छा हुआ। अहोभाग्य! आप धन्य हैं और आपकी उत्तम कोख धन्य है, जिसने ऐसे बालकको जन्म दिया। दीर्घकालके बाद दैवने आज आपकी इच्छा पूरी की है। कैसे कमल-जैसे नेत्र हैं इस श्यामसुन्दर बालकके! कितनी मनोहर मुसकान है, बड़ी सँभालके साथ इसका लालन-पालन कीजिये॥ २७-२८॥

श्रीयशोदोवाच

भवदीयदयाशीर्भिर्जातं सौख्यं परं च मे।
भवतीनामपि परं दिष्ट्या भूयादतः परम्॥ २९

हे रोहिणि महाबुद्धे पूजनं तु व्रजौकसाम्।
आगतानां सत्कुलानां यथेष्टं हीप्सितं कुरु॥ ३०

श्रीयशोदाने कहा—बहन! आप सबकी दया और आशीर्वादसे ही मेरे घरमें यह उत्तम सुख आया है, इसके बाद आप सबको भी दैव-कृपासे ऐसा ही परम सुख प्राप्त हो। बहन रोहिणी! तुम बड़ी बुद्धिमती हो। अपने घर आयी हुई ये व्रजवासिनी गोपियाँ बड़े उत्तम कुलकी हैं। तुम इनका पूजन—स्वागत-सत्कार करो। अपनी इच्छाके अनुसार इन सबकी मनोवाञ्छा पूर्ण करो॥ २९-३०॥

श्रीनारद उवाच

रोहिणी राजकन्यापि तत्करौ दानशीलिनौ।
तत्रापि नोदिता दाने ददावतिमहामनाः॥ ३१

गौरवर्णा दिव्यवासा रत्नाभरणभूषिता।
व्यचरद्रोहिणी साक्षात्पूजयन्ती व्रजौकसः॥ ३२

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! रोहिणीजी भी राजाकी बेटी थीं। उनके हाथ तो स्वभावसे ही दानशील थे, उसपर भी यशोदाजीने दान करनेकी प्रेरणा दे दी। फिर क्या था? उन्होंने अत्यन्त उदारचित्त होकर देना आरम्भ किया। उनकी अङ्गकान्ति गौर-वर्णकी थी शरीरपर दिव्य वस्त्र शोभा पाते थे और वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थीं। रोहिणीजी साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति व्रजाङ्गनाओंका सत्कार करती हुई सब ओर विचरने लगीं॥ ३१-३२॥

परिपूर्णतमे साक्षाच्छ्रीकृष्णे व्रजमागते।
नदत्सु नरतूर्येषु जयध्वनिरभून्महान्॥ ३३

दधिक्षीरघृतैर्गोपा गोप्यो हैयङ्गवैर्नवैः।
सिषिचुर्हर्षितास्तत्र जगुरुच्चैः परस्परम्॥ ३४

साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णके व्रजमें पधारनेपर मानव-वाद्य बजने लगे। बड़े जोर-जोरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। उस समय गोप दही, दूध और घीसे तथा गोपियाँ ताजे मक्खनके लोंदोंसे एक-दूसरेको हर्षोल्लाससे भिगोने और उच्चस्वरसे गीत गाने लगीं। नन्दभवनके बाहर और

बहिरन्तःपुरे जाते सर्वतो दधिकर्दमे।
वृद्धाश्च स्थूलदेहाश्च पेतुर्हास्यं कृतं परैः॥ ३५

सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः।
बन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः॥ ३६

तेभ्यो नन्दो महाराज सहस्रं गाः पृथक् पृथक्।
वासोऽलङ्काररत्नानि हयेभानखिलान् ददौ॥ ३७

बन्दिभ्यो मागधेभ्यश्च सर्वेभ्यो बहुलं धनम्।
ववर्ष घनवद्गोपो नन्दराजो व्रजेश्वरः॥ ३८

निधिः सिद्धिश्च वृद्धिश्च भुक्तिर्मुक्तिर्गृहे गृहे।
वीथ्यां वीथ्यां लुठन्तीव तदिच्छा कस्यचिन्न हि॥ ३९

सनत्कुमारकपिलशुकव्यासादिभिः सह।
हंसदत्तपुलस्त्याद्यैर्मया ब्रह्मा जगाम ह॥ ४०

हंसारूढो हेमवर्णो मुकुटी कुण्डली स्फुरन्।
चतुर्मुखो वेदकर्ता द्योतयन् मण्डलं दिशाम्॥ ४१

तथा तमनु भूताढ्यो वृषारूढो महेश्वरः।
रथारूढो रविः साक्षाद् गजारूढः पुरन्दरः॥ ४२

वायुश्च खञ्जनारूढो यमो महिषवाहनः।
धनदः पुष्पकारूढो मृगारूढः क्षपेश्वरः॥ ४३

अजारूढो वीतिहोत्रो वरुणो मकरस्थितः।
मयूरस्थः कार्तिकेयो भारती हंसवाहिनी॥ ४४

लक्ष्मी च गरुडारूढा दुर्गाख्या सिंहवाहिनी।
गोरूपधारिणी पृथ्वी विमानस्था समाययौ॥ ४५

दोलारूढा दिव्यवर्णा मुख्याः षोडशमातृकाः।
षष्ठी च शिबिकारूढा खड्गारियष्टिधारिणी॥ ४६

मङ्गलो वानरारूढो भासारूढो बुधः स्मृतः।
गीष्पतिः कृष्णसारस्थः शुक्रो गवयवाहनः॥ ४७

शनिश्च मकरारूढ उष्ट्रस्थः सिंहिकासुतः।
श्येनारूढस्तथा केतुः शिशुमारेऽभिजित् स्थितः॥ ४८

भीतर सब ओर दहीकी कीच मच गयी। उसमें बूढ़े और मोटे शरीरवाले लोग गिर पड़ते थे और दूसरे लोग खूब हँसते थे॥ ३३—३५॥

महाराज! वहाँ जो पौराणिक सूत, वंशोंके प्रशंसक मागध और निर्मल बुद्धिवाले तथा अवसरके अनुरूप बातें कहनेवाले बंदीजन पधारे थे, उन सबको नन्दजीने प्रत्येकके लिये अलग-अलग एक-एक हजार गौएँ प्रदान कीं। वस्त्र, आभूषण, रत्न, घोड़े और हाथी आदि सब कुछ दिये॥ ३६-३७॥

समस्त बंदियों तथा मागधजनोंको गोप व्रजेश्वर नन्दने बहुत धन दिया। मेघके समान धनराशिकी वर्षा कर दी। व्रजकी गली-गलीमें, घर-घरमें निधि, सिद्धि, वृद्धि, भुक्ति और मुक्ति लोटती-सी दिखायी देती थीं। उन्हें पानेकी इच्छा वहाँ किसीको भी नहीं थी॥ ३८-३९॥

उस समय सनत्कुमार, कपिल, शुक और व्यास आदिको तथा हंस, दत्तात्रेय, पुलस्त्य और मुझ (नारद)-को साथ ले ब्रह्माजी वहाँ गये। ब्रह्माजीका वर्ण सुवर्णके समान था। उनके मस्तकोंपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल जगमगा रहे थे। वे वेदकर्ता चतुर्मुख ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको देदीप्यमान करते हुए वहाँ आये थे॥ ४०-४१॥

उनके पीछे भूतोंसे घिरे हुए वृषभारूढ़ महेश्वर पधारे। फिर रथारूढ़ साक्षात् सूर्य, हाथीपर सवार इन्द्र, खञ्जरीटपर चढ़े हुए वायु, महिषवाहन यम, पुष्पकारूढ़ कुबेर, मृगवाहन चन्द्रमा, बकरेपर बैठे हुए अग्निदेव, मगरपर आरूढ़ वरुण, मयूरवाहन कार्तिकेय, हंसवाहिनी सरस्वती, गरुडारूढ़ लक्ष्मी, सिंहवाहिनी दुर्गा तथा गोरूपधारिणी पृथ्वी, जो विमानपर बैठी थीं, ये सब वहाँ आये॥ ४२—४५॥

दिव्यकान्तिवाली मुख्य-मुख्य सोलह मातृकाएँ पालकीपर बैठकर आयी थीं। खड्ग, चक्र तथा यष्टि धारण करनेवाली षष्ठीदेवी शिबिकापर सवार हो वहाँ पहुँची थीं॥ ४६॥

मङ्गल देवता वानरपर और बुध देवता भास पक्षीपर चढ़े वहाँ पधारे थे। काले मृगपर बैठे बृहस्पति, गवयपर चढ़े शुक्राचार्य, मगरपर आरूढ़ शनिदेव और ऊँटपर आरूढ़ राहु, केतु श्येनारूढ़ तथा अभिजित् सूँसपर बैठे आये। सबसे आगे करोड़ों

सर्वेषामग्रतः प्राप्तो मूषकस्थो गणेश्वरः।
कोटिबालार्कसङ्काश आययौ नन्दमन्दिरम्॥ ४९

बालसूर्योंकी-सी कान्तिवाले मूषकारूढ़ गणेशजी नन्दमन्दिरमें पधारे॥ ४७—४९॥

कोलाहलसमायुक्तं गोपगोपीगणाकुलम्।
नन्दमन्दिरमभ्येत्य क्षणं स्थित्वा ययुः सुराः॥ ५०

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं बालरूपिणम्।
नत्वा दृष्ट्वा तदा देवाश्चक्रुस्तस्य स्तुतिं पराम्॥ ५१

वीक्ष्य कृष्णं तदा देवा ब्रह्माद्या ऋषिभिः सह।
स्वधामानि ययुः सर्वे हर्षिताः प्रेमविह्वलाः॥ ५२

वह कोलाहलयुक्त नन्दभवन झुण्ड-के-झुण्ड गोपों और गोपियोंसे भरा हुआ था। देवतालोग वहाँ पहुँचकर क्षणभर रुके और फिर चले गये। बालरूप परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णको देखकर, उन्हें मस्तक नवाकर, देवताओंने उस समय उनका उत्तम स्तवन किया। ब्रह्मा आदि देवता ऋषियोंसहित वहाँ श्रीकृष्णका दर्शन करके प्रेम-विह्वल और हर्षित हो अपने-अपने धामको चले गये॥ ५०—५२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णदर्शनार्थं ब्रह्माद्यागमनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णदर्शनार्थ ब्रह्मादि देवताओंका आगमन' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

पूतनाका उद्धार

श्रीनारद उवाच

शौर्यनामयपृच्छार्थं करं दातुं नृपस्य च।
पुत्रोत्सवं कथयितुं नन्दे श्रीमथुरां गते॥ १

कंसेन प्रेषिता दुष्टा पूतना घातकारिणी।
पुरेषु ग्रामघोषेषु चरन्ती घर्घरस्वना॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! नन्दजी राजाका कर चुकाने, वसुदेवजीकी कुशल पूछने और उन्हें पुत्रोत्सवका समाचार देनेके लिये मथुरा चले गये। उसी समय कंसकी भेजी हुई बालघातिनी 'घर्घर' ध्वनिवाली, दुष्टा राक्षसी पूतना नगरों, गाँवों और गोष्ठोंमें विचरती हुई गोप और गोपियोंसे भरे हुए गोकुलमें आ पहुँची॥ १-२॥

अथ गोकुलमासाद्य गोपगोपीगणाकुलम्।
रूपं दधार सा दिव्यं वपुः षोडशवार्षिकम्॥ ३

न केऽपि रुरुधुर्गोपाः सुन्दरीं तां च गोपिकाः।
शचीं वाणीं रमां रम्भां रतिं च क्षिपतीमिव॥ ४

गोकुलके निकट आनेपर उसने मायासे दिव्य रूप धारण कर लिया। वह सोलह वर्षकी अवस्थावाली तरुणी बन गयी। उसका सौन्दर्य इतना दिव्य था कि वह अपनी अङ्गकान्तिसे शची, सरस्वती, लक्ष्मी, रम्भा तथा रतिको भी तिरस्कृत कर रही थी, इसलिये उसे वहाँके गोपों तथा गोपियोंने रोका भी नहीं॥ ३-४॥

रोहिण्यां च यशोदायां धर्षितायां स्फुरत्कुचा।
अङ्कमादाय तं बालं लालयन्ती पुनः पुनः॥ ५

ददौ शिशोर्महाघोरा कालकूटावृतं स्तनम्।
प्राणैः सार्धं पपौ दुग्धं कटुरोषावृतो हरिः॥ ६

चलते समय उसके कुच दिव्य आभासे झलकते और हिलते थे। उसे देखकर रोहिणी तथा यशोदा भी हतप्रभ हो गयीं। उसने आते ही बालकको गोदमें ले लिया और बारंबार लाड़ लड़ाती हुई उस महाघोर दानवीने शिशुके मुखमें हलाहल विषसे लिप्त अपना स्तन दे दिया। यह देख तीक्ष्ण रोषसे आवृत हो श्रीहरिने उसका सारा दूध उसके प्राणोंसहित पी लिया॥ ५-६॥

मुञ्च मुञ्च वदन्तीत्थं धावन्ती पीडितस्तना।
नीत्वा बहिर्गता तं वै गतमाया बभूव ह॥ ७

पतन्नेत्रा श्वेतगात्रा रुदन्ती पतिता भुवि।
ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह॥ ८

चचाल वसुधा द्वीपैस्तदद्भुतमिवाभवत्।
षट्क्रोशं सा दृढान् दीर्घान् वृक्षान्पृष्ठतले गतान्॥ ९

चूर्णीचकार वपुषा वज्राङ्गेण नृपेश्वर।
वदन्तस्ते गोपगणा वीक्ष्य घोरं वपुर्महत्॥ १०

अस्या उत्सङ्गगो बालो न जीवति कदाचन।
तस्या उरसि सानन्दं क्रीडन्तं सुस्मितं शिशुम्॥ ११

दुग्धं पीत्वा जृम्भमाणं तं दृष्ट्वा जगृहुः स्त्रियः।
यशोदया च रोहिण्या निधायोरसि विस्मिताः॥ १२

सर्वतो बालकं नीत्वा रक्षां चक्रुर्विधानतः।
कालिन्दीपुण्यमृत्तोयैर्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १३

गोमूत्रगोरजोभिश्च स्नापयित्वा त्विदं जगुः॥ १४

श्रीगोप्य ऊचुः

श्रीकृष्णस्ते शिरः पातु वैकुण्ठः कण्ठमेव हि।
श्वेतद्वीपपतिः कर्णौ नासिकां यज्ञरूपधृक्॥ १५

नृसिंहो नेत्रयुग्मं च जिह्वां दशरथात्मजः।
अधराववतां ते तु नरनारायणावृषी॥ १६

उसके स्तनोंमें जब असह्य पीड़ा हुई, तब 'छोड़ो-छोड़ो' कहते हुए वह उठकर भागी। बच्चेको लिये-लिये घरसे बाहर निकल गयी। बाहर जानेपर उसकी माया नष्ट हो गयी और वह अपने असली रूपमें दिखायी देने लगी। उसके नेत्र बाहर निकल आये। सारा शरीर सफेद पड़ गया और वह रोती-चिल्लाती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसकी चिल्लाहटसे सातों लोक और सातों पातालसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा॥ ७-८॥

द्वीपोंसहित सारी पृथ्वी डोलने लगी। वह एक अद्भुत-सी घटना हुई। नृपेश्वर! पूतनाका विशाल शरीर छः कोस लंबा और वज्रके समान सुदृढ़ था। उसके गिरनेसे उसकी पीठके नीचे आये हुए बड़े-बड़े वृक्ष पिसकर चकनाचूर हो गये। उस समय गोपगण उस दानवीके भयंकर और विशाल शरीरको देखकर परस्पर कहने लगे—'इसकी गोदमें गया हुआ बालक कदाचित् जीवित नहीं होगा।' परंतु वह अद्भुत बालक उसकी छातीपर बैठा हुआ आनन्दसे खेलता और मुसकराता था॥ ९—११॥

वह पूतनाका दूध पीकर जम्हाई ले रहा था। उसे उस अवस्थामें देखकर यशोदा तथा रोहिणीके साथ जाकर स्त्रियोंने उठा लिया और छातीसे लगाकर वे सब-की-सब बड़े विस्मयमें पड़ गयीं। बच्चेको ले जाकर गोपियोंने सब ओरसे विधिपूर्वक उसकी रक्षा की। यमुनाजीकी पवित्र मिट्टी लगाकर उसके ऊपर यमुना-जलका छींटा दिया, फिर उसके ऊपर गायकी पूँछ घुमायी। गोमूत्र और गोरजमिश्रित जलसे उसको नहलाया और निम्नाङ्कित रूपसे कवचका पाठ किया—॥ १२—१४॥

श्रीगोपियाँ बोलीं—मेरे लाल! श्रीकृष्ण तेरे सिरकी रक्षा करें और भगवान् वैकुण्ठ कण्ठकी। श्वेतद्वीपके स्वामी दोनों कानोंकी, यज्ञरूपधारी श्रीहरि नासिकाकी, भगवान् नृसिंह दोनों नेत्रोंकी, दशरथ-नन्दन श्रीराम जिह्वाकी और नर-नारायण ऋषि तेरे अधरोंकी रक्षा करें॥ १५-१६॥

कपोलौ पातु ते साक्षात्सनकाद्याः कला हरेः।
भालं ते श्वेतवाराहो नारदो भ्रूलतेऽवतु॥ १७

चिबुकं कपिलः पातु दत्तात्रेय उरोऽवतु।
स्कन्धौ द्वावृषभः पातु करौ मत्स्यः प्रपातु ते॥ १८

दोर्दण्डं सततं रक्षेत्पृथुः पृथुलविक्रमः।
उदरं कमठः पातु नाभिं धन्वन्तरिश्च ते॥ १९

मोहिनी गुह्यदेशं च कटिं ते वामनोऽवतु।
पृष्ठं परशुरामश्च तवोरू बादरायणः॥ २०

बलो जानुद्वयं पातु जङ्घे बुद्धः प्रपातु ते।
पादौ पातु सगुल्फौ च कल्किर्धर्मपतिः प्रभुः॥ २१

सर्वरक्षाकरं दिव्यं श्रीकृष्णकवचं परम्।
इदं भगवता दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे॥ २२

ब्रह्मणा शम्भवे दत्तं शम्भुर्दुर्वाससे ददौ।
दुर्वासाः श्रीयशोमत्यै प्रादाच्छ्रीनन्दमन्दिरे॥ २३

अनेन रक्षां कृत्वास्य गोपीभिः श्रीयशोमती।
पाययित्वा स्तनं दानं विप्रेभ्यः प्रददौ महत्॥ २४

तदा नन्दादयो गोपा आगता मथुरापुरात्।
दृष्ट्वा घोरां पूतनाख्यां बभूवुर्भयविह्वलाः॥ २५

छित्वा कुठारैस्तद्देहं गोपाः श्रीयमुनातटे।
अनेकाश्च चिताः कृत्वा दाहयामासुरेव ताम्॥ २६

एलालवङ्गश्रीखण्डतगरागरुगन्धिभृत्।
धूमो दग्धस्य देहस्य पवित्रस्य समुत्थितः॥ २७

अहो कृष्णमृते कं वा व्रजाम शरणं त्विह।
पूतनायै मोक्षगतिं ददौ पतितपावनः॥ २८

श्रीबहुलाश्व उवाच

केयं वा राक्षसी पूर्वं पूतना बालघातिनी।
विषस्तना दुष्टभावा परं मोक्षं कथं गता॥ २९

साक्षात् श्रीहरिके कलावतार सनक-सनन्दन आदि चारों महर्षि तेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें। भगवान् श्वेतवाराह तेरे भालदेशकी तथा नारद दोनों भ्रूलताओंकी रक्षा करें। भगवान् कपिल तेरी ठोढ़ीको और दत्तात्रेय तेरे वक्षःस्थलको सुरक्षित रखें। भगवान् ऋषभ तेरे दोनों कंधोंकी और मत्स्यभगवान् तेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करें॥ १७-१८॥

पृथुल-पराक्रमी राजा पृथु सदा तेरे बाहुदण्डोंको सुरक्षित रखें। भगवान् कच्छप उदरकी और धन्वन्तरि तेरी नाभिकी रक्षा करें। मोहिनी-रूपधारी भगवान् तेरे गुह्यदेशको और वामन तेरी कटिको हानिसे बचायें। परशुरामजी तेरे पृष्ठभागकी और बादरायण व्यासजी तेरी दोनों जाँघोंकी रक्षा करें॥ १९-२०॥

बलभद्र दोनों घुटनोंकी और बुद्धदेव तेरी पिंडलियोंकी रक्षा करें। धर्मपालक भगवान् कल्कि गुल्फोंसहित तेरे दोनों पैरोंको सकुशल रखें। यह सबकी रक्षा करनेवाला परम दिव्य 'श्रीकृष्ण-कवच' है। इसका उपदेश भगवान् विष्णुने अपने नाभि-कमलमें विद्यमान ब्रह्माजीको दिया था॥ २१-२२॥

ब्रह्माजीने शम्भुको, शम्भुने दुर्वासाको और दुर्वासाने नन्द-मन्दिरमें आकर श्रीयशोदाजीको इसका उपदेश दिया था। इस कवचके द्वारा गोपियोंसहित श्रीयशोदाने नन्दनन्दनकी रक्षा करके उन्हें अपना स्तन पिलाया और ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दिया॥ २३-२४॥

उसी समय नन्द आदि गोप मथुरापुरीसे गोकुलमें लौट आये। पूतनाके भयानक शरीरको देखकर वे सब-के-सब भयसे व्याकुल हो गये। गोपोंने कुठारोंसे उसके शरीरको काट-काटकर यमुनाजीके किनारे कई चिताएँ बनायीं और उसका दाह-संस्कार किया॥ २५-२६॥

पूतनाका शरीर परम पवित्र हो गया था। जलानेपर उससे जो धुआँ निकला, उसमें इलाइची-लवङ्ग, चन्दन, तगर और अगरकी सुगन्ध भरी हुई थी। अहो! जिन पतितपावनने पूतनाको मोक्षगति प्रदान की, उन श्रीकृष्णको छोड़कर हम यहाँ किसकी शरणमें जायँ॥ २७-२८॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—[देवर्षे!] यह बालघातिनी राक्षसी पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी? इसके स्तनमें विष लगा हुआ था तथा उसके भीतरका भाव भी दूषित ही था; तथापि इसे उत्तम मोक्षकी प्राप्ति कैसे हुई?॥ २९॥

श्रीनारद उवाच

बलियज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपमतः परम्।
बलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार ह॥ ३०

एतादृशो यदि भवेद्बालस्तं हि शुचिस्मितम्।
पाययामि स्तनं तेन प्रसन्नं मे मनस्तदा॥ ३१

बलेः परमभक्तस्य सुतायै वामनो हरिः।
मनोरथस्तु ते भूयान्मनस्यपि वरं ददौ॥ ३२

साभवद्द्वापरान्ते वै पूतना नाम विश्रुता।
श्रीकृष्णस्पर्शसम्पूता परं प्राप्तमनोरथा॥ ३३

यः पूतनामोक्षमिमं शृणोति
कृष्णस्य देवस्य परात्परस्य।
भक्तिर्भवेत्प्रेमयुतापि तस्य
त्रिवर्गसिद्धिः किमु मैथिलेन्द्र॥ ३४

श्रीनारदजी बोले—[पूर्वकालमें] राजा बलिके यज्ञमें भगवान् वामनके परम उत्तम रूपको देखकर बलि-कन्या रत्नमालाने उनके प्रति पुत्रोचित स्नेह किया था। उसने मन-ही-मन यह संकल्प किया था कि 'यदि मेरे भी ऐसा ही बालक उत्पन्न हो और उस पवित्र मुसकान-वाले शिशुको मैं अपना स्तन पिला सकूँ तो उससे मेरा चित्त प्रसन्न हो जायगा।' बलि भगवान्‌के परम भक्त हैं, अतः उनकी पुत्रीको वामन-भगवान्‌ने यह वर दिया कि 'तेरे मनमें जो मनोरथ है, वह पूर्ण हो।'॥ ३०—३२॥

वही रत्नमाला द्वापरके अन्तमें पूतना नामसे विख्यात राक्षसी हुई। भगवान् श्रीकृष्णके स्पर्शसे पवित्र हुई उसका उत्तम मनोरथ सफल हो गया। मिथिलानरेश! जो मनुष्य परात्पर भगवान् श्रीकृष्णके इस पूतनोद्धारसम्बन्धी प्रसङ्गको सुनता है, उसको भगवान्‌की प्रेमपूर्ण भक्ति प्राप्त हो जाती है; फिर उसे धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गकी उपलब्धि हो जाय, इसके लिये तो कहना ही क्या है॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे पूतनामोक्षो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'पूतना-मोक्ष' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

शकटभंजन; उत्कच और तृणावर्तका उद्धार; दोनोंके पूर्वजन्मोंका वर्णन

श्रीगर्ग उवाच

इत्येवं कथितं दिव्यं श्रीकृष्णचरितं वरम्।
यः शृणोति नरो भक्त्या स कृतार्थो न संशयः॥ १

श्रीगर्गजीने कहा—शौनक! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्णके सर्वोत्कृष्ट दिव्य चरित्रका वर्णन किया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह कृतार्थ है, उसे परम पुरुषार्थ प्राप्त हो गया—इसमें संशय नहीं है॥ १॥

श्रीशौनक उवाच

सुधाखण्डात्परं मिष्टं श्रीकृष्णचरितं शुभम्।
श्रुत्वा त्वन्मुखतः साक्षात्कृतार्थाः स्मो वयं मुने॥ २

श्रीकृष्णभक्तः शान्तात्मा बहुलाश्वः सतां वरः।
अथो मुनिं किं पप्रच्छ तन्मे ब्रूहि तपोधन॥ ३

श्रीशौनकजी बोले—मुने! भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गलमय चरित्र अमृत-रससे तैयार की हुई परम मधुर खाँड़ है। इसे साक्षात् आपके मुखसे सुनकर हम कृतार्थ हो गये। तपोधन! सन्तोंमें श्रेष्ठ राजा बहुलाश्व भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त थे। उनके मनमें सदा शान्ति बनी रहती थी। इसके बाद उन्होंने मुनिवर नारदजीसे कौन-सी बात पूछी, यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ २-३॥

श्रीगर्ग उवाच

अथ राजा मैथिलेन्द्रो हर्षितः प्रेमविह्वलः।
नारदं प्राह धर्मात्मा परिपूर्णतमं स्मरन्॥ ४

श्रीगर्गजीने कहा—[शौनक!] तदनन्तर मिथिलाके महाराज बहुलाश्व हर्षसे उत्फुल्ल और प्रेमसे विह्वल हो गये। फिर उन धर्मात्मा नरेशने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए नारदजीसे कहा—॥ ४॥

बहुलाश्व उवाच

धन्योऽहं च कृतार्थोऽहं भवता भूरिकर्मणा।
सङ्गो भगवदीयानां दुर्लभो दुर्घटोऽस्ति हि॥ ५

श्रीकृष्णस्त्वर्भकः साक्षादद्भुतो भक्तवत्सलः।
अग्रे चकार किं चित्रं चरित्रं वद मे मुने॥ ६

राजा बहुलाश्व बोले—मुने! आपने भूरि-भूरि पुण्यकर्म किये हैं। आपके सम्पर्कसे मैं धन्य और कृतार्थ हो गया; क्योंकि भगवान्के भक्तोंका सङ्ग दुर्लभ और दुस्साध्य है। मुने! अद्भुत भक्तवत्सल साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें आगे चलकर कौन-सी विचित्र लीला की, यह मुझे बताइये॥ ५-६॥

श्रीनारद उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन् भवता कृष्णधर्मिणा।
सङ्गमः खलु साधूनां सर्वेषां वितनोति शम्॥ ७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तुम श्रीकृष्ण-सम्मत धर्मके पालक हो, तुमने यह बहुत उत्तम प्रश्न किया है। निश्चय ही संत पुरुषोंका सङ्ग सबके कल्याणका विस्तार करनेवाला होता है॥ ७॥

एकदा कृष्णजन्मर्क्षे यशोदा नन्दगेहिनी।
गोपीगोपान् समाहूय मङ्गलं चाकरोद्द्विजैः॥ ८

रक्ताम्बरं कनकभूषणभूषिताङ्गं
बालं प्रगृह्य कलिताञ्जनपद्मनेत्रम्।
श्यामं स्फुरद्धरिनखावृतचन्द्रहारं
देवान् प्रणम्य सुधनं प्रददौ द्विजेभ्यः॥ ९

एक दिन, जब भगवान् श्रीकृष्णके जन्मका नक्षत्र प्राप्त हुआ था, नन्दरानी श्रीयशोदाजीने गोप और गोपियोंको अपने यहाँ बुलाकर ब्राह्मणोंके बताये अनुसार मङ्गल-विधान सम्पन्न किया। उस समय श्याम-सलोने बालक श्रीकृष्णको लाल रंगका वस्त्र पहनाया गया। अङ्गोंको सुवर्णमय भूषणोंसे भूषित किया गया। उन्हें गोदमें लेकर मैयाने उनके विकसित कमल-सदृश कमनीय नेत्रोंमें काजल लगाया और गलेमें बघनखायुक्त चन्द्रहार धारण कराया तथा देवताओंको नमस्कार करके ब्राह्मणोंके लिये उत्तम धनका दान दिया॥ ८-९॥

प्रेङ्खे निधाय निजमात्मजमाशु गोपी
सम्पूज्य मङ्गलदिने प्रतिगोपिकास्ताः।
नैवाश्रृणोत् सुरुदितस्य सुतस्य शब्दं
गोपेषु मङ्गलगृहेषु गतागतेषु॥ १०

तदनन्तर गोपी यशोदाजीने शीघ्र ही अपने लालाको पालनेपर लिटा दिया और मङ्गल-दिवसपर गोपियोंमेंसे प्रत्येकका अलग-अलग स्वागत किया। उस मङ्गल-भवनमें उस दिन बहुत-से गोपोंका आना-जाना लगा रहा, अतः उन्हींके सत्कारमें व्यस्त रहनेके कारण वे अपने रोते हुए बालकका रुदन-शब्द सुन न सकीं॥ १०॥

तत्रैव कंसखलनोदित उत्कचाख्यो
दैत्यः प्रभञ्जनतनुः शकटं स एत्य।

उसी क्षण पापात्मा कंसका भेजा हुआ एक राक्षस आया। उसका नाम 'उत्कच' था। वह वायुमय शरीर धारण किये रहता था। वह आकर छकड़ेपर (जिसपर बड़े-बड़े वजनदार दही-दूधके मटके रखे जाते थे) बैठ गया और बालकके मस्तकपर उस शकटको उलटकर गिरानेके प्रयासमें लगा।

बालस्य मूर्ध्नि परिपातयितुं प्रवृत्तः
कृष्णोऽपि तं किल तताड तु रोदनेन॥ ११

चूर्णं गतेऽथ शकटे पतिते च दैत्ये
त्यक्त्वा प्रभञ्जनतनुं विमलो बभूव।
नत्वा हरिं शतहयेन रथेन युक्तो
गोलोकधाम निजलोकमलं जगाम॥ १२

नन्दादयो व्रजजना व्रजगोपिकाश्च
सर्वे समेत्य युगपत्पृथुकांस्तदाहुः।
एष स्वयं च पतितः शकटः कथं हि
जानीथ हे व्रजसुताः सुगताश्च यूयम्॥ १३

बाला ऊचुः

प्रेङ्खस्थोऽयं क्षिपन् पादौ रुदन् दुग्धार्थमेव हि।
तताड पादं शकटे तेनेदं पतितं खलु॥ १४

श्रद्धां न चक्रुर्बालोक्ते गोपा गोप्यश्च विस्मिताः।
त्रैमासिकः क्व बालोऽयं क्व चैतद्भारभृत्त्वनः॥ १५

बालमङ्के सा गृहीत्वा यशोदा ग्रहशङ्किता।
कारयामास विधिवद्यज्ञं विप्रैः सुतर्पितैः॥ १६

श्रीबहुलाश्व उवाच

कोऽयं पूर्वं तु कुशली दैत्य उत्कचनामभाक्।
अहो कृष्णपदस्पर्शाद्गतो मोक्षं महामुने॥ १७

श्रीनारद उवाच

हिरण्याक्षसुतो दैत्य उत्कचो नाम मैथिल।
लोमशस्याश्रमे गच्छन् वृक्षांश्चूर्णीचकार ह॥ १८

तं दृष्ट्वा स्थूलदेहाढ्यमुत्कचाख्यं महाबलम्।
शशाप रोषयुग्विप्रो विदेहो भव दुर्मते॥ १९

सर्पकञ्चुकवद्देहोऽपतत् कर्मविपाकतः।
सद्यस्तच्चरणोपान्ते पतित्वा प्राह दैत्यराट्॥ २०

इतनेमें ही श्रीकृष्णने रोते-रोते ही उस शकटपर पैरसे प्रहार कर दिया। फिर तो वह बड़ा छकड़ा टूक-टूक हो गया और दैत्य मरकर नीचे आ गिरा। ऐसी स्थितिमें वह वायुमय शरीर छोड़कर निर्मल दिव्य देहसे सम्पन्न हो गया और भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके सौ घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य विमानपर बैठकर भगवान्के निजी परमधाम गोलोकको चला गया॥ ११-१२॥

उस समय व्रजवासी नन्द आदि गोप तथा गोपियाँ सब-के-सब एक साथ वहाँ आ गये और बालकोंसे पूछने लगे—व्रजकुमारो! यह शकट अपने-आप ही गिर पड़ा या किसीने इसे गिराया है? कैसे इसकी यह दशा हुई है, तुम जानते हो तो बताओ॥ १३॥

बालकोंने कहा—पालनेपर सोया हुआ यह बालक दूध पीनेके लिये रोते-रोते ही पैर फेंक रहा था। वही पैर छकड़ेसे टकराया, इसीसे यह छकड़ा उलट गया। व्रजबालकोंकी इस बातपर गोप और गोपियोंको विश्वास नहीं हुआ। वे सभी आश्चर्यमग्न होकर सोचने लगे—'कहाँ तो तीन महीनेका यह छोटा-सा बालक और कहाँ इतने विशाल बोझवाला यह छकड़ा!' यशोदाको यह शङ्का हो गयी कि बच्चेको कोई बालग्रह लग गया है। अतः उन्होंने बालकको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंद्वारा विधिपूर्वक ग्रहयज्ञ करवाया। उसमें उन्होंने ब्राह्मणोंको धन आदिसे पूर्णतया तृप्त कर दिया॥ १४—१६॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—महामुने! इस 'उत्कच' नामके राक्षसने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यकर्म किया था, जिसके फलस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके चरणका स्पर्श पाकर वह तत्काल मोक्षका भागी हो गया?॥ १७॥

श्रीनारदजीने कहा—मिथिलेश्वर! यह उत्कच पूर्वजन्ममें हिरण्याक्षका पुत्र था। एक दिन वह लोमशजीके आश्रमपर गया और वहाँ उसने आश्रमके वृक्षोंको चूर्ण कर दिया। स्थूलदेहसे युक्त महाबली उत्कचको खड़ा देख ब्राह्मण-ऋषिने रोषयुक्त होकर उसे शाप दे दिया—'दुर्मते! तू देहरहित हो जा।' उसी कर्मके परिपाकसे उसका वह शरीर सर्प-शरीरसे केंचुलकी भाँति छूटकर गिर पड़ा। यह देख वह महान् दानव मुनिके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला—॥ १८—२०॥

उत्कच उवाच

हे मुने हे कृपासिन्धो कृपां कुरु ममोपरि।
ते प्रभावं न जानामि देहं मे देहि हे प्रभो॥ २१

उत्कचने कहा—मुने! आप कृपाके सागर हैं। मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये। भगवन्! मैंने आपके प्रभावको नहीं जाना। आप मेरी देह मुझे दे दीजिये॥ २१॥

श्रीनारद उवाच

तदा प्रसन्नः स मुनिर्दृष्टं नयशतं विधेः।
सतां रोषोऽपि वरदो वरो मोक्षार्थदः किमु॥ २२

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वे मुनि लोमश प्रसन्न हो गये। जिन्होंने विधाताकी सौ नीतियाँ देखी हैं, अर्थात् जिनके सामने सौ ब्रह्मा बीत चुके हैं, ऐसे संतोंका रोष भी वरदायक होता है। फिर उनका वरदान मोक्षप्रद हो, इसके लिये तो कहना ही क्या है॥ २२॥

श्रीलोमश उवाच

वातदेहस्तु ते भूयाद्व्यतीते चाक्षुषान्तरे।
वैवस्वतान्तरे मुक्तिर्भविता च पदा हरेः॥ २३

श्रीलोमशजी बोले—चाक्षुष-मन्वन्तरतक तो तेरा शरीर वायुमय रहेगा। इसके बीत जानेपर वैवस्वत-मन्वन्तर आयेगा। उसी समयमें (अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें) भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श होनेसे तेरी मुक्ति होगी॥ २३॥

श्रीनारद उवाच

तस्मादुत्कचदैत्यस्तु मुक्तो लोमशतेजसा।
सद्भ्यो नमोऽस्तु ये नूनं समर्था वरशापयोः॥ २४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उक्त वरद शापके कारण लोमशजीके प्रतापसे दानव उत्कच भी भगवान्‌के परम धामका अधिकारी हो गया। जो वर और शाप देनेमें पूर्ण समर्थ हैं, उन श्रेष्ठ संतोंके लिये मेरा नमस्कार है॥ २४॥

उत्सङ्गे क्रीडितं बालं लालयन्त्येकदा नृप।
गिरिभारं न सेहे सा वोढुं श्रीनन्दगेहिनी॥ २५

अहो गिरिसमो बालः कथं स्यादिति विस्मिता।
भूमौ निधाय तं सद्यो नेदं कस्मै जगाद ह॥ २६

कंसप्रणोदितो दैत्यस्तृणावर्तो महाबलः।
जहार बालं क्रीडन्तं वातावर्तेन सुन्दरम्॥ २७

राजन्! एक दिन नन्दरानी यशोदाजीकी गोदमें बालक श्रीकृष्ण खेल रहे थे और नन्दरानी उन्हें लाड़ लड़ा रही थीं। थोड़ी ही देरमें बालक पर्वतके समान भारी प्रतीत होने लगा। वे उसे गोदमें उठाये रखनेमें असमर्थ हो गयीं और मन-ही-मन इस प्रकार विस्मय करने लगीं—'अहो! इस बालकमें पहाड़-सा भारीपन कहाँसे आ गया?' फिर उन्होंने बालगोपालको भूमिपर रख दिया, किंतु यह रहस्य किसीको बतलाया नहीं। उसी समय कंसका भेजा हुआ महाबली दैत्य 'तृणावर्त' वहाँ आकर आँगनमें खेलते हुए सुन्दर बालक श्रीकृष्णको बवंडररूपसे उठा ले गया॥ २५—२७॥

रजोऽन्धकारोऽभूत्तत्र घोरशब्दश्च गोकुले।
रजस्वलानि चक्षूंषि बभूवुर्घटिकाद्वयम्॥ २८

ततो यशोदा नापश्यत्पुत्रं तं मन्दिराजिरे।
मोहिता रुदती घोरान् पश्यन्ती गृहशेखरान्॥ २९

तब गोकुलमें ऐसी धूल उठी, जिसके कारण अँधेरा छा गया और भयंकर शब्द होने लगा। दो घड़ीतक सबकी आँखोंमें धूल भरी रही। उस समय यशोदाजी नन्द-मन्दिरके आँगनमें अपने लालाको न देखकर घबरा गयीं। रोती हुई महलके शिखरोंकी ओर देखने लगीं। वे बड़े भयंकर दीखते थे॥ २८-२९॥

अदृष्टे च यदा पुत्रे पतिता भुवि मूर्च्छिता।
उच्चै रुरोद करुणं मृतवत्सा यथा हि गौः॥ ३०

रुरुदुश्च तदा गोप्यः प्रेमस्नेहसमाकुलाः।
अश्रुमुख्यो नन्दसूनुं पश्यन्त्यस्ता इतस्ततः॥ ३१

जब कहीं भी अपना लाला नहीं दिखायी दिया, तब वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और होशमें आनेपर उच्चस्वरसे इस प्रकार करुण-विलाप करने लगीं, मानो बछड़ेके मर जानेपर गौ क्रन्दन कर रही हो। प्रेम और स्नेहसे व्याकुल हुई गोपियाँ भी रो रही थीं। उन सबके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे इधर-उधर देखती हुई नन्द-नन्दनकी खोजमें लग गयीं॥ ३०-३१॥

तृणावर्तो नभः प्राप्त ऊर्ध्वं वै लक्षयोजनम्।
स्कन्धे सुमेरुवद्बालं मन्यमानः प्रपीडितः॥ ३२

अथ कृष्णं पातयितुं दैत्यस्तत्र समुद्यतः।
गलं जग्राह तस्यापि परिपूर्णतमः स्वयम्॥ ३३

उधर तृणावर्त आकाशमें एक लाख योजन ऊपर जा पहुँचा। बालक श्रीकृष्ण उसके कंधेपर थे। उनका शरीर उसे सुमेरु पर्वतकी भाँति भारी प्रतीत होने लगा। उसे अत्यन्त पीड़ा होने लगी। तब वह दानव श्रीकृष्णको वहाँ नीचे पटकनेकी चेष्टामें लग गया। यह जानकर परिपूर्णतम भगवान्ने स्वयं उसका गला पकड़ लिया॥ ३२-३३॥

मुञ्च मुञ्चेति गदिते दैत्ये कृष्णोऽद्भुतोऽर्भकः।
गलग्राहेण महता व्यसुं दैत्यं चकार ह॥ ३४

तज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं सौदामिनी यथा।
दैत्योऽम्बरान्निपतितः शिलायां शिशुना सह॥ ३५

निशाचरके 'छोड़ दे, छोड़ दे।' कहनेपर अद्भुत बालक श्रीकृष्णने बड़े जोरसे उसका गला दबाया, इससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसकी देहसे ज्योति निकली और घनश्याममें उसी प्रकार विलीन हो गयी, जैसे बादलमें बिजली। तब आकाशसे दैत्यका शरीर बालकके साथ ही एक शिलापर गिर पड़ा॥ ३४-३५॥

विशीर्णावयवस्यापि पतितस्य स्वनेन वै।
विनेदुश्च दिशः सर्वाः कम्पितं भूमिमण्डलम्॥ ३६

तत्पृष्ठस्थं शिशुं तूष्णीं रुदन्त्यो गोपिकास्ततः।
ददृशुर्युगपत्सर्वा नीत्वा मात्रे ददुर्जगुः॥ ३७

गिरते ही उसकी बोटी-बोटी छितरा गयी। गिरनेके धमाके से सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं, भूमण्डल काँपने लगा। उस समय रोती हुई सब गोपियोंने राक्षसकी पीठपर चुपचाप बैठे बालक श्रीकृष्णको एक साथ ही देखा और दौड़कर उन्हें उठा लिया। फिर माता यशोदाको देकर वे कहने लगीं॥ ३६-३७॥

गोप्य ऊचुः

न योग्यासि यशोदे त्वं बालं लालयितुं मनाक्।
न घृणा ते क्वचिद्दृष्टा क्रुद्धासि कथितेन वै॥ ३८

प्राप्तेऽन्धकारे स्वारोहात्कोऽपि बालं जहाति हि।
त्वया निर्घृणया भूमौ धृतो बालो महाभये॥ ३९

गोपियाँ बोलीं—यशोदे! तुममें बालकके लालनपालनकी रत्तीभर भी योग्यता नहीं है। कहनेसे तो तुम बुरा मान जाती हो; किंतु सच बात यह है कि कहीं, कभी तुमसे दया देखी नहीं गयी। भला कहो तो, इस प्रकार अन्धकार आ जानेपर कोई भी अपने बच्चेको गोदसे अलग करता है! तू ऐसी निर्दय है कि ऐसे महान् भयके अवसरपर भी तुमने बालकको जमीनपर रख दिया?॥ ३८-३९॥

श्रीयशोदोवाच

न जानामि कथं बालो भारभूतो गिरीन्द्रवत्।
तस्मान्मया कृतो भूमौ चक्रवाते महाभये॥ ४०

श्रीयशोदाजीने कहा—बहनो! समझमें नहीं आता कि उस समय मेरा लाला क्यों गिरिराजके समान भारी लगने लगा था; इसीलिये उस महा-भयंकर बवंडरमें भी मैंने इसे गोदीसे उतारकर भूमिपर रख दिया॥ ४०॥

गोप्य ऊचुः

मा मृषा वद कल्याणि हे यशोदे गतव्यथे।
अयं दुग्धमुखो बालो लघुः कुसुमतूलवत्॥ ४१

गोपियाँ कहने लगीं—यशोदाजी! रहने दो, झूठ न बोलो। कल्याणी! तुम्हारे दिलमें जरा भी दया-माया नहीं है। यह दुधमुँहा बच्चा तो फूल और रूईके समान हलका है॥ ४१॥

श्रीनारद उवाच

तदा गोप्योऽथ गोपाश्च नन्दाद्या आगते शिशौ।
अतीव मोदं सम्प्रापुर्वदन्तः कुशलं जनैः॥ ४२

यशोदा बालकं नीत्वा पाययित्वा स्तनं मुहुः।
आघ्रायोरसि वस्त्रेण रोहिणीं प्राह मोहिता॥ ४३

श्रीनारदजी कहते हैं—बालक श्रीकृष्णके घर आ जानेपर नन्द आदि गोप और गोपियाँ—सभीको बड़ा हर्ष हुआ। वे सब लोगोंके साथ उसकी कुशल-वार्ता कहने लगे। यशोदाजी बालक श्रीकृष्णको उठा ले गयीं और बार-बार स्तन्य पिलाकर, मस्तक सूँघकर और आँचलसे छातीमें छिपाकर छोह-मोहके वशीभूत हो, रोहिणीसे कहने लगीं— ॥ ४२-४३॥

श्रीयशोदोवाच

एको दैवेन दत्तोऽयं न पुत्रा बहवश्च मे।
तस्यापि बहवोऽरिष्टा आगच्छन्ति क्षणेन वै॥ ४४

अद्य मृत्युमुखान्मुक्तो भविष्यत्किमतः परम्।
किं करोमि क्व गच्छामि कुत्र वासो भवेदतः॥ ४५

वज्रसाराश्च ये दैत्या निर्दया घोरदर्शनाः।
वैरं कुर्वन्ति मे बाले दैव दैव कुतः सुखम्॥ ४६

धनं देहो गृहं सौधो रत्नानि विविधानि च।
सर्वेषां तु ह्यवश्यं वै भूयान्मे कुशली शिशुः॥ ४७

श्रीयशोदाजी बोलीं—बहन! मुझे दैवने यह एक ही पुत्र दिया है, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं; इस एक पुत्रपर भी क्षणभरमें अनेक प्रकारके अरिष्ट आते रहते हैं। आज यह मौतके मुँहसे बचा है। इससे अधिक उत्पात और क्या होगा? अतः अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा अब और कहाँ रहनेकी व्यवस्था करूँ? वज्रके समान कठोर तथा भयानक दिखनेवाले ये निर्दयी दैत्य मेरे पुत्रके प्रति वैरभाव रखते हैं, हा विधाता! मेरे लिये सुख कहाँ! धन, शरीर, मकान, अटारी और विविध प्रकारके रत्न—इन सबसे बढ़कर मेरे लिये यह एक ही बात है कि मेरा यह बालक कुशलसे रहे॥ ४४—४७॥

हरेरर्चां दानमिष्टं पूर्तं देवालयं शतम्।
करिष्यामि तदा बालोऽरिष्टेभ्यो विजयी यदा॥ ४८

एकबालेन मे सौख्यमन्धयष्टिरिव प्रिये।
बालं नीत्वा गमिष्यामि देशे रोहिणि निर्भये॥ ४९

यदि मेरा यह बच्चा अरिष्टोंपर विजयी हो जाय तो मैं भगवान् श्रीहरिकी पूजा, दान एवं यज्ञ करूँगी; तड़ाग, वापी आदिका निर्माण करूँगी और सैकड़ों मन्दिर बनवा दूँगी। प्रिय रोहिणी! जैसे अंधेके लिये लाठी ही सहारा है, उसी प्रकार मेरा सारा सुख इस बालकसे ही है। अतः बहन! अब मैं अपने लालाको उस स्थानपर ले जाऊँगी, जहाँ कोई भय न हो॥ ४८-४९॥

श्रीनारद उवाच

तदैव विप्रा विद्वांस आगता नन्दमन्दिरम्।
यशोदया च नन्देन पूजिता आसनस्थिताः॥ ५०

ब्राह्मणा ऊचुः

मा शोचं कुरु हे नन्द हे यशोदे व्रजेश्वरि।
करिष्यामः शिशो रक्षां चिरञ्जीवी भवेदयम्॥ ५१

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा द्विजमुख्यास्ते कुशाग्रैर्नवपल्लवैः।
पवित्रकलशैस्तोयैर्ऋग्यजुःसामजैः स्तवैः॥ ५२

परैः स्वस्त्ययनैर्यज्ञं कारयित्वा विधानतः।
अग्निं सम्पूज्य विधिवद्रक्षां विदधिरे शिशोः॥ ५३

ब्राह्मणा ऊचुः

दामोदरः पातु पादौ जानुनी विष्टरश्रवाः।
ऊरू पातु हरिर्नाभिं परिपूर्णतमः स्वयम्॥ ५४

कटिं राधापतिः पातु पीतवासास्तवोदरम्।
हृदयं पद्मनाभश्च भुजौ गोवर्धनोद्धरः॥ ५५

मुखं च मथुरानाथो द्वारकेशः शिरोऽवतु।
पृष्ठं पात्वसुरध्वंसी सर्वतो भगवान्स्वयम्॥ ५६

श्लोकत्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेन्मानवः सदा।
महासौख्यं भवेत्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥ ५७

श्रीनारद उवाच

नन्दस्तेभ्यो गवां लक्षं सुवर्णं दशलक्षकम्।
सहस्रं नवरत्नानां वस्त्रलक्षं ददौ परम्॥ ५८

गतेषु द्विजमुख्येषु नन्दो गोपान्नियम्य च।
भोजयामास सम्पूज्य वस्त्रैर्भूषैर्मनोहरैः॥ ५९

श्रीबहुलाश्व उवाच

तृणावर्तः पूर्वकाले कोऽयं सुकृतकृन्नरः।
परिपूर्णतमे साक्षाच्छ्रीकृष्णे लीनतां गतः॥ ६०

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] उसी समय नन्दमन्दिरमें बहुत-से विद्वान् ब्राह्मण पधारे और उत्तम आसनपर बैठे। नन्द और यशोदाजीने उन सबका विधिवत् पूजन किया॥ ५०॥

ब्राह्मण बोले—[व्रजपति] नन्दजी तथा व्रजेश्वरी यशोदे! तुम चिन्ता मत करो। हम इस बालककी [कवच आदिसे] रक्षा करेंगे, जिससे यह दीर्घजीवी हो जाय॥ ५१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने कुशाग्रों, नूतन पल्लवों, पवित्र कलशों, शुद्ध जल तथा ऋक्, यजुः एवं सामवेदके स्तोत्रों और उत्तम स्वस्ति-वाचन आदिद्वारा विधि-विधानसे यज्ञ करवाकर अग्नि की पूजा करायी। तब उन्होंने बालक श्रीकृष्णकी विधिवत् रक्षा की (रक्षार्थ निम्नाङ्कित कवच पढ़ा)॥ ५२-५३॥

ब्राह्मणोंने कहा—भगवान् दामोदर तुम्हारे चरणोंकी रक्षा करें। विष्टरश्रवा घुटनोंकी, श्रीविष्णु जाँघोंकी और स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी नाभिकी रक्षा करें। भगवान् राधावल्लभ तुम्हारे कटिभागकी तथा पीताम्बरधारी तुम्हारे उदरकी रक्षा करें। भगवान् पद्मनाभ हृदयकी, गोवर्धनधारी बाँहोंकी, मथुराधीश्वर मुखकी एवं द्वारकानाथ सिरकी रक्षा करें। असुरोंका संहार करनेवाले भगवान् पीठकी रक्षा करें और साक्षात् भगवान् गोविन्द सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें। तीन श्लोकवाले इस स्तोत्रका जो मनुष्य निरन्तर पाठ करेगा, उसे परम सुखकी प्राप्ति होगी और उसे कहीं भी भयका सामना नहीं करना पड़ेगा॥ ५४—५७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—तदनन्तर नन्दजीने उन ब्राह्मणोंको एक लाख गायें, दस लाख स्वर्णमुद्राएँ, एक हजार नूतन रत्न और एक लाख बढ़िया वस्त्र दिये। उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चले जानेपर नन्दजीने गोपोंको बुला-बुलाकर भोजन कराया और मनोहर वस्त्राभूषणोंसे उन सबका सत्कार किया॥ ५८-५९॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—[मुने!] यह तृणावर्त पहले जन्ममें कौन-सा पुण्यकर्मा मनुष्य था, जो साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो गया?॥ ६०॥

श्रीनारद उवाच

पाण्डुदेशोद्भवो राजा सहस्राक्षः प्रतापवान्।
हरिभक्तो धर्मनिष्ठो यज्ञकृद्दानतत्परः॥ ६१

रेवातटे महादिव्ये लतावेत्रसमाकुले।
नारीणां च सहस्रेण रममाणो चचार ह॥ ६२

दुर्वाससं मुनिं साक्षादागतं न ननाम ह।
तदा मुनिर्ददौ शापं राक्षसो भव दुर्मते॥ ६३

पुनस्तदङ्घ्र्योः पतितं नृपं प्रादाद्वरं मुनिः।
श्रीकृष्णविग्रहस्पर्शान्मुक्तिस्ते भविता नृप॥ ६४

श्रीनारदजी बोले—राजन्! पाण्डुदेशमें उत्पन्न 'सहस्राक्ष' नामसे विख्यात एक प्रतापी राजा थे। उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी। भगवान् विष्णुमें उनकी अपार श्रद्धा थी। वे धर्ममें रुचि रखते थे। यज्ञ और दानमें उनकी बड़ी लगन थी। एक दिन वे रेवा (नर्मदा) नदीके दिव्य तटपर गये। लताएँ और बेंत उस तटकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ सहस्रों स्त्रियोंके साथ आनन्दका अनुभव करते हुए वे विचरने लगे। उसी समय स्वयं दुर्वासा मुनिने वहाँ पदार्पण किया। राजाने उनकी वन्दना नहीं की, तब मुनिने शाप दे दिया—'दुर्बुद्धे! तू राक्षस हो जा।' फिर तो राजा सहस्राक्ष दुर्वासाजीके चरणोंमें पड़ गये। तब मुनिने उन्हें वर दिया—'राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहका स्पर्श होनेसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी'॥ ६१—६४॥

श्रीनारद उवाच

सोऽपि दुर्वाससः शापात्तृणावर्तोऽभवद्भुवि।
श्रीकृष्णविग्रहस्पर्शात्परं मोक्षमवाप ह॥ ६५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वे ही राजा सहस्राक्ष दुर्वासाजीके शापसे भूमण्डलपर 'तृणावर्त' नामक दैत्य हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य श्रीविग्रहका स्पर्श होनेसे उनको सर्वोत्तम मोक्ष (गोलोकधाम) प्राप्त हो गया॥ ६५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शकटासुरतृणावर्तमोक्षो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शकटासुर और तृणावर्तका मोक्ष' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

यशोदाद्वारा श्रीकृष्णके मुखमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन; नन्द और यशोदाके पूर्व-पुण्यका परिचय; गर्गाचार्यका नन्द-भवनमें जाकर बलराम और श्रीकृष्णका नामकरण-संस्कार करना तथा वृषभानुके यहाँ जाकर उन्हें श्रीराधा-कृष्णके नित्य-सम्बन्ध एवं माहात्म्यका ज्ञान कराना

श्रीनारद उवाच

प्रेङ्खे हरिं कनकरत्नमये शयानं
श्यामं शिशुं जनमनोहरमन्दहासम्।
दृष्ट्यार्तिहारि मषिबिन्दुधरं यशोदा
स्वाङ्के चकार धृतकज्जलपद्मनेत्रम्॥ १

पादं पिबन्तमतिचञ्चलमद्भुताङ्गं
वक्रैर्विनीलनवकोमलकेशबन्धैः ।

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन साँवले-सलोने बालक श्रीकृष्ण सोनेके रत्नजटित पालनेपर सोये हुए थे। उनके मुखपर लोगोंके मनको मोहनेवाले मन्दहास्यकी छटा छा रही थी। दृष्टिजनित पीड़ाके निवारणके लिये नन्दनन्दनके ललाटपर काजलका डिठौना शोभा पा रहा था। कमलके समान सुन्दर नेत्रोंमें काजल लगा था। अपने उस सुन्दर लालाको मैया यशोदाने गोदमें ले लिया। वे बालमुकुन्द पैरका अँगूठा चूस रहे थे। उनका स्वभाव चपल था। नील, नूतन, कोमल एवं

श्रीमन्नृकेशरिनखस्फुरदर्धचन्द्रं
तं लालयन्त्यतिघृणं मुदमाप गोपी॥ २

बालस्य पीतपयसो नृप जृम्भितस्य
तत्त्वावृतं च वदने सकलं विराजम्।
माता सुराधिपमुखैः प्रयुतं च सर्वं
दृष्ट्वा परं भयमवाप निमीलिताक्षी॥ ३

राजन् परस्य परिपूर्णतमस्य साक्षात्
कृष्णस्य विश्वमखिलं कपटेन सा हि।
नष्टस्मृतिः पुनरभूत् स्वसुते घृणार्ता
किं वर्णयामि सुतपो बहु नन्दपत्न्याः॥ ४

श्रीबहुलाश्व उवाच

नन्दो यशोदया सार्धं किं चकार तपो महत्।
येन श्रीकृष्णचन्द्रोऽपि पुत्रीभूतो बभूव ह॥ ५

श्रीनारद उवाच

अष्टानां वै वसूनां च द्रोणो मुख्यो धरापतिः।
अनपत्यो विष्णुभक्तो देवराज्यं चकार ह॥ ६

एकदा पुत्रकाङ्क्षी च ब्रह्मणा नोदितो नृप।
मन्दराद्रिं गतस्तप्तुं धरया भार्यया सह॥ ७

कन्दमूलफलाहारौ तप्तपर्णाशनौ ततः।
जलभक्षौ ततस्तौ तु निर्जलौ निर्जने स्थितौ॥ ८

वर्षाणामर्बुदे याते तपस्तत्तपतोर्द्वयोः।
ब्रह्मा प्रसन्नस्तावेत्य वरं ब्रूहीत्युवाच ह॥ ९

घुँघराले केशबन्धोंसे उनकी अङ्गच्छटा अद्भुत जान पड़ती थी। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न, बघनखा तथा चमकीला अर्धचन्द्र (नामक आभूषण) शोभा दे रहे थे। अपार दयामयी गोपी श्रीयशोदा अपने उस लालाको लाड़ लड़ाती हुई बड़े आनन्दका अनुभव कर रही थी॥ १-२॥

राजन्! बालक श्रीकृष्ण दूध पी चुके थे। उन्हें जँभाई आ रही थी। माताकी दृष्टि उधर पड़ी तो उनके मुखमें पृथिव्यादि पाँच तत्त्वोंसहित सम्पूर्ण विराट् (ब्रह्माण्ड) तथा इन्द्रप्रभृति श्रेष्ठ देवता दृष्टिगोचर हुए। तब श्रीयशोदाके मनमें त्रास छा गया। अतः उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं। महाराज! परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी ही मायासे सम्पूर्ण संसार सत्तावान् बना है। उसी मायाके प्रभावसे यशोदाजीकी स्मृति टिक न सकी। फिर अपने बालक श्रीकृष्णपर उनका वात्सल्यपूर्ण दयाभाव उत्पन्न हो गया। अहो! श्रीनन्दरानीके तपका वर्णन कहाँतक करूँ!॥ ३-४॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—[मुनिवर!] नन्दजीने यशोदाके साथ कौन-सा महान् तप किया था, जिसके प्रभावसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके यहाँ पुत्ररूपमें प्रकट हुए?॥ ५॥

श्रीनारदजीने कहा—आठ वसुओंमें प्रधान जो 'द्रोण' नामक वसु हैं, उनकी स्त्रीका नाम 'धरा' है। इन्हें संतान नहीं थी। वे भगवान् श्रीविष्णुके परम भक्त थे। देवताओंके राज्यका भी पालन करते थे। राजन्! एक समय पुत्रकी अभिलाषा होनेपर ब्रह्माजीके आदेशसे वे अपनी सहधर्मिणी धराके साथ तप करनेके लिये मन्दराचल पर्वतपर गये॥ ६-७॥

वहाँ दोनों दम्पती कंद, मूल एवं फल खाकर अथवा सूखे पत्ते चबाकर तपस्या करते थे। बादमें जलके आधारपर उनका जीवन चलने लगा। तदनन्तर उन्होंने जल पीना भी बंद कर दिया। इस प्रकार जनशून्य देशमें उनकी तपस्या चलने लगी। उन्हें तप करते जब दस करोड़ वर्ष बीत गये, तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर आये और बोले—'वर माँगो'॥ ८-९॥

वल्मीकान्निर्गतो द्रोणो धरया भार्यया सह।
नत्वा विधिं च सम्पूज्य हर्षितः प्राह तं प्रभुम्॥ १०

श्रीद्रोण उवाच

परिपूर्णतमे कृष्णे पुत्रीभूते जनार्दने।
भक्तिः स्यादावयोर्ब्रह्मन् सततं प्रेमलक्षणा॥ ११

ययाञ्जसा तरन्तीह दुस्तरं भवसागरम्।
नान्यं वरं वाञ्छितं स्यादावयोस्तपतोर्विधे॥ १२

श्रीब्रह्मोवाच

युवाभ्यां याचितं यन्मे दुर्घटं दुर्लभं वरम्।
तथापि भूयात्सफलं युवयोरन्यजन्मनि॥ १३

श्रीनारद उवाच

द्रोणो नन्दोऽभवद्भूमौ यशोदा सा धरा स्मृता।
कृष्णो ब्रह्मवचः कर्तुं प्राप्तो घोषे पितुः पुरात्॥ १४

सुधाखण्डात्परं मिष्टं श्रीकृष्णचरितं शुभम्।
गन्धमादनशृङ्गे वै नारायणमुखाच्छ्रुतम्॥ १५

कृपया च कृतार्थोऽहं नरनारायणस्य च।
मया तुभ्यं च कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १६

श्रीबहुलाश्व उवाच

नन्दगेहे हरिः साक्षाच्छिशुरूपः सनातनः।
किं चकार बलेनापि तन्मे ब्रूहि महामुने॥ १७

श्रीनारद उवाच

एकदा शिष्यसहितो गर्गाचार्यो महामुनिः।
शौरिणा नोदितः साक्षादाययौ नन्दमन्दिरम्॥ १८

नन्दः सम्पूज्य विधिवत्पाद्याद्यैर्मुनिसत्तमम्।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य साष्टाङ्गं प्रणनाम ह॥ १९

श्रीनन्द उवाच

अद्य नः पितरो देवाः सन्तुष्टा अग्नयश्च नः।
पवित्रं मन्दिरं जातं युष्मच्चरणरेणुभिः॥ २०

उस समय उनके ऊपर दीमकें चढ़ गयी थीं। अतः उन्हें हटाकर द्रोण अपनी पत्नीके साथ बाहर निकले। उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और विधिवत् उनकी पूजा की। उनका मन आनन्दसे उल्लसित हो उठा। वे उन प्रभुसे बोले— ॥ १० ॥

श्रीद्रोणने कहा—ब्रह्मन्! विधे! परिपूर्णतम जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण मेरे पुत्र हो जायँ और उनमें हम दोनोंकी प्रेमलक्षणा भक्ति सदा बनी रहे, जिसके प्रभावसे मनुष्य दुर्लङ्घ्य भवसागरको सहज ही पार कर जाता है। हम दोनों तपस्वीजनोंको दूसरा कोई वर अभिलषित नहीं है॥ ११-१२॥

श्रीब्रह्माजी बोले—तुमलोगोंने मुझसे जो वर माँगा है, वह कठिनाईसे पूर्ण होनेवाला और अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी दूसरे जन्ममें तुमलोगोंकी अभिलाषा पूरी होगी॥ १३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वे 'द्रोण' ही इस पृथ्वीपर 'नन्द' हुए और 'धरा' ही 'यशोदा' नामसे विख्यात हुईं। ब्रह्माजीकी वाणी सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण पिता वसुदेवजीकी पुरी मथुरासे व्रजमें पधारे थे। भगवान् श्रीकृष्णका शुभ चरित्र सुधा-निर्मित खाँड़से भी अधिक मीठा है। गन्धमादन पर्वतके शिखरपर भगवान् नर-नारायणके श्रीमुखसे मैंने इसे सुना है। उनकी कृपासे मैं कृतार्थ हो गया। वही कथा मैंने तुमसे कही है; अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ १४—१६॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—महामुने! शिशुरूपधारी उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीहरिने नन्दगृहमें बलरामजीके साथ कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं, यह मुझे बताइये॥ १७॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! एक दिन वसुदेवजीके भेजे हुए महामुनि गर्गाचार्य अपने शिष्योंके साथ नन्दभवनमें पधारे। नन्दजीने पाद्य आदि उत्तम उपचारोंद्वारा मुनिश्रेष्ठ गर्गकी विधिवत् पूजा की और प्रदक्षिणा करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया॥ १८-१९॥

श्रीनन्दजी बोले—आज हमारे पितर, देवता और अग्नि—सभी संतुष्ट हो गये। आपके चरणोंकी धूलि पड़नेसे हमारा घर परम पवित्र हो गया॥ २०॥

मत्पुत्रनामकरणं कुरु द्विज महामुने।
पुण्यैस्तीर्थैश्च दुष्प्राप्यं भवदागमनं प्रभो॥ २१

महामुने! आप मेरे बालकका नामकरण कीजिये। विप्रवर प्रभो! अनेक पुण्यों और तीर्थोंका सेवन करनेपर भी आपका शुभागमन सुलभ नहीं होता॥ २१॥

श्रीगर्ग उवाच

ते पुत्रनामकरणं करिष्यामि न संशयः।
पूर्ववार्तां गदिष्यामि गच्छ नन्द रहःस्थलम्॥ २२

श्रीगर्गजीने कहा—नन्दरायजी! मैं तुम्हारे पुत्रका नामकरण करूँगा, इसमें संशय नहीं है; किंतु कुछ पूर्वकालकी बात बताऊँगा, अतः एकान्त स्थानमें चलो॥ २२॥

श्रीनारद उवाच

उत्थाप्य गर्गो नन्देन बालाभ्यां च यशोदया।
एकान्ते गोव्रजे गत्वा तयोर्नाम चकार ह॥ २३

सम्पूज्य गणनाथादीन् ग्रहान् संशोध्य यत्नतः।
नन्दं प्राह प्रसन्नाङ्गो गर्गाचार्यो महामुनिः॥ २४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर गर्गजी नन्द-यशोदा तथा दोनों बालक—श्रीकृष्ण एवं बलरामको साथ लेकर गोशालामें, जहाँ दूसरा कोई नहीं था, चले गये। वहाँ उन्होंने उन बालकोंका नामकरण-संस्कार किया। सर्वप्रथम उन्होंने गणेश आदि देवताओंका पूजन किया, फिर यत्नपूर्वक ग्रहोंका शोधन (विचार) करके हर्षसे पुलकित हुए शरीरवाले महामुनि गर्गाचार्य नन्दसे बोले॥ २३-२४॥

श्रीगर्ग उवाच

रोहिणीनन्दनस्यास्य नामोच्चारं शृणुष्व च।
रमन्ते योगिनो ह्यस्मिन् सर्वत्र रमतीति वा॥ २५

गुणैश्च रमयन् भक्तांस्तेन रामं विदुः परे।
गर्भसङ्कर्षणादस्य सङ्कर्षण इति स्मृतः॥ २६

सर्वावशेषाद्यं शेषं बलाधिक्याद् बलं विदुः।
स्वपुत्रस्यापि नामानि शृणु नन्द ह्यतन्द्रितः॥ २७

श्रीगर्गजीने कहा—ये जो रोहिणीके पुत्र हैं, इनका नाम बताता हूँ—सुनो। इनमें योगीजन रमण करते हैं अथवा ये सबमें रमते हैं या अपने गुणोंद्वारा भक्तजनोंके मनको रमाया करते हैं, इन कारणोंसे उत्कृष्ट ज्ञानीजन इन्हें 'राम' नामसे जानते हैं। योगमायाद्वारा गर्भका संकर्षण होनेसे इनका प्रादुर्भाव हुआ है, अतः ये 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध होंगे। अशेष जगत्‌का संहार होनेपर भी ये शेष रह जाते हैं, अतः इन्हें लोग 'शेष' नामसे जानते हैं। सबसे अधिक बलवान् होनेसे ये 'बल' नामसे भी विख्यात होंगे॥ २५—२६$^{1}/_{2}$॥

सद्यः प्राणिपवित्राणि जगतां मङ्गलानि च।
ककारः कमलाकान्त ऋकारो राम इत्यपि॥ २८

षकारः षड्गुणपतिः श्वेतद्वीपनिवासकृत्।
णकारो नारसिंहोऽयमकारो ह्यक्षरोऽग्निभुक्॥ २९

विसर्गौ च तथा ह्येतौ नरनारायणावृषी।
सम्प्रलीनाश्च षट् पूर्णा यस्मिञ्छब्दे महामनौ॥ ३०

नन्द! अब अपने पुत्रके भी नाम सावधानीके साथ सुनो—ये सभी नाम तत्काल प्राणिमात्रको पावन करनेवाले तथा चराचर समस्त जगत्‌के लिये परम कल्याणकारी हैं। 'क' का अर्थ है—कमलाकान्त; 'ऋ'कारका अर्थ है—राम; 'ष' अक्षर षड्विध ऐश्वर्यके स्वामी श्वेतद्वीपनिवासी भगवान् विष्णुका वाचक है॥ २७—२८$^{1}/_{2}$॥

'ण' नरसिंहका प्रतीक है और 'अकार' अक्षर अग्निभुक् (अग्निरूपसे हविष्यके भोक्ता अथवा अग्निदेवके रक्षक)-का वाचक है तथा दोनों विसर्गरूप बिंदु (:) नर-नारायणके बोधक हैं। ये छहों पूर्ण

परिपूर्णतमे साक्षात्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीतो वर्णोऽस्यानुयुगं धृतः॥ ३१

द्वापरान्ते कलेरादौ बालोऽयं कृष्णतां गतः।
तस्मात्कृष्ण इति ख्यातो नाम्नायं नन्दनन्दनः॥ ३२

वसवश्चेन्द्रियाणीति तद्देवश्चित्तमेव हि।
तस्मिन् यश्चेष्टते सोऽपि वासुदेव इति स्मृतः॥ ३३

वृषभानुसुता राधा या जाता कीर्तिमन्दिरे।
तस्याः पतिरयं साक्षात्तेन राधापतिः स्मृतः॥ ३४

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते॥ ३५

सोऽयं तव शिशुर्जातो भारावतरणाय च।
कंसादीनां वधार्थाय भक्तानां रक्षणाय च॥ ३६

अनन्तान्यस्य नामानि वेदगुह्यानि भारत।
लीलाभिश्च भविष्यन्ति तत्कर्मसु न विस्मयः॥ ३७

अहोभाग्यं तु ते नन्द साक्षाच्छ्रीपुरुषोत्तमः।
त्वद्गृहे वर्तमानोऽयं शिशुरूपः परात्परः॥ ३८

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वाथ गते गर्गे स्वात्मानं पूर्णमाशिषम्।
मेने प्रमुदितः पत्न्या नन्दराजो महामतिः॥ ३९

अथ गर्गो ज्ञानिवरो ज्ञानदो मुनिसत्तमः।
कालिन्दीतीरशोभाढ्यां वृषभानुपुरीं गतः॥ ४०

छत्रेण शोभितं विप्रं द्वितीयमिव वासवम्।
दण्डेन राजितं साक्षाद् धर्मराजमिव स्थितम्॥ ४१

तत्त्व जिस महामन्त्ररूप परिपूर्णतम शब्दमें लीन हैं, वह इसी व्युत्पत्तिके कारण 'कृष्ण' कहा गया है॥ २९—३०१/२॥

अतः इस बालकका एक नाम 'कृष्ण' है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन युगोंमें इन्होंने शुक्ल, रक्त, पीत तथा कृष्ण कान्ति ग्रहण की है। द्वापरके अन्त और कलिके आदिमें यह बालक 'कृष्ण' अङ्गकान्तिको प्राप्त हुआ है, इस कारणसे भी यह नन्दनन्दन 'कृष्ण' नामसे विख्यात होगा॥ ३१-३२॥

इनका एक नाम 'वासुदेव' भी है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'वसु' नाम है इन्द्रियोंका। इनका देवता है—चित्त। उस चित्तमें स्थित रहकर जो चेष्टाशील हैं, उन अन्तर्यामी भगवान्‌को 'वासुदेव' कहते हैं। वृषभानुकी पुत्री राधा जो कीर्तिके भवनमें प्रकट हुई हैं, उनके ये साक्षात् प्राणनाथ बनेंगे; अतः इनका एक नाम 'राधापति' भी है॥ ३३-३४॥

जो साक्षात् परिपूर्णतम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हैं, असंख्य ब्रह्माण्ड जिनके अधीन हैं और जो गोलोकधाममें विराजते हैं, वे ही परम प्रभु तुम्हारे यहाँ बालकरूपसे प्रकट हुए हैं। पृथ्वीका भार उतारना, कंस आदि दुष्टोंका संहार करना और भक्तोंकी रक्षा करना—ये ही इनके अवतारके उद्देश्य हैं॥ ३५-३६॥

भरतवंशोद्भव नन्द! इनके नामोंका अन्त नहीं है। वे सब नाम वेदोंमें गूढ़रूपसे कहे गये हैं। इनकी लीलाओंके कारण भी उन-उन कर्मोंके अनुसार इनके नाम विख्यात होंगे। इनके अद्भुत कर्मोंको लेकर आश्चर्य नहीं करना चाहिये। तुम्हारा अहोभाग्य है; क्योंकि जो साक्षात् परिपूर्णतम परात्पर श्रीपुरुषोत्तम प्रभु हैं, वे तुम्हारे घर पुत्रके रूपमें शोभा पा रहे हैं॥ ३७-३८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर श्रीगर्गजी जब चले गये, तब प्रमुदित हुए महामति नन्दरायने यशोदासहित अपनेको पूर्णकाम एवं कृतकृत्य माना। तदनन्तर ज्ञानिशिरोमणि ज्ञानदाता मुनिश्रेष्ठ श्रीगर्गजी यमुनातटपर सुशोभित वृषभानुजीकी पुरीमें पधारे। छत्र धारण करनेसे वे दूसरे इन्द्रकी तथा दण्ड धारण करनेसे साक्षात् धर्मराजकी भाँति सुशोभित होते थे॥ ३९—४१॥

तेजसा द्योतितदिशं साक्षात्सूर्यमिवापरम्।
पुस्तकीमेखलायुक्तं द्वितीयमिव पद्मजम्॥ ४२

शोभितं शुक्लवासोभिर्देवं विष्णुमिव स्थितम्।
तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं सहसोत्थाय सादरम्॥ ४३

प्रणम्य शिरसा सद्यः सम्मुखोऽभूत्कृताञ्जलिः।
मुनिं च पीठके स्थाप्य पाद्याद्यैरुपचारवित्॥ ४४

पूजयामास विधिवच्छ्रीगर्गं ज्ञानिनां वरम्।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य वृषभानुवरो महान्॥ ४५

श्रीवृषभानुरुवाच

सतां पर्यटनं शान्तं गृहिणां शान्तये स्मृतम्।
नृणामन्तस्तमोहारी साधुरेव न भास्करः॥ ४६

तीर्थीभूता वयं गोपा जातास्त्वद्दर्शनात्प्रभो।
तीर्थानि तीर्थीकुर्वन्ति त्वादृशाः साधवः क्षितौ॥ ४७

हे मुने राधिकानाम कन्या मे मङ्गलायना।
कस्मै वराय दातव्या वद त्वं मे सुनिश्चितम्॥ ४८

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीं दिव्यदर्शनः।
वरोऽनया समो यो वै तस्मै दास्यामि कन्यकाम्॥ ४९

श्रीनारद उवाच

हस्तं गृहीत्वा श्रीगर्गो वृषभानोर्महामुनिः।
जगाम यमुनातीरं निर्जनं सुन्दरस्थलम्॥ ५०

कालिन्दीजलकल्लोलकोलाहलसमाकुलम्।
तत्रोपवेश्य गोपेशं मुनीन्द्रः प्राह धर्मवित्॥ ५१

श्रीगर्ग उवाच

हे गोप गुप्तमाख्यानं कथनीयं न च त्वया।
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्॥ ५२

असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः।
तस्मात्परो वरो नास्ति जातो नन्दगृहे पतिः॥ ५३

साक्षात् दूसरे सूर्यकी भाँति वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। पुस्तक तथा मेखलासे युक्त विप्रवर गर्ग दूसरे ब्रह्माकी भाँति प्रतीत होते थे। शुक्ल वस्त्रोंसे सुशोभित होनेके कारण वे भगवान् विष्णुकी-सी शोभा पाते थे। उन मुनिश्रेष्ठको देखकर वृषभानुजीने तुरंत उठकर अत्यन्त आदरके साथ सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर वे उनके सामने खड़े हो गये॥ ४२—४३ १/२॥

पूजनोपचारके ज्ञाता वृषभानुने मुनिको एक मङ्गलमय आसनपर बिठाकर पाद्य आदिके द्वारा उन ज्ञानिशिरोमणि गर्गका विधिवत् पूजन किया। फिर उनकी परिक्रमा करके महान् 'वृषभानुवर' इस प्रकार बोले॥ ४४-४५॥

श्रीवृषभानुने कहा—सन्त पुरुषोंका विचरण शान्तिमय है; क्योंकि वह गृहस्थजनोंको परम शान्ति प्रदान करनेवाला है। मनुष्योंके भीतरी अन्धकारका नाश महात्माजन ही करते हैं, सूर्यदेव नहीं। भगवन्! आपका दर्शन पाकर हम सभी गोप पवित्र हो गये। भूमण्डलपर आप-जैसे साधु-महात्मा पुरुष तीर्थोंको भी पावन बनानेवाले होते हैं॥ ४६-४७॥

हे मुने! मेरे यहाँ एक कन्या हुई है, जो मङ्गलकी धाम है और जिसका 'राधिका' नाम है। आप भली-भाँति विचारकर यह बतानेकी कृपा कीजिये कि इसका शुभ विवाह किसके साथ किया जाय? सूर्यकी भाँति आप तीनों लोकोंमें विचरण करते हैं। आप दिव्यदर्शन हैं, जो इसके अनुरूप सुयोग्य वर होगा, उसीके हाथमें इस कल्याणमयी कन्याको दूँगा॥ ४८-४९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर मुनिवर गर्गजी वृषभानुजीका हाथ पकड़े यमुनाके तटपर गये। वहाँ एक निर्जन और अत्यन्त सुन्दर स्थान था, जहाँ कालिन्दी-जलकी कल्लोलमालाओंकी कल-कल ध्वनि सदा गूँजती रहती थी। वहीं गोपेश्वर वृषभानुको बैठाकर धर्मज्ञ मुनीन्द्र गर्ग इस प्रकार कहने लगे—॥ ५०-५१॥

श्रीगर्गजी बोले—वृषभानुजी! एक गुप्त बात है, यह तुम्हें किसीसे नहीं कहनी चाहिये। जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकधामके स्वामी, परात्पर तथा साक्षात् परिपूर्णतम हैं; जिनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है; स्वयं वे ही भगवान् श्रीकृष्ण नन्दके घरमें प्रकट हुए हैं॥ ५२-५३॥

श्रीवृषभानुरुवाच

अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दस्यापि महामुने।
श्रीकृष्णस्यावतारस्य सर्वं त्वं वद कारणम्॥ ५४

श्रीगर्ग उवाच

भुवो भारावताराय कंसादीनां वधाय च।
ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णो बभूव जगतीतले॥ ५५

श्रीकृष्णपट्टराज्ञी या गोलोके राधिकाभिधा।
त्वद्गृहे सापि सञ्जाता त्वं न जानासि तां पराम्॥ ५६

श्रीनारद उवाच

तदा प्रहर्षितो गोपो वृषभानुः सुविस्मितः।
कलावतीं समाहूय तया सार्धं विचार्य च॥ ५७

राधाकृष्णानुभावं च ज्ञात्वा गोपवरः परः।
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन् पुनराह महामुनिम्॥ ५८

श्रीवृषभानुरुवाच

तस्मै दास्यामि हे ब्रह्मन् कन्यां कमललोचनाम्।
त्वया पन्था दर्शितो मे त्वया कार्योऽयमुद्वहः॥ ५९

श्रीगर्ग उवाच

अहं न कारयिष्यामि विवाहमनयोर्नृप।
तयोर्विवाहो भविता भाण्डीरे यमुनातटे॥ ६०

वृन्दावनसमीपे च निर्जने सुन्दरस्थले।
परमेष्ठी समागत्य विवाहं कारयिष्यति॥ ६१

तस्माद् राधां गोपवर विद्ध्यर्धाङ्गीं वरस्य च।
लोकचूडामणेः साक्षाद् राज्ञीं गोलोकमन्दिरे॥ ६२

यूयं सर्वेऽपि गोपाला गोलोकादागता भुवि।
तथा गोपीगणा गावो गोलोके राधिकेच्छया॥ ६३

श्रीवृषभानुने कहा—महामुने! नन्दजीका भी भाग्य अद्भुत है, धन्य एवं अवर्णनीय है। अब आप भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका सम्पूर्ण कारण मुझे बताइये॥ ५४॥

श्रीगर्गजी बोले—पृथ्वीका भार उतारने और कंस आदि दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। उन्हीं परम प्रभु श्रीकृष्णकी पटरानी, जो प्रिया श्रीराधिकाजी गोलोकधाममें विराजती हैं, वे ही तुम्हारे घर पुत्रीरूपसे प्रकट हुई हैं। तुम उन पराशक्ति राधिकाको नहीं जानते॥ ५५-५६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस समय गोप वृषभानुके मनमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी और वे अत्यन्त विस्मित हो गये। उन्होंने कलावती (कीर्ति)-को बुलाकर उनके साथ विचार किया। पुनः श्रीराधा-कृष्णके प्रभावको जानकर गोपवर वृषभानु आनन्दके आँसू बहाते हुए पुनः महामुनि गर्गसे कहने लगे— ॥ ५७-५८॥

श्रीवृषभानुने कहा—हे द्विजवर! उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णको मैं अपनी यह कमलनयनी कन्या समर्पण करूँगा। आपने ही मुझे यह सन्मार्ग दिखलाया है; अतः आपके द्वारा ही इसका शुभ विवाह-संस्कार सम्पन्न होना चाहिये॥ ५९॥

श्रीगर्गजीने कहा—राजन्! श्रीराधा और श्रीकृष्णका पाणिग्रहण-संस्कार मैं नहीं कराऊँगा। यमुनाके तटपर भाण्डीर-वनमें इनका विवाह होगा। वृन्दावनके निकट जनशून्य सुरम्य स्थानमें स्वयं श्रीब्रह्माजी पधारकर इन दोनोंका विवाह करायेंगे॥ ६०-६१॥

गोपवर! तुम गोलोकधाममें निवास करनेवाली राज्ञी इन श्रीराधिकाको लोकचूडामणि भगवान् श्रीकृष्णकी साक्षात् वल्लभा समझो। तुम सम्पूर्ण गोप गोलोकधामसे ही इस भूमण्डलपर आये हो। वैसे ही समस्त गोपियाँ और गायें भी गोलोकमें विराजनेवाली श्रीराधिकाजीकी आज्ञा मानकर गोलोकसे आयी हैं॥ ६२-६३॥

यद्दर्शनं दुर्लभमेव दुर्घटं
देवैश्च यज्ञैर्न च जन्मभिः किमु।
सविग्रहां तां तव मन्दिराजिरे
लक्षन्ति गुप्तां बहुगोपगोपिकाः॥ ६४

श्रीनारद उवाच

तदा च विस्मितौ राजन् दम्पती हर्षितौ परम्।
राधाकृष्णप्रभावं च श्रुत्वा श्रीगर्गमूचतुः॥ ६५

दम्पती ऊचतुः

राधाशब्दस्य हे ब्रह्मन् व्याख्यानं वद तत्त्वतः।
त्वत्तो न संशयच्छेत्ता कोऽपि भूमौ महामुने॥ ६६

श्रीगर्ग उवाच

सामवेदस्य भावार्थं गन्धमादनपर्वते।
शिष्येणापि मया तत्र नारायणमुखाच्छ्रुतम्॥ ६७

रमया तु रकारः स्यादाकारस्त्वादिगोपिका।
धकारो धरया हि स्यादाकारो विरजा नदी॥ ६८

श्रीकृष्णस्य परस्यापि चतुर्धा तेजसोऽभवत्।
लीला भूः श्रीश्च विरजा चतस्रः पत्न्य एव हि॥ ६९॥

सम्प्रलीनाश्च ताः सर्वा राधायां कुञ्जमन्दिरे।
परिपूर्णतमां राधां तस्मादाहुर्मनीषिणः॥ ७०

राधाकृष्णेति हे गोप ये जपन्ति पुनः पुनः।
चतुष्पदार्थं किं तेषां साक्षात्कृष्णोऽपि लभ्यते॥ ७१

श्रीनारद उवाच

तदातिविस्मितो राजन् वृषभानुः प्रियायुतः।
राधाकृष्णप्रभावं तं ज्ञात्वानन्दमयो ह्यभूत्॥ ७२

इत्थं गर्गो ज्ञानिवरः पूजितो वृषभानुना।
जगाम स्वगृहं साक्षान्मुनीन्द्रः सर्ववित्कविः॥ ७३

बड़े-बड़े यज्ञ करनेपर देवताओंको भी अनेक जन्मोंतक जिनकी झाँकी सुलभ नहीं होती, उनके लिये भी जिनका दर्शन दुर्घट है, वे साक्षात् श्रीराधिकाजी तुम्हारे मन्दिरके आँगनमें गुप्तरूपसे विराज रही हैं और बहुसंख्यक गोप और गोपियाँ उनका साक्षात् दर्शन करते हैं॥ ६४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधिकाजी और भगवान् श्रीकृष्णका यह प्रशंसनीय प्रभाव सुनकर श्रीवृषभानु और कीर्ति—दोनों अत्यन्त विस्मित तथा आनन्दसे आह्लादित हो उठे और गर्गजीसे कहने लगे॥ ६५॥

दम्पती बोले—ब्रह्मन्! 'राधा' शब्दकी तात्त्विक व्याख्या बताइये। महामुने! इस भूतलपर मनके संदेहको दूर करनेवाला आपके समान दूसरा कोई नहीं है॥ ६६॥

श्रीगर्गजीने कहा—एक समयकी बात है, मैं गन्धमादन पर्वतपर गया। साथमें शिष्यवर्ग भी थे। वहीं भगवान् नारायणके श्रीमुखसे मैंने सामवेदका यह सारांश सुना है। 'रकार' से रमाका, 'आकार' से गोपिकाओंका, 'धकार' से धराका तथा 'आकार' से विरजा नदीका ग्रहण होता है॥ ६७-६८॥

परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णका सर्वोत्कृष्ट तेज चार रूपोंमें विभक्त हुआ। लीला, भू, श्री और विरजा—ये चार पत्नियाँ ही उनका चतुर्विध तेज हैं। ये सब-की-सब कुञ्जभवनमें जाकर श्रीराधिकाजीके श्रीविग्रहमें लीन हो गयीं। इसीलिये विज्ञजन श्रीराधाको 'परिपूर्णतमा' कहते हैं। गोप! जो मनुष्य बारंबार 'राधाकृष्ण' के इस नामका उच्चारण करते हैं, उन्हें चारों पदार्थ तो क्या, साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण भी सुलभ हो जाते हैं॥ ६९—७१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस समय भार्यासहित श्रीवृषभानुके आश्चर्यकी सीमा न रही। श्रीराधा-कृष्णके दिव्य प्रभावको जानकर वे आनन्दके मूर्तिमान् विग्रह बन गये। इस प्रकार श्रीवृषभानुने ज्ञानिशिरोमणि श्रीगर्गजीकी पूजा की। तब वे सर्वज्ञ एवं त्रिकालदर्शी मुनीन्द्र गर्ग स्वयं अपने स्थानको सिधारे॥ ७२-७३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नन्दपत्न्या विश्वरूपदर्शनं श्रीकृष्णनामकरणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नन्दपत्नीका विश्वरूपदर्शन तथा श्रीकृष्णका नामकरण-संस्कार' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

भाण्डीर-वनमें नन्दजीके द्वारा श्रीराधाजीकी स्तुति; श्रीराधा और श्रीकृष्णका ब्रह्माजीके द्वारा विवाह; ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन तथा नव-दम्पतीकी मधुर लीलाएँ

श्रीनारद उवाच

गाश्चारयन्नन्दनमङ्कदेशे
संलालयन् दूरतमं सकाशात्।
कलिन्दजातीरसमीरकम्पितं
नन्दोऽपि भाण्डीरवनं जगाम॥ १
कृष्णेच्छया वेगतरोऽथ वातो
घनैरभून्मेदुरमम्बरं च।
तमालनीपद्रुमपल्लवैश्च
पतद्भिरेजद्भिरतीव भीकैः॥ २
तदान्धकारे महति प्रजाते
बाले रुदत्यङ्कगतेऽतिभीते।
नन्दो भयं प्राप शिशुं स बिभ्र-
द्धरिं परेशं शरणं जगाम॥ ३
तदैव कोट्यर्कसमूहदीप्ति-
रागच्छती वा चलती दिशासु।
बभूव तस्यां वृषभानुपुत्रीं
ददर्श राधां नवनन्दराजः॥ ४
कोटीन्दुबिम्बद्युतिमादधानां
नीलाम्बरं सुन्दरमादिवर्णम्।
मञ्जीरधीरध्वनिनूपुराणा-
माबिभ्रतीं शब्दमतीवमञ्जुम्॥ ५
काञ्चीकलाकङ्कणशब्दमिश्रां
हाराङ्गुलीयाङ्गदविस्फुरन्तीम्।
श्रीनासिकामौक्तिकहंसिकीभिः
श्रीकण्ठचूडामणिकुण्डलाढ्याम्॥ ६
तत्तेजसा धर्षित आशु नन्दो
नत्वाथ तामाह कृताञ्जलिः सन्।
अयं तु साक्षात्पुरुषोत्तमस्त्वं
प्रियासि मुख्यासि सदैव राधे॥ ७
गुप्तं त्विदं गर्गमुखेन वेद्मि
गृहाण राधे निजनाथमङ्कात्।

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन नन्दजी अपने नन्दनको अङ्कमें लेकर लाड़ लड़ाते और गौएँ चराते हुए खिरकके पाससे बहुत दूर निकल गये। धीरे-धीरे भाण्डीर-वन जा पहुँचे, जो कालिन्दी-नीरका स्पर्श करके बहनेवाले तीरवर्ती शीतल समीरके झोंकेसे कम्पित हो रहा था। थोड़ी ही देरमें श्रीकृष्णकी इच्छासे वायुका वेग अत्यन्त प्रखर हो उठा। आकाश मेघोंकी घटासे आच्छादित हो गया। तमाल और कदम्ब वृक्षोंके पल्लव टूट-टूटकर गिरने, उड़ने और अत्यन्त भयका उत्पादन करने लगे। उस समय महान् अन्धकार छा गया। नन्दनन्दन रोने लगे। वे पिताकी गोदमें बहुत भयभीत दिखायी देने लगे। नन्दको भी भय हो गया। वे शिशुको गोदमें लिये परमेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये॥ १—३॥

उसी क्षण करोड़ों सूर्योंके समूहकी-सी दिव्य दीप्ति उदित हुई, जो सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त थी; वह क्रमशः निकट आती-सी जान पड़ी। उस दीप्तिराशिके भीतर नौ नन्दोंके राजाने वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको देखा। वे करोड़ों चन्द्रमण्डलोंकी कान्ति धारण किये हुए थीं। उनके श्रीअङ्गोंपर आदिवर्ण नील रंगके सुन्दर वस्त्र शोभा पा रहे थे। चरणप्रान्तमें मञ्जीरोंकी धीर-ध्वनिसे युक्त नूपुरोंका अत्यन्त मधुर शब्द हो रहा था। उस शब्दमें काञ्चीकलाप और कङ्कणोंकी झनकार भी मिली थी। रत्नमय हार, मुद्रिका और बाजूबंदोंकी प्रभासे वे और भी उद्भासित हो रही थीं। नाकमें मोतीकी बुलाक और नकबेसरकी अपूर्व शोभा हो रही थी। कण्ठमें कंठा, सीमन्तपर चूड़ामणि और कानोंमें कुण्डल झलमला रहे थे॥ ४—६॥

श्रीराधाके दिव्य तेजसे अभिभूत हो नन्दने तत्काल उनके सामने मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर कहा—'राधे! ये साक्षात् पुरुषोत्तम हैं और तुम इनकी मुख्य प्राणवल्लभा हो, यह गुप्त रहस्य मैं गर्गजीके

एनं गृहं प्रापय मेघभीतं
वदामि चेत्थं प्रकृतेर्गुणाढ्यम्॥ ८

नमामि तुभ्यं भुवि रक्ष मां त्वं
यथेप्सितं सर्वजनैर्दुरापा।

श्रीराधोवाच

अहं प्रसन्ना तव भक्तिभावान्
मद्दर्शनं दुर्लभमेव नन्द॥ ९

श्रीनन्द उवाच

यदि प्रसन्नासि तदा भवेन्मे
भक्तिर्दृढा कौ युवयोः पदाब्जे।
सतां च भक्तिस्तव भक्तिभाजां
सङ्गः सदा मेऽथ युगे युगे च॥ १०

श्रीनारद उवाच

तथास्तु चोक्त्वाथ हरिं कराभ्यां
जग्राह राधा निजनाथमङ्कात्।
गतेऽथ नन्दे प्रणते व्रजेशे
तदा हि भाण्डीरवनं जगाम॥ ११

गोलोकलोकाच्च पुरा समागता
भूमिर्निजं स्वं वपुरादधाना।
या पद्मरागादिखचित्सुवर्णा
बभूव सा तत्क्षणमेव सर्वा॥ १२

वृन्दावनं दिव्यवपुर्दधानं
वृक्षैर्वरैः कामदुघैः सहैव।
कलिन्दपुत्री च सुवर्णसौधैः
श्रीरत्नसोपानमयी बभूव॥ १३

गोवर्धनो रत्नशिलामयोऽभूत्-
सुवर्णशृङ्गैः परितः स्फुरद्भिः।
मत्तालिभिर्निर्झरसुन्दरीभि-
र्दरीभिरुच्चाङ्गकरीव राजन्॥ १४

मुखसे सुनकर जानता हूँ। राधे! अपने प्राणनाथको मेरे अङ्कसे ले लो। ये बादलोंकी गर्जनासे डर गये हैं। इन्होंने लीलावश यहाँ प्रकृतिके गुणोंको स्वीकार किया है। इसीलिये इनके विषयमें इस प्रकार भयभीत होनेकी बात कही गयी है। देवि! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम इस भूतलपर मेरी यथेष्ट रक्षा करो। तुमने कृपा करके ही मुझे दर्शन दिया है, वास्तवमें तो तुम सब लोगोंके लिये दुर्लभ हो'॥ ७—८ १/२॥

श्रीराधाने कहा—नन्दजी! तुम ठीक कहते हो। मेरा दर्शन दुर्लभ ही है। आज तुम्हारे भक्ति-भावसे प्रसन्न होकर ही मैंने तुम्हें दर्शन दिया है॥ ९॥

श्रीनन्द बोले—देवि! यदि वास्तवमें तुम मुझपर प्रसन्न हो तो तुम दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणारविन्दोंमें मेरी सुदृढ़ भक्ति बनी रहे। साथ ही तुम्हारी भक्तिसे भरपूर साधु-संतोंका सङ्ग मुझे सदा मिलता रहे। प्रत्येक युगमें उन संत-महात्माओंके चरणोंमें मेरा प्रेम बना रहे॥ १०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब 'तथास्तु' कहकर श्रीराधाने नन्दजीकी गोदसे अपने प्राणनाथको दोनों हाथोंमें ले लिया। फिर जब नन्दरायजी उन्हें प्रणाम करके वहाँसे चले गये, तब श्रीराधिकाजी भाण्डीर-वनमें गयीं॥ ११॥

पहले गोलोकधामसे जो 'पृथ्वी देवी' इस भूतलपर उतरी थीं, वे उस समय अपना दिव्य रूप धारण करके प्रकट हुईं। उक्त धाममें जिस तरह पद्मराग मणिसे जटित सुवर्णमयी भूमि शोभा पाती है, उसी तरह इस भूतलपर भी व्रजमण्डलमें उस दिव्य भूमिका तत्क्षण अपने सम्पूर्ण रूपसे आविर्भाव हो गया। वृन्दावन कामपूरक दिव्य वृक्षोंके साथ अपना दिव्य रूप धारण करके शोभा पाने लगा। कलिन्दनन्दिनी यमुना भी तटपर सुवर्णनिर्मित प्रासादों तथा सुन्दर रत्नमय सोपानोंसे सम्पन्न हो गयीं॥ १२-१३॥

गोवर्धन पर्वत रत्नमयी शिलाओंसे परिपूर्ण हो गया। उसके स्वर्णमय शिखर सब ओरसे उद्भासित होने लगे। राजन्! मतवाले भ्रमरों तथा झरनोंसे सुशोभित कन्दराओंद्वारा वह पर्वतराज अत्यन्त ऊँचे अङ्गवाले गजराजकी भाँति सुशोभित हो रहा था॥ १४॥

तदा निकुञ्जोऽपि निजं वपुर्दधत्
सभायुतं प्राङ्गणदिव्यमण्डपम्।
वसन्तमाधुर्यधरं मधुव्रतै-
र्मयूरपारावतकोकिलध्वनिम् ॥ १५

सुवर्णरत्नादिखचित्पटैर्वृतं
पतत्पताकावलिभिर्विराजितम् ।
सरः स्फुटद्भिर्भ्रमरावलीढितै-
र्विचर्चितं काञ्चनचारुपङ्कजैः॥ १६

तदैव साक्षात्पुरुषोत्तमोत्तमो
बभूव कैशोरवपुर्घनप्रभः।
पीताम्बरः कौस्तुभरत्नभूषणो
वंशीधरो मन्मथराशिमोहनः॥ १७

भुजेन सङ्गृह्य हसन् प्रियां हरि-
र्जगाम मध्ये सुविवाहमण्डपम्।
विवाहसम्भारयुतः समेखलं
सुदर्भमृद्वारिघटादिमण्डितम् ॥ १८

तत्रैव सिंहासन उद्गते वरे
परस्परं सम्मिलितौ विरेजतुः।
परं ब्रुवन्तौ मधुरं च दम्पती
स्फुरत्प्रभौ खे च तडिद्घनाविव॥ १९

तदाम्बराद्देववरो विधिः प्रभुः
समागतस्तस्य परस्य सम्मुखे।
नत्वा तदङ्घ्री ह्युशतीगिराभिः
कृताञ्जलिश्चारु चतुर्मुखो जगौ॥ २०

श्रीब्रह्मोवाच

अनादिमाद्यं पुरुषोत्तमोत्तमं
श्रीकृष्णचन्द्रं निजभक्तवत्सलम्।

उस समय वृन्दावनके निकुञ्जने भी अपना दिव्य रूप प्रकट किया। उसमें सभाभवन, प्राङ्गण तथा दिव्य मण्डप शोभा पाने लगे। वसन्त-ऋतुकी सारी मधुरिमा वहाँ अभिव्यक्त हो गयी। मधुपों, मयूरों, कपोतों तथा कोकिलोंके कलरव सुनायी देने लगे। निकुञ्जवर्ती दिव्य मण्डपोंके शिखर सुवर्ण-रत्नादिसे खचित कलशोंसे अलंकृत थे। सब ओर फहराती हुई पताकाएँ उनकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँ एक सुन्दर सरोवर प्रकट हुआ, जहाँ सुवर्णमय सुन्दर सरोज खिले हुए थे और उन सरोजोंपर बैठी हुई मधुपावलियाँ उनके मधुर मकरन्दका पान कर रही थीं॥ १५-१६॥

दिव्यधामकी शोभाका अवतरण होते ही साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तम घनश्याम भगवान् श्रीकृष्ण किशोरावस्थाके अनुरूप दिव्य देह धारण करके श्रीराधाके सम्मुख खड़े हो गये। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। कौस्तुभमणिसे विभूषित हो, हाथमें वंशी धारण किये वे नन्दनन्दन राशि-राशि मन्मथों (कामदेवों)-को मोहित करने लगे। उन्होंने हँसते हुए प्रियतमाका हाथ अपने हाथमें थाम लिया और उनके साथ विवाह-मण्डपमें प्रविष्ट हुए। उस मण्डपमें विवाहकी सब सामग्री संग्रह करके रखी गयी थी। मेखला, कुशा, सप्तमृत्तिका और जलसे भरे कलश आदि उस मण्डपकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ १७-१८॥

वहीं एक श्रेष्ठ सिंहासन प्रकट हुआ, जिसपर वे दोनों प्रिया-प्रियतम एक-दूसरेसे सटकर विराजित हो गये और अपनी दिव्य शोभाका प्रसार करने लगे। वे दोनों एक-दूसरेसे मीठी-मीठी बातें करते हुए मेघ और विद्युत्की भाँति अपनी प्रभासे उद्दीप्त हो रहे थे। उसी समय देवताओंमें श्रेष्ठ विधाता—भगवान् ब्रह्मा आकाशसे उतरकर परमात्मा श्रीकृष्णके सम्मुख आये और उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम करके, हाथ जोड़, कमनीय वाणीद्वारा चारों मुखोंसे मनोहर स्तुति करने लगे॥ १९-२०॥

श्रीब्रह्माजी बोले—प्रभो! आप सबके आदिकारण हैं, किंतु आपका कोई आदि-अन्त नहीं है। आप समस्त पुरुषोत्तमोंमें उत्तम हैं। अपने भक्तोंपर सदा वात्सल्यभाव रखनेवाले और 'श्रीकृष्ण' नामसे

स्वयं त्वसंख्याण्डपतिं परात्परं
राधापतिं त्वां शरणं व्रजाम्यहम्॥ २१

गोलोकनाथस्त्वमतीवलीलो
लीलावतीयं निजलोकलीला।
वैकुण्ठनाथोऽसि यदा त्वमेव
लक्ष्मीस्तदेयं वृषभानुजा हि॥ २२

त्वं रामचन्द्रो जनकात्मजेयं
भूमौ हरिस्त्वं कमलालयेयम्।
यज्ञावतारोऽसि यदा तदेयं
श्रीर्दक्षिणा स्त्री पतिपत्निमुख्यौ॥ २३

त्वं नारसिंहोऽसि रमा हृदीयं
नारायणस्त्वं च नरेण युक्तः।
तदा त्वियं शान्तिरतीव साक्षा-
च्छायेव याता च तवानुरूपा॥ २४

त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तटस्था
कालो यदेमां च विदुः प्रधानम्।
महान् यदा त्वं जगदङ्कुरोऽसि
राधा तदेयं सगुणा च माया॥ २५

यदान्तरात्मा विदितश्चतुर्भि-
स्तदा त्वियं लक्षणरूपवृत्तिः।
यदा विराड्देहधरस्त्वमेव
तदाखिलं वा भुवि धारणेयम्॥ २६

श्यामं च गौरं विदितं द्विधा मह-
स्तवैव साक्षात्पुरुषोत्तमोत्तम।
गोलोकधामाधिपतिं परेशं
परात्परं त्वां शरणं व्रजाम्यहम्॥ २७

विख्यात हैं। अगणित ब्रह्माण्डोंके पालक-पति हैं। ऐसे आप परात्पर प्रभु राधा-प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण-चन्द्रकी मैं शरण लेता हूँ॥ २१॥

आप गोलोकधामके अधिनाथ हैं, आपकी लीलाओंका कहीं अन्त नहीं है। आपके साथ ये लीलावती श्रीराधा अपने लोक (नित्यधाम) में ललित लीलाएँ किया करती हैं। जब आप ही 'वैकुण्ठनाथ' के रूपमें विराजमान होते हैं, तब ये वृषभानुनन्दिनी ही 'लक्ष्मी' रूपसे आपके साथ सुशोभित होती हैं। जब आप 'श्रीरामचन्द्र' के रूपमें भूतलपर अवतीर्ण होते हैं, तब ये जनकनन्दिनी 'सीता' के रूपमें आपका सेवन करती हैं। आप 'श्रीविष्णु' हैं और ये कमलवनवासिनी 'कमला' हैं; जब आप 'यज्ञ-पुरुष' का अवतार धारण करते हैं, तब ये श्रीजी आपके साथ 'दक्षिणा' रूपमें निवास करती हैं। आप पतिशिरोमणि हैं तो ये पत्नियोंमें प्रधान हैं॥ २२-२३॥

आप 'नृसिंह' हैं तो ये आपके हृदयमें 'रमा' रूपसे निवास करती हैं। आप ही 'नर-नारायण' रूपसे रहकर तपस्या करते हैं, उस समय आपके साथ ये 'परम शान्ति' के रूपमें विराजमान होती हैं। आप जहाँ जिस रूपमें रहते हैं, वहाँ तदनुरूप देह धारण करके ये छायाकी भाँति आपके साथ रहती हैं॥ २४॥

आप 'ब्रह्म' हैं और ये 'तटस्था प्रकृति'। आप जब 'काल' रूपसे स्थित होते हैं, तब इन्हें 'प्रधान' (प्रकृति) के रूपमें जाना जाता है। जब आप जगत्के अङ्कुर 'महान्' (महत्तत्त्व) रूपमें स्थित होते हैं। तब ये श्रीराधा 'सगुणा माया' रूपसे स्थित होती हैं॥ २५॥

जब आप मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारों अन्तःकरणोंके साथ 'अन्तरात्मा' रूपसे स्थित होते हैं, तब ये श्रीराधा 'लक्षणावृत्ति' के रूपमें विराजमान होती हैं। जब आप 'विराट्' रूप धारण करते हैं, तब ये अखिल भूमण्डलमें 'धारणा' कहलाती हैं॥ २६॥

पुरुषोत्तमोत्तम! आपका ही श्याम और गौर—द्विविध तेज सर्वत्र विदित है। आप गोलोकधामके अधिपति परात्पर परमेश्वर हैं। मैं आपकी शरण लेता हूँ॥ २७॥

सदा पठेद्यो युगलस्तवं परं
गोलोकधाम प्रवरं प्रयाति सः।
इहैव सौन्दर्यसमृद्धिसिद्धयो
भवन्ति तस्यापि निसर्गतः पुनः॥ २८

यदा युवां प्रीतियुतौ च दम्पती
परात्परौ तावनुरूपरूपितौ।
तथापि लोकव्यवहारसङ्ग्रहाद्
विधिं विवाहस्य तु कारयाम्यहम्॥ २९

श्रीनारद उवाच

तदा स उत्थाय विधिर्हुताशनं
प्रज्वाल्य कुण्डे स्थितयोस्तयोः पुरः।
श्रुतेः करग्राहविधिं विधानतो
विधाय धाता समवस्थितोऽभवत्॥ ३०

स कारयामास हरिं च राधिकां
प्रदक्षिणाः सप्त हिरण्यरेतसः।
ततश्च तौ तं प्रणमय्य वेदवित्
तौ पाठयामास च सप्त मन्त्रकम्॥ ३१

ततो हरेर्वक्षसि राधिकायाः
करं च संस्थाप्य हरेः करं पुनः।
श्रीराधिकायाः किल पृष्ठदेशके
संस्थाप्य मन्त्रांश्च विधिः प्रपाठयत्॥ ३२

राधाकराभ्यां प्रददौ च मालिकां
किञ्जल्किनीं कृष्णगलेऽलिनादिनीम्।
हरेः कराभ्यां वृषभानुजागले
ततश्च वह्निं प्रणमय्य वेदवित्॥ ३३

संवासयामास सुपीठयोश्च तौ
कृताञ्जली मौनयुतौ पितामहः।
तौ पाठयामास तु पञ्चमन्त्रकं
समर्प्य राधां च पितेव कन्यकाम्॥ ३४

पुष्पाणि देवा ववृषुस्तदा नृप
विद्याधरीभिर्ननृतुः सुराङ्गनाः।
गन्धर्वविद्याधरचारणाः कलं
सकिन्नराः कृष्णसुमङ्गलं जगुः॥ ३५

जो इस युगलरूपकी उत्तम स्तुतिका सदा पाठ करता है, वह समस्त धामोंमें श्रेष्ठ गोलोकधाममें जाता है और इस लोकमें भी उसे स्वभावतः सौन्दर्य, समृद्धि और सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। यद्यपि आप दोनों नित्य-दम्पती हैं और परस्पर प्रीतिसे परिपूर्ण रहते हैं, परात्पर होते हुए भी एक-दूसरेके अनुरूप रूप धारण करके लीला-विलास करते हैं; तथापि मैं लोक-व्यवहारकी सिद्धि या लोकसंग्रहके लिये आप दोनोंकी वैवाहिक विधि सम्पन्न कराऊँगा॥ २८-२९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने उठकर कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित की और अग्निदेवके सम्मुख बैठे हुए उन दोनों प्रिया-प्रियतमके वैदिक विधानसे पाणिग्रहण-संस्कारकी विधि पूरी की। यह सब करके ब्रह्माजीने खड़े होकर श्रीहरि और राधिकाजीसे अग्निदेवकी सात परिक्रमाएँ करवायीं। तदनन्तर उन दोनोंको प्रणाम करके वेदवेत्ता विधाताने उन दोनोंसे सात मन्त्र पढ़वाये। उसके बाद श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर श्रीराधिकाका हाथ रखवाकर और श्रीकृष्णका हाथ श्रीराधिकाके पृष्ठदेशमें स्थापित करके विधाताने उनसे मन्त्रोंका उच्चस्वरसे पाठ करवाया॥ ३०—३२॥

उन्होंने राधाके हाथोंसे श्रीकृष्णके कण्ठमें एक केसरयुक्त माला पहनायी, जिसपर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। इसी तरह श्रीकृष्णके हाथोंसे भी वृषभानु-नन्दिनीके गलेमें माला पहनवाकर वेदज्ञ ब्रह्माजीने उन दोनोंसे अग्निदेवको प्रणाम करवाया और सुन्दर सिंहासनपर उन अभिनव दम्पतीको बैठाया। वे दोनों हाथ जोड़े मौन रहे। पितामहने उन दोनोंसे पाँच मन्त्र पढ़वाये और जैसे पिता अपनी पुत्रीका सुयोग्य वरके हाथमें दान करता है, उसी प्रकार उन्होंने श्रीराधाको श्रीकृष्णके हाथमें सौंप दिया॥ ३३—३४॥

राजन्! उस समय देवताओंने फूल बरसाये और विद्याधरियोंके साथ देवाङ्गनाओंने नृत्य किया। गन्धर्वों, विद्याधरों, चारणों और किंनरोंने मधुर स्वरसे श्रीकृष्णके लिये सुमङ्गल-गान किया॥ ३५॥

मृदङ्गवीणामुरुयष्टिवेणवः
शङ्खानका दुन्दुभयः सतालकाः।
नेदुर्मुहुर्देववरैर्दिवि स्थितैः
जयेत्यभून्मङ्गलशब्दमुच्चकैः ॥ ३६
उवाच तत्रैव विधिं हरिः स्वयं
यथेप्सितं त्वं वद विप्र दक्षिणाम्।
तदा हरिं प्राह विधिः प्रभो मे
देहि त्वदङ्घ्र्योर्निजभक्तिदक्षिणाम्॥ ३७
तथास्तु वाक्यं वदतो विधिर्हरेः
श्रीराधिकायाश्च पदद्वयं शुभम्।
नत्वा कराभ्यां शिरसा पुनः पुन-
र्जगाम गेहं प्रणतः प्रहर्षितः॥ ३८
ततो निकुञ्जेषु चतुर्विधान्नं
दिव्यं मनोज्ञं प्रियया प्रदत्तम्।
जघास कृष्णः प्रहसन् परात्मा
कृष्णेन दत्तं क्रमुकं च राधा॥ ३९
ततः करेणापि करं प्रियाया
हरिर्गृहीत्वा प्रचचाल कुञ्जे।
जगाम जल्पन् मधुरं प्रपश्यन्
वृन्दावनं श्रीयमुनां लताश्च॥ ४०
श्रीमल्लताकुञ्जनिकुञ्जमध्ये
निलीयमानं प्रहसन्तमेव।
विलोक्य शाखान्तरितं च राधा
जग्राह पीताम्बरमाव्रजन्ती॥ ४१
दुद्राव राधा हरिहस्तपद्माज्-
झङ्कारमङ्घ्र्योः प्रतिकुर्वती कौ।
निलीयमाना यमुनानिकुञ्जे
पुनर्व्रजन्ती हरिहस्तमात्रात्॥ ४२
यथा तमालः कलधौतवल्ल्या
घनो यथा चञ्चलया चकास्ति।
नीलोऽद्रिराजो निकषाश्मखन्या
श्रीराधयाढ्यस्तु तथा रमण्या॥ ४३
श्रीरासरङ्गे जनवर्जिते परे
रेमे हरी रासरसेन राधया।
वृन्दावने भृङ्गमयूरकूज-
ल्लते चरत्येव रतीश्वरः परः॥ ४४

मृदङ्ग, वीणा, मुरचंग, वेणु, शङ्ख, नगारे, दुन्दुभि तथा करताल आदि बाजे बजने लगे तथा आकाशमें खड़े हुए श्रेष्ठ देवताओंने मङ्गल-शब्दका उच्चस्वरसे उच्चारण करते हुए बारंबार जय-जयकार किया॥ ३६॥

उस अवसरपर श्रीहरिने विधातासे कहा—'ब्रह्मन्! आप अपनी इच्छाके अनुसार दक्षिणा बताइये।' तब ब्रह्माजीने श्रीहरिसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! मुझे अपने युगलचरणोंकी भक्ति ही दक्षिणाके रूपमें प्रदान कीजिये।'॥ ३७॥

श्रीहरिने 'तथास्तु' कहकर उन्हें अभीष्ट वरदान दे दिया। तब ब्रह्माजीने श्रीहरि तथा श्रीराधिकाके मङ्गलमय युगल-चरणारविन्दोंको दोनों हाथों और मस्तकसे बारंबार प्रणाम करके अपने धामको प्रस्थान किया। उस समय प्रणाम करके जाते हुए ब्रह्माजीके मनमें अत्यन्त हर्षोल्लास छा रहा था॥ ३८॥

तदनन्तर निकुञ्जभवनमें प्रियतमाद्वारा अर्पित दिव्य मनोरम चतुर्विध अन्न परमात्मा श्रीहरिने हँसते-हँसते ग्रहण किया और श्रीराधाने भी श्रीकृष्णके हाथोंसे चतुर्विध अन्न ग्रहण करके उनकी दी हुई पान-सुपारी भी खायी। इसके बाद श्रीहरि अपने हाथसे प्रियाका हाथ पकड़कर कुञ्जकी ओर चले। वे दोनों मधुर आलाप करते तथा वृन्दावन, यमुना तथा वनकी लताओंको देखते हुए आगे बढ़ने लगे। सुन्दर लता-कुञ्जों और निकुञ्जोंमें हँसते और छिपते हुए श्रीकृष्णको शाखाकी ओटमें देखकर पीछेसे आती हुई श्रीराधाने उनके पीताम्बरका छोर पकड़ लिया॥ ३९—४१॥

फिर श्रीराधा भी माधवके कमलोपम हाथोंसे छूटकर भागीं और युगल-चरणोंके नूपुरोंकी झनकार प्रकट करती हुई यमुना-निकुञ्जमें छिप गयीं। जब श्रीहरिसे एक हाथकी दूरीपर रह गयीं, तब पुनः उठकर भाग चलीं। जैसे तमाल सुनहरी लतासे और मेघ चपलासे सुशोभित होता है तथा जैसे नीलमका महान् पर्वत स्वर्णाङ्कित कसौटीसे शोभा पाता है, उसी प्रकार रमणी श्रीराधासे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे॥ ४२-४३॥

रास-रङ्गस्थलीके निर्जन प्रदेशमें पहुँचकर श्रीहरिने श्रीराधाके साथ रासका रस लेते हुए लीला-रमण किया। भ्रमरों और मयूरोंके कल-कूजनसे मुखरित लताओंवाले वृन्दावनमें वे दूसरे कामदेवकी भाँति विचर रहे थे॥ ४४॥

श्रीराधया कृष्णहरिः परात्मा
ननर्त गोवर्धनकन्दरासु।
मत्तालिषु प्रस्रवणैः सरोभि-
र्विराजितासु द्युतिमल्लतासु॥ ४५

चकार कृष्णो यमुनां समेत्य
वरं विहारं वृषभानुपुत्र्या।
राधाकराल्लक्षदलं सपद्मं
धावन् गृहीत्वा यमुनाजलेषु॥ ४६

राधा हरेः पीतपटं च वंशीं
वेत्रं गृहीत्वा सहसा हसन्ती।
देहीति वंशीं वदतो हरेश्च
जगाद राधा कमलं नु देहि॥ ४७

तस्यै ददौ देववरोऽथ पद्मं
राधा ददौ पीतपटं च वंशीम्।
वेत्रं च तस्मै हरये तयोः पुन-
र्बभूव लीला यमुनातटेषु॥ ४८

ततश्च भाण्डीरवने प्रियाया-
श्चकार शृङ्गारमलं मनोज्ञम्।
पत्रावलीयावककज्जलाद्यैः
पुष्पैः सुरत्नैर्व्रजगोपरत्नः॥ ४९

हरेश्च शृङ्गारमलं प्रकर्तुं
समुद्यता तत्र यदा हि राधा।
तदैव कृष्णस्तु बभूव बालो
विहाय कैशोरवपुः स्वयं हि॥ ५०

नन्देन दत्तं शिशुमेव यादृशं
भूमौ लुठन्तं प्ररुदन्तमाभयात्।
हरिं विलोक्याशु रुरोद राधिका
तनोषि मायां नु कथं हरे मयि॥ ५१

इत्थं रुदन्तीं सहसा विषण्णा-
माकाशवागाह तदैव राधाम्।
शोचं नु राधे इह मा कुरु त्वं
मनोरथस्ते भविता हि पश्चात्॥ ५२

श्रुत्वाथ राधा हि हरिं गृहीत्वा
गताशु गेहे व्रजराजपत्न्याः।

परमात्मा श्रीकृष्ण हरिने, जहाँ मतवाले भ्रमर गुञ्जारव करते थे, बहुत-से झरने तथा सरोवर जिनकी शोभा बढ़ाते थे और जिनमें दीप्तिमती लता-वल्लरियाँ प्रकाश फैलाती थीं, गोवर्धनकी उन कन्दराओंमें श्रीराधाके साथ नृत्य किया॥ ४५॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने यमुनामें प्रवेश करके वृषभानु-नन्दिनीके साथ विहार किया। वे यमुनाजलमें खिले हुए लक्षदल कमलको राधाके हाथसे छीनकर भाग चले। तब श्रीराधाने भी हँसते-हँसते उनका पीछा किया और उनका पीताम्बर, वंशी तथा बेंतकी छड़ी अपने अधिकारमें कर लीं। श्रीहरि कहने लगे—'मेरी बाँसुरी दे दो।' तब राधाने उत्तर दिया—'मेरा कमल लौटा दो।' तब देवेश्वर श्रीकृष्णने उन्हें कमल दे दिया। फिर राधाने भी पीताम्बर, वंशी और बेंत श्रीहरिके हाथमें लौटा दिये। इसके बाद फिर यमुनाके किनारे उनकी मनोहर लीलाएँ होने लगीं॥ ४६—४८॥

तदनन्तर भाण्डीर-वनमें जाकर व्रज-गोप-रत्न श्रीनन्दनन्दनने अपने हाथोंसे प्रियाका मनोहर शृङ्गार किया—उनके मुखपर पत्र-रचना की, दोनों पैरोंमें महावर लगाया, नेत्रोंमें काजलकी पतली रेखा खींच दी तथा उत्तमोत्तम रत्नों और फूलोंसे भी उनका शृङ्गार किया। इसके बाद जब श्रीराधा भी श्रीहरिको शृङ्गार धारण करानेके लिये उद्यत हुईं, उसी समय श्रीकृष्ण अपने किशोररूपको त्यागकर छोटे-से बालक बन गये॥ ४९-५०॥

नन्दने जिस शिशुको जिस रूपमें राधाके हाथोंमें दिया था, उसी रूपमें वे धरतीपर लोटने और भयसे रोने लगे। श्रीहरिको इस रूपमें देखकर श्रीराधिका भी तत्काल विलाप करने लगीं और बोलीं—'हरे! मुझपर माया क्यों फैलाते हो?' इस प्रकार विषादग्रस्त होकर रोती हुई श्रीराधासे सहसा आकाशवाणीने कहा—'राधे! इस समय सोच न करो। तुम्हारा मनोरथ कुछ कालके पश्चात् पूर्ण होगा'॥ ५१-५२॥

यह सुनकर श्रीराधा शिशुरूपधारी श्रीकृष्णको लेकर तुरंत व्रजराजकी धर्मपत्नी यशोदाजीके घर गयीं

दत्वा च बालं किल नन्दपत्न्या
उवाच दत्तः पथि ते च भर्त्रा॥ ५३

उवाच राधां नृप नन्दगेहिनी
धन्यासि राधे वृषभानुकन्यके।
त्वया शिशुर्मे परिरक्षितो भयान्
मेघावृते व्योम्नि भयातुरो वने॥ ५४

सम्पूजिता श्लाघितसद्गुणा सा
सुनन्दिता श्रीवृषभानुपुत्री।
तदा ह्यनुज्ञाप्य यशोमतीं सा
शनैः स्वगेहं हि जगाम राधा॥ ५५

इत्थं हरेर्गुप्तकथा च वर्णिता
राधाविवाहस्य सुमङ्गलावृता।
श्रुता च यैर्वा पठिता च पाठिता
तान् पापवृन्दा न कदा स्पृशन्ति॥ ५६

और उनके हाथमें बालकको देकर बोलीं—'आपके पतिदेवने मार्गमें इस बालकको मुझे दे दिया था।' उस समय नन्द-गृहिणीने श्रीराधासे कहा—'वृषभानुनन्दिनि राधे! तुम धन्य हो; क्योंकि तुमने इस समय, जब कि आकाश मेघोंकी घटासे आच्छन्न है, वनके भीतर भयभीत हुए मेरे नन्हे-से लालाकी पूर्णतया रक्षा की है।' यों कहकर नन्दरानीने श्रीराधाका भलीभाँति सत्कार किया और उनके सद्गुणोंकी प्रशंसा की। इससे वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे यशोदाजीकी आज्ञा ले धीरे-धीरे अपने घर चली गयीं॥ ५३—५५॥

[राजन्!] इस प्रकार श्रीराधाके विवाहकी परम मङ्गलमयी गुप्त कथाका यहाँ वर्णन किया गया। जो लोग इसे सुनते-पढ़ते अथवा सुनाते हैं, उन्हें कभी पापोंका स्पर्श नहीं प्राप्त होता॥ ५६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीराधिकाविवाहवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीराधिकाके विवाहका वर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी बाल-लीलामें दधि-चोरीका वर्णन

श्रीनारद उवाच

अथ बालौ कृष्णरामौ गौरश्यामौ मनोहरौ।
लीलया चक्रतुरलं सुन्दरं नन्दमन्दिरम्॥ १

रिङ्गमाणौ च जानुभ्यां पाणिभ्यां सह मैथिल।
व्रजताल्पेन कालेन ब्रुवन्तौ मधुरं व्रजे॥ २

यशोदया च रोहिण्या लालितौ पोषितौ शिशू।
कदा विनिर्गतावङ्कात् क्वचिदङ्कं समास्थितौ॥ ३

मञ्जीरकिङ्किणीरावं कुर्वन्तौ तावितस्ततः।
त्रिलोकीं मोहयन्तौ द्वौ मायाबालकविग्रहौ॥ ४

क्रीडन्तमादाय शिशुं यशोदा-
जिरे लुठन्तं व्रजबालकैश्च।
तद्धूलिलेपावृतधूसराङ्गं
चक्रे ह्यलं प्रोक्षणमादरेण॥ ५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों गौरश्याम मनोहर बालक विविध लीलाओंसे नन्दभवनको अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक बनाने लगे। मिथिलेश्वर! वे दोनों हाथों और घुटनोंके बलसे चलते हुए और मीठी—तोतली बोली बोलते हुए थोड़े ही समयमें व्रजमें इधर-उधर डोलने लगे। माता यशोदा और रोहिणीके द्वारा लालित-पालित वे दोनों शिशु, कभी माताओंकी गोदसे निकल जाते और कभी पुनः उनके अङ्कमें आ बैठते थे॥ १—३॥

मायासे बालरूप धारण करके त्रिभुवनको मोहित करनेवाले वे दोनों भाई—राम और श्याम, इधर-उधर मञ्जीर और करधनीकी झंकार फैलाते फिरते थे। माता यशोदा व्रज-बालकोंके साथ आँगनमें खेलते-लोटते तथा धूल लग जानेसे धूसर अङ्गवाले अपने लालाको गोदमें लेकर बड़े आदरसे झाड़ती-पोंछती थीं॥ ४-५॥

जानुद्वयाभ्यां च समं कराभ्यां
पुनर्व्रजन् प्राङ्गणमेत्य कृष्णः।
मात्रङ्कदेशे पुनराव्रजन् सन्
बभौ व्रजे केसरिबाललीलः॥ ६

तं सर्वतो हैमनचित्रयुक्तं
पीताम्बरं कञ्चुकमादधानम्।
स्फुरत्प्रभं रत्नमयं च मौलिं
दृष्ट्वा सुतं प्राप मुदं यशोदा॥ ७

बालं मुकुन्दमतिसुन्दरबालकेलिं
दृष्ट्वा परं मुदमवापुरतीव गोप्यः।
श्रीनन्दराजव्रजमेत्य गृहं विहाय
सर्वास्तु विस्मृतगृहाः सुखविग्रहास्ताः॥ ८

श्रीनन्दराजगृहकृत्रिमसिंहरूपं
दृष्ट्वा व्रजन् प्रतिरवन्नृप भीरुवद्यः।
नीत्वा च तं निजसुतं गृहमाव्रजन्तीं
गोप्यो व्रजे सघृणया ह्यवदन् यशोदाम्॥ ९

श्रीगोप्य ऊचुः

क्रीडार्थं चपलं ह्येनं मा बहिः कारयाङ्गणात्।
बालकेलिं दुग्धमुखं काकपक्षधरं शुभे॥ १०

ऊर्ध्वदन्तद्वयं जातं पूर्वं मातुलदोषदम्।
अस्यापि मातुलो नास्ति ते सुतस्य यशोमति॥ ११

तस्माद्दानं तु कर्तव्यं विघ्नानां नाशहेतवे।
गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसां पूजनं तथा॥ १२

श्रीनारद उवाच

तदा यशोदारोहिण्यौ सुतकल्याणहेतवे।
वस्त्ररत्नवान्नानां दानं नित्यं च चक्रतुः॥ १३

अथ व्रजे रामकृष्णौ बालसिंहावलोकनौ।
पद्भ्यां चलन्तौ घोषेषु वर्धमानौ बभूवतुः॥ १४

श्रीकृष्ण दोनों हाथों और घुटनोंके बल चलते हुए पुनः आँगनमें चले जाते और वहाँसे फिर माताकी गोदमें आ जाते थे। इस तरह वे व्रजमें सिंह-शावककी भाँति लीला कर रहे थे। माता यशोदा उन्हें सोनेके तार जड़े पीताम्बर और पीली झगुली पहनाती तथा मस्तकपर दीप्तिमान् रत्नमय मुकुट धारण कराती और इस प्रकार अत्यन्त शोभाशाली भव्यरूपमें उन्हें देखकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करती थीं। अत्यन्त सुन्दर बालोचित क्रीड़ामें तत्पर बालमुकुन्दका दर्शन करके गोपियाँ बड़ा सुख पाती थीं। वे सुख-स्वरूपा गोपाङ्गनाएँ अपना घर छोड़कर नन्दराजके गोष्ठमें आ जातीं और वहाँ आकर वे सब-की-सब अपने घरोंकी सुध-बुध भूल जाती थीं॥ ६—८॥

राजन्! नन्दरायजीके गृह-द्वारपर कृत्रिम सिंहकी मूर्ति देखकर भयभीतकी तरह जब श्रीकृष्ण पीछे लौट पड़ते, तब यशोदाजी अपने लालाको गोदमें उठाकर घरके भीतर चली जाती थीं। उस समय गोपियाँ व्रजमें दयासे द्रवित-हृदय हो यशोदाजीसे इस प्रकार कहती थीं— ॥ ९॥

श्रीगोपाङ्गनाएँ कहने लगीं—शुभे! तुम्हारा लाला खेलनेके लिये बड़ी चपलता दिखाता है। इसकी बालकेलि अत्यन्त मनोहर है। ऐसा न हो कि इसे किसीकी नजर लग जाय। अतः तुम इस काक-पक्षधारी दुधमुँहे बालकको आँगनसे बाहर मत निकलने दिया करो। देखो न, इसके ऊपरके दो दाँत ही पहले निकले हैं, जो मामाके लिये दोषकारक हैं। यशोदाजी! तुम्हारे इस बालकके भी कोई मामा नहीं है, इसलिये विघ्ननिवारणके हेतु तुम्हें दान करना चाहिये। गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, महात्मा तथा वेदोंकी पूजा करनी चाहिये॥ १०—१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] तबसे यशोदा और रोहिणीजी पुत्रोंकी कल्याण-कामनासे प्रतिदिन वस्त्र, रत्न तथा नूतन अन्नका दान करने लगीं। कुछ दिनों बाद सिंह-शावककी भाँति दीखनेवाले राम और कृष्ण—दोनों बालक कुछ बड़े होकर गोष्ठोंमें अपने पैरोंके बलसे चलने लगे॥ १३-१४॥

श्रीदामसुबलाद्यैश्च वयस्यैर्व्रजबालकैः।
यमुनासिकते शुभ्रे लुठन्तौ सकुतूहलौ॥ १५

कालिन्द्युपवने श्यामैस्तमालैः सघनैर्वृते।
कदम्बकुञ्जशोभाढ्ये चेरतू रामकेशवौ॥ १६

जनयन् गोपगोपीनामानन्दं बाललीलया।
वयस्यैश्चोरयामास नवनीतं घृतं हरिः॥ १७

एकदा ह्युपनन्दस्य पत्नी नाम्ना प्रभावती।
श्रीनन्दमन्दिरं प्राप्ता यशोदां प्राह गोपिका॥ १८

प्रभावत्युवाच

नवनीतं घृतं दुग्धं दधि तक्रं यशोमति।
आवयोर्भेदरहितं त्वत्प्रसादाच्च मेऽभवत्॥ १९

नाहं वदामि चानेन स्तेयं कुत्रापि शिक्षितम्।
शिक्षां करोषि न सुते नवनीतमुषि स्वतः॥ २०

यदा मया कृता शिक्षा तदा धृष्टस्तवाङ्गजः।
गालिप्रदानं कृत्वायं द्रवति प्राङ्गणान्मम॥ २१

व्रजाधीशस्य पुत्रोऽयं भूत्वा स्तेयं समाचरेत्।
न मया कथितं किञ्चिद्यशोदे तव गौरवात्॥ २२

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा प्रभावतीवाक्यं यशोदा नन्दगेहिनी।
बालं निर्भर्त्स्य तामाह साम्ना प्रेमपरायणा॥ २३

श्रीयशोदोवाच

गवां कोटिर्गृहे मेऽस्ति गोरसैरार्द्रिताचला।
न जाने दधिमुड् बालो नात्ति सोऽत्र कदाचन॥ २४

अनेन मुषितं गव्यं तत्समं त्वं गृहाण मे।
ते शिशौ मे शिशौ भेदो नास्ति किञ्चित्प्रभावति॥ २५

नवनीतमुखं चैनमत्र त्वं ह्यानयिष्यसि।
तदा शिक्षां करिष्यामि भर्त्सनं बन्धनं तथा॥ २६

श्रीदामा और सुबल आदि व्रज-बालक सखाओंके साथ यमुनाजीके शुभ्र वालुकामय तटपर कौतूहलपूर्वक लोटते हुए राम और श्याम नील-सघन तमालोंसे घिरे और कदम्ब-कुञ्जकी शोभासे विलसित कालिन्दी-तटवर्ती उपवनमें विचरने लगे॥ १५-१६॥

श्रीहरि अपनी बाललीलासे गोप-गोपियोंको आनन्द प्रदान करते हुए सखाओंके साथ घरोंमें जा-जाकर माखन और घृतकी चोरी करने लगे। एक दिन उपनन्दपत्नी गोपी प्रभावती श्रीनन्द-मन्दिरमें आकर यशोदाजीसे बोलीं— ॥१७-१८॥

प्रभावतीने कहा—यशोमति! हमारे और तुम्हारे घरोंमें जो माखन, घी, दूध, दही और तक्र है, उसमें ऐसा कोई बिलगाव नहीं है कि यह हमारा है और वह तुम्हारा। मेरे यहाँ तो तुम्हारे कृपाप्रसादसे ही सब कुछ हुआ है। मैं यह नहीं कहना चाहती कि तुम्हारे इस लालाने कहीं चोरी सीखी है। माखन तो यह स्वयं ही चुराता फिरता है, परंतु तुम इसे ऐसा न करनेके लिये कभी शिक्षा नहीं देती॥ १९-२०॥

एक दिन जब मैंने शिक्षा दी तो तुम्हारा यह ढीठ बालक मुझे गाली देकर मेरे आँगनसे भाग निकला। यशोदाजी! व्रजराजका बेटा होकर यह चोरी करे, यह उचित नहीं है; किंतु मैंने तुम्हारे गौरवका खयाल करके इसे कभी कुछ नहीं कहा है॥ २१-२२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! प्रभावतीकी बात सुनकर नन्द-गेहिनी यशोदाने बालकको डाँट बतायी और बड़े प्रेमसे सान्त्वनापूर्वक प्रभावतीसे कहा॥ २३॥

श्रीयशोदा बोलीं—बहन! मेरे घरमें करोड़ों गौएँ हैं, इस घरकी धरती सदा गोरससे भीगी रहती है। पता नहीं, यह बालक क्यों तुम्हारे घरमें दही चुराता है। यहाँ तो कभी ये सब चीजें चावसे खाता ही नहीं। प्रभावती! इसने जितना भी दही या माखन चुराया हो, वह सब तुम मुझसे ले लो। तुम्हारे पुत्र और मेरे लालामें किंचिन्मात्र भी कोई भेद नहीं है। यदि तुम इसे माखन चुराकर खाते और मुखमें माखन लपेटे हुए पकड़कर मेरे पास ले आओगी तो मैं इसे अवश्य ताड़ना दूँगी, डाँटूँगी और घरमें बाँध रखूँगी॥ २४—२६॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वाक्यं तदा गोपी प्रसन्ना गृहमागता।
एकदा दधिचौर्यार्थं कृष्णस्तस्या गृहं गतः॥ २७

वयस्यैर्बालकैः सार्धं पार्श्वकुड्ये गृहस्य च।
हस्ताद्धस्तं सङ्गृहीत्वा शनैः कृष्णो विवेश ह॥ २८

शिक्यस्थं गोरसं दृष्ट्वा हस्ताग्राह्यं हरिः स्वयम्।
उलूखले पीठके च गोपान् स्थाप्यारुरोह तम्॥ २९

तदपि प्रांशुना लभ्यं गोरसं शिक्यसंस्थितम्।
श्रीदाम्ना सुबलेनापि दण्डेनापि तताड च॥ ३०

भग्नभाण्डात्सर्वगव्यं वहद्भूमौ मनोहरम्।
जघास सबलो मर्कैर्बालकैः सह माधवः॥ ३१

भग्नभाण्डस्वनं श्रुत्वा प्राप्ता गोपी प्रभावती।
पलायितेषु बालेषु जग्राह श्रीकरं हरेः॥ ३२

नीत्वा मृषाश्रुं भीरुं च गच्छन्ती नन्दमन्दिरम्।
अग्रे नन्दं स्थितं दृष्ट्वा मुखे वस्त्रं चकार ह॥ ३३

हरिर्विचिन्तयन्नित्थं माता दण्डं प्रदास्यति।
दधार तद्बालरूपं स्वच्छन्दगतिरीश्वरः॥ ३४

सा यशोदां समेत्याशु प्राह गोपी रुषान्विता।
भाण्डं भग्नीकृतं सर्वं मुषितं दध्यनेन वै॥ ३५

यशोदा तत्सुतं वीक्ष्य हसन्ती प्राह गोपिकाम्।
वस्त्रान्तं च मुखाद्गोपी दूरीकृत्य वदांहसः॥ ३६

अपवादो यदा देयो निर्वासं कुरु मे पुरात्।
युष्मत्पुत्रकृतं चौर्यमस्मत्पुत्रकृतं भवेत्॥ ३७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यशोदाजीकी यह बात सुनकर गोपी प्रभावती प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट आयी। एक दिन श्रीकृष्ण समवयस्क बालकोंके साथ फिर दही चुरानेके लिये उसके घरमें गये। घरकी दीवारके पास सटकर एक हाथसे दूसरे बालकका हाथ पकड़े धीरे-धीरे घरमें घुसे॥ २७-२८॥

छीकेपर रखा हुआ गोरस हाथसे पकड़में नहीं आ सकता, यह देख श्रीहरिने स्वयं एक ओखलीके ऊपर पीढ़ा रखा। उसपर कुछ ग्वाल-बालोंको खड़ा किया और उनके सहारे आप ऊपर चढ़ गये। तो भी छीकेपर रखा हुआ गोरस अभी और ऊँचे कदके मनुष्यसे ही प्राप्त किया जा सकता था, इसलिये वे उसे न पा सके। तब श्रीदामा और सुबलके साथ उन्होंने मटकेपर डंडेसे प्रहार किया॥ २९-३०॥

दहीका बर्तन फूट गया और सारा गव्य पृथ्वीपर बह चला। तब बलरामसहित माधवने ग्वाल-बालों और बंदरोंके साथ वह मनोहर दही जी भरकर खाया। भाण्डके फूटनेकी आवाज सुनकर गोपी प्रभावती वहाँ आ पहुँची। अन्य सब बालक तो वहाँसे भाग निकले; किंतु श्रीकृष्णका हाथ उसने पकड़ लिया॥ ३१-३२॥

श्रीकृष्ण भयभीत-से होकर मिथ्या आँसू बहाने लगे। प्रभावती उन्हें लेकर नन्द-भवनकी ओर चली। सामने नन्दरायजी खड़े थे। उन्हें देखकर प्रभावतीने मुखपर घूँघट डाल दिया। श्रीहरि सोचने लगे—'इस तरह जानेपर माता मुझे अवश्य दण्ड देगी।' अतः उन स्वच्छन्दगति परमेश्वरने प्रभावतीके ही पुत्रका रूप धारण कर लिया। रोषसे भरी हुई प्रभावती यशोदाजीके पास शीघ्र जाकर बोली—'इसने मेरा दहीका बर्तन फोड़ दिया और सारा दही लूट लिया'॥ ३३—३५॥

यशोदाजीने देखा, यह तो इसीका पुत्र है; तब वे हँसती हुई उस गोपीसे बोलीं—'पहले अपने मुखसे घूँघट तो हटाओ, फिर बालकके दोष बताना। यदि इस तरह झूठे ही दोष लगाना है तो मेरे नगरसे बाहर चली जाओ। क्या तुम्हारे पुत्रकी की हुई चोरी मेरे बेटेके माथे मढ़ दी जायगी?'॥ ३६-३७॥

जनलज्जासमायुक्ता दूरीकृत्य मुखाम्बरम्।
सापि प्राह निजं बालं वीक्ष्य विस्मितमानसा॥ ३८

निष्पदस्त्वं कुतः प्राप्तो व्रजसारोऽस्ति मे करे।
वदन्तीत्थं च तं नीत्वा निर्गता नन्दमन्दिरात्॥ ३९

यशोदा रोहिणी नन्दो रामो गोपाश्च गोपिकाः।
जहसुः कथयन्तस्ते दृष्टोऽन्यायो व्रजे महान्॥ ४०

भगवांस्तु बहिर्वीथ्यां भूत्वा श्रीनन्दनन्दनः।
प्रहसन् गोपिकां प्राह धृष्टाङ्गश्चञ्चलेक्षणः॥ ४१

श्रीभगवानुवाच

पुनर्मां यदि गृह्णासि कदाचित्त्वं हि गोपिके।
ते भर्तृरूपस्तु तदा भविष्यामि न संशयः॥ ४२

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा सा विस्मिता गोपी गता गेहेऽथ मैथिल।
तदा सर्वगृहे गोप्यो न गृह्णन्ति हरिं ह्रिया॥ ४३

तब लोगोंके बीच लजाती हुई प्रभावतीने अपने मुँहसे घूँघटको हटाकर देखा तो उसे अपना ही बालक दिखायी दिया। उसे देखकर वह मन-ही-मन चकित होकर बोली—'अरे निगोड़े! तू कहाँसे आ गया! मेरे हाथमें तो व्रजका सार-सर्वस्व था।' इस तरह बड़बड़ाती हुई वह अपने बेटेको लेकर नन्दभवनसे बाहर चली गयी॥ ३८-३९॥

यशोदा, रोहिणी, नन्द , बलराम तथा अन्यान्य गोप और गोपाङ्गनाएँ हँसने लगीं और बोलीं—'अहो! व्रजमें तो बड़ा भारी अन्याय दिखायी देने लगा है।' उधर भगवान् बाहरकी गलीमें पहुँचकर फिर नन्द-नन्दन बन गये और सम्पूर्ण शरीरसे धृष्टताका परिचय देते हुए, चञ्चल नेत्र मटकाकर, जोर-जोरसे हँसते हुए उस गोपीसे बोले—॥ ४०-४१॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—अरी गोपी! यदि फिर कभी तू मुझे पकड़ेगी तो अबकी बार मैं तेरे पतिका रूप धारण कर लूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ ४२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! यह सुनकर वह गोपी आश्चर्यसे चकित हो अपने घर चली गयी। उस दिनसे सब घरोंकी गोपियाँ लाजके मारे श्रीहरिका हाथ नहीं पकड़ती थीं॥ ४३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णबालचरित्रे दधिस्तेयवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें श्रीकृष्णके बालचरित्रगत 'दधि-चोरीका वर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

नन्द, उपनन्द और वृषभानुओंका परिचय तथा श्रीकृष्णकी मृद्भक्षण-लीला

श्रीनारद उवाच

गोपीगृहेषु विचरन्नवनीतचौरः
श्यामो मनोहरवपुर्नवकञ्जनेत्रः।
श्रीबालचन्द्र इव वृद्धिगतो नराणां
चित्तं हरन्निव चकार व्रजे च शोभाम्॥ १

श्रीनन्दनन्दनमतीव चलं गृहीत्वा
गेहं निधाय मुमुहुर्नवनन्दगोपाः।

श्रीनारदजी कहते हैं—[मिथिलेश्वर!] गोपाङ्गनाओंके घरोंमें विचरते और माखन-चोरीकी लीला करते हुए नवकंज-लोचन मनोहर श्याम-रूपधारी श्रीकृष्ण बालचन्द्रकी भाँति बढ़ते और लोगोंके चित्त चुराते हुए-से व्रजमें अद्भुत शोभाका विस्तार करने लगे। नौ नन्द नामके गोप अत्यन्त चञ्चल श्रीनन्दनन्दनको पकड़कर अपने घर ले जाते और वहाँ बिठाकर उनकी रूपमाधुरीका आस्वादन करते हुए मोहित हो जाते थे।

सत्कन्दुकैश्च सततं परिपालयन्तो
गायन्त ऊर्जितसुखा न जगत्स्मरन्तः॥ २

राजोवाच

नवोपनन्दनामानि वद देवऋषे मम।
अहोभाग्यं तु येषां वै ते पूर्वं के इहागताः॥ ३

तथा षड्वृषभानूनां कर्माणि मङ्गलानि च।

श्रीनारद उवाच

गयश्च विमलः श्रीशः श्रीधरो मङ्गलायनः॥ ४

मङ्गलो रङ्गवल्लीशो रङ्गोजिर्देवनायकः।
नवनन्दाश्च कथिता बभूवुर्गोकुले व्रजे॥ ५

वीतिहोत्रोऽग्निभुक् साम्बः श्रीकरो गोपतिः श्रुतः।
व्रजेशः पावनः शान्त उपनन्दाः प्रकीर्तिताः॥ ६

नीतिविन्मार्गदः शुक्लः पतङ्गो दिव्यवाहनः।
गोपेष्टश्च व्रजे राजञ्जाताः षड्वृषभानवः॥ ७

गोलोके कृष्णचन्द्रस्य निकुञ्जद्वारमाश्रिताः।
वेत्रहस्ताः श्यामलाङ्गा नव नन्दाश्च ते स्मृताः॥ ८

निकुञ्जे कोटिशो गावस्तासां पालनतत्पराः।
वंशीमयूरपक्षाढ्या उपनन्दाश्च ते स्मृताः॥ ९

निकुञ्जदुर्गरक्षायां दण्डपाशधराः स्थिताः।
षड्द्वारमास्थिताः षड् वै कथिता वृषभानवः॥ १०

श्रीकृष्णस्येच्छया सर्वे गोलोकादागता भुवि।
तेषां प्रभावं वक्तुं हि न समर्थश्चतुर्मुखः॥ ११

अहं किमु वदिष्यामि तेषां भाग्यं महोदयम्।
येषामारोहमास्थाय बालकेलिर्बभौ हरिः॥ १२

एकदा यमुनातीरे मृत्कृष्णेनावलीढिता।
यशोदां बालकाः प्राहुरत्ति बालो मृदं तव॥ १३

बलभद्रे च वदति तदा सा नन्दगेहिनी।
करे गृहीत्वा स्वसुतं भीरुनेत्रमुवाच ह॥ १४

वे उन्हें अच्छी-अच्छी गेंदें देकर खेलाते, उनका लालन-पालन करते, उनकी लीलाएँ गाते और बढ़े हुए आनन्दमें निमग्न हो सारे जगत्को भूल जाते थे॥ १-२॥

राजाने पूछा—देवर्षे! आप मुझसे नौ उपनन्दोंके नाम बताइये। वे सब बड़े सौभाग्यशाली थे। उनके पूर्वजन्मका परिचय दीजिये। वे पहले कौन थे, जो इस भूतलपर अवतीर्ण हुए? उपनन्दोंके साथ ही छः वृषभानुओंके भी मङ्गलमय कर्मोंका वर्णन कीजिये॥ ३½॥

श्रीनारदजीने कहा—गय, विमल, श्रीश, श्रीधर, मङ्गलायन, मङ्गल, रङ्गवल्लीश, रङ्गोजि तथा देवनायक—ये 'नौ नन्द' कहे गये हैं, जो व्रजके गोकुलमें उत्पन्न हुए थे। वीतिहोत्र, अग्निभुक्, साम्ब, श्रीकर, गोपति, श्रुत, व्रजेश, पावन तथा शान्त—ये 'उपनन्द' कहे गये हैं॥ ४—६॥

हे राजन्! नीतिवित्, मार्गद, शुक्ल, पतंग, दिव्यवाहन और गोपेष्ट—ये छः 'वृषभानु' हैं, जिन्होंने व्रजमें जन्म धारण किया था। जो गोलोकधाममें श्रीकृष्णचन्द्रके निकुञ्जद्वारपर रहकर हाथमें बेंत लिये पहरा देते थे, वे श्याम अङ्गवाले गोप व्रजमें 'नौ नन्द' के नामसे विख्यात हुए॥ ७-८॥

निकुञ्जमें जो करोड़ों गायें हैं, उनके पालनमें तत्पर, मोरपंख और मुरली धारण करनेवाले गोप यहाँ 'उपनन्द' कहे गये हैं। निकुञ्ज- दुर्गकी रक्षाके लिये जो दण्ड और पाश धारण किये उसके छहों द्वारोंपर रहा करते हैं, वे ही छः गोप यहाँ 'छः वृषभानु' कहलाये॥ ९-१०॥

श्रीकृष्णकी इच्छासे ही वे सब लोग गोलोकसे भूतलपर उतरे हैं। उनके प्रभावका वर्णन करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं, फिर मैं उनके महान् अभ्युदयशाली सौभाग्यका कैसे वर्णन कर सकूँगा, जिनकी गोदमें बैठकर बाल-क्रीडापरायण श्रीहरि सदा सुशोभित होते थे॥ ११-१२॥

एक दिनकी बात है, यमुनाके तटपर श्रीकृष्णने मिट्टीका आस्वादन किया। यह देख बालकोंने यशोदाजीके पास आकर कहा—'अरी मैया! तुम्हारा लाला तो मिट्टी खाता है।' बलभद्रजीने भी उनकी हाँ-में-हाँ मिला दी। तब नन्दरानीने अपने पुत्रका हाथ पकड़ लिया। बालकके नेत्र भयभीत-से हो उठे। मैयाने उससे कहा॥ १३-१४॥

श्रीयशोदोवाच

कस्मान्मृदं भक्षितवान् महाज्ञ
भवान्वयस्याश्च वदन्ति साक्षात्।
ज्यायान् बलोऽयं वदति प्रसिद्धं
मा एवमर्थं न जहाति नेष्टम्॥ १५

श्रीयशोदाजीने पूछा—ओ महामूढ़! तूने क्यों मिट्टी खायी! तेरे ये साथी भी बता रहे हैं और साक्षात् बड़े भैया ये बलराम भी यही बात कहते हैं कि 'माँ! मना करनेपर भी यह मिट्टी खाना नहीं छोड़ता। इसे मिट्टी बड़ी प्यारी लगती है'॥ १५॥

श्रीभगवानुवाच

सर्वे मृषावादरता व्रजार्भका
मातर्मया क्वापि न मृत्प्रभक्षिता।
यदा समीचीनमनेन वाक्पथं
तदा मुखं पश्य मदीयमञ्जसा॥ १६

श्रीभगवान्ने कहा—मैया! व्रजके ये सारे बालक झूठ बोल रहे हैं। मैंने कहीं भी मिट्टी नहीं खायी। यदि तुम्हें मेरी बातपर विश्वास न हो तो मेरा मुँह देख लो॥ १६॥

श्रीनारद उवाच

अथ गोपी बालकस्य पश्यन्ती सुन्दरं मुखम्।
प्रसारितं च ददृशे ब्रह्माण्डं रचितं गुणैः॥ १७

सप्तद्वीपान् सप्तसिन्धून् सखण्डान्सगिरीन् दृढान्।
आब्रह्मलोकाँल्लोकाँस्त्रीन्स्वात्मभिः सव्रजैः सह॥ १८

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब गोपी यशोदाने बालकका सुन्दर मुख खोलकर देखा। यशोदाको उसके भीतर तीनों गुणोंद्वारा रचित और सब ओर फैला हुआ ब्रह्माण्ड दिखायी दिया। सातों द्वीप, सात समुद्र, भरत आदि खण्ड, सुदृढ़ पर्वत, ब्रह्मलोक-पर्यन्त तीनों लोक तथा समस्त व्रज-मण्डलसहित अपने शरीरको भी यशोदाने अपने पुत्रके मुखमें देखा॥ १७-१८॥

दृष्ट्वा निमीलिताक्षी सा भूत्वा श्रीयमुनातटे।
बालोऽयं मे हरिः साक्षादिति ज्ञानमयी ह्यभूत्॥ १९

तदा जहास श्रीकृष्णो मोहयन्निव मायया।
यशोदा वैभवं दृष्टं न सस्मार गतस्मृतिः॥ २०

यह देखते ही उन्होंने आँखें बंद कर लीं और श्रीयमुनाजीके तटपर बैठकर सोचने लगीं—'यह मेरा बालक साक्षात् श्रीनारायण है।' इस तरह वे ज्ञाननिष्ठ हो गयीं। तब श्रीकृष्ण उन्हें अपनी मायासे मोहित-सा करते हुए हँसने लगे। यशोदाजीकी स्मरण-शक्ति विलुप्त हो गयी। उन्होंने श्रीकृष्णका जो वैभव देखा था, वह सब वे तत्काल भूल गयीं॥ १९-२०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे ब्रह्माण्डदर्शनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'ब्रह्माण्डदर्शन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

दामोदर कृष्णका उलूखल-बन्धन तथा उनके द्वारा यमलार्जुन-वृक्षोंका उद्धार

श्रीनारद उवाच

एकदा गोकुले गोप्यो ममन्थुर्दधि सर्वतः।
गृहे गृहे प्रगायन्त्यो गोपालचरितं परम्॥ १

यशोदापि समुत्थाय प्रातः श्रीनन्दमन्दिरे।
भाण्डे रायं विनिक्षिप्य ममन्थ दधि सुन्दरी॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] एक समय गोपाङ्गनाएँ घर-घरमें गोपालकी लीलाएँ गाती हुई गोकुलमें सब ओर दधि-मन्थन कर रही थीं। श्रीनन्द-मन्दिरमें सुन्दरी यशोदाजी भी प्रातःकाल उठकर दहीके भाण्डमें रई डालकर उसे मथने लगीं॥ १-२॥

मञ्जीररावं सङ्कुर्वन् बालः श्रीनन्दनन्दनः।
ननर्त नवनीतार्थं रायशब्दकुतूहलात्॥ ३

बालकेलिर्बभौ नृत्यन् मातुः पार्श्वमनुभ्रमन्।
सुनादिकिङ्किणीसङ्घझङ्कारं कारयन् मुहुः॥ ४

हैयङ्गवीनं सततं नवीनं
याचन् स मातुर्मधुरं ब्रुवन् सः।
आदाय हस्तेऽश्मसुतं रुषा सुधी-
र्बिभेद कृष्णो दधिमन्थपात्रम्॥ ५

पलायमानं स्वसुतं यशोदा
प्रधावती प्राप न हस्तमात्रात्।
योगीश्वराणामपि यो दुरापः
कथं स मातुर्ग्रहणे प्रयाति॥ ६

तथापि भक्तेषु च भक्तवश्यता
प्रदर्शिता श्रीहरिणा नृपेश्वर।
बालं गृहीत्वा स्वसुतं यशोमती
बबन्ध रज्ज्वाथ रुषा ह्युलूखले॥ ७

आदाय यद्यद् बहु दाम तत्तत्
स्वल्पं प्रभूतं स्वसुते यशोदा।
गुणैर्न बद्धः प्रकृतेः परो यः
कथं स बद्धो भवतीह दाम्ना॥ ८

यदा यशोदा गतबन्धनेच्छा
खिन्ना निषण्णा नृप छिन्नमानसा।
आसीत्तदायं कृपया स्वबन्धे
स्वच्छन्दयानः स्ववशोऽपि कृष्णः॥ ९

एवं प्रसादो न हि वीतकर्मणां
न ज्ञानिनां कर्मधियां कुतः पुनः।
मातुर्यथाभून्नृप एषु तस्मा-
न्मुक्तिं व्यधाद्भक्तिमलं न माधवः॥ १०

तदैव गोप्यस्तु समागतास्त्वरं
दृष्ट्वाथ भग्नं दधिमन्थभाजनम्।
उलूखले बद्धमतीव दामभि-
र्भीतं शिशुं वीक्ष्य जगुर्घृणातुराः॥ ११

मथानीकी आवाज सुनकर बालक श्रीनन्दनन्दन भी नवनीतके लिये कौतूहलवश मञ्जीरकी मधुर ध्वनि प्रकट करते हुए नाचने लगे। माताके पास बाल-क्रीडापरायण श्रीकृष्ण बार-बार चक्कर लगाते और नाचते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे और बजती हुई करधनीके घुँघुरुओंकी मधुर झंकार बारंबार फैला रहे थे॥ ३-४॥

वे मातासे मीठे वचन बोलकर ताजा निकाला हुआ माखन माँग रहे थे। जब वह उन्हें नहीं मिला, तब वे कुपित हो उठे और एक पत्थरका टुकड़ा लेकर उसके द्वारा दही मथनेका पात्र फोड़ दिया। ऐसा करके वे भाग चले। यशोदाजी भी अपने पुत्रको पकड़नेके लिये पीछे-पीछे दौड़ीं। वे उनसे एक ही हाथ आगे थे, किंतु वे उन्हें पकड़ नहीं पाती थीं। जो योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ हैं, वे माताकी पकड़में कैसे आ सकते थे!॥५-६॥

नृपेश्वर! तथापि श्रीहरिने भक्तोंके प्रति अपनी भक्तवश्यता दिखायी, इसलिये वे जान-बूझकर माताके हाथ आ गये। अपने बालक-पुत्रको पकड़कर यशोदाने रोषपूर्वक ऊखलमें बाँधना आरम्भ किया। वे जो-जो बड़ी-से-बड़ी रस्सी उठातीं, वही-वही उनके पुत्रके लिये कुछ छोटी पड़ जाती थी। जो प्रकृतिके तीनों गुणोंसे न बँध सके, वे प्रकृतिसे परे विद्यमान परमात्मा यहाँके गुणसे (रस्सीसे) कैसे बँध सकते थे?॥७-८॥

हे राजन्! जब यशोदा बाँधते-बाँधते थक गयीं और हतोत्साहित हो बैठ गयीं तथा बाँधनेकी इच्छा भी छोड़ बैठीं, तब ये स्वच्छन्दगति भगवान् श्रीकृष्ण स्ववश होते हुए भी कृपा करके माताके बन्धनमें आ गये। भगवान्‌की ऐसी कृपा कर्मत्यागी ज्ञानियोंको भी नहीं मिल सकी; फिर जो कर्ममें आसक्त हैं, उनको तो मिल ही कैसे सकती है। यह भक्तिका ही प्रताप है कि वे माताके बन्धनमें आ गये। नरेश्वर! इसीलिये भगवान् ज्ञानके साधक आराधकोंको मुक्ति तो दे देते हैं, किंतु भक्ति नहीं देते। उसी समय बहुत-सी गोपियाँ भी शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं। उन्होंने देखा कि दही मथनेका भाण्ड फूटा हुआ है और भयभीत नन्द-शिशु बहुत-सी रस्सियोंद्वारा ओखलीमें बँधे खड़े हैं। यह देखकर उन्हें बड़ी दया आयी और वे यशोदाजीसे बोलीं॥ ९—११॥

गोप्य ऊचुः

अस्मद्गृहेषु पात्राणि भिनत्ति सततं शिशुः।
तदप्येनं नो वदामः कारुण्यान्नन्दगेहिनि॥ १२

गतव्यथे ह्यकरुणे यशोदे हे व्रजेश्वरि।
यष्ट्या निर्भर्त्सितो बालस्त्वया बद्धो घटक्षयात्॥ १३

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तायां यशोदायां व्यग्रायां गृहकर्मसु।
कर्षन्नुलूखलं कृष्णो बालैः श्रीयमुनां ययौ॥ १४

तत्तटे च महावृक्षौ पुराणौ यमलार्जुनौ।
तयोर्मध्ये गतः कृष्णो हसन् दामोदरः प्रभुः॥ १५

चकर्ष सहसा कृष्णस्तिर्यग्गतमुलूखलम्।
कर्षणेन समूलौ द्वौ पेततुर्भूमिमण्डले॥ १६

पातनेनापि शब्दोऽभूत्प्रचण्डो वज्रपातवत्।
विनिर्गतौ च वृक्षाभ्यां देवौ द्वावेधसोऽग्निवत्॥ १७

दामोदरं परिक्रम्य पादौ स्पृष्टौ स्वमौलिना।
कृताञ्जली हरिं नत्वा तौ तु तत्सम्मुखे स्थितौ॥ १८

देवावूचतुः

आवां मुक्तौ ब्रह्मदण्डात्सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात्।
माभूत्ते निजभक्तानां हेलनं ह्यावयोर्हरे॥ १९

करुणानिधये तुभ्यं जगन्मङ्गलशीलिने।
दामोदराय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥ २०

श्रीनारद उवाच

इति नत्वा हरिं तौ द्वौ उदीचीं च दिशं गतौ।
तदैव ह्यागताः सर्वे नन्दाद्या भयकातराः॥ २१

गोपियोंने कहा—नन्दरानी! तुम्हारा यह नन्हा-सा बालक सदा ही हमारे घरोंमें जाकर बर्तन-भाँड़े फोड़ा करता है, तथापि हम करुणावश इसे कभी कुछ नहीं कहतीं। व्रजेश्वरि यशोदे! तुम्हारे दिलमें जरा भी दर्द नहीं है, तुम निर्दय हो गयी हो। एक बर्तनके फूट जानेके कारण तुमने इस बच्चेको छड़ीसे डराया-धमकाया है और बाँध भी दिया है!॥ १२-१३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! उन गोपियोंके यों कहनेपर यशोदाजी कुछ नहीं बोलीं। वे घरके काम-धंधोंमें लग गयीं। इसी बीच मौका पाकर श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ वह ओखली खींचते हुए श्रीयमुनाजीके किनारे चले गये। यमुनाजीके तटपर दो पुराने विशाल वृक्ष थे, जो एक-दूसरेसे जुड़े हुए खड़े थे। वे दोनों ही अर्जुन-वृक्ष थे। दामोदर भगवान् कृष्ण हँसते हुए उन दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गये। ओखली वहाँ टेढ़ी हो गयी थी, तथापि श्रीकृष्णने सहसा उसे खींचा। खींचनेसे दबाव पाकर वे दोनों वृक्ष जड़सहित उखड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १४—१६॥

वृक्षोंके गिरनेसे जो धमाकेकी आवाज हुई, वह वज्रपातके समान भयंकर थी। उन वृक्षोंसे दो देवता निकले—ठीक उसी तरह जैसे काष्ठसे अग्नि प्रकट हुई हो। उन दोनों देवताओंने दामोदरकी परिक्रमा करके अपने मुकुटसे उनके पैर छुए और दोनों हाथ जोड़े। वे उन श्रीहरिके समक्ष नतमस्तक खड़े हो इस प्रकार बोले॥ १७-१८॥

दोनों देवता कहने लगे—अच्युत! आपके दर्शनसे हम दोनोंको इसी क्षण ब्रह्मदण्डसे मुक्ति मिली है। हरे! अब हम दोनोंसे आपके निज भक्तोंकी अवहेलना न हो। आप करुणाकी निधि हैं। जगत्का मङ्गल करना आपका स्वभाव है। आप 'दामोदर', 'कृष्ण' और 'गोविन्द' को हमारा बारंबार नमस्कार है॥ १९-२०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीहरिको नमस्कार करके वे दोनों देवकुमार उत्तर दिशाकी ओर चल दिये। उसी समय भयसे कातर हुए नन्द आदि समस्त गोप वहाँ आ पहुँचे।

कथं वृक्षौ प्रपतितौ विना वातं व्रजार्भकाः।
वदताशु तदा बाला ऊचुः सर्वे व्रजौकसः॥ २२

वे पूछने लगे—'व्रजबालको! बिना आँधी-पानीके ये दोनों वृक्ष कैसे गिर पड़े? शीघ्र बताओ।' तब उन समस्त व्रजवासी बालकोंने कहा— ॥ २१-२२ ॥

बाला ऊचुः

अनेन पातितौ वृक्षौ ताभ्यां द्वौ पुरुषौ स्थितौ।
एनं नत्वा गतावद्य तावुदीच्यां स्फुरत्प्रभौ॥ २३

बालकोंने कहा—इस कन्हैयाने ही दोनों वृक्षोंको गिराया है। उन वृक्षोंसे दो पुरुष निकलकर यहाँ खड़े थे, जो इसे नमस्कार करके अभी-अभी उत्तर दिशाकी ओर गये हैं। उनके अङ्गोंसे दीप्तिमती प्रभा निकल रही थी॥२३॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां न ते श्रद्दधिरे ततः।
मुमोच नन्दः स्वं बालं दाम्ना बद्धमुलूखले॥ २४

संलालयन्स्वाङ्कदेशे समाघ्राय शिशुं नृप।
निर्भर्त्स्य भामिनीं नन्दो विप्रेभ्यो गोशतं ददौ॥ २५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! ग्वाल-बालोंकी यह बात सुनकर उन बड़े-बूढ़े गोपोंने उसपर विश्वास नहीं किया। नन्दजीने ओखलीमें रस्सीसे बँधे हुए अपने बालकको खोल दिया और लाड़-प्यार करते हुए गोदमें उठाकर उस शिशुको सूँघने लगे। नरेश्वर! नन्दजीने अपनी पत्नीको बहुत उलाहना दिया और ब्राह्मणोंको सौ गायें दानके रूपमें दीं॥ २४-२५॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

काविमौ पुरुषौ दिव्यौ वद देवर्षिसत्तम।
केन दोषेण वृक्षत्वं प्रापितौ यमलार्जुनौ॥ २६

श्रीबहुलाश्वने कहा—देवर्षिप्रवर! वे दोनों दिव्य पुरुष कौन थे, यह बताइये। किस दोषके कारण उन्हें यमलार्जुनवृक्ष होना पड़ा था?॥ २६॥

श्रीनारद उवाच

नलकूबरमणिग्रीवौ राजराजसुतौ परौ।
जग्मतुर्नन्दनवनं मन्दाकिन्यास्तटे स्थितौ॥ २७

अप्सरोभिर्गीयमानौ चेरतुर्गतवाससौ।
वारुणीमदिरामत्तौ युवानौ द्रव्यदर्पितौ॥ २८

कदाचिद्देवलो नाम मुनीन्द्रो वेदपारगः।
नग्नौ दृष्ट्वा च तावाह दुष्टशीलौ गतस्मृती॥ २९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वे दोनों कुबेरके श्रेष्ठ पुत्र थे, जिनका नाम था—'नलकूबर' और 'मणिग्रीव'। एक दिन वे नन्दनवनमें गये और वहाँ मन्दाकिनीके तटपर ठहरे। वहाँ अप्सराएँ उनके गुण गाती रहीं और वे दोनों वारुणी मदिरासे मतवाले होकर वहाँ नंग-धड़ंग विचरते रहे। एक तो उनकी युवावस्था थी और दूसरे वे द्रव्यके दर्प (धनके मद)-से दर्पित (उन्मत्त) थे। उसी अवसरपर किसी कालमें 'देवल' नामधारी मुनीन्द्र, जो वेदोंके पारंगत विद्वान् थे, उधर आ निकले। उन दोनों कुबेर-पुत्रोंको नग्न देखकर ऋषिने उनसे कहा—'तुम दोनोंके स्वभावमें दुष्टता भरी है। तुम दोनों अपनी सुध-बुध खो बैठे हो'॥ २७—२९॥

देवल उवाच

युवां वृक्षसमौ धृष्टौ निर्लज्जौ द्रव्यदर्पितौ।
तस्माद् वृक्षौ तु भूयास्तां वर्षाणां शतकं भुवि॥ ३०

इतना कहकर देवलजी फिर बोले—तुम दोनों वृक्षके समान जड, धृष्ट तथा निर्लज्ज हो। तुम्हें अपने द्रव्यका बड़ा घमंड है; अतः तुम दोनों इस भूतलपर सौ (दिव्य) वर्षोंतकके लिये वृक्ष हो जाओ॥ ३०॥

द्वापरान्ते भारते च माथुरे व्रजमण्डले।
कलिन्दनन्दिनीतीरे महावनसमीपतः॥ ३१

परिपूर्णतमं साक्षात्कृष्णं दामोदरं हरिम्।
गोलोकनाथं तं दृष्ट्वा पूर्वरूपौ भविष्यथः॥ ३२

श्रीनारद उवाच

इत्थं देवलशापेन वृक्षत्वं प्रापितौ नृप।
नलकूबरमणिग्रीवौ श्रीकृष्णेन विमोचितौ॥ ३३

जब द्वापरके अन्तमें भारतवर्षके भीतर मथुरा-जनपदके व्रज-मण्डलमें कलिन्दनन्दिनी यमुनाके तटपर महावनके समीप तुम दोनों साक्षात् परिपूर्णतम दामोदर हरि गोलोकनाथ श्रीकृष्णका दर्शन करोगे, तब तुम्हें अपने पूर्वस्वरूपकी प्राप्ति हो जायगी॥ ३१—३२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[नरेश्वर!] इस प्रकार देवलके शापसे वृक्षभावको प्राप्त हुए नलकूबर और मणिग्रीवका श्रीकृष्णने उद्धार किया॥ ३३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उलूखलबन्धनयमलार्जुनमोचनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उलूखल-बन्धन और यमलार्जुन-मोचन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

दुर्वासाद्वारा भगवान्‌की मायाका एवं गोलोकमें श्रीकृष्णका दर्शन तथा श्रीनन्दनन्दनस्तोत्र

श्रीनारद उवाच

एकदा कृष्णचन्द्रस्य दर्शनार्थं परस्य च।
दुर्वासा मुनिशार्दूलो व्रजमण्डलमाययौ॥ १

कालिन्दीनिकटे पुण्ये सैकते रमणस्थले।
महावनसमीपे च कृष्णमाराद्ददर्श ह॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके लिये व्रजमण्डलमें आये। उन्होंने कालिन्दीके निकट पवित्र वालुकामय पुलिनके रमणीय स्थलमें महावनके समीप श्रीकृष्णको निकटसे देखा॥ १-२॥

श्रीमन्मदनगोपालं लुठन्तं बालकैः सह।
परस्परं प्रयुद्ध्यन्तं बालकेलिं मनोहरम्॥ ३

धूलिधूसरसर्वाङ्गं वक्रकेशं दिगम्बरम्।
धावन्तं बालकैः सार्धं हरिं वीक्ष्य स विस्मितः॥ ४

वे शोभाशाली मदनगोपाल बालकोंके साथ वहाँ लोटते, परस्पर मल्ल-युद्ध करते तथा भाँति-भाँतिकी बालोचित लीलाएँ करते थे। इन सब कारणोंसे वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। उनके सारे अङ्ग धूलसे धूसरित थे। मस्तकपर काले घुँघराले केश शोभा पाते थे। दिगम्बर-वेषमें बालकोंके साथ दौड़ते हुए श्रीहरिको देखकर दुर्वासाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ॥ ३-४॥

श्रीमुनिरुवाच

स ईश्वरोऽयं भगवान् कथं बालैर्लुठन् भुवि।
अयं तु नन्दपुत्रोऽस्ति न श्रीकृष्णः परात्परः॥ ५

श्रीमुनि (मन-ही-मन) कहने लगे—क्या यह वही षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न ईश्वर है? फिर यह बालकोंके साथ धरतीपर क्यों लोट रहा है? मेरी समझमें यह केवल नन्दका पुत्र है, परात्पर श्रीकृष्ण नहीं है॥ ५॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं मोहं गते तत्र दुर्वाससि महामुनौ।
क्रीडन् कृष्णस्तत्समीपे तदङ्के ह्यागतः स्वयम्॥ ६

पुनर्विनिर्गतो ह्यङ्काद् बालसिंहावलोकनः।
हसन् कलं ब्रुवन् कृष्णः सम्मुखः पुनरागतः॥ ७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! जब महामुनि दुर्वासा इस प्रकार मोहमें पड़ गये, तब खेलते हुए श्रीकृष्ण स्वयं उनके पास उनकी गोदमें आ गये। फिर उनकी गोदसे हट गये। श्रीकृष्णकी दृष्टि बाल-सिंहके समान थी। वे हँसते और मधुर वचन बोलते हुए पुनः मुनिके सम्मुख आ गये॥ ६-७॥

हसतस्तस्य च मुखे प्रविष्टः श्वसनैर्मुनिः।
ददर्शान्यं महालोकं सारण्यं जनवर्जितम्॥ ८

अरण्येषु भ्रमंस्तत्र कुतः प्राप्त इति ब्रुवन्।
तदैवाजगरेणापि निगीर्णोऽभून्महामुनिः॥ ९

ब्रह्माण्डं तत्र ददृशे सलोकं सबिलं परम्।
भ्रमन् द्वीपेषु स मुनिः स्थितोऽभूत्पर्वते सिते॥ १०

तपस्ततापं वर्षाणां शतकोटीः प्रभुं भजन्।
नैमित्तिकाख्ये प्रलये प्राप्ते विश्वभयङ्करे॥ ११

आगच्छन्तः समुद्रास्ते प्लावयन्तो धरातलम्।
वहंस्तेषु च दुर्वासा न प्रापान्तं जलस्य च॥ १२

व्यतीते युगसाहस्रे मग्नोऽभूद्विगतस्मृतिः।
पुनर्जलेषु विचरन्नण्डमन्यं ददर्श ह॥ १३

तच्छिद्रे च प्रविष्टोऽसौ दिव्यां सृष्टिं गतस्ततः।
तदण्डमूर्ध्नि लोकेषु विधेरायुःसमं चरन्॥ १४

एवं छिद्रं तत्र वीक्ष्य प्राविशत्स हरिं स्मरन्।
बहिर्विनिर्गतो ह्यण्डाद्ददर्शाशु महाजलम्॥ १५

तस्मिन् जले तु लक्ष्यन्ते कोटिशो ह्यण्डराशयः।
ततो मुनिर्जलं पश्यन् ददर्श विरजां नदीम्॥ १६

तत्पारं प्रगतः साक्षाद् गोलोकं प्राविशन्मुनिः।
वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनं शुभम्॥ १७

हँसते हुए श्रीकृष्णके श्वाससे खिंचकर मुनि उनके मुँहमें समा गये। वहाँ जाकर उन्होंने एक विशाल लोक देखा, जिसमें अरण्य और निर्जन प्रदेश भी दृष्टिगोचर हो रहे थे। उन अरण्यों (जंगलों)-में भ्रमण करते हुए मुनि बोल उठे—'मैं कहाँसे यहाँ आ गया?' इतनेमें ही उन महामुनिको एक अजगर निगल गया। उसके पेटमें पहुँचनेपर मुनिने वहाँ सातों लोकों और पातालोंसहित समूचे ब्रह्माण्डका दर्शन किया। उसके द्वीपोंमें भ्रमण करते हुए दुर्वासा मुनि एक श्वेत पर्वतपर ठहर गये॥ ८—१०॥

उस पर्वतपर शतकोटि वर्षोंतक भगवान्‌का भजन करते हुए वे तप करते रहे। इतनेमें ही सम्पूर्ण विश्वके लिये भयंकर नैमित्तिक प्रलयका समय आ पहुँचा। समुद्र सब ओरसे धरातलको डुबाते हुए मुनिके पास आ गये। दुर्वासा मुनि उन समुद्रोंमें बहने लगे। उन्हें जलका कहीं अन्त नहीं मिलता था॥ ११-१२॥

इसी अवस्थामें एक सहस्र युग व्यतीत हो गये। तदनन्तर मुनि एकार्णवके जलमें डूब गये। उनकी स्मृति-शक्ति नष्ट हो गयी। फिर वे पानीके भीतर विचरने लगे। वहाँ उन्हें एक दूसरे ही ब्रह्माण्डका दर्शन हुआ। उस ब्रह्माण्डके छिद्रमें प्रवेश करनेपर वे दिव्य सृष्टिमें जा पहुँचे। वहाँसे उस ब्रह्माण्डके शिरोभागमें विद्यमान लोकोंमें ब्रह्माकी आयुपर्यन्त विचरते रहे। इसी प्रकार वहाँ एक छिद्र देखकर श्रीहरिका स्मरण करते हुए वे उसके भीतर घुस गये। घुसते ही उस ब्रह्माण्डके बाहर आ निकले। फिर तत्काल उन्हें महती जलराशि दिखायी दी॥ १३—१५॥

उस जलराशिमें उन्हें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी राशियाँ बहती दिखायी दीं। तब मुनिने जलको ध्यानसे देखा तो उन्हें वहाँ विरजा नदीका दर्शन हुआ। उस नदीके पार पहुँचकर मुनिने साक्षात् गोलोकमें प्रवेश किया। वहाँ उन्हें क्रमशः वृन्दावन, गोवर्धन और सुन्दर यमुनापुलिनका दर्शन करके बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर वे मुनि जब निकुञ्जके भीतर घुसे, तब उन्होंने

दृष्ट्वा प्रसन्नः स मुनिर्निकुञ्जं प्राविशत्तदा।
गोपगोपीगणवृतं गवां कोटिभिरन्वितम्॥ १८

असंख्यकोटिमार्तण्डज्योतिषां मण्डले ततः।
दिव्ये लक्षदले पद्मे स्थितं राधापतिं हरिम्॥ १९

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिं गोलोकं स्वं ददर्श ह॥ २०

श्रीकृष्णस्यापि हसतः प्रविष्टस्तन्मुखे मुनिः।
पुनर्विनिर्गतोऽपश्यद् बालं श्रीनन्दनन्दनम्॥ २१

कालिन्दीनिकटे पुण्ये सैकते रमणस्थले।
बालकैः सहितं कृष्णं विचरन्तं महावने॥ २२

तदा मुनिश्च दुर्वासा ज्ञात्वा कृष्णं परात्परम्।
श्रीनन्दनन्दनं नत्वा नत्वा प्राह कृताञ्जलिः॥ २३

श्रीमुनिरुवाच

बालं नवीनशतपत्रविशालनेत्रं
बिम्बाधरं सजलमेघरुचिं मनोज्ञम्।
मन्दस्मितं मधुरसुन्दरमन्दयानं
श्रीनन्दनन्दनमहं मनसा नमामि॥ २४

मञ्जीरनूपुररणन्नवरत्नकाञ्ची-
श्रीहारकेसरिनखप्रतियन्त्रसङ्घम्।
दृष्ट्यार्तिहारिमषिबिन्दुविराजमानं
वन्दे कलिन्दतनुजातटबालकेलिम्॥ २५

पूर्णेन्दुसुन्दरमुखोपरि कुञ्चिताग्राः
केशा नवीनघननीलनिभाः स्फुरन्तः।

अनन्त कोटि मार्तण्डोंके समान ज्योतिर्मण्डलके अंदर दिव्य लक्षदल कमलपर विराजमान साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम राधावल्लभ भगवान् श्रीकृष्णको देखा, जो असंख्य गोप-गोपियोंसे घिरे तथा कोटि-कोटि गौओंसे सम्पन्न थे। असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति उन भगवान् श्रीहरिके साथ ही उनके गोलोकका भी मुनिको दर्शन हुआ॥ १६—२०॥

उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे। हँसते समय उनके श्वाससे खिंचकर दुर्वासा मुनि उनके मुँहके भीतर पहुँच गये। उस मुखसे पुनः बाहर निकलनेपर उन्होंने उन्हीं बालरूपधारी श्रीनन्दनन्दनको देखा, जो कालिन्दीके निकटवर्ती पुण्य वालुकामय रमणस्थलीमें बालकोंके साथ विचर रहे थे। महावनमें श्रीकृष्णका उस रूपमें दर्शन करके दुर्वासा मुनि यह समझ गये कि ये श्रीकृष्ण साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। फिर तो उन्होंने श्रीनन्दनन्दनको बार-बार नमस्कार करके हाथ जोड़कर कहा—॥ २१—२३॥

श्रीमुनि बोले—जिसके नेत्र नूतन विकसित शतदल कमलके समान विशाल हैं, अधर बिम्बाफलकी अरुणिमाको तिरस्कृत करनेवाले हैं तथा श्रीअङ्ग सजल जलधरकी श्याममनोहर कान्तिको छीने लेते हैं, जिनके मुखपर मन्द मुसकानकी दिव्य छटा छा रही है तथा जो सुन्दर मधुर मन्दगतिसे चल रहे हैं, उन बाल्यावस्थासे विलसित मनोज्ञ श्रीनन्दनन्दनको मैं मनसे प्रणाम करता हूँ॥ २४॥

जिनके चरणोंमें मञ्जीर और नूपुर झंकृत हो रहे हैं और कटिमें खनखनाती हुई नूतन रत्ननिर्मित काञ्ची (करधनी) शोभा दे रही है; जो बघनखासे युक्त यन्त्रसमुदाय तथा सुन्दर कण्ठहारसे सुशोभित हैं, जिनके भालदेशमें दृष्टि-जनित पीड़ा हर लेनेवाली कज्जलकी बेंदी शोभा दे रही है तथा जो कलिन्दनन्दिनीके तटपर बालोचित क्रीड़ामें संलग्न हैं, उन श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ॥ २५॥

जिनके पूर्णचन्द्रोपम सुन्दर मुखपर नूतन नीलघनकी श्याम विभाको तिरस्कृत करनेवाले घुँघराले काले केश चमक रहे हैं, तथा जिनका मस्तकरूपी

राजन्त आनतशिरःकुमुदस्य यस्य
नन्दात्मजाय सबलाय नमो नमस्ते॥ २६

श्रीनन्दनन्दनस्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तन्नेत्रगोचरो याति सानन्दं नन्दनन्दनः॥ २७

कुमुद कुछ झुका हुआ है। उन आप नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण तथा आपके अग्रज श्रीबलरामको मेरा बारंबार नमस्कार है। जो प्रातःकाल उठकर इस 'श्रीनन्दनन्दनस्तोत्र'का पाठ करता है, उसके नेत्रोंके समक्ष श्रीनन्दनन्दन सानन्द प्रकट होते हैं॥ २६-२७॥

श्रीनारद उवाच

इति प्रणम्य श्रीकृष्णं दुर्वासा मुनिसत्तमः।
तं ध्यायन् प्रजपन् प्रागाद् बदर्याश्रममुत्तमम्॥ २८

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार श्रीकृष्णको प्रणाम करके मुनिशिरोमणि दुर्वासा उन्हींका ध्यान और जप करते हुए उत्तम बदरिकाश्रमकी ओर चले गये॥ २८॥

श्रीगर्ग उवाच

इत्थं देवर्षिवर्येण नारदेन महात्मना।
कथितं कृष्णचरितं बहुलाश्वाय धीमते॥ २९

मया ते कथितं ब्रह्मन् यशः कलिमलापहम्।
चतुष्पदार्थदं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३०

श्रीगर्गजी कहते हैं—[शौनक!] इस प्रकार देवर्षिप्रवर महात्मा नारदने बुद्धिमान् राजा बहुलाश्वको भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र सुनाया था। ब्रह्मन्! वह सब मैंने तुमसे कह सुनाया। भगवान्‌का सुयश कलिकलुषका विनाश करनेवाला, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थोंको देनेवाला तथा दिव्य (लोकातीत) है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ २९-३०॥

श्रीशौनक उवाच

बहुलाश्वो मैथिलेन्द्रः किं पप्रच्छ महामुनिम्।
नारदं ज्ञानदं शान्तं तन्मे ब्रूहि तपोधन॥ ३१

श्रीशौनकजी बोले—तपोधन! इसके बाद मिथिलानरेश बहुलाश्वने शान्तस्वरूप, ज्ञानदाता महामुनि नारदसे क्या पूछा, वही प्रसङ्ग मुझसे कहिये॥ ३१॥

श्रीगर्ग उवाच

नारदं ज्ञानदं नत्वा मानदो मैथिलो नृपः।
पुनः पप्रच्छ कृष्णस्य चरितं मङ्गलायनम्॥ ३२

श्रीगर्गजीने कहा—[शौनक!] ज्ञानदाता नारदजीको नमस्कार करके मानदाता मैथिलनरेशने पुनः उनसे श्रीकृष्णचरित्रके विषयमें, जो मङ्गलका धाम है, प्रश्न किया॥ ३२॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

श्रीकृष्णो भगवान् साक्षात्परमानन्दविग्रहः।
परं चकार किं चित्रं चरित्रं वद मे प्रभो॥ ३३

पूर्वावतारैश्चरितं कृतं वै मङ्गलायनम्।
अपरं किं तु कृष्णस्य पवित्रं चरितं परम्॥ ३४

श्रीबहुलाश्वने पूछा—प्रभो! परमानन्दविग्रह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने इसके बाद और कौन-कौन-सी विचित्र लीलाएँ कीं, यह मुझे बताइये। पूर्वके अवतारोंद्वारा भी मङ्गलमय चरित्र सम्पादित हुए हैं। इस श्रीकृष्णावतारके द्वारा इसके बाद और कौन-कौन-से पवित्र चरित्र किये गये, यह सब बताइये॥ ३३-३४॥

श्रीनारद उवाच

साधु साधु त्वया पृष्टं चरित्रं मङ्गलं हरेः।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि वृन्दारण्ये च यद्यशः॥ ३५

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! तुम्हें अनेक साधुवाद है; क्योंकि तुमने श्रीहरिके मङ्गलमय चरित्रके विषयमें प्रश्न किया है। वृन्दावनमें जो उनकी यशोवर्धक लीलाएँ हुई हैं, उनका मैं वर्णन करूँगा॥ ३५॥

इदं गोलोकखण्डं च गुह्यं परमम‌द्भुतम्।
श्रीकृष्णेन प्रकथितं गोलोके रासमण्डले॥ ३६

निकुञ्जे राधिकायै च राधा मह्यं ददाविदम्।
मया तुभ्यं श्रावितं च दत्तं सर्वार्थदं परम्॥ ३७

इदं पठति विप्रस्तु सर्वशास्त्रार्थगो भवेत्।
श्रुत्वेदं चक्रवर्ती स्यात् क्षत्रियश्चण्डविक्रमः॥ ३८

वैश्यो निधिपतिर्भूयाच्छूद्रो मुच्येत बन्धनात्।
निष्फलो योऽपि जगति जीवन्मुक्तः स जायते॥ ३९

यो नित्यं पठते सम्यग्भक्तिभावसमन्वितः।
स गच्छेत्कृष्णचन्द्रस्य गोलोकं प्रकृतेः परम्॥ ४०

यह गोलोकखण्ड अत्यन्त गोपनीय और परम अद्भुत है। गोलोकके रासमण्डलमें साक्षात् श्रीकृष्णने इसका वर्णन किया था। इसे श्रीकृष्णने निकुञ्जमें राधिकाको सुनाया और श्रीराधाने मुझे इसका ज्ञान प्रदान किया है। फिर मैंने तुमको वह सब सुना दिया। यह गोलोकखण्डका वृत्तान्त सम्पूर्ण पदार्थोंको देनेवाला उत्कृष्ट साधन है। यदि ब्राह्मण इसका पाठ करता है तो वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका ज्ञाता होता है, क्षत्रिय इसे सुने तो वह प्रचण्ड-पराक्रमी चक्रवर्ती सम्राट् होता है, वैश्य सुने तो वह निधिपति हो जाय और शूद्र सुने तो वह संसारके बन्धनसे छुटकारा पा जाय॥ ३६—३८ १/२ ॥

जो इस जगत्में फलकी कामनासे रहित होकर इसका पाठ करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। जो सम्यक् भक्तिभावसे युक्त हो नित्य इसका पाठ करता है, वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गोलोकधाममें, जो प्रकृतिसे परे है, पहुँच जाता है॥ ३९-४० ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे दुर्वाससो मायादर्शनं श्रीनन्दनन्दनस्तोत्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'दुर्वासाके द्वारा भगवान्‌की मायाका दर्शन तथा श्रीनन्दनन्दनस्तोत्रका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

॥ गोलोकखण्ड सम्पूर्ण॥

2260 Grag Sanhita sanuwad_Section_6_2_Back

श्रीगर्ग-संहिता

[द्वितीय खण्ड]

वृन्दावनखण्ड

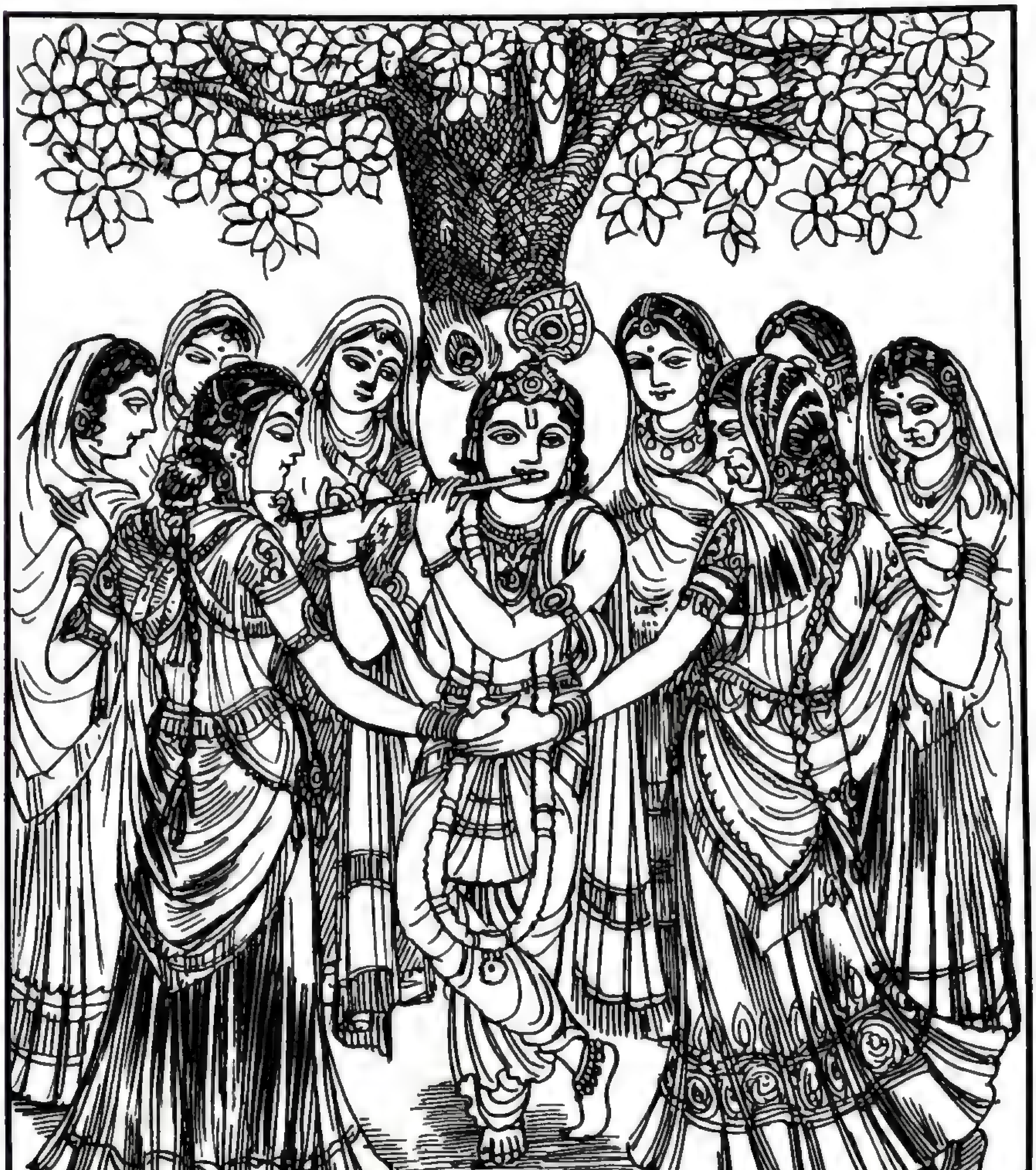

गोपियोंके मध्य शृंगारमूर्ति श्रीकृष्ण

श्रीकृष्णका सखी-वेशमें राधासे मिलना

[वृन्दावनख० अ० १७]

सखी-वेशधारी कृष्णके साथ राधाका वन-विहार

[वृन्दावनख० अ० १७]

सखी-वेशमें कृष्णका राधासे वार्तालाप

[वृन्दावनख० अ० १८]

श्रीकृष्णका राधासे प्रकट-मिलन

[वृन्दावनख० अ० १८]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

वृन्दावनखण्ड

पहला अध्याय

सन्नन्दका गोपोंको महावनसे वृन्दावनमें चलनेकी सम्मति देना और व्रजमण्डलके सर्वाधिक माहात्म्यका वर्णन करना

कृष्णातीरे कोकिलाकेलिकीरे
गुञ्जापुञ्जे देवपुष्पादिकुञ्जे।
कम्बुग्रीवौ क्षिप्तबाहू चलन्तौ
राधाकृष्णौ मङ्गलं मे भवेताम्॥ १

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ २

श्रीनारद उवाच

एकदोपद्रवं वीक्ष्य नन्दो नन्दान् सहायकान्।
वृषभानूपनन्दांश्च वृषभानुवरांस्तथा॥ ३

समाहूय परान् वृद्धान् सभायां तानुवाच ह।

नन्द उवाच

किं कर्तव्यं तु वदतोत्पाताः सन्ति महावने॥ ४

श्रीनारद उवाच

तेषां श्रुत्वाथ सन्नन्दो गोपो वृद्धोऽतिमन्त्रवित्।
अङ्के नीत्वा रामकृष्णौ नन्दराजमुवाच ह॥ ५

सन्नन्द उवाच

उत्थातव्यमितोऽस्माभिः सर्वैः परिकरैः सह।
गन्तव्यं चान्यदेशेषु यत्रोत्पाता न सन्ति हि॥ ६

श्रीयमुनाजीके तटपर, जहाँ कोकिलाएँ तथा क्रीडाशुक विचरते हैं, गुञ्जापुञ्जसे विलसित देवपुष्प (पारिजात) आदिके कुञ्जमें, शङ्ख-सदृश सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित तथा एक-दूसरेके गलेमें बाँह डालकर चलनेवाले [प्रिया-प्रियतम] श्रीराधा-कृष्ण मेरे लिये मङ्गलमय हों॥ १॥

मैं अज्ञानरूपी रतौंधीसे अंधा हो रहा था; जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जनकी शलाकासे मेरी आँखें खोल दी हैं, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥ २॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] एक समयकी बात है—व्रजमें विविध उपद्रव होते देख नन्दराजने अपने सहायक नन्दों, उपनन्दों, वृषभानुओं, वृषभानु-वरों तथा अन्य बड़े-बूढ़े गोपोंको बुलाकर सभामें उनसे कहा—॥ ३ १/२॥

नन्द बोले—[गोपगण!] महावनमें तो बहुत-से उत्पात हो रहे हैं। बताइये, हमलोगोंको इस समय क्या करना चाहिये?॥ ४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह सुनकर उन सबमें विशेष मन्त्रकुशल वृद्ध गोप सन्नन्दने बलराम और श्रीकृष्णको गोदमें लेकर नन्दराजसे कहा—॥ ५॥

सन्नन्द बोले—मेरे विचारसे तो हमें अपने समस्त परिकरोंके साथ यहाँसे उठ चलना चाहिये और किसी दूसरे ऐसे स्थानमें जाकर डेरा डालना चाहिये, जहाँ उत्पातकी सम्भावना न हो॥ ६॥

बालस्ते प्राणवत्कृष्णो जीवनं व्रजवासिनाम्।
व्रजे धनं कुले दीपो मोहनो बाललीलया॥ ७

हा बक्या शकटेनापि तृणावर्तेन बालकः।
मुक्तोऽयं द्रुमपातेन ह्युत्पातं किमतः परम्॥ ८

तस्माद्वृन्दावनं सर्वैर्गन्तव्यं बालकैः सह।
उत्पातेषु व्यतीतेषु पुनरागमनं कुरु॥ ९

तुम्हारा बालक श्रीकृष्ण हम सबको प्राणोंके समान प्रिय है, व्रजवासियोंका जीवन है, व्रजका धन और गोपकुलका दीपक है और अपनी बाललीलासे सबके मनको मोह लेनेवाला है। हाय! कितने खेदकी बात है कि इस बालकपर पूतना, शकट और तृणावर्तका आक्रमण हुआ, फिर इसके ऊपर वृक्ष गिर पड़े; इन सब संकटोंसे यह किसी प्रकार बचा है, इससे बढ़कर उत्पात और क्या हो सकता है! इसलिये हमलोग अपने बालकोंके साथ वृन्दावनमें चलें और जब उत्पात शान्त हो जायँ, तब फिर यहाँ आयें॥ ७—९॥

नन्द उवाच

कतिक्रोशैर्विस्तृतं तद्वनं वृन्दावनं व्रजात्।
तल्लक्षणं तत्सुखं च वद बुद्धिमतां वर॥ १०

नन्दने पूछा—बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सन्नन्दजी! इस व्रजसे वृन्दावन कितनी दूर है? वह वन कितने कोसोंमें फैला हुआ है, उसका लक्षण क्या है और वहाँ कौन-सा सुख सुलभ है? यह सब बताइये॥ १०॥

सन्नन्द उवाच

प्रागुदीच्यां बर्हिषदो दक्षिणस्यां यदोः पुरात्।
पश्चिमायां शोणपुरान्माथुरं मण्डलं विदुः॥ ११

विंशद्योजनविस्तीर्णं सार्धं यद्योजनेन वै।
माथुरं मण्डलं दिव्यं व्रजमाहुर्मनीषिणः॥ १२

सन्नन्द बोले—बर्हिषत्से ईशानकोण, यदुपुरसे दक्षिण और शोणपुरसे पश्चिमकी भूमिको 'माथुर-मण्डल' कहते हैं। मथुरामण्डलके भीतर साढ़े बीस योजन विस्तृत भूभागको मनीषी पुरुषोंने 'दिव्य माथुर-मण्डल' या 'व्रज' बताया है॥ ११-१२॥

मथुरायां शौरिगृहे गर्गाचार्यमुखाच्छ्रुतम्।
माथुरं मण्डलं दिव्यं तीर्थराजेन पूजितम्॥ १३

वनेभ्यस्तत्र सर्वेभ्यो वनं वृन्दावनं वरम्।
परिपूर्णतमस्यापि लीलाक्रीडं मनोहरम्॥ १४

एक बार मैं मथुरापुरीमें वसुदेवजीके घर ठहरा हुआ था; वहीं श्रीगर्गाचार्यजीके मुखसे मैंने सुना था कि तीर्थराज प्रयागने भी इस दिव्य मथुरा-मण्डलकी पूजा की है। यों तो मथुरा-मण्डलमें बहुत-से वन हैं किंतु उन सबसे श्रेष्ठ 'वृन्दावन' नामक वन है, जो परिपूर्णतम भगवान्‌के भी मनको हरण करनेवाला लीला-क्रीडा-स्थल है॥ १३-१४॥

वैकुण्ठान्नापरो लोको न भूतो न भविष्यति।
एकं वृन्दावनं नाम वैकुण्ठाच्च परात्परम्॥ १५

यत्र गोवर्धनो नाम गिरिराजो विराजते।
कालिन्दीनिकटे यत्र पुलिनं मङ्गलायनम्॥ १६

वैकुण्ठसे बढ़कर दूसरा कोई लोक न तो हुआ है और न आगे होगा। केवल एक 'वृन्दावन' ही ऐसा है, जो वैकुण्ठकी अपेक्षा भी परात्पर (परम उत्कृष्ट) है। जहाँ 'गोवर्धन' नामसे प्रसिद्ध गिरिराज विराजमान है, जहाँ कालिन्दीके तटपर मङ्गलधाम पुलिन है॥ १५-१६॥

बृहत्सानुर्गिरिर्यत्र यत्र नन्दीश्वरो गिरिः।
क्रोशानां च चतुर्विंशद्विस्तृतैः काननैर्वृतम्॥ १७

पशव्यं गोपगोपीनां गवां सेव्यं मनोहरम्।
लताकुञ्जावृतं तद्वै वनं वृन्दावनं स्मृतम्॥ १८

जहाँ बृहत्सानु (बरसाना) पर्वत है तथा जहाँ नन्दीश्वर गिरि शोभा पाता है, जो चौबीस कोसके विस्तारमें स्थित तथा विशाल काननोंसे आवृत है; जो पशुओंके लिये हितकर, गोप-गोपी और गौओंके लिये सेवन करनेयोग्य तथा लताकुञ्जोंसे आवृत है, उस मनोहर वनको 'वृन्दावन' के नामसे स्मरण किया जाता है॥ १७-१८॥

नन्द उवाच

कदा व्रजोऽयं सन्नन्द तीर्थराजेन पूजितः।
एतद्वेदितुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे॥ १९

सन्नन्द उवाच

शङ्खासुरो महादैत्यः पुरा नैमित्तिके लये।
स्वपतो ब्रह्मणः सोऽपि वेदधुग् दैत्यपुङ्गवः॥ २०

जित्वा देवान् ब्रह्मलोकाद्धृत्वा वेदान् गतोऽर्णवे।
गतेषु तेषु वेदेषु देवानां च गतं बलम्॥ २१

तदा साक्षाद्धरिः पूर्णो धृत्वा मात्स्यं वपुः परम्।
नैमित्तिकलयाम्भोधौ युयुधे तेन यज्ञराट्॥ २२

शूलं चिक्षेप हरये शङ्खो दैत्यो महाबलः।
स्वचक्रेण हरिः साक्षात्तच्छूलं शतधाकरोत्॥ २३

हरिं तताड शिरसा शङ्खो विष्णुमुरःस्थले।
तस्य मूर्धप्रहारेण न चचाल परात्परः॥ २४

तदा गदां समादाय मत्स्यरूपधरो हरिः।
पृष्ठे जघान तं दैत्यं शङ्खरूपं महाबलम्॥ २५

गदाप्रहारव्यथितः किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
पुनरुत्थाय सर्वेशं मुष्टिना स तताड ह॥ २६

तदा विष्णुः स्वचक्रेण सशृङ्गं तच्छिरो दृढम्।
जहार कुपितः साक्षाद्भगवान् कमलेक्षणः॥ २७

जित्वा शङ्खं देववरैः सार्धं विष्णुर्व्रजेश्वर।
प्रयागमेत्य स हरिर्वेदांस्तान्ब्रह्मणे ददौ॥ २८

यज्ञं चकार विधिवत्सर्वदेवगणैः सह।
प्रयागं च समाहूय तीर्थराजं चकार ह॥ २९

तत्साक्षादक्षयवटः कृतो लीलातपत्रवत्।
मुनिभानुसुतेऽथोर्मिचामरैस्तं विरेजतुः॥ ३०

नन्दजीने पूछा—सन्नन्दजी! तीर्थराज प्रयागने कब इस व्रजकी पूजा की है, मैं यह जानना चाहता हूँ। इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल—बड़ी उत्कण्ठा है॥ १९॥

सन्नन्द बोले—नन्दराज! पूर्वकालमें नैमित्तिक प्रलयके अवसरपर एक महान् दैत्य प्रकट हुआ, जो शङ्खासुरके नामसे प्रसिद्ध था। वह वेदद्रोही दैत्य-राज समस्त देवताओंको जीतकर ब्रह्मलोकमें गया और वहाँ सोते हुए ब्रह्माके पाससे वेदोंकी पोथी चुराकर समुद्रमें जा घुसा। उन वेदोंके जाते ही देवताओंका सारा बल चला गया। तब पूर्ण भगवान् यज्ञेश्वर श्रीहरिने मत्स्यरूप धारण करके नैमित्तिक प्रलयके सागरमें उस शङ्खासुरके साथ युद्ध किया॥ २०—२२॥

महाबली दैत्य शङ्खने श्रीहरिके ऊपर शूल चलाया; किंतु साक्षात् श्रीहरिने अपने चक्रसे उस शूलके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। तब शङ्खने अपने सिरसे भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें प्रहार किया। किंतु उसके उस प्रहारसे परात्पर श्रीहरि विचलित नहीं हुए। उस समय मत्स्यरूपधारी श्रीहरिने हाथमें गदा लेकर महाबली शङ्खरूपधारी उस दैत्यकी पीठपर आघात किया॥ २३—२५॥

गदाके प्रहारसे वह इतना पीड़ित हुआ कि उसका चित्त कुछ व्याकुल हो गया; किंतु पुनः उठकर उसने सर्वेश्वर श्रीहरिको मुक्केसे मारा। तब कमलनयन साक्षात् भगवान् विष्णुने कुपित हो अपने चक्रसे उसके सुदृढ़ मस्तकको सींगसहित काट डाला॥ २६-२७॥

व्रजेश्वर! इस प्रकार शङ्खको जीतकर देवताओंके साथ सर्वव्यापी श्रीहरिने प्रयागमें आकर वे चारों वेद ब्रह्माजीको दे दिये। फिर सम्पूर्ण देवताओंके साथ उन्होंने विधिवत् यज्ञका अनुष्ठान किया और प्रयागतीर्थके अधिष्ठाता देवताको बुलाकर उसे 'तीर्थराज' पदपर अभिषिक्त कर दिया। साक्षात् अक्षयवटको तीर्थराजके लिये लीला-छत्र-सा बना दिया। मुनिकन्या (जाह्नवी) गङ्गा तथा सूर्यसुता यमुना अपनी तरङ्गरूपी चामरोंसे उनकी सेवा करने लगीं॥ २८—३०॥

तदैव सर्वतीर्थानि जम्बूद्वीपस्थितानि च।
नीत्वा बलिं समाजग्मुस्तीर्थराजाय धीमते॥ ३१

तीर्थराजं च सम्पूज्य नत्वा तीर्थानि सर्वतः।
स्वधामानि ययुर्नन्द हरौ देवैर्गते सति॥ ३२

तदैव नारदः प्राप्तो मुनीन्द्रः कलहप्रियः।
सिंहासने भ्राजमानं तीर्थराजमुवाच ह॥ ३३

श्रीनारद उवाच

तीर्थैः प्रपूजितस्त्वं वै तीर्थराज महातपः।
तुभ्यं च सर्वतीर्थानि मुख्यानीह बलिं ददुः॥ ३४

व्रजादवृन्दावनादीनि नागतानीह ते पुरः।
तीर्थानां राजराजस्त्वं प्रमत्तैस्तैस्तिरस्कृतः॥ ३५

सनन्द उवाच

इति प्रभाष्य तं साक्षाद् गते देवर्षिसत्तमे।
तीर्थराजस्तदा क्रुद्धो हरिलोकं जगाम ह॥ ३६

नत्वा हरिं परिक्रम्य पुरः स्थित्वा कृताञ्जलिः।
सर्वतीर्थैः परिवृतः श्रीनाथं प्राह तीर्थराट्॥ ३७

तीर्थराज उवाच

हे देवदेव प्राप्तोऽहं तीर्थराजस्त्वया कृतः।
बलिं ददुर्मे तीर्थानि मथुरामण्डलं विना॥ ३८

प्रमत्तैर्व्रजतीर्थैश्च तैरहं तु तिरस्कृतः।
तस्मात्तुभ्यं च कथितुं प्राप्तोऽहं तव मन्दिरे॥ ३९

श्रीभगवानुवाच

धरायां सर्वतीर्थानां त्वं कृतस्तीर्थराण्मया।
किन्तु स्वस्य गृहस्यापि न कृतो राट् त्वमेव हि॥ ४०

किं त्वं मे मन्दिरं लिप्सुर्मत्तवद्भाषसे वचः।
तीर्थराज गृहं गच्छ शृणु वाक्यं शुभं च मे॥ ४१

मथुरामण्डलं साक्षान्मन्दिरं मे परात्परम्।
लोकत्रयात्परं दिव्यं प्रलयेऽपि न संहृतम्॥ ४२

उसी समय जम्बूद्वीपके सारे तीर्थ भेंट लेकर बुद्धिमान् तीर्थराजके पास आये और उनकी पूजा और वन्दना करके वे तीर्थ अपने-अपने स्थानको चले गये। नन्द! जब देवताओंके साथ श्रीहरि भी चले गये, तब वहीं कलहप्रिय मुनीन्द्र नारदजी आ पहुँचे और सिंहासनपर देदीप्यमान तीर्थराजसे बोले॥ ३१—३३॥

श्रीनारदजीने कहा—महातपस्वी तीर्थराज! निश्चय ही तुम समस्त तीर्थोंद्वारा विशेषरूपसे पूजित हुए हो, तुम्हें सभी मुख्य-मुख्य तीर्थोंने यहाँ आकर भेंट समर्पित की है; परंतु व्रजके वृन्दावनादि तीर्थ यहाँ तुम्हारे सामने नहीं आये। तुम तीर्थोंके राजाधिराज हो, व्रजके प्रमादी तीर्थोंने यहाँ न आकर तुम्हारा तिरस्कार किया है॥ ३४-३५॥

सनन्द कहते हैं—यों कहकर साक्षात् देवर्षि-शिरोमणि नारदजी वहाँसे चले गये। तब तीर्थराजके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और वे उसी क्षण श्रीहरिके लोकमें गये। श्रीहरिको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके सम्पूर्ण तीर्थोंसे घिरे हुए तीर्थराज हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़े हुए और उन श्रीनाथसे बोले॥ ३६-३७॥

तीर्थराजने कहा—देवदेव! मैं आपकी सेवामें इसलिये आया हूँ कि आपने तो मुझे 'तीर्थराज' बनाया और समस्त तीर्थोंने मुझे भेंट दी, किंतु मथुरामण्डलके तीर्थ मेरे पास नहीं आये; उन प्रमादी व्रजतीर्थोंने मेरा तिरस्कार किया है। अतः यह बात आपसे कहनेके लिये मैं आपके मन्दिरमें आया हूँ॥ ३८-३९॥

श्रीभगवान् बोले—मैंने तुम्हें धरतीके सब तीर्थोंका राजा—'तीर्थराज' अवश्य बनाया है; किंतु अपने घरका भी राजा तुम्हें ही बना दिया हो, ऐसी बात तो नहीं हुई है! फिर तुम तो मेरे गृहपर भी अधिकार जमानेकी इच्छा लेकर प्रमत्त पुरुषके समान बात कैसे कर रहे हो? तीर्थराज! तुम अपने घर जाओ और मेरा यह शुभ वचन सुन लो। मथुरामण्डल मेरा साक्षात् परात्पर धाम है, त्रिलोकीसे परे है। उस दिव्यधामका प्रलयकालमें भी संहार नहीं होता॥ ४०—४२॥

सन्नन्द उवाच

इति श्रुत्वा तीर्थराजो विस्मितोऽभूद् गतस्मयः।
आगत्य नत्वा सम्पूज्य माथुरं व्रजमण्डलम्॥ ४३

ततः प्रदक्षिणीकृत्य स्वधाम गतवान् पुनः।
धराया मानभङ्गार्थं पूर्वं मे तत्प्रदर्शितम्।
मया तवाग्रे कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४४

नन्द उवाच

धराया मानभङ्गार्थं केन पूर्वं प्रदर्शितम्।
एतन्मे वद गोपेश माथुरं व्रजमण्डलम्॥ ४५

सन्नन्द उवाच

आदौ वाराहकल्पेऽस्मिन् हरिर्वाराहरूपधृक्।
रसातलात्समुद्धृत्य गां बभौ दंष्ट्रया प्रभुः॥ ४६

गच्छन्तं वारिवृन्देषु भगवन्तं रमेश्वरम्।
दंष्ट्राग्रे शोभिता पृथ्वी प्राह देवं जनार्दनम्॥ ४७

धरोवाच

देव कुत्र स्थले त्वं वै स्थापनां मे करिष्यसि।
जलपूर्णं जगत्सर्वं दृश्यते वद हे प्रभो॥ ४८

वाराह उवाच

यदा वृक्षाः प्रदृष्टा हि भवन्त्युद्वेगता जले।
तदा ते स्थापना भूयात्पश्यन्ती गच्छ भूरुहान्॥ ४९

धरोवाच

स्थावराणां तु रचना ममोपरि समास्थिता।
अन्यास्ति किं वा धरणी त्वहं हि धारणामयी॥ ५०

सन्नन्द उवाच

वदन्तीत्थं ददर्शाग्रे जले वृक्षान्मनोहरान्।
वीक्ष्य पृथ्वी हरिं प्राह सर्वतो विगतस्मया॥ ५१

धरोवाच

देव कस्मिन् स्थले वृक्षाः सन्ति ह्येते सपल्लवाः।
इदं मनसि मे चित्रं वद यज्ञपते प्रभो॥ ५२

सन्नन्द कहते हैं—यह सुनकर तीर्थराज बड़े विस्मित हुए। उनका सारा अभिमान गल गया। फिर वहाँसे आकर उन्होंने मथुराके व्रजमण्डलका पूजन और उसकी परिक्रमा करके अपने स्थानको पदार्पण किया। पृथ्वीका मानभङ्ग करनेके लिये यह व्रज-मण्डल पहले दिखाया गया था। मैंने ये सारी बातें तुम्हारे सामने कहीं, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ४३-४४॥

नन्दजीने पूछा—गोपेश्वर! किसने पहले पृथ्वीका मानभङ्ग करनेके लिये इस व्रजमण्डलको दिखलाया था, यह मुझे बताइये?॥ ४५॥

सन्नन्दने कहा—इसी वाराहकल्पमें पहले श्रीहरिने वराहरूप धारण करके अपनी दाढ़पर उठाकर रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया था। उस समय उन प्रभुकी बड़ी शोभा हुई थी। जलमें जाते हुए उन वराहरूपधारी भगवान् रमानाथ जनार्दनसे उनकी दंष्ट्राके अग्रभागपर शोभित हुई पृथ्वी बोली॥ ४६-४७॥

पृथ्वीने पूछा—प्रभो! सारा विश्व पानीसे भरा दिखायी देता है। अतः बताइये, आप किस स्थलपर मेरी स्थापना करेंगे?॥ ४८॥

भगवान् वराह बोले—जब वृक्ष दिखायी देने लगें और जलमें उद्वेगका भाव प्रकट हो, तब उसी स्थानपर तुम्हारी स्थापना होगी। तुम वृक्षोंको देखती चलो॥ ४९॥

पृथ्वीने कहा—भगवन्! स्थावर वस्तुओंकी रचना तो मेरे ही ऊपर हुई है। क्या कोई दूसरी भी धरणी है? धारणामयी धरणी तो केवल मैं ही हूँ॥ ५०॥

सन्नन्द कहते हैं—यों कहती हुई पृथ्वीने अपने सामने जलमें मनोहर वृक्ष देखे। उन्हें देखकर पृथ्वीका अभिमान दूर हो गया। और वह भगवान्से बोली—॥ ५१॥

पृथ्वीने कहा—'देव! किस स्थलपर ये पल्लवसहित वृक्ष विद्यमान हैं? यह दृश्य मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य पैदा कर रहा है। यज्ञपते! प्रभो! इसका रहस्य बताइये'॥ ५२॥

वाराह उवाच

माथुरं मण्डलं दिव्यं दृश्यतेऽग्रे नितम्बिनि।
गोलोकभूमिसंयुक्तं प्रलयेऽपि न संहृतम्॥ ५३

भगवान् वराह बोले—नितम्बिनि! यह सामने दिव्य 'माथुर-मण्डल' दिखायी देता है, जो गोलोककी धरतीसे जुड़ा हुआ है। प्रलयकालमें भी इसका संहार नहीं होता॥ ५३॥

सनन्द उवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मिता पृथ्वी गतमाना बभूव ह।
तस्मान्नन्द महाबाहो व्रजोऽयं सर्वतोऽधिकः॥ ५४

श्रुत्वेदं व्रजमाहात्म्यं जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
तीर्थराजात्परं विद्धि माथुरं व्रजमण्डलम्॥ ५५

सन्नन्द बोले—यह सुनकर पृथ्वीको बड़ा विस्मय हुआ। वह अभिमानशून्य हो गयी। अतः महाबाहु नन्द! यह व्रजमण्डल समस्त लोकोंसे अधिक महत्त्वशाली है। व्रजका यह माहात्म्य सुनकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। तुम 'माथुर-व्रजमण्डल' को तीर्थराज प्रयागसे भी उत्कृष्ट समझो॥ ५४-५५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे नन्दसन्नन्दसंवादे वृन्दावनागमनोद्योगवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत नन्द-सन्नन्द-संवादमें 'वृन्दावनमें आगमनके उद्योगका वर्णन' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्ति तथा उसका व्रजमण्डलमें आगमन

नन्द उवाच

हे सन्नन्द महाप्राज्ञ सर्वज्ञोऽसि बहुश्रुतः।
व्रजमण्डलमाहात्म्यं वदतस्ते मुखाच्छ्रुतम्॥ १

गिरिर्गोवर्धनो नाम तस्योत्पत्तिं च मे वद।
कस्मादेनं गिरिवरं गिरिराजं वदन्ति हि॥ २

यमुनेयं नदी साक्षात्कस्माल्लोकात्समागता।
तन्माहात्म्यं च वद मे त्वमसि ज्ञानिनां वरः॥ ३

नन्दने पूछा—हे महाप्राज्ञ सन्नन्दजी! आप सर्वज्ञ और बहुश्रुत हैं, मैंने आपके मुखसे व्रजमण्डल-के माहात्म्यका वर्णन सुना। अब 'गोवर्धन' नामसे प्रसिद्ध जो पर्वत है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई—यह मुझे बताइये। इस गिरिश्रेष्ठ गोवर्धनको लोग 'गिरिराज' क्यों कहते हैं? यह साक्षात् यमुना नदी किस लोकसे यहाँ आयी है? उसका माहात्म्य भी मुझसे कहिये; क्योंकि आप ज्ञानियोंके शिरोमणि हैं॥ १—३॥

सन्नन्द उवाच

एकदा हास्तिनपुरे भीष्मं धर्मभृतां वरम्।
पप्रच्छ पाण्डुरित्थं तं जनानां चानुशृण्वताम्॥ ४

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकाधिपतिः प्रभुः॥ ५

सन्नन्द बोले—एक समयकी बात है, हस्तिनापुरमें महाराज पाण्डुने धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीभीष्मजीसे ऐसा ही प्रश्न किया था। उनके उस प्रश्नको और भीष्मजीद्वारा दिये गये उत्तरको अन्य बहुत-से लोग भी सुन रहे थे। (उस समय भीष्मजीने जो उत्तर दिया, वही मैं यहाँ सुना रहा हूँ—) साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण, जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके नाथ और सब कुछ करनेमें समर्थ हैं॥ ४-५॥

भुवो भारावताराय गच्छन् देवो जनार्दनः।
राधां प्राह प्रिये भीरु गच्छ त्वमपि भूतले॥ ६

जब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये स्वयं इस भूतलपर पधारने लगे, तब उन जनार्दन देवने अपनी प्राणवल्लभा राधासे कहा—प्रिये! तुम मेरे वियोगसे

श्रीराधोवाच

यत्र वृन्दावनं नास्ति न यत्र यमुना नदी।
यत्र गोवर्धनो नास्ति तत्र मे न मनःसुखम्॥ ७

सनन्द उवाच

वेदनागक्रोशभूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम्।
गोवर्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि॥ ८

वेदनागक्रोशभूमिः सापि चात्र समागता।
चतुर्विंशद्वनैर्युक्ता सर्वलोकैश्च वन्दिता॥ ९

भारतात्पश्चिमदिशि शाल्मलीद्वीपमध्यतः।
गोवर्धनो जन्म लेभे पत्न्यां द्रोणाचलस्य च॥ १०

गोवर्धनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे।
हिमालयसुमेर्वाद्याः शैलाः सर्वे समागताः॥ ११

नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य पूजां कृत्वा विधानतः।
गोवर्धनस्य परमां स्तुतिं चक्रुर्महाद्रयः॥ १२

शैला ऊचुः

त्वं साक्षात्कृष्णचन्द्रस्य परिपूर्णतमस्य च।
गोलोके गोगणैर्युक्ते गोपीगोपालसंयुते॥ १३

त्वं हि गोवर्धनो नाम वृन्दारण्ये विराजसे।
त्वन्नो गिरीणां सर्वेषां गिरिराजोऽसि साम्प्रतम्॥ १४

नमो वृन्दावनाङ्काय तुभ्यं गोलोकमौलिने।
पूर्णब्रह्मातपत्राय नमो गोवर्धनाय च॥ १५

सनन्द उवाच

इति स्तुत्वाथ गिरयो जग्मुः स्वं स्वं गृहं ततः।
शैलो गिरिवरः साक्षाद् गिरिराज इति स्मृतः॥ १६

एकदा तीर्थयायी च पुलस्त्यो मुनिसत्तमः।
द्रोणाचलसुतं श्यामं गिरिं गोवर्धनं वरम्॥ १७

भयभीत रहती हो, अतः भीरु! तुम भी भूतलपर चलो'॥ ६॥

श्रीराधाजी बोलीं—प्राणनाथ! जहाँ वृन्दावन नहीं है, जहाँ यह यमुना नदी नहीं है तथा जहाँ गोवर्धन पर्वत नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिल सकता॥ ७॥

सन्नन्द कहते हैं—नन्दराज! श्रीराधाकी यह बात सुनकर स्वयं श्रीहरिने अपने धामसे चौरासी कोस विस्तृत भूमि, गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीको भूतलपर भेजा। उस समय चौरासी कोस विस्तारवाली गोलोककी सर्वलोकवन्दिता भूमि चौबीस वनोंके साथ यहाँ आयी॥ ८-९॥

गोवर्धन पर्वतने भारतवर्षसे पश्चिम दिशामें शाल्मलीद्वीपके भीतर द्रोणाचलकी पत्नीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। उस अवसरपर देवताओंने गोवर्धनके ऊपर फूल बरसाये। हिमालय और सुमेरु आदि समस्त पर्वतोंने वहाँ आकर प्रणाम और परिक्रमा करके गोवर्धनका विधिवत् पूजन किया। पूजनके पश्चात् उन महान् पर्वतोंने उसकी स्तुति प्रारम्भ की॥ १०—१२॥

पर्वत बोले—तुम साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गोलोकधाममें, जहाँ दिव्य गौओंका समुदाय निवास करता है तथा गोपाल एवं गोप-सुन्दरियाँ शोभा पाती हैं, सुशोभित होते हो। तुम्हीं 'गोवर्धन' नामसे वृन्दावनमें विराजते हो, इस समय तुम्हीं हम समस्त पर्वतोंमें 'गिरिराज' हो। तुम वृन्दावनकी गोदमें समोद निवास करनेवाले, गोलोकके मुकुटमणि हो तथा पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके हाथोंमें किसी विशिष्ट अवसरपर छत्रके समान शोभा पाते हो। तुम गोवर्धनको हमारा सादर नमस्कार है॥ १३—१५॥

सन्नन्द कहते हैं—नन्दराज! जब इस प्रकार स्तुति करके सब पर्वत अपने-अपने स्थानपर चले गये, तभीसे यह गिरिश्रेष्ठ गोवर्धन साक्षात् 'गिरिराज' कहलाने लगा है। एक समय मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी तीर्थयात्राके लिये भूतलपर भ्रमण करने लगे। उन महामुनिने द्रोणाचलके पुत्र श्यामवर्णवाले श्रेष्ठ पर्वत

माधवीलतिकापुष्पं फलभारसमन्वितम्।
निर्झरैर्नादितं शान्तं कन्दरामङ्गलायनम्॥ १८

तपोयोग्यं रत्नमयं शतशृङ्गं मनोहरम्।
चित्रधातुविचित्राङ्गं सटङ्कं पक्षिसङ्कुलम्॥ १९

मृगैः शाखामृगैर्व्याप्तं मयूरध्वनिमण्डितम्।
मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां तं ददर्श महामुनिः॥ २०

तल्लिप्सुर्मुनिशार्दूलो द्रोणपार्श्वं समागतः।
पूजितो द्रोणगिरिणा पुलस्त्यः प्राह तं गिरिम्॥ २१

पुलस्त्य उवाच

हे द्रोण त्वं गिरीन्द्रोऽसि सर्वदेवैश्च पूजितः।
दिव्यौषधिसमायुक्तः सदा जीवनदो नृणाम्॥ २२

अर्थी तवान्तिके प्राप्तः काशीस्थोऽहं महामुनिः।
गोवर्धनं सुतं देहि नान्यैर्मेऽत्र प्रयोजनम्॥ २३

विश्वेश्वरस्य देवस्य काशीनाम्नी महापुरी।
यत्र पापी मृतः सद्यः परं मोक्षं प्रयाति हि॥ २४

यत्र गङ्गागता साक्षाद्विश्वनाथोऽपि यत्र वै।
तत्रैव स्थापयिष्यामि यत्र कोऽपि न पर्वतः॥ २५

गोवर्धने तव सुते लतावृक्षसमाकुले।
तस्मिंस्तपः करिष्यामि जातोऽयं मे मनोरथः॥ २६

सनन्द उवाच

पुलस्त्यवचनं श्रुत्वा स्वसुतस्नेहविह्वलः।
अश्रुपूर्णो द्रोणगिरिस्तं मुनिं वाक्यमब्रवीत्॥ २७

गोवर्धनको देखा, जिसके ऊपर माधवी लताके सुमन सुशोभित हो रहे थे। वहाँके वृक्ष फलोंके भारसे लदे हुए थे। निर्झरोंके झर-झर शब्द वहाँ गूँज रहे थे। उस पर्वतपर बड़ी शान्ति विराज रही थी। अपनी कन्दराओंके कारण वह मङ्गलका धाम जान पड़ता था। सैकड़ों शिखरोंसे सुशोभित वह रत्नमय मनोहर शैल तपस्या करनेके लिये उपयुक्त स्थान था। विविध रंगकी चित्र-विचित्र धातुएँ उस पर्वतके अवयवोंमें विचित्र शोभाका आधान करती थीं। उसकी भूमि ढालू (चढ़ाव-उतारसे युक्त) थी और वहाँ नाना प्रकारके पक्षी सब ओर व्याप्त थे। मृग और बंदर आदि पशु चारों ओर फैले हुए थे। मयूरोंकी केकाध्वनिसे मण्डित गोवर्धन पर्वत मुमुक्षुओंके लिये मोक्षप्रद प्रतीत होता था॥ १६—२०॥

मुनिवर पुलस्त्यके मनमें उस पर्वतको प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। इसके लिये वे द्रोणाचलके समीप गये। द्रोणगिरिने उनका पूजन—स्वागत-सत्कार किया। इसके बाद पुलस्त्यजी उस पर्वतसे बोले—॥ २१॥

पुलस्त्यजीने कहा—हे द्रोण! तुम पर्वतोंके स्वामी हो। समस्त देवता तुम्हारा समादर करते हैं। तुम दिव्य ओषधियोंसे सम्पन्न और मनुष्योंको सदा जीवन देनेवाले हो। मैं काशीका निवासी मुनि हूँ और तुम्हारे निकट याचक होकर आया हूँ। तुम अपने पुत्र गोवर्धनको मुझे दे दो। यहाँ अन्य वस्तुओंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है॥ २२-२३॥

भगवान् विश्वेश्वरकी महानगरी 'काशी' नामसे प्रसिद्ध है, जहाँ मरणको प्राप्त हुआ पापी पुरुष भी तत्काल परम मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जहाँ गङ्गा नदी प्राप्त होती हैं और जहाँ साक्षात् विश्वनाथ भी विराजमान हैं। मैं वहीं तुम्हारे पुत्रको स्थापित करूँगा, जहाँ दूसरा कोई पर्वत नहीं है। लता-बेलों और वृक्षोंसे व्याप्त जो तुम्हारा पुत्र गोवर्धन है, उसके ऊपर रहकर मैं तपस्या करूँगा—ऐसी अभिलाषा मेरे मनमें जाग्रत् हुई है॥ २४—२६॥

सनन्द कहते हैं—पुलस्त्यजीकी यह बात सुनकर पुत्र-स्नेहसे विह्वल हुए द्रोणाचलके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उसने पुलस्त्य मुनिसे कहा—॥ २७॥

द्रोण उवाच

पुत्रस्नेहाकुलोऽहं वै पुत्रो मेऽयमतिप्रियः।
ते शापभयभीतोऽहं ददाम्येनं महामुने॥ २८

हे पुत्र गच्छ मुनिना भारते कर्मके शुभे।
त्रैवर्ग्यं लभ्यते यत्र नृभिर्मोक्षमपि क्षणात्॥ २९

गोवर्धन उवाच

मुने कथं मां नयसि लम्बितं योजनाष्टकम्।
योजनद्वयमुच्चाङ्गं पञ्चयोजनविस्तृतम्॥ ३०

पुलस्त्य उवाच

उपविश्य करे मे त्वं गच्छ पुत्र यथासुखम्।
वाहयामि करे त्वां वै यावत्काशीं समागतः॥ ३१

गोवर्धन उवाच

मुने यत्र स्थले भूम्यां स्थापनां मे करिष्यसि।
करिष्यामि न चोत्थानं तद्भूम्याः शपथो मम॥ ३२

पुलस्त्य उवाच

अहमाशाल्मलिद्वीपान्मर्यादीकृत्य कोसलम्।
न स्थापनां करिष्यामि शपथस्तेऽपि मे पथि॥ ३३

सन्नद उवाच

मुनेः करतले तस्मिन्नारुरोह महाचलः।
प्रणम्य पितरं द्रोणमश्रुपूर्णाकुलेक्षणः॥ ३४

मुनिस्तं दक्षिणकरे धृत्वा गच्छञ्छनैः शनैः।
स्वतेजो दर्शयन्नृणां प्राप्तोऽभूद्व्रजमण्डले॥ ३५

जातिस्मरो गिरिस्तत्र प्राहेदं पथि चिन्तयन्।
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्॥ ३६

असंख्यब्रह्माण्डपतिर्व्रजेऽत्रावतरिष्यति ।
बाललीलां च कैशोरीं चेष्टां गोपालबालकैः॥ ३७

दानलीलां मानलीलां हरिरत्र करिष्यति।
तस्मान्मया न गन्तव्यं भूमिश्चेयं कलिन्दजा॥ ३८

द्रोणाचल बोला—महामुने! मैं पुत्र-स्नेहसे आकुल हूँ। यह पुत्र मुझे अत्यन्त प्रिय है, तथापि आपके शापके भयसे भीत होकर मैं इसे आपके हाथोंमें देता हूँ। [फिर वह पुत्रसे बोला—] हे बेटा! तुम मुनिके साथ कल्याणमय कर्मक्षेत्र भारतवर्षमें जाओ। वहाँ मनुष्य सत्कर्मोंद्वारा धर्म, अर्थ और काम—त्रिवर्ग सुख प्राप्त करते हैं तथा [निष्काम कर्म एवं ज्ञानयोगद्वारा] क्षणभरमें मोक्ष भी पा लेते हैं॥ २८-२९॥

गोवर्धनने कहा—मुने! मेरा शरीर आठ योजन लंबा, दो योजन ऊँचा और पाँच योजन चौड़ा है। ऐसी दशामें आप किस प्रकार मुझे ले चलेंगे?॥ ३०॥

पुलस्त्यजी बोले—बेटा! तुम मेरे हाथपर बैठकर सुखपूर्वक चले चलो। जबतक काशी नहीं आ जाती, तबतक मैं तुम्हें हाथपर ही ढोये चलूँगा॥ ३१॥

गोवर्धनने कहा—मुने! मेरी एक प्रतिज्ञा है। आप जहाँ-कहीं भी भूमिपर मुझे एक बार रख देंगे, वहाँकी भूमिसे मैं पुनः उत्थान नहीं करूँगा॥ ३२॥

पुलस्त्यजी बोले—मैं इस शाल्मलीद्वीपसे लेकर [भारतवर्षके] कोसलदेशतक तुम्हें कहीं भी रास्तेमें नहीं रखूँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है॥ ३३॥

सन्नन्द कहते हैं—नन्दराज! तदनन्तर वह महान् पर्वत पिताको प्रणाम करके मुनिकी हथेलीपर आरूढ़ हुआ। उस समय उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उसे दाहिने हाथपर रखकर पुलस्त्य मुनि लोगोंको अपना तेज दिखाते हुए धीरे-धीरे चले और व्रज-मण्डलमें आ पहुँचे॥ ३४-३५॥

गोवर्धनपर्वतको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। व्रजमें आनेपर उसने मार्गमें मन-ही-मन सोचा—'यहाँ व्रजमें असंख्य ब्रह्माण्डनायक साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण अवतार लेंगे और ग्वालबालोंके साथ बाललीला तथा कैशोरलीला करेंगे॥ ३६-३७॥

इतना ही नहीं, वे श्रीहरि यहाँ दानलीला और मानलीला भी करेंगे। अतः मुझे यहाँसे अन्यत्र नहीं जाना चाहिये। यह व्रजभूमि और यह यमुना नदी गोलोकसे यहाँ आयी है। श्रीराधाके साथ भगवान

गोलोकाद् राधया सार्धं श्रीकृष्णोऽत्रागमिष्यति।
कृतकृत्यो भविष्यामि कृत्वा तद्दर्शनं परम्॥ ३९

एवं विचार्य मनसा भूरि भारं ददौ करे।
तदा मुनिश्च श्रान्तोऽभूद् भूतपूर्वं गतस्मृतिः॥ ४०

करादुत्तार्य तं शैलं निधाय व्रजमण्डले।
लघुशङ्काजयार्थं हि गतोऽभूद्भारपीडितः॥ ४१

श्रीकृष्णका भी यहाँ शुभागमन होगा। उनका उत्तम दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा।' मन-ही-मन ऐसा विचार करके गोवर्धनने मुनिकी हथेलीपर अपने शरीरका भार बहुत अधिक बढ़ा लिया। उस समय मुनि अत्यन्त थक गये। उन्हें पहलेकी कही हुई बातकी याद नहीं रही। उन्होंने पर्वतको हाथसे उतारकर व्रजमण्डलमें रख दिया। भारसे पीड़ित तो वे थे ही, लघुशङ्कासे निवृत्त होनेके लिये चले गये॥ ३८—४१॥

कृत्वा शौचं जले स्नात्वा पुलस्त्यो मुनिसत्तमः।
उत्तिष्ठेति मुनिः प्राह गिरिं गोवर्धनं परम्॥ ४२

नोत्थितं भूरिभाराढ्यं कराभ्यां तं महामुनिः।
स्वतेजसा बलेनापि गृहीतुमुपचक्रमे॥ ४३

मुनिना सङ्गृहीतोऽपि गिरिराजो गिरार्द्रया।
न चचालाङ्गुलिं किञ्चित्तदपि द्रोणनन्दनः॥ ४४

शौच-क्रिया करके जलमें स्नान करनेके पश्चात् मुनिवर पुलस्त्यने उत्तम पर्वत गोवर्धनसे कहा—'अब उठो।' अधिक भारसे सम्पन्न होनेके कारण जब वह दोनों हाथोंसे नहीं उठा, तब महामुनि पुलस्त्यने उसे अपने तेज और बलसे उठा लेनेका उपक्रम किया। मुनिने स्नेहसे भीगी वाणीद्वारा द्रोणनन्दन गिरिराजको ग्रहण करनेका सम्पूर्ण शक्तिसे प्रयास किया, किंतु वह एक अंगुल भी टस-से-मस न हुआ॥ ४२—४४॥

पुलस्त्य उवाच

गच्छ गच्छ गिरिश्रेष्ठ भारं मा कुरु मा कुरु।
मया ज्ञातोऽसि रुष्टस्त्वमभिप्रायं वदाशु मे॥ ४५

तब पुलस्त्यजी बोले—गिरिश्रेष्ठ! चलो, चलो! भार अधिक न बढ़ाओ, न बढ़ाओ। मैं जान गया, तुम रूठे हुए हो। शीघ्र बताओ, तुम्हारा क्या अभिप्राय है?॥ ४५॥

गोवर्धन उवाच

मुनेऽत्र मे न दोषोऽस्ति त्वया मे स्थापना कृता।
करिष्यामि न चोत्थानं पूर्वं मे शपथः कृतः॥ ४६

गोवर्धन बोला—मुने! इसमें मेरा दोष नहीं है। आपने ही मुझे यहाँ स्थापित किया है। अब मैं यहाँसे नहीं उठूँगा। अपनी यह प्रतिज्ञा मैंने पहले ही प्रकट कर दी थी॥ ४६॥

सन्नन्द उवाच

पुलस्त्यो मुनिशार्दूलः क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः।
स्फुरदोष्ठो द्रोणपुत्रं शशाप विगतोद्यमः॥ ४७

सन्नन्द कहते हैं—यह उत्तर सुनकर मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यकी सारी इन्द्रियाँ क्रोधसे चञ्चल हो उठीं। उनके ओष्ठ फड़कने लगे। अपना सारा उद्यम व्यर्थ हो जानेके कारण उन्होंने द्रोणपुत्रको शाप दे दिया॥ ४७॥

पुलस्त्य उवाच

गिरे त्वयातिधृष्टेन न कृतो मे मनोरथः।
तस्मात्तु तिलमात्रं हि नित्यं त्वं क्षीणतां व्रज॥ ४८

पुलस्त्यजी बोले—पर्वत! तू बड़ा ढीठ है। तूने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया। इसलिये तू प्रतिदिन तिल-तिलभर क्षीण होता चला जा॥ ४८॥

सन्नन्द उवाच

काशीं गते पुलस्त्यर्षावयं गोवर्धनो गिरिः।
नित्यं सङ्क्षीयते नन्द तिलमात्रं दिने दिने॥ ४९

सन्नन्द कहते हैं—नन्द! यों कहकर पुलस्त्य मुनि काशी चले गये। उसी दिनसे यह गोवर्धन पर्वत प्रतिदिन तिल-तिल करके क्षीण होता चला जा रहा है॥ ४९॥

यावद्भागीरथी गङ्गा यावद्गोवर्धनो गिरिः।
तावत्कलेः प्रभावस्तु भविष्यति न कर्हिचित्॥ ५०

गोवर्धनस्य प्रकटं चरित्रं
नृणां महापापहरं पवित्रम्।
मया तवाग्रे कथितं विचित्रं
सुमुक्तिदं कौ रुचिरं न चित्रम्॥ ५१

जबतक भागीरथी गङ्गा और गोवर्धन पर्वत इस भूतलपर विद्यमान हैं, तबतक कलिका प्रभाव कदापि नहीं बढ़ेगा। गोवर्धनका यह प्रकट चरित्र परम पवित्र और मनुष्योंके बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाला है। यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हारे सामने कहा है, जो भूमण्डलमें रुचिर और अद्भुत है। यह उत्तम मोक्ष प्रदान करनेवाला है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है॥ ५०-५१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीवृन्दावनखण्डे गिरिराजोत्पत्तिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'गिरिराजकी उत्पत्तिका वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

श्रीयमुनाजीका गोलोकसे अवतरण और पुनः गोलोकधाममें प्रवेश

सन्नन्द उवाच

गोलोके हरिणाज्ञप्ता कालिन्दी सरितां वरा।
कृष्णं प्रदक्षिणीकृत्य गन्तुमभ्युद्यताभवत्॥ १

तदैव विरजा साक्षाद्गङ्गा ब्रह्मद्रवोद्भवा।
द्वे नद्यौ यमुनायां तु सम्प्रलीने बभूवतुः॥ २

परिपूर्णतमां कृष्णां तस्मात्कृष्णस्य नन्दराट्।
परिपूर्णतमस्यापि पट्टराज्ञीं विदुर्जनाः॥ ३

ततो वेगेन महता कालिन्दी सरितां वरा।
बिभेद विरजावेगं निकुञ्जद्वारनिर्गता॥ ४

असंख्यब्रह्माण्डचयं स्पृष्ट्वा ब्रह्मद्रवं गता।
भिन्दन्ती तज्जलं दीर्घं स्ववेगेन महानदी॥ ५

वामपादाङ्गुष्ठनखभिन्नब्रह्माण्डमस्तके।
श्रीवामनस्य विवरे ब्रह्मद्रवसमाकुले॥ ६

तस्मिन् श्रीगङ्गया सार्धं प्रविष्टाभूत्सरिद्वरा।
वैकुण्ठं चाजितपदं सम्प्राप्य ध्रुवमण्डले॥ ७

ब्रह्मलोकमभिव्याप्य पतन्ती ब्रह्ममण्डलात्।
ततः सुराणां शतशो लोकाल्लोकं जगाम ह॥ ८

सन्नन्दजी कहते हैं—नन्दराज! गोलोकमें श्रीहरिने जब यमुनाजीको भूतलपर जानेकी आज्ञा दी और सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुना जब श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके जानेको उद्यत हुईं, उसी समय विरजा तथा ब्रह्मद्रवसे उत्पन्न साक्षात् गङ्गा—ये दोनों नदियाँ आकर यमुनाजीमें लीन हो गयीं। इसीलिये परिपूर्णतमा कृष्णा (यमुना)-को परिपूर्णतम श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें लोग जानते हैं। तदनन्तर सरिताओंमें श्रेष्ठ कालिन्दी अपने महान् वेगसे विरजाके वेगका भेदन करके निकुञ्ज-द्वारसे निकलीं और असंख्य ब्रह्माण्ड-समूहोंका स्पर्श करती हुई ब्रह्मद्रवमें गयीं॥ १—४½॥

फिर उसकी दीर्घ जलराशिका अपने महान् वेगसे भेदन करती हुई वे महानदी श्रीवामनके बायें चरणके अँगूठेके नखसे विदीर्ण हुए ब्रह्माण्डके शिरोभागमें विद्यमान ब्रह्मद्रवयुक्त विवरमें श्रीगङ्गाके साथ ही प्रविष्ट हुईं और वहाँसे वे सरिद्वरा यमुना ध्रुवमण्डलमें स्थित भगवान् अजित विष्णुके धाम वैकुण्ठलोकमें होती हुई ब्रह्मलोकको लाँघकर जब ब्रह्ममण्डलसे नीचे गिरीं, तब देवताओंके सैकड़ों लोकोंमें एक-से-दूसरेके क्रमसे विचरती हुई आगे बढ़ीं॥ ५—८॥

ततः पपात वेगेन सुमेरुगिरिमूर्धनि।
गिरिकूटानतिक्रम्य भित्त्वा गण्डशिलातटान्॥ ९

सुमेरोर्दक्षिणदिशं गन्तुमभ्युदिताभवत्।
ततः श्रीयमुना साक्षाच्छ्रीगङ्गाया विनिर्गता॥ १०

गङ्गा तु प्रययौ शैलं हिमवन्तं महानदी।
कृष्णा तु प्रययौ शैलं कलिन्दं प्राप्य सा तदा॥ ११

कालिन्दीति समाख्याता कलिन्दप्रभवा यदा।
कलिन्दगिरिसानूनां गण्डशैलतटान् दृढान्॥ १२

भित्त्वा लुठन्ती भूखण्डे कृष्णा वेगवती सती।
देशान् पुनन्ती कालिन्दी प्राप्ता सा खाण्डवे वने॥ १३

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं वरमिच्छती।
धृत्वा वपुः परं दिव्यं तपस्तेपे कलिन्दजा॥ १४

पित्रा विनिर्मिते गेहे जलेऽद्यापि समाश्रिता।
ततो वेगेन कालिन्दी प्राप्ताभूद्व्रजमण्डले॥ १५

वृन्दावनसमीपे च मथुरानिकटे शुभे।
श्रीमहावनपार्श्वे च सैकते रमणस्थले॥ १६

श्रीगोकुले च यमुना यूथीभूत्वातिसुन्दरी।
श्रीकृष्णचन्द्ररासार्थं निजवासं चकार ह॥ १७

अथो व्रजाद्व्रजन्ती सा व्रजविक्षेपविह्वला।
प्रेमानन्दाश्रुसंयुक्ता भूत्वा पश्चिमवाहिनी॥ १८

ततस्त्रिवारं वेगेन नत्वाथो व्रजमण्डलम्।
देशान् पुनन्ती प्रययौ प्रयागं तीर्थसत्तमम्॥ १९

पुनः श्रीगङ्गया सार्धं क्षीराब्धिं सा जगाम ह।
देवाः सुवर्षं पुष्पाणां चक्रुर्दिग्विजयध्वनिम्॥ २०

तदनन्तर वे सुमेरुगिरिके शिखरपर बड़े वेगसे गिरीं और अनेक शैल-शृङ्गोंको लाँघकर बड़ी-बड़ी चट्टानोंके तटोंका भेदन करती हुई जब मेरुपर्वतसे दक्षिण दिशाकी ओर जानेको उद्यत हुईं, तब यमुनाजी गङ्गासे अलग हो गयीं। महानदी गङ्गा तो हिमवान् पर्वतपर चली गयीं, किंतु कृष्णा (श्यामसलिला यमुना) कलिन्द-शिखरपर जा पहुँचीं। वहाँ जाकर उस पर्वतसे प्रकट होनेके कारण उनका नाम 'कालिन्दी' हो गया॥ ९—११½॥

कलिन्दगिरिके शिखरोंसे टूटकर जो बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी थीं, उनके सुदृढ़ तटोंको तोड़ती-फोड़ती और भूखण्डपर लोटती हुई वेगवती कृष्णा कालिन्दी अनेक देशोंको पवित्र करती हुई खाण्डववनमें (इन्द्रप्रस्थ या दिल्लीके पास) जा पहुँचीं॥ १२-१३॥

यमुनाजी साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति बनाना चाहती थीं, इसलिये वे परम दिव्य देह धारण करके खाण्डववनमें तपस्या करने लगीं। यमुनाके पिता भगवान् सूर्यने जलके भीतर ही एक दिव्य गेहका निर्माण कर दिया था, जिसमें आज भी वे रहा करती हैं। खाण्डववनसे वेगपूर्वक चलकर कालिन्दी व्रजमण्डलमें श्रीवृन्दावन और मथुराके निकट आ पहुँचीं। महावनके पास सिकतामय रमण-स्थलमें भी प्रवाहित हुईं॥ १४—१६॥

श्रीगोकुलमें आनेपर परम सुन्दरी यमुनाने (विशाखा सखीके नामसे) अपने नेतृत्वमें गोप-किशोरियोंका एक यूथ बनाया और श्रीकृष्णचन्द्रके रासमें सम्मिलित होनेके लिये उन्होंने वहीं अपना निवासस्थान निश्चित कर लिया। तदनन्तर वे जब व्रजसे आगे जाने लगीं, तब व्रजभूमिके वियोगसे विह्वल हो, प्रेमानन्दके आँसू बहाती हुई पश्चिम दिशाकी ओर प्रवाहित हुईं। तदनन्तर व्रजमण्डलकी भूमिको अपने वारि-वेगसे तीन बार प्रणाम करके यमुना अनेक देशोंको पवित्र करती हुई उत्तम तीर्थ प्रयागमें जा पहुँचीं॥ १७—१९॥

वहाँ गङ्गाजीके साथ उनका संगम हुआ और वे उन्हें साथ लेकर क्षीरसागरकी ओर गयीं। उस समय देवताओंने उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा की और दिग्विजयसूचक जयघोष किया॥ २०॥

कृष्णा श्रीयमुना साक्षात्कालिन्दी सरितां वरा।
समुद्रमेत्य श्रीगङ्गां प्राह गद्‌गदया गिरा॥ २१

यमुनोवाच

हे गङ्गे त्वं तु धन्यासि सर्वब्रह्माण्डपावनी।
कृष्णपादाब्जसम्भूता सर्वलोकैकवन्दिता॥ २२

ऊर्ध्वं यामि हरेर्लोकं गच्छ त्वमपि हे शुभे।
त्वत्समानं हि दिव्यं च न भूतं न भविष्यति॥ २३

सर्वतीर्थमयी गङ्गा तस्मात्त्वां प्रणमाम्यहम्।
यत्किञ्चिद्वा प्रकथितं तत्क्षमस्व सुमङ्गले॥ २४

गङ्गोवाच

हे कृष्णे त्वं तु धन्यासि सर्वब्रह्माण्डपावनी।
कृष्णवामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी॥ २५

परिपूर्णतमा साक्षात्सर्वलोकैकवन्दिता।
परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः॥ २६

पट्टराज्ञीं परां कृष्णे कृष्णां त्वां प्रणमाम्यहम्।
तीर्थैर्देवैर्दुर्लभा त्वं गोलोकेऽपि च दुर्घटा॥ २७

अहं यास्यामि पातालं श्रीकृष्णस्याज्ञया शुभे।
त्वद्वियोगातुराहं वै यानं कर्तुं न च क्षमा॥ २८

यूथीभूत्वा भविष्यामि श्रीव्रजे रासमण्डले।
यत्किञ्चिन्मे प्रकथितं तत्क्षमस्व हरिप्रिये॥ २९

सन्नन्द उवाच

इत्थं परस्परं नत्वा द्वे नद्यौ ययतुर्द्रुतम्।
लोकान् पवित्रीकुर्वन्ती पाताले स्वःसरिद् गता॥ ३०

सापि भोगवतीनाम्ना बभौ भोगवतीवने।
यज्जलं सत्रिनयनः शेषो मूर्ध्ना बिभर्ति हि॥ ३१

नदीशिरोमणि कलिन्दनन्दिनी कृष्णवर्णा श्रीयमुनाने समुद्रतक पहुँचकर गद्‌गद वाणीमें श्रीगङ्गासे कहा॥ २१॥

यमुनाने कहा—समस्त ब्रह्माण्डको पवित्र करनेवाली हे गङ्गे! तुम धन्य हो। साक्षात् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है, अतः तुम समस्त लोकोंके लिये एकमात्र वन्दनीया हो। हे शुभे! अब मैं यहाँसे ऊपर उठकर श्रीहरिके लोकमें जा रही हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी मेरे साथ चलो! तुम्हारे समान दिव्य तीर्थ न तो हुआ है और न आगे होगा ही। गङ्गा (आप) सर्वतीर्थमयी हैं, अतः सुमङ्गले गङ्गे! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। यदि मैंने कभी कोई अनुचित बात कही हो तो उसके लिये मुझे क्षमा कर देना॥ २२—२४॥

गङ्गा बोलीं—हे कृष्णे! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको पावन बनानेवाली तो तुम हो, अतः तुम्हीं धन्य हो। श्रीकृष्णके वामाङ्गसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम परमानन्दस्वरूपिणी हो। साक्षात् परिपूर्णतमा हो। समस्त लोकोंके द्वारा एकमात्र वन्दनीया हो। परिपूर्णतमं परमात्मा श्रीकृष्णकी भी पटरानी हो। अतः कृष्णे! तुम सब प्रकारसे उत्कृष्ट हो। तुम कृष्णाको मैं प्रणाम करती हूँ। तुम समस्त तीर्थों और देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो। गोलोकमें भी तुम्हारा दर्शन दुष्कर है॥ २५—२७॥

हे शुभे! मैं तो भगवान् श्रीकृष्णकी ही आज्ञासे मङ्गलमय पाताल-लोकमें जाऊँगी। यद्यपि तुम्हारे वियोगके भयसे मैं बहुत व्याकुल हूँ, तो भी इस समय तुम्हारे साथ चलनेमें असमर्थ हूँ। व्रजके रासमण्डलमें मैं भी तुम्हारे यूथमें सम्मिलित होकर रहूँगी। हरिप्रिये! मैंने भी यदि कोई अप्रिय बात कह दी हो तो उसके लिये मुझे क्षमा कर देना॥ २८-२९॥

सन्नन्द कहते हैं—इस प्रकार एक-दूसरेको प्रणाम करके दोनों नदियाँ तुरंत अपने-अपने गन्तव्य पथपर चली गयीं। सुरधुनी गङ्गाजी अनेक लोकोंको पवित्र करती हुई पातालमें चली गयीं और वहाँ भोगवती-वनमें जाकर 'भोगवती गङ्गा'के नामसे प्रसिद्ध हुईं। उन्हींका जल भगवान् शंकर और शेषनाग अपने मस्तकपर धारण करते हैं॥ ३०-३१॥

अथ कृष्णा स्ववेगेन भित्त्वा सप्ताब्धिमण्डलम्।
सप्तद्वीपमहीपृष्ठे लुठन्ती वेगवत्तरा॥ ३२

गत्वा स्वर्णमयीं भूमिं लोकालोकाचलं गता।
तत्सानुगण्डशैलानां तटं भित्त्वा कलिन्दजा॥ ३३

तन्मूर्ध्नि चोत्पपाताशु स्फारवज्जलधारया।
उद्गच्छन्ती तदूर्ध्वं सा ययौ स्वर्गं तु नाकिनाम्॥ ३४

आब्रह्मलोकं लोकांस्तानभिव्याप्य हरेः पदम्।
ब्रह्माण्डरन्ध्रं श्रीब्रह्मद्रवयुक्तं समेत्य सा॥ ३५

पुष्पवर्षं प्रवर्षत्सु देवेषु प्रणतेषु च।
पुनः श्रीकृष्णगोलोकमारुरोह सरिद्वरा॥ ३६

कलिन्दगिरिनन्दिनीनवचरित्रमेतच्छुभं
श्रुतं च यदि पाठितं भुवि तनोति सन्मङ्गलम्।
जनोऽपि यदि धारयेत्किल पठेच्च यो नित्यशः
स याति परमं पदं निजनिकुञ्जलीलावृतम्॥ ३७

इधर कृष्णा अपने वेगसे सप्तसागर-मण्डलका भेदन करके सातों द्वीपोंके भूभागपर लोटती हुई और भी प्रखर वेगसे आगे बढ़ीं। सुवर्णमयी भूमिपर पहुँचकर लोकालोक पर्वतपर गयीं। उसके शिखरों तथा गण्डशैलों (टूटी चट्टानों)-के तटका भेदन करके कालिन्दी फुहारेकी-सी जलधाराके साथ उछलकर लोकालोक पर्वतके शिखरपर जा पहुँचीं। फिर वहाँसे ऊर्ध्वगमन करती हुई स्वर्गवासियोंके स्वर्गलोकतक जा पहुँचीं॥ ३२—३४॥

फिर ब्रह्मलोकतकके समस्त लोकोंको लाँघकर श्रीहरिके पदचिह्नसे लाञ्छित श्रीब्रह्मद्रवसे युक्त ब्रह्माण्डविवरसे होती हुई आगे बढ़ गयीं। उस समय समस्त देवता प्रणाम करते हुए उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर रहे थे। इस तरह सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुना पुनः श्रीकृष्णके गोलोकधाममें आरूढ़ हो गयीं। कलिन्द-गिरिनन्दिनी यमुनाके इस मङ्गलमय नूतन चरित्रका भूतलपर यदि श्रवण या पठन किया जाय तो वह उत्तम मङ्गलका विस्तार करता है। यदि कोई भी मनुष्य इस चरित्रको मनमें धारण करे और प्रतिदिन पढ़े तो वह भगवान्‌की निकुञ्जलीलाके द्वारा वरण किये गये उनके परमपद—गोलोकधाममें पहुँच जाता है॥ ३५—३७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीवृन्दावनखण्डे नन्दसन्नन्दसंवादे कालिन्द्यागमनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत नन्द-सन्नन्द-संवादमें 'कालिन्दीके आगमनका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

श्रीबलराम और श्रीकृष्णके द्वारा बछड़ोंका चराया जाना तथा वत्सासुरका उद्धार

श्रीनारद उवाच

सन्नन्दस्य वचः श्रुत्वा गन्तुं नन्दः समुद्यतः।
सर्वैर्गोपगणैः सार्धं मुदितोऽभून्महामनाः॥ १

यशोदया च रोहिण्या सर्वगोपीगणैः सह।
अश्वै रथैर्वीरजनैर्मण्डितो विप्रमण्डलैः॥ २

गोभिश्च शकटैर्युक्तो वृद्धैर्बालैस्तथानुगैः।
गायकैर्गीयमानश्च शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! सन्नन्दकी बात सुनकर महामना नन्दराज समस्त गोपगणोंके साथ बड़े प्रसन्न हुए और वृन्दावनमें जानेको तैयार हो गये। यशोदा, रोहिणी तथा समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ घोड़ों, रथों, वीर पुरुषों तथा विप्रमण्डलीसे मण्डित हो, परम बुद्धिमान् नन्दराज दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्णसहित रथपर आरूढ़ हो वृन्दावनकी ओर चल दिये। उनके साथ गौओंका समुदाय भी था। बूढ़े, बालक और सेवकोंसहित अनेक छकड़े चल रहे थे। यात्राके समय

पुत्राभ्यां रामकृष्णाभ्यां नन्दराजो महामतिः।
रथमारुह्य हे राजन् वनं वृन्दावनं ययौ॥ ४

वृषभानुवरो गोपो गजमारुह्य भार्यया।
अङ्के नीत्वा सुतां राधां गीयमानश्च गायकैः॥ ५

मृदङ्गतालवीणानां वेणूनां कलनिःस्वनैः।
गोपालगोगणैः सार्धं वृन्दारण्यं जगाम ह॥ ६

उपनन्दास्तथा नन्दास्तथा षड् वृषभानवः।
सर्वैः परिकरैः सार्धं जग्मुर्वृन्दावनं वनम्॥ ७

वृन्दावने सम्प्रविश्य गोपाः सर्वे सहानुगाः।
घोषान् विधाय वसतीर्वासं चक्रुरितस्ततः॥ ८

सभामण्डपसंयुक्तं सदुर्गं परिखायुतम्।
चतुर्योजनविस्तीर्णं सप्तद्वारसमन्वितम्॥ ९

सरोवरैः परिवृतं राजमार्गं मनोहरम्।
सहस्रकुञ्जं च पुरं वृषभानुरचीक्लृपत्॥ १०

श्रीकृष्णो नन्दनगरे वृषभानुपुरेऽर्भकैः।
चचार क्रीडनपरो गोपीनां प्रीतिमावहन्॥ ११

अथ वृन्दावने राजन् सर्वगोपालसम्मतौ।
बभूवतुर्वत्सपालौ रामकृष्णौ मनोहरौ॥ १२

चारयामासतुर्वत्सान् ग्रामसीम्न्यर्भकैः सह।
कालिन्दीनिकटे पुण्ये पुलिने रामकेशवौ॥ १३

निकुञ्जेषु च कुञ्जेषु सम्प्रलीनावितस्ततः।
रिङ्गमाणौ च कुत्रापि नन्दन्तौ चेरतुर्वने॥ १४

किङ्किणीजालसंयुक्तौ शिञ्जन्मञ्जीरनूपुरौ।
नीलपीताम्बरधरौ हारकेयूरभूषितौ॥ १५

क्षेपणैः क्षिपतौ बालैर्वंशीवादनतत्परौ।
मुखेन किङ्किणीशब्दं कुर्वद्भिर्बालकैश्च तौ॥ १६

शंख बजे और नगारोंकी ध्वनियाँ हुईं। बहुत-से गायक नन्दराजका यशोगान कर रहे थे॥ १—४॥

गोप वृषभानुवर अपनी पत्नीके साथ हाथीपर बैठकर, पुत्री राधाको अङ्कमें लिये, गायकोंसे यशोगान सुनते हुए, मृदङ्ग, ताल, वीणा और वेणुओंकी मधुर ध्वनिके साथ वृन्दावनको गये। उनके साथ भी बहुतसे गोप और गौओंका समुदाय था। नन्द, उपनन्द और छहों वृषभानु भी अपने समस्त परिकरोंके साथ वृन्दावनमें गये॥ ५—७॥

समस्त गोपोंने अपने सेवकोंसहित वृन्दावनमें प्रवेश करके अलग-अलग गोष्ठ बनाये और इधर-उधर निवास आरम्भ किया। वृषभानुने अपने लिये वृषभानुपुर (बरसाना) नामक नगरका निर्माण कराया, जो चार योजन विस्तृत दुर्गके आकारमें था। उसके चारों ओर खाइयाँ बनी थीं। उस दुर्गके सात दरवाजे थे। दुर्गके भीतर विशाल सभामण्डप था। अनेक सरोवर उस दुर्गकी शोभा बढ़ा रहे थे। बीच-बीचमें मनोहर राजमार्गका निर्माण कराया गया था। एक सहस्र कुञ्ज उस पुरकी शोभा बढ़ाते थे॥ ८—१०॥

श्रीकृष्ण नन्दनगर (नन्दगाँव) तथा वृषभानुपुर (बरसाने)-में बालकोंके साथ क्रीड़ा करते हुए घूमते और गोपाङ्गनाओंकी प्रीति बढ़ाते थे। राजन्! कुछ दिनों बाद सम्पूर्ण गोपोंके समादर-भाजन मनोहर रूपवाले बलराम और श्रीकृष्ण वृन्दावनमें बछड़े चराने लगे॥ ११-१२॥

वे दोनों भाई ग्वाल-बालोंके साथ गाँवकी सीमातक जाकर बछड़े चराते थे। कालिन्दीके निकट उसके पावन पुलिनपर सुशोभित निकुञ्जों और कुञ्जोंमें बलराम और श्रीकृष्ण इधर-उधर लुकाछिपीके खेल खेलते और कहीं-कहीं रेंगते हुए चलकर वनमें सानन्द विचरते थे॥ १३-१४॥

उन दोनोंके कटिप्रदेशमें करधनीकी लड़ियाँ शोभा देती थीं। खेलते समय उनके पैरोंके मञ्जीर और नूपुर मधुर झंकार फैलाते थे। बलरामके अङ्गोंपर नीलाम्बर शोभा पाता था और श्रीकृष्णके अङ्गोंपर पीतपट। वे दोनों भाई हार और भुजबंदोंसे भूषित थे। कभी बालकोंके साथ क्षेपणों (ढेलवासों)-द्वारा ढेले फेंकते और कभी बाँसुरी बजाते थे। कुछ ग्वाल-बाल अपने मुखसे

धावन्तौ पक्षिभिश्छायां रेजतू रामकेशवौ।
मयूरपक्षसंयुक्तौ पुष्पपल्लवभूषितौ॥ १७

एकदा वत्सवृन्देषु प्राप्तं वत्सासुरं नृप।
कंसप्रणोदितं ज्ञात्वा शनैस्तत्र जगाम ह॥ १८

धावन् गोपेषु सर्वत्र लाङ्गूलं चालयन् मुहुः।
दैत्यः पश्चिमपादाभ्यां हरिमंसे तताड ह॥ १९

पलायितेषु बालेषु कृष्णस्तं पादयोर्द्वयोः।
गृहीत्वा भ्रामयित्वाथ पातयामास भूतले॥ २०

पुनर्नीत्वा कराभ्यां तं कपित्थे प्राहिणोद्धरिः।
तदा मृत्युं गते दैत्ये कपित्थोऽपि महाद्रुमः॥ २१

कपित्थान् पातयामास तदद्भुतमिवाभवत्।
विस्मितेषु च बालेषु साधु साध्विति वादिषु॥ २२

दिवि देवा जयारावैः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे।
तद्दैत्यस्य महज्ज्योतिः कृष्णे लीनं बभूव ह॥ २३

श्रीबहुलाश्व उवाच

अहो पूर्वं सुकृतकृत्कोऽयं वत्सासुरो मुने।
श्रीकृष्णे लीनतां प्राप्तः परिपूर्णे परात्परे॥ २४

श्रीनारद उवाच

मुरपुत्रो महादैत्यः प्रमीलो नाम देवजित्।
वसिष्ठस्याश्रमे प्राप्तो नन्दिनीं गां ददर्श ह॥ २५

तल्लिप्सुर्ब्राह्मणो भूत्वा ययाचे गां मनोहराम्।
तूष्णीं स्थिते गौरुवाच वसिष्ठे दिव्यदर्शने॥ २६

करधनीके घुँघुरुओंकी-सी ध्वनि करते हुए दौड़ते और उनके साथ वे दोनों बन्धु—राम और श्याम भी पक्षियोंकी छायाका अनुसरण करते भागते हुए सुशोभित होते थे। सिरपर मयूरपिच्छ लगाकर फूलों और पल्लवोंके शृङ्गार धारण करते थे॥ १५—१७॥

नरेश्वर! एक दिन उनके बछड़ोंके झुंडमें कंसका भेजा हुआ वत्सासुर आकर मिल गया। श्रीकृष्णको यह बात विदित हो गयी और वे उसके पास गये। वह दैत्य गोप-बालकोंके बीचमें सब ओर पूँछ उठाकर बार-बार दौड़ता हुआ दिखायी देता था। उसने अचानक आकर अपने पिछले पैरोंसे श्रीकृष्णके कंधोंपर प्रहार किया। अन्य गोप-बालक तो भाग चले, किंतु श्रीकृष्णने उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे घुमाकर धरतीपर पटक दिया॥ १८—२०॥

इसके बाद श्रीहरिने फिर उसे हाथोंसे उठाकर कपित्थ-वृक्षपर दे मारा। फिर तो वह दैत्य तत्काल मर गया। उसके धक्केसे महान् कपित्थ-वृक्षने स्वयं गिरकर दूसरे-दूसरे कपित्थ-वृक्षोंको भी धराशायी कर दिया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई। समस्त ग्वालबाल आश्चर्यसे चकित हो कन्हैयाको वहाँ साधुवाद देने लगे। देवतालोग आकाशमें खड़े हो जय-जयकार करते हुए फूल बरसाने लगे। उस दैत्यकी विशाल ज्योति श्रीकृष्णमें लीन हो गयी॥ २१—२३॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—मुने! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। बताइये तो, इस वत्सासुरके रूपमें पहलेका कौन-सा पुण्यात्मा पुरुष प्रकट हो गया था, जो परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णमें विलीन हुआ?॥ २४॥

श्रीनारदजी बोले—राजन्! मुरके एक पुत्र था, जो महादैत्य 'प्रमील' के नामसे विख्यात था। उसने देवताओंको भी युद्धमें जीत लिया था। एक दिन वह वसिष्ठ मुनिके आश्रमपर गया। वहाँ उसने मुनिकी होमधेनु नन्दिनीको देखा। उसे पानेकी इच्छासे वह ब्राह्मणका रूप धारण करके मुनिके पास गया और उस मनोहर गौके लिये याचना करने लगा। महर्षि दिव्यदर्शी थे; अतः सब कुछ जानकर भी चुप रह गये, कुछ बोले नहीं। तब गौने स्वयं कहा—॥ २५-२६॥

श्रीनन्दिन्युवाच

मुनीनां गां समाहर्तुं भूत्वा विप्रः समागतः।
दैत्योऽसि मुरजस्तस्माद् गोवत्सो भव दुर्मते॥ २७

श्रीनन्दिनी बोली—दुर्मते! तू मुरका पुत्र दैत्य है, तो भी मुनियोंकी गौका अपहरण करनेके लिये ब्राह्मण बनकर आया है; अतः गायका बछड़ा हो जा॥ २७॥

श्रीनारद उवाच

तदैव वत्सरूपोऽभून्मुरपुत्रो महासुरः।
वसिष्ठं गां परिक्रम्य नत्वा त्राहीत्युवाच ह॥ २८

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! नन्दिनीके इतना कहते ही वह महान् असुर मुरपुत्र गोवत्स बन गया। तब उसने मुनिवर वसिष्ठ तथा उस गौकी परिक्रमा एवं प्रणाम करके कहा—'मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'॥ २८॥

गौरुवाच

द्वापरान्ते महादैत्य वृन्दारण्ये यदा तव।
गोवत्सेषु गतस्यापि तदा मुक्तिर्भविष्यति॥ २९

गौ बोली—महादैत्य! द्वापरके अन्तमें जब तू [श्रीकृष्णके] बछड़ोंमें घुस जायगा, उस समय तेरी मुक्ति होगी॥ २९॥

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमे साक्षात्कृष्णे पतितपावने।
तस्माद्वत्सासुरो दैत्यो लीनोऽभून्न हि विस्मयः॥ ३०

श्रीनारदजी कहते हैं—उसी शाप और वरदानके कारण परिपूर्णतम पतितपावन साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णमें दैत्य वत्सासुर विलीन हुआ। इसमें विस्मयकी कोई बात नहीं है॥ ३०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे वत्सासुरमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'वत्सासुरका मोक्ष' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

वकासुरका उद्धार

श्रीनारद उवाच

एकदा चारयन् वत्सान् सरामो बालकैर्हरिः।
यमुनानिकटे प्राप्तं वकं दैत्यं ददर्श ह॥ १

श्वेतपर्वतसङ्काशो बृहत्पादो घनध्वनिः।
पलायितेषु बालेषु वज्रतुण्डोऽग्रसद्धरिम्॥ २

रुदन्तो बालकाः सर्वे गतप्राणा इवाभवन्।
हाहाकारं तदा कृत्वा देवाः सर्वे समागताः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—एक दिन बलराम तथा ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चराते हुए श्रीहरिने यमुनाके निकट आये हुए वकासुरको देखा। वह श्वेत पर्वतके समान ऊँचा दिखायी देता था। बड़ी-बड़ी टाँगें और मेघ-गर्जनके समान ध्वनि! उसे देखते ही ग्वाल-बाल डरके मारे भागने लगे। उसकी चोंच वज्रके समान तीखी थी। उसने आते ही श्रीहरिको अपना ग्रास बना लिया। यह देख सब ग्वाल-बाल रोने लगे। रोते-रोते वे निष्प्राण-से हो गये। उस समय हाहाकार करते हुए सब देवता वहाँ आ पहुँचे॥ १—३॥

इन्द्रो वज्रं तदा नीत्वा तं तताड महावकम्।
तेन घातेन पतितो न ममार समुत्थितः॥ ४

ब्रह्मापि ब्रह्मदण्डेन तं तताड रुषान्वितः।
तेन घातेन पतितो मूर्च्छितो घटिकाद्वयम्॥ ५

इन्द्रने तत्काल वज्र चलाकर उस महान् वकपर प्रहार किया। वज्रकी चोटसे वकासुर धरतीपर गिर पड़ा, किंतु मरा नहीं। वह फिर उठकर खड़ा हो गया। तब ब्रह्माजीने भी कुपित होकर उसे ब्रह्मदण्डसे मारा। उस आघातसे गिरकर वह असुर दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़ा रहा॥ ४-५॥

विधुन्वन् स्वतनुं वेगाज्जृम्भितः पुनरुत्थितः।
न ममार तदा दैत्यो जगर्ज घनवद्बली॥ ६

त्रिलोचनस्त्रिशूलेन तं जघान महासुरम्।
छिन्नैकपक्षो दैत्योऽपि न मृतोऽतिभयङ्करः॥ ७

वायव्यास्त्रेण वायुस्तं सञ्जघान वकं ततः।
उच्चचाल वकस्तेन पुनस्तत्र स्थितोऽभवत्॥ ८

यमस्तं यमदण्डेन ताडयामास चाग्रतः।
तेन दण्डेन न मृतो वको वै चण्डविक्रमः॥ ९

दण्डोऽपि भग्नतां प्रागात् सक्षतो नाभवद्वकः।
तदैव चाग्रतः प्राप्तश्चण्डांशुश्चण्डविक्रमः॥ १०

शतबाणैर्वकं दैत्यं सञ्जघान धनुर्धरः।
तीक्ष्णैः पक्षगतैर्बाणैर्न ममार वकस्ततः॥ ११

धनदस्तं च खड्गेन सुतीक्ष्णेन जघान ह।
छिन्नद्वितीयपक्षोऽभून्न मृतो दैत्यपुङ्गवः॥ १२

नीहारास्त्रेण तं सोमः सञ्जघान महावकम्।
शीतार्तो मूर्च्छितो दैत्यो न मृतः पुनरुत्थितः॥ १३

आग्नेयास्त्रेण तं ह्यग्निः सन्तताड महावकम्।
भस्मरोमाभवद्दैत्यो न ममार महाखलः॥ १४

अपां पतिस्तं पाशेन बद्ध्वा कौ विचकर्ष ह।
कर्षणात्स महापापश्छिन्नोऽभून्न मृतश्च वै॥ १५

तताड गदया तं वै भद्रकाली तरस्विनी।
मूर्च्छितस्तत्प्रहारेण परं कश्मलतां ययौ॥ १६

क्षतमूर्धा समुत्थाय विधुन्वन् स्वतनुं पुनः।
जगर्ज घनवद्धीरो वको दैत्यो महाखलः॥ १७

फिर अपने शरीरको कँपाता हुआ जँभाई लेकर वह बड़े वेगसे उठ खड़ा हुआ। उसकी मृत्यु नहीं हुई। वह बलवान् दैत्य मेघके समान गर्जना करने लगा। इसी समय त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने उस महान् असुरपर त्रिशूलसे प्रहार किया। उस प्रहारसे दैत्यकी एक पाँख कट गयी, तो भी वह महाभयंकर असुर मर न सका। तदनन्तर वायुदेवने वकासुरपर वायव्यास्त्र चलाया; उससे वह कुछ ऊपरकी ओर उठ गया, परंतु पुनः अपने स्थानपर आकर खड़ा हो गया॥ ६—८॥

इसके बाद यमने सामने आकर उसपर यमदण्डसे प्रहार किया, परंतु प्रचण्ड-पराक्रमी वकासुरकी उस दण्डसे भी मृत्यु नहीं हुई। यमराजका वह दण्ड भी टूट गया, किंतु वकासुरको कोई क्षति नहीं पहुँची। इतनेमें ही प्रचण्ड किरणोंवाले चण्डपराक्रमी सूर्यदेव उसके सामने आये। उन्होंने धनुष हाथमें लेकर वकासुरको सौ बाण मारे। वे तीखे बाण उसकी पाँखमें धँस गये, फिर भी वह मर न सका॥ ९—११॥

तब कुबेरने तीखी तलवारसे उसके ऊपर चोट की। इससे उसकी दूसरी पाँख भी कट गयी, किंतु वह दैत्यपुंगव मृत्युको नहीं प्राप्त हुआ। तदनन्तर सोमदेवताने उस महावकपर नीहारास्त्रका प्रयोग किया। उसके प्रहारसे शीतपीड़ित हो वकासुर मूर्च्छित तो हो गया, किंतु मरा नहीं; फिर उठकर खड़ा हो गया॥ १२-१३॥

अब अग्निदेवताने उस महावकपर आग्नेयास्त्रसे प्रहार किया; इससे उसके रोएँ जल गये, परंतु उस महादुष्ट दैत्यकी मृत्यु नहीं हुई। तत्पश्चात् जलके स्वामी वरुणने उसको पाशसे बाँधकर धरतीपर घसीटा। घसीटनेसे वह महापापी असुर क्षत-विक्षत हो गया; किंतु मरा नहीं॥ १४-१५॥

तदनन्तर वेगशालिनी भद्रकालीने आकर उसपर गदासे प्रहार किया। गदाके प्रहारसे मूर्च्छित हो वकासुर अत्यन्त वेदनाके कारण सुध-बुध खो बैठा। उसके मस्तकपर चोट पहुँची थी, तथापि वह अपने शरीरको कँपाता और फड़फड़ाता हुआ फिर उठकर खड़ा हो गया और वह महादुष्ट दैत्य धीरतापूर्वक समराङ्गणमें स्थित हो मेघोंकी भाँति गर्जना करने लगा॥ १६-१७॥

तदा शक्तिधरः शक्तिं तस्मै चिक्षेप सत्वरः।
तयैकपादो भग्नोऽभून्न मृतः पक्षिणां वरः॥ १८

तदा क्रोधेन सहसा धावन् दैत्यस्तडित्स्वनः।
देवान् विद्रावयामास स्वचञ्च्वा तीक्ष्णतुण्डया॥ १९

अग्रे पलायितान् देवानन्वधावद् वकोऽम्बरे।
पुनस्तत्रागतो दैत्यो नादयन् मण्डलं दिशाम्॥ २०

उस समय शक्तिधारी स्कन्दने बड़ी उतावलीके साथ उसके ऊपर अपनी शक्ति चलायी। उसके प्रहारसे उस पक्षिप्रवर असुरकी एक टाँग टूट गयी, किंतु वह मर न सका। तदनन्तर विद्युत्की गड़गड़ाहटके समान गर्जना करते हुए उस दैत्यने सहसा क्रोधपूर्वक धावा किया और अपनी तीखी चोंचसे मार-मारकर सब देवताओंको खदेड़ दिया। आकाशमें आगे-आगे देवता भाग रहे थे और पीछेसे वकासुर उन्हें खदेड़ रहा था। इसके बाद वह दैत्य पुनः वहीं लौट आया और समस्त दिङ्मण्डलको अपने सिंहनादसे निनादित करने लगा॥ १८—२०॥

तदा देवर्षयः सर्वे सर्वे ब्रह्मर्षयो द्विजाः।
श्रीनन्दनन्दनायाशु सफलां चाशिषं ददुः॥ २१

तदैव कृष्णस्तन्मध्ये ततान वपुरुज्ज्वलम्।
चच्छर्द कृष्णं सहसा क्षतकण्ठो महावकः॥ २२

उस समय समस्त देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा द्विजोंने श्रीनन्दनन्दनको शीघ्र ही सफल आशीर्वाद प्रदान किया। उसी समय श्रीकृष्णने वकासुरके शरीरके भीतर अपने ज्योतिर्मय दिव्य देहको बढ़ाकर विस्तृत कर लिया। फिर तो उस महावकका कण्ठ फटने लगा और उसने सहसा श्रीकृष्णको उगल दिया॥ २१-२२॥

पुनः कृष्णं समाहर्तुं तीक्ष्णया तुण्डयागतम्।
पुच्छे गृहीत्वा तं कृष्णः पोथयामास भूतले॥ २३

पुनरुत्थाय तुण्डं स्वं प्रसार्यावस्थितं वकम्।
ददार तुण्डे हस्ताभ्यां कृष्णः शाखां गजो यथा॥ २४

फिर तीखी चोंचसे श्रीकृष्णको पकड़नेके लिये जब वह पास आया, तब श्रीकृष्णने झपटकर उसकी पूँछ पकड़ ली और उसे पृथ्वीपर दे मारा; किंतु वह पुनः उठकर चोंच फैलाये उनके सामने खड़ा हो गया। तब श्रीकृष्णने दोनों हाथोंसे उसकी दोनों चोंचें पकड़ लीं और जैसे हाथी किसी वृक्षकी शाखाको चीर डाले, उसी तरह उसे विदीर्ण कर दिया॥ २३-२४॥

तदा मृतस्य दैत्यस्य ज्योतिः कृष्णे समाविशत्।
देवता ववृषुः पुष्पैर्जयारावैः समन्विताः॥ २५

गोपाला विस्मिताः सर्वे कृष्णं संश्लिष्य सर्वतः।
ऊचुस्त्वं कुशलीभूतो मुक्तो मृत्युमुखात्सखे॥ २६

उस समय मृत्युको प्राप्त हुए दैत्यकी देहसे एक ज्योति निकली और श्रीकृष्णमें समा गयी। फिर तो देवता जय-जयकार करते हुए दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। तब समस्त ग्वाल-बाल आश्चर्यचकित हो, सब ओरसे आकर श्रीकृष्णसे लिपट गये और बोले—'सखे! आज तो तुम मौतके मुखसे कुशलपूर्वक निकल आये'॥ २५-२६॥

एवं कृष्णो वकं हत्वा सबलो बालकैः सह।
गोवत्सैर्हर्षितो गायन्नाययौ राजमन्दिरे॥ २७

परिपूर्णतमस्यास्य श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
जगुर्गृहे गता बालाः श्रुत्वेदं तेऽतिविस्मिताः॥ २८

इस प्रकार वकासुरको मारनेके पश्चात् बछड़ोंको आगे करके श्रीकृष्ण बलराम और ग्वाल-बालोंके साथ गीत गाते हुए सहर्ष राजभवनमें लौट आये। परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णके इस पराक्रमपूर्ण चरित्रका घर लौटे हुए ग्वाल-बालोंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया। उसे सुनकर समस्त गोप अत्यन्त विस्मित हुए॥ २७-२८॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

कोऽयं दैत्यः पूर्वकाले कस्मात्केन वकोऽभवत्।
पूर्णब्रह्मणि सर्वेशे श्रीकृष्णे लीनतां गतः॥ २९

श्रीनारद उवाच

हयग्रीवसुतो दैत्य उत्कलो नाम हे नृप।
रणेऽमरान् विनिर्जित्य शक्रच्छत्रं जहार ह॥ ३०

तथा नृणां नृपाणां च राज्यं हृत्वा महाबलः।
चकार वर्षाणि शतं राज्यं सर्वविभूतिमत्॥ ३१

एकदा विचरन् दैत्यः सिन्धुसागरसङ्गमे।
जाजलेर्मुनिसिद्धस्य पर्णशालासमीपतः॥ ३२

जले निक्षिप्य बडिशं मीनानाकर्षयन्मुहुः।
निषेधितोऽपि मुनिना नामन्यत स दुर्मतिः॥ ३३

तस्मै शापं ददौ सिद्धो जाजलिर्मुनिसत्तमः।
वकवत्त्वं झषानत्सि त्वं वको भव दुर्मते॥ ३४

तत्क्षणाद्वकरूपोऽभूद् भ्रष्टतेजा गतस्मयः।
पतितः पादयोस्तस्य नत्वा प्राह कृताञ्जलिः॥ ३५

उत्कल उवाच

न जाने ते तपश्चण्डं मुने मां पाहि जाजले।
साधूनां भवतां सङ्गं मोक्षद्वारं परं विदुः॥ ३६

मित्रे शत्रौ समा मानेऽपमाने हेमलोष्ठयोः।
सुखे दुःखे समा ये वै त्वादृशाः साधवश्च ते॥ ३७

किं किं न जातं महतां दर्शनात्कौ मुने नृणाम्।
पारमेष्ठ्यं च साम्राज्यमैन्द्रयोगपदं लभेत्॥ ३८

जाजले मुनिशार्दूल त्रैवर्ग्यं किमभूज्जनैः।
साधूनां कृपया साक्षात्पूर्णं ब्रह्मापि लभ्यते॥ ३९

श्रीबहुलाश्वने पूछा—[देवर्षे!] यह वकासुर पूर्वकालमें कौन था और किस कारणसे उसको बगुलेका शरीर प्राप्त हुआ था? वह पूर्णब्रह्म सर्वेश्वर श्रीकृष्णमें लीन हुआ, [यह कितने सौभाग्यकी बात है!]॥ २९॥

श्रीनारदजीने कहा—हे नरेश्वर! 'हयग्रीव' नामक दैत्यके एक पुत्र था, जो 'उत्कल' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने समराङ्गणमें देवताओंको परास्त करके देवराज इन्द्रके छत्रको छीन लिया था। उस महाबली दैत्यने और भी बहुत-से मनुष्यों तथा नरेशोंकी राज्य-सम्पत्तिका अपहरण करके सौ वर्षोंतक सर्ववैभवसम्पन्न राज्यका उपभोग किया॥ ३०-३१॥

एक दिन इधर-उधर विचरता हुआ दैत्य उत्कल गङ्गा-सागरसंगमपर सिद्ध मुनि जाजलिकी पर्णशालाके समीप गया और पानीमें बंसी डालकर बारंबार मछलियोंको पकड़ने लगा। यद्यपि मुनिने मना किया, तथापि उस दुर्बुद्धिने उनकी बात नहीं मानी॥ ३२-३३॥

मुनिश्रेष्ठ जाजलि सिद्ध महात्मा थे, उन्होंने उत्कलको शाप देते हुए कहा—'दुर्मते! तू बगुलेकी भाँति मछली पकड़ता और खाता है, इसलिये बगुला ही हो जा।' फिर क्या था? उत्कल उसी क्षण बगुलेके रूपमें परिणत हो गया। तेजोभ्रष्ट हो जानेके कारण उसका सारा गर्व गल गया। उसने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया और उनके दोनों चरणोंमें पड़कर कहा॥ ३४-३५॥

उत्कल बोला—मुने! मैं आपके प्रचण्ड तपोबलको नहीं जानता था। जाजलिजी! मेरी रक्षा कीजिये। आप-जैसे साधु-महात्माओंका सङ्ग तो उत्तम मोक्षका द्वार माना गया है। जो शत्रु और मित्रमें, मान और अपमानमें, सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेमें तथा सुख और दुःखमें भी समभाव रखते हैं, वे आप-जैसे महात्मा ही सच्चे साधु हैं॥ ३६-३७॥

मुने! इस भूतलपर महात्माओंके दर्शनसे मनुष्योंका कौन-कौन मनोरथ नहीं पूरा हुआ? ब्रह्मपद, इन्द्रपद, सम्राट्का पद तथा योगसिद्धि—सब कुछ संतोंकी कृपासे सुलभ हो सकते हैं। मुनिश्रेष्ठ जाजले! आप-जैसे महात्माओंसे लोगोंको धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति हुई तो क्या हुई? साधुपुरुषोंकी कृपासे तो साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा भी मिल जाता है॥ ३८-३९॥

श्रीनारद उवाच

तदा प्रसन्नः स मुनिर्जाजलिस्तमुवाच ह।
वर्षषष्टिसहस्राणि तपस्तप्तं च येन वै॥ ४०

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! उस समय उत्कलकी विनययुक्त बात सुनकर वे जाजलि मुनि प्रसन्न हो गये, जिन्होंने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की थी। उन्होंने उत्कलसे कहा॥ ४०॥

जाजलिरुवाच

वैवस्वतान्तरे प्राप्ते ह्यष्टाविंशतिमे युगे।
द्वापरान्ते भारतेऽपि माथुरे व्रजमण्डले॥ ४१

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
वृन्दावने गवां वत्सांश्चारयन् विचरिष्यति॥ ४२

तदा तन्मयतां कृष्णे यास्यसि त्वं न संशयः।
हिरण्याक्षादयो दैत्या वैरेणापि परं गताः॥ ४३

जाजलि बोले—वैवस्वत मन्वन्तर प्राप्त होनेपर जब अट्ठाईसवें द्वापरका अन्तिम समय बीतता होगा, उस समय भारतवर्षके माथुर-जनपदमें स्थित व्रजमण्डलके भीतर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावनमें गोवत्स चराते हुए विचरेंगे। उन्हीं दिनों तुम भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो जाओगे, इसमें संशय नहीं है। हिरण्याक्ष आदि दैत्य भगवान्के प्रति वैरभाव रखनेपर भी उनके परमपदको प्राप्त हो गये हैं॥ ४१—४३॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं वकासुरो दैत्य उत्कलो जाजलेर्वरात्।
श्रीकृष्णे लीनतां प्राप्तः सत्सङ्गात् किं न जायते॥ ४४

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार वकासुरके रूपमें परिणत हुआ उत्कल दैत्य जाजलिके वरदानसे भगवान् श्रीकृष्णमें लयको प्राप्त हुआ। संतोंके सङ्गसे क्या नहीं सुलभ हो सकता?॥ ४४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीवृन्दावनखण्डे वकासुरमोक्षो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'वकासुरका मोक्ष' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

अघासुरका उद्धार और उसके पूर्वजन्मका परिचय

श्रीनारद उवाच

एकदा बालकैः साकं गोवत्सांश्चारयन् हरिः।
कालिन्दीनिकटे रम्ये बालक्रीडां चकार ह॥ १

अघासुरो नाम महान् दैत्यस्तत्र स्थितोऽभवत्।
क्रोशदीर्घं वपुः कृत्वा प्रसार्य मुखमण्डलम्॥ २

दूराद् यं पर्वताकारं वीक्ष्य वृन्दावने वने।
गोपा जग्मुर्मुखे तस्य वत्सैः कृत्वाञ्जलिध्वनिम्॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चराते हुए श्रीहरि कालिन्दीके निकट किसी रमणीय स्थानपर बालोचित खेल खेलने लगे। उसी समय अघासुर नामक महान् दैत्य एक कोस लंबा शरीर धारण करके भीषण मुखको फैलाये वहाँ मार्गमें स्थित हो गया। दूरसे ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई पर्वत खड़ा हो। वृन्दावनमें उसे देखकर सब ग्वाल-बाल ताली बजाते हुए बछड़ोंके साथ उसके मुँहमें घुस गये॥ १—३॥

तद्रक्षार्थं च सबलस्तन्मुखे प्राविशद्धरिः।
निगीर्णेषु सवत्सेषु बालेषु त्वहिरूपिणा॥ ४

हाशब्दोऽभूत्सुराणां तु दैत्यानां हर्ष एव हि।
कृष्णो वपुः स्वं वैराजं ततानाघोदरे ततः॥ ५

उन सबकी रक्षाके लिये बलरामसहित श्रीकृष्ण भी अघासुरके मुखमें प्रविष्ट हो गये। उस सर्परूपधारी असुरने जब बछड़ों और ग्वाल-बालोंको निगल लिया, तब देवताओंमें हाहाकार मच गया; किंतु दैत्योंके मनमें हर्ष ही हुआ। उस समय श्रीकृष्णने अघासुरके उदरमें अपने विराट् स्वरूपको बढ़ाना आरम्भ किया॥ ४-५॥

तस्य संरोधगाः प्राणाः शिरो भित्त्वा विनिर्गताः।
तन्मुखान्निर्गतः कृष्णो बालैर्वत्सैश्च मैथिल॥ ६

सवत्सकान् शिशून् दृष्ट्वा जीवयामास माधवः।
तज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं जातं तडिद्यथा॥ ७

तदैव ववृषुर्देवाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव।
एवं श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं मैथिलो वाक्यमब्रवीत्॥ ८

राजोवाच

कोऽयं दैत्यः पूर्वकाले श्रीकृष्णे लीनतां गतः।
अहो वैरानुबन्धेन शीघ्रं दैत्यो हरिं गतः॥ ९

श्रीनारद उवाच

शङ्खासुरसुतो राजन्नघो नाम महाबलः।
युवातिसुन्दरः साक्षात्कामदेव इवापरः॥ १०

अष्टावक्रं मुनिं यान्तं विरूपं मलयाचले।
दृष्ट्वा जहास तमघः कुरूपोऽयमिति ब्रुवन्॥ ११

तं शशाप महादुष्टं त्वं सर्पो भव दुर्मते।
कुरूपा वक्रगा जातिः सर्पाणां भूमिमण्डले॥ १२

तत्पादयोर्निपतितं दैत्यं दीनं गतस्मयम्।
दृष्ट्वा प्रसन्नः स मुनिर्वरं तस्मै ददौ पुनः॥ १३

अष्टावक्र उवाच

कोटिकन्दर्पलावण्यः श्रीकृष्णस्तु तवोदरे।
यदागच्छेत्सर्परूपात्तदा मुक्तिर्भविष्यति॥ १४

इससे अवरुद्ध हुए अघासुरके प्राण उसका मस्तक फोड़कर बाहर निकल गये। मिथिलेश्वर! फिर बालकों और बछड़ोंके साथ श्रीकृष्ण अघासुरके मुखसे बाहर निकले। जो बछड़े और बालक मर गये थे, उन्हें माधवने अपनी कृपा-दृष्टिसे देखकर जीवित कर दिया। अघासुरकी जीवन-ज्योति श्यामघनमें विद्युत्की भाँति श्रीघनश्याममें विलीन हो गयी। राजन्! उसी समय देवताओंने पुष्पवर्षा की। देवर्षि नारदके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर मिथिलेश्वर बहुलाश्वने कहा॥ ६—८॥

राजा बोले—देवर्षे! यह दैत्य पूर्वकालमें कौन था, जो इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हुआ? अहो! कितने आश्चर्यकी बात है कि वह दैत्य वैर बाँधनेके कारण शीघ्र ही श्रीहरिको प्राप्त हुआ॥ ९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! शङ्खासुरके एक पुत्र था, जो 'अघ' नामसे विख्यात था। महाबली अघ युवावस्थामें अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण साक्षात् दूसरे कामदेव-सा जान पड़ता था। एक दिन मलयाचलपर जाते हुए अष्टावक्र मुनिको देखकर अघासुर जोर-जोरसे हँसने लगा और बोला—'यह कैसा कुरूप है!'॥ १०-११॥

उस महादुष्टको शाप देते हुए मुनिने कहा—'दुर्मते! तू सर्प हो जा; क्योंकि भूमण्डलपर सर्पोंकी ही जाति कुरूप एवं कुटिल गतिसे चलनेवाली होती है।' [ज्यों-ही उसने यह सुना,] उस दैत्यका सारा अभिमान गल गया और वह दीनभावसे मुनिके चरणोंमें गिर पड़ा। उसे इस अवस्थामें देखकर मुनि प्रसन्न हो गये और पुनः उसे वर देते हुए बोले—॥ १२-१३॥

अष्टावक्रने कहा—करोड़ों कंदर्पोंसे भी अधिक लावण्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण जब तुम्हारे उदरमें प्रवेश करेंगे, तब इस सर्परूपसे तुम्हें छुटकारा मिल जायगा॥ १४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे अघासुरमोक्षो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'अघासुरका मोक्ष' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, गोवत्सों एवं गोप-बालकोंका हरण

श्रीनारद उवाच

अथान्यच्छृणु राजेन्द्र श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
कौमारे क्रीडनञ्चेदं पौगण्डे कीर्तनं तथा॥ १

श्रीकृष्णोऽघमुखान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सवत्सपान्।
यमुनापुलिनं गत्वा प्राहेदं हर्षवर्धनम्॥ २

अहोऽतिरम्यं पुलिनं प्रियं कोमलवालुकम्।
शरत्प्रफुल्लपद्मानां परागैः परिपूरितम्॥ ३

वायुना त्रिविधाख्येन सुगन्धेन सुगन्धितम्।
मधुपध्वनिसंयुक्तं कुञ्जद्रुमलताकुलम्॥ ४

अत्रोपविश्य गोपाला दिनैकप्रहरे गते।
भोजनस्यापि समयं तस्मात्कुरुत भोजनम्॥ ५

अत्र भोजनयोग्या भूर्दृश्यते मृदुवालुका।
वत्सकाः सलिलं पीत्वा ते चरिष्यन्ति शाद्वलम्॥ ६

इति कृष्णवचः श्रुत्वा तथेत्याहुश्च बालकाः।
प्रकर्तुं भोजनं सर्वे ह्युपविष्टाः सरित्तटे॥ ७

अथ केचिद्बालकाश्च येषां पार्श्वे न भोजनम्।
ते तु कृष्णस्य कर्णान्ते जगदुर्दीनया गिरा॥ ८

वयं तु किं करिष्यामोऽस्मत्पार्श्वे न तु भोजनम्।
नन्दग्रामं तु दूरं हि गच्छामो वत्सकैर्वयम्॥ ९

इति श्रुत्वा हरिः प्राह मा शोकं कुरुत प्रियाः।
अहं दास्यामि सर्वेषां प्रयत्नेनापि भोजनम्॥ १०

तस्मान्मद्वाक्यनिरताः सर्वे भवत बालकाः।
इति कृष्णस्य वचनात् कृष्णपार्श्वे च ते स्थिताः।
मुक्त्वा शिक्यानि सर्वेऽन्ये बुभुजुः कृष्णसंयुताः॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—राजेन्द्र! अब भगवान् श्रीकृष्णकी अन्य लीला सुनिये। यह लीला उनके बाल्यकालकी है, तथापि उनकी पौगण्डावस्थाकी प्राप्तिके बाद प्रकाशित हुई। श्रीकृष्ण गोवत्स एवं गोप-बालकोंकी मृत्युके समान (भयंकर) अघासुरके मुखसे रक्षा करनेके उपरान्त उनका आनन्द बढ़ानेकी इच्छासे यमुनातटपर जाकर बोले—'प्रिय सखाओ! अहा, यह कोमल वालुकामय तट बहुत ही सुन्दर है! शरद् ऋतुमें खिले हुए कमलोंके परागसे पूर्ण है॥ १—३॥

शीतल, मन्द एवं सुगन्धित—त्रिविध वायुसे सुरभित है। यह तटभूमि भौंरोंकी गुञ्जारसे युक्त एवं कुञ्ज और वृक्षलताओंसे सुशोभित है। गोपबालको! दिनका एक पहर बीत गया है। भोजनका समय भी हो गया है। अतएव इस स्थानपर बैठकर भोजन कर लो॥ ४-५॥

कोमल वालुकावाली यह भूमि भोजन करनेके उपयुक्त दीख रही है। बछड़े भी यहाँ जल पीकर हरी-हरी घास चरते रहेंगे।' गोप-बालकोंने श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर कहा—'ऐसा ही हो' और वे सब-के-सब भोजन करनेके लिये यमुनातटपर बैठ गये॥ ६-७॥

इसके उपरान्त जिनके पास भोजन-सामग्री नहीं थी, उन बालकोंने श्रीकृष्णके कानमें दीन-वाणीसे कहा—'हमलोगोंके पास भोजनके लिये कुछ नहीं है, हम लोग क्या करें? नन्दगाँव यहाँसे बहुत दूर है, अतः हमलोग बछड़ोंको लेकर चले जाते हैं'॥ ८-९॥

यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'प्रिय सखाओ! शोक मत करो। मैं सबको यत्नपूर्वक (आग्रहके साथ) भोजन कराऊँगा। इसलिये तुम सब मेरी बातपर भरोसा करके निश्चिन्त हो जाओ।' श्रीकृष्णकी यह उक्ति सुनकर वे लोग उनके निकट ही बैठ गये। अन्य बालक (अपने-अपने) छीकोंको खोलकर श्रीकृष्णके साथ भोजन करने लगे॥ १०-११॥

चकार कृष्णः किल राजमण्डलीं
गोपालबालैः पुरतः प्रपूरितैः।
अनेकवर्णैर्वसनैः प्रकल्पितै-
र्मध्ये स्थितः पीतपटेन भूषितः॥ १२

रेजे ततः सो वरगोपदारकै-
र्यथामरेशो ह्यमरैश्च सर्वतः।
पुनर्यथाऽम्भोरुहकोमलैर्दलै-
र्मध्ये तु वैदेह सुवर्णकर्णिका॥ १३

कुसुमैरङ्कुरैः केचित् पल्लवैश्च दलैः फलैः।
हस्तैर्दृषद्भिः शिग्भिश्च जक्षुस्ते कृतभाजनाः॥ १४

तत्रैको बालकः शीघ्रं कृष्णाय कवलं ददौ।
कृष्णस्तु कवलं भुक्त्वा सर्वान् पश्यन्निदं जगौ॥ १५

अन्यान्निदर्शय स्वादु नाहं जानामि वै सखे।
तथेत्युक्त्वा स बालश्च नीत्वान्यान् कवलान् ददौ॥ १६

भुक्त्वा ते कथयामासुः प्रहसन्तः परस्परम्।
पुनस्तत्रापि सुबलो हरये कवलं ददौ॥ १७

कृष्णस्तु कवलं किञ्चिद् भुक्त्वा तत्र जहास ह।
ये भुक्तकवला बालास्ते सर्वे जहसुः स्फुटम्॥ १८

बाला ऊचुः

यस्य मातामहा मूढाः शृणु नन्दकुमारक।
न ज्ञानं भोजने तस्य तस्मात्स्वादु न विद्यते॥ १९

ततो ददौ च कवलं श्रीदामा माधवाय च।
अन्यान् सर्वान् बहुश्रेष्ठं जगुः सर्वे व्रजार्भकाः॥ २०

पुनः कृष्णाय प्रददौ कवलं च वरूथपः।
अन्यान् बालांस्तथा सर्वान् किञ्चित्किञ्चित् प्रयलतः॥ २१

भुक्त्वा तु जहसुः सर्वे श्रीकृष्णाद्या व्रजार्भकाः।

बाला ऊचुः

तादृशं भोजनञ्चास्य यादृशं सुबलस्य वै॥ २२

भुक्त्वात्युद्विग्नमनसः सर्वे वयमतः किल।
एवं पृथक्पृथक् सर्वे दर्शयन्तः स्वभोजनम्॥ २३

श्रीकृष्णने गोप-बालकोंके साथ, जिनकी उनके सामने भीड़ लगी हुई थी, एक राजसभाका आयोजन किया। समस्त गोप-बालक उनको घेरकर बैठ गये। ये लोग अनेक रंगोंके वस्त्र पहने हुए थे और श्रीकृष्ण पीला वस्त्र धारण करके उनके बीचमें बैठ गये। विदेह! उस समय गोप-बालकोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णकी शोभा देवताओंसे घिरे हुए देवराज इन्द्रके समान अथवा पँखुड़ियोंसे घिरी हुई स्वर्णिम कमलकी कर्णिका (केसर-युक्त भीतरी भाग)-के समान हो रही थी॥ १२-१३॥

कोई बालक कुसुमों, कोई अङ्कुरों, कोई पल्लवों, कोई पत्तों, कोई फलों, कोई अपने हाथों, कोई पत्थरों और कोई छीकोंको ही पात्र बनाकर भोजन करने लगे। उनमेंसे एक बालकने शीघ्रतासे कौर उठाकर श्रीकृष्णके मुखमें दे दिया। श्रीकृष्णने भी उस ग्रासका भोग लगाकर सबकी ओर देखते हुए कहा—'भैया! अन्य बालकोंको अपनी-अपनी स्वादिष्ट सामग्री चखाओ। मैं स्वादके बारेमें नहीं जानता।' बालकोंने 'ऐसा ही हो' कहकर अन्यान्य बालकोंको भोजनके ग्रास ले जाकर दिये॥ १४—१६॥

वे भी उन ग्रासोंको खाकर एक-दूसरेकी हँसी करते हुए उसी प्रकार बोल उठे। सुबलने पुनः हरिके मुखमें ग्रास दिया, परंतु श्रीकृष्ण उस कौरमेंसे थोड़ा-सा खाकर हँसने लगे। इस प्रकार जिस-जिसने कौर खाया, वे सभी जोरसे हँसने लगे॥ १७-१८॥

बालक बोले—'नन्दनन्दन! सुनो! जिसके नाना मूढ़ (मूर्ख) हैं, उसको भोजनका ज्ञान नहीं रहता। इसलिये तुमको स्वाद प्राप्त नहीं हुआ'॥ १९॥

इसके उपरान्त श्रीदामाने माधवको और अन्य बालकोंको भोजनके ग्रास दिये। व्रज-बालकोंने उसको उत्तम बताकर उसकी बहुत प्रशंसा की। इसके बाद वरूथप नामके एक बालकने पुनः श्रीकृष्णको एवं अन्य बालकोंको आग्रहपूर्वक कौर दिये। श्रीकृष्ण आदि वे सभी लोग थोड़ा-थोड़ा खाकर हँसने लगे॥ २०—२१½॥

बालकोंने कहा—'यह भी सुबलके ग्रास-जैसा ही है। हम सभी उसे खाकर उद्विग्न हुए हैं।' इस प्रकार सभीने अपने-अपने ग्रास चखाये और सभी

हासयन्तो हसन्तश्च चक्रुः क्रीडां परस्परम्।
जठरस्य पटे वेणुं वेत्रं शृङ्गञ्च कक्षके॥ २४

वामे पाणौ च कवलं ह्यङ्गुलीषु फलानि च।
शिरसा मुकुटं बिभ्रत् स्कन्धे पीतपटं तथा॥ २५

हृदये वनमालाञ्च कटौ काञ्चीं तथैव च।
पादयोर्नूपुरौ बिभ्रच्छ्रीवत्सं कौस्तुभं हृदि॥ २६

तिष्ठन् मध्ये गोपगोष्ठ्यां हासयन्नर्मभिः स्वकैः।
स्वर्गे लोके च मिषति बुभुजे यज्ञभुग्घरिः॥ २७

एवं कृष्णात्मनाथेषु भुञ्जानेष्वर्भकेषु च।
विविशुर्गह्वरे दूरं तृणलोभेन वत्सकाः॥ २८

विलोक्य तान् भयत्रस्तान् गोपान् कृष्ण उवाच ह।
यूयं गच्छत माऽहं तु ह्यानेष्ये वत्सकानिह॥ २९

इत्युक्त्वा कृष्ण उत्थाय गृहीत्वा कवलं करे।
विचिकाय दरीकुञ्जगह्वरे वत्सकान् स्वकान्॥ ३०

तदैव चाम्भोजभवः समागतो
विलोक्य मुक्तिं ह्यघराक्षसस्य च।
ददर्श कृष्णं पुलिने यथारुचि
भुञ्जानमन्नं व्रजबालकैः सह॥ ३१

दृष्ट्वा च कृष्णं मनसा स ऊचे
त्वयं हि गोपो न हि देवदेवः।
हरिर्यदि स्याद् बहुकुत्सितान्ने
कथं रतो वा व्रजगोपबालैः॥ ३२

इत्युक्त्वा मोहितो ब्रह्मा मायया परमात्मनः।
द्रष्टुं मञ्जु महत्त्वं तु मनश्चक्रे ह्यहो नृप॥ ३३

सर्वान् वत्सानितो गोपानीत्वा खेऽवस्थितः पुरा।
अन्तर्दधे विस्मितोऽजो दृष्ट्वाघासुरमोक्षणम्॥ ३४

परस्पर हँसने-हँसाने और खेलने लगे। कटिवस्त्रमें वेणु, बगलमें लकुटी एवं सींगा, बायें हाथमें भोजनका कौर, अंगुलियोंके बीचमें फल, माथेपर मुकुट, कंधेपर पीला दुपट्टा, गलेमें वनमाला, कमरमें करधनी, पैरोंमें नूपुर और हृदयपर श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि धारण किये हुए श्रीकृष्ण गोप-बालकोंके बीचमें बैठकर अपनी विनोदभरी बातोंसे बालकोंको हँसाने लगे॥ २२—२६ १/२॥

इस प्रकार यज्ञभोक्ता श्रीहरि भोजन करने लगे, जिसको देवता एवं मनुष्य आश्चर्यचकित होकर देखते रहे। इस प्रकार श्रीकृष्णके द्वारा रक्षित बालकोंका जिस समय भोजन हो रहा था, उसी समय बछड़े घासके लालचमें पड़कर दूरके एक गहन वनमें घुस गये॥ २७-२८॥

गोप-बालक भयसे व्याकुल हो गये। यह देखकर श्रीकृष्ण बोले—'तुमलोग मत जाओ। मैं बछड़ोंको यहाँ ले आऊँगा।' यों कहकर श्रीकृष्ण उठे और भोजनका कौर हाथमें लिये ही गुफाओं एवं कुञ्जोंमें तथा गहन वनमें बछड़ोंको ढूँढ़ने लगे॥ २९-३०॥

जिस समय व्रजवासी बालकोंके साथ श्रीकृष्ण यमुनातटपर रुचिपूर्वक भोजन कर रहे थे, उसी समय पद्मयोनि ब्रह्माजी अघासुरकी मुक्ति देखकर उसी स्थानपर पहुँच गये। इस दृश्यको देखकर ब्रह्माजी मन-ही-मन कहने लगे—'ये तो देवाधिदेव श्रीहरि नहीं हैं, अपितु कोई गोपकुमार हैं। यदि ये श्रीहरि होते तो गोप-बालकोंके साथ इतने अपवित्र अन्नका भोजन कैसे करते?'॥ ३१-३२॥

राजन्! ब्रह्माजी परमात्माकी मायासे मोहित होकर इस प्रकार बोल गये। उन्होंने उनकी (भगवान्‌की) मनोज्ञ महिमाको जाननेका निश्चय किया। ब्रह्माजी स्वयं आकाशमें अवस्थित थे। इसके उपरान्त अघासुर-उद्धारकी लीलाके दर्शनसे चकित होकर समस्त गायों-बछड़ों तथा गोप-बालकोंका हरण करके वे अन्तर्धान हो गये॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे वत्सवत्सपालहरणं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, गोवत्सों और गोप-बालकोंका हरण' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णके सर्वव्यापी विश्वात्मा स्वरूपका दर्शन

श्रीनारद उवाच

अदृष्ट्वा वत्सकानेत्य वत्सपान् पुलिने हरिः।
उभौ विचिन्वन् विपिने मेने कर्म विधेः कृतम्॥ १

ततो गवां गोपिकानां मुदं कर्तुं स लीलया।
सर्वं तु विश्वकृच्चक्रे ह्यात्मानमुभयायितम्॥ २

यावद्वत्सपवत्सानां वपुः पाणिपदादिकान्।
यावद्यष्टिविषाणादीन् यावच्छीलगुणादिकान्॥ ३

यावद् भूषणवस्त्रादीन् तावच्छ्रीहरिणा स्वतः।
सर्वं विष्णुमयं विश्वमिति वाक्यं प्रदर्शितम्॥ ४

आत्मवत्सानात्मगोपैश्चारयन् क्रीडया हरिः।
प्राविशन् नन्दनगरमस्तङ्गिरिगते रवौ॥ ५

तत्तद्गोष्ठे पृथङ् नीत्वा तत्तद्वत्सान् प्रवेश्य च।
कृष्णोऽभवत्तत्तदात्मा तत्तद्गेहं प्रविष्टवान्॥ ६

श्रुत्वा वंशीरवं गोप्यः सम्भ्रमाच्छीघ्रमुत्थिताः।
पयांसि पाययामासुर्लालयित्वा सुतान् पृथक्॥ ७

स्वान् स्वान् वत्साँस्तथा गावो
रम्भमाणा निरीक्ष्य च।
लिहन्त्यो जिह्वयाङ्गानि
पयांसि च ह्यपाययन्॥ ८

अभवन् मातरः सर्वा गोप्यो गावो हरेरहो।
अतिस्नेहञ्च ववृधे पूर्वतो हि चतुर्गुणम्॥ ९

स्वपुत्राँल्लालयित्वा तु मज्जनोन्मर्दनादिभिः।
पश्चाद् गोप्यश्च कृष्णस्य दर्शनं कर्तुमाययुः॥ १०

अनेकानां तु बालानामुद्वाहाः कृष्णरूपिणाम्।
बभूवुस्ता व्रजे वध्वो रताः कृष्णे तु कोटिशः॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं— श्रीकृष्ण गोवत्सोंको न पाकर यमुना-किनारे आये, परंतु वहाँ गोप-बालक भी नहीं दिखायी दिये। बछड़ों और वत्सपालों—दोनोंको ढूँढ़ते समय उनके मनमें आया कि यह तो ब्रह्माजीका कार्य है। तदनन्तर अखिलविश्वविधायक श्रीकृष्णने गायों और गोपियोंको आनन्द देनेके लिये लीलासे ही अपने-आपको दो भागोंमें विभक्त कर लिया॥ १-२॥

वे स्वयं एक भागमें रहे तथा दूसरे भागसे समस्त बछड़े और गोप-बालकोंकी सृष्टि की। उन लोगोंके जैसे शरीर, हाथ, पैर आदि थे; जैसी लाठी, सींगा आदि थे; जैसे स्वभाव और गुण थे, जैसे आभूषण और वस्त्रादि थे; भगवान् श्रीहरिने अपने श्रीविग्रहसे ठीक वैसी ही सृष्टि उत्पन्न करके यह प्रत्यक्ष दिखला दिया कि यह अखिल विश्व विष्णुमय है॥ ३-४॥

श्रीकृष्णने खेलमें ही आत्मस्वरूप गोप-बालकोंके द्वारा आत्मस्वरूप गो-वत्सोंको चराया और सूर्यास्त होनेपर उनके साथ नन्दालयमें पधारे। वे बछड़ोंको उनके अपने-अपने गोष्ठोंमें अलग-अलग ले गये और स्वयं उन-उन गोप-बालकोंके वेषमें अन्यान्य दिनोंकी भाँति उनके घरोंमें प्रवेश किया॥ ५-६॥

गोपियाँ वंशीध्वनि सुनकर आदरके साथ शीघ्रतासे उठीं और अपने बालकोंको प्यारसे दूध पिलाने लगीं। गायें भी अपने-अपने बछड़ोंको निकट आया देखकर रँभाती हुई उनको चाटने और दूध पिलाने लगीं॥ ७-८॥

अहा! गोपियाँ और गायें श्रीहरिकी माता बन गयीं। गोप-बालक एवं गोवत्स स्नेहाधिक्यके कारण पहलेकी अपेक्षा चौगुने अधिक बढ़ने लगे। गोपियाँ अपने बालकोंकी उबटन-स्नानादिके द्वारा स्नेहमयी सेवा करके तब श्रीकृष्णके दर्शनके लिये आयीं॥ ९-१०॥

इसके बाद अनेक बालकोंका विवाह हो गया। अब श्रीकृष्णस्वरूप अपने पति उन बालकोंके साथ करोड़ों गोपवधुएँ प्रीति करने लगीं॥ ११॥

वत्सपालमिषेणापि स्वात्मानं ह्यात्मना हरेः।
पालितो वत्सरश्चैको बभूव व्रजमण्डले॥ १२

सरामश्चैकदा वत्साँश्चारण्यं चारयन् ययौ।
हायनापूरणीष्वत्र पञ्चषासु च रात्रिषु॥ १३

तत्रापि दूराच्चरतश्च गावो
वत्सानुपव्रज्य गिरेश्च शृङ्गात्।
लिहन्ति चाङ्गानि विलोकयन्त्यो
ह्यपाययंस्ता अमृतानि सद्यः॥ १४

गोवर्धनादधो वत्सान् पीतदुग्धान् विलोक्य च।
स्नेहावृताः स्थिता गाश्च गोपाला ददृशुर्नृप॥ १५

ततः क्रोधेन महता पर्वतादवतीर्य च।
ताडनार्थे स्वपुत्राणामाजग्मुः कच्छतो द्रुतम्॥ १६

यदागताः समीपे तु पुत्राणां गोपनायकाः।
स्वान् स्वान् सुतांस्तदोन्नीय ह्यङ्के कृत्वा मिलन्ति वै॥ १७

यथा युवानो वृद्धाश्च स्नेहादश्रुपरिप्लुताः।
स्वान् स्वान् पौत्रान् गृहीत्वा तु ह्युपविष्टा मिलन्ति हि॥ १८

एवं प्रेमपरान् सर्वान् दृष्ट्वा सङ्कर्षणो बलः।
बहुप्रकारं सन्देहं कृत्वा मनसि सोऽब्रवीत्॥ १९

अहो किं वत्सरात् प्राप्तो न ज्ञातोऽपि व्रजे मया।
अतिस्नेहस्तु सर्वेषां वर्धते च दिने दिने॥ २०

केयं माया समायाता देवगन्धर्वरक्षसाम्।
नान्या मे मोहिनी माया विना कृष्णस्य साम्प्रतम्॥ २१

एवं विचार्य रामस्तु लोचने स्वे न्यमीलयत्।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च दिव्याक्षाभ्यां ददर्श ह॥ २२

सर्वान् वत्साँस्तथा गोपान् वंशीवेत्रविभूषितान्।
बर्हिपक्षधरान् श्यामान् भृग्वङ्घ्रिकृतकौतुकान्॥ २३

जालकानां मणीनाञ्च गुञ्जानां स्रग्भिरेव च।
पद्मानां कुमुदानाञ्च ह्येषां स्रग्भिर्विभूषितान्॥ २४

इस प्रकार वत्स-पालनके बहाने अपनी आत्माकी अपनी ही आत्माद्वारा रक्षा करते हुए श्रीहरिको व्रजमण्डलमें एक वर्ष बीत गया। एक दिन बलरामजी गोचारण करते हुए वनमें पहुँचे। उस समयतक ब्रह्माजीद्वारा वत्सों एवं वत्सपालोंका हरण हुए एक वर्ष पूर्ण होनेमें केवल पाँच-छः रात्रियाँ शेष रही थीं॥ १२-१३॥

उस वनमें स्थित पहाड़की चोटीपर गायें चर रही थीं। दूरसे बछड़ोंको घास चरते देखकर वे उनके निकट आ गयीं और उनको चाटने तथा अपना अमृततुल्य दूध पिलाने लगीं। राजन्! गोपोंने देखा कि गायें बछड़ोंको दूध पिलाकर स्नेहके कारण गोवर्धनकी तलहटीमें ही रुक गयी हैं, तब वे अत्यन्त क्रोधमें भरकर पहाड़से नीचे उतरे और अपने बालकोंको दण्ड देनेके लिये शीघ्रतासे वहाँ पहुँचे॥ १४—१६॥

परंतु निकट पहुँचते ही (स्नेहके वशीभूत होकर) गोपोंने अपने बालकोंको गोदमें उठा लिया। युवक अथवा वृद्ध—सभीके नेत्रोंमें स्नेहके आँसू आ गये और वे अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ मिलकर वहाँ बैठ गये॥ १७-१८॥

संकर्षण बलरामने इस प्रकार जब गोपोंको प्रेम-परायण देखा, तब उनके मनमें अनेक प्रकारके संदेह उठने लगे। उन्होंने मन-ही-मन कहा—अहा! प्रायः एक वर्षसे व्रजमें क्या हो गया है, वह मेरी समझमें नहीं आ रहा है। दिन-प्रतिदिन सबके हृदयोंका स्नेह अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। क्या यह देवताओं, गन्धर्वों या राक्षसोंकी माया है? अब मैं समझता हूँ कि यह मुझे मोहित करनेवाली कृष्णकी मायासे भिन्न और कुछ नहीं है॥ १९—२१॥

इस प्रकार विचार करके बलरामजीने अपने नेत्र बंद कर लिये और दिव्यचक्षुसे भूत, भविष्य तथा वर्तमानको देखा। बलरामजीने समस्त गोवत्स एवं पहाड़की तलहटीमें खेलनेवाले गोप-बालकोंको वंशीवेत्रविभूषित, मयूरपिच्छधारी, श्यामवर्ण, मणि-समूहों एवं गुञ्जाफलोंकी मालासे शोभित, कमल एवं कुमुदिनीकी मालाएँ, दिव्य पगड़ी एवं मुकुट धारण

उष्णीषैर्मुकुटैर्दिव्यैः कुण्डलैरलकैर्वृतान्।
आनन्दवर्षान् कुर्वाणान् शरत्पद्मदृशैरपि॥ २५

कोटिकन्दर्पलावण्यान् नासामौक्तिकशोभितान्।
शिखाभूषणसंयुक्तान् पाणिभूषणभूषितान्॥ २६

द्विभुजान् पीतवस्त्रैश्च काञ्चीकटकनूपुरैः।
प्रभातरविकोटीनां शोभाभिः शोभितान् शुभान्॥ २७

उत्तरे गिरिराजस्य यमुनायाश्च दक्षिणे।
आचष्ट वृन्दकारण्ये सर्वान् कृष्णं हलायुधः॥ २८

ज्ञात्वा कृष्णकृतं कर्म तथा विधिकृतं बलः।
पुनर्वत्सान् वत्सपाँश्च पश्यन् कृष्णमुवाच ह॥ २९

ब्रह्मानन्तो धर्म इन्द्रः शिवश्च
सेवन्ते त्वां भक्तियुक्ताः सदैते।
स्वात्मारामः पूर्णकामः परेशः
स्त्रष्टुं शक्तः कोटिशोऽण्डानि यः खे॥ ३०

श्रीनारद उवाच

एवं ब्रुवति श्रीरामे तावत्तत्रागतो विधिः।
ददर्श कृष्णं रामञ्च वत्सकैर्वत्सपैः समम्॥ ३१

अहो कृष्णेन चानीता यत्र सर्वे धृता मया।
इति ब्रुवन् ययौ स्थाने तत्र सर्वान् ददर्श सः॥ ३२

दृष्ट्वा प्रसुप्तान् सर्वांस्तु स आगत्य व्रजे पुनः।
वत्सपालैर्हरिं वीक्ष्य मनसि प्राह विस्मितः॥ ३३

अहो विचित्रं ते सर्वे कुत्र स्थानात् समागताः।
क्रीडन्ते पूर्ववच्चात्र साकं कृष्णेन क्रीडनैः॥ ३४

मत्त्रुटिर्वत्सरश्चैको व्यतीतोऽभून्महीतले।
सर्वे प्रसन्नतां प्राप्ता न ज्ञातः केनचित् क्वचित्॥ ३५

एवं सम्मोहयन् ब्रह्मा मोहनं विश्वमोहनम्।
स्वमाययान्धकारेण स्वगात्रं नैव दृष्टवान्॥ ३६

किये हुए, कुण्डलों एवं अलकावलीसे सुशोभित, शरत्कालीन कमलसदृश नेत्रोंसे निहारकर आनन्द देनेवाले, करोड़ों कामदेवोंकी शोभासे सम्पन्न, नासिकास्थित मुक्ता-भरणसे अलंकृत, शिखा-भूषणसे युक्त, दोनों हाथोंमें आभूषण धारण किये हुए, पीला वस्त्र धारण किये हुए, मेखला, कड़े और नूपुरसे शोभित, करोड़ों बाल रवियोंकी प्रभासे युक्त और मनोहर देखा॥ २२—२७॥

बलरामजीने गोवर्धनसे उत्तरकी ओर एवं यमुनाजीसे दक्षिणकी ओर स्थित वृन्दावनमें सब कुछ कृष्णमय देखा। वे इस कार्यको ब्रह्माजी और श्रीकृष्णका किया हुआ जानकर पुनः गोवत्सों एवं वत्सपालोंका दर्शन करते हुए श्रीकृष्णसे बोले—'ब्रह्मा, अनन्त, धर्म, इन्द्र और शंकर भक्तियुक्त होकर सदा तुम्हारी सेवा किया करते हैं। तुम आत्माराम, पूर्णकाम, परमेश्वर हो। तुम शून्यमें करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करनेमें समर्थ हो'॥ २८—३०॥

श्रीनारदजीने कहा—जिस समय बलरामजी यों कह रहे थे, उसी समय ब्रह्माजी वहाँ आये और उन्होंने गोवत्सों एवं गोप-बालकोंके साथ बलरामजी एवं श्रीकृष्णके दर्शन किये। 'ओहो! मैं जिस स्थानपर गोवत्स तथा गोप-बालकोंको रख आया था, वहाँसे श्रीकृष्ण उनको ले आये हैं।'—यों कहते हुए ब्रह्माजी उस स्थानपर गये और वहाँपर उन सबको पहलेकी तरह ही पाया॥ ३१-३२॥

ब्रह्माजी उनको निद्रित देखकर पुनः व्रजमें आये और गोप-बालकोंके साथ श्रीहरिके दर्शन करके विस्मित हो गये। वे मन-ही-मन कहने लगे—'ओहो, कैसी विचित्रता है! ये लोग कहाँसे यहाँ आये और पहलेकी ही भाँति श्रीकृष्णके साथ खेल रहे हैं?॥ ३३-३४॥

यह सब खेल करनेमें मुझे एक त्रुटि (क्षण) जितना काल लगा, परंतु इतनेमें इस भूलोकमें एक वर्ष पूरा हो गया। तथापि सभी प्रसन्न हैं, कहीं किसीको इस घटनाका पता भी नहीं चला।' इस प्रकारसे ब्रह्माजी मोहातीत विश्वमोहनको मोहित करने गये। परंतु अपनी मायाके अन्धकारमें वे स्वयं अपने शरीरको भी नहीं देख सके॥ ३५-३६॥

वत्सपालापहरणात् किमभूज्जगतः पतेः।
अहो खद्योतवद्वेधा श्रीकृष्णरविसम्मुखे॥ ३७

एवं विमुह्यति सति जडीभूते च ब्रह्मणि।
स्वमायां कृपयाकृष्य कृष्णः स्वं दर्शनं ददौ॥ ३८

एवं तत्र सकृद् ब्रह्मा गोवत्सान् गोपदारकान्।
सर्वानाचष्ट श्रीकृष्णं भक्त्या विज्ञानलोचनैः॥ ३९

ददर्शाथ विधिस्तत्र बहिरन्तः शरीरतः।
स्वात्मना सहितं राजन् सर्वं विष्णुमयं जगत्॥ ४०

एवं विलोक्य ब्रह्मा तु जडो भूत्वा स्थिरोऽभवत्।
वृन्दावद्वृन्दकारण्ये प्रदृश्येत यथा तथा॥ ४१

स्वात्मनो महिमां द्रष्टुं ह्यनीशेऽपि च ब्रह्मणि।
चच्छाद सपदि ज्ञात्वा मायाजवनिकां हरिः॥ ४२

ततः प्रलब्धनयनः स्त्रष्टा सुप्त इवोत्थितः।
उन्मील्य नयने कृच्छ्राद् ददर्शेदं सहात्मना॥ ४३

समाहितस्तत्र भूत्वा सद्योऽपश्यद्दिशो दश।
श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं वासन्तीलतिकान्वितम्॥ ४४

शार्दूलबालकैर्यत्र क्रीडन्ति मृगबालकाः।
श्येनैः कपोता नकुलैः सर्पा वैरविवर्जिताः॥ ४५

ततश्च वृन्दकारण्ये सपाणिकवलं विधिः।
वत्सान् सखीन् विचिन्वन्तमेकं कृष्णं ददर्श सः॥ ४६

दृष्ट्वा गोपालवेषेण गुप्तं गोलोकवल्लभम्।
ज्ञात्वा साक्षाद्धरिं ब्रह्मा भीतोऽभूत् स्वकृतेन च॥ ४७

तं प्रसादयितुं राजन् ज्वलन्तं सर्वतोदिशम्।
लज्जयावाङ्मुखो भूत्वा ह्यवतीर्य स्ववाहनात्॥ ४८

शनैरुपससारेशं प्रसीदेति वदन् नमन्।
स्रवद्धर्षाश्रुदत्तार्घः स पपाताथ दण्डवत्॥ ४९

गोप-बालकोंके हरणसे जगत्पतिकी तो कुछ हानि हुई नहीं, अपितु श्रीकृष्णरूप सूर्यके सम्मुख ब्रह्माजी ही जुगनू-से दीखने लगे। ब्रह्माके इस प्रकार मोहित एवं जडीभूत हो जानेपर श्रीकृष्णने कृपापूर्वक अपनी मायाको हटाकर उनको अपने स्वरूपका दर्शन कराया॥ ३७-३८॥

भक्तिके द्वारा ब्रह्माजीको ज्ञाननेत्र प्राप्त हुए। उन्होंने एक बार गोवत्स एवं गोप-बालक—सबको श्रीकृष्णरूप देखा। राजन्! ब्रह्माजीने शरीरके भीतर और बाहर अपने सहित सम्पूर्ण जगत्‌को विष्णुमय देखा॥ ३९-४०॥

इस प्रकार दर्शन करके ब्रह्माजी तो जडताको प्राप्त होकर निश्चेष्ट हो गये। ब्रह्माजीको वृन्दादेवीद्वारा अधिष्ठित वृन्दावनमें जहाँ-तहाँ दीखनेवाली भगवान्‌की महिमा देखनेमें असमर्थ जानकर श्रीहरिने मायाका पर्दा हटा लिया॥ ४१-४२॥

तब ब्रह्माजी नेत्र पाकर, निद्रासे जगे हुएकी भाँति उठकर, अत्यन्त कष्टसे नेत्र खोलकर अपनेसहित वृन्दावनको देखनेमें समर्थ हुए। वहाँपर वे उसी समय एकाग्र होकर दसों दिशाओंमें देखने लगे और वसन्तकालीन सुन्दर लताओंसे युक्त रमणीय श्रीवृन्दावनका उन्होंने दर्शन किया॥ ४३-४४॥

वहाँ बाघके बच्चोंके साथ मृग-शावक खेल रहे थे। बाज और कबूतरमें, नेवला और साँपमें वहाँ जन्मजात वैरभाव नहीं था। ब्रह्माजीने देखा कि एकमात्र श्रीकृष्ण ही हाथमें भोजनका कौर लिये हुए प्यारे गोवत्सोंको वृन्दावनमें ढूँढ़ रहे हैं। गोलोकपति साक्षात् श्रीहरिको गोपाल-वेषमें अपनेको छिपाये हुए देखकर तथा ये साक्षात् श्रीहरि हैं—यह पहचानकर ब्रह्माजी अपनी करतूतको स्मरण करके भयभीत हो गये॥ ४५—४७॥

राजन्! उन चारों ओर प्रज्वलित दीखनेवाले श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्माजी अपने वाहनसे उतरे और लज्जाके कारण उन्होंने सिर नीचा कर लिया। वे भगवान्‌को प्रणाम करते हुए और 'प्रसन्न हों'—यह कहते हुए धीरे-धीरे उनके निकट पहुँचे। यों भगवान्‌को अपनी आँखोंसे झरते हुए हर्षके आँसुओंका अर्घ्य देकर दण्डकी भाँति वे भूमिपर गिर पड़े॥ ४८-४९॥

उत्थाप्याश्वास्य तं कृष्णः प्रियं प्रिय इव स्पृशन्।
सुरान् सुभुवि दूरस्थानालुलोक सुधार्द्रदृक्॥ ५०

ततो जय जयेत्युच्चैः स्तुवतां नमतां समम्।
तद्दयादृष्टदृष्टानां सानन्दः सम्भ्रमोऽभवत्॥ ५१

भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको उठाकर आश्वस्त किया और उनका इस प्रकार स्पर्श किया, जैसे कोई प्यारा अपने प्यारेका स्पर्श करे। तत्पश्चात् वे सुधासिक्त दृष्टिसे उसी सुन्दर भूमिपर दूर खड़े देवताओंकी ओर देखने लगे। तब वे सभी उच्चस्वरसे जय-जयकार करते हुए उनका स्तवन करने लगे। साथ-साथ प्रणाम भी करने लगे। श्रीकृष्णकी दयादृष्टि पाकर सभी आनन्दित हुए और उनके प्रति आदरसे भर गये॥ ५०-५१॥

दृष्ट्वा हरिं तत्र समास्थितं विधि-
र्ननाम तं भक्तिमनाः कृताञ्जलिः।
स्तुतिं चकाराशु स दण्डवल्लुठन्
प्रहृष्टरोमा भुवि गद्गदाक्षरः॥ ५२

ब्रह्माजीने भगवान्को उस स्थानपर देखकर भक्तियुक्त मनसे हाथ जोड़कर प्रणाम किया और रोमाञ्चित होकर दण्डकी भाँति वे भूमिपर गिर पड़े। पुनः वे गद्गद वाणीसे भगवान्का स्तवन करने लगे॥ ५२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे श्रीकृष्णदर्शनवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णके सर्वव्यापी विश्वात्मा स्वरूपके दर्शनका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

ब्रह्मोवाच

कृष्णाय मेघवपुषे चपलाम्बराय
पीयूषमिष्टवचनाय परात्पराय।
वंशीधराय शिखिचन्द्रकयान्विताय
देवाय भ्रातृसहिताय नमोऽस्तु तस्मै॥ १

कृष्णस्तु साक्षात् पुरुषोत्तमः स्वयं
पूर्णः परेशः प्रकृतेः परो हरिः।
यस्यावतारांशकला वयं सुराः
सृजाम विश्वं क्रमतोऽस्य शक्तिभिः॥ २

ब्रह्माजी बोले—मेघकी-सी कान्तिसे युक्त, विद्युत्वर्णका वस्त्र धारण करनेवाले, अमृत-तुल्य मीठी वाणी बोलनेवाले, परात्पर, वंशीधारी, मयूर-पिच्छको धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको उनके भ्राता बलरामसहित नमस्कार है। श्रीकृष्ण (आप) साक्षात् स्वयं पुरुषोत्तम, पूर्ण परमेश्वर, प्रकृतिसे अतीत श्रीहरि हैं। हम देवता जिनके अंश और कलावतार हैं, जिनकी शक्तिसे हमलोग क्रमशः विश्वकी सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं॥ १-२॥

स त्वं साक्षात् कृष्णचन्द्रावतारो
नन्दस्यापि पुत्रतामागतः कौ।
वृन्दारण्ये गोपवेषेण वत्सान्
गोपैर्मुख्यैश्चारयन् भ्राजसे वै॥ ३

हरिं कोटिकन्दर्पलीलाभिरामं
स्फुरत्कौस्तुभं श्यामलं पीतवस्त्रम्।
व्रजेशं तु वंशीधरं राधिकेशं
परं सुन्दरं तं निकुञ्जे नमामि॥ ४

उन्हीं आपने साक्षात् कृष्णचन्द्रके रूपमें अवतीर्ण होकर धराधामपर नन्दका पुत्र होना स्वीकार किया है। आप प्रधान-प्रधान गोप-बालकोंके साथ गोपवेषसे वृन्दावनमें गोचारण करते हुए विराज रहे हैं। करोड़ों कामदेवके समान रमणीय, तेजोमय, कौस्तुभधारी, श्यामवर्ण, पीतवस्त्रधारी, वंशीधर, व्रजेश, राधिकापति, निकुञ्जविहारी परमसुन्दर श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३-४॥

तं कृष्णं भज हरिमादिदेवमस्मिन्
क्षेत्रज्ञं खमिव विलिप्तमेघमेव।
स्वच्छाङ्गं परमधियज्ञचैत्यरूपं
भक्त्याद्यैर्विशदविरागभावसङ्गैः ॥ ५

यावन्मनश्च रजसा प्रबलेन विद्वन्
सङ्कल्प एव तु विकल्पक एव तावत्।
ताभ्यां भवेन्मनसिजस्त्वभिमानयोगः
तेनापि बुद्धिविकृतिं क्रमतः प्रयान्ति॥ ६

विद्युद्द्युतिस्त्वृतुगुणो जलमध्यरेखा
भूतोल्मुकः कपटपान्थरतिर्यथा च।
इत्थं तथास्य जगतस्तु सुखं मृषेति
दुःखावृतं विषयघूर्णमलातचक्रम्॥ ७

वृक्षा जलेन चलतापि चला इवात्र
नेत्रेण भूरिचलितेन चलेव भूश्च।
एवंगुणः प्रकृतिजैर्भ्रमतो जनस्तं
सत्यं वदेद् गुणसुखादिदमेव कृष्ण॥ ८

दुःखं सुखञ्च मनसा प्रभवञ्च सुप्ते
मिथ्या भवेत्पुनरहो भुवि जागरेऽस्य।
इत्थं विवेकघटितस्य जनस्य सर्वं
स्वप्नभ्रमादृतजगत् सततं भवेद्धि॥ ९

ज्ञानी विसृज्य ममतामभिमानयोगं
वैराग्यभावरसिकः सततं निरीहः।
दीपेन दीपकशतञ्च यथा प्रजातं
पश्येत्तथात्मविभवं भुवि चैकतत्त्वम्॥ १०

भक्तो भजेदजपतिं हृदि वासुदेवं
निर्धूमवह्निरिव मुक्तगुणस्वभावः।
पश्यन् घटेषु सजलेषु यथेन्दुमेक-
मेतादृशः परमहंसवरः कृतार्थः॥ ११

जो मेघसे निर्लिप्त आकाशके समान प्राणियोंकी देहमें क्षेत्रज्ञ रूपसे स्थित हैं, जो अधियज्ञ एवं चैत्यस्वरूप हैं, जो मायारहित हैं और जो निर्मल भक्ति तथा प्रबल वैराग्य आदि भावोंसे प्राप्त होते हैं, उन आदिदेव हरिकी मैं वन्दना करता हूँ। सर्वज्ञ! जिस समय मनमें प्रबल रजोगुणका उदय होता है, उसी समय मन संकल्प-विकल्प करने लगता है। संकल्प-विकल्पके वशीभूत मनमें ही अभिमानकी उत्पत्ति होती है और वही अभिमान धीरे-धीरे बुद्धिको विकृत कर देता है॥ ५-६॥

क्षणस्थायी बिजलीके समान, बदलते हुए ऋतुगुणोंके समान, जलपर खींची गयी रेखाके समान, पिशाचके द्वारा उत्पन्न किये हुए अंगारोंके समान और कपटी यात्रीकी प्रीतिके समान जगत्के सुख मिथ्या हैं। विषय-सुख दुःखोंसे घिरे हुए हैं एवं अलातचक्रवत् (जलते हुए अंगारको वेगसे चक्राकार घुमानेपर जो क्षणस्थायी वृत्त बनता है, उसके समान) हैं। जैसे वृक्ष न चलते हुए भी, जलके चलनेके कारण चलते हुए-से दीखते हैं, नेत्रोंको वेगसे घुमानेपर अचल पृथ्वी भी चलती हुई-सी दीखती है, कृष्ण! उसी प्रकार प्रकृतिसे उत्पन्न गुणोंके वशमें होकर भ्रान्त जीव उस प्रकृतिजन्य सुखको सत्य मान लेता है॥ ७-८॥

सुख एवं दुःख मनसे उत्पन्न होते हैं, निद्रावस्थामें वे लुप्त हो जाते हैं और जागनेपर पुनः उनका अनुभव होने लगता है। जिनको इस प्रकारका विवेक प्राप्त है, उनके लिये यह जगत् निरन्तर स्वप्नावस्थाके भ्रमके समान ही है। ज्ञानी पुरुष ममता एवं अभिमानका त्याग करके सदा वैराग्यसे प्रीति करनेवाले तथा शान्त होते हैं। जैसे एक दियेसे सैकड़ों दिये उत्पन्न होते हैं, वैसे ही एक परमात्मासे सब कुछ उत्पन्न हुआ है—ऐसी तात्त्विक दृष्टि उनकी रहती है। भक्त निर्धूम अग्निशिखाकी भाँति गुणमुक्त एवं आत्मनिष्ठ होकर हृदयमें ब्रह्माके भी स्वामी भगवान् वासुदेवका भजन करते हैं। जिस प्रकार हम एक ही चन्द्रबिम्बको अनेकों घड़ोंके जलमें देखते हैं, उसी प्रकार आत्माके एकत्वका दर्शन करके श्रेष्ठ परमहंस भी कृतार्थ होते हैं॥ ९—११॥

स्तुवन्ति वेदाः सततं च यं सदा
हरेर्महिम्नः किल षोडशीं कलाम्।
कदापि जानन्ति न ते त्रिलोके
वक्तुं गुणांस्तस्य जनोऽस्ति कः परः॥ १२

वक्त्रैश्चतुर्भिस्त्वहमेव देवः
श्रीपञ्चवक्त्रः किल पञ्चवक्त्रैः।
सहस्रशीर्षास्तु सहस्रवक्त्रै-
र्यं स्तौति सेवां कुरुते च तस्य॥ १३

विष्णुश्च वैकुण्ठनिवासकृच्च
क्षीरोदवासी हरिरेव साक्षात्।
नारायणो धर्मसुतस्तथापि
गोलोकनाथं भजते भवन्तम्॥ १४

अहोऽतिधन्यो महिमा मुरारे-
र्जानन्ति भूमौ मुनयो न मानवाः।
सुरासुरा वा मनवो बुधाः पुनः
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति न तत्पदद्वयम्॥ १५

वरं हरिं गुणाकरं सुमुक्तिदं परात्परम्।
रमेश्वरं गुणेश्वरं व्रजेश्वरं नमाम्यहम्॥ १६

ताम्बूलसुन्दरमुखं मधुरं ब्रुवन्तं
बिम्बाधरं स्मितयुतं सितकुन्ददन्तम्।
नीलालकावृतकपोलमनोहराभं
वन्दे चलत्कनककुण्डलमण्डनार्हम्॥ १७

सुन्दरं तु तव रूपमेव हि
मन्मथस्य मनसो हरं परम्।
आविरस्तु मम नेत्रयोः सदा
श्यामलं मकरकुण्डलावृतम्॥ १८

वैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं
नमस्कृतं देवगणैः परं वरम्।
गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं
गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्॥ १९

युक्तं वसन्तकलकण्ठविहङ्गमैश्च
सौगन्धिकं त्वरुणपल्लवशाखिसङ्गम्।
वृन्दावनं सुधितधीरसमीरलीलं
गच्छन् हरिर्जयति पातु सदैव भक्तान्॥ २०

निरन्तर स्तवन करते रहनेपर भी वेद जिनके माहात्म्यके षोडशांशका भी कभी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके, तब त्रिलोकीमें उन श्रीहरिके गुणोंका वर्णन भला, दूसरा कौन कर सकता है? मैं चार मुखोंसे, देवाधिदेव महादेवजी पाँच मुखोंसे तथा हजार मुखवाले शेषजी अपने सहस्र मुखोंसे जिनकी स्तुति-सेवा करते हैं; वैकुण्ठनिवासी विष्णु, क्षीरोदशायी साक्षात् हरि और धर्मसुत नारायण ऋषि उन गोलोकपति आपकी सेवा किया करते हैं॥ १२—१४॥

अहा! मुरारे! आपकी महिमा धन्य है। भूतलपर उस महिमाको न मुनिगण जानते हैं न मनुष्य ही। सुर-असुर तथा चौदहों मनु भी उसे जाननेमें असमर्थ हैं। ये सब स्वप्नमें भी आपके चरणकमलोंके दर्शन पानेमें असमर्थ हैं। गुणोंके सागर, मुक्तिदाता, परात्पर, रमापति, गुणेश, व्रजेश्वरश्रेष्ठ श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ। ताम्बूल-रागरञ्जित सुन्दर मुखसे सुशोभित, मधुरभाषी, पके हुए बिम्बफलके समान लाल-लाल अधरोंवाले, स्मितहास्ययुक्त, कुन्दकलीके समान शुभ्र दन्तपंक्तिसे जगमगाते हुए, नील अलकोंसे आवृत कपोलोंवाले, मनोहर-कान्ति तथा झूलते हुए स्वर्ण-कुण्डलोंसे मण्डित श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १५—१७॥

आपका परम सुन्दर रूप मन्मथके मनको भी हरनेवाला है। मेरे नेत्रोंमें सर्वदा मकरकुण्डलधारी श्यामकलेवर श्रीकृष्णके उस रूपका प्रकाश होता रहे। जिनकी लीला वैकुण्ठ-लीलाकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है और जिनके परम श्रेष्ठ मनोहर रूपको देवगण भी नमस्कार करते हैं, उन गोपलीलाकारी गोलोकनाथको मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ। वसन्तकालीन सुन्दर कण्ठवाले कोकिलादि पक्षियोंसे युक्त, सुगन्धित, नवीन पल्लवयुक्त वृक्षोंसे अलंकृत, सुधाके समान शीतल, धीर (मन्द) पवनकी क्रीड़ासे सुशोभित वृन्दावनमें विचरण करनेवाले श्रीकृष्णकी जय हो! वे सदा भक्तोंकी रक्षा करें॥ १८—२०॥

हरति कमलमानं लोलमुक्ताभिमानं
धरणिरसिकदानं कामदेवस्य बाणम्।
श्रवणविदितयानं नेत्रयुग्मप्रयाणं
भज यदुत समक्षं दानदक्षं कटाक्षम्॥ २१

शरच्चन्द्राकारं नखमणिसमूहं सुखकरं
सुरक्तं हृत्पूर्णं प्रकटिततमःखण्डनकरम्।
भजेऽहं ब्रह्माण्डे सकलनरपापाभिदलनं
हरेर्विष्णोर्देवैर्दिवि भरतखण्डे स्तुतमलम्॥ २२

महापद्मे किं वा परिधिरिव चाभाति सततं
कदादित्यस्फूर्जद्रथचरण इत्थं ध्वनिधरम्।
यथा न्यस्तं चक्रं शतकिरणयुक्तं तु हरिणा
स्फुरच्छ्रीमञ्जीरं हरिचरणपद्मे त्वधिगतम्॥ २३

कट्यां पीताम्बरं दिव्यं क्षुद्रघण्टिकयान्वितम्।
भजाम्यहं चित्तहरं कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः॥ २४

भजे कृष्णक्रोडे भृगुमुनिपदं श्रीगृहमलं
तथा श्रीवत्साङ्कं निकषरुचियुक्तं द्युतिपरम्।
गले हीराहारान् कनकमणिमुक्तावलिधरान्
स्फुरत्ताराकारान् भ्रमरवलिभारान् ध्वनिकरान्॥ २५

वंशीविभूषितमलं द्विजदानशीलं
सिन्दूरवर्णमतिकीचकरावलीलम्।
हेमाङ्गुलीयनिकरं नखचन्द्रयुक्तं
हस्तद्वयं स्मरकदम्बसुगन्धपृक्तम्॥ २६

शनैश्चलन् मानसराजहंस-
ग्रीवाकृतौ कन्धर उच्चदेशे।
कादम्बिनीमानहरौ वरौ च
भजामि नित्यं हरिकाकपक्षौ॥ २७

कन्दर्पणवद्विशदं सुखदं
नवयौवनरूपधरं नृपतिम्।
मणिकुण्डलकुन्तलशालिरतिं
भज गण्डयुगं रविचन्द्ररुचिम्॥ २८

आपके कानतक फैले हुए विशाल नेत्रद्वय तथा उनकी तिरछी चितवन कमलपुष्पोंका मान और झूलते हुए मोतियोंका अभिमान दूर करनेवाली है, भूतलके समस्त रसिकोंको रसका दान करती है तथा कामदेवके बाणोंके समान पैनी एवं प्रीतिदानमें निपुण है। जिनकी नखमणियाँ शरत्कालीन चन्द्रमाके समान सुखकर, सुरक्त, हृदय-ग्राहिणी, गाढ़ अन्धकारका नाश करनेवाली और जगत्‌के समस्त प्राणियोंके पापोंका ध्वंस करनेवाली हैं तथा स्वर्गमें देवमण्डली और भरतखण्डमें निवास करनेवाले जिनका श्रीविष्णु एवं हरिकी नखावलीके रूपमें स्तवन करते हैं, मैं उनकी आराधना करता हूँ॥ २१-२२॥

आपके पादपद्मोंकी सर्वदा बजनेवाली, श्रीहरिके सैकड़ों किरणोंसे युक्त (सुदर्शन) चक्रके समान आकार-वाली पैजनियाँ ऐसी हैं, जिनसे गोल घेरेकी भाँति किरणें इस प्रकार निकलती हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशयुक्त रथचक्रकी परिधि हो, अथवा जो आपके पादपद्मोंकी परिधिके समान सुशोभित हैं। आपकी कमरमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त दिव्य पीताम्बर जगमगा रहा है। मैं अक्लिष्टकर्मा भगवान् श्रीकृष्ण (आप)-के उस मनोहर रूपकी आराधना करता हूँ॥ २३-२४॥

जिनके कान्तिमान् कसौटीसदृश एवं भृगुपदअङ्कित विशाल वक्षःस्थलपर लक्ष्मी विलास करती हैं, जिनके गलेमें स्वर्णमणि एवं मोतियोंकी लड़ियोंसे युक्त तथा तारोंके समान झिलमिल प्रकाश करनेवाले तथा भ्रमरोंकी ध्वनिसे युक्त हीरोंके हार हैं, जो सिन्दूरवर्णकी सुन्दर अँगुलियोंसे वंशी बजा रहे हैं, जिनकी अँगुलियोंमें सोनेकी अँगूठियाँ सुशोभित हैं, जिनके दोनों हाथ द्विजोंको दान देनेवाले, चन्द्रमाके समान नखोंसे युक्त एवं कामदेवके वनके कदम्बके पुष्पोंकी सुगन्धसे सुवासित हैं॥ २५-२६॥

जिनकी मन्दगति राजहंसकी भाँति सुन्दर है, जिनके कंधे गलेतक ऊँचे उठे हुए हैं, उन श्रीहरिकी मेघमालाका मान हरण करनेवाली मनोहर काकुलका मैं स्मरण करता हूँ। जो स्वच्छ दर्पणकी भाँति निर्मल, सुखद, नवयौवनकी कान्तिसे युक्त, मनुष्योंके रक्षक तथा मणि-कुण्डलों एवं सुन्दर घुँघराले बालोंसे सुशोभित हैं, श्रीहरिके सूर्य तथा चन्द्रमाकी भाँति प्रभासे युक्त उन दोनों कपोलोंका मैं स्मरण करता हूँ॥ २७-२८॥

खचितकनकमुक्तारक्तवैदूर्यवासं
मदनवदनलीलासर्वसौन्दर्यरासम्।
अरुणविधुसकाशं कोटिसूर्यप्रकाशं
घटितशिखिसुवीटं नौमि विष्णोः किरीटम्॥ २९

यद्द्वारिदेशे न गतिर्गुहेन्द्र-
गणेशतारेशदिवाकराणाम्।
आज्ञां विना यान्ति न कुञ्जमण्डलं
तं कृष्णचन्द्रं जगदीश्वरं भजे॥ ३०

जो सुवर्ण तथा मुक्ता एवं वैदूर्यमणिसे जटित लाल वस्त्रका बना हुआ है, जो कामदेवके मुखपर क्रीड़ा करनेवाले सम्पूर्ण सौन्दर्यसे विलसित है, जो अरुण-कान्ति तथा चन्द्र एवं करोड़ों सूर्योंके समान प्रभा-सम्पन्न है और मयूरपिच्छसे अलंकृत है, श्रीकृष्णके उस मुकुटको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके द्वारदेशपर स्वामिकार्तिकेय, इन्द्र, गणेश, चन्द्र एवं सूर्यकी भी गति नहीं है; जिनकी आज्ञाके बिना कोई निकुञ्जमें प्रवेश नहीं कर सकता, उन जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं आराधना करता हूँ॥ २९-३०॥

इति कृत्वा स्तुतिं ब्रह्मा श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
पुनः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्वविज्ञप्तिं चकार ह॥ ३१

अपराधं तु पुत्रस्य मातृवत्त्वं क्षमस्व च।
अहं त्वन्नाभिकमलात् सम्भवोऽहं जगत्पते॥ ३२

क्वाहं लोकपतिः क्व त्वं कोटिब्रह्माण्डनायकः।
तस्माद् व्रजपते देव रक्ष मां मधुसूदन॥ ३३

ब्रह्माजी इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन करके पुनः हाथ जोड़कर कहने लगे—'जगत्के स्वामी! मैं आपके नाभि-कमलसे उत्पन्न हूँ; अतएव जिस प्रकार माता अपने पुत्रके अपराधोंको क्षमा कर देती है, उसी प्रकार आप भी मेरे अपराधोंको क्षमा कर दें। व्रजपते! कहाँ तो मैं एक लोकका अधिपति और कहाँ आप करोड़ों ब्रह्माण्डोंके नायक! अतएव व्रजेश, मधुसूदन! देव! आप मेरी रक्षा करें॥ ३१—३३॥

मायया यस्य मुह्यन्ति देवदैत्यनरादयः।
स्वमायया तन्मोहाय मूर्खोऽहं ह्युद्यतोऽभवम्॥ ३४

नारायणस्त्वं गोविन्द नाहं नारायणो हरे।
ब्रह्माण्डं त्वं विनिर्माय शेषे नारायणः पुरा॥ ३५

जिनकी मायासे देवता, दैत्य एवं मनुष्य— सभी मोहित हैं, मैं मूर्ख उनको अपनी मायासे मोहित करने चला था! गोविन्द! आप नारायण हैं, मैं नारायण नहीं हूँ। हरि! आप कल्पके आदिमें ब्रह्माण्डकी रचना करके नारायणरूपसे शेषशायी हो गये॥ ३४-३५॥

यस्य श्रीब्रह्मणि धाम्नि प्राणं त्यक्त्वा तु योगिनः।
यत्र यास्यन्ति तस्मिंस्तु सकुला पूतना गता॥ ३६

वत्सानां वत्सपानाञ्च कृत्वा रूपाणि माधव।
विचचार वने त्वं तु ह्यपराधान्मम प्रभो॥ ३७

आपके जिस ब्रह्मरूप तेजमें योगी प्राण त्याग करके जाते हैं, बालघातिनी पूतना भी अपने कुलसहित आपके उसी तेजमें समा गयी। माधव! प्रभो! मेरे ही अपराधसे आपने गोवत्स एवं गोप-बालकोंका रूप धारण करके वनोंमें विचरण किया॥ ३६-३७॥

तस्मात् क्षमस्व गोविन्द प्रसीद त्वं ममोपरि।
अगणय्यापराधं मे सुतोपरि पिता यथा॥ ३८

त्वदभक्ता रता ज्ञाने तेषां क्लेशो विशिष्यते।
परिश्रमात् कर्षकाणां यथा क्षेत्रे तुषार्थिनाम्॥ ३९

अतएव गोविन्द! आप मुझको क्षमा करें। पिता जैसे पुत्रका अपराध नहीं देखता, वैसे ही आप भी मेरे अपराधकी उपेक्षा करके मेरे ऊपर प्रसन्न हों। जो लोग आपके भक्त न होकर ज्ञानमें रति करते हैं, उनको क्लेश ही हाथ लगता है, जैसे भूसेके लिये परिश्रमपूर्वक खेत जोतनेवालोंको भूसामात्र प्राप्त होता है॥ ३८-३९॥

त्वद्भक्तिभावे निरता बहवस्त्वद्गतिं गताः।
योगिनो मुनयश्चैव तथा ये व्रजवासिनः॥ ४०

द्विधा रतिर्भवेद्द्वरा श्रुताच्च दर्शनाच्च वा।
अहो हरे तु मायया बभूव नैव मे रतिः॥ ४१

इत्युक्त्वाश्रुमुखो भूत्वा नत्वा तत्पादपङ्कजौ।
पुनराह विधिः कृष्णं भक्त्या सर्वं क्षमापयन्॥ ४२

घोषेषु वासिनामेषां भूत्वाहं त्वत्पदाम्बुजम्।
यदा भजेयं सुगतिस्तदा भूयान्न चान्यथा॥ ४३

वयं तु गोपदेहेषु संस्थिताश्च शिवादयः।
सकृत् कृष्णं तु पश्यन्तस्तस्माद्धन्याश्च भारते॥ ४४

अहोभाग्यं तु श्रीकृष्ण मातापित्रोस्तव प्रभो।
तथा च गोपगोपीनां पूर्णस्त्वं दृश्यसे व्रजे॥ ४५

मुक्ताहारः सर्वविश्वोपकारः
सर्वाधारः पातु मां विश्वकारः।
लीलागारः सूरिकन्याविहारः
क्रीडापारः कृष्णचन्द्रावतारः॥ ४६

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्कर नन्दपुत्र
राधापते मदनमोहन देवदेव।
सम्मोहितं व्रजपते भुवि तेऽजया मां
गोविन्द गोकुलपते परिपाहि पाहि॥ ४७

करोति यः कृष्णहरेः प्रदक्षिणां
भवेज्जगत्तीर्थफलं च तस्य तु।
तं कृष्णलोकं सुखदं परात्परं
गोलोकलोकं प्रवरं गमिष्यति॥ ४८

श्रीनारद उवाच

इत्यभिष्टूय गोविन्दं श्रीमद्वृन्दावनेश्वरम्।
नत्वा त्रिवारं लोकेशश्चकार तु प्रदक्षिणम्॥ ४९

तत्र चालक्षितो भूत्वा वत्सान् बालान् पितामहः।
वरं दत्वा प्रयाणार्थं याचनां स चकार ह॥ ५०

ततश्च ब्रह्मणे तस्मै नेत्रेणाज्ञां ददौ हरिः।
पुनः प्रणम्य स्वं लोकमात्मभूः प्रत्यपद्यत॥ ५१

आपके भक्तिभावमें ही नितरां रत रहनेवाले अनेकों योगी, मुनि एवं व्रजवासी आपको प्राप्त हो चुके हैं। दर्शन और श्रवण—दो प्रकारसे उनकी आपमें रति होती है, किंतु अहो! श्रीहरिकी मायाके कारण उनके प्रति मेरी रति नहीं हुई॥ ४०-४१॥

ब्रह्माजीने यों कहकर नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए उनके (श्रीकृष्णके) पादपद्मोंमें प्रणाम किया एवं सारे अपराधोंको क्षमा करानेके लिये भक्तिभावसे श्रीकृष्णसे वे फिर निवेदन करने लगे—मैं गोपकुलमें जन्म लेकर आपके पादपद्मोंकी आराधना करता हुआ सुगति प्राप्त कर सकूँ, इसका व्यतिरेक न हो॥ ४२-४३॥

भगवान् शंकर आदि हम (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) देवगणने भारतवासी इन गोपोंकी देहमें स्थित होकर एक बार भी श्रीकृष्णका दर्शन कर लिया, अतः हम धन्य हो गये। श्रीकृष्ण! आपके माता-पिता एवं गोप-गोपियोंका तो कितना अनिर्वचनीय सौभाग्य है, जो व्रजमें आपके पूर्णरूपका दर्शन कर रहे हैं॥ ४४-४५॥

सम्पूर्ण विश्वका उपकार करनेवाले, मुक्ताहार धारण करनेवाले, विश्वके रचयिता, सर्वाधार, लीलाके धाम, रवितनया यमुनामें विहार करनेवाले, क्रीडापरायण, श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार ग्रहण करनेवाले प्रभु मेरी रक्षा करें। वृष्णिकुलरूप सरोवरके कमलस्वरूप, नन्दनन्दन, राधापति, देव-देव, मदनमोहन, व्रजपति, गोकुलपति, गोविन्द मुझ मायासे मोहितकी रक्षा करें। जो व्यक्ति श्रीकृष्णकी प्रदक्षिणा करता है, उसको जगत्के सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्राका फल प्राप्त होता है। वह आपके सुखदायक परात्पर 'गोलोक' नामक लोकको जाता है॥ ४६—४८॥

श्रीनारदजी कहने लगे—लोकपति लोकपितामह ब्रह्माने इस प्रकार सुन्दर वृन्दावनके अधिपति गोविन्दका स्तवन करके प्रणाम करते हुए उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की और कुछ देरके लिये अदृश्य होकर गोवत्स तथा गोप-बालकोंको वरदान देकर लौट जानेके लिये अनुमतिकी प्रार्थना की। तदनन्तर श्रीहरिने नेत्रोंके संकेतसे उनको जानेका आदेश दिया। लोकपितामह ब्रह्मा भी पुनः प्रणाम करके अपने लोकको चले गये॥ ४९—५१॥

अथ कृष्णो वनाच्छीघ्रमानयामास वत्सकान्।
यत्रापि पुलिने राजन् गोपानां राजमण्डली॥ ५२

गोपार्भकाश्च श्रीकृष्णं वत्सैः सार्धं समागतम्।
क्षणार्धं मेनिरे वीक्ष्य कृष्णमायाविमोहिताः॥ ५३

त ऊचुर्वत्सकैः कृष्ण त्वरं त्वं तु समागतः।
कुरुष्व भोजनञ्चात्र केनापि न कृतं प्रभो॥ ५४

ततश्च विहसन् कृष्णोऽभ्यवहृत्यार्भकैः सह।
दर्शयामास सर्वेभ्यश्चर्माजगरमेव च॥ ५५

सायङ्काले सरामस्तु कृष्णो गोपैः परावृतः।
अग्रे कृत्वा वत्सवृन्दं ह्याजगाम शनैर्व्रजम्॥ ५६

गोवत्सकैः सितसितासितपीतवर्णै
रक्तादिधूम्रहरितैर्बहुशीलरूपैः ।
गोपालमण्डलगतं व्रजपालपुत्रं
वन्दे वनात् सुखदगोष्ठकमाव्रजन्तम्॥ ५७

आनन्दो गोपिकानां तु ह्यासीत्कृष्णस्य दर्शने।
यासां येन विना राजन् क्षणो युगसमोऽभवत्॥ ५८

कृत्वा गोष्ठे पृथग् वत्सान् बालाः स्वं स्वं गृहं गताः।
जगुश्चाघासुरवधमात्मनो रक्षणं हरेः॥ ५९

राजन्! इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण वनसे शीघ्रतापूर्वक गोवत्स एवं गोप-बालकोंको ले आये और यमुनातटपर जिस स्थानपर गोपमण्डली विराजित थी, उन लोगोंको लेकर उसी स्थानपर पहुँचे। गोवत्सोंके साथ लौटे हुए श्रीकृष्णको देखकर उनकी मायासे विमोहित गोपोंने उतने समयको आधे क्षण-जैसा समझा। वे लोग गोवत्सोंके साथ आये हुए श्रीकृष्णसे कहने लगे—'आप शीघ्रतासे आकर भोजन करें। प्रभो! आपके चले जानेके कारण किसीने भी भोजन नहीं किया।' इसके उपरान्त श्रीकृष्णने हँसकर बालकोंके साथ भोजन किया और बालकोंको अजगरका चमड़ा दिखाया। तदनन्तर बलरामजीके साथ गोपोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण वत्सवृन्दको आगे करके धीरे-धीरे व्रजको लौट आये॥ ५२—५६॥

सफेद, चितकबरे, पीले, लाल, धूम्र एवं हरे आदि अनेक रंग और स्वभाववाले गोवत्सोंको आगे करके धीरे-धीरे सुखद वनसे गोष्ठमें लौटते हुए गोपमण्डलीके बीच स्थित नन्दनन्दनकी मैं वन्दना करता हूँ। राजन्! श्रीकृष्णके विरहमें जिनको क्षणभरका समय युगके समान लगता था, उन्हींके दर्शनसे उन गोपियोंको आनन्द प्राप्त हुआ। बालकोंने अपने-अपने घर जाकर गोष्ठोंमें अलग-अलग बछड़ोंको बाँधकर अघासुर-वध एवं श्रीहरिद्वारा हुई आत्मरक्षाके वृत्तान्तका वर्णन किया॥ ५७—५९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे ब्रह्मस्तुतिर्नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'ब्रह्माजीद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

यशोदाजीकी चिन्ता; नन्दद्वारा आश्वासन तथा ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान देना; श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णका गोचारण

श्रीनारद उवाच

अष्टावक्रस्य शापेन सर्पो भूत्वा ह्यघासुरः।
तद्वरात्परमं मोक्षं गतो देवैश्च दुर्लभम्॥ १

वत्साद् वकमुखान्मुक्तं ततो मुक्तं ह्यघासुरात्।
श्रुत्वा कतिदिनैः कृष्णं यशोदाभूद्भयातुरा॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—अष्टावक्रके शापसे सर्प होकर अघासुर उन्हींके वरदान-बलसे उस परम मोक्षको प्राप्त हुआ, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। वत्सासुर, वकासुर और फिर अघासुरके मुखसे श्रीकृष्ण किसी तरह बच गये हैं और कुछ ही दिनोंमें उनके ऊपर ये सारे संकट आये हैं—यह सुनकर यशोदाजी भयसे व्याकुल हो उठीं॥ १-२॥

कलावतीं रोहिणीं च गोपीगोपान् वयोऽधिकान्।
वृषभानुवरं गोपं नन्दराजं व्रजेश्वरम्॥ ३

नवोपनन्दान्नन्दांश्च वृषभानून् प्रजेश्वरान्।
समाहूय तदग्रे च वचः प्राह यशोमती॥ ४

उन्होंने कलावती, रोहिणी, गोपिका, बड़े-बूढ़े गोप, वृषभानुवर, व्रजेश्वर नन्दराज, नौ नन्द, नौ उपनन्द तथा प्रजाजनोंके स्वामी छः वृषभानुओंको बुलाकर उन सबके सामने यह बात कही॥ ३-४॥

यशोदोवाच

किं करोमि क्व गच्छामि कल्याणं मे कथं भवेत्।
मत्सुते बहवोऽरिष्टा आगच्छन्ति क्षणे क्षणे॥ ५

पूर्वं महावनं त्यक्त्वा वृन्दारण्ये गता वयम्।
एतत्त्यक्त्वा क्व यास्यामो देशे वदत निर्भये॥ ६

चञ्चलोऽयं बालको मे क्रीडन् दूरे प्रयाति हि।
बालकाश्चञ्चलाः सर्वे न मन्यन्ते वचो मम॥ ७

यशोदा बोलीं—[आप सब लोग बतायें—] मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कैसे मेरा कल्याण हो? मेरे पुत्रपर तो यहाँ क्षण-क्षणमें बहुत-से अरिष्ट आ रहे हैं। पहले महावन छोड़कर हमलोग वृन्दावनमें आये और अब इसे भी छोड़कर दूसरे किस निर्भय देशमें मैं चली जाऊँ, यह बतानेकी कृपा करें। मेरा यह बालक स्वभावसे ही चपल है। खेलते-खेलते दूरतक चला जाता है। व्रजके दूसरे बालक भी बड़े चञ्चल हैं। वे सब मेरी बात मानते ही नहीं॥ ५—७॥

वकासुरश्च मे बालं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद् बली।
तस्मान्मुक्तन्तु जग्राहार्भकैर्दीनमघासुरः॥ ८

वत्सासुरस्तज्जिघांसुः सोऽपि दैवेन मारितः।
वत्सार्थं स्वगृहाद्बालं न बहिः कारयाम्यहम्॥ ९

तीखी चोंचवाला बलवान् वकासुर पहले मेरे बालकको निगल गया था। उससे छूटा तो इस बेचारेको अघासुरने समस्त ग्वाल-बालोंके साथ अपना ग्रास बना लिया। भगवान्‌की कृपासे किसी तरह उससे भी इसकी रक्षा हुई। इन सबसे पहले वत्सासुर इसकी घातमें लगा था, किंतु वह भी दैवके हाथों मारा गया। अब मैं बछड़े चरानेके लिये अपने बच्चेको घरसे बाहर नहीं जाने दूँगी॥ ८-९॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं वदन्तीं सततं रुदन्तीं
यशोमतीं वीक्ष्य जगाद नन्दः।
आश्वासयामास सुगर्गवाक्यै-
र्धर्मार्थविद्धर्मभृतां वरिष्ठः॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—इस तरह कहती तथा निरन्तर रोती हुई यशोदाकी ओर देखकर नन्दजी कुछ कहनेको उद्यत हुए। पहले तो धर्म और अर्थके ज्ञाता तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ नन्दने गर्गजीके वचनोंकी याद दिलाकर उन्हें धीरज बँधाया, फिर इस प्रकार कहा—॥ १०॥

नन्दराज उवाच

गर्गवाक्यं त्वया सर्वं विस्मृतं हे यशोमति।
ब्राह्मणानां वचः सत्यं नासत्यं भवति क्वचित्॥ ११

तस्माद्दानं प्रकर्तव्यं सर्वारिष्टनिवारणम्।
दानात्परं तु कल्याणं न भूतं न भविष्यति॥ १२

नन्दराज बोले—हे यशोदे! क्या तुम गर्गकी कही हुई सारी बातें भूल गयीं? ब्राह्मणोंकी कही हुई बात सदा सत्य होती है, वह कभी असत्य नहीं होती। इसलिये समस्त अरिष्टोंका निवारण करनेके लिये तुम्हें दान करते रहना चाहिये। दानसे बढ़कर कल्याणकारी कृत्य न तो पहले हुआ है और न आगे होगा ही॥ ११-१२॥

श्रीनारद उवाच

तदा यशोदा विप्रेभ्यो नवरत्नं महाधनम्।
स्वालङ्कारांश्च बालस्य सबलस्य ददौ नृप॥ १३

अयुतं वृषभाणां च गवां लक्षं मनोहरम्।
द्विलक्षमन्नभाराणां नन्दो दानं ददौ ततः॥ १४

श्रीनारद उवाच

गोपेच्छया रामकृष्णौ गोपालौ तौ बभूवतुः।
गाश्चारयन्तौ गोपालैर्वयस्यैश्चेरतुर्वने॥ १५

अग्रे पृष्ठे तदा गावश्चरन्त्यः पार्श्वयोर्द्वयोः।
श्रीकृष्णस्य बलस्यापि पश्यन्त्यः सुन्दरं मुखम्॥ १६

घण्टामञ्जीरझङ्कारं कुर्वन्त्यस्ता इतस्ततः।
किङ्किणीजालसंयुक्ता हेममालालसद्गलाः॥ १७

मुक्तागुच्छैर्बर्हिपिच्छैर्लसत्पुच्छाच्छकेसराः।
स्फुरतां नवरत्नानां मालाजालैर्विराजिताः॥ १८

शृङ्गयोरन्तरे राजन् शिरोमणिमनोहराः।
हेमरश्मिप्रभास्फूर्जच्छृङ्गपार्श्वप्रवेष्टनाः॥ १९

आरक्ततिलकाः काश्चित्पीतपुच्छारुणाङ्घ्रयः।
कैलासगिरिसङ्काशाः शीलरूपमहागुणाः॥ २०

सवत्सा मन्दगामिन्य ऊधोभारेण मैथिल।
कुण्डोध्न्यः पाटलाः काश्चिल्लक्षन्त्यो भव्यमूर्तयः॥ २१

काश्चित्पीता विचित्राश्च श्यामाश्च हरितास्तथा।
ताम्रा धूम्रा घनश्यामा घनश्यामे गतेक्षणाः॥ २२

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! तब यशोदाने बलराम और श्रीकृष्णके मङ्गलके लिये ब्राह्मणोंको बहुमूल्य नवरत्न और अपने अलंकार दिये। नन्दजीने उस समय दस हजार बैल, एक लाख मनोहर गायें तथा दो लाख भार अन्न दान दिये॥ १३-१४॥

श्रीनारदजी पुनः कहते हैं—राजन्! अब गोपोंकी इच्छासे बलराम और श्रीकृष्ण गोपालक हो गये। अपने गोपाल मित्रोंके साथ गाय चराते हुए वे दोनों भाई वनमें विचरण करने लगे। उस समय श्रीकृष्ण और बलरामका सुन्दर मुँह निहारती हुई गौएँ उनके आगे-पीछे और अगल-बगलमें विचरती रहती थीं॥ १५-१६॥

उनके गलेमें क्षुद्रघण्टिकाओंकी माला पहनायी गयी थी। सोनेकी मालाएँ भी उनके कण्ठकी शोभा बढ़ाती थीं। उनके पैरोंमें घुँघुरू बँधे थे। उनकी पूँछोंके स्वच्छ बालोंमें लगे हुए मोरपंख और मोतियोंके गुच्छे शोभा दे रहे थे। वे घंटों और नूपुरोंके मधुर झंकारको फैलाती हुई इधर-उधर चरती थीं। चमकते हुए नूतन रत्नोंकी मालाओंके समूहसे उन समस्त गौओंकी बड़ी शोभा होती॥ १७-१८॥

राजन्! उन गौओंके दोनों सींगोंके बीचमें सिरपर मणिमय अलंकार धारण कराये गये थे, जिनसे उनकी मनोहरता बढ़ गयी थी। सुवर्ण-रश्मियोंकी प्रभासे उनके सींग तथा पार्श्व-प्रवेष्टन (पीठपरकी झूल) चमकते रहते थे। कुछ गौओंके भालमें किञ्चित् रक्तवर्णके तिलक लगे थे। उनकी पूँछें पीले रंगसे रँगी गयी थीं और पैरोंके खुर अरुणरागसे रञ्जित थे। बहुत-सी गौएँ कैलास पर्वतके समान श्वेतवर्णवाली, सुशीला, सुरूपा तथा अत्यन्त उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थीं। मिथिलेश्वर! बछड़ेवाली गौएँ अपने स्तनोंके भारसे धीरे-धीरे चलती थीं। कितनोंके थन घड़ोंके बराबर थे। बहुत-सी गौएँ लाल रंगकी थीं। वे सब-की-सब भव्य-मूर्ति दिखायी देती थीं॥ १९—२१॥

कोई पीली, कोई चितकबरी, कोई श्यामा, कोई हरी, कोई ताँबेके समान रंगवाली, कोई धूमिलवर्णकी और कोई मेघोंकी घटा-जैसी नीली थीं। उन सबके नेत्र घनश्याम श्रीकृष्णकी ओर लगे रहते थे॥ २२॥

लघुशृङ्ग्यो दीर्घशृङ्ग्य उच्चशृङ्ग्यो वृषैः सह।
मृगशृङ्ग्यो वक्रशृङ्ग्यः कपिला मङ्गलायनाः॥ २३

शाद्वलं कोमलं कान्तं वीक्षन्त्योऽपि वने वने।
कोटिशः कोटिशो गावश्चरन्त्यः कृष्णपार्श्वयोः॥ २४

पुण्यं श्रीयमुनातीरं तमालैः श्यामलैर्वनम्।
नीपैर्निम्बैः कदम्बैश्च प्रवालैः पनसैर्द्रुमैः॥ २५

कदलीकोविदाराम्रैर्जम्बुबिल्वैर्मनोहरैः।
अश्वत्थैश्च कपित्थैश्च माधवीभिश्च मण्डितम्॥ २६

बभौ वृन्दावनं दिव्यं वसन्तर्तुमनोहरम्।
नन्दनं सर्वतोभद्रं क्षिपच्चैत्ररथं वनम्॥ २७

यत्र गोवर्धनो नाम सुनिर्झरदरीयुतः।
रत्नधातुमयः श्रीमान्मन्दारवनसङ्कुलः॥ २८

श्रीखण्डबदरीरम्भादेवदारुवटैर्वृतः।
पलाशप्लक्षाशोकैश्चारिष्टार्जुनकदम्बकैः॥ २९

पारिजातैः पाटलैश्च चम्पकैः परिशोभितः।
करञ्जजालकुञ्जाढ्यः श्यामैरिन्द्रयवैर्वृतः॥ ३०

कलकण्ठैः कोकिलैश्च पुंस्कोकिलमयूरभृत्।
गाश्चारयंस्तत्र कृष्णो विचचार वने वने॥ ३१

वृन्दावने मधुवने पार्श्वे तालवनस्य च।
कुमुद्वने बाहुले च दिव्यकामवने परे॥ ३२

बृहत्सानुगिरेः पार्श्वे गिरेर्नन्दीश्वरस्य च।
सुन्दरे कोकिलवने कोकिलध्वनिसङ्कुले॥ ३३

रम्ये कुशवने सौम्ये लताजालसमन्विते।
महापुण्ये भद्रवने भाण्डीरोपवने नृप॥ ३४

लोहार्गले च यमुनातीरे तीरे वने वने।
पीतवासःपरिकरो नटवेषो मनोहरः॥ ३५

वेत्रभृद्वादयन् वंशीं गोपीनां प्रीतिमावहन्।
मयूरपिच्छभृन्मौली स्रग्वी कृष्णो बभौ नृप॥ ३६

किन्हीं गौओं और बैलोंके सींग छोटे, किन्हींके बड़े तथा किन्हींके ऊँचे थे। कितनोंके सींग हिरनोंके-से थे और कितनोंके टेढ़े-मेढ़े। वे सब गौएँ कपिला तथा मङ्गलकी धाम थीं। वन-वनमें कोमल कमनीय घास खोज-खोजकर चरती हुई कोटि-कोटि गौएँ श्रीकृष्णके उभय पार्श्वोंमें विचरती थीं॥ २३-२४॥

श्रीयमुनाजीका पुण्य-पुलिन तथा उसके निकट श्याम तमालोंसे सुशोभित वृन्दावन नीप, नीम, कदम्ब, प्रवाल, कटहल, कदली, कचनार, आम, मनोहर जामुन, बेल, पीपल और कैथ आदि वृक्षों तथा माधवी लताओंसे मण्डित था॥ २५-२६॥

वसन्त ऋतुके शुभागमनसे मनोहर वृन्दावनकी दिव्य शोभा हो रही थी। वह देवताओंके नन्दनवन-सा आनन्दप्रद और सर्वतोभद्रवन-सा सब ओरसे मङ्गलकारी जान पड़ता था। उसने [कुबेरके] चैत्ररथ वनकी शोभाको तिरस्कृत कर दिया था। वहाँ झरनों और कंदराओंसे संयुक्त रत्नधातुमय श्रीमान् गोवर्धन पर्वत शोभा पाता था। वहाँका वन पारिजात या मन्दारके वृक्षोंसे व्याप्त था॥ २७-२८॥

वह चन्दन, बेर, कदली, देवदार, बरगद, पलाश, पाकर, अशोक, अरिष्ट (रीठा), अर्जुन, कदम्ब, पारिजात, पाटल तथा चम्पाके वृक्षोंसे सुशोभित था। श्याम वर्णवाले इन्द्रयव नामक वृक्षोंसे घिरा हुआ वह वन करञ्ज-जालसे विलसित कुञ्जोंसे सम्पन्न था॥ २९-३०॥

वहाँ मधुर कण्ठवाले नर-कोकिल और मयूर कलरव कर रहे थे। उस वनमें गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण एक वनसे दूसरे वनमें विचरा करते थे। नरेश्वर! वृन्दावन और मधुवनमें, तालवनके आस-पास कुमुदवन, बहुलावन, दिव्य कामवन, बृहत्सानु और नन्दीश्वर नामक पर्वतोंके पार्श्ववर्ती प्रदेशमें, कोकिलोंकी काकलीसे कूजित सुन्दर कोकिलावनमें, लताजालमण्डित सौम्य तथा रमणीय कुशवनमें, परम पावन भद्रवन, भाण्डीर उपवन, लोहार्गल तीर्थ तथा यमुनाके प्रत्येक तट और तटवर्ती विपिनोंमें पीताम्बर धारण किये, बद्धपरिकर, नटवेषधारी मनोहर श्रीकृष्ण बेंत लिये, वंशी बजाते और गोपाङ्गनाओंकी प्रीति बढ़ाते हुए बड़ी शोभा पाते थे। हे राजन्! उनके सिरपर शिखिपिच्छका सुन्दर मुकुट तथा गलेमें वैजयन्तीमाला सुशोभित थीं॥ ३१—३६॥

अग्रे कृत्वा गवां वृन्दं सायङ्काले हरिः स्वयम्।
रागैः समीरयन् वंशीं श्रीनन्दव्रजमाविशत्॥ ३७

वेणुवंशीध्वनिं श्रुत्वा श्रीवंशीवटमार्गतः।
गोरजोभिर्नभो व्याप्तं वीक्ष्य गेहाद्विनिर्गताः॥ ३८

दूरीकर्तुं ह्याधिबाधामाहर्तुं सुखमुत्तमम्।
विस्मर्तुं न समर्थास्तं द्रष्टुं गोप्यः समाययुः॥ ३९

संध्याके समय गोवृन्दको आगे किये अनेकानेक रागोंमें बाँसुरी बजाते साक्षात् श्रीहरि कृष्ण नन्दव्रजमें आये। आकाशको गोरजसे व्याप्त देख श्रीवंशीवटके मार्गसे आती हुई वंशी-ध्वनिसे आकुल हुई गोपियाँ श्यामसुन्दरके दर्शनके लिये घरोंसे बाहर निकल आयीं। अपनी मानसिक पीड़ा दूर करने और उत्तम सुखको पानेके लिये वे गोपसुन्दरियाँ श्रीकृष्णदर्शनके हेतु घरसे बाहर आ गयी थीं। उनमें श्रीकृष्णको भुला देनेकी शक्ति नहीं थी॥ ३७—३९॥

सङ्कोचवीथीषु न संगृहीतः
शनैश्चलन् गोगणसङ्कुलासु।
सिंहावलोको गजबाललीलै-
र्वधूजनैः पङ्कजपत्रनेत्रः॥ ४०

सुमण्डितं मैथिल गोरजोभि-
र्नीलं परं कुन्तलमादधानः।
हेमाङ्गदी मौलिविराजमान
आकर्णवक्रीकृतदृष्टिबाणः॥ ४१

गोधूलिभिर्मण्डितकुन्दहारः
कर्णोपरि स्फूर्जितकर्णिकारः।
पीताम्बरो वेणुनिनादकारः
पातु प्रभुर्वो हृतभूरिभारः॥ ४२

श्रीनन्दनन्दन सिंहकी भाँति पीछे घूमकर देखते थे। वे गजकिशोरकी भाँति लीलापूर्वक मन्दगतिसे चलते थे। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पाते थे। गोसमुदायसे व्याप्त संकीर्ण गलियोंमें मन्द-मन्दगतिसे आते हुए श्यामसुन्दरको उस समय गोपवधूटियाँ अच्छी तरहसे देख नहीं पाती थीं। मिथिलेश्वर! गोधूलिसे धूसरित उत्तम नील केशकलाप धारण किये, सुवर्णनिर्मित बाजूबंदसे विभूषित, मुकुटमण्डित तथा कानतक खींचकर वक्रभावसे दृष्टिबाणका प्रहार करनेवाले, गोरज-समलंकृत, कुन्दमालासे अलंकृत, कानोंमें खोंसे हुए पुष्पोंकी आभासे उद्दीप्त, पीताम्बरधारी, वेणुवादनशील तथा भूतलका भूरि-भार हरण करनेवाले प्रभु श्रीकृष्ण आप सबकी रक्षा करें॥ ४०—४२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे श्रीकृष्णगोचारणवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीकृष्णकी गोचारण-लीलाका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

धेनुकासुरका उद्धार

श्रीनारद उवाच

एकदा सबलः कृष्णश्चारयन् गा मनोहराः।
गोपालैः सहितः सर्वैर्ययौ तालवनं नवम्॥ १

धेनुकस्य भयाद्गोपा न गतास्ते वनान्तरम्।
कृष्णोऽपि न गतस्तत्र बल एको विवेश ह॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ मनोहर गौएँ चराते हुए नूतन तालवनके पास चले गये। उस समय समस्त गोपाल उनके साथ थे। वहाँ धेनुकासुर रहा करता था। उसके भयसे गोपगण वनके भीतर नहीं गये। श्रीकृष्ण भी नहीं गये। अकेले बलरामजीने उसमें प्रवेश किया॥ १-२॥

नीलाम्बरं कटौ बद्ध्वा बलदेवो महाबलः।
परिपक्वफलार्थं हि तद्वने विचचार ह॥ ३

बाहुभ्यां कम्पयंस्तालान् फलसङ्घं निपातयन्।
गर्जंश्च निर्भयः साक्षादनन्तोऽनन्तविक्रमः॥ ४

फलानां पततां शब्दं श्रुत्वा क्रोधावृतः खरः।
मध्याह्ने स्वापकृद् दुष्टो भीमः कंससखो बली॥ ५

आययौ सम्मुखे योद्धुं बलदेवस्य धेनुकः।
बलं पश्चिमपादाभ्यां निहत्योरसि सत्वरम्॥ ६

चकार खरशब्दं स्वं परिधावन् मुहुर्मुहुः।
गृहीत्वा धेनुकं शीघ्रं बलः पश्चिमपादयोः॥ ७

चिक्षेप तालवृक्षे च हस्तेनैकेन लीलया।
तेन भग्नश्च तालोऽपि तालान् पार्श्वस्थितान् बहून्॥ ८

पातयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत्।
पुनरुत्थाय दैत्येन्द्रो बलं जग्राह रोषतः॥ ९

योजनं नोदयामास गजं प्रति गजो यथा।
गृहीत्वा तं बलः सद्यो भ्रामयित्वाथ धेनुकम्॥ १०

भूपृष्ठे पोथयामास मूर्च्छितो भग्नमस्तकः।
क्षणेन पुनरुत्थाय क्रोधसंयुक्तविग्रहः॥ ११

मूर्ध्नि कृत्वा चतुःशृङ्गं धृत्वा रूपं भयङ्करम्।
गोपान् विद्रावयामास शृङ्गैस्तीक्ष्णैर्भयङ्करैः॥ १२

अग्रे पलायितान् गोपान् दुद्रावाशु मदोत्कटः।
श्रीदामा तं च दण्डेन सुबलो मुष्टिना तथा॥ १३

अपने नीले वस्त्रको कमरमें बाँधकर महाबली बलदेव परिपक्व फल लेनेके लिये उस वनमें विचरने लगे। बलरामजी साक्षात् अनन्तदेवके अवतार हैं। उनका पराक्रम भी अनन्त है। अतः दोनों हाथोंसे ताड़के वृक्षोंको हिलाते और फल-समूहोंको गिराते हुए वहाँ निर्भय गर्जना करने लगे। गिरते हुए फलोंकी आवाज सुनकर वह गर्दभाकार असुर रोषसे आग-बबूला हो गया। वह दोपहरमें सोया करता था, किंतु आज विघ्न पड़ जानेसे वह दुष्ट क्रोधसे भयंकर हो उठा। धेनुकासुर कंसका सखा होनेके साथ ही बड़ा बलवान् था॥ ३—५॥

वह बलदेवजीके सम्मुख युद्ध करनेके लिये आया और उसने अपने पिछले पैरोंसे उनकी छातीमें तुरंत आघात किया। आघात करके वह बारंबार दौड़ लगाता हुआ गधेकी भाँति रेंकने लगा। तब बलरामजीने धेनुकके दोनों पिछले पैर पकड़कर शीघ्र ही उसे ताड़के वृक्षपर दे मारा। यह कार्य उन्होंने एक ही हाथसे खेल-खेलमें कर डाला॥ ६—७½॥

इससे वह तालवृक्ष स्वयं तो टूट ही गया, गिरते-गिरते उसने अपने पार्श्ववर्ती दूसरे बहुत-से ताड़ोंको भी धराशायी कर दिया। राजेन्द्र! वह एक अद्भुत-सी बात हुई। दैत्यराज धेनुकने पुनः उठकर रोषपूर्वक बलरामजीको पकड़ लिया और जैसे एक हाथी अपना सामना करनेवाले दूसरे हाथीको दूरतक ठेल ले जाता है, उसी प्रकार उन्हें धक्का देकर एक योजन पीछे हटा दिया॥ ८—९½॥

तब बलरामजीने तत्काल धेनुकको पकड़कर घुमाना आरम्भ किया और घुमाकर उसे भूतलपर दे मारा। तब उसे मूर्च्छा आ गयी और उसका मस्तक फट गया। तो भी वह क्षणभरमें उठकर खड़ा हो गया। उसके शरीरसे भयानक क्रोध प्रकट हो रहा था॥ १०-११॥

इसके बाद उस दैत्यने अपने मस्तकमें चार सींग प्रकट करके, भयानक रूप धारणकर उन तीखे और भयंकर सींगोंसे गोपोंको खदेड़ना आरम्भ किया॥ १२॥

गोपोंको आगे-आगे भागते देख वह मदमत्त असुर तुरंत ही उनके पीछे दौड़ा। उस समय श्रीदामाने

स्तोकः पाशेन तं दैत्यं सन्तताड महाबलम्।
क्षेपणेनार्जुनोंऽशुश्च दैत्यं लत्तिकया खरम्॥ १४

विशालर्षभ एत्याशु पादेन स्वबलेन च।
तेजस्वी ह्यर्धचन्द्रेण देवप्रस्थश्चपेटकैः॥ १५

वरूथपः कन्दुकेन सन्तताड महाखरम्।
अथ कृष्णोऽपि तं नीत्वा हस्ताभ्यां धेनुकासुरम्॥ १६

भ्रामयित्वाशु चिक्षेप गिरिगोवर्धनोपरि।
श्रीकृष्णस्य प्रहारेण मूर्च्छितो घटिकाद्वयम्॥ १७

पुनरुत्थाय स्वतनुं विधुन्वन् दारयन् मुखम्।
शृङ्गाभ्यां श्रीहरिं नीत्वा धावन् दैत्यो नभोगतः॥ १८

चकार तेन खे युद्धमूर्ध्वं वै लक्षयोजनम्।
गृहीत्वा धेनुकं दैत्यं श्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्॥ १९

चिक्षेपाधो भूमिमध्ये चूर्णितास्थिः स मूर्च्छितः।
पुनरुत्थाय शृङ्गाभ्यां नादं कृत्वातिभैरवम्॥ २०

गोवर्धनं समुत्पाट्य श्रीकृष्णे प्राहिणोत्खरः।
गिरिं गृहीत्वा श्रीकृष्णः प्राक्षिपत्तस्य मस्तके॥ २१

दैत्यो गिरिं गृहीत्वाथ श्रीकृष्णे प्राहिणोद्बली।
कृष्णो गोवर्धनं नीत्वा पूर्वस्थाने समाक्षिपत्॥ २२

पुनर्धावन् महादैत्यः शृङ्गाभ्यां दारयन् भुवम्।
बलं पश्चिमपादाभ्यां ताडयित्वा जगर्ज ह॥ २३

ननाद तेन ब्रह्माण्डं प्रैजद्भूखण्डमण्डलम्।
हस्ताभ्यां सङ्गृहीत्वा तं बलदेवो महाबलः॥ २४

भूपृष्ठे पोथयामास मूर्च्छितं भग्नमस्तकम्।
पुनस्तताड तं दैत्यं मुष्टिना ह्यच्युताग्रजः॥ २५

उसपर डंडेसे प्रहार किया, सुबलने उसको मुक्केसे मारा, स्तोककृष्णने उस महाबली दैत्यपर पाशसे प्रहार किया, अर्जुनने क्षेपणसे और अंशुने उस गर्दभाकार दैत्यपर लातसे आघात किया। इसके बाद विशालर्षभने आकर शीघ्रतापूर्वक अपने पैरसे और बलसे भी उस दैत्यको दबाया। तेजस्वीने अर्धचन्द्र (गर्दनियाँ) देकर उसे पीछे हटाया और देवप्रस्थने उस असुरके कई तमाचे जड़ दिये॥ १३—१५॥

वरूथपने उस विशालकाय गधेको गेंदसे मारा। तदनन्तर श्रीकृष्णने भी धेनुकासुरको दोनों हाथोंसे उठाकर घुमाया और तुरंत ही गोवर्धन पर्वतके ऊपर फेंक दिया। श्रीकृष्णके उस प्रहारसे धेनुक दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़ा रहा। फिर उठकर अपने शरीरको कँपाता हुआ मुँह फाड़कर आगे बढ़ा और दोनों सींगोंसे श्रीहरिको उठाकर वह दैत्य दौड़कर आकाशमें चला गया॥ १६—१८॥

आकाशमें एक लाख योजन ऊँचे जाकर उनके साथ युद्ध करने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने धेनुकासुरको पकड़कर नीचे भूमिकी ओर फेंका। इससे उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं और वह मूर्च्छित हो गया। तथापि पुनः उठकर अत्यन्त भयंकर सिंहनाद करते हुए उसने दोनों सींगोंसे गोवर्धन पर्वतको उखाड़ लिया और श्रीकृष्णके ऊपर चलाया॥ १९—२०½॥

श्रीकृष्णने पर्वतको हाथसे पकड़कर पुनः उसीके मस्तकपर दे मारा। तदनन्तर उस बलवान् दैत्यने फिर पर्वतको हाथमें ले लिया और श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। किंतु श्रीकृष्णने गोवर्धनको ले जाकर उसके पूर्व स्थानपर रख दिया॥ २१-२२॥

तदनन्तर फिर धावा करके महादैत्य धेनुकने दोनों सींगोंसे पृथ्वीको विदीर्ण कर दिया और पिछले पैरोंसे पुनः बलरामपर प्रहार करके बड़े जोरसे गर्जना की। उसकी उस गर्जनासे समस्त ब्रह्माण्ड गूँज उठा और भूमण्डल काँपने लगा। तब महाबली बलदेवने दोनों हाथोंसे उसको पकड़ लिया और उसे पृथ्वीपर दे मारा। इससे उसका मस्तक फूट गया और होश-हवास जाता रहा। इसके बाद श्रीकृष्णके बड़े भाईने पुनः उस दैत्यपर मुक्केसे प्रहार किया॥ २३—२५॥

तेन मुष्टिप्रहारेण सद्यो वै निधनं गतः।
तदैव ववृषुर्देवाः पुष्पैर्नन्दनसम्भवैः॥ २६

देहाद्विनिर्गतः सोऽपि श्यामसुन्दरविग्रहः।
स्त्रग्वी पीताम्बरो देवो वनमालाविभूषितः॥ २७

लक्षपार्षदसंयुक्तः सहस्त्रध्वजशोभितः।
सहस्त्रचक्रध्वनिभृद्धयायुतसमन्वितः॥ २८

लक्षचामरशोभाढ्योऽरुणवर्णोऽतिरत्नभृत्।
दिव्ययोजनविस्तीर्णो मनोयायी मनोहरः॥ २९

किङ्किणीजालसंयुक्तो घण्टामञ्जीरसंयुतः।
हरिं प्रदक्षिणीकृत्य सबलं दिव्यरूपधृक्॥ ३०

दिव्यं रथं समारुह्य द्योतयन्मण्डलं दिशाम्।
जगाम दैत्यो हे राजन् गोलोकं प्रकृतेः परम्॥ ३१

श्रीकृष्णो धेनुकं हत्वा सबलो बालकैः सह।
तद्यशस्तु प्रगायद्भिर्बभौ गोकुलगोगणैः॥ ३२

राजोवाच

मुने मुक्तिं कथं प्राप्तः पूर्वं को धेनुकासुरः।
कथं खरत्वमापन्न एतन्मे ब्रूहि तत्त्वतः॥ ३३

श्रीनारद उवाच

वैरोचनेर्बलेः पुत्रो नाम्ना साहसिको बली।
नारीणां दशसाहस्त्रै रेमे वै गन्धमादने॥ ३४

वादित्राणां नूपुराणां शब्दोऽभूत्तद्वने महान्।
गुहायामास्थितस्यापि श्रीकृष्णं स्मरतो मुनेः॥ ३५

दुर्वाससोऽथ तेनापि ध्यानभङ्गो बभूव ह।
निर्गतः पादुकारूढो दुर्वासाः कृशविग्रहः॥ ३६

दीर्घश्मश्रुर्यष्टिधरः क्रोधपुञ्जोऽनलद्युतिः।
यस्य शापाद्विश्वमिदं कम्पते स जगाद ह॥ ३७

उस मुष्टिप्रहारसे धेनुकासुरकी तत्काल मृत्यु हो गयी। उसी समय देवताओंने वहाँ नन्दनवनके फूल बरसाये॥ २६॥

देहसे पृथक् होकर धेनुक श्यामसुन्दर-विग्रह धारणकर पुष्पमाला, पीताम्बर तथा वनमालासे समलंकृत देवता हो गया। लाख-लाख पार्षद उसकी सेवामें जुट आये। सहस्त्रों ध्वज उसके रथकी शोभा बढ़ाने लगे। सहस्त्रों पहियोंकी घर्घरध्वनिसे युक्त उस रथमें दस हजार घोड़े जुते थे। लाखों चँवरोंकी वहाँ शोभा हो रही थी। वह रथ अरुणवर्णका था और अत्यधिक रत्नोंसे जटित था। उसका विस्तार एक दिव्य योजनका था। वह मनके समान तीव्रगतिसे चलनेवाला विमान या रथ बड़ा ही मनोहर था॥ २७—२९॥

राजन्! उसमें घुँघुरुओंकी जाली लगी थी। घंटे और मञ्जीर बजते थे। दिव्यरूपधारी दैत्य धेनुक बलरामसहित श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके, उक्त दिव्य रथपर आरूढ़ हो, दिशामण्डलको देदीप्यमान करता हुआ, प्रकृतिसे परे विद्यमान गोलोकधाममें चला गया। इस प्रकार धेनुकका वध करके बलरामसहित श्रीकृष्ण अपना यशोगान करते हुए ग्वाल-बालोंके साथ व्रजको लौटे। उनके साथ गौओंका समुदाय भी था॥ ३०—३२॥

राजाने पूछा—मुने! धेनुकासुर पूर्वजन्ममें कौन था? उसे मुक्ति कैसे प्राप्त हुई? तथा उसे गधेका शरीर क्यों मिला? यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये॥ ३३॥

श्रीनारदजीने कहा—विरोचनकुमार बलिका एक बलवान् पुत्र था, जिसका नाम था—साहसिक। वह दस हजार स्त्रियोंके साथ गन्धमादन पर्वतपर विहार कर रहा था। वहाँ वनमें नाना प्रकारके वाद्यों तथा रमणियोंके नूपुरोंका महान् शब्द होने लगा, जिससे उस पर्वतकी कन्दरामें रहकर श्रीकृष्णका चिन्तन करनेवाले दुर्वासा मुनिका ध्यान भङ्ग हो गया। वे खड़ाऊँ पहनकर बाहर निकले। उस समय मुनिवर दुर्वासाका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। दाढ़ी-मूँछ बहुत बढ़ गयी थीं। वे लाठीके सहारे चलते थे। क्रोधकी तो वे मूर्तिमान् राशि ही थे और अग्निके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। दुर्वासा उन ऋषियोंमेंसे हैं, जिनके शापके भयसे यह सारा विश्व काँपता रहता है। वे बोले—॥ ३४—३७॥

दुर्वासा उवाच

उत्तिष्ठ गर्दभाकार गर्दभो भव दुर्मते।
वर्षाणां तु चतुर्लक्षे व्यतीते भारते पुनः॥ ३८

माथुरे मण्डले दिव्ये पुण्ये तालवने वने।
बलदेवस्य हस्तेन मुक्तिस्ते भवितासुर॥ ३९

दुर्वासाने कहा—दुर्बुद्धि असुर! तू गदहेके समान भोगासक्त है, इसलिये गदहा हो जा। आजसे चार लाख वर्ष बीतनेपर भारतमें दिव्य माथुर-मण्डलके अन्तर्गत पवित्र तालवनमें बलदेवजीके हाथसे तेरी मुक्ति होगी॥ ३८-३९॥

नारद उवाच

तस्माद्बलस्य हस्तेन श्रीकृष्णस्तं जघान ह।
प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः॥ ४०

नारदजी कहते हैं—राजन्! उस शापके कारण ही भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके हाथसे उसका वध करवाया; क्योंकि उन्होंने प्रह्लादजीको यह वर दे रखा है कि तुम्हारे वंशका कोई दैत्य मेरे हाथसे नहीं मारा जायगा॥ ४०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे धेनुकासुरमोक्षो नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'धेनुकासुरका उद्धार' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णद्वारा कालियदमन तथा दावानल-पान

श्रीनारद उवाच

बलं विनाथ गोपालैश्चारयन् गा हरिः स्वयम्।
कालिन्दीकूलमागत्य पपौ वारि विषावृतम्॥ १

कालियेन फणीन्द्रेण जलं यत्र विदूषितम्।
पीत्वा निपेतुर्व्यसवो गावो गोपा जलान्तिके॥ २

तदा ताञ्जीवयामास दृष्ट्या पीयूषपूर्णया।
आर्द्रचित्तो हरिः साक्षाद्भगवान् वृजिनार्दनः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—[मिथिलेश्वर!] एक दिन बलरामजीको साथमें लिये बिना ही श्रीहरि स्वयं ग्वाल-बालोंके साथ गाय चराने चले आये। यमुनाके तटपर आकर उन्होंने उस विषाक्त जलको पी लिया, जिसे नागराज कालियने अपने विषसे दूषित कर दिया था। उस जलको पीकर बहुत-सी गायें और गोपगण प्राणहीन होकर पानीके निकट ही गिर पड़े। यह देख सर्वपापहारी साक्षात् भगवान् श्रीहरिका चित्त दयासे द्रवित हो उठा। उन्होंने अपनी पीयूषपूर्ण दृष्टिसे देखकर उन सबको जीवित कर दिया॥ १—३॥

कटौ पीतपटं बद्ध्वा नीपमारुह्य माधवः।
पपातोत्तुङ्गविटपात् तत्तोये विषदूषिते॥ ४

उच्चचाल जलं दुष्टं कृष्णसङ्घातघूर्णितम्।
तत्सर्पमन्दिरं नद्यां भृङ्गीभूतं बभूव ह॥ ५

तदैव कालियः क्रुद्धः फणी फणशतावृतः।
दशन् दन्तैश्च भुजया चच्छाद नृप माधवम्॥ ६

इसके बाद पीताम्बरको कमरमें कसकर बाँध लिया। फिर वे माधव तटवर्ती कदम्ब वृक्षपर चढ़ गये और उसकी ऊँची डालसे उस विष-दूषित जलमें कूद पड़े। भगवान् श्रीकृष्णके कूदनेसे वह दूषित जल चक्कर काटकर ऊपरको उछला। यमुनाकेउस भागमें कालियनाग रहता था। भँवर उठनेसे उस सर्पका भवन इस तरह चक्कर काटने लगा, जैसे जलमें पानीके भौंरे घूमते हैं। नरेश्वर! उस समय सौ फणोंसे युक्त फणिराज कालिय क्रुद्ध हो उठा और माधवको दाँतोंसे डँसते हुए उसने अपने शरीरसे उन्हें आच्छादित कर लिया॥ ४—६॥

कृष्णो दीर्घं वपुः कृत्वा बन्धनान्निर्गतश्च तम्।
पुच्छे गृहीत्वा सर्पेन्द्रं भ्रामयित्वा त्वितस्ततः॥ ७

जले निपात्य हस्ताभ्यां चिक्षेपाशु धनुःशतम्।
पुनरुत्थाय सर्पेन्द्रो लेलिहानो भयङ्करः॥ ८

वामहस्ते हरिं सर्पो रुषा जग्राह माधवम्।
हरिर्दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा तं महाखलम्॥ ९

तज्जले पोथयामास सुपर्ण इव पन्नगम्।
सर्पो मुखशतं दीर्घं प्रसार्य पुनरागतः॥ १०

पुच्छे गृहीत्वा तं कृष्णश्चकर्षाशु धनुःशतम्।
कृष्णहस्ताद्विनिष्क्रम्य सर्पस्तं व्यदशत्पुनः॥ ११

तब श्रीकृष्ण अपने शरीरको बड़ा करके उसके बन्धनसे छूट गये और उस सर्पराजकी पूँछ पकड़कर उसे इधर-उधर घुमाने लगे। घुमाते-घुमाते उन्होंने उसे पानीमें गिराकर पुनः दोनों हाथोंसे उठा लिया और तुरंत उसे सौ धनुष दूर फेंक दिया। उस भयानक नागराजने पुनः उठकर जीभ लपलपाते हुए रोषपूर्वक माधव श्रीहरिका बायाँ हाथ पकड़ लिया। तब श्रीहरिने उस महादुष्टको दाहिने हाथसे पकड़कर उस जलमें उसी प्रकार दबा दिया, जैसे गरुड़ किसी नागको रगड़ दे। फिर अपने सौ मुखोंको बहुत अधिक फैलाकर वह सर्प उनके पास आ गया। तब उसकी पूँछ पकड़कर श्रीकृष्ण उसे सौ धनुष दूर खींच ले गये। श्रीकृष्णके हाथसे सहसा निकलकर उसने पुनः उन्हें डँस लिया॥ ७—११॥

तताड मुष्टिना सर्पं त्रैलोक्यबलधारकः।
कृष्णमुष्टिप्रहारेण मूर्च्छितो विगतस्मृतिः॥ १२

नतं कृत्वाननशतं स्थितोऽभूत्कृष्णसम्मुखे।
आरुह्य तत्फणिशतं मणिवृन्दमनोहरम्॥ १३

ननर्त नटवत्कृष्णो नटवेषो मनोहरः।
गायन् सप्तस्वरै रागं सङ्गीतं च सतालकम्॥ १४

पुष्पैर्देवेषु वर्षत्सु ताण्डवे नटराजवत्।
वादयत्सु मुदा वीणानकदुन्दुभिवेणुकान्॥ १५

यह देख अपनेमें त्रिभुवनका बल धारण करनेवाले श्रीहरिने उस सर्पको एक मुक्का मारा। श्रीकृष्णके मुक्केकी चोट खाकर वह सर्प मूर्च्छित हो अपनी सुध-बुध खो बैठा। तदनन्तर अपने सौ मुखोंको आनत करके वह श्रीकृष्णके सामने स्थित हुआ। उसके सौ फन सौ मणियोंके प्रकाशसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। श्रीकृष्ण उन फनोंपर चढ़ गये और मनोहर नट-वेष धारण करके नटकी भाँति नृत्य करने लगे। साथ ही वे सातों स्वरोंसे किसी रागका आलाप करते हुए तालके साथ संगीत प्रस्तुत करने लगे। उस समय नटराजकी भाँति सुन्दर ताण्डव करनेवाले श्रीकृष्णके ऊपर देवतालोग फूल बरसाने लगे और प्रसन्नतापूर्वक वीणा, ढोल, नगारे तथा बाँसुरी बजाने लगे॥ १२—१५॥

सतालं पदविन्यासैस्तत्फणान् सोज्ज्वलान् बहून्।
बभञ्ज श्वसतः कृष्णः कालियस्य महात्मनः॥ १६

तदैव नागपत्न्यस्ता आगता भयविह्वलाः।
नत्वा कृष्णपदं देवमूचुर्गद्गदया गिरा॥ १७

तालके साथ पदविन्यास करनेसे श्रीकृष्णने लंबी साँस खींचते हुए महाकाय कालियके बहुत-से उज्ज्वल फनोंको भग्न कर दिया। उसी समय भयसे विह्वल हुई नागपत्नियाँ आ पहुँचीं और भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार करके गद्गद वाणीद्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगीं॥ १६-१७॥

नागपत्न्य ऊचुः

नमः श्रीकृष्णचन्द्राय गोलोकपतये नमः।
असंख्याण्डाधिपतये परिपूर्णतमाय ते॥ १८

नागपत्नियाँ बोलीं—भगवन्! आप परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं। आप गोलोकनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको हमारा बारंबार नमस्कार है॥ १८॥

श्रीराधापतये तुभ्यं व्रजाधीशाय ते नमः।
नमः श्रीनन्दपुत्राय यशोदानन्दनाय ते॥ १९

पाहि पाहि परदेव पन्नगं
त्वत्परं न शरणं जगत्त्रये।
त्वं परात्परतरो हरिः स्वयं
लीलया किल तनोषि विग्रहम्॥ २०

व्रजके अधीश्वर आप श्रीराधावल्लभको नमस्कार है। नन्दके लाला एवं यशोदानन्दन आपको नमस्कार है। परमदेव! आप इस नागकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इसे शरण देनेवाला नहीं है। आप स्वयं साक्षात् परात्पर श्रीहरि हैं और लीलासे ही स्वच्छन्दतापूर्वक नाना प्रकारके श्रीविग्रहोंका विस्तार करते हैं॥ १९-२०॥

श्रीनारद उवाच

नागपत्नीस्तवान्ते तु कालियो नष्टगर्वकः।
भगवन् पूर्णकामेति पाहि श्रीकृष्णमुक्तवान्॥ २१

पाहीति प्रवदन्तं तं कालियं भगवान् हरिः।
प्रणतं सम्मुखे प्राप्तं प्राह देवो जनार्दनः॥ २२

श्रीनारदजी कहते हैं—अबतक कालियनागका गर्व चूर्ण हो गया था। नागपत्नियोंद्वारा किये गये इस स्तवनके पश्चात् वह श्रीकृष्णसे बोला—'भगवन्! पूर्णकाम परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये।' 'पाहि-पाहि' कहता हुआ कालियनाग भगवान् श्रीहरिके सम्मुख आकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। तब उन जनार्दनदेवने उससे कहा॥ २१-२२॥

श्रीभगवानुवाच

द्वीपं रमणकं गच्छ सकलत्रसुहृद्वृतः।
सुपर्णोऽद्यतनात्त्वां वै नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम्॥ २३

श्रीभगवान् बोले—तुम अपनी पत्नियों और सुहृदोंके साथ रमणकद्वीपमें चले जाओ। तुम्हारे मस्तकपर मेरे चरणोंके चिह्न बन गये हैं, इसलिये अब गरुड तुम्हें अपना आहार नहीं बनायेगा॥ २३॥

श्रीनारद उवाच

सर्पः कृष्णं तु सम्पूज्य परिक्रम्य प्रणम्य तम्।
कलत्रपुत्रसहितो द्वीपं रमणकं ययौ॥ २४

अथ श्रुत्वा कालियेन सङ्ग्रस्तं नन्दनन्दनम्।
तत्राजग्मुर्गोपगणा नन्दाद्याः सकला जनाः॥ २५

जलाद्विनिर्गतं कृष्णं दृष्ट्वा मुमुदिरे जनाः।
आश्लिष्य स्वसुतं नन्दः परां मुदमवाप ह॥ २६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब उस सर्पने श्रीकृष्णकी पूजा और परिक्रमा करके, उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर, स्त्री-पुत्रोंके साथ रमणकद्वीपको प्रस्थान किया। इधर 'नन्दनन्दनको कालियनागने अपना ग्रास बना लिया है'—यह समाचार सुनकर नन्द आदि समस्त गोपगण वहाँ आ गये थे। श्रीकृष्णको जलसे निकलते देख उन सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने बेटेको छातीसे लगाकर नन्दजी परमानन्दमें निमग्न हो गये॥ २४—२६॥

सुतं लब्ध्वा यशोदा सा सुतकल्याणहेतवे।
ददौ दानं द्विजातिभ्यः स्नेहस्नुतपयोधरा॥ २७

तत्रैव शयनं चक्रुर्गोपाः सर्वे परिश्रमात्।
कालिन्दीनिकटे राजन् गोपीगोपगणैः सह॥ २८

वेणुसङ्घर्षणोद्भूतो दावाग्निः प्रलयाग्निवत्।
निशीथे सर्वतो गोपान् दग्धुमागतवान् स्फुरन्॥ २९

यशोदाने अपने खोये हुए पुत्रको पाकर उसके कल्याणकी कामनासे ब्राह्मणोंको धनका दान किया। उस समय उनके स्तनोंसे स्नेहाधिक्यके कारण दूध झर रहा था। राजन्! उस दिन रातमें अधिक श्रमके कारण गोपाङ्गनाओं और ग्वाल-बालोंके साथ समस्त गोप यमुनाके निकट उसी स्थानपर सो गये। निशीथकालमें बाँसोंकी रगड़से प्रलयाग्निके समान दावानल प्रकट हो गया, जो सब ओरसे मानो गोपोंको दग्ध करनेके लिये उधर फैलता आ रहा था॥ २७—२९॥

गोपा वयस्याः श्रीकृष्णं सबलं शरणं गताः।
नत्वा कराञ्जलिं कृत्वा तमूचुर्भयकातराः॥ ३०

उस समय मित्रकोटिके गोप बलराम-सहित श्रीकृष्णकी शरणमें गये और भयसे कातर हो दोनों हाथ जोड़कर बोले॥ ३०॥

गोपा ऊचुः

कृष्ण कृष्ण महाबाहो शरणागतवत्सल।
पाहि पाहि वने कष्टाद्दावाग्नेः स्वजनान् प्रभो॥ ३१

गोपोंने कहा—शरणागतवत्सल महाबाहु कृष्ण! कृष्ण! प्रभो! वनके भीतर दावाग्निके कष्टमें पड़े हुए स्वजनोंको बचाओ! बचाओ!!॥ ३१॥

श्रीनारद उवाच

स्वलोचनानि माभैष्ट न्यमीलयत माधवः।
इत्युक्त्वा वह्निमपिबद्देवो योगेश्वरेश्वरः॥ ३२

प्रातर्गोपगणैः सार्धं विस्मितैर्नन्दनन्दनः।
गोगणैः सहितः श्रीमद्व्रजमण्डलमाययौ॥ ३३

श्रीनारदजी कहते हैं—तब योगेश्वरेश्वर देव माधव उनसे बोले—'डरो मत। अपनी-अपनी आँखें मूँद लो।' यों कहकर वे सारा दावानल स्वयं ही पी गये। फिर—प्रातःकाल विस्मित हुए गोपगणों तथा गौओंके साथ नन्दनन्दन शोभाशाली व्रजमण्डलमें आये॥ ३२-३३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे कालियदमनं दावाग्निपानं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'कालियदमन तथा दावानल-पान' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

मुनिवर वेदशिरा और अश्वशिराका परस्परके शापसे क्रमशः कालियनाग और काकभुशुण्ड होना तथा शेषनागका भूमण्डलको धारण करना

वैदेह उवाच

यद्रजो दुर्लभं लोके योगिनां बहुजन्मभिः।
तत्पादाब्जं हरेः साक्षाद्बभौ कालियमूर्धसु॥ १

कोऽयं पूर्वं कुशलकृत्कालियो फणिनां वरः।
एनं वेदितुमिच्छामि ब्रूहि देवर्षिसत्तम॥ २

विदेहराज बहुलाश्वने पूछा—[देवर्षे!] संसारमें जिनकी धूलि अनेक जन्मोंमें योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, भगवान्‌के साक्षात् वे ही चरणारविन्द कालियके मस्तकोंपर सुशोभित हुए। नागोंमें श्रेष्ठ यह कालिय पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्य-कर्म कर चुका था, जिससे इसको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ—यह मैं जानना चाहता हूँ। देवर्षिशिरोमणे! यह बात मुझे बताइये॥ १-२॥

श्रीनारद उवाच

स्वायम्भुवान्तरे पूर्वं नाम्ना वेदशिरा मुनिः।
विन्ध्याचले तपोऽकार्षीद्भृगुवंशसमुद्भवः॥ ३

तदाश्रमे तपः कर्तुं प्राप्तो ह्यश्वशिरा मुनिः।
तं वीक्ष्य रक्तनयनः प्राह वेदशिरा रुषा॥ ४

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! पूर्वकालकी बात है। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वेदशिरा नामक मुनि, जिनकी उत्पत्ति भृगुवंशमें हुई थी, विन्ध्यपर्वतपर तपस्या करते थे। उन्हींके आश्रमपर तपस्या करनेके लिये अश्वशिरा मुनि आये। उन्हें देखकर वेदशिरा मुनिके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे रोषपूर्वक बोले—॥ ३-४॥

वेदशिरा उवाच

ममाश्रमे तपो विप्र मा कुर्याः सुखदं न हि।
अन्यत्र ते तपोयोग्या भूमिर्नास्ति तपोधन॥ ५

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वाथ वेदशिरसो वाक्यं ह्यश्वशिरा मुनिः।
क्रोधयुक्तो रक्तनेत्रः प्राह तं मुनिपुङ्गवम्॥ ६

अश्वशिरा उवाच

महाविष्णोरियं भूमिर्न ते मे मुनिसत्तम।
कतिभिर्मुनिभिश्चात्र न कृतं तप उत्तमम्॥ ७

श्वसन् सर्प इव त्वं भो वृथा क्रोधं करोषि हि।
सदा सर्पो भव त्वं हि भूयात्ते गरुडाद्भयम्॥ ८

वेदशिरा उवाच

त्वं महादुरभिप्रायो लघुद्रोहे महोद्यमः।
कार्यार्थी काक इव कौ त्वं काको भव दुर्मते॥ ९

श्रीनारद उवाच

आविरासीत्ततो विष्णुरित्थं च शपतोस्तयोः।
स्वस्वशापाद् दुःखितयोः सान्त्वयामास तौ गिरा॥ १०

श्रीभगवानुवाच

युवां तु मे समौ भक्तौ भुजाविव तनौ मुनी।
स्ववाक्यं तु मृषा कर्तुं समर्थोऽहं मुनीश्वरौ॥ ११

भक्तवाक्यं मृषा कर्तुं नेच्छामि शपथो मम।
ते मूर्ध्नि हे वेदशिरश्चरणौ मे भविष्यतः॥ १२

तदा ते गरुडाद्भीतिर्न भविष्यति कर्हिचित्।
शृणु मेऽश्वशिरो वाक्यं शोचं मा कुरु मा कुरु॥ १३

काकरूपेऽपि सुज्ञानं ते भविष्यति निश्चितम्।
परं त्रैकालिकं ज्ञानं संयुतं योगसिद्धिभिः॥ १४

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वाथ गते विष्णौ मुनिरश्वशिरा नृप।
साक्षात्काकभुशुण्डोऽभूद्योगीन्द्रो नीलपर्वते॥ १५

वेदशिराने कहा—ब्रह्मन्! मेरे आश्रममें तुम तपस्या न करो; क्योंकि वह सुखद नहीं होगी। तपोधन! क्या और कहीं तुम्हारे तपके योग्य भूमि नहीं है?॥ ५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वेदशिराकी यह बात सुनकर अश्वशिरा मुनिके भी नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे उन मुनिपुंगवसे बोले—॥ ६॥

अश्वशिराने कहा—मुनिश्रेष्ठ! यह भूमि तो महाविष्णुकी है; न तुम्हारी है न मेरी। यहाँ कितने मुनियोंने उत्तम तपका अनुष्ठान नहीं किया है? तुम व्यर्थ ही सर्पकी तरह फुफकारते हुए क्रोध प्रकट करते हो, इसलिये सदाके लिये सर्प हो जाओ और तुम्हें गरुडसे भय प्राप्त हो॥ ७-८॥

वेदशिरा बोले—दुर्मते! तुम्हारा भाव बड़ा ही दूषित है। तुम छोटे-से द्रोह या अपराधपर भी महान् दण्ड देनेके लिये उद्यत रहते हो और अपना काम बनानेके लिये कौएकी तरह इस पृथ्वीपर डोलते-फिरते हो; अतः तुम भी कौआ हो जाओ॥ ९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इसी समय भगवान् विष्णु परस्पर शाप देते हुए दोनों ऋषियोंके बीच प्रकट हो गये। वे दोनों अपने-अपने शापसे बहुत दुखी थे। भगवान्ने अपनी वाणीद्वारा उन दोनोंको सान्त्वना दी॥ १०॥

श्रीभगवान् बोले—हे मुनिद्वय! जैसे शरीरमें दोनों भुजाएँ समान हैं, उसी प्रकार तुम दोनों समानरूपसे मेरे भक्त हो। मुनीश्वरो! मैं अपनी बात तो झूठी कर सकता हूँ, परंतु भक्तकी बातको मिथ्या करना नहीं चाहता—यह मेरी प्रतिज्ञा है। वेदशिरा! [सर्पकी अवस्थामें] तुम्हारे मस्तकपर मेरे दोनों चरण अङ्कित होंगे॥ ११-१२॥

उस समयसे तुम्हें गरुड़से कदापि भय नहीं होगा। अश्वशिरा! अब तुम मेरी बात सुनो। सोच न करो, सोच न करो। काकरूपमें रहनेपर भी तुम्हें निश्चय ही उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। योगसिद्धियोंसे युक्त उच्चकोटिका त्रिकालदर्शी ज्ञान सुलभ होगा॥ १३-१४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! यों कहकर भगवान् विष्णु जब चले गये, तब अश्वशिरा मुनि साक्षात् योगीन्द्र काकभुशुण्ड हो गये और नीलपर्वतपर रहने लगे॥ १५॥

रामभक्तो महातेजाः सर्वशास्त्रार्थदीपकः।
रामायणं जगौ यो वै गरुडाय महात्मने॥ १६

चाक्षुषे ह्यन्तरे प्राप्ते दक्षः प्राचेतसो नृप।
कश्यपाय ददौ कन्या एकादश मनोहराः॥ १७

तासां कद्रूश्च या श्रेष्ठा साद्यैव रोहिणी स्मृता।
वसुदेवप्रिया यस्यां बलदेवोऽभवत्सुतः॥ १८

सा कद्रूश्च महासर्पान् जनयामास कोटिशः।
महोद्भटान् विषबलानुग्रान् पञ्चशताननान्॥ १९

महामणिधरान् कांश्चिद् दुःसहांश्च शताननान्।
तेषां वेदशिरा नाम कालियोऽभून्महाफणी॥ २०

तेषामादौ फणीन्द्रोऽभूच्छेषोऽनन्तः परात्परः।
सोऽद्यैव बलदेवोऽस्ति रामोऽनन्तोऽच्युताग्रजः॥ २१

एकदा श्रीहरिः साक्षाद्भगवान् प्रकृतेः परः।
शेषं प्राह प्रसन्नात्मा मेघगम्भीरया गिरा॥ २२

श्रीभगवानुवाच

भूमण्डलं समाधातुं सामर्थ्यं कस्यचिन्न हि।
तस्मादेनं महीगोलं मूर्ध्नि त्वं हि समुद्धर॥ २३

अनन्तविक्रमस्त्वं वै यतोऽनन्त इति स्मृतः।
इदं कार्यं प्रकर्तव्यं जनकल्याणहेतवे॥ २४

शेष उवाच

अवधिं कुरु यावत्त्वं धरोद्धारस्य मे प्रभो।
भूभारं धारयिष्यामि तावत्ते वचनादिह॥ २५

श्रीभगवानुवाच

नित्यं सहस्रवदनैरुच्चारं च पृथक् पृथक्।
मद्गुणस्फुरतां नाम्नां कुरु सर्पेन्द्र सर्वतः॥ २६

मन्नामानि च दिव्यानि यदा यान्त्यवसानताम्।
तदा भूभारमुत्तार्य फणिंस्त्वं सुसुखी भव॥ २७

वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थको प्रकाशित करनेवाले महातेजस्वी रामभक्त हो गये। उन्होंने ही महात्मा गरुडको रामायणकी कथा सुनायी थी॥ १६॥

मिथिलानरेश! चाक्षुष मन्वन्तरके प्रारम्भमें प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षने महर्षि कश्यपको अपनी परम मनोहर ग्यारह कन्याएँ पत्नीरूपमें प्रदान कीं। उन कन्याओंमें जो श्रेष्ठ कद्रू थी, वही इस समय वसुदेवप्रिया रोहिणी होकर प्रकट हुई हैं, जिनके पुत्र बलदेवजी हैं। उस कद्रूने करोड़ों महासर्पोंको जन्म दिया। वे सभी सर्प अत्यन्त उद्भट, विषरूपी बलसे सम्पन्न, उग्र तथा पाँच सौ फनोंसे युक्त थे॥ १७—१९॥

वे महान् मणिरत्न धारण किये रहते थे। उनमेंसे कोई-कोई सौ मुखोंवाले एवं दुस्सह विषधर थे। उन्हींमें वेदशिरा 'कालिय' नामसे प्रसिद्ध महानाग हुए। उन सबमें प्रथम राजा फणिराज शेष हुए, जो अनन्त एवं परात्पर परमेश्वर हैं। वे ही आजकल 'बलदेव'के नामसे प्रसिद्ध हैं। वे ही राम, अनन्त और अच्युताग्रज आदि नाम धारण करते हैं। एक दिनकी बात है। प्रकृतिसे परे साक्षात् भगवान् श्रीहरिने प्रसन्नचित्त होकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें शेषसे कहा॥ २०—२२॥

श्रीभगवान् बोले—इस भूमण्डलको अपने ऊपर धारण करनेकी शक्ति दूसरे किसीमें नहीं है, इसलिये इस भूगोलको तुम्हीं अपने मस्तकपर धारण करो। तुम्हारा पराक्रम अनन्त है, इसीलिये तुम्हें 'अनन्त' कहा गया है। जन-कल्याणके हेतु तुम्हें यह कार्य अवश्य करना चाहिये॥ २३-२४॥

शेषने कहा—प्रभो! पृथ्वीका भार उठानेके लिये आप कोई अवधि निश्चित कर दीजिये। जितने दिनकी अवधि होगी, उतने समयतक मैं आपकी आज्ञासे भूमिका भार अपने सिरपर धारण करूँगा॥ २५॥

श्रीभगवान् बोले—नागराज! तुम अपने सहस्र मुखोंसे प्रतिदिन पृथक्-पृथक् मेरे गुणोंसे स्फुरित होनेवाले नूतन नामोंका सब ओर उच्चारण किया करो। जब मेरे दिव्य नाम समाप्त हो जायँ, तब तुम अपने सिरसे पृथ्वीका भार उतारकर सुखी हो जाना॥ २६-२७॥

शेष उवाच

आधारोऽहं भविष्यामि मदाधारश्च को भवेत्।
निराधारः कथं तोये तिष्ठामि कथय प्रभो॥ २८

श्रीभगवानुवाच

अहं च कमठो भूत्वा धारयिष्यामि ते तनुम्।
महाभारमयीं दीर्घां मा शोचं कुरु मत्सखे॥ २९

श्रीनारद उवाच

तदा शेषः समुत्थाय नत्वा श्रीगरुडध्वजम्।
जगाम नृप पातालादधो वै लक्षयोजनम्॥ ३०

गृहीत्वा स्वकरेणेदं गरिष्ठं भूमिमण्डलम्।
दधार स्वफणे शेषोऽप्येकस्मिंश्चण्डविक्रमः॥ ३१

सङ्कर्षणेऽथ पाताले गतेऽनन्ते परात्परे।
अन्ये फणीन्द्रास्तमनु विविशुर्ब्रह्मणोदिताः॥ ३२

अतले वितले केचित्सुतले च महातले।
तलातले तथा केचित्सम्प्राप्तास्ते रसातले॥ ३३

तेभ्यस्तु ब्रह्मणा दत्तं द्वीपं रमणकं भुवि।
कालियप्रमुखास्तस्मिन्नवसन् सुखसंवृताः॥ ३४

इति ते कथितं राजन्कालियस्य कथानकम्।
भुक्तिदं मुक्तिदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३५

शेषने कहा—प्रभो! पृथ्वीका आधार तो मैं हो जाऊँगा, किंतु मेरा आधार कौन होगा? बिना किसी आधारके मैं जलके ऊपर कैसे स्थित रहूँगा?॥ २८॥

श्रीभगवान् बोले—मेरे मित्र! इसकी चिन्ता मत करो। मैं 'कच्छप' बनकर महान् भारसे युक्त तुम्हारे विशाल शरीरको धारण करूँगा॥ २९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! तब शेषने उठकर भगवान् श्रीगरुड़ध्वजको नमस्कार किया। फिर वे पातालसे लाख योजन नीचे चले गये। वहाँ अपने हाथसे इस अत्यन्त गुरुतर भूमण्डलको पकड़कर प्रचण्ड पराक्रमी शेषने अपने एक ही फनपर धारण कर लिया। परात्पर अनन्तदेव संकर्षणके पाताल चले जानेपर ब्रह्माजीकी प्रेरणासे अन्यान्य नागराज भी उनके पीछे-पीछे चले गये॥ ३०—३२॥

कोई अतलमें, कोई वितलमें, कोई सुतल और महातलमें तथा कितने ही तलातल एवं रसातलमें जाकर रहने लगे। ब्रह्माजीने उन सर्पोंके लिये पृथ्वीपर 'रमणकद्वीप' प्रदान किया था। कालिय आदि नाग उसीमें सुखपूर्वक निवास करने लगे। राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे कालियका कथानक कह सुनाया, जो सारभूत तथा भोग और मोक्ष देनेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ३३—३५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे शेषोपाख्यानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'शेषके उपाख्यानका वर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

कालियका गरुड़के भयसे बचनेके लिये यमुना-जलमें निवासका रहस्य

राजोवाच

द्वीपे रमणके ब्रह्मन् सर्पानन्यान् विना कथम्।
एतन्मे ब्रूहि सकलं कालियस्याभवद्भयम्॥ १

राजा बहुलाश्वने पूछा—ब्रह्मन्! रमणकद्वीपमें रहनेवाले अन्य सर्पोंको छोड़कर केवल कालियनाग-को ही गरुड़से भय क्यों हुआ? यह सारी बात आप मुझे बताइये॥ १॥

श्रीनारद उवाच

तत्र नागान्तको नित्यं नागसङ्घं जघान ह।
गतक्षोभं चैकदा ते तार्क्ष्यं प्राहुर्भयातुराः॥ २

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! रमणकद्वीपमें नागोंका विनाश करनेवाले गरुड़ प्रतिदिन जाकर बहुत-से नागोंका संहार करते थे। अतः एक दिन भयसे व्याकुल हुए वहाँके सर्पोंने उस द्वीपमें पहुँचे हुए क्षोभरहित गरुड़से इस प्रकार कहा—॥ २॥

नागा ऊचुः

हे गरुत्मन्नमस्तुभ्यं त्वं साक्षाद्विष्णुवाहनः।
अस्मानत्सि यदा सर्पान् कथं नो जीवनं भवेत्॥ ३

तस्माद्बलिं गृहाणाशु मासे मासे गृहात्पृथक्।
वनस्पतिसुधान्नानामुपचारैर्विधानतः ॥ ४

गरुड उवाच

एकः सर्पस्तु मे देयो भवद्भिर्वा गृहात्पृथक्।
कथं पचामि तमृते बलिं वीटकवत्परम्॥ ५

श्रीनारद उवाच

तथास्तु चोक्तास्ते सर्वे गरुडाय महात्मने।
गोपीथायात्मनो राजन्नित्यं दिव्यं बलिं ददुः॥ ६

कालियस्य गृहस्यापि समयोऽभूद्यदा नृप।
तदा तार्क्ष्यबलिं सर्वं बुभुजे कालियो बलात्॥ ७

तदागतः प्रकुपितो वेगतः कालियोपरि।
चकार पादविक्षेपं गरुडश्चण्डविक्रमः॥ ८

गरुडाङ्घ्रिप्रहारेण कालियो मूर्च्छितोऽभवत्।
पुनरुत्थाय जिह्वाभिः प्रावलीढन् मुखं श्वसन्॥ ९

प्रसार्य स्वं फणशतं कालियः फणिनां वरः।
व्यदशद्गरुडं वेगाद्दद्भिर्विषमयैर्बली॥ १०

गृहीत्वा तं च तुण्डेन गरुडो दिव्यवाहनः।
भूपृष्ठे पोथयामास पक्षाभ्यां ताडयन् मुहुः॥ ११

तुण्डाद्विनिर्गतः सर्पस्तत्पक्षान् विचकर्ष ह।
तत्पादौ वेष्टयंस्तुद्यन् फूत्कारं व्यदधन्मुहुः॥ १२

तार्क्ष्यपक्षौ च पतितौ भूमध्ये द्वौ विरेजतुः।
एकेन बर्हिणोऽभूवन् नीलकण्ठा द्वितीयतः॥ १३

तेषां तु दर्शनं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम्।
शुक्लपक्षे मैथिलेन्द्र दशम्यामाश्विनस्य तत्॥ १४

नाग बोले—हे गरुत्मन्! तुम्हें नमस्कार है। तुम साक्षात् भगवान् विष्णुके वाहन हो। जब इस प्रकार हम सर्पोंको खाते रहोगे तो हमारा जीवन कैसे सुरक्षित रहेगा? इसलिये प्रत्येक मासमें एक बार पृथक्-पृथक् एक-एक घरसे बलि ले लिया करो। उस बलिके रूपमें वनस्पति (फल-मूलादि) तथा अमृतके समान मधुर अन्नकी सेवा प्रस्तुत की जायगी। यह सब विधानके अनुसार तुम शीघ्र स्वीकार करो॥ ३-४॥

गरुड़जी बोले—आपलोग एक-एक घरसे एक-एक नागकी बलि भी प्रतिदिन दिया करें; अन्यथा सर्पके बिना दूसरी वस्तुओंकी बलिसे मैं कैसे पेट भर सकूँगा? वह तो मेरे लिये पानके बीड़ेके तुल्य होगी॥ ५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उनके यों कहनेपर सब सर्पोंने आत्मरक्षाके लिये एक-एक करके उन महात्मा गरुड़के लिये नित्य दिव्य बलि देना आरम्भ किया॥ ६॥

नरेश्वर! जब कालियके घरसे बलि मिलनेका अवसर आया, तब उसने गरुड़को दी जानेवाली बलिकी सारी वस्तुएँ बलपूर्वक स्वयं ही भक्षण कर लीं। उस समय प्रचण्ड पराक्रमी गरुड़ बड़े रोषमें भरकर आये। आते ही उन्होंने कालियनागके ऊपर अपने पंजेसे प्रहार किया॥ ७-८॥

गरुड़के उस पाद-प्रहारसे कालिय मूर्च्छित हो गया। फिर उठकर लंबी साँस लेते और जिह्वाओंसे मुँह चाटते हुए नागोंमें श्रेष्ठ बलवान् कालियने अपने सौ फण फैलाकर विषैले दाँतोंसे गरुड़को वेगपूर्वक डँस लिया॥ ९-१०॥

तब दिव्य वाहन गरुड़ने उसे चोंचमें पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा और पाँखोंसे बारंबार पीटना आरम्भ किया। गरुड़की चोंचसे निकलकर सर्पने उनके दोनों पंजोंको आवेष्टित कर लिया और बारंबार फुंकार करते हुए उनकी पाँखोंको खींचना आरम्भ किया॥ ११-१२॥

उस समय उनकी पाँखसे दो पक्षी उत्पन्न हुए—नीलकण्ठ और मयूर। मिथिलेश्वर! आश्विन शुक्ला दशमीको उन पक्षियोंका दर्शन पवित्र एवं सम्पूर्ण मनो-वाञ्छित फलोंका देनेवाला माना गया है॥ १३-१४॥

कुपितो गरुडस्तं वै नीत्वा तुण्डेन कालियम्।
निपात्य भूम्यां सहसा तत्तनुं विचकर्ष ह॥ १५

तदा दुद्राव तत्तुण्डात्कालियो भयविह्वलः।
तमन्वधावत्सहसा पक्षिराट् चण्डविक्रमः॥ १६

सप्तद्वीपान् सप्तखण्डान्सप्तसिन्धूंस्ततः फणी।
यत्र यत्र गतस्तार्क्ष्यं तत्र तत्र ददर्श ह॥ १७

भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं प्रगतः फणी।
महर्लोकं ततो धावञ्जनलोकं जगाम ह॥ १८

यत्रैव गरुडे प्राप्तेऽधोऽधो लोकं पुनर्गतः।
श्रीकृष्णस्य भयात्केऽपि रक्षां तस्य न सन्दधुः॥ १९

कुत्रापि न सुखे जाते कालियोऽपि भयातुरः।
जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिके॥ २०

नत्वा प्रणम्य तं शेषं परिक्रम्य कृताञ्जलिः।
दीनो भयातुरः प्राह दीर्घपृष्ठः प्रकम्पितः॥ २१

कालिय उवाच

हे भूमिभर्तर्भुवनेश भूमन्
भूभारहृत्त्वं ह्यसि भूरिलीलः।
मां पाहि पाहि प्रभविष्णुपूर्णः
परात्परस्त्वं पुरुषः पुराणः॥ २२

श्रीनारद उवाच

दीनं भयातुरं दृष्ट्वा कालियं श्रीफणीश्वरः।
वाचा मधुरया प्रीणन् प्राह देवो जनार्दनः॥ २३

शेष उवाच

हे कालिय महाबुद्धे शृणु मे परमं वचः।
कुत्रापि न हि ते रक्षा भविष्यति न संशयः॥ २४

आसीत्पुरा मुनिः सिद्धः सौभरिर्नाम नामतः।
वृन्दारण्ये तपस्तप्तो वर्षाणामयुतं जले॥ २५

मीनराजविहारं यो वीक्ष्य गेहस्पृहोऽभवत्।
स उवाह महाबुद्धिर्मान्धातुस्तनुजाशतम्॥ २६

तस्मै ददौ हरिः साक्षात्परां भागवतीं श्रियम्।
वीक्ष्य तां नृपमान्धाता विस्मितोऽभूद्गतस्मयः॥ २७

रोषसे भरे हुए गरुड़ने पुनः कालियको चोंचसे पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया और सहसा वे उसके शरीरको घसीटने लगे। तब भयसे विह्वल हुआ कालिय गरुड़की चोंचसे छूटकर भागा। प्रचण्ड पराक्रमी पक्षिराज गरुड़ भी सहसा उसका पीछा करने लगे॥ १५-१६॥

सात द्वीपों, सात खण्डों और सात समुद्रोंतक वह जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ उसने गरुड़को पीछा करते देखा। वह नाग भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और महर्लोकमें क्रमशः जा पहुँचा और वहाँसे भागता हुआ जनलोकमें पहुँच गया॥ १७-१८॥

जहाँ जाता, वहीं गरुड़ भी पहुँच जाते। इसलिये वह पुनः नीचे-नीचेके लोकोंमें क्रमशः गया; किंतु श्रीकृष्ण (भगवान् विष्णु)-के भयसे किसीने उसकी रक्षा नहीं की। जब उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिली, तब भयसे व्याकुल कालिय देवाधिदेव शेषके चरणोंके निकट गया और भगवान् शेषको प्रणाम करके परिक्रमापूर्वक हाथ जोड़ विशाल पृष्ठवाला कालिय दीन, भयातुर और कम्पित होकर बोला॥ १९—२१॥

कालियने कहा—भूमिभर्ता भुवनेश्वर! भूमन्! भूमि-भारहारी प्रभो! आपकी लीलाएँ अपार हैं, आप सर्वसमर्थ पूर्ण परात्पर पुराणपुरुष हैं; मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ २२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—कालियको दीन और भयातुर देख फणीश्वरदेव जनार्दनने मधुर वाणीसे उसको प्रसन्न करते हुए कहा—॥ २३॥

शेष बोले—महामते कालिय! मेरी उत्तम बात सुनो। इसमें संदेह नहीं कि संसारमें कहीं भी तुम्हारी रक्षा नहीं होगी। (रक्षाका एक ही उपाय है; उसे बताता हूँ, सुनो—) पूर्वकालमें सौभरि नामसे प्रसिद्ध एक सिद्ध मुनि थे। उन्होंने वृन्दावनमें यमुनाके जलमें रहकर दस हजार वर्षोंतक तपस्या की॥ २४-२५॥

उस जलमें मीनराजका विहार देखकर उनके मनमें भी घर बसानेकी इच्छा हुई। तब उन महाबुद्धि महर्षिने राजा मान्धाताकी सौ पुत्रियोंके साथ विवाह किया। श्रीहरिने उन्हें परम ऐश्वर्यशालिनी वैष्णवी सम्पत्ति प्रदान की, जिसे देखकर राजा मान्धाता आश्चर्यचकित हो गये और उनका धनविषयक सारा अभिमान जाता रहा॥ २६-२७॥

यमुनान्तर्जले दीर्घं सौभरेस्तपतस्तपः।
पश्यतस्तस्य गरुडो मीनराजं जघान ह॥ २८

मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दुःखहा दीनवत्सलः।
तस्मै शापं ददौ क्रुद्धः सौभरिर्मुनिसत्तमः॥ २९

सौभरिरुवाच

मीनानद्यतनादत्र यद्यत्सि त्वं बलाद्विराट्।
तदैव प्राणनाशस्ते भूयान्मे शापतस्त्वरम्॥ ३०

शेष उवाच

तद्दिनात्तत्र नायाति गरुडः शापविह्वलः।
तस्मात्कालिय गच्छाशु वृन्दारण्ये हरेर्वने॥ ३१

कालिन्द्यां च निजं वासं कुरु मद्वाक्यनोदितः।
निर्भयस्ते भयं तार्क्ष्यान्न भविष्यति कर्हिचित्॥ ३२

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तः कालियो भीतः सकलत्रः सपुत्रकः।
कालिन्द्यां वासकृद्राजन् श्रीकृष्णेन विवासितः॥ ३३

यमुनाके जलमें जब सौभरिमुनिकी दीर्घकालिक तपस्या चल रही थी, उन्हीं दिनों उनके देखते-देखते गरुड़ने मीनराजको मार डाला। मीन-परिवारको अत्यन्त दुखी देखकर दूसरोंका दुःख दूर करनेवाले दीनवत्सल मुनिश्रेष्ठ सौभरिने कुपित हो गरुड़को शाप दे दिया॥ २८-२९॥

सौभरि बोले—पक्षिराज! आजके दिनसे लेकर भविष्यमें यदि तुम इस कुण्डके भीतर बलपूर्वक मछलियोंको खाओगे तो मेरे शापसे उसी क्षण तुरंत तुम्हारे प्राणोंका अन्त हो जायगा॥ ३०॥

शेषजी कहते हैं—उस दिनसे मुनिके शापसे भयभीत हुए गरुड़ वहाँ कभी नहीं आते। इसलिये कालिय! तुम मेरे कहनेसे शीघ्र ही श्रीहरिके विपिन—वृन्दावनमें चले जाओ। वहाँ यमुनामें निर्भय होकर अपना निवास नियत कर लो। वहाँ कभी तुम्हें गरुड़से भय नहीं होगा॥ ३१-३२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! शेषनागके यों कहनेपर भयभीत कालिय अपने स्त्री-बालकोंके साथ कालिन्दीमें निवास करने लगा। फिर श्रीकृष्णने ही उसे यमुनाजलसे निकालकर बाहर भेजा॥ ३३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे कालियोपाख्यानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'कालियके उपाख्यानका वर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

श्रीराधाका गवाक्षमार्गसे श्रीकृष्णके रूपका दर्शन करके प्रेम-विह्वल होना; ललिताका श्रीकृष्णसे राधाकी दशाका वर्णन करना और उनकी आज्ञाके अनुसार लौटकर श्रीराधाको श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थ सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देना

श्रीनारद उवाच

इदं मया ते कथितं कालियस्यापि मर्दनम्।
श्रीकृष्णचरितं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १

बहुलाश्व उवाच

श्रीकृष्णस्य कथां श्रुत्वा भक्तस्तृप्तिं न याति हि।
यथामरः सुधां पीत्वा यथालिः पद्मकर्णिकाम्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] यह मैंने तुमसे कालिय-मर्दनरूप पवित्र श्रीकृष्ण-चरित्र कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ १॥

बहुलाश्व बोले—देवर्षे! जैसे देवता अमृत पीकर तथा भ्रमर कमल-कर्णिकाका रस लेकर तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी कथा सुनकर कोई भी भक्त तृप्त नहीं होता (वह उसे अधिकाधिक सुनना चाहता है)॥ २॥

रासं कर्तुं हरौ जाते शिशुरूपे महात्मनि।
भाण्डीरे देववागाह श्रीराधां खिन्नमानसाम्॥ ३

शोचं मा कुरु कल्याणि वृन्दारण्ये मनोहरे।
मनोरथस्ते भविता श्रीकृष्णेन महात्मना॥ ४

जब शिशुरूपधारी परमात्मा श्रीकृष्ण रास करनेके लिये भाण्डीरवनमें गये और उनका यह लघुरूप देखकर श्रीराधा मन-ही-मन खेद करने लगीं, तब देववाणीने कहा—'कल्याणि! सोच न करो। मनोहर वृन्दावनमें महात्मा श्रीकृष्णके द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा'॥ ३-४॥

इत्थं देवगिरा प्रोक्तो मनोरथमहार्णवः।
कथं बभूव भगवान् वृन्दारण्ये मनोहरे॥ ५

कथं श्रीराधया सार्धं रासक्रीडां मनोहराम्।
चकार वृन्दकारण्ये परिपूर्णतमः स्वयम्॥ ६

देववाणीद्वारा इस प्रकार कहा गया वह मनोरथका महासागर किस तरह पूर्ण हुआ और उस मनोहर वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्ण किस रूपमें प्रकट हुए? उस वृन्दा-विपिनमें साक्षात् परिपूर्णतम भगवान्ने श्रीराधाके साथ मनोहर रास-क्रीड़ा किस प्रकार की?॥ ५-६॥

श्रीनारद उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन् भगवच्चरितं शुभम्।
गुप्तं वदामि देवैश्च लीलाख्यानं मनोहरम्॥ ७

एकदा मुख्यसख्यौ द्वे विशाखाललिते शुभे।
वृषभानोर्गृहं प्राप्य तां राधां जग्मतू रहः॥ ८

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं उस मङ्गलमय भगवच्चरित्रका, उस मनोहर लीलाख्यानका, जो देवताओंको भी पूर्णतया ज्ञात नहीं है, वर्णन करता हूँ। एक दिनकी बात है, श्रीराधाकी दो प्रधान सखियाँ, शुभस्वरूपा ललिता और विशाखा, वृषभानुके घर पहुँचकर एकान्तमें श्रीराधासे मिलीं॥ ७-८॥

सख्यावूचतुः

यं चिन्तयसि राधे त्वं यद्गुणं वदसि स्वतः।
सोऽपि नित्यं समायाति वृषभानुपुरेऽर्भकैः॥ ९

प्रेक्षणीयस्त्वया राधे दर्शनीयोऽतिसुन्दरः।
पश्चिमायां निशीथिन्यां गोचारणविनिर्गतः॥ १०

सखियाँ बोलीं—राधे! तुम जिनका चिन्तन करती हो और स्वतः जिनके गुण गाती रहती हो, वे भी प्रतिदिन ग्वाल-बालोंके साथ वृषभानुपुरमें आते हैं। राधे! तुम्हें रातके पिछले पहरमें, जब वे गो-चारणके लिये निकलते हैं, उनका दर्शन करना चाहिये। वे बड़े सुन्दर हैं॥ ९-१०॥

राधोवाच

लिखित्वा तस्य चित्रं हि दर्शयाशु मनोहरम्।
तर्हि तत्प्रेक्षणं पश्चात्करिष्यामि न संशयः॥ ११

राधा बोलीं—पहले उनका मनोहर चित्र बनाकर तुम शीघ्र मुझे दिखाओ, उसके बाद मैं उनका दर्शन करूँगी—इसमें संशय नहीं है॥ ११॥

श्रीनारद उवाच

अथ सख्यौ व्यलिखतां चित्रं नन्दशिशोः शुभम्।
नवयौवनमाधुर्यं राधायै ददतुस्त्वरम्॥ १२

तद्दृष्ट्वा हर्षिता राधा कृष्णदर्शनलालसा।
चित्रं करे प्रपश्यन्ती सुष्वापानन्दसङ्कुला॥ १३

ददर्श कृष्णं भवने शयाना
घनप्रभं पीतपटं दधानम्।
भाण्डीरदेशे यमुनां समेत्य
नृत्यन्तमाराद् वृषभानुपुत्री॥ १४

श्रीनारदजी कहते हैं—तब दोनों सखियोंने नन्द-नन्दनका सुन्दर चित्र बनाया, जिसमें नूतन यौवनका माधुर्य भरा था। वह चित्र उन्होंने तुरंत श्रीराधाके हाथमें दिया। वह चित्र देखकर श्रीराधा हर्षसे खिल उठीं और उनके हृदयमें श्रीकृष्णदर्शनकी लालसा जाग उठी। हाथमें रखे हुए चित्रको निहारती हुई वे आनन्दमग्न होकर सो गयीं। भवनमें सोती हुई श्रीराधाने स्वप्नमें देखा—'यमुनाके किनारे भाण्डीरवनके एक देशमें नीलमेघकी-सी कान्तिवाले पीतपटधारी श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण मेरे निकट ही नृत्य कर रहे हैं।'॥ १२—१४॥

तदैव राधा शयनात्समुत्थिता
परस्य कृष्णस्य वियोगविह्वला।
सञ्चिन्तयन्ती कमनीयरूपिणं
मेने त्रिलोकीं तृणवद्विदेहराट्॥ १५

तर्ह्यावव्रजन्तं स्ववनाद् व्रजेश्वरं
सङ्कोचवीथ्यां वृषभानुपत्तने।
गवाक्षमेत्याशु सखीप्रदर्शितं
दृष्ट्वा तु मूर्च्छां समवाप सुन्दरी॥ १६

कृष्णोऽपि दृष्ट्वा वृषभानुनन्दिनीं
सुरूपकौशल्ययुतां गुणाश्रयाम्।
कुर्वन्मनो रन्तुमतीव माधवो
लीलातनुः स प्रययौ स्वमन्दिरम्॥ १७

एवं ततः कृष्णवियोगविह्वलां
प्रभूतकामज्वरखिन्नमानसाम् ।
संवीक्ष्य राधां वृषभानुनन्दिनी-
मुवाच वाचं ललिता सखीवरा॥ १८

ललितोवाच

कथं त्वं विह्वला राधे मूर्च्छितातिव्यथां गता।
यदीच्छसि हरिं सुभ्रु तस्मिन् स्नेहं दृढं कुरु॥ १९

लोकस्यापि सुखं सर्वमधिकृत्यास्ति साम्प्रतम्।
दुःखाग्निर्हृत्प्रदहति कुम्भकाराग्निवच्छुभे॥ २०

श्रीनारद उवाच

ललितायाश्च ललितं वचः श्रुत्वा व्रजेश्वरी।
नेत्रे उन्मील्य ललितां प्राह गद्गदया गिरा॥ २१

राधोवाच

व्रजालङ्कारचरणौ न प्राप्तौ यदि मे किल।
कदाचिद्विग्रहं तर्हि न हि स्वं धारयाम्यहम्॥ २२

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या ललिता भयविह्वला।
श्रीकृष्णपार्श्वं प्रययौ कृष्णातीरे मनोहरे॥ २३

माधवीजालसंयुक्ते मधुपध्वनिसङ्कुले।
कदम्बमूले रहसि प्राह चैकाकिनं हरिम्॥ २४

विदेहराज! उसी समय श्रीराधाकी नींद टूट गयी और वे शय्यासे उठकर, परमात्मा श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल हो, उन्हींके कमनीय रूपका चिन्तन करती हुई त्रिलोकीको तृणवत् मानने लगीं। इतनेमें ही व्रजेश श्रीनन्दनन्दन अपने भवनसे चलकर वृषभानु-नगरकी सँकरी गलीमें आ गये। सखीने तत्काल खिड़कीके पास आकर श्रीराधाको उनका दर्शन कराया। उन्हें देखते ही सुन्दरी श्रीराधा मूर्च्छित हो गयीं॥ १५-१६॥

लीलासे मानव-शरीर धारण करनेवाले माधव श्रीकृष्ण भी सुन्दर रूप और वैदग्ध्यसे युक्त गुणनिधि श्रीवृषभानु-नन्दिनीका दर्शन करके मन-ही-मन उनके साथ विहारकी अत्यधिक कामना करते हुए अपने भवनको लौटे। वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधाको इस प्रकार श्रीकृष्ण-वियोगसे विह्वल तथा अतिशय कामज्वरसे संतप्तचित्त देखकर सखियोंमें श्रेष्ठ ललिताने उनसे इस प्रकार कहा— ॥ १७-१८॥

ललिताने पूछा—राधे! तुम क्यों इतनी विह्वल, मूर्च्छित (बेसुध) और अत्यन्त व्यथित हो? सुन्दरी! यदि श्रीहरिको प्राप्त करना चाहती हो तो उनके प्रति अपना स्नेह दृढ़ करो। वे इस समय त्रिलोकीके भी सम्पूर्ण सुखपर अधिकार किये बैठे हैं। शुभे! वे ही दुःखाग्निकी ज्वालाको बुझा सकते हैं। उनकी उपेक्षा पैरोंसे ठुकरायी हुई कुम्हारके आँवेंकी अग्निके समान हृदयदाहक होगी॥ १९-२०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! ललिताकी यह ललित बात सुनकर व्रजेश्वरी श्रीराधाने आँखें खोलीं और अपनी उस प्रिय सखीसे वे गद्गद वाणीमें यों बोलीं— ॥ २१॥

राधाने कहा—सखी! यदि मुझे व्रजभूषण श्यामसुन्दरके चरणारविन्द नहीं प्राप्त हुए तो मैं कदापि अपने शरीरको नहीं धारण करूँगी—यह मेरा निश्चय है॥ २२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[मिथिलेश्वर!] श्रीराधाकी यह बात सुनकर ललिता भयसे विह्वल हो, यमुनाके मनोहर तटपर श्रीकृष्णके पास गयी। वे माधवीलताके जालसे आच्छन्न और भ्रमरोंकी गुंजारोंसे व्याप्त एकान्त प्रदेशमें कदम्बकी जड़के पास अकेले बैठे थे। वहाँ ललिताने श्रीहरिसे कहा— ॥ २३-२४॥

यस्मिन् दिने च ते रूपं राधया दृष्टमद्भुतम्।
तद्दिनात्स्तम्भतां प्राप्ता पुत्रिकेव न वक्ति किम्॥ २५

अलङ्कारस्त्वर्चिरिव वस्त्रं भर्जरजो यथा।
सुगन्धिः कटुवद्यस्या मन्दिरं निर्जनं वनम्॥ २६

पुष्पं बाणं चन्द्रबिम्बं विषकन्दमवेहि भोः।
तस्यै सन्दर्शनं देहि राधायै दुःखनाशनम्॥ २७

ते साक्षिणः किं विदितं न भूतले
सृजस्यलं पासि हरस्यथो जगत्।
यदा समानोऽसि जनेषु सर्वतः
तथापि भक्तान् भजसे परेश्वर॥ २८

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा हरिः साक्षाल्ललितं ललितावचः।
उवाच भगवान् देवो मेघगम्भीरया गिरा॥ २९

श्रीभगवानुवाच

सर्वं हि भावं मनसः परात्परं
न ह्येकतो भामिनि जायते ततः।
प्रेमैव कर्तव्यमतो मयि स्वतः
प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किञ्चित्॥ ३०

यथा हि भाण्डीरवने मनोरथो
बभूव तस्या हि तथा भविष्यति।
अहैतुकं प्रेम च सद्भिराश्रितं
तच्चापि सन्तः किल निर्गुणं विदुः॥ ३१

[ललिता बोली—] श्यामसुन्दर! जिस दिनसे श्रीराधाने तुम्हारे अद्भुत मोहनरूपको देखा है, उसी दिनसे वह स्तम्भनरूप सात्त्विकभावके अधीन हो गयी है। काठकी पुतलीकी भाँति किसीसे कुछ बोलती नहीं। अलंकार उसे अग्निकी ज्वालाकी भाँति दाहक प्रतीत होते हैं। सुन्दर वस्त्र भाड़की तपी हुई बालूके समान जान पड़ते हैं। उसके लिये हर प्रकारकी सुगन्ध कड़वी तथा परिचारिकाओंसे भरा हुआ भवन भी निर्जन वन हो गया है। हे प्यारे! तुम यह जान लो कि तुम्हारे विरहमें मेरी सखीको फूल बाण-सा तथा चन्द्र-बिम्ब विषकंद-सा प्रतीत होता है। अतः श्रीराधाको तुम शीघ्र दर्शन दो। तुम्हारा दर्शन ही उसके दुःखोंको दूर कर सकता है॥ २५—२७॥

तुम सबके साक्षी हो। भूतलपर कौन-सी ऐसी बात है, जो तुम्हें विदित न हो। तुम्हीं इस जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करते हो। यद्यपि परमेश्वर होनेके कारण तुम सब लोगोंके प्रति समानभाव रखते हो, तथापि अपने भक्तोंका भजन करते हो (उनके प्रति अधिक प्रेम-भाव रखते हो)॥ २८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! ललिताकी यह ललित बात सुनकर व्रजके साक्षात् देवता भगवान् श्रीकृष्ण मेघगर्जनके समान गम्भीर वाणीमें बोले—॥ २९॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—भामिनि! मनका सारा भाव स्वतः एकमात्र मुझ परात्पर पुरुषोत्तमकी ओर नहीं प्रवाहित होता; अतः सबको अपनी ओरसे मेरे प्रति प्रेम ही करना चाहिये। इस भूतलपर प्रेमके समान दूसरा कोई साधन नहीं है (मैं प्रेमसे ही सुलभ होता हूँ)। भाण्डीरवनमें श्रीराधाके हृदयमें जैसे मनोरथका उदय हुआ था, वह उसी रूपमें पूर्ण होगा। सत्पुरुष अहैतुक प्रेमका आश्रय लेते हैं। संत, महात्मा उस निर्हेतुक प्रेमको निश्चय ही निर्गुण (तीनों गुणोंसे अतीत) मानते हैं॥ ३०-३१॥

ये राधिकायां मयि केशवे मनाग्
भेदं न पश्यन्ति हि दुग्धशौक्ल्यवत्।
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति त-
द्ध्यहैतुकस्फूर्जितभक्तिलक्षणाः॥ ३२

ये राधिकायां मयि केशवे हरौ
कुर्वन्ति भेदं कुधियो जना भुवि।
ते कालसूत्रे प्रपतन्ति दुःखिता
रम्भोरु यावत्किल चन्द्रभास्करौ॥ ३३

श्रीनारद उवाच

इत्थं श्रुत्वा वचः कृत्स्नं नत्वा तं ललिता सखी।
राधां समेत्य रहसि प्राह प्रहसितानना॥ ३४

ललितोवाच

त्वमिच्छसि यथा कृष्णं तथा त्वां मधुसूदनः।
युवयोर्भेदरहितं तेजस्त्वेकं द्विधा जनैः॥ ३५

तथापि देवि कृष्णाय कर्म निष्कारणं कुरु।
येन ते वाञ्छितं भूयाद्भक्त्या परमया सति॥ ३६

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा सखीवाक्यं राधा रासेश्वरी नृप।
चन्द्राननां प्राह सखीं सर्वधर्मविदां वराम्॥ ३७

श्रीराधोवाच

श्रीकृष्णस्य प्रसन्नार्थं परं सौभाग्यवर्धनम्।
महापुण्यं वाञ्छितदं पूजनं वद कस्यचित्॥ ३८

त्वया भद्रे धर्मशास्त्रं गर्गाचार्यमुखाच्छ्रुतम्।
तस्माद्व्रतं पूजनं वा ब्रूहि मह्यं महामते॥ ३९

जो मुझ केशवमें और श्रीराधिकामें थोड़ा-सा भी भेद नहीं देखते, बल्कि दूध और उसकी शुक्लताके समान हम दोनोंको सर्वथा अभिन्न मानते हैं, उन्हींके अन्तःकरणमें अहैतुकी भक्तिके लक्षण प्रकट होते हैं तथा वे ही मेरे ब्रह्मपद (गोलोकधाम)-में प्रवेश पाते हैं। रम्भोरु! इस भूतलपर जो कुबुद्धि मानव मुझ केशव हरिमें तथा श्रीराधिकामें भेदभाव रखते हैं, वे जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक निश्चय ही कालसूत्र नामक नरकमें पड़कर दुःख भोगते हैं॥ ३२-३३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णकी यह सारी बात सुनकर ललिता सखी उन्हें प्रणाम करके श्रीराधाके पास गयी और एकान्तमें बोली। बोलते समय उसके मुखपर मधुर हासकी छटा छा रही थी॥ ३४॥

ललिताने कहा—सखी! जैसे तुम श्रीकृष्णको चाहती हो, उसी तरह वे मधुसूदन श्रीकृष्ण भी तुम्हारी अभिलाषा रखते हैं। तुम दोनोंका तेज भेद-भावसे रहित, एक है। लोग अज्ञानवश ही उसे दो मानते हैं। तथापि सती-साध्वी देवि! तुम श्रीकृष्णके लिये निष्काम कर्म करो, जिससे पराभक्तिके द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो॥ ३५-३६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! [ललिता] सखीकी यह बात सुनकर रासेश्वरी श्रीराधाने सम्पूर्ण धर्म-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ चन्द्रानना सखीसे कहा—॥ ३७॥

श्रीराधा बोलीं—[सखी!] तुम श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये किसी देवताकी ऐसी पूजा बताओ, जो परम सौभाग्यवर्द्धक, महान् पुण्यजनक तथा मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाली हो। भद्रे! महामते! तुमने गर्गाचार्यजीके मुखसे धर्मशास्त्रचर्चा सुनी है। इसलिये तुम मुझे कोई व्रत या पूजन बताओ॥ ३८-३९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे राधाकृष्णप्रेमोद्योगवर्णन नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीराधाकृष्णके प्रेमोद्योगका वर्णन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

तुलसीका माहात्म्य, श्रीराधाद्वारा तुलसीसेवन-व्रतका अनुष्ठान तथा दिव्य तुलसीदेवीका प्रत्यक्ष प्रकट हो श्रीराधाको वरदान देना

श्रीनारद उवाच

राधावाक्यं ततः श्रुत्वा राजन् सर्वसखीवरा।
चन्द्रानना प्रत्युवाच संविचार्य क्षणं हृदि॥ १

चन्द्राननोवाच

परं सौभाग्यदं राधे महापुण्यं वरप्रदम्।
श्रीकृष्णस्यापि लब्ध्यर्थं तुलसीसेवनं मतम्॥ २

दृष्टा स्पृष्टाऽथवा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता।
रोपिता सिञ्चिता नित्यं पूजिता तुलसीष्टदा॥ ३

नवधा तुलसीभक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने।
युगकोटिसहस्राणि ते यान्ति सुकृतं शुभे॥ ४

यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैः शुभैः।
रोपिता तुलसी मर्त्यैर्वर्धते वसुधातले॥ ५

तेषां वंशेषु ये जाता गतास्ते वै सुरालये।
आकल्पयुगसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे॥ ६

यत्फलं सर्वपत्रेषु सर्वपुष्पेषु राधिके।
तुलसीदलेन चैकेन सर्वदा प्राप्यते तु तत्॥ ७

तुलसीप्रभवैः पत्रैर्यो नरः पूजयेद्धरिम्।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ ८

सुवर्णभारशतकं रजतं यच्चतुर्गुणम्।
तत्फलं समवाप्नोति तुलसीवनपालनात्॥ ९

तुलसीकाननं राधे गृहे यस्यावतिष्ठति।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि न यान्ति यमकिङ्कराः॥ १०

सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम्।
रोपयन्ति नराः श्रेष्ठास्ते न पश्यन्ति भास्करिम्॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधाकी बात सुनकर समस्त सखियोंमें श्रेष्ठ चन्द्राननाने अपने हृदयमें एक क्षणतक कुछ विचार किया, फिर इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १॥

चन्द्रानना बोलीं—राधे! परमसौभाग्यदायक, महान् पुण्यजनक तथा श्रीकृष्णकी भी प्राप्तिके लिये वरदायक व्रत है—तुलसीकी सेवा। मेरी रायमें तुलसी-सेवनका ही नियम तुम्हें लेना चाहिये; क्योंकि तुलसीका दर्शन, स्पर्श अथवा ध्यान, नाम-कीर्तन, नमन, स्तवन, आरोपण, सेचन और नित्य पूजन किया जाय तो वह महान् पुण्यप्रद होता है। शुभे! [इस प्रकार] जो प्रतिदिन तुलसीकी उपर्युक्त नौ प्रकारसे भक्ति करते हैं, वे कोटि सहस्र युगोंतक अपने उस सुकृत्यका उत्तम फल भोगते हैं॥ २—४॥

मनुष्योंकी लगायी हुई तुलसी जबतक शाखा, प्रशाखा, बीज, पुष्प और सुन्दर दलोंके साथ पृथ्वीपर बढ़ती रहती है, तबतक उनके वंशमें जो-जो जन्म लेते हैं और जो मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं, वे सब उन आरोपण करनेवाले मनुष्योंके साथ दो हजार कल्पोंतक श्रीहरिके धाममें निवास करते हैं॥ ५-६॥

राधिके! सम्पूर्ण पत्रों और पुष्पोंको भगवान्के चरणोंमें चढ़ानेसे जो फल मिलता है, वह सदा एकमात्र तुलसीदलके अर्पणसे प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य तुलसीदलोंसे श्रीहरिकी पूजा करता है, वह जलमें पद्म-पत्रकी भाँति पापसे कभी लिप्त नहीं होता॥ ७-८॥

सौ भार सुवर्ण तथा चार सौ भार रजतके दानका जो फल है, वही तुलसीवनके पालनसे मनुष्यको प्राप्त हो जाता है। राधे! जिसके घरमें तुलसीका वन या बगीचा होता है, उसका वह घर तीर्थरूप है। वहाँ यमराजके दूत कभी नहीं जाते। जो श्रेष्ठ मानव सर्वपापहारी, पुण्यजनक तथा मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले तुलसीवनका रोपण करते हैं, वे कभी सूर्यपुत्र यमको नहीं देखते॥ ९—११॥

रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ।
तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसञ्चितम् ॥ १२

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
वासुदेवादयो देवा वसन्ति तुलसीदले ॥ १३

तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान् विमुञ्चति ।
यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥ १४

तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः ।
तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥ १५

तुलसीविपिनच्छाया यत्र यत्र भवेच्छुभे ।
तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ १६

तुलस्याः सखि माहात्म्यमादिदेवश्चतुर्मुखः ।
न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ १७

श्रीकृष्णचन्द्रचरणे तुलसीं चन्दनैर्युताम् ।
यो ददाति पुमान् स्त्री वा यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥ १८

तुलसीसेवनं नित्यं कुरु त्वं गोपकन्यके ।
श्रीकृष्णो वश्यतां याति येन वा सर्वदैव हि ॥ १९

श्रीनारद उवाच

इत्थं चन्द्राननावाक्यं श्रुत्वा रासेश्वरी नृप ।
तुलसीसेवनं साक्षादारेभे हरितोषणम् ॥ २०

केतकीवनमध्ये च शतहस्तं सुवर्तुलम् ।
उच्चैर्हेमखचिद्भित्तिपद्मरागतटं शुभम् ॥ २१

हरिद्धीरकमुक्तानां प्राकारेण महोल्लसत् ।
सर्वतस्तोलिकायुक्तं चिन्तामणिसुमण्डितम् ॥ २२

हेमध्वजसमायुक्तमुत्तोरणविराजितम् ।
हैमैर्वितानैः परितो वैजयन्तमिव स्फुरत् ॥ २३

एतादृशं श्रीतुलसीमन्दिरं सुमनोहरम् ।
तन्मध्ये तुलसीं स्थाप्य हरित्पल्लवशोभिताम् ॥ २४

अभिजिन्नामनक्षत्रे तत्सेवां सा चकार ह ।
समाहूतेन गर्गेण दिष्टेन विधिना सती ॥ २५

रोपण, पालन, सेचन, दर्शन और स्पर्श करनेसे तुलसी मनुष्योंके मन, वाणी और शरीरद्वारा संचित समस्त पापोंको दग्ध कर देती है। पुष्कर आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदियाँ तथा वासुदेव आदि देवता तुलसीदलमें सदा निवास करते हैं। जो तुलसीकी मञ्जरी सिरपर रखकर प्राण-त्याग करता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त क्यों न हो, यमराज उसकी ओर देख भी नहीं सकते ॥ १२—१४ ॥

जो मनुष्य तुलसी-काष्ठका घिसा हुआ चन्दन लगाता है, उसके शरीरको यहाँ क्रियमाण पाप भी नहीं छूता। शुभे! जहाँ-जहाँ तुलसीवनकी छाया हो, वहाँ-वहाँ पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ दिया हुआ श्राद्ध-सम्बन्धी दान अक्षय होता है ॥ १५-१६ ॥

सखी! आदिदेव चतुर्मुख ब्रह्माजी भी शार्ङ्गधन्वा श्रीहरिके माहात्म्यकी भाँति तुलसीके माहात्म्यको भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं। जो स्त्री अथवा पुरुष भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें चन्दनयुक्त तुलसीपत्र अर्पित करता है, वह पूर्वोक्त फल प्राप्त करता है। अतः गोपनन्दिनि! तुम भी प्रतिदिन तुलसीका सेवन करो, जिससे श्रीकृष्ण सदा ही तुम्हारे वशमें रहें ॥ १७—१९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! इस प्रकार चन्द्राननाकी कही हुई बात सुनकर रासेश्वरी श्रीराधाने साक्षात् श्रीहरिको संतुष्ट करनेवाले तुलसी-सेवनका व्रत आरम्भ किया। केतकीवनमें सौ हाथ गोलाकार भूमिपर बहुत ऊँचा और अत्यन्त मनोहर श्रीतुलसीका मन्दिर बनवाया, जिसकी दीवार सोनेसे जड़ी थी और किनारे-किनारे पद्मरागमणि लगी थी। वह सुन्दर मन्दिर पन्ने, हीरे और मोतियोंके परकोटेसे अत्यन्त सुशोभित था तथा उसके चारों ओर परिक्रमाके लिये गली बनायी गयी थी, जिसकी भूमि चिन्तामणिसे मण्डित थी ॥ २०—२२ ॥

बहुत ऊँचा तोरण (मुख्यद्वार या गोपुर) उस मन्दिरकी शोभा बढ़ाता था। वहाँ सुवर्णमय ध्वजदण्डसे युक्त पताका फहरा रही थी। चारों ओर ताने हुए सुनहले वितानों (चँदोवों)-के कारण वह तुलसी-मन्दिर वैजयन्ती पताकासे युक्त इन्द्रभवन-सा देदीप्यमान था। ऐसे तुलसी-मन्दिरके मध्यभागमें हरे पल्लवोंसे सुशोभित तुलसीकी स्थापना करके श्रीराधाने अभिजित् मुहूर्तमें उनकी सेवा प्रारम्भ की। श्रीगर्गजीको बुलाकर

श्रीकृष्णतोषणार्थाय भक्त्या परमया सती।
इषपूर्णां समारभ्य चैत्रपूर्णावधि व्रतम्॥ २६

कृत्वा न्यषिञ्चद्दुग्धेन तथा चेक्षुरसेन वै।
द्राक्षयाम्ररसेनापि सितया बहुमिश्रया॥ २७

पञ्चामृतेन तुलसीं मासे मासे पृथक् पृथक्।
उद्यापनं समारेभे वैशाखप्रतिपद्दिने॥ २८

गर्गादिष्टेन विधिना वृषभानुसुता नृप।
षट्पञ्चाशत्तमैर्भोगैर्ब्राह्मणानां द्विलक्षकम्॥ २९

सन्तर्प्य वस्त्रभूषाद्यैर्दक्षिणां राधिका ददौ।
दिव्यानां स्थूलमुक्तानां लक्षभारं विदेहराट्॥ ३०

कोटिभारं सुवर्णानां गर्गाचार्याय सा ददौ।
शतभारं सुवर्णानां मुक्तानाञ्च तथैव हि॥ ३१

भक्त्या परमया राधा ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥
तन्मन्दिरोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ३२

तदाविरासीत्तुलसी हरिप्रिया
सुवर्णपीठोपरिशोभितासना।
चतुर्भुजा पद्मपलाशवीक्षणा
श्यामा स्फुरद्धेमकिरीटकुण्डला॥ ३३

पीताम्बराच्छादितसर्पवेणी-
स्रजं दधाना नववैजयन्तीम्।
खगात्समुत्तीर्य च रङ्गवल्लीं
चुचुम्ब राधां परिरभ्य बाहुभिः॥ ३४

तुलस्युवाच

अहं प्रसन्नास्मि कलावतीसुते
त्वद्भक्तिभावेन जिता निरन्तरम्।
कृतं च लोकव्यवहारसङ्ग्रहा-
त्त्वया व्रतं भामिनि सर्वतोमुखम्॥ ३५

उनकी बतायी हुई विधिसे सती श्रीराधाने बड़े भक्तिभावसे श्रीकृष्णको संतुष्ट करनेके लिये आश्विन शुक्ला पूर्णिमासे लेकर चैत्र पूर्णिमातक तुलसी-सेवन-व्रतका अनुष्ठान किया॥ २३—२६॥

व्रत आरम्भ करके उन्होंने प्रतिमास पृथक्-पृथक् रससे तुलसीको सींचा। कार्तिकमें दूधसे, मार्गशीर्षमें ईखके रससे, पौषमें द्राक्षारससे, माघमें बारहमासी आमके रससे, फाल्गुन मासमें अनेक वस्तुओंसे मिश्रित मिश्रीके रससे और चैत्र मासमें पञ्चामृतसे उसका सेचन किया। नरेश्वर! इस प्रकार व्रत पूरा करके वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाने गर्गजीकी बतायी हुई विधिसे वैशाख कृष्णा प्रतिपदाके दिन उद्यापनका उत्सव किया। उन्होंने दो लाख ब्राह्मणोंको छप्पन भोगोंसे तृप्त करके वस्त्र और आभूषणोंके साथ दक्षिणा दी। विदेहराज! मोटे-मोटे दिव्य मोतियोंका एक लाख भार और सुवर्णका एक कोटि भार श्रीगर्गाचार्यजीको दिया। साथ ही राधाजीने परम श्रद्धाके साथ प्रत्येक ब्राह्मणको सौ-सौ भार मोती और सुवर्ण प्रदान किया। उस समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, अप्सराओंका नृत्य होने लगा और देवतालोग उस तुलसी-मन्दिरके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ २७—३२॥

उसी समय सुवर्णमय सिंहासनपर विराजमान हरिप्रिया तुलसीदेवी प्रकट हुईं। उनके चार भुजाएँ थीं। कमलदलके समान विशाल नेत्र थे। सोलह वर्षकी-सी अवस्था एवं श्याम कान्ति थी। मस्तकपर हेममय किरीट प्रकाशित था और कानोंमें काञ्चनमय कुण्डल झलमला रहे थे। पीताम्बरसे आच्छादित केशोंकी बँधी हुई नागिन-जैसी वेणीमें वैजयन्ती माला धारण किये, गरुडसे उतरकर तुलसीदेवीने रङ्गवल्ली-जैसी श्रीराधाको अपनी भुजाओंसे अङ्कमें भर लिया और उनके मुखचन्द्रका चुम्बन किया॥ ३३-३४॥

तुलसी बोलीं—कलावती-कुमारी राधे! मैं तुम्हारे भक्ति-भावसे वशीभूत हो निरन्तर प्रसन्न हूँ। भामिनि! तुमने केवल लोकसंग्रहकी भावनासे इस सर्वतोमुखी व्रतका अनुष्ठान किया है (वास्तवमें तो तुम पूर्णकाम हो)॥ ३५॥

मनोरथस्ते सफलोऽत्र भूयाद्
बुद्धीन्द्रियैश्चित्तमनोभिरग्रतः ।
सदानुकूलत्वमलं पतेः परं
सौभाग्यमेवं परिकीर्तनीयम्॥ ३६

यहाँ इन्द्रिय, मन, बुद्धि और चित्तद्वारा जो-जो मनोरथ तुमने किया है, वह सब तुम्हारे सम्मुख सफल हो। पति सदा तुम्हारे अनुकूल हों और इसी प्रकार कीर्तनीय परम सौभाग्य बना रहे॥ ३६॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदन्तीं तुलसीं हरिप्रियां
नत्वाथ राधा वृषभानुनन्दिनी।
प्रत्याह गोविन्दपदारविन्दयोः
भक्तिर्भवेन्मे विदिता ह्यहैतुकी॥ ३७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहती हुई हरिप्रिया तुलसीको प्रणाम करके वृषभानुनन्दिनी राधाने उनसे कहा—'देवि! गोविन्दके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे'॥ ३७॥

तथास्तु चोक्त्वा तुलसी हरिप्रिया-
थान्तर्दधे मैथिलराजसत्तम।
तदैव राधा वृषभानुनन्दिनी
प्रसन्नचित्ता स्वपुरे बभूव ह॥ ३८

मैथिलराजशिरोमणे! तब हरिप्रिया तुलसी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं। तबसे वृषभानुनन्दिनी राधा अपने नगरमें प्रसन्न-चित्त रहने लगीं॥ ३८॥

श्रीराधिकाख्यानमिदं विचित्रं
शृणोति यो भक्तिपरः पृथिव्याम्।
त्रैवर्ग्यभावं मनसा समेत्य
राजंस्ततो याति नरः कृतार्थताम्॥ ३९

राजन्! इस पृथ्वीपर जो मनुष्य भक्ति-परायण हो श्रीराधिकाके इस विचित्र उपाख्यानको सुनता है, वह मन-ही-मन त्रिवर्ग-सुखका अनुभव करके अन्तमें भगवान्‌को पाकर कृतकृत्य हो जाता है॥ ३९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे तुलसीपूजनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'तुलसीपूजन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका गोपदेवीके रूपसे वृषभानु-भवनमें जाकर श्रीराधासे मिलना

श्रीबहुलाश्व उवाच

राधाकृष्णस्य चरितं शृण्वतो मे मनो मुने।
न तृप्तिं याति शरदः पङ्कजे भ्रमरा यथा॥ १

रासेश्वर्या कृष्णपत्न्या तुलसीसेवने कृते।
यद्‌बभूव ततो ब्रह्मंस्तन्मे ब्रूहि तपोधन॥ २

राजा बहुलाश्व बोले—मुने! श्रीराधाकृष्णके चरित्रको सुनते-सुनते मेरा मन अघाता नहीं—ठीक उसी तरह जैसे शरद्‌ऋतुके प्रफुल्ल कमलका रसपान करते समय भ्रमरोंको तृप्ति नहीं होती। ब्रह्मन्! तपोधन! श्रीकृष्णपत्नी रासेश्वरीद्वारा तुलसी-सेवनका व्रत पूर्ण कर लिये जानेके बाद जो वृत्तान्त घटित हुआ, वह मुझे सुनाइये॥ १-२॥

श्रीनारद उवाच

राधिकायाश्च विज्ञाय तुलसीसेवने तपः।
प्रीतिं परीक्षञ्छ्रीकृष्णो वृषभानुपुरं ययौ॥ ३

अद्भुतं गोपिकारूपं चलज्झङ्कारनूपुरम्।
किङ्किणीघण्टिकाशब्दमङ्गुलीयकभूषितम् ॥ ४

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! श्रीराधिकाकी तुलसी-सेवाके निमित्त की गयी तपस्याको जानकर, उनकी प्रीतिकी परीक्षा लेनेके लिये एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण वृषभानुपुरमें गये। उस समय उन्होंने अद्भुत गोपाङ्गनाका रूप धारण कर लिया था। चलते समय उनके पैरोंसे नूपुरोंकी मधुर झनकार हो रही थी। कटिकी करधनीमें लगी हुई क्षुद्रघण्टिकाओंकी भी

रत्नकङ्कणकेयूरमुक्ताहारविराजितम् ।
बालार्कताटङ्कलसत्कबरीपाशकौशलम् ॥ ५

नासामौक्तिकदिव्याभं श्यामकुन्तलसङ्कुलम्।
धृत्वासौ वृषभानोश्च मन्दिरं सन्ददर्श ह॥ ६

प्राकारपरिखायुक्तं चतुर्द्वारसमन्वितम्।
करीन्द्रैः कज्जलाकारैर्द्वारि द्वारि मनोहरम्॥ ७

वायुवेगैर्मनोवेगैश्चित्रवर्णैस्तुरङ्गमैः ।
हारचामरसंयुक्तैः प्रोल्लसन्मण्डपाजिरम्॥ ८

गवां गणैः सवत्सैश्च वृषैर्धर्मधुरन्धरैः।
गोपाला यत्र गायन्ते वंशीवेत्रधरा नृप॥ ९

वृषभानुवरस्यैवं पश्यन् मन्दिरकौशलम्।
मायायुवतिवेषोऽसौ ततो ह्यन्तःपुरं ययौ॥ १०

यत्र कोटिरविस्फूर्जत्कपाटस्तम्भपङ्क्तयः।
रत्नाजिरेषु शोभन्ते ललनारत्नसंयुताः॥ ११

वीणातालमृदङ्गादीन् वादयन्त्यो मनोहराः।
पुष्पयष्टिसमायुक्ता गायन्त्यो राधिकागुणम्॥ १२

तस्मिन्नन्तःपुरे दिव्यं भ्राजच्चोपवनं महत्।
दाडिमीकुन्दमन्दारनिम्बून्नतद्रुमावृतम् ॥ १३

केतकीमालतीवृन्दैर्माधवीभिर्विराजितम् ।
तत्र राधानिकुञ्जोऽस्ति कल्पवृक्षसुगन्धिभृत्॥ १४

पतन्ति यत्र भ्रमरा मधुमत्ता नृपेश्वर।
गन्धाक्तः शीतलो वायुर्मन्दगामी वहत्यलम्॥ १५

मधुर खनखनाहट सुनायी पड़ती थी। अङ्गुलियोंमें मुद्रिकाओंकी अपूर्व शोभा थी॥ ३-४॥

कलाइयोंमें रत्नजटित कंगन, बाँहोंमें भुजबंद तथा कण्ठ एवं वक्षःस्थलमें मोतियोंके हार शोभा दे रहे थे। बालरविके समान दीप्तिमान् शीशफूलसे सुशोभित केश-पाशोंकी वेणी-रचनामें अपूर्व कुशलताका परिचय मिलता था। नासिकामें मोतीकी बुलाक हिल रही थी। शरीरकी दिव्य आभा स्निग्ध अलकोंके समान ही श्याम थी। ऐसा रूप धारण करके श्रीहरिने वृषभानुके मन्दिरको देखा॥ ५-६॥

खाई और परकोटोंसे युक्त वह वृषभानु-भवन चार दरवाजोंसे सुशोभित था तथा प्रत्येक द्वारपर काजलके समान वर्णवाले गजराज झूमते थे, जिससे उस राजभवनकी मनोहरता बढ़ गयी थी। उस मण्डपका प्राङ्गण वायु तथा मनके समान वेगशाली एवं हार और चँवरोंसे सुसज्जित विचित्र वर्णवाले अश्वोंसे शोभा पा रहा था॥ ७-८॥

नरेश्वर! सवत्सा गौओंके समुदाय तथा धर्मधुरंधर वृषभवृन्दसे भी उस भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी। बहुत-से गोपाल वहाँ वंशी और बेंत धारण किये गीत गा रहे थे। मायामयी युवतीका वेष धारण किये श्याम-सुन्दर उस प्राङ्गणसे अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुए॥ ९-१०॥

जहाँ कोटि सूर्योंके समान कान्तिमान् कपाटों और खंभोंकी पंक्तियाँ प्रकाश फैला रही थीं। वहाँके रत्न-मण्डित आँगनोंमें बहुत-सी रत्नस्वरूपा ललनाएँ सुशोभित हो रही थीं। वीणा, ताल और मृदङ्ग आदि बाजे बजाती हुई वे मनोहारिणी गोप-सुन्दरियाँ फूलोंकी छड़ी लिये श्रीराधिकाके गुण गा रही थीं॥ ११-१२॥

उस अन्तःपुरमें दिव्य एवं विशाल उपवनकी छटा छा रही थी। उसके भीतर अनार, कुन्द, मन्दार, नींबू तथा अन्य ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लहलहा रहे थे। केतकी, मालती और माधवी लताएँ उस उपवनको सुशोभित करती थीं। वहीं श्रीराधाका निकुञ्ज था, जिसमें कल्पवृक्षके पुष्पोंकी सुगन्ध भरी थी॥ १३-१४॥

नृपेश्वर! उस उपवनमें मधु पीकर मतवाले हुए भौंरे टूट पड़ते थे। वहाँ शीतल मन्द-सुगन्ध वायु चल

सहस्रदलपद्मानां रजो विक्षेपयन्मुहुः।
पुंस्कोकिलाः कोकिलाश्च मयूराः सारसाः शुकाः॥ १६

कूजन्ते मधुरं नादं निकुञ्जशिखरेषु च।
पुष्पशय्यासहस्राणि जलकुल्याः सहस्रशः॥ १७

प्रोच्छलन्ति स्फुरत्स्फारा यत्र वै मेघमन्दिरे।
बालार्ककुण्डलधराश्चित्रवस्त्राम्बराननाः ॥ १८

वर्तन्ते कोटिशो यत्र सख्यस्तत्कर्मकौशलाः।
तन्मध्ये राधिका राज्ञी भ्रमन्ती मन्दिराजिरे॥ १९

काश्मीरपङ्कसंयुक्ते सूक्ष्मवस्त्रविराजिते।
शिलाम्बुपुष्पक्षितिजदलैरागुल्फपूरके ॥ २०

मालतीमकरन्दानां क्षरद्भिर्बिन्दुभिर्वृते।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशा तन्वी कोमलविग्रहा।
शनैः शनैः पादपद्मं चालयन्ती च कोमलम्॥ २१

समागतां तां मणिमन्दिराजिरे
ददर्श राधा वृषभानुनन्दिनी।
यत्तेजसा तल्ललना हृतत्विषो
जातास्त्वरं चन्द्रमसेव तारकाः॥ २२

विज्ञाय तद्गौरवमुत्तमं मह-
दुत्थाय दोर्भ्यां परिरभ्य राधिका।
दिव्यासने स्थाप्य सुलोकरीत्या
जलादिकं चार्हणमारभच्छुभम्॥ २३

श्रीराधोवाच

स्वागतं ते सखि शुभे नामधेयं वदाशु मे।
भूरिभाग्यं ममैवाद्य भवत्यागतया स्वतः॥ २४

त्वत्समानं दिव्यरूपं दृश्यते न हि भूतले।
यत्र त्वं वर्तसे सुभ्रु पत्तनं धन्यमेव तत्॥ २५

रही थी, जो सहस्रदल कमलोंके परागको बारंबार बिखेरा करती थी। उस उद्यानमें निकुञ्ज शिखरोंपर बैठे हुए नर-कोकिल, मादा-कोकिल, मोर, सारस और शुक पक्षी मीठी आवाजमें कूज रहे थे। वहाँ फूलोंकी सहस्रों शय्याएँ सज्जित थीं और पानीकी हजारों नहरें बह रही थीं॥ १५—१७॥

वहाँके मेघमन्दिरमें सैकड़ों फुहारे छूट रहे थे। बाल-सूर्यके समान कान्तिमान् कुण्डल तथा विचित्र वर्णवाले वस्त्र धारण किये करोड़ों सुन्दरमुखी सखियाँ वहाँ श्रीराधाके सेवा-कार्यमें अपनी कुशलताका परिचय देती थीं। उनके बीचमें श्रीराधिका रानी उस राजमन्दिरके प्रांगणमें टहल रही थीं। वह राजमन्दिर केसरिया रंगके सूक्ष्म वस्त्रोंसे सजाया गया था। वहाँकी भूमिपर पर्वतीय पुष्प, जलज पुष्प तथा स्थलपर होनेवाले बहुत-से पुष्प और कोमल पल्लव इतनी अधिक संख्यामें बिछाये गये थे कि वहाँ पाँव रखनेपर गुल्फ (घुट्ठी)-तकका भाग ढक जाता था॥ १८—२०॥

मालतीके मकरन्दोंकी बूँदें वहाँ झरती रहती थीं। ऐसे आँगनमें करोड़ों चन्द्रोंके समान कान्तिमती, कोमलाङ्गी एवं कृशाङ्गी श्रीराधा धीरे-धीरे अपने कोमल चरणारविन्दोंका संचालन करती हुई घूम रही थीं। मणि-मन्दिरके आँगनमें आयी हुई उस नवीना गोप-सुन्दरीको वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाने देखा। उसके तेजसे वहाँकी समस्त ललनाएँ हतप्रभ हो गयीं, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे ताराओंकी कान्ति फीकी पड़ जाती है। उसके उत्तम एवं महान् गौरवका अनुभव करके श्रीराधाने अभ्युत्थान दिया (अगवानी की) और दोनों बाँहोंसे उसका गाढ़ आलिङ्गन करके उसे दिव्य सिंहासनपर बिठाया। फिर लोकरीतिके अनुसार जल आदि उपचार अर्पित करके उसका सुन्दर पूजन (आदर-सत्कार) आरम्भ किया॥ २१—२३॥

श्रीराधा बोलीं—सुन्दरी सखी! तुम्हारा स्वागत है। मुझे शीघ्र ही अपना नाम बताओ। तुम स्वतः आज यहाँ आ गयीं, यह मेरे लिये ही महान् सौभाग्यकी बात है। इस भूतलपर तुम्हारे समान दिव्य रूपका कहीं दर्शन नहीं होता। सुभ्रु! जहाँ तुम-जैसी सुन्दरी निवास करती हैं, वह नगर निश्चय ही धन्य है॥ २४-२५॥

वद देवि सविस्तारं हेतुमागमनस्य च।
मम योग्यं च यत्कार्यं वक्तव्यं तत्त्वया खलु॥ २६

कटाक्षेण सुदीप्त्या च वचसा सुस्मितेन वै।
गत्याकृत्या श्रीपतिवद्दृश्यते साम्प्रतं मया॥ २७

नित्यं शुभे मे मिलनार्थमाव्रज
न चेत्स्वसङ्केतमलं विधेहि।
येनैव सङ्गो विधिना भवेद्धि
विधिर्भवत्या स सदा विधेयः॥ २८

अयि त्वदात्मातिपरं प्रियो मे
त्वदाकृतिः श्रीव्रजराजनन्दनः।
येनैव मे देवि हृतं तु चेत-
स्त्वया ननान्देव वधूर्दधामि तम्॥ २९

श्रीनारद उवाच

एवं राधावचः श्रुत्वा मायायुवतिवेषधृक्।
उवाच भगवान् कृष्णो राधां कमललोचनाम्॥ ३०

श्रीभगवानुवाच

रम्भोरु नन्दनगरे नन्दगेहस्य चोत्तरे।
गोकुले वसतिर्मेऽस्ति नाम्नाहं गोपदेवता॥ ३१

त्वद्रूपगुणमाधुर्यं श्रुतं मे ललितामुखात्।
तद्द्रष्टुं चञ्चलापाङ्गि त्वद्गृहेऽहं समागता॥ ३२

श्रीमल्लवङ्गलतिकास्फुटमोदिनीनां
गुञ्जानिकुञ्जमधुपध्वनिकञ्जपुञ्जम्।
दृष्टं श्रुतं नवनवं तव कञ्जनेत्रे
दिव्यं पुरन्दरपुरेऽपि न यत्समानम्॥ ३३

श्रीनारद उवाच

एवं तयोर्मेलनं तद्बभूव मिथिलेश्वर।
प्रीतिं परस्परं कृत्वा वने तत्र विरेजतुः॥ ३४

हसन्त्यौ ते च गायन्त्यौ पुष्पकन्दुकलीलया।
पश्यन्त्यौ वनवृक्षांश्च चेरतुर्मैथिलेश्वर॥ ३५

देवि! अपने आगमनका कारण विस्तारपूर्वक बताओ। मेरे योग्य जो कार्य हो, वह तुम्हें अवश्य कहना चाहिये। तुम अपनी बाँकी चितवन, सुन्दर दीप्ति, मधुर वाणी, मनोहर मुसकान, चाल-ढाल और आकृतिसे इस समय मुझे श्रीपतिके सदृश दिखायी देती हो॥ २६-२७॥

शुभे! तुम प्रतिदिन मुझसे मिलनेके लिये आया करो। यदि न आ सको तो मुझे ही अपने निवासस्थानका संकेत प्रदान करो। जिस विधिसे हमारा तुम्हारे साथ मिलना सम्भव हो, वह विधि तुम्हें सदा उपयोगमें लानी चाहिये। हे सखी! तुम्हारा यह शरीर मुझे बहुत प्यारा लगता है; क्योंकि मेरे प्रियतम श्रीव्रजराजनन्दनकी आकृति तुम्हारी ही जैसी है, जिन्होंने मेरे मनको हर लिया है। अतः हे देवि! तुम मेरे पास रहो। जैसे भौजाई अपनी ननदको प्यार करती है, उसी प्रकार मैं तुम्हारा आदर करूँगी॥ २८-२९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर मायासे युवतीका वेष धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने कमलनयनी राधासे इस प्रकार कहा—॥ ३०॥

श्रीभगवान् बोले—रम्भोरु! नन्दनगर गोकुलमें नन्दभवनसे उत्तर दिशामें मेरा निवास है। मेरा नाम 'गोपदेवी' है। मैंने ललिताके मुखसे तुम्हारी रूपमाधुरी और गुण-माधुरीका वर्णन सुना है; अतः हे चञ्चल लोचनोंवाली सुन्दरी! मैं तुम्हें देखनेके लिये यहाँ तुम्हारे घरमें चली आयी हूँ। कमललोचने! जहाँ ललित लवङ्गलताकी सुस्पष्ट सुगन्ध छा रही है, जहाँके गुञ्जा-निकुञ्जमें मधुपोंकी मधुर ध्वनिसे युक्त कंजपुष्प खिल रहे हैं, वह श्रुतिपथमें आया हुआ तुम्हारा नित्य-नूतन दिव्य नगर आज अपनी आँखों देख लिया। इसके समान सुन्दर तो देवराज इन्द्रकी पुरी अमरावती भी नहीं होगी॥ ३१—३३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! इस प्रकार दोनों प्रिया-प्रियतमका मिलन हुआ। वे परस्पर प्रीतिका परिचय देते हुए वहाँ उपवनमें शोभा पाने लगे। पुष्पमय कन्दुक (गेंद)-के खेल खेलते हुए वे दोनों हँसते और गीत गाते थे। वनके वृक्षोंको देखते हुए वे इधर-उधर विचरने लगे॥ ३४-३५॥

कलाकौशलसम्पन्नां राधां कमललोचनाम्।
गिरा मधुरया राजन् प्राहेदं गोपदेवता॥ ३६

राजन्! कला-कौशलसे सम्पन्न कमललोचना राधाको सम्बोधित करके गोपदेवीने मधुर वाणीसे कहा— ॥ ३६ ॥

गोपदेवतोवाच

दूरे वै नन्दनगरं सन्ध्या जाता व्रजेश्वरि।
प्रभाते चागमिष्यामि त्वत्सकाशं न संशयः॥ ३७

गोपदेवी बोली—व्रजेश्वरि! नन्दनगर यहाँसे दूर है और अब संध्या हो गयी है, अतः जाती हूँ। कल प्रातः-काल तुम्हारे पास आऊँगी, इसमें संशय नहीं है॥ ३७॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचस्तस्य तु तद्व्रजेश्वरी
निक्षिप्य सद्यो नयनाम्बुसन्ततिम्।
रोमाञ्चहर्षोद्गमभावसंवृता
रम्भेव भूमौ पतिता मरुद्धता॥ ३८

शङ्कागतास्तत्र सखीगणास्त्वरं
सुवीजयन्त्यो व्यजनैर्व्यवस्थिताः।
श्रीखण्डपुष्पद्रवचर्चितांशुकां
जगाद राधां नृप गोपदेवता॥ ३९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! गोपदेवीकी यह बात सुनकर व्रजेश्वरी श्रीराधाके नयनोंसे तत्काल आँसुओंकी धारा बह चली। वे रोमाञ्च तथा हर्षोद्गमके भावसे आवृत हो कटे हुए कदलीवृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं। यह देख वहाँ सखियाँ सशङ्क हो गयीं और तुरंत व्यजन लेकर, पास खड़ी हो, हवा करने लगीं। उनके वस्त्रोंपर चन्दन-पुष्पोंके इत्र छिड़के गये। उस समय गोपदेवीने श्रीराधासे कहा॥ ३८-३९॥

गोपदेवतोवाच

प्रभात आगमिष्यामि मा शोकं कुरु राधिके।
गोश्च भ्रातुर्गोरसस्य शपथो मे न चेदिदम्॥ ४०

गोपदेवी बोली—राधिके! मैं प्रात:काल अवश्य आऊँगी, तुम चिन्ता न करो। यदि ऐसा न हो तो मुझे गाय, गोरस और अपने भाईकी सौगन्ध है॥ ४०॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा हरी राधां समाश्वास्य नृपेश्वर।
मायायुवतिवेषोऽसौ ययौ श्रीनन्दगोकुलम्॥ ४१

श्रीनारदजी कहते हैं—नृपेश्वर! यों कहकर मायासे युवतीका वेष धारण करनेवाले श्रीहरि राधाको धीरज बँधाकर श्रीनन्दगोकुल (नन्दगाँव)-में चले गये॥ ४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे श्रीराधाकृष्णसङ्गमो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीराधा-कृष्ण-संगम' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा गोपदेवीरूपसे श्रीराधाके प्रेमकी परीक्षा तथा श्रीराधाको श्रीकृष्णका दर्शन

श्रीनारद उवाच

अथ रात्र्यां व्यतीतायां मायायोषिद्वपुर्हरिः।
राधादुःखप्रशान्त्यर्थं वृषभानोर्गृहं ययौ॥ १

राधा तमागतं वीक्ष्य समुत्थायातिहर्षिता।
दत्तासना विधानेन पूजयामास मैथिल॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! तदनन्तर रात व्यतीत होनेपर मायासे नारीका रूप धारण करनेवाले श्रीहरि श्रीराधाका दुःख शान्त करनेके लिये वृषभानु-भवनमें गये। उन्हें आया देखकर श्रीराधा उठकर बड़े हर्षके साथ भीतर लिवा ले गयीं और आसन देकर विधि-विधानके साथ उनका पूजन किया॥ १-२॥

श्रीराधोवाच

त्वया विनाहं निशि दुःखितासं
त्वय्यागतायां सखि लब्धवस्तुवत्।
पूर्वं ह्यपथ्यस्य सुखं यथा ततो
दुःखं तथा भामिनि सत्प्रसङ्गतः॥ ३

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाथ तद्वाक्यं विमना गोपदेवता।
न किञ्चिदूचे श्रीराधां दुःखितेव व्यवस्थिता॥ ४

विज्ञाय खेदसम्पन्नां राधिका गोपदेवताम्।
सखीभिः संविचार्याथ जगाद स्नेहतत्परा॥ ५

श्रीराधोवाच

विमनास्त्वं कथं भद्रे वद मां गोपदेवते।
मात्रा भर्त्रा ननान्द्रा वा श्वश्र्वा क्रोधेन भर्त्सिता॥ ६

सपत्नीकृतदोषेण स्वभर्तुर्विरहेण वा।
अन्यत्र लग्नचित्तेन विमनाः किं मनोहरे॥ ७

मार्गखेदेन वा कच्चिद्विह्वलाभूद्रुजाथवा।
शीघ्रं वद महाभागे स्वस्य दुःखस्य कारणम्॥ ८

कृष्णभक्तमृते विप्रं येन केनापि कुत्सितम्।
कथितं तेऽथ रम्भोरु तच्चिकित्सां करोम्यहम्॥ ९

गजाश्वादीनि रत्नानि वस्त्राणि च धनानि च।
मन्दिराणि विचित्राणि गृहाण त्वं यदीच्छसि॥ १०

धनं दत्त्वा तनुं रक्षेत्तनुं दत्त्वा त्रपां व्यधात्।
धनं तनुं त्रपां दद्यान्मित्रकार्यार्थमेव हि।
धनं दत्त्वा च सततं रक्षेत्प्राणान्निरन्तरम्॥ ११

यो मित्रतां निष्कपटं करोति
निष्कारणं धन्यतमः स एव।
विधाय मैत्रीं कपटं विदध्या-
त्तं लम्पटं हेतुपटुं नटं धिक्॥ १२

श्रीराधा बोलीं—सखी! तुम्हारे बिना मैं रातभर बहुत दुखी रही और तुम्हारे आ जानेसे मुझे इतनी प्रसन्नता हुई है, मानो कोई खोयी हुई वस्तु मिल गयी हो। जैसे कुपथ्य-सेवनसे पहले तो सुख मालूम होता है, किंतु पीछे दुःख भोगना पड़ता है, इसी तरह सत्सङ्गसे भी पहले सुख होता है और पीछे वियोगका दुःख उठाना पड़ता है॥ ३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] श्रीराधाकी यह बात सुनकर गोपदेवी अनमनी हो गयीं। वे श्रीराधासे कुछ भी नहीं बोलीं। किसी दुःखिनीकी भाँति चुपचाप बैठी रहीं। गोपदेवीको खिन्न जानकर श्रीराधिकाने सखियोंके साथ विचार करके, स्नेहतत्पर हो, इस प्रकार कहा—॥ ४-५॥

श्रीराधा बोलीं—गोपदेवि! तुम अनमनी क्यों हो गयीं? कल्याणि! मुझे इसका कारण बताओ। माता, पति, ननद अथवा सासने कुपित होकर तुम्हें फटकारा तो नहीं है? मनोहरे! किसी सौतके दोषसे या अपने पतिके वियोगसे अथवा अन्यत्र चित्त लग जानेसे तो तुम्हारा मन खिन्न नहीं हुआ है? क्या कारण है? महाभागे! रास्ता चलनेकी थकावटसे या शरीरमें कोई रोग हो जानेसे तो तुम्हें खेद नहीं हुआ है? अपने दुःखका कारण शीघ्र बताओ॥ ६—८॥

रम्भोरु! किसी कृष्ण-भक्त या ब्राह्मणको छोड़कर दूसरे जिस-किसीने भी तुमसे कोई कुत्सित बात कह दी हो तो मैं उसकी चिकित्सा करूँगी (उसे दण्ड दूँगी)। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हाथी, घोड़े आदि वाहन, नाना प्रकारके रत्न, वस्त्र, धन और विचित्र भवन मुझसे ग्रहण करो॥ ९-१०॥

धन देकर शरीरकी रक्षा करे, शरीरका भी उत्सर्ग करके लाजकी रक्षा करे तथा मित्रके कार्यकी सिद्धिके लिये तन, धन और लज्जाको भी अर्पित कर दे। धन देकर निरन्तर प्राणोंकी रक्षा करे। जो बिना किसी कारण या कामनाके निश्छलभावसे मित्रताका निर्वाह करता है, वही मनुष्य परम धन्य है। जो मैत्री स्थापित करके कपट करता है, उस स्वार्थ-साधनमें पटु लम्पट नटको धिक्कार है॥ ११-१२॥

तस्याः प्रेमवचः श्रुत्वा भगवान् गोपदेवता।
प्रहसन्नाह राजेन्द्र श्रीराधां कीर्तिनन्दिनीम्॥ १३

गोपदेवतोवाच

राधे बृहत्सानुगिरेस्तटीषु
सङ्कोचवीथीषु मनोहरासु।
यान्तीं स्वतो मां दधिविक्रयार्थं
रुरोध मार्गे नवनन्दपुत्रः॥ १४
वंशीधरो वेत्रकरः करे मां
त्वरं गृहीत्वा प्रहसन् विलज्जः।
मह्यं करादानधनाय दानं
देहीति जल्पन् विपिने रसज्ञः॥ १५
तुभ्यं न दास्यामि कदापि दानं
स्वयम्भुवे गोरसलम्पटाय।
एवं मयोक्ते वचनेऽथ भाण्डं
नीत्वा विशीर्णीकृतवान् स दध्नः॥ १६
भाण्डं स भित्वा दधि किञ्च पीत्वा
नीत्वोत्तरीयं मम चेदुरीयम्।
नन्दीश्वराद्रेर्विदिशं जगाम
तेनाहमाराद्विमनाः स्म जाता॥ १७
जात्या स गोपः किल कृष्णवर्णोऽ-
धनी न वीरो न हि शीलरूपः।
यस्मिंस्त्वया प्रेम कृतं सुशीले
त्यजाशु निर्मोहिनमद्य कृष्णम्॥ १८
इत्थं सवैरं परुषं वचस्त-
च्छ्रुत्वा च राधा वृषभानुनन्दिनी।
सुविस्मिता वाक्यपदे सरस्वती-
पदं स्मरन्ती निजगाद तां प्रति॥ १९

श्रीराधोवाच

यत्प्राप्तये विधिहरप्रमुखास्तपन्ति
वह्नौ तपः परमया निजयोगरीत्या।
दत्तः शुकः कपिल आसुरिरङ्गिरा यत्-
पादारविन्दमकरन्दरजः स्पृशन्ति॥ २०
तं कृष्णमादिपुरुषं परिपूर्णदेवं
लीलावतारमजमार्तिहरं जनानाम्।
भूभूरिभारहरणाय सतां शुभाय
जातं विनिन्दसि कथं सखि दुर्विनीते॥ २१

राजेन्द्र! उनका यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर गोपदेवीके रूपमें आये हुए भगवान् उन कीर्तिनन्दिनी श्रीराधासे हँसते हुए बोले— ॥ १३ ॥

गोपदेवीने कहा—राधे! वरसानुगिरिकी घाटियोंमें जो मनोहर सँकरी गली है, उसीसे होकर मैं स्वयं दही बेचने जा रही थी। इतनेमें नन्दजीके नवतरुण कुमार श्यामसुन्दरने मुझे मार्गमें रोक लिया। उनके हाथमें वंशी और बेंतकी छड़ी थी। उन रसिकशेखरने लाजको तिलाञ्जलि दे, तुरंत मेरा हाथ पकड़ लिया और जोर-जोरसे हँसते हुए, उस एकान्त वनमें वे इस प्रकार कहने लगे—'सुन्दरी! मैं कर लेनेवाला हूँ। अतः तू मुझे करके रूपमें दहीका दान दे।' मैंने कहा—'चलो, हटो। अपने-आप कर लेनेवाले बने हुए तुम-जैसे गोरस-लम्पटको मैं कदापि दान नहीं दूँगी।' मेरे इतना कहते ही उन्होंने सिरपरसे दहीका मटका उतार लिया और उसे फोड़ डाला॥ १४—१६ ॥

मटका फोड़कर थोड़ा-सा दही पीकर मेरी चादर उतार ली और नन्दीश्वर गिरिकी ईशानकोणवाली दिशाकी ओर वे चल दिये। इससे मैं बहुत अनमनी हो रही हूँ। जातका ग्वाला, काला-कलूटा रंग, न धनवान्, न वीर, न सुशील और न सुरूप? सुशीले! ऐसे पुरुषके प्रति तुमने प्रेम किया, यह ठीक नहीं। मैं कहती हूँ, तुम आजसे शीघ्र ही उस निर्मोही कृष्णको मनसे निकाल दो (उसे सर्वथा त्याग दो)। इस प्रकार वैरभावसे युक्त कठोर वचन सुनकर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको बड़ा विस्मय हुआ। वे वाक्य और पदोंके प्रयोगके सम्बन्धमें सरस्वतीके चरणोंका स्मरण करती हुई उनसे बोलीं— ॥ १७—१९ ॥

श्रीराधाने कहा—सखी! जिनकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मा और शिव आदि प्रमुख देवता अपनी उत्कृष्ट योगरीतिसे पञ्चाग्निसेवनपूर्वक तप करते हैं; दत्तात्रेय, शुक, कपिल, आसुरि और अङ्गिरा आदि भी जिनके चरणारविन्दोंके मकरन्द और परागका सादर स्पर्श करते हैं; उन्हीं अजन्मा, परिपूर्ण देवता, लीलावतारधारी, सर्वजनदुःखहारी, भूतल-भूरि-भार-हरणकारी तथा सत्पुरुषोंके कल्याणके लिये यहाँ प्रकट हुए आदिपुरुष श्रीकृष्णकी निन्दा कैसे करती हो? तुम तो बड़ी ढीठ जान पड़ती हो॥ २०-२१ ॥

गाः पालयन्ति सततं रजसो गवां च
गङ्गां स्पृशन्ति च जपन्ति गवां सुनाम्नाम्।
प्रेक्षन्त्यहर्निशमलं सुमुखं गवां च
जातिः परा न विदिता भुवि गोपजातेः॥ २२

तत्कृष्णवर्णविलसत्सुकलां समीक्ष्य
तस्मिन् विलग्नमनसा सुमुखं विहाय।
उन्मत्तवद्व्रजति धावति नीलकण्ठो
बिभ्रत्कपर्दविषभस्मकपालसर्पान्॥ २३

स्वर्लोकसिद्धमुनियक्षमरुद्‌गणानां
पालाः समस्तनरकिन्नरनागनाथाः।
यत्पादपद्ममनिशं प्रणिपत्य भक्त्या
लब्धश्रियः किल बलिं प्रददुः स्म तस्मै॥ २४

वत्साघकालियबकार्जुनधेनुकाना-
माचक्रवातशकटासुरपूतनानाम् ।
एषां वधः किमुत तस्य यशो मुरारे-
र्यः कोटिशोऽण्डनिचयोद्भवनाशहेतुः॥ २५

भक्तात्प्रियो न विदितः पुरुषोत्तमस्य
शम्भुर्विधिर्न च रमा न च रौहिणेयः।
भक्ताननुव्रजति भक्तिनिबद्धचित्त-
श्चूडामणिः सकललोकजनस्य कृष्णः॥ २६

गच्छन्निजं जनमनु प्रपुनाति लोका-
नावेदयन् हरिजने स्वरुचिं महात्मा।
तस्मादतीव भजतां भगवान् मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति न कदापि सुभक्तियोगम्॥ २७

ग्वाले सदा गौओंका पालन करते हैं, गोरजकी गङ्गामें नहाते हैं, उसका स्पर्श करते हैं तथा गौओंके उत्तम नामोंका जप करते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें दिन-रात गौओंके सुन्दर मुखका दर्शन होता है। मेरी समझमें तो इस भूतलपर गोप-जातिसे बढ़कर दूसरी कोई जाति ही नहीं है। तुम उसे काला-कलूटा बताती हो; किंतु उन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी श्याम-विभासे विलसित सुन्दर कलाका दर्शन करके उन्हींमें मन लग जानेके कारण भगवान् नीलकण्ठ औरोंके सुन्दर मुखको छोड़कर जटाजूट, हलाहल विष, भस्म, कपाल और सर्प धारण किये उस काले-कलूटेके लिये ही पागलोंकी भाँति व्रजमें दौड़ते फिरते हैं!॥ २२-२३॥

स्वर्गलोक, सिद्ध, मुनि, यक्ष और मरुद्गणोंके पालक तथा समस्त नरों, किंनरों और नागोंके स्वामी भी निरन्तर भक्तिभावसे जिनके चरणारविन्दोंमें प्रणिपात करके उत्कृष्ट लक्ष्मी एवं ऐश्वर्यको पाकर निश्चय ही उन्हें बलि (कर) समर्पित किया करते हैं, उनको तुम निर्धन कहती हो? वत्सासुर, अघासुर, कालियनाग, बकासुर, यमलार्जुन वृक्ष, धेनुकासुर, तृणावर्त, शकटासुर और पूतना आदिका वध (सम्भवतः तुम्हारी दृष्टिमें उनकी वीरताका परिचायक नहीं है! मेरा भी ऐसा ही मत है।) उन मुरारिके लिये क्या यश देनेवाला हो सकता है, जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-समूहोंके एकमात्र स्रष्टा और संहारक हैं?॥ २४-२५॥

उन पुरुषोत्तमके लिये भक्तसे बढ़कर कोई प्रिय हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता। शंकर, ब्रह्मा, लक्ष्मी तथा रोहिणीनन्दन बलरामजी भी उनके लिये भक्तोंसे अधिक प्रिय नहीं हैं। वे भक्तिसे बद्धचित्त होकर भक्तोंके पीछे-पीछे चलते हैं। अतः श्रीकृष्ण केवल सुशील ही नहीं, समस्त लोकोंके सुजन-समुदायके चूडामणि हैं। वे भक्तोंके पीछे चलते हुए अपने रोम-रोममें स्थित लोकोंको पवित्र करते रहते हैं। वे परमात्मा अपने भक्तजनोंके प्रति सदा ही अभिरुचि सूचित करते रहते हैं। अतः अत्यन्त भजन करनेवालोंको भगवान् मुकुन्द मुक्ति तो अनायास दे देते हैं, किंतु उत्तम भक्तियोग कदापि नहीं देते; क्योंकि उन्हें भक्तिके बन्धनमें बँधे रहना पड़ता है॥ २६-२७॥

गोपदेवतोवाच

राधे त्वदीयधिषणा धिषणं हसन्ती
वाणी श्रुतिं प्रकुशलेन विडम्बयन्ती।
अत्रागमिष्यति यदाथ हरिः परेशः
सत्यं ददाति वचनं तव देवि मन्ये॥ २८

श्रीराधोवाच

यद्यागमिष्यति यदाद्य हरिः परेशः
किं कारयामि भवतीं वद तर्हि सुभ्रु।
चेदागमो न हि भवेद्वनमालिनः स्वं
सर्वं धनं च भवनं च ददामि तुभ्यम्॥ २९

श्रीनारद उवाच

अथ राधा समुत्थाय नत्वा श्रीनन्दनन्दनम्।
उपविश्यासने दध्यौ ध्यानस्तिमितलोचना॥ ३०

उत्कण्ठितां स्वेदयुक्तां वाष्पकण्ठीं प्रियां हरिः।
अश्रुपूर्णमुखीं वीक्ष्य बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम्॥ ३१

पश्यन्तीनां सखीनां च सहसा भक्तवत्सलः।
राधां प्राह प्रसन्नात्मा मेघगम्भीरया गिरा॥ ३२

श्रीकृष्ण उवाच

रम्भोरु चन्द्रवदने व्रजसुन्दरीशे
राधे प्रिये नवलयौवनमानशीले।
उन्मील्य नेत्रमपि पश्य समागतं मां
तूर्णं त्वया मधुरया च गिरोपहूतम्॥ ३३

आगच्छ कृष्ण इति वाक्यमतः श्रुतं मे
सद्यो विसृज्य निजगोकुलगोपवृन्दम्।
वंशीवटाच्च यमुनानिकटात्प्रधावं-
स्त्वत्प्रीतयेऽथ ललनेऽत्र समागतोऽस्मि॥ ३४

मय्यागते सति गता सखिरूपिणी का
यक्ष्यासुरी सुरवधू किल किन्नरी वा।
मायावती छलयितुं भवतीं च तस्मा-
द्विश्वास एव न विधेय उरङ्गपत्न्याम्॥ ३५

गोपदेवी बोली—श्रीराधे! तुम्हारी बुद्धि बृहस्पतिका भी उपहास करती है और वाणी अपने प्रवचन-कौशलसे वेदवाणीका अनुकरण करती है। किंतु देवि! तुम्हारे बुलानेसे यदि परमेश्वर श्रीकृष्ण सचमुच यहाँ आ जायँ और तुम्हारी बातका उत्तर दें, तब मैं मान लूँगी कि तुम्हारा कथन सच है॥ २८॥

श्रीराधा बोलीं—सुभ्रु! यदि परमेश्वर श्रीकृष्ण मेरे बुलानेसे आज यहाँ आ जायँ, तब मैं तुम्हारे प्रति क्या करूँ, यह तुम्हीं बताओ। परंतु अपनी ओरसे इतना ही कह सकती हूँ कि यदि मेरे स्मरण करनेसे वनमालीका शुभागमन नहीं हुआ तो मैं अपना सारा धन और यह भवन तुम्हें दे दूँगी॥ २९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीराधा उठकर श्रीनन्दनन्दनको नमस्कार करके आसनपर बैठ गयीं और उनका ध्यान करने लगीं। उस समय उनके नेत्र ध्यानरत होनेके कारण निश्चल हो गये थे। श्रीहरिने देखा—'प्रियतमा श्रीराधा मेरे दर्शनके लिये उत्कण्ठित हैं। इनके अङ्ग-अङ्गमें स्वेद (पसीना) हो आया है, गला रुँधा है और मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली है।' यह देख अपना पुरुषरूप धारण करके भक्तवत्सल श्रीकृष्ण सखियोंके देखते-देखते सहसा वहाँ प्रकट हो गये और प्रसन्नचित्त हो घनगर्जनके समान गम्भीर वाणीमें श्रीराधासे बोले—॥ ३०—३२॥

श्रीकृष्णने कहा—रम्भोरु! चन्द्रवदने! व्रज-सुन्दरी-शिरोमणे! नूतनयौवनशालिनि! मानशीले! प्रिये राधे! तुमने अपनी मधुरवाणीसे मुझे बुलाया है, इसलिये मैं तुरंत यहाँ आ गया हूँ। अब आँख खोलकर मुझे देखो। ललने! 'प्रियतम कृष्ण! आओ'—यह वाक्य यहाँसे प्रकट हुआ और मैंने सुना। फिर उसी क्षण अपने गोकुल और गोपवृन्दको छोड़कर, वंशीवट और यमुनाके तटसे वेगपूर्वक दौड़ता हुआ तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यहाँ आ पहुँचा हूँ। मेरे आते ही कोई सखीरूपधारिणी यक्षी, आसुरी, देवाङ्गना अथवा किंनरी, जो कोई भी मायाविनी तुम्हें छलनेके लिये आयी थी, यहाँसे चल दी। अतः तुम्हें ऐसी नागिनपर विश्वास ही नहीं करना चाहिये॥ ३३—३५॥

श्रीनारद उवाच

अथ राधा हरिं दृष्ट्वा नत्वा तत्पादपङ्कजम्।
मुदमाप परं राजन् सद्यः पूर्णमनोरथा॥ ३६

एवं श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरितान्यद्भुतानि च।
यः शृणोति नरो भक्त्या स कृतार्थो भवेन्नरः॥ ३७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीराधा श्रीहरिको देखकर उनके चरण-कमलोंमें प्रणत हो परमानन्दमें निमग्न हो गयीं। उनका मनोरथ तत्काल पूर्ण हो गया। श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे अद्भुत चरित्रोंका जो भक्तिभावसे श्रवण करता है, वह मनुष्य कृतार्थ हो जाता है॥३६-३७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे श्रीकृष्णचन्द्रदर्शनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीराधाको श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

रासक्रीडाका वर्णन

बहुलाश्व उवाच

राधायै दर्शनं दत्वा कृत्वा प्रेमपरीक्षणम्।
अग्रे चकार कां लीलां भगवानात्मलीलया॥ १

राजा बहुलाश्वने पूछा—[देवर्षे!] श्रीराधाको दर्शन दे, उसके प्रेमकी परीक्षा करके, भगवान् श्रीकृष्णने अपनी लीलाशक्तिके द्वारा आगे चलकर कौन-सी लीला प्रकट की?॥ १॥

श्रीनारद उवाच

माधवो माधवे मासि माधवीभिः समाकुले।
वृन्दावने समारेभे रासं रासेश्वरः स्वयम्॥ २

वैशाखमासि पञ्चम्यां जाते चन्द्रोदये शुभे।
यमुनोपवने रेमे रासेश्वर्या मनोहरः॥ ३

पुरा मैथिल गोलोकाद्भूमिर्या कौ समागता।
सर्वा बभूव सौवर्णपद्मरागमयी त्वरम्॥ ४

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! माधव (वैशाख) मासमें माधवी लताओंसे व्याप्त वृन्दावनमें रासेश्वर माधवने स्वयं रासका आरम्भ किया। वैशाख मासकी कृष्णपक्षीया पञ्चमीको जब सुन्दर चन्द्रोदय हुआ, उस समय मनोहर श्यामसुन्दरने यमुनाके तटवर्ती उपवनमें रासेश्वरी श्रीराधाके साथ रास-विहार किया। मिथिलेश्वर! इसके पूर्व गोलोकसे जिस भूमिका पृथ्वीपर अवतरण हो चुका था, वह सब-की-सब तत्काल सुवर्ण तथा पद्मरागमणिसे मण्डित हो गयी॥ २—४॥

वृन्दावनं दिव्यवपुर्दधत्कामदुघैर्द्रुमैः।
माधवीभिर्लताभिश्च प्राक्षिपन्नन्दनं वनम्॥ ५

रत्नसोपानसम्पन्ना स्फुरत्सौवर्णतोलिका।
रराज यमुना राजन् हंसपद्मादिसङ्कुला॥ ६

वृन्दावन भी दिव्यरूप धारण करके, कामपूरक कल्पवृक्षों तथा माधवी लताओंसे समलंकृत हो, अपनी शोभासे नन्दनवनको भी तिरस्कृत करने लगा। राजन्! रत्नोंके सोपानों और सुवर्ण-निर्मित तोलिकाओं (गुमटियों)-से मण्डित तथा हंसों और कमल आदिके पुष्पोंसे व्याप्त यमुना नदीकी अपूर्व शोभा हो रही थी॥ ५-६॥

रत्नधातुमयः श्रीमद्रत्नशृङ्गस्फुरद्द्युतिः।
सपक्षिगणसंयुक्तो लतापुष्पमनोहरः॥ ७

निर्झरैः सुन्दरीभिश्च दरीभिर्भ्रमरीवृतः।
रेजे गोवर्धनो नाम गिरिराजः करीन्द्रवत्॥ ८

गिरिराज गोवर्धन गजराजके समान शोभा पाता था। जैसे गजराजके गण्डस्थलसे मदकी धाराएँ झरती हैं और उसपर भ्रमरोंकी भीड़ लगी रहती है, उसी प्रकार गिरिराजकी घाटियोंसे जलके निर्झर प्रवाहित होते थे और सुन्दरी दरियों (कन्दराओं) तथा भ्रमरियोंसे वह पर्वत व्याप्त था। वहाँ विभिन्न धातुओंकी जगह

सर्वे निकुञ्जाः परितो रेजुर्दिव्यवपुर्धराः।
सभामण्डपवीथीभिः प्राङ्गणस्तम्भपङ्क्तिभिः॥ ९

पतत्पताकैर्दिव्याभैः सौवर्णैः कलशैर्नृप।
श्वेतारुणैः पुष्पदलैः पुष्पमन्दिरवर्तिभिः॥ १०

वसन्तमाधुर्यधराः कूजत्कोकिलसारसाः।
पारावतैर्मयूरैश्च यत्र तत्र निकूजिताः॥ ११

राधाकृष्णकथां पुण्यां गायमानैर्मधुव्रतैः।
पतद्भिर्मधुमत्तैश्च कुञ्जाः सर्वे विराजिताः॥ १२

पुलिने शीतलो वायुर्मन्दगामी वहत्यलम्।
सहस्रदलपद्मानां रजो विक्षेपयन्मुहुः॥ १३

काश्चिद् गोलोकवासिन्यःकाश्चिच्छय्योपकारिकाः।
शृङ्गारप्रकराः काश्चित्काश्चिद्द्वै द्वारपालिकाः॥ १४

पार्षदाख्याः सखिजनाश्छत्रचामरपाणयः।
पुष्पाभरणकारिण्यः श्रीवृन्दावनपालिकाः॥ १५

गोवर्धननिवासिन्यः काश्चित्कुञ्जविधायिकाः।
तन्निकुञ्जनिवासिन्यो नर्तक्यो वाद्यतत्पराः॥ १६

सर्वा वै चन्द्रवदनाः किशोरवयसो नृप।
आसां द्वादशयूथाश्चाजग्मुः श्रीकृष्णसन्निधिम्॥ १७

तथैव यमुना साक्षाद्यूथीभूत्वा समाययौ।
नीलाम्बरा रत्नभूषा श्यामा कमललोचना॥ १८

नाना प्रकारके रत्न उद्भासित होते थे। उसके रत्नमय शिखरोंकी दिव्य दीप्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थी। वह पक्षियोंके कलरवसे मुखरित तथा लता-पुष्पोंसे मनोहर जान पड़ता था॥ ७-८॥

गिरिराजके चारों ओर समस्त निकुञ्ज दिव्यरूप धारण करके सुशोभित होने लगे। सभा-मण्डपोंसे मण्डित वीथियाँ, प्राङ्गण और खंभोंकी पंक्तियाँ उनकी शोभा बढ़ाने लगीं। नरेश्वर! फहराती हुई दिव्य पताकाएँ, सुवर्णमय कलश तथा पुष्पमय मन्दिरोंमें विद्यमान श्वेतारुण पुष्पदल उन निकुञ्जोंको विभूषित कर रहे थे। उन सबमें वसन्त ऋतुकी माधुरी भरी थी। वहाँ कोकिल और सारस अपने मीठे बोल सुना रहे थे। जहाँ-तहाँ सब ओर कबूतर और मोर आदि पक्षी कलरव करते थे॥ ९—११॥

श्रीराधा-कृष्णकी पुण्यमयी गाथाका गान करते हुए टूट पड़नेवाले मधुमत्त भ्रमरोंसे सभी कुञ्ज विशेष शोभा पाते थे। यमुना-पुलिनपर सहस्रदल कमलोंके पुष्प-परागको बारंबार बिखेरता हुआ शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर प्रवाहित हो रहा था॥ १२-१३॥

इसी समय बहुत-सी गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुईं। कोई गोलोकनिवासिनी थीं, कोई शय्या सजानेमें सहयोग करनेवाली थीं। कोई शृङ्गार धारण करानेकी कलामें कुशल थीं, तो कोई द्वारपालिका थीं। कुछ गोपियाँ 'पार्षद' नामधारिणी थीं, कुछ छत्र-चँवर धारण करनेवाली सखियाँ थीं, कुछ पुष्पोंके आभूषण धारण करानेवाली थीं और कुछ श्रीवृन्दावनकी रक्षामें नियुक्त थीं॥ १४-१५॥

कुछ गोवर्धनवासिनी, कुछ कुञ्जविधायिनी और कुछ निकुञ्जनिवासिनी थीं। कोई नृत्यमें निपुण और कोई वाद्य-वादनमें प्रवीण थीं। नरेश्वर! उन सबके मुख अपने सौन्दर्य-माधुर्यसे चन्द्रमाको भी लज्जित करते थे। वे सब-की-सब किशोरावस्थावाली तरुणियाँ थीं। इन सबके बारह यूथ श्रीकृष्णके समीप आये॥ १६-१७॥

इसी प्रकार साक्षात् यमुना भी अपना यूथ लिये आयीं। उनके अङ्गोंपर नीलवस्त्र शोभा पा रहे थे। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित तथा श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्था अथवा श्याम कान्तिसे युक्त) थीं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलको तिरस्कृत कर रहे थे॥ १८॥

तथैव जाह्नवी गङ्गा यूथीभूत्वा समाययौ।
श्वेताम्बरा श्वेतवर्णा मुक्ताभरणभूषिता॥ १९

तथाययौ रमा साक्षाद्यूथीभूत्वारुणाम्बरा।
चन्द्रवर्णा मन्दहासा पद्मरागविभूषिता॥ २०

तथाययौ कृष्णपत्नी नाम्ना या मधुमाधवी।
पद्मवर्णा पुष्पभूषा यूथीभूत्वा शुभाम्बरा॥ २१

तथैव विरजा साक्षाद्यूथीभूत्वा समाययौ।
हरिद्वस्त्रा गौरवर्णा रत्नालङ्कारभूषिता॥ २२

ललिताया विशाखाया माया यूथः समाययौ।
एवं त्वष्टसखीनां च सखीनां किल षोडश॥ २३

द्वात्रिंशच्च सखीनां च यूथाः सर्वे समाययुः।
रराज भगवान् राजन् स्त्रीगणै रासमण्डले॥ २४

वृन्दावने यथाकाशे चन्द्रस्तारागणैर्यथा।
पीतवासःपरिकरो नटवेषो मनोहरः॥ २५

वेत्रभृद्वादयन् वंशीं गोपीनां प्रीतिमावहन्।
मयूरपक्षभृन्मौलिः स्रग्वी कुण्डलमण्डितः॥ २६

राधया शुशुभे रासे यथा रत्या रतीश्वरः।
एवं गायन् हरिः साक्षात्सुन्दरीरागसंवृतः॥ २७

यमुनापुलिनं पुण्यमाययौ राधया युतः।
गृहीत्वा हस्तपद्मेन पद्माभं स्वप्रियाकरम्॥ २८

उन्हींकी तरह जह्नुपुत्री गङ्गा भी यूथ बाँधकर वहाँ आ पहुँचीं। उनकी अङ्गकान्ति श्वेतगौर थी। वे श्वेतवस्त्र तथा मोतीके आभूषणोंसे विभूषित थीं। वैसे ही साक्षात् रमा भी अपना यूथ लिये आयीं। उनके श्रीअङ्गोंपर अरुण वस्त्र सुशोभित थे। चन्द्रमाकी-सी अङ्गकान्ति, अधरोंपर मन्द-मन्द हासकी छटा तथा विभिन्न अङ्गोंमें पद्मरागमणिके बने हुए अलंकार शोभा दे रहे थे॥ १९-२०॥

इसी तरह कृष्णपत्नीके नामसे अपना परिचय देनेवाली मधुमाधवी (वसन्त-लक्ष्मी) भी वहाँ आयीं। उनके साथ भी सखियोंका समूह था। वे सब-की-सब प्रफुल्ल कमलकी-सी अङ्ग-कान्तिवाली, पुष्पहारसे अलंकृत तथा सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित थीं। इसी रीतिसे साक्षात् विरजा भी सखियोंका यूथ लिये वहाँ आयीं। उनके अङ्गोंपर हरे रंगके वस्त्र शोभा दे रहे थे। वे गौर-वर्णा तथा रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत थीं॥ २१-२२॥

ललिता, विशाखा और लक्ष्मीके भी यूथ वहाँ आये। इसी प्रकार अष्टसखियोंके, षोडश सखियोंके तथा बत्तीस सखियोंके सम्पूर्ण यूथ भी वहाँ आ पहुँचे। राजन्! भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण उन युवतीजनोंके साथ रास-मण्डलकी रङ्गभूमिमें बड़ी शोभा पाने लगे॥ २३-२४॥

जैसे आकाशमें चन्द्रमा ताराओंके साथ सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार श्रीवृन्दावनमें उन सुन्दरियोंके साथ श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा हो रही थी। उनकी कमरमें पीताम्बर कसा हुआ था। वे नटवेषमें सबका मन मोहे लेते थे। उनके हाथमें बेंतकी छड़ी थी। वे वंशी बजाकर उन गोप-सुन्दरियोंकी प्रीति बढ़ा रहे थे। माथेपर मोरपंखका मुकुट, वक्षःस्थलपर पुष्पहार एवं वनमाला तथा कानोंमें कुण्डल—ये ही उनके अलंकार थे॥ २५—२६॥

रतिके साथ रतिनाथकी जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार रासमण्डलमें श्रीराधाके साथ राधावल्लभकी हो रही थी। इस प्रकार सुन्दरियोंके आलापसे संयुक्त होकर साक्षात् श्रीहरि अपनी प्रिया राधाके साथ यमुनाके पुण्य-पुलिनपर आये। उन्होंने अपनी प्राणवल्लभाका कमलकी-सी आभावाला हाथ अपने करकमलमें ले रखा था। सुन्दर जलवाली यमुनाके मनोहर तीरपर उन सुन्दरियोंके साथ श्यामसुन्दर थोड़ी देर बैठे रहे।

निषसाद हरिः कृष्णातीरे नीरमनोहरे।
पुनर्जल्पन् सुमधुरं पश्यन् वृन्दावनं प्रियम्॥ २९

चलन् हसन् राधिकया कुञ्जं कुञ्जं चचार ह।
कुञ्जे निलीयमानं तं त्वरं त्यक्त्वा प्रियाकरम्॥ ३०

विलोक्य शाखान्तरितं राधा जग्राह माधवम्।
राधा दुद्राव तद्धस्ताज्झङ्कारं कुर्वती पदे॥ ३१

निलीयमाना कुञ्जेषु पश्यतो माधवस्य च।
धावन् हरिर्गतो यावत्तावद्राधा ततो गता॥ ३२

वृक्षपार्श्वे हस्तमात्रादितश्चेतश्च धावती।
तमालो हेमवल्ल्येव घनश्चञ्चलया यथा॥ ३३

हेमखन्येव नीलाद्री रेजे राधिकया हरिः।
राधया विश्वमोहिन्या बभौ मदनमोहनः॥ ३४

वृन्दावने रासरङ्गे रत्येव मदनो यथा।
धृत्वा रूपाणि तावन्ति यावन्ति व्रजयोषितः॥ ३५

ननर्त रासरङ्गेऽसौ रङ्गभूम्यां नटो यथा।
गायन्त्यश्चापि नृत्यन्त्यः सर्वा गोप्यो मनोहराः॥ ३६

विरेजुः कृष्णचन्द्रैश्च यथा शक्रैः सुराङ्गनाः।
वारां विहारं कृष्णायां चकार मधुसूदनः॥ ३७

सर्वैर्गोपीगणैः सार्धं यक्षीभिर्यक्षराडिव।
कबरीकेशपाशाभ्यां प्रसूनैः प्रच्युतैः शुभैः।
चित्रवर्णैर्बभौ कृष्णा यथोष्णिङ्मुद्रिता तथा॥ ३८

फिर मधुर-मधुर बातें करते हुए अपने प्रिय वृन्दाविपिनकी शोभा निहारने लगे॥ २७—२९॥

वे श्रीराधाके साथ चलते और हास-विनोद करते हुए कुञ्जवनमें विचरने लगे। एक कुञ्जमें प्रियाका हाथ छोड़कर वे तुरंत कहीं छिप गये। किंतु एक शाखाकी ओटमें उन्हें खड़ा देख श्रीराधाने माधवको अविलम्ब जा पकड़ा। फिर श्रीराधा उनके हाथसे छूटकर पग-पगपर नूपुरोंका झंकार प्रकट करती हुई भागीं और माधवके देखते-देखते कुञ्जोंमें छिपने लगीं। माधव हरि ज्यों-ही दौड़कर उनके स्थानपर पहुँचे, त्यों-ही राधा वहाँसे अन्यत्र चली गयीं॥ ३०—३२॥

वृक्षोंके पास हाथ-भरकी दूरीपर इधर-उधर वे भागने लगीं। उस समय श्रीराधाके साथ श्यामसुन्दर हरिकी उसी तरह शोभा हो रही थी, जैसे सुवर्णलतासे श्याम तमालकी, चपलासे घनमण्डलकी तथा सोनेकी खानसे नीलाचलकी होती है। वृन्दावनमें रासकी रङ्गस्थलीमें रतिके साथ कामदेवकी भाँति विश्वमोहिनी श्रीराधाके साथ मदनमोहन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे॥ ३३—३४ $^1/_2$॥

जितनी व्रजसुन्दरियाँ वहाँ विद्यमान थीं, उतने ही रूप धारण करके रङ्गभूमिमें नटके समान नटवर श्रीकृष्ण रासरङ्गमें नृत्य करने लगे। उनके साथ सम्पूर्ण मनोहर गोप-सुन्दरियाँ भी गाने और नृत्य करने लगीं॥ ३५-३६॥

अनेक कृष्णचन्द्रोंके साथ वे गोपसुन्दरियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो बहुसंख्यक इन्द्रोंके साथ देवाङ्गनाएँ नृत्य कर रही हों। तदनन्तर मधुसूदन श्रीकृष्ण समस्त गोप-सुन्दरियोंके साथ यमुनाजलमें विहार करने लगे—ठीक उसी तरह जैसे यक्ष-सुन्दरियोंके साथ यक्षराज कुबेर विहार करते हैं। उन सुन्दरियोंके केशपाश तथा कबरी (बँधी हुई चोटी)-से खिसककर गिरे हुए सुन्दर चित्र-विचित्र पुष्पोंसे यमुनाजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, जैसे किसी नीलपटपर विभिन्न रंगके फूल छाप दिये गये हों॥ ३७-३८॥

मृदङ्गतालैर्मधुरध्वनिस्वनै-
जगुर्यशस्ता मधुसूदनस्य।
प्रापुर्मुदं पूर्णमनोरथाश्चलत्-
प्रसूनहारा हरिणा गतव्यथाः॥ ३९

श्रीहस्तसन्ताडितवारिबिन्दुभिः
स्फारासमस्फूर्जितशीकरद्युभिः।
वृन्दावनेशो व्रजसुन्दरीभी
रेजे गजीभिर्गजराडिव स्वयम्॥ ४०

विद्याधर्यो देवगन्धर्वपत्न्यः
पश्यन्त्यस्ता रासरङ्गं दिविस्थाः।
देवैः सार्धं चक्रिरे पुष्पवर्षं
मोहं प्राप्ताः प्रश्लथद्वस्त्रनीव्यः॥ ४१

मृदङ्ग और खड़तालोंकी मधुर ध्वनिके साथ वे व्रजाङ्गनाएँ मधुसूदनका यश गाती थीं। उनका मनोरथ पूर्ण हो गया। श्रीहरिने उनकी सारी व्यथा हर ली थी। उनके पुष्पहार चञ्चल हो रहे थे और वे परमानन्दमें निमग्न हो गयी थीं। जिनके सुन्दर हाथोंसे ताडित हो उछलते हुए वारि-बिन्दु, जो फुहारोंसे छूटते हुए असंख्य अनुपम जलकणोंकी छवि धारण कर रहे थे, उन व्रज-सुन्दरियोंके साथ वृन्दावनाधीश्वर श्रीकृष्ण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो बहुत-सी हथिनियोंके साथ यूथपति गजराज सुशोभित हो रहा हो। आकाशमें खड़ी हुई विद्याधरियाँ, देवाङ्गनाएँ तथा गन्धर्वपत्नियाँ उस रास-रङ्गको देखती हुई वहाँ देवताओंके साथ पुष्पवर्षा कर रही थीं। वे सब-की-सब मोहको प्राप्त हो गयी थीं। उनके वस्त्रोंके नीवी-बन्ध ढीले पड़कर खिसक रहे थे॥ ३९—४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे रासक्रीडा नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रासलीला' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

श्रीराधा और श्रीकृष्णके परस्पर शृङ्गार-धारण, रास, जलविहार एवं वनविहारका वर्णन

श्रीनारद उवाच

अथ कृष्णो हरिर्वारिलीलां कृत्वा मनोहरः।
सर्वैर्गोपीगणैः सार्धं गिरिं गोवर्धनं ययौ॥ १

गोवर्धने कन्दरायां रत्नभूम्यां हरिः स्वयम्।
रासं च राधया सार्धं रासेश्वर्या चकार ह॥ २

तत्र सिंहासने रम्ये तस्थतुः पुष्पसङ्कुले।
तडिद्घनाविव गिरौ राधाकृष्णौ विरेजतुः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] तदनन्तर मनोहर श्यामसुन्दर श्रीहरि जलक्रीड़ा समाप्त करके समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ गोवर्धन पर्वतको गये। उस पर्वतकी कन्दरामें रत्नमयी भूमिपर रासेश्वरी श्रीराधाके साथ साक्षात् श्रीहरिने रासनृत्य किया। वहाँ पुष्पोंसे सुसज्जित रम्य सिंहासनपर दोनों प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव विराजमान हुए, मानो किसी पर्वतपर विद्युत्-सुन्दरी और श्याम-घन एक साथ सुशोभित हो रहे हों॥ १—३॥

स्वामिन्यास्तत्र शृङ्गारं चक्रुः सख्यो मुदान्विताः।
श्रीखण्डकुङ्कुमाद्यैश्च यावकागुरुकज्जलैः॥ ४

मकरन्दैः कीर्तिसुतां समभ्यर्च्य विधानतः।
ददौ श्रीयमुना साक्षाद्राधायै नूपुराण्यलम्॥ ५

वहाँ सब सखियोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ स्वामिनी श्रीराधाका शृङ्गार किया। चन्दन, केसर, कस्तूरी आदिसे तथा महावर, इत्र, अरगजा और काजल तथा सुगन्धित पुष्प-रसोंसे कीर्तिकुमारी श्रीराधाकी विधिपूर्वक अर्चना करके साक्षात् श्रीयमुनाने उन्हें नूपुर धारण कराया॥ ४-५॥

मञ्जीरभूषणं दिव्यं श्रीगङ्गा जह्नुनन्दिनी।
श्रीरमा किङ्किणीजालं हारं श्रीमधुमाधवी॥ ६

जह्नुनन्दिनी गङ्गाने मञ्जीर नामक दिव्य भूषण अर्पित किया। श्रीरमाने कटिप्रदेशमें किङ्किणी-जाल पहनाया। श्रीमधुमाधवीने कण्ठमें हार अर्पित किया॥ ६॥

चन्द्रहारं च विरजा कोटिचन्द्रामलं शुभम्।
ललिता कञ्चुकमणिं विशाखा कण्ठभूषणम्॥ ७

अङ्गुलीयकरत्नानि ददौ चन्द्रानना तदा।
एकादशी राधिकायै रत्नाढ्यं कङ्कणद्वयम्॥ ८

भुजकङ्कणरत्नानि शतचन्द्रानना ददौ।
तस्यै मधुमती साक्षात्स्फुरद्रत्नाङ्गदद्वयम्॥ ९

ताटङ्कयुगलं बन्दी कुण्डले सुखदायिनी।
आनन्दी या सखीमुख्या राधायै भालतोरणम्॥ १०

पद्मा सद्भालतिलकं बिन्दुं चन्द्रकलं ददौ।
नासामौक्तिकमालोलं ददौ पद्मावती सती॥ ११

बालार्कद्युतिसंयुक्तं भालपुष्पं मनोहरम्।
श्रीराधायै ददौ राजंश्चन्द्रकान्ता सखी शुभा॥ १२

शिरोमणिं सुन्दरी च रत्नवेणीं प्रहर्षिणी।
भूषणे चन्द्रसूर्याख्ये विद्युत्कोटिसमप्रभे॥ १३

राधिकायै ददौ देवी वृन्दा वृन्दावनेश्वरी।
एवं शृङ्गारसंस्फूर्जद्रूपया राधया हरिः॥ १४

गिरिराजे बभौ राजन् यज्ञो दक्षिणया यथा।
यत्र वै राधया रासे शृङ्गारोऽकारि मैथिल॥ १५

तत्र गोवर्धने जातं स्थलं शृङ्गारमण्डलम्।
अथ कृष्णः स्वप्रियाभिर्ययौ चन्द्रसरोवरम्॥ १६

चकार तज्जले क्रीडां गजीभिर्गजराडिव।
तत्र चन्द्रः समागत्य चन्द्रकान्तौ मणी शुभौ॥ १७

सहस्रदलपद्मे द्वे स्वामिन्यै हरये ददौ।
अथ कृष्णो हरिः साक्षात्पश्यन् वृन्दावनश्रियम्॥ १८

प्रययौ बाहुलवनं लताजालसमन्वितम्।
तत्र स्वेदसमायुक्तं वीक्ष्य सर्वं सखीजनम्॥ १९

विरजाने कोटि चन्द्रमाओंके समान उज्ज्वल एवं सुन्दर चन्द्रहार धारण कराया। ललिताने मणिमण्डित कञ्चुकी पहनायी। विशाखाने कण्ठभूषण धारण कराया॥ ७॥

चन्द्राननाने रत्नमयी मुद्रिकाएँ अर्पित कीं। एकादशीकी अधिष्ठात्री देवीने श्रीराधाको रत्नजटित दो कंगन भेंट किये। शतचन्द्रानना सखीने रत्नमय भुजकङ्कण (बाजूबंद, बिजायठ, जोसन और झबिया आदि) दिये। साक्षात् मधुमतीने दो अङ्गद भेंट किये, जिनमें जड़े हुए रत्न उद्दीप्त हो रहे थे॥ ८-९॥

बन्दीने दो ताटङ्क (तरकियाँ) और सुखदायिनीने दो कुण्डल दिये। सखियोंमें प्रधान आनन्दीने श्रीराधाको भालतोरण भेंट किया। पद्माने चन्द्रकलाके समान चमकनेवाली माथेकी बिंदी (टिकुली) दी। सती पद्मावतीने नासिकामें मोतीकी बुलाक पहना दी, जो थोड़ी-थोड़ी हिलती रहती थी। राजन्! सुन्दरी चन्द्रकान्ता सखीने श्रीराधाको प्रातःकालिक सूर्यकी कान्तिसे युक्त मनोहर शीशफूल अर्पित किया॥ १०—१२॥

सुन्दरीने चूडामणि तथा प्रहर्षिणीने रत्नमयी वेणी प्रदान की। वृन्दावनाधीश्वरी वृन्दादेवीने श्रीराधाको करोड़ों बिजलियोंके समान विद्योतमान चन्द्र-सूर्य नामक दो आभूषण भेंट किये। इस प्रकार शृङ्गार धारण करके श्रीराधाका रूप दिव्य ज्योतिसे उद्भासित हो उठा। राजन्! उनके साथ गिरिराजपर श्रीहरि दक्षिणाके साथ यज्ञनारायणकी भाँति सुशोभित हुए। मिथिलेश्वर! जहाँ रासमें श्रीराधाने शृङ्गार धारण किया, गोवर्धन पर्वतपर वह स्थान 'शृङ्गार-मण्डल' के नामसे विख्यात हो गया॥ १३—१५ १/२॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण अपनी प्रिया गोपसुन्दरियोंके साथ चन्द्रसरोवरपर गये। उसके जलमें उन्होंने हथिनियोंके साथ गजराजकी भाँति विहार किया। वहाँ साक्षात् चन्द्रमाने आकर स्वामिनी श्रीराधा और श्यामसुन्दर श्रीहरिको दो सुन्दर चन्द्रकान्तमणियाँ तथा दो सहस्रदल कमल भेंट किये। तत्पश्चात् साक्षात् श्रीहरि कृष्ण वृन्दावनकी शोभा निहारते हुए लता-वल्लरियोंसे व्याप्त बहुलावनमें गये। वहाँ सम्पूर्ण सखीजनोंको पसीनेसे भींगा देख वंशीधरने 'मेघमल्लार' नामक

रागं तु मेघमल्लारं जगौ वंशीधरः स्वयम्।
सद्यस्तत्रैव ववृषुर्मेघा अम्बुकणांस्तथा॥ २०

तदैव शीतलो वायुर्ववौ गन्धमनोहरः।
तेन गोपीगणाः सर्वे सुखं प्राप्ता विदेहराट्॥ २१

जगुर्यशः श्रीमुरारेरुच्चैस्तत्र समन्विताः।
तस्मात्तालवनं प्रागाच्छ्रीकृष्णो राधिकापतिः॥ २२

रासमण्डलमारेभे गायन् व्रजवधूवृतः।
तत्र गोपीगणाः सर्वे स्वेदयुक्तास्तृषातुराः॥ २३

ऊचू रासेश्वरं रासे कृताञ्जलिपुटाः शनैः।

गोप्य ऊचुः

दूरं वै यमुना देव तृषा जाता परं हि नः॥ २४

कर्तव्यं भवतात्रैव रासं दिव्यं मनोहरम्।
वारां विहारं पानं च करिष्यामो हरे वयम्॥ २५

जगत्कर्ता पालकस्त्वं संहारस्यापि नायकः।

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा वेत्रदण्डेन कृष्णो भूमिं तताड ह॥ २६

तदैव निर्गतः स्त्रोतो वेत्रगङ्गेति कथ्यते।
यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्महत्या प्रमुच्यते॥ २७

तत्र स्नात्वा नरः कोऽपि गोलोकं याति मैथिल।
गोपीभी राधया सार्धं श्रीकृष्णो भगवान् हरिः॥ २८

वारां विहारं कृतवान् देवो मदनमोहनः।
ततः कुमुद्वनं प्राप्तो लतावृन्दं मनोहरम्॥ २९

भ्रमरध्वनिसंयुक्तं चक्रे रासं सखीजनैः।
राधा तत्रैव शृङ्गारं श्रीकृष्णस्य चकार ह॥ ३०

पुष्पैर्नानाविधैर्दिव्यैः पश्यन्तीनां व्रजौकसाम्।
चम्पकोद्यत्परिकरः स्वर्णयूथीभुजाङ्गदः॥ ३१

राग गाया। फिर तो वहाँ उसी समय बादल घिर आये और जलकी फुहारें बरसाने लगे॥ १६—२०॥

विदेहराज! उसी समय अपनी सुगन्धसे सबका मन मोह लेनेवाली शीतल वायु चलने लगी। उससे समस्त गोपाङ्गनाओंको बड़ा सुख मिला। वे वहाँ एकत्र हो सम्मिलित उच्चस्वरसे श्रीमुरारिका यश गाने लगीं। वहाँसे राधावल्लभ श्रीकृष्ण तालवनको गये। उस वनमें व्रजवधूटियोंसे घिरे हुए श्रीहरिने मण्डलाकार रासनृत्य आरम्भ किया। उस नृत्यमें समस्त गोपसुन्दरियाँ पसीना-पसीना हो गयीं और प्याससे व्याकुल हो उठीं। उन सबने हाथ जोड़कर रासमण्डलमें धीरे-धीरे रासेश्वरसे कहा—॥ २१—२३ $^{1}/_{2}$॥

गोपियाँ बोलीं—देव! यमुनाजी तो यहाँसे बहुत दूर हैं और हमलोगोंको बड़े जोरसे प्यास लगने लगी है। हरे! हम यह भी चाहती हैं कि आप यहीं दिव्य मनोहर रास करें। हम आपके साथ यहीं जलविहार और जलपान करेंगी। आप इस जगत्के सृष्टि, पालन तथा संहारके भी नायक हैं॥ २४—२५ $^{1}/_{2}$॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह सुनकर श्रीकृष्णने बेंतकी छड़ीसे भूमिपर ताड़न किया। इससे वहाँ तत्काल पानीका स्रोत निकल आया, जिसे 'वेत्रगङ्गा' कहते हैं। उसके जलका स्पर्श करनेमात्रसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। मिथिलेश्वर! उस वेत्रगङ्गामें स्नान करके कोई भी मनुष्य गोलोकधाममें जानेका अधिकारी हो जाता है। मदनमोहनदेव भगवान् श्रीकृष्ण हरि वहाँ श्रीराधा तथा गोपाङ्गनाओंके साथ जलविहार करके कुमुदवनमें गये, जो लता-बेलोंके जालसे मनोहर जान पड़ता था॥ २६—२९॥

वहाँ भ्रमरोंकी ध्वनि सब ओर गूँज रही थी। उस वनमें भी सखियोंके साथ श्रीहरिने रास किया। वहीं श्रीराधाने व्रजाङ्गनाओंके सामने नाना प्रकारके दिव्य पुष्पोंद्वारा श्रीकृष्णका शृङ्गार किया। चम्पाके फूलोंसे कटिप्रदेशको अलंकृत किया। सुनहरी जूहीके पुष्पोंद्वारा निर्मित बाजूबंद धारण कराया॥ ३०-३१॥

सहस्त्रदलराजीवकर्णिकाविलसच्छ्रुतिः ।
मोहिनीमालिनीकुन्दकेतकीहारभृद्धरिः ॥ ३२

कदम्बपुष्पविलसत्किरीटकटकोज्ज्वलः ।
मन्दारपुष्पोत्तरीयः पद्मयष्टिधरः प्रभुः ॥ ३३

तुलसीमञ्जरीयुक्तवनमालाविभूषितः ।
एवं शृङ्गारतां प्राप्तः श्रीकृष्णः प्रियया स्वया ॥ ३४

बभौ कुमुद्वने राजन् वसन्तो हर्षितो यथा।
मृदङ्गवीणावंशीभिर्मुरुयष्टिसुकांस्यकैः ॥ ३५

तालशेषैस्तलैर्युक्ता जगुर्गोप्यो मनोहरम्।
भैरवं मेघमल्लारं दीपकं मालकोशकम् ॥ ३६

श्रीरागं चापि हिन्दोलं रागमेवं पृथक् पृथक्।
अष्टतालैस्त्रिभिर्ग्रामैः स्वरैः सप्तभिरग्रतः ॥ ३७

नृत्यैर्नानाविधै रम्यैर्हावभावसमन्वितैः।
तोषयन्त्यो हरिं राधां कटाक्षैर्व्रजगोपिकाः ॥ ३८

गायन्मधुवनं प्रागात्सुन्दरीगणसंवृतः।
रासेश्वर्या रासलीलां चक्रे रासेश्वरः स्वयम् ॥ ३९

वैशाखचन्द्रकौमुद्या मालतीगन्धवायुना।
स्फुरत्सौगन्धकह्लारपतद्रेणूत्करेण वै ॥ ४०

विकचन्माधवीवृन्दैः शोभिते निर्जने वने।
रेमे गोपीगणैः कृष्णो नन्दने वृत्रहा यथा ॥ ४१

सहस्रदल कमलकी कर्णिकाओंको कुण्डलका रूप देकर उससे कानोंकी शोभा बढ़ायी गयी। मोहिनी, मालिनी, कुन्द और केतकीके फूलोंसे निर्मित हार श्रीकृष्णने धारण किया ॥ ३२ ॥

कदम्बके फूलोंसे शोभायमान किरीट और कड़े धारण करके श्रीहरिके श्रीअङ्ग और भी उद्भासित हो उठे थे। मन्दार-पुष्पोंका उत्तरीय (दुपट्टा) और कमलके फूलोंकी छड़ी धारण किये प्रभु श्यामसुन्दर बड़ी शोभा पाते थे। तुलसी-मञ्जरीसे युक्त वनमाला उन्हें विभूषित कर रही थी। राजन्! अपनी प्रियतमाके द्वारा इस प्रकार शृङ्गार धारण कराये जानेपर श्रीकृष्ण उस कुमुदवनमें हर्षोत्फुल्ल मूर्तिमान् वसन्तकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ ३३—३४ १/२ ॥

मृदङ्ग, वीणा, वंशी, मुरचंग, झाँझ और करताल आदि वाद्योंके साथ गोपियाँ ताली बजाती हुई मनोहर गीत गाने लगीं। भैरव, मेघमल्लार, दीपक, मालकोश, श्रीराग और हिन्दोल राग—इन सबको पृथक्-पृथक् गाकर आठ ताल, तीन ग्राम और सात स्वरोंसे तथा हाव-भाव-समन्वित नाना प्रकारके रमणीय नृत्योंसे कटाक्ष-विक्षेपपूर्वक व्रजगोपिकाएँ श्रीराधा और श्यामसुन्दरको रिझाने लगीं ॥ ३५—३८ ॥

वहाँसे मधुर गीत गाते हुए माधव उन सुन्दरियोंके साथ मधुवनमें गये। वहाँ पहुँचकर स्वयं रासेश्वर श्रीकृष्णने रासेश्वरी श्रीराधाके साथ रासक्रीड़ा की ॥ ३९ ॥

वैशाख मासके चन्द्रमाकी चाँदनीमें प्रकाशमान सौगन्धिक कह्लार-कुसुमोंसे झरते हुए परागोंसे पूर्ण तथा मालतीकी सुगन्धसे वासित वायु चल रही थी और चारों ओर माधवी लताओंके फूल खिल रहे थे। इन सबसे सुशोभित निर्जन वनमें गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्ण उसी प्रकार रम रहे थे, जैसे नन्दनवनमें देवराज इन्द्र विहार करते हैं ॥ ४०-४१ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे रासक्रीडा नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रासक्रीड़ा' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्णका वन-विहार, रास-क्रीड़ा; मानवती गोपियोंको छोड़कर श्रीराधाके साथ एकान्त-विहार तथा मानिनी श्रीराधाको भी छोड़कर उनका अन्तर्धान होना

श्रीनारद उवाच

इत्थं कुन्दवने रम्ये मालतीनां वने शुभे।
आम्राणां नागरङ्गाणां निम्बूनां सघने वने॥ १

दाडिमीनां च द्राक्षाणां बदामानां वने नृप।
कदम्बानां श्रीफलानां कुटजानां तथैव च॥ २

वटानां पनसानां च पिप्पलानां वने शुभे।
तुलसीकोविदाराणां केतकीकदलीवने॥ ३

करिल्लकुञ्जबकुलमन्दाराणां वने हरिः।
चरन् कामवनं प्रागाद्राजन् व्रजवधूवृतः॥ ४

तत्रैव पर्वते कृष्णो ननाद मुरलीकलम्।
मूर्च्छिता विह्वला जातास्तन्नादेन व्रजाङ्गनाः॥ ५

मनोजबाणभिन्नाङ्गाः श्लथन्नीव्यः सुरैः सह।
कश्मलं प्रययू राजन् विमानेष्वमराङ्गनाः॥ ६

चतुर्विधा जीवसङ्घाः स्थावरैर्मोहमास्थिताः।
नद्यो नदाः स्थिरीभूताः पर्वता द्रवताङ्गताः॥ ७

तत्पादचिह्नसंयुक्तो गिरिः कामवनेऽभवत्।
तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम्॥ ८

अथ गोपीगणैः साकं श्रीकृष्णो राधिकापतिः।
नन्दीश्वरबृहत्सानुतटे रासं चकार ह॥ ९

तत्र गोप्योऽतिमानिन्यो बभूवुर्मैथिलेश्वर।
ताँस्त्यक्त्वा राधया सार्धं तत्रैवान्तर्दधे हरिः॥ १०

गोप्यश्च सर्वा विरहातुरा भृशं
कृष्णं विना मैथिल निर्जने वने।
ता बभ्रमुश्चाश्रुकलाकुलाक्ष्यो
यथा हरिण्यश्चकिता इतस्ततः॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! इस प्रकार रमणीय कुन्दवनमें मालती पुष्पोंके सुन्दर वनमें; आम, नारंगी तथा नीबुओंके सघन उपवनमें; अनार, दाख और बादामोंके विपिनमें; कदम्ब, श्रीफल (बेल) और कुटजोंके काननमें; बरगद, कटहल और पीपलोंके सुन्दर वनमें; तुलसी, कोविदार, केतकी, कदली, करील-कुञ्ज, बकुल (मौलिश्री) तथा मन्दारोंके मनोहर विपिनमें विचरते हुए श्यामसुन्दर व्रजवधूटियोंके साथ कामवनमें जा पहुँचे॥ १—४॥

वहीं एक पर्वतपर श्रीकृष्णने मधुर स्वरमें बाँसुरी बजायी। उसकी मोहक तान सुनकर व्रजसुन्दरियाँ मूर्च्छित और विह्वल हो गयीं। राजन्! आकाशमें देवताओंके साथ विमानोंपर बैठी हुई देवाङ्गनाएँ भी मोहित हो गयीं। कामदेवके बाणोंसे उनके अङ्ग-अङ्ग बिंध गये तथा उनके नीवी-बन्ध ढीले होकर खिसकने लगे॥ ५-६॥

स्थावरोंसहित चारों प्रकारके जीवसमुदाय मोहको प्राप्त हो गये, नदियों और नदोंका पानी स्थिर हो गया तथा पर्वत भी पिघलने लगे। कामवनकी पहाड़ी श्यामसुन्दरके चरणचिह्नोंसे युक्त हो गयी, [जिसे 'चरण-पहाड़ी' कहते हैं।] उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ ७-८॥

तदनन्तर राधावल्लभ श्रीकृष्णने नन्दीश्वर तथा बृहत्सानुगिरियोंके तट-प्रान्तमें रास-विलास किया। मिथिलेश्वर! वहाँ गोपियोंको अपने सौभाग्यपर बड़ा अभिमान हो गया, तब श्रीहरि उन सबको वहीं छोड़ श्रीराधाके साथ अदृश्य हो गये। मिथिलानरेश! उस निर्जन वनमें श्रीकृष्णके बिना समस्त गोपाङ्गनाएँ विरहकी आगमें जलने लगीं। उनके नेत्र आँसुओंसे भर गये और वे चकित हिरनियोंकी भाँति इधर-उधर भटकने लगीं॥ ९—११॥

कृष्णं ह्यपश्यन्त्य इति व्यथां गता
यथा करिण्यः करिणं विना वने।
यथा कुरर्यः कुररं व्रजाङ्गनाः
सर्वा रुदन्त्यो विरहातुरा भृशम्॥ १२

उन्मत्तवद् वृक्षलताकदम्बकं
सर्वा मिलित्वा च पृथग्वने वने।
पप्रच्छुराराननृप नन्दनन्दनं
कुत्र स्थितं तं वदताशु भूरुहाः॥ १३

श्रीकृष्ण कृष्णेति गिरा वदन्त्यः
श्रीकृष्णपादाम्बुजलग्नमानसाः।
श्रीकृष्णरूपास्तु बभूवुरङ्गना-
श्चित्रं न पेशस्कृतमेत्य कीटवत्॥ १४

श्रीपादुकाधःस्थलगापि गोप्यः
श्रीपादुकाब्जं शरणं प्रपन्नाः॥ १५

ततस्तु तत्प्रसादेन तत्पदार्चनदर्शनात्।
ददृशुर्गां तदा गोप्यो भगवत्पादचिह्निताम्॥ १६

श्रीबहुलाश्व उवाच

राधेशो राधया सार्धं हित्वा गोपीर्ययौ क्व भोः।
तद्दर्शनं कथं जातं गोपीनां वद मे प्रभो॥ १७

श्रीनारद उवाच

श्रीकृष्णो राधया सार्धं सङ्केतवटमाविशत्।
प्रियायाः कबरीपुष्परचनां स चकार ह॥ १८

श्रीकृष्णकुन्तले नीले वक्रत्वं राधिकाकरोत्।
चित्रपत्रावलीः कृष्णपूर्णेन्दुमुखमण्डले॥ १९

एवं कृष्णो भद्रवनं खदिराणां वनं महत्।
बिल्वानाञ्च वनं पश्यन् कोकिलाख्यं वनं गतः॥ २०

जैसे वनमें हाथीके बिना हथिनियाँ और कुररके बिना कुररियाँ व्यथित होकर करुण-क्रन्दन करती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णको न देखकर व्यथित तथा विरहसे अत्यन्त व्याकुल हो व्रजाङ्गनाएँ फूट-फूटकर रोने लगीं। राजन्! नरेश्वर! वे सब-की-सब एक साथ मिलकर तथा पृथक्-पृथक् दल बनाकर वन-वनमें जातीं और उन्मत्तकी तरह वृक्षों तथा लता-समूहोंसे पूछतीं—'तरुओ तथा वल्लरियो! शीघ्र बताओ, हमारे प्यारे नन्दनन्दन कहाँ जा छिपे हैं?'॥ १२-१३॥

अपनी वाणीसे 'श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण!' कहकर पुकारती थीं। उनका चित्त श्रीकृष्णचरणारविन्दोंमें ही लगा हुआ था। अतः वे सब अङ्गनाएँ श्रीकृष्णस्वरूपा हो गयीं—ठीक उसी तरह जैसे भृङ्गके द्वारा बंद किया हुआ कीड़ा उसीके चिन्तनसे भृङ्गरूप हो जाता है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। श्रीकृष्णकी चरणपादुकासे चिह्नित स्थानपर पहुँचकर गोपियाँ श्रीपादुकाब्जकी शरणमें गयीं। तदनन्तर भगवान्‌की ही कृपासे उनके चरणचिह्नके अर्चन और दर्शनसे गोपियोंको भगवच्चरणचिह्नोंसे अलंकृत भूमिका विशेषरूपसे दर्शन होने लगा॥ १४—१६॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—प्रभो! राधावल्लभ श्यामसुन्दर अन्य गोपियोंको छोड़कर श्रीराधिकाके साथ कहाँ चले गये? फिर गोपियोंको उनका दर्शन कैसे हुआ?॥ १७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधिकाके साथ संकेतवटके नीचे चले गये और वहाँ प्रियतमा श्रीराधाके केशपाशोंकी वेणीमें पुष्परचना करने लगे। श्रीकृष्णके नीले केशोंमें श्रीराधिकाने वक्रता स्थापित की अर्थात् अपने केशरचना-कौशलसे उनके केशोंको घुँघराला बना दिया और उनके पूर्णचन्द्रोपम मुखमण्डलमें उन्होंने विचित्र पत्रावलीकी रचना की॥ १८-१९॥

इस प्रकार परस्पर शृङ्गार करके श्रीकृष्ण प्रियाके साथ भद्रवन, महान् खदिरवन, बिल्ववन और कोकिलावनमें गये॥ २०॥

गोप्यः कृष्णं विचिन्वन्त्यो ददृशुस्तत्पदानि च।
यवचक्रध्वजच्छत्रैः स्वस्तिकाङ्कुशबिन्दुभिः॥ २१

अष्टकोणेन वज्रेण पद्मेनाभियुतानि च।
नीलशङ्खघटैर्मत्स्यत्रिकोणेषूर्ध्वधारकैः॥ २२

धनुर्गोखुरचन्द्रार्धशोभितानि महात्मनः।
तत्पदान्यनुसारेण व्रजन्त्यो गोपिकास्ततः॥ २३

तद्रजः सततं नीत्वा धृत्वा मूर्ध्नि व्रजाङ्गनाः।
पदान्यन्यानि ददृशुरन्यचिह्नान्वितानि च॥ २४

केतुपद्मातपत्रैश्च यवेनाथोर्ध्वरेखया।
चक्रचन्द्रार्धांकुशकैर्बिन्दुभिः शोभितानि च॥ २५

लवङ्गलतिकाभिश्च विचित्राणि विदेहराट्।
गदापाठीनशङ्खैश्च गिरिराजेन शक्तिभिः॥ २६

सिंहासनरथाभ्यां च बिन्दुद्वययुतानि च।
वीक्ष्य प्राहू राधिकया गतोऽसौ नन्दनन्दनः॥ २७

पश्यन्त्यस्तत्पादपद्मं कोकिलाख्यं वनं गताः।
गोपीकोलाहलं श्रुत्वा राधिकां प्राह माधवः॥ २८

कोटिचन्द्रप्रतीकाशे राधे सर्प त्वरं प्रिये।
आगता गोपिकाः सर्वास्त्वां नेष्यन्ति हि सर्वतः॥ २९

तदा मानवती राधा भूत्वा प्राह रमापतिम्।
रूपयौवनकौशल्यशीलगर्वसमन्विता॥ ३०

श्रीराधोवाच

चलितुं न समर्थाहं मन्दिरान्न विनिर्गता।
सुकुमारी स्वेदयुक्ता कथं मां नयसि प्रिय॥ ३१

श्रीनारद उवाच

इति वाक्यं ततः श्रुत्वा श्रीकृष्णो राधिकेश्वरः।
पीताम्बरेण दिव्येन वायुं तस्यै चकार ह॥ ३२

उधर श्रीकृष्णको खोजती हुई गोपियोंने उनके चरणचिह्न देखे। जौ, चक्र, ध्वजा, छत्र, स्वस्तिक, अङ्कुश, बिन्दु, अष्टकोण, वज्र, कमल, नीलशङ्ख, घट, मत्स्य, त्रिकोण, बाण, ऊर्ध्वरेखा, धनुष, गोखुर और अर्धचन्द्रके चिह्नोंसे सुशोभित महात्मा श्रीकृष्णके पदचिह्नोंका अनुसरण करती हुई गोपाङ्गनाएँ उन चिह्नोंकी धूलि ले-लेकर अपने मस्तकपर रखतीं और आगे बढ़ती जाती थीं। फिर उन्होंने श्रीकृष्णके चरणचिह्नोंके साथ-साथ दूसरे पदचिह्न भी देखे॥ २१—२४॥

वे ध्वजा, पद्म, छत्र, जौ, ऊर्ध्वरेखा, चक्र, अर्धचन्द्र, अङ्कुश और बिन्दुओंसे शोभित थे। विदेहराज! लवङ्गलता, गदा, पाठीन (मत्स्य), शङ्ख, गिरिराज, शक्ति, सिंहासन, रथ और दो बिन्दुओंके चिह्नोंसे विचित्र शोभाशाली उन चरणचिह्नोंको देखकर गोपियाँ परस्पर कहने लगीं—'निश्चय ही नन्दनन्दन श्रीराधिकाको साथ लेकर गये हैं।' श्रीकृष्ण-चरण-अरविन्दोंके चिह्न निहारती हुई गोपियाँ कोकिलावनमें जा पहुँचीं॥ २५—२७१/२॥

उन गोपाङ्गनाओंका कोलाहल सुनकर माधवने श्रीराधासे कहा—'कोटि चन्द्रमाओंको अपने सौन्दर्यसे तिरस्कृत करनेवाली प्रिये श्रीराधे! सब ओरसे गोपिकाएँ आ पहुँचीं। अब वे तुम्हें अपने साथ ले जायँगी। अतः यहाँसे जल्दी निकल चलो।' उस समय रूप, यौवन, कौशल्य (चातुरी) और शीलके गर्वसे गरबीली मानवती राधा रमापतिसे बोलीं॥ २८—३०॥

श्रीराधाने कहा—प्यारे! मैं कभी राजभवनसे बाहर नहीं निकली थी, किंतु आज अधिक चलना पड़ा है; अतः अब एक पग भी चलनेमें समर्थ नहीं हूँ। देखते नहीं, मैं सुकुमारी राजकुमारी पसीना-पसीना हो गयी हूँ? फिर मुझे कैसे ले चलोगे?॥ ३१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह वचन सुनकर राधिकावल्लभ श्रीकृष्ण श्रीराधाके ऊपर अपने दिव्य पीताम्बरसे हवा करने लगे॥ ३२॥

हस्तं गृहीत्वा तामाह गच्छ राधे यथासुखम्।
कृष्णेनापि तदा प्रोक्ता न ययौ तेन वै पुनः॥ ३३

पृष्ठं दत्त्वाथ हरये तूष्णीम्भूता स्थिता पुनः।
प्रियां मानवतीं राधां प्राह कृष्णः सतां प्रियः॥ ३४

फिर उनका हाथ थामकर बोले—'श्रीराधे! अब तुम अपनी मौजसे धीरे-धीरे चलो।' उस समय श्रीकृष्णके बारंबार कहनेपर भी श्रीराधाने अपना पैर आगे नहीं बढ़ाया। वे श्रीहरिकी ओर पीठ करके चुपचाप खड़ी रहीं। तब संतोंके प्रिय श्रीकृष्णने मानिनी प्रिया राधासे कहा—॥ ३३-३४॥

श्रीभगवानुवाच

विहाय गोपीरिह कामयाना
भजाम्यहं मानिनि चेतसा त्वाम्।
यत्ते प्रियं तत्प्रकरोमि राधे
मे स्कन्धमारुह्य सुखं व्रजाशु॥ ३५

श्रीभगवान् बोले—मानिनि! यहाँ अन्य गोपियाँ भी मुझसे मिलनेकी हार्दिक कामना रखती हैं, तथापि उन्हें छोड़कर मैं मनसे तुम्हारी आराधना करता हूँ; तुम्हें जो प्रिय हो, वही करता हूँ। राधे! मेरे कंधेपर चढ़कर तुम सुखपूर्वक शीघ्र यहाँसे चलो॥ ३५॥

श्रीनारद उवाच

एवं प्रियां प्रियतमः स्कन्धयानेप्सितां नृप।
विहायान्तर्दधे कृष्णः स्वच्छन्दगतिरीश्वरः॥ ३६

गतमाना कीर्तिसुता भगवद्विरहातुरा।
उच्चै रुरोद राजेन्द्र कोकिलाख्ये वने परे॥ ३७

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! उनके यों कहनेपर प्रियाने जब उनके कंधेपर चढ़ना चाहा, तभी स्वच्छन्द गतिवाले ईश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण वहाँसे अन्तर्धान हो गये। राजेन्द्र! फिर तो कीर्तिकुमारी राधाका मान उतर गया। वे उस महान् कोकिलावनमें भगवद्-विरहसे व्याकुल हो उच्चस्वरसे रोदन करने लगीं॥ ३६-३७॥

तदैव यूथाः सम्प्राप्ता गोपीनां मैथिलेश्वर।
तद्रोदनं दुःखतरं श्रुत्वाजग्मुस्त्रपातुराः॥ ३८

काश्चित्तां मकरन्दैश्च स्नापयाञ्चक्रुरीश्वरीम्।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसीकरैः॥ ३९

मिथिलेश्वर! उसी समय गोपियोंके यूथ वहाँ आ पहुँचे। श्रीराधाका अत्यन्त दुःखजनक रोदन सुनकर उन्हें बड़ी दया और लज्जा आयी। कोई अपनी स्वामिनीको पुष्प-मकरन्दों (इत्र आदि)-से नहलाने लगीं; कुछ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरसे मिश्रित जलके छींटे देने लगीं॥ ३८-३९॥

वायुं चक्रुस्तदङ्गेषु व्यजनान्दोलचामरैः।
आश्वास्य वाग्भिः परमां नानानुनयकोविदैः॥ ४०

तन्मुखान्मानिनो मानं श्रुत्वा कृष्णस्य गोपिकाः।
मानवत्यो मैथिलेन्द्र विस्मयं परमं ययुः॥ ४१

कुछ व्यजन और चँवर डुलाकर अङ्गोंमें हवा देने लगीं तथा अनुनय-विनयमें कुशल नाना वचनोंद्वारा परादेवी श्रीराधाको धीरज बँधाने लगीं। मैथिलेन्द्र! श्रीराधाके मुखसे मानी श्रीकृष्णके द्वारा दिये गये सम्मानकी बात सुनकर मानवती गोपाङ्गनाओंको बड़ा विस्मय हुआ॥ ४०-४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे रासक्रीडा नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रास-क्रीड़ा' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

गोपाङ्गनाओंद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन; भगवान्‌का उनके बीचमें प्रकट होना; उनके पूछनेपर हंसमुनिके उद्धारकी कथा सुनाना तथा गोपियोंको क्षीरसागर-श्वेतद्वीपके नारायण-स्वरूपोंका दर्शन कराना

श्रीनारद उवाच

अथ कृष्णगुणान् रम्यान् समेताः सर्वयोषितः।
जगुस्तालस्वरै रम्यैः कृष्णागमनहेतवे॥ १

गोप्य ऊचुः

लोकाभिराम जनभूषण विश्वदीप
कन्दर्पमोहन जगद्वृजिनार्तिहारिन्।
आनन्दकन्द यदुनन्दन नन्दसूनो
स्वच्छन्दपद्ममकरन्द नमो नमस्ते॥ २

गोविप्रसाधुविजयध्वज देववन्द्य
कंसादिदैत्यवधहेतुकृतावतार ।
श्रीनन्दराजकुलपद्मदिनेश देव-
देवादि मुक्तजनदर्पण ते जयोऽस्तु॥ ३

गोपालसिन्धुपरमौक्तिकरूपधारिन्
गोपालवंशगिरिनीलमणे परात्मन्।
गोपालमण्डलसरोवरकञ्जमूर्ते
गोपालचन्दनवने कलहंसमुख्य॥ ४

श्रीराधिकावदनपङ्कजषट्पदस्त्वं
श्रीराधिकावदनचन्द्रचकोररूपः ।
श्रीराधिकाहृदयसुन्दरचन्द्रहारः
श्रीराधिकामधुलताकुसुमाकरोऽसि॥ ५

यो रासरङ्गनिजवैभवभूरिलीलो
यो गोपिकानयनजीवनमूलहारः।
मानं चकार रहसा किल मानवत्यां
सोऽयं हरिर्भवतु नो नयनाग्रगामी॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीकृष्णके शुभागमनके लिये समस्त व्रजाङ्गनाएँ मिलकर सुरम्य तालस्वरके साथ उन श्रीहरिके रमणीय गुणोंका गान करने लगीं॥ १॥

गोपियाँ बोलीं—लोकसुन्दर! जनभूषण! विश्वदीप! मदनमोहन! तथा जगत्‌की पापराशि एवं पीड़ा हर लेनेवाले! आनन्दकन्द यदुनन्दन! नन्द-नन्दन! तुम्हारे चरणारविन्दोंका मकरन्द भी परम स्वच्छन्द है, तुम्हें बारंबार नमस्कार है। गौओं, ब्राह्मणों और साधु-संतोंके विजयध्वजरूप! देववन्द्य तथा कंसादि दैत्योंके वधके लिये अवतार धारण करनेवाले! श्रीनन्दराज-कुल-कमल-दिवाकर! देवाधि-देवोंके भी आदिकारण! मुक्तजनदर्पण! तुम्हारी जय हो॥ २-३॥

गोपवंशरूपी सागरमें परम उज्ज्वल मोतीके समान रूप धारण करनेवाले! गोपालकुलरूपी गिरिराजके नीलरत्न! परमात्मन्! गोपालमण्डलरूपी सरोवरके प्रफुल्ल कमल! तथा गोपवृन्दरूपी चन्दनवनके प्रधान कलहंस! तुम्हारी जय हो। प्यारे श्यामसुन्दर! तुम श्रीराधिकाके मुखारविन्दका मकरन्द पान करनेवाले मधुप हो; श्रीराधाके मुखचन्द्रकी सुधामयी चन्द्रिकाके आस्वादक चकोर हो; श्रीराधाके वक्षःस्थलपर विद्योतमान सुन्दर चन्द्रहार हो तथा श्रीराधिकारूपिणी माधवीलताके लिये कुसुमाकर (ऋतुराज वसन्त) हो॥ ४-५॥

जो रास-रङ्गस्थलीमें अपने वैभव (लीलाशक्ति)-से भूरि-भूरि लीलाएँ प्रकट करते हैं, जो गोपाङ्गनाओंके नेत्रों और जीवनके मूलाधार एवं हारस्वरूप हैं तथा श्रीराधाके मान करनेपर जिन्होंने स्वयं मान कर लिया है, वे श्यामसुन्दर श्रीहरि हमारे नेत्रोंके समक्ष प्रकट हों॥ ६॥

यो गोपिकासकलयूथमलञ्चकार
वृन्दावनं च निजपादरजोभिरद्रिम्।
यः सर्वलोकविभवाय बभूव भूमौ
तं भूरिनीलमुरगेन्द्रभुजं भजामः॥ ७

जिन्होंने गोपिकाओंके समस्त यूथोंको, श्रीवृन्दावनकी भूमिको तथा गिरिराज गोवर्धनको अपनी चरण-धूलिसे अलंकृत किया है; जो सम्पूर्ण जगत्के उद्भव तथा पालनके लिये भूतलपर प्रकट हुए हैं; जिनकी कान्ति अत्यन्त श्याम है और भुजाएँ नागराजके शरीरकी भाँति सुशोभित होती हैं, उन नन्दनन्दन माधवकी हम आराधना करती हैं॥ ७॥

चन्द्रं प्रतप्तकिरणज्वलनं प्रसन्नं
सर्वं वनान्तमसिपत्रवनप्रवेशम्।
बाणं प्रभञ्जनमतीव सुमन्दयानं
मन्यामहे किल भवन्तमृते व्यथार्ताः॥ ८

प्राणनाथ! तुम्हारे बिना वियोग-व्यथासे पीड़ित हुई हम सब गोपियोंको चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंके समान दाहक प्रतीत होता है। यह सम्पूर्ण वनान्त-भाग जो पहले प्रसन्नताका केन्द्र था, अब इसमें आनेपर ऐसा जान पड़ता है, मानो हमलोग असिपत्रवनमें प्रविष्ट हो गयी हैं और अत्यन्त मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली वायु हमें बाण-सी लगती है॥ ८॥

सौदासराजमहिषीविरहादतीव
जातं सहस्रगुणितं नलपट्टराज्याः।
तस्मात्तु कोटिगुणितं जनकात्मजाया-
स्तस्मादनन्तमतिदुःखमलं हरे नः॥ ९

हरे! राजा सौदासकी रानी मदयन्तीको अपने पतिके विरहसे जो दुःख हुआ था, उससे हजारगुना दुःख नलकी महारानी दमयन्तीको पति-वियोगके कारण प्राप्त हुआ था। उनसे भी कोटिगुना अधिक दुःख पतिविरहिणी जनकनन्दिनी सीताको हुआ था और उनसे भी अनन्तगुना अधिक दुःख आज हम सबको हो रहा है॥ ९॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं राजन् रुदन्तीनां गोपीनां कमलेक्षणः।
आविर्बभूव सहसा स्वयमर्थमिवात्मनः॥ १०

स्फुरत्किरीटकेयूरकुण्डलाङ्गदभूषणम् ।
स्निग्धामलसुगन्धाढ्यनीलकुञ्चितकुन्तलम् ॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार रोती हुई गोपाङ्गनाओंके बीचमें कमलनयन श्रीकृष्ण सहसा प्रकट हो गये, मानो अपना अभीष्ट मनोरथ स्वयं आकर मिल गया हो। उनके मस्तकपर किरीट, भुजाओंमें केयूर और अङ्गद तथा कानोंमें कुण्डल नामक भूषण अपनी दीप्ति फैला रहे थे। स्निग्ध, निर्मल, सुगन्धपूर्ण, नीले, घुँघराले केश-कलाप मनको मोहे लेते थे॥ १०-११॥

आगतं वीक्ष्य युगपत्समुत्तस्थुर्व्रजाङ्गनाः।
तन्मात्रानिचयं दृष्ट्वा यथा ज्ञानेन्द्रियाणि च॥ १२

हरिर्ननर्त तन्मध्ये वंशीवादनतत्परः।
राधया सहितो राजन् यथा रत्या रतीश्वरः॥ १३

उन्हें आया हुआ देख समस्त व्रजाङ्गनाएँ एक साथ उठकर खड़ी हो गयीं, जैसे शब्दादि सूक्ष्म-भूतोंके समूहको देखकर ज्ञानेन्द्रियाँ सहसा सचेष्ट हो जाती हैं। राजन्! उन गोपसुन्दरियोंके मध्यभागमें राधाके साथ श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते हुए इस प्रकार नृत्य करने लगे, मानो रतिके साथ मूर्तिमान् काम नाच रहा हो॥ १२-१३॥

यावतीर्गोपिकाः सर्वास्तावद्रूपधरो हरिः।
गच्छंस्ताभिर्व्रजे रेमे स्वावस्थाभिर्मनो यथा॥ १४

वनोद्देशे स्थितं कृष्णं गतदुःखा व्रजाङ्गनाः।
कृताञ्जलिपुटा ऊचुर्गिरा गद्गदया हरिम्॥ १५

गोप्य ऊचुः

क्व गतस्त्वं वद हरे त्यक्त्वा गोपीगणं महत्।
सर्वं जगत्तृणीकृत्य त्वत्पादे प्राप्तमानसम्॥ १६

श्रीभगवानुवाच

हे गोप्यः पुष्करद्वीपे हंसो नाम महामुनिः।
समुद्रे दधिमण्डोदे ततापान्तर्गतस्तपः॥ १७

चकाराहैतुकीं भक्तिं मम ध्यानपरायणः।
व्यतीतं तस्य तपतो गोप्यो मन्वन्तरद्वयम्॥ १८

तमद्यैवाग्रसन्मत्स्यो योजनार्धवपुर्धरः।
तन्निर्जगार पौण्ड्रस्तु मत्स्यरूपधरोऽसुरः॥ १९

एवं सम्प्राप्तकष्टस्य हंसस्यापि मुनेरहम्।
गत्वाथ शीघ्रेण तयोः शिरश्छित्वारिणा मुनिम्॥ २०

मोचयित्वाथ गतवान् श्वेतद्वीपे व्रजाङ्गनाः।
क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के शयनं तु मया कृतम्॥ २१

दुःखिता भवतीर्ज्ञात्वा निद्रां त्यक्त्वा ततः प्रियाः।
सहसा भक्तवश्योऽहं पुनरागतवानिह॥ २२

जानन्ति सन्तः समदर्शिनो ये
दान्ता महान्तः किल नैरपेक्ष्याः।
ते नैरपेक्ष्यं परमं सुखं मे
ज्ञानेन्द्रियादीनि यथा रसादीन्॥ २३

गोप्य ऊचुः

क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के यद्रूपं च त्वया धृतम्।
तद्रूपदर्शनं देहि यदि प्रीतोऽसि माधव॥ २४

जितनी संख्यामें समस्त गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके श्रीहरि उनके साथ व्रजमें रास-विहार करने लगे—ठीक उसी तरह, जैसे जाग्रत् आदि अवस्थाओंके साथ मन क्रीड़ा कर रहा हो। उस समय उस वनप्रदेशमें दुःखरहित हुई व्रजाङ्गनाएँ वहाँ खड़े हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्णसे हाथ जोड़ गद्गद वाणीमें बोलीं— ॥ १४-१५ ॥

गोपियोंने पूछा—श्यामसुन्दर! बताओ तो सही, जो सारे जगत्‌को तिनकेकी भाँति त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दोंमें अपना तन, मन और प्राण अर्पित कर चुकी हैं, उन्हीं इन गोपियोंके इस महान् समुदायको छोड़कर तुम कहाँ चले गये थे?॥ १६ ॥

श्रीभगवान् बोले—गोपाङ्गनाओ! पुष्करद्वीपके दधिमण्डोद समुद्रके भीतर रहकर 'हंस' नामक महामुनि तपस्या कर रहे थे। वे मेरे ध्यानमें रत रहकर बिना किसी हेतु या कामनाके भजन करते थे। उन तपस्वी महामुनिको तपस्या करते हुए दो मन्वन्तरका समय इसी तरह बीत गया। उन्हें आज ही आधे योजन लंबा शरीर धारण करनेवाला एक मत्स्य निगल गया था। फिर उसे भी मत्स्यरूपधारी महान् असुर पौण्ड्र निगल गया॥ १७—१९ ॥

इस प्रकार कष्टमें पड़े हुए मुनिवर हंसके उद्धारके लिये मैं शीघ्र वहाँ गया और चक्रसे उन दोनों मत्स्योंका वध करके मुनिको संकटसे छुड़ाकर श्वेतद्वीपमें चला गया। व्रजाङ्गनाओ! वहाँ क्षीरसागरके भीतर शेषशय्यापर मैं सो गया था॥ २०-२१ ॥

फिर अपनी प्रियतमा तुम सब गोपियोंको दुखी जान नींद त्यागकर सहसा यहाँ आ पहुँचा; क्योंकि मैं सदा भक्तोंके वशमें रहता हूँ। जो जितेन्द्रिय, समदर्शी तथा किसी भी वस्तुकी इच्छा न रखनेवाले महान् संत हैं, वे निरपेक्षताको ही मेरा परम सुख जानते हैं; जैसे ज्ञानेन्द्रियाँ आदि रस आदि सूक्ष्म भूतोंको ही सुख समझते हैं॥ २२-२३ ॥

गोपियोंने कहा—माधव! यदि हमपर प्रसन्न हों तो क्षीरसागरमें शेषशय्यापर तुमने जो रूप धारण किया था, उसका हमें भी दर्शन कराओ॥ २४॥

श्रीनारद उवाच

तथास्तु चोक्त्वा भगवान् गोपीव्यूहस्य पश्यतः।
दधाराष्टभुजं रूपं राधा श्रीरूपमेव च॥ २५

तत्र क्षीरसमुद्रोऽभूल्लोलकल्लोलमण्डितः।
दिव्यानि रत्नसौधानि बभूवुर्मङ्गलानि च॥ २६

तत्र शेषो बिसश्वेतः कुण्डलीभूतसंस्थितः।
बालार्कमौलिसाहस्रफणाछत्रविराजितः॥ २७

तस्मिन् वै शेषपर्यङ्के सुखं सुष्वाप माधवः।
तस्य श्रीरूपिणी राधा पादसेवां चकार ह॥ २८

तद्रूपं सुन्दरं दृष्ट्वा कोटिमार्तण्डसन्निभम्।
नत्वा गोपीगणाः सर्वे विस्मयं परमं गताः॥ २९

गोपीभ्यो दर्शनं दत्तं यत्र कृष्णेन मैथिल।
तत्र क्षेत्रं महापुण्यं जातं पापप्रणाशनम्॥ ३०

अथ गोपीगणैः सार्धं यमुनामेत्य माधवः।
कालिन्दीजलवेगेषु जलकेलिं चकार ह॥ ३१

राधाकराल्लक्षदलं पद्मं नीत्वाम्बरं तथा।
धावन् जलेषु गतवान् प्रहसन् माधवः स्वयम्॥ ३२

राधा हरेः पीतपटं वंशीं वेत्रं स्फुरत्प्रभम्।
गृहीत्वा प्रहसन्ती सा गच्छन्ती यमुनाजले॥ ३३

वंशीं देहीति वदतः श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
राधा जगाद कमलं वासो देहीति माधव॥ ३४

कृष्णो ददौ राधिकायै पद्ममम्बरमेव च।
राधा ददौ पीतपटं वेत्रं वंशीं महात्मने॥ ३५

अथ कृष्णः कलं गायन् मालामाजानुलम्बिताम्।
वैजयन्तीमादधानः श्रीभाण्डीरं जगाम ह॥ ३६

श्रीनारदजी कहते हैं—तब 'तथास्तु' कहकर भगवान् गोपी-समुदायके देखते-देखते आठ भुजाधारी नारायण हो गये और श्रीराधा लक्ष्मीरूपा हो गयीं। वहीं चञ्चल तरङ्गमालाओंसे मण्डित क्षीरसागर प्रकट हो गया। दिव्य रत्नमय मङ्गलरूप प्रासाद दृष्टिगोचर होने लगे॥ २५-२६॥

वहीं कमलनालके सदृश श्वेत शेषनाग कुण्डली बाँधे स्थित दिखायी दिये, जो बालसूर्यके समान तेजस्वी सहस्र फनोंके छत्रसे सुशोभित थे। उस शेषशय्यापर माधव सुखसे सो गये तथा लक्ष्मीरूप-धारिणी श्रीराधा उनके चरण दबानेकी सेवा करने लगीं॥ २७-२८॥

करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी उस सुन्दर रूपको देखकर गोपियोंने प्रणाम किया और वे सभी परम आश्चर्यमें निमग्न हो गयीं। मैथिल! जहाँ श्रीकृष्णने गोपियोंको इस रूपमें दर्शन दिया था, वह परम पुण्यमय पापनाशक क्षेत्र बन गया॥ २९-३०॥

तदनन्तर माधव गोपाङ्गनाओंके साथ यमुना-तटपर आकर कालिन्दीके वेगपूर्ण प्रवाहमें संतरण-कला-केलि करने लगे। श्रीराधाके हाथसे उनका लक्षदल कमल और चादर लेकर माधव पानीमें दौड़ते तथा हँसते हुए दूर निकल गये॥ ३१-३२॥

तब श्रीराधा भी उनके चमकीले पीताम्बर, वंशी और बेंत लेकर हँसती हुई यमुनाजलमें चली गयीं। अब महात्मा श्रीकृष्ण उन्हें माँगते हुए बोले—'राधे! मेरी बाँसुरी दे दो।' श्रीराधा कहने लगीं—'माधव! मेरा कमल और वस्त्र लौटा दो'॥ ३३-३४॥

श्रीकृष्णने श्रीराधाको कमल और वस्त्र दे दिये। तब श्रीराधाने भी महात्मा श्रीकृष्णको वंशी, पीताम्बर और बेंत लौटा दिये॥ ३५॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण आजानु-लम्बिनी (घुटनेतक लटकती हुई) वैजयन्ती माला धारण किये, मधुर गीत गाते हुए भाण्डीरवनमें गये॥ ३६॥

प्रियायास्तत्र शृङ्गारं चकार कुशलेश्वरः।
पत्रावलीयावकाग्रैः पुष्पैः कज्जलकुङ्कुमैः॥ ३७

चन्दनागुरुकस्तूरीकेसराद्यैर्हरेर्मुखे।
पत्रं चकार शृङ्गारे मनोज्ञं कीर्तिनन्दिनी॥ ३८

वहाँ चतुर-चूडामणि श्यामसुन्दरने प्रियाका शृङ्गार किया। भाल तथा कपोलोंपर पत्ररचना की, पैरोंमें महावर लगाया, फूलोंकी माला धारण करायी, वेणीको भी फूलोंसे सजाया, ललाटमें कुङ्कुमकी बिंदी तथा नेत्रोंमें काजल लगाया। इसी प्रकार कीर्तिनन्दिनी श्रीराधाने भी उस शृङ्गार-स्थलमें चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसर आदिसे श्रीहरिके मुखपर मनोहर पत्र-रचना की॥ ३७-३८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीवृन्दावनखण्डे रासक्रीडा नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रास-क्रीडा' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

कंस और शङ्खचूडमें युद्ध तथा मैत्रीका वृत्तान्त; श्रीकृष्णद्वारा शङ्खचूडका वध

श्रीनारद उवाच

अथ कृष्णो गोपिकाभिर्लोहजङ्घवनं ययौ।
वसन्तमाधवीभिश्च लताभिः सङ्कुलं नृप॥ १

तत्पुष्पदामनिचयैः स्फुरत्सौगन्धिशालिभिः।
सर्वासां हरिणा तत्र कबर्यो गुम्फितास्ततः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण व्रजाङ्गनाओंके साथ लोहजङ्घ-वनमें गये, जो वसन्तकी माधवी तथा अन्यान्य लता-वल्लरियोंसे व्याप्त था। उस वनके सुगन्ध बिखेरनेवाले सुन्दर फूलोंके हारोंसे श्रीहरिने वहाँ समस्त गोपियोंकी वेणियाँ अलंकृत कीं॥ १-२॥

भ्रमरध्वनिसंयुक्ते सुगन्धानिलवासिते।
कालिन्दीनिकटे कृष्णो विचचार प्रियान्वितः॥ ३

करिल्लैः पीलुभिः श्यामैस्तमालैः सङ्कुलं द्रुमैः।
महापुण्यवनं कृष्णो ययौ रासेश्वरो हरिः॥ ४

तत्र रासं समारेभे रासेश्वर्या समन्वितः।
गीयमानश्च गोपीभिरप्सरोभिः स्वराडिव॥ ५

भ्रमरोंकी गुंजारसे निनादित और सुगन्धित वायुसे वासित यमुनातटपर अपनी प्रेयसियोंके साथ श्यामसुन्दर विचरने लगे। विचरते-विचरते रासेश्वर श्रीकृष्ण उस महापुण्यवनमें जा पहुँचे, जो करील, पीलू तथा श्याम तमाल और ताल आदि सघन वृक्षोंसे व्याप्त था। वहाँ रासेश्वरी श्रीराधा और गोपाङ्गनाओंके साथ उनके मुखसे अपना यशोगान सुनते हुए श्रीहरिने रास आरम्भ किया। उस समय वे यश गाती हुई अप्सराओंसे घिरे हुए देवराज इन्द्रके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३—५॥

तत्र चित्रमभूद्राजन् शृणु त्वं तन्मुखान्मम।
शङ्खचूडो नाम यक्षो धनदानुचरो बली॥ ६

भूतले तत्समो नास्ति गदायुद्धविशारदः।
मन्मुखादौग्रसेनेश्च बलं श्रुत्वा महोत्कटम्॥ ७

लक्षभारमयीं गुर्वीं गदामादाय यक्षराट्।
स्वसकाशान्मधुपुरीमाययौ चण्डविक्रमः॥ ८

राजन्! वहाँ एक विचित्र घटना घटित हुई, उसे तुम मेरे मुखसे सुनो। शङ्खचूड नामसे प्रसिद्ध एक बलवान् यक्ष था, जो कुबेरका सेवक था। इस भूतल-पर उसके समान गदायुद्ध-विशारद योद्धा दूसरा कोई नहीं था। एक दिन मेरे मुँहसे उग्रसेनकुमार कंसके उत्कट बलकी बात सुनकर वह प्रचण्ड-पराक्रमी यक्षराज लाख भार लोहेकी बनी हुई भारी गदा लेकर अपने निवासस्थानसे मथुरामें आया॥ ६—८॥

सभायामास्थितं प्राह कंसं नत्वा मदोद्धतः।
गदायुद्धं देहि मह्यं त्रैलोक्यविजयी भवान्॥ ९

अहं दासो भवेयं वै भवांश्च विजयी यदि।
अहं जयी चेद्भवन्तं दासं शीघ्रं करोम्यहम्॥ १०

तथास्तु चोक्त्वा कंसस्तु गृहीत्वा महतीं गदाम्।
शङ्खचूडेन युयुधे रङ्गभूमौ विदेहराट्॥ ११

तयोश्च गदया युद्धं घोररूपं बभूव ह।
ताडनाच्चट्चटाशब्दं कालमेघतडिद्ध्वनि॥ १२

शुशुभाते रङ्गमध्ये मल्लौ नाट्ये नटाविव।
इभेन्द्राविव दीर्घाङ्गौ मृगेन्द्राविव चोद्भटौ॥ १३

द्वयोश्च युध्यतो राजन् परस्परजिगीषया।
विस्फुलिङ्गान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः॥ १४

कंसः प्रकुपितं यक्षं मुष्टिनाभिजघान ह।
शङ्खचूडोऽपि तं कंसं मुष्टिना सन्तताड च॥ १५

मुष्टामुष्टि तयोरासीद्दिनानां सप्तविंशतिः।
द्वयोरक्षीणबलयोर्विस्मयं गतयोस्ततः॥ १६

शङ्खचूडं सङ्गृहीत्वा कंसो दैत्याधिपो बली।
बलाच्चिक्षेप सहसा व्योम्नि तं शतयोजनम्॥ १७

शङ्खचूडः प्रपतितः किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
कंसं गृहीत्वा नभसि चिक्षेपायुतयोजनम्॥ १८

आकाशात्पतितः कंसः किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
यक्षं गृहीत्वा सहसा पातयामास भूतले॥ १९

शङ्खचूडस्तं गृहीत्वा पोथयामास भूतले।
एवं युद्धे सम्प्रवृत्ते चकम्पे भूमिमण्डलम्॥ २०

उस मदोन्मत्त वीरने राजसभामें पहुँचकर वहाँ सिंहासनपर बैठे हुए कंसको प्रणाम किया और कहा—राजन्! सुना है कि तुम त्रिभुवनविजयी वीर हो; इसलिये मुझे अपने साथ गदायुद्धका अवसर दो। यदि तुम विजयी हुए तो मैं तुम्हारा दास हो जाऊँगा और यदि मैं विजयी हुआ तो तत्काल तुम्हें अपना दास बना लूँगा॥ ९-१०॥

विदेहराज! तब 'तथास्तु' कहकर, एक विशाल गदा हाथमें ले, कंस रङ्गभूमिमें शङ्खचूडके साथ युद्ध करने लगा। उन दोनोंमें घोर गदायुद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनोंके परस्पर आघात-प्रत्याघातसे होनेवाला चट-चट शब्द प्रलयकालके मेघोंकी गर्जना और बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ता था॥ ११-१२॥

उस रङ्गभूमिमें दो मल्लों, नाट्यमण्डलीके दो नटों, विशाल अङ्गवाले दो गजराजों तथा दो उद्भट सिंहोंके समान कंस और शङ्खचूड परस्पर जूझ रहे थे। राजन्! एक-दूसरेको जीत लेनेकी इच्छासे जूझते हुए उन दोनों वीरोंकी गदाएँ आगकी चिनगारियाँ बरसाती हुई परस्पर टकराकर चूर-चूर हो गयीं॥ १३-१४॥

कंसने अत्यन्त कोपसे भरे हुए यक्षको मुक्केसे मारा; तब शङ्खचूडने भी कंसपर मुक्केसे प्रहार किया। इस तरह मुक्का-मुक्की करते हुए उन दोनोंको सत्ताईस दिन बीत गये। दोनोंमेंसे किसीका बल क्षीण नहीं हुआ। दोनों ही एक-दूसरेके पराक्रमसे चकित थे॥ १५-१६॥

तदनन्तर दैत्यराज महाबली कंसने शङ्खचूडको सहसा पकड़कर बलपूर्वक आकाशमें फेंक दिया। वह सौ योजन ऊपर चला गया। शङ्खचूड आकाशसे जब वेगपूर्वक नीचे गिरा तो उसके मनमें किंचित् व्याकुलता आ गयी, तथापि उसने भी कंसको पकड़कर आकाशमें दस हजार योजन ऊँचे फेंक दिया॥ १७-१८॥

कंस भी आकाशसे गिरनेपर मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। फिर उसने यक्षको पकड़कर सहसा पृथ्वीपर दे मारा। फिर शङ्खचूडने भी कंसको पकड़कर भूमिपर पटक दिया। इस प्रकार घोर युद्ध चलते रहनेके कारण भूमण्डल काँपने लगा॥ १९-२०॥

मुनीन्द्रः सर्ववित्साक्षाद् गर्गाचार्यः समागतः।
रङ्गेषु वन्दितस्ताभ्यां कंसं प्राहोर्जया गिरा॥ २१

श्रीगर्ग उवाच

युद्धं मा कुरु राजेन्द्र विफलोऽयं रणोऽत्र वै।
त्वत्समानो ह्ययं वीरः शङ्खचूडो महाबलः॥ २२

तव मुष्टिप्रहारेण भृशमैरावतो गजः।
जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ॥ २३

अन्येऽपि बलिनो दैत्या मुष्टिना ते मृतिं गताः।
शङ्खचूडो न पतितः सन्देहो नास्ति तच्छृणु॥ २४

परिपूर्णतमो यो वै सोऽपि त्वां घातयिष्यति।
तथैनं शङ्खचूडाख्यं शिवस्यापि वरोर्जितम्॥ २५

तस्मात्प्रेम प्रकर्तव्यं शङ्खचूडे यदूद्वह।
यक्षराट् च त्वया कंसे कर्तव्यं प्रेम निश्चितम्॥ २६

श्रीनारद उवाच

गर्गेणोक्तौ तदा तौ द्वौ मिलित्वाथ परस्परम्।
परमां चक्रतुः प्रीतिं शङ्खचूडयदूद्वहौ॥ २७

अथ कंसमनुज्ञाप्य गृहं गन्तुं समुद्यतः।
गच्छन्मार्गेऽशृणोद् रात्रौ रासगानं मनोहरम्॥ २८

तालशब्दानुसारेण सम्प्राप्तो रासमण्डले।
रासेश्वर्या समं रासेऽपश्यद्रासेश्वरं हरिम्॥ २९

श्रीराधयालङ्कृतवामबाहुं
स्वच्छन्दवक्रीकृतदक्षिणाङ्घ्रिम्।
वंशीधरं सुन्दरमन्दहासं
भ्रूमण्डलैर्मोहितकामराशिम्॥ ३०

व्रजाङ्गनायूथपतिं व्रजेश्वरं
सुसेवितं चामरछत्रकोटिभिः।
विज्ञाय कृष्णं ह्यतिकोमलं शिशुं
गोपीं समाहर्तुमलं मनोऽकरोत्॥ ३१

बहुलाश्व उवाच

किं बभूव ततो रासे शङ्खचूडे समागते।
एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र त्वं परावरवित्तमः॥ ३२

इसी बीचमें सर्वज्ञ मुनिवर साक्षात् गर्गाचार्य वहाँ आ गये। दोनोंने रङ्गभूमिमें उन्हें देखकर प्रणाम किया। तब गर्गने ओजस्विनी वाणीमें कंससे कहा॥ २१॥

श्रीगर्गजी बोले—राजेन्द्र! युद्ध न करो। इस युद्धसे कोई फल मिलनेवाला नहीं है। यह महाबली शङ्खचूड तुम्हारे समान ही वीर है। तुम्हारे मुक्केकी मार खाकर गजराज ऐरावतने धरतीपर घुटने टेक दिये थे और उसे अत्यन्त मूर्च्छा आ गयी थी॥ २२-२३॥

और भी बहुत-से दैत्य तुम्हारे मुक्केकी मार खाकर मृत्युके ग्रास बन गये हैं, परंतु शङ्खचूड धराशायी नहीं हो सका। इसमें संदेह नहीं कि यह तुम्हारे लिये अजेय है। इसका कारण सुनो। वे परिपूर्णतम परमात्मा जैसे तुम्हारा वध करनेवाले हैं, उसी तरह भगवान् शिवके वरसे बलशाली हुए इस शङ्खचूडको भी मारेंगे। अतः यदुनन्दन! तुम्हें शङ्खचूडपर प्रेम करना चाहिये। यक्षराज! तुम्हें भी अवश्य ही कंसपर प्रेमभाव रखना चाहिये॥ २४—२६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! गर्गाचार्यजीके यों कहनेपर शङ्खचूड तथा कंस—दोनों परस्पर मिले और एक-दूसरेसे अत्यन्त प्रेम करने लगे। तदनन्तर कंससे बिदा ले शङ्खचूड अपने घरको जाने लगा। रात्रिके समय मार्गमें उसे रासमण्डल मिला। वहाँ ताल-स्वरसे युक्त मनोहर गान उसके कानमें पड़ा। फिर उसने रासमें श्रीरासेश्वरीके साथ रासेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया॥ २७—२९॥

उनकी बायीं भुजा श्रीराधाके कंधेपर सुशोभित थी। वे स्वेच्छानुसार अपने दाहिने पैरको टेढ़ा किये खड़े थे। हाथमें वंशी लिये मुखसे सुन्दर मन्द हासकी छटा छिटका रहे थे। उनके भ्रूमण्डलपर राशि-राशि कामदेव मोहित थे। व्रज-सुन्दरियोंके यूथपति व्रजेश्वर श्रीकृष्ण कोटि-कोटि छत्र-चँवरोंसे सुसेवित थे। उन्हें अत्यन्त कोमल शिशु जानकर शङ्खचूडने गोपियोंको हर ले जानेका विचार किया॥ ३०-३१॥

बहुलाश्वने पूछा—विप्रवर! आप भूत और भविष्य—सब जानते हैं; अतः बताइये, रासमण्डलमें शङ्खचूडके आनेपर क्या हुआ?॥ ३२॥

श्रीनारद उवाच

व्याघ्राननं कृष्णवर्णं तालवृक्षदशोच्छ्रितम्।
भयङ्करं ललज्जिह्वं दृष्ट्वा गोप्योऽतितत्रसुः॥ ३३

दुद्रुवुः सर्वतो गोप्यो महान् कोलाहलोऽभवत्।
हाहाकारस्तदैवासीच्छङ्खचूडे समागते॥ ३४

शतचन्द्राननां गोपीं गृहीत्वा यक्षराट् खलः।
दुद्रावाशूत्तरामाशां निःशङ्कः कामपीडितः॥ ३५

रुदन्तीं कृष्ण कृष्णेति क्रोशन्तीं भयविह्वलाम्।
तमन्वधावच्छ्रीकृष्णः शालहस्तो रुषा भृशम्॥ ३६

यक्षो वीक्ष्य तमायान्तं कृतान्तमिव दुर्जयम्।
गोपीं त्यक्त्वा जीवितेच्छुः प्राद्रवद्भयविह्वलः॥ ३७

यत्र यत्र गतो धावन् शङ्खचूडो महाखलः।
तत्र तत्र गतः कृष्णः शालहस्तो भृशं रुषा॥ ३८

हिमाचलतटं प्राप्तः शालमुद्यम्य यक्षराट्।
तस्थौ तत्सम्मुखे राजन् युद्धकामो विशेषतः॥ ३९

तस्मै चिक्षेप भगवान् शालवृक्षं भुजौजसा।
तेन घातेन पतितो वृक्षो वातहतो यथा॥ ४०

पुनरुत्थाय वैकुण्ठं मुष्टिना तं जघान ह।
जगर्ज सहसा दुष्टो नादयन् मण्डलं दिशाम्॥ ४१

गृहीत्वा तं हरिर्दोर्भ्यां भ्रामयित्वा भुजौजसा।
पातयामास भूपृष्ठे वातः पद्ममिवोद्धृतम्॥ ४२

शङ्खचूडस्तं गृहीत्वा पोथयामास भूतले।
एवं युद्धे सम्प्रवृत्ते चकम्पे भूमिमण्डलम्॥ ४३

मुष्टिना तच्छिरश्छित्वा तस्माच्चूडामणिं हरिः।
जग्राह माधवः साक्षात्सुकृती शेवधिं यथा॥ ४४

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! शङ्खचूडका मुँह था बाघके समान और शरीरका रंग था एकदम काला-कलूटा। वह दस ताड़के बराबर ऊँचा था और जीभ लपलपाकर जबड़े चाटता हुआ बड़ा भयंकर जान पड़ता था। उसे देखकर गोपाङ्गनाएँ भयसे थर्रा उठीं और चारों ओर भागने लगीं। इससे महान् कोलाहल होने लगा। इस प्रकार शङ्खचूडके आते ही रासमण्डलमें हाहाकार मच गया। वह कामपीड़ित दुष्ट यक्षराज शतचन्द्रानना नामवाली गोपसुन्दरीको पकड़कर बिना किसी भय और आशङ्काके उत्तर दिशाकी ओर तेजीसे दौड़ चला॥ ३३—३५॥

शतचन्द्रानना भयसे व्याकुल हो 'कृष्ण! कृष्ण!!' पुकारती हुई रोने लगी। यह देख श्रीकृष्ण अत्यन्त कुपित हो, शालका वृक्ष हाथमें लिये, उसके पीछे दौड़े। कालके समान दुर्जय श्रीकृष्णको पीछा करते देख यक्ष उस गोपीको छोड़कर भयसे विह्वल हो प्राण बचानेकी इच्छासे भागा। महादुष्ट शङ्खचूड भागकर जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ श्रीकृष्ण भी शालवृक्ष हाथमें लिये अत्यन्त रोषपूर्वक गये॥ ३६—३८॥

राजन्! हिमालयकी घाटीमें पहुँचकर उस यक्षराजने भी एक शाल उखाड़ लिया और उनके सामने विशेषतः युद्धकी इच्छासे वह खड़ा हो गया। भगवान्ने अपने बाहुबलसे शङ्खचूडपर उस शालवृक्षको दे मारा। उसके आघातसे शङ्खचूड आँधीके उखाड़े हुए पेड़की भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३९-४०॥

शङ्खचूडने फिर उठकर भगवान् श्रीकृष्णको मुक्केसे मारा। मारकर वह दुष्ट यक्ष सम्पूर्ण दिशाओंको निनादित करता हुआ सहसा गरजने लगा। तब श्रीहरिने उसे दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और भुजाओंके बलसे घुमाकर उसी तरह पृथ्वीपर पटक दिया जैसे वायु उखाड़े हुए कमलको फेंक देती है॥ ४१-४२॥

शङ्खचूडने भी श्रीकृष्णको पकड़कर धरतीपर दे मारा। जब इस प्रकार युद्ध चलने लगा, तब सारा भूमण्डल काँप उठा। तब माधव श्रीकृष्णने मुक्केकी मारसे उसके सिरको धड़से अलग कर दिया और उसकी चूडामणि ले ली—ठीक उसी तरह जैसे कोई पुण्यात्मा पुरुष कहींसे निधि प्राप्त कर लेता है॥ ४३-४४॥

तज्ज्योतिर्निर्गतं दीर्घं द्योतयन्मण्डलं दिशाम्।
श्रीदाम्नि श्रीकृष्णसखे लीनं जातं व्रजे नृप॥ ४५

एवं हत्वा शङ्खचूडं भगवान् मधुसूदनः।
मणिपाणिः पुनः शीघ्रमाययौ रासमण्डलम्॥ ४६

चन्द्राननायै च मणिं दत्वा तं दीनवत्सलः।
पुनर्गोपीगणैः सार्धं रासं चक्रे हरिः स्वयम्॥ ४७

नरेश्वर! शङ्खचूडके शरीरसे एक विशाल ज्योति निकली और दिङ्मण्डलको प्रकाशित करती हुई व्रजमें श्रीकृष्णसखा श्रीदामाके भीतर विलीन हो गयी। इस प्रकार शङ्खचूडका वध करके भगवान् मधुसूदन, हाथमें मणि लिये, फिर शीघ्र ही रास-मण्डलमें आ गये। दीनवत्सल श्रीहरिने वह मणि शतचन्द्राननाको दे दी और पुनः समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ रास आरम्भ किया॥ ४५—४७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे रासक्रीडायां शङ्खचूडवधो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत रासक्रीड़ाके प्रसङ्गमें 'शङ्खचूडका वध' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

रास-विहार तथा आसुरिमुनिका उपाख्यान

श्रीनारद उवाच

अथ गोपीगणैः सार्धं पश्यन् श्रीयमुनातटम्।
विहर्तुमाययौ कृष्णो वृन्दारण्यं मनोहरम्॥ १

वृन्दावने चौषधयो लीना जाता हरेर्वरात्।
ताः सर्वाश्चाङ्गना भूत्वा यूथीभूत्वा समाययुः॥ २

लतागोपीसमूहेन चित्रवर्णेन मैथिल।
रेमे वृन्दावने राजन् हरिर्वृन्दावनेश्वरः॥ ३

कलिन्दनन्दिनीतीरे कदम्बाच्छादिते शुभे।
त्रिविधेन समीरेण सर्वतः सुरभीकृते॥ ४

विलसत्पुलिने रम्ये वंशीवटविराजिते।
स्थितोऽभूद् राधया सार्धं रासश्रमसमन्वितः॥ ५

वीणातालमृदङ्गादिमुरुयष्टियुतानि च।
वादित्राण्यम्बरे नेदुः सुरैर्गोपीगणैः सह॥ ६

देवेषु पुष्पं वर्षत्सु जयध्वनियुतेषु च।
तोषयन्त्यो हरिं गोप्यो जगुस्तद्यश उत्तमम्॥ ७

श्रीनारदजी कहते हैं—तदनन्तर गोपीगणोंके साथ यमुनातटका दृश्य देखते हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण रास-विहारके लिये मनोहर वृन्दावनमें आये। श्रीहरिके वरदानसे वृन्दावनकी ओषधियाँ विलीन हो गयीं और वे सब-की-सब व्रजाङ्गना होकर, एक यूथके रूपमें संघटित हो, रासगोष्ठीमें सम्मिलित हो गयीं। मिथिलेश्वर! लतारूपिणी गोपियोंका समूह विचित्र कान्तिसे सुशोभित था। उन सबके साथ वृन्दावनेश्वर श्रीहरि वृन्दावनमें विहार करने लगे॥ १—३॥

कदम्ब-वृक्षोंसे आच्छादित कालिन्दीके सुरम्य तटपर सब ओर शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलकर उस स्थानको सुगन्धपूर्ण कर रही थी। वंशीवट उस सुन्दर पुलिनकी रमणीयताको बढ़ा रहा था। रासके श्रमसे थके हुए श्रीकृष्ण वहीं श्रीराधाके साथ आकर बैठे॥ ४-५॥

उस समय गोपाङ्गनाओंके साथ-साथ आकाशस्थित देवता भी वीणा, ताल, मृदङ्ग, मुरचंग आदि भाँति-भाँतिके वाद्य बजा रहे थे तथा जय-जयकार करते हुए दिव्य फूल बरसा रहे थे। गोप-सुन्दरियाँ श्रीहरिको आनन्द प्रदान करती हुई उनके उत्तम यशका गान करने लगीं॥ ६-७॥

काश्चिद्वै मेघमल्लारं दीपकं च तथापराः।
मालकोशं भैरवं च श्रीरागं च तथैव च॥ ८

हिन्दोलं च जगुः काश्चिद्राजन् सप्तस्वरैः सह।
काश्चित्तासां प्रमुग्धाश्च काश्चिन्मुग्धाः स्त्रियो नृप॥ ९

काश्चित्प्रौढाः प्रेमपराः श्रीकृष्णे लग्नमानसाः।
जारधर्मेण गोविन्दं काश्चिद्गोप्यो भजन्ति हि॥ १०

काश्चिच्छ्रीकृष्णसहिताः कन्दुकक्रीडने रताः।
काश्चित्पुष्पैश्च हरिणा क्रीडां चक्रुः परस्परम्॥ ११

काश्चिल्लतासु धावन्त्यः क्वणन्नूपुरमेखलाः।
काश्चित्पिबन्ति सततं बलात्कृष्णाधरामृतम्॥ १२

काश्चिद्भुजाभ्यां श्रीकृष्णं योगिनामपि दुर्लभम्।
सङ्गृहीत्वा प्रहस्याराच्चक्रुरालिङ्गनं महत्॥ १३

मनोज्ञो यदुराजश्च गोपीनां भगवान् हरिः।
काश्मीरमुद्रितो रेमे वने वृन्दावनेश्वरः॥ १४

काश्चिद्वीणां वादयन्त्यः समं वंशीधरेण वै।
काश्चिन्मृदङ्गं वाद्यन्त्यो गायन्त्यो भगवद्गुणम्॥ १५

काश्चिद्वै मधुरं तालं ताडयन्त्यो हरेः पुरः।
मुरयष्टिं सङ्गृहीत्वा हरिणा माधवीतले॥ १६

गायन्त्यः सुस्थिरा भूमौ विस्मृत्य जगतः सुखम्।
काश्चिल्लतासु श्रीकृष्णभुजे बाहुं निधाय च॥ १७

वृन्दावनस्य पश्यन्त्यः शोभां राजन्नितस्ततः।
लताजालैः संवलितं गोपीनां हारसञ्चयम्॥ १८

पृथक्चकार गोविन्दः स्पृष्ट्वा तासामुरःस्थलम्।
गोपीनां नासिकामुक्तावलिं तत्कुन्तलं स्वयम्॥ १९

कुछ गोपियाँ मेघमल्लार नामक राग गातीं तो अन्य गोपियाँ दीपक राग सुनाती थीं। राजन्! कुछ गोपियोंने क्रमशः मालकोश, भैरव, श्रीराग तथा हिन्दोल रागका सात स्वरोंके साथ गान किया। नरेश्वर! उनमेंसे कुछ गोपियाँ तो अत्यन्त भोली-भाली थीं और कुछ मुग्धाएँ थीं। कितनी ही प्रेमपरायणा गोपसुन्दरियाँ प्रौढा नायिकाकी श्रेणीमें आती थीं। उन सबके मन श्रीकृष्णमें लगे थे। कितनी ही गोपाङ्गनाएँ जारभावसे गोविन्दकी सेवा करती थीं॥ ८—१०॥

कोई श्रीकृष्णके साथ गेंद खेलने लगीं, कुछ श्रीहरिके साथ रहकर परस्पर फूलोंसे क्रीड़ा करने लगीं। कितनी ही गोपाङ्गनाएँ पैरोंमें नूपुर धारण करके परस्पर नृत्य-क्रीड़ा करती हुई नूपुरोंकी झंकारके साथ-साथ श्रीकृष्णके अधरामृतका पान कर लेती थीं। कितनी ही गोपियाँ योगियोंके लिये भी दुर्लभ श्रीकृष्णको दोनों भुजाओंसे पकड़कर हँसती हुई अत्यन्त निकट आ जातीं और उनका गाढ़ आलिङ्गन करती थीं॥ ११—१३॥

इस प्रकार परम मनोहर वृन्दावनाधीश्वर यदुराज भगवान् श्रीहरि केसरका तिलक धारण किये, गोपियोंके साथ वृन्दावनमें विहार करने लगे। कुछ गोपाङ्गनाएँ वंशीधरकी बाँसुरीके साथ वीणा बजाती थीं और कितनी ही मृदङ्ग बजाती हुई भगवान्‌के गुण गाती थीं॥ १४-१५॥

कुछ श्रीहरिके सामने खड़ी हो मधुर स्वरसे खड़ताल बजातीं और बहुत-सी सुन्दरियाँ माधवी लताके नीचे चंग बजाती हुई श्रीकृष्णके साथ सुस्थिर-भावसे गीत गाती थीं। वे भूतलपर सांसारिक सुखको सर्वथा भुलाकर वहाँ रम रही थीं। कुछ गोपियाँ लतामण्डपोंमें श्रीकृष्णके हाथको अपने हाथमें लेकर इधर-उधर घूमती हुई वृन्दावनकी शोभा निहारती थीं॥ १६—१७½॥

किन्हीं गोपियोंके हार लता-जालसे उलझ जाते, तब गोविन्द उनके वक्षःस्थलका स्पर्श करते हुए उन हारोंको लता-जालोंसे पृथक् कर देते थे। गोप-सुन्दरियोंकी नासिकामें जो नकबेसरें थीं, उनमें मोतीकी लड़ियाँ पिरोयी गयी थीं। उनको तथा उनकी

शनैः शनैः शोभनं तच्चक्रे श्रीनन्दनन्दनः।
ताम्बूलं चर्वितं ह्यर्धं नीत्वा सद्योऽथ गोपिकाः॥ २०

चर्वयन्त्यः सुगन्धाढ्यमहो तासां तपो महत्।
काश्चिच्छ्यामकपोलेषु द्व्यङ्गुलेन शनैः शनैः॥ २१

हसन्त्यस्ताडयन्त्यस्ताः कदम्बेषु बलात्पृथक्।
पुंवेषनायकाः काश्चिन्मौलिकुण्डलमण्डिताः॥ २२

नृत्यन्त्यः कृष्णपुरतः श्रीकृष्ण इव मैथिल।
राधावेषधरा गोप्यः शतचन्द्राननप्रभाः॥ २३

तोषयन्त्यश्च राधां तां तथा राधापतिं जगुः।
काश्चित्ताः सात्त्विकैर्भावैः संयुक्ताः प्रेमविह्वलाः॥ २४

योगीव चास्थिता भूमौ परमानन्दसम्प्लुताः।
काश्चिल्लतासु वृक्षेषु भूम्यां वै विदिशासु च॥ २५

पश्यन्त्यःश्रीपतिं देवं स्वस्मिन् वा मौनमास्थिताः।
एवं रासे गोपवध्वः सर्वाः पूर्णमनोरथाः॥ २६

बभूवुरेत्य गोविन्दं सर्वेशं भक्तवत्सलम्।
यत्प्रसादस्तु गोपीनां प्राप्तो राजन् महामते॥ २७

ज्ञानिनामपि नास्त्येवं कर्मिणां तु कुतश्च सः।
एवं श्रीकृष्णचन्द्रस्य हरे राधापतेः प्रभोः॥ २८

रासे चित्रं यद्बभूव तच्छृणुष्व महामते।
मुनीन्द्र आसुरिर्नाम श्रीकृष्णेष्टो महातपाः॥ २९

नारदाद्रौ तपस्तेपे हरौ ध्यानपरायणः।
हृत्पुण्डरीके श्रीकृष्णं ज्योतिर्मण्डलमास्थितम्॥ ३०

मनोज्ञं राधया सार्धं नित्यं ध्याने ददर्श ह।
एकदा ध्यानमध्ये तु रात्रौ कृष्णो न चागतः॥ ३१

अलकावलियोंको श्यामसुन्दर स्वयं सँभालते और धीरे-धीरे सुलझाकर सुशोभन बनाते रहते थे। माधवके चबाये हुए सुगन्धयुक्त ताम्बूलमेंसे आधा लेकर तत्काल गोपसुन्दरियाँ भी चबाने लगती थीं। अहो! उनका कैसा महान् तप था! कितनी ही गोपियाँ हँसती हुई श्यामसुन्दरके कपोलोंपर अपनी दो अँगुलियोंसे धीरे-धीरे छूतीं और कोई हँसती हुई बलपूर्वक हलका-सा आघात कर बैठती थीं। कदम्ब-वृक्षोंके नीचे पृथक्-पृथक् सभी गोपाङ्गनाओंके साथ उनका क्रीडा-विनोद चल रहा था॥ १९—२१ १/२ ॥

मिथिलेश्वर! कुछ गोपाङ्गनाएँ पुरुष-वेष धारणकर, मुकुट और कुण्डलोंसे मण्डित हो, स्वयं नायक बन जातीं और श्रीकृष्णके सामने उन्हींकी तरह नृत्य करने लगती थीं। जिनकी मुख-कान्ति शत-शत चन्द्रमाओंको तिरस्कृत करती थी, ऐसी गोपसुन्दरियाँ श्रीराधाका वेष धारण करके श्रीराधा तथा उनके प्राणवल्लभको आनन्दित करती हुई उनके यश गाती थीं॥ २२—२३ १/२ ॥

कुछ व्रजाङ्गनाएँ स्तम्भ, स्वेद आदि सात्त्विक भावोंसे युक्त, प्रेम-विह्वल एवं परमानन्दमें निमग्न हो, योगिजनोंकी भाँति समाधिस्थ होकर भूमिपर बैठ जाती थीं। कोई लताओंमें, वृक्षोंमें, भूतलमें, विभिन्न दिशाओंमें तथा अपने-आपमें भी भगवान् श्रीपतिका दर्शन करती हुई मौनभाव धारण कर लेती थीं। इस प्रकार रास-मण्डलमें सर्वेश्वर, भक्तवत्सल गोविन्दकी शरण ले, वे सब गोप-सुन्दरियाँ पूर्णमनोरथ हो गयीं। महामते राजन्! वहाँ गोपियोंको भगवान्‌का जो कृपाप्रसाद प्राप्त हुआ, वह ज्ञानियोंको भी नहीं मिलता, फिर कर्मियोंको तो मिल ही कैसे सकता है?॥ २४—२७ १/२ ॥

महामते! इस प्रकार राधावल्लभ प्रभु श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रके रासमें जो एक विचित्र घटना हुई, उसे सुनो। श्रीकृष्णके प्रिय भक्त एवं महातपस्वी एक मुनि थे, जिनका नाम 'आसुरि' था॥ २८-२९ ॥

वे नारदगिरिपर श्रीहरिके ध्यानमें तत्पर हो तपस्या करते थे। हृदयकमलमें ज्योतिर्मण्डलके भीतर राधासहित मनोहर-मूर्ति श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका वे चिन्तन किया करते थे। एक समय रातमें जब मुनि ध्यान करने लगे, तब श्रीकृष्ण उनके ध्यानमें नहीं आये॥ ३०-३१ ॥

वारं वारं कृतं ध्यानं खिन्नो जातो महामुनिः।
ध्यानादुत्थाय स मुनिः कृष्णदर्शनलालसः॥ ३२

नारायणाश्रमं प्रागाद्बदरीखण्डमण्डितम्।
न ददर्श हरिं देवं नरनारायणं मुनिः॥ ३३

तदातिविस्मितो विप्रो लोकालोकगिरिं ययौ।
सहस्रशिरसं देवं न ददर्श स तत्र वै॥ ३४

पप्रच्छ पार्षदांस्तत्र क्व गतो भगवानितः।
न विद्मो भो वयं चोक्तो मुनिः खिन्नमनास्तदा॥ ३५

श्वेतद्वीपं ययौ दिव्यं क्षीरसागरशोभितम्।
तत्रापि शेषपर्यङ्के न ददर्श हरिं पुनः॥ ३६

तदा मुनिः खिन्नमनाः प्रेम्णा पुलकिताननः।
पप्रच्छ पार्षदांस्तत्र क्व गतो भगवानितः॥ ३७

न विद्मो भो वयं चोक्तो मुनिश्चिन्तापरायणः।
किं करोमि क्व गच्छामि दर्शनं तत्कथं भवेत्॥ ३८

एवं ब्रुवन् मनोयायी वैकुण्ठं प्राप्तवांस्ततः।
नापश्यत्तत्र देवेशं रमां वैकुण्ठवासिनीम्॥ ३९

न दृष्टस्तत्र भक्तेषु मुनिनासुरिणा नृप।
ततो मुनीन्द्रो योगीन्द्रो गोलोकं स जगाम ह॥ ४०

वृन्दावने निकुञ्जेऽपि न ददर्श परात्परम्।
तदा मुनिः खिन्नमनाः श्रीकृष्णविरहातुरः॥ ४१

पप्रच्छ पार्षदांस्तत्र क्व गतो भगवानितः।
ऊचुस्तं पार्षदा गोपा वामनाण्डे मनोहरे॥ ४२

पृश्निगर्भो यत्र जातस्तत्रैव भगवान् स्वयम्।
इत्युक्त आसुरिस्तस्मादस्मिन्नण्डे समागतः॥ ४३

उन्होंने बारंबार ध्यान लगाया, किंतु सफलता नहीं मिली। इससे वे महामुनि खिन्न हो गये। फिर वे मुनि ध्यानसे उठकर श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे बदरीखण्डमण्डित नारायणाश्रमको गये; किंतु वहाँ उन मुनीश्वरको नर-नारायणके दर्शन नहीं हुए। तब अत्यन्त विस्मित हो, वे ब्राह्मणदेवता लोकालोक पर्वतपर गये; किंतु वहाँ सहस्र सिरवाले अनन्तदेवका भी उन्हें दर्शन नहीं हुआ॥ ३२—३४॥

तब उन्होंने वहाँके पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ गये हैं?' उन्होंने उत्तर दिया—'हम नहीं जानते।' उनके इस प्रकार उत्तर देनेपर उस समय मुनिके मनमें बड़ा खेद हुआ। फिर वे क्षीरसागरसे सुशोभित श्वेतद्वीपमें गये; किंतु वहाँ भी शेषशय्यापर श्रीहरिका दर्शन उन्हें नहीं हुआ॥ ३५-३६॥

तब मुनिका चित्त और भी खिन्न हो गया। उनका मुख प्रेमसे पुलकित दिखायी देता था। उन्होंने पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ चले गये?' पुनः वही उत्तर मिला—'हमलोग नहीं जानते।' उनके यों कहनेपर मुनि भारी चिन्तामें पड़ गये और सोचने लगे—'क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे श्रीहरिका दर्शन हो?'॥ ३७-३८॥

यों कहते हुए मनके समान गतिशील आसुरिमुनि वैकुण्ठधाममें गये; किंतु वहाँ भी लक्ष्मीके साथ निवास करनेवाले भगवान् नारायणका दर्शन उन्हें नहीं हुआ। नरेश्वर! वहाँके भक्तोंमें भी आसुरिमुनिने भगवान्‌को नहीं देखा। तब वे योगीन्द्र मुनीश्वर गोलोकमें गये; परंतु वहाँके वृन्दावनीय निकुञ्जमें भी परात्पर श्रीकृष्णका दर्शन उन्हें नहीं हुआ। तब मुनिका चित्त खिन्न हो गया और वे श्रीकृष्ण-विरहसे अत्यन्त व्याकुल हो गये॥ ३९—४१॥

वहाँ उन्होंने पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ गये हैं?' तब वहाँ रहनेवाले पार्षद गोपोंने उनसे कहा—'वामनावतारके ब्रह्माण्डमें, जहाँ कभी पृश्निगर्भ अवतार हुआ था, वहाँ साक्षात् भगवान् पधारे हैं।' उनके यों कहनेपर महामुनि आसुरि वहाँसे उस ब्रह्माण्डमें आये॥ ४२-४३॥

हरिं ह्यपश्यन् प्रचलन् कैलासं प्राप्तवान्मुनिः।
तत्र स्थितं महादेवं कृष्णध्यानपरायणम्॥ ४४

नत्वा पप्रच्छ तद्रात्रौ खिन्नचेता महामुनिः।

आसुरिरुवाच

भगवन् सर्वब्रह्माण्डं मया दृष्टमितस्ततः॥ ४५

आवैकुण्ठाच्च गोलोकाद्भ्रमता तद्दिदृक्षुणा।
कुत्रापि देवदेवस्य दर्शनं न बभूव मे॥ ४६

कुत्रास्ते भगवानद्य वद सर्वविदांवर।

श्रीमहादेव उवाच

धन्यस्त्वमासुरे ब्रह्मन् कृष्णभक्तोऽस्यहैतुकः।
दिदृक्षुणा त्वयायासं कृतं वेद्मि महामुने॥ ४७

हंसं मुनिं दुःखगतं महोदधौ
यः सर्वतो मोचयितुं गतस्त्वरम्।
सोऽद्यैव वृन्दाविपिने सखीजनैः
करोति रासं रसिकेश्वरः स्वयम्॥ ४८

षाण्मासिकी चाद्य कृता निशीथिनी
स्वमायया देववरेण भो मुने।
अहं गमिष्यामि तदेव द्रष्टुं
त्वमेव गच्छाशु मनोरथं यथा॥ ४९

[वहाँ भी] श्रीहरिका दर्शन न होनेसे तीव्र गतिसे चलते हुए मुनि कैलास पर्वतपर गये। वहाँ महादेवजी श्रीकृष्णके ध्यानमें तत्पर होकर बैठे थे। उन्हें नमस्कार करके रात्रिमें खिन्न-चित्त हुए महामुनिने पूछा— ॥ ४४½ ॥

आसुरि बोले—भगवन्! मैंने सारा ब्रह्माण्ड इधर-उधर छान डाला, भगवद्दर्शनकी इच्छासे वैकुण्ठसे लेकर गोलोकतकका चक्कर लगा आया, किंतु कहीं भी देवाधिदेवका दर्शन मुझे नहीं हुआ। सर्वज्ञशिरोमणे! बताइये, इस समय भगवान् कहाँ हैं? ॥ ४५—४६½ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—आसुरे! तुम धन्य हो। ब्रह्मन्! तुम श्रीकृष्णके निष्काम भक्त हो। महामुने! मैं जानता हूँ, तुमने श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे महान् क्लेश उठाया है। क्षीरसागरमें रहनेवाले हंसमुनि बड़े कष्टमें पड़ गये थे। उन्हें उस क्लेशसे मुक्त करनेके लिये जो बड़ी उतावलीके साथ वहाँ गये थे, वे ही भगवान् रसिकशेखर साक्षात् श्रीकृष्ण अभी-अभी वृन्दावनमें आकर सखियोंके साथ रास-क्रीडा कर रहे हैं। मुने! आज उन देवेश्वरने अपनी मायासे छः महीनेके बराबर बड़ी रात बनायी है। मैं उसी रासोत्सवका दर्शन करनेके लिये वहाँ जाऊँगा। तुम भी शीघ्र ही चलो, जिससे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जाय॥ ४७—४९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रासक्रीडायामासुर्युपाख्यानं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें रासक्रीड़ा-प्रसङ्गमें 'आसुरिमुनिका उपाख्यान' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

शिव और आसुरिका गोपीरूपसे रासमण्डलमें श्रीकृष्णका दर्शन और स्तवन करना तथा उनके वरदानसे वृन्दावनमें नित्य-निवास पाना

श्रीनारद उवाच

एवं विचिन्त्य मनसा शिवो वासुरिणा सह।
तौ कृष्णदर्शनार्थाय जग्मतुर्व्रजमण्डलम्॥ १

दिव्यद्रुमलताकुञ्जतोलिकापुञ्जशोभिताम्।
पश्यन्तौ तौ दिव्यभूमिं कालिन्दीनिकटे गतौ॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! भगवान् शिव आसुरिके साथ सम्पूर्ण हृदयसे ऐसा निश्चय करके वहाँसे चले। वे दोनों श्रीकृष्णदर्शनके लिये व्रज-मण्डलमें गये। वहाँकी भूमि दिव्य वृक्षों, लताओं, कुञ्जों और गुमटियोंसे सुशोभित थी। उस दिव्य भूमिका दर्शन करते हुए दोनों ही यमुनातटपर गये॥ १-२॥

गोलोकवासिन्यो नार्यो वेत्रहस्ता महाबलाः।
चक्रुर्बलात्तन्निषेधं मार्गस्था द्वारपालिकाः॥ ३

तावूचतुश्चागतौ स्वः कृष्णदर्शनलालसौ।
तावाहुर्नृपशार्दूल मार्गस्था द्वारपालिकाः॥ ४

द्वारपालिका ऊचुः

सर्वतो वृन्दकारण्यं कोटिशः कोटिशो वयम्।
रासरक्षां सदा कुर्मो न्यस्ता कृष्णेन भो द्विजौ॥ ५

एकोऽस्ति पुरुषः कृष्णो निर्जने रासमण्डले।
अन्यो न याति रहसि गोपीयूथं विना क्वचित्॥ ६

चेद्दिदृक्षू युवां तस्य स्नानं मानसरोवरे।
कुरुतं तत्र गोपीत्वं प्राप्याशु व्रजतं मुनी॥ ७

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तौ तौ मुनिशिवौ स्नात्वा मानसरोवरे।
गोपीत्वं प्राप्य सहसा जग्मतू रासमण्डले॥ ८

सौवर्णप्रखचित्पद्मरागभूमिमनोहरे।
माधवीलतिकावृन्दकदम्बाच्छादिते शुभे॥ ९

वसन्तचन्द्रकौमुद्या प्रदीप्ते सर्वकौशले।
यमुनारत्नसोपानतोलिकाभिर्विराजिते॥ १०

मयूरहंसदात्यूहकोकिलैः कूजिते परे।
यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभिते॥ ११

सभामण्डपवीथीभिः प्राङ्गणस्तम्भपंक्तिभिः।
पतत्पताकैर्दिव्याभैः सौवर्णैः कलशैर्वृते॥ १२

श्वेतारुणैः पुष्पसङ्घैः पुष्पमन्दिरवर्त्मभिः।
अलिकोलाहलैर्व्याप्ते वादित्रमधुरध्वनौ॥ १३

उस समय अत्यन्त बलशालिनी गोलोकवासिनी गोप-सुन्दरियाँ हाथमें बेंतकी छड़ी लिये वहाँ पहरा दे रही थीं। उन द्वारपालिकाओंने मार्गमें स्थित होकर उन्हें बलपूर्वक रासमण्डलमें जानेसे रोका। वे दोनों बोले—'हम श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे यहाँ आये हैं।' नृपश्रेष्ठ! तब राह रोककर खड़ी द्वारपालिकाओंने उन दोनोंसे कहा—॥ ३-४॥

द्वारपालिकाएँ बोलीं—विप्रवरो! हम कोटि-कोटि गोपाङ्गनाएँ वृन्दावनको चारों ओरसे घेरकर निरन्तर रासमण्डलकी रक्षा कर रही हैं। इस कार्यमें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने ही हमें नियुक्त किया है। इस एकान्त रासमण्डलमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं। उस पुरुषरहित एकान्त स्थानमें गोपीयूथके सिवा दूसरा कोई कभी नहीं जा सकता। मुनियो! यदि तुम दोनों उनके दर्शनके अभिलाषी हो तो इस मानसरोवरमें स्नान करो। वहाँ तुम्हें शीघ्र ही गोपीस्वरूपकी प्राप्ति हो जायगी, तब तुम मुनिद्वय रासमण्डलके भीतर जा सकते हो॥ ५—७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—द्वारपालिकाओंके यों कहनेपर वे मुनि और शिव मानसरोवरमें स्नान करके, गोपीभावको प्राप्त हो, सहसा रासमण्डलमें गये॥ ८॥

सुवर्णजटित पद्मरागमयी भूमि उस रासमण्डलकी मनोहरता बढ़ा रही थी। वह सुन्दर प्रदेश माधवीलता-समूहोंसे व्याप्त और कदम्बवृक्षोंसे आच्छादित था। वसन्त ऋतु तथा चन्द्रमाकी चाँदनीने उसको प्रदीप्त कर रखा था। सब प्रकारकी कौशलपूर्ण सजावट वहाँ दृष्टिगोचर होती थी। यमुनाजीकी रत्नमयी सीढ़ियों तथा तोलिकाओंसे रासमण्डलकी अपूर्व शोभा हो रही थी॥ ९-१०॥

मोर, हंस, चातक और कोकिल वहाँ अपनी मीठी बोली सुना रहे थे। वह उत्कृष्ट प्रदेश यमुनाजीके जलस्पर्शसे शीतल-मन्द वायुके बहनेसे हिलते हुए तरुपल्लवोंद्वारा बड़ी शोभा पा रहा था। सभामण्डपों और वीथियोंसे, प्राङ्गणों और खंभोंकी पंक्तियोंसे, फहराती हुई दिव्य पताकाओंसे और सुवर्णमय कलशोंसे सुशोभित तथा श्वेतारुण पुष्पसमूहोंसे सज्जित तथा पुष्पमन्दिर और मार्गोंसे एवं भ्रमरोंकी गुंजारों और वाद्योंकी मधुर ध्वनियोंसे व्याप्त रासमण्डलकी शोभा देखते ही बनती थी॥ ११—१३॥

सहस्रदलपद्मानां वायुना मन्दगामिना।
शीतलेन सुपुण्येन सर्वतः सुरभीकृते॥ १४

तस्मिन्निकुञ्जे श्रीकृष्णं कोटिचन्द्रप्रकाशया।
पद्मिन्या हंसगामिन्या राधया समलङ्कृतम्॥ १५

स्त्रीरत्नैरावृतं शश्वद्रासमण्डलमध्यगम्।
कोटिमन्मथलावण्यं श्यामसुन्दरविग्रहम्॥ १६

वंशीधरं पीतपटं वेत्रपाणिं मनोहरम्।
श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभिनं वनमालाविराजितम्॥ १७

क्वणन्नूपुरमञ्जीरकाञ्चिकेयूरभूषितम्।
हारकङ्कणबालार्ककुण्डलद्वयमण्डितम्॥ १८

कोटिचन्द्रप्रतीकाशं मौलिनं नन्दनन्दनम्।
दानदक्षैः कटाक्षैश्च हरन्तं योषितां मनः॥ १९

दूरादपश्यतां राजन्नासुरीशौ कृताञ्जली।
गोपीजनानां सर्वेषां पश्यतां नृपसत्तम॥ २०

नत्वा श्रीकृष्णपादाब्जमूचतुर्हर्षविह्वलौ।

द्वावूचतुः

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् देवदेव जगत्पते॥ २१

पुण्डरीकाक्ष गोविन्द गरुडध्वज ते नमः।
जनार्दन जगन्नाथ पद्मनाभ त्रिविक्रम।
दामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते॥ २२

अद्यैव देव परिपूर्णतमस्तु साक्षाद्
भूभूरिभारहरणाय सतां शुभाय।
प्राप्तोऽसि नन्दभवने परतः परस्त्वं
कृत्वा हि सर्वनिजलोकमशेषशून्यम्॥ २३

अंशांशकांशककलाभिरुताभिराम-
मावेशपूर्णनिचयाभिरतीव युक्तः।
विश्वं बिभर्षि रसरासमलङ्करोषि
वृन्दावनं च परिपूर्णतमः स्वयं त्वम्॥ २४

सहस्रदलकमलोंकी सुगन्धसे पूरित शीतल, मन्द एवं परम पुण्यमय समीर सब ओरसे उस स्थानको सुवासित कर रहा था। रास-मण्डलके निकुञ्जमें कोटि-कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाशित होनेवाली पद्मिनी-नायिका हंसगामिनी श्रीराधासे सुशोभित श्रीकृष्ण विराजमान थे। रास-मण्डलके भीतर निरन्तर स्त्रीरत्नोंसे घिरे हुए श्यामसुन्दरविग्रह श्रीकृष्णका लावण्य करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करनेवाला था॥ १४—१६॥

हाथमें वंशी और बेंत लिये तथा श्रीअङ्गपर पीताम्बर धारण किये वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न, कौस्तुभमणि तथा वनमाला शोभा दे रही थी। झंकारते हुए नूपुर, पायजेब, करधनी और बाजूबंदसे वे विभूषित थे। हार, कङ्कण तथा बालरविके समान कान्तिमान् दो कुण्डलोंसे वे मण्डित थे। करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्ति उनके आगे फीकी जान पड़ती थी। मस्तकपर मोरमुकुट धारण किये वे नन्दनन्दन मनोरथदान-दक्ष कटाक्षोंद्वारा युवतियोंका मन हर लेते थे॥ १७—१९॥

राजन्! आसुरि और शिव—दोनोंने दूरसे ही जब श्रीकृष्णको देखा तो हाथ जोड़ लिये। नृपश्रेष्ठ! समस्त गोपसुन्दरियोंके देखते-देखते श्रीकृष्ण-चरणारविन्दमें मस्तक झुकाकर, आनन्दविह्वल हुए उन दोनोंने कहा॥ २० १/२॥

दोनों बोले—कृष्ण! महायोगी कृष्ण! देवाधि-देव जगदीश्वर! पुण्डरीकाक्ष! गोविन्द! गरुडध्वज! आपको नमस्कार है। जनार्दन! जगन्नाथ! पद्मनाभ! त्रिविक्रम! दामोदर! हृषीकेश! वासुदेव! आपको नमस्कार है॥ २१-२२॥

देव! आप परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं। इन दिनों भूतलका भारी भार हरने और सत्पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये अपने समस्त लोकोंको पूर्णतया शून्य करके यहाँ नन्दभवनमें प्रकट हुए हैं। वास्तवमें तो आप परात्पर परमात्मा ही हैं। अंशांश, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण—समस्त अवतारसमूहोंसे संयुक्त हो, आप परिपूर्णतम परमेश्वर सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करते हैं तथा वृन्दावनमें सरस रासमण्डलको भी अलंकृत करते हैं॥ २३-२४॥

गोलोकनाथ गिरिराजपते परेश
वृन्दावनेश कृतनित्यविहारलील।
राधापते व्रजवधूजनगीतकीर्ते
गोविन्द गोकुलपते किल ते जयोऽस्तु॥ २५

श्रीमन्निकुञ्जलतिकाकुसुमाकरस्त्वं
श्रीराधिकाहृदयकण्ठविभूषणस्त्वम्।
श्रीरासमण्डलपतिर्व्रजमण्डलेशो
ब्रह्माण्डमण्डलमहीपरिपालकोऽसि॥ २६

श्रीनारद उवाच

तदा प्रसन्नो भगवान् राधया सहितो हरिः।
मन्दस्मितो मुनिं प्राह मेघगम्भीरया गिरा॥ २७

श्रीभगवानुवाच

षष्टिवर्षसहस्राणि युवयोस्तपतोस्तपः।
मद्दर्शनं तेन जातं सर्वतो नैरपेक्ष्ययोः॥ २८

निष्किञ्चनो यः शान्तश्चाजातशत्रुः स मत्सखा।
तस्माद्युवाभ्यां मनसा व्रियतामीप्सितो वरः॥ २९

शिवासुरी ऊचतुः

नमोऽस्तु भूमन् युवयोः पदाब्जे
सदैव वृन्दावनमध्यवासः।
न रोचते नोऽन्यमतस्त्वदङ्घ्रे-
र्नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम्॥ ३०

श्रीनारद उवाच

तथास्तु चोक्त्वा भगवान् वृन्दारण्ये मनोहरे।
कालिन्दीनिकटे राजन् रासमण्डलमण्डिते॥ ३१

निकुञ्जपार्श्वे पुलिने वंशीवटसमीपतः।
शिवोऽपि चासुरिमुनिर्नित्यं वासं चकार ह॥ ३२

अथ कृष्णो रासलीलां चक्रे पद्माकरे वने।
पतत्सुगन्धिरजसि गोपीभिर्भ्रमराकुले॥ ३३

गोलोकनाथ! गिरिराजपते! परमेश्वर! वृन्दावनाधीश्वर! नित्यविहार-लीलाका विस्तार करनेवाले राधावल्लभ! व्रजसुन्दरियोंके मुखसे अपना यशोगान सुननेवाले गोविन्द! गोकुलपते! सर्वथा आपकी जय हो। शोभाशालिनी निकुञ्जलताओंके विकासके लिये आप ऋतुराज वसन्त हैं। श्रीराधिकाके वक्ष और कण्ठको विभूषित करनेवाले रत्नहार हैं। श्रीरासमण्डलके पालक, व्रज-मण्डलके अधीश्वर तथा ब्रह्माण्ड-मण्डलकी भूमिके संरक्षक हैं॥ २५-२६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब श्रीराधासहित भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो मन्द-मन्द मुसकराते हुए मेघगर्जनकी-सी गम्भीर वाणीमें मुनिसे बोले—॥ २७॥

श्रीभगवान्ने कहा—तुम दोनोंने साठ हजार वर्षोंतक निरपेक्षभावसे तप किया है, इसीसे तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है। जो अकिंचन, शान्त तथा सर्वत्र शत्रुभावनासे रहित है, वही मेरा सखा है। अतः तुम दोनों अपने मनके अनुसार अभीष्ट वर माँगो॥ २८-२९॥

शिव और आसुरि बोले—भूमन्! आपको नमस्कार है। आप दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणकमलोंकी संनिधिमें सदा ही वृन्दावनके भीतर हमारा निवास हो। आपके चरणसे भिन्न और कोई वर हमें नहीं रुचता है; अतः आप दोनों—श्रीहरि एवं श्रीराधिकाको हमारा सादर नमस्कार है॥ ३०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब भगवान्ने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तभीसे शिव और आसुरिमुनि मनोहर वृन्दावनमें वंशीवटके समीप रासमण्डलसे मण्डित कालिन्दीके निकटवर्ती पुलिनपर निकुञ्जके पास ही नित्य निवास करने लगे॥ ३१-३२॥

तदनन्तर श्रीकृष्णने जहाँ कमलपुष्पोंके सौरभयुक्त पराग उड़ रहे थे और भ्रमर मँडरा रहे थे, उस पद्माकर वनमें गोपाङ्गनाओंके साथ रासक्रीड़ा प्रारम्भ की॥ ३३॥

एवं षाण्मासिकी रात्रिः कृता कृष्णेन मैथिल।
गोपीनां रासलीलायां व्यतीता क्षणवत्सुखैः॥ ३४

अरुणोदयवेलायां स्वगृहान् व्रजयोषितः।
यूथीभूत्वा ययू राजन् सर्वाः पूर्णमनोरथाः॥ ३५

श्रीनन्दमन्दिरं साक्षात्प्रययौ नन्दनन्दनः।
वृषभानुपुरं प्रागाद्वृषभानुसुता त्वरम्॥ ३६

एवं श्रीकृष्णचन्द्रस्य रासाख्यानं मनोहरम्।
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं मङ्गलायनम्॥ ३७

त्रिवर्ग्यदं जनानां तु मुमुक्षूणां सुमुक्तिदम्।
मया तवाग्रे कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३८

मिथिलेश्वर! उस समय श्रीकृष्णने छः महीनेकी रात बनायी। परंतु उस रासलीलामें सम्मिलित हुई गोपियोंके लिये वह सुख और आमोदसे पूर्ण रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी। राजन्! उन सबके मनोरथ पूर्ण हो गये। अरुणोदयकी वेलामें वे सभी व्रजसुन्दरियाँ झुंड-की-झुंड एक साथ होकर अपने घरको लौटीं। श्रीनन्दनन्दन साक्षात् नन्दमन्दिरमें चले गये और श्रीवृषभानुनन्दिनी तुरंत ही वृषभानुपुरमें जा पहुँचीं॥ ३४—३६॥

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका यह मनोहर रासोपाख्यान सुनाया गया, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद, मनोरथपूरक तथा मङ्गलका धाम है। साधारण लोगोंको यह धर्म, अर्थ और काम प्रदान करता है तथा मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाला है। राजन्! यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हारे सामने कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ३७-३८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे रासक्रीडावर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'रासक्रीडाका वर्णन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका विरजाके साथ विहार; श्रीराधाके भयसे विरजाका नदीरूप होना, उसके सात पुत्रोंका उसीके शापसे सात समुद्र होना तथा राधाके शापसे श्रीदामाका अंशतः शङ्खचूड होना

श्रीबहुलाश्व उवाच

अघासुरादिदैत्यानां ज्योतिः कृष्णे समाविशत्।
श्रीदाम्नि शङ्खचूडस्य कस्माल्लीनं बभूव ह॥ १

एतद्वद महाबुद्धे त्वं परावरवित्तम।
अहो श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरितं परमाद्भुतम्॥ २

श्रीनारद उवाच

पुरा गोलोकवृत्तान्तं नारायणमुखाच्छ्रुतम्।
सर्वपापहरं पुण्यं शृणु राजन् महामते॥ ३

राधा श्रीविरजा भूश्च तिस्रः पत्न्योऽभवन् हरेः।
तासां राधा प्रियातीव श्रीकृष्णस्य महात्मनः॥ ४

श्रीबहुलाश्वने पूछा—महामते देवर्षे! आप परावर-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। अतः यह बताइये कि अघासुर आदि दैत्योंकी ज्योति तो भगवान् श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हुई थी, परंतु शङ्खचूडका तेज श्रीदामामें लीन हुआ; इसका क्या कारण है? अहो! श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है॥ १-२॥

श्रीनारदजी बोले—महामते नरेश! यह पूर्वकालमें घटित गोलोकका वृत्तान्त है, जिसे मैंने भगवान् नारायणके मुखसे सुना था। यह सर्वपापहारी पुण्य-प्रसङ्ग तुम मुझसे सुनो। श्रीहरिके तीन पत्नियाँ हुईं—श्रीराधा, विजया (विरजा) और भूदेवी। इन तीनोंमें महात्मा श्रीकृष्णको श्रीराधा ही अधिक प्रिय हैं॥ ३-४॥

राधिकासमया राजन् कोटिचन्द्रप्रकाशया।
कुञ्जे विरजया रेमे एकान्ते चैकदा प्रभुः॥ ५

सपत्नीसहितं कृष्णं राधा श्रुत्वा सखीमुखात्।
अतीव विमना जाता सपत्नीसौख्यदुःखिता॥ ६

शतयोजनविस्तारं शतयोजनमूर्ध्वगम्।
कोट्यश्विनीसमायुक्तं कोटिसूर्यसमप्रभम्॥ ७

विचित्ररत्नसौवर्णमुक्तादामविलम्बितम्।
पताकाहेमकलशैः कोटिभिर्मण्डितं रथम्॥ ८

समारुह्य सखीनां सा वेत्रहस्तैर्दशार्बुदैः।
हरिं द्रष्टुं जगामाशु श्रीराधा भगवत्प्रिया॥ ९

तन्निकुञ्जे द्वारपालं श्रीदामानं महाबलम्।
हरिन्यस्तं समालोक्य तं निर्भर्त्स्य सखीजनैः॥ १०

वेत्रैः सन्ताड्य सहसा द्वारि गन्तुं समुद्यता।
सखीकोलाहलं श्रुत्वा हरिरन्तरधीयत॥ ११

राधाभयाच्च विरजा नदी भूत्वावहत्तदा।
कोटियोजनमायामं गोलोकं सहसा नदी॥ १२

सहसा कुण्डलीकृत्वा शुशुभेऽब्धिरिवावनिम्।
रत्नपुष्पैर्विचित्राङ्गा यथोष्णिङ्मुद्रिता तथा॥ १३

हरिं गतं तं विज्ञाय नदीभूतां च तां तथा।
आलोक्य तन्निकुञ्जं च स्वकुञ्जं राधिका ययौ॥ १४

अथ कृष्णो नदीभूतां विरजां विरजाम्बराम्।
सविग्रहां चकाराशु स्ववरेण नृपेश्वर॥ १५

पुनर्विरजया सार्धं विरजातीरजे वने।
निकुञ्जवृन्दकारण्ये चक्रे रासं हरिः स्वयम्॥ १६

विरजायां सप्त सुता बभूवुः कृष्णतेजसा।
निकुञ्जं ते ह्यलञ्चक्रुः शिशवो बाललीलया॥ १७

राजन्! एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त कुञ्जमें कोटि चन्द्रमाओंकी-सी कान्तिवाली तथा श्रीराधिका-सदृश सुन्दरी विरजाके साथ विहार कर रहे थे। सखीके मुखसे यह सुनकर कि श्रीकृष्ण मेरी सौतके साथ हैं, श्रीराधा मन-ही-मन अत्यन्त खिन्न हो उठीं। सपत्नीके सौख्यसे उनको दुःख हुआ॥ ५-६॥

तब भगवत्-प्रिया श्रीराधा सौ योजन विस्तृत, सौ योजन ऊँचे और करोड़ों अश्विनियोंसे जुते कोटि सूर्यतुल्यकान्तिमान् रथपर—जो करोड़ों पताकाओं और सुवर्ण-कलशोंसे मण्डित था तथा जिसमें विचित्र रंगके रत्नों, सुवर्ण और मोतियोंकी लड़ियाँ लटक रही थीं—आरूढ़ हो, दस अरब वेत्रधारिणी सखियोंके साथ तत्काल श्रीहरिको देखनेके लिये गयीं॥ ७—९॥

उस निकुञ्जके द्वारपर श्रीहरिके द्वारा नियुक्त महाबली श्रीदामा पहरा दे रहा था। उसे देखकर श्रीराधाने बहुत फटकारा और सखीजनोंद्वारा बेंतसे पिटवाकर सहसा कुञ्जद्वारके भीतर जानेको उद्यत हुईं। सखियोंका कोलाहल सुनकर श्रीहरि वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ १०-११॥

श्रीराधाके भयसे विरजा सहसा नदीके रूपमें परिणत हो, कोटियोजन विस्तृत गोलोकमें उसके चारों ओर प्रवाहित होने लगीं। जैसे समुद्र इस भूतलको घेरे हुए है, उसी प्रकार विरजा नदी सहसा गोलोकको अपने घेरेमें लेकर बहने लगीं। रत्नमय पुष्पोंसे विचित्र अङ्गोंवाली वह नदी विविध प्रकारके फूलोंकी छापसे अङ्कित उष्णीष वस्त्रकी भाँति शोभा पाने लगीं। 'श्रीहरि चले गये और विरजा नदीरूपमें परिणत हो गयी'—यह देख श्रीराधिका अपने कुञ्जको लौट गयीं॥ १२—१४॥

नृपेश्वर! तदनन्तर नदीरूपमें परिणत हुई विरजाको श्रीकृष्णने शीघ्र ही अपने वरके प्रभावसे मूर्तिमती एवं विमल वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दिव्य नारी बना दिया। इसके बाद वे विरजा-तटवर्ती वनमें वृन्दावनके निकुञ्जमें विरजाके साथ स्वयं रास करने लगे। श्रीकृष्णके तेजसे विरजाके गर्भसे सात पुत्र हुए। वे सातों शिशु अपनी बालक्रीड़ासे निकुञ्जकी शोभा बढ़ाने लगे॥ १५—१७॥

एकदा तैः कलिरभूल्लघुर्ज्येष्ठैश्च ताडितः।
पलायमानो भयभृन्मातुः क्रोडे जगाम ह॥ १८

तल्लालनं समारेभे समाश्वास्य सुतं सती।
तदा वै भगवान् साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत॥ १९

एक दिन उन बालकोंमें झगड़ा हुआ। उनमें जो बड़े थे, उन सबने मिलकर छोटेको मारा। छोटा भयभीत होकर भागा और माताकी गोदमें चला गया। सती विरजा पुत्रको आश्वासन दे उसे दुलारने लगीं। उस समय साक्षात् भगवान् वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ १८-१९॥

रुषा सुतं शशापेयं श्रीकृष्णविरहातुरा।
त्वं जलं भव दुर्बुद्धे कृष्णविच्छेदकारकः॥ २०

कदापि त्वज्जलं मर्त्या न पिबन्तु कदाचन।
ज्येष्ठाञ्छशाप व्रजत मेदिनीं कलिकारकाः॥ २१

जलरूपाः पृथग्याना न समेता भविष्यथ।
नैमित्तिकं च भवतां मेलनं स्यात्सदा लये॥ २२

तब श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल हो, रोषसे अपने पुत्रको शाप देते हुए विरजाने कहा—'दुर्बुद्धे! तू श्रीकृष्णसे वियोग करानेवाला है, अतः जल हो जा; तेरा जल मनुष्य कभी न पीयें।' फिर उसने बड़ोंको शाप देते हुए कहा—'तुम सब-के-सब झगड़ालू हो; अतः पृथ्वीपर जाओ और वहाँ जल होकर रहो। तुम सबकी पृथक्-पृथक् गति होगी। एक-दूसरेसे कभी मिल न सकोगे। सदा ही प्रलयकालमें तुम्हारा नैमित्तिक मिलन होगा'॥ २०—२२॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं ते मातृशापेन धरणीं वै समागताः।
प्रियव्रतरथाङ्गानां परिखासु समास्थिताः॥ २३

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः।
बभूवुः सप्त ते राजन्नक्षोभ्याश्च दुरत्ययाः॥ २४

दुर्विगाह्याश्च गम्भीरा आयामं लक्षयोजनात्।
द्विगुणं द्विगुणं जातं द्वीपे द्वीपे पृथक् पृथक्॥ २५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार माताके शापसे वे सब पृथ्वीपर आ गये और राजा प्रियव्रतके रथके पहियोंसे बनी हुई परिखाओंमें समाविष्ट हो गये। खारा जल, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, क्षीर तथा शुद्ध जलके वे सात सागर हो गये। राजन्! वे सातों समुद्र अक्षोभ्य तथा दुर्लङ्घ्य हैं। उनके भीतर प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है। वे बहुत ही गहरे तथा लाख योजनसे लेकर क्रमशः द्विगुण विस्तारवाले होकर पृथक्-पृथक् द्वीपोंमें स्थित हैं॥ २३—२५॥

अथ पुत्रेषु यातेषु पुत्रस्नेहातिविह्वला।
स्वप्रियां तां विरहिणीमेत्य कृष्णो वरं ददौ॥ २६

कदा न ते मे विच्छेदो मयि भीरु भविष्यति।
स्वतेजसा स्वपुत्राणां सदा रक्षां करिष्यसि॥ २७

पुत्रोंके चले जानेपर विरजा उनके स्नेहसे अत्यन्त व्याकुल हो उठी। तब अपनी उस विरहिणी प्रियाके पास आकर श्रीकृष्णने वर दिया—'भीरु! तुम्हारा कभी मुझसे वियोग नहीं होगा। तुम अपने तेजसे सदैव पुत्रोंकी रक्षा करती रहोगी।'॥ २६-२७॥

अथ राधां विरहिणीं ज्ञात्वा कृष्णो हरिः स्वयम्।
श्रीदाम्ना सह वैदेह तन्निकुञ्जं समाययौ॥ २८

निकुञ्जद्वारि सम्प्राप्तं ससखं प्राणवल्लभम्।
वीक्ष्य मानवती भूत्वा राधा प्राह हरिं वचः॥ २९

विदेहराज! तदनन्तर श्रीराधाको विरह-दुःखसे व्यथित जान श्यामसुन्दर श्रीहरि स्वयं श्रीदामाके साथ उनके निकुञ्जमें आये। निकुञ्जके द्वारपर सखाके साथ आये हुए प्राणवल्लभकी ओर देखकर राधा मानवती हो उनसे इस प्रकार बोलीं—॥ २८-२९॥

श्रीराधोवाच

तत्रैव गच्छ यत्राभूत् स्नेहस्ते नूतनो हरे।
नदीभूता हि विरजा नदो भवितुमर्हसि॥ ३०

कुरु वासं तन्निकुञ्जे मया ते किं प्रयोजनम्।

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाथ भगवांस्तन्निकुञ्जं जगाम ह॥ ३१

श्रीकृष्णमित्रः श्रीदामा राधां प्राह रुषा वचः।

श्रीदामोवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्॥ ३२

असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशो विराजते।
त्वादृशीः कोटिशः शक्तीः कर्तुं शक्तः परात्परः॥ ३३

तं विनिन्दसि राधे त्वं मानं मा कुरु मा कुरु।

श्रीराधोवाच

हे मूढ पितरं स्तुत्वा मातरं मां विनिन्दसि॥ ३४

राक्षसो भव दुर्बुद्धे गोलोकाच्च बहिर्भव।

श्रीदामोवाच

अनुकूलेन कृष्णेन जातं मानं शुभे तव॥ ३५

तस्माद्भुवि परात्कृष्णात्परिपूर्णतमात्प्रभोः।
शतवर्षं ते वियोगो भविष्यति न संशयः॥ ३६

श्रीनारद उवाच

एवं परस्परं शापात्स्वकृताद्भयभीतयोः।
अतीव चिन्तां गतयोराविरासीत् स्वयंप्रभुः॥ ३७

श्रीभगवानुवाच

वचनं वै स्वनिगमं दूरीकर्तुं क्षमोऽस्म्यहम्।
भक्तानां वचनं राधे दूरीकर्तुं न च क्षमः॥ ३८

मा शोचं कुरु कल्याणि वरं मे शृणु राधिके।
मासं मासं वियोगान्ते दर्शनं मे भविष्यति॥ ३९

भुवो भारावताराय कल्पे वाराहसंज्ञके।
भक्तानां दर्शनं दातुं गमिष्यामि त्वया सह॥ ४०

श्रीदामञ्छृणु मे वाक्यमंशेन त्वसुरो भव।
वैवस्वतान्तरे रासे हेलनं मे करिष्यसि॥ ४१

श्रीराधाने कहा—हरे! वहीं चले जाओ, जहाँ तुम्हारा नया नेह जुड़ा है। विरजा तो नदी हो गयी, अब तुम्हें उसके साथ नद हो जाना चाहिये। जाओ, उसीके कुञ्जमें रहो। मुझसे तुम्हारा क्या मतलब है?॥ ३०१/२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर भगवान् विरजाके निकुञ्जमें चले गये। तब श्रीकृष्णके मित्र श्रीदामाने राधासे रोषपूर्वक कहा—॥ ३११/२॥

श्रीदामा बोला—राधे! श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् हैं। वे स्वयं असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति और गोलोकके स्वामीके रूपमें विराजमान हैं। परात्पर श्रीकृष्ण तुम-जैसी करोड़ों शक्तियोंको बना सकते हैं। उनकी तुम निन्दा करती हो? ऐसा मान न करो, न करो॥ ३२—३३१/२॥

श्रीराधा बोली—ओ मूर्ख! तू बापकी स्तुति करके मुझ माताकी निन्दा करता है! अतः दुर्बुद्धे! राक्षस हो जा और गोलोकसे बाहर चला जा॥ ३४१/२॥

श्रीदामा बोला—शुभे! श्रीकृष्ण सदा तुम्हारे अनुकूल रहते हैं, इसीलिये तुम्हें इतना मान हो गया है। अतः परिपूर्णतम परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णसे भूतलपर तुम्हारा सौ वर्षोंके लिये वियोग हो जायगा, इसमें संशय नहीं है॥ ३५-३६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार परस्पर शाप देकर अपनी ही करनीसे भयभीत हो, जब राधा और श्रीदामा अत्यन्त चिन्तामें डूब गये, तब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ प्रकट हुए॥ ३७॥

श्रीभगवान्ने कहा—राधे! मैं अपने निगम-स्वरूप वचनको तो छोड़ सकता हूँ, किंतु भक्तोंकी बात अन्यथा करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। कल्याणि राधिके! शोक मत करो, मेरी बात सुनो। वियोग-कालमें भी प्रतिमास एक बार तुम्हें मेरा दर्शन हुआ करेगा॥ ३८-३९॥

वाराहकल्पमें भूतलका भार उतारने और भक्त-जनोंको दर्शन देनेके लिये मैं तुम्हारे साथ पृथ्वीपर चलूँगा। श्रीदामन्! तुम भी मेरी बात सुनो। तुम अपने एक अंशसे असुर हो जाओ। वैवस्वत मन्वन्तरमें रासमण्डलमें आकर जब तुम मेरी अवहेलना करोगे,

मद्धस्तेन च ते मृत्युर्भविष्यति न संशयः।
पुनः स्वविग्रहं पूर्वं प्राप्स्यसि त्वं वरान्मम॥ ४२

तब मेरे हाथसे तुम्हारा वध होगा, इसमें संशय नहीं है। तत्पश्चात् फिर मेरे वरदानसे तुम अपना पूर्व शरीर प्राप्त कर लोगे॥ ४०—४२॥

श्रीनारद उवाच

एवं शापेन श्रीदामा पुरा पुण्यजनालये।
सुधनस्य गृहे जन्म लेभे राजन् महातपाः॥ ४३

शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभवत्।
तस्माच्छ्रीदाम्नि तज्ज्योतिर्लीनं जातं विदेहराट्॥ ४४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार शापवश महातपस्वी श्रीदामाने पूर्वकालमें यक्षलोकमें सुधनके घर जन्म लिया। वह शङ्खचूड नामसे विख्यात हो यक्षराज कुबेरका सेवक हो गया। यही कारण है कि शङ्खचूडकी ज्योति श्रीदामामें लीन हुई॥ ४३-४४॥

स्वात्मारामो लीलया सर्वकार्यं
स्वस्मिन् धाम्नि ह्यद्वितीयः करोति।
यः सर्वेशः सर्वरूपो महात्मा
चित्रं नेदं नौमि कृष्णाय तस्मै॥ ४५

भगवान् श्रीकृष्ण स्वात्माराम हैं, एकमात्र अद्वितीय परमात्मा हैं। वे अपने ही धाममें लीलापूर्वक सारा कार्य करते हैं। जो सर्वेश्वर, सर्वरूप एवं महान् आत्मा हैं, उनके लिये यह सब कार्य अद्भुत नहीं है; मैं उन श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ॥ ४५॥

इदं मया ते कथितं मनोहरं
वैदेह वृन्दावनखण्डमग्रतः।
शृणोति चैतच्चरितं नरो वरः
परम्पदम्पुण्यतमम्प्रयाति सः॥ ४६

विदेहराज! यह मनोहर वृन्दावनखण्ड मैंने तुम्हारे सामने कहा है। जो नरश्रेष्ठ इस चरित्रका श्रवण करता है, वह पुण्यतम परमपदको प्राप्त होता है॥ ४६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां वृन्दावनखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शङ्खचूडोपाख्यानं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शङ्खचूडोपाख्यान' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

॥ वृन्दावनखण्ड सम्पूर्ण ॥

श्रीगर्ग-संहिता

[तृतीय खण्ड]

गिरिराजखण्ड

गिरिराजरूपमें श्रीकृष्ण

श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धनधारण [गिरिराजख० अ० ३]

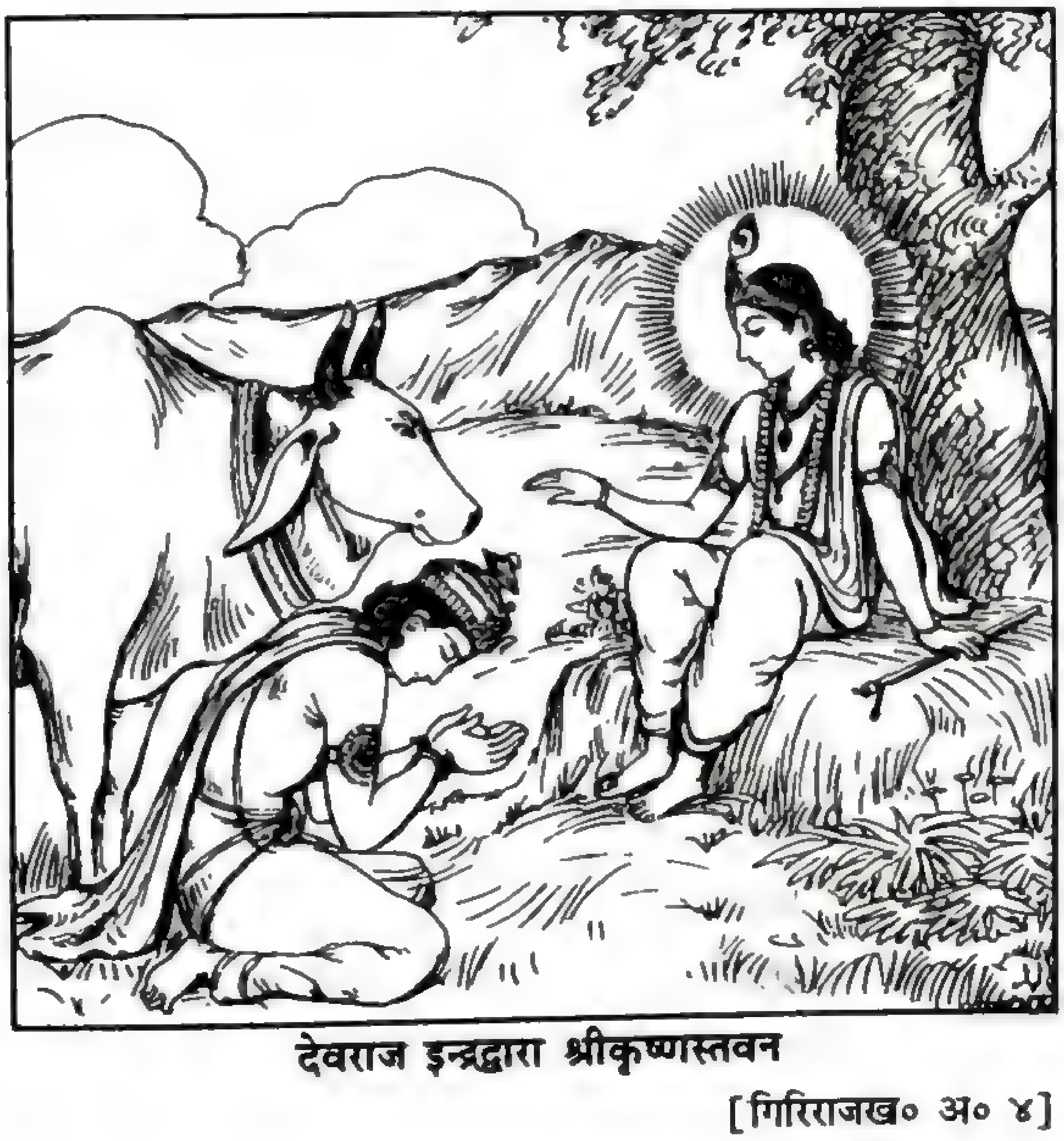

देवराज इन्द्रद्वारा श्रीकृष्णस्तवन

[गिरिराजख० अ० ४]

ऐरावतद्वारा श्रीकृष्णका अभिषेक

[गिरिराजख० अ० ४]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

गिरिराजखण्ड

पहला अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा गोवर्धनपूजनका प्रस्ताव और उसकी विधिका वर्णन

बहुलाश्व उवाच

कथं दधार भगवान् गिरिं गोवर्धनं वरम्।
उच्छिलीन्ध्रं यथा बालो हस्तेनैकेन लीलया॥ १

परिपूर्णतमस्यास्य श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
वदैतच्चरितं दिव्यमद्भुतं मुनिसत्तम॥ २

श्रीनारद उवाच

वार्षिकं हि करं राज्ञे यथा शक्राय वै तथा।
बलिं ददुः प्रावृडन्ते गोपाः सर्वे कृषीवलाः॥ ३

महेन्द्रयागसम्भारचयं दृष्ट्वैकदा हरिः।
नन्दं पप्रच्छ सदसि बल्लवानां च शृण्वताम्॥ ४

श्रीभगवानुवाच

शक्रस्य पूजनं ह्येतत्किं फलं चास्य विद्यते।
लौकिकं वा वदन्त्येतदथवा पारलौकिकम्॥ ५

श्रीनन्द उवाच

शक्रस्य पूजनं ह्येतद्भुक्तिमुक्तिकरं परम्।
एतद्विना नरो भूमौ जायते न सुखी क्वचित्॥ ६

श्रीभगवानुवाच

शक्रादयो देवगणाश्च सर्वतो
भुञ्जन्ति ये स्वर्गसुखं स्वकर्मभिः।

राजा बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! जैसे बालक खेल-ही-खेलमें गोबर-छत्तेको उखाड़कर हाथमें ले लेता है, उसी प्रकार भगवान्‌ने एक ही हाथसे महान् पर्वत गोवर्धनको लीलापूर्वक उठाकर छत्रकी भाँति धारण कर लिया था—ऐसी बात सुनी जाती है। सो यह प्रसङ्ग कैसे आया? मुनिसत्तम! इन परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके उसी दिव्य अद्भुत चरित्रका आप वर्णन कीजिये॥ १-२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! जैसे खेती करनेवाले किसान राजाको वार्षिक कर देते हैं, उसी प्रकार समस्त गोप प्रतिवर्ष शरद्‌ऋतुमें देवराज इन्द्रके लिये बलि (पूजा और भोग) अर्पित करते थे। एक समय श्रीहरिने महेन्द्रयागके लिये सामग्रीका संचय होता देख गोपसभामें नन्दजीसे प्रश्न किया। उनके उस प्रश्नको अन्यान्य गोप भी सुन रहे थे॥ ३-४॥

श्रीभगवान् बोले—यह जो इन्द्रकी पूजा की जाती है, इसका क्या फल है? विद्वान् लोग इसका कोई लौकिक फल बताते हैं या पारलौकिक?॥ ५॥

श्रीनन्दने कहा—श्यामसुन्दर! देवराज इन्द्रका यह पूजन भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला परम उत्तम साधन है। भूतलपर इसके बिना मनुष्य कहीं और कभी सुखी नहीं हो सकता॥ ६॥

श्रीभगवान् बोले—पिताजी! इन्द्र आदि देवता अपने पूर्वकृत पुण्यकर्मोंके प्रभावसे ही सब ओर स्वर्गका सुख भोगते हैं। भोगद्वारा शुभकर्मका क्षय हो

विशन्ति ते मर्त्यपदं शुभक्षये
तत्सेवनं विद्धि न मुक्तिकारणम्॥ ७

भयं भवेद्वै परमेष्ठिने यतो
वार्ता तु का कौ किल तत्कृतात्मनाम्।
तस्मात्परं कालमनन्तमेव हि
सर्वं बलिष्ठं सुबुधा विदुः परे॥ ८

ततस्तमाश्रित्य सुकर्मभिः परं
भजेद्धरिं यज्ञपतिं सुरेश्वरम्।
विसृज्य सर्वं मनसा कृतेः फलं
व्रजेत्परं मोक्षमसौ न चान्यथा॥ ९

गोविप्रसाध्वग्निसुराः श्रुतिस्तथा
धर्मश्च यज्ञाधिपतेर्विभूतयः।
धिष्ण्येषु चैतेषु हरिं भजन्ति ये
सदा त्विहामुत्र सुखं व्रजन्ति ते॥ १०

समुत्थितोऽसौ हरिवक्षसो गिरि-
र्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट्।
समागतो ह्यत्र पुलस्त्यतेजसा
यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते॥ ११

सम्पूज्य गोविप्रसुरान् महाद्रये
दातव्यमद्यैव परं ह्युपायनम्।
एष प्रियो मे मखराज एव हि
न चेद्यथेच्छास्ति तथा कुरु व्रज॥ १२

श्रीनारद उवाच

तेषां मध्येऽथ सन्नन्दो गोपो वृद्धोऽतिनीतिवित्।
अतिप्रसन्नः श्रीकृष्णमाह नन्दस्य शृण्वतः॥ १३

श्रीसन्नन्द उवाच

हे नन्दसूनो हे तात त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः।
कर्तव्या केन विधिना पूजाद्रेर्वद तत्त्वतः॥ १४

श्रीभगवानुवाच

आलिप्य गोमयेनापि गिरिराजभुवं ह्यधः।
धृत्वाथ सर्वसम्भारं भक्तियुक्तो जितेन्द्रियः॥ १५

जानेपर उन्हें भी मर्त्यलोकमें आना पड़ता है। अतः उनकी सेवाको आप मोक्षका साधन मत मानिये। जिससे परमेष्ठी ब्रह्माको भी भय प्राप्त होता है, फिर उनके द्वारा पृथ्वीपर उत्पन्न किये गये प्राणियोंकी तो बात ही क्या है, उस कालको ही श्रेष्ठ विद्वान् सबसे उत्कृष्ट, अनन्त तथा सब प्रकारसे बलिष्ठ मानते हैं॥ ७-८॥

इसलिये उस कालका ही आश्रय लेकर मनुष्यको सत्कर्मोंद्वारा सुरेश्वर यज्ञपति परमात्मा श्रीहरिका भजन करना चाहिये। अपने सम्पूर्ण सत्कर्मोंके फलका मनसे परित्याग करके जो श्रीहरिका भजन करता है, वही परम मोक्षको प्राप्त होता है; दूसरे किसी प्रकारसे उसको मोक्ष नहीं मिलता। गौ, ब्राह्मण, साधु, अग्नि, देवता, वेद तथा धर्म—ये भगवान् यज्ञेश्वरकी विभूतियाँ हैं। इनको आधार बनाकर जो श्रीहरिका भजन करते हैं, वे सदा इस लोक और परलोकमें सुख पाते हैं॥ ९-१०॥

भगवान्‌के वक्षःस्थलसे प्रकट हुआ वह गिरीन्द्रोंका सम्राट् गोवर्धन नामक पर्वत महर्षि पुलस्त्यके प्रभावसे इस व्रजमण्डलमें आया है। उसके दर्शनसे मनुष्यका इस जगत्‌में पुनर्जन्म नहीं होता। गौओं, ब्राह्मणों तथा देवताओंका पूजन करके आज ही यह उत्तम भेंट-सामग्री महान् गिरिराजको अर्पित की जाय। यह यज्ञ नहीं, यज्ञोंका राजा है। यही मुझे प्रिय है। यदि आप यह काम नहीं करना चाहते तो जाइये; जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये॥ ११-१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उन गोपोंमें सन्नन्द नामक एक बड़े-बूढ़े गोप थे, जो बड़े नीतिवेत्ता थे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर नन्दजीके सुनते हुए श्रीकृष्णसे कहा॥ १३॥

श्रीसन्नन्द बोले—नन्दनन्दन! तात! तुम तो साक्षात् ज्ञानकी निधि हो। गिरिराजकी पूजा किस विधिसे करनी होगी, यह ठीक-ठीक बताओ?॥ १४॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—जहाँ गिरिराजकी पूजा करनी हो, वहाँ उनके नीचेकी धरतीको गोबरसे लीप-पोतकर वहीं सब सामग्री रखनी चाहिये। इन्द्रियोंको

सहस्रशीर्षामन्त्रेणाद्रये स्नानं च कारयेत्।
गङ्गाजलेन यमुनाजलेनापि द्विजैः सह॥ १६

शुक्लगोदुग्धधाराभिस्ततः पञ्चामृतैर्गिरिम्।
स्नापयित्वा गन्धपुष्पैः पुनः कृष्णाजलेन वै॥ १७

वस्त्रं दिव्यं च नैवेद्यमासनं सर्वतोऽधिकम्।
मालालङ्कारनिचयं दत्वा दीपावलिं पराम्॥ १८

ततः प्रदक्षिणां कुर्यान्नमस्कुर्यात्ततः परम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा त्विदमेवमुदीरयेत्॥ १९

नमो वृन्दावनाङ्काय तुभ्यं गोलोकमौलिने।
पूर्णब्रह्मातपत्राय नमो गोवर्धनाय च॥ २०

पुष्पाञ्जलिं ततः कुर्यान्नीराजनमतः परम्।
घण्टाकांस्यमृदङ्गाद्यैर्वादित्रैर्मधुरस्वनैः॥ २१

वेदाहमेतं मन्त्रेण वर्षं लाजैः समाचरेत्।
तत्समीपे चान्नकूटं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः॥ २२

कचोलानां चतुःषष्टिपञ्चपङ्क्तिसमन्वितम्।
तुलसीदलमिश्रैश्च श्रीगङ्गायमुनाजलैः॥ २३

षट्पञ्चाशत्तमैर्भोगैः कुर्यात्सेवां समाहितः।
ततोऽग्नीन् ब्राह्मणान् पूज्य गाः सुरान् गन्धपुष्पकैः॥ २४

भोजयित्वा द्विजवरान् सौगन्धैर्मिष्टभोजनैः।
अन्येभ्यश्चाश्वपाकेभ्यो दद्याद्भोजनमुत्तमम्॥ २५

गोपीगोपालवृन्दैश्च गवां नृत्यं च कारयेत्।
मङ्गलैर्जयशब्दैश्च कुर्याद् गोवर्धनोत्सवम्॥ २६

यत्र गोवर्धनाभावस्तत्र पूजाविधिं शृणु।
गोमयैर्वर्धनं कुर्यात्तदाकारं परोन्नतम्॥ २७

पुष्पव्यूहैर्लताजालैरीषिकाभिः समन्वितः।
पूजनीयः सदा मर्त्यैर्गिरिर्गोवर्धनो भुवि॥ २८

वशमें रखकर बड़े भक्ति-भावसे '**सहस्रशीर्षा०**' मन्त्र पढ़ते हुए, ब्राह्मणोंके साथ रहकर गङ्गाजल या यमुना-जलसे गिरिराजको स्नान कराना चाहिये॥ १५-१६॥

फिर श्वेत गोदुग्धकी धारासे तथा पञ्चामृतसे स्नान कराकर, पुनः यमुना-जलसे नहलाये। उसके बाद गन्ध, पुष्प, वस्त्र, आसन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, माला, आभूषणसमूह तथा उत्तम दीपमाला समर्पित करके गिरिराजकी परिक्रमा करे। इसके बाद साष्टाङ्ग प्रणाम करके, दोनों हाथ जोड़कर, इस प्रकार कहे—'जो श्रीवृन्दावनके अङ्कमें अवस्थित तथा गोलोकके मुकुट हैं, पूर्णब्रह्म परमात्माके छत्ररूप उन गिरिराज गोवर्धनको हमारा बारंबार नमस्कार है'॥ १७—२०॥

तदनन्तर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। उसके बाद घंटा, झाँझ और मृदङ्ग आदि मधुर ध्वनि करनेवाले बाजे बजाते हुए गिरिराजकी आरती करे। तदनन्तर '**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्०**' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उनके ऊपर लावाकी वर्षा करे और श्रद्धापूर्वक गिरिराजके समीप अन्नकूट स्थापित करे। फिर चौंसठ कटोरोंको पाँच पङ्क्तियोंमें रखे और उनमें तुलसीदल-मिश्रित गङ्गा-यमुनाका जल भर दे॥ २१—२३॥

फिर एकाग्रचित्त हो गिरिराजकी सेवामें छप्पन भोग अर्पित करे। तत्पश्चात् अग्निमें होम करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा गौओं और देवताओंपर भी गन्ध-पुष्प चढ़ाये। अन्तमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सुगन्धित मिष्टान्न भोजन कराकर, अन्य लोगोंको—यहाँतक कि चाण्डाल भी छूटने न पायें—उत्तम भोजन दे। इसके बाद गोपियों और गोपोंके समुदाय गौओंके सामने नृत्य करें, मङ्गल-गीत गायें और जय-जयकार करते हुए गोवर्धन-पूजनोत्सव सम्पन्न करें॥ २४—२६॥

जहाँ गोवर्धन नहीं हैं, वहाँ गोवर्धन-पूजाकी क्या विधि है, यह सुनो। गोबरसे गोवर्धनका बहुत ऊँचा आकार बनाये। फिर उन्हें पुष्प-समूहों, लता-जालों और सींकोंसे सुशोभित करके, उसे ही गोवर्धन-गिरि मानकर सदा भूतलपर मनुष्योंको उसकी पूजा करनी चाहिये॥ २७-२८॥

शिलासमानं पुरटं क्षिप्त्वाद्रौ तच्छिलां नयेत्।
गृह्णीयाद्यो विना स्वर्णं स महारौरवं व्रजेत्॥ २९

शालग्रामस्य देवस्य सेवनं कारयेत्सदा।
पातकं न स्पृशेत्तं वै पद्मपत्रं यथा जलम्॥ ३०

यदि कोई गोवर्धनकी शिला ले जाकर पूजन करना चाहे तो जितना बड़ा प्रस्तर ले जाय, उतना ही सुवर्ण उस पर्वतपर छोड़ दे। जो बिना सुवर्ण दिये वहाँकी शिला ले जायगा, वह महारौरव नरकमें पड़ेगा। शालग्रामभगवान्‌की सदा सेवा करनी चाहिये। शालग्रामके पूजकको पातक उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे पद्मपत्रपर जलका लेप नहीं होता॥ २९-३०॥

गिरिराजशिलासेवां यः करोति द्विजोत्तमः।
सप्तद्वीपमहीतीर्थावगाहफलमेति सः॥ ३१

गिरिराजमहापूजां वर्षे वर्षे करोति यः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वामुत्र मोक्षं प्रयाति सः॥ ३२

जो श्रेष्ठ द्विज गिरिराज-शिलाकी सेवा करता है, वह सातों द्वीपोंसे युक्त भूमण्डलके तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पाता है। जो प्रतिवर्ष गिरिराजकी महापूजा करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुख भोगकर परलोकमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ३१-३२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजपूजाविधिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगिरिराजकी पूजा-विधिवर्णन' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

गोपोंद्वारा गिरिराज-पूजनका महोत्सव

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचो नन्दसुतस्य साक्षात्
श्रीनन्दसन्नन्दवरा व्रजेशाः।
सुविस्मिताः पूर्वकृतं विहाय
प्रचक्रिरे श्रीगिरिराजपूजाम्॥ १

नीत्वा बलीन् मैथिल नन्दराजः
सुतौ समानीय च रामकृष्णौ।
यशोदया श्रीगिरिपूजनार्थं
समुत्सुको गर्गयुतः प्रसन्नः॥ २

त्वरं समारुह्य महोन्नतं गजं
विचित्रवर्णं धृतहेमशृङ्खलम्।
गोवर्धनान्तं प्रययौ गवां गणैः
शरद्घनैः शक्र इव प्रियायुतः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—साक्षात् श्रीनन्दनन्दनकी यह बात सुनकर श्रीनन्द और सन्नन्द आदि व्रजेश्वरगण बड़े विस्मित हुए। फिर उन्होंने पहलेका निश्चय त्यागकर श्रीगिरिराज-पूजनका आयोजन किया। मिथिलेश्वर! नन्दराज अपने दोनों पुत्र—बलराम और श्रीकृष्णको तथा भेंटपूजाकी सामग्रीको लेकर यशोदाजीके साथ गिरिराज-पूजनके लिये उत्कण्ठित हो प्रसन्नतापूर्वक गये। उनके साथ गर्गजी भी थे। वे अपनी पत्नीके साथ बहुत ऊँचे चित्र-विचित्र वर्णोंसे रँगे हुए तथा सोनेकी साँकल धारण करनेवाले हाथीपर आरूढ़ हो, गौओंके साथ गोवर्धन पर्वतके समीप गये। मानो इन्द्राणीके साथ इन्द्र ऐरावतपर आरूढ़ हो शरदृतुके श्वेत बादलोंके साथ उपस्थित हुए हों॥ १—३॥

नन्दोपनन्दा वृषभानवश्च
पुत्रैश्च पौत्रैश्च सहाङ्गनाभिः।
समाययुः श्रीगिरिराजपार्श्वं
सर्वं समानीय च यज्ञभारम्॥ ४

नन्द, उपनन्द और वृषभानुगण अपने पुत्रों, पोतों और पत्नियोंके साथ यज्ञका सारा सम्भार लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे॥ ४॥

सहस्रबालार्कपरिस्फुरद्द्युति-
मारुह्य राधा शिबिकां सखीगणैः।
शचीव दिव्याम्बररत्नभूषणा
बभौ चकोरीभ्रमरीसमाकुला॥ ५

समागते पार्श्वगते स्वलङ्कृते
राजन् सखीकोटिसमावृते परे।
सख्यौ विभाते ललिताविशाखे
चन्द्रानने चालितचारुचामरे॥ ६

एवं रमा वै विरजा च माधवी
माया च कृष्णा नृप जह्नुनन्दिनी।
द्वात्रिंशदष्टौ च तथा हि षोडश
सख्यश्च तासां किल यूथ आगतः॥ ७

श्रीमैथिलानां किल कोसलानां
तथा श्रुतीनामृषिरूपकाणाम्।
तथा त्वयोध्यापुरवासिनीनां
श्रीयज्ञसीतावनवासिनीनाम्॥ ८

रमादिवैकुण्ठनिवासिनीनां
तथोर्ध्ववैकुण्ठनिवासिनीनाम्।
महोज्ज्वलद्वीपनिवासिनीनां
ध्रुवादिलोकाचलवासिनीनाम्॥ ९

समुद्रजादिव्यगुणत्रयाणा-
मदिव्यवैमानिकजौषधीनाम्।
जालन्धरीणां च समुद्रकन्या-
बर्हिष्मतीजासुतलस्थितानाम्॥ १०

तथाप्सरःसर्वफणीन्द्रजाना-
मासां च यूथा व्रजवासिनीनाम्।
समाययुः श्रीगिरिराजपार्श्वं
स्वलङ्कृताः पाणिबलिप्रदीपाः॥ ११

गोपाश्च वृद्धाः शिशवो युवानः
पीताम्बरोष्णीषकबर्हमण्डिताः।
श्रीहारगुञ्जावनमालिकाभी
रेजुः समेता नवयष्टिवेणुभिः॥ १२

सहस्रों बालरविकी दीप्तिसे प्रकाशित शिबिकामें आरूढ़ हो दिव्य वस्त्रों तथा रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित श्रीराधा सखी-समुदायके साथ वहाँ आकर उसी प्रकार सुशोभित हुईं, जैसे शची चकोरी और भ्रमरियोंके साथ शोभा पाती हों॥ ५॥

राजन्! श्रीराधाके दोनों बगलमें आयी हुई विविध अलंकारोंसे अलंकृत तथा करोड़ों सखियोंसे आवृत दो सर्वश्रेष्ठ चन्द्रमुखी सखियाँ ललिता और विशाखा चारु चँवर डुलाती हुई शोभा पाती थीं। नरेश्वर! इसी प्रकार रमा, विरजा, माधवी, माया, यमुना और गङ्गा आदि बत्तीस सखियाँ, आठ सखियाँ, सोलह सखियाँ और उन सबके यूथमें सम्मिलित असंख्य सखियाँ वहाँ आयीं॥ ६-७॥

मिथिलानिवासिनी, कोसल-प्रदेशवासिनी तथा अयोध्यापुरनिवासिनी, श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, यज्ञसीता-स्वरूपा तथा वनवासिनी गोपियोंका समुदाय भी वहाँ उपस्थित हुआ। रमा आदि वैकुण्ठवासिनी देवियाँ, वैकुण्ठसे भी ऊपरके लोकोंमें रहनेवाली दिव्याङ्गनाएँ, परम उज्ज्वल श्वेतद्वीपकी निवासिनी बालाएँ और ध्रुवादि लोकों तथा लोकाचलमें रहनेवाली देवीरूपा गोपाङ्गनाओंका दल भी वहाँ आ गया॥ ८-९॥

जो समुद्रसे उत्पन्न लक्ष्मीकी सखियाँ थीं, दिव्य गुणत्रयमयी अङ्गनाएँ थीं, अदिव्य विमानचारियोंकी वनिताएँ थीं; जो ओषधिस्वरूपा थीं, जो जालन्धरके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ थीं, जो समुद्र-कन्याएँ थीं तथा जो बर्हिष्मतीनगरी तथा सुतल आदि लोकोंमें निवास करनेवाली थीं, उन समस्त दिव्याङ्गनाओंका समुदाय गिरिराज गोवर्धनके पास आकर विराजमान हुआ। इसी प्रकार अप्सराओं, समस्त नागकन्याओं तथा व्रजवासिनियोंके यूथ भी वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो, हाथोंमें पूजन-सामग्री और प्रदीप लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे॥ १०-११॥

बालक, युवक और वृद्ध गोप भी पीताम्बर, पगड़ी तथा मोरपंखसे मण्डित तथा सुन्दर हार, गुञ्जा और वनमालाओंसे विभूषित हो, नूतन यष्टि तथा वेणु लिये, वहाँ आकर शोभा पाने लगे॥ १२॥

श्रुत्वोत्सवं शैलवरस्य मन्मुखाद्
गङ्गाधरो बद्धकपर्दमण्डलः।
कपालभृन्नस्थिजभस्मरूषितः
सर्पालिमालावलयैर्विभूषितः ॥ १३
धत्तूरभङ्गाविषपानविह्वलो
हिमाद्रिपुत्रीसहितो गणावृतः।
आरुह्य नन्दीश्वरमादिवाहनं
समाययौ श्रीगिरिराजमण्डलम्॥ १४
राजर्षिविप्रर्षिसुरर्षयश्च
सिद्धेशयोगेश्वरहंसमुख्याः ।
आजग्मुराराद् गिरिदर्शनार्थं
सहस्त्रशो विप्रगणाः समेताः॥ १५
गोवर्धनो रत्नशिलामयोऽभूत्
सुवर्णशृङ्गैः परितः स्फुरद्भिः।
मत्तालिभिर्निर्झरसुन्दरीभि-
र्दरीभिरुच्चाङ्गकरीव राजन्॥ १६
तदैव शैलाः किल मूर्तिमन्तः
सोपायना मेरुहिमाचलाद्याः।
नेमुर्गिरिं मङ्गलपाणयस्तं
गोवर्धनं रूपधरं गिरीन्द्राः॥ १७
द्विजैश्च गोवर्धनदेवपूजनं
कृत्वाच्युतोक्तं द्विजवह्निगोधनम्।
सम्पूज्य धृत्वा सुधनं महाधनं
बलिं ददौ श्रीगिरये व्रजेश्वरः॥ १८
नन्दोपनन्दैर्वृषभानुभिश्च
गोपीगणैर्गोपगणैः प्रहर्षितः।
गायद्भिरानर्तनवाद्यतत्परै-
श्चकार कृष्णोऽद्रिवरप्रदक्षिणाम् ॥ १९
देवेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं
जनेषु वर्षत्सु च लाजसङ्घम्।
रेजे महाराज इवाध्वरे जनै-
र्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट्॥ २०
कृष्णोऽपि साक्षाद्व्रजशैलमध्याद्
धृत्वातिदीर्घं किल चान्यरूपम्।
शैलोऽस्मि लोकानिति भाषयन् सन्
जघास सर्वं कृतमन्नकूटम्॥ २१

मेरे मुखसे गिरिराज गोवर्धनके उस उत्सवका समाचार सुनकर गङ्गाधर शिव मस्तकपर जटा-जूट बाँधे, हाथमें कपाल लिये, अङ्गोंमें चिताकी भस्म लगाये, सर्पोंकी माला तथा कंगनोंसे विभूषित हो, भाँग, धतूर और विष पीकर मत्त हुए, गिरिराजनन्दिनी उमाके साथ आदि-वाहन नन्दीश्वरपर आरूढ़ हो, प्रमथगणोंसे घिरे हुए, गिरिराज-मण्डलमें आये। मुख्य-मुख्य राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, सिद्धेश्वर, हंस आदि योगेश्वर तथा सहस्रों ब्राह्मण-वृन्द गिरिराजका दर्शन करनेके लिये आस-पास एकत्र हो गये॥ १३—१५॥

गोवर्धन पर्वतकी एक-एक शिला रत्नमयी हो गयी। उसके सुवर्णमय शृङ्ग चारों ओर अपनी दीप्ति फैलाने लगे। राजन्! वह पर्वत मतवाले भ्रमरों तथा निर्झर-शोभित कन्दराओंसे उन्नतकाय गजराजकी शोभा धारण करने लगा। उसी समय मेरु और हिमालय आदि गिरीन्द्र दिव्य रूप धारण करके, भेंट और माङ्गलिक वस्तुएँ हाथमें लिये मूर्तिमान् गोवर्धनको प्रणाम करने लगे॥ १६-१७॥

भगवान् श्रीकृष्णकी बतायी हुई विधिके अनुसार द्विजोंद्वारा गोवर्धन-पूजन सम्पन्न करके, ब्राह्मणों, अग्नियों तथा गोधनकी सम्यक् पूजा करनेके पश्चात्, व्रजेश्वर नन्दने गिरिराजकी सेवामें बहुत-सा धन तथा बहुमूल्य भेंट-सामग्री प्रस्तुत की। नन्द, उपनन्द, वृषभानु, गोपीवृन्द तथा गोपगण नाचने, गाने और बाजे बजाने लगे। उन सबके साथ हर्षसे भरे हुए श्रीकृष्णने गिरिराजकी परिक्रमा की। आकाशसे देवता फूल बरसाने लगे और भूतलवासी जनसमुदाय लाजा (लावा या खील) छींटने लगा। उस यज्ञमें गिरीन्द्रोंका सम्राट् गोवर्धन लोगोंसे घिरकर किसी महाराजके समान सुशोभित होने लगा॥ १८—२०॥

साक्षात् श्रीकृष्ण भी व्रजस्थित शैल गोवर्धनके बीचसे एक दूसरा विशाल रूप धारण करके निकले और 'मैं गिरिराज गोवर्धन हूँ'—लोगोंसे यों कहते हुए वहाँका सारा अन्नकूट भोग लगाने लगे॥ २१॥

गोपालगोपीगणवृन्दमुख्या
ऊचुः स्वयं वीक्ष्य गिरेः प्रभावम्।
दातुं वरं तत्र समुद्यतं तं
सुविस्मिता हर्षितमानसास्ते॥ २२

गोपालों और गोपियोंके समुदायमें जो मुख्य-मुख्य लोग थे, उन्होंने गिरिका यह प्रभाव अपनी आँखों देखा तथा गिरिराजको वहाँ वर देनेके लिये उद्यत देख सब-के-सब आश्चर्यचकित हो उठे। सबके मनमें अपूर्व उल्लास छा गया॥ २२॥

ज्ञातोऽसि गोपैर्गिरिराजदेवः
प्रदर्शितो नन्दसुतेन साक्षात्।
नो गोधनं वा किल बन्धुवर्गो
वृद्धिं समायातु दिने दिने कौ॥ २३
तथास्तु चोक्त्वा गिरिराजराजो
गोवर्धनो दिव्यवपुर्दधानः।
किरीटकेयूरमनोहराङ्गः
क्षणेन तत्रान्तरधीयताराात्॥ २४

उस समय गोपोंने कहा—प्रभो! आज हमने जान लिया कि आप साक्षात् गिरिराज देवता हैं। स्वयं नन्दनन्दनने हमें आपके दर्शनका अवसर दिया है। आपकी कृपासे हमारा गोधन और बन्धुवर्ग प्रतिदिन इस भूतलपर वृद्धिको प्राप्त हो। 'ऐसा ही होगा'—यों कहकर किरीट और केयूर आदि आभूषणोंसे मनोहर अङ्गवाले दिव्यरूपधारी गिरिराजराज गोवर्धन क्षण-भरमें वहाँ उनके निकट ही अन्तर्धान हो गये॥ २३-२४॥

नन्दोपनन्दा वृषभानवश्च
बलः सुचन्द्रो वृषभानुराजः।
श्रीनन्दराजश्च हरिश्च गोपा
गोप्यश्च सर्वा निजगोधनैश्च॥ २५
द्विजाश्च योगेश्वरसिद्धसङ्घाः
शिवादयश्चान्यजनाश्च सर्वे।
नत्वाथ सम्पूज्य गिरिं प्रसन्नाः
स्वं स्वं गृहं जग्मुरनिच्छया च॥ २६
श्रीकृष्णचन्द्रस्य परं चरित्रं
गिरीन्द्रराजस्य महोत्सवं च।
मया तवाग्रे कथितं विचित्रं
नृणां महापापहरं पवित्रम्॥ २७

तब नन्द-उपनन्द, वृषभानु, बलराम, वृषभानुराज सुचन्द्र, श्रीनन्दराज, श्रीहरि एवं समस्त गोप-गोपीगण अपने गोधनोंके साथ वहाँसे चले। ब्राह्मण, योगेश्वरसमुदाय, सिद्धसंघ, शिव आदि देवता तथा अन्य सब लोग गिरिराजको प्रणाम और उनका पूजन करके प्रसन्नतापूर्वक अनिच्छासे अपने-अपने घरको गये। राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रके इस उत्तम चरित्रका तथा गिरिराजराजके उस विचित्र महोत्सवका मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया। यह पावन प्रसङ्ग बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला है॥ २५—२७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गिरिराजमहोत्सववर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गिरिराज-महोत्सवका वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

श्रीकृष्णका गोवर्धन पर्वतको उठाकर इन्द्रके द्वारा क्रोधपूर्वक करायी गयी घोर जलवृष्टिसे रक्षा करना

श्रीनारद उवाच

अथ मन्मुखतः श्रुत्वा स्वात्मयागस्य नाशनम्।
गोवर्धनोत्सवं जातं कोपं चक्रे पुरन्दरः॥ १
सांवर्तकं नाम गणं प्रलये मुक्तबन्धनम्।
इन्द्रो व्रजविनाशाय प्रेषयामास सत्वरम्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर मेरे मुखसे अपने यज्ञका लोप तथा गोवर्धन-पूजनोत्सवके सम्पन्न होनेका समाचार सुनकर देवराज इन्द्रने बड़ा क्रोध किया। उन्होंने उस सांवर्तक नामक मेघगणको, जिसका बन्धन केवल प्रलयकालमें खोला जाता है, बुलाकर तत्काल व्रजका विनाश कर डालनेके लिये भेजा॥ १-२॥

अथ मेघगणाः क्रुद्धा ध्वनन्तश्चित्रवर्णिनः।
कृष्णाभाः पीतभाः केचित्केचिच्च हरितप्रभाः॥ ३

इन्द्रगोपनिभाः केचित्केचित्कर्पूरवत्प्रभाः।
नानाविधाश्च ये मेघा नीलपङ्कजसुप्रभाः॥ ४

हस्तितुल्यान् वारिबिन्दून् ववृषुस्ते मदोद्धताः।
हस्तिशुण्डासमाभिश्च धाराभिश्चञ्चलाश्च ये॥ ५

निपेतुः कोटिशश्चाद्रिकूटतुल्योपला भृशम्।
वाता ववुः प्रचण्डाश्च क्षेपयन्तस्तरून् गृहान्॥ ६

प्रचण्डवज्रपातानां मेघानामन्तकारिणाम्।
महाशब्दोऽभवद्भूमौ मैथिलेन्द्र भयङ्करः॥ ७

ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह।
विचेलुर्दिग्गजास्तारा ह्यपतन् भूमिमण्डले॥ ८

भयभीता गोपमुख्याः सकुटुम्बा जिगीषवः।
शिशून् स्वान् स्वान् पुरस्कृत्य नन्दमन्दिरमाययुः॥ ९

श्रीनन्दनन्दनं नत्वा सबलं परमेश्वरम्।
ऊचुर्व्रजौकसः सर्वे भयार्ताः शरणं गताः॥ १०

गोपा ऊचुः

राम राम महाबाहो कृष्ण कृष्ण व्रजेश्वर।
पाहि पाहि महाकष्टादिन्द्रदत्तान्निजान् जनान्॥ ११

हित्वेन्द्रयागं त्वद्वाक्यात्कृतो गोवर्धनोत्सवः।
अद्य शक्रे प्रकुपिते कर्तव्यं किं वदाशु नः॥ १२

श्रीनारद उवाच

व्याकुलं गोकुलं वीक्ष्य गोपीगोपालसङ्कुलम्।
सवत्सकं गोकुलं च गोपानाह निराकुलः॥ १३

श्रीभगवानुवाच

मा भैष्ट यातााद्रितटं सर्वैः परिकरैः सह।
वः पूजा प्रहृता येन स रक्षां संविधास्यति॥ १४

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा स्वजनैः सार्धमेत्य गोवर्धनं हरिः।
समुत्पाट्य दधाराद्रिं हस्तेनैकेन लीलया॥ १५

आज्ञा पाते ही विचित्र वर्णवाले मेघगण रोषपूर्वक गर्जना करते हुए चले। उनमें कोई काले, कोई पीले और कोई हरे रंगके थे। किन्हींकी कान्ति इन्द्रगोप (वीर-बहूटी) नामक कीड़ोंकी तरह लाल थी। कोई कपूरके समान सफेद थे और कोई नीलकमलके समान नीली प्रभासे युक्त थे। इस तरह नाना रंगोंके मेघ मदोन्मत्त हो हाथीके समान मोटी वारि-धाराओंकी वर्षा करने लगे। कुछ चञ्चल मेघ हाथीकी सूँड़के समान मोटी धाराएँ गिराने लगे। पर्वतशिखरके समान करोड़ों प्रस्तरखण्ड वहाँ बड़े वेगसे गिरने लगे। साथ ही प्रचण्ड आँधी चलने लगी, जो वृक्षों और घरोंको उखाड़ फेंकती थी॥ ३—६॥

मैथिलेन्द्र! प्रलयंकर मेघों तथा वज्रपातोंका महाभयंकर शब्द व्रजभूमिपर व्याप्त हो गया। उस भयंकर नादसे सातों लोकों और पातालोंसहित ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये और आकाशसे भूतलपर तारे टूट-टूटकर गिरने लगे॥ ७-८॥

अब तो प्रधान-प्रधान गोप भयभीत हो, प्राण बचानेकी इच्छासे अपने-अपने शिशुओं और कुटुम्बको आगे करके नन्दमन्दिरमें आये। बलरामसहित परमेश्वर श्रीनन्दनन्दनकी शरणमें जाकर समस्त भयभीत व्रजवासी उन्हें प्रणाम करके कहने लगे— ॥ ९-१०॥

गोप बोले—महाबाहु राम! राम!! और व्रजेश्वर कृष्ण! कृष्ण!! इन्द्रके दिये हुए इस महान् कष्टसे आप अपने जनोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। तुम्हारे कहनेसे हमलोगोंने इन्द्रयाग छोड़कर गोवर्धनपूजाका उत्सव मनाया, इससे आज इन्द्रका कोप बहुत बढ़ गया है। अब शीघ्र बताओ, हमें क्या करना चाहिये?॥ ११-१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! गोपी और ग्वालोंसे युक्त गोकुलको व्याकुल देख तथा बछड़ों-सहित गो-समुदायको भी पीड़ित निहार, भगवान् बिना किसी घबराहटके बोले— ॥१३॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—आपलोग डरें नहीं। समस्त परिकरोंके साथ गिरिराजके तटपर चलें। जिन्होंने तुम्हारी पूजा ग्रहण की है, वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे॥ १४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर श्रीहरि स्वजनोंके साथ गोवर्धनके पास गये और उस पर्वतको उखाड़कर एक ही हाथसे खेल-खेलमें ही

यथोच्छिलीन्ध्रं शिशुरश्रमो गजः
स्वपुष्करेणैव च पुष्करं गिरिम्।
धृत्वा बभौ श्रीव्रजराजनन्दनः
कृपाकरोऽसौ करुणामयः प्रभुः॥ १६

अथाह गोपान् विशताद्रिगर्तं
हे तात मातर्व्रजबल्लवेशाः।
सोपस्करैः सर्वधनैश्च गोभि-
रत्रैव शक्रस्य भयं न किञ्चित्॥ १७

इत्थं हरेर्वचः श्रुत्वा गोपा गोधनसंयुताः।
सकुटुम्बोपस्करैश्च विविशुः श्रीगिरेस्तलम्॥ १८

वयस्या बालकाः सर्वे कृष्णोक्ताः सबला नृप।
स्वान् स्वांश्च लगुडानद्रेरवष्टम्भान् प्रचक्रिरे॥ १९

जलौघमागतं वीक्ष्य भगवांस्तद्गिरेरधः।
सुदर्शनं तथा शेषं मनसाज्ञां चकार ह॥ २०

कोटिसूर्यप्रभं चाद्रेरूर्ध्वं चक्रं सुदर्शनम्।
धारासम्पातमपिबदगस्त्य इव मैथिल॥ २१

अधोऽधस्तं गिरेः शेषः कुण्डलीभूत आस्थितः।
रुरोध तज्जलं दीर्घं यथा वेला महोदधिम्॥ २२

सप्ताहं सुस्थिरस्तस्थौ गोवर्धनधरो हरिः।
श्रीकृष्णचन्द्रं पश्यन्तः चकोरा इव ते स्थिताः॥ २३

मत्तमैरावतं नागं समारुह्य पुरन्दरः।
ससैन्यः क्रोधसंयुक्तो व्रजमण्डलमाययौ॥ २४

दूराच्चिक्षेप वज्रं स्वं नन्दगोष्ठजिघांसया।
स्तम्भयामास शक्रस्य सवज्रं माधवो भुजम्॥ २५

भयभीतस्तदा शक्रः सांवर्तकगणैः सह।
दुद्राव सहसा देवैर्यथेभः सिंहताडितः॥ २६

धारण कर लिया। जैसे बालक बिना श्रमके ही गोबर-छत्ता उठा लेता है; अथवा जैसे हाथी अपनी सूँड़से कमलको अनायास उखाड़ लेता है; उसी प्रकार कृपालु करुणामय प्रभु श्रीव्रजराजनन्दन गोवर्धन पर्वतको धारण करके सुशोभित हुए॥ १५-१६॥

फिर वे गोपोंसे बोले—'मैया! बाबा! व्रज-बल्लवेश्वरगण! आप सब लोग सारी सामग्री, सम्पूर्ण धन तथा गौओंके साथ गिरिराजके गर्तमें समा जाइये। यही एक ऐसा स्थान है, जहाँ इन्द्रका कोई भय नहीं है'॥ १७॥

श्रीहरिका यह वचन सुनकर गोधन, कुटुम्ब तथा अन्य समस्त उपकरणोंके साथ वे गोवर्धन पर्वतके गड्ढेमें समा गये। नरेश्वर! श्रीकृष्णका अनुमोदन पाकर बलरामजीसहित समस्त सखा ग्वाल-बालोंने पर्वतको रोकनेके लिये अपनी-अपनी लाठियोंको भी लगा लिया। पर्वतके नीचे जलप्रवाहको आता देख भगवान्‌ने मन-ही-मन सुदर्शनचक्र तथा शेषका स्मरण करके उसके निवारणके लिये आज्ञा प्रदान की॥ १८—२०॥

मिथिलेश्वर! उस पर्वतके ऊपर स्थित हो, कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी सुदर्शनचक्र गिरती हुई जलकी धाराओं-को उसी प्रकार पीने लगा, जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको पी लिया था। उस पर्वतके नीचे शेषनागने चारों ओरसे गोलाकार स्थित हो, उधर आते हुए जलप्रवाहको उसी तरह रोक दिया, जैसे तटभूमि समुद्रको रोके रहती है। गोवर्धनधारी श्रीहरि एक सप्ताहतक सुस्थिरभावसे खड़े रहे और समस्त गोप चकोरोंकी भाँति श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर निहारते हुए बैठे रहे॥ २१—२३॥

तदनन्तर मतवाले ऐरावत हाथीपर चढ़कर, अपनी सेना साथ ले, रोषसे भरे हुए देवराज इन्द्र व्रजमण्डलमें आये। उन्होंने दूरसे ही नन्दव्रजको नष्ट कर डालनेकी इच्छासे अपना वज्र चलानेकी चेष्टा की। किंतु माधवने वज्रसहित उनकी भुजाको स्तम्भित कर दिया॥ २४-२५॥

फिर तो इन्द्र भयभीत हो गये और जैसे सिंहकी चोट खाकर हाथी भागे, उसी प्रकार वे सांवर्तकगणों तथा देवताओंके साथ सहसा भाग चले॥ २६॥

तदैवार्कोदयो जातो गता मेघा इतस्ततः।
वाता उपरताः सद्यो नद्यः स्वल्पजला नृप॥ २७

विपङ्कं भूतलं जातं निर्मलं खं बभूव ह।
चतुष्पदाः पक्षिणश्च सुखमापुस्ततस्ततः॥ २८

हरिणोक्तास्तदा गोपा निर्ययुर्गिरिगर्ततः।
स्वं स्वं धनं गोधनं च समादाय शनैः शनैः॥ २९

निर्यातेति वयस्यांश्च प्राह गोवर्धनोद्धरः।
ते तमाहुश्च निर्गच्छ धारयामोऽद्रिमोजसा॥ ३०

इति वादपरान् गोपान् गोवर्धनधरो हरिः।
तदर्धं च गिरेर्भारं प्रादात्तेभ्यो महामनाः॥ ३१

पतितास्तेन भारेण गोपबालाश्च निर्बलाः॥ ३२

करेण तान् समुत्थाप्य स्वस्थाने पूर्ववद्गिरिम्।
सर्वेषां पश्यतां कृष्णः स्थापयामास लीलया॥ ३३

तदैव गोपीगणगोपमुख्याः
सम्पूज्य कृष्णं नृप नन्दसूनुम्।
गन्धाक्षताद्यैर्दधिदुग्धभोगै-
र्ज्ञात्वा परं नेमुरतीव सर्वे॥ ३४

नन्दो यशोदा नृप रोहिणी च
बलश्च सन्नन्दमुखाश्च वृद्धाः।
आलिङ्ग्य कृष्णं प्रददुर्धनानि
शुभाशिषा संयुयुजुर्घृणार्ताः॥ ३५

संश्लाघ्य तं गायनवाद्यतत्परा
नृत्यन्त आरान्नृप नन्दनन्दनम्।
आजग्मुरेव स्वगृहान् व्रजौकसो
हरिं पुरस्कृत्य मनोरथं गताः॥ ३६

तदैव देवा ववृषुः प्रहर्षिताः
पुष्पैः शुभैः सुन्दरनन्दनोद्भवैः।
जगुर्यशः श्रीगिरिराजधारिणो
गन्धर्वमुख्या दिवि सिद्धसङ्घाः॥ ३७

नरेश्वर! उसी समय सूर्योदय हो गया। बादल इधर-उधर छँट गये। हवाका वेग रुक गया और नदियोंमें बहुत थोड़ा पानी रह गया॥ २७॥

पृथ्वीपर पंकका नाम भी नहीं था। आकाश निर्मल हो गया। चौपाये और पक्षी सब ओर सुखी हो गये। तब भगवान्की आज्ञा पाकर समस्त गोप पर्वतके गर्तसे अपना-अपना गोधन लेकर धीरे-धीरे बाहर निकले॥ २८-२९॥

उसके बाद गोवर्धनधारीने अपने सखाओंसे कहा—'तुमलोग भी निकलो।' तब वे बोले—'नहीं, हम लोग अपने बलसे पर्वतको रोके हुए हैं; तुम्हीं निकल जाओ।' उन सबको इस तरहकी बातें करते देख महामना गोवर्धनधारी श्रीहरिने पर्वतका आधा भार उनपर डाल दिया॥ ३०-३१॥

बेचारे निर्बल गोप-बालक उस भारसे दबकर गिर पड़े। तब उन सबको उठाकर श्रीकृष्णने उनके देखते-देखते पर्वतको पहलेकी ही भाँति लीलापूर्वक रख दिया॥ ३२-३३॥

नरेश्वर! उस समय प्रमुख गोपियों और प्रधान-प्रधान गोपोंने नन्दनन्दनका गन्ध और अक्षत आदिसे पूजन करके उन्हें दही-दूधका भोग अर्पित किया और उनको परमात्मा जानकर सबने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। राजन्! नन्द, यशोदा, रोहिणी, बलराम तथा सन्नन्द आदि वृद्ध गोपोंने श्रीकृष्णको हृदयसे लगाकर धनका दान किया और दयासे द्रवित हो, उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान किये॥ ३४-३५॥

तदनन्तर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके, समस्त व्रजवासी सफल-मनोरथ हो नन्दनन्दनके समीप गाने, बजाने और नाचने लगे तथा उन श्रीहरिको आगे करके अपने घरको लौटे। उसी समय हर्षसे भरे हुए देवता वहाँ नन्दन-वनके सुन्दर-सुन्दर फूलोंकी वर्षा करने लगे तथा आकाशमें खड़े हुए प्रधान-प्रधान गन्धर्व और सिद्धोंके समुदाय गोवर्धनधारीके यशका गान करने लगे॥ ३६-३७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गोवर्धनोद्धरणं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें गिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गोवर्धनोद्धरण' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

इन्द्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति तथा सुरभि और ऐरावतद्वारा उनका अभिषेक

श्रीनारद उवाच

अथ देवगणैः सार्धं शक्रस्तत्र समागतः।
गतमानो गिरौ कृष्णं रहसि प्रणनाम ह॥ १

इन्द्र उवाच

त्वं देवदेवः परमेश्वरः प्रभुः
पूर्णः पुराणः पुरुषोत्तमोत्तमः।
परात्परस्त्वं प्रकृतेः परो हरि-
र्मां पाहि पाहि द्युपते जगत्पते॥ २

दशावतारो भगवांस्त्वमेव
रिरक्षया धर्मगवां श्रुतेश्च।
अद्यैव जातः परिपूर्णदेवः
कंसादिदैत्येन्द्रविनाशनाय ॥ ३

त्वन्मायया मोहितचित्तवृत्तिं
मदोद्धतं हेलनभाजनं माम्।
पितेव पुत्रं द्युपते क्षमस्व
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥ ४

ॐ नमो गोवर्धनोद्धरणाय गोविन्दाय गोकुलनिवासाय गोपालाय गोपालपतये गोपीजनभर्त्रे गिरिगजोद्धर्त्रे करुणानिधये जगद्विधये जगन्मङ्गलाय जगन्निवासाय जगन्मोहनाय कोटिमन्मथमन्मथाय वृषभानुसुतावराय श्रीनन्दराजकुलप्रदीपाय श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय त्वसंख्यब्रह्माण्डपतये गोलोकधामधिषणाधिपतये स्वयम्भगवते सबलाय नमस्ते नमस्ते नमस्ते॥ ५

श्रीनारद उवाच

इति शक्रकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वा सिद्धिर्भवेत्तस्य सङ्कटान्न भयं भवेत्॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] तदनन्तर गर्व गल जानेके कारण देवराज इन्द्र देवताओंके साथ उस पर्वतपर आये और एकान्तमें श्रीकृष्णको प्रणाम करके उनसे बोले— ॥ १ ॥

इन्द्रने कहा—आप देवताओंके भी देवता, सर्वसमर्थ, पूर्ण परमेश्वर, पुराणपुरुष, पुरुषोत्तमोत्तम, प्रकृतिसे परे तथा परात्पर श्रीहरि हैं। स्वर्गके स्वामी जगत्पते! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। धर्म, गौ तथा वेदकी रक्षा करनेके लिये दस अवतार धारण करनेवाले भगवान् आप ही हैं। इस समय भी आप परिपूर्णतम देवता कंसादि दैत्यराजोंके विनाशके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं॥ २-३ ॥

आपकी मायासे जिसकी चित्तवृत्ति मोहित है, जो मदसे उन्मत्त और अवहेलनाका पात्र है, वही मैं आपका अपराधी इन्द्र हूँ। द्युपते! जैसे पिता पुत्रके अपराधको क्षमा कर देता है, उसी प्रकार आप मुझ अपराधीको क्षमा करें। देवेश्वर! जगन्निवास! मुझपर प्रसन्न होइये। गोवर्धनको उठानेवाले आप गोविन्दको नमस्कार है। गोकुलनिवासी गोपालको नमस्कार है। गोपालोंके पति, गोपीजनोंके भर्ता और गिरिराजके उद्धर्ताको नमस्कार है। करुणाकी निधि तथा जगत्के विधाता, विश्वमङ्गलकारी तथा जगत्के निवासस्थान आप परमात्माको प्रणाम है। जो विश्व-मोहन तथा करोड़ों कामदेवोंके भी मनको मथ देनेवाले हैं, उन वृषभानुनन्दिनीके स्वामी श्रीनन्दराजकुल-दीपक परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। असंख्य ब्रह्माण्डोंके पति, गोलोकधामके अधिपति एवं बलरामके साथ रहनेवाले आप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णको बारंबार नमस्कार है, नमस्कार है॥ ४-५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इन्द्रद्वारा किये गये इस स्तोत्रका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करेगा, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ सुलभ होंगी और उसे किसी संकटसे भय नहीं होगा॥ ६ ॥

इति स्तुत्वा हरिं देवं सर्वैर्देवगणैः सह।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणनाम पुरन्दरः॥ ७

अथ गोवर्धने रम्ये सुरभिर्गौः समुद्व्रजा।
स्नापयामास गोपेशं दुग्धधाराभिरात्मनः॥ ८

शुण्डादण्डैश्चतुर्भिश्च द्युगङ्गाजलपूरितैः।
श्रीकृष्णं स्नापयामास मत्त ऐरावतो गजः॥ ९

ऋषिभिः श्रुतिभिः सर्वैर्देवगन्धर्वकिन्नराः।
तुष्टुवुस्ते हरिं राजन् हर्षिताः पुष्पवर्षिणः॥ १०

कृष्णाभिषेके सञ्जाते गिरिर्गोवर्धनो महान्।
द्रवीभूतोऽवहद्राजन् हर्षानन्दादितस्ततः॥ ११

प्रसन्नो भगवांस्तस्मिन् कृतवान् हस्तपङ्कजम्।
तद्धस्तचिह्नमद्यापि दृश्यते तद्गिरौ नृप॥ १२

तत्तीर्थं च परं भूतं नराणां पापनाशनम्।
तत्रैव पादचिह्नं स्यात्तत्तीर्थं विद्धि मैथिल॥ १३

एतावत्तस्य तत्रैव पादचिह्नं बभूव ह।
सुरभेः पादचिह्नानि बभूवुस्तत्र मैथिल॥ १४

द्युगङ्गाजलपातेन कृष्णस्नानेन मैथिल।
तत्र वै मानसी गङ्गा गिरौ जाताघनाशिनी॥ १५

सुरभेर्दुग्धधाराभिर्गोविन्दस्नानतो नृप।
जातो गोविन्दकुण्डोऽद्रौ महापापहरः परः॥ १६

कदाचित्तस्मिन् दुग्धस्य स्वादुत्वं प्रतिपद्यते।
तत्र स्नात्वा नरः साक्षाद्गोविन्दपदमाप्नुयात्॥ १७

इस प्रकार भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करके देवराज इन्द्रने हाथ जोड़कर समस्त देवताओंके साथ उन्हें प्रणाम किया॥ ७॥

इसके बाद क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई सुरभि गौने उस सुरम्य गोवर्धन पर्वतपर आकर अपनी दुग्धधारासे गोपेश्वर श्रीकृष्णको स्नान कराया। फिर मत्त गजराज ऐरावतने आकाशगङ्गाके जलसे भरी हुई चार सूँड़ोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक किया। राजन्! फिर हर्षोल्लाससे भरे हुए सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व और किंनर ऋषियोंको साथ ले वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक पुष्पवर्षा करते हुए श्रीहरिकी स्तुति करने लगे॥ ८—१०॥

राजन्! श्रीकृष्णका अभिषेक सम्पन्न हो जानेपर वह महान् पर्वत गोवर्धन हर्ष एवं आनन्दसे द्रवीभूत होकर सब ओर बहने लगा। तब भगवान्ने प्रसन्न होकर उसके ऊपर अपना हस्तकमल रखा॥ ११½॥

नरेश्वर! उस पर्वतपर भगवान्के हाथका वह चिह्न आज भी दृष्टिगोचर होता है। वह परम पवित्र तीर्थ हो गया, जो मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाला है। वहीं चरण-चिह्न भी है। मैथिल! उसे भी परम तीर्थ समझो। जहाँ हस्तचिह्न है, वहीं उतना ही बड़ा चरणचिह्न भी हुआ॥ १२-१३½॥

मैथिल! उसी स्थानपर सुरभि देवीके चरण-चिह्न भी बन गये। मिथिलेश्वर! श्रीकृष्णके स्नानके निमित्त जो आकाशगङ्गाका जल गिरा, उससे वहीं 'मानसी गङ्गा' प्रकट हो गयीं, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली हैं। नरेश्वर! सुरभिकी दुग्ध-धाराओंसे गोविन्दने जो स्नान किया, उससे उस पर्वतपर 'गोविन्दकुण्ड' प्रकट हो गया, जो बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला परमपावन तीर्थ है॥ १४—१६॥

कभी-कभी उस तीर्थके जलमें दूधका-सा स्वाद प्रकट होता है। उसमें स्नान करके मनुष्य साक्षात् गोविन्दके धामको प्राप्त होता है॥ १७॥

प्रदक्षिणीकृत्य हरिं प्रणम्य वै
दत्वा बलींस्तत्र पुरन्दरादयः।
जयध्वनिं कृत्य सुपुष्पवर्षिणो
ययुः सुराः सौख्ययुतास्त्रिविष्टपम्॥ १८
कृष्णाभिषेकस्य कथां श्रृणोति यो
दशाश्वमेधावभृथाधिकं फलम्।
प्राप्नोति राजेन्द्र स एव भूयसः
परं पदं याति परस्य वेधसः॥ १९

इस प्रकार वहाँ श्रीहरिकी परिक्रमा करके, उन्हें प्रणामपूर्वक बलि (पूजोपहार) समर्पित करनेके पश्चात्, इन्द्र आदि देवता जय-जयकारपूर्वक पुष्प बरसाते हुए बड़े सुखसे स्वर्गलोकको लौट गये। राजेन्द्र! जो श्रीकृष्णाभिषेककी इस कथाको सुनता है, वह दस अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथ-स्नानसे अधिक पुण्य-फलको पाता है। फिर वह परम-विधाता परमेश्वर श्रीकृष्णके परमपदको प्राप्त होता है॥ १८-१९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णाभिषेको नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका अभिषेक' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

गोपोंका श्रीकृष्णके विषयमें संदेहमूलक विवाद तथा श्रीनन्दराज एवं वृषभानुवरके द्वारा समाधान

श्रीनारद उवाच

एकदा सर्वगोपाला गोप्यो नन्दसुतस्य तत्।
अद्भुतं चरितं दृष्ट्वा नन्दमाहुर्यशोमतीम्॥ १

हे गोपराज त्वद्वंशे कोऽपि जातो न चाद्रिधृक्।
न क्षमस्त्वं शिलां धर्तुं सप्ताहं हे यशोमय॥ २

क्व सप्तहायनो बालः क्वाद्रिराजस्य धारणम्।
तेन नो जायते शङ्का तव पुत्रे महाबले॥ ३

अयं बिभ्रद्गिरिवरं कमलं गजराडिव।
उच्छिलीन्ध्रं यथा बालो हस्तेनैकेन लीलया॥ ४

गौरवर्णा यशोदे त्वं नन्द त्वं गौरवर्णधृक्।
अयं जातः कृष्णवर्ण एतत्कुलविलक्षणम्॥ ५

यद्वास्तु क्षत्रियाणां तु बाल एतादृशो यथा।
बलभद्रे न दोषः स्याच्चन्द्रवंशसमुद्भवे॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—एक समय समस्त गोपों और गोपियोंने नन्दनन्दनके उस अद्भुत चरित्रको देखकर यशोदासहित नन्दके पास जाकर कहा॥ १॥

[गोप बोले—] हे यशोमय गोपराज! तुम्हारे वंशमें पहले कभी कोई भी ऐसा बालक नहीं उत्पन्न हुआ था, जो पर्वत उठा ले। तुम स्वयं तो एक शिलाखण्ड भी सात दिनतक नहीं उठाये रह सकते। कहाँ तो सात वर्षका बालक और कहाँ उसके द्वारा इतने बड़े गिरिराजको हाथपर उठाये रखना! इससे तुम्हारे इस महाबली पुत्रके विषयमें हमें शङ्का होती है। जैसे गजराज एक कमल उठा ले और जैसे बालक गोबर-छत्ता हाथमें ले ले, उसी तरह इसने खेल-ही-खेलमें एक हाथसे गिरिराजको उठा लिया था॥ २—४॥

यशोदे! तुम गोरी हो, और नन्दजी! तुम भी सुवर्णसदृश गौरवर्णके हो; किंतु यह श्यामवर्णका उत्पन्न हुआ है। इसका रूप-रंग इस कुलके लोगोंसे सर्वथा विलक्षण है। यह बालक तो ऐसा है, जैसे क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हो। बलभद्रजी भी विलक्षण हैं, किन्तु इनकी विलक्षणता कोई दोषकी बात नहीं है; क्योंकि इनका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ है॥ ५-६॥

ज्ञातेस्त्यागं करिष्यामो यदि सत्यं न भाषसे।
गोपेषु चास्य वोत्पत्तिं वद चेन्न कलिर्भवेत्॥ ७

यदि तुम सच-सच नहीं बताओगे तो हम तुम्हें जातिसे बहिष्कृत कर देंगे। अथवा यह बताओ कि गोपकुलमें इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? यदि नहीं बताओगे तो हमसे तुम्हारा झगड़ा होगा॥ ७॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा गोपालवचनं यशोदा भयविह्वला।
नन्दराजस्तदा प्राह गोपान् क्रोधप्रपूरितान्॥ ८

श्रीनारदजी कहते हैं—गोपोंकी बात सुनकर यशोदाजी तो भयसे काँप उठीं, किंतु उस समय क्रोधसे भरे हुए गोपगणोंसे नन्दराज इस प्रकार बोले—॥ ८॥

श्रीनन्द उवाच

गर्गस्य वाक्यं हे गोपा वदिष्यामि समाहितः।
येन गोपगणा यूयं भवताशु गतव्यथाः॥ ९

ककारः कमलाकान्त ऋकारो राम इत्यपि।
षकारः षड्गुणपतिः श्वेतद्वीपनिवासकृत्॥ १०

श्रीनन्दजीने कहा—हे गोपगण! मैं एकाग्रचित्त होकर गर्गजीकी कही हुई बात तुम्हें बता रहा हूँ, जिससे तुम्हारे मनकी चिन्ता और व्यथा शीघ्र दूर हो जायगी। [पहले 'कृष्ण' शब्दके अक्षरोंका अभिप्राय सुनो—] 'ककार' कमलाकान्तका वाचक है; 'ऋकार' रामका बोधक है; 'षकार' श्वेतद्वीपनिवासी षड्विध ऐश्वर्य-गुणोंके स्वामी भगवान् विष्णुका वाचक है॥ ९-१०॥

णकारो नारसिंहोऽयमकारो ह्यक्षरोऽग्निभुक्।
विसर्गौ च तथा ह्येतौ नरनारायणावृषी॥ ११

सम्प्रलीनाश्च षट् पूर्णा यस्मिञ्छब्दे महात्मनि।
परिपूर्णतमे साक्षात्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः॥ १२

'णकार' साक्षात् नरसिंहस्वरूप है; 'अकार' उस अक्षर पुरुषका बोधक है, जो अग्निको भी पी जाता है। अन्तमें जो 'विसर्ग' नामक दो बिन्दु हैं, ये 'नर' और नारायण' ऋषियोंके प्रतीक हैं। ये छहों पूर्ण तत्त्व जिस परिपूर्णतम परमात्मामें लीन हैं, वही साक्षात् 'कृष्ण' है। इसी अर्थमें इस बालकका नाम 'कृष्ण' कहा गया है॥ ११-१२॥

शुक्लो रक्तस्तथा पीतो वर्णोऽस्यानुयुगं धृतः।
द्वापरान्ते कलेरादौ बालोऽयं कृष्णतां गतः॥ १३

तस्मात्कृष्ण इति ख्यातो नाम्नायं नन्दनन्दनः।
वसवश्चेन्द्रियाणीति तद्देवश्चित्त एव हि॥ १४

तस्मिन् यश्चेष्टते सोऽपि वासुदेव इति स्मृतः॥ १५

युगके अनुसार इसका वर्ण सत्ययुगमें 'शुक्ल', त्रेतामें 'रक्त' तथा द्वापरमें 'पीत' होता आया है। इस समय द्वापरके अन्त और कलियुगके आदिमें यह बालक 'कृष्ण' रूपको प्राप्त हुआ है, इस कारणसे यह नन्दनन्दन 'कृष्ण' नामसे विख्यात है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त—ये तीन प्रकारके अन्तःकरण 'आठ वसु' कहे गये हैं। इनके अधिष्ठाता देवता भी इसी नामसे प्रसिद्ध हैं। इन वसुओंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित होकर ये श्रीकृष्णदेव ही चेष्टा करते हैं, इसलिये इन्हें 'वासुदेव' कहा गया है॥ १३—१५॥

वृषभानुसुता राधा या जाता कीर्तिमन्दिरे।
तस्याः पतिरयं साक्षात्तेन राधापतिः स्मृतः॥ १६

''वृषभानुनन्दिनी राधा'' जो कीर्तिके भवनमें प्रकट हुई है, उसके साक्षात् पति ये ही हैं; इसलिये इन्हें 'राधापति' भी कहा गया है॥ १६॥

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते॥ १७

सोऽयं तव शिशुर्जातो भारावतरणाय च।
कंसादीनां वधार्थाय भक्तानां पालनाय च॥ १८

अनन्तान्यस्य नामानि वेदगुह्यानि भारत।
लीलाभिश्च भविष्यन्ति तत्कर्मसु न विस्मयः॥ १९

इति श्रुत्वात्मजे गोपाः सन्देहं न करोम्यहम्।
वेदवाक्यं ब्रह्मवचः प्रमाणं हि महीतले॥ २०

गोपा ऊचुः

यद्यागतस्तव गृहे गर्गाचार्यो महामुनिः।
तत्क्षणे नामकरणे नाहूता ज्ञातयस्त्वया॥ २१

स्वगृहे नामकरणं भवता च कृतं शिशोः।
तव चैतादृशी रीतिर्गुप्तं सर्वं गृहेऽपि यत्॥ २२

श्रीनारद उवाच

एवं वदन्तस्ते गोपा निर्गता नन्दमन्दिरात्।
वृषभानुवरं जग्मुः क्रोधपूरितविग्रहाः॥ २३

वृषभानुवरं साक्षान्नन्दराजसहायकम्।
प्राहुर्गोपगणाः सर्वे ज्ञातेर्मदसमन्विताः॥ २४

गोपा ऊचुः

वृषभानुवर त्वं वै ज्ञातिमुख्यो महामनाः।
नन्दराजं त्यज ज्ञातेर्हे गोपेश्वर भूपते॥ २५

श्रीवृषभानुवर उवाच

को दोषो नन्दराजस्य ज्ञातेस्तं सन्त्यजाम्यहम्।
गोपेष्टो ज्ञातिमुकुटो नन्दराजो मम प्रियः॥ २६

गोपा ऊचुः

न चेत्त्यजसि तं राजंस्त्यजामस्त्वां व्रजौकसः।
त्वद्गृहे वर्धिता कन्योद्वाहयोग्या महामते॥ २७

ये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं और सर्वत्र व्यापक होते हुए भी स्वरूपसे गोलोकधाममें विराजते हैं। नन्द! वे ही ये भगवान् भूतलका भार उतारने, कंसादि दैत्योंको मारने तथा भक्तोंका पालन करनेके लिये तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं॥ १७-१८॥

भरतवंशी नन्द! इस बालकके अनन्त नाम हैं, जो वेदोंके लिये भी गोपनीय हैं तथा इसकी लीलाओंके अनुसार और भी बहुत मे नाम विख्यात होंगे। अतः इसके कितने ही महान् विलक्षण कर्म क्यों न हों, उनके सम्बन्धमें कोई विस्मय नहीं करना चाहिये। गोपगण! अपने पुत्रके विषयमें गर्गजीकी कही हुई इस बातको सुनकर मैं कभी संदेह नहीं करता; क्योंकि पृथ्वीपर वेद-वाक्य और ब्राह्मण-वचन ही प्रमाण हैं॥ १९-२०॥

गोप बोले—यदि महामुनि गर्गाचार्य तुम्हारे घर आये थे, तब उसी समय नामकरण-संस्कारमें तुमने भाई-बन्धुओंको क्यों नहीं बुलाया? चुपचाप अपने घरमें ही बालकका नामकरण-संस्कार कर लिया। यह तुम्हारी अच्छी रीति है कि सारा कार्य घरमें ही गुप-चुप कर लिया जाय॥ २१-२२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर क्रोधसे भरे हुए गोप नन्दमन्दिरसे निकलकर वृषभानुवरके पास गये। वृषभानुवर नन्दराजके साक्षात् सहायक थे, तथापि इसकी परवाह न करके जातीय संघटनके बलसे उन्मत्त हुए गोप उनके पास जाकर बोले॥ २३-२४॥

गोपोंने कहा—हे वृषभानुवर! तुम हमारे जातिवर्गमें प्रधान और महामनस्वी हो। अतः गोपेश्वर भूपाल! तुम नन्दराजको जातिसे अलग कर दो॥ २५॥

श्रीवृषभानुवर बोले—नन्दराजका क्या दोष है, जिससे मैं उनको त्याग दूँ? नन्दराज तो समस्त गोपोंके प्रिय, अपनी जातिके मुकुट तथा मेरे भी परम प्रिय हैं॥ २६॥

गोप बोले—राजन्! महामते! यदि तुम नन्दराजको नहीं छोड़ोगे तो हम सब व्रजवासी तुम्हें छोड़ देंगे। तुम्हारे घरमें कन्या बड़ी आयुकी होकर

भवता ज्ञातिमुख्येन सम्पदुन्मदशालिना।
न दत्ता वरमुख्याय कलुषं तव विद्यते॥ २८

अद्य त्वां ज्ञातिसम्भ्रष्टं पृथङ्मन्यामहे नृप।
न चेच्छीघ्रं नन्दराजं त्यज त्यज महामते॥ २९

विवाहके योग्य हो गयी है और तुमने हमारी जातिके प्रधान होकर भी धन-सम्पत्तिके मदसे मतवाले हो अबतक उसे किसी श्रेष्ठ वरके हाथमें नहीं सौंपा है, इसलिये तुम्हारे ऊपर पाप चढ़ा हुआ है। महामते नरेश! आजसे हम तुम्हें जातिभ्रष्ट तथा अपनेसे अलग मान लेंगे; नहीं तो शीघ्र नन्दराजको छोड़ दो, छोड़ दो॥ २७—२९॥

श्रीवृषभानुवर उवाच

गर्गस्य वाक्यं हे गोपा वदिष्यामि समाहितः।
येन गोपगणा यूयं भवताशु गतव्यथाः॥ ३०

असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः।
तस्मात्परो वरो नास्ति जातो नन्दगृहे शिशुः॥ ३१

भुवो भारावताराय कंसादीनां वधाय च।
ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णो बभूव जगतीतले॥ ३२

श्रीवृषभानुवरने कहा—गोपगण! मैं एकाग्रचित्त होकर गर्गजीकी कही हुई बात बता रहा हूँ, जिससे शीघ्र ही तुम्हारी चिन्ता-व्यथा दूर हो जायगी। उन्होंने बताया—"असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, लोकेश्वर, परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण नन्दगृहमें बालक होकर अवतीर्ण हुए हैं। उनसे बढ़कर श्रीराधाके लिये कोई वर नहीं है। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे भूमिका भार उतारने और कंसादिका वध करनेके लिये भूतलपर श्रीकृष्णका अवतार हुआ है॥ ३०—३२॥

श्रीकृष्णपट्टराज्ञी या गोलोके राधिकाभिधा।
त्वद्गेहे सापि सञ्जाता त्वं न जानासि तां पराम्॥ ३३

अहं न कारयिष्यामि विवाहमनयोर्नृप।
तयोर्विवाहो भविता भाण्डीरे यमुनातटे॥ ३४

वृन्दावनसमीपे च निर्जने सुन्दरे स्थले।
परमेष्ठी समागत्य विवाहं कारयिष्यति॥ ३५

गोलोकमें 'श्रीराधा' नामकी जो श्रीकृष्णकी पटरानी हैं, वे ही तुम्हारे घरमें कन्यारूपसे अवतीर्ण हुई हैं। उन 'परा देवी'को तुम नहीं जानते। हे नरेश! मैं इन दोनोंका विवाह नहीं कराऊँगा। इनका विवाह यमुनातटपर भाण्डीर-वनमें होगा। वृन्दावनके समीप निर्जन सुन्दर स्थलमें साक्षात् ब्रह्माजी पधारकर श्रीराधा तथा श्रीकृष्णका विवाह-कार्य सम्पन्न करायेंगे॥ ३३—३५॥

तस्माद्राधां गोपवर विद्ध्यर्द्धाङ्गीं परस्य च।
लोकचूडामणेः साक्षाद्राज्ञीं गोलोकमन्दिरे॥ ३६

यूयं सर्वेऽपि गोपाला गोलोकादागता भुवि।
तथा गोपीगणा गावो गोकुले राधिकेच्छया॥ ३७

एवमुक्त्वा गते साक्षाद् गर्गाचार्ये महामुनौ।
तद्दिनादथ राधायां सन्देहं न करोम्यहम्॥ ३८

वेदवाक्यं ब्रह्मवचः प्रमाणं हि महीतले।
इति वः कथितं गोपाः किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥ ३९

अतः गोपप्रवर! तुम श्रीराधाको लोकचूडामणि साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्णकी अर्धाङ्गस्वरूपा एवं गोलोकधामकी महारानी समझो। तुम समस्त गोपगण भी गोलोकसे इस भूतलपर आये हो। इसी तरह गोपियाँ और गौएँ भी श्रीराधाकी इच्छासे ही गोलोकसे गोकुलमें आयी हैं।" यों कहकर साक्षात् महामुनि गर्गाचार्य जब चले गये, उसी दिनसे श्रीराधाके विषयमें मैं कभी कोई संदेह या शङ्का नहीं करता। इस भूतलपर ब्राह्मणवचन वेदवाक्यवत् प्रमाण हैं। गोपो! यह सब रहस्य मैंने तुम्हें सुना दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ३६—३९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गोपविवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गोपविवाद' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

गोपोंका वृषभानुवरके वैभवकी प्रशंसा करके नन्दनन्दनकी भगवत्ताका परीक्षण करनेके लिये उन्हें प्रेरित करना और वृषभानुवरका कन्याके विवाहके लिये वरको देनेके निमित्त बहुमूल्य एवं बहुसंख्यक मौक्तिक-हार भेजना तथा श्रीकृष्णकी कृपासे नन्दराजका वधूके लिये उनसे भी अधिक मौक्तिकराशि भेजना

श्रीनारद उवाच

वृषभानुवरस्येदं वचः श्रुत्वा व्रजौकसः।
ऊचुः पुनः शान्तिगता विस्मिता मुक्तसंशयाः॥ १

गोपा ऊचुः

समीचीनं वरो राजन् राधेयं तु हरिप्रिया।
तत्प्रभावेण ते दीर्घं वैभवं दृश्यते भुवि॥ २

सहस्रशो गजा मत्ताः कोटिशोऽश्वाश्च चञ्चलाः।
रथाश्च देवधिष्ण्याभाः शिबिकाः कोटिशः शुभाः॥ ३

कोटिशः कोटिशो गावो हेमरत्नमनोहराः।
मन्दिराणि विचित्राणि रत्नानि विविधानि च॥ ४

सर्वं सौख्यं भोजनादि दृश्यते साम्प्रतं तव।
कंसोऽपि धर्षितो जातो दृष्ट्वा ते बलमद्भुतम्॥ ५

कान्यकुब्जपतेः साक्षाद्भलन्दननृपस्य च।
जामाता त्वं महावीर कुबेर इव कोशवान्॥ ६

त्वत्समं वैभवं नास्ति नन्दराजगृहे क्वचित्।
कृषीवलो नन्दराजो गोपतिर्दीनमानसः॥ ७

यदि नन्दसुतः साक्षात्परिपूर्णतमो हरिः।
सर्वेषां पश्यतां नस्तत्परीक्षां कारय प्रभो॥ ८

श्रीनारद उवाच

तेषां वाक्यं ततः श्रुत्वा वृषभानुवरो महान्।
चकार नन्दराजस्य वैभवस्य परीक्षणम्॥ ९

कोटिदामानि मुक्तानां स्थूलानां मैथिलेश्वर।
एकैका येषु मुक्ताश्च कोटिमौल्याः स्फुरत्प्रभाः॥ १०

निधाय तानि पात्रेषु वृणानैः कुशलैर्जनैः।
प्रेषयामास नन्दाय सर्वेषां पश्यतां नृप॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वृषभानुवरकी यह बात सुनकर समस्त व्रजवासी शान्त हो गये। उनका सारा संशय दूर हो गया तथा उनके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे पुनः कहने लगे—॥ १॥

गोप बोले—राजन्! तुम्हारा कथन सत्य है। निश्चय ही यह राधा श्रीहरिकी प्रिया है। इसीके प्रभावसे भूतलपर तुम्हारा वैभव अधिक दिखायी देता है। हजारों मतवाले हाथी, करोड़ों चञ्चल घोड़े तथा देवताओंके विमान-सदृश करोड़ों सुन्दर रथ और शिबिकाएँ तुम्हारे यहाँ सुशोभित होती हैं॥ २-३॥

इतना ही नहीं, सुवर्ण तथा रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित कोटि-कोटि मनोहर गौएँ, विचित्र भवन, नाना प्रकारके मणिरत्न, भोजन-पान आदिका सर्वविध सौख्य—यह सब इस समय तुम्हारे घरमें प्रत्यक्ष देखा जाता है। तुम्हारा अद्भुत बल देखकर कंस भी पराभूत हो गया है॥ ४-५॥

महावीर! तुम कान्यकुब्ज देशके स्वामी साक्षात् राजा भलन्दनके जामाता हो तथा कुबेरके समान कोषाधिपति। तुम्हारे समान वैभव नन्दराजके घरमें कहीं नहीं है। नन्दराज तो किसान, गोयूथके अधिपति और दीन हृदयवाले हैं। प्रभो! यदि नन्दके पुत्र साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं तो हम सबके सामने नन्दके वैभवकी परीक्षा कराइये॥ ६—८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] उन गोपोंकी बात सुनकर महान् वृषभानुवरने नन्दराजके वैभवकी परीक्षा की। मैथिलेश्वर! उन्होंने स्थूल मोतियोंके एक करोड़ हार लिये, जिनमें पिरोया हुआ एक-एक मोती एक-एक करोड़ स्वर्णमुद्राके मोलपर मिलनेवाला था और उन सबकी प्रभा दूरतक फैल रही थी। नरेश्वर! उन सबको पात्रोंमें रखकर बड़े कुशल वर-वरणकारी लोगोंद्वारा सब गोपोंके देखते-देखते वृषभानुवरने नन्दराजजीके यहाँ भेजा॥ ९—११॥

नन्दराजसभां गत्वा वृणानाः कुशला भृशम्।
निधाय दामपात्राणि नन्दमाहुः प्रणम्य तम्॥ १२

वृणाना ऊचुः

विवाहयोग्यां नवकञ्जनेत्रां
कोटीन्दुबिम्बद्युतिमादधानाम् ।
विज्ञाय राधां वृषभानुमुख्य-
श्चक्रे विचारं सुवरं विचिन्वन्॥ १३

तवाङ्गजं दिव्यमनङ्गमोहनं
गोवर्धनोद्धारणदोःसमुद्भटम् ।
संवीक्ष्य चास्मान् वृषभानुवन्दितः
सम्प्रेषयामास विशाम्पते प्रभो॥ १४

वरस्य चाङ्के भरणाय पूर्वं
मुक्ताफलानां निचयं गृहाण।
इतश्च कन्यार्थमलं प्रदेहि
सैषा हि चास्मत्कुलजा प्रसिद्धिः॥ १५

श्रीनारद उवाच

दृष्ट्वा द्रव्यं परं नन्दो विस्मितोऽपि विचारयन्।
प्रष्टुं यशोदां तत्तुल्यं नीत्वा चान्तःपुरं ययौ॥ १६

चिरं दध्यौ तदा नन्दो यशोदा च यशस्विनी।
एतन्मुक्तासमानं तु द्रव्यं नास्ति गृहे मम॥ १७

लोके लज्जा गता सर्वा हासः स्याच्चेद्धनोद्धतम्।
किं कर्तव्यं तत्प्रति यच्छ्रीकृष्णोद्वाहकर्मणि॥ १८

ततो योग्यं तद्ग्रहणं पश्चात्कार्यं धनागमे।
एवं चिन्तयतस्तस्य नन्दस्यैव यशोदया॥ १९

अलक्ष्य आगतस्तत्र भगवान् वृजिनार्दनः।
नीत्वा दामशतं तेषु बहिःक्षेत्रेषु सर्वतः॥ २०

नन्दराजकी सभामें जाकर अत्यन्त कुशल वर-वरणकर्ता लोगोंने मौक्तिक-हारोंके पात्र उनके सामने रख दिये और प्रणाम करके उनसे कहा— ॥ १२॥

वर-वरणकर्ता बोले—नन्दराज! जिसके नेत्र नूतन विकसित कमलके समान शोभा पाते हैं तथा जो मुखमें करोड़ों चन्द्रमण्डलोंकी-सी कान्ति धारण करती है, उस अपनी पुत्री श्रीराधाको विवाहके योग्य जानकर वृषभानुवरने सुन्दर वरकी खोज करते हुए यह विचार किया है कि तुम्हारे पुत्र मदनमोहन श्रीकृष्ण दिव्य वर हैं। गोवर्धन पर्वतको उठानेमें समर्थ, दिव्य भुजाओंसे सम्पन्न तथा उद्भट वीर हैं। प्रभो! वैश्य-प्रवर!! यह सब देख और सोच-विचारकर वृषभानुवन्दित वृषभानुवरने हम सबको यहाँ भेजा है। आप वरकी गोद भरनेके लिये पहले कन्या-पक्षकी ओरसे यह मौक्तिकराशि ग्रहण कीजिये। फिर इधरसे भी कन्याकी गोद भरनेके लिये पर्याप्त मौक्तिकराशि प्रदान कीजिये। यही हमारे कुलकी प्रसिद्ध रीति है॥ १३—१५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] उस उत्कृष्ट द्रव्यराशिको देखकर नन्दराज बड़े विस्मित हुए; तो भी वे कुछ विचारकर यशोदाजीसे 'उसके तुल्य रत्न-राशि है या नहीं' इस बातको पूछनेके लिये वह सब सामान लेकर अन्तःपुरमें गये। वहाँ उस समय नन्द और यशस्विनी यशोदाने चिरकालतक विचार किया, किंतु (अन्ततोगत्वा) इसी निष्कर्षपर पहुँचे कि इस मौक्तिकराशिके बराबर दूसरी कोई द्रव्यराशि मेरे घरमें नहीं है। आज लोगोंमें हमारी सारी लाज गयी। हम-लोगोंकी सब ओर हँसी उड़ायी जायगी। इस धनके बदलेमें हम दूसरा कौन-सा धन दें? क्या करें? श्रीकृष्णके इस विवाहके निमित्त हमारे द्वारा क्या किया जाना चाहिये?॥ १६—१८॥

पहले तो जो कुछ वरके लिये आया है, उसे ग्रहण कर लेना चाहिये। पीछे अपने पास धन आनेपर वधूके लिये उपहार भेजा जायगा। ऐसा विचार करते हुए नन्द और यशोदाजीके पास भगवान् अघमर्दन श्रीकृष्ण अलक्षितभावसे ही वहाँ आ गये। उन

मुक्ताफलानि चैकैकं प्राक्षिपत्स्वकरेण वै।
यथा बीजानि चान्नानां स्वक्षेत्रेषु कृषीवलः ॥ २१

अथ नन्दोऽपि गणयन् कलिकानिचयं पुनः।
शतं न्यूनं च तद्दृष्ट्वा सन्देहं स जगाम ह॥ २२

श्रीनन्द उवाच

नास्ति पूर्वं यत्समानं तत्रापि न्यूनतां गतम्।
अहो कलङ्को भविता ज्ञातिषु स्वेषु सर्वतः ॥ २३

अथवा क्रीडनार्थं हि कृष्णो यदि गृहीतवान्।
बलदेवोऽथवा बालस्तौ पृच्छे दीनमानसः ॥ २४

श्रीनारद उवाच

इत्थं विचार्य नन्दोऽपि कृष्णं पप्रच्छ सादरम्।
प्रहसन् भगवान् नन्दं प्राह गोवर्धनोद्धरः ॥ २५

श्रीभगवानुवाच

कृषीवला वयं गोपाः सर्वबीजप्ररोहकाः।
क्षेत्रे मुक्ताप्रबीजानि विकीर्णीकृतवानहम्॥ २६

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वाथ स्वात्मजेनोक्तं तं निर्भर्त्स्य व्रजेश्वरः।
तानि नेतुं तत्सहितस्तत्क्षेत्राणि जगाम ह॥ २७

तत्र मुक्ताफलानां तु शाखिनः शतशः शुभाः।
दृश्यन्ते दीर्घवपुषो हरित्पल्लवशोभिताः ॥ २८

मुक्तानां स्तबकानां तु कोटिशः कोटिशो नृप।
सङ्घा विलम्बिता रेजुर्ज्योतींषीव नभःस्थले॥ २९

तदातिहर्षितो नन्दो ज्ञात्वा कृष्णं परेश्वरम्।
मुक्ताफलानि दिव्यानि पूर्वस्थूलसमानि च॥ ३०

तेषां तु कोटिभाराणि निधाय शकटेषु च।
ददौ तेभ्यो वृणानेभ्यो नन्दराजो व्रजेश्वरः ॥ ३१

मौक्तिक-हारोंमेंसे सौ हार उन्होंने घरसे बाहर खेतोंमें ले जाकर, अपने हाथसे मोतीका एक-एक दाना लेकर, उन्होंने उसी भाँति सारे खेतमें छींट दिया, जैसे किसान अपने खेतोंमें अनाजके दाने बिखेर देता है। तदनन्तर नन्द भी जब उन मुक्तामालाओंकी गणना करने लगे, तब उनमें सौ मालाओंकी कमी देखकर उनके मनमें संदेह हुआ॥ १९—२२॥

श्रीनन्दजी बोले—हाय! पहले तो मेरे घरमें जिस रत्नराशिके समान दूसरी कोई रत्नराशि थी ही नहीं, उसमें भी अब सौकी कमी हो गयी। अहो! चारों ओरसे भाई-बन्धुओंके बीच मुझपर बड़ा भारी कलङ्क पोता जायगा। अथवा यदि श्रीकृष्ण या बलरामने खेलनेके लिये उसमेंसे कुछ मोती निकाल लिये हों तो अब दीनचित्त होकर मैं उन्हीं दोनों बालकोंसे पूछूँगा॥ २३-२४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार विचारकर नन्दने भी श्रीकृष्णसे उन मोतियोंके विषयमें आदरपूर्वक पूछा। तब जोरसे हँसते हुए गोवर्धनधारी भगवान् नन्दसे बोले— ॥ २५॥

श्रीभगवान्ने कहा—बाबा! हम सारे गोप किसान हैं, जो खेतोंमें सब प्रकारके बीज बोया करते हैं; अतः हमने खेतमें मोतीके बीज बिखेर दिये हैं॥ २६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! बेटेके मुँहसे यह बात सुनकर व्रजेश्वर नन्दने उसे डाँट बतायी और उन सबको चुन-बीनकर लानेके लिये उसके साथ खेतोंमें गये। वहाँ मुक्ताफलके सैकड़ों सुन्दर वृक्ष दिखायी देने लगे, जो हरे-हरे पल्लवोंसे सुशोभित और विशालकाय थे॥ २७-२८॥

नरेश्वर! जैसे आकाशमें झुंड-के-झुंड तारे शोभा पाते हैं, उसी प्रकार उन वृक्षोंमें कोटि-कोटि मुक्ताफलोंके गुच्छे समूह-के-समूह लटके हुए सुशोभित हो रहे थे। तब हर्षसे भरे हुए व्रजेश्वर नन्दराजने श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर पहलेके समान ही मोटे-मोटे दिव्य मुक्ताफल उन वृक्षोंसे तोड़ लिये और उनके एक कोटि भार गाड़ियोंपर लदवाकर उन वर-वरणकर्ताओंको दे

ते गृहीत्वाथ तत्सर्वं वृषभानुवरं गताः।
सर्वेषां शृण्वतां नन्दवैभवं प्रजगुर्नृप॥ ३२

दिये। नरेश्वर! वह सब लेकर वे वरदर्शी लोग वृषभानुवरके पास गये और सबके सुनते हुए नन्दराजके अनुपम वैभवका वर्णन करने लगे॥ २९—३२॥

तदातिविस्मिताः सर्वे ज्ञात्वा नन्दसुतं हरिम्।
वृषभानुवरं नेमुर्निःसन्देहा व्रजौकसः॥ ३३

राधा हरेः प्रिया ज्ञाता राधायाश्च प्रियो हरिः।
ज्ञातो व्रजजनैः सर्वैस्तद्दिनान्मैथिलेश्वर॥ ३४

उस समय सब गोप बड़े विस्मित हुए। नन्दनन्दनको साक्षात् श्रीहरि जानकर समस्त व्रजवासियोंका संशय दूर हो गया और उन्होंने वृषभानुवरको प्रणाम किया। मिथिलेश्वर! उसी दिनसे व्रजके सब लोगोंने यह जान लिया कि श्रीराधा श्रीहरिकी प्रियतमा हैं और श्रीहरि श्रीराधाके प्राणवल्लभ हैं॥ ३३-३४॥

मुक्ताक्षेपः कृतो यत्र हरिणा नन्दसूनुना।
मुक्तासरोवरस्तत्र जातो मैथिल तीर्थराट्॥ ३५

एकमुक्ताफलस्यापि दानं तत्र करोति यः।
लक्षमुक्तादानफलं समाप्नोति न संशयः॥ ३६

एवं ते कथितो राजन् गिरिराजमहोत्सवः।
भुक्तिमुक्तिप्रदो नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३७

मिथिलापते! जहाँ नन्दनन्दन श्रीहरिने मोती बिखेरे थे, वहाँ 'मुक्ता-सरोवर' प्रकट हो गया, जो तीर्थोंका राजा है। जो वहाँ एक मोतीका भी दान करता है, वह लाख मोतियोंके दानका फल पाता है, इसमें संशय नहीं है। राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे गिरिराज-महोत्सवका वर्णन किया, जो मनुष्योंके लिये भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ ३५—३७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे हरिपरीक्षणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीहरिकी भगवत्ताका परीक्षण' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

गिरिराज गोवर्धनसम्बन्धी तीर्थोंका वर्णन

बहुलाश्व उवाच

कति मुख्यानि तीर्थानि गिरिराजे महात्मनि।
एतद्ब्रूहि महायोगिन् साक्षात्त्वं दिव्यदर्शनः॥ १

बहुलाश्वने पूछा—महायोगिन्! आप साक्षात् दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न हैं; अतः यह बताइये कि महात्मा गिरिराजके आस-पास अथवा उनके ऊपर कितने मुख्य तीर्थ हैं?॥ १॥

श्रीनारद उवाच

राजन् गोवर्धनः सर्वः सर्वतीर्थवरः स्मृतः।
वृन्दावनं च गोलोकं मुकुटोऽद्रिः प्रपूजितः॥ २

गोपगोपीगवां रक्षाप्रदः कृष्णप्रियो महान्।
पूर्णब्रह्मातपत्रो यस्तस्मात्तीर्थवरस्तु कः॥ ३

श्रीनारदजी बोले—राजन्! समूचा गोवर्धन-पर्वत ही सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ माना जाता है। वृन्दावन साक्षात् गोलोक है और गिरिराजको उसका मुकुट बताकर सम्मानित किया गया है। वह पर्वत गोपों, गोपियों तथा गौओंका रक्षक एवं महान् कृष्णप्रिय है। जो साक्षात् पूर्णब्रह्मका छत्र बन गया, उससे श्रेष्ठ तीर्थ दूसरा कौन है!॥ २-३॥

इन्द्रयागं विनिर्भर्त्स्य सर्वैर्निजजनैः सह।
यत्पूजनं समारेभे भगवान् भुवनेश्वरः॥ ४

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः॥ ५

यस्मिन् स्थितः सदा क्रीडामर्भकैः सह मैथिल।
करोति तस्य माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः॥ ६

यत्र वै मानसी गङ्गा महापापौघनाशिनी।
गोविन्दकुण्डं विशदं शुभ्रं चन्द्रसरोवरम्॥ ७

राधाकुण्डः कृष्णकुण्डो ललिताकुण्ड एव च।
गोपालकुण्डस्तत्रैव कुसुमाकर एव च॥ ८

श्रीकृष्णमौलिसंस्पर्शान्मौलिचिह्ना शिलाभवत्।
तस्या दर्शनमात्रेण देवमौलिर्भवेज्जनः॥ ९

यस्यां शिलायां कृष्णेन चित्राणि लिखितानि च।
अद्यापि चित्रिता पुण्या नाम्ना चित्रशिला गिरौ॥ १०

यां शिलामर्भकैः कृष्णो वादयन् क्रीडने रतः।
वादनी सा शिला जाता महापापौघनाशिनी॥ ११

यत्र श्रीकृष्णचन्द्रेण गोपालैः सह मैथिल।
कृता वै कन्दुकक्रीडा तत्क्षेत्रं कन्दुकं स्मृतम्॥ १२

दृष्ट्वा शक्रपदं याति नत्वा ब्रह्मपदं च तत्।
विलुठन् यस्य रजसां साक्षाद्विष्णुपदं व्रजेत्॥ १३

गोपानामुष्णिषाण्यत्र चोरयामास माधवः।
औष्णिषं नाम तत्तीर्थं महापापहरं गिरौ॥ १४

तत्रैकदा वै दधिविक्रयार्थं
विनिर्गतो गोपवधूसमूहः।
श्रुत्वा क्वणन्नूपुरशब्दमारा-
द्रुरोध तन्मार्गमनङ्गमोही॥ १५

भुवनेश्वर एवं साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने, जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्पर पुरुष हैं, अपने समस्त जनोंके साथ इन्द्रयागको धता बताकर जिसका पूजन आरम्भ किया, उस गिरिराजसे अधिक सौभाग्यशाली कौन होगा। मैथिल! जिस पर्वतपर स्थित हो भगवान् श्रीकृष्ण सदा ग्वाल-बालोंके साथ क्रीड़ा करते हैं, उसकी महिमाका वर्णन करनेमें तो चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं॥ ४—६॥

जहाँ बड़े-बड़े पापोंकी राशिका नाश करनेवाली मानसी गङ्गा विद्यमान हैं, विशद गोविन्दकुण्ड तथा शुभ्र चन्द्रसरोवर शोभा पाते हैं, जहाँ राधाकुण्ड, कृष्ण-कुण्ड, ललिताकुण्ड, गोपालकुण्ड तथा कुसुमसरोवर सुशोभित हैं; उस गोवर्धनकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है! श्रीकृष्णके मुकुटका स्पर्श पाकर जहाँकी शिला मुकुटके चिह्नसे सुशोभित हो गयी, उस शिलाका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य देवशिरोमणि हो जाता है। जिस शिलापर श्रीकृष्णने चित्र अङ्कित किये हैं, वह चित्रित और पवित्र 'चित्रशिला' नामकी शिला आज भी गिरिराजके शिखरपर दृष्टिगोचर होती है॥ ७—१०॥

बालकोंके साथ क्रीड़ामें संलग्न श्रीकृष्णने जिस शिलाको बजाया था, वह महान् पापसमूहोंका नाश करनेवाली शिला 'वादिनी शिला' (बाजनी शिला)-के नामसे प्रसिद्ध हुई। मैथिल! जहाँ श्रीकृष्णने ग्वाल बालोंके साथ कन्दुक-क्रीड़ा की थी, उसे 'कन्दुकक्षेत्र' कहते हैं॥ ११-१२॥

वहाँ 'शक्रपद' और 'ब्रह्मपद' नामक तीर्थ हैं, जिनका दर्शन और जिन्हें प्रणाम करके मनुष्य इन्द्रलोक और ब्रह्मलोकमें जाता है। जो वहाँकी धूलमें लोटता है, वह साक्षात् विष्णुपदको प्राप्त होता है। जहाँ माधवने गोपोंकी पगड़ियाँ चुरायी थीं, वह महापापहारी तीर्थ उस पर्वतपर 'औष्णीष' नामसे प्रसिद्ध है॥ १३-१४॥

एक समय वहाँ दधि बेचनेके लिये गोपवधुओंका समुदाय आ निकला। उनके नूपुरोंकी झनकार सुनकर मदनमोहन श्रीकृष्णने निकट आकर उनकी राह रोक ली॥ १५॥

वंशीधरो वेत्रवरेण गोपैः
पुरश्च तासां विनिधाय पादम्।
मह्यं करादानधनाय दानं
देहीति गोपीर्निजगाद मार्गे॥ १६

वंशी और वेत्र धारण किये श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंद्वारा उनको चारों ओरसे घेर लिया और स्वयं उनके आगे पैर रखकर मार्गमें उन गोपियोंसे बोले—'इस मार्गपर हमारी ओरसे कर वसूल किया जाता है, सो तुमलोग हमारा दान दे दो'॥ १६॥

गोप्य ऊचुः

वक्रस्त्वमेवासि समास्थितः पथि
गोपार्भकैर्गोरसलम्पटो भृशम्।
मात्रा च पित्रा सह कारयामो
बलाद्भवन्तं किल कंसबन्धने॥ १७

गोपियाँ बोलीं—तुम बड़े टेढ़े हो, जो ग्वाल-बालोंके साथ राह रोककर खड़े हो गये ? तुम बड़े गोरस-लम्पट हो। हमारा रास्ता छोड़ दो, नहीं तो माँ-बापसहित तुमको हम बलपूर्वक राजा कंसके कारागारमें डलवा देंगी॥ १७॥

श्रीभगवानुवाच

कंसं हनिष्यामि महोग्रदण्डं
सबान्धवं मे शपथो गवां च।
एवं करिष्यामि यदोः पुरे बला-
न्नेष्ये सदाहं गिरिराजभूमेः॥ १८

श्रीभगवान्ने कहा—अरी! कंसका क्या डर दिखाती हो? मैं गौओंकी शपथ खाकर कहता हूँ, महान् उग्रदण्ड धारण करनेवाले कंसको मैं उसके बन्धु-बान्धवसहित मार डालूँगा; अथवा मैं उसे मथुरासे गोवर्धनकी घाटीमें खींच लाऊँगा॥ १८॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा दधिपात्राणि बालैर्नीत्वा पृथक् पृथक्।
भूपृष्ठे पोथयामास सानन्दं नन्दनन्दनः॥ १९

अहो एष परं धृष्टो निर्भयो नन्दनन्दनः।
निरङ्कुशोऽभाषणीयो वने वीरः पुरेऽबलः॥ २०

ब्रुवामहे यशोदायै नन्दाय च किलाद्य वै।
एवं वदन्त्यस्ता गोप्यः सस्मिताः प्रययुर्गृहान्॥ २१

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर बालकोंद्वारा पृथक्-पृथक् सबके दहीपात्र मँगवाकर नन्दनन्दनने बड़े आनन्दके साथ भूमिपर पटक दिये। गोपियाँ परस्पर कहने लगीं—'अहो! यह नन्दका लाला तो बड़ा ही ढीठ और निडर है, निरंकुश है। इसके साथ तो बात भी नहीं करनी चाहिये। यह गाँवमें तो निर्बल बना रहता है और वनमें आकर वीर बन जाता है। हम आज ही चलकर यशोदाजी और नन्दरायजीसे कहती हैं।'—यों कहकर गोपियाँ मुसकराती हुई अपने घरको लौट गयीं॥ १९—२१॥

नीपपालाशपत्राणां कृत्वा द्रोणानि माधवः।
जघास बालकैः सार्धं पिच्छिलानि दधीनि च॥ २२

द्रोणाकाराणि पत्राणि बभूवुः शाखिनां तदा।
तत्क्षेत्रं च महापुण्यं द्रोणं नाम नृपेश्वर॥ २३

इधर माधवने कदम्ब और पलाशके पत्तेके दोने बनाकर बालकोंके साथ चिकना-चिकना दही ले-लेकर खाया। तबसे वहाँके वृक्षोंके पत्ते दोनेके आकारके होने लग गये। नृपेश्वर! वह परम पुण्य क्षेत्र 'द्रोण' नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ २२-२३॥

दधिदानं तत्र कृत्वा पीत्वा पत्रधृतं दधि।
नमस्कुर्यान्नरस्तस्य गोलोकान्न च्युतिर्भवेत्॥ २४

नेत्रे त्वाच्छाद्य यत्रैव लीनोऽभून्माधवोऽर्भकैः।
तत्र तीर्थं लौकिकं च जातं पापप्रणाशनम्॥ २५

जो मनुष्य वहाँ दहीदान करके स्वयं भी पत्तेमें रखे हुए दहीको पीकर उस तीर्थको नमस्कार करता है, उसकी गोलोकसे कभी च्युति नहीं होती। जहाँ नेत्र मूँदकर माधव बालकोंके साथ लुका-छिपीके खेल खेलते थे, वहाँ 'लौकिक' नामक पापनाशन तीर्थ हो गया॥ २४-२५॥

कदम्बखण्डतीर्थं च लीलायुक्तं हरेः सदा।
तस्य दर्शनमात्रेण नरो नारायणो भवेत्। २६

यत्र वै राधया रासे शृङ्गारोऽकारि मैथिल।
तत्र गोवर्धने जातं स्थलं शृङ्गारमण्डलम्॥ २७

येन रूपेण कृष्णेन धृतो गोवर्धनो गिरिः।
तद्रूपं विद्यते तत्र नृप शृङ्गारमण्डले॥ २८

अब्दाश्चतुःसहस्त्राणि तथा चाष्टौ शतानि च।
गतास्तत्र कलेरादौ क्षेत्रे शृङ्गारमण्डले॥ २९

गिरिराजगुहामध्यात्सर्वेषां पश्यतां नृप।
स्वतः सिद्धं च तद्रूपं हरेः प्रादुर्भविष्यति॥ ३०

श्रीनाथं देवदमनं तं वदिष्यन्ति सज्जनाः।
गोवर्धने गिरौ राजन् सदा लीलां करोति यः॥ ३१

ये करिष्यन्ति नेत्राभ्यां तस्य रूपस्य दर्शनम्।
ते कृतार्था भविष्यन्ति मैथिलेन्द्र कलौ जनाः॥ ३२

जगन्नाथो रङ्गनाथो द्वारकानाथ एव च।
बद्रीनाथश्चतुष्कोणे भारतस्यापि वर्तते॥ ३३

मध्ये गोवर्धनस्यापि नाथोऽयं वर्तते नृप।
पवित्रे भारते वर्षे पञ्च नाथाः सुरेश्वराः॥ ३४

सद्धर्ममण्डपस्तम्भा आर्तत्राणपरायणाः।
तेषां तु दर्शनं कृत्वा नरो नारायणो भवेत्॥ ३५

चतुर्णां भुवि नाथानां कृत्वा यात्रां नरः सुधीः।
न पश्येद्देवदमनं स न यात्राफलं लभेत्॥ ३६

श्रीनाथं देवदमनं पश्येद्गोवर्धने गिरौ।
चतुर्णां भुवि नाथानां यात्रायाः फलमाप्नुयात्॥ ३७

ऐरावतस्य सुरभेः पादचिह्नानि यत्र वै।
तत्र नत्वा नरः पापी वैकुण्ठं याति मैथिल॥ ३८

श्रीहरिकी लीलासे युक्त जो 'कदम्बखण्ड' नामक तीर्थ है, वहाँ सदा ही श्रीकृष्ण लीलारत रहते हैं। इस तीर्थका दर्शन करने-मात्रसे नर नारायण हो जाता है। मैथिल! जहाँ गोवर्धनपर रासमें श्रीराधाने शृङ्गार धारण किया था, वह स्थान 'शृङ्गारमण्डल' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। नरेश्वर! श्रीकृष्णने जिस रूपसे गोवर्धनपर्वतको धारण किया था, उनका वही रूप शृङ्गारमण्डल-तीर्थमें विद्यमान है॥ २६—२८॥

जब कलियुगके चार हजार आठ सौ वर्ष बीत जायँगे, तब शृङ्गारमण्डलक्षेत्रमें गिरिराजकी गुफाके मध्यभागसे सबके देखते-देखते श्रीहरिका स्वतःसिद्ध रूप प्रकट होगा॥ २९-३०॥

नरेश्वर! देवताओंका अभिमान चूर्ण करनेवाले उस स्वरूपको सज्जन पुरुष 'श्रीनाथजी' के नामसे पुकारेंगे। राजन्! गोवर्धनपर्वतपर श्रीनाथजी सदा ही लीला करते हैं। मैथिलेन्द्र! कलियुगमें जो लोग अपने नेत्रोंसे श्रीनाथजीके रूपका दर्शन करेंगे, वे कृतार्थ हो जायँगे॥ ३१-३२॥

[भगवान् श्रीनाथजी] भारतके चारों कोनोंमें क्रमशः जगन्नाथ, श्रीरङ्गनाथ, श्रीद्वारकानाथ और श्रीबदरीनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं। नरेश्वर! भारतके मध्यभागमें भी वे गोवर्धननाथके नामसे विद्यमान हैं। इस प्रकार पवित्र भारतमें ये पाँचों नाथ देवताओंके भी स्वामी हैं। वे पाँचों नाथ सद्धर्मरूपी मण्डपके पाँच खंभे हैं और सदा आर्तोंकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। उन सबका दर्शन करके नर नारायण हो जाता है॥ ३३—३५॥

जो विद्वान् पुरुष इस भूतलपर चारों नाथोंकी यात्रा करके मध्यवर्ती देवदमन श्रीगोवर्धननाथका दर्शन नहीं करता, उसे यात्राका फल नहीं मिलता। जो गोवर्धनपर्वतपर देवदमन श्रीनाथका दर्शन कर लेता है, उसे पृथ्वीपर चारों नाथोंकी यात्राका फल प्राप्त हो जाता है॥ ३६-३७॥

मैथिल! जहाँ ऐरावत हाथी और सुरभि गौके चरणोंके चिह्न हैं, वहाँ नमस्कार करके पापी मनुष्य भी वैकुण्ठधाममें चला जाता है॥ ३८॥

हस्तचिह्नं पादचिह्नं श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
दृष्ट्वा नत्वा नरः कश्चित्साक्षात्कृष्णपदं व्रजेत्॥ ३९

एतानि नृप तीर्थानि कुण्डाद्यायतनानि च।
अङ्गानि गिरिराजस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४०

जो कोई भी मनुष्य महात्मा श्रीकृष्णके हस्तचिह्नका और चरणचिह्नका दर्शन कर लेता है और उन्हें प्रणाम करता है, वह साक्षात् श्रीकृष्णके धाममें जाता है। नरेश्वर! ये तीर्थ, कुण्ड और मन्दिर गिरिराजके अङ्गभूत हैं; उनको बता दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ३९-४०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजतीर्थवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगिरिराजके तीर्थोंका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

विभिन्न तीर्थोंमें गिरिराजके विभिन्न अङ्गोंकी स्थितिका वर्णन

श्रीबहुलाश्व उवाच

केषु केषु तदङ्गेषु किं किं तीर्थं समाश्रितम्।
वद देव महाभाग त्वं परावरवित्तमः॥ १

श्रीनारद उवाच

यत्र यस्य प्रसिद्धिः स्यात्तदङ्गं परमं विदुः।
क्रमतो नास्त्यङ्गचयो गिरिराजस्य मैथिल॥ २

यथा सर्वगतं ब्रह्म सर्वाङ्गानि च तस्य वै।
विभूतेर्भावतः शश्वत्तथा वक्ष्यामि मानद॥ ३

शृङ्गारमण्डलस्याधो मुखं गोवर्धनस्य च।
यत्रान्नकूटं कृतवान् भगवान् व्रजवासिभिः॥ ४

नेत्रे वै मानसी गङ्गा नासा चन्द्रसरोवरः।
गोविन्दकुण्डो ह्यधरश्चिबुकं कृष्णकुण्डकः॥ ५

राधाकुण्डं तस्य जिह्वा कपोलौ ललितासरः।
गोपालकुण्डः कर्णश्च कर्णान्तः कुसुमाकरः॥ ६

मौलिचिह्ना शिला तस्य ललाटं विद्धि मैथिल।
शिरश्चित्रशिला तस्य ग्रीवा वै वादिनी शिला॥ ७

कान्दुकं पार्श्वदेशश्च औष्णिषं कटिरुच्यते।
द्रोणतीर्थं पृष्ठदेशे लौकिकं चोदरे स्मृतम्॥ ८

श्रीबहुलाश्वने पूछा—महाभाग! देव!! आप पर, अपर—भूत और भविष्यके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः बताइये, गिरिराजके किन-किन अङ्गोंमें कौन-कौन-से तीर्थ विद्यमान हैं?॥ १॥

श्रीनारदजी बोले—मिथिलेश्वर! जहाँ, जिस अङ्गकी प्रसिद्धि है, वही गिरिराजका उत्तम अङ्ग माना गया है। क्रमशः गणना करनेपर कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जो गिरिराजका अङ्ग न हो। मानद! जैसे ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है और सारे अङ्ग उसीके हैं, उसी प्रकार विभूति और भावकी दृष्टिसे गोवर्धनके जो शाश्वत अङ्ग माने जाते हैं, उनका मैं वर्णन करूँगा॥ २-३॥

शृङ्गारमण्डलके अधोभागमें श्रीगोवर्धनका मुख है, जहाँ भगवान्‌ने व्रजवासियोंके साथ अन्नकूटका उत्सव किया था। 'मानसी गङ्गा' गोवर्धनके दोनों नेत्र हैं, 'चन्द्रसरोवर' नासिका, 'गोविन्दकुण्ड' अधर और 'श्रीकृष्णकुण्ड' चिबुक है। 'राधाकुण्ड' गोवर्धनकी जिह्वा और 'ललितासरोवर' कपोल है। 'गोपालकुण्ड' कान और 'कुसुमसरोवर' कर्णान्तभाग है॥ ४—६॥

मिथिलेश्वर! जिस शिलापर मुकुटका चिह्न है, उसे गिरिराजका ललाट समझो। 'चित्रशिला' उनका मस्तक और 'वादिनी शिला' उनकी ग्रीवा है। 'कन्दुकतीर्थ' उनका पार्श्वभाग है और 'उष्णीषतीर्थ' को उनका कटिप्रदेश बतलाया जाता है। 'द्रोणतीर्थ' पृष्ठदेशमें और 'लौकिकतीर्थ' पेटमें है॥ ७-८॥

कदम्बखण्डमुरसि जीवः शृङ्गारमण्डलम्।
श्रीकृष्णपादचिह्नं तु मनस्तस्य महात्मनः॥ ९

हस्तचिह्नं तथा बुद्धिरैरावतपदं पदम्।
सुरभेः पादचिह्नेषु पक्षौ तस्य महात्मनः॥ १०

पुच्छकुण्डे तथा पुच्छं वत्सकुण्डे बलं स्मृतम्।
रुद्रकुण्डे तथा क्रोधं कामं शक्रसरोवरे॥ ११

कुबेरतीर्थे चोद्योगं ब्रह्मतीर्थे प्रसन्नताम्।
यमतीर्थे ह्यहङ्कारं वदन्तीत्थं पुराविदः॥ १२

एवमङ्गानि सर्वत्र गिरिराजस्य मैथिल।
कथितानि मया तुभ्यं सर्वपापहराणि च॥ १३

गिरिराजविभूतिं च यः शृणोति नरोत्तमः।
स गच्छेद्धाम परमं गोलोकं योगिदुर्लभम्॥ १४

समुत्थितोऽसौ हरिवक्षसो गिरि-
गोवर्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट्।
समागतो ह्यत्र पुलस्त्यतेजसा
यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते॥ १५

'कदम्बखण्ड' हृदयस्थलमें है। 'शृङ्गारमण्डल-तीर्थ' उनका जीवात्मा है। 'श्रीकृष्ण-चरण-चिह्न' उन महात्मा गोवर्धनका मन है। 'हस्तचिह्नतीर्थ' बुद्धि तथा 'ऐरावत-चरणचिह्न' उनका चरण है। सुरभिके चरण-चिह्नोंमें महात्मा गोवर्धनके पंख हैं॥ ९-१०॥

'पुच्छकुण्ड' में पूँछकी भावना की जाती है। 'वत्सकुण्ड' में उनका बल, 'रुद्रकुण्ड' में क्रोध तथा 'इन्द्रसरोवर'में कामकी स्थिति है। 'कुबेरतीर्थ' उनका उद्योगस्थल और 'ब्रह्मतीर्थ' प्रसन्नताका प्रतीक है। पुराणवेत्ता पुरुष 'यमतीर्थ'में गोवर्धनके अहंकारकी स्थिति बताते हैं॥ ११-१२॥

मैथिल! इस प्रकार मैंने तुम्हें सर्वत्र गिरिराजके अङ्ग बताये हैं, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं। जो नरश्रेष्ठ गिरिराजकी इस विभूतिको सुनता है, वह योगिजनदुर्लभ 'गोलोक' नामक परमधाममें जाता है। गिरिराजोंका भी राजा गोवर्धनपर्वत श्रीहरिके वक्षःस्थलसे प्रकट हुआ है और पुलस्त्यमुनिके तेजसे इस व्रजमण्डलमें उसका शुभागमन हुआ है। उसके दर्शनसे मनुष्यका इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता॥ १३—१५॥

॥ इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गिरिराजविभूतिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गिरिराजकी विभूतियोंका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्तिका वर्णन

बहुलाश्व उवाच

अहो गोवर्धनः साक्षाद् गिरिराजो हरिप्रियः।
तत्समानं न तीर्थं हि विद्यते भूतले दिवि॥ १

कदा बभूव श्रीकृष्णवक्षसोऽयं गिरीश्वरः।
एतद्वद महाबुद्धे त्वं साक्षाद्धरिमानसः॥ २

श्रीनारद उवाच

गोलोकोत्पत्तिवृत्तान्तं शृणु राजन् महामते।
चतुष्पदार्थदं नृणामाद्यलीलासमन्वितम्॥ ३

बहुलाश्व बोले—[देवर्षे!] महान् आश्चर्यकी बात है, गोवर्धन साक्षात् पर्वतोंका राजा एवं श्रीहरिको बहुत ही प्रिय है। उसके समान दूसरा तीर्थ न तो इस भूतलपर है और न स्वर्गमें ही। महामते! आप साक्षात् श्रीहरिके मन हैं। अतः अब यह बताइये कि यह गिरिराज श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे कब प्रकट हुआ?॥ १-२॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! महामते! गोलोकके प्राकट्यका वृत्तान्त सुनो—यह श्रीहरिकी आदिलीलासे सम्बद्ध है और मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाला है। प्रकृतिसे

अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः।
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् प्रभुः॥ ४

प्रत्यग्धामा स्वयंज्योती रममाणो निरन्तरम्।
यत्र कालः कलयतामीश्वरो धाममानिनाम्॥ ५

राजन्न प्रभवेन्माया न महांश्च गुणः कुतः।
न विशन्ति क्वचिद्राजन् मनश्चित्तो मतिर्ह्यहम्॥ ६

स्वधाम्नि ब्रह्म साकारमिच्छया व्यरचीकरत्।
प्रथमं चाभवच्छेषो बिसश्वेतो बृहद्वपुः॥ ७

तदुत्सङ्गे महालोको गोलोको लोकवन्दितः।
यं प्राप्य भक्तिसंयुक्तः पुनरावर्तते न हि॥ ८

असंख्यब्रह्माण्डपतेर्गोलोकाधिपतेः प्रभोः।
पुनः पादाब्जसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी॥ ९

पुनर्वामांसतस्तस्य कृष्णाभूत्सरितां वरा।
रेजे शृङ्गारकुसुमैर्यथोष्णिङ्मुद्रिता नृप॥ १०

श्रीरासमण्डलं दिव्यं हेमरत्नसमन्वितम्।
नानाशृङ्गारपटलं गुल्फाभ्यां श्रीहरेः प्रभोः॥ ११

सभाप्राङ्गणवीथीभिर्मण्डपैः परिवेष्टितः।
वसन्तमाधुर्यधरः कूजत्कोकिलसङ्कुलः॥ १२

मयूरैः षट्पदैर्व्याप्तः सरोभिः परिसेवितः।
जातो निकुञ्जो जङ्घाभ्यां श्रीकृष्णस्य महात्मनः॥ १३

वृन्दावनं च जानुभ्यां राजन् सर्ववनोत्तमम्।
लीलासरोवरः साक्षादूरुभ्यां परमात्मनः॥ १४

परे विद्यमान साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण सर्वसमर्थ, निर्गुण, पुरुष एवं अनादि आत्मा हैं। उनका तेज अन्तर्मुखी है। वे स्वयंप्रकाश प्रभु निरन्तर रमणशील हैं, जिनपर धामाभिमानी गणनाशील देवताओंका ईश्वर 'काल' भी शासन करनेमें समर्थ नहीं है॥ ३—५॥

राजन्! माया भी जिनपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती, उनपर महत्तत्त्व और सत्त्वादि गुणोंका वश तो चल ही कैसे सकता है। राजन्! उनमें कभी मन, चित्त, बुद्धि और अहंकारका भी प्रवेश नहीं होता। उन्होंने अपने संकल्पसे अपने ही स्वरूपमें साकार ब्रह्मको व्यक्त किया। सबसे पहले विशालकाय शेषनागका प्रादुर्भाव हुआ, जो कमलनालके समान श्वेतवर्णके हैं। उन्हींकी गोदमें लोकवन्दित महालोक गोलोक प्रकट हुआ, जिसे पाकर भक्तियुक्त पुरुष फिर इस संसारमें नहीं लौटता॥ ६—८॥

फिर असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति गोलोकनाथ भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दसे त्रिपथगा गङ्गा प्रकट हुईं। नरेश्वर! तत्पश्चात् श्रीकृष्णके बायें कंधेसे सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुनाजीका प्रादुर्भाव हुआ, जो शृङ्गार-कुसुमोंसे उसी प्रकार सुशोभित हुईं, जैसे छपी हुई पगड़ीके वस्त्रकी शोभा होती है। तदनन्तर भगवान् श्रीहरिके दोनों गुल्फों (टखनों या घुट्टियों)-से हेमरत्नोंसे युक्त दिव्य रासमण्डल और नाना प्रकारके शृङ्गार-साधनोंके समूहका प्रादुर्भाव हुआ॥ ९—११॥

इसके बाद महात्मा श्रीकृष्णकी दोनों पिंडलियोंसे निकुञ्ज प्रकट हुआ, जो सभाभवनों, आँगनों, गलियों और मण्डपोंसे घिरा हुआ था। वह निकुञ्ज वसन्तकी माधुरी धारण किये हुए था। उसमें कूजते हुए कोकिलोंकी काकली सर्वत्र व्याप्त थी। मोर, भ्रमर तथा विविध सरोवरोंसे भी वह परिशोभित एवं परिसेवित दिखायी देता था। राजन्! भगवान्‌के दोनों घुटनोंसे सम्पूर्ण वनोंमें उत्तम श्रीवृन्दावनका आविर्भाव हुआ। साथ ही उन साक्षात् परमात्माकी दोनों ऊरुओंसे लीला-सरोवर प्रकट हुआ॥ १२—१४॥

कटिदेशात्स्वर्णभूमिर्दिव्यरत्नखचित्प्रभा ।
उदरे रोमराजिश्च माधव्यो विस्तृता लताः ॥ १५

नानापक्षिगणैर्व्याप्ता ध्वनद्भ्रमरभूषिताः ।
सुपुष्पफलभारैश्च नताः सत्कुलजा इव ॥ १६

श्रीनाभिपङ्कजात्तस्य पङ्कजानि सहस्रशः ।
सरःसु हरिलोकस्य तानि रेजुरितस्ततः ॥ १७

त्रिवलिप्रान्ततो वायुर्मन्दगाम्यतिशीतलः ।
जत्रुदेशाच्छुभा जाता मथुरा द्वारकापुरी ॥ १८

भुजाभ्यां श्रीहरेर्जाताः श्रीदामाद्यष्टपार्षदाः ।
नन्दाश्च मणिबन्धाभ्यामुपनन्दाः कराग्रतः ॥ १९

श्रीकृष्णबाहुमूलाभ्यां सर्वे वै वृषभानवः ।
कृष्णरोमसमुद्भूताः सर्वे गोपगणा नृप ॥ २०

श्रीकृष्णमनसो गावो वृषा धर्मधुरन्धराः ।
बुद्धेर्यवसगुल्मानि बभूवुर्मैथिलेश्वर ॥ २१

तद्वामांसात्समुद्भूतं गौरं तेजः स्फुरत्प्रभम् ।
लीला श्रीर्भूश्च विरजा तस्माज्जाता हरेः प्रियाः ॥ २२

लीलावती प्रिया तस्य तां राधां तु विदुः परे ।
श्रीराधाया भुजाभ्यां तु विशाखा ललिता सखी ॥ २३

सहचर्यस्तथा गोप्यो राधारोमोद्भवा नृप ।
एवं गोलोकरचनां चकार मधुसूदनः ॥ २४

विधाय सर्वं निजलोकमित्थं
श्रीराधया तत्र रराज राजन् ।
असंख्यलोकाण्डपतिः परात्मा
परः परेशः परिपूर्णदेवः ॥ २५

उनके कटिप्रदेशसे दिव्य रत्नोंद्वारा जटित प्रभामयी स्वर्णभूमिका प्राकट्य हुआ और उनके उदरमें जो रोमावलियाँ हैं, वे ही विस्तृत माधवी लताएँ बन गयीं। उन लताओंमें नाना प्रकारके पक्षियोंके झुंड सब ओर फैलकर कलरव कर रहे थे। गुंजार करते हुए भ्रमर उन लता-कुञ्जोंकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ १५१/२ ॥

वे लताएँ सुन्दर फूलों और फलोंके भारसे इस प्रकार झुकी हुई थीं, जैसे उत्तम कुलकी कन्याएँ लज्जा और विनयके भारसे नतमस्तक रहा करती हैं। भगवान्‌के नाभिकमलसे सहस्रों कमल प्रकट हुए, जो हरिलोकके सरोवरोंमें इधर-उधर सुशोभित हो रहे थे। भगवान्‌के त्रिवली-प्रान्तसे मन्दगामी और अत्यन्त शीतल समीर प्रकट हुआ और उनके गलेकी हँसुलीसे 'मथुरा' तथा 'द्वारका'—इन दो पुरियोंका प्रादुर्भाव हुआ॥ १६—१८ ॥

श्रीहरिकी दोनों भुजाओंसे 'श्रीदामा' आदि आठ पार्षद उत्पन्न हुए। कलाइयोंसे 'नन्द' और कराग्रभागसे 'उपनन्द' प्रकट हुए। श्रीकृष्णकी भुजाओंके मूल-भागोंसे समस्त वृषभानुओंका प्रादुर्भाव हुआ। नरेश्वर! समस्त गोपगण श्रीकृष्णके रोमसे उत्पन्न हुए हैं। श्रीकृष्णके मनसे गौओं तथा धर्मधुरंधर वृषभोंका प्राकट्य हुआ। मैथिलेश्वर! उनकी बुद्धिसे घास और झाड़ियाँ प्रकट हुईं॥ १९—२१ ॥

भगवान्‌के बायें कंधेसे एक परम कान्तिमान् गौर तेज प्रकट हुआ, जिससे लीला, श्री, भूदेवी, विरजा तथा अन्यान्य हरिप्रियाएँ आविर्भूत हुईं। भगवान्‌की प्रियतमा जो 'श्रीराधा' हैं, उन्हींको दूसरे लोग 'लीलावती' या 'लीला' के नामसे जानते हैं। श्रीराधाकी दोनों भुजाओंसे 'विशाखा' और 'ललिता'—इन दो सखियोंका आविर्भाव हुआ। नरेश्वर! दूसरी-दूसरी जो सहचरी गोपियाँ हैं, वे सब राधाके रोमसे प्रकट हुई हैं। इस प्रकार मधुसूदनने गोलोककी रचना की॥ २२—२४ ॥

राजन्! इस तरह अपने सम्पूर्ण लोककी रचना करके असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, परात्पर, परमात्मा, परमेश्वर, परिपूर्ण देव श्रीहरि वहाँ श्रीराधाके साथ सुशोभित हुए॥ २५ ॥

तत्रैकदा सुन्दररासमण्डले
स्फुरत्क्वणन्नूपुरशब्दसङ्कुले ।
सुच्छत्रमुक्ताफलदामजामृत-
स्रवद्बृहद्बिन्दुविराजिताङ्गणे ॥ २६

श्रीमालतीनां सुवितानजालतः
स्वतः स्रवत्सन्मकरन्दगन्धिते।
मृदङ्गतालध्वनिवेणुनादिते
सुकण्ठगीतादिमनोहरे परे॥ २७

श्रीसुन्दरीरासरसे मनोरमे
मध्यस्थितं कोटिमनोजमोहनम्।
जगाद राधा पतिमूर्जया गिरा
कृत्वा कटाक्षं रसदानकौशलम्॥ २८

श्रीराधोवाच

यदि रासे प्रसन्नोऽसि मम प्रेम्णा जगत्पते।
तदाहं प्रार्थनां त्वां तु करोमि मनसि स्थिताम्॥ २९

श्रीभगवानुवाच

इच्छां वरय वामोरु या ते मनसि वर्तते।
न देयं यदि यद्वस्तु प्रेम्णा दास्यामि तत्प्रिये॥ ३०

श्रीराधोवाच

वृन्दावने दिव्यनिकुञ्जपार्श्वे
कृष्णातटे रासरसाय योग्यम्।
रहःस्थलं त्वं कुरुतान्मनोज्ञं
मनोरथोऽयं मम देवदेव॥ ३१

श्रीनारद उवाच

तथास्तु चोक्त्वा भगवान् रहोयोग्यं विचिन्तयन्।
स्वनेत्रपङ्कजाभ्यां तु हृदयं सन्ददर्श ह॥ ३२

तदैव कृष्णहृदयाद् गोपीव्यूहस्य पश्यतः।
निर्गतं सजलं तेजोऽनुरागस्येव चाङ्कुरम्॥ ३३

पतितं रासभूमौ तद्ववृधे पर्वताकृति।
रत्नधातुमयं दिव्यं सुनिर्झरदरीवृतम्॥ ३४

कदम्बबकुलाशोकलताजालमनोहरम् ।
मन्दारकुन्दवृन्दाढ्यं सुपक्षिगणसङ्कुलम्॥ ३५

उस गोलोकमें एक दिन सुन्दर रासमण्डलमें, जहाँ बजते हुए नूपुरोंका मधुर शब्द गूँज रहा था, जहाँका आँगन सुन्दर छत्रमें लगी हुई मुक्ताफलकी लड़ियोंसे अमृतकी वर्षा होती रहनेके कारण रसकी बड़ी-बड़ी बूँदोंसे सुशोभित था; मालतीके चँदोवोंसे स्वतः झरते हुए मकरन्द और गन्धसे सरस एवं सुवासित था; जहाँ मृदङ्ग, तालध्वनि और वंशीनाद सब ओर व्याप्त था; जो मधुरकण्ठसे गाये गये गीत आदिके कारण परम मनोहर प्रतीत होता था तथा सुन्दरियोंके रासरससे परिपूर्ण एवं परम मनोरम था; उसके मध्यभागमें स्थित कोटिमनोजमोहन हृदय-वल्लभसे श्रीराधाने रसदान-कुशल कटाक्षपात करके गम्भीर वाणीमें कहा— ॥ २६—२८ ॥

श्रीराधा बोलीं—जगदीश्वर! यदि आप रासमें मेरे प्रेमसे प्रसन्न हैं तो मैं आपके सामने अपने मनकी प्रार्थना व्यक्त करना चाहती हूँ॥ २९ ॥

श्रीभगवान् बोले—प्रिये! वामोरु!! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो। तुम्हारे प्रेमके कारण मैं तुम्हें अदेय वस्तु भी दे दूँगा॥ ३० ॥

श्रीराधाने कहा—वृन्दावनमें यमुनाके तटपर दिव्य निकुञ्जके पार्श्वभागमें आप रासरसके योग्य कोई एकान्त एवं मनोरम स्थान प्रकट कीजिये। देवदेव! यही मेरा मनोरथ है॥ ३१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब 'तथास्तु' कहकर भगवान्ने एकान्त-लीलाके योग्य स्थानका चिन्तन करते हुए नेत्र-कमलोंद्वारा अपने हृदयकी ओर देखा। उसी समय गोपी-समुदायके देखते-देखते श्रीकृष्णके हृदयसे अनुरागके मूर्तिमान् अङ्कुरकी भाँति एक सजल तेज प्रकट हुआ। रासभूमिमें गिरकर वह पर्वतके आकारमें बढ़ गया। वह सारा-का-सारा दिव्य पर्वत रत्नधातुमय था। सुन्दर झरनों और कन्दराओंसे उसकी बड़ी शोभा थी॥ ३२—३४ ॥

कदम्ब, बकुल, अशोक आदि वृक्ष तथा लता-जाल उसे और भी मनोहर बना रहे थे। मन्दार और कुन्दवृन्दसे सम्पन्न उस पर्वतपर भाँति-भाँतिके पक्षी कलरव कर रहे थे॥ ३५ ॥

क्षणमात्रेण वैदेह लक्षयोजनविस्तृतम्।
शतकोटिर्योजनानां लम्बितं शेषवत्पुनः॥ ३६

विदेहराज! एक ही क्षणमें वह पर्वत एक लाख योजन विस्तृत और शेषकी तरह सौ कोटि योजन लंबा हो गया॥ ३६॥

ऊर्ध्वं समुन्नतं जातं पञ्चाशत्कोटियोजनम्।
करीन्द्रवत्स्थितं शश्वत्पञ्चाशत्कोटिविस्तृतम्॥ ३७

कोटियोजनदीर्घाङ्गैः शृङ्गानां शतकैः स्फुरत्।
उच्चकैः स्वर्णकलशैः प्रासादमिव मैथिल॥ ३८

उसकी ऊँचाई पचास करोड़ योजनकी हो गयी। पचास कोटि योजनमें फैला हुआ वह पर्वत सदाके लिये गजराजके समान स्थित दिखायी देने लगा। मैथिल! उसके कोटि योजन विशाल सैकड़ों शिखर दीप्तिमान् होने लगे। उन शिखरोंसे गोवर्धन पर्वत उसी प्रकार सुशोभित हुआ, मानो सुवर्णमय उन्नत कलशोंसे कोई ऊँचा महल शोभा पा रहा हो॥ ३७-३८॥

गोवर्धनाख्यं तच्चाहुः शतशृङ्गं तथापरे।
एवंभूतं तु तदपि वर्धितं मनसोत्सुकम्॥ ३९

कोलाहले तदा जाते गोलोके भयविह्वले।
वीक्ष्योत्थाय हरिः साक्षाद्धस्तेनाशु तताड तम्॥ ४०

किं वर्धसे भो प्रच्छन्नं लोकमाच्छाद्य तिष्ठसि।
किं वा न चैते वसितुं तच्छान्तिमकरोद्धरिः॥ ४१

संवीक्ष्य तं गिरिवरं प्रसन्ना भगवत्प्रिया।
तस्मिन् रहःस्थले राजन् रराज हरिणा सह॥ ४२

कोई-कोई विद्वान् उस गिरिको गोवर्धन और दूसरे लोग 'शतशृङ्ग' कहते हैं। इतना विशाल होनेपर भी वह पर्वत मनसे उत्सुक-सा होकर बढ़ने लगा। इससे गोलोक भयसे विह्वल हो गया और वहाँ सब ओर कोलाहल मच गया। यह देख श्रीहरि उठे और अपने साक्षात् हाथसे शीघ्र ही उसे ताड़ना दी और बोले—'अरे! प्रच्छन्नरूपसे बढ़ता क्यों जा रहा है? सम्पूर्ण लोकको आच्छादित करके स्थित हो गया? क्या ये लोक यहाँ निवास करना नहीं चाहते?' यों कहकर श्रीहरिने उसे शान्त किया—उसका बढ़ना रोक दिया। उस उत्तम पर्वतको प्रकट हुआ देख भगवत्प्रिया श्रीराधा बहुत प्रसन्न हुईं। राजन्! वे उसके एकान्तस्थलमें श्रीहरिके साथ सुशोभित होने लगीं॥ ३९—४२॥

सोऽयं गिरिवरः साक्षाच्छ्रीकृष्णेन प्रणोदितः।
सर्वतीर्थमयः श्यामो घनश्यामः सुरप्रियः॥ ४३

भारतात्पश्चिमदिशि शाल्मलीद्वीपमध्यतः।
गोवर्धनो जन्म लेभे पत्न्यां द्रोणाचलस्य च॥ ४४

पुलस्त्येन समानीतो भारते व्रजमण्डले।
वैदेह तस्यागमनं मया तुभ्यं पुरोदितम्॥ ४५

इस प्रकार यह गिरिराज साक्षात् श्रीकृष्णसे प्रेरित होकर इस व्रजमण्डलमें आया है। यह सर्वतीर्थमय है। लता-कुञ्जोंसे श्याम आभा धारण करनेवाला यह श्रेष्ठ गिरि मेघकी भाँति श्याम तथा देवताओंका प्रिय है। भारतसे पश्चिम दिशामें शाल्मलिद्वीपके मध्य-भागमें द्रोणाचलकी पत्नीके गर्भसे गोवर्धनने जन्म लिया। महर्षि पुलस्त्य उसको भारतके व्रजमण्डलमें ले आये। विदेहराज! गोवर्धनके आगमनकी बात मैं तुमसे पहले निवेदन कर चुका हूँ॥ ४३—४५॥

यथा पुरा वर्धितुमुत्सुकोऽयं
तथा पिधानं भविता भुवो वा।
विचिन्त्य शापं मुनिना परेशो
द्रोणात्मजायेति ददौ क्षयार्थम्॥ ४६

जैसे यह पहले गोलोकमें उत्सुकतापूर्वक बढ़ने लगा था, उसी तरह यहाँ भी बढ़े तो वह पृथ्वीतकके लिये एक ढक्कन बन जायगा—यह सोचकर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे मुनिने द्रोणपुत्र गोवर्धनको प्रतिदिन क्षीण होनेका शाप दे दिया॥ ४६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजोत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगिरिराजकी उत्पत्तिका वर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

गोवर्धन-शिलाके स्पर्शसे एक राक्षसका उद्धार तथा दिव्यरूपधारी उस सिद्धके मुखसे गोवर्धनकी महिमाका वर्णन

श्रीनारद उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति॥ १

विजयो ब्राह्मणः कश्चिद्गौतमीतीरवासकृत्।
आययौ स्वमृणं नेतुं मथुरां पापनाशिनीम्॥ २

कृत्वा कार्यं गृहं गच्छन् गोवर्धनतटीं गतः।
वर्तुलं तत्र पाषाणं चैकं जग्राह मैथिल॥ ३

शनैः शनैर्वनोद्देशे निर्गतो व्रजमण्डलात्।
अग्रे ददर्श चायान्तं राक्षसं घोररूपिणम्॥ ४

हृदये च मुखं यस्य त्रयः पादा भुजाश्च षट्।
हस्तत्रयं च स्थूलोष्ठौ नासा हस्तसमुन्नता॥ ५

सप्तहस्ता ललज्जिह्वा कण्टकाभास्तनूरुहाः।
अरुणे अक्षिणी दीर्घे दन्ता वक्रा भयङ्कराः॥ ६

राक्षसो घुर्घुरशब्दं कृत्वा चापि बुभुक्षितः।
आययौ सम्मुखे राजन् ब्राह्मणस्य स्थितस्य च॥ ७

गिरिराजोद्भवेनासौ पाषाणेन जघान तम्।
गिरिराजशिलास्पर्शात्त्यक्त्वासौ राक्षसीं तनुम्॥ ८

पद्मपत्रविशालाक्षः श्यामसुन्दरविग्रहः।
वनमाली पीतवासा मुकुटी कुण्डलान्वितः॥ ९

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] इस विषयमें एक पुराने इतिहासका वर्णन किया जाता है, जिसके श्रवणमात्रसे बड़े-बड़े पापोंका विनाश हो जाता है॥ १॥

गौतमी गङ्गा (गोदावरी)-के तटपर विजय नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहता था। वह अपना ऋण वसूल करनेके लिये पापनाशिनी मथुरापुरीमें आया। अपना कार्य पूरा करके जब वह घरको लौटने लगा, तब गोवर्धनके तटपर गया। मिथिलेश्वर! वहाँ उसने एक गोल पत्थर ले लिया। धीरे-धीरे वनप्रान्तमें होता हुआ जब वह व्रजमण्डलसे बाहर निकल गया, तब उसे अपने सामनेसे आता हुआ एक घोर राक्षस दिखायी दिया॥ २—४॥

उसका मुँह उसकी छातीमें था। उसके तीन पैर और छः भुजाएँ थीं, परंतु हाथ तीन ही थे। ओठ बहुत ही मोटे और नाक एक हाथ ऊँची थी। उसकी सात हाथ लंबी जीभ लपलपा रही थी, रोएँ काँटोंके समान थे, आँखें बड़ी-बड़ी और लाल थीं, दाँत टेढ़े-मेढ़े और भयंकर थे॥ ५-६॥

राजन्! वह राक्षस बहुत भूखा था, अतः 'घुर-घुर' शब्द करता हुआ वहाँ खड़े हुए ब्राह्मणके सामने आया। ब्राह्मणने गिरिराजके पत्थरसे उस राक्षसको मारा। गिरिराजकी शिलाका स्पर्श होते ही वह राक्षस-शरीर छोड़कर श्यामसुन्दर रूपधारी हो गया। उसके विशाल नेत्र प्रफुल्ल कमलपत्रके समान शोभा पाने लगे। वनमाला, पीताम्बर, मुकुट और कुण्डलोंसे उसकी बड़ी शोभा होने लगी॥ ७—९॥

वंशीधरो वेत्रहस्तः कामदेव इवापरः।
भूत्वा कृताञ्जलिर्विप्रं प्रणनाम मुहुर्मुहुः॥ १०

सिद्ध उवाच

धन्यस्त्वं ब्राह्मणश्रेष्ठ परत्राणपरायणः।
त्वया विमोचितोऽहं वै राक्षसत्वान्महामते॥ ११

पाषाणस्पर्शमात्रेण कल्याणं मे बभूव ह।
न कोऽपि मां मोचयितुं समर्थो हि त्वया विना॥ १२

श्रीब्राह्मण उवाच

विस्मितस्तव वाक्येऽहं न त्वां मोचयितुं क्षमः।
पाषाणस्पर्शनफलं न जाने वद सुव्रत॥ १३

सिद्ध उवाच

गिरिराजो हरे रूपं श्रीमान् गोवर्धनो गिरिः।
तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम्॥ १४

गन्धमादनयात्रायां यत्फलं लभते नरः।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं गिरिराजस्य दर्शने॥ १५

पञ्चवर्षसहस्राणि केदारे यत्तपःफलम्।
तच्च गोवर्धने विप्र क्षणेन लभते नरः॥ १६

मलयाद्रौ स्वर्णभारदानस्यापि च यत्फलम्।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं गिरिराजे हि माषिकम्॥ १७

पर्वते मङ्गलप्रस्थे यो दद्याद्धेमदक्षिणाम्।
स याति विष्णुसारूप्यं युक्तः पापशतैरपि॥ १८

तत्पदं हि नरो याति गिरिराजस्य दर्शनात्।
गिरिराजसमं पुण्यमन्यत्तीर्थं न विद्यते॥ १९

ऋषभाद्रौ कूटकाद्रौ कोलकाद्रौ तथा नरः।
सुवर्णशृङ्गयुक्तानां गवां कोटीर्ददाति यः॥ २०

महापुण्यं लभेत्सोऽपि विप्रान् सम्पूज्य यत्नतः।
तस्माल्लक्षगुणं पुण्यं गिरौ गोवर्धने द्विज॥ २१

हाथमें वंशी और बेंत लिये वह दूसरे कामदेवके समान प्रतीत होने लगा। इस प्रकार दिव्यरूपधारी होकर उसने दोनों हाथ जोड़कर ब्राह्मण-देवताको बारंबार प्रणाम किया॥ १०॥

सिद्ध बोला—ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम धन्य हो; क्योंकि दूसरोंको संकटसे बचानेके पुण्यकार्यमें लगे हुए हो। महामते! आज तुमने मुझे राक्षसकी योनिसे छुटकारा दिला दिया। इस पाषाणके स्पर्शमात्रसे मेरा कल्याण हो गया। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मेरा उद्धार करनेमें समर्थ नहीं था॥ ११-१२॥

श्रीब्राह्मण बोले—सुव्रत! मैं तो तुम्हारी बात सुनकर आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। मुझमें तुम्हारा उद्धार करनेकी शक्ति नहीं है। पाषाणके स्पर्शका क्या फल है, यह भी मैं नहीं जानता; अतः तुम्हीं बताओ॥ १३॥

सिद्धने कहा—ब्रह्मन्! श्रीमान् गिरिराज गोवर्धनपर्वत साक्षात् श्रीहरिका रूप है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। गन्धमादनकी यात्रा करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटिगुना पुण्य गिरिराजके दर्शनसे होता है। विप्रवर! केदारतीर्थमें पाँच हजार वर्षोंतक तपस्या करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल गोवर्धनपर्वतपर तप करनेसे मनुष्यको क्षणभरमें प्राप्त हो जाता है॥ १४—१६॥

मलयाचलपर एक भार स्वर्णका दान करनेसे जिस पुण्यफलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटिगुना पुण्य गिरिराजपर एक माशा सुवर्णका दान करनेसे ही मिल जाता है। जो मङ्गलप्रस्थपर्वतपर सोनेकी दक्षिणा देता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। भगवान्‌के उसी पदको मनुष्य गिरिराजका दर्शन करनेमात्रसे पा लेता है। गिरिराजके समान पुण्यतीर्थ दूसरा कोई नहीं है॥ १७—१९॥

ऋषभपर्वत, कूटकपर्वत तथा कोलकपर्वतपर सोनेसे मढ़े सींगवाली एक करोड़ गौओंका जो दान करता है, वह भी ब्राह्मणोंका यत्नपूर्वक पूजन करके महान् पुण्यका भागी होता है। ब्रह्मन्! उसकी अपेक्षा भी लाखगुना पुण्य गोवर्धनपर्वतकी यात्रा करनेमात्रसे सुलभ होता है॥ २०-२१॥

ऋष्यमूकस्य सह्यस्य तथा देवगिरेः पुनः।
यात्रायां लभते पुण्यं समस्ताया भुवः फलम्॥ २२

गिरिराजस्य यात्रायां तस्मात्कोटिगुणं फलम्।
गिरिराजसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥ २३

श्रीशैले दश वर्षाणि कुण्डे विद्याधरे नरः।
स्नानं करोति सुकृती शतयज्ञफलं लभेत्॥ २४

गोवर्धने पुच्छकुण्डे दिनैकं स्नानकृन्नरः।
कोटियज्ञफलं साक्षात्पुण्यमेति न संशयः॥ २५

वेङ्कटाद्रौ वारिधारे महेन्द्रे विन्ध्यपर्वते।
यज्ञं कृत्वा ह्यश्वमेधं नरो नाकपतिर्भवेत्॥ २६

गोवर्धनेऽस्मिन् यो यज्ञं कृत्वा दत्वा सुदक्षिणाम्।
नाके पदं संविधाय स विष्णोः पदमाव्रजेत्॥ २७

चित्रकूटे पयस्विन्यां श्रीरामनवमीदिने।
पारियात्रे तृतीयायां वैशाखस्य द्विजोत्तम॥ २८

कुकुराद्रौ च पूर्णायां नीलाद्रौ द्वादशीदिने।
इन्द्रकीले च सप्तम्यां स्नानं दानं तपःक्रियाः॥ २९

तत्सर्वं कोटिगुणितं भवतीत्थं हि भारते।
गोवर्धने तु तत्सर्वमनन्तं जायते द्विज॥ ३०

गोदावर्यां गुरौ सिंहे मायापुर्यां तु कुम्भगे।
पुष्करे पुष्यनक्षत्रे कुरुक्षेत्रे रविग्रहे॥ ३१

चन्द्रग्रहे तु काश्यां वै फाल्गुने नैमिषे तथा।
एकादश्यां शूकरे च कार्तिक्यां गणमुक्तिदे॥ ३२

जन्माष्टम्यां मधोः पुर्यां खाण्डवे द्वादशीदिने।
कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु वटेश्वरमहावटे॥ ३३

मकरार्के प्रयागे तु बर्हिष्मत्यां हि वैधृतौ।
अयोध्यासरयूतीरे श्रीरामनवमीदिने॥ ३४

एवं शिवचतुर्दश्यां वैजनाथशुभे वने।
तथा दर्शे सोमवारे गङ्गासागरसङ्गमे॥ ३५

ऋष्यमूक, सह्यगिरि तथा देवगिरिकी एवं सम्पूर्ण पृथ्वीकी यात्रा करनेपर मनुष्य जिस पुण्यफलको पाता है, गिरिराज गोवर्धनकी यात्रा करनेपर उससे भी कोटिगुना अधिक फल उसे प्राप्त हो जाता है। अतः गिरिराजके समान तीर्थ न तो पहले कभी हुआ है और न भविष्यमें होगा ही॥ २२-२३॥

श्रीशैलपर दस वर्षोंतक रहकर वहाँके विद्याधर-कुण्डमें जो प्रतिदिन स्नान करता है, वह पुण्यात्मा मनुष्य सौ यज्ञोंके अनुष्ठानका फल पा लेता है; परंतु गोवर्धनपर्वतके पुच्छकुण्डमें एकदिन स्नान करनेवाला मनुष्य कोटियज्ञोंके साक्षात् अनुष्ठानका पुण्य फल पा लेता है, इसमें संशय नहीं है॥ २४-२५॥

वेङ्कटाचल, वारिधार, महेन्द्र और विन्ध्याचलपर एक अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करके मनुष्य स्वर्गलोकका अधिपति हो जाता है; परंतु इस गोवर्धनपर्वतपर जो यज्ञ करके उत्तम दक्षिणा देता है, वह स्वर्गलोकके मस्तकपर पैर रखकर भगवान् विष्णुके धाममें चला जाता है॥ २६-२७॥

द्विजोत्तम! चित्रकूटपर्वतपर श्रीरामनवमीके दिन पयस्विनी (मन्दाकिनी)-में, वैशाखकी तृतीयाको पारियात्र-पर्वतपर, पूर्णिमाको कुकुराचलपर, द्वादशीके दिन नीलाचलपर और सप्तमीको इन्द्रकीलपर्वतपर जो स्नान, दान और तप आदि पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे सब कोटिगुने हो जाते हैं। ब्रह्मन्! इसी प्रकार भारतवर्षके गोवर्धनतीर्थमें जो स्नानादि शुभकर्म किया जाता है, वह सब अनन्तगुना हो जाता है॥ २८—३०॥

बृहस्पतिके सिंहराशिमें स्थित होनेपर गोदावरीमें और कुम्भराशिमें स्थित होनेपर हरद्वारमें, पुष्यनक्षत्र आनेपर पुष्करमें, सूर्यग्रहण होनेपर कुरुक्षेत्रमें, चन्द्रग्रहण होनेपर काशीमें, फाल्गुन आनेपर नैमिषारण्यमें, एकादशीके दिन शूकरतीर्थमें, कार्तिककी पूर्णिमाको गढ़मुक्तेश्वरमें, जन्माष्टमीके दिन मथुरामें, द्वादशीके दिन खाण्डव-वनमें, कार्तिककी पूर्णिमाको वटेश्वरनामक महावटके पास, मकर-संक्राति लगनेपर प्रयाग-तीर्थमें, वैधृतियोग आनेपर बर्हिष्मतीमें, श्रीरामनवमीके दिन अयोध्यागत सरयूके तटपर, शिव-चतुर्दशीको शुभ वैद्यनाथ-वनमें, सोमवारगत अमावास्याको गङ्गासागर-संगममें, दशमीको

दशम्यां सेतुबन्धे च श्रीरङ्गे सप्तमीदिने।
एषु दानं तपः स्नानं जपो देवद्विजार्चनम्॥ ३६

तत्सर्वं कोटिगुणितं भवतीह द्विजोत्तम।
तत्तुल्यं पुण्यमाप्नोति गिरौ गोवर्धने वरे॥ ३७

गोविन्दकुण्डे विशदे यः स्नाति कृष्णमानसः।
प्राप्नोति कृष्णसारूप्यं मैथिलेन्द्र न संशयः॥ ३८

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च।
मानसीगङ्गया तुल्यं न भवन्त्यत्र नो गिरौ॥ ३९

त्वया विप्र कृतं साक्षाद्गिरिराजस्य दर्शनम्।
स्पर्शनं च ततः स्नानं न त्वत्तोऽप्यधिको भुवि॥ ४०

न मन्यसे चेन्मां पश्य महापातकिनं परम्।
गोवर्धनशिलास्पर्शात्कृष्णसारूप्यतां गतम्॥ ४१

सेतुबन्धपर तथा सप्तमीको श्रीरङ्गतीर्थमें किया हुआ दान, तप, स्नान, जप, देवपूजन, ब्राह्मणपूजन आदि जो शुभकर्म किया जाता है, द्विजोत्तम! वह कोटिगुना हो जाता है॥ ३१—३६ १/२ ॥

इन सबके समान पुण्य-फल केवल गोवर्धन-पर्वतकी यात्रा करनेसे प्राप्त हो जाता है। मैथिलेन्द्र! जो भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाकर निर्मल गोविन्दकुण्डमें स्नान करता है, वह भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है॥ ३७-३८॥

हमारे गोवर्धनपर्वतपर जो मानसी गङ्गा है, उनमें डुबकी लगानेकी समानता करनेवाले सहस्रों अश्वमेध-यज्ञ तथा सैकड़ों राजसूय-यज्ञ भी नहीं हैं। विप्रवर! आपने साक्षात् गिरिराजका दर्शन, स्पर्श तथा वहाँ स्नान किया है, अतः इस भूतलपर आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। यदि आपको विश्वास न हो तो मेरी ओर देखिये। मैं बहुत बड़ा महापातकी था, किंतु गोवर्धनकी शिलाका स्पर्श होनेमात्रसे मैंने भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त कर लिया॥ ३९—४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजमाहात्म्यं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगिरिराजका माहात्म्य' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सिद्धके द्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन तथा गोलोकसे उतरे हुए विशाल रथपर आरूढ़ हो उसका श्रीकृष्ण-लोकमें गमन

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा सिद्धवाक्यं ब्राह्मणो विस्मयं गतः।
पुनः पप्रच्छ तं राजन् गिरिराजप्रभाववित्॥ १

ब्राह्मण उवाच

पुरा जन्मनि कस्त्वं भोस्त्वया किं कलुषं कृतम्।
सर्वं वद महाभाग त्वं साक्षाद्दिव्यदर्शनः॥ २

सिद्ध उवाच

पुरा जन्मनि वैश्योऽहं धनी वैश्यसुतो महान्।
आबाल्याद्द्यूतनिरतो विटगोष्ठीविशारदः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! सिद्धकी यह बात सुनकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। गिरिराजके प्रभावको जानकर उसने सिद्धसे पुनः प्रश्न किया॥ १॥

ब्राह्मणने पूछा—महाभाग! इस समय तो तुम साक्षात् दिव्यरूपधारी दिखायी देते हो। परंतु पूर्वजन्ममें तुम कौन थे और तुमने कौन-सा पाप किया था? सब कुछ बताओ॥ २॥

सिद्धने कहा—पूर्वजन्ममें मैं एक धनी वैश्य था। अत्यन्त समृद्ध वैश्य-बालक होनेके कारण मुझे बचपनसे ही जुआ खेलनेकी आदत पड़ गयी थी। धूर्तों और जुआरियोंकी गोष्ठीमें मैं सबसे चतुर समझा जाता था॥ ३॥

वेश्यारतः कुमार्गोऽहं मदिरामदविह्वलः।
मात्रा पित्रा भार्ययापि भर्त्सितोऽहं सदा द्विज॥ ४

एकदा तु मया विप्र पितरौ गरदानतः।
मारितौ च तथा भार्या खड्गेन पथि मारिता॥ ५

गृहीत्वा तद्धनं सर्वं वेश्यया सहितः खलः।
दक्षिणाशां च गतवान् दस्युकर्मातिनिर्दयः॥ ६

एकदा तु मया वेश्या निःक्षिप्ता ह्यन्धकूपके।
दस्युना हि मया पाशैर्मारिताः शतशो नराः॥ ७

धनलोभेन भो विप्र ब्रह्महत्याशतं कृतम्।
क्षत्रहत्या वैश्यहत्याः शूद्रहत्याः सहस्रशः॥ ८

एकदा मांसमानेतुं मृगान् हन्तुं वने गतम्।
सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टो दुष्टं मां निधनं गतम्॥ ९

सन्ताड्य मुद्गरैर्घोरैर्यमदूता भयङ्कराः।
बद्ध्वा मां नरकं निन्युर्महापातकिनं खलम्॥ १०

मन्वन्तरं तु पतितः कुम्भीपाके महाखले।
कल्पैकं तप्तसूर्मौ च महादुःखं गतः खलः॥ ११

चतुरशीतिलक्षाणां नरकाणां पृथक् पृथक्।
वर्षं वर्षं निपतितो निर्गतोऽहं यमेच्छया॥ १२

ततस्तु भारते वर्षे प्राप्तोऽहं कर्मवासनाम्।
दशवारं सूकरोऽहं व्याघ्रोऽहं शतजन्मसु॥ १३

उष्ट्रोऽहं जन्मशतकं महिषः शतजन्मसु।
सर्पोऽहं जन्मसाहस्रं मारितो दुष्टमानवैः॥ १४

आगे चलकर मैं वेश्यामें आसक्त हो गया, कुपथपर चलने और मदिराके मदसे उन्मत्त रहने लगा। ब्रह्मन्! इसके कारण मुझे अपने माता-पिता और पत्नीकी ओरसे भी बड़ी फटकार मिलने लगी। हे विप्र! एक दिन मैंने माँ-बापको तो जहर देकर मार डाला और पत्नीको साथ लेकर कहीं जानेके बहाने निकला और रास्तेमें मैंने तलवारसे उसकी हत्या कर दी। इस तरह उन सबके धनको हथियाकर मैं उस वेश्याके साथ दक्षिण दिशामें चला गया। [यह है मेरी दुष्टताका परिचय।] दक्षिण जाकर मैं अत्यन्त निर्दयतापूर्वक लूट-पाटका काम करने लगा॥ ४—६॥

एक दिन उस वेश्याको भी मैंने अँधेरे कुएँमें डाल दिया। डाकू तो मैं हो ही गया था, मैंने फाँसी लगाकर सैकड़ों मनुष्योंको मौतके घाट उतार दिया। विप्रवर! धनके लोभसे मैंने सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ कीं। क्षत्रिय-हत्या, वैश्य-हत्या और शूद्र-हत्याकी संख्या तो हजारोंतक पहुँच गयी होगी॥ ७-८॥

एक दिनकी बात है कि मैं मांस लानेके निमित्त मृगोंका वध करनेके लिये वनमें गया। वहाँ एक सर्पके ऊपर मेरा पैर पड़ गया और उसने मुझे डँस लिया। फिर तो तत्काल मेरी मृत्यु हो गयी और यमराजके भयंकर दूतोंने आकर मुझ दुष्ट और महापातकीको भयानक मुद्गरोंसे पीट-पीटकर बाँधा और नरकमें पहुँचा दिया॥ ९-१०॥

मुझे महादुष्ट मानकर 'कुम्भीपाक' में डाला गया और वहाँ एक मन्वन्तरतक रहना पड़ा। तत्पश्चात् 'तप्तसूर्मि' नामक नरकमें मुझ दुष्टको एक कल्पतक महान् दुःख भोगना पड़ा। इस तरह यमराजकी इच्छासे चौरासी लाख नरकोंमेंसे प्रत्येकमें अलग-अलग मैं एक-एक वर्षतक पड़ता और निकलता रहा॥ ११-१२॥

तदनन्तर भारतवर्षमें कर्मवासनाके अनुसार मेरा दस बार तो सूअरकी योनिमें जन्म हुआ और सौ बार व्याघ्रकी योनिमें। फिर सौ जन्मोंतक मैं ऊँट और उतने ही जन्मोंतक भैंसा हुआ। इसके बाद एक सहस्र जन्मतक मुझे सर्पकी योनिमें रहना पड़ा। फिर कुछ दुष्ट मनुष्योंने मिलकर मुझे मार डाला॥ १३-१४॥

एवं वर्षायुतान्ते तु निर्जले विपिने द्विज।
राक्षसश्चेदृशो जातो विकरालो महाखलः॥ १५

कस्य शूद्रस्य देहं वै समारुह्य व्रजं गतः।
वृन्दावनस्य निकटे यमुनानिकटाच्छुभात्॥ १६

समुत्थिता यष्टिहस्ताः श्यामलाः कृष्णपार्षदाः।
तैस्ताडितो धर्षितोऽहं व्रजभूमौ पलायितः॥ १७

बुभुक्षितो बहुदिनैस्त्वां खादितुमिहागतः।
तावत्त्वया ताडितोऽहं गिरिराजाश्मना मुने॥ १८

श्रीकृष्णकृपया साक्षात्कल्याणं मे बभूव ह।

श्रीनारद उवाच

एवं प्रवदतस्तस्य गोलोकाच्च महारथः॥ १९

सहस्रादित्यसङ्काशो हयायुतसमन्वितः॥ २०

सहस्रचक्रध्वनिभृल्लक्षपार्षदमण्डितः।
मञ्जीरकिङ्किणीजालो मनोहरतरो नृप॥ २१

पश्यतस्तस्य विप्रस्य तमानेतुं समागतः।
तमागतं रथं दिव्यं नेमतुर्विप्रनिर्जरौ॥ २२

ततः समारुह्य रथं स सिद्धो
विरञ्जयन्मैथिल मण्डलं दिशाम्।
श्रीकृष्णलोकं प्रययौ परात्परं
निकुञ्जलीलाललितं मनोहरम्॥ २३

विप्रोऽपि तस्मात्पुनरागतो गिरिं
गोवर्धनं सर्वगिरीन्द्रदैवतम्।
प्रदक्षिणीकृत्य पुनः प्रणम्य तं
ययौ गृहं मैथिल तत्प्रभाववित्॥ २४

इदं मया ते कथितं प्रचण्डं
सुमुक्तिदं श्रीगिरिराजखण्डम्।
श्रुत्वा जनः पाप्यपि न प्रचण्डं
स्वप्नेऽपि पश्येद्यममुग्रदण्डम्॥ २५

विप्रवर! इस तरह दस हजार वर्ष बीतनेपर जलशून्य विपिनमें मैं ऐसा विकराल और महाखल राक्षस हुआ, [जैसा कि तुमने अभी-अभी देखा है]॥ १५॥

एक दिन किसी शूद्रके शरीरमें आविष्ट होकर व्रजमें गया। वहाँ वृन्दावनके निकटवर्ती यमुनाके सुन्दर तटसे हाथमें छड़ी लिये हुए कुछ श्याम-वर्णवाले श्रीकृष्णके पार्षद उठे और मुझे पीटने लगे। उनके द्वारा तिरस्कृत होकर मैं व्रजभूमिसे इधर भाग आया; तबसे बहुत दिनोंतक मैं भूखा रहा और तुम्हें खा जानेके लिये यहाँ आया। इतनेमें ही तुमने मुझे गिरिराजके पत्थरसे मार दिया। मुने! मुझपर साक्षात् श्रीकृष्णकी कृपा हो गयी, जिससे मेरा कल्याण हो गया॥ १६—१८१/२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] वह इस प्रकार कह ही रहा था कि गोलोकसे एक विशाल रथ उतरा। वह सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी था और उसमें दस हजार घोड़े जुते हुए थे। नरेश्वर! उससे हजारों पहियोंके चलनेकी ध्वनि होती थी। लाखों पार्षद उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। मञ्जीर और क्षुद्र-घण्टिकाओंके समूहसे आच्छादित वह रथ अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था॥ १९—२१॥

ब्राह्मणके देखते-देखते उस सिद्धको लेनेके लिये जब वह रथ आया, तब ब्राह्मण और सिद्ध दोनोंने उस दिव्य रथको नमस्कार किया। मिथिलेश्वर! तदनन्तर वह सिद्ध उस रथपर आरूढ़ हो दिङ्मण्डलको प्रकाशित करता हुआ परात्पर श्रीकृष्ण-लोकमें पहुँच गया, जो निकुञ्ज-लीलाके कारण ललित एवं परम मनोहर है। मैथिल! वह ब्राह्मण भी गोवर्धनका प्रभाव जान गया था, इसलिये वहाँसे लौटकर समस्त गिरिराजोंके देवता गोवर्धनगिरिपर आया और उसकी परिक्रमा एवं उसे प्रणाम करके अपने घरको गया॥ २२—२४॥

राजन्! इस प्रकार मैंने यह विचित्र एवं उत्तम मोक्षदायक श्रीगिरिराजखण्ड तुम्हें कह सुनाया। पापी मनुष्य भी इसका श्रवण करके स्वप्नमें भी कभी

यः शृणोति गिरिराजयशस्यं
गोपराजनवकेलिरहस्यम् ।
देवराज इव सोऽत्र समेति
नन्दराज इव शान्तिममुत्र ॥ २६

उग्रदण्डधारी प्रचण्ड यमराजका दर्शन नहीं करता। जो मनुष्य गिरिराजके यशसे परिपूर्ण गोपराज श्रीकृष्णकी नूतन केलिके रहस्यको सुनता है, वह देवराज इन्द्रकी भाँति इस लोकमें सुख भोगता है और नन्दराजके समान परलोकमें शान्तिका अनुभव करता है॥ २५-२६ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजप्रभाववर्णने सिद्धमोक्षो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें श्रीगिरिराज-प्रभाव-वर्णनके प्रसङ्गमें 'सिद्धमोक्ष' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

॥ गिरिराजखण्ड सम्पूर्ण ॥

श्रीगर्ग-संहिता

[चतुर्थ खण्ड]

माधुर्यखण्ड

प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव

गोपियोंद्वारा देवी कात्यायनीका पूजन

[माधुर्यख० अ० ३]

भगवती यमुनाजी

[माधुर्यख० अ० १९]

विप्रपत्नियोंद्वारा भगवद्दर्शन एवं नैवेद्य-अर्पण [माधुर्यख० अ० २१]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

माधुर्यखण्ड

पहला अध्याय

श्रुतिरूपा गोपियोंका वृत्तान्त, उनका श्रीकृष्ण और दुर्वासामुनिकी बातोंमें संशय तथा श्रीकृष्णद्वारा उसका निराकरण

अतसीकुसुमोपमेयकान्ति-
र्यमुनाकूलकदम्बमूलवर्ती ।
नवगोपवधूविलासशाली
वनमाली वितनोतु मङ्गलानि ॥ १

परिकरीकृतपीतपटं हरिं
शिखिकिरीटनतीकृतकन्धरम् ।
लकुटवेणुकरं चलकुण्डलं
पटुतरं नटवेषधरं भजे ॥ २

बहुलाश्व उवाच

श्रुतिरूपादयो गोप्यो भूतपूर्वा वरान्मुने ।
कथं श्रीकृष्णचन्द्रेण जाताः पूर्णमनोरथाः ॥ ३

गोपालकृष्णचरितं पवित्रं परमाद्भुतम् ।
एतद्वद महाबुद्धे त्वं परावरवित्तमः ॥ ४

श्रीनारद उवाच

श्रुतिरूपाश्च या गोप्यो गोपानां सुकुले व्रजे ।
लेभिरे जन्म वैदेह शेषशायिवराच्छ्रुतात् ॥ ५

कमनीयं नन्दसूनुं वीक्ष्य वृन्दावने च ताः ।
वृन्दावनेश्वरीं वृन्दां भेजिरे तद्वरेच्छया ॥ ६

वृन्दादत्ताद्वरादाशु प्रसन्नो भगवान् हरिः ।
नित्यं तासां गृहे याति रासार्थं भक्तवत्सलः ॥ ७

'जिनकी अङ्गकान्तिको अलसीके फूलकी उपमा दी जाती है, जो यमुनाकूलवर्ती कदम्बवृक्षके मूलभागमें विद्यमान हैं तथा नूतन गोपाङ्गनाओंके साथ लीला-विलास करते हुए अत्यन्त शोभा पा रहे हैं, वे वनमाली श्रीकृष्ण मङ्गलका विस्तार करें' ॥ १ ॥

'जिन्होंने पीताम्बरकी फेंट बाँध रखी है, जिनके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट सुशोभित है और गर्दन एक ओर झुकी हुई है, जो लकुटी और वंशी हाथमें लिये हुए हैं और जिनके कानोंमें चञ्चल कुण्डल झिलमिला रहे हैं, उन परम पटु, नटवेषधारी श्रीकृष्णका मैं भजन (ध्यान) करता हूँ' ॥ २ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने! श्रुतिरूपा आदि गोपियोंने, जो पूर्वप्रदत्त वरके अनुसार पहले ही व्रजमें प्रकट हो चुकी थीं, किस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका साहचर्य पाकर अपना मनोरथ पूर्ण किया था? महाबुद्धे! गोपाल श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र परम अद्भुत है, इसे कहिये; क्योंकि आप कार्य-कारणरूप परमात्मवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३-४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—विदेहराज! श्रुतिरूपा जो गोपियाँ थीं, वे शेषशायी भगवान् विष्णुके पूर्वकथित वरसे व्रजवासी गोपोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुईं। उन सबने वृन्दावनमें परम कमनीय नन्दनन्दनका दर्शन करके उन्हें वररूपमें पानेकी इच्छासे वृन्दावनेश्वरी वृन्दादेवीकी समाराधना की। वृन्दाके दिये हुए वरसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरि उनके ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो गये और प्रतिदिन उनके घरोंमें रासक्रीड़ाके लिये जाने लगे ॥ ५—७ ॥

एकदा तु निशीथिन्या व्यतीते प्रहरद्वये।
रासार्थं भगवान् कृष्णः प्राप्तवांस्तद्गृहान्नृप॥ ८

तदा उत्कण्ठिता गोप्यः कृत्वा तत्पूजनं परम्।
पप्रच्छुः परया भक्त्या गिरा मधुरया प्रभुम्॥ ९

गोप्य ऊचुः

कथं न चागतः शीघ्रं नो गृहान् वृजिनार्दन।
उत्कण्ठितानां गोपीनां त्वयि चन्द्रे चकोरवत्॥ १०

श्रीभगवानुवाच

यो यस्य चित्ते वसति न स दूरे कदाचन।
खे सूर्यं कमलं भूमौ दृष्ट्वेदं स्फुटति प्रियाः॥ ११

भाण्डीरे मे गुरुः साक्षाद्दुर्वासा भगवान् मुनिः।
आगतोऽद्य प्रियास्तस्य सेवार्थं गतवानहम्॥ १२

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ १३

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ १४

स्वगुरुं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्या सेवेत सर्वदेवमयो गुरुः॥ १५

तस्मात्तत्पूजनं कृत्वा नत्वा तत्पादपङ्कजम्।
आगतोऽहं विलम्बेन भवतीनां गृहान् प्रियाः॥ १६

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा तत्परमं वाक्यं गोप्यः सर्वास्तु विस्मिताः।
कृताञ्जलिपुटा ऊचुः श्रीकृष्णं नम्रकन्धराः॥ १७

गोप्य ऊचुः

परिपूर्णतमस्यापि दुर्वासास्ते गुरुः स्मृतः।
अहो तद्दर्शनं कर्तुं मनो नश्चोद्यतं प्रभो॥ १८

नरेश्वर! एक दिन रातमें दो पहर बीत जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण रासके लिये उनके घर गये। उस समय उत्कण्ठित गोपियोंने उन परम प्रभुका अत्यन्त भक्ति-भावसे पूजन करके मधुर वाणीमें पूछा—॥ ८-९॥

गोपियाँ बोलीं—अघनाशन श्रीकृष्ण! जैसे चकोरी चन्द्रदर्शनके लिये उत्सुक रहती है, उसी प्रकार हम गोपाङ्गनाएँ आपसे मिलनेको उत्कण्ठित रहती हैं। अतः आप हमारे घरमें शीघ्र क्यों नहीं आये?॥ १०॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—प्रियाओ! जो जिसके हृदयमें वास करता है, वह उससे दूर कभी नहीं रहता। देखो न, सूर्य तो आकाशमें है और कमल भूमिपर; फिर भी वह उन्हें देखते ही खिल उठता है (वह सूर्यको अपने अत्यन्त निकटस्थ अनुभव करता है)। प्रियाओ! आज मेरे साक्षात् गुरु भगवान् दुर्वासामुनि भाण्डीर-वनमें पधारे हैं। उन्हींकी सेवाके लिये मैं चला गया था॥ ११-१२॥

गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु भगवान् महेश्वर हैं और गुरु साक्षात् परम ब्रह्म हैं। उन श्रीगुरुको मेरा नमस्कार है। अज्ञानरूपी रतौंधीसे अंधे हुए मनुष्यकी दृष्टिको जिन्होंने ज्ञानाञ्जनकी शलाकासे खोल दिया है, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है। अपने गुरुको मेरा स्वरूप ही समझना चाहिये और कभी उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। गुरु सम्पूर्ण देवताओंके स्वरूप होते हैं। अतः साधारण मनुष्य समझकर उनकी सेवा नहीं करनी चाहिये। हे प्रियाओ! मैं उनका पूजन करके तथा उनके चरणकमलोंमें प्रणाम करके तुम्हारे घर देरीसे पहुँचा हूँ॥ १३—१६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णका यह उत्तम वचन सुनकर समस्त गोपाङ्गनाओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे हाथ जोड़कर सिर झुकाकर श्रीकृष्णसे बोलीं—॥ १७॥

गोपियोंने कहा—प्रभो! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। आप स्वयं परिपूर्णतम परमेश्वरके भी गुरु दुर्वासामुनि हैं, यह जानकर हमारा मन उनके दर्शनके लिये उत्सुक हो उठा है॥ १८॥

अद्य देव निशीथिन्या व्यतीते प्रहरद्वये।
कथं तद्दर्शनं भूयादस्माकं परमेश्वर॥ १९

तथा मध्ये दीर्घनदी यमुना प्रतिबन्धिका।
कथं तत्तरणं नावमृते देव भविष्यति॥ २०

श्रीभगवानुवाच

अवश्यमेव गन्तव्यं भवतीभिर्यदा प्रियाः।
यमुनामेत्य चैतद्वै वक्तव्यं मार्गहेतवे॥ २१

यदि कृष्णो बालयतिः सर्वदोषविवर्जितः।
तर्हि नो देहि मार्गं वै कालिन्दि सरितां वरे॥ २२

इत्युक्ते वचने कृष्णा मार्गं वो दास्यति स्वतः।
सुखेन तेन व्रजत यूयं सर्वा व्रजाङ्गनाः॥ २३

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाथ तद्वाक्यं पात्रैर्दीर्घैर्व्रजाङ्गनाः।
षट्पञ्चाशत्तमान् भोगान् नीत्वा सर्वाः पृथक् पृथक्॥ २४

यमुनामेत्य हर्युक्तं जगुरानतकन्धराः।
सद्यः कृष्णा ददौ मार्गं गोपीभ्यो मैथिलेश्वर॥ २५

तेन गोप्यो गताः सर्वा भाण्डीरं चातिविस्मिताः।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं दुर्वाससं च ताः॥ २६

नत्वा तद्दर्शनं चक्रुः पुरो धृत्वाशनं बहु।
मे पूर्वं चापि मे पूर्वमन्नं भोज्यं त्वया मुने॥ २७

एवं विवदमानानां गोपीनां भक्तिलक्षणम्।
विज्ञाय मुनिशार्दूलः प्रोवाच विमलं वचः॥ २८

मुनिरुवाच

गोप्यः परमहंसोऽहं कृतकृत्यो हि निष्क्रियः।
तस्मान्मुखे मे दातव्यं स्वं स्वं चाप्यशनं करैः॥ २९

श्रीनारद उवाच

एवं विदारिते तेन मुखे गोप्योऽतिहर्षिताः।
षट्पञ्चाशत्तमान् भोगान् स्वान्स्वान्सर्वाः समाक्षिपन्॥ ३०

क्षिपन्तीनां च गोपीनां पश्यन्तीनां मुनीश्वरः।
जघास कोटिशो भारान् भोगान् सर्वान् क्षुधातुरः॥ ३१

देव! परमेश्वर!! आज रातके दो पहर बीत जानेपर उनका दर्शन हमें कैसे प्राप्त हो सकता है? बीचमें विशाल नदी यमुना प्रतिबन्धक बनकर खड़ी है; अतः देव! बिना किसी नावके यमुनाजीको पार करना कैसे सम्भव होगा?॥ १९-२०॥

श्रीभगवान् बोले—प्रियाओ! यदि तुमलोगोंको अवश्य ही वहाँ जाना है तो यमुनाजीके पास पहुँचकर मार्ग प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार कहना—'यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी और सब प्रकारके दोषोंसे रहित हैं तो सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुनाजी! हमारे लिये मार्ग दे दो।' यह बात कहनेपर यमुना तुम्हें स्वतः मार्ग दे देंगी। उस मार्गसे तुम सभी व्रजाङ्गनाएँ सुखपूर्वक चली जाना॥ २१—२३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उनका यह वचन सुनकर सभी गोपियाँ अलग-अलग विशाल पात्रोंमें छप्पन भोग लेकर यमुनाजीके तटपर गयीं और सिर झुकाकर उन्होंने श्रीकृष्णकी कही हुई बात दुहरा दी। मैथिलेश्वर! फिर तो तत्काल यमुनाजीने उन गोपियोंके लिये मार्ग दे दिया। उस मार्गसे सभी गोपियाँ अत्यन्त विस्मित हो, भाण्डीर-वटके पास पहुँचीं। वहाँ उन्होंने दुर्वासामुनिकी परिक्रमा की और उन्हें प्रणामकर उनके आगे बहुत-सी भोजन सामग्री रखकर उनका दर्शन किया। फिर सब-की-सब कहने लगीं—'मुने! पहले मेरा अन्न ग्रहण कीजिये, पहले मेरा अन्न भोजन कीजिये।' इस तरह परस्पर विवाद करती हुई गोपियोंका भक्तिसूचक भाव जानकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने यह विमल वचन कहा—॥ २४—२८॥

मुनि बोले—गोपियो! मैं कृतकृत्य परमहंस हूँ, निष्क्रिय हूँ। इसलिये तुमलोग अपना-अपना भोजन अपने ही हाथोंसे मेरे मुँहमें डाल दो॥ २९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर जब उन्होंने अपना मुँह फैलाया, तब सभी गोपियोंने अत्यन्त हर्षके साथ अपने-अपने छप्पन भोगोंको उनके मुँहमें एक साथ ही डालना आरम्भ किया। अन्न डालती हुई उन गोपियोंके देखते-देखते मुनीश्वर दुर्वासा क्षुधासे पीड़ितकी भाँति उन समस्त भोगोंको, जो करोड़ों भारसे कम न थे, चट कर गये॥ ३०-३१॥

विस्मितानां च गोपीनां पश्यन्तीनां परस्परम्।
इत्थं शून्यानि पात्राणि बभूवुर्नृपसत्तम॥ ३२

अथ गोप्यो मुनिं शान्तं नत्वा तं भक्तवत्सलम्।
विस्मिताः प्रणताः प्राहुः सर्वाः पूर्णमनोरथाः॥ ३३

गोप्य ऊचुः

मुने आगमनात्पूर्वं कृष्णोक्तवचसा नदीम्।
तीर्त्वागतास्त्वत्समीपं दर्शनार्थं शुभेच्छया॥ ३४

इतः कथं गमिष्यामः सन्देहोऽयं महानभूत्।
तद्विधेहि नमस्तुभ्यं येन पन्था लघुर्भवेत्॥ ३५

मुनिरुवाच

सुखेनातः प्रगन्तव्यं भवतीभिर्यदा स्वतः।
यमुनामेत्य चैतद्वै वक्तव्यं मार्गहेतवे॥ ३६

यदि दूर्वारसं पीत्वा दुर्वासाः केवलं क्षितौ।
व्रती निरन्नो निर्वारि वर्तते पृथिवीतले॥ ३७

तर्हि नो देहि मार्गं वै कालिन्दि सरितां वरे।
इत्युक्ते वचने कृष्णा मार्गं वो दास्यति स्वतः॥ ३८

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचो गोप्यो नत्वा तं मुनिपुङ्गवम्।
यमुनामेत्य मुन्युक्तं चोक्त्वा तीर्त्वा नदीं नृप॥ ३९

श्रीकृष्णपार्श्वमाजग्मुर्विस्मिता मङ्गलायनाः॥ ४०

अथ रासे गोपवध्वः सन्देहं मनसोत्थितम्।
पप्रच्छुः श्रीहरिं वीक्ष्य रहः पूर्णमनोरथाः॥ ४१

गोप्य ऊचुः

दुर्वाससो दर्शनं भोः कृतमस्माभिरग्रतः।
युवयोर्वाक्यतश्चात्र सन्देहोऽयं प्रजायते॥ ४२

यथा गुरुस्तथा शिष्यो मृषावादी न संशयः।
जारस्त्वमसि गोपीनां रसिको बाल्यतः प्रभो॥ ४३

गोपियाँ आश्चर्यचकित हो एक-दूसरीकी ओर देखने लगीं। नृपश्रेष्ठ! इस तरह उनके सारे बर्तन खाली हो गये। तत्पश्चात् उन परम शान्त और भक्तवत्सल मुनिको विस्मित हुई सभी गोपियोंने पूर्णमनोरथ होकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा— ॥ ३२-३३ ॥

गोपियोंने कहा—मुने! यहाँ आनेसे पूर्व श्रीकृष्णकी कही हुई बात दुहराकर मार्ग मिल जानेसे यमुनाजीको पार करके हमलोग आपके समीप दर्शन-की शुभ इच्छा लेकर यहाँ आ गयी थीं। अब इधरसे हम कैसे जायँगी, यह महान् संदेह हमारे मनमें हो गया है! अतः आप ही ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे मार्ग हलका हो जाय॥ ३४-३५॥

मुनि बोले—गोपियो! तुम सब यहाँसे सुखपूर्वक चली जाओ। जब यमुनाजीके किनारे पहुँचो, तब मार्गके लिये इस प्रकार कहना—'यदि दुर्वासामुनि इस भूतलपर केवल दूर्वाका रस पीकर रहते हों, कभी अन्न और जल न लेकर व्रतका पालन करते हों तो सरिताओंकी शिरोमणि यमुनाजी! हमें मार्ग दे दो।' ऐसी बात कहनेपर यमुनाजी तुम्हें स्वतः मार्ग दे देंगी॥ ३६—३८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! यह सुनकर गोपियाँ उन मुनिपुंगवको प्रणाम करके यमुनाके तटपर आयीं और मुनिकी बतायी हुई बात कहकर नदी पार हो श्रीकृष्णके पास आ पहुँचीं। वे मङ्गलधामा गोपियाँ इस यात्राके विचित्र अनुभवसे विस्मित थीं। तदनन्तर रासमें गोपाङ्गनाओंने श्रीकृष्णकी ओर देखकर अपने मनमें उठे हुए संदेहको उनसे पूछा। एकान्तमें श्रीहरिने उन सबका मनोरथ पूर्ण कर दिया था॥ ३९—४१॥

गोपियाँ बोलीं—प्रभो! हमने दुर्वासामुनिका दर्शन उनके सामने जाकर किया है; किंतु आप दोनोंके वचनोंको सुनकर उनकी सत्यताके सम्बन्धमें हमारे मनमें संदेह उत्पन्न हो गया है॥ ४२॥

जैसे गुरुजी असत्यवादी हैं, उसी तरह चेलाजी भी मिथ्यावादी हैं—इसमें संशय नहीं है। अघनाशन! आप तो गोपियोंके उपपति और बचपनसे ही रसिक

कथं बालयतिस्त्वं वै वद तद्वृजिनार्दन।
कथं दूर्वारसं पीत्वा दुर्वासा बहुभुङ् मुनिः।
नो जात एष सन्देहः पश्यन्तीनां व्रजेश्वर॥ ४४

श्रीभगवानुवाच

निर्ममो निरहङ्कारः समानः सर्वगः परः।
सदा वैषम्यरहितो निर्गुणोऽहं न संशयः॥ ४५

तथापि भक्तान् भजतो भजेऽहं वै यथा तथा।
तथैव साधुर्ज्ञानी वै वैषम्यरहितः सदा॥ ४६

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्॥ ४७

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ ४८

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्॥ ४९

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥ ५०

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ ५१

तस्मान्मुनिस्तु दुर्वासा बहुभुक् त्वद्धिते रतः।
न तस्य भोजनेच्छा स्याद्दूर्वारसमिताशनः॥ ५२

हैं, फिर आप बाल-ब्रह्मचारी कैसे हुए—यह हमें स्पष्ट बताइये; और हमारे सामने बहुत-सा अन्न (भार-के-भार छप्पन भोग) खा जानेवाले ये दुर्वासामुनि केवल दूर्वाका रस पीकर रहनेवाले कैसे हैं? व्रजेश्वर! हमारे मनमें यह भारी संदेह उठा है॥ ४३-४४॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—गोपियो! मैं ममता और अहंकारसे रहित, सबके प्रति समान भाव रखनेवाला, सर्वव्यापी, सबसे उत्कृष्ट, सदा विषमताशून्य तथा प्राकृत गुणोंसे रहित हूँ—इसमें संशय नहीं है। तथापि जो भक्त मेरा जिस प्रकार भजन करते हैं, उनका उसी प्रकार मैं भी भजन करता हूँ। इसी प्रकार ज्ञानी साधु-महात्मा भी सदा विषम भावनासे रहित होते हैं॥ ४५-४६॥

योगयुक्त विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह कर्मोंमें आसक्त हुए अज्ञानीजनोंमें बुद्धि-भेद न उत्पन्न करे। उनसे सदा समस्त कर्मोंका सेवन ही कराये। जिस पुरुषके सभी समारम्भ (आयोजन) कामना और संकल्पसे शून्य होते हैं, उनके सारे कर्म ज्ञानरूपी अग्निमें दग्ध हो जाते हैं (अर्थात् उनके लिये वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते)। ऐसे पुरुषको ज्ञानीजन पण्डित (तत्त्वज्ञ) कहते हैं। जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जिसने चित्त और बुद्धिको अपने वशमें कर रखा है तथा जो समस्त संग्रह-परिग्रह छोड़ चुका है, वह केवल शरीर-निर्वाह-सम्बन्धी कर्म करता हुआ किल्विष (कर्मजनित शुभाशुभ फल)-को नहीं प्राप्त होता॥ ४७—४९॥

इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। योगसिद्ध पुरुष समयानुसार स्वयं ही अपने-आपमें उस ज्ञानको प्राप्त कर लेता है। जो समस्त कर्मोंको ब्रह्मार्पण करके आसक्ति छोड़कर कर्म करता है, वह पापसे उसी प्रकार लिप्त नहीं होता, जैसे कमलका पत्र जलसे। इसलिये दुर्वासामुनि तुम सबके हित-साधनमें तत्पर होकर बहुत खानेवाले हो गये। स्वतः उन्हें कभी भोजनकी इच्छा नहीं होती। वे केवल परिमित दूर्वारसका ही आहार करते हैं॥ ५०—५२॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचो गोप्यः सर्वास्ताश्छिन्नसंशयाः।
श्रुतिरूपा ज्ञानमय्यो बभूवुर्मैथिलेश्वर॥ ५३

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर! श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर समस्त गोपियोंका संशय नष्ट हो गया। वे श्रुतिरूपा गोपाङ्गनाएँ ज्ञानमयी हो गयीं॥ ५३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रुतिरूपोपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रुतिरूपा गोपियोंका उपाख्यान' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

ऋषिरूपा गोपियोंका उपाख्यान—वङ्गदेशके मङ्गल-गोपकी कन्याओंका नन्दराजके व्रजमें आगमन तथा यमुनाजीके तटपर रासमण्डलमें प्रवेश

श्रीनारद उवाच

गोपीनामृषिरूपाणामाख्यानं शृणु मैथिल।
सर्वपापहरं पुण्यं कृष्णभक्तिविवर्धनम्॥ १

वङ्गेषु मङ्गलो नाम गोप आसीन्महामनाः।
लक्ष्मीवाञ्छ्रुतसम्पन्नो नवलक्षगवां पतिः॥ २

भार्याः पञ्चसहस्राणि बभूवुस्तस्य मैथिल।
कदाचिद्दैवयोगेन धनं सर्वं क्षयं गतम्॥ ३

चौरैर्नीतास्तस्य गावः काश्चिद्राज्ञा हृता बलात्।
एवं दैन्ये च सम्प्राप्ते दुःखितो मङ्गलोऽभवत्॥ ४

तदा श्रीरामस्य वराद्दण्डकारण्यवासिनः।
ऋषयः स्त्रीत्वमापन्ना बभूवुस्तस्य कन्यकाः॥ ५

दृष्ट्वा कन्यासमूहं स दुःखी गोपोऽथ मङ्गलः।
उवाच दैन्यदुःखाढ्य आधिव्याधिसमाकुलः॥ ६

मङ्गल उवाच

किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहति।
श्रीर्न भूतिर्नाभिजनो न बलं मेऽस्ति साम्प्रतम्॥ ७

धनं विना कथं चासां विवाहो हा भविष्यति।
भोजने यत्र सन्देहो धनाशा तत्र कीदृशी॥ ८

सति दैन्ये कन्यकाः स्युः काकतालीयवद्गृहे।
तस्मात्कस्यापि राज्ञस्तु धनिनो बलिनस्त्वहम्।
दास्याम्येताः कन्यकाश्च कन्यानां सौख्यहेतवे॥ ९

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिल! अब तुम ऋषिरूपा गोपियोंकी कथा सुनो। वह सब पापोंको हर लेनेवाली, परम पावन तथा श्रीकृष्णके प्रति भक्ति-भावकी वृद्धि करनेवाली है। वङ्गदेशमें मङ्गल नामसे प्रसिद्ध एक महामनस्वी गोप था, जो लक्ष्मीवान्, शास्त्र-ज्ञानसे सम्पन्न तथा नौ लाख गौओंका स्वामी था। मिथिलेश्वर! उसके पाँच हजार पत्नियाँ थीं। किसी समय दैवयोगसे उसका सारा धन नष्ट हो गया॥ १—३॥

चोरोंने उसकी गौओंका अपहरण कर लिया। कुछ गौओंको उस देशके राजाने बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया। इस प्रकार दीनता प्राप्त होनेपर मङ्गल-गोप बहुत दुखी हो गया। उन्हीं दिनों श्रीराम-चन्द्रजीके वरदानसे स्त्रीभावको प्राप्त हुए दण्डकारण्यके निवासी ऋषि उसकी कन्याएँ हो गये। उस कन्या-समूहको देखकर दुखी गोप मङ्गल और भी दुःखमें डूब गया और आधि-व्याधिसे व्याकुल रहने लगा। उसने मन-ही-मन इस प्रकार कहा—॥ ४—६॥

मङ्गल बोला—क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कौन मेरा दुःख दूर करेगा? इस समय मेरे पास न तो लक्ष्मी है, न ऐश्वर्य है, न कुटुम्बीजन हैं और न कोई बल ही है। हाय! धनके बिना इन कन्याओंका विवाह कैसे होगा? जहाँ भोजनमें भी संदेह हो, वहाँ धनकी कैसी आशा? दीनता तो थी ही। काकतालीय न्यायसे कन्याएँ भी इस घरमें आ गयीं। इसलिये किसी धनवान् और बलवान् राजाको ये कन्याएँ अर्पित करूँगा, तभी इन कन्याओंको सुख मिलेगा॥ ७—९॥

श्रीनारद उवाच

कदर्थीकृत्य ताः कन्या एवं बुद्ध्या स्थितोऽभवत्।
तदैव माथुराद्देशाद्गोपश्चैकः समागतः॥ १०

तीर्थयायी जयो नाम वृद्धो बुद्धिमतां वरः।
तन्मुखान्नन्दराजस्य श्रुतं वैभवमद्भुतम्॥ ११

नन्दराजस्य वलये मङ्गलो दैन्यपीडितः।
विचिन्त्य प्रेषयामास कन्यकाश्चारुलोचनाः॥ १२

ता नन्दराजस्य गृहे कन्यका रत्नभूषिताः।
गवां गोमयहारिण्यो बभूवुर्गोव्रजेषु च॥ १३

श्रीकृष्णं सुन्दरं दृष्ट्वा कन्या जातिस्मराश्च ताः।
कालिन्दीसेवनं चक्रुर्नित्यं श्रीकृष्णहेतवे॥ १४

अथैकदा श्यामलाङ्गी कालिन्दी दीर्घलोचना।
ताभ्यः स्वदर्शनं दत्वा वरं दातुं समुद्यता॥ १५

ता वव्रिरे व्रजेशस्य पुत्रो भूयात्पतिश्च नः।
तथास्तु चोक्त्वा कालिन्दी तत्रैवान्तरधीयत॥ १६

ताः प्राप्ता वृन्दकारण्ये कार्तिक्यां रासमण्डले।
ताभिः सार्धं हरी रेमे सुरीभिः सुरराडिव॥ १७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उन कन्याओंकी कोई परवा न करके उसने अपनी ही बुद्धिसे ऐसा निश्चय कर लिया और उसीपर डटा रहा। उन्हीं दिनों मथुरामण्डलसे एक गोप उसके यहाँ आया। वह तीर्थयात्री था। उसका नाम था जय। वह बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और वृद्ध था। उसके मुखसे मङ्गलने नन्दराजके अद्भुत वैभवका वर्णन सुना॥ १०-११॥

दीनतासे पीड़ित मङ्गलने बहुत सोच-विचारकर अपनी चारुलोचना कन्याओंको नन्दराजके व्रजमण्डलमें भेज दिया। नन्दराजके घरमें जाकर वे रत्नमय भूषणोंसे विभूषित कन्याएँ उनके गोष्ठमें गौओंका गोबर उठानेका काम करने लगीं। वहाँ सुन्दर श्रीकृष्णको देखकर उन कन्याओंको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो आया और वे श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये नित्य यमुनाजीकी सेवा-पूजा करने लगीं॥ १२—१४॥

तदनन्तर एकदिन श्यामल अङ्गोंवाली विशाल-लोचना यमुनाजी उन सबको दर्शन दे, वर-प्रदान करनेके लिये उद्यत हुईं। उन गोपकन्याओंने यह वर माँगा कि 'व्रजेश्वर नन्दराजके पुत्र श्रीकृष्ण हमारे पति हों।' तब 'तथास्तु' कहकर यमुना वहीं अन्तर्धान हो गयीं। वे सब कन्याएँ वृन्दावनमें कार्तिक-पूर्णिमाकी रातको रासमण्डलमें पहुँचीं। वहाँ श्रीहरिने उनके साथ उसी तरह विहार किया, जैसे देवाङ्गनाओंके साथ देवराज इन्द्र किया करते हैं॥ १५—१७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे ऋषिरूपोपाख्यानं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'ऋषिरूपा गोपियोंका उपाख्यान' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

मैथिलीरूपा गोपियोंका आख्यान; चीरहरणलीला और वरदान-प्राप्ति

श्रीनारद उवाच

मैथिलीनां गोपिकानामाख्यानं शृणु मैथिल।
दशाश्वमेधतीर्थस्य फलदं भक्तिवर्धनम्॥ १

श्रीरामस्य वराज्जाता नवनन्दगृहेषु याः।
कमनीयं नन्दसूनुं दृष्ट्वा ता मोहमास्थिताः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मिथिलेश्वर! अब मिथिलादेशमें उत्पन्न गोपियोंका आख्यान सुनो। यह दशाश्वमेध-तीर्थपर स्नानका फल देनेवाला और भक्ति-भावको बढ़ानेवाला है। श्रीरामचन्द्रजीके वरसे जो नौ नन्दोंके घरोंमें उत्पन्न हुई थीं, वे मैथिलीरूपा गोपकन्याएँ परम कमनीय नन्दनन्दनका दर्शन करके मोहित हो गयीं॥ १-२॥

मार्गशीर्षे शुभे मासि चक्रुः कात्यायनीव्रतम्।
उपचारैः षोडशभिः कृत्वा देवीं महीमयीम्॥ ३

अरुणोदयवेलायां स्नाताः श्रीयमुनाजले।
नित्यं समेता आजग्मुर्गायन्त्यो भगवद्गुणान्॥ ४

एकदा ताः स्ववस्त्राणि तीरे न्यस्य व्रजाङ्गनाः।
विजह्रुर्यमुनातोये कराभ्यां सिञ्चतीर्मिथः॥ ५

तासां वासांसि सन्नीय भगवान् प्रातरागतः।
त्वरं कदम्बमारुह्य चौरवन्मौनमास्थितः॥ ६

ता न वीक्ष्य स्ववासांसि विस्मिता गोपकन्यकाः।
नीपस्थितं विलोक्याथ सलज्जा जहसुर्नृप॥ ७

प्रतीच्छन्तु स्ववासांसि सर्वा आगत्य चात्र वै।
अन्यथा न हि दास्यामि वृक्षात्कृष्ण उवाच ह॥ ८

राजन्त्यस्ताः शीतजले हसन्त्यः प्राहुरानताः॥ ९

गोप्य ऊचुः

हे नन्दनन्दन मनोहर गोपरत्न
गोपालवंशनवहंस महार्तिहारिन्।
श्रीश्यामसुन्दर तवोदितमद्य वाक्यं
कुर्मः कथं विवसनाः किल तेऽपि दास्यः॥ १०

गोपाङ्गनावसनमुणनवनीतहारी
जातो व्रजेऽतिरसिकः किल निर्भयोऽसि।
वासांसि देहि न हि चेन्मथुराधिपाय
वक्ष्यामहेऽनयमतीव कृतं त्वयात्र॥ ११

श्रीभगवानुवाच

दास्यो ममैव यदि सुन्दरमन्दहासा
इच्छन्तु वैत्य किल चात्र कदम्बमूले।
नो चेत्समस्तवसनानि नयामि गेहां-
स्तस्मात्करिष्यथ ममैव वचोऽविलम्बात्॥ १२

उन्होंने मार्गशीर्षके शुभ मासमें कात्यायनीका व्रत किया और उनकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर वे षोडशोपचारसे उसकी पूजा करने लगीं। अरुणोदयकी वेलामें वे प्रतिदिन एक साथ भगवान्‌के गुण गाती हुई आतीं और श्रीयमुनाजीके जलमें स्नान करती थीं। एक दिन वे व्रजाङ्गनाएँ अपने वस्त्र यमुनाजीके किनारे रखकर उनके जलमें प्रविष्ट हुईं और दोनों हाथोंसे जल उलीचकर एक-दूसरीको भिगोती हुई जल-विहार करने लगीं॥ ३—५॥

प्रातःकाल भगवान् श्यामसुन्दर वहाँ आये और तुरंत उन सबके वस्त्र लेकर कदम्बपर आरूढ़ हो चोरकी तरह चुपचाप बैठ गये। राजन्! अपने वस्त्रोंको न देखकर वे गोपकन्याएँ बड़े विस्मयमें पड़ीं तथा कदम्बपर बैठे हुए श्यामसुन्दरको देखकर लजा गयीं और हँसने लगीं। तब वृक्षपर बैठे हुए श्रीकृष्ण उन गोपियोंसे कहने लगे—'तुम सब लोग यहाँ आकर अपने-अपने कपड़े ले जाओ, अन्यथा मैं नहीं दूँगा।' राजन्! तब वे गोपकन्याएँ शीतल जलके भीतर खड़ी-खड़ी हँसती हुई लज्जासे मुँह नीचे किये बोलीं॥ ६—९॥

गोपियोंने कहा—हे मनोहर नन्दनन्दन! हे गोपरत्न! हे गोपाल-वंशके नूतन हंस! हे महान् पीड़ाको हर लेनेवाले श्रीश्यामसुन्दर! तुम जो आज्ञा करोगे, वही हम करेंगी। तुम्हारी दासी होकर भी हम यहाँ वस्त्रहीन होकर कैसे रहें? आप गोपियोंके वस्त्र लूटनेवाले और माखनचोर हैं। व्रजमें जन्म लेकर भी बड़े रसिक हैं। भय तो आपको छू नहीं सका है। हमारा वस्त्र हमें लौटा दीजिये; नहीं तो हम मथुरा-नरेशके दरबारमें आपके द्वारा इस अवसरपर की गयी बड़ी भारी अनीतिकी शिकायत करेंगी॥ १०-११॥

श्रीभगवान् बोले—सुन्दर मन्दहास्यसे सुशोभित होनेवाली गोपाङ्गनाओ! यदि तुम मेरी दासियाँ हो तो इस कदम्बकी जड़के पास आकर अपने वस्त्र ले लो। नहीं तो मैं इन सब वस्त्रोंको अपने घर उठा ले जाऊँगा। अतः तुम अविलम्ब मेरे कथनानुसार कार्य करो॥ १२॥

श्रीनारद उवाच

तदा ता निर्गताः सर्वा जलाद्गोप्योऽतिवेपिताः।
आनता योनिमाच्छाद्य पाणिभ्यां शीतकर्शिताः॥ १३

कृष्णदत्तानि वासांसि दधुः सर्वा व्रजाङ्गनाः।
मोहिताश्च स्थितास्तत्र कृष्णे लज्जायितेक्षणाः॥ १४

ज्ञात्वा तासामभिप्रायं परमप्रेमलक्षणम्।
आह मन्दस्मितः कृष्णः समन्ताद्वीक्ष्य ता वचः॥ १५

श्रीभगवानुवाच

भवतीभिर्मार्गशीर्षे कृतं कात्यायनीव्रतम्।
मदर्थं तच्च सफलं भविष्यति न संशयः॥ १६

परश्वोऽहनि चाटव्यां कृष्णातीरे मनोहरे।
युष्माभिश्च करिष्यामि रासं पूर्णमनोरथम्॥ १७

इत्युक्त्वाथ गते कृष्णे परिपूर्णतमे हरौ।
प्राप्तानन्दा मन्दहासा गोप्यः सर्वा गृहान् ययुः॥ १८

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब वे सब व्रजवासिनी गोपियाँ अत्यन्त काँपती हुई जलसे बाहर निकलीं और आनत-शरीर हो, हाथोंसे योनिको ढककर शीतसे कष्ट पाते हुए श्रीकृष्णके हाथसे दिये गये वस्त्र लेकर उन्होंने अपने अङ्गोंमें धारण किये। इसके बाद श्रीकृष्णको लजीली आँखोंसे देखती हुई वहाँ मोहित हो खड़ी रहीं। उनके परम प्रेमसूचक अभिप्रायको जानकर मन्द-मन्द मुसकराते हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण उनपर चारों ओरसे दृष्टिपात करके इस प्रकार बोले— ॥१३—१५॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—गोपाङ्गनाओ! तुमने मार्गशीर्षमासमें मेरी प्राप्तिके लिये जो कात्यायनी-व्रत किया है, वह अवश्य सफल होगा—इसमें संशय नहीं है। परसों दिनमें वनके भीतर यमुनाके मनोहर तटपर मैं तुम्हारे साथ रास करूँगा, जो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेवाला होगा॥ १६-१७॥

यों कहकर परिपूर्णतम श्रीहरि जब चले गये, तब आनन्दोल्लाससे परिपूर्ण हो मन्दहासकी छटा बिखेरती हुई वे समस्त गोप-बालाएँ अपने घरोंको गयीं॥ १८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मैथिल्युपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मैथिलीरूपा गोपियोंका उपाख्यान' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

कोसलप्रान्तीय स्त्रियोंका व्रजमें गोपी होकर श्रीकृष्णके प्रति अनन्यभावसे प्रेम करना

श्रीनारद उवाच

कौसलानां गोपिकानां वर्णनं शृणु मैथिल।
सर्वपापहरं पुण्यं श्रीकृष्णचरितामृतम्॥ १

नवोपनन्दगेहेषु जाता रामवराद्व्रजे।
परिणीता गोपजनै रत्नभूषणभूषिताः॥ २

पूर्णचन्द्रप्रतीकाशा नवयौवनसंयुताः।
पद्मिन्यो हंसगमनाः पद्मपत्रविलोचनाः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब कोसल-प्रदेशकी गोपिकाओंका वर्णन सुनो। यह श्रीकृष्णचरितामृत समस्त पापोंका नाश करनेवाला तथा पुण्य-जनक है। कोसलप्रान्तकी स्त्रियाँ श्रीरामके वरसे व्रजमें नौ उपनन्दोंके घरोंमें उत्पन्न हुईं और व्रजके गोपजनोंके साथ उनका विवाह हो गया। वे सब-की-सब रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थीं। उनकी अङ्गकान्ति पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनीके समान थी। वे नूतन यौवनसे सम्पन्न थीं। उनकी चाल हंसके समान थी और नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल थे। वे पद्मिनी

जारधर्मेण सुस्नेहं सुदृढं सर्वतोऽधिकम्।
चक्रुः कृष्णे नन्दसुते कमनीये महात्मनि॥ ४

ताभिः सार्धं सदा हास्यं व्रजवीथीषु माधवः।
स्मितैः पीतपटादानैः कर्षणैः स चकार ह॥ ५

दधिविक्रयार्थं यान्त्यस्ताः कृष्ण कृष्णेति चाब्रुवन्।
कृष्णे हि प्रेमसंसक्ता भ्रमन्त्यः कुञ्जमण्डले॥ ६

खे वायौ चाग्निजलयोर्मह्यां ज्योतिर्दिशासु च।
द्रुमेषु जनवृन्देषु तासां कृष्णो हि लक्ष्यते॥ ७

प्रेमलक्षणसंयुक्ताः श्रीकृष्णहृतमानसाः।
अष्टभिः सात्त्विकैर्भावैः सम्पन्नास्ताश्च योषितः॥ ८

प्रेम्णा परमहंसानां पदवीं समुपागताः।
कृष्णानन्दाः प्रधावन्त्यो व्रजवीथीषु ता नृप॥ ९

जडाजडं न जानन्त्यो जडोन्मत्तपिशाचवत्।
अब्रुवन्त्यो ब्रुवन्त्यो वा गतलज्जा गतव्यथाः॥ १०

एवं कृतार्थतां प्राप्तास्तन्मया याश्च गोपिकाः।
बलादाकृष्य कृष्णस्य चुचुम्बुर्मुखपङ्कजम्॥ ११

तासां तपः किं कथयामि राजन्
पूर्णे परे ब्रह्मणि वासुदेवे।
याश्चक्रिरे प्रेम हृदिन्द्रियाद्यै-
र्विसृज्य लोकव्यवहारमार्गम्॥ १२

या रासरङ्गे विनिधाय बाहुं
कृष्णांसयोः प्रेमविभिन्नचित्ताः।

जातिकी नारियाँ थीं। उन्होंने कमनीय महात्मा नन्द-नन्दन श्रीकृष्णके प्रति जारधर्मके अनुसार उत्तम, सुदृढ़ तथा सबसे अधिक स्नेह किया॥ १—४॥

व्रजकी गलियोंमें माधव मुसकराकर पीताम्बर छीनकर और आँचल खींचकर उनके साथ सदा हास-परिहास किया करते थे। वे गोपबालाएँ जब दही बेचनेके लिये निकलतीं तो 'दही लो, दही लो'—यह कहना भूलकर 'कृष्ण लो, कृष्ण लो' कहने लगती थीं। श्रीकृष्णके प्रति प्रेमासक्त होकर वे कुञ्जमण्डलमें घूमा करती थीं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र-मण्डल, सम्पूर्ण दिशा, वृक्ष तथा जनसमुदायोंमें भी उन्हें केवल कृष्ण ही दिखायी देते थे। प्रेमके समस्त लक्षण उनमें प्रकट थे। श्रीकृष्णने उनके मन हर लिये थे। वे सारी व्रजाङ्गनाएँ आठों सात्त्विक भावोंसे सम्पन्न थीं*॥ ५—८॥

प्रेमने उन सबको परमहंसों (ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं)-की अवस्थाको पहुँचा दिया था। नरेश्वर! वे कान्तिमती गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णके आनन्दमें ही मग्न हो व्रजकी गलियोंमें विचरा करती थीं। उनमें जड-चेतनका भान नहीं रह गया था। वे जड, उन्मत्त और पिशाचोंकी भाँति कभी मौन रहतीं और कभी बहुत बोलने लगती थीं। वे लाज और चिन्ताको तिलाञ्जलि दे चुकी थीं। इस प्रकार कृतार्थ होकर जो श्रीकृष्णमें तन्मय हो रही थीं, वे गोपाङ्गनाएँ बलपूर्वक खींचकर श्रीकृष्णके मुखारविन्दको चूम लेती थीं। राजन्! उनके तपका मैं क्या वर्णन करूँ? जो सारे लोक-व्यवहार एवं मर्यादा-मार्गको तिलाञ्जलि देकर हृदय तथा इन्द्रिय आदिके द्वारा पूर्ण परब्रह्म वासुदेवमें अविचल प्रेम करती थीं॥ ९—१२॥

जो रास-क्रीडामें श्रीकृष्णके कंधोंपर अपनी बाँहें रखकर, प्रेमसे विगलितचित्त हो श्रीकृष्णको

---

*आठ सात्त्विकभावोंके नाम इस प्रकार हैं—

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः॥

'अङ्गोंका अकड़ जाना, पसीना होना, रोमाञ्च हो आना, बोलते समय आवाजका बदल जाना, शरीरमें कम्पन होना, मुँहका रंग उड़ जाना, नेत्रोंसे आँसू बहना तथा मरणान्तिकअवस्थातक पहुँच जाना—ये प्रेमके आठ सात्त्विक भाव माने गये हैं।'

चक्रुर्वशे कृष्णमलं तपस्तद्
वक्तुं न शक्तो वदनैः फणीन्द्रः ॥ १३

योगेन सांख्येन शुभेन कर्मणा
न्यायादिवैशेषिकतत्त्ववित्तमैः ।
यत्प्राप्यते तच्च पदं विदेहराट्
सम्प्राप्यते केवलभक्तिभावतः ॥ १४

भक्त्यैव वश्यो हरिरादिदेवः
सदा प्रमाणं किल चात्र गोप्यः ।
सांख्यं च योगं न कृतं कदापि
प्रेम्णैव यस्य प्रकृतिं गताः स्युः ॥ १५

पूर्णतया अपने वशमें कर चुकी थीं; उनकी तपस्याका अपने सहस्रमुखोंसे वर्णन करनेमें नागराज शेष भी समर्थ नहीं हैं ॥ १३ ॥

विदेहराज! न्याय-वैशेषिकआदि दर्शनोंके तत्त्वज्ञोंमें श्रेष्ठतम महात्मा योग-सांख्य और शुभ-कर्मद्वारा जिस पदको प्राप्त करते हैं, वही पद केवल भक्ति-भावसे उपलब्ध हो जाता है। आदिदेव श्रीहरि केवल भक्तिसे ही वशमें होते हैं, निश्चय ही इस विषयमें सदा गोपियाँ ही प्रमाण हैं। उन्होंने कभी सांख्य और योगका अनुष्ठान नहीं किया, तथापि केवल प्रेमसे ही वे भगवत्स्वरूपताको प्राप्त हो गयीं ॥ १४-१५ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कौसलोपाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कोसलप्रान्तीय गोपिकाओंका आख्यान' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

अयोध्यावासिनी गोपियोंके आख्यानके प्रसङ्गमें राजा विमलकी संतानके लिये चिन्ता तथा महामुनि याज्ञवल्क्यद्वारा उन्हें बहुत-सी पुत्री होनेका विश्वास दिलाना

श्रीनारद उवाच

अयोध्यावासिनीनां तु गोपीनां वर्णनं शृणु।
चतुष्पदार्थदं साक्षात्कृष्णप्राप्तिकरं परम् ॥ १

सिन्धुदेशेषु नगरी चम्पका नाम मैथिल।
बभूव तस्यां विमलो राजा धर्मपरायणः ॥ २

कुबेर इव कोशाढ्यो मनस्वी मृगराडिव।
विष्णुभक्तः प्रशान्तात्मा प्रह्लाद इव मूर्तिमान् ॥ ३

भार्याणां षट्सहस्राणि बभूवुस्तस्य भूपतेः।
रूपवत्यः कञ्जनेत्रा वन्ध्यात्वं ताः समागताः ॥ ४

अपत्यं केन पुण्येन भूयान्मेऽत्र शुभं नृप।
एवं चिन्तयतस्तस्य बहवो वत्सरा गताः ॥ ५

एकदा याज्ञवल्क्यस्तु मुनीन्द्रस्तमुपागतः।
तं नत्वाभ्यर्च्य विधिवन्नृपस्तत्सम्मुखे स्थितः ॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] अब अयोध्यावासिनी गोपियोंका वर्णन सुनो, जो चारों पदार्थोंको देनेवाला तथा साक्षात् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला सर्वोत्कृष्ट साधन है ॥ १ ॥

मिथिलेश्वर! सिन्धुदेशमें चम्पका नामसे प्रसिद्ध एक नगरी थी, जिसमें धर्मपरायण विमल नामक राजा हुए थे। वे कुबेरके समान कोषसे सम्पन्न तथा सिंहके समान मनस्वी थे। वे भगवान् विष्णुके भक्त और प्रशान्त-चित्त महात्मा थे। वे अपनी अविचल भक्तिके कारण मूर्तिमान् प्रह्लाद-से प्रतीत होते थे। उन भूपालके छः हजार रानियाँ थीं। वे सब-की-सब सुन्दर रूपवाली तथा कमलनयनी थीं, परंतु भाग्यवश वे वन्ध्या हो गयीं। राजन्! 'मुझे किस पुण्यसे उत्तम संतानकी प्राप्ति होगी?' ऐसा विचार करते हुए राजा विमलके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये ॥ २—५ ॥

एक दिन उनके यहाँ मुनिवर याज्ञवल्क्य पधारे। राजाने उनको प्रणाम करके उनका विधिवत् पूजन किया और फिर उनके सामने वे विनीतभावसे खड़े हो गये ॥ ६ ॥

चिन्ताकुलं नृपं वीक्ष्य याज्ञवल्क्यो महामुनिः।
सर्वज्ञः सर्वविच्छान्तः प्रत्युवाच नृपोत्तमम्॥ ७

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

राजन् कृशोऽसि कस्मात्त्वं का चिन्ता ते हृदि स्थिता।
सप्तस्वङ्गेषु कुशलं दृश्यते साम्प्रतं तव॥ ८

विमल उवाच

ब्रह्मंस्त्वं किं न जानासि तपसा दिव्यचक्षुषा।
तथाप्यहं वदिष्यामि भवतो वाक्यगौरवात्॥ ९

आनपत्येन दुःखेन व्याप्तोऽहं मुनिसत्तम।
किं करोमि तपो दानं वद येन भवेत्प्रजा॥ १०

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा याज्ञवल्क्यो ध्यानस्तिमितलोचनः।
दीर्घं दध्यौ मुनिश्रेष्ठो भूतं भव्यं विचिन्तयन्॥ ११

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

अस्मिन् जन्मनि राजेन्द्र पुत्रो नैव च नैव च।
पुत्र्यस्तव भविष्यन्ति कोटिशो नृपसत्तम॥ १२

राजोवाच

पुत्रं विना पूर्वऋणान्न कोऽपि
प्रमुच्यते भूमितले मुनीन्द्र।
सदा ह्यपुत्रस्य गृहे व्यथा स्यात्
परं त्विहामुत्र सुखं न किञ्चित्॥ १३

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

मा खेदं कुरु राजेन्द्र पुत्र्यो देयास्त्वया खलु।
श्रीकृष्णाय भविष्याय परं दायादिकैः सह॥ १४

तेनैव कर्मणा त्वं वै देवर्षिपितृणामृणात्।
विमुक्तो नृपशार्दूल परं मोक्षमवाप्स्यसि॥ १५

श्रीनारद उवाच

तदातिहर्षितो राजा श्रुत्वा वाक्यं महामुनेः।
पुनः पप्रच्छ सन्देहं याज्ञवल्क्यं महामुनिम्॥ १६

राजोवाच

कस्मिन् कुले कुत्र देशे भविष्यः श्रीहरिः स्वयम्।
कीदृग्रूपश्च किंवर्णो वर्षैश्च कतिभिर्गतैः॥ १७

नृपतिशिरोमणि राजाको चिन्तासे आकुल देख सर्वज्ञ, सर्ववित् तथा शान्तस्वरूप महामुनि याज्ञवल्क्यने उनसे पूछा— ॥ ७ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य बोले—राजन्! तुम दुर्बल क्यों हो गये हो? तुम्हारे हृदयमें कौन-सी चिन्ता खड़ी हो गयी है? इस समय तुम्हारे राज्यके सातों अङ्गोंमें तो कुशल-मङ्गल ही दिखायी देता है?॥ ८ ॥

विमलने कहा—ब्रह्मन्! आप अपनी तपस्या एवं दिव्यदृष्टिसे क्या नहीं जानते हैं? तथापि आपकी आज्ञाका गौरव मानकर मैं अपना कष्ट बता रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ! मैं संतानहीनताके दुःखसे चिन्तित हूँ। कौन-सा तप और दान करूँ, जिससे मुझे संतानकी प्राप्ति हो॥ ९-१० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—विमलकी यह बात सुनकर याज्ञवल्क्यमुनिके नेत्र ध्यानमें स्थित हो गये। वे मुनिश्रेष्ठ भूत और वर्तमानका चिन्तन करते हुए दीर्घकालतक ध्यानमें मग्न रहे॥ ११ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य बोले—राजेन्द्र! इस जन्ममें तो तुम्हारे भाग्यमें पुत्र नहीं है, नहीं है, परंतु नृपश्रेष्ठ! तुम्हें पुत्रियाँ करोड़ोंकी संख्यामें प्राप्त होंगी॥ १२ ॥

राजाने कहा—मुनीन्द्र! पुत्रके बिना कोई भी इस भूतलपर पूर्वजोंके ऋणसे मुक्त नहीं होता। पुत्रहीनके घरमें सदा ही व्यथा बनी रहती है। उसे इस लोक या परलोकमें कुछ भी सुख नहीं मिलता॥ १३ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य बोले—राजेन्द्र! खेद न करो। भविष्यमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होनेवाला है। तुम उन्हींको कालान्तरमें दहेजके साथ अपनी सब पुत्रियाँ समर्पित कर देना। नृपश्रेष्ठ! उसी कर्मसे तुम देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके ऋणसे छूटकर परममोक्ष प्राप्त कर लोगे॥ १४-१५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—महामुनिका यह वचन सुनकर उस समय राजाको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्यसे पुनः अपना संदेह पूछा?॥ १६ ॥

राजा बोले—मुनीश्वर! कितने वर्ष बीतनेपर किस देशमें और किस कुलमें साक्षात् श्रीहरि अवतीर्ण होंगे? उस समय उनका रूप-रंग क्या होगा?॥ १७ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

द्वापरस्य युगस्यास्य तव राज्यान्महाभुज।
अवशेषे वर्षशते तथा पञ्चदशे नृप॥ १८

तस्मिन् वर्षे यदुकुले मथुरायां यदोः पुरे।
भाद्रे बुधे कृष्णपक्षे धात्रर्क्षे हर्षणे वृषे॥ १९

ववेऽष्टम्यामर्धरात्रे नक्षत्रेशमहोदये।
अन्धकारावृते काले देवक्यां शौरिमन्दिरे॥ २०

भविष्यति हरिः साक्षादरण्यामध्वरेऽग्निवत्।
श्रीवत्साङ्को घनश्यामो वनमाल्यतिसुन्दरः॥ २१

पीताम्बरः पद्मनेत्रो भविष्यति चतुर्भुजः।
तस्मै देया त्वया कन्या आयुस्तेऽस्ति न संशयः॥ २२

श्रीयाज्ञवल्क्य बोले—महाबाहो! इस द्वापर-युगके जो अवशेष वर्ष हैं, उन्हींमें तुम्हारे राज्यकालसे एक सौ पंद्रह वर्ष व्यतीत होनेपर यादवपुरी मथुरामें यदुकुलके भीतर भाद्रपदमास, बुधवार, कृष्णपक्ष, रोहिणी नक्षत्र, हर्षण योग, वृषलग्न , वव करण और अष्टमी तिथिमें आधी रातके समय चन्द्रोदय-कालमें, जबकि सब कुछ अन्धकारसे आच्छन्न होगा, वसुदेव-भवनमें देवकीके गर्भसे साक्षात् श्रीहरिका आविर्भाव होगा—ठीक उसी तरह जैसे यज्ञमें अरणि-काष्ठसे अग्निका प्राकट्य होता है। भगवान्के वक्षः-स्थलपर श्रीवत्सका चिह्न होगा। उनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम होगी। वे वनमालासे अलंकृत और अतीव सुन्दर होंगे। पीताम्बरधारी, कमलनयन तथा अवतारकालमें चतुर्भुज होंगे। तुम उन्हें अपनी कन्याएँ देना। तुम्हारी आयु अभी बहुत है। तुम उस समयतक जीवित रहोगे, इसमें संशय नहीं है॥ १८—२२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे अयोध्यापुरवासिन्युपाख्यानं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अयोध्यावासिनी गोपाङ्गनाओंका उपाख्यान' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

अयोध्यापुरवासिनी स्त्रियोंका राजा विमलके यहाँ पुत्रीरूपसे उत्पन्न होना; उनके विवाहके लिये राजाका मथुरामें श्रीकृष्णको देखनेके निमित्त दूत भेजना; वहाँ पता न लगनेपर भीष्मजीसे अवतार-रहस्य जानकर उनका श्रीकृष्णके पास दूत प्रेषित करना

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा गते साक्षाद्याज्ञवल्क्ये महामुनौ।
अतीव हर्षमापन्नो विमलश्चम्पकापतिः॥ १

अयोध्यापुरवासिन्यः श्रीरामस्य वराच्च याः।
बभूवुस्तस्य भार्यासु ताः सर्वाः कन्यकाः शुभाः॥ २

विवाहयोग्यास्ता दृष्ट्वा चिन्तयंश्चम्पकापतिः।
याज्ञवल्क्यवचः स्मृत्वा दूतमाह नृपेश्वरः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर जब साक्षात् महामुनि याज्ञवल्क्य चले गये, तब चम्पका नगरीके स्वामी राजा विमलको बड़ा हर्ष हुआ। अयोध्या-पुरवासिनी स्त्रियाँ श्रीरामके वरदानसे उनकी रानियोंके गर्भसे पुत्रीरूपमें प्रकट हुईं। वे सभी राजकन्याएँ बड़ी सुन्दरी थीं। उन्हें विवाहके योग्य अवस्थामें देखकर नृपशिरोमणि चम्पकेश्वरको चिन्ता हुई। उन्होंने याज्ञवल्क्यजीकी बातको याद करके दूतसे कहा—॥ १—३॥

विमल उवाच

मथुरां गच्छ दूत त्वं गत्वा शौरिगृहं शुभम्।
दर्शनीयस्त्वया पुत्रो वसुदेवस्य सुन्दरः॥ ४

विमल बोले—दूत! तुम मथुरा जाओ और वहाँ शूरपुत्र वसुदेवके सुन्दर घरतक पहुँचकर देखो। वसुदेवका कोई बहुत सुन्दर पुत्र होगा। उसके

श्रीवत्साङ्को घनश्यामो वनमाली चतुर्भुजः।
यदि स्यात्तर्हि दास्यामि तस्मै सर्वाः सुकन्यकाः॥ ५

श्रीनारद उवाच

इति वाक्यं ततः श्रुत्वा दूतोऽसौ मथुरां गतः।
पप्रच्छ सर्वाभिप्रायं माथुरांश्च महाजनान्॥ ६

तद्वाक्यं माथुराः श्रुत्वा कंसभीताः सुबुद्धयः।
तं दूतं रहसि प्राहुः कर्णान्ते मन्दवाग्यथा॥ ७

माथुरा ऊचुः

वसुदेवस्य ये पुत्राः कंसेन बहवो हताः।
एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता॥ ८

वसुदेवोऽस्ति चात्रैव ह्यपुत्रो दीनमानसः।
इदं न कथनीयं हि त्वया कंसभयं पुरे॥ ९

शौरिसन्तानवार्तां यो वक्ति चेन्मथुरापुरे।
तं दण्डयति कंसोऽसौ शौर्यष्टमशिशो रिपुः॥ १०

श्रीनारद उवाच

जनवाक्यं ततः श्रुत्वा दूतो वै चम्पकापुरीम्।
गत्वाथ कथयामास राज्ञे कारणमद्भुतम्॥ ११

दूत उवाच

मथुरायामस्ति शौरिरनपत्योऽतिदीनवत्।
तत्पुत्रास्तु पुरा जाताः कंसेन निहताः श्रुतम्॥ १२

एकावशिष्टा कन्यापि खं गता कंसहस्ततः।
एवं श्रुत्वा यदुपुरान्निर्गतोऽहं शनैः शनैः॥ १३

चरन् वृन्दावने रम्ये कालिन्दीनिकटे शुभे।
अकस्माल्लतिकावृन्दे दृष्टः कश्चिच्छिशुर्मया॥ १४

तल्लक्षणसमो राजन् नो गोपगणमध्यतः।
श्रीवत्साङ्को घनश्यामो वनमाल्यतिसुन्दरः॥ १५

वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न होगा, अङ्गकान्ति मेघमालाकी भाँति श्याम होगी तथा वह वनमालाधारी एवं चतुर्भुज होगा। यदि ऐसी बात हो तो मैं उसके हाथमें अपनी समस्त सुन्दरी कन्याएँ दे दूँगा॥ ४-५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! महाराज विमलकी यह बात सुनकर वह दूत मथुरापुरीमें गया और मथुराके बड़े-बड़े लोगोंसे उसने सारी अभीष्ट बातें पूछीं। उसकी बात सुनकर मथुराके बुद्धिमान् लोग, जो कंससे डरे हुए थे, उस दूतको एकान्तमें ले जाकर उसके कानमें बहुत धीमे स्वरसे बोले—॥ ६-७॥

मथुरानिवासियोंने कहा—वसुदेवके जो बहुत-से पुत्र हुए, वे कंसके द्वारा मारे गये। एक छोटी-सी कन्या बच गयी थी, किंतु वह भी आकाशमें उड़ गयी। वसुदेव यहीं रहते हैं, किंतु पुत्रोंसे बिछुड़ जानेके कारण उनके मनमें बड़ा दुःख है। इस समय जो बात तुम हमलोगोंसे पूछ रहे हो, उसे और कहीं न कहना; क्योंकि इस नगरमें कंसका भय है। मथुरापुरीमें जो वसुदेवकी संतानके सम्बन्धमें कोई बात करता है, उसे उनके आठवें पुत्रका शत्रु कंस भारी दण्ड देता है॥ ८—१०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! जनसाधारणकी यह बात सुनकर दूत चम्पकापुरीमें लौट गया। वहाँ जाकर राजासे उसने वह अद्भुत संवाद कह सुनाया॥ ११॥

दूत बोला—महाराज! मथुरामें शूरपुत्र वसुदेव अवश्य हैं, किंतु संतानहीन होनेके कारण अत्यन्त दीनकी भाँति जीवन व्यतीत करते हैं। सुना है कि पहले उनके अनेक पुत्र हुए थे, जो कंसके हाथसे मारे गये हैं। एक कन्या बची थी, किंतु वह भी कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें उड़ गयी। यह वृत्तान्त सुनकर मैं यदुपुरीसे धीरे-धीरे बाहर निकला॥ १२-१३॥

वृन्दावनमें कालिन्दीके सुन्दर एवं रमणीय तटपर विचरते हुए मैंने लताओंके समूहमें अकस्मात् एक शिशु देखा। राजन्! गोपोंके मध्य दूसरा कोई ऐसा बालक नहीं था, जिसके लक्षण उसके समान हों। उस बालकके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न था। उसकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम थी और वह वनमाला धारण किये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देता था॥ १४-१५॥

द्विभुजो गोपसूनुश्च परं त्वेतद्विलक्षणम्।
त्वया चतुर्भुजश्चोक्तो वसुदेवात्मजो हरिः॥ १६

किं कर्तव्यं वद नृप मुनिवाक्यं मृषा न हि।
यत्र यत्र यथेच्छा ते तत्र मां प्रेषय प्रभो॥ १७

श्रीनारद उवाच

इति चिन्तयतस्तस्य विस्मितस्य नृपस्य च।
गजाह्वयात्सिन्धुदेशाञ्जेतुं भीष्मः समागतः॥ १८

तं पूज्य विमलो राजा दत्त्वा तस्मै बलिं बहु।
पप्रच्छ सर्वाभिप्रायं भीष्मं धर्मभृतां वरम्॥ १९

विमल उवाच

याज्ञवल्क्येन पूर्वोक्तो मथुरायां हरिः स्वयम्।
वसुदेवस्य देवक्यां भविष्यति न संशयः॥ २०

न जातो वसुदेवस्य सकाशेऽद्य हरिः परः।
ऋषिवाक्यं मृषा न स्यात्कस्मै दास्यामि कन्यकाः॥ २१

महाभागवतः साक्षात्त्वं परावरवित्तमः।
जितेन्द्रियो बाल्यभावाद्वीरो धन्वी वसूत्तमः।
एतद्वद महाबुद्धे किं कर्तव्यं मयात्र वै॥ २२

श्रीनारद उवाच

विमलं प्राह गाङ्गेयो महाभागवतः कविः।
दिव्यदृग्धर्मतत्त्वज्ञः श्रीकृष्णस्य प्रभाववित्॥ २३

भीष्म उवाच

हे राजन् गुप्तमाख्यानं वेदव्यासमुखाच्छ्रुतम्।
सर्वपापहरं पुण्यं शृणु हर्षविवर्धनम्॥ २४

देवानां रक्षणार्थाय दैत्यानां हि वधाय च।
वसुदेवगृहे जातः परिपूर्णतमो हरिः॥ २५

अर्धरात्रे कंसभयान्नीत्वा शौरिश्च तं त्वरम्।
गत्वा च गोकुले पुत्रं निधाय शयने नृप॥ २६

परंतु अन्तर इतना ही है कि उस गोप-बालकके दो ही बाँहें थीं और आपने वसुदेवकुमार श्रीहरिको चतुर्भुज बताया था। नरेश्वर! बताइये, अब क्या करना चाहिये? क्योंकि मुनिकी बात झूठी नहीं हो सकती। प्रभो! जहाँ-जहाँ, जिस तरह आपकी इच्छा हो, उसके अनुसार वहाँ-वहाँ मुझे भेजिये॥ १६-१७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! राजा विमल जब इस प्रकार विस्मित होकर विचार कर रहे थे, उसी समय हस्तिनापुरसे सिन्धुदेशको जीतनेके लिये भीष्म आये॥ १८॥

राजा विमलने धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ पितामह भीष्मका आदर-सत्कारकर उन्हें प्रभूत मात्रामें उपहार दिये और उनसे याज्ञवल्क्यजीके वचनोंका अभिप्राय पूछा॥ १९॥

विमल बोले—महाबुद्धिमान् भीष्मजी! पहले याज्ञवल्क्यजीने मुझसे कहा था कि मथुरामें साक्षात् श्रीहरि वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे प्रकट होंगे, इसमें संशय नहीं है। परंतु इस समय वसुदेवके यहाँ परमेश्वर श्रीहरिका प्राकट्य नहीं हुआ है। साथ ही ऋषिकी बात झूठी हो नहीं सकती; अतः इस समय मैं अपनी कन्याओंका दान किसके हाथमें करूँ? आप साक्षात् महाभागवत हैं और पूर्वापरकी बातें जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। बचपनसे ही आपने इन्द्रियोंपर विजय पायी है। आप वीर, धनुर्धर एवं वसुओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये यह बताइये कि अब मुझे क्या करना चाहिये?॥ २०—२२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—गङ्गानन्दन भीष्मजी महान् भगवद्भक्त, विद्वान्, दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न, धर्मके तत्त्वज्ञ तथा श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले थे। उन्होंने राजा विमलसे कहा—॥ २३॥

भीष्मजी बोले—राजन्! यह एक गुप्त बात है, जिसे मैंने वेदव्यासजीके मुँहसे सुना था। यह प्रसङ्ग समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद तथा हर्षवर्धक है; इसे सुनो। परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरि देवताओंकी रक्षा तथा दैत्योंका वध करनेके लिये वसुदेवके घरमें अवतीर्ण हुए हैं॥ २४-२५॥

हे राजन्! किंतु आधी रातके समय वसुदेव कंसके भयसे उस बालकको लेकर तुरंत गोकुल चले

यशोदानन्दयोः पुत्रीं मायां नीत्वा पुरं ययौ।
ववृधे गोकुले कृष्णो गुप्तो ज्ञातो न कैर्नृभिः॥ २७

गये और वहाँ अपने पुत्रको यशोदाकी शय्यापर सुलाकर, यशोदा और नन्दकी पुत्री मायाको साथ ले, मथुरापुरीमें लौट आये। इस प्रकार श्रीकृष्ण गोकुलमें गुप्तरूपसे पलकर बड़े हुए हैं, यह बात दूसरे कोई भी मनुष्य नहीं जानते॥ २६-२७॥

सोऽद्यैव वृन्दकारण्ये हरिर्गोपालवेषधृक्।
एकादश समास्तत्र गूढो वासं करिष्यति।
दैत्यं कंसं घातयित्वा प्रकटः स भविष्यति॥ २८

अयोध्यापुरवासिन्यः श्रीरामस्य वराच्च याः।
ताः सर्वास्तव भार्यासु बभूवुः कन्यकाः शुभाः॥ २९

गूढाय देवदेवाय देयाः कन्यास्त्वया खलु।
न विलम्बः क्वचित्कार्यो देहः कालवशो ह्ययम्॥ ३०

वे ही गोपालवेषधारी श्रीहरि वृन्दावनमें ग्यारह वर्षोंतक गुप्तरूपसे वास करेंगे। फिर कंस-दैत्यका वध करके प्रकट हो जायँगे। अयोध्यापुरवासिनी जो नारियाँ श्रीरामचन्द्रजीके वरसे गोपीभावको प्राप्त हुई हैं, वे सब तुम्हारी पत्नियोंके गर्भसे सुन्दरी कन्याओंके रूपमें उत्पन्न हुई हैं। तुम उन गूढ़रूपमें विद्यमान देवाधिदेव श्रीकृष्णको अपनी समस्त कन्याएँ अवश्य दे दो। इस कार्यमें कदापि विलम्ब न करो; क्योंकि यह शरीर कालके अधीन है॥ २८—३०॥

इत्युक्त्वाथ गते भीष्मे सर्वज्ञे हस्तिनापुरम्।
दूतं स्वं प्रेषयामास विमलो नन्दसूनवे॥ ३१

यों कहकर जब सर्वज्ञ भीष्मजी हस्तिनापुरको चले गये, तब राजा विमलने नन्दनन्दनके पास अपना दूत भेजा॥ ३१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे अयोध्यापुरवासिन्युपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अयोध्यापुरवासिनी गोपिकाओंका उपाख्यान' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

राजा विमलका संदेश पाकर भगवान् श्रीकृष्णका उन्हें दर्शन और मोक्ष प्रदान करना तथा उनकी राजकुमारियोंको साथ लेकर व्रजमण्डलमें लौटना

श्रीनारद उवाच

अथ दूतः सिन्धुदेशान्माथुरान्पुनरागतः।
चरन् वृन्दावने कृष्णातीरे कृष्णं ददर्श ह॥ १

कृष्णं प्रणम्य रहसि कृताञ्जलिपुटः शनैः।
प्रदक्षिणीकृत्य दूतो विमलोक्तमुवाच सः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर दूत पुनः सिन्धुदेशसे मथुरा-मण्डलमें आया। वृन्दावनमें विचरते हुए यमुनाके तटपर उसको श्रीकृष्णका दर्शन हुआ। एकान्तमें श्रीकृष्णको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर और उनकी परिक्रमा करके उसने धीरे-धीरे राजा विमलकी कही हुई बात दुहरायी॥ १-२॥

दूत उवाच

स्वयं परं ब्रह्म परः परेशः
पैररदृश्यः परिपूर्णदेवः।
यः पुण्यसङ्घैः सततं हि दूर-
स्तस्मै नमः सज्जनगोचराय॥ ३

दूतने कहा—जो स्वयं परब्रह्म परमेश्वर हैं, सबसे परे और सबके द्वारा अदृश्य हैं, जो परिपूर्ण देव पुण्यकी राशिसे भी सदा दूर—ऊपर उठे हुए हैं, तथापि संतजनोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मेरा नमस्कार है॥ ३॥

गोविप्रदेवश्रुतिसाधुधर्म-
रक्षार्थमद्यैव यदोः कुलेऽजः।
जातोऽसि कंसादिवधाय योऽसौ
तस्मै नमोऽनन्तगुणार्णवाय॥ ४

अहो परं भाग्यमलं व्रजौकसां
धन्यं कुलं नन्दवरस्य ते पितुः।
धन्यो व्रजो धन्यमरण्यमेतद्
यत्रैव साक्षात्प्रकटः परो हरिः॥ ५

यद्राधिकासुन्दरकण्ठरत्नं
यद्गोपिकाजीवनमूलरूपम्।
तदेव मन्नेत्रपथि प्रजातं
किं वर्णये भाग्यमतः स्वकीयम्॥ ६

गुप्तो व्रजे गोपमिषेण चासि
कस्तूरिकामोद इव प्रसिद्धः।
यशश्च ते निर्मलमाशु शुक्ली-
करोति सर्वत्र गतं त्रिलोकीम्॥ ७

जानासि सर्वं जनचैत्त्यभावं
क्षेत्रज्ञ आत्मा कृतिवृन्दसाक्षी।
तथापि वक्ष्ये नृपवाक्यमुक्तं
परं रहस्यं रहसि स्वधर्मम्॥ ८

या सिन्धुदेशेषु पुरी प्रसिद्धा
श्रीचम्पका नाम शुभा यथैन्द्री।
तत्पालकोऽसौ विमलो यथेन्द्रः
त्वत्पादपद्मे कृतचित्तवृत्तिः॥ ९

सदा कृतं यज्ञशतं त्वदर्थं
दानं तपो ब्राह्मणसेवनं च।
तीर्थं जपं येन सुसाधनेन
तस्मै परं दर्शनमेव देहि॥ १०

तत्कन्यकाः पद्मविशालनेत्राः
पूर्णं पतिं त्वां मृगयन्त्य आरात्।
सदा त्वदर्थं नियमव्रतस्थाः
त्वत्पादसेवाविमलीकृताङ्गाः॥ ११

गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु पुरुष तथा धर्मकी रक्षाके लिये जो अजन्मा होनेपर भी इन दिनों कंसादि दैत्योंके वधके लिये यदुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, उन अनन्त गुणोंके महासागर आप श्रीहरिको मेरा नमस्कार है। अहो! व्रजवासियोंका बहुत बड़ा सौभाग्य है। आपके पिता नन्दराजका कुल धन्य है, यह व्रजमण्डल तथा यह वृन्दावन धन्य हैं, जहाँ आप परमेश्वर श्रीहरि साक्षात् प्रकट हैं॥ ४-५॥

प्रभो! आप श्रीराधारानीके कण्ठमें सुशोभित सुन्दर (नीलमणिमय) हार हैं और गोपियोंके प्राणस्वरूप हैं, ऐसे आप आज मेरे नेत्रोंके समक्ष उपस्थित हैं, इससे अधिक मेरा और कौन-सा सौभाग्य होगा, जिसका कि मैं वर्णन करूँ। आप भले ही इस व्रजमण्डलमें गोपवेशमें छिपे हुए हैं, पर कस्तूरीकी सुगन्धकी भाँति सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और आपका सर्वत्र फैला हुआ निर्मल यश सम्पूर्ण त्रिलोकीको तत्काल श्वेत किये देता है। आप लोगोंके चित्तका सम्पूर्ण अभिप्राय जानते हैं; क्योंकि आप समस्त क्षेत्रोंके ज्ञाता आत्मा हैं और कर्मराशिके साक्षी हैं॥ ६—७ $^1/_2$ ॥

तथापि राजा विमलने जो परम रहस्यकी और स्वधर्मसे सम्बद्ध बात कही है, उसको मैं आपसे एकान्तमें बताऊँगा। सिन्धुदेशमें जो चम्पका नामसे प्रसिद्ध इन्द्रपुरीके समान सुन्दर नगरी है, उसके पालक राजा विमल देवराज इन्द्रके समान ऐश्वर्यशाली हैं। उनकी चित्तवृत्ति सदा आपके चरणारविन्दोंमें लगी रहती है। उन्होंने आपकी प्रसन्नताके लिये सदा सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा दान, तप, ब्राह्मणसेवा, तीर्थसेवन और जप आदि किये हैं। उनके इन उत्तम साधनोंको निमित्त बनाकर आप उन्हें अपना सर्वोत्कृष्ट दर्शन अवश्य दीजिये॥ ८—१०॥

उनकी बहुत-सी कन्याएँ हैं, जो प्रफुल्ल कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंसे सुशोभित हैं और आप पूर्ण परमेश्वरको पतिरूपमें अपने निकट पानेके शुभ अवसरकी प्रतीक्षा करती हैं। वे राजकुमारियाँ सदा आपकी प्राप्तिके लिये नियमों और व्रतोंके पालनमें

गृहाण तासां व्रजदेव पाणीन्
दत्वा परं दर्शनमद्भुतं स्वम्।
गच्छाशु सिन्धून् विशदीकुरु त्वं
विमृश्य कर्तव्यमिदं त्वया हि॥ १२

श्रीनारद उवाच

दूतवाक्यं च तच्छ्रुत्वा प्रसन्नो भगवान् हरिः।
क्षणमात्रेण गतवान् सदूतश्चम्पकां पुरीम्॥ १३

विमलस्य महायज्ञे वेदध्वनिसमाकुले।
सदूतः कृष्ण आकाशात्सहसावततार ह॥ १४

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं सुन्दरं वनमालिनम्।
पीताम्बरं पद्मनेत्रं यज्ञवाटागतं हरिम्॥ १५

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय विमलः प्रेमविह्वलः।
पपात चरणोपान्ते रोमाञ्ची सन् कृताञ्जलिः॥ १६

संस्थाप्य पीठके दिव्ये रत्नहेमखचित्पदे।
स्तुत्वा सम्पूज्य विधिवद्राजा तत्सम्मुखे स्थितः॥ १७

गवाक्षेभ्यः प्रपश्यन्तीः सुन्दरीर्वीक्ष्य माधवः।
उवाच विमलं कृष्णो मेघगम्भीरया गिरा॥ १८

श्रीभगवानुवाच

महामते वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते।
याज्ञवल्क्यस्य वचसा जातं मद्दर्शनं तव॥ १९

विमल उवाच

मनो मे भ्रमरीभूतं सदा त्वत्पादपङ्कजे।
वासं कुर्याद्देवदेव नान्येच्छा मे कदाचन॥ २०

तत्पर हैं तथा आपके चरणोंकी सेवासे उनके तन, मन निर्मल हो गये हैं। व्रजके देवता! आप अपना उत्तम और अद्भुत दर्शन देकर उन सब राजकन्याओंका पाणिग्रहण कीजिये। इस समय आपके समक्ष जो यह कर्तव्य प्राप्त हुआ है, इसका विचार करके आप सिन्धुदेशमें चलिये और वहाँके लोगोंको अपने पावन दर्शनसे विशुद्ध कीजिये॥ ११-१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस दूतकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीहरि बड़े प्रसन्न हुए और क्षणभरमें दूतके साथ ही चम्पकापुरीमें जा पहुँचे। उस समय राजा विमलका महान् यज्ञ चालू था। उसमें वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूँज रही थी। दूतसहित भगवान् श्रीकृष्ण सहसा आकाशसे उस यज्ञमें उतरे॥ १३-१४॥

वक्षःस्थलमें श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित, मेघके समान श्याम कान्तिधारी, सुन्दर, वनमालालंकृत, पीतपटावृत कमलनयन श्रीहरिको यज्ञभूमिमें आया देख राजा विमल सहसा उठकर खड़े हो गये और प्रेमसे विह्वल हो, दोनों हाथ जोड़ उनके चरणोंके समीप गिर पड़े। उस समय उनके अङ्ग-अङ्गमें रोमाञ्च हो आया था। फिर उठकर राजाने रत्न और सुवर्णसे जटित दिव्य सिंहासनपर भगवान्‌को बिठाया, उनका स्तवन किया तथा विधिवत् पूजन करके वे उनके सामने खड़े हो गये। खिड़कियोंसे झाँककर देखती हुई सुन्दरी राजकुमारियोंकी ओर दृष्टिपात करके माधव श्रीकृष्णने मेघके समान गम्भीर वाणीमें राजा विमलसे कहा॥ १५—१८॥

श्रीभगवान् बोले—महामते! तुम्हारे मनमें जो वाञ्छनीय हो, वह वर मुझसे माँगो। महामुनि याज्ञवल्क्यके वचनसे ही इस समय तुम्हें मेरा दर्शन हुआ है॥ १९॥

विमलने कहा—देवदेव! मेरा मन आपके चरणारविन्दमें भ्रमर होकर निवास करे, यही मेरी इच्छा है। इसके सिवा दूसरी कोई अभिलाषा कभी मेरे मनमें नहीं होती॥ २०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा विमलो राजा सर्वं कोशधनं महत्।
द्विपवाजिरथैः सार्धं चक्रे आत्मनिवेदनम्॥ २१

श्रीनारदजी कहते हैं—यों कहकर राजा विमलने अपना सारा कोश और महान् वैभव हाथी, घोड़े एवं रथोंके साथ श्रीकृष्णार्पण कर दिया। अपने-आपको भी उनके चरणोंकी भेंट कर दिया॥ २१॥

समर्प्य विधिना सर्वाः कन्यका हरये नृप।
नमश्चकार कृष्णाय विमलो भक्तितत्परः॥ २२

तदा जयजयारावो बभूव जनमण्डले।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि देवता गगनस्थिताः॥ २३

नरेश्वर! अपनी समस्त कन्याओंको विधिपूर्वक श्रीहरिके हाथोंमें समर्पित करके भक्ति-विह्वल राजा विमलने श्रीकृष्णको नमस्कार किया। उस समय जन-मण्डलमें जय-जयकारका शब्द गूँज उठा और आकाशमें खड़े हुए देवताओंने वहाँ दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की॥ २२-२३॥

तदैव कृष्णसारूप्यं प्राप्तोऽनङ्गस्फुरद्द्युतिः।
शतसूर्यप्रतीकाशो द्योतयन् मण्डलं दिशाम्॥ २४

फिर उसी समय राजा विमलको भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त हो गया। उनकी अङ्गकान्ति कामदेवके समान प्रकाशित हो उठी। शत सूर्योंके समान तेज धारण किये वे दिशामण्डलको उद्भासित करने लगे॥ २४॥

वैनतेयं समारुह्य नत्वा श्रीगरुडध्वजम्।
सभार्यः पश्यतां नृणां वैकुण्ठं विमलो ययौ॥ २५

उस यज्ञमें उपस्थित सम्पूर्ण मनुष्योंके देखते-देखते पत्नियोंसहित राजा विमल गरुड़पर आरूढ़ हो भगवान् श्रीगरुड़ध्वजको नमस्कार करके वैकुण्ठ-लोकमें चले गये॥ २५॥

दत्वा मुक्तिं नृपतये श्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
तत्सुताः सुन्दरीर्नीत्वा व्रजमण्डलमाययौ॥ २६

इस प्रकार राजाको मोक्ष प्रदान करके स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उनकी सुन्दरी कुमारियोंको साथ ले, व्रजमण्डलमें आ गये॥ २६॥

तत्र कामवने रम्ये दिव्यमन्दिरसंयुते।
क्रीडन्त्यः कन्दुकैः सर्वास्तस्थुः कृष्णप्रियाः शुभाः॥ २७

वहाँ रमणीय कामवनमें, जो दिव्य मन्दिरोंसे सुशोभित था, वे सुन्दरी कृष्णप्रियाएँ आकर रहने लगीं और भगवान्‌के साथ कन्दुक-क्रीड़ासे मन बहलाने लगीं॥ २७॥

यावतीश्च प्रिया मुख्यास्तावद्रूपधरो हरिः।
रराज रासे व्रजराड् रञ्जयंस्तन्मनः प्रभुः॥ २८

जितनी संख्यामें वे श्रीकृष्णप्रिया सखियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके सुन्दर व्रजराज श्रीकृष्ण रासमण्डलमें उनका मनोरञ्जन करते हुए विराजमान हुए॥ २८॥

रासे विमलपुत्रीणामानन्दजलबिन्दुभिः।
च्युतैर्विमलकुण्डोऽभूत्तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्॥ २९

उस रासमण्डलमें उन विमलकुमारियोंके नेत्रोंसे जो आनन्दजनित जलबिन्दु च्युत होकर गिरे, उन सबसे वहाँ 'विमलकुण्ड' नामक तीर्थ प्रकट हो गया, जो सब तीर्थोंमें उत्तम है॥ २९॥

दृष्ट्वा पीत्वा च तं स्नात्वा पूजयित्वा नृपेश्वर।
छित्त्वा मेरुसमं पापं गोलोकं याति मानवः॥ ३०

नृपेश्वर! विमलकुण्डका दर्शन करके, उसका जल पीकर तथा उसमें स्नान-पूजन करके मनुष्य मेरुपर्वतके समान विशाल पापको भी नष्ट कर डालता और गोलोकधाममें जाता है॥ ३०॥

अयोध्यावासिनीनां तु कथां यः शृणुयान्नरः।
स व्रजेद्धाम परमं गोलोकं योगिदुर्लभम्॥ ३१

जो मनुष्य अयोध्यावासिनी गोपियोंके इस कथानकको सुनेगा, वह योगिदुर्लभ परमधाम गोलोकमें जायगा॥ ३१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे अयोध्यापुरवासिन्युपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अयोध्यापुरवासिनी गोपियोंका उपाख्यान' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

यज्ञसीतास्वरूपा गोपियोंके पूछनेपर श्रीराधाका श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये एकादशी-व्रतका अनुष्ठान बताना और उसके विधि, नियम और माहात्म्यका वर्णन करना

श्रीनारद उवाच

गोपीनां यज्ञसीतानामाख्यानं शृणु मैथिल।
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं मङ्गलायनम्॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब यज्ञ-सीतास्वरूपा गोपियोंका वर्णन सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक, कामनापूरक तथा मङ्गलका धाम है॥ १॥

उशीनरो नाम देशो दक्षिणस्यां दिशि स्थितः।
एकदा तत्र पर्जन्यो न ववर्ष समा दश॥ २

धनवन्तस्तत्र गोपा अनावृष्टिभयातुराः।
सकुटुम्बा गोधनैश्च व्रजमण्डलमाययुः॥ ३

पुण्ये वृन्दावने रम्ये कालिन्दीनिकटे शुभे।
नन्दराजसहायेन वासं ते चक्रिरे नृप॥ ४

तेषां गृहेषु सञ्जाता यज्ञसीताश्च गोपिकाः।
श्रीरामस्य वराद् दिव्या दिव्ययौवनभूषिताः॥ ५

श्रीकृष्णं सुन्दरं दृष्ट्वा मोहितास्ता नृपेश्वर।
व्रतं कृष्णप्रसादार्थं प्रष्टुं राधां समाययुः॥ ६

दक्षिण दिशामें उशीनर नामसे प्रसिद्ध एक देश है, जहाँ एक समय दस वर्षोंतक इन्द्रने वर्षा नहीं की। उस देशमें जो गोधनसे सम्पन्न गोप थे, वे अनावृष्टिके भयसे व्याकुल हो अपने कुटुम्ब और गोधनोंके साथ व्रजमण्डलमें आ गये। नरेश्वर! नन्दराजकी सहायतासे वे पवित्र वृन्दावनमें यमुनाके सुन्दर एवं सुरम्य तटपर वास करने लगे। भगवान् श्रीरामके वरसे यज्ञसीता-स्वरूपा गोपाङ्गनाएँ उन्हींके घरोंमें उत्पन्न हुईं। उन सबके शरीर दिव्य थे तथा वे दिव्य यौवनसे विभूषित थीं। नृपेश्वर! एकदिन वे सुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन करके मोहित हो गयीं और श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई व्रत पूछनेके उद्देश्यसे श्रीराधाके पास गयीं॥ २—६॥

गोप्य ऊचुः

वृषभानुसुते दिव्ये हे राधे कञ्जलोचने।
श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थं वद किञ्चिद्व्रतं शुभम्॥ ७

तव वश्यो नन्दसूनुर्देवैरपि सुदुर्गमः।
त्वं जगन्मोहिनी राधे सर्वशास्त्रार्थपारगा॥ ८

गोपियाँ बोलीं—दिव्यस्वरूपे, कमललोचने, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधे! आप हमें श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई शुभव्रत बतायें। जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं, वे श्रीनन्दनन्दन तुम्हारे वशमें रहते हैं। राधे! तुम विश्वमोहिनी हो और सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत भी हो॥ ७-८॥

श्रीराधोवाच

श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थं कुरुतैकादशीव्रतम्।
तेन वश्यो हरिः साक्षाद्भविष्यति न संशयः॥ ९

गोप्य ऊचुः

संवत्सरस्यैकादश्या नामानि वद राधिके।
मासे मासे व्रतं तस्याः कर्तव्यं केन भावतः॥ १०

श्रीराधोवाच

मार्गशीर्षे कृष्णपक्षे उत्पन्ना विष्णुदेहतः।
मुखे दैत्यवधार्थाय तिथिरेकादशी वरा॥ ११

मासे मासे पृथग्भूता सैव सर्वव्रतोत्तमा।
तस्याः षड्विंशतिं नाम्नां वक्ष्यामि हितकाम्यया॥ १२

उत्पत्तिश्च तथा मोक्षा सफला च ततः परम्।
पुत्रदा षट्तिला चैव जया च विजया तथा॥ १३

आमलकी ततः पश्चान्नाम्ना वै पापमोचनी।
कामदा च ततः पश्चात्कथिता वै वरूथिनी॥ १४

मोहिनी चापरा प्रोक्ता निर्जला कथिता ततः।
योगिनी देवशयनी कामिनी च ततः परम्॥ १५

पवित्रा चाप्यजा पद्मा इन्दिरा च ततः परम्।
पापाङ्कुशा रमा चैव ततः पश्चात्प्रबोधिनी॥ १६

सर्वसम्पत्प्रदा चैव द्वे प्रोक्ते मलमासजे।
एवं षड्विंशतिं नाम्नामेकादश्याः पठेच्च यः॥ १७

संवत्सरद्वादशीनां फलमाप्नोति सोऽपि हि।
एकादश्याश्च नियमं शृणुताथ व्रजाङ्गनाः।
भूमिशायी दशम्यां तु चैकभुक्तो जितेन्द्रियः॥ १८

एकवारं जलं पीत्वा धौतवस्त्रोऽतिनिर्मलः।
ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय चैकादश्यां हरिं नतः॥ १९

अधमं कूपिकास्नानं वाप्यां स्नानं तु मध्यमम्।
तडागे चोत्तमं स्नानं नद्याः स्नानं ततः परम्॥ २०

श्रीराधाने कहा—[प्यारी बहनो!] श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये तुम सब एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे साक्षात् श्रीहरि तुम्हारे वशमें हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

गोपियोंने पूछा—राधिके! पूरे वर्षभरकी एकादशियोंके क्या नाम हैं, यह बताओ। प्रत्येक मासमें एकादशीका व्रत किस भावसे करना चाहिये?॥ १०॥

श्रीराधाने कहा—गोपकुमारियो! मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षमें भगवान् विष्णुके शरीरसे—मुख्यतः उनके मुखसे एक असुरका वध करनेके लिये एकादशीकी उत्पत्ति हुई, अतः वह तिथि अन्य सब तिथियोंसे श्रेष्ठ है। प्रत्येक मासमें पृथक्-पृथक् एकादशी होती है। वही सब व्रतोंमें उत्तम है। मैं तुम सबोंके हितकी कामनासे उस तिथिके छब्बीस नाम बता रही हूँ। (मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशीसे आरम्भ करके कार्तिक शुक्ला एकादशीतक चौबीस एकादशी तिथियाँ होती हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—) उत्पन्ना, मोक्षा, सफला, पुत्रदा, षट्तिला, जया, विजया, आमलकी, पापमोचनी, कामदा, वरूथिनी, मोहिनी, अपरा, निर्जला, योगिनी, देवशयनी, कामिनी, पवित्रा, अजा, पद्मा, इन्दिरा, पापाङ्कुशा, रमा तथा प्रबोधिनी। दो एकादशी तिथियाँ मलमासकी होती हैं। उन दोनोंका नाम सर्वसम्पत्प्रदा है। इस प्रकार जो एकादशीके छब्बीस नामोंका पाठ करता है, वह भी वर्षभरकी द्वादशी (एकादशी) तिथियोंके व्रतका फल पा लेता है॥ ११—१७१/२॥

व्रजाङ्गनाओ! अब एकादशी-व्रतके नियम सुनो! मनुष्यको चाहिये कि वह दशमीको एकही समय भोजन करे और रातमें जितेन्द्रिय रहकर भूमिपर शयन करे। जल भी एक ही बार पीये। धुला हुआ वस्त्र पहने और तन-मनसे अत्यन्त निर्मल रहे। फिर ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर एकादशीको श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करे। तदनन्तर शौचादिसे निवृत्त हो स्नान करे। कुएँका स्नान सबसे निम्नकोटिका है, बावड़ीका स्नान मध्यम-कोटिका है, तालाब और पोखरेका स्नान उत्तम श्रेणीमें गिना गया है और नदीका स्नान उससे भी उत्तम है॥ १८—२०॥

एवं स्नात्वा नरवरः क्रोधलोभविवर्जितः।
नालपेत्तद्दिने नीचांस्तथा पाखण्डिनो नरान्॥ २१

मिथ्यावादरतांश्चैव तथा ब्राह्मणनिन्दकान्।
अन्यांश्चैव दुराचारानगम्यागमने रतान्॥ २२

परद्रव्यापहारांश्च परदाराभिगामिनः।
दुर्वृत्तान् भिन्नमर्यादान्नालपेत्स व्रती नरः॥ २३

केशवं पूजयित्वा तु नैवेद्यं तत्र कारयेत्।
दीपं दद्याद्गृहे तत्र भक्तियुक्तेन चेतसा॥ २४

कथाः श्रुत्वा ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्सद्दक्षिणां पुनः।
रात्रौ जागरणं कुर्याद्गायन् कृष्णपदानि च॥ २५

कांस्यं मांसं मसूरांश्च कोद्रवं चणकं तथा।
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुनम्॥ २६

विष्णुव्रते च कर्तव्ये दशम्यां दश वर्जयेत्।
द्यूतं क्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम्॥ २७

परापवादं पैशून्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम्।
क्रोधाढ्यं ह्यनृतं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत्॥ २८

कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम्।
पिष्टिषष्टिमसूरांश्च द्वादश्यां परिवर्जयेत्॥ २९

अनेन विधिना कुर्याद्द्वादशीव्रतमुत्तमम्॥ ३०

गोप्य ऊचुः

एकादशीव्रतस्यास्य कालं वद महामते।
किं फलं वद तस्यास्तु माहात्म्यं वद तत्त्वतः॥ ३१

श्रीराधोवाच

दशमीपञ्चपञ्चाशद्घटिका चेत्प्रदृश्यते।
तर्हि चैकादशी त्याज्या द्वादशीं समुपोषयेत्॥ ३२

दशमी पलमात्रेण त्याज्या चैकादशी तिथिः।
मदिराबिन्दुपातेन त्याज्यो गङ्गाघटो यथा॥ ३३

एकादशी यदा वृद्धिं द्वादशी च यदा गता।
तदा परा ह्युपोष्या स्यान्न पूर्वा द्वादशीव्रते॥ ३४

इस प्रकार स्नान करके व्रत करनेवाला नरश्रेष्ठ क्रोध और लोभका त्याग करके उस दिन नीचों और पाखण्डी मनुष्योंसे बात न करे। जो असत्यवादी, ब्राह्मणनिन्दक, दुराचारी, अगम्या स्त्रीके साथ समागममें रत रहनेवाले, परधनहारी, परस्त्रीगामी, दुर्वृत्त तथा मर्यादाका भङ्ग करनेवाले हैं, उनसे भी व्रती मनुष्य बात न करे॥ २१—२३॥

मन्दिरमें भगवान् केशवका पूजन करके वहाँ नैवेद्य लगवाये और भक्तियुक्त चित्तसे दीपदान करे। ब्राह्मणोंसे कथाएँ सुनकर उन्हें उत्तम दक्षिणा दे, रातको जागरण करे और श्रीकृष्ण-सम्बन्धी पदोंका गान एवं कीर्तन करे॥ २४-२५॥

वैष्णवव्रत (एकादशी)-का पालन करना हो तो दशमीको काँसेका पात्र, मांस, मसूर, कोदो, चना, साग, शहद, पराया अन्न, दुबारा भोजन तथा मैथुन—इन दस वस्तुओंको त्याग दे। जुएका खेल, निद्रा, ताम्बूल-सेवन, दन्तधावन, परनिन्दा, चुगली, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध और असत्यभाषण—एकादशीको इन ग्यारह वस्तुओंका त्याग कर देना चाहिये। काँसेका पात्र, मांस, मद्य, शहद, तेल, मिथ्याभाषण, पिट्ठी, साठीका चावल और मसूर आदिका द्वादशीको सेवन न करे। इस विधिसे उत्तम एकादशीव्रतका अनुष्ठान करे॥ २६—३०॥

गोपियाँ बोलीं—परमबुद्धिमती श्रीराधे! एकादशीव्रतका समय बताओ। उससे क्या फल होता है, यह भी कहो तथा एकादशीके माहात्म्यका भी यथार्थरूपसे वर्णन करो॥३१॥

श्रीराधाने कहा—यदि दशमी पचपन घड़ी (दण्ड)-तक देखी जाती हो तो वह एकादशी त्याज्य है। फिर तो द्वादशीको ही उपवास करना चाहिये। यदि पलभर भी दशमीसे वेध प्राप्त हो तो वह सम्पूर्ण एकादशी तिथि त्याग देनेयोग्य है—ठीक उसी तरह, जैसे मदिराकी एक बूँद भी पड़ जाय तो गङ्गाजलसे भरा हुआ कलश त्याज्य हो जाता है। यदि एकादशी बढ़कर द्वादशीके दिन भी कुछ कालतक विद्यमान हो तो दूसरे दिनवाली एकादशी ही व्रतके योग्य है। पहली एकादशीको उस व्रतमें उपवास नहीं करना चाहिये॥ ३२—३४॥

एकादशीव्रतस्यास्य फलं वक्ष्ये व्रजाङ्गनाः।
यस्य श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत्॥ ३५

अष्टाशीतिसहस्राणि द्विजान् भोजयते तु यः।
तत्कृतं फलमाप्नोति द्वादशीव्रतकृन्नरः॥ ३६

ससागरवनोपेतां यो ददाति वसुन्धराम्।
तत्सहस्रगुणं पुण्यमेकादश्या महाव्रते॥ ३७

ये संसारार्णवे मग्नाः पापपङ्कसमाकुले।
तेषामुद्धरणार्थाय द्वादशीव्रतमुत्तमम्॥ ३८

रात्रौ जागरणं कृत्वैकादशीव्रतकृन्नरः।
न पश्यति यमं रौद्रं युक्तः पापशतैरपि॥ ३९

पूजयेद्यो हरिं भक्त्या द्वादश्यां तुलसीदलैः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ ४०

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ४१

दश वै मातृके पक्षे तथा वै दश पैतृके।
प्रियाया दश पक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः॥ ४२

यथा शुक्ला तथा कृष्णा द्वयोश्च सदृशं फलम्।
धेनुः श्वेता तथा कृष्णा उभयोः सदृशं पयः॥ ४३

मेरुमन्दरमात्राणि पापानि शतजन्मसु।
एका चैकादशी गोप्यो दहते तूलराशिवत्॥ ४४

विधिवद्विधिहीनं वा द्वादश्यां दानमेव च।
स्वल्पं वा सुकृतं गोप्यो मेरुतुल्यं भवेच्च तत्॥ ४५

एकादशीदिने विष्णोः शृणुते यो हरेः कथाम्।
सप्तद्वीपवतीदाने यत्फलं लभते च सः॥ ४६

व्रजाङ्गनाओ! अब मैं तुम्हें इस एकादशी-व्रतका फल बता रही हूँ, जिसके श्रवणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। जो अट्ठासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको एकादशीका व्रत करनेवाला मनुष्य उस व्रतके पालन-मात्रसे पा लेता है। जो समुद्र और वनोंसहित सारी वसुंधराका दान करता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यसे भी हजारगुना पुण्य एकादशीके महान् व्रतका अनुष्ठान करनेसे सुलभ हो जाता है॥ ३५—३७॥

जो पापपङ्कसे भरे हुए संसार-सागरमें डूबे हैं, उनके उद्धारके लिये एकादशीका व्रत ही सर्वोत्तम साधन है। रात्रिकालमें जागरणपूर्वक एकादशी-व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य यदि सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी यमराजके रौद्ररूपका दर्शन नहीं करता। जो द्वादशीको तुलसीदलसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिका पूजन करता है, वह जलसे कमलपत्रकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता॥ ३८—४०॥

सहस्रों अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूययज्ञ भी एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर नहीं हो सकते। एकादशीका व्रत करनेवाला मनुष्य मातृकुलकी दस, पितृकुलकी दस तथा पत्नीके कुलकी दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जैसी शुक्लपक्षकी एकादशी है, वैसी ही कृष्णपक्षकी भी है; दोनोंका समान फल है। दुधारू गाय जैसी सफेद वैसी काली—दोनोंका दूध एक-सा ही होता है। गोपियो! मेरु और मन्दराचलके बराबर बड़े-बड़े सौ जन्मोंके पाप एक ओर और एक ही एकादशीका व्रत दूसरी ओर हो तो वह उन पर्वतोपम पापोंको उसी प्रकार जलाकर भस्म कर देती है, जैसे आगकी चिनगारी रूईके ढेरको दग्ध कर देती है॥ ४१—४४॥

गोपाङ्गनाओ! विधिपूर्वक हो या अविधिपूर्वक, यदि द्वादशीको थोड़ा-सा भी दान कर दिया जाय तो वह मेरुपर्वतके समान महान् हो जाता है। जो एकादशीके दिन भगवान् विष्णुकी कथा सुनता है, वह सात द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीके दानका फल पाता है॥ ४५-४६॥

शङ्खोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम्।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥ ४७

प्रभासे च कुरुक्षेत्रे केदारे बद्रिकाश्रमे।
काश्यां च सूकरक्षेत्रे ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥ ४८

सङ्क्रान्तीनां चतुर्लक्षं दानं दत्तं च यन्नरैः।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥ ४९

नागानां च यथा शेषः पक्षिणां गरुडो यथा।
देवानां च यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा॥ ५०

वृक्षाणां च यथाश्वत्थः पत्राणां तुलसी यथा।
व्रतानां च तथा गोप्यो वरा चैकादशी तिथिः॥ ५१

दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्यति यो नरः।
तत्तुल्यं फलमाप्नोति द्वादशीव्रतकृन्नरः॥ ५२

इत्थमेकादशीनां च फलमुक्तं व्रजाङ्गनाः।
कुरुताशु व्रतं यूयं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥ ५३

यदि मनुष्य शङ्खोद्धारतीर्थमें स्नान करके गदाधर देवके दर्शनका महान् पुण्य संचित कर ले तो भी वह पुण्य एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं कर सकता है। प्रभास, कुरुक्षेत्र, केदार, बदरिकाश्रम, काशी तथा सूकरक्षेत्रमें चन्द्रग्रहण, सूर्य-ग्रहण तथा चार लाख संक्रान्तियोंके अवसरपर मनुष्योंद्वारा जो दान दिया गया हो, वह भी एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर नहीं है॥ ४७—४९॥

गोपियो! जैसे नागोंमें शेष, पक्षियोंमें गरुड़, देवताओंमें विष्णु, वर्णोंमें ब्राह्मण, वृक्षोंमें पीपल तथा पत्रोंमें तुलसीदल सबसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार व्रतोंमें एकादशी तिथि सर्वोत्तम है। जो मनुष्य दसहजार वर्षोंतक घोर तपस्या करता है, उसके समान ही फल वह मनुष्य भी पा लेता है, जो एकादशीका व्रत करता है। व्रजाङ्गनाओ! इस प्रकार मैंने तुमसे एकादशियोंके फलका वर्णन किया। अब तुम शीघ्र इस व्रतको आरम्भ करो। बताओ, अब और क्या सुनना चाहती हो?॥ ५०—५३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यज्ञसीतोपाख्याने एकादशीमाहात्म्यं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें यज्ञसीताओंके उपाख्यानमें 'एकादशी-माहात्म्य' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

पूर्वकालमें एकादशीका व्रत करके मनोवाञ्छित फल पानेवाले पुण्यात्माओंका परिचय तथा यज्ञसीतास्वरूपा गोपिकाओंको एकादशी-व्रतके प्रभावसे श्रीकृष्ण-सांनिध्यकी प्राप्ति

गोप्य ऊचुः

वृषभानुसुते सुभ्रु सर्वशास्त्रार्थपारगे।
विडम्बयन्ती त्वं वाचा वाचं वाचस्पतेर्मुनेः॥ १

एकादशीव्रतं राधे केन केन पुरा कृतम्।
तद्ब्रूहि नो विशेषेण त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः॥ २

श्रीराधोवाच

आदौ देवैः कृतं गोप्यो वरमेकादशीव्रतम्।
भ्रष्टराज्यस्य लाभार्थं दैत्यानां नाशनाय च॥ ३

गोपियाँ बोलीं—सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत सुन्दरी वृषभानु-नन्दिनी! तुम अपनी वाणीसे बृहस्पतिमुनिकी वाणीका अनुकरण करती हो। राधे! यह एकादशी-व्रत पहले किसने किया था? यह हमें विशेषरूपसे बताओ; क्योंकि तुम साक्षात् ज्ञानकी निधि हो॥ १-२॥

श्रीराधाने कहा—गोपियो! सबसे पहले देवताओंने अपने छीने गये राज्यकी प्राप्ति तथा दैत्योंके विनाशके लिये श्रेष्ठ एकादशीव्रतका अनुष्ठान किया था॥ ३॥

वैशन्तेन पुरा राज्ञा कृतमेकादशीव्रतम्।
स्वपितुस्तारणार्थाय यमलोकगतस्य च॥ ४

अकस्माल्लुम्पकेनापि ज्ञातित्यक्तेन पापिना।
एकादशी कृता येन राज्यं लेभे स लुम्पकः॥ ५

भद्रावत्यां केतुमता कृतमेकादशीव्रतम्।
पुत्रहीनेन सद्वाक्यात्पुत्रं लेभे स मानवः॥ ६

ब्राह्मण्यै देवपत्नीभिर्दत्तमेकादशीव्रतम्।
तेन लेभे स्वर्गसौख्यं धनधान्यं च मानुषी॥ ७

पुष्पदन्तीमाल्यवन्तौ शक्रशापात्पिशाचताम्।
प्राप्तौ कृतं व्रतं ताभ्यां पुनर्गन्धर्वतां गतौ॥ ८

पुरा श्रीरामचन्द्रेण कृतमेकादशीव्रतम्।
समुद्रे सेतुबन्धार्थं रावणस्य वधाय च॥ ९

लयान्ते च समुत्पन्नधातृवृक्षतले सुराः।
एकादशीव्रतं चक्रुः सर्वकल्याणहेतवे॥ १०

व्रतं चकार मेधावी द्वादश्याः पितृवाक्यतः।
अप्सरःस्पर्शदोषेण मुक्तोऽभून्निर्मलद्युतिः॥ ११

गन्धर्वो ललितः पत्न्या गतः शापात्स रक्षताम्।
एकादशीव्रतेनापि पुनर्गन्धर्वतां गतः॥ १२

एकादशीव्रतेनापि मान्धाता स्वर्गतिं गतः।
सगरश्च ककुत्स्थश्च मुचुकुन्दो महामतिः॥ १३

धुन्धुमारादयश्चान्ये राजानो बहवस्तथा।
ब्रह्मकपालनिर्मुक्तो बभूव भगवान् भवः॥ १४

धृष्टबुद्धिर्वैश्यपुत्रो ज्ञातित्यक्तो महाखलः।
एकादशीव्रतं कृत्वा वैकुण्ठं स जगाम ह॥ १५

राज्ञा रुक्माङ्गदेनापि कृतमेकादशीव्रतम्।
तेन भूमण्डलं भुक्त्वा वैकुण्ठं सपुरो ययौ॥ १६

राजा वैशन्तने पूर्वकालमें यमलोकगत पिताके उद्धारके लिये एकादशी-व्रत किया था। लुम्पक नामके एक राजाको उसके पापके कारण कुटुम्बी-जनोंने अकस्मात् त्याग दिया था। लुम्पकने भी एकादशीका व्रत किया और उसके प्रभावसे अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया। भद्रावती नगरीमें मनुके वंशज पुत्रहीन राजा केतुमान्ने संतोंके कहनेसे एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया और उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हो गयी॥ ४—६॥

एक ब्राह्मणीको देवपत्नियोंने एकादशी-व्रतका पुण्य प्रदान किया, जिससे उस मानवीने धन-धान्य तथा स्वर्गका सुख प्राप्त किया। पुष्पदन्ती और माल्यवान्—दोनों इन्द्रके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हो गये थे। उन दोनोंने एकादशीका व्रत किया और उसके पुण्य-प्रभावसे उन्हें पुनः गन्धर्वत्वकी प्राप्ति हो गयी। पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रपर सेतु बाँधने तथा रावणका वध करनेके लिये एकादशीका व्रत किया था॥ ७—९॥

प्रलयके अन्तमें उत्पन्न हुए आँवलेके वृक्षके नीचे बैठकर देवताओंने सबके कल्याणके लिये एकादशीका व्रत किया था। पिताकी आज्ञासे मेधावीने एकादशीका व्रत किया, जिससे वे अप्सराके साथ सम्पर्कके दोषसे मुक्त हो निर्मल तेजसे सम्पन्न हो गये। ललित-नामक गन्धर्व अपनी पत्नीके साथ ही शापवश राक्षस हो गया था, किंतु एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे उसने पुनः गन्धर्वत्व प्राप्त कर लिया। एकादशीके व्रतसे ही राजा मांधाता, सगर, ककुत्स्थ और महामति मुचुकुन्द पुण्यलोकको प्राप्त हुए॥ १०—१३॥

धुन्धुमार आदि अन्य बहुत-से राजाओंने भी एकादशी-व्रतके प्रभावसे ही सद्गति प्राप्त की तथा भगवान् शंकर ब्रह्मकपालसे मुक्त हुए। कुटुम्बीजनोंसे परित्यक्त महादुष्ट वैश्य-पुत्र धृष्टबुद्धि एकादशीव्रत करके ही वैकुण्ठलोकमें गया था। राजा रुक्माङ्गदने भी एकादशीका व्रत किया था और उसके प्रभावसे भूमण्डलका राज्य भोगकर वे पुरवासियोंसहित वैकुण्ठलोकमें पधारे थे॥ १४—१६॥

अम्बरीषेण राज्ञापि कृतमेकादशीव्रतम्।
नास्पृशद्‌ब्रह्मशापोऽपि यो न प्रतिहतः क्वचित्॥ १७
हेममाली नाम यक्षः कुष्ठी धनदशापतः।
एकादशीव्रतं कृत्वा चन्द्रतुल्यो बभूव ह॥ १८
महीजिता नृपेणापि कृतमेकादशीव्रतम्।
तेन पुत्रं शुभं लब्ध्वा वैकुण्ठं स जगाम ह॥ १९
हरिश्चन्द्रेण राज्ञापि कृतमेकादशीव्रतम्।
तेन लब्ध्वा महीराज्यं वैकुण्ठं सपुरो ययौ॥ २०
श्रीशोभनो नाम पुरा कृते युगे
जामातृकोऽभून्मुचुकुन्दभूभृतः।
एकादशीं यः समुपोष्य भारते
प्राप्तः स देवैः किल मन्दराचले॥ २१
अद्यापि राज्यं कुरुते कुबेरवद्
राज्ञ्या युतोऽसौ किल चन्द्रभागया।
एकादशीं सर्वतिथीश्वरीं परां
जानीथ गोप्यो न हि तत्समान्या॥ २२

श्रीनारद उवाच

इति राधामुखाच्छ्रुत्वा यज्ञसीताश्च गोपिकाः।
एकादशीव्रतं चक्रुर्विधिवत्कृष्णलालसाः॥ २३
एकादशीव्रतेनापि प्रसन्नः श्रीहरिः स्वयम्।
मार्गशीर्षे पूर्णिमायां रासं ताभिश्चकार ह॥ २४

राजा अम्बरीषने भी एकादशीका व्रत किया था, जिससे कहीं भी प्रतिहत न होनेवाला ब्रह्मशाप उन्हें छू न सका। हेममाली नामक यक्ष कुबेरके शापसे कोढ़ी हो गया था, किंतु एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करके वह पुनः चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हो गया। राजा महीजित्‌ने भी एकादशीका व्रत किया था, जिसके प्रभावसे सुन्दर पुत्र प्राप्तकर वे स्वयं भी वैकुण्ठगामी हुए। राजा हरिश्चन्द्रने भी एकादशीका व्रत किया था, जिससे पृथ्वीका राज्य भोगकर वे अन्तमें पुरवासियोंसहित वैकुण्ठधामको गये॥ १७—२०॥

पूर्वकालके सत्ययुगमें राजा मुचुकुन्दका दामाद शोभन भारतवर्षमें एकादशीका उपवास करके उसके पुण्य-प्रभावसे देवताओंके साथ मन्दराचलपर चला गया। वह आज भी वहाँ अपनी रानी चन्द्रभागाके साथ कुबेरकी भाँति राज्यसुख भोगता है। गोपियो! एकादशीको सम्पूर्ण तिथियोंकी परमेश्वरी समझो, उसकी समानता करनेवाली दूसरी कोई तिथि नहीं है॥ २१-२२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधाके मुखसे इस प्रकार एकादशीकी महिमा सुनकर यज्ञसीतास्वरूपा गोपिकाओंने श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे विधिपूर्वक एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया। एकादशी-व्रतसे प्रसन्न हुए साक्षात् भगवान् श्रीहरिने मार्गशीर्षमासकी पूर्णिमाकी रातमें उन सबके साथ रास किया॥ २३-२४॥

॥ इति श्रीमद्‌गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यज्ञसीतोपाख्याने एकादशीमाहात्म्यं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें यज्ञसीतोपाख्यानके प्रसङ्गमें 'एकादशीका माहात्म्य' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

पुलिन्द-कन्यारूपिणी गोपियोंके सौभाग्यका वर्णन

श्रीनारद उवाच

पुलिन्दकानां गोपीनां करिष्ये वर्णनं ह्यतः।
सर्वपापहरं पुण्यमद्भुतं भक्तिवर्धनम्॥ १
पुलिन्दा उद्भटाः केचिद्विन्ध्याद्रिवनवासिनः।
विलुम्पन्तो राजवसु दीनानां न कदाचन॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—अब पुलिन्द (कोल-भील) जातिकी स्त्रियोंका, जो गोपी-भावको प्राप्त हुई थीं, मैं वर्णन करता हूँ। यह वर्णन समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला, पुण्यजनक, अद्भुत और भक्ति-भावको बढ़ानेवाला है। विन्ध्याचलके वनमें कुछ पुलिन्द (कोल-भील) निवास करते थे। वे उद्भट योद्धा थे और केवल राजाका धन लूटते थे। गरीबोंकी कोई चीज कभी नहीं छूते थे॥ १-२॥

कुपितस्तेषु बलवान् विन्ध्यदेशाधिपो बली।
अक्षौहिणीभ्यां तान् सर्वान् पुलिन्दान् स रुरोध ह॥ ३

युयुधुस्तेऽपि खड्गैश्च कुन्तैः शूलैः परश्वधैः।
शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिः शरैः कति दिनानि च॥ ४

पत्रं ते प्रेषयामासुः कंसाय यदुभूभृते।
कंसप्रणोदितो दैत्यः प्रलम्बो बलवांस्तदा॥ ५

योजनद्वयमुच्चाङ्गं कालमेघसमद्युतिम्।
किरीटकुण्डलधरं सर्पहारविभूषितम्॥ ६

पादयोः शृङ्खलायुक्तं गदापाणिं कृतान्तवत्।
ललज्जिह्वं घोररूपं पातयन्तं गिरीन् द्रुमान्॥ ७

कम्पयन्तं भुवं वेगात्प्रलम्बं युद्धदुर्मदम्।
दृष्ट्वा प्रधर्षितो राजा ससैन्यो रणमण्डलम्॥ ८

त्यक्त्वा दुद्राव सहसा सिंहं वीक्ष्य गजो यथा।
प्रलम्बस्तान् समानीय मथुरामाययौ पुनः॥ ९

पुलिन्दास्तेऽपि कंसस्य भृत्यत्वं समुपागताः।
सकुटुम्बाः कामगिरौ वासं चक्रुर्नृपेश्वर॥ १०

तेषां गृहेषु सञ्जाताः श्रीरामस्य वरात्परात्।
पुलिन्द्यः कन्यका दिव्या रूपिण्यः श्रीरिवार्चिताः॥ ११

तद्दर्शनस्मररुजः पुलिन्द्यः प्रेमविह्वलाः।
श्रीमत्पादरजो धृत्वा ध्यायन्त्यस्तमहर्निशम्॥ १२

ताश्चापि रासे सम्प्राप्ताः श्रीकृष्णं परमेश्वरम्।
परिपूर्णतमं साक्षाद्गोलोकाधिपतिं प्रभुम्॥ १३

विन्ध्यदेशके बलवान् राजाने कुपित हो दो अक्षौहिणी सेनाओंके द्वारा उन सभी पुलिन्दोंपर घेरा डाल दिया। वे पुलिन्द भी तलवारों, भालों, शूलों, फरसों, शक्तियों, ऋष्टियों, भुशुण्डियों और तीर-कमानोंसे कई दिनोंतक राजकीय सैनिकोंके साथ युद्ध करते रहे। (विजयकी आशा न देखकर) उन्होंने सहायताके लिये यादवोंके राजा कंसके पास पत्र भेजा। तब कंसकी आज्ञासे बलवान् दैत्य प्रलम्ब वहाँ आया॥ ३—५॥

उसका शरीर दो योजन ऊँचा था। देहका रंग मेघोंकी काली घटाके समान काला था। माथेपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल धारण किये वह दैत्य सर्पोंकी मालासे विभूषित था। उसके पैरोंमें सोनेकी साँकल थी और हाथमें गदा लेकर वह दैत्य कालके समान जान पड़ता था। उसकी जीभ लपलपा रही थी और रूप बड़ा भयंकर था। वह शत्रुओंपर पर्वतकी चट्टानें तथा बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़कर फेंकता था। पैरोंकी धमकसे धरतीको कँपाते हुए रणदुर्मद दैत्य प्रलम्बको देखते ही भयभीत तथा पराजित हो विन्ध्य-नरेश सेनासहित समराङ्गण छोड़कर सहसा भाग चले, मानो सिंहको देखकर हाथी भाग जाता हो। तब प्रलम्ब उन सब पुलिन्दोंको साथ ले पुनः मथुरापुरीको लौट आया॥ ६—९॥

वे सभी पुलिन्द कंसके सेवक हो गये। नृपेश्वर! उन सबने अपने कुटुम्बके साथ कामगिरिपर निवास किया। उन्हींके घरोंमें भगवान् श्रीरामके उत्कृष्ट वरदानसे वे पुलिन्द-स्त्रियाँ दिव्य कन्याओंके रूपमें प्रकट हुईं, जो मूर्तिमती लक्ष्मीकी भाँति पूजित एवं प्रशंसित होती थीं। श्रीकृष्णके दर्शनसे उनके हृदयमें प्रेमकी पीडा जाग उठी। वे पुलिन्द-कन्याएँ प्रेमसे विह्वल हो भगवान्‌की श्रीसम्पन्न चरणरजको सिरपर धारण करके दिन-रात उन्हींके ध्यान एवं चिन्तनमें डूबी रहती थीं। वे भी भगवान्‌की कृपासे रासमें आ पहुँचीं और साक्षात् गोलोकके अधिपति, सर्वसमर्थ, परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णको उन्होंने सदाके लिये प्राप्त कर लिया॥ १०—१३॥

श्रीकृष्णचरणाम्भोजरजो देवैः सुदुर्लभम्।
अहोभाग्यं पुलिन्दीनां तासां प्राप्तं विशेषतः॥ १४

यः पारमेष्ठ्यमखिलं न महेन्द्रधिष्ण्यं
नो सार्वभौममनिशं न रसाधिपत्यम्।
नो योगसिद्धिमभितो न पुनर्भवं वा
वाञ्छत्यलं परमपादरजः सुभक्तः॥ १५

निष्किञ्चनाः स्वकृतकर्मफलैर्विरागा
यत्तत्पदं हरिजना मुनयो महान्तः।
भक्ता जुषन्ति हरिपादरजःप्रसक्ता
अन्ये वदन्ति न सुखं किल नैरपेक्ष्यम्॥ १६

अहो! इन पुलिन्द-कन्याओंका कैसा महान् सौभाग्य है कि देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंकी रज उन्हें विशेषरूपसे प्राप्त हो गयी। जिसकी भगवान्‌के परम उत्कृष्ट पाद-पद्म-परागमें सुदृढ़ भक्ति है, वह न तो ब्रह्माजीका पद, न महेन्द्रका स्थान, न निरन्तर-स्थायी सार्वभौम सम्राट्का पद, न पाताललोकका आधिपत्य, न योगसिद्धि और न अपुनर्भव (मोक्ष)-को ही चाहता है। जो अकिंचन हैं, अपने किये हुए कर्मोंके फलसे विरक्त हैं, वे हरि-चरण-रजमें आसक्त भगवान्‌के स्वजन महात्मा भक्त मुनि जिस पदका सेवन करते हैं, वही निरपेक्ष सुख है; दूसरे लोग जिसे सुख कहते हैं, वह वास्तवमें निरपेक्ष नहीं है॥ १४—१६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे पुलिन्दकोपाख्यानं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'पुलिन्दी-उपाख्यान' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

लक्ष्मीजीकी सखियोंका वृषभानुओंके घरोंमें कन्यारूपसे उत्पन्न होकर माघमासके व्रतसे श्रीकृष्णको रिझाना और पाना

श्रीनारद उवाच

अन्यासां चैव गोपीनां वर्णनं शृणु मैथिल।
सर्वपापहरं पुण्यं हरिभक्तिविवर्धनम्॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब दूसरी गोपियोंका भी वर्णन सुनो, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा श्रीहरिके प्रति भक्ति-भावकी वृद्धि करनेवाला है॥ १॥

नीतिविन्मार्गदः शुक्लः पतङ्गो दिव्यवाहनः।
गोपेष्टश्च व्रजे राजञ्जाताः षड्वृषभानवः॥ २

तेषां गृहेषु सञ्जाता लक्ष्मीपतिवरात्प्रजाः।
रमावैकुण्ठवासिन्यः श्रीसख्योऽपि समुद्रजाः॥ ३

ऊर्ध्वं वैकुण्ठवासिन्यस्तथाजितपदाश्रिताः।
श्रीलोकाचलवासिन्यः श्रीसख्योऽपि समुद्रजाः॥ ४

चिन्तयन्त्यः सदा श्रीमद्गोविन्दचरणाम्बुजम्।
श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थं ताभिर्माघव्रतं कृतम्॥ ५

राजन्! व्रजमें छः वृषभानु उत्पन्न हुए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—नीतिवित्, मार्गद, शुक्ल, पतङ्ग, दिव्यवाहन तथा गोपेष्ट (ये नामानुरूप गुणोंवाले थे)। उनके घरमें लक्ष्मीपति नारायणके वरदानसे जो कुमारियाँ उत्पन्न हुईं, उनमेंसे कुछ तो रमा-वैकुण्ठ-वासिनी और कुछ समुद्रसे उत्पन्न हुई लक्ष्मीजीकी सखियाँ थीं, कुछ अजितपदवासिनी और कुछ ऊर्ध्व-वैकुण्ठलोकनिवासिनी देवियाँ थीं, कुछ लोकाचल-वासिनी समुद्रसम्भवा लक्ष्मी-सहचरियाँ थीं। उन्होंने सदा श्रीगोविन्दके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए माघमासका व्रत किया। उस व्रतका उद्देश्य था—श्रीकृष्णको प्रसन्न करना॥ २—५॥

माघस्य शुक्लपञ्चम्यां वसन्तादौ हरिः स्वयम्।
तासां प्रेमपरीक्षार्थं कृष्णो वै तद्‍गृहान् गतः॥ ६

व्याघ्रचर्माम्बरं बिभ्रञ्जटामुकुटमण्डितः।
विभूतिधूसरो वेणुं वादयन् मोहयञ्जगत्॥ ७

तासां वीथीषु सम्प्राप्तं वीक्ष्य गोप्योऽपि सर्वतः।
आययुर्दर्शनं कर्तुं मोहिताः प्रेमविह्वलाः॥ ८

अतीव सुन्दरं दृष्ट्वा योगिनं गोपकन्यकाः।
ऊचुः परस्परं सर्वाः प्रेमानन्दसमाकुलाः॥ ९

गोप्य ऊचुः

कोऽयं शिशुर्नन्दसुताकृतिर्वा
कस्यापि पुत्रो धनिनो नृपस्य।
नारीकुवाग्बाणविभिन्नमर्मा
जातो विरक्तो गतकृत्यकर्मा॥ १०

अतीव रम्यः सुकुमारदेहो
मनोजवद्विश्वमनोहरोऽयम्।
अहो कथं जीवति चास्य माता
पिता च भार्या भगिनी विनैनम्॥ ११

एवं ताः सर्वतो यूथीभूत्वा सर्वा व्रजाङ्गनाः।
पप्रच्छुस्तं योगिवरं विस्मिताः प्रेमविह्वलाः॥ १२

गोप्य ऊचुः

कस्त्वं योगिन्नाम किं ते कुत्र वासस्तु ते मुने।
का वृत्तिस्तव का सिद्धिर्वद नो वदतां वर॥ १३

सिद्ध उवाच

योगेश्वरोऽहं मे वासः सदा मानसरोवरे।
नाम्ना स्वयंप्रकाशोऽहं निरन्नः स्वबलात्सदा॥ १४

स्वार्थे परमहंसानां याम्यहं हे व्रजाङ्गनाः।
भूतं भव्यं वर्तमानं वेद्म्यहं दिव्यदर्शनः॥ १५

उच्चाटनं मारणं च मोहनं स्तम्भनं तथा।
जानामि मन्त्रविद्याभिर्वशीकरणमेव च॥ १६

माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको, जो भावी वसन्तके शुभागमनका सूचक प्रथम दिन है, उनके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये श्रीकृष्ण उनके घरके निकट आये। वे व्याघ्रचर्मका वस्त्र पहने, जटाके मुकुट बाँधे, समस्त अङ्गोंमें विभूति रमाये योगीके वेषमें सुशोभित हो, वेणु बजाते हुए जगत्के लोगोंका मन मोह रहे थे। अपनी गलियोंमें उनका शुभागमन हुआ देख सब ओरसे मोहित एवं प्रेम-विह्वल हुई गोपाङ्गनाएँ उस तरुण योगीका दर्शन करनेके लिये आयीं। उन अत्यन्त सुन्दर योगीको देखकर प्रेम और आनन्दमें डूबी हुई समस्त गोपकन्याएँ परस्पर कहने लगीं— ॥ ६—९ ॥

गोपियाँ बोलीं—यह कौन बालक है, जिसकी आकृति नन्दनन्दनसे ठीक-ठीक मिलती-जुलती है; अथवा यह किसी धनी राजाका पुत्र होगा, जो अपनी स्त्रीके कठोर वचनरूपी बाणसे मर्म बिंध जानेके कारण घरसे विरक्त हो गया और सारे कृत्यकर्म छोड़ बैठा है। यह अत्यन्त रमणीय है। इसका शरीर कैसा सुकुमार है! यह कामदेवके समान सारे विश्वका मन मोह लेनेवाला है। अहो! इसकी माता, इसके पिता, इसकी पत्नी और इसकी बहन इसके बिना कैसे जीवित होंगी? यह विचार करके सब ओरसे झुंड-की-झुंड व्रजाङ्गनाएँ उनके पास आ गयीं और प्रेमसे विह्वल तथा आश्चर्य-चकित हो उन योगीश्वरसे पूछने लगीं ॥ १०—१२ ॥

गोपियोंने पूछा—योगीबाबा! तुम्हारा नाम क्या है? मुनिजी! तुम रहते कहाँ हो? तुम्हारी वृत्ति क्या है और तुमने कौन-सी सिद्धि पायी है? वक्ताओंमें श्रेष्ठ! हमें ये सब बातें बताओ ॥ १३ ॥

सिद्धयोगीने कहा—मैं योगेश्वर हूँ और सदा मानसरोवरमें निवास करता हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रकाश है। मैं अपनी शक्तिसे सदा बिना खाये-पीये ही रहता हूँ। व्रजाङ्गनाओ! परमहंसोंका जो अपना स्वार्थ—आत्मसाक्षात्कार है, उसीकी सिद्धिके लिये मैं जा रहा हूँ। मुझे दिव्यदृष्टि प्राप्त हो चुकी है। मैं भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंकी बातें जानता हूँ। मन्त्र-विद्याद्वारा उच्चाटन, मारण, मोहन, स्तम्भन तथा वशीकरण भी जानता हूँ॥ १४—१६ ॥

गोप्य ऊचुः

यदि जानासि योगिंस्त्वं वार्तां कालत्रयोद्भवाम्।
किं वर्तते नो मनसि वद तर्हि महामते॥ १७

गोपियोंने पूछा—योगीबाबा! तुम तो बड़े बुद्धिमान् हो। यदि तुम्हें तीनों कालोंकी बातें ज्ञात हैं तो बताओ न, हमारे मनमें क्या है?॥ १७॥

सिद्ध उवाच

भवतीनां च कर्णान्ते कथनीयमिदं वचः।
युष्मदाज्ञया वा वक्ष्ये सर्वेषां शृण्वतामिह॥ १८

सिद्धयोगीने कहा—यह बात तो आपलोगोंके कानमें कहनेयोग्य है। अथवा यदि आपलोगोंकी आज्ञा हो तो सब लोगोंके सामने ही कह डालूँ॥ १८॥

गोप्य ऊचुः

सत्यं योगेश्वरोऽसि त्वं त्रिकालज्ञो न संशयः।
वशीकरणमन्त्रेण सद्यः पठनमात्रतः॥ १९

यदि सोऽत्रैव चायाति चिन्तितो योऽस्ति वै मुने।
तदा मन्यामहे त्वां वै मन्त्रिणां प्रवरं परम्॥ २०

गोपियाँ बोलीं—मुने! तुम सचमुच योगेश्वर हो। तुम्हें तीनों कालोंका ज्ञान है, इसमें संशय नहीं। यदि तुम्हारे वशीकरण-मन्त्रसे, उसके पाठ करनेमात्रसे तत्काल वे यहीं आ जायँ, जिनका कि हम मन-ही-मन चिन्तन करती हैं, तब हम मानेंगी कि तुम मन्त्रज्ञोंमें सबसे श्रेष्ठ हो॥ १९-२०॥

सिद्ध उवाच

दुर्लभो दुर्घटो भावो युष्माभिर्गदितः स्त्रियः।
तथाप्यहं करिष्यामि वाक्यं न चलते सताम्॥ २१

निमीलयत नेत्राणि मा शोचं कुरुत स्त्रियः।
भविष्यति न सन्देहो युष्माकं कार्यमेव च॥ २२

सिद्धयोगीने कहा—व्रजाङ्गनाओ! तुमने तो ऐसा भाव व्यक्त किया है, जो परम दुर्लभ और दुष्कर है; तथापि मैं तुम्हारी मनोनीत वस्तुको प्रकट करूँगा; क्योंकि सत्पुरुषोंकी कही हुई बात झूठ नहीं होती। व्रजकी वनिताओ! चिन्ता न करो; अपनी आँखें मूँद लो। तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २१-२२॥

श्रीनारद उवाच

तथेति मीलिताक्षीषु गोपीषु भगवान् हरिः।
विहाय तद्योगिरूपं बभौ श्रीनन्दनन्दनः॥ २३

नेत्राण्युन्मील्य ददृशुः सानन्दं नन्दनन्दनम्।
विस्मितास्तत्प्रभावज्ञा हर्षिता मोहमागताः॥ २४

माघमासे महारासे पुण्ये वृन्दावने वने।
ताभिः सार्धं हरी रेमे सुरीभिः सुरराडिव॥ २५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! 'बहुत अच्छा' कहकर जब गोपियोंने अपनी आँखें मूँद लीं, तब भगवान् श्रीहरि योगीका रूप छोड़कर श्रीनन्दनन्दनके रूपमें प्रकट हो गये। गोपियोंने आँखें खोलकर देखा तो सामने नन्दनन्दन सानन्द मुसकरा रहे हैं। पहले तो वे अत्यन्त विस्मित हुईं; फिर योगीका प्रभाव जाननेपर उन्हें हर्ष हुआ और प्रियतमका वह मोहन रूप देखकर वे मोहित हो गयीं। तदनन्तर माघमासके महारासमें पावन वृन्दावनके भीतर श्रीहरिने उन गोपाङ्गनाओंके साथ उसी प्रकार विहार किया, जैसे देवाङ्गनाओंके साथ देवराज इन्द्र करते हैं॥ २३—२५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रमावैकुण्ठश्वेतद्वीपोर्ध्ववैकुण्ठाजितपदश्रीलोकाचलवासिनीश्रीसखीनामुपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'रमावैकुण्ठ, श्वेतद्वीप, ऊर्ध्ववैकुण्ठ, अजितपद तथा श्रीलोकाचलमें निवास करनेवाली लक्ष्मीजीकी सखियोंके गोपीरूपमें प्रकट होनेका आख्यान' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

दिव्यादिव्य, त्रिगुणवृत्तिमयी भूतल-गोपियोंका वर्णन तथा श्रीराधासहित गोपियोंकी श्रीकृष्णके साथ होली

श्रीनारद उवाच

इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम्।
अन्यासां चैव गोपीनां वर्णनं शृणु मैथिल॥ १

वीतिहोत्रोऽग्निभुक्साम्बुः श्रीकरो गोपतिः श्रुतः।
व्रजेशः पावनः शान्त उपनन्दा व्रजे भवाः॥ २

धनवन्तो रूपवन्तः पुत्रवन्तो बहुश्रुताः।
शीलादिगुणसम्पन्नाः सर्वे दानपरायणाः॥ ३

तेषां गृहेषु सञ्जाताः कन्यका देववाक्यतः।
काश्चिद्दिव्या अदिव्याश्च तथा त्रिगुणवृत्तयः॥ ४

भूमिगोप्यश्च सञ्जाताः पुण्यैर्नानाविधैः कृतैः।
राधिकासहचर्यस्ताः सख्योऽभूवन् विदेहराट्॥ ५

एकदा मानिनीं राधां ताः सर्वा व्रजगोपिकाः।
ऊचुर्वीक्ष्य हरिं प्राप्तं होलिकाया महोत्सवे॥ ६

गोप्य ऊचुः

रम्भोरु चन्द्रवदने मधुमानिनीशे
राधे वचः सुललितं ललने शृणु त्वम्।
श्रीहोलिकोत्सवविहारमलं विधातु-
मायाति ते पुरवने व्रजभूषणोऽयम्॥ ७

श्रीयौवनोन्मदविघूर्णितलोचनोऽसौ
नीलालकालिकलितांसकपोलगोलः।
सत्पीतकञ्चुकघनान्तमशेषमारा-
दाचालयन् ध्वनिमता स्वपदारुणेन॥ ८

बालार्कमौलिविमलाङ्गदहारमुद्यद्
विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमादधानः।
पीताम्बरेण जयति द्युतिमण्डलोऽसौ
भूमण्डले सधनुषेव घनो दिविस्थः॥ ९

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! यह मैंने तुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया है, अब दूसरी गोपियोंका वर्णन सुनो। वीतिहोत्र, अग्निभुक्, साम्बु, श्रीकर, गोपति, श्रुत, व्रजेश, पावन तथा शान्त—ये व्रजमें उत्पन्न हुए नौ उपनन्दोंके नाम हैं। वे सब-के-सब धनवान्, रूपवान्, पुत्रवान् बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले, शील-सदाचारादि गुणोंसे सम्पन्न तथा दानपरायण हैं॥ १—३॥

इनके घरोंमें देवताओंकी आज्ञाके अनुसार जो कन्याएँ उत्पन्न हुईं, उनमेंसे कोई दिव्य, कोई अदिव्य तथा कोई त्रिगुणवृत्तिवाली थीं। वे सब नाना प्रकारके पूर्वकृत पुण्योंके फलस्वरूप भूतलपर गोपकन्याओंके रूपमें प्रकट हुई थीं। विदेहराज! वे सब श्रीराधिकाके साथ रहनेवाली उनकी सखियाँ थीं। एक दिनकी बात है, होलिका-महोत्सवपर श्रीहरिको आया हुआ देख उन समस्त व्रजगोपिकाओंने मानिनी श्रीराधासे कहा॥ ४—६॥

गोपियाँ बोलीं—रम्भोरु! चन्द्रवदने! मधुमानिनि! स्वामिनि! ललने! श्रीराधे! हमारी यह सुन्दर बात सुनो। ये व्रजभूषण नन्दनन्दन तुम्हारी बरसाना-नगरीके उपवनमें होलिकोत्सव-विहार करनेके लिये आ रहे हैं। शोभा-सम्पन्न यौवनके मदसे मत्त उनके चञ्चल नेत्र घूम रहे हैं। घुँघराली नीली अलकावली उनके कंधों और कपोल-मण्डलको चूम रही है। शरीरपर पीले रंगका रेशमी जामा अपनी घनी शोभा बिखेर रहा है। वे बजते हुए नूपुरोंकी ध्वनिसे युक्त अपने अरुण चरणारविन्दोंद्वारा सबका ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं॥ ७-८॥

उनके मस्तकपर बालरविके समान कान्तिमान् मुकुट है। वे भुजाओंमें विमल अङ्गद, वक्षःस्थलपर हार और कानोंमें विद्युत्को भी विलज्जित करनेवाले मकराकार कुण्डल धारण किये हुए हैं। इस भूमण्डलपर पीताम्बरकी पीत प्रभासे सुशोभित उनका श्याम कान्तिमण्डल उसी प्रकार उत्कृष्ट शोभा पा रहा है, जैसे आकाशमें इन्द्रधनुषसे युक्त मेघमण्डल सुशोभित होता है॥ ९॥

आबीरकुङ्कुमरसैश्च विलिप्तदेहो
हस्ते गृहीतनवसेचनयन्त्र आरात्।
प्रेक्षंस्तवाशु सखि वाटमतीव राधे
त्वद्रासरङ्गरसकेलिरतः स्थितः सः॥ १०

निर्गच्छ फाल्गुनमिषेण विहाय मानं
दातव्यमद्य च यशः किल होलिकायै।
कर्तव्यमाशु निजमन्दिररङ्गवारि-
पाटीरपङ्कमकरन्दचयं च तूर्णम्॥ ११

उत्तिष्ठ गच्छ सहसा निजमण्डलीभि-
र्यत्रास्ति सोऽपि किल तत्र महामते त्वम्।
एतादृशोऽपि समयो न कदापि लभ्यः
प्रक्षालितं करतलं विदितं प्रवाहे॥ १२

अबीर और केसरके रससे उनका सारा अङ्ग लिप्त है। उन्होंने हाथमें नयी पिचकारी ले रखी है तथा सखि राधे! तुम्हारे साथ रासरङ्गकी रसमयी क्रीडामें निमग्न रहनेवाले वे श्यामसुन्दर तुम्हारे शीघ्र निकलनेकी राह देखते हुए पास ही खड़े हैं। तुम भी मान छोड़कर फगुआ (होली)-के बहाने निकलो। निश्चय ही आज होलिकाको यश देना चाहिये और अपने भवनमें तुरंत ही रंग-मिश्रित जल, चन्दनके पङ्क और मकरन्द (इत्र आदि पुष्परस)-का अधिक मात्रामें संचय कर लेना चाहिये। परम बुद्धिमती प्यारी सखी! उठो और सहसा अपनी सखीमण्डलीके साथ उस स्थानपर चलो, जहाँ वे श्यामसुन्दर भी मौजूद हों। ऐसा समय फिर कभी नहीं मिलेगा। बहती धारामें हाथ धो लेना चाहिये—यह कहावत सर्वत्र विदित है॥ १०—१२॥

श्रीनारद उवाच

अथ मानवती राधा मानं त्यक्त्वा समुत्थिता।
सखीसङ्घैः परिवृता प्रकर्तुं होलिकोत्सवम्॥ १३

श्रीखण्डागुरुकस्तूरीहरिद्राकुङ्कुमद्रवैः ।
पूरिताभिर्दृतीभिश्च संयुक्तास्ता व्रजाङ्गनाः॥ १४

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] तब मानवती राधा मान छोड़कर उठीं और सखियोंके समूहसे घिरकर होलीका उत्सव मनानेके लिये निकलीं। चन्दन, अगर, कस्तूरी, हल्दी तथा केसरके घोलसे भरी हुई डोलचियाँ लिये वे बहुसंख्यक व्रजाङ्गनाएँ एक साथ होकर चलीं॥ १३-१४॥

रक्तहस्ताः पीतवस्त्राः कूजन्नूपुरमेखलाः।
गायन्त्यो होलिकागीतीर्गालीभिर्हास्यसन्धिभिः॥ १५

आबीरारुणचूर्णानां मुष्टिभिस्ता इतस्ततः।
कुर्वन्त्यश्चारुणं भूमिं दिगन्तं चाम्बरं तथा॥ १६

कोटिशः कोटिशस्तत्र स्फुरन्त्याबीरमुष्टयः।
सुगन्धारुणचूर्णानां कोटिशः कोटिशस्तथा॥ १७

रँगे हुए लाल-लाल हाथ, वासन्ती रंगके पीले वस्त्र, बजते हुए नूपुरोंसे युक्त पैर तथा झनकारती हुई करधनीसे सुशोभित कटिप्रदेशसे बड़ी मनोहर शोभा थी उन गोपाङ्गनाओंकी। वे हास्ययुक्त गालियोंसे सुशोभित होलीके गीत गा रही थीं। अबीर, गुलालके चूर्ण मुट्ठियोंमें ले-लेकर इधर-उधर फेंकती हुई वे व्रजाङ्गनाएँ भूमि, आकाश और वस्त्रको लाल किये देती थीं। वहाँ अबीरकी करोड़ों मुट्ठियाँ एक साथ उड़ती थीं। सुगन्धित गुलालके चूर्ण भी कोटि-कोटि हाथोंसे बिखेरे जाते थे॥ १५—१७॥

सर्वतो जगृहुः कृष्णं कराभ्यां व्रजगोपिकाः।
यथा मेघं च दामिन्यः सन्ध्यायां श्रावणस्य च॥ १८

तन्मुखं च विलिम्पन्त्योऽथाबीरारुणमुष्टिभिः।
कुङ्कुमाक्तदृतीभिस्तमार्द्रीचक्रुर्विधानतः॥ १९

इसी समय व्रजगोपियोंने श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेर लिया, मानो सावनकी साँझमें विद्युन्मालाओंने मेघको सब ओरसे अवरुद्ध कर लिया हो। पहले तो उनके मुँह-पर खूब अबीर और गुलाल पोत दिया, फिर सारे अङ्गोंपर अबीर-गुलाल बरसाये तथा केसरयुक्त रंगसे भरी डोलचियोंद्वारा उन्हें विधिपूर्वक भिगोया॥ १८-१९॥

भगवानपि तत्रैव यावतीर्व्रजयोषितः।
धृत्वा रूपाणि तावन्ति विजहार नृपेश्वर॥ २०

राधया शुशुभे तत्र होलिकाया महोत्सवे।
वर्षासन्ध्याक्षणे कृष्णः सौदामिन्या घनो यथा॥ २१

कृष्णोऽपि तद्धस्तकृताक्तनेत्रो
दत्त्वा स्वकीयं नवमुत्तरीयम्।
ताभ्यो ययौ नन्दगृहं परेशो
देवेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षम्॥ २२

नृपेश्वर! वहाँ जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान् भी उनके साथ विहार करते रहे। वहाँ होलिका-महोत्सवमें श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ वैसी ही शोभा पाते थे, जैसे वर्षाकालकी संध्या-वेलामें विद्युन्मालाके साथ मेघ सुशोभित होता है। श्रीराधाने श्रीकृष्णके नेत्रोंमें काजल लगा दिया। श्रीकृष्णने भी अपना नया उत्तरीय (दुपट्टा) गोपियोंको उपहारमें दे दिया। फिर वे परमेश्वर श्रीनन्दभवनको लौट गये। उस समय समस्त देवता उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ २०—२२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे होलिकोत्सवे दिव्यत्रिगुणवृत्तिभूमिगोप्युपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें होलिकोत्सवके प्रसङ्गमें 'दिव्यत्रिगुणवृत्तिमयी भूतल-गोपियोंका उपाख्यान' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ

श्रीनारद उवाच

अथ देवाङ्गनानां च गोपीनां वर्णनं शृणु।
चतुष्पदार्थदं नृणां भक्तिवर्धनमुत्तमम्॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब देवाङ्गनास्वरूपा गोपियोंका वर्णन सुनो, जो मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला तथा उनके भक्तिभावको बढ़ानेवाला सर्वोत्तम साधन है॥ १॥

बभूव मालवे देशे गोपो नन्दो दिवस्पतिः।
भार्यासहस्रसंयुक्तो धनवान्नीतिमान् परः॥ २

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन मथुरायां समागतः।
नन्दराजं व्रजाधीशं श्रुत्वा श्रीगोकुलं ययौ॥ ३

मालवदेशमें एक गोप थे, जिनका नाम था—दिवस्पति नन्द। उनके एक सहस्र पत्नियाँ थीं। वे बड़े धनवान् और नीतिज्ञ थे। एक समय तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे उनका मथुरामें आगमन हुआ। वहाँ व्रजाधीश्वर नन्दराजका नाम सुनकर वे उनसे मिलनेके लिये गोकुल गये॥ २-३॥

मिलित्वा गोपराजं स दृष्ट्वा वृन्दावनश्रियम्।
नन्दराजाज्ञया तत्र वासं चक्रे महामनाः॥ ४

वहाँ नन्दराजसे मिलकर और वृन्दावनकी शोभा देखकर महामना दिवस्पति नन्दराजकी आज्ञासे वहीं रहने लगे॥ ४॥

योजनद्वयमाश्रित्य घोषं चक्रे गवां पुनः।
मुदं प्राप व्रजे राजञ्ज्ञातिभिः स दिवस्पतिः॥ ५

उन्होंने दो योजन भूमिको घेरकर गौओंके लिये गोष्ठ बनाया। राजन्! उस व्रजमें अपने कुटुम्बी बन्धुजनोंके साथ रहते हुए दिवस्पतिको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई॥ ५॥

तस्य देवलवाक्येन सर्वा देवजनस्त्रियः।
जाताःकन्या महादिव्या ज्वलदग्निशिखोपमाः॥ ६

श्रीकृष्णं सुन्दरं दृष्ट्वा मोहिताः कन्यकाश्च ताः।
दामोदरस्य प्राप्त्यर्थं चक्रुर्माघव्रतं परम्॥ ७

अर्धोदयेऽर्के यमुनां नित्यं स्नात्वा व्रजाङ्गनाः।
उच्चैर्जगुः कृष्णलीलां प्रेमानन्दसमाकुलाः॥ ८

तासां प्रसन्नः श्रीकृष्णो वरं ब्रूहीत्युवाच ह।
ता ऊचुस्तं परं नत्वा कृताञ्जलिपुटाः शनैः॥ ९

गोप्य ऊचुः

योगीश्वराणां किल दुर्लभस्त्वं
सर्वेश्वरः कारणकारणोऽसि।
त्वं नेत्रगामी भवतात्सदा नो
वंशीधरो मन्मथमन्मथाङ्गः॥ १०

तथास्तु चोक्त्वा हरिरादिदेव-
स्तासां तु यो दर्शनमाततान।
भूयात्सदा ते हृदि नेत्रमार्गे
तथा स आहूत इवाशु चित्ते॥ ११

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि।
एककार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह॥ १२

परिकरीकृतपीतपटं हरिं
शिखिकिरीटनतीकृतकन्धरम्।
लकुटवेणुकरं चलकुण्डलं
पटुतरं नटवेषधरं भजे॥ १३

भक्त्यैव वश्यो हरिरादिदेवः
सदा प्रमाणं किल चात्र गोप्यः।
सांख्यं च योगं न कृतं कदापि
प्रेम्णैव यस्य प्रकृतिं गताः स्युः॥ १४

देवल मुनिके आदेशसे समस्त देवाङ्गनाएँ उन्हीं दिवस्पतिकी महादिव्य कन्याएँ हुईं, जो प्रज्वलित अग्निशिखाके समान तेजस्विनी थीं॥ ६॥

किसी समय श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन पाकर वे सब कन्याएँ मोहित हो गयीं और उन दामोदरकी प्राप्तिके लिये उन्होंने परम उत्तम माघमासका व्रत किया। आधे सूर्यके उदित होते-होते प्रतिदिन वे व्रजाङ्गनाएँ यमुनामें जाकर स्नान करतीं और प्रेमानन्दसे विह्वल हो उच्चस्वरसे श्रीकृष्णकी लीलाएँ गाती थीं। भगवान् श्रीकृष्ण उनपर प्रसन्न होकर बोले—'तुम कोई वर माँगो।' तब उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर उन परमात्माको प्रणाम करके उनसे धीरे-धीरे कहा— ॥ ७—९॥

गोपियाँ बोलीं—प्रभो! निश्चय ही आप योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ हैं। सबके ईश्वर तथा कारणोंके भी कारण हैं। आप वंशीधारी हैं। आपका अङ्ग मन्मथके मनको भी मथ डालनेवाला (मोह लेनेवाला) है। आप सदा हमारे नेत्रोंके समक्ष रहें॥ १०॥

राजन्! तब 'तथास्तु' कहकर जिन आदिदेव श्रीहरिने गोपियोंके लिये अपने दर्शनका द्वार उन्मुक्त कर दिया, वे सदा तुम्हारे हृदयमें, नेत्रमार्गमें बसे रहें और बुलाये हुए-से तत्काल चित्तमें आकर स्थित हो जायँ। परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि श्रीकृष्णने एक कार्यके उद्देश्यसे अवतार लेकर अन्यान्य करोड़ों कार्योंका सम्पादन किया है। जिन्होंने कमरमें पीताम्बर बाँध रखा है, जिनके सिरपर मोरपंखका मुकुट सुशोभित है और गर्दन झुकी हुई है, जिनके हाथमें बाँसुरी और लकुटी है तथा कानोंमें रत्नमय कुण्डल झलमला रहे हैं, उन पटुतर नटवेषधारी श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ। आदिदेव श्रीहरि केवल भक्तिसे ही वशमें होते हैं। निश्चय ही इसमें गोपियाँ सदा प्रमाणभूत हैं, जिन्होंने न तो कभी सांख्यका विचार किया न योगका अनुष्ठान; केवल प्रेमसे ही वे भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त हो गयीं॥ ११—१४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे देवजनस्त्र्युपाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'देवाङ्गनास्वरूपा गोपियोंका उपाख्यान' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

कौरव-सेनासे पीड़ित रंगोजि गोपका कंसकी सहायतासे व्रजमण्डलकी सीमापर निवास तथा उसकी पुत्रीरूपमें जालंधरी गोपियोंका प्राकट्य

श्रीनारद उवाच

जालन्धरीणां गोपीनां जन्मानि शृणु मैथिल।
कर्माणि च महाराज पापघ्नानि नृणां सदा॥ १

राजन् सप्तनदीतीरे रङ्गपत्तनमुत्तमम्।
सर्वसम्पद्युतं दीर्घं योजनद्वयवर्तुलम्॥ २

रङ्गोजिस्तत्र गोपालः पुराधीशो महाबलः।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान्॥ ३

हस्तिनापुरनाथाय धृतराष्ट्राय भूभृते।
हैमानामर्बुदशतं वार्षिकं स ददौ सदा॥ ४

एकदा तत्र वर्षान्ते व्यतीते किल मैथिल।
वार्षिकं तु करं राज्ञे न ददौ स मदोत्कटः॥ ५

मिलनार्थं न चायाते रङ्गोजौ गोपनायके।
वीरा दश सहस्राणि धृतराष्ट्रप्रणोदिताः॥ ६

बद्ध्वा तं दामभिर्गोपमाजग्मुस्ते गजाह्वयम्।
कति वर्षाणि रङ्गोजिः कारागारे स्थितोऽभवत्॥ ७

सन्निरुद्धस्ताडितोऽपि लोभी भीरुर्न चाभवत्।
न ददौ स धनं किञ्चिद्धृतराष्ट्राय भूभृते॥ ८

कारागारान्महाभीमात्कदाचित्स पलायितः।
रात्रौ रङ्गपुरं प्रागाद्रङ्गोजिर्गोपनायकः॥ ९

पुनस्तं हि समाहर्तुं धृतराष्ट्रप्रणोदितम्।
अक्षौहिणीत्रयं राजन् समर्थबलवाहनम्॥ १०

तेन सार्धं स बाणौघैस्तीक्ष्णधारैः स्फुरत्प्रभैः।
युयुधे दंशितो युद्धे धनुष्टङ्कारयन्मुहुः॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब जालंधरके अन्तःपुरकी स्त्रियोंके गोपीरूपमें जन्म लेनेका वर्णन सुनो। महाराज! साथ ही उनके कर्मोंको भी सुनो, जो सदा ही मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाले हैं॥ १॥

राजन्! सप्तनदीके किनारे 'रङ्गपत्तन' नामसे प्रसिद्ध एक उत्तम नगर था, जो सब प्रकारकी सम्पदाओंसे सम्पन्न तथा विशाल था। वह दो योजन विस्तृत गोलाकार नगर था। उस नगरका मालिक या पुराधीश रंगोजि नामक एक गोप था, जो महान् बलवान् था। वह पुत्र-पौत्र आदिसे संयुक्त तथा धन-धान्यसे समृद्धिशाली था॥ २-३॥

हस्तिनापुरके स्वामी राजा धृतराष्ट्रको वह सदा एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ वार्षिक करके रूपमें दिया करता था। मिथिलेश्वर! एक समय वर्ष बीत जानेपर भी धनके मदसे उन्मत्त गोपने राजाको वार्षिक कर नहीं दिया। इतना ही नहीं, वह गोपनायक रंगोजि मिलनेतक नहीं गया। तब धृतराष्ट्रके भेजे हुए दस हजार वीर जाकर उस गोपको बाँधकर हस्तिनापुरमें ले आये। कई वर्षोंतक तो रंगोजि कारागारमें बँधा पड़ा रहा। बाँधे और पीटे जानेपर भी वह लोभी गोप डरा नहीं। उसने राजा धृतराष्ट्रको थोड़ा-सा भी धन नहीं दिया॥ ४—८॥

किसी समय गोपनायक रंगोजि उस महाभयंकर कारागारसे भाग निकला तथा रातों-रात रङ्गपुरमें आ गया। तब पुनः उसे पकड़ लानेके लिये धृतराष्ट्रकी भेजी हुई शक्तिशाली बल-वाहनसे सम्पन्न तीन अक्षौहिणी सेना गयी। वह गोप भी कवच धारण करके युद्धभूमिमें बारंबार धनुषकी टंकार फैलाता हुआ तीखी धारवाले चमकीले बाणसमूहोंकी वर्षा करके धृतराष्ट्रकी उस सेनाका सामना करने लगा॥ ९—११॥

शत्रुभिश्छिन्नकवचश्छिन्नधन्वा हतस्वकः।
पुरमेत्य मृधं चक्रे रङ्गोजिः कतिभिर्दिनैः॥ १२

अनाथः शरणं चेच्छन् कंसाय यदुभूभृते।
दूतं स्वं प्रेषयामास रङ्गोजिर्भयपीडितः॥ १३

दूतस्तु मथुरामेत्य सभां गत्वा नताननः।
कृताञ्जलिश्चौग्रसेनिं नत्वा प्राह गिरार्द्रया॥ १४

शत्रुओंने उसके कवच और धनुष काट दिये तथा उसके स्वजनोंका भी वध कर डाला; तब वह अपने पुर (दुर्ग)-में आकर कुछ दिनोंतक युद्ध चलाता रहा। अन्तमें अनाथ एवं भयसे पीड़ित रंगोजि किसी शरणदाता या रक्षककी इच्छा करने लगा। उसने यादवराज कंसके पास अपना दूत भेजा। दूत मथुरा पहुँचकर राज-दरबारमें गया और उसने मस्तक झुकाकर दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधे उग्रसेनकुमार कंसको प्रणाम करके करुणासे आर्द्र वाणीमें कहा— ॥ १२—१४ ॥

रङ्गोजिनामा नृप रङ्गपत्तने
गोपोऽस्ति नीतिज्ञवरः पुराधिपः।
स्वशत्रुसंरुद्धपुरो महाधिभृ-
दलब्धनाथः शरणं गतस्तव॥ १५

त्वं दीनदुःखार्तिहरो महीतले
भौमादिसङ्गीतगुणो महाबलः।
सुरासुरानुद्भटभूमिपालकान्
विजित्य युद्धे सुरराडिव स्थितः॥ १६

'महाराज! रङ्गपत्तनमें रंगोजि नामसे प्रसिद्ध एक गोप हैं, जो उस नगरके स्वामी तथा नीतिवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। शत्रुओंने उनके नगरको चारों ओरसे घेर लिया है। वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये हैं और अनाथ होकर आपकी शरणमें आये हैं। इस भूतलपर केवल आप ही दीनों और दुःखियोंकी पीड़ा हरनेवाले हैं। भौमासुरादि वीर आपके गुण गाया करते हैं। आप महाबली हैं और देवता, असुर तथा उद्भट भूमिपालोंको युद्धमें जीतकर देवराज इन्द्रके समान अपनी राजधानीमें विराजमान हैं॥ १५-१६ ॥

चन्द्रं चकोरश्च रविं कुशेशयं
यथा शरच्छीकरमेव चातकः।
क्षुधातुरोऽन्नं च जलं तृषातुरः
स्मरत्यसौ शत्रुभये तथा त्वाम्॥ १७

जैसे चकोर चन्द्रमाको, कमलोंका समुदाय सूर्यको, चातक शरद्-ऋतुके बादलोंद्वारा बरसाये गये जलकणोंको, भूखसे व्याकुल मनुष्य अन्नको तथा प्याससे पीड़ित प्राणी पानीको ही याद करता है, उसी प्रकार रंगोजि गोप शत्रुके भयसे आक्रान्त हो केवल आपका स्मरण कर रहे हैं'॥ १७॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं श्रुत्वा वचस्तस्य कंसो वै दीनवत्सलः।
दैत्यकोटिसमायुक्तो मनो गन्तुं समादधे॥ १८

गोमूत्रचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखम्।
विन्ध्याद्रिसदृशं श्यामं मदनिर्झरसंयुतम्॥ १९

पादे च शृङ्खलाजालं नदन्तं घनवद्भृशम्।
द्विपं कुवलयापीडं समारुह्य मदोत्कटः॥ २०

चाणूरमुष्टिकाद्यैश्च केशिव्योमवृषासुरैः।
सहसा दंशितः कंसः प्रययौ रङ्गपत्तनम्॥ २१

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! दूतकी यह बात सुनकर दीनवत्सल कंसने करोड़ों दैत्योंकी सेनाके साथ वहाँ जानेका विचार किया। उसके हाथीके गण्डस्थलपर गोमूत्रमें घोले गये सिन्दूर और कस्तूरीके द्वारा पत्र-रचना की गयी थी। वह हाथी विन्ध्याचलके समान ऊँचा एवं श्याम था और उसके गण्डस्थलसे मद झर रहे थे। उसके पैरमें साँकलें थीं। वह मेघकी गर्जनाके समान जोर-जोरसे चिग्घाड़ता था। ऐसे कुवलयापीड नामक गजराजपर चढ़कर मदमत्त राजा कंस सहसा कवच आदिसे सुसज्जित हो चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लों तथा केशी, व्योमासुर और वृषासुर आदि दैत्य-योद्धाओंके साथ रङ्गपत्तनकी ओर प्रस्थित हुआ॥ १८—२१ ॥

यदूनां च कुरूणां च बलयोस्तु परस्परम्।
बाणैः खड्गैस्त्रिशूलैश्च घोरं युद्धं बभूव ह॥ २२

बाणान्धकारे सञ्जाते कंसो नीत्वा महागदाम्।
विवेश कुरुसेनासु वने वैश्वानरो यथा॥ २३

कांश्चिद्वीरान् सकवचान् गदया वज्रकल्पया।
पातयामास भूपृष्ठे वज्रेणेन्द्रो यथा गिरिम्॥ २४

रथान्ममर्द पादाभ्यां पार्ष्णिघातेन घोटकान्।
गजे गजं ताडयित्वा गजान् प्रोन्नीय चाङ्घ्रिषु॥ २५

स्कन्धयोः कक्षयोर्धृत्वा सनीडान् रत्नकम्बलान्।
कांश्चिद्बलाद्भ्रामयित्वा चिक्षेप गगने बली॥ २६

गजाञ्छुण्डासु चोन्नीय लोलघण्टासमावृतान्।
चिक्षेप सम्मुखे राजन् मृधे व्योमासुरो बली॥ २७

रथान् गृहीत्वा साश्वांश्च शृङ्गाभ्यां भ्रामयन् मुहुः।
चिक्षेप दिक्षु बलवान् दैत्यो दुष्टो वृषासुरः॥ २८

बलात्पश्चिमपादाभ्यां वीरानश्वानितस्ततः।
पातयामास राजेन्द्र केशी दैत्याधिपो बली॥ २९

एवं भयङ्करं युद्धं दृष्ट्वा वै कुरुसैनिकाः।
शेषा भयातुरा वीरा जग्मुस्तेऽपि दिशो दश॥ ३०

रङ्गोजिं सकुटुम्बं तं नीत्वा कंसोऽथ दैत्यराट्।
मथुरां प्रययौ वीरो नादयन् दुन्दुभीञ्छनैः॥ ३१

श्रुत्वा पराजयं स्वस्य कौरवाः क्रोधमूर्च्छिताः।
दैत्यानां समयं दृष्ट्वा सर्वे वै मौनमास्थिताः॥ ३२

पुरं बर्हिषदं नाम व्रजसीम्नि मनोहरम्।
रङ्गोजये ददौ कंसो दैत्यानामधिपो बली॥ ३३

वासं चकार तत्रैव रङ्गोजिर्गोपनायकः।
बभूवुस्तस्य भार्यासु जालन्धर्यो हरेर्वरात्॥ ३४

वहाँ यादवों और कौरवोंकी सेनाओंमें परस्पर बाणों, खड्गों और त्रिशूलोंके प्रहारसे घोर युद्ध हुआ। जब बाणोंसे सब ओर अन्धकार-सा छा गया, तब कंस एक विशाल गदा हाथमें लेकर कौरव-सेनामें उसी प्रकार घुसा, जैसे वनमें दावानल प्रविष्ट हुआ हो। जैसे इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतको गिरा देते हैं, उसी प्रकार कंसने अपनी वज्र-सरीखी गदाकी मारसे कितने ही कवचधारी वीरोंको धराशायी कर दिया॥ २२—२४॥

उसने पैरोंके आघातसे रथोंको रौंद डाला, एड़ियोंसे मार-मारकर घोड़ोंका कचूमर निकाल दिया। हाथीको हाथीसे ही मारकर कितने ही गजोंको उनके पाँव पकड़कर उछाल दिया। महाबली कंसने कितने ही हाथियोंके कंधों और कक्षभागोंको पकड़कर उन्हें हौदों और झूलोंसहित बलपूर्वक घुमाते हुए आकाशमें फेंक दिया॥ २५-२६॥

राजन्! उस युद्धभूमिमें बलवान् व्योमासुर हाथियोंके शुण्डदण्ड पकड़कर उन्हें चञ्चल घंटाओंसहित उछालकर सामने फेंक देता था। दुष्ट दैत्य बलवान् वृषासुर घोड़ोंसहित रथोंको अपने सींगोंपर उठाकर बारंबार घुमाता हुआ चारों दिशाओंमें फेंकने लगा॥ २७-२८॥

राजेन्द्र! बलवान् दैत्यराज केशीने बलपूर्वक अपने पिछले पैरोंसे बहुत-से वीरों और अश्वोंको इधर-उधर धराशायी कर दिया। ऐसा भयंकर युद्ध देखकर कौरव-सेनाके शेष वीर भयसे व्याकुल हो दसों दिशाओंमें भाग गये। दैत्यराज वीर कंस विजयके उल्लासमें नगारे बजवाता हुआ कुटुम्बसहित रंगोजि गोपको अपने साथ ही मथुरा ले गया॥ २९—३१॥

अपनी सेनाकी पराजयका समाचार सुनकर कौरव क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे। परंतु वर्तमान समयको दैत्योंके अनुकूल देखकर वे सब-के-सब चुप रह गये। व्रजमण्डलकी सीमापर बर्हिषद् नामसे प्रसिद्ध एक मनोहर पुर था, जिसे बलवान् दैत्यराज कंसने रंगोजिको दे दिया। गोपनायक रंगोजि वहीं निवास करने लगा। श्रीहरिके वरदानसे जालंधरके अन्तः-पुरकी स्त्रियाँ उसी गोपकी पत्नियोंके गर्भसे उत्पन्न हुईं॥ ३२—३४॥

परिणीता गोपजनै रूपयौवनभूषिताः।
जारधर्मेण सुस्नेहं श्रीकृष्णे ताः प्रचक्रिरे॥ ३५

चैत्रमासे महारासे ताभिः साकं हरिः स्वयम्।
पुण्ये वृन्दावने रम्ये रेमे वृन्दावनेश्वरः॥ ३६

रूप और यौवनसे विभूषित वे गोपकन्याएँ दूसरे-दूसरे गोपजनोंको ब्याह दी गयीं, परंतु वे जारभावसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ प्रेम करने लगीं। वृन्दावनेश्वर श्यामसुन्दरने चैत्रमासके महारासमें उन सबके साथ पुण्यमय रमणीय वृन्दावन-के भीतर विहार किया॥ ३५-३६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे जालन्धर्युपाख्यानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'जालंधरी गोपियोंका उपाख्यान' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

बर्हिष्मतीपुरी आदिकी वनिताओंका गोपीरूपमें प्राकट्य तथा भगवान्के साथ उनका रासविलास; मांधाता और सौभरिके संवादमें यमुना-पञ्चाङ्गकी प्रस्तावना

श्रीनारद उवाच

व्रजे शोणपुराधीशो गोपो नन्दो धनी महान्।
भार्याः पञ्चसहस्राणि बभूवुस्तस्य मैथिल॥ १

जाता मत्स्यवरात्तासु समुद्रे गोपकन्यकाः।
तथान्याश्च विचित्रापि पृथिव्या दोहनान्नृप॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] व्रजमें शोणपुरके स्वामी नन्द बड़े धनी थे। मिथिलेश्वर! उनके पाँच हजार पत्नियाँ थीं। उनके गर्भसे समुद्रसम्भवा लक्ष्मीजीकी वे सखियाँ उत्पन्न हुईं, जिन्हें मत्स्यावतारधारी भगवान्से वैसा वर प्राप्त हुआ था। नरेश्वर! इनके सिवा और भी, विचित्र ओषधियाँ, जो पृथ्वीके दोहनसे प्रकट हुई थीं, वहाँ गोपीरूपमें उत्पन्न हुईं॥ १-२॥

बर्हिष्मतीपुरन्ध्र्यो या जाता जातिस्मराः पराः।
तथान्याप्सरसोऽभूवन् वरान्नारायणस्य च॥ ३

तथा सुतलवासिन्यो वामनस्य वरात्स्त्रियः।
तथा नागेन्द्रकन्याश्च जाताः शेषवरात्परात्॥ ४

ताभ्यो दुर्वाससा दत्तं कृष्णापञ्चाङ्गमद्भुतम्।
तेन सम्पूज्य यमुनां वव्रिरे श्रीपतिं वरम्॥ ५

बर्हिष्मतीपुरीकी वे नारियाँ भी [जिन्हें महाराज पृथुका वर प्राप्त था] जातिस्मरा गोपियोंके रूपमें व्रजमें उत्पन्न हुई थीं तथा नर-नारायणके वरदानसे अप्सराएँ भी गोपीरूपमें प्रकट हुई थीं। सुतलवासिनी दैत्यनारियाँ वामनके वरसे तथा नागराजोंकी कन्याएँ भगवान् शेषके उत्तम वरसे व्रजमें उत्पन्न हुईं। दुर्वासामुनिने उन सबको अद्भुत 'कृष्णा-पञ्चाङ्ग' दिया था, जिससे यमुनाजीकी पूजा करके उन्होंने श्रीपतिका वररूपमें वरण किया॥ ३—५॥

एकदा श्रीहरिस्ताभिर्वृन्दारण्ये मनोहरे।
यमुनानिकटे दिव्ये पुंस्कोकिलतरुव्रजे॥ ६

मधुपध्वनिसंयुक्ते कूजत्कोकिलसारसे।
मधुमासे मन्दवायौ वसन्तलतिकावृते॥ ७

एक दिनकी बात है—मनोहर वृन्दावनमें दिव्य यमुनातटपर, जहाँ नर-कोकिलोंसे सुशोभित हरे-भरे वृक्ष-समुदाय शोभा दे रहे थे, भ्रमरोंके गुञ्जारवके साथ कोकिलों और सारसोंकी मीठी बोली गूँज रही थी, वासन्ती लताओंसे आवृत तथा शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुसे परिसेवित मधुमासमें, उन गोपाङ्गनाओंके साथ, मदनमोहन

दोलोत्सवं समारेभे हरिर्मदनमोहनः।
कदम्बवृक्षे रहसि कल्पवृक्षे मनोहरे॥ ८

कालिन्दीजलकल्लोलकोलाहलसमाकुले।
तद्दोलाखेलनं चक्रुस्ता गोप्यः प्रेमविह्वलाः॥ ९

राधया कीर्तिसुतया चन्द्रकोटिप्रकाशया।
रेजे वृन्दावने कृष्णो यथा रत्या रतीश्वरः॥ १०

एवं प्राप्ताश्च याः सर्वाः श्रीकृष्णं नन्दनन्दनम्।
परिपूर्णतमं साक्षात्तासां किं वर्ण्यते तपः॥ ११

नागेन्द्रकन्या याः सर्वाश्चैत्रमासे मनोहरे।
बलभद्रं हरिं प्राप्ताः कृष्णातीरे तु ताः शुभाः॥ १२

इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम्।
सर्वपापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १३

श्रीबहुलाश्व उवाच

यमुनायाश्च पञ्चाङ्गं दत्तं दुर्वाससा मुने।
गोपीभ्यो येन गोविन्दः प्राप्तस्तद्ब्रूहि मां प्रभो॥ १४

श्रीनारद उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः परा भवेत्॥ १५

अयोध्याधिपतिः श्रीमान् मान्धाता राजसत्तमः।
मृगयां विचरन् प्राप्तः सौभरेराश्रमं शुभम्॥ १६

वृन्दावने स्थितं साक्षात्कृष्णातीरे मनोहरे।
नत्वा जामातरं राजा सौभरिं प्राह मानदः॥ १७

मान्धातोवाच

भगवन् सर्ववित्साक्षात्त्वं परावरवित्तमः।
लोकानां तमसोऽन्धानां दिव्यसूर्य इवापरः॥ १८

श्यामसुन्दर श्रीहरिने कल्पवृक्षोंकी श्रेणीसे मनोरम प्रतीत होनेवाले कदम्बवृक्षके नीचे एकान्त स्थानमें झूला झूलनेका उत्सव आरम्भ किया॥ ६—८॥

वहाँ यमुना-जलकी उत्ताल तरङ्गोंका कोलाहल फैला हुआ था। वे प्रेमविह्वला गोपाङ्गनाएँ श्रीहरिके साथ झूला झूलनेकी क्रीड़ा कर रही थीं। जैसे रतिके साथ रतिपति कामदेव शोभा पाते हैं, उसी प्रकार करोड़ों चन्द्रोंसे भी अधिक कान्तिमती कीर्तिकुमारी श्रीराधाके साथ वृन्दावनमें श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार जो साक्षात् परिपूर्णतम नन्द-नन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त हुई थीं, उन समस्त गोपाङ्गनाओंके तपका क्या वर्णन हो सकता है?॥ ९—११॥

नागराजोंकी समस्त सुन्दरी कन्याएँ, जो गोपीरूपमें उत्पन्न हुई थीं, मनोहर चैत्रमासमें यमुनाके तटपर श्रीबलभद्र हरिकी सेवामें उपस्थित थीं। राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो परम पवित्र तथा समस्त पापोंको हर लेनेवाला है। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो?॥ १२-१३॥

श्रीबहुलाश्व बोले—मुने! प्रभो! दुर्वासाका दिया हुआ यमुनाजीका पञ्चाङ्ग क्या है, जिससे गोपियोंको गोविन्दकी प्राप्ति हो गयी? उसका मुझसे वर्णन कीजिये॥ १४॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! इस विषयमें विज्ञजन एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंकी पूर्णतया निवृत्ति हो जाती है। अयोध्यामें मान्धाता नामसे प्रसिद्ध एक तेजस्वी राजशिरोमणि उस पुरीके अधिपति थे। एक दिन वे शिकार खेलनेके लिये वनमें गये और विचरते हुए, सौभरिमुनिके सुन्दर आश्रमपर जा पहुँचे। उनका वह आश्रम साक्षात् वृन्दावनमें यमुनाजीके मनोहर तटपर स्थित था। वहाँ अपने जामाता सौभरिमुनिको प्रणाम करके मानदाता मांधाताने कहा॥ १५—१७॥

मान्धाता बोले—भगवन्! आप साक्षात् सर्वज्ञ हैं, परावरवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और अज्ञानान्धकारसे अंधे हुए लोगोंके लिये दूसरे दिव्य सूर्यके समान हैं। मुझे शीघ्र ही ऐसा कोई उत्तम साधन बताइये, जिससे

इह लोके भवेद्राज्यं सर्वसिद्धिसमन्वितम्।
अमुत्र कृष्णसारूप्यं येन स्यात्तद्वदाशु मे॥ १९

इस लोकमें सम्पूर्ण सिद्धियोंसे सम्पन्न राज्य बना रहे और परलोकमें भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त हो॥ १८-१९॥

सौभरिरुवाच

यमुनायाश्च पञ्चाङ्गं वदिष्यामि तवाग्रतः।
सर्वसिद्धिकरं शश्वत्कृष्णसारूप्यकारकम्॥ २०

यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति।
तावद्राज्यप्रदं चात्र श्रीकृष्णवशकारकम्॥ २१

कवचं च स्तवं नाम्नां सहस्रं पटलं तथा।
पद्धतिं सूर्यवंशेन्द्र पञ्चाङ्गानि विदुर्बुधाः॥ २२

सौभरि बोले—राजन्! मैं तुम्हारे सामने यमुनाजीके पञ्चाङ्गका वर्णन करूँगा, जो सदा समस्त सिद्धियोंको देनेवाला तथा श्रीकृष्णके सारूप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। यह साधन जहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँ वह अस्तभावको प्राप्त होता है, वहाँतकके राज्यकी प्राप्ति करानेवाला तथा यहाँ श्रीकृष्णको भी वशीभूत करनेवाला है। सूर्यवंशेन्द्र! किसी भी देवताके कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, पटल तथा पद्धति—ये पाँच अङ्ग विद्वानोंने बताये हैं॥ २०—२२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीसौभरिमान्धातृसंवादे बर्हिष्मतीपुरंध्र्यप्सरःसुतलवासिनीनागेन्द्रकन्योपाख्यानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीसौभरि और मांधाताके संवादके अन्तर्गत बर्हिष्मतीपुरीकी नारियों, अप्सराओं, सुतलवासिनी नागराज-कन्याओंके गोपीरूपमें उत्पन्न होनेका उपाख्यान' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

श्रीयमुना-कवच

मान्धातोवाच

यमुनायाः कृष्णराज्ञ्याः कवचं सर्वतोऽमलम्।
देहि मह्यं महाभाग धारयिष्याम्यहं सदा॥ १

मांधाता बोले—महाभाग! आप मुझे श्रीकृष्णकी पटरानी यमुनाके सर्वथा निर्मल कवचका उपदेश दीजिये, मैं उसे सदा धारण करूँगा॥ १॥

सौभरिरुवाच

यमुनायाश्च कवचं सर्वरक्षाकरं नृणाम्।
चतुष्पदार्थदं साक्षाच्छृणु राजन् महामते॥ २

कृष्णां चतुर्भुजां श्यामां पुण्डरीकदलेक्षणाम्।
रथस्थां सुन्दरीं ध्यात्वा धारयेत्कवचं ततः॥ ३

स्नातः पूर्वमुखो मौनी कृतसन्ध्यः कुशासने।
कुशैर्बद्धशिखो विप्रः पठेद्वै स्वस्तिकासनः॥ ४

सौभरि बोले—महामते नरेश! यमुनाजीका कवच मनुष्योंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाला तथा साक्षात् चारों पदार्थोंको देनेवाला है, तुम इसे सुनो—यमुनाजीके चार भुजाएँ हैं। वे श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थासे युक्त) हैं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर एवं विशाल हैं। वे परम सुन्दरी हैं और दिव्य रथपर बैठी हुई हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करके कवच धारण करे॥ २-३॥

स्नान करके पूर्वाभिमुख हो मौनभावसे कुशासनपर बैठे और कुशोंद्वारा शिखा बाँधकर संध्या-वन्दन करनेके अनन्तर ब्राह्मण (अथवा द्विजमात्र) स्वस्तिकासनसे स्थित हो कवचका पाठ करे॥ ४॥

यमुना मे शिरः पातु कृष्णा नेत्रद्वयं सदा।
श्यामा भ्रूभङ्गदेशं च नासिकां नाकवासिनी॥ ५

कपोलौ पातु मे साक्षात्परमानन्दरूपिणी।
कृष्णवामांससम्भूता पातु कर्णद्वयं मम॥ ६

अधरौ पातु कालिन्दी चिबुकं सूर्यकन्यका।
यमस्वसा कन्धरां च हृदयं मे महानदी॥ ७

कृष्णप्रिया पातु पृष्ठं तटिनी मे भुजद्वयम्।
श्रोणीतटं च सुश्रोणी कटिं मे चारुदर्शना॥ ८

ऊरुद्वयं तु रम्भोरुर्जानुनी त्वङ्घ्रिभेदिनी।
गुल्फौ रासेश्वरी पातु पादौ पापापहारिणी॥ ९

अन्तर्बहिरधश्चोर्ध्वं दिशासु विदिशासु च।
समन्तात्पातु जगतः परिपूर्णतमप्रिया॥ १०

इदं श्रीयमुनायाश्च कवचं परमाद्भुतम्।
दशवारं पठेद्भक्त्या निर्धनो धनवान् भवेत्॥ ११

त्रिभिर्मासैः पठेद्धीमान् ब्रह्मचारी मिताशनः।
सर्वराज्याधिपत्यञ्च प्राप्यते नात्र संशयः॥ १२

दशोत्तरशतं नित्यं त्रिमासावधि भक्तितः।
यः पठेत्प्रयतो भूत्वा तस्य किं किं न जायते॥ १३

यः पठेत्प्रातरुत्थाय सर्वतीर्थफलं लभेत्।
अन्ते व्रजेत्परं धाम गोलोकं योगिदुर्लभम्॥ १४

'**यमुना**' मेरे मस्तककी रक्षा करें और '**कृष्णा**' सदा दोनों नेत्रोंकी। '**श्यामा**' भ्रूभंग-देशकी और '**नाकवासिनी**' नासिकाकी रक्षा करें। '**साक्षात् परमानन्दरूपिणी**' मेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें। '**कृष्णवामांससम्भूता**' (श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई वे देवी) मेरे दोनों कानोंका संरक्षण करें। '**कालिन्दी**' अधरोंकी और '**सूर्यकन्या**' चिबुक (ठेढ़ी) की रक्षा करें। '**यमस्वसा**' (यमराजकी बहन) मेरी ग्रीवाकी और '**महानदी**' मेरे हृदयकी रक्षा करें। '**कृष्णप्रिया**' पृष्ठ-भागका और '**तटिनी**' मेरी दोनों भुजाओंका रक्षण करें। '**सुश्रोणी**' श्रोणीतट (नितम्ब)-की और '**चारुदर्शना**' मेरे कटिप्रदेशकी रक्षा करें। '**रम्भोरु**' दोनों ऊरुओं (जाँघों)-की और '**अङ्घ्रिभेदिनी**' मेरे दोनों घुटनोंकी रक्षा करें। '**रासेश्वरी**' गुल्फों (घुट्टियों)-का और '**पापापहारिणी**' पादयुगलका त्राण करें। '**परिपूर्णतमप्रिया**' भीतर-बाहर, नीचे-ऊपर तथा दिशाओं और विदिशाओंमें सब ओरसे मेरी रक्षा करें॥ ५—१०॥

यह श्रीयमुनाका परम अद्भुत कवच है। जो भक्तिभावसे दस बार इसका पाठ करता है, वह निर्धन भी धनवान् हो जाता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक परिमित आहारका सेवन करते हुए तीन मासतक इसका पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण राज्योंका आधिपत्य प्राप्त कर लेगा, इसमें संशय नहीं है॥ ११-१२॥

जो तीन महीनेकी अवधितक प्रतिदिन भक्तिभावसे शुद्धचित्त हो इसका एक सौ दस बार पाठ करेगा, उसको क्या-क्या नहीं मिल जायगा? जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करेगा, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल मिल जायगा तथा अन्तमें वह योगिदुर्लभ परमधाम गोलोकमें चला जायगा॥ १३-१४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीसौभरिमान्धातृसंवादे श्रीयमुनाकवचं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें श्रीसौभरि-मान्धाताके संवादके प्रसंगमें 'श्रीयमुना-कवच' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीयमुनाका स्तोत्र

मान्धातोवाच

यमुनायाः स्तवं दिव्यं सर्वसिद्धिकरं परम्।
सौभरे मुनिशार्दूल वद मां कृपया त्वरम्॥ १

श्रीसौभरिरुवाच

मार्तण्डकन्यकायास्तु स्तवं शृणु महामते।
सर्वसिद्धिकरं भूमौ चातुर्वर्ग्यफलप्रदम्॥ २

कृष्णवामांसभूतायै कृष्णायै सततं नमः।
नमः श्रीकृष्णरूपिण्यै कृष्णे तुभ्यं नमो नमः॥ ३

यः पापपङ्काम्बुकलङ्ककुत्सितः
कामी कुधीः सत्सु कलिं करोति हि।
वृन्दावनं धाम ददाति तस्मै
नदन्मिलिन्दादिकलिन्दनन्दिनी ॥ ४

कृष्णे साक्षात्कृष्णरूपा त्वमेव
वेगावर्ते वर्तते मत्स्यरूपी।
ऊर्मावूर्मौ कूर्मरूपी सदा ते
बिन्दौ बिन्दौ भाति गोविन्ददेवः॥ ५

वन्दे लीलावतीं त्वां सघनघननिभां
कृष्णवामांसभूतां
वेगं वै वैरजाख्यं सकलजलचयं
खण्डयन्तीं बलात् स्वात्।
छित्त्वा ब्रह्माण्डमारात्सुरनगरनगान्
गण्डशैलादिदुर्गान् ।
भित्त्वा भूखण्डमध्ये तटिनि धृतवती-
मूर्मिमालां प्रयान्तीम्॥ ६

दिव्यं कौ नामधेयं श्रुतमथ यमुने
दण्डयत्यद्रितुल्यं
पापव्यूहं त्वखण्डं वसतु मम गिरा-
मण्डले तु क्षणं तत्।

मांधाता बोले—मुनिश्रेष्ठ सौभरे! सम्पूर्ण सिद्धिप्रदान करनेवाला जो यमुनाजीका दिव्य उत्तम स्तोत्र है, उसका कृपापूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीसौभरिमुनिने कहा—महामते! अब तुम सूर्यकन्या यमुनाका स्तोत्र सुनो, जो इस भूतलपर समस्त सिद्धियोंको देनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंका फल देनेवाला है। श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई 'कृष्णा' को सदा मेरा नमस्कार है। कृष्णे! तुम श्रीकृष्णस्वरूपिणी हो; तुम्हें बारंबार नमस्कार है। जो पापरूपी पङ्कजलके कलङ्कसे कुत्सित कामी कुबुद्धि मनुष्य सत्पुरुषोंके साथ कलह करता है, उसे भी गूँजते हुए भ्रमर और जलपक्षियोंसे युक्त कलिन्दनन्दिनी यमुना वृन्दावनधाम प्रदान करती हैं॥ २—४॥

कृष्णे! तुम्हीं साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूपा हो। तुम्हीं [प्रलयसिन्धुके] वेगयुक्त भँवरमें महामत्स्यरूप धारण करके विराजती हो। तुम्हारी ऊर्मि-ऊर्मिमें भगवान् कूर्मरूपसे वास करते हैं तथा तुम्हारे बिन्दु-बिन्दुमें श्रीगोविन्ददेवकी आभाका दर्शन होता है॥ ५॥

तटिनि! तुम लीलावती हो, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम घनीभूत मेघके समान श्याम कान्ति धारण करती हो। श्रीकृष्णके बायें कंधेसे तुम्हारा प्राकट्य हुआ है। सम्पूर्ण जलोंकी राशिरूप जो विरजा नदीका वेग है, उसको भी अपने बलसे खण्डित करती हुई, ब्रह्माण्डको छेदकर देवनगर, पर्वत, गण्डशैल आदि दुर्गम वस्तुओंका भेदन करके तुम इस भूमिखण्डके मध्यभागमें अपनी तरङ्गमालाओंको स्थापित करके प्रवाहित होती हो॥ ६॥

यमुने! पृथ्वीपर तुम्हारा नाम दिव्य है। वह श्रवणपथमें आकर पर्वताकार पापसमूहको भी दण्डित एवं खण्डित कर देता है। तुम्हारा वह अखण्ड नाम मेरे वाङ्मण्डल—वचनसमूहमें क्षणभर भी स्थित हो जाय। यदि वह एक बार भी वाणीद्वारा गृहीत हो जाय तो समस्त पापोंका खण्डन हो जाता है। उसके

दण्ड्यांश्चाकार्यदण्ड्यान् सकृदपि वचसा
खण्डितं यद्गृहीतं
भ्रातुर्मार्तण्डसूनोरटति पुरि दृढ-
स्ते प्रचण्डोऽतिदण्डः॥ ७

रज्जुर्वा विषयान्धकूपतरणे
पापाखुदर्वीकरी
वेण्युष्णिक् च विराजमूर्तिशिरसो
मालास्ति वा सुन्दरी।
धन्यं भाग्यमतः परं भुवि नृणां
यत्रादिकृद्वल्लभा
गोलोकेऽप्यतिदुर्लभातिसुभगा
भात्यद्वितीया नदी॥ ८

गोपीगोकुलगोपकेलिकलिते
कालिन्दि कृष्णप्रभे
त्वत्कूले जललोलगोलविचलत्-
कल्लोलकोलाहलः ।
त्वत्कान्तारकुतूहलालिकुलकृ-
ज्झङ्कारकेकाकुलः
कूजत्कोकिलसङ्कुलो व्रजलता-
लङ्कारभृत्पातु माम्॥ ९

भवन्ति जिह्वास्तनुरोमतुल्या
गिरो यदा भूसिकता इवाशु।
तदप्यलं यान्ति न ते गुणान्तं
सन्तो महान्तः किल शेषतुल्याः॥ १०

कलिन्दगिरिनन्दिनीस्तव उषस्ययं वापरः
श्रुतश्च यदि पाठितो भुवि तनोति सन्मङ्गलम्।
जनोऽपि यदि धारयेत्किल पठेच्च यो नित्यशः
स याति परमं पदं निजनिकुञ्जलीलावृतम्॥ ११

स्मरणसे दण्डनीय पापी भी अदण्डनीय हो जाते हैं। तुम्हारे भाई सूर्यपुत्र यमराजके नगरमें तुम्हारा 'प्रचण्डा' यह नाम सुदृढ़ अतिदण्ड बनकर विचरता है॥ ७॥

तुम विषयरूपी अन्धकूपसे पार जानेके लिये रस्सी हो; अथवा पापरूपी चूहोंको निगल जानेवाली काली नागिन हो; अथवा विराट् पुरुषकी मूर्तिकी वेणीको अलंकृत करनेवाला नीले पुष्पोंका गजरा हो या उनके मस्तकपर सुशोभित होनेवाली सुन्दर नीलमणिकी माला हो। जहाँ आदिकर्ता भगवान् श्रीकृष्णकी वल्लभा, गोलोकमें भी अतिदुर्लभा, अति सौभाग्यवती अद्वितीया नदी श्रीयमुना प्रवाहित होती हैं, उस भूतलके मनुष्योंका भाग्य इसी कारणसे धन्य है॥ ८॥

गौओंके समुदाय तथा गोप-गोपियोंकी क्रीडासे कलित कलिन्दनन्दिनी यमुने! कृष्णप्रभे! तुम्हारे तटपर जो जलकी गोलाकार, चपल एवं उत्ताल तरङ्गोंका कोलाहल (कल-कल रव) होता है, वह सदा मेरी रक्षा करे। तुम्हारे दुर्गम कुञ्जोंके प्रति कौतूहल रखनेवाले भ्रमरसमुदायके गुञ्जारव, मयूरोंकी केका तथा कूजते हुए कोकिलोंकी काकलीका शब्द भी उस कोलाहलमें मिला रहता है तथा वह व्रजलताओंके अलंकारको धारण करनेवाला है॥ ९॥

शरीरमें जितने रोम हैं, उतनी ही जिह्वाएँ हो जायँ, धरतीपर जितने सिकताकण हैं, उतनी ही वाग्देवियाँ आ जायँ और उनके साथ संत-महात्मा भी शेषनागके समान सहस्रों जिह्वाओंसे युक्त होकर गुणगान करने लग जायँ, तथापि तुम्हारे गुणोंका अन्त कभी नहीं हो सकता। कलिन्दगिरिनन्दिनी यमुनाका यह उत्तम स्तोत्र यदि उषःकालमें ब्राह्मणके मुखसे सुना जाय अथवा स्वयं पढ़ा जाय तो भूतलपर परम मङ्गलका विस्तार करता है। जो कोई मनुष्य भी यदि नित्यशः इसका धारण (चिन्तन) करे तो वह भगवान्‌की निज निकुञ्जलीलाके द्वारा वरण किये गये परमपदको प्राप्त होता है॥ १०-११॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीसौभरिमान्धातृसंवादे श्रीयमुनास्तवो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीसौभरि-मांधाताके संवादमें 'श्रीयमुनास्तोत्र' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

यमुनाजीके जप और पूजनके लिये पटल और पद्धतिका वर्णन

मान्धातोवाच

कृष्णायाः पटलं पुण्यं कामदं पद्धतिं तथा।
वद मां मुनिशार्दूल त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः॥ १

सौभरिरुवाच

पटलं पद्धतिं वक्ष्ये यमुनाया महामते।
कृत्वा श्रुत्वाथ जप्त्वा वा जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ २

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मायाबीजं ततः परम्।
रमाबीजं ततः कृत्वा कामबीजं विधानतः॥ ३

कालिन्दीति चतुर्थ्यन्तं देवीपदमतः परम्।
नमः पश्चात्संविधार्य जपेन्मन्त्रमिमं नरः॥ ४

जप्त्वैकादशलक्षाणि मन्त्रसिद्धिर्भवेद्भुवि।
जनैः प्रार्थ्याश्च ये कामाः सर्वे प्राप्याः स्वतश्च ते॥ ५

विधाय षोडशदलं पद्मं सिंहासने शुभे।
कर्णिकायां च कालिन्दीं न्यसेच्छ्रीकृष्णसंयुताम्॥ ६

जाह्नवीं विरजां कृष्णां चन्द्रभागां सरस्वतीम्।
गोमतीं कौशिकीं वेणीं सिन्धुं गोदावरीं तथा॥ ७

वेदस्मृतिं वेत्रवतीं शतद्रूं सरयूं तथा।
पूजयेन्मानवश्रेष्ठ ऋषिकुल्यां ककुद्मिनीम्॥ ८

पृथक्पृथक् तद्दलेषु नामोच्चार्य विधानतः।
वृन्दावनं गोवर्धनं वृन्दां च तुलसीं तथा।
चतुर्दिक्षु विधायाशु पूजयेन्नामभिः पृथक्॥ ९

ॐ नमो भगवत्यै कलिन्दनन्दिन्यै सूर्यकन्यकायै यमभगिन्यै श्रीकृष्णप्रियायै यूथीभूतायै स्वाहा। अनेन मन्त्रेणावाहनादिषोडशोपचारान् समाहित उपाहरेत्॥ १०

मान्धाता बोले—मुनिश्रेष्ठ! यमुनाजीके कामपूरक पवित्र पटल तथा पद्धतिका जैसा स्वरूप है, वह मुझे बताइये; क्योंकि आप साक्षात् ज्ञानकी निधि हैं॥ १॥

सौभरिने कहा—महामते! अब मैं यमुनाजीके पटल तथा पद्धतिका भी वर्णन करता हूँ, जिसका अनुष्ठान, श्रवण अथवा जप करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। पहले प्रणव (ॐ)-का उच्चारण करके फिर मायाबीज (**ह्रीं**)-का उच्चारण करे। तत्पश्चात् लक्ष्मीबीज (**श्रीं**)-को रखकर उसके बाद कामबीज (**क्लीं**)-का विधिवत् प्रयोग करे। इसके अनन्तर 'कालिन्दी' शब्दका चतुर्थ्यन्त रूप (**कालिन्द्यै**) रखे। फिर 'देवी' शब्दके चतुर्थ्यन्तरूप (**देव्यै**)-का प्रयोग करके अन्तमें '**नमः**' पद जोड़ दे। (इस प्रकार '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिन्द्यै देव्यै नमः।**' यह मन्त्र बनेगा।) इस मन्त्रका मनुष्य विधिवत् जप करे। इस ग्यारह अक्षरवाले मन्त्रका ग्यारह लाख जप करनेसे इस पृथ्वीपर सिद्धि प्राप्त हो सकती है। मनुष्योंद्वारा जिन-जिन काम्य-पदार्थोंके लिये प्रार्थना की जाती है, वे सब स्वतः सुलभ हो जाते हैं॥ २—५॥

सुन्दर सिंहासनपर षोडशदल कमल अङ्कित करके उसकी कर्णिकामें श्रीकृष्णसहित कालिन्दीका न्यास (स्थापन) करे। कमलके सोलह दलोंमें अलग-अलग विधिपूर्वक नाम ले-लेकर मानवश्रेष्ठ साधक क्रमशः गङ्गा, विरजा, कृष्णा, चन्द्रभागा, सरस्वती, गोमती, कौशिकी, वेणी, सिंधु, गोदावरी, वेदस्मृति, वेत्रवती, शतद्रू, सरयू, ऋषिकुल्या तथा ककुद्मिनीका पूजन करे। पूर्वादि चार दिशाओंमें क्रमशः वृन्दावन, गोवर्धन, वृन्दा तथा तुलसीका उनके नामोच्चारणपूर्वक क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् '**ॐ नमो भगवत्यै कलिन्दनन्दिन्यै सूर्यकन्यकायै यमभगिन्यै श्रीकृष्णप्रियायै यूथीभूतायै स्वाहा।**' इस मन्त्रसे आवाहन आदि सोलह उपचारोंको एकाग्रचित्त हो अर्पित करे॥ ६—१०॥

इत्येवं पटलं विद्धि तुभ्यं वक्ष्यामि पद्धतिम्।
यावत्सम्पूर्णतां याति पुरश्चरणमेव हि॥ ११

तावद्भवेद्ब्रह्मचारी जपेन्मौनव्रती द्विजः।
यवभोजी भूमिशायी पत्रभुग्जितमानसः॥ १२

कामं क्रोधं तथा लोभं मोहं द्वेषं विसृज्य सः।
भक्त्या परमया राजन् वर्तमानस्तु देशकः॥ १३

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय ध्यात्वा देवीं कलिन्दजाम्।
अरुणोदयवेलायां नद्यां स्नानं समाचरेत्॥ १४

मध्याह्ने चापि सन्ध्यायां सन्ध्यावन्दनतत्परः।
समाप्ते नियमे राजन् कालिन्दीतीरमास्थितः॥ १५

दशलक्षं ब्राह्मणानां सपुत्राणां महात्मनाम्।
पूजयित्वा गन्धपुष्पैर्दत्वा तेभ्यः सुभोजनम्॥ १६

वस्त्रभूषणसौवर्णपात्राणि प्रस्फुरन्ति च।
दक्षिणाश्च शुभा दद्यात्ततः सिद्धिर्भवेत्खलु॥ १७

इति ते पद्धतिः प्रोक्ता मया राजन् महामते।
कुरु त्वं नियमं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १८

इस प्रकार यमुनाका पटल जानो। अब पद्धति बताऊँगा। जबतक पुरश्चरण पूरा न हो जाय, तबतक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए मौनावलम्बनपूर्वक द्विजको जप करना चाहिये। पुरश्चरणकालमें जौका आटा खाय, पृथ्वीपर शयन करे, पत्तलपर भोजन करे और मनको वशमें रखे॥ ११-१२॥

राजन्! आचार्यको चाहिये कि काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा द्वेषको त्यागकर परम भक्तिभावसे जपमें प्रवृत्त रहे। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर कालिन्दी देवीका ध्यान करे और अरुणोदयकी बेलामें नदीमें स्नान करे। मध्याह्नकालमें और दोनों संध्याओंके समय संध्या-वन्दन अवश्य किया करे। राजन्! जब अनुष्ठान समाप्त हो, तब यमुनाके तटपर जाकर पुत्रों-सहित दस लाख महात्मा ब्राह्मणोंका गन्ध-पुष्पसे पूजन करके उन्हें उत्तम भोजन दे। तदनन्तर वस्त्र, आभूषण और सुवर्णमय चमकीले पात्र तथा उत्तम दक्षिणाएँ दे। इससे निश्चय ही सिद्धि होती है॥ १३—१७॥

महामते! नरेश! इस प्रकार मैंने तुमसे यमुनाजीके जप और पूजनकी पद्धति बतायी है। तुम सारा नियम पूर्ण करो। बताओ! अब और क्या सुनना चाहते हो?॥१८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे सौभरिमान्धातृसंवादे पटलपद्धतिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत मांधाता और सौभरिके संवादमें 'पटल और पद्धतिका वर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

यमुना-सहस्रनाम

मान्धातोवाच

नाम्नां सहस्रं कृष्णायाः सर्वसिद्धिकरं परम्।
वद मां मुनिशार्दूल त्वं सर्वज्ञो निरामयः॥ १

मान्धाता बोले—मुनिश्रेष्ठ! यमुनाजीका सहस्र-नाम समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला उत्तम साधन है, आप मुझे उसका उपदेश कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ और निरामय (रोग-शोकसे रहित) हैं॥ १॥

सौभरिरुवाच

नाम्नां सहस्रं कालिन्द्या मान्धातस्ते वदाम्यहम्।
सर्वसिद्धिकरं दिव्यं श्रीकृष्णवशकारकम्॥ २

सौभरिने कहा—मांधाता नरेश! मैं तुमसे 'कालिन्दीसहस्रनाम' का वर्णन करता हूँ। वह समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला, दिव्य तथा श्रीकृष्णको वशीभूत करनेवाला है॥ २॥

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीकालिन्दीसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य सौभरिर्ऋषिः श्रीयमुना देवता, अनुष्टुप्छन्दः मायाबीजमिति बीजम्, कामबीजमिति कीलकम्, रमाबीजमिति शक्तिः, श्रीकलिन्दनन्दिनीप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

अथ ध्यानम्

श्यामामम्भोजनेत्रां सघनघनरुचिं रत्नमञ्जीरकूजत्काञ्चीकेयूरयुक्तां कनकमणिमये बिभ्रतीं कुण्डले द्वे।
भ्राजच्छ्रीनीलवस्त्रस्फुरदभिजचलद्धारभारां मनोज्ञां ध्यायेन् मार्तण्डपुत्रीं तनुकिरणचयोद्दीप्तदीपाभिरामाम्॥ ३

सहस्रनाम

ॐकालिन्दी यमुना कृष्णा कृष्णरूपा सनातनी।
कृष्णवामांससम्भूता परमानन्दरूपिणी॥ ४

गोलोकवासिनी श्यामा वृन्दावनविनोदिनी।
राधासखी रासलीला रासमण्डलमण्डनी॥ ५

विनियोग

ॐ अस्य श्रीकालिन्दीसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य सौभरिर्ऋषिः श्रीयमुना देवता, अनुष्टुप्छन्दः मायाबीजमिति बीजम्, कामबीजमिति कीलकम्, रमाबीजमिति शक्तिः, श्रीकलिन्दनन्दिनीप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

—उक्त वाक्य पढ़कर सहस्रनाम-पाठके लिये विनियोगका जल छोड़े।

ध्यान

जो श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थावाली) हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दलकी शोभाको छीने लेते हैं, घनीभूत मेघके समान जिनकी नील कान्ति है, जो रत्नोंद्वारा निर्मित बजते हुए नूपुर और झनकारती हुई करधनी एवं केयूर आदि आभूषणोंसे युक्त हैं तथा कानोंमें सुवर्ण एवं मणिनिर्मित दो कुण्डल धारण करती हैं, दीप्तिमती नीली साड़ीपर चमकते हुए गजमौक्तिकके चञ्चल हारका भार वहन करनेसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं, शरीरसे छिटकती हुई किरणोंकी राशिसे उद्दीप्त होनेके कारण जिनकी प्रज्वलित दीपमालाके समान शोभा हो रही है, उन सूर्यनन्दिनी यमुनाजीका मैं ध्यान करता हूँ॥ ३॥

सहस्रनाम

१. ॐ **कालिन्दी**=सच्चिदानन्दस्वरूपा कलिन्द-गिरिनन्दिनी, २. **यमुना**=यमकी बहिन, ३. **कृष्णा**=कृष्णवर्णा, ४. **कृष्णरूपा**=कृष्णस्वरूपा अथवा कृष्ण-रूपवाली, ५. **सनातनी**=नित्या, ६. **कृष्णवामांस-सम्भूता**=श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई, ७. **परमानन्दरूपिणी**=परमानन्दमयी॥ ४॥

८. **गोलोकवासिनी**=गोलोकधाममें निवास करनेवाली, ९. **श्यामा**=श्यामवर्णा अथवा षोडश वर्षकी अवस्थावाली, १०. **वृन्दावनविनोदिनी**=वृन्दावनमें मनोरञ्जन करनेवाली, ११. **राधासखी**=श्रीराधाकी सहचरी, १२. **रासलीला**=रासमण्डलमें लीला-परायणा अथवा रासलीलास्वरूपा, १३. **रासमण्डल-मण्डनी**=रासमण्डलको अलंकृत करनेवाली॥ ५॥

निकुञ्जवासिनी वल्ली रङ्गवल्ली मनोहरा।
श्री रासमण्डलीभूता यूथीभूता हरिप्रिया॥ ६

१४. **निकुञ्जवासिनी**=निकुञ्जमें निवास करनेवाली, १५. **वल्ली**=लतास्वरूपा, १६. **रङ्गवल्ली**=रासरङ्गस्थलीमें वल्लीके समान शोभा पानेवाली अथवा रङ्गवल्ली नामकी राधा-सखी गोपीसे अभिन्नस्वरूपा, १७. **मनोहरा**=मनको हर लेनेवाली, १८. **श्रीः**=लक्ष्मीस्वरूपा, १९. **रासमण्डलीभूता**=रासमण्डलस्वरूपा अथवा मण्डलाकार होकर रासमण्डलको अलंकृत करनेवाली, २०. **यूथीभूता**=अपनी सहचरियोंके यूथसे संयुक्त, २१. **हरिप्रिया**=श्रीकृष्णकी प्यारी॥ ६॥

गोलोकतटिनी दिव्या निकुञ्जतलवासिनी।
दीर्घोर्मिवेगगम्भीरा पुष्पपल्लववाहिनी॥ ७

२२. **गोलोकतटिनी**=गोलोकधामकी नदी, २३. **दिव्या**=दिव्यस्वरूपा, २४. **निकुञ्जतलवासिनी**=निकुञ्जके भीतर निवास करनेवाली, २५. **दीर्घा**=बहुत लंबे परिमाणकी, २६. **ऊर्मिवेगगम्भीरा**=तरंगोंके वेगसे युक्त एवं गहरी, २७. **पुष्पपल्लववाहिनी**=फूलों और पल्लवोंको बहानेवाली॥ ७॥

घनश्यामा मेघमाला बलाका पद्ममालिनी।
परिपूर्णतमा पूर्णा पूर्णब्रह्मप्रिया परा॥ ८

२८. **घनश्यामा**=मेघके समान श्याम कान्तिवाली, २९. **मेघमाला**=घनमालास्वरूपा, ३०. **बलाका**=बकपङ्क्तिस्वरूपा, ३१. **पद्ममालिनी**=कमलोंकी मालासे अलंकृत, ३२. **परिपूर्णतमा**=परिपूर्णतम भगवत्स्वरूपा, ३३. **पूर्णा**=पूर्णस्वरूपा, ३४. **पूर्णब्रह्मप्रिया**=पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ३५. **परा**=पराशक्तिस्वरूपा॥ ८॥

महावेगवती साक्षान्निकुञ्जद्वारनिर्गता।
महानदी मन्दगतिर्विरजावेगभेदिनी॥ ९

३६. **महावेगवती**=बड़े वेगवाली, ३७. **साक्षान्निकुञ्जद्वारनिर्गता**=साक्षात् निकुञ्जके द्वारसे निकली हुई, ३८. **महानदी**=विशाल सरिता, ३९. **मन्दगतिः**=मन्दगतिसे बहनेवाली, ४०. **विरजावेगभेदिनी**=गोलोकधामकी विरजा नदीके वेगका भेदन करनेवाली॥ ९॥

अनेकब्रह्माण्डगता ब्रह्मद्रवसमाकुला।
गङ्गामिश्रा निर्मलाभा निर्मला सरितांवरा॥ १०

४१. **अनेकब्रह्माण्डगता**=अनेकानेक ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त, ४२. **ब्रह्मद्रवसमाकुला**=ब्रह्मद्रवस्वरूपा गङ्गाजीसे मिली हुई, ४३. **गङ्गामिश्रा**=गङ्गाके जलसे मिश्रित जलवाली, ४४. **निर्मलाभा**=निर्मल आभावाली, ४५. **निर्मला**=सब प्रकारके मलोंसे रहित, ४६. **सरितांवरा**=नदियोंमें श्रेष्ठ॥ १०॥

रत्नबद्धोभयतटी हंसपद्मादिसङ्कुला।

४७. **रत्नबद्धोभयतटी**=दोनों किनारोंकी तटभूमिमें रत्नसे आबद्ध, ४८. **हंसपद्मादिसंकुला**=हंसादि

नदी निर्मलपानीया सर्वब्रह्माण्डपावनी॥ ११

वैकुण्ठपरिखीभूता परिखा पापहारिणी।
ब्रह्मलोकगता ब्राह्मी स्वर्गा स्वर्गनिवासिनी॥ १२

उल्लसन्ती प्रोत्पतन्ती मेरुमाला महोज्ज्वला।
श्रीगङ्गाम्भःशिखरिणी गण्डशैलविभेदिनी॥ १३

देशान् पुनन्ती गच्छन्ती वहन्ती भूमिमध्यगा।
मार्तण्डतनुजा पुण्या कलिन्दगिरिनन्दिनी॥ १४

यमस्वसा मन्दहासा सुद्विजा रचिताम्बरा।
नीलाम्बरा पद्ममुखी चरन्ती चारुदर्शना॥ १५

रम्भोरुः पद्मनयना माधवी प्रमदोत्तमा।
तपश्चरन्ती सुश्रोणी कूजन्नूपुरमेखला॥ १६

पक्षियों और कमल आदि पुष्पोंसे व्याप्त, ४९. **नदी**=अव्यक्त शब्द, कलकल नाद करनेवाली, ५०. **निर्मलपानीया**=स्वच्छ जलवाली, ५१. **सर्वब्रह्माण्डपावनी**=समस्त ब्रह्माण्डोंको पवित्र करनेवाली, ५२. **वैकुण्ठपरिखीभूता**=वैकुण्ठधामको चारों ओरसे घेरकर परिखा (खाई) के समान सुशोभित, ५३. **परिखा**=खाईस्वरूपा, ५४. **पापहारिणी**=पापोंका नाश करनेवाली, ५५. **ब्रह्मलोकगता**=ब्रह्मलोकमें पहुँची हुई, ५६. **ब्राह्मी**=ब्रह्मशक्तिस्वरूपा, ५७. **स्वर्गा**=स्वर्गलोकस्वरूपा, ५८. **स्वर्गनिवासिनी**=स्वर्गलोकमें वास करनेवाली॥ ११-१२॥

५९. **उल्लसन्ती**=तरङ्गोंद्वारा ऊपरकी ओर उठनेवाली, ६०. **प्रोत्पतन्ती**=जोर-जोरसे उछलनेवाली, ६१. **मेरुमाला**=मेरुपर्वतको मालाकी भाँति अलंकृत करनेवाली, ६२.**महोज्ज्वला**=अत्यन्त प्रकाशमाना, ६३. **श्रीगङ्गाम्भःशिखरिणी**=गङ्गाजीके जलको शिखरका रूप देनेवाली, ६४. **गण्डशैलविभेदिनी**=गण्डशैलोंका भेदन करनेवाली, ६५. **देशान् पुनन्ती**=देशोंको पवित्र करनेवाली, ६६. **गच्छन्ती**=गतिशीला, ६७. **वहन्ती**=प्रवहमाना, ६८. **भूमिमध्यगा**=धरतीके भीतर प्रवेश करनेवाली, ६९. **मार्तण्डतनुजा**=सूर्यपुत्री, ७०. **पुण्या**=पुण्यप्रदा, ७१. **कलिन्दगिरिनन्दिनी**=कलिन्द पर्वतसे निकली हुई॥ १३-१४॥

७२. **यमस्वसा**=यमराजकी बहन, ७३. **मन्दहासा**=मन्द-मन्द मुसकरानेवाली, ७४. **सुद्विजा**=सुन्दर दाँतोंवाली, ७५. **रचिताम्बरा**=धरतीके लिये आच्छादनवस्त्रके रूपमें निर्मित, ७६. **नीलाम्बरा**=नील वस्त्र धारण करनेवाली, ७७. **पद्ममुखी**=कमलवदना, ७८. **चरन्ती**=विचरनेवाली, ७९. **चारुदर्शना**=मनोहर दृष्टिवाली अथवा देखनेमें मनोहर॥ १५॥

८०. **रम्भोरु**=कदलीके खंभे-जैसे ऊरुद्वय धारण करनेवाली, ८१. **पद्मनयना**=कमललोचना, ८२. **माधवी**= माधवप्रिया, ८३. **प्रमदा**=यौवनशालिनी, ८४. **उत्तमा**=उत्तम, ८५. **तपश्चरन्ती**=श्रीकृष्णप्राप्तिके लिये तपस्या करनेवाली, ८६. **सुश्रोणी**=सुन्दर नितम्बको धारण करनेवाली, ८७. **कूजन्नूपुरमेखला**=बजते हुए नूपुरों और करधनीसे सुशोभित॥ १६॥

जलस्थिता श्यामलाङ्गी खाण्डवाभा विहारिणी।
गाण्डीविभाषिणी वन्या श्रीकृष्णं वरमिच्छती॥ १७

८८. **जलस्थिता**=पानीमें निवास करनेवाली, ८९. **श्यामलाङ्गी**=श्यामल अङ्गवाली, ९०. **खाण्ड-वाभा**=खाण्डववनकी शोभा, ९१. **विहारिणी**=विहारशीला, ९२. **गाण्डीविभाषिणी**=अपनी तपस्याका उद्देश्य बतानेके लिये गाण्डीवधारी अर्जुनसे वार्तालाप करनेवाली, ९३. **वन्या** =बढ़े हुए प्रवाहवाली, ९४. **श्रीकृष्णं वरमिच्छती**=श्रीकृष्णको पति बनानेकी इच्छावाली॥ १७॥

द्वारकागमना राज्ञी पट्टराज्ञी परङ्गता।
महाराज्ञी रत्नभूषा गोमती तीरचारिणी॥ १८

९५. **द्वारकागमना**=द्वारकामें आगमन करने-वाली, ९६. **राज्ञी**=रानी, ९७. **पट्टराज्ञी**=पटरानी, ९८. **परंगता**=परमात्माको प्राप्त, ९९. **महाराज्ञी**=महारानी, १००. **रत्नभूषा**=रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित, १०१. **गोमती**=गौओंके समुदायसे युक्त अथवा गोमती नदीस्वरूपा, १०२. **तीरचारिणी**=तटपर विचरनेवाली॥ १८॥

स्वकीया च सुखा स्वार्था स्वभक्तकार्यसाधिनी।
नवलाङ्गाबला मुग्धा वराङ्गा वामलोचना॥ १९

१०३. **स्वकीया**=श्रीकृष्णकी अपनी विवाहिता पत्नी, १०४. **सुखा**=सुखस्वरूपा, १०५. **स्वार्था**=अपने अभीष्ट अर्थको प्राप्त, १०६. **स्वभक्तकार्य-साधिनी**=अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेवाली, १०७. **नवलाङ्गा**=नूतन अङ्गवाली, १०८. **अबला**=स्त्रीरूपा, १०९. **मुग्धा**=भोली-भाली अथवा मुग्धा नायिका, ११०. **वराङ्गा**=सुन्दर अङ्गवाली, १११. **वामलोचना**=बाँके नयनोंवाली॥ १९॥

अजातयौवनादीना प्रभा कान्तिर्द्युतिश्छविः।
सुशोभा परमा कीर्तिः कुशलाज्ञातयौवना॥ २०

११२. **अजातयौवना**=अप्राप्त यौवना, ११३. **अदीना**=दीनतारहित एवं उदारस्वरूपा, ११४. **प्रभा**=प्रभास्वरूपा, ११५. **कान्तिः**=कान्तिस्वरूपा, ११६. **द्युतिः**=द्युतिस्वरूपा, ११७. **छविः**=छविस्वरूपा, ११८. **सुशोभा**=सुन्दर शोभावाली, ११९. **परमा**=उत्कृष्टस्वरूपा, १२०. **कीर्तिः**=कीर्तिस्वरूपा, १२१. **कुशला**=चतुरा, १२२. **अज्ञातयौवना**=अपने यौवनके आरम्भको न जाननेवाली॥ २०॥

नवोढा मध्यगा मध्या प्रौढिः प्रौढा प्रगल्भका।

१२३. **नवोढा**=नवविवाहिता नायिका, १२४. **मध्यगा**=मुग्धा और प्रगल्भाके बीचकी अवस्थावाली, १२५. **मध्या**=मध्या नायिका, १२६. **प्रौढिः**=प्रौढतासे युक्त, १२७. **प्रौढा**=प्रौढस्वरूपा, १२८. **प्रगल्भका**=

धीराधीरा धैर्यधरा ज्येष्ठा श्रेष्ठा कुलाङ्गना॥ २१

प्रगल्भानायिका, **१२९. धीरा**=धीरस्वभावा, **१३०. अधीरा**=भगवद्दर्शनके लिये अधीर रहनेवाली, **१३१. धैर्यधरा**=धैर्यधारिणी, **१३२. ज्येष्ठा**=ज्येष्ठ अवस्थावाली, **१३३. श्रेष्ठा**=गुणोंसे श्रेष्ठ, **१३४. कुलाङ्गना**=कुल-वधू॥ २१॥

क्षणप्रभा चञ्चलार्च्या विद्युत्सौदामिनी तडित्।
स्वाधीनपतिका लक्ष्मीः पुष्टा स्वाधीनभर्तृका॥ २२

१३५. क्षणप्रभा=विद्युत्के समान कान्तिमती, **१३६. चञ्चला**=वेगशालिनी, **१३७. अर्च्या**=पूजनीया, **१३८. विद्युत्**=विद्योतमाना, **१३९. सौदामिनी**=विद्युत्-स्वरूपा, **१४०. तडित्**=घनश्यामके अङ्कमें विद्युल्लेखा-सी शोभमाना, **१४१. स्वाधीनपतिका**=स्नेह और सद्व्यवहारसे पतिको वशमें रखनेवाली, **१४२. लक्ष्मीः**=लक्ष्मीस्वरूपा, **१४३. पुष्टा**=पुष्ट अङ्गोंवाली अथवा अनुग्रहमयी, **१४४. स्वाधीनभर्तृका**=स्वाधीन-पतिका॥ २२॥

कलहान्तरिता भीरुरिच्छाप्रोत्कण्ठिताकुला।
कशिपुस्था दिव्यशय्या गोविन्दहृतमानसा॥ २३

१४५. कलहान्तरिता=प्रेम-कलहके कारण कभी-कभी प्रियतमके वियोगका कष्ट सहन करनेवाली नायिका, **१४६. भीरुः**=भीरु स्वभाववाली, **१४७. इच्छा**=प्रियतमकी कामनाका विषय अथवा अभिलाषा-रूपिणी, **१४८. प्रोत्कण्ठिता**=प्रियके दर्शन या मिलनके लिये उत्सुक रहनेवाली **१४९. आकुला**=प्रेम-परिपूर्ण अथवा प्रियतमकी सेवाके कार्यमें व्यस्त, **१५०. कशि-पुस्था**=शय्यापर विराजित रहनेवाली, **१५१. दिव्य-शय्या**=श्यामसुन्दरके लिये दिव्य शय्या प्रस्तुत करनेवाली, **१५२. गोविन्दहृतमानसा**=गोविन्दने जिनके मनको हर लिया है, ऐसी॥ २३॥

खण्डिताखण्डशोभाढ्या विप्रलब्धाभिसारिका।
विरहार्ता विरहिणी नारी प्रोषितभर्तृका॥ २४

१५३. खण्डिता=खण्डिता-नायिकास्वरूपा, **१५४. अखण्डशोभाढ्या**=अविकल शोभासे सम्पन्न, **१५५. विप्रलब्धा**=विप्रलब्धा-नायिका-स्वरूपा, **१५६. अभिसारिका**=प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये संकेत-स्थानपर जानेवाली, **१५७. विरहार्ता**=प्रियतमके विरहकी अनुभूतिसे पीड़ित, **१५८. विरहिणी**=वियोगिनी, **१५९. नारी**=नरावतार श्रीकृष्णकी भार्या, **१६०. प्रोषित-भर्तृका**=जिसका पति परदेशमें गया हो, ऐसी नायिका-स्वरूपा॥ २४॥

मानिनी मानदा प्राज्ञा मन्दारवनवासिनी।
झङ्कारिणी झणत्कारी रणन्मञ्जीरनूपुरा॥ २५

१६१. **मानिनी**=मानवती, १६२. **मानदा**=मान देनेवाली, १६३. **प्राज्ञा**=विदुषी, १६४. **मन्दारवन-वासिनी**=कल्पवृक्षके काननमें निवास करनेवाली, १६५. **झंकारिणी**=चलते-फिरते या नृत्य करते समय आभूषणोंकी झंकार फैलानेवाली, १६६. **झणत्कारी**=झणत्कार या सिञ्जन-ध्वनि करनेवाली, १६७. **रणन्मञ्जीरनूपुरा**=बजते हुए नूपुर और मञ्जीर धारण करनेवाली॥ २५॥

मेखलामेखला काञ्च्यकाञ्चनी काञ्चनामयी।
कञ्चुकी कञ्चुकमणिः श्रीकण्ठाढ्या महामणिः॥ २६

१६८. **मेखला**=वृन्दावनकी नीलमणिमयी करधनीके समान सुशोभित, १६९. **अमेखला**=साधारण अवस्थामें मेखलासे रहित, १७०. **काञ्ची**='काञ्ची' नामक आभूषणस्वरूपा, १७१. **अकाञ्चनी**=काञ्चनरहित, १७२. **काञ्चनामयी**=सुवर्णस्वरूपा, १७३. **कञ्चुकी**=कञ्चुकधारिणी, १७४. **कञ्चुकमणिः**=कञ्चुकमणिस्वरूपा, १७५. **श्रीकण्ठा**=शोभायुक्त कण्ठवाली, १७६. **आढ्या**=(श्रीकृष्ण-रूप) सम्पत्तिशालिनी, १७७. **महा-मणिः**=महामणिस्वरूपा अथवा बहुमूल्य मणि धारण करनेवाली॥ २६॥

श्रीहारिणी पद्महारा मुक्ता मुक्ताफलार्चिता।
रत्नकङ्कणकेयूरा स्फुरदङ्गुलिभूषणा॥ २७

१७८. **श्रीहारिणी**=श्रीहारधारिणी, १७९. **पद्महारा**=कमलोंकी मालासे अलंकृत, १८०. **मुक्ता**=नित्यमुक्त, १८१. **मुक्ताफलार्चिता**=मुक्ताफलोंसे पूजित, १८२. **रत्नकङ्कणकेयूरा**=रत्ननिर्मित कंगन और केयूर (भुजबंद) धारण करनेवाली, १८३. **स्फुरदङ्गुलिभूषणा**=जिनकी अङ्गुलियोंके भूषण उद्भासित हो रहे हैं, ऐसी॥ २७॥

दर्पणा दर्पणीभूता दुष्टदर्पविनाशिनी।
कम्बुग्रीवा कम्बुधरा ग्रैवेयकविराजिता॥ २८

१८४. **दर्पणा**=दर्पणस्वरूपा, १८५. **दर्पणी-भूता**=अपने जलकी निर्मलताके कारण दर्पणका काम देनेवाली, १८६. **दुष्टदर्पविनाशिनी**=दुष्टोंके घमंडको चूर करनेवाली, १८७. **कम्बुग्रीवा**=शङ्खके समान सुन्दर कण्ठवाली, १८८. **कम्बुधरा**=शङ्खनिर्मित आभूषण धारण करनेवाली, १८९. **ग्रैवेयकविराजिता**=कण्ठभूषणसे सुशोभित॥ २८॥

ताटङ्किनी दन्तधरा हेममकुण्डलमण्डिता।

१९०. **ताटङ्किनी**='ताटङ्क (तरकी)' नामक आभूषणविशेषको धारण करनेवाली, १९१. **दन्तधरा**=दन्तधारिणी, १९२. **हेमकुण्डलमण्डिता**=काञ्चननिर्मित

शिखाभूषा भालपुष्पा नासामौक्तिकशोभिता॥ २९

कुण्डलोंसे अलंकृत, १९३. **शिखाभूषा**=अपनी चोटीको विभूषित करनेवाली, १९४. **भालपुष्पा**=ललाट देशमें पुष्पमय शृङ्गार धारण करनेवाली, १९५. **नासामौक्तिक-शोभिता**=नाकमें मोतीकी बुलाकसे शोभित॥ २९॥

मणिभूमिगता देवी रैवताद्रिविहारिणी।
वृन्दावनगता वृन्दा वृन्दारण्यनिवासिनी॥ ३०

१९६. **मणिभूमिगता**=मणिमयी भूमिपर विचरनेवाली, १९७. **देवी**=दिव्यस्वरूपा, १९८. **रैवताद्रि-विहारिणी**=श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रैवतकपर्वतपर विहार करनेवाली, १९९. **वृन्दावनगता**=वृन्दावनमें विद्यमाना, २००. **वृन्दा**=वृन्दावनकी अधिष्ठातृ-देवी-स्वरूपा, २०१. **वृन्दारण्यनिवासिनी**=वृन्दावनमें निवास करनेवाली॥ ३०॥

वृन्दावनलता माध्वी वृन्दारण्यविभूषणा।
सौन्दर्यलहरी लक्ष्मीर्मथुरातीर्थवासिनी॥ ३१

२०२. **वृन्दावनलता**=वृन्दावनकी लताओंके साथ तादात्म्यको प्राप्त हुई, २०३. **माध्वी**=मकरन्द-स्वरूपा, २०४. **वृन्दारण्यविभूषणा**=वृन्दावनको विभूषित करनेवाली, २०५. **सौन्दर्यलहरी**=सुन्दरताकी तरङ्गोंसे युक्त, २०६. **लक्ष्मीः**=लक्ष्मीस्वरूपा, २०७. **मथुरातीर्थवासिनी**=मथुरापुरीरूप तीर्थमें निवास करनेवाली॥ ३१॥

विश्रान्तवासिनी काम्या रम्या गोकुलवासिनी।
रमणस्थलशोभाढ्या महावनमहानदी॥ ३२

२०८. **विश्रान्तवासिनी**='विश्रान्त' तीर्थ (विश्रामघाट)-में वास करनेवाली, २०९. **काम्या**=कमनीया, २१०. **रम्या**=रमणीया, २११. **गोकुल-वासिनी**=गोकुलमें निवास करनेवाली, २१२. **रमण-स्थलशोभाढ्या**=रमणस्थलीकी शोभा बढ़ानेवाली, २१३. **महावनमहानदी**='महावन' नामक वनमें प्रवाहित होनेवाली महती नदी॥ ३२॥

प्रणता प्रोन्नता पुष्टा भारती भरतार्चिता।
तीर्थराजगतिर्गोत्रा गङ्गासागरसङ्गमा॥ ३३

२१४. **प्रणता**=भक्तजनोंद्वारा वन्दिता, २१५. **प्रोन्नता**=अत्यन्त उत्कृष्ट गोलोकधाममें स्थित अथवा ऊँची लहरोंके कारण उन्नत, २१६. **पुष्टा**=प्रेमानुग्रहसे परिपुष्ट, २१७. **भारती**=भारतवर्षकी नदी, २१८. **भरता-र्चिता**=भरतके द्वारा पूजित, २१९. **तीर्थराजगतिः**=तीर्थराज प्रयागकी आश्रयभूता, २२०. **गोत्रा**= गौओंका त्राण करनेवाली अथवा गिरिस्वरूपा, २२१. **गङ्गासागर-संगमा**=गङ्गा तथा सागरसे संगत॥ ३३॥

सप्ताब्धिभेदिनी लोला सप्तद्वीपगता बलात्।
लुठन्ती शैलभिद्यन्ती स्फुरन्ती वेगवत्तरा॥ ३४

२२२. **सप्ताब्धिभेदिनी**=सात समुद्रोंका भेदन करनेवाली, २२३. **लोला**=लोल लहरोंवाली, २२४. **बलात्सप्तद्वीपगता**=बलपूर्वक सातों द्वीपोंमें जानेवाली, २२५. **लुठन्ती**=धरतीपर लोटनेवाली, २२६. **शैलभिद्यन्ती**=पर्वतोंका भेदन करनेवाली, २२७. **स्फुरन्ती**=स्फुरणशीला अथवा अपनी दिव्य प्रभा बिखेरनेवाली, २२८. **वेगवत्तरा**=अतिशय वेगशालिनी॥ ३४॥

काञ्चनी काञ्चनीभूमिः काञ्चनीभूमिभाविता।
लोकदृष्टिर्लोकलीला लोकालोकाचलार्चिता॥ ३५

२२९. **काञ्चनी**=स्वर्णमयी, २३०. **काञ्चनीभूमिः**=गोलोककी स्वर्णमयी भूमिपर प्रवाहित होनेवाली, २३१. **काञ्चनीभूमिभाविता**=स्वर्णमयी भूमिपर प्रकट, २३२. **लोकदृष्टिः**=जगत्को दिव्यदृष्टि प्रदान करनेवाली, २३३. **लोकलीला**=लोकमें लीला करनेवाली, २३४. **लोकालोकाचलार्चिता**=लोकालोकपर्वतपर पूजित होनेवाली॥ ३५॥

शैलोद्गता स्वर्गगता स्वर्गार्चा स्वर्गपूजिता।
वृन्दावनी वनाध्यक्षा रक्षा कक्षा तटीपटी॥ ३६

२३५. **शैलोद्गता**=कलिन्दपर्वतसे निकली हुई, २३६. **स्वर्गगता**=मन्दाकिनीरूपसे स्वर्गमें गयी हुई, २३७. **स्वर्गार्चा**=स्वर्गमें अर्चित होनेवाली, २३८. **स्वर्गपूजिता**=स्वर्गलोकमें पूजित, २३९. **वृन्दावनी**=वृन्दावनकी अधिष्ठातृस्वरूपा देवी, २४०. **वनाध्यक्षा**=वनकी स्वामिनी, २४१. **रक्षा**=रक्षिता या रक्षारूपा २४२. **कक्षा**=वृन्दावनके लिये मेखलारूपा, २४३. **तटीपटी**=तटभूमिको वस्त्रकी भाँति ढकनेवाली॥ ३६॥

असिकुण्डगता कच्छा स्वच्छन्दोच्छलितादिजा।
कुहरस्था रथप्रस्था प्रस्था शान्ततरातुरा॥ ३७

२४४. **असिकुण्डगता**=असिकुण्डमें प्राप्त, २४५. **कच्छा**=कछारकी भूमिस्वरूपा, २४६. **स्वच्छन्दा**=स्वच्छन्दगामिनी, २४७. **उच्छलिता**=(वेगसे) उछलनेवाली, २४८. **आदिजा**=आदिभूत श्रीकृष्णके वामांससे उद्भूत, २४९. **कुहरस्था**=सरस्वतीरूपसे भूछिद्रमें अथवा भोगवतीरूपसे पाताल-विवरमें स्थित, २५०. **रथप्रस्था**=श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रथपर यात्रा करनेवाली, २५१. **प्रस्था**=प्रस्थानशीला, २५२. **शान्ततरा**=परम शान्तिमयी, २५३. **आतुरा**=श्रीकृष्णदर्शनके लिये आतुर रहनेवाली॥ ३७॥

अम्बुच्छटा शीकराभा दर्दुरा दार्दुरीधरा।
पापाङ्कुशा पापसिंही पापद्रुमकुठारिणी॥ ३८

२५४. **अम्बुच्छटा**=जलकी छटासे शोभित, २५५. **शीकराभा**=कुहरोंसे सुशोभित होनेवाली, २५६. **दर्दुरा**=मेढकोंका आश्रय, अथवा बादलके समान श्याम कान्तिवाली, २५७. **दार्दुरीधरा**=अपने जलके कल-कल नादसे दादुरोंकी-सी ध्वनि धारण करनेवाली, २५८. **पापाङ्कुशा**=पापोंको नष्ट करनेके लिये अङ्कुशस्वरूपा, २५९. **पापसिंही**=पापरूपी गजराजको नष्ट करनेके लिये सिंहीके तुल्य, २६०. **पापद्रुमकुठारिणी**=पापरूपी वृक्षका उच्छेद करनेके लिये कुठाररूपा॥ ३८॥

पुण्यसङ्घा पुण्यकीर्तिः पुण्यदा पुण्यवर्धिनी।
मधोर्वननदी मुख्यातुला तालवनस्थिता॥ ३९

२६१. **पुण्यसंघा**=पुण्यसमुदायरूपा, २६२. **पुण्यकीर्तिः**=पवित्र कीर्तिवाली अथवा जिनका कीर्तन पुण्य प्रदान करनेवाला है, ऐसी, २६३. **पुण्यदा**=पुण्यदायिनी, २६४. **पुण्यवर्धिनी**=अपने दर्शनसे पुण्यकी वृद्धि करनेवाली, २६५. **मधुवननदी**=मधुवनमें बहनेवाली नदी, २६६. **मुख्या**=एक प्रधान नदी, २६७. **अतुला**=तुलनारहित, २६८. **तालवनस्थिता**=तालवनमें स्थित रहनेवाली, २६९. **कुमुद्वननदी**=कुमुदवनकी नदी, २७०. **कुब्जा**=टेढ़ी-मेढ़ी, २७१. **कुमुदा**=भगवती दुर्गास्वरूपा, २७२. **अम्भोजवर्धिनी**=अपने जलमें कमलोंको बढ़ानेवाली, २७३. **प्लवरूपा**=संसारसागरसे पार होनेके लिये नौकास्वरूपा, २७४. **वेगवती**= वेगशालिनी, २७५. **सिंहसर्पादिवाहिनी**=अपने जलकी धारामें सिंहों तथा सर्पादि जन्तुओंको बहा ले जानेवाली॥ ३९-४०॥

कुमुद्वननदी कुब्जा कुमुदाम्भोजवर्धिनी।
प्लवरूपा वेगवती सिंहसर्पादिवाहिनी॥ ४०

२७६. **बहुली**=बहुलरूपवाली, २७७. **बहुदा**=बहुत देनेवाली, २७८. **बह्वी**=भूम (ब्रह्म)-स्वरूपा, २७९. **बहुला**=गोरूपा, २८०. **वनवन्दिता**=वनोंद्वारा वन्दित, २८१. **राधाकुण्डकला**=अपनी कलासे राधाकुण्डमें स्थित, २८२. **आराध्या**=आराधनके योग्य, २८३. **कृष्णकुण्डजलाश्रिता**=कृष्णकुण्डके जलमें निवास करनेवाली, २८४. **ललिताकुण्डगा**=ललिताकुण्डमें व्याप्त, २८५. **घण्टा**=घण्टा-ध्वनिके सदृश अनुरणनात्मक शब्द करनेवाली, २८६. **विशाखा**=विशाखा-सखीस्वरूपा, २८७. **कुण्डमण्डिता**=कुण्डों (ह्रदों)-से सुशोभित, २८८. **गोविन्दकुण्डनिलया**=गोविन्दकुण्डमें निवास करनेवाली, २८९. **गोपकुण्डतरंगिणी**=गोपकुण्डमें तरंगित होनेवाली॥ ४१-४२॥

बहुली बहुदा बह्वी बहुला वनवन्दिता।
राधाकुण्डकलाराध्या कृष्णकुण्डजलाश्रिता॥ ४१

ललिताकुण्डगा घण्टा विशाखा कुण्डमण्डिता।
गोविन्दकुण्डनिलया गोपकुण्डतरङ्गिणी॥ ४२

श्रीगङ्गा मानसीगङ्गा कुसुमाम्बरभाविनी।
गोवर्धिनी गोधनाढ्या मयूरवरवर्णिनी॥ ४३

२९०. **श्रीगङ्गा**=श्रीगङ्गास्वरूपा, २९१. **मानसी-गङ्गा**=मानसी-गङ्गास्वरूपा, २९२. **कुसुमाम्बरभाविनी**=पुष्पमय वस्त्रसे सुशोभित अथवा कुसुम-सरोवरके अवकाशमें प्रकट होनेवाली, २९३. **गोवर्धिनी**=गोवर्धननाथकी शक्ति अथवा गौओंकी वृद्धि करनेवाली, २९४. **गोधनाढ्या**=गोधनसे सम्पन्न, २९५. **मयूरवरवर्णिनी**=मोरोंके समान सुन्दर वर्णवाली॥ ४३॥

सारसी नीलकण्ठाभा कूजत्कोकिलपोतकी।
गिरिराजप्रसूर्भूरिरातपत्रातपत्रिणी ॥ ४४

२९६. **सारसी**=सरोवरोंकी जल-सम्पत्ति अथवा सारस पक्षियोंकी आश्रयभूता, २९७. **नीलकण्ठाभा**=नीलकण्ठ या मयूरकी-सी आभावाली, २९८. **कूजत्-कोकिलपोतकी**=जहाँ कोकिलकुमारियोंके कल-कूजन होते रहते हैं, ऐसी, २९९. **गिरिराजप्रसूः**=गिरिराज हिमालयके कलिन्दपर्वतसे प्रकट, ३००. **भूरिः**=बहु-वैभवशालिनी, ३०१. **आतपत्रा**=तटपर रहनेवाले लोगोंकी धूपके कष्टसे रक्षा करनेवाली, ३०२. **आतपत्रिणी**=पटरानीके रूपमें छत्र धारण करनेवाली॥ ४४॥

गोवर्धनाङ्का गोदन्ती दिव्यौषधिनिधिः सृतिः।
पारदी पारदमयी नारदी शारदी भृतिः॥ ४५

श्रीकृष्णचरणाङ्कस्थाकामा कामवनाञ्चिता।
कामाटवी नन्दिनी च नन्दग्राममहीधरा॥ ४६

३०३. **गोवर्धनाङ्का**=गोवर्धनगिरिकी गोदमें विराजमान, ३०४. **गोदन्ती**=हरतालके समान रंगवाले केसर आदिसे आमोदित, ३०५. **दिव्यौषधिनिधिः**=दिव्य ओषधियोंकी निधि, ३०६. **सृतिः**=सद्गतिकी राह, ३०७. **पारदी**=भवसागरसे पार कर देनेवाली दिव्य शक्ति, ३०८.**पारदमयी**=पारदस्वरूपा, ३०९. **नारदी**=नार अर्थात् जल प्रदान करनेवाली, ३१०. **शारदी**=शरत्कालीन शोभारूपा, ३११. **भृतिः**=भरण-पोषणका साधन बनी हुई, ३१२. **श्रीकृष्णचरणाङ्कस्था**=भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंके अङ्कमें विराजित, ३१३. **अकामा**=लौकिक कामनाओंसे रहित (अथवा 'कामा' कामस्वरूपा), ३१४. **कामवनाञ्चिता**=कामवनमें पूजित, ३१५. **कामाटवी**=कामवनरूपा, ३१६. **नन्दिनी**=सबको आनन्दित करनेवाली, ३१७. **नन्दग्राममही**= नन्दग्राम-स्थित भूमिरूपा, ३१८. **धरा**=पृथ्वीरूपा॥ ४५-४६॥

बृहत्सानुद्युतिप्रोता नन्दीश्वरसमन्विता।
काकली कोकिलमयी भाण्डीरकुशकौशला॥ ४७

३१९. **बृहत्सानुद्युतिप्रोता**='बृहत्सानु' पर्वतके शिखरकी शोभासे संयुक्त, ३२०. **नन्दीश्वरसमन्विता**=नन्दगाँवके नन्दीश्वरगिरिसे समन्विता, ३२१. **काकली**=कोयलोंकी कुहू-ध्वनिरूपमें स्थित, ३२२. **कोकिल-मयी**=कोयलसे व्याप्त, ३२३. **भाण्डीरकुशकौशला**=भाण्डीरवनमें कुशोत्पाटनके कौशलसे युक्त॥ ४७॥

लोहार्गलप्रदा कारा काश्मीरवसना वृता।
बर्हिषदी शोणपुरी शूरक्षेत्रपुराधिका॥ ४८

३२४. **लोहार्गलप्रदा**=श्रीकृष्णके लिये अपने प्रेमके द्वारा लोहकी अर्गला लगा देनेवाली, ३२५. **कारा**=(श्रीकृष्णको अपने प्रेमके द्वारा रोके रखनेके लिये) कारारूपा, ३२६. **काश्मीरवसना**=केसरके रंगमें रँगे हुए वस्त्र धारण करनेवाली, ३२७. **वृता**=श्रीकृष्णके द्वारा स्वीकृता, ३२८. **बर्हिषदी**=बर्हिषदी-पुरीरूपा, ३२९. **शोणपुरी**=शोणपुरीरूपा, ३३०. **शूरक्षेत्रपुराधिका**= शूरक्षेत्रपुरसे भी अधिक माहात्म्यवाली॥ ४८॥

नानाभरणशोभाढ्या नानावर्णसमन्विता।
नानानारीकदम्बाढ्या नानारङ्गमहीरुहा॥ ४९

३३१. **नानाभरणशोभाढ्या**=विविध प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न, ३३२. **नानावर्णसमन्विता**=नाना प्रकारके रंगोंसे युक्त, ३३३. **नानानारीकदम्बाढ्या**=नाना प्रकारकी स्त्रियोंके समुदायसे युक्त, ३३४.**नानारङ्गमहीरुहा**=तटवर्ती विविध रंगके वृक्षोंसे सुशोभित, ३३५. **नानालोकगता**=नाना लोकोंमें पहुँची हुई, ३३६. **अभ्यर्चिः**=जिनकी तेजोराशि सब ओर फैली हुई है, ऐसी, ३३७. **नानाजलसमन्विता**=नाना नदियोंके मिले हुए जलसे युक्त, ३३८. **स्त्रीरत्नम्**= स्त्रियोंमें रत्नस्वरूपा, ३३९. **रत्ननिलया**=रत्ननिर्मित गृहमें निवास करनेवाली, ३४०. **ललना**= श्रीकृष्णकामिनी, ३४१. **रत्नरञ्जिनी**=रत्नोंके द्वारा विविध रंगोंका प्रकाश फैलानेवाली॥ ४९-५०॥

नानालोकगताभ्यर्चिर्नानाजलसमन्विता।
स्त्रीरत्नं रत्ननिलया ललना रत्नरञ्जिनी॥ ५०

३४२. **रङ्गिणी**=रङ्गस्थलमें रासके रंगमें रँगी रहनेवाली, ३४३. **रङ्गभूमाढ्या**=रंगके बाहुल्यसे युक्त, ३४४. **रङ्गा**=हर्षयुक्ता अथवा रङ्गानाम्नी नदीस्वरूपा, ३४५. **रङ्गमहीरुहा**=रंगीन वृक्षोंसे युक्त, ३४६. **राजविद्या**=विद्याओंकी स्वामिनी, ३४७. **राजगुह्या**=गुह्य वस्तुओंमें सबसे श्रेष्ठ, ३४८. **जगत्कीर्ति**=जगत्के लिये कीर्तिमयी अथवा कीर्तनीया, ३४९. **घना**=सघन प्रेमयुक्ता अथवा श्रीकृष्णके वंशीवादनके समय हिमवत् घनीभूत हो जानेवाली, ३५०. **अघना**=प्रवहणशीला, ३५१. **विलोलघण्टा**=चञ्चल घंटाके समान नाद करनेवाली, ३५२. **कृष्णाङ्गा**=कृष्णके समान अङ्गवाली अथवा श्यामाङ्गी, ३५३. **कृष्णदेहसमुद्भवा**=श्रीकृष्णके शरीरसे उत्पन्न, ३५४. **नीलपङ्कजवर्णाभा**= नील कमलके समान वर्ण एवं आभासे युक्त, ३५५. **नीलपङ्कजहारिणी**= नीलकमलकी माला धारण करनेवाली॥ ५१-५२॥

रङ्गिणी रङ्गभूमाढ्या रङ्गा रङ्गमहीरुहा।
राजविद्या राजगुह्या जगत्कीर्तिर्घनाघना॥ ५१

विलोलघण्टा कृष्णाङ्गा कृष्णदेहसमुद्भवा।
नीलपङ्कजवर्णाभा नीलपङ्कजहारिणी॥ ५२

नीलाभा नीलपद्माढ्या नीलाम्भोरुहवासिनी।
नागवल्ली नागपुरी नागवल्लीदलार्चिता॥ ५३

३५६. **नीलाभा**=नील कान्तिमती, ३५७. **नीलपद्माढ्या**=नील कमलोंकी सम्पदासे भरी-पूरी, ३५८. **नीलाम्भोरुहवासिनी**=नील कमलमें निवास करनेवाली, ३५९. **नागवल्ली**=ताम्बूललतास्वरूपा, ३६०. **नागपुरी**=नागोंकी नगरी (अर्थात् कालिय आदि नागोंकी निवासभूमि), ३६१. **नागवल्लीदलार्चिता**=ताम्बूल-पत्रसे पूजित॥ ५३॥

ताम्बूलचर्चिता चर्चा मकरन्दमनोहरा।
सकेशरा केशरिणी केशपाशाभिशोभिता॥ ५४

३६२. **ताम्बूलचर्चिता**=ताम्बूलसे रञ्जित, ३६३. **चर्चा**=कस्तूरी-चन्दनादि आलेपमयी, ३६४. **मकरन्दमनोहरा**=कमलादिके मकरन्दसे मनको हर लेनेवाली, ३६५. **सकेशरा**=केसरवती, ३६६. **केशरिणी**=केसर धारण करनेवाली, ३६७. **केशपाशाभिशोभिता**=केशपाशद्वारा सब ओरसे सुशोभित॥ ५४॥

कज्जलाभा कज्जलाक्ता कज्जली कलिताञ्जना।
अलक्तचरणा ताम्रा लाला ताम्रीकृताम्बरा॥ ५५

३६८. **कज्जलाभा**=काजलकी-सी काली आभावाली, ३६९. **कज्जलाक्ता**=नेत्रोंमें काजलकी शोभासे युक्त अथवा काजलकी रँगी हुई, ३७०. **कज्जली**=कजलीके समान काली, ३७१. **कलिताञ्जना**= नेत्रोंमें अञ्जन धारण करनेवाली, ३७२. **अलक्तचरणा**=चरणोंमें महावरका रंग लगानेवाली, ३७३. **ताम्रा**=ताम्रवर्णा, ३७४. **लाला**=लालनीया, ३७५. **ताम्रीकृताम्बरा**=ताँबेके समान लाल रंगके वस्त्र धारण करनेवाली॥ ५५॥

सिन्दूरितालिप्तवाणी सुश्रीः श्रीखण्डमण्डिता।
पाटीरपङ्कवसना जटामांसी स्रगम्बरा॥ ५६

३७६. **सिन्दूरिता**=सीमन्तमें सिन्दूर धारण करनेवाली, ३७७. **अलिप्तवाणी**=जिसकी वाणी किसी दोषसे लिप्त नहीं होती, ऐसी, ३७८. **सुश्री**=उत्तम शोभासे युक्त, ३८९. **श्रीखण्डमण्डिता**=चन्दनसे अलंकृत, ३८०. **पाटीरपङ्कवसना**=चन्दन-पङ्कमय वस्त्र धारण करनेवाली, ३८१. **जटामांसी**=जटामांसीके रूपमें स्थित, ३८२. **स्रगम्बरा**=पुष्पमालाओंको वस्त्र-रूपमें धारण करनेवाली॥ ५६॥

आगर्यगुरुगन्धाक्ता तगराश्रितमारुता।
सुगन्धितैलरुचिरा कुन्तलालिः सकुन्तला॥ ५७

३८३. **आगरी**=आगर (अमावास्या)-के समान (कृष्ण) वर्णवाली, ३८४. **अगुरुगन्धाक्ता**=अगुरुकी गन्धसे अभिषिक्त, ३८५. **तगराश्रितमारुता**= जिसकी हवामें तगरकी सुगन्ध समायी हुई है, ऐसी, ३८६. **सुगन्धितैलरुचिरा**=सुगन्धित तैल (इत्र आदि)-से मनोहर, ३८७. **कुन्तलालिः**=जिनकी अलकोंपर (सुगन्धसे आकृष्ट) भ्रमर मँडराते रहते हैं, ऐसी, ३८८. **सकुन्तला**=कुन्तल-राशिसे युक्त॥ ५७॥

शकुन्तलापांसुला च पातिव्रत्यपरायणा।
सूर्यप्रभा सूर्यकन्या सूर्यदेहसमुद्भवा॥ ५८

कोटिसूर्यप्रतीकाशा सूर्यजा सूर्यनन्दिनी।
संज्ञा संज्ञासुता स्वेच्छा संज्ञामोदप्रदायिनी॥ ५९

संज्ञापुत्री स्फुरच्छाया तपतीतापकारिणी।
सावर्ण्यानुभवा देवी वडवा सौख्यदायिनी॥ ६०

शनैश्चरानुजा कीला चन्द्रवंशविवर्धिनी।
चन्द्रवंशवधूश्चन्द्रा चन्द्रावलिसहायिनी॥ ६१

चन्द्रावती चन्द्रलेखा चन्द्रकान्तानुगांशुका।
भैरवी पिङ्गलाशङ्की लीलावत्यागरीमयी॥ ६२

३८९. **शकुन्तला**=शकुन्तों—पक्षियोंका स्वागत करनेवाली, ३९०. **अपांसुला**=पतिव्रता, ३९१. **पातिव्रत्यपरायणा**=पातिव्रतधर्मके पालनमें तत्पर, ३९२. **सूर्यप्रभा**=सूर्यके समान उद्भासित होनेवाली, ३९३. **सूर्यकन्या**=सूर्यकी पुत्री, ३९४. **सूर्यदेहसमुद्भवा**=सूर्यके शरीरसे उत्पन्न॥ ५८॥

३९५. **कोटिसूर्यप्रतीकाशा**=करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्विनी, ३९६. **सूर्यजा**=सूर्यपुत्री, ३९७. **सूर्यनन्दिनी**=सूर्यदेवको आनन्द प्रदान करनेवाली, ३९८. **संज्ञा**=सम्यक् ज्ञानस्वरूपा, ३९९. **संज्ञासुता**=संज्ञाकी पुत्री, ४००. **स्वेच्छा**=स्वाधीना, ४०१. **संज्ञामोदप्रदायिनी**=सूर्यपत्नी संज्ञाको आनन्दित करनेवाली॥ ५९॥

४०२. **संज्ञापुत्री**=संज्ञाकी बेटी, ४०३. **स्फुरच्छाया**=उद्भासित कान्तिवाली, ४०४. **तपतीतापकारिणी**=(सौतेली बहन) तपतीको ताप देनेवाली, ४०५. **सावर्ण्यानुभवा**=श्रीकृष्णके साथ वर्ण-सादृश्यका अनुभव करनेवाली, ४०६. **देवी**=देवकन्या, ४०७. **वडवा**=वडवारूपा, ४०८. **सौख्यदायिनी**=सौख्य प्रदान करनेवाली॥ ६०॥

४०९. **शनैश्चरानुजा**=शनैश्चरकी छोटी बहन, ४१०. **कीला**=ज्वालामयी, ४११. **चन्द्रवंशविवर्धिनी**=चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाली, ४१२. **चन्द्रवंशवधूः**=चन्द्रवंशकी बहू, ४१३. **चन्द्रा**=आह्लाद प्रदान करनेवाली, ४१४. **चन्द्रावलिसहायिनी**=चन्द्रावली सखीकी सहायता करनेवाली॥ ६१॥

४१५. **चन्द्रावती**=चन्द्रावतीस्वरूपा, ४१६. **चन्द्रलेखा**=चन्द्रलेखास्वरूपा, ४१७. **चन्द्रकान्ता**=चन्द्रमाके समान कान्तिमती, ४१८. **अनुगा**=(सदा) प्रियतमका अनुगमन करनेवाली, ४१९. **अंशुका**=उज्ज्वल-वस्त्रधारिणी, ४२०. **भैरवी**=भैरवप्रिया, ४२१. **पिङ्गलाशङ्की**=सूर्यके पारिपार्श्वक पिङ्गलसे आशङ्कित होनेवाली, ४२२. **लीलावती**=भाँति-भाँतिकी लीला करनेवाली, ४२३. **आगरीमयी**=अगरकी सुगन्धसे व्याप्त॥ ६२॥

धनश्रीर्देवगान्धारी स्वर्मणिर्गुणवर्धिनी।
व्रजमल्ला बन्धकारी विचित्रा जयकारिणी॥ ६३

४२४. **धनश्री**=धनलक्ष्मी या रागिनीविशेष, ४२५. **देवगान्धारी**=रागिनीविशेष, ४२६. **स्वर्मणिः**=स्वर्गलोककी मणि, ४२७. **गुणवर्धिनी**=गुणोंकी वृद्धि करनेवाली, ४२८. **व्रजमल्ला**=व्रजमण्डलमें मल्ल-स्वरूपा, ४२९. **बन्धकारी**=विरोधियोंको बन्धनमें डालनेवाली, ४३०. **विचित्रा**=विचित्र रूप और शक्तिसे सम्पन्न, ४३१. **जयकारिणी**=विजय प्राप्त करानेवाली॥ ६३॥

गान्धारी मञ्जरी टोडी गुर्जर्यासावरी जया।
कर्णाटी रागिणी गौरी वैराटी गौरवाटिका॥ ६४

४३२. **गान्धारी**, ४३३. **मञ्जरी**, ४३४. **टोडी**, ४३५. **गुर्जरी**, ४३६. **आशावरी**, ४३७. **जया**, ४३८. **कर्णाटी**=गान्धारीसे लेकर कर्णाटीतक विशेष रागिनियोंके नाम हैं। ये समस्त रागिनियाँ यमुनाजीसे अभिन्न हैं, ४३९. **रागिणी**=रागिनीस्वरूपा, ४४०. **गौरी**=गौरी नामकी रागिनी, ४४१. **वैराटी**= रागिनीविशेष, ४४२. **गौरवाटिका**=रागिनी-विशेष अथवा गौरतेजः-स्वरूपा श्रीराधाके लिये उद्यानरूपिणी॥ ६४॥

चतुश्चन्द्रा कलाहेरी तैलङ्गी विजयावती।
ताली तलस्वरा गाना क्रियामात्रप्रकाशिनी॥ ६५

४४३. **चतुश्चन्द्रा**, ४४४. **कलाहेरी**, ४४५. **तैलङ्गी**, ४४६. **विजयावती**, ४४७. **ताली**=चतुश्चन्द्रासे लेकर तालीतक राग-रागिनियाँ और तालके नाम हैं, ४४८. **तलस्वरा**=ताली बजाकर स्वरकी सूचना देनेवाली, ४४९. **गाना**=गानस्वरूपा, ४५०. **क्रियामात्रप्रकाशिनी**=तालके क्रियामात्रको प्रकाशित करनेवाली॥ ६५॥

वैशाखी चञ्चला चारुर्माचारी घूघटी घटा।
वैरागरी सोरटीशा कैदारी जलधारिका॥ ६६

४५१. **वैशाखी**, ४५२. **चञ्चला**, ४५३. **चारुः**, ४५४. **माचारी**, ४५५. **घूघटी**, ४५६. **घटा**, ४५७. **वैरागरी**, ४५८. **सोरटी**, ४५९. **ईशा**, ४६०. **कैदारी**, ४६१. **जलधारिका**—वैशाखीसे लेकर जलधारिकापर्यन्त सभी नामविशेष रागिनी आदिके सूचक हैं॥ ६६॥

कामाकरश्रीः कल्याणी गौडकल्याणमिश्रिता।
रामसञ्जीविनी हेला मन्दारी कामरूपिणी॥ ६७

४६२. **कामाकरश्रीः**, ४६३. **कल्याणी**, ४६४. **गौडकल्याणमिश्रिता**, ४६५. **रामसंजीविनी**, ४६६. **हेला**, ४६७. **मन्दारी**, ४६८. **कामरूपिणी**—ये सब भी विशेष प्रकारकी रागिनियाँ हैं॥ ६७॥

सारङ्गी मारुती होढा सागरी कामवादिनी।
वैभासी मङ्गला चान्द्री रासमण्डलमण्डना॥ ६८

४६९. **सारङ्गी**, ४७०. **मारुती**, ४७१. **होढा**, ४७२. **सागरी**, ४७३. **कामवादिनी**, ४७४. **वैभासी**, ४७५. **मङ्गला**—ये भी रागिनियोंके ही नाम हैं। ४७६. **चान्द्री**=रासपूर्णिमाकी चाँदनीस्वरूपा, ४७७. **रासमण्डलमण्डना**=रासमण्डलको मण्डित करनेवाली॥ ६८॥

कामधेनुः कामलता कामदा कमनीयका।
कल्पवृक्षस्थली स्थूला क्षुधा सौधनिवासिनी॥ ६९

४७८. **कामधेनुः**=कामधेनुकी भाँति व्यक्तिकी मनोवाञ्छित कामनाको पूर्ण करनेवाली, ४७९. **कामलता**=कामना पूर्ण करनेवाली कल्पलतास्वरूपा, ४८०. **कामदा**=अभीष्ट मनोरथ देनेवाली, ४८१. **कमनीयका**= कमनीया, ४८२. **कल्पवृक्षस्थली**=कल्पवृक्षोंकी स्थानभूता, ४८३. **स्थूला**=स्थूलरूपिणी, ४८४. **क्षुधा**=बुभुक्षास्वरूपिणी, ४८५. **सौधनिवासिनी**=महलमें रहनेवाली॥ ६९॥

गोलोकवासिनी सुभ्रूर्यष्टिभृद् द्वारपालिका।
शृङ्गारप्रकरा शृङ्गा स्वच्छा शय्योपकारिका॥ ७०

४८६. **गोलोकवासिनी**=गोलोकधाममें निवास करनेवाली, ४८७. **सुभ्रूः**=सुन्दर भौंहोंवाली, ४८८. **यष्टिभृत्**=छड़ी धारण करनेवाली, ४८९. **द्वारपालिका**= द्वाररक्षिका, ४९०. **शृङ्गारप्रकरा**=शृङ्गार-साधन-सामग्री-समुदायरूपा, ४९१. **शृङ्गा**=मन्मथोद्भेदस्वरूपा, ४९२. **स्वच्छा**=विमलस्वरूपा, ४९३. **शय्योपकारिका**=प्रिया-प्रियतमके लिये शय्या सुसज्जित करनेमें उपकारिणी॥ ७०॥

पार्षदा सुमुखी सेव्या श्रीवृन्दावनपालिका।
निकुञ्जभृत्कुञ्जपुञ्जा गुञ्जाभरणभूषिता॥ ७१

४९४. **पार्षदा**=श्रीराधा-कृष्णकी पार्षदस्वरूपा, ४९५. **सुमुखी**=सुन्दर मुखवाली, ४९६. **सेव्या**=सेवा करनेके योग्य, ४९७. **श्रीवृन्दावनपालिका**=श्रीवृन्दावनकी रक्षा करनेवाली ४९८. **निकुञ्जभृत्**=निकुञ्जका पोषण करनेवाली, ४९९. **कुञ्जपुञ्जा**=कुञ्जसमुदायस्वरूपा, ५००. **गुञ्जाभरणभूषिता**=गुञ्जाके आभूषणोंसे विभूषित॥ ७१॥

निकुञ्जवासिनी प्रोष्या गोवर्धनतटीभवा।
विशाखा ललिता रामा नीरुजा मधुमाधवी॥ ७२

५०१. **निकुञ्जवासिनी**=निकुञ्जमें निवास करनेवाली, ५०२. **प्रोष्या**=प्रवासिनी, ५०३. **गोवर्धनतटीभवा**=गोवर्धनकी उपत्यकामें मानसी गङ्गाके रूपमें प्रकट, ५०४. **विशाखा**=विशाखासखीस्वरूपा, ५०५. **ललिता**=ललिता-सखीस्वरूपा अथवा लालित्यशालिनी, ५०६. **रामा**=श्रीकृष्णरमणी, ५०७. **नीरुजा**=रोगरहित, ५०८. **मधुमाधवी**=मधुमासकी माधवी लतारूपिणी॥ ७२॥

एका नैकसखी शुक्ला सखीमध्या महामनाः।
श्रुतिरूपा ऋषिरूपा मैथिलाः कौसलाः स्त्रियः॥ ७३

५०९. **एका**=अद्वितीया, ५१०. **नैकसखी**=अनेक सखियोंवाली, ५११. **शुक्ला**=शुद्धस्वरूपा, ५१२. **सखी-मध्या**=सखियोंके मध्यमें विराजमान, ५१३. **महामनाः**=विशालहृदया, ५१४. **श्रुतिरूपा**=गोपीरूपमें श्रुतिस्वरूपा, ५१५. **ऋषिरूपा**=ऋषिस्वरूपा गोपी, ५१६. **मैथिलाः**=गोपीरूपमें उत्पन्न मिथिलावासिनी स्त्रियाँ, ५१७. **कौसलाः स्त्रियः**=गोपीरूपमें उत्पन्न कोसलवासिनी स्त्रियाँ॥ ७३॥

अयोध्यापुरवासिन्यो यज्ञसीताः पुलिन्दकाः।
रमावैकुण्ठवासिन्यः श्वेतद्वीपसखीजनाः॥ ७४

५१८. **अयोध्यापुरवासिन्यः**=गोपीरूपमें उत्पन्न अयोध्या नगरकी स्त्रियाँ, ५१९. **यज्ञसीताः**=यज्ञ-सीतास्वरूपा गोपियाँ, ५२०. **पुलिन्दकाः**=गोपी-भावको प्राप्त पुलिन्द-कन्याएँ, ५२१. **रमावैकुण्ठ-वासिन्यः**=लक्ष्मीजीके वैकुण्ठमें निवास करनेवाली स्त्रियाँ (जो गोपीरूपको प्राप्त हुई थीं), ५२२. **श्वेत-द्वीपसखीजनाः**=श्वेतद्वीपनिवासिनी सखियाँ॥ ७४॥

ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिन्यो दिव्याजितपदाश्रिताः।
श्रीलोकाचलवासिन्यः श्रीसख्यः सागरोद्भवाः॥ ७५

५२३. **ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिन्यः**=ऊर्ध्ववैकुण्ठमें वास करनेवाली सखियाँ, ५२४. **दिव्याजित-पदाश्रिताः**= दिव्य अजित पदके आश्रित सखियाँ, ५२५. **श्रीलोकाचलवासिन्यः**=श्रीलोकाचलमें निवास करनेवाली सखियाँ, ५२६. **सागरोद्भवाः श्रीसख्यः**= समुद्रसे उत्पन्न श्रीलक्ष्मीजीकी सखियाँ॥ ७५॥

दिव्या अदिव्या दिव्याङ्गा व्याप्तास्त्रिगुणवृत्तयः।
भूमिगोप्यो देवनार्यो लता ओषधिवीरुधः॥ ७६

५२७. **दिव्याः**=दिव्यरूपा गोपियाँ, ५२८. **अदिव्याः**=मानवरूपिणी गोपियाँ, ५२९. **दिव्याङ्गाः**= दिव्य अङ्गोंवाली, ५३०. **व्याप्ताः**=सर्वव्यापिनी, ५३१. **त्रिगुणवृत्तयः**=त्रिगुणात्मकवृत्तिस्वरूपा, ५३२. **भूमि-गोप्यः**=भूतलपर उत्पन्न गोपियाँ, ५३३. **देवनार्यः**= देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ, ५३४. **लताः**=लतारूपिणी गोपियाँ, ५३५. **ओषधिवीरुधः**=ओषधि एवं लता-झाड़ी आदिस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ॥ ७६॥

जालन्धर्यः सिन्धुसुताः पृथुबर्हिष्मतीभवाः।
दिव्याम्बरा अप्सरसः सौतला नागकन्यकाः॥ ७७

५३६. **जालंधर्यः**=गोपीभावको प्राप्त जालंधरी स्त्रियाँ, ५३७. **सिन्धुसुताः**=समुद्रकन्याएँ, ५३८. **पृथु-बर्हिष्मतीभवाः**=राजा पृथुकी बर्हिष्मतीपुरीमें होनेवाली स्त्रियाँ, जो गोपीभावको प्राप्त हुई थीं, ५३९. **दिव्याम्बराः**=दिव्यवस्त्रधारिणी गोपियाँ, ५४०. **अप्स-रसः**= गोपीभावको प्राप्त अप्सराएँ, ५४१. **सौतलाः**= सुतललोकवासिनी असुराङ्गनाएँ, जिन्हें गोपीभावकी प्राप्ति हुई थी, ५४२. **नागकन्यकाः**=नागकन्यास्वरूपा गोपियाँ॥ ७७॥

परं धाम परं ब्रह्म पौरुषा प्रकृतिः परा।
तटस्था गुणभूर्गीता गुणागुणमयी गुणा॥ ७८

५४३. **परं धाम**=परमधामस्वरूपा, ५४४. **परं ब्रह्म**=परब्रह्मस्वरूपा, ५४५. **पौरुषा**=पुरुषार्थस्वरूपा, ५४६. **प्रकृतिः परा**=पराप्रकृतिस्वरूपा, ५४७. **तटस्था**= तटस्थाशक्तिस्वरूपा, ५४८. **गुणभूः**=गुणोंकी जन्मभूमि, ५४९. **गीता**=सबके द्वारा जिसका यशोगान होता हो, वह, अथवा भगवद्गीतास्वरूपा, ५५०. **गुणागुणमयी**= गुणागुणस्वरूपा, ५५१. **गुणा**= दिव्यगुणात्मिका॥ ७८॥

चिद्घना सदसन्माला दृष्टिर्दृश्या गुणाकरी।
महत्तत्त्वमहङ्कारो मनो बुद्धिः प्रचेतना॥ ७९

५५२. **चिद्घना**=चिदानन्दघनस्वरूपा, ५५३. **सदसन्माला**=सदसत्-समूहात्मिका, ५५४. **दृष्टिः**=ज्ञान-स्वरूपा अथवा दर्शनस्वरूपा, ५५५. **दृश्या**=दृश्य-स्वरूपा, ५५६. **गुणाकरी**=गुणोंकी निधिरूपा, ५५७. **महत्तत्त्वम्**=समष्टि बुद्धिरूपा, ५५८. **अहंकारः**=अहंकार-स्वरूपा, ५५९. **मनः**=मनःस्वरूपा, ५६०. **बुद्धिः**=बुद्धिरूपा, ५६१. **प्रचेतना**= प्रकृष्ट चेतनास्वरूपा॥ ७९॥

चेतो वृत्तिः स्वान्तरात्मा चतुर्थी चतुरक्षरा।
चतुर्व्यूहा चतुर्मूर्तिर्व्योम वायुरदो जलम्॥ ८०

५६२. **चेतः**=चित्तरूपा, ५६३. **वृत्तिः**=व्यवहार-स्वरूपा, ५६४. **स्वान्तरात्मा**=निजान्तरात्मस्वरूपा, ५६५. **चतुर्थी**=जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिसे अतीत तुरीयावस्थारूपा, ५६६. **चतुरक्षरा**=प्रणवके चार अक्षर—अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा—ये जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६७. **चतुर्व्यूहा**=वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार व्यूह जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६८. **चतुर्मूर्तिः**=एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी और चतुष्पदी—इन चार मूर्तियोंवाली गायत्री अथवा चतुर्व्यूहस्वरूपा, ५६९. **व्योम**=आकाशरूपा, ५७०. **वायुः**= वायुरूपा, ५७१. **अदः**=दृश्य प्रपञ्चके रूपमें स्थित, ५७२. **जलम्**=जलस्वरूपा॥ ८०॥

मही शब्दो रसो गन्धः स्पर्शो रूपमनेकधा।
कर्मेन्द्रियं कर्ममयी ज्ञानं ज्ञानेन्द्रियं द्विधा॥ ८१

५७३. **मही**=पृथ्वीरूपा, ५७४. **शब्दः**=शब्द-स्वरूपा, ५७५. **रसः**=रसस्वरूपा, ५७६. **गन्धः**=गन्ध-स्वरूपा, ५७७. **स्पर्शः**=स्पर्शस्वरूपा, ५७८. **रूपम्**=रूपस्वरूपा, ५७९. **अनेकधा**=नाना रूपवाली, ५८०. **कर्मेन्द्रियम्**=कर्मेन्द्रियस्वरूपा, ५८१. **कर्ममयी**=कर्म-स्वरूपा, ५८२. **ज्ञानम्**=ज्ञानमयी, ५८३. **ज्ञानेन्द्रियम्**=ज्ञानेन्द्रियस्वरूपा, ५८४. **द्विधा**=प्रकृति-पुरुषरूप दो शरीरवाली अथवा ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-भेदसे द्विविध इन्द्रियरूपा॥ ८१॥

त्रिधाधिभूतमध्यात्ममधिदैवमधिष्ठितम्।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः सर्वदेवाधिदेवता॥ ८२

५८५. **त्रिधा**=क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम—त्रिविध रूपवाली अथवा अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव-भेदसे त्रिविध रूपवाली, ५८६. **अधिभूतम्**=भौतिक सृष्टिमें व्याप्त, ५८७. **अध्यात्मम्**=अध्यात्मस्वरूपा, ५८८. **अधिदैवम्**=आधिदैविक-रूपवाली, ५८९. **अधिष्ठितम्**=सर्वरूपोंमें अधिष्ठित, ५९०. **ज्ञानशक्तिः**=ज्ञानशक्ति, ५९१. **क्रियाशक्तिः**= क्रियाशक्ति, ५९२. **सर्वदेवाधिदेवता**=समस्त देवताओंकी अधिदेवी॥ ८२॥

तत्त्वसङ्घा विराण्मूर्तिर्धारणा धारणामयी।
श्रुतिः स्मृतिर्वेदमूर्तिः संहिता गर्गसंहिता॥ ८३

५९३. **तत्त्वसंघा**=तत्त्वसमूहरूपा, ५९४. **विराण्-मूर्तिः**=विराट्स्वरूपा, ५९५. **धारणा**=धारणाशक्ति, ५९६. **धारणामयी**=धारणाशक्तिरूपा, ५९७. **श्रुतिः**=वेदरूपा, ५९८. **स्मृतिः**=धर्मशास्त्ररूपा, ५९९. **वेद-मूर्तिः**=वेदात्मिका, ६००. **संहिता**=संहितास्वरूपा, ६०१. **गर्गसंहिता**=गर्गसंहितारूपा॥ ८३॥

पाराशरी सैव सृष्टिः पारहंसी विधातृका।
याज्ञवल्की भागवती श्रीमद्भागवतार्चिता॥ ८४

६०२. **पाराशरी**=पाराशरसंहिता (विष्णुपुराण)-रूपा, ६०३. **सृष्टि**=सृष्टिरूपा अथवा पाराशरी-रचनारूपा, ६०४.**पारहंसी**=परमहंस-विद्यारूपा अथवा परमहंस-संहिता, ६०५. **विधातृका**=विधातृस्वरूपा अथवा ब्रह्मसंहिता, ६०६. **याज्ञवल्की**= याज्ञवल्क्यस्मृति-रूपा, ६०७. **भागवती**=भगवान्‌की शक्ति अथवा वैष्णवागमरूपा, ६०८. **श्रीमद्भागवतार्चिता**=श्रीमद्भागवतके द्वारा पूजित—प्रशंसित॥ ८४॥

रामायणमयी रम्या पुराणपुरुषप्रिया।
पुराणमूर्तिः पुण्याङ्गा शास्त्रमूर्तिर्महोन्नता॥ ८५

६०९. **रामायणमयी**=वाल्मीकि-रामायण अथवा प्राचेतससंहिता अथवा रामचरितस्वरूपा, ६१०. **रम्या**=रमणीया, ६११. **पुराणपुरुषप्रिया**=पुराणपुरुष श्रीकृष्णकी प्रिया, ६१२. **पुराणमूर्तिः**=पुराणस्वरूपा, ६१३. **पुण्याङ्गा**=पुण्यशरीरवाली, ६१४. **शास्त्रमूर्तिः**=शास्त्र-स्वरूपा, ६१५. **महोन्नता**=परम उन्नत॥ ८५॥

मनीषा धिषणा बुद्धिर्वाणी धीः शेमुषी मतिः।
गायत्री वेदसावित्री ब्रह्माणी ब्रह्मलक्षणा॥ ८६

६१६. **मनीषा**=बुद्धिरूपा, ६१७. **धिषणा**=प्रज्ञा-रूपा, ६१८. **बुद्धिः**=मेधारूपा, ६१९. **वाणी**=वाग्देवता, ६२०. **धीः**=बुद्धिरूपा, ६२१. **शेमुषी**=बुद्धिरूपा, ६२२. **मतिः**=निश्चयरूपा, ६२३. **गायत्री**=गायत्रीमन्त्रस्वरूपा, ६२४. **वेदसावित्री**=वेदोक्त गायत्री, ६२५. **ब्रह्माणी**=ब्रह्मशक्ति, ६२६. **ब्रह्मलक्षणा**=वेदमन्त्रोंद्वारा लक्षित होनेवाली॥ ८६॥

दुर्गापर्णा सती सत्या पार्वती चण्डिकाम्बिका।
आर्या दाक्षायणी दाक्षी दक्षयज्ञविघातिनी॥ ८७

६२७. **दुर्गा**=दुर्गम्या अथवा दुर्गादेवी, ६२८. **अपर्णा**=तपस्विनी पार्वती, ६२९. **सती**=दक्षकन्या सती, ६३०. **सत्या**=सत्यस्वरूपा अथवा सत्यभामा, ६३१. **पार्वती**=गिरिराज हिमालयकी पुत्री, ६३२. **चण्डिका**=असुरसंहारिणी शक्ति, ६३३. **अम्बिका**=जगन्माता, ६३४. **आर्या**=श्रेष्ठस्वरूपा, ६३५. **दाक्षायणी**=दक्षप्रजापतिकी कन्या, ६३६. **दाक्षी**=दक्षपुत्री, ६३७. **दक्षयज्ञविघातिनी**=दक्ष-यज्ञ-विध्वंसमें कारणभूता॥ ८७॥

पुलोमजा शचीन्द्राणी देवी देववरार्पिता।
वायुना धारिणी धन्या वायवी वायुवेगगा॥ ८८

६३८. **पुलोमजा**=पुलोम दानवकी पुत्री शची-स्वरूपा, ६३९. **शची**=इन्द्रपत्नी, ६४०. **इन्द्राणी**=शची, ६४१. **देवी**=प्रकाशमाना, ६४२. **देववरार्पिता**=देवेश्वर इन्द्रको अर्पित, ६४३. **वायुना धारिणी**=वायुके द्वारा धारण करनेवाली अथवा वयुना=ज्ञानस्वरूपा और धारिणी=धारणशक्ति, ६४४. **धन्या**=धन्यवादके योग्य, ६४५. **वायवी**=वायुशक्ति, ६४६. **वायुवेगगा**=वायुवेगसे चलनेवाली॥ ८८॥

यमानुजा संयमनी संज्ञाच्छाया स्फुरद्द्युतिः।
रत्नवेदी रत्नवृन्दा तारा तरणिमण्डला॥ ८९

६४७. **यमानुजा**=यमकी छोटी बहन, ६४८. **संयमनी**=संयमनशक्ति अथवा संयमनीपुरी, ६४९. **संज्ञा**=सूर्यप्रिया संज्ञास्वरूपा, ६५०. **छाया**=संज्ञाकी छायाभूता सवर्णा, ६५१. **स्फुरद्द्युतिः**=उद्दीप्त कान्तिवाली, ६५२. **रत्नवेदी**=रत्नवेदिकारूपा, ६५३. **रत्नवृन्दा**=रत्न-समूहरूपा, ६५४. **तारा**=तारामण्डलरूपा, ६५५. **तरणि-मण्डला**= सूर्यमण्डलस्वरूपा॥ ८९॥

रुचिः शान्तिः क्षमा शोभा दया दक्षा द्युतिस्त्रपा।
तलतुष्टिर्विभा पुष्टिः सन्तुष्टिः पुष्टभावना॥ ९०

६५६. **रुचिः**=प्रभा, ६५७. **शान्तिः**=शान्ति-रूपा, ६५८. **क्षमा**=तितिक्षामयी अथवा पृथ्वी, ६५९. **शोभा**=छविमयी, ६६०. **दया**=करुणामयी, ६६१. **दक्षा**=कुशला या चतुरा, ६६२. **द्युतिः**=कान्तिमयी, ६६३. **त्रपा**=लज्जा, ६६४. **तलतुष्टिः**=ताली बजानेसे तुष्ट होनेवाली, ६६५. **विभा**=प्रभा, ६६६. **पुष्टिः**=पुष्टि-रूपा, ६६७. **संतुष्टिः**=संतोषमयी,६६८. **पुष्टभावना**= सुदृढ़ भावनावाली॥ ९०॥

चतुर्भुजा चारुनेत्रा द्विभुजाष्टभुजाबला।
शङ्खहस्ता पद्महस्ता चक्रहस्ता गदाधरा॥ ९१

६६९. **चतुर्भुजा**=चार भुजाएँ धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७०. **चारुनेत्रा**=सुन्दर नेत्रवाली; ६७१. **द्विभुजा**=दो बाहुवाली (कालिन्दी या श्रीराधा), ६७२. **अष्टभुजा**=आठ भुजावाली (सरस्वती), ६७३. **अबला**=बलका प्रदर्शन न करनेवाली, ६७४. **शङ्ख-हस्ता**=हाथमें शङ्ख धारण करनेवाली (वैष्णवी मूर्ति), ६७५. **पद्महस्ता**=हाथमें कमल धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७६. **चक्रहस्ता**=हाथमें चक्र धारण करनेवाली वैष्णवी मूर्ति, ६७७. **गदाधरा**=गदा धारण करनेवाली॥ ९१॥

निषङ्गधारिणी चर्मखड्गपाणिर्धनुर्धरा।

६७८. **निषङ्गधारिणी**=तरकस धारण करनेवाली, ६७९. **चर्मखड्गपाणिः**=हाथमें ढाल-तलवार लेने-वाली, ६८०. **धनुर्धरा**=धनुष धारण करनेवाली,

धनुष्टङ्कारिणी योद्धी दैत्योद्भटविनाशिनी॥ ९२

६८१. **धनुष्टंकारिणी**=(दुर्गाके रूपमें) धनुषका टंकार करनेवाली, ६८२. **योद्धी**=युद्ध करनेवाली, ६८३. **दैत्योद्भटविनाशिनी**=दैत्यसेनाके उद्भट योद्धाओंका विनाश करनेवाली॥ ९२॥

रथस्था गरुडारूढा श्रीकृष्णहृदयस्थिता।
वंशीधरा कृष्णवेषा स्रग्विणी वनमालिनी॥ ९३

६८४. **रथस्था**=रथपर बैठनेवाली, ६८५. **गरुडारूढा**=गरुडपर आरूढ़ होनेवाली, ६८६. **श्रीकृष्णहृदयस्थिता**=श्रीकृष्णके हृदयरूपी सिंहासनपर आसीन, ६८७. **वंशीधरा**=कृष्णरूपसे वंशी धारण करनेवाली, ६८८. **कृष्णवेषा**=श्रीकृष्णका वेष धारण करनेवाली, ६८९. **स्रग्विणी**=पुष्पोंके हारोंसे अलंकृत, ६९०. **वनमालिनी**=वनमाला धारण करनेवाली॥ ९३॥

किरीटधारिणी याना मन्दमन्दगतिर्गतिः।
चन्द्रकोटिप्रतीकाशा तन्वी कोमलविग्रहा॥ ९४

६९१. **किरीटधारिणी**=मस्तकपर किरीट धारण करनेवाली, ६९२. **याना**=यानस्वरूपा, ६९३. **मन्दमन्दगतिः**=धीरे-धीरे चलनेवाली, ६९४. **गतिः**=सद्गतिस्वरूपा अथवा गमनशक्तिरूपा, ६९५. **चन्द्रकोटि प्रतीकाशा**=कोटिचन्द्रतुल्या, ६९६. **तन्वी**= कृशाङ्गी, ६९७. **कोमलविग्रहा**=मृदुल शरीरवाली॥ ९४॥

भैष्मी भीष्मसुताभीमा रुक्मिणी रुक्मरूपिणी।
सत्यभामा जाम्बवती सत्या भद्रा सुदक्षिणा॥ ९५

६९८. **भैष्मी**=भीष्मकपुत्री रुक्मिणीरूपा, ६९९. **भीष्मसुता**=राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी, ७००. **अभीमा**=अभयंकर—सौम्यरूपवाली, ७०१. **रुक्मिणी**=श्रीकृष्णकी प्रमुख पटरानी, ७०२. **रुक्मरूपिणी**=सुनहले रूपवाली, ७०३. **सत्यभामा**=सत्राजित्की पुत्री, श्रीकृष्णप्रिया, ७०४. **जाम्बवती**= जाम्बवान्‌द्वारा पोषित एवं उन्हींसे प्राप्त दिव्यरूपा पटरानी, ७०५. **सत्या**='सत्या' नामवाली श्रीकृष्णकी पटरानी, ७०६. **भद्रा**='भद्रा' नामवाली पटरानी, ७०७. **सुदक्षिणा**=परम उदारस्वरूपा श्रीकृष्णकी पटरानी॥ ९५॥

मित्रविन्दा सखी वृन्दा वृन्दारण्यध्वजोर्ध्वगा।
शृङ्गारकारिणी शृङ्गा शृङ्गभूः शृङ्गदा खगा॥ ९६

७०८. **मित्रविन्दा**='मित्रविन्दा' नामवाली पटरानी, ७०९. **सखी**=राधारानीकी सखी, ७१०. **वृन्दा**=वृन्दावनकी अधिदेवी, ७११. **वृन्दारण्यध्वजोर्ध्वगा**= वृन्दावनकी ध्वजतुल्या—ऊर्ध्वगामिनी, ७१२. **शृङ्गारकारिणी**=शृङ्गार करनेवाली, ७१३. **शृङ्गा**=शृङ्गस्वरूपा, ७१४. **शृङ्गभूः**= शिखरभूमि, ७१५. **शृङ्गदा**=शिखरपर स्थान देनेवाली, ७१६. **खगा**=आकाशचारिणी॥ ९६॥

तितिक्षेक्षा स्मृतिः स्पर्धा स्पृहा श्रद्धा स्वनिर्वृतिः।
ईशा तृष्णा भिदा प्रीतिर्हिंसा याच्ञा क्लमा कृषिः॥ ९७

७१७. **तितिक्षा**=क्षमा, ७१८. **ईक्षा**=ईक्षण-स्वरूपा, ७१९. **स्मृतिः**=स्मरण-शक्ति, ७२०. **स्पर्धा**=स्पर्धा-रूपा, ७२१. **स्पृहा**=अभिलाषा, ७२२. **श्रद्धा**=आस्तिक्य-बुद्धिस्वरूपा, ७२३. **स्वनिर्वृतिः**=निजानन्द-स्वरूपा, ७२४. **ईशा**=ईशनकर्त्री, ७२५. **तृष्णा**=कामना, ७२६. **भिदा**=भेदस्वरूपा, ७२७. **प्रीतिः**=प्रेम या प्रसन्नता, ७२८. **हिंसा**=हिंसावृत्तिरूपा, ७२९. **याच्ञा**=याचनारूपा, ७३०. **क्लमा**=क्लान्तिरूपा अथवा अक्लमा—क्लमरहिता, ७३१. **कृषिः**=कृषि (वार्ताका एक भेद)॥९७॥

आशा निद्रा योगनिद्रा योगिनी योगदा युगा।
निष्ठा प्रतिष्ठा शमितिः सत्त्वप्रकृतिरुत्तमा॥ ९८

७३२. **आशा**=आशारूपिणी, ७३३. **निद्रा**=निद्राकी अधिष्ठात्री या निद्रारूपा, ७३४. **योगनिद्रा**=योगनिद्रा, जिसका आश्रय लेकर भगवान् विष्णु चार मासतक शयन करते हैं, ७३५. **योगिनी**=योगिनीरूपा, ७३६. **योगदा**=योगदायिनी, ७३७. **युगा**=युगस्वरूपा, ७३८. **निष्ठा**= परमगति, आश्रयशक्ति अथवा आधार-स्वरूपा, ७३९. **प्रतिष्ठा**=प्रतिष्ठास्वरूपा, आश्रय अथवा अवलम्ब, ७४०. **शमितिः**=शमन-स्वरूपा, ७४१. **सत्त्वप्रकृतिः**=सत्त्वगुणमयी प्रकृतिवाली, ७४२. **उत्तमा**=उत्कृष्ट-स्वरूपा॥९८॥

तमःप्रकृतिदुर्मर्षी रजःप्रकृतिराननतिः।
क्रियाक्रिया कृतिर्ग्लानिः सात्त्विक्याध्यात्मिकी वृषा॥ ९९

७४३. **तमःप्रकृतिदुर्मर्षी**=तमोगुणमय स्वभावको दुःखसे सहन करनेवाली, ७४४. **रजःप्रकृतिः**=रजोगुण-प्रधान प्रकृतिरूपा, ७४५. **आनतिः**=सब ओरसे नमन-शीला, ७४६. **क्रिया**=क्रियाशक्ति, ७४७. **अक्रिया**=निष्क्रिय, ७४८. **कृतिः**=प्रयत्नरूपा, ७४९. **ग्लानिः**=ग्लानिरूपिणी, ७५०. **सात्त्विकी**=सत्त्वप्रधाना शक्ति, ७५१.**आध्यात्मिकी**=आध्यात्मिकशक्ति, ७५२. **वृषा**=धर्मस्वरूपा॥९९॥

सेवा शिखामणिर्वृद्धिराहूतिः सुमतिर्द्युर्भूः।
रज्जुर्द्विदाम्नी षड्वर्गा संहिता सौख्यदायिनी॥ १००

७५३. **सेवा**=सेवारूपिणी, ७५४. **शिखा**=नदियोंकी शिखाभूता, ७५५. **मणिः**=मणि-रत्नस्वरूपा, ७५६. **वृद्धिः**=अभ्युदयकी हेतुभूता, ७५७. **आहूतिः**=आह्वानस्वरूपा, ७५८. **सुमतिः**=सद्बुद्धिस्वरूपिणी, ७५९. **द्युः**= द्युलोकरूपिणी, ७६०. **भूः**= पृथ्वीरूपा, ७६१.**रज्जुर्द्विदाम्नी**=दो तटोंवाली, ७६२. **षड्वर्गा**=षड्वर्गरूपिणी, ७६३. **संहिता**=वेदरूपिणी, ७६४. **सौख्यदायिनी**=सर्वसुखदा॥१००॥

मुक्तिः प्रोक्तिर्देशभाषा प्रकृतिः पिङ्गलोद्भवा।
नागभाषा नागभूषा नागरी नगरी नगा॥ १०१

नौर्नौका भवनौर्भाव्या भवसागरसेतुका।
मनोमयी दारुमयी सैकती सिकतामयी॥ १०२

लेख्या लेप्या मणिमयी प्रतिमा हेमनिर्मिता।
शैली शैलभवा शीला शीकराभा चलाचला॥ १०३

अस्थिता सुस्थिता तूली वैदिकी तान्त्रिकी विधिः।
सन्ध्या सन्ध्याभ्रवसना वेदसन्धिः सुधामयी॥ १०४

सायन्तनी शिखावेध्या सूक्ष्मा जीवकला कृतिः।
आत्मभूता भाविताऽण्वी प्रह्वी कमलकर्णिका॥ १०५

७६५. **मुक्तिः**=मुक्तिरूपा, ७६६. **प्रोक्तिः**=श्रेष्ठ-वाणीरूपा, ७६७. **देशभाषा**=देशीयभाषा, ७६८. **प्रकृतिः**=प्रकृतिरूपा, ७६९. **पिङ्गलोद्भवा**=पिङ्गला नाड़ीसे उत्पन्न, ७७०. **नागभाषा**=नागोंकी भाषाको जाननेवाली अथवा नागोंसे भाषण करनेवाली, ७७१. **नागभूषा** = नागोंसे भूषित, ७७२. **नागरी**=नागरी अर्थात् चतुरा, ७७३. **नगरी** =नगरस्वरूपा, ७७४. **नगा**=वृक्ष अथवा गिरिरूपा, ७७५. **नौः**=नाव, ७७६. **नौका**=नाव, ७७७. **भवनौः**=संसारसागरसे पार उतारनेवाली नौका, ७७८. **भाव्या**=मनमें भावना (ध्यान) करनेयोग्य, ७७९. **भवसागरसेतुका**=भवसागरसे पार जानेके लिये सेतुरूपा, ७८०. **मनोमयी**=मनःस्वरूपा, ७८१ **दारुमयी**= काष्ठकी बनी, ७८२. **सैकती**=सिकतासे पूर्ण, ७८३. **सिकतामयी**= वालुकासे परिपूर्ण या वालुकामयी॥ १०१-१०२॥

७८४. **लेख्या**=चित्रमयी, ७८५. **लेप्या**=मिट्टीकी प्रतिमा, ७८६. **मणिमयी**=मणिनिर्मित प्रतिमा, ७८७. **प्रतिमा हेमनिर्मिता**=सोनेकी बनी प्रतिमा, ७८८. **शैली**=शिलामयी प्रतिमा, ७८९. **शैलभवा**=पर्वतसे प्रकट प्रतिमा, ७९०, **शीला**=शीलयुक्ता अथवा शील-स्वरूपा, ७९१. **शीकराभा**=जलकणों अथवा जलकी फुहारोंसे शोभित, ७९२. **चला**=चलस्वरूपा, ७९३. **अचला**=अचलस्वरूपा, ७९४. **अस्थिता**=अस्थिर, ७९५. **सुस्थिता**=सुस्थिर, ७९६. **तूली**=तूलिका, ७९७. **वैदिकी**=वेदोक्त पद्धति, ७९८. **तान्त्रिकी**=तन्त्रोक्त पद्धति, ७९९. **विधिः**=विधिवाक्यस्वरूपा, ८००. **संध्या**=रात और दिनकी संधिवेला, ८०१. **संध्याभ्रवसना**=संध्याकालिक बादल या आकाशकी भाँति लाल वस्त्रवाली, ८०२. **वेदसंधिः**=वेदमन्त्रोंमें संधि (संहिता)-स्वरूपा, ८०३. **सुधामयी**=अमृतमयी॥ १०३-१०४॥

८०४. **सायंतनी**=सायंकालिकी शोभा, ८०५. **शिखा**=ज्वालामयी, ८०६. **अवेध्या**=अभेदनीया, ८०७. **सूक्ष्मा**=सूक्ष्मस्वरूपा, ८०८. **जीवकला**=जीवरूप भगवत्-कला, ८०९. **कृतिः**=कृतिरूपा, ८१०. **आत्मभूता**=सबकी आत्मस्वरूपा, ८११. **भाविता**=ध्यान या भावनाकी विषयभूता, ८१२. **अण्वी**=सूक्ष्मस्वरूपा, ८१३. **प्रह्वी**=विनयशीला, ८१४. **कमलकर्णिका**=हृदय-कमलकी कर्णिकामें ध्येया॥ १०५॥

नीराजनी महाविद्या कन्दली कार्यसाधनी।
पूजा प्रतिष्ठा विपुला पुनन्ती पारलौकिकी॥ १०६

८१५. **नीराजनी**=आरती, ८१६. **महाविद्या**=तत्त्वसाक्षात्कार करनेवाली महावाक्यबोधात्मिका महाविद्या, अथवा ब्रह्मविद्यारूपा महाविद्या, ८१७. **कंदली**=सुखकी अङ्कुरस्वरूपा, ८१८. **कार्यसाधनी**= भक्तजनोंके अभीष्ट कार्यको सिद्ध करनेवाली, ८१९. **पूजा**=अर्चना, ८२०. **प्रतिष्ठा**=स्थापना, ८२१. **विपुला**=विपुलस्वरूपा, ८२२. **पुनन्ती**=पवित्र करनेवाली, ८२३. **पारलौकिकी**=परलोकके लिये हितकारिणी॥ १०६॥

शुक्लशुक्तिर्मौक्तिका च प्रतीतिः परमेश्वरी।
विरजोष्णिग् विराड् वेणी वेणुका वेणुनादिनी॥ १०७

८२४. **शुक्लशुक्तिः**=श्वेत सीपी या सितुहीकी उपलब्धिका स्थान, ८२५. **मौक्तिका**=मुक्तास्वरूपा, ८२६. **प्रतीतिः**= प्रतीतिस्वरूपा, ८२७. **परमेश्वरी**=परमेश्वरप्रिया, ८२८. **विरजा**=निर्मला, ८२९. **उष्णिक्**=वैदिक छन्द-विशेष, ८३०. **विराड्** =विराट्-रूपा, ८३१. **वेणी** =त्रिवेणीरूपा, ८३२. **वेणुका**= वंशीरूपिणी, ८३३. **वेणुनादिनी**= वेणुनाद करनेवाली—बाँसुरीकी तान छेड़नेवाली॥ १०७॥

आवर्तिनी वार्तिकदा वार्ता वृत्तिर्विमानगा।
रासाढ्या रासिनी रासा रासमण्डलवर्तिनी॥ १०८

८३४. **आवर्तिनी**=भँवरोंसे युक्ता, ८३५. **वार्तिकदा**=वार्तिकदायिनी, ८३६. **वार्ता**=कृषि, गोरक्षा और वाणिज्यके भेदसे त्रिविध वार्ता, ८३७. **वृत्तिः**=जीविकारूपा, ८३८. **विमानगा**=विमानपर यात्रा करनेवाली, ८३९. **रासाढ्या**=रासजनित सुखसे सम्पन्न, ८४०. **रासिनी**=रासपरायणा, ८४१. **रासा**=रासस्वरूपा, ८४२. **रासमण्डलवर्तिनी**=रासमण्डलमें वर्तमान॥ १०८॥

गोपगोपीश्वरी गोपी गोपीगोपालवन्दिता।
गोचारिणी गोपनदी गोपानन्दप्रदायिनी॥ १०९

८४३. **गोपगोपीश्वरी**=गोपों तथा गोपाङ्गनाओंकी आराध्या ईश्वरी, ८४४. **गोपी**=गोपीरूपा, ८४५. **गोपीगोपालवन्दिता**=गोपियों और ग्वालोंसे वन्दित, ८४६. **गोचारिणी**=अपने तटपर गौओंको चरनेके लिये स्थान और सुविधा देनेवाली, ८४७. **गोपनदी**=गोपोंकी नदी, ८४८. **गोपानन्दप्रदायिनी**=गोपोंको आनन्द प्रदान करनेवाली॥ १०९॥

पशव्यदा गोपसेव्या कोटिशो गोगणावृता।
गोपानुगा गोपवती गोविन्दपदपादुका॥ ११०

८४९. **पशव्यदा**=पशुओंके लिये हितकर घास प्रदान करनेवाली, ८५०. **गोपसेव्या**=गोपोंके द्वारा सेवनीया, ८५१. **कोटिशो गोगणावृता**=करोड़ों गौओंके समुदायसे घिरी हुई, ८५२. **गोपानुगा**= गोपगण जिनका अनुगमन करते हैं या गोप जिनके सेवक हैं, ऐसी, ८५३. **गोपवती**=गोपोंसे युक्त, ८५४. **गोविन्दपदपादुका**=गोविन्द-चरणोंकी पादुकास्वरूपा॥ ११०॥

वृषभानुसुता राधा श्रीकृष्णवशकारिणी।
कृष्णप्राणाधिका शश्वद्रसिका रसिकेश्वरी॥ १११

८५५. **वृषभानुसुता**=वृषभानुनन्दिनी राधासे अभिन्न, ८५६. **राधा**=श्रीकृष्णकी आराध्या राधास्वरूपा, ८५७. **श्रीकृष्णवशकारिणी**=श्रीकृष्णको वशमें कर लेनेवाली, ८५८. **कृष्णप्राणाधिका**=श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय, ८५९. **शश्वद्रसिका**=नित्यरसिका, ८६०. **रसिकेश्वरी**=रसिकोंकी ईश्वरी॥ १११॥

अवटोदा ताम्रपर्णी कृतमाला विहायसी।
कृष्णा वेणी भीमरथी तापी रेवा महापगा॥ ११२

वैयासकी च कावेरी तुङ्गभद्रा सरस्वती।
चन्द्रभागा वेत्रवती ऋषिकुल्या ककुद्मिनी॥ ११३

८६१. **अवटोदा**=अवटोदा नामकी नदी, ८६२. **ताम्रपर्णी**=ताम्रपर्णी नामकी नदी, ८६३. **कृतमाला**=इसी नामवाली नदी, ८६४. **विहायसी**=विहायसी नदी, ८६५. **कृष्णा**=कृष्णा नदी, ८६६. **वेणी**=वेणी नामकी नदी, ८६७. **भीमरथी**=भीमा नामकी नदी, ८६८. **तापी**=तपती नामकी नदी ८६९. **रेवा**=नर्मदा, ८७०. **महापगा**=विशाल नदी, अथवा महानदी नामकी नदी, ८७१. **वैयासकी**=वैयासकी (व्यास) नदी, ८७२. **कावेरी**=कावेरी नदी, ८७३. **तुङ्गभद्रा**=तुङ्गभद्रा नामकी नदी, ८७४. **सरस्वती**=सरस्वती नदी, ८७५. **चन्द्रभागा**=चिनाब नदी, ८७६. **वेत्रवती**= बेतवा नदी, ८७७. **ऋषिकुल्या**=इसी नामकी नदी, ८७८. **ककुद्मिनी**=ककुद्मिनी नदी॥ ११२-११३॥

गौतमी कौशिकी सिन्धुर्बाणगङ्गातिसिद्धिदा।
गोदावरी रत्नमाला गङ्गा मन्दाकिनी बला॥ ११४

८७९. **गौतमी**=गोदावरी, ८८०. **कौशिकी**=कोसी नदी, ८८१. **सिन्धुः**=सिन्धु नदी, ८८२. **बाणगङ्गा**=अर्जुनके बाणसे प्रकट हुई पातालगङ्गा, ८८३. **अतिसिद्धिदा**= अत्यन्त सिद्धि प्रदान करनेवाली, ८८४. **गोदावरी**=गौतमी, ८८५. **रत्नमाला**=नदी, ८८६. **गङ्गा**=गङ्गा नदी, ८८७. **मन्दाकिनी**=आकाशगङ्गा, ८८८. **बला**=बला नामकी नदी॥ ११४॥

स्वर्णदी जाह्नवी वेला वैष्णवी मङ्गलालया।
बाला विष्णुपदी प्रोक्ता सिन्धुसागरसङ्गता॥ ११५

गङ्गासागरशोभाढ्या सामुद्री रत्नदा धुनी।
भागीरथी स्वर्धुनीभूः श्रीवामनपदच्युता॥ ११६

८८९. **स्वर्णदी**=स्वर्गलोककी नदी गङ्गा, ८९०. **जाह्नवी**=जह्नुनन्दिनी गङ्गा, ८९१. **वेला**=वेला नदी, ८९२. **वैष्णवी**=विष्णुकुल्या, ८९३. **मङ्गलालया**=मङ्गलका आवास, ८९४. **बाला**=बाला नदी, ८९५. **विष्णुपदी**=गङ्गा, ८९६. **सिन्धुसागरसंगता**=गङ्गासागर-संगमस्वरूपा, ८९७. **गङ्गासागरशोभाढ्या**= गङ्गा और सागरके संगमकी शोभासे सम्पन्न, ८९८. **सामुद्री**=समुद्रप्रिया, ८९९. **रत्नदा**=रत्न प्रदान करनेवाली, ९००. **धुनी**=नदीरूपा, ९०१. **भागीरथी**=राजा भगीरथके द्वारा लायी गयी गङ्गा, ९०२. **स्वर्धुनीभूः**=गङ्गाके प्राकट्यकी भूमि, ९०३. **श्रीवामनपदच्युता**=श्रीवामनके चरणोंसे च्युत हुई॥ ११५-११६॥

लक्ष्मी रमा रमणीया भार्गवी विष्णुवल्लभा।
सीतार्चिर्जानकी माता कलङ्करहिता कला॥ ११७

१०४. **लक्ष्मीः**=लक्ष्मीस्वरूपा, १०५. **रमा**=पद्मा, १०६. **रमणीया**=रमणीयतासे युक्त, १०७. **भार्गवी**=भृगुपुत्री, १०८. **विष्णुवल्लभा**=भगवान् विष्णुकी प्रिया, १०९. **सीता**=सीतास्वरूपा, ११०. **अर्चिः**=अग्नि ज्वालारूपिणी, १११. **जानकी**=जनकनन्दिनी, ११२. **माता**=जगज्जननी, ११३. **कलङ्करहिता**=निष्कलङ्का, ११४. **कला**=भगवत्कला-स्वरूपा॥ ११७॥

कृष्णपादाब्जसम्भूता सर्वा त्रिपथगामिनी।
धरा विश्वम्भरानन्ता भूमिर्धात्री क्षमामयी॥ ११८

११५. **कृष्णपादाब्जसम्भूता**=श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई, ११६. **सर्वा**=सर्वस्वरूपा, ११७. **त्रिपथगामिनी**=त्रिपथगा गङ्गा, ११८. **धरा**=धरणीस्वरूपा, ११९. **विश्वम्भरा**=विश्वका भरण-पोषण करनेवाली, १२०. **अनन्ता**=अन्तरहिता, १२१. **भूमिः**=आधारभूमिस्वरूपा, १२२. **धात्री**=धाय, १२३. **क्षमामयी**=क्षमास्वरूपा॥ ११८॥

स्थिरा धरित्री धरणीरुर्वी शेषफणस्थिता।
अयोध्या राघवपुरी कौशिकी रघुवंशजा॥ ११९

१२४. **स्थिरा**=स्थिरस्वरूपा, १२५. **धरित्री**=धारण करनेवाली, १२६. **धरणी**=लोक धारणी पृथ्वी, १२७. **उर्वी**=भूमि, १२८. **शेषफणस्थिता**=शेषनागके फणोंपर रहनेवाली, १२९. **अयोध्या**=जिसके साथ युद्ध न किया जा सके, ऐसी अजेय पुरी, १३०. **राघवपुरी**=राघवेन्द्रकी नगरी, १३१. **कौशिकी**=कुशिकवंशजा, १३२. **रघुवंशजा**=रघुकुलमें उत्पन्न होनेवाली॥ ११९॥

मथुरा माथुरी पन्था यादवी ध्रुवपूजिता।
मयायुर्बिल्वनीलोदा गङ्गाद्वारविनिर्गता॥ १२०

१३३. **मथुरा**=मथुरा-नगरी, १३४. **माथुरी**=मथुरामण्डलमें प्रकट, १३५. **पन्था**=मार्गस्वरूपा, १३६. **यादवी**=यदुवंशियोंकी नगरी, १३७. **ध्रुवपूजिता**=ध्रुवसे प्रशंसित, १३८. **मयायुः**=मयासुरको आयु प्रदान करनेवाली, १३९. **बिल्वनीलोदा**=बिल्व तथा नील-पर्वतोंसे प्रवहमान, १४०. **गङ्गाद्वारविनिर्गता**=हरद्वारसे निकली हुई॥ १२०॥

कुशावर्तमयी ध्रौव्या ध्रुवमण्डलमध्यगा।
काशी शिवपुरी शेषा विन्ध्या वाराणसी शिवा॥ १२१

१४१. **कुशावर्तमयी**=कुशावर्तनामक तीर्थस्वरूपा, १४२. **ध्रौव्या**=ध्रुवत्वसे युक्त, १४३. **ध्रुवमण्डलमध्यगा**= ध्रुवमण्डलके बीचसे निकली हुई, १४४. **काशी**=वाराणसी, १४५. **शिवपुरी**=शिवकी नगरी, १४६. **शेषा**=शेषस्वरूपा, १४७. **विन्ध्या**=विन्ध्यस्वरूपा, १४८. **वाराणसी**=काशी, १४९. **शिवा**=शिवास्वरूपा॥ १२१॥

अवन्तिका देवपुरी प्रोज्ज्वलोज्जयिनी जिता।
द्वारावती द्वारकामा कुशभूता कुशस्थली॥ १२२

९५०. **अवन्तिका**=मालव प्रदेशकी राजधानी और महाकालकी नगरी, ९५१. **देवपुरी**=देवनगरी, ९५२. **प्रोज्ज्वला**=प्रकृष्ट शोभासे सम्पन्न, ९५३. **उज्जयिनी**=उज्जैन, ९५४. **जिता**=जितस्वरूपा, ९५५. **द्वारावती**=द्वारकापुरी, ९५६. **द्वारकामा**=द्वारकी कामनावाली, ९५७. **कुशभूता**=कुशके प्रकट होनेका स्थान, ९५८. **कुशस्थली**=कुशोंकी उत्पत्ति-स्थली द्वारका॥ १२२॥

महापुरी सप्तपुरी नन्दिग्रामस्थलस्थिता।
शालग्रामशिलादित्या सम्भलग्राममध्यगा॥ १२३

९५९. **महापुरी**=महानगरी, ९६०. **सप्तपुरी**=सप्त-पुरीस्वरूपा, ९६१. **नन्दिग्रामस्थलस्थिता**=नन्दिग्रामके स्थलमें स्थित सरयू अथवा यमुना, ९६२. **शालग्रामशिलादित्या**=शालग्रामशिलाकी उत्पत्तिका स्थान गण्डकी नदी, ९६३. **सम्भलग्राममध्यगा**=सम्भल ग्रामके मध्यमें गयी हुई॥ १२३॥

वंशगोपालिनी क्षिप्ता हरिमन्दिरवर्तिनी।
बर्हिष्मती हस्तिपुरी शक्रप्रस्थनिवासिनी॥ १२४

९६४. **वंशगोपालिनी**=वंशगोपाल-मन्त्रसे युक्त, ९६५. **क्षिप्ता**=क्षिप्तस्वरूपा, ९६६. **हरिमन्दिरवर्तिनी**=भगवान्‌के मन्दिरमें विद्यमान, ९६७. **बर्हिष्मती**=बर्हिष्मती नामकी नगरी, ९६८. **हस्तिपुरी**=हस्तिनापुर-नगरी, ९६९. **शक्रप्रस्थनिवासिनी**=इन्द्रप्रस्थ (देहली)-में निवास करनेवाली॥१२४॥

दाडिमी सैन्धवी जम्बूः पौष्करी पुष्करप्रसूः।
उत्पलावर्तगमना नैमिष्यनिमिषादृता॥ १२५

९७०. **दाडिमी**=दाड़िमफलस्वरूपा, ९७१. **सैन्धवी**=सिन्धुप्रिया, ९७२. **जम्बूः**=जम्बूनदीरूपा, ९७३. **पौष्करी**=पुष्करद्वीपसे सम्बन्ध रखनेवाली, ९७४. **पुष्करप्रसूः**=पुष्करकी उत्पत्तिका स्थान, ९७५. **उत्पलावर्तगमना**=उत्पलावर्त तीर्थमें जानेवाली, ९७६. **नैमिषी**=नैमिषारण्यवासिनी, ९७७. **अनिमिषादृता**=देव-पूजिता॥ १२५॥

कुरुजाङ्गलभूः काली हैमवत्यार्बुदी बुधा।
शूकरक्षेत्रविदिता श्वेतवाराहधारिता॥ १२६

९७८. **कुरुजाङ्गलभूः**=कुरुजाङ्गलदेशमें प्रकट, ९७९. **काली**=कृष्णवर्णा अथवा काली गङ्गा, ९८०. **हैमवती**=हिमालयसे उत्पन्न, ९८१. **आर्बुदी**=आबूमें प्रकट, ९८२. **बुधा**=विदुषी, ९८३. **शूकरक्षेत्रविदिता**=शूकरक्षेत्रमें प्रसिद्ध, ९८४. **श्वेतवाराहधारिता**=श्वेत-वाराहके द्वारा धारित॥ १२६॥

सर्वतीर्थमयी तीर्था तीर्थानां तीर्थकारिणी।
हारिणी सर्वदोषाणां दायिनी सर्वसम्पदाम्॥ १२७

९८५. **सर्वतीर्थमयी**=सर्वतीर्थस्वरूपा, ९८६. **तीर्था**=तीर्थभूता, ९८७. **तीर्थानां तीर्थकारिणी**=तीर्थोंको तीर्थ बनानेवाली, ९८८. **हारिणी सर्वदोषाणाम्**=सब दोषोंको हर लेनेवाली, ९८९. **दायिनी सर्वसम्पदाम्**=सब सम्पत्तियोंको देनेवाली॥ १२७॥

वर्धिनी तेजसां साक्षाद्गर्भवासनिकृन्तनी।
गोलोकधाम धनिनी निकुञ्जनिजमञ्जरी॥ १२८

सर्वोत्तमा सर्वपुण्या सर्वसौन्दर्यशृङ्खला।
सर्वतीर्थोपरिगता सर्वतीर्थाधिदेवता॥ १२९

नाम्नां सहस्रं कालिन्द्याः कीर्तिदं कामदं परम्।
महापापहरं पुण्यमायुर्वर्धनमुत्तमम्॥ १३०

एकवारं पठेद्रात्रौ चोरेभ्यो न भयं भवेत्।
द्विवारं प्रपठेन्मार्गे दस्युभ्यो न भयं क्वचित्॥ १३१

द्वितीयां तु समारभ्य पठेत्पूर्णावधि द्विजः।
दशवारमिदं भक्त्या ध्यात्वा देवीं कलिन्दजाम्॥ १३२

रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
गुर्विणी जनयेत्पुत्रं विद्यार्थी पण्डितो भवेत्॥ १३३

मोहनं स्तम्भनं शश्वद्वशीकरणमेव च।
उच्चाटनं घातनं च शोषणं दीपनं तथा॥ १३४

उन्मादनं तापनं च निधिदर्शनमेव च।
यद्यद्वाञ्छति चित्तेन तत्तत्प्राप्नोति मानवः॥ १३५

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः।
वैश्यो निधिपतिर्भूयाच्छूद्रः श्रुत्वा तु निर्मलः॥ १३६

पूजाकाले तु यो नित्यं पठते भक्तिभावतः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ १३७

९९०. **वर्धिनी तेजसाम्**=तेजको बढ़ानेवाली, ९९१. **साक्षात्**=प्रत्यक्ष प्रकट, ९९२. **गर्भवासनिकृन्तनी**=माताके गर्भमें वास करनेके कष्टका उच्छेद करनेवाली, ९९३. **गोलोकधाम**=गोलोककी प्रकाशरूपा, ९९४. **धनिनी**=धनसे सम्पन्न, ९९५. **निकुञ्जनिजमञ्जरी**=निकुञ्जमें अपनी मञ्जरियोंके साथ रहनेवाली॥ १२८॥

९९६. **सर्वोत्तमा**=सबसे उत्तम, ९९७. **सर्वपुण्या**=सर्वाधिक पुण्यशालिनी, ९९८. **सर्वसौन्दर्यशृङ्खला**=सम्पूर्ण सुन्दरताको बाँध रखनेवाली, ९९९, **सर्वतीर्थोपरिगता**=सब तीर्थोंके ऊपर पहुँची हुई, १०००. **सर्वतीर्थाधिदेवता**=सम्पूर्ण तीर्थोंकी अधिदेवी॥ १२९॥

कालिन्दीके सहस्रनामका वर्णन कीर्ति देनेवाला तथा उत्तम कामपूरक है। यह बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला, पुण्य देनेवाला और आयुको बढ़ानेवाला श्रेष्ठ साधन है। रातमें एक बार इसका पाठ कर ले तो चोरोंसे भय नहीं होता। रास्तेमें दो बार पढ़ ले तो डाकू और लुटेरोंसे कहीं भय नहीं होता॥ १३०-१३१॥

द्विजको चाहिये कि वह द्वितीयासे पूर्णिमातक प्रतिदिन कालिन्दी देवीका ध्यान करके भक्तिभावसे दस बार इस सहस्रनामका पाठ करे; ऐसा करनेसे यदि रोगी हो तो रोगसे छूट जाता है, कैदमें पड़ा हो तो वहाँके बन्धनसे मुक्त हो जाता है, गर्भिणी नारी हो तो वह पुत्र पैदा करती है और विद्यार्थी हो तो वह पण्डित होता है। मोहन, स्तम्भन, वशीकरण, उच्चाटन, मारण, शोषण, दीपन, उन्मादन, तापन, निधिदर्शन आदि जो-जो वस्तु मनुष्य मनमें चाहता है, उस-उसको वह प्राप्त कर लेता है॥ १३२—१३५॥

इसके पाठसे ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होता है, क्षत्रिय पृथ्वीका आधिपत्य प्राप्त करता है, वैश्य खजानेका मालिक होता है और शूद्र इसको सुनकर निर्मल—शुद्ध हो जाता है॥ १३६॥

जो पूजाकालमें प्रतिदिन भक्तिभावसे इसका पाठ करता है, वह जलसे अलिप्त रहनेवाले कमलपत्रकी भाँति पापोंसे कभी लिप्त नहीं होता॥ १३७॥

शतवारं पठेन्नित्यं वर्षावधिमतः परम्।
पटलं पद्धतिं कृत्वा स्तवं च कवचं तथा॥ १३८

सप्तद्वीपमहीराज्यं प्राप्नुयान्नात्र संशयः॥ १३९

निष्कारणं पठेद्यस्तु यमुनाभक्तिसंयुतः।
त्रैवर्ग्यमेत्य सुकृती जीवन्मुक्तो भवेदिह॥ १४०

निकुञ्जलीलाललितं मनोहरं
कलिन्दजाकूललताकदम्बकम्।
वृन्दावनोन्मत्तमिलिन्दशब्दितं
व्रजेत्स गोलोकमिदं पठेच्च यः॥ १४१

जो लोग एक वर्षतक पटल और पद्धतिकी विधिका पालन करके प्रतिदिन इस सहस्रनामका सौ बार पाठ करते हैं और उसके बाद स्तोत्र और कवच पढ़ते हैं, वे सातों द्वीपोंसे युक्त पृथिवीका राज्य प्राप्त कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है। जो यमुनाजीमें भक्तिभाव रखकर निष्कामभावसे इसका पाठ करता है, वह पुण्यात्मा धर्म-अर्थ-काम— इस त्रिवर्गको पाकर इस जीवनमें ही जीवन्मुक्त हो जाता है। जो इस प्रसङ्गका पाठ करता है, वह निकुञ्जलीलासे ललित, मनोहर तथा कालिन्दीतटके लता-समुदायोंसे विलसित वृन्दावनके मतवाले भ्रमरोंसे अनुनादित गोलोकधाममें पहुँच जाता है॥ १३८—१४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीसौभरिमान्धातृसंवादे श्रीयमुनासहस्रनामकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीसौभरि और मांधाताके संवादमें 'श्रीयमुना-सहस्रनामका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

बलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरका वध तथा उसके पूर्वजन्मका परिचय

श्रीनारद उवाच

इति कृष्णास्तवं श्रुत्वा मान्धाता नृपसत्तमः।
अयोध्यां प्रययौ वीरो नत्वा श्रीसौभरिं मुनिम्॥ १

इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम्।
महापापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ २

बहुलाश्व उवाच

श्रुतं तव मुखाद् ब्रह्मन् गोपीनां वर्णनं परम्।
यमुनायाश्च पञ्चाङ्गं महापातकनाशनम्॥ ३

श्रीकृष्णः सबलः साक्षाद् गोलोकाधिपतिः प्रभुः।
अग्रे चकार कां लीलां ललितां व्रजमण्डले॥ ४

श्रीनारद उवाच

एकदा चारयन् गाः स्वाः सबलो गोपबालकैः।
भाण्डीरे यमुनातीरे बाललीलां चकार ह॥ ५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार यमुनाजीका सहस्रनामस्तोत्र सुनकर वीरभूप-शिरोमणि मांधाता सौभरिमुनिको नमस्कार करके अयोध्यापुरीको चले गये। यह मैंने तुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो महान् पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यप्रद है। बताओ और क्या सुनना चाहते हो?॥ १-२॥

बहुलाश्व बोले—ब्रह्मन्! मैंने आपके मुखसे गोपियोंके चरित्रका उत्तम वर्णन सुना। साथ ही यमुनाके पञ्चाङ्गका भी श्रवण किया, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। साक्षात् गोलोकके अधिपति भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ व्रजमण्डलमें आगे कौन-कौन-सी मनोहर लीलाएँ कीं, यह बताइये॥ ३-४॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! एक दिन श्रीबलराम और ग्वाल-बालोंके साथ अपनी गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण भाण्डीरवनमें यमुनाजीके तटपर बालोचित खेल खेलने लगे॥ ५॥

विहारं कारयन् बालैर्वाह्यवाहकलक्षणम्।
विजहार वने कृष्णो दर्शयन् गा मनोहरा:॥ ६

तत्रागतो गोपरूपी प्रलम्बः कंसनोदितः।
न ज्ञातो बालकैः सोऽपि हरिणा विदितोऽभवत्॥ ७

विहारे विजयं रामं नेतुं कोऽपि न मन्यते।
उवाह तं प्रलम्बोऽसौ भाण्डीराद्यमुनातटम्॥ ८

अवरोहणतो दैत्यो मथुरां गन्तुमुद्यतः।
दधार घनवद्रूपं गिरीन्द्र इव दुर्गमः॥ ९

बभौ बलो दैत्यपृष्ठे सुन्दरो लोलकुण्डलः।
आकाशस्थः पूर्णचन्द्रः सतडिज्जलदो यथा॥ १०

दैत्यं भयङ्करं वीक्ष्य बलदेवो महाबलः।
रुषाहनन्मुष्टिना तं शिरस्यद्रिं यथाद्रिभित्॥ ११

विशीर्णमस्तको दैत्यो यथा वज्रहतो गिरिः।
पपात भूमौ सहसा चालयन् वसुधातलम्॥ १२

तज्ज्योतिर्निर्गतं दीर्घं बले लीनं बभूव ह।
तदैव ववृषुर्देवाः पुष्पैर्नन्दनसम्भवैः॥ १३

अभूज्जयजयारावो दिवि भूमौ नृपेश्वर।
एवं श्रीबलदेवस्य चरितं परमाद्भुतम्।
मया ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १४

बालकोंसे वाह्य-वाहनका खेल करवाते हुए श्रीकृष्ण मनोहर गौओंकी देख-भाल करते हुए वनमें विहार करते थे। (इस खेलमें कुछ लड़के वाहन—घोड़ा आदि बनते और कुछ उनकी पीठपर सवारी करते थे।) उस समय वहाँ कंसका भेजा हुआ असुर प्रलम्ब गोपरूप धारण करके आया। दूसरे ग्वाल-बाल तो उसे न पहचान सके, किंतु भगवान् श्रीकृष्णसे उसकी माया छिपी न रही। खेलमें हारनेवाला बालक जीतनेवालेको पीठपर चढ़ाता था; किंतु जब बलरामजी जीत गये, तब उन्हें कोई भी पीठपर चढ़ानेको तैयार नहीं हुआ। उस समय प्रलम्बासुर ही उन्हें भाण्डीरवनसे यमुनातटतक अपनी पीठपर चढ़ाकर ले जाने लगा॥ ६—८॥

[एक निश्चित स्थान था, जहाँ ढोकर ले जानेवाला बालक अपनी पीठपर चढ़े हुए बालकको उतार देता था; परंतु] प्रलम्बासुर उतारनेके स्थानपर पहुँचकर भी उन्हें उतारे बिना ही मथुरातक ले जानेको उद्यत हो गया। उसने बादलोंकी घोर घटाकी भाँति भयानक रूप धारण कर लिया और विशाल पर्वतके समान दुर्गम हो गया। उस दैत्यकी पीठपर बैठे हुए सुन्दर बलरामजीके कानोंमें कान्तिमान् कुण्डल हिल रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा उदित हुए हों अथवा मेघोंकी घटामें बिजली चमक रही हो॥ ९-१०॥

उस भयानक दैत्यको देखकर महाबली बलदेवजीको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने उसके मस्तकपर कसके एक मुक्का मारा, मानो इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्रका प्रहार किया हो। उस दैत्यका मस्तक वज्रसे आहत पहाड़की तरह फट गया और वह सहसा पृथ्वीको कम्पित करता हुआ धराशायी हो गया। उसके शरीरसे एक विशाल ज्योति निकली और बलरामजीमें विलीन हो गयी। उस समय देवता बलरामजीके ऊपर नन्दनवनके फूलोंकी वर्षा करने लगे। नृपेश्वर! पृथ्वीपर और आकाशमें भी जय-जयकार होने लगी। राजन्! इस प्रकार श्रीबलदेवजीके परम अद्भुत चरित्रका मैंने तुम्हारे समक्ष वर्णन किया, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ११—१४॥

बहुलाश्व उवाच

कोऽयं दैत्यः पूर्वकाले प्रलम्बो रणदुर्मदः।
बलदेवस्य हस्तेन मुक्तिं प्राप कथं मुने॥ १५

बहुलाश्वने पूछा—मुने! वह रण-दुर्मद दैत्य प्रलम्ब पूर्वजन्ममें कौन था? और बलदेवजीके हाथसे उसकी मुक्ति क्यों हुई?॥ १५॥

श्रीनारद उवाच

शिवस्य पूजनार्थं हि यक्षराट् स्ववने शुभे।
कारयामास पुष्पाणां रक्षां यक्षैरितस्ततः॥ १६

तदप्यस्यापि जगृहुः पुष्पाणि प्रस्फुरन्ति च।
ततः क्रुद्धो ददौ शापं यक्षराड् धनदो बली॥ १७

ये गृह्णन्त्यस्य पुष्पाणि स्वे चान्ये सुरमानवाः।
भवितारोऽसुराः सर्वे मच्छापात्सहसा भुवि॥ १८

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! यक्षराज कुबेरने अपने सुन्दर वनमें भगवान् शिवकी पूजाके लिये फुलवारी लगा रखी थी और इधर-उधर यक्षोंको तैनात करके उन फूलोंकी रक्षाका प्रबन्ध करवाया था; तथापि उस पुष्पवाटिकाके सुन्दर एवं चमकीले फूल लोग तोड़ लिया करते थे। इससे कुपित हो बलवान् यक्षराज कुबेरने यह शाप दिया—'जो यक्ष इस फुलवारीके फूल लेंगे अथवा दूसरे भी जो देवता और मनुष्य आदि फूल तोड़नेका अपराध करेंगे, वे सब सहसा मेरे शापसे भूतलपर असुर हो जायँगे॥ १६—१८॥

हूहूसुतोऽथ विजयो विचरंस्तीर्थभूमिषु।
वनं चैत्ररथं प्राप्तो गायन् विष्णुगुणान् पथि॥ १९

वीणापाणिरजानन् वै गन्धर्वः सुमनांसि च।
गृहीत्वा सोऽसुरो जातो गन्धर्वत्वं विहाय तत्॥ २०

तदैव शरणं प्राप्तः कुबेरस्य महात्मनः।
नत्वा तत्प्रार्थनां चक्रे कृताञ्जलिपुटः शनैः॥ २१

तस्मै प्रसन्नो राजेन्द्र कुबेरोऽपि वरं ददौ।
त्वं विष्णुभक्तः शान्तात्मा मा शोकं कुरु मानद॥ २२

द्वापरान्ते च ते मुक्तिर्बलदेवस्य हस्ततः।
भविष्यति न सन्देहो भाण्डीरे यमुनातटे॥ २३

एक दिन हूहू नामक गन्धर्वका बेटा 'विजय' तीर्थभूमियोंमें विचरता तथा मार्गमें भगवान् विष्णुके गुणोंको गाता हुआ चैत्ररथ वनमें आया। उसके हाथमें वीणा थी। बेचारा गन्धर्व शापकी बातको नहीं जानता था, अतः उसने वहाँसे कुछ फूल ले लिये। फूल लेते ही वह गन्धर्वरूपको त्यागकर असुर हो गया। फिर तो वह तत्काल महात्मा कुबेरकी शरणमें गया और नमस्कार करके दोनों हाथ जोड़कर धीरे-धीरे शापसे छूटनेके लिये प्रार्थना करने लगा। राजेन्द्र! तब उसपर प्रसन्न होकर कुबेरने भी वर दिया—'मानद! तुम भगवान् विष्णुके भक्त तथा शान्त-चित्त महात्मा हो, इसलिये शोक न करो। द्वापरके अन्तमें भाण्डीर-वनमें यमुनाके तटपर बलदेवजीके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें संदेह नहीं है'॥ १९—२३॥

श्रीनारद उवाच

हूहूसुतः स गन्धर्वः प्रलम्बोऽभून्महासुरः।
कुबेरस्य वराद्राजन् परं मोक्षं जगाम ह॥ २४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! हूहूका पुत्र वह विजयनामक गन्धर्व ही महान् असुर प्रलम्ब हुआ और कुबेरके वरसे उसको परम मोक्षकी प्राप्ति हुई॥ २४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे प्रलम्बवधो नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रलम्ब-वध' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

दावानलसे गौओं और ग्वालोंका छुटकारा तथा विप्रपत्नियोंको श्रीकृष्णका दर्शन

श्रीनारद उवाच

अथ क्रीडाप्रसक्तेषु गोपेषु सबलेषु च।
तृणलोभेन विविशुर्गावः सर्वा महद्वनम्॥ १

ता आनेतुं गोपबालाः प्राप्ता मुञ्जाटवीं पराम्।
सम्भूतस्तत्र दावाग्निः प्रलयाग्निसमो महान्॥ २

गोभिर्गोपाः समेतास्ते श्रीकृष्णं सबलं हरिम्।
वदन्तः पाहि पाहीति भयार्ताः शरणं गताः॥ ३

वीक्ष्य वह्निभयं स्वानां कृष्णो योगेश्वरेश्वरः।
न्यमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत॥ ४

तथाभूतेषु गोपेषु तमग्निं भयकारकम्।
अपिबद्भगवान् देवो देवानां पश्यतां नृप॥ ५

एवं पीत्वा महावह्निं नीत्वा गोपालगोगणम्।
प्राप्तोऽभूद्यमुनापारे शुभाशोकवने हरिः॥ ६

तत्र क्षुत्पीडिता गोपाः श्रीकृष्णं सबलं हरिम्।
कृताञ्जलिपुटा ऊचुः क्षुधार्ताः स्मो वयं प्रभो॥ ७

तदा तान् प्रेषयामास यज्ञ आङ्गिरसे हरिः।
ते गत्वा तं यज्ञवरं नत्वोचुर्विमलं वचः॥ ८

गोपा ऊचुः

गोपालबालैः सबलः समागतो
गाश्चारयञ्छ्रीव्रजराजनन्दनः।
क्षुत्संयुतोऽस्मै सगणाय भूसुराः
प्रयच्छताश्वन्नमनङ्गमोहिने॥ ९

श्रीनारद उवाच

न किञ्चिदूचुस्ते सर्वे वचः श्रुत्वा द्विजा नृप।
गोपा निराशा आगत्य इत्यूचुः सबलं हरिम्॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीबलरामसहित समस्त ग्वाल-बाल खेलमें आसक्त हो गये। उधर सारी गौएँ घासके लोभसे विशाल वनमें प्रवेश कर गयीं। उनको लौटा लानेके लिये ग्वाल-बाल बहुत बड़े मूँजके वनमें जा पहुँचे। वहाँ प्रलयाग्निके समान महान् दावानल प्रकट हो गया। उस समय गौओंसहित समस्त ग्वाल-बाल एकत्र हो बलरामसहित श्रीकृष्णको पुकारने लगे और भयसे आर्त हो, उनकी शरण ग्रहणकर 'बचाओ, बचाओ!' यों कहने लगे॥ १—३॥

अपने सखाओंके ऊपर अग्निका महान् भय देखकर योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णने कहा—'डरो मत; अपनी आँखें बंद कर लो।' नरेश्वर! जब गोपोंने ऐसा कर लिया, तब देवताओंके देखते-देखते भगवान् गोविन्ददेव उस भयकारक अग्निको पी गये। इस प्रकार उस महान् अग्निको पीकर ग्वालों और गौओंको साथ ले श्रीहरि यमुनाके उस पार अशोकवनमें जा पहुँचे। वहाँ भूखसे पीड़ित ग्वाल-बाल बलरामसहित श्रीकृष्णसे हाथ जोड़कर बोले—'प्रभो! हमें बहुत भूख सता रही है।' तब भगवान्‌ने उनको आङ्गिरस-यज्ञमें भेजा। वे उस श्रेष्ठ यज्ञमें जाकर नमस्कार करके निर्मल वचन बोले—॥ ४—८॥

गोपोंने कहा—ब्राह्मणो! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए इधर आ निकले हैं, उन सबको भूख लगी है। अतः आप सखाओंसहित उन मदनमोहन श्रीकृष्णके लिये शीघ्र ही अन्न प्रदान करें॥ ९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! ग्वाल-बालोंकी वह बात सुनकर वे ब्राह्मण कुछ नहीं बोले। तब ग्वाल-बाल निराश लौट गये और आकर बलराम-सहित श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ १०॥

गोपा ऊचुः

त्वमस्यधीशो व्रजमण्डले बली
श्रीगोकुले नन्दपुरोऽग्रदण्डधृक्।
न वर्तते दण्डमलं मधोः पुरि
प्रचण्डचण्डांशुमहस्तव स्फुरत्॥ ११

श्रीनारद उवाच

पुनस्तान् प्रेषयामास तत्पत्नीभ्यो हरिः स्वयम्।
यज्ञवाटं पुनर्गत्वा नत्वा विप्रप्रियास्तदा।
कृताञ्जलिपुटा ऊचुर्गोपाः कृष्णप्रणोदिताः॥ १२

गोपा ऊचुः

गोपालबालैः सबलः समागतो
गाश्चारयन् श्रीव्रजराजनन्दनः।
क्षुत्संयुतोऽस्मै सगणाय चाङ्गनाः
प्रयच्छताश्वन्नमनङ्गमोहिने ॥ १३

श्रीनारद उवाच

कृष्णं समागतं श्रुत्वा कृष्णदर्शनलालसाः।
चक्रुस्तथान्नं पात्रेषु नीत्वा सर्वा द्विजाङ्गनाः॥ १४

त्यक्त्वा सद्यो लोकलज्जां कृष्णपार्श्वं समाययुः।
अशोकानां वने रम्ये कृष्णातीरे मनोहरे॥ १५

यथा श्रुतं तथा दृष्टं श्रीहरे रूपमद्भुतम्।
प्राप्यानन्दं गताः सर्वास्तुरीयं योगिनो यथा॥ १६

श्रीभगवानुवाच

धन्या यूयं दर्शनार्थमागता हे द्विजाङ्गनाः।
प्रतियात गृहाञ्छीघ्रं निःशङ्का भूमिदेवताः॥ १७

युष्माकं तु प्रभावेण पतयो वो द्विजातयः।
सद्यो यज्ञफलं प्राप्य युष्माभिः सह निर्मलाः॥ १८

गमिष्यन्ति परं धाम गोलोकं प्रकृतेः परम्।

श्रीनारद उवाच

अथ नत्वा हरिं सर्वा आजग्मुर्यज्ञमण्डले॥ १९

गोपोंने कहा—सखे! तुम व्रजमण्डलमें ही अधीश बने हुए हो। गोकुलमें ही तुम्हारा बल चलता है और नन्दबाबाके आगे ही तुम कठोर दण्डधारी बने हुए हो। प्रचण्ड सूर्यके समान तेजस्वी तुम्हारा प्रकाशमान दण्ड निश्चय ही मथुरापुरीमें अपना प्रभाव नहीं प्रकट करता॥ ११॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब श्रीहरिने उन ग्वाल-बालोंको पुनः यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके पास भेजा। तब वे पुनः यज्ञशालामें गये और उन ब्राह्मण-पत्नियोंको नमस्कार करके वे श्रीकृष्णके भेजे हुए ग्वाल हाथ जोड़कर बोले—॥ १२॥

गोपोंने कहा—ब्राह्मणी देवियो! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ गाय चराते हुए श्रीव्रजराज-नन्दन कृष्ण इधर आ गये हैं, उन्हें भूख लगी है। सखाओंसहित उन मदनमोहनके लिये आपलोग शीघ्र ही अन्न प्रदान करें॥ १३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णका शुभागमन सुनकर उन समस्त विप्रपत्नियोंके मनमें उनके दर्शनकी लालसा जाग उठी। उन्होंने विभिन्न पात्रोंमें भोजनकी सामग्री रख लीं और तत्काल लोक-लाज छोड़कर वे श्रीकृष्णके पास चली गयीं। रमणीय अशोकवनमें यमुनाके मनोरम तटपर विप्र-पत्नियोंने श्रीहरिका अद्भुत रूप जैसा सुना था, वैसा ही देखा। दर्शन पाकर वे सब परमानन्दमें उसी प्रकार निमग्न हो गयीं, जैसे योगीजन तुरीय ब्रह्मका साक्षात्कार करके आनन्दित हो उठते हैं॥ १४—१६॥

श्रीभगवान् बोले—विप्रपत्नियो! तुमलोग धन्य हो, जो मेरे दर्शनके लिये यहाँतक चली आयीं; अब शीघ्र ही घर लौट जाओ। ब्राह्मणलोग तुमपर कोई संदेह नहीं करेंगे। तुम्हारे ही प्रभावसे तुम्हारे पतिदेवता ब्राह्मणलोग तत्काल यज्ञका फल पाकर निर्मल हो, तुम्हारे साथ प्रकृतिसे परे विद्यमान परमधाम गोलोकको चले जायँगे॥ १७—१८ १/२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—तब श्रीहरिको नमस्कार करके वे सब स्त्रियाँ यज्ञशालामें चली आयीं, उन्हें

ता दृष्ट्वा ब्राह्मणाः सर्वे स्वात्मानं धिक् प्रचक्रिरे।
दिदृक्षवस्ते श्रीकृष्णं कंसाद्भीता न चागताः॥ २०

देखकर सब ब्राह्मणोंने अपने-आपको धिक्कारा। वे कंसके डरसे स्वयं श्रीकृष्णको देखनेके लिये नहीं जा सके थे॥ १९-२०॥

भुक्त्वान्नं सबलः कृष्णो गोपालैः सह मैथिल।
गाः पालयन्नाजगाम वृन्दारण्यं मनोहरम्॥ २१

मैथिल! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ वह अन्न खाकर श्रीकृष्ण गौओंको चराते हुए मनोहर वृन्दावनमें चले गये॥ २१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे दावाग्निमोक्षविप्रपत्नीदर्शनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'दावानलसे गौओं और ग्वालोंका छुटकारा तथा विप्रपत्नियोंको श्रीकृष्णका दर्शन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका नन्दराजको वरुणलोकसे ले आना और गोप-गोपियोंको वैकुण्ठधामका दर्शन कराना

श्रीनारद उवाच

एकदा नन्दराजोऽसौ कृत्वा चैकादशीव्रतम्।
द्वादश्यां यमुनां स्नातुं गोपालैर्जलमाविशत्॥ १

तं गृहीत्वा पाशिभृत्यः पाशिलोकं जगाम ह।
तदा कोलाहले जाते गोपानां मैथिलेश्वर॥ २

आश्वास्य सर्वान् भगवान् गतवान् वारुणीं पुरीम्।
भस्मीचकार सहसा पुरीदुर्गं हरिः स्वयम्॥ ३

कोटिमार्तण्डसङ्काशं दृष्ट्वा प्रकुपितं हरिम्।
नत्वा कृताञ्जलिः पाशी परिक्रम्याह धर्षितः॥ ४

श्रीनारदजी कहते हैं—एक दिनकी बात है, नन्दराज एकादशीका व्रत करके द्वादशीको निशीथ-कालमें ही ग्वालोंके साथ यमुना-स्नानके लिये गये और जलमें उतरे। वहाँ वरुणका एक सेवक उन्हें पकड़कर वरुण-लोकमें ले गया। मैथिलेश्वर! उस समय ग्वालोंमें कुहराम मच गया; तब उन सबको आश्वासन दे भगवान् श्रीहरि वरुणपुरीमें पधारे और उन्होंने सहसा उस पुरीके दुर्गको भस्म कर दिया। करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी श्रीहरिको अत्यन्त कुपित हुआ देख वरुणने तिरस्कृत होकर उन्हें नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा करके हाथ जोड़कर कहा—॥ १—४॥

वरुण उवाच

नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च।
असंख्यब्रह्माण्डभृते गोलोकपतये नमः॥ ५

चतुर्व्यूहाय महसे नमस्ते सर्वतेजसे।
नमस्ते सर्वभावाय परस्मै ब्रह्मणे नमः॥ ६

केनापि मूढेन ममानुगेन
कृतं परं हेलनमाद्यमेव।
तत्क्षम्यतां भोः शरणं गतं मां
परेश भूमन् परिपाहि पाहि॥ ७

वरुण बोले—श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है। परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंका भरण-पोषण करनेवाले गोलोकपतिको नमस्कार है। चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट तेजोमय श्रीहरिको नमस्कार है। सर्वतेजःस्वरूप आप परमेश्वरको नमस्कार है। सर्वस्वरूप आप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है। मेरे किसी मूर्ख सेवकने यह पहली बार आपकी अवहेलना की है; उसके लिये आप मुझे क्षमा करें। परेश! भूमन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ; आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ५—७॥

श्रीनारद उवाच

इति प्रसन्नो भगवान् नन्दं नीत्वा सुजीवितम्।
सौख्यं प्रकाशयन् बन्धून् व्रजमण्डलमाययौ॥ ८

नन्दराजमुखाच्छ्रुत्वा प्रभावं श्रीहरेस्तु तम्।
गोपीगोपगणा ऊचुः श्रीकृष्णं नन्दनन्दनम्॥ ९

यदि त्वं भगवान् साक्षाल्लोकपालैः सुपूजितः।
दर्शयाशु परं लोकं वैकुण्ठं तर्हि नः प्रभो॥ १०

नीत्वा सर्वांस्ततः कृष्ण एत्य वैकुण्ठमन्दिरम्।
दर्शयामास रूपं स्वं ज्योतिर्मण्डलमध्यगम्॥ ११

सहस्रभुजसंयुक्तं किरीटकटकोज्ज्वलम्।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम्॥ १२

असंख्यकोटिमार्तण्डसङ्काशं शेषसंस्थितम्।
चामरान्दोलदिव्याभं ब्रह्माद्यैः परिसेवितम्॥ १३

तदैव तान् गोपगणान् पार्षदास्ते गदाधराः।
ऋजुं कृत्वा नतिं धृत्वा दूरे स्थाप्य प्रयत्नतः॥ १४

चकितानिव तान् वीक्ष्य प्रोचुस्ते पार्षदा गिरा।
रे रे तूष्णीं प्रभवत मा वक्तव्यं वनेचराः॥ १५

भाषणं मा प्रकुरुत न दृष्टा किं सभा हरेः।
वेदा वदन्ति चात्रैव साक्षाद्देवे स्थिते प्रभौ॥ १६

इति शिक्षां गता गोपा हर्षिता मौनमास्थिताः।
मनस्यूचुरयं कृष्ण उच्चसिंहासने स्थितः॥ १७

अस्मान् दूरादधःकृत्वास्माभिर्वक्ति न कर्हिचित्।
तस्माद् व्रजाद्वरं नास्ति कोऽपि लोको न सौख्यदः॥ १८

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर प्रसन्न हुए भगवान् श्रीकृष्ण नन्दजीको जीवित लेकर अपने बन्धुजनोंको सुख प्रदान करते हुए व्रजमण्डलमें लौट आये॥ ८॥

नन्दराजके मुखसे श्रीहरिके उस प्रभावको सुनकर गोपी और गोप-समुदाय नन्दनन्दन श्रीकृष्णसे बोले—'प्रभो! यदि आप लोकपालोंसे पूजित साक्षात् भगवान् हैं तो हमें शीघ्र ही उत्तम वैकुण्ठ-लोकका दर्शन कराइये।' तब उन सबको लेकर श्रीकृष्ण वैकुण्ठधाममें गये और वहाँ उन्होंने ज्योतिर्मण्डलके मध्यमें विराजमान अपने स्वरूपका उन्हें दर्शन कराया॥ ९—११॥

उनके सहस्र भुजाएँ थीं, किरीट और कटक आदि आभूषणोंसे उनका स्वरूप और भी भव्य दिखायी देता था। वे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे सुशोभित थे॥ १२॥

असंख्य कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी स्वरूपसे वे शेषनागकी शय्यापर पौढ़े थे। चँवर डुलाये जानेसे उनकी आभा और भी दिव्य जान पड़ती थी। ब्रह्मा आदि देवता उनकी सेवामें लगे थे॥ १३॥

उस समय भगवान्के गदाधारी पार्षदोंने उन गोपगणोंको सीधे करके उनसे प्रणाम करवाकर उन्हें प्रयत्नपूर्वक दूर खड़ा किया और उन्हें चकित-सा देख वे पार्षद बोले—'अरे वनचरो! चुप हो जाओ। यहाँ वक्तृता न दो, भाषण न करो। क्या तुमने श्रीहरिकी सभा कभी नहीं देखी है? यहीं सबके प्रभु देवाधिदेव साक्षात् भगवान् स्थित होते हैं और वेद उनके गुण गाते हैं।' इस प्रकार शिक्षा देनेपर वे गोप हर्षसे भर गये और चुपचाप खड़े हो गये। अब वे मन-ही-मन कहने लगे—'अरे! यह ऊँचे सिंहासनपर बैठा हुआ हमारा श्रीकृष्ण ही तो है॥ १४—१७॥

हम समीप खड़े हैं, तो भी हमें नीचे खड़ा करके ऊँचे बैठ गया है और हमसे क्षणभरके लिये बाततक नहीं करता। इसलिये व्रजसे बढ़कर न कोई श्रेष्ठ लोक है और न उससे बढ़कर दूसरा कोई सुखदायक लोक

यत्रानेन स्वभ्रात्रापि वार्ता स्याद्धि परस्परम्।
इति प्रवदतस्तान् वै नीत्वा श्रीभगवान् हरिः।
व्रजमागतवान् राजन् परिपूर्णतमः प्रभुः ॥ १९

है; क्योंकि व्रजमें तो यह हमारा भाई रहा है और इसके साथ हमारी परस्पर बातचीत होती रही है।' राजन्! इस प्रकार कहते हुए उन गोपोंके साथ परिपूर्णतम प्रभु भगवान् श्रीहरि व्रजमें लौट आये ॥ १८-१९ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नन्दादिवैकुण्ठदर्शनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नन्द आदिका वैकुण्ठदर्शन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

अम्बिकावनमें अजगरसे नन्दराजकी रक्षा तथा सुदर्शन-नामक विद्याधरका उद्धार

श्रीनारद उवाच

एकदा नृप गोपालाः शकटै रत्नपूरितैः।
वृषभानूपनन्दाद्या आजग्मुश्चाम्बिकावनम् ॥ १

भद्रकालीं पशुपतिं पूजयित्वा विधानतः।
ददुर्दानं द्विजातिभ्यः सुप्तास्तत्र सरित्तटे ॥ २

तत्रैको निर्गतो रात्रौ सर्पो नन्दं पदेऽग्रहीत्।
कृष्ण कृष्णेति चुक्रोश नन्दोऽतिभयविह्वलः ॥ ३

तदोल्मुकैर्गोपबालास्तोदुराजगरं नृप।
पदं सोऽपि न तत्याज सर्पोऽथ स्वमणिं यथा ॥ ४

तताड स्वपदा सर्पं भगवाँल्लोकपावनः।
त्यक्त्वा तदैव सर्पत्वं भूत्वा विद्याधरः कृती।
नत्वा कृष्णं परिक्रम्य कृताञ्जलिपुटोऽवदत् ॥ ५

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! एक समय वृषभानु और उपनन्द आदि गोपगण रत्नोंसे भरे हुए छकड़ोंपर सवार होकर अम्बिकावनमें आये ॥ १ ॥

वहाँ भगवती भद्रकाली और भगवान् पशुपतिका विधिपूर्वक पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिया और रातको वहीं नदीके तटपर सो गये। वहाँ रातमें एक सर्प निकला और उसने नन्दका पैर पकड़ लिया। नन्द अत्यन्त भयसे विह्वल हो 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारने लगे। नरेश्वर! उस समय ग्वाल-बालोंने जलती हुई लकड़ियाँ लेकर उसीसे उस अजगरको मारना शुरू किया, तो भी उसने नन्दका पाँव उसी तरह नहीं छोड़ा, जैसे मणिधर साँप अपनी मणिको नहीं छोड़ता। तब लोकपावन भगवान्‌ने उस सर्पको तत्काल पैरसे मारा। पैरसे मारते ही वह सर्पका शरीर त्यागकर कृतकृत्य विद्याधर हो गया। उसने श्रीकृष्णको नमस्कार करके उनकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर कहा— ॥ २—५ ॥

सुदर्शन उवाच

अहं सुदर्शनो नाम विद्याधरवरः प्रभो।
अष्टावक्रं मुनिं दृष्ट्वा हसितोऽस्मि महाबलः ॥ ६

मह्यं शापं ददौ सोऽपि त्वं सर्पो भव दुर्मते।
तच्छापादद्य मुक्तोऽहं कृपया तव माधव ॥ ७

त्वत्पादपद्ममकरन्दरजः कणानां
स्पर्शेन दिव्यपदवीं सहसागतोऽस्मि।
तस्मै नमो भगवते भुवनेश्वराय
यो भूरिभारहरणाय भुवोऽवतारः ॥ ८

सुदर्शन बोला—प्रभो! मेरा नाम सुदर्शन है, मैं विद्याधरोंका मुखिया हूँ। मुझे अपने बलका बड़ा घमंड था और मैंने अष्टावक्रमुनिको देखकर उनकी हँसी उड़ायी थी। तब उन्होंने मुझे शाप दे दिया—'दुर्मते! तू सर्प हो जा।' माधव! उनके उस शापसे आज मैं आपकी कृपासे मुक्त हुआ हूँ। आपके चरण-कमलोंके मकरन्द एवं परागके कणोंका स्पर्श पाकर मैं सहसा दिव्य पदवीको प्राप्त हो गया। जो भूतलका भूरि-भार-हरण करनेके लिये यहाँ अवतीर्ण हुए हैं, उन भगवान् भुवनेश्वरको बारंबार नमस्कार है ॥ ६—८ ॥

श्रीनारद उवाच

इति नत्वा हरिं कृष्णं राजन् विद्याधरस्तु सः।
जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम्॥ ९

नन्दाद्या विस्मिताः सर्वे ज्ञात्वा कृष्णं परेश्वरम्।
अम्बिकावनतः शीघ्रमाययुर्व्रजमण्डलम्॥ १०

इदं मया ते कथितं श्रीकृष्णचरितं शुभम्।
सर्वपापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ११

बहुलाश्व उवाच

अहो श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरितं परमाद्भुतम्।
श्रुत्वा मनो मे तच्छ्रोतुमतृप्तं पुनरिच्छति॥ १२

अग्रे चकार कां लीलां लीलया व्रजमण्डले।
हरिर्व्रजेशः परमो वद देवर्षिसत्तम॥ १३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके वह विद्याधर सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित वैष्णवलोकको चला गया। उस समय श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर नन्द आदि गोप बड़े विस्मित हुए। फिर वे शीघ्र ही अम्बिकावनसे व्रजमण्डलको चले गये। इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो पुण्यप्रद तथा सर्वपापहारी है। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ९—११॥

बहुलाश्व बोले—अहो! श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है, उसे सुनकर मेरा मन पुनः उसे सुनना चाहता है। देवर्षिसत्तम! व्रजेश्वर परमात्मा श्रीहरिने व्रज-मण्डलमें आगे चलकर खेल-खेलमें कौन-सी लीला की? इसे आप बतायें॥ १२-१३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे सुदर्शनोपाख्यानं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'सुदर्शनोपाख्यान' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुर और व्योमासुरका वध तथा माधुर्यखण्डका उपसंहार

श्रीनारद उवाच

एकदा शैलदेशेषु सबलो भगवान् हरिः।
कृत्वा विलापनक्रीडां चौरपालकलक्षणाम्॥ १

तत्र व्योमासुरो दैत्यो बालान् मेषायितान् बहून्।
नीत्वा नीत्वाद्रिदर्यां च विनिःक्षिप्य पुनः पुनः॥ २

शिलया पिदधे द्वारं मयपुत्रो महाबलः।
सत्यचौरं च तं ज्ञात्वा भगवान्मधुसूदनः॥ ३

गृहीत्वा पातयामास भुजाभ्यां भूमिमण्डले॥ ४

तदा मृत्युं गतो दैत्यस्तज्ज्योतिर्निर्गतं स्फुरत्।
दशदिक्षु भ्रमद्राजन् श्रीकृष्णे लीनतां गतम्॥ ५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन गोवर्धनके आस-पास बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्ण आँखमिचौनीका खेल खेलने लगे—जिसमें कोई चोर बनता है और कोई रक्षक। वहाँ व्योमासुर नामक दैत्य आया। उस खेलमें कुछ लड़के भेड़ बनते थे और कोई चोर बनकर उन भेड़ोंको ले जाकर कहीं छिपाता था। व्योमासुरने भेड़ बने हुए बहुत-से गोप-बालकोंको बारी-बारीसे ले जाकर पर्वतकी कन्दरामें रखा और एक शिलासे उसका द्वार बंद कर दिया। वह मयासुरका महान् बलवान् पुत्र था। यह तो सचमुच चोर निकला, यह जानकर भगवान् मधुसूदनने उसे दोनों भुजाओंद्वारा पकड़ लिया और पृथ्वीपर दे मारा॥ १—४॥

हे राजन्! उस समय दैत्य मृत्युको प्राप्त हो गया और उसके शरीरसे निकला हुआ प्रकाशमान तेज दसों दिशाओंमें घूमकर श्रीकृष्णमें लीन हो गया॥ ५॥

तदा जयजयारावो दिवि भूमौ बभूव ह।
पुष्पाणि ववृषुर्देवाः परमानन्दसंवृताः॥ ६

बहुलाश्व उवाच

कोऽयं पूर्वं कुशलकृद्व्योमो नामाथ तद्वद।
येन कृष्णे घनश्यामे लीनोऽभूद्दामिनी यथा॥ ७

श्रीनारद उवाच

आसीत्काश्यां भीमरथो राजा दानपरायणः।
यज्ञकृन्मानदो धन्वी विष्णुभक्तिपरायणः॥ ८

राज्ये पुत्रं सन्निवेश्य जगाम मलयाचलम्।
तपस्तत्र समारेभे वर्षाणां लक्षमेव हि॥ ९

तस्याश्रमे पुलस्त्योऽसौ शिष्यवृन्दैः समागतः।
तं दृष्ट्वा नोत्थितो मानी राजर्षिर्न नतोऽभवत्॥ १०

शापं ददौ पुलस्त्योऽपि दैत्यो भव महाखल।
ततस्तच्चरणोपान्ते पतितं शरणागतम्॥ ११

उवाच मुनिशार्दूलः पुलस्त्यो दीनवत्सलः।
द्वापरान्ते माथुरे च पुण्ये श्रीव्रजमण्डले॥ १२

यदुवंशपतेः साक्षाच्छ्रीकृष्णस्य भुजौजसा।
ईप्सिता योगिभिर्मुक्तिर्भविष्यति न संशयः॥ १३

श्रीनारद उवाच

सोऽयं भीमरथो राजा मयदैत्यसुतोऽभवत्।
श्रीकृष्णभुजवेगेन मुक्तिं प्राप विदेहराट्॥ १४

एकदा गोपबालेषु दैत्योऽरिष्टो महाबलः।
आगतो नादयन् खं गां तटाञ्छृङ्गैर्विदारयन्॥ १५

गोप्यो गोपा गोगणाश्च वीक्ष्य तं दुद्रुवुर्भयात्।
भगवान् दैत्यहा देवो मा भैष्टेत्यभयं ददौ॥ १६

गृहीत्वा तं तु शृङ्गेषु नोदयामास माधवः।
सोऽपि तं नोदयामास श्रीकृष्णं योजनद्वयम्॥ १७

उस समय स्वर्गमें और पृथ्वीपर जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। देवता लोग परम आनन्दमें मग्न होकर फूल बरसाने लगे॥ ६॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने! यह व्योम नामक असुर पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यात्मा मनुष्य था, जिसने श्याम घनमें बिजलीकी भाँति श्रीकृष्णमें विलय प्राप्त किया॥ ७॥

श्रीनारदजी बोले—राजन्! काशीमें भीमरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो सदा दान-पुण्यमें लगे रहते थे। वे यज्ञकर्ता, दूसरोंको मान देनेवाले, धनुर्धर तथा विष्णु-भक्तिपरायण थे। वे राज्यपर अपने पुत्रको बिठाकर स्वयं मलयाचलपर चले गये और वहाँ तपस्या आरम्भ करके एक लाख वर्षतक उसीमें लगे रहे। उनके आश्रममें एक समय महर्षि पुलस्त्य शिष्योंके साथ आये। उनको देखकर भी वे मानी राजर्षि न तो उठकर खड़े हुए और न उनके सामने प्रणत ही हुए॥ ८—१०॥

तब पुलस्त्यने उन्हें शाप दे दिया—'ओ महादुष्ट भूपाल! तू दैत्य हो जा।' तदनन्तर राजा जब उनके चरणोंमें पड़कर शरणागत हो गये, तब दीनवत्सल मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यने उनसे कहा—'द्वापरके अन्तमें मथुरा जनपदके पवित्र व्रजमण्डलमें साक्षात् यदुवंशराज श्रीकृष्णके बाहुबलसे तुम्हें ऐसी मुक्ति प्राप्त होगी, जिसकी योगीलोग अभिलाषा रखते हैं—इसमें संशय नहीं है'॥ ११—१३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेहराज! वही यह राजा भीमरथ मय दैत्यका पुत्र हुआ और श्रीकृष्णके बाहुवेगसे मोक्षको प्राप्त हुआ। एक दिन गोपबालकोंके बीचमें महाबली दैत्य अरिष्ट आया। वह अपने सिंहनादसे पृथ्वी और आकाशको गुँजा रहा था और सींगोंसे पर्वतीय तटोंको विदीर्ण कर रहा था। उसे देखते ही गोपियाँ, गोप तथा गौओंके समुदाय भयसे इधर-उधर भागने लगे। दैत्योंके नाशक भगवान् श्रीकृष्णने उन सबको अभय देते हुए कहा—'डरो मत।' माधवने उसके सींग पकड़ लिये और उसे पीछे ढकेल दिया। उस राक्षसने भी श्रीकृष्णको ढकेलकर दो योजन पीछे कर दिया॥ १४—१७॥

पुच्छे गृहीत्वा तं कृष्णो भ्रामयित्वा भुजौजसा।
भूपृष्ठे पोथयामास कमण्डलुमिवार्भकः॥ १८

अरिष्टः पुनरुत्थाय क्रोधसंरक्तलोचनः।
शृङ्गैश्च रोहितं शैलं समुत्पाट्य महाखलः॥ १९

गर्जयन् घनवद्वीरः कृष्णोपरि समाक्षिपत्।
कृष्णः शैलं सङ्गृहीत्वा तस्योपरि समाक्षिपत्॥ २०

शैलस्यापि प्रहारेण किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
भूमौ तताड शृङ्गाग्रान्निर्गतं तैर्जलं भुवः॥ २१

श्रीकृष्णस्तं च शृङ्गेषु गृहीत्वा भ्रामयन् मुहुः।
भूपृष्ठे पोथयामास वातः पद्ममिवोद्धृतम्॥ २२

तदैव वृषरूपत्वं त्यक्त्वा विप्रवपुर्धरः।
नत्वा श्रीकृष्णपादाब्जं प्राह गद्गदया गिरा॥ २३

द्विज उवाच

बृहस्पतेश्च शिष्योऽहं वरतन्तुर्द्विजोत्तमः।
बृहस्पतिसमीपे च पठितुं गतवानहम्॥ २४

पादौ कृत्वा स्थितोऽभूवं पश्यतस्तस्य सम्मुखे।
तदा रुषाह स मुनिर्वृषवत्त्वं स्थितः पुरः॥ २५

गुरुहेलनकृत्तस्मात्त्वं वृषो भव दुर्मते।
तस्य शापाद्वृषोऽभूवं वङ्गदेशेषु माधव॥ २६

असुराणां प्रसङ्गेनासुरत्वं गतवानहम्।
त्वत्प्रसादाद्विमुक्तोऽहं शापतोऽसुरभावतः॥ २७

श्रीकृष्णाय नमस्तुभ्यं वासुदेवाय ते नमः।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥ २८

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा साक्षाच्छिष्यो बृहस्पतेः।
द्योतयन् भुवनं राजन् विमानेन दिवं ययौ॥ २९

तब श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़ ली और बाहुवेगसे घुमाते हुए उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर पटक दिया, जैसे छोटा बालक कमण्डलुको फेंक दे। अरिष्ट फिर उठा। क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो रहे थे। उस महादुष्ट वीरने सींगोंसे लाल पत्थर उखाड़कर मेघकी भाँति गर्जना करते हुए श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। श्रीकृष्णने उस प्रस्तरको पकड़कर उलटे उसीपर दे मारा॥ १८—२०॥

उस शिलाखण्डके प्रहारसे वह मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। उसने अपने सींगोंके अग्रभागको पृथ्वीपर पीटना आरम्भ किया, इससे पृथ्वीके भीतरसे पानी निकल आया। तब श्रीकृष्णने उसके सींग पकड़कर बार-बार घुमाते हुए उसे पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे हवा कमलको उठाकर फेंक देती है। उसी समय वह वृषभका रूप त्यागकर ब्राह्मणशरीर-धारी हो गया और श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके गद्गद वाणीमें बोला— ॥ २१—२३॥

ब्राह्मणने कहा—भगवन्! मैं बृहस्पतिका शिष्य द्विजश्रेष्ठ वरतन्तु हूँ। मैं बृहस्पतिजीके समीप पढ़ने गया था। उस समय उनकी ओर पाँव फैलाकर उनके सामने बैठ गया था। इससे वे मुनि रोषपूर्वक बोले—'तू मेरे आगे बैलकी भाँति बैठा है, इससे गुरुकी अवहेलना हुई है; अतः दुर्बुद्धे! तू बैल हो जा।' माधव! उस शापसे मैं वङ्गदेशमें बैल हो गया॥ २४—२६॥

असुरोंके सङ्गमें रहनेसे मुझमें असुरभाव आ गया था। अब आपके प्रसादसे मैं शाप और असुरभावसे मुक्त हो गया। आप श्रीकृष्णको नमस्कार है। आप भगवान् वासुदेवको प्रणाम है। प्रणतजनोंके क्लेशका नाश करनेवाले आप गोविन्ददेवको बारंबार नमस्कार है॥ २७-२८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर श्रीहरिको नमस्कार करके बृहस्पतिके साक्षात् शिष्य वरतन्तु भुवनको प्रकाशित करते हुए विमानसे दिव्यलोकको चले गये॥ २९॥

इदं मया ते कथितं खण्डं माधुर्यमद्भुतम्।
सर्वपापहरं पुण्यं कृष्णप्राप्तिकरं परम्॥ ३०
कामदं पठतां शश्वत्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३१

इस प्रकार मैंने अद्भुत माधुर्यखण्डका तुमसे वर्णन किया, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला उत्तम साधन है। जो सदा इसका पाठ करते हैं, उनकी समस्त कामनाओंको यह देनेवाला है। और क्या सुनना चाहते हो?॥ ३०-३१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे व्योमासुरारिष्टासुरवधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'व्योमासुर और अरिष्टासुरका वध' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

॥ माधुर्यखण्ड सम्पूर्ण ॥

श्रीगर्ग-संहिता

[पञ्चम खण्ड]

मथुराखण्ड

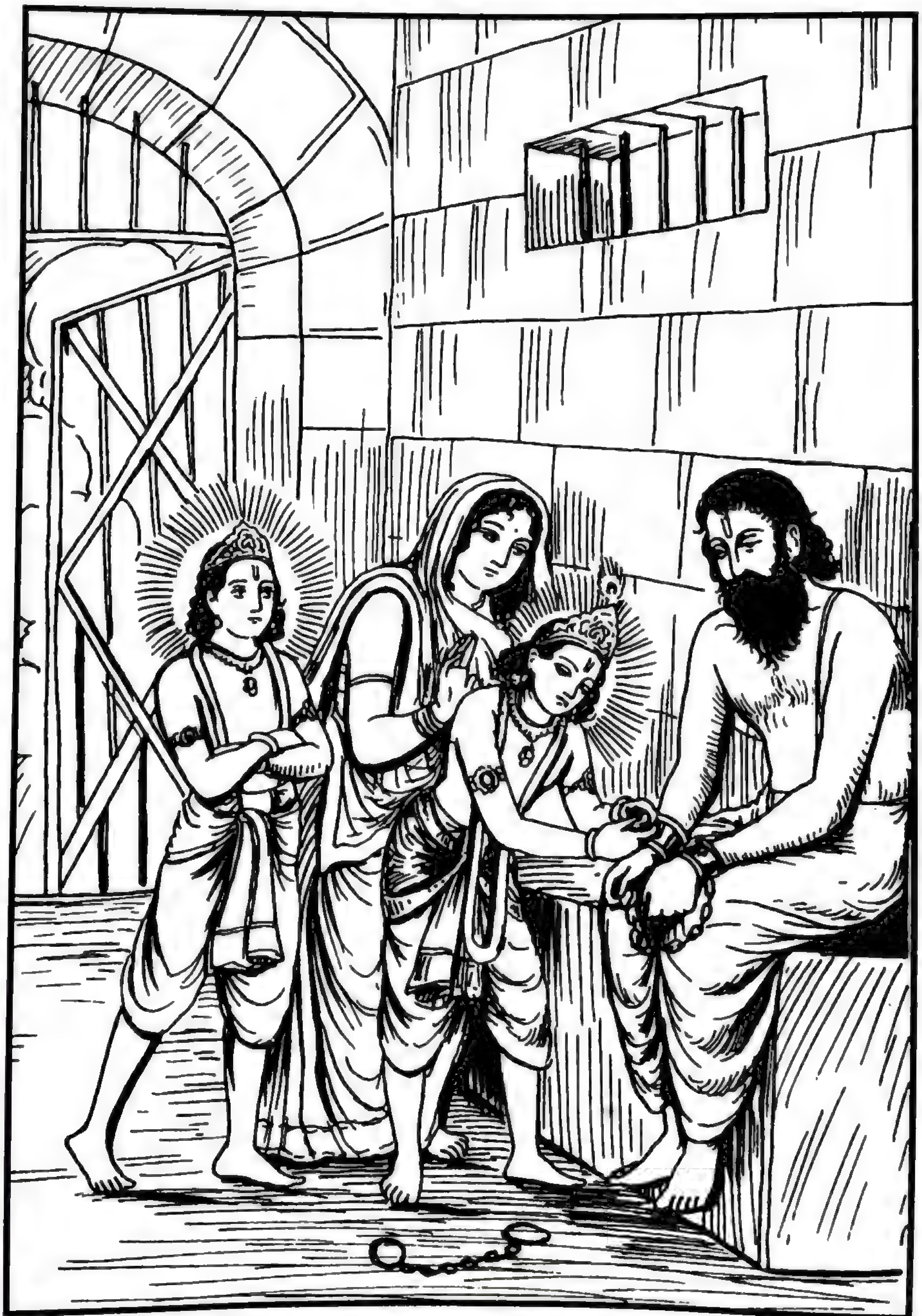

माता-पिताको कंसके कारागारसे मुक्त करते श्रीकृष्ण

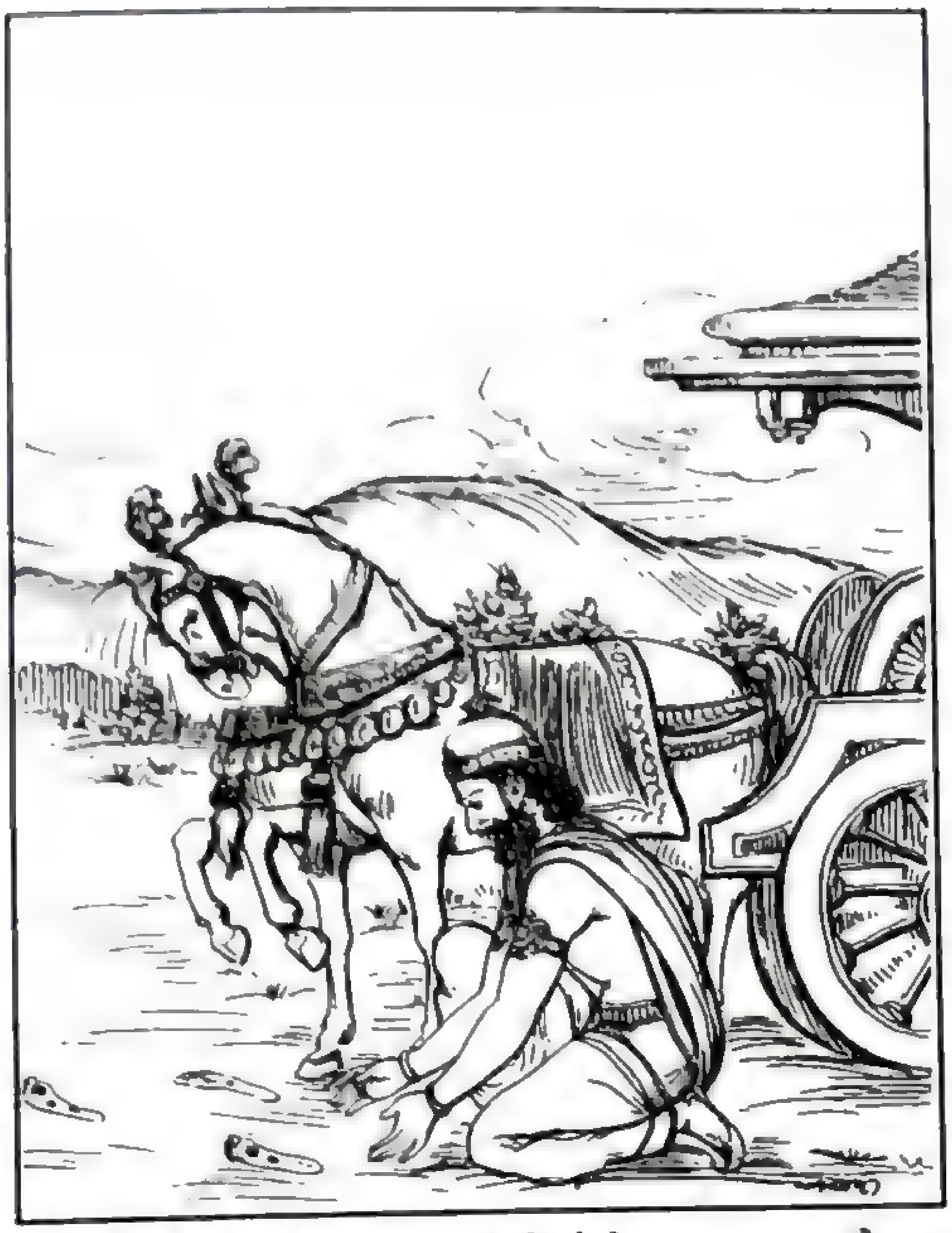

अक्रूरजीका श्रीकृष्णचरण-चिह्नोंको देखकर भावुक होना

[मथुराख० अ० ३]

श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरा-गमन

[मथुराख० अ० ४]

मथुराके दर्जीपर श्रीकृष्णकी कृपा

[मथुराख० अ० ५]

श्रीकृष्णद्वारा कुवलयापीड हाथीका वध

[मथुराख० अ० ७]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

मथुराखण्ड

पहला अध्याय

कंसका नारदजीके कथनानुसार बलराम और श्रीकृष्णको अपना शत्रु समझकर वसुदेव-देवकीको कैद करना, उन दोनों भाइयोंको मारनेकी व्यवस्थामें लगना तथा उन्हें मथुरा ले आनेके लिये अक्रूरजीको नन्दके व्रजमें जानेकी आज्ञा देना

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥ १

जो वसुदेवजीके यहाँ पुत्र-रूपसे प्रकट हुए हैं, जिन्होंने कंस एवं चाणूरका मर्दन किया है तथा जो देवकीको परमानन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

बहुलाश्व उवाच

मथुरायां किं चरित्रं कृतवान् भगवान् मुने।
कथं जघान कंसाख्यमेतन्मे ब्रूहि तत्त्वतः॥ २

राजा बहुलाश्वने पूछा—मुने! भगवान् श्रीकृष्णने मथुरामें कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं? उन्होंने कंसको क्यों और कैसे मारा? यह सब मुझसे ठीक-ठीक बताइये॥ २॥

श्रीनारद उवाच

अथैकदाहं मथुरां पुरीं परां
विलोकितुं चागतवान्नृपेश्वर।
कर्तुं परं दैत्यवधोद्यमं हरेः
परस्य साक्षान्मनसा प्रणोदितः॥ ३

सिंहासने च प्रहृते पुरन्दरात्
सितातपत्रे चलचारुचामरे।
स्थितं नृपं कंसमुरङ्गदुःसहं
प्रावोचमेवं शृणु तत्प्रपूजितः॥ ४

यशोदायाः सुता जाता या त्वद्धस्ताद्दिवं गता।
देवक्यां कृष्ण उत्पन्नो रोहिणीनन्दनो बलः॥ ५

श्रीनारदजीने कहा—नृपेश्वर! एकदिन साक्षात् परमात्मा श्रीहरिके मनसे प्रेरित होकर मैं दैत्यवध-सम्बन्धी उद्यमको आगे बढ़ानेके लिये उत्कृष्ट पुरी मथुराके दर्शनार्थ वहाँ आया। आकर राजा कंसके दरबारमें गया। वहाँ कंस इन्द्रसे छीनकर लाये हुए सिंहासनके ऊपर, जहाँ श्वेत छत्र तना हुआ था और सुन्दर चँवर डुलाये जा रहे थे, विराजमान था। वह [बल, पराक्रम और क्रूरताके कारण] नागराजके समान दुस्सह प्रतीत होता था। वहाँ पहुँचनेपर उसने मेरा पूजन—स्वागत-सत्कार किया। उस समय मैंने उससे जो कुछ कहा, वह सुनो—'मथुरानरेश! जो कन्या तुम्हारे हाथसे छूटकर आकाशमें उड़ गयी थी, वह देवकीकी नहीं, यशोदाकी पुत्री थी। देवकीसे तो श्रीकृष्ण ही उत्पन्न हुए और रोहिणीके पुत्र बलराम हैं॥ ३—५॥

स्वमित्रे नन्दराजे च न्यस्तौ पुत्रौ भवद्भयात्।
तवारी रामकृष्णौ द्वौ वसुदेवेन दैत्यराट्॥ ६

पूतनाद्या ह्यरिष्टान्ता दैत्या ये त्वद्बलोत्कटाः।
याभ्यां हता वनोद्देशे ते मृत्यू तौ स्मृतौ किल॥ ७

एवमुक्तो भोजपतिः क्रोधाच्चलितविग्रहः।
जग्राह निशितं खड्गं शौरिं हन्तुं सभातले॥ ८

मया निवारितः सोऽपि विस्तृतैर्निगडैर्दृढैः।
बद्ध्वा तं भार्यया सार्धं कारागारे रुरोध ह॥ ९

इत्युक्त्वा तं मयि गते केशिनं दैत्यपुङ्गवम्।
रामकृष्णवधार्थाय प्रेषयामास दैत्यराट्॥ १०

चाणूरादीन् समाहूय महामात्रं द्विपस्य च।
कार्यभारकराँल्लोकान् प्राहेदं भोजराड् बली॥ ११

कंस उवाच

हे कूट हे तोशलक हे चाणूर महाबल।
रामकृष्णौ च मे मृत्यू दर्शितौ नारदेन तु॥ १२

भवद्भिरिह सम्प्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया।
मल्लभूमिं च संयुक्तां कुरुताशु शुभावहाम्॥ १३

द्विपं कुवलयापीडं रङ्गद्वारि मदोत्कटम्।
प्रस्थाप्य तेन हन्तव्यौ महामात्र ममाहितौ॥ १४

चतुर्दश्यां तु कर्तव्यो धनुर्यागः प्रशान्तये।
अमावास्यादिने लोका मल्लयुद्धं भवेदिह॥ १५

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा स्वजनान् कंसोऽक्रूरमाहूय सत्वरम्।
रहसि प्राह राजेन्द्र मन्त्रं मन्त्रिजनप्रियम्॥ १६

दैत्यराज! वसुदेवने तुम्हारे शत्रुभूत अपने दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्णको अपने मित्र नन्दराजके यहाँ धरोहरके रूपमें रख दिया है—इसलिये कि तुम्हारे भयसे उनकी रक्षा हो सके। पूतनासे लेकर अरिष्टासुरतक जो-जो उत्कट बलशाली दैत्य नष्ट हुए हैं, वे सब वनमें उन्हीं दोनोंके द्वारा मारे गये हैं। कहा जाता है कि वे ही दोनों तुम्हारी मृत्यु हैं'॥ ६-७॥

मेरे यों कहनेपर भोजराज कंस क्रोधसे काँपने लगा। उसने शूरनन्दन वसुदेवको सभामें ही मार डालनेके लिये तीखी तलवार हाथमें ली, परंतु मैंने उसे रोक दिया; तथापि उसने सुदृढ़ और विशाल बेड़ियोंमें पत्नीसहित उन्हें बाँधकर कारागारमें बंद कर दिया॥ ८-९॥

कंससे उक्त बात कहकर जब मैं चला गया, तब उस दैत्यराजने श्रीकृष्ण और बलरामका वध करनेके लिये दैत्यप्रवर केशीको भेजा। तदनन्तर बलवान् भोजराज कंसने चाणूर आदि मल्लों तथा कुवलयापीड नामक हाथीके महावतको बुलवाया और अपना कार्यभार सँभालनेवाले अन्य लोगोंको भी बुलवाकर उनसे इस प्रकार कहा—॥ १०-११॥

कंस बोला—हे कूट! हे तोशल! हे महाबली चाणूर! बलराम और कृष्ण—दोनों मेरी मृत्यु हैं, यह बात नारदजीने मुझे भलीभाँति समझा दी है। अतः वे दोनों जब यहाँ आ जायँ, तब तुम सब लोग मल्लोंके खेल (कुश्तीके दाँव-पेंच) दिखाते हुए उन्हें मार डालना। अब शीघ्र ही मल्लभूमि (अखाड़े)-को सुन्दर ढंगसे सुसज्जित कर दो। महावत! रङ्गशालाके द्वारपर मदमत्त हाथी कुवलयापीडको खड़ा रखो और मेरे शत्रु जब आ जायँ, तो उन्हें मरवा डालो। कार्यकर्ता जनो! आगामी चतुर्दशीको शान्तिके लिये धनुर्यज्ञ करना है और अमावास्याके दिन यहाँ मल्लयुद्ध होगा॥ १२—१५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजेन्द्र! आत्मीय जनोंसे इस प्रकार कहकर कंसने अक्रूरको तुरंत अपने पास बुलवाया और एकान्त स्थानमें मन्त्रिजनोंको प्रिय लगनेवाली मन्त्रणाकी बात कही॥ १६॥

कंस उवाच

भो भो दानपते मन्त्रिञ्छृणु मे परमं वचः।
गच्छ नन्दव्रजं प्रातः कुरु कार्यं महामते॥ १७

आसाते तत्र मे शत्रू वसुदेवसुतौ किल।
दर्शितौ नारदेनापि देवदेवर्षिणा भृशम्॥ १८

सोपायनैर्गोपगणैर्नन्दराजादिभिः सह।
मथुरादर्शनमिषाद्रथेनानय मा चिरम्॥ १९

द्विपेन वा महामल्लैर्घातयिष्यामि तौ शिशू।
तत्पश्चान्नन्दराजं च वसुदेवसहायकम्॥ २०

वृषभानुवरं पश्चान्नवनन्दोपनन्दकान्।
पश्चाच्छौरिं हनिष्यामि देवकं तत्सहायकम्॥ २१

उग्रसेनं च पितरं वृद्धं राज्यसमुत्सुकम्।
तत्पश्चाद्यादवान् सर्वान् हनिष्यामि न संशयः॥ २२

एते देवगणाः सर्वे जाता मन्त्रिन् महीतले।
शकुनिर्मे महामित्रं बली चन्द्रावतीपतिः॥ २३

भूतसन्तापनो हृष्टो वृकः सङ्कर एव च।
कालनाभो महानाभो हरिश्मश्रुस्तथैव च॥ २४

एते मित्राणि मे सन्ति मदर्थं प्राणदा बलात्।
श्वशुरोऽपि जरासन्धो द्विविदो मे सखा स्मृतः॥ २५

बाणासुरश्च नरको मय्येव कृतसौहृदः।
एते सर्वां महीं जित्वा बद्ध्वा देवान् सवासवान्॥ २६

क्षिप्त्वा मेरुगुहादुर्गे कुबेरं द्रव्यनायकम्।
त्रैलोक्यराज्यं तु सदा करिष्यन्ति न संशयः॥ २७

कवीनां त्वं कविरिव गिरां गीष्पतिवद्भुवि।
एतत्कार्यं च कर्तव्यं त्वया दानपते त्वरम्॥ २८

कंस बोला—दानपते! तुम मेरे माननीय मन्त्री हो, अतः मेरी यह उत्तम बात सुनो। महामते! कल प्रातःकाल होते ही तुम नन्दके व्रजमें जाओ और मेरा यह कार्य करो। लोग कहते हैं कि वसुदेवके दोनों बेटे वहीं रहते हैं। वे दोनों मेरे शत्रु हैं, यह बात देवर्षि नारदजीने मुझे अच्छी तरह समझा दी है। गोपगण नन्दराज आदिके साथ भेंट लेकर यहाँ आयें और उन्हींके साथ मथुरा नगरी दिखानेके बहाने उन दोनोंको रथपर बिठाकर शीघ्र यहाँ ले आओ॥ १७—१९॥

यहाँ आनेपर हाथीसे अथवा बड़े-बड़े पहलवानोंके द्वारा उन दोनों बालकोंको मरवा डालूँगा। उसके बाद वसुदेवकी सहायता करनेवाले नन्दराज, वृषभानुवर, नौ नन्दों और उपनन्दोंको मौतके घाट उतार दूँगा। तदनन्तर वसुदेव, उनके सहायक देवक तथा अपने बूढ़े पिता उग्रसेनको भी, जो राज्य लेनेके लिये उत्सुक रहता है, मार डालूँगा। यह सब हो जानेके बाद समस्त यादवोंका संहार कर डालूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ २०-२२॥

मन्त्रिन्! ये सब-के-सब देवता हैं, जो मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए हैं। चन्द्रावतीपति बलवान् शकुनि मेरा बहुत बड़ा मित्र है। भूतसंतापन, हृष्ट, वृक, संकर, कालनाभ, महानाभ तथा हरिश्मश्रु—ये सब मेरे मित्र हैं और बलपूर्वक मेरे लिये अपने प्राणतक दे सकते हैं। जरासंध तो मेरा श्वशुर ही है और द्विविद मेरा सखा॥ २३—२५॥

बाणासुर और नरकासुर भी मेरे प्रति ही सौहार्द रखते हैं। ये सब लोग इस पृथ्वीको जीतकर, इन्द्रसहित देवताओंको बाँधकर और द्रव्य-राशिके स्वामी बने हुए कुबेरको मेरुपर्वतकी दुर्गम कन्दरामें फेंककर सदा तीनों लोकोंका राज्य करेंगे, इसमें संशय नहीं है। दानपते! तुम कवियों (नीतिज्ञ विद्वानों)-में शुक्राचार्यके समान हो और बातचीत करनेमें इस भूतलपर बृहस्पतिके तुल्य हो; अतः इस कार्यको तुरंत सम्पन्न करो॥ २६—२८॥

अक्रूर उवाच

त्वया कृतो यदुपते मनोरथमहार्णवः।
दैवेच्छयायं भवति गोष्पदं तद्विनार्णवः॥ २९

अक्रूर बोले—यदुपते! तुमने मनोरथका महासागर ही रच डाला है। यदि दैवकी इच्छा होगी तो यह सागर गोष्पद (गायकी खुरी)-के समान हो जायगा और यदि दैव अनुकूल न हुआ, तब तो यह अपार महासागर है ही॥ २९॥

कंस उवाच

विसृज्य दैवं कुरुते बलिष्ठो
दैवं समाश्रित्य हि निर्बलश्च।
कालात्मनो नित्यहरिप्रभावान्-
निराकुलस्तिष्ठतु कर्मयोगी॥ ३०

कंस बोला—बलवान् पुरुष दैवका भरोसा छोड़कर कार्य करते हैं और निर्बल दैवका सहारा पकड़े बैठे रहते हैं। कर्मयोगी पुरुष कालस्वरूप श्रीहरिके प्रभावसे सदा निराकुल (शान्त) रहता है॥ ३०॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा मन्त्रिवरं समुत्थाय सभास्थलात्।
किञ्चित्प्रकुपितः कंसः शनैरन्तःपुरं ययौ॥ ३१

श्रीनारदजी कहते हैं—मन्त्रिप्रवर अक्रूरसे यों कहकर कंस सभास्थलसे उठ गया और कुछ कुपित हो धीरेसे अन्तःपुरमें चला गया॥ ३१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कंसमन्त्रो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कंसकी मन्त्रणा' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

केशीका वध

श्रीनारद उवाच

अथ केशी महादैत्यो हयरूपी मदोत्कटः।
एत्य वृन्दावनं रम्यं जगर्ज घनवद्बली॥ १

यस्य पादप्रताडेन निपेतुः शाखिनो दृढाः।
पुच्छाघातेन गगने खण्डं खण्डं ययुर्घनाः॥ २

तं वीक्ष्य दुःसहजवं गोपगोपीगणा भृशम्।
भयातुरा मैथिलेन्द्र श्रीकृष्णं शरणं ययुः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! उधर बलवान् एवं मदोन्मत्त महादैत्य केशी घोड़ेका रूप धारणकर रमणीय वृन्दावनमें गया और मेघकी भाँति गर्जना करने लगा। उसके पैरोंके आघातसे सुदृढ़ वृक्ष भी टूटकर धराशायी हो जाते थे। पूँछकी चोट खाकर आकाशमें घने बादल भी छिन्न-भिन्न हो जाते थे। मैथिलेन्द्र! उसका वेग दुस्सह था। उसे देखकर गोप-गोपियोंके समुदाय अत्यन्त भयसे व्याकुल हो भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये॥ १—३॥

मा भैष्टेत्यभयं दत्वा भगवान् वृजिनार्दनः।
कटौ पीताम्बरं बद्ध्वा हन्तुं दैत्यं प्रचक्रमे॥ ४

हरिं पश्चिमपादाभ्यां सन्तताड महासुरः।
चालयन् पृथिवीं राजन्नादयन् व्योममण्डलम्॥ ५

पाप और पापियोंको पीड़ा देनेवाले भगवान्ने 'डरो मत'—यह कहकर उन सबको अभयदान दिया और कमरमें पीताम्बर कसकर वे उस दैत्यको मार डालनेकी चेष्टामें लग गये। राजन्! उस महान् असुरने अपने पिछले पैरोंसे श्रीहरिके ऊपर आघात किया और पृथ्वीको कँपाता हुआ वह आकाशमण्डलको अपनी गर्जनासे गुँजाने लगा॥ ४-५॥

गृहीत्वा पादयोर्दैत्यं भ्रामयित्वा भुजेन खे।
चिक्षेप योजनं कृष्णो वातः पद्ममिवोद्धृतम्॥ ६

पुनरागतवान् सोऽपि क्रोधपूरितविग्रहः।
पुच्छेन श्रीहरिं देवं सन्तताड व्रजाङ्गणे॥ ७

पुच्छे गृहीत्वा तं कृष्णो भ्रामयित्वा भुजौजसा।
योजनानां शतं राजन् चिक्षेप गगने बलात्॥ ८

तब, जैसे हवा कमलको उखाड़कर फेंक देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णने उस दैत्यके दोनों पैर पकड़कर बाहुबलसे घुमाते हुए उसे एक योजन दूर फेंक दिया। उसने भी क्रोधसे भरे हुए वहाँ आकर व्रजके प्राङ्गणमें भगवान् श्रीहरिके ऊपर अपनी पूँछसे प्रहार किया। राजन्! तब श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़ ली और बाहुवेगसे बलपूर्वक घुमाते हुए उसे आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया॥ ६—८॥

आकाशात्पतितः सोऽपि किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
समुत्थाय पुनर्दैत्यो जगर्ज घनवद्बली॥ ९

सटा विधुन्वन् रोमाणि बालं खे चालयन् मुहुः।
महीं विदारयन् पादैरुत्पपात हरेः पुरः॥ १०

आकाशसे नीचे गिरनेपर उसे मन-ही-मन कुछ व्याकुलताका अनुभव हुआ, किंतु पुनः उठकर वह बलवान् दैत्य मेघके समान गर्जना करने लगा। अपनी गर्दनके अयालोंको कँपाता और पूँछके बालोंको आकाशमें बार-बार हिलाता हुआ वह दैत्य अपने पैरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ श्रीहरिके सामने उछलकर आया॥ ९-१०॥

तताड मुष्टिना तं वै भगवान् मधुसूदनः।
तस्य मुष्टिप्रहारेण मूर्च्छितो घटिकाद्वयम्॥ ११

मस्तकेन गलोद्देशे समुद्धृत्य हरिं हयः।
भूमण्डलादुत्पपात गगने लक्षयोजनम्॥ १२

तयोर्युद्धमभूद्घोरं गगने प्रहरद्वयम्।
पादैर्दद्भिः सटाभिश्च पुच्छतीक्ष्णखुरैर्नृप॥ १३

गृहीत्वा तं हरिर्दोर्भ्यां भ्रामयित्वा त्वितस्ततः।
आकाशात्पातयामास कमण्डलुमिवार्भकः॥ १४

तब भगवान् मधुसूदनने केशीको एक मुक्का मारा। उनके मुक्केकी मारसे वह दो घड़ीतक बेहोश पड़ा रहा। तब उस अश्वरूपधारी असुरने श्रीहरिके गलेको अपने मुँहसे पकड़ लिया और उन्हें उठाकर वह भूमण्डलसे लाख योजन दूर आकाशमें उठ गया। वहाँ आकाशमें उन दोनोंके बीच दो पहरतक घोर युद्ध हुआ। राजन्! वह अपने पैरोंसे, दाँतोंसे, गर्दनके अयालोंसे, पूँछ और तीखी खुरोंसे बार-बार श्रीहरिपर आघात करने लगा। तब श्रीहरिने उसे दोनों हाथोंसे पकड़कर इधर-उधर घुमाना आरम्भ किया और जैसे बालक कमण्डलु फेंक दे, उसी प्रकार उन्होंने आकाशसे उस दैत्यको नीचे गिरा दिया॥ ११—१४॥

भुजं प्रवेशयामास तन्मुखे भगवान् हरिः।
तस्योदरे गतो बाहुर्ववृधे रोगवद्भृशम्॥ १५

तदा तु लेण्डं कृतवान् रुद्धवायुर्महासुरः।
खण्डीभूतोदरः सद्यो ममार हयरूपधृक्॥ १६

देहाद्विनिर्गतः सद्यो मुकुटी कुण्डलान्वितः।
दिव्यरूपधरं कृष्णं प्राञ्जलिः प्रणनाम ह॥ १७

फिर भगवान् श्रीहरिने उसके मुँहमें अपनी बाँह डाल दी। वह बाँह उसके उदरतक जा पहुँची और असाध्य रोगकी भाँति बड़े जोरसे बढ़ने लगी। इससे उस महान् असुरकी प्राणवायु अवरुद्ध हो गयी और वह मल त्यागने लगा। उसका पेट फट गया और वह अश्वरूपधारी असुर तत्काल प्राणोंसे हाथ धो बैठा। शरीरसे पृथक् होनेपर उसने तत्काल दिव्य रूप धारण कर लिया और मुकुट तथा कुण्डलोंसे मण्डित हो भगवान् श्रीकृष्णको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया॥ १५—१७॥

कुमुद उवाच

शक्रस्यानुचरोऽहं वै कुमुदो नाम माधव।
तेजस्वी रूपवान् वीरो जिष्णुच्छत्रभ्रमिं दधन्॥ १८

वृत्रासुरवधे पूर्वं ब्रह्महत्याप्रशान्तये।
यज्ञं चकार नाकेशो वाजिमेधं क्रतूत्तमम्॥ १९

अश्वमेधहयं शुभ्रं श्यामकर्णं मनोजवम्।
तमारुरुक्षुर्हृष्टोऽहं चोरयित्वातलं गतः॥ २०

ततो मरुद्गणैर्नीतं पाशबद्धं महाखलम्।
शशाप मां बलारातिस्त्वं रक्षो भव दुर्मते॥ २१

हयाकृतिस्ते सम्भूयाद्भूमौ मन्वन्तरद्वयम्।
तच्छापादद्य मुक्तोऽहं सद्यस्त्वत्स्पर्शनात्प्रभो॥ २२

किङ्करं कुरु मां देव त्वदङ्घ्रौ लग्नमानसम्।
नमस्तुभ्यं भगवते सर्वलोकैकसाक्षिणे॥ २३

कुमुद बोला—माधव! मैं इन्द्रका अनुचर हूँ। मेरा नाम कुमुद है। मैं बड़ा तेजस्वी, रूपवान् और वीर था तथा देवराज इन्द्रपर छत्र लगाया करता था। पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध हो जानेपर प्राप्त हुई ब्रह्महत्याकी शान्तिके लिये स्वर्गलोकके स्वामीने अश्वमेध नामक उत्तम यज्ञका अनुष्ठान किया। अश्वमेधका घोड़ा श्वेत वर्णका था। उसके कान श्याम रंगके थे और वह मनके समान तीव्र वेगसे चलनेवाला था। मेरे मनमें उसपर चढ़नेकी इच्छा हुई। इस कामनासे मैं प्रसन्न हो उठा और उस घोड़ेको चुराकर अतललोकमें चला गया॥ १८—२०॥

तब मरुद्गणोंने मुझ महादुष्टको पाशमें बाँधकर देवराज इन्द्रके पास पहुँचाया। देवेन्द्रने मुझे शाप देते हुए कहा—'दुर्बुद्धे! तू राक्षस हो जा। भूतलपर दो मन्वन्तरोंतक तेरी घोड़ेकी-सी आकृति रहे।' प्रभो! आज आपका स्पर्श पाकर मैं उस शापसे तत्काल मुक्त हो गया हूँ। देव! अब मुझे अपना किंकर बना लीजिये। मेरा मन आपके चरणकमलोंमें लग गया है। आप समस्त लोकोंके एकमात्र साक्षी हैं, आप भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है॥ २१—२३॥

श्रीनारद उवाच

प्रदक्षिणीकृत्य हरिं परेश्वरं
विमानमारुह्य महोज्ज्वलं परम्।
वैकुण्ठलोकं कुमुदो ययौ त्वरं
विराजयन् मैथिल मण्डलं दिशाम्॥ २४

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] मिथिलेश्वर! यों कहकर, परमेश्वर श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके, कुमुद अत्यन्त प्रकाशमान उत्तम विमानपर आरूढ़ हो, दिशामण्डलको उद्दीप्त करता हुआ वैकुण्ठलोकको चला गया॥ २४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे केशिवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'केशीका वध' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

अक्रूरका नन्दग्राम-गमन, मार्गमें उनकी बलराम-श्रीकृष्णसे भेंट तथा उन्हींके साथ नन्द-भवनमें प्रवेश; श्रीकृष्णसे बातचीत और उनका मथुरा-गमनके लिये निश्चय, मथुरा-यात्राकी चर्चा सब ओर फैल जानेपर गोपियोंका विरहकी आशङ्कासे उद्विग्न हो उठना

श्रीनारद उवाच

अक्रूरो रथमारुह्य कर्तुं कार्यं नृपस्य वै।
प्रहर्षितो मैथिलेन्द्र प्रययौ नन्दगोकुलम्॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेन्द्र! अक्रूरजी रथपर आरूढ़ हो राजा कंसका कार्य करनेके लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ नन्दगाँवको गये॥ १॥

परां भक्तिं ह्युपगतः श्रीकृष्णे पुरुषोत्तमे।
एवं विचारयन् बुद्ध्या पथि गच्छन् महामतिः॥ २

अक्रूर उवाच

किं भारते वा सुकृतं कृतं मया
निष्कारणं दानमलं क्रतूत्तमम्।
तीर्थाटनं वा द्विजसेवनं शुभं
येनाद्य द्रक्ष्यामि हरिं परेश्वरम्॥ ३

तपः सुतप्तं किमलं पुरा कृतं
सत्सेवनं भक्तियुतं मया कृतम्।
येनैव मे दर्शनमद्य दुर्लभं
श्रीकृष्णदेवस्य पुरो भविष्यति॥ ४

तेषां भवो वै सफलो महीतले
यन्नेत्रगामी भगवान् सुरेश्वरः।
कृत्वाथ तद्दर्शनमद्य दुर्लभं
सद्यः कृतार्थो भवितास्मि सर्वतः॥ ५

श्रीनारद उवाच

इत्थं सञ्चिन्तयन् कृष्णं पश्यञ्छकुनमुत्तमम्।
सन्ध्यायां गोकुलं प्राप्तो रथस्थो गान्दिनीसुतः॥ ६

कृष्णपादाब्जचिह्नानि यवाङ्कुशयुतानि च।
तद्रागयुक्परागाणि रजांसि स ददर्श कौ॥ ७

तद्दर्शनौत्सुक्यभक्तिभावानन्दसमाकुलः।
रथात्समुत्पत्य तेषु लुठंश्चाश्रु मुमोच सः॥ ८

येषां श्रीकृष्णदेवस्य भक्तिः स्याद्धृदि मैथिल।
तेषामाब्रह्मणः सर्वं तृणवज्जगतः सुखम्॥ ९

रथारूढस्ततोऽक्रूरः क्षणान्नन्दपुरं गतः।
घोषेषु सबलं कृष्णमागच्छन्तं ददर्श ह॥ १०

देवौ पुराणौ पुरुषौ परेशौ
पद्मेक्षणौ श्यामलगौरवर्णौ।
यथेन्द्रनीलध्वजवज्रशैलौ
समाश्रितौ तौ पथि रामकृष्णौ॥ ११

बालार्कमौली वसनं तडिद्द्युती
वर्षाशरन्मेघरुचं दधानौ।

पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति उनकी पराभक्ति थी। परम बुद्धिमान् अक्रूर यात्रा करते हुए मार्गमें अपनी बुद्धिसे इस प्रकार विचार करने लगे॥ २॥

अक्रूर बोले—मैंने भारतवर्षमें कौन-सा पुण्य किया, निस्स्वार्थभावसे कौन-सा दान दिया, कौन-सा उत्तम यज्ञ, तीर्थयात्रा अथवा ब्राह्मणोंकी शुभ सेवा की है, जिससे आज मैं भगवान् परमेश्वर श्रीहरिका दर्शन करूँगा? मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा उत्तम तप किया और भक्तिभावसे कब किस संत पुरुषका सेवन किया था, जिससे आज मुझे अपने सामने भगवान् श्रीकृष्ण-का दुर्लभ दर्शन होगा? भगवान् सुरेश्वर श्रीकृष्ण जिनके नेत्रोंके गोचर होते हैं, भूतलपर उन्हींका जन्म सफल है। आज उन भगवान्का दुर्लभ दर्शन करके मैं सर्वतोभावेन कृतार्थ हो जाऊँगा॥ ३—५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार श्रीकृष्णका चिन्तन और उत्तम शकुनका दर्शन करते हुए गान्दिनी-नन्दन अक्रूर संध्याकालमें रथपर बैठे-बैठे नन्दगोकुलमें जा पहुँचे। यव और अङ्कुश आदिसे युक्त श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके चिह्न तथा उनकी ललाईसे युक्त धूलिकण उन्हें पृथ्वीपर दिखायी दिये। उनके दर्शनकी उत्कण्ठा एवं भक्तिभावके आनन्दसे विह्वल हो अक्रूरजी रथसे कूद पड़े और उन धूलकणोंमें लोटते हुए नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे। मिथिलेश्वर! जिनके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति प्रकट हो जाती है, उनके लिये ब्रह्मलोकपर्यन्त जगत्के सारे सुख तिनकेके समान तुच्छ हो जाते हैं॥ ६—९॥

तदनन्तर रथपर आरूढ़ हो अक्रूर क्षणभरमें नन्दगाँव जा पहुँचे। उन्होंने गोष्ठोंमें पहुँचकर देखा—बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण उधर ही आ रहे हैं॥ १०॥

वे दोनों पुराणपुरुष श्यामल-गौरवर्ण परमेश्वर प्रफुल्ल कमलके समान नेत्रवाले थे। रास्तेमें बलराम और श्रीकृष्ण ऐसे जान पड़ते थे, मानो इन्द्रनील और हीरकमणिके दो पर्वत एक-दूसरेके सम्पर्कमें आ गये हों। उन दोनोंके मुकुट बालसूर्यके समान और वस्त्र विद्युत्के सदृश थे। उनकी अङ्गकान्ति वर्षाकालके मेघकी भाँति श्याम तथा शरदृतुके बादलकी भाँति

दृष्ट्वा स तूर्णं स्वरथाद्गतोऽङ्घ्रौ
तयोर्नतो भक्तियुतः पपात॥ १२

तदाननं बाष्पकलाकुलेक्षणं
रोमाञ्चितं वीक्ष्य हरिः परेश्वरः।
दोर्भ्यां समुत्थाप्य घृणातुरोऽश्रु
मुमोच भक्तं परिरभ्य माधवः॥ १३

एवं मिलित्वा सबलश्च तं हरिः
सद्यः समानीय वरासनं ददौ।
निवेद्य गां चातिथये सुभोजनं
रसावृतं प्रेमयुतो ह्युपाहरत्॥ १४

तमाह नन्दः परिरभ्य दोर्भ्या-
महो कथं जीवसि कंसराज्ये।
गतत्रपो यो निजघान बालान्
स्वसुः कथं सोऽन्यजनेषु मोही॥ १५

गृहं गते नन्दवरे हरिस्तं
पप्रच्छ सर्वं कुशलं स्वपित्रोः।
तथा यदूनां किल बान्धवानां
कंसस्य सर्वां विपरीतबुद्धिम्॥ १६

अक्रूर उवाच

परश्वोऽहनि हे देव हन्तुं शौरिं समुद्यतः।
खड्गपाणिर्भोजराजो नारदेन निवारितः॥ १७

दुःखिता बान्धवाः सर्वे यादवा भयविह्वलाः।
सकुटुम्बाः कंसभयाद्भूमन् देशान्तरं गताः॥ १८

अद्यैव यादवान् हन्तुं देवाञ्जेतुं समुद्यतः।
अन्यत्किमपि कौ कर्तुमिच्छते दैत्यराड्बली॥ १९

तस्माद्भवद्भ्यां गन्तव्यं कुशलं कर्तुमव्ययम्।
भवन्तौ हि विना कार्यं किञ्चिन्न स्यात्सतां प्रभू॥ २०

श्रीनारद उवाच

अथ तस्य वचः श्रुत्वा सबलो भगवान् हरिः।
नन्दराजमतेनाह गोपान् कार्यकरानिदम्॥ २१

गौर थी। उन दोनोंको देखकर अक्रूर तुरंत ही रथसे नीचे उतर गये और भक्तिभावसे सम्पन्न हो उन दोनोंके चरणोंमें गिर पड़े॥ ११-१२॥

उनका मुख नेत्रोंसे झरते हुए आँसुओंकी धारासे व्याप्त तथा शरीर रोमाञ्चित था। उन्हें देख परमेश्वर श्रीहरिने दोनों हाथोंसे उठा लिया और वे माधव दयासे द्रवित हो भक्तको हृदयसे लगाकर अश्रुओंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार बलरामसहित श्रीहरि उनसे मिलकर शीघ्र ही उन्हें घर ले आये और वहाँ उन्होंने उनके लिये श्रेष्ठ आसन दिया। अतिथिसत्कारमें एक गाय देकर प्रेमपूर्वक सरस भोजन प्रस्तुत किया॥ १३-१४॥

नन्दने अक्रूरको दोनों हाथोंद्वारा हृदयसे लगाकर पूछा—'अहो! तुम कंसके राज्यमें कैसे जी रहे हो? जिस निर्लज्जने अपनी बहनके नन्हे-से शिशुओंको मार डाला, वह दूसरे लोगोंके प्रति दयालु कैसे होगा?' नन्दजी जब घरमें चले गये, तब श्रीहरिने उनसे माता-पिताकी सारी कुशल पूछी। इसी प्रकार अपने बन्धु-बान्धव यादवोंका समाचार पूछकर कंसकी सारी विपरीत बुद्धिके विषयमें भी जिज्ञासा की॥ १५-१६॥

अक्रूर बोले—देव! परसोंकी बात है, भोजराज कंस हाथमें तलवार ले वसुदेवको मार डालनेके लिये उद्यत हो गया था; किंतु नारदजीने उसे रोक दिया था। समस्त यादव-बन्धु-बान्धव भयसे विह्वल और दुखी हैं। भूमन्! कितने ही कंसके भयसे कुटुम्बसहित दूसरे देशोंमें चले गये हैं। वह आज ही यादवोंको मार डालने और देवताओंको जीत लेनेके लिये उद्योगशील है। इस पृथ्वीपर बलवान् दैत्यराज कंस कुछ और भी करना चाहता है। अतः आप दोनोंको जगत्का अक्षय कल्याण करनेके लिये वहाँ अवश्य चलना चाहिये। आप दोनों प्रभुओंके बिना सत्पुरुषोंका कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता॥ १७—२०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! अक्रूरजीकी बात सुनकर बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने नन्दराज-की सलाह लेकर कार्यकर्ता गोपोंसे इस प्रकार कहा॥ २१॥

श्रीभगवानुवाच

नन्दराजोऽपि सबलो वृद्धैर्गोपगणैरहम्।
नन्दा नवोपनन्दाश्च तथा षड् वृषभानवः॥ २२

मथुरां तु गमिष्यन्ति सर्वे प्रातः समुत्थिताः।
सर्वे तु गोरसं तस्माद्दधिदुग्धघृतादिकम्॥ २३

गृहीत्वैकत्र कर्तव्यं सोपायनमतः परम्।
रथांश्च शकटैः सार्धं समर्थान् कुरुताशु वै॥ २४

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा कार्यकरा गोपाः सर्वे गृहे गृहे।
शृण्वन्तीनां गोपिकानामूचुः सर्वं यथोदितम्॥ २५

तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया गोप्यो विरहविह्वलाः।
परस्परं वाक्यमूचुः सर्वास्ता हि गृहे गृहे॥ २६

प्रस्थानस्य च वार्तेयं श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
वृषभानुवरस्यापि गृहे प्राप्ता नृपेश्वर॥ २७

गमिष्यतो भर्तुरतीव दुःखिता
श्रुत्वाथ वार्तां सदसि ह्यकस्मात्।
सम्प्राप मूर्च्छां वृषभानुनन्दिनी
रम्भेव भूमौ पतिता मरुद्धता॥ २८

काश्चित्परिम्लानमुखश्रियोऽभवन्
प्रकङ्कणीभूतकराङ्गुलीयकाः।
सद्यः श्लथद्भूषणकेशबन्धना-
श्चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थिरे॥ २९

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
काश्चिद्वदन्त्यः स्वगृहेऽतिविह्वलाः।
विसृज्य कर्माणि गृहस्य सर्वतो
योगीव चानन्दगता नृपेश्वर॥ ३०

काश्चित्समर्थास्तु परस्परं वचः
समेत्य राजन् युगपत्सखीजनम्।
ऊचुः स्खलद्गद्गदकण्ठवाचः
स्वतः स्रवद्बाष्पकलावहद्दृशः॥ ३१

श्रीभगवान् बोले—बन्धुओ! बड़े-बूढ़े गोपोंके साथ बलरामसहित मैं तथा नन्दराज भी मथुरा जायँगे। नवों नन्द और उपनन्द तथा छहों वृषभानु—सब लोग प्रातःकाल उठकर मथुराकी यात्रा करेंगे; अतः तुम सब लोग दही, दूध और घी आदि गोरस एकत्र करो। उसके साथ राजाको देनेके लिये अन्यान्य उपायन भी होंगे। छकड़ोंके साथ रथोंको भी ठीक-ठाक करके शीघ्र तैयार कर लो॥ २२—२४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह सुनकर कार्य करनेवाले सब गोपोंने घर-घरमें जाकर गोपियोंके सुनते हुए वह सारा कथन ज्यों-का-त्यों दोहरा दिया। यह सुनकर गोपियोंका हृदय उद्विग्न हो उठा। वे भावी विरहकी आशङ्कासे विह्वल हो गयीं और घर-घरमें एकत्र हो, वे सब-की-सब परस्पर इसी विषयकी बातें करने लगीं। नृपेश्वर! महात्मा श्रीकृष्णके प्रस्थानकी यह बात वृषभानुवरके भी घरमें पहुँच गयी॥ २५—२७॥

'प्रियतम चले जायँगे'—यह समाचार भरी सभामें अकस्मात् सुनकर वृषभानुनन्दिनी अत्यन्त दुःखित हो गयीं। वे हवाकी मारी हुई कदलीकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं और मूर्च्छित हो गयीं। किन्हीं गोपियोंकी मुखश्री अत्यन्त मलिन हो गयी। हाथकी अँगूठियाँ कलाइयोंके कंगन बन गयीं। उनके केशोंके बन्धन ढीले हो गये और उनमें गुँथे हुए फूल शीघ्र ही शिथिल होकर गिर पड़े। वे गोपियाँ चित्र-लिखी-सी खड़ी रह गयीं॥ २८-२९॥

नृपेश्वर! कुछ गोपियाँ अपने घरमें 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे'—यों कहती हुई अत्यन्त विह्वल हो गयीं और घरके सारे काम-काज छोड़कर योगीकी भाँति ध्यानानन्दमें मग्न हो गयीं। राजन्! कुछ गोपियाँ समर्थ रहीं, वे एकत्र हो, एक साथ आपसमें इस प्रकार बातें करने लगीं। बात करते समय उनके कण्ठ गद्गद हो गये थे और वाणी लड़खड़ा रही थी। उनके नेत्रोंसे स्वतः अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी॥ ३०-३१॥

गोप्य ऊचुः

अहोऽतिनिर्मोहिजनस्य चित्रं
परं चरित्रं गदितुं न योग्यम्।
मुखेन चान्यं हृदि भाव्यमन्यद्
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥ ३२

रासेऽपि यद्यद्गदितं तु तत्तद्
विहाय गन्तुं समवस्थितोऽयम्।
गते पुरीं प्राणपतावहोऽस्मिन्
किं किं न कष्टं बत नोऽभविष्यत्॥ ३३

गोपियाँ बोलीं—अहो! अत्यन्त निर्मोही जनका चरित्र बड़ा विचित्र होता है। वह कहनेयोग्य नहीं है। निर्मोही मनुष्य मुँहसे तो कुछ और कहता है, परंतु हृदयमें कुछ और ही भाव रखता है। उसके मनकी बात तो देवता भी नहीं जानता, फिर मनुष्य कैसे जान सकता है? रासमें इन्होंने जो-जो बात कही थी, उस सबको अधूरी ही छोड़कर वे चले जानेको उद्यत हो गये हैं। अहो! हमारे इन प्राणवल्लभके मथुरापुरी चले जानेपर हम सबको कौन-कौन-सा कष्ट नहीं होगा॥ ३२-३३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां मथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादेऽक्रूरागमनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अक्रूरका आगमन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

श्रीकृष्णका गोपियोंके घरोंमें जाकर उन्हें सान्त्वना देना तथा मार्गमें रथ रोककर खड़ी हुई गोपाङ्गनाओंको समझाकर उनका मथुरापुरीकी ओर प्रस्थित होना

श्रीनारद उवाच

राजन्नेवं वदन्तीनां गोपीनां विरहं परम्।
विज्ञाय भगवान् देवः शीघ्रं तासां गृहान् ययौ॥ १

यावन्त्यो योषितो राजंस्तावद्रूपधरो हरिः।
स्वयं सम्बोधयामास वाग्भिः सर्वाः पृथक् पृथक्॥ २

श्रीराधामन्दिरं गत्वा दृष्ट्वा राधां च मूर्च्छिताम्।
रहःस्थितां सखीसङ्घे ननाद मुरलीं कलम्॥ ३

श्रुत्वा वंशीध्वनिं राधा सहसोत्थाय चातुरा।
नेत्र उन्मील्य ददृशे श्रीगोविन्दं समागतम्॥ ४

पद्मिनीव गतानन्दं पद्मिनी पद्मिनीपतिम्।
वीक्ष्योत्थायागता तस्मै सादरेणासनं ददौ॥ ५

अश्रुपूर्णमुखीं दीनां राधां कमललोचनाम्।
शोचन्तीं भगवानाह मेघगम्भीरया गिरा॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कहती हुई गोपाङ्गनाओंके अत्यन्त विरह-क्लेशको जानकर भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र ही उन सबके घरोंमें गये। मिथिलेश्वर! जितनी व्रजाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान् श्रीहरिने स्वयं सबको पृथक्-पृथक् समझाया। श्रीराधाके भवनमें जाकर देखा कि वे सखियोंसे घिरी हुई एकान्त स्थानमें मूर्च्छित पड़ी हैं; तब उन्होंने मधुर स्वरमें मुरली बजायी॥ १—३॥

वंशीकी ध्वनि सुनकर श्रीराधा सहसा आतुर होकर उठीं। उन्होंने आँख खोलकर देखा तो श्रीगोविन्द सामने उपस्थित दिखायी दिये। जैसे पद्मिनी कमलिनी-कुल-वल्लभ सूर्यका दर्शन करके प्रसन्न हो जाती है, उसी प्रकार पद्मिनी नायिका श्रीराधा अपने प्राणवल्लभको सामने देखकर आनन्दमें मग्न हो गयीं और उन्होंने उठकर वहाँ पधारे हुए श्यामसुन्दरके लिये सादर आसन दिया। कमलनयनी श्रीराधाके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे अत्यन्त दीन होकर शोक कर रही थीं, अतः भगवान्ने मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहा—॥ ४—६॥

श्रीभगवानुवाच

विमनास्त्वं कथं भद्रे मा शोचं कुरु राधिके।
अथवा गन्तुकामं मां श्रुत्वासि विरहातुरा॥ ७

भुवो भारावताराय कंसादीनां वधाय च।
ब्रह्मणा प्रार्थितः साक्षाज्जातोऽहं वै त्वया सह॥ ८

मथुरां हि गमिष्यामि हरिष्यामि भुवो भरम्।
शीघ्रमत्रागमिष्यामि करिष्यामि शुभं तव॥ ९

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तवन्तं जगदीश्वरं हरिं
राधा पतिं प्राह वियोगविह्वला।
दावाग्निना दावलतेव मूर्च्छिता
सुकम्परोमाञ्चितभावसंवृता ॥ १०

श्रीराधोवाच

भुवो भरं हर्तुमलं पुरीं व्रज
कृतं परं मे शपथं शृणु त्वतः।
गते त्वयि प्राणपते च विग्रहं
कदाचिदत्रैव न धारयाम्यहम्॥ ११

यदात्थ मे त्वं शपथं न मन्यसे
द्वितीयवारं प्रददामि वाक्पथम्।
प्राणोऽधरे गन्तुमतीव विह्वलः
कर्पूरधूलेः कणवद् गमिष्यति॥ १२

श्रीभगवानुवाच

वचनं वै स्वनिगमं दूरीकर्तुं क्षमोऽस्म्यहम्।
भक्तानां वचनं राधे दूरीकर्तुं न च क्षमः॥ १३

श्रीदामशापात्पूर्वस्माद् गोलोके कलहान्मम।
शतवर्षं ते वियोगो भविष्यति न संशयः॥ १४

मा शोकं कुरु कल्याणि वरं मे स्मर राधिके।
मासं मासं वियोगे ते दर्शनं मे भविष्यति॥ १५

श्रीभगवान् बोले—भद्रे! राधिके! तुम्हारा मन उदास क्यों है? तुम इस तरह शोक न करो। अथवा मेरी मथुरा जानेकी इच्छा सुनकर तुम विरहसे व्याकुल हो उठी हो? देखो, ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे मैं इस पृथ्वीका भार उतारने और कंसादि असुरोंका संहार करनेके लिये तुम्हारे साथ इस भूतलपर अवतीर्ण हुआ हूँ। अत: अपने अवतारके उद्देश्यकी सिद्धिके लिये मैं मथुरा अवश्य जाऊँगा और भूमिका भार उतारूँगा। तत्पश्चात् शीघ्र यहाँ आऊँगा और तुम्हारा मङ्गल करूँगा॥ ७—९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—जगदीश्वर श्रीहरिके यों कहनेपर वियोगविह्वला श्रीराधा दावानलसे दग्ध लताकी भाँति मूर्च्छित हो गयीं और उनमें कम्प, रोमाञ्च आदि सात्त्विक भाव प्रकट हो गये। उस अवस्थामें वे अपने प्राणवल्लभसे बोलीं— ॥ १०॥

श्रीराधाने कहा—प्राणनाथ! तुम पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवश्य मथुरापुरीको जाओ, परंतु मेरी इस निश्चित प्रतिज्ञाको भी सुन लो। यहाँसे तुम्हारे चले जानेपर मैं शरीरको कदापि धारण नहीं करूँगी। यदि तुम मेरी इस प्रतिज्ञा या शपथपर ध्यान नहीं देते हो तो दूसरी बार पुन: अपने जानेकी बात कहकर देख लो। मैं तुरंत कथाशेष हो जाऊँगी। मेरे प्राण अधरोंकी राहसे निकल जानेको अत्यन्त आकुल हैं, ये कपूरकी धूलि-कणोंके समान शीघ्र ही उड़ जायँगे॥ ११-१२॥

श्रीभगवान् बोले—राधिके! मैं वेदस्वरूपा अपनी वाणीको तो टाल देनेमें समर्थ हूँ, किंतु अपने भक्तोंके वचनकी अवहेलना करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। पूर्वकालमें गोलोकमें जो कलह हुआ था, उस समय दिये गये श्रीदामाके शापसे मेरे साथ तुम्हारा सौ वर्षोंतक वियोग अवश्य होगा—इसमें संशय नहीं है। कल्याणि! राधिके! शोक न करो। मैंने तुम्हें जो वरदान दिया है, उसको स्मरण करो। प्रत्येक मासमें वियोग-दु:खकी शान्तिके लिये एक दिन मेरा दर्शन तुम्हें प्राप्त होगा॥ १३—१५॥

श्रीराधोवाच

मासं प्रति वियोगे मे दातुं स्वं दर्शनं हरे।
चेन्नागमिष्यसि तदासून् दुःखात्सन्त्यजाम्यहम्॥ १६

लोकाभिराम जनभूषण विश्वदीप
कन्दर्पमोहन जगद्वृजिनार्तिहारिन्।
आनन्दकन्द यदुनन्दन नन्दसूनो
अद्यागमस्य शपथं कुरु मे पुरस्त्वम्॥ १७

श्रीभगवानुवाच

रम्भोरु मासं प्रति ते वियोगे
चेन्नागमिष्ये शपथं गवां मे।
निःसंशयं निष्कपटं वचस्त्व-
मवेहि राधे कथितं मया यत्॥ १८

यो मित्रतां निष्कपटं करोति
निष्कारणो धन्यतमः स एव।
विधाय मैत्रीं कपटं विदध्या-
त्तं लम्पटं हेतुपटं नटं धिक्॥ १९

कर्मेन्द्रियाणीह यथा रसादीं-
स्तथा सकामा मुनयः सुखं यत्।
मनाङ् न जानन्ति हि नैरपेक्ष्यं
गूढं परं निर्गुणलक्षणं तत्॥ २०

जानन्ति सन्तः समदर्शिनो ये
दान्ता महान्तः किल नैरपेक्षाः।
ते नैरपेक्ष्यं परमं सुखं मे
ज्ञानेन्द्रियादीनि यथा रसादीन्॥ २१

सर्वं हि भावं मनसः परस्परं
न ह्येकतो भामिनि जायते ततः।
प्रेमैव कर्तव्यमतो मयि स्वतः
प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किञ्चित्॥ २२

यथा हि भाण्डीरवटे मनोरथो
बभूव राधे हि तथा भविष्यति।
अहैतुकं प्रेम च सद्भिराश्रितं
तच्चापि सन्तः किल निर्गुणं विदुः॥ २३

ये राधिकायां त्वयि केशवे मयि
भेदं न कुर्वन्ति हि दुग्धशौक्ल्यवत्।

श्रीराधाने कहा—हरे! प्रत्येक मासमें एकदिन मेरी वियोग-व्यथाको शान्त करनेके लिये यदि तुम दर्शन देने नहीं आओगे तो मैं असह्य दुःखके कारण अपने प्राणोंको अवश्य त्याग दूँगी। लोकाभिराम! जनभूषण! विश्वदीप! मदनमोहन! जगत्के पाप-तापको हर लेनेवाले! आनन्दकंद! यदुकुलनन्दन! नन्दकिशोर! आज मेरे सामने अपने आगमनके विषयमें शपथ खाओ॥ १६-१७॥

श्रीभगवान् बोले—रम्भोरु राधे! यदि तुम्हारे वियोग-कालमें प्रतिमास एक दिन मैं तुम्हें दर्शन देनेके लिये न आऊँ तो मेरे लिये गौओंकी शपथ है। मैंने यहाँ जो कुछ कहा है, मेरे उस वचनको तुम संशयरहित और निष्कपट समझो। जो बिना किसी हेतुके निश्छल भावसे मैत्रीको निभाता है, वही पुरुष धन्यतम है। जो मैत्री स्थापित करके कपट करता है, वह स्वार्थरूपी पटसे आच्छादित लम्पट नटमात्र है, उसे धिक्कार है॥ १८-१९॥

जैसे यहाँ कर्मेन्द्रियाँ रस, रूप, गन्ध, स्पर्श एवं शब्दको नहीं जान पातीं, उसी प्रकार जो सकाम भाव रखनेवाले मुनि हैं, वे उस निरपेक्षस्वरूप एवं निर्गुण गूढ़ परम सुखको किंचिन्मात्र भी नहीं जानते। जो लोग समदर्शी, जितेन्द्रिय, अपेक्षारहित एवं महान् संत हैं, वे ही उस कामनारहित मेरे परम सुखका अनुभव करते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे ज्ञानेन्द्रियाँ ही रस आदि विषयोंको जान पाती हैं॥ २०-२१॥

भामिनि! मनके सारे भाव पारस्परिक हैं—एक-दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। इसलिये किसी एक ही तरफसे प्रीति नहीं होती; दोनों ही ओरसे हुआ करती है। अतः सबको अपनी ओरसे मेरे प्रति प्रेम ही करना चाहिये। इस भूतलपर प्रेमके समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है। राधे! जैसे भाण्डीर-वनमें तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ था, उसी प्रकार फिर होगा। सत्पुरुषोंद्वारा जिस हेतुरहित प्रेमका आश्रय लिया जाता है, उसे भी संत-महात्मा निर्गुण ही मानते हैं॥ २२-२३॥

जो लोग तुझ राधिका और मुझ केशवमें उसी प्रकार भेदकी कल्पना नहीं करते, जिस प्रकार दुग्ध और उसकी धवलतामें भेद सम्भव नहीं है, वे निष्काम

त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति त-
दहैतुकस्फूर्जितभक्तिलक्षणाः ॥ २४

ये राधिकायां त्वयि केशवे मयि
पश्यन्ति भेदं कुधियो नरा भुवि।
ते कालसूत्रं प्रपतन्ति दुःखिता
रम्भोरु यावत्किल चन्द्रभास्करौ॥ २५

श्रीनारद उवाच

एवमाश्वास्य तां राधां सर्वं गोपीगणं तथा।
आययौ नन्दभवनं भगवान्नयकोविदः॥ २६

अथ सूर्योदये जाते नन्दाद्याः शकटैर्बलिम्।
नीत्वा रथान् समारुह्य सर्वे श्रीमथुरां ययुः॥ २७

आरुह्य रामकृष्णाभ्यां स्वं रथं गान्दिनीसुतः।
प्रयाणमकरोद्राजन् मथुरां द्रष्टुमुद्यतः॥ २८

कोटिशःकोटिशो गोप्यो मार्गे मार्गे समास्थिताः।
पश्यन्त्यस्तन्निर्गमनं क्रोधाढ्या मोहविह्वलाः॥ २९

क्रूर क्रूरेति चाक्रूरं वदन्त्यः परुषं वचः।
रुरुधुः सर्वतो यानं यथार्कं सरथं घनाः॥ ३०

अक्रूरस्य रथं राजन् निजघ्नुर्यष्टिभिर्भृशम्।
अश्वांस्तथा सारथिं च भगवद्विरहातुराः॥ ३१

अश्वास्तत्र समुत्पेतुस्ताडितास्त इतस्ततः।
गोपीद्व्यङ्गुलिघातेन सारथिः पतितो रथात्॥ ३२

विहाय लज्जां लोकस्य समाकृष्य रथाद् बलात्।
कङ्कणैस्तेडुरक्रूरं पश्यतोः कृष्णरामयोः॥ ३३

गोपीयूथबलं दृष्ट्वा सबलो भगवान् हरिः।
गोपीः सम्बोधयामास रक्षित्वा गान्दिनीसुतम्॥ ३४

सन्ध्यायामागमिष्यामि मा शोकं कुरुताङ्गनाः।
पश्यतश्चास्य मद्धास्यं मा कुर्वन्तु व्रजौकसः॥ ३५

भावके कारण उद्दीप्त हुई भक्तिसे युक्त महात्मा पुरुष ही मेरे उस ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं॥ २४॥

रम्भोरु! जो कुबुद्धि मनुष्य इस भूतलपर तुझ राधिका और मुझ केशवमें भेद-दृष्टि रखते हैं, वे जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक कालसूत्र नरकमें पड़कर दुःख भोगते हैं॥ २५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीराधा तथा समस्त गोपीगणोंको आश्वासन दे नीतिकुशल भगवान् गोविन्द नन्दभवनमें लौट आये। तदनन्तर सूर्योदय होनेपर नन्द आदि गोप छकड़ोंद्वारा भेंट-सामग्री भेजकर, स्वयं रथारूढ़ हो, वे सब-के-सब श्रीमथुरापुरीको गये। राजन्! बलराम और श्रीकृष्णके साथ अपने रथपर आरूढ़ हो, गान्दिनीपुत्र अक्रूरने मथुरापुरीके दर्शनके लिये उद्यत हो वहाँसे प्रस्थान किया॥ २६—२८॥

मार्गमें कोटि-कोटि गोपाङ्गनाएँ खड़ी हो, क्रोध और मोहसे विह्वल होकर श्रीकृष्णका व्रजसे प्रस्थान देख रही थीं। वे अक्रूरको 'क्रूर-क्रूर' कहकर पुकारती हुई कटु वचन सुनाने लगीं और जैसे बादल सूर्यको आच्छादित कर देते हैं, उसी प्रकार गोपियोंके समुदायने अक्रूरके रथको चारों ओरसे घेर लिया। राजन्! भगवान्के विरहसे व्याकुल हुई गोपियोंने अक्रूरके रथको, उनके घोड़ोंको और सारथिको भी लाठियोंद्वारा जोर-जोरसे पीटना आरम्भ किया॥ २९—३१॥

लाठियोंके प्रहारसे घोड़े वहाँ इधर-उधर उछलने लगे। गोपियोंकी दो अँगुलियोंकी चोटसे सारथि उस रथसे नीचे जा गिरा। लोक-लज्जाको तिलाञ्जलि दे, गोपियोंने बलराम और श्रीकृष्णके देखते-देखते अक्रूरको बलपूर्वक रथसे नीचे खींच लिया और अपने कंगनोंसे उनके ऊपर चोट करना आरम्भ किया। गोपी-समुदायकी वह सेना देखकर बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने गान्दिनीनन्दन अक्रूरकी रक्षा करके गोपाङ्गनाओंको समझाया—'व्रजाङ्गनाओ! चिन्ता न करो। मैं आज संध्याको ही लौट आऊँगा। इन अक्रूरजीके सामने व्रजवासी हमारी हँसी न उड़ायें, ऐसा प्रयत्न तुम्हें करना चाहिये'॥ ३२—३५॥

इत्येवमुक्त्वा सरथः समागतोऽ-
क्रूरेण कृष्णो बलदेवसंयुतः।
तुरङ्गमैर्वेगमयैर्मनोहरै-
र्ययौ पुरीं यादववृन्दमण्डिताम्॥ ३६

यावद्रथः केतुरुताश्वरेणु-
रालक्ष्यते तावदतीव मोहात्।
स्थिता ह्यभूवन् पथि चित्रवत्ताः
स्मृत्वा हरेर्वाक्यमुतागताशाः॥ ३७

यों कहकर बलदेवजी तथा अक्रूरके साथ श्रीकृष्ण सुन्दर वेगशाली अश्वोंकी सहायतासे रथसहित उस मथुरापुरीकी ओर चल दिये, जो यादवोंके समुदायसे सुशोभित थी। जबतक उन्हें रथ, उसकी ध्वजा अथवा घोड़ोंकी टापसे उड़ायी गयी धूल दिखायी देती रही, तबतक अत्यन्त मोहवश गोपियाँ पथपर ही चित्र-लिखित-सी खड़ी रहीं। श्रीहरिकी कही हुई बातको याद करके उनके मनमें पुनर्मिलनकी आशा बँध गयी थी॥ ३६-३७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मथुराप्रयाणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका मथुरापुरीको प्रयाण' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

अक्रूरको भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार तथा उनकी स्तुति; श्रीकृष्णका ग्वालबालोंके साथ पुरी-दर्शनके लिये जाना, नागरी स्त्रियोंका उनपर मोहित होना तथा भगवान्‌के हाथसे एक रजकका उद्धार

श्रीनारद उवाच

हरिरक्रूररामाभ्यां मथुरोपवनं गतः।
यमुनानिकटं स्थित्वा वारि पीत्वा रथं ययौ॥ १

अक्रूरस्तावनुज्ञाप्य स्नातुं श्रीयमुनां गतः।
नित्यनैमित्तिकं कर्तुं विवेश विमले जले॥ २

जले चागाधगम्भीरे महावर्तसमाकुले।
ददर्श रामकृष्णौ तौ वदन्तौ गान्दिनीसुतः॥ ३

विस्मितस्तौ रथेऽपश्यत्पुनर्वारि स्थितौ नृप।
ददर्श तत्र सर्पेन्द्रं कुण्डलीभूतमास्थितम्॥ ४

तस्योत्सङ्गे महालोकं गोलोकं लोकवन्दितम्।
गोवर्धनाद्रिं यमुनां वृन्दारण्यं मनोहरम्॥ ५

असंख्यकोटिमार्तण्डज्योतिषां मण्डलं प्रभुम्।
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम्॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! अक्रूर और बलरामजीके साथ मथुराके उपवनके पास पहुँचकर, यमुनाके निकट रथ रोककर भगवान् श्रीकृष्ण उतर गये और यमुनाका जल पीकर पुनः रथपर आ गये। तब उन दोनों भाइयोंकी आज्ञा ले अक्रूरजी यमुनाजीमें नहानेके लिये गये और नित्य-नैमित्तिक कर्म करनेके लिये यमुनाके निर्मल जलमें उतरे॥ १-२॥

यमुनाजीका जल अगाध था, उसमें बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही थीं। अक्रूरजीने देखा, उसी जलमें बलराम और श्रीकृष्ण— दोनों भाई खड़े-खड़े परस्पर बातें कर रहे हैं॥ ३॥

नरेश्वर! यह देख अक्रूरजी चकित हो उठे और रथपर जाकर देखा तो वहाँ भी वे दोनों बैठे दिखायी दिये। फिर जलमें आकर देखा तो वहाँ भी उनके दर्शन हुए। बलरामजी नागराज शेषके रूपमें कुंडली मारकर बैठे थे और उनकी गोदमें लोकवन्दित परम प्रकाशमय गोलोक, गोवर्धनपर्वत, यमुनानदी, मनोहर वृन्दावन तथा असंख्य कोटि सूर्योंकी ज्योतियोंका प्रभावशाली मण्डल—ये क्रमशः परिलक्षित हुए। उसी

कोटिमन्मथलावण्यं रासमण्डलमध्यगम्।
राधया सहितं देवं तत्राक्रूरो ददर्श ह॥ ७

ज्ञात्वा कृष्णं परं ब्रह्म नत्वा नत्वा पुनः पुनः।
कृताञ्जलिपुटोऽक्रूरः स्तुतिं चक्रेऽतिहर्षितः॥ ८

अक्रूर उवाच

नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च।
असंख्याण्डाधिपतये गोलोकपतये नमः॥ ९

श्रीराधापतये तुभ्यं व्रजाधीशाय ते नमः।
नमः श्रीनन्दपुत्राय यशोदानन्दनाय च॥ १०

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
यदूत्तम जगन्नाथ पाहि मां पुरुषोत्तम॥ ११

वाणी सदा ते गुणवर्णने स्यात्
कर्णौ कथायां समदोश्च कर्मणि।
मनः सदा त्वच्चरणारविन्दयो-
र्दृशौ स्फुरद्धामविशेषदर्शने॥ १२

श्रीनारद उवाच

एवं संस्तुवतस्तस्य पश्यतो विस्मितस्य च।
तत्रैवान्तर्दधे कृष्णः सलोको भगवान् प्रभुः॥ १३

नत्वा तं च तदाक्रूरः कृत्वा नैमित्तिकं विधिम्।
ज्ञात्वा कृष्णं परं ब्रह्म विस्मितो रथमाययौ॥ १४

दिनात्यये रामकृष्णावनयद् गान्दिनीसुतः।
रथेन वायुवेगेन स्निग्धगम्भीरनादिना॥ १५

पुरस्योपवने तत्र वीक्ष्य नन्दं यदूत्तमः।
अक्रूरं प्राह विहसन् मेघगम्भीरया गिरा॥ १६

श्रीभगवानुवाच

मथुरायां हि गन्तव्यं भवता स्वरथेन वै।
गोपालैः सहितः पश्चादागमिष्यामि मानद॥ १७

ज्योतिर्मण्डलमें रासमण्डलके भीतर कोटि-कोटि कामदेवोंके सौन्दर्य-माधुर्यको तिरस्कृत करनेवाले साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण श्रीराधारानीके साथ वहाँ अक्रूरके दृष्टिपथमें आये॥ ४—७॥

तब श्रीकृष्णको परब्रह्म परमात्मा समझकर अक्रूरने बारंबार उन्हें नमस्कार किया और दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त हर्षके साथ उनकी स्तुति आरम्भ की॥ ८॥

अक्रूर बोले—असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधीश्वर तथा गोलोकधामके स्वामी परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है। प्रभो! आप श्रीराधाके प्राणवल्लभ तथा व्रजके अधीश्वर हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। श्रीनन्दनन्दन तथा माता यशोदाको आमोद प्रदान करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है। आप मेरी रक्षा कीजिये। देवकीपुत्र! गोविन्द! वासुदेव! जगदीश्वर! यदुकुलतिलक! जगन्नाथ! पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। आप मेरी रक्षा कीजिये। मेरी वाणी सदा आपके गुणोंके वर्णनमें लगी रहे। मेरे कान आपकी कथा सुनते रहें। मेरी भुजाएँ आपकी प्रसन्नताके लिये कर्म करनेमें तल्लीन रहें। मन सदा आपके चरणारविन्दोंका चिन्तन करे तथा दोनों नेत्र आपके प्रकाशमान एवं भव्य धामविशेषके दर्शनमें संलग्न हों॥ ९—१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! जब इस प्रकार चकित होकर भगवान्‌का वैभव देखते हुए अक्रूरजी स्तुति कर रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण अपने लोकसहित वहीं अन्तर्धान हो गये। तब उन्हें नमस्कार करके नैमित्तिक कर्म पूर्ण करनेके पश्चात् अक्रूर श्रीकृष्णको परब्रह्मस्वरूप जानकर विस्मयपूर्वक रथपर आये। घनवत् गम्भीर एवं स्निग्ध नाद करनेवाले उस वायुवेगशाली रथके द्वारा अक्रूरने बलराम और श्रीकृष्णको दिन डूबते-डूबते मथुरा पहुँचा दिया। वहाँ नगरके उपवनमें नन्दराजको देखकर यदूत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें अक्रूरजीसे बोले—॥ १३—१६॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—मानद! अब आप अपने रथके द्वारा मथुरापुरीमें पधारें। मैं पीछे ग्वाल-बालोंके साथ आऊँगा॥ १७॥

अक्रूर उवाच

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम।
सहाग्रजः सगोपालो गच्छ मे मन्दिरं प्रभो॥ १८

पादारविन्दरजसा पवित्रीकुरु मद्गृहम्।
त्वां विना न गमिष्यामि मन्दिरं स्वं जगत्पते॥ १९

श्रीभगवानुवाच

गृहं तवागमिष्यामि हत्वा वै यादवाहितम्।
सबलो बान्धवैः सार्धं करिष्यामि तव प्रियम्॥ २०

श्रीनारद उवाच

अथ तत्र स्थिते कृष्णे सोऽक्रूरो मथुरां गतः।
निवेद्य चेदं कंसाय ततः स्वभवनं ययौ॥ २१

अथापराह्णे सबलं गोविन्दं बालकैः पुरीम्।
द्रष्टुमभ्युदितं वीक्ष्य नन्दो वाक्यमथाब्रवीत्॥ २२

आर्जवेन पुरीं वीक्ष्यागन्तव्यं भवता किल।
न गोकुलं विद्धि चैनां कंसराज्ये महाभये॥ २३

तथास्तु चोक्त्वा भगवान् वृद्धैर्नन्दप्रणोदितैः।
गोपालैर्बालकैः सार्धं सबलो गतवान्पुरीम्॥ २४

प्रासादैर्गगनस्पर्शैर्हेमरत्नखचिद्गृहैः।
शोभितां दुर्गसंयुक्तां देवधानीमिव स्थिताम्॥ २५

कालिन्दीरत्नसोपानैश्चलदूर्मिकुतूहलैः।
अलकामिव शोभाढ्यां दिव्यनारीनरैर्युताम्॥ २६

प्रेक्षञ्छ्रीमथुरां कृष्णो धनिनां मन्दिराणि च।
पश्यन् गोपालकैः सार्धं राजमार्गं विवेश ह॥ २७

श्रुत्वागतं तं वसुदेवनन्दनं
बहुश्रुता वै मथुरापुराङ्गनाः।
त्यक्त्वाथ कर्माणि विसृज्य ताः शिशून्
द्रष्टुं व्यधावन्नुदधिं यथापगाः॥ २८

अक्रूरने कहा—देवदेव! जगन्नाथ! गोविन्द! पुरुषोत्तम! प्रभो! आप अपने बड़े भाई तथा ग्वालों-सहित मेरे घरपर चलें। जगत्पते! अपने चरणारविन्दों-की धूलसे आज मेरा घर पवित्र कीजिये। मैं आपको साथ लिये बिना अपने घर नहीं जाऊँगा॥ १८-१९॥

श्रीभगवान्ने कहा—अक्रूरजी! मैं यदु-वंशियोंके वैरी कंसको मारकर बलरामजी तथा गोप-बन्धुओंके साथ आपके भवनमें अवश्य आऊँगा और आपका प्रिय करूँगा॥ २०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण वहीं ठहर गये और अक्रूरने मथुरापुरीमें प्रवेश किया। वहाँ कंसको श्रीकृष्णके आगमनका समाचार देकर वे अपने घर चले गये। दूसरे दिन बलराम और गोप-बालकोंके साथ मथुरापुरीको देखनेके लिये उद्यत हुए गोविन्दकी ओर देखकर नन्दने यह बात कही—॥ २१-२२॥

'वत्स! सीधी तरहसे मथुरापुरीको देखकर तुम सब लोग लौट आना। इसे गोकुल न समझो; यहाँ कंसका महाभयंकर राज्य है।' 'बहुत अच्छा'—कहकर भगवान् श्रीकृष्ण नन्दद्वारा प्रेरित बड़े-बूढ़े ग्वालों और ग्वालबालोंके साथ पुरीमें गये। बलरामजी भी उनके साथ थे। दुर्गसे युक्त वह पुरी स्वर्ण एवं रत्नजटित सुन्दर गृहों तथा गगनचुम्बी महलोंसे देवताओंकी राजधानी अमरावतीके समान शोभा पाती थी। यमुनाके तटपर रत्नोंकी सीढ़ियाँ बनी थीं। वहाँ चञ्चल लहरोंका कौतूहल देखते ही बनता था। उन सबसे तथा दिव्य नर-नारियोंसे युक्त वह नगरी अलकापुरीके समान शोभा पा रही थी। मथुरापुरीकी शोभा निहारते और धनिकोंके भवनोंको देखते हुए श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ राजमार्ग (मुख्य सड़क)-पर आ गये॥ २३—२७॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके आगमनका समाचार सुनकर मथुरापुरीकी स्त्रियाँ, जो उनके विषयमें बहुत कुछ सुन चुकी थीं, सारे काम-काज और शिशुओंको भी छोड़कर उन्हें देखनेके लिये इस प्रकार दौड़ीं, मानो नदियाँ समुद्रकी ओर भागी जा रही हों॥ २८॥

काश्चित्तु हर्म्यात्किल जालदेशात्
कुड्यात्तु काश्चित्पटतो गवाक्षात्।
विनिर्गता द्वारकपाटदेशात्
तच्चत्वरात्तं ददृशुः पुरन्ध्र्यः॥ २९

एकं चलत्कुन्तलमानने स्वे
किमग्रगानां तु मनांसि हर्तुम्।
पश्चात्कृतं मौलितले दधानं
किं पृष्ठगानां हरणं द्वितीयम्॥ ३०

पीताम्बरार्धं बलितं स्फुरत्कटा-
वर्धं तदंसे जलदे यथा तडित्।
पद्मं करे स्वे हृदि वैजयन्तीं
स्रजं दधानं वसुदेवनन्दनम्॥ ३१

विलोक्य सर्वा मुमुहुः पुरस्त्रियो
विलोलपाठीननवीनकुण्डलम्।
बालार्कहेमाङ्गदबाहुमण्डलं
राजन्नसंख्याण्डपतिं परात्परम्॥ ३२

पुरन्ध्र्य ऊचुः

अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र सन्निहितो ह्ययम्।
धन्या गोपगणाः सर्वे पश्यन्त्येनं मनोहरम्॥ ३३

धन्या गोपरमण्यस्तास्ताभिः किं सुकृतं कृतम्।
पिबन्ति या रासरङ्गे मुहुश्चास्याधरामृतम्॥ ३४

श्रीनारद उवाच

राजमार्गे रङ्गकारं रजकं यान्तमुन्मदम्।
गोपालानुमतेनैव प्राह तं मधुसूदनः॥ ३५

देहि नो मित्र वासांसि रुचिराणि महामते।
दातुस्ते हि परं श्रेयो भविष्यति न संशयः॥ ३६

प्रज्वलन् कृष्णवाक्येन घृतेनाग्निर्यथा भृशम्।
कंसभृत्यो महादुष्टः प्राहेदं पथि माधवम्॥ ३७

कुछ स्त्रियाँ महलोंकी छतसे, कुछ जालीदार झरोखोंके छेदसे, कोई-कोई दीवारोंकी ओटसे, कोई खिड़कियोंपर लगे हुए पर्दे हटाकर और कुछ नारियाँ दरवाजेके किवाड़ोंसे बाहर निकलकर घरके चबूतरोंपरसे उन्हें देखने लगीं। भगवान् श्रीकृष्णका एक चञ्चल कुन्तलभाग उनके मुखपर लटक रहा था, मानो उन्होंने अपने सामनेवाले मनुष्योंके मनको हर लेनेके लिये उसे धारण किया था तथा दूसरा कुन्तलभाग उन्होंने मुकुटके नीचे दबाकर पीछेकी ओर लटका दिया था, मानो पीछेसे आनेवाले लोगोंके मनको मोहनेके लिये उसे उन्होंने पृष्ठभागकी ओर धारण किया था॥ २९-३०॥

उनका आधा पीताम्बर कमरमें बँधा हुआ चमक रहा था और आधा कंधेपर पड़ा नील मेघमें विद्युत्की-सी शोभा धारण कर रहा था। राजन्! उन्होंने अपने एक हाथमें कमल और वक्षःस्थलमें वैजयन्ती माला धारण कर रखी थी। कानोंमें नवीन मकराकार कुण्डल पहने तथा बालसूर्यके समान कान्तिमान् सोनेके बाजूबंदसे विभूषित बाहुमण्डलवाले, असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति परात्पर भगवान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको देखकर समस्त पुरवासिनी स्त्रियाँ मोहित हो गयीं॥ ३१-३२॥

नागरी स्त्रियाँ बोलीं—अहो! वह वृन्दावन कैसा रमणीय है, जहाँ ये नन्दनन्दन स्वयं निवास करते हैं। वे समस्त गोपगण भी धन्य हैं, जो प्रतिदिन इनके मनोहर रूपका दर्शन करते रहते हैं। वे गोपाङ्गनाएँ भी धन्य हैं—न जाने उन्होंने कौन-सा पुण्य किया है, जो रास-रङ्गमें वे बारंबार उनके अधरामृतका पान किया करती हैं॥ ३३-३४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस राजमार्गपर एक कपड़ा रँगनेवाला रजक जा रहा था। वह बड़ा घमंडी और उन्मत्त जान पड़ता था। ग्वालबालोंकी अनुमतिसे मधुसूदनने उससे कहा—'मेरे महाबुद्धिमान् मित्र! हमारे लिये सुन्दर वस्त्र दो; यदि दे दोगे तो तुम्हारा परम कल्याण होगा, इसमें संशय नहीं है।' वह रजक कंसका सेवक और बड़ा भारी दुष्ट था। श्रीकृष्णकी बात सुनकर घृतसे अभिषिक्त अग्निकी भाँति वह अत्यन्त रोषसे प्रज्वलित हो उठा और उस राजमार्गपर माधवसे इस प्रकार बोला— ॥ ३५—३७॥

रजक उवाच

ईदृशान्येव वस्त्राणि पितृभिर्वः पितामहैः।
धारितानि किमुद्वृत्तास्ते न कौपीनधारकाः॥ ३८

यताशु वन्या नगरात्सर्वे वै जीवितेच्छया।
कारागारे कारयामि युष्मान् वस्त्रहरानहम्॥ ३९

श्रीनारद उवाच

एवं प्रवदतस्तस्य रजकस्य यदूत्तमः।
जहार मस्तकं सद्यः कराग्रेणैव लीलया॥ ४०

तज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं जातं विदेहराट्।
सद्यस्तदनुगाः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै॥ ४१

दुद्रुवुः सर्वतो राजन् शरत्काले यथा घनाः।
गृहीत्वात्मप्रिये वस्त्रे स्थितयो रामकृष्णयोः॥ ४२

जगृहुर्गोपबालास्ते राजमार्गजना अपि।
तद्धारणाविदो बाला वासांसि रुचिराणि च।
अस्तव्यस्तं परिदधुः श्रीकृष्णस्य प्रपश्यतः॥ ४३

वीक्ष्य तौ वायकः कश्चिच्छ्रीकृष्णबलदेवयोः।
विचित्रवर्णैर्वासोभिर्दिव्यं वेषं चकार ह॥ ४४

तथान्येषां शिशूनां च यथायोग्यं विधाय सः।
राजन् परमया भक्त्या पुनः कृष्णं ददर्श ह॥ ४५

प्रसन्नो भगवांस्तस्मै प्रादात्सारूप्यमात्मनः।
बलं श्रियं तथैश्वर्यं बलदेवो ददौ पुनः॥ ४६

रजकने कहा—अरे! तुम्हारे बाप-दादोंने ऐसे ही वस्त्र धारण किये हैं क्या? उद्दण्ड ग्वाल-बालो! क्या तुम्हारे पूर्वज कौपीनधारी नहीं थे? जंगलमें रहनेवाले गोपो! यदि जीवन चाहते हो तो तुम सब-के-सब नगरसे शीघ्र निकल जाओ; अन्यथा वस्त्रकी चोरी करनेवाले तुम सब लोगोंको मैं जेलमें बंद करा दूँगा॥ ३८-३९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस तरहकी बातें करनेवाले उस रजकके मस्तकको यदुकुल-तिलक श्रीकृष्णने खेल-खेलमें हाथके अग्रभागसे ही मरोड़ दिया॥ ४०॥

विदेहराज! उसके शरीरकी ज्योति घनश्याम श्रीकृष्णमें लीन हो गयी। राजन्! फिर तो उसके समस्त अनुगामी सेवक वस्त्रोंके गट्ठर वहीं छोड़कर उसी तरह सब ओर भाग गये, जैसे शरत्कालमें हवाके वेगसे बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। उन वस्त्रोंमेंसे बलराम और श्रीकृष्ण अपनी पसंदके कपड़े लेकर जब खड़े हो गये, तब शेष वस्त्रोंको ग्वालबालों तथा अन्य राहगीरोंने ले लिया॥ ४१—४२½॥

उन वस्त्रोंको कैसे पहनना चाहिये, यह बात ग्वालबाल नहीं जानते थे; अतः बलराम और श्रीकृष्णके देखते-देखते वे उन सुन्दर वस्त्रोंको अस्त-व्यस्त ढंगसे पहनने लगे। इसी समय एक दर्जीने उन दोनों भाइयोंको देखकर विचित्र वर्णवाले वस्त्रोंको धारण कराकर श्रीकृष्ण और बलदेवके दिव्य वेष बना दिये। राजन्! इसी तरह अन्य गोप-बालकोंको भी यथोचित वस्त्र पहनाकर उसने बड़ी भक्तिसे श्रीकृष्णका पुनः दर्शन किया। उस दर्जीपर प्रसन्न हो भगवान्ने उसे अपना सारूप्य प्रदान किया तथा बलदेवजीने भी पुनः उसे बल, लक्ष्मी और ऐश्वर्य प्रदान किया॥ ४३—४६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मथुरायां श्रीकृष्णप्रवेशो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका मथुरामें प्रवेश' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

सुदामा माली और कुब्जापर कृपा; धनुर्भङ्ग तथा मथुराकी स्त्रियोंपर श्रीकृष्णके मधुर-मोहन रूपका प्रभाव

श्रीनारद उवाच

अथ गोपालकैः सार्धं श्रीकृष्णो नन्दनन्दनः।
गृहं जगाम सबलः सुदाम्नो दाममालिनः॥ १

दृष्ट्वा तौ स समुत्थाय नमस्कृत्य कृताञ्जलिः।
पुष्पसिंहासने स्थाप्य प्राह गद्गदया गिरा॥ २

सुदामोवाच

धन्यं कुलं मे भवनं च जन्म
त्वय्यागते देव कुलानि सप्त।
मातुः पितुः सप्त तथा प्रियाया
वैकुण्ठलोकं गतवन्ति मन्ये॥ ३

भूभारमाहर्तुमलं यदोः कुले
जातौ युवां पूर्णतमौ परेश्वरौ।
नमो युवाभ्यां मम दीनदीन-
गृहं गताभ्यां जगदीश्वरौ परौ॥ ४

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा पुष्परचनालङ्कारान् मधुपध्वनीन्।
निवेद्य मकरन्दांश्च मालाकारो ननाम ह॥ ५

धृत्वा तत्पुष्पनिचयं सबलो भगवान् हरिः।
दत्वा गोपेभ्य आरात्तं प्राह प्रहसिताननः॥ ६

गरीयसी मत्पदाब्जे भक्तिर्भूयात्सदा तव।
मद्भक्तानां तु सङ्गः स्यान्मत्स्वरूपमिहैव हि॥ ७

बलदेवो ददौ तस्मै श्रियं चान्वयवर्धिनीम्।
उत्थाय तौ ततो राजन्नन्यां वीथीं प्रजग्मतुः॥ ८

यान्तीं स्त्रियं पद्मनेत्रां पाटीरालेपभाजनम्।
बिभ्रतीं युवतीं कुब्जां पथि पप्रच्छ माधवः॥ ९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर ग्वालबालोंसहित नन्दनन्दन श्रीकृष्ण और बलराम सुदामा नामवाले एक मालीके घर गये, जो फूलोंके गजरे बनाया करता था। उन दोनों भाइयोंको देखते ही माली उठकर खड़ा हो गया। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फूलके सिंहासनपर बिठाकर गद्गद वाणीमें कहा—॥ १-२॥

सुदामा बोला—देव! यहाँ आपके शुभागमनसे मेरा कुल तथा घर दोनों धन्य हो गये। मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरी माताके कुलकी सात पीढ़ियाँ, पिताके कुलकी सात पीढ़ियाँ तथा पत्नीके कुलकी भी सात पीढ़ियाँ वैकुण्ठलोकमें चली गयीं। आप दोनों परिपूर्णतम परमेश्वर हैं और भूतलका भार उतारनेके लिये इस यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। मुझ दीनातिदीन-के घर आये हुए आप दोनों भाइयोंको नमस्कार है। आप परात्पर जगदीश्वर हैं॥ ३-४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर मालीने पुष्पनिर्मित सुन्दर हार और भ्रमरोंकी गुंजारसे निनादित मकरन्द (इत्र, फुलेल आदि) निवेदन करके प्रणाम किया। बलरामसहित भगवान् श्रीहरिने उस पुष्प-राशिको धारण करके निकटवर्ती गोपोंको भी दिया और हँसते हुए मुखसे उस मालीसे बोले—'सुदामन्! मेरे चरणारविन्दोंमें सदा तुम्हारी गुरुतर भक्ति बनी रहे, मेरे भक्तोंका सङ्ग प्राप्त हो और इसी जन्ममें तुम्हें मेरे स्वरूपकी प्राप्ति हो जाय'॥ ५—७॥

तदनन्तर बलदेवजीने भी इसे उसके कुलमें निरन्तर बढ़नेवाली लक्ष्मी प्रदान की। राजन्! फिर वे दोनों भाई वहाँसे उठकर दूसरी गलीमें गये। वहाँ मार्गमें एक कमलनयनी कामिनी जा रही थी। उसके हाथोंमें चन्दनका अनुलेप-पात्र था। अवस्थामें वह युवती थी, किंतु शरीरसे कुबड़ी दिखायी देती थी। माधवने उससे पूछा—॥ ८-९॥

श्रीभगवानुवाच

का त्वं कस्य प्रिया सुभ्रु कस्यार्थं चन्दनं त्विदम्।
देह्यावयोर्येन तव चिरं श्रेयो भविष्यति॥ १०

सैरन्ध्र्युवाच

दास्यस्मि सुन्दरवर कुब्जानाम महामते।
मद्धस्तोत्थं च पाटीरं जातं भोजपतेः प्रियम्॥ ११

अद्यापि कंसदास्यस्मि साम्प्रतं तव चाग्रतः।
हस्तिशुण्डादण्डसमे भुजदण्डेऽस्ति मे मनः॥ १२

युवां विना कोऽन्यतमोऽनुलेपं कर्तुमर्हति।
युवयोस्तु समं रूपं त्रैलोक्ये न हि विद्यते॥ १३

श्रीनारद उवाच

उभाभ्यां सा ददौ सान्द्रं हर्षिता ह्यनुलेपनम्।
अथ तावङ्गरागेण रामकृष्णौ विरेजतुः॥ १४

जगृहुश्चन्दनं दिव्यं किञ्चित्किञ्चिद् व्रजार्भकाः।
त्रिवक्रामथ तां कृष्ण ऋज्वीं कर्तुं मनो दधे॥ १५

आक्रम्य पद्भ्यां प्रपदेऽङ्गुलिद्वयं
प्रोत्तानहस्तेन विभुः परेश्वरः।
प्रगृह्य नृणां चिबुके प्रपश्यतां
वक्रां तनुं तामुदनीनमद्धरिः॥ १६

तदैव सा यष्टिसमानविग्रहा
दीप्त्या च रम्भां क्षिपतीव रूपिणी।
भूत्वा गृहीत्वाह हरिं तु वाससि
शुचिस्मिता जातमनोजविह्वला॥ १७

सैरन्ध्र्युवाच

गच्छाशु हे सुन्दरवर्य मद्गृहं
त्यक्तुं भवन्तं किल नोत्सहेऽहम्।
प्रसीद सर्वज्ञ रसज्ञ मानद
त्वया भृशं प्रोन्मथितं मनो मम॥ १८

श्रीभगवान् बोले—सुन्दरी! तुम कौन हो और किसकी प्रिया हो? किसके लिये यह चन्दन ले जा रही हो? हम दोनोंको भी यह चन्दन दो, इससे शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण होगा॥ १०॥

सैरन्ध्री बोली—सुन्दर-शिरोमणे! मैं कंसकी दासी हूँ। महामते! मेरा नाम कुब्जा है। मेरे हाथका घिसा हुआ चन्दन भोजराज कंसको बहुत प्रिय है। अबतक तो मैं कंसकी ही दासी रही हूँ, किंतु इस समय आपके सामने उपस्थित हूँ। हाथीके शुण्डदण्डकी भाँति जो आपके ये बलिष्ठ भुजदण्ड हैं, इनमें मेरा मन लग गया है। आप दोनों भाइयोंको छोड़कर दूसरा कौन ऐसा पुरुष है, जो इस चन्दनानुलेपके योग्य हो। आप दोनों भाइयोंके समान सुन्दर रूप तो त्रिभुवनमें कहीं नहीं है॥ ११—१३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! हर्षसे भरी हुई कुब्जाने उन दोनों भाइयोंके लिये स्निग्ध अनुलेपन प्रदान किया। उस अङ्गरागसे वे दोनों बन्धु—बलराम और श्रीकृष्ण बड़ी शोभा पाने लगे॥ १४॥

व्रजके अन्य बालकोंने भी थोड़ा-थोड़ा वह दिव्य चन्दन ग्रहण किया। कुब्जा तीन जगहसे टेढ़ी थी। श्रीकृष्णने उसे तत्काल सीधी करनेका विचार किया। उन सर्वव्यापी परमेश्वरने अपने चरणोंद्वारा उसके पैरोंके अग्रभागको दबाकर उत्तान हाथकी दो अङ्गुलियोंसे उसकी ठोढ़ी पकड़ ली और लोगोंके देखते-देखते उसके तीन जगहसे टेढ़े शरीरको उचका दिया। फिर तो वह उसी समय छड़ीके समान देहवाली, अत्यन्त रूप-सौन्दर्यसे सम्पन्न तन्वङ्गी तरुणी हो गयी और अपनी दीप्तिसे रम्भाको भी तिरस्कृत-सी करने लगी। उसके हृदयमें कामभावका उदय हुआ और उससे विह्वल हो उस पवित्र मुस्कानवाली सैरन्ध्रीने श्रीहरिका वस्त्र पकड़कर इस प्रकार कहा—॥ १५—१७॥

सैरन्ध्री बोली—सुन्दरप्रवर! अब तुम शीघ्र ही मेरे घर चलो; निश्चय ही मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकूँगी। तुम तो सबके मनकी जाननेवाले हो; मुझपर कृपा करो। रसिकशेखर! मानद! तुमने मेरे मनको बड़े वेगसे मथ डाला है॥ १८॥

श्रीनारद उवाच

तदैव गोपा जहसुः परस्पर-
महो किमेतत्करतालनिःस्वनैः।
प्रहस्य रामस्य हरिः प्रपश्यत-
स्तद्याच्यमानो ह्यवदत्परं वचः॥ १९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब सब गोप 'अहो! यह क्या!'—परस्पर यों कहते हुए ताली पीट-पीटकर हँसने लगे। बलरामजी भी बड़े गौरसे यह सब देख रहे थे। उस सुन्दरीके अपने घर चलनेके लिये प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीहरिने यह उत्तम बात कही—॥ १९॥

श्रीभगवानुवाच

अहोऽतिधन्या मथुरापुरीयं
वसन्ति यत्रैव जनास्तु सौम्याः।
येऽज्ञातपान्थान् स्वगृहं नयन्ति
दृष्ट्वा पुरीं धाम तवागमिष्ये॥ २०

श्रीभगवान् बोले—अहो! यह मथुरापुरी अत्यन्त धन्य है, जहाँ बड़े सौम्य स्वभावके लोग निवास करते हैं, जो अपरिचित राहगीरोंको भी अपने घर बुला ले जाते हैं। [सुन्दरी!] मैं घूम-फिरकर मथुरा-पुरीका दर्शन करके तुम्हारे घर आऊँगा॥ २०॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वोत्तरीयान्तं समाकृष्य गिरार्द्रया।
राजमार्गं व्रजन् कृष्णो वैश्यानाढ्यान् ददर्श ह॥ २१

पुष्पताम्बूलगन्धाढ्यैः फलैर्दुग्धफलैर्हरिम्।
सम्पूज्य स्वासने स्थाप्य नेमुरग्र्यधियो विशः॥ २२

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! स्नेहमयी वाणीद्वारा यों कहकर श्रीकृष्णने उसके हाथसे अपने दुपट्टेका छोर खींच लिया और राजमार्गपर आगे बढ़ते हुए उन्हें कुछ धनी वैश्य दिखायी दिये। उन उत्तम बुद्धिवाले वैश्योंने पान, फूल, इत्र, दूध और फल आदिद्वारा श्रीहरिका पूजन करके उन्हें उत्तम आसनपर बिठाया और उनके चरणोंमें प्रणाम किया॥ २१-२२॥

वैश्या ऊचुः

भवेच्चेदत्र ते राज्यं तावकान् स्मरतात्तदा।
वयं तव प्रजा देव राज्ये प्राप्ते न कः स्मरेत्॥ २३

वैश्य बोले—देव! यदि यहाँ आपका राज्य स्थापित हो जाय तो आप हम आत्मीयजनोंका सदा ध्यान रखें; हम आपकी प्रजा हैं। प्रायः राज्य मिल जानेपर कोई किसीका स्मरण नहीं करता॥ २३॥

श्रीनारद उवाच

पप्रच्छ सुस्मितो वैश्यान् कोदण्डस्थानमच्युतः।
न ते तमूचुः सुधियः कोदण्डे भङ्गशङ्कया॥ २४

तद्रूपगुणमाधुर्यमोहिता ये च माथुराः।
कुमार पश्यैहि धनुरित्यूचुस्तद्दिदृक्षवः॥ २५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब अच्युतने सुन्दर मन्द मुसकराहटके साथ उन वैश्योंसे पूछा—'धनुषका स्थान कौन है?' किंतु वे वैश्य बड़े चालाक थे। उन्हें धनुषके तोड़ दिये जानेकी आशङ्का हुई, इसलिये वे भगवान्‌को उसका स्थान नहीं बता रहे थे। किंतु उनके रूप, गुण और माधुर्यसे मोहित जो अन्य मथुरावासी थे, वे उन्हें धनुष दिखानेकी इच्छासे बोले—'कुमार! आइये, देखिये वह धनुष'॥ २४-२५॥

तैर्दृष्टेन पथा कृष्णः प्रविष्टो धनुषः स्थलम्।
मैत्रीं कुर्वन् वयस्यैश्च माथुरैः पुरबालकैः॥ २६

तब उनके दिखाये हुए मार्गसे श्रीकृष्णने धनुषशालामें प्रवेश किया। वे मथुरावासी समवयस्क पुरबालकोंके साथ मैत्रीभावकी स्थापना भी करते जाते थे॥ २६॥

यथैन्द्रं हेमचित्राढ्यं कोदण्डं सप्ततालकम्।
पुरुषैः पञ्चसाहस्त्रैर्नेतुं योग्यं बृहद्भरम्॥ २७

अष्टधातुमयं क्लिष्टं लक्षभारसमं परम्।
चतुर्दश्यां पौरजनैरर्चितं यज्ञमण्डपे॥ २८

भार्गवेण पुरा दत्तं यदुराजाय माधवः।
ददर्श कुण्डलीभूतं साक्षाच्छेषमिव स्थितम्॥ २९

वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे।
पश्यतां तत्र पौराणां सज्जं कृत्वाथ लीलया॥ ३०

आकृष्य कर्णपर्यन्तं दोर्दण्डाभ्यां हरिर्धनुः।
बभञ्ज मध्यतो राजन्निक्षुदण्डं गजो यथा॥ ३१

भज्यमानस्य धनुषष्टङ्कारोऽभूत्तडित्स्वनः।
ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह॥ ३२

विचेलुर्दिग्गजास्तारा एजद्भूखण्डमण्डलम्।
तदैव बधिरीभूता पृथिव्यां जनमण्डली॥ ३३

कंसस्य हृदयं शब्दो विददार घटीद्वयम्।
तद्रक्षिणः प्रकुपिता उत्थिता आततायिनः॥ ३४

गृहीतुकामाः श्रीकृष्णं प्रत्यूचुर्बध्यतामिति।
अथ तानागतान् वीक्ष्य सशस्त्रान् बलकेशवौ॥ ३५

कोदण्डशकले नीत्वा जघ्नतुर्दुर्मदान् भृशम्।
शकलातिप्रहारेण केचिद्वीरास्तु मूर्च्छिताः॥ ३६

भिन्नपादा भिन्ननखाः केचिच्छिन्नांसबाहवः।
वीराः पञ्च सहस्त्राणि निपेतुर्भूमिमण्डले॥ ३७

वह धनुष सुनहरे बेल-बूटोंसे चित्रित था। उसकी लंबाई सात ताड़के बराबर थी। वह देखनेमें इन्द्रधनुष-सा जान पड़ता था। वह इतना अधिक भारी था कि पाँच हजार मनुष्य एकसाथ मिलकर ही उसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जा सकते थे। उसका निर्माण आठ धातुओंसे हुआ था। वह कठोर धनुष एक लाख भारके समान भारी था और चतुर्दशी तिथिको पुरवासियोंद्वारा पूजित हो यज्ञमण्डपमें स्थापित किया गया था। पूर्वकालमें भृगुकुलनन्दन परशुरामजी-ने राजा यदुको वह धनुष दिया था। माधव श्रीकृष्णने उसे देखा; वह कुंडली मारकर बैठे हुए शेषनागके समान प्रतीत होता था। लोग मना करते रह गये, किंतु श्रीकृष्णने हठपूर्वक उस धनुषको उठा लिया और पुरवासियोंके देखते-देखते खेल-खेलमें उसके ऊपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी॥ २७—३०॥

राजन्! फिर श्रीहरिने अपने भुजदण्डोंसे उस धनुषको कानतक खींचा और जैसे हाथी ईखके डंडेको तोड़ डालता है, उसी प्रकार उसको बीचसे खण्डित कर दिया। टूटते हुए उस धनुषकी टंकार बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान प्रतीत हुई। इससे 'भूः' आदि सात लोकों तथा सातों पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये, तारे टूटने लगे, भूखण्ड-मण्डल काँप उठा, पृथ्वीपर रहनेवाले लोगोंके कान तत्काल बहरे-से हो गये॥ ३१—३३॥

वह शब्द दो घड़ीतक कंसके हृदयको विदीर्ण करता रहा। उस धनुषकी रक्षा करनेवाले आततायी असुर अत्यन्त कुपित होकर उठे और श्रीकृष्णको पकड़ लेनेकी इच्छासे परस्पर कहने लगे—'बाँध लो इसे।' उन्हें सशस्त्र आक्रमण करते देख बलराम और श्रीकृष्णने धनुषके दोनों टुकडे लेकर उन दुर्मद दैत्योंको बड़े वेगसे पीटना आरम्भ किया। धनुष-खण्डोंके अत्यन्त प्रबल प्रहारसे कितने ही वीर तत्काल मूर्च्छित हो गये, किन्हींके पाँव टूटे, किन्हींके नख फूटे और कितनोंहीके कंधे एवं बाहुदण्ड खण्डित हो गये। इस प्रकार पाँच हजार दैत्यवीर भूमिपर प्राणशून्य होकर सो गये॥ ३४—३७॥

विचेलुर्माथुराः सर्वे दुद्रुवुस्तद्दिदृक्षवः।
पुर्यां कोलाहले जाते नृणां जातं महद्भयम्॥ ३८

भोजराजसभाच्छत्रमकस्मान्निपपात ह।
गोपालैः सबलः कृष्णो धावञ्चापस्थलान्नृप।
आययौ नन्दनिकटे सन्ध्याकालेऽतिभीतवत्॥ ३९

निरीक्ष्य गोविन्दसुरूपमद्भुतं
विमोहिता वै मथुरापुराङ्गनाः।
विस्त्रस्तवासः कबराः स्मराधयः
परस्परं प्राहुरिदं सखीजनम्॥ ४०

पुरन्ध्य ऊचुः

कन्दर्पकोटिद्युतिमाहरंस्त्वरं
स्वैरं चरन् वै मथुरापुरे हरिः।
निरीक्ष्यते याभिरतीव साक्षा-
दङ्गेषु सर्वेष्वपि नः समाविशत्॥ ४१

कुशला ऊचुः

क्रूराः स्त्रियः किं न हि सन्ति पत्तने
निरीक्ष्यते याभिरनङ्गमोहनः।
अङ्गेषु सर्वेष्वपि सर्वसुन्दरो
नास्माभिरानन्दमयो निरीक्ष्यते॥ ४२

कस्यैकदेशे मधुरत्वमीक्ष्यते
तत्रास्ति नेत्रं प्रपतत्पतङ्गवत्।
यस्त्वेव सर्वाङ्गमनोहरः सखि
स एव नेत्रेण कथं समीक्ष्यते॥ ४३

अङ्गे ह्यङ्गे सुन्दरे नन्दसूनोः
प्राप्तं प्राप्तं यत्र यत्रापि नेत्रम्।
तस्मात्तस्मान्नाम तल्लब्धसौख्यं
लावण्याब्धौ मग्नवल्लग्नचित्तम्॥ ४४

समस्त मथुरावासियोंमें हलचल मच गयी। बहुतसे लोग उस घटनाको देखनेके लिये दौड़े आये। नगरीमें सब ओर कोलाहल होने लगा और वहाँके लोगोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया। भोजराज कंसके सभामण्डपका छत्र अकस्मात् टूटकर गिर पड़ा॥ ३८$^{1}/_{2}$॥

नरेश्वर! ग्वाल-बालों तथा बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण संध्याके समय धनुषशालासे नन्दराजके निकट तेजीसे आ गये, मानो वे अत्यन्त डर गये हों। गोविन्दका वह अद्भुत सुन्दर रूप देखकर मथुरापुरीकी वनिताएँ विशेषरूपसे मोहित हो गयीं। उनके वस्त्र खिसक गये, गूँथी हुई चोटियाँ ढीली पड़ गयीं, हृदयमें प्रेमजनित पीड़ा जाग उठी और वे अपनी सखियोंसे परस्पर इस प्रकार कहने लगीं— ॥ ३९-४०॥

पुरस्त्रियाँ बोलीं—सखियो! करोड़ों कामदेवों-की कान्ति धारण किये श्रीहरि बड़ी उतावलीके साथ मथुरापुरीमें स्वच्छन्द विचरने लगे हैं और जिन किन्हीं युवतियोंने उन्हें देखा है, उन हम-जैसी सभी स्त्रियोंके समस्त अङ्गोंमें वे अनङ्ग बनकर समाविष्ट हो गये हैं॥ ४१॥

कुछ चतुरा स्त्रियोंने कहा—क्या इस पुरीमें ऐसी क्रूर स्त्रियाँ नहीं हैं, जो अनङ्गमोहन श्रीकृष्णके सारे अङ्गोंको घूर-घूरकर देखती हैं? हम सब उन परमानन्दमय सर्वाङ्गसुन्दर श्रीकृष्णको भर आँख नहीं निहारतीं? सखी! किसीके किसी एक ही अङ्गमें सौन्दर्य-माधुर्य दिखायी देता है और वहीं हमारे नेत्र पतंगके समान टूट पड़ते हैं; परंतु जो सर्वाङ्गसुन्दर एवं मनोहर हैं, उन्हें केवल नेत्रसे पूर्णतया कैसे देखा जा सकता है? नन्दनन्दनका अङ्ग-अङ्ग सुन्दर है; उसमें जहाँ-जहाँ भी दृष्टि पड़ती है, वहीं-वहीं परम सुख पाकर वहाँ-वहाँसे लौटनेका नाम नहीं लेती। वे लावण्यके महासागर हैं। उनमें हमारा चित्त किस तरह लगा है, मानो उसीमें डूब गया हो॥ ४२—४४॥

श्रीनारद उवाच

दृष्ट्वा दिने यं व्रजराजनन्दनं
स्वप्नेऽपि तद्वद्ददृशुः पुरस्त्रियः।
गोप्यः कथं तं मधुरं न सस्मरु-
र्याभिः कृतं मैथिल रासमण्डलम्॥ ४५

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! नगरकी जिन स्त्रियोंने दिनमें व्रजराजनन्दनको देखा, उन्होंने स्वप्नमें भी उन्हींका दर्शन किया। फिर जिन्होंने रासमण्डलमें उनके साथ रासलीला की, वे गोपाङ्गनाएँ उनके मधुर मनोहर रूपका कैसे निरन्तर स्मरण न करें!॥ ४५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मथुरादर्शनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मथुरादर्शन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

मल्लक्रीड़ा-महोत्सवकी तैयारी; रङ्गद्वारपर कुवलयापीडका वध तथा श्रीकृष्ण और बलरामका चाणूर और मुष्टिकके साथ मल्लयुद्धमें प्रवृत्त होना

श्रीनारद उवाच

रजकस्य शिरश्छेदं कंसो वै रक्षिणां वधम्।
धनुर्भङ्गं ततः श्रुत्वा परं त्रासमुपागमत्॥ १

तत्क्षणाद्दुर्निमित्तानि वामाङ्गस्फुरणानि च।
प्रपश्यन्नङ्गभङ्गानि न निद्रां प्राप दैत्यराट्॥ २

स्वप्ने प्रेतैः समायुक्तस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः।
जपास्त्रङ्महिषारूढो दक्षिणाशां जगाम सः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! रजकके मस्तकका छेदन, धनुषका भञ्जन तथा रक्षकोंके वधका समाचार सुनकर कंसको बड़ा भय हुआ। तत्काल उसके सामने अपशकुन प्रकट हुए। उसके बायें अङ्ग फड़कने लगे, उसे स्वप्नमें अपना अङ्ग-भङ्ग दिखायी देने लगा। इससे दैत्योंके राजा कंसको रातभर नींद नहीं आयी। उसने स्वप्नमें यह भी देखा था कि वह प्रेतोंसे घिरा हुआ है। उसके सारे शरीरमें तेल मला गया है तथा वह नंगधड़ंग जपाकुसुमकी माला पहने भैंसेपर चढ़कर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा है॥ १—३॥

प्रातःकाले समुत्थाय कार्यभारकराञ्जनान्।
आहूय कारयामास मल्लक्रीडामहोत्सवम्॥ ४

विशालाजिरसंयुक्ते हेमस्तम्भसमन्विते।
सभामण्डपदेशाग्रे रङ्गभूमिर्बभूव ह॥ ५

वितानैर्हेमसङ्काशैर्मुक्तादामविलम्बिभिः।
सोपानैर्हेममञ्चैश्च रङ्गभूमिर्बभौ नृप॥ ६

प्रातःकाल उठकर उसने कार्यकर्ताओंको बुलवाया और उन्हें मल्लक्रीड़ा-महोत्सव प्रारम्भ करनेकी आज्ञा दी। सभामण्डपके सामने ही विशाल प्राङ्गणसे युक्त स्थानपर रङ्गभूमिकी रचना की गयी। वहाँ सोनेके खंभे लगाये गये, सुनहरे चँदोवे ताने गये और उनमें मोतियोंकी लड़ियाँ लटका दी गयीं। नरेश्वर! सुन्दर सोपानों और सुवर्णमय मञ्चोंसे वह रङ्गभूमि बड़ी शोभा पाने लगी॥ ४—६॥

राजमञ्चे रत्नमये मकरन्दाचिते शुभे।
शक्रसिंहासनं तत्र सोपबर्हणमण्डलम्॥ ७

आतपत्रेण दिव्येन चन्द्रमण्डलचारुणा।
हंसाभैर्व्यजनैर्युक्तैश्चामरैर्वज्रमुष्टिभिः॥ ८

राजाके लिये रत्नमय सुन्दर मञ्च स्थापित किया गया। उसपर इत्र लगाया गया। उस मञ्चपर इन्द्रका सिंहासन लगा दिया गया। उसके ऊपर सुन्दर बिछावन और तकिये सुसज्जित कर दिये गये। चन्द्रमण्डलके समान मनोहर दिव्य छत्र तथा हीरेकी बनी हुई मूठवाले हंसकी-सी आभासे युक्त व्यजन

दशहस्तोच्छ्रितं शश्वद्विश्वकर्मविनिर्मितम्।
तदारुह्य बभौ कंसोऽद्रिशृङ्गे मृगराडिव॥ ९

गायकाः प्रजगुस्तत्र ननृतुर्वारयोषितः।
नेदुर्मृदङ्गपटहतालभेर्यानकादयः ॥ १०

राजानो मण्डलेशाश्च पौरा जानपदा नृप।
ददृशुर्मल्लयुद्धं ते मञ्चे मञ्चे समास्थिताः॥ ११

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च।
व्यायाममुद्‌गरैर्युक्ता युयुधुस्ते परस्परम्॥ १२

नन्दराजादयो गोपाः कंसाहूता नताननाः।
दत्वा बलिं परं तस्मा एकस्मिन् मञ्च आश्रिताः॥ १३

बाणासुरजरासन्धनरकाणां पुरान्नृप।
अन्येषां शम्बरादीनां सकाशाद्भूभुजां तथा॥ १४

बलयश्चाययू राजन् यदुराजाय तत्र वै।
अथ तौ रामकृष्णौ द्वौ मायाबालकविग्रहौ॥ १५

मल्ललीलादर्शनार्थं ययतू रङ्गमण्डपम्।
गोमूत्रचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखम् ।
स्रवन्मदमहामत्तं रत्नकुण्डलमण्डितम्॥ १६

गजं कुवलयापीडं रङ्गद्वारमवस्थितम्।
वीक्ष्य कृष्णो महामात्रं प्राह गम्भीरया गिरा॥ १७

आकर्षयाङ्ग नागेन्द्रं मार्गं कुरु ममेच्छया।
नो चेत्त्वां पातयिष्यामि सनागं भूमिमण्डले॥ १८

महामात्रस्तदा क्रुद्धो नोदयामास तं गजम्।
चीत्कारमुत्कटं दिक्षु कुर्वन्तं नन्दसूनवे॥ १९

गृहीत्वा तं हरिं सद्यः शुण्डादण्डेन नागराट्।
उज्जहार ततस्तस्मान्निर्गतो भारभृद्धरिः॥ २०

और चामरोंसे सुशोभित विश्वकर्माद्वारा रचित वह दस हाथ ऊँचा सिंहासन बड़ा ही चित्ताकर्षक था। उसपर आरूढ़ हो राजा कंस पर्वत-शिखरपर बैठे हुए सिंहके समान शोभा पा रहा था। वहाँ गायकोंद्वारा गीत गाये जाने लगे, वाराङ्गनाएँ नृत्य करने लगीं और मृदङ्ग, पटह, ताल, भेरी तथा आनक आदि बाजे बजने लगे॥ ७—१०॥

राजन्! छोटे-छोटे मण्डलोंके शासक नरेश तथा नगर और जनपदके निवासी बड़े लोग पृथक्-पृथक् मञ्चपर बैठकर मल्लयुद्ध देख रहे थे। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि पहलवान व्यायामोपयोगी मुद्‌गरोंसे युक्त हो परस्पर युद्धका अभ्यास कर रहे थे। कंसके द्वारा बुलाये गये नन्दराज आदि गोप मस्तक झुकाये राजाको उत्तम भेंट अर्पित करके एक-एक मञ्चका आश्रय ले बैठ गये। नरेश्वर! वहाँ यदुराज कंसके लिये बाणासुर, जरासंध और नरकासुरके नगरसे भी उपहार आये। अन्य जो शम्बर आदि भूपाल थे, उनके पाससे भी बहुत-सी भेंट-सामग्रियाँ आयीं॥ ११—१४½॥

तदनन्तर मायासे बालकरूप धारण किये बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई मल्लोंके खेल देखनेके लिये उस रङ्गशालामें आये। रङ्गमण्डपके द्वारपर कुवलयापीड नामक हाथी खड़ा था, जिसके कुम्भस्थलपर गोमूत्रमें सने हुए सिन्दूर और कस्तूरीसे पत्र-रचना की गयी थी। रत्नमय कुण्डलोंसे मण्डित उस महामत्त गजराजके गण्डस्थलसे मद झर रहा था। द्वारपर हाथीको खड़ा देख श्रीकृष्णने महावतसे गम्भीर वाणीमें कहा—'अरे! इस गजराजको दूर हटा ले और मेरी इच्छाके अनुसार मार्ग दे दे। नहीं तो तुझको और तेरे हाथीको अभी भूतलपर मार गिराऊँगा'॥ १५—१८॥

तब कुपित हुए महावतने सम्पूर्ण दिशाओंमें जोर-जोरसे चिग्घाड़ते हुए उस मतवाले हाथीको नन्दनन्दनपर आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़ाया। गजराजने तत्काल ही श्रीहरिको सूँड़से पकड़कर उठा लिया। परंतु अपना भार अधिक बढ़ाकर श्रीहरि उसकी पकड़से बाहर निकल गये॥ १९-२०॥

तत्पादेषु विलीनोऽभूत्प्रभ्रमन् सन्नितस्ततः।
वृन्दावननिकुञ्जेषु वृक्षेषु च यथा हरिः॥ २१

करे जग्राह तं नागः शुण्डादण्डेन चाङ्घ्रिषु।
निष्पीड्य शुण्डां हस्ताभ्यां हरिः पश्चाद्विनिर्गतः॥ २२

तिर्यग्भूतश्च तं नागो गृहीतुमुपचक्रमे।
मुष्टिना तं घातयित्वा पुरो दुद्राव माधवः॥ २३

तमन्वधावन्नागेन्द्रो मथुरायां विदेहराट्।
कोलाहले तदा जाते हरिस्तस्मादितो ययौ॥ २४

पुच्छे गृहीत्वा तं नागं बलदेवो महाबलः।
चकर्ष भुजदण्डाभ्यां फणिनं गरुडो यथा॥ २५

प्रहसन् भगवान् कृष्णो गृहीत्वा तं करे बलात्।
चकर्ष भुजदण्डाभ्यां कूपरज्जुं यथा नरः॥ २६

द्वयोराकर्षणान्नागो विह्वलोऽभून्नृपेश्वर।
महामात्रास्तदा सप्त रुरुहुस्तं गजं बलात्॥ २७

नीता गजास्तथा चान्यैः कृष्णं हन्तुं शतत्रयम्।
अङ्कुशास्फालनात्क्रुद्धं मत्तेभं पुनरागतम्॥ २८

श्रीकृष्णो भगवान् साक्षाद् बलदेवस्य पश्यतः॥ २९

शुण्डादण्डे सङ्गृहीत्वा भ्रामयित्वा त्वितस्ततः।
पातयामास भूपृष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः॥ ३०

दूरे प्रपतितास्तस्य महामात्रा इतस्ततः।
सतां प्रपश्यतां नागः सद्यो वै निधनं गतः॥ ३१

तज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं जातं विदेहराट्।
दन्तावुत्पाट्य तस्यापि रामकृष्णौ महाबलौ।
निजघ्नतुर्महामात्रान् मृगान् केसरिणो यथा॥ ३२

जैसे वृन्दावनके निकुञ्जोंमें श्रीहरि इधर-उधर लुकते-छिपते थे, उसी प्रकार इधर-उधर घूमकर वे कुवलयापीड़के पैरोंके बीचमें छिप गये। हाथीने अपनी सूँड़ बढ़ाकर उन्हें पकड़ लिया, किंतु उसकी सूँड़को दोनों हाथोंसे दबाकर श्रीहरि पीछेकी ओरसे निकल गये। तब हाथीने बगलकी दिशामें घूमकर उन्हें पकड़नेकी चेष्टा की, किंतु माधव उसके मस्तकपर मुक्केसे प्रहार करके आगेकी ओर भागे॥ २१—२३॥

विदेहराज! उस गजराजने भागते हुए श्रीहरिका पीछा किया। उस समय मथुरापुरीमें कोहराम मच गया। फिर श्रीहरि चक्कर देकर इधर पीछेकी ओर निकल आये। उधर महाबली बलदेवने, जैसे गरुड सर्पको पकड़ते हैं, उसी प्रकार अपने बाहुदण्डोंसे उसकी पूँछ पकड़कर उसे पीछेकी ओर खींचा। तब हँसते हुए भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे बलपूर्वक उसकी सूँड़ पकड़कर उसी तरह आगेकी ओर खींचना आरम्भ किया, जैसे मनुष्य कूएँसे रस्सीको खींचता है॥ २४—२६॥

नृपेश्वर! उन दोनों भाइयोंके आकर्षणसे वह हाथी व्याकुल हो उठा। तब सात महावत बलपूर्वक उस हाथीपर चढ़ गये। साथ ही दूसरे महावत भी श्रीकृष्णका वध करनेके लिये तीन सौ हाथी वहाँ ले आये। महावतोंके अङ्कुशकी चोट करनेसे कुपित हुआ वह मतवाला हाथी पुनः श्रीकृष्णकी ओर झपटा॥ २७-२८॥

तब बलदेवजीके देखते-देखते साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने उसकी सूँड़ पकड़ ली और इधर-उधर घुमाकर उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर दे मारा, जैसे कोई बालक कमण्डलु पटक दे। उसपर चढ़े हुए सातों महावत इधर-उधर दूर जा गिरे और वहाँ जुटे हुए साधु-पुरुषोंके देखते-देखते वह हाथी प्राणशून्य हो गया। विदेहराज! उसके शरीरसे एक ज्योति निकली और श्रीघनश्याममें विलीन हो गयी॥ २९—३१ १/२॥

महाबली बलराम और श्रीकृष्णने उस हाथीके दोनों दाँत उखाड़ लिये और जैसे सिंहके दो बच्चे बहुत-से मृगोंका संहार कर डालें, उसी प्रकार समस्त महावतोंको मौतके घाट उतार दिया॥ ३२॥

द्विपे हतेऽपि ये चान्ये महामात्रा इतस्ततः।
विदुद्रुवुर्यथा मेघा वर्षाकाले गते सति॥ ३३

एवं हत्वा द्विपं गोपैः शेषैस्तैः प्रेक्षणोत्सुकैः।
जयारावै रामकृष्णौ श्रमवारिमदाङ्कितौ॥ ३४

परिश्रमारुणमुखौ रङ्गं विविशतुस्त्वरम्।
दन्तपाणी महावेगौ यथाशामनिलानलौ॥ ३५

मल्लाश्च मल्लं च नरा नरेन्द्रं
स्त्रियः स्मरं गोपगणा व्रजेशम्।
पिता सुतं दण्डधरं ह्यसन्तो
मृत्युं च कंसो विबुधा विराजम्॥ ३६

तत्त्वं परं योगिवराश्च भोजा
देवं तदा रङ्गगतं बलेन।
पृथक् पृथग्भावनया ह्यपश्यन्
सर्वे जनास्तं परिपूर्णदेवम्॥ ३७

हतं द्विपं वीक्ष्य च तौ महाबलौ
कंसो मनस्वी भयमाप चेतसि।
मञ्चस्थिता हर्षितमानसाश्च
चन्द्रं चकोरा इव ते सुखं ययुः॥ ३८

कर्णे च कर्णं विनिधाय नागरा
महोत्सुकास्ते ह्यवदन् परस्परम्।
एतौ हि साक्षात्परमेश्वरौ परौ
बभूवतुर्वै वसुदेवनन्दनौ॥ ३९

अहोऽतिरम्यं व्रजमण्डलं परं
यत्रैष साक्षाद्विचचार माधवः।
कृत्वा हि यद्दर्शनमद्य दुर्लभं
वयं कृतार्थास्तु भवेम सर्वतः॥ ४०

हाथीके मारे जानेपर जो अन्य महावत बचे थे, वे सब इधर-उधर भागकर उसी प्रकार छिप गये, जैसे वर्षाकाल व्यतीत हो जानेपर बादल जहाँ-के-तहाँ विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार कुवलयापीडका वध करके पसीनेकी बूँदों और हाथीके मदसे अङ्कित हुए बलराम और श्रीकृष्ण, दोनों बन्धु गोपों तथा शेष दर्शनार्थियोंके मुखसे अपनी जय-जयकार सुनते हुए बड़ी उतावलीके साथ रङ्गशालामें प्रविष्ट हुए। उस समय उन दोनोंके मुख अधिक परिश्रमके कारण लाल हो गये थे, उनके हाथोंमें हाथीके दाँत थे। वे दोनों दिशाओंमें एक साथ चलनेवाले अनिल और अनलकी भाँति बड़े वेगसे रङ्गभूमिमें पहुँचे॥ ३३—३५॥

उस समय मल्लोंने उन्हें महामल्ल समझा और नरोंने नरेन्द्र। नारियोंने उन्हें कामदेव माना और गोपगणोंने व्रजका स्वामी। पिताकी दृष्टिमें वे पुत्र जान पड़े और दुष्टोंको दण्डधारी यमराजके समान प्रतीत हुए। कंसने उनको अपनी मृत्यु समझा और ज्ञानी पुरुषोंने उन्हें विराट् ब्रह्मके रूपमें देखा। उस समय बलरामके साथ रङ्गशालामें गये हुए श्रीकृष्णको भोजदेशीय योगिशिरोमणि महात्मा पुरुषोंने परमतत्त्वके रूपमें अनुभव किया। सभी तरहके लोगोंने अपनी पृथक्-पृथक् भावनाके अनुसार उन परिपूर्णदेव श्रीहरिको विभिन्न रूपोंमें देखा और समझा॥ ३६-३७॥

हाथीको मारा गया सुनकर और उन महाबली बन्धुओंको देखकर मनस्वी कंस मन-ही-मन भयभीत हो उठा तथा मञ्चोंपर बैठे हुए दूसरे-दूसरे लोग मन-ही-मन हर्षसे उल्लसित हो उठे और जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर सुखी होते हैं, उसी प्रकार वे उन्हें देखकर परमानन्दमें निमग्न हो गये। नगरके लोग अत्यन्त उत्सुक हो एक-दूसरेके कान-से-कान सटाकर परस्पर कहने लगे—ये दोनों वसुदेवनन्दन साक्षात् परमपुरुष परमेश्वर हैं। अहो! व्रजमण्डल अत्यन्त रमणीय एवं श्रेष्ठ है, जहाँ ये साक्षात् माधव विचरते रहे हैं और जिनका आज दुर्लभ दर्शन पाकर हम सर्वतोभावसे कृतार्थ हो रहे हैं॥ ३८—४०॥

श्रीनारद उवाच

वदत्सु पौरलोकेषु नदत्तूर्येषु मैथिल।
चाणूरस्तावुपव्रज्य रामकृष्णावुवाच ह॥ ४१

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिल! जब पुरवासी लोग इस प्रकार बात कर रहे थे और भाँति-भाँतिके बाजे बज रहे थे, उस समय चाणूरने बलराम और श्रीकृष्ण—दोनोंके पास जाकर कहा— ॥ ४१ ॥

चाणूर उवाच

हे राम हे कृष्ण युवां महाबलौ
राज्ञः पुरो वै कुरुतं मृधं बलात्।
प्रहर्षिते राजनि चेद्यदूत्तमे
किं किं न भद्रं भवतीह वश्च नः॥ ४२

चाणूर बोला—हे राम! हे कृष्ण! आप दोनों बड़े बलवान् हैं, अतः महाराजके सामने अपने बलका प्रदर्शन करते हुए युद्ध कीजिये। यदुकुलतिलक महाराज कंस यदि इस युद्धसे प्रसन्न हो गये तो आपलोगोंकी और हमारी कौन-कौन-सी भलाई नहीं होगी? (अर्थात् सब होगी) ॥ ४२ ॥

श्रीभगवानुवाच

पुरैव भद्रं नृपतेः प्रसादतो
बाला वयं तुल्यबलैश्च बालकैः।
भूयान्मृधो नो बलवान् यथोचित-
मधर्मयुद्धं किल मा भवेदिह॥ ४३

श्रीभगवान्ने कहा—राजाके कृपा-प्रसादसे तो हमारी पहलेसे ही बहुत भलाई हो रही है। किंतु इतना ध्यान रखो कि हमलोग बालक हैं; अतः समान बलवाले बालकोंके साथ ही हमारा युद्ध होगा, किसी बलवान्के साथ नहीं। इसकी यथोचित व्यवस्था होनी चाहिये, यहाँ अधर्म-युद्ध कदापि न होने पाये ॥ ४३ ॥

चाणूर उवाच

भवान्न बालो न च वा किशोरो
बलश्च साक्षाद्बलिनां बलीयान्।
सहस्रमत्तेभबलं दधानो
द्विपो भवद्भ्यां निहतः सलीलम्॥ ४४

चाणूरने कहा—न तो आप बालक हैं और न बलरामजी ही किशोर हैं। आप साक्षात् बलवानोंमें भी बलिष्ठ हैं; क्योंकि सहस्र मतवाले हाथियोंका बल धारण करनेवाले कुवलयापीडको आप दोनोंने खिलवाड़में ही मार डाला है ॥ ४४ ॥

श्रीनारद उवाच

एवं तस्य वचः श्रुत्वा भगवान् वृजिनार्दनः।
चाणूरेणापि युयुधे मुष्टिकेन बलो बली॥ ४५

आकर्षणं नोदनं च भुजाभ्यां भुजदण्डयोः।
चक्रतुः पश्यतां नृणां गजाविव जिगीषया॥ ४६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! चाणूरकी ऐसी बात सुनकर अघमर्दन भगवान् श्रीकृष्ण चाणूरके साथ और बलवान् बलरामजी मुष्टिकके साथ मल्लयुद्ध करने लगे। वे एक-दूसरेके भुजदण्डोंको दोनों भुजाओंसे पकड़कर अपनी ओर खींचते और पीछे ढकेलते थे। लोगोंके देखते-देखते वे दोनों भाई विजयकी इच्छासे लड़नेवाले दो हाथियोंकी भाँति अपने शत्रुओंसे भिड़ गये ॥ ४५-४६ ॥

हस्ताभ्यां वपुरुत्थाप्य चाणूरस्य हरिः स्वयम्।
अतोलयद्देहभारं पुण्यभारं यथा विधिः॥ ४७

चाणूरस्तं हरिं देवं करेणैकेन लीलया।
उज्जहार महावीरो भूखण्डं नागराडिव॥ ४८

साक्षात् श्रीहरिने चाणूरके शरीरको दोनों हाथोंसे उठाकर उसके देहभारको उसी प्रकार तौला, जैसे ब्रह्माजी पुण्यात्माओंके पुण्यभारको तौला करते हैं। फिर महावीर चाणूरने भगवान् श्रीहरिको एक ही हाथसे उसी प्रकार लीलापूर्वक उठा लिया, जैसे नागराज शेष भूमण्डलको अपने एकही फनपर धारण करते हैं ॥ ४७-४८ ॥

ग्रीवायां किल चाणूरं भुजवेगेन माधवः।
कट्यां चोद्धृत्य सहसा पातयामास भूतले॥ ४९

हस्तैश्च जानुभिः पादैर्भुजोरोऽङ्गुलिमुष्टिभिः।
जघ्नतुः कृष्णचाणूरौ तथैव बलमुष्टिकौ॥ ५०

श्रमवारियुते दृष्ट्वा श्रीमुखे रामकृष्णयोः।
सानुकम्पास्तदा प्राहुर्गवाक्षस्था नृपस्त्रियः॥ ५१

स्त्रिय ऊचुः

अहो अधर्मः सुमहत्सभायां
जातः पुरो राजनि वर्तमाने।
क्व वज्रतुल्याङ्गवृतौ हि मल्लौ
क्व पुष्पतुल्यौ बत रामकृष्णौ॥ ५२

अहो ह्यभाग्यं हि पुरौकसां नो
युद्धे तयोर्दर्शनमद्य जातम्।
अहोऽतिधन्यं बत भूरिभाग्यं
वनौकसां रासरसेन जातम्॥ ५३

अहो स्थिते राजनि दुष्टचित्ते
न कोऽपि वक्तुं क्षम एव सख्यः।
तस्माद्धि नः पुण्यबलेन चेत्तौ
त्वरं मृधे वै जयतामरीन् स्वान्॥ ५४

माधवने अपनी भुजाओंके वेगसे चाणूरकी गर्दन और कमरमें हाथ लगाकर उसे उठा लिया और सहसा पृथ्वीपर दे मारा। एकओर श्रीकृष्ण और चाणूर तथा दूसरी ओर बलराम और मुष्टिक एक-दूसरेको हाथों, घुटनों, पैरों, भुजाओं, छातियों, अङ्गुलियों और मुक्कोंसे मारने लगे। बलराम और श्रीकृष्णके मुखोंपर परिश्रमजनित पसीनेकी बूँदें देखकर दयासे द्रवित हो उस समय महलकी खिड़कियोंके पास बैठी हुई राजरानियाँ आपसमें कहने लगीं— ॥ ४९—५१ ॥

स्त्रियाँ बोलीं—अहो! राजाके मौजूद रहते उनके सामने सभामें यह बहुत बड़ा अधर्म हो रहा है! कहाँ तो वज्रके समान सुदृढ़ शरीरवाले वे दोनों पहलवान और कहाँ फूलके सदृश सुकुमार बलराम और कृष्ण! अहो! हम मथुरापुरवासियोंका कैसा अभाग्य है कि हमें आज इतने दिनों बाद इनका दर्शन भी हुआ तो युद्धके अवसरपर। वनवासी गोपोंका महान् सौभाग्य अत्यन्त धन्यवादके योग्य है, जिन्हें रास-रसके साथ श्रीकृष्ण-बलरामका दर्शन होता आ रहा है। सखियो! आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस दुष्ट-चित्त राजाके रहते हुए कोई भी कुछ कहनेको समर्थ नहीं हो सकता। इसलिये हमारे पुण्यके बलसे ये दोनों बन्धु शीघ्र ही अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें॥ ५२—५४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कुवलयापीडवधो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कुवलयापीडवध' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लोंका तथा कंस और उसके भाइयोंका वध

श्रीनारद उवाच

आर्द्रचित्तं नन्दराजं वनितानां मनोरथम्।
स्मृत्वा शत्रून् हन्तुकामश्चक्रे युद्धं बलाद्धरिः॥ १

गृहीत्वा भुजदण्डाभ्यां चाणूरं गगने बलात्।
चिक्षेप सहसा कृष्णो वातः पद्ममिवोद्धृतम्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! नन्दराजका चित्त करुणासे द्रवित हो रहा था। उनकी ओर ध्यान देकर तथा वनिताओंके मनोरथको याद करके श्रीहरिने शत्रुओंको मार डालनेका संकल्प मनमें लेकर बलपूर्वक युद्ध आरम्भ किया। चाणूरको भुजदण्डोंसे उठाकर श्रीकृष्णने बलपूर्वक अकस्मात् आकाशमें उसी प्रकार फेंक दिया, जैसे हवाने उखड़े हुए कमलको सहसा उड़ा दिया हो॥ १-२॥

आकाशात्पतितः सोऽपि तारकेव ह्यधोमुखः।
उत्थाय मुष्टिना कृष्णं ताडयामास वेगतः॥ ३

तस्य मुष्टिप्रहारेण न चचाल परात्परः।
सद्यो गृहीत्वा चाणूरं पातयामास भूतले॥ ४

भिन्नदन्तस्तु चाणूरः क्रोधयुक्तो मदोत्कटः।
मुष्टिद्वयेन श्रीकृष्णं तताड हृदि मैथिल॥ ५

गृहीत्वा करयोस्तं वै कराभ्यां भगवान् स्वयम्।
कंसस्याग्रे भ्रामयित्वा सर्वेषां पश्यतां नृप॥ ६

पातयामास भूपृष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः।
श्रीकृष्णस्य प्रहारेण चाणूरो भिन्नमस्तकः॥ ७

उद्वमन् रुधिरं राजन् सद्यो वै निधनं गतः।
तथैव मुष्टिकं मल्लं मुष्टिभिर्युधि दुर्गमम्॥ ८

धृत्वाङ्घ्रौ भ्रामयित्वा खे बलदेवो महाबलः।
पातयामास भूपृष्ठे फणिनं गरुडो यथा।
मुष्टिको निधनं प्राप प्रोद्वमन् रुधिरं मुखात्॥ ९

कूटं समागतं वीक्ष्य बलदेवो महाबलः।
मुष्टिना पातयामास वज्रेणेन्द्रो यथा गिरिम्॥ १०

प्राप्तं शलं नन्दसूनुर्लत्तया तं तताड ह।
तीक्ष्णया तुण्डया राजन् कद्रुजं गरुडो यथा॥ ११

गृहीत्वा तोशलं कृष्णो मध्यतः संविदार्य च।
प्राक्षिपत्कंसमञ्चाग्रे विटपं सिन्धुरो यथा॥ १२

एते निपातिता रङ्गे सद्यो वै निधनं गताः।
तेषां ज्योतींषि वैकुण्ठे विविशुः पश्यतां सताम्॥ १३

एवं श्रीरामकृष्णाभ्यां मल्लेषु निहतेषु च।
शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्ला भयार्ता जीवनेच्छया॥ १४

आकाशसे नीचे मुँह किये वह पृथ्वीपर इतने वेगसे गिरा, मानो कोई तारा टूट पड़ा हो। फिर उठकर चाणूरने श्रीकृष्णको जोरसे एक मुक्का मारा। उसके मुक्केकी मारसे परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण विचलित नहीं हुए। उन्होंने तत्काल चाणूरको उठाकर पृथ्वीपर पटक दिया। चाणूरके दाँत टूट गये। वह मदोन्मत्त मल्ल क्रोधसे तमतमा उठा। मैथिल! उसने श्रीकृष्णकी छातीपर दोनों हाथोंसे मुक्के मारे॥ ३—५॥

नरेश्वर! तब दोनों हाथोंसे उसके दोनों हाथ पकड़कर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने कंसके आगे उसे घुमाना आरम्भ किया और सबके देखते-देखते पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे किसी बालकने कमण्डलु पटक दिया हो। श्रीकृष्णके इस प्रहारसे चाणूर मल्लका मस्तक फट गया। राजन्! वह रक्त वमन करता हुआ तत्काल मर गया॥ ६—७ १/२॥

इसी प्रकार महाबली बलदेवने रणदुर्गम मल्ल मुष्टिकके पैरको मुट्ठीसे पकड़कर आकाशमें घुमाया और जैसे गरुड सर्पको पटक दे, उसी प्रकार उसे पृथ्वीपर दे मारा। फिर तो मुष्टिक मुँहसे खून उगलता हुआ कालके गालमें चला गया। तत्पश्चात् कूटको सामने आया देख महाबली बलदेवने एक ही मुक्केसे उसी प्रकार मार गिराया, जैसे देवराज इन्द्रने वज्रसे किसी पर्वतको धराशायी कर दिया हो॥ ८—१०॥

राजन्! जैसे गरुड अपनी तीखी चोंचसे नागको घायल कर देता है, उसी प्रकार सामने आये हुए शलको नन्दनन्दनने लातसे मार गिराया। फिर तोशलको पकड़कर श्रीकृष्णने उसे बीचसे ही चीर डाला और जैसे हाथी किसी पेड़की डालीको तोड़ फेंके, उसी प्रकार उसे कंसके मञ्चके सामने फेंक दिया। ये सब मल्ल अखाड़ेमें गिराये जाते ही मौतके मुखमें चले गये और उनके शरीरसे निकली हुई ज्योतियाँ सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान् वैकुण्ठ (श्रीकृष्ण)-में समा गयीं॥ ११—१३॥

इस प्रकार बलराम और श्रीकृष्णके द्वारा अनेक मल्लोंके मारे जानेपर शेष मल्ल भयसे व्याकुल हो प्राण बचानेकी इच्छासे भाग खड़े हुए॥ १४॥

श्रीदामादीन् वयस्यांश्च गोपानाकृष्य माधवः।
तैः सार्धं युद्धमारेभे सर्वेषां पश्यतां सताम्॥ १५

किरीटकुण्डलधरौ रामकृष्णौ सहार्भकैः।
विहरन्तौ वीक्ष्य रङ्गे विसिस्मुः पुरवासिनः॥ १६

कंसं विना सर्वमुखाज्जयशब्दो विनिर्गतः।
साधु साध्विति वादोऽभूत्नेदुर्दुन्दुभयस्ततः॥ १७

स्वस्याजयं वीक्ष्य कंसो महाक्रोधसमाकुलः।
वर्जयित्वा तूर्यघोषं प्राह प्रस्फुरिताधरः॥ १८

कंस उवाच

दुर्बुद्धियुक्तौ वसुदेवनन्दनौ
प्रसह्य निःसारयताशु मत्पुरात्।
हरन्तु सर्वं व्रजवासिनां धनं
बध्नीत नन्दं सहसातिदुर्मतिम्॥ १९

अद्योग्रसेनस्य पितुः कुबुद्धेः
शौरेः शिरश्चाशु हि छिन्धि छिन्धि।
कौ यत्र तत्रापि तथात्र वृष्णि-
जातान् सुरांशान् किल सूदयध्वम्॥ २०

श्रीनारद उवाच

एवं विकत्थमानस्य कंसस्य यदुनन्दनः।
सहसोत्पत्य तं मञ्चमारुहत्क्रोधपूरितः॥ २१

मृत्युं समागतं वीक्ष्य मञ्चादुत्थाय सत्वरम्।
मदोद्धतो भर्त्सयंस्तं जगृहे खड्गचर्मणी॥ २२

अग्रहीत्सहसा कंसं दोर्भ्यां चर्मासिसंयुतम्।
यथा तुण्डविभागाभ्यां सविषं फणिनं विराट्॥ २३

पतत्खड्गश्चलच्चर्मा भुजबन्धाद्बलाद्बली।
विनिर्ययौ तार्क्ष्यतुण्डात्पुण्डरीको यथा फणी॥ २४

तदनन्तर श्रीदामा आदि अपने मित्र गोपोंको खींचकर माधवने उनके साथ समस्त सज्जनोंके सामने मल्लयुद्धका खेल आरम्भ किया। किरीट और कुण्डलधारी बलराम तथा श्रीकृष्णको ग्वाल-बालोंके साथ रङ्गभूमिमें विहार करते देख समस्त पुरवासी विस्मयसे चकित हो उठे। कंसके सिवा अन्य सब लोगोंके मुँहसे 'जय हो! जय हो' की बोली निकलने लगी। सब ओरसे साधुवाद सुनायी देने लगा और नगारे बज उठे। अपनी पराजय देख कंस अत्यन्त क्रोधसे भर गया और बाजे बंद करनेकी आज्ञा देकर फड़कते हुए अधरोंसे बोला—॥ १५—१८॥

कंसने कहा—वसुदेवके दोनों पुत्र खोटी बुद्धि और खोटे विचारवाले हैं। इन दोनोंको हठात् और शीघ्र मेरे नगरसे निकाल दो। व्रजवासियोंका सारा धन हर लो और दुर्बुद्धि नन्दको सहसा कैद कर लो। आज मेरे दुर्बुद्धि पिता शूरपुत्र उग्रसेनका भी मस्तक तुरंत काट लो, काट लो। पृथ्वीपर जहाँ-कहीं भी और यहाँ भी जो-जो वृष्णिवंशी यादव मिल जायँ, उन सबको देवताओंके अंशसे उत्पन्न समझकर मार डालो॥ १९-२०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—जब कंस इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें बना रहा था, उस समय यदुनन्दन श्रीकृष्ण सहसा क्रोधसे भर गये और उछलकर उसके मञ्चके ऊपर चढ़ गये। अपनी मूर्तिमान् मृत्युको आता देख कंस तुरंत उठकर खड़ा हो गया और उस मदमत्त नरेशने श्रीकृष्णको डाँट बताते हुए ढाल-तलवार हाथमें ले ली। श्रीकृष्णने ढाल-तलवार लिये हुए कंसको सहसा दोनों हाथोंसे उसी प्रकार पकड़ लिया, जैसे पक्षिराज गरुडने अपनी चोंचके दो भागोंद्वारा किसी विषधर सर्पको दबा लिया हो। कंसके हाथसे तलवार छूटकर गिर गयी। ढाल भी दूर जा पड़ी। वह बलवान् वीर बल लगाकर श्रीकृष्णकी भुजाओंके बन्धनसे उसी प्रकार निकल गया, जैसे पुण्डरीक नाग गरुडकी चोंचसे छूट निकला हो॥ २१—२४॥

मञ्चे तौ बलिनौ वेगान्मर्दयन्तौ परस्परम्।
शैलशृङ्गे यथा सिंहौ शुशुभाते यथातथम्॥ २५

उत्पतन्तं बलात्कंसं शतहस्तं महाम्बरे।
अग्रहीच्चोत्पतन् कृष्णः श्येनं श्येनो यथाम्बरे॥ २६

गृहीत्वा भुजदण्डाभ्यां प्रचण्डं दैत्यपुङ्गवम्।
त्रैलोक्यबलधृग्देवो भ्रामयित्वा त्वितस्ततः॥ २७

आकाशात्पातयामास मञ्चोपरि रुषान्वितः।
भग्नदण्डोऽभवन् मञ्चस्तडित्पाते यथा द्रुमः॥ २८

पतितोऽपि स वज्राङ्गः किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
सहसोत्थाय युयुधे श्रीकृष्णेन महात्मना॥ २९

नीत्वा तं भुजदण्डाभ्यां मञ्चे क्षिप्त्वा पुनः प्रभुः।
आरुह्य हृदयं तस्य मौलिं जग्राह माधवः॥ ३०

सद्यः प्रगृह्य केशेषु रङ्गोपरि हरिः स्वयम्।
मञ्चात्तं पातयामास शैलाद्गण्डशिलामिव॥ ३१

तस्योपरिष्ठाच्छ्रीकृष्णः सर्वाधारः सनातनः।
निपपात स्वयं वेगादनन्तोऽनन्तविक्रमः॥ ३२

इत्थं द्वयोर्निपातेन निम्नं भूखण्डमण्डलम्।
स्थालीव सहसा राजञ्चकम्पे घटिकाद्वयम्॥ ३३

सम्परेतं भोजराजं भूमौ तं विचकर्ष ह।
यथा मृगेन्द्रो नागेन्द्रं सर्वेषां पश्यतां नृप॥ ३४

हाहाकारस्तदैवासीद्धावतां भूभुजां नृप।
वैरभावेन देवेशं भजन् कंसो महाबलः।
जगाम तस्य सारूप्यं भृङ्गिणः कीटको यथा॥ ३५

वे दोनों बलवान् वीर उस मञ्चपर वेगसे एक-दूसरेको रौंदते हुए उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे पर्वतके शिखरपर दो सिंह परस्पर जूझते हुए शोभा पा रहे हों। कंस बलपूर्वक उछलकर सौ हाथ ऊपर आकाशमें चला गया। फिर श्रीकृष्णने भी उछलकर उसे इस प्रकार पकड़ लिया, मानो एक बाज पक्षीने दूसरे बाज पक्षीको आकाशमें धर दबोचा हो॥ २५-२६॥

उस प्रचण्ड दैत्यपुंगव कंसको भुजदण्डोंसे पकड़कर तीनों लोकोंका बल धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने चारों ओर घुमाना आरम्भ किया। फिर रोषसे भरकर उन्होंने कंसको आकाशसे उस मञ्चपर ही दे मारा। मञ्चके स्तम्भ-दण्ड उसी प्रकार टूट गये, जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष टूट जाता है। आकाशसे नीचे गिरनेपर भी वज्रतुल्य अङ्गोंवाला कंस मन-ही-मन किंचित् व्याकुल होकर सहसा उठ गया और महात्मा श्रीकृष्ण-के साथ युद्ध करने लगा॥ २७—२९॥

भगवान् गोविन्दने पुनः उसे बाहुदण्डोंद्वारा उठाकर मञ्चपर फेंक दिया और उसकी छातीपर चढ़कर माधवने उसका मुकुट उतार लिया। फिर तुरंत उसके केश पकड़कर स्वयं श्रीहरिने उसे मञ्चसे रङ्गभूमिमें उसी प्रकार पटक दिया, जैसे किसीने शैल-शिखरसे किसी भारी शिलाखण्डको नीचे गिरा दिया हो। फिर सबके आधारभूत, अनन्त-पराक्रमी, आदि-अन्तरहित, सनातन भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भी उसके ऊपर वेगसे कूद पड़े॥ ३०—३२॥

राजन्! इस प्रकार उन दोनोंके गिरनेसे वहाँका भूमण्डल सहसा थालीकी भाँति गहरा हो गया और दो घड़ीतक धरती काँपती रही। नरेश्वर! श्रीकृष्णने उस मरे हुए भोजराजके शवको सबके देखते-देखते वहाँकी भूमिपर उसी प्रकार घसीटा, जैसे सिंहने मरे हुए गजराजको खींचा हो। नरेश्वर! उस समय इधर-उधर दौड़ते हुए भूपालोंका हाहाकार सुनायी देने लगा। महाबली कंसने वैर-भावसे देवेश्वर श्रीकृष्णका भजन करके उसी प्रकार उनका सारूप्य प्राप्त कर लिया, जैसे कीड़ा भृङ्गीके चिन्तनसे उसीका रूप ग्रहण कर लेता है॥३३—३५॥

कंसं प्रपतितं दृष्ट्वा भ्रातरोऽष्टौ महाबलाः।
सुनामसृष्टिन्यग्रोधतुष्टिमद्राष्ट्रपालकाः ॥ ३६

सुहुना कङ्कशङ्कुभ्यां क्रोधप्रस्फुरिताधराः।
खड्गचर्मधरा योद्धुं कृष्णोपरि समाययुः ॥ ३७

वीक्ष्य तान्मुद्गरं नीत्वा रोहिणीनन्दनो बलः।
आराच्चकार हुङ्कारं यथा सिंहो मृगान् प्रति ॥ ३८

हुङ्कारेणैव शस्त्राणि तेषां हस्तेभ्य आभयात्।
पेतुराम्रफलानीव दण्डघातैश्च मैथिल ॥ ३९

निःशस्त्रास्ते महावीरा मुष्टिभिः सर्वतो बलम्।
तेडुः शैलं यथा नागा शुण्डादण्डैरितस्ततः ॥ ४०

सृष्टिं तथा सुनामानं मुद्गरेण बलोऽहनत्।
न्यग्रोधं भुजवेगेन कङ्कं वामकरेण वै ॥ ४१

शङ्कुं सुहुं तुष्टिमन्तं वामपादेन माधवः।
राष्ट्रपालं दक्षिणेन पादेनाभिजघान ह ॥ ४२

अष्टौ निपेतुः सहसा वृक्षा वातहता इव।
तेषां ज्योतिर्भगवति लीनं जातं विदेहराट् ॥ ४३

देवदुन्दुभयो नेदुर्जयध्वनिरभूत्तदा।
सद्यो वै ववृषुर्देवाः पुष्पैर्नन्दनसम्भवैः ॥ ४४

विद्याधर्यश्च गन्धर्व्यो ननृतुर्हर्षविह्वलाः।
विद्याधराश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तद्यशो जगुः ॥ ४५

ब्रह्माद्या मुनयः सिद्धा विमानैर्द्रष्टुमागताः।
तुष्टुवू रामकृष्णौ तौ वाग्भिः श्रुतिपरायणाः ॥ ४६

ताडयन्त्य उरो हस्तैरस्तिप्राप्त्यादयः स्त्रियः।
विनिर्गतास्ता रुरुदुर्जातवैधव्यदुःखिताः ॥ ४७

कंसको धराशायी हुआ देख उसके आठ महाबली भाई सुनामा, सृष्टि, न्यग्रोध, तुष्टिमान्, राष्ट्रपालक, सुहु, कङ्क और शङ्कु—क्रोधसे ओष्ठ फड़फड़ाते हुए ढाल और तलवार ले युद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णपर टूट पड़े। उन्हें आते देख रोहिणीनन्दन बलरामने मुद्गर हाथमें लेकर उसी प्रकार उनके निकट हुंकार किया, जैसे सिंह मृगोंको देखकर दहाड़ता है ॥ ३६—३८ ॥

मिथिलेश्वर! उस हुंकारसे ही उनपर इतना भय छा गया कि उनके हाथोंसे शस्त्र उसी प्रकार गिर पड़े, जैसे डंडा मारनेसे आमके फल गिरते हैं। निःशस्त्र होनेपर भी उन महावीरोंने बलरामको चारों ओरसे मुक्कोंद्वारा मारना आरम्भ किया—ठीक उसी तरह जैसे हाथी किसी पर्वतको अपनी सूँड़से इधर-उधरसे पीटते हों ॥ ३९-४० ॥

बलरामजीने सृष्टि और सुनामाको मुद्गरसे मार डाला, न्यग्रोधको भुजाओंके वेगसे धराशायी कर दिया और कङ्कको बायें हाथसे मार गिराया। माधवने शङ्कु, सुहु और तुष्टिमान्को बायें पैरसे कुचल दिया तथा राष्ट्रपालको दाहिने पैरके आघातसे कालके गालमें भेज दिया। इस प्रकार आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति वे आठों वीर सहसा धराशायी हो गये। विदेहराज! उन सबकी ज्योति भगवान्‌में लीन हो गयी ॥ ४१—४३ ॥

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। उस समय चारों ओर जय-जयकार होने लगी। देवतालोग उसी क्षण नन्दनवनके फूलोंकी वर्षा करने लगे। विद्याधरियाँ और गन्धर्वाङ्गनाएँ हर्षसे विह्वल हो नृत्य करने लगीं। विद्याधर, गन्धर्व और किंनर भगवान्‌का यश गाने लगे। ब्रह्मा आदि देवता, मुनि और सिद्ध विमानोंद्वारा भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये आये। वे वैदिक मन्त्रोंका पाठ करते हुए दिव्य वाणीद्वारा बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाइयोंकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर कंसकी अस्ति-प्राप्ति आदि रानियाँ हाथोंसे छाती पीटती हुई महलसे बाहर निकली और प्राप्त हुए वैधव्यके दुःखसे दुखी हो विलाप करने लगीं ॥ ४४—४७ ॥

स्त्रिय ऊचुः

हा नाथ हे युद्धपते क्व गतोऽसि महाबल।
त्रैलोक्यविजयी साक्षाद्देवानामपि दुर्जयः॥ ४८

जातमात्राः स्वसुः पुत्रा निर्घृणेन त्वया हताः।
अनिर्दशा निर्दशाश्चापरेऽपि निहता बलात्॥ ४९

तेन पापेन घोरेण दशामेतादृशीं गतः॥ ५०

श्रीनारद उवाच

एवमश्रुमुखीर्दीना आश्वास्य नृपयोषितः।
विधाय यमुनातीरे चिताः श्रीखण्डसंयुताः॥ ५१

हतानां कारयित्वासौ क्रियां वै पारलौकिकीम्।
सर्वान् सम्बोधयामास भगवाँल्लोकभावनः॥ ५२

स्त्रियाँ बोलीं—हा नाथ! हे युद्धपते! हे महाबली वीर! तुम कहाँ चले गये? तुम तो त्रिभुवन-विजयी तथा साक्षात् देवताओंके लिये भी दुर्जय वीर थे। तुमने निर्दय होकर अपनी बहनके नवजात बच्चोंकी हत्या की थी और दस दिनसे कम और अधिक उम्रवाले दूसरे-दूसरे बालकोंका भी बलपूर्वक वध कर डाला; उसी घोर पापके कारण तुम ऐसी दशाको प्राप्त हुए हो॥ ४८—५०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अश्रुसे भीगे मुखवाली दीन-दुखी राजपत्नियोंको धीरज बँधाकर लोक-भावन भगवान्ने यमुनाके तटपर श्रीखण्ड-चन्दनसे युक्त चिताएँ बनवायीं और मारे गये मामाओंकी पारलौकिक क्रियाएँ करवाकर सबको समझाया॥ ५१-५२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कंसवधो नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कंसका वध' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

श्रीकृष्णद्वारा वसुदेव-देवकीकी बन्धनसे मुक्ति; श्रीकृष्ण और बलरामका गुरुकुलमें विद्याध्ययन तथा गुरुदक्षिणाके रूपमें गुरुके मरे हुए पुत्रको यमलोकसे लाकर लौटाना; श्रीअक्रूरको हस्तिनापुर भेजना तथा कुब्जाका मनोरथ पूर्ण करना

श्रीनारद उवाच

अथ देवौ रामकृष्णौ देवकीवसुदेवयोः।
समीपं जग्मतुः साक्षाद्वृष्णिभिः परिवारितौ॥ १

स्वतस्तयोर्बन्धनानि ययुः शिथिलतां नृप।
तौ वीक्ष्य गरुडं प्राप्तं नागपाशगुणा यथा॥ २

स्वप्रभावविदौ वीक्ष्य पितरौ सबलो हरिः।
सद्यस्ततान स्वां मायां जगन्मोहकरीं बलात्॥ ३

रामकृष्णौ सुतौ ज्ञात्वा शौरिर्मोहसमाकुलः।
देवक्या सहसोत्थाय सस्वजे चाश्रुपूरितः॥ ४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम साक्षात् वृष्णिवंशियोंसे घिरे हुए देवकी और वसुदेवके समीप गये। नरेश्वर! अपने दोनों पुत्रोंको देखकर उन दोनोंके बन्धन उसी प्रकार स्वतः ढीले पड़ गये, जैसे गरुडको आया देख नागपाशके बन्धन स्वतः खुल जाते हैं॥ १-२॥

बलरामसहित श्रीहरिने माता-पिताको अपने प्रभावके ज्ञानसे सम्पन्न देख तत्काल अपनी माया फैला दी, जो बलपूर्वक जगत्को मोह लेनेवाली है। बलराम और कृष्ण मेरे पुत्र हैं, यह जानकर वसुदेवजी मोहसे व्याकुल हो गये और आँसू बहाते हुए देवकीके साथ सहसा उठकर उन्होंने दोनों पुत्रोंको हृदयसे लगा लिया॥ ३-४॥

तावाश्वास्य हरिः सद्यो वृष्णिभिः परिवारितः।
मातामहं तूग्रसेनं चकार मथुराधिपम्॥ ५

आहूय यादवान् कंसभयाद्देशान्तरं गतान्।
प्रेम्णा निवासयामास सकुटुम्बान् यदोः पुरि॥ ६

नन्दराजं गोपगणैः स्वगृहान् गन्तुमुद्यतम्।
नत्वा तं सबलः प्राह मोहयन्निव मायया॥ ७

अत्रैव वासं कुरु तात पुर्यां
गन्तुं यदीच्छा मनसोत्थिता स्यात्।
पश्चादहं वै सबलो यदून् वा
विधाय पार्श्वं तव चागमिष्ये॥ ८

श्रीनारद उवाच

एवं श्रीरामकृष्णाभ्यां नन्दराजः प्रपूजितः।
आलिङ्ग्य शौरिं गोपालैर्ययौ प्रेमातुरो व्रजम्॥ ९

दत्तं श्रीकृष्णजन्मर्क्षे धेनूनां नियुतं पुरा।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ शौरिर्वस्त्रमालास्वलङ्कृतम्॥ १०

शौरिर्गर्गं समाहूय श्रीकृष्णबलदेवयोः।
यज्ञोपवीतं विधिवत्कारयामास धर्मवित्॥ ११

रामकृष्णौ सर्वविद्याध्ययनं कर्तुमुद्यतौ।
गुरोः सान्दीपनेः पार्श्वं जग्मतुर्जनवत्परौ॥ १२

कृत्वा परां गुरोः सेवां लघुकालेन माधवौ।
सर्वविद्यां जगृहतुः सर्वविद्याविदां वरौ॥ १३

गुरवे दक्षिणां दातुमुद्यतौ तौ कृताञ्जली।
मृतं पुत्रं दक्षिणायां ताभ्यां वव्रे गुरुर्द्विजः॥ १४

रथमारुह्य तौ दान्तौ शातकुम्भपरिच्छदम्।
प्रभासे चाब्धिनिकटं जग्मतुर्भीमविक्रमौ॥ १५

सद्यः प्रकम्पितः सिन्धू रत्नोपायनमुत्तमम्।
नीत्वा तच्चरणोपान्ते निपपात कृताञ्जलिः॥ १६

तब वृष्णिवंशियोंसे घिरे हुए श्रीहरिने उन दोनोंको आश्वासन दे अपने नाना उग्रसेनको मथुराका राजा बना दिया। कंसके भयसे दूसरे देशोंमें भगे हुए यादवोंको बुलाकर भगवान्‌ने प्रेमपूर्वक उन्हें यदुपुरीमें कुटुम्बसहित रहनेके लिये स्थान दिया। गोपगणोंके साथ अपने घरको जानेके लिये उद्यत नन्दराजको प्रणाम करके बलरामसहित श्रीकृष्णने उन्हें अपनी मायासे मोहित-सा करते हुए कहा—'तात! अब आप इसी मथुरापुरीमें निवास कीजिये। यदि आपके मनमें यहाँसे जानेकी इच्छा उठ खड़ी हुई हो, तो जाइये। मैं भी यदुवंशियोंकी व्यवस्था करके भैया बलरामके साथ आपके पास आ जाऊँगा'॥ ५—८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार बलराम और श्रीकृष्णके द्वारा पूजित एवं सम्मानित नन्दराज वसुदेवजीको हृदयसे लगाकर प्रेमातुर हो व्रजको चले गये। वसुदेवजीने श्रीकृष्णके जन्म-नक्षत्रपर जो पहले दस लाख गोदान करनेका संकल्प किया था, उसे पूरा करनेके लिये उतनी गौओंको वस्त्र और मालाओंसे अलंकृत करके ब्राह्मणोंको दे दिया। फिर धर्मज्ञ वसुदेवने गर्गाचार्यको बुलाकर श्रीकृष्ण और बलभद्रका विधिवत् यज्ञोपवीत-संस्कार करवाया॥ ९—११॥

तदनन्तर समस्त विद्याओंका अध्ययन करनेके लिये उद्यत हो परमेश्वर बलराम और श्रीकृष्ण साधारण जनोंकी भाँति गुरु सांदीपनिके पास आये। गुरुकी उत्तम सेवा करके दोनों माधवोंने थोड़े ही समयमें सारी विद्याएँ पढ़ लीं और वे दोनों समस्त विद्वानोंके शिरोमणि हो गये। तत्पश्चात् वे दोनों भाई हाथ जोड़कर गुरुजीको दक्षिणा देनेके लिये उद्यत हुए। उस समय उन ब्राह्मण गुरुने उन दोनोंसे दक्षिणामें अपने मरे हुए पुत्रको माँगा॥ १२—१४॥

तब वे दोनों भाई सुनहरे साज-सामानोंसे युक्त रथपर आरूढ़ हो, मन-इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रभास-तीर्थमें समुद्रके निकट गये। दोनों ही भयानक पराक्रमी थे। उन्हें आया जान समुद्र तत्काल काँप उठा और रत्नोंकी उत्तम भेंट ले आकर, दोनों हाथ जोड़ उनके चरणप्रान्तमें पड़ गया॥ १५-१६॥

तमाह भगवाञ्छीघ्रं पुत्रं देहि गुरोर्मम।
प्रचण्डोर्मिघटाटोपैस्त्वया तद्ग्रहणं कृतम्॥ १७

समुद्र उवाच

भगवन् देवदेवेश न मया बालको हृतः।
हृतः पञ्चजनेनासौ शङ्खरूपासुरेण वै॥ १८

वसन् सदा मदुदरे बलिष्ठो दैत्यपुङ्गवः।
जेतुं योग्यस्त्वया देव देवानां भयकारकः॥ १९

श्रीनारद उवाच

तेनोक्तो भगवान् कृष्णो वासो बद्ध्वा कटौ दृढम्।
निपपात महावेगात्समुद्रे भीमनादिनि॥ २०

श्रीकृष्णस्य निपातेन त्रिलोकीभारधारिणः।
चकम्पेऽब्धिर्भृशं वज्रकूटेनेव विदेहराट्॥ २१

ततः पञ्चजनो दैत्यो योद्धुं श्रीकृष्णसम्मुखे।
आगतः सहसा वीरः शूलं चिक्षेप माधवे॥ २२

हस्ते गृहीत्वा तच्छूलं तेनैवाभिजघान तम्।
तद्घातेन प्रपतितो मूर्च्छितो वारिमण्डले॥ २३

सहसोत्थाय देवेशं किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
मूर्ध्ना तताड पक्षीन्द्रं स्वफणेन फणी यथा॥ २४

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् हरिः।
क्रुद्धो मूर्धनि वेगेन मुष्टिना तं तताड ह॥ २५

कृष्णमुष्टिप्रहारेण सद्यो वै निधनं गतः।
तज्ज्योतिः श्रीघनश्यामे लीनं जातं विदेहराट्॥ २६

एवं हत्वा पञ्चजनं शङ्खं नीत्वा तदङ्गजम्।
महार्णवान्निर्गतोऽसौ सहसा रथमागमत्॥ २७

वायुवेगेन यानेन रामकृष्णौ मनोहरौ।
जग्मतुः शमनस्यापि दीर्घां संयमनीं पुरीम्॥ २८

उससे भगवान्‌ने कहा—'तुम मेरे गुरुदेवके पुत्रको शीघ्र ही लौटा दो। तुमने अपनी प्रचण्ड लहरोंके घटाटोपसे उस ब्राह्मण-बालकका अपहरण कर लिया था'॥ १७॥

समुद्र बोला—भगवन्! देवदेवेश्वर! मैंने उस ब्राह्मण-बालकका अपहरण नहीं किया है। उसका हरण तो शङ्खरूपधारी असुर पञ्चजनने किया है। वह बलिष्ठ दैत्यराज सदा मेरे उदरमें निवास करता है। देव! वह देवताओंके लिये भी भयकारक है, अतः आपको उसे जीत लेना चाहिये॥ १८-१९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—समुद्रके यों कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कमरमें दृढ़तापूर्वक वस्त्र बाँध लिया और वे भयंकर शब्द करनेवाले उस समुद्रमें बड़े वेगसे कूद पड़े। विदेहराज! त्रिलोकीका भार धारण करनेवाले श्रीकृष्णके कूदनेसे वह समुद्र इस प्रकार अत्यन्त काँपने लगा, मानो वज्रकूट गिरिके द्वारा उसे मथ डाला गया हो॥ २०-२१॥

तब वीर पञ्चजन दैत्य युद्ध करनेके लिये सहसा श्रीकृष्णके सामने आया। उसने माधवपर अपना शूल चला दिया, किंतु उस शूलको हाथमें लेकर श्रीकृष्णने उसीके द्वारा उसपर आघात किया। उस आघातसे मूर्च्छित हो वह समुद्रमें गिर पड़ा। फिर सहसा उठकर कुछ व्याकुलचित्त हुए पञ्चजनने देवेश्वर श्रीहरिको इस प्रकार अपने मस्तकसे मारा, मानो किसी सर्पने पक्षिराज गरुडपर अपने फनसे प्रहार किया हो॥ २२—२४॥

तब साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिने कुपित होकर बड़े वेगसे उसके मस्तकपर मुक्का मारा। श्रीकृष्णके मुक्केकी मारसे तत्काल उसके प्राणपखेरू उड़ गये। विदेहराज! उसके शरीरसे निकली हुई ज्योति घनश्याम श्रीकृष्णमें लीन हो गयी। इस प्रकार पञ्चजनको मारकर और उसके शरीरसे उत्पन्न शङ्खको साथ ले, वे श्रीकृष्ण सहसा महासागरसे निकले और रथपर आ बैठे॥ २५—२७॥

तदनन्तर मनोहर बलराम और श्रीकृष्ण वायुके समान वेगशाली रथके द्वारा यमराजकी विशाल पुरी संयमनीमें गये॥ २८॥

पाञ्चजन्यध्वनिर्लोकं प्रचण्डो मेघघोषवत्।
पूरयामास तं श्रुत्वा चकम्पे ससभो यमः॥ २९

चतुरशीतिलक्षेषु नरकेषु निपातिताः।
यैर्यैः श्रुतो ध्वनिस्ते ते जग्मुर्मोक्षं तु पापिनः॥ ३०

यमः सद्यो बलिं नीत्वा श्रीकृष्णबलदेवयोः।
पपात चरणोपान्ते धर्षितः सन् कृताञ्जलिः॥ ३१

यम उवाच

हे हरे हे कृपासिन्धो राम राम महाबल।
असंख्यब्रह्माण्डपती परिपूर्णतमौ युवाम्॥ ३२

देवौ पुराणौ पुरुषौ महान्तौ
सर्वेश्वरौ सर्वजगज्जनेशौ।
अद्यैव सर्वोपरि वर्तमानौ
गिरा निजाज्ञां वदतं परेशौ॥ ३३

श्रीभगवानुवाच

गुरुपुत्रं लोकपाल आनयस्व महामते।
राज्यं कुरु यथान्यायं मदुक्तं मानयन् क्वचित्॥ ३४

श्रीनारद उवाच

तदैव तेनोपानीतं गुरुपुत्रं हरिः स्वयम्।
गृहीत्वावन्तिकामेत्य ददौ श्रीगुरवे शिशुम्॥ ३५

गुर्वाशिषा संयुतौ तौ नत्वा तं हि कृताञ्जली।
रथमारुह्य मथुरामागतौ यदुपूजितौ॥ ३६

एकदा सबलः कृष्णः सर्वकारणकारकः।
पाण्डवान् संस्मरन् भक्तानक्रूरभवनं ययौ॥ ३७

अक्रूरः सहसोत्थाय परिरभ्य मुदान्वितः।
उपचारैः षोडशभिः पूजयित्वाथ तौ नृप॥ ३८

कृताञ्जलिः पुरः स्थित्वा जातपूर्णमनोरथः।
उवाचानन्दजनितां मुञ्चन् बाष्पकलां नृप॥ ३९

वहाँ उन्होंने मेघ-गर्जनाके समान भयंकर लोक-प्रचण्ड पाञ्चजन्यकी ध्वनि सब ओर फैला दी। उसे सुनकर सभासदोंसहित यमराज काँप उठे। यमपुरीके चौरासी लाख नरकोंमें पड़े हुए पापियोंमेंसे जिन-जिनके कानोंमें वह ध्वनि पड़ी, वे सब-के-सब मोक्ष पा गये। यमराज उसी क्षण पूजा और उपहारकी सामग्री लेकर श्रीकृष्ण-बलरामके चरणप्रान्तमें आ गिरे। वे उनके तेजसे पराभूत हो गये थे, अतः हाथ जोड़कर बोले— ॥ २९—३१ ॥

यमराजने कहा—हे हरे! हे कृपासिन्धो! हे महाबली बलराम! आप दोनों असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति तथा परिपूर्णतम परमेश्वर हैं। आप दोनों देवता पुराण-पुरुष, सबसे महान्, सर्वेश्वर तथा सम्पूर्ण जगत्के लोगोंके अधीश्वर हैं। आज भी आप दोनों सबके ऊपर विराजमान हैं। परमेश्वरो! आप अपनी वाणीद्वारा हमें आज्ञा दें कि हमें क्या सेवा करनी है?॥ ३२-३३ ॥

श्रीभगवान् बोले—महामते लोकपाल यम! मेरे गुरुपुत्रको ले आओ और मेरी वाणीका आदर करते हुए कहीं भी न्यायोचित रीतिसे राज्य करो॥ ३४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उसी समय यमराजने गुरुपुत्रको ले आकर श्रीकृष्णके हाथमें सौंप दिया। फिर साक्षात् श्रीहरि उसे लेकर अवन्तिकापुरीमें आये और उन्होंने श्रीगुरुको उनका वह शिशुपुत्र समर्पित कर दिया। फिर गुरुके आशीर्वादसे सम्भावित हो, उन दोनों भाइयोंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और वे रथपर चढ़कर मथुरापुरीमें आ गये। वहाँ यदुवंशियोंने उनका बड़ा सम्मान किया॥ ३५-३६ ॥

एक दिन समस्त कारणोंके भी कारण श्रीकृष्ण अपने भक्त पाण्डवोंका स्मरण करते हुए बलरामजीके साथ अक्रूरके घर गये। नरेश्वर! अक्रूर सहसा उठकर खड़े हो गये और बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें हृदयसे लगाकर, षोडश उपचारोंद्वारा उनका पूजन करके हाथ जोड़ सामने खड़े हो गये। उनका मनोरथ पूर्ण हो चुका था। उन्होंने प्रेमानन्दके आँसू बहाते हुए उनसे कहा— ॥ ३७—३९ ॥

अक्रूर उवाच

युवाभ्यां रामकृष्णाभ्यां ताभ्यां नित्यं नमो नमः।
याभ्यां मार्गे यदुक्तं मे पूर्णं तच्च कृतं प्रभू॥ ४०

लोकाभिरामौ जनभूषणोत्तमौ
चान्तर्बहिः सर्वजगत्प्रदीपकौ।
गोविप्रसाधुश्रुतिधर्मदेवता-
रक्षार्थमद्यैव यदोः कुले गतौ॥ ४१

कंसादिदैत्येन्द्रविनाशहेतवे
गोलोकलोकात्परिपूर्णतेजसौ।
समागतौ भारतभूमिमण्डले
युवां परेशौ सततं नतोऽस्म्यहम्॥ ४२

श्रीभगवानुवाच

त्वमार्यवृद्धो धृतिमानहं तव पुरः शिशुः।
सन्तो न स्वात्मनः श्लाघ्यं कुर्वन्ति हि महामते॥ ४३

पाण्डवानां हि कुशलं द्रष्टुं गच्छ गजाह्वयम्।
शीघ्रमागच्छ तान् दृष्ट्वा सर्वान् दानपते भवान्॥ ४४

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा तदाक्रूरं भगवान् भक्तवत्सलः।
सबलः शौरिभवनमाययौ सर्वकार्यकृत्॥ ४५

कौरवेन्द्रपुरं गत्वाक्रूरो दृष्ट्वाथ पाण्डवान्।
पुनरागत्य कृष्णाय वार्तां सर्वामवर्णयत्॥ ४६

अक्रूर उवाच

विना युवां कोऽपि न पाण्डवानां
सहायकृत्कौरवदुःखभोगिनाम्।
मृते च पाण्डौ भवतोः पदाम्बुजे
विलग्नचित्ता हि पृथात्मजा ये॥ ४७

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाक्रूरमुखात् श्रीकृष्णो भगवान् हरिः।
अर्धं राज्यं पाण्डवेभ्यः कौरवाणां बलाद्ददौ॥ ४८

अथोक्तं वचनं स्मृत्वा तदोद्धवसमन्वितः।
महामङ्गलसंयुक्तं कुब्जाया भवनं ययौ॥ ४९

अक्रूर बोले—प्रभुओ! जिन्होंने मार्गमें, मैंने जो कुछ कहा या सोचा था, वह सब पूर्ण कर दिया, उन्हीं आप दोनों—बलराम और श्रीकृष्णको मेरा नित्य बारंबार नमस्कार है। आप दोनों समस्त लोकोंमें सर्वाधिक सुन्दर हैं। जन-भूषणोंमें भी उत्तम हैं। सम्पूर्ण जगत्को बाहर और भीतरसे भी प्रकाशित करनेवाले हैं। इस समय गौ, ब्राह्मण, साधु, वेद, धर्म तथा देवताओंकी रक्षाके लिये आप दोनों यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। परिपूर्ण तेजस्वी आप दोनों परमेश्वर कंसादि दैत्योंका विनाश करनेके लिये गोलोकधामसे भारतवर्षके भूमण्डलमें पधारे हैं। मैं नित्य-निरन्तर आप दोनोंको प्रणाम करता हूँ॥ ४०—४२॥

श्रीभगवान् बोले—आप हमारे बड़े-बूढ़े गुरुजन और धैर्यवान् हैं। मैं आपके आगे बालक हूँ। महामते! संत पुरुष कभी अपनी बड़ाई नहीं करते। दानपते! पाण्डवोंका कुशल-समाचार जाननेके लिये आप शीघ्र हस्तिनापुर जाइये और वहाँ उन सबसे मिल-जुलकर लौट आइये॥ ४३-४४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस समय अक्रूरसे यों कहकर समस्त कार्योंका सम्पादन करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वसुदेवजीके भवनमें लौट आये। उधर अक्रूर कौरवेन्द्रपुरी हस्तिनापुरमें जाकर पाण्डवोंसे मिले और पुनः वहाँसे लौटकर उन्होंने श्रीकृष्णसे सारा समाचार कह सुनाया॥ ४५-४६॥

अक्रूरने कहा—भगवन्! पाण्डव लोग कौरवोंके दिये हुए दुःख भोग रहे हैं। आप दोनोंके सिवा दूसरा कोई भी उनकी सहायता करनेवाला नहीं है। पाण्डुके मर जानेपर पृथाके सभी पुत्र आप दोनोंके चरणारविन्दोंमें ही चित्त लगाये बैठे हैं॥ ४७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! अक्रूरजीके मुखसे यह समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कौरवोंका आधा राज्य बलपूर्वक पाण्डवोंको दे दिया। तदनन्तर अपनी कही हुई बातको याद करके भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवको साथ ले कुब्जाके महामङ्गलसंयुक्त भवनमें गये॥ ४८-४९॥

दृष्ट्वाराच्छ्रीहरिं प्राप्तं कुब्जा रूपवती त्वरम्।
भक्त्या समर्हयामास पाद्याद्यैः प्राणवल्लभम्॥ ५०

हेमरत्नखचित्कुड्ये कुब्जाया भवनोत्तमे।
बभौ हरी रूपवत्या वैकुण्ठे रमया यथा॥ ५१

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
यस्याः पतिरभूद्राजन्नहो तस्यास्तपो महत्॥ ५२

तत्र स्थित्वा हरिर्देवो दिनान्यष्टौ विदेहराट्।
आययौ शौरिभवनं लीलामानुषविग्रहः॥ ५३

इति श्रीकृष्णचरितं मथुरायां विदेहराट्।
सर्वपापहरं पुण्यमायुर्वर्धनमुत्तमम्॥ ५४

चतुष्पदार्थदं नृणां श्रीकृष्णवशकारकम्।
मया ते कथितं पृष्टं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ५५

श्रीहरिको आया देख परमरूपवती कुब्जाने तुरंत ही भक्तिभावसे पाद्य आदि उपचार समर्पित करके अपने प्राणवल्लभका पूजन किया। कुब्जाके उत्तम भवनकी दीवारोंमें सोने और रत्न जड़े गये थे। उस रूपवती रमणीके साथ श्रीहरि उसी प्रकार शोभित हुए, जैसे वैकुण्ठधाममें रमाके साथ रमापति विष्णु शोभा पाते हैं। राजन्! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जिस सैरन्ध्रीके पति हो गये, उसका महान् तप कैसा आश्चर्यजनक है!॥ ५०—५२॥

विदेहराज! वहाँ लीलासे मानव-शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरि आठ दिनोंतक टिके रहकर नौवें दिन वसुदेवजीके भवनमें लौट आये। विदेहनरेश! मथुरामें इस प्रकार जो श्रीकृष्णका चरित्र है, वह समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा आयुकी वृद्धिका उत्तम साधन है। वह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला तथा श्रीकृष्णको भी वशमें कर लेनेवाला है। तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुमसे कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ५३—५५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यदुसौख्यं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यदुसौख्य' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

धोबी, दर्जी और सुदामा मालीके पूर्वजन्मका परिचय

बहुलाश्व उवाच

श्रीकृष्णचरितं पुण्यं मया तव मुखाच्छ्रुतम्।
पुनः श्रोतुं मनश्चाद्य तृषितो वा जलं गतः॥ १

कंसस्य जन्मकर्माणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे।
केश्यादिदैत्यवर्याणां पूर्वजन्मकृतं श्रुतम्॥ २

कोऽयं तु रजकः पूर्वमवधीद्यं हरिः कथम्।
अहो यस्य महज्ज्योतिः कृष्णे लीनं बभूव ह॥ ३

बहुलाश्वने पूछा—[देवर्षे!] आपके मुखसे मैंने भगवान् श्रीकृष्णके पावन चरित्रका श्रवण किया, किंतु पुनः अधिकाधिक सुननेकी इच्छा हो रही है। जैसे प्यासा प्राणी जलकी इच्छा करता है, उसी तरह मेरा मन आज श्रीकृष्ण-चरित्रको सुनना चाहता है। आपने कंसके जन्म-कर्मोंका वर्णन किया और मैंने सुना। केशी आदि बड़े-बड़े दैत्योंके पूर्वजन्मकी बातें भी मैंने सुनीं। अब यह जानना चाहता हूँ कि अहो! जिसकी महती ज्योति श्रीकृष्णमें लीन हुई, वह धोबी पूर्वजन्ममें कौन था? और श्रीहरिने उसका वध क्यों किया?॥ १—३॥

श्रीनारद उवाच

त्रेतायुगे त्वयोध्यायां रामराज्ये विदेहराट्।
चाराणां शृण्वतां कश्चिद्रजको ह्यवदत्प्रियाम्॥ ४

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामुशतीं परवेश्मगाम्।
स्त्रीलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः॥ ५

इति लोकाद्बहुमुखाद्वाक्यं श्रुत्वाथ राघवः।
सीतां तत्याज सहसा वने लोकापवादतः॥ ६

तस्मै दण्डं दातुमिच्छां न चक्रे राघवोत्तमः।
मथुरायां द्वापरान्ते रजकः स बभूव ह॥ ७

कुवाक्यदोषशान्त्यर्थं तं जघान हरिः स्वयम्।
तदपि प्रददौ मोक्षं तस्मै श्रीकरुणानिधिः॥ ८

दयालोः कृष्णचन्द्रस्य चरित्रं परमाद्भुतम्।
एतत्ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ९

बहुलाश्व उवाच

पुरा वै वायकः कोऽयं नितरां मुनिसत्तम।
यस्मै ददौ च सारूप्यं श्रीकृष्णो भगवान् हरिः॥ १०

श्रीनारद उवाच

मिथिलानगरे पूर्वं वायको हरिभक्तिकृत्।
श्रीरामोद्वाहसमये सीरध्वजनृपाज्ञया॥ ११

रामलक्ष्मणवेषार्थं वासांसि रचयन् किल।
लघुसूत्रैः परिवयन् कुशलो वस्त्रकर्मसु॥ १२

कोटिकन्दर्पलावण्यौ सुन्दरौ रामलक्ष्मणौ।
तौ वीक्ष्य वायको राजन् मोहितोऽभून्महामनाः॥ १३

अहं स्वहस्तैर्वस्त्राणि तयोरङ्गेषु सर्वतः।
परिधानं कारयामि चक्रे चेत्थं मनोरथम्॥ १४

मनसापि वरं रामो ददौ तस्मा अशेषवित्।
द्वापरान्ते भारते च भविष्यति मनोरथः॥ १५

श्रीनारदजीने कहा—विदेहराज! त्रेतायुगकी बात है, अयोध्यापुरीमें श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे। [उनके राज्यकालमें प्रजाकी मनोवृत्ति एवं दुःख-सुख जाननेके लिये गुप्तचर घूमा करते थे।] एकदिन उन गुप्तचरोंके सुनते हुए किसी धोबीने अपनी भार्यासे कहा—'तू दुष्टा है और दूसरेके घरमें रहकर आयी है; इसलिये अब तुझे मैं नहीं रखूँगा। स्त्रीके लोभी राजा राम भले ही सीताको रख लें, किंतु मैं तुझे नहीं स्वीकार करूँगा।' इस प्रकार बहुत-से लोगोंके मुखसे आक्षेपयुक्त बात सुनकर श्रीराघवेन्द्रने लोकापवादके भयसे सहसा सीताको वनमें त्याग दिया॥ ४—६॥

रघुकुल-तिलक श्रीरामने उस धोबीको दण्ड देनेकी इच्छा नहीं की। वही द्वापरके अन्तमें मथुरापुरीमें फिर धोबी ही हुआ। उसने सीताके प्रति जो कुवाच्य कहा था, उस दोषकी शान्तिके लिये श्रीहरिने स्वयं ही उसका वध किया, तथापि उन श्रीकरुणानिधिने उस धोबीको मोक्ष प्रदान किया। राजन्! दयालु श्रीकृष्णचन्द्रका यह परम अद्भुत चरित्र मैंने तुमसे कहा। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो?॥ ७—९॥

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! पूर्वजन्ममें वह दर्जी कौन था, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने अपना सारूप्य प्रदान किया?॥ १०॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! पहले मिथिलापुरीमें एक दर्जी था, जो भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्तिभाव रखता था। उसने श्रीरामके विवाहके समय राजा सीरध्वज जनककी आज्ञासे श्रीराम और लक्ष्मणके दूलह-वेषके लिये महीन डोरोंसे कपड़े सीये थे। वह वस्त्र सीनेकी कलामें अत्यन्त कुशल था। राजन्! करोड़ों कामदेवोंके समान लावण्यवाले सुन्दर श्रीराम और लक्ष्मणको देखकर वह महामनस्वी दर्जी मोहित हो गया था॥ ११—१३॥

उसने मन-ही-मन यह इच्छा की कि मैं कभी अपने हाथोंसे इनके अङ्गोंमें वस्त्र पहनाऊँ। श्रीरघुनाथजी सर्वज्ञ हैं। उन्होंने मन-ही-मन उसे वर दे दिया कि 'द्वापरके अन्तमें भारतवर्षमें [व्रज-मण्डलमें] तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा'॥ १४-१५॥

श्रीरामस्य वरात्सोऽयं मथुरायां बभूव ह।
तयोर्वेषं कारयित्वा तत्सारूप्यं जगाम ह॥ १६

बहुलाश्व उवाच

सुदाम्ना मालिना ब्रह्मन् किं कृतं सुकृतं वद।
यद्गृहं जग्मतुः साक्षाद्रामकृष्णौ मनोहरौ॥ १७

श्रीनारद उवाच

राजराजवनं रम्यं नाम्ना चैत्ररथं शुभम्।
तस्य वै पुष्पबटुको हेममालीति नामभाक्॥ १८

विष्णुभक्तिरतः शान्तो दानी सत्सङ्गकृन्महान्।
श्रीविष्णुदेवप्राप्त्यर्थं देवपूजां चकार ह॥ १९

समाः पञ्चसहस्राणि पद्मानां च शतत्रयम्।
नित्यं नीत्वा धूर्जटये पुरो धृत्वा ननाम ह॥ २०

एकदातिप्रसन्नोऽभूत् त्र्यम्बकः करुणानिधिः।
मालाकार महाबुद्धे वरं ब्रूहीत्युवाच ह॥ २१

हेममाली तदा देवं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः।
प्रदक्षिणीकृत्य पुरः स्थित्वा प्राह नताननः॥ २२

हेममाल्युवाच

परिपूर्णतमं कृष्णं क्वचिन्नो गृहमागतम्।
पश्यामि दृग्भ्यां तं साक्षात्त्वद्वरेण भवेदिदम्॥ २३

श्रीमहादेव उवाच

द्वापरान्ते भारते च मथुरायां महामते।
मनोरथस्ते सफलो भविष्यति न संशयः॥ २४

श्रीनारद उवाच

महेश्वरवरेणासौ हेममाली महामनाः।
मालाकारो द्वापरान्ते सुदामा सम्बभूव ह॥ २५

तस्मादस्य गृहं साक्षाज्जग्मतू रामकेशवौ।
शिववाक्यमृतं कर्तुं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ २६

श्रीरामचन्द्रजीके वरदानसे वही यह दर्जी मथुरामें प्रकट हुआ था, जिसने उन दोनों बन्धुओंकी वेष-रचना करके उनका सारूप्य प्राप्त कर लिया॥ १६॥

बहुलाश्वने पूछा—ब्रह्मन्! सुदामा मालीने, जिसके घरमें परम मनोहर बलराम और श्रीकृष्ण स्वयं पधारे थे, कौन-सा पुण्य किया था? बताइये॥ १७॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! राजराज कुबेरका एक परम रमणीय सुन्दर वन है, जो चैत्ररथ-वनके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें फूल लगानेवाला एक माली था, जो हेममालीके नामसे पुकारा जाता था। वह भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर, शान्त, दानशील तथा महान् सत्सङ्गी था। उसने भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)-की प्राप्तिके लिये देवताओंकी पूजा की। पाँच हजार वर्षोंतक प्रतिदिन तीन सौ कमल-पुष्प लेकर वह भगवान् शंकरके आगे रखता और उन्हें प्रणाम करता था। एक समय करुणानिधि त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—'परम बुद्धिमान् मालाकार! तुम इच्छानुसार वर माँगो।' तब हेममालीने हाथ जोड़कर महादेवजीको नमस्कार किया और परिक्रमा करके उनके सामने खड़ा हो मस्तक झुकाकर कहा—॥ १८—२२॥

हेममाली बोला—भगवन्! परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्ण कभी मेरे घर पधारें और मैं इन नेत्रोंसे उनका प्रत्यक्ष दर्शन करूँ—ऐसी मेरी इच्छा है। आपके वरदानसे मेरी यह अभिलाषा पूर्ण हो॥ २३॥

श्रीमहादेवजीने कहा—महामते! द्वापरके अन्तमें भारतवर्षकी मथुरापुरीमें तुम्हारा यह मनोरथ सफल होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! महादेवजीके वरदानसे वह महामना हेममाली ही द्वापरके अन्तमें सुदामा माली हुआ था। इसीलिये साक्षात् बलराम और श्रीकृष्ण भगवान् शिवकी वाणी सत्य करनेके लिये उसके घर पधारे थे। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २५-२६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रजकवायकसुदामोपाख्यानं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'धोबी, दर्जी और सुदामा मालीका उपाख्यान' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

कुब्जा और कुवलयापीडके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन

बहुलाश्व उवाच

सैरन्ध्र्या किं कृतं पूर्वं तपः परमदुर्घटम्।
येन प्रसन्नः श्रीकृष्णो देवैरपि सुदुर्लभः॥ १

बहुलाश्वने पूछा—[देवर्षे!] सैरन्ध्रीने पूर्वकालमें कौन-सा परम दुष्कर तप किया था, जिससे देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ भगवान् श्रीकृष्ण उसपर रीझ गये?॥ १॥

श्रीनारद उवाच

पञ्चवट्यां स्थितं रामं कोटिकन्दर्पसन्निभम्।
वीक्ष्य शूर्पणखा नाम्नी राक्षसी मोहिता भृशम्॥ २

निर्मोहं राघवं दृष्ट्वाथैकपत्नीव्रतस्थितम्।
क्रोधात्सीतां भक्षयितुं धावती रावणस्वसा॥ ३

खड्गेन शितधारेण लक्ष्मणो राघवानुजः।
जहार तस्याः कर्णौ च नासां सद्यो रुषान्वितः॥ ४

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी जब पञ्चवटीमें रहते थे, उस समय शूर्पणखा नामक राक्षसी उन्हें देखकर अत्यन्त मोहित हो गयी। 'श्रीरघुनाथजी एकपत्नीव्रतके पालनमें तत्पर हैं, अतः इनके मनमें दूसरी किसी स्त्रीके प्रति मोह नहीं है'—यह विचारकर रावणकी बहन क्रोधसे सीताको खा जानेके लिये दौड़ी। उस समय श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मणने रुष्ट होकर तीखी धारवाली तलवारसे तत्काल उसके नाक और कान काट लिये॥ २—४॥

छिन्ननासा गता लङ्कां रावणाय न्यवेदयत्।
भूयः पुष्करतीर्थे सा जगाम विमना भृशम्॥ ५

तपश्चक्रे शूर्पणखा वर्षाणामयुतं जले।
ध्यायन्ती त्र्यम्बकं देवं श्रीरामं वरमिच्छती॥ ६

ततः प्रसन्नो भगवान् देवदेव उमापतिः।
एत्य तत्पुष्करं तीर्थं वरं ब्रूहीत्युवाच ह॥ ७

नाक कट जानेपर उसने लङ्कामें जाकर रावणको यह सब समाचार बता दिया और स्वयं अत्यन्त खिन्न-चित्त होकर वह पुष्कर-तीर्थमें चली गयी। वहाँ जलमें खड़ी हो भगवान् शंकरका ध्यान तथा श्रीरामको पतिरूपमें पानेकी कामना करती हुई शूर्पणखाने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। इससे प्रसन्न हो देवाधिदेव भगवान् उमापति पुष्कर-तीर्थमें आकर बोले—'तुम वर माँगो'॥ ५—७॥

शूर्पणखोवाच

श्रीरामो मे वरो भूयाद्वरं देहि सतां प्रियः।
त्वं देवदेव परमः सर्वासामाशिषां प्रभुः॥ ८

शूर्पणखाने कहा—परम देवदेव! आप समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं; अतः मुझे यह वर दीजिये कि सत्पुरुषोंके प्रिय श्रीरामचन्द्रजी मेरे पति हों॥ ८॥

श्रीशिव उवाच

अद्यैव सफलो न स्याद्वरस्ते शृणु राक्षसि।
द्वापरान्ते माथुरे च भविष्यति न संशयः॥ ९

श्रीशिवने कहा—राक्षसी! सुनो। यह वर तुम्हारे लिये अभी सफल नहीं होगा। द्वापरके अन्तमें मथुरापुरीमें तुम्हारी यह कामना पूरी होगी, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

श्रीनारद उवाच

सैव शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।
अभूच्छ्रीमथुरायां तु कुब्जानाम महामते॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! महामते! वही इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली शूर्पणखा नामक राक्षसी श्रीमथुरापुरीमें 'कुब्जा' नामसे प्रसिद्ध हुई थी॥ १०॥

महादेववरेणापि श्रीकृष्णस्य प्रियाभवत्।
इदं मया ते कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ११

बहुलाश्व उवाच

कोऽयं कुवलयापीडः पूर्वजन्मनि नारद।
कथं गजत्वमापन्नः श्रीकृष्णे लीनतां गतः॥ १२

श्रीनारद उवाच

बलिपुत्रो महाकायो नाम्ना मन्दगतिर्बली।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठो लक्षनागसमो बली॥ १३

एकदा निर्गतः सोऽपि रङ्गयात्रां जनेषु च।
मत्तेभवज्जनान् वेगाद्भुजाभ्यां परिमर्दयन्॥ १४

तद्बाहुवेगात्पतितः पथि वृद्धस्त्रितो मुनिः।
क्रुद्धः शशाप तं मत्तं बलिष्ठं बलिनन्दनम्॥ १५

त्रित उवाच

गजवत्त्वं मदोन्मत्तोऽभूर्जनान् परिमर्दयन्।
विचरन् रङ्गयात्रायां त्वं गजो भव दुर्मते॥ १६

एवं शप्तस्तदा दैत्यो नाम्ना मन्दगतिर्बली।
पतत्कञ्चुकवद्देहो भ्रष्टतेजा बभूव ह॥ १७

मुनेः प्रभाववित्सद्यो दैत्यो भूत्वा कृताञ्जलिः।
नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य त्रितं मुनिमुवाच ह॥ १८

मन्दगतिरुवाच

हे मुने हे कृपासिन्धो त्वं योगीन्द्रो द्विजोत्तमः।
गजत्वान्मे कदा मुक्तिर्भविष्यति वदाशु माम्॥ १९

त्वादृशानां सतां माभूद्धेलनं मे क्वचिन्मुने।
त्वादृशा मुनयो ब्रह्मन् समर्था वरशापयोः॥ २०

श्रीनारद उवाच

एवं प्रसादितस्तेन त्रितो नाम महामुनिः।
गतक्रोधोऽब्रवीद्दैत्यं कृपालुर्ब्राह्मणोत्तमः॥ २१

महादेवजीके वरसे ही वह श्रीकृष्णकी प्रिया हुई। यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें बताया। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ११॥

बहुलाश्व बोले—नारदजी! यह कुवलयापीड पूर्वजन्ममें कौन था? कैसे हाथीकी योनिको प्राप्त हुआ? और किस पुण्यसे भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हुआ?॥ १२॥

श्रीनारदजीने कहा—राजा बलिके एक विशालकाय एवं बलवान् पुत्र था, जिसका नाम था—मन्दगति। वह समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा एक लाख हाथियोंके समान बलशाली था। एक समय श्रीरङ्ग-नाथकी यात्राके लिये वह घरसे निकला और जन-समुदायमें सम्मिलित हो गया। मन्दगति मतवाले हाथीके समान वेगसे भुजाएँ हिलाहिलाकर लोगोंको कुचलता जा रहा था। रास्तेमें उसकी भुजाओंके वेगसे बूढ़े त्रित मुनि गिर पड़े। उन्होंने कुपित होकर उस मतवाले बलिष्ठ बलिकुमारको शाप दे दिया॥ १३—१५॥

त्रितने कहा—'दुर्मते! तू हाथीके समान मदोन्मत्त होकर रङ्गयात्रामें लोगोंको कुचलता जा रहा है, अतः हाथी हो जा।' इस प्रकार शाप मिलनेपर वह बलवान् दैत्य मन्दगति तत्काल तेजोभ्रष्ट हो गया और उसका शरीर केंचुलकी भाँति छूटकर नीचे जा गिरा। मुनिके प्रभावको जाननेवाले उस दैत्यने तुरंत ही हाथ जोड़ प्रणाम और परिक्रमा करके त्रितमुनिसे कहा॥ १६—१८॥

मन्दगति बोला—हे मुने! कृपासिन्धो! आप द्विजोंमें श्रेष्ठ योगीन्द्र हैं। इस गजयोनिसे मुझे कब छुटकारा मिलेगा, यह मुझे शीघ्र बताइये। मुने! आजसे आप-जैसे महात्माओंकी अवहेलना मेरे द्वारा कभी नहीं होगी। ब्रह्मन्! आप-जैसे मुनि वर और शाप—दोनोंको देनेमें समर्थ हैं॥ १९-२०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस दैत्यद्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर महामुनि त्रितका क्रोध दूर हो गया। फिर उन कृपालु ब्राह्मण-शिरोमणिने उस दैत्यसे कहा—॥ २१॥

त्रित उवाच

वचनं मे मृषा न स्यात्त्वद्भक्त्या हर्षितोऽस्म्यहम्।
ते दास्यामि वरं दिव्यं देवानामपि दुर्लभम्॥ २२

मा शोकं कुरु दैत्येन्द्र मथुरायां हरेः पुरि।
श्रीकृष्णहस्तात्ते मुक्तिर्भविष्यति न संशयः॥ २३

श्रीनारद उवाच

सोऽयं मन्दगतिर्दैत्यो गजोऽभूद्विन्ध्यपर्वते।
नाम्ना कुवलयापीडो नागायुतसमो बले॥ २४

गृहीतो मागधेन्द्रेण बलाल्लक्षगजैर्वने।
सोऽयं दत्तस्तु कंसाय पारिबर्हे विदेहराट्॥ २५

त्रितवाक्यात्तस्य धाम श्रीकृष्णे लीनतां गतम्।
इदं मया ते कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ २६

त्रित बोले—दैत्यराज! मेरी बात झूठी नहीं हो सकती, तथापि तुम्हारी भक्तिसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इसलिये तुम्हें ऐसा दिव्य वर प्रदान करूँगा, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। दैत्येन्द्र! शोक न करो। श्रीहरिकी नगरी मथुरामें श्रीकृष्णके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें संशय नहीं है॥ २२-२३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वही यह मन्दगति दैत्य विन्ध्यपर्वतपर कुवलयापीड नामसे विख्यात हाथी हुआ, जो बलमें अकेला ही दस हजार हाथियोंके समान था। उसे मगधराज जरासंधने बलपूर्वक लाख हाथियोंके द्वारा वनमें पकड़ा। विदेहराज! फिर उसने कंसको दहेजमें वह हाथी दे दिया। त्रित मुनिके कथनानुसार उसका तेज श्रीकृष्णमें लीन हुआ। यह प्रसङ्ग मैंने तुमसे कहा, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २४—२६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कुब्जाकुवलयापीडवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कुब्जा और कुवलयापीडके पूर्वजन्मका वर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

चाणूर आदि मल्ल, कंसके छोटे भाइयों तथा पञ्चजन दैत्यके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन

बहुलाश्व उवाच

चाणूराद्याश्च ये मल्लास्ते के पूर्वमिहागताः।
अहो श्रीकृष्णचन्द्रेण येषां युद्धं बभूव ह॥ १

श्रीनारद उवाच

राजन् पुरामरावत्यामुतथ्योऽस्ति महामुनिः।
तस्याभवन् पञ्च पुत्राः कामदेवसमप्रभाः॥ २

हित्वा विद्यां चाध्ययनं जयन्तेन सहैव ते।
गत्वा बलेर्मल्लयुद्धं सदाशिक्षन् मदोद्धताः॥ ३

ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टान् वेदाध्ययनवर्जितान्।
रुषा प्राह स तान् मत्तानुतथ्यो मुनिसत्तमः॥ ४

बहुलाश्व बोले—चाणूर आदि जो मल्ल थे, वे पूर्वजन्ममें कौन थे, जो यहाँ मथुरापुरीमें आये थे? अहो! उनका कैसा सौभाग्य है कि साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रके साथ उन्हें युद्धका अवसर मिला॥ १॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें अमरावतीपुरीमें उतथ्य नामसे प्रसिद्ध महामुनि निवास करते थे। उनके पाँच पुत्र हुए, जो कामदेवके समान कान्तिमान् थे। उन लोगोंने विद्या और स्वाध्याय छोड़कर मदसे उन्मत्त हो जयन्तके साथ राजा बलिके यहाँ जाकर प्रतिदिन मल्लयुद्धकी शिक्षा लेनी आरम्भ की। अपने पुत्रोंको ब्राह्मणोचित कर्मसे सर्वथा भ्रष्ट, वेदाध्ययनसे रहित तथा मदमत्त हुआ देख मुनिश्रेष्ठ उतथ्यने रोषपूर्वक उनसे कहा—॥ २—४॥

उतथ्य उवाच

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ ५

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ ६

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥ ७

ब्रह्मकर्मपरित्यक्ता भवन्तो ब्रह्मणः सुताः।
मल्लयुद्धं क्षात्रयुद्धं कथं कुरुत दुर्जनाः॥ ८

तस्माद्भवन्तो भूयासुर्मल्ला वै भारताजिरे।
असुराणां प्रसङ्गेन दुर्जना भवताशु हि॥ ९

श्रीनारद उवाच

उतथ्यस्य सुतास्ते वै जाता मल्ला महीतले।
श्रीकृष्णाङ्गस्पर्शमात्रात्परं मोक्षं ययुर्नृप॥ १०

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च।
एषां चरित्रं कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ११

बहुलाश्व उवाच

कंसानुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः।
ते के पूर्वं वद मुने येऽपि मोक्षं परं गताः॥ १२

श्रीनारद उवाच

अलकायां पुरा यक्षो देवयक्ष इति स्मृतः।
ज्ञानी ज्ञानपरो मान्यः शिवभक्त्या महाद्युतिः॥ १३

तस्य चाष्टौ सुता जाता देवकूटो महागिरिः।
गण्डो दण्डः प्रचण्डश्च खण्डोऽखण्डः पृथुस्तथा॥ १४

एकदा शिवपूजायां देवयक्षेण नोदिताः।
सहस्त्रं पुण्डरीकाणि चाहर्तुमरुणोदये॥ १५

पुष्पाणि मानसान्नीत्वा शब्दितानि मधुव्रतैः।
आघ्राय गन्धलोभेन ददुस्ते जनकाय वै॥ १६

उच्छिष्टीकृतदोषेण शिवपूजातिरस्कृताः।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढास्ते जन्मभिस्त्रिभिः॥ १७

उतथ्य बोले—शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान तथा आस्तिकता—ये ब्राह्मण-के स्वाभाविक कर्म हैं। शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्धभूमिमें पीठ न दिखाना, दान तथा ऐश्वर्य—ये क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं। कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य—ये वैश्यके स्वभावज कर्म हैं तथा सेवात्मक कर्म शूद्रके लिये भी स्वाभाविक है। दुर्जनो! तुमलोग ब्राह्मणके पुत्र होकर भी ब्राह्मणोचित कर्मसे दूर रहकर क्षत्रियोचित मल्लयुद्धका कार्य कैसे करते हो? अतः तुमलोग भारतभूमिपर मल्ल हो जाओ और असुरोंके सङ्गसे शीघ्र ही दुर्जन बन जाओ॥ ५—९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वे उतथ्यके पुत्र ही पृथ्वीपर मल्लोंके रूपमें उत्पन्न हुए। नरेश्वर! उन्होंने श्रीकृष्णके शरीरका स्पर्श करनेमात्रसे परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। इस प्रकार मैंने चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल—इन मल्लोंके पूर्वचरित्रका वर्णन किया, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ १०-११॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने! कंसके छोटे भाई जो कङ्क, न्यग्रोध आदि आठ योद्धा थे, वे सब पूर्वजन्ममें कौन थे? जो कि परम मोक्षको प्राप्त हुए, यह बताइये!॥ १२॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! पूर्वकालकी बात है, कुबेरकी राजधानी अलकामें 'देवयक्ष' नामसे प्रसिद्ध एक यक्ष रहता था। वह ज्ञानी, ज्ञानपरायण, शिवभक्तिसे सम्मानित तथा महातेजस्वी था। उसके आठ पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—देवकूट, महागिरि, गण्ड, दण्ड, प्रचण्ड, खण्ड, अखण्ड और पृथु॥ १३-१४॥

एक दिन शिवपूजाके निमित्त अरुणोदयकी वेलामें एक सहस्र पुण्डरीक-पुष्प लानेके लिये देवयक्षकी आज्ञा पाकर वे सब गये। उन्होंने भ्रमरोंके गुञ्जारवसे युक्त सहस्र कमल-पुष्प मानसरोवरसे लाकर, उनकी गन्धको लोभसे सूँघकर पिताको अर्पित किये। फूलोंको उच्छिष्ट करनेके दोषसे शिवपूजासे तिरस्कृत हुए वे मूढ़ यक्ष तीन जन्मोंके लिये असुरयोनिको प्राप्त हुए॥ १५—१७॥

हस्ताभ्यां शङ्कराभ्यां च बलदेवस्य मैथिल।
परं मोक्षं गतास्ते वै दोषान् मुक्ता विदेहराट्॥ १८

कंसानुजानां व्याख्यानं पूर्वजन्मभवं नृप।
इदं मया ते कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १९

बहुलाश्व उवाच

कोऽयं पुरा पञ्चजनो दैत्यः शङ्खवपुर्धरः।
तस्य शङ्खो बभौ ब्रह्मन् श्रीकृष्णकरपङ्कजे॥ २०

श्रीनारद उवाच

पुरैवैतान्युपाङ्गानि चक्रादीनि विदेहराट्।
त्रैलोक्यनाथस्य हरेर्बभूवुस्तेजसा हृताः॥ २१

तेषां शङ्खः पाञ्चजन्यः प्राप्तो राजन् महत्पदम्।
पपौ तन्मुखलग्नोऽसौ श्रीकृष्णस्याधरामृतम्॥ २२

अकरोच्चैकदा मानं मनसि प्राह शङ्खराट्।
गृहीतोऽहं हि हरिणा राजहंससमद्युतिः॥ २३

श्रीकृष्णो दक्षिणावर्तं दध्मौ मां विजये सति।
यद्दुर्लभं चाब्धिपुत्र्याः श्रीकृष्णस्याधरामृतम्॥ २४

तत्तस्मात्सर्वमुख्योऽस्मि पिबाम्यहमहर्निशम्।
इति मानयुतं शङ्खं पाञ्चजन्यं विदेहराट्॥ २५

शशाप लक्ष्मीस्तं क्रोधात्त्वं दैत्यो भव दुर्मते।
सोऽयं पञ्चजनो नाम दैत्योऽभूत्सरितां पतौ॥ २६

वैरभावेन देवेशं पुनः प्राप्तो दरेश्वरः।
ज्योतिर्लीनं तु देवेशे वपुर्यस्य करे बभौ।
अहोभाग्यं विद्धि तस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ २७

मिथिलेश्वर! विदेहराज! बलदेवजीके कल्याणकारी हाथोंसे मारे जाकर वे दोषसे मुक्त हो गये और परम मोक्षको प्राप्त हुए। नरेश्वर! कंसके छोटे भाइयोंके पूर्वजन्मका यह वृत्तान्त मैंने कहा, तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥१८-१९॥

बहुलाश्वने पूछा—ब्रह्मन्! यह शङ्खरूपधारी दैत्य पञ्चजन पूर्वजन्ममें कौन था, जिसकी अस्थियों-का शङ्ख भगवान् श्रीकृष्णके करकमलमें सुशोभित हुआ?॥२०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेहराज! पूर्वकालसे ही ये चक्र आदि त्रिलोकीनाथ श्रीहरिके उपाङ्ग रहे हैं। वे सब-के-सब उनके तेजसे संगृहीत हुए थे। राजन्! उनमेंसे पाञ्चजन्य शङ्खको बड़ी ऊँची पदवी प्राप्त हुई। वह श्रीकृष्णके मुँहसे लगकर उनके अधरामृतका पान किया करता था॥२१-२२॥

एक दिन शङ्खराजने मन-ही-मन मानका अनुभव किया और इस प्रकार कहा—'मेरी कान्ति राजहंसके समान श्वेत है। मुझे साक्षात् श्रीहरिने अपने हाथोंसे गृहीत किया है। मैं दक्षिणावर्त शङ्ख हूँ और युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर श्रीकृष्ण मुझे बजाया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णका जो अधरामृत क्षीरसागर-कन्या लक्ष्मीके लिये भी दुर्लभ है, उसे मैं दिन-रात पीता रहता हूँ, अतः मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ।' विदेहराज! इस प्रकार मान प्रकट करते हुए पाञ्चजन्य शङ्खको लक्ष्मीने क्रोधपूर्वक शाप दिया—'दुर्मते! तू दैत्य हो जा।' वही शङ्खराज समुद्रमें यह पञ्चजन नामक दैत्य हुआ था, जो वैरभावसे भजनके कारण पुनः देवेश्वर श्रीहरिको प्राप्त हुआ। उसकी ज्योति देवेश्वर श्रीकृष्णमें लीन हो गयी और अब वह उन्हींके हाथमें शोभा पाता है। उस शङ्खराजका सौभाग्य अद्भुत है, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ २३—२७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे चाणूरादिकंसभ्रातृपञ्चजनपूर्वाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'चाणूर आदि मल्लों, कंसके भाइयों तथा पञ्चजन दैत्यके पूर्वजन्मका उपाख्यान' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी आज्ञासे उद्धवका व्रजमें जाना और श्रीदामा आदि सखाओंका उनसे श्रीकृष्ण-विरहके दुःखका निवेदन

बहुलाश्व उवाच

अग्रे चकार किं कार्यं मथुरायां यदूत्तमः।
निवासयित्वा स्वज्ञातीन् वदैतन्मुनिसत्तम॥ १

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमः साक्षाद्भगवान् भक्तवत्सलः।
सस्मार गोकुलं दीनं गोपीगोपालसङ्कुलम्॥ २
एकदाहूय रहसि सखायं भक्तमुद्धवम्।
उवाच भगवान् देवः प्रेमगद्गदया गिरा॥ ३

श्रीभगवानुवाच

गच्छ शीघ्रं व्रजं हे सखे सुन्दरं
श्रीलताकुञ्जपुञ्जादिभिर्मण्डितम्।
शैलकृष्णप्रभाचारु वृन्दावनं
गोपगोपीगणैर्गोकुलं सङ्कुलम्॥ ४
एकपत्रं तु नन्दाय वै दीयतां
वा द्वितीयं यशोदाकरे चैव भोः।
वा तृतीयं त्विदं राधिकायै सखे
तत्र गत्वा हि तन्मन्दिरं सुन्दरम्॥ ५
वा चतुर्थं सखिभ्यः शुभं कौशलं
दीयतां पत्रमेवं पृथग् भोः सखे।
गोपिकानां शतेभ्यश्च यूथेभ्य उन्-
मोहितानां च देयानि पत्राणि च॥ ६
मे पिता नन्दराजो घृणी मन्मना
मे च माता यशोदा स्मरत्याशु माम्।
वाक्यवृन्दैः शुभैर्नीतिवित्त्वं तयो-
र्मे परां प्रीतिमाराद् द्वयोरावह॥ ७
मत्प्रिया राधिका मद्वियोगातुरा
मन्यते मां विना खं जगन्मोहतः।
मद्वियोगाधिमस्या मदुक्तैः पदै-
र्मोचय त्वं भवान् दक्षिणो वाक्पथे॥ ८
गोपबालाः सुदामादयो मत्प्रिया
मां सखायं विना तेऽपि मोहातुराः।
देहि तेषां सुखं मित्रवच्छ्रीव्रजे
स्वल्पकालेन तत्रागमिष्याम्यहम्॥ ९

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! अपने कुटुम्बीजनों तथा जाति-भाइयोंको मथुरापुरीमें निवास देकर यदु-कुल-तिलक श्रीकृष्णने आगे चलकर कौन-कौन-सा कार्य किया?॥ १॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् भक्तवत्सल श्रीकृष्णने गोपी और गोपगणोंसे भरे हुए दीन-दुःखी गोकुलका स्मरण किया। अतः एक दिन एकान्तमें अपने सखा भक्त उद्धवको बुलाकर भगवान्ने प्रेमगद्गद वाणीमें कहा—॥ २-३॥

श्रीभगवान् बोले—हे सखे! लता-कुञ्जोंके समुदाय आदिसे अलंकृत सुन्दर व्रजमण्डलमें शीघ्र ही जाओ। गोवर्धन और यमुनाकी शोभासे मनोहर वृन्दावनमें तथा गोप-गोपियोंसे भरे हुए गोकुलमें भी पधारो। मित्र! मेरा एक पत्र तो नन्दबाबाको देना और दूसरा यशोदा मैयाके हाथमें देना। सखे! तीसरा पत्र श्रीराधिकाको उनके सुन्दर मन्दिरमें जाकर देना और चौथा मेरे सखा ग्वालबालोंको मेरा शुभ कुशल-समाचार निवेदन करते हुए देना। इसी प्रकार अत्यन्त मोहित हुई गोपाङ्गनाओंके सैकड़ों यूथोंको पृथक्-पृथक् पत्र देने हैं॥ ४—६॥

मेरे पिता नन्दराज बड़े दयालु हैं। उनका मन मुझमें ही लगा रहता है और मेरी मैया यशोदा शीघ्र ही अपने पास बुलानेके लिये मेरा स्मरण करती हैं। तुम तो नीतिशास्त्रके विद्वान् हो; सुन्दर-सुन्दर बातें सुनाकर उन दोनोंके हृदयमें मेरी परम प्रीति धारण कराना। मेरी प्राणवल्लभा राधिका मेरे वियोगसे आतुर है और मेरे बिना मोहवश सारे जगत्‌को सूना समझती है। उन सबको मेरे वियोगके कारण जो मानसिक व्यथा हो रही है, उसे मेरे संदेश-वचनोंद्वारा शान्त करो; क्योंकि तुम बातचीत करनेमें बड़े कुशल हो। सुदामा आदि ग्वाल-बाल मेरे प्रिय सखा हैं। मुझ अपने मित्रके बिना वे भी मोहसे आतुर हैं, तुम उन्हें भी मित्रकी तरह सुख देना। मैं थोड़े ही समयमें श्रीव्रज-धाममें आऊँगा॥ ७—९॥

गोपिका मद्वियोगाधिवेगातुरा
मन्मनस्काश्च मत्प्राप्तदेहासवः।
या मदर्थे च सन्त्यक्तलोकाबला-
स्ताः कथं नात्र मन्त्रिन् बिभर्मि स्वतः॥ १०

ता असून् त्यक्तुमत्रोद्यता उद्धव
याभिरद्यापि कृच्छ्रैर्धृताश्चासवः।
मद्वियोगाधिमासां मदुक्तैः पदै-
र्मोचय त्वं भवान् दक्षिणो वाक्पथे॥ ११

येन पूर्वं व्रजादागतोऽहं सखे
तं रथं साश्वसूतं रणद्घण्टिकम्।
मे च सारूप्यमद्यैव पीताम्बरं
वैजयन्तीसहस्रच्छदं पङ्कजम्॥ १२

कुण्डले दिव्यरत्नप्रभामण्डिते
कोटिबालार्कदीप्तं मणिं कौस्तुभम्।
मे महानादिनीं चारुवंशीं शुभां
पुष्पयुक्तां च यष्टिं जगन्मोहिनीम्॥ १३

चन्दनं सुन्दरं दिव्यगन्धावृतं
बर्हमल्लादिवेषं क्वणन्नूपुरम्।
मौलिमेवं गृहाणाङ्गदे उद्धव
गच्छ गच्छाशु चाद्यैव मद्वाक्यतः॥ १४

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त उद्धवः शीघ्रं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः।
कृष्णं प्रदक्षिणीकृत्य रथारूढो व्रजं ययौ॥ १५

कोटिशः कोटिशो गावो यत्र यत्र मनोहराः।
श्वेतपर्वतसङ्काशा दिव्यभूषणभूषिताः॥ १६

पयस्विन्यस्तरुणयश्च शीलरूपगुणैर्युताः।
सवत्साः पीतपुच्छाश्च व्रजन्त्यो भव्यमूर्तिकाः॥ १७

गोपाङ्गनाएँ मेरे वियोगकी व्यथाके वेगसे व्याकुल हैं। उनका मन मुझमें ही लगा हुआ है। उनके शरीर और प्राण भी मुझमें ही स्थित हैं। मन्त्रिप्रवर! जिन्होंने मेरे लिये अपने लोक-परलोक सब त्याग दिये हैं, उन अबलाओंका भरण-पोषण मैं स्वतः कैसे नहीं करूँगा? उद्धव! वे मेरे आते समय प्राण त्याग देनेको उद्यत थीं। वे आज भी बड़ी कठिनाईसे प्राण धारण करती हैं। मेरे वियोगसे उत्पन्न उनकी मानसिक व्यथाको तुम मेरे संदेश-वचनोंके द्वारा शान्त करो; क्योंकि वार्तालापकी कलामें तुम परम कुशल हो॥ १०-११॥

सखे! मैं पहले जिस रथपर आरूढ़ होकर व्रजसे आया था, उसी रथको, उन्हीं घोड़ों, सारथि और बजती हुई घण्टिकाओंसे सुसज्जित करके अपने साथ ले जाओ। मेरे समान ही रूप बना लो। अभी पीताम्बर, वैजयन्ती माला, सहस्रदल कमल, दिव्य रत्नोंकी प्रभासे मण्डित कुण्डल तथा कोटि बालरवियोंके समान उद्दीप्त कौस्तुभमणि भी धारण कर लो। मेरी उच्चस्वरसे बजनेवाली मनोहर बाँसुरी तथा फूलोंसे सजी हुई जगन्मोहिनी यष्टि (छड़ी) भी ले लो॥ १२-१३॥

उद्धव! मेरे ही समान दिव्य सुगन्धसे आवृत सुन्दर चन्दन, मोरपंख और बजते हुए नूपुरोंसे युक्त नटवर-वेष धारण कर लो। इसी तरह मेरा ही मोरपंखका मुकुट तथा दोनों बाजूबंद धारण करके मेरे आदेशसे अभी यथासम्भव शीघ्र जाओ, जाओ॥ १४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णके यों कहनेपर उद्धवने शीघ्र ही हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा करके रथपर आरूढ़ हो वे व्रजकी ओर चल दिये, जहाँ कोटि-कोटि मनोहर गौएँ दिव्य भूषणोंसे विभूषित हो श्वेत पर्वतके समान दिखायी देती थीं। वे सब-की-सब दूध देनेवाली तरुणी (कलोर), सुशीला, सुरूपा और सद्गुणवती थीं। उनके साथ बछड़े भी थे। उनकी पूँछके बाल पीले थे। चलते समय उनकी मूर्तियाँ बड़ी भव्य दिखायी देती थीं॥ १५—१७॥

घण्टामञ्जीरझङ्कारा: किङ्किणीजालमण्डिता:।
हेमतुल्या हेमशृङ्ग्यो हारमाला: स्फुरत्प्रभा:॥ १८

पाटला हरितास्ताम्रा: पीता: श्यामा विचित्रिता:।
धूम्रा: कोकिलवर्णाश्च यत्र गावस्त्वनेकधा॥ १९

समुद्रवद्दुग्धदाश्च तरुणीकरचित्रिता:।
कुरङ्गवद्विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डिता: शुभा:॥ २०

इतस्ततश्चलन्तश्च गोगणेषु महावृषा:।
दीर्घकन्धरशृङ्गाढ्या यत्र धर्मधुरन्धरा:॥ २१

गोपाला वेत्रहस्ताश्च श्यामा वंशीधरा: परा:।
कृष्णलीला: प्रगायन्तो रागैर्मदनमोहनै:॥ २२

दूरात्तमागतं वीक्ष्य ज्ञात्वा कृष्णं व्रजार्भका:।
ऊचु: परस्परं ते वै कृष्णदर्शनलालसा:॥ २३

गोपा ऊचुः

नन्दसूनु: किलायाति सखा योऽयं न संशय:।
मेघश्याम: पीतवासा: स्रग्वी कुण्डलमण्डित:॥ २४

कौस्तुभी कुण्डली बिभ्रत्सहस्रदलपङ्कजम्।
तदेव मुकुटं बिभ्रत्कोटिमार्तण्डसन्निभम्॥ २५

त एवाश्वा रथ: सोऽयं किङ्किणीजालमण्डित:।
बलो नास्ति रथे चास्मिन्नेकाकी नन्दनन्दन:॥ २६

गलेके घंटों और पैरोंके मञ्जीरोंका झंकार होता रहता था। वे किङ्किणियों (क्षुद्र-घण्टिकाओं) के जालसे मण्डित थीं। कितनी ही गौएँ सुवर्णके समान रंगवाली थीं। उनके सींगोंमें सोना मढ़ा गया था तथा नाना प्रकारके हारों और मालाओंसे अलंकृत हुई उन गौओंकी प्रभा सब ओर छिटक रही थी। कोई लाल, कोई हरी, कोई ताँबेके रंगवाली, कोई पीली, कोई श्यामा और कोई चितकबरी थी। उस व्रजमें धूम्रवर्ण और कोयलके-से काले रंगकी भी गौएँ दृष्टिगोचर होती थीं। तात्पर्य यह कि उस व्रजभूमिमें अनेकानेक रंगवाली गौएँ परिलक्षित होती थीं॥ १८-१९॥

वे समुद्रकी तरह अथाह दूध देनेवाली थीं। उनके अङ्गोंपर तरुणी स्त्रियोंके हाथोंके छापे लगे हुए थे। हिरनकी भाँति चौकड़ी भरनेवाले बछड़े उन सुन्दर गौओंकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन गौओंके झुंडमें बड़े-बड़े साँड़ इधर-उधर चलते दिखायी देते थे, उनके कंधे और सींग बड़े-बड़े थे। वे सब-के-सब धर्मधुरंधर थे। गोपगण हाथोंमें बेंतकी छड़ी और बाँसुरी लिये हुए थे। उनकी अङ्गकान्ति श्याम दिखायी देती थी। वे कामदेवोंको भी मोहित करनेवाले रागोंमें श्रीकृष्ण-लीलाओंका उच्चस्वरसे गान कर रहे थे। उद्धवको दूरसे आते देख, उन्हें कृष्ण समझकर व्रजके बालक श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे॥ २०—२३॥

गोप बोले—मित्र! ये नन्दनन्दन आ रहे हैं, जो हमारे प्रिय सखा हैं; निस्संदेह वे ही हैं। मेघके समान श्यामकान्ति, शरीरपर पीताम्बर, गलेमें वैजयन्ती माला तथा कानोंमें रत्नमय कुण्डल इनकी शोभा बढ़ाते हैं। वक्ष:स्थलपर कौस्तुभमणि, हाथोंमें गोल-गोल कड़े शोभा दे रहे हैं। हाथमें सहस्रदल कमल धारण करके माथेपर वही मुकुट पहने हुए हैं, जो करोड़ों मार्तण्डोंके तेजको तिरस्कृत कर देता है। वे ही घोड़े और वही किङ्किणीजालसे मण्डित रथ है। इस रथपर बलदेवजी नहीं हैं, अकेले नन्दनन्दन ही दिखायी देते हैं॥ २४—२६॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदन्तो गोपालाः श्रीदामाद्या विदेहराट्।
कृष्णाकृतिं कृष्णसखमाययुः सर्वतो रथम्॥ २७

कृष्णो नास्तीति वदतः कोऽयं साक्षात्तदाकृतिः।
तान्नमस्कृत्यौपगविः परिरभ्यावदत्पतिम्॥ २८

उद्धव उवाच

गृहाण पत्रं श्रीदामन् कृष्णदत्तं न संशयः।
शोकं मा कुरु गोपालैः कुशल्यास्ते हरिः स्वयम्॥ २९

यादवानां महत्कार्यं कृत्वाथ सबलः प्रभुः।
ह्रस्वकालेन चात्रापि भगवानागमिष्यति॥ ३०

श्रीनारद उवाच

पठित्वा तद्धस्तपत्रं श्रीदामाद्या व्रजार्भकाः।
भृशमश्रूणि मुञ्चन्तः प्राहुर्गद्गदया गिरा॥ ३१

गोपा ऊचुः

पान्थेति निर्मोहिनि नन्दसूनौ
तनुर्विभूतिश्च धनं बलं च।
सर्वा धियः कृष्णमृते व्रजे नः
शून्यं प्रजातं हि जगत्समस्तम्॥ ३२

क्षणो युगत्वं च घटी महामते
प्रयाति मन्वन्तरतां व्रजौकसाम्।
यामश्च कल्पं च दिनं विना हरिं
वियोगदुःखैर्द्विपरार्धतां गतम्॥ ३३

अहर्निशं तं न हि विस्मरामहे
दुष्टा घटी सा प्रययौ यया हि सः।
मनो हरन्नुद्धव नो वनौकसां
वयस्यभावेन सदा कृतागसाम्॥ ३४

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेहराज! इस प्रकार बातें करते हुए श्रीदामा आदि गोपाल कृष्णकी ही आकृति धारण करनेवाले कृष्ण-सखा उद्धवके पास रथके चारों ओरसे आ गये। निकट आनेपर वे बोले— 'श्रीकृष्ण तो नहीं हैं; किंतु साक्षात् उनके ही समान आकृतिवाला यह पुरुष कौन है?' इस तरह बोलते हुए उन गोपालोंको नमस्कार करके उद्धवने उन सबको हृदयसे लगाया और अपने स्वामी श्यामसुन्दर-की चर्चा आरम्भ की॥ २७-२८॥

उद्धव बोले—श्रीदामन्! यह तुम्हारे सखा श्रीकृष्णका दिया हुआ पत्र है, इसमें संशय नहीं है; तुम इसे ग्रहण करो। ग्वाल-बालोंसहित तुम शोक न करो। साक्षात् श्रीहरि सकुशल हैं। वे भगवान् यादवोंका महान् कार्य सिद्ध करके बलरामजीके साथ थोड़े ही दिनोंमें यहाँ आयेंगे॥ २९-३०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उनके हाथके दिये हुए पत्रको पढ़कर श्रीदामा आदि व्रजके बालक बहुत आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें बोले—॥ ३१॥

गोपोंने कहा—हे पथिक! निर्मोही नन्दनन्दन-में ही हमारा तन, वैभव, धन, बल और समस्त अन्तःकरण लगा हुआ है। श्रीकृष्णके बिना हमारा व्रज ही नहीं शून्य हुआ है, हमारे लिये सारा संसार सूना हो गया है। महामते! श्रीहरिके बिना उनके वियोगके दुःखसे हम व्रजवासियोंके लिये एक-एक क्षण युगके समान, एक-एक घड़ी मन्वन्तरके तुल्य, एक-एक प्रहर कल्पके समान तथा एक-एक दिन द्विपरार्धके सदृश हो गया है। उद्धव! हम दिन-रात उसे भुला नहीं पाते। हमारे जीवनमें वह कैसी दुष्ट घड़ी आयी थी, जिसमें श्यामसुन्दर यहाँसे चले गये। यद्यपि हम मित्रताके नाते सदा उनका अपराध करते रहे हैं, तथापि हम वनवासियोंके मनको उन्होंने सदाके लिये हर लिया॥ ३२—३४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उद्धवागमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उद्धवका आगमन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

उद्धवका श्रीकृष्ण-सखाओंको आश्वासन; नन्द और यशोदासे बातचीत तथा उनकी प्रेम-लक्षणा-भक्तिसे चकित होकर उद्धवका उन्हें श्रीकृष्णके चरित्र सुनाना

श्रीनारद उवाच

एवं प्रेमभरान् गोपाञ्छ्रीकृष्णविरहातुरान्।
उवाच प्रेमसंयुक्त उद्धवो गतविस्मयः॥ १

उद्धव उवाच

अहं श्रीकृष्णदासोऽस्मि तत्प्रियस्तद्रहस्करः।
भवतां कुशलं द्रष्टुं प्रेषितो हरिणा त्वरम्॥ २

पुरीं गत्वाथ हरये निवेद्य विरहं तु वः।
तं प्रसन्नं करिष्यामि तदङ्घ्रौ नेत्रवारिभिः॥ ३

नीत्वा हरिं हि भवतां समीपं हे व्रजौकसः।
आगमिष्याम्यहं शीघ्रं शपथो न मृषा मम॥ ४

यूयं प्रसन्ना भवत मा शोकं कुरुताथ वै।
अस्मिन् व्रजेऽपि गोपाला द्रक्ष्यथ श्रीपतिं हरिम्॥ ५

श्रीनारद उवाच

एवमाश्वास्य गोपालान् रथस्थो यदुनन्दनः।
श्रीदामाद्यैश्च गोपालैः सहितो हर्षपूरितः॥ ६

विवेश नन्दनगरं सूर्ये सिन्धुगते सति।
आगतं ह्युद्धवं श्रुत्वा नन्दराजो महामतिः।
परिरभ्य मुदा शीघ्रं पूजयामास हर्षितः॥ ७

कशिपुस्थं स्थितं शान्तमुद्धवं कृतभोजनम्।
कशिपुस्थो नन्दराजः प्राह गद्गदया गिरा॥ ८

नन्द उवाच

कच्चित्सखा मे पुरि शूरसेन
आस्ते स्वपुत्रैः कुशली महामते।
कंसे मृते यादवपुङ्गवानां
जातं सखे सौख्यमतः परं भुवि॥ ९

कच्चित्कदाचित्सबलो हि माधवः
स्मरत्यसौ वा जननीं यशोमतीम्।
गोपालगोवर्धनगोगणान् व्रजं
वृन्दावनं वा पुलिनं तरङ्गिणीम्॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार प्रेमभरे गोपोंसे, जो श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल थे, प्रेमी भक्त उद्धवने विस्मयरहित होकर कहा— ॥ १ ॥

उद्धव बोले—व्रजवासियो! मैं श्रीकृष्णका दास हूँ—उनका प्रेमपात्र तथा एकान्त सेवक हूँ। श्रीहरिने बड़ी उतावलीके साथ आपलोगोंका कुशल-मङ्गल जाननेके लिये मुझे यहाँ भेजा है। यहाँसे मथुरापुरीको लौटकर श्रीहरिसे आपलोगोंकी विरह-वेदना निवेदित करके अपने नेत्रोंके जलसे उनके चरण पखारकर उन्हें प्रसन्न करूँगा और उन्हें साथ लेकर शीघ्र ही आपलोगोंके समीप आऊँगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है, यह कभी झूठी नहीं होगी। गोपालगण! आपलोग प्रसन्न हों, शोक न करें। आप इस व्रजमें शीघ्र ही श्रीवल्लभ श्रीहरिका दर्शन करेंगे॥ २—५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार ग्वालोंको आश्वासन दे, रथपर बैठे हुए यदुनन्दन उद्धव श्रीदामा आदि गोपोंके साथ हर्षसे भरकर नन्दगाँवमें प्रविष्ट हुए। उस समय सूर्य समुद्रमें डूब चुके थे। उद्धवका आगमन सुनकर परम बुद्धिमान् नन्दराजने शीघ्र आकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक हृदयसे लगाया और बड़े हर्षसे उनका पूजन—स्वागत-सत्कार किया। जब उद्धवजी भोजन करके शान्तभावसे शय्यापर आसीन हुए, तब नन्दराजने भी शय्यापर स्थित हो गद्गद वाणीमें कहा॥ ६—८॥

नन्दजी बोले—महामते उद्धव! क्या मेरे मित्र वसुदेव मथुरापुरीमें अपने पुत्रोंके साथ सकुशल हैं? सखे! कंसके मर जानेपर यादव-शिरोमणियोंको इस भूतलपर परम सुख-सुविधाकी प्राप्ति हुई है। क्या कभी बलरामसहित माधव अपनी माता यशोदाको भी याद करते हैं? यहाँके ग्वाल, गोवर्धनपर्वत, गौओंके समुदाय और व्रज, वृन्दावन, यमुना-पुलिन अथवा यमुनानदीका भी कभी स्मरण करते हैं?॥ ९-१०॥

हा दैव कस्मिन् समये स्वनन्दनं
बिम्बाधरं सुन्दरमम्बुजेक्षणम्।
द्रक्ष्याम्यहं मन्दिरचत्वराजिरेऽ-
र्भकैर्लुठन्तं सबलं मुहुर्मुहुः॥ ११

कुञ्जो निकुञ्जो यमुना महानदी
गोवर्धनोऽरण्यमिदं वनानि।
गृहैर्लतावृक्षगवां गणैः सह
विना मुकुन्दं विषवत्त्विदं जगत्॥ १२

धिग्जीवनं मे शयनं च भोजनं
कृष्णं विना पद्मदलायतेक्षणम्।
चन्द्रं विना भूमितले चकोरव-
ज्जीवामि तस्यागमनाशया भृशम्॥ १३

हर्तुं भुवो भारमतीव दैवतैः
सम्प्रार्थितं पूर्णतमं महामते।
जातं सतां रक्षणतत्परं स्वयं
मन्ये हि कृष्णं सबलं परात्परम्॥ १४

श्रीनारद उवाच

संस्मृत्य संस्मृत्य हरिं परेशं
बभूव तूष्णीं नवनन्दराजः।
शिरो निधायाप्युपबर्हणे स्वे
ह्युत्कण्ठरोमाञ्चितविह्वलाङ्गः॥ १५

श्रीनन्दनेत्राम्बुजवारिसन्तती
राजंस्तदा कृष्णसखस्य पश्यतः।
शय्यां सवस्त्रामुपबर्हणान्तां
कृत्वार्द्रतां प्राङ्गण आचचाल॥ १६

श्रुत्वोद्धवं श्रीमथुरापुरागतं
कपाटमेत्याशु यशोमती सती।
शृण्वन्त्यलं स्वस्य सुतस्य वर्णनं
स्नेहस्रवत्सुस्तननेत्रपङ्कजा॥ १७

विहाय लज्जां घृणया सुतस्य सा
पप्रच्छ सर्वं कुशलं तदोद्धवम्।
आप्रोक्ष्य वस्त्रेण दृगश्रुसन्ततिं
स्थिते च नन्दे हरिभावविह्वले॥ १८

हा दैव! अब मैं किस समय बिम्बफलके समान लाल ओठवाले अपने पुत्र कमलनयन श्यामसुन्दरको बलराम और ग्वाल-बालोंके साथ बार-बार घरके आँगन और चबूतरोंपर लोटते देखूँगा? कुञ्ज, निकुञ्ज, महानदी यमुना, गिरिराज गोवर्धन, यह वृन्दावन तथा दूसरे-दूसरे वन, गृह, लता, वृक्ष और गौओंके समुदाय तथा इनके साथ ही यह सारा संसार मुकुन्दके बिना विषतुल्य प्रतीत हो रहा है॥ ११-१२॥

कमलदलके समान विशाल नेत्रवाले श्रीकृष्णके बिना मेरे जीवन, शयन और भोजनको भी धिक्कार है। इस भूतलपर चन्द्रमासे बिछुड़े हुए चकोरकी भाँति मैं उनके आगमनकी बहुत अधिक आशासे ही जीवन धारण कर रहा हूँ। महामते! मैं श्रीकृष्ण और बलरामको परात्पर परमेश्वर ही मानता हूँ। देवताओंके अत्यन्त प्रार्थना करनेपर वे पूर्णतम भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये स्वेच्छासे अवतीर्ण हुए हैं और अब संतोंकी रक्षामें तत्पर हैं॥ १३-१४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! परमेश्वर श्रीहरिका बार-बार स्मरण करके नवनन्दराज तकियेपर सिर रखकर चुप हो गये। उनका अङ्ग-अङ्ग उत्कण्ठाके कारण रोमाञ्चयुक्त और विह्वल हो रहा था। राजन्! उस समय श्रीकृष्णसखा उद्धवके देखते-देखते श्रीनन्दराजके नेत्र-कमलोंसे निकलती हुई अश्रुधारा बिस्तर और तकियेसहित शय्याको भिगोकर आँगनमें बह चली॥ १५-१६॥

मथुरापुरीसे उद्धवजीका आना सुनकर सती यशोदा तुरंत दरवाजेके किवाड़ोंके पास चली आयीं और अपने पुत्रकी चर्चा सुनने लगीं। उस समय स्नेहवश उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा और नेत्र-कमलोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। फिर वे लाज छोड़कर पुत्रस्नेहसे उद्धवके पास चली आयीं और सारा कुशल-मङ्गल स्वयं पूछने लगीं। नेत्रोंसे बहती हुई अश्रुधाराको आँचलसे पोंछकर, हरिकी भावनासे विह्वल नन्दजीकी उपस्थितिमें वे बोलीं— ॥ १७-१८॥

श्रीयशोदोवाच

क्वचित्स्मरति मां कृष्णो नन्दराजमथापि वा।
भ्रातरं नन्दराजस्य सन्नन्दं दर्शनोत्सुकम्॥ १९

नन्दान्नवोपनन्दांश्च वृषभानून् व्रजेषु षट्।
येषामारोहमास्थाय बालकेलिर्वने वने॥ २०

कन्दुकक्रीडया रेमे सानन्दं नन्दनन्दनः।
तान् गोपान् स्नेहसंयुक्तान् कदाचित्स्मरति स्वतः॥ २१

एकोऽयं मे सुतः प्राप्तो न सुता बहवश्च मे।
सोऽपि मां जननीं दीनां ययौ त्यक्त्वा दिगन्तरम्॥ २२

अहो कष्टं स्नेहवतां दुर्निवारं महामते।
किं करोमि विना पुत्रं कथं जीवामि मानद॥ २३

मातर्मह्यं देहि दधि मातर्हैयङ्गवं नवम्।
एवं वदन् स मधुरं हठं चक्रे सदा गृहे॥ २४

मध्याह्ने स कथं कृष्णो भोजनं कर्तुमर्हति।
ममात्मजोऽयं श्रीकृष्णो जीवनं व्रजवासिनाम्।
व्रजे धनं कुले दीपो मोहनो बाललीलया॥ २५

लालनैः पालनैस्तस्य दिनं मे क्षणवद्गतम्।
तद्दिनं कल्पवज्जातं विनाहो नन्दनन्दनम्॥ २६

वत्सान् चारयितुं कृष्णो ग्रामसीम्नि नदीतटे।
न कारितोऽर्भकैः सार्धं स चाहो मथुरां गतः॥ २७

हे मोहनेति दूरात्तमङ्कं नीत्वाथ लालनम्।
चकार नन्दराजोऽयं तं विना खिन्नतां गतः॥ २८

अहो दाम्ना मया बद्धो निर्मोहिन्यैकदा शिशुः।
भाण्डे भग्नीकृते दध्नः शोचामि चरितं च तत्॥ २९

श्रीयशोदाने कहा—उद्धव! क्या कन्हैया कभी मुझको अथवा अपने बाबा नन्दराजको याद करता है? इनके भाई सन्नन्द उसे देखनेके लिये बहुत उत्सुक रहते हैं, क्या वह इनका भी स्मरण करता है? इस व्रजमें नौ नन्द, नौ उपनन्द और छः वृषभानु रहते हैं। क्या कन्हैया इन सबको याद करता है? जिनकी गोदीमें बैठकर उसने वन-वनमें बालकेलि की थी, जिनके साथ नन्दनन्दन सानन्द गेंद खेला करता था, उन अपने स्नेही गोपोंका वह कभी स्वतः स्मरण करता है?॥ १९—२१॥

मुझे मेरे जीवनमें एकही यह बेटा मिला था, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं; फिर भी वह एक ही पुत्र मुझ दीन-दुखी माँको छोड़कर दूसरी दिशाको चला गया। महामते! स्नेह करनेवालोंके लिये कष्ट होना अनिवार्य है, यह कैसी आश्चर्यकी बात है! मानद! बताओ—मैं पुत्रके बिना क्या करूँ, कैसे जीवित रहूँ? 'मैया! मुझे दही दे, मैया! मुझे ताजा माखन दे'—इस प्रकार मधुर वाणीमें बोलकर वह घरमें सदा हठ किया करता था॥ २२—२४॥

वही कन्हैया अब दोपहरमें कैसे भोजन करता होगा? यह मेरा लाला कन्हैया व्रजवासियोंका जीवन है, व्रजका धन है, इस कुलका दीपक है तथा अपनी बाल-लीलासे सबके मनको मोह लेनेवाला है। उसके लालन-पालनमें मेरे इतने वर्षोंके दिन एक क्षणकी भाँति बीत गये। अहो! आज नन्दनन्दनके बिना वही दिन एक कल्पके समान भारी हो गया है। जिस कन्हैयाको ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चरानेके लिये मैं गाँवकी सीमापर और नदीके किनारे भी नहीं जाने देती थी, हाय! वही अब मथुरा चला गया! 'ओ मोहन!'—यों दूरसे पुकारकर जो उसे गोदमें लेते और लाड़-प्यार करते थे, वे ही नन्दराज उसके बिना खेद और विषादमें डूबे रहते हैं॥ २५—२८॥

अहो! एक दिन दहीका भाँड़ फोड़ देनेपर मुझ निर्मोहिनीने उस बच्चेको रस्सीसे बाँध दिया था। आज वह करतूत याद करके मैं शोकमें डूब रही हूँ॥ २९॥

तत्प्राङ्गणं सर्वसभा च मन्दिरं
सरश्च वीथीर्व्रजहर्म्यपृष्ठयः।
शून्यं समस्तं मम जीवनं धिग्
विना मुकुन्दं विषवत्त्विदं जगत्॥ ३०

यह आँगन, सारा सभामण्डप, मकान, सरोवर, गली, व्रज, महलोंकी छतें सब सूनी हो गयी हैं। मुकुन्दके बिना यह सारा जगत् विषके तुल्य प्रतीत होता है। कन्हैयाके बिना मेरे इस जीवनको धिक्कार है॥ ३०॥

श्रीनारद उवाच

यशोदानन्दयोर्वीक्ष्य परमं प्रेमलक्षणम्।
उद्धवो नितरां राजन् विस्मितोऽभूद्गतस्मयः॥ ३१

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यशोदा और नन्दमें उच्चकोटिके प्रेमका लक्षण प्रकट हुआ देख उद्धव अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। उनका अपना सारा ज्ञानाभिमान गल गया॥ ३१॥

उद्धव उवाच

रोममात्रं मम तनौ जिह्वा चेज्जायते त्वहो।
युवयोस्तदपि श्लाघां कर्तुं नालं महाप्रभू॥ ३२

परिपूर्णतमे साक्षाच्छ्रीकृष्णे पुरुषोत्तमे।
ईदृशी च कृता भक्तिर्युवाभ्यां प्रेमलक्षणा॥ ३३

तीर्थाटनतपोदानसांख्ययोगैश्च दुर्लभा।
शाश्वती युवयोः प्राप्ता या भक्तिः प्रेमलक्षणा॥ ३४

उद्धव बोले—अहो! महाप्रभु नन्द और यशोदाजी! मेरे शरीरमें जितने रोम हैं, वे सब यदि जिह्वाएँ हो जायँ तो उन जिह्वाओंद्वारा भी मैं आप दोनोंकी महत्ताका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। आप दोनोंने साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति ऐसी प्रेमलक्षणा-भक्ति की है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। आप दोनोंको जो सनातन प्रेमलक्षणा-भक्ति प्राप्त हुई है, वह तीर्थाटन, तपस्या, दान, सांख्य और योगसे भी सुलभ नहीं है॥ ३२—३४॥

मा शोकं कुरु हे नन्द हे यशोदे व्रजेश्वरि।
पत्रद्वयं गृहाणाशु कृष्णदत्तं न संशयः॥ ३५

सहाग्रजो नन्दसूनुः कुशल्यास्ते यदोः पुरि।
यादवानां महत्कार्यं कृत्वाथ सबलः प्रभुः॥ ३६

ह्रस्वकालेन चात्रापि भगवानागमिष्यति।
परिपूर्णतमं विद्धि श्रीकृष्णं नन्दनन्दनम्।
कंसादीनां वधार्थाय भक्तानां रक्षणाय च॥ ३७

ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णोऽवततार गृहे तव।
जातमात्रोऽद्भुतां लीलां चकार सबलो हरिः॥ ३८

हे नन्द और हे व्रजेश्वरी यशोदे! आप दोनों शोक न करें। ये दो पत्र आपलोग शीघ्र ही अपने हाथमें लें। इन पत्रोंको निस्संदेह श्रीकृष्णने ही दिया है। अपने बड़े भाई बलरामजीके साथ नन्दनन्दन श्रीकृष्ण यदुपुरीमें कुशलपूर्वक हैं। यादवोंका महान् कार्य सिद्ध करके बलरामसहित श्रीभगवान् यहाँ भी थोड़े ही समयमें आयेंगे। तुम नन्दनन्दन श्रीकृष्णको परिपूर्णतम परमात्मा समझो। वे कंस आदि दैत्योंका वध और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे आपके घरमें अवतीर्ण हुए हैं। बलरामसहित श्रीहरिने जन्म लेते ही अद्भुत लीला आरम्भ कर दी थी॥ ३५—३८॥

पूतनाप्राणहरणं शकटस्य निपातनम्।
तृणावर्तनिपातश्च यमलार्जुनभञ्जनम्॥ ३९

स्वमुखे च यशोदायै विश्वरूपस्य दर्शनम्।
वृन्दावने च भगवान् गोवत्सांश्चारयन् प्रभुः॥ ४०

वधं चकार गोपानां पश्यतां बकवत्सयोः।
अघासुरस्य च वधो धेनुकस्य विमर्दनम्॥ ४१

पूतनाके प्राणोंका अपहरण, शकटका भञ्जन, तृणावर्तको मार गिराना, यमलार्जुन वृक्षोंको तोड़ गिराना और अपने मुखमें यशोदाजीको विश्वरूपका दर्शन कराना आदि उनकी अलौकिक लीलाएँ हैं। वृन्दावनमें बछड़े चराते हुए उन प्रभावशाली भगवान्ने गोपोंके देखते-देखते बकासुर और वत्सासुरका वध किया, अघासुरको मारा, धेनुकासुरको कुचल डाला,

मर्दनं कालियस्यापि वह्निपानं चकार ह।
प्रलम्बस्य वधं पश्चाद्बलदेवश्चकार ह॥ ४२

गोवर्धनं समुत्पाट्य हस्तेनैकेन लीलया।
युष्माकं पश्यतां बिभ्रत्पुष्करं गजराडिव॥ ४३

चूडामणिं शङ्खचूडाज्जहार जगतां पतिः।
अरिष्टस्य वधं कृत्वा केशिनं निजघान ह॥ ४४

व्योमासुरं महादैत्यं मुष्टिना तं ममर्द ह।
तथा वै मथुरायां तु चक्रे चित्रं महामते॥ ४५

विकथ्यमानं रजकं करेणाभिजघान तम्।
प्रचण्डं कंसकोदण्डं मध्यतस्तद्बभञ्ज ह।
इक्षुदण्डं यथा नागः सर्वेषां पश्यतां नृणाम्॥ ४६

द्विपं कुवलयापीडं नागायुतसमं बले।
शुण्डादण्डे सङ्गृहीत्वा पातयामास भूतले॥ ४७

चाणूरं मुष्टिकं कूटं शलं तोशलमेव च।
पातयामास भूपृष्ठे मल्लयुद्धेन माधवः॥ ४८

कंसं मदोत्कटं दैत्यं नागलक्षसमं बले।
मञ्चाद्गृहीत्वा तं कृष्णो भ्रामयित्वा भुजौजसा॥ ४९

पातयामास भूपृष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः।
इभोपरि यथा सिंहस्तस्योपरि पपात सः॥ ५०

कंसानुजांश्च कङ्कादीन् बलदेवो महाबलः।
ममर्द मुद्गरेणाशु मृगान् वै मृगराडिव॥ ५१

गुरवे दक्षिणां दातुं समुत्पत्य महार्णवे।
शङ्खरूपं पञ्चजनं निजघान हरिः स्वयम्॥ ५२

अद्भुतानि चरित्राणि चैतानि श्रीहरिं विना।
कः करोति महानन्द तस्मै श्रीहरये नमः॥ ५३

कालियनागको रौंद डाला, दावानलको पी लिया तथा तत्पश्चात् बलदेवजीने प्रलम्बासुरका वध किया॥ ३९—४२॥

आप सब लोगोंके देखते हुए जैसे गजराज अपनी सूँड़में कमल धारण करता है, उसी प्रकार श्रीहरिने एक ही हाथसे लीलापूर्वक गोवर्धनपर्वतको उखाड़कर उठा लिया। उन जगदीश्वरने शङ्खचूड़से उसकी चूडामणि ले ली और अरिष्टासुरका वध करके केशीको भी कालके गालमें भेज दिया। व्योमासुर बड़ा भारी दैत्य था, किंतु भगवान्ने उसे मुक्केसे ही मसल डाला॥ ४३—४४ १/२॥

महामते! इसी प्रकार मथुरामें भी उन्होंने विचित्र पराक्रम प्रकट किया। कंसका रजक बड़ा डींग हाँकता था, किंतु श्रीहरिने एक ही हाथकी चोटसे उसका काम तमाम कर दिया। सब लोगोंके देखते-देखते कंसके प्रचण्ड धनुर्दण्डको बीचसे ही खण्डित कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे हाथी ईखके डंडेको तोड़ डालता है। कुवलयापीड नामक हाथी बलमें दस हजार हाथियोंकी समानता करता था, किंतु भगवान्ने उसकी सूँड़ पकड़कर उसे भूतलपर दे मारा॥ ४५—४७॥

चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलको माधवने मल्लयुद्ध करके भूपृष्ठपर मार गिराया। मदमत्त दैत्य कंस एक लाख हाथियोंके समान बलशाली था; परंतु उसे श्रीकृष्णने मञ्चसे उठाकर भुजाओंके वेगसे घुमाते हुए पृथ्वीपर उसी तरह पटक दिया, जैसे कोई बालक कमण्डलुको गिरा दे। फिर जैसे हाथीपर सिंह कूदे, उसी प्रकार वे कंसपर कूद पड़े॥ ४८—५०॥

कंसके कङ्क आदि छोटे भाइयोंका महाबली बलदेवने मुद्गरसे ही तुरंत उसी प्रकार कचूमर निकाल दिया, जैसे किसी सिंहने बहुत-से मृगोंको मौतके घाट उतार दिया हो। अपने गुरुको दक्षिणा देनेके लिये महासागरमें कूदकर स्वयं श्रीहरिने शङ्खरूपधारी पञ्चजन नामक असुरका संहार कर डाला। महानन्द! ये अद्भुत चरित्र भगवान् श्रीकृष्णके बिना कौन कर सकता है? उन श्रीहरिको नमस्कार है॥ ५१—५३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नन्दराजोद्धवमेलनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नन्दराज और उद्धवका मिलन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

गोपाङ्गनाओंके साथ उद्धवका कदली-वनमें जाना और वहाँ उनकी स्तुति करके श्रीकृष्णद्वारा भेजे गये पत्र अर्पित करना

श्रीनारद उवाच

एवं हि नन्दोद्धवयोर्हरेः कथयतोः कथाम्।
व्यतीता क्षणवद्राजन् क्षणदा हर्षवर्धिनी॥ १

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय गोप्यः सर्वा गृहे गृहे।
देहल्यङ्गणमालिप्य दीपांस्तत्र निरूप्य च॥ २

प्रक्षाल्य हस्तपादौ च मथ्न्यां नेत्रं निधाय च।
ममन्थुः सर्वतो युक्ताः पिच्छिलानि दधीनि ताः॥ ३

नेत्राकर्षचलद्हारभुजकङ्कणकिङ्किणीः।
वेणीभ्यो विगलत्पुष्पाः स्फुरत्कुण्डलमण्डिताः॥ ४

चन्द्रमुख्यः कञ्जनेत्राश्चित्रवस्त्रैर्मनोहराः।
मङ्गलानि चरित्राणि श्रीकृष्णबलदेवयोः॥ ५

गायन्त्यः प्रेमसंयुक्ता यत्र तत्र गृहे गृहे।
घोषे घोषे शुभा गावो रम्भमाणा इतस्ततः॥ ६

सर्वत्र गोपिकागीतं दधिशब्देन मिश्रितम्।
वीथ्यां वीथ्यान्ततः शृण्वन् विस्मितश्चोद्धवोऽब्रवीत्॥ ७

अहो वै नन्दनगरे भक्तिर्नृत्यति यत्र च।
एवं वदन् बहिर्ग्रामाद्ययौ स्नातुं नदीजले॥ ८

गोप्य ऊचुः

कस्यायमद्यात्र रथः समागतोऽ-
क्रूरोऽथवा क्रूर उतागतः पुनः।
येनैव नीतो मथुरां महापुरीं
श्रीनन्दसूनुर्नवकञ्जलोचनः॥ ९

कस्मिन् कुकाले जननी ससर्ज यं
दातुं सतां स्नेहवतां प्रतापनम्।
कद्रूर्यथा नागचयं विषावृतं
हन्तुं वृथा लोकजनानितस्ततः॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीहरिकी चर्चा करते हुए नन्द और उद्धवकी वह रात एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी, उनके हर्षको बढ़ानेवाली होनेके कारण उसका 'क्षणदा' (आनन्द-दायिनी) नाम चरितार्थ हो गया। जब ब्राह्ममुहूर्त आया, तब सारी गोपाङ्गनाओंने उठकर अपने-अपने द्वारकी देहली एवं आँगन लीपकर वहाँ प्रज्वलित दीप रख दिये॥ १-२॥

फिर हाथ-पैर धोकर मथानीसे रस्सी लगाकर वे स्नेहयुक्त दहीको सब ओरसे मथने लगीं। मथानीकी रस्सी खींचनेसे चञ्चल हुए हार और हाथोंके कंगन बज रहे थे। उनकी वेणियोंसे फूल झर-झरकर गिर रहे थे और चमकते हुए कुण्डल उनके कानोंकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ३-४॥

वे सब-की-सब चन्द्रमुखी, कमलनयनी तथा विचित्र वर्णोंके वस्त्र धारण करनेके कारण अत्यन्त मनोहर थीं। श्रीकृष्ण और बलदेवके मङ्गलमय चरित्रोंका घर-घरमें जहाँ-तहाँ प्रेमपूर्वक गान कर रही थीं। प्रत्येक गोष्ठमें सुन्दर गौएँ इधर-उधर रँभा रही थीं। गली-गलीमें सर्वत्र दही मथनेके शब्दसे मिश्रित गोपाङ्गनाओंका गीत सुनकर विस्मित हुए उद्धव इस प्रकार बोल उठे—'अहो! इस नन्द-नगरमें तो भक्तिदेवी यत्र-तत्र-सर्वत्र नृत्य कर रही हैं।' यों कहते हुए वे गाँवसे बाहर यमुना-नदीमें स्नान करनेके लिये गये॥ ५—८॥

गोपियाँ बोलीं—सखियो! आज यहाँ किसका रथ आ पहुँचा है? अथवा वह क्रूर अक्रूर ही तो फिर नहीं आया है, जो नूतन-कमल-दल-लोचन श्रीनन्द-नन्दनको महापुरी मथुरामें लिवा ले गया था? जैसे कद्रूने जगत्के लोगोंको मारने या डँसवानेके लिये ही इधर-उधर विषधर नागोंको उत्पन्न किया है, उसी प्रकार स्नेही सत्पुरुषोंको तीव्र ताप देनेके लिये ही न जाने उसकी माताने उसे किस कुसमयमें जन्म दिया था?॥ ९-१०॥

कंसार्थकृत्कंससखोऽतिनिर्घृणो
सोऽयं पुनः किं व्रजमण्डलं गतः।
भर्तुर्मृतस्यापि हि पारलौकिकी-
मस्माभिरद्यैव करिष्यति क्रियाम्॥ ११

जो कंसका स्वार्थसाधक तथा कंसका ही अत्यन्त निर्दय सखा है, वह इस व्रजमण्डलमें फिर क्यों आया है? अपने मरे हुए स्वामीकी पारलौकिक क्रिया क्या आज वह हमलोगोंके प्राणोंसे ही सम्पन्न करेगा?॥ ११॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदन्त्यो व्रजगोपवध्वः
सन्ताड्य सूतं च मुखेऽङ्गुलिभ्याम्।
पप्रच्छुराराद् गतबुद्धिमार्तं
त्वरं वदैतत्किल कस्य यानम्॥ १२

घनप्रभं पद्मदलायतेक्षणं
कृष्णाकृतिं कोटिमनोजमोहनम्।
पीताम्बरं षट्पदसङ्घसङ्कुलां
मालां दधानं नववैजयन्तीम्॥ १३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार बातचीत करती हुई व्रजकी गोपाङ्गनाएँ सारथिके मुखको दो अङ्गुलियोंसे ठोककर निकटसे पूछने लगीं—'जल्दी बताओ, यह किसका रथ है?' [बेचारा सारथि आर्तभावसे हक्का-बक्का-सा होकर देखने लगा। इतनेमें उन्हें उद्धवजी आते दिखायी दिये।] उनकी कान्ति मेघके समान श्याम थी। नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल थे। आकार भी श्रीकृष्णसे मिलता-जुलता था। वे करोड़ों कामदेवोंको मोह लेनेवाले जान पड़ते थे। उनके शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था। उन्होंने गलेमें नूतन वैजयन्ती माला धारण कर रखी थी, जिसपर झुंड-के-झुंड भ्रमर टूटे पड़ते थे॥ १२-१३॥

स्फुरत्सहस्रच्छदपद्मपाणिं
वंशीधरं वेत्रकरं मनोहरम्।
बालार्ककोटिद्युतिमौलिमण्डनं
महामणिं कुण्डलमण्डिताननम्॥ १४

गत्याकृतिश्रीतनुहाससुस्वरैः
श्रीकृष्णसारूप्यधरं तमुद्धवम्।
विलोक्य सर्वा नृप विस्मितास्ततो
विज्ञाय गोविन्दसखं ययुः पुरः॥ १५

उनके हाथमें सहस्रदल कमल सुशोभित था। उन्होंने हाथोंमें बाँसुरी और बेंतकी छड़ी ले रखी थी। उनका वेष बड़ा मनोहर था। करोड़ों बालरवियोंकी कान्तिसे युक्त मुकुट उनके मस्तकको मण्डित कर रहा था। वक्षःस्थलमें कौस्तुभ नामक महामणि प्रकाशमान थी और रत्नमय कुण्डल उनके कपोलमण्डलकी कान्ति बढ़ा रहे थे। नरेश्वर! चाल-ढाल, आकृति, शोभा, शरीर, हास और मधुरस्वर—सभी दृष्टियोंसे श्रीकृष्णका सारूप्य धारण करनेवाले उन उद्धवको देखकर समस्त गोपियाँ चकित हो गयीं और उन्हें गोविन्दका सखा जानकर उनके सामने आयीं॥ १४-१५॥

ज्ञात्वाथ सन्देशहरं हरेः प्रभोः
सुवाक्यनीत्या परमादरेण तम्।
गुप्तं हि प्रष्टुं कुशलं सताम्पते-
र्नीत्वोद्धवं ताः कदलीवनं गताः॥ १६

यत्रैव राधा वृषभानुनन्दिनी
कृष्णातटे चारुनिकुञ्जमन्दिरे।
समास्थिता तद्विरहातुरा भृशं
खं मन्यते सा तु जगद्धरिं विना॥ १७

यह जानकर कि ये भगवान् श्रीहरिका संदेश लेकर आये हैं, वे नीतियुक्त सुन्दर वचन बोलकर उनके प्रति आदर दिखाने लगीं तथा संतोंके स्वामी गोविन्दकी गूढ़ कुशल पूछनेके लिये उन उद्धवजीको साथ लेकर वे कदलीवनमें गयीं, जहाँ वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा यमुनाके तटपर मनोहर निकुञ्जमन्दिरमें भगवान्के विरहसे आतुर होकर बैठी थीं और उन श्रीहरिके बिना सारे जगत्को सर्वथा सूना मानती थीं॥ १६-१७॥

रम्भादलैश्चन्दनपङ्कसञ्चयं
पुरा स्फुरच्छीतलमेघमन्दिरम्।
कृष्णाचलच्चारुतरङ्गसीकरं
स्वतः सुधारश्मिगलत्सुधाचयम्॥ १८

एतादृशं यत्कदलीवनं च तद्
राधावियोगानलवर्चसा भृशम्।
बभूव सर्वं सततं हि भस्मसात्
कृष्णागमाशात्मतनुं हि रक्षति॥ १९

श्रुत्वोद्धवं कृष्णसखं समागतं
चकार राधा स्वसखीभिरादरम्।
जलाशनाद्यैर्मधुपर्कमङ्गलैः
श्रीकृष्ण कृष्णेति मुहुर्वदन्त्यलम्॥ २०

राधां हि गोविन्दवियोगखिन्नां
कुह्वां यथा चन्द्रकलां तदोद्धवः।
नतां कृशाङ्गीं कृतहस्तसम्पुटः
प्रदक्षिणीकृत्य जगाद हर्षितः॥ २१

उद्धव उवाच

सदास्ति कृष्णः परिपूर्णदेवो
राधे सदा त्वं परिपूर्णदेवी।
श्रीकृष्णचन्द्रः कृतनित्यलीलो
लीलावती त्वं कृतनित्यलीला॥ २२

कृष्णोऽस्ति भूमा त्वमसीन्दिरा सदा
ब्रह्मास्ति कृष्णस्त्वमसि स्वरा सदा।
कृष्णः शिवस्त्वं च शिवा शिवार्था
विष्णुः प्रभुस्त्वं किल वैष्णवी परा॥ २३

कौमारसर्गी हरिरादिदेवता
त्वमेव हि ज्ञानमयी स्मृतिः शुभा।
लयाम्भसा क्रीडनतत्परो हरि-
र्यज्ञो वराहो वसुधा त्वमेव हि॥ २४

देवर्षिवर्यो मनसा हरिः स्वयं
त्वं तत्र साक्षान्निजहस्तवल्लकी।
नारायणो धर्मसुतो नरेण हि
शान्तिस्तदा त्वं जनशान्तिकारिणी॥ २५

जो पहले केलोंके पत्तोंसे और घिसे हुए चन्दनके पङ्कसे शीतल मेघमन्दिर-सा प्रतीत होता था तथा यमुनाकी चञ्चल चारु तरंगोंकी फुहार पड़नेसे जहाँ ऐसा प्रतीत होता था कि साक्षात् सुधाकिरण चन्द्रमाकी सुधाराशि स्वतः गल रही है, ऐसा कदली-वन सारा-का-सारा श्रीराधाकी वियोगाग्निके तेजसे अत्यन्त झुलस गया था। केवल श्रीकृष्णके शुभागमनकी आशासे श्रीराधा अपने शरीरकी रक्षा कर रही थीं॥ १८-१९॥

श्रीकृष्णके सखा उद्धवका आगमन सुनकर श्रीराधाने अपनी सखियोंके द्वारा अन्न, पान और मधुपर्क आदि माङ्गलिक वस्तुएँ अर्पितकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उस समय वे बारंबार 'श्रीकृष्ण-कृष्ण' का उच्चारण करती थीं। गोविन्दके वियोगसे खिन्न हुई राधा अमावास्यामें प्रविष्ट चन्द्रकलाकी भाँति क्षीण हो रही थीं। उस समय उद्धवने नताङ्गी एवं कृशाङ्गी राधाको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके वे हर्षपूर्वक बोले— ॥ २०-२१॥

उद्धवने कहा—श्रीराधे! श्रीकृष्ण सदा परिपूर्णतम भगवान् हैं और आप सदा परिपूर्णतमा भगवती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र नित्यलीलापरायण हैं और आप नित्यलीलाका सम्पादन करनेवाली नित्यलीलावती हैं। श्रीकृष्ण भूमा हैं और आप इन्दिरा हैं। श्रीकृष्ण नित्य सनातन ब्रह्म हैं और आप सदा उनकी शक्ति सरस्वती हैं। श्रीकृष्ण शिव हैं और आप कल्याणस्वरूपा शिवा हैं। भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु हैं और आप निश्चय ही उनकी पराशक्ति वैष्णवी हैं॥ २२-२३॥

आदिदेवता श्रीहरि कौमारसर्गी—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार हैं तथा आप ज्ञानमयी शुभा स्मृति हैं। श्रीहरि प्रलयकालके जलमें क्रीड़ा करनेवाले यज्ञवराह हैं और आप ही वसुधा हैं। श्रीहरि मनसे जब देवर्षिवर्य नारद बनते हैं, तब साक्षात् आप ही उनके हाथकी वीणा होती हैं। श्रीहरि जब धर्मनन्दन नर और नारायण होते हैं, तब आप ही जगत्में शान्ति स्थापित करनेवाली साक्षात् शान्तिरूपिणी होती हैं॥ २४-२५॥

कृष्णस्तु साक्षात्कपिलो महाप्रभुः
सिद्धिस्त्वमेवासि च सिद्धसेविता।
दत्तस्तु कृष्णोऽस्ति महामुनीश्वरो
राधे सदा ज्ञानमयी त्वमेव हि॥ २६

यज्ञो हरिस्त्वं किल दक्षिणा हरि-
रुरुक्रमस्त्वं हि सदा जयन्त्यतः।
पृथुर्यदा सर्वनृपेश्वरो हरि-
रर्चिस्तदा त्वं नृपपट्टकामिनी॥ २७

शङ्खासुरं हन्तुमभूद्धरिर्यदा
मत्स्यावतारस्त्वमसि श्रुतिस्तदा।
कूर्मो हरिर्मन्दरसिन्धुमन्थने
नेत्रीकृता त्वं शुभदा हि वासुकौ॥ २८

धन्वन्तरिश्चार्तिहरो हरिः पर-
स्त्वमौषधी दिव्यसुधामयी शुभे।
श्रीकृष्णचन्द्रस्तु बभूव मोहिनी
त्वं मोहिनी तत्र जगद्विमोहिनी॥ २९

हरिर्नृसिंहस्तु नृसिंहलीलया
लीला तदा त्वं निजभक्तवत्सला।
बभूव कृष्णस्तु यदा हि वामनः
कीर्तिस्तदा त्वं निजलोककीर्तिता॥ ३०

हरिर्यदा भार्गवरूपधृक् पुमान्
धारा कुठारस्य तदा त्वमेव हि।
श्रीकृष्णचन्द्रो रघुवंशचन्द्रमा
यदा तदा त्वं जनकस्य नन्दिनी॥ ३१

श्रीशार्ङ्गधन्वा मुनिबादरायणो
वेदान्तकृत्त्वं किल देवलक्षणा।
सङ्कर्षणो माधव एव वृष्णिषु
त्वं रेवती ब्रह्मभवा समास्थिता॥ ३२

बुद्धो यदा कौणपमोहकारको
बुद्धिस्तदा त्वं जनमोहकारिणी।
कल्की यदा धर्मपतिर्भविष्यति
हरिस्तदा त्वं तु कृतिर्भविष्यसि॥ ३३

श्रीकृष्ण ही साक्षात् महाप्रभु कपिल हैं और आप ही सिद्धसेविता सिद्धि। राधे! श्रीकृष्ण महामुनीश्वर दत्तात्रेय हैं और आप ही नित्यज्ञानमयी सिद्धि। श्रीहरि यज्ञ हैं और आप दक्षिणा। वे उरुक्रम वामन हैं तो आप सदा उनकी शक्ति जयन्ती हैं। श्रीहरि जब समस्त राजाओंके अधिराज पृथु होते हैं, तब आप उन महाराजकी पटरानी अर्चिदेवीके रूपमें प्रकट होती हैं। शङ्खासुरका वध करनेके लिये जब श्रीहरिने मत्स्यावतार ग्रहण किया, तब आप श्रुतिरूपा हुईं। मन्दराचलद्वारा समुद्र-मन्थनके समय श्रीहरि कच्छपरूपमें प्रकट हुए, तब आप वासुकिनागमें शुभदायिनी नेती शक्तिरूपसे प्रकट हुईं॥ २६—२८॥

शुभे! परमेश्वर श्रीहरि जब पीड़ाहारी धन्वन्तरिके रूपमें आविर्भूत हुए, तब आप दिव्य सुधामयी ओषधिके रूपमें दृष्टिगोचर हुईं। श्रीकृष्णचन्द्र जब मोहिनीरूपमें सामने आये, तब आप उनके भीतर विश्वविमोहिनी मोहिनीके रूपमें अभिव्यक्त हुईं। श्रीहरि जब नृसिंहरूप धारण करके नृसिंहलीला करने लगे, तब आप निज-भक्तवत्सला लीलाके रूपमें सामने आयीं। जब श्रीकृष्णने वामनरूप धारण किया, तब आप अपने भक्तजनोंद्वारा कीर्तित कीर्तिरूपिणी हुईं। जब श्रीहरि भृगुनन्दन परशुरामका रूप धारण करके सामने आये, तब आप ही उनके कुठारकी धारा बनीं। श्रीकृष्णचन्द्र जब रघुकुलचन्द्र श्रीराम हुए, तब आप ही उनकी धर्मपत्नी जनकनन्दिनी सीता थीं॥ २९—३१॥

जब शार्ङ्गधन्वा श्रीहरि बादरायणमुनि व्यासके रूपमें प्रकट होते हैं, तब आप वेदान्ततत्त्वको प्रकट करनेवाली देववाणीके रूपमें आविर्भूत होती हैं। वृष्णि-कुल-तिलक माधव ही जब संकर्षणरूप होते हैं, तब आप ही ब्रह्मभवा रेवतीके रूपमें उनकी सेवामें विराजमान होती हैं। श्रीहरि जब असुरोंको मोहित करनेवाले बुद्धके रूपमें प्रकट होते हैं, तब आप विश्वजनमोहिनी बुद्धि होती हैं। जब श्रीहरि धर्मपालक कल्किके रूपमें प्रकट होंगे, तब आप कृतिरूपिणी होंगी॥ ३२-३३॥

श्रीकृष्णचन्द्रोऽस्ति हि चन्द्रमण्डले
राधे सदा चन्द्रमुखीति चन्द्रिका।
श्रीकृष्णसूर्यो दिवि सूर्यमण्डले
सूर्यप्रभा त्वं परिधिप्रतिष्ठिता॥ ३४
इन्द्रः सदास्ते किल यादवेन्द्र-
स्तत्रैव राधे तु शची शचीश्वरी।
हिरण्यरेता हि हरिः परेश्वरो
हेतिः सदा त्वं हि हिरण्मयी परा॥ ३५
श्रीराजराजो हि विराजते हरि-
र्विराजसे त्वं तु निधौ निधीश्वरी।
क्षीराब्धिरूपी तु हरिस्त्वमेव हि
तरङ्गितक्षौमसिता तरङ्गिणी॥ ३६
बिभ्रद्वपुः सर्वपतिर्यदा यदा
तदा तदा त्वं विदितानुरूपिणी।
जगन्मयो ब्रह्ममयो हरिः स्वयं
जगन्मयी ब्रह्ममयी त्वमेव हि॥ ३७
अथैव सोऽयं व्रजराजनन्दनो
जातासि राधे वृषभानुनन्दिनी।
याभ्यां कृता सत्त्वमयी प्रशान्तये
लीला चरित्रैर्ललितादिलीलया॥ ३८
कृष्णः स्वयं ब्रह्म परं पुराणो
लीला तदिच्छाप्रकृतिस्त्वमेव।
परस्परं सन्धितविग्रहाभ्यां
नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम्॥ ३९
गृहाण पत्रं निजनाथदत्तं
शोकं परं मा कुरु राधिके त्वम्।
ह्रस्वेन कालेन विधाय कार्यं
तत्रागमिष्यामि तदुक्तवाक्यम्॥ ४०
गृह्णीध्वमद्यैव शतानि कृष्ण-
दत्तानि पत्राणि सुमङ्गलानि।
प्रत्यर्पितं यूथशतं च गोप्यः
कृष्णप्रियाणां व्रजसुन्दरीणाम्॥ ४१

चन्द्रमुखी राधे! चन्द्रमण्डलमें श्रीकृष्ण ही चन्द्ररूप हैं और आप ही सदा चन्द्रिकारूपिणी हैं। आकाशगत सूर्यमण्डलमें श्रीकृष्ण ही सूर्य हैं और आप ही उनकी प्रभामयी परिधिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। राधे! निश्चय ही यादवेन्द्र श्रीहरि सदा देवराज इन्द्रके रूपमें विराजते हैं और आप वहीं शचीश्वरी शचीके रूपमें निवास करती हैं। परमेश्वर श्रीहरि ही हिरण्यरेता अग्नि हैं और आप ही सदा हिरण्मयी पराज्योति हैं। श्रीकृष्ण ही राजराज कुबेरके रूपमें विराजते हैं और आप ही उनकी निधिमें निधीश्वरी होकर शोभा पाती हैं। साक्षात् श्रीहरि ही क्षीरसागर हैं और आप ही तरंगित होनेवाली श्वेत रेशमके समान शुक्लवर्णा तरङ्गमाला हैं॥ ३४—३६॥

सर्वेश्वर श्रीहरि जब-जब कोई शरीर धारण करते हैं, तब-तब आप उनके अनुरूप शक्तिके रूपमें प्रसिद्ध होती हैं। स्वयं श्रीहरि जगत्स्वरूप तथा ब्रह्मरूप हैं और आप ही जगन्मयी एवं ब्रह्ममयी चैतन्यशक्ति हैं। राधे! आज भी वे ही ये श्रीहरि व्रजराजनन्दन हैं और आप उनकी प्रिया वृषभानुनन्दिनी हैं। आप दोनोंने जगत्में सुख-शान्तिकी स्थापनाके लिये नाना प्रकारके क्रीडामय चरित्रोंद्वारा ललित आदि लीलाओंके रूपमें सत्त्वमयी लीला प्रकट की है॥ ३७-३८॥

पुराण-पुरुष श्रीकृष्ण स्वयं परब्रह्म हैं और आप ही उनकी इच्छारूपिणी लीलाशक्ति हैं। आप दोनोंके श्रीविग्रह सदा परस्पर संयुक्त हैं। ऐसे आप दोनों श्रीराधा-कृष्णको मेरा नमस्कार है। राधिके! आप शोक न करें और अपने प्राणनाथका दिया हुआ यह पत्र लें। उन्होंने यह संदेश दिया है कि मैं कुछ ही दिनोंमें यहाँके कार्योंका सम्पादन करके वहाँ आऊँगा। गोपाङ्गनाओ! आज ही भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए ये परम मङ्गलमय सैकड़ों पत्र आपलोग ग्रहण करें। श्रीकृष्णकी प्रियतमा व्रजसुन्दरियोंके शत-शत यूथोंके लिये ये पत्र अर्पित किये गये हैं॥ ३९—४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीराधादर्शनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उद्धवद्वारा श्रीराधाका दर्शन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

उद्धवद्वारा श्रीराधा तथा गोपीजनोंको आश्वासन

श्रीनारद उवाच

राधा पत्रं सङ्गृहीत्वा शिरो नेत्रे तथा च हृत्।
निधाय वाचयित्वा तत्स्मृत्वा तत्पादपङ्कजम्॥ १

अतिप्रेमातुरा राजन् मोचयित्वाश्रुसन्ततिम्।
मूर्च्छामाप परां राधा यादवस्य प्रपश्यतः॥ २

कुङ्कुमागुरुपाटीरद्रवैः पुष्परसैश्च सा।
अर्चिता चामरान्दोलैः पुनश्चैतन्यतां गता॥ ३

वियोगसिन्धुसम्मग्नां राधां कमललोचनाम्।
वीक्ष्योद्धवस्तथा गोप्यो मुमुचुश्चाश्रुसन्ततिम्॥ ४

तासामश्रुप्रवाहेण राजन् वृन्दावने वने।
सद्यः कह्लारसंयुक्तो जातो लीलासरोवरः॥ ५

दृष्ट्वा पीत्वा च सुस्नात्वा श्रुत्वा चेमां कथां नरः।
कर्मबन्धविनिर्मुक्तः श्रीकृष्णं प्राप्नुयान्नृप॥ ६

अथोद्धवमुखाच्छ्रुत्वा श्रीकृष्णागमनं पुनः।
पप्रच्छुः कुशलं सर्वं श्रीकृष्णस्य महात्मनः॥ ७

श्रीराधोवाच

आनन्ददं श्रीव्रजराजनन्दनं
द्रक्ष्यामि कस्मिन् समये घनप्रभम्।
घनं मयूरीव समुत्सुका भृशं
चन्द्रं चकोरीव तदीक्षणोत्सुका॥ ८

कस्मिन् कुकाले विरहो बभूव मे
येनैव कौ कल्पसमः क्षणः क्षणः।
निशीथिनीयं द्विपरार्धहेलनं
करोति गोविन्दपदद्वयं विना॥ ९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधाने पत्र लेकर उसे अपने मस्तकपर रखा, फिर नेत्रों और छातीसे लगाया। तदनन्तर उसे पढ़कर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका स्मरण करके, अत्यन्त प्रेमातुर हो नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाती हुई वे उद्धवके सामने ही मूर्च्छाकी पराकाष्ठाको पहुँच गयीं। तब सखियोंने उनके ऊपर केसर, अगुरु और चन्दनसे मिश्रित जल तथा पुष्परस छिड़ककर चँवर डुलाना आरम्भ किया। इससे पुनः उनकी चेतना लौटी॥ १—३॥

कमललोचना श्रीराधाको वियोग-दुःखके सागरमें डूबी हुई देख उद्धव तथा गोपियाँ नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहाने लगीं। राजन्! उन सबके आँसुओंके प्रवाहसे तत्काल वृन्दावनमें कह्लार-पुष्पोंसे सुशोभित लीला-सरोवर प्रकट हो गया। नरेश्वर! जो मनुष्य उस सरोवरका दर्शन, उसके जलका पान तथा उसमें भलीभाँति स्नान करके इस कथाको सुनता है, वह कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो श्रीकृष्णको प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर उद्धवके मुखसे श्रीकृष्णके पुनरागमनका समाचार सुनकर वे सब गोपाङ्गनाएँ महात्मा गोविन्दका सम्पूर्ण कुशलमङ्गल पूछने लगीं॥ ४—७॥

श्रीराधा बोलीं—उद्धव! वह समय कब आयेगा, जब मैं घनके समान श्यामकान्तिवाले आनन्दप्रद श्रीव्रजराजनन्दनका दर्शन करूँगी? जैसे मयूरी मेघमालाके और चकोरी चन्द्रमाके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित रहती है, उसी प्रकार मैं भी उनका दर्शन पानेके लिये उत्सुक हूँ। किस कुसमयमें मेरा उनसे वियोग हुआ, जिससे इस पृथ्वीपर एक-एक क्षण मेरे लिये एक कल्पके समान हो गया है! गोविन्दके युगलचरणोंके बिना यह विरहकी रात इतनी बड़ी हो गयी है कि ब्रह्माजीकी आयुके द्विपरार्ध कालको भी तिरस्कृत कर रही है॥ ८-९॥

कच्चित्कदाचिद् व्रजमागमिष्यति
करोति किं तत्र हरिर्वदाशु मे।
अद्यैव यत्नेन धृताः किलासवः
प्रसह्य निर्यान्ति मृषागिरातुराः॥ १०

दृष्ट्वा क्षणं त्वां मम हृच्च शीतलं
जातं प्रसन्नास्मि समागते त्वयि।
यथा प्रसन्ना जनकात्मजा पुरा
लङ्कापुरं वायुसुते समागते॥ ११

आशां विधाय निजमोहधनं विसृज्य
विस्मृत्य वाक्यगदितं मथुरां गतो यः।
तस्यापि पत्रलिखितं शमृतं न मन्ये
तं चानयस्व किल मन्त्रविदां वरिष्ठ॥ १२

उद्धव उवाच

गत्वा पुरीं तव परं विरहं निवेद्या-
थार्घं विधाय निजनेत्रजलेन राधे।
नीत्वा हरिं तव पुरः पुनरागतोऽस्मि
मा शोकमद्य कुरु मे शपथस्त्वदङ्घ्रेः॥ १३

श्रीनारद उवाच

अथ प्रसन्ना श्रीराधा चन्द्रकान्तौ मणी शुभौ।
रासरङ्गे चन्द्रदत्तौ उद्धवाय ददौ नृप॥ १४

सहस्रदलपद्मे द्वे दत्ते चन्द्रमसा पुरा।
उद्धवाय ददौ राधा प्रसन्ना भक्तवत्सला॥ १५

छत्रं सिंहासनं दिव्यं चामरे द्वे मनोहरे।
श्रीकृष्णमनसोद्भूते ददौ तस्मै हरिप्रिया॥ १६

ऐश्वर्यं ज्ञानसम्पन्नं सर्वदेशिकदेशिकम्।
कृष्णसंयोगकर्तृत्वं सदा तव भविष्यति॥ १७

भक्तिं निर्गुणभावाढ्यां प्रेमलक्षणसंयुताम्।
ज्ञानं विज्ञानसहितं वैराग्यं सा ददौ पुनः॥ १८

शङ्खचूडाच्च हरिणानीतं चूडामणिं शुभम्।
चन्द्रानना ददौ तस्मै उद्धवाय विदेहराट्॥ १९

उद्धव! क्या कभी श्यामसुन्दर इस व्रजके मार्गपर भी पदार्पण करेंगे? आप मुझे शीघ्र बताइये, वे वहाँ कौन-सा कार्य कर रहे हैं? आजतक बड़े प्रयाससे मैंने इन प्राणोंको धारण किया है। उनके झूठे वादेसे आतुर हुए ये प्राण हठात् निकले जा रहे हैं। आज तुम्हें देखकर क्षणभरके लिये मेरा हृदय शीतल हुआ है। तुम्हारे आनेसे आज मैं उसी तरह प्रसन्न हुई हूँ, जैसे पूर्वकालमें पवनपुत्र हनुमान्‌के लङ्कामें आनेसे जनकनन्दिनी सीता प्रसन्न हुई थीं। मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ उद्धव! जो आशा देकर अपने छोह-मोहरूपी धनको त्यागकर और अपनी ही कही हुई बातको भुलाकर मथुरा चले गये, उनके लिखे हुए इस पत्रके वाक्यांशको भी मैं कल्याणकारी सत्य नहीं मानती। तुम स्वयं उनको यहाँ ले आओ॥ १०—१२॥

उद्धव बोले—श्रीराधे! मैं मथुरापुरी लौटकर आपके इस महान् विरहजनित दुःखको उन्हें सुनाऊँगा और अपने आँसुओंके जलसे उनके चरण पखारूँगा। जैसे भी होगा, श्रीहरिको मथुरापुरीसे लेकर पुनः यहाँ आऊँगा—यह बात मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ। अतः अब आप शोक न करें॥ १३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर प्रसन्न हुई श्रीराधाने रास-रङ्गस्थलमें चन्द्रमाद्वारा दी गयी दो सुन्दर चन्द्रकान्त मणियाँ श्यामसुन्दरको देनेके लिये उद्धवके हाथमें दीं। पूर्वकालमें चन्द्रमाने जो दो सहस्रदल कमल भेंट किये थे, उन्हें भी प्रसन्न हुई भक्तवत्सला श्रीराधाने उद्धवको अर्पित किया। हरिप्रिया श्रीराधाने प्राणवल्लभके लिये छत्र, दिव्य सिंहासन तथा दो मनोहर चँवर, जो श्रीकृष्णके संकल्पसे प्रकट हुए थे, उद्धवके हाथमें दिये॥ १४—१६॥

साथ ही यह वरदान भी दिया कि 'उद्धव! तुम ऐश्वर्यज्ञानसे सम्पन्न, समस्त उपदेशक गुरुओंके भी उपदेशक तथा श्रीकृष्णके साथ रहनेवाले होओगे।' श्रीराधाने उन्हें निर्गुण-भावसे सम्पन्न प्रेम-लक्षणा-भक्ति तथा ज्ञान-विज्ञान-सहित वैराग्य भी प्रदान किया। विदेहराज! श्रीहरि शङ्खचूड़ यक्षसे जो उसकी चूड़ामणि छीन लाये थे, वह सुन्दर चूड़ामणि चन्द्रानना गोपीने उद्धवके हाथमें दी॥ १७—१९॥

तथा गोपीगणाः सर्वे भूषणानां चयं शुभम्।
ददुः प्रसन्ना हे राजन्नुद्धवाय महात्मने॥ २०

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचश्चौपगवेः शुभार्थं
सुखं गतायां किल राधिकायाम्।
ऊचुस्तमाराद् व्रजगोपवध्वः
सदःस्थितं कृष्णसखं पृथक् ताः॥ २१

गोप्य ऊचुः

यच्च पत्रलिखितं वदाशु नः
किन्तु तच्च हरिणोक्तमद्भुतम्।
त्वं परावरविदां हरेः सखा
मन्त्रवित्तम तदाकृतिर्महान्॥ २२

उद्धव उवाच

यथा स्मरथ देवेशं तथा युष्मान् स्मरत्यसौ।
अनुवेलं गोपवध्वः पश्यतो मे न संशयः॥ २३

एकदा मां समाहूय स्मृत्वा युष्मान् रहस्करः।
कथयामास सन्देशं चित्तस्थं नन्दनन्दनः॥ २४

श्रीभगवानुवाच

गणेषु सक्तं किल बन्धनाय
रक्तं मनः पुंसि च मुक्तये स्यात्।
मनो द्वयोः कारणमाहुरारा-
ज्जित्वाथ तत्कौ विचरेदसङ्गः॥ २५

यदा स्वयं ब्रह्म परात्परं मा-
मध्यात्मयोगेन विशारदेन।
जानाति सर्वत्र गतं विवेकी
तदा विजह्यान्मनसः कषायम्॥ २६

यावद्घनो मध्यगतस्तदुत्थितः
स्वकर्मरूपं न हि दृक् प्रपश्यति।
तावत् परात्मानमसौ प्रधानजै-
र्गुणैस्तथा तेषु गतेषु पश्यति॥ २७॥

राजन्! इसी प्रकार अन्य गोपाङ्गनाओंने भी महात्मा उद्धवके हाथमें सुन्दर आभूषणोंकी राशि समर्पित की॥ २०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—उद्धवजीकी शुभार्थक वाणी सुनकर जब श्रीराधिकाजी अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं, तब सभामण्डपमें स्थित हुए श्रीकृष्ण-सखा उद्धवके पास बैठकर व्रजगोप-वधूटियोंने पृथक्-पृथक् उनसे पूछा—॥ २१॥

गोपाङ्गनाएँ बोलीं—मन्त्रकुशल उद्धवजी! हमें शीघ्र बताइये, जिन-जिनके लिये श्रीहरिने पत्र लिखा है, उनके लिये कोई अद्‌भुत संदेश भी कहा है क्या? आप परावरवेत्ताओंमें उत्तम, साक्षात् श्रीकृष्णके सखा, उनके ही समान आकृतिवाले और महान् हैं (अतः उनकी कही हुई बात हमसे अवश्य कहिये)॥ २२॥

उद्धवने कहा—गोपाङ्गनाओ! जैसे तुमलोग देवेश्वर श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण करती रहती हो, उसी प्रकार वे भी प्रतिक्षण तुम्हारा स्मरण करते हैं। निस्संदेह मेरे सामने ही वे तुम्हें याद करते रहते हैं। मैं श्रीहरिका एकान्त सेवक हूँ। एक दिन तुमलोगोंको स्मरण करके नन्दनन्दन श्रीहरिने मुझे बुलाया और तुमसे कहनेके लिये अपने मनका संदेश इस प्रकार कहा—॥ २३-२४॥

श्रीभगवान् बोले—विषयोंमें आसक्त हुआ मन बन्धनकारक होता है; वही यदि मुझ परमपुरुषमें आसक्त हो जाय तो मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला होता है। अतः ज्ञानीजन मनको बन्धन और मोक्ष—दोनों-का कारण बताते हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह मनको जीतकर इस पृथ्वीपर असङ्ग (आसक्तिशून्य) होकर विचरे। जब विवेकी पुरुष निर्मल अध्यात्म-योगके द्वारा मुझ साक्षात् परात्पर ब्रह्मको सर्वत्र व्यापक जान लेता है, तब वह मनके कषाय (राग या आसक्ति)-को त्याग देता है। यद्यपि मेघ सूर्यसे ही उत्पन्न हुआ उसका कार्यरूप है, तथापि जबतक वह सूर्य और दर्शककी दृष्टिके बीचमें स्थित है, तबतक दृष्टि सूर्यको नहीं देख पाती। उसी प्रकार जबतक अन्तःकरण-आत्माके बीचमें कषायरूप आवरण है, तबतक मुझ परमात्माका दर्शन नहीं हो पाता॥ २५—२७॥

स्थूलाच्च दूरेऽस्मि न तत्त्वतोऽङ्गना-
स्तस्माद्वियोगं कुरुतात्र साधनम्।
यत्सांख्यभावैः किल गम्यते पदं
तद्योगभावैरपि गम्यते स्वतः॥ २८

व्रजाङ्गनाओ! मैं स्थूल भावसे दूर हूँ, परंतु तत्त्वदृष्टिसे तुममें और मुझमें कोई दूरी नहीं है। अतः यहाँके वियोगको तुम मेरी प्राप्तिका साधन बना लो। सांख्य-भावसे जिस पदकी प्राप्ति होती है, अवश्य ही वह योगभाव (योग-साधना या वियोगकी अनुभूति)-से भी स्वतः प्राप्त हो जाता है॥ २८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे राधागोप्याश्वासनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उद्धवद्वारा श्रीराधा तथा गोपियोंको आश्वासन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णको स्मरण करके श्रीराधा तथा गोपियोंके करुण उद्गार

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा श्रीकृष्णसन्देशं प्रसन्ना गोपवल्लभाः।
अश्रुमुख्यो वाष्पकण्ठ्य ऊचुरौपगविं नृप॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णका यह संदेश सुनकर प्रसन्न हुई गोपाङ्गनाएँ आँसू बहाती हुई गद्गद कण्ठसे उद्धवसे बोलीं—॥ १॥

गोलोकवासिन्य ऊचुः

विदेशं गतवान् कृष्णस्त्यक्त्वा पूर्वप्रियाञ्जनान्।
तदुपर्यलिखद्योगमहो निर्मोहताबलम्॥ २

गोलोकवासिनी गोपियोंने कहा—उद्धव! पहलेके प्रियजनोंको त्यागकर श्रीकृष्ण परदेश चले गये, उसपर भी वहाँसे उन्होंने योग लिख भेजा है। अहो! निर्मोहीपनका बल तो देखो॥ २॥

द्वारपालिका ऊचुः

चकोरे ग्लौः पङ्कजेऽर्को भ्रमरे पङ्कजं यथा।
चातके च घनः प्रीतिं न करोति कदाचन॥ ३

द्वारपालिका गोपिकाएँ बोलीं—सखियो! देखो, चन्द्रमाकी चकोरपर, सूर्यकी कमलपर, कमलकी भ्रमरपर तथा मेघकी चातकपर जैसे कभी प्रीति नहीं होती, उसी प्रकार श्यामसुन्दरका हमलोगोंपर प्रेम नहीं है॥ ३॥

शृङ्गारप्रकरा ऊचुः

चन्द्रमित्रं चकोरोऽस्ति सख्यो वह्निकणः सदा।
विधात्रा यद्विलिखितं तन्न्यूनं न भवेदिह॥ ४

शृङ्गार धारण करानेवाली गोपियोंने कहा—सखियो! चकोर चन्द्रमाका मित्र है, परंतु उसके भाग्यमें सदा आगकी चिनगारियाँ चबाना ही बदा है। विधाताने जिसके भाग्यमें जो कुछ लिख दिया है, वह कभी कम नहीं होता॥ ४॥

शय्योपकारिका ऊचुः

व्याधोऽपि हत्वा हि मृगान् स्मरति त्वरमातुरः।
कटाक्षैः स्वप्रियान् हत्वा निर्मोही न स्मरेदहो॥ ५

शय्योपकारिका गोपियाँ बोलीं—वधिक भी मृगोंको बाण मारकर तुरंत आतुर हो उनकी सुध लेता है; किंतु कटाक्षोंसे अपने प्रियजनोंको घायल करके कोई निर्मोही उनका स्मरणतक न करे—यह कैसा आश्चर्य है?॥ ५॥

पार्षदाख्या ऊचुः

जातं विरहजं दुःखं नान्यो वेत्ति कदाचन।
यथा कण्टकविद्धाङ्गो विद्वान् वाविद्धकण्टकः॥ ६

वृन्दावनपालिका ऊचुः

अनिमित्तं प्रेमसौख्यमनिमित्तो हि वेत्ति तत्।
सनिमित्तो न जानाति रसं कर्मेन्द्रियं यथा॥ ७

गोवर्धनवासिन्य ऊचुः

पुरन्ध्रीप्रेमकृद्यो वै सैरन्ध्रीनायकोऽभवत्।
शैलौकोभिस्तु किं तस्य बहुना कथितेन किम्॥ ८

कुञ्जविधायिका ऊचुः

हा माधवीकुञ्जपुञ्जे गुञ्जन्मत्तमधुव्रते।
स्वदृग्लक्षीकृतो यो वै तस्येयं श्रूयते कथा॥ ९

निकुञ्जवासिन्य ऊचुः

वृन्दावने मत्तमिलिन्दपुञ्जे
कलिन्दजातीरकदम्बकुञ्जे।
शनैश्चलन्तं सबलं सगोपं
सगोधनं नन्दसुतं भजामः॥ १०

जाह्नवीयूथ उवाच

कदा तथास्मत्समयो भविष्यति
यथा पुरन्ध्रीसमयः प्रदृश्यते।
शोकं परं मा कुरुत व्रजाङ्गनाः
सदा न कस्यापि जयः पराजयः॥ ११

यमुनायूथ उवाच

विधातुर्न दया किञ्चिद्युनक्ति वियुनक्ति यः।
भूतानि सकलान्येव क्रीडनानि यथार्भकः॥ १२

पार्षदा गोपियोंने कहा—विरहजनित दुःखको कोई विरही ही जानता है, दूसरा कोई कभी उस दुःखको नहीं समझ सकता—जैसे जिसके अङ्गोंमें काँटा गड़ा है, उसकी पीड़ाको वही जानता है, जिसके शरीरमें कभी काँटा गड़ा ही नहीं, वह उसके दर्दको क्या जानेगा?॥ ६॥

वृन्दावनपालिका गोपियाँ बोलीं—निष्काम प्रेमके सुखको निष्काम प्रेमी ही जानता है। जो किसी कारण या कामनाको लेकर प्रेम करता है, वह निष्काम प्रेमके सुखको क्या जानेगा? क्या कभी कर्मेन्द्रियाँ रसका अनुभव कर सकती हैं?॥ ७॥

गोवर्धनवासिनी गोपियोंने कहा—पुर-वनिताओंसे प्रेम करनेवाला अब सैरन्ध्री (कुब्जा)-का नायक बन बैठा है। उसे पर्वत एवं वनमें रहनेवाली स्त्रियोंसे क्या लेना है? इस विषयमें अधिक कहना व्यर्थ है॥ ८॥

कुञ्जविधायिका गोपियाँ बोलीं—हाय! मतवाले भ्रमरोंके गुञ्जारवसे व्याप्त माधवी कुञ्ज-पुञ्जमें से जिनको हम सदा अपनी आँखोंमें बसाये रखती थीं, उनकी आज यह कथा सुनी जाती है॥ ९॥

निकुञ्जवासिनी गोपियोंने कहा—वृन्दावनमें मतवाले भ्रमरोंके समुदायसे युक्त यमुनातटवर्ती कदम्ब-कुञ्जमें धीरे-धीरे बलराम, ग्वाल-बाल और गोधनके साथ विचरते हुए नन्दनन्दनका हम भजन करती हैं॥ १०॥

जाह्नवीयूथकी गोपियाँ बोलीं—कब हमारा भी वैसा ही समय होगा, जैसा आज मथुरा-पुरवासिनी स्त्रियोंका देखा जाता है? व्रजाङ्गनाओ! शोक न करो। किसीकी कभी सदा जय या पराजय नहीं होती॥ ११॥

यमुनायूथकी गोपियाँ बोलीं—विधाताके हृदयमें तनिक भी दया नहीं है; जैसे बालक खिलौनोंको अलग करता और मिलाता है, उसी प्रकार वह विधाता समस्त भूतोंको संयुक्त और वियुक्त करता रहता है॥ १२॥

रमायूथ उवाच

कुब्जा पुराद्यर्जुसमानविग्रहा
दासी त्विदानीं तु कुलीनतां गता।
कुरूपिणी रूपवती बभावहो
चतुर्दिनैर्दुन्दुभिनादकारिणी ॥ १३

रमायूथकी गोपियाँ बोलीं—जो पहले कुबड़ी थी, वह आज सीधी और समान अङ्गवाली हो गयी; जो दासी थी, वह कुलीन हो गयी तथा जो कुरूपा थी, वह रूपवती होकर चमक उठी है। अहो! चार ही दिनोंमें वह अपनी विजयके नगारे पीटने लगी है॥ १३॥

विरजायूथा ऊचुः

सदा न कस्यापि भुजा प्रियांसे
सदा वसन्तो न सदा युवा स्यात्।
इन्द्रो न राज्यं कुरुते सदायं
चतुर्दिनैर्मानमलङ्करोतु ॥ १४

विरजा-यूथकी गोपियोंने कहा—किसीकी भी बाँह सदा प्रियके कंधेपर नहीं रहती, किसी भी वनमें सदा वसन्त नहीं होता, कोई भी सदा जवान नहीं रहता, ये देवराज इन्द्र भी सदा राज्य नहीं करते हैं। कोई चार दिनोंके लिये भले ही खूब मान कर ले॥ १४॥

ललितायूथ उवाच

रामाभिषेकं विनिवार्य मन्थरा
चकार विघ्नं किल कोसले पुरे।
कुब्जैव सेयं मथुरापुरे गता
कुब्जैव किं किं न करोति गोपिकाः॥ १५

ललिता-यूथकी गोपियाँ बोलीं—मन्थरा भी कुबड़ी थी, जिसने अयोध्यापुरीमें श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकको रोकवाकर उसमें विघ्न उपस्थित कर दिया। वह कुब्जा ही यह मथुरापुरीमें आ गयी है। गोपिकाओ! जो कुब्जा है, वह क्या-क्या नहीं कर सकती?॥ १५॥

विशाखायूथ उवाच

गोचारणायानुचरैर्व्रजन्तं
प्रबोधयन्तं स्वपुरं विरावैः।
मत्तेभयानं हि विडम्बयन्तं
श्रीनन्दसूनुं न हि विस्मरामः॥ १६

विशाखा-यूथकी गोपियोंने कहा—जो गौएँ चरानेके लिये अनुगामी ग्वाल-बालोंके साथ वनमें जाते हैं और लौटते समय वंशीनादके द्वारा नगर-गाँवके लोगोंको अपने आगमनका बोध करा देते हैं तथा जो अपनी गतिसे मतवाले हाथीकी चालका अनुकरण करते हैं, उन नन्दनन्दनको हम भुला नहीं सकतीं॥ १६॥

मायायूथ उवाच

सङ्कोचवीथीषु पटे प्रगृह्य
प्रसह्य दोर्भ्यां हृदये निधाय।
अन्योन्यमाकर्षणहर्षभीतिं
गृहान् हरिं तं हि कदा नयामः॥ १७

माया-यूथकी गोपियाँ बोलीं—साँकरी गलियोंमें हमारा आँचल पकड़कर, हठात् हमें अपनी भुजाओंमें भरकर और हृदयसे लगाकर परस्परकी खींचातानीसे हर्ष और भयका अनुभव करनेवाले उन श्रीहरिको हम कब अपने घरोंमें ले जायँगी?॥ १७॥

अष्टसख्य ऊचुः

वीक्ष्य नन्दसुतमङ्ग सुन्दरं
नेत्रमद्य न जगद्विपश्यति।
नन्दराजतनये पुरि स्थिते
किं भविष्यति वदाशु नस्त्वरम्॥ १८

अष्टसखियोंने कहा—उद्धव! उन सर्वाङ्ग-सुन्दर नन्दनन्दनको निहारकर हमारे नेत्र अब संसारकी ओर नहीं देखते—नहीं देखना चाहते। वे ही नन्द-राजकुमार मथुरापुरीमें विराज रहे हैं। शीघ्र बताओ, अब हमारा क्या होगा?॥ १८॥

षोडशसख्य ऊचुः

वेणुनादमधुरध्वनिं वने
सन्निशम्य कुसुमेषुवर्धनम्।
श्रोत्रयुग्ममिह नः शृणोति नो
विश्वगीतमुत वायसः परम्॥ १९

द्वात्रिंशत्सख्य ऊचुः

प्रीत्या स्वमित्रं हि रिपुं नयेन
लुब्धं धनैश्च द्विजमादरेण।
गुरुं प्रणामै रसिकं रसेन
निर्मोहिनं केन वशीकरोति॥ २०

श्रुतिरूपा ऊचुः

यज्जागरादिषु भवेषु परं ह्यहेतु-
र्हेतुः स्विदस्य विचरन्ति गुणाश्च येन।
नैतद्विशन्ति महदिन्द्रियदेवसङ्घा-
स्तस्मै नमोऽग्निमिव विस्तृतविस्फुलिङ्गाः॥ २१

ऋषिरूपा ऊचुः

नैवेशितुं प्रभुरयं बलिनां बलीयान्
माया न शब्द उत नो विषयीकरोति।
तद्ब्रह्म पूर्णममृतं परमं प्रशान्तं
शुद्धं परात्परतरं शरणं गताः स्मः॥ २२

देवाङ्गना ऊचुः

अंशांशकांशककलाद्यवतारवृन्दै-
रावेशपूर्णसहिताश्च परस्य यस्य।
सर्गादयः किल भवन्ति तमेव कृष्णं
पूर्णात्परं तु परिपूर्णतमं नताः स्मः॥ २३

यज्ञसीता ऊचुः

श्रीमन्निकुञ्जलतिकाकुसुमाकरोऽयं
श्रीराधिकाहृदयकण्ठविभूषणोऽयम्।
श्रीरासमण्डलपतिर्व्रजमण्डलेशो
ब्रह्माण्डमण्डलमहीपरिपालकोऽयम्॥ २४

षोडश सखियाँ बोलीं—वनमें प्रेमपीड़ाको बढ़ानेवाली बाँसुरीकी मधुर तान सुनकर हमारे दोनों कान अब संसारी गीत नहीं सुनना चाहते, वे तो कौओंकी 'काँव-काँव' के समान कड़वे लगते हैं॥ १९॥

बत्तीस सखियोंने कहा—अपने मित्रको प्रीतिसे, शत्रुको नीतिसे, लोभीको धनसे, ब्राह्मणको आदरसे, गुरुको बारंबार प्रणामसे तथा रसिकको रससे वशमें किया जाता है; परंतु निर्मोहीको कोई कैसे वशमें कर सकता है?॥ २०॥

श्रुतिरूपा गोपियाँ बोलीं—जो जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें व्याप्त होकर भी उनसे परे हैं तथा इस जगत्के हेतु होते हुए भी वास्तवमें अहेतु हैं, ये समस्त गुण जिनसे ही प्रेरित होकर अपने-अपने विषयोंकी ओर प्रवाहित होते हैं; तथा जैसे आगसे निकली हुई चिनगारियाँ पुनः उसमें प्रविष्ट नहीं होतीं, उसी प्रकार महत्तत्त्व, इन्द्रियसमुदाय तथा इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देव-समुदाय जिनमें प्रवेश नहीं पाते, उन परमात्माको नमस्कार है॥ २१॥

ऋषिरूपा गोपियोंने कहा—बलवानोंमें भी अत्यन्त बलिष्ठ यह काल जिनपर अपना शासन चलानेमें समर्थ नहीं है, माया भी जिनको वशीभूत नहीं कर पाती तथा वेद भी जिन्हें अपने विधिवाक्योंका विषय नहीं बना पाता, उस अमृतस्वरूप, परम प्रशान्त, शुद्ध, परात्पर पूर्णब्रह्मकी हम शरण लेती हैं॥ २२॥

देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ बोलीं—जिन परमेश्वरके अंशांश, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण आदि अवतार होते हैं, और जिनसे ही इस जगत्की सृष्टि, पालन एवं संहार होते हैं, उन पूर्णसे भी परे परिपूर्णतम श्रीकृष्णको हम प्रणाम करती हैं॥ २३॥

यज्ञसीतारूपा गोपियोंने कहा—ये श्याम-सुन्दर निकुञ्ज-लतिकाओंके लिये कुसुमाकर (वसन्त) हैं, श्रीराधाके हृदय तथा कण्ठको विभूषित करनेवाले हार हैं, श्रीरासमण्डलके अधिपति हैं, व्रजमण्डलके ईश्वर हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डोंके महीमण्डलका परिपालन करनेवाले हैं॥ २४॥

रमावैकुण्ठनिवासिन्य ऊचुः

यो गोपिकासकलयूथमलञ्चकार
वृन्दावनं च निजपादरजोभिरद्रिम्।
यः सर्वलोकविभवाय बभूव भूमौ
तं भूरिलीलमुरगेन्द्रभुजं भजामः॥ २५

रमावैकुण्ठवासिनी गोपियाँ बोलीं—जिन्होंने समस्त गोपीयूथको अलंकृत किया, अपनी चरण-रजसे वृन्दावन तथा गिरिराज गोवर्धनको विभूषित किया तथा जो सम्पूर्ण लोकोंके अभ्युदयके लिये इस भूमण्डलपर आविर्भूत हुए, उन नागराजके समान परिपुष्ट भुजावाले अनन्त लीला-विलासशाली श्रीश्यामसुन्दरका हम भजन करती हैं॥ २५॥

श्वेतद्वीपसखीजना ऊचुः

यथा शिलीन्ध्रं शिशुरश्रमो गजः
स्वपुष्करेणैव च पुष्करं गिरिम्।
धृत्वा बभौ श्रीव्रजराजनन्दनः
कृपाकरोऽसौ न हि विस्मृतः क्वचित्॥ २६

श्वेतद्वीपकी सखियोंने कहा—जैसे बालक कुकुरमुत्तेको बिना श्रमके उठा लेता है और जैसे गजराज अपनी सूँडसे अनायास ही कमलको उठा लेता है, उसी प्रकार जिन्होंने खिलवाड़में ही पर्वतको एक हाथसे उठाकर अद्भुत शोभा प्राप्त की, वे कृपानिधान श्रीव्रजराजनन्दन हमें कभी विस्मृत नहीं होते॥ २६॥

ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिन्य ऊचुः

श्यामवर्णमये नेत्रे जगच्छ्यामं विपश्यतः।
न द्वैतं दृश्यते यासां ताभिः किं योगसेवनम्॥ २७

ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिनी गोपियाँ बोलीं—हमारी श्यामवर्णमयी आँखें सारे जगत्‌को श्याममय ही देखती हैं, इन्हें द्वैत तो दीखता ही नहीं; फिर ये योगका सेवन क्या करेंगी?॥ २७॥

लोकाचलवासिन्य ऊचुः

स्नेहपाशो दृढोऽच्छिन्नो न च्छिन्नो हरिणा विना।
छित्त्वा तं मथुरां प्रागान्नागपाशं यथा खगः॥ २८

लोकाचलवासिनी गोपियोंने कहा—स्नेहका पाश दृढ़ होता है। वह कभी टूटने-कटनेवाला नहीं है। हम उसे नहीं काट सकतीं। श्रीहरिके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं कर सकता। एकमात्र वे ही ऐसे हैं, जो नागपाशको काटनेवाले गरुड़की भाँति इस स्नेहपाशको काटकर मथुरा चले गये॥ २८॥

अजितपदाश्रिता ऊचुः

कृष्णे लग्नं नेत्रयुग्मं धावद्दशदिशान्तरम्।
अहो न लग्नं कुत्रापि पद्मलग्नो यथा ह्यलिः॥ २९

अजितपदाश्रिता गोपियाँ बोलीं—हमारे दोनों नेत्र श्रीकृष्णमें लग गये हैं, वे दसों दिशाओंमें दौड़ लगानेपर भी अन्यत्र कहीं उसी प्रकार नहीं टिक पाते, जैसे कमलसे जिसकी लगन लगी है, वह भ्रमर अन्य फूलोंपर कदापि नहीं जाता॥ २९॥

श्रीसख्य ऊचुः

कार्पण्येन यशो हन्ति क्रुधा गुणगणोदयम्।
धनानि व्यसनैर्लोकः कपटेनैव मित्रताम्॥ ३०

श्रीसखियोंने कहा—लोग अपनी कृपणतासे यशको, क्रोधसे गुणसमूहके उदयको, दुर्व्यसनोंसे धनको तथा कपटपूर्ण बर्तावसे मैत्रीको नष्ट कर देते हैं॥ ३०॥

मैथिला ऊचुः

धनं दत्वा तनुं रक्षेत्तनुं दत्वा त्रपां व्यधात्।
धनं तनुं त्रपां दद्यान्मित्रकार्यार्थमेव हि॥ ३१

मिथिलावासिनी स्त्रियाँ बोलीं—धन देकर तनकी रक्षा करे, तनका उत्सर्ग करके (भी) लाज बचाये तथा मित्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये आवश्यकता पड़ जाय तो धन, तन और लाज—तीनोंका उत्सर्ग कर दे॥ ३१॥

कौसला ऊचुः

न कोऽपि जानाति वियोगजां दशां
जीवं विना वक्तुमलं न सोऽपि।
भूयादुरो बाणविभिन्नमारान्
माभूत्कदापि प्रियविप्रयोजनम्॥ ३२

कोसलप्रान्तवासिनी गोपियोंने कहा— वियोगजनित दुःखकी दशाको जीवात्माके बिना दूसरा कोई नहीं जानता है, परंतु वह उसे बतानेमें असमर्थ है। (बताती है वाणी, किंतु उसे उस दुःखका अनुभव नहीं है।) भले ही बाणोंके आघातसे हृदय विदीर्ण हो जाय, किंतु कभी किसीको प्रिय-वियोगका कष्ट न प्राप्त हो॥ ३२॥

अयोध्यापुरवासिन्य ऊचुः

कृत्वा निराशां विनिधाय चाशां
जगाम चाशां मथुरापुरस्य।
योगं च तस्योपरि चालिखन्नो
निर्मोहिनां चित्तमहो विचित्रम्॥ ३३

अयोध्यापुरवासिनी गोपियाँ बोलीं— पहले निराश करके फिर आशा दे दी और अपने मथुराकी आशा (दिशा)-में चले गये? उसके ऊपर हमारे लिये योग लिखा है। अहो! निर्मोही जनोंका चित्र (या चित्त) विचित्र होता है॥ ३३॥

पुलिन्दिका ऊचुः

एनं वरं कर्तुमतीव विह्वलां
समागतां शूर्पणखां पुरा वने।
यः कारयामास विरूपिणीं बलात्
सौमित्रिणा तेन तु वः कृपा कथम्॥ ३४

पुलिन्दी गोपियोंने कहा— पूर्वकालकी बात है, दण्डकवनमें शूर्पणखा अत्यन्त विह्वल होकर इन्हें अपना पति बनानेके लिये इनके पास आयी; किंतु इन्होंने सुमित्राकुमारको प्रेरणा देकर बलपूर्वक उसे कुरूप बना दिया। ऐसे पुरुषसे आप सबको कृपाकी आशा कैसे हो रही है?॥ ३४॥

सुतलवासिन्य ऊचुः

भक्तं बलिं सत्यपरं च भूरिदं
नीत्वा बलिं यः कुपितो बबन्ध ह।
अहो कथं तस्य करोति सेवनं
मायाबटोर्वामनरूपधारिणः ॥ ३५

सुतलवासिनी गोपियाँ बोलीं— राजा बलि भगवद्भक्त, सत्यपरायण और बहुत अधिक दान करनेवाले थे, परंतु उनसे भेंट-पूजा लेकर जिन्होंने कुपित हो उन्हें बन्धनमें डाल दिया था, उस वामनरूपधारी कपट-ब्रह्मचारी बने हुए श्रीहरिकी न जाने लक्ष्मीजी या अन्य भक्तजन कैसे सेवा करते हैं?॥ ३५॥

जालन्धर्य ऊचुः

पुरातिकष्टं प्रगतेऽसुरोत्तमे
कायाधवे भक्तवरे ततो ह्ययम्।
भूत्वा नृसिंहः कृतवान् सहाय-
महो परा निष्ठुरता प्रदृश्यते॥ ३६

जालंधरी गोपियोंने कहा— पूर्वकालमें असुर-श्रेष्ठ भक्तप्रवर कयाधूकुमार प्रह्लादको बहुत अधिक कष्ट सहन करना पड़ा, तब कहीं नृसिंहरूप धारण करके इन्होंने उनकी सहायता की। अहो! इनमें निष्ठुरताकी पराकाष्ठा प्रत्यक्ष देखी जाती है॥ ३६॥

भूमिगोप्य ऊचुः

अहोऽतिनिर्मोहिजनस्य चित्रं
परं चरित्रं गदितुं न योग्यम्।
मुखेन चान्यद्धृदि भाव्यमन्यद्
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥ ३७

भूमिगोपियाँ बोलीं— अहो! अत्यन्त निर्मोही जनका चरित्र अत्यन्त विचित्र होता है, वह कहनेयोग्य नहीं है। मुखसे और ही बात निकलेगी, किंतु हृदयमें कोई और ही विचार रहेगा। ऐसे लोगोंको देवता भी नहीं समझ पाते, फिर मनुष्य कैसे जान सकता है?॥ ३७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णस्मरणे गोपीवाक्यं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णकी यादमें गोपियोंके वचन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

गोपियोंके उद्गार तथा उनसे विदा लेकर उद्धवका मथुराको लौटना

बर्हिष्मतीभवा ऊचुः

अहो लयाब्धौ कृपया हरिर्या-
मुद्धृत्य वाराहतनुर्महात्मा।
तामन्वधावद्धृतशिञ्जिनीशरो
भूत्वा दयालुः पृथुरादिराजः॥ १

बर्हिष्मतीपुरीकी गोपियोंने कहा—अहो! प्रलयके समुद्रमें वाराहरूपधारी महात्मा श्रीहरिने कृपापूर्वक जिसका उद्धार किया था, उसी पृथ्वीको मारनेके लिये आदिराज पृथुके रूपमें वे उसके पीछे धनुष-बाण लेकर दौड़े। दयालु होकर भी वे निर्दयताके लिये उद्यत हो गये [अतः कभी कठोर होना और कभी कृपा करना इन श्रीहरिका स्वभाव ही है] ?॥ १॥

लतागोप्य ऊचुः

स्वयं सुधां वा न विभज्य पूर्वं
धन्वन्तरिर्विश्वभिषङ् महात्मा ।
तद्बद्धवैरेषु सुरासुरेषु
भूत्वाथ योषित्प्रददौ कलिप्रियः॥ २

लतारूपा गोपियाँ बोलीं—विश्वके वैद्य महात्मा धन्वन्तरि पूर्वकालमें अमृत-कलशके साथ समुद्रसे प्रकट हुए, किंतु उन्होंने वह अमृत अपने हाथसे नहीं बाँटा; परंतु जब उसके लिये देवता और असुर आपसमें वैर बाँधकर युद्धके लिये उद्यत हो गये, तब कलहप्रिय श्रीहरिने स्वयं मोहिनी नारीका रूप धारण करके वह सुधा केवल देवताओंको पिला दी॥ २॥

नागेन्द्रकन्या ऊचुः

अथेच्छतीमेनमहो वरं हरिः
समागतां शूर्पणखां महावने।
चकार सौमित्रिसखः कुरूपिणी-
महो कृतं तस्य तया किमप्रियम्॥ ३

नागेन्द्रकन्यारूपा गोपियोंने कहा—दण्डक नामक महावनमें इन श्रीहरिको श्रीरामरूपमें देखकर शूर्पणखा इन्हें अपना पति बनानेकी इच्छासे इनके पास आयी थी, किंतु लक्ष्मणसहित इन्होंने उस बेचारीके नाक-कान काटकर कुरूप बना दिया। यह कैसी निष्ठुरता है; उसने इनका क्या बिगाड़ा था?॥ ३॥

समुद्रकन्या ऊचुः

नित्यं गृहशतं यान्ती दात्री दुःखं सुखं जनान्।
स्वीया कथं सुशीला च चञ्चलास्मिन् कथं स्थिता॥ ४

समुद्रकन्यारूपा गोपियाँ बोलीं—जो प्रतिदिन सैकड़ों घरोंमें जाती और लोगोंको सुख-दुःख दिया करती है, वह चञ्चला लक्ष्मी इन श्रीहरिके पास न जाने स्वकीया और सुशीला बनकर कैसे टिकी हुई है?॥ ४॥

अप्सरस ऊचुः

अस्य प्रीत्या कर्णनासे गते वै रावणस्वसुः।
त्यजन्तु वार्तां तेनापि भवतीनां कृपा कृता॥ ५

अप्सरारूपा गोपियोंने कहा—सखियो! इनके प्रति प्रीति करनेसे रावणकी बहिनको अपनी नाक और कानोंसे हाथ धोना पड़ा था, अतः उनकी बात छोड़ो। इन्होंने तुम्हारे ऊपर उससे भी अधिक कृपा की है [कि नाक-कान छोड़ दिये]॥ ५॥

दिव्या ऊचुः

सर्वेश्वरो बलिं नीत्वा बलिं बद्ध्वा दयापरः।
अधः क्षिपन्मुक्तिनाथश्चित्रं तत्कथयाभवत्॥ ६

दिव्यरूपा गोपियाँ बोलीं—ये राजा बलिसे बलि लेकर सर्वेश्वर हैं और उन्हें बाँधकर भी दयालु हैं; मुक्तिके नाथ होकर भी इन्होंने अपने भक्त बलिको नीचे सुतललोकमें फेंक दिया। इनकी कथासे आश्चर्य होता है!॥ ६॥

अदिव्या ऊचुः

शतरूपायुतं शान्तं तपस्यन्तं मनुं पुरा।
दैत्यैर्बाधां गतं पश्चाद्ररक्षासौ दयानिधिः॥ ७

सत्त्ववृत्तय ऊचुः

पूर्वं कष्टगतं भक्तं ध्रुवं कायाधवं च वै।
पश्चाद्ररक्ष कृपया न पूर्वं दीनवत्सलः॥ ८

रजोवृत्तय ऊचुः

रुक्माङ्गदहरिश्चन्द्राम्बरीषाणां सतां हरिः।
सत्यं परीक्षन् प्रददौ पुनर्भागवतीं श्रियम्॥ ९

तमोवृत्तय ऊचुः

वृन्दा येन छलं प्राप्ता छलिना बलिना पुरा।
छलमय्या बलिन्याद्य कुब्जया छलितो ह्ययम्॥ १०

कृपाणी ह्येकतो वक्रा घातयन्ती जनान् बहून्।
किमु कुब्जा त्रिवक्रा च श्रीकृष्णेन त्रिभङ्गिना॥ ११

पश्यन्तीनां कृष्णमार्गं नेत्रे दुःखं गते भृशम्।
अवधिः पादविक्षेपं वामनस्य करोति हि॥ १२

पीतत्वं त्वग्गता पादौ शैथिल्यं प्रगतौ च नः।
मनो विभ्रमतामुग्रां माधवे माधवं विना॥ १३

सपत्नीहारचिह्नाढ्यमागतं तमुषःक्षणे।
हा दैव कस्मिन् समये द्रक्ष्यामो नन्दनन्दनम्॥ १४

श्रीनारद उवाच

इति कृष्णं चिन्तयन्त्यो गोपिकाः प्रेमविह्वलाः।
उत्कण्ठितास्ता रुरुदुर्मूर्च्छिता धरणीं गताः॥ १५

अदिव्या गोपियोंने कहा—पूर्वकालमें शतरूपाके साथ मनु शान्तभावसे तपस्या करते थे। उस समय दैत्योंने उन्हें बहुत बाधा पहुँचायी। तत्पश्चात् उन दयानिधि श्रीहरिने आकर उनकी रक्षा की [पहले दुःख देना और पीछे आँसू पोंछना इनका स्वभाव है।]॥७॥

सत्त्वगुणवृत्तिरूपा गोपियाँ बोलीं—भक्त ध्रुव और प्रह्लादने पहले बहुत कष्ट पाया, तदनन्तर उन्होंने कृपापूर्वक उनकी रक्षा की; हमारे ये दीनवत्सल प्रभु पहले किसीकी रक्षा नहीं करते, कष्ट भुगतानेके बाद ही करते हैं॥८॥

रजोगुणवृत्तिरूपा गोपियोंने कहा—रुक्माङ्गद, हरिश्चन्द्र और अम्बरीष—इन साधु-शिरोमणि नरेशोंके सत्यकी परीक्षा करके ही श्रीहरिने उन्हें पुनः भागवती-समृद्धि प्रदान की [सम्भव है, हमारे भी प्रेमकी परीक्षा ली जाती हो।]॥९॥

तमोगुणवृत्तिरूपा गोपियाँ बोलीं—जिन छली-बली श्रीहरिने पूर्वकालमें वृन्दाको छला था, इन्हींको आज छलमयी और बलवती कुब्जाने छल लिया। [जैसेको तैसा मिला।] कटार या कृपाणिका एकही ओरसे टेढ़ी होती है, तथापि बहुत-से लोगोंका घात करती है; इधर कुब्जा तो तीन जगहसे टेढ़ी है; उसे तीन जगहसे टेढ़े श्रीकृष्ण मिल गये, फिर वह कितनोंका घात करेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। श्रीकृष्णकी राह देखते-देखते हमारी आँखें बहुत दुखने लगी हैं और उनके आनेकी अवधि वामनके पादविक्षेपकी तरह बढ़ती ही जाती है। इस माधवमासमें माधवके बिना हमारे शरीरका चमड़ा पीला पड़ गया, हमारी गतिमें शिथिलता आ गयी—पाँव थक गये और मन अत्यन्त उद्भ्रान्त हो गया है। हा दैव! किस समय हम सब उषःकालमें सौतके हारके चिह्नसे चिह्नित होकर आये हुए नन्दनन्दनको देखेंगी॥१०—१४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णका चिन्तन करती हुई प्रेमविह्वला गोपियाँ उत्कण्ठित हो रोने लगीं और मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं॥१५॥

पृथक् पृथक् समाश्वास्य वचोभिर्नयनैपुणैः।
सम्बोध्य गोपिकाः सर्वाः प्राह राधां तदोद्धवः॥ १६

तब पृथक्-पृथक् सबको आश्वासन दे, नीति-निपुण वचनोंद्वारा सब गोपियोंको समझा-बुझाकर उद्धवने श्रीराधासे कहा— ॥ १६ ॥

उद्धव उवाच

परिपूर्णतमे कृष्णे वृषभानुवरात्मजे।
गन्तुमाज्ञां देहि मह्यं नमस्तुभ्यं व्रजेश्वरि॥ १७

प्रतिपत्रं देहि शुभे श्रीकृष्णाय महात्मने।
तेन तं च प्रणम्याशु समानेष्ये तवान्तिकम्॥ १८

उद्धव बोले—परिपूर्णतमे! कृष्णस्वरूपे! वृषभानुवर-नन्दिनि! मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये। व्रजेश्वरि! आपको नमस्कार है। शुभे! महात्मा श्रीकृष्णको उनके पत्रका उत्तर दीजिये। उसके द्वारा शीघ्र ही उनके चरणोंमें प्रणाम करके मैं उन्हें आपके पास ले आऊँगा॥ १७-१८ ॥

श्रीनारद उवाच

अथ राधा लेखनीं च नीत्वा पात्रं मषेस्त्वरम्।
समाचारं चिन्तयन्ती तावदश्रूणि सुस्त्रुवुः॥ १९

यद्यत्पत्रं समानीतं राधया लेखनीयुतम्।
तत्तदार्द्रीकृतं जातं नयनाम्बुजवारिभिः॥ २०

अश्रुप्रवाहं मुञ्चन्तीं कृष्णदर्शनलालसाम्।
उद्धवो विस्मयन् प्राह राधां कमललोचनाम्॥ २१

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर राधा तुरंत ही लेखनी और मसीपात्र लेकर समाचारका चिन्तन करने लगीं, तबतक उनके नेत्रोंसे अश्रुवर्षा होने लगी। श्रीराधाने जो-जो पत्र हाथमें लेकर उसे लेखनीसे संयुक्त किया, वह-वह उनके नेत्र-कमलोंके नीरसे भीग गया। श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे अश्रु-धारा बहाती हुई कमलनयनी राधासे विस्मित हुए उद्धवने कहा— ॥ १९—२१ ॥

उद्धव उवाच

कथं लिखसि राधे त्वं कथं दुःखं करोषि हि।
सर्वां तस्मै वदिष्यामि व्यथां त्वल्लेखनं विना॥ २२

उद्धव बोले—श्रीराधे! आप कैसे लिखती हैं और कैसे दुःख प्रकट करती हैं, यह सब कथा आपके लिखे बिना ही मैं उनसे निवेदित करूँगा॥ २२ ॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य राधया गतबाधया।
सर्वाभिर्गोपिकाभिश्च पूजितोऽभूत्तदोद्धवः॥ २३

नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य राधां रासेश्वरीं पराम्।
गोपीगणमनुज्ञाप्य नत्वा नत्वा पुनः पुनः॥ २४

रथमारुह्य दिव्याभं रत्नभूषणभूषितम्।
गतमत्यभिमानोऽसौ सन्ध्यायां नन्दमाययौ॥ २५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उद्धवकी वाणी सुनकर राधाने बाधारहित हो समस्त गोपियोंके साथ उस समय उद्धवका पूजन किया। तत्पश्चात् परादेवी रासेश्वरी श्रीराधाको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके, गोपीगणोंसे विदा ले, सबको बार-बार मस्तक झुकाकर उद्धव रत्नभूषणभूषित उस दिव्याकार रथपर आरूढ़ हुए। उनको अपनी बुद्धि और ज्ञानपर जो बड़ा अभिमान था, वह दूर हो गया। वे संध्याके समय नन्दजीके पास लौट आये॥ २३—२५ ॥

मार्तण्ड उदयं प्राप्ते नत्वा गोपीं यशोमतीम्।
नन्दराजमनुज्ञाप्य नवनन्दांस्तदोद्धवः॥ २६

वृषभानूपनन्दांश्च समनुज्ञाप्य लोकतः।
तथा कृष्णसखीन् सर्वान् रथमारुह्य निर्गतः॥ २७

सबेरे सूर्योदय होनेपर गोपी यशोदाको नमस्कार करके, उद्धव नन्दराजकी आज्ञा ले क्रमशः नौ नन्दों, वृषभानुओं, उपनन्दों, अन्य लोगों तथा कृष्णके सम्पूर्ण सखाओंसे अलग-अलग मिले और उनसे विदा ले, रथपर आरूढ़ हो वहाँसे चल दिये॥ २६-२७ ॥

दूरं तमनुगाः सर्वे गोपा गोपीगणास्तथा।
सन्निवृत्त्याथ तान् स्नेहादुद्धवो मथुरां ययौ॥ २८

एकान्ते चाक्षयवटे कृष्णातीरे मनोहरे।
नत्वा कृष्णं परिक्रम्य प्रेमगद्गदया गिरा।
प्राह स्रवन्नेत्रपद्म उद्धवो बुद्धिसत्तमः॥ २९

उद्धव उवाच

किं देव कथनीयं मे भवतोऽशेषसाक्षिणः।
विधत्स्व शं राधिकाया गोपीनां देहि दर्शनम्॥ ३०

श्रीकृष्णं देवदेवेशं समानेष्ये तवान्तिकम्।
इत्थं वाक्यं च मे भूतं रक्ष रक्ष कृपानिधे॥ ३१

प्रह्लादरुक्माङ्गदयोः प्रतिज्ञां
बलेश्च खट्वाङ्गनृपस्य साक्षात्।
यथाम्बरीषध्रुवयोस्तथा मे
कृताञ्च भक्तेश्वर रक्ष रक्ष॥ ३२

समस्त गोप और गोपियोंके समुदाय उनके पीछे-पीछे दूरतक पहुँचानेके लिये गये। उद्धव सबको स्नेहपूर्वक लौटाकर मथुराको चले गये। श्रीकृष्ण यमुनाके मनोहर तटपर अक्षयवटके नीचे एकान्त स्थानमें बैठे हुए थे। वहाँ उनको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धव नेत्र-कमलोंसे आँसू बहाते हुए प्रेमगद्गद वाणीमें बोले— ॥ २८-२९ ॥

उद्धवने कहा—देव! आप तो सबके साक्षी हैं, आपको मुझे क्या बताना है। आप राधिका और गोपियोंका कल्याण कीजिये, कल्याण कीजिये; उन्हें दर्शन दीजिये। 'मैं देवदेवेश्वर श्रीकृष्णको तुम्हारे पास ले आऊँगा।' ऐसी बात मैंने उनसे कही है। कृपानिधे! मेरे इस वचनकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। भक्तोंके परमेश्वर! जैसे आपने प्रह्लाद और रुक्माङ्गदकी, बलि और खट्वाङ्गकी तथा अम्बरीष और ध्रुवकी प्रतिज्ञा रखी है, उसी प्रकार मेरी की हुई प्रतिज्ञाकी भी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ३०—३२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गोपीवाक्ये उद्धवागमनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गोपियोंके वचन तथा उद्धवका मथुरा लौट जाना' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका उद्धवके साथ व्रजमें प्रत्यागमन और यमुना-तटपर गौओंका उनके रथको चारों ओरसे घेर लेना; गोपोंके साथ उनकी भेंट; नन्दगाँवसे नन्दरायजी एवं यशोदा-का गोपों एवं गोपियोंको लेकर गाजे-बाजेके साथ उनकी अगवानीके लिये निकलना तथा सबके साथ श्रीकृष्णका नन्दनगरमें प्रवेश

श्रीनारद उवाच

इत्थं निशम्य भक्तस्य वचनं भक्तवत्सलः।
स्मृत्वा वाक्यं स्वकथितं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम्॥ १

बलदेवं स्थापयित्वा कार्यभारेषु सर्वतः।
हेमाढ्यं किङ्किणीजालं चञ्चलाश्वनियोजितम्॥ २

रथमारुह्य सूर्याभमुद्धवेन समन्वितः।
भक्तानां दर्शनं दातुं प्रययौ नन्दगोकुलम्॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार भक्तका वचन सुनकर भक्तवत्सल अच्युतने अपने कहे हुए वचनको याद करके व्रजमें जानेका विचार किया। समस्त कार्यभारोंपर दृष्टि रखनेके लिये बलदेवजीको मथुरामें ही छोड़कर चञ्चल घोड़ोंसे जुते हुए किङ्किणीजालमण्डित सुवर्णजटित सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर उद्धवके साथ आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंको दर्शन देनेके लिये नन्दगाँवको गये॥ १—३॥

गोवर्धनं गोकुलं च पश्यन् वृन्दावनं वनम्।
प्राप्तोऽभूत्पुलिने कृष्णः कृष्णातीरे मनोहरे॥ ४

कोटिशः कोटिशो गावो दृष्ट्वा कृष्णं व्रजाधिपम्।
आधावन्त्यः सर्वतस्तं स्नेहस्नुतपयोधराः॥ ५

उदास्य कर्णवालांश्च रम्भमाणाः सवत्सकाः।
मुखे कवलसंयुक्ता अश्रुमुख्यो गतव्यथाः॥ ६

सरथं सारुणं साश्वं शरदर्कं यथा घनाः।
रुरुधुस्तं रथं राजन्नुद्धवस्य प्रपश्यतः॥ ७

श्रीगोपालो हरिस्तासां वदन्नाम पृथक् पृथक्।
श्रीहस्तेन तदङ्गानि स्पृशन् हर्षं जगाम ह॥ ८

तत्समीपे गवां वृन्दं गतं वीक्ष्य व्रजार्भकाः।
श्रीदामाद्या विस्मिताश्च दूरादूचुः परस्परम्॥ ९

गोपा ऊचुः

रथं सकुम्भध्वजवायुवेगं
सुकांस्यपत्रध्वनिनिःस्वनं तम्।
शताश्वयुक्तं शतसूर्यशोभं
गावः कथं वा रुरुधुः सखायः॥ १०

अन्यो न चास्मिन् हि गवां प्रहर्षणै-
रायाति किन्तु व्रजराजनन्दनः।
स्फुरन्ति चाङ्गानि हि दक्षिणानि नः
श्रीनीलकण्ठः प्रतनोति तोरणम्॥ ११

श्रीनारद उवाच

इत्थं विचार्य मनसा गोपाः सर्वे समागताः।
ददृशुर्माधवं मित्रं गतं वस्तु यथा जनाः॥ १२

अवप्लुत्य रथात्कृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम्।
पुरो निधाय तान् सर्वान् दोर्भ्यां तत्प्रेमविह्वलः॥ १३

मुञ्चन्नेत्राब्जवारीणि परिरेभे पृथक् पृथक्।
अहो भक्तेश्च माहात्म्यं वक्तुं कोऽस्ति महीतले॥ १४

गोवर्धन, गोकुल और वृन्दावनको देखते हुए श्रीकृष्ण यमुनाके मनोहर तटपर पहुँचे। व्रजेश्वर श्रीकृष्णको देखते ही कोटि-कोटि गौएँ चारों ओरसे दौड़ती हुई उनके पास आ गयीं। उन सबके स्तनोंसे स्नेहके कारण दूध झर रहा था। वे कान और पूँछ उठाकर रँभा रही थीं। उनके साथ बछड़े भी थे। मुखमें घासके ग्रास लिये खड़ी हुई गौएँ नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहा रही थीं। उनकी व्यथा-वेदना दूर हो गयी थी॥ ४—६॥

राजन्! जैसे बादल रथ, अरुण और अश्वोंसहित शरत्कालके सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार उद्धवके देखते-देखते गौओंने उस रथको सब ओरसे घेर लिया। गोपाल श्रीहरि उन सब गौओंके अलग-अलग नाम बोलकर अपने श्रीहस्तसे उनके अङ्गोंको सहलाते हुए बड़े हर्षको प्राप्त हुए। गौओंके समुदायको उनके समीप गया देख श्रीदामा आदि व्रज-बालक विस्मित हो दूरसे ही परस्पर कहने लगे॥ ७—९॥

गोप बोले—सखाओ! उस वायुके समान वेगशाली तथा कांस्यपत्र (झाँझ)-की ध्वनिके समान शब्द करनेवाले, कलश और ध्वजसहित रथको, जिसमें सैकड़ों अश्व जुते हैं तथा जो शत सूर्योंके समान शोभाशाली है, गौओंने कैसे घेर लिया है? गौओंके इस हर्षसे यह सूचित होता है कि इस रथपर दूसरा कोई नहीं, साक्षात् व्रजराजनन्दन ही आ रहे हैं; क्योंकि हमारे दाहिने अङ्ग भी फड़क रहे हैं और नीलकण्ठ पक्षी हमारे ऊपर उठकर बंदनवारका-सा विस्तार करते हैं॥ १०-११॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मन-ही-मन ऐसा विचार करके वे सब गोप वहाँ आ गये। आनेपर उन लोगोंने अपने मित्र माधवको उसी प्रकार देखा, जैसे साधारण जन अपनी खोयी हुई वस्तुके मिल जानेपर उसे देखते हैं। उनपर दृष्टि पड़ते ही साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण रथसे कूद पड़े और उन सबको आगे करके, प्रेमविह्वल हो अपनी दोनों भुजाओंसे भेंटने लगे। नेत्रकमलोंसे अश्रुधारा बहाते हुए उन्होंने पृथक्-पृथक् सबको हृदयसे लगाया। अहो! इस भूतलपर भक्तिके माहात्म्यका वर्णन कौन कर सकता है!॥ १२—१४॥

ते सर्वे रुरुदुर्गोपा मुञ्चन्तोऽश्रूणि मैथिल।
प्रवक्तुं न समर्थाः श्रीकृष्णविक्षेपविह्वलाः॥ १५

परिपूर्णतमः साक्षाद्देवो मधुरया गिरा।
आश्वासयामास च तान् प्रेमानन्दसमाकुलान्॥ १६

उद्धवः प्रेषितो वक्तुं श्रीकृष्णेनार्भकैः सह।
आगतं कथयामास श्रीकृष्णं नन्दपत्तने॥ १७

श्रुत्वागतं नन्दसूनुं श्रीकृष्णं गोपवल्लभम्।
आनेतुं निर्गताः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः॥ १८

भेरीमृदङ्गैः पटहैः कलस्वनै-
रप्पूर्णकुम्भैर्द्विजवेदघोषणैः।
गन्धाक्षतैर्मङ्गललाजमिश्रितैः
श्रीनन्दराजोऽभिययौ यशोदया॥ १९

ततः पुरस्कृत्य मदोन्नतं गजं
सिन्दूरशुण्डाधृतहेमशृङ्खलम्।
समाययौ श्रीवृषभानुमुख्यो
भान्वाकृतिस्तत्र कलावतीयुतः॥ २०

नन्दोपनन्दा वृषभानवश्च
गोपाश्च वृद्धास्तरुणार्भकाश्च।
स्रग्वेणुगुञ्जापरिपिच्छयुक्ता
विनिर्गताः पूर्णमनोरथास्ते॥ २१

गायन्त आरान्नृप नन्दनन्दनं
नृत्यन्त आचालितपीतवाससः।
वंशीधरा वेत्रविषाणपाणयः
प्रहर्षिता दर्शनलालसा भृशम्॥ २२

सखीमुखेभ्यो हरिमागतं परं
निशम्य राधा शयनात्समुत्थिता।
ताभ्यः स्वभूषाः प्रददौ प्रहर्षिता
प्रीता स्वगन्धिं नवपद्मिनी यथा॥ २३

द्वात्रिंशदष्टौ किल षोडश द्वे
यूथैर्युता मैथिल गोपिकानाम्।
आरुह्य राधा शिबिकां मनोज्ञां
समाययौ श्रीधरदर्शनार्थम्॥ २४

मिथिलेश्वर! वे सब गोप नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए फूट-फूटकर रोने लगे। श्रीकृष्णके वियोगसे वे इतने विह्वल हो गये थे कि मिल जानेपर भी सहसा उनसे कुछ कहनेमें समर्थ न हो सके। तब साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिने उन प्रेमानन्दसे विह्वल सखाओंको मधुर वाणीसे आश्वासन दिया। श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंके साथ उद्धवको अपने आनेका समाचार देनेके लिये भेजा। उद्धवने नन्द-नगरमें जाकर बताया कि 'श्रीकृष्ण पधारे हैं'॥ १५—१७॥

गोपवल्लभ नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आगमन सुन-कर समस्त गोप परिपूर्णमनोरथ होकर उन्हें लिवा लानेके लिये निकले। भेरी, मृदङ्ग, पटह आदि बाजे मधुरस्वरमें बजने लगे। भरे हुए कलश लिये ब्राह्मण-लोग वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। लाजा (खील) आदि माङ्गलिक वस्तुओंसे मिश्रित गन्ध और अक्षत साथ ले यशोदाके साथ श्रीनन्दराज अगवानीके लिये गये। तत्पश्चात् सिन्दूर-रञ्जित सूँडमें सोनेकी साँकल धारण किये मदोन्मत्त हाथीको आगे रखकर भानुतुल्य तेजस्वी श्रीवृषभानुवर अपनी रानी कलावतीके साथ वहाँ आये॥ १८—२०॥

नन्द, उपनन्द, वृषभानु, बूढ़े, जवान और बालक गोप पूर्णमनोरथ हो, फूलोंके हार, बाँसुरी, गुञ्जा और मोरपंख लिये नगरसे बाहर निकले। नरेश्वर! गोप-बालक श्रीकृष्णके दर्शनकी बड़ी भारी लालसा लिये, हाथोंमें वंशी, बेंत और विषाण (सींग) धारण किये, बड़े हर्षके साथ नन्दनन्दनके गुण गाते और पीले वस्त्र हिला-हिलाकर नाचते थे॥ २१-२२॥

सखियोंके मुखसे श्रीहरिके शुभागमनका शुभ संवाद सुनकर श्रीराधा शयनसे उठ खड़ी हुईं और महान् हर्षसे युक्त हो उन्होंने उन सबको अपने भूषण उसी प्रकार लुटा दिये, जैसे प्रसन्न हुई नूतन पद्मिनी अपनी सुगन्ध लुटाया करती है॥ २३॥

मिथिलेश्वर! गोपाङ्गनाओंके आठ, सोलह, बत्तीस और दो यूथोंके साथ श्रीराधा मनोहर शिविकापर आरूढ़ हो श्रीधरके दर्शनके लिये आयीं। नृपेश्वर!

तथा हि गोप्यः किल कोटिशश्च
त्यक्त्वाथ सर्वं स्वगृहस्य कृत्यम्।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणा नृपेश
समाययुः प्रेमचलन्मनोगाः॥ २५
सर्वं व्रजं पादपगोमृगद्विजं
प्रेमातुरं वीक्ष्य समागतं किमु।
श्रीनन्दराजं पितरं च मातरं
ननाम कृष्णः कृतमस्तकाञ्जलिः॥ २६
श्रीनन्दराजस्तनयं चिरागतं
प्रगृह्य दोर्भ्यां हृदये निधाय तम्।
संस्नापयामास सुनेत्रजैर्जलै-
र्यशोदया प्राप्तमनोरथश्चिरात्॥ २७
नन्दोपनन्दान् वृषभानुवृद्धान्
सर्वान्नमस्कृत्य च तत्कृताशीः।
तथा वयस्यैश्च परस्परं वा
लघूंश्च हस्तग्रहणैः स्थितोऽभूत्॥ २८
ततः समारुह्य रथं हरिः स्वयं
निधाय नन्दं च गजे यशोदया।
नन्दोपनन्दैः सहितो गवां गणैः
श्रीनन्दराजस्य पुरं विवेश सः॥ २९
तदैव देवाः किल पुष्पवर्ष-
माचारलाजान् पुरगोपिकाश्च ।
प्रचक्रिरे तत्र जयेति मङ्गलं
शब्दं च गोपा गृहमागते हरौ॥ ३०
धन्यः सखा ते परमुद्धवोऽय-
मनेन साक्षात्किल दर्शितोऽत्र।
त्वं जीवनं गोपजनस्य गोपा
ऊचुर्गिरा गद्गदयेदमार्ताः॥ ३१
इदं मया ते कथितं नृपेश
पुनर्व्रजे ह्यागमनं हरेश्च।
किमिच्छसि श्रोतुमथो सुरासुरैः
परं चरित्रं शुभदं विचित्रम्॥ ३२

इसी प्रकार करोड़ों गोपियाँ अपने घरका सारा काम-काज छोड़कर, उलटे-सीधे वस्त्र और आभूषण धारण किये वहाँ आयीं। प्रेमके कारण वे मनके समान तीव्र गतिसे चल रही थीं। ऐसा लगता था कि वृक्ष, गौ, मृग और पक्षियोंसहित सारा व्रजमण्डल श्रीकृष्णको आया हुआ देख प्रेमसे आतुर हो उठा है॥ २४—२५१/२॥

श्रीकृष्णने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर पिता श्रीनन्दराजको और मैया यशोदाको प्रणाम किया। बहुत दिनोंके बाद आये हुए अपने पुत्रको दोनों भुजाओंमें भरकर और हृदयसे लगाकर श्रीनन्दराजने अपने नेत्र-जलसे उनको नहला दिया। यशोदासहित श्रीनन्दका मनोरथ आज चिरकालके बाद पूर्ण हुआ था। नन्द, उपनन्द और वृषभानु आदि सम्पूर्ण बड़े-बूढ़े गोपोंको प्रणाम करके, उनके आशीर्वाद ले श्रीकृष्ण समवयस्क मित्रोंसे परस्पर गले मिले और अपनेसे छोटे सखाओंका हाथ पकड़कर उनके साथ बैठे॥ २६—२८॥

तदनन्तर श्रीहरि यशोदासहित नन्दको हाथीपर चढ़ाकर स्वयं रथपर बैठे और नन्द-उपनन्द तथा गो-समुदायके साथ श्रीनन्दराजके नगरमें प्रविष्ट हुए। उसी समय देवताओंने उनपर फूलोंकी वर्षा की और पुरवासिनी गोपाङ्गनाओंने आचार-प्राप्त लावा (खील) बिखेरे। श्रीहरिके घर पधारनेपर गोपोंने वहाँ 'जय हो, जय हो'—ऐसे माङ्गलिक शब्दका बारंबार उच्चारण किया। उस समय आर्त हुए गोपगण गद्गद वाणीमें कहने लगे—'लाला! तुम्हारा यह सखा उद्धव परम धन्य है; क्योंकि इसने गोपजनोंके जीवनभूत साक्षात् तुम्हारा दर्शन करा दिया'॥ २९—३१॥

नृपेश्वर! इस प्रकार मैंने श्रीहरिके व्रजमें पुनरागमनका वृत्तान्त तुमसे कह सुनाया, अब और क्या सुनना चाहते हो? श्रीहरिका यह विचित्र चरित्र देवताओं और असुरोंके लिये भी परम कल्याणप्रद है॥ ३२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णागमनोत्सवो नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका व्रजमें आगमनोत्सव' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका कदली-वनमें श्रीराधा और गोपियोंके साथ मिलन; रासोत्सव तथा उसी प्रसङ्गमें रोहिताचलपर महामुनि ऋभुका मोक्ष

बहुलाश्व उवाच

अग्रे चकार किं साक्षाद्भगवान् व्रजमण्डले।
राधायै गोपिकाभ्यश्च कथंस्विद्दर्शनं ददौ॥ १

गोपीमनोरथं कृत्वा मथुरामाजगाम ह।
एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र त्वं परावरवित्तमः॥ २

श्रीनारद उवाच

सन्ध्यायां राधयाहूतः श्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
एकान्ते शीतलं शश्वज्जगाम कदलीवनम्॥ ३

स्फारस्फुरन्मेघगृहं रम्भाचन्दनचर्चितम्।
कृष्णामरुत्सीकरं च सुधारश्मिगलत्सुधम्॥ ४

एतादृशं वनं राधावियोगानलवर्चसा।
भस्मीभूतं हि सततं कृष्णाशा तां हि रक्षति॥ ५

तत्रैव सर्वे गोपीनां शतयूथाः समागताः।
तस्यै निवेदनं चक्रुर्माधवागमनस्य हि॥ ६

उत्थाय सहसा साक्षाद् वृषभानुवरात्मजा।
आनेतुमाययौ कृष्णं सखीभिः परिवारिता॥ ७

ददावासनपाद्यार्घानुपचारान् मनोहरान्।
वदन्ती सादरं वाक्यं कुशलं कुशलाधिका॥ ८

युवकन्दर्पकोटीनां माधुर्यहारिणं हरिम्।
दृष्ट्वा राधा जहौ दुःखं ब्रह्म ज्ञात्वा गुणं यथा॥ ९

प्रसन्ना तत्र शृङ्गारमकरोत्कीर्तिनन्दिनी।
तया नोऽकारि शृङ्गारः पान्थे कृष्णे गते सति॥ १०

बहुलाश्वने पूछा—मुने! साक्षात् भगवान्ने व्रजमण्डलमें पधारकर आगे कौन-सा कार्य किया? श्रीराधा तथा गोपाङ्गनाओंको किस प्रकार दर्शन दिया! गोपियोंके मनोरथ पूर्ण करके वे पुनः मथुरामें कैसे आये? विप्रेन्द्र! आप परावरवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, अतः ये सब बातें मुझे बताइये?॥ १-२॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! संध्याकालमें श्रीराधाका बुलावा पाकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सदा-शीतल कदली-वनके एकान्त प्रदेशमें गये। वहाँ, जिसमें फुहारे चलते थे, ऐसा मेघमहल था, रम्भाद्वारा चन्दन छिड़का जाता था, यमुनाजीको छूकर प्रवाहित होनेवाली मन्द वायु ठंडे जलके कण बिखेरती थी और सुधाकर चन्द्रमाकी रश्मियोंसे निरन्तर अमृत झरता रहता था। ऐसा शीतल कदली-वन भी श्रीराधाके विरहानलकी आँचसे भस्मीभूत हो गया था। श्रीकृष्णसे मिलनकी आशा ही श्रीराधाकी निरन्तर रक्षा कर रही थी॥ ३—५॥

वहीं गोपियोंके सारे-के-सारे यूथ आ जुटे, जो सैकड़ोंकी संख्यामें थे। उन्होंने श्रीराधासे निवेदन किया कि 'माधव पधारे हैं।' यह सुनकर साक्षात् वृषभानुवरकी पुत्री श्रीराधा सहसा उठीं और सखियोंसे घिरी हुई वे श्रीकृष्णको लिवा लानेके लिये आयीं। उन्होंने श्रीहरिको आसन दिया। पाद्य, अर्घ्य और आचमन आदि मनोहर उपचार प्रस्तुत किये। साथ ही कुशल पूछनेमें अत्यन्त चतुर श्रीराधा श्रीहरिसे आदरपूर्वक कुशल भी पूछती जा रही थीं॥ ६—८॥

कोटि-कोटि तरुण कंदर्पोंके माधुर्यको हर लेनेवाले श्रीहरिका दर्शन करके राधाने सम्पूर्ण दुःखको उसी प्रकार त्याग दिया, जैसे ब्रह्मका बोध प्राप्त होनेपर ज्ञानी गुणोंके प्रति तादात्म्यका भाव छोड़ देता है। कीर्तिकुमारीने प्रसन्न होकर शृङ्गार धारण किया। श्रीकृष्ण जब परदेशके पथिक होकर गये थे, तबसे उन्होंने अपने शरीरपर शृङ्गार धारण नहीं किया था॥ ९-१०॥

न चन्दनं च ताम्बूलं भोजनं च सुधासमम्।
न कृतं दिव्यशयनं हास्यं वा न कृतं क्वचित्॥ ११

परिपूर्णतमं कृष्णं परिपूर्णतमप्रिया।
आनन्दाश्रूणि मुञ्चन्ती प्राह गद्गदया गिरा॥ १२

श्रीराधोवाच

कियद्दूरे यदुपुरी नागतं किं करोषि हि।
किं वदेऽहं रहोदुःखं भवतोऽशेषसाक्षिणः॥ १३

सौदासराजमहिषी दमयन्ती च मैथिली।
नास्त्यत्र कां पुरस्कृत्य वदेऽहं विरहं रिपुम्॥ १४

मत्समानाश्रया गोप्यो गदितुं न क्षमाः क्वचित्।
शरच्चन्द्रचकोरीव मयूरीव घनं नवम्॥ १५

श्रीवृन्दावनचन्द्रं त्वां घनश्यामं समुत्सहे।
तव सख्योद्धवेनाशु धन्येन त्वं प्रदर्शितः।
अन्यः कोऽपि व्रजे नास्ति यस्य प्रेम्णा त्वमागतः॥ १६

श्रीनारद उवाच

एवं वदन्तीं सततं रुदन्तीं
परां प्रियां वीक्ष्य घृणातुराङ्गः।
आश्वासयामास नयेन सद्यः
प्रगृह्य दोर्भ्यां स्रवदम्बुनेत्रः॥ १७

श्रीभगवानुवाच

मा शोकं कुरु राधे त्वं त्वत्प्रीत्याहं समागतः।
आवयोर्भेदरहितं तेजश्चैकं द्विधा जनैः॥ १८

यथा हि दुग्धधावल्ये तथावां सर्वदा शुभे।
यत्राहं त्वं सदा तत्र विश्लेषो न हि चावयोः॥ १९

न कभी चन्दन लगाया, न पान खाया, न सुधासदृश स्वादिष्ट भोजन ही ग्रहण किया। न दिव्य सेजकी रचना की और न कभी किसीके साथ हास-परिहास ही किया। परिपूर्णतम भगवान्की प्रियतमा आनन्दके आँसू बहाती हुई अपने परिपूर्णतम प्रियतम श्रीकृष्णसे गद्गद वाणीमें बोलीं— ॥ ११-१२ ॥

श्रीराधाने कहा—प्यारे! यादवपुरी मथुरा कितनी दूर है, जो अबतक नहीं आये? वहाँ तुम क्या करते रहे? मैं अपने एकान्त दुःखको कैसे बताऊँ? तुम तो सबके साक्षी हो, अतः सब जानते हो। राजा सौदासकी रानी मदयन्ती, नलकी प्यारी रानी दमयन्ती तथा मिथिलेशनन्दिनी सीता—इन तीनोंमेंसे कोई यहाँ नहीं है। फिर किसको सामने रखकर इस वैरी विरहके दुःखका मैं वर्णन करूँ? ॥ १३-१४ ॥

ये गोपाङ्गनाएँ भी मेरी-जैसी परिस्थितिमें ही हैं, अतः वे भी कभी इस दुःखका निरूपण करनेमें समर्थ नहीं हैं। जैसे चकोरी शरत्कालके चन्द्रमाको और मयूरी नूतन मेघको देखना चाहती है, उसी प्रकार मैं तुम श्रीवृन्दावनचन्द्र तथा घनश्यामको देखनेके लिये उत्कण्ठित रहती हूँ। तुम्हारे सखा उद्धव धन्य हैं, जिन्होंने शीघ्र ही तुम्हारा दर्शन करा दिया। इस व्रजमें दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जिसके प्रेमसे तुम यहाँ आते ॥ १५-१६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कहती और निरन्तर रोती हुई श्रेष्ठ लक्ष्मीरूपा श्रीराधाको देखकर श्यामसुन्दरका अङ्ग-अङ्ग करुणासे विह्वल हो गया। उनके नेत्रोंसे भी अश्रु झरने लगे। उन्होंने तत्काल दोनों हाथोंसे खींचकर प्रियतमाको हृदयसे लगा लिया और नीतियुक्त वचनोंसे उन्हें धीरज बँधाया ॥ १७ ॥

श्रीभगवान् बोले—राधे! शोक न करो, मैं तुम्हारे प्रेमसे ही यहाँ आया हूँ। हम दोनोंका तेज भेदरहित एवं एक है। लोगोंने इसे दो मान रखा है। शुभे! जैसे दूध और उसकी धवलता एक है, उसी प्रकार सदा हम दोनों एक हैं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ तुम सदा विराजमान हो। हम दोनोंका वियोग कभी होता ही नहीं ॥ १८-१९ ॥

पूर्णं ब्रह्म परं चाहं तटस्था त्वं जगत्प्रसूः।
विश्लेष आवयोर्मध्ये मृषा ज्ञानेन पश्य तत्॥ २०

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा जलं सूक्ष्मरूपं तेजो व्याप्तं यथैन्धसि॥ २१

अन्तर्बहिर्यथा पृथ्वी पृथग्भूता वरानने।
तथा विकाररहितो जलवत्त्रिगुणैरहम्॥ २२

मैं पूर्ण परब्रह्म हूँ और तुम जगन्माता तटस्था शक्ति हो। हम दोनोंके बीचमें वियोगकी कल्पना मिथ्या ज्ञानके कारण है, तुम इसे समझो। वरानने! जैसे आकाशमें नित्य विराजमान महान् वायु सर्वत्र व्यापक है, जैसे जल सूक्ष्मरूपसे सर्वत्र व्याप्त है, जैसे काष्ठमें अग्नि व्याप्त रहती है और जैसे भीतर और बाहर स्थित यह पृथग्भूता पृथ्वी परमाणुरूपसे सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार मैं निर्विकारभावसे सर्वत्र विद्यमान हूँ। जैसे जल विविध रंगोंसे युक्त होनेपर भी उनसे पृथक् है, उसी प्रकार मैं त्रिगुणात्मक भावोंके सम्पर्कमें रहकर भी उनसे सर्वथा असम्पृक्त हूँ॥ २०—२२॥

तथा त्वं पश्य मद्भावं सदानन्दो भवेत्ततः।
अहं ममेति भावेन द्वितीयोऽस्ति वरानने॥ २३

यावद्घनो मध्यगतस्तदुत्थितः
स्वं रूपमर्कं न हि दृक् प्रपश्यति।
तावत्परात्मानमसौ प्रधानजै-
र्गुणैस्तथा तेषु गतेषु पश्यति॥ २४

इसी प्रकार तुम मेरे स्वरूपको देखो और समझो; इससे सदा आनन्द बना रहेगा। सुमुखि! 'मैं' और 'मेरा'—इन दो भावोंके कारण द्वैतकी कल्पना होती है। जबतक सूर्यसे ही उत्पन्न हुआ मेघ सूर्य और दृष्टिके बीचमें विद्यमान है, तबतक दृष्टि अपने ही स्वरूपभूत सूर्यका दर्शन नहीं कर पाती। इसी प्रकार जबतक प्राकृत गुण व्यवधान बनकर खड़े हैं, तबतक जीवात्मा अपने ही स्वरूपभूत परमात्माको नहीं देख पाता। इन तीनों गुणोंका आवरण दूर होनेपर ही वह परमात्माका साक्षात्कार कर पाता है॥ २३-२४॥

गुणेषु सक्तं किल बन्धनाय
रक्तं मनः पुंसि च मुक्तये स्यात्।
मनो द्वयोः कारणमाहुरारा-
ज्जित्वाथ तत्कौ विचरेदसङ्गः॥ २५

सर्वं हि भावं मनसः परस्परं
न ह्येकतो भामिनि जायते ततः।
प्रेमैव कर्तव्यमतो मयि स्वतः
प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किञ्चित्॥ २६

यदि मन गुणों (विषयों)-में आसक्त है तो वह बन्धनकारक होता है, और यदि परम पुरुष परमात्मामें संलग्न है तो मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला हो जाता है। इस प्रकार मनको बन्धन और मोक्ष—दोनोंका कारण बताया गया है। उस मनको जीतकर पृथ्वीपर असङ्ग होकर विचरे। भामिनि! लोकमें मनका सम्पूर्णभाव (सम्बन्ध) दोनों ओरसे परस्परकी अपेक्षा रखकर होता है, एक ओरसे नहीं होता। किंतु प्रेम स्वयं ही किया जाता है, अतः मुझमें अपनी ओरसे ही प्रेम करना चाहिये। प्रेमके समान इस भूतलपर दूसरा कोई भी मेरी प्राप्तिका साधन नहीं है॥ २५-२६॥

श्रीनारद उवाच

इति वाक्यं हरेः श्रुत्वा प्रसन्ना कीर्तिनन्दिनी।
गोपिकाभिः समं कृष्णं पूजयामास माधवम्॥ २७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीहरिका यह वचन सुनकर कीर्तिनन्दिनी श्रीराधाने गोपियोंके साथ उन माधव श्रीकृष्णका पूजन किया॥ २७॥

अथ रात्र्यां हरिः साक्षात्कार्तिक्यां रासमण्डले।
गत्वा ननाद मुरलीं गोपीभी राधया सह॥ २८

यमुनानिकटे राजन् राधया राधिकापतिः।
रामाभिः सुन्दरीभिश्च रासरङ्गे रराज ह॥ २९

यावतीर्गोपिका रासे तावद्रूपधरो हरिः।
रेमे वृन्दावने दिव्ये हरिर्वृन्दावनेश्वरः॥ ३०

क्वणन्नूपुरमञ्जीरो वनमालाविराजितः।
पीताम्बरः पद्मधारी प्रभातार्ककिरीटधृक्॥ ३१

विद्युल्लतास्फुरत्प्रोद्यद्धेमकुण्डलमण्डितः।
वेत्रभृद्वादयन् वंशीं नटवेषो घनद्युतिः॥ ३२

स्फुरत्कौस्तुभरत्नाढ्यः प्रचलत्स्निग्धकुण्डलः।
रराज राधया रासे यथा रत्या रतीश्वरः॥ ३३

शच्या शक्रो यथा स्वर्गे घनश्चञ्चलया यथा।
वृन्दया वृन्दकारण्ये तथा वृन्दावनेश्वरः॥ ३४

वृन्दावनं च पुलिनं वनान्युपवनानि च।।
पश्यन् गोपीगणैः सार्धं गिरिं गोवर्धनं ययौ॥ ३५

गोपीनां शतयूथानां मानं वीक्ष्य व्रजेश्वरः।
भगवान् राधया साकं तत्रैवान्तरधीयत॥ ३६

अथ गोवर्धनाद्दूरे सुन्दरं योजनत्रयम्।
श्रीखण्डगन्धसंयुक्तं स ययौ रोहिताचलम्॥ ३७

लताकुञ्जनिकुञ्जांश्च पश्यञ्जल्पंस्तया सह।
विचचार गिरौ रम्ये काञ्चनीलतिकालये॥ ३८

तत्र देवसरो रम्यं बद्रिनाथेन निर्मितम्।
पाठीनकूर्मनक्रादिहंससारससङ्कुलम् ॥ ३९

तदनन्तर कार्तिक पूर्णिमाकी रातमें गोपियों और श्रीराधिकाके साथ रासमण्डलमें उपस्थित हो साक्षात् श्रीहरिने मुरली बजायी। राजन्! यमुनाके निकट रासकी रङ्गभूमिमें श्रीराधा तथा अन्य सुन्दरी व्रजरमणियोंके साथ राधावल्लभ श्रीकृष्ण शोभा पाने लगे। रासमें जितनी गोपाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके वृन्दावन-अधीश्वर श्रीहरि दिव्य वृन्दावनमें विहार करने लगे॥ २८—३०॥

उनके चरणोंके नूपुर और मञ्जीर बज रहे थे। वनमाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। पीताम्बर पहिने, एक हाथमें कमल लिये, प्रातःकालिक सूर्यके समान कान्तिमान् मुकुट धारण किये, विद्युल्लताके तुल्य जगमगाते हुए सुवर्णमय कुण्डलोंसे मण्डित हो, बेंतकी छड़ी लिये, वंशी बजाते हुए, मेघकी-सी कान्तिवाले श्रीहरि नटवर-वेषमें सुशोभित हुए। अत्यन्त प्रकाशमान कौस्तुभरत्न उनके वक्षःस्थलपर दिव्य प्रभा बिखेर रहा था। कानोंमें चिकने और चमकीले कुण्डल हिल रहे थे। रासमण्डलमें श्रीराधाके साथ वे उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे रतिके साथ रतिपति॥ ३१—३३॥

जैसे स्वर्गमें शचीके साथ इन्द्र तथा आकाशमें चपलाके साथ मेघ शोभा पाते हैं, वृन्दावनमें वृन्दाके साथ वृन्दावनेश्वरकी वैसी ही शोभा हो रही थी। वे वृन्दावन, यमुना-पुलिन, वन और उपवनकी शोभा निहारते हुए गोपी-समुदायके साथ गोवर्धनपर्वतपर गये। भगवान् व्रजेश्वरने देखा सौ यूथवाली गोपाङ्गनाओंको अपने सौभाग्यपर अभिमान हो उठा है, तब वे श्रीराधाके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३४—३६॥

अब वे गोवर्धनसे तीन योजन दूर चन्दनकी गन्धसे सुवासित सुन्दर रोहिताचलको चले गये। श्रीराधाके साथ वहाँके लता-कुञ्जों और निकुञ्जोंको देखते तथा वार्तालाप करते हुए सुनहरी लताओंके आश्रयभूत उस पर्वतपर विचरने लगे। वहाँ बदरीनाथके द्वारा निर्मित रमणीय देवसरोवर है, जो बड़े-बड़े मत्स्यों, कछुओं और मगर आदि जल-जन्तुओं तथा हंस-सारस आदि पक्षियोंसे व्याप्त था॥ ३७—३९॥

सहस्रदलपद्मैश्च मण्डितं तदितस्ततः।
भ्रमरध्वनिसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतवृतम्॥ ४०

विकसत्पद्मगन्धाढ्यं तत्तीरं मन्दमारुतम्।
रमया राधया सार्धं माधवो निषसाद ह॥ ४१

तत्तीरं प्रतपस्यन्तं ऋभुं नाम महामुनिम्।
पदैकेन स्थितं शश्वच्छ्रीकृष्णाध्यानतत्परम्॥ ४२

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
निरन्नं निर्जलं शान्तं श्रीकृष्णस्तं ददर्श ह॥ ४३

पप्रच्छ वीक्ष्य तं राधा हसन्ती प्राह माधवम्।
माहात्म्यं कुरु भक्तोऽयं पश्य भक्तिं महामुनेः॥ ४४

हे ऋभो इति कृष्णेन प्रोक्तमुच्चैर्वचः शुभम्।
न श्रुतं तेन किञ्चिद्वा चरमं प्रापितेन वै॥ ४५

हरिस्तदा तद्धृदयाद् बभूवाशु तिरोहितः।
ध्यानाद्गतं हरिं वीक्ष्य मुनीन्द्रश्चातिविस्मितः॥ ४६

नेत्रे उन्मील्य ददृशे श्रीकृष्णं राधयागतम्।
घनं चञ्चलयेवाढ्यं रञ्जयन्तं दिशो दश॥ ४७

उत्थाय सद्यो हरिभक्तितत्परः
प्रदक्षिणीकृत्य हरिं सराधिकम्।
प्रणम्य मूर्ध्ना निपपात पादयो-
रुवाच कृष्णं बहुगद्गदाक्षरः॥ ४८

श्रीऋभुरुवाच

नमः कृष्णाय कृष्णायै राधायै माधवाय च।
परिपूर्णतमायै च परिपूर्णतमाय च॥ ४९

घनश्यामाय देवाय श्यामायै सततं नमः।
रासेश्वराय सततं रासेश्वर्यै नमो नमः॥ ५०

गोलोकातीतलीलाय लीलावत्यै नमो नमः।
असंख्याण्डाधिदेव्यै चासंख्याण्डनिधये नमः॥ ५१

सहस्रदल कमल उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। इधर-उधर मँड़राते हुए भ्रमरोंकी मधुर ध्वनिसे युक्त नर-कोकिलोंकी काकली वहाँ सब ओर व्याप्त थी। उसके तटपर मन्द-मन्द वायु चल रही थी और प्रफुल्ल कमलोंकी सुगन्ध छायी हुई थी। रमास्वरूपा राधाके साथ माधव उस सरोवरके किनारे बैठ गये। उसी सरोवरके कूलपर महामुनि ऋभु एक पैरसे खड़े होकर तपस्या कर रहे थे और निरन्तर श्रीकृष्णके चिन्तनमें तत्पर थे॥ ४०—४२॥

साठ हजार साठ सौ वर्षोंसे वे निराहार और निर्जल रहकर शान्तभावसे तपस्यामें लगे थे। श्रीकृष्णने उन्हें देखा। राधाने उन्हें देखकर मुसकराते हुए पूछा—'ये कौन हैं?' माधव बोले—'प्रिये! इनका माहात्म्य बढ़ाओ। ये भक्त हैं। इन महामुनिकी भक्ति देखो।'—कहकर श्रीकृष्णने 'हे ऋभो!' यह नाम लेकर उच्चस्वरसे पुकारा। किंतु उन्होंने उनका वह शुभ वचन नहीं सुना; क्योंकि वे ध्यानकी चरमावस्था (समाधि)-में पहुँच गये थे॥ ४३—४५॥

तब श्रीहरि उस समय मुनिके हृदयसे तत्काल तिरोहित हो गये। श्रीहरिको ध्यानसे निर्गत होनेके कारण न देखकर मुनीन्द्र ऋभु अत्यन्त विस्मित हो गये। फिर तो उन्होंने आँखें खोल दीं और अपने सामने चपलाके साथ मेघकी भाँति राधाके साथ श्रीकृष्णको देखा, जो अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको अनुरञ्जित—प्रकाशित कर रहे थे। यह देख वे हरिभक्तिपरायण महात्मा शीघ्र उठे और राधासहित श्रीहरिकी परिक्रमा करके, मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े। फिर अत्यन्त गद्गद वाणीमें श्रीकृष्णसे बोले—॥ ४६—४८॥

श्रीऋभुने कहा—श्रीकृष्ण और कृष्णाको नमस्कार। श्रीराधा और माधवको नमस्कार। परिपूर्णतमा और परिपूर्णतमको नमस्कार। देव घनश्याम और श्यामाको सदा नमस्कार है। रासेश्वर तथा रासेश्वरीको नित्य-निरन्तर बारंबार नमस्कार है। गोलोकातीत लीलावाले श्रीकृष्णको तथा लीलावती श्रीराधाको बारंबार नमस्कार है। असंख्य ब्रह्माण्डोंकी अधिदेवी तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंकी निधिको नमस्कार है॥ ४९—५१॥

भूभारहाराय भुवं गताभ्यां
मच्छान्तये चात्र समागताभ्याम्।
परस्परं सन्धितविग्रहाभ्यां
नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम्॥ ५२

आप दोनों भूभार-हरण करनेके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं और मुझे शान्ति प्रदान करनेके लिये यहाँ पधारे हैं। परस्पर संयुक्त विग्रहवाले आप दोनों श्रीराधा और श्रीहरिको मेरा नमस्कार है॥ ५२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा कृष्णपादाब्जे प्रक्षरद्बाष्पलोचनः।
प्रेमानन्दसमायुक्तो जहौ प्राणान् महामुनिः॥ ५३

तदैव निर्गतं ज्योतिर्दशसूर्यसमप्रभम्।
परिभ्रमद्दशदिशः श्रीकृष्णे लीनतां गतम्॥ ५४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें नेत्रोंसे प्रेमाश्रुकी वर्षा करते हुए प्रेमानन्दनिमग्न महामुनि ऋभुने अपने प्राण त्याग दिये। उसी समय उनके शरीरसे दस सूर्योंके समान दीप्तिमती ज्योति निकली और दसों दिशाओंमें घूमती हुई श्रीकृष्णमें लीन हो गयी॥ ५३-५४॥

भक्तस्य भक्तिं श्रीकृष्णो वीक्ष्य वै प्रेमलक्षणाम्।
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन् प्रेम्णा तं चाजुहाव ह॥ ५५

पुनः श्रीकृष्णपादाब्जात्कृष्णसारूप्यवान् मुनिः।
निर्गतः कोटिकन्दर्पसन्निभोऽतिनताननः॥ ५६

अपने भक्तकी यह प्रेमलक्षणा-भक्ति देखकर श्रीकृष्णने अपने नेत्रोंसे आनन्दके अश्रु बहाते हुए बड़े प्रेमसे उनका नाम लेकर पुकारा। तब श्रीकृष्णका-सा रूप धारण किये वे मुनि श्रीकृष्णके चरण-कमलसे पुनः प्रकट हुए। उस समय उनका सौन्दर्य कोटि-कोटि कंदर्पोंको तिरस्कृत कर रहा था और वे विनयसे सिर झुकाये हुए खड़े थे॥ ५५-५६॥

दोर्भ्यां प्रगृह्य हृदये तं निधाय कृपाकरः।
आश्वास्य कल्याणकरं करं दिव्यं दधार ह॥ ५७

प्रदक्षिणीकृत्य हरिं च राधिकां
प्रणम्य चारुह्य रथं मनोहरम्।
गोलोकलोकं प्रययावृभुर्मुनि-
र्विरञ्जयन् मैथिल मण्डलं दिशाम्॥ ५८

श्रीराधिका विस्मयमागता भृशं
दृष्ट्वा परां मुक्तिमृभोर्महामुनेः।
आनन्दवारीणि विमुञ्चती चिरं
जगाद कृष्णं वृषभानुनन्दिनी॥ ५९

करुणानिधि श्रीकृष्णने उन्हें भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया और आश्वासन दे, अपना दिव्य कल्याणकारी हाथ उनके मस्तकपर रखा। मिथिलेश्वर! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और श्रीराधाकी परिक्रमा करके, उन्हें प्रणामकर, मुनिवर ऋभु एक मनोहर विमानपर आरूढ़ हो, अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए, गोलोकधामको चले गये। महामुनि ऋभुकी यह परा मुक्ति देखकर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाको बड़ा विस्मय हुआ। वे बहुत देरतक आनन्दके आँसू बहाती रहीं। फिर श्रीकृष्णसे बोलीं— ॥ ५७—५९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रासोत्सवे ऋभुमोक्षो नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें रासोत्सवके प्रसङ्गमें 'ऋभुका मोक्ष' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी द्रवरूपताके प्रसङ्गमें नारदजीका उपाख्यान

श्रीराधोवाच

धन्योऽयं मुनिशार्दूलस्त्वद्भक्तः प्रेमवान् महान्।
त्वत्सारूप्यं जगामासौ त्वमप्यश्रुमुखो यतः॥ १

अस्य देहक्रियां कर्तुं योग्योऽसि वृजिनार्दन।
तपसा चास्य देहोऽयं प्रस्फुरत्यमलाकृतिः॥ २

श्रीनारद उवाच

वदन्त्यां तत्र राधायां तद्देहोऽप्यभवत्सरित्।
वहन्ती पापहन्त्री च दृश्यते रोहिते गिरौ॥ ३

तद्देहस्यापि सरितं वीक्ष्य राधातिविस्मिता।
नन्दराजात्मजं प्राह वृषभानुवरात्मजा॥ ४

श्रीराधोवाच

कथं जलत्वमापन्नो देहोऽयं वै महामुनेः।
एतन्मे संशयं देव छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥ ५

श्रीभगवानुवाच

प्रेमलक्षणया भक्त्या संयुतोऽयं मुनीश्वरः।
तस्मादस्य तु देहोऽयं रम्भोरु द्रवतां गतः॥ ६

दृष्ट्वा त्वया मां वरदं हर्षितोऽभून्महामुनिः।
जलत्वं प्राप तद्देहो यथाहं द्रवता पुरा॥ ७

श्रीराधोवाच

द्रवतां त्वं कथं प्राप्तो देवदेव दयानिधे।
एतच्चित्रं हि मे जातं सर्वं त्वं वद विस्तरात्॥ ८

श्रीभगवानुवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः परं भवेत्॥ ९

मन्नाभिपङ्कजाज्जातः पुरा ब्रह्मा प्रजापतिः।
असृजत्प्रकृतिं शश्वत्तपसा मद्वरोर्जितः॥ १०

श्रीराधाने कहा—माधव! ये मुनिश्रेष्ठ धन्य हैं, जो तुम्हारे इतने बड़े भक्त और महान् प्रेमी थे। इन्होंने तुम्हारा सारूप्य प्राप्त कर लिया और तुम भी इनके लिये आँसू बहाते रहे। पापनाशन! अब तुम्हें इनके शरीरका दाहसंस्कार भी करना चाहिये। इनका यह शरीर तपस्याके प्रभावसे अभीतक निर्मल आकारमें प्रकाशित हो रहा है॥ १-२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वहाँ श्रीराधा इस प्रकार कह ही रही थीं कि मुनिका शरीर एक नदीके रूपमें परिणत हो गया। रोहिताचलपर बहती हुई वह पापनाशिनी नदी आज भी देखी जाती है। उनके शरीरको नदीके रूपमें परिणत देख राधाको और भी अधिक विस्मय हुआ। तब वे वृषभानुवरनन्दिनी नन्दराजकुमारसे इस प्रकार बोलीं—॥ ३-४॥

श्रीराधाने कहा—श्यामसुन्दर! इन महामुनिका यह शरीर जलरूपमें कैसे परिणत हो गया? देव! मेरे इस संशयको तुम पूर्णरूपसे मिटा दो॥ ५॥

श्रीभगवान्ने कहा—रम्भोरु! ये मुनीश्वर प्रेम-लक्षणा-भक्तिसे संयुक्त थे, इसीलिये इनका यह शरीर द्रवभावको प्राप्त हुआ है। तुम्हारे साथ मुझे वर देनेके लिये आया देख महामुनि ऋभु अत्यन्त हर्षित हुए थे, इसीलिये इनका कलेवर उसी प्रकार जलरूपमें परिणत हो गया, जैसे मैं पहले द्रवभावको प्राप्त हुआ था॥ ६-७॥

श्रीराधाने पूछा—देवदेव! दयानिधे! तुम कैसे द्रवभावको प्राप्त हुए थे! यह बात मुझे बड़ी विचित्र लग रही है, तुम विस्तारसे सब बात बताओ॥ ८॥

श्रीभगवान्ने कहा—इस विषयमें जानकार लोग इस प्राचीन इतिहासको सुनाया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है॥ ९॥

पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्मा मेरे नाभि-कमलसे प्रकट हो प्राकृत जगत्की सृष्टि करने लगे। वे अपनी तपस्या और मेरे वरदानसे शक्तिशाली रहे॥ १०॥

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे ब्रह्मणः सृजतः शुभः।
भक्त्युन्मत्तो मत्पदानि निजगौ पर्यटन् महीम्॥ ११

एकदा नारदं प्राह देवो ब्रह्मा प्रजापतिः।
प्रजाः सृज महाबुद्धे वृथा चङ्क्रमणं त्यज॥ १२

नारदस्तद्वचः श्रुत्वा प्राहेदं ज्ञानतत्परः।
न सृजामि पितः सृष्टिं शोकमोहादिकारिणीम्॥ १३

करिष्यामि हरेर्भक्तिं तत्कीर्तनसमन्विताम्।
त्वमपि सृष्टिरचनां त्यज दुःखातुरो भृशम्॥ १४

क्रुद्धः शशाप तं ब्रह्मा प्राह प्रस्फुरिताधरः।
सदा गानपरः कल्पं गन्धर्वो भव दुर्मते॥ १५

एवं तच्छापतो राधे गन्धर्व उपबर्हणः।
बभूव गन्धर्वपतिः कल्पमात्रं सुरालये॥ १६

एकदा ब्रह्मणो लोके स्त्रीभिः परिवृतो गतः।
सुन्दरीषु मनः कृत्वा जगौ तालविवर्जितम्॥ १७

पुनर्ब्रह्मा तं शशाप त्वं शूद्रो भव दुर्मते।
अथासौ ब्रह्मशापेन दासीपुत्रो बभूव ह॥ १८

सत्सङ्गेन पुरा राधे प्राप्तोऽभूद्ब्रह्मपुत्रताम्।
भक्त्युन्मत्तो मत्पदानि निजगौ पर्यटन् महीम्॥ १९

मुनीन्द्रो वैष्णवश्रेष्ठो मत्प्रियो ज्ञानभास्करः।
परं भागवतः साक्षान्नारदो मन्मनाः सदा॥ २०

एकदा नारदो लोकान् पश्यन् वै गानतत्परः।
इलावृतं नाम खण्डं गतवान् सर्वतो गतिः॥ २१

यत्र जम्बूनदी श्यामा जम्बूफलरसोद्भवा।
तथा जाम्बूनदं नाम सुवर्णं भवति प्रिये॥ २२

तद्देशे वेदनगरं रत्नप्रासादनिर्मितम्।
ददर्श नारदो योगी दिव्यनारीनरैर्वृतम्॥ २३

एक समय सृष्टिकर्ता ब्रह्माकी गोदसे सुन्दर पुत्र नारदजीका जन्म हुआ। वे मेरी भक्तिसे उन्मत्त होकर भूमण्डलपर भ्रमण करते हुए मेरे नाम-पदोंका कीर्तन करने लगे। एक दिन प्रजापति ब्रह्मदेवने नारदजीसे कहा—'महामते! यह व्यर्थ घूमना छोड़ो और प्रजाकी सृष्टि करो।' उनकी बात सुनकर ज्ञानमार्गपरायण नारदने इस प्रकार कहा—'पिताजी! मैं सृष्टि नहीं करूँगा; क्योंकि वह शोक-मोह पैदा करनेवाली है। मैं तो श्रीहरिके नामोंके कीर्तनसे युक्त उनकी भक्ति करूँगा। आप भी इस सृष्टि-व्यापारमें लगकर दुःखसे अत्यन्त आतुर रहते हैं, अतः आप भी सृष्टि-रचना छोड़ दीजिये'॥ ११—१४॥

यह सुनकर ब्रह्माजीके अधर क्रोधसे फड़कने लगे। उन्होंने कुपित हो शाप देते हुए कहा—'दुर्मते! तुम एक कल्पतक सदा गाने-बजानेमें ही लगे रहनेवाले गन्धर्व हो जाओ।' श्रीराधे! इस प्रकार ब्रह्माके शापसे नारदजी उपबर्हण नामक गन्धर्व हो गये। वे एक कल्पतक देवलोकमें गन्धर्वराजके पदपर प्रतिष्ठित रहे। एक दिन स्त्रियोंसे घिरे हुए वे ब्रह्माजीके लोकमें गये। वहाँ सुन्दरियोंमें मन लगा रहनेके कारण उन्होंने तालरहित गीत गाया॥ १५—१७॥

तब ब्रह्माने पुनः शाप दे दिया—'दुर्मते! तू शूद्र हो जा।' इस प्रकार ब्रह्माजीके शापसे वे दासीपुत्र हो गये। राधे! फिर सत्सङ्गके प्रभावसे नारदजी ब्रह्मपुत्रताको प्राप्त हुए। तदनन्तर पुनः भक्तिभावसे उन्मत्त हो भूतलपर विचरते हुए वे मेरे पदोंका गान एवं कीर्तन करने लगे। मुनीन्द्र नारद वैष्णवोंमें श्रेष्ठ, मेरे प्रिय तथा ज्ञानके सूर्य हैं। वे परम भागवत हैं और सदा मुझमें ही मन लगाये रहते हैं॥ १८—२०॥

एक दिन विभिन्न लोकोंका दर्शन करते हुए गान-तत्पर नारद, जिनकी सर्वत्र गति है, इलावृतखण्डमें गये, जहाँ प्रिये! जम्बूफलके रससे प्रकट हुई श्यामवर्णा जम्बूनदी प्रवाहित होती है तथा जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है। उस देशमें रत्नमय प्रासादोंसे युक्त तथा दिव्य नर-नारियोंसे भरा हुआ एक 'वेदनगर'—नामक नगर है, जिसे योगी नारदने देखा॥ २१—२३॥

काश्चिद्वै पादरहितान् विगुल्फाञ्जानुवर्जितान्।
विजङ्घाञ्जघनव्यङ्गान् कृशोरून् कुब्जमध्यकान्॥ २४

श्लथद्दन्तोन्नतस्कन्धानतानविकन्धरान् ।
स्त्रीजनान् पुरुषांश्चासावङ्गभङ्गान् ददर्श ह॥ २५

अहो किमेतच्चित्रं हि सर्वान् दृष्ट्वावदन्मुनिः।
सर्वे यूयं पद्ममुखा दिव्यदेहाः शुभाम्बराः॥ २६

किं देवा उपदेवा वा यूयं किं ऋषिसत्तमाः।
वादित्रसहिताः सर्वे रम्यगानपरायणाः॥ २७

अङ्गभङ्गाः कथं यूयं वदताशु ममैव हि।
इत्युक्तास्तेन ते सर्वे प्रत्यूचुर्दीनमानसाः॥ २८

रागा ऊचुः

महादुःखं मुने जातमस्माकं तनुषु स्वतः।
तस्याग्रे कथनीयं वै दूरीकर्तुं च यः क्षमः॥ २९

रागा वयं वेदपुरे वसामः सर्वदा मुने।
अङ्गभङ्गा वयं जाताः कारणं शृणु मानद॥ ३०

जातो हिरण्यगर्भस्य पुत्रो नारदनामभाक्।
प्रेमोन्मत्तो विकालेन गायन् ध्रुवपदानि च॥ ३१

विचचार महीमेतां स्वेच्छया स महामुनिः।
विकाले तस्य गानैश्च विस्वरैस्तालवर्जितैः।
विगानैश्च वयं सर्वे अङ्गभङ्गा बभूविम॥ ३२

इति श्रुत्वाथ तद्वाक्यं नारदो विस्मितोऽभवत्।
उवाच गतमानोऽसौ रागान् परिहसन्निव॥ ३३

मुनिरुवाच

तस्य केन प्रकारेण ज्ञानं वै कालतालयोः।
भवेदिह स्वरैर्युक्तं वदताशु ममैव हि॥ ३४

वहाँ कितने ही लोगोंके पैर नहीं थे, गुल्फ नहीं थे और घुटने भी नहीं थे। जङ्घा अथवा जघनभागका भी कितने ही लोगोंके पास अभाव था। वे विकलाङ्ग और कृशोदर थे और कितनोंके पीठके मध्यभागमें कूबर निकल आये थे, दाँत गिर गये थे या ढीले हो गये थे, कंधे ऊँचे थे, मुख झुका हुआ था और कितनोंके गर्दन ही नहीं थी। इस प्रकार नारदजीने वहाँकी स्त्रियों और पुरुषोंका अङ्ग-भङ्ग देखा॥ २४-२५॥

उन सबको देखकर मुनिने कहा—'अहो! यह क्या बात है? यह सब तो विचित्र ही दिखायी देता है। आप सब लोगोंके मुँह कमलके समान हैं, शरीर दिव्य हैं और वस्त्र भी अच्छे हैं। आपलोग देवता हैं या उपदेवता अथवा कोई ऋषिश्रेष्ठ हैं! आप सब लोग बाजोंके साथ हैं तथा रमणीय गीत गानेमें संलग्न हैं। आपके अङ्ग भङ्ग कैसे हो गये, यह बात शीघ्र मुझे बताइये?' उनके इस प्रकार पूछनेपर वे सब दीनचित्त होकर बोले—॥ २६—२८॥

रागोंने कहा—मुने! हमारे शरीरमें स्वतः बड़ा भारी दुःख पैदा हो गया है। परंतु यह सब उसके आगे कहना चाहिये, जो उसे दूर कर सके। महर्षे! हमलोग राग हैं और वेदपुरमें निवास करते हैं। मानद! हम अङ्ग-भङ्ग कैसे हो गये, इसका कारण बताते हैं, सुनिये; हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीके एक पुत्र पैदा हुआ है, जिसका नाम है, नारद। वह महामुनि प्रेमसे उन्मत्त होकर बेसमय ध्रुवपद गाता हुआ इस पृथ्वीपर स्वेच्छासे विचरा करता है। उसके ताल-स्वरसे रहित असामयिक गानों-विगानोंसे हम सबके अङ्ग भङ्ग हो गये हैं॥ २९—३२॥

उनकी यह बात सुनकर नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ। उनका गर्व गल गया और वे रागोंसे हँसते हुए-से बोले—॥ ३३॥

मुनिने कहा—रागगण! मुझे शीघ्र बताओ। नारदमुनिको किस प्रकारसे काल और तालका ज्ञान हो सकता है, जिससे वे स्वरयुक्त गीत गा सकें?॥ ३४॥

रागा ऊचुः

वैकुण्ठस्य पतेः साक्षात् प्रिया मुख्या सरस्वती।
कुर्याच्छिक्षां यदा तस्मै तदा स्यात्कालविन्मुनिः॥ ३५

तेषां वाक्यं ततः श्रुत्वा नारदो दीनवत्सलः।
सरस्वत्याः प्रसादार्थं त्वरं शुभ्रं गिरिं ययौ॥ ३६

दिव्यवर्षशतं शश्वत्तपस्तेपे सुदुष्करम्।
निरन्नं निर्जलं वाणीध्यानयुक्तं व्रजेश्वरि॥ ३७

शुभ्रं नाम विसृज्याथ पवित्रीकृतभूः परम्।
नारदो नाम शैलोऽभूत्तपसा नारदस्य च॥ ३८

तपोऽन्ते आगतां साक्षाद्वाग्देवीं श्रीसरस्वतीम्।
विष्णोः प्रियां दिव्यवर्णामपश्यन्नारदो मुनिः॥ ३९

सहसोत्थाय तां नत्वा परिक्रम्य नताननः।
तद्रूपगुणमाधुर्यस्तुतिं चक्रे मुनीश्वरः॥ ४०

श्रीनारद उवाच

नवार्कबिम्बद्युतिमुद्गलद्धलत्-
ताटङ्ककेयूरकिरीटकङ्कणाम्।
स्फुरत्क्वणन्नूपुररावरञ्जितां
नमामि कोटीन्दुमुखीं सरस्वतीम्॥ ४१

वन्दे सदाहं कलहंस उद्गते
चलत्पदे चञ्चलचञ्चुसम्पुटे।
निर्धौतमुक्ताफलहारसञ्चयं
सन्धारयन्तीं सुभगां सरस्वतीम्॥ ४२

वराभयं पुस्तकवल्लकीयुतं
परं दधानां विमले करद्वये।
नमाम्यहं त्वां शुभदां सरस्वतीं
जगन्मयीं ब्रह्ममयीं मनोहराम्॥ ४३

रागोंने कहा—साक्षात् वैकुण्ठनाथकी प्रिय भार्याओंमें मुख्य सरस्वती देवी यदि नारदको संगीतकी शिक्षा दे सकें तो वे मुनि कौन-सा राग किस समय, किस तालस्वरसे गाना चाहिये, इसे जान सकते हैं॥ ३५॥

उनकी यह बात सुनकर दीनवत्सल नारद सरस्वतीका कृपा-प्रसाद प्राप्त करनेके लिये तुरंत ही शुभ्रगिरिपर चले गये। वहाँ उन्होंने सौ दिव्य वर्षोंतक निरन्तर अत्यन्त दुष्कर तपस्या की। व्रजेश्वरि! उन्होंने अन्न-जल छोड़कर केवल सरस्वतीके ध्यानमें मन लगा लिया था॥ ३६-३७॥

नारदजीकी तपस्यासे वह पर्वत अपना 'शुभ्र' नाम छोड़कर 'नारदगिरि'के नामसे प्रख्यात हो गया। वह सारा पर्वत उनकी तपस्यासे पवित्र हो गया। तपस्याका पर्यवसान होनेपर साक्षात् वाग्देवता विष्णुप्रिया श्रीसरस्वती वहाँ आयीं। नारदजीने उन दिव्यवर्णा देवीको देखा। देखकर वे सहसा उठ खड़े हुए और उन्हें नमस्कार करके परिक्रमापूर्वक नतमस्तक हो, वे मुनीश्वर सरस्वती देवीके रूप, गुण और माधुर्यकी स्तुति करने लगे॥ ३८—४०॥

श्रीनारदजी बोले—नवीन सूर्यके बिम्बकी द्युतिको उगलने और हिलनेवाले रत्नमय कर्णफूल, केयूर, किरीट और कङ्कण जिनकी शोभा बढ़ाते हैं तथा जो चमकते और झनकारते हुए नूपुरोंके शिञ्जनरवसे रञ्जित होती हैं, उन कोटि चन्द्रमाओंसे अधिक उज्ज्वल मुखवाली सरस्वतीदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो चञ्चल चरण और चञ्चुपुटवाले उड़ते हुए कलहंसपर विराजमान होती तथा निर्मल मुक्ताफलोंके अनेक हार धारण करती हैं, उन सौभाग्यशालिनी सरस्वतीदेवीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४१-४२॥

जो अपने दोनों पार्श्वके दो-दो निर्मल हाथोंमें क्रमशः वर, अभय, पुस्तक और उत्तम वीणा धारण करती हैं, उन जगन्मयी, ब्रह्ममयी, शुभदा एवं मनोहरा सरस्वती देवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४३॥

तरङ्गितक्षौमसिताम्बरे परे
देहि स्वरज्ञानमतीवमङ्गले।
येनाद्वितीयो हि भवेयमक्षरे
सर्वोपरि स्यां पररासमण्डले॥ ४४

श्वेतवर्णकी लहरदार रेशमी साड़ी पहननेवाली अतीव मङ्गलस्वरूपे सरस्वति! मुझे स्वर-तालका ज्ञान प्रदान कीजिये, जिससे मैं अविनाशी एवं सर्वोत्कृष्ट रासमण्डलमें सर्वोपरि और अद्वितीय संगीतज्ञ हो जाऊँ॥ ४४॥

श्रीभगवानुवाच

स्तोत्रं जाड्यापहं दिव्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
नारदोक्तं सरस्वत्याः स विद्यावान् भवेदिह॥ ४५

ततः प्रसन्ना वाग्देवी नारदाय महात्मने।
देवदत्तां ददौ वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम्॥ ४६

श्रीभगवान् कहते हैं—[श्रीराधे!] सरस्वतीका यह नारदोक्त दिव्य स्तोत्र जडताका नाश करनेवाला है। जो प्रात:काल उठकर इसका पाठ करेगा, वह इस लोकमें विद्यावान् होगा। तब प्रसन्न हुई वाग्देवताने महात्मा नारदको भगवत्प्रदत्त स्वरब्रह्मसे विभूषित एक वीणा प्रदान की॥ ४५-४६॥

रागैश्च रागिणीभिश्च तत्पुत्रैश्च तथैव च।
देशकालादिभेदैश्च तालमानस्वरैः सह॥ ४७

षट्पञ्चाशत्कोटिभेदैरन्तर्भेदैरसंख्यकैः।
ग्रामैर्नृत्यैः सवादित्रैर्मूर्च्छनासहितैः शुभैः॥ ४८

वैकुण्ठस्य पतेः साक्षात्प्रिया मुख्या सरस्वती।
स्वरगम्यैः पदैः सिद्धैः पाठयामास नारदम्॥ ४९

अद्वितीयं रागकरं कृत्वा तं रासमण्डले।
वैकुण्ठं प्रययौ राधे वाग्देवी विष्णुवल्लभा॥ ५०

साथ ही राग-रागिनी, उनके पुत्र, देशकालादिकृत भेद तथा ताल, लय और स्वरोंका ज्ञान भी दिया। ग्रामोंके छप्पन कोटि भेद और असंख्य अवान्तर-भेद, नृत्य, वादित्र तथा सुन्दर मूर्च्छना—इन सबका ज्ञान नारदजीको प्राप्त हुआ। वैकुण्ठपतिकी प्रियाओंमें मुख्य साक्षात् सरस्वतीदेवीने स्वरगम्यसिद्धपदोंद्वारा नारदजीको संगीतकी शिक्षा दी। राधे! नारदको रासमण्डलके उपयुक्त अद्वितीय रागोद्भावक बनाकर विष्णुवल्लभा वाग्देवी वैकुण्ठधामको चली गयीं॥ ४७—५०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नारदोपाख्यानं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नारदोपाख्यान' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

नारदका अनेक लोकोंमें होते हुए गोलोकमें पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णके समक्ष अपनी कलाका प्रदर्शन करना तथा श्रीकृष्णका द्रवरूप होना

श्रीभगवानुवाच

कस्मै देयमिदं गुह्यं रागरूपं मनोहरम्।
बुद्ध्या विचारयन्नित्थं गन्धर्वनगरं ययौ॥ १

श्रीभगवान् कहते हैं—[श्रीराधे!] इस रागरूप मनोहर एवं गुह्य ज्ञानका उपदेश किसको देना चाहिये, इसका बुद्धिपूर्वक विचार करके नारदजी गन्धर्वनगरमें गये॥ १॥

तुम्बुरुं नाम गन्धर्वं कृत्वा शिष्यं स नारदः।
कलं जगौ मद्गुणांश्च वीणावाद्यपरायणः॥ २

वहाँ तुम्बुरु नामक गन्धर्वको अपना शिष्य बनाकर नारदजी मधुरस्वरसे वीणा बजाते हुए मेरे गुणोंका गान करने लगे॥ २॥

केषामग्रे गेयमिदं रागरूपं मनोहरम्।
श्रोतुं पात्रं विचिन्वन् स नारदः शक्रमाययौ॥ ३

अनिर्वृतं च तं दृष्ट्वा नारदो मुनिसत्तमः।
सख्या तुम्बुरुणा सार्धं सूर्यलोकं जगाम ह॥ ४

रथेन तं प्रधावन्तं सूर्यं वीक्ष्य महामुनिः।
शिवपार्श्वं जगामाशु ततो देवर्षिसत्तमः॥ ५

भूतेशं ज्ञानतत्त्वज्ञं ध्यानस्तिमितलोचनम्।
वीक्ष्य तं नारदो राधे ब्रह्मलोकं जगाम ह॥ ६

सृजन्तं सृष्टिरचनां व्यग्रं वीक्ष्य विधिं मुनिः।
वैकुण्ठं प्रययौ विष्णोः सर्वलोकनमस्कृतम्॥ ७

भक्तार्थं कुत्र गच्छन्तं भक्तेशं भक्तवत्सलम्।
वीक्ष्य तुम्बुरुणा सार्धं योगीन्द्रः प्रययौ ततः॥ ८

योगीश्वराणां हि सतां त्रिलोक्यामन्तरं बहिः।
गतिमाहुर्नाप्नुवन्ति कर्मभिर्वृषभानुजे॥ ९

कोटिशो ह्यण्डनिचयान् समुल्लङ्घ्य मुनीश्वरः।
गोलोकं परमं धाम प्रययौ प्रकृतेः परम्॥ १०

समुत्तीर्याशु विरजां नदीं कल्लोलशालिनीम्।
ययौ वृन्दावनं रम्यं भ्रमरध्वनिसङ्कुलम्॥ ११

सदा वसन्तर्तुयुतं मरुतैजल्लतागृहम्।
दृष्ट्वा गोवर्धनं शैलं मन्निकुञ्जं समाययौ॥ १२

कौ युवां कुत आयातौ किं कार्यं वदतं च नः।
इत्थं सखीभिः सम्पृष्टावूचतुर्मुनितुम्बुरू॥ १३

गायकौ कुशलौ रामा आवां वीणाकलध्वनिम्।
परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं राधिकापतिम्॥ १४

कलं परं श्रावयितुमागतौ वन्दिनां वरौ।
कथनीयमिदं वाक्यं श्रीकृष्णाय महात्मने॥ १५

तदनन्तर उनके हृदयमें यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि 'किन लोगोंके सामने इस मनोहर रागरूप गीतका गान करना चाहिये? इसको सुननेका पात्र कौन है?' इसकी खोज करते हुए नारद इन्द्रके पास आये। उनको इस विषयका आनन्द लेते न देख मुनिश्रेष्ठ नारद सखा तुम्बुरुके साथ राग-रागिनियोंका निरूपण करनेके लिये सूर्यलोकमें गये। वहाँ सूर्यदेवको रथके द्वारा भागे जाते देख देवर्षि-शिरोमणि महामुनि नारद वहाँसे तत्काल शिवजीके पास चले गये॥ ३—५॥

राधे! ज्ञानतत्त्वज्ञ भूतनाथ शिवके नेत्र ध्यानमें निश्चल हैं, यह देख नारदजी ब्रह्मलोकमें गये। सृष्टिकर्ता ब्रह्माको सृष्टि-रचनामें व्यग्र देख, वे वहाँ भी न ठहर सके; उस स्थानसे विष्णुके सर्वलोकवन्दित वैकुण्ठधाममें चले गये। भक्तोंके स्वामी भक्तवत्सल भगवान् विष्णुको किसी भक्तपर कृपा करनेके लिये कहीं जाते देख योगीन्द्र नारद तुम्बुरुके साथ अन्यत्र चल दिये॥ ६—८॥

वृषभानुनन्दिनि! योगीश्वर संतोंकी गति त्रिलोकीके भीतर और बाहर भी बतायी गयी है। जो केवल कर्मी हैं, उन्हें वैसी गति नहीं प्राप्त होती। मुनीश्वर नारद करोड़ों ब्रह्माण्ड-समूहोंको लाँघकर प्रकृतिसे परे गोलोकधाममें जा पहुँचे। उत्ताल तरंगोंसे सुशोभित विरजा नदीको पार करके वे शीघ्र ही भ्रमरोंकी ध्वनिसे निनादित रमणीय वृन्दावनमें गये॥ ९—११॥

जो सदा वसन्त ऋतुसे युक्त है और जहाँके लताभवन मन्द मारुतके झोंकेसे कम्पायमान रहते हैं। वृन्दावनसे गोवर्धनपर्वतका दर्शन करते हुए नारदजी मेरे निकुञ्जमें आये। निकुञ्जद्वारपर सखियोंने पूछा—'आप दोनों कौन हैं? कहाँसे आये हैं और यहाँ क्या कार्य है?' ऐसा प्रश्न होनेपर मुनि और तुम्बुरु दोनों बोले—'सुन्दरियो! हम दोनों गान-विद्यामें कुशल गायक हैं और अपनी वीणाकी मधुर ध्वनि साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् राधावल्लभ श्रीकृष्णको सुनानेके लिये आये हैं। हम दोनों वन्दीजनोंमें उत्तम हैं। हमारी यह बात महात्मा श्रीकृष्णसे निवेदित कर देनी चाहिये'॥ १२—१५॥

श्रुत्वा सख्यस्तथा मह्यं निवेद्याथ मदाज्ञया।
आगत्याज्ञां ददुर्यातुं वन्दिभ्यां श्लक्ष्णया गिरा॥ १६

मन्निकुञ्जाङ्गणे भ्राजत्कोट्यर्कज्योतिराकुले।
खचित्कौस्तुभरत्नाढ्ये प्रचलच्चारुचामरे॥ १७

लोलमुक्ताफलच्छत्रे सखीकोटिसमन्विते।
महापद्मस्थितं साक्षात्त्वया मां तावपश्यताम्॥ १८

नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य तत्र स्थित्वा मदाज्ञया।
स्तुत्वा मां मद्गुणान् वक्तुं तेनासावुपचक्रमे॥ १९

आतोद्यं विनुदन् वीणां देवदत्तां स्वरामृतम्।
कलं जगावद्वितीयं नारदः सहतुम्बुरुः॥ २०

सन्तुष्टोऽहं शिरो धुन्वंस्तेन श्लाघ्यं च तत्स्वरम्।
दत्वात्मानं प्रेमपरो जलत्वं गतवानहम्॥ २१

यज्जलं मद्वपुर्जातं तद्वै ब्रह्मद्रवं विदुः।
कोटिशः कोटिशोऽण्डानां राशयः संलुठन्ति हि॥ २२

इन्द्रायणफलानीवानन्ते तस्मिञ्जले शुभे।
पृश्निगर्भमिदं राधे ब्रह्माण्डं मत्पदं स्फुटम्॥ २३

भित्त्वा तच्चागतं साक्षादस्मिन् मन्वन्तरे शुभे।
तत्स्वर्धुनीं विदुः पूर्वे श्रीगङ्गां पापहारिणीम्॥ २४

दिवि मन्दाकिनी प्रोक्ता गङ्गा भागीरथी क्षितौ।
अधो भोगवती प्रोक्ता त्रिधा त्रिपथगामिनी॥ २५

यत्स्नातुं गच्छतः पुंसः प्रणतस्य पदे पदे।
राजसूयाश्वमेधानां फलमस्ति न दुर्लभम्॥ २६

यह सुनकर सखियोंने उनका संदेश मेरे पास पहुँचाया और मेरी आज्ञासे लौटकर मधुरवाणीमें उन वन्दियोंको भीतर चलनेका आदेश दिया। करोड़ों सूर्योंकी ज्योतिसे व्याप्त मेरे निकुञ्जके आँगनमें, जहाँ सब ओर कौस्तुभमणि जड़ी थी, मनोहर चँवर डुलाये जा रहे थे, हिलते हुए मोतियोंकी झालरोंसे युक्त छत्र तने थे और करोड़ों सखियाँ विराजमान थीं, आकर महापद्ममय आसनपर तुम्हारे साथ बैठे हुए मुझ श्रीकृष्णका उन दोनोंने दर्शन किया॥ १६—१८॥

फिर प्रणाम और परिक्रमा करके वे मेरी आज्ञासे वहाँ बैठे और मेरी स्तुति करके मेरे गुणोंका गान करनेके लिये उद्यत हुए। आतोद्य (वाद्यविशेष)-को दबाते और देवप्रदत्त स्वरामृतमय वीणाको झंकृत करते हुए तुम्बुरुसहित नारदने वीणावादनकी अद्वितीय कलाको प्रस्तुत किया॥ १९-२०॥

मैं उससे बहुत संतुष्ट हुआ और सिर हिलाता हुआ उस वीणाकी प्रशंसनीय स्वर-लहरीकी सराहना करने लगा। अन्ततोगत्वा प्रेमके वशीभूत हो अपने-आपको देकर मैं जलरूप हो गया। मेरे दिव्य शरीरसे जो जल प्रकट हुआ, उसे 'ब्रह्मद्रव' के नामसे लोग जानते हैं। उसके भीतर कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-राशियाँ लुढ़कती रहती हैं। उस उन्नत एवं शुभ जलराशिमें लुढ़कते हुए वे ब्रह्माण्ड इन्द्रायणके फलके समान प्रतीत होते हैं॥ २१—२२ १/२॥

राधे! यह ब्रह्माण्ड 'पृश्निगर्भ' नामसे प्रसिद्ध है, जो मेरे त्रिविक्रमरूपके पदाघातसे फूट गया था। उसका भेदन करके जो साक्षात् ब्रह्मद्रवका जल यहाँ आया, उसे इस शुभ मन्वन्तरमें पूर्ववर्ती लोगोंने पापहारिणी स्वर्धुनी 'गङ्गा' के नामसे जाना था। उस गङ्गाको द्युलोकमें 'मन्दाकिनी', पृथ्वीपर 'भागीरथी' और अधोलोक—पातालमें 'भोगवती' कहा गया है। इस प्रकार एक ही गङ्गा त्रिपथगामिनी होकर तीन नामोंसे विख्यात हुई॥ २३—२५॥

इसमें स्नान करनेके लिये प्रणतभावसे जाते हुए मनुष्यके लिये पग-पगपर राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल दुर्लभ नहीं रह जाता॥ २६॥

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ २७

दृष्ट्वा जन्मशतं पापं पीत्वा जन्मशतद्वयम्।
स्नात्वा जन्मसहस्रेण हन्ति गङ्गा कलौ युगे॥ २८

सफलं जन्म वै तेषां ये पश्यन्ति हि जाह्नवीम्।
वृथा जन्म गतं तेषां ये न पश्यन्ति जाह्नवीम्॥ २९

यथा हि द्रवतां प्राप्ता विरजा त्वद्भयाद्यथा।
प्रापुर्द्रवत्वं रम्भोरु विरजायाः सुता यथा॥ ३०

यथा कृष्णा नदी विष्णुर्वेणी देवः शिवो यथा।
ब्रह्मा ककुद्मिनी गङ्गा गण्डकी च यथाप्सरः॥ ३१

तथा द्रवत्वं सम्प्राप्त ऋभुर्नामाप्ययं मुनिः।
प्रेमलक्षणया भक्त्या ऋभोर्वा नात्र संशयः॥ ३२

यः शृणोति कथामेतां पवित्रां पापहारिणीम्।
उल्लङ्घ्य सर्वलोकांश्च मल्लोकं याति मानवः॥ ३३

जो सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गङ्गा-गङ्गा' का उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता और विष्णुलोकमें जाता है। कलियुगमें गङ्गाजी दर्शन करनेसे सौ जन्मोंका, जल पीनेसे दो सौ जन्मोंका और स्नान करनेसे एक सहस्र जन्मोंका पाप नष्ट कर देती हैं। जो जाह्नवी गङ्गाका दर्शन करते हैं, उनका जन्म सफल है। जो उनके दर्शनसे वञ्चित रह जाते हैं, उनका जन्म व्यर्थ चला गया॥ २७—२९॥

रम्भोरु राधे! जैसे विरजा तुम्हारे भयसे द्रवरूपताको प्राप्त हो गयी, जैसे विरजाके सातों पुत्र सात समुद्रोंके रूपमें द्रवभावको प्राप्त हो गये, जैसे विष्णु 'कृष्णा' नदी हुए, जैसे शिवदेव 'वेणी' नदी हुए, जैसे ब्रह्मा 'ककुद्मिनी गङ्गा' हुए और जैसे अप्सरा 'गण्डकी' नदी हो गयी, उसी प्रकार ये ऋभु नामक मुनि भी ब्रह्मभावको प्राप्त हुए हैं। यह ऋभुको प्रेमलक्षणा-भक्तिसे सम्भव हुआ है, इसमें संशय नहीं है। जो इस पापहारिणी पवित्र कथाका श्रवण करता है, वह मनुष्य सब लोकोंको लाँघकर मेरे गोलोकधाममें चला जाता है॥ ३०—३३॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा प्रियां राधामृभोराश्रमतो हरिः।
राधया सहितो राजन्नाययौ मालतीवनम्॥ ३४

गोपीनां विरहं ज्ञात्वा भगवान् भक्तवत्सलः।
राधया प्रययौ कृष्णः पुलिनं मङ्गलायनम्॥ ३५

तदा गोपीगणाः सर्वे गतमाना गतव्यथाः।
जगृहुस्तं घनश्यामं सौदामिन्यो घनं यथा॥ ३६

वृन्दावने हरिः साक्षात्कृष्णातीरे मनोहरे।
जगौ कलं गोपिकाभिर्वंशीवादनतत्परः॥ ३७

भगवत्कलरागेण मूर्च्छिता गोपकन्यकाः।
नद्यो वेगत्वरहिता अचरत्वं हि पक्षिणः॥ ३८

मौनत्वं देवताः सर्वाः स्तम्भत्वं देवनायकाः।
सजलत्वं च तरवो निद्रात्वं प्रगतं जगत्॥ ३९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अपनी प्रिया श्रीराधासे कहकर श्रीहरि ऋभुके आश्रमसे श्रीराधाके साथ ही मालती-वनमें चले आये। फिर गोपियोंकी विरह-व्यथाको जान भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ यमुनाके मङ्गलमय पुलिनपर चले आये। उस समय समस्त गोपीगणोंका मान और व्यथा-भार दूर हो गया। उन्होंने, जैसे चपलाएँ मेघका आलिङ्गन करती हैं, उसी प्रकार घनश्यामको अपनी भुजाओंमें भर लिया॥ ३४—३६॥

तब श्रीहरि वृन्दावनमें यमुनाके मनोहर तटपर गोपाङ्गनाओंके साथ मधुरस्वरमें वंशी बजाने लगे। भगवान्‌के उस मधुर रागसे गोपकन्याएँ मूर्च्छित हो गयीं, नदियोंका वेग रुक गया, पक्षी अचल हो गये। समस्त देवताओंने मौन धारण कर लिया, देवनायक स्तब्ध हो गये, वृक्षोंसे जल बहने लगा तथा सारा जगत् मानो निद्रामें निमग्न हो गया॥ ३७—३९॥

कृत्वा रासं राधिकाया गोपीनां च मनोरथम्।
ब्राह्मे मुहूर्ते भगवानाययौ नन्दमन्दिरम्॥ ४०

राधिका गोपिकाभिश्च प्राप्तानन्दमनोरथा।
वृषभानुवरस्यापि सुन्दरं मन्दिरं ययौ॥ ४१

रात्रिकालमें रास रचाकर श्रीराधिका और गोपियोंके मनोरथ पूर्ण करके ब्राह्ममुहूर्तमें भगवान् श्रीकृष्ण नन्दभवनको लौट आये। गोपिकाओंके साथ श्रीराधिका भी अपना आनन्दमय मनोरथ प्राप्त करके वृषभानुवरके सुन्दर मन्दिरमें चली गयीं॥ ४०-४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नारदोपाख्यानं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नारदोपाख्यान' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका व्रजसे लौटकर मथुरामें आगमन

श्रीनारद उवाच

श्रीकृष्णो भगवान् साक्षाद् व्रजे कति दिनानि च।
स्थित्वा स्वदर्शनं दत्वा मथुरां गन्तुमुद्यतः॥ १

नन्दान्नवोपनन्दांश्च वृषभानून् व्रजेषु षट्।
वृषभानुवरं चैव नन्दराजं व्रजेश्वरम्॥ २

कलावतीं यशोदां च गोपीर्गोपान् गवां गणान्।
मिलित्वाश्वास्य ज्ञानं च दत्वानुज्ञाप्य माधवः॥ ३

रथमारुह्य दिव्याभं चञ्चलाश्वनियोजितम्।
मथुरां गन्तुकामोऽसौ निर्गतो नन्दगोकुलात्॥ ४

दूरं तमनुगाः सर्वे मोहिता व्रजवासिनः।
न सेहिरे कष्टतरं विरहं माधवस्य हि॥ ५

युगपद्दर्शनं विष्णोर्दुःसहं भूमिमण्डले।
येषां नित्यं हि भवति तेषां तु किमु वर्णनम्॥ ६

वीक्षन्तः श्रीधरमुखं नेत्रैरनिमिषैर्नृप।
सर्वे वै स्नेहसम्बन्धात्तमूचुः प्रेमविह्वलाः॥ ७

गोपा ऊचुः

शीघ्रमागच्छ हे कृष्ण सर्वान्नो व्रजवासिनः।
पाहि सन्दर्शनं देहि देवेभ्यो ह्यमृतं यथा॥ ८

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें कई दिनोंतक रहकर सबको अपना दर्शन दे मथुरा जानेको उद्यत हुए। नौ नन्दों, नौ उपनन्दों, छः वृषभानुओं तथा वृषभानुवर और व्रजेश्वर नन्दराजसे मिलकर कलावती, यशोदा, अन्यान्य गोपियों तथा गौओंके गणोंसे भी भेंट करके, आश्वासन और ज्ञान दे, सबसे विदा लेकर माधव चञ्चल अश्वोंसे जुते हुए अपने दिव्य रथपर आरूढ़ हो मथुरा जानेकी इच्छासे नन्दगाँवसे बाहर निकले। उनके पीछे-पीछे समस्त मोहित व्रजवासी बहुत दूरतक गये। वे माधवके अत्यन्त कष्टमय विरहको नहीं सह सके॥ १—५॥

जिन्हें भूमण्डलपर कभी एकबार भी श्रीविष्णुका दर्शन हुआ हो, उन्हें भी उनका विरह दुस्सह हो जाता है; फिर जिन्हें प्रतिदिन उनका दर्शन होता रहा हो, उनको उनके विरहसे कितना दुःख होता होगा, इसका वर्णन कैसे किया जा सकता है? नरेश्वर! अपलक नेत्रोंसे श्रीधरके मुँहकी ओर देखते हुए समस्त व्रजवासी गोप स्नेह-सम्बन्धके कारण प्रेमविह्वल हो उनसे बोले—॥ ६-७॥

गोपोंने कहा—श्रीकृष्ण! तुम फिर जल्दी आना और हम समस्त व्रजवासियोंकी रक्षा करना। जैसे पूर्वकालमें तुमने देवताओंको अमृत प्रदान किया था, उसी प्रकार अब हमें अपने दर्शनकी सुधाका पान कराते रहना॥ ८॥

त्वमेव सर्वदा देव यशोदानन्ददायकः।
श्रीनन्दनन्दनस्त्वं वै जीवनं व्रजवासिनाम्॥ ९

देव! केवल तुम्हीं सदा यशोदाके आनन्ददायक हो, तुम्हीं श्रीनन्दराजको आनन्द प्रदान करनेवाले हो और तुम्हीं व्रजवासियोंके जीवन हो॥ ९॥

व्रजे धनं कुले दीपो मोहनो महतामपि।
यथा निदाघदग्धस्य प्राप्तं वै शीतलं जलम्॥ १०

शीतार्तस्य यथा वह्निर्ज्वरार्तस्य यथौषधम्।
मृतस्य मानवस्यापि पीयूषं मङ्गलं यथा॥ ११

तथा व्रजस्य सर्वस्य जीवनं तव दर्शनम्।
तस्मादत्र स्थितिं कुर्या बहुना कथितेन किम्॥ १२

प्रभो! तुम्हीं इस व्रजके धन हो, गोपकुलके दीपक हो और महापुरुषोंके भी मनको मोहनेवाले हो। जैसे निदाघसे जले हुए प्राणीको शीतल जल प्राप्त हो जाय, सर्दीसे पीड़ित मनुष्यको जैसे आग मिल जाय, ज्वरसे आर्त पुरुषको उपयुक्त औषध प्राप्त हो जाय और मरे हुए मानवको भी जैसे मङ्गलमय अमृत मिल जाय, तो वे जी उठते हैं, उसी प्रकार समस्त व्रजके लिये तुम्हारा दर्शन ही जीवन है; इसलिये तुम यहीं निवास करो। इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ?॥ १०—१२॥

यन्नोऽस्ति किञ्चित्सुकृतमस्मिन् वा पूर्वजन्मनि।
तत्फलेन सदा चेतो भूयात्त्वत्पादपङ्कजे॥ १३

येषां चेतस्त्वत्पदाब्जे ते भक्तास्त्वत्प्रियाः सदा।
भक्तार्थं सगुणोऽसि त्वं निर्गुणः प्रकृतेः परः॥ १४

तव भक्तात् प्रियो नास्ति शिवो ब्रह्मा न चेन्दिरा।
विसृज्य पारमेष्ठ्यादि निष्कामास्त्वां भजन्ति ये।
नैरपेक्ष्यं सुखं शान्तं ते विदुर्युक्तचेतसः॥ १५

हमारे इस जन्म अथवा पूर्वजन्ममें जो कुछ भी पुण्य हुआ हो, उसके फलस्वरूप हमारा चित्त सदा तुम्हारे चरणारविन्दोंमें लगा रहे। जिनका चित्त तुम्हारे चरणकमलमें लगा हुआ है, वे भक्तजन तुम्हें सदा ही प्रिय हैं। तुम प्रकृतिसे परे निर्गुण हो, तथापि अपने भक्तोंके लिये सगुण हो जाते हो। तुम्हें अपने भक्तसे अधिक प्रिय शिव, ब्रह्मा और लक्ष्मी भी नहीं हैं। जो ब्रह्मपद आदिकी अभिलाषाको छोड़कर तुझ भगवान्‌का निष्कामभावसे भजन करते हैं, वे युक्तचित्त पुरुष ही शान्त एवं निरपेक्ष सुखका अनुभव करते हैं॥ १३—१५॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वाथ ते सर्वे रुरुदुः प्रेमविह्वलाः।
आनन्दाश्रूणि मुञ्चन्तः श्रीकृष्णस्य प्रपश्यतः॥ १६

अश्रुपूर्णमुखः कृष्णो भगवान् भक्तवत्सलः।
गोपानाह प्रसन्नात्मा नतान् विरहविह्वलान्॥ १७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर वे सब गोप प्रेमसे विह्वल हो श्रीकृष्णके देखते-देखते आनन्दके आँसू बहाते हुए रोने लगे। भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णके मुखपर भी अश्रुकी धारा बह चली। वे प्रसन्नचेता परमेश्वर उन विरह-विह्वल गोपोंसे बोले—॥ १६-१७॥

श्रीभगवानुवाच

मत्प्राणा मत्प्रिया यूयं सर्वे वै व्रजवासिनः।
हृदयं मेऽस्ति युष्मासु देहोऽन्यत्र विलक्ष्यते॥ १८

मासं प्रत्यागमिष्यामि युष्मान्द्रष्टुं वचो मम।
मनसा न हि दूरेऽस्मि मनः सर्वस्य कारणम्॥ १९

श्रीभगवान्‌ने कहा—व्रजवासियो! तुम सब मेरे प्राण हो और मेरे परम प्रिय हो। मेरा हृदय तुमलोगोंमें ही स्थित है, केवल शरीर अन्यत्र दिखायी देता है। मैं प्रतिमास तुम सबको देखने और दर्शन देनेके लिये आऊँगा, यह वचन देता हूँ। मनसे मैं दूर नहीं हूँ, मन ही सबका कारण है॥ १८-१९॥

हे गोपा यदुभिर्योद्धुमागतो हि जरासुतः।
यदूनां तु सहायार्थं यामि माभूच्छुचश्च वः॥ २०

हे गोपगण! यादवोंसे युद्ध करनेके लिये जरासंध आया है, अतः यदुवंशियोंकी सहायताके लिये मैं जाता हूँ, तुम्हें शोक नहीं होना चाहिये॥ २०॥

श्रीनारद उवाच

एवमाश्वास्य तान् देवः सन्निवृत्य पुनः पुनः।
रथे द्वितीये संस्थाप्य नन्दराजं यशोदया॥ २१

श्रीदामादीन् सखीन्नीत्वा भगवान् रथमास्थितः।
सोद्धवो मथुरां प्रागात्सर्वकारणकारणः॥ २२

यावद्रथश्चाश्वशतं सुवेगं
केतुस्त्रिवर्णः प्रचलत्पताकः।
आलक्ष्यते वीर रजश्च तावत्
स्थित्वान्य आजग्मुरतः सकाशम्॥ २३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उन गोपोंको बार-बार आश्वासन दे, फिर लौटकर यशोदासहित नन्दराजको दूसरे रथपर बिठाया और श्रीदामा आदि सखाओंको साथ ले, उद्धवसहित रथपर आरूढ़ हो, वे सर्वकारण-कारण भगवान् मथुराको गये। वीर! जबतक रथ, उसमें जुते हुए सौ वेगशाली घोड़े और फहराती पताकासे युक्त तिरंगा ध्वज तथा उड़ती हुई धूल दिखायी देती रही, तबतक अन्य व्रजवासी वहीं खड़े रहे। फिर वे अपने घरको लौट आये॥ २१—२३॥

श्रीकृष्णचन्द्रस्य परं चरित्रं
नृणां महापापहरं विचित्रम्।
शृणोति यो भक्तवरः पृथिव्यां
गोलोकलोकं स च याति सम्यक्॥ २४

श्रीकृष्णचन्द्रका यह परम उत्तम विचित्र चरित्र मनुष्योंके महान् पापोंको हर लेनेवाला है। जो भक्तप्रवर पृथ्वीपर इस चरित्रको सुनता है, वह उत्तमोत्तम गोलोकधाममें जाता है॥ २४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे व्रजयात्रायां श्रीकृष्णागमनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥
॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें व्रजयात्राके प्रसङ्गमें 'श्रीकृष्णका आगमन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

बलदेवजीके द्वारा कोल दैत्यका वध; उनकी गङ्गातटवर्ती तीर्थोंमें यात्रा; माण्डूकदेवको वरदान और भावी वृत्तान्तकी सूचना देना; फिर गङ्गाके अन्यान्य तीर्थोंमें स्नान-दान करके मथुरामें लौट जाना

बहुलाश्व उवाच

गोपीनां चैव गोपानां दत्वा सन्दर्शनं परम्।
मथुरायां किं चकार श्रीकृष्णो राम एव च॥ १

चरित्रं परमं मिष्टं श्रीकृष्णबलदेवयोः।
सर्वपापहरं पुण्यं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥ २

बहुलाश्वने पूछा—मुने! गोपाङ्गनाओं और गोपोंको उत्तम दर्शन देकर मथुरामें लौटनेके पश्चात् श्रीकृष्ण तथा बलरामने क्या किया? श्रीकृष्ण और बलदेवका चरित्र बड़ा मधुर है। यह समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद तथा चतुर्वर्गरूप फल प्रदान करनेवाला है॥ १-२॥

श्रीनारद उवाच

अन्यच्चरित्रं शृणुताच्छ्रीकृष्णबलदेवयोः।
सर्वपापहरं पुण्यं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥ ३

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! अब श्रीकृष्ण और बलदेवजीका दूसरा चरित्र सुनो, जो सर्वपापहारी, पुण्यदायक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला है॥ ३॥

कोलेन पीडिता लोकाः कौशारविपुरान्नृप।
मथुरामाययुः सर्वे सद्विजा दीनमानसाः॥ ४

अश्वमाशु समारुह्य रोहिणीनन्दनो बलः।
स्वल्पैः पुरःसरैः सार्धं मृगयार्थी विनिर्गतः॥ ५

तं नत्वाभ्यर्च्य विधिवत्तदंघ्र्योः पतिताः पथि।
कृताञ्जलिपुटा ऊचुर्हर्षगद्गदया गिरा॥ ६

प्रजा ऊचुः

राम राम महाबाहो देवदेव महाबल।
कोलेन पीडिताः सर्व आगताः शरणं वयम्॥ ७

दैत्यः कंससखः कोलो जित्वा कौशारविं नृपम्।
कौशारवेः पुरे राज्यं करोति स महाबलः॥ ८

कौशारविस्तद्भयाद्धि गङ्गातीरं गतो नृपः।
राज्यार्थं त्वत्पदाम्भोजं भजते सुजितेन्द्रियः॥ ९

तत्सहायं कुरु विभो वयं यस्य प्रजाः शुभाः।
पुत्रवत्पालितास्तेन महासौख्यसमन्विताः॥ १०

कोलेनाद्यैव दुष्टेन पीडिताः सततं प्रभो।
त्रैलोक्यविजयी वीरः कंसोऽपि निहतस्त्वया॥ ११

कोले जीवति देवेन्द्र कंसोऽपि न मृतः स्मृतः।
रक्षार्थं सगुणोऽसि त्वं भक्तानां प्रकृतेः परः॥ १२

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां श्रीरामो भक्तवत्सलः।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कौशाम्बीं नगरीं ययौ॥ १३

योद्धुं समागतं रामं श्रुत्वा कोलोऽपि निर्गतः।
अक्षौहिणीभिर्दशभिर्मण्डितश्चण्डविक्रमः॥ १४

चञ्चलाश्वतरङ्गाढ्यां रथेभाश्वतिमिङ्गिलाम्।
नदीमिवागतां सेनां प्रलयार्णवनादिनीम्॥ १५

नरेश्वर! कोल नामक दैत्यसे पीड़ित हुए बहुत-से लोग दीनचित्त हो ब्राह्मणोंके साथ कौशारविपुरसे मथुरामें आये। उस समय रोहिणीनन्दन बलराम शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ़ हो थोड़े-से अग्रगामी लोगोंके साथ शिकार खेलनेके लिये मथुरासे निकले थे। मार्गमें ही उन्हें प्रणाम करके उनकी विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् सब लोग उनके चरणोंमें प्रणत हो गये और हाथ जोड़ हर्ष-गद्गद वाणीमें बोले— ॥ ४—६ ॥

प्रजाजनोंने कहा—राम! महाबाहु राम! महाबली देवदेव! हम सब लोग कोल नामक दैत्यसे पीड़ित हो आपकी शरणमें आये हैं। कोल दैत्य कंसका सखा है। वह महाबली दैत्य राजा कौशारविको जीतकर उन्हींके नगरमें राज्य करता है। राजा कौशारवि उसके भयसे गङ्गातटपर चले गये हैं और वहाँ पुनः अपने राज्यकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त जितेन्द्रिय हो आपके चरण-कमलोंका भजन कर रहे हैं॥ ७—९ ॥

विभो! आप उनकी सहायता कीजिये। हम उन्हींकी शुभ प्रजा हैं, जिनका उन्होंने पुत्रकी भाँति पालन किया है। उनके संरक्षणमें हमलोग बड़े सुखी थे। प्रभो! अब दुष्ट कोल हमें निरन्तर पीड़ा दे रहा है। यद्यपि आपने त्रिभुवनविजयी वीर कंसको मार डाला है, तथापि देवेन्द्र! जबतक कोल जीवित है, तबतक कंसको भी मरा हुआ नहीं मानना चाहिये। आप प्रकृतिसे परे होकर भी भक्तोंकी रक्षाके लिये ही सगुणरूपसे अवतीर्ण हुए हैं॥ १०—१२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उनका वचन सुनकर भक्तवत्सल श्रीबलराम गङ्गा-यमुनाके बीचमें बसी हुई कौशाम्बी नगरीको गये। बलरामजीको युद्धके लिये आया हुआ सुनकर प्रचण्ड-पराक्रमी कोल भी दस अक्षौहिणी सेनासे सुसज्जित हो कौशाम्बीसे बाहर निकला। प्रलय-कालके समुद्रकी भाँति गर्जना करनेवाली वह सेना एक नदीके समान आयी। चञ्चल घोड़े उसकी उठती हुई तरङ्गमाला थे। रथ और हाथी आदि उसमें तिमिङ्गिल (मगर-मत्स्य)-के समान प्रतीत होते थे॥ १३—१५ ॥

वीरावर्तां च तां वीक्ष्य बद्ध्वा सेतुं हलं बलः।
आकृष्य तां तदग्रेण मुसलेनाहनद् दृढम्॥ १६

युगपत्तत्प्रहारेण वीरा अश्वा रथा गजाः।
सर्वतः कोटिशः पेतुः पेषिताः फलवद्रणे॥ १७

शेषाः प्रदुद्रुवुर्वीरा भयार्ता रणमण्डलात्।
एकाकी युयुधे दैत्यः कोलो रामेण शस्त्रभृत्॥ १८

गोमूत्रचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखम्।
सुवर्णशृङ्खलायुक्तं प्रखचित्कटिबन्धनम्॥ १९

स्रवन्मदं चतुर्दन्तं घण्टाटङ्कारभीषणम्।
प्रोन्नतं दिग्गजमिव नदत्कालघनप्रभम्॥ २०

शितमङ्कुशमादाय कोल आरुह्य कर्णतः।
स्वगजं नोदयामास बलदेवाय दैत्यराट्॥ २१

आगतं वीक्ष्य तं नागं मत्तं कोलेन नोदितम्।
तताड मुसलेनासौ वज्रेणेन्द्रो यथा गिरिम्॥ २२

मुसलस्य प्रहारेण विशीर्णोऽभून्महागजः।
मृद्घटो नैकधैवाशु दण्डघातेन मैथिल॥ २३

कोलः क्रोडमुखो दैत्यो रक्ताक्षः पतितो गजात्।
शूलं चिक्षेप निशितं माधवाय महात्मने॥ २४

मुसलेन तदा रामस्तच्छूलं शतधाच्छिनत्।
काचपात्रं यथा बालो दण्डेन च विदेहराट्॥ २५

सहस्रभारसंयुक्तां गदां गुर्वीं प्रगृह्य च।
बलं तताड हृदये जगर्ज घनवत्खलः॥ २६

वीर योद्धारूपी भँवर उठ रहे थे। उसे देखकर बलरामजीने हलका सेतु बाँध दिया और हलाग्रभागसे उस सेनाको खींच-खींचकर मुसलके सुदृढ़ प्रहारसे मारना आरम्भ किया। उनके प्रहारसे एक साथ ही पैदल वीर, घोड़े, रथ और हाथी रणभूमिमें फलोंकी भाँति पिस उठे और करोड़ोंकी संख्यामें सब ओर धराशायी हो गये। शेष योद्धा भयसे पीड़ित हो युद्ध-मण्डलसे भाग निकले। शस्त्रधारी दैत्य कोल बलरामजीके साथ अकेला ही युद्ध करने लगा॥ १६—१८॥

उस दैत्यराजने बलदेवजीकी ओर अपना हाथी बढ़ाया। उस हाथीके कुम्भस्थलपर गोमूत्रमें घोले हुए सिन्दूर और कस्तूरीके द्वारा पत्र-रचना की गयी थी। सोनेकी साँकलसे युक्त कटिबन्ध रत्नखचित था। उसके गण्डस्थलसे मद झर रहा था। उसके चार दाँत थे। घंटेकी ध्वनिसे वह और भीषण प्रतीत होता था। उसका कद ऊँचा था और वह दिग्गजके समान चिग्घाड़ता था। उसके शरीरका रंग प्रलयकालके मेघके समान काला था॥ १९-२०॥

कोल तीखा अङ्कुश लेकर उसके कानकी ओरसे उस हाथीपर चढ़ गया था। कोलके द्वारा प्रेरित उस मतवाले हाथीको अपनी ओर आता देख बलदेवजीने उसके ऊपर मुसलसे उसी प्रकार प्रहार किया, जैसे इन्द्रने वज्रसे किसी पर्वतपर आघात किया हो। मिथिलेश्वर! मुसलकी मारसे उस महान् गजराजका मस्तक उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया, जैसे डंडेकी मारसे कोई मिट्टीका घड़ा टूक-टूक हो गया हो॥ २१—२३॥

कोलका मुँह सूअरके समान था। लाल नेत्रोंवाला वह दैत्य हाथीसे गिर पड़ा। उसने महात्मा माधव—बलदेवके ऊपर तीखा शूल चलाया। विदेहराज! तब बलरामने मुसलसे मारकर उसके शूलके उसी प्रकार सैकड़ों टुकड़े कर दिये, जैसे किसी बालकने लाठीके प्रहारसे काँचके बर्तन तोड़ डाले हों। तब उस दुष्टने सहस्र भार (लगभग ३००० मन) लोहेकी बनी हुई एक भारी गदा हाथमें लेकर बलरामजीकी छातीपर चोट की और वह मेघके समान गरज उठा॥ २४—२६॥

तद्गदायाः प्रहारेण न चचाल यदूद्वहः।
पश्यतां सर्वलोकानां स्रजा हत इव द्विपः॥ २७

तमाकृष्य हलाग्रेण कोलं कज्जलवत्तनुम्।
मुसलेनाहनन्मूर्ध्नि बलदेवो महाबलः॥ २८

मुसलाहतमूर्धापि पतितो रणमण्डले।
मुष्टिघातं घातयित्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ २९

चकार मायां मायावी दैतेयीमतिभीषणाम्।
प्रलयप्रभवैर्मेघैर्महावातप्रणोदितैः।
अन्धकारं प्रकुर्वद्भिरभूदाच्छादितं नभः॥ ३०

जपापुष्पसमान् बिन्दूनजस्रं रुधिरस्य च।
मोचयित्वाथ बीभत्सवर्षाश्चक्रुर्घनाघनाः॥ ३१

पूयमेदोऽतिविण्मूत्रसुरामांससमन्विताः।
दृष्ट्वा ताभिश्च वर्षाभिर्हाहाकारो बभूव ह॥ ३२

ज्ञात्वाथ तत्कृतां मायां बलदेवो महाप्रभुः।
चिक्षेप मुसलं दीर्घं परसैन्यविदारणम्॥ ३३

सर्वास्त्रघातकं स्वच्छमष्टधातुमयं दृढम्।
शतयोजनविस्तीर्णं प्रलयाग्निसमप्रभम्॥ ३४

बलास्त्रं मुसलं रेजे भ्रमद्दशदिगन्तरे।
विदारयद्घनान् व्योम्नि नीहारं च यथा रविः॥ ३५

तद्व्योम्नि प्रगतं दृष्ट्वा हलास्त्रं च स्वतः प्रभुः।
समुत्पत्याकृष्य बलान् मध्ये तान् विददार ह॥ ३६

नाशं गतायां मायायां बलदेवो महाबलः।
गृहीत्वा भुजदण्डाभ्यां भुजदण्डे मदोत्कटे॥ ३७

भ्रामयन् बाल इव तं प्रतूलं स इतस्ततः।
पातयामास भूपृष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः॥ ३८

तस्य दैत्यस्य पातेन साब्धिशैलवनैः सह।
चकम्पे नाडिकामात्रं सर्वं भूखण्डमण्डलम्॥ ३९

उस गदाके प्रहारसे बलदेवजी उसी प्रकार विचलित नहीं हुए, जिस प्रकार कि पुष्पमालासे आहत होनेपर हाथी विचलित नहीं होता है। सभी लोगोंके देखते-देखते महाबली बलदेवने हलके अग्रभागसे उसे खींचकर काजलके समान काले शरीरवाले कोलके मस्तकपर मुसलसे प्रहार किया। मुसलके प्रहारसे उसका सिर फट गया और वह रणभूमिमें गिर पड़ा; तो भी उठकर बलदेवजीको मुक्केसे भारी चोट पहुँचाकर वह वहीं अन्तर्धान हो गया। फिर उस मायावी दैत्यने अत्यन्त भयंकर दैत्य-सम्बन्धिनी माया प्रकट की। तुरंत ही बड़ी भारी आँधीसे प्रेरित प्रलय-कालके मेघोंसे, जो अन्धकार फैला रहे थे, आकाश आच्छादित हो गया॥ २७—३०॥

जपापुष्पोंके समान रक्तबिन्दुओंकी निरन्तर वर्षा होने लगी। उसके बाद घने काले मेघोंने घृणित वस्तुओंकी वर्षा प्रारम्भ की। पीब, मेद, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांससे युक्त अमेध्य जलकी वर्षा होने लगी। उस वृष्टिको देखकर सब ओर हाहाकार होने लगा। दैत्यद्वारा रची गयी मायाको जानकर महाप्रभु बलदेवने शत्रुसेनाके विदारक विशाल मुसलको चलाया। वह समस्त अस्त्रोंका घातक, स्वच्छ और सुदृढ़ अस्त्र अष्ट-धातुघटित था। उसकी लंबाई सौ योजनकी थी तथा वह प्रलयाग्निसदृश प्रज्वलित हो रहा था॥ ३१—३४॥

बलदेवजीका अस्त्र मुसल दसों दिशाओंमें घूमता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था। उसने आकाशके बादलोंको उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे सूर्य कुहरेको मिटा देता है। उस मुसलको आकाशमें गया हुआ देख भगवान् बलभद्रने स्वतः 'हल' नामक अस्त्र उठाया और अपने वैभवसे सबको खींच-खींचकर बलपूर्वक बीचमें ही विदीर्ण कर दिया॥ ३५-३६॥

उस दैत्यकी मायाका नाश हो जानेपर महाबली बलदेवने अपने बाहुदण्डोंसे उसके मदोत्कट भुजदण्ड पकड़ लिये और जैसे बालक रुईकी राशिको घुमाये, उसी प्रकार इधर-उधर घुमाते हुए उसे पृथ्वीपर इस प्रकार दे मारा, मानो किसी बालकने कमण्डलु पटक दिया हो। उस दैत्यके पतनसे पर्वत, समुद्र और वनके साथ सारा भूमण्डल एक नाड़ी (घड़ी)-तक काँपता रहा॥ ३७—३९॥

भग्नदन्तश्चलन्नेत्रो मूर्च्छितो निधनं ययौ।
कोलो नाम महादैत्यो वृत्रो वज्रहतो यथा॥ ४०

तदा जयजयारावो दिवि भूमौ बभूव ह।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाः सुरैः कृताः॥ ४१

इत्थं कोलं घातयित्वा बलदेवोऽच्युताग्रजः।
दत्वाथ कौशारवये कौशाम्बीं च पुरीं ततः॥ ४२

स्नातुं भागीरथीं प्रागाद्गर्गाचार्यादिभिर्वृतः।
लोकानां संग्रहं कर्तुं सर्वदोषक्षयाय च॥ ४३

स्नापयाञ्चक्रुरार्यास्ते गङ्गायां माधवं बलम्।
वेदमन्त्रैर्मङ्गलैश्च गर्गाचार्यादयो द्विजाः॥ ४४

लक्षं गजानां वैदेह स्यन्दनानां द्विलक्षकम्।
हयानां च तथा कोटिं धेनूनामर्बुदं दश॥ ४५

शतार्बुदं च रत्नानां भारं जाम्बूनदावृतम्।
रामो दत्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रययौ मथुरां पुरीम्॥ ४६

यत्र रामेण गङ्गायां कृतं स्नानं विदेहराट्।
तत्र तीर्थं महापुण्यं रामतीर्थं विदुर्बुधाः॥ ४७

कार्तिक्यां कार्तिके स्नात्वा रामतीर्थे तु जाह्नवीम्।
हरिद्वाराच्छतगुणं पुण्यं वै लभते जनः॥ ४८

बहुलाश्व उवाच

कौशाम्बेश्च कियद्दूरं स्थले कस्मिन् महामुने।
रामतीर्थं महापुण्यं मह्यं वक्तुं त्वमर्हसि॥ ४९

श्रीनारद उवाच

कौशाम्बेश्च तदीशान्यां चतुर्योजनमेव च।
वायव्यां सूकरक्षेत्राच्चतुर्योजनमेव च॥ ५०

कर्णक्षेत्राच्च षट्क्रोशैर्नलक्षेत्राच्च पञ्चभिः।
आग्नेय्यां दिशि राजेन्द्र रामतीर्थं वदन्ति हि॥ ५१

वृद्धकेशीसिद्धपीठाद् बिल्वकेशवनात्पुनः।
पूर्वस्यां च त्रिभिः क्रोशै रामतीर्थं विदुर्बुधाः॥ ५२

दृढाश्वो वङ्गराजोऽभूत्कुरूपं लोमशं मुनिम्।
दृष्ट्वा जहास सततं शशाप स महामुनिः॥ ५३

दैत्यके दाँत टूट गये, नेत्र बाहर निकल आये और वह मूर्च्छित होकर मृत्युका ग्रास बन गया। इस प्रकार महादैत्य कोल वज्रके मारे हुए वृत्रासुरकी भाँति प्राणशून्य हो गया। उस समय स्वर्गमें और धरतीपर जय-जयकार होने लगा। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वे फूलोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार कोलका वध करके श्रीकृष्णके बड़े भाई बलदेवने कौशाम्बीपुरी राजा कौशारविको दे दी और स्वयं गर्गाचार्य आदिके साथ वे भागीरथीमें स्नान करनेके लिये गये। उनका यह कार्य समस्त दोषोंके निवारण एवं लोकसंग्रहके लिये था॥ ४०—४३॥

गर्ग आदि ब्राह्मण-आचार्योंने मङ्गलमय वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए माधव—बलरामको गङ्गामें स्नान करवाया। विदेहराज! बलरामजी ब्राह्मणोंको एक लाख हाथी, दो लाख रथ, एक करोड़ घोड़े, दस अरब दुधारू गायें, सौ अरब रत्न और जाम्बूनद सुवर्णके भार दानमें देकर मथुरापुरीको चले गये। मिथिलेश्वर! बलरामने गङ्गाजीमें जहाँ स्नान किया, उस महा-पुण्यमय तीर्थको विद्वान्‌लोग 'रामतीर्थ' के नामसे जानते हैं। जो मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमा एवं कार्तिकमासमें रामतीर्थकी गङ्गामें स्नान करता है, वह हरिद्वारकी अपेक्षा सौगुने पुण्यका भागी होता है॥ ४४—४८॥

बहुलाश्वने पूछा—महामुने! कौशाम्बीसे कितनी दूर और किस स्थानपर महापुण्यमय 'रामतीर्थ' विद्यमान है, यह मुझे बतानेकी कृपा करें॥ ४९॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! राजेन्द्र! कौशाम्बीसे ईशानकोणमें चार योजनकी दूरीपर और वायव्यकोणमें शूकरक्षेत्रसे चार योजनकी दूरीपर, कर्णक्षेत्रसे छः कोस और नलक्षेत्रसे पाँच कोस आग्नेय दिशामें रामतीर्थकी स्थिति बताते हैं। वृद्धकेशी सिद्धपीठसे और बिल्वकेश-वनसे पूर्व दिशामें तीन कोसकी दूरीपर विद्वानोंने रामतीर्थकी स्थिति मानी है॥ ५०—५२॥

वङ्गदेशमें दृढाश्व नामक एक राजा थे। वे लोमशमुनिको कुरूप देखकर सदा उनकी हँसी उड़ाया करते थे। इससे उस महामुनिने उन्हें शाप दे दिया—॥ ५३॥

विकरालः क्रोडमुखोऽसुरो भव महाखल।
इत्थं स मुनिशापेन कोलः क्रोडमुखोऽभवत्॥ ५४

बलदेवप्रहारेण त्यक्त्वा स्वामासुरीं तनुम्।
कोलो नाम महादैत्यः परं मोक्षं जगाम ह॥ ५५

ततो रामो मन्त्रिभिश्च उद्धवादिभिरन्वितः।
जह्नुतीर्थं जगामाशु यत्र दक्षश्रुतेरभूत्॥ ५६

गङ्गा ब्राह्मणमुख्यस्य जाह्नवी येन कथ्यते।
दत्वा दानं द्विजातिभ्य ऊषू रात्रौ जनैः सह॥ ५७

ततस्तत्पश्चिमे भागे पाण्डवानामतिप्रियम्।
आहारस्थानकं प्राप्य रात्रौ वासं चकार ह॥ ५८

तत्र दानं द्विजातिभ्यो दत्वा सद्गुणभोजनम्।
ततो योजनमेकं च देवं माण्डूकसंज्ञकम्॥ ५९

तपस्तप्तं महत्तेनानन्तदेवकृपाप्तये।
तदर्थं स्वसमाजेन बलदेवो जगाम ह॥ ६०

ऊर्ध्वास्यमेकपादस्थं ध्यानस्तिमितलोचनम्।
स्वभक्तं हृदयस्थं स्वं मूर्तिदर्शनलोलुपम्॥ ६१

तां जहार तदानन्तस्ततो बाह्ये ददर्श ह।
स दृष्ट्वानन्तदेवस्य रूपं परमसुन्दरम्॥ ६२

स्रग्व्येककुण्डलं गौरं तालाङ्करथसंयुतम्।
स्तुत्वा परमया भक्त्या पपात चरणौ पुनः॥ ६३

तस्य शीर्ष्णि करं दत्वा वरं ब्रूहीत्युवाच ह।
यदि प्रसन्नो भगवाननुग्राह्योऽस्मि वा यदि॥ ६४

सर्वोत्तमां भागवतीं संहितां शुकवक्त्रतः।
निर्गतां देहि मे स्वामिन् कलिदोषहरां पराम्॥ ६५

'ओ महादुष्ट! तू विकराल शूकरमुख असुर हो जा।' इस प्रकार मुनिके शापसे राजा [दृढाश्व] कोल नामक क्रोडमुख असुर हो गया। फिर बलदेवजीके प्रहारसे आसुर-शरीरको छोड़कर महादैत्य कोलने परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। तब बलराम उद्धव आदि तीन मन्त्रियोंके साथ वहाँसे तत्काल 'जह्नुतीर्थ' को चले गये, जहाँ जह्नुके दाहिने कानसे गङ्गाजीका प्रादुर्भाव हुआ था॥ ५४—५६॥

उस ब्राह्मण-शिरोमणि जह्नुके नामपर ही गङ्गाको 'जाह्नवी' कहा जाता है। वहाँ ब्राह्मणोंको दान दे रातभर सब लोग वहीं रहे। तदनन्तर वहाँसे पश्चिम भागमें पाण्डवोंका अत्यन्त प्रिय 'आहारस्थान' नामक स्थान है, जहाँ पहुँचकर उन लोगोंने रात्रिमें निवास किया। वहाँ ब्राह्मणोंको दान तथा उत्तम गुणकारक भोजन देकर वे वहाँसे एक योजन दूर माण्डूकदेवके पास गये॥ ५७—५९॥

माण्डूकदेवने अनन्तदेवकी कृपा प्राप्त करनेके लिये बड़ी भारी तपस्या की थी। उसीके लिये अपने समाजके साथ बलदेवजी वहाँ गये। वह मुँह ऊपर किये एक पैरके बलपर खड़ा था। उसके नेत्र ध्यानमें निश्चल थे। वह हृदयमें बलदेवजीके स्वरूपका दर्शन करते हुए उन्हींके साक्षात् दर्शनके लिये लोलुप था॥ ६०-६१॥

बलदेवजीने उसके हृदयसे अपने उस स्वरूपको हर लिया। तब उसने नेत्र खोलकर अपने आराध्यदेवको बाहर देखा। अनन्तदेवके उस परम सुन्दर रूपको उसने देखा। वे वनमालासे सुशोभित थे और एक कानमें कुण्डल धारण किये हुए थे। उनकी अङ्ग-कान्ति गौर थी तथा वे तालचिह्नसे अङ्कित ध्वजावाले रथपर बैठे थे। अनन्तदेवके उस परम सुन्दर रूपको देखकर उसने बड़ी भक्तिसे उनकी स्तुति की। फिर वह अपने आराध्यके चरणोंमें गिर पड़ा। बलदेवजीने उसके मस्तकपर हाथ रखा और कहा—'वर माँगो।' तब वह बोला—'स्वामिन्! यदि आप साक्षात् भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं, अथवा यदि मैं आपके अनुग्रहका पात्र हूँ, तो शुकदेवजीके मुखसे निकली हुई उस सर्वोत्तम भागवतसंहिताको मुझे दीजिये, जो समस्त कलिदोषोंका विनाश करनेवाली एवं श्रेष्ठ है'॥ ६२—६५॥

बलदेव उवाच

उद्धवद्वारतः प्राप्तिर्भविष्यति तवानघ।
श्रीमद्भागवती कीर्तिरधिका या कलौ युगे॥ ६६

बलदेवजीने कहा—अनघ! तुम्हें उद्धवजीके द्वारा श्रीमद्भागवतसंहिताकी प्राप्ति होगी, जिसका कीर्तन कलियुगमें सर्वाधिक महत्त्व रखनेवाला है॥ ६६॥

माण्डूक उवाच

कथं भगवता दत्ता मुख्या तस्याधिकारिता।
कदा योगं मम स्वामिन् कुरु सन्देहभञ्जनम्॥ ६७

माण्डूकने पूछा—स्वामिन्! भगवान्‌ने उद्धव-जीको भागवतसंहिता सुनानेका मुख्य अधिकार क्यों दिया है? और उनके साथ मेरा संयोग कब होगा? आप इस मेरे संदेहका निवारण कीजिये॥ ६७॥

बलदेव उवाच

कथयामि परं गोप्यं रहस्यं परमाद्भुतम्।
अद्यापि मम सामीप्ये उद्धवोऽयं विराजते॥ ६८

तद्दर्शनं कुरु परं परमार्थप्रदायकम्।
अद्य तीर्थस्य यात्रायामुपदेशो न ते भवेत्॥ ६९

यथोपदेष्टा भवति तेन ते कथयाम्यहम्।
उद्धवः स्थापितः श्रीमदाचार्यः संहितामयः॥ ७०

बलदेवजी बोले—मैं परम गोपनीय एवं परम अद्भुत रहस्यकी बात बताता हूँ। आज भी मेरे निकट ये उद्धवजी विराजते हैं। तुम इनका दर्शन कर लो। यह उत्तम दर्शन तुम्हें परमार्थ प्रदान करनेवाला है; परंतु आज तीर्थयात्राके अवसरपर तुम्हें इनका उपदेश नहीं प्राप्त हो सकता। जिस प्रकार ये भागवतके उपदेशक होंगे, वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ। मैंने उद्धवको श्रीमान् आचार्यके पदपर इसलिये स्थापित किया है कि ये संहिताज्ञानस्वरूप हैं॥ ६८—७०॥

नन्दादिव्रजवासीनां गोपीनां प्रीतये कृतः।
स्वस्वरूपं परिकरं यत्किञ्चिद्भगवत्तमम्॥ ७१

सर्वस्वभावगुणकं कृष्णेन परमात्मना।
उद्धवं चैव स्वात्मानमेक एवाचरद्विभुः॥ ७२

साक्षात्कारं चकारादौ न स्वीयमन्तरं क्वचित्।
श्रीकृष्णमेव ते ज्ञात्वा पूजयामासुरादरात्॥ ७३

नन्द आदि व्रजवासियों तथा गोपाङ्गनाओंकी प्रीतिके लिये भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। अपना स्वरूप, परिकरका पद और जो कुछ भी पूर्ण भगवत्ता है, वह सब, अपने स्वभाव और गुणके साथ परमात्मा श्रीकृष्णने उद्धवको अर्पित की है। उन्होंने उद्धवको और अपनेको एक ही मानकर आचरण किया है। श्रीकृष्णने अपना आन्तरिक रहस्य पहले उद्धवके सिवा और किसीपर नहीं प्रकट किया था। उन्होंने इनमें अपनी अभिन्नताका साक्षात्कार किया है। व्रजवासियोंने इन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण ही जानकर बड़े आदरसे इनका पूजन किया था॥ ७१—७३॥

वसन्ततौ च ग्रीष्मेऽपि स चचार व्रजात्मकौ।
शमयामास राधायाः शोकं तत्कुण्डपार्श्वगः॥ ७४

सर्वं भूमण्डलं तत्र विचचार व्रजानुगैः।
वियोगार्तिहरः प्रोक्तो गवां नन्दादिगोपिनाम्॥ ७५

वसन्त और ग्रीष्म, दोनों ऋतुओंमें इन्होंने व्रजभूमिमें विचरण किया और [वहीं] राधाकुण्डके समीप रहते हुए श्रीराधाका शोक शान्त किया। उद्धव व्रजवासी अनुगामियोंके साथ वहाँकी भूमिमें यत्र-तत्र सर्वत्र विचरे हैं। इन्हें गौओं तथा नन्द आदि गोपों और गोपाङ्गनाओंका 'वियोगार्तिहारी' कहा गया है॥ ७४-७५॥

मन्त्राधिकारकुशलः सर्वः परिकराग्रणीः।
अथान्तर्धानवेलायां भगवान् धर्मगुप्तनुः॥ ७६

तस्मै स्वतेजसमपि दास्यते परमाद्भुतम्।
मुद्राधिकारं सर्वत्र सर्वदैव विराजते॥ ७७

अन्तर्धाने तु स्वस्थाने दत्ता तस्याधिकारिता।
बदरीस्थं सपरिकरं धर्मजं बोधयिष्यति॥ ७८

अर्जुनादिवियोगार्तिहारी सैव भविष्यति।
वज्रनाभो यादवानां माथुरे सम्भविष्यति॥ ७९

श्रीकृष्णस्यैव पौत्रेषु महाराज्ञीगणेषु च।
वियोगार्तिहरश्चैव स्थाप्यते श्रीहरिः स्वयम्॥ ८०

कौरवाणां कुले राजा परीक्षिदिति विश्रुतः।
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विख्यातो जनमेजयः॥ ८१

पितुः शत्रुहणं यज्ञं करिष्यति न संशयः।
तस्यापि सर्वसामग्री ह्युद्धवद्वारतो भवेत्॥ ८२

श्रीमद्भागवतं दिव्यं पुराणवाचनं तदा।
गौरान्वयस्य सम्प्राप्तिर्भविष्यति न संशयः॥ ८३

श्रीमत्प्रसादाद्विप्रर्षेर्महाभागवतोत्तमात्।
तद्द्वारा सर्पयज्ञस्य निवृत्तिः सम्भविष्यति॥ ८४

यज्ञसंस्कारकर्तृणां ब्राह्मणानां च पूजनम्।
स दास्यति महाराज ग्रामाणां शतकं तदा॥ ८५

ततस्त्वाचार्यवर्यस्य श्रीप्रसादस्य चाज्ञया।
स गन्ता सूकरक्षेत्रं मासमेकं स्थितो भवेत्॥ ८६

दत्वा दानान्यनेकानि गोमहीगजवाजिनः।
रत्नं वासो ब्राह्मणेभ्यो भोजनं च यदृच्छया॥ ८७

ततस्तस्मात्स्थलात्सोऽपि निवर्त्य गुरुणा सह।
गङ्गातीरस्थलान् पश्यन्नागमिष्यति सद्‌वृतः॥ ८८

ये मन्त्रीके अधिकारमें कुशल तथा समस्त पार्षदोंके अग्रगामी हैं। जब भगवान्‌के अन्तर्धानकी वेला आयेगी, उस समय धर्मपालक-देहधारी भगवान् उद्धवको अपना परम अद्भुत तेज भी दे देंगे। इनका मुद्राधिकार (भगवान्‌की ओरसे कुछ भी कहने और उनकी मुद्रिका या मोहरकी छाप लगाकर कोई आदेश जारी करनेका अधिकार) तो सर्वत्र और सदा ही विराजता है॥ ७६-७७॥

अन्तर्धानकालमें इन्हें भगवान्‌की ओरसे विशेष अधिकार दिया जायगा। ये बदरिकाश्रमतीर्थमें विराजमान परिकरोंसहित धर्मनन्दन [विदुर]-को भगवद्रहस्यका बोध करायेंगे। अर्जुन आदिको भगवान्‌के वियोगसे जो बड़ी भारी पीड़ा होगी, उसका निवारण उद्धव ही करेंगे। मथुरामें यादवोंका उत्तराधिकारी वज्रनाभ होगा। श्रीकृष्णके पौत्रों तथा महारानियोंके समुदायमें जो भगवद्वियोगकी वेदना होगी, उसे दूर करनेके लिये साक्षात् श्रीहरिके द्वारा उद्धव ही नियुक्त किये जायँगे॥ ७८—८०॥

कौरवोंके कुलमें परीक्षित् नामसे विख्यात राजा होगा। उसका अत्यन्त तेजस्वी पुत्र जनमेजय नामसे प्रसिद्ध होगा। वह अपने पिताके शत्रु तक्षक नागके कुलका नाशक सर्पयज्ञ करेगा, इसमें संशय नहीं है। उसको भी सारी यज्ञसामग्री उद्धवके द्वारा ही प्राप्त होगी॥ ८१-८२॥

उस समय दिव्य श्रीमद्भागवतपुराणकी कथा होगी, जिसमें उज्ज्वल (सात्त्विक) प्रकृतिके लोग समवेत होंगे, इसमें संशय नहीं है। महान् भगवद्भक्तोंमें उत्तम ब्रह्मर्षि (आस्तीक)-के प्रसादसे जनमेजयद्वारा होनेवाले सर्पयज्ञकी समाप्ति हो जायगी। महाराज जनमेजय यज्ञ-संस्कार करानेवाले ब्राह्मणोंका पूजन करके उन्हें सौ ग्राम अग्रहारके रूपमें देंगे॥ ८३—८५॥

तदनन्तर आचार्यप्रवर श्रीप्रसादजीकी आज्ञासे राजा जनमेजय शूकरक्षेत्र (सोरों)-में जायँगे और वहाँ एक मास ठहरेंगे। उस तीर्थमें अनेक प्रकारके दान—गौ, बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, रत्न, वस्त्र तथा इच्छानुसार भोजन ब्राह्मणोंको देकर वे अपने आचार्यके साथ उस स्थानसे लौटकर गङ्गातटके तीर्थस्थानोंका

शयाननगरे संस्थां करिष्यति सहानुगः।
श्रीगुरोराज्ञया तत्र सामग्रीसाधनैः सह॥ ८९

अश्वमेधं करोति स्म सर्वजेता भविष्यति।
एकच्छत्रधरो भूत्वा श्रीगुरोः शरणं गतः॥ ९०

ततो गङ्गातटे रम्ये पूर्वस्यां क्रोशपञ्चके।
परमैकान्तरूपेण सेवनं तत्करिष्यति॥ ९१

तत्र भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी।
भविष्यति मुदा युक्ता समाजेषु सुधर्मिणाम्॥ ९२

तत्र पूर्णसमाजेषु तेषां मध्ये भवानपि।
श्रृणोषि भगवद्धर्मं गन्ता श्रीनिर्मलं पदम्॥ ९३

तपस्तप्तं मदर्थं ते तस्मादेतत्प्रकाशितम्।
एवं देवं वरं दत्वा गतो रामः सहानुगः॥ ९४

शयाननगराच्छुद्धादीशान्यां दिशि संस्थितम्।
स्थानं गङ्गातटे रम्यं कण्टकादुत्तरेऽभवत्॥ ९५

पुष्पवत्या दक्षिणे तु क्रोशैकं विस्तरेण च।
तत्र सङ्कर्षणो देवः स्थित्वा दानपरोऽभवत्॥ ९६

घोटकं दशसाहस्त्रं रथानां शतकं तथा।
द्विपं सहस्त्रं गाश्चैव दिक्सहस्त्रं ददौ मुदा॥ ९७

तत्र सङ्कर्षणं देवं पूजयामासुरादरात्।
देवाः समाययुः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः॥ ९८

नमः कोलेशघाताय खरासुरविघातिने।
हलायुध नमस्तेऽस्तु मुसलास्त्राय ते नमः।
नमः सौन्दर्यरूपाय तालाङ्काय नमो नमः॥ ९९

इति श्रुत्वा स्तुतिं तेषां सङ्कर्षण उवाच ह।
वरं ब्रुवन्तु वः सर्वे भवतां यदभीप्सितम्॥ १००

दर्शन करते हुए सत्पुरुषोंसे घिरे शयाननगरमें आकर सेवकोंसहित डेरा डालेंगे॥ ८६—८८१/२॥

वहाँ श्रीगुरुकी आज्ञासे सामग्री और साधन जुटाकर अश्वमेध यज्ञ करेंगे और सर्वजेता (दिग्विजयी) होंगे। इस प्रकार एकच्छत्र राज्यके स्वामी होकर श्रीगुरुदेवकी शरण ले शयाननगरसे पाँच कोशपर स्थित पूर्व दिशामें रमणीय गङ्गाके तटपर अत्यन्त एकान्तवासीके रूपमें तीर्थ-सेवन करेंगे॥ ८९—९१॥

वहाँ धार्मिकोंके समाजमें बड़े आनन्दके साथ भवरोग-विनाशिनी भागवत-कथा होगी। उस पूर्ण समाजमें एक तुम भी रहोगे और भागवतकी कथा सुनोगे। उसे सुनकर तुम्हें निर्मल पदकी प्राप्ति होगी। तुमने मेरे लिये तपस्या की है, इसलिये तुम्हारे सामने मैंने इस रहस्यको प्रकाशित किया है। इस प्रकार माण्डूकदेवको वर देकर सेवकोंसहित बलरामजी वहाँसे चले गये॥ ९२—९४॥

शुद्ध शयाननगरसे ईशानकोणमें गङ्गातटपर स्थित एक रमणीय स्थान है, जो कण्टकतीर्थसे उत्तर है और पुष्पवती नदीसे दक्षिण दिशामें विद्यमान है। उसका विस्तार एक कोसमें है। वहीं ठहरकर संकर्षणदेव दान-पुण्यमें लग गये। बलरामजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ दस हजार घोड़ों, सौ रथों, एक हजार हाथियों और दस हजार गौओंका दान किया॥ ९५—९७॥

वहाँ समस्त देवता तथा तपस्याके धनी ऋषि-मुनि आये। उन सबने बड़े आदरसे संकर्षणदेवका पूजन किया। फिर इस प्रकार स्तुति की—'प्रभो! आप कोलेश दैत्यके हन्ता तथा गर्दभासुर (धेनुक)-का विनाश करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। हलायुध! आपको प्रणाम है। मुसलास्त्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सौन्दर्यस्वरूप आपको प्रणाम है। तालचिह्नित ध्वजा धारण करनेवाले आपको बारंबार नमस्कार है। उन सबके द्वारा की गयी इस स्तुतिको सुनकर संकर्षण बोले—'आप सब लोगोंको जो अभीष्ट हो, वह वर मुझसे माँगिये'॥ ९८—१००॥

द्विजदेवा ऊचुः

यदा यदापदायुक्ताः स्मरामो भवतः पदम्।
सर्वबाधाविनिर्मुक्ता भवामश्च तवाज्ञया॥ १०१

ब्रह्मर्षि और देवता बोले—भगवन्! जब-जब आपत्तिमें पड़कर हम आपके चरणोंका चिन्तन करें, तब-तब आपकी आज्ञासे समस्त बाधाओंसे मुक्त हो जायँ॥ १०१॥

बलराम उवाच

यदा यदा मां स्मरथ तदाहं शरणागतान्।
रक्षिता स्यां कलौ नूनमिति सत्यं वचो मम॥ १०२

अत्र स्थले वरं प्राप्तं पूजितं मुनिपुङ्गवैः।
अतः सङ्कर्षणस्थानं भविष्यति कलौ युगे॥ १०३

यस्मिन् स्नास्यन्ति गङ्गायां देवान् सम्पूजयन्ति ये।
दास्यन्ति दानं विप्रेभ्यो भोजनं कारयन्ति ये॥ १०४

विष्णुं सम्पूजयन्ति स्म सफलं जीवितं क्षितौ।
ते यान्ति दैवतस्थानं कामी प्राप्नोति कामनाम्॥ १०५

बलरामने कहा—जब-जब आपलोग मेरी शरणमें आकर मेरा स्मरण करेंगे, तब-तब कलियुगमें निश्चय ही मैं आपलोगोंकी रक्षा करूँगा, यह मेरा सत्य वचन है। इस स्थानपर मुनिपुंगवोंने मेरा पूजन करके वर प्राप्त किया, इसलिये कलियुगमें यह तीर्थ 'संकर्षण-स्थान' के नामसे विख्यात होगा। जो लोग इस तीर्थमें गङ्गा-स्नान और देवताओंका पूजन करेंगे, ब्राह्मणोंको दान देंगे, उन्हें भोजन करायेंगे और विष्णुभगवान्‌की पूजा करेंगे, इस भूतलपर उनका जीवन सफल होगा। वे देवताओंके लोकमें जायँगे। अथवा यदि उनके मनमें कोई अभीष्ट होगा तो उस अभीष्टको ही प्राप्त कर लेंगे॥ १०२—१०५॥

ततः परिवृतो रामः स्वां पुरीं सञ्जगाम ह।
कोलरक्षोवधं कृत्वा स्नात्वा विष्णुपदीजले॥ १०६

रामस्य बलदेवस्य कथां यः शृणुयान्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥ १०७

तदनन्तर बलराम सबके साथ अपनी पुरी मथुराको चले गये। कोल राक्षसका वध और गङ्गाके जलमें स्नान करके उन्होंने लोकसंग्रहके लिये प्रायश्चित्त किया था। जो मनुष्य बलके देवता बलरामकी इस कथाको सुनेंगे, वे सब पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होंगे॥ १०६-१०७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कोलदैत्यवधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कोलदैत्यका वध' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

मथुरापुरीका माहात्म्य एवं मथुराखण्डका उपसंहार

बहुलाश्व उवाच

अकस्मादागते रामे तत्र तीर्थमिदं श्रुतम्।
अहो मधुपुरी धन्या यत्र सन्निहितश्च सः॥ १

मथुरायास्तु को देवः कः क्षत्ता कश्च रक्षति।
कश्चारः को मन्त्रिवरः कैर्भूमिस्तत्र सेविता॥ २

बहुलाश्वने पूछा—मुने! जहाँ बलरामजी अकस्मात् पहुँच गये, वहाँ ऐसा उत्तम तीर्थ सुना गया। अहो! मथुरापुरी धन्य है, जहाँ वे नित्य निवास करते हैं। मथुराका देवता कौन है? क्षत्ता (द्वारपाल) कौन है? उसकी रक्षा कौन करता है? चार कौन है? मन्त्रिप्रवर कौन है? और किन-किन लोगोंके द्वारा वहाँकी भूमिका सेवन किया गया है?॥ १-२॥

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् हरिः।
स्वयं हि मथुरानाथः केशवः क्लेशनाशनः॥ ३

साक्षाद्भगवता प्राप्तः कपिलाय द्विजाय च।
कपिलः प्रददौ यं वै प्रसन्नः शतमन्यवे॥ ४

जित्वा देवान् राक्षसेन्द्रो रावणो लोकरावणः।
यं स्तुत्वा पुष्पके स्थाप्य लङ्कायां तमपूजयत्॥ ५

जित्वा लङ्कां राघवेन्द्रस्तमानीय प्रयत्नतः।
अयोध्यायां च वाराहमर्चयामास मैथिल॥ ६

स्तुत्वा रामं च शत्रुघ्नो यमानीय प्रयत्नतः।
मथुरायां महापुर्यां स्थापयित्वा ननाम ह॥ ७

सेवितो माथुरैः सर्वैः सर्वेषां च वरप्रदः।
साक्षात्कपिलवाराहः सोऽयं मन्त्रिवरः स्मृतः॥ ८

क्षत्ता श्रीमथुरायाश्च नाम्ना भूतेश्वरः शिवः।
दत्वा दण्डं पातकिने भक्त्यर्थान् मन्त्रतां व्रजत्॥ ९

चण्डिका तु महाविद्या देवी दुर्गार्तिनाशिनी।
सिंहारूढा सदा रक्षां मथुरायाः करोति हि॥ १०

चारोऽहं मथुरायाश्च पश्यँल्लोकानितस्ततः।
वदामि वार्तां सर्वेषां श्रीकृष्णाय महात्मने॥ ११

मध्ये वै मथुरा देवी शुभदा करुणामयी।
बुभुक्षितेभ्यः सर्वेभ्यो ददात्यन्नं विदेहराट्॥ १२

चतुर्भुजाः श्यामलाङ्गा व्रजन्ति प्राव्रजन्ति च।
मथुरायां मृतं नेतुं विमानैः कृष्णपार्षदाः॥ १३

श्रीकृष्णस्याङ्गसम्भूता मथुरा वै महापुरी।
यस्या दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम्॥ १४

पुरा विधिः श्रीमथुरामुपेत्य
तप्त्वा तपो वर्षशतं निरन्नः।
जपन् हरिं ब्रह्म परं स्वयम्भूः
स्वायम्भुवं प्राप सुतं प्रवीणम्॥ १५

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण हरि स्वयं ही मथुराके स्वामी या देवता हैं। भगवान् केशवदेव वहाँके क्लेशनाशक हैं। साक्षात् भगवान्ने कपिल नामक ब्राह्मणको अपनी वाराह-मूर्ति प्रदान की थी। कपिलने प्रसन्न होकर वह मूर्ति देवराज इन्द्रको दे दी। फिर समस्त लोकोंको रुलाने-वाला राक्षसराज रावण देवताओंको जीतकर उस मूर्तिका स्तवन करके उसे पुष्पक विमानपर रखकर लङ्कामें ले आया और उसकी पूजा करने लगा॥ ३—५॥

मिथिलेश्वर! तदनन्तर राघवेन्द्र श्रीराम लङ्कापर विजय प्राप्त करके भगवान् वाराहको प्रयत्नपूर्वक अयोध्यापुरीमें ले आये और वहाँ उनकी अर्चना करते रहे। तत्पश्चात् शत्रुघ्न श्रीरामकी स्तुति करके उनकी आज्ञासे उस वाराह-विग्रहको प्रयत्नपूर्वक महापुरी मथुरामें ले आये और वहाँ वाराहभगवान्की स्थापना करके उनको प्रणाम किया॥ ६-७॥

फिर समस्त मथुरावासियोंने उन वरदायक भगवान्की सेवा-पूजा प्रारम्भ की। वे ही ये साक्षात् कपिल-वाराह मथुरापुरीमें श्रेष्ठ मन्त्री माने गये हैं। 'भूतेश्वर' नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव मथुराके द्वारपाल या क्षेत्रपाल हैं। वे पापियोंको दण्ड देकर भक्तिके लिये उन्हें मन्त्रोपदेश करते हैं॥ ८-९॥

महाविद्या-स्वरूपा दुर्गम कष्ट दूर करनेवाली चण्डिकादेवी दुर्गा सिंहपर आरूढ़ हो सदा मथुरापुरीकी रक्षा करती हैं। मैं (नारद) ही मथुराका चार (गुप्तचर) हूँ और इधर-उधर लोगोंपर दृष्टि रखकर सबकी बात महात्मा श्रीकृष्णको बताता हूँ। विदेहराज! नगरके मध्य-भागमें स्थित शुभदायिनी करुणामयी मथुरादेवी समस्त भूखे लोगोंको अन्न प्रदान करती हैं। मथुरामें मरे हुए लोगोंको विमानोंद्वारा ले जानेके लिये श्याम अङ्गवाले, चार भुजाधारी श्रीकृष्णपार्षद आते-जाते रहते हैं॥ १०—१३॥

महापुरी मथुरा, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है, श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई है। पूर्व-कालमें ब्रह्माजीने मथुरामें आकर निराहार रहते हुए सौ दिव्य वर्षोंतक तपस्या की। उस समय वे परब्रह्म श्रीहरिके नामका जप करते थे, इससे उन्हें स्वायम्भुव-मनु-जैसे प्रवीण पुत्रकी प्राप्ति हुई॥ १४-१५॥

भूतेश्वरो देववरः सतीपति-
स्तप्त्वा तपो दिव्यशरन्मधोर्वने।
कृष्णप्रसादान्नृपराज सत्वरं
तस्याः पुरे माथुरमण्डलस्य॥ १६
कृष्णप्रसाददहमेव चारो
भ्रमन् सदा माथुरमण्डलस्य।
तथा हि दुर्गा मथुरां प्रयाति
श्रीकृष्णदास्यं प्रकरोति नूनम्॥ १७
तप्त्वा तपः शक्रपदं च शक्रः
सूर्यो मनुं नित्यनिधिं कुबेरः।
पाशी च पाशं समवाप सम्यङ्
मधोर्वने विष्णुपदं ध्रुवश्च॥ १८
तथाम्बरीषः समवाप मुक्तिं
रामोऽक्षयं वा लवणाज्जयं च।
रघुश्च सिद्धिं किल चित्रकेतु-
स्तप्त्वा तपोऽत्रैव मधोर्वने च॥ १९
तप्त्वा तपोऽत्रैव मधोर्वने शुभे
भूत्वा बलिष्ठश्च मधुर्महासुरः।
श्रीमाधवे मासि च माधवेन
युयोध युद्धे मधुसूदनेन सः॥ २०
सप्तर्षयः श्रीमथुरां समेत्य
तप्त्वा तपोऽत्रैव च योगसिद्धिम्।
प्रापुः परे वै मुनयः समन्ताद्
गोकर्णवैश्योऽपि महानिधिं च॥ २१
तप्त्वा तपोऽत्रैव मधोर्वने शुभे
विजित्य देवान् दिवि लोकरावणः।
निधाय रक्षांसि विधाय मन्दिरं
प्रास्थाय लङ्कां विरराज रावणः॥ २२
तप्त्वा तपोऽत्रैव मधोर्वने शुभे
गजाह्वयेशो मिथिलेश शन्तनुः।
लेभे सुतं भीष्ममतीव सत्तमं
तत्त्वार्थवारान्निधिकर्णधारकम्॥ २३

बहुलाश्व उवाच

मथुरायाश्च माहात्म्यं वद देवर्षिसत्तम।
निवासे किं फलं प्रोक्तं मथुरायाः सतां नृणाम्॥ २४

श्रीनारद उवाच

आदौ वराहो धरणीं निमग्नां
महाजले प्रोज्झितवीचिशङ्के।

नृपराज! सतीपति देववर भूतेश मधुवनमें एक सौ दिव्य वर्षतक तप करके श्रीकृष्णकी कृपासे तत्काल मथुरापुरी और माथुर-मण्डलके क्षेत्रपाल हो गये। श्रीकृष्णके कृपाप्रसादसे ही मैं मथुरा-मण्डलका चार बना हूँ और सदा भ्रमण करता रहता हूँ। इसी प्रकार 'दुर्गा' मथुरामें जाती हैं और निश्चय ही श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं। इन्द्रने मथुरामें तप करके इन्द्रपद, सूर्यने तप करके वैवस्वत मनु-जैसा पुत्र, कुबेरने अक्षयनिधि, वरुणने पाश और ध्रुवने मधुवनमें तप करके सम्यक् ध्रुवपद प्राप्त किया था॥ १६—१८॥

यहीं तपस्या करके अम्बरीषने मोक्ष पाया, रामने अक्षय शक्ति एवं लवणासुरसे विजय प्राप्त की। राजा रघुने सिद्धि पायी तथा इसी मधुवनमें तप करके चित्रकेतुने भी अभीष्ट फल प्राप्त किया। यहाँके सुन्दर मधुवनमें तप करके अत्यन्त बलिष्ठ हुए महासुर मधुने माधवमासमें मधुसूदन माधवके साथ युद्धभूमिमें जाकर युद्ध किया॥ १९-२०॥

सप्तर्षियोंने मथुरामें आकर यहीं तपस्या करके योगसिद्धि प्राप्त की। पूर्वकालमें अन्य ऋषियोंने भी यहाँ तप करके सर्वतोमुखी सफलता पायी थी और गोकर्ण नामक वैश्यने भी यहाँ तप करके महानिधि उपलब्ध की थी। इसी शुभ मधुवनमें लोकरावण रावणने तपस्या करके स्वर्गके देवताओंपर विजय पायी तथा राक्षसोंको अधिकारी बनाकर मन्दिर-निर्माण करके लङ्कामें प्रतिष्ठित हो बड़ी शोभा प्राप्त की। मिथिलेश्वर! यहीं सुन्दर मधुवनमें तपस्या करके हस्तिनापुरके राजा शंतनुने अत्यन्त साधु-शिरोमणि तथा तत्त्वार्थसागरके कर्णधार भीष्मको पुत्ररूपमें प्राप्त किया॥ २१—२३॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षि-शिरोमणे! मथुराका माहात्म्य बताइये। वहाँ निवास करनेवाले सज्जनोंको किस फलकी प्राप्ति बतायी गयी है?॥ २४॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! आदियुगमें भगवान् वराहने महासागरके जलमें, जहाँ बड़ी ऊँची

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य करीव पद्मं
करेण माहात्म्यमिदं जगाद॥ २५

ब्रुवञ्जनो नाम फलं हरेर्लभे-
च्छृण्वँल्लभेत्कृष्णकथाफलं नरः।
स्पृशन् सतां स्पर्शनजं मधोः पुरि
जिघ्रंस्तुलस्या दलगन्धजं फलम्॥ २६

पश्यन् हरेर्दर्शनजं फलं स्वतो
भक्षंश्च नैवेद्यभवं रमापतेः।
कुर्वन् भुजाभ्यां हरिसेवया फलं
गच्छँल्लभेत्तीर्थफलं पदे पदे॥ २७

राजेन्द्रहन्ता निजगोत्रघातकी
त्रैलोक्यहन्तापि च कोटिजन्मसु।
राजञ्छृणु त्वं मथुरानिवासतो
योगीश्वराणां गतिमाप्नुयान्नरः॥ २८

पादौ च धिग् यौ न गतौ मधोर्वनं
दृशौ च धिग् ये न कदापि पश्यतः।
कर्णौ च धिग् यौ शृणुतो न मैथिल
वाचं च धिग् या न करोत्यलं मनाक्॥ २९

द्विसप्तकोटीनि वनानि यत्र
तीर्थानि वैदेह समास्थितानि।
एकैकमेतेषु विमुक्तिदानि
वदामि साक्षान्मथुरां नमामि॥ ३०

गोलोकनाथः परिपूर्णदेवः
साक्षादसंख्याण्डपतिः स्वयं हि।
श्रीकृष्णचन्द्रोऽयततार यस्यां
तस्यै नमोऽन्यासु पुरीषु किं वा॥ ३१

यन्नाम पापं विनिहन्ति तत्क्षणं
भवन्त्यलं यां गृणतोऽपि मुक्तयः।

लहरें उठ रही थीं, डूबी हुई पृथ्वीको, जैसे हाथी सूँड़से कमलको उठा ले, उसी प्रकार स्वयं अपनी दाढ़से उठाकर जब जलके ऊपर स्थापित किया, तब मथुराके माहात्म्यका इस प्रकार वर्णन किया था॥ २५॥

यदि मनुष्य 'मथुरा' का नाम ले ले तो उसे भगवन्नामोच्चारणका फल मिलता है। यदि वह मथुराका नाम सुन ले तो श्रीकृष्णके कथा-श्रवणका फल पाता है। मथुराका स्पर्श प्राप्त करके मनुष्य साधु-संतोंके स्पर्शका फल पाता है। मथुरामें रहकर किसी भी गन्धको ग्रहण करनेवाला मानव भगवच्चरणोंपर चढ़ी हुई तुलसीके पत्रकी सुगन्ध लेनेका फल प्राप्त करता है। मथुराका दर्शन करनेवाला मानव श्रीहरिके दर्शनका फल पाता है। स्वतः किया हुआ आहार भी यहाँ भगवान् लक्ष्मीपतिके नैवेद्य—प्रसादभक्षणका फल देता है। दोनों बाँहोंसे वहाँ कोई भी कार्य करके श्रीहरिकी सेवा करनेका फल पाता है और वहाँ घूमने-फिरनेवाला भी पग-पगपर तीर्थयात्राके फलका भागी होता है॥ २६-२७॥

राजन्! सुनो। जो राजाधिराजोंका हनन करनेवाला, अपने सगोत्रका घातक तथा तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रयत्नशील होता है, ऐसा महापापी भी मथुरामें निवास करनेसे करोड़ों जन्मोंतक योगीश्वरोंकी गतिको प्राप्त होता है। उन पैरोंको धिक्कार है, जो कभी मधुवनमें नहीं गये। उन नेत्रोंको धिक्कार है, जो कभी मथुराका दर्शन नहीं कर सके। मिथिलेश्वर! उन कानोंको धिक्कार है, जो मथुराका नाम नहीं सुन पाते और उस वाणीको भी धिक्कार है, जो कभी थोड़ा-सा भी मथुराका नाम नहीं ले सकी। विदेहराज! मथुरामें चौदह करोड़ वन हैं, जहाँ तीर्थोंका निवास है। इन तीर्थोंमेंसे प्रत्येक मोक्षदायक है। मैं मथुराका नामोच्चारण करता हूँ और साक्षात् मथुराको प्रणाम करता हूँ॥ २८—३०॥

जिसमें असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति परिपूर्णतम देवता गोलोकनाथ साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयं अवतार लिया, उस मथुरापुरीको नमस्कार है। दूसरी पुरियोंमें क्या रखा है?॥ ३१॥

जिस मथुराका नाम तत्काल पापोंका नाश कर देता है, जिसके नामोच्चारण करनेवालेको सब प्रकारकी

वीथीषु वीथीषु च मुक्तिरस्या-
स्तस्मादिमां श्रेष्ठतमां विदुर्बुधाः॥ ३२
काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके
तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या।
या जन्ममौञ्जीव्रतमृत्युदाहै-
र्नृणां चतुर्धा विदधाति मुक्तिम्॥ ३३
पुरीश्वरीं कृष्णपुरीं व्रजेश्वरीं
तीर्थेश्वरीं यज्ञतपोनिधीश्वरीम्।
मोक्षप्रदां धर्मधुरन्धरां परां
मधोर्वने श्रीमथुरां नमाम्यहम्॥ ३४
शृण्वन्ति माहात्म्यमिदं मधोः पुरः
कृष्णैकचित्ता नियताश्च यत्र ये।
व्रजन्ति ते तत्र परिक्रमाफलं
वैदेह राजेन्द्र न चात्र संशयः॥ ३५
खण्डं त्विदं श्रीमथुरापुरस्य ये
शृण्वन्ति गायन्ति पठन्ति सर्वतः।
इहैव तेषां हि समृद्धिसिद्धयो
भवन्ति वैदेह निसर्गतः सदा॥ ३६
त्रिःसप्तकृत्वो बहुवैभवार्थिनः
शृण्वन्ति चैनं नियताश्च ये भृशम्।
तेषां गृहद्वारमलङ्करोति हि
भृङ्गावली कुञ्जरकर्णताडिता॥ ३७
विप्रोऽथ विद्वान् विजयी नृपात्मजो
वैश्यो निधीशो वृषलोऽपि निर्मलः।
श्रुत्वेदमाराच्च मनोरथो भवेत्
स्त्रीणां जनानामतिदुर्लभोऽपि हि॥ ३८
निष्कारणो भक्तियुतो महीतले
शृणोति चेदं हरिलग्नमानसः।
विजित्य विघ्नान् प्रविजित्य नाकपान्
गोलोकधामप्रवरं प्रयाति सः॥ ३९

मुक्तियाँ सुलभ हैं तथा जिसकी गली-गलीमें मुक्ति मिलती है, उस मथुराको इन्हीं विशेषताओंके कारण विद्वान् पुरुष श्रेष्ठतम मानते हैं। यद्यपि संसारमें काशी आदि पुरियाँ भी मोक्षदायिनी हैं, तथापि उन सबमें मथुरा ही धन्य है, जो जन्म, मौञ्जीव्रत, मृत्यु और दाह-संस्कारोंद्वारा मनुष्योंको चार प्रकारकी मुक्ति प्रदान करती है॥ ३२-३३॥

जो सब पुरियोंकी ईश्वरी, व्रजेश्वरी, तीर्थेश्वरी, यज्ञ तथा तपकी निधीश्वरी, मोक्षदायिनी तथा परम धर्म-धुरंधरा है, मधुवनमें उस श्रीकृष्णपुरी मथुराको मैं नमस्कार करता हूँ। वैदेहराजेन्द्र! जो लोग एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णमें चित्त लगाकर संयम और नियमपूर्वक जहाँ-कहीं भी रहते हुए मधुपुरीके इस माहात्म्यको सुनते हैं, वे मथुराकी परिक्रमाके फलको प्राप्त करते हैं—इसमें संशय नहीं है॥ ३४-३५॥

विदेहराज! जो लोग इस मथुराखण्डको सब ओर सुनते, गाते और पढ़ते हैं, उनको यहीं सब प्रकारकी समृद्धि और सिद्धियाँ सदा स्वभावसे ही प्राप्त होती रहती हैं। जो बहुत वैभवकी इच्छा करनेवाले लोग नियमपूर्वक रहकर इस मथुराखण्डका इक्कीस बार श्रवण करते हैं, उनके घर और द्वारको हाथीके कर्णतालोंसे प्रताड़ित भ्रमरावली अलंकृत करती है। इसको पढ़ने और सुननेवाला ब्राह्मण विद्वान् होता है, राजकुमार युद्धमें विजयी होता है, वैश्य निधियोंका स्वामी होता है तथा शूद्र भी शुद्ध—निर्मल हो जाता है। स्त्रियाँ हों या पुरुष—इसे निकटसे सुननेवालोंके अत्यन्त दुर्लभ मनोरथ भी पूर्ण हो जाते हैं। जो बिना किसी कामनाके भगवान्‌में मन लगाकर इस भूतलपर भक्ति-भावसे इस मथुरा-माहात्म्य अथवा मथुरा-खण्डको सुनता है, वह विघ्नोंपर विजय पाकर, स्वर्गलोकके अधिपतियोंको लाँघकर सीधे गोलोक-धाममें चला जाता है॥ ३६—३९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमथुराखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीमथुरामाहात्म्यं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीमथुरामाहात्म्य' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

॥ मथुराखण्ड सम्पूर्ण ॥

श्रीगर्ग-संहिता

[षष्ठ खण्ड]

द्वारकाखण्ड

रुक्मिणीको श्रीराधाजीकी महिमा बताते श्रीकृष्ण

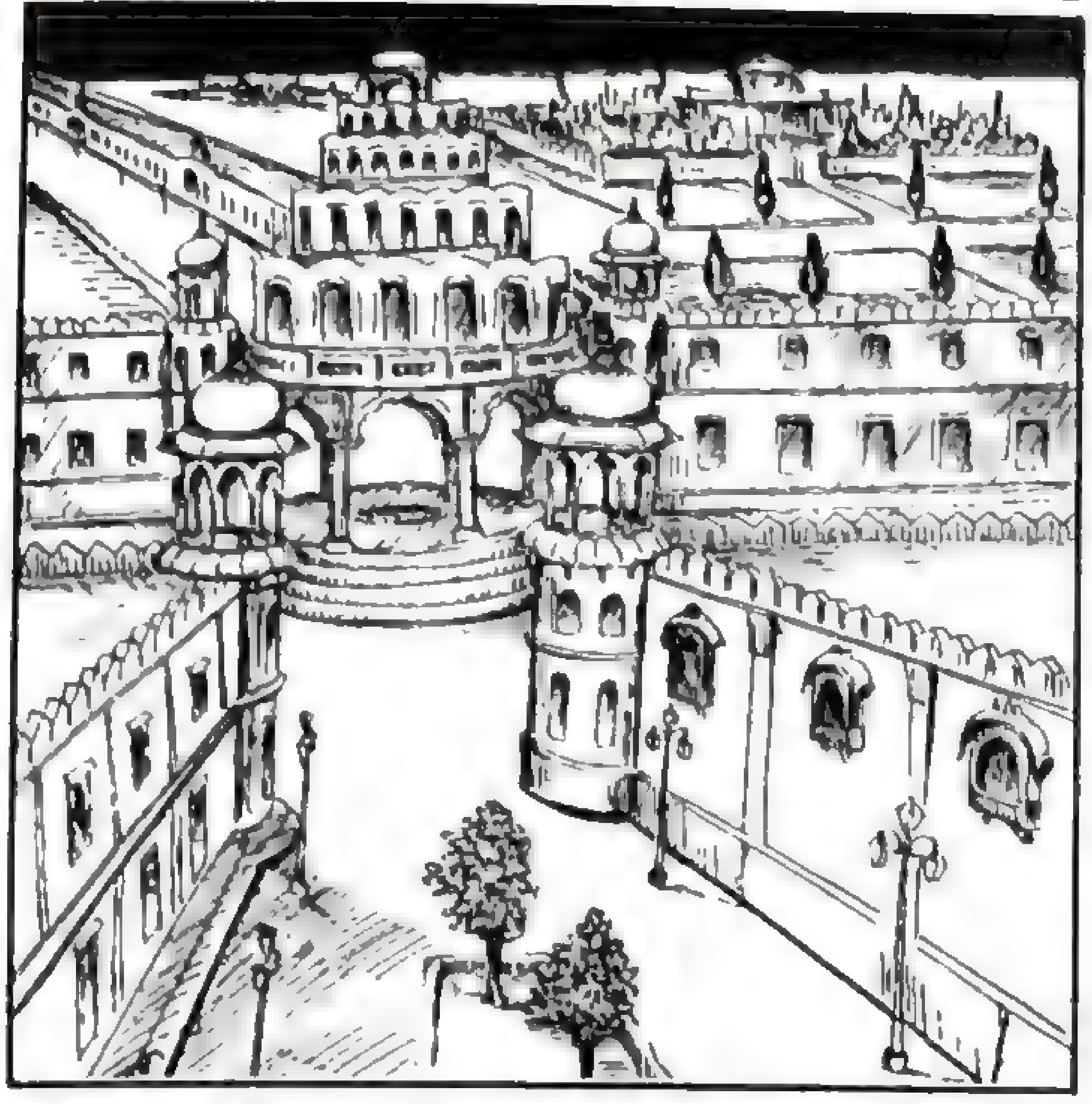

विश्वकर्माजीद्वारा निर्मित द्वारकापुरी [द्वारकाख० अ० २]

मुचुकुन्दकी क्रोधाग्निसे भस्म कालयवन [द्वारकाख० अ० २]

जरासन्धके भयसे भागते कृष्ण-बलराम [द्वारकाख० अ० २]

श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणी-हरण [द्वारकाख० अ० ६]

कृष्णद्वारा सोलह हजार एक सौ कन्याओंका वरण

[द्वारकाख० अ० ८]

श्रीकृष्णका सुदामाकी भेंट स्वीकार करना

[द्वारकाख० अ० २२]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

द्वारकाखण्ड

पहला अध्याय

जरासंधका विशाल सेनाके साथ मथुरापर आक्रमण; श्रीकृष्ण और बलरामद्वारा उसकी सेनाका संहार; मगधराजकी पराजय तथा श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरामें विजयी होकर लौटना

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥ १

बहुलाश्व उवाच

श्रुतं तव मुखाद् ब्रह्मन् मथुराखण्डमद्भुतम्।
वद मां द्वारकाखण्डं श्रीकृष्णचरितामृतम्॥ २

विवाहाः कति पुत्राश्च कति पौत्रा रमापतेः।
सर्वं वद महाबुद्धे द्वारकावासकारणम्॥ ३

श्रीनारद उवाच

अस्तिप्राप्ती महिष्यौ द्वे मृते कंसे महाबले।
जरासन्धगृहं दुःखाज्जग्मतुर्मैथिलेश्वर॥ ४

तन्मुखात्कंसमरणं श्रुत्वा क्रुद्धो जरासुतः।
अयादवीं महीं कर्तुमुद्यतोऽभून्महाबलः॥ ५

अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः।
रम्यां मधुपुरीं राजन्नाययौ बलवान्नृपः॥ ६

भयातुरां पुरीं वीक्ष्य तत्सेनां सिन्धुनादिनीम्।
सभायां भगवान् साक्षाद्बलदेवमुवाच ह॥ ७

सर्वं चास्य बलं राम हन्तव्यं वै न संशयः।
मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम्॥ ८

जो श्रीकृष्ण वसुदेवके पुत्र और देवकीनन्दन होनेके साथ ही नन्दगोपके भी कुमार हैं, उन [सच्चिदानन्दस्वरूप] गोविन्दको बारंबार नमस्कार है॥ १॥

बहुलाश्वने पूछा—ब्रह्मन्! मैंने आपके मुखसे अद्भुत मथुराखण्डकी कथा सुनी। अब मुझे श्रीकृष्ण-चरितामृतसे पूर्ण द्वारकाखण्ड सुनाइये। श्रीरमावल्लभ श्रीकृष्णके कितने विवाह, कितने पुत्र और कितने पौत्र हुए? महामते! उनके मथुराको छोड़कर द्वारकामें निवास करनेका क्या कारण है? ये सब बातें बताइये॥ २-३॥

श्रीनारदजीने कहा—मैथिलेश्वर! महाबली कंसके मारे जानेपर उसकी दो रानियाँ—अस्ति और प्राप्ति बड़े दुःखसे जरासंधके घर गयीं। उनके मुखसे कंसके मरणका वृत्तान्त सुनकर जरापुत्र महाबली जरासंध अत्यन्त कुपित हो इस भूतलको यदुवंशियोंसे शून्य कर देनेके लिये उद्यत हो गया। राजन्! उस बलवान् नरेशने तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर रमणीय मथुरापुरीपर धावा बोल दिया। महासागरके समान गर्जना करनेवाली उसकी सेना और भयसे व्याकुल हुई अपनी नगरीको देखकर साक्षात् भगवान्ने सभामें बलदेवजीसे कहा॥ ४—७॥

'भैया बलरामजी! इस मगधराज जरासंधकी सारी सेनाको तो निस्संदेह नष्ट कर देना चाहिये, किंतु इस मगधनरेशको तो नहीं मारना चाहिये, जिससे यह पुनः सेना जुटाकर ले आनेका उद्योग करे॥ ८॥

जरासन्धनिमित्तेन भारं वै भूभुजां भुवः।
सर्वं चात्र हरिष्यामि करिष्यामि प्रियं सताम्॥ ९

एवं वदति कृष्णे वै वैकुण्ठाच्च रथौ शुभौ।
अभूतामागतौ राजन् सर्वेषां पश्यतां च तौ॥ १०

समारुह्य रथौ सद्यो रामकृष्णौ महाबलौ।
यादवानां बलैः सूक्ष्मैस्त्वरं निर्जग्मतुः पुरात्॥ ११

यादवानां मागधानां पश्यद्भिर्दिविजैर्दिवि।
बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम्॥ १२

अक्षौहिणीभिर्दशभी रथारूढो महाबलः।
श्रीकृष्णस्य पुरः पूर्वं युयुधे मागधेश्वरः॥ १३

पञ्चभिश्चाक्षौहिणीभिर्धार्तराष्ट्रः सुयोधनः।
युयोध यादवैः सार्धं जरासन्धसहायकृत्॥ १४

पञ्चभिश्च तथा राजन् विन्ध्यदेशाधिपो बली।
तिसृभिश्च महायुद्धे वङ्गनाथो महाबलः॥ १५

एवमन्येऽपि राजानो जरासन्धवशानुगाः।
प्राणैः सहायं कुर्वन्तो जरासन्धस्य मैथिल॥ १६

बाणान्धकारे सञ्जाते शत्रुसेनासमाकुले।
टङ्कारं शार्ङ्गधनुषः शार्ङ्गधन्वा चकार ह॥ १७

ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह।
विचेलुर्दिग्गजास्तारा एजद्भूखण्डमण्डलम्॥ १८

तदैव बधिरीभूतं शत्रूणां सैन्यमण्डलम्।
उत्पतन्तो हया युद्धादगजास्तु विमुखास्ततः॥ १९

दुद्राव तद्बलं सर्वं टङ्काराद्भयविह्वलम्।
प्रतीपमेत्य गव्यूतिः पुनस्तत्राजगाम ह॥ २०

एवं शार्ङ्गं समुच्चार्य तडित्पिङ्गस्फुरत्प्रभम्।
बाणौघैश्छादयामास जरासन्धबलं हरिः॥ २१

जरासंधको ही निमित्त बनाकर पृथ्वीके राजाओंके रूपमें स्थित पृथ्वीके सारे भारको यहीं रहकर हर लूँगा और साधु पुरुषोंका प्रिय करूँगा॥ ९॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि वैकुण्ठसे सबके देखते-देखते दो सुन्दर रथ उतर आये। उन रथोंपर तत्काल आरूढ़ हो महाबली बलराम और श्रीकृष्ण यदुवंशियोंकी थोड़ी-सी सेना साथ लेकर तुरंत ही नगरसे बाहर निकले। आकाशमें देवताओंके देखते-देखते भूतलपर यादवों और मागधोंमें अद्‌भुत रोमाञ्चकारी एवं तुमुल युद्ध होने लगा। पहले महाबली मगधराज रथपर आरूढ़ हो दस अक्षौहिणी सेनाके साथ भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकर लड़ने लगा॥ १०—१३॥

धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन जरासंधकी सहायताके लिये पाँच अक्षौहिणी सेनाके साथ आकर यादवोंके साथ युद्ध करने लगा। राजन्! विन्ध्यदेशका बलवान् राजा पाँच अक्षौहिणी सेनाके साथ तथा वङ्गदेशका महाबली नरेश तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उस महायुद्धमें जरासंधकी ओरसे सम्मिलित हुआ। मिथिलेश्वर! इसी तरह दूसरे राजा भी जो जरासंधके वशवर्ती थे, प्राणपणसे उसकी सहायता कर रहे थे॥ १४—१६॥

शत्रुसेनासे व्याप्त आकाशमें बाणोंका अन्धकार फैल जानेपर शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषकी टंकार-ध्वनि प्रारम्भ की। उस टंकारसे सात लोकों और सात पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो उठे, तारे टूटने लगे और सारा भूखण्डमण्डल काँपने लगा। शत्रुओंका सारा सैन्य-मण्डल उसी क्षण बहरा-सा हो गया, घोड़े युद्धमण्डलसे उछलकर भागने लगे तथा हाथियोंने भी अपना मुँह फेर लिया॥ १७—१९॥

जरासंधकी सारी सेना उस टंकारसे भय-विह्वल हो भाग चली और उलटी दिशामें दो कोस जाकर फिर वहाँ आयी। इस प्रकार विद्युत्की पीली प्रभासे युक्त एवं कान्तिमान् शार्ङ्गधनुषकी टंकार फैलाकर श्रीहरिने अपने बाणसमूहोंकी वर्षासे जरासंधकी सारी सेनाको आच्छादित कर दिया॥ २०-२१॥

चूर्णीभूता रथा राजन् बाणौघैः शार्ङ्गधन्वनः।
चूर्णचक्रा निपेतुः कौ हतसूताश्च नायकाः॥ २२

द्विधाभूता गजा बाणैश्चलिता गजिभिः सह।
साश्ववाहास्तथाश्वाश्च बाणैः सञ्छिन्नकन्धराः॥ २३

तथा वीरा महायुद्धे भिन्नोरश्छिन्नमस्तकाः।
विशीर्णकवचाः पेतुर्बाणौघैश्छिन्नसंशयाः॥ २४

अधोमुखा ऊर्ध्वमुखाश्छिन्नदेहा नृपात्मजाः।
रेजू रणाङ्गणे राजन् भाण्डव्यूहा इवाहताः॥ २५

क्षणमात्रेण तद्युद्धे शतक्रोशविलम्बिता।
आपगाभून्महादुर्गा रुधिरस्त्रावसम्भवा॥ २६

द्विपग्राहा चोष्ट्रखरकबन्धाश्वादिकच्छपा।
शिशुमाररथा केशशैवाला भुजसर्पिणी॥ २७

करमीना मौलिरत्नहारकुण्डलशर्करा।
शस्त्रशुक्तिश्छत्रशङ्खा चामरध्वजसैकता॥ २८

रथाङ्गावर्तसंयुक्ता सेनाद्वयतटावृता।
शतयोजनविस्तीर्णा बभौ वैतरणी यथा॥ २९

प्रमथा भैरवा भूता वेताला योगिनीगणाः।
अट्टहासं प्रकुर्वन्तो नृत्यन्तो रणमण्डले॥ ३०

पिबन्तो रुधिरं शश्वत्कपालेन नृपेश्वर।
हरस्य मुण्डमालार्थं जगृहुस्ते शिरांसि च॥ ३१

सिंहारूढा भद्रकाली डाकिनीशतसंवृता।
पिबन्ती रुधिरं चोष्णं साट्टहासं चकार ह॥ ३२

विद्याधर्यश्च स्वर्गस्था गन्धर्व्योऽप्सरसस्तथा।
क्षात्रधर्मस्थितान् वीरान् वव्रिरे देवरूपिणः॥ ३३

राजन्! शार्ङ्गधन्वाके बाणोंसे शत्रुसेनाके रथ चूर-चूर हो गये, पहिये टूक-टूक होकर गिर पड़े तथा रथी और सारथि भी मारे जाकर भूमिपर सदाके लिये सो गये। गजारोहियोंके साथ चलनेवाले हाथी उनके बाणोंसे दो टूक हो गये। सवारोंसहित घोड़े बाणोंद्वारा गर्दन कट जानेसे धराशायी हो गये। इसी प्रकार उस महायुद्धमें वक्षःस्थल और मस्तक छिन्न हो जानेसे पैदल योद्धा धराशायी हो गये। उनके कवचोंकी धज्जियाँ उड़ गयी थीं। वे निस्संदेह कालके गालमें चले गये॥ २२—२४॥

राजन्! जैसे फूटे हुए बर्तन कोई अधोमुख और कोई ऊर्ध्वमुख होकर पड़े दिखायी देते हैं, उसी प्रकार जिनके शरीर कट गये थे, वे राजकुमार उस समराङ्गणमें कोई ऊर्ध्वमुख और कोई अधोमुख होकर पड़े हुए थे। एकही क्षणमें उस युद्धभूमिमें सौ कोस लंबी खूनकी नदी बह चली, जो अत्यन्त दुर्गम थी। हाथी उसमें ग्राहके समान जान पड़ते थे। ऊँटों, घोड़ों, और गदहोंके धड़ आदि कच्छपके समान प्रतीत होते थे। रथ शिशुमारों (सूसों)-का, केश सेवारोंका तथा कटी हुई भुजाएँ सर्पोंका भ्रम उत्पन्न करती थीं॥ २५—२७॥

हाथ मछलियाँ तथा मुकुटोंके रत्न, हार एवं कुण्डल कंकड़-पत्थर जान पड़ते थे। अस्त्र-शस्त्र सीप, छत्र, शङ्ख तथा चामर और ध्वजा बालू प्रतीत होते थे। रथके पहिये भँवरका भ्रम उत्पन्न कर रहे थे और दोनों ओरकी सेनाएँ उस रुधिरसरिताके दोनों तट थीं। इस तरह वह शतयोजन-विस्तृत नदी वैतरणीके समान भयंकर जान पड़ने लगी॥ २८-२९॥

प्रमथ, भैरव, भूत, वेताल और योगिनियाँ अट्टहास करती हुईं रणभूमिमें नाचने लगीं। नृपेश्वर! वे भूत-वेताल आदि खप्परमें ले-लेकर निरन्तर रक्त पी रहे थे और भगवान् शंकरकी मुण्डमाला बनानेके लिये कटे हुए सिरोंका संग्रह कर रहे थे। सैकड़ों डाकिनियोंसे घिरी हुई एवं सिंहपर आरूढ़ भद्रकाली वहाँका गरम-गरम रक्त पीती हुई अट्टहास करने लगी। विद्याधरियाँ, स्वर्गवासिनी गन्धर्व-कन्याएँ तथा अप्सराएँ क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर वीरगति पानेवाले देवरूपधारी वीरोंको अपने पतिके रूपमें वरण कर रही थीं॥ ३०—३३॥

गृहीत्वा तान् कलिरभूत्तासां पत्यर्थमम्बरे।
ममानुरूपा ते नैव इति तद्‌गतचेतसाम्॥ ३४

केचिद्वीरा धर्मपरा रणरङ्गान्न चालिताः।
ययुर्विष्णुपदं दिव्यं भित्त्वा मार्तण्डमण्डलम्॥ ३५

शेषं बलं समाकृष्य बलदेवो हलेन वै।
मुसलेनाहनत् क्रुद्धस्त्रैलोक्यबलधारकः॥ ३६

एवं सैन्ये क्षयं याते जरासन्धस्य सर्वतः।
सुयोधनो विन्ध्यनाथो वङ्गनाथस्तथैव च॥ ३७

सर्वे विदुद्रुवुर्युद्धाद्भयभीता इतस्ततः।
जरासन्धो महावीर्यो नागायुतसमो बले॥ ३८

रथेनागतवान् राजन् बलदेवस्य सम्मुखे।
समाकृष्य हलाग्रेण जरासन्धरथं शुभम्॥ ३९

चूर्णयामास सहसा मुसलेन यदूत्तमः।
जरासन्धोऽपि विरथो हताश्वो हतसारथिः॥ ४०

जग्राह बलिनं दोर्भ्यां सन्त्यक्त्वा शस्त्रसंहतिम्।
तयोर्युद्धमभूद्‌घोरं बाहुभ्यां रणमण्डले॥ ४१

पश्यतां दिवि देवानां नराणां भुवि मैथिल।
उरसा शिरसा चैव बाहुभ्यां पादयोः पृथक्॥ ४२

युयुधाते मल्लयुद्धे सिंहाविव महाबलौ।
तयोश्च युद्ध्यतोः सर्वं क्षुण्णं भूखण्डमण्डलम्॥ ४३

स्थालीव सहसा राजंश्चकम्पे घटिकाद्वयम्।
गृहीत्वा भुजदण्डाभ्यां जरासन्धं यदूत्तमः॥ ४४

भूपृष्ठे पोथयामास कमण्डलुमिवार्भकः।
रामस्तदुपरि स्थित्वा हन्तुं शत्रुं जरासुतम्॥ ४५

जग्राह मुसलं घोरं क्रोधपूरितविग्रहः।
परिपूर्णतमेनाथ श्रीकृष्णेन महात्मना॥ ४६

आकाशमें उन वीरोंको पकड़कर पति बनानेके निमित्त वे आपसमें कलह करने लगीं। वे कहतीं—'ये तो मेरे अनुरूप हैं, तुम्हारे नहीं, अतः मैं ही इनका वरण करूँगी।' इस प्रकार उनमें आसक्त-चित्त हुई सुरबालाएँ परस्पर विवादपर उतर आयी थीं। कुछ धर्मपरायण वीर समराङ्गणसे तनिक भी विचलित न होनेके कारण मार्तण्ड-मण्डलका भेदन करके सीधे भगवान् विष्णुके दिव्यधाममें चले गये॥ ३४-३५॥

शेष सेनाको त्रिलोकीका बल धारण करनेवाले बलदेवजी कुपित हो हलसे खींचकर मुसलसे मारने लगे। इस प्रकार जरासंधकी सेनाका सब ओरसे संहार हो जानेपर दुर्योधन, विन्ध्यराज तथा वङ्गनरेश—सब भयभीत हो रणभूमिसे इधर-उधर भाग गये॥ ३६—३७१/२॥

राजन्! तब दस हजार हाथियोंके समान बलशाली महापराक्रमी जरासंध रथपर आरूढ़ हो बलदेवजीके सामने आया। यदुश्रेष्ठ बलरामने जरासंधके सुन्दर रथको हलाग्रभागसे खींचकर मुसलकी चोटसे चूर्ण कर डाला। घोड़े और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए जरासंधने सारे शस्त्रसमूहको त्यागकर बलदेवको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया। फिर उन दोनोंमें रणभूमिके भीतर घोर युद्ध होने लगा॥ ३८—४१॥

मैथिल! आकाशमें खड़े देवताओं तथा भूतलपर विद्यमान मनुष्योंके देखते-देखते वे दोनों महाबली वीर मल्लयुद्धमें दो सिंहोंके समान जूझने लगे। वे छातीसे, मस्तकसे, भुजाओंसे चोट करते हुए पृथक्-पृथक् पैरोंको पकड़कर एक-दूसरेको गिरानेकी चेष्टा करते थे। उन दोनोंके युद्धसे वहाँका सारा भूखण्डमण्डल खुदकर गड्ढेके समान हो गया॥ ४२-४३॥

राजन्! उस समय भूमि सहसा बटलोईकी तरह दो घड़ीतक काँपती रही। तब यदुश्रेष्ठ बलरामने अपने बाहुदण्डोंसे जरासंधको पकड़कर इस प्रकार पृथ्वीपर दे मारा, मानो किसी बालकने कमण्डलु पटक दिया हो। बलरामने जरासंधके ऊपर चढ़कर उस जरापुत्र शत्रुको मार डालनेके लिये क्रोधसे भरकर घोर मुसल हाथमें लिया। यह देख परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णने उन्हें तत्काल रोक दिया। तब

निवारितस्तदैवाशु तं मुमोच यदूत्तमः।
तपसे कृतसङ्कल्पो व्रीडितोऽपि जरासुतः॥ ४७

निवारितो मन्त्रिमुख्यैर्मागधान् मागधो ययौ।
इत्थं जित्वा जरासन्धं माधवो मधुसूदनः॥ ४८

आयोधनगतं वित्तं सर्वं नीत्वा सुखावहम्।
यादवानग्रतः कृत्वा बलदेवसमन्वितः॥ ४९

उपगीयमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः।
शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण भूयसा॥ ५०

विवेश मथुरां साक्षात्परिपूर्णतमः स्वयम्॥ ५१

समर्चितो मङ्गललाजपुष्पैः
पश्यन् पुरीं मङ्गलकुम्भयुक्ताम्।
पीताम्बरः श्यामतनुः शुभाङ्गः
स्फुरत्किरीटाङ्गदकुण्डलप्रभः ॥ ५२

शार्ङ्गादिशस्त्रास्त्रधरो हसन्मुख-
स्तालाङ्कयुक्तो गरुडध्वजः स्वयम्।
उद्यद्विलोलाश्वरथः सुरार्चितः
समेत्य राजानमसौ बलिं ददौ॥ ५३

यदुकुल-तिलक बलरामने उसे छोड़ दिया। जरासंधने लज्जित होकर तपस्याके लिये जानेका विचार किया, परंतु अपने मुख्य मन्त्रियोंके मना करनेपर मगधराज तपस्याके लिये न जाकर मगधदेशको ही लौट गया। इस प्रकार मधुसूदन माधवने जरासंधपर विजय पायी॥ ४४—४८॥

युद्धमें जो कुछ भी धन-वित्त हाथ लगा, वह सब सुखावह वैभव साथ लेकर, यादवोंको आगे करके, बलदेवसहित परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण सूतों, मागधों और वन्दीजनोंके मुखसे विजय-गान सुनते हुए, शङ्खध्वनि, दुन्दुभिनाद तथा वेद-मन्त्रोंके भारी घोषके साथ मथुरापुरीमें प्रविष्ट हुए॥ ४९—५१॥

मार्गमें माङ्गलिक वस्तुओं, खीलों और फूलोंसे उनकी पूजा होती थी। प्रत्येक द्वारपर मङ्गल-कलशसे सुशोभित पुरीकी शोभा देखते हुए पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर-विग्रह, शुभाङ्ग-शोभित, चमकीले किरीट, अङ्गद और कुण्डलोंसे उद्भासित, शार्ङ्ग आदि अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करनेवाले भगवान् गरुडध्वज, तालध्वज बलरामके साथ, मुखसे मन्दहासकी छटा बिखेरते हुए राजा उग्रसेनके पास जा, उन्हें सारी धन-सामग्री भेंट की। उस समय चञ्चल घोड़ोंसे जुता हुआ उनका रथ उद्दीप्त हो रहा था तथा देवगण उनकी पूजा-प्रशंसा कर रहे थे॥ ५२-५३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे जरासन्धपराजयो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीद्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'जरासंध-पराजय' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

मथुरापर जरासंध और कालयवनका आक्रमण; भगवान्‌का युद्ध छोड़कर एक गुफामें जाना और वहाँ गये हुए कालयवनको मुचुकुन्दके दृष्टिपातसे दग्ध कराना; मुचुकुन्दको वर देकर बदरिकाश्रमकी ओर भेजना और स्वयं म्लेच्छ-सेनाका संहार करके जरासंधके सामनेसे भागकर श्रीकृष्ण-बलरामका प्रवर्षणगिरि होते हुए द्वारका पहुँचना और जरासंधका उस पर्वतको जलाकर मगधको लौट जाना

श्रीनारद उवाच

पुनस्तत्र जरासन्धस्तावेत्याक्षौहिणीबलः।
युयुधे यदुभिः शीघ्रं पुनः कृष्णपराजितः॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! जरासंध पुनः उतनी ही अक्षौहिणी सेना लेकर शीघ्र ही यादवोंके साथ युद्धके लिये आ गया; किंतु श्रीकृष्णसे वह फिर पराजित हो गया॥ १॥

श्रीकृष्णतेजसा सर्वे यादवा वृद्धिमागताः।
धनुर्गजादिभिः शश्वत्प्राप्तलुण्ठनसाहसाः॥ २

प्राप्ते च साहसे राजन् विना युद्धं पुरैव हि।
अर्भका जलहारिण्यश्चक्रुः शत्र्वपहारणम्॥ ३

शत्रुद्रव्यं च संहर्तुं वीक्षन्तः क्रीतवाससः।
नागरा माथुराः सर्वे परं हर्षमुपागताः॥ ४

एवं सप्तदशकृत्वा क्षीणसैन्यो जरासुतः।
अष्टादशमसङ्ग्रामे आगन्तुं च मनोऽकरोत्॥ ५

मया प्रणोदितः कालयवनो वै महाबलः।
रुरोध मथुरां क्रुद्धो म्लेच्छकोटिसमावृतः॥ ६

म्लेच्छानां च बलं वीक्ष्य स्वपुरं भयविह्वलम्।
भयं चोभयतः प्राप्तं रामेणाचिन्तयद्धरिः॥ ७

स्वज्ञातिबन्धुरक्षार्थं समुद्रे भीमनादिनि।
चकार द्वारकादुर्गमेकरात्रेण माधवः॥ ८

यत्राष्टदिक्पालसिद्धिर्विश्वकर्मविनिर्मिता।
सर्वा वैकुण्ठसम्पत्तिर्दृश्यते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥ ९

हरिः सर्वजनं तत्र नीत्वा योगेन मैथिल।
पुराद् राममनुज्ञाप्य निर्गतोऽभून्निरायुधः॥ १०

निरायुधं हरिं ज्ञात्वा मयोक्तैर्लक्षणैः खलः।
निरायुधः स तं योद्धुं पदातिः स्वयमागतः॥ ११

पराङ्मुखं प्राद्रवन्तं दुरापं योगिनामपि।
जिघृक्षुस्तं चान्वधावत्सैनिकानां प्रपश्यताम्॥ १२

हस्तप्राप्तं वपुस्तस्मै दर्शयन्निव माधवः।
दूरं गतः श्यामलाद्रेः प्राविशत्कन्दरं त्वरम्॥ १३

श्रीकृष्णके प्रभावसे समस्त यादव अभ्युदयको प्राप्त हुए। उन्हें धनुष और हाथी आदिके बलसे सदा शत्रुओंको लूटनेका साहस हो गया॥ २॥

राजन्! जब साहस प्राप्त हो गया, तब बालक और पनिहारिनें भी बिना युद्धके ही शत्रुओंकी सम्पत्तिका अपहरण करने लगीं। शत्रुओंके द्रव्यके अपहरणका अवसर देखते हुए मथुराके वस्त्रक्रेता समस्त नागरिक बड़े हर्षको प्राप्त हुए। इस प्रकार सत्रह बार अपनी सेनाका संहार कराकर जरासंध परास्त हुआ। तदनन्तर अठारहवीं बार भी उसने संग्राममें आनेका विचार किया॥ ३—५॥

इसी समय मेरी प्रेरणासे महाबली कालयवनने एक करोड़ म्लेच्छोंकी सेनाको साथ लेकर क्रोधपूर्वक मथुरापर घेरा डाल दिया। म्लेच्छोंकी सेना देखकर, अपने नगरको भयविह्वल जान, दोनों ओरसे आनेवाले भयका विचार करके श्रीकृष्ण बलरामके साथ चिन्तित हो गये॥ ६-७॥

अपने सजातीय बन्धुओंकी रक्षाके लिये माधवने भयंकर गर्जना करनेवाले समुद्रके भीतर एकही रातमें द्वारका-दुर्गका निर्माण कराया, जहाँ विश्वकर्माने आठों दिक्पालोंकी सिद्धियाँ निर्मित कीं तथा मोक्षको इच्छा रखनेवाले साधकोंको जहाँ वैकुण्ठकी सारी सम्पत्तिका दर्शन होता है। मिथिलेश्वर! श्रीहरि योगशक्तिसे समस्त आत्मीयजनोंको द्वारकादुर्गमें पहुँचाकर, बलरामजीकी आज्ञा ले मथुरा नगरसे बिना अस्त्र-शस्त्रके ही निकले॥ ८—१०॥

मैंने जो पहचान बतायी थी, उसके अनुसार उस दुष्ट कालयवनने श्रीहरिको पहचान लिया और उन्हें बिना अस्त्र-शस्त्रके देखकर स्वयं भी आयुध त्यागकर उनसे युद्ध करनेके लिये पैदल ही आया। वे युद्धसे विमुख होकर भागने लगे। जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ हैं, उन्हीं श्रीहरिको पकड़नेके लिये वह अपने सैनिकोंके देखते-देखते उनका पीछा करने लगा। माधव अपने शरीरको एक ही हाथ आगे दिखाते हुए भागते-भागते दूर चले गये और शीघ्र ही श्यामलाचलकी कन्दरामें घुस गये॥ ११—१३॥

मुचुकुन्दो यत्र चास्ते मान्धातृतनयो महान्।
असुरेभ्यः पुरा रक्षां देवानां यश्चकार ह॥ १४

अहर्निशं न सुष्वाप देवसेनापरो नृप।
तमूचुर्देवताः सर्वाः प्रसन्ना राजसत्तमम्॥ १५

वरं वरय भो राजन् यत्ते मनसि वर्तते।
नत्वा तान् प्राह राजेन्द्रः करोमि शयनं परम्॥ १६

शयनान्ते हरेः साक्षाद्दर्शनं मे भवत्वलम्।
यो मध्ये बोधयेन्मां वै शयानं त्वप्यचेतनम्॥ १७

स मया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात्।
तथा स चोक्तः सुष्वाप राजा कृतयुगे पुरा॥ १८

तत्र प्रविष्टो यवनो मत्वा पीताम्बरं च तम्।
तताड यवनः क्रुद्धः पादेनाशु महाखलः॥ १९

मुचुकुन्दः समुत्थाय शनैरुन्मील्य सोऽक्षिणी।
आशाः प्रपश्यंस्तं पार्श्वे स्थितं कालं ददर्श ह॥ २०

स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन मैथिल।
देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात्॥ २१

भस्मीभूते च यवने परिपूर्णतमः स्वयम्।
स्वरूपं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते॥ २२

कोटिसूर्यप्रतीकाशे ज्योतिषां मण्डले प्रभुम्।
स्थितं स्फुरत्किरीटार्ककुण्डलाङ्गदनूपुरम्॥ २३

श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्माक्षं वनमालिनम्।
कोटिकन्दर्पलावण्यं कालमेघसमप्रभम्॥ २४

मान्धाताके बड़े पुत्र मुचुकुन्द उस गुहामें शयन करते थे। उन्होंने पूर्वकालमें असुरोंसे देवताओंकी रक्षा की थी। नरेश्वर! उस समय देवसेनाकी रक्षामें तत्पर रहनेके कारण वे दिन-रात सो नहीं पा रहे थे। कार्य सिद्ध हो जानेपर सब देवताओंने प्रसन्न होकर उन नृपश्रेष्ठसे कहा— ॥ १४-१५ ॥

'राजन्! तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, उसको वरदानके रूपमें माँग लो।' तब राजेन्द्र मुचुकुन्दने देवताओंको प्रणाम करके उनसे कहा—'मैं अच्छी तरह सोना चाहता हूँ। सोकर उठनेपर मुझे साक्षात् श्रीहरिका दर्शन हो। जो पुरुष सोये हुए मुझ अचेतनको बीचमें जगा दे, वह मेरी दृष्टि पड़ते ही तत्काल भस्म हो जाय।' देवताओंने 'तथास्तु' कहकर उन्हें उनका अभिलषित वर दे दिया। तब राजा मुचुकुन्दने पूर्व-कालके सत्ययुगमें शयन किया॥ १६—१८ ॥

भगवान्‌के पीछे-पीछे कालयवनने भी उस गुफामें प्रवेश किया और मुचुकुन्दको पीताम्बर ओढ़कर सोया हुआ श्रीकृष्ण ही समझकर क्रोधसे भरे हुए उस महादुष्ट यवनने तुरंत ही उनके ऊपर लातसे प्रहार किया। मुचुकुन्द सहसा उठ बैठे और उन्होंने धीरे-धीरे आँखें खोलकर चारों ओर दृष्टिपात किया। उस समय कालयवन उन्हें पास ही खड़ा दिखायी दिया। मैथिल! रोषसे भरे हुए नरेशकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन अपने ही देहसे उत्पन्न आगकी ज्वालासे उसी क्षण जलकर भस्म हो गया॥ १९—२१ ॥

यवनके भस्मीभूत हो जानेपर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान्‌ने बुद्धिमान् मुचुकुन्दको अपने स्वरूपका दर्शन कराया। करोड़ों सूर्योंके समान जाज्वल्यमान ज्योतिर्मण्डलमय भगवान् खड़े थे। उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल, बाँहोंमें अङ्गद और पैरोंमें नूपुर उद्दीप्त हो रहे थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। वे चार भुजाओंसे सम्पन्न थे। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान विशाल थे और उनकी ग्रीवामें वनमाला लटक रही थी। वे अपने लावण्यसे करोड़ों कामदेवोंको लज्जित कर रहे थे। उनकी कान्ति काले मेघके समान श्याम थी॥ २२—२४ ॥

दृष्ट्वा राजा हर्षितोऽपि समुत्थाय कृताञ्जलिः।
परिपूर्णतमं ज्ञात्वा भक्त्या तं प्रणनाम ह॥ २५

उन्हें देखकर राजा हर्षसे उल्लसित हो उठकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उन्हें परिपूर्णतम भगवान् जानकर भक्तिभावसे प्रणाम किया॥ २५॥

मुचुकुन्द उवाच

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥ २६

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये॥ २७

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥ २८

मुचुकुन्दने कहा—जो कृष्ण वसुदेवपुत्र और देवकीनन्दन होते हुए भी श्रीनन्दगोपके कुमार हैं, उन सच्चिदानन्दस्वरूप गोविन्दको बारंबार नमस्कार है। जिनकी नाभिसे ब्रह्माण्ड-कमलकी उत्पत्ति हुई है, जो कमलकी मालासे अलंकृत हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं तथा चरण भी अपनी शोभासे कमलोंको तिरस्कृत करते हैं, उन भगवान्को बारंबार नमस्कार है। शुद्ध-बुद्ध परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार है। प्रणतजनोंके क्लेशका नाश करनेवाले गोविन्दको बारंबार नमस्कार है॥ २६—२८॥

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥ २९

हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ
तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी।
इति त्वं च मत्वा जगन्नाथ देव
यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम्॥ ३०

जिनकी सहस्रों मूर्तियाँ हैं, जो सहस्रों चरण, नेत्र, मस्तक, उरु और भुजा धारण करनेवाले हैं, जिनके सहस्रों नाम हैं तथा जो सहस्र कोटि युगोंको धारण करते हैं, उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। हरे! इस भूतलपर मेरे समान कोई पातकी नहीं है और आपके समान पापहारी भी दूसरा कोई नहीं है—यह जानकर जगन्नाथ! देव! आपकी जैसी इच्छा हो, वैसी ही कृपा मेरे ऊपर कीजिये॥ २९-३०॥

श्रीनारद उवाच

एवं स्तुतो हरिः साक्षात्परमानन्दविग्रहः।
ज्ञात्वा तं निर्गुणं भक्तं प्राह गम्भीरया गिरा॥ ३१

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मुचुकुन्दके इस प्रकार स्तुति करनेपर साक्षात् परमानन्दस्वरूप श्रीहरिने उन्हें निर्गुण भक्त जानकर गम्भीर वाणीमें कहा—॥ ३१॥

श्रीभगवानुवाच

धन्यस्त्वं राजशार्दूल धन्या ते विमला मतिः।
नैरपेक्ष्येण दिव्येन भक्तिभावेन पूरिता॥ ३२

अद्यैव गच्छ मद्धाम बदर्याख्यं मदाश्रयः।
तत्रैव तु तपस्तप्त्वा भूत्वा ब्राह्मणपुङ्गवः॥ ३३

प्रेमलक्षणया भक्त्या मद्धाम प्रकृतेः परम्।
प्राप्स्यसि त्वं महाराज यतो नावर्तते गतः॥ ३४

श्रीभगवान् बोले—राजसिंह! तुम धन्य हो तथा निरपेक्ष दिव्य भक्तिभावसे भरी हुई तुम्हारी विमल बुद्धि भी धन्य है। तुम आज ही मेरे धाम बदरिकाश्रमको चले जाओ। वहीं मेरा आश्रय लेकर तपस्या करके दूसरे जन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण होओगे। महाराज! ब्राह्मण-शरीरसे प्रेमलक्षणा-भक्ति करके तुम प्रकृतिसे परे मेरे दिव्य धाममें पहुँच जाओगे, जहाँसे फिर यहाँ लौटना नहीं होता है॥ ३२—३४॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं स्तुत्वा हरिं नत्वा परिक्रम्य नताननः।
निश्चक्राम गुहादुर्गाच्छ्रीकृष्णप्रेमविह्वलः॥ ३५

द्वापरे क्षुल्लका मर्त्यास्तालवृक्षशतोच्छ्रितम्।
दृष्ट्वा तं दुद्रुवुर्मार्गे भयभीता इतस्ततः॥ ३६

मा भैष्टेत्यभयं यच्छञ्जगाम दिशमुत्तराम्।
एवं दत्वा वरं तस्मै मुचुकुन्दाय धीमते॥ ३७

भगवान् पुनराव्रज्य मथुरां म्लेच्छवेष्टिताम्।
हत्वा म्लेच्छबलं सर्वं तद्धनान्यच्छिनद् बलात्॥ ३८

अथ राजा जरासन्धो योद्धुमभ्युदितः पुनः।
आहूय मागधान् विप्रान् मुहूर्तादेशकारिणः॥ ३९

प्राहेदं वासुदेवाख्यं जित्वा यद्यागतो ह्यहम्।
सर्वान् सम्पूजयिष्यामि सदा युष्मत्पदाश्रये॥ ४०

कारागारेषु तावद्वै स्थिता भवत भो द्विजाः।
पराजितोऽहं वा युष्मान् हनिष्यामि न संशयः॥ ४१

एवमुक्त्वा द्विजान् राजा जरासन्धो महाबलः।
आजगामाशु मथुरां त्रयोविंशत्यनीकपः॥ ४२

ब्रह्मवाक्यमृतं कर्तुं स्वप्रतिज्ञां विहाय च।
मनुष्यचेष्टामापन्नौ स्वपुराद्भीतभीतवत्॥ ४३

रामकृष्णौ परौ देवौ पद्भ्यां दुद्रुवतुर्द्रुतम्।
पलायमानौ तौ वीक्ष्य मागधः प्रहसन् भृशम्॥ ४४

अन्वधावद्रथानीकैर्ब्रह्मवाक्यमनुस्मरन्।
दक्षिणाशां गतावित्थं प्रवर्षणगिरौ हरी॥ ४५

यस्मिन्निलीनौ ज्ञात्वा तावेधोभिस्तं ददाह ह।
भस्मीभूते वने जाते दह्यमानतटाद् गिरेः॥ ४६

दशैकयोजनोत्तुङ्गात्समुत्पत्य सुरेश्वरौ।
अलक्ष्यमाणावरिभिर्द्वारकायां निपेततुः॥ ४७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीहरिकी आज्ञा पाकर, पुनः उनकी स्तुति, वन्दना और परिक्रमा करके, नतमस्तक एवं श्रीकृष्णप्रेमसे विह्वल हुए मुचुकुन्द उस गुहादुर्गसे बाहर निकले। द्वापरमें छोटी आकृतिवाले मनुष्य सौ ताड़ वृक्षोंके समान ऊँचे राजा मुचुकुन्दको देखकर मार्गमें भयभीत हो इधर-उधर भागने लगते थे। 'मत डरो! मत डरो!' इस प्रकार अभयदान देते हुए मुचुकुन्द उत्तर दिशाको चले गये। इस तरह उन बुद्धिमान् मुचुकुन्दको वरदान देकर भगवान् पुनः म्लेच्छोंसे घिरी हुई मथुरामें आये और सारी म्लेच्छसेनाका संहार करके बलपूर्वक उसका धन छीन लिया॥ ३५—३८॥

तदनन्तर राजा जरासंधने पुनः युद्ध करनेका विचार मनमें लेकर मुहूर्त बतानेवाले मागध ब्राह्मणोंको बुलवाया और कहा—'यदि मैं वासुदेवको जीतकर लौटूँगा तो तुम्हारे अधीन रहकर सदा तुमलोगोंकी पूजा करूँगा। तबतक हे ब्राह्मणो! तुमलोग मेरे कारागारमें ठहरो। यदि मैं पराजित हुआ तो तुम सबको मार डालूँगा, इसमें संशय नहीं है'॥ ३९—४१॥

ब्राह्मणोंसे यों कहकर महाबली राजा जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर शीघ्र मथुरामें आया। मागध ब्राह्मणोंकी बात सत्य करनेके लिये भगवान्ने अपनी टेक छोड़ दी और मनुष्यकी-सी चेष्टाको अपनाकर अपने नगरसे भयभीतकी भाँति परमदेव बलराम और श्रीकृष्ण पैदल ही बड़े जोरसे भागे। उन्हें भागते देख मगधराज अट्टहास करने लगा॥ ४२—४४॥

वह ब्राह्मणोंके वचनोंका अनुस्मरण करके रथसेनाके साथ उनका पीछा करने लगा। वे दोनों भाई श्रीहरि दक्षिण दिशाकी ओर जाते हुए प्रवर्षणगिरिपर पहुँच गये। उन दोनोंको उस पर्वतपर ही छिपे जान जरासंधने लकड़ी जलाकर वहाँके जंगलमें आग लगा दी। प्रवर्षणगिरिके समस्त वनके भस्मीभूत हो जानेपर उस जलते हुए पर्वतके ग्यारह योजन ऊँचे शिखरसे कूदकर वे दोनों देवेश्वर शत्रुओंसे अलक्षित रहकर द्वारकामें जा पहुँचे॥ ४५—४७॥

सोऽपि दग्धौ च तौ मत्वा मागधेन्द्रो महाबलः।
मागधान् प्रययौ वीरो वादयञ्जयदुन्दुभीन्॥ ४८

ब्राह्मणान् पूजयामास भक्त्या परमया नृप।
यस्य विप्रः सहायोऽस्ति कुतस्तस्य पराजयः॥ ४९

महाबली वीर मगधराज उन दोनोंको दग्ध हुआ जान अपनी विजयके नगारे बजवाता हुआ मगधदेशको लौट गया। नरेश्वर! उसने बड़ी भक्तिसे ब्राह्मणोंका पूजन किया और कहा—'ब्राह्मण जिसका सहायक है, उसकी पराजय कैसे हो सकती है!'॥ ४८-४९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे द्वारकावासकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीद्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्वारकावास-कथन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

बलदेवजीका रेवतीके साथ विवाह

श्रीनारद उवाच

इत्थं मया ते कथितं द्वारकावासकारणम्।
विवाहादिकथाः सर्वा वदिष्यामि परेशयोः॥ १

पूर्वं श्रीबलदेवस्य विवाहं शृणु मैथिल।
सर्वपापहरं पुण्यमायुर्वर्धनमुत्तमम्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान्‌के द्वारकामें निवासका कारण बताया। अब उन परमेश्वर-बन्धुओंके विवाह आदिके सारे वृत्तान्त सुनाऊँगा। मिथिलेश्वर! तुम पहले बलदेवजीके विवाहका वृत्तान्त सुनो, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला तथा आयुकी वृद्धि करनेवाला उत्तम साधन है॥ १-२॥

आनर्तो नाम राजाभूत्सूर्यवंशे महामनाः।
यन्नाम्नानर्तदेशः स्यात्समुद्रे भीमनादिनि॥ ३

रैवतो नाम तत्पुत्रश्चक्रवर्ती गुणाकरः।
राज्यं चकार स पुरीं विनिर्माय कुशस्थलीम्॥ ४

तस्य पुत्रशतं चासीद्रेवतीनाम कन्यका।
सर्वोत्तमं चिरञ्जीवं सुन्दरं वरमिच्छती॥ ५

सूर्यवंशमें महामनस्वी राजा आनर्त हुए, जिनके नामसे भयंकर गर्जना करनेवाले समुद्रके तटपर आनर्तदेश बसा हुआ था। राजा आनर्तके एक रैवत नामका पुत्र हुआ, जो गुणोंकी खान तथा चक्रवर्ती राजाके लक्षणोंसे सम्पन्न था। उसने कुशस्थलीपुरीका निर्माण करके वहीं रहकर राज्यशासन किया। रैवतके सौ पुत्र थे और रेवती नामवाली एक कन्या। वह सर्वोत्तम चिरंजीवी तथा सुन्दर वर पानेकी इच्छा रखती थी॥ ३—५॥

एकदा रथमास्थाय हेमरत्नविभूषितम्।
आरोप्य स्वां दुहितरं रैवतः पर्यटन् भुवम्॥ ६

प्राप्तो योगबलेनापि ब्रह्मलोकं शुभावहम्।
कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्माणं प्रणनाम ह॥ ७

एक दिन स्वर्णरत्नविभूषित रथपर आरूढ़ हो अपनी पुत्रीको भी उसीपर बिठाकर राजा रैवत भूमण्डलकी परिक्रमा करने लगे। [इस यात्राका उद्देश्य था—पुत्रीके लिये योग्य वरकी खोज।] अन्ततोगत्वा राजाने अपनी पुत्रीके लिये वरकी जिज्ञासाके निमित्त योगबलसे मङ्गलकारी ब्रह्मलोकमें पदार्पण किया और वहाँ ब्रह्माजीके चरणोंमें शीश झुकाया॥ ६-७॥

गायन्त्यां पूर्वचित्त्यां च स्थितो लब्धक्षणः क्षणम्।
एकचित्तं विधिं ज्ञात्वा स्वाभिप्रायं न्यवेदयत्॥ ८

उस समय ब्रह्माजीकी सभामें पूर्वचित्ति नामकी अप्सराका गान हो रहा था, इसलिये वे एक क्षणतक चुपचाप बैठे रहे। तदनन्तर ब्रह्माजीको एकचित्त हुआ जानकर उनसे अपना अभिप्राय निवेदित किया— ॥ ८ ॥

रैवत उवाच

परः पुराणो जगदङ्कुरोऽभूः
पूर्णः परात्मा परमेश्वरोऽसि।
स्थितः सदा धामनि पारमेष्ठ्ये
सृजस्यलं पासि च हिंससीदम्॥ ९

वेदा मुखं धर्म उरस्तथैव
पृष्ठं ह्यधर्मश्च मनुर्मनीषा।
अङ्गानि देवा असुराश्च पादाः
सर्वा सृतिर्देव तनुस्तव स्यात्॥ १०

रैवत बोले—प्रभो! आप परम पुराणपुरुष हैं। आपसे ही इस विश्वरूपी वृक्षका अंकुर उत्पन्न हुआ है। आप पूर्ण परमात्मा परमेश्वर हैं और अपने पारमेष्ठ्य धाममें सदा स्थित रहकर इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार किया करते हैं। देव! वेद आपके मुख हैं, धर्म हृदय है, अधर्म पृष्ठभाग है, मनु बुद्धि हैं, देवता अङ्ग हैं, असुर पैर हैं और सारा संसार आपका शरीर है॥ ९-१० ॥

करोषि हस्तामलकं च विश्वं
नेतुं प्रभुः सारथिवद्गुणेषु।
एकस्त्वमेकं च विधाय जालं
ग्रसिष्यसे सर्वमिवोर्णनाभिः॥ ११

महेन्द्रधिष्ण्यं तव वश्यमस्ति
किं सार्वभौमं किमु योगसिद्धिः।
यः पारमेष्ठ्यं च सदास्थितोऽसि
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने॥ १२

आप सम्पूर्ण विश्वको अपने हाथपर रखे हुए आँवलेकी भाँति प्रत्यक्ष देखते हैं और जैसे सारथि रथको अभीष्ट मार्गमें ले जाता है, उसी प्रकार आप संसाररूपी रथको तीनों गुणों अथवा त्रिगुणात्मक विषयोंकी ओर ले जानेमें समर्थ हैं। आप एकमात्र अद्वितीय हैं तथा जैसे मकड़ी अपने स्वरूपसे ही एक जाला उत्पन्न करती और फिर उसे ग्रस लेती है, उसी प्रकार आप जगत्‌रूपी एक जाल बुन रहे हैं और समय आनेपर फिर इसे अपने-आपमें विलीन कर लेंगे। महेन्द्रका निवासस्थान—स्वर्गलोक आपके वशमें है; फिर सार्वभौम राज्य और योगसिद्धि आपके अधीन हों, इसके लिये तो कहना ही क्या है! आप सदा पारमेष्ठ्य पद—ब्रह्मधाममें स्थित हैं। ऐसे अनन्तगुणशाली आप भूमा (महान् एवं सर्वव्यापी) पुरुषको नमस्कार है॥ ११-१२ ॥

भवान् स्वयम्भूर्जगतां पितामहो
विधे सुरज्येष्ठ इति प्रभावतः।
अस्या वरं सर्वगुणं चिरायुषं
वदाशु मां दिव्यमशेषदर्शनः॥ १३

विधे! आप स्वयम्भू (स्वयं प्रकट हुए) हैं, तीनों लोकोंके पितामह (पिताके भी पिता) हैं। अपने इसी प्रभावके कारण आपको 'सुरज्येष्ठ' कहा जाता है। आप सर्वदर्शी हैं, अतः मेरी इस पुत्रीके लिये आप शीघ्र ही मुझे कोई दिव्य, सर्वगुणसम्पन्न तथा चिरंजीवी वर बताइये॥ १३ ॥

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो ब्रह्मा स्वयम्भूः सर्वदर्शनः।
रैवतं प्राह राजानं प्रहसन्निव मैथिल॥ १४

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिल! यह सुनकर सर्वदर्शी भगवान् स्वयम्भू ब्रह्माने राजा रैवतसे हँसते हुए-से कहा॥१४॥

श्रीब्रह्मोवाच

अत्र क्षणेन हे राजन् भुवि कालो महाबली।
त्वरं व्यतीतस्त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः॥ १५

श्रीब्रह्माजी बोले—राजन्! इस क्षणतक पृथ्वीपर महाबली काल बड़ी तेजीके साथ बीत चुका है। सत्ताईस चतुर्युगियाँ समाप्त हो चुकी हैं॥ १५ ॥

न सन्ति मर्त्यलोके त्वत्पुत्राः पौत्राः सबान्धवाः।
तत्पुत्रपौत्रनप्तृणां गोत्राणि च न शृण्महे॥ १६

तद्गच्छ सर्वमुख्याय नररत्नाय शाश्वते।
कन्यारत्नमिदं राजन् बलदेवाय देहि भोः॥ १७

परिपूर्णतमौ साक्षाद्गोलोकाधिपती प्रभू।
भुवो भारावतारायावतीर्णौ बलकेशवौ॥ १८

असंख्यब्रह्माण्डपती वसुदेवात्मजौ हरी।
द्वारकायां विराजेते यदुभिर्भक्तवत्सलौ॥ १९

मर्त्यलोकमें तुम्हारे पुत्र, पौत्र और उनके भाई-बन्धु नहीं रह गये हैं। उनके पुत्रोंके भी पोते-नातियोंके गोत्रतक अब नहीं सुनायी देते हैं॥ १६॥

अतः राजन्! शीघ्र जाओ और सर्वश्रेष्ठ नररत्न सनातन पुरुष बलदेवजीको यह कन्यारत्न समर्पित करो। साक्षात् गोलोकके अधिपति परिपूर्णतम प्रभु बलराम और केशव भूमिका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति होते हुए भी वे दोनों भक्तवत्सल हरि वसुदेवनन्दन होकर द्वारकामें यदुवंशियोंके साथ विराज रहे हैं॥ १७—१९॥

श्रीनारद उवाच

अथ श्रुत्वा विधिं नत्वा रैवतो नृपसत्तमः।
आययौ द्वारकां भूयः समृद्धां तां समृद्धिभिः॥ २०

पारिबर्हे रथं दत्वा विश्वकर्मविनिर्मितम्।
सहस्रहयसंयुक्तं दिव्यं योजनविस्तृतम्॥ २१

दिव्याम्बराणि रत्नानि ब्रह्मदत्तानि मैथिल।
दत्वाययौ तपस्तप्तुं बदर्याख्यं शुभावहम्॥ २२

तदा महोत्सवश्चासीद्यदुपुर्यां गृहे गृहे।
सङ्कर्षणोऽथ भगवान् रेवत्या विरराज ह॥ २३

बलदेवविवाहस्य कथां यः शृणुयान्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परां सिद्धिमवाप्नुयात्॥ २४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर नृपश्रेष्ठ रैवत ब्रह्माजीको नमस्कार करके पुनः समृद्धिशालिनी द्वारकापुरीमें आये। बलदेवजीसे कन्याका विवाह करके दहेजमें विश्वकर्माका बनाया हुआ एक दिव्य रथ प्रदान किया, जो एक योजन विस्तृत था। उस रथमें एक सहस्र अश्व जुते हुए थे॥ २०-२१॥

मिथिलेश्वर! ब्रह्माजीके दिये हुए दिव्य वस्त्र तथा रत्न देकर राजा रैवत मङ्गलमय बदरिकाश्रमतीर्थमें तपस्या करनेके लिये चले गये। उस समय यदुपुरीके घर-घरमें महान् उत्सव मनाया गया। तदनन्तर भगवान् संकर्षण रानी रेवतीके साथ बड़ी शोभा पाने लगे। जो मनुष्य बलदेवजीके विवाहकी इस कथाको सुनेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमसिद्धिको प्राप्त होगा॥ २२—२४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे बलदेवविवाहोत्सवो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीद्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'बलदेव-विवाहोत्सव' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

श्रीकृष्णको रुक्मिणीका संदेश; ब्राह्मणसहित श्रीकृष्णका कुण्डिनपुरमें आगमन; कन्या और वरके अपने-अपने घरोंमें मङ्गलाचार; शिशुपालके साथ आयी हुई बारातको विदर्भराजका ठहरनेके लिये स्थान देना

श्रीनारद उवाच

अथ श्रीकृष्णदेवस्य विवाहं शृणु मैथिल।
सर्वपापहरं पुण्यं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥ १

भीष्मको नाम राजाभूद्विदर्भेषु प्रतापवान्।
कुण्डिनाधिपतिः श्रीमान् सर्वधर्मविदां वरः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब श्रीकृष्णदेवके विवाहका वृत्तान्त सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यजनक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्गमय फल प्रदान करनेवाला है। विदर्भदेशमें भीष्मक नामसे प्रसिद्ध एक प्रतापी राजा राज्य करते थे, जो कुण्डिनपुरके स्वामी, श्रीसम्पन्न तथा सम्पूर्ण

रुक्मिणी तत्सुता जाता श्रियो मात्रातिसुन्दरी।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशा गुणभूषणभूषिता॥ ३

श्रुत्वैकदा पुरा सा वै मन्मुखाच्छ्रीहरेर्गुणान्।
परिपूर्णतमं तं वै सा मेने सदृशं पतिम्॥ ४

तद्रूपं सगुणं श्रुत्वा मन्मुखात्प्रीतिवर्धनात्।
सदृशीं श्रीहरिस्तां वै समुद्वोढुं मनो दधे॥ ५

कृष्णभावविदा राज्ञा सर्वधर्मविदा भृशम्।
भीष्मकेणैव कृष्णाय दातुं तां निश्चयः कृतः॥ ६

युवराजस्ततो रुक्मी तं निवार्य प्रयत्नतः।
कृष्णशत्रुं महावीरं शिशुपालममन्यत॥ ७

ततः खिन्नमना भैष्मी श्रीकृष्णाय महात्मने।
दूतं स्वं प्रेषयामास ब्राह्मणं मिथिलेश्वर॥ ८

स द्वारकां गतो दिव्यां श्रीकृष्णेन प्रपूजितः।
भुक्तवांस्तत्र चासीनो विश्रान्तो मन्दिरे हरेः॥ ९

पृच्छते कुशलं सर्वं श्रीकृष्णाय महात्मने।
ब्राह्मणस्तदनुज्ञातस्तस्मै सर्वमवर्णयत्॥ १०

स्वस्तिश्रीकारपञ्चाढ्ये नित्यानन्दमहोदधौ।
श्रीमद्दिव्यगुणैः पूर्णे कोटिशो नतयो मम॥ ११

शमत्रास्ति च तत्रास्तु ततस्त्वत्पत्रमागतम्।
नारदोक्तेन वचसा ज्ञातोऽसि प्रकृतेः परः॥ १२

सर्वं जानासि सर्वज्ञस्तथा वक्ष्ये वचो रहः।
वीरभागं तु मां विद्धि त्वं गृहाण महामते॥ १३

धर्मवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ थे। उनके रुक्मिणी नामक एक पुत्री हुई, जो लक्ष्मीजीका अंश थी। वह इतनी अधिक सुन्दरी थी कि उसके सामने करोड़ों चन्द्रमा फीके लगें। वह सद्गुणरूपी आभूषणोंसे विभूषित थी॥ १—३॥

पहलेकी बात है, एक दिन मेरे मुँहसे श्रीहरिके अलौकिक गुणोंका वर्णन सुनकर वह राजकुमारी परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको अपने अनुरूप पति मानने लगी। इसी तरह मेरे मुखसे रुक्मिणीके रूप और गुणोंका प्रीतिवर्धक वर्णन सुनकर श्रीहरिने उसे अपनी योग्य पत्नी समझा और उसके साथ विवाह करनेका मन-ही-मन संकल्प किया॥ ४-५॥

श्रीकृष्णके भावको जाननेवाले सर्वधर्मज्ञ राजा भीष्मकने भी अपनी उस कन्याको उन्हींके हाथमें देनेका निश्चय किया था; किंतु युवराज रुक्मीने यत्नपूर्वक पिताको रोका और श्रीकृष्णके शत्रु महावीर शिशुपालको रुक्मिणीके योग्य वर माना॥ ६-७॥

मिथिलेश्वर! इससे भीष्मककुमारी रुक्मिणीके चित्तमें बड़ा खेद हुआ और उसने एक ब्राह्मणको अपना दूत बनाकर महात्मा श्रीकृष्णके पास भेजा। ब्राह्मणदेवता जब दिव्य द्वारकापुरीमें पहुँचे, तब श्रीकृष्णने उनकी आवभगत की। उन्होंने वहीं भोजन किया और श्रीकृष्णके मन्दिरमें ही आसन लगाकर विश्राम किया। फिर महात्मा श्रीकृष्णने उनसे सारा कुशल-समाचार पूछा। उनकी आज्ञा पाकर ब्राह्मणने उन्हें सब बातें बतायीं॥ ८—१०॥

[वे रुक्मिणीका पत्र सुनाते हुए बोले—] "स्वस्ति श्री ५ नित्यानन्द-महासागर श्रीमद्दिव्यगुण-परिपूर्ण वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण! कुण्डिनपुरसे रुक्मिणीका कोटिशः प्रणाम स्वीकृत हो। यहाँ कुशल है, वहाँ भी कुशल चाहिये। आगे आपका पत्र आया और श्रीनारदजीकी वाणीसे भी यह ज्ञात हुआ कि आप प्रकृतिसे परे परमेश्वर हैं। यद्यपि सर्वज्ञ होनेके नाते आप सब कुछ जानते हैं, तथापि मैं गुप्त बात आपको बता रही हूँ। महामते! आप मुझे वीरका भाग (अपना अंश) जानें और स्वीकार करें॥ ११—१३॥

मा चैद्यः प्रतिगृह्णीयाद्यथा सिंहबलिं मृगः।
कथं त्वामुद्वहे दुर्गे स्थितामिति च तच्छृणु॥ १४

पूर्वेद्युः कुलदेव्यास्तु यात्रास्ति महती हरे।
आगमिष्याम्यहं तत्र तत्र मां त्वं गृहाण भोः॥ १५

श्रीनारद उवाच

रुक्मिण्यास्तमभिप्रायं श्रुत्वा ब्राह्मणभाषितम्।
रथः संयुज्यतामाशु दारुकं प्राह मानदः॥ १६

पश्चिमायां तदा रात्रौ वैकुण्ठप्रभवं परम्।
किङ्किणीजालसंयुक्तं हेमरत्नखचितप्रभम्॥ १७

सदश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः।
नियोजितैर्दारुकेण चञ्चलैश्चारुचामरैः॥ १८

युक्तं महारथं दिव्यं सहस्रादित्यवर्चसम्।
आरुह्य सारथेः पृष्ठे धृत्वा श्रीपादपङ्कजम्॥ १९

स्वहस्तेन द्विजं तस्मिन् समारोप्य रमापतिः।
विदर्भान् प्रययौ राजञ्छ्रीकृष्णो भगवान् हरिः॥ २०

कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां तु नृपमण्डलात्।
कलिप्रशङ्कितो रामः श्रुत्वा भ्रातृसहायकृत्॥ २१

नीत्वा यदुबलं सर्वं समर्थबलवाहनम्।
विपक्षीयान्नृपाञ्जेतुं बलः पश्चाद्ययौ त्वरम्॥ २२

कुण्डिनोपवनं प्राप्तः सद्विजः सरथो हरिः।
सन्तस्थौ तिन्तिणीवृक्षे आस्तीर्याश्वपरिच्छदम्॥ २३

यदि चेदिराज शिशुपालने मेरा हाथ पकड़ लिया तो यह समझना चाहिये कि सिंहके लिये नियत बलिका भाग कोई मृग (कुत्ता, बिल्ली आदि) उठा ले गया। यदि आप ऐसा सोचते हों कि 'तुम तो कुण्डिनपुरके दुर्गमें निवास करती हो, तुम्हें मैं किस प्रकार ब्याहकर लाऊँगा', तो इसके विषयमें भी सुन लीजिये। हरे! यहाँकी कुल-प्रथाके अनुसार विवाहके एक दिन पूर्व राजकुमारी कुलदेवीके मन्दिरको जाती है। यह यात्रा बड़ी धूम-धामसे की जाती है। अतः मैं जहाँ कुलदेवीका मन्दिर है, वहाँपर आऊँगी। प्रभो! वहीं आप मुझे अपने साथ ले लें''॥ १४-१५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! ब्राह्मणके मुखसे रुक्मिणीके उस अभिप्रायको सुनकर सबको मान देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अपने सारथि दारुकको बुलाकर कहा—'मेरा रथ शीघ्र ही जोतकर तैयार करो।' पिछली रातमें वैकुण्ठसे प्राप्त हुए उस रथको, जो किङ्किणी-जालसे युक्त और सुवर्ण एवं रत्नोंसे जटित था, शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके श्रेष्ठ अश्वोंसे जोतकर दारुकने सुसज्जित किया। घोड़े चञ्चल तथा चारु चामरोंसे विभूषित थे॥ १६—१८॥

उनसे युक्त, सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी उस दिव्य विशाल रथपर लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने पहले तो अपने हाथसे उस ब्राह्मणदेवताको बैठाया और स्वयं सारथिकी पीठपर अपने श्रीचरण-कमल रखकर वे रथपर आरूढ़ हुए। राजन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण विदर्भदेशको चले। श्रीकृष्ण अकेले ही समस्त राज-मण्डलके बीचसे राजकन्याको हर लाने गये हैं, इस समाचारसे बलरामजीको युद्धकी आशङ्का हुई, अतः वे भाईकी सहायता करनेके लिये समर्थ बल-वाहनसे युक्त सम्पूर्ण यादव-सेनाको लेकर विपक्षी राजाओंको जीतनेके लिये पीछेसे शीघ्रतापूर्वक गये॥ १९—२२॥

प्रातःकाल होते-होते ब्राह्मण और रथके साथ भगवान् श्रीकृष्ण कुण्डिनपुरके उपवनमें जा पहुँचे। वहाँ एक इमलीके वृक्षके नीचे घोड़ेकी झूल बिछाकर वे बैठ गये॥ २३॥

दूरात् सन्दृश्यते तस्मात्कुण्डिनं तु पुरं परम्।
दीर्घदुर्गसमायुक्तं सप्तयोजनवर्तुलम्॥ २४

दुर्लङ्घ्या दुर्गमा यत्र परिखा जलपूरिता।
धनुःशतं विस्तृतास्ति चातुर्मास्यनदीव सा॥ २५

पञ्चाशद्धस्तमानेन दुर्गभित्तिस्तथोर्ध्वगा।
यत्र रम्याणि हर्म्याणि स्फुरद्धेमशिखानि च॥ २६

हेमकुम्भध्वजस्फूर्जत्तोरणानि विरेजिरे।
पारावता मयूराश्च यत्र तत्र पतन्ति च॥ २७

शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन् राजा तु भीष्मकः।
चक्रे विवाहसम्भारसञ्चयं रत्नमण्डपे॥ २८

गीतमङ्गलसंयुक्ते नारीभिर्भवनोत्तमे।
रराज रुक्मिणी राजन् सिद्धिभिर्भूर्यथा भुवि॥ २९

अथर्वविद्द्विजा भैष्मीं सुस्नातां रत्नवाससम्।
चक्रुर्मन्त्रैस्तथा रक्षां बद्ध्वा शान्तिं विधाय च॥ ३०

हैमानां भारलक्षं च मुक्तानां द्विगुणं तथा।
सहस्रभारं वस्त्राणां धेनूनामर्बुदानि षट्॥ ३१

गजायुतं रथानां च दशलक्षं मनोहरम्।
दशकोटिहयानां च गुडादितिलपर्वतान्॥ ३२

सहस्रं स्वर्णपात्राणां भूषणानां तथायुतम्।
विप्रेभ्यः प्रददौ राजा भीष्मकोऽतिमहामनाः॥ ३३

तथा वै दमघोषस्य शिशुपालाय वै द्विजाः।
चक्रुः शान्तिं परां पूर्वं रक्षाबन्धनरूपिणीम्॥ ३४

ब्राह्मणैर्मङ्गलस्नातं पीतकञ्चुकशोभितम्।
मुकुटोपरि विभ्राजत्पुष्पमौलिधरं शुभम्॥ ३५

हारकङ्कणकेयूरशिखामणिविभूषितम्।
मङ्गलैर्गीतवादित्रैर्गन्धाक्षतविचर्चितम्॥ ३६

उस स्थानसे कुछ दूरीपर उत्तम कुण्डिनपुर दिखायी देता था। वह नगर बहुत बड़े दुर्गसे घिरा हुआ सात योजन गोलाकार भूमिपर बसा था। वहाँ जलसे भरी हुई एक परिखा थी, जो दुर्लङ्घ्य और दुर्गम थी। उसकी चौड़ाई सौ धनुष थी। वह परिखा (खाई) चौमासेकी नदीके समान जलसे भरी हुई थी। दुर्गकी दीवार पचास हाथ ऊँची थी। नगरमें रमणीय अट्टालिकाएँ शोभा पाती थीं, जिनके सुनहरे शिखरपर सोनेके कलश उद्भासित होते थे। ध्वजके ऊपर चमकती हुई पताकाएँ फहरा रही थीं। कबूतर और मोर आदि पक्षी जहाँ-तहाँ उड़ रहे थे॥ २४—२७॥

शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये उद्यत हो राजा भीष्मकने रत्नमण्डपमें वैवाहिक सामग्रीका संचय कराया। राजन्! नारियोंद्वारा गाये जानेवाले गीत और मङ्गलाचारसे युक्त सुन्दर भवनमें रुक्मिणी उसी प्रकार शोभा पा रही थी, जैसे सिद्धियोंसे भूमिकी शोभा होती है॥ २८-२९॥

अथर्ववेदके विद्वानोंने रुक्मिणीको भलीभाँति नहलाकर रत्नमय आभूषण तथा वस्त्र धारण करवाये और वेदमन्त्रोंद्वारा शान्तिकर्म करके वधूकी रक्षा की। महामनस्वी राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको लाख भार सोना, दो लाख भार मोती, सहस्र भार वस्त्र, छः अरब गायें, दस हजार हाथी, दस लाख सुन्दर रथ, दस करोड़ घोड़े तथा तिल और गुड़ आदिके पर्वत दानमें दिये। इसी प्रकार एक सहस्र स्वर्णपात्र, दस सहस्र आभूषण भी ब्राह्मणोंको दानमें दिये॥ ३०—३३॥

उसी प्रकार दमघोषपुत्र शिशुपालके लिये भी ब्राह्मणोंने पहले परमशान्तिका विधान करके रक्षाबन्धन करवाया। ब्राह्मणोंद्वारा जब शिशुपालका माङ्गलिक स्नानकर्म सम्पन्न हो गया, तब उसे पीले रंगका रेशमी जामा पहनाकर सुशोभित किया गया। सिरपर मुकुट और मुकुटके ऊपर फूलोंका सुन्दर सेहरा सजाया गया॥ ३४-३५॥

हार, कंगन, भुजबंद और चूड़ामणिसे विभूषित हुए शिशुपालकी माङ्गलिक गाजों-बाजोंके साथ गन्ध और अक्षतद्वारा विशिष्ट पूजा की गयी॥ ३६॥

आचारलाजैः सुवरं शिशुपालं विधाय च।
आरोप्य करिणं प्रोच्चं दमघोषो विनिर्ययौ॥ ३७

जरासन्धेन शाल्वेन दन्तवक्रेण धीमता।
विदूरथेन पौण्ड्रेण पार्ष्णिग्राहेण मैथिल॥ ३८

विकर्षन् महतीं सेनां दमघोषो महाबलः।
दुन्दुभीन्नादयन् दीर्घानायययौ कुण्डिनं पुरम्॥ ३९

सम्मुखाद्यदुदेवस्य श्रुत्वोद्योगं नृपाः परे।
सहस्रशः समाजग्मुः शिशुपालसहायिनः॥ ४०

भीष्मको ह्यग्रतो गत्वा सम्पूज्य विधिवन्नृपम्।
काश्मीरकम्बलैर्दिव्यारुणैः सामुद्रसम्भवैः॥ ४१

मण्डितेषु च सर्वेषु मुक्तादामविलम्बिषु।
सौगन्धिकैः पुष्परसै राष्ट्रेषु शिविरेषु च॥ ४२

वाराङ्गनानृत्यलसन्मृदङ्गेषु ध्वनत्सु च।
निवेशयामास नृपैर्विदर्भाधिपतिर्महान्॥ ४३

आचारलाजों (खीलों)-से शिशुपालको सुन्दर वर सजाकर ऊँचे हाथीपर चढ़ाया गया। उसके साथ बारात लिये दमघोष निकले॥ ३७॥

मिथिलेश्वर! जरासंध, शाल्व, बुद्धिमान् दन्तवक्र, विदूरथ और पौण्ड्रक पीछे और अगल-बगलसे उसके रक्षक होकर चले। महाबली दमघोष विशाल सेना साथ लेकर उच्चस्वरसे नगारे बजवाते हुए कुण्डिनपुरको गये। सामनेसे यदुदेव श्रीकृष्णका कन्या अपहरण-विषयक उद्योग सुनकर दूसरे हजारों राजा शिशुपालके सहायक बनकर आये॥ ३८—४०॥

भीष्मकने आगे जाकर राजा दमघोषका विधिपूर्वक पूजन किया। कश्मीरी कम्बलों तथा समुद्रसे उत्पन्न दिव्य अरुणवर्णके रत्नोंसे सबको मण्डित किया। सबके कण्ठोंमें मोतियोंकी मालाएँ पहनायीं। सुगन्धयुक्त पुष्परस (इत्र-फुलेल आदि)-से सबका स्वागत किया। उस राज्यमें राजाओंके शिविरोंमें वाराङ्गनाओंके नृत्य हो रहे थे। मृदङ्ग बजाये जा रहे थे। उस समय विदर्भके महाराजने समागत राजाओंसहित वरके लिये अलग-अलग वासस्थान प्रदान किये॥ ४१—४३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कुण्डिनपुरयानं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीद्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कुण्डिनपुरकी यात्रा' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

रुक्मिणीकी चिन्ता; ब्राह्मणद्वारा श्रीहरिके शुभागमनका समाचार पाकर प्रसन्नता; भीष्मकद्वारा बलराम और श्रीकृष्णका सत्कार; पुरवासियोंकी कामना; रुक्मिणीकी कुलदेवीके पूजनके लिये यात्रा, देवीसे प्रार्थना तथा सौभाग्यवती स्त्रियोंसे आशीर्वादकी प्राप्ति

श्रीनारद उवाच

ध्यायन्ती कृष्णपादाब्जं भैष्मी कमललोचना।
मोघं वा मनुते वार्तां मेघश्याममचिन्तयत्॥ १

रुक्मिण्युवाच

अहो त्रियामान्तरितो विवाहो
मम्मैव नागच्छति कृष्णचन्द्रः।

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका चिन्तन करती हुई कमललोचना भीष्मककुमारी रुक्मिणी उनके बिना जीवनको व्यर्थ मानने लगी। वह निरन्तर घनश्यामका ही ध्यान करती थी। इसी अवस्थामें वह मन-ही-मन कहने लगी॥ १॥

रुक्मिणी बोली—अहो! मेरे विवाहका मुहूर्त आनेमें अब एक ही रात बाकी रह गयी है, किंतु मेरे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र नहीं आये। मैं

न वेद्मि किं कारणमत्र धात-
र्नावर्ततेऽद्यापि च भूमिदेवः॥ २

यदूत्तमो देववरो ममैष
दृष्ट्वा हि किञ्चित्कलुषं विधातः।
कृतोद्यमो नूनमतीव हस्त-
ग्राहे न चागच्छति किं करोमि॥ ३

हा दुर्भगायाश्च न मे विधाता
न सानुकूलः किल चन्द्रमौलिः।
न चैकदन्तो विमुखा च गौरी
गावो हि विप्राश्च न सानुकूलाः॥ ४

श्रीनारद उवाच

एवं विचिन्तयन्ती सा भैष्मी गेहाट्टभूमिषु।
परिभ्रमन्ती श्रीकृष्णं पश्यन्ती गृहशेखरात्॥ ५

तदैव तस्या वामाङ्गमस्फुरत्प्रतिभाषणम्।
तेन प्रसन्ना श्रीभैष्मी कालज्ञा सर्वमङ्गला॥ ६

कृष्णप्रणोदितो विप्रः सद्यश्चागतवांस्तदा।
श्रीकृष्णागमनं तस्यै शनैः सर्वं शशंस ह॥ ७

ततः प्रसन्ना श्रीभैष्मी तदङ्घ्र्योः प्रणिपत्य सा।
प्राह त्वद्वंशतो विप्र न यास्यामि वचो मम॥ ८

श्रुत्वागतौ रामकृष्णौ विवाहप्रेक्षणोत्सुकौ।
भीष्मको निर्गतो नेतुं ब्राह्मणैस्तत्प्रभाववित्॥ ९

भृशं मङ्गलपात्रेषु गन्धाक्षतयुतेषु च।
वासोरत्नचयं धृत्वा गीतवादित्रमङ्गलैः॥ १०

नहीं जानती कि इसमें क्या कारण है? जो ब्राह्मणदेवता उनके पास गये थे, वे भी अबतक लौटकर नहीं आये॥ २॥

हे विधाता! इसमें क्या हेतु है? ये यदुकुल-तिलक देवेश्वर श्रीकृष्ण निश्चय ही मुझमें कोई दोष देखकर मेरा पाणिग्रहण करनेके निमित्त अधिक उद्योगशील होकर नहीं आ रहे हैं। हाय विधाता! अब मैं क्या करूँ? हाय! मुझ अभागिनीके लिये विधाता अनुकूल नहीं हैं। चन्द्रशेखर भगवान् शिव तथा गणेशजी भी प्रतिकूल हो गये हैं। भगवती गौरीने भी मुझसे मुँह फेर लिया है और गौ तथा ब्राह्मण भी मेरे अनुकूल नहीं हैं॥ ३-४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस तरह चिन्तामें पड़ी हुई वह भीष्मक-राजकुमारी महलकी अट्टालिकाओंमें चक्कर लगाती हुई ऊँचे शिखरसे श्रीकृष्णचन्द्रकी बाट देखने लगी। इतनेमें ही रुक्मिणीका बायाँ अङ्ग फड़क उठा, मानो वही उनकी शङ्काका उत्तर या समाधान था। कालको जाननेवाली सर्वमङ्गला श्रीभीष्मकनन्दिनी उस अङ्गस्फुरणसे बहुत प्रसन्न हुईं॥ ५-६॥

उसी समय श्रीकृष्णका भेजा हुआ ब्राह्मण तत्काल वहाँ आ पहुँचा। श्रीकृष्णका आगमनसम्बन्धी सारा वृत्तान्त उसने धीरेसे रुक्मिणीको बता दिया। इससे श्रीभीष्मक-राजकुमारीको बड़ा हर्ष हुआ और वह ब्राह्मणदेवताके चरणोंमें प्रणत होकर बोलीं—विप्रवर! मैं तुम्हारे वंशसे कभी दूर नहीं जाऊँगी (अर्थात् तुम्हारी कुल-परम्परामें धन-सम्पत्तिका कभी अभाव नहीं होगा), यह मेरा प्रतिज्ञापूर्ण वचन है॥ ७-८॥

विदर्भराज भीष्मकने जब सुना कि मेरी कन्याका विवाह देखनेके लिये उत्सुक हो बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई पधारे हैं, तब वे ब्राह्मणोंके साथ उन्हें लिवा लानेके लिये निकले; क्योंकि उन्हें उनके प्रभावका पूर्ण परिज्ञान था। मङ्गल-पात्रोंमें गन्ध और अक्षत भरकर वस्त्र तथा रत्नराशि रखकर माङ्गलिक गाजे-बाजेके साथ वे आये॥ ९-१०॥

कोटिशो मधुपर्काणां कुम्भव्यूहान् विधाय च।
पूजयित्वाथ विधिवद्रामकृष्णौ परेश्वरौ॥ ११

अहो चास्मै न दत्तेयमिति खिन्नमनाः परम्।
आनन्दने वने स्थाप्य नत्वा स्वगृहमाययौ॥ १२

मधुपर्कोंके कोटिशः कलशसमूह सजाकर राजाने बलराम और श्रीकृष्ण दोनों परमेश्वर-बन्धुओंका विधिपूर्वक पूजन किया। पूजन करके वे मन-ही-मन यह सोचकर अत्यन्त खिन्न हो गये कि 'अहो! मैंने इन्हींको अपनी कन्या क्यों नहीं दी?' उनको सेनासहित आनन्दवनमें ठहराया और उन्हें प्रणाम करके वे अपने महलमें लौट आये॥ ११-१२॥

श्रुत्वागतं श्रीवसुदेवनन्दनं
त्रैलोक्यलावण्यनिधिं परेश्वरम्।
आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पुरौकसः
पपुः परं तन्मुखपङ्कजामृतम्॥ १३

अस्यैव भार्या भवितुं हि रुक्मिणी
योग्यास्ति नान्येऽत्यवदन् पुरौकसः।
दत्वा स्वपुण्यानि विवाहहेतवे
श्रीकृष्णलावण्यकलानिबन्धकाः॥ १४

तीनों लोकोंके लावण्यकी निधि परमेश्वर श्रीवसुदेव-नन्दनका आगमन सुनकर कुण्डिनपुरके निवासी वहाँ आये और अपने नेत्रपुटोंसे उनके मुखारविन्दकी मकरन्द-सुधाका पान करने लगे। वे पुरवासी परस्पर इस प्रकार बात करने लगे— 'बन्धुओ! रुक्मिणी तो इन भगवान् श्रीकृष्णकी ही पत्नी होनेयोग्य है, दूसरे किसीकी नहीं।' उन नगरनिवासियोंने श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका विवाह हो, इसके लिये विधातासे प्रार्थना करते हुए अपने सारे पुण्य समर्पित कर दिये। वे श्रीकृष्णके लावण्यके बन्धनमें बँध गये थे॥ १३-१४॥

कदापि साक्षाच्छ्वशुरस्य मन्दिरं
समागतं चैवमहो वयं जनाः।
द्रक्ष्याम आरात्कृतकृत्यतां तदा
व्रजेम लोके बहुजीवितेन किम्॥ १५

उन्होंने पुनः आपसमें इस प्रकार कहा—'यदि यहाँ इनका विवाह हो जाय तो ये कभी-कभी स्वयं श्वशुरके घर अवश्य आया करेंगे? उस समय हम सब लोग निकटसे इनका दर्शन करेंगे और कृतकृत्य हो जायँगे। लोकमें इनके दर्शनसे वञ्चित होकर दीर्घकालतक जीनेसे क्या लाभ?'॥ १५॥

वदत्सु लोकेषु च भीष्मकन्यका-
द्रिकन्यकापूजनहेतवे नृप।
अन्तःपुरात्सर्वसखीसमन्विता
विनिर्ययौ कृष्णगृहीतमानसा॥ १६

भेरीमृदङ्गैर्बहुदुन्दुभिस्वनैः
सुगायकैर्वन्दिजनैश्च मागधैः।
वाराङ्गनानृत्यमनोज्ञभावै-
र्जयेत्यभून्मङ्गलशब्द उच्चकैः॥ १७

नरेश्वर! जब लोग इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय भीष्मक-राजकुमारी रुक्मिणी गिरिराजनन्दिनी उमाका पूजन करनेके लिये अपनी सम्पूर्ण सखियोंके साथ अन्तःपुरसे बाहर निकली। श्रीकृष्णने उसके हृदयको हर लिया था। उस समय भेरी, मृदङ्ग और दुन्दुभिकी जोर-जोरसे ध्वनि होने लगी। अच्छे गायक गीत गाने लगे, वन्दीजन और मागध यशोगान करने लगे और वाराङ्गनाओंका मनोहर नृत्य होने लगा। इन सबके साथ जय-जयकारका मङ्गलघोष उच्चस्वरसे गूँजने लगा॥ १६-१७॥

कोटीन्दुबिम्बद्युतिमादधानां
बालार्कताटङ्कधरां श्रियं ताम्।
सितातपत्रव्यजनैः स्फुरद्भिः
सुचामरैः पार्श्वगणः सिषेवे॥ १८

कोशाद्विनिष्कृष्य शितासिलक्षं
पदातयो वीरजना इतस्ततः।
तथाश्वगा वै रथिनो गजस्थिताः
समुद्यतास्त्रा जुगुपुर्विदूरतः॥ १९

देवीमठं प्राप्य सुचत्वरे स्थिता
शान्ता शुचिर्धौतकराङ्घ्रिपङ्कजा।
गत्वा समीपं यतवाक् कृताञ्जलि-
र्भेजे भवानीं भवभीतिहारिणीम्॥ २०

दुर्गे स्वसन्तानयुते शिवे शुभे
नमामि तुभ्यं सततं भवानि ते।
भूयात्पतिर्मे भगवान् परेश्वरः
श्रीकृष्णचन्द्रः प्रकृतेः परः स्वयम्॥ २१

एवं शुभे मा वद कृष्णनाम
चैद्यं समुद्दिश्य वरं गृहाण।
इत्थं वदन्तीषु सखीषु भैष्मी
भूयो भवानीभवने जगाद॥ २२

अजानतीयं तव चाम्ब बाला
तथा वदन्तीषु सखीषु भैष्मी।
गन्धाक्षतैर्धूपविभूषणाद्यैः
स्त्रङ्माल्यदीपावलिभोगवस्त्रैः ॥ २३

अपूपताम्बूलफलेक्षुभिश्च
भेजे भवानीं परया च भक्त्या।
नत्वाथ तां वा बहुभूषणाद्यैः
सम्पूज्य सौभाग्यवतीर्ननाम॥ २४

सर्वाः स्त्रियस्ताः प्रददुर्वराणि
सुमङ्गलाशीर्वचनानि तस्यै।

लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी कोटि चन्द्रमण्डलकी कान्ति धारण कर रही थी। बालरविके समान दीप्तिमान् कुण्डल उसके कानोंकी शोभा बढ़ा रहे थे और पार्श्ववर्तिनी परिचारिकाओंका समुदाय श्वेत छत्र लगाये व्यजन और चमकीले चामर डुलाते हुए उसकी सेवामें संलग्न था। म्यानसे खींचकर लाखों श्वेत रंगकी नंगी तलवारें हाथमें लिये पैदल वीर योद्धा इधर-उधरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। इनसे थोड़ी ही दूरपर घुड़सवार, रथी और हाथीसवार योद्धा भी अस्त्र उठाये राजकुमारीकी रक्षामें लगे थे॥ १८-१९॥

देवीके मन्दिरमें पहुँचकर आँगनमें शान्त और शुद्धभावसे खड़ी हो राजकुमारीने अपने कमलोपम हाथ और पैर धोये। फिर मौनभावसे देवीके समीप जाकर उसने दोनों हाथ जोड़, भवभीतिहारिणी भवानीकी सेवामें इस प्रकार प्रार्थना की—'दुर्गे! गणेश-कार्तिकेय आदि संतानोंसहित शोभा पानेवाली शुभकारिणी भवानी शिवे! मैं तुम्हें सदा प्रणाम करती हूँ और यह वर माँगती हूँ कि प्रकृतिसे परे विराजमान साक्षात् परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों'॥ २०-२१॥

उस समय सखियाँ कहने लगीं—'शुभे! इस तरह श्रीकृष्णका नाम न लो। चेदिराज शिशुपालके उद्देश्यसे वर माँगो।' इस तरह बोलती हुई सखियोंके बीच खड़ी भीष्मकनन्दिनी पुनः भवानीके भवनमें पूर्वोक्त प्रार्थनाको ही दुहराने लगी। 'अम्ब! यह बालिका है, कुछ जानती नहीं; अतः आप इसकी बातपर ध्यान न दें।' यों कहती हुई सखियोंके बीचमें स्थित हो रुक्मिणीने गन्ध, अक्षत, धूप, आभूषण, पुष्पहार, पुष्प, दीपमाला, पूआ आदि भोग, वस्त्र, फल, गन्ने तथा ताम्बूल आदि अर्पण करके बड़ी भक्तिसे भवानीकी सेवा-पूजा की। तदनन्तर देवीको प्रणाम करके, बहुत-से आभूषण आदिद्वारा सौभाग्यवती स्त्रियोंका पूजन करके राजकुमारीने उन सबको प्रणाम किया॥ २२—२४॥

उन सम्पूर्ण सौभाग्यवती स्त्रियोंने रुक्मिणीको वर दिये और परम मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान

रूपं सदा ते शतरूपया समं
शीलं सदा शैलसुतासमं बभौ॥ २५

शुश्रूषणं भर्तुररुन्धतीसमं
क्षमा हि भूयाज्जनकात्मजासमा।
सौभाग्यमेवं तव दक्षिणासमं
सुवैभवं भीष्मसुते शचीसमम्।
सरस्वती ते च सरस्वतीसमा
भक्तिः पतौ स्याच्च सतां हरौ यथा॥ २६

किये—'राजकुमारी! तुम्हारा रूप-सौन्दर्य सदा महारानी शतरूपाके समान अक्षय बना रहे, शील-स्वभाव गिरिराजनन्दिनी उमाके समान शोभित हो। तुममें पतिसेवाका भाव अरुन्धतीके समान हो और क्षमा जनकनन्दिनी सीताके समान। भीष्मकनन्दिनि! तुम्हारा सौभाग्य यज्ञपत्नी दक्षिणाके समान और उत्तम वैभव शचीके तुल्य हो। तुम्हारी वाणी सरस्वतीके सदृश और पतिभक्ति संतोंकी हरिभक्तिके समान हो'॥ २५-२६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रुक्मिणीनिर्गमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीद्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'रुक्मिणीका निर्गमन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका अपहरण तथा यादव-वीरोंके साथ युद्धमें विपक्षी राजाओंकी पराजय

श्रीनारद उवाच

इत्थं विप्रवधूनां सदाशीर्भिरभिनन्दिता।
देवीं पुनर्विप्रवधूः प्रणनाम मुहुर्मुहुः॥ १

त्यक्त्वा मुनिव्रतं भैष्मी गिरिजागृहतस्ततः।
सहालिभिः सखीभिश्च निश्चक्राम शनैः शनैः॥ २

कोटिचन्द्रप्रतीकाशां भैष्मीं कमललोचनाम्।
अकस्माद्ददृशुर्वीराः सुनिधिं निर्धना यथा॥ ३

अश्वारूढाश्च रथिनो गजिनश्च पदातयः।
समागता रक्षिणस्ते मुमुहुर्वीक्ष्य रुक्मिणीम्॥ ४

तदपाङ्गस्मितैस्तीक्ष्णैर्बाणैः कामधनुश्च्युतैः।
उज्झितास्त्रा निपेतुः कावर्दिताः सैनिकास्तदा॥ ५

रथेन वायुवेगेन घण्टामञ्जीरनादिना।
नैःश्रेयसम्भवैरश्वैर्युतेनातिपताकिना ॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार ब्राह्मणपत्नियोंके शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित हो रुक्मिणीने पुनः बार-बार देवी तथा विप्र-वधुओंको प्रणाम किया॥ १॥

तत्पश्चात् मौनव्रतका त्याग करके भीष्मकराजकुमारी सखी-सहेलियोंके साथ धीरे-धीरे गिरिजागृहसे बाहर निकली। उस समय करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमती कमललोचना रुक्मिणीको वीर योद्धाओंने अकस्मात् इस प्रकार देखा, मानो निर्धनोंको सहसा कोई उत्तम निधि मिल गयी हो। घुड़सवार, रथी, हाथीसवार और पैदल—जो-जो रक्षक वहाँ आये थे, वे सब रुक्मिणीपर दृष्टि पड़ते ही मोहित हो गये। उसके मुस्कानयुक्त कटाक्ष कामदेवके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंके समान थे। उनसे आहत एवं पीड़ित हो समस्त सैनिक अपने अस्त्र त्यागकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २—५॥

इसी समय घंटियों और मँजीरोंके नादसे मुखरित तथा वैकुण्ठस्थित नैःश्रेयस नामक वनमें उद्भूत अश्वोंसे जुते हुए, फहराती हुई ऊँची पताकासे अलंकृत

शीघ्रं स्वसैन्यसङ्घट्टात्तत्सैन्यं संविदारयन्।
वायुर्यथा पद्मवनं हरिर्दारुकसारथिः॥ ७

स्त्रीकदम्बकमेत्याशु पश्यतां द्विषतां प्रभुः।
समारोप्य रथं भैष्मीं तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव॥ ८

देवानां पश्यतां राजन् राजकन्यां जहार ह।
दिव्यं शस्त्रोत्तमं शार्ङ्गं धनुष्टङ्कारयन्मुहुः॥ ९

ततो वेगेन महता स्वसैन्यं चागते हरौ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्यदुदुन्दुभयस्तदा॥ १०

सिद्धाश्च सिद्धकन्याश्च श्रीकृष्णस्य रथोपरि।
हर्षिता ववृषुर्देवाः पुष्पैर्नन्दनसम्भवैः॥ ११

ततो ययौ जयारावैः शनै रामयुतो हरिः।
शृगालसङ्घमध्याच्च केसरी भागहृद्यथा॥ १२

तदा कोलाहले जाते रुक्मिणीहरणे सति।
बभूव रक्षकाणां च शस्त्राशस्त्रि परस्परम्॥ १३

जरासन्धवशाः सर्वे मानिनो नृपसत्तमाः।
न सेहिरे स्वाभिभवं परं जातं यशःक्षयम्॥ १४

अहो धिगस्मान् स्वयशो हृतं गोपैश्च धन्विनाम्।
शृगालैरिव सिंहानामतः किं स्यात्पराजयः॥ १५

एवमुक्त्वा क्रोधपरा जगृहुः शस्त्रसंहतिम्।
विसृज्य क्रीडनाक्षादीन् दंशिताः सैन्यसंयुताः॥ १६

अक्षौहिणीद्वयेनापि पौण्ड्रकः क्रोधपूरितः।
अक्षौहिणीत्रयेणापि महावीरो विदूरथः॥ १७

अक्षौहिणीपञ्चयुतो दन्तवक्रोऽतिदारुणः।
अक्षौहिणीत्रयेणाशु शाल्वो राजपुरेश्वरः॥ १८

तथा वायुके समान वेगशाली रथद्वारा दारुक सारथिसहित श्रीहरि अपनी सेनाकी टक्करसे उस रक्षक-सेनामें दरार उत्पन्न करके तत्काल वहाँ उसी प्रकार घुस आये, जैसे वायु कमलवनमें बेरोक-टोक प्रविष्ट हो जाती है॥ ६-७॥

शत्रुओंके देखते-देखते शीघ्र ही स्त्री-समुदायके पास पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मकनन्दिनी रुक्मिणीको अपने रथपर चढ़ाकर, जैसे गरुड़ देवताओंके सामनेसे सुधाका कलश उठा ले गये थे, उसी प्रकार उस राजकन्याका अपहरण कर लिया। राजन्! उस समय वे शस्त्रोंमें उत्तम दिव्य शार्ङ्ग-धनुषको बारंबार टंकार रहे थे। तदनन्तर बड़े वेगसे अपनी सेनाके भीतर श्रीहरिके लौट आनेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ और यादवोंके नगारे एक साथ ही बज उठे॥ ८—१०॥

सिद्ध और सिद्धोंकी कन्याएँ तथा देवतालोग हर्षसे भरकर श्रीकृष्णके रथपर नन्दनवनके फूलोंकी वर्षा करने लगे। तब जय-जयकारकी ध्वनिके साथ बलरामसहित श्रीकृष्ण धीरे-धीरे वहाँसे जाने लगे—ठीक उसी प्रकार जैसे सिंह सियारोंके बीचसे अपना भाग लेकर मौजसे चला जाता है॥ ११-१२॥

रुक्मिणीका हरण हो जानेपर उस समय बड़ा भारी कोलाहल मचा। रक्षक सैनिक आपसमें ही शस्त्रोंका प्रहारकर युद्ध करने लगे। जरासंधके वशमें रहनेवाले समस्त मानी नृपश्रेष्ठ इस घटनासे प्राप्त हुए अपने पराभव और सुयशके नाशको नहीं सह सके। वे परस्पर कहने लगे—'अहो! हमलोगोंको धिक्कार है। हम धनुर्धर राजाओंके यशको गोपोंने उसी प्रकार हर लिया, जैसे सियारोंने सिंहोंके यशका, इससे बढ़कर हमारी पराजय और क्या हो सकती है?॥ १३—१५॥

यों कहकर सब-के-सब क्रोधसे भर उठे और द्यूतक्रीड़ा एवं चौपड़ आदि खेलोंको छोड़कर, कवच और सेनासे सुसज्जित हो उन्होंने युद्धके लिये शस्त्र उठा लिये। क्रोधसे भरा हुआ पौण्ड्रक दो अक्षौहिणी सेनाके साथ, महावीर विदूरथ तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ, अत्यन्त दारुण दन्तवक्र पाँच अक्षौहिणी सेनाके साथ, राजपुरका स्वामी

अक्षौहिणीभिर्दशभिर्जरासन्धो महाबलः।
आययौ सम्मुखे योद्धुं यादवानां महात्मनाम्॥ १९

अन्येऽपि चैद्यपक्षीया योद्धुं श्रीकृष्णसम्मुखे।
धनुष्टङ्कारयन्तस्ते समाजग्मुः सहस्रशः॥ २०

प्रलयाब्धिसमं सैन्यं समालोक्य यदूत्तमाः।
तर्त्तुमाजग्मुरारात्ते कृष्णकैवर्तपोतकाः॥ २१

बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम्।
सैन्ययोश्च स्वपरयोर्देवदानवयोर्यथा॥ २२

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः।
गजा गजैर्युयुधिरे तुरगाश्च तुरङ्गमैः॥ २३

शस्त्रान्धकारे सञ्जाते रुक्मिणीं भयविह्वलाम्।
विलोक्य भगवान् देवो मा भैष्टेत्यभयं ददौ॥ २४

बलदेवानुजो वीरो गदो धुन्वन् महद्धनुः।
विवेश शत्रुसङ्घट्टं वनं वह्निरिव प्रभुः॥ २५

गदबाणविभिन्नाङ्गा रथिनश्छिन्नकञ्चुकाः।
हताश्वा हतसूताश्च निपेतुर्भूमिमण्डले॥ २६

पदातयश्छिन्नपदा गदबाणागतव्यथाः।
निपेतुर्भूतले राजन् वृक्षा वातहता इव॥ २७

अश्वारूढाः केऽपि वीरा गदबाणैर्विदारिताः।
पेतू रणाङ्गणे साश्वा बृहतीफलवन्नृप॥ २८

गदबाणैर्भिन्नकुम्भा मध्ये मध्ये विदारिताः।
विरेजुः पतिता भूमौ कूष्माण्डशकला इव॥ २९

ततः पलायितं सैन्यं दृष्ट्वा शाल्वो महाबलः।
गदं तताड गदया गदायुद्धविशारदः॥ ३०

राजा शाल्व तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ तथा महाबली जरासंध दस अक्षौहिणी सेनाके साथ महामनस्वी यादवोंके समक्ष युद्धके लिये आ पहुँचे। चेदिराज शिशुपालके पक्षवाले अन्य सहस्रों योद्धा भी श्रीकृष्णके सामने धनुषको टंकारते हुए युद्धके लिये आ धमके॥ १६—२०॥

प्रलयकालके महासागरकी भाँति उस विशाल सेनाको देखकर यदुश्रेष्ठ योद्धा उसे पार करनेके लिये श्रीकृष्णके पास आ गये। श्रीकृष्ण ही उनके केवट और जहाज थे। देवता और दानवोंकी भाँति उन स्वकीय एवं परकीय सैनिकोंमें अत्यन्त अद्भुत तथा रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध होने लगा। उस संग्राममें रथी रथियोंके साथ, पैदल पैदलोंके साथ, हाथी-सवार हाथीसवारोंके साथ और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ जूझने लगे। शस्त्रोंकी वर्षासे अन्धकार-सा छा गया। उस समय रुक्मिणीको भयसे विह्वल हुई देख भगवान् श्रीकृष्णने अभय-दान देते हुए कहा—'डरो मत'॥ २१—२४॥

बलदेवजीके छोटे भाई वीरवर गद अपने महान् धनुषको कम्पित करते हुए शत्रुओंकी सेनामें उसी प्रकार घुस गये, जैसे वनमें दावानल। गदके बाणोंसे अङ्गोंके विदीर्ण हो जानेके कारण कितने ही रथी योद्धाओंके कवच कटकर छिन्न-भिन्न हो गये, घोड़े और सारथि मारे गये तथा वे स्वयं भी प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। पैदल योद्धाओंके पैर कट गये। राजन्! गदके बाणोंसे व्यथित हो शत्रुयोद्धा आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति धराशायी हो गये॥ २५—२७॥

नरेश्वर! घोड़ोंपर चढ़े हुए कितने ही वीर गदके बाणोंसे विदीर्ण हो समराङ्गणमें बृहतीफलकी भाँति घोड़ोंसहित गिर पड़े। इसी प्रकार गदके बाणोंसे कुम्भ-स्थल फट जानेके कारण बीच-बीचसे विदीर्ण हुए हाथी कुष्माण्डके टुकड़ोंकी भाँति पृथ्वीपर पड़े शोभा पा रहे थे। तदनन्तर शत्रुओंकी सारी सेना भाग चली। यह देख गदा-युद्ध-विशारद महाबली शाल्वने गदके ऊपर अपनी गदासे आघात किया॥ २८—३०॥

गदाविद्धो गदो धन्वी गदायुद्धप्रभाववित्।
धनुर्युद्धं तु सन्त्यज्य तत्कालान्मनसा त्वरम्॥ ३१

परां व्यथां गतो युद्धे पतितोऽपि समुत्थितः।
तदाग्रजेन या दत्ता तां गदां तु गदोऽग्रहीत्॥ ३२

लक्षभारमयी गुर्वी दृढा कौमोदकी यथा।
तया गदोऽहनच्छाल्वं वज्रेणेन्द्रो यथा गिरिम्॥ ३३

गदाप्रहारमथिते शाल्वे निपतिते भुवि।
पौण्ड्रकोऽपि जरासन्धो दन्तवक्रो विदूरथः॥ ३४

चत्वार आययुस्तत्र गदोपरि रुषान्विताः।
पौण्ड्रकोऽपि महावीरो गदस्य रथगं ध्वजम्॥ ३५

चिच्छेद दशभिर्बाणैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव।
दन्तवक्रस्तु गदया गदस्यापि रथं शुभम्।
चूर्णयामास राजेन्द्र दण्डेनेव सुमृद्घटम्॥ ३६

तथाश्वांश्च जरासन्धः सारथिं च विदूरथः।
पातयामास भूपृष्ठे शितैर्बाणैर्विदेहराट्॥ ३७

ततो मुसलमादाय बलदेवस्त्वरन् बली।
विकराले मुखे भीमे दन्तवक्रमताडयत्॥ ३८

ततो मुसलघातेन दन्तवक्रस्य युध्यतः।
मुखे वक्रोऽपि यो दन्तः स तु भूमौ पपात ह॥ ३९

तदा हसति दैत्यारौ रुक्मिणीसहिते हरौ।
पौण्ड्रकं च जरासन्धं तथा दुष्टं विदूरथम्॥ ४०

जघान मुसलेनाशु बलदेवो रुषान्वितः।
त्रयोऽपि पतिता युद्धे मूर्च्छिताः क्षतजाप्लुताः॥ ४१

सेनां समागतां सर्वां समाकृष्य हलेन वै।
मुसलेनाहनत्क्रुद्धो बलदेवो महाबलः॥ ४२

गदाकी चोट खाकर गदा-युद्धके प्रभावको जाननेवाले धनुर्धर गद धनुषद्वारा युद्ध करना छोड़कर तत्काल मनसे अत्यन्त व्यथाका अनुभव करते हुए युद्धभूमिमें गिर पड़े। गिरकर भी वे सहसा उठ खड़े हुए और तत्काल बलदेवजीकी दी हुई गदाको गदने अपने हाथमें ले लिया। लाख भार लोहेकी बनी हुई वह भारी गदा कौमोदकीके समान सुदृढ़ थी। उसके द्वारा गदने राजा शाल्वपर उसी प्रकार चोट की, जैसे इन्द्रने वज्र-द्वारा किसी पर्वतपर आघात किया हो॥ ३१—३३॥

गदाके प्रहारसे व्यथित हो राजा शाल्व जब पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब पौण्ड्रक, जरासंध, दन्तवक्र और विदूरथ—ये चारों वीर गदके प्रति रोषसे भरे हुए वहाँ आ पहुँचे। महावीर पौण्ड्रकने भी जैसे कोई कटु वचनोंसे मित्रताके सम्बन्धको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार दस तीखे बाण मारकर गदके रथपर फहराती हुई पताकाको काट डाला॥ ३४—३५ १/२॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् दन्तवक्रने गदाकी चोटसे गदके सुन्दर रथको भी इस तरह चूर-चूर कर डाला, मानो किसीने डंडेकी मारसे मिट्टीका सुन्दर घड़ा फोड़ डाला हो। विदेहराज! इसी प्रकार जरासंधने उस रथके घोड़े मार डाले और विदूरथने सारथिको तीखे बाणोंसे पृथ्वीपर मार गिराया॥ ३६-३७॥

तब मुसल हाथमें ले बलवान् बलदेवजी बड़ी तीव्रगतिसे वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने दन्तवक्रके विकराल एवं भयानक मुखपर बड़े जोरसे प्रहार किया। समराङ्गणमें युद्ध करते हुए दन्तवक्रके मुखमें मुसलकी चोट पड़नेपर उसके मुखमें जो एक टेढ़ा दाँत बच रहा था, वह भी भूमिपर गिर पड़ा। फिर तो रुक्मिणीसहित दैत्यनाशन श्रीहरि हँसने लगे। इसी समय रोषसे भरे हुए बलदेवजीने अपने मुसलसे शीघ्रतापूर्वक पौण्ड्रक, जरासंध तथा दुष्ट विदूरथको भी चोट पहुँचायी। ये तीनों ही वीर खूनसे लथपथ हो युद्धभूमिमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े॥ ३८—४१॥

इसके बाद वहाँ आयी हुई सारी सेनाको कुपित हुए महाबली बलदेवने हलसे खींचकर मुसलकी मारसे मौतके घाट उतार दिया॥ ४२॥

दशयोजनपर्यन्तं रथेभाश्वपदातयः।
पेषिताश्चूर्णिता भूमौ शयाना धरणीं गताः॥ ४३

जरासन्धादयः सर्वे मृत्युशेषा नृपाः परे।
पलायिताश्चैद्यमेत्य प्रोचुर्नष्टोत्सवं भृशम्॥ ४४

भोः भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज।
किमेकेन विवाहेन भविता ते शतं भुवि॥ ४५

अद्यैव द्वारकां गत्वा बद्ध्वा रामं समाधवम्।
अयादवीं करिष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम्॥ ४६

एवं सम्बोधितो मित्रैश्चैद्योऽगाच्चन्द्रिकापुरम्।
ययुः स्वं स्वं पुरं सर्वे हतशेषा नृपास्ततः॥ ४७

उस समराङ्गणमें दस योजन दूरतक हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक पिस उठे, चूर-चूर हो गये और धरतीपर सदाके लिये सो गये। तब मरनेसे बचे हुए जरासंध आदि समस्त नरेश मैदान छोड़कर भाग गये और जिसकी उमंग नष्ट हो गयी थी तथा जो अत्यन्त हतोत्साह हो चला था, उस शिशुपालके पास जाकर बोले—'पुरुषसिंह! तुम अपने मनकी इस ग्लानिको त्याग दो। एक विवाह तो क्या, इस भूतलपर तुम्हारे सौ विवाह हो जायँगे। हमलोग आज ही द्वारकामें चलकर बलराम और श्रीकृष्णको बाँध लेंगे तथा समुद्रकी काञ्ची धारण करनेवाली इस पृथ्वीको यादवोंसे सूनी कर डालेंगे'॥ ४३—४६॥

इस प्रकार मित्रोंके प्रबोध देनेपर चेदिराज शिशुपाल चन्द्रिकापुरको चला गया और मरनेसे बचे हुए दूसरे समस्त नरेश भी अपने-अपने नगरको पधारे॥ ४७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रुक्मिणीहरणे यदुविजयो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीद्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'रुक्मिणी-हरण और यदुवंशियोंकी विजय' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके हाथोंसे रुक्मीकी पराजय तथा द्वारकामें रुक्मिणी और श्रीकृष्णका विवाह

श्रीनारद उवाच

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा मित्राणां च पराभवम्।
प्रतिज्ञामकरोद् रुक्मी शृण्वतां सर्वभूभुजाम्॥ १

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम्।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः॥ २

इत्युक्त्वा कवचं दिव्यं घनमम्बुदनिर्मितम्।
शिरस्त्राणं सिन्धुजं च स दधार महोद्भटः॥ ३

सौवीरस्य धनुः शालि लाटजं चेषुधिद्वयम्।
आदाय म्लेच्छदेशस्य खड्गं चर्म च कौटजम्॥ ४

श्रीनारदजी कहते हैं—रुक्मिणीके हरण और मित्रोंकी पराजयका वृत्तान्त सुनकर भीष्मकपुत्र रुक्मीने समस्त भूपालोंके सुनते हुए यह प्रतिज्ञा की—'राजाओ! मैं आपलोगोंके सामने यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्धमें श्रीकृष्णको मारकर रुक्मिणीको लौटाये बिना मैं कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा'॥ १-२॥

यों कहकर उस महा उद्भट वीरने दिव्य कवच धारण किया, जो ठोस एवं श्यामवर्णका था। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह नील मेघसे निर्मित हुआ हो। फिर उसने सिरपर सिन्धुदेशीय शिरस्त्राण (टोप) रखा; सौवीर देशका बना हुआ सुन्दर धनुष, लाट देशके दो तरकस, म्लेच्छदेशकी

पेठरस्य महाशक्तिं गुर्जराटभवां गदाम्।
परिघं बङ्गजं धृत्वा हस्तत्राणं च कौङ्कणम्॥ ५

बद्धगोधाङ्गुलित्राणः किरीटी रत्नकुण्डलः।
रुक्माङ्गदस्तदा रुक्मी युद्धं कर्तुं मनो दधे॥ ६

जैत्रं रथं समारुह्य चञ्चलाश्वनियोजितम्।
पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णं कर्षन्नक्षौहिणीद्वयम्॥ ७

पुनः समागतां दृष्ट्वा सेनां रामो महाबलः।
तया युयोध समरे यदुसेनासमन्वितः॥ ८

तिष्ठ तिष्ठेति देवेशं विसृजन् परुषं वचः।
सम्प्राप्नोति रथं रुक्मी धनुष्टङ्कारयन्मुहुः॥ ९

त्वरं मुञ्च स्वसारं मे यदि जीवितुमिच्छसि।
न चेत्त्वां सबलं सद्यो नयामि यमसादनम्॥ १०

ययातिशापसम्भ्रष्टो गोपालोच्छिष्टभुग्भवान्।
जरासन्धभयाद्भीतो यवनाग्रात्पलायितः॥ ११

इत्युक्त्वेषुधितः कृष्य बाणं चापे निधाय सः।
नियम्य कर्णपर्यन्तं निजघान हरेर्हृदि॥ १२

सन्ताडितोऽपि भगवान् धनुर्ज्यां तस्य नादिनीम्।
चिच्छेद सायकेनाशु गरुडः पन्नगीं यथा॥ १३

निधाय शीघ्रं कोदण्डे शिञ्जिनीं स्वर्णभूषिताम्।
रुक्मी तु दशभिर्बाणैः सञ्जघान हरिं रणे॥ १४

हरिरेकेन बाणेन शिञ्जिनीसहितं धनुः।
चिच्छेद रुक्मिणः सद्यो ज्ञानेनेवागुणामयम्॥ १५

कृष्णोऽमोघेन बाणेन मध्यतस्तद् द्विधाकरोत्।
रुक्मीं पुनः शतैर्बाणैः सन्तताड मृधे हरिः॥ १६

तलवार, कुटज देशकी ढाल, पेठरकी महाशक्ति, गुजरातकी गदा, बंगालका परिघ और कोङ्कण देशका हस्तत्राण (दस्ताना) धारण करके अङ्गुलियोंमें गोधाके चर्मसे निर्मित अङ्गुलित्राण बाँध लिया और किरीट, रत्नमय कुण्डल तथा सोनेके बाजूबंदसे विभूषित हो रुक्मीने युद्ध करनेका निश्चय किया॥ ३—६॥

फिर चञ्चल घोड़ोंसे युक्त जैत्ररथपर आरूढ़ हो, दो अक्षौहिणी सेना साथ लिये उसने श्रीकृष्णका पीछा किया। शत्रुओंकी सेनाको पुनः आती देख महाबली बलरामने यादवोंकी सेना साथ ले समराङ्गणमें उसका सामना किया। रुक्मी बार-बार धनुष टंकारता और कठोर वचन बोलता हुआ अतिरथी देवेश्वर श्रीकृष्णके पास जा पहुँचा और बोला—'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह। यदि जीवित रहना चाहता है तो तुरंत मेरी बहनको छोड़ दे। नहीं तो मैं सेनासहित तुझे इसी समय यमलोकको भेज दूँगा॥ ७—१०॥

तेरे कुलपर राजा ययातिका शाप लगा हुआ है और तू ग्वालोंकी जूठन खानेवाला है। जरासंधके भयसे भीत रहता है और कालयवनके आगेसे पीठ दिखाकर भाग चुका है'॥ ११॥

यों कहकर उसने अपने तरकससे एक बाण निकालकर धनुषपर चढ़ा दिया और उसे कानतक खींचकर श्रीकृष्णकी छातीको लक्ष्य करके चला दिया। उस बाणसे आहत होनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णने एक सायकसे उसके धनुषकी टंकार करनेवाली प्रत्यञ्चा इस प्रकार काट दी, मानो गरुडने किसी सर्पिणीको छिन्न-भिन्न कर डाला हो॥ १२-१३॥

फिर रुक्मीने शीघ्र ही अपने धनुषपर टंकार-ध्वनि करनेवाली दूसरी स्वर्णभूषित प्रत्यञ्चा चढ़ा ली और दस बाणोंद्वारा रणभूमिमें श्रीहरिको घायल कर दिया। तब श्रीकृष्णने एक बाण मारकर रुक्मीके प्रत्यञ्चासहित धनुषको उसी क्षण वैसे ही काट दिया, जैसे ज्ञानके द्वारा त्रिगुणात्मक संसार-बन्धनको काट दिया जाता है। श्रीकृष्णने अपने अमोघ बाणद्वारा बीचसे ही उसके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। फिर उन्होंने रुक्मीको सौ बाण मारकर युद्धमें क्षत-विक्षत कर दिया॥ १४—१६॥

छिन्नधन्वाथ वैदर्भो महाशक्तिं स्फुरत्प्रभाम्।
प्राहरद्धरये शक्तिं विज्ञानाय यथा मुनिः॥ १७

ततांड गदया तां वै गदाधारी गदाग्रजः।
द्विधाभूता महाशक्ती रुक्मेः सूतं जघान ह॥ १८

धनुष कट जानेपर विदर्भराजकुमारने श्रीहरिके ऊपर चमचमाती हुई महाशक्ति उसी प्रकार चलायी, जैसे किसी मुनिने विज्ञानके लिये महाशक्तिका प्रयोग किया हो। गदाधारी भगवान् गदाग्रजने अपनी गदासे उस महाशक्तिपर प्रहार किया, जिससे उसके दो टुकड़े हो गये। उस खण्डित शक्तिने रुक्मीके ही सारथिको मार डाला॥ १७-१८॥

कौमोदकी गदा गुर्वी पतन्ती वेगधारिणी।
तद्रथं चूर्णयामास साश्वं शैलं यथा पविः॥ १९

प्राहरद्धरये सोऽपि गदां स्वां भीष्मकात्मजः।
चक्रेण चूर्णयामास भगवानपि तां पुनः॥ २०

परिघं बङ्गजं नीत्वा रुक्मी रुक्माङ्गदो बली।
जघान श्रीहरिं स्कन्धे जगर्ज घनवन्मृधे॥ २१

भगवान्‌की वेगशालिनी कौमोदकी नामवाली भारी गदाने रुक्मीके रथके ऊपर पड़कर उसे घोड़ोंसहित उसी प्रकार चूर्ण कर दिया, जैसे वज्रके प्रहारसे कोई पर्वत चकनाचूर हो गया हो। तब भीष्मककुमार रुक्मीने भी श्रीहरिपर गदा चलायी, किंतु भगवान्‌ने उसे पुनः चक्र चलाकर चूर्ण कर दिया। सोनेके बाजूबंदसे विभूषित बलवान् रुक्मीने बंगालका परिघ हाथमें लेकर उसके द्वारा श्रीहरिके कंधेपर प्रहार किया और उस युद्ध-भूमिमें मेघके समान गर्जना करने लगा॥ १९—२१॥

सन्ताडितोऽपि भगवान् मालाहत इव द्विपः।
तेनैव परिघेणापि तं जघान रणाङ्गणे॥ २२

परिघाभिहतो रुक्मी किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
भर्त्सयन् माधवं ह्याजौ जग्राह खड्गचर्मणी॥ २३

तत् खड्गचर्मणी छित्वा स्वखड्गं प्राहरद्धरिः।
खड्गाग्रेण शिरस्त्राणं कञ्चुकं चिच्छिदे महत्॥ २४

परिघसे ताडित होनेपर भी पुष्पमालाके आघातको कुछ भी न गिननेवाले हाथीकी भाँति भगवान् अविचल रहे। उन्होंने उसी परिघसे समराङ्गणमें रुक्मीपर आघात किया। परिघकी चोट खाकर रुक्मी मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। फिर उसने युद्धभूमिमें माधवकी भर्त्सना करते हुए ढाल और तलवार हाथमें ले ली। भगवान्‌ने भी अपने खड्गका प्रहार करके उसकी ढाल और तलवार काट दी। उस खड्गके अग्रभागसे रुक्मीका शिरस्त्राण और विशाल कवच कटकर गिर पड़े॥ २२—२४॥

हस्तत्राणेऽपि युगपदेते छिन्नीकृते मृधे।
खड्गमुष्टिकरं दृष्ट्वा रुक्मिणं समुपस्थितम्॥ २५

गृहीत्वा भुजदण्डाभ्यां पातयित्वा महीतले।
तस्योपरि हरिः स्थित्वा यथा सिंहो मृगोपरि।
शितधारं नन्दकाख्यं खड्गं जग्राह रोषतः॥ २६

लगे-हाथ उसके दस्ताने भी काट दिये गये। अब उस युद्धमें रुक्मीके हाथमें केवल तलवारकी मुट्ठी रह गयी थी। उस दशामें अपने पास आये हुए रुक्मीको श्रीहरिने भुजदण्डोंसे पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा और जैसे मृगके ऊपर सिंह सवार हो जाय, उसी प्रकार वे उसके ऊपर चढ़ गये तथा रोषपूर्वक तीखी धारवाले अपने नन्दक नामके खड्गको हाथमें ले लिया॥ २५-२६॥

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्युक्तं रुक्मिणी भयविह्वला।
पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती॥ २७

श्रीकृष्णको अपने भाईके वधके लिये उद्यत देख रुक्मिणी भयसे विह्वल हो उठी और पतिके चरणोंमें गिरकर उस सती-साध्वी राजकुमारीने करुणस्वरमें कहा— ॥ २७ ॥

श्रीरुक्मिण्युवाच

अनन्त देवेश जगन्निवास
योगेश्वराचिन्त्य जगत्पते त्वम्।
हन्तुं न योग्यः करुणासमुद्र
मद्भ्रातरं शालभुजं महाभुजम्॥ २८

श्रीरुक्मिणी बोलीं—अनन्त! देवेश्वर! जगन्निवास! योगेश्वर! आपकी शक्ति अचिन्त्य है। आप इस जगत्के पालक हैं। अतः करुणासागर! आपके द्वारा शालके समान विशाल भुजावाले मेरे भाईका वध होना उचित नहीं है॥ २८ ॥

श्रीनारद उवाच

परित्रासैर्विलपतीं दुःखशुष्यन्मुखीं प्रियाम्।
रुद्धकण्ठीं सतीं वीक्ष्य न्यवर्तत हरिः स्वयम्॥ २९

बद्ध्वा तं कटिबन्धेन खड्गेन शितधारिणा।
वपनं श्मश्रुकेशानां चकारार्धमुखे हरिः॥ ३०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! डरके मारे विलाप करती हुई रुक्मिणीका मुँह दुःखके कारण सूख गया था। उसका कण्ठ रुँध गया। अपनी प्रिया सती रुक्मिणीकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीहरि रुक्मीके वधसे विरत हो गये। फिर उसीके कमरबन्धसे बाँधकर तीखी धारवाले खड्गसे श्रीहरिने रुक्मीके आधे मुखकी दाढ़ी-मूँछके बाल साफ कर दिये॥ २९-३० ॥

अक्षौहिणीद्वयं जित्वा रामः प्राप्तः ससैनिकः।
बद्धं विरूपिणं दीनं रुक्मिणं तु ददर्श ह॥ ३१

विमुच्य बद्धं सदयः प्राह निर्भर्त्सयन् हरिम्।
असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतं लोकजुगुप्सितम्॥ ३२

इतनेमें ही दो अक्षौहिणी सेनाको परास्त करके सैनिकोंसहित बलरामजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि रुक्मी कुरूप और दीन अवस्थामें बँधा पड़ा है। फिर तो उनके हृदयमें दया आ गयी और उसका बन्धन खोलकर बलरामजीने श्रीहरिको फटकारते हुए कहा—'कृष्ण! तुमने यह अच्छा नहीं किया, यह लोकनिन्दित कर्म है॥ ३१-३२ ॥

हास्यं वै शालिभद्राणां न हि चैतादृशं भवेत्।
यस्याः सहोदरे मुख्ये विरूपे च त्वया कृते॥ ३३

किं वदिष्यति सापि त्वां भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया।
मा शोकं कुरु कल्याणि स्वस्था भव शुचिस्मिते॥ ३४

आर्यपुत्रि महाबुद्धे मा शोकं कुरु दुर्मनाः।
सर्वं कालकृतं मन्ये प्रियमप्रियमेव वा॥ ३५

अपनी पत्नीके भाइयोंके साथ इस प्रकार परिहास नहीं किया जाता। जिसके बड़े भाईको तुमने विरूप कर दिया, वह रुक्मिणी भाईकी इस दुर्दशासे चिन्तित होकर तुम्हें क्या कहेगी?' [श्रीकृष्णसे यों कहकर वे रुक्मिणीसे बोले—] ''कल्याणि! तुम शोक न करो। शुचिस्मिते! स्वस्थ हो जाओ। आर्यकुमारी! महामते! तुम शोक बिलकुल छोड़ दो, मनमें दुःख मत मानो। प्रिय अथवा अप्रिय जो भी प्राप्त होता है, वह सब मैं कालका किया हुआ मानता हूँ॥ ३३—३५ ॥

वायोर्घनावलिरिव वशे यस्याखिलं जगत्।
तं कालमीश्वरं विद्धि विष्णुं कलयतां प्रभुम्॥ ३६

जैसे घनमाला वायुके अधीन होती है, उसी प्रकार यह सारा जगत् कालके वशीभूत है। उस कालको तुम कलना करनेवालोंका स्वामी परमेश्वर एवं विष्णु समझो॥ ३६ ॥

अहं ममेति भावोऽयं जगतो बन्धकारणम्।
ताभ्यां विरहितो भावो मोक्ष एव न संशयः॥ ३७

सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः।
मित्रोदासीनरिपवः संसारतमसा कृताः॥ ३८

'मैं' और 'मेरा'—यह भाव ही जगत्के लिये बन्धनका कारण होता है। अहंता और ममतासे रहित भाव ही 'मोक्ष' है, इसमें संशय नहीं है; सुख और दुःख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। यह सब लोगोंका अपना भ्रम ही है। शत्रु, मित्र और उदासीनकी कल्पना संसारी लोगोंद्वारा अज्ञानके कारण की गयी है''॥ ३७-३८॥

एवं रामेण देवेन बोधितो भीष्मकात्मजः।
वैमनस्यं परित्यज्य रुक्मिणी च ययौ मुदम्॥ ३९

रुक्मी तु ताभ्यामुत्सृष्टो वितथात्ममनोरथः।
स्मरन् विरूपकरणं तपसे स मनोऽदधत्॥ ४०

वारितो मन्त्रिमुख्यैश्च कुण्डिनं न गतः पुनः।
चक्रे भोजकटं नाम निवासाय पुरं परम्॥ ४१

इस प्रकार भगवान् बलरामके समझानेपर भीष्मकपुत्र रुक्मी वैमनस्य छोड़कर चला गया और रुक्मिणीको भी प्रसन्नता हुई। रुक्मीका मनोरथ व्यर्थ हो चुका था, बलराम और श्रीकृष्णके द्वारा जीवित छोड़ दिये जानेपर अपने विरूपकरणकी घटनाको याद करके उसने तपस्यामें लग जानेका विचार किया। किंतु मुख्य-मुख्य मन्त्रियोंके मना करनेपर उसने तपका विचार छोड़ दिया, तथापि कुण्डिनपुरमें फिर पैर नहीं रखा। रुक्मीने अपने निवासके लिये भोजकट नामक एक उत्तम नगरका निर्माण कराया॥ ३९—४१॥

रुक्मिण्या सह गोविन्दः सरामो यदुभिर्वृतः।
द्वारकां प्रययौ राजन्नादयञ्जयदुन्दुभीन्॥ ४२

जाते महोत्सवे पुर्यां रुक्मिणीं रुचिराननाम्।
उपयेमे विधानेन मार्गशीर्षे हरिः स्वयम्॥ ४३

हरेर्विवाहे सति रुक्मिणीपतेः
श्रीरुक्मिणी भूषितरुक्ममन्दिरा।
पुरन्दरस्यापि यथामरावती
द्वारावती पुण्यवती तथा बभौ॥ ४४

राजन्! बलराम और यदुवंशी योद्धाओंसे घिरे हुए रुक्मिणीसहित भगवान् गोविन्द अपनी विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए द्वारकाको चले गये। वहाँ बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। मार्गशीर्षमासमें साक्षात् श्रीहरिने वैदिक विधिके अनुसार रुचिर मुखवाली रुक्मिणीके साथ विवाह किया। रुक्मिणीपति श्रीहरिका विवाह सम्पन्न हो जानेपर श्रीरुक्मिणीदेवी उनके रुक्म-मन्दिर (सुवर्णमय भवन)-की शोभा बढ़ाने लगीं। पुण्यवती द्वारकापुरी उस समय देवराज इन्द्रकी अमरावतीके समान सुशोभित हो रही थी॥ ४२—४४॥

भैष्मीविवाहस्य कथां विचित्रां
शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या।
इहैव भक्तो विभवेन युक्तः
स एव मुक्तिं प्रति याति मुक्तः॥ ४५

भीष्मकनन्दिनी रुक्मिणीके विवाहकी इस विचित्र कथाको जो भक्तिभावसे सुनता और सुनाता है, वह भक्त इस लोकमें भी वैभवसे सम्पन्न रहता है और देहावसानके पश्चात् वही मोक्षका भागी होता है॥ ४५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीद्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीरुक्मिणीविवाहो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीद्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीरुक्मिणीका विवाह' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके साथ विवाह और उनकी संततिका वर्णन; प्रद्युम्नका प्राकट्य तथा रति और रुक्मीकी पुत्रीके साथ उनका विवाह

श्रीनारद उवाच

अन्यासां कृष्णपत्नीनां मङ्गलं शृणु मैथिल।
सर्वपापहरं पुण्यमायुर्वर्धनमुत्तमम्॥ १

सत्राजिताय सूर्येण दत्तः साक्षात्स्यमन्तकः।
उग्रसेनाय स मणिः श्रीकृष्णेनाभियाचितः॥ २

सत्राजितस्तं न ददौ द्रव्यलोभेन मैथिल।
दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ यः सृजति स्वतः॥ ३

अथ प्रसेनस्तद्भ्राता मणिं कण्ठे निधाय सः।
सैन्धवं हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने॥ ४

सिंहेन मारितः सोऽपि सिंहो जाम्बवता हतः।
गृहीत्वा तं मणिं सद्यो जाम्बवान् स्वगुहां गतः॥ ५

कृष्णेन निहतो भ्राता मणिग्रीवो वनं गतः।
नायातः स्वसभामध्ये इति सत्राजितोऽब्रवीत्॥ ६

भगवान् दुर्यशोलिप्तो नागरैस्तु वनं गतः।
प्रसेनमश्वं सिंहं च हतं प्रेक्ष्य महामते॥ ७

ऋक्षराजबिलं गत्वा मणिं हर्तुं स्वयं हरिः।
युद्धं कृत्वाष्टविंशाहमजयदृक्षनायकम्॥ ८

तेन दत्ता जाम्बवती हरये कन्यका शुभा।
मणिना सह राजेन्द्र द्वारकामाययौ हरिः॥ ९

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब श्रीकृष्णकी अन्य पत्नियोंके मङ्गलमय विवाहका वृत्तान्त सुनो, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा आयुकी वृद्धिका सर्वोत्तम साधन है॥ १॥

सत्राजित नामसे प्रसिद्ध यादवको साक्षात् भगवान् सूर्यने स्यमन्तक मणि दे रखी थी। भगवान् श्रीकृष्णने राजा उग्रसेनके लिये वह मणि माँगी। मिथिलेश्वर! सत्राजितने द्रव्यके लोभसे वह मणि नहीं दी; क्योंकि उस मणिसे प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण स्वतः प्राप्त होता रहता था। एक दिन सत्राजितका भाई प्रसेन उस मणिको अपने कण्ठमें बाँधकर सिन्धुदेशीय अश्वपर आरूढ़ हो शिकार खेलनेके लिये वनमें विचरने लगा॥ २—४॥

वहाँ एक सिंहने प्रसेनको मार डाला। फिर उस सिंहको भी जाम्बवान्‌ने मारा और तत्काल उस मणिको लेकर जाम्बवान् अपनी गुफामें चला गया। सत्राजित लोगोंमें यह प्रचार करने लगा कि 'मेरा भाई प्रसेन मणिको कण्ठमें धारण करके वनमें गया था, किंतु श्रीकृष्णने वहाँ उसका वध कर दिया; इसीलिये आज सबेरे वह सभाभवनमें नहीं आया'॥ ५-६॥

भगवान्‌पर कलङ्कका टीका लग गया। वे कुछ नागरिकोंको साथ ले वनमें गये। महामते! वहाँ उन्होंने पहले घोड़ेसहित मरे हुए प्रसेनके और किसी दूसरेके द्वारा मारे गये सिंहके शवको पड़ा देखा। यह देखकर पदचिह्नसे पता लगाते हुए वे ऋक्षराज जाम्बवान्‌की गुफातक पहुँच गये। फिर वहाँसे मणि लानेके लिये साक्षात् श्रीहरिने गुफाके भीतर प्रवेश करके अट्ठाईस दिनोंतक युद्ध किया तथा ऋक्षराज जाम्बवान्‌पर विजय पायी॥ ७-८॥

राजेन्द्र! जाम्बवान्‌ने अपनी सुन्दरी कन्या जाम्बवतीको उस मणिके साथ श्रीहरिके हाथमें दे दिया। उसे लेकर भगवान् द्वारकामें लौटे॥ ९॥

सत्राजिताय प्रददौ मणिं निर्लाञ्छनः प्रभुः।
व्रीडितोऽवाङ्मुखो भीतो राजा सत्राजितो मणिम्॥ १०

गृहीत्वापि पुनस्तस्मै श्रीकृष्णाय महात्मने।
सत्यभामां सुतां प्रादाच्छान्त्यर्थं मैथिलेश्वर॥ ११

पाण्डवानां सहायार्थमिन्द्रप्रस्थं गतो हरिः।
तत्रैव वार्षिकान्मासान्यवात्सीद्बन्धुवत्सलः॥ १२

एकदा रथमारुह्य हरिर्गाण्डीविना सह।
सुनीरे यमुनातीरे मृगयार्थी विनिर्ययौ॥ १३

तपश्चरन्ती कालिन्दी श्रीकृष्णं वरमिच्छती।
दर्शिता पाण्डवेनापि तां गृहीत्वा जगाम ह॥ १४

द्वारकामेत्य कालिन्दीं सूर्यकन्यां मनोहराम्।
उपयेमे विधानेन वितन्वन् मङ्गलं परम्॥ १५

आवन्त्यराजतनुजां मित्रविन्दां मनोहराम्।
स्वयंवरे तां जहार भगवान् रुक्मिणीं यथा॥ १६

नग्नजित्कन्यकां सत्यां दमित्वा सप्त गोवृषान्।
पश्यतां सर्वलोकानामुपयेमे हरिः स्वयम्॥ १७

कैकेयराजतनुजां भद्रां तु भगवान् हरिः।
कालिन्दीमिव तां शश्वदुपयेमे विधानतः॥ १८

उन्होंने सत्राजितको मणि दे दी और स्वयं कलङ्कसे मुक्त हुए। सत्राजितको अपने कृत्यपर बड़ी लज्जा आयी और वे मुँह नीचे किये भयभीत-से रहने लगे। मिथिलेश्वर! उन्होंने यादव-परिवारमें शान्ति रखनेके लिये अपनी पुत्री सत्यभामा तथा उस मणिको भी भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित कर दिया॥ १०-११॥

तदनन्तर बन्धुवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी सहायताके लिये इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) गये। उन्होंने वर्षाके चार महीने वहीं व्यतीत किये। एक दिन गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ रथपर आरूढ़ हो श्रीहरि निर्मल नीरसे भरी हुई यमुनाके तीरपर शिकार खेलनेके लिये विचरने लगे॥ १२-१३॥

वहाँ साक्षात् कालिन्दी देवी भगवान् श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्या कर रही थीं। पाण्डव अर्जुनने उन्हें श्रीकृष्णको दिखाया। फिर वे भगवान् उन्हें साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ आये। वहाँसे द्वारकामें पहुँचकर उन्होंने मनोहराङ्गी सूर्यकन्या कालिन्दीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उस समय परम मङ्गलमय उत्सवका विस्तारके साथ आयोजन किया गया था॥ १४-१५॥

अवन्तीके नरेशकी एक पुत्री थी, जो रूप-लावण्यसे मनको हर लेनेवाली थी। उसका नाम था मित्रविन्दा। भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीकी ही भाँति मित्रविन्दाको भी स्वयंवरसे हर लाये॥ १६॥

राजा नग्नजित्‌के एक पुत्री थी, जो लोगोंमें सत्याके नामसे विख्यात थी। उसके विवाहके लिये राजाने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'सात साँड़ोंको जो एक साथ ही नाथ देगा, उसी वीरको मैं अपनी पुत्री दूँगा।' भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंके देखते-देखते उन सातों साँड़ोंको नाथकर सत्याके साथ विवाह किया॥ १७॥

केकयराजकुमारी भद्राको भी भगवान् श्रीहरि उसकी इच्छाके अनुसार अपने घर ले आये। वहाँ कालिन्दीकी ही भाँति भद्राके साथ उन्होंने विधिपूर्वक विवाह किया॥ १८॥

बृहत्सेनसुतां राजँल्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम्।
छित्त्वा मत्स्यमरीञ्जित्वा जग्राह भगवान् हरिः॥ १९

तथा षोडशसाहस्त्रं शतं च नृपकन्यकाः।
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः॥ २०

तासां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम्।
सविधिं जगृहे पाणीन्नानारूपः स्वमायया॥ २१

एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान् दश दशाबलाः।
अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसम्पदा॥ २२

रुक्मिण्यां भीष्मकन्यायां प्रद्युम्नः प्रथमोऽभवत्।
कामदेवावतारोऽयं पितृवत्सर्वलक्षणः॥ २३

शम्बरो निर्दयः स्तोकं हत्वाब्धौ तं समाक्षिपत्।
मत्स्योदरे गतः सोऽपि न ममार हरेः सुतः॥ २४

मत्स्योदरान्निर्गतोऽसौ भार्यया परिपालितः।
ज्ञात्वा शत्रुकृतां वार्तां स कार्ष्णी रूढयौवनः॥ २५

हत्वा तं शम्बरं शत्रुं भार्यया वरया युतः।
द्वारकामाययौ राजंश्चित्रं कर्म च तस्य तत्॥ २६

स रुक्मिणो दुहितरं हृत्वा भोजकटात्पुरात्।
स्वयंवरस्थलाद्राजन्नुपयेमे महारथः॥ २७

तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः।
सुरज्येष्ठावतारोऽयं शारदेन्दीवरप्रभः॥ २८

राजन्! राजा बृहत्सेनके एक पुत्री थी, जिसे लोग लक्ष्मणा कहते थे। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। उसके यहाँ स्वयंवरमें मत्स्यवेधकी शर्त रखी गयी थी। भगवान्ने उस मत्स्यका भेदन किया और [अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले] शत्रुओंको परास्त करके लक्ष्मणाका हाथ पकड़ा॥ १९॥

सोलह हजार एक सौ राजकुमारियाँ भौमासुरके कारागारमें बंद थीं। भगवान्ने भौमासुरका वध करके उसकी कैदसे उनको छुड़ाया। उन चारुदर्शना युवतियों-की इच्छा देखकर वे उन्हें अपने साथ ले आये॥ २०॥

एक ही मुहूर्तमें विभिन्न भवनोंमें रहती हुई उन युवतियोंके साथ अपनी मायासे उतने ही रूप धारण करके भगवान्ने उन सबका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। इस प्रकार सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंमें-से प्रत्येकने श्रीकृष्णके दस-दस पुत्र उत्पन्न किये। वे सभी गुणोंमें पिताके समान थे॥ २१-२२॥

भीष्मककन्या रुक्मिणीके गर्भसे सबसे पहले प्रद्युम्न प्रकट हुए। वे कामदेवके अवतार थे और पिताकी ही भाँति समस्त शुभ लक्षणोंसे विभूषित थे। निर्दयी शम्बरासुरने दस दिनोंके भीतर ही उन्हें सूतिकागारसे उठाकर समुद्रमें फेंक दिया। वहाँ उन्हें एक मत्स्य निगल गया, तथापि वे श्रीकृष्णकुमार मत्स्यके उदरमें मरे नहीं॥ २३-२४॥

वह मत्स्य शम्बरासुरके पाकालयमें चीरा गया तो उसमेंसे प्रद्युम्न निकले। वहाँ उनकी पूर्वपत्नी रतिने उनका पालन किया। जब वे बड़े हुए और युवावस्था प्रारम्भ हुई, तब उन्हें अपने शत्रुकी करतूतका पता चला। राजन्! फिर अपने शत्रु शम्बरासुरका वध करके वे दिव्य भार्या रतिके साथ द्वारकामें आये। उनका वह कर्म बड़ा ही विचित्र एवं अद्भुत था॥ २५-२६॥

राजन्! महारथी श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न रुक्मीकी बेटीको भोजकट नगरके स्वयंवरस्थलसे हर लाये और द्वारकामें उसके साथ उनका विवाह हुआ। प्रद्युम्नसे अनिरुद्ध नामक पुत्रका जन्म हुआ, जिसमें दस हजार हाथियोंका बल था। वे ब्रह्माजीके अवतार समझे जाते थे। उनकी कान्ति शरत्कालके प्रफुल्ल नील कमलके समान श्याम थी॥ २७-२८॥

चतुर्व्यूहावतारस्य परिपूर्णतमस्य हि।
एवं विचित्रं चरितं विवाहानां सुमङ्गलम्॥ २९

सर्वपापहरं पुण्यमायुर्वर्धनमुत्तमम्।
मया ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३०

इस प्रकार मैंने परिपूर्णतम भगवान्के चतुर्व्यूहावतारका तथा उनके विवाह-सम्बन्धी परम मङ्गलमय विचित्र चरित्रका तुमसे वर्णन किया है, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा आयुकी वृद्धिका उत्तम साधन है। राजन्! अब तुम पुनः क्या सुनना चाहते हो?॥ २९-३०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे सर्वमहिष्युद्वाहो नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णकी समस्त रानियोंके विवाहका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

द्वारकापुरीके पृथ्वीपर आनेका कारण; राजा आनर्तकी तपस्या और उनपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा

बहुलाश्व उवाच

त्रिषु लोकेषु विख्याता धन्या वै द्वारकापुरी।
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो यत्र वासकृत्॥ १

श्रीकृष्णस्याङ्गसम्भूता पुरी द्वारावती श्रुता।
कस्मादिहागता ब्रह्मन् कस्मिन् काले वद प्रभो॥ २

बहुलाश्व बोले—[मुने!] तीनों लोकोंमें विख्यात द्वारकापुरी धन्य है, जहाँ साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं। आपके मुखसे सुना है कि द्वारकापुरी साक्षात् श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई है; प्रभो! ब्रह्मन्! किस कालमें वह पुरी कैसे यहाँ आयी, यह मुझे बताइये॥ १-२॥

श्रीनारद उवाच

साधु साधु त्वया पृष्टं द्वारकागमकारणम्।
यच्छ्रुत्वा शुद्धतां याति लोकघात्यपि पातकी॥ ३

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! तुम्हें साधुवाद है। तुमने बहुत अच्छा किया, जो द्वारकाके यहाँ आगमनका कारण पूछा, जिसे सुनकर लोकघाती पातकी भी शुद्ध हो जाता है॥ ३॥

शर्यातिर्नाम राजाभूच्चक्रवर्ती मनोः सुतः।
चकार राज्यं धर्मेण वर्षाणामयुतं भुवि॥ ४

उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः।
शर्यातेरभवन्पुत्राः सर्वधर्मभृतां वराः॥ ५

उत्तानबर्हिषे पूर्वां भूरिषेणाय दक्षिणाम्।
पश्चिमां च दिशं सर्वामानर्ताय ददौ नृपः॥ ६

ममेयं हि मही कृत्स्ना मया धर्मेण पालिता।
बलार्जिता बलिष्ठेन यूयं तां पालयिष्यथ॥ ७

पितुर्वचः समाकर्ण्य आनर्तो मध्यमः सुतः।
ज्ञानी ज्ञानमयं वाक्यमुवाच प्रहसन्निव॥ ८

मनुके पुत्र शर्याति नामक एक राजा हुए, जो चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने दस हजार वर्षोंतक इस भूतलपर धर्मपूर्वक राज्य किया। उनके तीन पुत्र हुए, जो समस्त धर्मज्ञ पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे। उनके नाम थे—उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण। राजा शर्यातिने उत्तानबर्हिको पूर्व दिशा, भूरिषेणको दक्षिण दिशा और आनर्तको सारी पश्चिम दिशाका राज्य दिया। [फिर वे पुत्रोंसे बोले—] 'यह सारी पृथ्वी मेरी है। मैंने धर्मपूर्वक इसका पालन किया है तथा बलिष्ठ होकर बलपूर्वक इसका अर्जन किया है; अतः तुमलोग इसका पालन करो।' पिताकी यह बात सुनकर मझले पुत्र ज्ञानी आनर्तने मानो हँसते हुए यह ज्ञानमय वचन कहा—॥ ४—८॥

आनर्त उवाच

तवेयं न मही कृत्स्ना न त्वया पालिता क्वचित्।
न त्वद्बलार्जिता राजन् बलिष्ठो भगवान् विभुः॥ ९

मही श्रीकृष्णदेवस्य तेनैव परिपालिता।
तत्तेजसा जिता कृत्स्ना बलिष्ठो न हरेः समः॥ १०

स एव विश्वं स्वकृतं सृजत्यत्ति च पाति च।
स एव ब्रह्म परमं कालः कलयतां प्रभुः॥ ११

योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरप्यखिलाश्रयः।
स विश्वाख्योऽधियज्ञोऽसौ परिपूर्णतमः स्वयम्॥ १२

यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात्।
यद्भयाद्वर्षते देवो मृत्युश्चरति यद्भयात्॥ १३

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं परमेश्वरम्।
भज सर्वात्मना राजन्नहङ्कारविवर्जितः॥ १४

आनर्त बोले—राजन्! यह सारी पृथ्वी आपकी नहीं है। न आपने कभी इसका पालन किया है और न आपके बलसे इसका अर्जन हुआ है। राजन्! बलिष्ठ तो भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, अतः यह पृथ्वी श्रीकृष्णदेवकी है। उन्होंने इसका पालन किया और उन्हींके तेजसे इस सम्पूर्ण वसुंधराका अर्जन हुआ है। भगवान् श्रीहरिके समान बलिष्ठ दूसरा कोई नहीं है। वे ही भगवान् अपने द्वारा प्रकट किये गये इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। वे ही परब्रह्म परमात्मा हैं और वे ही भगवान् कलना करनेवालोंके स्वामी 'काल' हैं॥ ९—११॥

जो सम्पूर्ण भूतोंके भीतर प्रवेश करके सबका आश्रय है, वह विश्वसंज्ञक अधियज्ञ साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि ही हैं। जिनके भयसे हवा चलती है, जिनके भयसे सूर्य तपते हैं, जिनके भयसे पर्जन्यदेव वर्षा करते हैं और जिनके भयसे मृत्यु घूमती रहती है, राजन्! उन साक्षात् परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णका सम्पूर्ण हृदयसे अहंकारशून्य होकर भजन कीजिये॥ १२—१४॥

श्रीनारद उवाच

ज्ञानं प्राप्तोऽपि शर्यातिराक्षिप्तः पुत्रवाक्शरैः।
आनर्तं स्वसुतं प्राह रुषा प्रस्फुरिताधरः॥ १५

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! राजा शर्याति ज्ञानको प्राप्त होकर भी पुत्रके वाग्बाणोंसे आहत हो, रोषसे फड़कते हुए अधरोंद्वारा अपने मध्यम पुत्र आनर्तसे बोले—॥ १५॥

शर्यातिरुवाच

दूरं गच्छ असद्बुद्धे गुरुवद्भाषसे कथम्।
यावद्भूतं तु मे राज्यं तावत्त्वं मा महीं वस॥ १६

यस्त्वयाराधितः कृष्णः सोऽपि सर्वसहायकृत्।
नवीनां किं महीं ते वै भगवानेव दास्यति॥ १७

शर्यातिने कहा—ओ खोटी बुद्धिवाले बालक! दूर हट जाओ। गुरुकी भाँति उपदेश कैसे कर रहे हो? जहाँतक मेरा राज्य है, वहाँतककी भूमिपर तुम निवास मत करो। तुमने जिन सर्वसहायक श्रीकृष्णकी आराधना की है, वे भगवान् भी क्या तुम्हारे लिये कोई नयी पृथ्वी दे देंगे?॥ १६-१७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तस्तु तदानर्तो राजानं प्राह मानदः।
यत्र ते च महीराज्यं तत्र वासो न मे भवेत्॥ १८

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! उनके यों कहनेपर दूसरोंको मान देनेवाले आनर्तने राजासे कहा—'जहाँतक पृथ्वीपर आपका राज्य है, वहाँतक मेरा निवास नहीं होगा?'॥ १८॥

पित्रा निःसारितो राज्ञाऽप्यानर्तोऽब्धितटं गतः।
वेलामेत्य तपस्तेपे वर्षाणामयुतं जले॥ १९

पिता राजा शर्यातिद्वारा निकाले गये आनर्त उनसे विदा ले समुद्रके तटपर चले गये और समुद्रकी वेलामें पहुँचकर दस हजार वर्षोंतक जलमें तपस्या करते रहे॥ १९॥

प्रेमलक्षणया भक्त्या सन्तुष्टो भगवान् हरिः।
तस्मै स्वं दर्शनं दत्वा वरं ब्रूहीत्युवाच ह॥ २०

कृताञ्जलिपुटो भूत्वानर्त उत्थाय शीघ्रतः।
ननाम कृष्णपादाब्जं रोमाञ्ची प्रेमविह्वलः॥ २१

आनर्त उवाच

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥ २२

पित्रा निष्कासितो देव त्वामहं शरणं गतः।
देहि मह्यं भूमिमन्यां यत्र वासो हि मे भवेत्॥ २३

ध्रुवोऽपि यत्प्रसादेन ययौ सर्वोत्तमं पदम्।
तस्मै नमो भगवते प्रणतक्लेशहारिणे॥ २४

श्रीनारद उवाच

आनर्तमानतं दीनं भगवान् दीनवत्सलः।
प्रसन्नः श्रीमुखेनाह मेघगम्भीरया गिरा॥ २५

श्रीभगवानुवाच

अन्या न मेदिनी लोके किं कर्तव्यं मया नृप।
स्ववचस्तदृतं कर्तुं त्वद्भक्त्या परितोषितः॥ २६

तस्माद्वै स्वस्य लोकस्य वैकुण्ठस्य परन्तप।
भूखण्डं योजनशतं ददामि विमलं शुभम्॥ २७

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वानर्तनृपतिं भगवान् भक्तवत्सलः।
वैकुण्ठाच्च समुत्पाट्य भूखण्डं शतयोजनम्॥ २८

चक्रं सुदर्शनं धृत्वा समुद्रे भीमनादिनि।
दधार भगवान् देवस्तस्योपरि विदेहराट्॥ २९

आनर्तो लक्षवर्षान्तं तत्र राज्यं चकार ह।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो राजन् वैकुण्ठसम्पदम्॥ ३०

आनर्तकी प्रेमलक्षणा-भक्तिसे प्रसन्न हो भगवान् श्रीहरिने उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया और वर माँगनेके लिये कहा। आनर्त दोनों हाथ जोड़कर शीघ्रतापूर्वक उठे और रोमाञ्चयुक्त तथा प्रेमसे विह्वल हो उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणाम किया॥ २०-२१॥

आनर्त बोले—सबके हृदयमें वास करनेवाले आप वासुदेवको नमस्कार है। आकर्षण-शक्तिके अधिष्ठातृ-देवता आप संकर्षणको नमस्कार है। [कामावतार] प्रद्युम्न और [ब्रह्मावतार] अनिरुद्धको भी नमस्कार है। भगवन्! आप साधु-संतोंके प्रतिपालक हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। देव! मेरे पिताने मुझे राज्यसे बाहर निकाल दिया है, अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मुझे दूसरी कोई भूमि दीजिये, जहाँ मेरा निवास हो सके। ध्रुव भी जिनके कृपा-प्रसादसे सर्वोत्तम पदको प्राप्त हुए, प्रणतजनोंका क्लेश दूर करनेवाले उन भगवान् (आप)-को मेरा नमस्कार है॥ २२—२४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! आनर्तको आनत एवं दीन जानकर दीनवत्सल भगवान्ने प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें श्रीमुखसे कहा—॥ २५॥

श्रीभगवान् बोले—नरेश्वर! इस लोकमें दूसरी कोई पृथ्वी तो है नहीं, फिर मैं क्या करूँ? परंतप! तुम्हारी भक्तिसे मैं संतुष्ट हूँ, अतः अपनी बात सत्य करनेके लिये तुम्हें अपने दिव्यलोक वैकुण्ठधामका सौ योजन लंबा-चौड़ा भूखण्ड लाकर देता हूँ। वह अत्यन्त निर्मल तथा शुभ है॥ २६-२७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेहराज! आनर्त-नरेशसे यों कहकर भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने वैकुण्ठसे सौ योजन विशाल भूखण्ड उखाड़ मँगाया और भयंकर शब्द करनेवाले समुद्रमें सुदर्शन चक्रकी नींव बनाकर उसीके ऊपर उस भूखण्डको स्थापित किया। राजा आनर्तने एक लाख वर्षोंतक पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न हो वहाँ राज्य किया। उस राज्यमें वैकुण्ठका वैभव भरा हुआ था॥ २८—३०॥

इदं श्रुत्वाथ शर्यातिः पिता वै विस्मितोऽभवत्।
आनर्तो नाम देशोऽभूदानर्तस्य प्रसादतः॥ ३१

रेवतस्तस्य पुत्रोऽभूच्छ्रीशैलस्य गिरेः सुतम्।
समुत्पाट्य स्वहस्ताभ्यामानर्तेषु न्यपातयत्॥ ३२

सोऽभूद्रेवतनाम्नापि रैवतो नाम पर्वतः।
कुशस्थलीं विनिर्माय राज्यं कृत्वाथ रेवतः॥ ३३

समादाय स्वकां कन्यां ब्रह्मलोकं जगाम ह।
बलदेवविवाहेऽपि तत्कथा कथिता मया॥ ३४

तस्माद्द्वारावतीं पुण्यां मोक्षद्वारं विदुः सुराः॥ ३५

आनर्तके पिता शर्यातिने जब यह समाचार सुना, तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। अनर्तके प्रसादसे ही 'आनर्त' नामक देश प्रकट हुआ। आनर्तके रेवत नामका पुत्र हुआ। पूर्वकालमें श्रीशैल नामक पर्वतका एक पुत्र था। आनर्तने उसे अपने हाथोंसे उखाड़कर आनर्त देशमें स्थापित किया॥ ३१-३२॥

रेवतके द्वारा लाये जानेसे उन्हींके नामपर वह पर्वत 'रैवतक' नामसे विख्यात हुआ। राजा रेवत कुशस्थली पुरीका निर्माण कराके वहाँ दीर्घकालतक राज्य करनेके पश्चात् अपनी कन्या रेवतीको साथ ले ब्रह्मलोकमें गये, यह सब कथा मेरे द्वारा बलदेव-विवाहके प्रसङ्गमें कही जा चुकी है। इसी कारण पुण्यमयी द्वारकापुरीको देवताओंने 'मोक्षका द्वार' माना है॥ ३३—३५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे द्वारकागमनकारणं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्वारकापुरीके पृथ्वीपर आनेका कारण' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

द्वारकापुरी, गोमती और चक्रतीर्थका माहात्म्य; कुबेरके वैष्णवयज्ञमें दुर्वासामुनि-द्वारा घण्टानाद और पार्श्वमौलिको शाप

श्रीनारद उवाच

इत्थं मया ते कथितं द्वारकागमकारणम्।
सर्वपापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १

बहुलाश्व उवाच

सर्वतीर्थमयी भूमिर्द्वारका नगरी शुभा।
तत्र मुख्यानि तीर्थानि वद मां मुनिसत्तम॥ २

श्रीनारद उवाच

आप्रभासात्तीर्थमयी मर्यादीकृत्य यज्ञिया।
भूमिर्मोक्षप्रदा राजन् द्वारका योजनैः शतम्॥ ३

द्वारकां नगरीं दृष्ट्वा नरो नारायणो भवेत्।
द्वारकायां मृतः कोऽपि गर्दभोऽपि चतुर्भुजः॥ ४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे द्वारकाके आगमनका कारण बताया, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यदायक है; अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ १॥

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! कल्याणस्वरूपा द्वारकानगरीकी भूमि सर्वतीर्थमयी है, अतः वहाँके मुख्य-मुख्य तीर्थोंको मुझे बताइये॥ २॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! द्वारकासे प्रभास-तककी सीमा बनाकर जो तीर्थमयी यज्ञभूमि है, वही मोक्षदायिनी 'द्वारका' है। उसका विस्तार सौ योजन है। द्वारकानगरीका दर्शन करके नर नारायण हो जाता है। द्वारकामें कोई गधा भी मर जाय तो वह चतुर्भुज होकर वैकुण्ठलोकमें जाता है॥ ३-४॥

पश्यन् शृण्वन् कथां तस्या द्वारकेति वदन् क्वचित्।
दृष्ट्वा दद्यात्तृणं मृत्युं गतो याति परां गतिम्॥ ५

एकदा रेवतं भक्तं प्रेमानन्दसमाकुलम्।
प्रेक्ष्य स्वं दर्शनं दत्वा हरिरश्रुमुखोऽभवत्॥ ६

तन्नेत्रबिन्दुसम्भूता गोमती सा महानदी।
यस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या प्रमुच्यते॥ ७

गोमतीतीरजं पुण्यं रजो यो धारयेन्नरः।
शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥ ८

स्नानकाले गोमतीति वदत्यपि नरः क्वचित्।
गोमत्यां स्नानजं पुण्यं लभते वै न संशयः॥ ९

मकरस्थे रवौ माघे प्रयागे स्नानमाचरेत्।
शताश्वमेधजं पुण्यं सम्प्राप्नोति विदेहराट्॥ १०

तत्सहस्रगुणं पुण्यं गोमत्यां मकरे रवौ।
गोमत्याश्चैव माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः॥ ११

गोमत्यां चक्रतीर्थेषु पाषाणनिचयाश्च ये।
ते सर्वे चक्रतां यान्ति पूजनीयाः प्रयत्नतः॥ १२

चक्रचिह्ने चक्रतीर्थे द्वादश्यां स्नानमाचरेत्।
चक्रपाणिपदं याति पापानां भाजनोऽपि हि॥ १३

कोटिजन्मकृतैः पापैः पतितो योऽपि पातकी।
चक्रतीर्थस्य सोपानमेत्य मुक्तिं समारुहेत्॥ १४

बहुलाश्व उवाच

गोमत्यां हि महानद्यां चक्रतीर्थं शुभार्थदम्।
कथं जातं बहुमतं तन्मे ब्रूहि महामते॥ १५

जो द्वारकाका दर्शन करता है, उसकी कथा सुनता है तथा कभी 'द्वारका' इस नामका उच्चारण करता है, अथवा वहाँ दर्शन-स्नान करके तिनकेका भी दान करता है, वह मृत्युके पश्चात् परमगतिको प्राप्त होता है॥ ५॥

एक समय भक्त रेवतको प्रेमानन्दमें आकुल देख श्रीहरिने उसे अपने स्वरूपका दर्शन कराया। उस समय उनके मुँहपर अश्रुधारा बह चली थी। भगवान्‌के नेत्रबिन्दुओंसे महानदी गोमती प्रकट हुई, जिसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्या-जैसे पातकोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो मनुष्य गोमती-तटकी पवित्र रज लेकर अपने सिरपर धारण करता है, वह सौ जन्मोंके किये हुए पापसे तत्काल मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है॥ ६—८॥

मनुष्य कहीं भी स्नान करते समय यदि 'गोमती'—इस नामका उच्चारण कर लेता है तो उसे निस्संदेह गोमतीमें स्नान करनेका पुण्यफल प्राप्त हो जाता है। विदेहराज! जो मकर-राशिमें सूर्यके स्थित रहते समय माघमासमें प्रयागकी त्रिवेणीमें स्नान करता है, वह सौ अश्वमेध-यज्ञोंका पुण्यफल पा लेता है; परंतु यदि वह सूर्यके मकरगत होनेपर गोमतीमें स्नान कर ले तो उसे प्रयागस्नानकी अपेक्षा सहस्रगुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है। गोमतीका माहात्म्य बतानेमें चार मुखोंवाले ब्रह्मा भी समर्थ नही हैं॥ ९—११॥

गोमतीके 'चक्रतीर्थ'में जो-जो पाषाण हैं, वे सब-के-सब चक्रभावको प्राप्त होते हैं; अतः उनकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। जो चक्रके चिह्नसे युक्त चक्रतीर्थमें द्वादशीको स्नान करता है, वह पाप-भाजन होनेपर भी चक्रपाणिके पदको प्राप्त होता है। करोड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे पतित हुआ पातकी मनुष्य भी चक्रतीर्थकी सीढ़ियोंतक पहुँचकर मोक्ष-पदपर आरूढ़ हो जाता है॥ १२—१४॥

बहुलाश्वने पूछा—महामते! महानदी गोमतीमें जो चक्रतीर्थ है, वह शुभ अर्थको देनेवाला तथा लोगोंके लिये अधिक माननीय कैसे हो गया? यह मुझे बताइये॥ १५॥

श्रीनारद उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः परा भवेत्॥ १६

अलकेशो राजराजो निधीशो धर्मभृत्प्रभुः।
वैष्णवं यज्ञमारेभे कैलासोत्तरभूमिषु॥ १७

तस्य यज्ञे स्वयं विष्णुरागतो वै स्वधामतः।
ब्रह्मा शिवो जम्भभेदी वरुणो यादसां पतिः॥ १८

वायुर्यमो रविः सोमः क्षितिः सर्वजनेश्वरी।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः सर्वे तत्र समाययुः॥ १९

देवर्षयः समाजग्मुस्तथा ब्रह्मर्षयो नृप।
धनाध्यक्षोऽभवत्तस्य पुत्रस्तु नलकूबरः॥ २०

रक्षायां वीरभद्रोऽभूत्सेवायां च गजाननः।
तथा मरुद्गणाः सर्वे परिवेषणकारिणः॥ २१

बाहुलेयः सभापूजामकरोद्धर्मतत्परः।
घण्टानादः पार्श्वमौलिः कुबेरस्य तु मन्त्रिणौ॥ २२

सर्वशास्त्रविदां श्रेष्ठौ दानाध्यक्षौ बभूवतुः।
एवं हि विधिवद्यज्ञो बभूव परमोत्सवः॥ २३

अध्वरावभृथस्नातो राजराजो महामनाः।
परं भागं च देवेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणामदात्॥ २४

एवं पूर्णेऽध्वरे मुख्ये तुष्टे देवर्षिसत्तमे।
आजगामाथ दुर्वासा दण्डी छत्री जटाधरः॥ २५

क्रोधी कृशः पादुकाङ्घ्रिर्दीर्घश्मश्रुः कृशोदरः।
दर्भासनसमित्पात्रमृगचर्मधरः परः॥ २६

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! इसी विषयमें विज्ञजन इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे सर्वथा पापोंकी हानि हो जाती है॥ १६॥

एक समयकी बात है, अलकापुरीके स्वामी राजाधिराज धर्मात्मा निधिपति भगवान् कुबेरने कैलासके उत्तर तटकी भूमिपर वैष्णवयज्ञ आरम्भ किया। उनके उस यज्ञमें स्वयं भगवान् विष्णु अपने धामसे उतर आये थे। ब्रह्मा, शिव, जम्भभेदी इन्द्र, जल-जन्तुओंके अधिपति वरुण, वायु, यम, सूर्य, सोम, सर्वजनेश्वरी पृथ्वी, गन्धर्व, अप्सरा और सिद्ध—सभी उस यज्ञमें वहाँ पधारे थे॥ १७—१९॥

नरेश्वर! समस्त देवर्षि और ब्रह्मर्षि भी वहाँ आये। उस समय कुबेरका पुत्र नलकूबर धनाध्यक्ष था॥ २०॥

यज्ञकी रक्षामें वीरभद्रको नियुक्त किया गया था। सत्पुरुषोंकी सेवाका भार गजानन गणपतिके ऊपर था। समस्त मरुद्गण रसोई परोसनेका कार्य करते थे। स्वामिकार्तिकेय धर्मपरायण रहकर सभा-मण्डपमें समागत अतिथिजनोंकी पूजा-सत्कार करते थे तथा घण्टानाद और पार्श्वमौलि—ये दोनों कुबेरके मन्त्री, जो सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे, दानाध्यक्ष बनाये गये थे। इस प्रकार महान् उत्सवसे परिपूर्ण उस यज्ञका विधिपूर्वक अनुष्ठान सम्पन्न हुआ॥ २१—२३॥

यज्ञान्तका अवभृथ-स्नान करके महामनस्वी राजराज कुबेरने देवताओंको उनका उत्तम भाग दिया और ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा दी। इस प्रकार उस श्रेष्ठ यज्ञके परिपूर्ण होनेपर जब समस्त देवर्षिगण संतुष्ट हो गये, तब दण्ड, छत्र और जटा धारण किये महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुचे। वे स्वभावसे ही क्रोधी और कृशकाय थे। उनके चरणोंमें खड़ाऊँ शोभा पाती थी। दाढ़ी-मूँछके बाल बढ़े हुए थे। पेट सूखकर सट गया था। कुशासन, समिधा, जलपात्र और मृगचर्म धारण किये वे श्रेष्ठ मुनि वहाँ पधारे॥ २४—२६॥

तमागतं समागम्य पूजयित्वा विधानतः।
भयभीतः परिक्रम्य कुबेरः प्रणनाम ह॥ २७

अद्य मे सफलं जन्म सफलं मन्दिरं च मे।
अद्य मे सफलो यज्ञो ब्रह्मंस्त्वय्यागते सति॥ २८

इत्थं सन्तोषितस्तेन दुर्वासा भगवान् मुनिः।
देवं मनुष्यधर्माणं प्राह प्रहसिताननः॥ २९

त्वं राजराजो धर्मात्मा दानी विप्रपरायणः।
कृतस्ते वैष्णवो यज्ञो विष्णुसन्तोषकारणः॥ ३०

न याचितो मया त्वं वै क्वापि वैश्रवण प्रभो।
अद्यैव याचनां कुर्वे ज्ञात्वा त्वां दानिसत्तमम्॥ ३१

मद्याच्ञां सफलीकुर्यास्तुभ्यं दास्यामि सद्वरम्।
न चेत्त्वां भस्मसात्कुर्वे शापेनातिभयेन वै॥ ३२

वर्तन्ते त्वद्‌गृहे सर्वे त्रैलोक्यनिधयो नव।
तान्मे प्रयच्छ भद्रं ते तदर्थं गतवानहम्॥ ३३

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा राजराजो दानशील उदारधीः।
ओमिति प्रतिगृह्णीष्व प्राह तं गुह्यकेश्वरः॥ ३४

एवं निधीन् प्रदास्यन्तं दानाध्यक्षौ निधीश्वरम्।
घण्टानादः पार्श्वमौलिरूचतुर्लोभमोहितौ॥ ३५

द्वावूचतुः

एकोऽयं ब्राह्मणो लोभी निधिभिः किं करिष्यति।
लक्षं दिव्यं देहि चास्मै वृत्तिं रक्ष तथोत्तराम्॥ ३६

श्रीनारद उवाच

परुषं तद्वचः श्रुत्वा दुर्वासाः क्रोधविग्रहः।
भ्रूभङ्गकुटिलीभूते रक्तनेत्रे चकार ह॥ ३७

वहाँ पधारे हुए उन महर्षिके पास जाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करके भयभीत हुए कुबेरने परिक्रमापूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'ब्रह्मन्! आपके पदार्पण करनेसे आज मेरा जन्म सफल हो गया, भवन सार्थक हो गया और यह मेरा यज्ञ भी सफल हो गया'॥ २७-२८॥

इस तरह उनके संतोष देनेपर भगवान् दुर्वासामुनि जोर-जोरसे हँसते हुए उन मनुष्यधर्मा देवता कुबेरसे बोले—'तुम राजराज, धर्मात्मा, दानी और ब्राह्मण-भक्त हो। तुमने भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाले वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान किया है। प्रभो! वैश्रवण! मैंने कहीं कभी भी तुमसे कुछ नहीं माँगा है, परंतु आज तुम्हें दानिशिरोमणि समझकर मैं याचना करूँगा। यदि तुमने मेरी याचना सफल कर दी तो मैं तुम्हें उत्तम वर दूँगा; नहीं तो अत्यन्त भयंकर शाप देकर तुम्हें भस्म कर डालूँगा। त्रिलोकीकी सारी—नवों निधियाँ तुम्हारे घरमें मौजूद हैं, उन सबको मुझे दे दो; तुम्हारा भला हो। मैं उन निधियोंके लिये ही यहाँ आया हूँ'॥ २९—३३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर दान-शील, उदारचेता, गुह्यकोंके स्वामी राजराजने उनसे कहा—'बहुत अच्छा, आप मेरा प्रतिग्रह स्वीकार करें।' इस प्रकार निधियोंको दे डालनेकी चेष्टा करते हुए निधिपति कुबेरसे उनके दानाध्यक्ष मन्त्री घण्टानाद और पार्श्वमौलि लोभसे मोहित होकर बोले—॥ ३४-३५॥

उन दोनोंने कहा—यह लोभी ब्राह्मण अकेला ही तो है, सारी निधियाँ लेकर क्या करेगा? इसे एक लाख दिव्य दीनार दे दीजिये, बाकी अपने पास रखिये। अपनी वृत्तिकी तथा इस उत्तर दिशाकी रक्षा कीजिये॥ ३६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उन मन्त्रियोंका वह कठोर वचन सुनकर दुर्वासा रोषसे आगबबूला हो उठे। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं तथा उनके नेत्र लाल हो गये॥ ३७॥

स्थालीव सर्वब्रह्माण्डं चचाल निमिषद्वयम्।
प्रणतं धनदं वीक्ष्य ताभ्यां शापं ददौ मुनिः॥ ३८

सारा ब्रह्माण्ड बटलोईकी तरह दो निमेषतक हिलता रहा। कुबेरको अपने चरणोंमें पड़ा देख मुनिने उन दोनों मन्त्रियोंको शाप दे दिया॥ ३८॥

मुनिरुवाच

घण्टानाद महादुष्ट पापबुद्धेऽतिलुब्धक।
ग्राहवत्त्वं धनग्राही ग्राहो भव महाखल॥ ३९

पार्श्वमौले पापबुद्धे धनलोभमदान्वितः।
गजवत् प्रेरणां कुर्वंस्त्वं गजो भव दुर्मते॥ ४०

मुनिने कहा—महादुष्ट घण्टानाद! तेरी बुद्धि पापमें ही लगी रहनेवाली है। तू अत्यन्त लोभी है, ग्राहकी भाँति धनग्राही है; अतः हे महाखल! तू ग्राह हो जा। पापपूर्ण विचार रखनेवाले पार्श्वमौले! तू भी धनके लोभ और मदसे भरा हुआ है और हाथीकी भाँति प्रेरणा दे रहा है; अतः दुर्बुद्धे! तू हाथी हो जा॥ ३९-४०॥

श्रीनारद उवाच

ताभ्यां शापं मुनिर्दत्वा निधिं नीत्वा कुबेरतः।
वरं ददौ पुनस्तस्मै दुर्वासा दुर्लभं परम्॥ ४१

अस्माद्दानाच्च द्विगुणा भवन्तु निधयो नव।
इत्युक्त्वा सनिधिः प्रागादहो तेजीयसां बलम्॥ ४२

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उन दोनोंको शाप दे कुबेरसे निधि लेकर मुनिवर दुर्वासाने पुनः कुबेरको अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान किया—'कुबेर! इस दानसे तुम्हारे पास नौ निधियाँ द्विगुणित होकर आ जायँ।' यों कहकर वे निधियोंके साथ वहाँसे चल दिये। अहा! परम तेजस्वी महर्षियोंका बल कैसा अद्भुत है!॥ ४१-४२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गोमत्युपाख्याने चक्रतीर्थमाहात्म्यं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें गोमतीके उपाख्यानके प्रसङ्गमें 'चक्रतीर्थका माहात्म्य' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

गज और ग्राह बने हुए मन्त्रियोंका युद्ध और भगवान् विष्णुके द्वारा उनका उद्धार

श्रीनारद उवाच

कुबेरमन्त्रिणौ दीनौ विप्रशापविमोहितौ।
तत्र साक्षात्स्वयं विष्णुः प्राह तौ शरणं गतौ॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! कुबेरके दोनों मन्त्री ब्राह्मणके शापसे मोहित होकर अत्यन्त दीन-दुखी हो गये। उस यज्ञमें साक्षात् भगवान् विष्णु पधारे थे। वे अपनी शरणमें आये हुए उन दोनों मन्त्रियोंसे बोले—॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

मदर्चासंयुते यज्ञे भवन्तौ दुःखसंयुतौ।
ब्राह्मणानां वचोऽहं वै दूरीकर्तुं न च क्षमः॥ २

भवेतां ग्राहमातङ्गौ युद्धं हि युवयोर्यदा।
तदा वै मत्प्रसादेन प्रकृतिं स्वां गमिष्यथः॥ ३

श्रीभगवान्‌ने कहा—मेरी अर्चनासे युक्त इस यज्ञमें तुम दोनोंको दुःख उठाना पड़ा है। ब्राह्मणोंकी कही हुई बातको टाल देने या अन्यथा करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। तुम दोनों ग्राह और हाथी हो जाओ। जब कभी तुम दोनोंमें युद्ध छिड़ जायगा, तब मेरी कृपासे तुम दोनों अपने पूर्ववर्ती स्वरूपको प्राप्त हो जाओगे॥ २-३॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तौ हरिणा तौ द्वौ राजराजस्य मन्त्रिणौ।
बभूवतुर्ग्राहगजौ जातिस्मरणसंयुतौ॥ ४

घण्टानादोऽभवद्ग्राहो गोमत्यां च शतं समाः।
विकरालो महाभीमः शश्वद्रौद्रवपुर्धरः॥ ५

पार्श्वमौलिर्गजेन्द्रोऽभूद्रैवतस्य गिरेर्वने।
चतुर्दन्तः कज्जलाभः पृष्ठप्रोच्चो धनुःशतम्॥ ६

वञ्जुलैः कुरबैः कुन्दैर्बदरैर्वेत्रवेणुभिः।
रम्भाभूर्जवटैर्युक्ते कोविदारासनार्जुनैः॥ ७

मन्दारपाटलाशोकचूतचम्पकचन्दनैः।
पनसोदुम्बराश्वत्थखर्जूरैर्बीजपूरकैः॥ ८

प्रियालाम्रातकाम्रैश्च क्रमुकैः परिमण्डिते।
रैवतस्य वने दीर्घे विचचार महागजः॥ ९

एकदा माधवे मासि गजेन्द्रो गिरिगह्वरात्।
स्नातुं तां गोमतीं गङ्गामाययौ सगणो नदन्॥ १०

चिरं समवगाह्याप्सु शुण्डादण्डैरितस्ततः।
करेण कलभान् सर्वान् स्नापयामास नागराट्॥ ११

महान् ग्राहोऽपि तत्रस्थो बलीयान् दैवनोदितः।
अग्रहीच्चरणे नागं क्रोधपूरितविग्रहः॥ १२

नेनैव तद्गृहे नीतो गजेन्द्रो बलदर्पितः।
तमाकृष्य बहिः प्राप्तं पुनस्तेन विकर्षितः॥ १३

करेणवश्च कलभास्तं तारयितुमक्षमाः।
एवं तयोर्युध्यतोश्च कर्षतोर्हि बहिर्मिथः॥ १४

पञ्चाशत्पञ्चवर्षाणि व्यतीयुः पश्यतां सताम्।
एवं कश्मलमापन्नो गजो जातिस्मरो महान्॥ १५

प्रेमलक्षणया भक्त्या हरिपादकृताश्रयः।
सस्मार श्रीहरिं देवं मृत्युपाशवशं गतः॥ १६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! भगवान् विष्णुके यों कहनेपर राजाधिराज कुबेरके वे दोनों मन्त्री ग्राह और हाथी हो गये, परंतु उन्हें अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना रहा। घण्टानाद ग्राह हो गया और सैकड़ों वर्षोंतक गोमतीमें रहा। वह बड़ा विकराल, अत्यन्त भयंकर तथा सदा रौद्ररूप धारण किये रहता था। पार्श्वमौलि रैवतक पर्वतके जंगलमें चार दाँतोंवाला हाथी हुआ। उसके शरीरका रंग काजलके समान काला था। उसके पृष्ठ भागकी ऊँचाई सौ धनुषके बराबर थी॥ ४—६॥

वञ्जुल, कुरब, कुन्द, बदर, बेंत, बाँस, केला, भोजपत्रका पेड़, बरगद, कचनार, बिजैसार, अर्जुन, मन्दार, बकायन, अशोक, आम, चम्पा, चन्दन, कटहल, गूलर, पीपल, खजूर, बिजौरा नींबू, चिरौंजी, आमड़ा, आम्र तथा क्रमुक (पूगीफल)-के वृक्षोंसे परिमण्डित रैवतकके विशाल वनमें वह महागजराज विचरा करता था॥ ७—९॥

एक समय वैशाख मासमें वह गजराज पर्वतीय कन्दरासे निकलकर अपने गणोंके साथ चिंग्घाड़ता हुआ गोमती-गङ्गामें स्नानके लिये आया। बहुत देरतक जलमें स्नान करके इधर-उधर सूँड़ घुमाते हुए उस गजराजने अपनी सूँड़के जलसे हाथियोंके सभी छोटे-छोटे बच्चोंको नहलाया। वह महाबलिष्ठ महान् ग्राह भी दैवकी प्रेरणासे उसी जलमें विद्यमान था। उसने दैवकी प्रेरणासे रोषसे भरकर उस गजराजका एक पैर पकड़ लिया॥ १०—१२॥

वह बलोन्मत्त गजराजको अपने घरमें खींच ले गया। फिर हाथी भी उसे खींचकर जलके बाहर ले आया। तत्पश्चात् उसने पुनः हाथीको खींचा। हथिनियाँ और उसके बच्चे उस गजराजको संकटसे उबारनेमें असमर्थ थे। इस प्रकार युद्ध करते और परस्पर एक-दूसरेको खींचते हुए उन दोनोंके पचपन वर्ष व्यतीत हो गये। सत्पुरुषोंके नेत्रोंके समक्ष यह घटना घटित हो रही थी। इस प्रकार कष्टमें पड़कर कालपाशके वशीभूत हो पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेवाला वह महान् गजराज प्रेमलक्षणा-भक्तिसे श्रीहरिके चरणोंका आश्रय ले उन्हींका चिन्तन करने लगा॥ १३—१६॥

गजेन्द्र उवाच

श्रीकृष्ण कृष्णसख कृष्णवपुर्दधान
कृष्णाय ते प्रणतिरस्तु सुरेश विष्णो।
पूर्णप्रभो परमपावन पुण्यकीर्ते
मां पाहि पाहि परमेश्वर पापपाशात्॥ १७

श्रीनारद उवाच

एवं ग्राहगृहीताङ्गं स्मरन्तं च हरिं हरिः।
ज्ञात्वारुह्य खगं वेगादधावद्दीनवत्सलः॥ १८

स्वयं खगात्समुत्तीर्य धावंश्चक्रं समाक्षिपत्।
चक्रे प्राप्ते पूर्वमेव ग्राहस्यापि शिरोऽद्भुतम्॥ १९

दैन्यं प्राप्ते धनमिव देहाद्भिन्नं बभूव ह।
पश्चात्प्रपतितं चक्रं गोमत्यां च ह्रदे नदत्।
पाषाणनिचयान् सर्वांश्चक्राकारांश्चकार ह॥ २०

तन्नेमिसङ्घर्षभवं चक्रतीर्थं शुभावहम्।
तच्चक्रदर्शनाद्राजन् ब्रह्महत्या प्रमुच्यते॥ २१

ग्राहश्छिन्नशिरा भूत्वा पूर्वरूपं दधार ह।
श्रीकृष्णानुग्रहाद्धस्ती दिव्यरूपो बभूव सः॥ २२

परिक्रम्य हरिं नत्वा स्तुत्वा देवं कृताञ्जलिः।
कुबेरमन्त्रिणौ तौ द्वौ जग्मतुः स्वपदं पुनः॥ २३

देवेषु पुष्पं वर्षत्सु जयध्वनिनदत्सु च।
जगाम भगवान् साक्षात्स्वं धाम प्रकृतेः परम्॥ २४

चक्रतीर्थकथामेनां यः शृणोति नरोत्तमः।
चक्रतीर्थस्नानफलं सम्प्राप्नोति न संशयः॥ २५

गजग्राहकथां पुण्यां यः शृणोति समाहितः।
दुःस्वप्नं नश्यते तस्य सुस्वप्नं भवति ध्रुवम्॥ २६

श्रीकृष्णस्य प्रसादेन याति विष्णोः परं पदम्॥ २७

गजेन्द्र बोला—हे श्रीकृष्ण! हे कृष्ण (अर्जुन)-के सखा तथा हे श्याम शरीर धारण करनेवाले देवेश्वर विष्णुदेव! आप श्रीकृष्णको मेरा प्रणाम प्राप्त हो। हे पूर्णप्रभो! हे परमपावन पुण्यकीर्ते! हे परमेश्वर! पापके पाशसे मेरी रक्षा करो, रक्षा करो॥ १७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार ग्राहने जिसका पैर पकड़ लिया था, उस हाथीको अपना स्मरण करता जान, दीनवत्सल श्रीहरि गरुडपर आरूढ़ हो बड़े वेगसे दौड़े आये। उन्होंने स्वयं ही गरुडसे उतरकर दौड़ते हुए उस ग्राहपर चक्र चलाया। चक्रके वहाँ पहुँचनेके पहले ही ग्राहका वह अद्भुत मस्तक उसके धड़से कटकर अलग हो गया, जैसे दीनताके प्राप्त होते ही धन चला जाता है। इसके बाद वह चक्र गोमतीके कुण्डमें महान् शब्द करता हुआ गिरा। उसने वहाँके समस्त प्रस्तर-समूहोंको चक्रसे चिह्नित कर दिया॥ १८—२०॥

उसकी नेमिकी रगड़से वहाँ कल्याणकारी 'चक्रतीर्थ' प्रकट हो गया। राजन्! उस चक्रतीर्थके दर्शनसे ब्रह्म-हत्या छूट जाती है। मस्तक कट जानेसे ग्राहने अपना पूर्वरूप धारण कर लिया और श्रीकृष्णके अनुग्रहसे उस हाथीका दिव्य रूप हो गया॥ २१-२२॥

फिर श्रीहरिकी परिक्रमा, नमस्कार और स्तुति करके हाथ जोड़े हुए वे दोनों कुबेर-मन्त्री पुनः अपने स्थानको चले गये॥ २३॥

देवतालोग फूल बरसाते हुए जय-जयकार करने लगे। भगवान् प्रकृतिसे परे विद्यमान अपने साक्षात् धाममें चले गये। जो नरश्रेष्ठ चक्रतीर्थकी इस कथाको सुनता है, वह चक्रतीर्थमें स्नान करनेका फल पाता है—इसमें संशय नहीं है। जो एकाग्रचित्त हो गज और ग्राहकी इस पुण्यमयी कथाको सुनता है, उसके बुरे स्वप्न नष्ट हो जाते हैं तथा निश्चय ही उसे अच्छे स्वप्न दिखायी देते हैं॥ २४—२६॥

उस मनुष्यको श्रीकृष्णके अनुग्रहसे विष्णुपदकी प्राप्ति होती है॥ २७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे चक्रतीर्थोत्पत्तौ गजग्राहमोक्षो नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें चक्रतीर्थकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमे 'गज और ग्राहका शापसे उद्धार' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

महामुनि त्रितके शापसे कक्षीवान्‌का शङ्खरूप होकर सरोवरमें रहना और श्रीकृष्णके द्वारा उसका उद्धार होना; शङ्खोद्धार-तीर्थकी महिमा

श्रीनारद उवाच

शङ्खोद्धारे तीर्थमुख्ये स्वर्णदानं ददाति यः।
स गच्छेद्वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम्॥ १

श्रीकृष्णभक्तः शान्तात्मा त्रितो नाम महामुनिः।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन प्राप्त आनर्तभूमिषु॥ २

दृष्ट्वा शुभं सरः स्नात्वा हरेः पूजां चकार ह।
तत्पूजायां महाशङ्खं सुन्दरैर्लक्षणैर्वृतम्॥ ३

चोरयामास कक्षीवांस्तस्य शिष्योऽतिलोभतः।
पूजाशङ्खं गतं वीक्ष्य क्रुद्धः प्राह त्रितो मुनिः॥ ४

येन नीतस्तु मे शङ्खः स शङ्खो भवतु ध्रुवम्।
तदैव शङ्खरूपोऽभूत्कक्षीवाञ्छापपीडितः॥ ५

तत्पादयोर्निपतितः पाहि मामित्युवाच ह।
शीघ्रं शान्तस्त्रितः प्राह दुर्मते किं कृतं त्वया।
स्तेयदोषाद्भुङ्क्ष्व पापं मद्वचो नो मृषा भवेत्॥ ६

भज श्रीकृष्णपादाब्जं स ते मोक्षं करिष्यति।
इत्युक्त्वाथ गते राजंस्त्रिते देवे महामुनौ॥ ७

सरोवरे निपतितः कक्षीवाञ्छङ्खरूपधृक्।
प्रवदन् कृष्ण कृष्णोति शतवर्षं स्थितोऽभवत्॥ ८

परिपूर्णतमः साक्षाद्भगवान् भक्तवत्सलः।
आगत्य सरसस्तीरं मा भैष्टेत्यभयं ददौ॥ ९

तां मेघनादगम्भीरां गिरं श्रुत्वा जलेचरः।
चुक्रोश पाहि पाहीति देवदेव जगत्पते॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! द्वारकामें जो 'शङ्खोद्धार' नामक तीर्थ है, वह सब तीर्थोंमें प्रधान है। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके सुवर्णका दान देता है, वह सम्पूर्ण उपद्रवोंसे रहित विष्णुलोकमें जाता है॥ १॥

एक समय श्रीकृष्णभक्त शान्तचित्त महामुनि त्रित तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे आनर्तदेशमें आये। वहाँ एक सुन्दर सरोवर देखकर मुनिने उसमें स्नान करके श्रीहरिकी पूजा की। उस पूजामें सुन्दर लक्षणोंसे युक्त जो महाशङ्ख वे बजाया करते थे, उसे उन्हींके शिष्य कक्षीवान्‌ने अत्यन्त लोभके कारण चुरा लिया॥ २—३½॥

पूजाका शङ्ख चुराया गया देख मुनिवर त्रित कुपित होकर बोले—'जो मेरा शङ्ख ले गया है, वह अवश्य ही शङ्ख हो जाय।' कक्षीवान् तत्काल शापसे पीड़ित हो शङ्ख हो गया और गुरुके चरणोंमें गिरकर बोला—'भगवन्! मेरी रक्षा कीजिये।' त्रितमुनि शीघ्र ही शान्त हो गये और बोले—'दुर्बुद्धे! यह तुमने क्या किया? चोरीके दोषसे जो पाप हुआ है, उसका फल भोग। मेरी बात झूठी नहीं हो सकती। तू यहाँ श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका चिन्तन करता रह; वे ही तेरा उद्धार करेंगे॥ ४—६½॥

राजन्! यों कहकर जब महामुनि त्रितदेव वहाँसे चले गये, तब शङ्खरूपधारी कक्षीवान् उस सरोवरमें कूद पड़ा और 'कृष्ण! कृष्ण!!' पुकारता हुआ सौ वर्षोंतक वहीं रहा॥ ७-८॥

तदनन्तर भक्तवत्सल परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण उस सरोवरके तटपर आये और उसे अभय-दान देते हुए बोले—'डरो मत।' मेघ-गर्जनाके समान भगवान्‌की वह गम्भीर वाणी सुनकर वह जलचर शङ्ख चीख उठा—'देवदेव! जगत्पते!! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।'॥ ९-१०॥

भुजगेन्द्रभोगरुचा भुजेन भगवान् प्रभुः।
शङ्खं भक्तं गजमिव प्रोज्जहार दयापरः॥ ११

तदैव दिव्यरूपोऽभूच्छङ्खरूपं विहाय सः।
कृताञ्जलिर्हरिं नत्वा स्तुतिं चक्रे तदा च सः॥ १२

तब सर्वसामर्थ्यशाली कृपापरायण भगवान्‌ने नागराजके शरीरकी भाँति अपनी हृष्ट-पुष्ट भुजाके द्वारा उस भक्त शङ्खका उसी प्रकार जलसे उद्धार किया, जैसे किसी समय उन्होंने गजका उद्धार किया था। कक्षीवान् उसी क्षण शङ्खका रूप छोड़कर दिव्यरूपधारी हो गया और हाथ जोड़ श्रीहरिको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगा॥ ११-१२॥

कक्षीवानुवाच

वासुदेव नमस्तेऽस्तु गोविन्द पुरुषोत्तम।
दीनवत्सल दीनेश द्वारकेश परेश्वर॥ १३

ध्रुवे ध्रुवपदं दात्रे प्रह्लादस्यार्तिहारिणे।
गजस्योद्धारिणे तुभ्यं बलेर्बलिविदे नमः॥ १४

द्रौपदीचीरसन्त्राणकारिणे हरये नमः।
गराग्निवनवासेभ्यः पाण्डवानां सहायिने॥ १५

कक्षीवान्‌ने कहा—वासुदेव! आपको नमस्कार है। गोविन्द! पुरुषोत्तम! दीनवत्सल! दीनानाथ! द्वारकानाथ! परमेश्वर! आपको मेरा बारंबार प्रणाम है। आपने ही ध्रुवको ध्रुवपद प्रदान किया, प्रह्लादकी पीड़ा हर ली, गजराजका उद्धार किया तथा राजा बलिकी भेंट स्वीकार की; आपको बारंबार नमस्कार है। द्रौपदीका चीर बढ़ाकर उसकी लाज बचानेवाले आप श्रीहरिको नमस्कार है। विष, अग्नि और वनवाससे पाण्डवोंकी रक्षा करनेवाले पाण्डव-सहायक आपको नमस्कार है॥ १३—१५॥

यादवत्राणकर्त्रे च शक्रादाभीररक्षिणे।
गुरुमातृद्विजानां च पुत्रदात्रे नमो नमः॥ १६

जरासन्धनिरोधार्तनृपाणां मोक्षकारिणे।
नृगस्योद्धारिणे साक्षात्सुदाम्नो दैन्यहारिणे॥ १७

यदुकुलके रक्षक तथा इन्द्रके कोपसे व्रजके गोपोंकी रक्षा करनेवाले आपको नमस्कार है। गुरुको, माता देवकीको और ब्राह्मणको [उनके मरे हुए] पुत्रोंको [लाकर] देनेवाले श्रीकृष्ण! आपको बारंबार नमस्कार है। जरासंधकी कैदमें पड़े हुए नरेशोंको वहाँसे छुटकारा दिलानेवाले, राजा नृगका उद्धार करनेवाले तथा सुदामाकी दीनता हर लेनेवाले आप साक्षात् परमेश्वरको नमस्कार है॥ १६-१७॥

वासुदेवाय कृष्णाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय चतुर्व्यूहाय ते नमः॥ १८

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥ १९

आप वासुदेव श्रीकृष्णको नमस्कार है। संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धको भी नमस्कार है। इस प्रकार चतुर्व्यूहरूपधारी आप परमेश्वरको मेरा प्रणाम है। देवदेव! आप ही मेरी माता, आप ही पिता, आप ही बन्धु, आप ही सखा, आप ही विद्या, आप ही धन और आप ही मेरे सब कुछ हैं॥ १८-१९॥

श्रीनारद उवाच

एवं स्तुत्वा हरिं राजन् कक्षीवान् प्रेमपूरितः।
विमानवरमास्थाय यादवानां च पश्यताम्॥ २०

विभ्राजयन् दश दिशः शतसूर्यसमप्रभः।
जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम्॥ २१

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीहरिकी स्तुति करके प्रेम-पूरित कक्षीवान् एक श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो यादवोंके देखते-देखते, सैकड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी होकर, दसों दिशाओंको उद्भासित करता हुआ समस्त उपद्रवोंसे रहित विष्णुधाममें चला गया॥ २०-२१॥

शङ्खोद्धारः कृतो यस्मिन् हरिणा मैथिलेश्वर।
तस्मात्तीर्थं महापुण्यं शङ्खोद्धारप्रथां गतम्॥ २२

शङ्खोद्धारकथामेतां यः शृणोति नरोत्तमः।
शङ्खोद्धारस्नानफलं लभते वै न संशयः॥ २३

मैथिलेश्वर! श्रीहरिने जिस सरोवरके तटपर शङ्खका उद्धार किया था, वह उस घटनाके कारण ही परम पुण्यमय 'शङ्खोद्धार-तीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध हो गया। जो श्रेष्ठ मानव शङ्खोद्धारकी इस कथाको सुनता है, वह शङ्खोद्धारतीर्थमें स्नान करनेका फल पा जाता है—इसमें संशय नहीं है॥ २२-२३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शङ्खोद्धारमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शङ्खोद्धार-तीर्थका माहात्म्य' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

प्रभास, सरस्वती, बोधपिप्पल और गोमती-सिन्धु-संगमका माहात्म्य

श्रीनारद उवाच

प्रभासस्यापि माहात्म्यं शृणु राजन् महामते।
सर्वपापहरं पुण्यं तेजसां वर्धनं परम्॥ १

गोदावर्यां गुरौ सिंहे हरक्षेत्रे च कुम्भगे।
रविग्रहे कुरुक्षेत्रे काश्यां चन्द्रग्रहे तथा॥ २

यत्पुण्यं लभते राजन् स्नानतो दानतो नरः।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं प्रभासे च दिने दिने॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—महामते! विदेहराज! प्रभासतीर्थका भी माहात्म्य सुनो, जो सर्वपापपहारी, पुण्यदायक तथा तेजकी वृद्धि करनेवाला है। राजन्! सिंहराशिमें बृहस्पतिके रहते गोदावरीमें, कुम्भगत बृहस्पतिके होनेपर हरक्षेत्र (हरद्वार)-में, सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें और चन्द्रग्रहणके अवसरपर काशीमें स्नान और दान करके मनुष्य जिस पुण्यको पाता है, उससे सौगुना पुण्य प्रभासक्षेत्रमें प्रतिदिन स्नान करनेसे प्राप्त होता रहता है॥ १—३॥

यत्र स्नात्वा दक्षशापाद् गृहीतो यक्ष्मणोडुराट्।
विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम्॥ ४

दक्षके शापसे राजयक्ष्मा नामक रोग हो जानेपर नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा जहाँ स्नान करके तत्काल शाप-दोषसे मुक्त हो गये और पुनः उनकी कलाओंका उदय हुआ, वही 'प्रभासतीर्थ' है॥ ४॥

महापुण्यतमा राजन् यत्र प्रत्यक्सरस्वती।
तस्यां स्नात्वा नरः पापी साक्षाद् ब्रह्ममयो भवेत्॥ ५

तत्तीरे वर्तते राजन्नाम्ना वै बोधपिप्पलम्।
कृष्णेन यत्रोद्धवाय दत्तं भागवतं शुभम्॥ ६

राजन्! उस तीर्थमें परम पुण्यमयी पश्चिमवाहिनी सरस्वती प्रवाहित होती हैं। उनके जलमें स्नान करके पापी मनुष्य भी साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है। नरेश्वर! सरस्वतीके तटपर 'बोधपिप्पल' नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको परम कल्याणमय भागवत-धर्मका उपदेश दिया था॥ ५-६॥

तं नत्वाभ्यर्च्य विधिवत्स्पृष्ट्वा श्रीबोधपिप्पलम्।
शृणोति यो भागवतं पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥ ७

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा मौनी नियतमानसः।
तस्य पाणौ भवेद्राजन् वैष्णवं परमं पदम्॥ ८

राजन्! उस बोधपिप्पलकी विधिवत् पूजा करके सिर नवाकर जो उसका स्पर्श करता है और ब्रह्मसम्मित भागवतपुराणको सुनता है—मनको संयममें रखते हुए मौनभावसे भागवतका आधा श्लोक या चौथाई श्लोकभी सुन लेता है—उसके हाथमें भगवान्

प्रौष्ठपद्यां पूर्णिमायां हेमसिंहसमन्वितम्।
ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम्॥ ९

पुराणं न श्रुतं यैस्तु श्रीमद्भागवतं क्वचित्।
तेषां वृथा जन्म गतं नराणां भूमिवासिनाम्॥ १०

यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं
नाराधितो यैः पुरुषः पुराणः।
हुतं मुखे नैव धरामराणां
तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम्॥ ११

द्वारावत्यां तीर्थराजं गोमतीसिन्धुसङ्गमम्।
यत्र स्नात्वा नरो याति वैकुण्ठं विमलं पदम्॥ १२

शताश्वमेधजं पुण्यं गङ्गासागरसङ्गमे।
तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं गोमतीसिन्धुसङ्गमे॥ १३

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण पापतापात्प्रमुच्यते॥ १४

आसीद्गजाह्वये वैश्यो राजमार्गपतिः परः।
महागौरवसंयुक्तो निधीशो धनदो यथा॥ १५

वेश्याप्रसङ्गनिरतो विटगोष्ठीविशारदः।
द्यूतक्रीडनकासक्तो लोभमोहमदान्वितः॥ १६

मृषावादी महादुष्टः कुकर्मनिरतः सदा।
ब्राह्मणेभ्यो न पितृभ्यो न देवेभ्यो धनं ददौ॥ १७

हरेः कथां प्रेक्ष्य दूराद्दूरं वै निर्ययौ त्वरम्।
पित्रोः सेवापि न कृता न पुत्रेभ्यो धनं ददौ॥ १८

विष्णुका परमपद आ जाता है, अर्थात् उसके लिये परमपदकी प्राप्ति निश्चित हो जाती है॥ ७-८॥

जो प्रभासमें भाद्रपद मासकी पूर्णिमा तिथिको सोनेके सिंहासनसे युक्त श्रीमद्भागवतपुराणका दान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जिन्होंने कहीं या कभी श्रीमद्भागवतपुराण नहीं सुना, उन भूमिवासी मनुष्योंका जन्म व्यर्थ चला गया॥ ९-१०॥

जिन्होंने भागवतपुराण नहीं सुना, जिनके द्वारा पुराण-पुरुष परमात्माकी आराधना नहीं की गयी तथा जिन लोगोंने भूमिदेवों—ब्राह्मणोंके मुखरूपी अग्निमें उत्तम भोजनकी आहुति नहीं दी, उन मनुष्योंका जन्म व्यर्थ चला गया॥ ११॥

द्वारकामें गोमती और समुद्रका संगम सब तीर्थोंका राजा है, जिसमें स्नान करके मनुष्य निर्मल वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। गङ्गासागर-संगम-तीर्थमें स्नान करनेसे सौ अश्वमेधयज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त होता है। उससे भी सहस्रगुना पुण्य गोमती-सागर-संगममें स्नान करनेसे सुलभ होता है। इसी विषयमें पुराणवेत्ता पुरुष इस पुरातन इतिहासका कथन किया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य पापतापसे मुक्त हो जाता है॥ १२—१४॥

पूर्वकालमें हस्तिनापुरमें राजमार्गपति नामक एक श्रेष्ठ वैश्य निवास करता था। वह महान् गौरवशाली तथा कुबेरके समान निधिपति था। आगे चलकर वह वैश्य वेश्याओंके प्रसङ्गमें रहने लगा। वह विटों (धूर्तों और लम्पटों)-की गोष्ठीमें बड़ा चतुर समझा जाता था। जुआ खेलनेमें उसकी बड़ी आसक्ति थी। वह लोभ, मोह और मदसे उन्मत्त रहता था॥ १५-१६॥

वह महादुष्ट वैश्य सदा झूठ बोलता और कुकर्ममें लगा रहता था। उसने ब्राह्मणों, पितरों और देवताओंके निमित्त कभी धनका दान नहीं किया॥ १७॥

वह यदि कहीं दूरसे भगवान्‌की कथा-वार्ता होती देख लेता तो कतराकर जल्दी ही और दूर निकल जाता था। उसने माँ-बापकी कभी सेवा नहीं की और अपने पुत्रोंको भी धन नहीं दिया॥ १८॥

त्यक्त्वा भार्यां स भिन्नोऽभूद्धनाढ्यो दुर्मतिः खलः।
वेश्याप्रसङ्गात्तस्यापि धनार्धं प्रक्षयं गतम्॥ १९

अर्धं तु तस्करैर्नीतं किञ्चित्पृथ्व्यां गतं स्वतः।
पुण्येन वर्धते लक्ष्मीः पापेन क्षीयते ध्रुवम्॥ २०

एवं स निर्धनो जातो वेश्यासक्तो महाखलः।
तस्मिन् गजाह्वये रम्ये चौर्यकर्म चकार ह॥ २१

चौर्यकर्म प्रकुर्वन्तं बद्ध्वा तं दामभिर्नृपः।
देशान्निःसारयामास शन्तनुर्नृपतीश्वरः॥ २२

वनेऽपि निवसन् सोऽपि जीवहिंसां चकार ह।
समा द्वादशसाहस्त्रं न ववर्ष यदा घनः॥ २३

पश्चिमां तु दिशं प्रागाद्वैश्यो दुर्भिक्षपीडितः।
वने वै मारितः सोऽपि सिंहेन तलघाततः॥ २४

तदैव यमदूतास्तं बद्ध्वा पाशैरधोमुखम्।
कशाघातैस्ताडयन्तो निन्युर्मार्गं यमस्य च॥ २५

अथ कश्चिन्महान् गृध्रो मांसं तस्य भुजस्य च।
गृहीत्वा खं गतः सद्यः खादंश्चञ्चुपुटेन तम्॥ २६

निरामिषाः खगाश्चान्ये सामिषं जग्मुरातुराः।
एवं कोलाहले जाते कङ्कचिल्लादिभिः कृते॥ २७

न जहौ मुखतो मांसं पश्चिमाशां जगाम ह।
तत्समेनापि गृध्रेण तीक्ष्णतुण्डेन ताडितात्॥ २८

तन्मुखात्प्रपतन्मांसं गोमतीसिन्धुसङ्गमे।
तीर्थप्लुते तस्य मांसे वैश्योऽयं पातकी महान्॥ २९

तेषां पाशान् स्वयं छित्त्वा भूत्वा देवश्चतुर्भुजः।
पश्यतां यमदूतानां विमानमधिरुह्य सः॥ ३०

वह ऐसा दुर्बुद्धि और खल था कि धनाढ्य होनेपर भी अपनी पत्नीको त्यागकर उससे अलग रहने लगा। वेश्याओंके सङ्गमें रहनेसे उसका आधा धन नष्ट हो गया, आधा चोर चुरा ले गये और जो कुछ थोड़ा-सा पृथ्वीमें गड़ा हुआ था, वह स्वतः वहीं विलीन हो गया; क्योंकि पुण्यसे लक्ष्मी बढ़ती है और पापसे निश्चय ही नष्ट हो जाती है॥ १९-२० ॥

इस प्रकार वेश्याओंमें आसक्त हुआ वह महादुष्ट वैश्य निर्धन हो गया और उसी रमणीय नगर हस्तिनापुरमें चोरीका काम करने लगा। उन दिनों वहाँ राजा शंतनु राज्य करते थे। उन्होंने चोरीके कर्ममें लगे हुए उस वैश्यको रस्सियोंसे बाँधकर अपने देशसे बाहर निकलवा दिया॥ २१-२२ ॥

वनमें रहकर वह जीवोंकी हिंसा करने लगा। उन्हीं दिनों वहाँ बारह हजार वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। तब दुर्भिक्षसे पीड़ित हुआ वह वैश्य पश्चिम दिशाकी ओर चला गया। वहाँ एक वनमें किसी सिंहने अपने पंजेसे उसको मार डाला॥ २३-२४ ॥

उसी समय यमदूत आये और उसे पाशोंमें बाँधकर नीचे मुख करके लटकाये तथा कोड़ोंसे पीटते हुए यमलोकके मार्गपर ले चले। तदनन्तर कोई महान् गृध्र उसकी बाँहका मांस लेकर आकाशमें उड़ गया और अपनी चोंचसे तुरंत ही उसको खाने लगा॥ २५-२६ ॥

अन्य पक्षी जिन्हें मांस नहीं मिला था, वे सब आतुर हो उसीमेंसे अपने लिये भी मांस ग्रहण करने लगे। इस प्रकार गीध, चील आदि पक्षियोंका वहाँ महान् कोलाहल होने लगा; तथापि उस गृध्रने अपने मुखसे उस मांसको नहीं छोड़ा। वह उड़ते-उड़ते पश्चिम दिशाकी ओर चला गया। वहाँ उसीके समान शक्तिशाली एक दूसरे गृध्रने उसके मुखपर अपनी तीखी चोंचसे प्रहार किया॥ २७-२८ ॥

तब उसके मुँहसे वह मांस गोमती-सागर-संगममें गिर गया। उस तीर्थमें उसके मांसके डूबते ही यह महापातकी वैश्य यमदूतोंके पाशोंको स्वयं तोड़कर चार भुजाओंसे युक्त देवता हो गया और उन दूतोंके

विराजयन् दिशः सर्वाः परं धाम हरेर्ययौ॥ ३१

देखते-देखते दिव्य विमानपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वह श्रीहरिके परमधाममें चला गया॥ २९—३१॥

गोमतीसिन्धुसङ्गस्य माहात्म्यं शृणुते नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं प्रयाति सः॥ ३२

जो मनुष्य गोमती-समुद्र-संगमके इस माहात्म्यको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है॥ ३२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे प्रभाससरस्वतीबोधपिप्पलगोमतीसिन्धुसङ्गम-माहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रभास, सरस्वती, बोधपिप्पल तथा गोमती-सिन्धु-संगमका माहात्म्य' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

द्वारकाक्षेत्रके समुद्र तथा रैवतक पर्वतका माहात्म्य

श्रीनारद उवाच

द्वारावत्याः समुद्रस्य माहात्म्यं शृणु मानद।
सर्वपापहरं पुण्यं तत्स्नानफलदं स्मृतम्॥ १

माधव्यां पूर्णमास्यां यो व्रती स्नात्वा नदीपतिम्।
नत्वा सम्पूज्य विधिवद्रत्नदानं करोति यः॥ २

तस्य देहे त्रयो देवा निवसन्ति महीपते।
यस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम्॥ ३

तद्देहस्पर्शनात्सद्यो ब्रह्महत्या प्रमुच्यते।
यत्र यत्र गतः सोऽपि तत्र तत्र च भूः शुभा॥ ४

दृष्ट्वा तं च मृतः पापी जगद्वधकरोऽपि हि।
छिनत्ति पापपटलं परं मोक्षं प्रयाति हि॥ ५

श्रीनारदजी कहते हैं—सबको सम्मान देनेवाले नरेश! अब द्वारावती और समुद्रके माहात्म्यका वर्णन सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा उन तीर्थोंमें स्नानका फल देनेवाला है॥ १॥

महीपते! जो वैशाखमासकी पूर्णमासीको व्रत रहकर, स्नानपूर्वक नदीपति समुद्रका विधिवत् पूजन और उन्हें नमस्कार करके रत्नोंका दान करता है, उसके शरीरमें तीनों देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) निवास करते हैं तथा उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। इतना ही नहीं—उसके शरीरके स्पर्शसे तत्काल ब्रह्महत्या छूट जाती है तथा वह जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँकी भूमि मङ्गलमयी हो जाती है। जगत्का वध करनेवाला पापी मनुष्य भी उसका दर्शन करके मरनेपर अपने पाप-समूहका उच्छेद कर डालता और परम मोक्षको प्राप्त होता है॥ २—५॥

रैवतस्याथ शैलस्य माहात्म्यं शृणु मानद।
सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥ ६

गौतमस्य सुतो धीमान् मेधावी नाम वैष्णवः।
विन्ध्याचले तपस्तेपे वर्षाणामयुतं शतम्॥ ७

तं द्रष्टुमागतः साक्षादपान्तरतमो मुनिः।
नोच्चचालासनात्सोऽपि मेधावी तपसोत्कटः॥ ८

मानद! अब रैवतपर्वतका माहात्म्य सुनो, जो समस्त पापोंको दूर करनेवाला, पुण्यदायक तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। गौतमका पुत्र मेधावी बड़ा बुद्धिमान् और विष्णुभक्त था। उसने सौ अयुत (दस लाख) वर्षोंतक विन्ध्याचलपर्वतपर तपस्या की। एक दिन साक्षात् अपान्तरतमा नामक मुनि उससे मिलनेके लिये आये, परंतु उत्कट तपस्वी मेधावी अपने आसनसे नहीं उठा॥ ६—८॥

अपान्तरतमस्तं वै शशाप क्रोधपूरितः।
सतामभक्त पापात्मन् स्वतपोबलगर्वितः॥ ९

शैलवत्ते स्थितिश्चात्र त्वं शैलो भव दुर्मते।
इत्युक्त्वाथ गते साक्षादपान्तरतमे मुनौ॥ १०

मेधावी शैलतां प्राप्तः श्रीशैलस्य सुतोऽभवत्।
जातिस्मरो महाबुद्धिर्विष्णुभक्तेः प्रभावतः॥ ११

एकदा मन्मुखाच्छ्रुत्वा माहात्म्यं द्वारकापुरः।
प्रोवाच सोऽपि राजानं रैवतं गच्छ सत्वरम्॥ १२

वद मत्प्रार्थनामुक्तां त्वं महादीनवत्सलः।
सोऽयं महाबलो राजा प्रसन्नो यदि वा भवेत्॥ १३

तेन नीतस्य मे वासो भविष्यति हरेः पुरि।
इति श्रुत्वा मया विष्णुभक्तानां शान्तिकारिणा॥ १४

रैवतायाशु कथितं तथोक्तं परमं वचः।
स प्रसन्नः प्राह राजन्नत्र कोऽपि न पर्वतः॥ १५

तत्स्थापनां करिष्यामि समुत्पाट्य भुजाबलात्।
समुन्नीय द्वारकायां प्रतिज्ञामकरोदिमाम्॥ १६

एतस्मिंस्तच्चोरयितुं प्रयाते नृपसत्तमे।
तत्पूर्वस्मादहं प्राप्तः श्रीशैलस्य पुरे नृप॥ १७

कलिप्रियेणापि मया श्रीशैलाय महात्मने।
कथितः सर्ववृत्तान्तो नृपचौर्यसमन्वितः॥ १८

श्रीशैलः पुत्रमोहेन निर्भर्त्स्येति क्व यासि हि।
सुमेरुं गिरिराजं च हिमवन्तं नगेश्वरम्॥ १९

श्रीशैलः प्राह धर्मात्मा पुत्रस्नेहसमाकुलः।
एको दैवेन दत्तोऽयं न पुत्रा बहवश्च मे॥ २०

तं हर्तुमागते राज्ञि रैवते वै महाबले।
विदेशं याति पुत्रो मे तेन राज्ञा महात्मना॥ २१

तब अपान्तरतमा रोषसे भर गये और उसे शाप देते हुए बोले—'संतोंके प्रति भक्ति न रखनेवाले पापात्मन्! तुझे अपने तपोबलपर बड़ा गर्व हो गया है। तेरी स्थिति पर्वतके समान है। अतः दुर्मते! तू यहीं पर्वत हो जा।' यों कहकर साक्षात् अपान्तरतमामुनि चले गये। मेधावी शैलभावको प्राप्त हो श्रीशैलका पुत्र हुआ। परंतु वह महाबुद्धिमान् तपस्वी तथा विष्णुभक्तिके प्रभावसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करनेवाला हुआ॥ ९—११॥

एक दिन मेरे मुखसे द्वारकापुरीका माहात्म्य सुनकर श्रीशैलके पुत्रने कहा—'मुने! आप शीघ्र राजा रैवतके पास जाइये और उनसे मेरी कही हुई प्रार्थना सुना दीजिये; क्योंकि आप बड़े दीनवत्सल हैं। ये महाबली राजा रैवत यदि प्रसन्न हो जायँ और मुझे यहाँसे उठा ले चलें, तब मेरा द्वारकापुरीके क्षेत्रमें निवास सम्भव होगा।' विष्णुभक्तोंको शान्ति प्रदान करना तो मेरा काम ही ठहरा। मैंने उस पर्वतकुमारकी बात सुनकर शीघ्र ही राजा रैवतके पास जा उसकी कही हुई बात सुना दी। राजन्! मेरी बात सुनकर राजा रैवत बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'यहाँ कोई पर्वत नहीं है; अतः उस शैलपुत्रको दोनों भुजाओंसे उखाड़कर यहाँ लाऊँगा और द्वारकामें उसकी स्थापना करूँगा।'—ऐसी प्रतिज्ञा उन्होंने की॥ १२—१६॥

राजा रैवत उस पर्वतको चुरा लानेके लिये ज्यों ही प्रस्थित हुए, उनसे भी पहले मैं श्रीशैलके नगरमें जा पहुँचा। मुझे कलह प्रिय लगता है, इसलिये मैंने महात्मा श्रीशैलको राजाका उसके पुत्रकी चोरीसे सम्बन्ध रखनेवाला सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥ १७-१८॥

श्रीशैलने पुत्रके मोहवश उसको डाँटकर कहा—'तू कहाँ जा रहा है?' इसके बाद श्रीशैल गिरिराज सुमेरु और नगेश्वर हिमवान्के पास गया। वह धर्मात्मा पर्वत पुत्र-स्नेहसे बहुत व्याकुल था। उसने उन पर्वतराजोंसे कहा—'मुझे दैवने यही एक पुत्र दिया है, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं; उस एकको भी यहाँसे हर ले जानेके लिये महाबली राजा रैवत आये हैं। इन महात्मा राजाके कारण मेरा पुत्र विदेश चला जा रहा है॥ १९—२१॥

पुत्रस्नेहाभिभूतोऽहं युवयोः शरणं गतः।
जित्वा तं रैवतं शीघ्रं पुत्रं मां दातुमर्हथः॥ २२

मैं पुत्र-स्नेहसे विकल होकर आप दोनोंकी शरणमें आया हूँ। आपलोग राजा रैवतको जीतकर शीघ्र ही मुझे मेरा पुत्र दिला दें॥ २२॥

जातेश्च कारणात्तौ द्वौ सुमेरुश्च हिमाचलः।
शैललक्षैः परिवृतौ योद्धुमाजग्मतुर्द्रुतम्॥ २३

ततो भुजाभ्यामुत्पाट्य हनुमानिव तं गिरिम्।
ऊर्ध्वं कृत्वा बलाद्राजा यदा गन्तुं मनो दधे॥ २४

तदैव चागतान् वीक्ष्य गिरीञ्छस्त्रास्त्रधारिणः।
अट्टहासं चकारोच्चैस्तडित्पातमिवात्मनः॥ २५

जातिके प्रति पक्षपात होनेके कारण वे दोनों पर्वत—सुमेरु और हिमालय, लाखों दूसरे पर्वतोंसे घिरे हुए तुरंत ही युद्धके लिये आये। उधर हनुमान्‌जीने जैसे द्रोणगिरिको उखाड़ लिया था, उसी प्रकार रैवतने अपनी दोनों भुजाओंसे उस पर्वतको उखाड़कर बल-पूर्वक ऊपर उठा लिया और ज्यों ही वहाँसे चलनेका विचार किया, त्यों ही अस्त्र-शस्त्र धारण किये बहुत-से पर्वतोंको वहाँ उपस्थित देखा। उन्हें देखकर राजाने उच्चस्वरसे अट्टहास किया, मानो विद्युत्पातकी गड़गड़ाहट हुई हो॥ २३—२५॥

ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह।
तदैव तेषां शस्त्राणि हस्तेभ्यो न्यपतन् स्वतः॥ २६

निःशस्त्रास्ते यदा शैलाः कुर्वन्तः प्रध्वनिं मुहुः।
गच्छन्तं सगिरिं जघ्नुर्मुष्टिभिर्जानुभिः पथि॥ २७

यथा पुरा हनूमन्तमनुयाता महाबलम्।
तैस्ताडितोऽपि न जहौ गिरिं राजा कराग्रतः॥ २८

उनके उस सिंहनादसे सातों लोकों और सातों पातालोंके साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गूँज उठा। उसी समय उन समस्त योद्धाओंके हाथोंसे सारे अस्त्र-शस्त्र स्वतः गिर गये। जब वे पर्वत निःशस्त्र हो गये, तब बार-बार कोलाहल करते हुए मार्गमें पर्वतसहित जाते हुए रैवतको मुक्कों और घुटनोंसे उसी प्रकार मारने लगे, जैसे पूर्वकालमें द्रोणाचलके रक्षक महाबली हनुमान्‌जीके पीछे उन्हें मार गिरानेके लिये कुछ दूरतक गये थे। उन पर्वतोंके चोट करनेपर भी राजा रैवतने अपने हाथसे उक्त पर्वतको नहीं छोड़ा॥ २६—२८॥

मन्मुखाच्छ्रीहरिः श्रुत्वा शैलोद्योगं नृपोपरि।
सद्यो भक्तसहायार्थं भगवान् भक्तवत्सलः॥ २९

आगत्याकाशमार्गेऽपि दत्वा तेजः स्वकं परम्।
मा भैष्टेत्यभयं दत्वा त्वरमन्तरधीयत॥ ३०

इधर मेरे ही मुखसे राजा रैवतके ऊपर पर्वतोंका आक्रमण सुनकर भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तकी सहायताके लिये तत्काल आकाशमार्गसे आ गये और राजाको अपना उत्कृष्ट तेज देकर 'डरो मत'—यों कहकर, अभयदान दे, तुरंत वहीं अन्तर्धान हो गये॥ २९-३०॥

गते हरौ भगवति भगवत्तेजसान्वितः।
एकहस्ते गिरिं धृत्वा मुष्टिना वज्रघातिना॥ ३१

सुमेरुं सन्तताडाशु वज्रीव बलवत्तरः।
तस्य मुष्टिप्रहारेण मेरुर्विह्वलतां गतः॥ ३२

भगवान्‌के चले जानेपर उन्हींके तेजसे सम्पन्न हो राजा रैवतने एक हाथपर उस पर्वतको रख लिया और वज्रको भी चूर कर देनेवाले अपने मुक्केसे सुमेरु पर्वतको इस प्रकार मारा, मानो महाबली वज्रधारी इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्रसे प्रहार किया हो। उनके मुक्केकी मारसे मेरु पर्वत व्याकुल होकर गिर पड़ा॥ ३१-३२॥

हिमवन्तं बाहुवेगात्पातयित्वा महीतले।
ममर्द पद्भ्यां चान्यांश्च विन्ध्यादीन् रणदुर्मदः॥ ३३

विन्ध्यादयश्च ते सर्वे पादघातेन मर्दिताः।
भयभीता रणं त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश॥ ३४

एवं जित्वा शैलसङ्घं तं शैलं शैलसन्निभः।
रैवतोऽपि जयारावैरानर्तेषु न्यपातयत्॥ ३५

सोऽभूद्रैवतनामापि राजन् रैवतकोऽचलः।
हरिभक्तः शैलमुख्यो द्वारावत्यां विराजते॥ ३६

तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या प्रमुच्यते।
स्पर्शनाच्छतयज्ञानां फलमाप्नोति मानवः॥ ३७

यात्रां कृत्वा च यस्यापि परिक्रम्य नताननः।
भोजनं ब्राह्मणे दत्वा याति विष्णोः परं पदम्॥ ३८

फिर हिमवान्‌को भी अपने बाहुवेगसे धराशायी करके उस रणदुर्मद नरेशने विन्ध्य आदि अन्य पर्वतोंको अपने पैरोंसे रौंद डाला॥ ३३॥

विन्ध्य आदि सभी पर्वत उनके पैरोंके आघातसे कुचले जानेके कारण भयभीत हो युद्धका मैदान छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग चले। इस प्रकार पर्वतोंके समुदायपर विजय पाकर पर्वतके समान सुदृढ़ शरीरवाले राजा रैवतने उस पर्वतको विजय-गर्जनाके साथ ले जाकर आनर्तदेशमें स्थापित कर दिया॥ ३४-३५॥

राजन्! वह पर्वत राजा रैवतके ही नामपर 'रैवतकाचल' के रूपमें विख्यात हुआ। भगवान्‌के प्रति भक्तिभावसे युक्त वह श्रेष्ठ पर्वत आज भी द्वारकाक्षेत्रमें विराजमान है। उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है। उसके स्पर्शमात्रसे मनुष्य सौ यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है। उस पर्वतकी यात्रा और परिक्रमा करके नतमस्तक हो जो मनुष्य ब्राह्मणको भोजन देता है, वह भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त कर लेता है॥ ३६—३८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रत्नाकररैवतकाचलमाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'समुद्र और रैवतकाचलका माहात्म्य' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

यज्ञतीर्थ, कपिटङ्कतीर्थ, नृगकूप, गोपीभूमि तथा गोपीचन्दनकी महिमा; द्वारकाकी मिट्टीके स्पर्शसे एक महान् पापीका उद्धार

श्रीनारद उवाच

तस्मिन् गिरौ यज्ञतीर्थं रैवतेन कृतं पुरा।
यत्र कृत्वा यज्ञमेकं कोटियज्ञफलं लभेत्॥ १

कपिटङ्कं नाम तीर्थं कपिपातसमुद्भवम्।
गिरौ रैवतके राजन् सर्वपापप्रणाशनम्॥ २

भौमासुरसखो दुष्टो द्विविदो नाम वानरः।
मारितो यत्र रामेण मुष्टिना वज्रपातिना॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस पर्वतपर पूर्वकालमें राजा रैवतने यज्ञतीर्थका निर्माण किया, जहाँ एक यज्ञ करके मनुष्य कोटियज्ञोंका फल पाता है। वहीं 'कपिटङ्क' नामक तीर्थ है, जो एक कपिके मार गिराये जानेसे प्रकट हुआ था। राजन्! रैवतक गिरिपर वह तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला है॥ १-२॥

भौमासुरका सखा एक द्विविद नामक वानर था, जो बड़ा ही दुष्ट था। उसे बलरामजीने वज्रके समान चोट करनेवाले मुक्केसे जहाँ मारा था, वही स्थान 'कपिटङ्कतीर्थ' है॥ ३॥

सद्यो मुक्तिं गतः सोऽपि सतां हेलनवानपि।
तत्र स्नातुं सदा देवा आगच्छन्ति नरेश्वर॥ ४

कलविङ्कस्य यात्रायां कोटिगोदानजं फलम्।
एतस्य द्विगुणं पुण्यं दण्डकाख्ये वने शुभे॥ ५

तस्माच्चतुर्गुणं पुण्यं सैन्धवाख्ये महावने।
जम्बुमार्गे पञ्चगुणं पुण्यं प्राप्नोति मानवः॥ ६

तस्माद्दशगुणं पुण्यं पुष्कराख्ये वने स्मृतम्।
तस्माद्दशगुणं पुण्यमुत्पलावर्तयात्रया॥ ७

तस्माच्च नैमिषारण्ये पुण्यं दशगुणं स्मृतम्।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं कपिटङ्के विदेहराट्॥ ८

नृगकूपं द्वारकायां तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
यस्य दर्शनमात्रेण विप्रवध्यात्प्रमुच्यते॥ ९

अज्ञानाद्ब्राह्मणस्यापि गां ददौ ब्राह्मणाय सः।
तेन पापेन कूपे वै कृकलासवपुर्धरः॥ १०

नृगोऽपि दानिनां श्रेष्ठः पतितोऽथ चतुर्युगम्।
श्रीकृष्णेन तदुद्धारः कृतो वै पश्यतां सताम्॥ ११

तद्दिनान्नृगकूपं तु तीर्थीभूतं महीपते।
कार्तिके पूर्णिमायां तु तस्मिन् स्नानं समाचरेत्॥ १२

कोटिजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।
एकं यत्रापि गोदानं करोति विधिवन्नरः॥ १३

कोटिगोदानजं पुण्यं लभते वै न संशयः।
गोपीभूमेश्च माहात्म्यं शृणु पापहरं परम्॥ १४

यस्य श्रवणमात्रेण कर्मबन्धात्प्रमुच्यते।
गोपीनां यत्र वासोऽभूत्तेन गोपीभुवः स्मृताः॥ १५

वह वानर सत्पुरुषोंकी अवहेलना करनेवाला था, तो भी वहाँ मारे जानेसे तत्काल मुक्त हो गया। नरेश्वर! उस तीर्थमें स्नान करनेके लिये सदा देवतालोग आया करते हैं। 'कलविङ्कतीर्थ' की यात्रा करनेपर कोटि गोदानका फल प्राप्त होता है। इससे दूना पुण्य शुभ दण्डकारण्यकी यात्रा करनेपर मिलता है॥ ४-५॥

उससे भी चौगुना पुण्य सैन्धव नामक विशाल वनकी यात्रा करनेपर सुलभ होता है। उसकी अपेक्षा भी पाँच गुना अधिक पुण्य जम्बूमार्गकी यात्रा करनेसे मनुष्यको मिल जाता है। पुष्करतीर्थके वनमें उससे भी दस गुना पुण्य प्राप्त होता है। उससे दसगुना पुण्य 'उत्पलावर्त-तीर्थ' की यात्रासे सुलभ होता है। उसकी अपेक्षा भी दसगुना पुण्य 'नैमिषारण्यतीर्थ' में बताया गया है। विदेहराज! नैमिषारण्यसे भी सौगुना पुण्य 'कपिटङ्क-तीर्थ' में स्नान करनेसे प्राप्त होता है॥ ६—८॥

द्वारकामें एक 'नृगकूप' है, जो तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ है। उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है। राजा नृगने अनजानमें एक ब्राह्मणकी गायको दूसरे ब्राह्मणके हाथमें दे दिया था। उसी पापसे उन्हें गिरगिटका शरीर धारण करके कूपमें रहना पड़ा। दानियोंमें सर्वश्रेष्ठ राजा नृग भी एक छोटे-से पापके कारण अन्धकूपमें गिरे और चार युगोंतक उसीमें रहे। फिर सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान् श्रीकृष्णने उनका उद्धार किया॥ ९—११॥

महीपते! उसी दिनसे 'नृगकूप' तीर्थस्वरूप हो गया। कार्तिककी पूर्णिमाको उस कूपके जलसे स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य कोटिजन्मोंके किये हुए पापसे छुटकारा पा जाता है, इसमें संशय नहीं है। वहाँ विधिपूर्वक, जो एक भी गोदान करता है, वह निस्संदेह कोटि गोदानके पुण्यफलका भागी होता है॥ १२—१३ $^{1}/_{2}$॥

राजन्! अब 'गोपीभूमि' का माहात्म्य सुनो, जो पापहारी उत्तम तीर्थ है। उसके श्रवणमात्रसे कर्म-बन्धनसे छुटकारा मिल जाता है। जहाँ गोपियोंने निवास किया था, उस निवासके कारण ही वह स्थान 'गोपीभूमि' के नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ १४-१५॥

गोप्यङ्गरागसम्भूतं गोपीचन्दनमुत्तमम्।
गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो गङ्गास्नानफलं लभेत्॥ १६

महानदीनां स्नानस्य पुण्यं तस्य दिने दिने।
गोपीचन्दनमुद्राभिर्मुद्रितो यः सदा भवेत्॥ १७

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च।
सर्वाणि तीर्थदानानि व्रतानि च तथैव च।
कृतानि तेन नित्यं वै स कृतार्थो न संशयः॥ १८

गङ्गामृद्द्विगुणं पुण्यं चित्रकूटरजः स्मृतम्।
तस्माद्दशगुणं पुण्यं रजः पञ्चवटीभवम्॥ १९

तस्माच्छतगुणं पुण्यं गोपीचन्दनकं रजः।
गोपीचन्दनकं विद्धि वृन्दावनरजःसमम्॥ २०

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गं यदि पापशतैर्युतम्।
तं नेतुं न यमः शक्तो यमदूतः कुतः पुनः॥ २१

नित्यं करोति यः पापी गोपीचन्दनधारणम्।
स प्रयाति हरेर्धाम गोलोकं प्रकृतेः परम्॥ २२

सिन्धुदेशस्य राजाभूद्दीर्घबाहुरिति श्रुतः।
अन्यायवर्ती दुष्टात्मा वेश्यासङ्गरतः सदा॥ २३

तेन वै भारते वर्षे ब्रह्महत्याशतं कृतम्।
दश गर्भवतीहत्याः कृतास्तेन दुरात्मना॥ २४

मृगयायां तु बाणौघैः कपिलागोवधः कृतः।
सैन्धवं हयमारुह्य मृगयार्थी गतोऽभवत्॥ २५

एकदा राज्यलोभेन मन्त्री क्रुद्धो महाखलम्।
जघानारण्यदेशे तं तीक्ष्णधारेण चासिना॥ २६

भूतले पतितं मृत्युगतं वीक्ष्य यमानुगाः।
बद्ध्वा यमपुरीं निन्युर्हर्षयन्तः परस्परम्॥ २७

सम्मुखेऽवस्थितं वीक्ष्य पापिनं यमराड् बली।
चित्रगुप्तं प्राह तूर्णं का योग्या यातनास्य वै॥ २८

वहाँ गोपियोंके अङ्गरागसे उत्पन्न उत्तम गोपीचन्दन उपलब्ध होता है। जो अपने अङ्गोंमें गोपीचन्दन लगाता है, उसे गङ्गा-स्नानका फल मिलता है। जो सदा गोपीचन्दनकी मुद्राओंसे मुद्रित होता है, अर्थात् गोपीचन्दनका छापा-तिलक लगाता है, उसे प्रतिदिन महानदियोंमें स्नान करनेका पुण्यफल प्राप्त होता है॥ १६-१७॥

उसने सहस्र अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ कर लिये। सब तीर्थोंका सेवन, दान और व्रतोंका अनुष्ठान भी कर लिया। निस्संदेह वह नित्य गोपीचन्दन लगानेमात्रसे कृतार्थ हो जाता है। गङ्गाकी मिट्टीसे दुगुना पुण्य चित्रकूटकी रजका माना गया है, उससे भी दसगुना पुण्य पञ्चवटीकी रजका है, उसकी अपेक्षा भी सौगुना पुण्य गोपीचन्दन रजका है॥ १८—१९१/२॥

गोपीचन्दनको तुम वृन्दावनकी रजके समान समझो। जिसके शरीरमें गोपीचन्दन लगा हो, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी उसे यमराज भी अपने साथ नहीं ले जा सकते, फिर यमदूतोंकी तो बात ही क्या है। पापी होनेपर भी जो पुरुष प्रतिदिन गोपीचन्दनका तिलक धारण करता है, वह श्रीहरिके गोलोकधाममें जाता है, जहाँ प्राकृत गुणोंका प्रवेश नहीं है॥ २०—२२॥

सिन्धुदेशका एक राजा था, जिसका नाम दीर्घबाहु था। वह अन्यायपूर्ण जीवन बितानेवाला, दुष्टात्मा और सदा वेश्यासङ्गमें रत रहनेवाला था। उसने भारतवर्षमें सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ की थीं। उस दुरात्माने दस गर्भवती स्त्रियोंका वध किया था। उसने शिकार खेलते समय अपने बाण-समूहोंसे कपिला गौओंकी हत्या की थी। एक दिन वह सिंधुदेशीय घोड़ेपर चढ़कर मृगयाके लिये वनमें गया॥ २३—२५॥

वहाँ उसके कुपित मन्त्रीने राज्यके लोभसे उस महाखल नरेशको तीखी धारवाली तलवारसे उस वनमें ही मार डाला। उसको पृथ्वीपर पड़ा और मृत्युको प्राप्त हुआ देख यमके सेवक बाँधकर परस्पर हर्ष प्रकट करते हुए उसे यमपुरी ले गये। उस पापीको सामने खड़ा देख बलवान् यमराजने तुरंत ही चित्रगुप्तसे पूछा—'इसके योग्य कौन-सी यातना है?'॥ २६—२८॥

चित्रगुप्त उवाच

चतुरशीतिलक्षेषु नरकेषु निपात्यताम्।
निःसन्देहं महाराज यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ २९

अनेन भारते वर्षे क्षणं न सुकृतं कृतम्।
दशगर्भवतीघातः कपिलागोवधः कृतः॥ ३०

तथा वनमृगाणां च कृत्वा हत्याः सहस्रशः।
तस्मादयं महापापी देवताद्विजनिन्दकः॥ ३१

श्रीनारद उवाच

तदा यमाज्ञया दूता नीत्वा तं पापरूपिणम्।
सहस्रयोजनायामे तप्ततैले महाखले॥ ३२

स्फुरदत्युच्छलत्फेने कुम्भीपाके न्यपातयन्।
प्रलयाग्निसमो वह्निः सद्यः शीतलतां गतः॥ ३३

वैदेह तन्निपतनात्प्रह्लादक्षेपणाद्यथा।
तदैव चित्रमाचख्युर्यमदूता महात्मने॥ ३४

अनेन सुकृतं भूमौ क्षणवन्न कृतं क्वचित्।
चित्रगुप्तेन सततं धर्मराजो व्यचिन्तयत्॥ ३५

सभायामागतं व्यासं सम्पूज्य विधिवन्नृप।
नत्वा पप्रच्छ धर्मात्मा धर्मराजो महामतिः॥ ३६

यम उवाच

अनेन पापिना पूर्वं न कृतं सुकृतं क्वचित्।
स्फुरदग्न्युच्छलत्फेने कुम्भीपाके महाखले॥ ३७

अस्य क्षेपणतो वह्निः सद्यः शीतलतां गतः।
इति सन्देहतश्चेतः खिद्यते मे न संशयः॥ ३८

चित्रगुप्तने कहा—महाराज! निस्संदेह इसे चौरासी लाख नरकोंमें बारी-बारीसे गिराया जाय और जबतक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं, तबतक यह नरकका कष्ट भोगता रहे। इसने भारतवर्षमें जन्म लेकर एक क्षण भी कभी पुण्य-कर्म नहीं किया है। इसने दस गर्भवती स्त्रियोंकी और असंख्य कपिला गौओंकी हत्या की है। इसके सिवा वन्य पशुओंकी हत्या तो इसने हजारोंकी संख्यामें की है। इसलिये देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला यह महान् पापी है॥ २९—३१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस समय यमकी आज्ञासे यमदूत उस पापात्माको लेकर कुम्भीपाक नरकमें ले गये, जिसका दीर्घ विस्तार एक सहस्र योजनका था। वहाँ विशाल कड़ाहमें तपाया हुआ तेल भरा था। उस खौलते हुए तेलमें फेन उठ रहे थे। यमदूतोंने उस पापीको उसी कुम्भीपाकमें गिरा दिया। उसके गिरते ही वहाँकी प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित अग्नि तत्काल शीतल हो गयी॥ ३२-३३॥

विदेहराज! जैसे प्रह्लादको खौलते हुए तेलमें फेंकनेपर वह शीतल हो गया था, उसी प्रकार उस पापीको नरकमें गिरानेसे वहाँकी ज्वाला शान्त हो गयी। यमदूतोंने उसी समय यह विचित्र घटना महात्मा यमको बतायी। चित्रगुप्तके साथ धर्मराज बड़ी चिन्तामें पड़े और सोचने लगे—'इसने तो भूतलपर क्षणभर भी कभी कोई पुण्य नहीं किया है।' नरेश्वर! इसी समय धर्मराजकी सभामें व्यासजी पधारे। उनकी विधिपूर्वक पूजा करके परम बुद्धिमान् धर्मात्मा धर्मराजने उन्हें प्रणाम करके पूछा॥ ३४—३६॥

यम बोले—[भगवन्!] इस पापीने पहले कभी कहीं कोई सुकृत नहीं किया है। इसलिये जिसमें फेन उठ रहा था, ऐसे खौलते हुए तेलसे भरे कुम्भीपाकके महान् कड़ाहमें इसको फेंका गया था। इसके डालते ही वहाँकी आग तत्काल शीतल हो गयी। इस संदेहके कारण मेरे चित्तमें निश्चय ही बड़ा खेद है॥ ३७-३८॥

श्रीव्यास उवाच

सूक्ष्मा गतिर्महाराज विदिता पापपुण्ययोः।
तथा ब्रह्मगतिः प्राज्ञैः सर्वशास्त्रविदां वरैः॥ ३९

दैवयोगादस्य पुण्यं प्राप्तं वै स्वयमर्थवत्।
येन पुण्येन शुद्धोऽसौ तच्छृणु त्वं महामते॥ ४०

कस्यापि हस्ततो यत्र पतिता द्वारकामृदः।
तत्रैवायं मृतः पापी शुद्धोऽभूत्तत्प्रभावतः॥ ४१

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो नरो नारायणो भवेत्।
एतस्य दर्शनात्सद्यो ब्रह्महत्या प्रमुच्यते॥ ४२

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा धर्मराजस्तमानीय विशेषतः।
विमाने कामगे स्थाप्य वैकुण्ठं प्रकृतेः परम्॥ ४३

प्रेषयामास सहसा गोपीचन्दनकीर्तिवित्।
एवं ते कथितं राजन् गोपीचन्दनकं यशः॥ ४४

गोपीचन्दनमाहात्म्यं यः शृणोति नरोत्तमः।
स याति परमं धाम श्रीकृष्णस्य महात्मनः॥ ४५

श्रीव्यासजीने कहा—महाराज! पाप-पुण्यकी गति उसी प्रकार बड़ी सूक्ष्म होती है, जैसे सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वानोंमें श्रेष्ठ प्रज्ञावान् पुरुषोंने ब्रह्मकी गति सूक्ष्म बतायी है। दैवयोगसे इसको स्वयं ही प्रत्यक्ष एवं सार्थक पुण्य प्राप्त हो गया है। महामते! जिस पुण्यसे वह शुद्ध हुआ है, उसे बताता हूँ; सुनो॥ ३९-४०॥

जहाँ किसीके हाथसे द्वारकाकी मिट्टी पड़ी हुई थी, वहीं इस पापीकी मृत्यु हुई है। उस मृत्तिकाके प्रभावसे ही यह पापी शुद्ध हो गया है। जिसके अङ्गमें गोपीचन्दनका लेप हो, वह 'नर' से 'नारायण' हो जाता है। उसके दर्शनमात्रसे तत्काल ब्रह्महत्या छूट जाती है॥ ४१-४२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर धर्मराज उसे ले आये और इच्छानुसार चलनेवाले एक विशेष विमानपर उसे बैठाकर उन्होंने प्रकृतिसे परे वैकुण्ठधामको भेज दिया। गोपीचन्दनके सुयश (प्रताप)-का ज्ञान उनको अकस्मात् उसी समय हुआ। राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें गोपीचन्दनकी महिमा बतायी। जो श्रेष्ठ मनुष्य गोपीचन्दनके इस माहात्म्यको सुनता है, वह महात्मा श्रीकृष्णके परमधाममें जाता है॥ ४३—४५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कपिटङ्कनृगकूपगोपीभूमिमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कपिटङ्क, नृगकूप तथा गोपीभूमिकी महिमाका वर्णन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

सिद्धाश्रमकी महिमाके प्रसङ्गमें श्रीराधा और गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्ण और उनकी सोलह हजार रानियोंका समागम

श्रीनारद उवाच

सिद्धाश्रमस्य माहात्म्यं शृणु राजन् महामते।
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १

यत्स्पर्शनाद्धरेः साक्षान्न वियोगो भवेत्क्वचित्।
तं च सिद्धाश्रमं नाम वदन्तीह पुराविदः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—महामते विदेहराज! अब सिद्धाश्रमका माहात्म्य सुनो, जिसका स्मरण करनेमात्रसे समस्त पाप छूट जाते हैं। जिसके स्पर्शमात्रसे साक्षात् श्रीहरिसे कभी वियोग नहीं होता, उसी तीर्थको पुराणवेत्ता पुरुष 'सिद्धाश्रम' कहते हैं॥ १-२॥

दर्शनाद्यस्य सालोक्यं सामीप्यं स्पर्शनात्तथा।
सारूप्यं स्नानतो याति सायुज्यं तन्निवासतः॥ ३

जिसके दर्शनसे सालोक्य, स्पर्शसे सामीप्य, जिसमें स्नान करनेसे सारूप्य और जहाँ निवास करनेसे सायुज्य मोक्षकी प्राप्ति होती है, उसे ही 'सिद्धाश्रम' जानो॥ ३॥

तत्तीर्थस्यापि माहात्म्यं श्रुत्वा चन्द्राननामुखात्।
राधा स्नातुं मनश्चक्रे कृष्णविक्षेपविह्वला॥ ४

श्रीसिद्धाश्रमयात्रायां सूर्यपर्वणि माधवे।
राधा गन्तुं मनश्चक्रे उत्थाय कदलीवनात्॥ ५

गोपीनां शतयूथेन सर्वगोपगणैः सह।
शतवर्षे व्यतीते तु श्रीदाम्नः शापकारणात्॥ ६

एक समय चन्द्रानना सखीके मुखसे सिद्धाश्रम-तीर्थका माहात्म्य सुनकर श्रीकृष्णके वियोगसे व्याकुल हुई श्रीराधाने उसमें नहानेका विचार किया। वैशाख-मासमें सूर्यग्रहणके पर्वपर सिद्धाश्रमतीर्थकी यात्राके लिये कदली-वनसे उठकर श्रीराधाने गोपाङ्गनाओंके सौ यूथ और समस्त गोपगणोंके साथ वहाँ जानेका मन-ही-मन निश्चय किया। श्रीदामाके शापके कारण होनेवाले श्रीकृष्णवियोगके सौ वर्ष बीत चुके थे॥ ४—६॥

श्रीराधा शिविकारूढा छत्रचामरवीजिता।
आनर्तेषु महातीर्थं ययौ सिद्धाश्रमं सती॥ ७

श्रीराधिका शिविकामें आरूढ़ हुईं। उनपर छत्र-चँवर डुलाये जाने लगे। इस प्रकार वे सती श्रीराधा आनर्त-देशके महातीर्थ सिद्धाश्रमको गयीं॥ ७॥

तत्रैव भगवान् साक्षाद्यादवैः परिमण्डितः।
स्त्रीणां षोडशसाहस्रैर्यात्रार्थं चाययौ नृप॥ ८

बलिष्ठा ये च गोपालाः कोटिशः शस्त्रपाणयः।
सिद्धाश्रमं ते जुगुपुः सर्वतो राधिकाज्ञया॥ ९

नरेश्वर! वहीं साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सोलह हजार रानियोंके साथ यादवगणोंसे घिरे हुए तीर्थयात्राके लिये आये। करोड़ों बलिष्ठ गोपाल हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये श्रीराधिकाकी आज्ञाके अनुसार सिद्धाश्रमकी चारों ओरसे रक्षा कर रहे थे॥ ८-९॥

शतयूथास्तथा गोप्यो वेत्रहस्ता महाबलाः।
सिद्धाश्रमे च विधिवत्स्नान्तीं राधां सिषेविरे॥ १०

द्वारकावासिनां तेषां स्थितानां स्नानमिच्छताम्।
शस्त्रवेत्रैस्ताडितानां विविशुर्भगवत्स्त्रियः॥ ११

गोपियोंके सौ यूथ भी बड़े शक्तिशाली थे। वे तथा अन्य गोपाङ्गनाएँ हाथोंमें बेंतकी छड़ी लिये सिद्धाश्रममें विधिपूर्वक स्नान करती हुई श्रीराधाकी सेवामें तत्पर थीं। द्वारकावासी स्नानकी इच्छासे वहाँ आकर खड़े थे। शस्त्र और वेत्र धारण करनेवाले गोपोंने उन्हें मार-मारकर दूर हटा दिया। इसी समय भगवान् श्रीकृष्णकी रानियोंने सिद्धाश्रममें प्रवेश किया॥ १०-११॥

केयं स्नातीति पप्रच्छुर्यस्या वैभवमद्भुतम्।
यद्गौरवात्त्रसन्तीह सर्वे यादवपुङ्गवाः॥ १२

अहो कस्य प्रिया चेयं का नाम कुत्र वासिनी।
त्वं सर्वज्ञो हि भगवान् वद नो देवकीसुत॥ १३

उन रानियोंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'देवकीनन्दन! आप सर्वज्ञ हैं, अतः हमें बताइये, यह कौन स्त्री स्नान कर रही है, जिसका वैभव अद्भुत दिखायी देता है तथा जिसका गौरव मानकर समस्त यादव-पुंगव यहाँ भयभीत-से खड़े हैं? अहो! यह किसकी प्रिया है, इसका क्या नाम है और यह कहाँकी रहनेवाली है?॥ १२-१३॥

श्रीभगवानुवाच

वृषभानुसुता साक्षाद्राधेयं कीर्तिनन्दिनी।
व्रजेश्वरी महयिता गोपिकाधीश्वरी वरा॥ १४

स्नातुं सिद्धाश्रमं प्राप्ता व्रजाद् गोपीगणैः सह।
यद्गौरवात्रसन्त्येते तस्या वैभवमद्भुतम्॥ १५

श्रीभगवान् बोले—ये साक्षात् वृषभानुकी पुत्री कीर्तिनन्दिनी श्रीराधा हैं, जो सम्पूर्ण व्रजकी अधीश्वरी, गोपाङ्गनाओंकी स्वामिनी तथा मेरी प्राणवल्लभा हैं। ये व्रजसे गोपीगणोंके साथ सिद्धाश्रममें स्नान करनेके लिये आयी हैं। इन्हींके गौरवसे ये यादव त्रस्त होकर खड़े हैं। इन्हींका यह अद्भुत वैभव है॥ १४-१५॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सत्यभामाथ भामिनी।
शनैः प्राह सपत्नीनां रूपयौवनगर्विता॥ १६

किं नु राधा रूपवती नाहं रूपवती किमु।
बहुभिर्याचिता पूर्वं रूपौदार्यगुणार्चिता॥ १७

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अपने अनुपम रूप और यौवनपर गर्व करनेवाली भामिनी सत्यभामा अपनी सौतोंके बीच धीरे-धीरे बोलीं—'क्या राधा ही रूपवती हैं, मैं रूपवती नहीं हूँ? पूर्वकालमें बहुतसे लोगोंने मेरी याचना की थी। मैं अपने रूप और औदार्य-गुणसे सदा ही पूजित रही हूँ॥ १६-१७॥

मद्रूपकारणात्सख्यः शतधन्वा मृतोऽभवत्।
अक्रूरः कृतवर्मा च पुरा तौ द्वौ पलायितौ॥ १८

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति स्वतः।
दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः॥ १९

न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः।
मत्पित्रा पारिबर्हेऽपि दत्तः साक्षात्स्यमन्तकः॥ २०

सखियो! मेरे रूपके ही कारण शतधन्वाकी मृत्यु हुई, अक्रूर और कृतवर्माको यदुपुरीसे पलायन करना पड़ा। जो स्यमन्तकमणि प्रतिदिन अपने-आप आठ भार सुवर्णकी सृष्टि करती है, जिसके रहनेसे दुर्भिक्ष, महामारी, अरिष्ट आदि स्वतः भाग जाते हैं तथा जिसकी पूजाके स्थानमें सर्प, आधि-व्याधि, अमङ्गल और मायावी लोग नहीं रह पाते, मेरे पिताने वही स्यमन्तकमणि मेरे दहेजमें दी थी॥ १८—२०॥

तेन जातं मद्गृहेऽपि सर्वं वैभवमद्भुतम्।
प्रेम्णा परेण श्रीकृष्णं गरुडोपरिगामिनी॥ २१

भौमासुरमहायुद्धं दृष्टं प्राग्ज्योतिषं पुरम्।
ममापि कृपया यूयं तत्पुराच्च समागताः॥ २२

प्राप्ताः श्रीकृष्णपत्नीत्वं सर्वा एव न संशयः।
मद्गौरवाच्च शक्राय छत्रं दत्तमनेन वै॥ २३

उस मणिसे मेरे घरमें भी सम्पूर्ण अद्भुत वैभव प्रकट हो गया है। मैं अपने महान् प्रेमसे श्रीकृष्णको वशमें रखती हूँ, उनके साथ गरुडपर बैठकर यात्रा करती हूँ। प्राग्ज्योतिषपुरमें भौमासुरके साथ जो महान् युद्ध हुआ था, उसे मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। मेरी ही कृपासे तुम सब प्राग्ज्योतिषपुरसे द्वारकापुरीमें आयीं और सब-की-सब श्रीकृष्णकी पत्नी हुईं, इसमें संशय नहीं है। मेरी ही बातका आदर करके इन श्रीकृष्णने इन्द्रको छत्र दिया॥ २१—२३॥

कुण्डले देवमात्रे च दत्ते वै मत्प्रियेच्छया।
ऐरावतभवा नागा भौमासुरसमृद्धयः॥ २४

मदिच्छया समानीताः श्रीकृष्णेन महात्मना।
मत्कारणान्महावैरं शक्रेऽपि कृतवान् हरिः॥ २५

मेरा ही प्रिय करनेकी इच्छासे इन्होंने देवमाता अदितिको उनके दोनों कुण्डल अर्पित किये। ऐरावतके वंशमें उत्पन्न बड़े-बड़े गजराज, जो भौमासुरकी सम्पत्ति थे, मेरी ही इच्छासे महात्मा श्रीकृष्णद्वारा द्वारकामें लाये गये। मेरे ही कारण श्रीहरिने देवराज इन्द्रसे भी महान् वैर ठान लिया॥ २४-२५॥

मद्द्वारे वर्तते नित्यं वृक्षेन्द्रः पारिजातकः।
पातिव्रत्येनैव मया श्रीकृष्णोऽयं वशीकृतः॥ २६

सर्वोपस्करसंयुक्तो नारदाय समर्पितः।
मत्समानं न कस्यास्तु गौरवं वैभवं तथा॥ २७

रूपौदार्यं न कस्यास्तु राधायाः किमु वर्णनम्।
यद्रूपोपरि चैद्याद्या अनेन युयुधुर्युधि॥ २८

हे सुभ्रु रुक्मिणी सा त्वं कथं रूपवती न हि।
सा गोपकन्यका सख्यो यूयं वै राजकन्यकाः।
धन्या मान्याश्च सर्वा वै यूयं मानवतीवराः॥ २९

एवं तु सत्यभामायां वदन्त्यां मैथिलेश्वर।
भूत्वा मानवतीः सर्वा रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो वराः॥ ३०

कुलकौशलशीलार्थरूपयौवनगर्विताः।
श्रीकृष्णं मानदं प्राहुरष्टौ पट्टमहास्त्रियः॥ ३१

राज्य ऊचुः

श्रुतं तव मुखात्पूर्वं राधारूपं परं स्मृतम्।
यस्यां रक्तः सदा त्वं वै त्वयि रक्ता च या सदा॥ ३२

तां राधां द्रष्टुमिच्छामस्त्वत्प्रियां व्रजवासिनीम्।
त्वद्वियोगेन संखिन्नां स्नातुं चात्र समागताम्॥ ३३

श्रीनारद उवाच

तथास्तु चोक्त्वा श्रीकृष्णः पट्टस्त्रीपरिवेष्टितः।
षोडशस्त्रीसहस्राढ्यो द्रष्टुं राधां जगाम ह॥ ३४

श्रीहेमशिविरे रम्ये पताकाध्वजमण्डिते।
चन्द्रमण्डलशोभाढ्यवितानतनिते शुभे॥ ३५

मुक्ताजवनिका यत्र वस्त्रैरास्तरणं शुभम्।
मालतीमकरन्दाढ्यं सर्वतो गन्धसङ्कुलम्॥ ३६

मेरे द्वारपर वृक्षराज पारिजात सदा सुशोभित होता है। मैंने अपने पातिव्रतधर्मसे ही श्रीकृष्णको वशमें कर रखा है। मैंने समस्त सामग्रियोंके साथ नारदजीके हाथ श्रीकृष्णका दान कर दिया था। मेरे समान गौरव और वैभव किसी भी स्त्रीको नहीं प्राप्त हो सकता॥ २६-२७॥

रूप और उदारता भी मेरे तुल्य किसी भी स्त्रीमें नहीं है। फिर राधाकी तो बात ही क्या है? जिनके रूपपर चेदिराज शिशुपाल आदिने रणभूमिमें श्रीकृष्णके साथ युद्ध छेड़ दिया था, उन रुक्मिणीका रूप-सौन्दर्य क्या किसीसे कम है? सुन्दर भौंहोंवाली बहन रुक्मिणी! तुम क्योंकर रूपवती नहीं हो? सखियो! राधा एक गोपकी कन्या है और तुम सब राजकुमारियाँ हो; सभी धन्य और मान्य हो तथा मानवती स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हो'॥ २८-२९॥

मिथिलेश्वर! सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर रुक्मिणी आदि सभी श्रेष्ठ रानियाँ मानवती हो गयीं। उन सबको अपने कुल, कौशल, शील, धन, रूप और यौवनपर गर्व था। वे आठों पटरानियाँ सबको मान देनेवाले श्रीकृष्णसे बोलीं—॥ ३०-३१॥

रानियाँ बोलीं—प्रभो! आपके मुँहसे पहले हमने राधाके रूपकी बड़ी बड़ाई सुनी है, जिनके प्रति तुम सदा अनुरक्त रहते हो और वे भी सदा तुम्हारे अनुरागके रंगमें रँगी रहती हैं। आज हम उन्हीं तुम्हारी व्रजवासिनी प्रियतमा राधाको देखना चाहती हैं, जो सदा तुम्हारे वियोगसे खिन्न रहती हैं और यहाँ स्नानके लिये आयी हुई हैं॥ ३२-३३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब 'तथास्तु' कहकर पटरानियोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण सोलह हजार रानियोंके साथ श्रीराधाका दर्शन करनेके लिये गये॥ ३४॥

सोनेके रमणीय शिविरमें—जो ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित था और जिस सुन्दर शिविरमें चन्द्रमण्डलकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाला चँदोवा तना था; मोतियोंकी झालरोंसे युक्त परदा लगा था और जहाँ स्वच्छ वस्त्रोंका सुन्दर बिछौना बिछा था; मालतीके मकरन्द एवं इत्र आदिकी सुगन्ध जहाँ सब ओर छा रही थी

तेन भृङ्गावली चक्रे कलं कोलाहलं परम्।
तत्र राधा पट्टराज्ञी श्रीकृष्णहृतमानसा॥ ३७

हंसाभैर्व्यजनैर्दिव्यैर्वीज्यमाना सखीजनैः।
छत्रदोलाधरैस्तत्र व्रजद्भिस्तामितस्ततः॥ ३८

बालार्ककुण्डलधरा विद्युद्दाममनोहरा।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशा तन्वी कोमलविग्रहा॥ ३९

अङ्गुल्यग्रैः शोभनैः स्वैः पुष्पभूमिं मनोहराम्।
शनैः शनैः पादपद्मं धारयन्त्यतिकोमलम्॥ ४०

दूरात्तां राधिकां प्रेक्ष्य कृष्णपत्न्यः सहस्रशः।
जग्मुर्मूर्च्छां महाराज तद्रूपेणातिमोहिताः॥ ४१

तत्तेजसा हतरुचः सूर्यात्तारागणा यथा।
गतरूपाभिमानास्ता ऊचुः सर्वाः परस्परम्॥ ४२

अहो एतादृशं रूपं त्रिलोक्यां न हि चाद्भुतम्।
श्रुतं यथा तथा दृष्टमद्वितीयं मनोहरम्॥ ४३

एवं वदन्त्यस्तां प्राप्ताः श्रीकृष्णस्य पुरःसराः।
गोपीनां राजपुत्रीणां नेत्राणि परिरेभिरे॥ ४४

और उसीके कारण भ्रमरावलियाँ जहाँ मधुर गुञ्जन कर रही थीं—पटरानी श्रीराधा, जिनका चित्त श्रीकृष्णने चुरा लिया था, विराजमान थीं और सखियाँ हंसके समान श्वेत एवं दिव्य व्यजन डुलाकर उनकी सेवा करती थीं॥ ३५—३७½॥

कोई सखी उनके ऊपर छत्र ताने हुए थीं, कुछ सखियाँ झूलेकी डोर पकड़कर झुला रही थीं और कुछ इधर-उधर आती-जाती दिखायी देती थीं। श्रीराधाके कानोंमें बालरविके समान कान्तिमान् कुण्डल झलमला रहे थे। विद्युत्के समान उद्दीप्त माला धारण करनेके कारण उनकी मनोहरता और भी बढ़ गयी थी। उनके श्रीअङ्गोंसे कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाश फैल रहा था। वे तन्वङ्गी तथा कोमलाङ्गी थीं॥ ३८-३९॥

वे अपने पैरोंकी सुन्दर अङ्गुलियोंके अग्रभागसे पुष्पाच्छादित मनोहर भूमिपर अत्यन्त कोमल चरणारविन्द धीरे-धीरे रख रही थीं॥ ४०॥

महाराज! उन श्रीराधाको दूरसे ही देखकर श्रीकृष्णकी वे सहस्र रानियाँ उनके रूपसे अत्यन्त मोहित होकर मूर्च्छित हो गयीं॥ ४१॥

उनके तेजसे इनकी कान्ति उसी तरह विलुप्त हो गयी, जैसे सूर्योदय होनेपर तारिकाएँ। इन्हें जो रूपका अभिमान था, वह जाता रहा। ये सब रानियाँ परस्पर इस प्रकार कहने लगीं— ॥ ४२॥

अहो! ऐसा अद्भुत रूप तो तीनों लोकोंमें कहीं भी नहीं है। हमने इनके अद्वितीय मनोहर रूपको जैसा सुना था, वैसा ही देखा॥ ४३॥

इस प्रकार आपसमें बात करती हुई वे रानियाँ श्रीकृष्णको आगे करके श्रीराधिकाके पास जा पहुँचीं। गोपाङ्गनाओं तथा राजकुमारियोंके नेत्र आपसमें मिले॥ ४४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीराधारूपदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीराधाके रूपका दर्शन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

सिद्धाश्रममें श्रीराधा और श्रीकृष्णका मिलन; श्रीकृष्णकी रानियोंका श्रीराधाको अपने शिविरमें बुलाकर उनका सत्कार करना तथा श्रीहरिके द्वारा उनकी उत्कृष्ट प्रीतिका प्रकाशन

श्रीनारद उवाच

श्रीकृष्णमागतं वीक्ष्य पट्टराज्ञीसमन्वितम्।
तदा जयजयारावं चक्रुर्गोप्योऽतिहर्षिताः॥ १

सहसा श्रीहरिं राधा परिक्रम्य कृताञ्जलिः।
पद्माभाभ्यां तु नेत्राभ्यामानन्दाश्रूणि मुञ्चती॥ २

स्यमन्तकखचित्पादं चिन्तामणिखचित्तटम्।
पद्मरागलसन्मध्यं चन्द्रमण्डलवर्तुलम्॥ ३

कौस्तुभैः प्रखचित्पृष्ठं कुण्डमण्डलमण्डितम्।
पारिजातकपुष्पाढ्यं पीयूषस्राविछत्रमत्॥ ४

दत्वा सिंहासनं तस्मै प्राह प्रहसिताननाः।
अद्य मे सफलं जन्म चाद्य मे सफलं तपः॥ ५

अद्य मे सफलो धर्मो हरे त्वय्यागते सति।
धन्यं सिद्धाश्रमस्नानं सफलीभूतमद्भुतम्।
मयापि न कृता भक्तिस्तव भक्तसहायिनः॥ ६

बहवश्च सहायान्मे त्वया देव हता भुवि।
कंसोऽपि लोकविजयी येन भीतो बभूव ह॥ ७

स मारितो मद्वचनाच्छङ्खचूडस्त्वया हरे।
मत्प्रेम्णापि त्वया देव वैभवं दर्शितं व्रजे॥ ८

शक्रस्य मानभङ्गोऽपि कृतो देव त्वया बलात्।
मत्कारणाद् व्रजं रक्षन् धृत्वा गोवर्धनाचलम्॥ ९

यथेच्छालिङ्गितो रासे गोपीभिस्त्वं वशीकृतः।
इदं ते चरितं देव नरलोकविडम्बनम्॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पटरानियोंसहित श्रीकृष्णको आया देख गोपाङ्गनाएँ अत्यन्त हर्षसे खिल उठीं और तत्काल जय-जयकार करने लगीं। श्रीराधा सहसा उठीं और हाथ जोड़, श्रीहरिकी परिक्रमा करके अपने कमलोपम नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाने लगीं॥ १-२॥

उन्होंने श्रीकृष्णके बैठनेके लिये एक सोनेका सिंहासन दिया, जिसके पायोंमें स्यमन्तकमणि जड़ी हुई थी। पार्श्वभागमें चिन्तामणि जगमगा रही थी, मध्यभागमें पद्मरागमणि शोभा दे रही थी। वह सिंहासन चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार था। उसकी पादपीठिकामें कौस्तुभ-मणियाँ जड़ी गयी थीं। वह सिंहासन कुण्ड-मण्डलसे मण्डित था; पारिजातके पुष्पोंसे सज्जित और अमृतवर्षी छत्रसे अलंकृत था॥ ३-४॥

उन्हें सिंहासन देकर श्रीराधा हासयुक्त मुखसे बोलीं—आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरी तपस्याका फल मिल गया। श्रीहरे! तुम आ गये तो आज मेरा धर्म-कर्म सफल हो गया। श्रीसिद्धाश्रमका स्नान धन्य है, जिससे मेरा मनोरथ अद्भुत रीतिसे सफल हुआ। मैंने तो कभी तुम्हारी भक्ति भी नहीं की। तुम भक्तोंके सहायक हो॥ ५-६॥

देव! तुमने मेरी सहायताके लिये इस भूतलपर बहुत-से असुरोंको मार भगाया। जिससे त्रिलोकविजयी कंस भी डरता था, उस शङ्खचूडको तुमने मेरे कहनेसे मार गिराया। हरे! मेरे प्रति प्रेम रखनेके कारण ही तुमने व्रजमण्डलमें देवलोकका वैभव दिखाया॥ ७-८॥

देव! तुमने बलपूर्वक इन्द्रका मान भङ्ग किया और मेरे ही कारण व्रजकी रक्षा करते हुए गोवर्धन पर्वतको धारण किया। रासमण्डलमें गोपियोंने तुम्हारा यथेष्ट आलिङ्गन किया और तुम उनके वशमें हो गये। देव! तुम्हारा यह चरित्र नरलोककी विडम्बना-मात्र है॥ ९-१०॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदन्ती सा राधा त्वरं चन्द्राननाज्ञया।
सादरेण हरेः पत्नीर्वीक्ष्य ता गौरवं ददौ॥ ११

भैष्मीं जाम्बवतीं भामां सत्यां भद्रां च लक्ष्मणाम्।
कालिन्दीं मित्रविन्दां च मिलित्वा सा परस्परम्॥ १२

षोडशस्त्रीसहस्रं च रोहिणीमुखमेव च।
प्रेमानन्दमयी दोर्भ्यां परिरेभे मुदान्विता॥ १३

श्रीराधोवाच

चन्द्रो यथैको बहवश्चकोराः
सूर्यो यथैको बहवो दृशः स्युः।
श्रीकृष्णचन्द्रो भगवांस्तथैको
भक्ता भगिन्यो बहवो वयं च॥ १४

पद्मप्रभावं मधुपो यथा हि
रत्नप्रभावं किल तत्परीक्षित्।
विद्याप्रभावं च यथा हि विद्वान्
काव्यप्रभावं च यथा कवीन्द्रः॥ १५

यथा सहस्रेषु जनेषु सत्सु
रसप्रभावं रसिकस्तथा हि।
जानाति तत्त्वेन नरेन्द्रपुत्र्यः
कृष्णप्रभावं भुवि कृष्णभक्तः॥ १६

श्रीनारद उवाच

राधावाक्यं तदा श्रुत्वा रुक्मिणी भीष्मनन्दिनी।
सपत्नीसहिता प्राह राधां कमललोचनाम्॥ १७

रुक्मिण्युवाच

धन्यासि राधे वृषभानुपुत्रि
त्वद्भक्तिभावेन वशीकृतोऽयम्।
वदत्यलं यस्य कथां त्रिलोकी
स एव वार्तां वदति त्वदीयाम्॥ १८

श्रुतं यथा ते हरिभावलक्षणं
तथा हि दृष्टं न हि चित्रमेव हि।
गच्छाशु चास्मच्छिबिराणि यत्र हि
त्वां नेतुमत्रागतवत्य आदृताः॥ १९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहती हुई श्रीराधाने चन्द्राननाकी प्रेरणासे तुरंत श्रीकृष्णकी रानियोंपर दृष्टिपात किया और बड़े आदरके साथ उन सबको सम्मान दिया। रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा, कालिन्दी और मित्रविन्दासे परस्पर गले मिलकर, रोहिणी आदि सोलह हजार रानियोंको भी प्रेमानन्दमयी श्रीराधाने दोनों भुजाओंसे पकड़कर सानन्द हृदयसे लगाया॥ ११—१३॥

श्रीराधा बोलीं—बहनो! जैसे चन्द्रमा एक है, [किंतु उससे स्नेह रखनेवाले] चकोर बहुत हैं, जैसे सूर्य एक हैं, किंतु उन्हें देखनेवाली दृष्टियाँ बहुत हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र एक हैं, किंतु इनमें भक्ति-भाव रखनेवाली हम सब बहुत-सी स्त्रियाँ हैं॥ १४॥

जैसे कमलके प्रभावको भ्रमर जानता है तथा रत्नके प्रभावको उसकी परख करनेवाला जौहरी जानता है, जैसे विद्याके प्रभावको विद्वान् और काव्यके प्रभावको कवीन्द्र जानता है, जैसे सहस्रों मनुष्योंके होनेपर भी रसके प्रभावको केवल रसिक जानता है, उसी प्रकार, हे राजकुमारियो! इस भूतलपर श्रीकृष्णके प्रभावको यथार्थरूपसे इनका भक्त ही जानता है॥ १५-१६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधाकी बात सुनकर उस समय सपत्नियोंसहित भीष्मकनन्दिनी रुक्मिणीने कमललोचना श्रीराधासे कहा—॥ १७॥

रुक्मिणी बोलीं—श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनि! तुम धन्य हो। तुम्हारे भक्ति-भावसे ये श्रीकृष्ण सदा तुम्हारे वशमें रहते हैं। तीनों लोकोंके लोग जिनकी कथा-वार्ता निरन्तर कहते-सुनते हैं, वे ही भगवान् दिन-रात तुम्हारी कथा कहा करते हैं। श्रीहरिके प्रति तुम्हारे प्रेम-भावका स्वरूप जैसा हमने सुना था, वैसा ही देखा। तुम्हारे लिये कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है। देवि! तुम हमारे शिविरमें शीघ्र चलो; हम सब तुम्हें ले चलनेके लिये ही यहाँ आयी हैं॥ १८-१९॥

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा भीष्मसुता राधां कीर्तिसुतां तदा।
समानीय स्वशिविरे सादरेण महात्मना॥ २०

शिविरे सर्वतोभद्रे पद्मकिञ्जल्कवासिते।
हैमे शिरीषमृदुले पर्यङ्के सोपबर्हणे॥ २१

सुखं निवासयामास वासःस्रङ्मण्डनादिभिः।
सम्पूज्य विधिवद्रात्रौ सपत्नीसहिता सती॥ २२

गोपीनां शतयूथं च सम्पूज्य च पृथक्पृथक्।
वार्तालापान् बहुविधान् कृत्वा कृष्णप्रियास्ततः।
स्वापयित्वाथ तां जग्मुः स्वं स्वं वै शिविरं मुदा॥ २३

कृष्णपार्श्वं गता भैष्मी दृष्ट्वा जाग्रदुपस्थितम्।
कथं न शेषे भो स्वामिन्निति कृष्णमुवाच ह॥ २४

श्रीभगवानुवाच

प्रत्युद्गमप्रस्रवणैराश्वासेन व्रजेश्वरी।
अर्चिता हि त्वया सुभ्रूः प्रसन्ना साभवत्परम्॥ २५

सा च नित्यं हि पिबति शयनादौ पयः शुभम्।
पयःपानं तु न कृतमद्य सुभ्रु तया किल॥ २६

तेन निद्रा नयनयोर्न जातास्या महामते।
तस्मान्ममापि प्रस्वापो न जातो भीष्मकन्यके॥ २७

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा परं भैष्मी सपत्नीभिः समन्विता।
नीत्वा दुग्धं तत्समीपं प्रययौ परमादरात्॥ २८

उष्णं दुग्धं सितायुक्तं कचोले हैमने कृतम्।
अपाययत्परं प्रीत्या राधां भीष्मकनन्दिनी॥ २९

एवमभ्यर्च्य विधिवद्दत्वा ताम्बूलवीटिकाम्।
सत्यभामादिभिः शश्वत्सपत्नीभिः समन्विता॥ ३०

आगत्य कृष्णसामीप्यं वदन्ती स्वकृतं शुभा।
भेजे श्रीरुक्मिणी साक्षाच्छ्रीकृष्णपदपङ्कजम्॥ ३१

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर भीष्मकनन्दिनी रुक्मिणी कीर्तिकुमारी श्रीराधाको बड़े आदरसे महात्मा श्रीकृष्णके साथ अपने शिविरमें ले आयीं। सर्वतोभद्र नामक शिविरमें, जो कमलोंके केसरसे सुवासित था, सोनेके पलंगपर, शिरीष-पुष्पके समान कोमल बिछावन बिछाकर, तकिया लगाकर, वस्त्र, माला और शृङ्गारसामग्रीसे सपत्नियोंसहित सती रुक्मिणीने रात्रिके समय विधिवत् पूजा करके उन्हें सुखपूर्वक ठहराया॥ २०—२२॥

फिर गोपाङ्गनाओंके सौ यूथोंका भी पृथक्-पृथक् पूजन करके उन कृष्णप्रियाओंने सबके साथ बहुविध वार्तालाप किया। फिर श्रीराधाको वहाँ सुलाकर वे रानियाँ प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने शिविरमें गयीं। श्रीकृष्णके पास पहुँचकर रुक्मिणीने देखा कि वे बैठे-बैठे जग रहे हैं। तब उन्होंने श्रीकृष्णसे पूछा—'स्वामिन्! आप सोते क्यों नहीं?'॥ २३-२४॥

श्रीभगवान् बोले—सुभ्रु! तुमने अगवानी करके, विनयपूर्वक प्रेमभरी बातें सुनाकर, आश्वासन देकर व्रजेश्वरी श्रीराधाकी भलीभाँति पूजा की है और वे अत्यन्त प्रसन्न हुई हैं; परंतु एक बातकी ओर तुमने ध्यान नहीं दिया। वे प्रतिदिन सोनेसे पहले उत्तम दूध पिया करती हैं, किंतु सुन्दरि! आज श्रीराधाने दुग्धपान नहीं किया। महामते! इसीलिये अबतक उनके नेत्रोंमें नींद नहीं आयी है; और भीष्मकनन्दिनि! यही कारण है कि मैं भी नहीं सो सका हूँ॥ २५—२७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पतिदेवताकी यह उत्तम बात सुनकर रुक्मिणी अपनी सौतोंके साथ दूध लेकर बड़े आदरसे श्रीराधाके समीप गयीं। सोनेके कटोरेमें मिसरी मिलाया हुआ गरम दूध डालकर भीष्मकनन्दिनीने बड़े प्रेमसे श्रीराधाको पिलाया। इस प्रकार विधिवत् पूजा करके उनके हाथमें पानका बीड़ा दिया और सत्यभामा आदि सपत्नियोंके साथ अपने शिविरमें लौट आयीं॥ २८—३०॥

श्रीकृष्णके समीप आकर शुभस्वरूपा श्रीरुक्मिणी अपने द्वारा की गयी दूध पहुँचाने और पिलानेकी सेवाका वर्णन करते हुए साक्षात् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी सेवामें लग गयीं॥ ३१॥

संलालयन्ती सततं कोमलैः करपल्लवैः।
कृष्णपादतले छालान् वीक्ष्य सा विस्मिताभवत्॥ ३२

उच्छालकाः कथं जातास्तव पादतले प्रभो।
अद्यैव भूता भगवन्न वेद्म्यत्र हि कारणम्॥ ३३

षोडशस्त्रीसहस्राणां शृण्वन्तीनां हरिः स्वयम्।
राधाभक्तिप्रकाशार्थं प्रसन्नः प्राह रुक्मिणीम्॥ ३४

श्रीभगवानुवाच

श्रीराधिकाया हृदयारविन्दे
पादारविन्दं हि विराजते मे।
अहर्निशं प्रश्रयपाशबद्धं
लवं लवार्धं न चलत्यतीव॥ ३५

अद्योष्णदुग्धप्रतिपानतोऽङ्घ्रा-
वुच्छालकास्ते मम प्रोच्छलन्ति।
मन्दोष्णमेवं हि न दत्तमस्यै
युष्माभिरुष्णं तु पयः प्रदत्तम्॥ ३६

श्रीनारद उवाच

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो वराः।
प्रेम्णा पादं विमृज्याथ विसिस्मुः सर्वतो नृप॥ ३७

श्रीराधायाः परा प्रीतिर्माधवे मधुसूदने।
तत्समाना न चैकैषा अद्वितीया महीतले॥ ३८

अपने कोमल कर-पल्लवोंसे निरन्तर श्रीचरणोंका लालन करती हुई रुक्मिणी श्रीकृष्णके पाद-तलमें नये छाले देख आश्चर्यसे चकित हो उठीं। उन्होंने पूछा—'प्रभो! आपके चरण-तलोंमें छाले कैसे उभड़ आये हैं? भगवन्! ये आज ही उभड़े हैं। मैं नहीं जानती कि इसका कारण क्या है!' तब प्रसन्न हुए श्रीहरिने श्रीराधाकी भक्तिको प्रकाशित करनेके लिये सोलह हजार रानियोंके सामने स्वयं रुक्मिणीसे कहा— ॥ ३२—३४ ॥

श्रीभगवान् बोले—श्रीराधिकाके हृदयारविन्दमें मेरा चरणारविन्द सदा विराजमान रहता है; उनके प्रेमपाशमें बँधकर वह निरन्तर वहीं रहता है, कभी निमेषमात्रके लिये भी अलग नहीं होता। आज तुमलोगोंने उन्हें कुछ अधिक गरम दूध पिला दिया है। वह दूध मेरे पैरोंपर पड़ा और उनमें छाले पड़ गये। तुम सबने उन्हें थोड़ा गरम दूध नहीं दिया, अधिक गरम दूध दे दिया॥ ३५-३६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! श्रीकृष्णकी बात सुनकर रुक्मिणी आदि सुन्दरियाँ बड़े प्रेमसे उनके पैर सहलाने लगीं और उन्हें सब ओरसे बड़ा विस्मय हुआ। वे परस्पर कहने लगीं—'मधुसूदन माधवमें श्रीराधाकी प्रीति बहुत ही उच्च कोटिकी है। उनकी समानता करनेवाली कोई स्त्री नहीं है। ये श्रीराधा इस भूतलपर अद्वितीय नारी हैं'॥ ३७-३८ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे सिद्धाश्रमे श्रीराधाकृष्णसमागमे राधाप्रेमप्रकाशो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें सिद्धाश्रममें श्रीराधाकृष्ण-समागमके प्रसङ्गमें 'श्रीराधाके प्रेमका प्रकाश' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

सिद्धाश्रममें व्रजाङ्गनाओं तथा सोलह सहस्र रानियोंके साथ श्यामसुन्दरकी रासक्रीड़ा-का वर्णन तथा श्रीराधाके मुखसे वृन्दावनके रासकी उत्कृष्टताका प्रतिपादन

श्रीनारद उवाच

श्रीराधायाः परां प्रीतिं ज्ञात्वा गोपीगणस्य च।
ऊचुर्हरिं राजपुत्र्यस्तद्रासप्रेक्षणोत्सुकाः॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधा और गोपीगणोंका उत्कृष्ट प्रेम जानकर रुक्मिणी आदि राजकुमारियोंने रासक्रीड़ा देखनेके लिये उत्सुक हो श्रीहरिसे कहा॥ १ ॥

पट्टराज्य ऊचुः

धन्या गोप्यस्तु ते भक्ताः प्रेमलक्षणसंयुताः।
याः प्राप्ता रासरङ्गे वै तासां किं वर्ण्यते तपः॥ २

वृन्दावने कृतो रासो विधिना येन माधव।
तं विधिं द्रष्टुमिच्छामो यदि त्वं मन्यसे प्रभो॥ ३

त्वं चात्रैव तथा राधा गोप्यः सर्वा व्रजाङ्गनाः।
वयं चात्रैव देवेश रासो योग्यो भवेदिह॥ ४

पूर्णं कुरु जगन्नाथ अस्माकं तु मनोरथम्।
कृतो मनोरथोऽन्यो न रासक्रीडां विना हरे॥ ५

इति तासां वचः श्रुत्वा भगवान् प्रहसन्निव।
प्राह ताः प्रेमसंयुक्तो गीर्भिः सम्मोहयन्निव॥ ६

श्रीभगवानुवाच

रासेश्वर्यास्तु राधाया मनश्चेद् रन्तुमङ्गनाः।
तदा रासो भवेदत्र भवतीभिस्तु पृच्छ्यताम्॥ ७

इति श्रुत्वा वचस्तस्य रुक्मिण्याद्या नृपात्मजाः।
राधामेत्य परं प्रेम्णा प्राहुः प्रहसिताननाः॥ ८

श्रीराज्य ऊचुः

रम्भोरु चन्द्रवदने व्रजसुन्दरीशे
रासेश्वरि प्रियतमे सखि शीलरूपे।
रासे सुकीर्तिकुलकीर्तिकरे शुभाङ्गे
त्वां प्रष्टुमागतवतीः सकला वयं स्म॥ ९

रासेश्वरोऽपि किल चात्र रसप्रदायी
रासेश्वरी त्वमपि गोपवराङ्गनाश्च।
एवं वयं स्म इति सर्वविधौ रसार्थे
रासं कुरु प्रियतमे च तथा प्रियं नः॥ १०

पटरानियाँ बोलीं—श्यामसुन्दर! तुममें प्रेम-लक्षणा भक्ति रखनेवाली गोपसुन्दरियाँ धन्य हैं, जो रास-रङ्गमें सम्मिलित हुई थीं। इन सबके तपका क्या वर्णन हो सकता है! माधव! प्रभो! यदि तुम हमारी प्रार्थना स्वीकार करो तो, वृन्दावनमें तुमने जिस विधिसे रास रचाया था, उस विधिको हम देखना चाहती हैं॥ २-३॥

तुम यहीं हो, श्रीराधा यहीं विराज रही हैं, सम्पूर्ण गोपसुन्दरियाँ एवं व्रजाङ्गनाएँ भी यहीं हैं और हम सब भी यहीं हैं; अतः देवेश्वर! यहाँ रासका आयोजन सर्वथा उचित होगा। जगन्नाथ! तुम हमारे इस मनोरथको पूर्ण करो। हे हरे! हमने दूसरा कोई मनोरथ नहीं प्रकट किया है, केवल रासक्रीड़ाका दर्शन कराओ। रानियोंकी यह बात सुनकर भगवान् हँसने लगे। उन्होंने प्रेमपूरित होकर उन सबको अपने वचनोंद्वारा मोहित-सी करते हुए कहा— ॥ ४—६॥

श्रीभगवान् बोले—अङ्गनाओ! रासेश्वरी श्रीराधाके मनमें भी रासक्रीड़ाकी इच्छा हो तो यहाँ रास हो सकता है। अतः तुम्हीं सब जाकर उनसे पूछो। श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर रुक्मिणी आदि राज-कुमारियोंने श्रीराधाके पास जाकर हँसते हुए मुखसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा॥ ७-८॥

श्रीरानियाँ बोलीं—रम्भोरु! चन्द्रवदने! व्रज-सुन्दरियोंकी स्वामिनि! रासेश्वरि! प्रियतमे! सखि! शीलरूपिणि! रासमें कीर्तिरानीके कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाली शुभाङ्गि! हम सब तुम्हारी सखियाँ तुमसे एक बात पूछने आयी हैं॥ ९॥

रासमें रस-प्रदान करनेवाले रासेश्वर यहीं हैं तथा रासकी अधीश्वरी तुम भी यहीं हो और अन्य समस्त गोपसुन्दरियाँ भी यहीं हैं। इसी प्रकार हम सब भी यहाँ हैं; अतः सब प्रकारसे रसका आस्वादन करनेके लिये तुम यहाँ रासका आयोजन करो। प्रियतमे! ऐसा हो तो यह हमारे लिये अत्यन्त प्रिय होगा॥ १०॥

श्रीराधोवाच

रासेश्वरस्य परमस्य सतां कृपालो
रन्तुं मनो यदि भवेत्तु तदात्र रासः।
शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या
सम्पूज्य तं किल वशीकुरुत प्रियेष्टाः॥ ११

श्रीनारद उवाच

राधाया वचनं श्रुत्वा श्रीकृष्णोक्तं तथावदन्।
तथास्तु चोक्त्वा सा राधा प्रसन्नाभून्महामनाः॥ १२

माधवे पूर्णिमायां तु पुण्ये सिद्धाश्रमे शुभे।
प्रदोषकाले चन्द्राभे रासारम्भो बभूव ह॥ १३

रासेश्वरस्य रासार्थे रासेश्वर्या समन्वितः।
रराज रासे रसिको यथा रत्या रतीश्वरः॥ १४

यावत्यो गोपिकाः सर्वा यावत्यो राजकन्यकाः।
तावद्रूपधरो रेजे एकः कृष्णो द्वयोर्द्वयोः॥ १५

तालवेणुमृदङ्गानां कलकण्ठैः सखीजनैः।
वल्गुनूपुरकाञ्चीनां मिश्रशब्दो महानभूत्॥ १६

कोटिकन्दर्पलावण्यः स्रग्वी कुण्डलमण्डितः।
पीताम्बरधरो राजन् किरीटकटकाङ्गदः॥ १७

रासेश्वर्या समं गायन् रासे रासेश्वरः स्वयम्।
स्त्रीगणैः सहितो राजंश्चन्द्रस्तारागणैर्यथा॥ १८

एवं सर्वा निशा राजन् क्षणवद्रासमण्डले।
व्यतीताभून्महाराज महानन्दमयी शुभा॥ १९

श्रीरासमण्डलं दृष्ट्वा रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो वराः।
जग्मुस्ताः परमानन्दं सर्वाः पूर्णमनोरथाः॥ २०

श्रीराधाने कहा—सत्पुरुषोंपर कृपा करनेवाले परम रासेश्वर श्यामसुन्दरके मनमें यदि रासक्रीड़ाकी अभिलाषा हो तो यहाँ रास हो सकता है। अतः मेरी प्रियतमा सखियो! तुम सब परम सेवा-शुश्रूषा और पराभक्तिसे उनकी पूजा करके उन्हें वशमें करो॥ ११॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधाकी बात सुनकर रानियोंने श्रीकृष्णकी कही हुई बात बतायी। तब महामना श्रीराधा 'तथास्तु' कहकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। फिर वैशाखमासकी पूर्णिमाको उस शुभ एवं पुण्यतीर्थ सिद्धाश्रममें जब रात्रिका प्रथम प्रहर प्राप्त हुआ और चन्द्रमाकी चाँदनी सब ओर फैल गयी, तब रासक्रीड़ाका आरम्भ हुआ॥ १२-१३॥

रासेश्वरके रासका आनन्द प्राप्त करनेके लिये रासेश्वरी श्रीराधा तैयार हो गयीं और उनके साथ रसिकशेखर श्यामसुन्दर रासस्थलीमें उसी तरह सुशोभित हुए, जैसे रतिके साथ रतिपति मदन। जितनी सम्पूर्ण गोपसुन्दरियाँ और जितनी राजकन्याएँ वहाँ उपस्थित थीं, उतने ही रूप धारण करके दो-दो सुन्दरियोंके बीचमें एक-एक श्रीकृष्ण शोभा पाने लगे। ताल, वेणु और मृदङ्गोंकी ध्वनिके साथ मधुर कण्ठवाली सखियोंके गीत और उनके नूपुर-काञ्ची आदि आभूषणोंकी मधुर झनकारका मिला हुआ महान् शब्द वहाँ सब ओर गूँज उठा॥ १४—१६॥

राजन्! करोड़ों कामदेवोंके लावण्यको लज्जित करनेवाले, वनमालाधारी, कुण्डलमण्डित एवं किरीट, वलय और भुजबंदोंसे अलंकृत पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर रासेश्वर रासमें स्वयं रासेश्वरीके साथ गीत गाने लगे॥ १७½॥

विदेहराज! जैसे तारागणोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा शोभा पाता है, उसी प्रकार रासेश्वर श्रीकृष्ण उन सुन्दरियोंके साथ सुशोभित हो रहे थे। मिथिलेश्वर! इस प्रकार वह महानन्दमयी सम्पूर्ण शुभ निशा रासमण्डलमें एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी। श्रीरासमण्डलकी शोभा देख रुक्मिणी आदि समस्त पटरानियाँ परमानन्दको प्राप्त हुईं। उन सबका मनोरथ पूर्ण हो गया॥ १८—२०॥

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम्।
रासान्ते रुक्मिणीमुख्याः प्राहुः प्रेमपरायणाः॥ २१

राज्य ऊचुः

दृष्ट्वा त्वद्रूपमाधुर्यं रासरङ्गे मनोहरे।
गतं मनो नः स्वानन्दं ब्रह्मानन्दं यथा मुनिः॥ २२

एतादृशोऽपि रासोऽन्यो न भूतो न भविष्यति।
शतयूथस्तु गोपीनामत्र माधव वर्तते॥ २३

पत्न्यः षोडशसाहस्त्रं सखीभिः सहिता वयम्।
सखीकोटियुताश्चात्र ह्यष्टपट्टमहास्त्रियः।
वृन्दावनेऽपि नैतादृग्भूतो वा माधवेश्वर॥ २४

श्रीनारद उवाच

एवं कृताभिमानानां राज्ञीनां प्रहसन् हरिः।
प्राहेदं पृच्छतां राधा भवतीभिः परस्परम्॥ २५

सत्यभामादिकाः सर्वाः पृच्छन्ति तां मनोहराम्।
किञ्चिद्धसन्ती मनसि प्राह राधा परं वचः॥ २६

श्रीराधोवाच

ननु रासः परं चात्र बहुस्त्रीगणसङ्कुलः।
पूर्वराससमो न स्याद्यस्तु वृन्दावनेऽभवत्॥ २७

क्व चात्र वृन्दारण्यं हि दिव्यद्रुमलताकुलम्।
प्रेमभारानतलतं मधुमत्तमधुव्रतम्॥ २८

पुष्पव्यूहान् वहन्ती या यथोष्णिङ्मुद्रिता शुभा।
हंसपद्मसमाकीर्णा क्व चात्र यमुना नदी॥ २९

माधव्यस्तु लताः क्वात्र पुष्पभारनताः पराः।
क्व पक्षिणः प्रेमपरा गायन्ति मधुरस्वनम्॥ ३०

लोलालिपुञ्जाः कुञ्जाः क्व निकुञ्जा दिव्यमन्दिराः।
क्व वायुः शीतलो मन्दो वाति पद्मरजो हरन्॥ ३१

रासकी समाप्ति होनेपर रुक्मिणी आदि रानियोंने प्रेमपरवश होकर साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे कहा— ॥ २१ ॥

रानियाँ बोलीं—प्रभो! मनोहर रास-रङ्गमें आपकी रूप-माधुरी देखकर हमारा मन उसी प्रकार आत्मानन्दमें निमग्न हो गया, जैसे ज्ञानी मुनि ब्रह्मानन्दमें डूब जाते हैं। ऐसा रास दूसरा न हुआ होगा, न होगा। माधव! यहाँ गोपाङ्गनाओंके सौ यूथ विद्यमान हैं॥ २२-२३ ॥

सखियोंसहित हम सोलह हजार आपकी पत्नियाँ भी इसमें सम्मिलित रही हैं। करोड़ों सखियोंके साथ आठों पटरानियाँ भी यहाँ उपस्थित हैं। माधवेश्वर! ऐसा रास तो वृन्दावनमें भी नहीं हुआ होगा॥ २४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अभिमान प्रकट करनेवाली रानियोंकी बात सुनकर श्यामसुन्दर श्रीहरि हँसने लगे और बोले—'यहाँका रास सर्वोत्कृष्ट है या वृन्दावनका, यह तुम श्रीराधासे ही पूछो'॥ २५ ॥

तब सत्यभामा आदि सब रानियोंने मनोहारिणी श्रीराधासे इसके विषयमें पूछा। श्रीराधा मन-ही-मन कुछ हँसती हुई यह उत्तम बात बोलीं— ॥ २६ ॥

श्रीराधाने कहा—सखियो! बहुत-सी सुन्दरियोंसे भरा हुआ यहाँका रास भी बहुत अच्छा रहा है; परंतु पहले-पहल वृन्दावनमें जो रास हुआ था, उसके समान यह कदापि नहीं था। यहाँ दिव्य वृक्षों और लताओंसे व्याप्त, प्रेमके भारसे झुकी हुई लता-वल्लरियोंसे विलसित और मधुमत्त मधुपोंसे सुशोभित वृन्दावन कहाँ है?॥ २७-२८ ॥

पुष्प-समूहोंको बहाती हुई फूलोंके छापसे अलंकृत श्यामपटकी भाँति शोभा पानेवाली हंसों और पद्मवनोंसे व्याप्त यमुना नदी यहाँ कहाँ उपलब्ध है? फूलोंके भारसे झुकी हुई माधवी लताएँ यहाँ कहाँ दिखायी देती हैं? प्रेमपरवश पक्षी कहाँ मधुर स्वरोंमें गान कर रहे हैं? चञ्चल भ्रमर-पुञ्जोंसे युक्त कुञ्ज और दिव्य-मन्दिरोंसे मण्डित निकुञ्ज यहाँ कहाँ सुलभ हैं? कमलोंके परागको लेकर शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु यहाँ कहाँ बह रही है?॥ २९—३१ ॥

शृङ्गैर्मनोहरैरुच्चैर्गिरिर्गोवर्धनोऽचलः ।
सर्वत्र फलपुष्पाढ्यो दरीभिः क्व करीव सः ॥ ३२

कालिन्दीपुलिने रम्ये वायुनान्वितसैकते।
वंशीवेत्रधरो मल्लपरिबर्हविराजितः ॥ ३३

ऊँचे-ऊँचे मनोहर शिखरोंसे सुशोभित, सर्वत्र फल-फूलोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर कन्दराओंसे अलंकृत महाकाय गजराजकी भाँति शोभा पानेवाला गिरिराज गोवर्धन यहाँ कहाँ दृष्टिगोचर होता है? जहाँ वायुने कोमल बालूका संचय कर रखा है, यमुनाके उस रमणीय पुलिनपर वंशी और बेंतकी छड़ी धारण किये, मल्ल अथवा नटवरके वेषमें विराजित श्यामसुन्दरकी झाँकी यहाँ कहाँ मिल रही है?॥ ३२-३३ ॥

क्व चात्र कृष्णशृङ्गारो वनमालाविभूषितः।
श्यामानामलकानां च वक्राणां गन्धधारिणाम्॥ ३४

चलितं हलितं क्वात्र कुण्डलाभ्यां परस्परम्।
श्रीमुखे कृष्णचन्द्रस्य गण्डस्थलमनोहरे॥ ३५

इस स्थानपर श्रीकृष्णके लिये वनमालासे विभूषित शृङ्गार कहाँ उपलब्ध है? श्यामसुन्दरकी काली, घुँघराली और सुगन्धयुक्त अलकावलियोंका दर्शन यहाँ कहाँ होता है? श्रीकृष्णके स्निग्ध कपोलोंसे मनोहर मुखपर दोनों ओर कुण्डलोंका हिलना-डुलना कहाँ दीखता है?॥ ३४-३५ ॥

पत्रावलीगन्धलोभाद्भ्रमद्भृङ्गावलीयुते ।
क्व प्रेम्णा दर्शनं चैव स्पर्शनं हर्षणं तथा। ३६

उनके मुखपर पत्र-रचना कहाँ की गयी है? कहाँ सुगन्धके लोभसे भ्रमरावलियाँ टूटी पड़ती हैं? कहाँ वह प्रेमपूर्ण निरीक्षण, स्पर्श और हर्षोल्लास यहाँ सुलभ हुआ है?॥ ३६ ॥

कामेषुतिग्मकोणैश्च नेत्रैः क्वापाङ्गजो रसः।
आकर्षणं क्व हस्ताभ्यां हस्ताद्धस्तविसर्जनम्॥ ३७

विलीनत्वं निकुञ्जेषु सम्मुखे न तु दर्शनम्।
ग्रहणं क्वात्र चीराणां हरणं वेणुवेत्रयोः॥ ३८

कामदेवके तीखे बाणोंको तिरस्कृत करनेवाले नेत्रकोणोंसे निहारनेपर जो कटाक्षपातजनित रस प्रकट होता है, वह यहाँ कहाँ प्राप्त हुआ है? दोनों हाथोंसे एक-दूसरेको पकड़कर खींचना, हाथसे हाथ छुड़ाना, निकुञ्जमें छिपना, सामने होनेपर भी दिखायी न देना आदि लीलाएँ यहाँ कहाँ दिखायी देती हैं? यहाँ चीर उठा लेना अथवा वंशी और बेंतको चुरा लेना कहाँ सम्भव हुआ है?॥ ३७-३८ ॥

क्व प्रेम्णा चात्र बाहुभ्यां कर्षणं च परस्परम्।
पुनः पुनस्तद् ग्रहणं भुजे चन्दनचर्चितम्॥ ३९

यत्र यत्र च या लीला तत्र तत्रैव शोभते।
यत्र वृन्दावनं नास्ति तत्र मे न मनःसुखम्॥ ४०

प्रेमसे दोनों भुजाओंद्वारा परस्पर खींचकर हृदयसे लगाना, बार-बार एक-दूसरेको पकड़ना, श्यामसुन्दरकी बाँहोंपर चन्दनका लेप लगाना आदि बातें यहाँ कहाँ सम्भव हुई हैं? जहाँ-जहाँकी जो लीला है, वहीं-वहीं वह शोभा पाती है। जहाँ वृन्दावन नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिल सकता॥ ३९-४० ॥

श्रीनारद उवाच

राधावाक्यं ततः श्रुत्वा सर्वाः पट्टमहास्त्रियः।
जहुर्मानं स्वरासस्य विस्मिता हर्षिताश्च ताः॥ ४१

नारदजी कहते हैं— श्रीराधाकी यह बात सुनकर सारी पटरानियोंने अपने रास-सम्बन्धी अभिमानको त्याग दिया। वे हर्षित और विस्मित हो गयीं॥ ४१ ॥

एवं सिद्धाश्रमे रासं कृत्वा श्रीराधिकेश्वरः।
नीत्वा गोपीगणान् सर्वान् राधया सहितो हरिः॥ ४२

सभार्यो भगवान् साक्षाद् द्वारकां प्रविवेश ह।
कारयामास राधायै मन्दिराणि पराणि च॥ ४३

निवासयित्वा सुसुखं सर्वास्ताश्च व्रजौकसः।
इत्थं सिद्धाश्रमकथा मया ते कथिता नृप॥ ४४

सर्वपापहरा पुण्या सर्वेषां चैव मोक्षदा॥ ४५

इस प्रकार राधिकावल्लभ श्रीकृष्ण सिद्धाश्रममें रासक्रीड़ा सम्पन्न करके, समस्त गोपियोंको साथ ले, श्रीराधा और अपनी रानियों-सहित द्वारकामें प्रविष्ट हुए। उन्होंने श्रीराधाके लिये बहुत-से सुन्दर मन्दिर बनवाये। उन समस्त व्रजाङ्गनाओंके रहनेके लिये भी सुखपूर्वक व्यवस्था की॥ ४२—४३ १/२ ॥

नरेश्वर! इस प्रकार मैंने सिद्धाश्रमकी कथा तुम्हें सुनायी है, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाली, पुण्यमयी तथा सबको मोक्ष देनेवाली है॥ ४४-४५ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे सिद्धाश्रममाहात्म्ये रासोत्सवो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें सिद्धाश्रम-माहात्म्यके प्रसङ्गमें 'रासोत्सव' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

लीला-सरोवर, हरिमन्दिर, ज्ञानतीर्थ, कृष्ण-कुण्ड, बलभद्र-सरोवर, दानतीर्थ, गणपतितीर्थ और मायातीर्थ आदिका वर्णन

श्रीनारद उवाच

द्वारावतीमण्डलं तु शतयोजनविस्तृतम्।
तस्य प्रदक्षिणा सर्वा योजनानां चतुःशतम्॥ १

तन्मध्ये कृष्णरचितं दुर्गं द्वादशयोजनम्।
द्वितीयं च बहिर्दुर्गं नवतिं च दुरुत्तरम्।
क्रोशैः सङ्घट्टितं राजञ्छ्रीकृष्णेन महात्मना॥ २

तृतीयं च तथा दुर्गं द्व्यूनैश्च द्विशतैर्नृप।
क्रोशैः सङ्घट्टितं राजन् रत्नप्रासादसंयुतम्॥ ३

तेषामन्तरदुर्गेऽपि श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
मन्दिराणि विचित्राणि नव लक्षाणि सन्ति हि॥ ४

तत्र राधामन्दिरस्य द्वारे लीलासरोवरम्।
सर्वतीर्थोत्तमं राजन् गोलोकाच्च समागतम्॥ ५

यस्मिन् स्नात्वा नरः पापी व्रती भूत्वा समाहितः।
अष्टम्यां हेमदानं च दत्वा नत्वा विधानतः॥ ६

कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।
प्राणान्ते तं नरं नेतुं गोलोकाच्च महारथः॥ ७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! द्वारावती-मण्डल सौ योजन विस्तृत है। उसकी पूरी परिक्रमा चार सौ योजनोंकी है। उसके बीचमें श्रीकृष्णनिर्मित दुर्ग बारह योजन विस्तृत है। दूसरा बाहरी दुर्ग नब्बे कोसोंमें महात्मा श्रीकृष्णद्वारा निर्मित हुआ है, जो शत्रुओंके लिये दुर्लङ्घ्य है। राजन्! तीसरा बाहरी दुर्ग दो कम दो सौ कोसोंमें संघटित हुआ है, जिसमें रत्नमय प्रासादोंका निर्माण हुआ था। इनके अन्तर्दुर्गमें भी महात्मा श्रीकृष्णके नौ लाख विचित्र मन्दिर हैं॥ १—४ ॥

वहाँ राधा-मन्दिरके द्वारपर 'लीला-सरोवर' है, जो समस्त तीर्थोंमें उत्तम माना गया है। राजन्! उसका गोलोकसे आगमन हुआ है॥ ५ ॥

उसमें स्नान करके व्रत-धारणपूर्वक एकाग्रचित्त हो, अष्टमी तिथिको विधिवत् सुवर्णका दान दे, तीर्थको नमस्कार करे तो पापी मनुष्य भी कोटिजन्मोंके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। प्राणान्त होनेपर उस मनुष्यको लेनेके लिये निश्चय ही गोलोकसे एक विशाल विमान आता है, जो

सहस्रादित्यसङ्काश आगच्छति न संशयः।
दशकन्दर्पलावण्यो रत्नकुण्डलमण्डितः॥ ८

स्रग्वी पीताम्बरः श्यामः सहस्रार्कस्फुरद्द्युतिः।
सहस्रपार्षदैर्युक्तश्चामरान्दोलराजितः ॥ ९

जयध्वनिसमायुक्तो वेणुदुन्दुभिनादितः।
भूत्वैवं रथमास्थाय गोलोकं यात्यसंशयम्॥ १०

अथ तीर्थानि चान्यानि शृणु राजन् महामते।
शतोत्तराणि तत्रैव सहस्राणि च षोडश॥ ११

अष्टभिः सहितान्येव पत्नीनां भवनानि च।
तानि प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा नत्वा पृथक् पृथक्॥ १२

ज्ञानतीर्थं समाप्लुत्य स्पृशेद्यः पारिजातकम्।
तस्य ज्ञानं च वैराग्यं भक्तिर्भवति तत्क्षणम्॥ १३

श्रीकृष्णो हृदये तस्य वसेद्धृष्टमनाः सदा।
समृद्धिसिद्धयः सर्वास्तं भजन्ति निसर्गतः॥ १४

स मुक्तः स कृतार्थः स्याद्यः पश्येद्धरिमन्दिरम्।
तत्समो वैष्णवो नास्ति तीर्थं च तत्समं न हि॥ १५

पञ्चयोजनविस्तीर्णाद्भगवन्मन्दिराततः ।
धनुःशते कृष्णकुण्डः कृष्णतेजःसमुद्भवः॥ १६

यं स्नात्वा कुष्ठतो मुक्तः साम्बो जाम्बवतीसुतः।
तस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १७

तस्मादष्टादशपदे पूर्वस्यां दिशि मैथिल।
सर्वतीर्थोत्तमं पुण्यं बलभद्रसरो महत्॥ १८

पृथ्वीप्रदक्षिणां कृत्वा बलदेवो महाबलः।
यज्ञं यत्र विनिर्माय रेवत्या विरराज ह॥ १९

तत्र स्नात्वा नरः सद्यो मुच्यते सर्वपातकात्।
पृथ्वीप्रदक्षिणायाश्च फलं तस्य न दुर्लभम्॥ २०

सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी होता है। वह मनुष्य दस कामदेवोंके समान लावण्यशाली, रत्नमय कुण्डलोंसे मण्डित, वनमालाधारी, पीताम्बरसे आच्छादित, श्याम-कान्तिमान्, सहस्रों सूर्योंके समान दीप्तिमान्, सहस्रों पार्षदोंसे सेवित दिव्यरूप धारण कर लेता है। उसके दोनों ओर चँवर डुलाये जाते हैं, जय-जयकार की जाती है, वेणुध्वनिके साथ दुन्दुभियोंका गम्भीर नाद होता रहता है। इस अवस्थामें वह उस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो गोलोकधाममें जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ६—१०॥

महामते राजन्! अब अन्य तीर्थोंका वर्णन सुनो! वहाँ सोलह हजार एक सौ आठ तीर्थ हैं और वहाँ श्रीकृष्णकी उतनी ही पत्नियोंके पृथक्-पृथक् भवन हैं। उन सबकी बारी-बारीसे परिक्रमा और वन्दना करके 'ज्ञानतीर्थ' में गोता लगाकर जो पारिजातका स्पर्श करता है, उसे तत्काल ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है॥ ११—१३॥

उसके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्ण सदा प्रसन्नचित्त होकर वास करते हैं। समूची सिद्धियाँ और समृद्धियाँ स्वभावतः उसकी सेवामें उपस्थित रहती हैं। जो श्रीहरिके मन्दिरका दर्शन करता है, वह मुक्त और कृतार्थ हो जाता है। उसके समान दूसरा कोई वैष्णव नहीं है और उस तीर्थके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है॥ १४-१५॥

भगवान्के मन्दिरका विस्तार पाँच योजन है। वहाँसे सौ धनुषकी दूरीपर 'श्रीकृष्ण-कुण्ड' है, जो भगवान् श्रीकृष्णके तेजसे प्रकट हुआ है। उसी कुण्डमें स्नान करके जाम्बवतीनन्दन साम्ब कुष्ठरोगसे मुक्त हुए थे। उस कुण्डके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है॥ १६-१७॥

मैथिल! वहाँसे अठारह पदकी दूरीपर पूर्व दिशामें सब तीर्थोंमें उत्तम, पुण्यदायक और विशाल 'बलभद्र-सरोवर' है। महाबली बलदेवजीने पृथ्वीकी परिक्रमा करके जहाँ यज्ञ किया, वहीं उस सरोवरका निर्माण कराकर वे रेवती रानीके साथ विराजमान हुए। उसमें स्नान करके मनुष्य तत्काल समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाता है। पृथ्वीकी परिक्रमाका फल उसके लिये दुर्लभ नहीं रह जाता॥ १८—२०॥

भगवन्मन्दिराद्राजन् सहस्रधनुरग्रतः।
दक्षिणस्यां महातीर्थं गणनाथस्य वर्तते॥ २१

अनिर्दशे गते राजन् प्रद्युम्ने स्वसुते तदा।
गणेशं सुमना यत्र पूजयामास रुक्मिणी॥ २२

तत्र स्नात्वा हेमदानं यो ददाति नृपेश्वर।
पुत्रप्राप्तिर्भवेत्तस्य वंशस्तस्य विवर्धते॥ २३

भगवन्मन्दिराद्राजन् दिग्विभागे च पश्चिमे।
धनुषि द्विशते चास्ते दानतीर्थं परं शुभम्॥ २४

तत्र श्रीकृष्णचन्द्रस्य नित्यं दानं करोति यः।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् द्विपलं काञ्चनं तथा॥ २५

चतुर्गुणं तु रजतं पट्टाम्बरशतं तथा।
तथा सहस्रमौल्यानि नवरत्नानि यानि च॥ २६

यो ददाति नरश्रेष्ठस्तस्य पुण्यफलं शृणु।
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च॥ २७

दानतीर्थस्य पुण्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
बद्रिकाश्रमयात्रायां यत्फलं लभते नरः॥ २८

सैन्धवारण्ययात्रायां मेषस्थे च दिवाकरे॥ २९

उत्पलावर्तयात्रायां वृषस्थे भास्करे सति।
स्नानं दानं लक्षगुणं भवतीह न संशयः॥ ३०

तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं दानतीर्थे विदेहराट्।
मासमेकं च यत्स्नानं दानं तीर्थे करोति हि॥ ३१

तस्य जातं च यत्पुण्यं चित्रगुप्तो न वेत्ति तम्।
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः॥ ३२

सर्वेषां चैव दानानामश्वदानं परं स्मृतम्।
अश्वदानाद्गजस्यापि गजदानाद्रथस्य च॥ ३३

रथदानात्परं राजन् भूमिदानं विशिष्यते।
भूमिदानादन्नदानं महादानं प्रकथ्यते॥ ३४

राजन्! भगवान्‌के मन्दिरसे सहस्र धनुष आगे दक्षिण दिशामें गणनाथका महान् तीर्थ है। राजन्! अपने पुत्र प्रद्युम्नको जन्म देनेपर, जब वे दस दिन बीतनेके पहले ही अपहृत कर लिये गये, तब रुक्मिणीने जहाँ भक्तिसे गणेश-पूजाका अनुष्ठान किया था, वहीं गणनाथ 'तीर्थ' है। नृपेश्वर! वहाँ स्नान करके जो स्वर्णका दान देता है, उसे पुत्रकी प्राप्ति होती है और उसका वंश बढ़ता है॥ २१—२३॥

राजन्! भगवान्‌के मन्दिरसे पश्चिम दिशामें दो सौ धनुषकी दूरीपर परम मङ्गलमय 'दानतीर्थ' है। वहाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रसन्नताके लिये जो प्रतिदिन दान करता है, वह उत्तम पुण्यका भागी होता है। विदेहराज! उस तीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य दो पल सोना, आठ पल चाँदी और सौ रेशमी पट्टाम्बर दान देता है तथा सहस्रों मोहर और नवरत्नोंका दान करता है, उस श्रेष्ठ मानवको मिलनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो॥ २४—२६ १/२॥

सहस्र अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञ भी दानतीर्थके पुण्यकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। बदरिकाश्रम-तीर्थकी यात्रासे मनुष्य जिस फलको पाता है, सूर्यके मेषराशिपर रहते समय सैन्धवारण्यकी यात्रा करनेपर जिस फलकी प्राप्ति होती है, सूर्यके वृषराशिमें रहते समय उत्पलावर्त-तीर्थकी यात्रामें स्नान-दानका उन दोनों तीर्थोंकी अपेक्षा लाखगुना फल मिलता है—इसमें संशय नहीं है॥ २७—३०॥

परंतु विदेहराज! दानतीर्थमें उससे भी कोटिगुना फल प्राप्त होता है। जो दानतीर्थमें एक मासतक स्नान करता है, उसको जिस अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है, उसका ज्ञान चित्रगुप्तको भी नहीं है। उस तीर्थका माहात्म्य बतलानेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं॥ ३१-३२॥

सब दानोंमें अश्वदान उत्तम माना गया है, अश्वदानसे श्रेष्ठ गजदान और गजदानसे श्रेष्ठ रथदान है। राजन्! रथदानसे भी बढ़कर भूमिदान है, भूमि-दानसे अधिक माहात्म्य अन्नदानका बताया जाता है॥ ३३-३४॥

अन्नदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति।
देवर्षिपितृभूतानां तृप्तिरन्नेन जायते॥ ३५

दानतीर्थे ह्यन्नदानं यः करोति महामनाः।
ऋणत्रयं विमुच्याथ याति विष्णोः परं पदम्॥ ३६

दशैव मातृके पक्षे राजेन्द्र दश पैतृके।
प्रियाया दश पक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः॥ ३७

चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारिकृतकेतनाः।
स्रग्विणः पीतवस्त्रास्ते प्रयान्ति हरिमन्दिरम्॥ ३८

भगवन्मन्दिराद्राजन्नुत्तरस्यां दिशि श्रुतम्।
क्रोशार्धे नृपशार्दूल मायातीर्थं मनोहरम्॥ ३९

विराजते यत्र नित्यं दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।
सिंहारूढा भद्रकाली चण्डमुण्डविनाशिनी॥ ४०

स्यमन्तकं समाहर्तुमृक्षराजबिलं गते।
पुत्रे च देवकी देवीं पूजयामास सत्फलैः॥ ४१

तदाजगाम प्रियया समणिर्भगवान् हरिः।
तद्बिलात्तत्प्रसिद्धं स्यान्मायातीर्थं फलप्रदम्॥ ४२

मायातीर्थे च यः स्नात्वा मायां सम्पूज्य मानवः।
सर्वां मनोरथप्राप्तिं प्राप्नुयान्नात्र संशयः॥ ४३

अन्नदानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है न होगा; क्योंकि देवताओं, ऋषियों, पितरों और भूतोंकी भी अन्नदानसे ही तृप्ति होती है॥ ३५॥

जो महामनस्वी मनुष्य दानतीर्थमें अन्नका दान करता है, वह तीनों ऋणोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परमधाममें जाता है॥ ३६॥

राजेन्द्र! मातृकुलकी दस, पितृकुलकी दस तथा पत्नीके कुलकी दस पीढ़ियोंका वह मनुष्य उद्धार कर देता है। दानतीर्थमें दान करनेवाले मानव देहत्यागके पश्चात् चतुर्भुज दिव्य रूप धारण करके, गरुडध्वज फहराते हुए, वनमाला और पीताम्बरसे अलंकृत हो भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं॥ ३७-३८॥

राजन्! भगवान्‌के मन्दिरसे उत्तर दिशामें आधे कोसकी दूरीपर मनोहर 'मायातीर्थ' है, जहाँ चण्ड-मुण्डका विनाश करनेवाली दुर्गतिनाशिनी सिंहवाहिनी भद्रकाली दुर्गा नित्य विराजती हैं॥ ३९-४०॥

भगवान् श्रीकृष्ण स्यमन्तकमणि ले आनेके लिये जब ऋक्षराज जाम्बवान्‌की गुफामें गये थे, तब देवकीने अपने पुत्रकी मङ्गल-कामनाके लिये श्रेष्ठ फलोंद्वारा इन्हीं दुर्गादेवीका पूजन किया था॥ ४१॥

इसी पूजाके प्रभावसे उस बिलसे निकलकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिया जाम्बवती तथा मणिके साथ घर लौटे थे। वही सुप्रसिद्ध 'मायातीर्थ' है, जो सेवकोंको उत्तम फल प्रदान करनेवाला है। जो मानव मायातीर्थमें स्नान करके मायादेवीका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है॥ ४२-४३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे द्वारकायाः प्रथमदुर्गे लीलासरोवरहरिमन्दिरज्ञानतीर्थ-कृष्णाकुण्डबलभद्रसरोगणेशतीर्थदानस्थलमायातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें द्वारकाके प्रथम दुर्गके भीतर 'लीला-सरोवर, हरिमन्दिर, ज्ञानतीर्थ, कृष्ण-कुण्ड, बलभद्र-सरोवर, दानतीर्थ, गणपतितीर्थ और मायातीर्थके माहात्म्यका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

इन्द्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, सूर्यकुण्ड, नीललोहित-तीर्थ और सप्तसामुद्रक-तीर्थका माहात्म्य

श्रीनारद उवाच

द्वितीयस्यापि दुर्गस्य पूर्वद्वारे विदेहराट्।
इन्द्रतीर्थं महापुण्यं कामदं सिद्धिदायकम्॥ १

तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रलोकं प्रयाति हि।
इहैव चन्द्रसादृश्यं वैभवं प्राप्यते नरैः॥ २

तथा वै दक्षिणे द्वारे सूर्यकुण्डोऽभिधीयते।
यत्र सत्राजितेनापि पूजितोऽभूत् स्यमन्तकः॥ ३

तत्र स्नात्वा पद्मरागं यो ददाति नृपेश्वर।
सूर्यप्रभविमानेन सूर्यलोकं प्रयाति हि॥ ४

तथा वै पश्चिमे द्वारे ब्रह्मतीर्थं विशिष्यते।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् स्वर्णपात्रे च पायसम्॥ ५

यो ददाति महाबुद्धिस्तस्य पुण्यफलं शृणु।
ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्यहाघवान्॥ ६

इन्द्रलोके पदं धृत्वा बिभ्रद् ब्रह्ममयं वपुः।
चन्द्राभेन विमानेन याति ब्रह्मपदं स च॥ ७

तथा वै उत्तरे द्वारे क्षेत्रं स्यान्नैललोहितम्।
यत्र साक्षान्महादेवो राजते नीललोहितः॥ ८

देवता मुनयः सर्वे तथा सप्तर्षयः परे।
वसन्ति यत्र वैदेह तथा सर्वे मरुद्गणाः॥ ९

नीललोहितलिङ्गं तु यत्र सम्पूज्य यत्नतः।
ऐश्वर्यमतुलं लेभे रावणो लोकरावणः॥ १०

कैलासस्यापि यात्रायां यत्फलं लभते नृप।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं नीललोहितदर्शनात्॥ ११

नीललोहितकुण्डे वै स्नातो यस्त्रिदिनं नरः।
स याति शिवलोकाख्यं पापायुतयुतोऽपि हि॥ १२

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेहराज! द्वितीय दुर्गके भी पूर्वद्वारपर परम पुण्यमय 'इन्द्रतीर्थ' है, जो अभीष्ट भोगोंका देनेवाला तथा सिद्धिदायक है। राजन्! उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य इन्द्रलोकको जाता है तथा इस लोकमें भी मनुष्योंको चन्द्रमाके समान उज्ज्वल वैभव प्राप्त होता है॥ १-२॥

इसी प्रकार दक्षिणद्वारपर 'सूर्यकुण्ड' नामक तीर्थ बताया जाता है, जहाँ सत्राजितने स्यमन्तककी पूजा की थी। नृपेश्वर! वहाँ स्नान करके जो मनुष्य पद्मरागमणिका दान करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी विमानके द्वारा सूर्यलोकको जाता है॥ ३-४॥

इसी प्रकार पश्चिमद्वारपर 'ब्रह्मतीर्थ' नामक एक विशिष्ट तीर्थ है। राजन्! जो बुद्धिमान् मानव वहाँ स्नान करके सोनेके पात्रमें खीरका दान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। वह ब्रह्मघाती, पितृघाती, गोहत्यारा, मातृहत्यारा और आचार्यका वध करनेवाला पापी भी क्यों न हो, इन्द्रलोकमें पैर रखकर ब्रह्ममय शरीर धारण करके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल विमान-द्वारा ब्रह्मधामको जाता है॥ ५—७॥

इसी प्रकार उत्तरद्वारपर भगवान् नीललोहितका क्षेत्र है, जहाँ साक्षात् नीललोहित महादेव विराजते हैं॥ ८॥

विदेहराज! उस तीर्थमें समस्त देवता, मुनि, सप्तर्षि तथा सम्पूर्ण मरुद्गण निवास करते हैं। उसी तीर्थमें प्रयत्नपूर्वक 'नीललोहित' नामक शिवलिङ्गकी पूजा करके लोकरावण रावणने अनुपम ऐश्वर्य प्राप्त किया था॥ ९-१०॥

नरेश्वर! कैलासकी यात्रा करनेपर मनुष्य जिस फलको पाता है, उससे सौगुना पुण्य भगवान् नील-लोहितके दर्शनसे होता है। जो मनुष्य 'नील-लोहितकुण्ड'में तीन दिनोंतक स्नान करता है, वह सहस्रों पापोंसे युक्त होनेपर भी शिवलोकमें जाता है॥ ११-१२॥

सप्तसामुद्रकं नाम तीर्थं यत्र विराजते।
तत्र स्नात्वा नरः पापी पापसङ्घैः प्रमुच्यते॥ १३

सप्तानां च समुद्राणां स्नानपुण्यं लभेत्त्वरम्।
विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः॥ १४

पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपां पतिः।
तत्पार्श्वेषु सदा ह्येते तिष्ठन्ति मनुजेश्वर॥ १५

सप्तकोटीनि तीर्थानि ब्रह्माण्डे यानि कानि च।
सर्वाणि तत्र तिष्ठन्ति सप्तसामुद्रके नृप॥ १६

तत्र स्नात्वा नरः पश्चात्कृत्वा सर्वपरिक्रमाम्।
प्राप्नोति द्वारकायाश्च यात्रायाः सकलं फलम्॥ १७

सप्तसामुद्रकमृते न यात्रा फलदा स्मृता।
सप्तसामुद्रकं तीर्थं विष्णुरूपं विदुः सुराः॥ १८

जहाँ 'सप्त-सामुद्रक' अथवा 'सप्त-सागर' तीर्थ सुशोभित है, वहाँ उस तीर्थमें स्नान करके पापी मनुष्य पाप-समूहोंसे छुटकारा पा जाता है तथा सात समुद्रोंमें स्नान करनेका पुण्य वह तत्काल प्राप्त कर लेता है। मनुजेश्वर! उस तीर्थके आस-पास भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, पर्जन्य, कुबेर, सोम, पृथ्वी, अग्नि और जलके स्वामी वरुण—सदा निवास करते हैं॥ १३—१५॥

नरेश्वर! ब्रह्माण्डमें जो कोई सात करोड़ तीर्थ हैं, वे सब उस 'सप्तसामुद्रक-तीर्थ' में वास करते हैं। उसमें स्नान करनेके पश्चात् जो मनुष्य उस सम्पूर्ण तीर्थकी परिक्रमा करता है, वह द्वारका-यात्राका सारा फल पा लेता है। 'सप्तसामुद्रक-तीर्थ' की यात्रा किये बिना द्वारका-यात्रा फलवती नहीं होती। देवताओंने 'सप्तसामुद्रक-तीर्थ'को भगवान् विष्णुका स्वरूप माना है॥ १६—१८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारद-बहुलाश्वसंवादे द्वितीयदुर्गे इन्द्रतीर्थब्रह्मतीर्थसूर्यकुण्डनैल-लोहितसप्तसमुद्रमाहात्म्यकथनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्वितीय दुर्गके भीतर इन्द्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, सूर्यकुण्ड, नीललोहिततीर्थ तथा सप्तसामुद्रक-तीर्थके माहात्म्यका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

तृतीय दुर्गके द्वार-देवताओंके दर्शन और पूजनकी महिमा तथा पिण्डारक-तीर्थका माहात्म्य

श्रीनारद उवाच

तृतीयस्यापि दुर्गस्य पूर्वद्वारे महाबलः।
रक्षत्यहर्निशं राजन् हनूमानञ्जनीसुतः॥ १

तं प्रेक्ष्य भगवद्भक्तं हनूमन्तं महाबलम्।
जायते भगवद्भक्तो हनूमानिव मानवः॥ २

तथा वै दक्षिणद्वारे चक्रं नाम सुदर्शनम्।
रक्षत्यहर्निशं राजञ्छ्रीकृष्णगतमानसम्॥ ३

तस्य दर्शनमात्रेण भवेद्भक्तो हरेः परः।
भक्तस्यापि सदा रक्षां करोति हि सुदर्शनम्॥ ४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तृतीय दुर्गके पूर्वद्वारपर अञ्जनीनन्दन महाबली हनुमान्जी अहर्निश पहरा देते हैं। जो मनुष्य वहाँ महाबली भगवद्भक्त हनुमान्जीका दर्शन कर लेता है, वह हनुमान्जीकी ही भाँति महान् भगवद्भक्त होता है॥ १-२॥

इसी प्रकार दक्षिणद्वारकी सुदर्शनचक्र दिन-रात रक्षा करता है। राजन्! उस सुदर्शनका चित्त सदा श्रीकृष्णमें ही लगा रहता है। उसके दर्शनमात्रसे मानव श्रीहरिका उत्तम भक्त होता है। सुदर्शनचक्र उस भक्तकी भी सदा रक्षा किया करता है॥ ३-४॥

तथा वै पश्चिमं द्वारं जाम्बवानृक्षराड्बली।
रक्षत्यहर्निशं राजन् भगवद्भक्तिसंयुतः॥ ५

तं प्रेक्ष्य भगवद्भक्तं जाम्बवन्तं महाबलम्।
चिरञ्जीवी हरेर्भक्तो भवतीह च मानवः॥ ६

तथा वै चोत्तरे द्वारे विष्वक्सेनो महाबलः।
रक्षत्यहर्निशं राजञ्छ्रीकृष्णहृदयो महान्॥ ७

तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम्।
शृणु राजन् बहिर्दुर्गात्तीर्थं पिण्डारकं स्मृतम्॥ ८

पिण्डारकस्य माहात्म्यं शृणुताद्राजसत्तम।
यस्य स्मरणमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते॥ ९

अर्थसिद्धेरिव द्वारं रैवताद्रिसमुद्रयोः।
मध्ये पिण्डारकक्षेत्रं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्॥ १०

क्रतुराजं राजसूयं यदुराजो महाबलः।
चकार यत्र वैदेह परिपूर्णतमाज्ञया॥ ११

सर्वाणि यत्र तीर्थानि समाहूतानि सर्वतः।
निवासं चक्रिरे राजन्नुग्रसेनक्रतूत्तमे॥ १२

तेन पिण्डारकं नाम सर्वतीर्थस्य पिण्डतः।
तत्र स्नात्वा नरः सद्यो राजसूयफलं लभेत्॥ १३

तत्रैव त्रिदिनं स्नात्वा व्रती भूत्वा समाहितः।
ब्राह्मणेभ्यः स्वर्णदानं दत्वा यः प्रणतो भवेत्॥ १४

इहैव नरदेवः स्यात्स महात्मा न संशयः।
नित्यं शृणोति सततं वन्दिवाग्भिर्यशः स्वयम्॥ १५

सुवर्णरत्नवस्त्राद्यैः सुचन्द्रवदनैः परैः।
स्त्रीसङ्घैः सेवितो नित्यं हृष्टपुष्टो महाबलः॥ १६

अहोरात्रं प्रताड्यन्ते द्वारि दुन्दुभयो घनाः।
करीन्द्राणां च चीत्कारैरश्वहेषैः समन्वितम्॥ १७

विराजते राजसङ्घैः प्रेक्षयन् प्राङ्गणाजिरम्।
रत्नप्रासादनिचयं ध्वजमण्डलमण्डितम्॥ १८

इसी तरह पश्चिमद्वारकी बलवान् ऋक्षराज जाम्बवान् रक्षा करते हैं। राजन्! वे निरन्तर भगवद्-भजनमें लगे रहते हैं। उन महाबली भगवद्भक्त जाम्बवान्का दर्शन करके मनुष्य इस लोकमें चिरंजीवी तथा श्रीहरिका भक्त होता है। इस प्रकार महाबली विष्वक्सेन उत्तरद्वारकी अहर्निश रक्षा करते हैं। राजन्! वे श्रीकृष्णके विशाल हृदय हैं। राजन्! उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है॥ ५—७ १/२ ॥

दुर्गसे बाहर 'पिण्डारक-तीर्थ' है, उसकी महिमा सुनो। राजशिरोमणे! पिण्डारक-तीर्थका माहात्म्य ध्यान देकर सुनो, जिसके स्मरणमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे छुटकारा पा जाता है। रैवतक पर्वत और समुद्रके बीचमें पिण्डारक क्षेत्र है, जो तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ और अर्थ-सिद्धिका द्वाररूप है॥ ८—१० ॥

विदेहराज! उसी तीर्थमें महाबली यदुराजने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर यज्ञोंके राजा राजसूयका अनुष्ठान किया था। राजन्! राजा उग्रसेनके उस उत्तम यज्ञमें समस्त तीर्थोंका आवाहन किया गया था और वे तीर्थ सब ओरसे आकर उसमें निवास करने लगे॥ ११-१२ ॥

सम्पूर्ण तीर्थोंके पिण्डीभूत होनेसे उस तीर्थका नाम 'पिण्डारक' हुआ। उसमें स्नान करके मनुष्य तत्काल राजसूय यज्ञका फल पा लेता है। वहीं तीन दिनतक स्नान करके व्रतका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो जो ब्राह्मणोंको स्वर्णदान देकर उनके चरणोंमें प्रणत होता है, वह महात्मा यहीं नरदेव होता है—इसमें संशय नहीं है। वह प्रतिदिन वन्दीजनोंके द्वारा अपना यशोगान सुनता है, स्वर्ण, रत्न और उत्तम वस्त्र आदिसे सम्पन्न होता है। चन्द्रमुखी ललनाओंके समुदाय उसकी सेवामें रहते हैं। वह नित्य हृष्ट-पुष्ट और महाबलवान् होता है॥ १३—१६ ॥

उसके दरवाजेपर दिन-रात घन-गर्जनके समान दुन्दुभियाँ बजती रहती हैं। वह देखता है कि उसके बाहरी एवं भीतरी आँगनमें गजराज चिंघाड़ते और घोड़े हिनहिनाते रहते हैं तथा नरेशोंकी भीड़ लगी रहती है और उसके रत्नमय महलोंपर अनेकानेक ध्वज फहराते रहते हैं॥ १७-१८ ॥

मत्तकुञ्जरकर्णाभ्यां ताडिता भृङ्गमण्डली।
अलङ्करोति तद्द्वारं मण्डितं मण्डलेश्वरैः॥ १९
पिण्डारकस्नानमृते कथं राज्यं भवेदिह।
अन्ते मोक्षं कथं याति नरः पापयुतोऽपि हि॥ २०
पिण्डारकस्नानमृते न शर्म
पिण्डारकस्नानमृते न कर्म।
पिण्डारकस्नानमृते न धर्मः
पिण्डारकस्नानमृते न वर्म॥ २१
पिण्डारकस्नानमृते वियोगी
पिण्डारकस्नानकरस्तु योगी।
पिण्डारकस्नानकरः सुभोगी
पिण्डारकस्नानकरो न रोगी॥ २२
द्वारावतीं माधवमासमध्ये
प्रदक्षिणीकृत्य नमस्करोति।
सर्वा इहामुत्र च सिद्धयोऽपि
वैदेह तत्पाणितले भवन्ति॥ २३
तीर्थाप्लुतोऽधःशयनः शुचिश्च
मौनी व्रती वा नवभोजनेन।
आरभ्य चैत्रीं किल पौर्णमासीं
यो माधवीमेत्य करोति यात्राम्॥ २४
तत्पुण्यसंख्यां गदितुं न शक्त-
श्चतुर्मुखो वेदमयो विधाता।
यो मेघधारां गणयेत्कदाचित्
कालेन पुण्यानि न कृष्णपुर्याः॥ २५
यथा तिथीनां हरिवासरं च
यथा हि शेषः फणिनां फणीन्द्रः।
यथा गरुत्मान् दिवि पक्षिणां च
यथा पुराणेषु च भारतं च॥ २६
यथा हि देवेषु च देवदेवः
श्रीवासुदेवो यदुदेवदेवः।
तथा पुरी क्षेत्रसमस्तमध्ये
द्वारावती पुण्यवती प्रशस्ता॥ २७
अहोऽतिधन्या यदुमण्डलीभि-
र्विराजते भूमितले मनोहरा।
वैकुण्ठलीलाधिकृता कुशस्थली
यथा तडिद्भिर्जलदावलिर्दिवि॥ २८

मतवाले हाथियोंके कानोंसे प्रताड़ित भ्रमरमण्डली उसके सामन्त-नरेशोंद्वारा मण्डित द्वारकी शोभा बढ़ाती है। पिण्डारक-तीर्थमें स्नान किये विना इस लोकमें किसीको राज्य कैसे प्राप्त हो सकता है और पापात्मा मनुष्य भी उस तीर्थमें स्नान किये विना जीवनके अन्तमें मोक्ष कैसे पा सकता है?॥ १९-२०॥

पिण्डारकतीर्थमें स्नान किये विना किसीको शर्म (कल्याण)-की प्राप्ति नहीं होती। पिण्डारक-तीर्थमें स्नान किये विना कर्म, धर्म और वर्म (रक्षाकवच) नहीं प्राप्त हो सकते। पिण्डारकतीर्थमें स्नान किये विना मनुष्य वियोगका दुःख झेलता है। उसमें स्नान करनेवाला मानव उस दुःखसे दूर रहता अथवा विशिष्ट योगी होता है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला पुण्यात्मा मनुष्य उत्तम भोगोंसे सम्पन्न होता है। रोग उसे छू नहीं सकते॥ २१-२२॥

विदेहराज! जो वैशाखमासमें द्वारावतीकी परिक्रमा करके उसको नमस्कार करता है, उसके हाथमें इस लोक और परलोकको सारी सिद्धियाँ आ जाती हैं। जो चैत्रकी पौर्णमासीसे लेकर वैशाखकी पौर्णमासीतक द्वारकाकी यात्रा करता है और प्रतिदिन तीर्थ-स्नान, भूमिशयन, शौचाचार, मौनव्रत एवं नवान्न-भोजनके नियमसे रहता है, उसको मिलनेवाले पुण्यकी संख्या बतानेमें वेदमय चतुर्मुख ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। जो कदाचित् वर्षाकी धाराओंको गिन ले, वह भी श्रीकृष्णपुरीकी यात्रासे होनेवाले पुण्यकी परिगणना नहीं कर सकता॥ २३—२५॥

जैसे तिथियोंमें एकादशी, सर्पोंमें नागराज शेष, पक्षियोंमें गरुड, इतिहास-पुराणोंमें महाभारत और जैसे देवताओंमें देवाधिदेव यदुदेवदेव वासुदेव सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण पुरियों और क्षेत्रोंमें पुण्यवती द्वारावती प्रशस्त है॥ २६-२७॥

अहो! भूतलपर वैकुण्ठलीलाकी अधिकारिणी मनोहरा कुशस्थली (द्वारका) पुरी यदुमण्डलीसे उसी प्रकार सुशोभित होती है, जैसे विद्युन्मालाओंसे आकाशमें मेघमालाकी शोभा होती है॥ २८॥

यत्रैव साक्षात्पुरुषः परेश्वरो
धृत्वा चतुर्व्यूहमलं विराजते।
यस्तूग्रसेनाय ददौ नृपेशतां
कृष्णाय तस्मै हरये नमो नमः॥ २९

यह पुरी धन्य है, जिस पुरीमें साक्षात् परम पुरुष परमेश्वर चतुर्व्यूहरूप धारण करके विराज रहे हैं। जिन्होंने उग्रसेनको राजाधिराजका पद दे रखा है, उन श्रीकृष्ण हरिको बारंबार नमस्कार है॥ २९॥

यदा स्वलोकं भगवान् गमिष्यति
सम्प्लावयिष्यत्यथ तां तदार्णवः।
वैदेह दिव्यं हरिमन्दिरं विना
तस्मिन्निवासं भगवान् करिष्यति॥ ३०

विदेहराज! जब भगवान् अपने परमधामको पधारेंगे, उस समय उस दिव्य पुरीको समुद्र डुबा देगा। केवल श्रीहरिका दिव्य मन्दिर अवशिष्ट रहेगा, उसीमें भगवान् सदा निवास करेंगे॥ ३०॥

शृण्वन्ति तत्रैव कलौ जलध्वनिं
कृष्णोक्तमित्थं सततं दिने दिने।
भवेदविद्यो यदि वा सविद्यो
यो ब्राह्मणो वै स तु मामकी तनुः॥ ३१

कलियुगमें वहाँ रहनेवाले लोग प्रतिदिन और निरन्तर सागरकी जलध्वनिमें श्रीकृष्णकी कही हुई यह बात सुना करते हैं—'ब्राह्मण विद्वान् हो या अविद्वान्—वह मेरा ही शरीर है।'॥ ३१॥

भूत्वाथ विप्रोऽब्धितटादगाधं
गत्वा गृहीत्वा प्रतिमां परस्य।
कृत्वा प्रतिष्ठां च विधाय सौधं
करिष्यते स्थापनमर्क एषः॥ ३२

जो ब्राह्मण होकर समुद्रके तटसे अगाध जलमें जाकर वहाँसे परमेश्वरकी प्रतिमा लायेगा और उसकी स्थापना करके विशाल मन्दिर बनायेगा, वह साक्षात् सूर्य है॥ ३२॥

श्रीद्वारकानाथमिति स्वरूपं
पश्यन्ति ये भक्तजनाः कलौ युगे।
गच्छन्ति ते विष्णुपदं नृदेव
योगीश्वराणामपि दुर्लभं यत्॥ ३३

नरदेव! कलियुगमें जो भक्तजन श्रीद्वारकानाथके स्वरूपका दर्शन करते हैं, वे योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ विष्णुपदको प्राप्त कर लेते हैं॥ ३३॥

इदं मया ते कथितं नृदेव
माहात्म्यमेतत् किल कृष्णपुर्याः।
शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या
श्रीद्वारकावासफलं लभेत्सः॥ ३४

राजन्! यह मैंने श्रीकृष्णपुरीके माहात्म्यका तुमसे वर्णन किया है। जो भक्तिभावसे इसे सुनता और सुनाता है, वह द्वारकापुरीमें निवासका फल पाता है॥ ३४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे तृतीये दुर्गे पिण्डारकमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें तृतीय दुर्गके भीतर 'पिण्डारक-तीर्थके माहात्म्यका वर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

सुदामा ब्राह्मणका उपाख्यान

श्रीकृष्णस्य सखा कश्चित् सुदामा नाम ब्राह्मणः।
स उवास स्वपुर्यां तु सत्या च भार्ययावृतः॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—सुदामा नामक श्रीकृष्णके एक ब्राह्मण सखा थे। वे अपनी साध्वी पत्नीके साथ अपने नगरमें रहते थे॥ १॥

विरक्तो धनहीनश्च वेदवेदाङ्गपारगः।
समानशीलया पत्न्या चक्रे वृत्तिमयाचिताम्॥ २

स कदाचित् प्रियां प्राह सीदमानां दरिद्रतः।
श्रीकृष्णो द्वारकानाथो मित्रं मम पतिव्रते॥ ३

मया तेनापि पठिता विद्या सान्दीपनेर्गृहे।
पुनर्न दृष्टः श्रीकृष्णो भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः॥ ४

त्रैलोक्यनाथो भगवान् दुःखहा दीनवत्सलः।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य शुष्कवक्त्रा पतिव्रता॥ ५

जीर्णवस्त्रधरा दीना पतिं प्राह बुभुक्षिता।
यदि ब्रह्मन् ननु हरिः सखा ते कमलापतिः॥ ६

बुभुक्षितः कथंभूतो जीर्णकर्पटधारणः।
द्वारकायां जना गत्वा दृष्ट्वा साक्षाच्छ्रियः पतिम्।
धनयुक्ताः समायान्ति तस्मात्त्वं गन्तुमर्हसि॥ ७

सुदामोवाच

सर्वेषां शिक्षकोऽहं त्वं तस्मै शिक्षां प्रदास्यसि।
विप्रस्य विदुषो भिक्षा धनं प्रकथितं प्रिये॥ ८

प्रियोवाच

सखा तु श्रीपतिर्यस्य नातिदूरे प्रवर्तते।
तमुपेहि स ते दुःखं दारिद्र्यं नाशयिष्यति॥ ९

गता अवस्था मम ते दुःखदारिद्र्यभुञ्जतोः।
दातुः कृपानिधेः कान्त मित्रतायाश्च किं फलम्॥ १०

सुदामोवाच

विधिना लिखितं भाग्यं तत्तथैव भविष्यति।
यातायातेन किं भद्रे हरेर्ध्यानं करोम्यहम्॥ ११

यद्द्वारि देशे राजानो देवगन्धर्वकिन्नराः।
आज्ञां विना न यास्यन्ति दीनस्य मम का कथा॥ १२

सुदामा वेद-वेदाङ्गके पारंगत थे, परंतु धनहीन थे और थे वैराग्यवान्। वे अपनी अनुकूल पत्नीके साथ अयाचित वृत्तिके द्वारा जीवन-निर्वाह करते। सुदामाने एक दिन दरिद्रतासे उत्पीड़ित दुःखिनी अपनी पत्नीसे कहा—'पतिव्रते! द्वारकाधीश श्रीकृष्ण मेरे मित्र हैं, सांदीपनि गुरुके घरमें मैंने उनके साथ विद्याध्ययन किया है; परंतु श्रीकृष्णके भोज, वृष्णि और अन्धकोंके अधीश्वर होनेके बाद मेरा उनसे मिलना नहीं हुआ। वे त्रिलोकीके नाथ भगवान् दुःखहारी और दीनवत्सल हैं'॥ २—४१/२॥

पतिके वचन सुनकर पतिव्रताने, जिसका कण्ठ सूख रहा था, जो फटे-पुराने कपड़े पहने हुए थी, भूखसे अत्यन्त पीड़ित थी, पतिदेवसे कहा—'ब्रह्मन्! जब साक्षात् श्रीपति हरि आपके सखा हैं, तब हमलोग फटे चिथड़े पहने और भूखे क्यों रहें? लोग द्वारका जाकर साक्षात् कमलापतिके दर्शन करते हैं और धनवान् होकर घर लौटते हैं; अतएव आप भी वहाँ जाइये'॥ ५—७॥

सुदामाने कहा—मैं सबको सिखाया करता हूँ और आज तुम मुझीको सिखा रही हो? प्रिये! तुम एक विद्वान् ब्राह्मणको माँगकर धन प्राप्त करनेका उपदेश दे रही हो?॥ ८॥

प्रियाने कहा—आपके सखा साक्षात् लक्ष्मीपति हैं और यहाँसे बहुत दूर भी नहीं हैं; अतएव आप उनके पास जाइये। वे आपके दुःख-दारिद्र्यका नाश कर देंगे। दुःख-दरिद्रता भोगते-भोगते हमारी उम्र बीत चली। स्वामिन्! ऐसे कृपानिधि दाताकी मित्रताका क्या यही फल है?॥ ९-१०॥

सुदामाने कहा—विधाताने जो भाग्यमें लिख दिया है, वह होगा ही। भद्रे! जाने-आनेसे क्या होता है? घरमें रहकर श्रीहरिका ध्यान तो करता ही हूँ। जिनके दरवाजेमें राजा, देवता, गन्धर्व और किन्नर भी बिना आज्ञाके प्रवेश नहीं कर सकते, वहाँ मुझ-सरीखे दीनको कौन पूछेगा?॥ ११-१२॥

प्रियोवाच

विनाज्ञां नैव यास्यन्ति देवगन्धर्वकिन्नराः।
अन्तर्यामी हरिः शीघ्रं दूतैस्त्वामाह्वयिष्यति॥ १३

विप्र उवाच

दयालुरीदृशः कृष्णो परन्तु शृणु भामिनि।
विपत्तिकाले मित्रस्य न गच्छेद् गृहमुत्तमम्॥ १४

कथं तु याचनां कुर्वे चिराद् दृष्ट्वा स्वकं प्रियम्।
निर्लोभात्तु भवेत् प्रीतिर्याचनात्तु गमिष्यति॥ १५

प्रियोवाच

दुःखदारिद्र्यहरणं श्रीहरेर्दर्शनं कुरु।
याचना नैव कर्तव्या स तेऽर्थं बहु दास्यति।
एवं तु प्रियया विप्रो बहुधैवं प्रभाषितः॥ १६

अयं हि परमो लाभः कृत्वा मित्रस्य दर्शनम्।
उपायनं तु किं दास्ये लज्जितोऽहं दरिद्रतः॥ १७

इत्युक्त्वा सा गता शीघ्रं परगेहं तदा सती।
तण्डुलांश्चतुरो मुष्टीन् याचित्वा स्वगृहं ययौ॥ १८

जीर्णकर्पटखण्डे च बद्ध्वा तान् पतये ददौ॥ १९

ततो गृहीत्वा पृथुकांश्च तण्डुलान्
कुचैलधारी मलिनश्च दुर्बलः।
जगाम कृष्णस्य पुरीं शनैः शनै-
र्ब्रह्मण्यदेवं मनसा च संस्मरन्॥ २०

सोत्तीर्य सिन्धुमुडुपेन ददर्श तत्र
श्रीद्वारकां हरिपुरीं कनकैर्विचित्राम्।
श्रेणीसभाविविधदुर्गगृहैः पताकैः
शृङ्गाटकैरतिबलैर्यदुभिश्च गुप्ताम्॥ २१

दृष्ट्वा कृष्णपुरीं विप्रो जनानापृच्छ्य श्रीहरेः।
श्रीमन्दिरं तु कुत्रास्ते सर्वे वदत साम्प्रतम्॥ २२

इति श्रुत्वा माधवस्य भवनानाञ्च रक्षकाः।
ऊचुस्ते वर्तते कृष्णः सर्वेषु मन्दिरेषु च॥ २३

प्रिया बोली—यह सत्य है कि उनकी आज्ञाके बिना देवता, गन्धर्व और किंनर अंदर नहीं जा सकते; परंतु साक्षात् हरि तो अन्तर्यामी हैं, वे अपना दूत भेजकर आपको अंदर बुला लेंगे॥ १३॥

ब्राह्मणने कहा—भामिनि! मेरी बात सुनो। श्रीकृष्ण अवश्य ही ऐसे दयालु हैं, परंतु विपत्तिके समय धनवान् मित्रके घर जाना उचित नहीं है। विशेषतः बहुत दिनोंके बाद उन अन्तरङ्ग प्रेमास्पदको देखकर मैं उनसे क्या याचना करूँगा? लोभसे रहित होनेपर ही प्रेम हुआ करता है, माँगनेपर प्रेम नहीं रहा करता॥ १४-१५॥

प्रिया बोली—आप दुःख-दारिद्र्यका नाश करनेवाले श्रीकृष्णके दर्शन करें, माँगना नहीं होगा। वे अपने-आप ही प्रचुर सम्पत्ति दे देंगे। सुदामाने पत्नीके द्वारा बहुत तरहसे समझाये-बुझाये जानेपर यह विचार किया—'इस निमित्तसे मित्रके दर्शनका परम लाभ तो हो ही जायगा, परंतु मैं उनको उपहार क्या दूँगा? दरिद्रताके कारण कुछ देनेको है नहीं, इसीसे लज्जित हो रहा हूँ'॥ १६-१७॥

पतिके मुखसे यह बात सुनकर सती ब्राह्मणी दूसरे घरसे चार मुट्ठी तन्दुल (चिउड़ा) माँग लायी और एक पुराने चिथड़ेमें बाँधकर उन्हें पतिको दे दिया। तदनन्तर सुदामाजी मैले कपड़ेसे अपने मैले-कुचैले दुर्बल शरीरको ढककर उन चिउड़ोंको लेकर मन-ही-मन ब्रह्मण्यदेवका स्मरण करते हुए धीरे-धीरे श्रीकृष्णके नगरकी ओर चल दिये॥ १८—२०॥

ब्राह्मणने नौकासे समुद्र पार करके भगवान् श्रीहरिकी स्वर्णमय विचित्र द्वारकापुरीके दर्शन किये। उस पुरीमें पताकाएँ फहरा रही थीं। कतार-के-कतार सभा-भवन, चौराहे और भाँति-भाँतिके दुर्ग सुशोभित थे। बलवान् यादव-वीर उसकी रक्षा कर रहे थे॥ २१॥

ब्राह्मणने श्रीकृष्णकी पुरीको देखकर लोगोंसे पूछा—'श्रीकृष्णका भवन कौन-सा है, यह बताइये?' इस बातको सुनकर माधवकी द्वारकापुरीके रक्षकोंने कहा—'सभी भवनोंमें श्रीकृष्ण हैं'॥ २२-२३॥

इत्युपश्रुत्य सदनं प्रविश्यैकतमं द्विजः।
ब्रह्मानन्दं गतः कृष्णं पर्यङ्कस्थं विलोक्य च॥ २४

सखायमागतं ज्ञात्वा सहसोत्थाय माधवः।
दोर्भ्यां मिलित्वा चान्योन्यं प्रेम्णा ह्यश्रुकलाकुलः॥ २५

स्वर्णपात्रेण तस्यापि पादौ प्रक्षाल्य तज्जलम्।
गृहीत्वा शिरसा तं तु पर्यङ्क उपवेश्य च॥ २६

अर्चनं कृतवान् गन्धचन्दनागुरुकुङ्कुमैः।
पक्वान्नैर्धूपदीपैश्च मधुपर्कैर्विधानतः॥ २७

पश्चादावेद्य ताम्बूलं गाञ्च स्वागतमब्रवीत्।
वृद्धं कुचैलं मलिनं दुर्बलं श्वेतमूर्धजम्॥ २८

मित्रविन्दा पर्यचरद्व्यजनेन स्मितान्विता।
श्रीकृष्णस्य प्रियाः सर्वा विस्मिता जहसुस्तदा॥ २९

ऊचुः परस्परं नार्यः प्रेक्ष्य विप्रं समर्चितम्।
भिक्षुणा ह्यवधूतेन किमनेन कृतं तपः॥ ३०

येन त्रैलोक्यनाथेन सत्कृतश्चाग्रजो यथा।
एतस्मिन्नन्तरे तौ द्वौ कथयाञ्चक्रतुः कथाः।
पूर्वा गुरुकुले जाता हस्तौ गृह्य परस्परम्॥ ३१

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु ब्रह्मन् प्रपठिता सर्वविद्या त्वया मया।
गुरवे दक्षिणां दत्वा पुनस्त्वं नैव दृश्यसे॥ ३२

अहं तु द्वारकां यातो जरासन्धभयात् सखे।
कुत्र स्थले तव विभो निवासो वद मे खलु॥ ३३

कदाचिदिन्धनार्थे वै गुरुदारैः प्रणोदिताः।
विद्यार्थिनो वयं सर्वे वनं जग्मुर्भयङ्करम्॥ ३४

विपत्तिरभवत्तत्र वातवर्षभयङ्करी।
रविरस्तं गतो रात्र्यामन्धकारोऽभवन्महान्॥ ३५

सर्वं जलमयं जातं स्थलं नैव तु दृश्यते।
वयं परस्परं सर्वे गृहीतकरपङ्कजाः॥ ३६

यह सुनकर ब्राह्मण किसी एक भवनमें घुस गये और अंदर जाकर देखा कि पलंगपर श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उन्हें देखकर सुदामाको ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति हुई। माधवने सखा सुदामाको आया देखकर सहसा उठकर उन्हें अपने बाहुपाशमें बाँधकर हृदयसे लगा लिया और वे आनन्दके आँसू बहाने लगे॥ २४-२५॥

तदनन्तर स्वर्ण-पात्रोंमें भरे जलके द्वारा उनके दोनों चरणोंका प्रक्षालन किया और उस जलको अपने मस्तकपर धारण करके ब्राह्मणको अपने पलंगपर बैठा लिया। फिर गन्ध, चन्दन, अगुरु, कुङ्कुम, धूप, दीप, मधुपर्क और पक्वान्नके द्वारा उनकी पूजा की। पश्चात् पानका बीड़ा देकर गोदान किया और मलिन-वस्त्रधारी दुबले-पतले, पके बालोंवाले ब्राह्मणसे पधारनेका कारण पूछा॥ २६—२८॥

मित्रविन्दाजी मुसकराती हुई पंखेके द्वारा सुदामाजीकी सेवा करने लगीं। श्रीकृष्णकी पटरानियाँ सब विस्मित होकर हँसने लगीं और ब्राह्मणको इस प्रकार पूजित देखकर परस्पर कहने लगीं—'इन अवधूत भिखारीने कौन-सी तपस्या की है, जिससे स्वयं त्रैलोक्यनाथ बड़े भाईकी तरह इनका सत्कार कर रहे हैं?' इसी बीच दोनों मित्र आपसमें हाथ पकड़े हुए पुरानी—गुरुके घरकी बातें करने लगे॥ २९—३१॥

श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मन्! सुनो। हम दोनोंने वहाँ सारी विद्याओंका अध्ययन साथ-साथ किया है, परंतु गुरु-दक्षिणा देनेके बाद तुमसे मिलना नहीं हुआ। मैं जरासंधके भयसे द्वारका चला आया। सखे! तुम कहाँ रहते हो, बताओ। हे विभो! तुम्हें याद होगा, एक दिन गुरु-पत्नीकी आज्ञासे हम विद्यार्थीगण लकड़ी लानेके लिये भयंकर वनमें गये थे॥ ३२—३४॥

वहाँ जानेपर वर्षा और तूफानके मारे भयानक विपत्तिमें पड़ गये। सूर्य अस्त हो गया, रात्रिका घोर अन्धकार छा गया। सब जगह जल-ही-जल हो रहा था, जमीन कहीं दिखायी नहीं देती थी। हम परस्पर हाथ पकड़े बिजलीके प्रकाशमें सब जगह इधर-उधर घूमते रहे। फिर सूर्योदय होनेपर महामना गुरु

विद्युत्प्रकाशे पश्यन्तो दिक्षु सर्वासु बभ्रमुः।
ततः सूर्योदये जाते गुरुः सान्दीपनिर्महान्॥ ३७

जले शिष्यांश्च शीतार्तान् वनं गत्वा ददर्श ह।
जलात् सर्वान् स्थले कृत्वा गुरुरश्रुपरिप्लुतः॥ ३८

उवाच बालका यूयमस्मदाज्ञापरायणाः।
प्रेष्ठस्तु प्राणिनामात्मा तमनादृत्य मत्पराः॥ ३९

तस्माद्भवद्भ्यः सन्तुष्टो वरं दास्यामि दुर्लभम्।
भवतां चापि सर्वत्र पूर्णाः सन्तु मनोरथाः॥ ४०

वेदशास्त्रपुराणानि कण्ठस्थानि भवन्तु हि।
तस्माद्गुरोश्च कृपया पूर्णोऽहं सर्वसौख्यतः॥ ४१

सुदामोवाच

देवदेव गुरुस्त्वं तु कोटिब्रह्माण्डनायकः।
श्रीपतेस्तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम्॥ ४२

ततः सुदामा विप्रस्तु कृष्णाय परमात्मने।
पृथुकाँस्तण्डुलान् राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः॥ ४३

सर्वात्मा भगवांस्तस्य ज्ञात्वागमनकारणम्।
नायं विप्रस्तु श्रीकामो मुक्त्यर्थं मां तु सेवते॥ ४४

भार्या पतिव्रता दुःखाद्धनाशां चास्य कुर्वती।
तस्माद्धनं कथं दास्ये अदात्रोश्च तयोरहम्॥ ४५

इति ब्रुवन् पुनर्ज्ञात्वा हेतोर्मम स तण्डुलान्।
प्रगृह्यागतवानत्र लज्जया नैव दास्यति॥ ४६

तस्मात्तु याचनां कुर्वे विदित्वैवं वचोऽब्रवीत्॥ ४७

श्रीकृष्ण उवाच

गृहान्मदर्थे भवता किमानीतमुपायनम्।
अण्वप्युपाहृतं यच्च भक्त्या भूरि भविष्यति॥ ४८

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ ४९

इत्थमाभाष्य भगवानदातुश्च द्विजन्मनः।
चीरखण्डात्तण्डुलांश्च जहार किमिदं स्वयम्॥ ५०

सांदीपनिजीने वनमें जाकर जलमें सर्दीसे ठिठुरते हुए हम छात्रोंको दर्शन दिया॥ ३५—३७१/२॥

गुरुजीकी आँखें आँसू बहा रही थीं। उन्होंने हम सबको जलसे निकालकर जमीनपर लाकर कहा—'मेरे बच्चो! तुम मेरी आज्ञाका पूरा पालन करनेवाले हो। प्राणियोंके लिये सबसे प्रिय आत्मा है। तुमने उसका भी अनादर करके मुझको प्रधानता दी, इसलिये मैं संतुष्ट होकर तुमलोगोंको दुर्लभ वर दे रहा हूँ। तुमलोगोंकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हों॥ ३८—४०॥

वेद और पुराणादि शास्त्र तुम्हारे कण्ठस्थ हो जायँ।' मित्र! गुरुजीकी इसी कृपासे तभीसे हमलोग सुखोंसे परिपूर्ण हैं॥ ४१॥

सुदामाजीने कहा—तुम देवदेव हो, सबके गुरु हो और कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हो। तुम श्रीपति हो। तुम्हारा गुरुकुलमें निवास करना अत्यन्त विडम्बना है॥ ४२॥

राजन्! ब्राह्मण सुदामाने परमात्मा श्रीकृष्णको वे चिउड़े नहीं दिये। वे मुँह नीचा किये बैठे रहे। सर्वात्मा भगवान् उनके आनेका कारण जान गये—'ये ब्राह्मण धनके इच्छुक नहीं हैं, मुक्तिके लिये ही मेरा भजन करते हैं॥ ४३-४४॥

इनकी दुःखिनी पतिव्रता पत्नी ही धनकी अभिलाषा रखती है; पर इन अदाता दम्पतीको मैं धन दूँ कैसे?'—यों सोचते-सोचते श्रीहरिने जान लिया कि 'मेरे लिये ये कुछ चिउड़ा लाये हैं, पर लज्जाके मारे दे नहीं पा रहे हैं; अतएव मैं ही माँग लूँगा।' यों विचारकर वे बोले—॥ ४५—४७॥

श्रीकृष्णने कहा—'मित्र! घरसे मेरे लिये क्या उपहार लाये हो? प्रेमका दान अणुमात्र होनेपर भी महान् होता है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक मुझे पत्र-पुष्प-फल-जल प्रदान करता है, भक्तके द्वारा दिये हुए उस पदार्थका मैं बड़े ही आदरके साथ भोग लगाता हूँ'॥ ४८-४९॥

भगवान्ने यह कहकर अदाता उस सुदामा ब्राह्मणके चिथड़ेको पकड़कर 'यह क्या है'—यों कहते हुए स्वयं चिउड़ोंको ले लिया और बोले—'सखे! यह तो तुम मेरे लिये परम प्रीतिकर वस्तु लाये

एतत्त्वयोपनीतं मे सखे परमप्रीणनम्।
विश्वं मां तर्पयिष्यन्ति ब्रह्मन्नेते च तण्डुलाः ॥ ५१

ईदृशा गोकुले भुक्ताः श्रेष्ठाः पृथुकतण्डुलाः।
मात्रा यशोदया दत्ताः पुनस्तान्नैव दृष्टवान् ॥ ५२

इत्येकमुष्टिं जग्ध्वा च भूमिजां सम्पदं ददौ।
द्वितीयां जग्धुमारेभे दातुं पातालसम्पदाम् ॥ ५३

तावद्वक्षःस्थलाच्छीघ्रं जगृहे श्रीः करं हरेः।
अपराधाद्विना नाथ कथं मां त्यक्तुमिच्छसि ॥ ५४

एतावतालं श्रीकृष्ण शक्रतुल्यो द्विजो भवेत्।
द्विजेन निर्धनेनापि न ज्ञातं तद्रहस्यकम् ॥ ५५

सम्पूर्णञ्च धनं प्राप्तं स्वगृहे विष्णुमायया।
उषित्वा रजनीमेकां भुक्त्वा पीत्वा सुखं गतः ॥ ५६

श्वोभूते स्वगृहान् गन्तुं कृष्णं नत्वा मनो दधे।
स चाज्ञप्तो भगवता वन्दितः परिरम्भितः ॥ ५७

याचना न कृता तेन व्रीडितः स्वगृहान् ययौ।
ब्रह्मण्यता मया दृष्टा विप्रदेवस्य श्रीपतेः ॥ ५८

अहं दरिद्रः कृष्णस्य बाहुभ्यां परिरम्भितः।
प्रियाजुष्टे च पर्यङ्के भ्रातेव स्थापितो द्विजः ॥ ५९

वीजितो व्यजनेनापि रुक्मिण्या सत्यभामया।
निर्धनस्तु धनं लब्ध्वा श्रीपतिं नैव संस्मरेत् ॥ ६०

इत्थं करुणया मह्यं धनं कृष्णो न दत्तवान्।
इत्थं विचारयन् गच्छन् संस्मरन् ब्राह्मणीं रुषा ॥ ६१

गृहाण धनकोटिञ्च गृहं गत्वा ब्रवीम्यहम्।
ब्रह्मण्यदेवो दाता च श्रीकृष्णोऽयं मया श्रुतः ॥ ६२

प्रत्यक्षदृष्टः कृपणो गर्वितो धनपूरितः।
शापं दास्ये कथं मित्रे धनलोभादहं वृथा ॥ ६३

हो। ब्रह्मन्! इन तन्दुलोंसे मुझ विश्वरूप भगवान्की तृप्ति हो जायगी। मैं गोकुलमें ऐसे श्रेष्ठ चिउड़े खाया करता था? माता यशोदा दिया करती थी; परंतु उसके बाद आजतक मुझे ये देखनेको भी नहीं मिले'॥ ५०—५२ ॥

इतना कहकर श्रीहरिने एक मुट्ठी चिउड़े चबाकर सारी पृथ्वीकी सम्पत्ति सुदामाको दे दी और दूसरी मुट्ठी खाकर ज्यों ही पातालकी सम्पत्ति देनेको तैयार हुए, वक्षःस्थलनिवासिनी लक्ष्मीदेवीने उसी क्षण उनका हाथ पकड़कर कहा—नाथ! बिना अपराध आप मेरा त्याग क्यों कर रहे हैं? श्रीकृष्ण! आपने जो कुछ दिया है, वही पर्याप्त है। उसीसे ये ब्राह्मण इन्द्रके समान हो जायँगे॥ ५३—५४ १/२ ॥

इधर निर्धन ब्राह्मणको भी इस दानका कुछ पता नहीं लगा। भगवान्की मायाने सारी सम्पत्तिको उनके घर पहुँचा दिया। सुदामाजीने एक रात वहाँ सुखपूर्वक रहकर, भोजन-पान आदि करके, दूसरे दिन श्रीकृष्णको नमस्कार करके घर जानेकी अनुमति माँगी। भगवान्ने अनुमति देकर वन्दन और आलिङ्गन किया॥ ५५—५७ ॥

ब्राह्मण लज्जावश कुछ भी न माँगकर घर लौट चले और एक ब्राह्मणके प्रति श्रीकृष्णकी श्रद्धा देखकर मन-ही-मन सोचने लगे—'दरिद्र होनेपर भी श्रीकृष्णने मुझे अपनी दोनों भुजाओंमें भरकर मेरा आलिङ्गन किया। मेरे-सरीखे दरिद्र ब्राह्मणको पर्यङ्कपर बैठाकर भाईके समान आदर दिया। रुक्मिणी-सत्यभामाने व्यजनके द्वारा मेरी सेवा की। मैं निर्धन धन पाकर रमापति भगवान्को भूल न जाऊँ—इसीसे करुणावश उन्होंने मुझे धन नहीं दिया'॥ ५८—६० १/२ ॥

वे इस प्रकार विचारते हुए तथा खिन्न मनसे पत्नीका स्मरण करते हुए सोचने लगे—''मैं घर जाकर कह दूँगा—'यह लो, कोटि-कोटि धनराशि ग्रहण करो।' मैंने तो सुना था कि श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति रखनेवाले तथा दानी हैं, पर प्रत्यक्षमें तो वे धनी होकर भी अभिमानी तथा कृपण प्रतीत होते हैं। भले ही उन्होंने मुझे धन नहीं दिया, पर मैं लोभवश उन्हें व्यर्थमें शाप कैसे दूँ?॥ ६१—६३ ॥

यादृशी मे कृता प्रीतिस्तादृशीं प्रापयिष्यति।
पितरावस्य कंसेन कारागारे कृतौ पुरा॥ ६४

कृष्णस्तु नन्दसदने परगेहे च वर्धितः।
स दास्यति कथं द्रव्यं धनयुक्तोऽपि निर्धनः॥ ६५

रत्नैः प्रपूरितान् गेहान् दृष्ट्वा वाञ्छां न कारयेत्।
ललाटे लिखितं यद्यन्न तन्यूनं भविष्यति॥ ६६

इति सङ्कथयन् विप्रो निजपुर्यन्तिके गतः।
सुवर्णदुर्गसंयुक्तां कपाटध्वजमण्डिताम्॥ ६७

तोरणैः कलशैश्चित्रैः प्रासादैः सुजनैर्वृताम्।
द्वारकामिव शोभाढ्यां सर्वरत्नैः प्रपूरिताम्॥ ६८

दृष्ट्वा विप्रस्तु किमिदं कस्य स्थानमिति ब्रुवन्।
रथ्यां रथ्यां भ्रमन्तं तं प्रत्यगृह्णन् स्त्रियो नराः॥ ६९

नागच्छन्तं द्विजं दृष्ट्वा किङ्कर्यः किङ्करास्तथा।
स्वामिन्यै कथयामासुः श्रुत्वा सा विस्मयं गता॥ ७०

भर्तारमागतं श्रुत्वा पत्नी सम्भ्रमसंयुता।
निश्चक्रामालयात्तूर्णं साक्षाच्छ्रीरिव रूपिणी॥ ७१

ब्राह्मणी शिविकारूढा दासीदासगणैर्वृता।
भ्रमन्तमग्रहीद्विप्रं दर्शयित्वा स्वकं मुखम्॥ ७२

दृष्ट्वा स्फुरन्तीं तरुणीञ्च भार्यां
स्वर्णाम्बरै रत्नविभूषणाढ्याम्।
यथेन्दिरां रूपवतीं विमाने
मुदान्वितः कृष्णकृपाञ्च मेने॥ ७३

निजगेहं तया युक्तः श्रीकृष्णभवनोपमम्।
भोजनैर्द्रव्यरत्नैश्च पर्यङ्कव्यजनासनैः॥ ७४

वितानैः स्वर्णपात्रैश्च तोरणैः समलङ्कृतम्।
दृष्ट्वा कृष्णस्य कृपया सुदामा तरुणोऽभवत्॥ ७५

बुभुजेऽलम्पटो विप्रः समृद्धिं स्वामहैतुकीम्।
मनसा जायया त्यक्ष्यञ्ज्ञानवैराग्यभक्तितः॥ ७६

उन्होंने जैसी प्रीति की है, परिणाम भी उन्हें वैसा ही प्राप्त होगा। कृष्णके माता-पिताको कंसने कारागारमें डाल दिया था, तब पराये घर अर्थात् नन्दजीके यहाँ वे पले-बढ़े। आज धन होनेपर भी वे वैसे ही निर्धन हैं, फिर मुझे धन कैसे देंगे?॥ ६४-६५॥

दूसरेके घरको रत्नोंसे भरा देखकर कोई कामना नहीं करनी चाहिये। ललाटमें जो कुछ विधिने लिखा है, उससे अन्यथा नहीं होता।'' मन-ही-मन यों कहते हुए सुदामाजी अपनी पुरीमें आ पहुँचे। पुरीको देखकर वे चकित हो गये। बड़े-बड़े दरवाजे, ध्वजाओंसे सुशोभित सोनेके किले और महल खड़े हैं। विचित्र तोरण और कलशोंसे वह सुशोभित है। नगरी सज्जनोंसे भरी और उसमें इतने रत्न हैं कि दूसरी द्वारकापुरीकी-सी ही शोभा हो रही है॥ ६६—६८॥

ब्राह्मणने कहा—'यह क्या है? यह किसका स्थान है?' वे रास्ते चलते रहे। नगरके नर-नारियोंने उन्हें साथ ले चलना चाहा; पर वे गये नहीं। यह देखकर दास-दासियोंने अपनी स्वामिनी (सुदामाकी पत्नी)-के पास जाकर सुदामाजीके आनेकी बात कही। उनको बड़ा विस्मय हुआ और वे साक्षात् लक्ष्मीरूपा ब्राह्मणी बड़े सम्मानके साथ पतिके स्वागतके लिये शिविकापर सवार होकर दास-दासियोंके साथ घरसे निकलीं। सुदामा इधर-उधर घूम रहे थे। पत्नीने अपना मुख दिखाकर उन्हें विश्वास कराया। सुदामाजी स्वर्ण-रत्नादिसे विभूषित, प्रभा और रूपसे सम्पन्न, विमानवासिनी दूसरी लक्ष्मीकी तरह अपनी तरुणी भार्याको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने समझा—'यह सब श्रीकृष्णकी ही कृपा है'॥ ६९—७३॥

भोजनकी सामग्री, रत्न, ऐश्वर्य, पर्यङ्क, व्यजन, आसन, चँदोवे, स्वर्णपात्र और तोरण आदिसे सुसज्जित अपनी पुरीमें सुदामाजीने पत्नीके साथ प्रवेश किया। उनका घर तो श्रीकृष्णके भवनके समान हो गया था। श्रीकृष्णकी कृपासे सुदामा भी तरुण हो गये, पर विषयोंसे सर्वथा अनासक्त रहकर वे बिना किसी हेतुके—अनायास प्राप्त हुई समृद्धिका उपभोग करने लगे। वे अपनी पत्नीके साथ ज्ञान, वैराग्य और

चकार तर्कनां विप्रः कुतो मम समृद्धयः।
दत्ता ब्रह्मण्यदेवेन देवानामपि दुर्लभाः॥ ७७

ईदृशीं सम्पदं दत्वा नावोचत् किमपि स्वयम्।
मम तण्डुलमुष्टिञ्च प्रीत्या प्रत्यग्रहीद्धरिः॥ ७८

तस्य सख्यञ्च दास्यञ्च भूयान्मे जन्मजन्मनि।
तत्पदाम्बुरुहध्यानात् तरिष्येऽहं भवार्णवम्॥ ७९

विचिन्त्य चेत्थं मनसा सुदामा
पत्न्यावृतः कृष्णपदारविन्दे।
मनश्च कृत्वा धनमेव विप्रान्
दत्वा हरेर्धाम परं जगाम॥ ८०

एतच्छ्रीकृष्णदेवस्य चरितं शृणुयान्नरः।
दारिद्र्यान्मुच्यते शीघ्रं भक्तो भगवतो भवेत्॥ ८१

श्रीद्वारकाया नृप खण्डमेतन्
मया तवाग्रे कथितं सुपुण्यम्।
कीर्तिं कुलं भुक्तिमतीव मुक्तिं
ददाति राज्यञ्च सदैव शृण्वताम्॥ ८२

भक्तिके द्वारा उस सम्पत्तिको त्यागनेका विचार करके मन-ही-मन सोचने लगे—'मेरे पास इतनी समृद्धि कहाँसे आयी? यह देव-दुर्लभ सम्पत्ति ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णकी ही दी हुई है। इतनी सम्पत्ति देकर भी उन्होंने स्वयं मुझसे कुछ कहा भी नहीं। मेरे चिउड़ोंके दानोंको मुट्ठीमें लेकर बड़ी प्रीतिसे उन्होंने भोग लगाया॥ ७४—७८॥

जन्म-जन्ममें मुझे उन्हींका सख्य और दास्य प्राप्त हो। मैं उनके चरण-कमलोंका ध्यान करके संसार-सागरसे पार हो जाऊँगा'॥ ७९॥

सुदामाने मन-ही-मन इस प्रकारका निश्चय करके पत्नीके साथ श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें अपना मन लगा दिया और सारा धन ब्राह्मणोंको बाँटकर भगवान्‌के धाममें चले गये॥ ८०॥

जो मनुष्य इस श्रीकृष्ण-चरितका श्रवण करता है, वह दरिद्रतासे मुक्त होकर उत्तम भगवद्भक्त हो जाता है॥ ८१॥

नरेश्वर! तुम्हारे सामने इस पुण्यमय द्वारकाखण्ड-का वर्णन किया गया। जो इस खण्डका सदा श्रवण करते हैं, उन्हें उत्तम कीर्ति, कुल, अतिशय भुक्ति-मुक्ति और राज्य प्राप्त होता है॥ ८२॥

॥ इति श्रीगर्गसंहितायां द्वारकाखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे सुदामाविप्रोपाख्यानवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'सुदामा ब्राह्मणके उपाख्यानका वर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

॥ द्वारकाखण्ड सम्पूर्ण ॥

श्रीगर्ग-संहिता

[सप्तम खण्ड]

विश्वजित्खण्ड

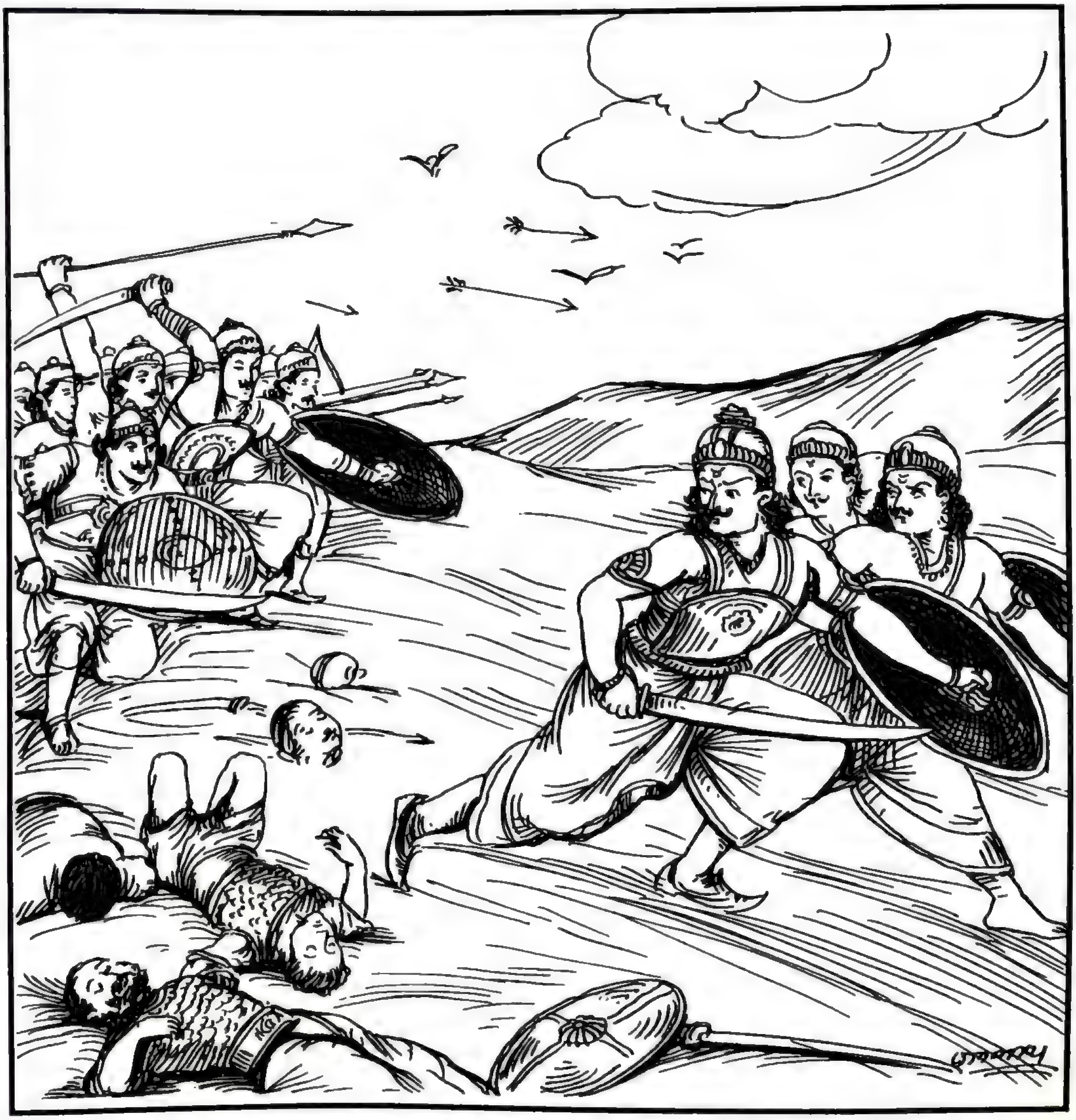

यादववीरोंसे भयभीत शिशुपालकी सेनाका पलायन

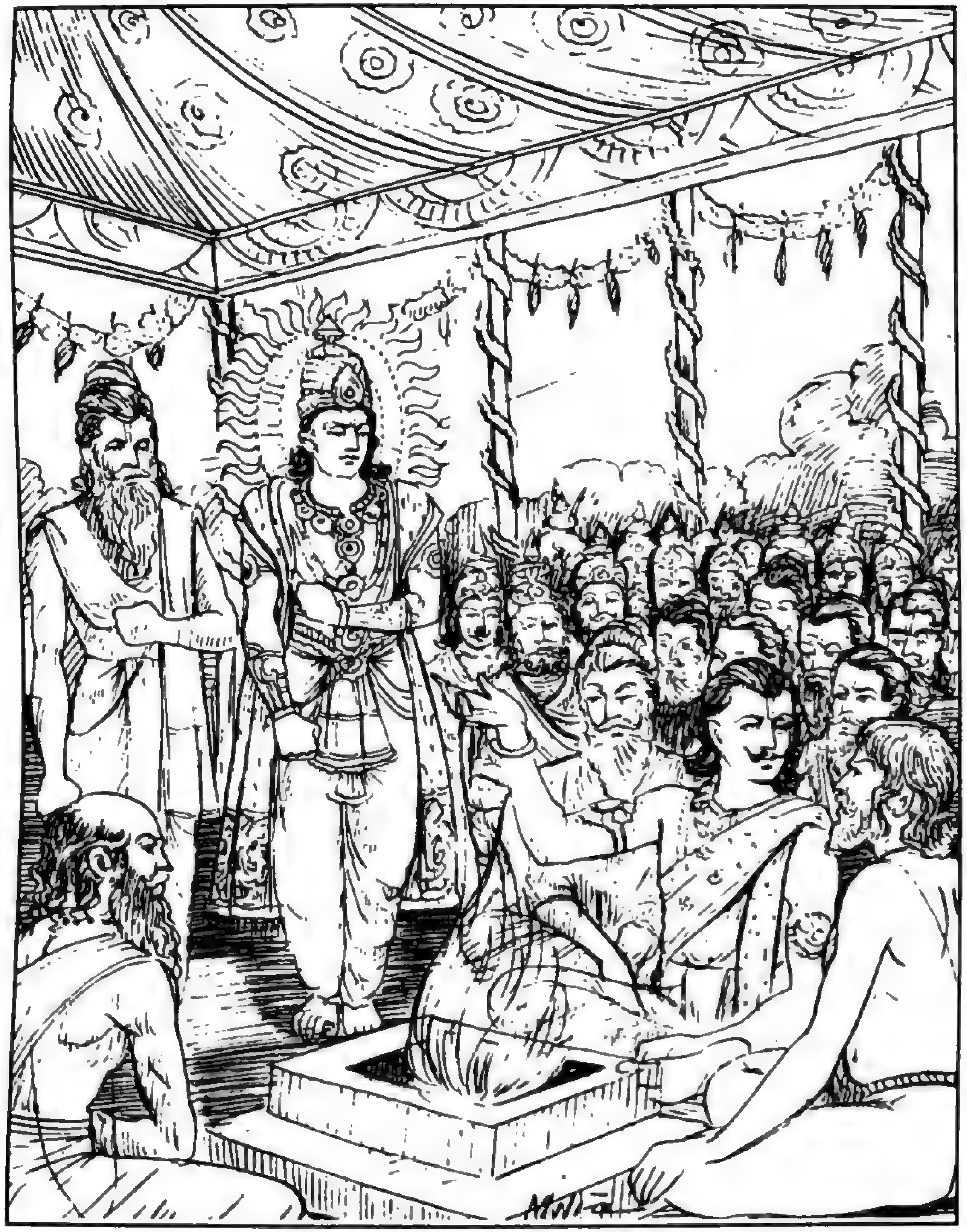

राजा मरुतद्वारा भव्य यज्ञका आयोजन

[विश्वजित्‌ख० अ० १]

महाराज उग्रसेनद्वारा श्रीकृष्णसे परामर्श

[विश्वजित्‌ख० अ० २]

॥ श्रीहरि: ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

विश्वजित्खण्ड

पहला अध्याय

अविक्षितपुत्र राजर्षि मरुत्तके यज्ञानुष्ठानका वर्णन तथा भगवान् श्रीविष्णुद्वारा उन्हें वरकी प्राप्ति और उग्रसेनके रूपमें उनका प्रादुर्भाव

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च॥ १

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ २

श्रीगर्ग उवाच

इत्थं श्रीकृष्णचरितं मया ते कथितं मुने।
चतुष्पदार्थदं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३

शौनक उवाच

बहुलाश्वो मैथिलेन्द्रः श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः।
किं पप्रच्छाथ देवर्षिं तन्मे ब्रूहि तपोधन॥ ४

श्रीगर्ग उवाच

उग्रसेनं यादवेन्द्रं श्रीकृष्णेन कृतं मुने।
श्रुत्वातिविस्मितो राजा नारदं प्राह मैथिलः॥ ५

बहुलाश्व उवाच

को वायं मरुतो राजा केन पुण्येन भूतले।
यादवेन्द्रो महाबुद्धिरुग्रसेनो बभूव ह॥ ६

यस्य श्रीकृष्णचन्द्रोऽपि सहायोऽभूद्धरिः स्वयम्।
तस्याहो महिमानं मे ब्रूहि देवर्षिसत्तम॥ ७

सबके हृदयमें वास करनेवाले सर्वसाक्षी वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—चतुर्व्यूहस्वरूप आप भगवान्‌को नमस्कार है॥ १॥

मैं अज्ञानरूपी रतौंधीके रोगसे अंधा हो रहा था। जिन्होंने ज्ञानाञ्जनकी शलाकासे मेरी दिव्य दृष्टि खोल दी है, उन श्रीगुरुदेवको मेरा नमस्कार है॥ २॥

श्रीगर्गजीने कहा—मुने! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र मैंने तुमसे कह सुनाया, जो मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका देनेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ३॥

शौनकने कहा—तपोधन! श्रीकृष्णके प्रिय भक्त तथा श्रीहरिमें प्रगाढ़ प्रीति रखनेवाले मैथिलराज बहुलाश्वने फिर देवर्षि नारदसे क्या पूछा, वही प्रसङ्ग मुझे सुनाइये॥ ४॥

श्रीगर्गजी बोले—मुने! भगवान् श्रीकृष्णने [मरुत्तके अवतार] उग्रसेनको यादवोंका राजा बनाया, यह सुनकर मिथिलानरेश बहुलाश्वको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने नारदजीसे प्रश्न किया॥ ५॥

बहुलाश्व बोले—देवर्षे! ये महाराज मरुत्त (मरुत्त) कौन थे? ये किस पुण्यसे भूतलपर यदुवंशियोंके परम बुद्धिमान् राजा उग्रसेन हो गये? जिनके स्वयं श्रीहरि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी सहायक हुए, उनकी महिमा अद्भुत है। देवर्षिशिरोमणे! उनकी महत्ता क्या थी? यह मुझे बताइये॥ ६-७॥

श्रीनारद उवाच

सूर्यवंशोद्भवो राजा चक्रवर्ती कृते युगे।
यज्ञं चकार विधिवन्मरुतो यो जगज्जितम्॥ ८

महासम्भृतसम्भारैर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे।
संवर्तं मुनिशार्दूलं गुरुं कृत्वा हि दीक्षितः॥ ९

पञ्चयोजनविस्तीर्णः कुण्डोऽभूद्यस्य चाध्वरे।
योजनं ब्रह्मकुण्डस्तु गव्यूतिः पञ्च कुण्डकाः॥ १०

मेखला गर्तविस्तारवेदीभिर्निर्मिता दश।
सहस्रहस्तमुच्चाङ्गो यज्ञस्तम्भो बभौ महान्॥ ११

विंशद्योजनविस्तीर्णः सौवर्णो यज्ञमण्डपः।
वितानतोरणै रेजे कदलीखण्डमण्डितः॥ १२

ब्रह्मरुद्रादयो देवाः सगणास्तत्र चागताः।
ऋषयो मुनयः सर्वे तस्य यज्ञं समाययुः॥ १३

होतारो दश लक्षाणि दश लक्षाणि दीक्षिताः।
अध्वर्यवः पञ्चलक्षमुद्गातारस्तथा परे॥ १४

आहूतास्तत्र विद्वांसश्चतुर्वेदविदो द्विजाः।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञाः कोटिशोऽन्ये प्रपूजिताः॥ १५

हस्तिशुण्डासमां धारां भुक्त्वाज्यस्य हुताशनः।
अजीर्णं प्राप तद्यज्ञे न चित्रं विद्धि मैथिल॥ १६

येभ्यो भागं वदन्तीह विश्वेदेवाः सभासदः।
तेभ्यस्तेभ्यो ददुर्वाताः परिवेष्टार एव ते॥ १७

केऽपि जीवास्त्रिलोक्यां तु न बभूवुर्बुभुक्षिताः।
सर्वे देवास्तु सोमेन ह्यजीर्णत्वमुपागताः॥ १८

संवर्ताय ददौ राज्यं जम्बूद्वीपस्य चाध्वरे।
गजानां हेमभाराणां नियुतानि चतुर्दश॥ १९

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! सत्ययुगमें सूर्यवंशी राजा मरुत्त चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने विधिपूर्वक विश्वजित्-यज्ञका अनुष्ठान किया था। वे हिमालयके उत्तर भागमें बहुत बड़ी सामग्री एकत्र करके, मुनिश्रेष्ठ संवर्तको आचार्य बनाकर यज्ञके लिये दीक्षित हुए॥ ८-९॥

उनके यज्ञमें पाँच योजन विस्तृत कुण्ड बना था। एक योजनका तो ब्रह्मकुण्ड था और दो-दो कोसके पाँच कुण्ड और बने थे। कुण्डके गर्तका जो विस्तार था, तदनुसार वेदियोंसे दस मेखलाएँ बनी थीं। उस यज्ञमण्डपमें जो स्तम्भ बना था, उसकी ऊँचाई एक हजार हाथकी थी। वह महान् यज्ञस्तम्भ बड़ी शोभा पाता था॥ १०-११॥

उसमें सोनेका यज्ञमण्डप बना था, जिसका विस्तार बीस योजन था। चँदोवों, बंदनवारों और कदलीखण्डसे वह यज्ञमण्डप मण्डित था। उस यज्ञमें ब्रह्मा-रुद्र आदि देवता अपने गणोंके साथ पधारे थे। समस्त ऋषि-मुनि स्वयं उस यज्ञमें आये थे। उस यज्ञमें दस लाख होता, दस लाख दीक्षित, पाँच लाख अध्वर्यु और उद्गाता अलग थे॥ १२—१४॥

वहाँ चारों वेदोंके विद्वान् ब्राह्मण बुलाये गये थे, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थतत्त्वके ज्ञाता थे। और भी करोड़ों ब्राह्मण उसमें पूजित हुए थे। उस यज्ञमें हाथीकी सूँड़के समान मोटी घृत-धाराओंकी आहुति दी गयी थी, जिसको खाकर अग्निदेवको अजीर्णका रोग हो गया। मिथिलेश्वर! उस यज्ञके विषयमें ऐसा होना कोई विचित्र बात न जानो॥ १५-१६॥

उस यज्ञमें विश्वेदेवगण सभासद् थे। वे जिन-जिनके लिये भाग देना आवश्यक बताते थे, उन-उनके लिये भागका परिवेषण (परोसनेका कार्य) स्वयं मरुद्गण करते थे। उस यज्ञके समय त्रिलोकीमें कोई भी ऐसे जीव नहीं थे, जो भूखे रह गये हों। सम्पूर्ण देवताओंको सोमरस पीते-पीते अजीर्ण हो गया था॥ १७-१८॥

यजमान राजा मरुत्तने उस यज्ञमें आचार्य संवर्तको जम्बूद्वीपका राज्य दे दिया। इसके सिवा चौदह लाख हाथी, चौदह लाख भार सुवर्ण, सौ

शतार्बुदं हयानां तु यज्ञान्ते दक्षिणां नृप।
कोटिशो नव रत्नानां महार्हाणां महात्मने॥ २०

हयानां पञ्चसाहस्रं गजानां शतमेव च।
शतभारं सुवर्णानां ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ॥ २१

जलभोजनपात्राणि हैमानि प्रस्फुरन्ति च।
भुक्त्वा तानि विसृज्याशु गतास्तुष्टा द्विजातयः॥ २२

विप्रत्यक्तैः स्वर्णपात्रैरुच्छिष्टैर्नृपवर्जितैः।
हिमाद्रिपार्श्वे शैलोऽभूदद्यापि शतयोजनम्॥ २३

मरुतस्य यथा यज्ञो न तथान्यस्य कर्हिचित्।
त्रिलोक्यां शृणु राजेन्द्र न भूतो न भविष्यति॥ २४

यज्ञकुण्डाद्विनिर्गत्य परिपूर्णतमः स्वयम्।
आत्मानं दर्शयामास मरुताय महात्मने॥ २५

तमालोक्य हरिं नत्वा कृताञ्जलिपुटो नृपः।
गदितुं न समर्थोऽभूद्रोमाञ्ची प्रेमविह्वलः॥ २६

तं प्रेमपूरितं दृष्ट्वा पतितं पादयोर्नतम्।
उवाच भगवान् साक्षान्मेघगम्भीरया गिरा॥ २७

श्रीभगवानुवाच

राजंस्त्वयाहं विनयेन तोषितो
निष्कारणैर्यज्ञवरैः समर्चितः।
वरं परं ब्रूहि महामते त्वरं
दास्यामि देवैरपि दुर्लभं दिवि॥ २८

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा तु राजा मरुतः कृताञ्जलिः
प्रदक्षिणीकृत्य हरिं परेश्वरम्।
सम्पूज्य भक्त्या विशदोपचारकै-
र्नत्वा भृशं गद्गदया गिराब्रवीत्॥ २९

मरुत उवाच

न वेद्म्यहं त्वच्चरणारविन्दतो
वरं परं श्रीपुरुषोत्तमोत्तम।

अर्बुद घोड़े तथा नौ करोड़ बहुमूल्य रत्न भी यज्ञान्तमें महात्मा आचार्यको दक्षिणाके रूपमें दिये॥ १९-२०॥

प्रत्येक ब्राह्मणको उन्होंने पाँच-पाँच हजार घोड़े, सौ-सौ हाथी और सौ-सौ भार सुवर्ण प्रदान किया। जलपात्र और भोजनपात्र सब सुवर्णके बने हुए थे, जो अत्यन्त उद्दीप्त दिखायी देते थे। उनमें भोजन करके तथा उन्हें फेंककर सब ब्राह्मण संतुष्ट होकर शीघ्र ही विदा हुए। ब्राह्मणोंके फेंके हुए उच्छिष्ट स्वर्णपात्रोंसे हिमालयके पार्श्वमें सौ योजनका सुवर्णमय पर्वत बन गया था, जो आज भी देखा जा सकता है॥ २१—२३॥

राजा मरुत्तका जैसा यज्ञ हुआ, वैसा दूसरे किसी राजाका कभी नहीं हुआ। राजेन्द्र! सुनो, त्रिलोकीमें वैसा यज्ञ न हुआ है, न होगा। उस यज्ञकुण्डमें साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होकर महात्मा राजा मरुत्तको अपने स्वरूपका दर्शन कराया था॥ २४-२५॥

उन श्रीहरिका दर्शन करके, उनके चरणोंमें माथा नवाकर, राजा मरुत्त दोनों हाथ जोड़े खड़े रहे; कुछ बोल न सके। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे प्रेमसे विह्वल हो गये। इस तरह उन प्रेमपूरित नरेशको अपने चरणोंमें प्रणत हुआ देख साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले— ॥ २६-२७॥

श्रीभगवान्ने कहा—राजन्! तुमने अपने विनयसे मुझे संतुष्ट किया है। निष्कामभावसे सम्पादित उत्तम यज्ञोंद्वारा मेरी पूजा की है। महामते! तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँग लो। मैं तुम्हें वह वरदान दूँगा, जो स्वर्गके देवताओंके लिये भी दुर्लभ है॥ २८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! राजा मरुत्तने भगवान्का उपर्युक्त वचन सुनकर, हाथ जोड़ परिक्रमा करके, उन परमेश्वर हरिका परम भक्तिभावसे विशद उपचारोंद्वारा पूजन किया और प्रणाम करके अत्यन्त गद्गद वाणीमें कहा— ॥ २९॥

मरुत्त बोले—श्रीपुरुषोत्तमोत्तम! आपके चरणार-विन्दोंसे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम वर मैं नहीं जानता।

समेत्य गङ्गां तृषितातिदुर्धियः
खनन्ति कूपं हि यथा नरेतराः॥ ३०

तथापि याचे तव वाक्यगौरवात्
पादारविन्दं हृदयारविन्दात्।
कदापि मे मा व्रजतु व्रजेश्वर
मूलं चतुर्णां विदुरर्थसम्पदाम्॥ ३१

जैसे प्यास लगनेपर दुर्बुद्धि नरपशु गङ्गाजीके तटपर पहुँचकर भी प्यास बुझानेके लिये कुआँ खोदते हैं, (उसी प्रकार आपके चरणारविन्दोंको पाकर दूसरे किसी वरकी इच्छा करना दुर्बुद्धिका ही परिचय देना है) तथापि हे व्रजेश्वर! आपकी आज्ञाका गौरव रखनेके लिये मैं यही वर माँगता हूँ कि मेरे हृदय-कमलसे आपका चरणारविन्द कदापि दूर न जाय; क्योंकि वही चारों पुरुषार्थों तथा अर्थ-सम्पदाओंका मूल कहा गया है॥ ३०-३१ ॥

श्रीभगवानुवाच

धन्यास्ति राजंस्तव निर्मला मतिः
प्रलोभितस्यापि वरैर्न कामभृत्।
तथापि मत्तो वरयेप्सितं वरं
विना फलं भक्तसुखान्न मे सुखम्॥ ३२

श्रीभगवान् बोले—राजन्! तुम्हारी निर्मल मति धन्य है। तुम्हें वरदानका लोभ दिये जानेपर भी तुम्हारी बुद्धिमें किसी कामनाका उदय नहीं हुआ है। तथापि तुम मुझसे कोई अभीष्ट वर माँग लो; क्योंकि फल देकर भक्तको सुखी किये बिना मुझे सुख नहीं मिलता॥ ३२ ॥

मरुत्त उवाच

देयं यदा मे वरमीप्सितं प्रभो
वैकुण्ठलोकं कुरुताद्धरातले।
रक्ष स्थितं मां निजभक्तवत्सल
तस्मिन् पुरे भक्तजनैः परैः सह॥ ३३

मरुत्तने कहा—प्रभो! यदि मुझे अभीष्ट वर देना ही है तो इस भूतलपर वैकुण्ठलोकको स्थापित कर दीजिये और भक्तवत्सल! उसी पुरमें श्रेष्ठ भक्तजनोंके साथ मैं निवास करूँ और आप मेरी रक्षा करते रहें॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच

अस्मिन् मनौ दैवमनोरथाब्धिं
गतेषु विंशेषु युगेषु चाष्टौ।
गत्वाथ नाकं धरणीं समेत्य
मया हि गोवत्सपदं करिष्यसि॥ ३४

श्रीभगवान् बोले—राजन्! जबतक इस मन्वन्तरके अट्ठाईस युग बीतेंगे, तबतक तुम स्वर्गका सुख भोगकर अट्ठाईसवें द्वापरमें मेरे साथ पृथ्वीपर आकर अपने मनोरथके समुद्रको गोवत्सकी खुरीके समान बना लोगे। अर्थात् उस समय तुम्हारा यह सारा मनोरथ अनायास ही पूर्ण हो जायगा॥ ३४ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत।
सोऽयं तु मरुतो राजा ह्युग्रसेनो बभूव ह॥ ३५

तं यज्ञं कारयामास राजसूयं हरिः स्वयम्।
किं दुर्लभं त्रिलोक्यां तु भक्तानां मैथिलेश्वर॥ ३६

मरुतस्यापि चरितं यः शृणोति नृपोत्तम।
तस्य ज्ञानं सवैराग्यं भक्तियुक्तं प्रजायते॥ ३७

श्रीनारदजी कहते हैं— मिथिलेश्वर! यों कहकर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण वहीं अन्तर्धान हो गये। वे ही ये राजा मरुत्त उग्रसेन हुए। श्रीहरिने स्वयं उनसे राजसूय-यज्ञ करवाया। मैथिलेश्वर! त्रिलोकीमें कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो भगवद्भक्तोंके लिये दुर्लभ हो? नृपोत्तम! जो मनुष्य मरुत्तके इस चरित्रको सुनता है, उसे भक्तियुक्त ज्ञान और वैराग्यकी प्राप्ति होती है॥ ३५—३७ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीमरुतोपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीमरुत्तका उपाख्यान' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

राजा उग्रसेनके राजसूय-यज्ञका उपक्रम; प्रद्युम्नका दिग्विजयके लिये बीड़ा उठाना और उनका विजयाभिषेक

बहुलाश्व उवाच

कथं चकार विधिवद्राजसूयाध्वरं नृप।
श्रीकृष्णेन सहायेन वदैतन्नितरां मुने॥ १

श्रीनारद उवाच

उग्रसेनः सुधर्मायां कृष्णं सम्पूज्य चैकदा।
नत्वा प्राह प्रसन्नात्मा कृताञ्जलिपुटः शनैः॥ २

उग्रसेन उवाच

भगवन्नारदमुखाच्छ्रुतं यस्य महत्फलम्।
तं यज्ञं राजसूयाख्यं करिष्यामि तवाज्ञया॥ ३

त्वत्पादसेवया पूर्वे मनोरथमहार्णवे।
तेरुर्जगत्तृणीकृत्य निर्भयाः पुरुषोत्तम॥ ४

श्रीभगवानुवाच

सम्यग्व्यवसितं राजन् भवता यादवेश्वर।
यज्ञेन ते जगत्कीर्तिस्त्रिलोक्यां सम्भविष्यति॥ ५

आहूय यादवान् साक्षात्सभां कृत्वाथ सर्वतः।
ताम्बूलवीटिकां धृत्वा प्रतिज्ञां कारय प्रभो॥ ६

ममांशा यादवाः सर्वे लोकद्वयजिगीषवः।
जित्वारीनागमिष्यन्ति हरिष्यन्ति बलिं दिशाम्॥ ७

श्रीनारद उवाच

अथान्धकादीनाहूय शक्रसिंहासने स्थितः।
सुधर्मायां प्राह नृपो धृत्वा ताम्बूलवीटिकाम्॥ ८

उग्रसेन उवाच

यो जयेत्समरे सर्वाञ्जम्बूद्वीपस्थितान्नृपान्।
मनस्वी शक्रकोदण्डी सोऽत्ति ताम्बूलवीटिकाम्॥ ९

बहुलाश्वने पूछा—मुने! राजा उग्रसेनने श्रीकृष्णकी सहायतासे राजसूय-यज्ञका किस प्रकार विधिवत् अनुष्ठान किया, यह मुझे बताइये॥ १॥

श्रीनारदजीने कहा—एक समयकी बात है—सुधर्मा सभामें श्रीकृष्णकी पूजा करके, उन्हें शीश नवाकर प्रसन्नचेता राजा उग्रसेनने दोनों हाथ जोड़कर धीरेसे कहा॥ २॥

उग्रसेन बोले—भगवन्! नारदजीके मुखसे जिसका महान् फल सुना गया है, उस राजसूय नामक यज्ञका यदि आपकी आज्ञा हो तो अनुष्ठान करूँगा। पुरुषोत्तम! आपके चरणोंकी सेवासे पहलेके राजालोग निर्भय होकर, जगत्‌को तिनकेके तुल्य समझकर अपने मनोरथके महासागरको पार कर गये थे॥ ३-४॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—राजन्! यादवेश्वर! आपने बड़ा उत्तम निश्चय किया है। उस यज्ञसे आपकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैल जायगी। प्रभो! सभामें समस्त यादवोंको सब ओरसे बुलाकर पानका बीड़ा रख दीजिये और प्रतिज्ञा करवाइये। समस्त यादव मेरे अंशसे प्रकट हुए हैं। वे लोक, परलोक—दोनोंको जीतनेकी इच्छा करते हैं। वे दिग्विजयके लिये यात्रा करके, शत्रुओंको जीतकर लौट आयेंगे और सम्पूर्ण दिशाओंसे आपके लिये भेंट और उपहार लायेंगे॥ ५—७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर इन्द्रके दिये सिंहासनपर विराजमान राजा उग्रसेनने अन्धक आदि यादवोंको सुधर्मा सभामें बुलवाया और पानका बीड़ा रखकर कहा— ॥ ८॥

उग्रसेन बोले—जो समराङ्गणमें जम्बूद्वीपनिवासी समस्त नरेशोंको जीत सके, वह इन्द्रके समान धनुर्धर मनस्वी वीर यह पानका बीड़ा चबाये॥ ९॥

श्रीनारद उवाच

नृपेषु तूष्णीं प्रगतेषु सत्सु
श्रीरुक्मिणीनन्दन एव चागात्।
जग्राह ताम्बूलचयं महात्मा
नत्वा नृपं मैथिल शम्बरारिः॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! यह सुनकर अन्य सब राजा तो चुपचाप बैठे रह गये, किंतु शम्बर-शत्रु रुक्मिणीनन्दन महात्मा प्रद्युम्नने ही सबसे पहले राजाको प्रणाम करके वह पानका बीड़ा उठा लिया॥१०॥

प्रद्युम्न उवाच

विजित्य समरे सर्वाञ्जम्बूद्वीपस्थितान्नृपान्।
गृहीत्वा च बलिं तेभ्य आगमिष्याम्यहं बलात्॥ ११

अगम्यागमनं बभ्रोर्ब्राह्मणस्य गुरोस्तथा।
हत्या भ्रूणस्य मे भूयान्न कुर्यां कर्म चेदिदम्॥ १२

प्रद्युम्न बोले—मैं समरभूमिमें जम्बूद्वीपनिवासी समस्त राजाओंको जीतकर और उनसे बलपूर्वक भेंट लेकर लौट आऊँगा। यदि मैं यह कार्य न कर सकूँ तो मुझे अगम्या स्त्रीके साथ गमनका, कपिला गौ, ब्राह्मण, गुरु तथा गर्भस्थ शिशुके वधका पाप लगे॥११-१२॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचः शम्बरारेः साधु साध्विति यूथपाः।
ऊचुस्तेषां पश्यतां च तं जग्राह यदूत्तमः॥ १३

गर्गाद्यदुकुलाचार्यान् मुहूर्तं बोध्य यत्नतः।
तत्स्नानं कारयामास मुनिभिर्वेदसूक्तिभिः॥ १४

उग्रसेनोऽथ तिलकं प्रद्युम्नस्य चकार ह।
बलिं दत्वा नमश्चक्रुः सर्वे यादवयूथपाः॥ १५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! शम्बरारि प्रद्युम्नका यह वचन सुनकर समस्त यूथपति 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर साधुवाद देने लगे और उन सबके सामने यदुकुल-तिलक प्रद्युम्नने ही दिग्विजयका बीड़ा उठाया। यदुकुलके आचार्य गर्गजीसे यत्नपूर्वक मुहूर्त पूछकर मुनियोंद्वारा वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक राजाने प्रद्युम्नको स्नान करवाया। स्वयं उग्रसेनने प्रद्युम्नके भालमें तिलक लगाया तथा भेंट देकर समस्त यादवयूथपतियोंने उनको नमस्कार किया॥१३—१५॥

उग्रसेनो ददौ खड्गं प्रद्युम्नाय महात्मने।
कवचं प्रददौ साक्षाद्बलदेवो महाबलः॥ १६

स्वतूणाभ्यां विनिष्कृष्य तूणावक्षयसायकौ।
धनुश्च शार्ङ्गधनुषः समुत्पाद्य ददौ हरिः॥ १७

किरीटकुण्डले दिव्ये पीतं वासो मनोहरम्।
छत्रं च चामरे साक्षाच्छूरो वृद्धो ददौ पुनः॥ १८

शतचन्द्रं ददौ तस्मै वसुदेवो महामनाः।
उद्धवः प्रददौ साक्षान्मालां किञ्जल्किनीं शुभाम्॥ १९

अक्रूरो दक्षिणावर्तं शङ्खं विजयदं ददौ।
श्रीकृष्णकवचं यन्त्रं गर्गाचार्यो ददौ मुनिः॥ २०

उग्रसेनने महात्मा प्रद्युम्नको खड्ग दिया। साक्षात् महाबली बलदेवजीने कवच प्रदान किया। श्रीहरिने अपने तूणीरमेंसे खींचकर अक्षय बाणोंसे भरे हुए दो तरकस दिये तथा अपने शार्ङ्गधनुषसे धनुष उत्पन्न करके उनके हाथमें दिया। वृद्ध शूरसेनने किरीट, दो दिव्य कुण्डल, मनोहर पीताम्बर तथा छत्र और दो चँवर दिये। महामनस्वी वसुदेवने उन्हें शतचन्द्र नामक ढाल दी। साक्षात् उद्धवने सुन्दर किञ्जल्किनी (केसरयुक्त) मंगलमयी माला भेंट की। अक्रूरने विजय नामक दक्षिणावर्त शङ्ख दिया और मुनिवर गर्गाचार्यने श्रीकृष्ण-कवच नामक यन्त्र बाँध दिया॥१६—२०॥

तदैव ह्यागतः शक्रो लोकपालैः सकौतुकः।
आजग्मतुर्ब्रह्मशिवौ देवर्षिगणसंवृतौ॥ २१

उसी समय लोकपालोंसहित देवराज इन्द्र मनमें कौतुक लिये आ गये। देवर्षिगणोंसे घिरे हुए ब्रह्मा तथा शिव भी वहाँ पधारे॥२१॥

प्रद्युम्नाय ददौ शूली त्रिशूलं ज्वलनप्रभम्।
ब्रह्मा ददौ महाराज पद्मरागं शिरोमणिम्॥ २२

पाशी पाशं शक्तिधरः शक्तिं शत्रुविमर्दिनीम्।
वायुश्च व्यजने दिव्ये यमो दण्डं ददौ पुनः॥ २३

रविर्गदां महागुर्वीं कुबेरो रत्नमालिकाम्।
चन्द्रकान्तमणिं चन्द्रः परिघं च तनूनपात्॥ २४

क्षितिश्च पादुके प्रादाद्दिव्ये योगमये परे।
प्रद्युम्नाय ददौ कुन्तं भद्रकाली तरस्विनी॥ २५

हेमाढ्यमुच्चशिखरं सहस्रहयसंयुतम्।
विश्वकर्मकृतं साक्षाद् ब्रह्माण्डान्तर्बहिर्गतम्॥ २६

सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोवेगं घनस्वनम्।
मञ्जीरकिङ्किणीजालं घण्टाटङ्कारभूषणम्॥ २७

रथं ददौ महादिव्यं सहस्रध्वजशोभितम्।
जैत्रं रत्नमयं शक्रः प्रद्युम्नाय महात्मने॥ २८

शङ्खदुन्दुभयो नेदुस्तालवीणादयस्तदा।
मृदङ्गवेणुसन्नादैर्जयध्वनिसमाकुलैः॥ २९

वेदघोषैर्लाजपुष्पैर्मुक्तावर्षसमन्वितैः।
प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ३०

शूलधारी शिवने प्रद्युम्नको अग्निके समान तेजस्वी त्रिशूल दिया। महाराज! ब्रह्माजीने पद्मराग नामक मस्तकमें धारण करनेयोग्य मणि दी॥ २२॥

वरुणने पाश, शक्तिधारी स्कन्दने शत्रुविनाशिनी शक्ति, वायुने दो दिव्य व्यजन और यमराजने यमदण्ड दिये। सूर्यने बड़ी भारी गदा, कुबेरने रत्नोंकी माला, चन्द्रमाने चन्द्रकान्तमणि तथा अग्निदेवने परिघ प्रदान किये। पृथ्वीने दो योगमयी दिव्य पादुकाएँ दीं तथा वेगशालिनी भद्रकालीने प्रद्युम्नको भाला भेंट किया॥ २३—२५॥

इन्द्रने महात्मा प्रद्युम्नको स्वर्णमण्डित, ऊँचे शिखर-वाला, हजार घोड़ोंसे जुता हुआ, ब्रह्माण्डमें अन्दर-बाहर सर्वत्र गमन करनेवाला, हजार पहियोंसे युक्त, मनके समान वेगवाला, मेघके समान ध्वनि करनेवाला, घण्टाके-से शब्दवाले आभूषणों तथा घुँघुरुओंवाली करधनियोंसे सुसज्जित, सहस्रों ध्वजोंसे सुशोभित महादिव्य, रत्नमय तथा विजय दिलानेवाला एक रथ प्रदान किया, जो साक्षात् विश्वकर्माके द्वारा निर्मित था॥ २६—२८॥

उस समय शङ्ख और दुन्दुभियाँ बजने लगीं। ताल और वीणा आदिके शब्द होने लगे। जय-जयकारकी ध्वनिसे युक्त मृदङ्ग और वेणुओंके उत्तम नादसे तथा वेद-मन्त्रोंके घोषसे वहाँका स्थान गूँज उठा। मोतियोंकी वर्षाके साथ खील और फूलोंकी वृष्टि होने लगी। देवताओंने प्रद्युम्नके ऊपर पुष्पोंकी झड़ी लगा दी॥ २९-३०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे प्रद्युम्नविजयाभिषेको नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रद्युम्नका विजयाभिषेक' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

प्रद्युम्नके नेतृत्वमें दिग्विजयके लिये प्रस्थित हुई यादवोंकी गजसेना, अश्वसेना तथा योद्धाओंका वर्णन

श्रीनारद उवाच

अथ नत्वा हरिं कार्ष्णिरुग्रसेनं बलं गुरुम्।
नीत्वाज्ञां रथमारुह्य कुशस्थल्या विनिर्ययौ॥ १

तथा तमनुगाः सर्वे यादवा उद्धवादयः।
भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकाः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण, राजा उग्रसेन, बलरामजी तथा गुरु गर्गाचार्यको नमस्कार करके, उनकी आज्ञा ले, प्रद्युम्न रथपर आरुढ़ हो कुशस्थली पुरीसे बाहर निकले। फिर उनके पीछे समस्त उद्धव आदि यादव, भोजवंशी, वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी, मधुवंशी, शूरवंशी और दशार्हवंशमें उत्पन्न वीर चले॥ १-२॥

तथा स्वभ्रातरः सर्वे गदाद्याः कृष्णनोदिताः।
सपुत्राः सबलाः सर्वे साम्बाद्याश्च महारथाः॥ ३

किरीटिनः कुण्डलिनो लोहकञ्चुकमण्डिताः।
चतुरङ्गबलोपेताः कोटिशस्ते विनिर्ययुः॥ ४

कलापिहंसगरुडमीनतालध्वजै रथैः।
सूर्यमण्डलसङ्काशैश्चञ्चलाश्वनियोजितैः॥ ५

हेमकुम्भैः सशिखरैर्मुक्तातोरणराजितैः।
विडम्बयद्भिर्नितरां वायुवेगमतः परम्॥ ६

चामरान्दोलितैर्दिव्यैर्वीरमण्डलमण्डितैः।
सौवर्णैर्देवधिष्ण्याभै रेजुर्वीरा मनोहराः॥ ७

मदच्युताश्चित्रमुखा हेमजालसमन्विताः।
महोद्भटा गजा उच्चा रणद्घण्टारुणाम्बराः॥ ८

गिरीन्द्रशिखरा भद्रा द्विपेन्द्रान् दिग्विभावितान्।
विडम्बयन्तो दृश्यन्ते राजसैन्ये द्विपा नृप॥ ९

केचिद्भद्रास्तु कथिताः केचिद्भद्रमृगाः परे।
विन्ध्याचलभवाः केचित्केचित्काश्मीरसम्भवाः॥ १०

मलयप्रभवाः केचिद्धिमाद्रिप्रभवाः परे।
मौरङ्गप्रभवाः केचित्कैलासवनसम्भवाः॥ ११

ऐरावतकुलेभाश्च चतुर्दन्ताः कलापिनः।
त्रिशुण्डा ऊर्ध्वभागाश्च गच्छन्ति भुवि चाम्बरे॥ १२

फिर श्रीकृष्णके भाई गद आदि सब वीर श्रीकृष्णकी अनुमति ले पुत्रों और सेनाओंके साथ चल दिये। साम्ब आदि महारथी भी प्रद्युम्नके साथ गये॥ ३॥

वे सभी यादव-वीर किरीट, कुण्डल तथा लोहेके बने हुए कवचसे अलंकृत थे। उनके साथ करोड़ोंकी संख्यामें चतुरङ्गिणी सेना थी। वे सब द्वारकापुरीसे बाहर निकले। उनके रथ मोर, हंस, गरुड, मीन और तालके चिह्नसे युक्त ध्वजोंसे सुशोभित थे, सूर्यमण्डलके समान तेजोमय थे और चञ्चल अश्व उनमें जोते गये थे॥ ४-५॥

उन रथोंके कलश और शिखर सोनेके बने थे, मोतियोंकी बन्दनवारें उनकी शोभा बढ़ाती थीं। वे सभी रथ वायुवेगका अनुकरण करते थे। उनमें दिव्य चँवर डुलाये जा रहे थे। वे वीरोंके समुदायसे सुशोभित तथा सुनहरे देव-विमानोंके समान प्रकाशमान थे, ऐसे रथोंद्वारा उन मनोहर वीरोंकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ६-७॥

उस सेनामें अत्यन्त उद्भट ऊँचे-ऊँचे गजराज थे, जिनके गण्डस्थलसे मद झर रहे थे। उनके मुखमण्डलपर चित्र-विचित्र पत्र-रचना की गयी थी। वे सुनहरे कवचसे सुशोभित थे। उनकी पीठपर लाल रंगकी झूल पड़ी थी और उनके उभय पार्श्वमें लटकाये गये घंटे बज रहे थे। नरेश्वर! उस राजसेनाके हाथी गिरिराजके शिखर-जैसे जान पड़ते थे। वे भद्रजातीय गजेन्द्र विभिन्न दिशाओंमें विद्यमान गजराजों—दिग्गजोंकी नकल करते दिखायी देते थे॥ ८-९॥

कोई भद्रजातीय थे, जिनकी चर्चा की गयी है। दूसरी भद्रमृग जातिके थे। कुछ हाथी विन्ध्याचल पर्वतमें उत्पन्न हुए थे और कुछ काश्मीरमें उत्पन्न हुए थे। कितने ही मलयाचलमें उत्पन्न थे। बहुत-से हिमालयमें पैदा हुए थे। कुछ मुरंगदेशमें उत्पन्न हुए थे और कितने ही कैलासपर्वतके जंगलोंमें पैदा हुए थे॥ १०-११॥

कितनोंके जन्म ऐरावत-कुलमें हुए थे, जिनके चार दाँत थे और उनकी गर्दनोंमें जंजीर (गरदनी या गिराँव) सुशोभित थीं। उनके ऊर्ध्वभागमें तीन-तीन सूँड़ें थीं और वे भूतलपर तथा आकाशमें भी चल सकते थे॥ १२॥

ध्वजायुक्ताः कोटिगजाः कोटिदुन्दुभिसंयुताः।
कोटिसैन्या महामात्यै रत्नमण्डलमण्डिताः॥ १३

गर्जयन्तो घनश्यामा नीलाम्बरविराजिताः।
इतस्ततो विरेजुस्ते बलेऽब्धौ मकरा इव॥ १४

करोड़ों हाथी ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित थे। उनपर करोड़ों दुन्दुभियाँ रखी गयी थीं। उस सेनाके भीतर करोड़ोंकी संख्यामें विद्यमान वे हाथी रत्न-समूहसे मण्डित थे और महावतोंसे प्रेरित होकर चलते थे। गर्जना करते हुए, मेघोंकी घटाके समान काले तथा नीले रंगकी झूलसे आच्छादित वे गजराज उस सैन्य-सागरमें इधर-उधर मगरमच्छोंके समान शोभा पाते थे॥ १३-१४॥

करैर्गुल्मान् समुत्पाट्य क्षेपयन्तोऽर्कमण्डलम्।
कम्पयन्तो भुवं पादैर्मदैरार्द्रीकृताचलाः॥ १५

दुर्गाद्रिगण्डशैलादीन् पातयन्तः शिरःस्थलैः।
खण्डयन्तश्च शत्रूणां बलमेतादृशा गजाः॥ १६

वे अपनी सूँड़ोंसे लता-झाड़ियोंको उखाड़कर सूर्यमण्डलकी ओर फेंकते, पैरोंके आघातसे धरतीको कम्पित करते और मदकी वर्षासे पर्वतोंको आर्द्र किये देते थे। वे अपने कुम्भस्थलोंकी टक्करसे दुर्ग, शैल और शिलाखण्डोंको भी गिराने तथा शत्रुसेनाको खण्डित करनेकी शक्ति रखते थे। उस यादव-सेनामें ऐसे-ऐसे हाथी विद्यमान थे॥ १५-१६॥

तुरङ्गा निर्गता राजन् केचिन्मात्स्याः कलिन्दजाः।
औशीनराः कौसलाश्च वैदर्भाः कुरुजाङ्गलाः॥ १७

काम्बोजजाः सृञ्जयजाः कैकेयाः कुन्तिसम्भवाः।
दारदाः केरला आङ्गा वाङ्गा विकटसम्भवाः॥ १८

राजन्! गजसेनाके पीछे घोड़ोंकी सेना निकली। उन घोड़ोंमें कुछ मत्स्यदेशके, कुछ कलिन्दपर्वतके, कुछ उशीनरदेशके, कुछ कोसल, विदर्भ और कुरुजाङ्गलदेशके थे। कोई काम्बोजीय (काबुली), कोई सृञ्जयदेशीय, कोई केकय और कुन्ति देशोंके पैदा हुए थे। कोई दरद, केरल, अङ्ग, वङ्ग और विकट जनपदोंमें पैदा हुए थे॥ १७-१८॥

कौङ्कणाः कौटकाः केचित्कार्णाटा गौर्जरा हयाः।
सौवीराः सैन्धवाः केचित्पाञ्चाला अर्बुदाः परे॥ १९

काच्छाश्च केचिदानर्ता गान्धारा मालवादयः।
महाराष्ट्रभवाः केचित्तैलङ्गा जलसम्भवाः॥ २०

कितने ही कोङ्कण, कोटक, कर्नाटक तथा गुजरातमें पैदा हुए घोड़े थे। कोई सौवीर देशके और कोई सिंधदेशके थे। कितने ही पञ्चाल (पंजाब) और आबूमें उत्पन्न हुए थे। कितने ही कच्छदेशीय घोड़े थे। कुछ आनर्त, गन्धार और मालवदेशके अश्व थे। कुछ महाराष्ट्रमें उत्पन्न, कुछ तैलंगदेशमें पैदा हुए और कुछ दरियाई घोड़े थे॥ १९-२०॥

परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
वाजिशालासु वर्तन्ते तेऽपि सर्वे विनिर्गताः॥ २१

श्वेतद्वीपाच्च वैकुण्ठात्तथाजितपदान्नृप।
रमावैकुण्ठलोकाच्च प्राप्ता ये तेऽपि निर्गताः॥ २२

परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णकी अश्वशालाओंमें जो घोड़े विद्यमान थे, वे भी सब-के-सब उस दिग्विजय-यात्रामें निकल पड़े। राजन्! कुछ श्वेतद्वीपसे आये थे। कुछ जो वैकुण्ठ, अजितपद तथा रमावैकुण्ठ-लोकसे प्राप्त हुए अश्व थे, वे भी उस सेनाके साथ निकल गये॥ २१-२२॥

हेमहारसमायुक्ता मुक्तामालामनोहराः।
शिखामणिमहारश्मिसेविताः सुपरिच्छदाः॥ २३

चामरैर्मण्डिताः पुच्छमुखपादस्फुरत्प्रभाः।
यादवानां महासैन्ये दृश्यन्ते चेदृशा हयाः॥ २४

वायुवेगा मनोवेगा न स्पृशन्तः पदैर्भुवम्।
अपक्वसूत्रेष्वतिगा बुद्बुदेष्वपि मैथिल॥ २५

व्रजन्तः पारदमनु जालेषूर्णाभवेषु च।
दृश्यन्तेऽपि निराधाराः स्फारावारिषु मैथिल॥ २६

गण्डशैलनदीदुर्गगर्तप्रासादसञ्चयान्।
विलङ्घयन्तः सततं चञ्चलास्ते तुरङ्गमाः॥ २७

मायूरीं तैत्तिरीं क्रौञ्चीं हंसीं ये खाञ्जनीं गतिम्।
कुर्वन्तो भुवि नृत्यन्तो मैथिलेन्द्र इतस्ततः॥ २८

केचित्सपक्षा दिव्याङ्गाः श्यामकर्णा मनोहराः।
पीतपुच्छाश्चन्द्रवर्णा वाजिशालाविनिर्गताः॥ २९

उच्चैःश्रवःकुले जाताः सूर्यवाजिभवाः परे।
अश्विनीसुतविद्याढ्या वरुणेन प्रयोजिताः॥ ३०

केचिन्मन्दारभाः केचिच्चित्रवर्णा मनोहराः।
अश्विनीपुष्पसङ्काशाः स्वर्णाभा हरितप्रभाः॥ ३१

पद्मरागप्रभाः केचित्सर्वलक्षणलक्षिताः।
कोटिशः कोटिशो राजन्नन्येऽपि निर्गता हयाः॥ ३२

वे सोनेके हारोंसे सुशोभित और मोतियोंकी मालाओंसे मनोहर दिखायी देते थे। उनकी शिखामें मणि पहिनायी गयी थी, जिसकी सुदूरतक फैली हुई किरणें उन अश्वोंकी शोभा बढ़ाती थीं और उनके साज-सामान भी बहुत सुन्दर थे॥ २३॥

चामर (कलँगी)-से अलंकृत हुए उन घोड़ोंकी पूँछ, मुख और पैरोंसे प्रभा-सी छिटक रही थी। यादवोंकी उस विशाल सेनामें ऐसे-ऐसे घोड़े दृष्टिगोचर होते थे, जो वायु और मनके समान वेगशाली थे। वे अपने पैरोंसे धरतीका तो स्पर्श ही नहीं करते थे—उड़ते-से चलते थे। मिथिलेश्वर! [उनकी गति ऐसी हलकी थी कि] वे कच्चे सूतोंपर और बुद्बुदोंपर भी चल सकते थे॥ २४-२५॥

हे मिथिलेश्वरि! पारेपर, मकड़ीके जालोंपर और पानीके फुहारोंपर भी वे निराधार चलते दिखायी देते थे। वे चञ्चल अश्व पर्वतोंकी घाटियों, नदियों, दुर्गमस्थानों, गड्ढों और ऊँचे-ऊँचे प्रासादोंको भी निरन्तर लाँघते जा रहे थे। मैथिलेन्द्र! वे इधर-उधर मोर, तीतर, क्रौञ्च (सारस), हंस और खञ्जरीटकी गतिका अनुकरण करते हुए पृथ्वीपर नाचते चलते थे॥ २६—२८॥

कई अश्व पाँखवाले थे। उनके शरीर दिव्य थे, कान श्यामवर्णके थे, आकृति मनोहर थी। पूँछके बाल पीले रंगके थे और शरीरकी कान्ति चन्द्रमाके समान श्वेत थी। वे भी [श्रीकृष्णकी] अश्वशालासे निकले थे। कुछ घोड़े उच्चैःश्रवाके कुलमें उत्पन्न हुए थे, कुछ सूर्यदेवके घोड़ोंसे पैदा हुए थे। कितने ही अश्व अश्विनीकुमारोंकी पढ़ायी हुई विद्या (चलनेकी कला)-से सम्पन्न थे। कितनोंको वरुणदेवताने अच्छी चालकी शिक्षा दी थी॥ २९-३०॥

किन्हींकी कान्ति मन्दार-पुष्पके समान थी। कुछ मनोहर अश्व चितकबरे थे। कितनोंके रंग अश्विनी-पुष्प (कनेर)-के समान पीले थे। बहुत-से अश्व सुनहरी तथा हरी कान्तिसे उद्भासित थे। कितने ही अश्व पद्मराग-मणिकी-सी कान्तिवाले थे। वे सभी समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त दिखायी देते थे। राजन्! इनके सिवा और भी कोटि-कोटि अश्व कुशस्थलीपुरीसे बाहर निकले॥ ३१-३२॥

धनुर्भृतो भटाः सैन्ये संग्रामे लब्धकीर्तयः।
शक्तित्रिशूलासिगदावर्मपाशधराः परे॥ ३३

वर्षन्तः शस्त्रधाराभिः प्रलयाब्धिसमा नृप।
दिग्गजा इव दृश्यन्ते मर्दयन्तो ह्यरीन् मृधे॥ ३४

एवं विनिर्गतं राजन् यदूनां विपुलं बलम्।
दृष्ट्वा सुरासुराः सर्वे विसिस्मुः परमाद्भुतम्॥ ३५

सेनाके धनुर्धर वीर ऐसे थे, जिन्हें कई युद्धोंमें अपने शौर्यके लिये कीर्ति प्राप्त हो चुकी थी। उन सबने शक्ति, त्रिशूल, तलवार, गदा, कवच और पाश धारण कर रखे थे। नरेश्वर! वे शस्त्र-धाराओंकी वर्षा करते हुए प्रलयकालके महासागरके समान प्रतीत होते थे। रणभूमिमें दिग्गजोंकी भाँति शत्रुओंको रौंदते और कुचलते दिखायी देते थे। राजन्! इस प्रकार यादवोंकी वह विशाल सेना निकली, जो अत्यन्त अद्भुत थी। उसे देखकर देवता और असुर—सभी विस्मित हो उठे॥ ३३—३५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यादवसैन्यगमनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यादवसेनाका प्रयाण' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

सेनासहित यादव वीरोंकी दिग्विजयके लिये यात्रा

श्रीनारद उवाच

इत्थं सेनावृतं वीरं प्रद्युम्नं धन्विनां वरम्।
श्रीकृष्णबलदेवाभ्यामुग्रसेन उवाच ह॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार सेनासे घिरे हुए धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ वीर प्रद्युम्नसे श्रीकृष्ण-बलदेवसहित उग्रसेनने कहा॥ १॥

उग्रसेन उवाच

हे प्रद्युम्न महाप्राज्ञ श्रीकृष्णकृपया त्वरम्।
विजित्य नृपतीन् सर्वान् द्वारकामागमिष्यसि॥ २

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं जडं स्त्रियम्।
प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित्॥ ३

उग्रसेन बोले—हे महाप्राज्ञ प्रद्युम्न! तुम श्रीकृष्णकी कृपासे समस्त राजाओंपर विजय प्राप्त करके शीघ्र ही द्वारकामें लौट आओगे। इस बातको ध्यानमें रखो कि धर्मज्ञ पुरुष मतवाले, असावधान, उन्मत्त (पागल), सोये हुए, बालक, जड, नारी, शरणागत, रथहीन और भयभीत शत्रुको नहीं मारते॥ २-३॥

राज्ञो हि परमो धर्म आर्तानामार्तिनिग्रहः।
उत्पथानां वधश्चेत्थमाततायी वधार्हणः॥ ४

पुमान् योषिदुत क्लीब आत्मसम्भावितोऽधमः।
भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः॥ ५

संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी पीड़ाका निवारण तथा कुमार्गमें चलनेवालोंका वध राजाके लिये परम धर्म है। इस प्रकार जो आततायी है (अर्थात् दूसरोंको विष देनेवाला, पराये घरोंमें आग लगानेवाला, क्षेत्र और नारीका अपहरण करनेवाला है), वह अवश्य वधके योग्य है। स्त्री, पुरुष या नपुंसक कोई भी क्यों न हो, जो अपने-आपको ही महत्त्व देनेवाले, अधम तथा समस्त प्राणियोंके प्रति निर्दय हैं, ऐसे लोगोंका वध करना राजाओंके लिये वध न करनेके ही बराबर है॥ ४-५॥

नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम्।
आदिराजो नृपान्पूर्वं प्राह स्वायम्भुवो मनुः॥ ६

यो रणे निर्भयो भूत्वा कृत्वाङ्घ्रिं प्रागतो व्यसुः।
स गच्छेद्धाम परमं भित्त्वा मार्तण्डमण्डलम्॥ ७

अर्थात् दुष्टोंके वधसे राजाओंको दोष नहीं लगता। धर्मयुद्धमें शत्रुओंका वध करना प्रजापालक राजाके लिये पाप नहीं है। आदिराजा स्वायम्भुव मनुने पूर्वकालमें राजाओंसे कहा था कि जो रणमें निर्भय होकर आगे पाँव बढ़ाते हुए प्राण त्याग देता है, वह सूर्य-मण्डलका भेदन करके परमधाममें जाता है॥ ६-७॥

भयाद्रणादुपरतस्त्यक्त्वा युद्धे पतिं च यः।
व्रजेद्यः क्षत्रियो भूत्वा स महारौरवं व्रजेत्॥ ८

सेनां रक्षेत्तु राजा हि सेना राजानमेव हि।
सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी॥ ९

जो योद्धा क्षत्रिय होकर भी भयके कारण युद्धसे पीठ दिखाकर रणभूमिमें स्वामीको अकेला छोड़कर पलायन कर जाता है, वह महारौरव नरकमें पड़ता है। राजाका कर्तव्य है कि वह सेनाकी रक्षा करे और सेनाका कर्तव्य है कि वह राजाकी ही रक्षा करे। सूतको चाहिये कि वह संकटमें पड़े हुए रथीका प्राण बचाये और रथी सारथिकी रक्षा करे॥ ८-९॥

यूयं च यादवाः सर्वे समर्थबलवाहनाः।
कार्ष्णिमेवाभिरक्षन्तु कार्ष्णिर्वः परिरक्षतु॥ १०

गावो विप्राः सुरा धर्मश्छन्दांसि भुवि साधवः।
पूजनीयाः सदा सर्वैर्मनुष्यैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः॥ ११

तुम समस्त यादव सामर्थ्यशाली सेना और वाहनसे सम्पन्न हो; अतः तुम सब मिलकर प्रद्युम्नकी ही रक्षा करना और प्रद्युम्न तुमलोगोंकी रक्षा करें। गौ, ब्राह्मण, देवता, धर्म, वेद और साधुपुरुष—इस भूतलपर मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले सभी मनुष्योंके लिये सदा पूजनीय हैं॥ १०-११॥

वेदा विष्णुवचो विप्रा मुखं गावस्तनुर्हरेः।
अङ्गानि देवताः साक्षात्साधवो ह्यसवः स्मृताः॥ १२

श्रीकृष्णोऽयं हरिः साक्षात्परिपूर्णतमः प्रभुः।
येषां चित्ते स्थितो भक्त्या तेषां तु विजयः सदा॥ १३

वेद भगवान् विष्णुकी वाणी हैं, ब्राह्मण उनका मुख हैं, गौएँ श्रीहरिका शरीर हैं, देवता अङ्ग हैं और साधुपुरुष साक्षात् उनके प्राण माने गये हैं। ये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण हरि भक्तिके वशीभूत हो जिनके चित्तमें निवास करते हैं, उन वीरोंकी सदा विजय होती है॥ १२—१३॥

श्रीनारद उवाच

शिरसा जगृहुः साक्षादुग्रसेनस्य शासनम्।
प्रणेमुर्यादवाः सर्वे कृताञ्जलिपुटा नृप॥ १४

उग्रसेनं नृपं शूरं वसुदेवं बलं हरिम्।
ननाम कार्ष्णिः शिरसा गर्गाचार्यं महामुनिम्॥ १५

श्रीकृष्णबलदेवाभ्यां पुरीं याते नृपेश्वरे।
दिग्जयार्थी हरेः पुत्रः प्रययौ यादवैः सह॥ १६

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! समस्त यादवोंने राजा उग्रसेनके इस आदेशको सिर झुकाकर स्वीकार किया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् प्रद्युम्नने मस्तक झुकाकर राजा उग्रसेन, शूर, वसुदेव, बलभद्र, श्रीकृष्ण तथा महामुनि गर्गाचार्यको प्रणाम किया। तदनन्तर श्रीकृष्ण और बलदेवके साथ राजा उग्रसेन यदुपुरीमें चले गये और दिग्विजयकी इच्छावाले श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्नने यादव-सेनाके साथ आगेके लिये प्रस्थान किया॥ १४—१६॥

चतुर्योजनलम्बीत्थं राजमार्गोऽपि यस्य वै।
बभौ हेममयैः सर्वैः शिबिरैर्मैथिलेश्वर॥ १७

अग्रतो वाहिनीयुक्तः कृतवर्मा महाबलः।
ध्वजिनीसहितः पश्चादक्रूरो धन्विनां वरः॥ १८

तत्पश्चादुद्धवो मन्त्री पृतनापञ्चसंयुतः।
तत्पश्चात्कृष्णचन्द्रस्य सुतास्त्वष्टादश स्मृताः॥ १९

ययुर्महारथा राजन् ये शताक्षौहिणीयुताः।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान् भानुरेव च॥ २०

साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः।
पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः॥ २१

चित्रभानुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च।
तत्पश्चात्प्रययुः सर्वे गदाद्याः कृष्णनोदिताः॥ २२

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकाः।
ऋतुबाणकोटिसंख्या यादवानां प्रकथ्यते।
तत्सैन्यसंख्यां नृपते कः करिष्यति भूमिषु॥ २३

इत्थं यदूनां चलतां नृपाणां
विकर्षतां तां महतीं च सेनाम्।
कोदण्डटङ्कारयुतोऽभवत्कौ
धुङ्कार आताडितदुन्दुभीनाम्॥ २४

इभेन्द्रचीत्कारहयेन्द्रहेषणै-
र्नदद्भुशुण्डीदृढवीरगर्जनैः।
ढक्कानिनादैर्यदवस्तडित्स्वनैः
प्रचण्डमेघा इव ते विडिण्डिरे॥ २५

राजन्भुवो मण्डलमेव दिग्गजा
महत्स्वनैस्ते बधिरीकृता इव।
सद्योऽथ दुर्गं रिपवो विदुद्रुवु-
र्निःसाहसाः कौ चलतां महात्मनाम्॥ २६

कूर्मास्तु किं काविति के वदन्तः
कुतः क्व गच्छाम इति द्रवन्तः।

मैथिलेश्वर! उस सेनाके समस्त सुवर्णमय शिविरोंसे चार योजन लम्बा राजमार्ग भी आच्छादित एवं सुशोभित होता था। सेनाके आगे विशाल वाहिनीसे युक्त महाबली कृतवर्मा थे और उनके पीछे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अक्रूर अपने सैन्यदलके साथ चल रहे थे॥ १७-१८॥

तत्पश्चात् मन्त्री उद्धव पाँच पृतनाओं*-के साथ जा रहे थे। राजन्! उनके पीछे श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्र सौ अक्षौहिणी सेनाके साथ यात्रा कर रहे थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रभानु, विरूप, कवि और न्यग्रोध। तत्पश्चात् श्रीकृष्णप्रेरित गद आदि समस्त वीर चल रहे थे॥ १९—२२॥

भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्हके वंशज वीर उस सेनामें सम्मिलित थे। समस्त यादवोंकी संख्या छप्पन कोटि बतायी जाती है। नरेश्वर! उस यादव-सेनाकी गणना भला, इस भूतलपर कौन करेगा!॥ २३॥

इस प्रकार विशाल सेनाको साथ लिये जाते हुए यादव नरेशोंके धनुषके टंकारके साथ पीटे जाते हुए नगारोंका महान् घोष भूमण्डलमें व्याप्त हो रहा था। गजेन्द्रोंका चीत्कार, हयेन्द्रोंकी हिनहिनाहट, दगती हुई भुशुण्डी (तोप)-की आवाज, दृढ़ता रखनेवाले वीरोंकी गर्जना और डंकोंकी गम्भीर ध्वनियोंसे वे यादव वीर बिजलीकी गड़गड़ाहटसे युक्त प्रचण्ड मेघोंका-सा दृश्य उपस्थित करते थे॥ २४-२५॥

सारा भूमण्डल ही उस सेनासे शोभित हो रहा था। पृथ्वीपर चलते हुए उन महात्मा वीरोंके तुमुलनादसे दिग्गजोंके कान भी बहरे-से हो गये थे तथा शत्रुगण साहस छोड़कर तत्काल अपने दुर्गकी ओर भागने लगे थे। पानीमें रहनेवाले कच्छप 'पृथ्वीपर यह क्या हो रहा है?'—यों कहते तथा 'हम कहाँसे कहाँ जायँ!' यों बोलते हुए भागने लगे। वे मन-ही-मन सोचते

* वाहिनी, ध्वजिनी, पृतना तथा अक्षौहिणी—इन चार प्रकारकी सेनाओंका लक्षण आगे अध्याय ७ में ३४ से ३८ तकके श्लोकोंमें दिया गया है।

उपद्रवो ह्येष विधे क्व याति
चचाल लोकैः सहिताचलेति॥ २७

थे—'हे विधाता! यह उपद्रव कहाँ जा रहा है, जिससे समस्त लोकोंसहित यह अचला पृथ्वी भी विचलित हो गयी है?'॥ २६-२७॥

छलेन यज्ञस्य हरिः परेश्वरो
भारं विदेहेश भुवोऽवतारयन्।
योऽभूच्चतुर्व्यूहधरो यदोः कुले
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूभृते॥ २८

विदेहराज! यज्ञ तो एक बहाना था। उसकी आड़ लेकर परमेश्वर श्रीहरि भूतलका भार उतार रहे थे। जो यदुकुलमें चतुर्व्यूहरूप धारण करके विराजमान हैं, उन अनन्त-गुणशाली पृथ्वीपालक भगवान्‌को नमस्कार है॥ २८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे प्रद्युम्नदिग्विजयार्थगमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रद्युम्नकी दिग्विजयार्थ यात्रा' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

यादव-सेनाकी कच्छ और कलिङ्गदेशपर विजय

श्रीबहुलाश्व उवाच

कान् कान् देशान् ययौ जेतुं क्रमतः श्रीहरेः सुतः।
तस्य कर्माण्युदाराणि ब्रूहि देवर्षिसत्तम॥ १

अहो श्रीकृष्णचन्द्रस्य कृपा भक्तेषु चेदृशी।
पुनाति प्रश्रुता ध्याता पापिनं सकुलं जनम्॥ २

श्रीबहुलाश्वने पूछा—देवर्षिशिरोमणे! श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्न क्रमशः किन-किन देशोंको जीतनेके लिये गये, उनके उदार कर्मोंका मेरे समक्ष वर्णन कीजिये। अहो! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी अपने भक्तोंपर ऐसी कृपा है, जो श्रवण और चिन्तन किये जानेपर पापी-जनोंको उनके कुलसहित पवित्र कर देती है॥ १-२॥

श्रीनारद उवाच

साधु साधु त्वया पृष्टं साधु ते विमला मतिः।
चरितं कृष्णभक्तानां पुनाति भुवनत्रयम्॥ ३

तत्काले मेघधाराश्च भूमेः सर्वरजांसि च।
कविश्चेद्गणयेद्राजन्न हरेः श्रीमतो गुणान्॥ ४

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। तुम्हारी विमल बुद्धिको साधुवाद! श्रीकृष्णके भक्तोंका चरित्र तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है। राजन्! वर्षाकालमें बादलोंसे बरसती हुई जलधाराओंको तथा भूमिके समस्त धूलिकणोंको कोई विद्वान् पुरुष भले ही गिन डाले, किंतु महान् श्रीहरिके गुणोंको कोई नहीं गिन सकता॥ ३-४॥

चतुर्योजनमात्रं हि छाया यस्य प्रदृश्यते।
तेन श्वेतातपत्रेण शोभितो रुक्मिणीसुतः॥ ५

रथेन शक्रदत्तेन स्वसैन्यपरिवारितः।
कच्छदेशान् ययौ जेतुं त्रिपुरान् गिरिशो यथा॥ ६

रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न उस श्वेत छत्रसे सुशोभित थे, जिसकी छाया चार योजनतक दिखायी देती थी। वे इन्द्रके दिये हुए रथपर आरूढ़ हो अपनी सेनाके साथ पहले कच्छदेशोंको जीतनेके लिये उसी प्रकार गये, जैसे पूर्वकालमें भगवान् शंकरने त्रिपुरोंको जीतनेके लिये रथसे यात्रा की थी॥ ५-६॥

कच्छदेशाधिपः शुभ्रो मृगयार्थी विनिर्गतः।
सेनां समागतां ज्ञात्वा पुरीं हालां समाययौ॥ ७

कच्छ देशका राजा शुभ्र शिकार खेलनेके लिये निकला था। वह यादवोंकी सेनाको आयी हुई जान अपनी राजधानी हालापुरीको लौट गया॥ ७॥

प्रद्युम्नस्यागता सेना गजपादप्रताडनैः।
चूर्णयन्ती तरून् देशान् पातयन्ती च मैथिल॥ ८

उत्थितैस्तद्रजोवृन्दैरन्धीभूतं नभोऽभवत्।
भयं प्रापुर्जनाः सर्वे कच्छदेशनिवासिनः॥ ९

हे मिथिलेश्वर! प्रद्युम्नकी आयी हुई सेना हाथियोंके पदाघातसे वृक्षोंको चूर-चूर करती और विभिन्न देशोंके भवनोंको गिराती हुई चल रही थी। उससे उठे हुए धूलिसमूहोंसे आकाश अन्धकाराच्छन्न हो गया और कच्छ देशके सभी निवासी भयभीत हो गये॥ ८-९॥

तदातिहर्षितः शुभ्रो गजानां हेममालिनाम्।
नीत्वा पञ्चशतं सद्यो हयानामयुतं तथा॥ १०

विंशद्भारं सुवर्णानामागतस्यास्य सम्मुखे।
दत्वा बलिं ननामाशु स्त्रजा बद्ध्वा करद्वयम्॥ ११

उस समय राजा शुभ्र अत्यन्त हर्षित हो तत्काल सोनेकी मालाओंसे अलंकृत पाँच सौ हाथी, दस हजार घोड़े और बीस भार सुवर्ण लेकर सामने आया। उसने भेंट देकर पुष्पहारसे अपने दोनों हाथ बाँधकर प्रद्युम्नको प्रणाम किया॥ १०-११॥

तस्मै तुष्टः शम्बरारिः प्रददौ रत्नमालिकाम्।
संस्थाप्य राज्ये तं राजंस्तथा हि प्रकृतिः सताम्॥ १२

इससे प्रसन्न होकर शम्बरारि प्रद्युम्नने राजा शुभ्रको रत्नोंकी बनी हुई एक माला पुरस्कारके रूपमें दी और उसके राज्यपर पुनः उसीको प्रतिष्ठित कर दिया। राजन्! साधुपुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है॥ १२॥

कलिङ्गान् प्रययौ जेतुं रुक्मिणीनन्दनो बली।
पतत्पताकैः सत्सैन्यैर्मेघैरिन्द्र इव व्रजन्॥ १३

कलिङ्गराजः स्वबलैः समर्थद्विपवाहनैः।
निर्ययौ सम्मुखे योद्धुं प्रद्युम्नस्य महात्मनः॥ १४

तदनन्तर बलवान् रुक्मिणीनन्दन कलिङ्गदेशको जीतनेके लिये गये। उनके साथ फहराती पताकाओंसे सुशोभित उत्तम सेनाएँ थीं। उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो मेघोंकी मण्डलीके साथ देवराज इन्द्र यात्रा कर रहे हों। कलिङ्गराज अपनी सेना तथा शक्तिशाली हाथी-सवारोंके साथ महात्मा प्रद्युम्नके सामने युद्ध करनेके लिये निकला॥ १३-१४॥

कलिङ्गमागतं वीक्ष्यानिरुद्धो धन्विनां वरः।
रथेनैकेन तत्सैन्यैर्युयुधे यादवाग्रतः॥ १५

शतबाणैश्च कालिङ्गं दशभिर्दशभी रथान्।
अताडयद्गजान् वीरश्चापं टङ्कारयन् मुहुः॥ १६

कलिङ्गको आया देख धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध एकमात्र रथ लेकर यादव-सेनाके आगे खड़े हो उसकी सेनाओंके साथ युद्ध करने लगे। अपने धनुषकी बार-बार टंकार करते हुए वीर अनिरुद्धने सौ बाणोंसे कलिङ्गराजको, दस-दस बाणोंसे उसके रथियों और हाथियोंको घायल कर दिया॥ १५-१६॥

स्वशत्रवश्च स्वे सर्वे साधु साध्विति वादिनः।
अनिरुद्धः प्रयुयुधे प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः॥ १७

अनिरुद्धस्य बाणौघैः केचिद्वीरा द्विधा कृताः।
गजाश्च भिन्नशिरसः पादभिन्ना हया नृप॥ १८

रथाश्च चूर्णचरणा हताश्वा हतनायकाः।
रथिसारथयो वातैर्निपेतुः पादपा इव॥ १९

यह देख उनके अपने और शत्रुपक्षके सभी योद्धाओंने 'साधु-साधु' कहकर उन्हें शाबाशी दी। प्रद्युम्नके देखते हुए ही अनिरुद्ध युद्ध करने लगे। नरेश्वर! उनके बाण-समूहोंसे कितने ही वीरोंके दो टुकड़े हो गये, हाथियोंके मस्तक विदीर्ण हो गये और घोड़ोंके पैर कट गये। रथोंके पहिये चूर-चूर हो गये, घोड़े और उनके साथ-साथ चलनेवाले कालके गालमें चले गये, रथी और सारथि आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धराशायी हो गये॥ १७—१९॥

पलायमानां तां सेनां कलिङ्गो वीक्ष्य मैथिल।
आजगाम गजारूढो विच्छिन्नकवचो रुषा॥ २०

मैथिल! शत्रुकी सेना भागने लगी। अपनी सेनाको भागती देख हाथीपर बैठा हुआ कलिङ्गराज बड़े रोषसे आगे बढ़ा। उसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया था॥ २०॥

द्विसप्ततिभारयुतां गदां चिक्षेप सत्वरम्।
गजेन पातयन् वीराञ्जगर्ज घनवद्बली॥ २१

गदाप्रहारपतितं किञ्चिद्व्याकुलमानसम्।
अनिरुद्धं मृधे वीक्ष्य यादवाः क्रोधपूरिताः॥ २२

उसने तुरंत ही बहत्तर भार लोहेकी बनी हुई भारी गदा चलायी और अपने हाथीके द्वारा बड़े-बड़े वीरोंको गिराता हुआ बलवान् कलिङ्गराज मेघके समान गर्जना करने लगा। उस गदाके प्रहारसे किंचित् व्याकुलचित्त होकर अनिरुद्ध युद्धस्थलमें ही रथपर गिर पड़े। यह देख यादवोंके क्रोधकी सीमा न रही॥ २१-२२॥

तदैव तेडुः कालिङ्गं बाणैस्तीक्ष्णैः स्फुरत्प्रभैः।
समांसमुद्धटं श्येनं कुरराश्चञ्चुभिर्यथा॥ २३

उन्होंने तत्काल तीखे और चमकीले बाणोंद्वारा कलिङ्गराजको उसी प्रकार चोट पहुँचाना आरम्भ किया, जैसे मांसयुक्त बाजको कुरर पक्षी अपनी चोंचोंसे पीड़ा देते हों॥ २३॥

कालिङ्गोऽपि तदा क्रुद्धः सज्जं कृत्वा धनुः स्वयम्।
टङ्कारयन् मुहुर्बाणैर्बाणांश्चूर्णीचकार ह॥ २४

कलिङ्गराजने भी उस समय कुपित हो अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और बार-बार उसकी टंकार करते हुए अपने बाणोंसे शत्रुओंके बाणोंको चूर-चूर कर दिया॥ २४॥

गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली।
तद्गजं ताडयामास वामहस्तेन मैथिल॥ २५

अर्धचन्द्रप्रहारेण विशीर्णोऽभूद्गजस्तथा।
इन्द्रवज्रप्रहारेण गण्डशैलो यथा नृप॥ २६

मैथिलेश्वर! तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने गदा लेकर बायें हाथसे उसके हाथीपर प्रहार किया, फिर अर्धचन्द्राकार बाणसे उसको चोट पहुँचायी। नरेश्वर! उस प्रहारसे वह हाथी छिन्न-भिन्न होकर इस प्रकार बिखर गया, मानो इन्द्रके वज्रकी चोटसे कोई शैलखण्ड बिखर गया हो॥ २५-२६॥

कालिङ्गः पतितो भूत्वा गृहीत्वा महतीं गदाम्।
गदं च ताडयामास कालिङ्गं च गदस्तदा॥ २७

कलिङ्गराज हाथीसे गिर पड़ा और विशाल गदा लेकर उसने गदको मारा और गदने भी तत्काल कलिङ्गराजपर गदासे आघात किया॥ २७॥

कलिङ्गगदयोस्तत्र घोरं युद्धं बभूव ह।
विस्फुलिङ्गान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः॥ २८

कलिङ्गराज और गदमें वहाँ घोर युद्ध होने लगा। उन दोनोंकी गदाएँ आगकी चिनगारियाँ बिखेरती हुई चूर-चूर हो गयीं॥ २८॥

गदो गृहीत्वा कालिङ्गं पातयित्वा रणाङ्गणे।
चकर्ष स्वकरेणाशु फणिनं गरुडो यथा॥ २९

तत्पश्चात् गदने कलिङ्गराजको पकड़कर समरभूमिमें दे मारा। जैसे गरुड़ किसी साँपको पटककर खींचता हो, उसी प्रकार गद तुरंत ही अपने हाथसे कलिङ्गराजको घसीटने लगे॥ २९॥

गदाप्रहारव्यथितश्चूर्णितास्थिः कलिङ्गराट्।
आययौ शरणं सोऽपि प्रद्युम्नस्य महात्मनः॥ ३०
दत्वा बलिं प्राह कलिङ्गराज-
स्त्वं देवदेवः परमेश्वरोऽसि।
कः क्रोधवन्तं प्रसहेत कौ त्वां
जनो यथा दण्डधरं नमस्ते॥ ३१

गदाके प्रहारसे पीड़ित कलिङ्गराजकी हड्डियाँ चूर-चूर हो रही थीं। वह महात्मा प्रद्युम्नकी शरणमें आ गया। उसने भेंट देकर कहा—आप देवताओंके भी देवता परमेश्वर हैं। कुपित हुए दण्डधर यमराजकी भाँति आपके आक्रमणको पृथ्वीपर कौन सह सकता है? आपको नमस्कार है॥ ३०-३१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कच्छकलिङ्गविजयो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कच्छ और कलिङ्गदेशपर विजय' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

प्रद्युम्नका मरुधन्वदेशके राजा गयको हराकर मालवनरेश तथा माहिष्मती पुरीके राजासे बिना युद्ध किये ही भेंट प्राप्त करना

श्रीनारद उवाच

इत्थं जित्वाथ कालिङ्गं प्रद्युम्नो यादवेश्वरः।
जगाम मरुधन्वानं जलं वैश्वानरो यथा॥ १

गिरिदुर्गसमायुक्तं धन्वदेशाधिपं गयम्।
उद्धवं प्रेषयामास ज्ञात्वा तं यादवेश्वरः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कलिङ्गराजपर विजय पाकर यादवेश्वर प्रद्युम्न मरुधन्व (मारवाड़)-देशमें इस प्रकार गये, मानो अग्निने जलपर आक्रमण किया हो। [मरु] धन्वदेशका राजा गय पर्वतीय दुर्गमें रहता था। उसकी स्थिति जानकर यादवेश्वर प्रद्युम्नने उसके पास उद्धवको भेजा॥ १-२॥

गिरिदुर्गे गतः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।
सभामेत्य गयं प्राह शृणु राजन् महामते॥ ३

उग्रसेनो यादवेन्द्रो राजराजेश्वरो महान्।
जम्बूद्वीपनृपाञ्जित्वा राजसूयं करिष्यति॥ ४

बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धव गिरिदुर्गमें गये और राजसभामें प्रवेश करके गयसे बोले—'महामते नरेश! मेरी बात सुनिये। यादवोंके स्वामी महान् राजराजेश्वर उग्रसेन जम्बूद्वीपके राजाओंको जीतकर राजसूययज्ञ करेंगे॥ ३-४॥

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्मन्त्री तस्याभवद्धरिः॥ ५

तेन वै प्रेषितः साक्षात्प्रद्युम्नो धन्विनां वरः।
शीघ्रं तस्मै बलिं नीत्वा कुलकौशलहेतवे॥ ६

साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं, उन महाराजके मन्त्री हुए हैं। उन्होंने ही धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ साक्षात् प्रद्युम्नको यहाँ भेजा है। आप यदि अपने कुलका कुशल-क्षेम चाहें तो शीघ्र भेंट लेकर उनके पास चलें॥ ५-६॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा किञ्चित्प्रकुपितो वीर्यशौर्यमदोद्धतः।
उद्धवं प्राह नृपतिर्गयो नाम महाबलः॥ ७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर शौर्य और पराक्रमके मदसे उन्मत्त रहनेवाले महाबली राजा गयने कुछ कुपित होकर उद्धवसे कहा—॥ ७॥

गय उवाच

बलिं तस्मै न दास्यामि विना युद्धं महामते।
अल्पकालेन यदवो गता वृद्धिं भवादृशाः॥ ८

गय बोले—महामते! मैं युद्ध किये बिना उनके लिये भेंट नहीं दूँगा। आप-जैसे यादवलोग अभी थोड़े ही दिनोंसे वृद्धिको प्राप्त हुए हैं—नये धनी हैं॥ ८॥

इत्युक्त उद्धवो राजञ्छम्बरारिं समेत्य सः।
सर्वेषां यादवानां च शृण्वतां प्रशशंस ह॥ ९

तदैव रुक्मिणीपुत्रो गिरिदुर्गं समाययौ।
तत्सैन्यैर्यादवैः सार्धं घोरं युद्धं बभूव ह॥ १०

चूर्णयन् गजपादैश्च नागरान् भूजनान् द्रुमान्।
अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो गयो योद्धुं विनिर्ययौ॥ ११

रथिनो रथिभिस्तत्र गजवाहा गजैः सह।
अश्ववाहैरश्ववाहा वीरा वीरैः परस्परम्॥ १२

युयुधुस्तीक्ष्णबाणौघैश्चर्मखड्गगदर्ष्टिभिः।
पाशैः परश्वधै राजञ्छतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः॥ १३

हन्यमानाश्च यदुभिर्गयवीरा भयातुराः।
सर्वे स्वं स्वं रथं त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश॥ १४

पलायमाने स्वबले गयो नाम महाबलः।
एकाकी प्रययौ योद्धुं धनुष्टङ्कारयन् मुहुः॥ १५

दीप्तिमान् कृष्णपुत्रस्तु धनुर्बाणै रिपोर्हयान्।
एकेन सारथिं जघ्ने द्वाभ्यां केतुं समुच्छ्रितम्॥ १६

रथं च बाणविंशत्या कवचं पञ्चभिः पुनः।
धनुस्तस्यापि चिच्छेद शतबाणैर्महाबलः॥ १७

गयोऽन्यद्धनुरादाय दीप्तिमन्तं हरेः सुतम्।
जघान बाणविंशत्या जगर्ज घनवद्बली॥ १८

तत्प्रहारेण समरे किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
दीप्तिमानथ जग्राह शक्तिं ज्योतिर्मयीं दृढाम्॥ १९

चिक्षेप भ्रामयित्वा तां गयाख्याय महात्मने।
सापि तद्धृदयं भित्त्वा पपौ च रुधिरं महत्॥ २०

राजन् उसके यों कहनेपर उद्धवजीने प्रद्युम्नके पास आकर समस्त यादवोंके सामने राजा गयकी कही हुई बात दुहरा दी। फिर तो उसी समय रुक्मिणीपुत्रने गिरिदुर्गपर आक्रमण किया। गयके सैनिकोंका यादवोंके साथ घोर युद्ध हुआ॥ ९-१०॥

हाथियोंके पैरोंसे नागरिकों तथा पैदल लोगोंको कुचलता और वृक्षोंको रौंदवाता हुआ राजा गय दो अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये निकला। रथी रथियोंके साथ, गजारोही गजारोहियोंके साथ, घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ तथा वीर वीरोंके साथ परस्पर युद्ध करने लगे॥ ११-१२॥

तीखे बाण-समूहों, ढाल, तलवार, गदा, ऋष्टि, पाश, फरसे, शतघ्नी और भुशुण्डी आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी मारसे भयातुर हो गयके सैनिक यादवोंसे परास्त हो अपना-अपना रथ छोड़कर सब-के-सब दसों दिशाओंमें भाग चले॥ १३-१४॥

अपनी सेनाके पलायन करनेपर महाबली गय बार-बार धनुषकी टंकार करता हुआ अकेला ही युद्धके लिये आगे बढ़ा। तेजस्वी श्रीकृष्ण-पुत्र दीप्तिमान्‌ने धनुषसे छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुके घोड़ोंको मार डाला। एक बाणसे सारथिको नष्ट करके दो बाणोंसे उसकी ऊँची ध्वजा काट डाली॥ १५-१६॥

बीस बाणोंसे रथको तोड़-फोड़कर पाँच बाणोंसे उसके कवचको छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर महाबली दीप्तिमान्‌ने सौ बाण मारकर गयके धनुषको भी खण्डित कर दिया। गयने दूसरे धनुषको लेकर बीस बाणोंद्वारा श्रीकृष्णपुत्र दीप्तिमान्‌को घायल कर दिया। फिर वह बलवान् वीर मेघके समान गर्जना करने लगा॥ १७-१८॥

समराङ्गणमें उसके प्रहारसे दीप्तिमान्‌के मनमें कुछ व्याकुलता हुई, तथापि उन्होंने एक ज्योतिर्मयी सुदृढ़ शक्ति हाथमें ली और उसे घुमाकर महात्मा गयके ऊपर चलाया। उस शक्तिने राजाके हृदयको विदीर्ण करके उसका बहुत रक्त पी लिया॥ १९-२०॥

गयोऽपि पतितो राजन् मूर्च्छितोऽभूद्रणाङ्गणे।
दीप्तिमांश्च धनुष्कोट्या कर्षयंस्तद्गले रिपुम्॥ २१

प्रद्युम्नस्य पुरः प्रागात्कद्रुजं गरुडो यथा।
नरदुन्दुभयो नेदुर्देवदुन्दुभयस्तदा।
आकाशाद्ववृषुर्देवाः पुष्पवर्षाणि पार्थिवाः॥ २२

तदैव तेनापि समर्चिताङ्घ्रिः
श्रीकृष्णपुत्रो नृप शम्बरारिः।
अवन्तिकां सम्प्रययौ महात्मा
श्रीकर्णिकां स्वर्णमयीमिवालिः॥ २३

श्रुत्वागतं तं जयसेनराजः
समर्चयामास स मालवाधिपः।
आनीय वृद्धान् सुबलिं महात्मने
प्रधर्षितो मैथिल तत्प्रभाववित्॥ २४

राजाधिदेवीं स्वपितुः पितुःस्वसां
प्रणम्य तां कृष्णसुतो महामनाः।
विन्दानुविन्दौ परिरभ्य तत्सुतौ
बभौ वृतो मालवदेशसम्भवैः॥ २५

प्रद्युम्नो धन्विनां श्रेष्ठः पुरीं माहिष्मतीं ययौ।
यादवैः स्वबलैः सार्धं नर्मदां स ददर्श ह॥ २६

राजितामम्बुकल्लोलैः शृङ्गारतिलकामिव।
वहन्तीं पुष्पनिचयमुष्णिहं मुद्रिकामिव॥ २७

वेतसीवेणुतरुभिः पुष्पितैर्माधवैर्वृतैः।
स्फुरद्भिर्मूर्तिमद्भिश्च देवैः स्वर्गनदीमिव॥ २८

तत्तीरे शिबिरैर्युक्तः प्रद्युम्नो यादवेश्वरः।
स्थितोऽभूद्यादवैः साकं देवैरिन्द्र इव प्रभुः॥ २९

इन्द्रनीलो महाराज ज्ञानी माहिष्मतीपतिः।
स्वदूतं प्रेषयामास प्रद्युम्नाय महात्मने॥ ३०

राजन्! गय भी समराङ्गणमें गिरकर मूर्च्छित हो गया। दीप्तिमान् अपने धनुषकी कोटि शत्रुके गलेमें डालकर उसे घसीटते हुए प्रद्युम्नके सामने उसी प्रकार ले आये, जैसे गरुड़ किसी नागको खींच लाया हो। उस समय मानवों तथा देवताओंकी दुन्दुभियाँ एक साथ ही बज उठीं। देवता आकाशसे और पार्थिव नरेश भूतलसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। राजन्! तब गयने भी शम्बरारि श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्नके चरणोंका पूजन किया। वहाँसे महात्मा प्रद्युम्न अवन्तिकापुरीको गये, उसी प्रकार जैसे भ्रमर सुनहरी कर्णिकापर टूट पड़े। उनका आगमन सुनकर मालवनरेश जयसेनने उनकी भली-भाँति पूजा की॥ २१—२३१/२॥

मिथिलेश्वर! वे प्रद्युम्नके प्रभावको जानते थे, अतः उनसे अपनी पराजय स्वीकार करके उन्होंने बड़े-बूढ़ोंको बुलवाया और उनके द्वारा महात्मा प्रद्युम्नको उत्तम भेंट-सामग्री अर्पित की। वहाँ अपने पिताकी बुआ राजाधिदेवीको प्रणाम करके महामनस्वी प्रद्युम्नने अपने फुफेरे भाई विन्द और अनुविन्दको गलेसे लगाया और मालवदेशके योद्धाओंसे सादर घिरकर वे बड़ी शोभाको प्राप्त हुए॥ २४-२५॥

वहाँसे धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न माहिष्मतीपुरीको गये और यादवों तथा अपने सैनिकोंके साथ वहाँ उन्होंने नर्मदा नदीका दर्शन किया। जलके कल्लोलोंसे सुशोभित नर्मदा मानो शृङ्गार-तिलक धारण किये हुए थी और छपी हुई पगड़ीकी भाँति पुष्पसमूहोंको बहा रही थी॥ २६-२७॥

बेंत, बाँस तथा अन्य वृक्षोंसे फूले हुए माधव-तरुओंसे घिरी हुई नर्मदा मूर्तिमान् तेजस्वी देवताओंसे घिरी हुई आकाशगङ्गाकी-सी शोभा पाती थी। उसके तटपर छावनी डालकर यादवेश्वर प्रद्युम्न यादवोंके साथ इस प्रकार विराजमान हुए, मानो देवताओंके साथ देवराज इन्द्र शोभा पा रहे हों। महाराज! माहिष्मती-पुरीके स्वामी इन्द्रनील बड़े ज्ञानी थे, उन्होंने महात्मा प्रद्युम्नके पास अपना दूत भेजा॥ २८—३०॥

प्रद्युम्नराजशिबिरे दूतो गत्वा कृताञ्जलिः।
उवाच वचनं तत्र सर्वेषां शृण्वतां नृप॥ ३१

दूतने प्रद्युम्नराजके शिबिरमें आकर हाथ जोड़ प्रणाम किया और सबके सुनते हुए वहाँ यह बात कही॥ ३१॥

दूत उवाच

हस्तिनापुरनाथेन धार्तराष्ट्रेण धीमता।
स्थापितोऽतिबलो वीरो बलिं कस्मै न दास्यति॥ ३२

सुयोधनाय चेच्छाभिर्द्रव्यं यच्छति नो बलात्।
योद्धव्यं च भवद्भिश्च विफलो हि रणोऽत्र वै॥ ३३

दूत बोला—प्रभो! हस्तिनापुरके राजा बुद्धिमान् धृतराष्ट्रने इन अत्यन्त बलवान् वीर इन्द्रनीलको माहिष्मतीपुरीके राज्यपर स्थापित किया है, अतः ये किसीको बलि या भेंट नहीं देंगे। दुर्योधनको स्वेच्छासे ही ये द्रव्यराशि भेंट करते हैं, बलात् नहीं। आपलोग युद्ध कर सकते हैं, परंतु यहाँ युद्धसे कोई लाभ नहीं होगा॥ ३२-३३॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

यथा गयो दूत कलिङ्गराड् यथा
तथाभिभूतोऽपि बलिं प्रदास्यति।
नृपं न जानाति महोग्रसेनकं
माहिष्मतीशोऽयमतीव राजराट्॥ ३४

श्रीप्रद्युम्नने कहा—दूत! जैसे राजा गय और कलिङ्गराजने अपमानित होनेपर भेंट दी, उसी तरह यहाँके राजा भी पराजित होकर भेंट देंगे। माहिष्मतीके राजा बड़े राजाधिराज बने हैं; परंतु ये महाराज उग्रसेनको नहीं जानते॥ ३४॥

श्रीनारद उवाच

उक्तो दूतस्तदैवाशु गत्वा माहिष्मतीपतिम्।
सभायां कथयामास प्रद्युम्नकथितं वचः॥ ३५

यदूनामुद्भटं सैन्यं वीक्ष्य माहिष्मतीपतिः।
गजानां पञ्चसाहस्त्रं हयानां नियुतं शुभम्॥ ३६

रथानामयुतं जैत्रं नीत्वा राजा विनिर्गतः।
बलिं ददौ समेत्याशु प्रद्युम्नाय महात्मने॥ ३७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहनेपर दूतने तत्काल जाकर राजसभामें माहिष्मतीपतिसे प्रद्युम्नकी कही हुई बात कह सुनायी। माहिष्मतीके राजाने देखा कि यादवोंकी सेना बड़ी उद्भट है (अतः उससे युद्ध करना ठीक न होगा); इसलिये वे पाँच हजार हाथी, एक लाख घोड़े और दस हजार विजयशील रथ लेकर निकले और महात्मा प्रद्युम्नसे मिलकर वह सब कुछ उन्हें भेंट कर दिया॥ ३५—३७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मरुधन्वमालवमाहिष्मती-देशविजयो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मरुधन्व-मालव-माहिष्मतीपुरीपर विजय' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

गुजरातनरेश ऋष्यपर विजय प्राप्त करके यादव-सेनाका चेदिदेशके स्वामी दमघोषके यहाँ जाना; राजाका यादवोंसे प्रेमपूर्ण बर्ताव करनेका निश्चय, किंतु शिशुपालका माता-पिताके विरुद्ध यादवोंसे युद्धका आग्रह

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नोऽथ महावीर्यो जित्वा माहिष्मतीपतिम्।
विकर्षन् महतीं सेनां गुर्जराजं समाययौ॥ १

गुर्जरस्याधिपं वीरमृष्यं नाम महाबलम्।
जग्राह सेनया कार्ष्णिस्तुण्डयाहिं यथा विराट्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! महापराक्रमी प्रद्युम्न माहिष्मतीके राजाको जीतकर अपनी विशाल सेना लिये गुजरातके राजाके यहाँ गये। जैसे पक्षिराज गरुड अपनी चोंचसे सर्पको पकड़ लेते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने गुर्जरदेशके अधिपति महाबली वीर ऋष्यको सेनाद्वारा जा पकड़ा॥ १-२॥

सद्यस्तस्माद्बलिं नीत्वा यादवेन्द्रो महाबलः।
विकर्षन् महतीं सेनां चेदिदेशांस्ततो ययौ॥ ३

दमघोषश्चेदिराजो वसुदेवस्वसुः पतिः।
शिशुपालस्तस्य पुत्रः कृष्णशत्रुः प्रकीर्तितः॥ ४

अभीयाय महाबुद्धिर्दमघोषं महाबलम्।
नत्वा प्राह महाबुद्धिमुद्धवो बुद्धिसत्तमः॥ ५

उद्धव उवाच

राजन् देहि बलिं तस्मा उग्रसेनाय भूभृते।
विजित्य नृपतीन् योऽसौ राजसूयं करिष्यति॥ ६

श्रीनारद उवाच

इत्थं निशम्य वचनं दमघोषसुतः खलः।
स्फुरदोष्ठो मन्युपरः प्राहेदं सदसि त्वरम्॥ ७

शिशुपाल उवाच

दुरत्यया कालगतिरहो चित्रमिदं जगत्।
विधेः कालात्मकस्यापि प्राजापत्ये भवेत्कलिः॥ ८

क्व राजहंसः काकः क्व क्व मूर्खः क्व च पण्डितः।
भृत्या विजेष्यन्ति नृपं चक्रवर्तिनमीश्वरम्॥ ९

ययातिशापाद्यदवो भ्रष्टराज्यपदाः स्मृताः।
राज्यं स्वल्पं जलं प्राप्य प्रोच्छलन्त्यापगा इव॥ १०

अवंशसम्भवो राजा मूर्खपुत्रो हि पण्डितः।
निर्धनश्च धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत्॥ ११

उग्रसेनः कतिदिनै राजत्वं समुपागतः।
मन्त्रिणा वासुदेवेन पूजितः स बलान्नृपः॥ १२

तस्य मन्त्री वासुदेवो जरासन्धभयाद् द्रुतम्।
मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः॥ १३

उनसे तत्काल भेंट वसूल करके महाबली यादवेन्द्र अपनी विशाल वाहिनी साथ लिये हुए चेदिदेशमें जा पहुँचे। चेदिराज दमघोष वसुदेवजीके बहनोई थे; किंतु उनका पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्णका पक्का शत्रु कहा गया है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् उद्धव महाबुद्धि एवं महाबली दमघोषके पास गये और उनको प्रणाम करके बोले— ॥ ३—५ ॥

उद्धवने कहा—राजन्! महाराज उग्रसेनको बलि (भेंट) दीजिये। वे समस्त राजाओंको जीतकर राजसूययज्ञ करेंगे ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! उद्धवजी-का यह वचन सुनकर दमघोषके दुष्ट पुत्र शिशुपालके ओष्ठ फड़कने लगे। वह अत्यन्त कुपित हो राजसभामें तुरंत इस प्रकार बोला— ॥ ७ ॥

शिशुपालने कहा—अहो! कालकी गति दुर्लङ्घ्य है। यह संसार कैसा विचित्र है! कालात्मा विधाताके प्राजापत्यपर भी कलह या विवाद खड़ा हो गया है (अर्थात् लोकविधाता ब्रह्मा और घट-निर्माता कुम्भकारमें झगड़ा हो रहा है कि प्रजापति कौन है)। कहाँ राजहंस और कहाँ कौआ! कहाँ पण्डित तथा कहाँ मूर्ख! जो सेवक हैं, वे चक्रवर्ती राजाको— अपने स्वामीको जीतनेकी इच्छा रखते हैं॥ ८-९ ॥

राजा ययातिके शापसे यदुवंशी राज्य-पदसे भ्रष्ट हो चुके हैं; किंतु वे छोटा-सा राज्य पाकर उसी तरह इतरा उठे हैं, जैसे छोटी नदियाँ थोड़ा-सा जल पाकर उमड़ने लगती हैं—उच्छलित होने लगती हैं। जो हीनवंशका होकर राजा हो जाता है, जो मूर्खका बेटा होकर पण्डित हो जाता है, अथवा जो सदाका निर्धन कभी धन पा जाता है, वह घमंडसे भरकर सारे जगत्को तृणवत् मानने लगता है॥ १०-११ ॥

उग्रसेन कितने दिनोंसे राजपदवीको प्राप्त हुआ है? वासुदेव मन्त्री बना है और उग्रसेन उसीके बलसे और केवल उसीसे पूजित होकर राजा बन बैठा है। उसके मन्त्री वासुदेवने जरासंधके भयसे भागकर अपनी पुरी मथुराको छोड़कर समुद्रकी शरण ली है॥ १२-१३ ॥

आभीरस्यापि नन्दस्य पूर्वं पुत्रः प्रकीर्तितः।
वसुदेवो मन्यते तं मत्पुत्रोऽयं गतत्रपः॥ १४

वसुदेवाद्गौरवर्णादयं श्यामः कुतोऽभवत्।
पितामहोऽपि गौरश्च दुःखहास्यमिदं वचः॥ १५

प्रद्युम्नं तत्सुतं जित्वा सबलं यादवैः सह।
कुशस्थलीं गमिष्यामि महीं कर्तुमयादवीम्॥ १६

वह पहले 'नन्द' नामक अहीरका भी बेटा कहा जाता था। उसीको वसुदेव लाज-हया छोड़कर अपना पुत्र मानने लगे हैं। वसुदेव तो गोरे रंगके हैं, उनसे उत्पन्न हुआ यह कृष्ण श्यामवर्णका कैसे हो गया? केवल पिता ही नहीं, पितामह भी गोरे हैं। [उनके कुलकी संततिमें इस वासुदेवकी गणना हो,] यह बड़े दुःख और हँसीकी बात है। मैं उसके पुत्र प्रद्युम्नको यादवों तथा सेनासहित जीतकर भूमण्डलको यादवोंसे शून्य कर देनेके लिये कुशस्थलीपर चढ़ाई करूँगा॥ १४—१६॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ।
गन्तुमभ्युद्यतं वीक्ष्य चेदिराजस्तमब्रवीत्॥ १७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर धनुष और अक्षय बाणोंसे भरे दो तरकस लेकर शिशुपालको युद्धके लिये जानेको उद्यत देख चेदिराजने उससे कहा—॥ १७॥

दमघोष उवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि क्रोधं मा कुरु मा कुरु।
अकस्मादाचरेत्कार्यं न सिद्धिं विन्दते ह्यसौ॥ १८

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं न क्षमासमम्।
तस्मात्साम प्रकर्तव्यं साम्नो न सदृशं सुखम्॥ १९

दमघोष बोले—बेटा! मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। क्रोध न करो, न करो। जो सहसा कोई कार्य करता है, उसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती। क्षमाके समान धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन दूसरा कोई नहीं है। इसलिये सामनीतिसे काम लेना चाहिये। सामके तुल्य दूसरा कोई सुखद उपाय नहीं है—॥ १८-१९॥

दानेन राजते साम दानं सत्क्रियया पुनः।
सत्क्रियापि तथा योग्यं गुणं सम्प्रेक्ष्य राजते॥ २०

यादवाश्चेदिपाश्चैव ज्ञातिसम्बन्धिनः स्मृताः।
चेदिपानां च वृष्णीनां कलिं नेच्छामि तत्त्वतः॥ २१

दानसे सामकी शोभा होती है और सामकी सत्कारसे। सत्कारकी भी तभी शोभा होती है, जब वह यथायोग्य गुण देखकर किया जाय। यादव और चेदिप सगे-सम्बन्धी माने गये हैं; अतः मैं वास्तवमें यही चाहता हूँ कि यादवों तथा चेदिपोंमें कलह न हो॥ २०-२१॥

श्रीनारद उवाच

शिशुपालो बोधितोऽपि दमघोषेण धीमता।
नोवाच किञ्चिद्विमनास्तूष्णीम्भूतो महाखलः॥ २२

श्रुतिश्रवाश्चेदिपराजराज्ञी
स्वसा शुभा शूरसुतस्य राजन्।
समेत्य पुत्रं शिशुपालसंज्ञं
प्रत्याह सम्यग्विनयान्विता सा॥ २३

श्रीनारदजी कहते हैं—बुद्धिमान् दमघोषके समझानेपर भी शिशुपाल अनमना हो गया, कुछ बोला नहीं। वह महाखल चुपचाप बैठा रहा। राजन्! चेदिराजकी रानी श्रुतिश्रवा शूरनन्दन वसुदेवकी बहन थीं। वे अपने पुत्र शिशुपालके पास आकर अच्छी तरह विनययुक्त होकर बोलीं—॥ २२-२३॥

श्रुतिश्रवा उवाच

मा पुत्र खेदं कुरुतात्कदाचिन्
माभूत्कलिश्चेदिपयादवानाम्।
ते मातुलोऽयं किल शूरसूनु-
र्भ्राता च ते तत्सुत एव कृष्णः॥ २४

श्रुतिश्रवाने कहा—बेटा! खेद न करो। यादवों तथा चेदिपोंमें कभी कलह नहीं होना चाहिये। शूरनन्दन वसुदेव तुम्हारे मामा हैं और उनके पुत्र श्रीकृष्ण भी तुम्हारे भाई ही हैं॥ २४॥

तस्यात्मजा येऽत्र समागतास्ते
प्रद्युम्नमुख्याः शतशो महान्तः।
सम्पूजनीयाश्च मया भवद्भिः
संलालनीया न हि युद्धयोग्याः॥ २५

अहं गमिष्यामि सहार्द्रचित्ता
नेतुं त्वया तात समागतांस्तान्।
द्रष्टुं चिरोत्कण्ठमना महोत्सवै-
र्नैतादृशोऽयं समयः कदाचित्॥ २६

शिशुपाल उवाच

मम शत्रू रामकृष्णौ यदवः शत्रवश्च मे।
घातयिष्यामि तान् सर्वान् यैरहं तु तिरस्कृतः॥ २७

पुरा वै कुण्डिनपुरे याभ्यां मे हेलनं कृतम्।
विवाहो वारितो मे वै रामकृष्णावरी मम॥ २८

यदि तेषां यादवानां युवां पक्षं करिष्यथः।
तदा त्वां सह पित्रा च निगृह्य निगडैर्दृढैः॥ २९

कारागारे कारयामि कंसः स्वपितरौ यथा।
अन्यथा चेद्वधिष्यामि शपथो मे तु दुर्घटः॥ ३०

श्रीनारद उवाच

तद्वचः परुषं श्रुत्वा तूष्णीं यातेऽथ चेदिपे।
तद्वचः स्वबलं प्राप्य प्राह सर्वं यथोदितम्॥ ३१

वाहिनी ध्वजिनी चैव पृतनाक्षौहिणीयुता।
चतुर्धा शिशुपालस्य सेना युक्ता बभूव ह॥ ३२

बहुलाश्व उवाच

वाहिन्याद्याश्च याः सेनास्तत्संख्यां वद मे प्रभो।
ऋषयो हि प्रजानन्ति भूतं भव्यं भवत्परम्॥ ३३

श्रीनारद उवाच

शतं द्विपानां रथिनां सहस्रं शतसंयुतम्।
अयुतं तुरगाणां च पत्तीनां लक्षमेव च॥ ३४

सेनाया लक्षणं स्वल्पं द्विगुणं चतुरङ्गिणी।
चतुःशतं द्विपानां च रथानामयुतं तथा॥ ३५

उनके जो प्रद्युम्न आदि सैकड़ों महावीर पुत्र आये हैं, वे सब मेरे और तुम्हारे द्वारा लाड़-प्यार पानेके योग्य तथा समादरणीय हैं। उनके साथ युद्ध करना उचित नहीं होगा। तात! मैं तुम्हारे साथ स्वयं स्नेहार्द्रचित्त होकर उन समागत यादवोंको लेनेके लिये चलूँगी। चिरकालसे मेरे मनमें उन सबको देखनेकी उत्कण्ठा है। मैं बड़े उत्सव एवं उत्साहके साथ उनको घर लाऊँगी। ऐसा अवसर फिर कभी नहीं आयेगा॥ २५-२६॥

शिशुपाल बोला—बलराम, कृष्ण तथा समस्त यादव मेरे शत्रु हैं। जिन्होंने मेरा तिरस्कार किया है, उन सबको मैं [भी अपने सैनिकोंद्वारा] मरवा डालूँगा। पूर्वकालमें कुण्डिनपुरमें राम तथा कृष्ण—इन दोनों भाइयोंने मेरी अवहेलना की, मेरा विवाह रोक दिया; अतः वे मेरे भाई नहीं, शत्रु हैं॥ २७-२८॥

यदि तुम दोनों [मेरे माता-पिता होकर] यादवोंका समर्थन करोगे तो मैं तुम दोनों माता-पिताको मजबूत बेड़ियोंसे बाँधकर उसी तरह कारागारमें डाल दूँगा, जैसे कंसने अपने माँ-बापको कैद कर लिया था। अन्यथा तुम दोनोंका वध भी कर डालूँगा, मेरी शपथ या प्रतिज्ञा बड़ी कठोर होती है (इसे टालना कठिन है)॥ २९-३०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—शिशुपालकी कड़ी बातें सुनकर चेदिराज चुप हो गये। उद्धवजी अपनी सेनामें लौट आये और जो कुछ शिशुपालने कहा था, वह सब उन्होंने वहाँ कह सुनाया। तदनन्तर वाहिनी, ध्वजिनी, पृतना और अक्षौहिणी—ये चार प्रकारकी शिशुपालकी सेनाएँ सुसज्जित हुईं॥ ३१-३२॥

बहुलाश्वने पूछा—प्रभो! वाहिनी आदि सेनाकी संख्या मुझे बताइये; क्योंकि ऋषिलोग भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंकी बातें जानते हैं॥ ३३॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! सौ हाथी, ग्यारह सौ रथी, दस हजार घोड़े और एक लाख पैदल—यह 'सेना' का लक्षण है। इससे दुगुनी सेनाको 'चतुरङ्गिणी' कहते हैं। चार सौ हाथी, दस हजार रथ,

चतुर्लक्षं हयानां च पत्तीनामेककोटयः।
लोहकञ्चुकसंयुक्ताः समर्थबलवाहनाः॥ ३६

शस्त्रास्त्रज्ञा यत्र शूरा वाहिनी सा बुधैः स्मृता।
वाहिन्या द्विगुणीभूता ध्वजिनी सा प्रकीर्तिता॥ ३७

चार लाख घोड़े तथा एक करोड़ पैदल—इतने सैनिक लोहेका कवच पहने और शक्तिशाली बल-वाहनोंसे सम्पन्न, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता शूरवीर जिस सेनामें विद्यमान हों, उसे विद्वानोंने 'वाहिनी' कहा है। वाहिनीसे दुगुनी सेनाको 'ध्वजिनी' नाम दिया गया है॥ ३४—३७॥

ध्वजिन्या द्विगुणी ज्ञेया पृतना कथिता पुरा।
ससाहसोऽपि शूरः स्यात्सामन्तः शतशूरभृत्॥ ३८

सामन्तानां शतं बिभ्रत्स गजी कथितो मृधे।
समरे सारथिं चाश्वान् रथं रक्षेद्रथी च यः॥ ३९

ध्वजिनीसे दुगुनी सेनाको पूर्वकालके विद्वानोंने 'पृतना' माना है। [पृतनासे दुगुनी सेना 'अक्षौहिणी' कही गयी है।] जो साहसी वीर है, उसे 'शूर' कहा गया है। जो सौ शूरवीरोंकी रक्षा करता है, उसे 'सामन्त' कहते हैं। जो युद्धमें सौ सामन्तोंकी रक्षा करता है, उसे 'गजी' (या गजारोही) योद्धा कहते हैं। जो समराङ्गणमें सारथि और अश्वोंसहित रथकी रक्षा कर सकता है, वह 'रथी' कहा गया है॥ ३८-३९॥

सेनां रक्षति यो बाणैः कथ्यते स महारथी।
स्वसेनां रक्षयञ्छत्रून् सूदयन् रणमण्डले॥ ४०

योऽक्षौहिण्या समं युध्येत्सदा सोऽतिरथी स्मृतः॥ ४१

जो अपने बाणोंसे सेनाकी रक्षा करता है, उसे 'महारथी' कहते हैं। जो अपनी सेनाकी रक्षा और शत्रुओंका संहार करते हुए रणक्षेत्रमें अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्ध कर सके, उसे सदा 'अतिरथी' माना गया है॥ ४०-४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गुर्जराद्चेदिदेशगमनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गुर्जर और चेदिदेशमें गमन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

शिशुपालके मित्र द्युमान् तथा शक्तका वध

श्रीनारद उवाच

निर्गतः शिशुपालोऽसौ सबलश्चन्द्रिकापुरात्।
पितरौ तौ तिरस्कृत्य स्वभावो ह्यसतामयम्॥ १

वाहिनीध्वजिनीभ्यां च द्युमच्छक्तौ विनिर्गतौ।
पृतनाक्षौहिणीभ्यां तौ रङ्गपिङ्गौ च मन्त्रिणौ॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! शिशुपाल अपनी सेनाको साथ ले माता-पिताका तिरस्कार करके चन्द्रिकापुरसे बाहर निकला। दुष्टोंका ऐसा स्वभाव ही होता है। उसके साथ 'वाहिनी' और 'ध्वजिनी' सेनाओंसे युक्त द्युमान् और शक्त निकले। शिशुपालके दो मन्त्रियोंके नाम थे, रङ्ग और पिङ्ग। वे दोनों क्रमशः 'पृतना' और 'अक्षौहिणी' सेना लिये युद्धके लिये नगरसे बाहर आये॥ १-२॥

शिशुपालमहासैन्यं प्रलयाब्धिसमं नृप।
संवीक्ष्य यदवस्तर्तुं चाजग्मुः कृष्णपोतकाः॥ ३

नरेश्वर! शिशुपालकी महासेना प्रलयकालके महासागरके समान उमड़ती आ रही थी। उसे देखकर यदुवंशी वीर भगवान् श्रीकृष्णको ही जहाज बनाये, उस सैन्य-सागरसे पार होनेके लिये सामने आये॥ ३॥

वाहिनीसहितः पश्चाद्द्युमान्नामा महाबलः।
युयुधे यादवैः सार्धं शिशुपालप्रणोदितः॥ ४

द्वयोश्च सैन्ययोर्बाणैरन्धकारोऽभवद्रणे।
हयपादरजोवृन्दैः प्रोत्थितैश्छादयन्नभः॥ ५

हयाश्च नृप धावन्तः प्रोत्पतन्तो द्विपान् प्रति।
द्विपाश्च सक्षता युद्धे पातयन्तः पदैर्द्विषः॥ ६

शुण्डादण्डस्य फूत्कारैर्मर्दयन्त इतस्ततः।
कस्तूरीपत्रसिन्दूररक्तकम्बलमण्डिताः॥ ७

बाणैर्गदाभिः परिघैः खड्गैः शूलैश्च शक्तिभिः।
छिन्नाङ्गाः पत्तयः पेतुश्छिन्नबाह्वङ्घ्रिजानवः॥ ८

कश्चित्तीक्ष्णासिना राजन् हयान् युद्धे द्विधाकरोत्।
केचिद्दन्तान् सङ्गृहीत्वा कुम्भेषु करिणां गताः॥ ९

अमात्यं हस्तिवाहं च मर्दयन्तो मृगेन्द्रवत्।
उल्लङ्घयन्तः सहया गजवृन्दं महाबलाः॥ १०

खड्गप्रहारं कुर्वन्तो विदार्य परसैनिकान्।
हयस्पृष्टा न दृश्यन्ते दृश्यन्ते ते नटा इव॥ ११

सैन्यवेगं च शत्रूणां दृष्ट्वाक्रूरः समाययौ।
चकार दुर्दिनं बाणैर्बाणौघैश्चापि निर्गतैः।
छादयामास चाक्रूरं वर्षासूर्यमिवाम्बुदः॥ १२

छित्त्वा तद्बाणपटलमसिना गान्दिनीसुतः।
शक्त्या तताड तं वीरं द्युमन्तं क्रोधमूर्च्छितम्॥ १३

महाबली द्युमान् शिशुपालसे प्रेरित हो 'वाहिनी' सेनासहित आगे बढ़कर यादव योद्धाओंके साथ युद्ध करने लगा। समराङ्गणमें दोनों सेनाओंकी बाण-वर्षासे अन्धकार छा गया। घोड़ोंकी टापोंसे इतनी धूल उड़ी कि आकाश आच्छादित हो गया॥ ४-५॥

नरेश्वर! दौड़ते हुए घोड़े उछलकर हाथियोंके मस्तकपर पाँव रख देते थे और घायल हुए हाथी युद्धभूमिमें पैरोंसे शत्रुओंको गिराते और सूँड़की फुफकारोंसे इधर-उधर फेंकते-कुचलते आगे बढ़ रहे थे। उनके मस्तकपर कस्तूरी और सिन्दूरसे पत्र-रचना की गयी थी और पीठपर लाल रंगकी झूल उनकी शोभा बढ़ाती थी॥ ६-७॥

पैदल सैनिक बाणों, गदाओं, परिघों, तलवारों, शूलों और शक्तियोंकी मारसे अङ्ग-अङ्ग कट जानेके कारण धराशायी हो रहे थे। उनके पैर, घुटने और बाहुदण्ड छिन्न-भिन्न हो गये॥ ८॥

राजन्! कोई अपनी तीखी तलवारसे युद्धमें घोड़ोंके दो टुकड़े कर देता था। कितने ही वीर हाथियोंके दाँत पकड़कर उनके मस्तकोंपर चढ़ जाते थे और सिंहकी भाँति महावतों तथा हाथी-सवारोंको चीर-फाड़ डालते थे॥ ९½॥

बहुत-से महाबली घुड़सवार योद्धा हाथियोंके समूहको फाँदकर शत्रु-सैनिकोंपर खड्गका प्रहार करते और उन्हें विदीर्ण कर डालते थे। ऐसा दिखायी देता था कि घोड़ोंकी पीठसे उनका स्पर्श ही नहीं होता है। वे नटोंकी तरह विद्युत्-वेगसे घोड़ोंपर चढ़ते-उतरते रहते थे॥ १०-११॥

शत्रुओंकी सेनाका वेगपूर्वक आक्रमण होता देख अक्रूर सामने आये। उन्होंने बाणोंकी वर्षासे दुर्दिन (बरसात)-का दृश्य उपस्थित कर दिया। द्युमान्ने भी अपने धनुषसे छूटे हुए बाण-समूहोंकी बौछारसे अक्रूरको आच्छादित कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे बादल वर्षाकालके सूर्यको ढक देता है॥ १२॥

गान्दिनीपुत्र अक्रूरने तलवारसे उस बाणपटलको काटकर क्रोधसे मूर्च्छित उस वीर द्युमान्के ऊपर शक्तिसे प्रहार किया॥ १३॥

तत्प्रहारेण भिन्नाङ्गो मूर्च्छितो घटिकाद्वयम्।
पुनरुत्थाय युयुधे शिशुपालसखा बली॥ १४

गृहीत्वाथ गदां गुर्वीं लक्षभारविनिर्मिताम्।
तताड हृदि चाक्रूरं जगर्ज घनवद् द्युमान्॥ १५

अक्रूरे तत्प्रहारेण किञ्चिद्व्याकुलमानसे।
युयुधानस्तदा प्रागाज्ज्याशब्दं कारयन् मुहुः॥ १६

शिरस्तस्याशु चिच्छेद बाणेनैकेन लीलया।
पतिते द्युमति ह्याजौ वीरास्तस्य विदुद्रुवुः॥ १७

तदैव शक्तः सम्प्राप्तो दृष्ट्वा सेनां पलायिताम्।
शूलं चिक्षेप सहसा युयुधानाय धीमते॥ १८

युयुधानश्च बाणौघैस्तच्छूलं शतधाकरोत्।
शक्तो गृहीत्वा परिघं युयुधानं तताड ह॥ १९

युयुधानोऽर्जुनसखः क्षणं मूर्च्छामवाप ह।
तदैव वीरः सम्प्राप्तः कृतवर्मा महाबलः॥ २०

शक्तस्यापि रथं साश्वं बाणैश्चूर्णीचकार ह।
शक्तोऽपि चूर्णयामास गदया तद्रथं परम्॥ २१

कृतवर्मा रथं त्यक्त्वा शक्तं जग्राह रोषतः।
पातयित्वा भुजाभ्यां तं चिक्षेप नृप योजनम्॥ २२

शक्ते च पतिते युद्धे शिशुपालप्रणोदितौ।
रङ्गपिङ्गौ मन्त्रिणौ तौ पृतनाक्षौहिणीयुतौ॥ २३

बाणवर्षं प्रकुर्वन्तौ मर्दयन्तावरीन् मृधे।
आजग्मतुर्मैथिलेन्द्र यथा वातहुताशनौ॥ २४

उद्भटं तद्बलं वीक्ष्य यादवेन्द्रः पितुः समः।
आदाय चापं सदसि प्रद्युम्नो वाक्यमब्रवीत्॥ २५

उस प्रहारसे द्युमान्‌का अङ्ग विदीर्ण हो गया। वह दो घड़ीके लिये अपनी चेतना खो बैठा। परंतु शिशुपालके उस बलवान् मित्रने फिर शीघ्र ही उठकर युद्ध आरम्भ कर दिया। द्युमान्‌ने लाख भार लोहेकी बनी हुई एक भारी गदा हाथमें ली और उसके द्वारा अक्रूरकी छातीपर चोट करके मेघके समान गर्जना की॥ १४-१५॥

उसके प्रहारसे अक्रूर मन-ही-मन किंचित् व्याकुल हो उठे। तब बार-बार अपने धनुषकी टंकार करते हुए युयुधान (सात्यकि) सामने आये। उन्होंने खेल खेलमें एक ही बाण मारकर तुरंत द्युमान्‌का मस्तक काट डाला। द्युमान्‌के गिर जानेपर उसके वीर सैनिक युद्धका मैदान छोड़कर भाग चले॥ १६-१७॥

उसी समय अपनी सेनाको भागती देख शक्त वहाँ आ पहुँचा। उसने बुद्धिमान् युयुधानपर सहसा शूल चलाया। युयुधानने अपने बाण-समूहोंसे उस शूलके सौ टुकड़े कर दिये। तब शक्तने परिघ उठाकर युयुधानपर दे मारा॥ १८-१९॥

अर्जुनके सखा युयुधान क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये। इतनेमें ही महाबली वीर कृतवर्मा वहाँ आ पहुँचा। उसने बाण मारकर अश्वसहित शक्तके भी रथको चूर-चूर कर दिया। तब शक्तने भी गदाकी चोटसे कृतवर्माके उत्तम रथको चकनाचूर कर डाला॥ २०-२१॥

राजन्! कृतवर्माने रथ छोड़कर शक्तको रोषपूर्वक पकड़ लिया और उसे गिराकर दोनों भुजाओंसे उछालकर एक योजन दूर फेंक दिया॥ २२॥

उस युद्धभूमिमें शक्तके गिर जानेपर शिशुपालकी आज्ञासे उसके दोनों मन्त्री रङ्ग और पिङ्ग क्रमशः 'पृतना' और 'अक्षौहिणी' सेनाओंके साथ बाण-वर्षा करते और युद्धमें शत्रुओंको कुचलते हुए आये। मैथिलेश्वर! ऐसा जान पड़ता था, मानो अग्नि और वायु देवता एक साथ आ पहुँचे हैं। उन दोनोंकी उद्भट सेनाको देख पिताके समान पराक्रमी यादवेन्द्र प्रद्युम्न धनुष हाथमें लेकर भरी सभामें इस प्रकार बोले— ॥ २३—२५॥

प्रद्युम्न उवाच

अहं गमिष्यामि पुरो रङ्गपिङ्गमृधे जनाः।
रङ्गपिङ्गौ च दृश्येते महाबलपराक्रमौ॥ २६

प्रद्युम्नने कहा—[योद्धाओ!] रङ्ग और पिङ्गके साथ होनेवाले युद्धमें मैं अग्रगामी होकर जाऊँगा; क्योंकि रङ्ग और पिङ्ग महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न दिखायी देते हैं॥ २६॥

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्भानुः कृष्णासुतो बली।
सर्वेषामग्रतो भूत्वा भ्रातरं प्राह नीतिवित्॥ २७

श्रीनारदजी कहते हैं—प्रद्युम्नकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णके बलवान् पुत्र नीतिवेत्ता महाबाहु भानु सबसे आगे होकर अपने बड़े भाईसे बोले—॥ २७॥

भानुरुवाच

त्रैलोक्यं दृश्यते प्राप्तं यदा ते सम्मुखे प्रभो।
तदा ते चापटङ्कारो भविष्यति न संशयः॥ २८

केवलेनापि खड्गेन शिरसी रङ्गपिङ्गयोः।
छित्त्वा चात्र प्रवेक्ष्यामि कलिङ्गशकलाविव॥ २९

भानुने कहा—प्रभो! जब तीनों लोक एक साथ युद्धके लिये आपके सम्मुख उपस्थित दिखायी दें, तब आपके धनुषकी टंकार होगी, इसमें संशय नहीं है। मैं केवल तलवारसे ही रङ्ग और पिङ्गके मस्तक काटकर तरबूजके दो टुकड़ोंकी भाँति हाथमें लिये यहाँ प्रवेश करूँगा॥ २८-२९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे द्युमच्छक्रवधो नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्युमान् और शक्रका वध' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

भानुके द्वारा रङ्ग-पिङ्गका वध; प्रद्युम्न और शिशुपालका भयंकर युद्ध तथा चेदिदेशपर प्रद्युम्नकी विजय

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शत्रुहा भानुर्गृहीत्वा खड्गचर्मणी।
पदातिः प्रययौ सैन्ये वने वन्यकरीव सः॥ १

भानुः खड्गेन शत्रून् ताञ्छिन्नबाहूंश्चकार ह।
द्विपान् हयान् सम्मुखस्थान् पार्श्वस्थांश्च द्विधाकरोत्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर शत्रुसूदन भानु ढाल-तलवार लेकर पैदल ही शत्रुसेनामें उसी प्रकार घुस गये, जैसे जंगली हाथी जंगलमें प्रवेश करता है। भानुने अपने खड्गसे शत्रु-योद्धाओंकी भुजाएँ काट डालीं। हाथी और घोड़े भी जब सामने या आस-पास मिल जाते थे, तब वे अपनी तलवारसे उनके दो टुकड़े कर डालते थे॥ १-२॥

खड्गद्वितीयो ह्येकाकी रेजे छिन्दन्नरीन् मृधे।
नीहारमेघपटलैर्भानुर्भानुरिव स्फुरन्॥ ३

वे उस समराङ्गणमें शत्रुओंका छेदन करते हुए अकेले ही विचरने और शोभा पाने लगे। उनका दूसरा साथी केवल खड्ग था। जैसे कुहासे और बादलोंसे आच्छादित होनेपर भी सूर्यदेव अपने तेजसे उद्भासित होते हैं, उसी प्रकार शत्रुओंसे आवृत होनेपर भी वीरवर भानु अपने विशिष्ट तेजका परिचय दे रहे थे॥ ३॥

हस्तिनां छिन्नकुम्भानां भानुखड्गेन मैथिल।
मुक्ता निपेतुश्च यथा तारकाः क्षीणकर्मणाम्॥ ४

लक्षमात्रेण तत्सैन्यं पातयित्वा रणाङ्गणे।
रङ्गपिङ्गोपरि प्रागाद्भानुर्वीरो महाबलः॥ ५

कृष्णदत्तेन खड्गेन रथौ तौ रङ्गपिङ्गयोः।
छित्त्वा हयान् सनेतृंश्च भानुर्युद्धे द्विधाकरोत्॥ ६

खड्गौ नीत्वा रङ्गपिङ्गौ तेडतुस्तं महोद्भटौ।
भानुचर्मगतौ खड्गौ भङ्गीभूतौ बभूवतुः॥ ७

भानुखड्गप्रहारेण शिरसी रङ्गपिङ्गयोः।
युगपत्पेततुर्युद्धे तदद्भुतमिवाभवत्॥ ८

भानुस्तयोश्च शिरसी नीत्वा प्रद्युम्नसम्मुखे।
आययौ विजयी वीरः श्लाघितः सैन्यनायकैः॥ ९

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम्।
अभूज्जयजयारावः पुष्पवर्षाः सुरैः कृताः॥ १०

रङ्गपिङ्गौ मृतौ श्रुत्वा शिशुपालो रुषान्वितः।
जैत्रं रथं समारुह्य यदूनां सम्मुखं ययौ॥ ११

मदच्युद्भिर्गजैर्दीर्घै रत्नकम्बलमण्डितैः।
स्वर्णनीडसमायुक्तैर्लोलघण्टाक्वणत्स्वनैः॥ १२

रथैश्च देवधिष्ण्याभैर्वायुवेगैस्तुरङ्गमैः।
विद्याधरसमैर्वीरैर्नादयन् वसुधातलम्॥ १३

शिशुपालबलं दृष्ट्वा शक्रदत्तरथे ततः।
सर्वेषामग्रतः कार्ष्णिः प्रययौ धन्विनां वरः॥ १४

मिथिलेश्वर! भानुके खड्गसे जिनके कुम्भस्थल कट गये थे, उन हाथियोंके मस्तकोंमेंसे मोती रणभूमिमें उसी प्रकार गिरते थे, जैसे पुण्यकर्मोंके क्षीण हो जानेपर स्वर्गवासी जनोंके तारे (ज्योतिर्मय रूप) द्युलोकसे भूमिपर गिर पड़ते हैं॥ ४॥

उस समराङ्गणमें दृष्टिमात्रसे (पलक मारते) शत्रुसेनाको धराशायिनी करके महाबली वीर भानु रङ्ग और पिङ्गके ऊपर जा चढ़े। भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए खड्गसे रङ्ग और पिङ्गके रथोंको नष्ट करके भानुने सारथियोंके सहित उनके घोड़ोंके दो-दो टुकड़े कर डाले॥ ५-६॥

तब महा उद्भट वीर रङ्ग और पिङ्गने भी खड्ग लेकर भानुपर प्रहार किया। परंतु भानुकी ढालतक पहुँचते ही वे दोनों खड्ग टूक-टूक हो गये। भानुकी तलवारकी चोटसे रङ्ग और पिङ्गके मस्तक एक साथ ही युद्धभूमिमें जा गिरे। यह अद्भुत-सी बात हुई॥ ७-८॥

विजयी वीर भानु सेनापतियोंसे प्रशंसित हो रङ्ग और पिङ्गके मस्तक लेकर प्रद्युम्नके सामने आये। उस समय मानवीय दुन्दुभियोंके साथ देव-दुन्दुभियाँ भी बज उठीं। सब ओर जय-जयकार होने लगा। देवताओंने फूल बरसाये॥ ९-१०॥

रङ्ग और पिङ्गके मारे जानेका समाचार सुनकर शिशुपालके रोषकी सीमा न रही। वह विजयशील रथपर आरूढ़ हो यादवोंके सामने गया॥ ११॥

उसके साथ मदकी धारा बहानेवाले, सोनेके हौदेसे युक्त और रत्नजटित कम्बल (कालीन या झूल) से अलंकृत बहुत-से विशालकाय गजराज चले, जिनके हिलते हुए घंटोंकी घनघनाहट दूर-दूरतक फैल रही थी। देवताओंके विमानोंकी भाँति शोभा पानेवाले रथों, वायुके तुल्य वेगशाली तुरंगमों तथा विद्याधरोंके सदृश पराक्रमी वीरोंके द्वारा वह पृथ्वीतलको निनादित करता हुआ चल रहा था॥ १२-१३॥

नरेश्वर! शिशुपालकी सेनाको आती देख धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न इन्द्रके दिये हुए रथपर आरूढ़ हो सबके आगे होकर उसका सामना करनेके लिये चले॥ १४॥

शङ्खं दध्मौ हरेः पुत्रो दिशः खं नादयन्नृप।
तेन नादेन शत्रूणां कम्पोऽभूद्धृदि मानद॥ १५

शिशुपालमहासैन्ये प्रासाद इव दुर्गमे।
चक्रे नाराचसोपानं सहसा रुक्मिणीसुतः॥ १६

दमघोषसुतो धीमान् धनुष्टङ्कारयन् मुहुः।
ब्रह्मास्त्रं सन्दधे यद्वै दत्तात्रेयेण शिक्षितम्॥ १७

प्रचण्डं सर्वतस्तेजो दृष्ट्वा श्रीरुक्मिणीसुतः।
ब्रह्मास्त्रेणापि तद्युद्धे सञ्जहार स लीलया॥ १८

शिशुपालो महाधीमानङ्गारास्त्रं समादधे।
जामदग्न्येन यद्दत्तं महेन्द्रे पर्वते नृप॥ १९

तस्मादङ्गारवर्षाभिः कार्ष्णिसेनातिविह्वला।
पर्जन्यास्त्रं महादिव्यं तदा कार्ष्णिः समादधे॥ २०

स्थूलाभिर्मेघधाराभिरङ्गाराः शान्तिमाययुः।
शिशुपालस्तदा क्रुद्धो गजास्त्रं तत्समादधे॥ २१

यदगस्त्येन मुनिना शिक्षितं मलयाचले।
महोद्भटा गजा दीर्घाः कोटिशस्तद्विनिर्गताः॥ २२

ते सैन्यं पातयामासुः प्रद्युम्नस्य महात्मनः।
हाहाकारो महानासीद्यदूनां वाहिनीषु च॥ २३

प्रद्युम्नोऽथ रणश्लाघी नृसिंहास्त्रं समादधे।
नृसिंहो निर्गतस्तस्मान्नादयन् वसुधातलम्॥ २४

स्फुरत्सटो दीर्घवालो नखलाङ्गलभीषणः।
ननाद हुङ्कृतैः शब्दैर्भक्षयंस्तान् गजान् रणे॥ २५

उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओं और आकाशको गुँजाते हुए अपना शङ्ख बजाया। दूसरोंको मान देनेवाले नरेश! उस शङ्खनादसे शत्रुओंके हृदयमें कँपकँपी होने लगी। शिशुपालकी विशाल सेना राजप्रासाद या राजकीय दुर्गकी भाँति दुर्गम थी। उसमें प्रवेश करनेके लिये रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने सहसा बाणोंका सोपान बनाया॥ १५-१६॥

दमघोषनन्दन बुद्धिमान् शिशुपालने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए ब्रह्मास्त्रका संधान किया, जिसको उसने दत्तात्रेयजीसे सीखा था। उसके प्रचण्ड तेजको सब ओर फैलता देख युद्धभूमिमें रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने भी ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग करके लीलापूर्वक शत्रुके उस अस्त्रका संहार कर दिया॥ १७-१८॥

नरेश्वर! तब महाबुद्धिमान् शिशुपालने अङ्गारास्त्रका प्रयोग किया, जिसे जमदग्निनन्दन परशुरामने महेन्द्र पर्वतपर उसको दिया था। उस अस्त्रके द्वारा अङ्गारोंकी वर्षा होनेसे प्रद्युम्नकी सेना अत्यन्त व्याकुल हो उठी। तब श्रीकृष्णकुमारने महादिव्य पर्जन्यास्त्रका प्रयोग किया॥ १९-२०॥

उससे मेघोंद्वारा जलकी मोटी धाराएँ गिरायी जाने लगीं, अतः सारे अङ्गार बुझ गये। तब शिशुपालने कुपित होकर गजास्त्रका संधान किया, जिसकी शिक्षा उसे अगस्त्य मुनिने मलयाचलपर दी थी। उस अस्त्रसे अत्यन्त उद्‌भट करोड़ों विशालकाय गजराज प्रकट होने लगे। उन्होंने महात्मा प्रद्युम्नकी सेनाको रणभूमिमें गिराना आरम्भ किया। इससे यादवोंकी सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया॥ २१—२३॥

यह देख युद्धमें होड़ लगाकर आगे बढ़नेवाले प्रद्युम्नने नृसिंहास्त्रका संधान किया। उससे नृसिंहका प्राकट्य हुआ, जो अपनी गर्जनासे भूतलको प्रतिध्वनित कर रहे थे। उनके अयाल चमक रहे थे। उनकी गर्दन और पूँछके बाल बड़े-बड़े थे। पंजोंके नख हलकी फालके समान बड़े-बड़े होनेके कारण उनके स्वरूपकी भयंकरताको बढ़ा रहे थे। नृसिंह उस समराङ्गणमें उन हाथियोंका भक्षण करते हुए हुंकारके साथ सिंहनाद करने लगे॥ २४-२५॥

विदार्य गजकुम्भान्तमुत्पतन् भगवान् हरिः।
गजवृन्दं मर्दयित्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ २६

चिक्षेप परिघं रोषाच्छिशुपालो महाबलः।
चिच्छेद परिघं तद्वै यमदण्डेन माधवः॥ २७

ततश्चैद्यो रुषाविष्टो गृहीत्वा खड्गचर्मणी।
प्रद्युम्नं तमुपाधावत्पतङ्ग इव पावकम्॥ २८

कार्ष्णिस्तताड तं खड्गं यमदण्डेन वेगतः।
चूर्णीबभूव तेनापि निस्त्रिंशश्चर्मणा सह॥ २९

पाशिदत्तेन पाशेन सहसा यादवेश्वरः।
दमघोषसुतं बद्ध्वा विचकर्ष रणाङ्गणे॥ ३०

शिशुपालं घातयितुं खड्गं जग्राह रोषतः।
तदैव तत्करौ साक्षाद्गदो जग्राह वेगतः॥ ३१

गद उवाच

परिपूर्णतमेनापि श्रीकृष्णेन महात्मना।
वध्योऽयं देववचनं वचनं मा वृथा कुरु॥ ३२

श्रीनारद उवाच

तदा कोलाहले जाते शिशुपालस्य बन्धने।
दमघोषो बलिं नीत्वा प्रागात्प्रद्युम्नसम्मुखे॥ ३३

कार्ष्णिस्तमागतं दृष्ट्वा त्यक्त्वा शस्त्राणि शीघ्रतः।
अग्रतश्चेदिपं शश्वन्ननाम शिरसा भुवि॥ ३४

मिलित्वा चाशिषं दत्वा प्रद्युम्नाय महात्मने।
दमघोषो महाराजः प्राह गद्गदया गिरा॥ ३५

दमघोष उवाच

प्रद्युम्न त्वं तु धन्योऽसि श्रीयदूनां शिरोमणे।
मत्पुत्रेण कृतं यद्वै तत्क्षमस्व दयानिधे॥ ३६

श्रीप्रद्युम्न उवाच

मम दोषो न ते चायं न ते पुत्रस्य हे प्रभो।
सर्वं कालकृतं मन्ये प्रियमप्रियमेव वा॥ ३७

उन हाथियोंके कुम्भस्थलोंको विदीर्ण करके उछलते हुए भगवान् नृसिंहरूपी श्रीहरि समस्त गजसमूहोंका मर्दन करके वहीं अन्तर्धान हो गये। तब महाबली शिशुपालने रोषपूर्वक परिघ चलाया। परंतु माधव प्रद्युम्नने यमदण्डसे मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये॥ २६-२७॥

फिर तो चेदिराज शिशुपालके रोषकी सीमा न रही। उसने ढाल और तलवार लेकर प्रद्युम्नपर इस प्रकार धावा किया, जैसे पतंग प्रज्वलित अग्निकी ओर टूटता है। श्रीकृष्णकुमारने वेगपूर्वक उसके खड्गपर यमदण्डसे प्रहार किया, जिससे ढालसहित उसकी वह तलवार चूर-चूर हो गयी। फिर यादवेश्वर प्रद्युम्नने सहसा वरुणके दिये हुए पाशसे दमघोषपुत्र शिशुपालको बाँधकर समराङ्गणमें घसीटना आरम्भ किया। अब उन्होंने शिशुपालका काम तमाम करनेके लिये रोषपूर्वक तलवार हाथमें ली। इतनेमें ही गदने वेगसे आगे बढ़कर उनके दोनों हाथ पकड़ लिये॥ २८—३१॥

गद बोले—[रुक्मिणीनन्दन !] परिपूर्णतम महात्मा श्रीकृष्णके हाथसे इसका वध होनेवाला है; इसलिये तुम इसे मारकर देवताओंकी बात झूठी न करो॥ ३२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! शिशुपालके बाँध लिये जानेपर बड़ा भारी कोलाहल मचा। उस समय चेदिराज दमघोष भेंट लेकर प्रद्युम्नके सामने आये। उन्हें आया देख शीघ्र ही अपने अस्त्र-शस्त्र फेंककर प्रद्युम्न आगे बढ़े। उन्होंने चेदिराजके चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया। महाराज दमघोष महात्मा प्रद्युम्नसे मिलकर उन्हें आशीर्वाद देते हुए गद्गद वाणीमें बोले— ॥ ३३—३५॥

दमघोषने कहा—यादव-शिरोमणे प्रद्युम्न! तुम धन्य हो। दयानिधे! मेरे पुत्रने जो अपराध किया है, उसे क्षमा कर दो॥ ३६॥

श्रीप्रद्युम्न बोले—प्रभो! इसमें न मेरा दोष है, न आपका और न आपके पुत्रका ही दोष है। जो कुछ भी प्रिय अथवा अप्रिय होता है, वह सब मैं कालका किया हुआ ही मानता हूँ॥ ३७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो दमघोषोऽपि प्रद्युम्नेन प्रयन्त्रितम्।
शिशुपालं मोचयित्वा नीत्वागाच्चन्द्रिकां पुरीम्॥ ३८

प्रद्युम्नस्य बलं श्रुत्वा साक्षाच्छ्रीकृष्णतेजसः।
न केऽपि युयुधुस्तेन राजानश्च बलिं ददुः॥ ३९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! प्रद्युम्नके यों कहनेपर राजा दमघोष उनके द्वारा बाँधे गये शिशुपालको छुड़ाकर उसे साथ ले चन्द्रिकापुरीमें गये। साक्षात् श्रीकृष्णके समान तेजस्वी प्रद्युम्नके बल-पराक्रमका समाचार सुनकर प्रायः कोई राजा उनके साथ युद्ध करनेको उद्यत नहीं हुए। सबने चुपचाप उनकी सेवामें भेंट अर्पित कर दी॥३८-३९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रङ्गपिङ्गवधे शिशुपालयुद्धे चेदिदेशविजयो नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'रङ्ग-पिङ्गका वध, शिशुपालसे युद्धमें चेदिदेशपर विजय' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

यादवसेनाका कोङ्कण, कुटक, त्रिगर्त, केरल, तैलंग, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि देशोंपर विजय प्राप्तकर करूष देशमें जाना तथा वहाँ दन्तवक्त्रका घोर युद्ध

श्रीनारद उवाच

मनुतीर्थे ततः स्नात्वा प्रद्युम्नो यदुभिः सह।
प्रययौ कौङ्कणान् देशान् दुन्दुभीन्नादयन् मुहुः॥ १

कौङ्कणस्थोऽथ मेधावी गदायुद्धविशारदः।
एकाकी मल्लयुद्धेन परीक्षन्नाययौ बलम्॥ २

प्रद्युम्नं सबलं प्राह शृणु मे यादवेश्वर।
गदायुद्धं देहि मह्यं मद्बलं नाशय प्रभो॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—[मिथिलेश्वर!] तदनन्तर मनुतीर्थमें स्नान करके प्रद्युम्न बारंबार दुन्दुभि बजवाते हुए यादवसेनाके साथ कोङ्कण देशमें गये। कोङ्कण देशका राजा मेधावी गदायुद्धमें अत्यन्त कुशल था। वह मल्लयुद्धके द्वारा विपक्षीके बलकी परीक्षा करनेके लिये अकेला ही आया। उसने सेनासहित प्रद्युम्नसे कहा—'यादवेश्वर! मुझे गदायुद्ध प्रदान करो। प्रभो! मेरे बलका नाश करो'॥ १—३॥

प्रद्युम्न उवाच

एकतो ह्येकतो वीरा बलवन्तो महीतले।
मानं मा कुरु हे मल्ल विष्णुमायातिदुर्गमा॥ ४

वयं तु बहवो वीरास्त्वमेकाकी समागतः।
अधर्मोऽयं महामल्ल दृश्यते याहि साम्प्रतम्॥ ५

प्रद्युम्न बोले—हे मल्ल! इस भूतलपर एक-से-एक बढ़कर बलवान् वीर हैं; अतः तुम अपने बलपर घमंड न करो। भगवान् विष्णुकी माया बड़ी दुर्गम है। हमलोग बहुत-से वीर यहाँ एकत्र हैं और तुम अकेले ही हमसे युद्ध करनेके लिये आये हो। महामल्ल! यह अधर्म दिखायी देता है, अतः इस समय लौट जाओ॥ ४-५॥

मल्ल उवाच

यदा युद्धं न कुरुत भवन्तो बलशालिनः।
मत्पादोऽधोऽत्र निर्यान्तु तदा यास्यामि साम्प्रतम्॥ ६

मल्ल बोला—जब आपलोग बलशाली वीर होकर भी युद्ध नहीं कर रहे हैं, तो मेरे पैरोंके नीचेसे होकर निकल जाइये; तभी अब यहाँसे लौटूँगा॥ ६॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदति मल्ले वै सर्वे यादवपुङ्गवाः।
बभूवुः क्रोधसंयुक्ताः पश्यतस्तस्य मैथिल॥ ७

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिल! उस मल्लके यों कहनेपर समस्त यादव-पुंगव वीर क्रोधसे भर गये॥ ७॥

गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली।
तस्थौ सोऽपि गदां नीत्वा सर्वेषां पश्यतां नृप॥ ८

गदां वरिष्ठां चिक्षेप गदाय स महाबलः।
गदोपरि गदां नीत्वा स्वगदां प्राक्षिपद्गदः॥ ९

गदस्य गदया सोऽपि ताडितः पतितो भुवि।
मृधेच्छां न चकाराशु ह्युद्वमन् रुधिरं मुखात्॥ १०

कोङ्कणस्थोऽथ मेधावी नत्वा प्राह हरेः सुतम्।
परीक्षार्थं च भवतामेतत्कार्यं मया कृतम्॥ ११

त्वमेव भगवान् साक्षात्कुतोऽहं प्राकृतो जनः।
क्षमस्व मेऽपराधं भो त्वामहं शरणं गतः॥ १२

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वाथ बलिं दत्वा नमस्कृत्य हरेः सुतम्।
कोङ्कणस्थः पुरीं प्रागान्मेधावी क्षत्रियोत्तमः॥ १३

कुटकाधिपतिं मौलिं मृगयायां विनिर्गतम्।
जग्राह स महाबाहुः साम्बो जाम्बवतीसुतः॥ १४

कार्ष्णिस्तस्माद्बलिं नीत्वा दण्डकाख्यं वनं ययौ।
मुनीनामाश्रमान् पश्यन् स्वसैन्यपरिवारितः॥ १५

निर्विन्ध्यां च पयोष्णीं च तापीं स्नात्वा हरेः सुतः।
शूर्पारकं महाक्षेत्रमार्यां द्वैपायनीं ततः॥ १६

ऋष्यमूकं ततः पश्यन् प्रवर्षणगिरिं गतः।
पर्जन्यो भगवान् साक्षान्नित्यदा यत्र वर्षति॥ १७

गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं दृष्ट्वा कार्ष्णिः स्वसैन्यकैः।
त्रिगर्तान् केरलान् देशान् ययौ जेतुं महाबलः॥ १८

अम्बष्ठः केरलाधीशः श्रुत्वा वार्तां तु मन्मुखात्।
ददौ तस्मै बलिं शीघ्रं प्रद्युम्नाय महात्मने॥ १९

कृष्णां वेणीं तदोत्तीर्य तैलङ्गान् विषयान् ययौ।
सैन्यपादरजोवृन्दैरन्धीकुर्वन्नभःस्थलम् ॥ २०

हे राजन्! तब उसके देखते-देखते बलदेवजीके छोटे भाई बलवान् वीर गद गदा लेकर सामने खड़े हो गये। फिर वह भी सबके सम्मुख गदा उठाकर खड़ा हो गया। उस महाबली मल्लने गदके ऊपर एक बड़ी भारी गदा फेंकी। गदने उसकी गदाको हाथमें थाम लिया और अपनी गदा उसके ऊपर दे मारी॥ ८-९॥

गदकी गदासे आहत होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और मुखसे रक्त वमन करने लगा। अब उसने युद्धकी इच्छा त्याग दी। तदनन्तर कोङ्कणवासी मेधावीने श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नको प्रणाम करके कहा—'मैंने आपलोगोंकी परीक्षाके लिये यह कार्य किया था। आप तो साक्षात् भगवान् ही हैं। कहाँ आप और कहाँ मुझ-जैसा प्राकृत मनुष्य! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ'॥ १०—१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर, भेंट देकर और श्रीहरिके पुत्रको नमस्कार करके कोङ्कणदेशका राजा क्षत्रिय-शिरोमणि मेधावी अपनी पुरीको चला गया। कुटकदेशका स्वामी मौलि शिकार खेलनेके लिये नगरसे बाहर निकला था। उसे जाम्बवती-कुमार महाबाहु साम्बने जा पकड़ा॥ १३-१४॥

उससे भेंट लेकर प्रद्युम्न दण्डकारण्यको गये। वहाँ मुनियोंके आश्रम देखते हुए सेनासहित श्रीकृष्णकुमार क्रमशः निर्विन्ध्या, पयोष्णी तथा तापी नदीमें स्नान करके महाक्षेत्र शूर्पारकमें गये। वहाँसे आर्या द्वैपायनी देवीका दर्शन करके ऋष्यमूककी शोभा देखते हुए प्रवर्षणगिरिपर गये, जहाँ साक्षात् भगवान् पर्जन्य (इन्द्र) नित्य वर्षा करते हैं॥ १५—१७॥

वहाँसे गोकर्ण नामक शिवक्षेत्रका दर्शन करते हुए महाबली श्रीकृष्णकुमार अपने सैनिकोंके साथ त्रिगर्त और केरल देशोंपर विजय पानेके लिये गये। केरलके राजा अम्बष्ठने मेरे मुखसे महात्मा प्रद्युम्नके शुभागमनकी बात सुनकर शीघ्र ही उन्हें भेंट अर्पित कर दी। तब वे कृष्णावेणी नदीको पार करके अपने सैनिकोंकी पद-धूलिराशिसे आकाशमें अन्धकार-सा फैलाते हुए तैलंगदेशमें गये॥ १८—२०॥

तैलङ्गस्याधिपो राजा विशालाक्षः प्रकीर्तितः।
पुरस्योपवने रेमे सुन्दरीगणसंवृतः॥ २१

मृदङ्गाद्यैश्च वादित्रैर्मधुरध्वनिसङ्कुलैः।
पैररप्सरसां रागैर्गीयमानो द्युराडिव॥ २२

तं प्राह सुन्दरी रामा राज्ञी मन्दारमालिनी।
रजोव्याप्तं नभो वीक्ष्य शुष्यद्बिम्बाधरा परा॥ २३

तैलंगदेशके राजाका नाम विशालाक्ष था। वे अपने नगरके उपवनमें सुन्दरियोंके साथ विहार करते थे। मधुर ध्वनियोंसे व्याप्त मृदङ्ग आदि बाजे बज रहे थे तथा अप्सराएँ उत्कृष्ट रागोंद्वारा देवेन्द्रके समान उस राजाके सुयशका गान कर रही थीं। उस समय सुन्दरी रमणी रानी मन्दारमालिनीने धूलसे व्याप्त आकाशकी ओर देखकर राजासे कहा। रानीके बिम्बोपम अरुण ओष्ठ सूख गये थे॥ २१—२३॥

मन्दारमालिन्युवाच

राजन्न जानासि सदा विहारा-
दहर्निशं कामविशाललोलः।
अहं न जानामि कदापि दुःखं
मुखालकालिभ्रमरास्तवेषा ॥ २४

द्वारावतीशाध्वरनागवल्लि-
चयं समुत्थाप्य दिशो जयार्थम्।
विजित्य सर्वान्नृप चेदिपान् स
समागतोऽसौ यदुराजराजः॥ २५

धुङ्कारशब्दं शृणु दुन्दुभीनां
चीत्कारफूत्कारयुतं द्विपानाम्।
कोदण्डटङ्कारमयं पराणां
कल्पान्तसारस्वतनादकारम् ॥ २६

मन्दारमालिनी बोली—राजन्! आप सदा विहारमें ही रत रहनेके कारण दूसरी किसी बातको नहीं जानते हैं, दिन-रात अत्यन्त कामावेशके कारण चञ्चल बने रहते हैं। और मैं भी आपके मुखपर छिटकी हुई अलकोंकी सुगन्धपर लुभायी भ्रमरी होकर कभी यह न जान सकी कि दुःख क्या होता है॥ २४॥

परंतु आज द्वारकाके राजा उग्रसेनके राजसूय-यज्ञका बीड़ा उठाकर दिग्विजयके लिये निकले हुए वे यदुराजराज प्रद्युम्न चेदिराज आदि समस्त नरेशोंको जीतकर यहाँ आ पहुँचे हैं। दुन्दुभियोंकी धुंकार-ध्वनि सुनिये। उसके साथ हाथियोंके चीत्कार और फूत्कारकी ध्वनि भी मिली हुई है। शत्रुओंके कोदण्डकी टंकार प्रलयकालके गर्जन-तर्जनका कोलाहल प्रस्तुत कर रही है॥ २५-२६॥

त्वरं बलिं प्रेषय शम्बरारये
प्रधावतीः पश्य नरेन्द्रसुन्दरीः।
च्युतप्रसूनाः श्रमवारिवर्षिणी-
र्वनप्रवेशास्फुटकेशमण्डनाः ॥ २७

शम्बरशत्रु प्रद्युम्नके पास तुरंत भेंट भेज दीजिये। इन भागती हुई भूपसुन्दरियोंकी ओर देखिये, इनके बँधे हुए केशपाशोंसे फूल झड़ गये हैं। ये श्रमजल (पसीने)-की वर्षा कर रही हैं और वनमें प्रवेश करनेके कारण इनके केशोंके शृङ्गार बिगड़ गये हैं—स्पष्ट प्रतीत नहीं हो रहे हैं॥ २७॥

पत्नीवाक्यं ततः श्रुत्वा विशालाक्षोऽतिहर्षितः।
प्रद्युम्नसम्मुखे सोऽपि बलिं नीत्वा समाययौ॥ २८

तेन सम्पूजितः साक्षात्प्रद्युम्नो धन्विनां वरः।
स्नात्वा पम्पासरस्तीर्थं महाराष्ट्रं ततो ययौ॥ २९

पत्नीकी बात सुनकर राजा विशालाक्ष अत्यन्त प्रसन्न हो, भेंट-सामग्री लेकर प्रद्युम्नके सामने आये। उनके द्वारा पूजित और सम्मानित हो धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ साक्षात् प्रद्युम्न पम्पा-सरोवर तीर्थमें स्नान करके वहाँसे महाराष्ट्रकी ओर चल दिये॥ २८-२९॥

महाराष्ट्राधिपो राजा विमलो नाम वैष्णवः।
भक्त्या परमया कार्ष्णिं पूजयामास सर्वतः॥ ३०

महाराष्ट्रके राजा विमल विष्णुभक्त थे। उन्होंने बड़े भक्तिभावसे श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नका सब प्रकारसे पूजन किया॥ ३०॥

तथा हि कर्णाटपतिः सहस्रजित्
स्वतः समानीय बलिं महात्मने।
सम्पूजयामास शुभार्थहेतवे
श्रीशम्बरारिं जगतः प्रभुं परम्॥ ३१

इसी प्रकार कर्नाटकके राजा सहस्रजित् स्वयं ही बहुत-सी भेंट-सामग्री लेकर आये और महात्मा प्रद्युम्नको अर्पित करके उन्होंने कल्याणके लिये उन परम प्रभु जगदीश्वर शम्बरारिका पूजन किया॥ ३१॥

प्रद्युम्नो भगवान् साक्षाद्यादवैः सह मैथिल।
करूषान् विषयान् प्रागाज्जेतुं योगीव देहजान्॥ ३२

महारङ्गपुरे तत्र वृद्धशर्मा महामतिः।
भर्ताथ श्रुतदेवाया वसुदेवस्वसुर्नृप॥ ३३

मिथिलेश्वर! जैसे योगी देहसे होनेवाले विषय-भोगोंपर विजय पानेकी चेष्टा करता है, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न यादवोंके साथ करूपदेशको जीतनेके लिये गये। नरेश्वर! वहाँ महारङ्गपुरमें परम बुद्धिमान् राजा वृद्धशर्मा रहते थे, जो वसुदेवकी बहिन श्रुतदेवाके पति थे॥ ३२-३३॥

तस्य पुत्रो दन्तवक्रः कृष्णशत्रुः प्रकीर्तितः।
शिशुपाल इव क्रुद्धो योद्धुं चक्रे मनः स्वयम्॥ ३४

मात्रा पित्रा वारितोऽपि दैत्यो दैत्याननुव्रतः।
यादवान् घातयिष्यामि कोपमित्थं चकार ह॥ ३५

उनका पुत्र दन्तवक्र श्रीकृष्णका शत्रु कहा गया है। उसने भी शिशुपालकी भाँति कुपित हो यादवोंके साथ स्वयं युद्ध करनेका विचार किया। यद्यपि माता-पिताने उसे मना किया, तथापि दैत्योंके प्रति अनुराग रखनेवाले उस दैत्यने 'मैं यादवोंको मार डालूँगा'—इस प्रकार अपना क्रोध प्रकट किया॥ ३४-३५॥

आदाय स गदां गुर्वीं लक्षभारविनिर्मिताम्।
एकाकी प्रययौ योद्धुं प्रद्युम्नबलसम्मुखे॥ ३६

दन्तवक्रं कृष्णवर्णं कज्जलाद्रिसमप्रभम्।
ललज्जिह्वं घोररूपं तालवृक्षदशोच्छ्रितम्॥ ३७

वह लाख भारकी बनी हुई भारी गदा लेकर प्रद्युम्नकी सेनाके सामने अकेला ही युद्ध करनेके लिये गया। दन्तवक्रके शरीरका रंग काला था। वह कोयलेके पहाड़-सा जान पड़ता था। उसकी जीभ लपलपाती रहती थी और रूप बड़ा भयंकर था। वह दस ताड़के बराबर ऊँचा था॥ ३६-३७॥

किरीटकुण्डलधरं हेमवर्मविभूषितम्।
किङ्किणीजालसंयुक्तं चलच्चरणनूपुरम्॥ ३८

कम्पयन्तं भुवं वेगात्पातयन्तं गिरीन् द्रुमान्।
घातयन्तं स्वगदया कृतान्तमिव दुर्जनान्॥ ३९

मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल तथा वक्षपर सोनेके कवचसे विभूषित वह करूष-राजकुमार करधनीकी लड़ें पहने हुए था। उसके चञ्चल चरणोंमें नूपुर बज रहे थे। वह अपने वेगसे पृथ्वीको कँपाता और अपनी गदाके प्रहारसे पर्वतों तथा वृक्षोंको उसी प्रकार गिरा रहा था, जैसे यमराज दुर्जनोंको॥ ३८-३९॥

तं दृष्ट्वा यादवाः सर्वे भयं प्रापुर्मृधाङ्गणे।
आगते दन्तवक्रे च महान् कोलाहलो ह्यभूत्॥ ४०

प्रद्युम्नः प्रेषयामास तस्योपरि महद्बलम्।
अष्टादशाक्षौहिणीनां धनुष्टङ्कारयन् मुहुः॥ ४१

समराङ्गणमें दन्तवक्रको उपस्थित देख समस्त यादव भयसे थर्रा उठे। उसके आते ही महान् कोलाहल मच गया। प्रद्युम्नने उसके ऊपर बारंबार धनुषकी टंकार करती हुई अठारह अक्षौहिणी विशाल सेना भेजी॥ ४०-४१॥

बाणैः परश्वधैः राजञ्छतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः।
तं तेडुर्यादवाः सर्वे सर्वतोऽद्रिं यथा गजाः॥ ४२

दन्तवक्रः स्वगदया करीन्द्रानुत्कटान् बहून्।
पातयामास राजेन्द्र भिन्नकुम्भस्थलान् मृधे॥ ४३

कांश्चित्पादेषु चोन्नीय किङ्किणीजालनादितान्।
सशृङ्खलान् सनीडांस्ताँल्लोलघण्टारणत्स्वनान्॥ ४४

वातस्तूलमिवाकाशे चिक्षेप शतयोजनम्।
शुण्डादण्डेषु कांश्चिद्वै गृहीत्वा दैत्यपुङ्गवः॥ ४५

भ्रामयित्वा गजान् दिक्षु नदतः प्राक्षिपद्रुषा।
कांश्चिद्गजान् वंशयोश्च कक्षयोरुभयोरपि॥ ४६

पद्भ्यामाक्रम्य शुशुभे दैत्यः कालाग्निरुद्रवत्।
रथान् ससूतान् साश्वांश्च सध्वजान् समहारथान्।
चिक्षेप गगने वीरः पद्मानीव प्रभञ्जनः॥ ४७

तुरगांश्च पदातींश्च प्राक्षिपद्गगने बलात्।
अधोमुखा ऊर्ध्वमुखा राजपुत्रा महाबलाः॥ ४८

सशस्त्रा रत्नकेयूरसंयुक्तास्तारका इव।
आकाशात्प्रपतन्तस्ते वमन्तो रुधिरं मुखात्॥ ४९

बलं विलोडयामास गदया दैत्यपुङ्गवः।
दंष्ट्रया प्रलयाब्धिं श्रीवराह इव मैथिल॥ ५०

राजन्! जैसे हाथी किसी पर्वतपर चारों ओरसे टक्कर मारते हों, उसी प्रकार समस्त यादवोंने बाणों, फरसों, शतघ्नियों तथा भुशुण्डियोंसे दन्तवक्रपर प्रहार करना आरम्भ किया। राजेन्द्र! दन्तवक्रने अपनी गदासे रणभूमिमें बहुत-से उत्कट गजराजोंके कुम्भ-स्थल विदीर्ण करके उन्हें मार गिराया॥ ४२-४३॥

किन्हीं हाथियोंको, जो किङ्किणी-जालसे निनादित, साँकलोंसे सुशोभित, हौदोंसे अलंकृत और चञ्चल घंटोंके रणत्कारसे युक्त थे, उसने पाँव पकड़कर उठा लिया और जैसे हवा रूईको दूर उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया। वह दैत्यराज किन्हीं-किन्हीं हाथियोंकी सूँड पकड़कर आकाशमें घुमाता और उन चिंघाड़ते हुए गजराजोंको रोषपूर्वक विभिन्न दिशाओंमें फेंक देता था॥ ४४—४५ $^{1}/_{2}$॥

किन्हीं हाथियोंकी पीठकी हड्डियोंपर, किन्हींकी काँखोंमें—उभय पार्श्वोंमें पैरोंसे आक्रमण करके वह दैत्य कालाग्निरुद्रकी भाँति शोभा पाता था। वह वीर सारथि, घोड़े, ध्वजा और महारथियोंसहित रथोंको आकाशमें उसी तरह उछाल देता था, जैसे आँधी कमलोंको उड़ा ले जाती है॥ ४६-४७॥

उसने घोड़ों और पैदल सैनिकोंको भी बलपूर्वक उठा-उठाकर आकाशमें फेंक दिया। बहुत-से महाबली राजकुमार ऊपर या नीचे मुँह किये शस्त्रों तथा रत्नमय केयूरोंसहित आकाशसे गिरते हुए तारोंके समान प्रतीत होते थे और मुँहसे रक्त वमन कर रहे थे॥ ४८-४९॥

मैथिल! उस दैत्यपुंगवने अपनी गदासे यादव-सेनाको उसी प्रकार मथ डाला, जैसे भगवान् श्रीवराहने प्रलयकालके समुद्रको अपनी दंष्ट्रासे विक्षुब्ध कर दिया था॥ ५०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कोङ्कणकुटकत्रिगर्तकेरल-तैलङ्गमहाराष्ट्रकर्णाटकविजये कारूषदेशगमनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कोङ्कण, कुटक, त्रिगर्त, केरल, तैलंग, महाराष्ट्र और कर्नाटकपर विजय पाकर यादवसेनाका कारूषदेशमें गमन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

दन्तवक्रकी पराजय तथा करूषदेशपर यादवसेनाकी विजय

श्रीनारद उवाच

तदा श्रीकृष्णपुत्राणामष्टादश महारथाः।
सक्षतं कारयामासुर्दन्तवक्रं महाबलम्॥ १

दन्तवक्रोऽतिशुशुभे सक्षतो रक्तधारया।
लाक्षयेव यथा सौधं प्रहारं नानुचिन्तयन्॥ २

कृतवर्मा च बाणौघैस्तं जघान रणाङ्गणे।
युयुधानश्च खड्गेन शक्त्याक्रूरो महाबलम्॥ ३

सारणस्तं कुठारेणाहनत्तं रोहिणीसुतः।
दन्तवक्रोऽपि गदया युयुधानं तताड ह॥ ४

करेण कृतवर्माणमक्रूरं स्वाङ्घ्रिणाहनत्।
सारणं भुजवेगेन कारूषो रणदुर्मदः॥ ५

अक्रूरः कृतवर्मा च युयुधानोऽथ सारणः।
निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ मरुता पादपा इव॥ ६

ततो गदां समादाय साम्बो जाम्बवतीसुतः।
गदोपरि गदां नीत्वा गदया तं तताड ह॥ ७

दन्तवक्रो गदां त्यक्त्वा साम्बं जाम्बवतीसुतम्।
गृहीत्वा पातयामास भुजाभ्यां रणमण्डले॥ ८

साम्बस्तदा समुत्थाय गृहीत्वा पादयोश्च तम्।
अपोथयद्भूमिपृष्ठे तदद्भुतमिवाभवत्॥ ९

दन्तवक्रः समुत्थाय साट्टहासं तदाकरोत्।
ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह॥ १०

पताकाढ्येन दिव्येन सहस्रादित्यवर्चसा।
सहस्रहययुक्तेन प्रद्युम्नं धन्विनां वरम्।
दन्तवक्रोऽपि तं वीक्ष्य प्राहेदं परुषं वचः॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—तब श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंने मिलकर महाबली दन्तवक्रको क्षत-विक्षत कर दिया। घायल हुआ दन्तवक्र रक्तधारासे रञ्जित हो उसी प्रकार अत्यन्त शोभा पाने लगा, जैसे महावरके रंगसे रँगा हुआ कोई ऊँचा महल सुशोभित हो रहा हो। उसने शत्रुओंके प्रहारको कुछ भी नहीं गिना॥ १-२॥

कृतवर्माने समराङ्गणमें उसे बाण-समूहोंद्वारा घायल किया, सात्यकिने तलवारसे चोट पहुँचायी और अक्रूरने उस महाबली वीरपर शक्तिसे प्रहार किया॥ ३॥

रोहिणीनन्दन सारणने उसके ऊपर कुठारसे आघात किया। रणदुर्मद दन्तवक्रने भी सात्यकिको गदासे चोट पहुँचायी, कृतवर्माको हाथसे और अक्रूरको लातसे मारा तथा सारणको भुजाओंके वेगसे आहत कर दिया। अक्रूर, कृतवर्मा, सात्यकि और सारण—ये चारों वीर आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४—६॥

तदनन्तर जाम्बवतीकुमार साम्बने उसकी गदा लेकर, गदाके ऊपर अपनी गदा रखकर उससे दन्तवक्रको मारा। दन्तवक्रने गदा फेंक दी और जाम्बवतीकुमार साम्बको पकड़कर दोनों भुजाओंसे रणमण्डलमें गिरा दिया॥ ७-८॥

तब साम्बने भी उठकर उसके दोनों पैर पकड़कर उसे भूपृष्ठपर दे मारा। वह एक अद्भुत-सी बात हुई! दन्तवक्र उठकर उस समय अट्टहास करने लगा। उसकी आवाजसे सात लोकों और पातालोंसहित समूचा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। [तब] सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी और सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए पताका-मण्डित दिव्य रथपर आरूढ़ होकर आये हुए धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नकी ओर देखकर दन्तवक्रने यह कठोर बात कही—॥ ९—११॥

दन्तवक्र उवाच

यूयं च यादवाः सर्वे वृष्णयो ह्यन्धकादयः।
अल्पसत्त्वा जनास्तुच्छा विद्रुता युद्धभीरवः॥ १२

ययातिशापसम्भ्रष्टा भ्रष्टराज्या गतत्रपाः।
एकोऽहं बहवो यूयं युष्माभिश्च कृतं मृधम्॥ १३

अधर्मवर्तिभिस्तुच्छैर्धर्मशास्त्रविलोपिभिः ।
पूर्वं पिता ते श्रीकृष्णो नन्दस्य पशुरक्षकः॥ १४

गोपालोच्छिष्टभोजी च सोऽद्य वै यादवेश्वरः।
हैयङ्गवीनदध्याज्यदुग्धतक्रादिकं रसम्॥ १५

चोरयामास गोपीनां रसिको रासमण्डले।
जरासन्धभयात्सोऽपि समुद्रं शरणं गतः॥ १६

सोऽद्यैव यदुनाथोऽभूद्यो भीरुः कालसम्मुखे।
तेन दत्तं स्वल्पराज्यमुग्रसेनः समेत्य सः॥ १७

करिष्यत्यल्पसारार्थे राजसूयं क्रतूत्तमम्।
दुरत्यया कालगतिर्जातं चित्रमहो जगत्।
अध्यास्ते सिंहशार्दूलं शृगालो ह्यतिदुर्बलः॥ १८

श्रीप्रद्युम्न उवाच

पुरा वै कुण्डिनपुरे यदूनां बलमूर्जितम्।
त्वया दृष्टं न किं त्वत्र पश्याद्यैव विनिन्दक॥ १९

युष्मान् सम्बन्धिनो ज्ञात्वा नेच्छे युद्धं करूषप।
बलात्त्वं युद्धमाकार्षीर्धर्मशास्त्रं त्वया कृतम्॥ २०

नन्दो द्रोणो वसुः साक्षाज्जातो गोपकुलेऽपि सः।
गोपाला ये च गोलोके कृष्णरोमसमुद्भवाः॥ २१

राधारोमोद्भवा गोप्यस्ताश्च सर्वा इहागताः।
काश्चित्पुण्यैः कृतैः पूर्वैः प्राप्ताः कृष्णं वरैः परैः॥ २२

दन्तवक्र बोला—तुम समस्त यादव, वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी लोग स्वल्पशक्तिवाले, तुच्छ, रणभूमिसे भागे हुए और युद्धभीरु हो। राजा ययातिके शापसे तुम्हारा तेज भ्रष्ट हो गया है। तुम राज्यभ्रष्ट और निर्लज्ज हो। मैं अकेला हूँ और तुम बहुसंख्यक हो; तथापि अधर्म-मार्गपर चलनेवाले तथा धर्मशास्त्रकी मर्यादाको विलुप्त करनेवाले तुम नराधमोंने मेरे साथ युद्ध किया है। तुम्हारा पिता श्रीकृष्ण पहले नन्दके पशुओंका चरवाहा था॥ १२—१४॥

वह ग्वालोंकी जूठन खाता था, किंतु आज वही यादवोंका ईश्वर बना बैठा है। उसने गोपियोंके घरमें माखन, दही, घी, दूध और तक्र आदि गोरसकी चोरी की थी। वह रासमण्डलमें रसिया बनकर नाचता था, किंतु अब जरासंधके भयसे उसने भी समुद्रकी शरण ले ली है॥ १५-१६॥

जो कालयवनके सामने डरपोककी तरह भागा था, वही आज 'यदुनाथ' बना है। उसके दिये हुए थोड़े-से राज्यको पाकर उग्रसेन उस अल्पसारके लिये यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूय-यज्ञ करेगा! कालकी गति दुर्लङ्घ्य है। अहो! सारा संसार विचित्र हो गया। सिंह और व्याघ्रपर अत्यन्त दुर्बल सियार शासन करने चला है!॥ १७-१८॥

श्रीप्रद्युम्नने कहा—ओ निन्दक! पहिले कुण्डिन-पुरमें तूने यादवोंके बढ़े-चढ़े बलको शायद नहीं देखा था, किंतु आज यहाँ देख लेना। करूषराज! तुम लोग मेरे सम्बन्धी हो, यह जानकर मैं तुमसे युद्ध नहीं करना चाहता था। किंतु तूने बलपूर्वक युद्ध छेड़ दिया। यह तेरे द्वारा धर्मशास्त्रानुमोदित कार्य ही तो किया गया है!॥ १९-२०॥

नन्दराज साक्षात् द्रोण नामक वसु हैं, जो गोपकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। गोलोकमें जो गोपाल-गण हैं, वे साक्षात् श्रीकृष्णके रोमसे प्रकट हुए हैं और गोपियाँ श्रीराधाके रोमसे उद्‌भूत हुई हैं। वे सब-की-सब यहाँ व्रजमें उतर आयी हैं। कुछ ऐसी भी गोपाङ्गनाएँ हैं, जो पूर्वकृत पुण्यकर्मों तथा उत्तम वरोंके प्रभावसे श्रीकृष्णको प्राप्त हुई हैं॥ २१-२२॥

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः॥ २३

यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि।
तं वदन्ति परे साक्षात्परिपूर्णतमं स्वयम्॥ २४

उग्रसेनोऽथ राजेन्द्रो मरुत्तो नाम यः पुरा।
श्रीकृष्णस्य वरेणासौ यादवेन्द्रो बभूव ह॥ २५

निरङ्कुशो महामूर्खो विनिन्दसि महद्गुणम्।
स न प्रार्थयते किञ्चिद्यथा सिंहः शिवारुतम्॥ २६

श्रीनारद उवाच

एवं वचस्तदा श्रुत्वा दन्तवक्रो मदोत्कटः।
गदां गुर्वीं समादाय प्राद्रवत्तद्रथोपरि॥ २७

गदया पातयामास सहस्रं घोटकान्नदन्।
घोटका दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रूपं भयङ्करम्॥ २८

प्रद्युम्नोऽपि गदां नीत्वा तं तताड दृढं हृदि।
तत्प्रहारेण दैत्येन्द्रः किञ्चिद्व्याकुलमानसः॥ २९

तयोश्च गदया युद्धं घोररूपं बभूव ह।
गदाभ्यां प्रहरन्तौ द्वौ मर्दयन्तौ परस्परम्।
नदन्तौ संगरे राजन् गिरौ केसरिणौ यथा॥ ३०

दन्तवक्रो भुजाभ्यां तं गृहीत्वा श्रीहरेः सुतम्।
भूमौ निपातयामास सिंहः सिंहमिवौजसा॥ ३१

प्रद्युम्नोऽपि समुत्थाय गृहीत्वा भुजयोर्बलात्।
भ्रामयित्वा भुजाभ्यां तं पातयामास भूतले॥ ३२

प्रद्युम्नस्य प्रहारेण सोऽपतद्रुधिरं वमन्।
चूर्णितास्थिः खिन्नगात्रो मूर्च्छितो विह्वलाकृतिः॥ ३३

भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा हैं, असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्पर ब्रह्म हैं। जिनके अपने तेजमें सम्पूर्ण तेज विलीन होते हैं, उन्हें ब्रह्मा आदि उत्कृष्ट देवता साक्षात् 'परिपूर्णतम' कहते हैं, पूर्वकालमें जो चक्रवर्ती राजा मरुत्त थे, वे ही श्रीकृष्णके वरदानसे यादवराज उग्रसेन हुए हैं। तू निरङ्कुश और महामूर्ख है, जो महान् गुणशाली महापुरुषकी निन्दा करता है। जैसे सिंह गीदड़की आवाजपर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार महाराज उग्रसेन अथवा भगवान् श्रीकृष्ण तेरी बकवासपर कोई विचार नहीं करेंगे॥ २३—२६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! प्रद्युम्नकी ऐसी बात सुनकर मदमत्त दन्तवक्र एक भारी गदा लेकर उनके रथपर टूट पड़ा। उसने अपनी गदासे चोट करके उस रथके सहस्र घोड़ोंको गिरा दिया और गर्जना करने लगा। उसका भयंकर रूप देखकर सब घोड़े भाग चले॥ २७-२८॥

तब प्रद्युम्नने भी गदा लेकर उसकी छातीमें बड़े जोरसे प्रहार किया। उस प्रहारसे दैत्यराज दन्तवक्र मन- ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। अब उन दोनोंमें गदासे घोर युद्ध होने लगा। गदाओंसे परस्पर प्रहार करते हुए वे दोनों वीर एक-दूसरेको रणभूमिमें रौंदने और गर्जने लगे। राजन्! उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वतपर दो सिंह आपसमें जूझ रहे हों॥२९-३०॥

दन्तवक्रने दोनों हाथोंसे श्रीकृष्णकुमारको पकड़कर भूमिपर उसी प्रकार गिरा दिया, जैसे एक सिंहने दूसरे सिंहको बलपूर्वक पटक दिया हो। प्रद्युम्नने भी उठकर बलपूर्वक उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और भुजाओं द्वारा घुमाकर उसे पृथ्वीपर दे मारा॥ ३१-३२॥

प्रद्युम्नके प्रहारसे वह रक्त वमन करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं; शरीर शिथिल हो गया। उसे मूर्च्छा आ गयी। वह आकृतिसे घबराया हुआ प्रतीत होने लगा॥ ३३॥

गिरीन्द्र इव भूपृष्ठे रेजे शक्रायुधाहतः।
तत्प्रहारेण वसुधा चचाल सजलाभवत्॥ ३४
विचेलुर्दिग्गजास्तारा: समुद्राश्च चकम्पिरे।
पातशब्देन राजेन्द्र त्रिलोकी बधिरीकृता॥ ३५
तदैव कारूषपतिर्महात्मा
श्रीवृद्धशर्मा श्रुतदेवया च।
राज्ञ्या महारङ्गपुराद्यदूनां
समाययौ सुन्दरसन्धिकारी॥ ३६
दत्वा बलिं मैथिल शम्बरारये
सुतं गृहीत्वा कृतसन्धिरग्रतः।
तथा यदूनां प्रवरैः प्रपूजितः
पुनर्महारङ्गपुरं समाययौ॥ ३७

दन्तवक्र इन्द्रके वज्रसे आहत हुए पर्वतकी भाँति भूपृष्ठपर सुशोभित हो रहा था। उसके शरीरके धक्केसे समुद्रसहित पृथ्वी हिलने लगी और जलाप्लावित हो गयी, दिग्गज विचलित हो उठे, तारे खिसक गये और समुद्र काँपने लगे। राजेन्द्र! उसके गिरनेके धमाकेसे तीनों लोकोंके कान बहरे हो गये॥ ३४-३५॥

उसी समय करूषराज महात्मा वृद्धशर्मा रानी श्रुतदेवाके साथ महारङ्गपुरसे वहाँ आ पहुँचे। वे यादवोंके साथ सुन्दर ढंगसे संधि करना चाहते थे। मिथिलेश्वर! वे शम्बरशत्रु प्रद्युम्नको भेंट देकर, पुत्रको साथ ले, संधि करके यदुपुंगवोंसे पूजित हो, पुनः महारङ्गपुरको चले गये॥ ३६-३७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे दन्तवक्रयुद्धे करूषदेशविजयो नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्‌खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'दन्तवक्रके साथ युद्धमें करूषदेशपर विजय' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

उशीनर आदि देशोंपर प्रद्युम्नकी विजय तथा उनकी जिज्ञासापर मुनिवर अगस्त्यद्वारा तत्त्वज्ञानका प्रतिपादन

श्रीनारद उवाच

अर्णवं दक्षिणं स्नात्वा प्रद्युम्नो यादवाधिपः।
उशीनरांस्ततो जेतुमाजगाम बलैः सह॥ १

कोटिशः कोटिशो गावो यत्र देशे चरन्ति हि।
गोपालमण्डलैर्युक्ता व्रजन्त्यो भव्यमूर्तयः॥ २

औशीनराः क्षीरपाना गौरवर्णा मनोहराः।
हैयङ्गवीनमादाय ते ययुः कार्ष्णिसम्मुखे॥ ३

तैः पूजितः शम्बरारिर्ददौ तेभ्यो महाधनम्।
गजान् रथान् हयान् रत्नवस्त्रभूषादि हर्षितः॥ ४

चम्पावती नाम पुरी मणिरत्नसमन्विता।
विराजते यत्र नृपैः सर्पैर्भोगवती यथा॥ ५

चम्पावतीपतिर्वीरो नाम्ना हेमाङ्गदो नृपः।
नीत्वा बलिं समेत्याशु श्रीकार्ष्णिं प्रणनाम ह॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! दक्षिण सागरमें स्नान करके यादवराज प्रद्युम्न वहाँसे सेनासहित उशीनर देशको जीतनेके लिये आये, जहाँ ग्वालोंकी मण्डलीके साथ कोटि-कोटि भव्य मूर्तिवाली गौएँ विचरती और चरती हैं॥ १-२॥

उशीनरदेशके लोग दूध पीते और गोरे रंगके मनोहर रूपवाले होते हैं। वे मक्खनकी भेंट लेकर प्रद्युम्नके सामने गये। उनसे पूजित होकर प्रद्युम्नने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, वस्त्र और भूषण आदि बहुत धन दिया॥ ३-४॥

उशीनरकी राजधानी चम्पावती नामक पुरी मणि और रत्नोंसे सम्पन्न थी। वह राजाओंसे उसी प्रकार शोभा पाती थी, जैसे सर्पोंसे भोगवतीपुरी। चम्पावतीके स्वामी वीर राजा हेमाङ्गद शीघ्र ही भेंट लेकर आये। उन्होंने श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको प्रणाम किया॥ ५-६॥

तस्मै तुष्टः शम्बरारिर्मालां किञ्जल्किनीं ददौ।
सहस्रदलशोभाढ्यं पद्मं दिव्यं ददौ पुनः॥ ७

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः।
विदर्भान् प्रययौ धन्वी दुन्दुभीन्नादयन् मुहुः॥ ८

भीष्मकः कुण्डिनपतिरागतं रुक्मिणीसुतम्।
आनीय पूजयामास ससैन्यं बहुभिर्धनैः॥ ९

मातामहं ततो नत्वा रुक्मिणीनन्दनो बली।
कुन्तदेशांश्च दरदान् प्रययौ यादवेश्वरः॥ १०

मलयाचलपाटीरवायुभिः परिसेवितः।
श्रीखण्डकेतकीपुष्पगन्धाक्ते मलयाचले॥ ११

अगस्त्यं मुनिशार्दूलं पीताब्धिं स ददर्श ह।
कृताञ्जलिपुटः कार्ष्णिर्नमस्कृत्य महामुनिम्।
स्थितोऽभूदुटजे साक्षादाशीर्भिरभिनन्दितः॥ १२

श्रीप्रद्युम्न उवाच

दृश्यं पदार्थं तु जगत्सत्यवद्वर्तते कथम्।
मुक्तो ब्रह्मांशको भूत्वा बद्ध्यतेऽयं कथं गुणैः॥ १३

एतत्प्रश्नं मम ब्रूहि नितरां मुनिसत्तम।
त्वं सर्वविद्दिव्यचक्षुः सर्वब्रह्मविदां वरः॥ १४

अगस्त्य उवाच

त्वं साक्षात्कृष्णचन्द्रस्य परिपूर्णतमस्य च।
पुत्रोऽसि पृच्छसे मां वै लीलामात्रमिदं वचः॥ १५

लोकसंग्रहमेवार्थं कुर्वन् देवो हरिर्यथा।
तथा नृणां च कल्याणं कुर्वन् विचरसि प्रभो॥ १६

उनसे संतुष्ट होकर प्रद्युम्नने उन्हें केसरयुक्त कमलोंकी माला दी और सहस्रदलोंकी शोभासे सम्पन्न एक दिव्य कमल भी अर्पित किया॥ ७॥

तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न धनुष धारण किये तथा बार-बार दुन्दुभि बजवाते हुए अपनी सेनाके साथ विदर्भदेशको गये। कुण्डिनपुरके राजा भीष्मकने वहाँ पधारे हुए रुक्मिणीपुत्रको अपने घर ले आकर बहुत धन दे, सेनासहित उनका पूजन किया। तत्पश्चात् नानाको प्रणाम करके बलवान् यादवेश्वर रुक्मिणीनन्दन कुन्त और दरद देशोंको गये॥ ८—१०॥

मार्गमें मलयाचलके चन्दनको स्पर्श करता हुआ समीर उनकी सेवा कर रहा था। श्रीखण्ड और केतकी पुष्पोंकी गन्धसे भरे हुए मलयाचलपर उन्होंने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यका दर्शन किया, जो किसी समय महासागरको पी गये थे। श्रीकृष्णकुमार दोनों हाथ जोड़कर उन महामुनिको नमस्कार करके उनकी पर्णशालामें खड़े हो गये। मुनिने शुभाशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया॥ ११-१२॥

श्रीप्रद्युम्नने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! यह जगत् तो दृश्य-पदार्थ होनेके कारण मिथ्या है,* फिर सत्यकी भाँति कैसे स्थित है? तथा जीव ब्रह्मका अंश होनेके कारण नित्यमुक्त है, ऐसा होनेपर भी यह गुणोंसे कैसे बँध जाता है? यह मेरा प्रश्न है, आप इसका भलीभाँति निरूपण कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ, दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न तथा समस्त ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं॥ १३-१४॥

अगस्त्यजीने कहा—[रुक्मिणीनन्दन!] तुम साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र हो, तथापि मुझसे प्रश्न करते हो! तुम्हारा यह प्रश्न पूछना लीलामात्र है (क्योंकि तुम सर्वज्ञ हो)। प्रभो! जैसे भगवान् श्रीहरि लोक-संग्रहके लिये ही कर्म करते हैं, उसी प्रकार तुम भी मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये विचर रहे हो॥ १५-१६॥

* जगत्के मिथ्यात्वका साधक अनुमान-प्रमाण इस प्रकार है—जगत् असत्, दृश्यमानत्वात् स्वप्नदृष्टपदार्थवत्।

यथा सत्यस्य सूर्यस्य बिम्बं वारिषु सत्यवत्।
दृश्यते सत्यवद् दृश्यं प्रधानपरयोस्तथा॥ १७

काचे मुखं गुणे सर्पः सैकते जीवनं यथा।
तथायं सन्देहगुणैर्बद्ध्यते प्रेक्षता स्वयम्॥ १८

जैसे सत्य सूर्यका जलमें जो प्रतिबिम्ब दिखायी देता है, वह मिथ्या होनेपर भी सत्य-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार प्रकृति और परमात्माका प्रतिबिम्ब-स्वरूप यह दृश्य-जगत् असत् होनेपर भी सत्य-सा दृष्टिगोचर होता है। जैसे शीशेमें मुख, रस्सीमें सर्प तथा बालुका-राशिमें जलकी सत्यवत् प्रतीति होती है, उसी प्रकार यह सत् परमात्मा देहगत सत्त्वादि गुणोंसे बद्ध जान पड़ता है—अन्तःकरणरूपी दर्पणमें सत्का प्रतिबिम्ब ही जीवरूपमें प्रतीतिगोचर होता है। (शीशेमें मुख आबद्ध न होनेपर भी बद्ध-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार नित्यमुक्त परमात्मा सत्त्वादि गुणमय अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित होकर बद्ध-सा जान पड़ता है)॥ १७-१८॥

प्रद्युम्न उवाच

कथं न बद्ध्यते देही येनोपायेन तद्वद।
वैराग्येण दृढेनापि ब्रूहि ब्रह्मविदां वर॥ १९

प्रद्युम्नने पूछा—ब्रह्मज्ञ-शिरोमणे! जिस उपायसे दृढ़ वैराग्य प्राप्त करके देहधारी जीव कथमपि बन्धनमें न पड़े, वह मुझे बताइये॥ १९॥

अगस्त्य उवाच

विवेकं यः समाश्रित्य भजेद्ब्रह्म सनातनम्।
मनोमयं जगन्मत्वा स व्रजेत्परमं पदम्॥ २०

जन्ममृत्यू शोकमोहौ जराबालयुवादयः।
अहं मदो व्याधिभयं दुःखं शोकः क्षुधा रतिः॥ २१

आधिर्भयं तस्य राजन्न भवन्ति कदाचन।
आत्मा निरीहो ह्यतनुः सर्वतश्चानहंकृतिः।
शुद्धो गुणाश्रयः साक्षात्परो निष्कल आत्मदृक्॥ २२

अगस्त्यजीने कहा—जो विवेकका आश्रय लेकर जगत्को मनोमय (मनके संकल्पमात्रसे प्रकट) मानकर सनातन ब्रह्मका भजन करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। राजन्! उस परमात्माको जन्म, मृत्यु, शोक, मोह, बाल्य, यौवन, जरा, अहंता, मद, व्याधिका डर, सुख-दुःख, क्षुधा, रति, मानसिक चिन्ता और भय कभी नहीं प्राप्त होते; क्योंकि आत्मा निरीह (चेष्टारहित), निराकार, सर्वथा अहंकारशून्य, शुद्धस्वरूप, गुणोंका आश्रय, साक्षात् परमेश्वर, निष्कल तथा आत्मद्रष्टा है॥ २०—२२॥

ज्ञानात्मकः सदा पूर्णो विदितो यो मुनीश्वरैः।
तं ब्रह्म परमात्मानं ज्ञात्वायं विचरेत्सुखी॥ २३

जिसको मुनीश्वरोंने सदा पूर्ण एवं ज्ञानमय जाना है, उस परब्रह्म परमात्माको जानकर यह जीव सुखपूर्वक विचरे॥ २३॥

अस्मिञ्छयाने जागर्ति सर्वं पश्यति यः पुमान्।
नायं तं वेत्ति पश्यन्तं न पश्यति कदाचन॥ २४

नभोऽग्निपवनाः कोष्ठकाष्ठप्रोद्गतरेणुभिः।
न सज्जन्ते गुणैर्ब्रह्म वर्णश्च स्फटिको यथा॥ २५

जो पुरुष (आत्मा) इस जगत्के सो जानेपर भी जागता है, सबको देखता है, उस द्रष्टाको यह लोक कभी नहीं देखता, कदापि नहीं जानता। जैसे विभिन्न रंगोंसे स्फटिकमणि कभी लिप्त नहीं होती तथा जैसे आकाश कोठेसे, अग्नि काष्ठसे और वायु उड़ी हुई धूलसे लिप्त नहीं होती, उसी प्रकार ब्रह्म गुणोंसे कभी लिप्त नहीं होता॥ २४-२५॥

लक्षणाभिर्ध्वनिव्यङ्ग्यैर्ज्ञायते न कदाचन।
कुतस्तु लौकिकैर्वाक्यैस्तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः॥ २६

केचित्कर्म वदन्त्येनं केचित्कालं तथाऽपरे।
कर्तारं योगमपरे सांख्यं ब्रह्म वदन्ति के॥ २७

केचित्तं परमात्मानं वासुदेवं वदन्ति के।
प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा॥ २८

विचार्य तद्ब्रह्म परं निःसङ्गो विचरेदिह।
यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव॥ २९

चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः।
तथा गुणानां भ्रमणैर्भ्रमता मनसा यतः॥ ३०

भ्राम्यमाणः सदा राजन् करेणालातचक्रवत्।
करिष्यामि करोमीति ममेदं तव चाब्रुवन्।
त्वमहं च सुखी दुःखी सदाज्ञानविमोहितः॥ ३१

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः।
तैरिदं जगदाव्याप्तमोतप्रोतपटं यथा॥ ३२

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ ३३

अन्धकारे गुणात्कार्ष्णे सर्पबुद्धिर्भवेद्यथा।
आरान्मरीचिकां वारि तथेदं मन्यते जगत्॥ ३४

गतागतं सुखं विद्धि यथा मण्डलवर्तिनाम्।
तथा नृणां च तद्दुःखं यथा नरकवासिनाम्।
घनावलिर्देहगुणा अहोरात्रमृतुर्यथा॥ ३५

जो लक्षणाओंसे, व्यञ्जनाद्वारा व्यक्त होनेवाली ध्वनि एवं व्यङ्ग्यार्थोंसे कभी ज्ञानका विषय नहीं होता, वह लौकिक वाक्योंद्वारा कैसे जाना जा सकता है! उस शब्दार्थातीत परब्रह्मको नमस्कार है। कुछ लोग इस परमात्माको 'कर्म' कहते हैं, दूसरे लोग उसे 'काल' की संज्ञा देते हैं। अन्य विद्वान् उसे 'कर्ता' एवं 'योग' कहते हैं, दूसरे विचारक उसको 'सांख्य' एवं 'ब्रह्म' बताते हैं। कोई 'परमात्मा' और 'वासुदेव' कहते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, निगमागम तथा आत्मानुभवसे उस परब्रह्मके स्वरूपका विचार करके इस जगत्में अनासक्तभावसे विचरे। जैसे जलके चञ्चल होनेसे उसमें प्रतिबिम्बित वृक्ष भी चञ्चलसे प्रतीत होते हैं और नेत्रोंके घूमनेसे धरती भी घूमती-सी दिखायी देती है, उसी प्रकार गुणोंके भ्रमणसे मनके भ्रान्त होनेपर उसमें स्थित आत्मा भी भ्रान्त-सा जान पड़ता है॥ २६—३०॥

राजन्! जैसे हाथसे घुमाया जाता हुआ अलात-चक्र मण्डलाकार घूमता जान पड़ता है, उसी प्रकार गुणोंद्वारा भ्रान्त मनके द्वारा अज्ञानविमोहित जीव ऐसा कहने और मानने लगता है कि 'मैं करूँगा, मैं करता हूँ, यह मेरा है, वह तुम्हारा है, यह तुम हो, यह मैं हूँ, मैं सुखी हूँ और मैं दुखी हूँ' इत्यादि॥ ३१॥

सत्त्व, रज और तम—ये तीनों प्रकृतिके गुण हैं, आत्माके नहीं। उन गुणोंद्वारा यह सारा जगत् उसी तरह व्याप्त है, जैसे सूतसे वस्त्र ओत-प्रोत होता है। सत्त्वगुणमें स्थित जीव ऊपरको जाते हैं, रजोगुणी जीव मध्यवर्ती लोकमें रहते हैं तथा तमोगुणकी वृत्तिमें स्थित तामसजन नीचे (नरकादिमें) जाते हैं॥ ३२-३३॥

श्रीकृष्णकुमार! जैसे अँधेरेमें रखी हुई रस्सीमें सर्पबुद्धि होती है, दूरसे मरीचिका (सूर्यकिरण)-में जलकी भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार अज्ञानमोहित जीव परब्रह्ममें इस जगत्की भ्रान्त धारणा बना लेता है। सुखको उसी तरह आने-जानेवाला समझो, जैसे मण्डलवर्ती राजाओंका राज्य। मनुष्योंका दुःख भी उसी प्रकार है, जैसे नरकवासियोंका। घन-माला, देहके गुण तथा दिन, रात तथा ऋतुएँ-जैसे स्थिर नहीं होते, उसी तरह सुख-दुःख भी स्थिर नहीं है॥ ३४-३५॥

यथा सार्थं तथा दृश्यं न किञ्चित्सर्वदैव हि।
पक्षे जाते यथा नीडात्पारे याते यथोडुपात्॥ ३६

ज्ञाने प्राप्ते तथा लोकाद्दर्पणात्किं प्रयोजनम्।
तथा मार्गं निधायाशु विचरेत्समदृङ्मुनिः॥ ३७

यथेन्दुरुदपात्रेषु यथाग्निः काष्ठसञ्चये।
तथैको भगवान् साक्षात्परमात्मा व्यवस्थितः॥ ३८

घटे मठे यथाकाशो वर्ततेऽन्तर्बहिर्महान्।
तथा परात्मा निर्लिप्तो देहिषु स्वकृतेषु च॥ ३९

यः कृष्णभक्तः शान्तात्मा ज्ञाननिष्ठो विरागवान्।
तं न स्पृशन्तीह गुणाः कानीव बिसिनीदलम्॥ ४०

ज्ञानी सदानन्दमयो बालवद्विचरेत्तनुम्।
न पश्यति धृतं वासो मदिरामदमत्तवत्॥ ४१

सूर्योदये यथा वस्तु गृहे राजन् प्रदृश्यते।
दूरीकृत्य तथाज्ञानं साक्षात्तत्त्वं ततो बृहत्॥ ४२

यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः।
नानेयते तथा ब्रह्म वाचिभिः शास्त्रवर्त्मभिः॥ ४३

परं पदं वदन्त्येतत्केचिद्वै वैष्णवं नृप।
केचिद्वै व्याप्य वैकुण्ठं शान्तं केऽपि ततः परम्॥ ४४

कैवल्यं तद्ब्रह्म केचित्परमं धाम चाव्ययम्।
अक्षरं च परां काष्ठां गोलोकं प्रकृतेः परम्॥ ४५

जैसे तीर्थयात्रियों या व्यापारियोंका समुदाय सदा साथ नहीं रहता, उसी तरह यह दृश्य-प्रपञ्च भी शाश्वत नहीं है। कोई भी वस्तु सदा नहीं रहती। जैसे पंख निकल आनेपर पक्षीको घोंसलेसे और नदीके पार चले जानेपर पथिकको नावसे कोई प्रयोजन नहीं रहता, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जानेपर अभिमान उत्पन्न करनेवाले लोकसे क्या प्रयोजन रह जाता है। समदर्शी मुनि इसी प्रकार अपने मार्गका शीघ्र निश्चय करके असङ्गभावसे विचरे॥ ३६-३७॥

जैसे अनेक जलपात्रोंमें एक ही चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होता है और जैसे काष्ठसमूहमें एक अग्नि व्याप्त है, उसी प्रकार एक ही साक्षात् भगवान् परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है। जैसे महान् आकाश घट और मठके बाहर तथा भीतर भी अलिप्तभावसे विद्यमान है, उसी प्रकार परमात्मा अपने ही द्वारा उद्भावित देहधारियोंके बाहर-भीतर निर्लिप्तरूपसे विराजमान है॥ ३८-३९॥

जो भगवान् श्रीकृष्णका शान्तचित्त, ज्ञाननिष्ठ एवं वैराग्यवान् भक्त है, उसे गुण उसी प्रकार नहीं छूते, जैसे जल कमलदलको स्पर्श नहीं करता। ज्ञानी पुरुष सदा आनन्दमग्न हो बालककी भाँति विचरता है। वह अपने शरीरकी ओर उसी प्रकार दृष्टि नहीं रखता, जैसे मदिरा पीकर मतवाला हुआ मनुष्य अपने पहने हुए वस्त्रकी सँभाल नहीं रखता॥ ४०-४१॥

राजन्! जैसे सूर्योदय होनेपर घरकी वस्तु दिखायी देने लगती है, उसी प्रकार अज्ञानको दूर करके ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्मतत्त्वका साक्षात्कार कर लेता है। जैसे पृथक्-पृथक् द्वारवाली इन्द्रियोंसे एक ही विषय अनेक गुणोंका आश्रय प्रतीत होता है, उसी प्रकार एक ही ब्रह्म उसके प्रतिपादक शास्त्रमार्गोंसे अनेक-सा जान पड़ता है॥ ४२-४३॥

नरेश्वर! इस ब्रह्मको कोई परमपद कहते हैं, कोई वैष्णवधाम बताते हैं, कोई व्यापक वैकुण्ठ, कोई शान्त, कोई परम कैवल्य तथा कोई अविनाशी परम-धाम कहते हैं। किन्हींके मतमें वह अक्षरपद है, कोई उसे पराकाष्ठा कहते हैं, कोई प्रकृतिसे परे गोलोकधाम

केचिन्निकुञ्जं विशदं वदन्तीह पुराविदः।
ज्ञानवैराग्यभक्तिभ्यः प्राप्नोतीह न चान्यतः॥ ४६

बताते हैं और कोई पुराणवेत्ता उसको विशद निकुञ्ज कहते हैं। इस लोकमें रहनेवाला मानव उस पदको ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे प्राप्त करता है, दूसरे किसी साधनसे नहीं॥ ४४—४६॥

श्रीकृष्णचन्द्रस्य हरेः परस्य
कैवल्यनाथस्य परात्परस्य।
व्रजेत्पदं श्रीपुरुषोत्तमस्य
यत्प्राप्य भक्तो न निवर्ततेऽथ॥ ४७

परमपुरुष कैवल्यनाथ परात्पर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पदको मनुष्य उपर्युक्त साधनोंद्वारा उन्हींकी कृपासे प्राप्त करता है और उसे प्राप्त करके भक्त पुरुष कभी वहाँसे लौटता नहीं॥ ४७॥

श्रीनारद उवाच

इति भागवतं ज्ञानं श्रुत्वा कार्ष्णिर्महामुनिम्।
अगस्त्यं पूजयामास भक्त्या नत्वा कृताञ्जलिः॥ ४८

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह भागवत ज्ञान सुनकर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने दोनों हाथ जोड़, भक्ति-भावसे नमस्कार करके महामुनि अगस्त्यजीका पूजन किया॥ ४८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उशीनरविदर्भकुन्तदरददेशविजये अगस्त्यकार्ष्णिज्ञानप्रस्तावो नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उशीनर, विदर्भ, कुन्त, दरद आदि देशोंपर विजयके प्रसङ्गमें अगस्त्य और प्रद्युम्नकी ज्ञानचर्चा' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

शाल्व आदि देशों तथा द्विविद वानरपर प्रद्युम्नकी विजय; लङ्कासे विभीषणका आना और उन्हें भेंट समर्पित करना

श्रीनारद उवाच

कृतमालां ताम्रपर्णीं स्नात्वा श्रीयादवेश्वरः।
यदुभिः सैनिकैः सार्धं राजन् राजपुरं ययौ॥ १

शाल्वो राजपुराधीशः श्रुत्वा मन्मुखतो यदून्।
आगतान् स ययौ शीघ्रं द्विविदं वानराधिपम्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! कृतमाला और ताम्रपर्णी नदियोंमें स्नान करके श्रीयादवेश्वर प्रद्युम्न अपने यादव सैनिकोंके साथ राजपुरको गये। राजपुरका स्वामी राजा शाल्व था। वह मेरे मुँहसे यादवोंका आगमन सुन-कर शीघ्र ही वानरराज द्विविदके पास गया॥ १-२॥

द्विविदो ह्यतिसंक्रुद्धो वीरो मित्रसहायकृत्।
शम्बरारिबलं प्रागाच्चालयन् वसुधातलम्॥ ३

विददार नखैर्दन्तैः पताकाध्वजपट्टकान्।
काश्मीरकम्बलैर्युक्तान् समुद्रान् स्वर्णभूषितान्॥ ४

वीर द्विविद मित्रकी सहायता करनेके लिये उद्यत हो यादवोंके प्रति मनमें अत्यन्त क्रोध लेकर प्रद्युम्नकी सेनाका सामना करनेके लिये गया। वह अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको हिला देता था। द्विविदने अपने नखों और दाँतोंद्वारा पताका और ध्वजपट्टोंको चीर डाला। वे ध्वज कश्मीरी शालोंसे आवृत, मुद्राङ्कित तथा स्वर्णभूषित थे॥ ३-४॥

रथानुत्पातयामास गजानारुह्य वेगतः।
अश्वान् विद्रावयामास भ्रूभङ्गैर्वानरस्वनैः॥ ५

उसने रथोंको ऊपर उछाल दिया, हाथियोंपर वेगपूर्वक चढ़कर घोड़ोंको भगाया और वह वानरोचित किलकारियोंके साथ भौंहें नचाकर सबको भयभीत करने लगा॥ ५॥

इत्थं कोलाहले जाते प्रद्युम्नो धन्विनां वरः।
आजगाम रथेनासौ धनुष्टङ्कारयन् मुहुः॥ ६

द्विविदस्तद्रथस्यारादुच्चक्राम मदोत्कटः।
छत्रं ध्वजं स्वपुच्छेन कम्पयन् सहयं रथम्॥ ७

प्रद्युम्नः स्वधनुष्कोट्या धृत्वा कण्ठे चकर्ष ह।
कपिस्तदातिकुपितो मुष्टिना तं तताड ह॥ ८

प्रद्युम्नो धनुरादाय सज्जं कृत्वा विधानतः।
आकृष्य कर्णपर्यन्तं विशिखेन तताड तम्॥ ९

विशिखो भ्रामयित्वा तं गगने शतयोजनम्।
प्रहरार्धेन राजेन्द्र लङ्कायां संन्यपातयत्॥ १०

रक्षोभिः सह तद्युद्धं बभूव घटिकाद्वयम्।
न्यपातयत्स रक्षांसि त्रिकूटं चारुरोह ह॥ ११

प्रोच्चक्राम त्रिकूटात्स मैनाकशिखरोपरि।
मैनाकात्सिंहलं चैत्य भारतं चाययौ पुनः॥ १२

शनैः शनैर्वानरेन्द्रो हिमाचलगिरिं गतः।
हिमाचलस्य शिखरात्प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ॥ १३

मल्लारदेशाधिपतिं प्रद्युम्नो यादवेश्वरः।
नादयन्दुन्दुभिं राजन् विजित्य जगृहे बलिम्॥ १४

दक्षिणां मथुरां दृष्ट्वा प्रद्युम्नो यादवैः सह।
महाक्षेत्रं रामकृतं प्रययौ सेतुबन्धनम्॥ १५

शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम्।
वीक्ष्य कार्ष्णिर्महावीरस्तस्थौ वेलां समेत्य सः॥ १६

साम्बादीन् स समाहूयाक्रूराद्यान् यादवान् स्वकान्।
सभायामुद्धवं प्राह कार्ष्णिर्योगेश्वरेश्वरः॥ १७

प्रद्युम्न उवाच

विभीषणो द्वीपपतिर्महोज्ज्वलो
लङ्कापतिः कौणपवृन्दमुख्यः।
वदाथ किं भोजवरात्र मन्त्रिन्
न चेद्बलिं यच्छति मे तदाशु॥ १८

इस प्रकार कोलाहल मच जानेपर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए रथपर आरूढ़ हो उसके पास आ गये। मदमत्त द्विविद उस रथके आस-पास उछलने लगा और अपनी पूँछसे घोड़ोंसहित रथ, ध्वज और छत्रको कम्पित करने लगा॥ ६-७॥

प्रद्युम्नने अपने धनुषकी कोटिसे उसका गला पकड़कर खींचा। तब अत्यन्त कुपित हुए उस वानरने उनके ऊपर मुक्केसे प्रहार किया। तदनन्तर प्रद्युम्नने विधि-पूर्वक धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और कानतक खींचकर छोड़े गये एकबाणसे द्विविदको बींध दिया॥ ८-९॥

राजेन्द्र! उस बाणने आकाशमें आधे पहरतक द्विविदको घुमाकर सौ योजन दूर लङ्कामें गिरा दिया। वहाँ दो घड़ीतक राक्षसोंके साथ उसका युद्ध हुआ, उसने राक्षसोंको मार गिराया और वह त्रिकूटपर्वतपर चढ़ गया। तदनन्तर द्विविद त्रिकूटसे मैनाकके शिखरपर गया, मैनाकसे सिंहल जाकर वह पुनः भारतवर्षमें आया। धीरे-धीरे वानरेन्द्र द्विविद हिमालयपर्वतपर गया और हिमालयके शिखरसे प्राग्ज्योतिषपुर जा पहुँचा॥ १०—१३॥

इधर यदुकुलतिलक प्रद्युम्नने मल्लारदेशके अधिपतिपर विजय पाकर उससे भेंट ली और दुन्दुभिनाद कराते हुए दक्षिण मथुरा (मदुर)-का दर्शन करके वे यादव वीरोंके साथ भगवान् श्रीरामके द्वारा निर्मित सेतुबन्ध नामक महाक्षेत्रको गये॥ १४-१५॥

महावीर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न शतयोजनविस्तृत मकरालय समुद्रका दर्शन करके उसके तटपर जाकर ठहर गये। वहाँ साम्ब आदि भाइयों और अक्रूर आदि अपने यादवोंको बुलाकर योगेश्वरेश्वर प्रद्युम्नने सभामें उद्धवसे कहा—॥ १६-१७॥

प्रद्युम्न बोले—भोजकुलतिलक मन्त्रिवर उद्धवजी! परम तेजस्वी लङ्कापति विभीषण इस द्वीपका राजा तथा राक्षस-समूहोंका सरदार है। यदि वह शीघ्र भेंट न दे तो बताइये, यहाँ हमें क्या करना चाहिये?॥ १८॥

उद्धव उवाच

त्वं देवदेवः पुरुषोत्तमोत्तमः
श्रीकृष्णचन्द्रः परमस्त्वमेव हि।
त्वं पृच्छसे लोक इव प्रभो मां
मायापि ते योगिवरैर्दुरत्यया॥ १९

ब्रह्मादयो यस्य परानुशासनं
वहन्ति मूर्ध्ना सततं प्रधर्षिताः।
स एव साक्षात्पुरुषोऽसि भूमन्
दासानुदासोऽस्मि वदामि किं ते॥ २०

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तः पश्यतां तेषां प्रद्युम्नो भगवान् हरिः।
पत्रं गृहीत्वा व्यलिखत्सन्देशं मैथिलेश्वर॥ २१

श्रीभोजराजाय बलिं प्रयच्छ
बलान्न चेन्मे वचनं शृणु त्वम्।
कोदण्डमुक्तैर्विशिखैश्च सेतुं
बद्ध्वागमिष्यामि ससैन्यसङ्घः॥ २२

लिखित्वेदं समादाय कोदण्डं चण्डविक्रमः।
बाणे पत्रं समाधाय कर्णान्तं तं ततान ह॥ २३

प्रत्यञ्चास्फोटनेनैव टङ्कारोऽभूत्तडित्स्वनः।
ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह॥ २४

कोदण्डमुक्तो विशिखो द्योतयन्मण्डलं दिशाम्।
विभीषणसभामध्ये सम्पपात तडित्स्वनः॥ २५

तदैव राक्षसाः सर्वे प्रोत्थिताश्चकिता इव।
सकञ्चुकानि शस्त्राणि जगृहुर्वेगतः खलाः॥ २६

पत्रं बाणात्समाकृष्य पठित्वाथ विभीषणः।
विस्मितोऽभूत्सभामध्ये राक्षसेन्द्रो महाबलः॥ २७

प्राप्तं तदैव सदसि शुक्राचार्यं विभीषणः।
पूजयामास पाद्याद्यैर्नत्वा प्राह कृताञ्जलिः॥ २८

उद्धवजीने कहा—प्रभो! आप देवाधिदेव पुरुषोत्तमोत्तम हैं। आप ही परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र हैं, तथापि आप साधारण लोगोंकी भाँति मुझसे पूछते हैं! बड़े-बड़े योगीश्वर भी आपकी मायाका पार नहीं पाते। भूमन्! ब्रह्मा आदि देवता भी सदा पराजित होकर जिनके उत्तम अनुशासनका भार सदा अपने मस्तक-पर ढोते हैं, वही साक्षात् पुरुषोत्तम आप हैं। मैं तो आपका दासानुदास हूँ, फिर मैं आपको क्या सलाह दूँगा?॥ १९-२०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर! उद्धवके यों कहनेपर श्रीहरिस्वरूप भगवान् प्रद्युम्नने एक ताड़पत्र लेकर उसपर अपना संदेश लिखा—'[राक्षसराज!] तुम भोजराज उग्रसेनके लिये भेंट दो; यदि बलाभिमान-वश तुम मेरी बात नहीं सुनोगे तो मैं धनुषसे छोड़े गये बाणोंद्वारा समुद्रपर सेतु बाँधकर सैन्यसमूहके साथ लङ्कापर चढ़ाई करूँगा'॥ २१-२२॥

यह लिखकर प्रचण्ड-पराक्रमी प्रद्युम्नने कोदण्ड हाथमें लिया और अपने पत्रको बाणमें लगाकर उस बाणको कानतक खींचा और छोड़ दिया। उस धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचनेसे बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान टंकारध्वनि प्रकट हुई। उस नादसे पातालों तथा सातों लोकोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा॥ २३-२४॥

प्रद्युम्नके धनुषसे छूटा हुआ बाण सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ विद्युत्के समान तड़तड़ाकर विभीषणकी सभामें गिरा। उसके गिरते ही सब राक्षस चकित-से होकर उठकर खड़े हो गये। उन दुष्टोंने बड़े वेगसे अपने कवच और शस्त्र ग्रहण कर लिये॥ २५-२६॥

महाबली राक्षसराज विभीषण बाणसे पत्रको खींचकर पढ़ गये। सभामें वह पत्र पढ़कर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उसी समय उस राजसभामें शुक्राचार्य आ पहुँचे। विभीषणने पाद्य आदि उपचारोंद्वारा उनका पूजन किया और हाथ जोड़, प्रणाम करके कहा—॥ २७-२८॥

विभीषण उवाच

भगवन् कस्य बाणोऽयं भोजराजस्तु कः क्षितौ।
किं बलं तस्य मे ब्रूहि त्वं साक्षाद्दिव्यदर्शनः॥ २९

विभीषण बोले—भगवन्! यह किसका बाण है? भूतलपर भोजराज कौन हैं और उनका बल क्या है, यह मुझे बताइये; क्योंकि आप साक्षात् दिव्य-दृष्टिवाले हैं॥ २९॥

श्रीशुक्र उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण राजन् पापं प्रशाम्यति॥ ३०

पुरा हि ब्रह्मणः पुत्राः सनकाद्या दिगम्बराः।
विष्णोर्लोकं ययुर्दिव्यं चरन्तो भुवनत्रयम्॥ ३१

श्रीशुक्रने कहा—राक्षसराज! इस विषयमें पुराणवेत्ता विद्वान् इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं, जिसके सुननेमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पुत्र सनक आदि चार दिगम्बर मुनि तीनों लोकोंमें भ्रमण करते हुए भगवान् विष्णुके दिव्यलोकमें गये॥ ३०-३१॥

दिगम्बराञ्छिशून् मत्वा जयो विजय एव तान्।
द्वारपालौ रुरुधतुर्वेत्रेणान्तःपुरस्थितौ॥ ३२

अशपंस्तौ च ते क्रुद्धाः कृष्णदर्शनलालसाः।
भूयास्तामसुरौ दुष्टौ शुद्धौ हि जन्मभिस्त्रिभिः॥ ३३

एवं शप्तौ स्वभवनात्पतन्तौ भूमिमण्डले।
जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानवपूजितौ॥ ३४

वे नंगे बालकके रूपमें थे। उन्हें शिशु जानकर जय और विजय नामक द्वारपालोंने, जो अन्तःपुरमें पहरेदार थे, बेंतकी छड़ीसे रोक दिया। वे श्रीहरिके दर्शनकी लालसा लेकर आये थे। रोके जानेपर उन्हें क्रोध हुआ और उन्होंने उन दोनों द्वारपालोंको शाप देते हुए कहा—'तुम दोनों दुष्ट हो; इसलिये असुर हो जाओ। तीन जन्मोंके पश्चात् शुद्ध होओगे।' इस प्रकार शाप प्राप्त करके वे दोनों अपने भवनसे गिरे और भूमण्डलमें आकर दैत्यों तथा दानवोंसे पूजित दिति-पुत्र हुए॥ ३२—३४॥

हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्तथा।
भगवान् यज्ञवाराहो भूत्वा क्ष्मामुद्धरञ्जलात्॥ ३५

उनमेंसे ज्येष्ठका नाम हिरण्यकशिपु था और छोटेका नाम हिरण्याक्ष। प्रलयके जलसे पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये भगवान् श्रीहरि यज्ञ-वाराहके रूपमें प्रकट हुए॥ ३५॥

जघान मुष्टिना दैत्यं हिरण्याक्षं महाबलम्।
हिरण्यकशिपुं साक्षान्नृसिंहश्चण्डविक्रमः॥ ३६

ददार जठरे तं वै कायाधवसहायकृत्।
भ्रातरौ तौ पुनर्जातौ केशिन्यां विश्रवःसुतौ॥ ३७

रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकैकतापनौ।
सायकै राघवस्यापि पेततुर्युद्धमण्डले॥ ३८

उन्होंने महाबली हिरण्याक्ष नामक दैत्यको मुक्केसे मार डाला और साक्षात् चण्ड-पराक्रमी नृसिंह होकर कयाधू-कुमार प्रह्लादकी सहायता करते हुए हिरण्यकशिपुका उदर विदीर्ण कर दिया। वे ही दोनों भाई फिर केशिनीके गर्भसे विश्रवाके पुत्र होकर उत्पन्न हुए, जो सम्पूर्ण लोकोंको एकमात्र ताप देनेवाले रावण और कुम्भकर्ण कहलाये। श्रीरामचन्द्रजीके सायकोंसे घायल होकर वे दोनों युद्धभूमिमें सदाके लिये सो गये॥ ३६—३८॥

राक्षसेन्द्रौ महावेगौ ससैन्यौ पश्यतस्तव।
तृतीयेऽस्मिन् भवे जातौ क्षत्रियाणां कुले किल॥ ३९

वे महान् वेगशाली राक्षसराज रावण और कुम्भकर्ण तुम्हारी आँखोंके सामने सेनासहित मारे गये थे। अब उनका तीसरा जन्म हुआ। इस जन्ममें वे क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न हुए हैं॥ ३९॥

शिशुपालो दन्तवक्रो वर्तमानौ महाबलौ।
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्॥ ४०

असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः।
जातस्तयोर्वधार्थाय यदुवंशे हरिः स्वयम्॥ ४१

यादवेन्द्रो भूरिलीलो द्वारकायां विराजते।
युधिष्ठिरमहायज्ञे युद्धे शाल्वस्य माधवः॥ ४२

शिशुपालं दन्तवक्रं हनिष्यति न संशयः।
तस्य पुत्रः शम्बरारिर्दिग्जयार्थं विनिर्गतः॥ ४३

विजेष्यति नृपान् सर्वाञ्जम्बूद्वीपस्थितान्नृप।
जितेषु सत्सु देवेषु द्वारकायां यदूत्तमः।
उग्रसेनो भोजराजो राजसूयं करिष्यति॥ ४४

तस्यैव कोदण्डविनिर्गतो बलात्
प्रचण्डवेगो विशिखस्त्विहागतः।
तन्नामचिह्नोऽतितडित्स्वनो बभौ
प्रद्योतयन् राक्षस मण्डलं दिशाम्॥ ४५

श्रीनारद उवाच

श्रीरामभक्तोऽथ विभीषणोऽसौ
विज्ञाय कृष्णं नृप रामचन्द्रम्।
नीत्वा बलिं कौणपवृन्दमुख्यः
समाययौ शम्बरशत्रुसेनाम्॥ ४६

तदावतीर्याशु महाम्बरात् स्फुरद्-
घनद्युतिर्दीर्घवपुर्जयेक्षणः।
प्रदक्षिणीकृत्य हरेः सुतं पुनः
कृताञ्जलिः सम्मुख आस्थितोऽभूत्॥ ४७

विभीषण उवाच

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च॥ ४८

नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमो नमः।
नमः श्रीरामचन्द्राय भार्गवाय नमो नमः॥ ४९

उनका नाम शिशुपाल और दन्तवक्र है। वे इस युगमें भी बड़े बलवान् हैं। उन दोनोंके वधके लिये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् असंख्य-ब्रह्माण्डपति परात्पर गोलोकनाथ श्रीकृष्ण यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं॥ ४०-४१॥

वे यादवेन्द्र बहुत-सी लीलाएँ करते हुए इस समय द्वारकामें विराजमान हैं। युधिष्ठिरके महायज्ञमें और शाल्वके साथ होनेवाले युद्धमें माधव शिशुपाल और दन्तवक्रका वध कर डालेंगे, इसमें संशय नहीं है। उन्हींके पुत्र शम्बरसूदन प्रद्युम्न दिग्विजयके लिये निकले हैं॥ ४२-४३॥

राजन्! वे जम्बूद्वीपके समस्त राजाओंपर विजय प्राप्त करेंगे। उन सबके जीत लिये जानेपर यदुकुल-तिलक भोजराज उग्रसेन द्वारकामें राजसूय-यज्ञ करेंगे। उन्हींके धनुषसे बलपूर्वक छूटा हुआ यह प्रचण्ड वेगशाली बाण यहाँ आया है। इसपर उनके नामका चिह्न है। यह विद्युत्की गड़गड़ाहटसे भी अधिक आवाज करनेवाला है। राक्षसराज! यह बाण समस्त दिङ्मण्डलको उद्भासित करता हुआ यहाँतक आ पहुँचा है॥ ४४-४५॥

श्रीनारदजी कहते हैं— नरेश्वर! राक्षसोंके सरदार श्रीरामभक्त विभीषणने यह जानकर कि भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी ही हैं, भेंट-सामग्री लेकर प्रद्युम्नकी सेनाके पास गये। उस समय शीघ्र ही आकाशसे उतरकर मेघके समान श्यामकान्तिसे प्रकाशित होनेवाले, विशालकाय, विजयदर्शी विभीषण श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नकी परिक्रमा करके हाथ जोड़ उनके सामने खड़े हो गये॥ ४६-४७॥

विभीषण बोले— प्रभो! आप साक्षात् भगवान् वासुदेव तथा सबके स्रष्टा हैं, आपको नमस्कार है। आप ही संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं; आपको प्रणाम है। मत्स्य, कूर्म और वराहावतार धारण करनेवाले आप परमेश्वरको बारंबार नमस्कार है। श्रीरामचन्द्रको नमस्कार है। भृगुकुलभूषण परशुरामजीको बारंबार नमस्कार है॥ ४८-४९॥

वामनाय नमस्तुभ्यं नृसिंहाय नमो नमः।
नमो बुद्धाय शुद्धाय कल्कये चार्तिहारिणे॥ ५०

आप भगवान् वामनको नमस्कार है। आप ही साक्षात् नरसिंह हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप शुद्ध-बुद्धदेवको नमस्कार है। सबकी पीड़ा हर लेनेवाले कल्किरूप आप भगवान्को मेरा नमस्कार है॥ ५०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा श्रीहरेः पुत्रं पूजयामास मानदः।
उपचारैः षोडशभिर्भक्त्या परमयार्द्रवाक्॥ ५१

तस्मै तुष्टः शम्बरारिर्ददौ ज्ञानं विरक्तिमत्।
भक्तिं शान्तिकरीं साक्षाद्यां विदुः प्रेमलक्षणाम्॥ ५२

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर दूसरोंको मान देनेवाले विभीषणने श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नका बड़े भक्तिभावसे सोलह उपचारोंद्वारा पूजन किया। उस समय उनकी वाणी गद्गद हो रही थी। फिर परम संतुष्ट हुए प्रद्युम्नने उनको वैराग्यपूर्ण ज्ञान, शान्तिदायिनी भक्ति प्रदान की, जिसे प्रेमलक्षणा परानुरक्ति कहते हैं॥ ५१-५२॥

ब्रह्मदत्तं महादिव्यं पद्मरागं शिरोमणिम्।
पौलस्त्येन पुरा दत्तां रत्नमालां स्फुरत्प्रभाम्॥ ५३

चन्द्रकान्तमणिं तस्मै चन्द्रदत्तं ददौ पुनः।
पीताम्बरं परं साक्षात्प्रद्युम्नः परमः प्रभुः॥ ५४

विभीषणोऽथ प्रद्युम्नं नत्वा दत्वा बलिं ततः।
जगाम लङ्कां सगणो राक्षसेन्द्रो महाबलः॥ ५५

साथ ही ब्रह्माजीकी दी हुई परम दिव्य पद्मराग-निर्मित मस्तकमणि तथा पुलस्त्यपौत्र कुबेरद्वारा पूर्वकालमें दी हुई रत्नोंकी दीप्तिमती माला प्रदान की। फिर चन्द्रमाकी दी हुई चन्द्रकान्तमणि तथा उत्तम पीताम्बर परम प्रभु प्रद्युम्नने उन्हें अर्पित किये। तदनन्तर महाबली राक्षसराज विभीषण प्रद्युम्नको प्रणाम करके उन्हें भेंट देकर अपने पार्षदगणोंके साथ लङ्कापुरीको लौट गये॥ ५३—५५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शाल्वमल्लारलङ्काविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शाल्व, मल्लार एवं लङ्कापर विजय' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

सह्यपर्वतके निकट दत्तात्रेयका दर्शन और उपदेश तथा महेन्द्रपर्वतपर परशुरामजीके द्वारा यादवसेनाका सत्कार और श्रेष्ठ भक्तके स्वरूपका निरूपण

श्रीनारद उवाच

ऋषभाद्रिं ततो दृष्ट्वा श्रीरङ्गाख्यं हरेः सुतः।
कामः कार्ष्णिः पुरीं काञ्चीं नदीं प्राचीं सरिद्वराम्॥ १

कावेरीं च तदोत्तीर्य सह्याद्रिविषयं ययौ।
यादवैः सहितः साक्षात्प्रद्युम्नो भगवान् हरिः॥ २

शिबिरेषु समायान्तं मुक्तकेशं दिगम्बरम्।
अवधूतं प्रधावन्तं पुष्टाङ्गं रजसावृतम्॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार कामदेवस्वरूप प्रद्युम्न ऋषभपर्वतका दर्शन करके श्रीरङ्गक्षेत्रमें गये। फिर काञ्चीपुरी एवं सरिताओंमें श्रेष्ठ प्राचीका दर्शन करके, कावेरीनदीके पार जाकर सह्यगिरिके समीपवर्ती देशोंमें गये। भगवान् प्रद्युम्न हरिके साथ यादवोंकी विशाल सेना भी थी। मैथिलेश्वर! उन्होंने देखा कि उनके सैन्य-शिविरकी ओर एक खुले केशवाला दिगम्बर अवधूत भागता चला आ रहा है। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट है और उसपर धूल पड़ी हुई है॥ १—३॥

बालास्तमनुधावन्तस्तलशब्दैरितस्ततः ।
कोलाहलं प्रकुर्वन्तो हसन्तो मैथिलेश्वर॥ ४

तं दृष्ट्वा चोद्धवं प्राह कार्ष्णिर्बुद्धिमतां वरः॥ ५

प्रद्युम्न उवाच

कोऽयं पुष्टवपुर्धावन् बालोन्मत्तपिशाचवत्।
तिरस्कृतोऽपि हसति जनैरानन्दवान् महान्॥ ६

उद्धव उवाच

अयं परमहंसाख्योऽवधूतो वा हरेः कला।
सदानन्दमयः साक्षाद्दत्तात्रेयो महामुनिः॥ ७

यस्य प्रसादात्परमां सिद्धिं प्रापुः परे नृपाः।
सहस्रार्जुनमुख्या ये यदुकायाधवादयः॥ ८

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा शम्बरारिर्नत्वा सम्पूज्य तं मुनिम्।
संस्थाप्य चासने दिव्ये पप्रच्छेदं यदूत्तमः॥ ९

प्रद्युम्न उवाच

भगवन् मे हृदिस्थं वै सन्देहं नाशय प्रभो।
जगतो ब्रह्ममार्गांश्च हेत्वन्तं ब्रूहि तत्त्वतः॥ १०

दत्तात्रेय उवाच

दृश्यते न वसुर्यावत्तावदुल्काप्रयोजनम्।
प्राप्ते वशे महानन्देऽथोल्कायाः किं प्रयोजनम्॥ ११

तावदास्ते जगत्साधो यावत्तत्त्वं न वेद्यते।
परस्मिन् ब्रह्मणि प्राप्ते जगतः किं प्रयोजनम्॥ १२

आस्यबिम्बो यथादर्शे पश्यते न परं वपुः।
प्रधानार्थे तथा जीवो ज्ञानेनासौ परात्परम्॥ १३

यथा सूर्योदये सर्वं वस्तु नेत्रेण दृश्यते।
तथा ज्ञानोदये ब्रह्मतत्त्वं जीवेन सर्वतः॥ १४

हे मैथिलेश्वर! बालक उसके पीछे दौड़ रहे हैं और इधर-उधरसे तालियाँ पीट रहे हैं, कोलाहल करते हैं और हँसते हैं। उस अवधूतको देखकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उद्धवसे बोले— ॥ ४-५ ॥

प्रद्युम्नने कहा—यह हृष्ट-पुष्ट शरीरवाला कौन पुरुष बालक, उन्मत्त और पिशाचकी भाँति भागा आ रहा है? यह लोगोंसे तिरस्कृत होनेपर भी हँसता है और अत्यन्त आनन्दित होता है॥ ६ ॥

उद्धव बोले—ये परमहंस अवधूत श्रीहरिके कलावतार साक्षात् महामुनि दत्तात्रेय हैं, जो सदा आनन्दमय देखे जाते हैं। इन्हींके प्रसादसे पूर्ववर्ती उत्कृष्ट नरेश सहस्रार्जुन आदि तथा यदु एवं प्रह्लाद आदिने परम सिद्धि प्राप्त की है॥ ७-८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर यदुकुल-तिलक प्रद्युम्नने मुनिकी पूजा और वन्दना करके दिव्य आसनपर बिठाकर उनसे प्रश्न किया॥ ९ ॥

प्रद्युम्न बोले—भगवन्! मेरे हृदयमें एक संदेह है, प्रभो! उसका नाश कीजिये। जगत्का स्वरूप क्या है, ब्रह्मके मार्ग कौन हैं तथा तत्त्व क्या है? यह सब ठीक-ठीक बताइये॥ १० ॥

दत्तात्रेयने कहा—जबतक अन्धकारके कारण वस्तु दिखायी नहीं देती, तभीतक उल्का या मशालकी आवश्यकता होती है। जब महानन्द वशमें हो जाय, तब उल्काका क्या प्रयोजन है। साधो! जगत् तभीतक टिका रहता है, जबतक तत्त्वका ज्ञान नहीं होता। परब्रह्म परमात्माके ज्ञात या प्राप्त हो जानेपर जगत्का क्या प्रयोजन है॥ ११-१२ ॥

जैसे मुखका प्रतिबिम्ब दर्पणमें दिखायी देता है, परंतु वास्तविक शरीर उससे भिन्न है, उसी प्रकार प्रधान अर्थात् प्रकृतिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है, परंतु ज्ञानके आलोकमें वह परात्पर परमात्मा सिद्ध होता है। जैसे सूर्योदय होनेपर सारी वस्तुएँ नेत्रसे दिखायी देती हैं, उसी प्रकार ज्ञानोदय होनेपर ब्रह्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है। फिर जीव कहीं नहीं दृष्टिगोचर होता है॥ १३-१४ ॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाथ तं नत्वा प्रद्युम्नो यादवेश्वरः।
वैकुण्ठाद्रिं द्राविडेषु ययौ सेनासमन्वितः॥ १५

सत्यवाग्धर्मतत्त्वज्ञो राजर्षिर्द्राविडेश्वरः।
प्रद्युम्नं पूजयामास भक्त्या परमया युतः॥ १६

श्रीशैलदर्शनं कृत्वा गिरिशालयमद्भुतम्।
स्कन्दं वीक्ष्य ततो राजन् ययौ पम्पासरोवरे॥ १७

गोदावरीं भीमरथीं गतः श्रीद्वारकेश्वरः।
प्रदर्शयन् हरेस्तीर्थं महेन्द्राद्रिं ततो ययौ॥ १८

महेन्द्राद्रिस्थितं रामं भार्गवं क्षत्रियान्तकम्।
नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य तत्र तस्थौ हरेः सुतः॥ १९

रामस्तस्याशिषं दत्वा यादवानां बलाय वै।
चतुरङ्गाय राजेन्द्र योगेनार्हणमाचरत्॥ २०

भक्तसूपः प्रलेहश्च रुदिका दधिशाकजाः।
शिखरिण्यवलेहश्च बलका चेक्षुखेरिणी॥ २१

त्रिकोणः शर्करायुक्तो वटको मधुशीर्षकः।
फेणिका चोपरिष्टश्च शतपत्रः सच्छिद्रकः॥ २२

चक्राभचिह्निकाश्चेत्थं सुधाकुण्डलिकाः स्मृताः।
घृतपूरो वायुपूरस्तथा चन्द्रकलाः स्मृताः॥ २३

दधिस्थूलीश्च कर्पूरनाडीस्थं खण्डमण्डलम्।
गोधूमपरिखाश्चैव सुफलाढ्यास्तथैव च॥ २४

दधिरूपो मोदकश्च शाकसौधान एव च।
मण्डकापायसं युक्तं दधि गोघृतमेव च॥ २५

हैयङ्गवीनमण्डूरी कुपिका पर्पटस्तथा।
शक्तिका लसिका चैव सुवृत्तस्थाय एव हि॥ २६

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उपदेश सुनकर यादवराज प्रद्युम्नने उनको नमस्कार किया और सेनाके साथ वे द्रविड़देशमें वैकुण्ठाचल (वेङ्कटाचल)-के पास गये। द्रविड़देशके स्वामी धर्मतत्त्वज्ञ राजर्षि सत्यवाक्ने बड़ी भक्तिसे प्रद्युम्नका आदर-सत्कार किया॥ १५-१६॥

फिर श्रीशैलका दर्शन करके वहाँके अद्भुत शिवालय तथा स्कन्दस्वामीका दर्शन प्राप्तकर वे पम्पा-सरोवरपर गये। तदनन्तर श्रीद्वारकानाथ प्रद्युम्न गोदावरी और भीमरथी आदि भगवत्-तीर्थोंका दर्शन करते हुए महेन्द्राचलपर गये॥ १७-१८॥

उस पर्वतपर क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले भृगुवंशी परशुरामजी विराजमान थे। उन्हें नमस्कार और उनकी परिक्रमा करके श्रीकृष्णनन्दन वहाँ खड़े हो गये। राजेन्द्र! परशुरामजीने उन्हें आशीर्वाद देकर यादवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका योगशक्तिसे सत्कार किया॥ १९-२०॥

दाल, भात, चटनी, दहीमें भिगोयी हुई भाजीकी पकौड़ियाँ, सिखरन, अवलेह (सिरका या अचार), पालकका साग, इक्षुमिश्रिका (राब और चीनीका बना हुआ भोज्य पदार्थ-विशेष), शक्करके मेलसे बना हुआ त्रिकोणाकार मिष्टान्न (गुझिया, समोसा आदि), बड़ा, मधुशीर्षक (मधुपर्क या घेवर आदि मिष्टान्न-विशेष), फेणिका (फेनी), उपरिष्ट (पूड़ी या पूआ आदि), छिद्रयुक्त शतपत्र (एक प्रकारकी मिठाई), चक्राभचिह्निका (चक्राकार चिह्नवाली मिठाई, इमरती आदि), सुधाकुण्डलिका (जलेबी), घृतपूर (घीकी बनी हुई पूड़ी), वायुपूर (मालपूआ), चन्द्रकला॥ २१—२३॥

दधिस्थूली (दहीमें भीगकर फूली हुई बड़ी), कपूरसे वासित खाँडकी बनी मिठाई, गोधूमपरिखा (खाजा), इनके साथ सुन्दर-सुन्दर फल, उत्तम दधि, मोदक (लड्डू आदि), शाक-सौधान (विविध शाकोंके समुदाय), मण्ड (दूधकी मलाई या झाग), खीर, दही, गायका घी, ताजा मक्खन, मण्डूरी (सागका रसा), कुम्हड़ा, पापड़, शक्तिका (शक्तिवर्धक पेय,

सुफलैश्च सितायुक्तैः फलानि विविधानि च।
यथा मोहनभोगैश्च लवणं च तथैव च॥ २७

कषायो मधुरस्तिक्तः कटुरम्लस्त्वनेकधा।
षट्पञ्चाशत्तमाश्चैव ह्येते भोगाः प्रकीर्तिताः॥ २८

एतेषां भार्गवः शैलानकार्षीद्योगमास्थितः।
सैन्ये सम्भोजिते तत्र हस्तन्यूना न तेऽभवन्॥ २९

वैभवं भार्गवस्यापि दृष्ट्वा सर्वेऽतिविस्मिताः।
प्रद्युम्नस्तं नमस्कृत्य यादवैः सहितस्तदा॥ ३०

सर्वेषां शृण्वतां राजन् पप्रच्छेदं हरेः सुतः।

प्रद्युम्न उवाच

भगवन् भवता दत्तं सर्वेभ्यो भोजनं परम्॥ ३१

समृद्धयः सिद्धयश्च त्वदंघ्रावास्थिताः प्रभो।
सर्वेषां हरिभक्तानां प्रियो भक्तस्तु को हरेः।
एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र त्वं परावरवित्तमः॥ ३२

परशुराम उवाच

त्वं प्रभो किं न जानासि लोकवत्पृच्छसेऽथ माम्।
लोकसंग्रहमेवारात्कुर्वन् विचरसि क्षितौ॥ ३३

निष्किञ्चनो हरिपदाब्जपरागलुब्धः
श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनतत्परो यः।
तद्रूपसिन्धुलहरीविनिमग्नचित्तः
श्रीकृष्णचन्द्रदयितः कथितः स भक्तः॥ ३४

दान्तो महानखिलजङ्गमवत्सलोऽयं
शान्तस्तितिक्षुरतिकारुणिकः सुहृत्सत्।
लोकं पुनाति निजपादरजोभिरारा-
च्छ्रीकृष्णचन्द्रदयितः कथितः परेश॥ ३५

द्राक्षासव आदि), लस्सी, सुवीराम्ल (खट्टी काँजी), सुधारस (शहद या मीठा शर्बत), उत्तमोत्तम फल, मिसरी, नाना प्रकारके फल, मोहनभोग (हलुआ), नमकीन पदार्थ, कसैले, मीठे, तीते, कड़वे और खट्टे अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ—इन सबको छप्पन भोग कहा गया है॥ २४—२८॥

भृगुकुलभूषण परशुरामजीने अपने योगबलसे इन सब पदार्थोंके पर्वत-जैसे ढेर लगा दिये। सारी सेना भोजन कर चुकी, तब भी वहाँ वे खाद्य पदार्थोंके पर्वत हाथभर भी छोटे नहीं हुए। परशुरामजीका यह वैभव देखकर सब लोग अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। राजन्! यादवोंसहित श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने उस समय परशुरामजीको नमस्कार करके सबके सामने इस प्रकार पूछा—॥ २९—३०½॥

प्रद्युम्न बोले—भगवन्! आपने हम सब लोगोंको अत्यन्त उत्तम भोजन प्रदान किया। प्रभो! सारी समृद्धियाँ और सिद्धियाँ आपके चरणोंमें लोटती हैं। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि समस्त हरिभक्तोंमें श्रीहरिका प्रिय भक्त कौन है? विप्रेन्द्र! यह मुझे बताइये; क्योंकि आप परावरवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं॥ ३१-३२॥

परशुरामजीने कहा—प्रभो! आप क्या नहीं जानते, तो भी साधारण लोगोंकी भाँति मुझसे पूछते हैं। लोगोंको शिक्षा देनेके लिये ही आप इस तरह सत्सङ्ग करते हुए भूतलपर विचरते हैं॥ ३३॥

जो अकिंचन है—जिसके पास कोई संग्रह-परिग्रह नहीं है, जो केवल श्रीहरिके चरणारविन्दोंके परागपर ही लुब्ध है, श्रीहरिकी सुन्दर कथाके श्रवणकीर्तनमें ही तत्पर रहता है तथा जिसका चित्त भगवान्‌के रूपसिन्धुकी लहरोंमें ही डूबा रहता है, वही श्रीकृष्णचन्द्रका प्रिय भक्त कहा गया है॥ ३४॥

परमेश्वर! जिस महापुरुषने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर रखा है, जो समस्त जंगम प्राणियोंके प्रति स्नेह एवं दयाका भाव रखता है, जो शान्त, सहनशील, अत्यन्त कारुणिक, सबका सुहृद् एवं सत्पुरुष है, वही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्रिय भक्त कहा गया है। वह अपने चरणोंकी धूलिसे सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करता है॥ ३५॥

यः पारमेष्ठ्यमखिलं न महेन्द्रधिष्ण्यं
नो सार्वभौममनिशं न रसाधिपत्यम्।
नो योगसिद्धिमपि नो न पुनर्भवं वा
वाञ्छत्यलं परमपादरजः स भक्तः॥ ३६

जो निरन्तर परमेश्वर श्रीहरिके चरणोंकी धूलिका आश्रय ले, सम्पूर्ण ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्ती सम्राट्के पद, रसातलके आधिपत्य, योगसिद्धि और मोक्षकी भी कभी इच्छा नहीं करता, वही भगवान्का श्रेष्ठ भक्त है॥ ३६॥

निष्किञ्चनाः स्वकृतकर्मफलैर्विरागा
यत्तत्पदं हरिजना मुनयो महान्तः।
भक्ता जुषन्ति हरिपादरजःप्रसक्ता
अन्ये विदन्ति न सुखं किल नैरपेक्ष्यम्॥ ३७

जो अकिंचन हैं, जिनको अपने किये हुए कर्मोंके फलसे विरक्ति है तथा जो श्रीहरिकी चरणरजमें ही आसक्त हैं, वे महामुनि भगवदीय भक्तजन ही भगवान्के उस परमपदका सेवन करते हैं; अन्य लोग उस नैरपेक्ष्य सुखका अनुभव नहीं कर पाते॥ ३७॥

भक्तात्प्रियो न विदितः पुरुषोत्तमस्य
शम्भुर्विधिर्न च रमा न च रौहिणेयः।
भक्ताननुव्रजति भक्तनिबद्धचित्त-
श्चूडामणिः सकललोकजनस्य कृष्णः॥ ३८

भगवान् पुरुषोत्तमको अपने भक्तसे बढ़कर प्रिय कोई नहीं जान पड़ता। न शिव, न ब्रह्मा, न लक्ष्मी और न रोहिणीनन्दन बलरामजी ही उन्हें भक्तसे अधिक प्रिय हैं। भक्तोंने उनके मनको बाँध रखा है, अतः सकल लोकजनोंके चूड़ामणि भगवान् श्रीकृष्ण सदा भक्तोंके पीछे-पीछे चलते हैं॥ ३८॥

गच्छन्निजं जनमनु प्रपुनाति लोका-
नावेदयन् हरिजने स्वरुचिं महात्मा।
तस्मादतीव भजतां भगवान् मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति न कदापि सुभक्तियोगम्॥ ३९

अपने भक्तजनोंके पीछे चलते हुए भगवान् परमात्मा श्रीकृष्ण उनके प्रति अपनी रुचि—अपना अनुराग सूचित करते हैं और समस्त लोकोंको पवित्र करते हैं। इसीलिये भगवान् मुकुन्द अतिशय भजन करनेवाले लोगोंको मोक्ष तो दे देते हैं, परंतु उत्तम भक्तियोग कदापि नहीं देते॥ ३९॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा यादवेन्द्रो नत्वा श्रीभार्गवोत्तमम्।
प्राच्यां दिशि ययौ राजन् गङ्गासागरसङ्गमम्॥ ४०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह उपदेश सुनकर यादवेन्द्र प्रद्युम्नने श्रीभार्गवकुलभूषण परशुरामजीको नमस्कार किया और वहाँसे पूर्व दिशामें विद्यमान गङ्गासागर-संगमकी ओर प्रस्थान किया॥ ४०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे द्राविडदेशविजयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्रविड़देशपर विजय' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

उड्डीश-डामर देशके राजा, वङ्गदेशके अधिपति वीरधन्वा तथा असमके नरेश पुण्ड्रपर यादवसेनाकी विजय

श्रीनारद उवाच

दिग्जयस्य मिषेणासौ भूभारं हारयन् मुहुः।
प्रद्युम्नो भगवान् साक्षादङ्गदेशं ततो ययौ॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! दिग्विजयके बहाने भूभार-हरण करनेवाले साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न अङ्गदेशको गये॥ १॥

अङ्गेशोऽन्तःपुराधीशो गृहीतो यादवैर्वने।
सोऽपि तस्मै बलिं प्रादात्प्रद्युम्नाय महात्मने॥ २

उड्डीशडामराधीशो बृहद्बाहुर्महाबलः।
न ददौ स बलिं तस्मै प्रद्युम्नाय मदोत्कटः॥ ३

प्रद्युम्नप्रेषितो वीरः साम्बो जाम्बवतीसुतः।
एकाकी प्रययौ धन्वी रथेनादित्यवर्चसा॥ ४

छादयामास बाणौघैर्डामरं नगरं नृप।
गिरिं तुषारपटलैर्जीमूत इव सर्वतः॥ ५

तदा तु डामराधीशो धर्षितः सन् कृताञ्जलिः।
बलिं ददौ नमस्कृत्य प्रद्युम्नाय महात्मने॥ ६

वङ्गदेशाधिपो वीरो वीरधन्वा मदोत्कटः।
आययौ सम्मुखे योद्धुमक्षौहिण्यावृतो बली॥ ७

चन्द्रभानुर्हरेः पुत्रः प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः।
बिभेद तद्बलं बाणैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव॥ ८

करिणां बाणभिन्नानां शिरसो मौक्तिकानि च।
प्रस्फुरन्ति निपेतुः कौ रात्रौ तारागणा इव॥ ९

निपेतू रथिनोऽनेका गजाश्वाश्च पदातयः।
तद्बाणैश्छिन्नशिरसः कूष्माण्डशकला इव॥ १०

क्षणमात्रेण तत्सैन्ये क्षतजानां नदी ह्यभूत्।
मनस्विनां हर्षकरी त्रस्तानां भयकारिणी॥ ११

मुण्डैः कबन्धैर्धावद्भिर्हारकेयूरकुण्डलैः।
किरीटैः कङ्कणैः शस्त्रैर्महामारीव भूर्बभौ॥ १२

अङ्गदेशका स्वामी केवल अन्तःपुरका अधिपति होकर वनमें विहार करता था। वहाँ यादवोंने उसे जा पकड़ा, तब उसने महात्मा प्रद्युम्नको पर्याप्त भेंट दी॥ २॥

उड्डीश-डामर (उड़ीसा) देशके राजा महाबली बृहद्बाहुने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी। वह अपने बलके अभिमानसे मत्त रहता था। प्रद्युम्नने जाम्बवती-कुमार वीरवर साम्बको उसे वशमें करनेके लिये भेजा। साम्ब सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो, धनुष हाथमें ले अकेले ही गये॥ ३-४॥

नरेश्वर! उन्होंने बाण-समूहोंसे डामरनगरको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघ तुषारराशिसे किसी पर्वतको चारों ओरसे ढक देता है। इस प्रकार धर्षित एवं पराजित होकर डामराधीशने तत्काल हाथ जोड़ लिये और महात्मा प्रद्युम्नको नमस्कार करके भेंट अर्पित की॥ ५-६॥

तत्पश्चात् वङ्गदेशके अधिपति मदमत्त एवं वीर राजा वीरधन्वा एक अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये यादवसेनाके सम्मुख आये। वे बड़े बलवान् थे। यादवोंकी ओरसे श्रीहरिके पुत्र चन्द्रभानुने प्रद्युम्नके देखते-देखते वीरधन्वाकी उस सेनाको बाणोंद्वारा उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे कोई कटु वचनोंद्वारा मित्रताका भेदन कर दे॥ ७-८॥

उनके बाणोंसे विदीर्ण हुए हाथियोंके मस्तकसे चमकते हुए मोती भूमिपर इस प्रकार गिरने लगे, मानो रातमें आकाशसे तारे बिखर रहे हों। अनेक रथी वीर धराशायी हो गये। हाथी-घोड़े और पैदल सैनिक उनके बाणोंसे मस्तक कट जानेके कारण कुम्हड़ेके टुकड़ों-जैसे इधर-उधर गिरे दिखायी देते थे॥ ९-१०॥

क्षणभरमें वीरधन्वाकी सेना रक्तकी नदीके रूपमें परिणत हो गयी, जो मनस्वी वीरोंका हर्ष बढ़ाती और डरपोकोंको भयभीत करती थी॥ ११॥

कटे हुए मस्तक और धड़ किरीट, कुण्डल, केयूर, कंगन और अस्त्र-शस्त्रोंसहित दौड़ रहे थे। उनके कारण वहाँकी भूमि महामारी-सी प्रतीत होती थी॥ १२॥

कूष्माण्डोन्मादवेताला भैरवा ब्रह्मराक्षसाः।
शिरांसि जगृहुर्वेगाद्धरमालार्थहेतवे॥ १३

इत्थं निपातिते सैन्ये वीरधन्वा समागतः।
चन्द्रभानुं तताडाशु गदया वज्रकल्पया॥ १४

तद्गदातिप्रहारेण न चचाल हरेः सुतः।
चन्द्रभानुर्गदां नीत्वा तं तताड भुजान्तरे॥ १५

गदाप्रहारव्यथितो मूर्च्छितो धरणीतले।
पपात पादप इव प्रोद्वमन् रुधिरं मुखात्॥ १६

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन वङ्गदेशाधिपो नृपः।
प्रययौ शरणं सोऽपि प्रद्युम्नस्य महात्मनः॥ १७

याते दत्तबलौ राजन्नगरं वीरधन्वनि।
ब्रह्मपुत्रं समुत्तीर्य प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः॥ १८

आशीमाधिपतिं बिम्बं गृहीत्वा यादवेश्वरः।
बलिमादाय यदुभिः कामरूपं समाययौ॥ १९

कामरूपेश्वरः पुण्ड्र ऐन्द्रजालविशारदः।
निर्गतः सेनया सार्धं योद्धुं प्रद्युम्नसम्मुखे॥ २०

आशीमानां यदूनां च घोरं युद्धं बभूव ह।
बाणैः कुठारैः परिघैः शूलैः खड्गर्ष्टिशक्तिभिः॥ २१

पुण्ड्रो विद्याश्चकाराशु पैशाचोरगराक्षसीः।
ततो गुह्यकगन्धर्वाः सर्वतो मैथिलेश्वर॥ २२

प्रधावन्तो रणे राजन् पिशाचाः पिशिताशनाः।
कोटिशः कोटिशोऽङ्गारान् क्षेपयन्तो मुहुर्मुहुः॥ २३

क्षणमात्रेण तत्सैन्यं वमन्तो गरलं मुखात्।
फूत्कारमपि कुर्वन्तो दन्दशूकाः समागताः॥ २४

खरारूढा दन्तवक्त्रा ललज्जिह्वा भयङ्कराः।
चर्वयन्तो नरान् युद्धे धावन्तो राक्षसास्ततः॥ २५

कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, भैरव तथा ब्रह्मराक्षस बड़े वेगसे आकर शंकरजीके गलेकी मुण्डमाला बनानेके लिये वहाँपर गिरे हुए मस्तकोंको उठा लेते थे॥ १३॥

इस तरह जब सारी सेना मार गिरायी गयी, तब वीरधन्वा सामने आये, उन्होंने तुरंत ही वज्र-सरीखी गदासे चन्द्रभानुपर चोट की। उस गदाके भारी प्रहारसे श्रीकृष्णकुमार चन्द्रभानु विचलित नहीं हुए; उन्होंने गदा लेकर तत्काल वीरधन्वाकी छातीपर दे मारी॥ १४-१५॥

उस गदाके प्रहारसे पीड़ित एवं मूर्च्छित हो मुँहसे रक्त वमन करते हुए वीरधन्वा कटे हुए वृक्षकी भाँति भूतलपर गिर पड़े। दो घड़ीमें उनको फिर चेतना हुई, तब उन वङ्गदेशके नरेशने महात्मा प्रद्युम्नकी शरण ली॥ १६-१७॥

राजन्! जब भेंट देकर वीरधन्वा अपने नगरको चले गये, तब अमित-पराक्रमी प्रद्युम्न ब्रह्मपुत्र नद पार करके असमदेशमें गये। वहाँके राजा बिम्बको पकड़कर यादवेश्वर प्रद्युम्नने भेंट ली और यादवोंके साथ कामरूपदेशमें गये॥ १८-१९॥

कामरूपदेशके राजा पुण्ड्र इन्द्रजालकी विद्या (जादू)-में बड़े निपुण थे। वे अपनी सेनाके साथ प्रद्युम्नके सामने युद्धके लिये निकले। उस समय असमियों और यादवोंमें घोर युद्ध हुआ। बाण, कुठार, परिघ, शूल, खड्ग, ऋष्टि तथा शक्तियोंसे प्रहार किया गया॥ २०-२१॥

मैथिलेश्वर! तदनन्तर राजा पुण्ड्रने पिशाच, नाग तथा राक्षसोंकी माया प्रकट की; फिर तो सब ओर गुह्यक, गन्धर्व तथा कच्चे मांस चबानेवाले पिशाच रणभूमिमें दौड़ने तथा बारंबार कोटि-कोटि अङ्गारोंकी वृष्टि करने लगे॥ २२-२३॥

एक ही क्षणमें यादवोंकी सेनापर मुँहसे विष वमन करते और फुंकारते हुए सर्प टूट पड़े। गधेपर बैठे हुए टेढ़े-मेढ़े दाँत और लपलपाती हुई जीभवाले भयंकर राक्षस युद्धमें मनुष्योंको चबाते तथा दौड़ते दिखायी देने लगे॥ २४-२५॥

यक्षाश्च सिंहवदना तुरङ्गवदना नृप।
छिन्धि भिन्धीति गर्जन्तः शूलहस्ता इतस्ततः॥ २६

क्षणमात्रेण मेघानां समूहैश्छादितं नभः।
अन्धकारो ह्यभूद्राजन् रजसा वातवेगतः॥ २७

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकाः।
भयं प्रापुर्महायुद्धे न्यस्तशस्त्रा यदूत्तमाः॥ २८

कृष्णदत्तं धनुः कार्ष्णिरादाय प्रतिकारवित्।
सत्त्वात्मिकां महाविद्यां बाणैः प्रायुंक्त मैथिल॥ २९

बाणैः पिशाचानुरगान् सयक्षान्
रक्षांसि गन्धर्वघनान्धकारान्।
बिभेद दिव्यैः प्रभवैर्यथा हि
नीहारमेघान् किरणैर्विवस्वान्॥ ३०

बाणैश्च पुण्ड्रं सरथं सवाहनं
तं भ्रामयित्वा घटिकाद्वयं खे।
निपातयामास रणे सपत्नं
पद्मं पृथिव्यामिव मारुतः किल॥ ३१

बुद्धस्तदा तं शरणं समेत्य
प्रधर्षितः सद्य उपायनानि।
लक्षैर्हयानामयुतैर्गजानां
युतानि दत्वा प्रणनाम कार्ष्णिम्॥ ३२

विपाशां स तदोत्तीर्य सैन्यैः शोणनदं नृप।
केकयानाययौ धन्वी प्रद्युम्नो यदुनन्दनः॥ ३३

केकयस्याधिपो राजा धृतकेतुर्महाबलः।
वसुदेवस्वसुः साक्षाच्छ्रुतकीर्तेः पतिर्महान्॥ ३४

प्रद्युम्नमर्हयामास धृतकेतुः स यादवम्।
भक्त्या परमया राजञ्छ्रीकृष्णस्य प्रभाववित्॥ ३५

हे नृप! सिंहके समान मुखवाले यक्ष तथा अश्वमुख किंनर हाथोंमें शूल लिये 'मारो-काटो' कहते हुए इधर-उधर विचरने लगे। क्षणभरमें सारा आकाश मेघोंकी घटासे आच्छादित हो गया। राजन्! वायुके वेगसे उड़ी हुई धूलके कारण सब ओर अन्धकार छा गया। भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्हवंशके योद्धा उस महायुद्धमें भयभीत हो गये। यदुश्रेष्ठ वीरोंने अपने अस्त्र-शस्त्र नीचे डाल दिये॥ २६—२८॥

मैथिल! तब इस भयके निवारणका उपाय जाननेवाले श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने पिताके दिये हुए धनुषको हाथमें लेकर बाणोंद्वारा सात्त्विक महाविद्याका प्रयोग किया। फिर जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहासे तथा बादलोंको छिन्न-भिन्न कर डालते हैं, उसी प्रकार प्रद्युम्नने बाणोंद्वारा पिशाचों, नागों, यक्षों, राक्षसों तथा गन्धर्वोंके घने अन्धकारको नष्ट कर दिया॥ २९-३०॥

जैसे हवा कमलको उड़ाकर पृथ्वीपर फेंक देती है, उसी प्रकार प्रद्युम्नने बाणोंद्वारा रथ और वाहनसहित शत्रु राजा पुण्ड्रको दो घड़ीतक आकाशमें घुमाकर रणभूमिमें पटक दिया। राजाकी मूर्च्छा दूर होनेपर वे पराजित हो प्रद्युम्नकी शरणमें गये और तत्काल भेंटके रूपमें एक लाख घोड़े और दस हजार हाथी देकर उन्होंने श्रीकृष्णकुमारको प्रणाम किया॥ ३१-३२॥

वहाँसे अपनी सेनाद्वारा शोणनद और विपाशा (व्यास) नदी पार करते हुए यदुकुलनन्दन धनुर्धर वीर प्रद्युम्न केकयदेशमें आ पहुँचे॥ ३३॥

केकयदेशके राजा महाबली धृतकेतु वसुदेवकी बहन साक्षात् श्रुतकीर्तिके महान् पति थे॥ ३४॥

उन्होंने यादवोंसहित प्रद्युम्नका बड़े भक्ति-भावसे पूजन किया। राजन्! वे श्रीकृष्णके प्रभावको जानते थे॥ ३५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे केकयविजयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'केकय देशपर विजय' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

मिथिलाके राजा धृतिद्वारा ब्रह्मचारीके रूपमें पधारे हुए प्रद्युम्नका पूजन; उन दोनोंका शुभ संवाद; प्रद्युम्नका राजाको प्रत्यक्ष दर्शन दे, उनसे पूजित हो शिविरमें जाना

श्रीनारद उवाच

दुन्दुभीन्नादयंस्तस्मात्प्रद्युम्नो यदुनन्दनः।
मैथिलानाययौ राजंस्तव देशान् सुखावृतान्॥ १

सुवर्णसौधैरत्युच्चैः सघटै राजतीं पुरीम्।
मिथिलां वीक्ष्य तामारादुद्धवं प्राह माधवः॥ २

प्रद्युम्न उवाच

कस्यैषा नगरी मन्त्रिन् दृश्यते साम्प्रतं मया।
राजते बहुसौधैश्च पुरी भोगवती यथा॥ ३

उद्धव उवाच

जनकस्य पुरी ह्येषा मिथिला नाम मानद।
मिथिलेन्द्रो धृतिस्तस्यां महाभागवतः कविः॥ ४

सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठः श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः।
बहुलाश्वस्तस्य सुत आबाल्याद्भक्तिकृद्धरेः॥ ५

तस्मै स्वं दर्शनं दातुं भगवानागमिष्यति।
बहुलाश्वं राजपुत्रं श्रुतदेवं द्विजं तथा॥ ६

स्मरत्यलं द्वारकायां श्रीकृष्णो भगवान् हरिः।
जेतुं न शक्यो देवेन्द्रैर्मनुजैश्च कुतः प्रभो॥ ७

धृतिः परमया भक्त्या श्रीकृष्णवशकारकः।

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान् कार्ष्णिरुद्धवेन समन्वितः।
स्वशिष्यमुद्धवं कृत्वा धृतिं द्रष्टुं समाययौ॥ ८

भक्तेरेव परीक्षां हि कर्तुं तस्य नृपस्य च।
ददर्श मिथिलां कार्ष्णिरुद्धवेन समन्वितः॥ ९

वर्मशस्त्रधृता वीरा मालातिलकशोभिताः।
जपन्तः कृष्णनामानि सर्वे वै यत्र मालया॥ १०

लिखितानि च नामानि द्वारि द्वारि हरेर्नृणाम्।
तथा श्रीकृष्णचित्राणि लिखितानि शुभानि च॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वहाँसे विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए यदुनन्दन प्रद्युम्न तुम्हारे सुख-सम्पन्न मिथिलादेशमें आये। कलश-शोभित अत्यन्त ऊँचे स्वर्णमय सौधशिखरोंसे युक्त मिथिलापुरीको दूरसे देखकर प्रद्युम्नने उद्धवसे पूछा— ॥ १-२ ॥

प्रद्युम्न बोले—मन्त्रिप्रवर! इस समय यह किसकी राजधानी मेरी दृष्टिमें आ रही है, जो बहुसंख्यक महलोंसे भोगवतीपुरीकी भाँति शोभा पाती है? ॥ ३ ॥

उद्धवने कहा—मानद! यह राजा जनककी पुरी मिथिला है। इस समय यहाँ मिथिलानरेश महा-भागवत विद्वान् धृति रहते हैं। वे समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण उनके इष्टदेव हैं और वे स्वयं भी श्रीहरिको बहुत प्रिय हैं। उनके पुत्रका नाम बहुलाश्व है, जो बचपनसे ही भगवान्‌की भक्ति करनेवाला है ॥ ४-५ ॥

उसे दर्शन देनेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारेंगे। राजकुमार बहुलाश्व तथा ब्राह्मण श्रुतदेवको द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही याद किया करते हैं। प्रभो! इन्हें देवेन्द्र भी नहीं जीत सकते, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या; क्योंकि धृतिने अपनी पराभक्तिसे श्रीकृष्णको वशमें कर लिया है ॥ ६-७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उद्धवजीको अपना शिष्य बनाकर उनके साथ राजा धृतिका दर्शन करनेके लिये आये। उद्धवसहित प्रद्युम्नने राजाकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये ही मिथिलापुरीको देखा। वहाँके सभी वीर कवच और शस्त्र धारण करके माला और तिलकसे सुशोभित थे। वे सब-के-सब मालाद्वारा श्रीकृष्ण-नामका जप करते थे। मिथिलाके लोगोंके द्वार-द्वारपर श्रीहरिके नाम लिखे थे और श्रीकृष्णके सुन्दर-सुन्दर चित्र अङ्कित थे ॥ ८—११ ॥

कुड्ये कुड्ये गृहाणां च गदापद्मानि मानद।
दशावतारचित्राणि शङ्खचक्राणि यत्र वै॥ १२

तुलसीमन्दिराणीत्थं प्राङ्गणे च गृहे गृहे।
एवं पश्यन् स सौधानि मिथिलायां जनान् बहून्॥ १३

मालातिलकसंयुक्तान् सर्वान् भक्तान् ददर्श ह।
तिलकैर्द्वादशाख्यैश्च युक्तैः कुङ्कुमजैर्वृतान्॥ १४

गोपीचन्दनमुद्राभिश्चर्चिताञ्छान्तविग्रहान्।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरान् विप्रान् हरिमन्दिरचित्रितान्॥ १५

गदां मुद्रां ललाटे च ऊर्ध्वं वा हरिनामतः।
चक्रं शङ्खं च कमलं कूर्मं मत्स्यं भुजद्वये॥ १६

दधतश्च धनुर्बाणं मूर्ध्नि श्रीनन्दकं हृदि।
मुसलं च हलं राजन्नथ कार्ष्णिर्ददर्श ह॥ १७

यस्या वीथ्यां भागवतं केचिच्छृण्वन्ति मानवाः।
इतिहासं भारतं च हरिवंशं तथापरे॥ १८

सनत्कुमारवासिष्ठयाज्ञवल्क्यपराशराः।
गर्गपौलस्त्यधर्मादिसंहिताः के पठन्ति वै॥ १९

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम्।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कन्दसंज्ञितम्॥ २०

भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।
वाराहमात्स्यकौर्माणि ब्रह्माण्डाख्यं तथैव च॥ २१

वीथ्यां वीथ्यां स्म शृण्वन्ति जनाः सर्वे गृहे गृहे।
वाल्मीकिकाव्यं केचिद्वै श्रीरामचरितामृतम्॥ २२

स्मृतीः पठन्ति केचिद्वै केचिद्वेदत्रयीं द्विजाः।
केचित्कुर्वन्ति यज्ञं वै वैष्णवं मङ्गलायनम्॥ २३

राधाकृष्णेति कृष्णेति के वदन्ति मुहुर्मुहुः।
केचिन्नृत्यन्ति गायन्ति हरिकीर्तनतत्पराः॥ २४

मानद! वहाँ घरोंकी प्रत्येक दीवारपर गदा, पद्म, दसों अवतारके चित्र और शङ्ख, चक्र अङ्कित थे। घर-घरके आँगनमें तुलसीके मन्दिर दिखायी देते थे। इस तरह मिथिलाके महलोंको देखते हुए उन्होंने वहाँके लोगोंपर भी दृष्टिपात किया, जो सब-के-सब माला-तिलकधारी भगवद्भक्त थे॥ १२-१३॥

उन्होंने केसर अथवा कुंकुमके बारह-बारह तिलक लगा रखे थे। वहाँके ब्राह्मण गोपीचन्दनकी मुद्राओंसे चर्चित, शान्तस्वरूप तथा ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी थे। उनके अङ्गोंपर हरिमन्दिरके चित्र अङ्कित थे॥ १४-१५॥

ललाटमें गदाकी मुद्रा, सिरपर हरिनाम और दोनों भुजाओंमें चक्र, शङ्ख, पद्म, कूर्म और मत्स्य अङ्कित थे। कितने ही लोगोंने मस्तकपर धनुष और बाणके चित्र तथा हृदयमें नन्दक नामक खड्ग, मुसल और हलके चिह्न धारण कर रखे थे। राजन्! तदनन्तर प्रद्युम्नने देखा—वहाँकी गली-गलीमें कुछ मनुष्य भागवत सुन रहे हैं। वैसे ही दूसरे लोग हरिवंश और महाभारत नामक इतिहास श्रवण कर रहे हैं॥ १६—१८॥

कुछ लोग सनत्कुमारसंहिता, वासिष्ठसंहिता, याज्ञवल्क्यसंहिता, पराशरसंहिता, गर्गसंहिता, पौलस्त्य-संहिता और धर्मसंहिता आदिका पाठ कर रहे हैं। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिङ्ग-पुराण, गरुडपुराण, नारदीयपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण—इन सब पुराणोंको गली-गलीमें, घर-घरमें वहाँके सब लोग सुनते थे। कुछ लोग श्रीरामचरितामृतसे पूर्ण वाल्मीकिके महाकाव्य रामायणका पाठ करते थे॥ १९—२२॥

कुछ लोग स्मृतियोंके और कुछ ब्राह्मण वेदत्रयीके स्वाध्यायमें लगे थे। कुछ लोग मङ्गलधाम वैष्णव यज्ञका अनुष्ठान करते थे। कितने ही मनुष्य राधाकृष्ण, कृष्ण-कृष्ण आदि नामोंका बारंबार कीर्तन करते थे। कुछ लोग हरिकीर्तनमें तत्पर रहकर नाचते और गाते थे॥ २३-२४॥

मृदङ्गतालवादित्रैः कांस्यवीणामनोहरैः।
मन्दिरे मन्दिरे विष्णोः कीर्तनं श्रूयते जनैः॥ २५

नवलक्षणसंयुक्तां भक्तिं यां प्रेमलक्षणाम्।
कुर्वन्ति मैथिला राजन् मिथिलायां गृहे गृहे॥ २६

वहाँके प्रत्येक मन्दिरमें मृदङ्ग, ताल, झाँझ और वीणा आदि मनोहर वाद्योंके साथ लोगोंद्वारा किया जानेवाला हरिकीर्तन सुनायी पड़ता था। राजन्! मिथिलाके घर-घरमें वहाँके निवासी प्रेमलक्षणा नवधाभक्ति करते थे॥ २५-२६॥

एवं तु नगरीं दृष्ट्वा प्रद्युम्नो भगवान् हरिः।
राजद्वारं समेत्याशु मैथिलेशं ददर्श ह॥ २७

मैथिलेशसभायां तु वेदव्यासः शुको मुनिः।
याज्ञवल्क्यो वसिष्ठश्च गौतमोऽहं बृहस्पतिः॥ २८

इस प्रकार नगरीका दर्शन करके भगवान् प्रद्युम्न हरिने राजद्वारपर पहुँचकर शीघ्र ही मैथिलनरेशका दर्शन किया। मैथिलेशकी सभामें वेदव्यास, शुकमुनि, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, गौतम, मैं और बृहस्पति बैठे थे॥ २७-२८॥

अन्ये च मुनयस्तत्र वेदमूर्तिधरा इव।
दृश्यन्ते धर्मवक्तारो हरिनिष्ठा इतस्ततः॥ २९

मैथिलेन्द्रो धृतिस्तत्र भक्तिभावनताननः।
बलस्य पादुकापूजां कुरुते विधिवन्नृप॥ ३०

दूसरे भी धर्मके वक्ता तथा हरिनिष्ठ मुनि वहाँ मूर्तिमान् वेदकी भाँति इधर-उधर बैठे दिखायी देते थे। नरेश्वर मैथिलेन्द्र धृति वहाँ भक्तिभावसे नतमस्तक होकर बलदेवजीकी चरणपादुकाकी विधिवत् पूजा कर रहे थे॥ २९-३०॥

जपन्मुक्तिकरं नाम श्रीकृष्णबलदेवयोः।
दृष्ट्वोत्थाय नमश्चक्रे सशिष्यं ब्रह्मचारिणम्॥ ३१

तं पूजयित्वा विधिवत् पाद्याद्यैर्मैथिलेश्वरः।
कृताञ्जलिपुटो राजा तदग्रे च स्थितोऽभवत्॥ ३२

वे श्रीकृष्ण और बलदेवके मुक्तिदायक नामोंका जप भी करते जाते थे। शिष्यसहित ब्रह्मचारीको आया देख राजाने उठकर नमस्कार किया। उनकी पाद्य आदि उपचारोंसे विधिवत् पूजा करके मैथिलेश्वर राजा धृति दोनों हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये॥ ३१-३२॥

जनक उवाच

अद्य मे सफलं जन्म मन्दिरं विशदीकृतम्।
देवर्षिपितरः सर्वे सन्तुष्टा आगते त्वयि॥ ३३

निर्विकल्पाः समदृशस्त्वादृशाः साधवः क्षितौ।
निःश्रेयसाय भगवन् दीनानां विचरन्ति हि॥ ३४

जनकने कहा—भगवन्! आपके पदार्पणसे आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा राजभवन शुद्ध एवं परमोज्ज्वल हो गया, देवता, ऋषि और पितर—सब संतुष्ट हो गये। भगवन्! आप-जैसे निर्भ्रान्त और समदर्शी साधु भूतलपर दीनजनोंका कल्याण करनेके लिये ही विचरते हैं॥ ३३-३४॥

ब्रह्मचार्युवाच

धन्योऽसि राजशार्दूल धन्या ते मिथिलापुरी।
धन्याः प्रजाश्च ते सर्वा विष्णुभक्तिसमन्विताः॥ ३५

ब्रह्मचारी बोले—राजसिंह! आप धन्य हैं, आपकी यह मिथिलापुरी धन्य है तथा विष्णु-भक्तिसे भरपूर आपकी सारी प्रजा भी धन्य है॥ ३५॥

जनक उवाच

ममेयं नगरी नास्ति न प्रजा न गृहं धनम्।
कलत्रपुत्रपौत्रादि सर्वं कृष्णस्य चैव हि॥ ३६

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते॥ ३७

जनकने कहा—प्रभो! न तो यह नगरी मेरी है, न प्रजा मेरी है और न गृह तथा धन-धान्य मेरे हैं। स्त्री, पुत्र और पौत्रादि मेरे पास जो कुछ है, वह सब भगवान् श्रीकृष्णका ही है। साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति होकर गोलोकधाममें विराजते हैं॥ ३६-३७॥

वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्।
अनिरुद्धस्तथा चैकश्चतुर्व्यूहोऽभवत् क्षितौ॥ ३८

कायेन मनसा वाचा बुद्ध्या वा चेन्द्रियैः कृतम्।
तस्मै समर्पितं शौक्ल्यं मया ब्रह्मन् महामुने॥ ३९

ब्रह्मचार्युवाच

हे वैदेह महाभाग विष्णुभक्तिमतां वर।
त्वद्भक्त्या तोषितः कृष्णस्तवैकत्वं प्रदास्यति॥ ४०

जनक उवाच

दासोऽहं कृष्णभक्तानां त्वादृशानां महात्मनाम्।
मुक्तिं नेच्छामि हे ब्रह्मन्नेकतां हेतुवर्जितः॥ ४१

ब्रह्मचार्युवाच

करोष्यहैतुकीं भक्तिं राजंस्त्वं हेतुवर्जितः।
निर्गुणैर्भक्तिभावैश्च प्रेमलक्षणसंयुतः॥ ४२

प्रद्युम्नो भगवान् साक्षाद्दिग्जयार्थं विनिर्गतः।
नायातस्तव गेहेषु सन्देहो मे महानभूत्॥ ४३

जनक उवाच

प्रद्युम्नो भगवान् साक्षादन्तर्यामी हरिः स्वयम्।
सर्वगः सर्वविच्छश्वदत्र नास्ति च किं प्रभो॥ ४४

ब्रह्मचार्युवाच

ज्ञानदृष्ट्यापि चेत्कार्ष्णिं मन्यसेऽत्र निरन्तरम्।
तर्हि दर्शय तं देवं प्रह्लाद इव दिव्यदृक्॥ ४५

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा तदा राजा महाभागवतो धृतिः।
अश्रुपूर्णमुखो भूत्वा प्राह गद्गदया गिरा॥ ४६

जनक उवाच

यदि मे श्रीहरेर्भक्तिरनिमित्ता कृता भुवि।
तर्हि कार्ष्णिर्हरेः पुत्रः प्रादुर्भूयान्ममाग्रतः॥ ४७

यदि श्रीकृष्णभक्तानां दासोऽहं यदि तत्कृपा।
सर्वत्र यदि तद्भावस्तर्हि भूयान्मनोरथः॥ ४८

वे पुरुषोत्तम एक होकर भी स्वयं ही वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके रूपमें भूतलपर प्रकट हुए हैं। महामुने ब्रह्मन्! शरीर, मन, वाणी, बुद्धि अथवा समस्त इन्द्रियोंद्वारा मैंने जो भी पुण्यकर्म किया है, वह सब भगवान् श्रीकृष्णको समर्पित है॥ ३८-३९॥

ब्रह्मचारीने कहा—महाभाग, विष्णुभक्त-शिरोमणे, विदेहराज! तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हो भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें सायुज्य मोक्ष प्रदान करेंगे॥ ४०॥

जनक बोले—ब्रह्मन्! मैं आप-जैसे श्रीकृष्ण-भक्त महात्माओंका दास हूँ। मैंने अपने मनमें किसी हेतु अथवा कामनाको स्थान नहीं दिया है; अतः मैं एकत्व या सायुज्यरूपा मुक्ति नहीं पाना चाहता॥ ४१॥

ब्रह्मचारीने कहा—राजन्! तुम हेतुरहित होकर अहैतुकी भक्ति करते हो, अतः निर्गुण भक्ति-भावके कारण तुम प्रेमके लक्षणोंसे सम्पन्न हो। साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न दिग्विजयके लिये निकले हैं। वे आपके घरपर क्यों नहीं आये—इस बातको लेकर मेरे मनमें महान् संदेह हो गया है॥ ४२-४३॥

जनक बोले—हे प्रभो! भगवान् प्रद्युम्न साक्षात् अन्तर्यामी स्वयं श्रीहरि हैं। वे सदा, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी हैं। फिर बताइये तो सही, क्या वे यहाँ नहीं हैं?॥ ४४॥

ब्रह्मचारीने कहा—यदि ज्ञानदृष्टिसे भी तुम श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको यहाँ निरन्तर स्थित मानते हो तो दिव्यदृष्टिवाले प्रह्लादकी भाँति तुम उनका यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन कराओ॥ ४५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—बहुलाश्व! यह सुनकर महाभागवत राजा धृतिने अपने मुखपर अश्रुधारा बहाते हुए गद्गद वाणीमें कहा—॥ ४६॥

जनक बोले—यदि मेरेद्वारा भगवान् श्रीहरिकी इस भूतलपर अहैतुकी भक्ति की गयी है तो श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्न मेरे सामने प्रकट हो जायँ। यदि मैं श्रीकृष्णभक्तोंका दास होऊँ, यदि मुझपर उनकी कृपा हो और यदि सर्वत्र मेरी श्रीकृष्णबुद्धि हो, तो मेरा यह मनोरथ पूर्ण हो जाय॥ ४७-४८॥

श्रीनारद उवाच

प्रादुर्बभूवाशु तदैव कार्ष्णि-
विसृज्य सद्यः किल वर्णिरूपम्।
पश्यत्सु सर्वेषु जनेषु शिष्यः
स गद्गदोऽभूद्धरिभक्तिनिष्ठः॥ ४९

घनप्रभं पद्मदलायतेक्षणं
प्रलम्बबाहुं जगतां मनोहरम्।
पीताम्बरं नीलगुडालकालिभिः
स्वलंकृतं श्रीमुखपद्ममण्डलम्॥ ५०

शीतर्तुबालार्ककिरीटकुण्डलं
काञ्च्यङ्गदस्फूर्जितदिव्यविग्रहम्।
विलोक्य तं कृष्णसुतं कृताञ्जलि-
र्ननाम साष्टाङ्गमलं धृतिर्नृपः॥ ५१

जनक उवाच

अहोऽतिधन्यं मम भूरि भाग्यं
दत्तं त्वया मे निजदर्शनं हि।
जातोऽद्य कायाधवतुल्य आराद्-
अहं कृतार्थोऽस्मि कुलेन भूमन्॥ ५२

श्रीप्रद्युम्न उवाच

धन्यस्त्वं नृपशार्दूल भक्तस्त्वं मत्प्रभाववित्।
भक्तिभावपरीक्षार्थं प्राप्तोऽहं तव साम्प्रतम्॥ ५३

अद्यैव मम सारूप्यं भूयात्ते मैथिलेश्वर।
बलमायुर्यशःकीर्तिरिह लोके भवत्वलम्॥ ५४

श्रीनारद उवाच

तव पित्रा च धृतिना पूजितः पश्यतां सताम्।
प्रययौ शिबिरान् राजन् प्रद्युम्नो भक्तवत्सलः॥ ५५

श्रीनारदजी कहते हैं—बहुलाश्व! उनके इतना कहते ही श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न तत्काल ब्रह्मचारीका रूप छोड़कर सबके देखते-देखते अपने साक्षात् स्वरूपसे प्रकट हो गये। हरिभक्तिनिष्ठ शिष्य उद्धव भी गद्गद हो गये॥ ४९॥

मेघोंके समान श्याम कान्ति, प्रफुल्ल कमल-दलके समान विशाल नेत्र, लंबी-लंबी भुजाएँ, जगत्के लोगोंका मन हर लेनेवाला रूप सबके सामने प्रकट हो गया। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा दे रहा था। उनका शोभासम्पन्न मुखारविन्द-मण्डल नीली घुँघराली अलकावलियोंसे अलंकृत था॥ ५०॥

शिशिर-ऋतुके बालरविके समान कान्तिमान् किरीट, दिव्य कुण्डल, करधनी और बाजूबंद आदिसे उनका दिव्य विग्रह उद्भासित हो रहा था। श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको इस प्रकार देखकर राजा धृतिने उनको हाथ जोड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया॥ ५१॥

जनक बोले—भूमन्! मेरा सौभाग्य महान् एवं अत्यन्त धन्य है। अहो! आज आपने मुझे अपने स्वरूपका साक्षात् दर्शन कराया। आज मेरी महिमा कयाधूकुमार प्रह्लादके समान बढ़ गयी। आज मैं अपने कुलसहित कृतार्थ हो गया॥ ५२॥

श्रीप्रद्युम्नने कहा—नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, मेरे प्रभावको जाननेवाले भक्त हो। मैं इस समय तुम्हारे भक्तिभावकी परीक्षाके लिये ही यहाँ आया था। मैथिलेश्वर! आज ही तुम्हें मेरा सारूप्य प्राप्त हो जाय और इस लोकमें तुम्हारे बल, आयु और कीर्तिका अत्यन्त विस्तार हो॥ ५३-५४॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! तुम्हारे पिता धृतिसे पूजित हो भक्तवत्सल भगवान् प्रद्युम्न वहाँ आये हुए संतोंके सामने ही अपने शिविरकी ओर चले गये॥ ५५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे जनकोपाख्यानं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'जनकका उपाख्यान' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

मगधदेशपर यादवोंकी विजय तथा मगधराज जरासंधकी पराजय

श्रीनारद उवाच

अथातो मागधाञ्जेतुं प्रद्युम्नो मीनकेतनः।
गिरिव्रजं जगामाशु स्वसैन्यैः परिवारितः॥ १

श्रुत्वागतं हरेः पुत्रं दिग्जयार्थं विशेषतः।
जरासन्धो मागधेन्द्रो महाकोपं चकार ह॥ २

जरासन्ध उवाच

तुच्छा ये यादवाः सर्वे युधि विक्लवचेतसः।
तेऽद्य वै जगतीं जेतुं निर्गता गतबुद्धयः॥ ३

मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा मद्भयान्माधवोऽपि हि।
समुद्रं शरणं प्रागात्पिता चास्य दुरात्मनः॥ ४

प्रवर्षणे रामकृष्णौ मया भस्मीकृतौ बलात्।
छलादुद्द्रुवतुस्तौ द्वौ द्वारकायां समाश्रितौ॥ ५

बद्ध्वा तौ चानयिष्यामि सोग्रसेनौ कुशस्थलीम्।
अयादवीं करिष्यामि पृथ्वीं सागरमेखलाम्॥ ६

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा निर्गतो राजा गिरिव्रजपुराद्बहिः।
अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिः संयुतो बली॥ ७

गोमूत्रचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखे।
स्रवन्मदैश्चतुर्दन्तैरैरावतकुलोद्भवैः॥ ८

शुण्डादण्डस्य फूत्कारैः क्षेपयद्भिस्तरून् बहून्।
बभौ गजैर्मागधेन्द्रो मेघैरिन्द्र इव प्रभुः॥ ९

रथैश्च देवधिष्ण्याभैः सध्वजैरश्वनेतृभिः।
चामरैर्दोलितै राजँल्लोलचक्रध्वनिद्युभिः॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर मत्स्यके चिह्नसे सुशोभित ध्वजा फहराते हुए प्रद्युम्न मगधदेशपर विजय पानेके लिये अपनी सेनाके साथ तुरंत गिरिव्रजकी ओर चल दिये। श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नको, विशेषतः दिग्विजयके लिये, आया सुनकर मगधराज जरासंधको बड़ा क्रोध हुआ॥ १-२॥

जरासंध बोला—समस्त यादव अत्यन्त तुच्छ और युद्धसे डरनेवाले कायर हैं। वे ही आज पृथ्वीपर विजय पानेके लिये निकले हैं। जान पड़ता है, उनकी बुद्धि मारी गयी है। इस दुरात्मा प्रद्युम्नका पिता माधव स्वयं मेरे भयसे अपनी पुरी मथुरा छोड़कर समुद्रकी शरणमें जा छिपा है॥ ३-४॥

प्रवर्षणगिरिपर मैंने बलराम और कृष्णको बलपूर्वक भस्म कर दिया था, किंतु ये छलपूर्वक वहाँसे भाग निकले और द्वारकामें जाकर रहने लगे। अब मैं स्वयं कुशस्थलीपर चढ़ाई करूँगा और उन दोनों भाइयोंको उग्रसेनसहित बाँध लाऊँगा। समुद्रसे घिरी हुई इस पृथ्वीको यादवोंसे शून्य कर दूँगा॥ ५-६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर बलवान् राजा जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ गिरिव्रजनगरसे बाहर निकला। मगधराजके साथ हाथियोंकी विशाल सेना थी। उन हाथियोंके मुखपर गोमूत्र, सिन्दूरराशि एवं कस्तूरीद्वारा पत्र-रचना की गयी थी। उनके गण्डस्थलोंसे मदकी धारा बह रही थी। वे हाथी ऐरावतकुलमें उत्पन्न एवं चार दाँतोंसे सुशोभित थे और सूँड़की फुफकारोंसे बहुसंख्यक वृक्षोंको तोड़कर फेंकते चलते थे। उन गजराजोंसे मगधराजकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे मेघोंसे भगवान् इन्द्रकी होती है॥ ७—९॥

राजन्! देवताओंके विमानोंके समान आकारवाले अगणित रथ उसके साथ चल रहे थे, जिनके ऊपर ध्वज फहराते थे, सारथि बैठे थे, चँवर डुल रहे थे और चञ्चल पहियोंसे घर्र-घर्र ध्वनि प्रकट हो रही थी॥ १०॥

तुरङ्गैर्वायुवेगैश्चित्रवर्णैर्मदोत्कटैः ।
सौवर्णपट्टहाराद्यैः शिखारश्म्यूर्ध्वचामरैः ॥ ११

सकञ्चुकैर्वीरजनैः खड्गचर्मधनुर्धरैः ।
विद्याधरसमैः प्रागान्मागधेन्द्रो महाबलः ॥ १२

धुङ्कारैर्दुन्दुभीनां च दिशो नेदुर्धनुःस्वनैः ।
चचाल वसुधा सैन्यै रजोभिश्छादितं नभः ॥ १३

जरासन्धस्य तत्सैन्यं प्रलयाब्धिमिवोल्बणम् ।
विस्मिता यादवाः सर्वे बभूवुर्वीक्ष्य मैथिल ॥ १४

प्रद्युम्नो भगवान् वीक्ष्य मागधेन्द्रबलार्णवम् ।
शङ्खं दध्मौ दक्षिणाख्यं मा भैष्टेत्यभयं ददत् ॥ १५

ततः साम्बो महाबाहुः प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः ।
अक्षौहिणीनां दशभिर्युयुधे मागधेन सः ॥ १६

गजा गजैर्युयुधिरे रथिभी रथिनो मृधे ।
हया हयैः पत्तयश्च पत्तिभिर्मैथिलेश्वर ॥ १७

बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ।
मागधानां यदूनां चासुराणां निर्जरैर्यथा ॥ १८

अश्वारूढाः केऽपि वीरा भल्लहस्ता इतस्ततः ।
मर्दयन्तो गजारूढान् करिकुम्भगतार्चयः ॥ १९

केचिच्छक्तीस्तडिद्वर्णा गृहीत्वा चिक्षिपुर्बलात् ।
ताः शक्तयस्त्वरीन् भित्त्वा दंशितान् धरणीं गताः ॥ २०

केचिद्वीरा नदन्तः कौ रथाङ्गानि च चिक्षिपुः ।
चिच्छिदुर्वीरपटलं नीहारं रवयो यथा ॥ २१

वायुके समान वेगशाली तथा विचित्र-विचित्र वर्णवाले मदमत्त अश्व सुनहरे पट्टे और हार आदिसे सुशोभित थे। उनकी शिखाओं एवं बागडोरोंके ऊपरी भागमें चँवर (कलँगी) सुशोभित थे। कवच धारण किये तथा हाथोंमें ढाल-तलवार एवं धनुष लिये वीरजन विद्याधरोंके समान शोभा पाते थे। उन सबके साथ महाबली मगधराज युद्धके लिये निकला ॥ ११-१२ ॥

दुन्दुभियोंकी धुंकारों और धनुषोंकी टंकारोंसे दिशाएँ निनादित हो रही थीं। धरती डोलने लगी और सैनिकोंद्वारा उड़ायी गयी धूलसे आकाश छा गया। मैथिल! जरासंधकी वह सेना उमड़ते हुए प्रलय-सागरके समान भयंकर थी। उसे देखकर समस्त यादव विस्मित हो गये ॥ १३-१४ ॥

मगधराजके उस सैन्य-सागरको देखकर भगवान् प्रद्युम्नने दक्षिणावर्त शङ्ख बजाया और उसीके द्वारा मानो अपने योद्धाओंको अभयदान देते हुए कहा—'डरो मत।' तदनन्तर महाबाहु साम्ब प्रद्युम्नके सामने ही दस अक्षौहिणी सेना लेकर मगधराजके साथ युद्ध करने लगे ॥ १५-१६ ॥

उस रणभूमिमें हाथी हाथियोंसे और रथी रथियोंसे जूझने लगे। मैथिलेश्वर! घोड़े घोड़ोंसे और पैदल पैदलोंसे भिड़ गये। मागधों और यादवोंमें देवताओं और दानवोंके समान अद्भुत, रोमाञ्चकारी एवं भयंकर युद्ध होने लगा ॥ १७-१८ ॥

कुछ घुड़सवार वीर हाथोंमें भाले लिये इधर-उधर मारकाट मचाते हुए गजारोहियों तथा हाथियोंके कुम्भस्थलोंपर बैठे हुए महावतोंको भी मार गिराते थे। कुछ योद्धा विद्युत्के समान दीप्तिमती शक्तियोंको लेकर बलपूर्वक शत्रुओंपर फेंकते थे। वे शक्तियाँ कवचधारी शत्रुओंको भी विदीर्ण करके धरतीमें समा जाती थीं ॥ १९-२० ॥

कितने ही वीर अपने नादसे पृथ्वीको गुँजाते हुए रथोंके चक्के उठा-उठाकर फेंकते थे और सैनिकोंके समूहोंको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर देते थे, जैसे सूर्य कुहासेको नष्ट कर देते हैं ॥ २१ ॥

भिन्दिपालैर्मुद्गरैश्च कुठारैरसिपट्टिशैः।
अच्छूरिकार्ष्टिभिस्तीक्ष्णैर्निस्त्रिंशैर्युयुधुश्च के॥ २२

तोमरैश्च गदाभिश्च बाणैश्छिन्नानि भूतले।
निपेतुर्वीरकरिणामश्वानां च शिरांसि च॥ २३

कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पातयन्तो हयान्नरान्।
खड्गहस्ताः प्रधावन्तः संग्रामेषु भयङ्कराः॥ २४

वीरोपरि गता वीरा निपेतुश्छिन्नबाहवः।
हयोपरि हयाः केचिद्बाणैः संछिन्नकन्धराः॥ २५

विद्याधर्यश्च गन्धर्व्यो वव्रिरे ह्यम्बरे गतान्।
वीरान् पतीन् समिच्छन्त्यस्तासां चाभूत्कलिर्महान्॥ २६

क्षात्रधर्मपराः केचिद्युद्धदत्तासवो नृप।
न चलन्तः पदं पृष्ठे सदा संग्रामशालिनः॥ २७

जग्मुः परं पदं ते वै भित्त्वा मार्तण्डमण्डलम्।
ननृतुः शिशुमारे वै मण्डले च नटा इव॥ २८

एवं साम्बमहावीरैर्मर्दितं मागधं बलम्।
दुद्राव पश्यतां तेषां कृष्णभक्त्या यथाशुभम्॥ २९

केचिद्वै वृक्णवर्माणश्छिन्नचापास्तथापरे।
पलायमाना धावन्तस्त्यक्तखड्गर्ष्टिपाणयः॥ ३०

पलायमानं स्वबलं वीक्ष्य तन्मागधेश्वरः।
धनुष्टङ्कारयन् प्राप्तो माभैष्टेत्यभयं ददौ॥ ३१

स्वबलं नोदयामास जरासन्धो धनुर्ज्यया।
महामात्यः प्रेरयति ह्यङ्कुशेन गजं यथा॥ ३२

साम्बस्तदैव सम्प्राप्तो दशभिश्चापनिर्गतैः।
बाणैर्विव्याध समरे मागधेन्द्रं महाबलम्॥ ३३

कुछ लोग भिन्दिपालों, मुद्गरों, कुल्हाड़ियों, तलवारों, पट्टिशों, छुरों, कटारों, रिष्टियों तथा तीखे निस्त्रिंशों (खड्गों)-से युद्ध करते थे। तोमरों, गदाओं और बाणोंसे कटकर वीरों, हाथियों और घोड़ोंके मस्तक पृथ्वीपर गिर रहे थे॥ २२-२३॥

वहाँ केवल धड़ हाथमें खड्ग लिये संग्राममें दौड़ते हुए बड़े भयंकर प्रतीत होते थे और घोड़ों तथा मनुष्योंको धराशायी करते हुए उछलते थे। वीरोंके ऊपर वीर गिर रहे थे। उनकी भुजाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। कितने ही घोड़े बाणोंसे गर्दन कट जानेके कारण घोड़ोंपर ही गिर पड़ते थे॥ २४-२५॥

विद्याधर और गन्धर्व-जातिकी स्त्रियाँ वीरगतिको प्राप्त हुए योद्धाओंको दिव्य रूपसे आकाशमें पहुँचनेपर उन्हें अपना पति बना लेना चाहती थीं। इसके लिये उन सबोंमें परस्पर महान् कलह होने लगता था। नरेश्वर! कितने ही क्षत्रिय-धर्मपरायण और सदा ही संग्राममें शोभा पानेवाले योद्धा युद्धमें प्राण दे देते थे, किंतु एक पग भी पीछे नहीं हटते थे। वे सूर्यमण्डलका भेदन करके परमपदको प्राप्त हो जाते थे और शिशुमारचक्रमें उसी प्रकार नाचते थे, जैसे मण्डलाकार भूमिपर नट॥ २६—२८॥

इस प्रकार साम्बके महावीर सैनिकोंने मगध-सेनाको रौंद डाला। वह सेना उनके देखते-देखते उसी प्रकार भाग चली, जैसे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिसे अशुभ नष्ट हो जाता है। किन्हींके कवच कट गये थे तो किन्हींके धनुष; कितने ही सैनिक खड्ग और रिष्टियोंको हाथसे फेंककर पीठ दिखाते हुए भाग रहे थे॥ २९-३०॥

अपनी सेनाको पलायन करती देख मगधराज धनुषकी टंकार करता हुआ वहाँ आया और सबको अभयदान देते हुए बोला—'डरो मत।' जरासंधने धनुषकी प्रत्यञ्चाद्वारा अपनी सेनाको आगे बढ़नेकी उसी प्रकार प्रेरणा दी, जैसे कोई महावत अंकुशसे हाथीको हाँक रहा हो॥ ३१-३२॥

इसी समय साम्ब भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने धनुषसे छूटे हुए दस बाणोंद्वारा महाबली मगधराजको समरभूमिमें घायल कर दिया॥ ३३॥

धनुर्ज्यामब्धिकल्लोलभीमसङ्घर्षनादिनीम् ।
चिच्छेद दशभिर्बाणैः साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ ३४

धनुरन्यत्समादाय जरासन्धो महाबलः ।
धनुः साम्बस्य चिच्छेद बाणैर्दशभिरग्रतः ॥ ३५

चतुर्भिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां केतुं रथं त्रिभिः ।
एकेन सारथिं जघ्ने मागधेन्द्रो जरासुतः ॥ ३६

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
पुनरन्यं समास्थाय रथं साम्बो महाबलः ॥ ३७

गृहीत्वा चापमत्युग्रं सज्जं कृत्वा विधानतः ।
तद्रथं चूर्णयामास साम्बो बाणशतैरपि ॥ ३८

रथं त्यक्त्वा जरासन्धो गजमारुह्य वेगतः ।
बभौ गजे मागधेन्द्र इन्द्र ऐरावते यथा ॥ ३९

चित्रपत्रविचित्राङ्गं कालान्तकयमोपमम् ।
साम्बाय नोदयामास मत्तेभं क्रुद्धमानसः ॥ ४०

गृहीत्वा सरथं साम्बं शुण्डादण्डेन नागराट् ।
कुर्वंश्चीत्कारविकलश्चिक्षेप नवयोजनम् ॥ ४१

तदा कोलाहले जाते साम्बसेनासु मैथिल ।
प्रद्युम्नपार्श्वाच्च गदः प्राप्तोऽभूद्वेगतो बलम् ॥ ४२

विनाशयन्नन्धकारं यथार्क उदयाचलात् ।
जरासन्धस्यापि गजं मुष्टिना वसुदेवजः ॥ ४३

जघान शक्रो वज्रेण यथा प्रोच्चदरीभृतम् ।
गजो मुष्टिप्रहारेण विह्वलो धरणीं गतः ॥ ४४

जगाम पञ्चतां राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
जरासन्धः समुत्थाय गदामादाय वेगतः ॥ ४५

फिर जाम्बवतीकुमार साम्बने उसके धनुषकी प्रत्यञ्चाको, जो सागरकी उत्ताल तरंगोंके भयानक संघर्षकी भाँति शब्द करनेवाली थी, दस बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला। तदनन्तर महाबली जरासंधने दूसरा धनुष हाथमें लेकर दस अग्रगामी बाणोंद्वारा साम्बके धनुषको काट डाला॥ ३४-३५॥

जरापुत्र मागधेन्द्रने चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको, दोसे ध्वजको, तीनसे रथको और एकसे सारथिको मार डाला। धनुषके कट जानेपर तथा घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए महाबली साम्ब दूसरे रथपर चढ़ गये और अत्यन्त उग्र धनुषपर विधिपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उन्होंने सौ बाणोंद्वारा जरासंधके रथको चूर-चूर कर दिया॥ ३६—३८॥

उस समय जरासंध रथ छोड़कर बड़े वेगसे हाथीपर चढ़ गया। उस हाथीपर मागधेन्द्रकी वैसी ही शोभा हुई, जैसे ऐरावतपर चढ़े हुए इन्द्रकी होती है॥ ३९॥

जरासंधके मनमें अत्यन्त क्रोध भरा हुआ था। उसने साम्बपर एक मतवाले हाथीको बढ़ाया, जिसके अङ्ग-अङ्गमें विचित्र पत्र-रचना की गयी थी तथा जो देखनेमें कालान्तक यमके समान भयंकर था। उस नागराजने अपनी सूँड़से रथसहित साम्बको उठाकर चीत्कार करते हुए नौ योजन दूर फेंक दिया॥ ४०-४१॥

मैथिल! उस समय साम्बकी सेनामें बड़ा भारी कोलाहल मच गया। फिर तो प्रद्युम्नके पाससे गद वेग-पूर्वक उसी प्रकार उसकी सेनाके सामने आये, जैसे सूर्य अन्धकारका नाश करते हुए उदयाचलसे उदित हुए हों। जरासंधके उस हाथीको वसुदेवनन्दन गदने मुक्केसे इस प्रकार मारा, जैसे इन्द्रने ऊँचे पर्वतपर वज्रसे प्रहार किया हो। उनके मुष्टिकप्रहारसे व्याकुल होकर वह हाथी धरतीपर गिर पड़ा॥ ४२—४४॥

राजन्! वह उसी समय मृत्युका ग्रास बन गया। वह अद्‌भुत-सी बात हुई! तब जरासंधने उठकर बड़े वेगसे गदा उठायी और उसे सहसा गदपर दे मारा॥ ४५॥

गदं तताड सहसा जगर्ज घनवद्बली।
तत्प्रहारेण स गदो न चचाल रणाङ्गणात्॥ ४६

त्वरं गदां समादाय लक्षभारविनिर्मिताम्।
अताडयज्जरासन्धं सिंहनादमथाकरोत्॥ ४७

तत्प्रहारेण व्यथितो बृहद्रथसुतो बली।
जरासन्धः समुत्थाय गृहीत्वा सगदं गदम्॥ ४८

चिक्षेप रोषतो राजन्नाकाशे शतयोजनम्।
गदोऽपि मागधं नीत्वा भ्रामयित्वा महाबलः॥ ४९

चिक्षेप गगने तं वै योजनानां सहस्रकम्।
आकाशात्पतितो राजा मागधो विन्ध्यपर्वते॥ ५०

उत्थाय युयुधे तेन गदेनापि महाबलः।
तदैव साम्बः सम्प्राप्तो गृहीत्वा मागधेश्वरम्॥ ५१

भूपृष्ठे पोथयामास सिंहः सिंहमिवौजसा।
एकेन मुष्टिना साम्बं द्वितीयेन गदं तथा॥ ५२

तताड मागधो राजा जगर्जाशु रणाङ्गणे।
मुष्टिप्रहारव्यथितौ गदः साम्बश्च मूर्च्छितौ॥ ५३

हाहाकारो महानासीत्तदैवाशु रणाङ्गणे।
रथेनातिपताकेन प्रद्युम्नो यादवेश्वरः॥ ५४

अक्षौहिणीयुतः प्राप्तो माभैष्टेत्यभयं ददौ।
जरासन्धो गदां नीत्वा लक्षभारविनिर्मिताम्॥ ५५

विवेश यदुसेनायामरण्येऽग्निरिव प्रभुः।
रथान् गजान् सवीरांश्च तुरङ्गान् सैन्धवान् बहून्॥ ५६

पातयामास राजेन्द्र पद्मानीव महागजः।
जरासन्धस्य या सेना सापि सर्वा समागता॥ ५७

जघान निशितैर्बाणैर्यदूनां सर्वतो बलम्।
प्रद्युम्नो युयुधे युद्धे निर्भयो यादवेश्वरः॥ ५८

निपातयन्नरीन् बाणैर्धनुष्टङ्कारयन् मुहुः।
तदैव यदुपुर्यास्तु बलदेवः समागतः॥ ५९

उस समय उस बलवान् वीरने घनके समान गर्जना की, किंतु उसके प्रहारसे गद समराङ्गणसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने तुरंत ही लाख भारकी बनी हुई गदा लेकर जरासंधपर प्रहार किया और सिंहके समान गर्जना की॥ ४६-४७॥

राजन्! उनके उस प्रहारसे व्यथित हो बलवान् बृहद्रथकुमार जरासंधने उठकर गदासहित गदको पकड़ लिया और बड़े रोषके साथ आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया। तब महाबली गदने भी जरासंधको उठाकर घुमाया और उसे आकाशमें एकसहस्र योजन दूर फेंक दिया। राजा मागध आकाशसे विन्ध्यपर्वतपर गिर पड़ा॥ ४८—५०॥

महाबली जरासंधने पुनः उठकर गदके साथ युद्ध आरम्भ किया। उसी समय साम्ब आ पहुँचे। उन्होंने मगधेश्वर जरासंधको पकड़कर पृथ्वीपर उसी प्रकार पटक दिया, जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको बलपूर्वक पछाड़ दे। तब मगधराज जरासंधने एक मुक्केसे साम्बको और दूसरे मुक्केसे गदको मारा और समराङ्गणमें बड़े जोरसे गर्जना की। उसके मुक्केकी मारसे व्यथित हो गद और साम्ब दोनों मूर्च्छित हो गये॥ ५१—५३॥

उस समय युद्धभूमिमें तत्काल ही महान् हाहाकार मच गया। फिर तो यादवराज प्रद्युम्न ऊँची पताकावाले रथके द्वारा एक अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ पहुँचे और 'डरो मत' यों कहकर सबको अभयदान दिया। उन्हें देख जरासंधने लाख भारकी बनी हुई गदा हाथमें ली और जैसे जंगलमें दावानल फैल जाता है, उसी प्रकार उसने यादवसेनामें प्रवेश किया॥ ५४—५५ १/२॥

राजेन्द्र! उसने वीरोंसहित रथों, हाथियों तथा बहुत-से सिंधुदेशीय घोड़ोंको इस तरह मार गिराया, मानो किसी महान् गजराजने बहुत-से कमलोंको उखाड़ फेंका हो। जरासंधकी जो सेना भाग गयी थी, वह भी सारी-की-सारी लौट आयी॥ ५६-५७॥

उसने यादव-सेनाको चारों ओरसे घेरकर तीखे बाणोंसे मारना आरम्भ किया। यादवराज प्रद्युम्न उस युद्धमें निर्भय होकर लड़ने लगे। उन्होंने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए बाणोंद्वारा शत्रुओंको गिराना आरम्भ किया। उसी समय यदुपुरीसे बलदेवजी आ पहुँचे॥ ५८-५९॥

प्रादुर्बभूव तत्रापि सर्वेषां पश्यतां सताम्।
समाकृष्य हलाग्रेण मागधेन्द्रबलं महत्॥ ६०

मुसलेनाहनत्क्रुद्धो बलदेवो महाबलः।
शतयोजनपर्यन्तं रथाश्वगजपत्तयः॥ ६१

पतिता भिन्नशिरसः सर्वे वै निधनं गताः।
दृष्ट्वा स्वसैन्यं पतितं जरासन्धो रणाङ्गणात्॥ ६२

दुद्राव विरथो राजन् एकाकी भयविह्वलः।
देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा॥ ६३

बलदेवोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे।
तदा जयजयारावो यदूनां स्वबले महान्॥ ६४

प्रद्युम्नाद्यास्ततो नेमुः कामपालं गतव्यथाः।
इत्थं जित्वा मागधेन्द्रं बलदेवो महाबलः॥ ६५

प्रययौ द्वारकां राजन् भगवान् भक्तवत्सलः।
जरासन्धसुतो धीमान् सहदेव उपायनम्॥ ६६

नीत्वा पुरः शम्बरारेर्गिरिदुर्गाद्विनिर्गतः।
अश्वार्बुदं रथानां च द्विलक्षं हस्तिनां तथा॥ ६७

ददौ षष्टिसहस्राणि नत्वा कार्ष्णि प्रभाववित्॥ ६८

वे समस्त सत्पुरुषोंके देखते-देखते वहीं प्रकट हो गये। महाबली बलदेवने कुपित होकर मगधराजकी विशाल सेनाको हलके अग्रभागसे खींचकर मुसलसे मारना आरम्भ किया। उनके द्वारा मारे गये रथ, घोड़े, हाथी और पैदल मस्तक विदीर्ण हो जानेसे सौ योजनतक धराशायी हो गये। वे सब-के-सब कालके गालमें चले गये। जब जरासन्धने देखा कि मेरी सारी सेना धराशायी हो गयी, तब वह भयभीत हो उठा और युद्धभूमिसे बिना रथके, अकेला ही पलायित हो गया। उस समय देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ एक साथ बजने लगीं। देवतालोग बलदेवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। यादवोंकी अपनी सेनामें तत्काल जोर-जोरसे जय-जयकार होने लगी॥ ६०—६४॥

तदनन्तर प्रद्युम्न आदिने निश्चिन्त होकर भगवान् कामपाल (बलदेवजी)-को नमस्कार किया। राजन्! इस प्रकार भक्तवत्सल महाबली भगवान् बलदेव मगधराजको जीतकर द्वारकाको चले गये। जरासंधका बुद्धिमान् पुत्र सहदेव भेंट-सामग्री लेकर गिरिदुर्गसे निकला और शम्बरारि प्रद्युम्नजीके सामने उपस्थित हुआ। एक अरब घोड़े, दो लाख रथ और साठ हजार हाथी उसने प्रद्युम्नको नमस्कार करके दिये; क्योंकि वह प्रद्युम्नजीके प्रभावको जानता था॥ ६५—६८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मागधविजयो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मगध-विजय' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

गया, गोमती, सरयू एवं गङ्गाके तटवर्ती प्रदेश, काशी, प्रयाग एवं विन्ध्यदेशमें यादवसेनाकी यात्रा; श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंका हस्तलाघव तथा विवाह; माथुर, शूरसेन आदि जनपदों एवं नन्द-गोकुलमें प्रद्युम्न आदिका समादर

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्गयामेत्य फल्गुं स्नात्वा ससैनिकः।
अन्यान् देशांस्ततो जेतुं प्रस्थानमकरोत्पुनः॥ १

श्रुत्वा जितं जरासन्धं तदातङ्कान्नृपाः परे।
उपायनं ददुस्ते वै भयार्ताः शरणं गताः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने सैनिकोंसहित गयामें जाकर फल्गुनदीमें स्नान किया। फिर अन्य देशोंको जीतनेके लिये वहाँसे आगेको प्रस्थान किया। जरासंधको पराजित हुआ सुनकर उस समय अन्य राजा आतङ्कवश भयार्त हो प्रद्युम्नकी शरणमें आये और उन सबने उन्हें भेंट दी॥ १-२॥

गोमतीं सरयूं पुण्यामनुस्त्रोतं ततोऽगमत्।
ततो भागीरथीतीरे काशीमभिजगाम ह॥ ३

पार्ष्णिग्राहः काशिराजो गृहीतो मृगयां गतः।
सोऽपि तस्मै बलिं प्रादाच्छ्रुत्वा तस्य बलं महत्॥ ४

प्रद्युम्नः सैनिकैः सार्धं कोसलान् प्रगतो बली।
अयोध्यानिकटे राजन्नन्दिग्रामे स्थितोऽभवत्॥ ५

कोसलेन्द्रो नग्नजिच्च तुरङ्गैश्च गजै रथैः।
महाधनैः शम्बरारिमर्हयामास तत्त्ववित्॥ ६

उत्तरेशो दीपतमो नयपालाधिपो गजः।
विशालेशो बर्हिणश्च एते वै तं बलिं ददुः॥ ७

नैमिषेशो हरेर्भक्तः श्रीकृष्णस्य प्रभाववित्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ददौ तस्मै बलिं नृपः॥ ८

प्रयागं गतवान् कार्ष्णिस्त्रिवेणीं पापनाशिनीम्।
स्नात्वा ददौ महादानं तीर्थराजप्रभाववित्॥ ९

गजा विंशतिसाहस्त्रमश्वानां दशलक्षकम्।
रथानां च चतुर्लक्षं गवां तत्र दशार्बुदम्॥ १०

हेममालासमायुक्तं हेमाम्बरसमन्वितम्।
दशभारं सुवर्णानां मुक्तानां लक्षमेव हि॥ ११

द्विलक्षं नवरत्नानां वस्त्राणां दशलक्षकम्।
काश्मीरकम्बलानां च द्विलक्षं नवकम्बलम्॥ १२

ब्राह्मणेभ्यो ददौ कार्ष्णिस्तीर्थराजे हरिप्रिये।
कारूषाधिपतिस्तत्र पौण्ड्रको नाम मैथिल॥ १३

कृष्णशत्रुः सोऽपि कार्ष्णिं पूजयामास शङ्कितः।
प्रद्युम्नं चागतं वीक्ष्य पाञ्चाले कान्यकुब्जके॥ १४

भयं प्रापुर्नृपाः सर्वे दुर्गे दुर्गे कृतार्गलाः।
विचेलुर्यादवात्सर्वे भयार्ता दुर्गमाश्रिताः॥ १५

गोमती तथा पुण्यसलिला सरयूके तटपर होते हुए प्रद्युम्नजी गङ्गाके किनारे काशीपुरीमें आये। वहाँ पार्ष्णिग्राह (विरोधी) काशिराज शिकार खेलनेके लिये गये थे, जो वहीं पकड़ लिये गये। काशिराजने भी यह सुनकर कि प्रद्युम्नकी सेना विशाल है, उन्हें भेंट अर्पित की॥ ३-४॥

राजन्! तत्पश्चात् बलवान् प्रद्युम्न अपने सैनिकोंके साथ कोसल जनपदमें गये और अयोध्याके निकट नन्दिग्राममें उन्होंने अपनी सेनाकी छावनी डाल दी। कोसलराज नग्नजित्ने, जो तत्त्वज्ञानी थे, बहुत-से घोड़े, हाथी, रथ और महान् धन देकर शम्बरारि प्रद्युम्नका पूजन किया॥ ५-६॥

उत्तर दिशाके स्वामी दीपतम, नेपालके राजा गज तथा विशाला नगरीके स्वामी बर्हिण—इन सबने उन्हें भेंट दी। नैमिषारण्यके स्वामी बड़े भगवद्भक्त और श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले थे। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रद्युम्नको बलि अर्पित की॥ ७-८॥

इसके बाद श्रीकृष्णकुमार प्रयाग गये और वहाँ पापनाशिनी त्रिवेणीमें स्नान करके उन्होंने महान् दान किया; क्योंकि वे तीर्थराजके प्रभावको जानते थे। बीस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, चार लाख रथ, सोनेकी माला तथा सुनहरे वस्त्रोंसे विभूषित दस अरब गौएँ, दस भार स्वर्ण, एक लाख मोती, दो लाख नवरत्न, दस लाख वस्त्र तथा दो लाख कश्मीरी शाल एवं नये कम्बल हरिप्रिय तीर्थराजमें प्रद्युम्नने ब्राह्मणोंको दिये॥ ९—१२१/२॥

मिथिलेश्वर! कारूषदेशका राजा पौण्ड्रक भगवान् श्रीकृष्णका शत्रु था, तथापि उसने भी शङ्कित होनेके कारण श्रीकृष्णकुमारका पूजन किया। पञ्चाल और कान्यकुब्जदेशमें प्रद्युम्नके आगमनकी बात सुनकर वहाँके समस्त नरेश भयभीत हो गये। सबने अपने-अपने दुर्गके दरवाजे बंद कर लिये। सब लोग यादवराजसे भयातुर हो दुर्गका आश्रय लेकर रहने लगे॥ १३—१५॥

बिन्दुदेशाधिपो राजा दीर्घबाहुर्महाबलः।
शम्बरारेः परं सन्धिं कर्तुं सैन्ये समाययौ॥ १६

दीर्घबाहुरुवाच

यूयं सर्वे यादवेन्द्रा आगता जयिनो दिशाम्।
मनोरथं मे कुरुतां भवेयं तुष्टमानसः॥ १७

सजलस्यापि काचस्य पात्रस्य शरवेधतः।
न क्षरेद् बिन्दुरेकोऽपि बाणस्तदधितिष्ठति॥ १८

न पात्रं शकलीभूतं तन्मध्ये हस्तलाघवम्।
ये कुर्वन्ति प्रतिज्ञां मे तेभ्यो दास्यामि कन्यकाः॥ १९

यूयं सर्वे यादवेन्द्रा धनुर्वेदविशारदाः।
मयापि नारदमुखाच्छ्रुताः पूर्वं महाबलाः॥ २०

श्रीनारद उवाच

सर्वेषां विस्मितानां च प्रद्युम्नो धन्विनां वरः।
तथेत्युवाच सदसि बिन्दुदेशाधिपं नृप॥ २१

दीर्घवंशौ सुविस्थाप्य गुणं बद्ध्वा तदन्तरे।
गुणे बद्ध्वा काचकुम्भं सजलं पश्यतां सताम्॥ २२

धनुर्गृहीत्वा तद्वीक्ष्य बाणं कार्ष्णिः समादधे।
काचपात्रं शरो भित्त्वा तस्थौ मध्येऽर्धनिःसृतः॥ २३

एकतो मुखपुङ्खाभ्यां रविरश्मिरिवाम्बुदे।
काचपात्रे बभौ बाणस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ २४

न पात्रं शकलीभूतं त्रिकुशस्य फलं यथा।
न चालनं कम्पनं च बिन्दुस्रावोऽपि नाभवत्॥ २५

प्रद्युम्नो भगवान् बाणं द्वितीयं सन्दधे पुनः।
सोऽपि पूर्वं समुत्सृज्य तत्र तस्थौ विदेहराट्॥ २६

बिन्दुदेशके अधिपति महाबली राजा दीर्घबाहु उत्तम संधि करनेके लिये शम्बरारि प्रद्युम्नकी सेनामें आये॥ १६॥

दीर्घबाहु बोले—आप सब यादवेन्द्र दिग्विजयके लिये आये हैं; अतः मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये। इससे मेरे चित्तमें संतोष होगा। जलसे भरे हुए काँचके बर्तनको बाणसे बेधा जाय, किंतु एक बूँद भी पानी न गिरे और बाण उसमें खड़ा रहे, बर्तन फूटे नहीं, ऐसी जिसके हाथमें स्फूर्ति हो, वह अपने इस हस्तलाघवका परिचय दे। जो मेरी इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करेंगे, उन्हें मैं अपनी कन्याएँ ब्याह दूँगा॥ १७—१९॥

आप समस्त यादवेन्द्रगण धनुर्वेदमें कुशल हैं। मैंने भी नारदजीके मुखसे पहले सुना था कि यादवलोग बड़े बलवान् हैं॥ २०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! राजा दीर्घबाहुकी बात सुनकर सब लोग विस्मित हो गये। उनमेंसे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नजीने भरी सभामें बिन्दुदेशके नरेशको आश्वासन देते हुए कहा—'तथास्तु (ऐसा ही होगा)।' प्रद्युम्नजीने पृथ्वीपर दो जगह बड़ा-सा बाँस गाड़ दिया और उन दोनोंके बीचमें (अरगनीकी भाँति) एक रस्सी तान दी। फिर उस रस्सीमें समस्त सत्पुरुषोंके देखते-देखते जलसे भरा एक काँचका घड़ा लटका दिया॥ २१-२२॥

फिर उन श्रीकृष्णकुमारने धनुष उठाया और उसे भलीभाँति देखकर उसकी डोरीपर बाणका संधान किया। वह बाण छूटा और काँचके पात्रको छेदकर बीचमें आधा निकला हुआ स्थित हो गया। एक ही ओर मुख और पङ्ख दोनों दृष्टिगोचर होते थे। काँचके घड़ेमें धँसा हुआ वह बाण बादलमें प्रविष्ट सूर्यकी किरणके समान सुशोभित होता था। वह एक अद्भुत-सा दृश्य था॥ २३-२४॥

त्रिकुशके फलकी भाँति उस पात्रके न तो टुकड़े हुए, न वह अपने स्थानसे विचलित हुआ; न उसमें कम्पन हुआ और न उससे एक बूँद पानी ही गिरा। विदेहराज! भगवान् प्रद्युम्नने फिर दूसरे बाणका संधान किया। वह भी पहले बाणका स्थान छोड़कर उस घड़ेमें उसीकी भाँति स्थित हो गया॥ २५-२६॥

साम्बोऽपि धनुरादाय बाणान् पञ्च समाददे।
काचपात्रं च ते भित्त्वा तस्थुस्तत्रार्धनिःसृताः॥ २७

युयुधानो धनुर्नीत्वा बाणमेकं समाक्षिपत्।
सर्वेषां पश्यतां तेषां पात्रं चूर्णीबभूव ह॥ २८

उच्चकैर्जहसुः सर्वे यादवाः परसैनिकाः।
त्वं महान् बाणधारीह कार्तवीर्यार्जुनो यथा॥ २९

अर्जुनो भरतो रामस्त्रिपुरघ्नो हि वा भवान्।
द्रोणो भीष्मोऽथवा कर्णो जामदग्न्य इवावदन्॥ ३०

अन्यत्पात्रं समाधायानिरुद्धो धन्विनां वरः।
अधो गत्वाथ तद्दृष्ट्वा बाणं चिक्षेप लाघवात्॥ ३१

सोऽपि पात्रतलं भित्त्वा तस्थौ तत्रापि निःसृतः।
तत्पात्राद्धस्तपञ्चोर्ध्वं बद्ध्वा पाषाणमम्बरे॥ ३२

दीप्तिमान् धनुरादाय बाणमेकं समादधे।
सोऽपि पात्रतलं भित्त्वा बाणमुत्सृज्य चाग्रतः॥ ३३

ताडयित्वा च पाषाणं पुनस्तत्र समाश्रितः।
बाणवेगेन तदपि बिन्दुस्त्रावोऽपि नाभवत्॥ ३४

गतागतेन यावद्वै बिन्दुस्त्रावोऽपि नाभवत्।
तदा वीराश्च ते सर्वे साधु साध्विति वादिनः॥ ३५

भानुर्धनुः संगृहीत्वा वीक्ष्य मीलितलोचनः।
आराच्चिक्षेप नाराचं सर्वेषां पश्यतां सताम्॥ ३६

सोऽपि पात्रं तदा भित्त्वा पात्रं कृत्वा ह्यधोमुखम्।
पुनरूर्ध्वमुखं कृत्वा तस्थौ तत्रार्धनिःसृतः॥ ३७

बाणवेगेन तदपि बिन्दुस्त्रावोऽपि नाभवत्।
न पात्रं शकलीभूतं तदद्भुतमिवाभवत्॥ ३८

तदनन्तर साम्बने भी धनुष लेकर पाँच बाण छोड़े। वे भी काँच-पात्रका भेदन करके उसमें आधे निकले हुए स्थित हो गये। तदनन्तर सात्यकिने भी धनुष लेकर एक ही बाण मारा, किंतु सबके देखते-देखते वह काँचका पात्र चूर-चूर हो गया॥ २७-२८॥

यह देख समस्त यादव तथा दूसरे-दूसरे सैनिक जोर-जोरसे हँसने लगे और बोले—'बस-बस, तुम्हीं इस भूतलपर कार्तवीर्य अर्जुनके समान महान् बाणधारी हो; तुम्हारे सामने अर्जुन, भरत तथा श्रीरामचन्द्रजी भी मात हैं। अथवा तुम त्रिपुरहन्ता रुद्र हो। द्रोण, भीष्म, कर्ण तथा परशुरामजी भी तुमसे हार मान लेंगे'॥ २९-३०॥

तदनन्तर दूसरा पात्र लटकाकर धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने उसके नीचे जाकर उसे गौरसे देखकर हलके हाथसे बाण मारा॥ ३१॥

वह बाण भी उस पात्रका भेदन करके आधा निकला हुआ उसमें स्थित हो गया। उस पात्रसे पाँच हाथ ऊपर आकाशमें एक पत्थर लटकाकर दीप्तिमान्ने धनुष उठाया और उसपर एक बाणका संधान किया। वह बाण भी पात्रके भी निचले भागको भेदकर अनिरुद्धवाले बाणको आगे छोड़ता हुआ ऊपरवाले पत्थरसे जा टकराया और फिर वेगसे उस पात्रमें ही आकर स्थित हो गया। तथापि बाणवेगके कारण उस पात्रसे एक बूँद भी पानी नीचे नहीं गिरा। बाण जबतक गया-आया, तबतक भी जब पानीकी एक बूँद नहीं गिरी, तब यह चमत्कार देखकर सब वीर उन्हें बार-बार साधुवाद देने लगे॥ ३२—३५॥

तत्पश्चात् भानुने पात्रको अच्छी तरह देखा-भाला। फिर सबके देखते-देखते नेत्र बंद करके धनुष लेकर दूरसे बाण चलाया। उस बाणने भी उस समय पात्रका भेदन करके उसे अधोमुख कर दिया और फिर तत्काल ही उसका मुख ऊपरकी ओर करके वह उसमें आधा निकला हुआ स्थित हो गया; तब भी बाणके वेगसे एक बूँद भी जल नहीं गिरा और पात्र भी नहीं फूट सका। यह अद्भुत-सी बात हुई॥ ३६—३८॥

एवं श्रीकृष्णपुत्रा ये अष्टादश महारथाः।
सर्वे ते बिभिदुः पात्रं जलस्रावोऽपि नाभवत्॥ ३९

बिन्दुदेशाधिपो राजा दीर्घबाहुः सुविस्मितः।
तेभ्योऽदात्कन्यकाः सृष्टा अष्टादश सुलोचनाः॥ ४०

तेषां विवाहसमये शङ्खभेर्यानकादयः।
नेदुर्जगुश्च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ४१

तेषामुपरि देवास्ते जयध्वनिसमाकुलाः।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि चक्रुः श्लाघां दिवि स्थिताः॥ ४२

गजान् षष्टिसहस्राणि हयानामर्बुदं तथा।
दशलक्षं रथानां च दासीनां लक्षमेव च॥ ४३

शिबिकानां चतुर्लक्षं पारिबर्हे ददौ नृपः।
ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं बभौ कार्ष्णिर्यदूत्तमः॥ ४४

दीर्घबाहुमनुप्राप्य निषधान् प्रययौ ततः।
निषधाधिपतिर्वीरसेनजिन्नाम मैथिल॥ ४५

उपायनं ददौ सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने।
तथा हि भद्राधिपतिः श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः॥ ४६

पूजयामास सबलं बृहत्सेनो हरेः सुतम्।
माथुरान् शूरसेनांश्च मधून् प्राप्तः ससैनिकः॥ ४७

स्वागतैः पूजितः कार्ष्णिर्मथुरायां ययौ पुनः।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य मथुरां सवनां किल॥ ४८

गोपान् गोपीं यशोदां च नन्दराजं व्रजेश्वरम्।
वृषभानूपनन्दांश्च नत्वा कार्ष्णिर्बभौ नृप॥ ४९

बलिं च नन्दराजाय दत्वा दत्वा पुनः पुनः।
तैः पूजितः कतिदिनैः स्थितोऽभून्नन्दगोकुले॥ ५०

इस प्रकार श्रीकृष्णके जो अठारह महारथी पुत्र थे, उन सबने पात्रका भेदन किया, किंतु जलका स्राव नहीं हुआ॥ ३९॥

यह हस्तलाघव देखकर बिन्दुदेशके राजा दीर्घबाहु बड़े विस्मित हुए। उन्होंने उनके हाथमें अपनी अठारह सुलोचना कन्याएँ प्रदान कीं। उनके विवाहकालमें शङ्ख, भेरी और आनक आदि बाजे बजे, गन्धर्वोंने गीत गाये तथा अप्सराओंने नृत्य किया॥ ४०-४१॥

देवताओंने उन सबके ऊपर जयध्वनिके साथ फूल बरसाये और स्वर्गवासियोंने उन सबकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजा दीर्घबाहुने साठ हजार हाथी, एक अरब घोड़े, दस लाख रथ, एक लाख दासियाँ तथा चार लाख शिबिकाएँ दहेजमें दीं। यदुकुलतिलक प्रद्युम्नने वह सारा दहेज द्वारकापुरीको भेज दिया॥ ४२—४४॥

तत्पश्चात् दीर्घबाहुकी अनुमति ले प्रद्युम्न निषध देशको गये। मैथिल! निषधके राजाका नाम वीरसेनजित् था। उन्होंने भी महात्मा प्रद्युम्नको भेंट दी। इसी प्रकार भद्रदेशके अधिपति बृहत्सेनने, जो श्रीकृष्णको इष्टदेव माननेवाले तथा श्रीहरिके प्रिय भक्त थे, सेनासहित श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नका सादर पूजन किया। तब वे सैनिकोंसहित माथुर, शूरसेन तथा मधु नामक जनपदोंमें गये॥ ४५—४७॥

वहाँ स्वागतपूर्वक पूजित हो, वे पुनः मथुरामें आये। तदनन्तर वनोंसहित मथुराकी परिक्रमा करके वे व्रजमें गये। राजन्! वहाँ उन्होंने गोप-गोपी, यशोदा, व्रजेश्वर नन्दराज, वृषभानु तथा उपनन्दोंको नमस्कार करके बड़ी शोभा पायी। नन्दराजको बारंबार भेंट-उपहार अर्पित करके, उन सबके द्वारा सम्मानित हो वे कई दिनोंतक नन्द-गोकुलमें टिके रहे॥ ४८—५०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे माथुरशूरसेनदेशविजयो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मथुरा तथा शूरसेन जनपदोंपर विजय' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

यादवसेनाका विस्तार; कौरवोंके पास उद्धवका दूतके रूपमें जाकर प्रद्युम्नका संदेश सुनाना; कौरवोंके कटु उत्तरसे रुष्ट यादवोंकी हस्तिनापुरपर चढ़ाई

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्ध्वजिनीभिः समन्वितः।
नादयन् दुन्दुभीन् दीर्घान् दीर्घवेगः कुरून् ययौ॥ १

विंशतिर्योजनानां च मर्यादीकृततद्बले।
तस्थौ तच्छिबिराणां च विस्तारो दशयोजनम्॥ २

पञ्चयोजनमाश्रित्य तद्बले राजपद्धतिः।
धनाढ्यानां च वैश्यानामापणानि सहस्रशः॥ ३

तथा रत्नपरीक्षाणां वस्त्रव्यापारकारिणाम्।
काचकारा वायकाश्च रङ्गकाराः कुलालकाः॥ ४

कन्दकारास्तूलकाराः पटकारास्तथैव च।
टङ्ककाराश्चित्रकाराः पत्रकाराश्च नापिताः॥ ५

पट्टकारा हेतिकाराः पर्णकाराश्च शिल्पिनः।
लाक्षाकारा मालिनश्च रजकास्तैलिनस्तथा॥ ६

ताम्बूलशोधिनस्तत्र चित्रपाषाणकर्मकाः।
अन्नभर्जकरास्तत्र काचभेदिन एव हि॥ ७

मुक्तादीनां च रत्नानां सूक्ष्माणां रत्नवेधिनः।
एते कारुजनाः सर्वे दृश्यन्ते राजपद्धतौ॥ ८

क्वचिद्भानुमतीर्लीला ऐन्द्रजालविधायकाः।
क्वचिन्नटाश्च नृत्यन्ते युद्धं भल्लूकयोः क्वचित्॥ ९

क्वचित्तु वानरी लीला डमरूवाद्यसंयुताः।
गायन्ति कुत्रचिद्राजन् सूतमागधबन्दिनः॥ १०

वाराङ्गनाश्च नृत्यन्ति भूषैर्द्वादशभिर्युताः।
दिव्यैः षोडशशृङ्गारैर्हरन्त्यप्सरसां मनः॥ ११

बन्धूनामपि सेनानां महातङ्कादगजाह्वये।
चालनं सम्भ्रमोपेतं विह्वलैश्च जनैरभूत्॥ १२

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद महाबाहु प्रद्युम्न अपनी सेनाओंके साथ उच्चस्वरसे दुन्दुभिनाद करते हुए बड़े वेगसे कुरुदेशमें गये। बीस योजन लंबी भूमिपर उनकी सेनाके शिविर लगे थे। उस छावनीका विस्तार भी दस योजनसे कम नहीं था॥ १-२॥

उस सेनाकी विस्तृत छावनीमें आने-जानेके लिये पाँच योजन लंबी सड़क थी। वहाँ धनाढ्य वैश्योंने सहस्रों दूकानें लगा रखी थीं। रत्नोंके पारखी (जौहरी), वस्त्रोंके व्यवसायी, काँचकी वस्तुओंके निर्माता, वायक (कपड़ा बुनने और सीनेवाले), रँगरेज, कुम्हार, कंदकार (मिसरी आदि बनानेवाले हलवाई), तूलकार (कपासमेंसे रूई निकालनेवाले), पटकार (वस्त्र-निर्माता), टङ्ककार (तार आदि टाँकनेका काम करनेवाले) अथवा 'टङ्क' (नामक औजार बनानेवाले), चित्रकार, पत्रकार (कागज बनानेवाले), नाई, पटुवे, शस्त्रकार, पर्णकार (दोने बनानेवाले), शिल्पी, लाक्षाकार (लखारे), माली, रजक, (धोबी), तेली, तमोली, पत्थरोंपर खुदाई करने या चित्र बनानेवाले, भड़भूज, काँचभेदी, स्थूल-सूक्ष्म मोती आदि रत्नोंका भेदन करनेवाले—ये सभी कारीगर वहाँकी सड़कपर दृष्टिगोचर होते थे॥ ३—८॥

कहीं भानुमतीका खेल दिखानेवाले बाजीगर थे, कहीं इन्द्रजाल फैलानेवाले जादूगर। कहीं नट नृत्य करते थे तो कहीं दो भालुओंका युद्ध होता था। कहीं डमरू बजा-बजाकर वानरोंके खेल दिखाये जाते थे। हे राजन्! कहींपर सूत, मागध तथा बन्दीजन गान कर रहे थे, कहीं बारह प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित वाराङ्गनाओंके नृत्यका कार्यक्रम चल रहा था। वे वार-वधुएँ अपने दिव्य सोलह शृङ्गारोंसे अप्सराओंका भी मन हर लेती थीं॥ ९—११॥

यद्यपि कौरवोंके लिये यादवोंकी सेना अपने भाई-बन्धुओंकी ही सेना थी, तथापि हस्तिनापुरमें उसके बड़े भारी आतङ्कसे घबराकर विह्वल लोग भागने लगे॥ १२॥

विदुद्रुवुर्जनाः सर्वे गृहेष्वापातितार्गलाः।
कोलाहलो महानासीद्‍गेहे गेहे जने जने॥ १३

वीर्यशौर्यबलोपेताः कौरवाश्चक्रवर्तिनः।
आसमुद्राः क्षितीशेन्द्रा जातास्तेऽप्यतिशङ्किताः॥ १४

प्रद्युम्नप्रेषितः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।
कौरवेन्द्रपुरं प्राप्तो धृतराष्ट्रं ददर्श ह॥ १५

मदच्युतामस्य नृपस्य दन्तिनां
कस्तूरिकाकुङ्कुमगण्डशालिनाम्।
सिन्दूरशुण्डास्पदकर्णताडितैः
षडङ्घ्रिभिर्मण्डितमन्दिराजिरम्॥ १६

यं भीष्मकर्णगुरुशल्यकृपैश्च भूरि-
बाह्लीकधौम्यशकुनैः सह सञ्जयेन।
दुःशासनेन विदुरेण च लक्ष्मणेन
दुर्योधनेन च कृपीसुतसोमदत्तैः॥ १७

श्रीयज्ञकेतुसहितैः सहितं नृपेन्द्रं
लीलातपत्रसितचामरहेमपीठैः।
संसेवितं परिसमेत्य गजाह्वयेशं
नत्वोद्धवः प्रणत आह कृताञ्जलिस्तम्॥ १८

उद्धव उवाच

प्रद्युम्नेन प्रकथितं शृणु राजेन्द्रसत्तम।
उग्रसेनः क्षितीशेन्द्रो यादवेन्द्रो महाबलः॥ १९

विजित्य नृपतीन् सर्वान् राजसूयं करिष्यति।
प्रेषितस्तेन सेनाभिः प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः॥ २०

जेतुं महोद्भटान् वीराञ्जम्बूद्वीपस्थितान्नृपान्।
चैद्यशाल्वजरासन्धदन्तवक्रादिभूपतीन्॥ २१

विजित्य चागतः कार्ष्णिस्तस्मै यच्छ बलिं बहु।
उपायनं च दातव्यं बन्धूनामैक्यकाम्यया॥ २२

वहाँके लोग बड़े वेगसे इधर-उधर खिसकने लगे—वे घबराकर कहीं अन्यत्र चले जानेकी चेष्टामें लग गये। सब लोग अपने घरोंमें अर्गला (बिलाई, साँकल एवं ताले) लगाकर भागने लगे। घर-घरमें और जन-जनमें बड़ा भारी कोलाहल होने लगा—सर्वत्र हलचल मच गयी। शौर्य, पराक्रम और बलसे सम्पन्न कौरव चक्रवर्ती राजा थे। वे समुद्रतककी पृथ्वीके अधिपति थे, तथापि यादवोंकी विशाल सेना देखकर वे भी अत्यन्त शङ्कित हो गये॥ १३-१४॥

प्रद्युम्नने बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धवको दूत बनाकर भेजा। वे कौरवेन्द्र-नगर हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्रसे मिले। महाराज धृतराष्ट्रके राजमहलका आँगन मदकी धारा बहानेवाले तथा कस्तूरी और कुङ्कुमसे विभूषित गण्डस्थलोंसे सुशोभित हाथियोंकी सिन्दूर-रञ्जित सूँड़पर बैठने और उनके कानोंसे प्रताड़ित होनेवाले भ्रमरोंसे मण्डित था॥ १५-१६॥

हस्तिनापुरके स्वामी राजाधिराज धृतराष्ट्रकी सेवामें भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, बाह्लीक, धौम्य, शकुनि, संजय, दुश्शासन, विदुर, लक्ष्मण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, सोमदत्त तथा श्रीयज्ञकेतु उपस्थित थे। वे सब-के-सब सोनेके सिंहासनपर श्वेत छत्र और चँवरसे सुशोभित होकर बैठे थे। उसी समय वहाँ पहुँचकर उद्धवने महाराजको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनसे कहा—॥ १७-१८॥

उद्धव बोले—राजेन्द्र-शिरोमणे! प्रद्युम्नने आपके पास मेरे द्वारा जो संदेश कहलाया है, उसे सुनिये—'महाबली यादवराज उग्रसेन समस्त भूपतियोंके भी स्वामी हैं। वे समस्त राजाओंको जीतकर राजसूय-यज्ञ करेंगे। उन्हींके भेजे हुए रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न सेनाके साथ जम्बूद्वीपके अत्यन्त उद्‍भट वीर नरेशोंको जीतनेके लिये निकले हैं। वे चेदिराज शिशुपाल, शाल्व, जरासंध तथा दन्तवक्र आदि भूपालोंपर विजय पाकर यहाँतक आ पहुँचे हैं॥ १९—२१॥

आप उन्हें भेंट दीजिये। यादव और कौरव एक-दूसरेके भाई-बन्धु हैं। इन बन्धुओंमें एकता बनी रहे, इसके लिये आपको भेंट और उपहार-सामग्री देनी ही चाहिये॥ २२॥

माभूत्कुरूणां वृष्णीनां कलिर्नो चेद्भविष्यति।
तेनोदितं मे कथितं तत्क्षमस्व नृपेश्वर॥ २३

दूतस्य हि न दोषः स्यात् त्वयोक्तं यद्वदामि तत्।

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा कौरवाः सर्वे राजन् सञ्जातमन्यवः।
वीर्यशौर्यमदोन्नद्धा ऊचुः प्रस्फुरिताधराः॥ २४

कौरवा ऊचुः

दुरत्यया कालगतिरहो चित्रमिदं जगत्।
सिंहोपरि प्रधावन्ति शृगाला दुर्बला वने॥ २५

अस्मत्सकाशात्सम्बन्धा अस्मद्दत्तनृपासनाः।
दातॄणां प्रतिकूलास्तु पीयूषं फणिनो यथा॥ २६

वृष्णयो भीरवः सर्वे युधि विक्लवचेतसः।
तेऽद्यैव शासनं कर्तुं प्रवृत्ता हि गतह्रियः॥ २७

उग्रसेनोऽल्पवीर्यश्च जम्बूद्वीपस्थितान्नृपान्।
विजित्याहो बलिं नीत्वा राजसूयं करिष्यति॥ २८

यत्र भीष्मश्च कर्णश्च द्रोणो दुर्योधनादयः।
तत्र त्वं प्रेषितो मन्त्री प्रद्युम्नेन कुबुद्धिना॥ २९

तस्माद्यात पुरीमध्ये यूयं वै जीवनेच्छया।
न चेद्यास्यथ वः सर्वान्नयामो यमसादनम्॥ ३०

श्रीनारद उवाच

इत्थं श्रीकृष्णविमुखैः कौरवैः परिभाषितम्।
श्रुत्वोद्धवः शम्बरारिमेत्य सर्वमुवाच ह॥ ३१

ऐसा करनेसे कौरवों और वृष्णिवंशियोंमें कलह नहीं होगा। यदि आप भेंट नहीं देंगे तो युद्ध अनिवार्य हो जायगा।' यह उनकी कही हुई बात है, जिसे मैंने आपके सम्मुख प्रस्तुत किया है। महाराज! यदि मुझसे कोई धृष्टता हुई हो तो उसे क्षमा कीजिये, दूत सर्वथा निर्दोष होता है। अब आप जो उत्तर दें, उसे मैं वहाँ जाकर सुना दूँगा॥ २३ १/२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उद्धवका वह कथन सुनकर समस्त कौरव क्रोधसे तमतमा उठे। वे अपने शौर्य और पराक्रमके मदसे उन्मत्त थे। उनके होठ फड़कने लगे और वे बोले—॥ २४॥

कौरवोंने कहा—अहो! कालकी गति दुर्लङ्घ्य है, यह जगत् विचित्र है, दुर्बल सियार भी वनमें सिंहके ऊपर धावा बोलने लगे हैं! जिन्हें हमारे सम्बन्धसे ही प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, जिनको हमलोगोंने ही राज्यसिंहासन दिया है, वे ही यादव अपने दाताओंके प्रतिकूल उसी प्रकार सिर उठा रहे हैं, जैसे साँप दूध पिलानेवाले दाताओंको ही काट लेते हैं॥ २५-२६॥

समस्त वृष्णिवंशी सदाके डरपोक हैं, वे युद्धका अवसर आते ही व्याकुलचित्त हो जाते हैं; तथापि वे निर्लज्ज आज हमलोगोंपर हुकूमत करने चले हैं॥ २७॥

उग्रसेनमें बल ही कितना है! वह अल्पवीर्य होकर भी, जम्बूद्वीपमें निवास करनेवाले समस्त राजाओंको जीतकर, उनसे भेंट लेकर राजसूय यज्ञ करेगा—यह कितने आश्चर्यकी बात है! जहाँ भीष्म, कर्ण, द्रोण, दुर्योधन आदि महापराक्रमी वीर बैठे हैं, वहाँ उस दुर्बुद्धि प्रद्युम्नने तुमको मन्त्री बनाकर भेजा है! अतः हमारा यह कहना है कि यदि तुमलोगोंकी जीवित रहनेकी इच्छा हो तो अपनी द्वारकापुरीको लौट जाओ। यदि नहीं जाओगे, तो तुम सब लोगोंको आज हम यमलोक भेज देंगे॥ २८—३०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णविरोधी कौरवोंका इस प्रकार भाषण सुनकर उद्धवने शम्बरशत्रु प्रद्युम्नके पास जा, सब कुछ कह सुनाया॥ ३१॥

कौरवोक्तं वचः श्रुत्वा प्रद्युम्नो धन्विनां वरः।
प्रतिशार्ङ्गं संगृहीत्वा रोषात्प्रस्फुरिताधरः॥ ३२

कौरवोंकी बात सुनकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नके होठ रोषके मारे फड़कने लगे। वे शार्ङ्गधनुष हाथमें लेकर बोले॥ ३२॥

प्रद्युम्न उवाच

कौरवान् घातयिष्यामि बन्धूनपि मदोद्धतान्।
बाणैस्तीक्ष्णैर्यथा योगी नियमैर्देहजान् रुजः॥ ३३

यदूनां सैन्यचक्रेषु बलिं यो न प्रदास्यति।
कौरवेभ्योऽपि स पुमान् पितुर्मातुर्न चौरसः॥ ३४

प्रद्युम्नने कहा—कौरव यद्यपि हमारे बन्धु हैं, तथापि ये मदसे उन्मत्त हो गये हैं। इसलिये उनको अपने तीखे बाणोंसे उसी प्रकार नष्ट कर डालूँगा, जैसे योगी कठोर नियमोंद्वारा अपने दैहिक रोगोंको नष्ट कर डालता है। यादवोंके सैन्य-समूहमें जो कोई भी वीर कौरवोंसे भेंट दिलवानेका प्रयास नहीं करेगा, वह अपने माता-पिताका औरस पुत्र नहीं माना जायगा॥ ३३-३४॥

श्रीनारद उवाच

तदेव यादवाः सर्वे भोजवृष्ण्यन्धकादयः।
गजाह्वयं ययुः सैन्यै राजन् सञ्जातमन्यवः॥ ३५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उसी क्षण भोज, वृष्णि और अन्धक आदि समस्त यादव कुपित हो अपनी सेनाओंके साथ हस्तिनापुर जा चढ़े॥ ३५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कौरवेभ्यो दूतप्रेषणं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कौरवोंके लिये दूत-प्रेषण' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

कौरवोंकी सेनाका युद्धभूमिमें आना; दोनों ओरके सैनिकोंका तुमुल युद्ध और प्रद्युम्नके द्वारा दुर्योधनकी पराजय

श्रीनारद उवाच

तदेव कौरवाः सर्वे निर्गता दीप्तमन्यवः।
स्वैः स्वैर्बलैः समायुक्ता योद्धुं प्रद्युम्नसम्मुखे॥ १

विजयध्वजसंयुक्ता रत्नकम्बलमण्डिताः।
गजाः षष्टिसहस्राणि निर्ययुः स्वर्णशृङ्खलाः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] उसी समय जिनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी थी, वे समस्त कौरव भी अपनी-अपनी सेनाओंके साथ प्रद्युम्नका सामना करनेके लिये निकले। रत्नजटित कम्बल (कालीन या झूल)-से अलंकृत और सोनेकी साँकलोंसे सुशोभित साठ हजार हाथी विजयध्वज फहराते हुए निकले॥ १-२॥

प्रलयाब्धिमहावर्तसङ्घर्षध्वनिकारिणाम्।
गजाः षष्टिसहस्राणि दुन्दुभीनां विनिर्गताः॥ ३

गजा गावो बृहन्मल्ला लोहकञ्चुकमण्डिताः।
शिरस्त्रमौलिसंयुक्ता द्विलक्षाणि विनिर्ययुः॥ ४

प्रलय-पयोधिके महान् आवर्तों (भँवरों एवं तरंगों)-के टकरानेके समान गगनभेदिनी ध्वनि करनेवाली साठ हजार दुन्दुभियोंका गम्भीर घोष फैलानेवाले वे गजराज क्रमशः आगे बढ़ने लगे। लोहेके कवच बाँधे तथा शिरस्त्राण धारण किये दो लाख महामल्ल भी युद्धके लिये निकले, उनके साथ बहुत-से हाथी और साँड़ भी थे॥ ३-४॥

हेमकङ्कणकेयूरकिरीटवरकुण्डलाः।
गजस्थाश्च द्विलक्षाणि निर्ययुः स्वर्णकञ्चुकाः॥ ५

तदनन्तर सोनेके कंगन, बाजूबंद, किरीट और सुन्दर कुण्डल पहने, स्वर्णमय कवच धारण किये दो लाख गजारोही योद्धा निकले॥ ५॥

पीतकञ्चुकसंयुक्तास्तिर्यगुष्णीषशालिनः ।
गजस्थाश्च द्विलक्षाणि संग्रामे लब्धकीर्तयः ॥ ६

रक्ताम्बरधराः केचिद्रक्तभूषणभूषिताः ।
रक्तकम्बलसंयुक्तैर्गजैरुच्चैर्विनिर्गताः ॥ ७

कृष्णाम्बरधरा नागैर्हरिद्वस्त्रसमावृताः ।
केचिच्छुक्लाम्बराः केचिन्निर्ययुः पाटलाम्बराः ॥ ८

रथैश्च देवधिष्ण्याभैर्मृगेन्द्रध्वजशोभितैः ।
पतत्पताकैरत्युच्चैर्निर्ययुः कोटिशो नृपाः ॥ ९

आङ्गैर्वाङ्गैः सैन्धवैश्च चञ्चलैस्तुरगैर्नृपाः ।
मनोजवैः स्वर्णभूषैर्निर्ययुः शस्त्रसंवृताः ॥ १०

समन्तान्निर्ययुर्वीरा लोहकञ्चुकमण्डिताः ।
विद्याधरसमा राजन् सङ्कुला युद्धशालिनः ॥ ११

जगुर्यशः कौरवाणां सूतमागधबन्दिनः ।
भेरीमृदङ्गैः पटहैरानकैर्युद्धनिःस्वनैः ॥ १२

मृगेन्द्रध्वजसंयुक्तैः शुक्लवाहनियोजितैः ।
व्यजनैर्वज्रदण्डैश्च चामरान्दोलराजितैः ॥ १३

चतुर्योजनमात्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ।
छत्रेण मण्डिते राजभिर्दत्तेन मनोहरे ॥ १४

दुर्योधनो बभौ सैन्ये महति स्यन्दने स्थितः ।
तथान्ये धार्तराष्ट्राश्च स्यन्दने स्यन्दने स्थिताः ॥ १५

तत्पश्चात् पीले कवच और टेढ़ी पगड़ीसे सुशोभित दो लाख वीर योद्धा, जो अनेक संग्रामोंमें विजयकीर्ति पा चुके थे, युद्धके लिये निकले। वे भी हाथियोंपर ही बैठे थे। कोई लाल रंगके वस्त्र पहने और लाल रंगके ही आभूषणोंसे विभूषित थे। वे लाल रंगकी ही झूलसे सज्जित ऊँचे गजराजोंपर चढ़कर युद्धके लिये निकले थे॥ ६-७॥

कुछ हाथीसवार योद्धा काले रंगके कपड़े पहने हुए थे। कुछ हरे वस्त्रोंसे सुसज्जित थे। कुछ लोग श्वेत वस्त्र धारण किये हुए और कुछ गुलाबी कपड़ोंसे सजे हुए युद्धके लिये आये थे॥ ८॥

करोड़ों राजन्यकुमार देवविमानोंके समान रथोंपर बैठकर आये थे, जो अत्यन्त ऊँचे और सिंहध्वजसे सुशोभित थे। उन रथोंपर पताकाएँ फहरा रही थीं। अङ्ग-वङ्ग तथा सिन्धु देशोंमें उत्पन्न हुए चञ्चल घोड़ोंपर, जो मनके समान वेगशाली तथा सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे, सवार हो बहुतसे क्षत्रिय-योद्धा शस्त्र लिये नगरसे बाहर निकले। राजन्! लोहेके कवचोंसे अलंकृत तथा विद्याधरोंके समान युद्धकुशल बहुसंख्यक वीर चारों ओरसे झुंड-के-झुंड निकलने लगे। भेरी, मृदङ्ग, पटह और आनक आदि युद्धके बाजे बजने लगे। सूत, मागध और वंदीजन कौरवोंका यश गा रहे थे॥ ९—१२॥

धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अपनी विशाल सेनाके बीच बहुत बड़े रथपर बैठा शोभा पा रहा था। वह रथ चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल तथा चार योजनके घेरेवाले छत्रसे अलंकृत हो, अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता था। वह छत्र उसे राजाओंकी ओरसे भेंटके रूपमें प्राप्त हुआ था। हीरेके बने हुए दण्डवाले बहुत-से व्यजन चँवर डुलानेवालोंके हाथोंमें सुशोभित हो उस रथकी शोभा बढ़ाते थे। उसमें श्वेत रंगके घोड़े जुते हुए थे और उसके ऊपर सिंहध्वज फहरा रहा था। दुर्योधनके अतिरिक्त अन्य धृतराष्ट्रपुत्र भी अलग-अलग रथपर बैठे थे। उनके रथोंपर भी चार-

चतुर्योजनमात्रैश्च छत्रैर्मुक्ताविलम्बिभिः।
सुरथेनातिभीष्मेण कृपेण गुरुणा सह॥ १६

बाह्लीककर्णशल्यैश्च सोमदत्तेन धीमता।
अश्वत्थाम्ना च धौम्येन लक्ष्मणेन धनुष्मता॥ १७

शकुनिना च वीरेण तथा दुःशासनेन च।
सञ्जयेन तथा साक्षाद्भूरिणा यज्ञकेतुना॥ १८

सुयोधनो नृपो रेजे यथा शक्रो मरुद्गणैः।
इन्द्रप्रस्थात्पाण्डुपुत्रैः प्रेषितं पृतनाद्वयम्॥ १९

तदैव चागतं राजन् कौरवाणां सहायकृत्।
अक्षौहिणीभिः षोडशभिः कुरूणां चलतां तदा॥ २०

चचाल भूर्दिशो नेदू रजोव्याप्तं नभोऽभवत्।
तारकेव बभौ सूर्यो गजाश्वरथरेणुभिः॥ २१

अन्धकारोऽभवद्भूमौ देवाः सर्वेऽपि शङ्किताः।
यत्र तत्र गजानां च नोदनाभिश्च भूरुहाः॥ २२

निपेतुस्तुरगैर्वीरैः क्षुण्णं भूखण्डमण्डलम्।
सेनाः कुरूणां वृष्णीनां युयुधुश्च परस्परम्॥ २३

तीक्ष्णैः शस्त्रैर्यथा सप्त समुद्रास्तरलैर्लये।
हया हयैरिभाश्चेभै रथिनो रथिभिः सह॥ २४

श्येनैः श्येना इव क्रव्ये पत्तयः पत्तिभिर्मृधे।
महामात्रैर्महामात्राः सूताः सूतैर्नृपैर्नृपाः॥ २५

युयुधुः क्रोधसंयुक्ताः सिंहैः सिंहा इवौजसा।
खड्गैः कुन्तैः शक्तिभिश्च भल्लैः पट्टिशमुद्गरैः॥ २६

गदाभिर्मुसलैश्चक्रैस्तोमरैर्भिन्दिपालकैः।
शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः कुठारैश्च स्फुरत्प्रभैः॥ २७

चिच्छिदुर्बाणपटलैः शिरांसि क्रोधमूर्च्छिताः।
बाणान्धकारे सञ्जाते प्रद्युम्नो धन्विनां वरः॥ २८

चार योजनके घेरेवाले छत्र, जिनमें मोतीकी झालरें लटक रही थीं, शोभा दे रहे थे॥ १३—१५½॥

भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, बाह्लीक, कर्ण, शल्य, बुद्धिमान् सोमदत्त, अश्वत्थामा, धौम्य, धनुर्धर वीर लक्ष्मण, शकुनि, दुश्शासन, संजय, भूरिश्रवा तथा यज्ञकेतुके साथ सुन्दर रथपर बैठकर आता हुआ राजा दुर्योधन मरुद्गणोंके साथ इन्द्रकी भाँति शोभा पा रहा था॥ १६—१८½॥

राजन्! उसी समय इन्द्रप्रस्थसे पाण्डवोंकी भेजी हुई दो 'पृतना' सेना कौरवोंकी सहायताके लिये आयी। कौरवोंकी सोलह अक्षौहिणी सेनाओंके चलनेसे पृथ्वी हिलने लगी, दिशाओंमें कोलाहल व्याप्त हो गया और उड़ती हुई धूलसे आकाशमें अन्धकार छा गया। घोड़े, हाथी तथा रथोंकी रेणुसे व्याप्त आकाशमें सूर्य एक तारेके समान प्रतीत होता था॥ १९—२१॥

भूतलपर अन्धकार फैल गया। समस्त देवता शङ्कित हो गये। यत्र-तत्र हाथियोंकी टक्करसे वृक्ष टूट-टूटकर गिरने लगे। घुड़सवार वीरोंके अश्वचालनसे भूखण्डमण्डल खुद गया। कौरव और वृष्णिवंशियोंकी सेनाएँ परस्पर जूझने लगीं॥ २२-२३॥

जैसे प्रलयकालमें सातों समुद्र अपनी तरंगोंसे टकराने लगते हैं, उसी प्रकार उभय पक्षकी सेनाएँ तीखे शस्त्रोंसे परस्पर प्रहार करने लगीं। जैसे बाज पक्षी मांसके लिये आपसमें जूझते हैं, उसी प्रकार उस युद्धभूमिमें घोड़े घोड़ोंसे, हाथी हाथियोंसे, रथी रथियोंसे और पैदल पैदलोंसे भिड़ गये॥ २४½॥

महावत महावतोंसे, सारथि सारथियोंसे तथा राजा राजाओंसे रोषपूर्वक इस प्रकार युद्ध करने लगे, मानो सिंह सिंहोंसे पूरी शक्ति लगाकर युद्ध कर रहे हों। तलवार, भाले, शक्ति, बर्छे, पट्टिश, मुद्गर, गदा, मुसल, चक्र, तोमर, भिन्दिपाल, शतघ्नी, भुशुण्डी तथा चमकीले कुठारों एवं बाण-समूहोंद्वारा रोषावेशसे भरे हुए योद्धा एक-दूसरेके मस्तक काटने लगे॥ २५—२७½॥

रणभूमिमें बाणोंद्वारा अन्धकार फैल जानेपर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न बारंबार धनुषकी टंकार करते

दुर्योधनेन युयुधे धनुष्टङ्कारयन् मुहुः।
अनिरुद्धश्च भीष्मेण दीप्तिमांश्च कृपेण वै॥ २९

भानुर्द्रोणेन साम्बस्तु बाह्लीकेन नृपेश्वर।
मधुः कर्णेन चायुध्यद् बृहद्भानुः शलेन वै॥ ३०

चित्रभानुर्हरेः पुत्रः सोमदत्तेन धीमता।
अश्वत्थाम्ना वृकश्चैवारुणो धौम्येन मैथिल॥ ३१

पुष्करो लक्ष्मणेनाशु दुर्योधनसुतेन वै।
वेदबाहुः कृष्णसुतः शकुनेन महामृधे॥ ३२

दुःशासनेन समरे श्रुतदेवो हरेः सुतः।
तथा हि युयुधे युद्धे सञ्जयेन सुनन्दनः॥ ३३

विदुरेण गदः साक्षात्कृतवर्मा च भूरिणा।
अक्रूरो युयुधे राजन्नाहवे यज्ञकेतुना॥ ३४

एवं परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं महत्।
कार्ष्णिर्विलोडयामास दुर्योधनबलं महत्॥ ३५

बाणसङ्घेन वाराहो दंष्ट्रया च यथार्णवम्।
बाणसम्भिन्नकुम्भानां करिणां प्रपतन्ति खात्॥ ३६

मुक्ताफलानि रेजुः कौ रात्रौ तारागणा इव।
बाणैः सम्पातयामासू रथिनः सारथीन् रथान्॥ ३७

महामृधे मैथिलेन्द्र वेगैर्वातो यथा तरून्।
दुर्योधनस्तदा प्राप्तो धनुष्टङ्कारयन् मुहुः॥ ३८

प्रद्युम्नं ताडयामास सायकैर्दशभिर्मृधे।
तान् प्रचिच्छेद भगवान् प्रद्युम्नो यादवेश्वरः॥ ३९

दुर्योधनः पुनस्तस्य कवचे सायकान् दश।
निचखान स्वर्णपुङ्खान् भित्त्वा वर्म तनौ गताः॥ ४०

हुए दुर्योधनके साथ युद्ध करने लगे। नृपेश्वर! अनिरुद्ध भीष्मके साथ, दीप्तिमान् कृपाचार्यके साथ, भानु द्रोणाचार्यके साथ, साम्ब बाह्लीकके साथ, मधु कर्णके साथ तथा बृहद्भानु शलके साथ भिड़ गये॥ २८—३०॥

मैथिल! श्रीकृष्णके पुत्र चित्रभानु बुद्धिमान् सोमदत्तके साथ, वृक अश्वत्थामाके साथ, अरुण धौम्यके साथ, पुष्कर दुर्योधनपुत्र लक्ष्मणके साथ, कृष्णकुमार वेदबाहु उस महायुद्धमें शकुनिके साथ, श्रीहरिके पुत्र श्रुतदेव समराङ्गणमें दुश्शासनके साथ तथा सुनन्दन संजयके साथ युद्ध करने लगे। राजन्! गद विदुरके साथ, कृतवर्मा भूरिश्रवाके साथ तथा अक्रूर यज्ञकेतुके साथ संग्राम-भूमिमें लड़ने लगे॥ ३१—३४॥

इस प्रकार दोनों सेनाओंमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ गया। श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने दुर्योधनकी विशाल सेनाको अपने बाण-समूहोंद्वारा उसी प्रकार मथ डाला, जैसे वाराह-अवतारधारी भगवान्ने प्रलयकालके महासागरको अपनी दाढ़से विक्षुब्ध कर दिया था। बाणसे विदीर्ण मस्तकवाले हाथियोंके मुक्ताफल आकाशसे गिरते समय ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो रातमें भूतलपर तारे बिखर रहे हों। मैथिलेन्द्र! प्रद्युम्नने अपने बाणोंसे उस महासमरमें सारथि, रथी एवं रथोंको उसी तरह मार गिराया, जैसे वायु अपने वेगसे बड़े-बड़े वृक्षोंको धराशायी कर देती है॥ ३५—३७½॥

उस समय दुर्योधन बार-बार अपने धनुषको टंकारता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने उस युद्धमें दस बाणोंको प्रद्युम्नपर छोड़ा, किंतु यादवेश्वर भगवान् प्रद्युम्नने उन बाणोंको अपने ऊपर पहुँचनेके पहले ही काट गिराया॥ ३८-३९॥

तब दुर्योधनने पुनः प्रद्युम्नके कवचको अपना निशाना बनाकर सोनेके पंखवाले दस सायक चलाये। वे सायक प्रद्युम्नके कवचको विदीर्ण करके उनके शरीरमें समा गये॥ ४०॥

सहस्रैर्बाणपटलैः सहस्राश्वाञ्जघान ह।
चिच्छेद बाणशतकैः कोदण्डं सगुणं परम्॥ ४१

शम्बरारेर्महावीरो धृतराष्ट्रसुतो बली।
प्रद्युम्नस्तं रथं त्यक्त्वाथान्यमारुह्य सत्वरम्॥ ४२

कृष्णदत्तं धनुर्नीत्वा सज्जं कृत्वा विधानतः।
एकं बाणं समाधाय कर्णान्तं तञ्चकर्ष ह॥ ४३

भुजदण्डस्य वेगेन तद्रथे निचकर्ष ह।
गृहीत्वा तद्रथं बाणो भ्रामयित्वा घटीद्वयम्॥ ४४

आकाशात्पातयामास कमण्डलुमिवार्भकः।
पतनेन रथः सद्यश्चूर्णीभूतो बभूव ह॥ ४५

ससूताश्च हयाः सर्वे पञ्चतां प्रापुरग्रतः।
अन्यं रथं समास्थाय धार्तराष्ट्रो महाबलः॥ ४६

प्रद्युम्नं ताडयामास दशभिः सायकैर्मृधे।
तैस्ताडितो हरेः पुत्रो मालाहत इव द्विपः॥ ४७

कृष्णदत्ते च कोदण्डे तथैकं बाणमादधे।
बाणस्तं सरथं नीत्वा यावत्प्रागान्महाम्बरे॥ ४८

तावद्बाणो द्वितीयोऽपि तं गृहीत्वा ययौ त्वरम्।
तावत्तृतीयः सम्प्राप्तो नीत्वा तं मन्दिराजिरे॥ ४९

धृतराष्ट्रसमीपे च सरथं साश्वसारथिम्।
आकाशात्पातयामास पद्मकोशमिवानिलः॥ ५०

बाणस्तं पातयित्वा तु रणे कार्ष्णिं समाययौ॥ ५१

पतनेन विशीर्णोऽभूदङ्गार इव तद्रथः।
सुयोधनो मूर्च्छितोऽभूदुद्वमन् रुधिरं मुखात्॥ ५२

तत्पश्चात् सहस्र बाणसमूहोंद्वारा प्रहार करके धृतराष्ट्रके बलवान् पुत्र महावीर दुर्योधनने प्रद्युम्नके रथके सहस्र घोड़ोंको मार डाला। फिर सौ बाणोंसे प्रत्यञ्चासहित उनके उत्तम धनुषको भी खण्डित कर दिया। प्रद्युम्न उस रथको त्यागकर तत्काल दूसरे रथपर जा बैठे॥ ४१-४२॥

इसके बाद उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए धनुषको हाथमें लेकर उसपर विधिपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ायी और एक बाणका संधान करके उसे अपने कानतक खींचा। फिर बाहुदण्डके वेगसे उस बाणको दुर्योधनके रथके नीचे धँसा दिया। वह बाण दुर्योधनके रथको ले उड़ा और दो घड़ीतक उसे आकाशमें घुमाता रहा॥ ४३-४४॥

तत्पश्चात् जैसे छोटा बालक कमण्डलुको फेंक देता है, उसी प्रकार उस बाणने दुर्योधनके रथको आकाशसे नीचे गिरा दिया। नीचे गिरनेसे वह रथ तत्काल चूर-चूर हो गया। उसके सभी घोड़े सारथिसहित मृत्युके ग्रास बन गये। महाबली धृतराष्ट्रपुत्र तत्काल दूसरे रथपर जा बैठा। उसने दस सायकोंद्वारा युद्धभूमिमें प्रद्युम्नको घायल कर दिया। उन सायकोंसे आहत होनेपर भी श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न फूलकी मालासे मारे गये हाथीकी भाँति तनिक भी विचलित नहीं हुए॥ ४५—४७॥

उन्होंने श्रीकृष्णके दिये हुए कोदण्डपर एक बाण रखा और उसे चला दिया। वह बाण रथसहित दुर्योधनको लेकर ज्यों ही महाकाशमें पहुँचा, त्यों ही प्रद्युम्नका छोड़ा हुआ दूसरा बाण भी शीघ्र उसे लेकर और भी आगे बढ़ गया। तबतक तीसरा बाण भी वहाँ पहुँचा। उसने अश्व तथा सारथिसहित उस रथको लेकर राजमन्दिरके आँगनमें आकाशसे धृतराष्ट्रके समीप इस प्रकार ला पटका, मानो वायुने कमलकोषको उड़ाकर नीचे डाल दिया हो॥ ४८—५०॥

उस रथको वहाँ गिराकर वह बाण रणभूमिमें प्रद्युम्नके पास लौट आया। नीचे गिरते ही वह रथ अङ्गारकी भाँति बिखर गया। दुर्योधन मुखसे रक्त वमन करता हुआ मूर्च्छित हो गया॥ ५१-५२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यादवकौरवयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यादव-कौरव-युद्धका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कौरव तथा यादव वीरोंका घमासान युद्ध; बलराम और श्रीकृष्णका प्रकट होकर उनमें मेल कराना

श्रीनारद उवाच

दुर्योधने गते तत्र हाहाकारो महानभूत्।
तदा देवव्रतो भीष्मो गाङ्गेयः प्रययौ त्वरम्॥ १

यदूनां पश्यतां तेषां धनुष्टङ्कारयन् मुहुः।
भस्मीकर्तुं यदुबलं वनं वह्निरिव ज्वलन्॥ २

सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः।
वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः॥ ३

शिरस्त्री मुकुटी गौरः सितश्मश्रुः पितामहः।
यथा षोडशवर्षीयो युद्धान्तं विचरन् बलात्॥ ४

बाणैर्निपातयामासानिरुद्धस्य बलं महत्।
करिणश्छिन्नशिरसो हयास्ते भिन्नकन्धराः॥ ५

खड्गहस्ता भिन्नबाणैः पत्तयोऽपि द्विधाभवन्।
रथाश्चूर्णीकृता येन हतसूताश्वनायकाः॥ ६

अधोमुखा ऊर्ध्वमुखाश्छिन्नपादा नृपात्मजाः।
खड्गहस्ता धनुर्हस्ताः पतिताश्छिन्नबाहवः॥ ७

केचिद्वै छिन्नकवचा निपेतुर्भूमिमण्डले।
अश्वैर्वीरै रथैर्नागैः पतितैः स्वर्णभूषितैः॥ ८

युद्धमण्डलमारेजे वनं वृक्षैर्हतैर्यथा।
शस्त्रदन्ता बाणकेशा ध्वजवस्त्रा करिस्तना॥ ९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! दुर्योधनके चले जानेपर वहाँ बड़ा भारी हाहाकार मचा। तब गङ्गानन्दन देवव्रत भीष्म तुरंत वहाँ आ पहुँचे और उन यादवोंके देखते-देखते बारंबार धनुष टंकारते हुए यादव-सेनाको उसी प्रकार भस्म करने लगे, जैसे प्रज्वलित दावानल किसी वनको दग्ध कर देता है॥ १-२॥

भीष्मजी समस्त धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ, महान् भगवद्भक्त, विद्वान् और वीर-समुदायके अग्रगण्य थे। उन्होंने युद्धमें परशुरामजीके भी छक्के छुड़ा दिये थे। उनके मस्तकपर शिरस्त्राण एवं मुकुट शोभा पाता था। उनकी अङ्ग-कान्ति गौर थी। दाढ़ी-मूँछके बाल सफेद हो गये थे। वे कौरवोंके पितामह थे तो भी बलपूर्वक युद्धभूमिमें विचरते हुए सोलह वर्षके नवयुवकके समान जान पड़ते थे॥ ३-४॥

उन्होंने अपने बाणोंसे अनिरुद्धकी विशाल सेनाको मार गिराया। हाथियोंके मस्तक कट गये, घोड़ोंकी गर्दनें उतर गयीं। हाथमें तलवार लिये पैदल योद्धा बाणोंकी मार खाकर दो-दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गये। रथोंके सारथि, घोड़ों और रथियोंको मारकर उन रथोंको भी भीष्मने चूर्ण कर दिया। जिन राजकुमारोंके पैर कट गये थे, वे ऊर्ध्वमुख होनेपर भी अधोमुख हो गये। हाथमें खड्ग और धनुष लिये योद्धा बाँहें कट जानेके कारण धराशायी हो गये॥ ५—७॥

कुछ सैनिकोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये और वे प्राणशून्य होकर भूमिपर गिर पड़े। वहाँ गिरे हुए स्वर्णभूषित वीरों, घोड़ों, रथों और हाथियोंसे वह युद्धमण्डल कटे हुए वृक्षोंवाले वनकी भाँति शोभा पा रहा था। राजन्! वह रणभूमि मूर्तिमती महामारीके समान प्रतीत होती थी। अस्त्र-शस्त्र उसके दाँत, बाण केश, ध्वजा-पताका उसके वस्त्र और हाथी उसके स्तन जान पड़ते थे। रथोंके पहिये उसके कानोंके कुण्डल-से प्रतीत होते थे। वहाँ रक्त-स्रावसे प्रकट हुई

रथाङ्गकुण्डला राजन् महामारीव भूर्बभौ।
क्षतजस्त्रावसम्भूता रथाश्वनरवाहिनी॥ १०

आपगाभून्महादुर्गा नरैर्वैतरणी यथा।
कूष्माण्डोन्मादवेताला नदन्तो भैरवं स्वनम्॥ ११

हरमालार्थमागत्य जगृहुर्नृशिरांसि च।
रथेनातिपताकेनानिरुद्धो धन्विनां वरः॥ १२

स्वबलं पतितं दृष्ट्वा प्रागाद्भीष्मं मृधे महान्।
प्रलयाब्धिमहावर्तभीमसङ्घर्षनादिनीम् ॥ १३

धनुर्ज्यां तस्य चिच्छेद बाणेनैकेन कार्ष्णिजः।
तुण्डया तीक्ष्णया राजन् गरुडः सर्पिणीं यथा॥ १४

भीष्मोऽन्यद्धनुरादाय सज्जं कृत्वा तदात्मवान्।
सर्वेषां पश्यतां तत्र ब्रह्मास्त्रं सन्दधे मृधे॥ १५

ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं वीक्ष्य माधवः।
स्वबलस्यापि रक्षार्थं ब्रह्मास्त्रं सन्दधे स्वयम्॥ १६

द्वादशादित्यसङ्काशे युयुधाते परस्परम्।
त्रींल्लोकान् दहती द्वीपेऽनिरुद्धस्ते जहार ह॥ १७

गाङ्गेयस्यापि कोदण्डं तडिद्वर्णं यदूत्तमः।
चिच्छेद सायकैः सूर्यो नीहारमिव रश्मिभिः॥ १८

भीष्मो गृहीत्वाथ गदां लक्षभारमयीं दृढाम्।
प्राहिणोदनिरुद्धाय सिंहनादं तदाकरोत्॥ १९

गृहीत्वा वामहस्तेन गरुत्मानिव पन्नगीम्।
प्राद्युम्नो भगवान् साक्षात्प्राहिणोत्स्वगदां हृदि॥ २०

नदी तीव्र वेगसे प्रवाहित होने लगी, उसमें रथ, घोड़े और मनुष्य भी बह चले॥ ८—१०॥

वह रक्त-सरिता वैतरणीके समान मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्गम हो गयी थी। कूष्माण्ड, उन्माद और बैतालगण भैरवनाद करते हुए आये और रुद्रकी माला बनानेके लिये वहाँसे नरमुण्डोंका संग्रह करने लगे। अपनी सेनाको रणभूमिमें गिरी देख महान् धनुर्धर-शिरोमणि अनिरुद्ध बहुत बड़ी पताकावाले रथपर आरूढ़ हो, भीष्मका सामना करनेके लिये आगे बढ़े। राजन्! प्रलयकालके महासागरसे उठी हुई ऊँची-ऊँची भँवरों और तरंगोंके भयानक घात-प्रतिघातसे प्रकट हुई ध्वनिके समान गम्भीर नाद करनेवाली भीष्मके धनुषकी प्रत्यञ्चाको प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धने एक ही बाणसे काट डाला—ठीक उसी तरह, जैसे गरुडने अपनी तीखी चोंचसे किसी नागिनके दो टुकड़े कर दिये हों॥ ११—१४॥

तब मनस्वी भीष्मने दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और युद्धभूमिमें सबके देखते-देखते उसपर ब्रह्मास्त्रका संधान किया। उससे बड़ा प्रचण्ड तेज प्रकट हुआ। यह देख माधव अनिरुद्धने भी अपनी सेनाकी रक्षाके लिये स्वयं भी ब्रह्मास्त्रका संधान किया॥ १५-१६॥

वे दोनों ब्रह्मास्त्र बारह सूर्योंके समान तेजस्वी होकर परस्पर युद्ध करने लगे। तब अनिरुद्धने तीनों लोकोंका दहन करनेमें समर्थ उन दोनों अस्त्रोंका उपसंहार कर दिया। साथ ही उन यदुकुलतिलक अनिरुद्धने गङ्गानन्दन भीष्मके विद्युत्के समान दीप्तिमान् धनुषको भी सायकोंद्वारा उसी तरह काट डाला, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहासेको नष्ट कर देता है॥ १७-१८॥

तब भीष्मने लाख भारकी बनी हुई सुदृढ़ गदा हाथमें लेकर उसे अनिरुद्धपर चलाया और सिंहके समान गर्जना की। जैसे गरुड किसी नागिनको पंजेसे पकड़ ले, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् अनिरुद्धने भीष्मकी गदाको बायें हाथसे पकड़ लिया और दाहिने हाथसे अपनी गदा उनकी छातीपर दे मारी॥ १९-२०॥

गदाप्रहारव्यथितो मूर्च्छितः पतितो रथात्।
बभौ सूर्यो यथाकाशाद्गाङ्गेयो मृधमण्डले॥ २१

कृपाचार्योऽपि तत्रैवानिरुद्धाय महात्मने।
शक्तिं चिक्षेप सहसा रुषा प्रस्फुरिताधरः॥ २२

दीप्तिमान् कृष्णपुत्रस्तु पथि चिच्छेद तां नृप।
खड्गेन शितधारेण कुवाक्येनेव मित्रताम्॥ २३

द्रोणाचार्यो महाबाहुर्भानूपरि रुषान्वितः।
चिक्षेप पार्वतं चास्त्रं धनुष्टङ्कारयन् मुहुः॥ २४

पतन्तः पर्वता व्योम्नश्चूर्णयन्तो द्विषद्बलम्।
तेषां पातेन राजेन्द्र हाहाकारो महानभूत्॥ २५

तदा हरेः सुतो भानुर्वायव्यास्त्रं समादधे।
तद्वातेनाद्रयः सर्वे उड्डीता ह्यभवन् रणात्॥ २६

बाह्लीकस्तु तदा क्रुद्धो वह्न्यस्त्रं सन्दधे ततः।
भस्मीभूतं बलं जातं वह्निनेव महद्वनम्॥ २७

पार्जन्यमाददे तत्र साम्बो जाम्बवतीसुतः।
तेन शान्तिं गतो वह्निर्ज्ञानेनेव त्वहंकृतिः॥ २८

कर्णस्ततो मधुं हित्वा साम्बोपरि रुषान्वितः।
जघान बाणविंशत्या जगर्ज घनवद्बली॥ २९

तद्बाणैः सरथः साम्बो बभ्राम घटिकाद्वयम्।
क्रोशं पुनः प्रपतितः किञ्चिद्व्याकुलमानसः॥ ३०

पुनर्गदां समादाय रथं त्यक्त्वा समेत्य सः।
तताड गदया कर्णं साम्बो जाम्बवतीसुतः॥ ३१

गदाप्रहारव्यथितः पतितो धरणीतले।
मूर्च्छां प्राप रणे राजन् कर्णो वीरो महाबलः॥ ३२

उस गदाके प्रहारसे व्यथित हो गङ्गानन्दन भीष्म मूर्च्छित होकर रथसे गिर पड़े। उस युद्धमण्डलमें वे आकाशसे गिरे हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे। तब वहीं खड़े हुए महात्मा अनिरुद्धपर कृपाचार्यने सहसा शक्तिका प्रहार किया। उस समय रोषसे उनके अधर फड़क रहे थे॥ २१-२२॥

नरेश्वर! उस शक्तिको कृष्णपुत्र दीप्तिमान्ने (अनिरुद्धतक पहुँचनेसे पहले) मार्गमें ही अपनी तीखी धारवाली तलवारसे उसी प्रकार काट दिया, जैसे किसीने कटु वचनसे मित्रता खण्डित कर दी हो। तदनन्तर रोषसे भरे हुए महाबाहु द्रोणाचार्यने बारंबार धनुषकी टंकार करके भानुके ऊपर पर्वतास्त्रका प्रयोग किया। शत्रुकी सेनाको चूर्ण करते हुए बड़े-बड़े पर्वत आकाशसे गिरने लगे। राजेन्द्र! उन पर्वतोंके गिरनेसे यादव-सेनामें महान् हाहाकार मच गया॥ २३—२५॥

तब श्रीकृष्णपुत्र भानुने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। उससे प्रचण्ड आँधी प्रकट हुई, जिससे सारे पर्वत रणभूमिसे उड़ गये। उसी अवसरपर कुपित हुए बाह्लीकने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, जिससे दावानलसे विशाल वनकी भाँति शत्रुकी सेना भस्मसात् होने लगी॥ २६-२७॥

यह देख उस रणभूमिमें जाम्बवतीनन्दन साम्बने पर्जन्यास्त्रका प्रयोग किया, जिसके द्वारा ज्ञानसे अहंकारकी भाँति वह अग्नि शान्त हो गयी। तब रोषसे भरे हुए कर्णने मधुको छोड़कर साम्बके ऊपर बीस बाण मारे। फिर वह बलवान् वीर मेघके समान गर्जना करने लगा॥ २८-२९॥

उसके बाणोंसे आहत हो रथसहित साम्ब दो घड़ीतक चक्कर काटते रहे। फिर मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो एक कोस दूर जा गिरे। फिर तो उन्होंने रथ छोड़ दिया और गदा लेकर वे रणभूमिमें आ पहुँचे। उस गदाके द्वारा जाम्बवतीकुमार साम्बने कर्णको गहरी चोट पहुँचायी॥ ३०-३१॥

राजन्! उस चोटसे पीड़ित हो महाबली वीर कर्ण पृथ्वीपर गिर पड़ा और समराङ्गणमें मूर्च्छित हो गया॥ ३२॥

साम्बोऽपि स्वधनुर्नीत्वा रथमारुह्य वेगतः।
शलं जघान विंशत्या सोमदत्तं च पञ्चभिः॥ ३३

द्रौणिं च दशभिर्बाणैर्धौम्यं षोडशभिस्तथा।
लक्ष्मणं दशभिस्तत्र शकुनिं पञ्चभिस्तथा॥ ३४

दुःशासनं च विंशत्या विंशत्या सञ्जयं पृथक्।
भूरिं बाणशतै राजन् यज्ञकेतुं शतैः शितैः॥ ३५

बाणैर्जघान समरे जगर्ज घनवद्बली।
दशभिर्दशभिर्नेतॄनेकैकेन गजान् हयान्॥ ३६

पञ्चभिः पञ्चभिर्वीरान् बाणैः साम्बस्तताड ह।
वीक्ष्य जाम्बवतीसूनोः साम्बस्य करलाघवम्॥ ३७

स्वे परे सैनिकाः सर्वे विस्मयं परमं गताः।
तदा भीष्मः समुत्थाय गृहीत्वा धनुरुत्तमम्॥ ३८

चिच्छेद दशभिर्बाणैः साम्बकोदण्डमुत्तमम्।
भीष्मो महाबलो वीरो द्रोणाचार्यश्च सायकैः॥ ३९

कर्णः सद्यो यदुबलं जघ्नुर्ज्ञानं यथा गुणाः।
दुर्योधनः पुनर्योद्धुं रथमारुह्य मानद॥ ४०

अक्षौहिणीभिर्दशभिर्नादयन्नाययौ मृधे॥ ४१

देवौ पुराणौ पुरुषौ तदावि-
र्बभूवतुर्मैथिल रामकृष्णौ।
सुपर्णतालध्वजशालियानौ
प्रद्योतयन्तौ परितौ दिशस्तौ॥ ४२

तदा जयारावसमाकुलाः सुरा
गन्धर्वमुख्याश्च जगुर्मनोहरम्।
सुरानका दुन्दुभयो विनेदुः
श्रीलाजपुष्पैर्ववृषुः सुरस्त्रियः॥ ४३

तदैव नेमुर्यदवः परेश्वरौ
दुर्योधनाद्याः कुरवस्तु सर्वतः।
निधाय शस्त्राणि ददुर्बलिं परं
सर्वे प्रसन्नाः कृतहस्तसम्पुटाः॥ ४४

साम्ब भी अपना धनुष लेकर दूसरे रथपर बड़े वेगसे जा चढ़े। उन्होंने बीस बाणोंसे शल (शल्य)-को और पाँच बाणोंसे सोमदत्तको घायल कर दिया। राजन्! इतना ही नहीं, उन्होंने दस बाणोंसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको, सोलह बाणोंसे धौम्यको, दस बाणोंसे लक्ष्मणको, पाँचसे शकुनिको, बीस सायकोंसे दुश्शासनको, बीससे ही संजयको, सौ बाणोंसे भूरिश्रवाको तथा सौ तीखे बाणोंसे यज्ञकेतुको भी समराङ्गणमें घायल कर दिया। फिर बलवान् वीर साम्ब मेघके समान गर्जना करने लगे। तदनन्तर साम्बने दस-दस बाणोंसे सारथियोंको, एक-एकसे हाथियों और घोड़ोंको और पाँच-पाँच बाणोंसे अन्य वीरोंको चोट पहुँचायी॥ ३३—३६ $^{1}/_{2}$॥

जाम्बवतीकुमार साम्बका वह हस्तलाघव देखकर अपने एवं शत्रुपक्षके सभी सैनिक अत्यन्त विस्मित हो गये। इसी समय भीष्मने उठकर अपना उत्तम धनुष हाथमें लिया और दस बाण मारकर साम्बके श्रेष्ठ कोदण्डको खण्डित कर दिया। तदनन्तर महाबली वीर भीष्म, द्रोणाचार्य तथा कर्ण—तीनोंने यादव-सेनाको तत्काल सायकोंद्वारा घायल करना उसी प्रकार आरम्भ किया, जैसे तीनों गुण उद्रिक्त होनेपर ज्ञानको नष्ट कर देते हैं। मानद! दुर्योधन रथपर आरूढ़ हो पुनः युद्धके लिये आया। उसके साथ दस अक्षौहिणी सेना थी, जिसका महान् कोलाहल छा रहा था॥ ३७—४१॥

मिथिलेश्वर! उस समय पुराणपुरुष देवेश्वर बलराम और श्रीकृष्ण वहाँ प्रकट हो गये। बलरामके रथपर तालध्वज और श्रीकृष्णके रथपर गरुडध्वज शोभा दे रहे थे। वे दोनों भाई अपनी दिव्यकान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान कर रहे थे॥ ४२॥

उस समय देवता जय-जयकार कर उठे। मुख्य-मुख्य गन्धर्व मनोहर गान करने लगे। देवताओंके आनक और दुन्दुभियोंकी ध्वनि होने लगी तथा देवाङ्गनाएँ खील (लावा) और फूल बरसाने लगीं। उसी समय यदुवंशी वीर परमेश्वर बलराम और श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम करने लगे। दुर्योधन आदि कौरव सब ओर अस्त्र-शस्त्र रखकर उन्हें उत्तम भेंट अर्पित करने लगे। सभी प्रसन्न थे और सबके हाथ जुड़े हुए थे॥ ४३-४४॥

प्रद्युम्नमुख्यान् स्वसुतान् मदोद्धतान्
निर्भर्त्स्य वाग्भिः परमेश्वरो हरिः।
प्रणम्य देवव्रतमुख्यकौरवान्
समेत्य दुर्योधनमूचतुः परौ॥ ४५

परमेश्वर श्रीहरिने अपने मदोन्मत्त प्रद्युम्न आदि पुत्रोंको डाँट बतायी और भीष्म आदि श्रेष्ठ कौरवोंको प्रणाम करके, दुर्योधनसे मिलकर वे दोनों इस प्रकार बोले— ॥ ४५ ॥

श्रीरामकृष्णावूचतुः

राजन् यदेभिः किल बालबुद्धिभि-
स्तत्क्षम्यतां मा भव दुर्मनाः स्वतः।
यद्वा तु किञ्चित्परुषं प्रकीर्तितं
प्रकीर्त्यतां नौ भवता नृपेश्वर॥ ४६
माभूत्कुरूणां भुवि यादवानां
कदापि किञ्चित्कलिरेव राजन्।
सम्बन्धिनो ज्ञातय एव सर्वे
निचोलवस्त्रान्तरवत्प्रियार्थाः ॥ ४७

श्रीबलराम और श्रीकृष्णने कहा—राजन्! इन बालबुद्धिवाले यादवोंने जो कुछ किया है, उसके लिये क्षमा कर दो; अपने मनमें दुःख न मानो। नृपेश्वर! इन लोगोंने जो भी कठोर बात कही है, वह हम दोनोंके प्रति कही गयी मान लो। राजन्! इस भूतलपर यादव और कौरवोंमें कदापि किंचिन्मात्र भी कलह नहीं होना चाहिये। ये सब परस्पर सम्बन्धी और ज्ञाति हैं। हमलोग धोती और उत्तरीयकी भाँति परस्पर एक-दूसरेका प्रिय करनेवाले हैं॥ ४६-४७॥

श्रीनारद उवाच

पूजितौ कुरुभिः शश्वद्रामकृष्णौ सुरेश्वरौ।
प्रद्युम्नाद्यैः सयदुभी रेजतुर्मैथिलेश्वर॥ ४८

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर! कौरवोंसे निरन्तर पूजित और सेवित हो देवेश्वर बलराम और श्रीकृष्ण प्रद्युम्न आदि यादवोंके साथ वहाँ अत्यन्त सुशोभित हुए॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कौरवमेलापनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यादव और कौरवोंमें मेल' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

अर्जुनसहित प्रद्युम्नका कालयवन-पुत्र चण्डको जीतकर भारतवर्षके बाहर पूर्वोत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान

श्रीनारद उवाच

दुर्योधनं शान्तयित्वा सानुजैः कुरुभिः सह।
जग्मतुः पाण्डवान् द्रष्टुमिन्द्रप्रस्थं यदूत्तमौ॥ १

इन्द्रप्रस्थात्ततो राजाजातशत्रुर्युधिष्ठिरः।
भ्रातृभिः स्वजनैः सार्धं नेतुं कृष्णं समाययौ॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! भाइयों तथा अन्यान्य कुरुवंशियोंके साथ दुर्योधनको शान्त करके यदुकुलतिलक बलराम और श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे मिलनेके लिये इन्द्रप्रस्थको गये। तब अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा स्वजनोंके साथ श्रीकृष्णकी अगवानीके लिये इन्द्रप्रस्थसे बाहर आये॥ १-२॥

शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः।
पुष्पवर्षं प्रकुर्वद्भिरिन्द्रप्रस्थनिवासिभिः।
रामकृष्णौ परिष्वज्य दोर्भ्यां राजा युधिष्ठिरः॥ ३

परमां निर्वृतिं लेभे योगीवानन्दसंवृतः।
प्रद्युम्नाद्या हरिसुताः प्रणेमुः श्रीयुधिष्ठिरम्॥ ४

उनके साथ इन्द्रप्रस्थके अन्यान्य निवासी भी शङ्खध्वनि, दुन्दुभिनाद, वेदमन्त्रोंका घोष तथा वेणु-वादनपूर्वक पुष्पवर्षा करते हुए आये। बलराम और श्रीकृष्णको राजा युधिष्ठिरने दोनों भुजाओंसे खींचकर हृदयसे लगा लिया और परमानन्दका अनुभव किया। वे योगीकी भाँति आनन्दमें डूब गये। प्रद्युम्न आदि श्रीकृष्णकुमारोंने भी श्रीयुधिष्ठिरको प्रणाम किया।

युधिष्ठिरोऽनुजग्राह कराभ्यां तान् कृताशिषः।
अर्जुनं भीमसेनं च परिरभ्य हरिः स्वयम्॥ ५

पप्रच्छ कुशलं तेषां यमाभ्यां चाभिवन्दितः।
परिपूर्णतमौ साक्षाच्छ्रीकृष्णौ च स्वयं हरी॥ ६

असंख्यब्रह्माण्डपती हरिदासेन पूजितौ।
प्रस्थाप्य यदुमुख्यांश्च प्रद्युम्नादीन् ससैनिकान्॥ ७

समग्रां जगतीं जेतुं चाज्ञां दत्वा विधानतः।
मिलित्वा सानुजं धर्मं सर्वेशौ भक्तवत्सलौ॥ ८

द्वारकां जग्मतू राजन् गौरश्यामौ मनोहरौ।
इत्थं श्रीकृष्णचरितं मया ते कथितं नृप॥ ९

चतुष्पदार्थदं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

बहुलाश्व उवाच

कुशस्थलीं गते कृष्णे सबले पुरुषोत्तमे॥ १०

ततश्चकार किं साक्षात्प्रद्युम्नो भगवान् हरिः।
अद्भुतं तस्य चरितं श्रवणीयं मनोहरम्॥ ११

मुक्तानामपि भक्तानां जिज्ञासूनां पुनः किमु।
अर्थार्थिनामर्थदं सदार्तानामार्तिनाशनम्॥ १२

चतुर्विधानां जीवानां सर्वेषां पापनाशनम्।
कथं दिग्विजयं कृत्वा दिग्जयार्थी हरेः सुतः॥ १३

आजगाम पुनः सैन्यैरेतन्मे वद तत्त्वतः।
देवर्षे त्वं ब्रह्मसुतो भगवान् सर्वदर्शनः।
श्रीकृष्णस्य मनः पूर्वं तस्मै ते हरये नमः॥ १४

युधिष्ठिरने उन सबको दोनों हाथोंसे पकड़कर आशीर्वाद दिया। श्रीहरिने स्वयं अर्जुन और भीमसेनको हृदयसे लगाकर उनका कुशल-समाचार पूछा तथा नकुल और सहदेवने उनके चरणोंमें वन्दना की॥ ३—५ १/२॥

श्रीकृष्ण और बलराम साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं, असंख्य ब्रह्माण्डोंके पालक हैं। भगवद्भक्त युधिष्ठिरने उन दोनों भाइयोंका पूर्णतया समादर किया। उन्होंने यदुकुलके मुख्य वीर प्रद्युम्न आदिको सैनिकोंसहित दिग्विजयके लिये विधिपूर्वक भेजा और सारी पृथ्वीको जीतनेके लिये आज्ञा दी। फिर वे दोनों भक्तवत्सल सर्वेश्वर बन्धु भाइयोंसहित धर्मराज युधिष्ठिरसे मिलकर द्वारकाको चले गये। राजन्! गौर और श्याम वर्णवाले दोनों भाई—बलराम और श्रीकृष्ण सबके मनको हर लेनेवाले हैं। नरेश्वर! इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णका चरित्र कहा। यह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ ६—९ १/२॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने! बलरामसहित पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जब कुशस्थलीको चले गये, तब साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न हरिने क्या किया? उनका अद्भुत चरित्र श्रवण करनेयोग्य तथा मनोहर है॥ १०-११॥

जो जीवन्मुक्त ज्ञानी भक्त हैं, उनके लिये भी भगवच्चरित्र सदा श्रवणीय है, फिर जिज्ञासु भक्तोंके लिये तो कहना ही क्या। भगवान्का चरित्र अर्थार्थी भक्तोंको सदा अर्थ देनेवाला और आर्त भक्तोंकी पीड़ाको शान्त करनेवाला है॥ १२॥

इतना ही नहीं, स्थावर आदि चार प्रकारके जो जीव-समुदाय हैं, उन सबके पापोंका वह नाश करनेवाला है। दिग्विजयके इच्छुक श्रीहरिकुमार प्रद्युम्न किस प्रकार सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय प्राप्त करके पुनः सेनासहित द्वारकामें लौटे, यह सारा वृत्तान्त आप मुझे ठीक-ठीक बतलाइये। देवर्षे! आप ब्रह्माजीके पुत्र और साक्षात् सर्वदर्शी भगवान् हैं, भगवान् श्रीकृष्णके मन हैं; अतः पहले श्रीहरिके मनःस्वरूप आपको मेरा प्रणाम है॥ १३-१४॥

श्रीनारद उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन् धन्यस्त्वं तत्प्रभाववित्।
श्रीकृष्णचरितं श्रोतुं पात्रं त्वमसि भूतले॥ १५

कृष्णे यातेऽजातशत्रू रक्षार्थं स्नेहतो नृप।
शत्रुभ्यः शङ्कितः कार्ष्णिं प्रायुङ्क्ताशु किरीटिनम्॥ १६

अथ कार्ष्णिर्यदुश्रेष्ठः फाल्गुनेन समं नृप।
विकर्षन् महतीं सेनां त्रिगर्तान् प्रययौ त्वरम्॥ १७

त्रिगर्ताधीश्वरो धन्वी सुशर्मा तेन शङ्कितः।
उपायनं ददौ तस्मै प्रद्युम्नाय महात्मने॥ १८

विराटेन तथा राज्ञा पूजितो यादवेश्वरः।
सरस्वतीं नदीं स्नात्वा कुरुक्षेत्रं ददर्श ह॥ १९

पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितं कूपं सुदर्शनम्।
स्नात्वा सरस्वतीं प्रागाद्दत्वा दानान्यनेकशः॥ २०

सारस्वताधिपो राजा कुशाम्बो न ददौ बलिम्।
कौशाम्बीं नगरीमेत्य दुर्योधनवशानुगः॥ २१

चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान्।
सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः॥ २२

चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमस्तथा।
रुक्मिणीनन्दना ह्येते प्रद्युम्नेन प्रणोदिताः॥ २३

सिन्धुदेशहयारूढाः सर्वेषां पश्यतां गताः।
कौशाम्बीं नगरीमेत्य रुरुधुः सर्वतस्तदा॥ २४

बाणैः प्रासादशिखरा ध्वजकुम्भादितोलिकाः।
चूर्णीभूता निपेतुः कौ लङ्काट्टाला यथा मृगैः॥ २५

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी। तुम भगवत्प्रभावके ज्ञाता होनेके कारण धन्य हो। इस भूतलपर श्रीकृष्णचरित्रको सुननेके पात्र (सुयोग्य अधिकारी) तुम्हीं हो। नरेश्वर! श्रीकृष्णके चले जानेपर अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंसे प्रद्युम्नकी रक्षा करनेके लिये स्नेहवश उनके साथ शीघ्र ही अपने भाई अर्जुनको भी जानेकी आज्ञा दे दी; क्योंकि उनके मनमें बाहरी शत्रुओंसे प्रद्युम्न आदिपर भय आनेकी आशङ्का हो गयी थी॥ १५-१६॥

मिथिलेश्वर! तदनन्तर अर्जुनके साथ यदुश्रेष्ठ प्रद्युम्न विशाल सेनाको अपने साथ लिये तत्काल त्रिगर्त जनपदमें जा पहुँचे। त्रिगर्तके राजा धनुर्धर सुशर्माने शङ्कित होकर महामना प्रद्युम्नको भेंट दी॥ १७-१८॥

फिर [मत्स्य देशके] राजा विराटसे पूजित होकर, यादवेश्वर प्रद्युम्नने सरस्वती नदीमें स्नान करके कुरुक्षेत्र तीर्थका दर्शन किया। फिर पृथूदक, बिन्दु-सरोवर, त्रितकूप और सुदर्शन आदि तीर्थोंमें होते हुए, सरस्वतीमें स्नान करके, वहाँ अनेक प्रकारके दान दे वे आगे बढ़ गये॥ १९-२०॥

कौशाम्बी* नगरीमें पहुँचनेपर सारस्वतप्रदेशके राजा कुशाम्बने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी; क्योंकि वे दुर्योधनके वशीभूत होनेके कारण उसीके पिछलगू थे॥ २१॥

तब प्रद्युम्नकी आज्ञा पाकर चारुदेष्ण, सुदेष्ण पराक्रमी चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और दसवें चारु—इन दसों रुक्मिणीपुत्रोंने सिंधुदेशीय घोड़ोंपर सवार हो, सबके देखते-देखते कौशाम्बी नगरीको चारों ओरसे घेर लिया॥ २२—२४॥

उनके बाणोंसे राजधानीके महलोंके शिखर, ध्वज, कलश और तोलिका आदि चूर-चूर होकर उसी प्रकार गिरने लगे, जैसे वानरोंके प्रहारसे लङ्काकी अट्टालिकाएँ टूट-टूटकर गिरने लगी थीं॥ २५॥

* इतिहासप्रसिद्ध कौशाम्बी नगरी तो इलाहाबाद जिलेके 'कोसम' नामसे प्रसिद्ध ग्रामके आस-पास रही है। यह बात खुदाई आदिसे भी सिद्ध हो चुकी है। यहाँ जिस 'कौशाम्बी' की चर्चा है, वह दूसरी ही है; राजा कुशाम्बके नामपर बसी हुई राजधानीको 'कौशाम्बी' कहा गया है।

बाणान्धकारे च कृते रुक्मिणीनन्दनैर्यदा।
तदोपायनपाणिः सन् कुशाम्बो निर्गतः पुरात्॥ २६

कृताञ्जलिः शम्बरारिं दत्वा नत्वा बलिं बहु।
जुगोप नगरीं राजा भयार्तो भयविह्वलः॥ २७

तदैव सौवीरपतिः सुदेव
आभीरनाथोऽपि विचित्रनामा।
चित्राङ्गदः सिन्धुपतिर्महौजाः
काश्मीरपो जाङ्गलपः सुमेरुः॥ २८

लाक्षेश्वरो धर्मपतिर्बिडौजा
गान्धारमुख्योऽपि सुयोधनस्य।
वशे स्थितास्तेऽपि भयात्किलैते
दत्वा बलिं नेमुरतीव कार्ष्णिम्॥ २९

ययौ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः।
अर्बुदान् म्लेच्छदेशांश्च जेतुं कल्किरिवोद्भटः॥ ३०

कालस्यापि सुतश्चण्डो यवनेन्द्रो महाबलः।
कार्ष्णिं समागतं श्रुत्वा सम्मुखात्कोपपूरितः॥ ३१

पितृहन्तुः सुतं हत्वा यास्याम्यपचितिं पितुः।
इत्थं विचार्य मनसा म्लेच्छानां दशकोटिभिः॥ ३२

मदच्युतं प्रोन्नदन्तं गजमारुह्य रक्तदृक्।
निर्ययौ सम्मुखे योद्धुं प्रद्युम्नस्य महात्मनः॥ ३३

आगतां महतीं सेनां शितबाणप्रवर्षिणीम्।
चण्डप्रणोदितां दृष्ट्वा प्रद्युम्नो वाक्यमब्रवीत्॥ ३४

प्रद्युम्न उवाच

सेनां हत्वापि यश्चाण्डं शिरस्त्रसहितं शिरः।
आनेष्यते तं स्वबले करिष्यामि ध्वजापतिम्॥ ३५

श्रीनारद उवाच

एवं कार्ष्णौ वदत्यारात्फाल्गुनो वानरध्वजः।
एको विवेश गाण्डीवी धनुष्टङ्कारयन्मुहुः॥ ३६

वीरान् रथान् गजानश्वान् सम्मुखस्थान् द्विधाकरोत्।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैर्गाण्डीवी रणदुर्मदः॥ ३७

रुक्मिणीकुमारोंने जब इस प्रकार बाणोंद्वारा अन्धकार फैला दिया, तब राजा कुशाम्ब हाथमें बहुत-सी भेंट-सामग्री लिये नगरसे बाहर निकले। उन्होंने हाथ जोड़कर शम्बरारिको नमस्कार किया और बहुत-सी भेंट-सामग्री देकर भयार्त एवं भयविह्वल राजाने नगरीकी रक्षा की॥ २६-२७॥

उसी समय सौवीरराज सुदेव, आभीरराज विचित्र, सिन्धुपति चित्राङ्गद, कश्मीरराज महौजा, जाङ्गल-देशाधिपति सुमेरु, लाक्षेश्वर धर्मपति और गान्धारनरेश बिडौजा—इन सबने भी, जो दुर्योधनके वशवर्ती थे, भयके कारण बलि अर्पित करके अत्यन्त विनीत होकर कृष्णकुमार प्रद्युम्नको प्रणाम किया। तदनन्तर अपनी सेनासे घिरे हुए महाबाहु प्रद्युम्न उद्भट वीर कल्किके समान अर्बुद और म्लेच्छ देशोंपर विजय पानेके लिये प्रस्तुत हुए॥ २८—३०॥

कालयवनका महाबली पुत्र यवनेन्द्र चण्ड प्रद्युम्नका आगमन सुनकर अत्यन्त क्रोधसे भर गया। 'आज मैं अपने पिताकी हत्या करनेवाले शत्रुके पुत्रका वध करके बापका बदला चुका लूँगा'—मन-ही-मन ऐसा विचार करके दस करोड़ म्लेच्छोंकी सेना लिये, मदकी धारा बहाने और गर्जनेवाले ऊँचे गजराजपर आरूढ़ हो, आँखें लाल करके, वह महात्मा प्रद्युम्नके सामने युद्ध करने निकला। चण्डकी प्रेरणासे तीखे बाणोंकी वर्षा करनेवाली उस विशाल सेनाको आयी देख प्रद्युम्न अपने सैनिकोंसे बोले—॥ ३१—३४॥

प्रद्युम्नने कहा—जो शत्रुसेनाका संहार करके शिरस्त्राणसहित चण्डका मस्तक काटकर यहाँ ला देगा, उस वीरको मैं अपनी सेनाका सेनापति बनाऊँगा॥ ३५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! जब प्रद्युम्न पास ही इस प्रकार कह रहे थे, तब गाण्डीवधारी कपिध्वज अर्जुनने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए अकेले ही शत्रुकी सेनामें प्रवेश किया। रणदुर्मद गाण्डीवधारीने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए विशिखोंद्वारा सामने खड़े हुए वीरों, रथों, हाथियों और घोड़ोंके दो-दो टुकड़े कर डाले॥ ३६-३७॥

केचिच्छिन्नभुजाः पेतुः शक्तिखड्गर्ष्टिपाणयः।
भिन्नपादा भिन्ननखाः केचिद्वीराः सकञ्चुकाः॥ ३८

दुद्रुवुः करिणो युद्धे भिन्नकक्षाश्च सक्षताः।
गतघण्टाः श्लथन्नीडाः पातयन्तः करैर्गजान्॥ ३९

जिष्णुबाणैर्द्विधाभूतैर्गजैरश्वै रणाङ्गणम्।
बभौ क्षेत्रं शङ्कुलया कूष्माण्डशकलैरिव॥ ४०

तदैव दुद्रुवुर्म्लेच्छास्त्यक्त्वा स्वं स्वं रणाङ्गणम्।
नभोऽर्करश्मिसम्भिन्ना नीहारपटला इव॥ ४१

गजारूढो म्लेच्छपतिः शक्तिं चिक्षेप जिष्णवे।
भ्रामयित्वा मैथिलेन्द्र सिंहनादमथाकरोत्॥ ४२

विद्युल्लतामिवायान्तीं बाणैः कृष्णसखो बली।
गाण्डीवमुक्तै राजेन्द्र लीलया शतधाच्छिनत्॥ ४३

यावच्चण्डो महाम्लेच्छो धनुर्जग्राह रोषतः।
तावच्चिच्छेद गाण्डीवी बाणेनैकेन लीलया॥ ४४

द्वितीयं धनुरादाय स चण्डश्चण्डविक्रमः।
प्रलयाब्धिमहावर्तभीमसङ्घर्षनादिनीम् ॥ ४५

चिच्छेद शिञ्जिनीं जिष्णोर्गरुत्मानिव पन्नगीम्।
बीभत्सुः स्वमसिं नीत्वा स्फुरन्तं चर्मणा सह॥ ४६

जघान तद्गजं कुम्भे शैलमिन्द्रो यथा पविः।
अग्निदत्तेन खड्गेन भिन्नकुम्भो गजो नदन्॥ ४७

हाथोंमें शक्ति, खड्ग तथा ऋष्टि (दुधारा खाँड़ा) लिये कितने ही शत्रु-सैनिक भुजाएँ कट जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े। कितने ही कवचधारी वीरोंके पैर कट गये और नख विदीर्ण हो गये। जिनके हौदे छिन्न-भिन्न हो गये और शरीर घायल हो गये थे, ऐसे हाथी युद्धभूमिमें इधर-उधर भागने लगे। उनके घंटे कहीं गिर गये और हौदे कहीं जा पड़े॥ ३८-३९॥

वे अपनी सूँड़ोंसे हाथियोंको भी गिराते हुए भाग चले। अर्जुनके बाणोंसे दो-दो टूक हुए हाथियों और घोड़ोंसे भरा हुआ वह समराङ्गण हँसुओंसे काटे गये कुम्हड़ोंके टुकड़ोंसे व्याप्त हुए खेत-सा जान पड़ता था। फिर तो म्लेच्छ सैनिक अपने-अपने हथियार फेंक, समराङ्गण छोड़कर जोर-जोरसे भागने लगे—ठीक उसी तरह जैसे सूर्यकी किरणोंसे विदीर्ण हुए कुहासोंके समुदाय नष्ट हो जाते हैं॥ ४०-४१॥

मैथिलेन्द्र! हाथीपर बैठे हुए म्लेच्छराज चण्डने एक शक्ति घुमाकर अर्जुनके ऊपर फेंकी और सिंहके समान गर्जना की। राजेन्द्र! बलवान् श्रीकृष्ण-सखा अर्जुनने विद्युल्लताके समान अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिके गाण्डीव-मुक्त बाणोंद्वारा खेल-खेलमें ही सौ टुकड़े कर डाले॥ ४२-४३॥

महाम्लेच्छ चण्ड रोषसे भरकर जबतक धनुष उठाये, तबतक ही गाण्डीवधारीने लीलापूर्वक एक बाण मारकर उसके उस धनुषको काट दिया। तब प्रचण्ड-पराक्रमी चण्डने दूसरा धनुष हाथमें लेकर प्रलयकालके महासागरकी बड़ी-बड़ी भँवरोंके टकरानेकी भाँति गम्भीर नाद करनेवाली अर्जुनकी प्रत्यञ्चाको उसी तरह काट दिया, जैसे गरुड़ किसी सर्पिणीके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ ४४—४५१/२॥

तब अर्जुनने ढालके साथ चमकती हुई अपनी तलवार ले ली और उससे चण्डके गजराजके कुम्भस्थलपर इस प्रकार प्रहार किया, मानो इन्द्रने पर्वतपर वज्र मार दिया हो। अग्निदेवके दिये हुए उस खड्गसे उस हाथीका कुम्भस्थल फट गया। उसने चिंघाड़ करते हुए धरतीपर घुटने टेक दिये।

जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ।
चण्डः खड्गं गृहीत्वाथ प्राहरत् पाण्डुनन्दनम्॥ ४८

तत्खड्गं चर्मणोन्नीय प्राहिणोत्तं कुरूद्वहः।
सशिरस्त्रं शिरस्तस्य देहाद्भिन्नं बभूव ह॥ ४९

फिर वह अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। तब चण्डने भी तलवार लेकर पाण्डुनन्दन अर्जुनपर प्रहार किया; परंतु कुरुकुल-तिलक अर्जुनने उसके खड्गको ढालपर रोककर उसके ऊपर अपनी तलवारसे वार किया। इससे चण्डका शिरस्त्राणसहित मस्तक धड़से अलग हो गया॥ ४६—४९॥

सज्जं कृत्वा धनुर्जिष्णुर्निधाय विशिखे च तत्।
आकृष्य पातयामास प्रद्युम्नस्य बले महत्॥ ५०

तदनन्तर अर्जुनने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और चण्डके मस्तकको बाणपर रखकर उसे धनुषपर खींचकर चलाया और प्रद्युम्नकी सेनामें उसे फेंक दिया॥ ५०॥

तदा दुन्दुभिनादोऽभूज्जयारावसमाकुलः।
अर्जुनस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ५१

तदैव कार्ष्णिः सबलस्य जिष्णुं
चकार नाथं विजयध्वजस्य।
संवीज्यमानं सितचामराद्यैः
कपिध्वजं यादववृन्दमुख्यैः॥ ५२

उस समय जय-जयकारके साथ दुन्दुभि बजने लगी और देवतालोग अर्जुनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। फिर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने उसी क्षण विजयध्वजसे विभूषित अपनी सेनाका अर्जुनको सेनापति बना दिया। उस समय यादव-सेनाके मुख्य वीरोंने हाथमें श्वेत चँवर आदि लेकर कपिध्वज अर्जुनके ऊपर हवा की॥ ५१-५२॥

वेगवानर्बुदाधीशः प्रद्युम्नं शरणं गतः।
उपायनं ददौ भीरुर्नमस्कृत्य कृताञ्जलिः॥ ५३

मौरङ्गेशो मन्दहासो हयानां दशलक्षकम्।
दत्वा भीरुर्नमश्चक्रे प्रद्युम्नाय महात्मने॥ ५४

इत्थं खण्डं भारताख्यं जित्वा कार्ष्णिर्यदूत्तमः।
हिमाद्रिं दक्षिणीकृत्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ॥ ५५

फिर तो वेगशाली अर्बुदाधीशने प्रद्युम्नकी शरण ली। उसने डरते हुए हाथ जोड़कर नमस्कार किया और भेंट अर्पित की। मोरङ्गके राजा मन्दहासने भयभीत हो महात्मा प्रद्युम्नको दस लाख घोड़े देकर नमस्कार किया। इस प्रकार भरत-खण्डपर विजय पाकर यदुकुल-तिलक श्रीकृष्णकुमारने हिमालयको दाहिने करके पूर्वोत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया॥ ५३—५५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे बहुदिग्विजयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'बहुदिग्विजय' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

यादवसेनाका बाणासुरसे भेंट लेकर अलकापुरीको प्रस्थान तथा यादवों और यक्षोंका युद्ध

श्रीनारद उवाच

नदा नद्यः समुद्राश्च रथवीथिं ददुर्नृप।
धर्षितास्तेजसा तस्मै ससैन्याय महात्मने॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! नदों, नदियों और समुद्रोंने भी सेनासहित महात्मा प्रद्युम्नको उनके तेजसे धर्षित हो रथ निकलनेके लिये मार्ग दे दिया॥ १॥

कैलासगिरिपार्श्वे च वरवीरश्च मानुषः।
बाणस्य शोणितपुरं प्रययौ यादवेश्वरः॥ २

बाणासुरोऽतिसङ्क्रुद्धो यदून् वीक्ष्यागतान् पुनः।
अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिर्युद्धं कर्तुं मनो दधे॥ ३

तदैव साक्षात्पुरुषः पुराणो
महेश्वरो नन्दिवृषस्थितोऽसौ।
हिमाद्रिपुत्रीसहितस्त्रिशूली
समेत्य बाणं नृपमाह देवः॥ ४

शिव उवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः॥ ५

त्रयो वयं तत्कला हि ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
मूर्ध्न्याज्ञां यस्य बिभ्रति त्वादृशानां च का कथा॥ ६

तस्य पौत्रस्त्वया बद्धोऽनिरुद्धो येन तेजसा।
छिन्ना भुजा न जानासि सङ्ग्रामे तं हरिं स्वयम्॥ ७

तस्मात्तेषां दानवानां पूजनीया हरेः सुताः।
अनिरुद्धः पूजनीयो जामाता ते न संशयः॥ ८

न ददामि त्वनुज्ञां ते युद्धायासुरपुङ्गव।
न चेद्युद्धं कुरु बलाद्वृथा दृष्टं मनस्तव॥ ९

श्रीनारद उवाच

शिवप्रबोधितो बाणोऽनिरुद्धं धन्विनां वरम्।
समाहूय च सम्पूज्य पारिबर्हं ददौ पुनः॥ १०

ससैन्यं सादरेणापि प्रद्युम्नं पूज्य बन्धुवत्।
गजायुतं चाश्वकोटिं रथानां पञ्चलक्षकम्॥ ११

ददौ बाणो महाबाहुः प्रद्युम्नाय महात्मने।
अथ कार्ष्णिर्महाराज स्वसैन्यैर्यदुभिः सह॥ १२

अलकां प्रययौ धन्वी पुरीं गुह्यकमण्डिताम्।
श्रीनन्दालकनन्दाभ्यां गङ्गाभ्यां परिखीकृताम्॥ १३

कैलासपर्वतके पार्श्वभागमें बाणासुरका निवास-स्थान शोणितपुर था। वहाँ श्रेष्ठ मानव-वीर यादवेश्वर प्रद्युम्न गये। यदुवंशियोंको पुनः आया देख, बाणासुरको बड़ा क्रोध हुआ। उसने बारह अक्षौहिणी सेनाके द्वारा उनके साथ युद्ध करनेका विचार किया। इसी समय त्रिशूलधारी साक्षात् पुराणपुरुष महेश्वरदेव नन्दी वृषभपर आरूढ़ हो हिमाचलपुत्री उमाके साथ बाणासुरके पास आये और बोले— ॥ २—४ ॥

शिवने कहा—[असुरराज!] साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्पर परमात्मा हैं। हम तीनों—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—उन्हींकी कला हैं और उनकी आज्ञाको सदा अपने मस्तकपर धारण करते हैं; फिर तुम-जैसे सामान्य कोटिके जीवोंकी तो बात ही क्या!॥ ५-६ ॥

उन्हींके पौत्र अनिरुद्धको तुमने बाँध लिया था, जिसके कारण उन्होंने अपने प्रभावसे संग्राममें तुम्हारी भुजाएँ काट डाली थीं। क्या उन श्रीहरिको तुम नहीं जानते? (उन्हें इतनी जल्दी भूल गये?) अतः दानवोंके लिये श्रीहरिके पुत्र पूजनीय हैं। अनिरुद्ध तो तुम्हारे दामाद ही हैं; अतः तुम्हारे लिये उनके पूजनीय होनेमें तो कोई संशय नहीं है। असुरपुंगव! मैं तुम्हें युद्धके लिये आज्ञा नहीं देता। यदि नहीं मानोगे तो अपने बलसे युद्ध करो; परंतु तुम्हारे मनका युद्ध-विषयक संकल्प मुझे तो व्यर्थ ही दिखायी देता है॥ ७—९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! भगवान् शिवके समझानेपर बाणासुरने अनिरुद्धको बुलाकर उनका पूजन किया और पुनः दहेज दिया। फिर सेनासहित प्रद्युम्नका बन्धुके समान सादर पूजन करके महाबाहु बाणने उन महात्माको दस हजार हाथी, पाँच लाख रथ तथा एककरोड़ घोड़े भेंटमें दिये॥ १०—११ १/२॥

महाराज! तदनन्तर धनुर्धर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न अपने यादव सैनिकोंके साथ गुह्यकों (यक्षों)-से मण्डित अलकापुरीको गये। नन्दा और अलकनन्दा—ये दो गङ्गाएँ परिखा (खाई)-की भाँति उस पुरीको घेरे हुए हैं॥ १२-१३॥

रत्नसोपानयुक्ताभ्यां यक्षीभिः परिशोभिताम्।
विद्याधरीभिः परितः किन्नरीभिर्मनोहराम्॥ १४

दिव्याभिर्नागकन्याभिः पुरीं भोगवतीमिव।
धनदो न ददौ तस्मै प्रद्युम्नाय बलिं नृपः॥ १५

वहाँ वे दोनों नदियाँ रत्नोंकी बनी हुई सीढ़ियोंसे युक्त हैं। वह पुरी यक्षवधुओंसे सुशोभित है। विद्याधरों और किंनरोंकी सुन्दरियाँ सब ओरसे उसकी मनोहरताको बढ़ाती हैं। दिव्य नागकन्याओंसे सुशोभित भोगवती पुरीकी भाँति [गुह्यककन्याओंसे] अलकापुरीकी शोभा हो रही थी। नरेश्वर! कुबेरने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी॥ १४-१५॥

हरेः प्रभावविदपि विष्णोर्मायाबलं त्वहो।
लोकपालोऽस्म्यहं नित्यमित्यज्ञानविमोहितः॥ १६

यद्यपि वे श्रीहरिके प्रभावको जानते थे, तथापि उन्होंने भेंट देना स्वीकार नहीं किया। अहो! मायाका बल कितना अद्भुत है! 'मैं लोकपाल हूँ', इस अज्ञानसे वे सदा मोहित रहते थे॥ १६॥

नोदितो बलिभिर्यक्षैर्युद्धं कर्तुं मनो दधे।
निर्धनो हि धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत्॥ १७

नवानां तु निधीनां कौ पतीनां किमु वर्णनम्।
तदैव हेममुकुटो दूतो धनदनोदितः।
कार्ष्णिमेत्य सभामध्ये नत्वेदं प्राह मानद॥ १८

अतः बलवान् यक्षोंसे प्रेरित होकर उन्होंने युद्ध करनेका ही विचार किया; क्योंकि निर्धनको यदि धन मिल जाता है तो वह सारे जगत्को तृणवत् मानने लगता है। फिर जो भूतलपर नवनिधियोंके अधिपति हों, उनके अहंकारका क्या वर्णन हो सकता है? मानद! उसी समय कुबेरका भेजा हुआ दूत हेममुकुट प्रद्युम्नके पास आकर सभामें मस्तक झुकाकर उनसे इस प्रकार बोला— ॥ १७-१८ ॥

हेममुकुट उवाच

धनेश्वरो राजराजो लोकपालोऽलकेश्वरः।
तेन यत्कथितं राजञ्छृणु त्वं तद्यदूत्तम॥ १९

देवराजो यथा शक्रः स्मृतो दिवि यथा प्रभुः।
तथैको राजराजोऽहं कथितो भूतले महान्॥ २०

हेममुकुटने कहा—राजन्! यदुकुल-तिलक! अलकापुरीके स्वामी धनके अधीश्वर लोकपाल राजराज कुबेरने जो संदेश दिया है, उसे आप सुनिये—''जैसे स्वर्गलोकमें प्रभु इन्द्र देवताओंके राजा कहे गये हैं, उसी प्रकार भूतलपर एकमात्र मैं ही राजाओंका महान् अधिराज होनेके कारण 'राजराज' कहा गया हूँ॥ १९-२०॥

मनुष्यधर्मा राजेन्द्रैः पूजितोऽहं सदा भुवि।
उग्रसेनेन दातव्यं मह्यं सोपायनं परम्॥ २१

पराक् तस्मै न दास्यामि यदुराजाय भूभृते।
न मन्यसे चेत्सङ्ग्रामं करिष्यामि न संशयः॥ २२

यद्यपि मेरा धर्म (शील-स्वभाव) मनुष्योंके ही समान है, तथापि भूतलपर राजाधिराजोंने सदा मेरा पूजन किया है। इसलिये उग्रसेनको ही मुझे उत्तम भेंट देनी चाहिये (मैं भेंट लेनेका अधिकारी हूँ, देनेका नहीं)। इसलिये मैं यदुराज उग्रसेनको कदापि भेंट नहीं दूँगा। यदि तुम नहीं मानोगे तो युद्ध करूँगा, इसमें संशय नहीं''॥ २१-२२॥

श्रीनारद उवाच

एवं दूतवचः श्रुत्वा प्रद्युम्नो भगवान् हरिः।
चकार कोपं रक्ताक्षो रुषा प्रस्फुरिताधरः॥ २३

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! दूतकी यह बात सुनकर भगवान् प्रद्युम्न हरि कुपित हो उठे। रोषसे उनकी आँखें लाल हो गयीं और होठ फड़कने लगे॥ २३॥

प्रद्युम्न उवाच

वृष्णीन्द्रं राजराजेन्द्रं राजराजो न वेत्ति तम्।
शक्रादीनां तु यः साक्षान्मुकुटैर्घृष्टपादुकः॥ २४

सुधर्मां पारिजातं च तस्मा इन्द्रो ददौ भयात्।
श्यामवर्णान् हयान् पाशी तस्मै दत्वा ननाम ह॥ २५

अनेन राजराजेन भीरुणा निधयो नव।
प्राप्तास्तं हि न जानाति राजराजो महाबलम्॥ २६

वर्तते तत्सभामध्ये परिपूर्णतमो हरिः।
असंख्यब्रह्माण्डपतिः श्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्॥ २७

यस्यैकमूर्ध्नि तिलकं दृश्यते मण्डलं भुवः।
उग्रसेनसभामध्ये सोऽपि नित्यं विराजते॥ २८

उग्रसेनप्रेषितोऽहं कुबेराय महात्मने।
नाराचानां बलिं दातुं तत्करिष्यामि साम्प्रतम्॥ २९

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा गृहीत्वा स्वं कोदण्डं चण्डविक्रमः।
चकार भुजदण्डाभ्यां टङ्कारं वादयन् गुणम्॥ ३०

प्रत्यञ्चास्फोटनेनैव मण्डितोऽभूत्तडित्स्वनः।
ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह॥ ३१

विचेलुर्दिग्गजास्तारा राजन् भूखण्डमण्डलम्।
निषङ्गाच्छरमाकृष्य प्रद्युम्नो धन्विनां वरः॥ ३२

प्रतिसज्य स्वधनुषि बाणमेकं समादधे।
द्वादशादित्यसङ्काशं द्योतयन्मण्डलं दिशाम्॥ ३३

चिच्छेद गुह्यकेशस्य बाणं छत्रं च चामरे।
तदा क्रुद्धो राजराजो दृष्ट्वा चित्रमिदं महत्॥ ३४

आरुह्य पुष्पकं सैन्यैर्युद्धकामो विनिर्ययौ।
घण्टानादेन यक्षेण मन्त्रिणा पार्श्वमौलिना॥ ३५

प्रद्युम्न बोले—वृष्णिवंशियोंके स्वामी उग्रसेन राजराजोंके भी इन्द्र हैं। तुम्हारे स्वामी राजराज कुबेर उन्हें अच्छी तरह नहीं जानते; साक्षात् इन्द्रादि देवता भी उनकी चरण-पादुकाओंपर अपने मुकुट रगड़ते हैं। इन्द्रने भयसे ही उनकी सेवामें अपनी सुधर्मा सभा और पारिजात वृक्ष अर्पित कर दिये हैं। वरुणने श्याम-कर्ण घोड़े देकर उन्हें प्रणाम किया है॥ २४-२५॥

इन्हीं डरपोक राजराजने उनके पास नवों निधियाँ पहुँचायी हैं। फिर भी उन महाबली महाराजको ये राजराज नहीं जानते। उन यादवराजकी सभामें असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं विराजते हैं॥ २६-२७॥

यह सारा भूमण्डल जिनके एक मस्तकपर तिलकके समान दिखायी देता है, वे [सहस्र मस्तकवाले अनन्तदेव] भी उग्रसेनकी सभामें नित्य विराजमान रहते हैं। महाराज उग्रसेनने मुझे महात्मा कुबेरके लिये नाराचों (बाणों)-की भेंट देनेके निमित्त यहाँ भेजा है, अतः इस समय मैं यही करूँगा॥ २८-२९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर प्रचण्ड-पराक्रमी प्रद्युम्नने अपना कोदण्ड उठाया और भुजदण्डोंसे धनुषकी डोरी खींचते हुए टंकार-ध्वनि की। प्रत्यञ्चाके आस्फोटनसे ही विद्युत्की गड़गड़ाहटके समान भयंकर शब्द प्रकट हुआ। उससे सात लोकों तथा पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा॥ ३०-३१॥

राजन्! दिग्गज विचलित हो गये, तारे टूटने लगे और भूखण्ड-मण्डल हिल उठा। धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने तरकससे एक बाण खींचकर उसे अपने धनुषकी प्रत्यञ्चापर रखा और उसे छोड़ दिया। बारह सूर्योंके समान तेजस्वी उस बाणने सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको प्रकाशित करते हुए गुह्यकराजके बाण, छत्र और चँवरको काट दिया। यह अत्यन्त विचित्र काण्ड देखकर राजराज कुबेरके क्रोधकी सीमा न रही॥ ३२—३४॥

वे पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो सैनिकोंके साथ युद्धकी कामनासे पुरीके बाहर निकले। उनके साथ घण्टानाद और पार्श्वमौलि नामक यक्ष-मन्त्री भी थे॥ ३५॥

नलकूबरमणिग्रीवौ शुशुभाते ध्वजाग्रतः।
तुरङ्गवदनाः केचिन्मृगेन्द्रवदनाः परे॥ ३६

शिशुमारमुखाः केचित्केचिन्नक्रमुखा इव।
अर्धपिङ्गा अर्धकृष्णा ऊर्ध्वकेशा मदोत्कटाः॥ ३७

वक्रदन्ता ललज्जिह्वा बृहद्दंष्ट्रा महाबलाः।
करालास्याः सकवचाः खड्गचर्मधराः पराः॥ ३८

शक्तिहस्ता ऋष्टिहस्ता भुशुण्डिपरिघायुधाः।
धनुर्बाणधरा यक्षाः केचित्परशुपाणयः॥ ३९

यक्षाणां हस्तिवाहानां रथिनामश्विनां तथा।
विरेजुर्निर्गतानां च मण्डलानि सहस्रशः॥ ४०

शङ्खदुन्दुभिनादैश्च सूतमागधवन्दिभिः।
रेजिरे श्रीदवीराः कौ मेघा इव तडित्स्वनैः॥ ४१

एवं यक्षेषु मत्तेषु कोटिशो निर्गतेषु च।
दिव्यान् महायोगमयात्सिद्धक्षेत्राद्विदेहराट् ॥ ४२

आययौ तत्सहायार्थं प्रमथानां बलं महत्।
भूताश्च प्रमथाः केचित्करालास्या मदोत्कटाः॥ ४३

डाकिन्यो यातुधानाश्च वेतालाः सविनायकाः।
कूष्माण्डोन्मादसंयुक्ताः प्रेता मातृगणाः परे॥ ४४

निशाचरपिशाचाश्च ब्रह्मराक्षसभैरवाः।
नदन्तो भैरवं नादं छिन्धि भिन्धीति वादिनः॥ ४५

इत्थं तु भूतावलयः कोटिशश्चाययुस्तदा।
रोदस्याच्छादिते भूता मेघैः सांवर्तकैरिव॥ ४६

मयूरस्थः कार्तिकेयो मूषकस्थो गणेश्वरः।
प्रमथैर्गीयमानौ तौ ढक्कावादित्रनिःस्वनैः॥ ४७

सर्वेषामग्रतः प्राप्तौ वीरभद्रेण संयुतौ।
इत्थं पुण्यजनानां तु गणानां यदुभिः सह॥ ४८

कुबेरके नलकूबर और मणिग्रीव नामक दोनों पुत्र ध्वजके अग्रभागमें सुशोभित हो रहे थे। उनकी सेनाके कुछ यक्ष अश्वमुख थे, कितने ही यक्षोंके मुख सिंहके समान थे। कुछ सूँस और मगरके समान मुखवाले थे, कोई आधे पीले और आधे काले थे, किन्हींके केश ऊपरकी ओर उठे थे। वे सब-के-सब मदसे उन्मत्त थे॥ ३६-३७॥

टेढ़े-मेढ़े दाँत, लपलपाती हुई जीभ और विशाल दंष्ट्रावाले महाबली यक्षोंके मुख विकराल दिखायी देते थे। वे कवच तथा ढाल-तलवार धारण किये हुए थे। शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डि और परिघ—ये आयुध उनके हाथोंमें देखे जाते थे। कुछ यक्षोंने धनुष और बाण ले रखे थे और किन्हींके हाथोंमें फरसे [चमक रहे] थे॥ ३८-३९॥

युद्धके लिये निकले हुए हाथीसवार, रथारोही और घुड़सवार यक्षोंके सहस्रों मण्डल शोभा पाते थे। शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे तथा सूत, मागध और वन्दीजनोंके स्तुति-पाठसे भूतलपर कुबेरके वीर सैनिक आकाशमें विद्युत्गर्जनासे युक्त मेघोंके समान जान पड़ते थे॥ ४०-४१॥

विदेहराज! इस प्रकार दिव्य महायोगमय सिद्ध-क्षेत्रसे करोड़ों मतवाले यक्ष निकल पड़े। उनके आ जानेपर प्रमथोंकी विशाल सेना उनकी सहायताके लिये आ पहुँची। कितने ही भूत और प्रमथ विकराल वदन और मदोन्मत्त दिखायी देते थे॥ ४२-४३॥

उनके साथ डाकिनियोंके समुदाय, यातुधान, वेताल, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, प्रेत, मातृकागण, निशाचर, पिशाच, ब्रह्मराक्षस और भैरव भी थे, जो भीषण गर्जना करते हुए 'मारो, काटो, फाड़ो' की रट लगा रहे थे॥ ४४-४५॥

इस प्रकार वहाँ करोड़ों भूतावलियाँ आ पहुँचीं, जो सांवर्तक मेघोंकी भाँति पृथ्वी और आकाशको आच्छादित किये हुए थीं। मोरपर बैठे हुए स्वामी कार्तिकेय तथा चूहेपर चढ़े हुए गणेशजी डमरूकी ध्वनिके साथ वीरभद्रको लिये सबसे आगे आ पहुँचे। प्रमथगण उन दोनोंके यशका गान कर रहे थे। इस प्रकार पुण्यजनोंका यादवोंके साथ तुमुल

बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम्।
रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः॥ ४९

हया हयैरिभाश्चेभैर्युयुधुस्ते परस्परम्।
रथेभाश्वपदातीनां चरणैरुत्थितं रजः॥ ५०
छादयामास राजेन्द्र ससूर्यं व्योममण्डलम्॥ ५१

युद्ध आरम्भ हुआ, जो अद्भुत और रोमाञ्चकारी था। रथी रथियोंसे, पैदल पैदलोंसे, घोड़े घोड़ोंसे और हाथी हाथियोंसे परस्पर जूझने लगे। राजेन्द्र! रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंके पैरोंसे उठी हुई धूलने सूर्यसहित आकाशमण्डलको ढक दिया॥ ४६—५१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यक्षदेशप्रयाणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यादव-सेनाकी यक्षदेशपर चढ़ाई' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

यादव-सेना और यक्ष-सेनाका घोर युद्ध

श्रीनारद उवाच

शस्त्रान्धकारे सञ्जाते मणिग्रीवो महाबलः।
बिभेदारिबलं बाणैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव॥ १

मणिग्रीवस्य बाणौघैर्गजाश्वरथपत्तयः।
निपेतुः सक्षता भूमौ वृक्षा वातहता इव॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे वहाँ अन्धकार छा जानेपर महाबली मणिग्रीवने बाणोंद्वारा वैरीवाहिनीका उसी प्रकार विध्वंस आरम्भ किया, जैसे कोई कटुवचनोंद्वारा मित्रताका नाश करे। मणिग्रीवके बाण-समूहोंसे क्षतविक्षत हो हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति धराशायी होने लगे॥ १-२॥

चन्द्रभानुर्हरेः पुत्रः सत्यभामात्मजो बली।
मणिग्रीवस्य कोदण्डं पञ्चबाणैस्तदाच्छिनत्॥ ३

दशभिस्तद्रथं भित्त्वा जगर्ज घनवद्बली।
मणिग्रीवोऽपि चिक्षेप शक्तिं स्वां चन्द्रभानवे॥ ४

उस समय श्रीकृष्ण और सत्यभामाके बलवान् पुत्र चन्द्रभानुने पाँच बाण मारकर मणिग्रीवके कोदण्डको खण्डित कर दिया तथा दस बाणोंसे उसके रथका छेदन करके बलवान् चन्द्रभानु घनके समान गर्जना करने लगे। यह देख मणिग्रीवने भी चन्द्रभानुपर अपनी शक्ति चलायी॥ ३-४॥

भासयन्तीं दिशः शश्वन् महोल्कामिव मैथिल।
अग्रहीच्चन्द्रभानुस्तां वामहस्तेन लीलया॥ ५

तया जघान समरे मणिग्रीवं महाबलम्।
पुनर्जगर्ज समरे चन्द्रभानुर्महाबलः॥ ६

तत्प्रहारेण पतिते मणिग्रीवे प्रमूर्च्छिते।
चन्द्रभानुं बाणजालैर्नलकूबरनोदिताः॥ ७

मैथिल! वह शक्ति सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करती हुई बड़ी भारी उल्काके समान आयी; परंतु चन्द्रभानुने खेल-सा करते हुए उसे बाँयें हाथसे पकड़ लिया। उन्होंने उसी शक्तिके द्वारा समराङ्गणमें महाबली मणिग्रीवको घायल कर दिया। तत्पश्चात् महाबली चन्द्रभानु उस रणभूमिमें पुनः गर्जना करने लगे। उस प्रहारसे मणिग्रीव मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। तब नलकूबरकी प्रेरणासे असुरोंने बाणोंका

छादयामासुरसुरा वर्षादित्यं यथाम्बुदाः।
दीप्तिमान् कृष्णपुत्रस्तु खड्गमुद्यम्य वेगवान्॥ ८

विवेश यक्षसेनासु नीहारेषु यथा रविः।
तस्य खड्गप्रहारेण केचिद्यक्षा द्विधाभवन्॥ ९

केचिद्वै छिन्नशिरसश्छिन्नपादांसबाहवः।
भिन्नहस्ताश्छिन्नकर्णाश्छिन्नोष्ठाः पेतुराहवे॥ १०

तेषां शिरोभिर्बीभत्सैः सकिरीटैः सकुण्डलैः।
सशिरस्त्रैः स्रवद्रक्तैर्महामारीव भूर्बभौ॥ ११

शेषा विदुद्रुवुर्यक्षाः सक्षता भयविह्वलाः।
हाहाकारस्तदा जातो यक्षसेनासु मैथिल॥ १२

धनुष्टङ्कारयन् प्राप्तो दंशितो नलकूबरः।
रथेनातिपताकेन माभैष्टेत्यभयं ददौ॥ १३

पञ्चभिः कृतवर्माणमर्जुनं दशभिः शरैः।
दीप्तिमन्तं च विंशत्या तताड नलकूबरः॥ १४

कृतवर्मा महाबाहुर्जघान नलकूबरम्।
पञ्चभिर्विशिखै राजन्नादयन् मण्डलं दिशाम्॥ १५

ते बाणाः कवचं भित्त्वा तनुं भित्त्वा धरातलम्।
विविशुः पश्यतां तेषां वल्मीके फणिनो यथा॥ १६

वीक्ष्य तद्बाणभिन्नाङ्गं मूर्च्छितं नलकूबरम्।
अपोवाह रणात्सूतो हेममालीति नामभाक्॥ १७

घण्टानादः पार्श्वमौलिः कुबेरस्य च मन्त्रिणौ।
जघ्नतुर्बाणपटलैर्यदूनामुद्भटं बलम्॥ १८

स्वर्णपुङ्खैस्तीक्ष्णमुखैर्गृध्रपक्षैर्मनोजवैः।
द्योतयद्भिर्दिशः सर्वा मार्तण्डकिरणैरिव॥ १९

जाल-सा बिछाकर चन्द्रभानुको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे बादल वर्षाकालके सूर्यको ढक देते हैं। तब श्रीकृष्णपुत्र दीप्तिमान् खड्ग हाथमें लेकर बड़े वेगसे यक्षोंकी सेनामें इस प्रकार घुस गये मानो सूर्यने कुहासेके भीतर प्रवेश किया हो॥ ५—८१/२॥

उनके खड्ग-प्रहारसे कितने ही यक्षोंके दो-दो टुकड़े हो गये; कितने ही मस्तक, पैर, कंधे, बाँहें, हाथ, कान और ओठ छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण युद्धमें पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ९-१०॥

किरीट, कुण्डल और शिरस्त्राणोंसहित उनके कटे हुए बीभत्स मस्तक रक्तकी धारा बहा रहे थे और उनसे ढकी हुई रणभूमि महामारी-सी जान पड़ती थी। मरनेसे बचे हुए घायल यक्ष भयसे विह्वल होकर भाग गये। मिथिलेश्वर! उस समय यक्ष-सैनिकोंमें हाहाकार मच गया॥ ११-१२॥

तब कवचधारी नलकूबर धनुषकी टंकार करते हुए बहुत ऊँची पताकावाले रथपर आरूढ़ हो वहाँ आ पहुँचे और 'डरो मत'—यों कहकर अपने सैनिकोंको अभयदान देने लगे। नलकूबरने पाँच बाणोंसे कृतवर्मापर, दस बाणोंसे अर्जुनपर और बीस बाणोंसे दीप्तिमान्पर प्रहार किया॥ १३-१४॥

राजन्! तब महाबाहु कृतवर्माने अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको निनादित करते हुए पाँच विशिखोंद्वारा नलकूबरको करारी चोट पहुँचायी। वे बाण नलकूबरका कवच फाड़कर शरीरको छेदते हुए सबके देखते-देखते धरातलमें उसी प्रकार समा गये, जैसे सर्प बाँबीमें घुस जाते हैं॥ १५-१६॥

कृतवर्माके बाणसे अङ्ग विदीर्ण हो जानेके कारण नलकूबरको मूर्च्छित हुआ देख सारथि हेममाली उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया। [तब] घण्टानाद और पार्श्वमौलि, कुबेरके ये दोनों मन्त्री अपने बाण-समूहोंसे यादवोंकी उद्भट सेनाको घायल करने लगे। गृध्रपक्षसे युक्त सुनहले पंख और तीखे मुखवाले, मनके समान वेगशाली उन दोनोंके बाण सूर्यकी किरणोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंको उद्भासित कर रहे थे॥ १७—१९॥

ततोऽर्जुनो महावीरः प्रतिबाणान् समादधे।
बाणसङ्घर्षजा युद्धे विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः॥ २०

विरेजुर्नृप खद्योतचञ्चलालातचक्रवत्।
सर्वं तद्बाणपटलं क्षणमात्रेण चाच्छिनत्॥ २१

गाण्डीवमुक्तविशिखैर्गाण्डीवी रणदुर्मदः।
योजनद्वयमात्रेण तद्रथौ सध्वजौ बलात्॥ २२

अर्जुनो बाणपटलैश्चकार शरपञ्जरे।
हताविमाविति ज्ञात्वा सर्वे पुण्यजनास्त्वरम्॥ २३

दुद्रुवुः स्वं रणं त्यक्त्वा परं हाहेति वादिनः।
तदा तु भूतावलयः कोटिशश्चाययुर्मृधे॥ २४

डाकिन्यः कोटिशो राजंश्चिक्षिपुर्वारणान् मृधे।
भक्षयन्त्यो नरानश्वाँश्चर्वयन्त्यो रथान् पृथक्॥ २५

नरे नरे पृथग्भूता धावन्तो दशभिर्दश।
प्रमथाः पातयामासुः खट्वाङ्गेन जनान् मुहुः॥ २६

यातुधान्यश्चर्वयन्त्यः शिरांसि रणमण्डले।
वेतालाश्च कपालेन पिबन्तो रुधिरं बहु॥ २७

विनायकाश्च नृत्यन्तः प्रेता गायन्त एव हि।
कूष्माण्डाश्च तथोन्मादाः शिरांसि जगृहुर्मृधे॥ २८

शिवस्य मुण्डमालार्थं वीराणां स्वर्गगामिनाम्।
तथा मातृगणा ब्रह्मराक्षसा भैरवा मृधे॥ २९

शिरांसि कन्दुकानीव क्षेपयन्तो मुहुर्मुहुः।
हसन्तः प्रहसन्तश्च साट्टहासं समाकुलाः॥ ३०

तदनन्तर महावीर अर्जुनने उन मन्त्रियोंके बाणोंके उत्तरमें बहुत-से बाण चलाना आरम्भ किया। दोनों ओर चलनेवाले बाणोंके संघर्षसे युद्धभूमिमें हजारों विस्फुलिङ्ग (अग्निकण) प्रकट होने लगे॥ २०॥

नरेश्वर! आकाशमें खद्योतोंकी भाँति चमकनेवाले वे चञ्चल विस्फुलिङ्ग अलातचक्रकी भाँति शोभा पाने लगे। रणदुर्मद वीर गाण्डीवधारी अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए विशिखोंद्वारा उस समस्त बाण-समूहको क्षणमात्रमें काट गिराया। उन्होंने बाणोंके समुदायसे दो योजनके घेरेमें पिंजरा-सा बना दिया और बलपूर्वक उन दोनों मन्त्रियोंके ध्वजसहित रथोंको उस घेरेके अंदर कर लिया। वे दोनों मारे गये—यह जानकर समस्त पुण्यजन (यक्ष) तत्काल युद्ध छोड़कर हाहाकार करते हुए भाग चले॥ २१—२३ १/२॥

उसी समय करोड़ों भूतवृन्द युद्धभूमिमें आ गये। राजन्! कोटि-कोटि डाकिनियाँ रणभूमिमें हाथियोंको उठा-उठाकर फेंकने लगीं। मनुष्यों, घोड़ों तथा रथियोंको पृथक्-पृथक् मुँहमें डालकर चबाने लगीं॥ २४-२५॥

एक-एक मानवके पीछे एक-एक भूत लगा था। दसके साथ दस भूत दौड़ते दिखायी देते थे। प्रमथगणोंने खट्वाङ्गसे बारंबार लोगोंको मारा और गिराया। यातुधानियाँ रणमण्डलमें नरमुण्डोंको चबा रही थीं। वेतालगण खप्परमें बहुत-सा रक्त ले-लेकर पी रहे थे॥ २६-२७॥

विनायक नाचते और प्रेत गाते थे। कूष्माण्ड और उन्माद उस युद्धभूमिमें गिरे हुए मस्तकोंका संग्रह करते थे॥ २८॥

स्वर्गगामी वीरोंके मस्तकोंका उनके द्वारा किया जानेवाला वह संग्रह भगवान् शिवकी मुण्डमाला बनानेके लिये था। मातृगण, ब्रह्मराक्षस और भैरव उस युद्धमें कटकर गिरे हुए मस्तकोंको गेंदकी तरह बारंबार उछालते-फेंकते हुए हँसते, खिलखिलाते और अट्टहास करते थे॥ २९-३०॥

पिशाचा विकलास्याश्च कूर्दन्तः केऽपि कुत्सितम्।
पिशाच्यः क्षतजं तूष्णं पाययन्त्यः शिशून् मृधे॥ ३१

मा रोदीरिति वादिन्यो नेत्राण्यपि ददाम उत्।
इत्थं गणबलं दृष्ट्वा बलदेवानुजो बली॥ ३२

गदो गदां समादाय जगर्ज घनवद्बली।
लक्षभारभृता मौर्व्या गदया तद्बलं महत्॥ ३३

पोथयामास हि गदो वज्रेणेन्द्रो यथा गिरीन्।
कूष्माण्डोन्मादवेतालाः पिशाचा ब्रह्मराक्षसाः॥ ३४

निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ तद्गदाभिन्नमस्तकाः।
डाकिनीर्भिन्नदन्ताश्च प्रमथा भिन्नकन्धराः॥ ३५

यातुधानांश्छिन्नमुखांश्चकार समरे गदः।
गदया मर्दिताः प्रेता दुद्रुवुस्ते दिशो दश॥ ३६

वाराहदंष्ट्रया भग्ना लये दैत्या यथा नृप।
पलायिते भूतगणे वीरभद्रः समागतः॥ ३७

गदं तताड गदया बलदेवानुजं बली।
गदोपरि गदां नीत्वा गदः स्वां प्राहिणोद्गदाम्॥ ३८

तयोर्युद्धमभूद्घोरं गदाभ्यां मैथिलेश्वर।
विस्फुलिङ्गान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः॥ ३९

मल्लयुद्धं तयोरासीन्नोदयन्तं परस्परम्।
भुजैश्च जानुभिः पादैः पातयन्तो गिरीन् बहून्॥ ४०

करवीरं समुत्पाट्य वीरभद्रो गिरिं बलात्।
अट्टहासं तदा कुर्वन् गदोपरि समाक्षिपत्॥ ४१

गदो गिरिं सङ्गृहीत्वा तस्योपरि समाक्षिपत्।
गृहीत्वाथ गदं वीरं वीरभद्रो बलाद्बली॥ ४२

चिक्षेप चौजसा राजन्नाकाशे लक्षयोजनम्।
गदोऽपि पतितो भूमौ किञ्चिद्व्याकुलमानसः॥ ४३

विकृत मुखवाले पिशाच बुरी तरह कूद-फाँद रहे थे। पिशाचिनियाँ युद्धमें बच्चोंको गरम-गरम रक्त पिलाती थीं और बच्चोंको आश्वासन देते हुए कहती थीं—'बेटा! मत रोओ। हम तुम्हें इन लोगोंकी आँखें भी निकाल-निकालकर देंगी। इस प्रकार भूतगणोंका बल बढ़ता देख बलदेवके छोटे भाई बलवान् गद हाथमें गदा लेकर मेघोंके समान गर्जना करने लगे॥ ३१—३२½॥

लाख भारकी उस मौर्वी गदासे गदने उस विशाल भूत-सेनाको उसी प्रकार मार गिराया, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको धराशायी कर देते हैं। गदाकी मारसे मस्तक फट जानेके कारण बहुत-से कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, पिशाच और ब्रह्मराक्षस मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े॥ ३३—३४½॥

गदने समराङ्गणमें डाकिनियोंके दाँत तोड़ डाले, प्रमथोंके कंधे विदीर्ण कर दिये और यातुधानोंके मुख छिन्न-भिन्न कर डाले। राजन्! गदासे रौंदे गये प्रेत दसों दिशाओंमें उसी तरह भाग चले, जैसे प्रलयकालके समुद्रमें भगवान् वाराहकी दाढ़से अङ्ग-भङ्ग होनेके कारण दैत्य पलायन कर गये थे॥ ३५—३६½॥

भूतगणोंके भाग जानेपर वीरभद्र सामने आया। उस बलवान् भूतनाथने बलदेवके छोटे भाई गदको गदासे मारा। गदने उसकी गदाको अपनी गदापर रोक लिया और फिर अपनी गदा उसके ऊपर चलायी। मैथिलेश्वर! वीरभद्र और गदमें बड़ा भयंकर गदायुद्ध हुआ। वे दोनों ही गदाएँ आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई परस्पर टकराकर चूर-चूर हो गयीं॥ ३७—३९॥

फिर एक-दूसरेको ललकारते हुए उन दोनोंमें मल्लयुद्ध छिड़ गया। वे भुजाओं, घुटनों और पैरोंके आघातसे पर्वतोंको गिराते हुए लड़ने लगे॥ ४०॥

वीरभद्रने बलपूर्वक करवीर पर्वतको उखाड़कर अट्टहास करते हुए उसको गदके ऊपर फेंका। गदने उस पर्वतको पकड़ लिया और फिर उसीके ऊपर उसे दे मारा। तब बलवान् वीरभद्रने वीरवर गदको पकड़कर बड़े वेगसे आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया। वहाँसे भूमिपर गिरनेपर गदके मनमें कुछ व्याकुलता हो गयी॥ ४१—४३॥

गृहीत्वा वीरभद्राख्यं भ्रामयित्वा महाबलः।
ओजसा प्राक्षिपच्छीघ्रमाकाशे लक्षयोजनम्॥ ४४

वीरभद्रस्तु पतितः कैलासशिखरोपरि।
गदाप्रहारव्यथितो मूर्च्छितो घटिकाद्वयम्॥ ४५

कार्तिकेयस्तदा प्राप्तः शक्तिमुद्यम्य वेगवान्।
अनिरुद्धाय साम्बाय शक्तिं चिक्षेप सत्वरम्॥ ४६

अनिरुद्धरथं भित्त्वा साम्बं साम्बरथं पुनः।
गजान् रथान् सहस्त्रं च वीरलक्षं मृधाङ्गणे॥ ४७

भित्त्वा नदन्ती स्फूर्जन्ती चपलेव दिशो दश।
विवेश भूमौ फूत्कारं कुर्वती पन्नगीव सा॥ ४८

तदा क्रुद्धो महाबाहुः साम्बो जाम्बवतीसुतः।
कृत्वाथ शिञ्जिनीघोषं निषङ्गाद्बाणमाददे॥ ४९

एकोऽपि सद्बहिस्तूणाद्दशरूपी बभूव ह।
चापे शतं कर्षणे च सहस्त्रं रूपमादधे॥ ५०

मोक्षणे लक्षरूपाणि कोटिरूपाणि कोटिषु।
अनेकरूपी विशिखः शिखिनं शिखिवाहनम्॥ ५१

भित्त्वा बिभेद वीराणां कोटिशः कोटिशो रणे।
कार्तिकेये च भिन्नाङ्गे किञ्चिद्व्याकुलमानसे।
गणेश्वरस्तदा प्राप्तो मूषकस्थो गजाननः॥ ५२

गोमूत्रपत्रमृगनाभिविचित्रकुम्भं
श्रीकुङ्कुमाकलितसुन्दरवक्रतुण्डम्।
सिन्दूरपूरितकपोलमनोहराभं
कर्पूरधूलिधवलीकृतकर्णवर्णम्॥ ५३

व्यालोलकर्णहतमत्तमधुव्रतैस्तैः
श्रीगण्डजातमदिरामदविह्वलाङ्गैः।

फिर महाबली गदने वीरभद्रको भी उठा लिया और वेगसे घुमाकर शीघ्र ही उसे भी लाख योजन दूर फेंक दिया। वीरभद्र कैलासपर्वतके शिखरपर गिरा। गदाके प्रहारसे तो वह पीड़ित था ही, अतः दो घड़ीतक मूर्च्छामें पड़ा रहा॥ ४४-४५॥

तदनन्तर शक्ति उठाये स्वामिकार्तिकेय बड़े वेगसे युद्धभूमिमें पहुँचे। उन्होंने अनिरुद्ध और साम्बको लक्ष्य करके शीघ्र ही अपनी शक्ति चलायी। अनिरुद्धके रथका भेदनकर, साम्बको घायल करके, उनके रथको भी तोड़ती हुई वह शक्ति उस युद्धभूमिमें सहस्त्रों हाथियों, रथों और लाखों वीरोंको मारकर दसों दिशाओंमें चमकती और कड़कती हुई बिजलीकी तरह फुफकारती सर्पिणीके समान भूमिमें समा गयी॥ ४६—४८॥

तब क्रोधसे भरे महाबाहु जाम्बवतीकुमार साम्बने प्रत्यञ्चाका घोष करते हुए तरकससे एक बाण निकाला। वह बाण एक होता हुआ भी तरकससे बाहर निकलते ही दस हो गया। धनुषपर रखते समय सौ और खींचते समय उसने सहस्र रूप धारण कर लिये। छूटते समय उस बाणके लाख रूप हो गये और लक्ष्योंतक पहुँचते-पहुँचते उसने कोटि रूप धारण कर लिये। इस प्रकार उस अनेक रूपधारी विशिखने शिखी (मोर) और शिखिवाहन स्वामि-कार्तिकेयको घायल करके समराङ्गणमें कोटि-कोटि वीरोंको विदीर्ण कर डाला॥ ४९—५१ १/२॥

कार्तिकेयके क्षत-विक्षत होने और कुछ व्याकुल-चित्त हो जानेपर चूहेपर चढ़े हुए गणेश्वर गजानन वहाँ आ पहुँचे। उनके कुम्भस्थलपर गोमूत्र, सिन्दूर और कस्तूरीके द्वारा विचित्र पत्र-रचना की गयी थी। उनका सुन्दर वक्रतुण्ड कुङ्कुमसे आलिप्त था। सिन्दूरपूर्ण कपोलोंके कारण उनकी बड़ी मनोहर आभा दिखायी देती थी। कानोंका उज्ज्वल वर्ण मानो कपूरकी धूलसे धवलित किया गया था॥ ५२-५३॥

उनके कपोलोंपर बहती हुई मदधारासे जिनके अङ्ग विह्वल हो रहे थे, वे मतवाले भ्रमर उनके चञ्चल कर्णतालोंसे आहत हो, गुञ्जारव करते हुए मानो संगीत,

सङ्गीततालकुसुमाकरगीतरागैः
संसेवितं गणपतिं कृतभालचन्द्रम्॥ ५४

ताल और वासन्तिक रागकी सृष्टि कर रहे थे। उन मधुर्पोंसे सेवित भाल-चन्द्रधारी गणपति अनुपम शोभा पा रहे थे॥ ५४॥

बालार्कवर्णममलाङ्गदहेमहार-
ग्रैवेयमौलिकिरणैः परितः स्फुरन्तम्।
आखुस्थमेकदशनं गजभव्यमूर्तिं
पाशाङ्कुशाम्बुजकुठारचयं दधानम्॥ ५५

उनकी अङ्ग-कान्ति बालरविके समान अरुणोज्ज्वल थी। उनकी बाँहोंमें निर्मल अङ्गद, गलेमें हेमनिर्मित हार और हँसुली थी तथा मस्तकपर धारण किये हुए मुकुटकी किरणोंके द्वारा वे सब ओरसे दीप्तिमान् दिखायी देते थे। वे चूहेपर विराजमान थे। उनके मुखमें एक ही दाँत था। गजाकार भव्य मूर्ति शोभा पा रही थी। उन्होंने हाथोंमें पाश, अङ्कुश, कमल और कुठार-समूह धारण कर रखे थे॥ ५५॥

प्रांशुं चतुर्भुजमतीव मृधे प्रवृत्तं
कांश्चित्प्रगृह्य च करेण धृताङ्कुशेन।
सम्मर्दयन्तमुरुधारपरश्वधेन
श्रीभार्गवेन्द्रमिव शस्त्रभृतः समस्तान्॥ ५६

वीरेभवाजिरथसङ्घबलं निपात्य
साम्बं प्रगृह्य सरथं प्रधनात्क्षिपन्तम्।
तं वीक्ष्य विस्मितमनाः सगणोऽथ कार्ष्णिः
पुत्रं सुबुद्धिमनिरुद्धमुवाच सम्यक्॥ ५७

उनका कद ऊँचा था। उनके चार भुजाएँ थीं। वे घोर संग्राममें प्रवृत्त थे। किन्हीं शस्त्रधारियोंको सूँड़में लपेटकर अपने अङ्कुशकी मारसे उनका कचूमर निकाल देते थे। अनेक धारवाले फरसेसे समस्त शस्त्रधारियोंका संहार करते हुए वे श्रीपरशुरामजीके समान जान पड़ते थे। पैदल वीरों, हाथियों, घोड़ों तथा रथ-समूहसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनाको धराशायी करके, रथसहित साम्बको पकड़कर, वे युद्धस्थलसे दूर फेंक रहे थे। उन्हें देखकर यादवगणों-सहित प्रद्युम्नके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने अपने परम बुद्धिमान् पुत्र अनिरुद्धसे यह उत्तम बात कही॥५६-५७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यक्षयुद्धवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यक्ष-युद्धका वर्णन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

प्रद्युम्नका एक युक्तिके द्वारा गणेशजीको रणभूमिसे हटाकर गुह्यकसेनापर विजय प्राप्त करना और कुबेरका उनके लिये बहुत-सी भेंट-सामग्री देकर उनकी स्तुति करना; फिर प्राग्ज्योतिषपुरमें भेंट लेकर प्रद्युम्नका विरोधी वानर द्विविदको किष्किन्धामें फेंक देना

प्रद्युम्न उवाच

श्रीकृष्णस्य कला साक्षाद्गणेशोऽयं महाबलः।
जेतुं न शक्यो दिविजैर्मनुष्यैस्तु कुतो भुवि॥ १

प्रद्युम्न बोले—बेटा! ये महाबली गणेश साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी कला हैं। इन्हें देवता भी नहीं जीत सकते, फिर भूतलके मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?॥ १॥

वर्तते यस्य निकटे तस्य नास्ति पराजयः।
श्रीकृष्णेन वरो दत्तः पुरास्मै शङ्करालये॥ २

यद्ययं वर्तते चात्र तदा न स्याज्जयश्च नः।
शत्रुपक्षगतोऽयं वै श्रीकृष्णस्य वरोर्जितः॥ ३

तस्मात्त्वं चण्डमार्जारो भूत्वा तं युद्धतो बलात्।
विद्रावय महायुद्धे फूत्कारैश्च दिशो दश॥ ४

यावद्बलं विजेष्यामि तावद्विद्रावय त्वरम्।

श्रीनारद उवाच

अथानिरुद्धो भगवांश्चण्डमार्जाररूपधृक्॥ ५

अलक्षितो गणेशेन न ज्ञातो विष्णुमायया।
फूत्कारमुत्कटं कुर्वन् सम्पपाताखुसम्मुखे॥ ६

विदारयन् मुखं राजन् सततं नखरैः खरैः।
विशेषेण सहैवाखुर्दृष्ट्वाशु भयविह्वलः॥ ७

दुद्राव त्वरितं राजन् कम्पितो रणमण्डलात्।
तमन्वगच्छत्कुपितो मार्जारः स्थूलरूपधृक्॥ ८

मूषकं स्वमपोवाह गणेशोऽपि मुहुर्मुहुः।
नाययौ स्वं रणं चाखुश्चण्डमार्जारपीडितः॥ ९

सप्तद्वीपान् सप्तसिन्धून् दिशासु विदिशासु च।
धावन् वै सप्तलोकेषु न लेभे शर्म मैथिल॥ १०

यत्र यत्र गतश्चाखुर्गणेशेन समन्वितः।
तत्र तत्र गतो राजन् मार्जारश्चण्डविक्रमः॥ ११

एवं समूषके याते गणेशे विदिशोत्तरम्।
विस्मितेषु सपक्षेषु गणेषु प्रमथेषु च॥ १२

जिनके निकट इनका वास है, उनके पक्षकी पराजय नहीं होती। पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने शिवलोकमें इन्हें ऐसा ही वर दिया था। यदि ये यहाँ रहेंगे तो हमलोगोंकी कदापि विजय नहीं हो सकती। भगवान् श्रीकृष्णके वरदानसे इनका बल वहुत वढ़ा-चढ़ा है और ये शत्रुपक्षमें चले गये हैं॥ २-३॥

इसलिये तुम प्रचण्ड मार्जार (बड़ा भारी विलाव) होकर हुंकार करते हुए युद्धभूमिसे वलपूर्वक इनके चूहेको मार भगाओ। इस महायुद्धमें अपने फूत्कारोंके द्वारा दसों दिशाओंमें उसे खदेड़ो। जवतक मैं शत्रुसेनापर विजय पाता हूँ, तवतक तुम इसे शीघ्र ही दूर भगानेका प्रयास करो॥ ४ १/२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तव भगवान् अनिरुद्धने प्रचण्ड मार्जारका रूप धारण किया। वे गणेशजीसे अलक्षित ही रहे। वैष्णवी मायाके प्रभावसे गणेशजी उन्हें पहचान न सके। वह प्रचण्ड मार्जार विकट फूत्कार करता हुआ चूहेके सामने कूद पड़ा॥ ५-६॥

राजन्! वह मुँह फाड़-फाड़कर निरन्तर उसे देखने और तीखे नखोंसे विशेष चोट पहुँचाने लगा। चूहा उस बिलावको देखते ही भयसे विह्वल हो गया और तुरंत काँपता हुआ रणभूमिसे भाग चला। क्रोधसे भरा हुआ मार्जार स्थूल रूप धारण करके उसका पीछा करने लगा॥ ७-८॥

गणेशजी बारंबार उस चूहेको युद्धभूमिकी ओर लौटानेका प्रयत्न करने लगे; किंतु प्रचण्ड मार्जारसे पीड़ित चूहा युद्धभूमिकी ओर नहीं लौटा। मैथिल! वह सात द्वीपों, सात समुद्रों, दिशाओं और विदिशाओंमें तथा ऊपरके सातों लोकोंमें भागता फिरा; किंतु उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिली॥ ९-१०॥

राजन्! गणेशजीको पीठपर लिये वह चूहा जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ प्रचण्ड-पराक्रमी मार्जार भी उसका पीछा करता रहा॥ ११॥

इस प्रकार चूहेसहित गणेशजी जव सुदूर दिशाओंमें चले गये और अपने पक्षके सभी प्रमथगण विस्मित

पुष्पकस्थः कुबेरोऽसौ मायां चक्रेऽथ गौह्यकीम्।
गृहीत्वा स्वधनुर्दिव्यं नमस्कृत्य महेश्वरम्॥ १३

समन्त्रं कवचं धृत्वा बाणसङ्घं समादधे।
तदैव छादितं व्योम मेघैः सांवर्तकैरिव॥ १४

तडित्स्वनैर्महाभीमैस्तमोऽभूत्स्तनयित्नुभिः।
बिन्दवो हस्तिसदृशा निपेतुः सोपला मृधे॥ १५

धाराभिरतिघोराभिर्ववृषुर्वारिदास्ततः।
क्षणेन सिन्धवः सर्वे प्लावयन्तो धरातलम्॥ १६

पर्वतैर्जीवसहितैर्दृश्यन्ते रणमण्डले।
प्राकृतप्रलयं मत्वा यादवा भयविह्वलाः॥ १७

त्यक्त्वा शस्त्राणि तेऽथोचुः श्रीकृष्णेति मुहुर्मुहुः।
ज्ञात्वा तां गौह्यकीं मायां प्रद्युम्नो भगवान् हरिः॥ १८

सत्त्वात्मिकां च स्वां विद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम्।
जप्त्वा कृत्वा कामबीजं बाणमध्ये निधाय तत्॥ १९

मुखे च प्रणवं धृत्वा पुङ्खे श्रीबीजमेव च।
आकृष्य कर्णपर्यन्तं कृष्णं स्मृत्वा चतुर्भुजम्॥ २०

चिक्षेप विशिखं चापाद्दोर्दण्डाभ्यां तडित्स्वनात्।
कोदण्डमुक्तो विशिखो द्योतयन् मण्डलं दिशाम्॥ २१

जघान गौह्यकीं मायामन्धकारं यथा रविः।
भयभीतो राजराजो पुष्पकस्थो रणाङ्गणात्॥ २२

पलायमानो यक्षैश्च कम्पितः स्वपुरीं ययौ।
प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ २३

जहसुर्यादवाः सर्वे जयारावसमाकुलाः।
तदातिहर्षितो राजन् राजराजः कृताञ्जलिः॥ २४

बलिं नीत्वा ययौ शीघ्रं प्रद्युम्नस्यापि सम्मुखे।
गजेन्द्राणां द्विलक्षं च द्विशुण्डादण्डशालिनाम्॥ २५

हो गये, तब पुष्पक-विमानपर बैठे हुए कुबेरने अपनी गुह्यक-सम्बन्धिनी माया फैलायी। अपना दिव्य धनुष लेकर, महेश्वरको नमस्कार करके उन्होंने मन्त्रसहित कवच धारण किया और बाण-समूहोंका संधान किया। उसी समय आकाशमें प्रलय-कालिक सांवर्तक मेघोंके सदृश मेघ छा गये॥ १२—१४॥

बिजलियोंकी गड़गड़ाहट और महाभयंकर मेघोंकी घटासे अन्धकार फैल गया। हाथीके समान मोटे-मोटे जलबिन्दु और ओले गिरने लगे। बादल अत्यन्त भयंकर जलधाराओंकी वृष्टि करने लगे। क्षण-भरमें समस्त समुद्रोंने भूतलको आप्लावित कर लिया। रणमण्डलमें सजीव पर्वत दिखायी पड़ने लगे। प्राकृत प्रलय हुआ जान यादव भयसे विह्वल हो गये॥ १५—१७॥

वे अस्त्र-शस्त्र त्यागकर बारंबार 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' पुकारने लगे। गुह्यकोंकी उस मायाको जानकर भगवान् श्रीप्रद्युम्न हरिने अपनी सत्त्वात्मिका विद्याको, जो समस्त मायाओंको नष्ट करनेवाली है, जपकर बाणके बीचमें कामबीज (क्लीं)-की स्थापना की॥ १८-१९॥

फिर उसके मुखपर प्रणव (ॐ) तथा पुंखेमें श्रीबीज (श्रीं)-का आधान करके उसे कानतक खींचा और चतुर्भुज श्रीकृष्णका स्मरण करके विद्युत्के समान टंकार-ध्वनि करनेवाले धनुषसे भुजदण्डोंद्वारा उस विशिखको चलाया। कोदण्ड-दण्डसे छूटे हुए उस विशिखने दिङ्मण्डलको उद्योतित करते हुए उस गुह्यक-सम्बन्धिनी मायाको उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे सूर्यदेव अन्धकारका ध्वंस कर देते हैं॥ २०—२१ १/२॥

यह देख पुष्पकपर बैठे हुए राजराज कुबेर भयभीत हो काँप उठे और यक्षोंके साथ समराङ्गणसे भागकर अपनी पुरीको चले गये। देवतालोग प्रद्युम्नके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। समस्त यादव जय-जयकार करते हुए हर्षके साथ हँसने लगे। राजन्! उस समय अत्यन्त हर्षित हो राजराज कुबेर हाथ जोड़, भेंट लेकर शीघ्र ही प्रद्युम्नके सामने गये। राजन्! दो सूँड़ोंसे

दद्भिश्चतुर्भिर्युक्तानामद्रीन् स्पर्धयतां मदैः।
दशलक्षं रथानां च मुक्तातोरणशालिनाम्॥ २६

शताश्वयोजितानां च रौक्माणां सूर्यवर्चसाम्।
दशार्बुदं तथा राजन् हयानां चन्द्रवर्चसाम्॥ २७

शिबिकानां चतुर्लक्षं माणिक्यैरग्रवर्चसाम्।
पञ्जरस्थायिनां राजञ्छार्दूलानां द्विलक्षकम्॥ २८

चित्रकाणां मृगाणां च गवयानां तथैव च।
मृगयासारमेयानां कोटिकोटीर्विदेहराट्॥ २९

शुकानां सारिकाणां च कलकण्ठप्रवादिनाम्।
हंसानां स्वर्णवर्णानामन्येषां चित्रपक्षिणाम्॥ ३०

पञ्जरस्थायिनां राजँल्लक्षं लक्षं नृपेश्वर।
विमानं विष्णुदत्ताख्यं मुक्तादामविलम्बितम्॥ ३१

अष्टयोजनमुच्चाङ्गं नवयोजनविस्तृतम्।
लक्षकुम्भध्वजोपेतं निर्मितं विश्वकर्मणा॥ ३२

कामगं स्वर्णशिखरं सहस्रादित्यसुप्रभम्।
सहस्रं कुलवृक्षाणां कामधेनुशतं तथा॥ ३३

चिन्तामणीनां च शतं शतं दिव्याश्मनां तथा।
यत्स्पर्शेनापि लोहस्तु हेमत्वं याति मैथिल॥ ३४

छत्राणां चामराणां च हेमसिंहासनं शतम्।
तथा हि दिव्यपद्मानां मालां किञ्जल्किनीं शुभाम्॥ ३५

पीयूषस्य शतं द्रोणं फलानि विविधानि च।
खचिद्रत्नसुवर्णानां भूषणानां तु वाससाम्॥ ३६

दिव्यानां कम्बलानां च कोटिशः पात्रसञ्चयम्।
अमोघानां च शस्त्राणां कोटिसौवर्णशालिनाम्॥ ३७

गजैर्नरैर्भारवाहैः प्रेरिता निधयो नव।
दत्वा बलिं राजराजः प्रद्युम्नाय महात्मने॥ ३८

दक्षिणीकृत्य तं नत्वा प्राहेदं हर्षपूरितः।

कुबेर उवाच

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने॥ ३९

सुशोभित और चार दाँतोंसे युक्त, ऊँचाईमें पर्वतोंसे भी होड़ लेनेवाले दो लाख मदवर्षी हाथी; मोतीकी बंदनवारोंसे सुशोभित, सुवर्णनिर्मित, सूर्यतुल्य तेजस्वी एवं सौ घोड़ोंसे खिंचे हुए दस लाख रथ; चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिवाले दस अरब घोड़े; माणिक्य-जटित चार लाख चमकीली शिबिकाएँ तथा पिंजरोंमें बंद दो लाख सिंह कुबेरने प्रद्युम्नको भेंट किये। विदेहराज! चीते, मृग, गवय और शिकारी कुत्ते एक-एक करोड़की संख्यामें दिये। नृपेश्वर! पिंजरोंमें विराजमान तोता, मैना, कोकिल, सुनहरे हंस और अन्यान्य विचित्र पक्षी राजराजने लाख-लाखकी संख्यामें अर्पित किये॥ २२—३०१/२॥

कुबेरने विश्वकर्माका बनाया हुआ विष्णुदत्त नामक एक विमान भी दिया, जिसमें मोतीकी झालरें लटक रही थीं। उसकी ऊँचाई आठ योजन और लंबाई-चौड़ाई नौ योजनकी थी। उसमें लाख-लाख ध्वज और कलश लगे हुए थे॥ ३१-३२॥

वह इच्छानुसार चलनेवाला विमान सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित तथा सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी था। मैथिल! उसके अतिरिक्त सहस्रों कल्पवृक्ष, सैकड़ों कामधेनुएँ, सौ चिन्तामणियाँ तथा सौ दिव्य पारस पत्थर भी कुबेरने दिये, जिनके स्पर्शसे लोहा भी सोना हो जाता है॥ ३३-३४॥

छत्र, चँवर और सोनेके सिंहासन भी सौ-सौकी संख्यामें भेंट किये। दिव्य पद्मोंकी सुन्दर केसरोंसे युक्त माला दी। सौ द्रोण अमृत, नाना प्रकारके फल, रत्नजटित सोनेके आभूषण, दिव्य वस्त्र, दिव्य कालीन, सोने-चाँदीके करोड़ों सुन्दर पात्र, अमोघ शस्त्र तथा कोटि सुवर्णमुद्राएँ भी भेंट कीं॥ ३५-३६॥

बोझ ढोनेवाले हाथियों और मनुष्योंद्वारा सब सामान भेजकर कुबेरने नौ निधियाँ प्रदान कीं। इस प्रकार महात्मा प्रद्युम्नको भेंट-सामग्री अर्पित करके राजराजने उनकी परिक्रमा की और हर्षसे भरकर प्रणामपूर्वक उनसे कहा॥ ३७—३८१/२॥

कुबेर बोले—आप भगवान् महात्मा पुरुष हैं; आपको नमस्कार है॥ ३९॥

अनादये सर्वविदे निर्गुणाय महात्मने।
प्रधानपुरुषेशाय प्रत्यग्धाम्ने नमो नमः॥ ४०

स्वयञ्ज्योतिःस्वरूपाय श्यामलाङ्गाय ते नमः।
नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च॥ ४१

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः।
मदनाय च माराय कन्दर्पाय नमो नमः॥ ४२

दर्पकाय च कामाय पञ्चबाणाय ते नमः।
अनङ्गाय नमस्तुभ्यं नमस्ते शम्बरारये॥ ४३

हे मन्मथ नमस्तुभ्यं नमस्ते मीनकेतन।
मनोभवाय देवाय नमस्ते कुसुमेषवे॥ ४४

अनन्यज नमस्तुभ्यं रतिभर्त्रे नमो नमः।
नमस्ते पुष्पधनुषे मकरध्वज ते नमः॥ ४५

स्मराय प्रभवे नित्यं जगद्विजयकारिणे।
नमो रुक्मवतीभर्त्रे सुन्दरीपतये नमः॥ ४६

इदं करिष्यामि करोमि भूमन्
ममेदमस्तीति तवेदमब्रुवन्।
अहं सुखी दुःखयुतः सुहृज्जनो
लोको ह्यहङ्कारविमोहितोऽखिलः॥ ४७

प्रधानकालाशयदेहजैर्गुणैः
कुर्वन् विकर्माणि जनो निबध्यते।
काचेऽर्भकं सैकत एव जीवनं
गुणे च सर्पं प्रतनोति सोऽक्षिभिः॥ ४८

कृतं मया हेलनमद्य मौढ्यत-
स्त्वन्मायया मोहितचेतसा प्रभो।
न मन्यसे बालकृतं पितेव हि
मा भूत्पुनर्मे मतिरीदृशी मनाक्॥ ४९

आप अनादि, सर्वज्ञ, निर्गुण एवं महान् आत्मावाले हैं। प्रधान और पुरुष—दोनोंके नियन्ता और प्रत्यक्-चैतन्यधाम हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। स्वयंज्योतिःस्वरूप और श्यामल अङ्गवाले आपको नमस्कार है। आप वासुदेवको नमस्कार, संकर्षणको नमस्कार, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं सात्वत-भक्तोंके प्रतिपालक आपको नमस्कार है। आप ही 'मदन', 'मार', और 'कंदर्प' आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं; आपको बारंबार नमस्कार है॥ ४०—४२॥

दर्पक, काम, पञ्चबाण, अनङ्ग तथा शम्बरासुरके शत्रु भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। हे मन्मथ! आपको नमस्कार है। हे मीनकेतन! आपको नमस्कार है। आप मनोभव देव तथा कुसुमेषु (फूलोंके बाण धारण करनेवाले) हैं; आपको नमस्कार है॥ ४३-४४॥

अनन्यज! आपको नमस्कार है। रतिपते! आपको बारंबार नमस्कार है। आप पुष्पधन्वा और मकरध्वजको नमस्कार है। प्रभु स्मर! आपको नित्य नमस्कार है। जगद्विजयी आप कामदेवको सादर प्रणाम है। रुक्मवतीके भर्ता तथा सुन्दरीके पति आपको नमस्कार है॥ ४५-४६॥

भूमन्! 'मैं यह करूँगा, यह करता हूँ', 'यह मेरा है, यह तुम्हारा है', 'मैं सुखी हूँ, दुखी हूँ', 'ये मेरे सुहृद् लोग हैं'—इत्यादि बातें कहता हुआ यह सारा जगत् अहंकारसे मोहित हो रहा है। प्रधान, काल, अन्तःकरण और शरीरजनित गुणोंद्वारा शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवाला जनसमुदाय बन्धनमें पड़ता है। वह काँचमें बालकको, वालुका-राशिमें जलको और रस्सीमें सर्पको अपनी आँखोंसे देखता है, भ्रमको ही सत्य मानता है॥ ४७-४८॥

[यही दशा मेरी है।] आज मैंने मूढ़तावश आपकी अवहेलना की है। प्रभो! आपकी मायासे मेरा चित्त मोहित था, इसीलिये मुझसे ऐसा अपराध बन गया। परंतु जैसे पिता बालकके अपराधको अपने मनमें स्थान नहीं देता, उसी प्रकार आप भी मेरे अपराधको भुला देंगे। आपकी कृपासे फिर मेरी ऐसी बुद्धि कभी न हो॥ ४९॥

सदा भवेत्त्वच्चरणारविन्दयो-
भक्तिः परा यां च विदुर्गरीयसीम्।
ज्ञानं च वैराग्ययुतं शिवास्पदं
देहि प्रशस्तं निजसाधुसङ्गमम्॥ ५०

आपके चरणारविन्दोंमें सदा मेरी पराभक्ति बनी रहे, जिसे सर्वोत्कृष्ट माना गया है। आप मुझे वैराग्ययुक्त ज्ञान, जो परम कल्याणका आधार है, प्रदान करें और अपने भक्तजनोंके प्रशस्त सत्सङ्गका अवसर देते रहें॥ ५०॥

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नस्य शुभं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सङ्कटे तस्य सततं सहायः स्याद्धरिः स्वयम्॥ ५१

इत्युक्तवन्तं यक्षेशं प्रद्युम्नो भगवान् हरिः।
तथास्तूक्त्वा ददौ राजन् पद्मरागशिरोमणिम्॥ ५२

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! जो प्रातःकाल उठकर प्रद्युम्नके कल्याणमय स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके संकटकालमें साक्षात् श्रीहरि सदा सहायक होंगे। राजन्! इस प्रकार स्तुति करनेवाले यक्षराज कुबेरसे भगवान् प्रद्युम्न हरिने कहा—'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा।' फिर उन्होंने सिरपर धारण करने-योग्य पद्मराग मणि दी॥ ५१-५२॥

मा भैष्टेत्यभयं दत्वा लीलाच्छत्रं सचामरम्।
सिंहासनं मणिमयं प्रादाच्छ्रीयादवेश्वरः॥ ५३

कार्ष्णिं प्रदक्षिणीकृत्य राजराजो धनेश्वरः।
नत्वा ययौ राजधानीमलकामलकेश्वरः।
जितं श्रुत्वा राजराजं प्रद्युम्नेन महात्मना॥ ५४

न केऽपि युयुधुस्तेन राजानश्च बलिं ददुः।
अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्नादयन् दुन्दुभीन् बहून्॥ ५५

'डरो मत'—यों कहकर, अभयदान दे, यादवेश्वर प्रद्युम्नने कुबेरको लीला-छत्र, चँवर और मणिमय सिंहासन प्रीति-पुरस्कारके रूपमें प्रदान किये। तदनन्तर प्रद्युम्नकी परिक्रमाकर तथा उन्हें प्रणाम करके धनेश्वर राजराज अलकापुरीको चले गये। 'महात्मा प्रद्युम्नके द्वारा राजराज कुबेरकी पराजय हुई', सुनकर किन्हीं राजाओंने भी उनके साथ युद्ध नहीं किया। सबने सादर भेंट अर्पित की॥ ५३—५४ $^{1}/_{2}$॥

समस्तवाहिनीयुक्तः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ।
भौमासुरसुतो नीलो धर्षितस्तस्य तेजसा॥ ५६

सद्यस्तस्मै बलिं प्रादात्प्रद्युम्नाय महात्मने।
प्राग्ज्योतिषपुरद्वारि द्विविदो नाम वानरः॥ ५७

तत्पश्चात् महाबाहु प्रद्युम्न बहुत-सी दुन्दुभियोंका घोष फैलाते हुए सारी सेनाके साथ प्राग्ज्योतिषपुरको गये। वहाँ भौमासुरके पुत्र नीलने उनके तेजसे तिरस्कृत हो तत्काल उन महात्मा प्रद्युम्नके लिये उपहार-सामग्री अर्पित कर दी॥ ५५—५६ $^{1}/_{2}$॥

पुरा प्रद्युम्नबाणेन ताडितो यो महाबलः।
समुत्थाय रुषाविष्टो दशनैर्नखरैः खरैः॥ ५८

विदार्य वीरानश्वांश्च भ्रूभङ्गैः प्रजगर्ज ह।
लाङ्गूलेन रथान् बद्ध्वा प्राक्षिपल्लवणाम्भसि॥ ५९

गृहीत्वा स गजान् दोर्भ्यां विचिक्षेपाम्बरे बलात्।
शत्रुं ज्ञात्वा कपिं कार्ष्णिः प्रतिशार्ङ्गे शरं दधे॥ ६०

प्राग्ज्योतिषपुरके द्वारपर द्विविद नामक महाबली वानर रहता था, जिसे पहले प्रद्युम्नने बाण मारा था। उसने रोषके आवेशमें उठकर अपने दाँतों और तीखे नखोंसे बहुत-से वीरों और घोड़ोंको विदीर्ण कर दिया और भौंहें टेढ़ी करके वह जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। उसने बहुत-से रथोंको अपनी पूँछमें बाँधकर खारे पानीके समुद्रमें फेंक दिया और दोनों हाथोंसे हाथियोंको पकड़कर बलपूर्वक आकाशमें उछाल दिया। श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने उस वानरको शत्रुताके भावसे युक्त जानकर उसके विरुद्ध शार्ङ्गधनुषद्वारा एक बाण चलाया॥ ५७—६०॥

नीत्वा शरस्तं सहसा भ्रामयित्वाम्बरे बलात्।
पूर्ववत्पातयामास किष्किन्धायां महाकपिम्॥ ६१
पुनरागतवान् बाणः प्रद्युम्नस्येषुधौ स्फुरन्॥ ६२

उस बाणने उसे सहसा उठाकर बलपूर्वक आकाशमें घुमाया और पूर्ववत् उस महाकपिको किष्किन्धामें ले जाकर पटक दिया। फिर वह प्रकाशमान बाण प्रद्युम्नके तरकसमें लौट आया॥ ६१-६२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यक्षदेशविजयो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यक्ष-देशपर विजय' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

किम्पुरुषवर्षके रङ्गवल्लीपुरमें किम्पुरुषोंद्वारा हरिचरित्रका गान; वहाँके राजाद्वारा भेंट पाकर यादव-सेनाका आगे जाना; मार्गमें अजगररूपधारी शापभ्रष्ट गन्धर्वका उद्धार; वसन्ततिलकापुरीके राजा शृङ्गारतिलकको पराजित करके प्रद्युम्नका हरिवर्षके लिये प्रस्थान

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिः परान् देशान् दिव्यद्रुमलताकुलान्।
सहस्रपत्रवद्भिश्च सरोभिः शोभितान् ययौ॥ १

अक्षौहिणीशतयुतः प्रद्युम्नश्चण्डविक्रमः।
यक्षैर्दिष्टेन मार्गेण खण्डं किम्पुरुषं ययौ॥ २

रङ्गवल्लीपुरं यत्र हेमकूटगिरेरधः।
तस्य किम्पुरुषा ऊचुः शम्बरारेश्च शृण्वतः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर प्रद्युम्न दिव्य वृक्षों और दिव्य लताओंसे व्याप्त तथा सहस्रदल कमलोंसे अलंकृत सरोवरोंद्वारा सुशोभित दूसरे-दूसरे देशोंकी ओर गये। प्रचण्ड-पराक्रमी प्रद्युम्न सौ अक्षौहिणी सेनाके साथ यक्षोंद्वारा बताये हुए मार्गसे किम्पुरुषवर्षमें गये। वहाँ हेमकूट गिरिकी तराईमें रङ्गवल्लीपुर है। वहाँके निवासी किम्पुरुष शम्बरारि प्रद्युम्नके सुनते हुए कह रहे थे—॥ १—३॥

किम्पुरुषा ऊचुः

अहोऽतिधन्या मथुरापुरी वरा
बभूव यस्यां परमेश्वरो हरिः।
अहोऽतिधन्यं सततं यदोः कुलं
जातो हि यस्मिन्नखिलाण्डपालकः॥ ४

धन्यं च तच्छूरसुतस्य मन्दिरं
गोलोकनाथेन मनोहरं कृतम्।
धन्यं परं माथुरमण्डलं सुरैः
सुदुर्लभं यत्र चचार माधवः॥ ५

किम्पुरुष बोले—अहो! पुरियोंमें श्रेष्ठ मथुरापुरी अत्यन्त धन्य है, जिसमें साक्षात् परमेश्वर हरिने अवतार लिया है। अहो! यदुकुल सदा ही परम धन्य है, जिसमें समस्त ब्रह्माण्डके पालक श्रीहरिका प्रादुर्भाव हुआ है। शूरपुत्र वसुदेवका वह निवास-मन्दिर भी धन्य है, जिसे गोलोकनाथने अपनी उपस्थितिसे अत्यन्त मनोहर बना दिया है। देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ वह माथुर-मण्डल धन्य है, जहाँ माधव विचरते हैं॥ ४-५॥

महावनं धन्यतमं मनोहरं
पितुर्गृहाद्यत्र गतो हरिः शिशुः।
चचार कृष्णः शिशुना बलेन हि
यशोदया दुग्धमुखः सुलालितः॥ ६

वह मनोहर महावन धन्यातिधन्य है, जहाँ शिशुरूपधारी श्रीहरि अपने जन्मस्थानको छोड़कर गये, जहाँ शिशु बलरामके साथ श्रीकृष्ण विचरे हैं और उनके दुधमुँहे बालकरूपका माता यशोदाने सुन्दर ढंगसे लालन-पालन किया है॥ ६॥

वृन्दावनं पुण्यतमं परात्पर-
श्रीकृष्णपादाम्बुजरेणुराजितम्।
गाः पालयन् यत्र चचार बालो
गोपालबालैः सबलः स्वयं हरिः॥ ७
यो दानलीलां किल मानलीलां
श्रीरासलीलां व्रजसुन्दरीभिः।
वृन्दावने यत्र चचार कृष्णो
यस्यापि गायन्ति यशस्त्रिलोकाः॥ ८
अहोऽतिधन्या वृषभानुनन्दिनी
लीलावती सा निजलोकशालिनी।
चचार कृष्णेन कलिन्दनन्दिनी-
तटे मिलिन्दध्वनिसङ्कुले वने॥ ९
अहोऽतिधन्यास्ति कलिन्दनन्दिनी
श्रीकृष्णवामांससमुद्भवा या।
तटे मिलिन्दध्वनिसङ्कुले वटे
तत्स्पर्शनाद्याति नरः कृतार्थताम्॥ १०
समुद्भवो यो हरिवक्षसो गिरि-
र्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट्।
विराजते स व्रजमण्डले परो
यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते॥ ११
अहोऽतिधन्या यदुमण्डलीभि-
र्विराजते भूमितले मनोहरा।
वैकुण्ठलीलाधिकृता कुशस्थली
यथा तडिद्भिर्जलदावलिर्दिवि॥ १२
यत्रैव साक्षात्पुरुषः परेश्वरो
धृत्वा चतुर्व्यूहमलं विराजते।
यस्तूग्रसेनाय ददौ नृपेशतां
कृष्णाय तस्मै हरये नमो नमः॥ १३
प्रणोदितस्तेन नृपेण धीमता
जगद्विजेतुं मकरध्वजो महान्।
कृत्वाथ तद्दर्शनमद्य दुर्लभं
वयं कृतार्था हि भवेम सर्वतः॥ १४

श्रीनारद उवाच

इत्थं हरिर्नृप यशोविशदैश्चरित्रै-
रुद्यत्त्रिलोकममलं विशदीचकार।

परात्पर परमात्मा श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंके पावन परागसे विराजित श्रीवृन्दावन अत्यन्त पुण्यतम तीर्थ है, जहाँ गोप-बालों और बलरामजीके साथ गौएँ चराते हुए साक्षात् श्रीहरि विचरे हैं। जिस वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्ण व्रजसुन्दरियोंके साथ दानलीला, मानलीला तथा रासलीला करते हुए विचरे हैं, उसके भी पवित्र यशका तीनों लोकोंके लोग गान करते हैं॥ ७-८॥

अहो! वृषभानुनन्दिनी लीलावती श्रीराधा, जो अपने गोलोक-धाममें शोभा पाती हैं, परम धन्य हैं, जिन्होंने भ्रमरोंके गुञ्जारवसे व्याप्त कालिन्दीतटवर्ती वनमें श्रीकृष्णके साथ विहार किया है। अहो! कलिन्दनन्दिनी यमुना भी परम धन्य हैं, जो भगवान् श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई हैं। उनके तटपर भ्रमरोंकी ध्वनिसे व्याप्त जो वंशीवट है, उसके तथा उसके निकटवर्ती यमुनाजलके स्पर्शसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है॥ ९-१०॥

जिसका प्रादुर्भाव भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे हुआ है तथा जिसके दर्शनसे पुनर्जन्म नहीं होता, वह उत्कृष्ट गिरीन्द्र-राजराज गोवर्धन व्रजमण्डलमें विराजमान है। अहो! वैकुण्ठ-लीलाकी अधिकारिणी कुशस्थली नामवाली मनोहर पुरी धन्यातिधन्य है, जो आकाशमें विद्युन्मण्डलसे मेघमालाकी भाँति भूतलपर यादव-मण्डलीसे विराजमान है॥ ११-१२॥

उस कुशस्थलीमें ही साक्षात् परमपुरुष परमेश्वर चतुर्व्यूहरूप धारण करके अत्यन्त शोभा पा रहे हैं। जिन्होंने राजा उग्रसेनको राजाधिराजकी पदवी दे दी, उन श्रीकृष्ण हरिको बारंबार नमस्कार है। उन बुद्धिमान् राजा उग्रसेनसे प्रेरित हो महान् वीर मकरध्वज प्रद्युम्न सम्पूर्ण जगत्पर विजय पानेके लिये निकले हैं, जिनका दुर्लभ दर्शन पाकर आज हमलोग सब ओरसे कृतार्थ हो जायँगे॥ १३-१४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उज्ज्वल यशोवर्धक चरित्रोंद्वारा श्रीहरिने निर्मल त्रिलोकको उसी प्रकार और भी निर्मल बना दिया,

पूर्णेन्दुरश्मिमिलितैस्तरलैः स्फुरद्भिः
प्रोद्यद्भिरुद्गज इवामलसिन्धुदुग्धम्॥ १५

इत्थं यशः स्वममलं नृप शम्बरारिः
श्रुत्वातिहर्षिततनुः प्रददौ धनानि।
केयूरहारनवरत्नमनोहराणि
तेभ्यः किरीटमणिकुण्डलकङ्कणानि॥ १६

रङ्गवल्लीपुराधीशः सुबाहुश्चन्द्रवंशजः।
नत्वा बलिं ददौ सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने॥ १७

तस्मै प्रसन्नो भगवान् प्रद्युम्नो मीनकेतनः।
दत्वा चूडामणिं दिव्यं पप्रच्छेदं महामनाः॥ १८

श्रीप्रद्युम्न उवाच

रङ्गवल्लीपुरस्यापि नाम केन प्रकाशितम्।
एतद्ब्रूहि सुबाहो मे श्रुतं पूर्वं त्वया किल॥ १९

सुबाहुरुवाच

देवासुरैः पुरा राजन् मथितः क्षीरसागरः।
विनिर्गतानि मथनाद्रत्नानि च चतुर्दश॥ २०

निःसृतं कलशं तस्मात्सुधापूर्णं मनोहरम्।
तं ददर्श हरिः साक्षान्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः॥ २१

तन्नेत्रहर्षबिन्दुश्च कलशे निपपात ह।
तस्माद् वृक्षः समुद्भूतस्तुलसीति प्रकथ्यते॥ २२

रङ्गवल्लीति तन्नाम चकार मधुसूदनः।
अत्र किम्पुरुषे खण्डे हेमकूटगिरेरधः॥ २३

तस्याश्च रङ्गवल्याः कौ स्थापनां स चकार ह।
रङ्गवल्ली महावृक्षः सदात्रैव विराजते॥ २४

तन्नाम्ना प्रसिद्धमभूद्रङ्गवल्लीपुरं त्विदम्।
अत्र नित्यं हि हनुमानार्ष्टिषेणेन रागिणा॥ २५

दर्शनार्थं समायाति महात्मा रामपूजकः।

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा शम्बरारी रङ्गवल्लीं मनोहराम्॥ २६

दृष्ट्वा प्रदक्षिणीकृत्य देशानन्याञ्जगाम ह।
हेमकूटतटीभूतं वनं प्राप्तं भयङ्करम्॥ २७

जैसे पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे मिलकर ऊँची उठती हुई चमकीली तरंगोंद्वारा स्वर्गीय गजराज ऐरावत क्षीर-सिन्धुके दुग्धको और भी उज्ज्वल बना देता है॥ १५॥

नरेश्वर! इस प्रकार शम्बरारि प्रद्युम्नने अपने निर्मल यशका गान सुनकर अत्यन्त हर्षसे रोमाञ्चित-शरीर होकर उन किम्पुरुषोंको केयूर, हार, नवरत्न, मनोहर किरीट, मणिमय कुण्डल और कंगन आदि बहुत धन दिया। रङ्गवल्लीपुरके स्वामी चन्द्रवंशी राजा सुबाहुने नमस्कार करके महात्मा प्रद्युम्नको बलि (भेंट) अर्पित की। उनपर प्रसन्न होकर महामना मीनकेतन भगवान् प्रद्युम्नने उन्हें दिव्य चूडामणि देकर इस प्रकार पूछा— ॥ १६—१८॥

श्रीप्रद्युम्न बोले—राजन् सुबाहु! इस नगरका 'रङ्गवल्लीपुर' नाम किसने रखा है? यह नाम तो मैं पहले-पहल आपके ही मुँहसे सुन रहा हूँ, अतः इस विषयमें आप सब कुछ मुझे बताइये॥ १९॥

सुबाहुने कहा—राजन्! पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। उससे चौदह रत्न निकले। फिर उस सागरसे अमृत-पूर्ण मनोहर कलश निकला। उस कलशको साक्षात् कमलनयन श्रीहरिने दोनों नेत्रोंसे देखा॥ २०-२१॥

उनके नेत्रोंसे हर्षके आँसूकी एक बूँद उस कलशमें गिर पड़ी। उससे एक वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसे, 'तुलसी' कहते हैं। भगवान् विष्णुने उस वृक्षका नाम रखा—'रङ्गवल्ली'। उन्होंने किम्पुरुषवर्षके हेमकूटपर्वतकी उपत्यकामें भूमिपर उस रङ्गवल्लीकी स्थापना की; अतः वह रङ्गवल्ली नामक महान् वृक्ष सदा यहीं विराजता है। उसी वृक्षके नामपर यह नगर 'रङ्गवल्लीपुर' नामसे प्रसिद्ध हुआ। यहाँ प्रतिदिन रामपूजक महात्मा हनुमान्जी संगीतकुशल आर्ष्टिषेणके साथ दर्शनके लिये आया करते हैं॥ २२—२५ १/२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर प्रद्युम्नजीने मनोहारिणी रङ्गवल्लीजीका दर्शन किया और उसकी परिक्रमा करके वे अन्य देशोंको गये। हेमकूटकी तलहटीमें एक बड़ा भयंकर वन प्राप्त

झिल्लीझङ्कारसंयुक्तं सिंहचित्रकनादितम्।
वन्यैः करीन्द्रैः संयुक्तं शिवोलूकरुतावृतम्॥ २८

कीचकाश्वत्थमन्दारवटभूर्जसमाकुलम् ।
कृष्णाहरीतकीवल्लीबदरैः सघनं वनम्॥ २९

तस्माद्विनिर्गतः सर्पो दशयोजनलम्बितः।
अग्रसद्गजवृन्दानि फूत्कारं कारयन् मुहुः॥ ३०

हाहाकारे तदा जाते सेनायां मैथिलेश्वर।
प्रचण्डगरलैर्वातैर्भस्मीभूते दिशान्तरे॥ ३१

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा।
चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः ॥ ३२

श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश।
एते जघ्नुः शरैस्तीक्ष्णैः सर्पं रौद्रं मदोत्कटम्॥ ३३

बाणैः सम्भिन्नसर्वाङ्गः पतितो धरणीतले।
सर्परूपं विहायाशु गन्धर्वोऽभूत्स्फुरद्द्युतिः॥ ३४

नत्वा श्रीकृष्णपुत्रांस्तान् द्योतयन् मण्डलं दिशाम्।
पुष्पैर्वर्षत्सु देवेषु विमानेन दिवं ययौ॥ ३५

बहुलाश्व उवाच

गन्धर्वोऽयं तु कः पूर्वं केन पापेन सर्पताम्।
प्राप्तः कथं वद मुने त्वं परावरवित्तमः॥ ३६

श्रीनारद उवाच

आर्ष्टिषेणस्य यो भ्राता सुमतिर्नाम सुन्दरः।
रामायणं हनुमता पठितुं स समागतः॥ ३७

हेमकूटे हनुमतः कुर्वतो रामसेवनम्।
प्रातःकालात्समारभ्य घटिकाश्च चतुर्दश॥ ३८

सलक्ष्मणं रामचन्द्रं ध्यायतो जानकीपतिम्।
फूत्कारैः सर्पवत्तस्य ध्यानभङ्गं चकार ह॥ ३९

तदा क्रुद्धो महावीरो हनुमान् वानरेश्वरः।
शापं ददौ सुमतये त्वं सर्पो भव दुर्मते॥ ४०

हुआ, जो झिल्लियोंकी झनकारसे युक्त और सिंह तथा चीतोंके दहाड़नेकी आवाजसे व्याप्त था। जंगली गजराजोंसे भरे हुए उस वनमें गीदड़ों और उल्लुओंकी आवाज सुनायी देती थी॥ २६—२८॥

बाँस, पीपल, मदार, बरगद, भोजपत्र, काली हर्रेकी बेलों और बेरके वृक्षोंसे वह वन अत्यन्त घना जान पड़ता था। उस वनसे एक अजगर साँप निकला, जो दस योजन लंबा था। वह बारंबार फुफकारता हुआ झुंड-के-झुंड हाथियोंको निगलने लगा। मिथिलेश्वर! उस समय सेनामें हाहाकार मच गया। उसके प्रचण्ड विषसे मिली हुई वायुसे विभिन्न दिशाओंकी सारी वस्तुएँ भस्म हो जाती थीं। तब भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभान्—सत्यभामाके इन दस पुत्रोंने तीखे बाणोंसे उस भयंकर एवं मदमत्त सर्पको बींधना आरम्भ किया। बाणोंसे सारे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और सर्पका रूप छोड़कर एक तेजस्वी एवं दीप्तिमान् गन्धर्व हो गया। उसने समस्त श्रीकृष्ण-पुत्रोंको नमस्कार किया। देवता फूल बरसाने लगे और वह समस्त दिङ्मण्डलको उद्भासित करता हुआ विमानके द्वारा स्वर्गलोकको चला गया॥ २९—३५॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने! यह गन्धर्व कौन था और पहलेके किस पापसे सर्प हुआ था, यह बताइये; क्योंकि आप भूत, वर्तमान और भविष्यकी बातें जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं॥ ३६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] आर्ष्टिषेण गन्धर्वका जो सुन्दर भ्राता सुमति था, वह हनुमान्‌जीसे रामायण पढ़नेके लिये आया। हनुमान्‌जी हेमकूट पर्वतपर श्रीरामकी सेवामें प्रातःकालसे लेकर चौदह घड़ीतक लगे रहते थे॥ ३७-३८॥

वे लक्ष्मणसहित जानकीपति श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान कर रहे थे। इसी समय उसने साँपकी भाँति फुफकार करके हनुमान्‌जीका ध्यान भङ्ग कर दिया। तब वानरराज महावीर हनुमान्‌जीने कुपित होकर सुमतिको शाप दे दिया—'दुर्बुद्धे! तू सर्प हो जा'॥ ३९-४०॥

तदैव तस्य चरणौ नत्वा प्राह कृताञ्जलिः।
हे देव पाहि पाहीति दीनं मां शरणं गतम्॥ ४१

सुमतिने उसी समय उनके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—'देव! आप अपनी शरणमें आये हुए मुझ दीनकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'॥ ४१॥

अथ प्रसन्नो भगवान् सुमतिं प्राह धर्मवित्।
द्वापरान्ते शरैस्तीक्ष्णैर्हरिपुत्रधनुश्च्युतैः।
भिन्नदेहः स्वां प्रकृतिं यास्यसि त्वं न संशयः॥ ४२

गन्धर्वः सुमतिर्नाम विमुक्तोऽभूद्विदेहराट्।
सतां शापोऽपि वरवद्वरो मोक्षार्थदः किमु॥ ४३

तब प्रसन्न होकर धर्मज्ञ भगवान् हनुमान्ने सुमतिसे कहा—'द्वापरके अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके पुत्रोंके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंद्वारा जब तुम्हारा शरीर विदीर्ण हो जायगा, तब तुम अपने गन्धर्व-शरीरको प्राप्त कर लोगे—इसमें संशय नहीं है।' विदेहराज! वही सुमति नामक गन्धर्व शापसे मुक्त हुआ। सत्पुरुषोंका शाप भी वरदानके तुल्य है फिर उनका वरदान मोक्ष देनेवाला हो जाय, इसके लिये तो कहना ही क्या है!॥ ४२-४३॥

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुश्चैत्रदेशान् मनोहरान्।
वसन्तमाधवीवृन्दैः शोभितान् स जगाम ह॥ ४४

सहस्रदलपद्मानां षट्पदध्वनिशालिनाम्।
पतन्ति रेणवो यत्र सरःस्वाबीरचूर्णवत्॥ ४५

एलालवङ्गलतिकाः क्षुण्णाः सैन्याङ्घ्रिभिः पथि।
तेन भृङ्गावली रेजे करिकर्णप्रताडिता॥ ४६

तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार महाबाहु प्रद्युम्न मनोहर चैत्र-देशोंको गये, जो वासन्ती और माधवी लताओंसे सुशोभित थे। यहाँ भ्रमरोंकी ध्वनिसे शोभा पानेवाले सहस्रदल कमलोंका पराग सरोवरोंमें अबीर-चूर्णकी भाँति गिरता था। रास्तेमें इलायची और लौंगकी लताएँ लहलहाती थीं, जो सैनिकोंके पाँवोंसे कुचलकर धूलमें मिल जाती थीं। झुंड-के-झुंड भ्रमर हाथियोंके कर्णतालोंसे ताड़ित हो आस-पास मँडराते हुए शोभा पाते थे॥ ४४—४६॥

यत्र वै पुरुषा राजन्नागायुतसमा बले।
वलीपलितदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमविवर्जिताः॥ ४७

त्रेतायुगसमः कालो वर्तते यत्र नित्यशः।
आयुश्चायुतवर्षाणां दिव्यौषधिनदीगुणैः॥ ४८

राजन्! वहाँके पुरुष दस हजार हाथियोंके समान बलवान् होते हैं। उनके शरीरपर झुर्रियाँ नहीं दिखायी देतीं। उनके बाल नहीं पकते और शरीरमें पसीना, थकावट एवं दुर्गन्ध नहीं होती। वहाँ प्रतिदिन त्रेतायुगके समान समय रहता है। दिव्य ओषधियों तथा नदियोंके गुणकारी प्रभावसे वहाँके लोगोंकी आयु दस हजार वर्षकी हुआ करती है॥ ४७-४८॥

पीयूषतुल्यं तोयं च हेमभूमिर्विराजते।
मुक्ताविद्रुमवैडूर्यरत्नोत्पत्तिश्च यत्र वै॥ ४९

सुन्दर्यः प्रमदा रामा नित्ययौवनभूषिताः।
स्फुरन्त्युपवनेष्वारात्सौदामिन्यो घनेष्विव॥ ५०

वहाँ अमृतके समान जल और स्वर्णमयी भूमि शोभा पाती है। उस भूमिसे मोती, मूँगे, वैदूर्य आदि रत्नोंकी उत्पत्ति होती है। वहाँकी मदमत्त रमणियाँ बड़ी सुन्दरी और अक्षय यौवनसे विभूषित होती हैं। वे वहाँके उपवनोंमें दूरसे ऐसी चमकती हैं, जैसे बादलोंमें बिजलियाँ॥ ४९-५०॥

यत्र वै नगरी रम्या वसन्ततिलका शुभा।
शृङ्गारतिलको नाम राजा यत्र महाबलः॥ ५१

जैत्रान् वीरान् समाहूय गजमारुह्य दंशितः।
योद्धुं विनिर्ययौ यश्च प्रद्युम्नस्यापि सम्मुखे॥ ५२

साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित्।
विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान् द्रविडः क्रतुः॥ ५३

जाम्बवत्याः सुता ह्येते चक्रुर्नाराचदुर्दिनम्।
पलायितेषु चैतेषु बाणैर्भिन्नेषु मैथिल॥ ५४

बाणान्धकारे सञ्जाते महान् कोलाहलो ह्यभूत्।
तदा शृङ्गारतिलको गजारूढो महाबलः॥ ५५

त्रिशूलेन तदा साम्बं हृदि विव्याध रोषतः।
अन्यान् सम्पातयामास शरैः कोदण्डनिर्गतैः॥ ५६

एकाकी विचरन् युद्धे वने वैश्वानरो यथा।
तदा गदः समागत्य तद्गजं सुमदोत्कटम्॥ ५७

शुण्डादण्डे सङ्गृहीत्वा पातयामास भूतले।
दूरे प्रपतितः शीघ्रं शृङ्गारतिलको नृपः॥ ५८

सद्यो भयातुरो भूत्वा युद्धे बद्धाञ्जलिः स्वतः।
तुरङ्गाणामर्बुदं च रथानां लक्षमेव च॥ ५९

गजानामयुतं राजा प्रद्युम्नाय बलिं ददौ।
इत्थं किम्पुरुषं खण्डं जित्वा कार्ष्णिर्महाबलः॥ ६०

निषाददर्शितैर्मार्गैर्हरिवर्षं ततो ययौ॥ ६१

वहाँ वसन्ततिलका नामकी एक सुन्दर सुरम्य नगरी है, जहाँ शृङ्गारतिलक नामके महाबली राजा राज्य करते हैं। विजयी वीरोंको एकत्र करके, स्वयं भी कवच धारण किये, हाथीपर सवार हो, वे राजा शृङ्गारतिलक प्रद्युम्नके सामने युद्धके लिये निकले॥ ५१-५२॥

उस समय साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड़ और क्रतु—जाम्बवतीके इन दस पुत्रोंने वहाँ नाराचोंसे दुर्दिन उपस्थित कर दिया। मैथिल! उन बाणोंसे विदीर्ण होकर विपक्षी योद्धा भागने लगे॥ ५३-५४॥

बाणोंसे अन्धकार छा जानेपर वहाँ महान् कोलाहल मच गया। तब महाबली शृङ्गारतिलकने हाथीपर बैठे-बैठे ही त्रिशूलसे रोषपूर्वक साम्बकी छातीपर चोट पहुँचायी तथा अन्य योद्धाओंको अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा धराशायी कर दिया॥ ५५-५६॥

वे युद्धभूमिमें अकेले इस प्रकार विचरने लगे, जैसे वनमें दावानल फैल रहा हो। उस समय गदने आकर उनके मदमत्त हाथीको उसकी सूँड़ पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया। राजा शृङ्गारतिलक भी तत्काल दूर जा गिरे। फिर तो भयसे व्याकुल हो उन्होंने युद्धमें उसी क्षण दोनों हाथ जोड़ लिये और एक अरब घोड़े, एक लाख रथ और दस हजार हाथी प्रद्युम्नको भेंटमें दिये॥ ५७—५९½॥

इस प्रकार किम्पुरुषवर्षपर विजय पाकर महाबली श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न निषादोंके दिखाये हुए मार्गसे हरिवर्षकी ओर प्रस्थित हुए॥ ६०-६१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे किम्पुरुषखण्डविजयो नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'किम्पुरुषखण्डपर विजय' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

यादवसेनापर गीधोंका आक्रमण तथा उसके निवारणार्थ प्रद्युम्नद्वारा गरुडास्त्रका प्रयोग; दशार्णदेशपर विजय तथा दशार्णमोचनतीर्थमें स्नान

श्रीनारद उवाच

हरिवर्षं नाम खण्डं सर्वसम्पत्तिसंयुतम्।
तस्य सीमा गिरिः साक्षान्निषधो नाम मैथिल॥ १

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! हरिवर्ष नामक खण्ड सम्पूर्ण सम्पदाओंसे सम्पन्न है। मिथिलेश्वर! उसकी सीमा साक्षात् निषधपर्वत है॥ १॥

वीरकोदण्डटङ्कारघोषैर्व्याप्तवनान्तरात् ।
उड्डीतास्तु महागृध्राः क्रोशमात्रवपुर्धराः ॥ २

तीक्ष्णतुण्डाः सगरुडाः सर्वे दीर्घायुषो नृप।
अग्रसन् सैनिकान्नागान् हयांस्तेऽपि बुभुक्षिताः ॥ ३

आकाशे पक्षिभिर्व्याप्ते जाते पक्षप्रभञ्जने।
सेनायामन्धकारेण हाहाकारो महानभूत् ॥ ४

वीरोंके कोदण्डोंकी टंकार-ध्वनिसे वहाँका वन्यप्रान्त व्याप्त हो जानेपर, वहाँसे एक-एक कोसके लंबे शरीर और तीखी चोंचवाले महागृध्र तथा गरुड़ पक्षी उड़े। नरेश्वर! वे सब-के-सब दीर्घायु और भूखे थे। उन्होंने यादव सैनिकों, हाथियों और घोड़ोंको भी अपना ग्रास बनाना आरम्भ किया। आकाश पक्षियोंसे व्याप्त हो गया। उनकी पाँखोंकी हवासे आँधी-सी उठने लगी। सेनामें अन्धकार छा गया और महान् हाहाकार होने लगा॥ २—४॥

तदा कार्ष्णिर्महाबाहुस्ताक्ष्र्यमस्त्रं समादधे।
तद्बाणान्निर्गतः साक्षाद्वैनतेयः खगेश्वरः ॥ ५

सेनायामन्धकारेण व्याप्तायां पतगेश्वरः।
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण कांश्चित्पक्षैः स्फुरत्प्रभैः ॥ ६

गृध्रान् कुलिङ्गान् गरुडान् पातयामास भूतले।
भग्नदर्पाश्छिन्नपक्षाः सक्षताः पक्षिणश्च ते॥ ७

भयातुरा दुद्रुवुस्ते ताक्ष्र्येणापि दिशो दश।

तब महाबाहु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने गरुडास्त्रका संधान किया। उस अस्त्रसे साक्षात् विनतानन्दन पक्षिराज गरुड़ प्रकट हो गये। अन्धकारसे भरी हुई उस सेनामें पहुँचकर पक्षिराजने अपनी चोंच और चमकीले पंखोंकी मारसे कितने ही गीधों, कुलिङ्गों और गरुड़ोंको धराशायी कर दिया। उन सबका घमंड चूर हो गया, पंख कट गये और वे सब पक्षी क्षत-विक्षत हो गरुड़के भयसे घबराकर दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ५—७ १/२॥

ततः कार्ष्णिर्महाबाहुर्दशार्णान् विषयान् ययौ ॥ ८

दशार्णदेशाधिपतिः शुभाङ्गः सूर्यवंशजः।
नागायुतसमो युद्धे निष्कौशाम्बीपुरीगतिः ॥ ९

तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णकुमार दशार्ण जनपदमें गये। दशार्णदेशके राजा शुभाङ्ग सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। युद्धमें उनका बल दस हजार हाथियोंके समान हो जाता था। वे निष्कौशाम्बीपुरीके अधिपति थे॥ ८-९॥

वेदव्यासमुखाच्छ्रुत्वा प्रद्युम्नं चण्डपौरुषम्।
दशार्णां तां नदीं दीर्घां समुत्तीर्य समाययौ॥ १०

कृताञ्जलिः शुभाङ्गोऽसौ किरीटेन नताननः।
ददौ बलिं सुरत्नानां प्रद्युम्नाय महात्मने॥ ११

वेदव्यासके मुखसे प्रद्युम्नका प्रचण्ड पौरुष सुनकर वे दशार्णा नदी पार करके आ गये थे। शुभाङ्गने हाथ जोड़कर किरीटसहित अपना मस्तक झुका दिया और महात्मा प्रद्युम्नको उत्तम रत्नोंकी भेंट दी॥ १०-११॥

प्रद्युम्नो भगवान् साक्षात्सर्वगः सर्वदर्शनः।
पप्रच्छेदं शुभाङ्गं तं लोकसङ्ग्रहकाम्यया॥ १२

सर्वत्र व्यापक और सर्वदर्शी साक्षात् भगवान् प्रद्युम्नने शुभाङ्गसे लोकसंग्रहकी इच्छासे इस प्रकार पूछा— ॥ १२॥

प्रद्युम्न उवाच

दशार्णोऽयं कथं देशः केन नाम्ना बभूव ह।
एतन्मे ब्रूहि हे राजन्निष्कौशाम्बीपुरीपते॥ १३

प्रद्युम्नने कहा—निष्कौशाम्बीपुरीके अधीश्वर राजन्! यह देश 'दशार्ण' क्यों कहलाता है? किसके नामपर इसका ऐसा नाम हुआ है, यह मुझे बताइये॥ १३॥

शुभाङ्ग उवाच

हिरण्यकशिपुं हत्वा नृसिंहो भगवान् पुरा।
प्रह्लादेन त्विहागत्य हरिवर्षे स्थितोऽभवत्॥ १४

प्रह्लादं भगवान् प्राह नृसिंहो भक्तवत्सलः।

नृसिंह उवाच

शान्तस्य तव भक्तस्य मया पुत्र पिता हतः।
तस्मान्न घातयिष्यामि वंशं ते हि महामते॥ १५

शुभाङ्ग उवाच

इति प्रवदतोऽक्षिभ्यामानन्दजलबिन्दवः।
पतिताः कौ च तै राजन् सरोऽभून्मङ्गलायनम्॥ १६

तदा प्राप्तवरो राजन् प्रह्लादो हर्षविह्वलः।
नृसिंहं प्राह धर्मात्मा नत्वा भूत्वा कृताञ्जलिः॥ १७

प्रह्लाद उवाच

मातुः पितुर्मया सेवा न कृता सात्वताम्पते।
ऋणात्तयोः कथं मुच्ये वदैतत्परमेश्वर॥ १८

नृसिंह उवाच

मन्नेत्रजलसम्भूते तीर्थे वै मङ्गलायने।
स्नानं कुरु महाभाग मुच्यसे दशभिर्ऋणैः॥ १९

मातुः पितुश्च भार्यायाः सुतानां गुरुदेवयोः।
विप्राणां च प्रपन्नानामृषीणां पितृणामृणम्॥ २०

यः स्नास्यति महातीर्थे सर्वहेलनतत्परः।
ऋणैश्च दशभिः सोऽपि मुच्यते नात्र संशयः॥ २१

शुभाङ्ग उवाच

दशार्णमोचने तीर्थे स्नात्वा कायाधवोऽनृणी।
भूत्वाद्यापि समायाति स्नातुं तन्निषधाद्गिरेः॥ २२

दशार्णमोचने तीर्थे दशार्णो देश उच्यते।
तत्स्रोतःसु समुद्भूता दशार्णेयं नदी स्मृता॥ २३

शुभाङ्गने कहा—पूर्वकालमें भगवान् नृसिंह हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लादके साथ यहाँ आये और हरिवर्षमें ही बस गये। भक्तवत्सल भगवान् नृसिंहने प्रह्लादसे कहा— ॥ १४ १/२ ॥

नृसिंह बोले—पुत्र! तुम मेरे शान्त-भक्त हो, तथापि तुम्हारे पिताका मेरे द्वारा वध हुआ है; अतः महामते! मैं तुम्हारे वंशमें अब और किसीको नहीं मारूँगा ॥ १५ ॥

शुभाङ्ग कहते हैं—रुक्मिणीनन्दन! इस प्रकार कहते हुए भगवान् नृसिंहके दोनों नेत्रोंसे आनन्दजनित जलबिन्दु पृथ्वीपर गिरे। उन बिन्दुओंसे 'मङ्गलायन सरोवर' प्रकट हो गया ॥ १६ ॥

तब वरप्राप्त धर्मात्मा प्रह्लाद हर्षविह्वल हो दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक भगवान् नृसिंहसे बोले ॥ १७ ॥

प्रह्लादने कहा—भक्तजनप्रतिपालक परमेश्वर! मैंने माता-पिताकी सेवा नहीं की; अतः मैं उनके ऋणसे कैसे मुक्त होऊँगा? ॥ १८ ॥

नृसिंह बोले—महाभाग! तुम मेरे नेत्र-जलसे प्रकट हुए इस मङ्गलायनतीर्थमें स्नान करो। इससे तुम दस प्रकारके ऋणोंसे छुटकारा पा जाओगे ॥ १९ ॥

माता, पिता, पत्नी, पुत्र, गुरु, देवता, ब्राह्मण, शरणागत, ऋषि तथा पितरोंका ऋण 'दशार्ण' कहलाता है। जो इस महातीर्थमें स्नान कर लेगा, वह सबकी अवहेलनामें तत्पर हो तो भी दस प्रकारके ऋणोंसे छुटकारा पा जायगा—इसमें संशय नहीं है ॥ २०-२१ ॥

शुभाङ्ग कहते हैं—कयाधू-कुमार प्रह्लाद इस 'दशार्णमोचनतीर्थ' में स्नान करके सब ऋणोंसे मुक्त हो गये। वे आज भी निषधगिरिसे यहाँ इस तीर्थमें नहानेके लिये आया करते हैं ॥ २२ ॥

दशार्णमोचनतीर्थके निकटका देश 'दशार्ण' कहलाता है। उसीके स्रोतसे प्रकट हुई यह नदी 'दशार्णा' कहलाती है ॥ २३ ॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान् कार्ष्णिः सर्वैः परिचरैः सह।
दशार्णमोचने तीर्थे दानं स्नानं चकार ह॥ २४

दशार्णमोचनस्यापि कथां यः शृणुयान्नृप।
ऋणैश्च दशभिः सोऽपि मुच्यते मुक्तिभाग्भवेत्॥ २५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर भगवान् प्रद्युम्नने समस्त परिकरोंके साथ दशार्णमोचन तीर्थमें स्नान और दान किया। नरेश्वर! जो दशार्ण-मोचनकी कथा भी सुन लेगा, वह दस ऋणोंसे मुक्त हो जायगा और मोक्षका भागी होगा॥ २४-२५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे दशार्णदेशविजयो नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'दशार्ण-देशपर विजय' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

उत्तरकुरुवर्षपर यादवोंकी विजय; वाराहीपुरीमें राजा गुणाकरद्वारा प्रद्युम्नका समादर

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः सुमेरोरुत्तरान् कुरून्।
ययौ शृङ्गवतः पार्श्वे विचित्रानृद्धिसंवृतान्॥ १

भद्रां गङ्गां ततः स्नात्वा वाराहीं नगरीं ययौ।
कुरुखण्डाधिपस्तस्यां चक्रवर्ती गुणाकरः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद महाबाहु प्रद्युम्न सुमेरुके उत्तरवर्ती और शृङ्गवान् पर्वतके पास बसे हुए विचित्र समृद्धिशाली 'उत्तर-कुरु' नामक देशमें गये। वहाँ 'भद्रा' नामकी गङ्गामें स्नान करके वे वाराहीनगरीमें जा पहुँचे, जहाँ कुरु-वर्षके अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् गुणाकर राज्य करते थे॥ १-२॥

महासम्भृतसम्भारो देवर्षिगणसंवृतः।
अश्वमेधं समारेभे दशमं स गुणाकरः॥ ३

तेनोत्सृष्टं हयं श्वेतं श्यामकर्णं मनोहरम्।
तस्य पुत्रो वीरधन्वा रक्षितुं निर्गतोऽभवत्॥ ४

राजा गुणाकरने बड़ी भारी सामग्रीका संचय करके देवर्षिगणोंसे घिरे रहकर दसवें अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया था। उन्होंने एक मनोहर श्वेतवर्ण श्यामकर्ण अश्व छोड़ा था और उनके पुत्र वीरधन्वा उस अश्वकी रक्षाके लिये निकले थे॥ ३-४॥

अक्षौहिणीभिर्दशभिर्मण्डितश्चण्डविक्रमः।
विचचार महावीरो वीक्ष्यमाणस्तुरङ्गमम्॥ ५

वीरश्चन्द्रश्च सेनश्च चित्रगुर्वेगवान्नृप।
आमः शङ्कुर्वसुः श्रीमान् कुन्ती नाग्नजितीसुताः॥ ६

सर्वतस्तं हयं शुभ्रं गृहीत्वा हर्षपूरिताः।
कस्योत्सृष्टं वदन्तस्ते कार्ष्णिसैन्यं समाययुः॥ ७

प्रचण्ड-पराक्रमी महावीर वीरधन्वा उस घोड़ेकी देख-भाल करते हुए दस अक्षौहिणी सेनाके साथ विचर रहे थे। नृप! वीर, चन्द्र, सेन, चित्रगु, वेगवान्, आम, शंकु, वसु, श्रीमान् और कुन्ति—नाग्नजितीके इन दस पुत्रोंने सब ओरसे शुभ्र घोड़ेको घेरकर पकड़ लिया और हर्षसे भरे हुए वे 'यह किसका छोड़ा हुआ घोड़ा है?'—यों कहते हुए प्रद्युम्नकी सेनाके पास आये॥ ५—७॥

प्रद्युम्नस्तद्भालपत्रं पठित्वा विस्मितोऽभवत्।
सर्वे विसिस्मुर्यदवो गृहीतपरमायुधाः॥ ८

उसके ललाटमें बँधे हुए पत्रको पढ़कर प्रद्युम्नको बड़ा विस्मय हुआ। समस्त यादव हाथोंमें उत्तम आयुध लिये विस्मयमें पड़े हुए थे॥ ८॥

तदैव सेना सम्प्राप्ता विचिन्वन्ती हयं नृप।
दृष्ट्वा रजो यदुबलाद्दूरे तस्थौ सुविस्मिता॥ ९

गुणाकरे राजनि चण्डविक्रमे
न दस्यवः स्युः कुरुखण्डमण्डले।
गवां न कालो न हि चक्रवातकः
कुतो रजः प्राप्तमहोऽर्कमण्डलम्॥ १०

एवं वदन्ती परवाहिनी स्वतः
कोदण्डघोषं दरदस्वनं परम्।
करीन्द्रचीत्कारतुरङ्गहेषणं
वादित्रमिश्रं समुपाशृणोत्ततः॥ ११

तदोद्धवः कृष्णसुतप्रणोदितो
बलं समेत्याशु स वीरधन्वनः।
प्रणम्य तं प्राह रथस्थितं नृपं
गुणाकरस्यौरसमर्कतेजसम्॥ १२

उग्रसेनः क्षितीशेन्द्रो द्वारकेशो यदूत्तमः।
जम्बूद्वीपनृपाञ्जित्वा राजसूयं करिष्यति॥ १३

तेन प्रणोदितो वीरः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः।
जित्वा तं भारतं खण्डं तथा किम्पुरुषं नृपः॥ १४

हरिवर्षं ततो जित्वा कुरुखण्डं समागतः।
प्रदास्यति बलिं सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने॥ १५

अक्षौहिणीदशयुतो धनदेनापि पूजितः।
उपायनं त्वया देयं प्रद्युम्नाय महात्मने॥ १६

तेन नीतं यज्ञपशुमाहर्तुं कः क्षमः क्षितौ।
श्रीकृष्णचन्द्रो भगवान् सहायस्तस्य विद्यते॥ १७

शुभं स्याद्दानमानाभ्यां न चेद्युद्धं भविष्यति।

वीरधन्वोवाच

गुणाकरो नृपेशो यः शक्रेणापि प्रपूजितः॥ १८

नरेश्वर! इतनेमें ही उस घोड़ेको खोजती हुई वीरधन्वाकी सेना वहाँ आ पहुँची। उसकी सेनाके लोग यादववाहिनीसे उड़ती हुई धूलको देखकर आश्चर्यचकित हो दूर ही खड़े रह गये॥ ९॥

वे मन-ही-मन सोचने लगे—'प्रचण्डपराक्रमी राजा गुणाकरके शासन-कालमें कुरुखण्ड-मण्डलमें दस्यु किंवा लुटेरे कहीं नहीं हैं। गौओंके चरकर लौटनेका भी समय नहीं हुआ है। कहींसे बवण्डर उठा हो, यह भी नहीं जान पड़ता। फिर यह सूर्यमण्डलको आच्छादित कर लेनेवाला धूल-समूह कहाँसे आया?'॥ १०॥

दूसरी सेनाके लोग जब इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय धनुषकी टंकार, हाथियोंकी चिंघाड़, गजराजोंकी चीत्कार, घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा रणवाद्योंकी ध्वनि—इन सबकी मिली-जुली आवाज सुनायी दी॥ ११॥

तब श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नकी प्रेरणासे उद्धवजी तुरंत ही वीरधन्वाकी सेनामें पहुँचकर, रथपर बैठे हुए गुणाकरके औरस-पुत्र सूर्यतुल्य तेजस्वी वीरधन्वाको प्रणाम करके उनसे इस प्रकार बोले—'राजन्! भूपालोंके इन्द्र, द्वारकाधीश, यदुकुल-भूषण महाराज उग्रसेन जम्बूद्वीपके राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे॥ १२-१३॥

उनकी प्रेरणासे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ वीर प्रद्युम्न भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षको जीतकर उत्तरकुरुवर्षमें पधारे हैं। उत्तरकुरुवर्षके स्वामी भी महात्मा प्रद्युम्नको अवश्य भेंट देंगे॥ १४-१५॥

दस अक्षौहिणी सेनाके साथ आये हुए प्रद्युम्नका कुबेरने भी पूजन किया है, अतः तुम्हें भी महात्मा प्रद्युम्नको उपहार देना चाहिये। उनके द्वारा बाँधे गये यज्ञपशुको लौटा लेनेकी शक्ति इस भूतलपर और किसमें है? साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके सहायक हैं। यदि उपहार-दान और सम्मान करो, तब तो भला होगा; अन्यथा युद्ध होना अनिवार्य है'॥ १६—१७ १/२॥

वीरधन्वाने कहा—राजाधिराज गुणाकरका पूजन तो देवराज इन्द्रने भी किया है॥ १८॥

न दास्यति बलिं सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने।
शृङ्गवत्पर्वते रम्ये वाराहो विद्यते हरिः॥ १९

यस्य सेवां सदा भूमिः करोति परमादरात्।
तस्य क्षेत्रे तपस्तेपे ध्यात्वा देवं गुणाकरः॥ २०

वर्षाणामयुते पूर्णे हरिर्वाराहरूपधृक्।
सन्तुष्टो नृपतिं भक्तं वरं ब्रूहीत्युवाच ह॥ २१

राजोवाच हरिं नत्वा रोमाञ्ची प्रेमविह्वलः।
भगवंस्त्वामृते देवोऽसुरोऽन्योऽपि नरोऽथवा॥ २२

मां जेता न भवेद्भूमावीप्सितोऽयं वरो मम।
तथास्तु चोक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत॥ २३

तस्मात्तस्य यशः शीघ्रं कर्तव्यं मोचनं स्वतः।
न चेद्भवद्भिश्च कलिं करिष्यामि न संशयः॥ २४

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त उद्धवस्तस्मात्स्वां सेनामेत्य भूपते।
शशंस सर्वं यद्भूतं यदूनां सदसि त्वरम्॥ २५

श्रुतकर्मा वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः।
शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः सोमकोऽवर एव च॥ २६

कालिन्दीनन्दना ह्येते प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः।
अक्षौहिणीभिर्दशभिर्वृता योद्धुं समागताः॥ २७

उत्तरैः कुरुभिः सार्धं यदूनां चण्डविक्रमैः।
बभूव तुमुलं युद्धमब्धीनामब्धिभिर्यथा॥ २८

स्फुरद्भिर्निशितैः शस्त्रै रेजिरे वीरपुङ्गवाः।
क्षणमात्रेण रुधिरप्रभवा रौद्ररूपिणी॥ २९

नदी बभूव राजेन्द्र शतयोजनविस्तृता।
विदुद्रुवुस्तदा शेषा उत्तराः कुरवो जनाः॥ ३०

शरत्काले यथा प्राप्ते मेघसङ्घा इतस्ततः।
पूर्णमासो महावीरः कालिन्दीनन्दनो बली॥ ३१

चूर्णयामास बाणौघैः स्यन्दनं वीरधन्वनः।
वीरधन्वापि विरथो धनुष्टङ्कारयन् मुहुः॥ ३२

अतः वे महात्मा प्रद्युम्नको भेंट नहीं देंगे। रमणीय शृङ्गवान् पर्वतपर भगवान् वराह विद्यमान हैं, जिनकी सेवा भूमिदेवी सदा अत्यन्त आदरके साथ करती हैं। उन्हींके क्षेत्रमें राजा गुणाकरने भगवान् वराहके ध्यानपूर्वक तपस्या की है॥ १९-२०॥

दस हजार वर्ष पूर्ण होनेपर वाराहरूपधारी भगवान् हरिने संतुष्ट होकर अपने भक्त राजासे कहा— 'वर माँगो।' राजाने श्रीहरिको नमस्कार करके पुलकित और प्रेमसे विह्वल होकर कहा—'भगवन्! आपको छोड़कर दूसरा कोई देवता, असुर अथवा मनुष्य मुझे भूतलपर जीतनेवाला न हो, यही मेरा अभीष्ट वर है।' तब 'तथास्तु' कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। इसलिये महाराज गुणाकरके यशःस्वरूप अश्वको आपलोग स्वतः छोड़ दें। नहीं तो, मैं आपलोगोंके साथ युद्ध करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ २१—२४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वीरधन्वाके यों कहनेपर उद्धवने वहाँसे शीघ्र अपनी सेनामें आकर वहाँ जो बात हुई थी, वह सब यादवोंकी सभामें सुना दी। तब श्रुतकर्मा, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, एकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और कनिष्ठ सोमक—कालिन्दीके ये दस पुत्र प्रद्युम्नके देखते-देखते दस अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये आगे आ गये॥ २५—२७॥

फिर तो प्रचण्ड-पराक्रमी उत्तरकुरुवासियोंके साथ यादव-वीरोंका इस प्रकार तुमुल युद्ध होने लगा, जैसे दो समुद्र आपसमें टकरा गये हों। चमकते हुए तीखे अस्त्र-शस्त्रोंसे वीर-शिरोमणियोंकी बड़ी शोभा होने लगी। क्षणमात्रमें रक्तकी बड़ी भयंकर नदी बह चली॥ २८-२९॥

राजेन्द्र! वह रुधिरकी नदी सौ योजनतक फैल गयी। तब मरनेसे बचे हुए उत्तरकुरुके लोग भाग चले—ठीक उसी तरह जैसे शरत्काल आनेपर बादलोंके समूह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कालिन्दीके बलवान् पुत्र महावीर पूर्णमासने अपने बाण-समूहोंद्वारा वीरधन्वाके रथको चूर-चूर कर दिया। वीरधन्वाने रथहीन हो जानेपर भी बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए महाबली पूर्णमासपर बीस बाणोंसे प्रहार किया,

जघान बाणविंशत्या पूर्णमासं महाबलम्।
पूर्णमासः स्वबाणेन मध्यतस्तान् द्विधाकरोत्॥ ३३

वीरधन्वाथ चिच्छेद धनुर्ज्यां तस्य नादिनीम्।
बाणेनैकेन राजेन्द्र कुवाक्येनेव मित्रताम्॥ ३४

लक्षभारमयीं गुर्वीं गदामादाय सत्वरम्।
जघान वीरधन्वानं पूर्णमासो महाबलः॥ ३५

गदाप्रहारव्यथितो वीरधन्वा मदोत्कटः।
परिघेण जघानाशु पूर्णमासं हरेः सुतम्॥ ३६

पूर्णमासः समुत्थाय पवनं नाम पर्वतम्।
समुत्पाट्य स्थितो भूत्वा हस्ताभ्यां श्रीहरेः सुतः॥ ३७

वीरधन्वा समुत्पाट्य पाहिपात्रं च पर्वतम्।
स्थितो भूत्वा महाबाहुर्ननाद रणमण्डले॥ ३८

द्वयोराक्षेपणात् सद्यो मर्दितौ धर्षितौ गिरी।
पतितौ भूतले चूर्णीचक्रतुश्चोत्तरान् कुरून्॥ ३९

गृहीत्वा वीरधन्वाख्यं पूर्णमासो हरेः सुतः।
भ्रामयित्वाथ चिक्षेप वाराह्यां पुरि वेगतः॥ ४०

वीरधन्वा प्रपतितो गुणाकरक्रतुस्थले।
मूर्च्छितो भग्नवेगोऽभूदुद्वमन् रुधिरं मुखात्॥ ४१

हाहाकारो महानासीद्वाराह्यां पुरि दुःखतः।
देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तदा॥ ४२

पूर्णमासोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे।
यज्ञादुत्थाय नृपतिः पुत्रं दृष्ट्वा च मूर्च्छितम्॥ ४३

गृहीत्वा दिव्यकोदण्डं युद्धं कर्तुं मनो दधे।
होता धर्मविदां श्रेष्ठो मुनीन्द्रः सर्ववित्कविः॥
गन्तुमभ्युत्थितं वीक्ष्य वामदेवस्तमब्रवीत्॥ ४४

वामदेव उवाच

राजंस्त्वं हि न जानासि परिपूर्णतमं हरिम्।
सुराणां महदर्थाय जातं यदुकुले स्वयम्।
भुवो भारावताराय भक्तानां रक्षणाय च॥ ४५

भूत्वा यदुकुले साक्षाद् द्वारकायां विराजते।
तेन कृष्णेन पुत्रोऽयं प्रद्युम्नो यादवेश्वरः।
उग्रसेनमखार्थाय जगज्जेतुं प्रणोदितः॥ ४६

परंतु पूर्णमासने स्वयं भी बाण मारकर उन बीसों बाणोंके बीचसे दो-दो टुकड़े कर दिये॥ ३०—३३॥

राजेन्द्र! वीरधन्वाने भी एक बाण मारकर पूर्णमासकी गम्भीर ध्वनि करनेवाली प्रत्यञ्चाको उसी तरह काट दिया, जैसे कोई कटुवचनसे मित्रताको खण्डित कर देता है। तब महाबली पूर्णमासने लाख भारकी बनी हुई भारी गदा हाथमें ले तुरंत ही वीरधन्वापर दे मारी॥ ३४-३५॥

गदाके प्रहारसे व्यथित हो मदोत्कट योद्धा वीरधन्वाने श्रीकृष्णपुत्र पूर्णमासपर परिघसे प्रहार किया। तब पूर्णमासने उठकर अपने दोनों हाथोंसे पवन नामक पर्वतको उखाड़ लिया। फिर महाबाहु वीरधन्वाने भी पाहिपात्र नामक पर्वतको उखाड़ा और वह रणभूमिमें खड़ा होकर गरजने लगा। उन दोनों योद्धाओंके द्वारा एक-दूसरेपर फेंके जानेसे मर्दित-धर्षित हुए उन पर्वतोंने उत्तर कुरुदेशको भी चूर-चूर कर दिया। तब श्रीकृष्णपुत्र पूर्णमासने वीरधन्वाको उठाकर वेगपूर्वक घुमाते हुए उसे वाराहीपुरीमें फेंक दिया। वे वीरधन्वा गुणाकरके यज्ञस्थलमें जा गिरे और मुँहसे रक्त वमन करते हुए मूर्च्छित हो गये। उनका युद्धविषयक वेग नष्ट हो गया था॥ ३६—४१॥

उस समय वाराहीपुरीमें महान् हाहाकार मच गया। देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवताओंने पूर्णमासके ऊपर फूलोंकी वर्षा की। अपने पुत्रको मूर्च्छित हुआ देख राजा गुणाकर यज्ञस्थलसे उठकर खड़े हो गये और उन्होंने अपना दिव्य कोदण्ड लेकर युद्ध करनेका विचार किया। धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ और सर्वज्ञ विद्वान् मुनीन्द्र वामदेव उस यज्ञमें होता थे। उन्हें युद्धमें जानेके लिये उद्यत देख वामदेवजीने उनसे कहा॥ ४२—४४॥

वामदेवजी बोले—राजन्! तुम नहीं जानते कि परिपूर्णतम परमात्मा श्रीहरि देवताओंका महान् कार्य सिद्ध करनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। पृथ्वीका भार उतारने और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हो वे साक्षात् भगवान् द्वारकापुरीमें विराजते हैं। उन्हीं श्रीकृष्णने उग्रसेनके यज्ञकी सिद्धिके लिये सम्पूर्ण जगत्को जीतनेके निमित्त अपने पुत्र यादवेश्वर प्रद्युम्नको भेजा है॥ ४५-४६॥

गुणाकर उवाच

परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
लक्षणं वद मे ब्रह्मंस्त्वं परावरवित्तमः॥ ४७

वामदेव उवाच

यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि।
तं वदन्ति परं साक्षात्परिपूर्णतमं हरिम्॥ ४८

अंशांशोंऽशस्तथावेशः कला पूर्णः प्रकथ्यते।
व्यासाद्यैश्च स्मृतः षष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम्॥ ४९

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि।
एककार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह॥ ५०

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा कृष्णस्य माहात्म्यं बलिं नीत्वा गुणाकरः।
वैरं विसृज्य प्रद्युम्नदर्शनार्थं समाययौ॥ ५१

कार्ष्णिं प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा दत्वा बलिं ततः।
अश्रुपूर्णमुखो भूत्वा प्राह गद्‌गदया गिरा॥ ५२

गुणाकर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म कुलं मेऽद्य दिने शुभम्।
अद्य क्रतुक्रियाः सर्वाः सफलास्तव दर्शनात्॥ ५३

त्वदङ्घ्रिभक्तिः परमार्थलक्षणा
सदा भवेत्सज्जनसङ्गमात्परा।
त्वमेव साक्षान्निजभक्तवत्सलः
परेश भूमन् परिपाहि पाहि॥ ५४

प्रद्युम्न उवाच

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिस्ते प्रेमलक्षणा।
मद्भक्तसङ्गमो भूयाच्छ्रीः स्याद्भागवतां त्विह॥ ५५

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् कार्ष्णिः प्रसन्नो भक्तवत्सलः।
ददौ तस्मै नृपतये हयमेधतुरङ्गमम्॥ ५६

गुणाकरने कहा—ब्रह्मन्! आप परावरवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः मुझे परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णका लक्षण बताइये॥ ४७॥

वामदेवजी बोले—जिनके अपने तेजमें अन्य सारे तेज लीन हो जाते हैं, उन्हें साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा श्रीहरि कहते हैं। अंशांश, अंश, आवेश, कला तथा पूर्ण—अवतारके ये पाँच भेद हैं। व्यास आदि महर्षियोंने छठा परिपूर्णतम तत्त्व कहा है। परिपूर्णतम तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि उन्होंने एक कार्यके लिये आकर करोड़ों कार्य सिद्ध किये हैं॥ ४८—५०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णका माहात्म्य सुनकर राजा गुणाकरने वैर छोड़ दिया और भेंट-उपहार लेकर वे प्रद्युम्नका दर्शन करनेके लिये आये। श्रीकृष्णकुमारकी परिक्रमा करके राजाने उन्हें नमस्कार किया और भेंट देकर नेत्रोंसे अश्रु बहाते हुए वे गद्‌गद वाणीमें बोले—॥ ५१-५२॥

गुणाकरने कहा—प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया। आजके दिन मेरा कुल पवित्र हुआ। आज मेरे सारे क्रतु और सम्पूर्ण क्रियाएँ आपके दर्शनसे सफल हो गयीं। परेश! भूमन्! आपके चरणोंकी भक्ति ही परमार्थरूपा है। साधुपुरुषोंके सङ्गसे आपकी वह परा भक्ति हमें सदा प्राप्त हो। आप ही अपने भक्तोंपर कृपा करनेवाले साक्षात् भक्त-वत्सल भगवान् हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ५३-५४॥

प्रद्युम्नने कहा—राजन्! आपको ज्ञान और वैराग्यसे युक्त प्रेमलक्षणा-भक्ति तो प्राप्त ही है, मेरे भक्तोंका सङ्ग भी आपको मिलता रहे। आपके यहाँ भागवती श्री सदा बनी रहे॥ ५५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर प्रसन्न हुए भक्तवत्सल श्रीकृष्णकुमार भगवान् प्रद्युम्नने राजाको अश्वमेधयज्ञका घोड़ा लौटा दिया॥ ५६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उत्तरकुरुखण्डविजयो नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उत्तरकुरुवर्षपर यादवोंकी विजय' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

प्रद्युम्नकी हिरण्मयवर्षपर विजय; मधुमक्खियों और वानरोंके आक्रमणसे छुटकारा; राजा देवसखसे भेंटकी प्राप्ति तथा चन्द्रकान्तानदीमें स्नान

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नोऽथ महाबाहुर्जित्वारादुत्तरान् कुरून्।
हिरण्मयं नाम खण्डं जेतुं कार्ष्णिर्जगाम ह॥ १

यत्र सीमागिरिर्दीर्घः स्रोतो नाम स्फुरद्द्युतिः।
तत्र कूर्मो हरिः साक्षादर्यमा यस्य देशिकः॥ २

पुष्पमालानदीतीरे नाम्ना चित्रवनं महत्।
सपुष्पफलभाराढ्यं कन्दमूलनिधिः स्वतः॥ ३

वानराः सन्ति तत्रापि वंशजा नलनीलयोः।
न्यस्ताः श्रीरामचन्द्रेण त्रेतायां मैथिलेश्वर॥ ४

सैन्यघोषं च तं श्रुत्वा युद्धकामा विनिर्गताः।
प्रद्युम्नसैन्ये चोत्पेतुर्भ्रूभङ्गैः क्रोधमूर्च्छिताः॥ ५

नखैर्दन्तैश्च लाङ्गूलैर्गजानश्वान्नरान्नृप।
लाङ्गूलैश्च रथान् बद्ध्वा चिक्षिपुस्त्याम्बरे बलात्॥ ६

विजयध्वजनाथस्य विजयस्यार्जुनस्य च।
रथं बद्ध्वाथ लाङ्गूले केचिदुत्पेतुरम्बरे॥ ७

कपिध्वजध्वजे साक्षात्कपीन्द्रो भगवान् प्रभुः।
क्रोधाढ्यः फाल्गुनसखः समग्रं सर्वतो दिशम्॥ ८

लाङ्गूलेन च तान् बद्ध्वा पातयामास भूतले।
तदा प्रहर्षिताः सर्वे ज्ञात्वा श्रीरामकिङ्कराः॥ ९

नेमुस्तं सर्वतो राजन् कृताञ्जलिपुटाः शनैः।
केचिदालिङ्गनं चक्रुः केचिदुत्पेतुरोजसा॥ १०

केचिच्चुचुम्बुर्लाङ्गूलं केचित्पादं च वानराः।
तानालिङ्ग्य महावीरः स्पृष्ट्वा सत्पाणिना पुनः॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! महाबाहु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उत्तरकुरुवर्षपर विजय पाकर 'हिरण्मय' नामक वर्षको जीतनेके लिये गये, जहाँ 'स्रोत' नामका विशाल एवं दीप्तिमान् सीमापर्वत शोभा पाता है। वहाँ कूर्मावतारधारी साक्षात् भगवान् श्रीहरि विराजते हैं और अर्यमा उनकी आराधनामें रहते हैं॥ १-२॥

हिरण्मयवर्षमें 'पुष्पमाला' नदीके तटपर 'चित्रवन' नामसे प्रसिद्ध एक विशाल वन है, जो फूलों और फलोंके भारसे लदा रहता है। कंद और मूलकी तो वह स्वतः निधि ही है। मैथिलेश्वर! वहाँ नल और नीलके वंशज वानर रहते हैं, जिन्हें त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने स्थापित किया था॥ ३-४॥

सेनाका कोलाहल सुनकर वे युद्धकी कामनासे बाहर निकले और भौंहें टेढ़ी किये, क्रोधके वशीभूत हो, उछलते हुए प्रद्युम्नकी सेनापर टूट पड़े। नरेश्वर! वे नखों, दाँतों और पूँछोंसे घोड़ों, हाथियों और मनुष्योंको घायल करने लगे। रथोंको अपनी पूँछोंमें बाँधकर वे बलपूर्वक आकाशमें फेंक देते थे॥ ५-६॥

कुछ वानर विजयध्वजनाथके विजयरथको और अर्जुनके कपिध्वज रथको लाङ्गूलमें बाँधकर आकाशमें उड़ गये। कपिध्वज अर्जुनकी ध्वजापर साक्षात् भगवान् कपीन्द्र हनुमान् निवास करते थे। वे अर्जुनके सखा थे। उन्होंने कुपित हो सम्पूर्ण दिशाओंमें अपनी पूँछ घुमाकर उन आक्रमणकारी वानरोंको बाँध-बाँधकर पृथ्वीपर पटकना आरम्भ किया। तब उन्हें पहचानकर समस्त श्रीरामकिंकर वानर हर्षसे भर गये॥ ७—९॥

राजन्! उन वानरोंने हाथ जोड़कर धीरे-धीरे सब ओरसे आकर पवनपुत्रको प्रणाम किया। कुछ आलिङ्गन करने लगे, कुछ वेगसे उछलने लगे और कुछ वानर उनकी पूँछ और पैरोंको चूमने लगे। महावीर अञ्जनीकुमारने उन्हें हृदयसे लगाकर उनके

दत्त्वाशिषं तत्कुशलं पप्रच्छाथाञ्जनीसुतः।
नत्वा तं वानराः सर्वे जग्मुश्चित्रवनं नृप॥ १२

हनुमानर्जुनस्यापि ध्वजे ह्यन्तरधीयत।
मकराख्यात्ततो देशात्प्रद्युम्नो मीनकेतनः॥ १३

ययौ वृष्णिवरैः सार्धं दुन्दुभीन् वादयन् मुहुः।
मकरस्य गिरेः पार्श्वे दुन्दुभिध्वनिभिस्ततः॥ १४

मधुभक्ष्या मधुकराः कोटिशः प्रोत्थिताः किल।
तैर्दंशितं बलं सर्वं हस्तिचीत्कारसंयुतम्॥ १५

तदा कार्ष्णिर्महाबाहुः पवनास्त्रं समादधे।
तद्वातताडिता राजन् गतास्तेऽपि दिशो दश॥ १६

तत्र देशे जना राजन् सर्वे वै मकराननाः।
ततस्तु डिण्डिभो देशस्तत्र हस्तिमुखा जनाः॥ १७

एवं देशांस्ततः पश्यंस्त्रिशृङ्गविषयान् गतः।
कार्ष्णिर्ददर्श तत्रापि मनुष्यान् शृङ्गधारिणः॥ १८

त्रिशृङ्गस्य गिरेः पार्श्वे नगरीं स्वर्णचर्चिकाम्।
हेमसौधमयीं दिव्यां रत्नप्राकारमण्डिताम्॥ १९

चन्द्रकान्तानदीतीरे शोभितां मङ्गलालयाम्।
कार्ष्णिः समाययौ राजन् यथा शक्रोऽमरावतीम्॥ २०

हिरण्यवर्णैः पुरुषैः स्त्रीजनैश्च तडिद्द्युभिः।
नागैश्च नागकन्याभिः पुरीं भोगवतीमिव॥ २१

तत्र राजा महावीरो नाम्ना देवसखो बली।
स मन्मुखाद्बलं श्रुत्वा बलिं नीत्वा हिरण्मयम्॥ २२

प्रद्युम्नं पूजयामास भक्त्या परमया पुनः।
तं पप्रच्छ महाबाहुः प्रद्युम्नो भगवान् हरिः॥ २३

चन्द्रवत्ते कथं शोभा सर्वेषां च वदाशु मे।

शरीरपर हाथ फेरा और उन्हें आशीर्वाद देकर उनका कुशल-समाचार पूछा। नरेश्वर! उन्हें प्रणाम करके सब वानर चित्रवनमें चले गये और हनुमान्जी अर्जुनकी ध्वजामें अन्तर्धान हो गये॥ १०—१२ १/२॥

तदनन्तर मीनध्वज प्रद्युम्न मकर नामक देशसे होते हुए वृष्णिवंशियोंके साथ बार-बार दुन्दुभि बजवाते हुए आगे बढ़े। मकरगिरिके पास उनकी दुन्दुभियोंकी ध्वनि सुनकर मधु भक्षण करनेवाली करोड़ों मधुमक्खियाँ उड़कर आ गयीं। उन्होंने सारी सेनाको डँसना आरम्भ किया। उस समय हाथी भी चीत्कार कर उठे। तब महाबाहु श्रीकृष्णकुमारने वायव्यास्त्रका संधान किया। राजन्! उस अस्त्रसे उठी हुई वायुसे प्रताड़ित हो वे सब मधुमक्खियाँ दसों दिशाओंमें उड़ गयीं। मिथिलेश्वर! उस देशके सभी मनुष्योंके मुख मगर-से थे॥ १३—१६ १/२॥

उसके बाद डिण्डिभदेश आया, जहाँ हाथियोंके समान मुखवाले लोग दिखायी दिये। इस प्रकार अनेक देशोंका दर्शन करते हुए श्रीकृष्णकुमार त्रिशृङ्गदेशमें गये। वहाँ भी उन्होंने शृङ्गधारी मनुष्य देखे॥ १७-१८॥

त्रिशृङ्गगिरिके पास स्वर्णचर्चिका नामकी नगरी थी, जिसमें सोनेके महल शोभा पाते थे। वह दिव्य पुरी रत्ननिर्मित परकोटोंसे सुशोभित थी। मङ्गलकी निवासभूता वह नगरी चन्द्रकान्तानदीके तटपर विराजमान थी। राजन्! जैसे इन्द्र अमरावतीपुरीमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार प्रद्युम्नने उस पुरीमें पदार्पण किया॥ १९-२०॥

जैसे नागों और नागकन्याओंसे भोगवतीपुरीकी शोभा होती है, उसी प्रकार विद्युत्की-सी दीप्तिवाले सुवर्णसदृश गौरवर्णके स्त्री-पुरुषोंसे वह स्वर्णचर्चिका नगरी सुशोभित थी। वहाँके बलवान् राजा महावीर देवसख नामसे प्रसिद्ध थे। उन्होंने मेरे मुँहसे यादव-सेनाके बलका वृत्तान्त सुनकर भेंटकी सुवर्णमय सामग्री ले, बड़े भक्तिभावसे प्रद्युम्नका पूजन किया। महाबाहु भगवान् प्रद्युम्न हरिने उनसे पूछा—'आप सब लोगोंकी शोभा चन्द्रमाके समान कैसे है? यह मुझे शीघ्र बताइये'॥ २१—२३ १/२॥

देवसख उवाच

अर्यम्णा पितृपतिना कूर्मरूपस्य मापतेः॥ २४

अङ्घ्री प्रक्षालितौ तेन वारिणाभून्महानदी।
श्वेतपर्वतशृङ्गाच्चावतरन्ती यदूत्तम॥ २५

प्रमेधाख्यो मनुसुतो गोपालो गुरुणा कृतः।
जघान कपिलां रात्रावसिना सिंहशङ्कया॥ २६

वसिष्ठेन तदा शप्तः शूद्रत्वं समुपागतः।
कुष्ठेन पीडिततनुः पर्यटंस्तीर्थमाचरन्॥ २७

अस्यां नद्यां यदा स्नातो गलत्कुष्ठान्मनोः सुतः।
मुक्तोऽभूच्चन्द्रवत्तस्य देहशोभा बभूव ह॥ २८

चन्द्रकान्ता नदी चेयं प्रसिद्धाभूद्धिरणमये।
तस्यां मुक्तो यतः स्नात्वा गलत्कुष्ठान्मनोः सुतः॥ २९

ततः स्नानं च कर्तारो वयं सर्वे नृपोत्तम।
रूपेण चन्द्रतुल्याः कौ भवामोऽत्र न संशयः॥ ३०

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा महाबाहुः प्रद्युम्नो यादवैः सह।
चन्द्रकान्तां नदीं स्नात्वा ददौ दानान्यनेकशः॥ ३१

देवसख बोले—यदूत्तम! पितरोंके स्वामी अर्यमाने कूर्मरूपधारी भगवान् लक्ष्मीपतिके दोनों चरणोंका जिस जलसे प्रक्षालन किया, उस चरणोदकसे एक महानदी प्रकट हो गयी, जो श्वेत-पर्वतके शिखरसे नीचेको उतरती है॥ २४-२५॥

एक समयकी बात है—मनुके पुत्र प्रमेधाको उनके गुरुने गौओंकी रक्षाका कार्य सौंपा था। उन्होंने रात्रिके समय सिंहकी आशङ्कासे तलवार चलाकर बिना जाने एक कपिला गौका वध कर दिया। तब गुरुवर वसिष्ठके शापसे वे शूद्रत्वको प्राप्त हो गये और उनका शरीर कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गया। तब वे तीर्थोंमें विचरने लगे॥ २६-२७॥

इस नदीमें स्नान करके वे मनुपुत्र गलितकुष्ठ रोगसे मुक्त हो गये और उनके शरीरकी कान्ति चन्द्रमाके समान हो गयी। तभीसे हिरण्मयवर्षके भीतर यह नदी 'चन्द्रकान्ता' नामसे प्रसिद्ध हुई। जबसे मनुकुमार प्रमेधा चन्द्रकान्तानदीमें स्नान करके गलित-कुष्ठसे मुक्त हुए, तबसे हम सब लोग नियमपूर्वकइस नदीमें स्नान करने लगे। नृपोत्तम! यही कारण है कि इस पृथ्वीपर हमलोग चन्द्रमाके तुल्य रूपवाले हैं, इसमें संशय नहीं है॥ २८—३०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर महाबाहु प्रद्युम्नने यादवोंके साथ चन्द्रकान्तानदीमें स्नान करके अनेक प्रकारके दान दिये॥ ३१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे हिरण्मयखण्डविजयो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'हिरण्मयवर्षपर विजय' नामक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

रम्यकवर्षमें कलङ्क राक्षसपर विजय; नैःश्रेयसवन, मानवी नगरी तथा मानवगिरिका दर्शन; श्राद्धदेव मनुद्वारा प्रद्युम्नकी स्तुति

श्रीनारद उवाच

एवं हिरणमयं खण्डं जित्वा कार्ष्णिर्महाबलः।
जगाम रम्यकं खण्डं देवलोकमिव स्फुरन्॥ १

तस्य सीमागिरिः साक्षान्नीलो नाम नगाधिराट्।
तत्रोत्तरे कालदेशे नगरी भीमनादिनी॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार हिरण्मयखण्डपर विजय पाकर महाबली प्रद्युम्न देव-लोककी भाँति प्रकाशित होनेवाले रम्यकवर्षमें गये। उसका सीमा-पर्वत साक्षात् गिरिराज 'नील' है। उसके उत्तरवर्ती काल नामक देशमें भयंकर नादसे परिपूर्ण 'भीमनादिनी' नामकी नगरी है॥ १-२॥

कालनेमिसुतस्तत्र कलङ्को नाम राक्षसः।
त्रेतायुगे रामचन्द्राद्भीतो युद्धात्पलायितः॥ ३

लङ्कापुर्या इहागत्य वासकृद्राक्षसैः सह।
रक्षसामयुतेनासौ युद्धाय कृतनिश्चयः॥ ४

खरारूढः कृष्णवर्णो यदूनां बलमाययौ।
यदूनां राक्षसानां च घोरं युद्धं बभूव ह॥ ५

प्रघोषो गात्रवान् सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः।
सह ओजो महाशक्तिरपराजित एव च॥ ६

लक्ष्मणानन्दना ह्येते श्रीकृष्णस्य सुताः शुभाः।
सर्वेषामग्रतः प्राप्ता बाणैस्तीक्ष्णैः स्फुरत्प्रभैः॥ ७

राक्षसानां बलं जघ्नुर्वायुवेगैर्यथा घनम्।
बाणौघैश्छिन्नभिन्नाङ्गा राक्षसा रणदुर्मदाः॥ ८

त्रिशूलानां मुद्गराणां वर्षं चक्रुर्मदोत्कटाः।
कलङ्कस्तु तदा प्राप्तश्चर्वयन् वारणान् रथान्॥ ९

हयान्नरान् सशस्त्रास्त्रान् मुखे चिक्षेप सत्वरम्।
गजान् पादेषु चोन्नीय सनीडान् रत्नकम्बलान्॥ १०

घण्टानादसमायुक्तान् प्राक्षिपच्चाम्बरे बलात्।
प्रघोषः श्रीहरेः पुत्रः कपीन्द्रास्त्रं समादधे॥ ११

तद्बाणनिर्गतः साक्षाद्वायुपुत्रो महाबलः।
वातस्तूलमिवाकाशे चिक्षेप शतयोजनम्॥ १२

हनुमन्तं तदा ज्ञात्वा कलङ्को राक्षसेश्वरः।
लक्षभारमयीं गुर्वीं गदां चिक्षेप नादयन्॥ १३

उत्पपात कपिर्वेगाद्गदा भूमौ पपात ह।
उत्पतन् वानराधीशो भ्रूभङ्गं कारयन् मुहुः॥ १४

मुष्टिना घातयित्वा तं किरीटं तस्य चाददे।
कलङ्कोऽपि तदा तस्मै त्रिशूलं स्वं समाददे॥ १५

उत्पतन् स कपिर्वेगात् पृष्ठदेशं पपात ह।
हनुमांस्तं तदा दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले॥ १६

वहाँ कालनेमिका पुत्र कलङ्क नामका राक्षस रहता था, जो त्रेतायुगमें श्रीरामचन्द्रजीसे डरकर युद्धभूमिसे भाग आया था। वह लङ्कापुरीसे यहाँ आकर राक्षसोंके साथ निवास करता था। उसने दस हजार राक्षसोंके साथ यादवोंसे युद्ध करनेका निश्चय किया॥ ३-४॥

काले रंगका वह राक्षसराज गधेपर आरूढ़ हो यादव-सेनाके सामने आया। यादवों और राक्षसोंमें घोर युद्ध होने लगा। प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, सह, ओज, महाशक्ति तथा अपराजित— लक्ष्मणाके गर्भसे उत्पन्न हुए श्रीकृष्णके ये दस कल्याणस्वरूप पुत्र तीखे और चमकीले बाणोंकी वर्षा करते हुए सबसे आगे आ गये॥ ५—७॥

जैसे वायुके वेगसे बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार उन्होंने बाणसमूहोंद्वारा राक्षस-सेनाको तहस-नहस कर दिया। उनके बाणोंसे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जानेपर वे रणदुर्मद राक्षस मदमत्त हो यादव-सेनापर त्रिशूलों और मुद्गरोंकी वर्षा करने लगे। उस समय [राक्षसराज] कलङ्क हाथियों तथा रथियोंको चबाता हुआ आगे बढ़ा॥ ८-९॥

वह घोड़ों और अस्त्र-शस्त्रोंसहित मनुष्योंको तत्काल मुँहमें डाल लेता था। हौदों, रत्नजटित झूलों तथा घण्टानादसे युक्त हाथियोंको पैरोंकी ओरसे उठाकर बलपूर्वक आकाशमें फेंक देता था। तब श्रीहरिके पुत्र प्रघोषने कपीन्द्रास्त्रका संधान किया॥ १०-११॥

उस बाणसे साक्षात् वायुपुत्र महान् बलवान् हनुमान् प्रकट हुए। उन्होंने जैसे वायु रूईको उड़ा देती है, उसी प्रकार उस राक्षसको आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया। तब हनुमान्‌जीको पहचानकर राक्षसराज कलङ्कने गर्जना करते हुए लाख भारकी बनी हुई भारी गदा उनके ऊपर फेंकी॥ १२-१३॥

हनुमान्‌जी वेगसे उछले और वह गदा भूमिपर गिर पड़ी। उछलते हुए वानरराजने, बार-बार भौंहें टेढ़ी करते हुए कलङ्कको एक मुक्का मारा और उसका किरीट ले लिया। तब कलङ्कने भी उस समय उन्हें मारनेके लिये अपना त्रिशूल हाथमें लिया; किंतु वे कपीन्द्र हनुमान् वेगसे उछलकर उसकी पीठपर कूद पड़े और दोनों हाथोंसे पकड़कर उसे भूमिपर गिरा दिया॥ १४—१६॥

वैदूर्यपर्वतं नीत्वा तस्योपरि समाक्षिपत्।
गिरिपातेन चूर्णाङ्गो मर्दितः पञ्चतां ययौ॥ १७

तदा जयजयारावः शङ्खध्वनियुतोऽभवत्।
हनुमान् भगवान् साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत॥ १८

प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे।
अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः॥ १९

मनोहरां स्वर्णमयीं मानवीं नगरीं ययौ।
नैःश्रेयसवनं तत्र कल्पवृक्षलतावृतम्॥ २०

हरिचन्दनमन्दारपारिजातोपशोभितम् ।
सन्तानामोदसम्मिश्रवायुभिः सुरभीकृतम्॥ २१

केतकीचम्पकलताकुटजैः परिसेवितम्।
माधवीनां लताजालैः पुष्पितैः सफलैर्वृतम्॥ २२

नदद्विहङ्गालिकुलैर्वैकुण्ठमिव सुन्दरम्।
योजनानां पञ्चशतं लम्बितं चारुधिं गिरिम्॥ २३

अधोऽधः शोभितं राजञ्छतयोजनविस्तृतम्।
पुंस्कोकिलैः कोकिलैश्च मयूरैः सारसैः शुकैः॥ २४

चक्रवाकैश्चकोरैश्च हंसैर्दात्यूहकूजितम्।
सर्वर्तुपुष्पशोभाढ्यमाक्षिपन्नन्दनं वनम्॥ २५

मृगशावा रमन्ते वै शार्दूलैः सह मैथिल।
नकुलाः फणिभिः सार्धं यत्र वैरविवर्जिताः॥ २६

अयुतं सरसां यत्र भ्रमरध्वनिसंयुतम्।
सहस्रपत्रैः कमलैः शतपत्रैः स्फुरत्प्रभैः॥ २७

इतस्ततो वर्तमानमानन्दमिव मूर्तिमत्।
तद्वनं सुन्दरं दृष्ट्वा निर्गतान्नगरीजनान्।
पप्रच्छ वाञ्छितं साक्षात्प्रद्युम्नः सर्ववित्कविः॥ २८

श्रीप्रद्युम्न उवाच

कस्येयं नगरी रम्या कस्येदं वनमद्भुतम्।
वदताशु सविस्तारं हे लोकाः पुण्यशासनाः॥ २९

फिर वैदूर्यपर्वतको ले जाकर उसके ऊपर डाल दिया। पर्वतके गिरनेसे उसका कचूमर निकल गया, उसके सारे अङ्ग चूर-चूर हो गये और वह मृत्युका ग्रास बन गया॥ १७॥

उस समय शङ्खध्वनिके साथ जय-जयकार होने लगी और साक्षात् भगवान् हनुमान् वहीं अन्तर्धान हो गये। देवताओंने प्रद्युम्नपर फूलोंकी वर्षा की। फिर अपनी सेनासे घिरे हुए महाबाहु प्रद्युम्न मनुकी स्वर्णमयी मनोहारिणी नगरीमें गये। वहाँ नैःश्रेयस नामक वन था, जो कल्पवृक्षों तथा कल्पलताओंसे घिरा हुआ था॥ १८—२०॥

हरिचन्दन, मन्दार और पारिजात उस वनकी शोभा बढ़ाते थे। संतानवृक्षके पुष्पोंकी सुगन्धसे मिश्रित वायु उस वनमें सुवास फैला रही थी। केतकी, चम्पालता और कुटज पुष्पोंसे परिसेवित वह वन माधवी लताओंके पुष्प-फल-समन्वित समूहसे व्याप्त था॥ २१-२२॥

कलरव करते हुए विहंगमोंके वृन्दसे वह वन वैकुण्ठलोक-सा सुन्दर प्रतीत होता था। वहाँ चारुधि नामसे प्रसिद्ध एक पर्वत था, जिसकी लंबाई पाँच सौ योजन थी। राजन्! उस पर्वतके निचले भागका विस्तार सौ योजनका था। नरकोकिल, कोकिलाएँ, मोर, सारस, तोते, चकवे, चकोर, हंस और दात्यूह (पपीहा) नामक पक्षी वहाँ कलरव करते थे। सभी ऋतुओंके फूलोंकी शोभासे सम्पन्न वह नैःश्रेयसवन नन्दनवनको तिरस्कृत करता था॥ २३—२५॥

मिथिलेश्वर! वहाँ मृगोंके बच्चे सिंहोंके साथ खेलते थे। नेवले सर्पोंके साथ वैरविहीन होकर रहते थे। वहाँ भ्रमरोंके गुञ्जारवसे युक्त दस हजार सरोवर थे, जिनमें दीप्तिमान् शतदल और सहस्रदल कमल शोभा दे रहे थे। इधर-उधर सब ओर वर्तमान वह सुन्दर वन मूर्तिमान् आनन्द-सा जान पड़ता था। सर्वज्ञ विद्वान् प्रद्युम्नने उस वनकी शोभा देखकर निकले हुए नागरिकोंसे यह अभीष्ट प्रश्न पूछा—॥ २६—२८॥

श्रीप्रद्युम्न बोले—हे पवित्र शासनमें रहनेवाले लोगो! यह रमणीय नगरी किसकी है और यह अद्भुत वन भी किसका है? आपलोग विस्तारपूर्वक सब बात बतायें॥ २९॥

जना ऊचुः

वैवस्वतो मनुर्नाम यो ह्येवं वर्तते नृप।
मानवे च गिरौ रम्ये मत्स्यं नारायणं हरिम्॥ ३०

वर्तमानं सदा नत्वा करोति विपुलं तपः।
तस्येयं नगरी रम्या तस्य नैःश्रेयसं वनम्॥ ३१

वैकुण्ठाच्च समानीता भूमिश्चायं गिरिस्तथा।
यूयं सर्वेऽपि राजानस्तस्य वंशभवाः क्षितौ।
सूर्यवंशान्तरे राजंश्चन्द्रवंशान्तरे हि भोः॥ ३२

श्रीनारद उवाच

क्षत्रियाणां च सर्वेषां वृद्धं तं प्रपितामहम्।
श्राद्धदेवं मनुं ज्ञात्वा विस्मितोऽभूद्धरेः सुतः॥ ३३

श्रुत्वा वचस्तदा सद्यो भ्रातृभिर्यदुभिर्वृतः।
मानवाद्रिं समारुह्य श्राद्धदेवं ददर्श ह॥ ३४

शतसूर्यप्रभं कान्त्या द्योतयन्तं दिशो दश।
महायोगमयं साक्षाद्राजेन्द्रं शान्तरूपिणम्॥ ३५

वेदव्यासशुकाद्यैश्च वसिष्ठधिषणादिभिः।
परस्परं महाराज शृण्वन्तं श्रीहरेर्यशः॥ ३६

ननाम कार्ष्णिर्यदुभिः सहैव तं
कृताञ्जलिस्तत्र समास्थितोऽभवत्।
मनुः समुत्थाय हरेः प्रभावविद्
दत्वासनं गद्गदया गिराब्रवीत्॥ ३७

मनुरुवाच

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥ ३८

अनादिरात्मा पुरुषस्त्वमेव
त्वं निर्गुणोऽसि प्रकृतेः परस्त्वम्।
सदा वशीकृत्य बलात्प्रधानं
गुणैः सृजस्यत्सि च पासि विश्वम्॥ ३९

ततोऽविवेकं स विहाय सर्वतो
मत्वाखिलं चात्र मनोमयं जगत्।
मायापरं निर्गुणमादिपूरुषं
सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम्॥ ४०

उन लोगोंने कहा—नरेश्वर! वैवस्वत मनु, जो इस समय रमणीय मानव पर्वतपर मत्स्यावतारधारी भगवान् नारायण हरिकी आराधनामें लगे हैं और यहाँ सदा निवास करनेवाले मत्स्यभगवान्‌की वन्दनापूर्वक बड़ी भारी तपस्या करते हैं, उन्हींकी यह रमणीय नगरी है और उन्हींका यह नैःश्रेयसवन है। यहाँकी भूमि और यह पर्वत दोनों वैकुण्ठलोकसे लाये गये हैं। आप सब राजा, जो इस पृथ्वीपर विराजमान हैं, इन्हीं वैवस्वत मनुके वंशज हैं, चाहे वे सूर्यवंशके हों या चन्द्रवंशके॥ ३०—३२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! समस्त क्षत्रियोंके उन वृद्ध प्रपितामह श्राद्धदेव मनुका परिचय पाकर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न बड़े विस्मित हुए। लोगोंकी बात सुनकर तत्काल भाइयोंसे तथा अन्य यादवोंसे घिरे हुए प्रद्युम्नने मानवगिरिपर चढ़कर भगवान् श्राद्धदेवका दर्शन किया॥ ३३-३४॥

वे सौ सूर्योंके समान तेजस्वी जान पड़ते थे और अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। वे महायोगमय राजेन्द्र शान्तरूप थे। महाराज! वे वेदव्यास और शुक आदिसे तथा वसिष्ठ और बृहस्पति आदिसे परस्पर श्रीहरिका यश सुनते थे॥ ३५-३६॥

यादवोंके साथ प्रद्युम्नने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और वे उनके सामने खड़े हो गये। श्रीहरिके प्रभावको जाननेवाले मनुने उन्हें उठकर आसन दिया और गद्गद वाणीमें इस प्रकार कहा—॥ ३७॥

मनु बोले—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूपसे प्रकट आप भक्तजन-प्रतिपालक प्रभुको नमस्कार है। आप ही अनादि, आत्मा तथा अन्तर्यामी पुरुष हैं। आप प्रकृतिसे परे होनेके कारण सत्त्वादि तीनों गुणोंसे अतीत हैं। प्रकृतिको अपनी शक्तिसे वशमें करके गुणोंद्वारा विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। अतः अज्ञानकल्पित इस प्रपञ्चको सब ओरसे छोड़कर इस सम्पूर्ण जगत्‌को मनका संकल्पमात्र जानकर मायासे परे जो निर्गुण आदिपुरुष, सर्वज्ञ, सबके आदिकारण, अन्तर्यामी एवं सनातन परमात्मा हैं, उन्हीं आपका मैं आश्रय लेता हूँ॥ ३८—४०॥

जागर्ति योऽस्मिञ्छयनं गते सति
नायं जनो वेद सतः परं तम्।
पश्यन्तमाद्यं पुरुषं हि यज्जनो
न पश्यति स्वच्छमलं च तं भजे॥ ४१

यथा नभोऽग्निः पवनो न सज्जते
घटेन काष्ठेन रजोभिरावृतैः।
तथा भवान् सर्वगुणैश्च निर्मलो
वर्णैर्यथा स्यात्स्फटिको महोज्ज्वलः॥ ४२

व्यङ्ग्येन वा लक्षणया च वाक्पथै-
रर्थं पदं स्फोटपरायणैः परम्।
न ज्ञायते यद् ध्वनिनोत्तमेन सद्
वाच्येन तद्ब्रह्म कुतस्तु लौकिकैः॥ ४३

वदन्ति केचिद्भुवि कर्म कर्तृ यत्
कालं च केचित्परयोगमेव तत्।
केचिद्विचारं प्रवदन्ति यच्च तद्
ब्रह्मेति वेदान्तविदो वदन्ति॥ ४४

यं न स्पृशन्तीह गुणा न कालजा
ज्ञानेन्द्रियं चित्तमनो न बुद्धयः।
महान्न वेदो वदतीति तत्परं
विशन्ति सर्वे ह्यनले स्फुलिङ्गवत्॥ ४५

हिरण्यगर्भं परमात्मतत्त्वं
यद्वासुदेवं प्रवदन्ति सन्तः।
एवंविधं त्वां पुरुषोत्तमोत्तमं
मत्वा सदाहं विचराम्यसङ्गः॥ ४६

श्रीनारद उवाच

मनोर्वाक्यं तदा श्रुत्वा प्रद्युम्नो भगवान् हरिः।
मन्दस्मितो मनुं प्राह गीर्भिः सम्मोहयन्निव॥ ४७

जो इस विश्वके सो जानेपर भी जागते हैं; जिन्हें जगत्‌के लोग नहीं जानते; जो सत्‌से परे, सर्वद्रष्टा एवं आदिपुरुष हैं; जिन्हें अज्ञानीजन नहीं देख पाते; जो सर्वथा स्वच्छ—शुद्ध-बुद्ध-स्वरूप हैं, उन आप परमात्माका मैं भजन करता हूँ। जैसे आकाश घटसे, अग्नि काष्ठसे तथा वायु अपने ऊपर छाये हुए धूल-कणोंसे लिप्त नहीं होते, उसी प्रकार आप समस्त गुणोंसे निर्लिप्त हैं। जैसे स्फटिक मणि दूसरे-दूसरे रंगोंके सम्पर्कसे उस रंगकी दिखायी देनेपर भी स्वरूपतः परम उज्ज्वल है, उसी प्रकार आप भी परम विशुद्ध हैं॥ ४१-४२॥

व्यञ्जना, लक्षणा अथवा अभिधा शक्तिसे, वाणीके विभिन्न मार्गोंसे तथा स्फोटपरायण वैयाकरणोंद्वारा भी परमार्थ-पदका सम्यग्ज्ञान नहीं प्राप्त किया जाता। साधु वाच्यार्थ एवं उत्तम ध्वनिके द्वारा भी जिसका बोध नहीं हो पाता, वही ब्रह्म लौकिक वाक्योंद्वारा कैसे जाना जा सकता है!॥ ४३॥

जिसे इस पृथ्वीपर कुछ लोग (मीमांसक) 'कर्म' कहते हैं, कुछ लोग (नैयायिक) 'कर्ता' कहते हैं, कोई 'काल', कोई 'परम योग' और कोई 'विचार' बताते हैं, उसे ही वेदान्तवेत्ता ज्ञानी पुरुष 'ब्रह्म' कहते हैं॥ ४४॥

जिसे इस लोकमें कालज गुण, ज्ञानेन्द्रियाँ, चित्त, मन और बुद्धि नहीं छू पाती हैं, जहाँ अहंकार और महत्तत्त्वकी भी पहुँच नहीं है तथा वेद भी जिसका वर्णन नहीं कर पाते, वह 'परब्रह्म' है। जैसे चिनगारियाँ अग्निमें प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार सारे तत्त्व उस परब्रह्ममें ही विलीन होते हैं। जिसे संतलोग 'हिरण्यगर्भ', 'परमात्मतत्त्व' और 'वासुदेव' कहते हैं, ऐसे ब्रह्मस्वरूप आप ही 'पुरुषोत्तमोत्तम' हैं—यह जानकर मैं सदा असङ्गभावसे विचरण करता हूँ॥ ४५-४६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मनुका यह वचन सुनकर उस समय भगवान् प्रद्युम्न हरि मन्द-मन्द मुसकराते हुए गम्भीर वाणीद्वारा उन्हें मोहित करते हुए-से बोले—॥ ४७॥

प्रद्युम्न उवाच

त्वं नो गुरुः क्षत्रियाणामादिराजः पितामहः।
मत्पूजनीयो वृद्धोऽसि श्लाघ्यो धर्मधुरन्धरः॥ ४८

वः प्रजाश्च वयं राजन् रक्ष्याः पाल्याश्च सर्वतः।
भवता तप्यते दिव्यं तपस्तेन जगत्सुखम्॥ ४९

मृग्यस्त्वत्सदृशः साधुः परमात्मा हरिः स्वयम्।
नृणामन्तस्तमोहारी साधुरेव न भास्करः॥ ५०

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् कार्ष्णिरनुज्ञाप्य प्रणम्य तम्।
परिक्रम्य मनुं राजन् स्वयं भूमौ जगाम ह॥ ५१

प्रद्युम्नने कहा—महाराज! आप हम क्षत्रियोंके गुरु आदिराजा, पितामह, पूजनीय, वृद्ध, श्लाघनीय तथा धर्म-धुरंधर हैं। राजन्! हमलोग आपके द्वारा रक्षणीय तथा सर्वतः पालनीय प्रजा हैं। आप जो दिव्य तप करते हैं, उससे जगत्को सुख मिलता है॥ ४८-४९॥

आप-जैसे साधुपुरुष परमात्मा श्रीहरिके स्वरूप हैं; अतः वे ही सदा ढूँढ़ने-योग्य हैं। साधुपुरुष ही मनुष्योंके अन्तःकरणमें छाये हुए मोहान्धकारका हरण करते हैं, सूर्यदेव नहीं॥ ५०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर मनुको प्रणाम करके, उनकी अनुमति ले, परिक्रमा करके, भगवान् श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न स्वयं नीचेकी भूमिपर उतर गये॥ ५१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मानवदेशविजयो नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मानवदेशपर विजय' नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

रम्यकवर्षमें मन्मथशालिनी पुरीके लोगोंद्वारा श्रीकृष्णलीलाका गान; प्रजापति व्यतिसंवत्सरद्वारा प्रद्युम्नका पूजन; कामवनमें प्रद्युम्नका अपने कामदेव-स्वरूपमें विलय

श्रीनारद उवाच

इत्थं तु रम्यकं खण्डं जित्वा कार्ष्णिर्महाबलः।
सुमेरोः पूर्वदिग्भागे केतुमालं जगाम ह॥ १

तस्य सीमागिरिः साक्षान्माल्यवान्नाम मैथिल।
चतुर्नाम्नी यत्र गङ्गा महापातकनाशिनी॥ २

गिरेर्माल्यवतः पार्श्वे पुरी मन्मथशालिनी।
रत्नप्राकारसौधैश्च देवधानीव शोभिता॥ ३

यत्र वै पुरुषा राजन् कामदेवसमप्रभाः।
शारदेन्दीवरश्यामाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः॥ ४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार रम्यकवर्षपर विजय पाकर महाबली श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न सुमेरुपर्वतके पूर्वभागमें स्थित 'केतुमाल' वर्षमें गये॥ १॥

मिथिलेश्वर! उस वर्षका सीमापर्वत 'माल्यवान्' है, जहाँसे 'चार' ['चक्षु'] नामवाली महापातकनाशिनी गङ्गा प्रवाहित होती है। माल्यवान्गिरिके पास मन्मथशालिनी पुरी है, जो अपने रत्नमय परकोटों और महलोंसे देवताओंकी राजधानी (अमरावती)-की भाँति शोभा पाती है॥ २-३॥

राजन्! वहाँके पुरुष कामदेवके समान कान्तिमान् हैं। उनकी अङ्ग-कान्ति शरद्-ऋतुके प्रफुल्ल नील-कमलके समान होती है और उनके नेत्र भी विकसित कमल-दलकी शोभाको लज्जित करते हैं॥ ४॥

पीताम्बरधरा नार्यः पुष्पहारमनोहराः।
क्रीडन्ति कन्दुकैर्यत्र कामिन्यो नवयौवनाः॥ ५

यद्देहामोदपवनो मत्तालिकुलनादितः।
गन्धीकरोति भूभागं समन्ताच्छतयोजनम्॥ ६

तत्पुरीवासिनो लोका निर्गतास्ते बहुश्रुताः।
जगुर्यशः श्रीमुरारेः प्रद्युम्नस्यापि शृण्वतः॥ ७

केतुमालवासिन ऊचुः

आसीत्तु शेषशयनो जगदार्तिहारी
साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वर आदिदेवः।
यः प्रार्थितः सुरवरैर्भुवनावनाय
तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय॥ ८

जातो गतः पितृगृहात्पितरौ विमोक्ष्य
नन्दालयं शिशुतनुः स तु नन्दपत्न्या।
संलालितः सघृणया बहुमङ्गलश्रीः
प्राणप्रहारमकरोत्किल पूतनायाः॥ ९

बालो बभञ्ज शकटं शयनं प्रकुर्वन्
दैत्यं निपात्य महदद्भुतकं च पृष्ठे।
मात्रे प्रदर्श्य निजरूपमलङ्कृतोऽभूद्
गर्गेण सङ्कथितसुन्दरभाग्यलक्ष्मीः॥ १०

संलालितो व्रजजनैर्नवनीतचौरः
श्यामो मनोहरवपुर्मृदुलः स बालः।
भित्त्वा जघास दधिपात्रमतीव दध्नो
वृक्षौ बभञ्ज जननीलघुदामबद्धः॥ ११

वृन्दावने स विचरन् सह वत्सगोपै-
र्वत्सासुरं च विनिपात्य कपित्थवृक्षैः।
सद्यो विगृह्य खरतुण्डपुटे च दोर्भ्यां
दैत्यं ददार स बकं तृणवत्तटिन्याम्॥ १२

यहाँकी नव-यौवना कामिनियाँ पीताम्बर धारण करके फूलोंके हार पहनकर मनोहर वेषमें कन्दुकक्रीड़ा किया करती हैं। उनके शरीरका स्पर्श करके प्रवाहित होनेवाली सुगन्धित वायु मतवाले भ्रमरोंकी ध्वनिसे निनादित हो चारों ओर सौ योजन विस्तृत भू-भागको सुवासित करती है। उस पुरीमें निवास करनेवाले बहुश्रुत मनुष्य नगरसे बाहर निकले और प्रद्युम्नके सुनते-सुनते श्रीमुरारिके यशका गान करने लगे॥ ५—७॥

केतुमालवासी बोले—जो जगत्की पीड़ा हर लेनेवाले साक्षात् प्रधान-पुरुषेश्वर आदिदेव शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं और जिन्होंने देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भूलोककी रक्षा करनेके लिये भारत-वर्षमें अवतार लिया है, उन भगवान् पुरुषोत्तमको नमस्कार है। वे प्रकट होनेके बाद माता-पिताको बन्धनमुक्त करके शिशुरूपमें पिताके घरसे नन्दभवन-को चले गये, वहाँ दयामयी नन्दपत्नी यशोदाने बड़े प्यारसे उनका लालन-पालन किया, अनन्त मङ्गलमयी शोभासे सम्पन्न उन्होंने अपनेको मारनेके लिये आयी हुई पूतनाके प्राणोंका अपहरण कर लिया॥ ८-९॥

बालक-रूपमें ही सोते हुए उन श्रीनन्दनन्दनने छकड़ेको उलट दिया और महादैत्य तृणावर्तकी पीठपर चढ़कर उसे मार गिराया। माताको अपने विश्वरूपका दर्शन कराया, गर्गाचार्यके द्वारा उनका नामकरण-संस्कार हुआ और गर्गाचार्यने उनकी सुन्दर सौभाग्य-लक्ष्मीका वर्णन किया॥ १०॥

व्रजके लोगोंने उन्हें लाड़ लड़ाया, उनके द्वारा माखनचोरीकी लीलाएँ हुईं। श्याम मनोहररूपधारी कोमल बालक श्रीकृष्णने दहीके मटके फोड़कर उसमें-से खूब दही खाया और माताने जब छोटी-सी रस्सीसे उन्हें ओखलीमें बाँध दिया, तब उन्होंने वह ओखली अटकाकर दो यमल वृक्षोंको तोड़ दिया, वृन्दावनमें बछड़ों और ग्वाल-बालोंके साथ विचरते हुए श्रीहरिने कपित्थवृक्षोंद्वारा वत्सासुरको मारकर यमुना-किनारे बकासुरके तीखे चञ्चुपुटोंको पकड़ लिया और दोनों हाथोंसे उस दैत्यको तिनकेकी भाँति चीर डाला॥ ११-१२॥

सन्धारयंश्च शिशुभिर्बहुवत्ससङ्घान्
वेणुं क्वणन् मदनमोहनवेषभृद्यः।
गोपानघासुरमुखे प्रहिताञ्जुगोप
गोगोपवत्सपवपुः स चकार सद्यः॥ १३

क्षेत्रज्ञ आत्मपुरुषो भगवाननन्तः
पूर्णः प्रधानपुरुषेश्वर आदिदेवः।
धृत्वा वपुः स विहरन् व्रजबालकेषु
सम्मोहयन् विधिमजो विचचार कृष्णः॥ १४

ग्वाल-बालोंके साथ बहुसंख्यक बछड़ोंके समुदायको चराते तथा वेणु बजाते हुए उन मदनमोहन-वेषधारी प्रभुने अघासुरके मुखमें पड़े हुए गोपों और गौओंकी रक्षा की और जब ब्रह्माजी ग्वालों और बछड़ोंको चुरा ले गये, तब वे स्वयं ही तत्काल गोप-बालक और बछड़े बनकर पूर्ववत् सारा कार्य चलाने लगे, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण सबके शरीरमें क्षेत्रज्ञ एवं अन्तर्यामी आत्मा हैं। वे ही अनन्त, पूर्ण, प्रधान और पुरुषके ईश्वर (क्षर और अक्षरसे अतीत पुरुषोत्तम) तथा आदिदेव हैं। वे अजन्मा प्रभु ग्वाल-बाल और बछड़ोंका रूप धारण करके व्रजके अन्य बालकोंमें विहार करते और ब्रह्माजीको मोहित करते हुए सब ओर विचरने लगे॥ १३-१४॥

चिक्षेप धेनुकमसौ बलिनं बलेन
ताले प्रगृह्य सहसा फणिकालियाख्यम्।
बभ्राम वह्निमपिबद्दनुजं प्रलम्बं
सद्यो जघान स बली दृढमुष्टिना च॥ १५

उन्होंने बलवान् धेनुकासुरको बलपूर्वक ताड़के वृक्षपर दे मारा और ताड़-फल लेकर चले आये। फिर यमुनाके जलमें कूदकर सहसा कालियनागको जा पकड़ा और उसके फनोंपर नृत्य करके उसे जलसे बाहर निकाल दिया। तदनन्तर वे दावानलको पी गये और बलरामजीके सहयोगसे शीघ्र ही सुदृढ़ मुष्टिका-प्रहार करके उन्होंने प्रलम्बासुरको मौतके घाट उतार दिया॥ १५॥

सञ्चारयन् व्रजपशून् मधुरं क्वणन् यो
वेणुं वने व्रजवधूनिजगीतकीर्तिः।
दिव्याम्बराणि स जहार वराङ्गनानां
विप्राङ्गनाभिरभितः कृतभक्तभोजः॥ १६

वनमें व्रजकी गौओंको चराते हुए मधुर स्वरसे वेणु बजाकर उन्होंने व्रज-वधुओंको वहाँ बुला लिया और उनके मुखसे अपनी कीर्तिका गान सुना। [यमुनामें नग्न स्नान करनेवाली] गोप-किशोरियोंके दिव्य वस्त्र चुराये और वनमें ब्राह्मण-पत्नियोंके दिये हुए भातका ग्वाल-बालोंके साथ भरपेट भोजन किया॥ १६॥

देवे च वर्षति पशून् कृपया रिरक्षु-
र्गोवर्धनं प्रकृतबाल इवोच्छिलीन्ध्रम्।
बिभ्रद्गिरिं स गजराडिव कञ्जमेक-
हस्ते शचीपतिवचोभिरतः स्तुतोऽभूत्॥ १७

इन्द्र-पूजा बंद करके गोवर्धन-पूजा चालू करनेपर जब पर्जन्यदेव घोर वर्षा करने लगे, तब कृपापूर्वक उन्होंने पशुओंकी रक्षा करनेके लिये गोवर्धनपर्वतको छत्रकी भाँति उठा लिया—ठीक उसी तरह जैसे साधारण बालक गोबर-छत्ता उठा ले। जैसे गजराज अनायास कमलका फूल उठा लेता है, उसी प्रकार एक हाथपर पर्वत उठाये भगवान्‌को देखकर शचीपति इन्द्रने इनकी स्तुति की॥ १७॥

नन्दं जुगोप वरुणात्स्वजनाय लोकं
दिव्यं परं च तमसो दिवि दर्शयित्वा।
श्रीरासमण्डलगतो व्रजसुन्दरीणां
रेमे पुलिन्दतटिनीपुलिनेऽङ्गनाभिः॥ १८

वरुणलोकमें जाकर वहाँसे नन्दजीको सुरक्षित ले आये तथा स्वजनोंको भगवान्ने अन्धकारसे परे अपने दिव्य परमधाम गोलोकका दर्शन कराया। श्रीरास-मण्डलमें उपस्थित हो भगवान्ने व्रजसुन्दरियोंके साथ रास-क्रीड़ा की और यमुना-पुलिनपर गोपाङ्गनाओंके साथ विहार किया॥ १८॥

मानं हरन् मदनयौवनमानिनीना-
मन्तर्दधे व्रजवधूनिजगीतकीर्तिः।
स्त्रग्वी मनोहरवपुर्विरहातुराणां
साक्षाद्धरिर्मदनमोहन आविरासीत्॥ १९

व्रजसुन्दरियोंको अपने मादक यौवनपर अभिमान करते देख उनके उस मानका अपहरण करनेके लिये भगवान् उनके बीचसे अन्तर्धान हो गये। तब उनके दर्शनके लिये व्याकुल हुई व्रजाङ्गनाएँ उन्हींकी कीर्तिका गान करने लगीं। तदनन्तर विरहसे व्याकुल हुई उन व्रजबालाओंके बीच फूलोंके हार धारण किये, मनोहर-रूपधारी साक्षात् मदनमोहन श्रीहरि पुनः प्रकट हो गये॥ १९॥

वृन्दावने शबरराजवराङ्गनाभि-
र्विष्णुर्विभूतिभिरिव द्युभिरादिदेवः।
रेमे स्तुतः सुरवरैः स च रासरङ्गे
केयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषः॥ २०

वृन्दावनमें श्यामसुन्दरने शबरराजकी परम सुन्दरी किशोरियोंके साथ उसी प्रकार रमण किया, जैसे आदिदेव भगवान् विष्णु अपनी कान्तिमय विभूतियोंके साथ रमण करते हैं। उस समय बड़े-बड़े देवताओंने उनकी स्तुति की। उन माधवने रास-रङ्गस्थलीमें केयूर, कुण्डल और किरीट आदि आभूषणोंसे मनोहर वेष धारण करके रमण किया॥ २०॥

नन्दं विमोक्ष्य फणिने प्रददौ च मोक्षं
दिव्यं मणिं स च जहार ह शङ्खचूडात्।
गोपस्तुतो वृषभरूपधरं ह्यरिष्टं
भूमौ निपात्य निजघान करेण शृङ्गे॥ २१

भगवान्ने अम्बिकावनमें नन्दराजको अजगरके मुखसे छुड़ाकर उस सर्पको भी मोक्ष प्रदान किया। शङ्खचूड़ यक्षसे उसकी मणि ले ली। गोपोंने उनकी स्तुति की और उन्होंने वृषभरूपधारी अरिष्टासुरका एक सींग पकड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया और एक ही हाथसे उसे मार डाला॥ २१॥

कंसः परं भयमवाप च तेन केशी
सम्प्रेषितः सघनमेघवपुः प्रचण्डः।
उत्सृज्य तं च तरसा पुनरापतन्तं
श्रीबाहुना मुखगतेन जघान कृष्णः॥ २२

कंसको बड़ा भय हो गया था, इसलिये उसने केशीको भेजा। वह मेघके समान काला एवं प्रचण्ड शक्तिशाली दानव था। भगवान्ने उसे एक बार पकड़कर छोड़ दिया। किंतु जब पुनः बड़े वेगसे उसने आक्रमण किया, तब श्रीकृष्णने उसके मुँहके भीतर अपनी बाँह डाल दी और इस युक्तिसे उसे मार डाला॥ २२॥

यो नारदेन बहुवर्णितभाग्यलक्ष्मी-
र्व्योमासुरो व्यसुरकारि परेण येन।

भगवान् नारदने जिनकी सौभाग्य-लक्ष्मीका अनेक प्रकारसे वर्णन किया है, उन परमात्मा श्रीहरिने व्योमासुरको भी प्राणहीन कर दिया। अक्रूरके द्वारा

अक्रूरवर्णितमहोदय आदिदेवो
गोपीजनातिविरहातुरचित्तचौरः ॥ २३

उन आदिदेवके महान् ऐश्वर्यका वर्णन किया गया। वे गोपीजनोंके अत्यन्त विरहातुर चित्तको भी चुरानेवाले हैं ॥ २३ ॥

श्वाफल्कये हितकराय निजं स्वरूप-
मन्तर्दधे जलचये स च दर्शयित्वा।
स प्राप तत्र मथुरोपवनं परेशो
गोपालकैश्च सबलो मथुरां ददर्श ॥ २४

उन्होंने अपने हितकारी श्वफल्कपुत्र अक्रूरको जलके भीतर अपना दिव्य रूप दिखाकर फिर समेट लिया। उनके साथ वे परमेश्वर मथुराके उपवनमें पहुँचे और ग्वाल-बालों तथा बलरामजीके साथ उन्होंने मथुरापुरीका दर्शन किया ॥ २४ ॥

स्वैरं चरन् मधुपुरे रजकं निकृत्य
कृष्णः प्रदाय च वरानथ वायकाय।
मालाकृतं समनुकम्प्य चकार कुब्जा-
मृज्वीं धनुश्च सहसा नमयन् बभञ्ज ॥ २५

स्वच्छन्दतापूर्वक मधुपुरीमें विचरते हुए श्रीहरिने कटुवादी रजकको मौतके घाट उतार दिया। अपने प्रेमी दर्जीको उत्तम वर दिये, फूलोंकी माला अर्पित करनेवाले मालीपर कृपा की, कुब्जाको सीधी करके सुन्दरी बनाया और कंसकी यज्ञशालामें रखे हुए धनुषको नवाते हुए सहसा उसे तोड़ डाला ॥ २५ ॥

द्वारि द्विपं च विनिहत्य नरेन्द्रमल्लौ
हत्वा प्रगृह्य विनिपात्य स रङ्गभूमौ।
कंसं हरिस्तु पितरावथ मोचयित्वा
बन्धान्नृपं पुरि चकार महोग्रसेनम् ॥ २६

रङ्गशालाके द्वारपर कुवलयापीड हाथीका वध करके दो राजकीय पहलवानोंको रङ्गभूमिमें पछाड़कर कंसको भी जा पकड़ा और उसे अखाड़ेमें गिराकर प्राणशून्य कर दिया। फिर माता-पिताको कैदसे छुड़ाकर महान् शक्तिशाली उग्रसेनको मथुरापुरीका राजा बना दिया ॥ २६ ॥

नन्दं प्रसाद्य बहुदानकरो यदूंस्ता-
नाहूय तर्प्य सुधनैश्च निवेदयित्वा।
विद्यामधीत्य स ददौ प्रमृतं ह्यपत्यं
कृत्वा वधं दनुजपञ्चजनस्य कृष्णः ॥ २७

नन्दजीको प्रसन्न करके बहुत भेंट दी; गोपोंको बुलाकर उन सबको धनसे तृप्त करके बहुत कुछ निवेदन किया और उन्हें व्रजको लौटाकर वे गुरुके घरमें विद्या पढ़नेके लिये गये। वहाँ अध्ययन समाप्त करके श्रीकृष्णने समुद्रवासी पञ्चजन नामक दानवका वध करनेके पश्चात् गुरुके मरे हुए पुत्रको यमलोकसे लाकर दक्षिणाके रूपमें उन्हें अर्पित किया ॥ २७ ॥

गोपीजनान् समनुगृह्य स चोद्धवेना-
क्रूरेण हास्तिनपुरे त्वथ पाण्डुपुत्रान्।
कृष्णो विजित्य बलिनं च जरासुतं च
भस्मीचकार मुचुकुन्ददृशात्मकालम् ॥ २८

उद्धवको भेजकर अपने प्रेम-संदेशसे गोपीजनोंको अनुगृहीत किया और अक्रूरको हस्तिनापुर भेजकर पाण्डवोंका समाचार जाना। तदनन्तर श्रीकृष्णने बलवान् जरासंधको पराजित करके मुचुकुन्दकी दृष्टिसे प्रकट हुई अग्निके द्वारा कालयवनको भस्म कर दिया ॥ २८ ॥

निर्माय चाद्भुतपुरं स्थितयेऽत्र कृष्णो
निन्ये च कुण्डिनपुरात्किल भीष्मकन्याम्।

इसके बाद अपने रहनेके लिये श्रीहरिने अद्भुत पुरी कुशस्थलीका निर्माण कराके कुण्डिनपुरसे भीष्मक-

पुत्रेण शम्बरमरिं निजघान चादा-
द्राज्ञे मणिं युधि विजित्य स ऋक्षराजम्॥ २९

कन्या रुक्मिणीका अपहरण किया। अपने पुत्रके द्वारा शत्रु शम्बरासुरका वध कराया तथा युद्धमें ऋक्षराज जाम्बवान्‌को जीतकर उनसे प्राप्त हुई मणि राजा उग्रसेनको दे दी॥ २९॥

भामापतिः स च शिरः शतधन्वनस्तु
हत्वा ह्युवाह सवितुश्च सुतां परेशः।
आवन्त्यराजतनुजां स जहार कृष्णः
सत्यां स्वयंवरगृहे वृषभान् दमित्वा॥ ३०

तत्पश्चात् परमेश्वर श्रीकृष्ण सत्यभामाके पति हुए। उन्होंने अपने श्वशुर सत्राजितका वध करनेवाले शतधन्वाका सिर काट लिया और कुछ कालके बाद सूर्यपुत्री यमुनाके साथ विवाह किया। इसके बाद उन्होंने अवन्ति-राजकुमारी मित्रवृन्दाका हरण किया तथा स्वयंवर-गृहमें सात वृषभोंका दमन करके श्रीकृष्णने [कोसलराज नग्नजित्‌की पुत्री] सत्याका पाणिग्रहण किया॥ ३०॥

कैकेयराजतनुजां स जहार भद्रां
श्रीलक्ष्मणामखिलमद्रपतेः सुतां च।
भौमं विजित्य सबलं युधि शस्त्रसङ्घै-
र्निन्ये च षोडशसहस्रवराङ्गनाश्च॥ ३१

तत्पश्चात् कैकेयराज-कन्या भद्राका हरण किया और सम्पूर्ण मद्रदेशके राजाकी पुत्री लक्ष्मणाको स्वयंवरमें जीता। युद्धभूमिमें शस्त्र-समूहोंद्वारा सेनासहित भौमासुरको जीतकर सोलह सहस्र सुन्दरियोंको वे ब्याह लाये॥ ३१॥

भामेच्छया सुरतरुं च सभां सुधर्मां
शक्रं विजित्य स जहार कलत्रमित्रः।
यो रुक्मिणं च निजघान बलेन गोष्ठ्यां
बाणस्य बाहुनिचयं शतधाच्छिनत्तः॥ ३२

सत्यभामाकी इच्छासे उन्होंने केवल पत्नीको साथ लेकर स्वर्गमें इन्द्रको परास्त किया और वहाँसे पारिजात वृक्ष तथा सुधर्मा सभाको वे उठा लाये। उन्होंने द्यूत-सभामें बलरामजीके द्वारा दुष्ट रुक्मीको मरवा डाला और बाणासुरकी सहस्र भुजाओंमेंसे दोको छोड़कर शेष सबके सौ-सौ टुकड़े कर डाले॥ ३२॥

तेनोग्रसेनक्रतवेऽथ जगद्विजेतुं
सम्प्रेषितो निजसुतः किल शम्बरारिः।
योऽत्रागतो भुवि विजित्य नृपान् समस्तान्
श्रीकेतुमालपतये च नमोऽस्तु तस्मै॥ ३३

उन परमात्माने राजा उग्रसेनके राजसूय-यज्ञकी सिद्धिके निमित्त सम्पूर्ण जगत्‌को जीतनेके लिये अपने पुत्र शम्बरशत्रु प्रद्युम्नको भेजा, जो भूमण्डलके समस्त राजाओंको जीतकर यहाँ केतुमालपतिपर विजय पानेके लिये आये हैं। उनको हमारा नमस्कार है॥ ३३॥

श्रीनारद उवाच

प्रसन्नः श्रीहरिः कार्ष्णिः कुण्डले कटकानि च।
हीरान् मणीन् गजानश्वान् ददौ तेभ्यो महामनाः॥ ३४

पुर्यां मन्मथशालिन्यां व्यतिसंवत्सरो महान्।
प्रद्युम्नाय बलिं प्रादान्नमस्कृत्य प्रजापतिः॥ ३५

श्रीनारदजी कहते हैं— राजन्! यह सब सुनकर प्रसन्न हो महामनस्वी श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न हरिने उन लोगोंको कुण्डल, कड़े, हीरा, मणि, हाथी और घोड़े पुरस्कारके रूपमें दिये। उस मन्मथशालिनी पुरीमें महान् प्रजापति व्यतिसंवत्सरने प्रद्युम्नको नमस्कार करके भेंट अर्पित की॥ ३४-३५॥

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्दिव्यं कामवनं ययौ।
जनैरगम्यं गम्यं च प्रजापतिदुहितृभिः॥ ३६

सुन्दरं मन्मथाक्रीडं वृतं कामास्त्रतेजसा।
नारीणां यत्र पतति व्यसुर्गर्भो न वत्सरम्॥ ३७

तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न दिव्य कामवनमें गये, जो अन्य साधारण लोगोंके लिये अगम्य था; केवल प्रजापतिकी पुत्रियाँ उसमें जा सकती थीं। वह सुन्दर वन साक्षात् कामदेवका क्रीड़ास्थल था और कामास्त्रके तेजसे चारों ओरसे सुरक्षित था। वहाँ नारियोंका गर्भ प्राणशून्य होकर गिर पड़ता था, वर्षभर भी टिक नहीं पाता था॥ ३६-३७॥

तदा परात्कामवनाद्विनिर्गतः
श्रीपुष्पधन्वा नृप पञ्चसायकः।
पीताम्बरः श्यामतनुर्मनोहर-
स्ततान कोदण्डगुणध्वनिं स्मरः॥ ३८

राजन्! उस समय उस उत्कृष्ट कामवनसे फूलोंके पाँच बाण लिये पुष्पधन्वा कामदेव निकले। उनके श्याम शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। उनका रूप अत्यन्त मनोहर था। उन्होंने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका गम्भीर घोष फैलाया॥ ३८॥

यद्बाणतो यादवपुङ्गवाः स्वतः
ससैनिकाः साश्वगजाः पदातिभिः।
निपेतुरारात्किल कामविह्वला-
स्तद्बाणवेगस्य न वर्णनं भवेत्॥ ३९

उनके बाणका स्पर्श होते ही यादव-वीर अपने सैनिकों, घोड़ों, हाथियों और पैदलोंके साथ स्वतः काममोहित होकर गिर पड़े। उनके बाणके वेगका वर्णन नहीं हो सकता॥ ३९॥

अथाशु कार्ष्णिर्जगदीश्वरेश्वरः
प्रलीनतां प्राप जले जलं यथा।
सद्यो विसिस्मुर्यदवः ससैनिका
विज्ञाय पूर्णं नृप रुक्मिणीसुतम्॥ ४०

तदनन्तर जगदीश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उसी समय कामदेवके स्वरूपमें विलीन हो गये, जैसे पानी पानीमें मिल जाता है। नरेश्वर! सैनिकोंसहित समस्त यादव रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नको कामदेवका पूर्ण-स्वरूप जानकर तत्काल चकित हो गये॥ ४०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मन्मथदेशविजयो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मन्मथदेशपर विजय' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाके द्वारा प्रद्युम्नका पूजन तथा स्तवन; यादव-सेनाकी चन्द्रावती-पुरीपर चढ़ाई; श्रीकृष्णकुमार वृकके द्वारा हिरण्याक्षपुत्र हृष्टका वध

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः केतुमालं विजित्य सः।
भद्राश्वं प्रययौ धन्वी खण्डं योगसमृद्धिमत्॥ १
यस्य सीमागिरिः साक्षाद्राजते गन्धमादनः।
सीतानाम्नी यत्र गङ्गा वहन्ती पापनाशिनी॥ २
वेदक्षेत्रे महातीर्थे सर्वपापप्रमोचने।
हयग्रीवो महाबाहुर्यत्र सन्निहितो हरिः॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न समूचे केतुमालवर्षपर विजय पाकर, धनुष धारण किये, योग-समृद्धियोंसे युक्त 'भद्राश्ववर्ष' में गये, जिसकी सीमाका पर्वत साक्षात् 'गन्धमादन' बड़ी शोभा पाता है, जहाँसे पापनाशिनी गङ्गा 'सीता' नामसे प्रवाहित होती हैं। वहाँ सर्वपापनाशक 'वेदक्षेत्र' नामक महातीर्थ है, जहाँ महाबाहु हयग्रीव

भद्रश्रवा धर्मसुतस्तस्य सेवां करोति हि।
गङ्गातीरस्य पुलिने प्रद्युम्नस्य महात्मनः।
बभूवुः शिबिरव्यूहा हेमाम्बरमनोहराः॥ ४

भद्रश्रवा धर्मसुतो महात्मा
भद्राश्वदेशाधिपतिर्महौजाः।
प्रदक्षिणीकृत्य ननाम भक्त्या
दत्वा बलिं कृष्णसुताय चाह॥ ५

भद्रश्रवा उवाच

त्वं साक्षाद्भगवान् पूर्णः परिपूर्णतमः स्वयम्।
साधूनां रक्षणार्थाय जगज्जेतुं विनिर्गतः॥ ६

भगवञ्छम्बरो नाम दैत्यः पूर्वं जितस्त्वया।
तस्य भ्राता महादुष्टः कनीयानुत्कचः स्मृतः॥ ७

गोकुले कृष्णचन्द्रेण मारितः शकटस्थितः।
तस्य भ्राता महादुष्टो ज्येष्ठोऽस्ति शकुनिर्बली॥ ८

जेतुं योग्यस्त्वया देव नान्यैरपि कदाचन।

श्रीप्रद्युम्न उवाच

कस्य वंशे समुद्भूतः शकुनिर्नाम दैत्यराट्॥ ९

कस्मिन् पुरे स्थितिस्तस्य बलं किं वद धर्मज।

भद्रश्रवा उवाच

कश्यपस्य मुनेर्दित्यामादिदैत्यौ बभूवतुः॥ १०

हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्तथा।
हिरण्याक्षस्य तस्यापि बभूवुर्नव पुत्रकाः॥ ११

शकुनिः शम्बरो हृष्टो भूतसन्तापनो वृकः।
कालनाभो महानाभो हरिश्मश्रुस्तथोत्कचः॥ १२

देवकूटाद्दक्षिणे हि जठरस्य गिरेरधः।
पुरी चन्द्रावती नाम दैत्यानां दुर्गमण्डिता॥ १३

शकुनिस्तत्र वसति भ्रातृभिः षड्भिरावृतः।
यदा यदा हि मुनयो यज्ञारम्भं प्रकुर्वते॥ १४

तदा तदा हि तेनापि भङ्गोऽकारि यदूत्तम।
यस्माच्च सन्ति शक्राद्या उद्विग्नाः सात्वताम्पते॥ १५

जेतुं योग्यस्त्वया देव देवध्रुग्दैत्यपुङ्गवः।
त्वया जितं जगत्सर्वं भक्तानां शान्तिकारणात्॥ १६

हरिका निवास है। धर्मपुत्र भद्रश्रवा उनकी सेवा करते हैं॥ १—३ १/२॥

सीता-गङ्गाके पुलिनपर महात्मा प्रद्युम्नकी सेनाके शिविर पड़ गये, जो सुनहरे वस्त्रोंके कारण बड़े मनोहर जान पड़ते थे। भद्राश्व देशके अधिपति धर्मपुत्र महाबली महात्मा भद्रश्रवाने भक्तिभावसे परिक्रमा करके श्रीकृष्णकुमारको प्रणाम किया और उन्हें भेंट अर्पित की। फिर वे उनसे बोले— ॥ ४-५॥

भद्रश्रवाने कहा—प्रभो! आप साक्षात् पूर्ण परिपूर्णतम भगवान् हैं। साधुपुरुषोंकी रक्षाके निमित्त ही दिग्विजयके लिये निकले हैं। भगवन्! आपने पूर्वकालमें शम्बर नामक दैत्यको परास्त किया था। उसका छोटा भाई उत्कच बड़ा दुष्ट था, जो गोकुलमें छकड़ेपर जा बैठा था। वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारा मारा गया; परंतु उसका बड़ा भाई महादुष्ट बलवान् शकुनि अभी जीवित है। देव! वह आपसे ही परास्त होनेयोग्य है, दूसरा कोई कदापि उसे जीत नहीं सकता॥ ६—८ १/२॥

श्रीप्रद्युम्नने पूछा—धर्मनन्दन! दैत्यराज शकुनि किसके वंशमें उत्पन्न हुआ है, उसका निवास किस नगरमें है और उसका बल क्या है—यह बताइये॥ ९ १/२॥

भद्रश्रवाने कहा—भगवन्! कश्यपमुनिके द्वारा दितिके गर्भसे दो आदिदैत्य उत्पन्न हुए, जिनमें बड़ेका नाम हिरण्यकशिपु और छोटेका नाम हिरण्याक्ष था। हिरण्याक्षके भी नौ पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—शकुनि, शम्बर, हृष्ट, भूत-संतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु तथा उत्कच॥ १०—१२॥

देवकूटसे दक्षिण दिशामें जठरगिरिकी तराईमें चन्द्रावती नामक पुरी है, जो दैत्योंके दुर्गसे सुशोभित है। वहाँ छः भाइयोंसे घिरा हुआ शकुनि निवास करता है। यदूत्तम! ऋषिलोग जब-जब यज्ञका आरम्भ करते हैं, तब-तब वह उनके यज्ञको भङ्ग कर देता है। भक्तजनपालक! उससे इन्द्र आदि देवता भी उद्विग्न हो उठे हैं। देव! वह देवद्रोही दैत्यराज आपसे ही जीते जानेयोग्य है; क्योंकि आपने भक्तोंकी शान्तिके लिये सम्पूर्ण जगत्को जीता है॥ १३—१६॥

प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यं चतुर्व्यूहाय ते नमः।
गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसां पतये नमः॥ १७

श्रीनारद उवाच

एवं सम्प्रार्थितः साक्षात्प्रद्युम्नो भगवान् हरिः।
देवाय भद्रश्रवसे माभैष्टेत्यभयं ददौ॥ १८

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः।
पुरीं चन्द्रावतीं गन्तुं प्रस्थानमकरोत्तदा॥ १९

मन्मुखाच्छकुनिः श्रुत्वा प्रागच्छन्तं यदूत्तमम्।
दैत्यानां सदसि प्राह शूलमुद्यम्य दैत्यराट्॥ २०

शकुनिरुवाच

दिष्ट्या दिष्ट्या हि शत्रुर्मे प्रद्युम्नोऽत्र समागतः।
जेतुं योग्यो मया दैत्या भ्रातुर्मय्यस्ति प्रागृणम्॥ २१

भ्राता मे शम्बरो नाम येन पूर्वं च मारितः।
तस्मात्तं घातयिष्यामि प्रद्युम्नं यदुभिः सह॥ २२

तस्माद्यात बलं तस्य विध्वस्तं कुरुतासुराः।
पश्चात्पुरन्दराधीशं घातयिष्यामि निर्जरान्॥ २३

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य दैत्यो हृष्टो महाबलः।
आययौ सम्मुखे योद्धुं दैत्यकोटिसमावृतः॥ २४

प्रद्युम्नो भगवान् साक्षाल्लीलामानुषविग्रहः।
महत्याः सर्वसेनाया गृध्रव्यूहं चकार ह॥ २५

गृध्रचञ्चौ वर्तमानोऽनिरुद्धो धन्विनां वरः।
ग्रीवायामर्जुनः पृष्ठे साम्बो जाम्बवतीसुतः॥ २६

पादयोरुभयो राजन्नास्थितो दीप्तिमद्गदौ।
कार्ष्णिः साक्षात्तदुदरे पुच्छे भानुर्हरेः सुतः॥ २७

बभूव तुमुलं युद्धं सीतागङ्गातटे नृप।
दैत्यानां यदुभिः सार्धमब्धीनामब्धिभिर्यथा॥ २८

आप भगवान् प्रद्युम्नको नमस्कार है। चतुर्व्यूहरूप आपको प्रणाम है। गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु तथा वेदोंके प्रतिपालक आपको नमस्कार है॥ १७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार प्रार्थना करनेपर साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न हरिने राजा भद्रश्रवाको 'डरिये मत'—यों कहकर अभयदान दिया। तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्नने अपनी सेनाके साथ चन्द्रावतीपुरीमें पहुँचनेके लिये वहाँसे तत्काल प्रस्थान किया। शकुनिको मेरे मुँहसे यह समाचार मिल गया कि '[तुम्हें मारनेके लिये] यदुकुलतिलक प्रद्युम्न आ रहे हैं।' यह सुनकर उस दैत्यराजने दैत्योंकी सभामें शूल उठाकर कहा—॥ १८—२०॥

शकुनि बोला—बड़े सौभाग्य और प्रसन्नताकी बात है कि मेरा शत्रु प्रद्युम्न स्वयं यहाँ आ रहा है। दैत्यो! मुझे उसे परास्त करना है; क्योंकि मुझपर मेरे भाईका ऋण पहलेसे ही चढ़ा हुआ है। जिसने पूर्वकालमें मेरे भाई शम्बरको मारा था, उसी अपराधके कारण मैं यादवोंसहित उस प्रद्युम्नको मार डालूँगा। इसलिये असुरो! तुमलोग जाओ और उसकी सेनाका विध्वंस करो। तत्पश्चात् मैं उसका, देवराज इन्द्रका और देवताओंका भी वध करूँगा॥ २१—२३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] शकुनिकी बात सुनकर महाबली दैत्य हृष्ट एक करोड़ दैत्योंकी सेना साथ लिये यादव-सेनाके सम्मुख युद्धके लिये आया। लीलासे ही मानव-शरीर धारण करनेवाले भगवान् प्रद्युम्नने अपनी सम्पूर्ण सेनाका गृध्रव्यूह बनाया, अर्थात् गृध्रकी आकृतिमें अपनी सेनाको खड़ा किया॥ २४-२५॥

गृध्रव्यूहमें चोंचके स्थानपर धनुर्धरशिरोमणि अनिरुद्ध खड़े हुए, ग्रीवा-भागमें अर्जुन तथा पृष्ठभागमें जाम्बवती-कुमार साम्ब विराजमान हुए। राजन्! दोनों पैरोंकी जगह दीप्तिमान् और गद खड़े हुए, उदरभागमें स्वयं कार्ष्णि और पुच्छभागमें श्रीकृष्णकुमार भानु थे॥ २६-२७॥

नरेश्वर! सीता-गङ्गाके तटपर यादवोंके साथ दैत्योंका उसी प्रकार घोर युद्ध हुआ, जैसे समुद्र समुद्रोंसे टकरा रहे हों॥ २८॥

बाणैस्त्रिशूलैर्मुसलैर्मुद्‌गरैस्तोमरर्ष्टिभिः ।
ववृषुर्दानवाः सर्वे धाराभिरिव वारिदाः ॥ २९

रुरोध सूर्यं चाकाशं सैन्यपादरजो भृशम् ।
राजन् स्वबाणं च यथा वारिदाः प्रावृडुद्भवाः ॥ ३०

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोन्नाद एव च ।
महाशः पावनो वह्निः क्षुधिश्च दशमः स्मृतः ॥ ३१

मित्रविन्दात्मजा ह्येते युयुधुर्दानवैः सह ।
बाणान्धकारे सञ्जाते वृको नाम हरेः सुतः ॥ ३२

सर्वेषामग्रतः प्राप्तो धनुष्टङ्कारयन् मुहुः ।
दैत्यान् बिभेद बाणौघैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव ॥ ३३

गजान् रथान् हयान् वीरान् पातयामास भूतले ।
निपेतुश्छिन्नकवचाश्छिन्नचापा रणाङ्गणे ॥ ३४

वृकबाणैर्भिन्नपादा वृक्षा वातहता इव ।
अधोमुखा ऊर्ध्वमुखा बाणौघैश्छिन्नबाहवः ॥ ३५

रेजू रणाङ्गणे राजन् भाण्डव्यूहा इवाहताः ।
द्विधाभूता गजा बाणैः पतिता रणमण्डले ॥ ३६

विरेजुश्छुरिकाविद्धाः कूष्माण्डशकला इव ।
तदैव हृष्टः सम्प्राप्तः सिंहारूढो महाबलः ॥ ३७

बिभेद कवचं तस्य शिञ्जिनीं दशभिः शरैः ।
चतुर्भिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ॥ ३८

रथं च बाणविंशत्या बिभेद दनुजाधिपः ।
छिन्नधन्वा वृको भूत्वा हताश्वो हतसारथिः ॥ ३९

अन्यं रथं समारूढो धनुर्जग्राह रोषतः ।
तावत्तस्य धनुर्हृष्टश्चिच्छेद समरेऽसुरः ॥ ४०

जैसे बादल जलकी धारा बरसाते हैं, उसी प्रकार दानव यादवोंपर बाण, त्रिशूल, मुसल, मुद्गर, तोमर तथा ऋष्टियोंकी वृष्टि करने लगे। राजन्! सेनाओंके पैरोंसे उड़ी हुई अपार धूलिने सूर्य और आकाशको आच्छादित कर दिया। किसीको अपना बाण भी नहीं दिखायी देता था। जैसे वर्षाके बादल सूर्यको आच्छादित करके अन्धकार फैला देते हैं, वही दशा उस समय हुई थी ॥ २९-३० ॥

वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और दसवें क्षुधि—मित्रविन्दाके ये दस पुत्र दानवोंके साथ युद्ध करने लगे। जब बाणोंसे अन्धकार छा गया, तब श्रीहरिकुमार वृक बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए सबसे आगे आ गये। वे बाण-समूहोंसे दैत्योंको विदीर्ण करने लगे, जैसे कोई कटुवचनोंसे मित्रताको खण्डित करे। उन्होंने दैत्य-सेनाके हाथियों, रथों, घोड़ों और पैदल वीरोंको धराशायी कर दिया। वे कवच और धनुष कट जानेके कारण समराङ्गणमें गिर पड़े ॥ ३१—३४ ॥

वृकके बाणोंसे जिनके पैर कट गये थे, वे आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति धरतीपर गिर गये। किन्हींके मुँह नीचेकी ओर थे और किन्हींके ऊपरकी ओर। राजन्! बाण-समूहोंसे भुजाओंके छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वे रणभूमिमें फूटे हुए बर्तनोंके ढेर-से शोभित होते थे। उस रणमण्डलमें हाथी बाणोंकी मारसे दो टूक होकर पड़े थे और छुरीसे काटे गये कूष्माण्डके टुकड़ोंके समान प्रतीत होते थे ॥ ३५—३६ १/२ ॥

इसी समय महाबली हृष्ट सिंहपर चढ़कर आया। उसने दस बाण मारकर वृकके कवच और धनुषकी प्रत्यञ्चाको काट डाला। फिर चार बाणोंसे चारों घोड़े, दो बाणोंसे सारथि और तीन बाणोंसे ध्वज खण्डित कर दिये। फिर बीस बाण मारकर उस दानवराजने वृकके रथको नष्ट कर दिया। धनुष कट गया, घोड़े और सारथि मार डाले गये, तब वृक दूसरे रथपर जा चढ़े तथा रोषपूर्वक धनुष हाथमें लिया। इतनेमें ही असुर हृष्टने वृकके उस धनुषको भी काट डाला! ॥ ३७—४० ॥

तदा गदां समादाय वृको यादवपुङ्गवः।
तताड मूर्ध्नि पञ्चास्यं दैत्यं पृष्ठस्थितं पुनः॥ ४१

मृगेन्द्रः क्रोधसम्पूर्णः समुत्पत्य रणाङ्गणे।
अनेकान् पातयामास नखैर्दन्तैः करैरपि॥ ४२

हुङ्कारं भीषणं कृत्वा ललज्जिह्वः स्फुरत्सटः।
वृकं सम्पातयामास रम्भादण्डं गजो यथा॥ ४३

तब यादवपुंगव वृकने गदा हाथमें लेकर सिंहके मस्तकपर तथा उसकी पीठपर बैठे हुए दैत्यपर भी प्रहार किया। तब क्रोधसे भरे हुए सिंहने समराङ्गणमें उछलकर अपने नखों, दाँतों और पंजोंसे अनेक योद्धाओंको मार गिराया। उसकी जीभ लपलपा रही थी, अयाल चमक रहे थे। उसने भीषण हुंकार करके वृकको उसी भाँति गिरा दिया, जैसे हाथी केलेके तनेको धराशायी कर दे॥ ४१—४३॥

गृहीत्वा तु वृको दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले।
तस्योपरि नदंस्तस्थौ मल्लो मल्लं यथा नृप॥ ४४

उत्पतन्तं पुनः सिंहं चर्वयन्तं तनुं बलात्।
तताड मुष्टिना तं वै मित्रविन्दात्मजो बली॥ ४५

नरेश्वर! वृकने उस सिंहको दोनों हाथोंसे पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा। फिर वे उसके ऊपर चढ़कर वैसे ही गर्जने लगे, जैसे एक पहलवान दूसरे पहलवानको पटककर उसकी छातीपर चढ़ बैठे और गर्जने लगे। जब वह सिंह पुनः उछलने और उनके शरीरको बलपूर्वक चबाने लगा, तब बलवान् मित्रविन्दाकुमारने उसके ऊपर एक मुक्का मारा॥ ४४-४५॥

तस्य मुष्टिप्रहारेण केसरी पञ्चतां गतः।
तदा क्रुद्धो हृष्टदैत्यः शूलं चिक्षेप सत्वरम्॥ ४६

शूलं स्फुरन्महोल्काभं चिच्छेद त्वसिना वृकः।
तीक्ष्णया तुण्डया राजन् फणिनं गरुडो यथा॥ ४७

उनके मुक्केकी मारसे सिंहने दम तोड़ दिया। तब कुपित हुए दैत्यप्रवर हृष्टने उनके ऊपर शीघ्र ही शूल फेंका। किंतु बड़ी भारी उल्काके समान तेजस्वी उस शूलको वृकने तलवारसे उसी प्रकार टूक-टूटकर दिया, जैसे गरुड़ अपनी तीखी चोंचके प्रहारसे किसी सर्पके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ ४६-४७॥

हृष्टोऽपि स्वमसिं नीत्वा नादयन् स्वं महाबलम्।
जघान तं वृकं मूर्ध्नि कम्पयन् वसुधातलम्॥ ४८

खड्गकोशे ततः खड्गमुपधार्य वृको बली।
कन्धरे स्वेन खड्गेन तं तताड स्फुरच्छुचम्॥ ४९

खड्गच्छिन्नं शिरस्तस्य दैत्यस्य पतितं भुवि।
रेजे कमण्डलुमिव सकिरीटं सकुण्डलम्॥ ५०

हृष्टने भी अपनी तलवार लेकर गर्जना की और भूतलको कँपाते हुए उसने महाबली वृकके मस्तकपर उसके द्वारा प्रहार किया। तब बलवान् वृकने तलवारकी म्यानपर दैत्यके वारको रोका तथा अपने खड्गके द्वारा दैत्यके कंधेपर चोट पहुँचायी। उस खड्गसे दैत्यका सिर कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। किरीट और कुण्डलोंसे युक्त वह मस्तक गिरे हुए कमण्डलुके समान शोभा पाता था॥ ४८—५०॥

हृष्टे मृते तदा दैत्याः शेषाः सर्वे पलायिताः।
भयातुरा महाराज ययुश्चन्द्रावतीं पुरीम्॥ ५१

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तदा।
श्रीवृकस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ५२

महाराज! हृष्टके मारे जानेपर शेष दैत्य भयसे व्याकुल हो भागकर चन्द्रावतीपुरीको चले गये। उस समय देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और देवतालोग वृकके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ५१-५२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे हृष्टदैत्यवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'हृष्टदैत्यका वध' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

संग्रामजित्के हाथसे भूतसंतापनका वध

श्रीनारद उवाच

हृष्टं निपतितं श्रुत्वा शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः।
भ्रातॄन् सम्प्रेषयामास देवानां भयकारकान्॥ १

भूतसन्तापनो नाम गजमारुह्य निर्गतः।
वृकः खरं समारुह्य कालनाभोऽथ सूकरम्॥ २

महानाभो मत्तमुष्ट्रं हरिश्मश्रुस्तिमिङ्गिलम्।
वैजयन्तं रथं जैत्रं मयदैत्यविनिर्मितम्॥ ३

पञ्चयोजनविस्तीर्णं सहस्राश्वनियोजितम्।
मायामयं कामगं च पताकाशतसंवृतम्॥ ४

सहस्रकलशाढ्यं च मुक्तादामविलम्बितम्।
रत्नभूषणभूषाढ्यं शतचन्द्रसमोज्ज्वलम्॥ ५

सहस्रचक्रसंयुक्तं घण्टाकारविभूषणम्।
आरुह्य शकुनिः पश्चाद्योद्धुकामो विनिर्ययौ॥ ६

अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिर्दैत्यानां मैथिलेश्वर।
धनुःस्वनैर्वीरशब्दैरश्वह्रेषारथस्वनैः॥ ७

चीत्कारैर्हस्तिनामाशामण्डलं तु जगर्ज ह।
दैत्यसेनाप्रयाणेन चकम्पे मण्डलं भुवः॥ ८

निपेतुर्गिरयोऽनेका विचेलुः सिन्धवो नृप।
निपातितार्गला देवैर्बभूवाश्वमरावती॥ ९

तत्सैन्यं भीषणं दृष्ट्वा प्रद्युम्नो धन्विनां वरः।
बली धैर्यधरः कार्ष्णिः प्राहेदं यदुपुङ्गवान्॥ १०

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! हृष्टको मारा गया सुनकर शकुनिके क्रोधकी सीमा न रही। उसने देवताओंको भी भय देनेवाले अपने भाइयोंको भेजा। भूतसंतापन नामक दैत्य हाथीपर चढ़कर निकला। वृक दैत्य गधेपर और कालनाभ सूअरपर चढ़कर आया। महानाभ मतवाले ऊँटपर तथा हरिश्मश्रु तिमिंगिल (अतिकाय मगरमच्छ)-पर बैठकर निकला॥ १—२ $^{1}/_{2}$ ॥

मयासुरका बनाया हुआ एक विजयशील रथ था, जिसपर वैजयन्ती पताका फहराती थी। इसीलिये वह 'वैजयन्त' और 'जैत्र' कहलाता था। उसका विस्तार पाँच योजनका था और उसमें एक हजार घोड़े जुते हुए थे। वह मायामय रथ इच्छानुसार चलनेवाला तथा सैकड़ों पताकाओंसे सुशोभित था॥ ३-४॥

उसमें एक हजार कलश लगे थे और मोतीकी झालरें लटक रही थीं। वह रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित तथा सौ चन्द्रमाओंके समान उज्ज्वल था। उसमें एक हजार पहिये लगे थे तथा उसमें लटकाये गये बहुत-से घंटे उसकी शोभा बढ़ाते थे। शकुनि उसी रथपर आरूढ़ हो सबसे पीछे युद्धकी इच्छासे निकला॥ ५-६॥

मैथिलेश्वर! उसके साथ बारह अक्षौहिणी दैत्योंकी सेना थी। धनुषोंकी टंकार, वीरोंके सिंहनाद, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथोंकी घरघराहट तथा हाथियोंकी चीत्कारोंसे मानो समस्त दिङ्मण्डल गर्जना कर रहा था। दैत्यसेनाके अभियानसे समस्त भूमण्डल काँपने लगा॥ ७-८॥

नरेश्वर! अनेकानेक पर्वत धराशायी हो गये। समुद्र विक्षुब्ध हो उठे और अपनी मर्यादाको लाँघ गये। देवताओंने तुरंत ही अमरावतीपुरीके दरवाजे बंद कर लिये और वहाँ अर्गला डाल दी। उस भीषण सेनाको देखकर धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, बलवान् तथा धैर्यशाली वीर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न यदुकुलके श्रेष्ठ वीरोंसे इस प्रकार बोले—॥ ९-१०॥

प्रद्युम्न उवाच

इदं शरीरं भुवि पाञ्चभौतिकं
फेनोपमं कर्मगुणादिनिर्मितम्।
गतागतं कालवशं कदापि
बुधा न शोचन्ति यथार्भकैः कृतम्॥ ११

प्रद्युम्नने कहा—वीरो! भूतलपर जो हमारा यह शरीर है, पाँच भूतोंका बना हुआ है, फेनके समान क्षणभङ्गुर है, कर्म और गुण आदिसे इसका निर्माण हुआ है। इसका आना-जाना लगा रहता है तथा यह कालके अधीन है। यह जगत् बालकोंके रचे हुए खिलवाड़के समान है। विद्वान् पुरुष इसके लिये कभी शोक नहीं करते॥ ११॥

गच्छन्ति चोर्ध्वं किल सात्त्विका जना
मध्ये च तिष्ठन्ति हि राजसा नराः।
अधः प्रगच्छन्ति हि तामसाः परे
मुहुर्मुहुस्ते विचरन्ति कर्मभिः॥ १२

सात्त्विक पुरुष ऊर्ध्वलोकमें गमन करते हैं, राजस मनुष्य मध्यलोकमें स्थित होते हैं और तामस जीव नीचेके नरकलोकोंमें जाते हैं। इन तीनोंसे जो भिन्न हैं, वे बारंबार कर्मानुसार विचरते हुए नाना योनियोंमें जनमते-मरते रहते हैं॥ १२॥

बिभेत्ययं वा किल सर्वतो यथा
नेत्रभ्रमेणाचलतीव भूर्वृथा।
तथा च सर्वं मनसा कृतं जगत्
काचेऽर्भकं ह्यर्भक आवृतो यथा॥ १३

यह लोक सब ओरसे भयग्रस्त है; जैसे नेत्रोंके घूमनेसे धरती व्यर्थ ही घूमती-सी प्रतीत होती है, उसी प्रकार यह मनःकल्पित सम्पूर्ण जगत् भ्रान्त होता है। जैसे काँच (दर्पण आदि)-में प्रतिबिम्बित अपने ही स्वरूपको देखकर बालक मुग्ध होता है, उसी प्रकार यहाँ सब कुछ भ्रान्तिपूर्ण है॥ १३॥

यथा सुखं मण्डलवर्तिनां चलं
तथास्ति पातालनिवासिनामपि।
तथामराणां क्रतुभिः कृतं स्मरेत्
सर्वं त्यजेत्तत्तृणवत्परो जनः॥ १४

जैसे मण्डलवर्ती जनोंका सुख अस्थिर होता है, उसी प्रकार पातालनिवासियोंका भी सुख अचल नहीं है। यज्ञोंद्वारा उपलब्ध देवताओंके सुखको भी इसी प्रकर चञ्चल समझना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुष यही सोचकर समस्त सांसारिक सुखको तिनकेके समान त्याग देते हैं॥ १४॥

ऋतोर्गुणा देहगुणाः स्वभावा
अहर्दिनं यान्ति यथा तथा जनाः।
दृश्यं च यद्यन्न हि किञ्चिदस्ति
यथा व्रजे गच्छति पान्थसङ्गमम्॥ १५

ऋतुके गुण, देहके गुण और स्वभाव प्रतिदिन जाते—परिवर्तित होते रहते हैं; उसी प्रकार मनुष्योंका भी आवागमन लगा रहता है। यहाँ जो-जो दृश्यमान वस्तु है, वह कोई भी सत्य नहीं है। जैसे यात्रामें राहगीरोंका समागम होता है और फिर सब-के-सब जहाँ-तहाँ चले जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ सब आगमापायी है, कुछ भी स्थिर नहीं है॥ १५॥

दृष्टं यथा वस्तु यदोल्कया तथा
परे गते किं ह्युभयप्रयोजनम्।
विधाय मार्गं विचरेच्छिवस्य
पश्यन् हि सर्वत्र हरिं परेश्वरम्॥ १६

जैसे इस लोकमें देखी हुई वस्तु उल्का या विद्युद्-विलासके समान अस्थिर है, उसी प्रकार पारलौकिक वस्तुके विषयमें भी समझना चाहिये। उन दोनोंसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? अतः सर्वत्र परमेश्वर श्रीहरिको देखते हुए कल्याणमार्गका निश्चय करके सदा उसीपर चलना चाहिये। जैसे जलपात्रोंके समूहमें सर्वत्र एक ही

यथेन्दुरेको जलपात्रवृन्दगो
यथाग्निरेको विदितः समिच्चये।

तथा परात्मा भगवाननेकवत्
सोऽन्तर्बहिः स्यात्सुकृतेषु देहिषु॥ १७

यो ज्ञाननिष्ठोऽतिविरागमाश्रितः
श्रीकृष्णभक्तस्त्वनपेक्षकोऽपि यः।
तपोवनं वापि गृहं गृहं वनं
स्पृशन्ति तं ते त्रिगुणा न सर्वतः॥ १८

ततो यतिस्त्वध्यगमत्परात्परं
सुखी सदानन्दमयस्तु बालवत्।
देहं न पश्यत्युत सर्वकारणं
धृतं च वासो मदिरामदान्धवत्॥ १९

सूर्योदये सर्वतमो विलीयते
प्रदृश्यते वस्तु गृहे यथा जनैः।
ज्ञानोदयेऽज्ञानतमः प्रलीयते
सम्भ्राजते ब्रह्म परं तनौ तथा॥ २०

यथेन्द्रियाणां च पृथक् च वर्त्मभि-
र्नोन्नीयतेऽर्थस्त्रिगुणाश्रयः परः।
एकं ह्यनन्तस्य परस्य धाम
तथा मुनीनां किल शास्त्रवर्त्मभिः॥ २१

परं पदं केऽपि वदन्ति वैष्णवं
के वापि वैकुण्ठपरं परेशम्।
शान्तिं च यत्केऽपि तमःपरं बृहत्
कैवल्यमेके प्रवदन्ति धाम के॥ २२

यदक्षरं केऽपि दिशं वदन्ति के
गोलोकमाद्यं प्रवदन्त्यथापरे।
केचिन्निकुञ्जं निजलीलयावृतं
प्राप्नोति कृष्णस्य पदं च तन्मुनिः॥ २३

चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होता है तथा जैसे समिधाओंके समुदायमें एक ही अग्नितत्त्वका बोध होता है, उसी प्रकार एक ही परमात्मा भगवान् स्वयंनिर्मित देहधारियोंके भीतर और बाहर अनेक-सा जान पड़ता है॥ १६-१७॥

जो ज्ञाननिष्ठ है, अत्यन्त वैराग्यका आश्रय ले चुका है, भगवान् श्रीकृष्णका भक्त है और किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं रखता, वह तपोवनमें निवास करे या घरमें, उसे तीनों गुण सर्वथा स्पर्श नहीं करते॥ १८॥

इसीलिये संन्यासी, जिसने परात्पर ब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया है, सदा सुखी एवं आनन्दमय हो बालककी तरह विचरता है। जैसे मदिराके मदसे अन्धा हुआ मनुष्य यह नहीं देखता कि मेरे द्वारा पहना हुआ वस्त्र शरीरपर है या गिर गया, उसी प्रकार सिद्ध पुरुष समस्त सिद्धियोंके कारणभूत शरीरके विषयमें यह नहीं देखता कि वह प्रारब्धवश है या गिर गया अथवा कहीं आता है या जाता है॥ १९॥

जैसे सूर्योदय होनेपर सारा अन्धकार नष्ट हो जाता है और घरमें रखी हुई वस्तु लोगोंको यथावस्थित रूपसे दिखायी देने लगती है, उसी प्रकार ज्ञानोदय होनेपर अज्ञानान्धकार मिट जाता है और अपने शरीरके भीतर ही परब्रह्म प्रकाशित होने लगता है। जैसे इन्द्रियोंके पृथक्-पृथक् मार्गसे तीनों गुणोंके आश्रयभूत परमार्थ वस्तुका उन्नयन (सम्यग्ज्ञान) नहीं हो सकता, उसी प्रकार अनन्त परमात्माका एकमात्र अद्वितीय धाम मुनियोंके बताये विभिन्न शास्त्रमार्गों द्वारा पूर्णतः नहीं जाना जा सकता॥ २०-२१॥

कुछ लोग वैष्णवधामको 'परमपद' कहते हैं, कोई वैकुण्ठको परमेश्वरका 'परमधाम' बताते हैं, कोई अज्ञानान्धकारसे परे जो शान्तस्वरूप परमब्रह्म है, उसे 'परमपद' मानते हैं और कुछ लोग कैवल्य मोक्षको ही 'परमधाम' की संज्ञा देते हैं॥ २२॥

कोई अक्षरतत्त्वकी उत्कृष्टताका प्रतिपादन करते हैं, कोई गोलोकधामको ही सबका आदिकारण कहते हैं तथा कुछ लोग भगवान्‌की निज लीलाओंसे परिपूर्ण निकुञ्जको ही 'सर्वोत्कृष्ट पद' बताते हैं। मननशील मुनि इन सबके रूपमें श्रीकृष्णपदको ही प्राप्त करता है॥ २३॥

श्रीनारद उवाच

इति कार्ष्णेर्वचः श्रुत्वा सर्वे यादवपुङ्गवाः।
शस्त्राणि जगृहुर्हृष्टा तज्ज्ञाने धैर्यवर्धने॥ २४

बभूव तुमुलं युद्धं दैत्यानां यदुभिः सह।
सीतागङ्गातटे चाब्धौ रक्षसां कपिभिर्यथा॥ २५

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः पत्तयो नृप।
अश्ववाहैरश्ववाहा युयुधुश्च गजा गजैः॥ २६

केचित्करीन्द्रा उन्मत्ता महामात्यैः प्रणोदिताः।
गिरीन्द्रा इव दृश्यन्ते युक्तानां मेघडम्बरैः॥ २७

शुण्डादण्डैश्च फूत्कारैः सचीत्कारैः सशृङ्खलैः।
पातयन्तो रथानश्वान् वीरान् राजन् रणाङ्गणे॥ २८

शुण्डादण्डैः सङ्गृहीत्वा रथान् साश्वान् ससारथीन्।
निपात्य भूमावुत्थाप्य चिक्षिपुश्चाम्बरे बलात्॥ २९

कांश्चिन्ममर्दुः पादाभ्यां संविदार्य करैर्दृढैः।
सक्षताश्च गजा राजन् प्रधावन्तो रणाङ्गणे॥ ३०

सपक्षास्तुरगा राजन्नश्ववाहप्रणोदिताः।
उल्लङ्घयन्तोऽथ रथान् गजकुम्भान्तरे गताः॥ ३१

केचिदश्वैर्महावीराः शक्तिहस्ता मदोत्कटाः।
जघ्नुर्गजस्थान्नृपतीन् मृगेन्द्रा इव यूथपान्॥ ३२

अश्वारूढाः केऽपि सेनां संविदार्य विनिर्गताः।
खड्गवेगैः पद्मवनं लीलाभिर्वायवो यथा॥ ३३

केचित्परस्परं साश्वैरुत्पतन्तो रणाङ्गणे।
खड्गैर्जघ्नुर्यथा क्रव्ये चञ्चुभिः पक्षिणोऽम्बरे॥ ३४

केचित्खड्गैः परशुभिः केचिच्चक्रैः पदातयः।
चिच्छिदुर्निशितैर्भल्लैः फलानीव शिरांसि च॥ ३५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नकी यह बात सुनकर, धैर्यवर्धक ज्ञान प्राप्त करके, हर्ष और उत्साहसे भरे हुए समस्त यादव-श्रेष्ठ वीरोंने शस्त्र ग्रहण कर लिये। फिर तो सीता-गङ्गाके तटपर यादवोंके साथ दैत्योंका तुमुल युद्ध हुआ—वैसे ही, जैसे समुद्रके तटपर वानरोंके साथ राक्षसोंका हुआ था। रथी रथियोंसे, पैदल पैदलोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे और गजारोही गजारोहियोंसे जूझने लगे॥ २४—२६॥

महावतोंसे प्रेरित हुए, हौदोंसे सुशोभित कुछ उन्मत्त गजराज मेघाडम्बरसे युक्त गिरिराजोंके समान दिखायी देते थे। राजन्! वे समराङ्गणमें फुफकारते-चिंघाड़ते तथा साँकलोंसे युक्त सूँड़ोंद्वारा रथियों, घुड़सवारों तथा पैदल वीरोंको धराशायी करते हुए विचर रहे थे। वे घोड़ों और सारथियोंसहित रथोंको सूँड़में लपेटकर भूमिपर पटक देते और बलपूर्वक पुनः उठाकर आकाशमें फेंक देते थे॥ २७—२९॥

राजन्! उस युद्धभूमिमें सब ओर दौड़ते हुए क्षत-विक्षत गजराज कुछ लोगोंको सुदृढ़ सूँड़ोंद्वारा विदीर्ण करके उन्हें पैरोंसे मसल देते थे। महाराज! घुड़सवारोंद्वारा प्रेरित पंखयुक्त घोड़े रथोंको लाँघकर हाथियोंके कुम्भस्थलपर चढ़ जाते थे॥ ३०-३१॥

कुछ महावीर घुड़सवार युद्धके मदसे उन्मत्त हो, हाथमें शक्ति लिये घोड़ोंके द्वारा हाथियोंके कुम्भस्थल-पर पहुँचकर गजारोही नरेशोंको उसी प्रकार मार डालते थे, जैसे सिंह यूथपति गजराजोंको मार गिराते हैं। कुछ घुड़सवार योद्धा तलवारोंके वेगसे सामनेकी सेनाको विदीर्ण करते हुए उसी प्रकार सकुशल आगे निकल जाते थे, जैसे वायु अपने वेगसे लीलापूर्वक कमल-वनको रौंदकर आगे बढ़ जाती है॥ ३२-३३॥

कुछ घुड़सवार समराङ्गणमें उछलते हुए खड्गोंद्वारा उसी प्रकार आपसमें ही आघात-प्रत्याघात करने लगते थे, जैसे आकाशमें पक्षी किसी मांसके टुकड़ेके लिये एक-दूसरेको चोंचसे मारने लगते हैं। कुछ पैदल योद्धा खड्गोंसे, कुछ फरसों और चक्रोंसे तथा कुछ योद्धा तीखे भालोंसे फलोंकी तरह विपक्षियोंके मस्तक काट लेते थे॥ ३४-३५॥

सङ्ग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणो विजित्।
जयः सुभद्रो वामश्च सत्यकोऽश्वयुरेव हि॥ ३६

भद्रायाश्च सुता ह्येते श्रीकृष्णस्यौरसाः शुभाः।
सर्वेषामग्रतः प्राप्ता युयुधुर्दैत्यपुङ्गवैः॥ ३७

भूतसन्तापनो नाम गजारूढो महासुरः।
यदुसैन्ये महाराज चक्रे नाराचदुर्दिनम्॥ ३८

बाणान्धकारे च कृते भूतसन्तापनेन वै।
सङ्ग्रामजित्तदा प्राप्तः श्रीकृष्णस्य सुतो बली॥ ३९

विव्याध बाणशतकैर्भूतसन्तापनं रणे।
प्रलयार्णवसङ्घोषभीमसङ्घट्टनादिनीम् ॥ ४०

धनुर्ज्यां तस्य चिच्छेद भूतसन्तापनो बली।
संग्रामजिद्धनुश्चान्यद्गृहीत्वा स्वं तडित्प्रभम्॥ ४१

सज्जं कृत्वा विधानेन शतं बाणान् समादधे।
ते बाणास्तद्धनुर्ज्यां च कवचं लोहनिर्मितम्॥ ४२

भित्त्वा छित्त्वा तनुं तस्य गजं भित्त्वावनिं गताः।
बाणप्रहारव्यथितः किञ्चिद्व्याकुलमानसः॥ ४३

गजं स्वं नोदयामास भूतसन्तापनो बली।
कालान्तकसमं नागं दृष्ट्वा सङ्ग्रामजिद्बली॥ ४४

गृहीत्वा स्वमसिं दिव्यं सञ्जघान रणाङ्गणे।
तस्य खड्गप्रहारेण शुण्डादण्डो द्विधाभवत्॥ ४५

चीत्कारमुत्कटं कुर्वन् मदं संस्रावयन् कटात्।
भूतसन्तापनं त्यक्त्वा भुवनं कम्पयन् गजः॥ ४६

निपातयन् महावीरान् घण्टानादैर्नदन् मुहुः।
न बलात्स्तम्भितो दैत्यः पुरीं चन्द्रावतीं ययौ॥ ४७

संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, विजित्, जय, सुभद्र, वाम, सत्यक तथा अश्वयु—भद्राके गर्भसे उत्पन्न हुए ये श्रीकृष्णके दस औरस पुत्र सबसे आगे आकर दैत्यपुंगवोंके साथ युद्ध करने लगे॥ ३६-३७॥

महाराज! हाथीपर चढ़े हुए महान् असुर भूत-संतापनने अपने नाराचोंकी वर्षासे दुर्दिनका दृश्य उपस्थित कर दिया। भूतसंतापनके बाणोंद्वारा अन्धकार फैला दिये जानेपर श्रीकृष्णके बलवान् पुत्र संग्रामजित् उसका सामना करनेके लिये आये॥ ३८-३९॥

उन्होंने रणभूमिमें सैकड़ों बाण मारकर भूत-संतापनको घायल कर दिया। तब बलवान् भूत-संतापनने प्रलयकालके समुद्रोंके संघर्षसे प्रकट होनेवाले भयंकर घोषके समान टंकार-ध्वनि करनेवाली संग्रामजित्के धनुषकी प्रत्यञ्चाको काट दिया। तब संग्रामजित्ने विद्युत्के समान दीप्तिमान् अपना दूसरा धनुष लेकर उसपर विधिपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ायी, फिर सौ बाण छोड़े॥ ४०—४१½॥

वे बाण भूतसंतापनके धनुषकी प्रत्यञ्चा, लोहनिर्मित कवच, शरीर और हाथीका छेदन-भेदन करते हुए धरतीमें समा गये। बाणोंके उस प्रहारसे पीड़ित हो भूतसंतापन मन-ही-मन कुछ घबराया, फिर उस बलवान् वीरने अपने हाथीको आगे बढ़ाया। काल और यमके समान भयानक उस हाथीको आक्रमण करते देख, बलवान् संग्रामजित्ने अपना दिव्य खड्ग लेकर रणभूमिमें उसके ऊपर प्रहार किया॥ ४२—४४½॥

उस खड्ग-प्रहारसे उसकी सूँड़के दो टुकड़े हो गये और वह भयानक चीत्कार करता तथा गण्डस्थलसे मद बहाता हुआ भूतसंतापनको छोड़कर जगत्को कम्पित करता हुआ भागा। बड़े-बड़े वीरोंको धराशायी करता हुआ और बारबार घंटे बजाता हुआ सीधे दैत्यपुरी चन्द्रावतीको चला गया। कोई भी बलपूर्वक उसे रोक न सका॥ ४५—४७॥

कोलाहलो महानासीद्व्रजन्नैवं गजे च्युते।
भूतसन्तापनश्चक्रं श्रीकृष्णस्य सुताय वै॥ ४८

चिक्षेप निशितं शीघ्रं ग्रीष्ममार्तण्डवत्स्फुरत्।
तदागतं भ्रमद्दृष्ट्वा चक्रं भद्रात्मजो बली॥ ४९

स्वचक्रेण महाराज लीलया शतधाच्छिनत्।
जठरस्य गिरेः शृङ्गं समुत्पाट्य महासुरः॥ ५०

चिक्षेप कृष्णपुत्राय नादयन् व्योममण्डलम्।
सङ्ग्रामजिच्च तच्छृङ्गं गृहीत्वा भुजयोर्बलात्॥ ५१

तताड तेन राजेन्द्र भूतसन्तापनं रणे।
भूतसन्तापनो दैत्यः सम्पूर्णं जठरं गिरिम्॥ ५२

गृहीत्वा सङ्गरे तस्थावुद्भटो दैत्यपुङ्गवः।
अनेन घातयिष्यामि त्वां रणे प्रवदन् मुखात्॥ ५३

देवकूटं समुत्पाट्य गिरिं च श्रीहरेः सुतः।
अनेन घातयिष्यामि त्वां रणे प्रवदन् मुखात्॥ ५४

तस्थौ तत्सम्मुखे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्।
क्षिपन्तं पर्वतं दैत्यं भूतसन्तापनं नृप॥ ५५

तताड गिरिणा स्वेन रणे सङ्ग्रामजिद्बली।
जठरो देवकूटश्च द्वौ गिरी दैत्यमस्तके॥ ५६

पतितौ भूरिभाराढ्यौ वज्रसङ्घर्षनादिनौ॥ ५७

भूतसन्तापनस्ताभ्यां पतितः पञ्चतां गतः।
तज्ज्योतिः सङ्ग्रामजिति लीनं जातं विदेहराट्॥ ५८

श्रीसङ्ग्रामजितः सैन्ये नेदुर्दुन्दुभयस्तदा।
भद्रात्मजोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ५९

इस प्रकार हाथीके संग्रामभूमिसे भाग जानेपर वहाँ महान् कोलाहल मच गया। तब भूतसंतापनने श्रीकृष्ण-पुत्रके ऊपर तीखी धारवाला चक्र चलाया, जो ग्रीष्मऋतुके सूर्यकी भाँति उद्भासित हो रहा था। महाराज! उस घूमते चक्रको अपने ऊपर आया देख बलवान् भद्राकुमारने अपने चक्रद्वारा लीलापूर्वक उसके सौ टुकड़े कर डाले॥ ४८—४९१/२॥

तब उस महान् असुरने जठरगिरिका एक शिखर उखाड़कर आकाशमण्डलको निनादित करते हुए श्रीकृष्ण-पुत्रपर फेंका। राजेन्द्र! संग्रामजित्ने उस शिखरको बलपूर्वक दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और उसीके द्वारा रणभूमिमें भूतसंतापनपर प्रहार किया। तब दैत्यपुंगव भूतसंतापन समूचे जठरगिरिको उखाड़कर उसे हाथमें ले, संग्रामभूमिमें खड़ा हुआ 'अब मैं इसी पर्वतसे संग्राममें तुम्हारा काम तमाम कर दूँगा'—इस प्रकार मुखसे कहने लगा॥ ५०—५३॥

[यह देख] श्रीहरिके पुत्र संग्रामजित्ने भी देवकूट नामक पहाड़ उखाड़ लिया और मुखसे कहा—'मैं भी इसीसे युद्धभूमिमें तेरे प्राण ले लूँगा'॥ ५४॥

राजन्! यों कहकर वे उसके सामने खड़े हो गये। वह अद्भुत-सी घटना हुई। नरेश्वर! पर्वत फेंकते हुए भूतसंतापनपर बलवान् संग्रामजित्ने संग्राममें अपने हाथके पर्वतसे प्रहार किया। भारी बोझसे युक्त जठर और देवकूट दोनों पर्वत दैत्यके मस्तकपर गिरे। उनसे दो वज्रोंके टकरानेका-सा भयानक शब्द हुआ। विदेहराज! दोनोंकी चोटसे गिरकर भूतसंतापन मृत्युका ग्रास बन गया और उसकी ज्योति संग्रामजित्में विलीन हो गयी। संग्रामजित्की सेनामें विजयसूचक दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता उन भद्राकुमारके ऊपर फूल बरसाने लगे॥ ५५—५९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे भूतसन्तापनदैत्यवधो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्-खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'भूतसंतापन दैत्यका वध' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

अनिरुद्धके हाथसे वृक दैत्यका वध

श्रीनारद उवाच

संग्रामजिन्महायुद्धे भूतसन्तापने मृते।
हाहाकारो महानासीद् दैत्यसेनासु मैथिल॥ १

शकुनिर्वृकः कालनाभो महानाभस्तथैव च।
हरिश्मश्रुश्च पञ्चैते सम्प्राप्ता रणमण्डले॥ २

कार्ष्णिः शकुनिनायुद्ध्यदनिरुद्धो वृकेण वै।
कालनाभेन साम्बस्तु महानाभेन दीप्तिमान्॥ ३

हरिश्मश्र्वसुरेणापि भानुः कृष्णसुतो बली।
सर्वेषामग्रतः प्राप्तोऽनिरुद्धो धन्विनां वरः॥ ४

बिभेद बाणैर्दैत्यांश्च वज्रेणेन्द्रो यथा गिरीन्।
अनिरुद्धशरैर्दैत्याश्छिन्नपादांसजानवः॥ ५

निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ वृक्षा वातहता इव।
अनिरुद्धशरैस्तीक्ष्णैः संछिन्ना मेघडम्बराः॥ ६

छिन्नकुम्भा भिन्नशुण्डाः पतिता रणमण्डले।
रुग्णदन्ताश्छिन्नकक्षाः शैला वज्रहता इव॥ ७

द्विधाभूता गजाः पेतुः स्फुरत्काश्मीरकम्बलाः।
करिणां भिन्नकुम्भानां मुक्ता रेजुः स्फुरत्प्रभाः॥ ८

बाणान्धकारे राजेन्द्र रात्रौ तारागणा इव।
प्रधर्षिताः केऽपि वीरा अनिरुद्धशरान्विताः॥ ९

निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ तदद्भुतमिवाभवत्।
केचित्कौ रथिनः पेतुस्तेषां शून्या रथाः स्थिताः॥ १०

कपित्थस्य फलानीव हस्तिकोष्ठगतानि च।
क्षणमात्रेण राजेन्द्र दैत्यानां वाहिनीषु च॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! संग्रामजित्‌के द्वारा उस महायुद्धमें भूतसंतापनके मारे जानेपर दैत्य-सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया। तब शकुनि, वृक, कालनाभ और महानाभ तथा हरिश्मश्रु—ये पाँच वीर रणभूमिमें उतरे॥१-२॥

श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न शकुनिके साथ युद्ध करने लगे और अनिरुद्ध वृकके साथ। साम्ब कालनाभसे और दीप्तिमान् महानाभसे भिड़ गये। बलवान् वीर श्रीकृष्णकुमार भानु हरिश्मश्रु नामक असुरके साथ लड़ने लगे। सबके आगे थे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध॥ ३-४॥

वे अपने बाणोंद्वारा दैत्योंको उसी प्रकार विदीर्ण करने लगे, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंका भेदन करते हैं। अनिरुद्धके बाणोंसे दैत्योंके पैर, कंधे और घुटने कट गये। वे सब-के-सब मूर्च्छित हो तेज हवाके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। अनिरुद्धके तीखे बाणोंसे जिनके मेघडम्बर (हौदे), कुम्भस्थल और सूँड़ें छिन्न-भिन्न हो गयी थीं, दाँत टूट गये और कक्ष कट गये थे, वे हाथी रणभूमिमें उसी प्रकार गिरे, जैसे वज्रके आघातसे पर्वत ढह जाते हैं॥ ५—७॥

हाथियोंके दो टुकड़े होकर पड़े थे और उनके ऊपर कश्मीरी झूल चमक रही थी। हाथियोंके विदीर्ण कुम्भस्थलोंसे इधर-उधर बिखरे हुए मोती चमक रहे थे॥ ८॥

राजेन्द्र! वे बाणजन्य अन्धकारमें उसी प्रकार उद्दीप्त हो रहे थे, जैसे रातमें तारे चमचमाते हैं। अनिरुद्धके बाणोंसे प्रधर्षित कितने ही वीर मूर्च्छित होकर भूमिपर पड़े थे। वह दृश्य अद्भुत-सा प्रतीत होता था। कितने ही रथी भूमिपर गिरे थे और उनके रथ सूने खड़े थे। कुछ योद्धाओंके कटे हुए मस्तक ऐसे दिखायी देते थे, जैसे गजभुक्त कैथके फल॥ ९—१० $^{1}/_{2}$॥

राजेन्द्र! एक ही क्षणमें उस संग्रामके भीतर

नदी बभूव संग्रामे भीषणा क्षतजस्रवात्।
द्विपग्राहा चोष्ट्रखरकबन्धास्यादिकच्छपा॥ १२

शिशुमाररथा केशशैवाला भुजसर्पिणी।
करमीना मौलिरत्नहारकुण्डलशर्करा॥ १३

शस्त्रशक्तिच्छत्रशङ्खा चामरध्वजसैकता।
रथाङ्गावर्तसंयुक्ता सेनाद्वयतटावृता॥ १४

शतयोजनविस्तीर्णा बभौ वैतरणी यथा।
प्रमथा भैरवा भूता वेताला योगिनीगणाः॥ १५

अट्टहासं प्रकुर्वन्तो नृत्यन्तो रणमण्डले।
पिबन्तो रुधिरं शश्वत्कपालेन नृपेश्वर॥ १६

हरस्य मुण्डमालार्थं जगृहुस्ते शिरांसि च।
सिंहारूढा भद्रकाली डाकिनीशतसंवृता॥ १७

भक्षयन्ती रणे दैत्यानट्टहासं चकार ह।
विद्याधर्यस्त्वम्बरस्था गन्धर्व्योऽप्सरसस्तथा॥ १८

क्षात्रधर्मस्थितान् वीरान् वव्रिरे देवरूपिणः।
परस्परं कलिरभूत् तासां पत्यर्थमम्बरे॥ १९

ममानुरूपो नायं व इति विह्वलचेतसाम्।
केचिद्वीरा धर्मपरा रणरङ्गान्न चालिताः॥ २०

ययुर्विष्णुपदं दिव्यं भित्त्वा मार्तण्डमण्डलम्।
अनिरुद्धं रिपुं दृष्ट्वा केचिद्दैत्याः पलायिताः॥ २१

केचित्स्वं स्वं रणं त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश।
तदा वृको महादैत्यः खरारूढो भयङ्करः॥ २२

दैत्योंकी सेनाओंमें इतना अधिक रक्त गिरा कि उसकी भयानक नदी बह चली। हाथी उसमें ग्राहके समान जान पड़ते थे; ऊँटों एवं गधोंके धड़ एवं मुख आदि कच्छप जान पड़ते थे; रथ सूँसके समान प्रतीत होते थे, केश सेवारका भ्रम उत्पन्न करते थे और कटी हुई भुजाएँ सर्पिणी-सी जान पड़ती थीं। कटे हाथ उसमें मछलियाँ थे और मुकुट, रत्नहार एवं कुण्डल कंकड़-पत्थरका स्थान ले रहे थे॥ ११—१३॥

शस्त्र, शक्ति, छत्र, शङ्ख, चँवर और ध्वज वालुका-राशिके समान थे, रथोंके चक्के भँवरका भ्रम पैदा करते थे। दोनों ओरकी सेनाएँ ही उस रक्त-सरिताके दोनों तट थीं। नृपेश्वर! सौ योजनतक फैली हुई वह खूनकी नदी वैतरणीके समान भयंकर जान पड़ती थी। प्रमथ, भैरव, भूत, बेताल और योगिनीगण उस रण-मण्डलमें अट्टहास करते, नाचते और निरन्तर खप्परमें खून लेकर पीते थे॥ १४—१६॥

वे भगवान् रुद्रकी मुण्डमाला बनानेके लिये नरमुण्डोंका संग्रह भी करते थे। सिंहपर चढ़ी हुई भद्रकाली सैकड़ों डाकिनियोंके साथ आकर उस समराङ्गणमें दैत्योंको अपना ग्रास बनाती और अट्टहास करती थीं। विमानपर बैठी हुई विद्याधरियाँ, गन्धर्वकन्याएँ और अप्सराएँ क्षत्रियधर्ममें स्थित रहकर वीरगतिको प्राप्त हुए देवस्वरूप वीरोंका पतिरूपमें वरण करती थीं। आकाशमें उन वीरोंको पतिरूपमें चुनते समय वे सुन्दरियाँ परस्पर कलह कर बैठती थीं॥ १७—१९॥

कोई कहतीं- 'ये मेरे योग्य हैं, तुमलोगोंके योग्य नहीं।' इस तरह वे विह्वल-चित्त हो विवाद कर रही थीं। कुछ वीर धर्ममें तत्पर रहकर समरकी रङ्गभूमिसे तनिक भी विचलित नहीं हुए, इसलिये वे सूर्यमण्डलका भेदन करके दिव्य विष्णुपदको जा पहुँचे। कुछ दैत्य अनिरुद्धको अपने शत्रुके रूपमें देखकर भाग खड़े हुए। कुछ असुर अपना-अपना युद्ध छोड़कर दसों दिशाओंमें पलायन कर गये॥ २०—२१ १/२॥

उसी समय गधेपर चढ़ा हुआ भयंकर महादैत्य

आजगाम नदन् युद्धे धनुष्टङ्कारयन् मुहुः।
अनिरुद्धस्यापि चायं शिञ्जिनीसहितं धनुः॥ २३

चिच्छेद दशभिर्बाणैर्वृकोऽपि रणदुर्मदः।
छिन्नधन्वानिरुद्धस्तु द्वितीयं धनुराददे॥ २४

चिच्छेद दशभिर्बाणैर्वृकचापं महाबलः।
वृकस्त्रिशूलमुद्यम्य रुषा प्रस्फुरिताधरः॥ २५

ललज्जिह्वः प्रत्युवाचानिरुद्धं धन्विनां वरम्।

वृकदैत्य उवाच

अद्यैव त्वां हनिष्यामि क्षत्रियं स्वस्थविक्रमम्।
त्वया सेना हता मेऽद्य पश्य विक्रममद्भुतम्॥ २६

अनिरुद्ध उवाच

ये वदन्ति मुखेनेह ते कुर्वन्ति न किञ्चन।
अद्यैव त्वां हनिष्यामि पश्य मे विक्रमं परम्॥ २७

न चेत्त्वां घातयिष्यामि श्रृणुताच्छपथं मम।
विप्रगोभ्रूणबालानां हत्या मे स्यात्सदैव हि॥ २८

श्रीनारद उवाच

वृकोऽपि शपथं कृत्वा खरारूढो महाबलः।
जघान तं त्रिशूलेनानिरुद्धं धन्विनां वरम्॥ २९

तच्छूलं वामहस्तेन गृहीत्वा कार्ष्णिनन्दनः।
तताड सहसा राजन् वृकदैत्यं महाबलम्॥ ३०

तदासुरः कोपपूर्णो मुक्त्वाथ महतीं गदाम्।
चूर्णयामास सहसा चानिरुद्धरथं बलात्॥ ३१

प्राद्युम्निः शितधारेण खड्गेनारिभुजद्वयम्।
चिच्छेद भिदुरेणाशु शैलपक्षौ यथा वृषा॥ ३२

तदा भिन्नभुजो दैत्यः पद्भ्यामाकम्पयन् भुवम्॥ ३३

विस्तीर्णं वदनं कृत्वा ललज्जिह्वं भयङ्करम्।
करालदंष्ट्रः प्रपिबन्नाकाशं दैत्यपुङ्गवः॥ ३४

तिमिं तिमिङ्गिल इव प्राग्रसत्कार्ष्णिनन्दनम्।
दैत्योदरे कृष्णपौत्रः श्रीकृष्णस्यानुकम्पया॥ ३५

वृक गर्जना करता तथा बार-बार धनुष टंकारता हुआ युद्ध करने आया। उस रणदुर्मद दैत्यने भी दस बाण मारकर अनिरुद्धके प्रत्यञ्चासहित धनुषको काट दिया। धनुष कट जानेपर महाबली अनिरुद्धने दूसरा धनुष हाथमें लिया और दस बाण मारकर वृकके कोदण्डको भी खण्डित कर दिया। इसपर वृकके होठ रोषसे फड़क उठे। उसने त्रिशूल उठाकर जीभ लपलपाते हुए धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धसे कहा॥ २२—२५ १/२॥

वृक दैत्य बोला—तू पराक्रमी क्षत्रिय है और तूने आज मेरी सेनाका विनाश किया है, इसलिये मैं अभी तुझे मारे डालता हूँ। तू मेरा अद्‌भुत पराक्रम देख ले॥ २६॥

अनिरुद्धने कहा—दैत्य! जो लोग मुँहसे बढ़-बढ़कर बातें बनाते हैं, वे यहाँ कुछ नहीं कर पाते। मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा। तुम मेरा उत्तम पराक्रम देखो। यदि मैं युद्धमें तुम्हें नहीं मार सकूँ तो मेरी शपथ सुन लो—मुझे ब्राह्मण, गौ, गर्भस्थ शिशु और बालकोंकी हत्याका सदा ही पाप लगे॥ २७-२८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! गधेपर बैठे हुए महादुष्ट वृकने भी शपथ खाकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धपर त्रिशूलसे प्रहार किया। परंतु राजन्! प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धने उस त्रिशूलको बायें हाथसे पकड़ लिया और सहसा उसीसे महाबली दैत्य वृकको घायल कर दिया॥ २९-३०॥

तब तो वह असुर क्रोधसे भर गया। उसने एक भारी गदा चलाकर सहसा अनिरुद्धके रथको बलपूर्वक चूर-चूर कर डाला। तब प्रद्युम्नकुमारने तीखी धारवाली तलवारसे शत्रुकी दोनों भुजाएँ उसी तरह काट डालीं, जैसे इन्द्रने वज्रसे शीघ्र ही पर्वतोंकी दोनों पाँखें काट दी थीं॥ ३१-३२॥

तब वह बाहुविहीन दैत्य पैरोंसे पृथ्वीको कँपाता हुआ लपलपाती जीभसे युक्त भयंकर मुँह फैलाकर ऐसा दिखायी देने लगा, मानो वह सारे आकाशको ही पी जायगा। फिर विकराल दाढ़ोंवाले उस दैत्यराजने, जैसे मगरमच्छ किसी बड़े मत्स्यको निगल जाय, उसी प्रकार प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको अपना ग्रास बना लिया। महाराज! वे श्रीकृष्णके पौत्र दैत्यके पेटमें

न ममार महाराज कार्ष्णिर्मीनोदरे यथा।
वृकोदरे यथा कृष्णो यथा गोपा ह्यघोदरे॥ ३६

बकोदरे यथा कृष्णो यथा वृत्रोदरे वृषा।
हाहाकारे तदा जाते यदुसैन्ये विदेहराट्॥ ३७

गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली।
तताड मस्तके दैत्यं वृकं नाम महाबलम्॥ ३८

तदाहतशिरा दैत्यो रेजे क्षतजबिन्दुभिः।
गैरिकैर्जलधाराभिर्यथा विन्ध्याचलो नृप॥ ३९

फाल्गुनः स्वमसिं नीत्वा तत्पादौ चाञ्जसाहरत्।
छिन्नाङ्घ्रिः स पपातोर्व्यां छिन्नपक्षो यथा गिरिः॥ ४०

अनिरुद्धस्तदुदरं भित्त्वा खड्गेन निर्गतः।
जहार तच्छिरश्चायं यथा वज्रेण वृत्रहा॥ ४१

तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह।
देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा॥ ४२

अनिरुद्धोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे।
कथितं ह्यद्भुतं चैतत्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४३

जानेपर भी श्रीकृष्णकी कृपासे मरे नहीं, मछलीके पेटमें पड़े हुए प्रद्युम्नकी भाँति बच गये। जैसे अघासुरके पेटमें जाकर भी श्रीकृष्ण और ग्वाल-बाल बच गये थे, जैसे वकासुरके उदरमें स्वयं श्रीकृष्ण नहीं मरे थे और जैसे वृत्रासुरके उदरमें जाकर भी इन्द्र बच गये थे, उसी प्रकार वृकासुरके पेटमें अनिरुद्धकी प्राण-रक्षा हो गयी॥ ३३—३६ $^{1}/_{2}$॥

विदेहराज! उस समय यादवोंकी सेनामें हाहाकार मच गया। तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने गदा लेकर उसे महाबली वृक दैत्यके मस्तकपर मारा। दैत्यका सिर फट गया और उससे रक्तकी बूँदें टपकने लगीं। हे राजन्! रक्तकी धारासे उस विशालकाय दैत्यकी उसी तरह शोभा हुई, जैसे गेरुमिश्रित जलकी धारासे विन्ध्याचल सुशोभित होता है॥ ३७—३९॥

तदनन्तर अर्जुनने अपनी तलवार लेकर अनायास ही उसके दोनों पैर काट डाले। पैर कट जानेपर वह पंख-कटे पर्वतकी भाँति धरतीपर गिर पड़ा। अनिरुद्ध अपनी तलवारसे उसका पेट फाड़कर बाहर निकल आये। जैसे इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरको मारा था, उसी प्रकार अनिरुद्धने अपनी तलवारसे उसका मस्तक काट डाला॥ ४०-४१॥

उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगी तथा देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवतालोग अनिरुद्धके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। राजन्! यह अद्भुत वृत्तान्त मैंने तुमसे कह सुनाया; अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ४२-४३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वृकदैत्यवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वृक दैत्यका वध' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

साम्बद्वारा कालनाभ दैत्यका वध

बहुलाश्व उवाच

अहो अत्यद्भुतं युद्धं मुने प्राद्युम्निना कृतम्।
वृके हते महादैत्ये किं बभूव रणे पुनः॥ १

बहुलाश्व बोले—मुने! आश्चर्य है, प्रद्युम्नकुमारने बड़ा अद्भुत युद्ध किया। महादैत्य वृकके मारे जानेपर फिर उस समराङ्गणमें क्या हुआ?॥ १॥

श्रीनारद उवाच

वृकदैत्यं हतं वीक्ष्य कालनाभो महासुरः।
क्रोडारूढो रणं प्रागाद्धनुष्टङ्कारयन् मुहुः॥ २

अक्रूरं बाणविंशत्या गदं च दशभिः शरैः।
अर्जुनं दशभिर्बाणैर्युयुधानं च पञ्चभिः॥ ३

दशभिः कृतवर्माणं कार्ष्णिं बाणशतेन वै।
अनिरुद्धं च विंशत्या दीप्तिमन्तं च पञ्चभिः॥ ४

साम्बं च शतबाणैश्च विव्याध समरेऽसुरः।
तद्बाणैर्व्याकुला वीरा बभूवुर्घटिकाद्वयम्॥ ५

हयाश्च पञ्चतां प्राप्ताश्चूर्णीभूता रणाङ्गणे।
तद्धस्तलाघवं दृष्ट्वा प्रसन्नो रुक्मिणीसुतः॥ ६

कालनाभं साधुपदैः पूजयामास सङ्गरे।
प्रद्युम्नः स्वं धनुर्नीत्वा बाणमेकं समादधे॥ ७

कोदण्डमुक्तो विशिखस्तत्क्रोडं दीर्घरूपिणम्।
समुन्नीय भ्रामयित्वा स्वर्लोके लक्षयोजनम्॥ ८

आकाशात्पातयामास समुद्रे भीमनादिनि।
प्रद्युम्नो भगवान् साक्षाद् द्वितीयं बाणमादधे॥ ९

सोऽपि बाणः समुन्नीय कालनाभं महाबलम्।
भ्रामयन् पातयामास चन्द्रावत्यां बलात्पुरि॥ १०

कालनाभः प्रपतितः किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
गृहीत्वाथ गदां गुर्वीं लक्षभारविनिर्मिताम्॥ ११

रणं प्राप्तो यदुबलं पोथयामास दैत्यराट्।
गजान् रथान् हयान् वीरान् गदया वज्रकल्पया॥ १२

पातयामास वेगेन महावातो यथा तरून्।
कांश्चित्कराभ्यां प्रोन्नीय चिक्षेप गगने बलात्॥ १३

अम्बरात्ते निपेतुः कौ राजन् वर्षोपला इव।
तदा गदां समादाय साम्बो जाम्बवतीसुतः॥ १४

ताताड मूर्ध्नि तं दैत्यं कालनाभं महासुरम्।
तयोर्युद्धमभूद्घोरं गदाभ्यां रणमण्डले॥ १५

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! वृकको मारा गया देख महान् असुर कालनाभ बार-बार धनुष टंकारता हुआ सूअरपर चढ़कर रणभूमिमें आया। उस असुरने समराङ्गणमें अक्रूरको बीस, गदको दस, अर्जुनको दस, सात्यकिको पाँच, कृतवर्माको दस, प्रद्युम्नको सौ, अनिरुद्धको बीस, दीप्तिमान्‌को पाँच और साम्बको सौ बाण मारकर उन सबको घायल कर दिया। उसके बाणोंकी चोटसे दो घड़ीके लिये वे सभी वीर व्याकुल हो गये॥ २—५॥

उन सबके घोड़े भी मारे गये तथा [रथ] रणभूमिमें चूर-चूर हो गये। उसके हाथकी फुर्ती देखकर रुक्मिणीनन्दन प्रसन्न हो गये। उन्होंने कालनाभको समराङ्गणमें साधुवाद देकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तत्पश्चात् प्रद्युम्नने अपना धनुष लेकर उसपर एक बाण रखा। कोदण्डसे छूटे हुए उस बाणने उस दैत्यके विशालकाय सूअरको ऊपर उठाकर लाख योजन दूर स्वर्गलोककी सीमातक ले जाकर घुमाते हुए आकाशसे भयंकर गर्जना करनेवाले समुद्रमें गिरा दिया। तत्पश्चात् साक्षात् भगवान् प्रद्युम्नने दूसरे बाणका संधान किया॥ ६—९॥

उस बाणने भी महाबली कालनाभको ऊपर ले जाकर घुमाते हुए बलपूर्वक चन्द्रावतीपुरीमें पटक दिया। वहाँ गिरनेपर कालनाभके मनमें कुछ घबराहट हुई। वह दैत्यराज लाख भारकी बनी हुई भारी गदा हाथमें लेकर पुनः रणभूमिमें आ पहुँचा और यादव-सेनाका विनाश करने लगा॥ १०—११½॥

वज्र-सदृश गदासे हाथी, रथ, घोड़े और पैदल वीरोंको वह बड़े वेगसे उसी प्रकार धराशायी करने लगा, जैसे आँधी वृक्षोंको गिरा देती है; किन्हींको दोनों हाथोंसे उठाकर वह बलपूर्वक आकाशमें फेंक देता था॥ १२-१३॥

राजन्! वे आकाशसे पृथ्वीपर वर्षाके ओलोंकी भाँति गिरते थे। तब जाम्बवतीकुमार साम्बने गदा लेकर महान् असुर कालनाभके मस्तकपर गहरी चोट पहुँचायी। रणमण्डलके भीतर गदाओंद्वारा उन दोनों वीरोंमें घोर युद्ध होने लगा॥ १४-१५॥

विस्फुलिङ्गान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः।
अन्ये गदे समादाय तस्थतुः सङ्गरे च तौ॥ १६

कालनाभस्तदा प्राह साम्बं जाम्बवतीसुतम्।
एकेनापि प्रहारेण हन्मि त्वां नात्र संशयः॥ १७

पूर्वं प्रहारं कुरु मे इति साम्बोऽवदद्रणे।
कालनाभोऽथ गदया साम्बमूर्ध्नि तताड ह॥ १८

गदोपरि गदां नीत्वा साम्बो जाम्बवतीसुतः।
जघान गदया दैत्यं कालनाभमुरःस्थले॥ १९

गदया भिन्नहृदय उद्वमन् रुधिरं मुखात्।
व्यसुः पपात भूपृष्ठे वज्राहत इवाचलः॥ २०

अभूज्जयजयारावः साधुवादः सतां नृप।
देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा॥ २१

साम्बसेनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे।
विद्याधर्यश्च गन्धर्वा ननृतुश्च जगुर्मुदा॥ २२

वे दोनों ही गदाएँ आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई परस्पर टकराकर चूर-चूर हो गयीं। फिर वे दोनों वीर दूसरी गदाएँ लेकर युद्धके लिये खड़े हुए। उस समय कालनाभने जाम्बवतीकुमार साम्बसे कहा—'मैं एक प्रहारसे ही तुम्हारा काम तमाम कर सकता हूँ, इसमें संशय नहीं है।'॥ १६-१७॥

तब उस रणभूमिमें साम्ब बोले—'पहले तुम मेरे ऊपर प्रहार करो।' तब कालनाभने साम्बके मस्तकपर गदासे चोट की, किंतु जाम्बवतीनन्दन साम्बने गदाके ऊपर गदा रोक ली और अपनी गदासे कालनाभ दैत्यकी छातीमें आघात किया। उस गदाकी चोटसे दैत्यकी छाती फट गयी और वह मुँहसे रक्त वमन करता हुआ प्राणशून्य हो वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १८—२०॥

नरेश्वर! तब तो जय-जयकार होने लगी और सत्पुरुष साम्बको साधुवाद देने लगे। देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ एक साथ ही बज उठीं। देवतालोग साम्बकी सेनाके ऊपर फूल बरसाने लगे, विद्याधरियाँ नाचने लगीं और गन्धर्वगण सानन्द गीत गाने लगे॥ २१-२२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कालनाभदैत्यवधो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कालनाभ दैत्यका वध' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

दीप्तिमान्द्वारा महानाभका वध

श्रीनारद उवाच

कालनाभेऽथ पतिते महान् कोलाहलोऽभवत्।
उष्ट्रारूढो महानाभो दैत्यः प्राप्तो रणाङ्गणे॥ १

मुखादग्निं समसृजन्मायावी दैत्यपुङ्गवः।
तेनाग्निना भूमिवृक्षा जज्वलुश्च दिशो दश॥ २

वीराणां कञ्चुकोष्णीषकटिबन्धाङ्गरक्षकाः।
प्रजज्वलुर्महाराज मुञ्जपुष्पप्रतूलवत्॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! कालनाभ दैत्यके गिर जानेपर दैत्यसेनामें बड़ा भारी कोलाहल मचा। तब महानाभ नामक दैत्य ऊँटपर चढ़कर समराङ्गणमें आया। वह मायावी दैत्यराज मुँहसे आग उगलने लगा। उस आगसे दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं और धरतीके वृक्ष जलने लगे। महाराज! वीरोंके कवच, पगड़ी, कटिबन्ध और अँगरखा आदि मूँजके फूल (भुआड़ी) तथा रूईके समान जल उठे॥ १—३॥

समुद्रपट्टनभवैः पीतारुणसितासितैः।
हरितैश्चित्रवर्णैश्च सूक्ष्मैः काश्मीरजैरपि॥ ४

हेमरत्नखचिद्भिश्च कम्बलैः सहिता गजाः।
प्रजज्वलुर्मृधे राजन् वृक्षैः शैला इवाग्निना॥ ५

शिखारत्नैश्चामरैश्च हारैर्हैमैः परिच्छदैः।
उत्पतन्तो हया युद्धे मृगा इव दवाग्निना॥ ६

राजन्! समुद्रतटवर्ती नगरोंके बने हुए पीले, लाल, सफेद, काले, हरे, चितकबरे और सूक्ष्म [कारीगरीवाले] झूलों तथा हेम-रत्नखचित कश्मीरी कालीनोंसहित बहुत-से हाथी उस समराङ्गणमें दावानलसे दग्ध होनेवाले वृक्षोंसहित पर्वतोंकी भाँति जल रहे थे। मस्तकपर धारण कराये गये रत्नों, चामरों, हारों और सुनहरे साज-बाजोंके साथ जलते हुए घोड़े उस युद्धभूमिमें दावाग्निसे दग्ध होनेवाले हरिणोंकी भाँति उछलते और चौकड़ी भरते थे॥ ४—६॥

सैन्यं भयातुरं दृष्ट्वा दीप्तिमान् कृष्णनन्दनः।
मायावह्निप्रशान्त्यर्थं पर्जन्यास्त्रं समादधे॥ ७

बाणाद्विनिर्गता मेघाः सांवर्तकगणा इव।
ववृषुर्जलधाराभिर्नदन्तो भैरवं रवम्॥ ८

अपनी सेनाको भयसे व्याकुल देख श्रीकृष्णकुमार दीप्तिमान्‌ने उस मायामयी आगको बुझानेके लिये पार्जन्यास्त्रका संधान किया। फिर तो उस बाणसे प्रलयकालके मेघोंकी भाँति नील जलधर प्रकट हुए और भयंकर गर्जना करते हुए जलकी धाराएँ बरसाने लगे॥ ७-८॥

आसारेण महाराज प्रावृट्कालोऽभवत्क्षितौ।
पुंस्कोकिलाः कोकिलाश्च मयूराः सारसादयः॥ ९

मण्डूकाः प्रजगुर्गीर्भिरिन्द्रगोपाश्च रेजिरे।
इन्द्रचापेन दामिन्या मैथिलेन्द्र बभौ नभः॥ १०

महाराज! उस धारा-सम्पातसे भूतलपर पावस ऋतु प्रकट हो गयी। नर कोकिल, मादा कोकिल, मोर और सारस आदि पक्षी अपनी मधुर बोलियाँ बोलने लगे। मेढक भी टर-टर करने लगे। इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक लाल रंगके झुंड-के-झुंड कीट जहाँ-तहाँ शोभित होने लगे। मैथिलेन्द्र! इन्द्रधनुष और विद्युन्मालासे आकाश उद्दीप्त दिखायी देने लगा॥ ९-१०॥

इत्थं शान्तिं गते वह्नौ महानाभो महासुरः।
प्राहिणोन्निशितं शूलं रुषा दीप्तिमते त्वरम्॥ ११

शूलं सर्पमिवायान्तं दीप्तिमान् रोहिणीसुतः।
चिच्छेद त्वसिना युद्धे फणिनं गरुडो यथा॥ १२

इस प्रकार उस आगके बुझ जानेपर महान् असुर महानाभने दीप्तिमान्‌के ऊपर बड़े रोषसे अपना तीखा त्रिशूल चलाया। सर्पकी भाँति अपनी ओर आते हुए उस त्रिशूलको रोहिणीपुत्र दीप्तिमान्‌ने युद्धभूमिमें तलवारसे उसी प्रकार काट डाला, जैसे गरुड़ने अपनी चोंचसे किसी नागके दो टुकड़े कर दिये हों॥ ११-१२॥

दशन्तं चोद्भटं चोष्ट्रं महानाभस्य वाहनम्।
दीप्तिमान् स्वेन खड्गेन सञ्जघान रणाङ्गणे॥ १३

द्विधाभूतः पपातोर्व्यां खड्गसंछिन्नकन्धरः।
जगाम पञ्चतामुष्ट्रो महानाभस्य पश्यतः॥ १४

महानाभो महादैत्यो गजमारुह्य वेगतः।
शूलहस्तः पुनः प्रागान्नादयन् व्योममण्डलम्॥ १५

महानाभका वाहन उद्भट ऊँट उन्हें दाँतसे काटनेके लिये आगे बढ़ा। तब दीप्तिमान्‌ने समराङ्गणमें उसके ऊपर अपनी तलवारसे चोट की। खड्गसे उसकी गर्दन कट गयी और वह दो टूक हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। महानाभके देखते-देखते उस ऊँटके प्राण-पखेरू उड़ गये। तब दैत्य महानाभ बड़े वेगसे हाथीपर जा चढ़ा और हाथमें शूल लेकर व्योममण्डलको अपनी गर्जनासे गुँजाता हुआ फिर युद्धके लिये आ गया॥ १३—१५॥

दीप्तिमानश्वमारुह्य सैन्धवं चञ्चलासितम्।
तडित्प्रभेण खड्गेन बभौ श्रीकृष्णनन्दनः॥ १६

तुरङ्गं पार्ष्णिघातेन प्रोत्पतन् धरणीतलात्।
आरूढो गजकुम्भान्तं गिरिशृङ्गं यथा हरिः॥ १७

खड्गेन शितधारेण दीप्तिमान् कृष्णनन्दनः।
महानाभस्य सहसा शिरः कायादपाहरत्॥ १८

बाणवर्षं प्रकुर्वन्तीं सेनां तस्य दुरात्मनः।
जघान दीप्तिमान् सिंहो गजयूथं यथासिना॥ १९

केचित्खड्गेनाभिहताः शेषा दैत्याः पलायिताः।
देवा दीप्तिमतो मूर्ध्नि पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ २०

जगुः किन्नरगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
ऋषयो मुनयो देवास्तुष्टुवुः श्रीहरेः सुतम्॥ २१

श्रीकृष्णनन्दन दीप्तिमान् चञ्चल और काले रंगके सिंधी घोड़ेपर चढ़कर विद्युत्के समान कान्तिमान् खड्गसे अद्भुत शोभा पाने लगे। उन्होंने घोड़ेके पेटमें एड़ लगायी और वह भूतलसे उछलकर हाथीके कुम्भस्थलपर इस प्रकार जा चढ़ा, मानो कोई सिंह पर्वतके शिखरपर बड़े वेगसे चढ़ गया हो॥ १६-१७॥

फिर श्रीकृष्णकुमार दीप्तिमान्ने तीखी धारवाले खड्गसे महानाभके मस्तकको सहसा धड़से अलग कर दिया॥ १८॥

बाणवर्षा करती हुई उस दुरात्माकी सेनाका दीप्तिमान्ने अपनी तलवारसे उसी तरह संहार कर डाला, जैसे सिंह हाथियोंके झुंडको रौंद डालता है। कुछ दैत्य खड्गसे मारे गये, शेष रणभूमिसे पलायन कर गये। देवता दीप्तिमान्के मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे, किंनर और गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराओंके समुदाय नृत्य करने लगे। ऋषियों, मुनियों और देवताओंने श्रीहरिके पुत्रका स्तवन किया॥ १९—२१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे महानाभवधो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'महानाभका वध' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-पुत्र भानुके हाथसे हरिश्मश्रु दैत्यका वध

श्रीनारद उवाच

महानाभं मृतं श्रुत्वा सेनां वीक्ष्य पलायिताम्।
दैत्यस्तिमिङ्गिलारूढो हरिश्मश्रुः समाययौ॥ १

हरिश्मश्रुस्तदा दैत्यो रुषा प्रस्फुरिताधरः।
उवाच परुषं वाक्यं यादवानां च शृण्वताम्॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! महानाभ मारा गया, यह सुनकर तथा दैत्यसेना पलायन कर गयी—यह देखकर, मगरमच्छपर चढ़ा हुआ दैत्य हरिश्मश्रु समरभूमिमें आया। उस समय हरिश्मश्रु दैत्यके ओठ फड़क रहे थे, उसने यादवोंके सुनते हुए अत्यन्त कठोर वचन कहा॥१-२॥

हरिश्मश्रुरुवाच

यूयं सर्वेऽपि मे शक्त्या मनुष्याः स्वल्पविक्रमाः।
शस्त्रैर्जयन्तो दीना वै पौरुषं किं भवादृशे॥ ३

हरिश्मश्रु बोला—अरे! तुम सब लोग मेरी शक्तिके सामने क्या हो? स्वल्प-पराक्रमी मनुष्य ही तो हो। दीनहीन होनेपर भी केवल अस्त्र-शस्त्रोंके बलपर जीतते हो। तुम-जैसे लोगोंमें पुरुषार्थ ही क्या है?॥ ३॥

भवतां बलवान् कोऽपि विना शस्त्रं मया सह।
करोतु मल्लयुद्धं वै पौरुषं येन दृश्यते॥ ४

यदि तुम्हारे दलमें कोई भी बलवान् हो तो मेरे साथ बिना अस्त्र-शस्त्रके मल्लयुद्ध करे, जिससे तुम्हारे पौरुषका पता लगे॥ ४॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं दैत्यवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तत्प्रोद्भटं वपुः।
सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं प्रशंसन्तः परस्परम्॥ ५

सर्वेषां पश्यतां भानुः सत्यभामात्मजो बली।
त्यक्त्वा शस्त्राणि सहसा तस्थौ कृष्णं स्मरन् रणे॥ ६

श्रीनारदजी कहते हैं—दैत्यकी ऐसी बात सुनकर और उसके अत्यन्त उद्भट शरीरको देखकर सब लोग परस्पर उसकी प्रशंसा करते हुए मौन रह गये—उसे कोई उत्तर न दे सके। तब सत्यभामाके बलवान् पुत्र भानु सबके देखते-देखते मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए रणभूमिमें अस्त्र-शस्त्र त्यागकर सहसा उसके सामने खड़े हो गये॥ ५-६॥

तिमिङ्गिलात्समुत्तीर्य हरिश्मश्रुर्महाबलः।
तस्थौ तत्सम्मुखे राजन् भुजमास्फोट्य यत्नतः॥ ७

भुजाभ्यां च भुजौ बद्ध्वा नोदनां चक्रतुर्बलात्।
दन्तैर्गजाविव वने प्रहरन्तौ परस्परम्॥ ८

राजन्! महाबली हरिश्मश्रु तिमिंगिल (मगरमच्छ)-की पीठसे उतरकर भुजाओंपर ताल ठोंकता हुआ सयत्न होकर सामने खड़ा हो गया। जैसे दो हाथी वनमें दाँतोंद्वारा परस्पर प्रहार करते हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर बाँहोंसे बाँह मिलाकर एक-दूसरेको बलपूर्वक ढकेलने लगे॥ ७-८॥

नोदयामास तं भानुं स दैत्यः शतयोजनम्।
भुजाभ्यां राजराजेन्द्र सिंहः सिंहमिवौजसा॥ ९

ततः पुनः कृष्णसुतो हरिश्मश्रुं महासुरम्।
नोदयामास सहसा सहस्त्रं योजनं बलात्॥ १०

राजराजेन्द्र! उस दैत्यने भानुको अपनी भुजाओंसे सौ योजन पीछे उसी प्रकार ढकेल दिया, जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको बलपूर्वक पछाड़ देता है। तब पुनः श्रीकृष्णकुमारने महान् असुर हरिश्मश्रुको बलपूर्वक सहसा सहस्र योजन पीछे ढकेल दिया॥ ९-१०॥

कन्धरे स्वभुजां कृत्वा कटौ च विनिधाय तम्।
भानुं जानौ सङ्गृहीत्वा पातयामास दैत्यराट्॥ ११

भानुस्तं पृष्ठदेशेऽपि सन्निधाय भुजौजसा।
गृहीत्वा जङ्घयोर्दैत्यं पातयामास भूतले॥ १२

तत्पश्चात् दैत्यराज हरिश्मश्रुने अपनी बाँहको भानुके कंधेमें फँसाकर उन्हें अपनी कमरपर ले लिया और फिर घुटना पकड़कर उन्हें पृथ्वीपर पटक दिया। तब भानुने अपने बाहुबलसे उसे पीठपर ले लिया और उसकी जाँघें पकड़कर उस दैत्यको धरतीपर दे मारा॥ ११-१२॥

अथ तौ पुनरुत्थाय भुजावास्फोट्य तस्थतुः।
त्वरं तौ बलिनौ राजन् सुपर्णफणिनाविव॥ १३

दैत्यो भुजौजसा नीत्वा भानुं श्रीकृष्णनन्दनम्।
चिक्षेप धृत्वा चरणावाकाशे लक्षयोजनम्॥ १४

तदनन्तर वे दोनों पुनः उठकर भुजाओंपर ताल ठोंकते हुए खड़े हो गये। राजन्! वे दोनों फुर्ती दिखाते हुए गरुड़ और सर्पकी भाँति एक-दूसरेसे लड़ने लगे। दैत्यने अपने बाहुबलसे श्रीकृष्णनन्दन भानुके पैर पकड़कर उन्हें आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया॥ १३-१४॥

आकाशात्पतितो भानुः किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
प्रह्लाद इव शैलाग्राद्रक्षितः कृपया हरेः॥ १५

आकाशसे गिरनेपर भानुको मन-ही-मन कुछ व्याकुलता हुई; किंतु जैसे शैल-शिखरसे गिरकर प्रह्लाद बच गये थे, उसी प्रकार श्रीहरिकी कृपासे भानुकी भी रक्षा हो गयी॥ १५॥

हरिश्मश्रुं सङ्गृहीत्वा दीर्घश्मश्रौ हरेः सुतः।
भ्रामयित्वाथ चिक्षेप व्योम्नि तं लक्षयोजनम्॥ १६

आकाशात्पतितः सोऽपि किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
मुखे कृत्वा स्वकं कूर्चं मुष्टिना तं तताड ह॥ १७

मुष्टामुष्टि रणं राजन् बभूव घटिकाद्वयम्।
निष्पिष्टाङ्गो हरिश्मश्रुर्ग्रावाणं भानुमूर्धनि॥ १८

चिक्षेप च महावेगाद्रक्ताक्षः क्रोधमूर्च्छितः।
भानुर्द्रुमं सङ्गृहीत्वा प्राक्षिपत्तस्य मस्तके॥ १९

सोऽपि द्रुमं सङ्गृहीत्वा प्राहिणोद्भानुमूर्धनि।
हरिश्मश्रुर्महादैत्यो रक्ताक्षः क्रोधमूर्च्छितः॥ २०

गजं गृहीत्वा शुण्डायां तेन भानुं तताड ह।
भानुश्चान्यं गजं नीत्वा गृहीत्वा तद्गजं करे॥ २१

हरिश्मश्रुं महादैत्यं गजेनाभ्यहनद्दृढम्।
चीत्कारमथ कुर्वन्तं गजं नीत्वा निपात्य तम्॥ २२

तस्य दन्तौ समुत्पाट्य ताभ्यां भानुं तताड ह।
भानुमाकाशवागाह कूर्चे मृत्युः किलास्य च॥ २३

वरेण शिवदत्तेन प्रोज्झितोऽयं महासुरः।
इति श्रुत्वा वचो भानुर्धावन् क्रोधप्रपूरितः॥ २४

सङ्गृहीत्वा भुजाभ्यां तं पादयोः प्रणदन् मुहुः।
भ्रामयित्वा महाराज सर्वेषां पश्यतां सताम्॥ २५

पातयामास भूपृष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः।
मुखात्कूर्चं समुन्नीय समुत्पाट्य करौजसा॥ २६

तताड मुष्टिना मूर्ध्नि हरिश्मश्रुं महासुरम्।
तदा मृत्युं गते दैत्ये हरिश्मश्रौ नृपेश्वर॥ २७

तब श्रीकृष्णकुमारने हरिश्मश्रुकी लंबी दाढ़ी पकड़कर उसे घुमाया और आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया। आकाशसे गिरनेपर उसके मनमें भी कुछ व्याकुलता हुई। फिर उसने दाढ़ीको अपने मुँहपर सँभालकर भानुको एक मुक्का मारा॥ १६-१७॥

राजन्! फिर दो घड़ीतक उन दोनोंमें मुक्का-मुक्कीका युद्ध चलता रहा। हरिश्मश्रुका अङ्ग-अङ्ग पिस उठा। तब उसने भानुके मस्तकपर बड़े वेगसे पत्थर मारा। तब तो भानुके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने लाल आँखें करके एक वृक्ष उखाड़ा और उसे दैत्यके मस्तकपर दे मारा॥ १८-१९॥

हरिश्मश्रुने भी एक वृक्ष लेकर उसे भानुके मस्तकपर चलाया। उस समय उस महादैत्यके नेत्र लाल हो गये थे और वह क्रोधसे मूर्च्छित होकर अपना विवेक खो बैठा था। उसने एक हाथीकी सूँड़ पकड़कर उस हाथीके द्वारा ही भानुपर प्रहार किया। भानुने एक दूसरा हाथी लेकर उसके चलाये हुए हाथीको हाथमें पकड़ लिया और महादैत्य हरिश्मश्रुपर दृढ़तापूर्वक हाथीसे ही प्रहार किया॥ २०—२१ $^{1}/_{2}$॥

वह हाथी चीत्कार कर उठा। दैत्यने उस हाथीको लेकर धरतीपर पटक दिया और उसके दोनों दाँत उखाड़कर उन्हींसे भानुको चोट पहुँचायी। इसी समय भानुको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—'इस दैत्यकी मृत्यु इसकी दाढ़ीमें ही है। यह महान् असुर भगवान् शिवके दिये हुए वरदानसे वंचनाको प्राप्त हो गया है'॥ २२—२३ $^{1}/_{2}$॥

महाराज! आकाशवाणीका यह कथन सुनकर भानु क्रोधसे भरकर दौड़े। उन्होंने दोनों हाथोंसे दैत्यके पाँव पकड़कर बारंबार गर्जना करते हुए उसे घुमाया और सबके देखते-देखते भूपृष्ठपर उसी तरह पटक दिया, जैसे बालक कमण्डलुको गिरा देता है॥ २४—२५ $^{1}/_{2}$॥

फिर हाथोंसे बल लगाकर उसके मुँहसे दाढ़ी उखाड़ ली और महान् असुरके मस्तकपर एक मुक्का मारा। नृपेश्वर! फिर तो दैत्य हरिश्मश्रुकी तत्काल मृत्यु हो गयी॥ २६-२७॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा।
अभूज्जयजयारावो ननृतुर्देवनायकाः॥ २८

मनुष्यों तथा देवताओंके विजयसूचक नगारे एक साथ ही बजने लगे। जय-जयकारकी ध्वनि सब ओर व्याप्त हो उठी और देवनायक नाचने लगे॥ २८॥

प्रसन्ना दिविजा राजन् पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे।
इत्थं श्रीकृष्णपुत्राणां विक्रमः परमाद्भुतः॥ २९

मया ते कथितः पुण्यः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३०

राजन्! देवता प्रसन्न हो पुष्पवर्षा करने लगे। इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णके पुत्रोंके परम अद्भुत पराक्रम एवं पवित्र चरित्रका वर्णन किया है। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २९-३०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे हरिश्मश्रुदैत्यवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'हरिश्मश्रु दैत्यका वध' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

प्रद्युम्न और शकुनिके घोर युद्धका वर्णन

बहुलाश्व उवाच

हरिश्मश्र्वादिकान् भ्रातॄन् मृतान् ज्ञात्वा महासुरः।
शकुनिः किं चकाराग्रे वद तन्मुनिसत्तम॥ १

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! हरिश्मश्रु आदि भाइयोंको मारा गया जानकर महान् असुर शकुनिने आगे क्या किया?॥ १॥

श्रीनारद उवाच

हरिश्मश्रौ हते राजन् शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः।
रणाङ्गणे प्राह दैत्यान् भ्रातृशोकपरिप्लुतः॥ २

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! हरिश्मश्रुके मारे जानेपर शकुनि क्रोधसे अचेत-सा हो गया। भ्राताओंकी मृत्युसे उत्पन्न हुए शोकमें डूबकर समराङ्गणमें दैत्योंको सम्बोधित करके उसने कहा—॥ २॥

शकुनिरुवाच

हे पौलोमकालकेयाः सर्वे शृणुत मद्वचः।
अहो दैवबलं येन किन्न भूयाद्विपर्ययः॥ ३

कालनाभेन मे भ्रात्रा समुद्रमथने यमः।
जितः पूर्वं सोऽपि दैवान्मनुष्यैरिह मारितः॥ ४

शकुनि बोला—हे पौलोम और कालकेयगण! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। अहो! दैवका बल अद्भुत है, उसके कारण क्या उलट-फेर नहीं हो सकता? मेरे भाई कालनाभने पूर्वकालमें समुद्र-मन्थनके अवसरपर यमराजको जीत लिया था, परंतु दैववश वह भी यहाँ मनुष्योंके हाथसे मारा गया॥ ३-४॥

शम्बरः सूर्यजित्साक्षात्कार्ष्णिना शिशुना जितः।
उत्कचः शक्रजेतापि महाबलमहाबलः॥ ५

सोऽपि बालेन कृष्णेन मारितो नारदाच्छ्रुतम्।
समुद्रमथने पूर्वमसुराणां च पश्यताम्॥ ६

शम्बरने साक्षात् सूर्यदेवको परास्त किया था, किंतु वह बालक श्रीकृष्णकुमारके हाथसे पराजित हुआ। उत्कच महाबलियोंमें भी महाबली था और इन्द्रपर भी विजय पा चुका था, परंतु वह भी बालकृष्णके हाथों मारा गया, यह बात मैंने नारदजीके मुखसे सुनी थी। पहले समुद्र-मन्थनके समय जिसने समस्त असुरोंके समक्ष अग्निदेवको पराजित किया था,

वह्निर्जितो हि येनापि हृष्टः सोऽपि निपातितः।
यस्याग्रे वरुणः पूर्वं युद्धभीतः पलायितः॥ ७

भूतसन्तापनः सोऽपि मारितस्तुच्छविक्रमैः।
येन पूर्वं महायुद्धे विक्रमैस्तोषितः शिवः॥ ८

स वृको वृष्णिभिस्तुच्छैर्मारितः सङ्गरेऽत्र वै।
महानाभेन मे भ्रात्रा दिवि वायुर्विनिर्जितः॥ ९

मानुषैर्यादवैरत्र मारितः सोऽपि साम्प्रतम्।
हा दैव येन स्वर्लोके जितः शक्रसुतो बली॥ १०

निपातितः सोऽपि चात्र हरिश्मश्रुश्च मानवैः।
तस्मादयादवीं पृथ्वीं करिष्ये शपथो मम॥ ११

जरासन्धेन शाल्वेन दन्तवक्रेण धीमता।
शिशुपालेन मित्रेण युष्माभिः सहितो ह्यहम्॥ १२

सुतलाच्च समाहूतैर्दानवैश्चण्डविक्रमैः।
देवान् जेतुं गमिष्यामि बाणासुरसमन्वितः॥ १३

कार्ष्ण्यादीनुद्भटान् सर्वान् वृष्णीञ्जित्वा दुरात्मनः।
सस्त्रीकानमरान् बद्ध्वा क्षिपे मेरुगुहामुखे॥ १४

गोविप्रसुरसाधूंश्च छन्दांसि च तपस्विनः।
यज्ञं श्राद्धं तितिक्षूंश्च नानातीर्थकरान् पुनः॥ १५

हनिष्यामि न सन्देहश्चरिष्यामि सुखं ततः।
धन्यः कंसो महावीर्यो देवानां विजयी बली॥ १६

न विद्यते भूमितले मित्रं मे परमः सुहृत्।

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शकुनिर्युद्धे दानवेन्द्रो महाबलः॥ १७

आययौ सहसा दैत्यः प्रद्युम्नस्यापि सम्मुखे।
महाधनुः समादाय लक्षभारसमं दृढम्॥ १८

मयेन निर्मितं तज्ज्याटङ्कारं स चकार ह।
धनुष्टङ्कारशब्देन दिग्गजा बधिरीकृताः॥ १९

वह मेरा भाई हृष्ट भी एक मनुष्यद्वारा मार गिराया गया॥ ५—६ १/२॥

जिसके सामनेसे पूर्वकालमें वरुणदेवता भी भयभीत हो युद्धसे पीठ दिखाकर भाग गये थे, उस भूतसंतापनको भी तुच्छ पराक्रमवाले मनुष्योंने मार डाला। जिसने पहले महायुद्धमें अपने पराक्रमद्वारा भगवान् शिवको संतुष्ट किया था, उस वृकको यहाँ युद्धमें तुच्छ वृष्णिवंशियोंने मार गिराया॥ ७—८ १/२॥

मेरे भाई महानाभने देवलोकमें वायुको भी परास्त किया था, किंतु यहाँ इस समय उसको भी यदुकुलके मनुष्योंने मार डाला। हा दैव! जिसने स्वर्गलोकमें बलवान् इन्द्रपुत्रको परास्त किया था, उस हरिश्मश्रुको भी यहाँ मानवोंने मार गिराया। इसलिये मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि इस पृथ्वीको मैं यादवोंसे शून्य कर दूँगा॥ ९—११॥

जरासंध, शाल्व, बुद्धिमान् दन्तवक्र तथा शिशुपाल—ये मेरे मित्र हैं। सुतललोकसे प्रचण्ड-पराक्रमी दानवोंको बुलाकर इन मित्रों तथा आप-लोगोंके साथ मैं देवताओंको जीतनेके लिये जाऊँगा और उस युद्धमें बाणासुर भी हमारे साथ होगा। प्रद्युम्न आदि जो उद्‌भट यादव हैं, उन दुरात्माओंको जीतकर और स्त्रियोंसहित देवताओंको बाँधकर मैं मेरुपर्वतकी गुफाके मुँहमें डाल दूँगा॥ १२—१४॥

गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, तपस्वी, यज्ञ, श्राद्ध, तितिक्षु तथा नाना तीर्थोंका सेवन करनेवाले धर्मात्माओंको भी मैं निस्संदेह मार डालूँगा। फिर सुखपूर्वक विचरूँगा। देवताओंपर विजय पानेवाला महाबली पराक्रमी राजा कंस धन्य था। वह मेरा मित्र और परम सुहृद् था। खेदकी बात है कि आज वह इस भूतलपर विद्यमान नहीं है॥ १५—१६ १/२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर महाबली दानवराज दैत्य शकुनि युद्धमें सहसा प्रद्युम्नके सामने आ गया। लाख भार लोहेके समान सुदृढ़ एवं विशाल धनुष लेकर उसने उसकी प्रत्यञ्चाको टंकारित किया। उसका वह धनुष मयासुरका बनाया हुआ था। उस धनुषकी टंकार-ध्वनिसे दिग्गजोंके कान बहरे हो

2260 Grag Sanhita sanuwad_Section_24_2_Front

निपेतुर्गिरयोऽनेका विचेलुः सिन्धवो नृप।
ननाद सर्वं ब्रह्माण्डं चकम्पे मण्डलं भुवः॥ २०

वीरोपरि गता वीरा ज्याघोषेणातिविह्वलाः।
रणाद्विदुद्रुवुर्नागा उत्पतन्तो हया मृधे॥ २१

एवं पलायिताः सर्वे ह्यकस्माद्भयविह्वलाः।
तदा गदादयो वीरा आजग्मुः स्यन्दने स्थिताः॥ २२

धनुष्टङ्कारयन्तस्ते महाबलपराक्रमाः।
शकुनिर्दशभिर्बाणैर्विव्याधार्जुनमाहवे ॥ २३

गाण्डीवी सरथस्तस्माच्चतुष्क्रोशे पपात ह।
गदं च बाणविंशत्या शकुनिर्युद्धदुर्मदः॥ २४

चिक्षेप सरथं राजन्नादयन् व्योममण्डलम्।
चत्वारिंशच्छरैर्वीरोऽनिरुद्धं धन्विनां वरम्॥ २५

विव्याध सरथं राजन्नादयन् व्योममण्डलम्।
साश्वो रथोऽनिरुद्धस्य षोडशक्रोशमास्थितः॥ २६

साम्बं च शितबाणैश्च तताड शकुनिर्मृधे।
साम्बोऽपि सरथो राजन्नम्बरे समराङ्गणात्॥ २७

द्वात्रिंशद्योजनं मार्गं निपपात विदेहराट्।
कार्ष्णिं समागतं दृष्ट्वा शकुनिः क्रोधपूरितः॥ २८

सहसा बाणपटलैः सञ्जघान रणाङ्गणे।
प्रद्युम्नस्य रथो राजन् सम्भ्रमन् घटिकाद्वयम्॥ २९

शतक्रोशे पपातोर्व्यां कमण्डलुरिवाहतः।
सर्वे विसिस्मुः शकुनेर्बलं दृष्ट्वाथ यादवाः॥ ३०

जघ्नुर्नानाविधैः शस्त्रैर्दैत्यमद्रिं यथा गजाः।
गदोऽर्जुनोऽनिरुद्धस्तु साम्बो जाम्बवतीसुतः॥ ३१

धनुष्टङ्कारयन्तस्ते पुनर्युद्धं समागताः।
अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्वायुवेगे रथे स्थितः॥ ३२

धनुष्टङ्कारयन् राजन् प्राप्तोऽभूद्रणमण्डले।
प्रलयार्णवसङ्घट्टभीमसङ्घर्षनादिनीम् ॥ ३३

गये, अनेक पर्वत ढह गये और समुद्र अपनी मर्यादासे विचलित हो उठे। नरेश्वर! सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा और भूमण्डल काँपने लगा॥ १७—२०॥

उसकी प्रत्यञ्चाके घोर शब्दसे विह्वल हो योद्धाओंके ऊपर योद्धा गिर पड़े। हाथी रणभूमि छोड़कर भागने लगे और घोड़े युद्धभूमिमें उछलने-कूदने लगे॥ २१॥

इस प्रकार सब लोग अचानक भयसे घबराकर भागने लगे। तब महान् बल-पराक्रमसे युक्त गद आदि वीर रथपर बैठकर धनुषकी टंकार करते हुए वहाँ आये। शकुनिने संग्रामभूमिमें अर्जुनको दस बाण मारे। इससे रथसहित गाण्डीवधारी अर्जुन चार कोस दूर जाकर गिरे। रणदुर्मद शकुनिने गदके ऊपर बीस बाणोंसे प्रहार किया॥ २२—२४॥

राजन्! उसने गदको रथसहित व्योममण्डलमें फेंक दिया और जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। राजन्! उस वीरने रथसहित धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको चालीस बाणोंसे बींध डाला और अपने सिंहनादसे आकाश-मण्डलको निनादित कर दिया। अनिरुद्धका घोड़ोंसहित रथ सोलह कोस दूर जा गिरा। विदेहराज! शकुनिने समराङ्गणमें साम्बको सौ पैने बाण मारे। राजन्! साम्ब भी रथसहित आकाशमें जा समरभूमिसे बत्तीस योजन दूर मार्गपर जा गिरे॥ २५—२७ १/२॥

तत्पश्चात् प्रद्युम्नको सामने आया देख शकुनि क्रोधसे भर गया तथा उसने रणक्षेत्रमें सहसा बाण-समूहोंसे उन्हें घायल कर दिया। राजन्! प्रद्युम्नका रथ दो घड़ीतक चक्कर काटता हुआ सौ कोस दूर पृथ्वीपर इस प्रकार जा गिरा, मानो किसीके द्वारा कमण्डलु फेंक दिया गया हो। शकुनिका बल देखकर समस्त यादव चकित हो उठे॥ २८—३०॥

जैसे हाथी पहाड़से सिर टकराते हैं, उसी प्रकार समस्त यादव नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा उस दैत्यको घायल करने लगे। गद, अर्जुन, अनिरुद्ध एवं जाम्बवती-कुमार साम्ब अपने धनुषकी टंकार करते हुए पुनः युद्धभूमिमें आ गये। राजन्! तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न वायुके समान वेगशाली रथपर बैठकर धनुषकी टंकार करते हुए युद्ध-मण्डलमें आ पहुँचे। शकुनिके धनुषकी प्रत्यञ्चा प्रलयकालके समुद्रोंके टकरानेके शब्द-जैसी

धनुर्ज्यां शकुनेः कार्ष्णिश्चिच्छेद दशभिः शरैः।
सहस्त्रैश्च सहस्राश्वान् रथं च विशिखैः शतैः॥ ३४

सारथिं बाणविंशत्या पातयामास भूतले।
ततो रथं समुत्थाप्य हयैरन्यैर्नियोजितम्॥ ३५

अन्यं सूतं रथे कृत्वा रथमारुह्य दैत्यराट्।
सन्दधे सिञ्जिनीं राजन् कोदण्डे चण्डविक्रमे॥ ३६

शतं बाणान् समाकृष्य निषङ्गात्पृष्ठतो गतान्।
चापे निधाय कर्णान्तमाकृष्य प्राह मन्मथम्॥ ३७

शकुनिरुवाच

सर्वेषां घातयिष्यामि शत्रुमुख्यं मदोत्कटम्।
पश्चात्सेनां हनिष्यामि यदूनां स्वस्थतेजसाम्॥ ३८

प्रद्युम्न उवाच

सदा वयः कालबलेन देहिनां
प्रयाति छायेव सुखे मुहुर्मुहुः।
तथा च दुःखं च सुखं गतागतं
घनावलिर्वायुबलेन खे यथा॥ ३९

कृतां कृषिं सिञ्चति यां हि सर्वत-
श्छिनत्ति दात्रेण यथा कृषीवलः।
तथा हि कालः स्वकृतां जनावलिं
दुरत्ययः पाति गुणैर्विलुम्पति॥ ४०

इदं करिष्यामि करोमि भूयो
ममेदमस्तीति तवेदमाब्रुवन्।
अहं सुखी दुःखयुतः सुहृज्जनो
लोकस्त्वहङ्कारविमोहितोऽसुर ॥ ४१

शकुनिरुवाच

धन्यस्त्वं राजशार्दूल मुनीन् वाग्भिर्विडम्बयन्।
स्वभावो दुस्त्यजो नृणां पृथग्भूतस्त्रिभिर्गुणैः॥ ४२

भयंकर टंकार करती थी। श्रीकृष्णकुमारने दस बाण मारकर उसे काट दिया। फिर सहस्र बाणोंसे उसके सहस्र घोड़ोंको, सौ विशिखोंद्वारा उसके रथको और बीस बाण मारकर उसके सारथिको पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ३१—३४$^{1}/_{2}$॥

तब उसने रथको उठाकर उसमें दूसरे घोड़े जोते और दूसरा सारथि बैठाकर वह दैत्यराज पुनः रथपर आरूढ़ हुआ। राजन्! तत्पश्चात् उसने प्रचण्ड पराक्रमसे युक्त कोदण्डपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी। इसके बाद पीठपर पड़े हुए तरकससे सौ बाण खींचकर उसने धनुषपर रखे और कानतक खींचकर प्रद्युम्नसे कहा॥ ३५—३७॥

शकुनि बोला—तुम सब लोगोंमें मेरे मुख्य शत्रु तथा मदमत्त योद्धा हो, अतः पहले तुम्हारा ही वध करूँगा। तत्पश्चात् स्वस्थ तेजवाले यादवोंकी सारी सेनाका संहार कर डालूँगा॥ ३८॥

प्रद्युम्नने कहा—[असुर!] प्राणियोंकी आयु सदा कालके बलसे नष्ट होती या बीतती है। वह बारंबार छायाकी तरह स्वाभाविक रूपसे आती-जाती है। जैसे बादलोंकी पंक्ति आकाशमें वायुकी शक्तिसे आती-जाती है, उसी तरह सुख-दुःख भी कालकी प्रेरणासे आता-जाता रहता है॥ ३९॥

हे असुर! जैसे किसान बोयी हुई खेतीको सींचता है और जब वह पक जाती है, तब स्वयं उसे हँसुएसे सब ओरसे काट लेता है, उसी प्रकार दुर्जय काल अपनी ही रची हुई देहधारियोंकी श्रेणीको अपने गुणोंद्वारा पालता है और फिर समय आनेपर उसका संहार कर डालता है। जीव तो अहंकारसे मोहित होकर ही ऐसा मानता है कि 'मैं यह करूँगा, मैं यह करता हूँ; यह मेरा है और वह तेरा है; मैं सुखी हूँ, दुखी हूँ और ये मेरे सुहृद् हैं' इत्यादि॥ ४०-४१॥

शकुनि बोला—नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, जो अपनी वाणीद्वारा ऋषि-मुनियोंका अनुकरण करते हो। तीन गुणोंके अनुसार पृथक्-पृथक् जो प्राणियोंका स्वभाव है, उसका उनके लिये त्याग करना कठिन होता है॥ ४२॥

श्रीनारद उवाच

एवं ब्रुवाणावन्योऽन्यं प्रद्युम्नशकुनी मृधे।
युयुधाते मैथिलेन्द्र शक्रवृत्राविव स्थितौ॥ ४३

इति तद्धनुषो मुक्तान् विशिखान् सूर्यरश्मिवत्।
चिच्छेद कार्ष्णिर्बाणेन कुवाक्येनेव मित्रताम्॥ ४४

लक्षभारमयीं गुर्वीं गृहीत्वा महतीं गदाम्।
जघान मूर्ध्नि प्रद्युम्नं शकुनिर्युद्धदुर्मदः॥ ४५

प्रद्युम्नो भगवान् साक्षाद्गदया वज्रकल्पया।
काचपात्रं यथा दण्डस्तद्गदां शतधाकरोत्॥ ४६

अथ दैत्यो रुषाविष्टस्त्रिशूलं च स्फुरद्रुचा।
प्रद्युम्नस्याहनन्मूर्ध्नि शब्दमुच्चैः समुच्चरन्॥ ४७

त्रिशूलेन हरेः पुत्रस्त्रिशूलं शतधाच्छिनत्।
कुन्तं तीक्ष्णं शकुनये प्राहिणोद्रुक्मिणीसुतः॥ ४८

कुन्तेन विद्धहृदयः किञ्चिद्व्याकुलमानसः।
परिघेण हरेः पुत्रं सन्तताड रणाङ्गणे॥ ४९

यमदण्डं ततो नीत्वा रुक्मिणीनन्दनो बली।
चूर्णीचकार दैत्यस्य परिघं परमाद्भुतम्॥ ५०

चचालाश्वांश्च सहसा यमदण्डेन वेगतः।
सारथिं स्यन्दनं दिव्यं पातयामास भूतले॥ ५१

सूते मृत्युं गते साश्वे चूर्णीभूते रथे नृप।
परिघे च महादैत्यः खड्गं जग्राह रोषतः॥ ५२

प्रद्युम्नोऽपि महावीरो यमदण्डेन मैथिल।
द्विधा चकार तत्खड्गं पन्नगं गरुडो यथा॥ ५३

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेन्द्र! युद्धस्थलमें इस प्रकार परस्पर सत्सङ्गकी बातें करते हुए प्रद्युम्न और शकुनि इन्द्र और वृत्रासुरकी भाँति युद्ध करने लगे। शकुनिके धनुषसे छूटे हुए विशिख सूर्यकी किरणोंके समान चमक उठे, परंतु श्रीकृष्णकुमारने एक ही बाणसे उन सबको काट दिया—ठीक उसी तरह, जैसे एक ही कटुवचनसे मनुष्य पुरानी मित्रताको भी खण्डित कर देता है॥ ४३-४४॥

तब रण-दुर्मद शकुनिने लाख भारकी बनी भारी और विशाल गदा हाथमें लेकर प्रद्युम्नके मस्तकपर दे मारी। साक्षात् भगवान् प्रद्युम्नने अपनी वज्र-सरीखी गदासे उसकी गदाके सौ टुकड़े कर दिये—उसी प्रकार जैसे कोई डंडा मारकर काँचके बर्तन टूक-टूक कर दे॥ ४५-४६॥

तब रोषके आवेशसे युक्त हुए उस दैत्यने एक चमचमाता हुआ त्रिशूल हाथमें लिया और उच्च-स्वरसे गर्जना करते हुए उसके द्वारा प्रद्युम्नके मस्तकपर प्रहार किया। श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने भी त्रिशूल मारकर दैत्यके त्रिशूलके सौ टुकड़े कर डाले। इसके बाद रुक्मिणीनन्दनने एक तीक्ष्ण भाला लेकर शकुनिके ऊपर चलाया॥ ४७-४८॥

बरछीसे उसकी छाती छिद गयी। इससे उसके मनमें कुछ घबराहट हुई, तथापि उसने समराङ्गणमें प्रद्युम्नको परिघसे पीट दिया। तब बलवान् रुक्मिणीकुमारने यमदण्ड लेकर दैत्यके उस अत्यन्त अद्भुत परिघको उसके द्वारा चूर-चूर कर डाला॥ ४९-५०॥

इतना ही नहीं, वेगपूर्वक चलाये हुए उस यमदण्डसे सहसा उसके घोड़ोंको, सारथिको और उस दिव्य रथको भी धराशायी कर दिया। नरेश्वर! सारथिके मर जानेपर और घोड़े-सहित रथ एवं परिघके भी चूर-चूर हो जानेपर उस महादैत्यने रोषपूर्वक खड्ग हाथमें लिया॥ ५१-५२॥

मैथिल! जैसे गरुड़ किसी सर्पके दो टुकड़े कर दे, उसी प्रकार महावीर प्रद्युम्नने यमदण्डके द्वारा उसके खड्गके दो टुकड़े कर डाले॥ ५३॥

यमदण्डेन तं दैत्यं स्कन्धे कार्ष्णिस्तताड ह।
तस्याघातेन शकुनिः सद्यो मूर्च्छामवाप ह॥ ५४

दैत्यसेनां विवेशाशु श्रीकार्ष्णिः क्रोधमूर्च्छितः।
निपातयन् महावीरान् वनं वैश्वानरो यथा॥ ५५

इसके बाद श्रीकृष्णकुमारने उसी यमदण्डसे दैत्यके कंधेपर प्रहार किया। उसके आघातसे शकुनिको तत्काल मूर्च्छा आ गयी। तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए प्रद्युम्नने तत्काल दैत्य-सेनाके भीतर प्रवेश किया। जैसे दावानल जंगलको जलाता है, उसी प्रकार वे उस सेनाके बड़े-बड़े वीरोंको धराशायी करने लगे॥ ५४-५५॥

गजांस्तुरङ्गांश्च रथान् दैत्यांस्तानाततायिनः।
पातयामास यमवद्यमदण्डेन माधवः॥ ५६

छिन्नपादाश्छिन्नमुखाश्छिन्नाङ्गाश्छिन्नबाहवः।
दैतेया दनुजा युद्धे मूर्च्छिता निधनं गताः॥ ५७

यमरूपधरं दृष्ट्वा प्रद्युम्नं भीमविक्रमम्।
त्यक्त्वा स्वं स्वं रणं केचिद्दुद्रुवुस्ते दिशो दश॥ ५८

माधव प्रद्युम्नने उस यमदण्डके द्वारा यमराजकी भाँति हाथियों, घोड़ों, रथों और उन आततायी दैत्योंको मार गिराया। दैत्योंके पैर, मुख, अङ्ग और भुजाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं। कितने ही दैत्य और दानव युद्धमें मूर्च्छित हो गये और कितने ही कालके गालमें चले गये। भीम-पराक्रमी प्रद्युम्नको यमराजका रूप धारण किये देख कितने ही दैत्य युद्धभूमिसे अपना-अपना स्थान छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ५६—५८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शकुनियुद्धवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शकुनि और प्रद्युम्नके युद्धका वर्णन' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

शकुनिके मायामय अस्त्रोंका प्रद्युम्नद्वारा निवारण तथा उनके चलाये हुए श्रीकृष्णास्त्रसे युद्धस्थलमें भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव

श्रीनारद उवाच

शकुनिः पुनरुत्थाय स्वबलं वीक्ष्य पोथितम्।
जग्राह स महाराज लक्षभारसमं धनुः॥ १

निधाय बाणं निशितं कोदण्डे चण्डविक्रमे।
कार्ष्णिं प्राह रणे राजञ्छकुनिर्दैत्यराड्बली॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—महाराज! शकुनिने फिर उठकर जब अपनी सेनाका विनाश हुआ देखा, तब उसने लाख भारके समान भारी धनुष हाथमें लिया। राजन्! उस प्रचण्ड विक्रमशाली कोदण्डपर तीखा बाण रखकर बलवान् दैत्यराज शकुनिने रणभूमिमें प्रद्युम्नसे कहा—॥ १-२॥

शकुनिरुवाच

कर्म प्रधानं जगतीतले महत्
कर्मैव साक्षाद्गुरुरीश्वरः प्रभुः।
उच्चावचत्वं भवतीह कर्मणा
तेनैव राजन् विजयः पराजयः॥ ३

गवां सहस्रेषु यथा हि वत्सकः
स्वमातरं विन्दति पश्यतां सताम्।

शकुनि बोला—राजन्! इस भूतलपर कर्म ही प्रधान है। महत् कर्म ही साक्षात् गुरु तथा सामर्थ्यशाली ईश्वर है। यहाँ कर्मसे ही उच्चता और नीचता प्रकट होती है तथा उस कर्मसे ही विजय और पराजय होती है। जैसे सहस्रों गौओंके बीचमें छोड़ा हुआ बछड़ा सत्पुरुषोंके देखते-देखते अपनी माताको ढूँढ़

तथा हि येनापि कृतं शुभाशुभं
नरेषु तिष्ठत्सु तमेव गच्छति॥ ४

ततो विजेष्यामि दृढेन कर्मणा
रिपुं भवन्तं शपथः कृतो मया।
सद्यः कुरु त्वं प्रतिकारमेव तद्
येनापि न स्याद्भुवि ते पराजयः॥ ५

श्रीप्रद्युम्न उवाच

कर्म प्रधानं यदि मन्यसे भवान्
कालं विना तर्हि फलं न विद्यते।
कृते च पाके यदि विघ्नता क्वचित्
सदा बलिष्ठं समयं विदुः परे॥ ६

पाकप्रकारे सति पाकसाधनं
कदापि कर्तारमृते न जायते।
वदन्ति कर्तारमतः परं परे
न कर्म कालं शृणु दैत्यपुङ्गव॥ ७

योगं विदुः केऽपि यदा ह्ययोगतः
कथं भवेत्कौ किल पाकसाधनम्।
सर्वं हि वा योगमृते वृथा भवेत्
काले तथा कर्मणि कर्तरि स्थिते॥ ८

योगे तथा कर्मणि कर्तरि स्थिते
काले विधिः सांख्यमृते वृथा भवेत्।
पाकप्रकाराद्यविचारकृद्यदा
न तर्हि पाकस्य यथा प्रसाधनम्॥ ९

योगकर्मविधिकारकसांख्यै-
र्ब्रह्मपूरुषमृते न हि किञ्चित्।
तं नमामि परिपूर्णतमांशं
येन विश्वमखिलं विदितं खे॥ १०

शकुनिरुवाच

हे प्रद्युम्न महाबाहो त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः।
तव दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम्॥ ११

ये त्वत्सङ्गं समासाद्य वार्तां कुर्वन्ति नित्यशः।
तेषां तु महिमानं हि वक्तुं नालं चतुर्मुखः॥ १२

लेता है, वैसे ही जिसने भी शुभाशुभ कर्म किया है, उसके द्वारा किया हुआ कर्म सहस्त्रों मनुष्योंके होनेपर भी उस कर्ताको ही प्राप्त होता है॥ ३-४॥

इसके अनुसार मैं सुदृढ़ कर्म करके उसके द्वारा अपने शत्रुस्वरूप तुमको अवश्य जीत लूँगा। इसके लिये मैंने शपथ खायी है। तुम भी शीघ्र ही इसका प्रतीकार करो, जिससे इस भूमिपर तुम्हारी पराजय न हो॥ ५॥

श्रीप्रद्युम्नने कहा—दैत्यराज! यदि तुम कर्मको प्रधान मानते हो तो यह भी जान लो कि कालके बिना उसका कोई फल नहीं होता। कर्म करनेपर भी उसके पाक या परिणाममें कभी-कभी विघ्न उपस्थित हो जाता है, अतः श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषोंने सदा काल या समयको ही बलिष्ठ माना है॥ ६॥

दैत्यराज! सुनो, कर्मके परिपाकका अवसर आनेपर भी कर्ताके बिना उसका फल कदापि नहीं प्राप्त होता। इसलिये श्रेष्ठ पुरुष कर्ताको ही प्रधान मानते हैं, कर्म और कालको नहीं। कुछ लोग योग (उपाय)-को ही प्रधान मानते हैं; क्योंकि उसके बिना भूतलपर कोई भी कर्म और उसके फलकी सिद्धि नहीं हो सकती। काल, कर्म और कर्ताके रहते हुए भी योगके बिना सब व्यर्थ हो जाता है॥ ७-८॥

योग, कर्म, कर्ता और कालके होते हुए भी विधिज्ञानके बिना सब व्यर्थ हो जाता है, जैसे परिणामके प्रकार आदिका विचार किये बिना फलका यथावत् साधन नहीं होता। योग, कर्म, कर्ता, काल और विधिज्ञानके होनेपर भी ब्रह्म-पुरुषके बिना कुछ भी नहीं होता। इसलिये मैं उन परिपूर्णतम भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ, जिनसे अखिल विश्वका ज्ञान होता है॥ ९-१०॥

शकुनि बोला—हे महाबाहु प्रद्युम्न! तुम तो साक्षात् ज्ञानके निधि हो, तुम्हारे दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। जो तुम्हारा सङ्ग पाकर प्रतिदिन तुमसे वार्तालाप करते हैं, उनकी महिमाका वर्णन करनेमें तो चार मुखवाले ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं॥ ११-१२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शकुनिर्दैत्यो मायावी दैत्यराड्बली।
शिक्षितं मयदैत्येन रौरवास्त्रं समादधे॥ १३

महोरगा दन्दशूका वृश्चिकाश्च विषोत्कटाः।
कोटिशो निर्गता राजन् कराला रौद्ररूपिणः॥ १४

तैर्दंशितं बलं सर्वं फूत्कारैर्मत्ततां गतम्।
वीक्ष्य कार्ष्णिर्महाबुद्धिर्गरुडास्त्रं समादधे॥ १५

कोटिशो गरुडा बाणान्नीलकण्ठाः कलापिनः।
अन्ये च पक्षिणो भीमा निर्गतास्तस्य पश्यतः॥ १६

अग्रसन्नुरगान् युद्धे दन्दशूकान् सवृश्चिकान्।
तीक्ष्णतुण्डा बृहत्पक्षाः क्षणात्तेऽदृश्यतां गताः॥ १७

दैत्योऽपि राक्षसीं मायां गान्धर्वीं गौह्यकीं पुनः।
पैशाचीं सन्दधे राजञ्छकुनिर्युद्धदुर्मदः॥ १८

तद्बाणनिर्गता भूतास्तथा प्रेताश्च कोटिशः।
अङ्गारान् मुमुचुस्ते वै करालाः कृष्णरूपिणः॥ १९

ज्ञात्वाथ तामसीं मायां पैशाचीं मीनकेतनः।
सत्त्वास्त्रं सन्दधे बाणे युद्धाकांक्षी हरेः सुतः॥ २०

तस्माद्विनिर्गता राजन् कोटिशो विष्णुपार्षदाः।
जघ्नुः पिशाचीं तां मायां पन्नगीं गरुडो यथा॥ २१

मायां दैत्योऽपि मायावी गौह्यकीं सन्दधे पुनः।
सम्भूताः कोटिशो मेघा गर्जन्तो भीमरूपिणः॥ २२

विष्ठां मूत्रं च रुधिरं मेदोमज्जास्थिवर्षिणः।
ज्ञात्वाथ गौह्यकीं मायां प्रद्युम्नो भगवान् हरिः॥ २३

तन्नाशार्थं महाराज कोलास्त्रं सन्दधे त्विषौ।
तद्बाणाद्यज्ञवाराहो निर्गतो घर्घरस्वनः॥ २४

सटा विधूय वेगेन दंष्ट्रया तीक्ष्णया घनान्।
विदारयन् रणे रेजे वेणून् मत्तगजो यथा॥ २५

नारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर मायावी और बलवान् दैत्यराज शकुनिने मयासुरसे सीखे हुए रौरवास्त्रका संधान किया। राजन्! उस अस्त्रसे बड़े-बड़े नाग, दंदशूक और विषैले बिच्छू करोड़ोंकी संख्यामें निकले। वे सब-के-सब बड़े विकराल और रौद्ररूपधारी थे॥ १३-१४॥

उनके द्वारा डसी हुई सारी सेना उनकी फुफकारोंसे मतवाली हो गयी। यह देख परम बुद्धिमान् प्रद्युम्नने गरुडास्त्रका संधान किया। उस अस्त्रसे कोटि-कोटि गरुड, नीलकण्ठ, मोर तथा अन्य भयानक पक्षी उस दैत्यके देखते-देखते प्रकट हुए। उन पक्षियोंने उस युद्धमें नागों, दंदशूकों तथा बिच्छुओंको निगल लिया। फिर वे तीखी चोंच और बड़ी पाँखवाले पक्षी क्षणभरमें अदृश्य हो गये॥ १५—१७॥

राजन्! तब उस रणदुर्मद दैत्य शकुनिने भी राक्षसी, गान्धर्वी, गौह्यकी और पैशाची मायाका संधान किया। उन बाणोंसे निकले हुए विकराल और काले रूपवाले करोड़ों भूत और प्रेत वहाँ अङ्गारोंकी वर्षा करने लगे॥ १८-१९॥

उस तामसी और पैशाची मायाको जानकर युद्धाभिलाषी श्रीकृष्णकुमार मीनध्वज प्रद्युम्नने बाणमें सत्त्वास्त्रका संधान किया। राजन्! उस बाणसे करोड़ों विष्णु-पार्षद प्रकट हुए, जिन्होंने उस पैशाची मायाको वैसे ही नष्ट कर दिया, जैसे गरुड़ नागिनको नष्ट कर दे। तब उस मायावी दैत्यने पुनः गौह्यकी मायाका संधान किया, जिससे गर्जन-तर्जन करते हुए करोड़ों भयानक रूपवाले मेघ प्रकट हुए॥ २०—२२॥

ये मल, मूत्र, रक्त, मेदा, मज्जा और हड्डीकी वर्षा करने लगे। महाराज! उस गौह्यकी मायाको जानकर भगवान् प्रद्युम्न हरिने उसके विनाशके लिये बाणपर शूकरास्त्रका संधान किया। उस बाणसे घर्घर ध्वनि करनेवाले भगवान् यज्ञवाराहका प्राकट्य हुआ। वे वेगसे अपनी सटाएँ (गर्दनके बाल) हिलाकर तीखी दाढ़से बादलोंको विदीर्ण करते हुए उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे मत्त गजराज बाँसके वृक्षोंको तोड़ता-फोड़ता शोभा पाता है॥ २३—२५॥

दैत्योऽथ मायां गान्धर्वीं चकार रणमण्डले।
युद्धं न दृश्यते तद्वद्धेमसौधानि कोटिशः॥ २६

वस्त्रालङ्कारयुक्तानि बभूवुः पश्यतां सताम्।
विद्याधर्यश्च गन्धर्वा गायन्तो नृत्यतत्पराः॥ २७

मृदङ्गतालवादित्रैर्मोहनै रागमिश्रितैः।
हावभावकटाक्षैश्च तोषयन्त्यो जनान्नृप॥ २८

मोहिन्यः सुन्दरीरामाः श्यामाः कमललोचनाः।
तासां लावण्यरागाभ्यां मोहं यातेषु वृष्णिषु॥ २९

गान्धर्वीं मोहिनीं मायां ज्ञात्वा कार्ष्णिर्महाबलः।
सन्दधे तत्प्रहारार्थे ज्ञानास्त्रं रणमण्डले॥ ३०

ज्ञानोदये तदा जाते मोहनाशो नृपेश्वर।
नाशं गतायां मायायां शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः॥ ३१

राक्षसीं सन्दधे मायां मायावी दैत्यपुङ्गवः।
सपक्षैः पर्वतै राजन् क्षणात्तच्छादितं नभः॥ ३२

महान्धकारोऽभूत्पृथ्व्यां परार्धे च घनैरिव।
दग्धवृक्षशिलास्थीनि कबन्धरुधिराणि च॥ ३३

गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलादीनि सर्वतः।
अम्बराद्बभ्रमुः शैला मेघा इव विदेहराट्॥ ३४

रक्षोगणाः शूलहस्ताश्छिन्धि भिन्धीति वादिनः।
यातुधानाश्च शतशो भक्षयन्तो द्विपान् हयान्॥ ३५

सिंहव्याघ्रवराहाश्च दृश्यन्ते रणमण्डले।
मर्दयन्तो नखैर्नागांश्चर्वयन्तो वपूंषि वै॥ ३६

पलायमानं स्वबलं दृष्ट्वा कार्ष्णिर्महाबलः।
जेतुं तां राक्षसीं मायां नृसिंहास्त्रं समादधे॥ ३७

तदनन्तर उस दैत्यने रणमण्डलमें गान्धर्वी माया प्रकट की। युद्ध अदृश्य हो गया और वहाँ सोनेके करोड़ों महल खड़े हो गये। सत्पुरुषोंके देखते-देखते वे स्वर्णमय भवन वस्त्रों और अलंकारोंसे सज गये। वहाँ विद्याधरियाँ और गन्धर्व नाचने-गाने लगे॥ २६-२७॥

नरेश्वर! मृदङ्ग, ताल और वाद्योंके मोहक शब्दों तथा रागयुक्त हाव-भाव और कटाक्षोंद्वारा लोगोंको संतुष्ट करती हुई सोलह वर्षकी-सी अवस्थावाली कमलनयनी, मनोमोहिनी, सुन्दरी रमणियाँ वहाँ प्रकट हो गयीं। उनके रूप-लावण्य तथा रागसे जब समस्त वृष्णिवंशी पुरुष मोहित हो गये, तब उस मोहिनी गान्धर्वी मायाको जानकर उसके निवारणके लिये महाबली प्रद्युम्नने रणभूमिमें ज्ञानास्त्रका संधान किया॥ २८—३०॥

नृपेश्वर! उस समय ज्ञानोदय होनेपर सबके मोहका नाश हो गया। उस मायाके नष्ट हो जानेपर क्रोधसे भरे हुए मायावी दैत्यराज शकुनिने राक्षसी मायाका संधान किया। राजन्! फिर तो क्षणभरमें सारा आकाश पंखधारी पर्वतोंसे आच्छादित हो गया॥ ३१-३२॥

पृथ्वीपर घोर अन्धकार छा गया, मानो प्रलयकालमें मेघोंकी घोर घटा घिर आयी हो। आकाशसे चारों ओर जले वृक्ष, प्रस्तर-खण्ड, हड्डियाँ, धड़, रक्त, गदाएँ, परिघ, खड्ग और मुसल आदि बरसने लगे। विदेहराज! पर्वत मेघोंके समान आकाशमें घूमने लगे॥ ३३-३४॥

हाथियों और घोड़ोंको अपना भक्ष्य बनाते हुए सैकड़ों राक्षस और यातुधान हाथोंमें शूल लिये 'काट डालो, फाड़ डालो' इत्यादि कहते हुए दृष्टिगोचर होने लगे। रणमण्डलमें बहुत-से सिंह, व्याघ्र और वाराह दिखायी देने लगे, जो अपने नखोंद्वारा हाथियोंको विदीर्ण करते हुए उनके शरीरोंको चबा रहे थे॥ ३५-३६॥

अपनी सेनाको पलायन करती देख महाबली प्रद्युम्नने उस राक्षसी मायाको जीतनेके लिये नरसिंहास्त्रका संधान किया॥ ३७॥

आविर्भूतो हरिः साक्षान्नृसिंहो रौद्ररूपधृक्।
स्फुरत्सटो ललज्जिह्वो नखलाङ्गूलभूषितः॥ ३८

चलद्बालो भीषणास्यो हुङ्कारेणातिभीषणः।
सिंहनादं च कुर्वन् वै संस्थितो रणमण्डले॥ ३९

ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह।
विचेलुर्दिग्गजास्तारा एजद्भूखण्डमण्डलम्॥ ४०

गृहीत्वा ह्यम्बरे शैलान् सवृक्षान्नखरैः खरैः।
पातयामास भूपृष्ठे दैत्यानां च प्रपश्यताम्॥ ४१

रक्षोगणान् सङ्गृहीत्वा पाटयामास वेगतः।
यातुधानगणान् पद्भ्यां स ममर्द हरिर्मृधे॥ ४२

सिंहान् व्याघ्रान् वराहांश्च संविदार्य नखैः खरैः।
चिक्षेप गगने विष्णुस्तत्रैवान्तर्दधे पुनः॥ ४३

नाशं गतायां मायायां राक्षस्यां रुक्मिणीसुतः।
शङ्खं दध्मौ विजयदं मौलेन्द्रं च रणाङ्गणे॥ ४४

अभूज्जयजयारावो दुन्दुभिध्वनिमिश्रितः।
प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ४५

स्वमायायां निर्गतायां शकुनिर्दैत्यपुङ्गवः।
सरथः सैनिकैः सार्धं तत्रैवान्तर्हितोऽभवत्॥ ४६

मायां चकार दैतेयीं मयदैत्यप्रदर्शिताम्।
हस्तिशुण्डासमां धारां वर्षन्तोऽतितडित्स्वनाः॥ ४७

सांवर्तकगणा मेघा आजग्मुः पश्यतां सताम्।
क्षणात्सर्वे समुद्रास्ते चण्डवातेन वेपिताः॥ ४८

क्षुभिता ऊर्मिसङ्घर्षावर्तैः प्लावितभूरुजाः।
भूमण्डलं सपदि तत्प्लावितं चात्मभिः समम्॥ ४९

दृष्ट्वाथ यादवाः सर्वे प्रापुस्तत्र भयं बहु।
वदन्तो रामकृष्णेति विस्मृतस्वपराक्रमाः॥ ५०

इससे साक्षात् रौद्ररूपधारी भगवान् नरसिंह हरि प्रकट हो गये, जिनके अयाल चमक रहे थे। जीभ लपलपा रही थी तथा बड़े-बड़े नख और पूँछ उनकी शोभा बढ़ाते थे। बाल हिल रहे थे, मुँह डरावना दिखायी देता था और वे हुंकारसे अत्यन्त भीषण प्रतीत होते थे। रणमण्डलमें सिंहनाद करते हुए वे खड़े हो गये॥ ३८-३९॥

उनके उस सिंहनादसे सप्त पाताल और सातों लोकोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये, तारे खिसक गये और भूखण्ड-मण्डल काँपने लगा। वे अपने तीखे नखोंसे दैत्योंके देखते-देखते वृक्षोंसहित पर्वतोंको आकाशमें उठाकर उनकी सेनाके बीच भूपृष्ठपर पटक देते थे॥ ४०-४१॥

राक्षसोंको पकड़कर बड़े वेगसे फाड़ डालते थे। उन नरहरिने युद्धस्थलमें यातुधानोंको अपने पैरोंसे मसल डाला। सिंहों, व्याघ्रों और वाराहोंको तीखे नखोंसे विदीर्ण करके आकाशमें फेंक दिया। फिर वे भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ४२-४३॥

इस प्रकार राक्षसी मायाके नष्ट हो जानेपर रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नने समराङ्गणमें विजयदायक मौलेन्द्र नामक शङ्ख बजाया। उस समय दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिश्रित 'जय-जय' का घोष होने लगा। प्रद्युम्नके ऊपर देवतालोग फूल बरसाने लगे॥ ४४-४५॥

अपनी मायाके नष्ट हो जानेपर दैत्यराज शकुनि रथ और सैनिकोंके साथ वहीं अदृश्य हो गया। इसके बाद उसने मय नामक दैत्यद्वारा सिखायी हुई दैतेयी माया प्रकट की। उस समय बिजलीकी कड़कके साथ हाथीकी सूँड़के समान मोटी जलधाराएँ बरसाते हुए सांवर्तक मेघगण सत्पुरुषोंके देखते-देखते आकाशमें छा गये। एक ही क्षणमें सारे समुद्र प्रचण्ड आँधीसे कम्पित और क्षुभित हो परस्पर टकराते हुए अपनी भँवरोंसे समस्त भूमण्डलको आप्लावित करने लगे। उसमें यादवोंके आत्मीय जनोंसहित सारे वृक्ष डूब गये। यह देख समस्त यादव बहुत भयभीत हो गये तथा [बल] राम-कृष्णके नामोंका कीर्तन करते हुए अपना सारा पराक्रम भूल गये॥ ४६—५०॥

क्षणमात्रेण राजेन्द्र तूष्णीम्भूताः पराजिताः।
तदा कार्ष्णिर्महाबाहुः कोदण्डे चण्डविक्रमे।
बाणं निधाय सहसा श्रीकृष्णास्त्रं समादधे॥ ५१

नवार्ककोटिद्युतिमन्महन्महो
विरञ्जयन्मैथिल वै दिशो दश।
समागतं तत्र कुशस्थलीपुरः
स्वयं परं स्वार्थमिवात्मवाञ्छितम्॥ ५२

तस्मिन् परे तेजसि नूतनाम्बुद-
च्छविं सुवर्णाम्बुजरेणुवाससम्।
भृङ्गावलीकूजितकुन्तलावलिं
स्रजं दधानं नववैजयन्तीम्॥ ५३

श्रीवत्सरत्नोत्तमचारुवक्षसं
चतुर्भुजं पद्मविशालवीक्षणम्।
स्फुरत्किरीटं वरहारनूपुरं
लसन्नवार्कद्युतिहेमकुण्डलम् ॥ ५४

विलोक्य देवं यदवोऽतिहर्षिताः
परं प्रणेमुः कृतहस्तसम्पुटाः।
प्रचक्रिरे मैथिल पुष्पवर्षिणो-
ऽमरा जयारावमतीव सर्वतः॥ ५५

स दैत्यशकुनेः सज्जं कोदण्डं प्राच्छिनद्रुषा।
शार्ङ्गमुक्तेन तच्छार्ङ्गी बाणेनैकेन लीलया॥ ५६

स छिन्नधन्वा शकुनिस्त्यक्त्वा युद्धं प्रधर्षितः।
हेतिसंहतिमानेतुं ययौ चन्द्रावतीं पुरीम्॥ ५७

राजेन्द्र! एक ही क्षणमें वे सब लोग चुपचाप पराजित हो गये। तब महाबाहु प्रद्युम्नने प्रचण्ड पराक्रमके आश्रयभूत कोदण्डपर बाण रखकर उसके ऊपर सहसा श्रीकृष्णास्त्रका संधान किया॥ ५१॥

मिथिलेश्वर! उस समय वहाँ कुशस्थलीपुरीसे प्रातःकालीन करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् उत्कृष्ट तेजःपुञ्ज स्वयं इस प्रकार प्रकट हुआ, मानो वह अपने अभीष्ट अर्थका मूर्तिमान् रूप हो। वह तेज दसों दिशाओंका अनुरञ्जन कर रहा था॥ ५२॥

उस परम तेजके भीतर नूतन जलधरके समान श्याम छविसे सुशोभित, सुवर्णमय कमलकी रेणुके सदृश पीत-वसनसे समलंकृत, भ्रमरोंके गुञ्जारवसे निनादित, कुन्तलराशिधारी, वैजयन्तीमाला पहने, श्रीवत्सचिह्न एवं उत्तम कौस्तुभरत्नसे सुशोभित वक्षवाले, प्रफुल्ल पंकजके तुल्य विशाललोचन, चार भुजाधारी श्रीकृष्ण दृष्टिगोचर हुए। उनके मस्तकपर सुन्दर किरीट, कण्ठमें मनोहर हार तथा चरणोंमें नवल नूपुर शोभा दे रहे थे। कानोंमें नूतन सूर्यकी-सी कान्तिवाले सोनेके कुण्डल झिलमिला रहे थे॥ ५३-५४॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको देखकर यदुवंशी अत्यन्त हर्षसे खिल उठे। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर उन परमेश्वरको प्रणाम किया। मिथिलेश्वर! उस समय देवतालोग सब ओरसे फूल बरसाकर जोर-जोरसे जय-जयकार करने लगे॥ ५५॥

तत्काल आये हुए शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए एक ही बाणसे लीलापूर्वक शकुनिके प्रत्यञ्चासहित कोदण्डको रोषपूर्वक खण्डित कर दिया। धनुष कट जानेपर तिरस्कृत हुआ शकुनि युद्ध छोड़कर अपने अस्त्र-शस्त्रोंका समूह ले आनेके लिये चन्द्रावतीपुरीको चला गया॥ ५६-५७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णागमनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका आगमन' नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

शकुनिके जीवस्वरूप शुकका निधन

श्रीनारद उवाच

दैत्ये गतेऽथ शकुनौ भगवान् कमलेक्षणः।
कार्ष्ण्यादियादवान् सर्वानाहूयेत्थमुवाच ह॥ १

श्रीभगवानुवाच

दैत्योऽयं शकुनिः पूर्वं सुमेरोः पार्श्व उत्तरे।
चतुर्युगं वर्जितान्नस्तपसातोषयच्छिवम्॥ २

चतुर्युगे व्यतीते तु साक्षाद्देवो महेश्वरः।
प्रसन्नो दर्शनं दत्वा वरं ब्रूहीत्युवाच ह॥ ३

नत्वाथ शकुनिर्दैत्यः कृताञ्जलिपुटः शनैः।
हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षः प्राह गद्गदया गिरा॥ ४

मृतः सन्भूमिसंस्पर्शाद्भूयासञ्जीवितः प्रभो।
आकाशे मे मृतिर्देव मा भूयाद् घटिकाद्वयम्॥ ५

दैत्येनोक्तो हरः साक्षाद्दत्वा तस्मै वरद्वयम्।
पञ्जरस्थं शुकं दत्वा प्राह दैत्यं नताननम्॥ ६

जीवकल्पं शुकं चैनं रक्ष दैत्य सदानघ।
अस्मिन् मृते च ज्ञातव्यं निधनं स्वं त्वयासुर॥ ७

इति दत्वा वरं तस्मै रुद्रश्चान्तरधीयत।
तस्मात्तस्य वधो दुर्गे भविष्यति शुके मृते॥ ८

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा वीरसदसि भगवान् देवकीसुतः।
सुपर्णं शीघ्रमाहूय प्राह प्रहसिताननः॥ ९

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य महाबुद्धे गच्छ चन्द्रावतीं पुरीम्।
शतयोजनविस्तीर्णां दैत्यसेनासमाकुलाम्॥ १०

प्रासादैर्गगनस्पर्शैर्हेमरत्नमनोहरैः।
विचित्रोपवनारामैः शोभितां दैत्यपुङ्गवैः॥ ११

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! दैत्य शकुनिके चले जानेपर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने प्रद्युम्न आदि समस्त यादवोंको बुलाकर इस प्रकार कहा—॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—पूर्वकालमें सुमेरु पर्वतके उत्तरभागमें इस शकुनि नामक दैत्यने चार युगोंतक निराहार रहकर तपस्याद्वारा भगवान् शिवको संतुष्ट किया। चार युग व्यतीत हो जानेपर साक्षात् महेश्वर-देवने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा—'वर माँगो।'॥ २-३॥

दैत्य शकुनिने उनको प्रणाम किया। उसका रोम-रोम खिल उठा और नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये। उसने दोनों हाथ जोड़कर गद्‌गद वाणीमें धीरेसे कहा—'प्रभो! यदि मैं मरूँ तो भूतलका स्पर्श होते ही फिर जी जाऊँ और आकाशमें भी हे देव! दो घड़ीतक मेरी मृत्यु न हो।' दैत्यके इस प्रकार कहनेपर भगवान् हरने उसे दोनों वर दे दिये और पिंजरेमें रखे हुए एक तोतेको देकर उस नतमस्तक दैत्यसे कहा—'निष्पाप दैत्य! यह तोता तुम्हारे जीवके तुल्य है। तुम इसकी सदा रक्षा करना। असुर! इसके मर जानेपर तुम्हें यह जानना चाहिये कि मेरी ही मृत्यु हो गयी है।'॥ ४—७॥

उसे इस प्रकार वर देकर रुद्रदेव अन्तर्धान हो गये। इसलिये दुर्गमें तोतेकी मृत्यु हो जानेपर शकुनिका वध होगा॥ ८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह कहकर वीरोंकी उस सभामें भगवान् देवकीनन्दनने गरुड़को शीघ्र बुलाकर हँसते हुए कहा—॥ ९॥

श्रीभगवान् बोले—परम बुद्धिमान् गरुड़! मेरी बात सुनो, तुम चन्द्रावतीपुरीको जाओ। वह पुरी सौ योजन विस्तृत है और दैत्योंकी सेनासे घिरी हुई है। सुवर्ण और रत्नोंसे मनोहर प्रतीत होनेवाले गगनचुम्बी महलों तथा विचित्र उपवनों एवं उद्यानोंसे सुशोभित है। बड़े-बड़े दैत्य उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उसके

दुर्गे दुर्गे द्वारदेशे रक्षितां दैत्यपुङ्गवैः।

श्रीनारद उवाच

तां द्रष्टुं गरुडो राजन् सूक्ष्मरूपं दधार ह॥ १२

अलक्षितो दैत्यवृन्दैः पश्यन् प्रासादतोलिकाः।
तेषूत्पतन्नुत्पतंश्च शकुनेर्मन्दिरे गतः॥ १३

प्रेक्षञ्छुकं दैत्यजीवं क्षणं तत्र स्थितोऽभवत्।
युद्धार्थं दंशितं तत्र शकुनिं दैत्यपुङ्गवम्॥ १४

नानाशस्त्रधरं वीरं क्रोधपूरितमानसम्।
गृहीत्वा तं परिकरे प्राह राजन् मदालसा॥ १५

मदालसोवाच

राजन् सर्वेऽपि सुहृदोऽनुकूला भ्रातरस्तव।
मारिताः सङ्गरे भर्तः प्रोद्भटा दैत्यपुङ्गवाः॥ १६

मा याहि योद्धुं यदुभिरागतो भगवान् हरिः।
देहि तस्मै बलिं सद्यो येन श्रेयो ह्यवाप्स्यसि॥ १७

शकुनिरुवाच

हनिष्यामि यदून् सैन्यैर्मे हता भ्रातरो बलात्।
मृत्युर्मे नास्ति भूमध्ये शिवस्यापि वरेण मे॥ १८

उपद्वीपे चन्द्रनाम्नि पतङ्गे पर्वते शुभे।
मे जीवरूपी तु शुको वर्तते साम्प्रतं प्रिये॥ १९

शङ्खचूडेन सर्पेण रक्षितोऽहर्निशं शुकः।
एतत्कोऽपि न जानाति कथं मृत्युश्च मे भवेत्॥ २०

श्रीनारद उवाच

शुकवार्तां ततः श्रुत्वा गरुडो दिव्यवाहनः।
उपद्वीपं तु चन्द्राख्यं गन्तुं तस्मान्मनो दधे॥ २१

उत्पतन् गरुडो वेगात्समुद्रस्य तटे गतः।
द्वीपं विचिन्वंश्चन्द्राख्यमाकाशे विचरन् खगः॥ २२

प्रत्येक दुर्गमें और दरवाजोंपर दैत्यपुंगव उसकी रक्षा करते हैं [उस पुरीमें जाकर तुम शकुनिके महलके भीतर पिंजरेमें सुरक्षित तोतेको मार डालो]॥ १०—११$^{1}/_{2}$॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस पुरीको देखनेके लिये गरुड़ने सूक्ष्म रूप धारण कर लिया। वे दैत्योंसे अलक्षित रहकर, अट्टालिकाओं तथा तोलिकाओंका निरीक्षण करते हुए, उड़-उड़कर एक महलसे दूसरे महलमें होते हुए शकुनिके भवनमें जा पहुँचे॥ १२-१३॥

दैत्यके जीवस्वरूप शुककी खोज करते हुए गरुड़जी क्षणभर वहाँ खड़े रहे। उस समय दैत्यराज शकुनि वहाँ युद्धके लिये कवच धारण किये भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र ले रहा था। उस वीरका हृदय क्रोधसे भरा हुआ था। राजन्! उसकी स्त्री मदालसा उसकी कमरमें दोनों हाथ डालकर बोली—॥ १४-१५॥

मदालसाने कहा—राजन्! प्राणनाथ! तुम्हारे सारे सुहृद्, अनुकूल चलनेवाले भाई तथा उद्भट दैत्यप्रवर युद्धमें मारे गये। यादवोंके साथ युद्ध करनेके लिये न जाओ; क्योंकि उनके पक्षमें साक्षात् भगवान् श्रीहरि आ गये हैं। उन्हें तत्काल भेंट अर्पित करो, जिससे कल्याणकी प्राप्ति हो॥ १६-१७॥

शकुनि बोला—प्रिये! यादवोंने बलपूर्वक मेरे भाइयोंका वध किया है, अतः मैं अपनी सेनाओंद्वारा उन्हें अवश्य मारूँगा। भगवान् शिवके वरदानसे भूतलपर मेरी मृत्यु नहीं होगी। प्रिये! चन्द्रनामक उपद्वीपमें सुन्दर पतंगपर्वतपर इस समय मेरा जीवरूपी शुक विद्यमान है। शङ्खचूड़ नामक सर्प दिन-रात उसकी रक्षा करता है। इस बातको कोई नहीं जानता। फिर मेरी मृत्यु कैसे हो सकती है?॥ १८—२०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! शुकविषयक वृत्तान्त सुनकर दिव्यवाहन गरुड़ने वहाँसे चन्द्रनामक उपद्वीपमें जानेका विचार किया। वेगसे उड़ते हुए गरुड़ समुद्रके तटपर जा पहुँचे और चन्द्रद्वीपकी खोज करते हुए आकाशमें विचरने लगे॥ २१-२२॥

शतयोजनविस्तीर्णे समुद्रे भीमनादिनि।
पक्षिराट् सिंहलं प्राप लतावृन्दमनोहरम्॥ २३

तत्र पप्रच्छ गरुडः किं नामास्य जनान् प्रति।
सिंहलोऽयमिति श्रुत्वा गरुडः प्रोत्पतन् खगः॥ २४

लङ्कां प्राप्तो महावेगात्त्रिकूटशिखरे नृप।
लङ्कां प्राप्य ततो वेगात्पाञ्चजन्यं जगाम ह॥ २५

पाञ्चजन्याब्धिनिकटे क्षुधितः पक्षिराड् बली।
प्रसह्य मीनान् जग्राह तीक्ष्णया तुण्डया भृशम्॥ २६

तत्र चैको महान्नक्रो लम्बितो योजनद्वयम्।
पादे गृहीत्वा गरुडं विचकर्ष जलान्तरे॥ २७

बलेन गरुडस्तस्य चकाराकर्षणं तटे।
तयोराकर्षणं राजन् मिथोऽभूद्घटिकाद्वयम्॥ २८

प्रचण्डवेगो गरुडस्तीक्ष्णया तुण्डया च तम्।
तताड पृष्ठे धृष्टाङ्गं दण्डेन यमराड् यथा॥ २९

नक्ररूपं विहायाशु सोऽभूद्विद्याधरो महान्।
नत्वा श्रीगरुडं साक्षात्प्राह प्रहसिताननः॥ ३०

विद्याधर उवाच

अहं विद्याधरः पूर्वं नाम्ना वै हेमकुण्डलः।
आकाशगङ्गायां स्नातुं गतो दिविजमण्डले॥ ३१

तत्र स्नानं प्रकुर्वन्तं ककुत्स्थं मुनिसत्तमम्।
पादे गृहीत्वा हास्येन जलान्तर्गतवानहम्॥ ३२

मां शशाप ककुत्स्थोऽपि त्वं नक्रो भव दुर्मते।
मया प्रसादितः शीघ्रं प्रसन्नः सन् वरं ददौ॥ ३३

ताक्ष्यर्तुण्डप्रहारेण नक्रत्वात्त्वं विमुच्यसे।
तस्य शापादद्य मुक्तः कृपया तव सुव्रत॥ ३४

शतयोजन विस्तृत एवं भयंकर गर्जना करनेवाले समुद्रपर दृष्टिपात करते हुए पक्षिराज गरुड़ लतावृन्दसे मनोरम सिंहलद्वीपमें पहुँच गये॥ २३॥

वहाँके लोगोंसे गरुड़ने पूछा—'इस स्थानका क्या नाम है?' उत्तर मिला—'सिंहलद्वीप।' राजन्! तब वहाँसे उड़ते हुए गरुड़ बड़े वेगसे त्रिकूटपर्वतके शिखरपर बसी हुई लङ्कामें जा पहुँचे। लङ्का जाकर वहाँसे भी उड़े और पाञ्चजन्यद्वीपमें चले गये॥ २४-२५॥

पाञ्चजन्यसागरके निकट पहुँचनेपर बलवान् पक्षिराज गरुड़को बड़ी भूख लगी। इन्होंने हठात् तीखी चोंच-द्वारा बहुत-से मत्स्य पकड़ लिये। उन्हीं मत्स्योंमें एक बड़ा भारी मगर भी आ गया, जो दो योजन लंबा था। उसने गरुड़का एक पैर पकड़ लिया और पानीके भीतर खींचने लगा॥ २६-२७॥

गरुड़ अपना बल लगाकर उसे किनारेकी ओर खींचने लगे। राजन्! उस समय दो घड़ीतक उन दोनोंमें खींचातानी चलती रही। गरुड़का वेग बड़ा प्रचण्ड था। उन्होंने अपनी तीखी चोंचसे उस मगरकी पीठपर इस प्रकार चोट की, मानो यमराजने यमदण्डसे प्रहार किया हो। उसी समय वह मगरका रूप छोड़कर तत्काल एक महान् विद्याधर हो गया। उसने साक्षात् गरुड़को मस्तक झुकाया और हँसते हुए कहा—॥ २८—३०॥

विद्याधर बोला—मैं पूर्वकालमें हेमकुण्डल नामक प्रसिद्ध विद्याधर था। एक दिन देवमण्डलमें सम्मिलित हो मैं आकाशगङ्गामें स्नान करनेके लिये गया। वहाँ मुनिश्रेष्ठ ककुत्स्थ पहलेसे स्नान कर रहे थे। हँसी-हँसीमें उनका पैर पकड़कर मैं उन्हें जलके भीतर खींच ले गया॥ ३१-३२॥

तब ककुत्स्थने मुझे शाप देते हुए कहा—'दुर्बुद्धे! तू मगर हो जा।' तब मैंने उन्हें अनुनय-विनयसे प्रसन्न किया। वे शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और वर देते हुए बोले—'गरुड़की चोंचका प्रहार होनेपर तुम मगरकी योनिसे छूट जाओगे।' सुव्रत! आज आपकी कृपासे मैं ककुत्स्थमुनिके शापसे छुटकारा पा गया॥ ३३-३४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा च गते स्वर्गे विद्याध्रे हेमकुण्डले।
उड्डितो गरुडस्तस्मात्पक्षाभ्यां व्योममण्डले॥ ३५

हरिणाख्यं चोपद्वीपं प्राप्तवान् वेगतः खगः।
अपान्तरतमास्तत्र करोति विपुलं तपः॥ ३६

तस्याश्रमे खगेशस्य पक्षमेकं पपात ह।
तं दृष्ट्वा प्राह गरुडमपान्तरतमा मुनिः॥ ३७

पक्षं निधाय मे मूर्ध्नि गच्छ पक्षिन् यथासुखम्।
पक्षं नीत्वा गतस्ताक्ष्यों धृत्वा तन्मस्तके च तम्॥ ३८

तत्समानान् पक्षचन्द्राननेकान् स ददर्श ह।
प्राहातिविस्मितं ताक्ष्यमपान्तरतमा मुनिः॥ ३९

यदा यदा हि श्रीकृष्णावतारोऽभूत्तदा तदा।
पक्षोऽपि गरुडस्यात्र पतत्येकः सदा खग॥ ४०

कल्पे कल्पे कृष्णचन्द्रावतारः
पक्षः पक्षो मूर्ध्नि मे सोऽपि सोऽपि।
आनन्त्याद्वाद्यन्तवन्तं वदन्ति
पक्षिन् मूर्ध्ना नौमि कृष्णाय तस्मै॥ ४१

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मितस्ताक्ष्यों नत्वा तं मुनिपुङ्गवम्।
द्वीपं रमणकं प्रागादुत्पतन् व्योममण्डलात्॥ ४२

सर्पेभ्योऽपि बलिं नीत्वा द्वीपमावर्तकं गतः।
तत्र दिव्ये सुधाकुण्डे सुधां पीत्वा विराड् बली॥ ४३

शुक्लद्वीपं तु सम्प्राप्तः पप्रच्छ द्वीपचन्द्रभाक्।
मया प्रणोदितः पक्षी प्रययावुत्तरां दिशम्॥ ४४

चन्द्रद्वीपं तु सम्प्राप्तः पर्वते पतगेश्वरः।
जलदुर्गं वह्निदुर्गं वैनतेयो ददर्श ह॥ ४५

जलदुर्गं चञ्चुपुटे सर्वं कृत्वा विराड् बली।
वह्निदुर्गं च तेनापि सान्त्वयामास मैथिल॥ ४६

श्रीनारदजी कहते हैं—यों कहकर जब हेमकुण्डल नामक विद्याधर स्वर्गलोकको चला गया, तब गरुड़ दोनों पंखोंसे उड़कर वहाँसे व्योममण्डलमें पहुँच गये। वहाँसे वेगपूर्वक उड़ते हुए वे हरिण नामक उपद्वीपमें गये। वहाँ अपान्तरतमा नामक मुनि बड़ी भारी तपस्या करते थे॥ ३५-३६॥

उनके आश्रममें जानेपर पक्षिराज गरुड़का एक पंख टूटकर गिर गया। उसे देखकर अपान्तरतमा नामक मुनि गरुड़से बोले—'पक्षिन्! मेरे मस्तकपर अपना पंख रखकर तुम सुखपूर्वक चले जाओ।' तब गरुड़ उनके मस्तकपर पंख रखकर आगे बढ़ गये॥ ३७-३८॥

अपने ही समान अनेकानेक चन्द्रोपम पंख गरुड़ने उनके सिरपर देखे। इससे उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। तब अपान्तरतमा मुनि गरुड़से बोले—'पक्षिराज! जब-जब श्रीकृष्णका अवतार होता है, तब-तब सदा गरुड़का एक पंख यहाँ गिरता है॥ ३९-४०॥

कल्प-कल्पमें श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार होता है और तब-तब मेरे मस्तकपर गरुड़का पंख गिरता है। इस प्रकार यहाँ अनन्त पंख पड़े हैं। जो सबके आदि-अन्त बताये जाते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ॥ ४१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह सुनकर गरुड़ आश्चर्यचकित हो उठे। उन्होंने उन मुनिवरको प्रणाम करके फिर अपनी उड़ान भरी और आकाशमण्डलमें होते हुए वे रमणकद्वीपमें चले गये। वहाँ सर्पोंसे बलि लेकर वे आवर्तकद्वीपमें गये और वहाँके सुधाकुण्डमें सुधाका पान करके बलवान् पक्षिराज शुक्लद्वीपमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने मुझसे चन्द्रद्वीपका पता पूछा। फिर मेरे कहनेसे पक्षि [-राज] गरुड़ उत्तर दिशाकी ओर गये॥ ४२—४४॥

इस तरह वे खगेश्वर चन्द्रद्वीपके पर्वतपर जा पहुँचे। वहाँ विनतानन्दनने जलदुर्ग और अग्निदुर्ग देखा। मिथिलेश्वर! बलवान् पक्षिराजने सारे जलदुर्गको अपनी चोंचमें लेकर उसीसे अग्निदुर्गको बुझा दिया॥ ४५-४६॥

दरीमुखे शयाना ये दैत्या लक्षं समुत्थिताः।
तैः सार्धं समभूद्युद्धं तार्क्ष्यस्य घटिकाद्वयम्॥ ४७

कांश्चित्पादनखैर्युद्धे विददार खगेश्वरः।
कांश्चिद् दैत्यान् स्वपक्षाभ्यां पातयामास भूतले॥ ४८

कांश्चिच्चञ्चुपुटेनापि गृहीत्वा पक्षिराड् बली।
पातयित्वा गिरेः पृष्ठे चिक्षेप गगने बलात्॥ ४९

केचिन्मृतास्तथा शेषा दुद्रुवुस्ते दिशो दश।
इत्थं दैत्यवधं कृत्वा दरीमध्ये गतः खगः॥ ५०

चकार पादविक्षेपं शंखचूडोपरि स्फुरत्।
शंखचूडोऽपि गरुडं दृष्ट्वा सोऽतिप्रधर्षितः॥ ५१

शुकं जले पञ्जरस्थं शीघ्रं त्यक्त्वा पलायितः।
चञ्चुदेशेन तं नीत्वा शुकं सद्यः सपञ्जरम्॥ ५२

प्रोत्पतन्नम्बरे राजन् युद्धे गन्तुं मनो दधे।
पलायितानां दैत्यानां तावत्कोलाहलो महान्॥ ५३

शुको नीतः शुको नीतो वदतामम्बरे नृप।
तच्छब्दो दिक्षु सैन्यानां गतशब्दस्तु शृण्वताम्॥ ५४

दिवि भूमौ सर्वतोऽपि ब्रह्माण्डेऽपि प्रपूरितः।
शुको नीत इति श्रुत्वा शकुनिः शङ्कितोऽसुरैः॥ ५५

शूलं धृत्वा ततः सद्यश्चन्द्रावत्यां समुत्थितः।
गरुडेन शुको नीतः श्रुत्वा क्रुद्धः समन्वयात्॥ ५६

तच्छूलताडितस्तार्क्ष्यो न जहौ मुखतः शुकम्।
सप्तद्वीपान् सप्तसिन्धून्निरीक्षन् स गतः खगः॥ ५७

तमन्वधावद्दैत्येन्द्रो दिक्षु दिक्षु नभोऽन्तरे।
भ्रमन्नागान्तको राजन्नाकाशे कोटियोजनम्॥ ५८

वहाँ पर्वतीय कन्दराके द्वारपर जो लाखों दैत्य सोये थे, वे उठ खड़े हुए। उनके साथ दो घड़ीतक गरुड़का युद्ध चलता रहा। पक्षिराजने युद्धमें अपने पंजोंसे कितने ही राक्षसोंको विदीर्ण कर डाला, किन्हींको पाँखोंसे मारकर धराशायी कर दिया॥ ४७-४८॥

कुछ दैत्योंको चोंचसे पकड़कर बलवान् पक्षिराजने पर्वतके पृष्ठभागपर पटक दिया और फिर उठाकर बलपूर्वक आकाशमें फेंक दिया। कुछ मर गये और शेष दैत्य दसों दिशाओंमें भाग गये। इस तरह दैत्योंका संहार करके पक्षिराज गुफामें घुस गये॥ ४९-५०॥

वहाँ शङ्खचूड़ नामक सर्पके मस्तकपर उन्होंने अपने चमकीले पैरसे आघात किया। शङ्खचूड़ गरुड़को देखकर अत्यन्त तिरस्कृत हो पिंजरेके तोतेको पानीमें फेंककर शीघ्र ही वहाँसे पलायन कर गया। राजन्! गरुड़ने पिंजरेसहित शुकको तत्काल अपनी चोंचमें लेकर आकाशमें उड़ते हुए युद्धस्थलमें जानेका विचार किया। तबतक भागे हुए दैत्योंका महान् कोलाहल आरम्भ हुआ॥ ५१—५३॥

नरेश्वर! 'तोता ले गया, तोता ले गया'—इस प्रकार चिल्लाते हुए उन असुरोंकी आवाज आकाशमें और सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गयी और दैत्यकी सेनाओंके लोगोंने भी इस बातको सुना॥ ५४॥

स्वर्ग, भूतल एवं समस्त ब्रह्माण्डमें 'तोता ले गया, तोता ले गया' की आवाज गूँज उठी। उसे सुनकर असुरोंसहित शकुनि सशङ्क हो गया। वह शूल लेकर तत्काल चन्द्रावतीपुरीसे उठा और 'गरुड़ तोतेको ले गये हैं'—यह सुनकर रोषपूर्वक उनका पीछा करने लगा॥ ५५-५६॥

उसने गरुड़को अपने शूलसे मारा, तो भी उन्होंने मुखसे तोतेको नहीं छोड़ा। वे सातों समुद्र और सातों द्वीपोंका निरीक्षण करते हुए आगे बढ़ते गये। दैत्यराज शकुनिने प्रत्येक दिशामें और आकाशके भीतर भी उनका पीछा किया। राजन्! नागान्तक गरुड़ आकाशमें भ्रमण करते हुए कोटि योजनतक चले गये॥ ५७-५८॥

दैत्यत्रिशूलक्षतभृन्न जहौ मुखतः शुकम्।
सपञ्जरः शुको राजन्नाकाशे लक्षयोजनम्॥ ५९

पपातोपलवद्वेगात्सुमेरोर्गिरिमूर्धनि ।
पञ्जरोऽगात्खगस्तत्र विशीर्णोऽभूद्व्यसुःशुकः॥ ६०

गरुडोऽथ महायुद्धे कृष्णपार्श्वं समागतः।
दैत्यः खिन्नमना राजन् पुरीं चन्द्रावतीं ययौ॥ ६१

दैत्यके त्रिशूलकी मारसे वे क्षत-विक्षत हो गये, तथापि मुखसे तोतेको छोड़ नहीं सके। राजन्! लाख योजन ऊँचे आकाशमें जानेपर पिँजरेसहित शुक पत्थरकी भाँति सुमेरुपर्वतके शिखरपर बड़े वेगसे गिरा। पिँजरा टूट गया और तोतेके प्राण-पखेरू उड़ गये। तदनन्तर गरुड़ उस महायुद्धमें श्रीकृष्णके पास चले गये। राजन्! दैत्य शकुनि खिन्नचित्त हो चन्द्रावतीपुरीमें लौट गया॥ ५९—६१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गरुडागमो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गरुड़का आगमन' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

शकुनिका घोर युद्ध, सात बार मारे जानेपर भी उसका भूमिके स्पर्शसे पुनः जी उठना; अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा युक्तिपूर्वक उसका वध

श्रीनारद उवाच

दैत्यान् शेषान् समानीय नानायुधधरो बली।
उच्चैःश्रवसमारुह्य हयं दिव्यं मनोहरम्॥ १

धनुष्टङ्कारयन् वीरः शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः।
आययौ सम्मुखे योद्धुं श्रीकृष्णस्यापि सम्मुखे॥ २

नारदजी कहते हैं—राजन्! शेष दैत्योंको लेकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये बलवान् वीर शकुनि, दिव्य मनोहर अश्व उच्चैःश्रवापर आरूढ़ हो, क्रोधसे अचेत-सा होकर, सामनेसे धनुषकी टंकार करता हुआ भगवान् श्रीकृष्णके भी सम्मुख युद्ध करनेके लिये आ गया॥ १-२॥

पुनः प्राप्तं दैत्यसैन्यं शकुनिं युद्धदुर्मदम्।
तं वीक्ष्य वृष्णयः सर्वे जगृहुः स्वायुधानि च॥ ३

दैत्यानां यदुभिः सार्धं घोरं युद्धं बभूव ह।
वीरैः संयुयुधुर्वीराः सिंहाः सिंहैरिवाहवे॥ ४

सर्वेषामग्रतः प्राप्तः कोदण्डं नादयन् मुहुः।
शकुनिर्मेघवद्राजन् चक्रे नाराचदुर्दिनम्॥ ५

रणदुर्मद दैत्य शकुनि तथा उसकी सेनाका पुनः आगमन देख समस्त वृष्णिवंशियोंने अपने-अपने आयुध उठा लिये। उस समय दैत्योंका यादवोंके साथ घोर युद्ध हुआ। वीरोंके साथ वीर इस तरह जूझने लगे, जैसे सिंहोंके साथ सिंह लड़ रहे हों। राजन्! मेघकी गर्जनाके समान बारंबार कोदण्डकी टंकार करता हुआ शकुनि सबके आगे था। उसने नाराचोंद्वारा दुर्दिन उपस्थित कर दिया॥ ३—५॥

बाणान्धकारे सञ्जाते भगवान् गरुडध्वजः।
शार्ङ्गी शार्ङ्गेण धनुषा यथैन्द्रेण घनो बभौ॥ ६

श्रीकृष्णो भगवान् साक्षाच्छकुनेरसुरस्य च।
चिच्छेद बाणपटलं बाणेनैकेन लीलया॥ ७

बाणोंका अन्धकार छा जानेपर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् गरुड़ध्वज अपने उस धनुषसे उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे इन्द्रधनुषसे मेघकी शोभा होती है। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अपने एक ही बाणसे लीलापूर्वक असुर शकुनिके बाण-समूहोंको काट डाला॥ ६-७॥

आकृष्य कर्णपर्यन्तं कोदण्डं शकुनिर्मृधे।
तताड दशभिर्बाणैः श्रीकृष्णहृदि मैथिल॥ ८

प्रलयाब्धिमहावर्तभीमसङ्घर्षनादिनीम्।
धनुर्ज्यां शकुनेः शौरिश्चिच्छेद दशभिः शरैः॥ ९

मायावी शकुनिर्दैत्यः शतरूपी बभूव ह।
युयोध हरिणा युद्धे सर्वेषां पश्यतां नृप॥ १०

सहस्राणि स्वरूपाणि धृत्वा साक्षाद्धरिः स्वयम्।
युयुधे तेन दैत्येन तदद्भुतमिवाभवत्॥ ११

मयदैत्येन रचितं त्रिशूलं ज्वलनप्रभम्।
भ्रामयित्वाथ हरये प्राहिणोद्दैत्यराड् बली॥ १२

ततः क्रुद्धो महाबाहुः परिपूर्णतमो हरिः।
चिच्छेद तं तीक्ष्णतुण्डं पन्नगं गरुडो यथा॥ १३

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्गदां चिक्षेप मूर्धनि।
हयात्तं पातयामास गदया वज्रकल्पया॥ १४

गदाप्रहारव्यथितः क्षणं मूर्च्छां गतोऽसुरः।
गृहीत्वा स्वां गदां युद्धे युयुधे माधवेन वै॥ १५

तयोर्युद्धमभूद्घोरं गदाभ्यां रणमण्डले।
अभूच्चटचटारावो वज्रनिष्पेषवत्किल॥ १६

श्रीकृष्णगदया तस्य चूर्णीभूता गदा भुवि।
विरेजेऽङ्गारवत्तत्र सर्वेषां पश्यतां मृधे॥ १७

गिरिदर्यां यथा सिंहौ वने मत्तौ गजावुभौ।
रणमध्ये तथा तौ द्वौ युयुधाते परस्परम्॥ १८

श्रीकृष्णं नोदयामास शकुनिः शतयोजनम्।
हरिस्तं प्रेषयामास सहस्रं योजनं भुवि॥ १९

मिथिलेश्वर! युद्धमें अपने कोदण्डको कानतक खींचकर शकुनिने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयमें दस बाण मारे। तब प्रलय-समुद्रके महान् आवर्तोंके भीषण संघर्षके समान गम्भीर नाद करनेवाली शकुनिके धनुषकी प्रत्यञ्चाको श्रीकृष्णने दस बाणोंसे काट डाला॥ ८-९॥

नरेश्वर! मायावी दैत्य शकुनि सबके देखते-देखते सौ रूप धारण करके श्रीहरिके साथ युद्ध करने लगा। तब साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण एक सहस्र रूप धारण करके उस दैत्यके साथ युद्ध करने लगे, वह अद्‌भुत-सी बात हुई॥ १०-११॥

बलवान् दैत्यराज शकुनिने मयासुरके बनाये हुए अग्नितुल्य तेजस्वी त्रिशूलको घुमाकर उसे श्रीहरिके ऊपर चला दिया। तब कुपित हुए परिपूर्णतम महाबाहु श्रीहरिने उस त्रिशूलको वैसे ही काट दिया, जैसे तीखी चोंचवाला गरुड़ किसी सर्पको टूक-टूक कर डाले॥ १२-१३॥

तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए महाबाहु श्रीहरिने शकुनिके मस्तकपर अपनी गदा चलायी तथा उस वज्रतुल्य गदाकी चोटसे उस दैत्यको घोड़ेसे नीचे गिरा दिया। गदाकी चोटसे पीड़ित हुआ दैत्य क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गया। फिर युद्धस्थलमें अपनी गदा लेकर वह माधवके साथ युद्ध करने लगा॥ १४-१५॥

उस समय रणमण्डलमें गदाओंद्वारा उन दोनोंके बीच घोर युद्ध हुआ। गदाओंके टकरानेका चट-चट शब्द वज्रके टकरानेकी भाँति सुनायी पड़ता था। श्रीकृष्णकी गदासे चूर-चूर होकर शकुनिकी गदा पृथ्वीपर गिर पड़ी। वह युद्धमें सबके देखते-देखते अङ्गारकी भाँति दहकने लगी॥ १६-१७॥

जैसे पर्वतकी कन्दरामें दो सिंह लड़ते हों, जैसे वनमें दो मतवाले हाथी जूझते हों, उसी प्रकार समराङ्गणमें वे दोनों—श्रीकृष्ण और शकुनि परस्पर युद्ध करने लगे। शकुनिने श्रीकृष्णको सौ योजन पीछे कर दिया और श्रीकृष्णने उसे भूतलपर सहस्र योजन पीछे ढकेल दिया॥ १८-१९॥

गृहीत्वा भुजयोस्तं वै जङ्घाभ्यां भुवनेश्वरः।
पातयामास भूपृष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः॥ २०

किञ्चिद्व्यथां गतो दैत्यो गृहीत्वा जारुधिङ्गिरिम्।
प्राहिणोच्च दुराचारः शकुनिर्युद्धदुर्मदः॥ २१

समागतं गिरिं वीक्ष्य भगवान् कमलेक्षणः।
हंसर्षभं गिरिं नीत्वा प्राहिणोद् भुवनेश्वरः।
जयशब्दं प्रकुर्वन्तावन्योऽन्यं ताडयन् गिरिम्॥ २२

चूर्णयामासतू राजंस्तथा चन्द्रावतीं पुरीम्।
तदा दैत्योऽतिसङ्क्रुद्धो गृहीत्वा खड्गचर्मणी॥ २३

आययौ सम्मुखे राजञ्छ्रीकृष्णस्य महात्मनः।
शार्ङ्गी शार्ङ्गं सङ्गृहीत्वाथार्धचन्द्रमुखं शरम्॥ २४

सन्दधे सहसा युद्धे ग्रीष्ममार्तण्डसन्निभम्।
शार्ङ्गमुक्तो दिव्यबाणो द्योतयन् मण्डलं दिशाम्॥ २५

शकुनेर्मस्तकं छित्त्वा भूमिं भित्त्वा तलं गतः।
व्यसुर्भूत्वा तदा दैत्यः पतितो रणमण्डले॥ २६

भूमिस्पर्शात्सजीवोऽभूत्क्षणमात्रेण मैथिल।
करेणादाय मुण्डं स्वं स्वकबन्धे निधाय सः॥ २७

युद्धं कर्तुं समुत्तस्थौ तदद्भुतमिवाभवत्।
इत्थं कृष्णेन निहतः सप्तवारं महासुरः॥ २८

भूमिस्पर्शात्सजीवोऽभूद्राहुवत्पुनरुत्थितः।
एकाकी यादवकुलं संहारं कर्तुमुद्यतः॥ २९

विवेशाशु महादैत्यो वने वह्निरिव प्रभुः।
सतुरङ्गान् महावीरान् सशस्त्रानुत्कटान् गजान्॥ ३०

सङ्गृहीत्वा भुजाभ्यां खं प्राक्षिपल्लक्षयोजनम्।
कांश्चिद्गजान् मुखे धृत्वा स्कन्धयोरुभयोरपि॥ ३१

तब त्रिभुवननाथ श्रीहरिने उसे दोनों भुजाओंमें पकड़कर जाँघोंके धक्केसे जमीनपर वैसे ही पटक दिया, जैसे किसी बालकने कमण्डलु फेंक दिया हो॥ २०॥

इससे उस दैत्यको कुछ व्यथा हुई। फिर उस युद्धदुर्मद दुराचारी शकुनिने जारुधि पर्वतको पकड़कर उसे श्रीकृष्णपर चला दिया। पर्वतको अपने ऊपर आता देख कमलनयन भुवनेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने हंसर्षभ नामक पर्वत लेकर उसकी ओर फेंका। इस प्रकार जयशब्दका उच्चारण करते हुए वे दोनों एक-दूसरेपर पर्वतके द्वारा प्रहार करते रहे। राजन्! पर्वतके आघातसे उन दोनोंने चन्द्रावतीपुरीको भी चूर्ण कर दिया॥ २१—२२$^{1}/_{2}$॥

उस समय दैत्य शकुनिने अत्यन्त कुपित हो ढाल-तलवार उठा ली और महात्मा श्रीकृष्णके सामने वह युद्धके लिये आ गया। तब भगवान् शार्ङ्गधरने अपना शार्ङ्गधनुष लेकर उसके ऊपर सहसा अर्धचन्द्र-मुख बाणका संधान किया, जो युद्धस्थलमें ग्रीष्मऋतुके सूर्यके समान उद्भासित हो उठा। शार्ङ्गधनुषसे छूटा हुआ वह दिव्य बाण दिङ्मण्डलको विद्योतित करता हुआ शकुनिका मस्तक काटकर भूमिका भेदन करके तललोकमें चला गया। उस समय दैत्य शकुनि प्राण-शून्य होकर युद्धस्थलमें गिर पड़ा॥ २३—२६॥

मिथिलेश्वर! भूमिका स्पर्श होते ही वह क्षणभरमें पुनः जीवित हो उठा। अपने कटे हुए मस्तकको अपने ही हाथसे धड़पर रखकर वह युद्ध करनेके लिये पुनः उठ खड़ा हुआ, वह अद्भुत-सी घटना हुई! इस प्रकार श्रीकृष्णके हाथसे सात बार मारे जानेपर भी वह महान् असुर भूमिके स्पर्शसे जी उठा तथा राहुकी भाँति फिर उठ खड़ा हुआ। अब वह अकेले ही यादव-कुलका संहार करनेके लिये उद्यत हुआ॥ २७—२९॥

वनमें दावानलकी भाँति उस शक्तिशाली महादैत्यने तत्काल यादव-सेनामें प्रवेश किया। उसने घोड़ों और अस्त्र-शस्त्रोंसहित महावीर घुड़सवारोंको तथा मदमत्त हाथियोंको भुजाओंसे पकड़कर आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया। किन्हीं हाथियोंका मुँह, किन्हींके दोनों कंधे तथा किन्हींके दोनों कक्ष

कक्षयोरुभयोर्दैत्यो बभौ कालाग्निरुद्रवत्।
पद्भ्यां कराभ्यां दैत्यस्य त्रासं याते महामृधे॥ ३२

हाहाकारो महानासीच्छ्रीकृष्णस्य महात्मनः।
तदैव भगवान् साक्षाच्छ्रीकृष्णो विश्वरक्षकः।
सुदर्शनास्त्रं प्रायुङ्क्त साधूनां रक्षणाय वै॥ ३३

तद्धस्तमुक्तं निशितं सुदर्शनं
लयार्ककोटिद्युतिमज्ज्वलत्प्रभम्।
जहार सद्यः शकुनेर्दृढं शिरो
यथा च वृत्रस्य पविर्महामृधे॥ ३४

तावद्गृहीत्वा शकुनिं महामृधे
चिक्षेप सद्यो मृतमम्बरे बलात्।
उत्क्षेपणं भोः कुरुतेषुभिर्दिवि
यदून् गिरा श्रीपतिरित्युवाच॥ ३५

श्रीनारद उवाच

इत्थं हरेर्वचः श्रुत्वा सर्वे यादवपुङ्गवाः।
अम्बरात्प्रपतन्तं ते तेदुर्बाणैः स्फुरत्प्रभैः॥ ३६

दैत्यो दीप्तिमतो बाणैरम्बरे शतयोजनम्।
गतः कन्दुकवद्राजन्नूर्ध्वं लोकस्य पश्यतः॥ ३७

साम्बस्यापि स बाणेन सहस्रं योजनं गतः।
पुनस्तमापतन्तं खाज्जघान त्विषुणार्जुनः॥ ३८

तेन बाणेन दैत्येन्द्रो योजनं चायुतं गतः।
अनिरुद्धस्य बाणेन लक्षयोजनमास्थितः॥ ३९

प्रद्युम्नस्यापि बाणेन नियुतं योजनं गतः।
पुनस्तमापतन्तं खाद्वीक्ष्य योगेश्वरेश्वरः॥ ४०

बाणं समादधे तेन गतः खे कोटियोजनम्।
एवं खे संस्थिते दैत्ये व्यतीते प्रहरद्वये॥ ४१

पकड़कर फेंकता हुआ वह दैत्य कालाग्निरुद्रके समान जान पड़ता था॥ ३०—३१ १/२॥

उस दैत्यके दोनों पैरों और हाथोंने उस महासमरमें जब भारी आतङ्क उत्पन्न कर दिया और महात्मा श्रीकृष्णकी सेनामें जोरसे हाहाकार होने लगा, तब विश्वरक्षक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने साधुपुरुषोंकी रक्षाके लिये अपने अस्त्र सुदर्शनचक्रका प्रयोग किया॥ ३२-३३॥

उनके हाथसे छूटा हुआ तीखा सुदर्शनचक्र प्रलयकालके कोटि सूर्योंकी दीप्तिमती प्रभासे प्रज्वलित हो उठा। उसने उस महायुद्धमें शकुनिके सुदृढ़ मस्तकको उसी तरह काट लिया, जैसे वज्रने वृत्रासुरका मस्तक काटा था। तबतक भगवान् श्रीकृष्णने महासमरमें मरे हुए शकुनिको बलपूर्वक आकाशमें फेंक दिया। फिर श्रीपतिने यादवोंसे कहा—'तुमलोग इसके शरीरको बाणोंसे ऊपर-ही-ऊपर फेंकते रहो॥ ३४-३५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीहरिकी ऐसी बात सुनकर समस्त यादवश्रेष्ठ वीर आकाशसे गिरते हुए उस दैत्यको चमकीले बाणोंसे ताड़ित करने लगे। राजन्! दीप्तिमान्‌के बाणोंसे आहत हो वह दैत्य लोगोंके देखते-देखते गेंदकी भाँति सौ योजन ऊपर चला गया॥ ३६-३७॥

फिर साम्बके बाणका धक्का पाकर वह एक सहस्र योजन ऊपर चला गया। जब वह पुनः आकाशसे नीचे गिरने लगा, तब अर्जुनने अपने बाणसे उसपर चोट की। उस बाणसे वह दैत्यराज दस हजार योजन ऊपर चला गया। तदनन्तर जब वह नीचे आने लगा, तब अनिरुद्धके बाणने उसे लाख योजन ऊपर उछाल दिया॥ ३८-३९॥

इसके बाद प्रद्युम्नके बाणसे वह दस लाख योजन ऊपर उठ गया। तत्पश्चात् उसे पुनः आकाशसे नीचे गिरते देख योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने उसपर बाण मारा, जिससे वह कोटि योजन ऊपर चला गया। इस प्रकार दो पहरतक वह दैत्य आकाशमें ही स्थित रह गया, उसे नीचे नहीं गिरने दिया॥ ४०-४१॥

द्वितीयेनापि बाणेन तं जघान हरिः स्वयम्।
स बाणस्तं भ्रामयित्वा दिक्षु वै कोटियोजनम्॥ ४२

समुद्रे पातयामास वातः पद्ममिव प्रभुः।
एवं मृते तदा दैत्ये तज्ज्योतिर्निर्गतं स्फुरत्॥ ४३

सर्वतोऽपि भ्रमद्राजन् श्रीकृष्णे लीनतां गतम्।
तदा जयजयारावो दिवि भूमाववर्तत॥ ४४

विद्याधर्यश्च गन्धर्व्यो ननृतुः खे सुखान्विताः।
जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः॥ ४५

ऋषयो मुनयः सर्वे प्रशशंसुर्हरिं परम्।
ब्रह्मरुद्रेन्द्रसूर्याद्याः सर्वे तत्र समागताः॥ ४६

श्रीकृष्णस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ४७

तदनन्तर साक्षात् श्रीहरिने उसके ऊपर दूसरा बाण मारा। उस बाणने सम्पूर्ण दिशाओंमें उसको कोटि योजनतक घुमाकर समुद्रमें वैसे ही ला पटका, जैसे हवाने कमलके फूलको उड़ाकर नीचे डाल दिया हो। राजन्! इस प्रकार जब उस दैत्यकी मृत्यु हो गयी, तब उसके शरीरसे एक प्रकाशमान ज्योति निकली और वह चारों ओरसे परिक्रमा देकर भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हो गयी। उस समय भूतल और आकाशमें जय-जयकार होने लगी॥ ४२—४४॥

विद्याधरियाँ और गन्धर्वकन्याएँ आनन्दमग्न हो आकाशमें नृत्य करने लगीं, किंनर और गन्धर्व यश गाने लगे तथा सिद्ध और चारण स्तुति सुनाने लगे। समस्त ऋषियों और मुनियोंने श्रीहरिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और सूर्य आदि सब देवता वहाँ आ गये और श्रीकृष्णके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ४५—४७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शकुनिदैत्यवधो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शकुनिदैत्यका वध' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका यादवोंके साथ चन्द्रावतीपुरीमें जाकर शकुनि-पुत्रको वहाँका राज्य देना तथा शकुनि आदिके पूर्व जन्मोंका परिचय

श्रीनारद उवाच

पलायितेषु शेषेषु दैत्येषु रणमण्डलात्।
वीणावेणुमृदङ्गादीन्नादयन् दुन्दुभीन् हरिः॥ १

गीयमानो यादवेन्द्रः सूतमागधबन्दिभिः।
स्वपुत्रैर्यादवैः सार्धं स्वसैन्यपरिवारितः॥ २

शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गचापविराजितः।
प्रविवेश सुरैः सार्धं पुरीं चन्द्रावतीं प्रभुः॥ ३

दुःखार्ता भर्तरि मृते रुदन्ती करुणं बहु।
अङ्के गृहीत्वा शकुनेः सुतं राज्ञी मदालसा॥ ४

श्रीकृष्णचरणे बालं निधायाशु कृताञ्जलिः।
अश्रुपूर्णमुखी दीना हरिं नत्वा जगाद ह॥ ५

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! बचे हुए दैत्य रण-भूमिसे भाग गये। यादवेन्द्र भगवान् श्रीहरि वीणा, वेणु, मृदङ्ग और दुन्दुभि आदि बाजे बजवाते और सूत, मागध एवं बन्दीजनोंके मुखसे अपने यशका गान सुनते हुए, पुत्रों तथा अन्य यादवोंके साथ सेनासे घिरकर शङ्ख, चक्र, गदा, कमल और शार्ङ्गधनुषसे सुशोभित हो, देवताओंसहित चन्द्रावतीपुरीमें गये॥ १—३॥

वहाँ अपने पतिके मारे जानेके कारण रानी मदालसा शकुनिके पुत्रको गोदमें लिये दुःखसे आतुर हो अत्यन्त करुणाजनक विलाप कर रही थी। उसके मुखपर अश्रुधारा बह रही थी और वह अत्यन्त दीन हो गयी थी। उसने तुरंत ही हाथ जोड़कर अपने बच्चेको श्रीकृष्णके चरणोंमें डाल दिया और भगवान्‌को नमस्कार करके कहा—॥ ४-५॥

मदालसोवाच

भारावताराय भुवि प्रभो त्वं
जातो यदूनां कुल आदिदेव।
ग्रसिष्यसे पासि भवं निधाय
गुणैर्न लिप्तोऽसि नमामि तुभ्यम्॥ ६

मदात्मजं पालय भीतभीत-
ममुष्य हस्तं कुरु शीर्ष्णि देव।
भर्त्रा कृतं मे किल तेऽपराधं
क्षमस्व देवेश जगन्निवास॥ ७

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो भगवांस्तस्य मूर्ध्नि कृत्वा करद्वयम्।
सर्वं चन्द्रावतीराज्यं ददौ तस्मै महामनाः॥ ८

दत्वा कल्पान्तमायुष्यं भक्तिज्ञानं विरक्तिमत्।
शकुनेः शिशवे कृष्णः स्वमालां प्रददौ शुभाम्॥ ९

उच्चैःश्रवो हयो रत्नं कामधेनुः सुरद्रुमः।
आहृता ये शकुनिना पुरा युद्धे पुरन्दरात्॥ १०

पुरन्दराय तान् प्रादात्प्रयत्नाच्छ्रीजनार्दनः।
गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसां पालकः स्वयम्॥ ११

बहुलाश्व उवाच

केऽमी दैत्याः पूर्वकाले शकुन्याद्या महाबलाः।
देवर्षे मे परं चित्रं कस्मान्मोक्षमुपागताः॥ १२

श्रीनारद उवाच

ब्रह्मकल्पे पुरा राजन् गन्धर्वेशः परावसुः।
आसीत्तस्य शुभाः पुत्रा बभूवुर्नव चौरसाः॥ १३

कन्दर्पसमलावण्या दिव्यभूषणभूषिताः।
नित्यं जगुर्ब्रह्मलोके गीतवाद्यविशारदाः॥ १४

मन्दारो मन्दरो मन्दो मन्दहासो महाबलः।
सुदेवः सुघनः सौधः श्रीभानुरिति विश्रुताः॥ १५

एकदा मोहिते पुत्रीं वाग्देवीं वीक्ष्य वेधसि।
जहसुस्ते स्वमनसि परावसुसुताश्च ये॥ १६

मदालसा बोली—प्रभो! आदिदेव! आप भूतलका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। आप ही संसारके स्रष्टा एवं पालक हैं और प्रलयकाल आनेपर आप ही इसका संहार करेंगे; किंतु कभी आप गुणोंसे लिप्त नहीं होते। मैं आपकी अनुकूलता प्राप्त करनेके लिये आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। मेरा बेटा बहुत डरा हुआ है। आप इसकी रक्षा कीजिये। देव! इसके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखिये। देवेश! जगन्निवास! मेरे पतिने आपका जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये॥ ६-७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मदालसाके यों कहनेपर महामति भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके मस्तकपर अपने दोनों हाथ रखकर चन्द्रावतीका सारा राज्य उसे दे दिया। फिर कल्पपर्यन्तकी लंबी आयु देकर वैराग्यपूर्ण ज्ञान एवं अपनी भक्ति प्रदान की। तदनन्तर उस शकुनिकुमारको श्रीकृष्णने अपने गलेकी सुन्दर माला उतारकर दे दी॥ ८-९॥

शकुनिने पहले युद्धमें इन्द्रसे जो उच्चैःश्रवा घोड़ा, चिन्तामणि रत्न, कामधेनु और कल्पवृक्ष छीन लिये थे, वे सब श्रीजनार्दनने प्रयत्नपूर्वक देवेन्द्रको लौटा दिये; क्योंकि भगवान् स्वयं ही गौओं, ब्राह्मणों, देवताओं, साधुओं तथा वेदोंके प्रतिपालक हैं॥ १०-११॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! पूर्वकालमें ये महाबली शकुनि आदि दैत्य कौन थे और कैसे इन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई? इस बातको लेकर मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है॥१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पूर्वकालके ब्रह्मकल्पकी बात है, परावसु गन्धर्वोंका राजा था। उसके बड़े सुन्दर नौ औरस पुत्र हुए। वे सभी कामदेवके समान रूप-सौन्दर्यशाली, दिव्य भूषणोंसे विभूषित और गीत-वाद्य-विशारद थे तथा प्रतिदिन ब्रह्मलोकमें गान किया करते थे॥ १३-१४॥

उनके नाम थे—मन्दार, मन्दर, मन्द, मन्दहास, महाबल, सुदेव, सुघन, सौध और श्रीभानु। एक समय ब्रह्माजीने अपनी पुत्री वाग्देवता सरस्वतीको मोहपूर्वक देखा। विधाताके इस व्यवहारको लक्ष्य करके परावसुके पुत्र मन-ही-मन हँसने लगे॥ १५-१६॥

सुरज्येष्ठापराधेन गता योनिं च तामसीम्।
वाराहेऽथ हिरण्याक्षपत्न्यां ते जज्ञिरे नव॥ १७

शकुनिः शम्बरो हृष्टो भूतसन्तापनो वृकः।
कालनाभो महानाभो हरिश्मश्रुस्तथोत्कचः॥ १८

एकदा गृहमायान्तमपान्तरतमं मुनिम्।
नत्वा सम्पूज्य विधिवत्पप्रच्छुरिदमादरात्॥ १९

दैत्या ऊचुः

शृणु त्वं स्वमुखाद्ब्रह्मन् कैवल्येशो हरिः स्वयम्।
ददाति मोक्षं भगवान् भक्तानां भक्तवत्सलः॥ २०

अस्माभिर्न कृता भक्तिरासुरीं योनिमास्थितैः।
दुःसङ्गनिरतैर्दुष्टैः कथं मोक्षो भवेदिह॥ २१

उपायं वद नो ब्रह्मन् कल्याणस्य परस्य च।
कल्याणार्थं विचरसि दीनानां जगति प्रभो॥ २२

अपान्तरतमा उवाच

गुणानामपृथग्भावैर्ये भजन्ति हरिं परम्।
तैस्तैः प्रापुः परं दैत्या निर्गुणं मोक्षनायकम्॥ २३

ऐक्यं च सौहृदं स्नेहं भयं क्रोधं स्मयं तथा।
विधाय पूर्वं सततं श्रीकृष्णे लीनतां गताः॥ २४

पृश्निगर्भस्य सम्बन्धात्प्रजानां पतयो यथा।
कायाधवः सौहृदाच्च स्नेहाच्च सुतपा मुनिः॥ २५

भयाद्धिरण्यकशिपुः क्रोधाद्वश्च पितासुरः।
स्मयाच्च श्रुतयः प्रापुर्योगिनां दुर्लभं परम्॥ २६

सुरश्रेष्ठ ब्रह्माके प्रति अपराध करनेके कारण उन्हें तामसी योनिमें जाना पड़ा। श्वेतवाराहकल्प आनेपर वे नवों गन्धर्व हिरण्याक्षकी पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए। उस समय उनके नाम इस प्रकार हुए— शकुनि, शम्बर, हृष्ट, भूतसंतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु तथा उत्कच। एक दिनकी बात है, अपने घरपर आये हुए अपान्तरतमा मुनिको नमस्कार करके उनकी विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् उन सबने आदरपूर्वक इस प्रकार पूछा— ॥१७—१९॥

दैत्य बोले—ब्रह्मन्! सुनिये। आप अपने मुँहसे कहते हैं कि कैवल्यके स्वामी साक्षात् भगवान् श्रीहरि हैं, वे भक्तवत्सल भगवान् भक्तोंको मोक्ष प्रदान करते हैं; परंतु हमलोग आसुरी-योनिमें पड़कर सदा कुसङ्गमें तत्पर रहनेवाले और दुष्ट हैं, हमने कभी भगवान्की भक्ति नहीं की। अतः इस जन्ममें हमारा मोक्ष कैसे होगा? ब्रह्मन्! हमें परम कल्याणका उपाय बताइये; क्योंकि प्रभो! आप दीनजनोंके कल्याणके लिये ही जगत्में विचरते रहते हैं॥ २०—२२॥

अपान्तरतमाने कहा—दैत्यकुमारो! गुण पृथक्-पृथक् नहीं रहते, वे सब मिले-जुले होते हैं। अथवा जिसके जो गुण हैं, वे उससे विलग नहीं होते। अतः उन्हीं गुणोंके द्वारा जो गुणातीत मोक्षाधीश्वर परमात्मा श्रीहरिका भजन करते रहे हैं, वे दैत्य उन परमात्माको प्राप्त हो चुके हैं। ऐक्यसम्बन्ध, सौहार्द, स्नेह, भय, क्रोध तथा स्मय (अभिमान)—इन भावों या गुणोंको सदा श्रीकृष्णके प्रति प्रयुक्त करके वे दैत्यगण उन्हींमें लीन हो गये॥ २३-२४॥

उदाहरणतः भगवान् पृश्निगर्भके साथ एकता (एक कुल, कुटुम्ब या गोत्र)-का सम्बन्ध माननेके कारण प्रजापतिगण मुक्त हो गये। भगवान्के प्रति सौहार्द स्थापित करनेसे कयाधूपुत्र प्रह्लादने भगवान्को पा लिया। श्रीहरिके प्रति स्नेहसे सुतपा मुनि, भयसे हिरण्यकशिपु, क्रोधसे तुम्हारे पिता हिरण्याक्ष तथा स्मय (अभिमान)-से श्रुतियोंने योगीजनोंके लिये भी परम दुर्लभ पदको प्राप्त कर लिया॥ २५-२६॥

येन केनापि भावेन श्रीकृष्णे धारयेन्मनः।
भक्तियोगेन तद्धाम यदेभिः प्राप्यतेऽसुराः॥ २७

हे असुरो! जिस किसी भावसे सम्भव हो, श्रीकृष्णमें मनको लगाये। ये भक्तजन लोग भक्तियोगके द्वारा ही भगवान्में मन लगाकर उनका धाम प्राप्त करते हैं॥ २७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हिते राजन्नपान्तरतमे मुनौ।
चक्रुर्वैरं शकुन्याद्याः परिपूर्णतमे हरौ॥ २८

ते प्रापुर्वैरभावेन श्रीकृष्णं परमेश्वरम्।
न चित्रं विद्धि राजेन्द्र कीटः पेशस्कृतं यथा॥ २९

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर अपान्तरतमा मुनि अन्तर्धान हो गये। तबसे शकुनि आदिने परिपूर्णतम श्रीहरिमें वैरभाव स्थापित किया। उन्होंने वैरभावसे ही परमेश्वर श्रीकृष्णको पा लिया। राजेन्द्र! इसमें कोई आश्चर्य न मानो। जैसे कीड़ा भ्रमरका चिन्तन करनेसे तद्रूप हो जाता है, उसी प्रकार भगवच्चिन्तन करनेवाला जीव भगवान्का सारूप्य प्राप्त कर लेता है॥ २८-२९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शकुनिपुत्रोपरिकृपा शकुन्यादिदैत्यानां पूर्वजन्मपरिचयादि नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शकुनि-पुत्रपर कृपा तथा शकुनि आदि दैत्योंके पूर्वजन्मका परिचय' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

इलावृतवर्षमें राजा शोभनसे भेंटकी प्राप्ति; स्वायम्भुव मनुकी तपोभूमिमें मूर्तिमती सिद्धियोंका निवास; लीलावतीपुरीमें अग्निदेवसे उपायनकी उपलब्धि; वेदनगरमें मूर्तिमान् वेद, राग, ताल, स्वर, ग्राम और नृत्यके भेदोंका वर्णन

श्रीनारद उवाच

इत्थं खण्डं तु भद्राश्वं जित्वा श्रीयादवेश्वरः।
यदुभिः सैनिकैः सार्धमिलावृतमथाययौ॥ १

विभाति यत्रैव गिरीन्द्रराजो
भूपद्मगोलस्य च कर्णिकेव।
स्फुरद्द्युतिः स्वर्णमयः सुमेरुः
सुरालयो मैथिल रत्नसानुः॥ २

तं सर्वतो मन्दरमेरुमन्दरौ
सुपार्श्व एवं कुमुदश्चतुर्थकः।
विभाति सैको गिरिभिर्नगेश्वर-
श्चतुष्पदार्थैश्च मनोरथा इव॥ ३

जाम्बूनदं जम्बुभवं हि यत्र
यतः स्वतः सिद्धिभवं सुवर्णम्।

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार भद्राश्ववर्षपर विजय पाकर श्रीयादवेश्वर हरि यादव-सैनिकोंके साथ इलावृतवर्षको गये॥ १॥

मिथिलेश्वर! इलावृतवर्षमें ही रत्नमय शिखरोंसे सुशोभित, देवताओंका निवासस्थान, दीप्तिमान् स्वर्णमय पर्वत गिरिराजाधिराज 'सुमेरु' है, जो भूमण्डलरूपी कमलकी कर्णिकाके समान शोभा पाता है। उसके चारों ओर मन्दर, मेरु-मन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद—ये चार पर्वत शोभा पाते हैं। इन चारोंसे घिरा हुआ वह एक गिरिराज सुमेरु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पदार्थोंसे युक्त मनोरथकी भाँति शोभा पाता है॥ २-३॥

उस इलावृतवर्षमें जम्बूफलके रससे उत्पन्न होनेवाला जाम्बूनद नामक स्वतःसिद्ध स्वर्ण उपलब्ध

यत्रारुणोदाख्यनदी च जाता
यद्वारिपानाद्भुवि नामयित्वम्॥ ४
कदम्बजा मधुधाराश्च पञ्च
यासां तु पानेन नृणां कदापि।
शीतोष्णवैवर्ण्यपरिश्रमाद्या
दौर्गन्ध्यभावा न भवन्ति राजन्॥ ५
यदुद्भवाः कामदुघा नदाश्च
रत्नान्नवासःशुभभूषणानि ।
शय्यासनादीनि फलानि यानि
दिव्यानि तानि त्वथ चार्पयन्ति॥ ६
एवं च यत्रोर्ध्ववनं प्रसिद्धं
सङ्कर्षणो यत्र विराजतेऽथ।
शिवः सदासौ रमते प्रियाभिः
स्त्रीभावतां यान्ति जनास्तु तत्र॥ ७
हैमाम्बुजैः शीतवसन्तवायुभिः
काश्मीरवृक्षैश्च लवङ्गजालैः।
देवद्रुमामोदमदान्धषट्पदै-
रिलावृतं खण्डमतीव रेजे॥ ८
पश्यन् भुवं स्वर्णमयीं मनोहरां
वैदूर्यरत्नाङ्कुरवृन्दचित्रिताम् ।
इलावृतं पूर्णमलङ्कृतैः सुरै-
र्विजित्य खण्डं जगृहे बलिं हरिः॥ ९
श्रीशोभनो नाम पुरा कृते युगे
जामातृकोऽभून्मुचुकुन्दभूभृतः ।
एकादशीं यः समुपोष्य भारते
प्राप्तः स देवैः किल मन्दराचले॥ १०
अद्यापि राज्यं कुरुते कुबेरवद्
राज्ञः सुतोऽसौ किल चन्द्रभागया।
नीत्वा बलिं देववरस्य सम्मुखे
समाययौ मैथिल सुन्दरः परः॥ ११
प्रदक्षिणीकृत्य हरिं यदूत्तमं
पादारविन्दे पतितोऽथ शोभनः।
भक्त्या प्रणम्याशु बलिं महात्मने
दत्वा ययौ मैथिल मन्दराचलम्॥ १२

बहुलाश्व उवाच

शोभने च नृपे याते भगवान् मधुसूदनः।
अग्रे चकार किं देवो वद देवर्षिसत्तम॥ १३

होता है। वहाँ जम्बूरससे 'अरुणोदा' नामकी नदी प्रकट हुई है, जिसका जल पीनेसे इस भूतलपर कोई रोग नहीं होता। राजन्! वहाँ कदम्बवृक्षसे उत्पन्न 'कादम्ब' नामक मधुकी पाँच धाराएँ प्रवाहित होती हैं, जिनके पीनेसे मनुष्योंको कभी सर्दी-गरमी, विवर्णता (कान्तिका फीका पड़ना), थकावट तथा दुर्गन्ध आदि दोष नहीं प्राप्त होते॥ ४-५॥

उन मधु-धाराओंसे कामपूरक नद प्रकट हुए हैं, जो मनुष्योंकी इच्छाके अनुसार रत्न, अन्न, वस्त्र, सुन्दर आभूषण, शय्या तथा आसन आदि जो-जो दिव्य फल हैं, उन सबको अर्पित करते हैं। इसी प्रकार वहाँ सुप्रसिद्ध 'ऊर्ध्ववन' है, जहाँ भगवान् संकर्षण विराजते हैं, जिस वनमें भगवान् शिव स्वतः अपनी प्रेयसियोंके साथ रमण करते हैं तथा जिसमें गये हुए पुरुष तत्काल स्त्रीरूपमें परिणत हो जाते हैं॥ ६-७॥

स्वर्णमय कमल, शीतल वसन्त वायु, केसरके वृक्ष, लवङ्ग-लताओंके समूह तथा देववृक्षोंकी सुगन्धके सेवनसे मदान्ध भ्रमर—ये सब इलावृतवर्षकी अत्यन्त शोभा बढ़ाते हैं। वैदूर्यमणिके अङ्कुरोंसे विचित्र लगनेवाली वहाँकी मनोहर स्वर्णमयी भूमिको देखते हुए भगवान् श्रीहरिने अलंकारमण्डित देवताओंसे पूर्ण इलावृतवर्षको जीतकर वहाँसे भेंट ग्रहण की॥ ८-९॥

पूर्वकालके सत्ययुगमें राजा मुचुकुन्दके जामाता शोभनने भारतवर्षमें एकादशीका व्रत करके जो पुण्य अर्जन किया, उसके फलस्वरूप देवताओंने उन्हें मन्दराचलपर निवास दे दिया। आज भी वह राजकुमार कुबेरकी भाँति रानी चन्द्रभागाके साथ वहाँ राज्य करता है। मिथिलेश्वर! वह परम सुन्दर शोभन भेंट लेकर देवप्रवर भगवान् श्रीकृष्णके सामने आया। यदुकुलतिलक श्रीहरिकी परिक्रमा करके शोभन उनके चरणारविन्दोंमें पड़ गया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, उन परमात्माको शीघ्र ही भेंट देकर पुनः मन्दराचलको चला गया॥ १०—१२॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षिप्रवर! राजा शोभनके चले जानेपर भगवान् मधुसूदनने आगे कौन-सा कार्य किया, यह बतलाइये॥ १३॥

श्रीनारद उवाच

सरोवरं परं दिव्यं तस्मिन् मन्दरसानुनि।
सौवर्णपङ्कजं वीक्ष्य किरीटी प्राह माधवम्॥ १४

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! उस मन्दराचलके शिखरपर एक परम दिव्य सरोवर है, उसमें स्वर्णमय कमल खिलते हैं। यह देखकर किरीटधारी अर्जुनने माधव श्रीकृष्णसे कहा—॥ १४॥

अर्जुन उवाच

काञ्चनीभिर्लताभिश्च सौवर्णैः पङ्कजैर्वृतम्।
वद मां देवकीपुत्र कस्येदं कुण्डमद्भुतम्॥ १५

अर्जुन बोले—'देवकीनन्दन! सुवर्णमयी लताओं और स्वर्णमय कमलोंसे व्याप्त यह अद्भुत कुण्ड किसका है? मुझे बताइये॥ १५॥

श्रीभगवानुवाच

पृथुः पूर्वो राजराजः स्वायम्भुवकुलोद्भवः।
तताप स तपो दिव्यं तस्येदं कुण्डमद्भुतम्॥ १६

अस्य पीत्वा जलं सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।
स्नात्वा तद्धाम परमं याति पार्थ नरेतरः॥ १७

श्रीभगवान्‌ने कहा—स्वायम्भुव मनुके कुलमें उत्पन्न आदि राजाधिराज पृथुने यहाँ दिव्य तप किया था। उन्हींका यह अद्भुत दिव्य कुण्ड है। पार्थ! इसका जल पीकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा इसमें स्नान करके नरेतर प्राणी भी मेरे परमधाममें पहुँच जाता है॥१६-१७॥

श्रीनारद उवाच

अत्रैव भगवान् साक्षात् तपोभूमिं जगाम ह।
सरूपास्तत्र नृत्यन्ति सर्वास्ता ह्यष्टसिद्धयः॥ १८

ता वीक्ष्य चोद्धवः प्राह भगवन्तं सनातनम्।

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यहीं साक्षात् भगवान्‌ने एक तपोभूमिमें पदार्पण किया, जहाँ सदा आठों सिद्धियाँ मूर्तिमती होकर नृत्य करती हैं। उन सिद्धियोंको देखकर उद्धवने सनातन भगवान्‌से पूछा—॥ १८ १/२॥

उद्धव उवाच

कस्येयं सुतपोभूमिर्मन्दराचलसन्निधौ।
मूर्तिमत्यो विराजन्त्यः काः स्त्रियो वद हे प्रभो॥ १९

उद्धव बोले—भगवन्! मन्दराचलके समीप यह सुन्दर तपोभूमि किसकी है? प्रभो! यहाँ कौन-सी स्त्रियाँ मूर्तिमती होकर विराज रही हैं—कृपया यह बतायें॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

स्वायम्भुवेन मनुना तपश्चात्र कृतं पुरा।
तस्येयं सुतपोभूमिरद्यापि श्रेयसी बहु॥ २०

सदात्रैव हि वर्तन्ते नारीरूपाष्टसिद्धयः।
अत्र प्राप्तस्य कस्यापि ततस्ताश्च भवन्ति हि॥ २१

अत्र क्षणेन तपसा देवत्वं याति मानवः।
तपोभूमेश्च माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः॥ २२

श्रीभगवान्‌ने कहा—उद्धव! यहाँ पूर्वकालमें स्वायम्भुव मनुने तपस्या की थी। उन्हींकी यह सुन्दर तपोभूमि है, जो आज भी परम कल्याणकारिणी है। यहीं नारीरूपधारिणी आठ सिद्धियाँ सदा विद्यमान रहती हैं। यहाँ जो कोई भी आ जाय, उसे भी आठों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यहाँ एक क्षण भी तपस्या करके मानव देवत्व प्राप्त कर लेता है। चतुर्मुख ब्रह्मा भी इस तपोभूमिके माहात्म्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥२०—२२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णः स्वसैन्यपरिवारितः।
जगाम प्रोत्कटान् देशान् दुन्दुभीन्नादयन् मुहुः॥ २३

हिरण्यकशिपुर्दैत्यो यत्र तेपे तपः पुरा।
यत्र लीलावती नाम वर्तते काञ्चनी पुरी॥ २४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सेनासे घिरे हुए और बारंबार दुन्दुभि बजवाते हुए उन अत्यन्त उत्कट प्रदेशोंमें गये, जहाँ पूर्वकालमें हिरण्यकशिपु दैत्यने तपस्या की थी और जहाँ लीलावती नामकी एक स्वर्णमयी नगरी है॥ २३-२४॥

लीलावतीश्वरः साक्षाद्वीतिहोत्रो हुताशनः।
नित्यं राज्यं प्रकुरुते मूर्तिमान् भुवि सुव्रतः॥ २५

सोऽपि श्रीकृष्णचन्द्राय पुरुषाय महात्मने।
बलिं दत्वा परां शश्वत्स्तुतिं चक्रे धनञ्जयः॥ २६

इत्थं पश्यन् देवदेवः सर्वं वर्षमिलावृतम्।
जगाम वेदनगरं जम्बूद्वीपं मनोरमम्॥ २७

मूर्तिमान् यत्र निगमो दृश्यते सर्वदैव हि।
तत्सभायां सदा वाणी वीणापुस्तकधारिणी॥ २८

गायन्ती कृष्णचरितं सुभगं मङ्गलायनम्।
उर्वशीपूर्वचित्त्याद्या नृत्यन्त्यप्सरसो नृप॥ २९

हावभावकटाक्षैश्च तोषयन्त्यः श्रुतीश्वरम्।
अहं विश्वावसुश्चैव तुम्बुरुश्च सुदर्शनः॥ ३०

तथा चित्ररथो ह्येते वादित्राणि मुहुर्मुहुः।
वेणुवीणामृदङ्गानि मुरुयष्टियुतानि च॥ ३१

तालदुन्दुभिभिः सार्धं वादयन्ति यथाविधि।
ह्रस्वदीर्घप्लुतोदात्तानुदात्तस्वरिता नृप॥ ३२

सानुनासिकभेदश्च तथा निरनुनासिकः।
एतैरष्टादशैर्भेदैर्गीयन्ते श्रुतयः परैः॥ ३३

मूर्तिमन्तो विराजन्ते तत्र वेदपुरे नृप।
अष्टौ तालाः स्वराः सप्त तथा ग्रामत्रयं नृप॥ ३४

वसन्ति वेदनगरे मूर्तिमन्तः सदैव हि।
भैरवो मेघमल्लारो दीपको मालकंसकः॥ ३५

श्रीरागश्चापि हिण्डोलो रागाः षट् सम्प्रकीर्तिताः।
पञ्चभिश्च प्रियाभिश्च तनुजैरष्टभिः पृथक्॥ ३६

मूर्तिमन्तस्तु ते तत्र विचरन्ति नरेश्वर।
भैरवो बभ्रुवर्णश्च मालकंसः शुकद्युतिः॥ ३७

मयूरद्युतिसंयुक्तो मेघमल्लार एव हि।
सुवर्णाभो दीपकश्च श्रीरागोऽरुणवर्णभृत्॥ ३८

उस लीलावतीके स्वामी साक्षात् वीतिहोत्र नामधारी अग्नि हैं, जो उत्तम व्रतका पालन करते हुए नित्य मूर्तिमान् होकर राज्य करते हैं। उन धनंजयदेवने भी परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको भेंट देकर उनकी उत्तम स्तुति की॥ २५-२६॥

इस प्रकार सारे इलावृतवर्षका दर्शन करते हुए देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्ण वेदनगरमें गये, जो जम्बूद्वीपका एक मनोरम स्थान है। उस नगरमें भगवान् निगम (वेद) सदा मूर्तिमान् होकर दिखायी देते हैं। उनकी सभामें सदा वीणा-पुस्तकधारिणी वाग्देवता वाणी (सरस्वती) सुन्दर एवं मङ्गलके अधिष्ठानभूत श्रीकृष्णचरितका गान करती हैं। नरेश्वर! उर्वशी और विप्रचित्ति आदि अप्सराएँ वहाँ नृत्य करती हैं॥ २७—२९॥

वे अपने हाव-भाव तथा कटाक्षोंद्वारा वेदेश्वरको रिझाती रहती हैं। मैं, विश्वावसु, तुम्बुरु, सुदर्शन तथा चित्ररथ—ये सब लोग वेणु, वीणा, मृदङ्ग, मुरुयष्टि आदि वाद्योंको खड़ताल एवं दुन्दुभिके साथ विधिवत् बजाया करते हैं। नरेश्वर! वहाँ ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सानुनासिक और निरनुनासिक—इन अठारह* भेदोंके साथ स्तुतियाँ गायी जाती हैं। नरेश्वर! वेदपुरमें आठों ताल, सातों स्वर और तीनों ग्राम मूर्तिमान् होकर विराजते हैं॥ ३०—३४॥

वेदनगरमें राग-रागिनियाँ भी मूर्तिमती होकर निवास करती हैं। भैरव, मेघमल्लार, दीपक, मालकोश, श्रीराग और हिन्दोल—ये छः राग बताये गये हैं। इनकी पृथक्-पृथक् पाँच-पाँच स्त्रियाँ—रागिनियाँ हैं और आठ-आठ पुत्र हैं। नरेश्वर! वे सब वहाँ मूर्तिमान् होकर विचरते हैं। 'भैरव' भूरे रंगका है, 'मालकोश'का रंग तोतेके समान हरा है, 'मेघमल्लार' की कान्ति मोरके समान है। 'दीपक'का रंग सुवर्णके समान है और 'श्रीराग' अरुण रंगका है॥ ३५—३८॥

* 'अ इ उ ऋ'—इन स्वरोंमेंसे प्रत्येकके ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत—ये तीन-तीन भेद होते हैं; फिर प्रत्येकके उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित—ये तीन भेद होनेसे नौ भेद हुए। फिर उन सबके सानुनासिक और निरनुनासिक भेद होनेसे अठारह भेद होते हैं।

हिण्डोलो दिव्यहंसाभो राजते मिथिलेश्वर।

मिथिलेश्वर! 'हिन्दोल'का रंग दिव्य हंसके समान शोभा पाता है॥ ३८ १/२ ॥

बहुलाश्व उवाच

तालानां च स्वराणां च ग्रामाणां मुनिसत्तम।
नृत्यानां कति भेदा वै नामभिः सहितान् वद॥ ३९

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! ताल, स्वर, ग्राम और नृत्य—इनके कितने-कितने भेद हैं? इन सबका नामोल्लेखपूर्वक वर्णन कीजिये॥ ३९ ॥

श्रीनारद उवाच

रूपकश्चञ्चरीकश्च तालः परमठः स्मृतः।
विराटकमठश्चैव मल्लकश्च झटिज्जुटा॥ ४०
निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः।
पञ्चमश्चेत्यमी राजन् स्वराः सप्त प्रकीर्तिताः॥ ४१
माधुर्यमथ गान्धारं ध्रौव्यं ग्रामत्रयं स्मृतम्।
रासं च ताण्डवं नाट्यं गान्धर्वं कैन्नरं तथा॥ ४२
वैद्याधरं गौह्यकं च नृत्यमाप्सरसं नृप।
हावभावानुभावैश्च दशभिश्चाष्टभेदवत्॥ ४३
सारेगमपधनीति स्वरगम्यं पदं स्मृतम्।
एतत्ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४४

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! रूपक, चंचरीक, परमठ, विराट, कमठ, मल्लक, झटित् और जुटा—ये आठ ताल हैं। राजन्! निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत तथा पञ्चम—ये सात स्वर कहे गये हैं॥ ४०-४१ ॥

माधुर्य, गान्धार और ध्रौव्य—ये तीन ग्राम माने गये हैं। रास, ताण्डव, नाट्य, गान्धर्व, कैन्नर, वैद्याधर, गौह्यक और आप्सरस—ये नृत्यके आठ भेद हैं। ये सभी दस-दस हाव-भाव और अनुभावोंसे युक्त हैं। स्वरोंका बोध करानेवाला पद 'सा रे ग म प ध नि'—इस प्रकार है। राजन्! यह सब मैंने तुम्हें बताया, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ४२—४४ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वेदनगरवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वेदनगरका वर्णन' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

रागिनियों तथा रागपुत्रोंके नाम और वेद आदिके द्वारा भगवान्का स्तवन

बहुलाश्व उवाच

रागिणीनां च नामानि वद देवऋषे मम।
तथा वै रागपुत्राणां त्वं परावरवित्तमः॥ १

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! रागिनियों और रागपुत्रोंके नाम मुझे बताइये; क्योंकि परावरवेत्ता विद्वानोंमें आप सबसे श्रेष्ठ हैं॥१ ॥

श्रीनारद उवाच

कालेन देशभेदेन क्रियया स्वरमिश्रया।
भेदा बुधैः षट्पञ्चाशत्कोट्यो गीतस्य कीर्तिताः॥ २
अन्तर्भेदा अनन्ता हि तेषां सन्ति नृपेश्वर।
विद्धयेनं रागमानन्दं शब्दब्रह्ममयं हरिम्॥ ३
तस्मान्मुख्याश्च भेदाः कौ वदिष्यामि तवाग्रतः।
भैरवी पिङ्गला शङ्की लीलावत्यागरी तथा॥ ४
भैरवस्यापि रागस्य रागिण्यः पञ्च कीर्तिताः।
महर्षिश्च समृद्धश्च पिङ्गलो मागधस्तथा॥ ५
बिलाबलश्च वैशाखो ललितः पञ्चमस्तथा।
भैरवस्याष्टपुत्रा ये गीयन्ते च पृथक् पृथक्॥ ६

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! कालभेद, देशभेद और स्वरमिश्रित क्रियाके भेदसे विद्वानोंने गीतके छप्पन करोड़ भेद बताये हैं। नृपेश्वर! इन सबके अन्तर्भेद तो अनन्त हैं। आनन्दस्वरूप जो शब्दब्रह्ममय श्रीहरि हैं, इन्हींको तुम राग समझो। इसलिये भूतलपर इन सबके जो मुख्य-मुख्य भेद हैं, उन्हींका मैं तुम्हारे सामने वर्णन करूँगा॥ २-३ १/२ ॥

भैरवी, पिङ्गला, शङ्की, लीलावती और आगरी—ये भैरवरागकी पाँच रागिनियाँ बतलायी गयी हैं। महर्षि, समृद्ध, पिङ्गल, मागध, बिलाबल, वैशाख, ललित और पञ्चम—ये भैरवरागके भिन्न-भिन्न आठ पुत्र बतलाये गये हैं॥ ४—६ ॥

चित्रा जयजयावन्ती विचित्रा कथिता पुनः।
व्रजमल्लार्यन्धकारी रागिण्योऽपि मनोहराः॥ ७
मेघमल्लाररागस्य कथिताः पञ्च मैथिल।
श्यामकारः सोरठश्च नटोड्डायन एव च॥ ८
केदारो व्रजरहस्यो जलधारस्तथैव च।
विहागश्चेत्यष्टपुत्राः कथिताः पूर्वसूरिभिः॥ ९
कञ्चुकी मञ्जरी टोडी गुर्जरी शाबरी तथा॥ १०
दीपकस्यापि रागस्य रागिण्यः पञ्च विश्रुताः।
कल्याणः शुभकामश्च गौडकल्याण एव च॥ ११
कामरूपः कान्हरेति रामसञ्जीवनस्तथा।
सुखनामा मन्दहासः पुत्राश्चाष्टौ विदेहराट्॥ १२
रागस्य दीपकस्यापि कथिता रागपण्डितैः।
गान्धारी वेदगान्धारी धनाश्री स्वर्मणिस्तथा॥ १३
गुणागरीति रागिण्यः पञ्चैता मैथिलेश्वर।
मालकोशस्य रागस्य कथिता रागमण्डले॥ १४
मेघश्च मचलो मारुमाचारः कौशिकस्तथा।
चन्द्रहारो घुङ्घटश्च विहारो नन्द एव च॥ १५
मालकोशस्य रागस्य चाष्टपुत्राः प्रकीर्तिताः।
वैराटी चैव कर्णाटी गौरी गौरावटी तथा॥ १६
चतुश्चन्द्रकला चैव रागिण्यः पञ्च विश्रुताः।
श्रीरागस्यापि राजेन्द्र कथिताः पूर्वसूरिभिः॥ १७
सारङ्गः सागरो गौरो मरुत्पञ्चशरस्तथा।
गोविन्दश्च हमीरश्च गीर्भीरश्च तथैव च॥ १८
श्रीरागस्यापि राजेन्द्र ह्यष्टौ पुत्रा मनोहराः।
वसन्ती परजा हेरी तैलङ्गी सुन्दरी तथा॥ १९
हिण्डोलस्यापि रागस्य रागिण्यः पञ्च विश्रुताः।
मङ्गलश्च वसन्तश्च विनोदः कुमुदस्तथा॥ २०
एवं च विहितो नाम विभासः स्वरमण्डलौ।
पुत्राश्चाष्टौ समाख्याता मैथिलेन्द्र विचक्षणैः॥ २१
रागमण्डल इत्येवं हिण्डोलस्य पृथक् पृथक्।
रागरूपमिमं राजन् विहारं विद्धि मैथिल॥ २२

बहुलाश्व उवाच

शब्दब्रह्म हरेः साक्षान्निगमस्य महात्मनः।
अङ्गानि वद मे देव कानि कानि महीतले॥ २३

श्रीनारद उवाच

मुखं व्याकरणं प्रोक्तं पिङ्गलः पाद उच्यते॥ २४
मीमांसाशास्त्रं हस्तौ च ज्योतिर्नेत्रं प्रकीर्तितम्।
आयुर्वेदः पृष्ठदेशो धनुर्वेद उरःस्थलम्॥ २५

मिथिलेश्वर! चित्रा, जय-जयवन्ती, विचित्रा, व्रजमल्लारी, अन्धकारी—ये मेघमल्लार रागकी पाँच मनोहारिणी रागिनियाँ कही गयी हैं। श्यामकार, सोरठ, नट, उड्डायन, केदार, व्रजरहस्य, जलधार और विहाग—ये मल्लार रागके आठ पुत्र प्राचीन विद्वानोंने बताये हैं॥ ७—९॥

कञ्चुकी, मञ्जरी, टोडी, गुर्जरी और शावरी—ये दीपक रागकी पाँच रागिनियाँ विख्यात हैं। विदेहराज! कल्याण, शुभकाम, गौड़कल्याण, कामरूप, कान्हरा, राम-संजीवन, सुखनामा और मन्दहास—ये संगीतके विद्वानोंद्वारा दीपक रागके आठ पुत्र कहे गये हैं। मिथिलेश्वर! गान्धारी, वेदगान्धारी, धनाश्री, स्वर्मणि तथा गुणागरी—ये पाँच रागमण्डलमें मालकोश रागकी रागिनियाँ कही गयी हैं। मेघ, मचल, मारुमाचार, कौशिक, चन्द्रहार, घुंघट, विहार तथा नन्द—ये मालकोश रागके आठ पुत्र बतलाये गये हैं॥ १०—१५ १/२॥

राजेन्द्र! वैराटी, कर्णाटी, गौरी, गौरावटी तथा चतुश्चन्द्रकला—ये पुरातन पण्डितोंद्वारा कही गयी श्रीरागकी विख्यात पाँच रागिनियाँ हैं। महाराज! सारङ्ग, सागर, गौर, मरुत्, पञ्चशर, गोविन्द, हमीर तथा गीर्भीर—ये श्रीरागके आठ मनोहर पुत्र हैं। वसन्ती, परजा, हेरी, तैलङ्गी और सुन्दरी—ये हिन्दोल रागकी पाँच रागिनियाँ प्रसिद्ध हैं। मैथिलेन्द्र! मङ्गल, वसन्त, विनोद, कुमुद, विहित, विभास, स्वर तथा मण्डल—विद्वानोंद्वारा ये आठ हिन्दोल रागके पुत्र कहे गये हैं। इस प्रकार रागमण्डलके पृथक्-पृथक् भेद बताये गये हैं। मिथिलेश्वर! यह रागरूप जो शास्त्र है, उसे वेदराजका विहारस्थल समझो॥ १६—२२॥

बहुलाश्वने पूछा—शब्दब्रह्मरूप श्रीहरिके साक्षात् स्वरूप महात्मा निगम (वेद) के इस भूतलपर कौन-कौन-से अंग हैं—यह मुझे बताइये॥ २३॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! वेदस्वरूप श्रीहरिका मुख 'व्याकरण' कहा गया है, पिङ्गल-कथित 'छन्दःशास्त्र' उनका पैर बताया जाता है, 'मीमांसाशास्त्र' (कर्मकाण्ड) हाथ है, 'ज्योतिषशास्त्र' को नेत्र बताया गया है। 'आयुर्वेद' पृष्ठदेश, 'धनुर्वेद'

गान्धर्वं रसनं विद्धि मनो वैशेषिकं स्मृतम्।
सांख्यं बुद्धिरहङ्कारो न्यायवादः प्रकीर्तितः॥ २६

वेदान्तं तस्य चित्तं हि वेदस्यापि महात्मनः।
एतत्ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ २७

बहुलाश्व उवाच

तस्मिन् वेदपुरे रम्ये किं चकार हरिः स्वयम्।
एतन्मे वद देवर्षे त्वं साक्षाद्दिव्यदर्शनः॥ २८

श्रीनारद उवाच

आयान्तं वेदनगरं श्रीकृष्णं यादवेश्वरम्।
निगमोऽपि बलिं नीत्वा सरस्वत्या तया सह॥ २९

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामतालैः स्वरैः सह।
रागैः सभेदैः सहितः प्रणनाम कृताञ्जलिः॥ ३०

प्रसन्नो भगवान् साक्षाद्देवदेवो जनार्दनः।
वेदं प्राह यदूनां च सर्वेषां शृण्वतां सताम्॥ ३१

श्रीभगवानुवाच

निगम त्वं वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते।
दुर्लभं किं त्रिलोकेषु भक्तानां हर्षिते मयि॥ ३२

वेद उवाच

यदि देव प्रसन्नोऽसि सर्वे ये मे सुपार्षदाः।
तेषां देव निजं रूपं दर्शयात्र परेश्वर॥ ३३

यद्रूपं ते च गोलोके स्वधाम्नि प्रस्फुरद्द्युतौ।
वृन्दावने च तद्रासे तस्य दर्शनकाङ्क्षिणः॥ ३४

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वेदवचः कृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम्।
स्वरूपं दर्शयामास राधया सहितं परम्॥ ३५

तद्रूपं सुन्दरं दृष्ट्वा सर्वे वै मूर्च्छनां गताः।
पूरिताः सात्त्विकैर्भावैर्विस्मृत्य स्वतनोः सुखम्॥ ३६

तदापि हर्षिताः सर्वे वादित्रैर्मधुरस्वनैः।
जगुस्तत्पुरतो राजन्ननृतुः पश्यतां सताम्॥ ३७

वक्षःस्थल, 'गान्धर्ववेद' रसना और 'वैशेषिक-शास्त्र' मन है। सांख्य बुद्धि, न्यायवाद अहंकार और वेदान्त महात्मा वेदका चित्त है। राजन्! ये सब बातें तुम्हें बतायीं। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २४—२७॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! उस वेदपुरमें जाकर साक्षात् भगवान् श्रीहरिने क्या किया, यह मुझे बताइये; क्योंकि आप साक्षात् दिव्यदर्शी हैं॥ २८॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! यादवेश्वर श्रीकृष्ण जब वेदपुरमें आये, तब निगम (वेद) भी सरस्वतीके साथ भेंट लेकर आये। गन्धर्व, अप्सरा, ग्राम, ताल, स्वर तथा भेदोंसहित राग भी उनके साथ थे। उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्‌को प्रणाम किया। देवताओंके भी देवता साक्षात् भगवान् जनार्दन वेदपर प्रसन्न हो समस्त यादवोंके समक्ष उनसे बोले—॥ २९—३१॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—निगम! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो। मेरे प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें भक्तोंके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है!॥ ३२॥

वेद बोले—देव! परमेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं तो यहाँ मेरे जो ये उत्तम पार्षद हैं, उन सबको अपने दिव्य रूपका दर्शन कराइये। अत्यन्त उद्दीप्त तेजवाले अपने निज धाम गोलोकमें आपका जो स्वरूप है तथा वृन्दावनमें और वहाँके रासमण्डलमें आपका जो रूप प्रकट होता है, उसीका ये सब लोग दर्शन करना चाहते हैं॥ ३३-३४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर! वेदका कथन सुनकर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने श्रीराधाके साथ अपने परम दिव्य रूपका उन्हें दर्शन कराया। उस अनुपम सुन्दर रूपको देखकर सब लोग मूर्च्छित हो गये। अपना शरीर तथा सुख भुलाकर वे सभी सात्त्विक भावोंसे पूरित हो गये॥ ३५-३६॥

राजन्! उस समय अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो वे वाद्योंके मधुर शब्दोंके साथ सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान्‌के समक्ष नाचने और गान करने लगे॥ ३७॥

यथा श्रुतं तथा दृष्टं माधुर्यं रूपमद्भुतम्।
तथैव चक्रुर्वेदाद्या वर्णनं मैथिलेश्वर॥ ३८

वेद उवाच

सज्ज्ञानमात्रं सदसत्परं बृह-
च्छश्वत्प्रशान्तं विभवं समं महत्।
त्वां ब्रह्म वन्दे वसु दुर्गमं परं
सदा स्वधाम्ना परिभूतकैतवम्॥ ३९

सरस्वत्युवाच

महः परं त्वां किल योगिनो विदुः
सविग्रहं तत्र वदन्ति सात्त्वताः।
दृष्टं तु यत्ते पदयोर्द्वयं मे
क्षेमाय भूयान्महसामधीश्वरम्॥ ४०

गन्धर्वा ऊचुः

श्यामं च गौरं विदितं स्वधाम्ना
कृतं त्वया धाम निजेच्छया हि।
विराजसे नित्यमलं च ताभ्यां
घनो यथा मेचकदामिनीभ्याम्॥ ४१

अप्सरस ऊचुः

यथा तमालः कलधौतवल्ल्या
घनो यथा चञ्चलया चकास्ति।
नीलोऽद्रिराजो निकषाश्मखन्या
श्रीराधयाद्यस्तु तथा रमण्या॥ ४२

ग्रामा ऊचुः

यस्य पदस्य परागं शम्भुरमाकविदेवैः।
इच्छति चेतसि राधा तं भज माधवपादम्॥ ४३

ताला ऊचुः

येन बलिः सद्बिहरेत्तद्बलिमेव हरेत।
तं भज पादं तु हरेश्चेतसि तप्ते कुहरे॥ ४४

मैथिलेश्वर! भगवान्का माधुर्यमय अद्भुत रूप जैसा सुना गया था, वैसा ही देखा गया और उसी प्रकार वेद आदिने (उसका नीचे दिये शब्दोंमें) वर्णन किया॥ ३८॥

वेदने कहा—देव! आप सत्स्वरूप, ज्ञानमात्र, सत्-असत्से परे, व्यापक, सनातन, प्रशान्तरूप, विभवात्मक, सम, महत्, प्रकाशरूप, परम दुर्गम, परात्पर तथा अपने धाम (चिन्मय प्रकाश)-द्वारा भ्रम एवं अज्ञानके अन्धकारको निरस्त करनेवाले 'ब्रह्म' हैं; आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३९॥

सरस्वती बोलीं—भगवन्! योगीलोग आपको परम ज्योतिःस्वरूप जानते हैं, वहीं भक्तजन आपको चिन्मय विग्रहसे युक्त बताते हैं। इस समय जो आपके चरणारविन्दयुगल देखे गये हैं, वे समस्त ज्योतियोंके अधीश्वर हैं। वे सदा मेरे लिये कल्याणकारी हों॥ ४०॥

गन्धर्व बोले—प्रभो! श्याम और गौर तेजके रूपमें अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित जो आपका तेजोमय स्वरूप है, वह आपने अपनी इच्छासे प्रकट किया है। उन्हीं युगल धामों (स्वरूपों)-से आप नित्य उसी प्रकार पूर्णतया विराजित रहते हैं, जैसे मेघ श्याम वर्ण तथा बिजलीसे शोभा पाता है॥ ४१॥

अप्सराओंने कहा—जैसे तमाल सुवर्णमयी लतासे, मेघ विद्युन्मालासे तथा जैसे नील गिरिराज सोनेकी खानसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार आप आदिपुरुष श्यामसुन्दर अपनी प्रेयसी श्रीराधारानीके नित्य साहचर्यसे शोभा पाते हैं॥ ४२॥

तीनों ग्राम बोले—जिनके चरणारविन्दोंके पावन परागको शिव, रमा (लक्ष्मी), ज्ञानीपुरुष तथा देवताओंसहित श्रीराधा अपने चित्तमें धारण करना चाहती हैं, माधवके उन चरण-कमलोंका सदा भजन करो॥ ४३॥

तालोंने कहा—जिनके कारण राजा बलि सत्स्वरूप होकर प्रतिष्ठित हुए, उन्हीं भगवान्को बलि अर्पित करनी चाहिये। अपने संतप्त चित्तरूपी गुफामें श्रीहरिके उस चरणको ही प्रतिष्ठित करके उसकी सेवा करो॥ ४४॥

गाना ऊचुः

उत्क्षिपन्ति बहिर्दुःखं सन्तो यच्छरणं गताः।
राधामाधवयोर्दिव्यं दधामः पदपङ्कजम्॥ ४५

गान (लय) बोले—संतजन जिनकी शरण लेकर दुःख-शोकको निकाल फेंकते हैं, श्रीराधा-माधवके उन दिव्य चरण-कमलोंको हम सदा हृदयमें धारण करें॥ ४५॥

स्वरा ऊचुः

शरद्विकचपङ्कजश्रियमतीव विद्वेषकं
मिलिन्दमुनिलेढितं कुलिशकञ्जचिह्नावृतम्।
स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्ततापत्रयं
चलद्द्युति पदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः॥ ४६

स्वर बोले—जो शरद्-ऋतुके प्रफुल्ल पङ्कजकी शोभाको अत्यन्त तिरस्कृत कर देते हैं, मुनिरूपी भ्रमर जिनका आस्वादन करते हैं, जो वज्र, कमल और शङ्ख आदिके चिह्नोंसे सुशोभित हैं, जिनपर सोनेके नूपुर चमक रहे हैं तथा जिन्होंने भक्तोंके त्रिविध तापोंका उन्मूलन कर दिया है, श्रीराधावल्लभके उन चञ्चल-द्युतिशाली युगल चरणारविन्दोंको मैं हृदयमें धारण करता हूँ॥ ४६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वेदादिस्तुतिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वेदादिके द्वारा की गयी स्तुतिका वर्णन' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

रागिनियों तथा राग-पुत्रोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन और उनका द्वारकापुरीके लिये प्रस्थान

श्रीनारद उवाच

भैरवाद्या रागगणाः पुरः प्राप्ता हरेः प्रभोः।
रूपानुरूपावयवां तनुं दृष्ट्वातिहर्षिताः॥ १

यत्र यत्र च तेषां वै दृष्टिः प्राप्ता हरेस्तनौ।
तत्र स्थिता च निर्गन्तुं लावण्यान्न शशाक ह॥ २

अहो श्रीकृष्णचन्द्रस्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
दृष्ट्वोपवर्णनं तस्य चक्रुस्तेऽपि पृथक् पृथक्॥ ३

श्रीनारदजी कहते हैं—[राजन्!] तदनन्तर भैरव आदि रागगण भगवान् श्रीहरिके सामने उपस्थित हुए और रूपके अनुरूप उनके प्रत्येकअवयवका दर्शन करके अत्यन्त हर्षित हुए। श्रीहरिके विग्रहमें जिस-जिस अङ्गपर उनकी दृष्टि पड़ती थी, वहीं-वहीं वह ठहर जाती थी। लावण्य-विशेषका अनुभव करके वह वहाँसे हटनेमें समर्थ नहीं होती थी। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र-के उस अत्यन्त अद्भुत रूपका दर्शन करके वे भी पृथक्-पृथक् उसका गुणगान करने लगे॥ १—३॥

भैरव उवाच

भज हरिजानुद्वयमिति लक्ष्मीः।
भजति सदाङ्के कमलकराभ्याम्॥ ४

भैरव बोला—श्रीहरिके दोनों घुटनोंका चिन्तन करो, जिन्हें सदा अङ्कमें लेकर कमला अपने कमलोपम करोंसे उनकी सेवा करती हैं॥ ४॥

मेघमल्लार उवाच

ऊरू विष्णो रम्भाखण्डौ हेमस्तम्भौ ध्याये वन्द्यौ।
ओजःपूर्णौ शोभायुक्तौ वस्त्रापीतौ कृष्णस्योभौ॥ ५

मेघमल्लारने कहा—सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णकी दोनों जाँघें मानो कदलीखण्ड हैं, सोनेके खंभे हैं, तेजसे पूर्ण हैं, अनुपम शोभासे सम्पन्न हैं तथा पीताम्बरसे ढकी हुई हैं। उस वन्दनीय ऊरु-युगलका मैं ध्यान करता हूँ॥ ५॥

दीपक उवाच

सकलसुखकरं कनकरुचिधरम्।
प्रथितहरिपदं भजत कटितले॥ ६

मालकोश उवाच

कटी केशवद्धा हरेरस्ति तत्र
नृणां नेत्रयोर्दृष्टिमानं हरन्ती।
परं कम्पिता मन्दगच्छत्समीरैः
सुनम्रेण सा सर्वचेतोहरेत्थम्॥ ७

श्रीराग उवाच

नाभेः सरः पुष्करकुण्डवच्च त-
ल्लसत्त्रिवल्यूर्मिमनोहरं पदम्।
रोमावलिप्रोज्झितकामकाननं
भजामि नित्यं हृदि राधिकापतेः॥ ८

हिण्डोल उवाच

अक्षरपंक्तिः किन्वलिपंक्तिः
पिप्पलपत्रे मोहनमाला।
किं कमले यच्छ्यामलरेखा
किं ह्युदरे रोमावलिरेखा॥ ९

भैरवरागिण्य ऊचुः

पीतपटं यत् कृष्णहरेरिन्द्रधनुर्वद्दीप्तियुतम्।
काञ्चनशिल्पैश्चारुरुचिं तद्भज नृणां दुःखहरम्॥ १०

भैरवपुत्रा ऊचुः

चतुःसमुद्रा इव विश्वपूरका
आनन्ददा एव चतुष्पदार्थवत्।
ते बाहवो लोकवितानदण्डव-
ज्जयन्ति भूधारणदिग्गजा इव॥ ११

मेघमल्लाररागिण्य ऊचुः

अरुणबिम्बफलद्युतिमण्डितं
भज हरेरधरं मधुरं मनः।

दीपक रागने कहा—भगवान्‌के कटिभागसे नीचे जो सम्पूर्ण चरण हैं, वे समस्त सुखोंको देनेवाले हैं तथा सुवर्णकी-सी कान्ति धारण करते हैं, उन सुप्रसिद्ध चरणोंका भजन करो॥ ६॥

मालकोश बोला—भगवान् श्रीहरिकी जो कमर है, वह केशके समान अत्यन्त पतली है और वह मनुष्योंकी दृष्टिका मान हर लेती है, अर्थात् उस कटिको देखनेमें दृष्टि समर्थ नहीं हो पाती; वह मन्द-मन्द समीरके चलनेपर भी अत्यन्त कम्पित होने या लचकने लगती है। इस प्रकार वह सबके चित्तको हर लेनेवाली है। मैं विनम्र मस्तकसे उसकी वन्दना करता हूँ॥ ७॥

श्रीराग बोला—राधिकावल्लभका जो नाभि-सरोवर है, उसका मैं अपने हृदयमें प्रतिदिन ध्यान करता हूँ। वह पुष्करकुण्डके समान शोभा पाता है। त्रिवलीरूप लहरोंसे उसकी मनोहरता बढ़ गयी है और वहाँकी रोमावलीने कामदेवके क्रीडा-काननको तिरस्कृत कर दिया है॥ ८॥

हिन्दोल रागने कहा—उदरमें जो त्रिवलीकी पंक्ति है, वह क्या अक्षरोंकी पंक्ति (वर्णमाला) है? अथवा पीपलके पत्तेपर मोहन-माला दिखायी देती है? क्या कमलदलपर कोई श्याम रेखा है या उदरमें यह रोमावलि फैली हुई है?॥ ९॥

भैरवरागकी रागिनियाँ बोलीं—श्रीकृष्ण हरिका जो पीताम्बर है, वह दीप्तिमान् इन्द्रधनुष तो नहीं है? सोनेके तारोंकी शिल्पकलाद्वारा वह मनोहर ढंगसे टँका हुआ है। उसका ही भजन करो, वह मनुष्योंका दुःख हर लेनेवाला है॥ १०॥

भैरवके पुत्रोंने कहा—भगवन्! आपकी चारों भुजाएँ चारों समुद्रोंके समान सम्पूर्ण विश्वको परिपूर्ण करनेवाली हैं, चार पदार्थोंके समान आनन्ददायिनी हैं, लोकरूपी चँदोवाके वितानमें दण्डका काम देती हैं तथा भूमिको धारण करनेमें दिग्गजोंके समान प्रतीत होती हैं॥ ११॥

मेघमल्लारकी रागिनियाँ बोलीं—सर्ववल्लभ भूमिपति भगवान् श्रीहरिके मधुर अधरका, हे मन! तू

नवजपादलमल्लसुविग्रहं
सकलवल्लभभूमिपतेः प्रभोः॥ १२

मेघमल्लारपुत्रा ऊचुः

कर्पूरकेतकसुमौक्तिकहीरकाणां
श्रीखण्डचन्द्रचपलामृतमल्लिकानाम्।
तेषां रुचेश्च परिभावमकारि पूर्वं
या दन्तपंक्तिरमला स्मरतां परस्य॥ १३

दीपकरागिण्य ऊचुः

नयनयुगलजातं पातु नोऽहर्निशं ते
मदनशरपरीक्षं सर्वलावण्यदीक्षम्।
परिहृतसुरवृक्षं कोटिशो लक्ष्यलक्षं
निजजनकृतरक्षं दानदक्षं कटाक्षम्॥ १४

दीपकपुत्रा ऊचुः

किं वा कुलिङ्गयुगलं नवपद्ममध्ये
दुःखक्षयाय वसतां निशितासियुग्मम्।
जैत्रं धनुर्जयति किं मकरध्वजस्य
भ्रूमण्डलं किमथ चन्द्रमुखे परस्य॥ १५

मालकोशरागिण्य ऊचुः

परिनृत्यत इन्दुमण्डले
फणिपत्याविव लोलकुण्डले।
कमले मकरन्दनिर्भरे
भ्रमरालीव सुगण्डमण्डले॥ १६

मालकोशपुत्रा ऊचुः

रविरेव खमण्डले किमु
यदुभर्तुस्त्वथवा घने तडित्।
अधितिष्ठति गण्डमण्डलं
द्युतिखण्डं कलधौतकुण्डलम्॥ १७

श्रीरागिण्य ऊचुः

कुलिङ्गयोः खञ्जनयोः किलारा-
दापत्यतां युद्धमभूदलीनाम्।

सदा चिन्तन कर। वह लाल रंगके बिम्बफलकी-सी कान्तिसे मण्डित है तथा नूतन जपाकुसुमके लाल दलोंकी भाँति उसका सुन्दर स्वरूप है॥ १२॥

मेघमल्लारके बेटे बोले—परमेश्वर! श्रीकृष्णकी जो निर्मल दन्तपङ्क्ति है, उसका सदा ध्यान करो। उसने कपूर, केवड़ेके फूल, मोती, हीरे, श्रीखण्ड चन्दन, चन्द्रमा, चपला, अमृत तथा मल्लिका पुष्पोंकी कान्तिको पहलेसे ही तिरस्कृत कर दिया है॥ १३॥

दीपक रागकी रागिनियोंने कहा—भगवन्! निजजनोंकी रक्षा करनेमें समर्थ तथा अभीष्ट वस्तु देनेमें दक्ष जो आपके युगल नयनोंका कृपाकटाक्ष है, वह रात-दिन हमारी रक्षा करे। वह कटाक्ष कामदेवके बाणोंका परीक्षक है—उससे भी तीव्र शक्तिवाला है। उसने सम्पूर्ण लावण्यकी दीक्षा ले ली है, अर्थात् वह समस्त लावण्यकी राशि है। उसने अपनी उदारताके सामने कल्पवृक्षको भी तिरस्कृत कर दिया है तथा उसके एक-दो नहीं, करोड़ों लक्ष्य हैं॥ १४॥

दीपकके पुत्र बोले—क्या ये नूतन कमलके बीच दो कुलिङ्ग (गौरैया) पक्षी बैठे हैं या तीनों लोकोंके दुःखोंका नाश करनेके लिये दो तीखी तलवारें हैं या कामदेवके दो विजयशील धनुष हैं, अथवा परमात्मा श्रीकृष्णके मुखचन्द्रमें युगल भ्रूमण्डल शोभा पा रहे हैं॥ १५॥

मालकोशकी रागिनियोंने कहा—सुन्दर कपोलमण्डलपर दो चञ्चल कुण्डल नृत्य कर रहे हैं, मानो चन्द्रमण्डलमें दो नागिनें नाच रही हों, अथवा मकरन्दसे परिपूर्ण कमलपर भ्रमरावली मँड़रा रही हो॥ १६॥

मालकोशके पुत्र बोले—आकाश-मण्डलमें सूर्यदेव उदित हुए हैं या मेघमालामें बिजली चमक रही है अथवा यदुपति भगवान् श्रीकृष्णके गण्डमण्डल (कपोलद्वय)-पर ज्योतिके खण्ड-सा कनक-निर्मित कुण्डल झलमला रहा है॥ १७॥

श्रीरागकी रागिनियाँ बोलीं—दो कुलिङ्ग किंवा दो खञ्जन पक्षियोंकी पंक्तियोंका परस्पर युद्ध

तेषां गतः कीर उषः प्रफुल्ले
चकास्ति पद्मेऽरुणबिम्बलिप्सुः॥ १८

श्रीरागपुत्रा ऊचुः

परिकरीकृतपीतपटं हरिं
शिखिकिरीटनतीकृतकन्धरम्।
लगुडवेणुकरं चलकुण्डलं
पटुतरं नटवेषधरं भजे॥ १९

हिण्डोलरागिण्य ऊचुः

अतसीकुसुमोपमेयकान्ति-
र्यमुनाकूलकदम्बमध्यवर्ती।
नवगोपवधूविहारशाली
वनमाली वितनोतु मङ्गलानि॥ २०

हिण्डोलपुत्रा ऊचुः

हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ
तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी।
इति त्वां च मत्वा जगन्नाथदेवं
यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम्॥ २१

श्रीनारद उवाच

इति रागकृतं ध्यानं यः शृणोति पठेत्सदा।
तन्नेत्रगोचरो याति भगवान् भक्तवत्सलः॥ २२

इत्थं स्वं दर्शनं दत्वा वेदादिभ्यो हरिः स्वयम्।
बभूव पश्यतां तेषां शार्ङ्गपाणिश्चतुर्भुजः॥ २३

कृत्वा तु दर्शनं विष्णोर्गते देवे गणैः सह।
सैन्ये सुतं शम्बरारिं स्थापयित्वा यदूत्तमम्॥ २४

द्वारकां स्वां पुरीं गन्तुं मनश्चक्रे परात्परः॥ २५

हुआ। उनके मध्यमें बीच-बचाव करनेके लिये प्रफुल्ल कमलपर एक तोता निकट आ गया है, जो अरुण बिम्बफलको प्राप्त करनेकी इच्छासे वहाँ बैठा शोभा पाता है (यहाँ कुलिङ्ग या खञ्जन पक्षी भगवान्‌के दोनों नेत्र हैं, उनके बीचमें बैठा हुआ तोता नासिका है, प्रफुल्ल कमल मुख है और अरुण बिम्बफल अधर है)॥ १८॥

श्रीरागके पुत्र बोले—जिन्होंने अपनी कमरमें पीताम्बर बाँध रखा है, मस्तकपर मोर-मुकुट धारण किया है और ग्रीवाको एक ओर झुका दिया है, जो हाथमें लकुटी और वंशी लिये हैं तथा जिनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे हैं, उन पटुतर नटवर-वेषधारी श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ॥ १९॥

हिन्दोलरागकी रागिनियाँ बोलीं—जिनकी श्याम कान्तिकी अलसीके फूलसे उपमा दी जाती है, जो यमुनाके तटपर कदम्ब-काननके मध्यभागमें विराजमान हैं तथा नयी अवस्थाकी गोपसुन्दरियोंके साथ विहार करते हुए शोभा पाते हैं, वे वनमाली हम सबके मङ्गलका विस्तार करें॥ २०॥

हिन्दोलरागके पुत्रोंने कहा—हरे! भूतलपर मेरे समान पातकी नहीं है और आपके समान कोई पापापहारी भी नहीं है। इसलिये आपको जगन्नाथदेव मानकर मैं शरणमें आया हूँ। आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा मेरे प्रति कीजिये॥ २१॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! रागोंद्वारा किये गये उपर्युक्त ध्यानको जो सदा सुनता अथवा पढ़ता है, भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार वेद आदिको अपने स्वरूपका दर्शन कराके साक्षात् श्रीहरि उन सबके देखते-देखते चतुर्भुज शार्ङ्गपाणि बन गये॥ २२-२३॥

इस प्रकार श्रीकृष्णका दर्शन करके जब [वेद] देवतालोग अपने गणोंके साथ चले गये, तब सेनामें अपने पुत्र यदुकुलतिलक शम्बरशत्रु प्रद्युम्नको स्थापित करके परात्पर भगवान् श्रीहरिने अपनी द्वारकापुरीमें जानेका विचार किया॥ २४-२५॥

मञ्जीरघण्टाकलकिङ्किणीकलं
सुकांस्यपात्रध्वनिना रथेन।
सुग्रीवमुख्यैः स च चञ्चलाश्वै-
र्नियोजितैर्मैथिल दारुकेण॥ २६

मिथिलेश्वर! उनके रथपर मञ्जीर, घंटा और किङ्किणीकी मधुर ध्वनि होने लगी। सुन्दर कांस्यपात्र (झाँझ)-की आवाज भी उसमें मिल गयी। दारुकने उस रथमें सुग्रीव आदि चञ्चल घोड़े जोत दिये॥ २६॥

युतेन सद्रत्नमता श्रुतिस्वनैः
प्रभञ्जनैजद्गरुडध्वजेन ।
विहाय तां वेदपुरीं परात्मा
ययौ पुरीं यादववृन्दमण्डिताम्॥ २७

वह उत्तम रत्नयुक्त आभूषणोंसे सजाया गया था, उसके आगे वेद-मन्त्रोंका घोष भी होता था और उसके ऊपरका गरुडध्वज प्रभञ्जनके वेगसे फहरा रहा था। ऐसे रथके द्वारा वेदपुरीको छोड़कर परमात्मा श्रीहरि यादववृन्दसे मण्डित द्वारकापुरीको चले गये॥ २७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णाध्यानवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णके ध्यानका वर्णन' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

यादवों और गन्धर्वोंका युद्ध, बलभद्रजीका प्राकट्य, उनके द्वारा गन्धर्वसेनाका संहार, गन्धर्वराजकी पराजय, वसन्तमालती नगरीका हलद्वारा कर्षण; गन्धर्वराजका भेंट लेकर शरणमें आना और उनपर बलरामजीकी कृपा

श्रीनारद उवाच

अथ कृष्णे भगवति पुरीं द्वारावतीं गते।
प्रद्युम्नः सैनिकैः सार्धं नदं कामदुघं ययौ॥ १

शतयोजनविस्तीर्णा गन्धर्वाणां मनोहरा।
वसन्तमालती नाम्ना हेमरत्नमयी पुरी॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके द्वारकापुरीको चले जानेपर प्रद्युम्न अपने सैनिकोंके साथ कामदुघनदके समीप गये। वहाँ गन्धर्वोंकी मनोहारिणी हेमरत्नमयी वसन्तमालती नामकी नगरी है, जिसका विस्तार सौ योजनका है॥ १-२॥

लवङ्गलतिकाजालैरेलाकाश्मीरदेशकैः ।
जातीफलादिजावित्रीश्रीखण्डपारिजातकैः॥ ३

मत्तालिनादिता भृङ्गैः शब्दिता चित्रपक्षिभिः।
गन्धर्वै राजिता भव्यैर्नागैर्भोगवती यथा॥ ४

लवङ्ग-लताओंके समूह, इलायची, केसर, जायफल, जावित्री, श्रीखण्ड चन्दन और पारिजातके वृक्ष उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। मतवाले भ्रमरोंके गुञ्जारवसे निनादित, विचित्र पक्षियोंके कलरवसे मुखरित तथा गन्धर्वोंसे सुशोभित वह नगरी नागोंसे युक्त भोगवतीपुरीके समान शोभा पाती थी॥ ३-४॥

पतङ्गो नाम तत्रैव गन्धर्वेशो महाबलः।
करोति राज्यं सुकृती शक्रवद्बलपौरुषः॥ ५

श्रुत्वा प्रद्युम्नमायातं दिग्जयार्थं विनिर्गतम्।
गन्धर्वैरुद्भटैर्युक्तो युद्धं कर्तुं मनो दधे॥ ६

वहीं पतंग नामसे प्रसिद्ध महाबली गन्धर्वराज राज्य करते थे, जो बड़े पुण्यात्मा थे और जिनका बल-पौरुष देवराज इन्द्रके समान था। उन्होंने सुना कि दिग्विजयके लिये निकले हुए प्रद्युम्न आ रहे हैं, तब उन गन्धर्वराजने उद्भट गन्धर्वोंसे युक्त होकर युद्ध करनेका निश्चय किया॥ ५-६॥

रथाश्वगजवीरैश्च गन्धर्वैर्दशकोटिभिः।
पतङ्ग आगतो योद्धुं प्रद्युम्नस्यापि सम्मुखे॥ ७

गन्धर्वैर्यदुभिः सार्धं घोरं युद्धं बभूव ह।
भल्लैर्गदाभिः परिघैर्मुद्गरैस्तोमरर्ष्टिभिः॥ ८

बाणान्धकारे सञ्जाते पतङ्गोऽतिरथो बली।
धनुष्टङ्कारयन् प्राप्तो जगर्ज घनवद्बली॥ ९

गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली।
तद्बलं पोथयामास वज्रेणेन्द्रो यथा गिरीन्॥ १०

गदस्य गदया केचिद्गन्धर्वाः पतिता रणे।
रथाश्चूर्णीकृताः सर्वे मातङ्गा भिन्नमस्तकाः॥ ११

अश्वारूढाः केऽपि वीराः पतिता रणमूर्धनि।
अधोमुखा ऊर्ध्वमुखा गन्धर्वाश्छिन्नबाहवः॥ १२

क्षणमात्रेण तत्सैन्ये रुधिराणां नदी ह्यभूत्।
प्रमथा हरमालार्थं शिरांसि जगृहुर्मृधे॥ १३

सिंहारूढा भद्रकाली डाकिनीशतसंवृता।
कपालेनापि रुधिरं पिबन्ती दृश्यते मृधे॥ १४

एवंयुद्धे गदकृते गन्धर्वाणां पलायताम्।
गन्धर्वेशस्तदा प्राप्तो हस्तिलक्षबलान्वितः॥ १५

गदं तताड गदया पतङ्गो हृदि मैथिल।
गदोऽपि तं स्वगदया पतङ्गं हृदि चौजसा॥ १६

तयोश्च गदया युद्धं बभूव घटिकाद्वयम्।
विस्फुलिङ्गान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः॥ १७

लक्षभारमयीं गुर्वीं गदामादाय सत्वरम्।
गदं तताड शिरसि पतङ्गो रणदुर्मदः॥ १८

गदाप्रहारेण गदः क्षणं मूर्च्छामवाप ह।
एवं कृते घोरमृधे पतङ्गेन महात्मना॥ १९

तदैव द्वारकापुर्यास्तेजःसङ्घट्टमागतम्।
ददृशुर्यादवाः सर्वे कोटिमार्तण्डसन्निभम्॥ २०

रथ, घोड़े, हाथी और पैदल दस करोड़ गन्धर्वोंके साथ राजा पतंग प्रद्युम्नके सामने युद्धके लिये आये। गन्धर्वों और यादवोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। भालों, गदाओं, परिघों, मुद्गरों, तोमरों तथा ऋष्टियोंकी मार होने लगी॥ ७-८॥

बाणोंसे अन्धकार फैल जानेपर अतिरथी बलवान् वीर पतंग धनुषको टंकारते हुए आगे बढ़े और मेघके समान गर्जना करने लगे। बलदेवजीके बलवान् अनुज गदने गदा लेकर गन्धर्वोंकी सेनाको वैसे ही धराशायी करना आरम्भ किया, जैसे देवराज इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको ढहा देते हैं॥ ९-१०॥

गदकी गदाके प्रहारसे कितने ही गन्धर्व युद्धभूमिमें गिर गये, उनके रथ चूर-चूर हो गये और समस्त हाथियोंके कुम्भस्थल फट गये। कितने ही घुड़सवार वीर भी युद्धके मुहानेपर प्राणशून्य होकर पड़ गये। भुजाएँ कट जानेसे कितने ही गन्धर्व उत्तानमुख और औंधेमुख पड़े दिखायी देते थे॥ ११-१२॥

क्षणमात्रमें गन्धर्वोंकी सेनामें खूनकी नदी बह चली। प्रमथगण भगवान् रुद्रकी मुण्डमाला बनानेके लिये युद्धभूमिमें नरमुण्डोंका संग्रह करने लगे। सिंहपर चढ़ी हुई भद्रकाली सैकड़ों डाकिनियोंके साथ युद्धभूमिमें आकर खप्परमें खून भर-भरकर पीती दिखायी देने लगीं॥ १३-१४॥

इस तरह गदके द्वारा किये गये युद्धमें जब गन्धर्वगण पलायन करने लगे, तब गन्धर्वोंके राजा पतंग एक लाख गजसेनाके साथ वहाँ आ पहुँचे। मिथिलेश्वर! पतंगने आते ही गदकी छातीमें गदा मारी। गदने भी अपनी गदासे पतंगके वक्षपर बलपूर्वक चोट पहुँचायी। उन दोनोंमें दो घड़ीतक गदायुद्ध चलता रहा। उन दोनोंकी गदाएँ आगकी चिनगारियाँ बिखेरती हुई चूर-चूर हो गयीं। रणदुर्मद पतंगने लाख भारकी भारी गदा लेकर तुरंत ही गदके मस्तकपर मारी। गदाके उस प्रहारसे गद क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये। इस प्रकार महामना पतंगने जब घोर युद्ध किया, तब उसी समय द्वारकापुरीसे एक तेजपुञ्ज आ पहुँचा। समस्त यादवोंने करोड़ों सूर्योंके तुल्य तेजस्वी उस तेजःपुञ्जको देखा॥ १५—२०॥

तस्मिंस्तेजसि गौराङ्गो बलदेवो महाबलः।
आविर्बभूव सहसा भगवान् भक्तवत्सलः॥ २१

गन्धर्वाणां बलं सर्वं समाकृष्य हलेन वै।
तताड मुसलं क्रुद्धो बलो नीलाम्बरो बली॥ २२

रथान् गजांस्तुरङ्गांश्च वीराः शस्त्रभृतां वराः।
निपेतुर्युगपत्सर्वे चूर्णिताश्चोपला इव॥ २३

पतङ्गो विरथस्तस्माद्भीतभीतः पुरीं ययौ।
पुनर्योद्धुं यादवैश्च सेनाव्यूहं चकार ह॥ २४

शतयोजनविस्तीर्णां गन्धर्वाणां महापुरीम्।
वसन्तमालतीं सर्वामुद्विदार्य हलेन वै॥ २५

विचकर्ष बलः क्रुद्धो नदे कामदुघे नृप।
हाहाकारस्तदैवासीन्नगर्यां पतितैर्गृहैः॥ २६

तिर्यक्पोतमिवाघूर्णां नगरीं वीक्ष्य सत्वरम्।
पतङ्गः सर्वगन्धर्वैर्धर्षितः सन् कृताञ्जलिः॥ २७

खचिद्धेमसुवर्णानां मुक्तातोरणशालिनाम्।
दशयोजनविस्तीर्णीकृतानां विश्वकर्मणा॥ २८

कामगानां पताकाभिर्युतानां कुम्भकोटिभिः।
सहस्रार्कप्रकाशानां विमानानां द्विलक्षकम्॥ २९

चतुर्लक्षं गवां चैव तुरङ्गाणां दशार्बुदम्।
एलालवङ्गकाश्मीरजातीफलफलैः सह॥ ३०

सुधाफलानां दिव्यानां कोटिशो भाजनानि च।
नीत्वा बलिं समादाय दत्वा नत्वा प्रधर्षितः॥ ३१

कृताञ्जलिः प्राह बलं बलभद्रप्रभाववित्।

उसके भीतरसे गोरे अङ्गवाले महाबली भक्त-वत्सल भगवान् बलदेव सहसा प्रकट हो गये। नीलाम्बरधारी बलशाली बलरामने कुपित हो गन्धर्वोंकी सारी सेनाको हलसे खींचकर मुसलसे मारना आरम्भ किया॥ २१-२२॥

बहुत-से रथों, हाथियों और घोड़ोंको उन्होंने कालके गालमें पहुँचा दिया। शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीर सब-के-सब चूर-चूर हुए पत्थरोंकी भाँति एक साथ ही भूतलपर बिखर गये। पतंग भी रथहीन हो भारी भयके कारण वहाँसे वसन्तमालतीपुरीमें चले गये और पुनः यादवोंसे युद्ध करनेके लिये सेनाका व्यूह बनाने लगे॥ २३-२४॥

नरेश्वर! सौ योजन विस्तृत गन्धर्वोंकी सम्पूर्ण वसन्तमालती नामकी महापुरीको हलसे उखाड़कर कुपित हुए बलदेवजीने कामदुघनदमें गिरानेके लिये खींचा। उस नगरीके भवन धड़ाधड़ धराशायी होने लगे। फिर तो तत्काल वहाँ हाहाकार मच गया। अपनी नगरीको टेढ़ी या करवट लेती हुई नौकाकी भाँति डगमगाती देख पतंग सर्वथा पराभूत हो, तत्काल समस्त गन्धर्वोंके साथ हाथ जोड़, भेंट-सामग्रीके साथ वहाँ आ पहुँचा॥ २५—२७॥

उसने दो लाख ऐसे विमान बलदेवजीको भेंट किये, जो सुवर्णके समान कान्तिवाले तथा विविध रत्नोंसे जटित थे। मोतीकी बंदनवारें उनकी शोभा बढ़ाती थीं। विश्वकर्माने उन विमानोंको दस-दस योजन विस्तृत बनाया था। वे सभी विमान इच्छानुसार चलनेवाले तथा कोटि-कोटि कलशों एवं पताकाओंसे सुशोभित थे। उनसे सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था॥ २८-२९॥

चार लाख गौएँ, दस अरब घोड़े, इलाइची, लवङ्ग, केसर और जायफलोंके साथ दिव्य अमृतफलोंसे भरे करोड़ों पात्र उपहारके रूपमें लाकर उन्होंने दिये। फिर वे नमस्कार करके तिरस्कृतकी भाँति हाथ जोड़कर बलरामजीसे बोले, उन्हें बलभद्रजीके प्रभावका पूरा परिचय मिल गया था॥ ३०—३१ १/२॥

पतङ्ग उवाच

राम राम महावीर्य न जाने तव विक्रमम्।
यस्यैकमूर्ध्नि तिलवद् दृश्यते भूमिमण्डलम्॥ ३२

देवाधिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते।
नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः॥ ३३

जय जयाच्युत देव परात्पर
स्वयमनन्त दिगन्तगतश्रुते।
सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रवराय ते
मुसलिने बलिने हलिने नमः॥ ३४

श्रीनारद उवाच

एवं स्तुतः पतङ्गेन बलभद्रो महाबलः।
प्रसन्नचेता गन्धर्वं मा भैष्टेत्यभयं ददौ॥ ३५

स्थापयित्वा बले कार्ष्णिं प्रणतं यादवेश्वरः।
यादवैः प्रस्तुतः शीघ्रं पुरीं द्वारावतीं ययौ॥ ३६

पतंगने कहा—राम! महापराक्रमी बलराम! मैंने आपके पराक्रमको पहले नहीं जाना था, इसलिये अपराध कर बैठा। जिनके एक फनपर सारा भूमण्डल तिलके समान दिखायी देता है, उनके सामने कौन ठहर सकता है। भगवन्! कामपाल! देवाधिदेव! आपको नमस्कार है। साक्षात् अनन्त एवं शेषस्वरूप आप बलरामको बारंबार प्रणाम है। अच्युत देव! आपकी जय हो, जय हो। परात्पर! साक्षात् अनन्त! आपकी कीर्ति दिगन्ततक फैली हुई है। आप समस्त देवताओं, मुनीन्द्रों और फणीन्द्रोंसे श्रेष्ठ हैं। मुसलधारी! आप बलवान् हलधरको नमस्कार है॥ ३२—३४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पतंगके इस प्रकार स्तुति करनेपर महाबली बलभद्रजीका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने गन्धर्वको 'अब तुम मत डरो'—यों कहकर अभयदान दिया। तदनन्तर यादवेश्वर बलदेव अपने चरणोंमें पड़े हुए प्रद्युम्नको सेनाके संचालक-पदपर स्थापित करके, यादवोंसे प्रशंसित हो शीघ्र ही द्वारकापुरीको चले गये॥ ३५-३६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वसन्तमालतीकर्षणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वसन्तमालती नगरीका कर्षण' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

यादव-सेनाके साथ शक्रसखका युद्ध और उसकी पराजय

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नोऽथ महावीरो नादयन् जयदुन्दुभिम्।
यदुभिः सैनिकैः सार्धं मधुधारातटं ययौ॥ १

सुवर्णाद्रितटीभूते वने वैश्रवसे शुभे।
सुवर्णवर्णहंसाढ्ये काञ्चनीलतिकावृते॥ २

हेमावतीषु द्रोणीषु देवदुर्गासु मैथिल।
दानवानामगम्यासु गङ्गावेत्रवतीषु च॥ ३

दानवेभ्यः प्रभीतानां क्वचित्स्वर्गात् पलायिनाम्।
अष्टानां लोकपालानां निधयो यत्र सन्ति हि॥ ४

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर महावीर प्रद्युम्न अपनी विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए यादव-सैनिकोंके साथ मधुधारा नदीके तटपर गये। सुवर्णगिरिके किनारे कुबेरके सुन्दर वनमें, जो सुनहरे हंसों और काञ्चनी लतिकाओंसे सम्पन्न है, पहुँचे॥ १-२॥

मिथिलेश्वर! हिमालयकी गुफाएँ देवताओंके लिये दुर्गका काम देती हैं। वहाँ दानवोंकी पहुँच नहीं हो पाती। वहाँ गङ्गातटवर्ती बेंतकी झाड़ियाँ छायी रहती हैं। कभी-कभी दानवोंसे डरकर स्वर्गसे भागे हुए आठों लोकपालोंकी निधियाँ वहाँ निवास करती हैं॥ ३-४॥

तत्र शक्रसखो देव आधिपत्याभिरक्षकः।
श्रुत्वागतं च प्रद्युम्नं युद्धं कर्तुं मनो दधे॥ ५

प्रद्युम्नप्रेषितः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।
पप्रच्छ दृष्टमार्गैश्च जनैस्तस्य पुरं ययौ॥ ६

नत्वा देवं शक्रसखं सभायामुद्धवः प्रभुः।
प्रद्युम्नकथितं प्राह विस्तरान्मन्त्रिणां वरः॥ ७

उद्धव उवाच

उग्रसेनो यादवेन्द्रो द्वारकेशो नृपेश्वरः।
जम्बूद्वीपनृपान् जित्वा राजसूयं करिष्यति॥ ८

तेन प्रणोदितो जेतुं रुक्मिणीनन्दनो बली।
जित्वा स भारतादीनि खण्डानि स्वस्य तेजसा॥ ९

अद्यैवेलावृतं प्राप्तो जेतुं कार्ष्णिर्महाबलः।
तस्मै यच्छ बलिं शीघ्रं कुलकौशलहेतवे॥ १०

न चेद्युद्धं हि भवता राजन् सर्वविदां वर।

शक्रसख उवाच

शृणु दूत सदा देवैः पूजितोऽहं नरैः किमु।
सिद्धोऽहं वै महावीरो नागलक्षसमो बले॥ ११

अष्टानां लोकपालानामाधिपत्याभिरक्षकः।
कुबेर इव कोशाढ्यः पुरन्दर इवोद्भटः॥ १२

उग्रसेनेन दातव्यं मह्यं चोपायनं परम्।
पुरा तस्मै न दास्यामि यदुराजाय भूभृते॥ १३

उद्धव उवाच

यथा तिरस्कृतिं प्राप्तः कुबेरो यदुतेजसा।
यथा शृङ्गारतिलकश्चैत्रदेशाधिपो बली॥ १४

शुभाङ्गो हरिवर्षेश उत्तरेशो गुणाकरः।
यथा दैत्यसखो राजा लङ्केशो राक्षसेश्वरः॥ १५

संवत्सरः केतुमालः शकुन्याद्या महासुराः।
तथाभूतस्त्वं हि राजन् बलिं तस्मै प्रदास्यसि॥ १६

शक्रसख नामक देव-शिरोमणि उस प्रान्तके अधिपति हैं। प्रद्युम्नका आगमन सुनकर उन्होंने उनके साथ युद्ध करनेका विचार किया। प्रद्युम्नके भेजे हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् उद्धव मार्गदर्शी लोगोंसे रास्ता पूछते हुए शक्रसखकी नगरीमें गये। सभामें पहुँचकर मन्त्रिप्रवर प्रभु उद्धवने राजा इन्द्रसखको नमस्कार करके प्रद्युम्नकी कही हुई बातें विस्तारके साथ कह सुनायीं॥ ५—७॥

उद्धव बोले—यादवोंके इन्द्र, द्वारकापुरीके स्वामी राजाधिराज उग्रसेन जम्बूद्वीपके नरेशोंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे॥ ८॥

उनके द्वारा दिग्विजयके लिये भेजे गये बलवान् रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न अपने तेजसे भारत आदि वर्षोंको जीतकर आज ही इलावृतवर्षपर विजय पानेके लिये आये हैं। उन श्रीकृष्णकुमारका बल महान् है। यदि आप अपने कुलकी कुशल चाहते हों तो शीघ्र ही उन्हें भेंट दीजिये। सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ नरेश! यदि आप भेंट नहीं देंगे तो आपके साथ युद्ध अनिवार्य होगा॥ ९—१०१/२॥

शक्रसख बोले—दूत! सुनो। देवतालोग भी सदा मेरी पूजा करते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? मैं सिद्ध हूँ, महावीर हूँ और एक लाख हाथियोंके समान बलवान् हूँ। आठों लोकपालोंके आधिपत्यका रक्षक हूँ। कुबेरके समान कोशसे सम्पन्न तथा इन्द्रके समान उद्भट शक्तिशाली हूँ। उग्रसेनको ही मुझे उत्तम उपायन भेंट करना चाहिये। मैंने पहले कभी किसीको भेंट नहीं दी है, इसलिये मैं तुम्हारे यदुराजको भी भेंट नहीं दूँगा॥ ११—१३॥

उद्धव बोले—यादवोंके तेजसे जैसे कुबेरको तिरस्कार प्राप्त हुआ है और उन्हें भेंट देनी पड़ी है; जैसे चैत्रदेशके बलवान् राजा शृङ्गारतिलकने भेंट दी है; हरिवर्षके राजा शुभाङ्ग, उत्तराखण्डके स्वामी गुणाकर, दैत्योंके सखा राक्षसराज लङ्कापति संवत्सर, केतुमाल और शकुनि आदि बड़े-बड़े असुरोंने जैसे भेंट दी है, राजन्! उसी तरह उन्हींकी-सी दुर्दशामें पड़नेपर आप भी प्रद्युम्नको भेंट देंगे॥ १४—१६॥

श्रीनारद उवाच

इत्युद्धववचः श्रुत्वा क्रुद्धः शक्रसखो बली।
उद्धवं प्रत्युवाचाथ शृणु भागवतोत्तम॥ १७

यावद् बलिं प्रदास्यामि तावत्त्वं संस्थितो भव।
अन्यथा ते गतिर्नास्ति सत्यं सत्यं महामते॥ १८

उद्धव उवाच

वयं तु मन्त्रिप्रवराः पूर्णज्ञानप्रदा वराः।
मच्छिक्षणं न मन्यन्ते तेषां नो मङ्गलं भवेत्॥ १९

श्रीनारद उवाच

एवं स दृष्टरोधेन रोधयामास चोद्धवम्।
उद्धवं नागतं राजन् यदूनामनुशोचताम्॥ २०

दिनानि कतिचित्तत्र व्यतीयुस्तमपश्यताम्।
मन्मुखात्तदुपाकर्ण्य प्रद्युम्नो भगवान् हरिः॥ २१

जेतुं शक्रसखं प्रागात्त्रिपुरं त्र्यम्बको यथा।
यदुभिर्भ्रातृभिः सार्धं स सैन्यपरिवारितः॥ २२

सुवर्णाद्रिगुहाद्वारात्सम्प्राप्तो मकरध्वजः।
वीरकोदण्डटङ्कारैर्दुन्दुभिध्वनिमिश्रितैः॥ २३

अश्वह्रेषैर्हस्तिनादैर्विनेदुश्च दिशो दश।
सैन्यपादरजोभिश्च युयुधे यादवैः सह॥ २४

बभूव तुमुलं युद्धं छादितं व्योममण्डलम्।
वीक्ष्य सर्वे मेरुदेवा भयं प्रापुर्नृपेश्वर॥ २५

अथ शक्रसखः क्रुद्धो रथारूढो महाबलः।
अक्षौहिणीभिर्दशभिर्युयुधे यादवैः सह॥ २६

बभूव तुमुलं युद्धं देवानां यदुभिः सह।
प्राकृतप्रलये राजन्नुदधीनां ध्वनिर्यथा॥ २७

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उद्धवकी उपर्युक्त बात सुनकर बलवान् शक्रसखने कुपित हो उद्धवको इस प्रकार उत्तर दिया—'भगवद्भक्त-शिरोमणे! सुनो। जबतक मैं भेंट दूँ, तबतक तुम यहीं ठहरो। अन्यथा तुम जाने नहीं पाओगे। महामते! मेरी यह बात सत्य है, सत्य है'॥ १७-१८॥

उद्धव बोले—हम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ और श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। जो हमारी शिक्षा नहीं मानते, उनका मङ्गल नहीं होता॥ १९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार शक्रसखने उद्धवको वहाँ नजरबंद कर लिया। उद्धवके नहीं लौटनेसे यदुवंशी लोग चिन्तित हो गये। उन्हें देखे बिना उन सबके कई दिन बीत गये। तब मेरे मुखसे उद्धवजीके अवरोधका समाचार सुनकर भगवान् प्रद्युम्न हरि त्रिपुरासुरको जीतनेके लिये यात्रा करनेवाले महादेवजीके समान शक्रसखपर विजय पानेके लिये चले। उनके साथ समस्त यादव-बन्धु और सारी सेना थी॥ २०—२२॥

प्रद्युम्नजी सुवर्णाद्रिकी गुफाके द्वारपर जा पहुँचे। दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिश्रित वीर योद्धाओंके कोदण्डोंकी टंकारों, घोड़ोंके हिनहिनाहटकी आवाजों तथा हाथियोंकी चिंघाड़ोंसे दसों दिशाएँ गूँज उठीं। सैनिकोंके पैरोंसे उड़ी हुई धूल भी सब ओर व्याप्त हो गयी। शक्रसखकी सेना यादवोंसे युद्ध करने लगी। भयंकर युद्ध होने लगा, व्योममण्डल अस्त्र-शस्त्रोंसे आच्छादित हो गया। नृपेश्वर! यह सब देखकर मेरुपर्वतके निवासी समस्त देवता भयभीत हो उठे॥ २३—२५॥

इसी समय क्रोधसे भरा और रथपर चढ़ा महाबली शक्रसख दस अक्षौहिणी सेनाके साथ आगे बढ़कर यादवोंके साथ युद्ध करने लगा। देवताओंका यादवोंके साथ तुमुल युद्ध छिड़ गया। राजन्! प्राकृत प्रलयके समय चारों समुद्रोंके टकरानेसे जैसी भीषण ध्वनि होती है, वैसा ही महान् कोलाहल वहाँ होने लगा॥ २६-२७॥

शस्त्रान्धकारे सञ्जाते सारणो रोहिणीसुतः।
बलदेवानुजो वीरो दंशितो गजसंस्थितः॥ २८

सर्वेषामग्रतः प्राप्तो धनुष्टङ्कारयन् मुहुः।
तद्बलं पोथयामास बाणैः कोदण्डनिर्गतैः॥ २९

अस्त्र-शस्त्रोंसे वहाँ अन्धकार-सा छा गया। उस समय बलदेवके छोटे भाई रोहिणीनन्दन वीर सारण कवच धारण किये, हाथीपर बैठकर, बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए सबसे आगे आ गये और अपने कोदण्डसे छूटे हुए बाणोंद्वारा शक्रसखकी सेनाका संहार करने लगे॥ २८-२९॥

श्रीसारणस्य बाणौघैः केचिद्वीरा द्विधा कृताः।
तिर्यग्भूता रथा युद्धे निपेतुः पादपा इव॥ ३०

गजानां भिन्नकुम्भानां मौक्तिकान्यपतंस्तदा।
बाणान्धकारे सञ्जाते रात्रौ तारागणा इव॥ ३१

सारणके बाणसमूहोंसे कितने ही वीरोंके दो-दो टुकड़े हो गये। युद्धभूमिमें बहुत-से रथ करवट लेकर वृक्षोंके समान धराशायी हो गये। उस समय जिनके कुम्भस्थल फट गये थे, उन हाथियोंके मोती इधर-उधर गिर रहे थे, बाणोंके अन्धकारमें वे बिखरे हुए मोती रात्रिकालमें तारागणोंके समान चमकने लगे॥ ३०-३१॥

सञ्छिद्यमानैरश्वैश्च वीरैर्नागै रणाङ्गणम्।
बभौ भूतगणैर्युक्तं यथाक्रीडमुमापतेः॥ ३२

सारणस्य बलं दृष्ट्वा सर्वे देवाः पलायिताः।
सञ्छिन्नभिन्नकोदण्डा अभितः शीर्णकञ्चुकाः॥ ३३

कटते हुए घोड़ों, पैदल योद्धाओं तथा हाथियोंसे वह समराङ्गण भूतगणोंसे युक्त भूतनाथके क्रीड़ास्थल महाश्मशान-सा जान पड़ता था। सारणका बल देखकर सब देवता भाग चले। उनके कोदण्ड छिन्न-भिन्न हो गये, कवच चारों ओरसे फट गये॥ ३२-३३॥

पलायमानं स्वबलं दृष्ट्वा शक्रसखो बली।
धनुष्टङ्कारयन् प्राप्तो जगर्ज घनवद्बलात्॥ ३४

अर्जुनं दशभिर्बाणैर्विंशत्या भानुमेव च।
साम्बं बाणशतैर्युद्धेऽनिरुद्धं च शतैः शरैः॥ ३५

द्विशतैश्च गदं वीरं सहस्रैः सारणं तथा।
तताड समरे वीरो धन्वी शक्रसखो बली॥ ३६

अपनी सेनाको पलायन करती देख बलवान् शक्रसख धनुष टंकारता हुआ वहाँ आ पहुँचा और बड़े जोरसे मेघकी भाँति गर्जना करने लगा। वीर धनुर्धर बलवान् शक्रसखने समराङ्गणमें अर्जुनको दस, भानुको बीस, साम्ब और अनिरुद्धको सौ-सौ, गदको दो सौ तथा सारणको एक सहस्र बाण मारे॥ ३४—३६॥

तद्बाणैः सरथा वीरा बभ्रमुर्घटिकाद्वयम्।
चक्रवत्कुम्भकारस्य तदद्भुतमिवाभवत्॥ ३७

हयाश्च पञ्चतां प्राप्ताः श्लथद्बन्धा रथा भ्रमात्।
रथिनः खिन्नमनसः सूता मूर्च्छां गता मृधे॥ ३८

उसके बाणोंकी मारसे रथी वीर दो-दो घड़ीतक उसी प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे कुम्हारके चाक घूम रहे हों। वह अद्भुत-सी बात हुई। उस तरह चक्कर काटनेसे घोड़े मृत्युके ग्रास बन गये, रथोंके बन्धन ढीले पड़ गये, रथियोंके मनमें खेद होने लगा और सारथि भी युद्धमें मूर्च्छित हो गये॥ ३७-३८॥

स चान्यं रथमारुह्य धनुष्टङ्कारयन् बलात्।
धनुः शक्रसखस्यापि चिच्छेद दशभिः शरैः॥ ३९

द्वाभ्यां सूतं शतैरश्वान् सहस्रैस्तद्रथं शरैः।
चूर्णयामास राजेन्द्र साम्बो जाम्बवतीसुतः॥ ४०

राजेन्द्र! उस समय जाम्बवतीनन्दन साम्ब दूसरे रथपर आरूढ़ हो बलपूर्वक धनुष टंकारते हुए आये। उन्होंने शक्रसखके धनुषको दस बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला। दो बाणोंसे उसके सारथिको और सौ बाणोंसे घोड़ोंको यमलोक भेजकर सहस्र बाणोंद्वारा उसके रथको भी चूर-चूर कर दिया॥ ३९-४०॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
नागेन्द्रं मत्तमारुह्य शूलं जग्राह रोषतः॥ ४१

विव्याध साम्बं शूलेन हृदि शक्रसखो बली।
तेन घातेन साम्बोऽपि किञ्चिद्व्याकुलमानसः॥ ४२

धनुषके कट जाने तथा घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए शक्रसखने मतवाले गजराजपर आरूढ़ हो रोषपूर्वक शूल हाथमें ले लिया। बलवान् शक्रसखने उस शूलसे साम्बकी छातीमें चोट की। उस आघातसे साम्बका मन कुछ व्याकुल हो गया॥ ४१-४२॥

योजने पादविक्षेपं कज्जलाद्रिसमप्रभम्।
चतुर्योजनमुच्चाङ्गं योजनार्धं रदद्वयम्॥ ४३

शक्रसखका हाथी एक-एक योजनका डग भरता था। उसका रंग कज्जलगिरिके समान काला था। उसकी ऊँचाई चार योजनकी थी। उसके दो दाँत आधे योजनतक आगे निकले हुए थे॥ ४३॥

महच्चीत्कारकुर्वन्तं त्रिशुण्डादण्डमण्डलैः।
शृङ्खलैः पातयन्तं तं चतुर्योजनविस्तृतैः॥ ४४

गजान् वीरान् मर्दयन्तं रथानश्वानितस्ततः।
दन्तैः पादैर्घातयन्तं कालान्तकयमोपमम्॥ ४५

वह बड़े जोर-से चिंघाड़ता था। उसकी चार-चार योजन विस्तृत तीन सूँड़ें थीं। उन मण्डलाकार सूड़ोंके द्वारा वह साँकलोंको गिराता, हाथियों और वीरोंको कुचलता तथा रथों और घोड़ोंको इधर-उधर दाँतों और पैरोंसे विनष्ट करता हुआ काल, अन्तक और यमके समान दिखायी देता था॥ ४४-४५॥

आगतं वीक्ष्य नागेन्द्रं शत्रुणा नोदितं परम्।
विचरन्तं मृधाद्भीता यदुसेना विदुद्रुवुः॥ ४६

शत्रुसे प्रेरित उस महान् गजराजको आते और विचरते हुए देख यादव-सैनिक भयभीत हो युद्धसे भाग चले॥ ४६॥

गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली।
जघान तद्गजं कुम्भे गदया वज्रकल्पया॥ ४७

उस समय बलदेवजीके छोटे भाई बलवान् गदने गदा लेकर उस वज्र-सरीखी गदासे उक्त गजराजके कुम्भस्थलपर बड़े जोरसे आघात किया॥ ४७॥

तद्घातभिन्नकुम्भो हि गजो युद्धे पपात ह।
छिन्नपक्षो यथा शैलस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४८

उस आघातसे उसका कुम्भस्थल फट गया और वह हाथी युद्धस्थलमें पंख कटे हुए पर्वतके समान ढह गया। वह अद्भुत-सी बात हुई॥ ४८॥

अथ शक्रसखो यावद्गदां जग्राह रोषतः।
तावत्तताड गदया गदः शक्रसखं हृदि॥ ४९

तेन घातेन सगजो पतितो मूर्च्छितोऽभवत्।
पुनरुत्थाय स गदं भुजाभ्यां जगृहे मृधे॥ ५०

तदनन्तर शक्रसखने ज्यों ही रोषपूर्वक गदा उठानेकी चेष्टा की, त्यों ही गदने अपनी गदासे उसकी छातीमें चोट पहुँचायी। उस आघातसे वह हाथीसहित गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। फिर उठकर उसने युद्धस्थलमें दोनों हाथोंसे गदको उठाया॥ ४९-५०॥

गदशक्रसखौ युद्धे युयुधाते परस्परम्।
रङ्गे मल्लाविव वने वन्यौ तौ वारणाविव॥ ५१

गद और शक्रसख दोनों इस प्रकार परस्पर युद्ध करने लगे, जैसे रङ्गशालामें दो मल्ल और जंगलमें दो जंगली हाथी लड़ रहे हों॥ ५१॥

भुजाभ्यां तं समुत्थाप्य बलदेवानुजो बली।
चिक्षेप तत्पुरे वीरं बलात्तं शतयोजनम्॥ ५२

तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह।
जयदुन्दुभयो नेदुः प्रशशंसुर्मुहुर्जनाः॥ ५३

तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने अपनी दोनों भुजाओंसे उस वीरको उठा लिया और बलपूर्वक उसे सौ योजन ऊपर उसके नगरमें फेंक दिया। उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगी, विजयकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और सब लोग बारंबार गदकी प्रशंसा करने लगे॥ ५२-५३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शक्रसखयुद्धं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शक्रसखका युद्ध' नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

शक्रसखका प्रद्युम्नको भेंट अर्पण, प्रद्युम्नका लीलावतीपुरीके स्वयंवरमें सुन्दरीको प्राप्त करना तथा इलावृतवर्षसे लौटकर भारत एवं द्वारकापुरी में आना

श्रीनारद उवाच

स्वपुरे पतितो मूर्च्छां गतः शक्रसखो भृशम्।
उत्तस्थौ च क्षणं तत्र किञ्चिद्व्याकुलमानसः॥ १

अथ कार्ष्णिं परं ब्रह्म ज्ञात्वा शक्रसखस्त्वरन्।
स्वसकाशाद्बलिं नीत्वा यदूनां च बलं ययौ॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं— राजन्! अपने नगरमें गिरकर शक्रसख अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। फिर उस मूर्च्छासे वह उठा। उठनेपर भी एकक्षणतक उसे बड़ी घबराहट रही। तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको परब्रह्म जानकर शक्रसख बड़ी उतावलीके साथ अपनी भेंट-सामग्री लेकर यादव-सेनाके समीप गया॥ १-२॥

ऐरावतकुलेभाश्च त्रिशुण्डा दण्डदन्तिनः।
चतुर्दन्ताः श्वेतवर्णाः सहस्राणि मदच्युतः॥ ३

हेमाद्रिप्रभवा नागा योजनद्वयविग्रहाः।
कोटिशः पर्वताकारा उन्मत्ता दिग्गजा इव॥ ४

दिव्यास्या दिव्यगतयः कोटिशः कोटिशो नृप।
शतार्बुदा रथा दिव्याः शातकौम्भमयाः पराः॥ ५

ऐरावतकुलमें उत्पन्न हुए तीन सूँड़ और चार दाँतवाले श्वेत रंगके एक हजार मदवर्षी हाथी, सुवर्णगिरिपर उत्पन्न हुए दो योजन विस्तृत शरीरवाले तथा दिग्गजोंके समान उन्मत्त पर्वताकार करोड़ों हाथी, जिनके मुख दिव्य थे और जिनकी गति भी दिव्य थी, करोड़ोंकी संख्यामें उपस्थित किये गये। राजन्! इन सबके साथ सोनेके बने हुए उत्तम दिव्य रथ भी थे, जिनकी संख्या सौ अरब थी॥ ३—५॥

अयुतानि विमानानां योजनद्वयशालिनाम्।
नियुतं कामधेनूनां पारिजातसहस्रकम्॥ ६

करिदन्तखचित्स्तम्भहेमरत्नखचित्पदाः।
मुक्तास्तडागसंवृद्धा गुणयन्त्रस्फुरत्प्रभाः॥ ७

दस हजार विमान भेंटके लिये लाये गये, जो दो-दो योजन विस्तारसे सुशोभित थे। दस लाख कामधेनु गौएँ और एक हजार पारिजात वृक्ष प्रस्तुत किये गये। तड़ागोंमें परिपुष्ट हुए सीपके मोती, जो यन्त्रपर चढ़ाकर चमकाये गये थे, वे भी प्रदान किये। चमेलीके इत्रसे आर्द्र, शिरीष-कुसुमोंसे सज्जित तथा दूधके फेनकी तरह सफेद करोड़ों शय्याएँ लायी गयीं, जिनपर सुन्दर तकिये भी रखे

मल्लिकामकरन्दार्द्राः शिरीषकुसुमाकुलाः।
पयःफेननिभाः शय्याः कोटिशः सोपबर्हणाः॥ ८

वितानानि विचित्राणि भित्तिवस्त्राणि कोटिशः।
आसनानि मृदुस्पर्शचित्रवर्णानि सर्वशः॥ ९

दीर्घाणि चोपबर्हाणि विश्वकर्मकृतानि च।
मुक्तास्तबकहेमाद्यैः खचितानि सहस्रशः॥ १०

सहस्रशो जवनिकाः शिबिकाश्चैव कोटिशः।
छत्राणां चामराणां च दिव्यसिंहासनैः सह॥ ११

व्यजनानां तथा कोटी राज्यश्रीभूषणानि च।
पीयूषाणां द्रोणकोटिः सुधर्मा च सभा तथा॥ १२

एवं च सर्वतोभद्रपद्मानीति सहस्रकम्।
हीरकाणां च हरितां मुक्तानां च तथैव हि॥ १३

गोमेदानां कोटिभारा नीलकानां तथैव च।
आदित्यचन्द्रकान्तीनां वैदूर्याणां सहस्रशः॥ १४

स्यमन्तकमणीनां च कोटिभाराः समागताः।
तथा वै पद्मरागाणां भारा विद्ध्यर्बुदं नृप॥ १५

जाम्बूनदसुवर्णानां हाटकानां तथैव च।
सुवर्णाद्रिसुवर्णानां कोटिभाराश्च कोटिशः॥ १६

राज्यं नवनिधीन् सर्वान् देवानां मैथिलेश्वर।
अष्टानां लोकपालानामाधिपत्याधिरक्षकः॥ १७

नीत्वोद्धवं शक्रसखो दत्त्वैवं बलिमद्भुतम्।
कौशल्यहेतवे कार्ष्णिं प्रणनाम कृताञ्जलिः॥ १८

तस्मै तुष्टः शम्बरारिः प्रददौ रत्नमालिकाम्।
संस्थाप्य राज्ये तं राजन्नेषा हि प्रकृतिः सताम्॥ १९

इत्थं शक्रसखं जित्वा प्रद्युम्नाय बलिं ददौ।
शिबिराणां समूहोऽभूदरुणोदानदीमनु॥ २०

महाधनखचिद्भिश्च वितानैः शतयोजनम्।
पतत्पताकैर्दिव्याभैर्भून्यस्तविजयध्वजैः॥ २१

गये थे। हाथीके दाँतकी बनी हुई उनकी पाटियाँ रत्नोंसे जटित थीं और उनके पायोंमें भी सुवर्ण तथा रत्न जड़े गये थे। विचित्र वितान (चँदोवे) और दीवारोंपर लगाये जानेवाले वस्त्र करोड़ोंकी संख्यामें भेंट किये गये। छूनेमें कोमल एवं चितकबरे आसन तथा विश्वकर्माद्वारा रचित बड़े-बड़े तकिये दिये गये, जो मोतियोंके गुच्छों और सुवर्ण रत्न आदिके द्वारा खचित थे। वे सब सहस्रोंकी संख्यामें थे। हजारों परदे, करोड़ों पालकियाँ, छत्र, चँवर और दिव्य सिंहासनोंके साथ करोड़ों व्यजन, जो राजलक्ष्मीके भूषण थे, प्रस्तुत किये गये॥ ६—११^{१}/२॥

कोटि द्रोण अमृत, सुधर्मा सभा, सर्वतोभद्र मण्डल, सहस्रदल कमल, हीरे, पन्ने और मोती दिये गये। कोटि भार गोमेद और नीलम दिये गये, सहस्रों भार सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त और वैदूर्य मणियोंके थे॥ १२—१४॥

कोटि भार स्यमन्तक मणियोंके लाये गये थे। नरेश्वर! पद्मराग मणिके भारोंकी संख्या एक अरब थी। जाम्बूनद सुवर्ण, हाटकसुवर्ण तथा सुवर्णगिरिसे प्राप्त सुवर्णोंके भी कोटि-कोटि भार प्रस्तुत किये गये॥ १५-१६॥

मैथिलेश्वर! आठ लोकपालोंके आधिपत्यकी रक्षा करनेवाला शक्रसख अपना राज्य तथा देवताओंकी सम्पूर्ण निधियोंको भेंटके लिये लेकर उद्धवजीके साथ यादव-सेनाके पास गया और कुशलताके लिये वह अद्‌भुत भेंट अर्पित करके उसने प्रद्युम्नको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। शम्बरशत्रु प्रद्युम्नने संतुष्ट होकर उसे रत्नमाला अर्पित की और उस राज्यपर उसीको पुनः स्थापित कर दिया। राजन्! सत्पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है॥ १७—१९॥

इस प्रकार जिसने प्रद्युम्नको भेंट दी थी, उस शक्रसखको जीतकर वे सेनासहित आगे गये। अब उनके सैनिकोंकी छावनी अरुणोदा नदीके तटपर पड़ी। महामूल्य रत्नोंसे जटित चँदोवे सौ योजनतक तन गये। वहाँ दिव्य पताकाएँ फहराने लगीं और वहाँकी भूमिपर विजय-ध्वजकी स्थापना हो गयी।

विरेजे शिबिरव्यूहो लहरीभिः पयोदधिः।
आकाशादागतं तत्र गजारूढं पुरन्दरम्॥ २२

ससैन्यं सहसा राजन् दुन्दुभिध्वनिसंयुतम्।
संवीक्ष्य वेगतो वीरा जगृहुः शस्त्रसंहतिम्॥ २३

पुनरिन्द्रं च तं ज्ञात्वा बभूवुर्हर्षिता नृपाः।
श्रीप्रद्युम्नं सभामध्येऽकथयन्मघवा तदा॥ २४

शृणु राजन् महाबाहो त्वं परावरवित्तमः।
लीलावती नाम पुरी शुभा हेमाद्रिसानुषु॥ २५

विद्याधरेशः सुकृती तत्र राज्यं करोति हि।
तत्कन्या सुन्दरीनामा शतचन्द्रनिभा शुभा॥ २६

आगता देवताः सर्वास्तस्या राजन् स्वयंवरे।
लोकपालास्तथा सर्वे सम्प्राप्ता दिव्यविग्रहाः॥ २७

यं दृष्ट्वा मूर्च्छिताहं स्यां स मे भर्ता भविष्यति।
गिरेत्येवं प्रजल्पन्ती सुन्दरं वरमिच्छति॥ २८

तत्रापि गच्छ सहसा भ्रातृभिः सह कौतुके।
स्वयंवरं पश्य वरं देवलोकैश्च मण्डितम्॥ २९

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान् कार्ष्णिर्यादवैर्भ्रातृभिः सह।
पुरन्दरेण सहसा पुरीं लीलावतीं ययौ॥ ३०

विशालाजिरसंयुक्ते खचिद्रत्नमनोहरे।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चिते॥ ३१

मुक्तायुक्तैस्तोरणैश्च वितानैः सुमहाधनैः।
जाम्बूनदासनैः साक्षादिन्द्रलोक इवापरे॥ ३२

उन ध्वजा-पताकाओंके कारण वह शिविरसमूह उत्ताल तरंगोंसे युक्त महासागरकी भाँति शोभा पाने लगा॥ २०—२१½॥

राजन्! इसी समय आकाशसे ऐरावतपर चढ़े हुए देवराज इन्द्र सहसा सेनासहित वहाँ उतर आये। देवताओंकी दुन्दुभियाँ भी उनके साथ-साथ बजती आयीं। यह देख सम्पूर्ण यादव-वीरोंने बड़े वेगसे अपने अस्त्र-शस्त्र उठा लिये॥ २२-२३॥

पुनः देवराज इन्द्रको पहचानकर समस्त नरेश बड़े प्रसन्न हुए। उस समय इन्द्रने भरी सभामें प्रद्युम्नसे कहा—"महाबाहु नरेश! तुम परावरवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो, अतः मेरी बात सुनो। सुवर्णगिरिके शिखरोंपर लीलावती नामसे प्रसिद्ध एक सुन्दर पुरी है॥ २४-२५॥

वहाँ विद्याधरोंके राजा सुकृति राज्य करते हैं। उनकी एक सुन्दरी नामवाली कन्या है, जो सौ चन्द्रमाओंके समान रूप-लावण्यसे सुशोभित और परम सुन्दरी है। राजन्! उसके स्वयंवरमें समस्त लोकपाल और देवता दिव्यरूप धारण करके आये हैं; किंतु वह राजकन्या कहती है कि 'जिसको देखकर मैं मूर्च्छित हो जाऊँगी, वही मेरा पति होगा।' यह बात कहकर वह सुन्दर वर पानेकी इच्छा रखती है॥ २६—२८॥

तुम उस उत्सवमें भी अपने समस्त भाइयोंके साथ सहसा चलो और देववृन्दसे मण्डित उस सुन्दर स्वयंवरको देखो"॥ २९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर भगवान् प्रद्युम्न अपने यदुवंशी भाइयोंसहित देवेन्द्रके साथ सहसा लीलावतीपुरीमें गये। जहाँ स्वयंवर हो रहा था, वहाँका प्राङ्गण बड़ा विशाल था। जड़े गये रत्नोंके कारण उसकी मनोहरता बढ़ गयी थी। उस स्थानपर चन्दन, अगर, कस्तूरी और केसरके द्रवका छिड़काव किया गया था। मोतीकी बंदनवारों, बहुमूल्य वितानों और जाम्बूनद सुवर्णके आसनोंसे वह स्वयंवर-भवन साक्षात् दूसरे इन्द्रलोक-सा शोभा पाता था॥ ३०—३२॥

तस्मिन् स्वयंवरे तस्थौ प्रद्युम्नो दिव्य आसने।
गिरिशृङ्गे यथा सिंहः सर्वेषां पश्यतां नृप॥ ३३

प्रजेशा मुनयस्तत्र देवा रुद्रगणास्तथा।
मरुतो रवयश्चैव वसवो ह्यग्नयोऽश्विनौ॥ ३४

यमोऽथ वरुणः सोमो धनदः शक्र एव हि।
सिद्धा विद्याधराश्चैव गन्धर्वाः किन्नरास्तथा॥ ३५

अन्ये समागताः सर्वे रत्नाभरणभूषिताः।
जहुर्वैवाहिकीमाशां प्रद्युम्नं वीक्ष्य मैथिल॥ ३६

नरेश्वर! प्रद्युम्न उस स्वयंवरमें गये और सिंह जैसे किसी पर्वतके शिखरपर बैठता है, उसी प्रकार सबके देखते-देखते एक दिव्य आसनपर विराजमान हुए। मैथिल! वहाँ जितने प्रजापति, मुनि, देवता, रुद्रगण, मरुद्गण, आदित्यगण, वसुगण, अग्नि, दोनों अश्विनी-कुमार, यम, वरुण, सोम, कुबेर, इन्द्र, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किंनर तथा अन्यान्य सभी समागत एवं रत्नाभरणोंसे विभूषित देव थे, उन्होंने प्रद्युम्नको आया देख अपने विवाहकी आशा छोड़ दी॥ ३३—३६॥

सा सुन्दरी तत्र सुरत्नमालया
रतिं च रम्भां क्षिपतीव निर्गता।
वाणीं रमां रूपवतीं पुलोमजां
विडम्बयन्तीव बभौ वराङ्गना॥ ३७

यां वीक्ष्य सर्वेषु सदःसु सर्वतो
मोहं प्रयातेषु तथैव मैथिल।
श्रीः सर्वलोकस्य च पश्यतो वरं
विचिन्वती सा चपलेव चाम्बुदम्॥ ३८

इसी समय सुन्दरी हाथमें रत्नमाला लिये अपने रूपलावण्यसे रति और रम्भाको भी तिरस्कृत करती हुई-सी निकली। वह वराङ्गी अङ्गना सरस्वती, लक्ष्मी तथा रूपवती शचीकी विडम्बना करती हुई-सी जान पड़ती थी। मैथिल! जिसे देखकर सब ओर समस्त सभासद् मोहको प्राप्त हो गये, वह लक्ष्मीके समान राजकुमारी सुन्दरी सब लोगोंके सामने अपने लिये योग्य वरकी इस प्रकार खोज करने लगी, मानो चपला नूतन जलधरको ढूँढ़ रही हो॥ ३७-३८॥

दिव्याम्बरं पद्मदलायतेक्षणं
प्रद्युम्नवीरं नरलोकसुन्दरम्।
समेत्य मूर्च्छां समवाप सुन्दरी
विद्याधरी सा पुनराप संज्ञाम्॥ ३९

दिव्याम्बरधारी तथा प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल लोचनवाले नरलोकसुन्दर वीर प्रद्युम्नके पास पहुँचकर वह सुन्दरी विद्याधरी मूर्च्छित हो गयी। फिर थोड़ी ही देरमें उसे चेत हुआ॥ ३९॥

समुत्थिता सा त्वतिहर्षविह्वला
तस्थौ सुमालां विनिधाय तद्गले।
विद्याधरेशः सुकृती च सुन्दरीं
सुतां ददौ मैथिल शम्बरारये॥ ४०

वह उठी और आनन्द-विभोर होकर प्रद्युम्नके गलेमें सुन्दर माला डालकर खड़ी रह गयी। मिथिलेश्वर! विद्याधरोंके राजा सुकृतिने अपनी पुत्री सुन्दरीको प्रद्युम्नके हाथमें दे दिया॥ ४०॥

नदत्सु तूर्येषु तदैव निर्जरा
न सेहिरे वीक्ष्य विवाहमङ्गलम्।
तं सर्वतः संरुरुधुः स्वयंवरं
प्रचण्डमेघा इव भास्करं परम्॥ ४१

सब ओर माङ्गलिक वाद्य बज उठे, किंतु इस वैवाहिक मङ्गलको देखकर देवतालोग सहन न कर सके। उन लोगोंने उस स्वयंवरको चारों ओरसे उसी प्रकार घेर लिया, जैसे प्रचण्ड मेघोंने सूर्यदेवको आच्छादित कर लिया हो॥ ४१॥

क्रोधावृतांस्तानमरान् धनुर्धरान्
मदोद्धतान् वीक्ष्य हरिः स्वयं वरम्।
श्रीकृष्णदत्तं सशरं धनुः स्वयं
वरं गृहीत्वा यदुभिर्जगर्ज ह॥ ४२

उन देवताओंको क्रोधके वशीभूत हो धनुष उठाये और युद्धके मदसे उद्धत हुए देख साक्षात् प्रद्युम्न हरिने भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए बाणसहित श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर यादवोंके साथ सिंहनाद किया॥ ४२॥

तच्चापमुक्तैर्विशिखैः स्फुरत्प्रभै-
शिछन्नायुधा मैथिल शीर्णकञ्चुकाः।
विदुद्रुवुस्ते च दिशो दशामरा
नीहारमेघा इव सूर्यरश्मिभिः॥ ४३

प्रद्युम्नो भगवान् साक्षादित्थं जित्वा स्वयंवरम्।
विजित्येलावृतं खण्डं भारतं गन्तुमुद्यतः॥ ४४

भ्रातृभिर्यदुभिः सैन्यैः सर्वमन्त्रिजनैः सह।
आययौ भारतं खण्डं नादयन् जयदुन्दुभीन्॥ ४५

पश्यन् देशाननेकांश्च जम्बूद्वीपजयो बली।
आनर्तान् द्वारकादेशान् प्राप्तोऽभूत्स हरेः सुतः॥ ४६

प्रद्युम्नप्रेषितः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।
प्रणनामोग्रसेनं तं सभायां श्रीहरिं बली॥ ४७

वर्षे वर्षेऽपि यज्जातं जम्बुद्वीपजयं तथा।
तत्सर्वं हि यथायोग्यं कथयामास चोद्धवः॥ ४८

श्रीकृष्णबलदेवाभ्यां सर्वैर्वृद्धजनैः सह।
प्रद्युम्नं तं समानेतुमुग्रसेनो विनिर्गतः॥ ४९

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा।
मुक्तावर्षैर्लाजपुष्पैः पाठारावैः सुमङ्गलैः॥ ५०

वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य सौवर्णैः कलशैर्नृप।
गन्धर्वैर्वारमुख्याभिः शङ्खदुन्दुभिवेणुभिः॥ ५१

गन्धाक्षतैर्हेमपात्रैः पुष्पधूपैर्यवाङ्कुरैः।
उग्रसेनः शम्बरारेः सम्मुखं चाजगाम ह॥ ५२

खड्गं नीत्वोग्रसेनस्य पुरो धृत्वा कृताञ्जलिः।
ननाम कार्ष्णिर्यदुभिर्भ्रातृभिः सह मैथिल॥ ५३

श्रीकृष्णं सबलं नत्वा सर्वान् वृद्धान् प्रणम्य च।
गर्गाचार्यं ननामाशु प्रद्युम्नो मीनकेतनः॥ ५४

मिथिलेश्वर! उनके धनुषसे छूटे हुए चमकीले बाणोंद्वारा देवताओंके अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये, उनके कवचोंकी धज्जियाँ उड़ गयीं। जैसे सूर्यकी किरणोंसे कुहासेके बादल फट जाते हैं, उसी प्रकार वे देवता दसों दिशाओंमें भाग खड़े हुए॥ ४३॥

इस प्रकार साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न स्वयंवर जीतकर और इलावृतखण्डपर विजय पाकर भारतवर्षको जानेके लिये उद्यत हुए। भाइयों, यादवों, सैनिकों तथा समस्त मन्त्रीजनोंके साथ विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए वे भारत-खण्डमें आये॥ ४४-४५॥

अनेकदेशोंको देखते हुए जम्बूद्वीपविजयी बलवान् वीर श्रीकृष्णकुमार क्रमशः आनर्त-प्रदेशमें और द्वारकाके देशोंमें आये। प्रद्युम्नके द्वारा भेजे गये बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् उद्धवने राजसभामें पहुँचकर राजा उग्रसेनको तथा भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया। प्रत्येक वर्षमें क्या-क्या हुआ और जम्बूद्वीपपर किस तरह विजय मिली, वह सारा वृत्तान्त उद्धवजीने यथोचित रूपसे कह सुनाया॥ ४६—४८॥

तब राजा उग्रसेन श्रीकृष्ण-बलदेव एवं सम्पूर्ण वृद्धजनोंके साथ प्रद्युम्नको लानेके लिये निकले। गीतवाद्योंकी ध्वनि तथा वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोषके साथ मोतियों, खीलों और फूलोंकी वर्षापूर्वक मङ्गल-पाठ करते हुए लोग उनकी अगवानीके लिये आये॥ ४९-५०॥

नरेश्वर! एक गजराजको आगे करके सोनेके कलश, गन्धर्व, अप्सराएँ, शङ्ख, दुन्दुभि, वेणु, गन्ध, अक्षत, सोनेके पात्र, फूल, धूप तथा जौके अङ्कुर साथ लिये राजा उग्रसेन प्रद्युम्नके सम्मुख आये॥ ५१-५२॥

मैथिल! श्रीकृष्णकुमारने यादव-बन्धुओंके साथ खड्ग ले जाकर महाराज उग्रसेनके सामने रख दिया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। मीनकेतन प्रद्युम्नने श्रीकृष्ण-बलरामको मस्तक झुकाकर समस्त वृद्धजनों-को प्रणाम करनेके अनन्तर शीघ्र जाकर श्रीगर्गाचार्यके चरणोंमें नमस्कार किया॥ ५३-५४॥

संश्लाघ्याभ्यर्च्य विधिवद्ब्राह्मणैर्वेदसूक्तिभिः।
आरोप्य वारणे कार्ष्णिमुग्रसेनः पुरीं ययौ॥ ५५

राजा उग्रसेन भूरि-भूरि प्रशंसा करके, वैदिकमन्त्रों तथा ब्राह्मणोंके सहयोगसे विधिवत् पूजन करके, प्रद्युम्नको हाथीपर बिठाकर द्वारकापुरीमें गये॥ ५५॥

मङ्गलं द्वारकायां च सर्वत्राभूद्गृहे गृहे।
इत्थं नृप ते कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ५६

द्वारकामें सर्वत्र—घर-घरमें मङ्गल उत्सव हुआ। नरेश्वर! इस प्रकार मैंने तुम्हारी पूछी हुई सब बातें कहीं, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ५६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे प्रद्युम्नद्वारकागमनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रद्युम्नका द्वारका-गमन' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञमें ऋषियों, ब्राह्मणों, राजाओं, तीर्थों, क्षेत्रों, देवगणों तथा सुहृद्-सम्बन्धियोंका शुभागमन

बहुलाश्व उवाच

कथं चकार विधिवद्राजसूयाध्वरं नृपः।
एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र त्वं परावरवित्तमः॥ १

श्रीनारद उवाच

अथोग्रसेनो नृपतिः सर्वधर्मभृतां वरः।
श्रीकृष्णेन सहायेन क्रतुराजं चकार ह॥ २
गर्गाद्यदुकुलाचार्यान् मुहूर्तं बोध्य यत्नतः।
बन्धुभ्यः प्रददौ राजन् सुहृद्भ्योऽपि निमन्त्रणम्॥ ३
भक्त्या परमयाहूता ऋषयो मुनयो द्विजाः।
आजग्मुर्द्वारकां सर्वे पुत्रशिष्यैः समावृताः॥ ४
वेदव्यासः शुकः साक्षान्मैत्रेयोऽथ पराशरः।
पैलः सुमन्तुर्दुर्वासा वैशम्पायन इत्यपि॥ ५
जैमिनिर्भार्गवो रामो दत्तात्रेयोऽसितो मुनिः।
अङ्गिरा वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः कण्व एव च॥ ६
विश्वामित्रः शतानन्दो भारद्वाजोऽथ गौतमः।
कपिलः सनकाद्याश्च विभाण्डश्च पतञ्जलिः॥ ७
द्रोणः कृपः प्राड्विपाकः शाण्डिल्यो मुनिसत्तमः।
अन्ये च मुनयो राजन् सशिष्याश्च समागताः॥ ८
ब्रह्मा शिवो जम्भभेदी देवा रुद्रगणास्तथा।
आदित्या मरुतः सर्वे वसवो ह्यग्नयोऽश्विनौ॥ ९
यमोऽथ वरुणः सोमो धनदो गणनायकः।
सिद्धा विद्याधराश्चैव गन्धर्वाः किन्नरादयः॥ १०

बहुलाश्वने पूछा—विप्रवर! आप परावर-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः मुझे यह बताइये कि राजा उग्रसेनने किस प्रकार राजसूय यज्ञका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया?॥ १॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! तदनन्तर समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजा उग्रसेनने भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे क्रतुराज राजसूयका सम्पादन किया। यदुकुलके आचार्य गर्गजीसे यत्नपूर्वक मुहूर्त पूछकर भाई-बन्धुओं तथा सुहृदोंको भी निमन्त्रण दिया। अत्यन्त भक्ति-भावसे बुलाये जानेपर ऋषि, मुनि तथा ब्राह्मण—सब लोग अपने पुत्रों और शिष्योंके साथ द्वारकामें आये॥ २—४॥

राजन्! साक्षात् वेदव्यास, शुकदेव, मैत्रेय, पराशर, पैल, सुमन्तु, दुर्वासा, वैशम्पायन, जैमिनि, भार्गव परशुराम, दत्तात्रेय, असित, अङ्गिरा, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, कण्व, विश्वामित्र, शतानन्द, भारद्वाज, गौतम, कपिल, सनकादि, विभाण्ड, पतञ्जलि, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, प्राड्विपाक, मुनिश्रेष्ठ शाण्डिल्य तथा दूसरे-दूसरे मुनि वहाँ शिष्योंसहित पधारे॥ ५—८॥

ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, देवगण, रुद्रगण, आदित्यगण, मरुद्गण, समस्त वसुगण, अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार, यम, वरुण, सोम, कुबेर, गणेश, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व तथा किन्नरों आदिका शुभागमन हुआ॥ ९-१०॥

गन्धर्व्यप्सरसः सर्वा विद्याधर्यः समागताः।
वेताला दानवा दैत्याः प्रह्लादो बलिना सह॥ ११

रक्षोभिर्भीषणैः सार्धं लङ्काधीशो विभीषणः।
सर्वैश्च वानरैः सार्धं हनुमान् वायुनन्दनः॥ १२

ऋक्षैश्च दंष्ट्रिभिः सार्धं जाम्बवानृक्षराड् बली।
सर्वैश्च पक्षिभिः सार्धं गरुडः पक्षिराड् बली॥ १३

सर्वैः सरीसृपैः सार्धं वासुकिर्नागराड् बली।
गोरूपधारिणी पृथ्वी सर्वाभिः कामधेनुभिः॥ १४

सर्वैः शैलैर्मूर्तिमद्भिः सुमेरुश्च हिमाचलः।
गुल्मवृक्षलताभिश्च वटः साक्षात्प्रयागराट्॥ १५

महानदीभिः सहिता श्रीगङ्गा यमुना नदी।
पारावाराः सप्त तथा रत्नोपायनसंयुताः॥ १६

आजग्मुरुग्रसेनस्य राजसूयस्य चाध्वरे।
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा नवारण्या नवोषराः॥ १७

चतुर्दशैव गुह्यानि विख्यातानि महीतले।
तीर्थराजः प्रयागश्च पुष्करं बद्रिकाश्रमः॥ १८

सिद्धाश्रमो विनशनं कुण्डैः सर्वैः सरोवरैः।
वनानि दण्डकादीनि सर्वैश्चोपवनैः सह॥ १९

क्षेत्रैः समग्रैर्विमलैरेते तत्र समाययुः।
श्रीमद्गोवर्धनो नाम गिरिराजो व्रजाद्रिरिः॥ २०

वृन्दावनं व्रजवनैः सरः कुण्डैः समाययौ।
कीर्तिर्यशोमतिः साक्षाद्गोपीभिर्गोपिकेश्वरी॥ २१

श्रीराधा शिबिकारूढा सखीसङ्घैश्च कोटिभिः।
शतयूथश्च गोपीनां द्वारकां प्रययौ मुदा॥ २२

तासां वासो यत्र यत्र गोपीभूमिश्च साभवत्।
तदङ्गरागसञ्जातं गोपीचन्दनमेव हि॥ २३

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो नरो नारायणो भवेत्।
चतुर्वर्णास्तथा सर्वे आजग्मुस्तस्य चाध्वरे॥ २४

धृतराष्ट्रो बुद्धिचक्षुः साक्षाद् दुर्योधनः कलिः।
शाल्वो भीष्मश्च कर्णश्च कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २५

गन्धर्व-सुन्दरियाँ, अप्सराएँ और समस्त विद्याधरियाँ वहाँ आयीं। वेताल, दानव, दैत्य, प्रह्लाद, बलि, भीषण राक्षसोंके साथ लङ्कापति विभीषण तथा समस्त वानरोंके साथ वायुनन्दन हनुमान् पधारे॥ ११-१२॥

ऋक्षों और दाढ़वाले वन्य पशुओंके साथ बलवान् ऋक्षराज जाम्बवान्‌का आगमन हुआ। समस्त पक्षियोंके साथ बलवान् पक्षिराज गरुड़ आये। समस्त सर्पगणोंको साथ लिये बलवान् नागराज वासुकि पधारे। सम्पूर्ण कामधेनुओंके साथ गोरूपधारिणी पृथ्वीका आगमन हुआ। समस्त मूर्तिमान् पर्वतोंके साथ मेरु और हिमालय पधारे। गुल्मों, वृक्षों और लताओंके साथ प्रयागके वृक्षराज अक्षयवटका शुभागमन हुआ॥ १३—१५॥

महानदियोंके साथ श्रीगङ्गा और यमुना नदी आयीं। रत्नोंकी भेंटके साथ सातों समुद्र पधारे। ये सब-के-सब उग्रसेनके राजसूय यज्ञमें सहर्ष आये। सात स्वर, तीन ग्राम, नौ अरण्य, महीतलमें नौ ऊसर, विख्यात चौदह गुह्यस्थान, तीर्थराज प्रयाग, पुष्कर, बदरिकाश्रम, सिद्धाश्रम, कुण्डों और समस्त सरोवरोंसहित विनशन (कुरुक्षेत्र), समस्त उपवनोंके साथ दण्डक आदि वन—ये सब-के-सब समग्र विमल क्षेत्रोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए॥ १६—१९ १/२॥

व्रजसे श्रीमान् गिरिराज गोवर्धन, वृन्दावन, दूसरे-दूसरे वन, सरोवर तथा कुण्ड भी पधारे। रानी कीर्तिदा और गोपियोंके साथ गोपिकेश्वरी यशोदा साक्षात् पधारीं। अपने करोड़ों सखी-समूहोंके साथ शिबिकारूढ़ा श्रीराधाका भी शुभागमन हुआ। गोपियोंके सौ यूथ भी द्वारकामें सानन्द पधारे॥ २०—२२॥

जहाँ आजकल गोपी-भूमि है, वहीं उन्हें ठहराया गया। उन्हींके अङ्गरागसे वहाँ गोपीचन्दन प्रकट हुआ। जिसके अङ्गमें गोपीचन्दन लग जाता है, वह मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है। चारों वर्णोंके सभी लोग उस यज्ञमें उपस्थित हुए थे॥ २३-२४॥

प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र, कलिका अवतार साक्षात् दुर्योधन, शाल्व, भीष्म, कर्ण, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर,

भीमोऽर्जुनोऽथ नकुलः सहदेवस्तथापरे।
दमघोषो वृद्धशर्मा जयसेनो महानृपः॥ २६
धृष्टकेतुर्भीष्मकश्च नग्नजित्कोसलेश्वरः।
बृहत्सेनो धृतिः साक्षान्मैथिलेशः पितामहः॥ २७
अन्येऽपि तत्र राजानः सुहृत्सम्बन्धिबान्धवाः।
सहस्त्रीभिस्तथा पौत्रैः पुत्रैराजग्मुरध्वरम्॥ २८

भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, दमघोष, वृद्धशर्मा, महाराज जयसेन, धृष्टकेतु, भीष्मक, कोसलराज नग्नजित्, बृहत्सेन तथा तुम्हारे पितामह साक्षात् मिथिलेश्वर धृति तथा अन्य राजा, सुहृद्-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव अपनी रानियों तथा पुत्र-पौत्रोंके साथ उस यज्ञमें पधारे थे॥ २५—२८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे स्वजननिमन्त्रणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'स्वजन-निमन्त्रण' नामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

राजसूय-यज्ञका मङ्गलमय उत्सव; देवताओं, ब्राह्मणों तथा अतिथियोंका दान-मानसे सत्कार

श्रीनारद उवाच

अर्थसिद्धेरिव द्वारे रैवताद्रिसमुद्रयोः।
मध्ये पिण्डारके क्षेत्रे यज्ञारम्भो बभूव ह॥ १

पञ्चयोजनविस्तीर्णः कुण्डोऽभूद्यस्य चाध्वरे।
योजनं ब्रह्मकुण्डस्तु गव्यूतिः पञ्च कुण्डकाः॥ २

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! अर्थसिद्धिके द्वारभूत पिण्डारकक्षेत्रमें, जो रैवतकपर्वत और समुद्रके बीचमें स्थित है, यज्ञका आरम्भ हुआ। उस यज्ञमें जो कुण्ड बना, उसका विस्तार पाँच योजनका था। ब्रह्मकुण्ड एक योजनका और पाँच कुण्ड दो कोसमें बनाये गये॥ १-२॥

मेखलागर्तविस्तारवेदीभिर्निर्मिताः शुभाः।
सहस्रहस्तमुच्चाङ्गो यज्ञस्तम्भो बभौ महान्॥ ३

पञ्चयोजनविस्तीर्णः सौवर्णो यज्ञमण्डपः।
वितानतोरणै रेजे कदलीखण्डमण्डितः॥ ४

वे सभी कुण्ड मेखला, गर्त, विस्तार और वेदियोंके साथ सुन्दर ढंगसे निर्मित हुए थे। वहाँका महान् यज्ञस्तम्भ एक हजार हाथ ऊँचा था। सुवर्णमय यज्ञमण्डपका विस्तार पाँच योजन था, जो चँदोवों और बंदनवारोंसे सुशोभित था। केलेके खंभे उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ ३-४॥

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः।
देवैश्च सहितो राजा बभौ शक्र इवाध्वरे॥ ५

यज्ञावतारः श्रीकृष्णः परिपूर्णतमोऽध्वरे।
बभौ पुत्रैश्च पौत्रैश्च परमात्मेव भूतिभिः॥ ६

भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्ह वंशके यादवोंसे घिरे हुए राजा उग्रसेन देवताओंसे युक्त इन्द्रकी भाँति उस यज्ञमण्डपमें शोभा पाते थे। जैसे परमात्मा अपनी विभूतियोंसे शोभा पाता है, उसी प्रकार परिपूर्णतम भगवान् यज्ञावतार श्रीकृष्ण उस यज्ञमें अपने पुत्रों और पौत्रोंसे सुशोभित होते थे॥ ५-६॥

महासम्भृतसम्भारे राजसूयेऽध्वरे वरे।
गर्गाचार्यं गुरुं कृत्वा यदुराजो हि दीक्षितः॥ ७

होतारो दश लक्षाणि दश लक्षाणि दीक्षिताः।
अध्वर्यवः पञ्चलक्षमुद्गातारस्तथापरे॥ ८

महान् सम्भारका संचय करके, गर्गाचार्यको गुरु बनाकर यदुराज उग्रसेनने क्रतुश्रेष्ठ राजसूय यज्ञकी दीक्षा ली। उस यज्ञमें दस लाख होता, दस लाख दीक्षित अध्वर्यु और पाँच लाख उद्गाता भी थे॥ ७-८॥

हस्तिशुण्डासमा धारा भुक्त्वाज्यस्य हुताशनः।
अजीर्णं प्राप तद्यज्ञे चित्रं विबुध मैथिल॥ ९

केऽपि जीवास्त्रिलोक्यां तु न बभूवुर्बुभुक्षिताः।
सर्वे देवास्तु सोमेन ह्यजीर्णत्वमुपागताः॥ १०

रुचिमत्या धर्मपत्न्योग्रसेनो यदुराड् बली।
अध्वरावभृथस्नानं तीर्थे पिण्डारकेऽकरोत्॥ ११

व्यासाद्यैर्मुनिभिः स्नातो विधिवद्वेदसूक्तिभिः।
यथा दक्षिणया यज्ञो रुचिमत्या बभौ नृप॥ १२

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा।
उग्रसेनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ १३

गजानां हेमभाराणां नियुतानि चतुर्दश।
शतार्बुदं हयानां तु यज्ञान्ते दक्षिणां पराम्॥ १४

कोटिशो नवरत्नानां महाहाराम्बरैः सह।
गर्गाचार्याय मुनये गृहोपस्करसंयुताम्॥ १५

उग्रसेनो ददौ राजा यादवेन्द्रो महामनाः।
गजानां तत्र साहस्रं हयानामयुतं तथा॥ १६

विंशद्भारं सुवर्णानां ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ।
मरुत्तस्य महायज्ञे त्यक्तपात्रा यथा द्विजाः॥ १७

तथोग्रसेनस्य क्रतौ सन्तुष्टा हर्षिता गताः।
सन्तुष्टा देवताः सर्वाः प्राप्तभागा दिवं गताः॥ १८

भूरिद्रव्या बन्दिनश्च जयारावा गृहं गताः।
रक्षोदैत्या वानराश्च दंष्ट्रिणः पक्षिणस्तथा॥ १९

नागाः सन्तुष्टमनसः सर्वे स्वं स्वं गृहं ययुः।
गावः शैला वृक्षसङ्घा नद्यस्तीर्थाश्च सिन्धवः॥ २०

सन्तुष्टाः प्राप्तभागा ये ते सर्वे स्वं गृहं ययुः।
राजानो ये समाहूताः पारिबर्हेण भूयसा॥ २१

अग्निकुण्डमें हाथीकी सूँड़के सामन मोटी घृतकी धारा गिरायी जाती थी, जिसे खा-पीकर अग्निदेवता अजीर्ण-रोगके शिकार हो गये, हे प्राज्ञ मैथिल! यह आश्चर्यजनक बात हुई! उन दिनों तीनों लोकोंमें कोई भी जीव भूखे नहीं रह गये। सब देवता सोमपान करके अजीर्णके रोगी हो गये॥ ९-१०॥

अपनी धर्मपत्नी रुचिमतीके साथ बलवान् यादव-राज उग्रसेनने पिण्डारकतीर्थमें यज्ञका अवभृथ-स्नान किया। वे व्यास आदि मुनीश्वरोंके साथ वेद-मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक नहाये। जैसे दक्षिणासे यज्ञकी शोभा होती है, उसी तरह रानी रुचिमतीके साथ राजा उग्रसेनकी शोभा हुई। देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता उग्रसेनके ऊपर फूल बरसाने लगे॥ ११—१३॥

सोनेके हारसे विभूषित चौदह लाख हाथी उग्रसेनने दान किये। सौ अरब घोड़े उन्होंने यज्ञान्तमें दक्षिणाके रूपमें दिये। बहुमूल्य हारों और वस्त्रोंके साथ करोड़ों नवरत्न मुनिवर गर्गाचार्यको भेंट किये। साथ ही उन्हें घर-गृहस्थीके उपकरण भी अर्पित किये॥ १४-१५॥

महामनस्वी यादवेन्द्र राजा उग्रसेनने उस यज्ञमें एक हजार हाथी, दस हजार घोड़े और बीस भार सुवर्ण प्रत्येक ब्राह्मणको दिये। जैसे राजा मरुत्तके यज्ञमें ब्राह्मणलोग दक्षिणासे इतने संतुष्ट हुए थे कि अपने-अपने सुवर्णमय पात्र भी छोड़कर चल दिये थे, उसी प्रकार महाराज उग्रसेनके इस यज्ञमें भी ब्राह्मण संतुष्ट तथा हर्षोत्फुल्ल होकर अपने घर लौटे। अपने-अपने भागको पाकर संतुष्ट हुए सब देवता स्वर्गलोकको चले गये॥ १६—१८॥

बंदीजनोंको भी बहुत द्रव्य दिया गया, जिससे जय-जयकार करते हुए वे अपने घर गये। राक्षस, दैत्य, वानर, दाढ़वाले पशु तथा पक्षी भी संतुष्ट होकर गये। समस्त नाग भी संतुष्टचित्त होकर अपने-अपने घर पधारे। गौएँ, पर्वत, वृक्ष-समुदाय, नदियाँ, तीर्थ तथा समुद्र—सबको अपना-अपना भाग प्राप्त हुआ और वे सब संतुष्ट होकर अपने-अपने स्थानको

पूजिता दानमानाभ्यां तेऽपि स्वं स्वं गृहं गताः।
नन्दाद्या गोपमुख्या ये श्रीकृष्णेन प्रपूजिताः॥ २२

हर्षिताः प्रेमदानाभ्यां तेऽपि सर्वे व्रजं ययुः।
एतत्ते कथितं राजन् महायज्ञस्य मङ्गलम्॥ २३

यत्र श्रीकृष्णचन्द्रोऽस्ति तत्र किं सफलं न हि।
ये शृण्वन्ति कथामेतां पठन्ति सततं नराः॥ २४

धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षस्तेषां प्रजायते॥ २५

पूर्णः परेशः परमेश्वरः प्रभुः
पुनातु वो यः पुरुषः पुराणः।
शृण्वन्ति ये तस्य कथां विचित्रां
कुर्वन्ति तीर्थं स्वकुलं नरास्ते॥ २६

छलेन यज्ञस्य हरिः परेश्वरो
भारं विदेहेश भुवोऽवतारयत्।
योऽभूच्चतुर्व्यूहधरो यदोः कुले
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूभृते॥ २७

पधारे। जो राजा आमन्त्रित किये गये थे, उन्हें भी बहुत भेंट देकर दान-मानके द्वारा उनकी पूजा की गयी और वे सब संतुष्ट होकर अपने-अपने घर गये। नन्द आदि मुख्य-मुख्य गोपोंका पूजन स्वयं श्रीकृष्णने किया। वे सब लोग प्रेम और दानसे प्रसन्न हो व्रजको लौटे॥ १९—२२ १/२॥

राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे राजसूय महायज्ञके मङ्गलमय उत्सवका वर्णन किया। जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहाँ कौन-सा कार्य सफल नहीं होगा? जो मनुष्य सदा इस कथाको पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होती है॥ २३—२५॥

भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण, परेश, परमेश्वर और पुराण-पुरुष हैं; वे तुमको पवित्र करें। जो मनुष्य उनकी इस विचित्र कथाको सुनते हैं, वे अपने कुलको पवित्र कर देते हैं। विदेहराज! परमेश्वर श्रीहरिने यज्ञके बहाने समस्त भूतलका भार उतार दिया। जो यदुकुलमें चतुर्व्यूह-रूप धारण करके प्रकट हुए, उन अनन्त-गुणशाली भुवनपालक परमेश्वरको नमस्कार है॥ २६-२७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उग्रसेनमहोदये राजसूययज्ञोत्सववर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें उग्रसेनके महान् अभ्युदयके प्रसङ्गमें 'राजसूय-यज्ञोत्सवका वर्णन' नामक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५०॥

॥ विश्वजित्खण्ड सम्पूर्ण॥

श्रीगर्ग-संहिता

[अष्टम खण्ड]

श्रीबलभद्रखण्ड

भगवान् बलभद्र

श्रीबलभद्रद्वारा द्विविद वानरका वध

[बलभद्रख० अ० ८]

राजा रेवतद्वारा बलरामजीको रेवतीका पाणिग्रहण कराना

[बलभद्रख० अ० ८]

बलरामजीद्वारा हस्तिनापुरपर क्रोध

[बलभद्रख० अ० ८]

श्रीबलभद्रद्वारा बल्वल दैत्यका वध

[बलभद्रख० अ० ८]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

बलभद्रखण्ड

पहला अध्याय

श्रीबलभद्रजीके अवतारका कारण

बहुलाश्व उवाच

श्रुतं तव मुखाद्ब्रह्मन् मङ्गलं परमाद्भुतम्।
सुधाखण्डात्परं मिष्टं खण्डं विश्वजितं परम्॥ १

परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
षोडशस्त्रीसहस्राणां पुत्रा दश दशाभवन्॥ २

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बभूवुः कोटिशो मुने।
रजांसि भूमेर्गणयेन्न कविश्चेद्धरेः कुलम्॥ ३

रेवत्यां बलदेवस्य रामस्यापि महात्मनः।
पुत्रोदयः कथं नु स्यादेतन्मे ब्रूहि तत्त्वतः॥ ४

श्रीनारद उवाच

बाढमुक्तं भगवतः सङ्कर्षणस्याच्युताग्रजस्य बलभद्रस्य रामस्य कामपालस्य कथां सर्वथा तवाग्रे कथयिष्यामि॥ ५॥

अथ कदाचित्प्राड्विपाको नाम मुनीन्द्रो योगीन्द्रो दुर्योधनगुरुर्गजाह्वयं नाम पुरमाजगाम॥ ६॥

सुयोधनेन सम्पूजितः परमादरेण सोपचारेण महार्हसिंहासने स्थितोऽभूत्॥ ७॥

तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य कृताञ्जलिः पुरः स्थितो मनःसन्देहं स्मृत्वा धार्तराष्ट्र इति होवाच॥ ८॥

सङ्कर्षणः साक्षाद्बलभद्रः किं कारणात्कस्मा-ल्लोकात्केन प्रार्थितो भूलोकानाजगाम येनेदं पुरं

राजा बहुलाश्वने कहा—ब्रह्मन्! आपके श्रीमुखसे मैंने अमृतकी अपेक्षा भी परम मधुर, मङ्गलमय, परम अद्भुत विश्वजित्‌खण्डका श्रवण किया। महात्मा श्रीकृष्ण परिपूर्णतम भगवान् हैं, उनकी सोलह हजार पत्नियोंमेंसे प्रत्येकके दस-दस पुत्र भी हुए॥ १-२॥

मुनिवर! उनके फिर करोड़ों पुत्र और पौत्र उत्पन्न हुए। पृथ्वीके रजकण गिने जा सकते हैं, किंतु कोई विद्वान् कवि भी श्रीकृष्णके वंशजोंकी गणना करनेमें समर्थ नहीं है। महात्मा बलरामजीकी रेवती पत्नी थीं। उनके एक भी पुत्र नहीं हुआ। कृपापूर्वक इसका रहस्य बताइये॥ ३-४॥

श्रीनारदजी कहने लगे—तुम्हारा प्रश्न बहुत सुन्दर है। भगवान् अच्युतके बड़े भाई भगवान् संकर्षण कामपाल हैं। उन बलरामजीकी कथा मैं तुम्हारे सामने भलीभाँति वर्णन करूँगा॥ ५॥

दुर्योधनके गुरु प्राड्विपाक नामक मुनि योगियोंके और मुनियोंके अधीश्वर थे। वे एक दिन हस्तिनापुर पधारे। दुर्योधनने महान् आदरके साथ उनका विविध उपचारोंके द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजन किया। फिर वे महामूल्यवान् सिंहासनपर विराजित हुए॥ ६-७॥

दुर्योधन उनकी वन्दना और प्रदक्षिणा करके, हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया। फिर अपने मनके संदेहको स्मरण करके उनसे कहा—'भगवान् संकर्षण साक्षात् बलभद्रजीका इस भूमण्डलमें किस कारणसे और किनकी प्रार्थनासे शुभागमन हुआ? उन्होंने मेरे

तिर्यग्भूतमभवत्तस्य मम गुरोर्गदाशिक्षाकरस्याहो तत्प्रभावं नितरां वदतात्॥ ९॥

प्राड्विपाक उवाच

युवराज कुरूद्वह यदुवरस्य प्रभावं शृणु यच्छ्रवणे पापहानिः परं भूयात्॥ १०॥

अस्मिन् द्वापरान्ते नृपव्याजदैत्यानीककोटिभिर्भूरिभराक्रान्ता भूर्गौर्भूत्वा स्वयम्भुवं शरणं जगाम॥ ११॥

तदुपचर्य सुरश्रेष्ठः सर्वसुरगणैः समृडो वैकुण्ठनाथं पुरस्कृत्य श्रीवामनवामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरमार्गेण बहिर्निर्गत्य कोटिशोऽण्डनिचयं ब्रह्मद्रवे सम्प्रेक्षन् विरजातीरं प्राप्तवान्॥ १२॥

अथाग्रेऽसंख्यकोटिमार्तण्डज्योतिषां मण्डलमवेक्ष्य धाता नत्वा ध्यात्वा तत्रानन्तं सहस्रवदनं सङ्कर्षणं गुणलक्षणलक्षितं देवैः सह ददर्श॥ १३॥

तद्भोगकुण्डलीभूतोत्सङ्गे वृन्दारण्यकालिन्दीगोवर्धनाद्रिकुञ्जनिकुञ्जलतातरुपुञ्जगोपालगोपीगोकुलसङ्कुलं ललितं गोलोकं सर्वलोकनमस्कृतं समेत्य तत्र निजनिकुञ्जे निजाज्ञां नीत्वान्तःप्राप्य साक्षात्परिपूर्णतमं स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रमसंख्यब्रह्माण्डपतिं श्रीराधापतिं श्यामलच्छविं पीताम्बर-

नगरको उलटाकर टेढ़ा कर दिया था। वे मेरे गुरु हैं। मुझको उन्होंने ही गदायुद्ध सिखलाया था। आप उनके प्रभावका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये'॥ ८-९॥

प्राड्विपाक मुनिने कहा—कुरुसत्तम युवराज! यादवश्रेष्ठ बलभद्रजीका प्रभाव सुनो। उसके सुननेसे पापोंका सम्पूर्णतया विनाश हो जाता है॥ १०॥

इसी द्वापरके अन्तकी बात है, राजाओंके रूपमें करोड़ों-करोड़ों दैत्यसेनाओंने उत्पन्न होकर पृथ्वीको भयानक भारसे दबा दिया। तब पृथ्वीने गौका रूप धारण करके स्वयम्भू ब्रह्माजीकी शरण ली॥ ११॥

देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने सम्पूर्ण देवताओंके और शंकरजीके साथ श्रीवैकुण्ठनाथको आगे किया और भगवान् वामनदेवके बायें पैरके अँगूठेके नखसे कटे हुए ऊर्ध्व ब्रह्माण्डकटाहके छिद्रके द्वारा वे बाहर निकले। वहाँ ब्रह्माजी देवताओंसहित ब्रह्मद्रव (श्रीगङ्गाजी)-के समीप उपस्थित हुए और उसमें करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डोंको लुढ़कते देखा। तदनन्तर वे विरजा नदीके तटपर पहुँचे॥ १२॥

इसके बाद देवताओंके साथ ब्रह्माने अनन्तकोटि सूर्योंकी ज्योतियोंके समान तेजोमण्डलके दर्शन किये। उन्होंने ध्यान और प्रणाम किया। वहाँ देवताओंसहित ब्रह्माजीको भगवान् संकर्षणके दर्शन हुए। उनके हजार मुख थे और उनका श्रीविग्रह अनन्त गुणोंसे लक्षित था॥ १३॥

वे भगवान् अनन्त कुण्डलाकारमें विराजित थे। उन अनन्तकी गोदमें उन्हें वृन्दावन, यमुना नदी, गोवर्धन गिरि, कुञ्ज-निकुञ्ज, लता-बेलोंकी कतारें, भाँति-भाँतिके वृक्ष, गोपाल, गोपी और गोकुलसे परिपूर्ण सर्वलोकके द्वारा नमस्कृत परमसुन्दर गोलोकधामकी उपलब्धि हुई और वहाँ निकुञ्जेश्वर स्वयं भगवान्‌की अनुमति प्राप्त करके वे अन्तःपुरमें पहुँचे। वहाँ उस निजनिकुञ्जमें साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विराजित थे, जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं। उन राधापति भगवान्‌की श्यामसुन्दर कान्ति है। वे पीताम्बर पहने हुए हैं। उनके गलेमें वनमाला सुशोभित है और वे वंशी धारण किये हुए

वनमालावंशीधरं क्वणत्कनकनूपुरकिङ्किणीकट-काङ्गदहारस्फुरत्कौस्तुभाङ्गुलीयकैः सर्वतः परिस्फुरत्-कोटिबालमार्तण्डमण्डलं किरीटकुण्डलमण्डित-गण्डस्थलमलकालिभिर्विभ्राजमानमुखारविन्दं नमस्कृत्य विधिः सर्वैः सर्वं भूभारवृत्तान्तं कथयाम्बभूव॥ १४॥

हैं। ध्वनि करते हुए स्वर्णके नूपुर, किङ्किणी, कड़े, बाजूबंद, हार, उज्ज्वल आभापूर्ण कौस्तुभमणि तथा अँगूठियोंसे अलंकृत हैं। करोड़ों-करोड़ों बाल-सूर्योंके समान द्युतिवाले किरीट और कुण्डल उन्हें सुशोभित कर रहे हैं। उनका मुखकमल अलकावलियोंसे समलंकृत है। ऐसे कमलवदन भगवान्‌को ब्रह्मा आदि देवताओंने नमस्कार किया और पृथ्वीके भारका सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया॥ १४॥

तेषां विज्ञप्तिं विज्ञाय भूमिभारहरणार्थं भगवान् स्वजनान् सर्वदेवान् यथातथमाज्ञां दत्वानन्तं सहस्रवदनमिति होवाच॥ १५॥

अङ्ग पुरा त्वमपि वसुदेवस्य देवक्यां भूत्वा रोहिण्युदरादाविर्भव पश्चाद्देवक्याः पुत्रतामहं प्राप्स्यामि॥ १६॥

भगवान् श्रीकृष्णने उनकी सब बातोंको सुन-जानकर अपने निज जन समस्त देवताओंको पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये यथायोग्य आदेश दिया और सहस्र मुखवाले भगवान् अनन्तसे वे यों कहने लगे—'हे अनन्त! तुम पहले वसुदेवजीकी पत्नी देवकीके गर्भमें जाकर फिर रोहिणीके उदरसे प्रकट होओ। तदनन्तर मैं देवकीके पुत्रके रूपमें आविर्भूत होऊँगा'॥ १५-१६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे बलदेवावतारकारणं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलभद्रके अवतारका कारण' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

श्रीबलभद्रजीके अवतारकी तैयारी

प्राड्विपाक उवाच

इत्युक्तः सहस्रवदनो गन्तुमभ्युदितः स्वसभायां स्थितोऽभूत्। तदैव सिद्धचारणगन्धर्वाः सर्वतस्तं नतकन्धरा बभूवुः॥ १॥

प्राड्विपाक मुनिने कहा—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके कहनेपर हजार मुखवाले अनन्त जानेके लिये तैयार होकर अपनी सभामें जाकर विराजित हुए। उसी समय सिद्ध, चारण और गन्धर्वोंने आकर अत्यन्त विनीत भावसे सिर झुकाकर उन्हें सब ओरसे नमस्कार किया॥ १॥

अथ सुमतिः सारथिर्दिव्यं रथं तालाङ्कं साश्वं समानीय सम्मुखं स्थितोऽभूत्॥ २॥

इसके बाद तालके चिह्नसे सुशोभित ध्वजावाले दिव्य रथमें घोड़े जोतकर सुमति नामक सारथि उनके सम्मुख उपस्थित हुआ॥ २॥

परसैन्यविदारणं मुसलं दैत्यदमनं हलं ते तूर्णं पुरस्तादुपतस्थतुः ब्रह्ममयं नाम वर्म चोपतस्थे॥ ३॥

शत्रुकी सेनाका विदारण करनेवाला 'मुसल', दैत्योंका कचूमर निकालनेवाला 'हल' और ब्रह्ममय नामक 'कवच' भी उनके सामने आकर उपस्थित हो गया॥ ३॥

अथ तत्र श्रीबलभद्रसभायां सर्वेषां पश्यतां रमावैकुण्ठात्समागतः पाणिनिपतञ्जल्यादिभिर्मुनिभिः स्तूयमानः सहस्रफणमौलिविराजमानः सिद्धचारणचामरसंसेव्यमानः शेषस्तमनन्तं सङ्कर्षणं स्तुत्वा तद्विग्रहे संलीनोऽभूत्॥ ४॥

तदनन्तर वहाँ सबके देखते-देखते बलभद्रजीकी सभामें श्रीशेषजी रमा-वैकुण्ठसे पधारे। उनके एक सहस्र फनोंपर मुकुट सुशोभित थे। सिद्ध-चारणगण चँवर डुला रहे थे तथा पाणिनि और पतञ्जलि आदि मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे। ऐसे वे शेषजी आकर स्तुति करके संकर्षणके श्रीविग्रहमें विलीन हो गये॥ ४॥

अथाजितवैकुण्ठात्समागतोऽजैकपादहिर्बुध्न्यबहुरूपमहदादिभिः संवेष्टितो घोरैः प्रेतविनायकैः संवेष्टितः शेषः सहस्रवदनः समागत्य स सभायामनन्तं स्तुत्वा तस्मिन् संलीनोऽभूत्॥ ५॥

उसके बाद अजितवैकुण्ठसे सहस्रवदन शेषजीका वहाँ शुभागमन हुआ। वे अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महद् आदि रुद्रोंसे घिरे हुए थे। भयंकर प्रेत और विनायक आदि उनके चारों ओर फैले थे। बलरामजीकी सभामें आकर शेषनागने उनका स्तवन किया और स्तवन करनेके पश्चात् वे उन्हींके शरीरमें विलीन हो गये॥ ५॥

अथ श्वेतद्वीपात्समागतः कुमुदकुमुदाक्षादिभिः पार्षदप्रवरैः संसेव्यमानः सहस्रफणमौलिविराजमानः सिताचलाभो नीलाम्बरो नीलकुन्तलाभो भीमाभः सर्वेषां पश्यतामनन्तविग्रहे सोऽपि संलीनोऽभूत्॥ ६॥

तदनन्तर श्वेतद्वीपसे कुमुद और कुमुदाक्ष आदि प्रधान पार्षदोंके द्वारा सेवित, हजार फनोंके ऊपर विराजमान मुकुटोंसे सुशोभित, नीलाम्बरधारी, श्वेतपर्वतके समान प्रभावाले, नील कुन्तलकी कान्तिसे मण्डित, भयंकर रूपवाले शेषजी पधारे और वे भी सबके देखते-देखते अनन्तके देहमें विलीन हो गये॥ ६॥

अथ तदैवेलावृतखण्डात्समागतस्त्रीगणार्बुदसहस्रैर्भवानीनाथैः समावृतः शेषः सहस्रवदनमौलिमण्डलमण्डितः प्रस्फुरत्किरीटकटकाङ्गदः सभामेत्यानन्तविग्रहे सम्प्रलीनोऽभूत्॥ ७॥

फिर उसी समय इलावृतवर्षसे शेषजी* आये। वे भगवती पार्वतीकी करोड़ों दासी स्त्रियोंके यूथोंसे घिरे हुए थे। मुकुट-मण्डित हजार मुखोंवाले शेषजी चमचमाते हुए किरीट, कुण्डल और बाजूबंदसे सुशोभित थे। सभामें आकर वे भी भगवान् अनन्तके श्रीविग्रहमें प्रवेश कर गये॥ ७॥

अथ पातालस्याधस्ताद् द्वात्रिंशद्योजनसहस्रान्तरात्समागतो भगवतस्तामसीकलः साक्षात्सहस्रवदनकिरीटमार्तण्डमण्डलमण्डितो वेदव्यासपराशरसनकसनन्दनसनातनसनत्कुमारनारदसांख्यायनपुलस्त्यबृहस्पतिमैत्रेयादिमहर्षिभिः संशोभितो वासुकिमहाशङ्खश्वेतधनञ्जयधृतराष्ट्रकुहककालियतक्षककम्बलाश्वतरदेवदत्तादिभिर्नागेन्द्रैश्चामरपाणिभिः संसेव्यमानो मृगमदागरुकुंकुमचन्दनपङ्कावलिप्यमानाभिर्नागकन्याभिः सिद्धचारण-

तदनन्तर पातालके बत्तीस हजार योजन नीचेसे शेषजी आये। वे हजार मुखवाले शेषजी 'भगवान्की तामसी' कलासे सम्पन्न थे। उन्होंने अनन्त सूर्योंके समान प्रकाशमान किरीट धारण कर रखा था। व्यास, पराशर, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद, सांख्यायन, पुलस्त्य, बृहस्पति और मैत्रेय आदि महर्षियोंकी संनिधिसे उनकी अपार शोभा हो रही थी। वासुकि, महाशङ्ख, श्वेत, धनंजय, धृतराष्ट्र, कुहक, कालिय, तक्षक, कम्बल, अश्वतर और देवदत्तादि नागराज उन्हें चँवर डुला रहे थे। कस्तूरी, अगरु, केसर और चन्दनके द्वारा अनुलिप्त बहुत-सी नागकन्याएँ उनकी

* द्रष्टव्य—श्रीमद्भागवत ५। १७। १४—१६

गन्धर्वविद्याधरगणैरुपगीयमानो हाटकेश्वरत्रिपुरबलकालकेयकलिनिवातकवचैरनुयायिभिः पुरःसरै रुद्रैकादशव्यूहैर्नाभिकामधेनुवरुणैः पश्चात्प्रयायिभिर्वीणावेणुमृदङ्गतालदुन्दुभिध्वनिशब्दायमानः फणीन्द्रो नागेन्द्र इव तूर्णगतिर्विराजते यस्यैकफणे चेदं क्षितिमण्डलं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते सोऽप्यागत्य महानन्तविग्रहे संलीनोऽभूत्॥ ८॥

तच्चित्रं दृष्ट्वा तत्सभापार्षदाः सर्वे तं परिपूर्णतमं ज्ञात्वावनता विस्मिता बभूवुः॥ ९॥

अथानन्तवदनो महानन्तः सङ्कर्षणो भगवान् पार्षदान् सिद्धानुवाच॥ १०॥

अहं भूमिभारहरणार्थं भुवि गमिष्यामि तस्माद्यूयं यादवेषु भविष्यथ॥ ११॥

भोः प्रबलोद्भटसुमते सारथे भवतात्रैव स्थीयतां शोकं मा कुरुताद् यदा युद्धार्थी त्वत्स्मरणं करिष्यामि तदा त्वं दिव्यं तालाङ्कं रथं नीत्वा मत्समीपमागमिष्यसि॥ १२॥

हे हलमुसले यदा यदा युवयोः स्मरणं करिष्यामि तदा तदा मत्पुर आविर्भूते भवतम्॥ १३॥

भो वर्म त्वमपि चाविर्भव। हे मुनयः पाणिन्यादयो हे व्यासादयो हे कुमुदादयो हे कोटिशो रुद्रा हे भवानीनाथ हे एकादश रुद्रा हे गन्धर्वा! हे वासुक्यादिनागेन्द्रा हे निवातकवचा हे वरुण हे कामधेनो भूम्यां भरतखण्डे यदुकुलेऽवतरन्तं मां यूयं सर्वे सर्वदा एत्य मम दर्शनं कुरुत॥ १४॥

प्राड्विपाक उवाच

इत्याज्ञप्ताः सर्वे स्वं स्वं धाम समाजग्मुः। तेषु गतेषु नागकन्यायूथं भगवाननन्तः प्राह—

सेवा कर रही थीं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व और विद्याधरोंके द्वारा उनका यशोगान हो रहा था। हाटकेश्वर, त्रिपुर, बल, कालकेय, कलि और निवात-कवचादि दैत्य उनके अनुयायी होकर आगे-आगे चल रहे थे। ग्यारह रुद्र व्यूहाकारसे उनके आगे-आगे और कस्तूरीमृग, कामधेनु तथा वरुण उनके पीछे चल रहे थे। वीणा, वेणु, मृदङ्ग, ताल और दुन्दुभिके शब्द हो रहे थे। वे फणिधर गजराजके समान तीव्र गतिसे वहाँ पधारे। उनके एक फनपर यह सारा भूमण्डल सरसोंके दानेकी तरह प्रतीत हो रहा था। ऐसे शेषजी वहाँ आकर भगवान् महा अनन्तके श्रीविग्रहमें प्रविष्ट हो गये॥ ८॥

सभाके सम्पूर्ण पार्षदोंने इस विचित्र लीलाको देखा और वे उन्हें परिपूर्णतम भगवान् समझकर सर्वथा अवनत और आश्चर्यचकित हो गये॥ ९॥

तदनन्तर अनन्तमुख महान् अनन्त भगवान् संकर्षणने सिद्धपार्षदोंसे कहा—'भूमिका भार हरण करनेके लिये मैं भूमण्डलपर चलूँगा। इसलिये तुमलोग जाकर यादवकुलमें जन्म ग्रहण करो'॥ १०-११॥

तदनन्तर वे सुमति सारथिसे बोले—'तुम बड़े बलवान् और शूरवीर हो। तुम यहाँ ही रहो। किसी प्रकारका शोक न करो। जिस समय युद्धाभिलाषी होकर मैं तुम्हें याद करूँगा, उसी समय तालचिह्नित दिव्य रथको लेकर तुम मेरे समीप आ जाना॥ १२॥

हे हल और मुसल! मैं जब-जब तुम्हारा स्मरण करूँ, तब-तब तुम मेरे सामने प्रकट हो जाना। कवच! तुम भी वैसे ही प्रकट होना। हे पाणिनि आदि, व्यास आदि तथा कुमुद आदि मुनियो! हे कोटि-कोटि रुद्रो! गिरिजापति श्रीशंकरजी! ग्यारह रुद्रो! गन्धर्वो! वासुकि आदि नागराजो! निवातकवचादि दैत्यो! हे वरुण और कामधेनु! मैं भूमण्डलपर भारतवर्षमें यदुकुलमें अवतार लूँगा। तुम सब वहाँ आकर सदा-सर्वदा मेरा दर्शन करना'॥ १३-१४॥

प्राड्विपाक मुनि कहने लगे—इस प्रकार आज्ञा पाकर वे सभी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। उनके चले जानेके अनन्तर भगवान् अनन्तने

युष्माकमभिप्रायो मया ज्ञातस्तपसा गोपालानां गृहेषु जन्मानि प्राप्य मद्दर्शनं कुरुत॥ १५॥

नागकन्याओंके यूथसे कहा—'मैं तुम्हारा अभिप्राय जानता हूँ, तुम सभी तपस्याके द्वारा गोपोंके घर जन्म लेकर मेरा दर्शन करना॥ १५॥

कदाचित्कलिन्दनन्दिनीकूले विहारमाधुर्यमूले युष्माभिः सह रासमण्डलं करिष्यामि युष्माकं मनोरथः सफलो भविष्यति॥ १६॥

किसी समय कालिन्दीके तटपर मनोहर रास-मण्डलमें तुम्हारे साथ रास करके मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।'॥ १६॥

अथ निवातकवचानां राजा कलिः स्वामिपादकृतमस्तकाञ्जलिः प्रदत्तपुष्पावलिः श्रीभगवन्तं प्रत्युवाच॥ १७॥

अहं किं करिष्यामि मय्याज्ञां कुरु। भगवन् यत्र त्वं गमिष्यसि तत्राप्यहं गमिष्यामि ह वाव त्वद्वियोगेन महान् खेदो भविष्यति सहैव मां नय त्वं भक्तवत्सलोऽसि॥ १८॥

तदनन्तर निवातकवचोंके राजा कलिने हाथ जोड़कर प्रभुके चरण-कमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पण की और भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक टेककर कहा—'भगवन्! मुझे आज्ञा दीजिये, मेरे लिये क्या काम होगा? आप जहाँ पधारेंगे, वहाँ ही मैं भी चलूँगा। पिताजी! आपके वियोगमें मुझे महान् दुःख होगा; आप भक्तवत्सल हैं, अतएव मुझे साथ ले चलिये।'॥ १७-१८॥

एवं सम्प्रार्थितो भगवाननन्तः कलिं राजानं स्वभक्तं प्रसन्नः प्रत्युवाच सुखेन त्वं मत्सहेहागच्छ भरतखण्डे कौरवेन्द्राणां कुले धृतराष्ट्रस्य पुत्रो भूत्वा दुर्योधनो नाम चक्रवर्ती भविष्यसि त्वत्सहायमहं करिष्यामि गदाशिक्षां च दास्यामि॥ १९॥

इस प्रकार प्रार्थना सुनकर भगवान् अनन्तने प्रसन्न हो अपने भक्त कलिराजसे कहा—'तुम मेरे साथ सुखपूर्वक भारतवर्षमें चलो। तुम वहाँ कौरवकुलमें धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनके नामसे विख्यात चक्रवर्ती राजा बनो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम्हें गदायुद्ध सिखाऊँगा।'॥ १९॥

इत्युक्तः कलिस्तं नमस्कृत्य स्वधाम गतवान् सैष कलिस्त्वं जातोऽसि विष्णुमायया स्वात्मानं न स्मरसि॥ २०॥

इस प्रकार कहनेपर उन्हें नमस्कार करके राजा कलि अपने स्थानपर चला गया। उसी कलि तुमने दुर्योधनके रूपमें जन्म लिया है। भगवान् विष्णुकी मायासे तुमको अपने स्वरूपकी स्मृति नहीं है॥ २०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे सङ्कर्षणागमनमन्त्रो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'बलभद्रजीके अवतारकी तैयारी' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

ज्योतिष्मतीका उपाख्यान

प्राड्विपाक उवाच

कोटिशरच्चन्द्रमण्डलप्रतीकाशा नागलक्ष्मीर्महारथस्था सखीकोटिमण्डलमण्डिता सङ्कर्षणं महानन्तं भर्तारं सभायां प्राह॥ १॥

अहमपि त्वया सहैव भगवन् भुवमागमिष्यामि त्वद्वियोगातुरा प्राणान्न धारयामि॥ २॥

प्राड्विपाक मुनिने कहा—तदनन्तर करोड़ों शारदीय चन्द्रमाओंकी कान्तिवाली स्वयं नागलक्ष्मी महान् रथपर सवार होकर वहाँ पधारीं। करोड़ों सखियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। उन्होंने सभामें आकर स्वामी महान् अनन्त भगवान् संकर्षणसे कहा—भगवन्! मैं भी आपके साथ ही भूमण्डलपर चलूँगी। आपके वियोगकी व्यथा मुझे इतना व्याकुल कर देगी कि मैं अपने प्राणोंको नहीं रख सकूँगी॥ १-२॥

इति वाष्पकण्ठीं प्रियां सम्प्रेक्ष्य भगवाननन्तः सर्वभक्तदुःखनिवारणो महेन्द्रवारण इव भोगवारण इति होवाच॥ ३॥

रम्भोरु त्वं रेवतीविग्रहे संलीना भूत्वा भूलोकं भजतान्मा शोकं कुरुतात्॥ ४॥

तच्छ्रुत्वा नागलक्ष्मीः प्रत्युवाच रेवती का कस्य सुता क्व वर्तमाना नितरां वदैतत्तच्छ्रुत्वा भगवाननन्तः सस्मितः स्वप्रियां प्रत्युवाच॥ ५॥

आदिसर्गे कश्यपस्य कद्रूसुतो ह्यहं जातः श्रीकृष्णाज्ञया त्वखण्डभूखण्डमण्डलं गजराडिव चैकफणे कमण्डलुमिव धृत्वा सर्वतोऽधस्ताद्विराजमानोऽहं बभूव॥ ६॥

अथ मयि स्थिते चक्षुषः पुत्रोऽतिबलश्चाक्षुषो नाम मनुः सप्तद्वीपभूखण्डमण्डलेषु मण्डलपतिभिर्घृष्टपादपुण्डरीकः पुरन्दरादिभिर्लङ्घितचण्डशासनः प्रचण्डदोर्दण्डविखण्डितारिदोर्दण्डः सर्वगुणमण्डितः सम्राड् बभूव॥ ७॥

तस्य मनोः सुद्युम्नाद्याः पुत्रा बभूवुः। तस्य यज्ञकुण्डसमुद्भवा कन्या ज्योतिष्मती जाता॥ ८॥

एकदा स्नेहाच्चाक्षुषः पुत्रीं पप्रच्छ कीदृशं वरमिच्छसीति वद। सा तदोवाच यः सर्वेषां बलवान् स मे वरो भूयात्॥ ९॥

तच्छ्रुत्वा राजा शक्रं बलवन्तं ज्ञात्वा तमाजुहाव। तदैव सद्यः समागतं वज्रिणं पुरःस्थितं सादरेणासनं दत्वा मनुः प्राह॥ १०॥

त्वत्तः कोऽपि बलवान् वर्तते न वा तत्सत्यं वद न चेत्स्मृतिः 'न हि सत्यात्परो धर्म इति होवाच

नागलक्ष्मीका गला भर आया था। भगवान् अनन्तने [जो समस्त जगत्के कारणके भी कारण हैं], भक्तोंका दुःख निवारण करना ही जिनका स्वभाव है और जिनका श्रीविग्रह ऐरावतके समान बृहत् सर्परूप है। अपनी प्रियाकी यह दशा देखकर कहा—हे रम्भोरु! तुम शोक मत करो। पृथ्वीपर जाकर रेवतीकी देहमें विलीन हो जाओ। फिर मेरी सेवामें उपस्थित हो जाओगी॥ ३-४॥

यह सुनकर नागलक्ष्मी बोलीं—'रेवती कौन हैं, किनकी कन्या हैं और कहाँ रहती हैं—आप विस्तारसे मुझे बताइये।' यह सुनकर भगवान् अनन्तने मुसकराते हुए अपनी प्रियासे कहा—आदि सृष्टिकी बात है। कद्रूके गर्भसे कश्यपजीके पुत्ररूपमें मैं उत्पन्न हुआ था। भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे मैंने अखण्ड भूमण्डलको अपने एक फनपर उसी प्रकार धारण कर लिया, जैसे गजराज कमण्डलुको धारण कर लेता है और सब लोकोंसे नीचेके लोकमें जाकर मैं विराजित हो गया॥ ५-६॥

मेरे इस प्रकार वहाँ स्थित होनेपर चक्षुष्के पुत्र अतिबल चाक्षुष नामक मनु सप्तद्वीपमय अखण्ड पृथ्वीमण्डलके सर्वगुणसम्पन्न सम्राट् हुए, बड़े-बड़े मण्डलेश्वर राजा उनके चरणकमलोंपर अपने मस्तक घिसा करते थे। इन्द्रादि देवतागण भी उनका शासन मानते थे। प्रचण्ड धनुषवाले वे चाक्षुष मनु शत्रुओंके समस्त बल-गर्वको चूर्ण करके स्थित थे॥ ७॥

उन चाक्षुष मनुके सुद्युम्नादि अनेक पुत्र हुए। तदनन्तर मनुने यज्ञ किया और उनके यज्ञकुण्डसे ज्योतिष्मती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई॥ ८॥

एक दिन चाक्षुष मनुने स्नेहवश अपनी उस कन्यासे पूछा—'बताओ, तुम कैसा वर चाहती हो?' तब कन्याने उत्तर दिया कि जो सबसे अधिक बलवान् हों, वे ही मेरे स्वामी बनें॥ ९॥

यह सुनकर राजाने इन्द्रको सबसे अधिक बलवान् समझकर बुलाया। वज्रधारी इन्द्रके सामने आनेपर राजाने आदरपूर्वक उन्हें आसनपर बैठाया और कहा—आपकी अपेक्षा कोई और अधिक बलवान् है कि नहीं, यह आप सत्य-सत्य बताइये। नहीं तो स्मृति कहती है, 'पृथ्वीदेवीने कहा है कि सत्यसे

भूरियम्। सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्'॥ ११॥

इन्द्र उवाच

अहं बलवान्नास्मि मत्तो बलवान् वायुरस्ति तेन सहायेन कार्यं करोमीत्युक्त्वा गते शक्रे राजा वायुमाजुहावाह च त्वत्तः कोऽपि बलवान् वर्तते सत्यं वदतात्॥ १२॥

वायुरुवाच

मत्तो बलवन्तः पर्वताः सन्ति मद्वेगेन नोड्डीयमाना इत्युक्त्वा गते वायौ राजा पर्वतानाजुहावाह च भवद्भ्यः कोऽपि कौ बलवान् वर्तते तत्सत्यं वदत॥ १३॥

पर्वताः प्राहुरस्मद्धारणाद्भूखण्डं बलवद्वर्तते यत्र वयं स्थिताः स्मः। पर्वतेषु गतेषु भूखण्डमण्डलं समाहूय राजा प्राह त्वत्तः कोऽपि बलवान् वर्तते न वा सत्यं वद॥ १४॥

तच्छ्रुत्वा भूखण्ड उवाच

मत्तो बलवान् सङ्कर्षणो भगवान् वर्तते। सोऽयं सदानन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेवो वासुदेवः सहस्रवदनो नागेन्द्र इव भव्यवपुः कैलास इव शुक्लप्रकाशः कोटिसूर्यप्रतिभासः कोटिकन्दर्पहारिलावण्येन विभ्राजमानः कमलपत्राक्षः कमलकर्णिकादिव्यविमलमालानिर्मलपरिलोभितमधुकरनिकरसङ्गीयमानः सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरवरगणैरुपगीयमानः सुरासुरोरगमुनिगणैः सन्ध्यायमानः सर्वोपरि विराजमान आस्ते॥ १५॥

यस्यैकस्मिन् मूर्ध्नि सगिरिसरित्समुद्रवनजीवकोटिमण्डितं भूखण्डमण्डलमहं दृश्ये। यन्नामानुकीर्तना-

बढ़कर कोई धर्म नहीं है; मैं सब कुछ सहन कर सकती हूँ, परंतु मिथ्यावादी मनुष्यका भार मुझसे नहीं सहा जाता'॥ १०-११॥

इन्द्रने कहा—'मैं बलवान् नहीं हूँ। वायुदेवता मुझसे अधिक बलवान् हैं। मैं उन्हींकी सहायतासे कार्य किया करता हूँ।' यों कहकर इन्द्र चले गये। तब राजाने वायुका आवाहन किया और उनसे पूछा—'सच-सच बताइये, आपसे भी बढ़कर कोई बलवान् है?'॥ १२॥

वायु बोले—'पर्वत मुझसे बलवान् हैं; क्योंकि मेरा वेग उन्हें उखाड़ नहीं सकता। यह कहकर वायु चले गये। तब राजाने पर्वतोंको बुलाया और कहा—'सच बताइये, भूमण्डलमें आपसे अधिक बलवान् कौन है?'॥ १३॥

पर्वतोंने उत्तर दिया—'हमलोगोंको अपने ऊपर धारण करनेके कारण भूमण्डल हमसे अधिक बलवान् है, जिसमें हमलोग स्थित हैं।' पर्वत इतना कहकर चले गये। तब राजाने भूमण्डलको बुलाकर पूछा—'सत्य-सत्य बताओ, तुमसे भी अधिक कोई शक्तिसम्पन्न है या नहीं'॥ १४॥

यह सुनकर भूमण्डलने कहा—'मुझसे अधिक बलवान् भगवान् संकर्षण हैं। वे नित्य अनन्त, अनन्त गुणोंके समुद्र हैं। वे आदिदेव हैं, वासुदेवरूप हैं, उनके हजार मुख हैं, उनका विग्रह गजराजके समान विशाल है, वे कैलासके सदृश उज्ज्वल प्रभावाले हैं, करोड़ों सूर्योंके समान उनकी ज्योति है। वे सुन्दरतामें करोड़ों कामदेवोंके गर्वको चूर्ण करनेवाले हैं। कमल-पत्रके समान उनके सुन्दर नेत्र हैं। वे दिव्य निर्मल कमल-कर्णिकाओंकी मालासे सुशोभित हैं, जिनके परिमलका पान करनेके लिये भ्रमरोंके यूथ गुंजार करते रहते हैं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व और श्रेष्ठ विद्याधरोंके द्वारा जिनका यशोगान होता रहता है; देवता, दानव, सर्प और मुनिगण जिनका सदा आराधन करते हैं और जो सबसे ऊपर विराजमान हैं॥ १५॥

जिनके एक मस्तकपर पर्वत, नदी, समुद्र, वन और करोड़ों-करोड़ों प्राणियोंसे अलंकृत अखण्ड भूमण्डल दिखायी देता है और तीनों लोकोंमें जिनका

त्रिलोक्यां त्रैलोक्यघात्यपि कैवल्यं प्राप्नोति॥ १६॥

एवंप्रभावो भगवान् सर्वतो बलवान् सर्वकारणकारणः सर्वेश्वरो दुरन्तवीर्यो मूले रसायाः स्थितस्तस्मात्परः कोऽपि नास्ति॥ १७॥

नाम-कीर्तन करनेसे त्रिलोकीका वध करनेवाला भी कैवल्य-मोक्षको प्राप्त करता है—ऐसे प्रभावसम्पन्न, समस्त कारणोंके कारण, सबके ईश्वर और सबसे अधिक शक्तिशाली भगवान् संकर्षण हैं। वे रसातलके मूलभागमें विराजमान हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है'॥ १६-१७॥

श्रीमहानन्त उवाच

इत्युक्त्वा गते भूखण्डे चाक्षुषः कन्या ज्योतिष्मती मम माधुर्यप्रभावं विज्ञाय पित्राज्ञां गृहीत्वा विन्ध्याचले मत्प्राप्त्यर्थं वर्षाणां लक्षाणि ब्रह्मतपस्तेपे॥ १८॥

ग्रीष्मे पञ्चाग्नितप्ता वर्षासु सर्वासारधारिणी शिशिर आकण्ठमग्ना शीतोदके भूत्वा स्थण्डिलशायिनी बभूव॥ १९॥

श्रीमहानन्तने कहा—इस प्रकार भूमण्डलके चले जानेपर मेरे माधुर्य और प्रभावको जानकर ज्योतिष्मतीने पिताकी आज्ञा ली और मुझे प्राप्त करनेके लिये विन्ध्याचल पर्वतपर तप करने चली गयी। उसने लाख वर्षोंतक ब्रह्माजीको लक्ष्यकर वहाँ तपस्या की। वह गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निके बीचमें बैठकर तप करती, वर्षामें निरन्तर जल-धाराको सहन करती और सर्दीके दिनोंमें कण्ठपर्यन्त ठंडे जलमें डूबी रहती। वह तपस्याके कालमें नीचे जमीनपर ही सोया करती॥ १८-१९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे ज्योतिष्मत्युपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'ज्योतिष्मतीका उपाख्यान' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

रेवतीका उपाख्यान

श्रीमहानन्त उवाच

अथ ज्योतिष्मतीं शतचन्द्रप्रतीकाशां नवयौवनां सुन्दरीं तपस्विनीं वीक्ष्य शक्रयमधनदाग्निवरुणसोमसूर्यमङ्गलबुधबृहस्पतिशुक्रशनयः सर्वे तद्रूपोद्दीपितकामसम्मोहितचित्तास्तदाश्रममेत्य तामूचुः॥ १॥

हे सुन्दरि रम्भोरु धन्यासि कस्यार्थं तपः करोषि ते वयस्तपोयोग्यं नास्ति मनोऽभिप्रायं स्वकमस्माकं वदेति तच्छ्रुत्वा ज्योतिष्मत्युवाच भगवाननन्तः सहस्रवदनो मम भर्ता भूयादेतदर्थं तपस्तपामीति

श्रीमहानन्तने कहा—तदनन्तर सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिवाली, तपस्यामें संलग्न, नवयौवना, सुन्दरी ज्योतिष्मतीपर इन्द्र, यम, कुबेर, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चरकी दृष्टि पड़ी। उसके रूपको देखकर उनके अंदर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा उद्दीप्त हो उठी और वे सम्मोहितचित्त हो गये। तब उन्होंने ज्योतिष्मतीके आश्रमपर आकर कहा—'सुन्दरी! रम्भोरु! तुम्हें धन्य है। तुम किसके लिये तप कर रही हो? तुम्हारी अवस्था अभी तपके योग्य नहीं है। तुम अपने मनका अभिप्राय हमलोगोंके सामने प्रकट करो।' यह सुनकर ज्योतिष्मती बोली कि 'हजार मुखवाले भगवान् अनन्त मेरे स्वामी हों, मैं इसीलिये तप कर रही हूँ।'

तद्वचः श्रुत्वा सर्वे जहसुः पृथक् पृथक् तेषां पूर्वमिन्द्र इदमाह॥ २॥

इन्द्र उवाच

सर्पराजं वरं कर्तुं किं वृथा तपसे शुभे।
देवराजं वरय मां स्वतः प्राप्तं शतक्रतुम्॥ ३

यम उवाच

यमराजं वरय मां दण्डनेतारमाजगत्।
सर्वोत्तमा त्वं मत्पत्नी पितृलोके भविष्यसि॥ ४

धनद उवाच

राजराजं हि मां विद्धि निधीशं हे वराङ्गने।
त्वं भजाशु विशालाक्षि त्यज सङ्कर्षणे रतिम्॥ ५

अग्निरुवाच

सर्वदेवमुखं विद्धि सर्वयज्ञप्रतिष्ठितम्।
भज मां त्वं विशालाक्षि विहायान्यत्र वासनाम्॥ ६

वरुण उवाच

लोकपालं वरय मां पाशिनं यादसां पतिम्।
सप्तानां हि समुद्राणां वैभवं पश्य भामिनि॥ ७

सूर्य उवाच

जगच्चक्षुः सदाहं वै चण्डांशुश्चाक्षुषात्मजे।
विहाय पातालगतिं वर मां स्वर्गभूषणम्॥ ८

सोम उवाच

द्विजराजश्चौषधीशो नक्षत्रेशः सुधाकरः।
कामिनीबलदोऽहं वै भज मां गजगामिनि॥ ९

मङ्गल उवाच

इयं मही हि मे माता पिता साक्षादुरुक्रमः।
मङ्गलं भज मां भद्रे भूत्वा भूरिभवार्थिनी॥ १०

ज्योतिष्मतीकी यह बात सुनकर इन्द्रादि सभी देवता हँस पड़े और अलग-अलग अपनी बात कहनेको तैयार हो गये। उनमें सबसे पहले इन्द्र यों बोले— ॥ १-२॥

इन्द्रने कहा—हे शुभे! सर्पराजको स्वामी बनानेके लिये तुम व्यर्थ ही क्यों तप कर रही हो? मैं देवताओंका राजा हूँ। मैंने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं और मैं स्वयं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ। तुम मुझे वरण कर लो॥ ३॥

यमराज बोले—मैं सारे जगत्के प्राणियोंका दण्डविधान करनेवाला यमराज हूँ। तुम मुझे वरण कर लो और पितृलोकमें मेरी सबसे श्रेष्ठ पत्नी होकर रहो॥ ४॥

कुबेरने कहा—वरानने! मैं सम्पूर्ण धनका स्वामी हूँ। हे विशालाक्षि! तुम मुझे राजाधिराज समझो और संकर्षणके प्रति प्रीति छोड़कर शीघ्र मुझे पतिरूपमें वरण कर लो॥ ५॥

अग्निदेव बोले—विशाललोचने! मैं सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रतिष्ठित समस्त देवताओंका मुखरूप हूँ। अन्य सभीके प्रति वासनाका त्याग करके तुम मुझे भजो॥ ६॥

वरुणने कहा—भामिनि! मैं जलचरोंका स्वामी एवं लोकपाल हूँ। मेरे हाथमें सदा पाश रहता है। सातों समुद्रोंका ऐश्वर्य मेरा ही वैभव है। यह समझकर तुम मुझे पतिरूपमें वरण करो॥ ७॥

सूर्यदेवता बोले—हे चाक्षुषात्मजे! मैं जगत्का नेत्र हूँ। मेरी प्रचण्ड किरणें सर्वत्र व्याप्त रहती हैं। अतएव पातालमें रहनेवाले अनन्तका त्याग करके तुम स्वर्गके आभूषणरूप मुझको वरण करो॥ ८॥

चन्द्रमाने कहा—मैं ओषधियोंका अधीश्वर, नक्षत्रोंका राजा, अमृतकी खान एवं ब्राह्मणश्रेष्ठ हूँ और कामिनियोंको बल प्रदान करनेवाला हूँ। हे गजगामिनी! तुम मेरी उपासना करो॥ ९॥

मङ्गल बोले—यह पृथ्वी मेरी माता है और साक्षात् उरुक्रम भगवान् मेरे पिता हैं। मेरा नाम मङ्गल है। हे कल्याणी! संसारके विपुल कल्याणकी कामना करनेवाली तुम मुझे अपना पति बनाओ॥ १०॥

बुध उवाच

बुधोऽहं बुद्धिमान् वीरः कामिनीरसवर्धनः।
विसृज्य सर्वनाकेशान् रमस्व त्वं मया सह॥ ११

बृहस्पतिरुवाच

गीष्पतिर्धिषणोऽहं वै सुराचार्यो बृहस्पतिः।
साक्षाद्देवगुरुर्लोके भज मां मन्यसे शुभे॥ १२

शुक्र उवाच

साक्षाद्दैत्यगुरुः काव्यो भार्गवोऽहं महामते।
स्वश्रेयस्तु विचार्यैवं भव मद्भामिनी भृशम्॥ १३

शनिरुवाच

सर्वेषां बलवान् भद्रे अहं देवोपरि स्थितः।
त्यज शोकं वरय मां लोकभस्मकरं दृशा॥ १४

महानन्त उवाच

अथ ज्योतिष्मती तेषां वचांसि श्रुत्वारुणनेत्रा स्फुरदधरचलद्भ्रूभङ्गा प्रोद्यत्क्रोषाग्निप्रकर्षोच्छलच्छटा मां परं सस्मार परं क्रोधं च चकार॥ १५॥

तेन सखण्डं महीमण्डलं ब्रह्माण्डमपि परं चाब्रह्मलोकाद् दृढमेजत्सर्वतो महद्भयं बभूव॥ १६॥

तदैव शक्राद्याः शापभयभीताः प्रकम्पिताः कृतबलिपाणयः पादपद्मे परितो निपेतुः पाहि पाहीति जगुस्तैरित्थं शान्तापि ज्योतिष्मती पृथक् पृथक् तान् शशाप॥ १७॥

ज्योतिष्मत्युवाच

छलयितुमिह मां समागतस्त्वं
भव खल पङ्गुरधःसमीक्षणश्च।
कृशतनुरतिकृष्णकुत्सिताभो
भव सहसासितमाषतैलभक्षी॥ १८

हे शुक्र अक्ष्णा भव काण आशु
स्त्रीसंज्ञकस्त्वं भव गीष्पतेऽत्र।

बुधने कहा—मैं बुद्धिमान्, शूरवीर और कामिनियोंके रसको बढ़ानेवाला बुध हूँ। तुम सब देवताओंका परित्याग करके मेरे साथ आनन्दका अनुभव करो॥ ११॥

बृहस्पति बोले—मैं देवताओंका आचार्य, बुद्धिमान्, वाणीका स्वामी साक्षात् बृहस्पति हूँ। हे शुभे! यह समझकर तुम मेरी उपासना करो॥ १२॥

शुक्रने कहा—मैं दैत्योंका गुरु, भृगुके वंशमें उत्पन्न साक्षात् कवि हूँ। महाप्राज्ञे! तुम अपने कल्याणकी बात सोचकर मेरी भामिनी बन जाओ॥ १३॥

शनि बोले—कल्याणी! मैं सबसे अधिक बलवान् हूँ। देवताओंके ऊपर भी मेरा प्रभाव है। अपनी दृष्टिसे सारे संसारको भस्म कर डालनेकी मुझमें शक्ति है। अतएव सारी चिन्ताओंका त्याग करके तुम मुझे पतिरूपमें वरण कर लो॥ १४॥

भगवान् महानन्तने कहा—इन सबकी बात सुनते ही ज्योतिष्मतीके नेत्र लाल हो गये, उनका अधर काँपने लगा और भौंहें टेढ़ी हो गयीं। क्रोधकी आग भड़क उठी। फिर उन्होंने मेरा स्मरण किया और अत्यन्त क्रोधके आवेशमें आ गयीं। ज्योतिष्मतीके क्रोधसे ब्रह्मलोकसे लेकर पाताल एवं भूमण्डल-सहित सारा ब्रह्माण्ड काँप उठा। सब ओर महान् भय छा गया॥ १५-१६॥

यह देखते ही शापके भयसे काँपते हुए इन्द्रादि देवताओंने सब दिशाओंसे पूजनकी सामग्री ली और ज्योतिष्मतीके चरण-कमलोंपर गिरकर वे 'बचाओ! बचाओ!!' पुकारने लगे। इन्द्रादि देवताओंके द्वारा इस प्रकार शान्त करनेका प्रयत्न करनेपर भी ज्योतिष्मतीने उन्हें पृथक्-पृथक् शाप दे दिया॥ १७॥

ज्योतिष्मती बोली—शनि! तू दुष्ट है, मुझे छलनेके लिये यहाँ आया है। तू अभी पङ्गु हो जा। तेरी नीची दृष्टि हो जाय। तू अत्यन्त काला-कलूटा और दुबला-पतला हो जा, निन्दनीय काले उड़द खाया कर और काले तिलका तेल पिया कर॥ १८॥

शुक्र! तू अभी एक आँखसे काना हो जा। बृहस्पति! तू स्त्रीभावको प्राप्त हो जा। बुध! तेरा वार

हे सौम्य ते वारदिनं हि शून्यं
वदन्ति गच्छन्ति न के कदाचित्॥ १९

हे मङ्गल त्वं भव वानराननो
निशाकर त्वं भव राजयक्ष्मवान्।
त्वं भग्नदन्तो भव भो दिवाकर
पाशिन् क्वचित्ते भवताज्जलन्धरी॥ २०

त्वं सर्वभक्षो भवतादुषर्बुध
मनुष्यधर्मन् हृतपुष्पको भव।
वैवस्वत त्वं बहुमानभङ्गो
भवाशु युद्धे प्रबलेन रक्षसा॥ २१

मां हर्तुमागत्य सुराधम स्थितः
करोषि निन्दां परमात्मनो गिरा।
तव प्रियां कोऽपि नृपो हरिष्यति
करिष्यति स्वर्गसुखं गते त्वयि॥ २२

पाशेन बद्धं युधि निर्जितं त्वां
बलाद्गृहीत्वा खलु कोऽपि राक्षसः।
लङ्कां पुरीमेत्य दिवस्पते वै
कारागृहेऽन्धे किल कारयिष्यति॥ २३

श्रीमहानन्त उवाच

अथ ह वाव तया शप्तानां देवानां मध्ये कुपितः शक्रोऽपि तां शशाप। कोपकारिणि सङ्कर्षणं वरमपि प्राप्यात्र जन्मनि ह्यन्यत्र वा कदाचित्तव पुत्रोत्सवो माभूत्। एवमुक्त्वा शक्रोऽपि तत्तेजसा धर्षितः सर्वदेवगणैः सह स्वर्गं जगाम। पुनः सा तपस्तेपे॥ २४॥

अथ तत्तपो दृष्ट्वा ब्रह्मा ब्रह्मविद्भिर्ब्राह्मणैर्ब्राह्म्यादिभिः संवृतः सर्वजगत्कारणभूतः स्वभवनाद्धंसयानेनागतवान्॥ २५॥

अम्बरे स्थित्वा तामाह हे ज्योतिष्मति चाक्षुषात्मजे त्वत्तपः सफलं जातं तेन सिद्धासि परमहं प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहीति॥ २६॥

(दिन) निष्फल हो जाय। बुधवारको किसीके कुछ कहने और कहीं यात्रा करनेपर सफलता नहीं मिलेगी॥ १९॥

मङ्गल! तू बंदरके समान मुखवाला हो जा। चन्द्रमा! तेरे राजयक्ष्माका रोग हो जाय। सूर्य! तेरे दाँत टूट जायँ। वरुण! तू जलंधर रोगका शिकार हो जा। अग्नि! तू सब कुछ खानेवाला बन जा। कुबेर! तेरा पुष्पक विमान छिन जाय। यमराज! बलवान् राक्षस युद्धमें तेरा मान-भङ्ग करें और तू शक्तिशाली राक्षसोंसे युद्धमें हार जा॥ २०-२१॥

देवाधम इन्द्र! तू मुझे हरनेके लिये आया है और अपने मुँहसे तूने परमात्माकी निन्दा की है। स्वर्गमें किसी राजाके द्वारा तेरी पत्नी शची हर ली जायगी, वह स्वर्ग-सुखका भोग करेगा और तू वहाँसे भगा दिया जायगा॥ २२॥

अरे स्वर्गके राजा! किसी राक्षसके द्वारा युद्धमें तेरी हार होगी। तू पाशमें बाँधा जायगा और वे लङ्कापुरीमें ले जाकर तुझे अन्धकारपूर्ण कारागारमें डाल देंगे॥ २३॥

भगवान् महानन्त बोले—तदनन्तर ज्योतिष्मतीके द्वारा शापको प्राप्तकर देवताओंके बीच इन्द्र कुपित हो गये और इन्द्रने भी ज्योतिष्मतीको शाप दे दिया—'हे क्रोधकारिणी! संकर्षणको पतिके रूपमें प्राप्त करके भी इस जन्म अथवा दूसरे जन्ममें अथवा कभी तुम्हारे घरमें पुत्रोत्सव नहीं होगा।' इन्द्र ज्योतिष्मतीके तेजसे बड़े तिरस्कृत हो गये थे। उन्होंने इस प्रकार कहकर सारे देवताओंके साथ स्वर्गकी यात्रा की। ज्योतिष्मती फिर तपस्यामें लग गयी॥ २४॥

तदनन्तर सारे जगत्के कारणभूत ब्रह्माजीकी दृष्टि ज्योतिष्मतीके तपकी ओर गयी और वे हंसपर सवार होकर ब्रह्मविद् ब्राह्मणों और ब्राह्मी आदि शक्तियोंके साथ अपने भवनसे वहाँ पधारे। आकाशमें ही स्थित हुए ब्रह्माने उसको सम्बोधन करके कहा—'ज्योतिष्मती, चाक्षुष मनुकी पुत्री! तुम्हारा तप सफल हो गया। इस तपमें तुम सिद्ध हो गयी। मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम वर माँगो'॥ २५-२६॥

तच्छुत्वाकण्ठजलाद्विनिर्गत्य ब्रह्माणं प्रणिपत्य स्तुत्वा कृताञ्जलिरित्यब्रवीत्। हे भगवन् यदि प्रसन्नोऽसि किलेह सङ्कर्षणो भगवान् सहस्रवदनो मम वरो भूयादिति श्रुत्वा ह वाव विबुधर्षभः प्रत्युवाच॥ २७॥

हे पुत्रि तव मनोरथो दुर्लभोऽस्ति तथापि पूर्णं करिष्याम्यद्यैव वैवस्वतमन्वन्तरः प्राप्तोऽस्ति ह्यस्य त्रिनवचतुर्युगविकल्पिते काले सति तव वरः सङ्कर्षणो भगवान् भविष्यति॥ २८॥

तच्छ्रुत्वा ज्योतिष्मती ब्रह्माणमाह देवदेव भगवन्! महान् कालो वर्तते मम मनोरथः शीघ्रं भूयात्त्वं सर्वकार्यं कर्तुं समर्थः न चेत्तुभ्यं शापं दास्यामि यथा देवेभ्यो दत्तः॥ २९॥

इति प्रोक्तो ब्रह्मा शापभीतः क्षणं विचार्य पुनराह—हे राजपुत्रि त्वमानर्तपतेरेव तस्य कुशस्थल्यां पुत्री भव। तस्मिन् जन्मनि त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः कालः केनचित्कारणेन क्षणवद्भविष्यति इति तस्यै वरं दत्वा ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत॥ ३०॥

अथ साऽप्यानर्तेषु कुशस्थलीपुरे रेवतस्य भार्यायां जन्म लेभे। तत्र ज्योतिष्मती रेवती नाम रूपौदार्यगुणमण्डिता नवशरत्कञ्जनेत्रा विवाहयोग्या बभूव॥ ३१॥

तां रेवतः स्नेहेनान्तःपुरे सभार्य उवाच कीदृशं वरमिच्छसीति वचः श्रुत्वा सा तदोवाच सर्वेषां बलवान् स मे वरो भूयात्॥ ३२॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर ज्योतिष्मती कण्ठपर्यन्त जलसे बाहर निकली। उसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया, उनका स्तवन किया और वह हाथ जोड़कर कहने लगी—'भगवन्! यदि निश्चय ही आप मुझपर प्रसन्न हैं तो हजार मुखवाले भगवान् संकर्षण मेरे पति हों, यह मुझे वर दीजिये।' देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने यह सुनकर उत्तरमें कहा—'पुत्री! तुम्हारा मनोरथ दुर्लभ है, तथापि मैं उसे पूर्ण करूँगा। आजसे ही वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ हुआ है। इसकी सत्ताईस चतुर्युगी बीत जानेपर भगवान् संकर्षण तुम्हारे पति होंगे'॥ २७-२८॥

यह सुनकर ज्योतिष्मतीने ब्रह्माजीसे कहा—'देवदेव भगवन्! यह तो बड़ा लंबा समय है। आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, अतएव मेरा मनोरथ शीघ्र पूर्ण कीजिये। नहीं तो, जैसे मैंने देवताओंको शाप दिया है, वैसे ही आपको भी शाप दे दूँगी'॥ २९॥

ज्योतिष्मतीके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्माजी शापके भयसे डर गये और क्षणभर विचार करनेके बाद बोले—'राजकुमारी! तुम आनर्त देशके राजा रेवतके यहाँ कन्या बनो। वे राजा कुशस्थलीमें वर्तमान हैं। फिर इसी जन्ममें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा। किसी कारणसे सत्ताईस चतुर्युगीका समय एक घड़ीके समान बीत जायगा।' ज्योतिष्मतीको इस प्रकार वर देकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३०॥

तदनन्तर ज्योतिष्मतीने आनर्त देशमें कुशस्थलीके राजा रेवतकी पत्नीसे जन्म धारण किया। उस समय उसका नाम रेवती रखा गया। वह रूप, गुण और उदारतासे सुशोभित, शरत्कालीन नूतन कमलके समान नेत्रवाली रेवती विवाहके योग्य हो गयी॥ ३१॥

एक दिन राजा रेवत अन्तःपुरमें अपनी भार्याके साथ बैठे थे। उन्होंने स्नेहवश कन्यासे कहा—'तुम कैसा वर चाहती हो, बताओ?' यह सुनकर उसी समय रेवतीने कहा—'जो सबमें बलवान् हैं, वही मेरे पति हों'॥ ३२॥

इति श्रुत्वा राजा रेवतः सभार्योऽपि सुतां नीत्वा दिव्यं रथमारुह्य बलवन्तं वरं दीर्घायुषं परिप्रष्टुं लोकानुल्लङ्घ्य ब्रह्मलोकं गतवान्॥ ३३॥

यह सुनकर राजा रेवत कन्याको लेकर, अपनी भार्याके साथ दीर्घायु बलवान् वरकी खोजके लिये दिव्य रथपर सवार हो सभी लोकोंको लाँघते हुए ब्रह्मलोकको गये॥ ३३॥

तत्र क्षणमास्थितोऽभूत्तेन क्षणेन भूलोकेऽद्यैव त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः कालो जातः। साद्यैव ब्रह्मलोके वर्तते रम्भोरु तस्यां त्वं संलीना भूत्वावेशावतारिणी द्वारकां प्राप्य रमस्व॥ ३४॥

वहाँ घड़ीभर ठहरे। इतनेमें ही पृथ्वीलोकके सत्ताईस चतुर्युगोंका समय पूरा हो गया। [महानन्तने नागलक्ष्मीसे कहा—] 'रम्भोरु! वह रेवती अब भी ब्रह्मलोकमें ही है। तुम उसकी देहमें प्रवेश कर जाओ और आवेशावतारिणी बनो। तदनन्तर द्वारकामें जाकर मेरे साथ आनन्दका उपभोग करना'॥ ३४॥

प्राड्विपाक उवाच

इत्थं तद्वाक्यं श्रुत्वा नागलक्ष्मीः सङ्कर्षणं भर्तारमनुज्ञाप्य ब्रह्मलोकमेत्य रेवतीविग्रहे स्वावेशं चकार॥ ३५॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—नागलक्ष्मीने महानन्तके इन वचनोंको सुनकर अपने स्वामी भगवान् संकर्षणकी आज्ञा ली और ब्रह्मलोकमें जाकर रेवतीके विग्रहमें आविष्ट हो गयी॥ ३५॥

अथ सङ्कर्षणो भगवान् भूरि भूमिभारहरणार्थं लोकनमस्कृताद्गोलोकधामसकाशादवततारेदं बलभद्रस्य भगवत आगमनं मया ते कथितं सर्वदुरितापहरणं मङ्गलायनं युवराज कौरवेन्द्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसीति॥ ३६॥

कौरवेन्द्र दुर्योधन! तदनन्तर भगवान् संकर्षण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये सर्वलोकनमस्कृत गोलोकधामसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। यही भगवान् बलभद्रजीका आगमन-वृत्तान्त है। मैंने यह तुमको सुनाया है। यह समस्त पापोंका नाश करनेवाला और परम मङ्गलमय है। युवराज! अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो?॥ ३६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे ज्योतिष्मत्युपाख्याने रेवत्युपाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें ज्योतिष्मती-उपाख्यानके प्रसंगमें 'रेवती-उपाख्यान' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीबलराम और श्रीकृष्णका प्राकट्य

दुर्योधन उवाच

मुनीन्द्राहो अहं धन्योऽस्मि पुरा सङ्कर्षणस्य भक्तोऽस्मि त्वया स्मारितो भगवतो वासुदेवस्य सप्रभावं माहात्म्यं परमाद्भुतं श्रुतमत्रावतारौ भूत्वा भूम्यां रामकृष्णौ पितुः पुरात्कथं व्रजे गतवन्तौ व्रजवासिभिर्न ज्ञातौ कथमभूतां च तदुच्यताम्॥ १॥

दुर्योधनने कहा—मुनिराज! पूर्वजन्ममें मैं भगवान् संकर्षणका भक्त था, अतः मैं धन्य हूँ। आपने मुझे यह स्मरण करा दिया। साथ ही भगवान् वासुदेवकी प्रभावयुक्त परम अद्भुत महिमा भी आपने सुनायी। अब यह बतलानेकी कृपा कीजिये कि भगवान् बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर अपने पिताकी नगरी मथुरासे व्रजमें कैसे गमन किया और व्रजवासियोंसे वे गुप्तरूपमें किस प्रकार रहे?॥ १॥

प्राड्विपाक उवाच

अथैकदा मथुरायां यदुपुर्यामुग्रसेनाग्रजो देवको देवकीं सुतां वसुदेवाय ददावथ वरवध्वोः प्रयाणकाले कंस उग्रसेनात्मजस्तयोः स्यन्दनं नोदयामास॥ २॥

तदैव देववाणी कंसमाह। रे यां वहसेऽस्याश्चाष्टमो गर्भो हि त्वां हनिष्यतीति श्रुत्वा स महासुरः कालनेमिसुतः कंसः खड्गपाणिर्भगिनीं हन्तुं प्रवृत्तः॥ ३॥

तदैव वसुदेवस्तं बोधयित्वा प्राहैनां मा मारयास्याः पुत्रान् समर्पयिष्ये यतस्ते भयं जातं ममापि। इति श्रुत्वा तद्वाक्यसारवित्कंसस्तौ कारागारे कारयित्वा निश्चिन्तोऽप्यभवत्॥ ४॥

अथ देवक्याः प्रथमं जातं पुत्रं कंसाय वसुदेवः प्रददौ। तं सत्यवादिनं ज्ञात्वा कंसोऽर्भकं न जघान॥ ५॥

अङ्कानां वामतो गतिस्तथा देवानां तस्मादयं वा शत्रुः सर्वे यादवा देवाः सन्ति तव वधमिच्छन्तीति नारदवाक्यात्पुनर्जातं जातमपि निर्जघान॥ ६॥

अथ कंसभयात्पलायितानां यदूनां महान् कष्टो बभूव। अथ सप्तमो गर्भो देवक्या भगवाननन्तो ह्यभवत्। तत्तेजः श्रीकृष्णाज्ञया योगमाया देवक्युदरात्सन्निकृष्य वसुदेवस्य भार्यायां कंसभयाद्गोकुलस्थितायां रोहिण्यामर्पयितुमाजगाम॥ ७॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—यादवोंकी पुरी मथुरामें राजा उग्रसेन थे। एक समय उनके बड़े भाई देवककी कन्या देवकीसे वसुदेवजीका विवाह हुआ। विवाहके उपरान्त वर-वधूकी विदाईके समय उग्रसेननन्दन कंस स्वयं वसुदेव-देवकीका रथ चलाने लगा॥ २॥

उसी समय आकाशवाणी हुई—'अरे निर्बोध! तू जिसका रथ चला रहा है, उसीका आठवाँ गर्भ तेरा विनाश करेगा।' यह सुनते ही कालनेमि-तनय महान् दैत्य कंस हाथमें तलवार लेकर बहन देवकीका वध करनेको तैयार हो गया॥ ३॥

उसी क्षण वसुदेवजीने कंसको समझाकर कहा कि 'तुम इसका वध मत करो। जिनसे तुमको और मुझको भी भय हो रहा है, देवकीके गर्भसे उत्पन्न वे जितने पुत्र होंगे, मैं सबको लाकर तुम्हें दे दूँगा।' वसुदेवजीकी बातपर विश्वास करके कंसने देवकी और वसुदेव दोनोंको कारागारमें बंद करवा दिया और वह निश्चिन्त हो गया॥ ४॥

तदनन्तर देवकीके पहला पुत्र उत्पन्न हुआ। वसुदेवजीने उसे तुरंत लाकर कंसको दे दिया। कंसने समझा, वसुदेवजी बड़े सत्यवादी हैं। अतएव उसने लड़केका वध नहीं किया॥ ५॥

इसके उपरान्त उसके यहाँ नारदजी पधारे और उन्होंने कहा—'जैसे अङ्कोंकी टेढ़ी चाल है, वैसे ही देवताओंकी चाल भी उलटी होती है। सम्भव है, इधर-उधरसे गिननेपर यही लड़का आठवाँ माना जाय और तुम्हारा शत्रु बने। विशेष बात तो यह है कि सारे यादवोंके रूपमें देवता ही अवतीर्ण हैं और वे सभी तुम्हारा वध चाहते हैं।' नारदजीसे इस प्रकारकी बात सुनी, तबसे कंस देवकीसे उत्पन्न प्रत्येक लड़केको मारने लगा। उस समय कंसके भयसे यादवोंमें भगदड़ मच गयी और वे महान् कष्टोंका अनुभव करने लगे। तदनन्तर देवकीके सातवें गर्भमें भगवान् अनन्तका आगमन हुआ। वसुदेवजीकी एक दूसरी पत्नी रोहिणी भी कंसके भयसे नन्दबाबाके यहाँ गोकुलमें रहा करती थी। भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर योगमाया भगवान् अनन्तको देवकीके उदरसे खींचकर वसुदेव-पत्नी रोहिणीके गर्भमें स्थापित करनेको तैयार हो गयीं॥ ६-७॥

देवक्याः सप्तमे गर्भे हर्षशोकविवर्धने।
व्रजं प्रणीते रोहिण्यामनन्ते योगमायया।
अहो गर्भः क्व विगत इत्यूचुर्माथुरा जनाः॥ ८

अथ व्रजे पञ्चदिनेषु भाद्रे
स्वातौ च षष्ठ्यां च सिते बुधे च।
उच्चैर्ग्रहैः पञ्चभिरावृते च
लग्ने तुलाख्ये दिनमध्यदेशे॥ ९

सुरेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं
घनेषु मुञ्चत्सु च वारिबिन्दून्।
बभूव देवो वसुदेवपत्न्यां
विभासयन् नन्दगृहं स्वभासा॥ १०

नन्दोऽपि कुर्वञ्छिशुजातकर्म
ददौ द्विजेभ्यो नियुतं गवां च।
गोपान् समाहूय सुगायकानां
रावैर्महामङ्गलमाततान ॥ ११

अथाष्टमो देवक्याः परिपूर्णतमो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रोऽवततार। तदैव तदाज्ञया निशीथे तं प्रेङ्खे निधाय नन्दपत्न्यां जातायां योगनिद्रायां संसुप्ते जगति सति यमुनामुत्तीर्य महावनमेत्य यशोदाशयने सुतं निधाय तां सुतामादाय पुनर्वसुदेवो गृहानाययौ॥ १२॥

अथ कारागारे बालध्वनिं श्रुत्वा शत्रुभीतः कंसः समागत्य जातमात्रां कन्यां गृहीत्वा शिलापृष्ठे पातयामास॥ १३॥

तदैव तद्धस्तात्समुत्पत्याम्बरे योगनिद्रा भूत्वा सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैः स्तूयमाना कंसमिदमाह—हे खल तव पूर्वशत्रुर्यत्र क्व वा

देवकीका सातवाँ गर्भ एक ही साथ हर्ष और शोक बढ़ानेवाला था। योगमायाने उसे व्रजमें ले जाकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया। तब मथुराके लोगोंने कहा—'अहो! देवकीका गर्भ कहाँ चला गया? बड़े आश्चर्यकी बात है!' उसके पाँच दिन बाद भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको, जो स्वाति नक्षत्र और बुधवारसे युक्त थी, मध्याह्नके समय, तुला लग्नमें, जब पाँच ग्रह उच्चके होकर स्थित थे, व्रजमें वसुदेवपत्नी रोहिणीके गर्भसे अपने तेजके द्वारा नन्द-भवनको उद्भासित करते हुए महात्मा बलरामजी प्रकट हुए। उस समय मेघोंने जलबिन्दु बरसाये और देवताओंने पुष्पोंकी वृष्टि की। नन्दजीने शिशुका जातकर्म-संस्कार करवाया। ब्राह्मणोंको दस लाख गौएँ दानमें दीं, फिर गोपोंको बुलाकर अच्छे-अच्छे गायकोंके संगीतके साथ महामहोत्सव मनाया॥ ८—११॥

तदनन्तर देवकीके आठवें गर्भसे अर्धरात्रिके समय परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए। उसी समय इधर नन्दरानी यशोदाजीके गर्भसे कन्याके रूपमें योगमाया प्रकट हुईं। योगमायाके प्रभावसे सारा जगत् सो गया था। तब भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे वसुदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर यमुनाके उस पार वृन्दावनमें पहुँच गये और यशोदाके शयनागारमें जाकर उन्होंने यशोदाकी गोदमें बालक श्रीकृष्णको सुला दिया और कन्याको लेकर वे अपने स्थानपर लौट आये॥ १२॥

इसके बाद कारागारमें बालककी रुदन-ध्वनि सुनायी पड़ी। शत्रुके भयसे डरा हुआ कंस तुरंत आ पहुँचा और उसने तत्काल उत्पन्न हुई उस कन्याको उठा लिया एवं उसे एक शिलापर पटक दिया॥ १३॥

ठीक उसी समय कंसके हाथसे छूटकर कन्या बड़े जोरसे उछली और ऊपर आकाशमें जाकर योगमायाके रूपमें परिणत हो गयी। सिद्ध, चारण, गन्धर्व और मुनिगण उनका स्तवन कर रहे थे। योगमायाने कंससे कहा—'रे दुष्ट! तेरा पूर्वका शत्रु

जातो वृथा देवकीवसुदेवौ दीनौ दुनोषीत्युक्त्वा सा विन्ध्याचलं जगाम॥ १४॥

कहीं उत्पन्न हो चुका है। तू इन बेचारे दीन वसुदेव-देवकीको व्यर्थ ही क्यों कष्ट दे रहा है?' इस प्रकार कहकर वे योगमाया विन्ध्याचलको चली गयीं॥ १४॥

इत्युक्तो विस्मितः कंसो देवकीं वसुदेवं च विमुच्य पूतनादीन् दैत्यान् समाहूय चानिर्दशानिर्दशान् बालान् हन्तुमाज्ञां चकार तेऽपि तथा चक्रुः॥ १५॥

देवीके इन वचनोंसे कंस बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। फिर उसने देवकी और वसुदेवको तो छोड़ दिया और पूतना आदि दैत्योंको बुलाकर आज्ञा दी कि 'दस दिनके अंदर पैदा हुए जितने भी बालक हों, सबको मार डालो।' कंसकी आज्ञा पाकर दैत्यगण बालकोंका वध करने लगे॥ १५॥

अथ नन्दोऽपि पुत्रजन्मोत्सवं श्रुत्वा महोत्सवं चकारैवं कंसभयमिषेण व्रजं प्राप्तौ रामकृष्णौ स्वमाययालक्षितौ व्रजवासिनां कृपां कर्तुं जातमात्रावद्भुतां बाललीलां चक्रतुः। कौरवेन्द्र भूयः श्रोतुमिच्छसि किम्॥ १६॥

इधर नन्दने भी पुत्र-जन्म सुनकर महान् उत्सव मनानेकी योजना की। हे कुरुराज! इस प्रकार कंसके भयके बहाने भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण व्रजमें पधारे। वे अपनी मायासे ही वहाँ गुप्तरूपमें रहे और व्रजवासियोंपर कृपा करनेके लिये व्रजमें प्रकट होते ही विविध प्रकारकी अद्भुत बाल-लीला करने लगे। अब तुम क्या सुनना चाहते हो?॥ १६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे श्रीबलभद्रश्रीकृष्णजन्मोत्सवो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलराम और श्रीकृष्णका प्राकट्योत्सव' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

प्राड्विपाक मुनिके द्वारा श्रीराम-कृष्णकी व्रजलीलाका वर्णन

दुर्योधन उवाच

मुनीन्द्र रामोऽनन्तोऽनन्तलीलः श्रीकृष्णोऽपि च भूम्यां भूत्वा रराज। तस्य संक्षेपेण चरित्रं वद। व्रजे किं मथुरायां किं द्वारकायां किमत्र किमन्यत्र किं चकार॥ १॥

दुर्योधनने पूछा—मुनिराज! भगवान् अनन्त श्रीबलरामजी और अनन्त-लीलाकारी भगवान् श्रीकृष्णने भूमण्डलपर अवतार लेकर विचरण किया। अब संक्षेपमें यह बतानेकी कृपा कीजिये कि व्रजमें, मथुरामें, द्वारकामें, यहाँ और अन्यत्र उन्होंने क्या-क्या लीलाएँ कीं?॥ १॥

प्राड्विपाक उवाच

अथ ह वाव श्रीकृष्णो जातमात्रोऽद्भुतां लीलां पूतनामोक्षशकटासुरतृणावर्तवधयुतां विश्वरूप-दर्शनदधिचौर्यब्रह्माण्डदर्शनयमलार्जुनद्रुमखण्ड-भङ्गादिसंयुक्तां दुर्वाससो मायादर्शनवैभवां श्रीमद्-

प्राड्विपाक मुनिने उत्तर दिया—दुर्योधन! भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होते ही अद्भुत लीला आरम्भ कर दी। उन्होंने पूतनाको मोक्ष प्रदान किया, शकटासुर और तृणावर्तका उद्धार किया, [माताको] विश्वरूप दिखलाया, दधिकी चोरी की, अपने श्रीमुखमें ब्रह्माण्डके दर्शन करवाये, यमलार्जुन वृक्षोंको उखाड़ा और दुर्वासाजीको मायाका प्रभाव दिखलाया। श्रीमद्-

गर्गाचार्यवर्णितराधाकृष्णनामौदार्यमाहात्म्ययुक्तां सुरज्येष्ठकारितवृषभानुवरनन्दिनीविवाहरासमण्डलकथामण्डितां चकार॥ २॥

गर्गाचार्यजीके द्वारा राधाकृष्ण नामकी सुन्दरता और महिमाका वर्णन कराया। ब्रह्माजीने वृषभानुराजनन्दिनी राधिकाके साथ भाण्डीर-वनके रासमण्डलमें श्रीकृष्णका विवाह करवाया॥ २॥

ततः श्रीवृन्दावनागमने सति वत्सासुरवकासुराद्यसुराणां वधं कृत्वा गोपालैः सह गोचारणे वृन्दावनादिवनेषु विचचार॥ ३॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, बलराम दोनोंने वृन्दावन जाकर वत्सासुर और वकासुर आदि दानवोंका संहार किया, गोपालोंके साथ गायें चराते हुए वृन्दावन आदि वनोंमें विचरण किया॥ ३॥

अथ तालवने धेनुकासुरं खरस्वनं स्वपद्भ्यां ताडयन्तं भुजदण्डाभ्यां गृहीत्वा महाबलो बलदेवस्तालवृक्षे तं पातयित्वा पुनरापतन्तं भूपृष्ठे पोथयामास। मूर्च्छितो भग्नमस्तकः सद्यस्तन्मुष्टिप्रहारेण निधनं जगाम॥ ४॥

फिर तालवनमें गधेके समान रेंकनेवाला जो धेनुकासुर दैत्य रहता था, उसने अपनी दुलत्ती चलाकर बलरामजीको चोट पहुँचानेकी चेष्टा की। तब शक्तिशाली बलदेवजीने दोनों हाथोंसे उसे पकड़कर ताड़के वृक्षपर दे मारा। वह फिर उठकर सामने आया तो बलरामजीने उसे पुनः जमीनपर दे पटका। फलतः उसका सिर फूट गया और वह मूर्च्छित हो गया। तब बलरामजीने शीघ्र ही उसके एक मुक्का मारा, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये॥ ४॥

अथ श्रीकृष्णः कालियदमनदावाग्निपानादीनि चरित्राणि कृत्वा श्रीराधाप्रेमप्रकाशप्रीतिपरीक्षणवृन्दावनविहारदानमानलीलाहावभावयुक्तां शङ्खचूडवधादिशिवासुर्युपाख्यानकथां कथनीयां लीलां चकार॥ ५॥

तदनन्तर श्रीकृष्णने कालियनागका दमन, दावाग्निपान आदि लीलाएँ कीं, फिर श्रीराधिकाजीके प्रति प्रेमप्रकाश करके उनके प्रेमकी परीक्षा ली, वृन्दावनमें विहार किया, हाव-भावयुक्त दानलीला और मानलीला, शङ्खचूडादिका वध और शिव-आसुरि-उपाख्यान इत्यादिके प्रवचनकी बहुत-सी लीलाएँ कीं॥ ५॥

अथैकदा गिरिराजपूजने कृते भग्नबलिरिन्द्रः सांवर्तमेघमण्डलैर्व्रजमण्डले ववर्ष। तदा भगवान् भयातुरं व्रजं वीक्ष्य माभैष्टेत्यभयं दत्वा एककरेण गिरिराजं समुत्पाट्योच्छिलीन्ध्रं बाल इव दधार ह वाव सप्तवर्षीयः सप्ताहं सुस्थिरं स्थितः॥ ६॥

तदनन्तर एक समय गोवर्धन-पूजा की गयी। इन्द्रने यज्ञ-भागसे वञ्चित होनेपर कुपित होकर सांवर्तक आदि मेघोंके द्वारा व्रजमण्डलपर घोर वर्षा आरम्भ कर दी। सारे व्रजवासी भयसे व्याकुल हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने उनको आतुर देखकर—'डरो मत' यों कहकर अभय दान दिया। फिर उन्होंने गिरिराज गोवर्धनको उखाड़कर, जैसे बालक छत्रक (कुकुरमुत्ता)-को उठा लेता है, ठीक वैसे ही गोवर्धनको अपने एक हाथपर रख लिया। सात वर्षकी अवस्थावाले श्रीकृष्ण पूरे सात दिनोंतक पर्वतको हाथपर उठाये बिना हिले-डुले अविचल खड़े रहे॥ ६॥

अथेन्द्रः सर्वदेवगणैर्भयभीतः श्रीकृष्णचन्द्रश्रीमत्पादारविन्दद्वयं प्रणम्य किरीटेन नतः स्तुत्वा

तब तो सम्पूर्ण देवताओंके साथ इन्द्र भयभीत हो गये और उन्होंने अत्यन्त नम्रताके साथ मुकुट

तदभिषेकं कृत्वा महेन्द्रराट् सुरभिसुरमुनिभिः सार्धं स्वर्गं जगाम॥ ७॥

झुकाकर भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय युगल चरणोंमें प्रणाम किया, उनकी स्तुति की और अभिषेक किया। तदनन्तर कामधेनु सुरभि और देवता तथा मुनियोंके साथ वे स्वर्गको चले गये॥ ७॥

तदद्भुतं गोवर्धनोद्धारणं दृष्ट्वा गोपा विसिस्मियुस्तेभ्यो मुक्तारोपणादिवैभवं सन्दर्शयामासुः॥ ८॥

गोवर्धन-धारणकी इस अद्भुत लीलाको देखकर सभी गोप अत्यन्त विस्मित हो गये। फिर श्रीकृष्णने खेतमें मोती आदिके बीज बोकर मोती उपजानेका चमत्कारमय ऐश्वर्य गोपोंको दिखलाया॥ ८॥

अथ श्रुतिरूपर्षिरूपामैथिलाकौसलायोध्यापुरवासिनीयज्ञसीतापुलिन्दकारमावैकुण्ठश्वेतद्वीपोर्ध्ववैकुण्ठाजितपदश्रीलोकाचलवासिनीसखीदिव्यादिव्यात्रिगुणवृत्तिभूमिगोपीजनदेवश्रीजालन्धरीबर्हिष्मतीपुरन्ध्र्यप्सरःसुतलवासिनीनागेन्द्रकन्यादिभिर्गोपीयूथैः पृथक् पृथक् श्रीकृष्णो व्रजमण्डले रासमण्डलं चकार॥ ९॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, मैथिली, कोसलदेशनिवासिनी, अयोध्यावासिनी, यज्ञसीता, पुलिन्दका, रमावैकुण्ठवासिनी तथा श्वेतद्वीपनिवासिनी, ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिनी अजितपदवासिनी, श्रीलोकाचलनिवासिनी, दिव्या, अदिव्या, त्रिगुणावृत्ति, भूमि, गोपी, देवश्री, जालंधरी, बार्हिष्मती, पुरन्ध्री, अप्सरा, सुतलवासिनी और नागेन्द्रकन्या आदि गोपीयूथोंके साथ पृथक्-पृथक् रास-मण्डलकी रचना की॥ ९॥

एकदा गाश्चारयन् सबलः श्रीकृष्णो गोपालबालैर्भाण्डीरे बाललीलां वाह्यवाहकलक्षणां कृतवान्। तत्र प्रलम्बो गोपरूपी दैत्यो विहारे विहारविजयं रामं स्वपृष्ठे निधायोवाह॥ १०॥

एक समय श्रीबलरामजीके साथ श्रीकृष्णचन्द्र भाण्डीरवनमें गोपबालकोंके साथ गौएँ चराने गये। वहाँ जाकर एक-दूसरेको ढोने और ढोवानेका खेल करने लगे। उस समय वहाँ प्रलम्बासुर नामक एक दैत्य गोप-बालकका वेश धारणकर खेलमें शामिल हो गया, बलरामजी उसपर विजयी हुए। अतः उन्हें पीठपर चढ़ाकर वह चलने लगा॥ १०॥

अथ ह वाव मथुरां गन्तुमुद्यतं गिरीन्द्रस्य सदृशदेहं तमुद्वीक्ष्य पृष्ठगतो बलदेवो महाबलो रुषा मुष्टिना शिरसि महाद्रिं यथाद्रिभित्तताड तेन सद्यो विशीर्णमस्तको वज्रहतो गिरिरिव स दैत्यो भूम्यां निपपात॥ ११॥

वह गिरिराजके समान विशाल देहवाला असुर मथुराकी ओर जाना चाहता था कि उस असुरकी पीठपर सवार अमित-पराक्रमी श्रीबलदेवजीने, रोषमें भरकर जैसे इन्द्र किसी पर्वतपर प्रहार करे, वैसे ही उसके मस्तकपर मुष्टि-प्रहार किया। उस प्रहारसे वज्रकी चोट खाये हुए पहाड़की तरह असुरका सिर टूक-टूक हो गया और उसी क्षण वह भूमिपर गिर पड़ा॥ ११॥

एकदा ग्रीष्मे मुञ्जारण्यगतासु गोषु गोपालेषु च सत्सु सद्यः सम्भूतो दावाग्निः प्रलयाग्निरिव ववृधे। ततः कृष्णरामेति वदतः पाहि पाहीति गोपालान् शरणं गतान् वीक्ष्य लोचनानि

एक समय गरमीके दिनोंमें सभी गौएँ और गोपाल किसी मूँजके वनमें जा पहुँचे। इतनेमें ही वहाँ बड़े जोरकी प्रलयाग्निके समान दावाग्नि जल उठी और वह चारों तरफ फैल गयी। तब गोपालगण 'हे राम! हे कृष्ण! हम शरणागत गोपालोंकी रक्षा करो, रक्षा

निमीलयताशु माभैष्टेत्युक्त्वा तमग्निमपिबत्॥ १२॥

करो।' यों पुकार उठे। भगवान्ने तुरंत कहा—'डरो मत। तुम सब अपनी-अपनी आँखें मूँद लो।' यों कहकर भगवान् उस भीषण दावाग्निको पी गये॥ १२॥

अथ ह वाव भाण्डीराद्यमुनातीरे गोपालगोगणं नीत्वा प्राप्तोऽभूत्तत्राशोकवने यज्ञपत्न्यानीतं भोजनं कृतवान्॥ १३॥

तदनन्तर गोपाल और गायोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण भाण्डीरवनसे यमुनाके तटपर पधारे और अशोकवनमें यज्ञदीक्षित द्विजोंकी पत्नियोंके द्वारा लाया हुआ भोजन ग्रहण किया॥ १३॥

अथ चैकदा व्रजे नन्दराजे वरुणग्रस्ते वरुणस्य मानभङ्गं कृत्वा नन्दादिभ्यो गोपेभ्योऽपि सर्वलोक-नमस्कृतं वैकुण्ठं दर्शयामास॥ १४॥

इसके बाद एक दिन व्रजमें नन्दबाबाका वरुण देवताने अपहरण कर लिया, तब भगवान्ने वरुणका मान-भङ्ग करके नन्द आदि गोपोंको सम्पूर्ण लोकोंके द्वारा नमस्कृत वैकुण्ठके दर्शन कराये॥ १४॥

अथाम्बिकावने श्रीकृष्णः सरस्वतीतीरे नन्दं ग्रसन्तं सुदर्शनं सर्पं किलाखिललोकपालवन्दितेन श्रीमच्चरणारविन्देन स्पृष्ट्वा सर्पदेहात्तं मोचयामास॥ १५॥

इसके अनन्तर एक दिन अम्बिका-काननमें सरस्वती नदीके तटपर सुदर्शन नामक सर्प नन्दजीको निगलने लगा। तब भगवान् श्रीकृष्णने अखिल लोकपालोंके द्वारा वन्दनीय अपने चरणकमलका उससे स्पर्श कराया। चरण-स्पर्श प्राप्त होते ही वह सर्प-शरीरसे मुक्त हो गया॥ १५॥

अथ सबलः श्रीकृष्णो निलायनक्रीडायां चोररूपं व्योमासुरं कंससखं भुजदण्डाभ्यां गृहीत्वा दशदिशासु भ्रामयन् भूपृष्ठे पोथयामास॥ १६॥

एक समय श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ गोप-बालकोंको लिये आँखमिचौनी और चोर-साहुकारका खेल खेल रहे थे। उसी समय कंसका सखा व्योमासुर चोरके रूपमें वहाँ आया। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्रचण्ड दोनों भुजाओंसे उसे पकड़कर दसों दिशाओंमें घुमाते हुए पृथ्वीपर पटक दिया॥ १६॥

तथारिष्टासुरं कंसप्रणोदितं वृषरूपं शृङ्गयोः समुद्धृत्य पातयामास। अथ नारदमुखाच्छ्रुतश्रीकृष्ण-कथेन कंसेन प्रणोदितं केशिनं श्रीकृष्णस्तन्मुखे स्वभुजप्रवेशेन सम्ममर्देत्थमनेका लीलाः सहसा व्रजमण्डले बलेन कारयामास॥ १७॥

इसी प्रकार कंसका भेजा हुआ अरिष्टासुर बैलके रूपमें आया। भगवान्ने उसके दोनों सींग पकड़कर उसे भी धराशायी कर दिया। तब नारदजीने जाकर कंसको श्रीकृष्णकी ये सारी लीलाएँ सुनायीं। सुनकर कंसने केशीको भेजा, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके मुँहमें अपनी भुजा प्रवेश कराकर उसके मर्मको भेद डाला। श्रीकृष्णने इस प्रकार बलरामजीके साथ व्रज-मण्डलमें अनेक अद्भुत लीलाओंकी रचना की॥ १७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे श्रीरामकृष्णव्रजलीलावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीरामकृष्णकी व्रजलीलाका वर्णन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

श्रीराम-कृष्णकी मथुरा-लीलाका वर्णन

प्राड्विपाक उवाच

अथ मथुरायां रामकृष्णौ यानि चरित्राणि कृतवन्तौ तानि संक्षेपेण युवराज शृणुतात्। अथ कालनेमिसुतेन कंसेन प्रयुक्तोऽक्रूरो रामकृष्णौ समानेतुं व्रजमण्डलमागतवान्॥ १॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—युवराज दुर्योधन! भगवान् बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्रने मथुरामें जो-जो लीलाएँ कीं, उनका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ; सुनो। कुछ समयके पश्चात् कालनेमिकुमार कंसने बलराम और श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरजीको भेजा। अक्रूरजी व्रजमें पधारे॥ १॥

तत्र गन्तुमभ्युदितं नन्दराजसूनुं वीक्ष्य गोपीगणा विरहातुरा बभूवुः। पृथक् पृथक् तानाश्वास्य भगवान् रथमारुह्य सबलोऽक्रूरेण यदुपुरीं गच्छन्मार्गे यमुनाजलेषु श्वाफल्काय स्वधाम दर्शयामास॥ २॥

श्रीकृष्णको मथुरा जानेके लिये प्रस्तुत देखकर गोपियाँ विरहसे आतुर हो गयीं। भगवान्ने उन सबको अलग-अलग बुलाकर आश्वासन दिया। फिर बलरामजीसहित स्वयं रथपर सवार होकर अक्रूरजीके साथ मथुराकी ओर चले। जाते समय रास्तेमें यमुनाजी पड़ीं। उनके जलमें भगवान्ने अक्रूरको अपने तेज या धामके दर्शन कराये॥ २॥

अथ पूर्वाह्णे मथुरोपवने स्थित्वापराह्णे मथुरापुरीं सर्वतो ददर्श। अथ रामकृष्णौ देवौ पुराणौ पुरुषौ लीलया नरवरवेषधरौ दिदृक्षवः पौराश्च पुरन्ध्र्यः कर्माणि त्यक्त्वा व्यधावन्नापगा उदधिमिव तौ कोटिकन्दर्पहरं सौन्दर्यं स्वं सन्दर्शयन्तौ चेतो हरन्तौ विचेरतुः स्म॥ ३॥

तदनन्तर पूर्वाह्णके समय वे मथुरामें जा पहुँचे और वहाँ एक उपवनमें ठहर गये। अपराह्णकालतक मथुरापुरीको सब ओरसे देखते रहे। लीलारूपमें मनुष्यका वेष धारण किये हुए श्रीराम-कृष्ण साक्षात् पुराण-पुरुष हैं। मथुरा नगरीके सभी नर-नारियोंके मनमें उनके दर्शनका आनन्द प्राप्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी और वे अपना सारा काम-धाम छोड़कर, जैसे नदियाँ समुद्रकी ओर दौड़ती हैं, वैसे ही उनकी ओर दौड़ पड़े। कोटि-कोटि कामदेवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले भगवान् राम-कृष्णने अपना सौन्दर्य सबको दिखलाया और उन सबका मन हरण करते हुए वे स्वेच्छासे विचरण करने लगे॥ ३॥

अथ भगवान् राजमार्गे तद्याचितवस्त्राण्यदास्यन्तं रजकं रङ्गकारं कराग्रेण सर्वेषां पश्यतां निर्जघान तथा वस्त्रवेषं कुर्वते वायकाय स्वसारूप्यं प्रादात्॥ ४॥

तदनन्तर राजमार्गमें भगवान्ने कपड़े रँगनेका काम भी करनेवाले धोबीसे कपड़ोंकी याचना की; परंतु उसने जब वस्त्र नहीं दिये, तब सबके देखते-देखते ही हाथोंसे प्रहार करके उसको उस जीवनसे मुक्त कर दिया। तदनन्तर भगवान्को एक दर्जी मिला। उसने वस्त्रोंके द्वारा उनको सजाया और भगवान्ने उसे अपना सारूप्य प्रदान कर दिया॥ ४॥

ततः सैरन्ध्रीं कुब्जां त्रिवक्रां चन्दनादान-मिषेणर्व्वीं त्रिलोकसुन्दरीं कृत्वा ततो वैश्यजनान् समाभाष्य मथुरार्भकैः सहितो धनुःस्थले विवेश। अथ हेमचित्रं सप्ततालकं सहस्रशः पुरुषैर्नेतुमशक्यं बृहद्भारं चाष्टधातुमयलक्षभारसमं यज्ञमण्डपधृतं कंसाय भार्गवेण दत्तं साक्षाच्छेषमिव कुण्डलीभूतं कोदण्डं वैष्णवं वीक्ष्य प्रसह्याददे॥ ५॥

तदैव पश्यतां लोकानां सज्यं कृत्वा लीलयाकृष्य कर्णपर्यन्तं दोर्दण्डाभ्यां यथेक्षुदण्डं वेतण्डः शुण्डादण्डेन कोदण्डं मध्यतो बभञ्ज॥ ६॥

भज्यमानधनुष्टङ्कारेण सप्तलोकबिलैः सह सर्वं ब्रह्माण्डं ननाद। ततस्तारा दिग्गजाश्च विचेलुः। सर्वं भूखण्डमण्डलं स्थालीव घटिकाद्वयमात्रं प्रचकम्पे॥ ७॥

अथापराह्णे रङ्गभूमिद्वारि द्विपं कुवलयापीडं समेत्य क्षणं बाललीलया युद्धं कृत्वा शुण्डादण्डे सङ्गृहीत्वा त्वितस्ततो भ्रामयित्वा बालकः कमण्डलुमिव भूपृष्ठे तं पातयामास॥ ८॥

तमित्थं निहत्य रङ्गभूमौ कंससभायां जनतायै यथाभावं दर्शनं दत्वा मल्लयुद्धं कृत्वा चाणूर-मुष्टिककूटशलतोशलकान् कंसस्याग्रे सर्वेषां पश्यतां भूपृष्ठे रामकृष्णौ पातयामासतुः॥ ९॥

फिर कुब्जा सैरन्ध्री मिली। वह तीन जगहसे टेढ़ी थी। चन्दन-ग्रहण करनेके बहाने भगवान्‌ने उसको सीधी कर दिया। वह तीनों लोकोंमें सुन्दरी बन गयी। तत्पश्चात् वहाँके वैश्य व्यापारियोंसे बातचीत की और कुछ बच्चोंको साथ लेकर, जहाँ कंसका धनुष रखा था, उस स्थानपर वे जा पहुँचे। वह धनुष स्वर्णसे मण्डित था और सात ताड़ वृक्षोंके बराबर उसकी लंबाई थी। हजारों पुरुषोंके द्वारा भी वह उठाया नहीं जा सकता था। वह धनुष अष्टधातुसे बना हुआ था, अत्यन्त भारी था और उसका बोझ लाख भारके समान था। कंसने वह धनुष परशुरामजीसे प्राप्त किया था। वह वैष्णव (भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाला) धनुष साक्षात् भगवान् शेषके समान कुण्डलाकार था। भगवान् श्रीकृष्णने यज्ञमण्डपमें रखे उस धनुषको देखा और बलपूर्वक उठा लिया; फिर सब लोगोंके देखते-देखते ही लीलापूर्वक उसे चढ़ाया और कानतक तानकर ले गये। तदनन्तर दोनों भुजाओंका सहारा लगाकर उसको बीचसे उसी प्रकार तोड़ डाला, जैसे हाथी अपनी सूँड़से गन्नेको तोड़ देता है॥ ५-६॥

धनुषके टूटनेकी भयानक ध्वनिसे पातालसहित सप्तलोकमय सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। तारे और दिग्गजगण अपने स्थानसे विचलित हो चले। इतना ही नहीं, सारा भूमण्डल दो घड़ीतक थालीकी तरह काँपता रह गया॥ ७॥

अपराह्णके समय रङ्गशालाके द्वारपर कुवलयापीड हाथी दिखायी दिया। भगवान्‌ने उसके समीप आकर बाललीलाके रूपमें क्षणभर उसके साथ युद्ध किया, तदनन्तर उसकी सूँड़को पकड़कर उसे इधर-उधर घुमाया और फिर वैसे ही जमीनपर पटक दिया, जैसे बालक कमण्डलुको पटक दे॥ ८॥

कुवलयापीड हाथीका इस प्रकार वध करके श्रीबलराम और कृष्णचन्द्र कंस-रचित रङ्गभूमिमें पहुँचे और उन्होंने वहाँपर बैठे हुए सभी लोगोंको उनके अपने-अपने भावके अनुसार यथायोग्य दर्शन दिये। फिर अखाड़ेमें पहुँचकर मल्लयुद्धके लिये जा डटे और कंसके सामने सब लोगोंके देखते-देखते ही भगवान् बलराम और कृष्णचन्द्रने चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलको धराशायी कर दिया॥ ९॥

अथ तत्कर्म वीक्ष्य दुर्वचनानि विकत्थमानस्य कंसस्य मधुसूदनः सहसोत्पत्य मञ्चं महोन्नतं समारुरोह॥ १०॥

ततः सत्वरं मृत्युमिवागतं वीक्ष्य मञ्चादुत्थाय तं निर्भर्त्सयन्नुन्मना द्रुतं कंसः खड्गचर्मणी जगृहे। हरिः सहसा चर्मासिसंयुक्तं कंसं सविषं फणीन्द्रमिव तुण्डविभागाभ्यां विराडिव दोर्दण्डाभ्यां बलात् समग्रहीत्॥ ११॥

अथ तार्क्ष्यतुण्डात्फणीव कंसो भुजबन्धाद् बलाद्विनिर्गत्य पतत्खड्गचर्मा पुनरुद्यतोऽभूत्पुनर्मञ्चे बलिनौ वेगान्मर्दयन्तौ शैले सिंहाविव शुशुभाते॥ १२॥

ततो बलादुत्पतन्तं कंसं शतहस्तमम्बरे कृष्ण उत्पतन् श्येनं श्येन इव तं समग्रहीत्। पुनर्गच्छन्तं दैत्यपुङ्गवं प्रचण्डभुजदण्डाभ्यां गृहीतत्रैलोक्याधार इतस्ततो भ्रामयित्वा महाम्बरान्मञ्चोपरि पातयामास॥ १३॥

ततस्तडित्पाताद् द्रुमखण्ड इव भग्नदण्डो मञ्चो बभूव। स वज्राङ्गः पतितोऽपि किञ्चिद्व्याकुलः सहसोत्थाय महात्मना पुनर्युयुधे। पुनस्तं भुजदण्डाभ्यां भगवान् गृहीत्वा मञ्चे क्षिप्त्वा हृदयमारुह्य तन्मौलिं गृहीत्वा सद्यः केशेषु गृह्य मञ्चाद्रङ्गोपरि पातयित्वा शैलाद् गण्डशिलामिव तस्योपरिष्टात्सनातनः सर्वाधारोऽनन्तविक्रमो वेगात्स्वयं निपपात। तयोर्निपातेन

श्रीकृष्णके इन कार्योंको देखकर कंस दुर्वचनोंके द्वारा उनका तिरस्कार करने लगा। इसी बीच भगवान् श्रीकृष्ण कूदकर उस कटुभाषी कंसके अत्यन्त ऊँचे मञ्चपर चढ़ गये। तुरंत मृत्युके समान श्रीकृष्णको सामने आया देखकर किंकर्तव्यविमूढ़ कंस मञ्चसे उठा और भगवान्की भर्त्सना करते हुए उसने उसी क्षण ढाल और तलवारको हाथमें उठा लिया। श्रीकृष्णने तुरंत ढाल-तलवार लिये हुए कंसको, जैसे गरुड़ अपनी चोंचसे विषधर सर्पराजको पकड़ ले, वैसे ही बलपूर्वक अपनी प्रचण्ड भुजाओंसे पकड़ लिया॥ १०-११॥

पर गरुड़की चोंचसे जिस प्रकार सर्प छूटकर निकल भागे, उसी प्रकार कंस भगवान्के भुज-बन्धनसे बलपूर्वक निकल गया और गिरे हुए ढाल-तलवारवाला वह फिर लड़नेके लिये तैयार हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण और कंस—दोनों मञ्चपर आ गये और वेगपूर्वक एक-दूसरेपर आक्रमण करते हुए वैसे ही सुशोभित हुए, जैसे पर्वतपर दो सिंह लड़ते हुए शोभित हों॥ १२॥

तदनन्तर कंस उछलकर सौ हाथ ऊपर आकाशमें चला गया, तब भगवान् श्रीकृष्णने भी वैसे ही उछलकर जैसे एक बाज दूसरे बाजको पकड़ लेता है, उसी तरह उसे पकड़ लिया। कंस पुनः श्रीकृष्णके हाथोंसे छूटकर निकल भागा, तब त्रिलोकको धारण करनेवाले श्रीकृष्णने फिर अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे उस दैत्यश्रेष्ठको पकड़ लिया और इधर-उधर घुमाते हुए महाकाशसे उसे मञ्चपर पटक दिया॥ १३॥

जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष टूट जाता है, उसी प्रकार कंसके गिरते ही मञ्चके खंभे टूट गये। वज्रके समान कठोर शरीरवाला वह कंस नीचे गिर पड़ा। एक बार उसे कुछ व्याकुलता हुई; परंतु वह फिर सहसा उठा और महात्मा श्रीकृष्णके साथ जूझने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंसे पकड़कर उसे मञ्चपर पटक दिया और वे उसकी छातीपर चढ़ बैठे। तब उन्होंने उसके सिरको पकड़कर केश खींचते हुए, जैसे पर्वतसे कोई चट्टानको गिराये, वैसे ही उसे मञ्चसे नीचे अखाड़ेमें गिरा दिया। तदनन्तर सबके आधार-स्वरूप अनन्त-पराक्रमशाली सनातन पुरुष भगवान् स्वयं वेगपूर्वक मञ्चसे कूदकर कंसके

निम्नीभूतं भूखण्डमण्डलं स्थालीव दण्डत्रयं सहसा चकम्पे॥ १४॥

ऊपर जा पड़े। इस प्रकार दोनोंके गिरनेसे पृथ्वी कुछ नीचे धँस गयी और सारा भूमण्डल तीन घड़ीतक थालीकी तरह काँपता रह गया॥ १४॥

अथ सम्परेतं भोजराजं यदुराजो भूमिगतं नागेन्द्रं मृगेन्द्र इव सर्वेषां पश्यतां विचकर्ष। तदैव भूभुजां हाहाकार आसीदहो वैरभावेन यं भजन् कंसोऽपि तस्य सारूप्यं भृङ्गिणः कीटक इव जगाम॥ १५॥

कंसके प्राण निकल गये। सबके देखते-देखते ही जैसे भूमिपर पड़े हुए गजराजको सिंह खींच रहा हो, वैसे ही वे कंसके शरीरको घसीटने लगे। राजाओंमें हाहाकार मच गया। [लोग कहने लगे—] 'अहो! कैसे आश्चर्यकी बात है कि वैरभावसे स्मरण करनेवाला कंस भी उन प्रभुके सारूप्यको वैसे ही प्राप्त हो गया, जैसे कीड़ा भृङ्गीके रूपमें परिणत हो जाता है!॥ १५॥

ततः कंसं मृतं सहसा वीक्ष्य समागतांस्तस्यानुजान् खड्गचर्मधरान् दृष्ट्वा बलभद्रो मुद्गरं नीत्वा सर्वतोऽभिजघान। तदा देवदुन्दुभयो नेदुर्जयध्वनिश्चाभूद्देवाः पुष्पैर्ववृषुर्विद्याधर्यो ननृतुर्विद्याधरगन्धर्वकिन्नरा जगुः॥ १६॥

कंसकी मृत्यु देखकर उसके छोटे भाई तत्काल ढाल-तलवार लेकर वहाँ आ डटे। उनपर बलभद्रजीकी दृष्टि पड़ी और उन्होंने मुद्गर उठाकर सब ओरसे प्रहार करते हुए सबको धराशायी कर दिया। तब देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। सर्वत्र जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की। विद्याधरियाँ नृत्य करने लगीं और विद्याधर, गन्धर्व तथा किंनर भगवान्‌का यशोगान करने लगे॥ १६॥

अथ सर्वानाश्वास्य पितरौ विमोक्ष्योग्रसेनाय राज्यं दत्वोपवीतं प्राप्य सन्दीपनाद्विद्या अधीत्य तस्मै मृतं सुतं दक्षिणां दत्वा शङ्खं हत्वा मथुरामेत्य वसन् व्रजशान्त्यै चोद्धवं प्रेषयित्वा पुनः स्वयं व्रजं गत्वा राधायै गोपीभ्यश्च दर्शनं दत्वा रासमध्ये ऋभुमोक्षं कृत्वा पुनर्मथुरायां माथुरेशो रराज। रामोऽपि कोलवधं कृत्वा तस्यां विरराजेति तयोर्मथुरायां सहस्रशः पवित्राणि चरित्राणि बभूवुः॥ १७॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने सबको आश्वासन देकर माता-पिताको बन्धनमुक्त किया और उग्रसेनको राज्य सौंप दिया। फिर यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न होनेपर सांदीपनि मुनिके समीप जाकर समस्त विद्याओंका अध्ययन किया। दक्षिणारूपमें मरे हुए गुरुपुत्रको लाकर प्रदान किया, शङ्खासुरका वध किया। फिर वे मथुरामें आकर निवास करने लगे। व्रजकी व्यथाको दूर करनेके लिये भगवान्‌ने उद्धवको वहाँ भेजा। फिर स्वयं वहाँ जाकर रासमण्डलमें श्रीराधा और गोपियोंको अपने दर्शन कराये। रासमें ऋभु ऋषिको मुक्ति दी, फिर मथुरामें मथुरानरेशके सदृश कार्य करते हुए विराजमान हुए। बलरामजीने भी कोलासुरका वध करके मथुरापुरीमें शुभागमन किया। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी हजारों-हजारों पवित्र और विचित्र लीलाएँ मथुरामें सम्पन्न हुईं॥ १७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे मथुरालीलावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीराम-कृष्णकी मथुरा-लीलाका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

श्रीराम-कृष्णकी द्वारका-लीलाका वर्णन

प्राड्विपाक उवाच

अथ युवराज धार्तराष्ट्र तयोर्द्वारकालीलां सङ्क्षेपेण शृणुतात्। ततः कंसस्य पारोक्ष्यं सौहृदं कुर्वन्तं समागतं जरासन्धं जित्वा द्वारकाख्यं समुद्रे दुर्गं निर्माय तत्रैकरात्रेण ज्ञातीन् समाधाय मुचुकुन्ददृशा कालं घातयित्वा पुनश्च रामकृष्णौ प्रवर्षणाद्रिमेत्य तस्माद्द्वारकायां जग्मतुः॥ १॥

अथ ब्रह्मलोकात्समागतो रैवतः सुतां रत्नयुतां विधिवद्बलशालिने बलभद्राय दत्वा तपः कर्तुं बदर्याख्यं वनं गतवान्॥ २॥

अथ श्रीकृष्णः शत्रूणां पश्यतां कुण्डिन-पुराद्रुक्मिणीं जहार तथा जाम्बवतीं सत्यभामां कालिन्दीं मित्रविन्दां नाग्नजितीं भद्रां लक्ष्मणां च भौमं हत्वा षोडशसहस्रं शतं च राजकन्या उवाह॥ ३॥

राजन् भीष्मककन्यायां रुक्मिण्यां श्रीकृष्णस्य पुत्रः प्रथमः कामदेवावतारः पितृसमसुन्दर आसीत्। तस्मादनिरुद्धः सुरज्येष्ठावतारोऽभूत्॥ ४॥

अथैकदोग्रसेनराजसूयाध्वरे नागवल्लीं गृहीत्वा दिग्विजयार्थी निर्गतः प्रद्युम्नो यादवैर्भ्रातृभिः सह जम्बूद्वीपे नवखण्डविजयं कुर्वन् कामदुघनदसमीपे

प्राड्विपाक मुनिने कहा—युवराज दुर्योधन! अब भगवान् श्रीबलराम और श्रीकृष्णकी द्वारका-लीलाओंको संक्षेपमें सुनो। धृतराष्ट्र-तनय! जब कंसका देहावसान हो गया, तब उसके न रहनेपर भी उसके साथ अन्तरङ्ग मैत्रीका निर्वाह करनेके लिये जरासंध आया। भगवान्ने उसपर विजय प्राप्त की। तदनन्तर समुद्रके बीचमें द्वारका-दुर्गका निर्माण किया। फिर एक ही रात्रिमें अपने सारे बन्धु-बान्धवोंको वहाँ भेजकर उनके रहनेकी व्यवस्था की। कालयवनके आनेपर मुचुकुन्दद्वारा उसका वध करवाया। तदनन्तर बलरामजी और श्रीकृष्ण दोनों प्रवर्षण पर्वतपर गये और वहाँसे द्वारकाको प्रस्थान किया॥ १॥

ब्रह्मलोकसे लौटे हुए राजा रेवतने रत्न आदि आभूषणोंसे अलंकृत कन्या रेवतीको लेकर आगमन किया और प्रतापी बलरामजीके हाथोंमें उसे सविधि समर्पण कर दिया। फिर राजा रेवत तप करनेके लिये बदरीवनको चले गये॥ २॥

उसके बाद श्रीकृष्णने कुण्डिनपुर जाकर शत्रुओंके देखते-देखते रुक्मिणीजीका हरण किया एवं जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, नाग्नजिती, भद्रा और लक्ष्मणाका एवं भौमासुरका वध करके सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंका पाणिग्रहण किया॥ ३॥

राजन्! भीष्मककुमारी रुक्मिणीके गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रथम पुत्र प्रद्युम्न हुए। ये कामदेवके अवतार, अपने पिता श्रीकृष्णके समान ही सुन्दर थे। इनसे अनिरुद्धका जन्म हुआ, जो ब्रह्माके अवतार हैं॥ ४॥

तत्पश्चात् एकसमय राजा उग्रसेनके यहाँ राजसूय यज्ञका प्रस्ताव हुआ और दिग्विजयके लिये प्रद्युम्नजीने बीड़ा उठा लिया। यादवों तथा अपने भाइयोंके साथ उन्होंने विजययात्रा आरम्भ की और जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंपर विजय प्राप्त करके कामदुघ नदके समीप

वसन्तमालतीपुराधीशेन पतङ्गेन गन्धर्वराजेन युयुधे॥ ५॥

पहुँचे। वहाँ वसन्तमालती नामक नगरीके स्वामी गन्धर्वराज पतंगके साथ उनका युद्ध हुआ॥ ५॥

तत्र गदायुद्धे गदामादाय गदो बलदेवानुजो गदाधरं स्वगदया पतङ्गं तताड। सोऽपि तं हृदि चौजसा जघानेत्थं तयोर्गदायुद्धं घटिकाद्वयं बभूव। ततः पतङ्गगदाप्रहारेण गदो युद्धे क्षणं मूर्च्छां जगाम॥ ६॥

गदा-युद्ध आरम्भ होनेपर बलदेवजीके छोटे भाई गदने गदाके द्वारा गदाधारी पतंगपर प्रहार किया। पतंगने भी गदाके द्वारा बड़े वेगसे गदके हृदयपर आघात किया। इस प्रकार दो घड़ीतक दोनोंका युद्ध होनेके पश्चात् पतंगकी गदाके प्रहारसे क्षणभरके लिये गदको मूर्च्छा आ गयी॥ ६॥

तदा हाहाकारे जाते कोटिमार्तण्डसन्निभो बलभद्र आविर्भूत्वा गन्धर्वाणां सर्वं बलं हलाग्रेण समाकृष्य तदुपरि क्लिष्टमुसलताडनं चकार। तेन युगपत्सर्वं सैन्यं सभटद्विपरथं चूर्णीबभूव॥ ७॥

उस समय हाहाकार मच गया और इसी बीच करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी बलभद्रजी वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने गन्धर्वोंकी सारी सेनाको हलकी नोकके द्वारा खींच लिया और उसके ऊपर कठोर मुसलका प्रहार करना आरम्भ कर दिया। इससे पतंगकी सारी सेना—शूरवीर योद्धा, हाथी और रथ सभी चूर-चूर हो गये॥ ७॥

अथ पतङ्गोऽपि विरथो भयभीतस्तस्मात्पुरीं गत्वा पुनर्योद्धुं यादवैः सेनाव्यूहं चकार। तच्छ्रुत्वा क्रुद्धो बलभद्रो गन्धर्वाणां महापुरीं शतयोजनविस्तीर्णां वसन्तमालतीनाम्नीं सर्वां हलेन संविदार्य सहसा कामदुघे नदे सङ्कर्षणो विचकर्ष॥ ८॥

तब तो रथहीन पतंग भयभीत होकर अपने नगरको चला गया और यादवोंसे युद्ध करनेके लिये फिरसे व्यूहाकार सेना सजाने लगा। बलभद्रजीको जब इसका पता लगा, तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर गन्धर्वोंकी वसन्तमालती नामकी उस विशाल नगरीको, जिसका विस्तार सौ योजनमें था, हलके द्वारा उखाड़ लिया और कामदुघ नदमें डुबा देनेके लिये उसे खींचने लगे॥ ८॥

अथ ह वाव पतितैर्गृहैर्हाहाकारे जाते तिर्यक्पोतमिवाघूर्णां समस्तां नगरीं वीक्ष्य गन्धर्वैर्गन्धर्वेशः पतङ्गः कृताञ्जलिर्धर्षितो विश्वकर्मकृतानां विमानानां द्विलक्षं गजानां चतुर्लक्षं चाश्वशतार्बुदं च दिव्यानां रत्नानां भारं दशशतार्बुदं च बलिं नीत्वा बलशालिने बलाय दत्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्रणनाम॥ ९॥

नगरीके महलों और घरोंका गिरना-ढहना आरम्भ हो गया। चारों ओर हाहाकार मच उठा। सारी नगरी समुद्रमें चक्कर खाती हुई टेढ़ी नावकी तरह घूमने लगी। यह देखकर गन्धर्वराज पतंग भयभीत हो गये और अपने गन्धर्व भाई-बन्धुओंके साथ हाथ जोड़कर बलभद्रजीके समीप उपस्थित हुए। उन्होंने विश्वकर्माके द्वारा निर्मित दो लाख विमान, चार लाख हाथी, सौ अर्बुद घोड़े और एक हजार अर्बुद स्वर्ण तथा दिव्य रत्नोंका भार बलदेवजीकी सेवामें समर्पण किया और प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया॥ ९॥

अथ तथा साम्बमोक्षार्थं बलभद्र इहागतो भवतां पश्यतां पुरमिदं हलाग्रेण संविदार्य श्रीगङ्गां

फिर साम्बको छुड़ानेके लिये बलरामजी यहाँ तुम्हारे हस्तिनापुरमें पधारे और तुम सबके सामने ही उन्होंने हलकी नोकसे तुम्हारे नगरको उखाड़ लिया

साक्षात्सङ्कर्षणो विचकर्ष। तथैव नागकन्याभिर्गोपीभिर्निर्मिते रासमण्डले कालिन्दीं हलाग्रेण विचकर्ष॥ १०॥

और गङ्गामें डुबोनेके लिये खींचने लगे। फिर नागकन्या गोपियोंके साथ रास-मण्डलमें यमुनाजीको भी उन्होंने अपने हलकी नोकसे खींचा॥ १०॥

अथैकदा द्विविदो नाम वानरः सुग्रीवसचिवो भौमसखो नारदेन प्रेरितो हरिं योद्धुकामोऽवतरद्रैवतकाचलमेत्य बलेन घटिकाचतुष्टयं युयुधे। द्रुमदण्डशिलामुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं तं बलभद्रो मुसलेन मूर्ध्नि निजघान। पुनर्न मृतं मुष्टिना घातयित्वा पलायन्तं भुजदण्डाभ्यां गृहीत्वा रैवतकाचलपृष्ठे पातयित्वाच्युताग्रजो दृढेन मुष्टिना हृदि तं तताड। तत्पतनेन सटङ्कः शैलेन्द्रः कमण्डलुरिव चकम्पे॥ ११॥

तदनन्तर, एक समयकी बात है, नारदजीकी प्रेरणासे भौमासुरका सखा और सुग्रीवका मन्त्री द्विविद नामक बंदर युद्ध करनेके लिये आया। रैवतकपर्वतपर बलरामजीके साथ चार घड़ीतक उसका युद्ध हुआ। वह वृक्षों, शिलाओं और मुक्कोंके द्वारा बलरामजीपर प्रहार कर रहा था। उसी स्थितिमें बलरामजीने मुसलके द्वारा उसके मस्तकपर चोट पहुँचायी; पर वह मरा नहीं और फिरसे बलरामजीको मुक्का मारकर दौड़ा। भगवान् अच्युतके बड़े भाई बलरामजीने अपने दोनों हाथोंसे उसे पकड़ लिया और रैवतकपर्वतपर दे मारा, फिर उसके हृदयमें बड़े जोरसे मुष्टि-प्रहार किया। तब बंदर नीचे गिर गया। उसके गिरनेसे आवाज करता हुआ सारा पर्वत कमण्डलुकी तरह काँपने लगा॥ ११॥

अथ ह वाव राजन्नद्य भवतां पाण्डवैः सह युद्धोद्यमं श्रुत्वा तीर्थाभिषेकव्याजेन ब्राह्मणैर्नागरैः सहितः पुराद्विनिर्गतो द्वारकां प्रदक्षिणीकृत्य सिद्धाश्रमप्रभासयोः स्नात्वा पश्चिमायां दिशि सरस्वतीप्रतिस्रोतःसैन्धवारण्यजम्बूमार्गोत्पलावर्तार्बुदहेमवन्तसिन्धूनुपस्पृश्य पृथग् बिन्दुसरस्त्रितकूपसुदर्शनात्रितौशनसाग्नेयवायवसौदासगुहतीर्थश्राद्धदेवादीनि तीर्थानि स्नात्वोत्तरस्यां दिशि कैलासकरवीरमहायोगगणेशकौबेरप्राग्ज्योतिषरङ्गवल्लीसीतारामक्षेत्रचैत्रदेशवसन्ततिलकदशार्णभद्रकूर्मतीर्थपुष्पमालाचित्रवनचन्द्रकान्तानैःश्रेयसमनुपर्वतचक्षुःकामशालिनीकामवनवेदक्षेत्रसीतापृथुतीर्थतपोभूमिलीलावतीवेदनगरगान्धर्वशक्रभीमरथीश्रीजाह्नवीकालिन्दीहरिद्वारकुरुक्षेत्रमथुरापुष्करेषु स्नात्वा पुनस्तस्माच्छाम्भलं सौकरं प्राप्य चान्यानि कुर्वन् तीर्थानि साक्षात्सङ्कर्षणो नैमिषारण्यं जगाम॥ १२॥

प्रिय दुर्योधन! तदनन्तर पाण्डवोंके साथ तुमलोगोंके युद्धका उद्योग सुनकर बलरामजी तीर्थयात्राके बहाने नागरिकों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर द्वारकाकी प्रदक्षिणा करके पुरीसे बाहर निकले। फिर उन्होंने सिद्धाश्रम और प्रभासमें स्नान किया। पश्चिम दिशामें स्थित सरस्वती, प्रतिस्रोता, सैन्धवारण्य, जम्बूमार्ग, उत्पलावर्त, अर्बुद (आबू), हेमवन्त और सिन्धुनदमें पृथक्-पृथक् स्नान किया। तदनन्तर बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, अत्रितीर्थ, औशनस, आग्नेय, वायव, सौदास, गुहतीर्थ और श्राद्धदेव आदि तीर्थोंमें स्नान किया। तदनन्तर उत्तर दिशामें जाकर कैलास, करवीर, महायोग, गणेश, कौबेर, प्राग्ज्योतिष, रङ्गवल्ली, सीताराम आदि क्षेत्र, चैत्रदेश, वसन्ततिलक, दशार्ण, भद्र, कूर्मतीर्थ, पुष्पमाला, चित्रवण, चन्द्रकान्त, नैःश्रेयस, मनु पर्वत, चक्षु, कामशालिनी, कामवन, वेदक्षेत्र सीता, पृथुतीर्थ, तपोभूमि, लीलावती, वेदनगर, गान्धर्व, शक्र, भीमरथी, श्रीजाह्नवी, कालिन्दी, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, मथुरा और पुष्कर आदि तीर्थोंमें स्नान किया। फिर वहाँसे संभलग्राम और सूकरक्षेत्र (सोरों)-में गये। इस प्रकार अन्य तीर्थोंकी भी यात्रा करते हुए साक्षात् संकर्षण श्रीबलरामजी नैमिषारण्यमें पहुँचे॥ १२॥

तं समागतं वीक्ष्य शौनकादयो मुनयः समुत्थाय ववन्दिरे चार्चयन्॥ १३॥

तत्र वेदव्यासशिष्यं रोमहर्षणमप्रत्युत्थायिनं वीक्ष्य करस्थेन कुशाग्रेण तं जघानेति तदा हाहेति वादिनो मुनीन् वीक्ष्य लोकपावनोऽपि लोकसङ्ग्रहार्थी द्वादश मासान् तीर्थस्नानेन विशुद्धये मनो दधे॥ १४॥

तत्रेल्वलसुतो बल्वलो नाम दैत्य उपावृत्ते पर्वणि पांसुवर्षणप्रचण्डेन वायुना पूयशोणितविण्मूत्रसुरा-मांसदुर्गन्धेन समागतः खे दृष्टोऽभूत्। अथ लल-ज्जिह्वं वज्राङ्गं भिन्नकज्जलाञ्जनचयकृष्णं तप्तताम्र-श्मश्रुभयङ्करं ब्रह्मशान्तये हलाग्रेण समाकृष्य गगनान्मुसलेन मूर्ध्नि बलभद्रस्तं तताड। तत्ताडने-नाकाशात्सोऽपि कमण्डलुरिव व्यसुः पपात॥ १५॥

अथ प्रसन्ना मुनयोऽपि रामं संस्तुत्या-वितथाशिषः प्रयुज्य वृत्रघ्नं विबुधा इवाभ्यषिञ्चन् तैरभ्यनुज्ञातः सरयूकौशिकीमानसरोवरगण्डकी-गौतमीषु स्नात्वायोध्यानन्दिग्रामबर्हिष्मतीब्रह्मावर्ता-दीन्युपस्पृश्य तीर्थराजं प्रयागं जगाम। तत्रायुतगजदानं चकार॥ १६॥

ततश्चित्रकूटविन्ध्याचलकाशीविपाशाशोण-मिथिलागयादिषु स्नात्वा गङ्गासागरसङ्गमं जगाम।

बलरामजीको आया देखकर शौनकादि मुनियोंने खड़े होकर उनको प्रणाम किया और उनकी अर्चा की। वहाँ वेदव्यासजीके शिष्य रोमहर्षणजी विराजमान थे। वे खड़े नहीं हुए। बलरामजीने यह देखकर हाथमें जो कुशा लिये हुए थे, उसीकी नोकसे मुनिको निहत कर दिया। यह देखकर सब मुनि हाहाकार करने लगे। बलरामजीने यह सब देखा। समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले होनेपर भी उन्होंने लोक-संग्रहके लिये अपनी शुद्धिकी कामनासे बारह महीनेतक तीर्थ-स्नान करनेका व्रत ले लिया॥ १३-१४॥

वहाँ इल्वलका पुत्र बल्वल नामक दैत्य रहता था। वह नैमिषारण्यमें पर्वोंके अवसरपर भयानक आँधीके साथ-साथ धूलकी तथा दुर्गन्धपूर्ण पीब, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांस आदिकी वर्षा करता। उसकी जीभ सदा लपलपाया करती, वज्रके समान दृढ़ उसके अङ्ग थे। कज्जलगिरिके समान उसकी काली आकृति थी और तपाये हुए ताँबेके समान मूँछ-दाढ़ीवाला वह असुर बड़ा ही भयानक दीख पड़ता था। ऋषि-ब्राह्मणोंकी शान्तिके लिये उस भयानक असुरको बलरामजीने हलके अग्रभागद्वारा आकाशसे खींचकर उसके मस्तकपर मुसलके द्वारा प्रहार किया। मुसलकी चोट लगते ही उसके प्राण निकल गये और वह आकाशसे कमण्डलुकी तरह नीचे गिर पड़ा॥ १५॥

तदनन्तर प्रसन्नतासे खिले हुए मुखवाले मुनियोंने बलरामजीका स्तवन किया, उनको बड़े-बड़े आशीर्वाद दिये और जिस प्रकार वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रका देवतालोगोंने अभिषेक किया था, उसी प्रकार बलरामजीका अभिषेक किया। तदनन्तर मुनियोंसे आज्ञा लेकर बलरामजीने सरयू, कौशिकी (कोसी), मानसरोवर, गण्डकी और गौतमी आदि तीर्थोंमें स्नान किया। फिर अयोध्या, नन्दिग्राम, बर्हिष्मती और ब्रह्मावर्त आदि तीर्थोंमें स्नान करके वे तीर्थराज प्रयागमें पधारे और वहाँ दस हजार हाथियोंका दान किया॥ १६॥

तदनन्तर चित्रकूट, विन्ध्याचल, काशी, विपाशा, शोण, मिथिला और गया आदि तीर्थोंमें स्नान करके

तत्र सुवर्णशृङ्गाम्बरसंयुक्तं पृथक् सुवर्णरत्नभारसहितं गवां कोटिशतं ब्राह्मणेभ्यः प्रादात्। ततः क्रमशो दक्षिणस्यां दिशि महेन्द्राद्रिसप्तगोदावरीवेणीपम्पा-भीमरथीस्कन्दक्षेत्रश्रीशैलवेङ्कटकाञ्चीकावेरीश्रीरङ्ग-र्षभाद्रिसमुद्रसेतुकृतमालाताम्रपर्णीमलयाचलकुला-चलदक्षिणसिन्धुफाल्गुनपञ्चाप्सरोगोकर्णशूर्पार-कतापीपयोष्णीनिर्विन्ध्यादण्डकरेवामाहिष्मत्यवन्ति-कादीनि तीर्थानि साक्षात्सङ्कर्षणः करिष्यति स्म। ततस्त्वत्सहायार्थं विशसने चागमिष्यति॥ १७॥

गङ्गासागर-संगमपर गये और वहाँ स्वर्णके सींगोंसे और सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित सौ करोड़ गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं। प्रत्येक गौपर स्वर्ण और रत्नोंका भार पृथक् रूपसे लदा हुआ था। तदनन्तर वहाँसे दक्षिण दिशामें जाकर क्रमशः महेन्द्रादि पर्वत, सप्त गोदावरी, वेणी, पम्पा, भीमरथी, स्कन्दक्षेत्र, श्रीशैल, वेङ्कट, काञ्ची, कावेरी, श्रीरङ्ग, ऋषभाद्रि, समुद्रसेतु, कृतमाला, ताम्रपर्णी, मलयाचल, कुलाचल, दक्षिणसिन्धु, फाल्गुनतीर्थ, पंचाप्सर, गोकर्ण, शूर्पारक, तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, दण्डक, रेवा, माहिष्मती और अवन्तिका आदि तीर्थोंका स्वयं भगवान् संकर्षणने सेवन किया। तत्पश्चात् तुम्हारी सहायताके लिये विशसन (कुरुक्षेत्र)-में पधारेंगे॥ १७॥

इदं बलभद्रचरित्रं पवित्रं सर्वपापाभिहरणं तीर्थयात्रावर्णनं नितरां मया वर्णितं सर्वमङ्गलकारणं कौरवेन्द्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १८॥

यह मैंने बलभद्रजीका परम पावन तीर्थयात्रा-चरित्र तुम्हारे सामने वर्णन किया। कौरवेन्द्र! यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला, सर्वकल्याणकारी पवित्र प्रसङ्ग है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ १८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे द्वारकालीलावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीराम-कृष्णकी द्वारका-लीलाका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन

दुर्योधन उवाच

मुनिशार्दूल भगवान् बलभद्रो नागकन्याभि-र्गोपीभिः कदा कालिन्दीकूले विजहार॥ १॥

दुर्योधनने पूछा—भगवन् मुनिसत्तम! भगवान् बलभद्रजीने नागकन्या गोपियोंके साथ यमुनाजीके तटपर कब विहार किया था?॥ १॥

प्राड्विपाक उवाच

एकदा द्वारकानगराद्धि तालाङ्कं रथमास्थाय सुहृद्दिदृक्षुः परमुत्कण्ठो नन्दराजगोकुलं गोगोपाल-गोपीगणसंकुलं सङ्कर्षण आगतश्चिरोत्कण्ठाभ्यां नन्दराजयशोदाभ्यां परिष्वक्तो गोपीगोपालगोभि-र्मिलित्वा तत्र द्वौ मासौ वासन्तिकौ चावात्सीत्॥ २॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—एक समयकी बात है, व्रजके सुहृद्-बन्धुओंको देखनेकी बलरामजीके मनमें बड़ी उत्कण्ठा पैदा हो गयी। तब वे अपने तालध्वजसे युक्त रथपर सवार होकर द्वारकासे निकले और गौओं, गोपालों तथा गोपियोंसे भरे गोकुलमें जा पहुँचे। नन्दराज और यशोदाजी भी बहुत दिनोंसे उन्हें देखनेके लिये उत्कण्ठित थे, अतएव उन्होंने उनको हृदयसे लगा लिया। फिर बलभद्रजी गौओं, गोपियों और गोपालोंसे मिले और पूरे वसन्तके दो महीने उन्होंने वहाँ निवास किया॥ २॥

अथ च या नागकन्याः पूर्वोक्तास्ता गोपकन्या भूत्वा बलभद्रप्राप्त्यर्थं गर्गाचार्याद् बलभद्रपञ्चाङ्गं गृहीत्वा तेनैव सिद्धा बभूवुः। ताभिर्बलदेव एकदा प्रसन्नः कालिन्दीकूले रासमण्डलं समारेभे। तदैव चैत्रपूर्णिमायां पूर्णचन्द्रोऽरुणवर्णः सम्पूर्णं वनं रञ्जयन् विरेजे॥ ३॥

पहले जिन नागकन्याओंके गोपी होनेका वर्णन आ चुका है, उन्होंने गर्गाचार्यजीसे बलभद्रजीका पञ्चाङ्ग* प्राप्त करके उसे सिद्ध किया था। उसीके प्रभावसे बलभद्रजीने प्रसन्न होकर कालिन्दीके तटपर उनके साथ रासमण्डलमें रासक्रीड़ा की। उस दिन चैत्रकी पूर्णिमा थी। अरुण वर्णके पूर्ण चन्द्र उदित होकर सारे वनको अपनी रंग-बिरंगी किरणोंसे रञ्जित कर रहे थे॥ ३॥

शीतला मन्दयानाः कमलमकरन्दरेणुवृन्द-संवृताः सर्वतो वायवः परिववुः। कलिन्दगिरिनन्दिनी चललहरीभिरानन्ददायिनी पुलिनं विमलं ह्याचितं चकार। तथा च कुञ्जप्राङ्गणनिकुञ्जपुञ्जैः स्फुरल्ललितपल्लवपुष्पपरागैर्मयूरकोकिलपुंस्कोकिल-कूजितैर्मधुपमधुरध्वनिभिर्व्रजभूमिर्विभ्राजमाना बभूव॥ ४॥

शीतल पवन कमलके मकरन्द और परागको लिये सर्वत्र मन्द गतिसे प्रवाहित हो रहा था। आनन्ददायिनी यमुना अपनी चञ्चल लहरियोंसे निर्मल पुलिनभूमिको व्याप्त कर रही थी। कुञ्जोंकी प्राङ्गण-भूमि विविध निकुञ्ज-पुञ्जोंसे सुशोभित तथा चमचमाते हुए सुन्दर पल्लवों और पुष्पोंके परागसे आवृत थी। मोर और कोयल मधुर स्वरमें कूज रहे थे और मधुपान-मत्त मधुकरोंकी मधुर-ध्वनिसे मुखरित व्रज-भूमि अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रही थी॥ ४॥

तत्र क्वणद्घण्टिकनूपुरः स्फुरन्मणिमयकट-ककटिसूत्रकेयूरहारकिरीटकुण्डलयोरुपरि कमल-पत्रैर्नीलाम्बरो विमलकमलपत्राक्षो यक्षीभिर्यक्षराडिव गोपीभिर्गोपराड् रासमण्डले रेजे॥ ५॥

बलरामजीके पैरोंमें नूपुरकी मधुर ध्वनि हो रही थी। चमकती हुई मणियोंके कड़े, करधनी, केयूर, हार, किरीट और कुण्डलोंसे वे अलंकृत थे। उनके वदनपर कमल-दलकी छटा छा रही थी। वे नीलाम्बर धारण किये हुए थे। उनके विमल कमल-दलके समान नेत्र थे। ऐसे श्रीबलदेवजी यक्षिणियोंके साथ यक्षराजकी भाँति रासमण्डलमें गोपियोंके द्वारा घिरे हुए विराजित थे॥ ५॥

अथ वरुणप्रेषिता वारुणी देवी पुष्पभार-गन्धिलोभिमिलिन्दनादितवृक्षकोटरेभ्यः पतन्ती सर्वतो वनं सुरभीचकार। तत्पानमदविह्वलः कमल-विशालताम्राक्षो मकरध्वजावेशचलद्भ्रुर्याङ्गभङ्गो विहारखेदप्रस्वेदाम्बुकणैर्गलद्गण्डस्थलपत्रभङ्गो

तदनन्तर वरुणके द्वारा प्रेरित वारुणी देवी वृक्षोंके कोटरोंसे प्रकट होकर बहने लगीं। उस पुष्पासवकी सुगन्धसे सारा वन सुगन्धमय हो गया। मधुके लोभसे मधुकर-पुञ्ज मधुर गुञ्जार करने लगा। वारुणि-पानसे मद-विह्वल, कमल-दलके समान विशाल और अरुण नेत्रवाले बलदेवजीके अङ्ग प्रेमावेशसे चञ्चल हो उठे। तदनन्तर लीला-विहारजन्य श्रमके कारण जलकणकी भाँति पसीनेकी बूँदें उनके मुखपर प्रकट हो गयीं और उन्होंने कपोलोंपर रचित चित्रकारीको धो दिया। तदनन्तर गजराजकी-सी चालवाले और गजेन्द्र ऐरावतकी सूँड़के समान विशाल भुजाओंवाले

* जिसमें पद्धति, पटल, स्तोत्र, कवच और सहस्रनाम—साधनके ये पाँच अङ्ग होते हैं, उसे 'पञ्चाङ्ग' कहते हैं।

गजेन्द्रगतिर्गजेन्द्रशुण्डादण्डसमदोर्दण्डमण्डितो गजीभिर्गजराजेन्द्र इवोन्मत्तः सिंहासने न्यस्तहलो मुसलपाणिः कोटीन्दुपूर्णमण्डलसङ्काशः प्रोद्गमद्रत्नमञ्जीरप्रचलन्नूपुरप्रक्वणत्कनककिङ्किणीभिः कङ्कणस्फुरत्ताटङ्कपुरटहारश्रीकण्ठाङ्गुलीयशिरोमणिभिः प्रविडम्बिनीकृतसर्पिणीश्यामवेणीकुन्तलललितगण्डस्थलपत्रावलिभिः सुन्दरीभिर्भगवान् भुवनेश्वरो विभ्राजमानो विरराज अथ च रेमे॥ ६॥

अथ ह वाव कालिन्दीकूलकान्तारपर्यटनविहारपरिश्रमोद्यत्स्वेदबिन्दुव्याप्तमुखारविन्दः स्नानार्थं जलक्रीडार्थं यमुनां दूरात्स आजुहाव। ततस्त्वनागतां तटिनीं हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष इति होवाच च॥ ७॥

अद्य मामवज्ञाय नायासि मयाहूतापि मुसलेन त्वां कामचारिणीं शतधा नेष्य एवं निर्भर्त्सिता सा भूरिभीता यमुना चकिता तत्पादयोः पतितोवाच॥ ८॥

राम राम सङ्कर्षण बलभद्र महाबाहो तव परं विक्रमं न जाने। यस्यैकस्मिन्मूर्ध्नि सर्षपवत्सर्वं भूखण्डमण्डलं दृश्यते। तस्य तव परमनुभावमजानन्तीं प्रपन्नां मां मोक्तुं योग्योऽसि। त्वं भक्तवत्सलोऽसि॥ ९॥

इत्येवं याचितो बलभद्रो यमुनां ततो व्यमुञ्चत्पुनः करेणुभिः करीव गोपीभिर्गोपराड् जले विजगाह। पुनर्जलाद्विनिर्गत्य तटस्थाय बलभद्राय सहसा यमुना चोपायनं नीलाम्बराणि हेमरत्न-

बलदेवजी गोपियोंके साथ वैसे ही क्रीड़ा करने लगे, जैसे उन्मत्त मातङ्ग हथिनियोंके साथ करता है। उनके सिंहस्कन्धतुल्य कंधेपर हल और हाथमें मुसल सुशोभित था। करोड़ों-करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंकी प्रभाके समान उनका तेज छिटक रहा था। देदीप्यमान रत्नोंके मञ्जीर, चञ्चल नूपुर, मधुर शब्द करती हुई स्वर्णमयी किङ्किणी, कड़े, ताटङ्क, हार, श्रीकण्ठ, अँगूठियाँ और सिरपर दिव्य मणिभूषण सुशोभित थे। काली नागिनको लजानेवाली कृष्ण अलकावलीकी वेणीसे युक्त और कपोलोंपर चित्रित मनोहर पत्रावलियोंसे सुशोभित गोप-सुन्दरियोंके साथ अखिल भुवनपति भगवान् बलरामजी वहाँ विराजित होकर रास-विहार करने लगे॥ ६॥

फिर यमुनाके किनारे वनमें विचरण और क्रीड़ा करते हुए बलदेवजीके मुखकमलपर पसीनेकी बूँदें दिखायी देने लगीं। तब उन्होंने स्नान तथा जल-क्रीड़ा करनेके लिये दूरसे ही यमुनाजीको पुकारा, परंतु यमुना नहीं आयीं। फिर तो बलदेवजीने क्रोधमें भरकर हलकी नोकसे यमुनाजीको खींच लिया और कहा— 'आज मैंने तुमको बुलाया, किंतु तुम मेरा अपमान करके नहीं आयी। तुम मनमाना बर्ताव करनेवाली हो। अच्छा, अभी इस मुसलके द्वारा मैं तुम्हारे सौ टुकड़े कर देता हूँ।' यमुनाजीको जब बलरामजीने इस प्रकार डाँटा, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर उनके चरणकमलोंपर गिर पड़ीं और बोलीं— ॥ ७-८॥

'हे लोकाभिराम राम! हे संकर्षण! बलभद्र! हे महाबाहो!! मैं आपके असीम बल-पराक्रमको नहीं जानती थी। आपके एक ही मस्तकपर सारा भूखण्ड-मण्डल सरसोंके समान दृश्यमान होता है। मैं आपके परम प्रभावसे अनभिज्ञ हूँ और आपकी शरणमें आयी हूँ। आप भक्तवत्सल हैं। मुझे छोड़ दीजिये।'॥ ९॥

इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गोपराज बलभद्रजीने यमुनाको छोड़ दिया और हथिनियोंके साथ गजराजकी भाँति वे गोपियोंके साथ जलक्रीड़ा करने लगे। तदनन्तर उनके यमुनासे बाहर निकलनेपर यमुनाजीने आकर उन्हें बहुत-से नील वस्त्र और स्वर्ण तथा

मयभूषणानि दिव्यानि च ददौ ह वाव तानि गोपीयूथाय पृथक् पृथग् विभज्य स्वयं नीलाम्बरे वसित्वा काञ्चनीं मालां नवरत्नमयीं धृत्वा महेन्द्रवारणेन्द्र इव बलभद्रो विरेजे ॥ १० ॥

रत्नोंके आभूषण भेंट किये। [दुर्योधन!] बलरामजीने उन सब वस्त्राभूषणोंको पृथक्-पृथक् गोपियोंमें बाँट दिया और स्वयं नीलाम्बर तथा नवीन रत्नोंसे निर्मित स्वर्णमालाको धारण करके ऐरावतकी भाँति विराजमान हो गये॥ १० ॥

इत्थं कौरवेन्द्र यादवेन्द्रस्य रमतः सर्वा वासन्तिकीर्निशा व्यतीता बभूवुः। भगवतो बलभद्रस्य हस्तिनापुरमिव वीर्यं सूचयतीव ह्यद्यापि, च कृष्टवर्त्मना यमुना वहति। इमां रामस्य रासकथां यः शृणोति श्रावयति च स सर्वपापपटलं छित्त्वा तस्य परस्परमानन्दपदं प्रतियाति। किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ११ ॥

कौरवेन्द्र! इस प्रकार क्रीड़ारत यादवश्रेष्ठ बलरामजीने वसन्त ऋतुकी रात्रिको व्यतीत किया। जिस प्रकार हस्तिनापुरको देखनेपर भगवान् बलरामजीके पराक्रमका दर्शन होता है, उसी प्रकार आजतक यमुनाजी टेढ़े मार्गसे प्रवाहित होती हुई उनकी शक्तिको सूचित कर रही हैं। भगवान् बलरामजीके इस रासलीलाके प्रसङ्गको जो मनुष्य सुनता अथवा सुनाता है, वह सारे पापोंसे मुक्त होकर उन्हींके परमानन्द-पदको प्राप्त होता है। युवराज! अब क्या सुनना चाहते हो?॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे श्रीरामरासक्रीडावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

श्रीबलभद्रजीकी पूजा-पद्धति और पटल

दुर्योधन उवाच

भगवन् गर्गाचार्येण गोपीयूथाय कथं दत्तं बलभद्रपञ्चाङ्गं तत्कृपया वदतात्। त्वं सर्वज्ञोऽसि॥ १ ॥

दुर्योधनने कहा—भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं। यह बतानेकी कृपा कीजिये कि गोपियोंके यूथको श्रीगर्गाचार्यजीने बलभद्र-पञ्चाङ्ग किस प्रकार प्रदान किया था?॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

कौरवेन्द्र एकदा गर्गाचार्यः कलिन्दनन्दिनीं स्नातुं गर्गाचलाद्व्रजमण्डलं चाजगाम। तत्रैकान्ते मरुल्लीलैजल्ललितलतातरुपल्लवपुष्पगन्धमत्तमिलिन्दपुञ्जे कालिन्दीकूलकलितनिकुञ्जे श्रीरामकृष्णध्यानतत्परं गर्गाचार्यं प्रणम्य नागेन्द्रकन्याः स्म इति जातिस्मरा गोपकन्याः श्रीमद्बलभद्रप्राप्त्यर्थं

प्राड्विपाक मुनि बोले—कुरुराज! एक बार गर्गजी यमुना-स्नान करनेके लिये गर्गाचलसे चलकर व्रजपुरमें पधारे। यमुनाजीके तटकी ललित लताएँ पवनके प्रवाहसे हिल रही थीं। पुष्पोंके सौरभसे मत्त हुए भ्रमरोंके समूह गुंजार कर रहे थे। इस प्रकारके यमुना-तटपर एक निकुञ्जके नीचे एकान्तमें श्रीगर्गाचार्य भगवान् बलराम और श्रीकृष्णका ध्यान करने लगे। उस समय गोपियोंने आकर उनको प्रणाम किया। उनको स्मरण हो आया कि हम पूर्वजन्मकी नागेन्द्र-कन्याएँ हैं। तब उन्होंने बलभद्रजीको प्राप्त करनेके लिये गर्गजीसे सेवाका साधन पूछा। कन्याओंकी इस

सेवनं पप्रच्छुस्तासां परमां भक्तिं वीक्ष्य पद्धति-
पटलस्तोत्रकवचसहस्रनामानि गोपीयूथाय स प्रददौ।
किं भूयस्त्वं तद्ग्रहणं कर्तुमिच्छसि वदतात्॥ २॥

दुर्योधन उवाच

रामस्य पद्धतिं ब्रूहि यया सिद्धिं व्रजाम्यहम्।
त्वं भक्तवत्सलो ब्रह्मन् गुरुदेव नमोऽस्तु ते॥ ३

प्राड्विपाक उवाच

राममार्गस्य नियमं शृणु पार्थिवसत्तम।
येन प्रसन्नो भवति बलभद्रो महाप्रभुः॥ ४

सहस्रवदनो देवो भगवान् भुवनेश्वरः।
न दानैर्न च तीर्थैश्च भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया॥ ५

सत्सङ्गमेत्याशु शिक्षेद्भक्तिं वै श्रीहरेर्गुरोः।
स सिद्धः कथितो जातं यस्य वै प्रेमलक्षणम्॥ ६

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय रामकृष्णेति च ब्रुवन्।
नत्वा गुरुं भुवं चैव ततो भूम्यां पदं न्यसेत्॥ ७

वार्युपस्पृश्य रहसि स्थितो भूत्वा कुशासने।
हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रनिरीक्षणः॥ ८

ध्यायेत्परं हरिं देवं बलभद्रं सनातनम्।
गौरं नीलाम्बरं हृद्यं वनमालाविभूषितम्॥ ९

एवं ध्यानपरो नित्यं प्रीत्यर्थं हलिनः प्रभोः।
त्रिकालसन्ध्याकृच्छुद्धो मौनी क्रोधविवर्जितः॥ १०

अकामी गतलोभश्च निर्मोहः सत्यवाग् भवेत्।
द्विवारं जलपानार्थी एकभुक्तो जितेन्द्रियः॥ ११

क्षौमाम्बरो भूमिशायी भूत्वा पायसभोजनः।
एवं निर्जितषड्वर्गो भवेदेकाग्रमानसः॥ १२

अनुपम भक्तिको देखकर उनके उद्देश्यकी सिद्धिके लिये गर्गजीने उनको पद्धति, पटल, स्तोत्र, कवच और सहस्र-नाम—यह पञ्चाङ्ग साधन प्रदान किया। अब बताओ, तुम क्या उस (पंचांग)-को प्राप्त करना चाहते हो?॥ २॥

दुर्योधनने कहा—ब्रह्मन् गुरुदेव! आप भक्तवत्सल हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप कृपया बलरामजीकी 'पद्धति' का वर्णन कीजिये, जिसे जानकर मैं सिद्धि प्राप्त कर सकूँ॥ ३॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—राजसत्तम! जिससे महाप्रभु बलरामजी प्रसन्न हो जाते हैं, उस बलभद्र-पद्धतिके नियम सुनो। वे भगवान् बलरामजी सहस्र-मुखवाले हैं। समस्त भुवनोंके अधीश्वर हैं। बहुत-से दान और तीर्थ-सेवनसे उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वे तो केवल 'अनन्य-भक्ति' से प्राप्त होते हैं॥ ४-५॥

श्रीहरिके बड़े भाई उन बलरामजीकी भक्ति सत्सङ्गके द्वारा शीघ्र प्राप्त हो सकती है। जिनमें प्रेमलक्षणा-भक्तिका उदय हो जाता है, वे ही सिद्ध पुरुष हैं। ब्राह्ममुहूर्तमें उठते ही भगवान् राम-कृष्णके नामोंका उच्चारण करे, फिर गुरुदेवको और पृथ्वीको (मनसे) प्रणाम करके पृथ्वीपर पैर रखे॥ ६-७॥

तदनन्तर स्नान-आचमन करके निर्जनमें कुशासनपर बैठ जाय, दोनों हाथ गोदमें रख ले और अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर परमदेव सनातन हरि भगवान् श्रीबलरामजीका ध्यान करे। उनका गौरवर्ण है। उन्होंने नीलाम्बर धारण कर रखा है। वे वनमालासे विभूषित हैं। उनकी बड़ी मनमोहनी मूर्ति है॥ ८-९॥

ऐसे हलधर भगवान् बलरामजीको प्रसन्न करनेके लिये नित्य उनका ध्यान करना चाहिये। साधकको चाहिये कि वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो, मौन-धारण करे और क्रोधका त्याग करके तीनों कालमें संध्या-वन्दन करे। मनमें कोई कामना, लोभ और मोह न रहे। सत्यभाषण करे। जितेन्द्रिय होकर एक बार मात्र पायसका भोजन करे। दो बार जलपान करे। पवित्र रेशमी वस्त्र पहने और जमीनपर शयन करे। इस प्रकार छः शत्रुओंपर विजय प्राप्तकर एकाग्र मनसे भजन करनेपर सम्पूर्ण

तस्य प्रसन्नो भवति सदा सङ्कर्षणो हरिः।
परिपूर्णतमः साक्षात्सर्वकारणकारणः॥ १३

इत्थं श्रीबलभद्रस्य कथिता पद्धतिर्मया।
कौरवेन्द्र महाबाहो किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १४

दुर्योधन उवाच

मुनीन्द्र देवदेवस्य पटलं ब्रूहि मे प्रभोः।
येन सेवां करिष्यामि तत्पदाम्बुजयोः सदा॥ १५

प्राड्विपाक उवाच

बलस्य पटलं गुह्यं विद्धि सिद्धिप्रदायकम्।
एकान्ते ब्रह्मणा दत्तं नारदाय महात्मने॥ १६

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य कामबीजं ततः परम्।
कालिन्दीभेदनपदं सङ्कर्षणमतः परम्॥ १७

चतुर्थ्यन्तं द्वयं कृत्वा स्वाहां पश्चाद्विधाय च।
मन्त्रराजमिमं राजन् ब्रह्मोक्तं षोडशाक्षरम्॥ १८

जपेल्लक्षं व्रती भूत्वा सहस्राणि च षोडश।
इहामुत्र परां सिद्धिं सम्प्राप्नोति न संशयः॥ १९

अथ जप्तस्य मन्त्रस्य महापूजां समाचरेत्।
द्वात्रिंशत्पत्रसंयुक्तं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम्॥ २०

भव्यं कञ्जं पञ्चवर्णं लिखित्वा स्थण्डिले शुभे।
तस्योपरि न्यसेद्राजन् हेमसिंहासनं शुभम्।
तस्मिन् श्रीबलदेवस्य परामर्चां प्रपूजयेत्॥ २१

ॐ नमो भगवते पुरुषोत्तमाय वासुदेवाय सङ्कर्षणाय सहस्रवदनाय महानन्ताय स्वाहा। अनेन मन्त्रेण शिखाबन्धनं कृत्वा सर्वतस्तं प्रणम्य तत्सम्मुखो भूत्वा स्वयं नतो भवेत्। ॐ जय जयानन्त बलभद्र कामपाल तालाङ्क कालिन्दीभञ्जन आविराविर्भूय मम सम्मुखो भवेति। अनेन मन्त्रेणावाहनं कुर्यात्॥ २२॥

कारणोंके कारण परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीसंकर्षणजी सदाके लिये प्रसन्न हो जाते हैं॥ १०—१३॥

महाबाहु कौरवराज! इस प्रकार मैंने महात्मा बलभद्रजीकी 'पद्धति' का वर्णन किया, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ १४॥

दुर्योधनने कहा—मुनिराज! अब देवदेव बलरामजीका 'पटल' सुनाइये, जिसका साधन करके मैं सदा उनके चरण-कमलोंकी सेवा कर सकूँ॥ १५॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—भगवान् बलरामजीका पटल महान् गोपनीय और सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसे पहले ब्रह्माजीने एकान्त स्थानमें महात्मा नारदजीको दिया था। पहले प्रणव (ॐ) लिखकर फिर कामबीज (क्लीं) लिखना चाहिये। तत्पश्चात् 'कालिन्दीभेदन' और 'संकर्षण'—इन दो पदोंको चतुर्थ्यन्त लिखकर अन्तमें स्वाहा जोड़ देना चाहिये। यों करनेपर '**ॐ क्लीं कालिन्दीभेदनाय संकर्षणाय स्वाहा**'—यह मन्त्र बन जाता है। यह षोडशाक्षर मन्त्रराज ब्रह्माजीके द्वारा कहा गया है॥ १६—१८॥

मनुष्यको व्रत लेकर इस मन्त्रका एक लाख सोलह हजार जप करना चाहिये। इस प्रकार करनेपर साधक इस लोक और परलोकमें परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संदेह नहीं। मन्त्र-जपके बाद विशेष रूपसे महापूजा करनी चाहिये। (उसका विधान यह है—) राजन्! मनोरम स्थण्डिलपर कर्णिकास्थित केसरोंसे उज्ज्वल बत्तीस दलोंवाला एक सुन्दर पाँच रंगका कमल अङ्कित करे। उसपर मङ्गलमय स्वर्ण-सिंहासन रखे। उसके ऊपर बलरामजीकी परम श्रेष्ठ मूर्तिको पधराकर उनकी भलीभाँति पूजा करे॥ १९—२१॥

'**ॐ नमो भगवते पुरुषोत्तमाय वासुदेवाय संकर्षणाय सहस्रवदनाय महानन्ताय स्वाहा**'—इस मन्त्रसे शिखा-बन्धन करे। तत्पश्चात् श्रीबलरामजीको सब दिशाओंमें प्रणाम करके उनके सम्मुख अत्यन्त विनयपूर्वक बैठ जाय। फिर '**ॐ जय जयानन्त बलभद्र कामपाल तालाङ्क कालिन्दीभञ्जन आविराविर्भूय मम सम्मुखो भव।**' इस मन्त्रको पढ़कर आवाहन करे॥ २२॥

ॐ नमस्तेऽस्तु सीरपाणे हलमुसलधर रौहिणेय नीलाम्बर राम रेवतीरमण नमस्तेऽस्तु। अनेन मन्त्रेणासनपाद्यार्घ्यस्नानमधुपर्कधूपदीपयज्ञोपवीत-नैवेद्यवस्त्राभूषणगन्धपुष्पाक्षतपुष्पाञ्जलिनीराजना-दीनुपचारान् प्रकल्पयेत्। ॐ विष्णवे मधुसूदनाय वामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामोदराय सङ्कर्षणाय वासुदेवाय प्रद्युम्नायानिरुद्धायाधोक्षजाय पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः।

इति पादगुल्फजानूरुकट्युदरपार्श्वपृष्ठिभुजा-कन्धरकर्णनासिकाधरनेत्रशिरांसि पृथक् पृथक् पूजयामीति मन्त्रेण सर्वाङ्गपूजां कुर्यात्॥ २३॥

अथ शङ्खचक्रगदापद्मासिधनुर्बाणहलमुसल-कौस्तुभवनमालाश्रीवत्सपीताम्बरनीलाम्बरवंशीवेत्र-गरुडाङ्कतालाङ्करथदारुकसुमतिकुमुदकुमुदाक्ष-श्रीदामादीन् प्रणवपूर्वेण चतुर्थ्यन्तेन नमः संयुक्तेन नाममन्त्रेण पृथक् पृथक् सम्पूज्य। तथा विष्वक्सेन-वेदव्यासदुर्गाविनायकदिक्पालग्रहादीन् कमले सर्वतः स्वे स्वे स्थाने सम्पूजयेत्। पुनः परिसमूहनादि-स्थालीपाकविधानेन वैश्वानरं सम्पूज्य पूर्वोक्तेन मूलमन्त्रेण पञ्चविंशतिसहस्राण्याहुतीर्जुहुयात्। तथाष्टौ सहस्राणि द्वादशाक्षरेण तथाष्टौ सहस्राणि चतुर्व्यूहमन्त्रेणाहुतीर्जुहुयात्। ततोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्याचार्यं महार्हवस्त्रसुवर्णाभरणताम्रपात्र-सवत्सगोसुवर्णदक्षिणाभिः सम्पूज्य तथा ब्राह्मणान् भोजनाद्यैः सम्पूज्य नगरजनेभ्यो भोजनं दत्वाचार्यान् प्रणमेत्।

तदनन्तर '**ॐ नमस्तेऽस्तु सीरपाणे हलमुसलधर रौहिणेय नीलाम्बर राम रेवतीरमण नमस्तेऽस्तु।**' इस मन्त्रके द्वारा आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नानीय, यज्ञोपवीत, वस्त्र, भूषण, गन्ध, अक्षत, पुष्प, मधुपर्क, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पाञ्जलि, नीराजन आदि उपचार प्रदान करे। अनन्तर '**ॐ विष्णवे मधुसूदनाय वामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामोदराय संकर्षणाय वासुदेवाय प्रद्युम्नाया-निरुद्धायाधोक्षजाय पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः।**'

—इस मन्त्रके द्वारा पाद, गुल्फ, जानु, ऊरु, कटि, उदर, पार्श्व, पीठ, भुजा, कंधे, कर्ण, नासिका, अधर, नेत्र और मस्तक आदि सर्वाङ्गकी पृथक्-पृथक् पूजा करे॥ २३॥

इसके बाद शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, असि, धनुष, बाण, हल, मुसल, कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स, पीताम्बर, नीलाम्बर, वंशी, वेत्र, गरुडाङ्क और तालाङ्क ध्वजसे चिह्नित रथ, दारुक, सुमति, कुमुद, कुमुदाक्ष और श्रीदामा—इन शब्दोंके पहले ॐ और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़ दे। इससे '**ॐ शङ्खाय नमः**', '**ॐ चक्राय नमः**'—ऐसा रूप बन जायगा। इन मन्त्रोंके द्वारा सबका पूजन करे। इसी प्रकार कमलके सब ओर अपने-अपने स्थानपर विष्वक्सेन, वेदव्यास, दुर्गा, गणेश, दिक्पाल और नवग्रह आदिका भी पृथक्-पृथक् पूजन करना चाहिये। तदनन्तर परिसमूहन आदि स्थालीपाकके विधानसे अग्निदेवकी पूजा करके पूर्वोक्त '**ॐ क्लीं कालिन्दीभेदनाय संकर्षणाय स्वाहा।**'—इस मूलमन्त्रसे पचीस हजार आहुतियाँ दे। फिर इसी प्रकार '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रसे आठ हजार और चतुर्व्यूहसंज्ञक '**ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च॥**'—इस मन्त्रसे आठ हजार आहुतियाँ दे। इसके बाद अग्निकी प्रदक्षिणा करे और आचार्यको नमस्कार करके उन्हें मूल्यवान् वस्त्र, स्वर्णके आभूषण, ताम्रपात्र, सवत्सा गौ और स्वर्ण आदि दक्षिणा देकर प्रसन्न करे। फिर ब्राह्मणोंका पूजन-सत्कार करके उनको तथा नगरवासी जनोंको भोजन कराये। तत्पश्चात् आचार्यको प्रणाम करे।

इत्थं बलस्य पटलानुसारेण योऽनुस्मरति इहामुत्र सिद्धिसमृद्धिभिः संवृतो भवति॥ २४॥

श्रीरामपटलं गुह्यं मया ते ह्यनुवर्णितम्।
सर्वसिद्धिप्रदं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ २५॥

जो पुरुष इस पटल-पद्धतिके अनुसार श्रीबलराम-जीका स्मरण-पूजन करता है, वह इस लोक और परलोकमें विविध सिद्धियों और समृद्धियोंके द्वारा सुसम्पन्न होता है। हे राजन्! भगवान् बलरामजीका यह गोपनीय और सर्वसिद्धिप्रद 'पटल' तुमको सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २४-२५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे पद्धतिपटलवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलभद्रजीकी पूजा-पद्धति और पटलका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीबलराम-स्तोत्र

दुर्योधन उवाच

स्तोत्रं श्रीबलदेवस्य प्राड्विपाक महामुने।
वद मां कृपया साक्षात्सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ १

दुर्योधनने कहा—महामुनि प्राड्विपाकजी! अब भगवान् श्रीबलरामजीका वह स्तोत्र, जो साक्षात् समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला है, कृपापूर्वक मुझसे कहिये॥ १॥

प्राड्विपाक उवाच

स्तवराजं तु रामस्य वेदव्यासकृतं शुभम्।
सर्वसिद्धिप्रदं राजञ्छृणु कैवल्यदं नृणाम्॥ २

देवादिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते।
नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः॥ ३

धराधराय पूर्णाय स्वधाम्ने सीरपाणये।
सहस्रशिरसे नित्यं नमः सङ्कर्षणाय ते॥ ४

रेवतीरमणस्त्वं वै बलदेवोऽच्युताग्रजः।
हलायुधः प्रलम्बघ्नः पाहि मां पुरुषोत्तम॥ ५

बलाय बलभद्राय तालाङ्काय नमो नमः।
नीलाम्बराय गौराय रौहिणेयाय ते नमः॥ ६

धेनुकारिर्मुष्टिकारिः कूटारिर्बल्वलान्तकः।
रुक्म्यरिः कूपकर्णारिः कुम्भाण्डारिस्त्वमेव हि॥ ७

प्राड्विपाकमुनि बोले—राजन्! बलरामजीका स्तोत्र श्रीवेदव्यासजीके द्वारा प्रणीत है, यह मनुष्योंको समस्त सिद्धियाँ और मोक्ष भी प्रदान करनेवाला है। इस शुभ स्तवराजको तुम सुनो॥ २॥

"देवादिदेव! भगवन्! कामपाल! आपको नमस्कार। हे बलरामजी! आप साक्षात् अनन्त और शेषजी हैं, आपको नमस्कार। आप पृथ्वीको धारण करनेवाले, परिपूर्ण ब्रह्म, स्वयं प्रकाशमान, हाथमें हल लिये हुए, हजार मस्तकोंसे युक्त संकर्षण हैं। आपको नित्य मेरे नमस्कार हैं॥ ३-४॥

पुरुषश्रेष्ठ बलरामजी! आप भगवान् अच्युतके बड़े भाई हैं, रेवतीके स्वामी हैं, हल आपका शस्त्र है और आप प्रलम्बासुरका संहार करनेवाले हैं। आप मेरी रक्षा करें। भगवान् बलराम, बलभद्र और ताल-ध्वजको मेरे बार-बार नमस्कार हैं। आप गौरवर्ण हैं, नीलाम्बर धारण किये हुए हैं, रोहिणीके कुमार हैं; आपको नमस्कार॥ ५-६॥

आप धेनुकासुर, मुष्टिकासुर, कूट, बल्वल, रुक्मी, कूपकर्ण और कुम्भाण्डके शत्रु और उनके संहारक

कालिन्दीभेदनोऽसि त्वं हस्तिनापुरकर्षकः।
द्विविदारिर्यादवेन्द्रो व्रजमण्डलमण्डनः॥ ८

कंसभ्रातृप्रहन्तासि तीर्थयात्राकरः प्रभुः।
दुर्योधनगुरुः साक्षात्पाहि पाहि प्रभो त्वतः॥ ९

जय जयाच्युत देव परात्पर
स्वयमनन्त दिगन्तगतश्रुत।
सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रवराय ते
मुसलिने बलिने हलिने नमः॥ १०

यः पठेत्सततं स्तवनं नरः
स तु हरेः परमं पदमाव्रजेत्।
जगति सर्वबलं त्वरिमर्दनं
भवति तस्य धनं स्वजनं धनम्॥ ११

हैं। आप कालिन्दीका भेदन करनेवाले, हस्तिनापुरका आकर्षण करनेवाले, द्विविद वानरका वध करनेवाले, यादवोंके राजा और व्रज-मण्डलको सुशोभित करनेवाले हैं॥ ७-८॥

आपने कंसके भाइयोंका वध किया है, आप सबके स्वामी और तीर्थोंमें भ्रमण करनेवाले हैं। आप दुर्योधनके साक्षात् गुरु हैं। प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ९॥

हे अच्युत! आपकी जय हो, जय हो। हे परात्पर देव! आप स्वयं अनन्त एवं दिशा-विदिशाओंमें कीर्तित हैं। आप देवता, मुनि और सर्पोंके स्वामियोंमें श्रेष्ठ हैं। हल तथा मुसलको धारण करनेवाले भगवान् बलरामजीको मेरे नमस्कार हैं।'' जो मनुष्य इस स्तवराजका निरन्तर पाठ करता है, वह श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होता है। जगत्में वह शत्रुका शमन करनेवाले सम्पूर्ण बलोंसे सम्पन्न हो जाता है और उसे धन तथा स्वजन प्रचुररूपसे प्राप्त रहते हैं॥ १०-११॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे बलभद्रस्तवराजवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलभद्रस्तवराजवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीबलराम-कवच

दुर्योधन उवाच

गोपीभ्यः कवचं दत्तं गर्गाचार्येण धीमता।
सर्वरक्षाकरं दिव्यं देहि मह्यं महामुने॥ १

प्राड्विपाक उवाच

स्नात्वा जले क्षौमधरः कुशासनः
पवित्रपाणिः कृतमन्त्रमार्जनः।
स्मृत्वाथ नत्वा बलमच्युताग्रजं
सन्धारयेद् वर्म समाहितो भवेत्॥ २

गोलोकधामाधिपतिः परेश्वरः
परेषु मां पातु पवित्रकीर्तनः।
भूमण्डलं सर्षपवद्विलक्ष्यते
यन्मूर्ध्नि मां पातु स भूमिमण्डले॥ ३

दुर्योधनने कहा—महामुने! धीमान् गर्गाचार्यने गोपियोंको जो सब तरहसे रक्षा करनेवाला दिव्य कवच दिया था, आप उसे मुझको प्रदान कीजिये॥ १॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—मनुष्य जलमें स्नान करके रेशमी वस्त्र धारण करे, कुशासनपर बैठे और हाथमें कुशकी पवित्री पहनकर मन्त्रसे शोधन करे। तदनन्तर अच्युताग्रज भगवान् बलरामजीका स्मरण करके उन्हें प्रणाम करे। फिर मनको एकाग्र करके मन्त्ररूपी कवचको धारण करे॥ २॥

जो भगवान् गोलोकधामके अधिपति हैं, जिनका कीर्तन परम पवित्र है, वे परमेश्वर शत्रुओंसे मेरी रक्षा करें। जिनके मस्तकपर भूमण्डल सरसोंकी तरह प्रतीत होता है, वे भगवान् भूमण्डलमें मेरी रक्षा करें॥ ३॥

सेनासु मां रक्षतु सीरपाणि-
र्युद्धे सदा रक्षतु मां हली च।
दुर्गेषु चाव्यान्मुसली सदा मां
वनेषु सङ्कर्षण आदिदेवः॥ ४

भगवान् सीरपाणि (हलधर) सेनामें और भगवान् हली युद्धमें सदा मेरी रक्षा करें। मुसलधारी भगवान् दुर्गमें और आदिदेव भगवान् संकर्षण वनमें मेरी रक्षा करें॥ ४॥

कलिन्दजावेगहरो जलेषु
नीलाम्बरो रक्षतु मां सदाग्नौ।
वायौ च रामोऽवतु खे बलश्च
महार्णवेऽनन्तवपुः सदा माम्॥ ५

यमुनाके प्रवाहको रोकनेवाले भगवान् जलमें और नीलाम्बरधारी भगवान् अग्निमें निरन्तर मेरी रक्षा करें। भगवान् राम वायु (आँधी)-में मेरी रक्षा करें। शून्य (आकाश)-में भगवान् बलदेव और महान् समुद्रमें अनन्तवपु भगवान् मेरी सदा रक्षा करें॥ ५॥

श्रीवासुदेवोऽवतु पर्वतेषु
सहस्रशीर्षा च महाविवादे।
रोगेषु मां रक्षतु रौहिणेयो
मां कामपालोऽवतु वा विपत्सु॥ ६

पर्वतोंपर भगवान् वासुदेव मेरी रक्षा करें। घोर विवादमें हजार मस्तकवाले प्रभु, रोगमें श्रीरोहिणी-नन्दन तथा विपत्तिमें भगवान् कामपाल मेरी रक्षा करें॥ ६॥

कामात् सदा रक्षतु धेनुकारिः
क्रोधात् सदा मां द्विविदप्रहारी।
लोभात् सदा रक्षतु बल्वलारि-
र्मोहात् सदा मां किल मागधारिः॥ ७

धेनुकासुरके शत्रु भगवान् काम (कामना)-से मेरी सदा रक्षा करें। द्विविदपर प्रहार करनेवाले भगवान् क्रोधसे, बल्वलके शत्रु भगवान् लोभसे और जरासंधके शत्रु भगवान् मोहसे सदा मेरी रक्षा करें॥ ७॥

प्रातः सदा रक्षतु वृष्णिधुर्यः
प्राह्णे सदा मां मथुरापुरेन्द्रः।
मध्यन्दिने गोपसखः प्रपातु
स्वराट् पराह्णेऽवतु मां सदैव॥ ८

भगवान् वृष्णिधुर्य प्रातःकालके समय, भगवान् मथुरापुरी-नरेश पूर्वाह्णमें (प्रहर दिन चढ़े), गोपसखा मध्याह्नमें और स्वराट् भगवान् पराह्ण (दिनके पिछले पहर)-में सदा मेरी रक्षा करें॥ ८॥

सायं फणीन्द्रोऽवतु मां सदैव
परात्परो रक्षतु मां प्रदोषे।
पूर्णे निशीथे च दुरन्तवीर्यः
प्रत्यूषकालेऽवतु मां सदैव॥ ९

भगवान् फणीन्द्र सायंकालमें तथा परात्पर प्रदोषके समय मेरी सदा रक्षा करें। मध्यरात्रि और प्रत्यूषकालके समय भगवान् दुरन्तवीर्य मेरी सदा रक्षा करें॥ ९॥

विदिक्षु मां रक्षतु रेवतीपति-
र्दिक्षु प्रलम्बारिरधो यदूद्वहः।
ऊर्ध्वं सदा मां बलभद्र आरात्
तथा समन्ताद् बलदेव एव हि॥ १०

कोनोंमें रेवतीपति, दिशाओंमें प्रलम्बासुरके शत्रु, नीचे यदूद्वह, ऊपर बलभद्र और दूर अथवा पास सब दिशाओंमें भगवान् बलदेवजी मेरी सदा रक्षा करें॥ १०॥

अन्तः सदाव्यात् पुरुषोत्तमो बहि-
र्नागेन्द्रलीलोऽवतु मां महाबलः।
सदान्तरात्मा च वसन् हरिः स्वयं
प्रपातु पूर्णः परमेश्वरो महान्॥ ११

भीतरसे पुरुषोत्तम और बाहरसे महाबल नागेन्द्रलील मेरी सदा रक्षा करें और पूर्ण परमेश्वर महान् हरि स्वयं सदा-सर्वदा मेरे हृदयमें निवास करते हुए उत्कृष्ट रूपमें सदा मेरी रक्षा करें॥ ११॥

देवासुराणां भयनाशनं च
हुताशनं पापचयेन्धनानाम्।
विनाशनं विघ्नघटस्य विद्धि
सिद्धासनं वर्मवरं बलस्य॥ १२

श्रीबलभद्रजीके इस उत्तम कवचको देव तथा असुरोंके भयका नाश करनेवाला, पापरूप ईंधनको जलानेके लिये साक्षात् अग्निरूप और विघ्नोंके घटका विनाश करनेवाला सिद्धासनरूप समझे॥ १२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे श्रीप्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे स्तोत्रकवचवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलरामस्तोत्रकवचवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

बलभद्र-सहस्रनाम

दुर्योधन उवाच

बलभद्रस्य देवस्य प्राड्विपाक महामुने।
नाम्नां सहस्रं मे ब्रूहि गुह्यं देवगणैरपि॥ १

दुर्योधनने कहा—महामुने प्राड्विपाकजी! भगवान् बलभद्रके सहस्रनामको, जो देवताओंके लिये भी गोपनीय—अज्ञात है, मुझसे कहिये॥ १॥

प्राड्विपाक उवाच

साधु साधु महाराज साधु ते विमलं यशः।
यत्पृच्छसे परमिदं गर्गोक्तं देवदुर्लभम्॥ २

नाम्नां सहस्रं दिव्यानां वक्ष्यामि तव चाग्रतः।
गर्गाचार्येण गोपीभ्यो दत्तं कृष्णातटे शुभे॥ ३

प्राड्विपाक मुनि बोले—साधु, साधु! महाराज! तुम्हारा यश सर्वथा निर्मल है। तुमने जिसके लिये प्रश्न किया है, वह परम देवदुर्लभ सहस्रनाम गर्गजीके द्वारा कथित है। उन दिव्य सहस्रनामोंका वर्णन मैं तुम्हारे सामने कर रहा हूँ। गर्गाचार्यजीने यमुनाजीके मङ्गलमय तटपर यह सहस्रनाम गोपियोंको प्रदान किया था॥ २॥

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीबलभद्रसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य गर्गाचार्य ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः सङ्कर्षणः परमात्मा देवता बलभद्र इति बीजं रेवतीरमण इति शक्तिः अनन्त इति कीलकं बलभद्रप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

विनियोग

इस बलभद्रसहस्रनामस्तोत्ररूपी मन्त्रके गर्गाचार्य ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, परमात्मा संकर्षण देवता हैं, बलभद्र बीज है, रेवतीरमण शक्ति है, अनन्त कीलक है, श्रीबलभद्रकी प्रीतिके लिये इसका विनियोग है॥ ३॥

[इसको पढ़कर सहस्रनाम पाठके लिये विनियोगका जल छोड़ दे। तत्पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—]

अथ ध्यानम्

स्फुरदमलकिरीटं किङ्किणीकङ्कणार्हं
चलदलककपोलं कुण्डलश्रीमुखाब्जम्।
तुहिनगिरिमनोज्ञं नीलमेघाम्बराढ्यं
हलमुसलविशालं कामपालं समीडे॥ ४

ध्यान

जिनका निर्मल किरीट दमक रहा है, जो करधनी तथा कङ्कणोंसे अलंकृत हैं, चञ्चल अलकावलीसे जिनके कपोल सुशोभित हैं, जिनका मुख-कमल कुण्डलोंसे देदीप्यमान है, जो हिमाचलगिरिके समान मनोहर उज्ज्वल हैं तथा नीलाम्बर धारण किये हुए हैं। विशाल हल-मुसल धारण करनेवाले उन भगवान् कामपाल बलभद्रजीका मैं स्तवन करता हूँ॥ ४॥

ॐ बलभद्रो रामभद्रो रामः सङ्कर्षणोऽच्युतः।
रेवतीरमणो देवः कामपालो हलायुधः॥ ५

नीलाम्बरः श्वेतवर्णो बलदेवोऽच्युताग्रजः।
प्रलम्बघ्नो महावीरो रौहिणेयः प्रतापवान्॥ ६

तालाङ्को मुसली हली हरिर्यदुवरो बली।
सीरपाणिः पद्मपाणिर्लगुडी वेणुवादनः॥ ७

कालिन्दीभेदनो वीरो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः।
वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट्॥ ८

वसुर्वसुमती भर्ता वासुदेवो वसूत्तमः।
यदूत्तमो यादवेन्द्रो माधवो वृष्णिवल्लभः॥ ९

द्वारकेशो माथुरेशो दानी मानी महामनाः।
पूर्णः पुराणः पुरुषः परेशः परमेश्वरः॥ १०

परिपूर्णतमः साक्षात्परमः पुरुषोत्तमः।
अनन्तः शाश्वतः शेषो भगवान् प्रकृतेः परः॥ ११

जीवात्मा परमात्मा च ह्यन्तरात्मा ध्रुवोऽव्ययः।
चतुर्व्यूहश्चतुर्वेदश्चतुर्मूर्तिश्चतुष्पदः॥ १२

प्रधानं प्रकृतिः साक्षी सङ्घातः सङ्घवान् सखी।
महामना बुद्धिसखश्चेतोऽहङ्कार आवृतः॥ १३

इन्द्रियेशो देवतात्मा ज्ञानं कर्म च शर्म च।
अद्वितीयो द्वितीयश्च निराकारो निरञ्जनः॥ १४

विराट् सम्राट् महौघश्चाधारः स्थास्नुश्चरिष्णुमान्।
फणीन्द्रः फणिराजश्च सहस्रफणमण्डितः॥ १५

सहस्रनाम आरम्भ

१. ॐ बलभद्र, २. रामभद्र, ३. राम, ४. संकर्षण, ५. अच्युत, ६. रेवतीरमण, ७. देव, ८. कामपाल, ९. हलायुध॥ ५॥

१०. नीलाम्बर, ११. श्वेतवर्ण, १२. बलदेव, १३. अच्युताग्रज, १४. प्रलम्बघ्न, १५. महावीर, १६. रौहिणेय, १७. प्रतापवान्॥ ६॥

१८. तालाङ्क, १९. मुसली, २०. हली, २१. हरि, २२. यदुवर, २३. बली, २४. सीरपाणि, २५. पद्मपाणि, २६. लगुडी, २७. वेणुवादन॥ ७॥

२८. कालिन्दीभेदन, २९. वीर, ३०. बल, ३१. प्रबल, ३२. ऊर्ध्वग, ३३. वासुदेवकला, ३४. अनन्त, ३५. सहस्रवदन, ३६. स्वराट्॥ ८॥

३७. वसु, ३८.वसुमती, ३९. भर्ता, ४०. वासुदेव, ४१. वसूत्तम, ४२. यदूत्तम, ४३. यादवेन्द्र, ४४. माधव, ४५. वृष्णिवल्लभ॥ ९॥

४६. द्वारकेश, ४७. माथुरेश, ४८. दानी, ४९. मानी, ५०. महामना, ५१. पूर्ण, ५२. पुराण, ५३. पुरुष, ५४. परेश, ५५. परमेश्वर॥ १०॥

५६. परिपूर्णतम, ५७. साक्षात् परम, ५८. पुरुषोत्तम, ५९. अनन्त, ६०. शाश्वत, ६१. शेष, ६२. भगवान्, ६३. प्रकृतेः परः॥ ११॥

६४. जीवात्मा, ६५. परमात्मा, ६६. अन्तरात्मा, ६७. ध्रुव, ६८. अव्यय, ६९. चतुर्व्यूह, ७०. चतुर्वेद, ७१. चतुर्मूर्ति, ७२. चतुष्पद॥ १२॥

७३. प्रधान, ७४. प्रकृति, ७५. साक्षी, ७६. संघात, ७७. संघवान्, ७८. सखी, ७९. महामना, ८०. बुद्धिसख, ८१. चेत, ८२. अहंकार, ८३. आवृत॥ १३॥

८४. इन्द्रियेश, ८५. देवता, ८६. आत्मा, ८७. ज्ञान, ८८. कर्म, ८९. शर्म, ९०. अद्वितीय, ९१. द्वितीय, ९२. निराकार, ९३. निरञ्जन॥ १४॥

९४. विराट्, ९५. सम्राट्, ९६. महौघ, ९७. आधार, ९८. स्थास्नु, ९९. चरिष्णुमान्, १००. फणीन्द्र, १०१. फणिराज, १०२. सहस्रफणमण्डित॥ १५॥

फणीश्वरः फणी स्फूर्तिः फूत्कारी चीत्करः प्रभुः।
मणिहारो मणिधरो वितली सुतली तली॥ १६

अतली सुतलेशश्च पातालश्च तलातलः।
रसातलो भोगितलः स्फुरद्दन्तो महातलः॥ १७

वासुकिः शङ्खचूडाभो देवदत्तो धनञ्जयः।
कम्बलाश्वो वेगतरो धृतराष्ट्रो महाभुजः॥ १८

वारुणीमदमत्ताङ्गो मदघूर्णितलोचनः।
पद्माक्षः पद्ममाली च वनमाली मधुश्रवाः॥ १९

कोटिकन्दर्पलावण्यो नागकन्यासमर्चितः।
नूपुरी कटिसूत्री च कटकी कनकाङ्गदी॥ २०

मुकुटी कुण्डली दण्डी शिखण्डी खण्डमण्डली।
कलिः कलिप्रियः कालो निवातकवचेश्वरः॥ २१

संहारकृद्रुद्रवपुः कालाग्निः प्रलयो लयः।
महाहिः पाणिनिः शास्त्रभाष्यकारः पतञ्जलिः॥ २२

कात्यायनः फक्किकाभूः स्फोटायन उरङ्गमः।
वैकुण्ठो याज्ञिको यज्ञो वामनो हरिणो हरिः॥ २३

कृष्णो विष्णुर्महाविष्णुः प्रभविष्णुर्विशेषवित्।
हंसो योगेश्वरः कूर्मो वाराहो नारदो मुनिः॥ २४

सनकः कपिलो मत्स्यः कमठो देवमङ्गलः।
दत्तात्रेयः पृथुर्वृद्ध ऋषभो भार्गवोत्तमः॥ २५

१०३. फणीश्वर, १०४. फणी, १०५. स्फूर्ति, १०६. फूत्कारी, १०७. चीत्कर, १०८. प्रभु, १०९. मणिहार, ११०. मणिधर, १११. वितली, ११२. सुतली, ११३. तली॥ १६॥

११४. अतली, ११५. सुतलेश, ११६. पाताल, ११७. तलातल, ११८. रसातल, ११९. भोगितल, १२०. स्फुरद्दन्त, १२१. महातल॥ १७॥

१२२. वासुकि, १२३. शङ्खचूडाभ, १२४. देवदत्त, १२५. धनंजय, १२६. कम्बलाश्व, १२७. वेगतर, १२८. धृतराष्ट्र, १२९. महाभुज॥ १८॥

१३०. वारुणीमदमत्ताङ्ग, १३१. मदघूर्णित-लोचन, १३२. पद्माक्ष, १३३. पद्ममाली, १३४. वनमाली, १३५. मधुश्रवा॥ १९॥

१३६. कोटिकंदर्पलावण्य, १३७. नागकन्या-समर्चित, १३८. नूपुरी, १३९. कटिसूत्री, १४०. कटकी, १४१. कनकाङ्गदी॥ २०॥

१४२. मुकुटी, १४३. कुण्डली, १४४. दण्डी, १४५. शिखण्डी, १४६. खण्डमण्डली, १४७. कलि, १४८. कलिप्रिय, १४९. काल, १५०. निवात-कवचेश्वर॥ २१॥

१५१. संहारकृत्, १५२. रुद्रवपु, १५३. कालाग्नि, १५४. प्रलय, १५५. लय, १५६. महाहि, १५७. पाणिनि, १५८. शास्त्रकार, १५९. भाष्य-कार, १६०. पतञ्जलि॥ २२॥

१६१. कात्यायन, १६२. फक्किकाभू, १६३. स्फोटायन, १६४. उरंगम, १६५. वैकुण्ठ, १६६. याज्ञिक, १६७. यज्ञ, १६८. वामन, १६९. हरिण, १७०. हरि॥ २३॥

१७१. कृष्ण, १७२. विष्णु, १७३. महाविष्णु, १७४. प्रभविष्णु, १७५. विशेषवित्, १७६. हंस, १७७. योगेश्वर, १७८. कूर्म, १७९. वाराह, १८०. नारद, १८१. मुनि॥ २४॥

१८२. सनक, १८३. कपिल, १८४. मत्स्य, १८५. कमठ, १८६. देवमङ्गल, १८७. दत्तात्रेय, १८८. पृथु, १८९. वृद्ध, १९०. ऋषभ, १९१. भार्गवोत्तम॥ २५॥

धन्वन्तरिर्नृसिंहश्च कल्किर्नारायणो नरः।
रामचन्द्रो राघवेन्द्रः कोसलेन्द्रो रघूद्वहः॥ २६

१९२. धन्वन्तरि, १९३. नृसिंह, १९४. कल्कि, १९५. नारायण, १९६. नर, १९७. रामचन्द्र, १९८. राघवेन्द्र, १९९. कोसलेन्द्र, २००. रघूद्वह॥ २६॥

काकुत्स्थः करुणासिन्धू राजेन्द्रः सर्वलक्षणः।
शूरो दाशरथिस्त्राता कौसल्यानन्दवर्धनः॥ २७

२०१. काकुत्स्थ, २०२. करुणासिन्धु, २०३. राजेन्द्र, २०४. सर्वलक्षण, २०५. शूर, २०६. दाशरथि, २०७. त्राता, २०८. कौसल्यानन्दवर्द्धन॥ २७॥

सौमित्रिर्भरतो धन्वी शत्रुघ्नः शत्रुतापनः।
निषङ्गी कवची खड्गी शरी ज्याहतकोष्ठकः॥ २८

२०९. सौमित्रि, २१०. भरत, २११. धन्वी, २१२. शत्रुघ्न, २१३. शत्रुतापन, २१४. निषङ्गी, २१५. कवची, २१६. खड्गी, २१७. शरी, २१८. ज्याहतकोष्ठक॥ २८॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणः शम्भुकोदण्डभञ्जनः।
यज्ञत्राता यज्ञभर्ता मारीचवधकारकः॥ २९

२१९. बद्धगोधाङ्गुलित्राण, २२०. शम्भुकोदण्ड-भञ्जन, २२१. यज्ञत्राता, २२२. यज्ञभर्ता, २२३. मारीच-वधकारक॥ २९॥

असुरारिस्ताटकारिर्विभीषणसहायकृत्।
पितृवाक्यकरो हर्षी विराधारिर्वनेचरः॥ ३०

२२४. असुरारि, २२५. ताटकारि, २२६. विभीषण-सहायकृत्, २२७. पितृवाक्यकर, २२८. हर्षी, २२९. विराधारि, २३०. वनेचर॥ ३०॥

मुनिर्मुनिप्रियश्चित्रकूटारण्यनिवासकृत्।
कबन्धहा दण्डकेशो रामो राजीवलोचनः॥ ३१

२३१. मुनि, २३२. मुनिप्रिय, २३३. चित्र-कूटारण्यनिवासकृत्, २३४. कबन्धहा, २३५. दण्डकेश, २३६. राम, २३७. राजीवलोचन॥ ३१॥

मतङ्गो वनसञ्चारी नेता पञ्चवटीपतिः।
सुग्रीवः सुग्रीवसखो हनुमत्प्रीतमानसः॥ ३२

२३८. मतङ्ग, २३९. वनसंचारी, २४०. नेता, २४१. पञ्चवटीपति, २४२. सुग्रीव, २४३. सुग्रीव-सखा, २४४. हनुमत्प्रीतमानस॥ ३२॥

सेतुबन्धो रावणारिर्लङ्कादहनतत्परः।
रावण्यरिः पुष्पकस्थो जानकीविरहातुरः॥ ३३

२४५. सेतुबन्ध, २४६. रावणारि, २४७. लङ्का-दहनतत्पर, २४८. रावण्यरि, २४९. पुष्पकस्थ, २५०. जानकीविरहातुर॥ ३३॥

अयोध्याधिपतिः श्रीमाँल्लवणारिः सुरार्चितः।
सूर्यवंशी चन्द्रवंशी वंशीवाद्यविशारदः॥ ३४

२५१. अयोध्याधिपति, २५२. श्रीमान्, २५३. लवणारि, २५४. सुरार्चित, २५५. सूर्यवंशी, २५६. चन्द्रवंशी, २५७. वंशीवाद्यविशारद॥ ३४॥

गोपतिर्गोपवृन्देशो गोपो गोपीशतावृतः।
गोकुलेशो गोपपुत्रो गोपालो गोगणाश्रयः॥ ३५

२५८. गोपति, २५९. गोपवृन्देश, २६०. गोप, २६१. गोपीशतावृत, २६२. गोकुलेश, २६३. गोप-पुत्र, २६४. गोपाल, २६५. गोगणाश्रय॥ ३५॥

पूतनारिर्वकारिश्च तृणावर्तनिपातकः।
अघारिर्धेनुकारिश्च प्रलम्बारिर्व्रजेश्वरः॥ ३६

२६६. पूतनारि, २६७. वकारि, २६८. तृणावर्त-निपातक, २६९. अघारि, २७०. धेनुकारि, २७१. प्रलम्बारि, २७२. व्रजेश्वर॥ ३६॥

अरिष्टहा केशिशत्रुर्व्योमासुरविनाशकृत्।
अग्निपानो दुग्धपानो वृन्दावनलताश्रितः॥ ३७

२७३. अरिष्टहा, २७४. केशिशत्रु, २७५. व्योमा-सुरविनाशकृत्, २७६. अग्निपान, २७७. दुग्धपान, २७८. वृन्दावनलता, २७९. आश्रित॥ ३७॥

यशोमतीसुतो भव्यो रोहिणीलालितः शिशुः।
रासमण्डलमध्यस्थो रासमण्डलमण्डनः॥ ३८

२८०. यशोमतीसुत, २८१. भव्य, २८२. रोहिणी-लालित, २८३. शिशु, २८४. रासमण्डलमध्यस्थ, २८५. रासमण्डलमण्डन॥ ३८॥

गोपिकाशतयूथार्थी शङ्खचूडवधोद्यतः।
गोवर्धनसमुद्धर्ता शक्रजिद्व्रजरक्षकः॥ ३९

२८६. गोपिकाशतयूथार्थी, २८७. शङ्खचूड-वधोद्यत, २८८. गोवर्धनसमुद्धर्ता, २८९. शक्रजित्, २९०. व्रजरक्षक॥ ३९॥

वृषभानुवरो नन्द आनन्दो नन्दवर्धनः।
नन्दराजसुतः श्रीशः कंसारिः कालियान्तकः॥ ४०

२९१. वृषभानुवर, २९२. नन्द, २९३. आनन्द, २९४. नन्दवर्धन, २९५. नन्दराजसुत, २९६. श्रीश, २९७. कंसारि, २९८. कालियान्तक॥ ४०॥

रजकारिर्मुष्टिकारिः कंसकोदण्डभञ्जनः।
चाणूरारिः कूटहन्ता शलारिस्तोशलान्तकः॥ ४१

२९९. रजकारि, ३००. मुष्टिकारि, ३०१. कंस-कोदण्डभञ्जन, ३०२. चाणूरारि, ३०३. कूटहन्ता, ३०४. शलारि, ३०५. तोशलान्तक॥ ४१॥

कंसभ्रातृनिहन्ता च मल्लयुद्धप्रवर्तकः।
गजहन्ता कंसहन्ता कालहन्ता कलङ्कहा॥ ४२

३०६. कंसभ्रातृनिहन्ता, ३०७. मल्लयुद्ध-प्रवर्तक, ३०८. गजहन्ता, ३०९. कंसहन्ता, ३१०. कालहन्ता, ३११. कलङ्कहा॥ ४२॥

मागधारिर्यवनहा पाण्डुपुत्रसहायकृत्।
चतुर्भुजः श्यामलाङ्गः सौम्यश्चौपगविप्रियः॥ ४३

३१२. मागधारि, ३१३. यवनहा, ३१४. पाण्डु-पुत्रसहायकृत्, ३१५. चतुर्भुज, ३१६. श्यामलाङ्ग, ३१७. सौम्य, ३१८. औपगविप्रिय॥ ४३॥

युद्धभृदुद्धवसखा मन्त्री मन्त्रविशारदः।
वीरहा वीरमथनः शङ्खचक्रगदाधरः॥ ४४

३१९. युद्धभृत्, ३२०. उद्धवसखा, ३२१. मन्त्री, ३२२. मन्त्रविशारद, ३२३. वीरहा, ३२४. वीरमथन, ३२५. शङ्खधर, ३२६. चक्रधर, ३२७. गदाधर॥ ४४॥

रेवतीचित्तहर्ता च रेवतीहर्षवर्धनः।
रेवतीप्राणनाथश्च रेवतीप्रियकारकः॥ ४५

३२८. रेवतीचित्तहर्ता, ३२९. रेवतीहर्षवर्धन, ३३०. रेवतीप्राणनाथ, ३३१. रेवतीप्रियकारक॥ ४५॥

ज्योतिर्ज्योतिष्मतीभर्ता रेवताद्रिविहारकृत्।
धृतिनाथो धनाध्यक्षो दानाध्यक्षो धनेश्वरः॥ ४६

३३२. ज्योति, ३३३. ज्योतिष्मतीभर्ता, ३३४. रेवताद्रिविहारकृत्, ३३५. धृतिनाथ, ३३६. धनाध्यक्ष, ३३७. दानाध्यक्ष, ३३८. धनेश्वर॥ ४६॥

मैथिलार्चितपादाब्जो मानदो भक्तवत्सलः।
दुर्योधनगुरुर्गुर्वी गदाशिक्षाकरः क्षमी॥ ४७

३३९. मैथिलार्चितपादाब्ज, ३४०. मानद, ३४१. भक्तवत्सल, ३४२. दुर्योधनगुरु, ३४३. गुर्वी, ३४४. गदाशिक्षाकर, ३४५. क्षमी॥ ४७॥

मुरारिर्मदनो मन्दोऽनिरुद्धो धन्विनां वरः।
कल्पवृक्षः कल्पवृक्षी कल्पवृक्षवनप्रभुः॥ ४८

३४६. मुरारि, ३४७. मदन, ३४८. मन्द, ३४९. अनिरुद्ध, ३५०. धन्विनांवर, ३५१. कल्पवृक्ष, ३५२. कल्पवृक्षी, ३५३. कल्पवृक्षवनप्रभु॥ ४८॥

स्यमन्तकमणिर्मान्यो गाण्डीवी कौरवेश्वरः।
कुम्भाण्डखण्डनकरः कूपकर्णप्रहारकृत्॥ ४९

३५४. स्यमन्तकमणि, ३५५. मान्य, ३५६. गाण्डीवी, ३५७. कौरवेश्वर, ३५८. कुम्भाण्डखण्डनकर, ३५९. कूपकर्णप्रहारकृत्॥ ४९॥

सेव्यो रेवतजामाता मधुमाधवसेवितः।
बलिष्ठः पुष्टसर्वाङ्गो हृष्टः पुष्टः प्रहर्षितः॥ ५०

३६०. सेव्य, ३६१. रेवतजामाता, ३६२. मधुसेवित, ३६३. माधवसेवित, ३६४. बलिष्ठ, ३६५. पुष्टसर्वाङ्ग, ३६६. हृष्ट, ३६७. पुष्ट, ३६८. प्रहर्षित॥ ५०॥

वाराणसीगतः क्रुद्धः सर्वः पौण्ड्रकघातकः।
सुनन्दी शिखरी शिल्पी द्विविदाङ्गनिषूदनः॥ ५१

३६९. वाराणसीगत, ३७०. क्रुद्ध, ३७१. सर्व, ३७२. पौण्ड्रकघातक, ३७३. सुनन्दी, ३७४. शिखरी, ३७५. शिल्पी, ३७६. द्विविदाङ्गनिषूदन॥ ५१॥

हस्तिनापुरसङ्कर्षी रथी कौरवपूजितः।
विश्वकर्मा विश्वधर्मा देवशर्मा दयानिधिः॥ ५२

३७७. हस्तिनापुरसंकर्षी, ३७८. रथी, ३७९. कौरवपूजित, ३८०. विश्वकर्मा, ३८१. विश्वधर्मा, ३८२. देवशर्मा, ३८३. दयानिधि॥ ५२॥

महाराजश्छत्रधरो महाराजोपलक्षणः।
सिद्धगीतः सिद्धकथः शुक्लचामरवीजितः॥ ५३

३८४. महाराज, ३८५. छत्रधर, ३८६. महाराजोपलक्षण, ३८७. सिद्धगीत, ३८८. सिद्धकथ, ३८९. शुक्लचामरवीजित॥ ५३॥

ताराक्षः कीरनासश्च बिम्बोष्ठः सुस्मितच्छविः।
करीन्द्रः करदोर्दण्डः प्रचण्डो मेघमण्डलः॥ ५४

३९०. ताराक्ष, ३९१. कीरनास, ३९२. बिम्बोष्ठ, ३९३. सुस्मितच्छवि, ३९४. करीन्द्र, ३९५. करदोर्दण्ड, ३९६. प्रचण्ड, ३९७. मेघमण्डल॥ ५४॥

कपाटवक्षाः पीनांसः पद्मपादः स्फुरद्द्युतिः।
महाविभूतिर्भूतेशो बन्धमोक्षी समीक्षणः॥ ५५

३९८. कपाटवक्षा, ३९९. पीनांस, ४००. पद्मपाद, ४०१. स्फुरद्द्युति, ४०२. महाविभूति, ४०३. भूतेश, ४०४. बन्धमोक्षी, ४०५. समीक्षण॥ ५५॥

चैद्यशत्रुः शत्रुसन्धो दन्तवक्रनिषूदकः।
अजातशत्रुः पापघ्नो हरिदाससहायकृत्॥ ५६

४०६. चैद्यशत्रु, ४०७. शत्रुसंध, ४०८. दन्तवक्रनिषूदक, ४०९. अजातशत्रु, ४१०. पापघ्न, ४११. हरिदाससहायकृत्॥ ५६॥

शालबाहुः शाल्वहन्ता तीर्थयायी जनेश्वरः।
नैमिषारण्ययात्रार्थी गोमतीतीरवासकृत्॥ ५७

४१२. शालबाहु, ४१३. शाल्वहन्ता, ४१४. तीर्थयायी, ४१५. जनेश्वर, ४१६. नैमिषारण्ययात्रार्थी, ४१७. गोमतीतीरवासकृत्॥ ५७॥

गण्डकीस्नानवान् स्रग्वी वैजयन्तीविराजितः।
अम्लानः पङ्कजधरो विपाशी शोणसम्प्लुतः॥ ५८

४१८. गण्डकीस्नानवान्, ४१९. स्रग्वी, ४२०. वैजयन्तीविराजित, ४२१. अम्लान, ४२२. पङ्कजधर, ४२३. विपाशी, ४२४. शोणसंप्लुत॥ ५८॥

प्रयागतीर्थराजश्च सरयूः सेतुबन्धनः।
गयाशिरश्च धनदः पौलस्त्यः पुलहाश्रमः॥ ५९

४२५. प्रयागतीर्थराज, ४२६. सरयू, ४२७. सेतुबन्धन, ४२८. गयाशिर, ४२९. धनद, ४३०. पौलस्त्य, ४३१. पुलहाश्रम॥ ५९॥

गङ्गासागरसङ्गार्थी सप्तगोदावरीपतिः।
वेणी भीमरथी गोदा ताम्रपर्णी वटोदका॥ ६०

४३२. गङ्गासागरसङ्गार्थी, ४३३. सप्तगोदावरीपति, ४३४. वेणी, ४३५. भीमरथी, ४३६. गोदा, ४३७. ताम्रपर्णी, ४३८. वटोदका॥ ६०॥

कृतमाला महापुण्या कावेरी च पयस्विनी।
प्रतीची सुप्रभा वेणी त्रिवेणी सरयूपमा॥ ६१

४३९. कृतमाला, ४४०. महापुण्या, ४४१. कावेरी, ४४२. पयस्विनी, ४४३. प्रतीची, ४४४. सुप्रभा, ४४५. वेणी, ४४६. त्रिवेणी, ४४७. सरयूपमा॥ ६१॥

2260 Grag Sanhita sanuwad_Section_27_2_Back

कृष्णा पम्पा नर्मदा च गङ्गा भागीरथी नदी।
सिद्धाश्रमः प्रभासश्च बिन्दुर्बिन्दुसरोवरः॥ ६२

४४८. कृष्णा, ४४९. पम्पा, ४५०. नर्मदा, ४५१.गङ्गा, ४५२. भागीरथी, ४५३. नदी, ४५४. सिद्धाश्रम, ४५५. प्रभास, ४५६. बिन्दु, ४५७. बिन्दु-सरोवर॥ ६२॥

पुष्करः सैन्धवो जम्बू नरनारायणाश्रमः।
कुरुक्षेत्रपती रामो जामदग्न्यो महामुनिः॥ ६३

४५८. पुष्कर, ४५९. सैन्धव, ४६०. जम्बू, ४६१. नरनारायणाश्रम, ४६२. कुरुक्षेत्रपति, ४६३. राम, ४६४. जामदग्न्य, ४६५. महामुनि॥ ६३॥

इल्वलात्मजहन्ता च सुदामा सौख्यदायकः।
विश्वजिद्विश्वनाथश्च त्रिलोकविजयी जयी॥ ६४

४६६. इल्वलात्मजहन्ता, ४६७. सुदामा, ४६८. सौख्यदायक, ४६९. विश्वजित्, ४७०. विश्वनाथ, ४७१. त्रिलोकविजयी, ४७२. जयी॥ ६४॥

वसन्तमालतीकर्षी गदो गद्यो गदाग्रजः।
गुणार्णवो गुणनिधिर्गुणपात्री गुणाकरः॥ ६५

४७३. वसन्तमालतीकर्षी, ४७४. गद, ४७५. गद्य, ४७६. गदाग्रज, ४७७. गुणार्णव, ४७८. गुण-निधि, ४७९. गुणपात्री, ४८०. गुणाकर॥ ६५॥

रङ्गवल्ली जलाकारो निर्गुणः सगुणो बृहत्।
दृष्टः श्रुतो भवद्भूतो भविष्यच्चाल्पविग्रहः॥ ६६

४८१. रङ्गवल्ली, ४८२. जलाकार, ४८३. निर्गुण, ४८४. सगुण, ४८५. बृहत्, ४८६. दृष्ट, ४८७. श्रुत, ४८८. भवत्, ४८९. भूत, ४९०. भविष्यत्, ४९१. अल्पविग्रह॥ ६६॥

अनादिरादिरानन्दः प्रत्यग्धामा निरन्तरः।
गुणातीतः समः साम्यः समदृङ् निर्विकल्पकः॥ ६७

४९२. अनादि, ४९३. आदि, ४९४. आनन्द, ४९५. प्रत्यग्धामा, ४९६. निरन्तर, ४९७. गुणातीत, ४९८. सम, ४९९. साम्य, ५००. समदृक्, ५०१. निर्विकल्पक ॥ ६७॥

गूढो व्यूढो गुणो गौणो गुणाभासो गुणावृतः।
नित्योऽक्षरो निर्विकारः क्षरोऽजस्रसुखोऽमृतः॥ ६८

५०२. गूढ, ५०३. व्यूढ, ५०४. गुण, ५०५. गौण, ५०६. गुणाभास, ५०७. गुणावृत, ५०८. नित्य, ५०९. अक्षर, ५१०. निर्विकार, ५११. क्षर, ५१२. अजस्रसुख, ५१३. अमृत॥ ६८॥

सर्वगः सर्ववित्सार्थः समबुद्धिः समप्रभः।
अक्लेद्योऽच्छेद्य आपूर्णोऽशोष्योऽदाह्योऽनिवर्तकः॥ ६९

५१४. सर्वग, ५१५. सर्ववित्, ५१६. सार्थ, ५१७. समबुद्धि, ५१८. समप्रभ, ५१९. अक्लेद्य, ५२०. अच्छेद्य, ५२१. आपूर्ण, ५२२. अशोष्य, ५२३. अदाह्य, ५२४. अनिवर्तक ॥ ६९॥

ब्रह्म ब्रह्मधरो ब्रह्मा ज्ञापको व्यापकः कविः।
अध्यात्मकोऽधिभूतश्चाधिदैवः स्वाश्रयाश्रयः॥ ७०

५२५. ब्रह्म, ५२६. ब्रह्मधर, ५२७. ब्रह्मा, ५२८. ज्ञापक, ५२९. व्यापक, ५३०. कवि, ५३१. अध्यात्म, ५३२. अधिभूत, ५३३. अधिदैव, ५३४. स्वा-श्रय, ५३५. आश्रय॥ ७०॥

महावायुर्महावीरश्चेष्टा रूपतनुस्थितः।
प्रेरको बोधको बोधी त्रयोविंशतिको गणः॥ ७१

५३६. महावायु, ५३७. महावीर, ५३८. चेष्टा, ५३९. रूपतनुस्थित, ५४०. प्रेरक, ५४१. बोधक, ५४२. बोधी, ५४३. त्रयोविंशतिकगण॥ ७१॥

अंशांशश्च नरावेशोऽवतारो भूपरिस्थितः।
महर्जनस्तपः सत्यं भूर्भुवःस्वरिति त्रिधा॥ ७२

५४४. अंशांश, ५४५. नरावेश, ५४६. अवतार, ५४७. भूपरिस्थित, ५४८. मह, ५४९. जन, ५५०. तप, ५५१. सत्य, ५५२. भू, ५५३. भुव, ५५४. स्व॥ ७२॥

नैमित्तिकः प्राकृतिक आत्यन्तिकमयो लयः।
सर्गो विसर्गः सर्गादिर्निरोधो रोध ऊतिमान्॥ ७३

५५५. नैमित्तिक, ५५६. प्राकृतिक, ५५७. आत्यन्तिकमय लय, ५५८. सर्ग, ५५९. विसर्ग, ५६०. सर्गादि ५६१. निरोध, ५६२. रोध, ५६३. ऊतिमान्॥ ७३॥

मन्वन्तरावतारश्च मनुर्मनुसुतोऽनघः।
स्वयम्भूः शाम्भवः शङ्कुः स्वायम्भुवसहायकृत्॥ ७४

५६४. मन्वन्तरावतार, ५६५. मनु, ५६६. मनु-सुत, ५६७. अनघ, ५६८. स्वयम्भू, ५६९. शाम्भव, ५७०. शंकु, ५७१. स्वायम्भुवसहायकृत्॥ ७४॥

सुरालयो देवगिरिर्मेरुर्हेमार्चितो गिरिः।
गिरीशो गणनाथश्च गौरीशो गिरिगह्वरः॥ ७५

५७२. सुरालय, ५७३. देवगिरि, ५७४. मेरु, ५७५.हेम, ५७६. अर्चित, ५७७. गिरि, ५७८. गिरीश, ५७९. गणनाथ, ५८०. गौरी, ५८१. ईश, ५८२. गिरिगह्वर॥ ७५॥

विन्ध्यस्त्रिकूटो मैनाकः सुवेलः पारिभद्रकः।
पतङ्गः शिशिरः कङ्को जारुधिः शैलसत्तमः॥ ७६

५८३. विन्ध्य, ५८४. त्रिकूट, ५८५. मैनाक, ५८६. सुवेल, ५८७. पारिभद्रक, ५८८. पतंग, ५८९. शिशिर, ५९०. कङ्क, ५९१. जारुधि, ५९२. शैलसत्तम॥ ७६॥

कालञ्जरो बृहत्सानुर्दरीभृन्नन्दिकेश्वरः।
सन्तानस्तरुराजश्च मन्दारः पारिजातकः॥ ७७

५९३. कालञ्जर, ५९४. बृहत्सानु, ५९५. दरीभृत्, ५९६. नन्दिकेश्वर, ५९७. संतान, ५९८. तरुराज, ५९९. मन्दार, ६००. पारिजातक॥ ७७॥

जयन्तकृज्जयन्ताङ्गो जयन्ती दिग्जयाकुलः।
वृत्रहा देवलोकश्च शशी कुमुदबान्धवः॥ ७८

६०१. जयन्तकृत्, ६०२. जयन्ताङ्ग, ६०३. जयन्ती, ६०४. दिग्, ६०५. जयाकुल, ६०६. वृत्रहा, ६०७. देवलोक, ६०८. शशी, ६०९. कुमुदबान्धव॥ ७८॥

नक्षत्रेशः सुधा सिन्धुर्मृगः पुष्यः पुनर्वसुः।
हस्तोऽभिजिच्च श्रवणो वैधृतिर्भास्करोदयः॥ ७९

६१०. नक्षत्रेश, ६११. सुधा, ६१२. सिन्धु, ६१३. मृग, ६१४. पुष्य, ६१५. पुनर्वसु, ६१६. हस्त, ६१७. अभिजित्, ६१८. श्रवण, ६१९. वैधृति, ६२०. भास्करोदय॥ ७९॥

ऐन्द्रः साध्यः शुभः शुक्लो व्यतीपातो ध्रुवः सितः।
शिशुमारो देवमयो ब्रह्मलोको विलक्षणः॥ ८०

६२१. ऐन्द्र, ६२२. साध्य, ६२३. शुभ, ६२४. शुक्ल, ६२५. व्यतीपात, ६२६. ध्रुव, ६२७. सित, ६२८. शिशुमार, ६२९. देवमय, ६३०. ब्रह्मलोक, ६३१. विलक्षण॥ ८०॥

रामो वैकुण्ठनाथश्च व्यापी वैकुण्ठनायकः।
श्वेतद्वीपोऽजितपदो लोकालोकाचलाश्रितः॥ ८१

६३२. राम, ६३३. वैकुण्ठनाथ, ६३४. व्यापी, ६३५. वैकुण्ठनायक, ६३६. श्वेतद्वीप, ६३७. अजितपद, ६३८. लोकालोकाचलाश्रित॥ ८१॥

भूमिर्वैकुण्ठदेवश्च कोटिब्रह्माण्डकारकः।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशो गवां पतिः॥ ८२

६३९. भूमि, ६४०. वैकुण्ठदेव, ६४१. कोटि-ब्रह्माण्डकारक, ६४२. असंख्यब्रह्माण्डपति, ६४३. गोलोकेश, ६४४. गवां पति॥ ८२॥

गोलोकधामधिषणो गोपिकाकण्ठभूषणः।
ह्रीधरः श्रीधरो लीलाधरो गिरिधरो धुरी॥ ८३

६४५. गोलोकधामधिषण, ६४६. गोपिका-कण्ठभूषण, ६४७. ह्रीधर, ६४८. श्रीधर, ६४९. लीलाधर, ६५०. गिरिधर, ६५१. धुरी॥ ८३॥

कुन्तधारी त्रिशूली च बीभत्सी घर्घरस्वनः।
शूलसूच्यर्पितगजो गजचर्मधरो गजी॥ ८४

६५२. कुन्तधारी, ६५३. त्रिशूली. ६५४. बीभत्सी, ६५५. घर्घरस्वन, ६५६. शूलार्पितगज, ६५७. सूच्यर्पित-गज, ६५८. गजचर्मधर, ६५९. गजी॥ ८४॥

अन्त्रमाली मुण्डमाली व्याली दण्डकमण्डलुः।
वेतालभृद्भूतसङ्घः कूष्माण्डगणसंवृतः॥ ८५

६६०. अन्त्रमाली, ६६१. मुण्डमाली, ६६२. व्याली, ६६३. दण्डकमण्डलु, ६६४. वेतालभृत्, ६६५. भूतसंघ, ६६६. कूष्माण्डगणसंवृत॥ ८५॥

प्रमथेशः पशुपतिर्मृडानीशो मृडो वृषः।
कृतान्तकालसङ्घारिः कूटः कल्पान्तभैरवः॥ ८६

६६७. प्रमथेश, ६६८. पशुपति, ६६९. मृडानी, ६७०. ईश, ६७१. मृड, ६७२. वृष, ६७३. कृतान्त-संघारि, ६७४. कालसंघारि, ६७५. कूट, ६७६. कल्पान्तभैरव॥ ८६॥

षडाननो वीरभद्रो दक्षयज्ञविघातकः।
खर्पराशी विषाशी च शक्तिहस्तः शिवार्थदः॥ ८७

६७७. षडानन, ६७८. वीरभद्र, ६७९. दक्षयज्ञ-विघातक, ६८०. खर्पराशी, ६८१. विषाशी, ६८२. शक्तिहस्त, ६८३. शिवा, ६८४. अर्थद॥ ८७॥

पिनाकटङ्कारकरश्चलज्झङ्कारनूपुरः।
पण्डितस्तर्कविद्वान् वै वेदपाठी श्रुतीश्वरः॥ ८८

६८५. पिनाकटंकारकर, ६८६. चलज्झंकार-नूपुर, ६८७. पण्डित, ६८८. तर्कविद्वान्, ६८९. वेदपाठी, ६९०. श्रुतीश्वर॥ ८८॥

वेदान्तकृत्सांख्यशास्त्री मीमांसी कणनामभाक्।
काणादिर्गोतमो वादी वादो नैयायिको नयः॥ ८९

६९१. वेदान्तकृत्, ६९२. सांख्यशास्त्री, ६९३. मीमांसी, ६९४. कणनामभाक्, ६९५. काणादि, ६९६. गोतम, ६९७. वादी. ६९८. वाद, ६९९. नैयायिक, ७००. नय॥ ८९॥

वैशेषिको धर्मशास्त्री सर्वशास्त्रार्थतत्त्वगः।
वैयाकरणकृच्छन्दो वैयासः प्राकृतिर्वचः॥ ९०

७०१. वैशेषिक, ७०२. धर्मशास्त्री, ७०३. सर्व-शास्त्रार्थतत्त्वग, ७०४. वैयाकरणकृत्, ७०५. छन्द ७०६. वैयास, ७०७. प्राकृति, ७०८. वच॥ ९०॥

पाराशरीसंहितावित्काव्यकृन्नाटकप्रदः।
पौराणिकः स्मृतिकरो वैद्यो विद्याविशारदः॥ ९१

७०९. पाराशरीसंहितावित्, ७१०. काव्यकृत्, ७११. नाटकप्रद, ७१२. पौराणिक, ७१३, स्मृति-कर, ७१४. वैद्य , ७१५. विद्याविशारद॥ ९१॥

अलङ्कारो लक्षणार्थो व्यङ्ग्यविद्ध्वनिविद्ध्वनिः।
वाक्यस्फोटः पदस्फोटः स्फोटवृत्ती रसार्थवित्॥ ९२

७१६. अलंकार, ७१७. लक्षणार्थ, ७१८. व्यङ्ग्यवित्, ७१९. ध्वनिवित्, ७२०. ध्वनि, ७२१. वाक्यस्फोट, ७२२. पदस्फोट, ७२३. स्फोटवृत्ति, ७२४. रसार्थवित्॥ ९२॥

शृङ्गार उज्ज्वलः स्वच्छोऽद्भुतो हास्यो भयानकः।
अश्वत्थो यवभोजी च यवक्रीतो यवाशनः॥ ९३

७२५. शृङ्गार, ७२६. उज्ज्वल , ७२७. स्वच्छ, ७२८. अद्भुत, ७२९. हास्य, ७३०. भयानक, ७३१. अश्वत्थ, ७३२. यवभोजी, ७३३. यवक्रीत, ७३४. यवाशन॥ ९३॥

प्रह्लादरक्षकः स्निग्ध ऐलवंशविवर्धनः।
गताधिरम्बरीषाङ्गो विगाधिर्गाधिनां वरः॥ ९४

७३५. प्रह्लादरक्षक, ७३६. स्निग्ध, ७३७. ऐलवंशविवर्धन, ७३८. गताधि, ७३९. अम्बरीषाङ्ग, ७४०. विगाधि, ७४१. गाधिनां वर॥ ९४॥

नानामणिसमाकीर्णो नानारत्नविभूषणः।
नानापुष्पधरः पुष्पी पुष्पधन्वा प्रपुष्पितः॥ ९५

७४२. नानामणिसमाकीर्ण, ७४३. नानारत्न-विभूषण, ७४४. नानापुष्पधर, ७४५. पुष्पी, ७४६. पुष्पधन्वा, ७४७. प्रपुष्पित॥ ९५॥

नानाचन्दनगन्धाढ्यो नानापुष्परसार्चितः।
नानावर्णमयो वर्णो नानावस्त्रधरः सदा॥ ९६

७४८. नानाचन्दनगन्धाढ्य, ७४९. नानापुष्प-रसार्चित, ७५०. नानावर्णमय, ७५१. वर्ण, ७५२. सदा नानावस्त्रधर॥ ९६॥

नानापद्माकरः कौशी नानाकौशेयवेषधृक्।
रत्नकम्बलधारी च धौतवस्त्रसमावृतः॥ ९७

७५३. नानापद्माकर, ७५४. कौशी, ७५५. नाना-कौशेयवेषधृक्, ७५६. रत्नकम्बलधारी, ७५७. धौत-वस्त्रसमावृत॥ ९७॥

उत्तरीयधरः पूर्णो घनकञ्चुकसङ्घवान्।
पीतोष्णीषः सितोष्णीषो रक्तोष्णीषो दिगम्बरः॥ ९८

७५८. उत्तरीयधर, ७५९. पूर्ण, ७६०. घन-कञ्चुकवान्, ७६१. संघवान्, ७६२. पीतोष्णीष, ७६३. सितोष्णीष, ७६४. रक्तोष्णीष, ७६५. दिगम्बर॥ ९८॥

दिव्याङ्गो दिव्यरचनो दिव्यालोकविलोकितः।
सर्वोपमो निरुपमो गोलोकाङ्कीकृताङ्गनः॥ ९९

७६६. दिव्याङ्ग, ७६७. दिव्यरचन, ७६८. दिव्या-लोकविलोकित, ७६९. सर्वोपम, ७७०. निरुपम, ७७१. गोलोकाङ्कीकृताङ्गन॥ ९९॥

कृतस्वोत्सङ्गगोलोकः कुण्डली भूत आस्थितः।
माथुरो मथुरादर्शी चलत्खञ्जनलोचनः॥ १००

७७२. कृतस्वोत्सङ्गगोलोक, ७७३. कुण्डली, ७७४. भूत, ७७५. आस्थित, ७७६. माथुर, ७७७. मथुरा, ७७८. आदर्शी, ७७९. चलत्खञ्जनलोचन॥ १००॥

दधिहर्ता दुग्धहरो नवनीतसिताशनः।
तक्रभुक् तक्रहारी च दधिचौर्यकृतश्रमः॥ १०१

७८०. दधिहर्ता, ७८१. दुग्धहर, ७८२. नवनीत-सिताशन, ७८३. तक्रभुक्, ७८४. तक्रहारी, ७८५. दधिचौर्यकृतश्रम॥ १०१॥

प्रभावतीबद्धकरो दामी दामोदरो दमी।
सिकताभूमिचारी च बालकेलिर्व्रजार्भकः॥ १०२

७८६. प्रभावतीबद्धकर, ७८७. दामी, ७८८. दामोदर, ७८९. दमी, ७९०. सिकताभूमिचारी, ७९१. बालकेलि, ७९२. व्रजार्भक॥ १०२॥

धूलिधूसरसर्वाङ्गः काकपक्षधरः सुधीः।
मुक्तकेशो वत्सवृन्दः कालिन्दीकूलवीक्षणः॥ १०३

७९३. धूलिधूसरसर्वाङ्ग, ७९४. काकपक्षधर, ७९५. सुधी, ७९६. मुक्तकेश, ७९७. वत्सवृन्द, ७९८. कालिन्दीकूलवीक्षण॥ १०३॥

जलकोलाहली कूली पङ्कप्राङ्गणलेपकः।
श्रीवृन्दावनसञ्चारी वंशीवटतटस्थितः॥ १०४

७९९. जलकोलाहली, ८००. कूली, ८०१. पङ्क-प्राङ्गणलेपक, ८०२. श्रीवृन्दावनसंचारी, ८०३. वंशीवट-तटस्थित॥ १०४॥

महावननिवासी च लोहार्गलवनाधिपः।
साधुः प्रियतमः साध्यः साध्वीशो गतसाध्वसः॥ १०५

८०४. महावननिवासी, ८०५. लोहार्गलवना धिप, ८०६. साधु, ८०७. प्रियतम, ८०८. साध्य, ८०९. साध्वीश, ८१०. गतसाध्वस॥ १०५॥

रङ्गनाथो विट्ठलेशो मुक्तिनाथोऽघनाशकः।
सुकीर्तिः सुयशाः स्फीतो यशस्वी रङ्गरञ्जनः॥ १०६

८११. रङ्गनाथ, ८१२. विट्ठलेश, ८१३. मुक्ति-नाथ, ८१४. अघनाशक, ८१५. सुकीर्ति, ८१६. सुयशा, ८१७. स्फीत, ८१८. यशस्वी, ८१९. रङ्गरञ्जन॥ १०६॥

रागषट्को रागपुत्रो रागिणी रमणोत्सुकः।
दीपको मेघमल्हारः श्रीरागो मालकोशकः॥ १०७

८२० रागषट्क, ८२१. रागपुत्र, ८२२. रागिणी, ८२३. रमणोत्सुक, ८२४. दीपक, ८२५. मेघमल्हार, ८२६. श्रीराग, ८२७. मालकोशक॥ १०७॥

हिन्दोलो भैरवाख्यश्च स्वरजातिस्मरो मृदुः।
तालो मानप्रमाणश्च स्वरगम्यः कलाक्षरः॥ १०८

८२८. हिन्दोल, ८२९. भैरवाख्य, ८३०. स्वर-जातिस्मर, ८३१. मृदु, ८३२. ताल, ८३३. मान, ८३४. प्रमाण, ८३५. स्वरगम्य, ८३६. कलाक्षर॥ १०८॥

शमी श्यामी शतानन्दः शतयामः शतक्रतुः।
जागरः सुप्त आसुप्तः सुषुप्तः स्वप्न उर्वरः॥ १०९

८३७. शमी, ८३८. श्यामी, ८३९. शतानन्द, ८४०. शतयाम, ८४१. शतक्रतु, ८४२. जागर, ८४३. सुप्त, ८४४. आसुप्त, ८४५. सुषुप्त, ८४६. स्वप्न, ८४७. उर्वर॥ १०९॥

ऊर्जः स्फूर्जो निर्जरश्च विज्वरो ज्वरवर्जितः।
ज्वरजिज्ज्वरकर्ता च ज्वरयुक् त्रिज्वरो ज्वरः॥ ११०

८४८. ऊर्ज, ८४९. स्फूर्ज, ८५०. निर्जर, ८५१. विज्वर, ८५२. ज्वरवर्जित, ८५३. ज्वरजित्, ८५४. ज्वरकर्ता, ८५५. ज्वरयुक्, ८५६. त्रिज्वर, ८५७. ज्वर॥ ११०॥

जाम्बवान् जम्बुकाशङ्की जम्बूद्वीपो द्विपारिहा।
शाल्मलिः शाल्मलिद्वीपः प्लक्षः प्लक्षवनेश्वरः॥ १११

८५८. जाम्बवान्, ८५९. जम्बुकाशङ्की, ८६०. जम्बूद्वीप, ८६१. द्विपारिहा, ८६२. शाल्मलि, ८६३. शाल्मलिद्वीप, ८६४. प्लक्ष, ८६५. प्लक्षवनेश्वर॥ १११॥

कुशधारी कुशः कौशी कौशिकः कुशविग्रहः।
कुशस्थलीपतिः काशीनाथो भैरवशासनः॥ ११२

८६६. कुशधारी, ८६७. कुश, ८६८. कौशी, ८६९. कौशिक, ८७०. कुशविग्रह, ८७१. कुशस्थली-पति, ८७२. काशीनाथ, ८७३. भैरवशासन॥ ११२॥

दाशार्हः सात्वतो वृष्णिर्भोजोऽन्धकनिवासकृत्।
अन्धको दुन्दुभिर्द्योतः प्रद्योतः सात्त्वतां पतिः॥ ११३

८७४. दाशार्ह, ८७५. सात्वत, ८७६ वृष्णि, ८७७. भोज, ८७८. अन्धकनिवासकृत्, ८७९. अन्धक, ८८०. दुन्दुभि, ८८१. द्योत, ८८२. प्रद्योत, ८८३. सात्त्वतां पति॥ ११३॥

शूरसेनोऽनुविषयो भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः।
आहुकः सर्वनीतिज्ञ उग्रसेनो महोग्रवाक्॥ ११४

८८४. शूरसेन, ८८५. अनुविषय, ८८६. भोजेश्वर, ८८७. वृष्णीश्वर, ८८८. अन्धकेश्वर, ८८९. आहुक, ८९०. सर्वनीतिज्ञ, ८९१. उग्रसेन, ८९२. महोग्र-वाक्॥ ११४॥

उग्रसेनप्रियः प्रार्थ्यः प्रार्थो यदुसभापतिः।
सुधर्माधिपतिः सत्त्वं वृष्णिचक्रावृतो भिषक्॥ ११५

८९३. उग्रसेनप्रिय, ८९४. प्रार्थ्य, ८९५. प्रार्थ, ८९६. यदुसभापति, ८९७ सुधर्माधिपति, ८९८. सत्त्व, ८९९. वृष्णिचक्रावृत, ९००. भिषक्॥ ११५॥

सभाशीलः सभादीपः सभाग्निश्च सभारविः।
सभाचन्द्रः सभाभासः सभादेवः सभापतिः॥ ११६

९०१. सभाशील, ९०२. सभादीप, ९०३. सभाग्नि, ९०४. सभारवि, ९०५. सभाचन्द्र, ९०६. सभाभास, ९०७. सभादेव, ९०८.सभापति॥ ११६॥

प्रजार्थदः प्रजाभर्ता प्रजापालनतत्परः।
द्वारकादुर्गसञ्चारी द्वारकाग्रहविग्रहः॥ ११७

९०९. प्रजार्थद, ९१०. प्रजाभर्ता, ९११. प्रजापालनतत्पर, ९१२. द्वारकादुर्गसंचारी, ९१३. द्वारकाग्रहविग्रह॥ ११७॥

द्वारकादुःखसंहर्ता द्वारकाजनमङ्गलः।
जगन्माता जगत्त्राता जगद्भर्ता जगत्पिता॥ ११८

९१४. द्वारकादुःखसंहर्ता, ९१५. द्वारकाजनमङ्गल, ९१६. जगन्माता, ९१७. जगत्त्राता, ९१८. जगद्भर्ता, ९१९. जगत्पिता॥ ११८॥

जगद्बन्धुर्जगद्धाता जगन्मित्रो जगत्सखः।
ब्रह्मण्यदेवो ब्रह्मण्यो ब्रह्मपादरजोदधत्॥ ११९

९२०. जगद्बन्धु, ९२१. जगद्धाता, ९२२. जगन्मित्र, ९२३. जगत्सख, ९२४. ब्रह्मण्यदेव, ९२५. ब्रह्मण्य, ९२६. ब्रह्मपादरजोदधत्॥ ११९॥

ब्रह्मपादरजःस्पर्शी ब्रह्मपादनिषेवकः।
विप्राङ्घ्रिजलपूताङ्गो विप्रसेवापरायणः॥ १२०

९२७. ब्रह्मपादरजःस्पर्शी, ९२८. ब्रह्मपादनिषेवक, ९२९. विप्राङ्घ्रिजलपूताङ्ग, ९३०. विप्रसेवापरायण॥ १२०॥

विप्रमुख्यो विप्रहितो विप्रगीतमहाकथः।
विप्रपादजलार्द्राङ्गो विप्रपादोदकप्रियः॥ १२१

९३१. विप्रमुख्य, ९३२. विप्रहित, ९३३. विप्रगीतमहाकथ, ९३४. विप्रपादजलार्द्राङ्ग, ९३५. विप्रपादोदकप्रिय॥ १२१॥

विप्रभक्तो विप्रगुरुर्विप्रो विप्रपदानुगः।
अक्षौहिणीवृतो योद्धा प्रतिमापञ्चसंयुतः॥ १२२

९३६. विप्रभक्त, ९३७. विप्रगुरु, ९३८. विप्र, ९३९. विप्रपदानुग, ९४०. अक्षौहिणीवृत, ९४१. योद्धा, ९४२. प्रतिमापञ्चसंयुत॥ १२२॥

चतुरोऽङ्गिराः पद्मवर्ती सामन्तोद्धृतपादुकः।
गजकोटिप्रयायी च रथकोटिजयध्वजः॥ १२३

९४३. चतुर, ९४४. अङ्गिरा, ९४५. पद्मवर्ती, ९४६. सामन्तोद्धृतपादुक, ९४७. गजकोटिप्रयायी, ९४८. रथकोटिजयध्वज॥ १२३॥

महारथश्चातिरथो जैत्रं स्यन्दनमास्थितः।
नारायणास्त्री ब्रह्मास्त्री रणश्लाघी रणोद्भटः॥ १२४

९४९. महारथ, ९५०. अतिरथ, ९५१. जैत्रस्यन्दनास्थित, ९५२. नारायणास्त्री, ९५३. ब्रह्मास्त्री, ९५४. रणश्लाघी, ९५५. रणोद्भट॥ १२४॥

मदोत्कटो युद्धवीरो देवासुरभयङ्करः।
करिकर्णमरुत्प्रेजत्कुन्तलव्याप्तकुण्डलः॥ १२५

९५६. मदोत्कट, ९५७. युद्धवीर, ९५८. देवासुरभयंकर, ९५९. करिकर्णमरुत्प्रेजत्कुन्तलव्याप्तकुण्डल॥ १२५॥

अग्रगो वीरसम्मर्दो मर्दलो रणदुर्मदः।
भटप्रतिभटः प्रोच्यो बाणवर्षीषुतोयदः॥ १२६

९६०. अग्रग, ९६१. वीरसम्मर्द, ९६२. मर्दल, ९६३. रणदुर्मद, ९६४. भटप्रतिभट, ९६५ प्रोच्य, ९६६. बाणवर्षी, ९६७. इषुतोयद॥ १२६॥

खड्गखण्डितसर्वाङ्गः षोडशाब्दः षडक्षरः।
वीरघोषोऽक्लिष्टवपुर्वज्राङ्गो वज्रभेदनः॥ १२७

९६८. खड्गखण्डितसर्वाङ्ग, ९६९. षोडशाब्द, ९७०. षडक्षर, ९७१. वीरघोष, ९७२. अक्लिष्टवपु, ९७३. वज्राङ्ग ९७४. वज्रभेदन॥ १२७॥

रुग्णवज्रो भग्नदन्तः शत्रुनिर्भर्त्सनोद्यतः।
अट्टहासः पट्टधरः पट्टराज्ञीपतिः पटुः॥ १२८

९७५. रुग्णवज्र, ९७६. भग्नदन्त, ९७७. शत्रु-निर्भर्त्सनोद्यत, ९७८. अट्टहास, ९७९. पट्टधर, ९८०. पट्टराज्ञीपति, ९८१. पटु॥ १२८॥

कलः पटहवादित्रो हुङ्कारो गर्जितस्वनः।
साधुर्भक्तपराधीनः स्वतन्त्रः साधुभूषणः॥ १२९

९८२. कल, ९८३. पटहवादित्र, ९८४. हुंकार, ९८५. गर्जितस्वन, ९८६. साधु, ९८७. भक्तपराधीन, ९८८. स्वतन्त्र, ९८९. साधुभूषण॥ १२९॥

अस्वतन्त्रः साधुमयः साधुग्रस्तमना मनाक्।
साधुप्रियः साधुधनः साधुज्ञातिः सुधाघनः॥ १३०

९९०. अस्वतन्त्र, ९९१. साधुमय, ९९२. मनाक्-साधुग्रस्तमना, ९९३. साधुप्रिय, ९९४. साधुधन, ९९५. साधुज्ञाति, ९९६. सुधाघन॥ १३०॥

साधुचारी साधुचित्तः साधुवश्यः शुभास्पदः।
इति नाम्नां सहस्रं तु बलभद्रस्य कीर्तितम्॥ १३१

९९७. साधुचारी, ९९८. साधुचित्त ९९९. साधु-वश्य, १०००. शुभास्पद।

—इस प्रकार भगवान् बलभद्रजीके एकसहस्र-नामोंका वर्णन किया गया॥ १३१॥

सर्वसिद्धिप्रदं नृणां चतुर्वर्गफलप्रदम्।
शतवारं पठेद्यस्तु स विद्यावान् भवेदिह॥ १३२

इन्दिरां च विभूतिं चाभिजनं रूपमेव च।
बलमोजश्च पठनात्सर्वं प्राप्नोति मानवः॥ १३३

माहात्म्य

यह सहस्रनाम मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि और चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) फल प्रदान करनेवाला है। जो इसका सौ बार पाठ करता है, वह इस लोकमें विद्यावान् होता है। इस सहस्र-नामका पाठ करनेसे मनुष्य लक्ष्मी, वैभव, सद्वंशमें जन्म, रूप, बल तथा तेज—सब कुछ प्राप्त करता है॥ १३२-१३३॥

गङ्गाकूलेऽथ कालिन्दीकूले देवालये तथा।
सहस्रावर्तपाठेन बलात्सिद्धिः प्रजायते॥ १३४

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।
बन्धात्प्रमुच्यते बद्धो रोगी रोगान्निवर्तते॥ १३५

गङ्गाजी एवं यमुनाजीके तटपर अथवा देवालय (देवमन्दिर)-में इसके एकहजार पाठ करनेसे जबर्दस्ती सिद्धि मिलती है। इसके पाठसे पुत्रकी कामनावालेको पुत्र तथा धनार्थीको धन प्राप्त होता है। बन्धनमें पड़ा मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है और रोगीका रोग चला जाता है॥ १३४-१३५॥

अयुतावर्तपाठे च पुरश्चर्याविधानतः।
होमतर्पणगोदानविप्रार्चनकृतोद्यमात्॥ १३६

पटलं पद्धतिं स्तोत्रं कवचं तु विधाय च।
महामण्डलभर्ता स्यान्मण्डितो मण्डलेश्वरैः॥ १३७

जो मनुष्य पुरश्चरणकी विधिसे पद्धति, पटल, स्तोत्र, कवचसहित इस सहस्रनामका दस हजार बार पाठ करता है तथा होम, तर्पण, गोदान एवं ब्राह्मणका पूजनरूप कर्म विधिवत् करता है, वह समस्त भूमण्डलका स्वामी चक्रवर्ती राजा होता है। वह अनेक सामन्त राजाओंसे घिरा रहता है॥ १३६-१३७॥

मत्तेभकर्णप्रहिता मदगन्धेन विह्वला।
अलङ्करोति तद्द्वारं भ्रमद्भृङ्गावली भृशम्॥ १३८

निष्कारणः पठेद्यस्तु प्रीत्यर्थं रेवतीपतेः।
नाम्नां सहस्रं राजेन्द्र स जीवन्मुक्त उच्यते॥ १३९

सदा वसेत्तस्य गृहे बलभद्रोऽच्युताग्रजः।
महापातक्यपि जनः पठेन्नामसहस्रकम्॥ १४०

छित्त्वा मेरुसमं पापं भुक्त्वा सर्वसुखं त्विह।
परात्परं महाराज गोलोकं धाम याति हि॥ १४१

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाच्युताग्रजस्य बलदेवस्य पञ्चाङ्गं धृतिमान् धार्तराष्ट्रः सपर्यया सहितया परया भक्त्या प्राड्विपाकं पूजयामास तमनुज्ञाप्याशिषं दत्वा प्राड्विपाको मुनीन्द्रो गजाह्वयात्स्वाश्रमं जगाम॥ १४२॥

भगवतोऽनन्तस्य बलभद्रस्य परब्रह्मणः कथां यः शृणुते श्रावयते तथानन्दमयो भवति॥ १४३॥

इदं मया ते कथितं नृपेन्द्र
सर्वार्थदं श्रीबलभद्रखण्डम्।
शृणोति यो धाम हरेः स याति
विशोकमानन्दमखण्डरूपम् ॥ १४४

मदकी गन्धसे विह्वल भ्रमर मतवाले हाथियोंके कानोंकी चपेटसे आहत हो उड़ते हुए उसके द्वारपर जाकर उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। राजेन्द्र! यदि कोई मनुष्य निष्कामभावसे रेवतीरमण भगवान् बलभद्रजीकी प्रसन्नताके लिये इस सहस्रनामका पाठ करता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है॥ १३८-१३९॥

अच्युताग्रज बलभद्रजी सदा-सर्वदा उसके घरमें निवास करते हैं। हे महाराज! घोर पापी मनुष्य भी यदि इस सहस्रनामका पाठ करता है तो उसके मेरुके समान सारे पाप कट जाते हैं और वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग करके अन्तमें परात्पर गोलोकधामको प्रयाण कर जाता है॥ १४०-१४१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—अच्युताग्रज श्रीबलभद्रजीके इस पञ्चाङ्गको सुनकर धृतिमान् दुर्योधनने सेवा-भाव तथा परम भक्तिके साथ प्राड्विपाकमुनिकी पूजा की। तदनन्तर मुनीन्द्र प्राड्विपाकजीने दुर्योधनको आशीर्वाद देकर उनकी अनुमति प्राप्तकर हस्तिनापुरसे अपने आश्रमको गमन किया॥ १४२॥

परमब्रह्म परमात्मा भगवान् अनन्त श्रीबलभद्रजीकी कथाको जो पुरुष सुनता अथवा सुनाता है, वह आनन्दमय बन जाता है। नृपेन्द्र! मैं आपके सामने इन सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले बलभद्रखण्डका वर्णन कर चुका। जो मनुष्य इसका श्रवण करता है, वह भगवान् श्रीहरिके शोकरहित अखण्ड आनन्दमय धामको प्राप्त हो जाता है॥ १४३-१४४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे बलभद्रसहस्रनामवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत प्राड्विपाक-दुर्योधन-संवादमें 'श्रीबलभद्रसहस्रनामवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

॥ बलभद्रखण्ड सम्पूर्ण ॥

श्रीगर्ग-संहिता

[नवम खण्ड]

विज्ञानखण्ड

परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण

सत्त्वगुणी, रजोगुणी एवं तमोगुणीकी गति [विज्ञानख० अ० २]

त्रिविध पूजन [विज्ञानख० अ० २]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

विज्ञानखण्ड

पहला अध्याय

द्वारकामें वेदव्यासजीका आगमन और उग्रसेनद्वारा उनका स्वागत-पूजन

बहुलाश्व उवाच

हरेः श्रीकृष्णचन्द्रस्य भक्तिमार्गस्तु यः परः।
तं वदाशु मुने मह्यं येन भक्तो भवाम्यहम्॥ १

श्रीनारद उवाच

भक्तिमार्गं वदिष्यामि वेदव्यासमुखाच्छ्रुतम्।
येन प्रसन्नो भवति भगवान् भक्तवत्सलः॥ २

शक्रं विजित्य कृष्णेन भुजदण्डबलोद्धतम्।
द्वारावत्यां सभा दिव्या सुधर्मा नाम मैथिल॥ ३

यत्र मण्डपदेशस्य वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तयः।
राजन्ते कोटिशो राजन् विश्वकर्मविनिर्मिताः॥ ४

पद्मरागखचिद्भूमौ श्रेण्यो वै विद्रुमाचिताः।
यत्र चित्रवितानानि भ्राजन्ते मौक्तिकालिभिः॥ ५

सिंहासनानि कुड्यानि कालमेघतडिद्द्युभिः।
जाम्बूनदसुवर्णानां प्रस्फुरत्कुम्भकोटिभिः॥ ६

बालार्करत्नकेयूरकाञ्चीकङ्कणनूपुरैः।
शतचन्द्रप्रतीकाशाः स्फुरत्कुण्डलमण्डिताः॥ ७

गायन्ति यत्र गन्धर्व्यो विद्याधर्यो मुदान्विताः।
नृत्यन्त्यः कलवादित्रैः स्पर्धावत्यः परस्परम्॥ ८

राजा बहुलाश्वने कहा—मुने! श्रीहरि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उस भक्तिमार्गका, जो सर्वश्रेष्ठ है तथा जिसके प्रभावसे मैं भी भक्त बन जाऊँ, वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीनारदजी बोले—राजन्! वेदव्यासजीके मुखसे सुने हुए भक्तिमार्गका मैं वर्णन करता हूँ। यह वह मार्ग है, जिसपर चलनेसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं॥ २॥

मैथिल! अपने भुजदण्डोंके बलसे उद्धत इन्द्रपर विजय प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें सुधर्मा नामकी दिव्य सभाकी प्रतिष्ठा की थी। राजन्! विश्वकर्माके द्वारा रचे गये वैदूर्यमणिके खंभोंकी करोड़ों पंक्तियाँ उसके मण्डपकी शोभा बढ़ाती थीं॥ ३-४॥

वहाँकी भूमि पद्मराग-मणिसे जड़ी गयी थी। उसपर मूँगेकी दीवालोंसे कई विभाग बने थे, जिनपर रंग-बिरंगे चँदोवे शोभा दे रहे थे और मोतियोंकी झालरें लटकायी हुई थीं। उसकी दीवालें सिंहासनके आकारकी थीं। उनपर काले मेघमें कौंधनेवाली बिजलीका-सा प्रकाश फैलानेवाले जाम्बूनद सुवर्णके करोड़ों चमचमाते हुए कलश सुशोभित थे॥ ५-६॥

वहाँ प्रातःकालीन सूर्यकी भाँति चमकनेवाले रत्नमय केयूर, करधनी, कङ्कण और नूपुरोंसे सैकड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाको छिटकानेवाली तथा चमचमाते हुए कुण्डलोंसे विभूषित गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ हर्षमें भरकर गान किया करती थीं और सुमधुर वाद्योंके साथ विद्याधरियाँ परस्पर लाग-डाट रखती हुई नृत्य करती थीं॥ ७-८॥

यस्याश्चतुर्षु कोणेषु देववृक्षैर्मनोरमैः।
नन्दनं सर्वतोभद्रं ध्रौव्यं चैत्ररथं वनम्॥ ९

लक्षाणि यत्र राजेन्द्र सरांसि विमलानि च।
सहस्रदलपद्मानि भ्रमरैः सङ्कुलानि च॥ १०

उसके चारों कोनोंमें मनोहर देववृक्षोंसहित नन्दन, सर्वतोभद्र, ध्रौव्य एवं चैत्ररथ नामक वन सुशोभित थे। महाराज! उस सभाप्रदेशके अन्तर्गत स्वच्छ जलवाले लाखों सरोवर तथा भ्रमरोंसे भरपूर बहुत-से हजार दलवाले कमल दिखायी पड़ते थे॥ ९-१०॥

दशयोजनविस्तीर्णा पञ्चयोजनमूर्ध्वगा।
एतादृशी सुधर्मास्ते पताकाध्वजमण्डिता॥ ११

यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं मन्यते परम्।
यत्सिंहासनमासाद्य शक्रोऽहमिति मन्यते॥ १२

इस प्रकारकी वह सुधर्मा सभा ध्वजा एवं पताकाओंसे अलंकृत तथा दस योजनके विस्तारवाली थी। पाँच योजनकी उसकी ऊँचाई थी। उसमें गया हुआ पुरुष अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझता है। जिसे वहाँका सिंहासन उपलब्ध हो जाता, वह तो 'मैं इन्द्र हूँ'—यों कल्पना करने लगता है॥ ११-१२॥

यद्यत्त्रैलोक्यचातुर्यं तस्य देहे प्रवर्तते।
यावत्तिष्ठेत्तत्र तावदूर्मिषट्कं न चैव हि॥ १३

यावन्तश्च जनास्तत्र प्रविशन्ति नरोत्तम।
स्वप्रभावेण सहसा तावती सा प्रकाशते॥ १४

त्रिलोकीमें जितने चातुर्य गुण हैं, वे सभी उस पुरुषके शरीरमें आकर रहने लगते हैं। वहाँ जितनी देर मनुष्य ठहरता है, उतनी देरतक शोक-मोह, जरा-मृत्यु तथा भूख-प्यास—ये छः प्रकारकी ऊर्मियाँ (विकार) उसके पास नहीं फटकतीं। महाराज! जितने मनुष्य वहाँ प्रवेश करते हैं, उतनी ही बड़ी वह सभा अपने प्रभावसे दिखायी देने लगती है॥ १३-१४॥

षट्पञ्चाशत्कोटिसंख्या यादवा यत्र सानुगाः।
तच्चत्वरस्यैकदेशे दृश्यन्ते ते च मैथिल॥ १५

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
यत्रास्ते तस्य राजेन्द्र वर्णनं कः करोति हि॥ १६

मैथिल! यादवोंकी संख्या छप्पन करोड़ थी। अनुचरोंसहित वे सभी उक्त सभा-भवनके आँगनके एक चौथाई भागमें ही समाये हुए दीख पड़ते थे। महाराज! जहाँ साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान रहते थे, उस सभाका वर्णन कौन कर सकता है?॥ १५-१६॥

अथ तस्यां सुधर्मायां यदुकोटिसमावृतः।
उग्रसेनो गीयमानः सूतमागधबन्दिभिः॥ १७

आकाशादागतः साक्षाद्वेदव्यासो महामुनिः।
पाराशर्यो घनश्यामस्तडित्पिङ्गजटाधरः॥ १८

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय यदुराजः कृताञ्जलिः।
नत्वासनं सोपचारं दत्वा तत्सम्मुखोऽभवत्॥ १९

उस सभामें एक दिन महाराज उग्रसेन विराजमान थे। करोड़ों यादव उन्हें घेरे हुए थे। सूत, मागध और बन्दियोंद्वारा महाराजका यशोगान हो रहा था। साक्षात् पराशरकुमार मुनिवर वेदव्यासजी आकाशमार्गसे वहाँ पधारे। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्यामल थी और वे बिजलीके समान पीली जटा धारण किये हुए थे। उन्हें देखकर यदुराज तुरंत उठ खड़े हुए और उन्होंने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया। फिर उन्हें आसनपर बिठाकर तथा पूजाके उपचार समर्पितकर वे मुनिके सामने खड़े हो गये॥ १७—१९॥

उग्रसेन उवाच

अद्य मे सफलं जन्म सफलं गेहमद्य मे।
अद्य मे सफलो धर्मो ब्रह्मंस्त्वय्यागते सति॥ २०

सदानन्देषु कुशलं कृष्णेनेष्टं भवत्सु हि।
वद मे कुशलं देव येन स्वस्थो भवाम्यहम्॥ २१

यत्र यत्र व्रजन्तस्ते त्वादृशाः साधवः प्रभो।
तत्र तत्र भवेत्सिद्धिर्लौकिकी पारलौकिकी॥ २२

यत्र क्षणं स्थिताः सन्तस्तत्र साक्षात्स्वयं हरिः।
किमु लोकगुणा ब्रह्मन् पाराशर्य महामुने॥ २३

मया तु पुण्यं यज्ञो वा किं कृतं पूर्वजन्मनि।
येन वै द्वारकाराज्यं प्राप्तोऽहं मुनिपुङ्गव॥ २४

भवादृशा विप्रमुख्या गृहमायान्ति नित्यशः।
तस्मात्परं हि सुकृतं जाने स्वस्य न संशयः॥ २५

व्यास उवाच

धन्योऽसि राजशार्दूल धन्या ते विमला मतिः।
परं कृतं त्वया राजा सुकृतं पूर्वजन्मनि॥ २६

पुरा त्वं मरुतो राजन् कृत्वा यज्ञं जगज्जितम्।
निष्कारणोऽभूर्मनसा प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा॥ २७

अनिमित्तेन भावेन प्राप्तं चेदं परं तव।
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् हरिः॥ २८

असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः।
सोऽयं भक्त्या वशीभूतः स्ववशस्तव मन्दिरे॥ २९

अहो भोजपते मुक्तिं ददाति भजतां हरिः।
न कर्हिचिद्भक्तियोगं दुर्लभं विद्धि तं नृप॥ ३०

राजा उग्रसेन बोले—ब्रह्मन्! आज आपके यहाँ पधारनेपर मेरा जन्म, महल तथा धर्माचरण—सब कुछ सफल हो गया। भगवन्! आप-जैसे सदा आनन्दस्वरूप महानुभावोंकी कुशल तो स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रको अभीष्ट है। फिर भी अपनी कुशल कहिये, जिससे मैं निश्चिन्त हो जाऊँ॥ २०-२१॥

प्रभो! आपके समान साधुपुरुष जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ लौकिकी और पारलौकिकी दोनों प्रकारकी सिद्धियाँ रहती ही हैं। मुनिवर व्यासजी! जहाँ संत पुरुष एक क्षण भी निवास करते हैं, वहाँ स्वयं श्रीहरि रहते हैं; ब्रह्मन्! फिर लौकिक गुणोंकी तो बात ही क्या है!॥ २२-२३॥

मुनिवर! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्य अथवा यज्ञ किया था, जिसके फलस्वरूप मुझे द्वारकाका राज्य प्राप्त हो गया। यही नहीं, आपके समान बड़े-बड़े ब्राह्मण देवता मेरे महलोंमें प्रतिदिन पधारते रहते हैं। इससे मैं अनुमान करता हूँ कि मैंने निस्संदेह सबसे बड़ा पुण्य किया है॥ २४-२५॥

व्यासजीने कहा—महाराज! तुम धन्य हो तथा तुम्हारी निर्मल बुद्धिको भी धन्यवाद है। राजन्! पूर्वजन्ममें तुमने सबसे बड़ा पुण्य किया था। राजन्! तुम्हारा नाम मरुत्त था। मनमें किसी भी प्रकारकी कामना न रखकर तुमने विश्वजित् नामका यज्ञ किया था। उससे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हुए॥ २६-२७॥

तुम्हारे निष्कामभावसे तुम्हें यह परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरि ही हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड उनके अधीन हैं और वे परात्पर प्रभु गोलोकके स्वामी हैं। वे परम स्वतन्त्र होनेपर भी भक्तिके वशीभूत हो तुम्हारे महलोंमें विराजते हैं। यदुराज! यही बड़ी विचित्र बात है कि भजन करनेवालोंको भगवान् मुक्ति दे देते हैं, किंतु भक्तिका साधन कभी नहीं देते। राजन्! इसीलिये भक्तियोगको बहुत दुर्लभ समझो॥ २८—३०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे व्यासागमनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्वारकामें श्रीवेदव्यासका आगमन' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

व्यासजीके द्वारा गतियोंका निरूपण

उग्रसेन उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव वर्णननिर्वृतः।
हृदुद्भूतं च सन्देहं दूरीकर्तुं भवान् क्षमः॥ १

कर्मणां सनिमित्तानां का गतिः किं च लक्षणम्।
कति भेदा हि तेषां वै वद ब्रह्मन् यथा तथा॥ २

व्यास उवाच

गुणैः सर्वाणि कर्माणि सनिमित्तानि सन्ति हि।
तान्येव चानिमित्तानि राजन् त्यक्तफलानि हि॥ ३

सनिमित्तं च यत्कर्म बन्धनं विद्धि यादव।
अनिमित्तं च यत्कर्म मोक्षदं परमं शुभम्॥ ४

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
तैर्व्याप्तं हि जगत्सर्वं सर्वार्थमिव विष्णुना॥ ५

सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलयाः।
तमोलयास्तु नरकं यान्ति कृष्णं हि निर्गुणाः॥ ६

पञ्चाग्नितप्ता अतपन् ये राजन् वनवासिनः।
लोकं सप्त ऋषीणां तु ते यान्ति गतकल्मषाः॥ ७

संन्यासाश्रमकर्तारस्त्रिदण्डधृतपाणयः।
जितेन्द्रियमनोधर्माः सत्यलोकं व्रजन्ति हि॥ ८

अष्टाङ्गयोगयोगीन्द्रा निर्मला ऊर्ध्वरेतसः।
जनलोकं महर्लोकं यान्ति ते नात्र संशयः॥ ९

राजा उग्रसेन बोले—आपके द्वारा किये गये वर्णनको सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया तथा आनन्दसे भर गया हूँ। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की। मेरे मनमें उठे हुए संदेहको दूर करनेमें आप ही समर्थ हैं। ब्रह्मन्! सकाम कर्मोंकी क्या गति होती है, उनका क्या लक्षण है और उनके कितने भेद हैं? इसे तत्त्वतः कहनेकी कृपा कीजिये॥ १-२॥

व्यासजीने कहा—राजन्! गुणोंके साथ सम्बन्धसे सभी कर्म सकाम हो जाते हैं, वे ही फलका त्याग कर देनेपर निष्काम हो जाते हैं। यदुराज! जो सकाम कर्म है, उसे बन्धन समझो। जो निष्काम कर्म होता है, वह मोक्ष देनेवाला है। अतएव वह परम मङ्गलमय होता है॥ ३-४॥

सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंकी उत्पत्ति प्रकृतिसे होती है। जैसे भगवान् विष्णुसे सारे पदार्थ व्याप्त हैं, उसी प्रकार गुणोंसे सम्पूर्ण विश्व ओतप्रोत है। सत्त्वगुणकी स्थितिमें जिनके प्राण निकलते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाते हैं, रजोगुणमें प्रयाण करनेवाले नरलोकके अधिकारी होते हैं तथा तमोगुणकी अधिकतामें मरनेवालेको नरककी यातना भोगनी पड़ती है। जो गुणोंके सम्बन्धसे रहित होते हैं, वे श्रीकृष्णको प्राप्त होते हैं॥ ५-६॥

राजन्! जिन्होंने वनवासी होकर पञ्चाग्नियोंका सेवनरूप तप किया है, वे निष्पाप होकर सप्तर्षियोंके लोकमें चले जाते हैं। जो संन्यास-आश्रमके नियमोंका पालन करनेवाले त्रिदण्डधारी हैं तथा जिन्होंने इन्द्रिय एवं मनके स्वभावपर विजय पा ली है, वे सत्यलोकके यात्री होते हैं॥ ७-८॥

जो निर्मल चित्तवाले ऊर्ध्वरेता योगिराज अष्टाङ्गयोगका सेवन करते हैं, वे उसके प्रभावसे जनलोक अथवा महर्लोकमें जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥ ९॥

यज्ञकर्ता शक्रलोके वसते शाश्वतीः समाः।
दानी चान्द्रमसं लोकं व्रती सौरं व्रजत्यलम्॥ १०

तीर्थयायी चाग्निलोकं सत्यसन्धश्च वारुणम्।
वैष्णवाश्चापि वैकुण्ठं शैवाः शैवं व्रजन्ति हि॥ ११

पितॄन् यजन्ति ये नित्यं सुखैश्वर्यप्रजेप्सवः।
दक्षिणेन पथार्यम्णा पितृलोकं व्रजन्ति ते॥ १२

स्वर्लोकं वै तथा स्मार्ताः पञ्चपूजनसंयुताः।
प्रजापतियजो यान्ति दक्षादींश्च प्रजापतीन्॥ १३

भूतानि यान्ति भूतेज्या यक्षान् यक्षयजस्तथा।
ये यस्य भक्तास्तल्लोकान् यान्ति राजन्न संशयः॥ १४

तथा पापरता राजन् दुःसङ्गवशवर्तिनः।
यमलोकं च ते यान्ति निरयैर्दारुणैर्वृतम्॥ १५

पुनरावर्तिनो लोकाः सर्वे चाब्रह्मलोकतः।
पुनरावर्तिनो लोकान् विद्धि राजन् महामते॥ १६

कर्मणां सनिमित्तानां मार्ग एष गतागतः।
तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते॥ १७

क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कालचालितः।
यादवेन्द्र महाबाहो तस्मात्कर्मफलं त्यजेत्॥ १८

भक्तो निष्कारणो भूत्वा ज्ञानवैराग्यसंयुतः।
प्रेमलक्षणया वाचा हरिभक्तजनप्रियः॥ १९

भजेच्छ्रीकृष्णपादाब्जमभयं हंससेवितम्।
यो मृत्युः सर्वलोकानां बलात्संहारकारकः॥ २०

स यत्र भगवद्धाम्नि गतः सन्मृत्युमाप्नुयात्॥ २१

यज्ञका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष बहुत वर्षोंतक इन्द्रलोकमें वास पाता है। दानशील व्यक्ति चन्द्रलोकको और व्रतशील पुरुष सूर्यलोकको जाता है। तीर्थोंकी यात्रा करनेवाले अग्निलोकको, सत्यप्रतिज्ञ वरुणलोकको, विष्णुके उपासक वैकुण्ठलोकको तथा शिवकी आराधना करनेवाले शिवलोकको प्रयाण करते हैं॥ १०-११॥

जो सुख, ऐश्वर्य और संतानकी कामनासे नित्य पितरोंका पूजन करते हैं, वे दक्षिण-मार्गसे अर्यमाके साथ पितृलोकको चले जाते हैं। इसी प्रकार पाँच देवोंकी उपासना करनेवाले स्मार्तलोग स्वर्गलोकके अधिकारी होते हैं, प्रजापतियोंके उपासक दक्ष आदि प्रजापतियोंके लोकको जाते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतलोकको और यक्षोंको पूजनेवाले यक्षलोकमें प्रयाण करते हैं। राजन्! जो जिसके भक्त होते हैं, वे उसीके लोकमें जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥ १२—१४॥

राजन्! वैसे ही बुरे सङ्गके वशीभूत होकर पापमें रचे-पचे रहनेवाले लोग यमलोकमें जाते हैं, जो दारुण नरकोंसे घिरा हुआ है। महामते! ब्रह्मलोकपर्यन्त जितने भी लोक हैं, उनमें जानेपर पुनरागमन होता है। राजन्! इससे तुम समझ लो कि सम्पूर्ण लोक पुनरावर्ती हैं॥ १५-१६॥

सकामकर्मियोंकी यही गमनागमनरूप गति होती है। जबतक जीवके पुण्य समाप्त नहीं होते, तबतक वह स्वर्गलोकमें विहार करता है। पुण्यके शेष हो जानेपर उसे न चाहनेपर भी कालकी प्रेरणासे नीचे गिरना पड़ता है। अतः हे महाबाहु यादवेन्द्र! कर्ममें फलका त्याग कर देना चाहिये॥ १७-१८॥

मनुष्यको चाहिये कि वह ज्ञान और वैराग्यसे युक्त होकर निष्काम भक्त हो जाय। फिर प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीहरिके भक्तजनोंका प्रीतिपात्र बनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंकी, जो अभय प्रदान करनेवाले हैं और जो परमहंसोंद्वारा सेवित हैं, उपासना करनी चाहिये। जो हठपूर्वक समस्त लोकोंका संहार करनेवाली है, वह मृत्यु भी उस भगवद्धाममें पहुँच जानेपर शान्त हो जाती है॥ १९—२१॥

उग्रसेन उवाच

सर्वे लोका हि भगवन् पुनरावर्तिनः स्मृताः।
तेभ्यो जातं च वैराग्यं मनसो मे न संशयः॥ २२

श्रीकृष्णधाम परमं यतो नावर्तते गतः।
तल्लोकं वद मे ब्रह्मन् क्व चास्ते सर्वतः परम्॥ २३

राजा उग्रसेन बोले—भगवन्! समस्त लोकोंको पुनरावर्ती कहा गया है। इस बातसे उन सभी लोकोंके प्रति मेरे अन्तःकरणमें निस्संदेह विराग उत्पन्न हो गया है। ब्रह्मन्! जहाँ जाकर प्राणी वापस नहीं लौटता और जो सबसे परे है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वह परम धाम कहाँपर है—यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ २२-२३॥

श्रीव्यास उवाच

ब्रह्माण्डेभ्यो बहिर्धाम श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
यद्गता न निवर्तन्ते तद्गोलोकं विदुः परम्॥ २४

ब्रह्माण्डोऽयं जीवसङ्घैः पञ्चाशत्कोटियोजनैः।
विस्तृतः परतो द्वाभ्यां शतकोटिविलङ्घितः॥ २५

यदन्तरगतो राजन् लक्ष्यते परमाणुवत्।
तदन्तरगताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः॥ २६

श्रीव्यासजीने कहा—जहाँ गये हुए प्राणी वहाँसे लौटते नहीं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वह धाम ब्रह्माण्डोंके बाहर है। विज्ञजन उसे ही उत्तम 'गोलोकधाम' कहते हैं। जीव-समूहसे भरा हुआ पचास करोड़ योजनमें विस्तृत यह ब्रह्माण्ड है। इसके आगे इससे दुगुनी अर्थात् सौ करोड़ योजनके विस्तारवाली ब्रह्मद्रव नामकी जलराशि है, जिसमें यह ब्रह्माण्ड परमाणुके समान दिखायी पड़ता है। उसमें इसके अतिरिक्त करोड़ों ब्रह्माण्ड और हैं॥ २४—२६॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
कामक्रोधश्च लोभश्च न मोहो यत्र याति च॥ २७

न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिरेव च।
न प्रधानं न कालश्च विशन्ते च गुणाः कुतः॥ २८

उसके उस पार वह गोलोक है, जहाँ न सूर्यका प्रकाश है, न चन्द्रमाका और न अग्निका ही। काम, क्रोध, लोभ और मोहकी वहाँ गति नहीं है। वहाँ न शोक है, न बुढ़ापा है, न मृत्यु है और न पीड़ा है। वहाँ प्रकृति और काल भी नहीं हैं, फिर गुणोंका तो प्रवेश वहाँ हो ही कैसे सकता है?॥ २७-२८॥

शब्दब्रह्माप्यनिर्वाच्यं तद्वर्णयितुमक्षमः।
श्रीकृष्णतेजःसम्भूतास्तत्र सन्ति च पार्षदाः॥ २९

अकिञ्चनाश्च ये दान्ताः शान्ता वै समचेतसः।
श्रीकृष्णचन्द्रपादाब्जमकरन्दरसालयाः ॥ ३०

प्रेमलक्षणया भक्त्या सदा निष्कारणाः पराः।
लोकानुल्लङ्घ्य तद्धाम यान्ति राजन्न संशयः॥ ३१

जो स्वयं अनिर्वाच्य है, वह शब्दब्रह्म (वेद) भी उस लोकका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। भगवान् श्रीकृष्णके तेजसे प्रकट हुए अनेक पार्षद वहाँ रहते हैं। राजन्! जो इन्द्रियों तथा मनपर विजय पाये हुए अकिंचन भक्त हैं, अर्थात् सांसारिक प्राणिपदार्थोंमें जिनका कहीं कुछ भी ममत्व नहीं रह गया है, जो सबमें समान भाव रखनेवाले हैं, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके मकरन्द-रसमें सदा निमग्न रहते हैं तथा जो प्रेमलक्षणा भक्तिसे युक्त एवं सर्वदाके लिये कामनासे सर्वथा रहित हो गये हैं, वे ही समस्त लोकोंको लाँघकर उस उत्तम भगवद्धाममें जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है॥ २९—३१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे व्यासेन लोकगतिनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'व्यासजीके द्वारा लोकगतियोंका निरूपण' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

सकाम एवं निष्काम भक्तियोगका वर्णन

उग्रसेन उवाच

श्रुता तव मुखाद् ब्रह्मन् गुणकर्मगतिर्मया।
पुनरावर्तिनो लोकास्तथा सन्ति विनिश्चिताः॥ १

निष्कारणाद्धरेः साक्षात्सेवनाद्धाम उत्तमम्।
लभते दुर्लभं दिव्यं भक्तानां तच्छ्रुतं मया॥ २

भक्तियोगः कतिविधो वद मे वदतां वर।
येन प्रसन्नो भवति भगवान् भक्तवत्सलः॥ ३

श्रीव्यास उवाच

द्वारावतीश धन्योऽसि श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः।
पृच्छसे भक्तियोगं त्वं धन्या ते विमला मतिः॥ ४

यं श्रुत्वा निर्मलो भूयाद्विश्वघात्यपि पातकी।
तं भक्तियोगं विशदं तुभ्यं वक्ष्यामि यादव॥ ५

भक्तियोगो द्विधा राजन् सगुणश्चैव निर्गुणः।
सगुणः स्याद्बहुविधो निर्गुणश्चैकलक्षणः॥ ६

सगुणः स्याद्बहुविधो गुणमार्गेण देहिनाम्।
तैर्गुणैस्त्रिविधा भक्ता भवन्ति शृणु तान् पृथक्॥ ७

हिंसां दम्भं च मात्सर्यं चाभिसन्धाय भिन्नदृक्।
कुर्याद्भावं हरौ क्रोधी तामसः परिकीर्तितः॥ ८

यश ऐश्वर्यविषयानभिसन्धाय यत्नतः।
अर्चयेद्यो हरिं राजन् राजसः परिकीर्तितः॥ ९

उद्दिश्य कर्मनिर्हारमपृथग्भाव एव हि।
मोक्षार्थं भजते विष्णुं स भक्तः सात्त्विकः स्मृतः॥ १०

जिज्ञासुरार्तो ज्ञानी च तथार्थार्थी महामते।
चतुर्विधा जना विष्णुं भजन्ते कृतमङ्गलाः॥ ११

राजा उग्रसेनने कहा—ब्रह्मन्! गुण और कर्मकी गति आपके श्रीमुखसे मैं सुन चुका। सभी लोक आवागमनसे युक्त हैं, यह भी भलीभाँति निश्चित हो गया। निष्कामभावसे साक्षात् श्रीहरिका सेवन करनेपर भक्तोंको वह उत्तम धाम, जो दिव्य एवं दूसरोंके लिये दुर्लभ है, मिलता है—यह भी सुन लिया। आप वर्णन करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अब मुझे यह बताइये कि भक्तियोग, जिसके प्रभावसे भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, कितने प्रकारका है?॥ १—३॥

श्रीव्यासजी बोले—द्वारकानरेश! तुम धन्य हो। तुम श्रीहरिके प्रेमी हो तथा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे इष्टदेव हैं। तुमने भक्तियोगके सम्बन्धमें प्रश्न किया है, इससे तुम्हारी वह निर्मल बुद्धि भी धन्य है। यादव! जिसे सुनकर संसारका संहार करनेवाला घोर पापी भी शुद्ध हो जाता है, उस भक्तियोगका वर्णन विस्तारपूर्वक तुम्हें सुनाता हूँ। राजन्! सगुण और निर्गुण—भेदसे भक्तियोग दो प्रकारका है। सगुणके अनेक भेद हैं और निर्गुणका एक ही लक्षण है॥ ४—६॥

देहधारियोंके गुणानुसार सगुण भक्तिके विभिन्न प्रकार होते हैं। उन गुणोंसे युक्त तीन तरहके भक्त होते हैं। उनका वर्णन अलग-अलग सुनो। जो भेद-दृष्टि रखनेवाला क्रोधी पुरुष हिंसा, दम्भ और मात्सर्यका आश्रय लेकर श्रीहरिकी भक्ति करता है, उसे 'तामस भक्त' कहा गया है॥ ७-८॥

राजन्! जो यश, ऐश्वर्य तथा इन्द्रियोंके विषयोंको लक्ष्य करके यत्नपूर्वक श्रीहरिकी उपासना करता है, उसकी गणना 'राजसिक' भक्तोंमें है। जो कर्मक्षयका उद्देश्य लेकर अभेद-दृष्टिसे मोक्षके लिये भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, वह भक्त 'सात्त्विक' कहा जाता है॥ ९-१०॥

महामते! अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ये चार प्रकारके पुरुष भगवान् विष्णुका भजन करते हैं। इन्होंने स्वयं अपना कल्याण कर लिया है॥ ११॥

एवं बहुविधेनापि भक्तियोगेन माधवम्।
भजन्ति सनिमित्तास्ते जनाः सुकृतिनः परे॥ १२

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य तथा शृणु।
तद्गुणश्रुतिमात्रेण श्रीकृष्णे पुरुषोत्तमे॥ १३

परिपूर्णतमे साक्षात्सर्वकारणकारणे।
मनोगतिरविच्छिन्नाखण्डिताहैतुकी च या॥ १४

यथाब्धावम्भसा गङ्गा सा भक्तिर्निर्गुणा स्मृता।
निर्गुणानां च भक्तानां लक्षणं शृणु मानद॥ १५

सार्वभौमं पारमेष्ठ्यं शक्रधिष्ण्यं तथैव च।
रसाधिपत्यं योगर्धिं न वाञ्छन्ति हरेर्जनाः॥ १६

हरिणा दीयमानं वा सालोक्यं यादवेश्वर।
न गृह्णन्ति कदाचित्ते तत्सङ्गानन्दनिर्वृताः॥ १७

सामीप्यं ते न वाञ्छन्ति भगवद्विरहातुराः।
सन्निकृष्टे न तत्प्रेम यथा दूरतरे भवेत्॥ १८

सारूप्यं दीयमानं वा समानत्वाभिमानिनः।
नैरपेक्ष्यान्न वाञ्छन्ति भक्तास्तत्सेवनोत्सुकाः॥ १९

एकत्वं चापि कैवल्यं न वाञ्छन्ति कदाचन।
एवं चेत्तर्हि दासत्वं क्व स्वामित्वं परस्य च॥ २०

निरपेक्षाश्च ये शान्ता निर्वैराः समदर्शिनः।
आकैवल्याल्लोकपदग्रहणं कारणं विदुः॥ २१

यों भक्तियोगके अनेक प्रकार हैं। भक्तियोगके द्वारा जो श्रीहरिका पूजन करते हैं, वे सकामी भक्त भी बड़े सुकृती—पुण्यात्मा हैं॥ १२॥

इसी प्रकार अब निर्गुण भक्तियोगका लक्षण सुनो। जैसे गङ्गाजीका जल स्वाभाविक ही समुद्रकी ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार श्रवणमात्रसे साक्षात् परिपूर्णतम एवं सम्पूर्ण कारणोंके भी कारण भगवान् श्रीकृष्णके प्रति बिना ही कारण मनकी गति अविच्छिन्न एवं अखण्डितरूपसे प्रवाहित होने लगे, इसे 'निर्गुण-भक्ति' कहा गया है। मानद! अब निर्गुण भक्तोंके लक्षण सुनो॥ १३—१५॥

भगवान्‌के उन भक्तोंकी अखण्ड भूमण्डलके राज्य, ब्रह्माके पद, इन्द्रासन, पातालके स्वामित्व तथा योगकी सिद्धियोंमें भी स्पृहा नहीं रहती। यादवेश्वर! भगवदनुरागका आनन्द उनपर छाया रहता है, इसीलिये वे भगवान्‌के द्वारा दिये जानेपर भी सालोक्य मुक्तिको कभी स्वीकार नहीं करते॥ १६-१७॥

दूर रहनेपर जैसा प्रेम होता है, समीप आनेपर वैसा नहीं होता, यह सोचकर वे निष्काम भक्त भगवान्‌के विरहमें व्याकुल रहना पसंद करते हैं, अतः सामीप्य मुक्तिकी भी इच्छा नहीं करते। किन्हीं भक्तोंको भगवान् सारूप्य मुक्ति देते हैं, किंतु निरपेक्ष होनेके कारण भक्त उसे भी स्वीकार नहीं करते। समानत्वकी अभिमति होनेपर भी केवल भगवान्‌की सेवाके प्रति ही उनकी उत्कण्ठा बनी रहती है॥ १८-१९॥

ऐसे भक्त एकत्व (सायुज्य) अथवा ब्रह्मके साथ एकतारूप कैवल्यको भी कभी नहीं लेते। उनका अभिप्राय यह है कि यदि ऐसा हो जाय तो स्वामी और सेवकके धर्ममें अन्तर ही क्या रह जायगा? जो निरपेक्ष भक्त होते हैं, उनकी सबमें समान दृष्टि रहती है। उनका स्वभाव शान्त होता है और वे किसीसे वैर नहीं रखते। उनकी यह धारणा है कि कैवल्यसे लेकर सांसारिक समस्त पदोंका ग्रहण करना सकामभावके ही अन्तर्गत है॥ २०-२१॥

नैरपेक्ष्यं महानन्दं निरपेक्षा जना हरेः।
जानन्ति हि यथा नासा पुष्पामोदं न चक्षुषी॥ २२

सकामाश्च तदानन्दं जानन्ति हि कथञ्चन।
रसकर्ता तथा हस्तो रसास्वादं न वेत्ति हि॥ २३

जिस प्रकार फूलोंकी गन्धको नासिका ही जानती है, आँखको उसका ज्ञान नहीं होता, ठीक वैसे ही निरपेक्षतारूप महान् आनन्दको भगवान्‌के निष्काम भक्त ही जानते हैं। जैसे रसको बनानेवाला हाथ रसके स्वादसे सदा अनभिज्ञ ही रहता है, उसी प्रकार सकामी भक्त कभी भी उस आनन्दको नहीं जान सकते॥ २२-२३॥

तस्माद्राजन् भक्तियोगं विद्धि चात्यन्तिकं पदम्।
भक्तानां निरपेक्षाणां पद्धतिं कथयामि ते॥ २४

स्मरणं कीर्तनं विष्णोः श्रवणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ २५

कुर्वन्ति सततं राजन् भक्तिं ये प्रेमलक्षणाम्।
ते भक्ता दुर्लभा भूमौ भगवद्भावभावनाः॥ २६

अतएव राजन्! इस भक्तियोगको ही तुम परम श्रेष्ठ पद समझो। अब निष्काम भक्तोंकी उपासना-पद्धतिका तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ, उसका स्वरूप है—भगवान् विष्णुका स्मरण, उनके नाम-गुणोंका कीर्तन, श्रवण, चरणोंकी सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और अपनेको भगवान्‌के चरणोंमें निवेदित कर देना। राजन्! जो निरन्तर भगवान्‌की प्रेमलक्षणा भक्ति करते हैं, वे भगवद्भावकी भावना करनेवाले भक्त जगत्‌में दुर्लभ हैं॥ २४—२६॥

कुर्वन्तो महतां मानं दयां हीनेषु सर्वतः।
समानेषु तथा मैत्रीं सर्वभूतदयापराः॥ २७

कृष्णपादाब्जमधुपाः कृष्णदर्शनलालसाः।
कृष्णं स्मरन्ति प्राणेशं यथा प्रोषितभर्तृकाः॥ २८

जो बड़ोंके प्रति सम्मान, छोटोंके प्रति सब तरहसे दया तथा अपनी बराबरीवालोंके साथ मित्रताका बर्ताव करते हैं, सम्पूर्ण जीवोंपर जिनकी सदा दया रहती है, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके मधुकर हैं, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा बनी रहती है, जो अपने विदेशस्थ स्वामीको याद करनेवाली स्त्रीकी भाँति भगवान् श्रीकृष्णको याद करते रहते हैं॥ २७-२८॥

श्रीकृष्णस्मरणाद्येषां रोमहर्षः प्रजायते।
आनन्दाश्रुकलाश्चैव वैवर्ण्यं तु क्वचिद्भवेत्॥ २९

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे ब्रुवन्तः श्लक्ष्णया गिरा।
अहर्निशं हरौ लग्नास्ते हि भागवतोत्तमाः॥ ३०

भगवान् श्रीकृष्णके स्मरणसे जिनका रोम-रोम पुलकित हो उठता है, नेत्रोंसे आनन्दकी धारा बहने लगती है, भगवान्‌के विरहमें कभी-कभी जिनके शरीरका रंग बदल जाता है, जो मधुर वाणीसे 'श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे!' की रट लगाये रहते हैं तथा रात-दिन भगवान् श्रीहरिमें जिनकी लगन लगी रहती है, वे ही भागवतोत्तम—भगवान्‌के उत्तम भक्त हैं॥ २९-३०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे श्रीवेदव्यासोग्रसेनसंवादे निर्गुणभक्तियोगवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत श्रीवेदव्यास-उग्रसेन-संवादमें 'निर्गुण भक्तियोगका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

भक्त-संतकी महिमाका वर्णन

श्रीव्यास उवाच

खे वायौ सलिले वह्नौ मह्यां ज्योतिर्गणेषु च।
श्रीकृष्णदेवं पश्यन्तो हर्षिताश्च पुनः पुनः॥ १

श्रीकृष्णो राधिकानाथः कोटिकन्दर्पमोहनः।
तन्नेत्रगोचरो याति ब्रुवञ्छ्रीनन्दनन्दनः॥ २

सदानन्दं च ते दृष्ट्वा प्रहसन्ति प्रहर्षिताः।
क्वचिद्वदन्ति धावन्ति नन्दन्ति च क्वचित्तथा॥ ३

क्वचिद्गायन्ति नृत्यन्ति क्वचित्तूर्ष्णीं भवन्ति च।
कृष्णचन्द्रस्वरूपास्ते कृतार्था वैष्णवोत्तमाः॥ ४

तेषां दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम्।
न कालो न यमस्तेषां दण्डं दातुं न च क्षमः॥ ५

गदा कौमोदकी वामे दक्षिणे च सुदर्शनम्।
अग्रे शार्ङ्गधनुः पश्चात्पाञ्चजन्यो घनस्वनः॥ ६

नन्दकश्च महाखड्गः शतचन्द्रेषवः शिताः।
एतान्यायुधमुख्यानि तांश्च रक्षन्त्यहर्निशम्॥ ७

तथोपरि महापद्मं छायां कर्तुं पुनः पुनः।
गरुडः पक्षवातेन श्रमहर्ता सतामपि॥ ८

यत्र यत्र गताः सन्तस्तत्र तत्र स्वयं हरिः।
तीर्थीकुर्वन् भूमिभागं श्रीमत्पादाब्जरेणुभिः॥ ९

क्षणं यत्र स्थिताः सन्तस्तत्र तीर्थानि सन्ति हि।
तत्र कोऽपि मृतः पापी याति विष्णोः परं पदम्॥ १०

श्रीव्यासजी बोले—जो आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी तथा ग्रह-नक्षत्रों एवं तारागणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी झाँकी करते हुए बार-बार हर्षित होते हैं, करोड़ों कामदेवोंको मोहित करनेवाले—राधानायक सर्वात्मा नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र उन भक्तोंके सामने बोलते हुए दृष्टिगोचर होने लगते हैं॥ १-२॥

सदा आनन्दस्वरूप उन भगवान्‌का दर्शन प्राप्त करके वे अत्यन्त हर्षसे भर जाते हैं और ठहाका मारकर हँसने लगते हैं। वे कभी बोलते और कभी दौड़ लगाया करते हैं। कभी गाते, कभी नाचते और कभी चुप हो रहते हैं। भगवान् विष्णुके वे उत्तम भक्त कृतकृत्य हो गये रहते हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप ही होते हैं॥ ३-४॥

उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। काल अथवा यमराज—कोई भी उन्हें दण्ड देनेमें समर्थ नहीं होता। ऐसे भक्तोंके वामभागमें कौमोदकी गदा, दक्षिणमें सुदर्शन चक्र, आगे शार्ङ्ग धनुष, पीछे बादलकी भाँति गरजनेवाला पाञ्चजन्य शङ्ख, नन्दक नामकी महान् तलवार, शतचन्द्र नामक ढाल और अनेकों तीखे बाण—भगवान्‌के ये सभी प्रधान-प्रधान आयुध रात-दिन सजग होकर उनकी रक्षा किया करते हैं॥ ५—७॥

इसी प्रकार महान् कमल उनके ऊपर बारंबार छाया करनेके लिये प्रस्तुत रहता है। उन संतपुरुषोंके श्रमको गरुडजी पंखोंकी हवासे दूर करते रहते हैं। जहाँ-जहाँ उपर्युक्त इन महात्मा पुरुषोंका गमन होता है, वहाँ-वहाँ स्वयं श्रीहरि पधारते हैं और अपने शोभायुक्त चरण-कमलोंके परागसे उस भू-भागको तीर्थ बना देते हैं॥ ८-९॥

जहाँ संतजन एक क्षण भी ठहरते हैं, वहाँ तीर्थोंका निवास हो जाता है। यदि उस स्थानपर किसी पापीका भी देहावसान हो जाय तो उसे भगवान् विष्णुका परमपद प्राप्त हो जाता है॥ १०॥

दूरात्सम्प्रेक्ष्य कृष्णेष्टानाधयो व्याधयस्तथा।
भूतप्रेतपिशाचाश्च पलायन्ते दिशो दश॥ ११

नद्यो नदाः पर्वताश्च समुद्राश्च तथापरे।
मार्गं ददुश्च साधुभ्योऽनपेक्षेभ्यः समन्ततः॥ १२

साधूनां ज्ञाननिष्ठानां विरक्तानां महात्मनाम्।
अजातशत्रूणां तेषां दुर्लभं पुण्यवर्जितैः॥ १३

यस्मिन् कुले कृष्णभक्तो जायते ब्रह्मलक्षणम्।
तत्कुलं विमलं विद्धि मलीमसमपि स्वतः॥ १४

राजन् श्रीकृष्णभक्तस्तु पितॄन् दश कुलोद्भवान्।
प्रियापक्षेऽपि दश च मातृपक्षे तथा दश॥ १५

पुरुषानुद्धरेद्राजन्निरयात्पापबन्धनात्।
साधुसम्बन्धिनश्चान्ये भृत्या दासाः सुहृज्जनाः॥ १६

शत्रवो भारवाहाश्च तद्गृहे पक्षिणस्तथा।
पिपीलिकाश्च मशकास्तथा कीटपतङ्गकाः॥ १७

अब्रह्मण्येऽकृष्णसारे सौवीरे कीकटे तथा।
म्लेच्छदेशेऽपि देवेशभक्तो लोकान् पुनाति हि॥ १८

सांख्ययोगं विना राजंस्तीर्थधर्ममखैर्विना।
साधुसंसर्गिणस्तेऽपि प्रयान्ति हरिमन्दिरे॥ १९

इत्थं श्रीकृष्णभक्तानां माहात्म्यं कथितं मया।
चतुःपदार्थदं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ २०

उग्रसेन उवाच

परिपूर्णतमे साक्षाच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि।
दन्तवक्रस्य दुष्टस्य ज्योतिर्लीनं बभूव ह॥ २१

जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण इष्ट हैं, उनको दूरसे ही देखकर आधि-व्याधि, भूत, प्रेत और पिशाच दसों दिशाओंमें भाग खड़े होते हैं। अनपेक्ष साधु पुरुषोंको नदी, नद, पर्वत, समुद्र तथा दूसरे व्यवधान भी सब जगह मार्ग दे देते हैं॥ ११-१२॥

जो साधु हैं, ज्ञानमें निष्ठा रखनेवाले हैं, जिनका विषयोंसे विराग हो चुका है, जिनकी जगत्में किसीसे शत्रुता नहीं होती—ऐसे पुरुषोंका दर्शन पुण्यहीन मनुष्योंके लिये अत्यन्त कठिन है। भगवान् श्रीकृष्णका भक्त जिस कुलमें उत्पन्न होता है, वह कुल स्वयं मलिन ही क्यों न हो, उसे तुम ब्राह्मणवंशकी भाँति अत्यन्त निर्मल समझो॥ १३-१४॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्णका भक्त तो अपने पितृकुलके दस पुरुषोंको तार देता है। इतना ही नहीं, उसके मातृ-कुल तथा पत्नीकुलकी भी दस-दस पीढ़ियाँ नरकयातना एवं पापोंके बन्धनसे मुक्त हो जाती हैं। महात्मा पुरुषोंके सम्बन्धी, पोष्यवर्ग, नौकर, सुहृज्जन, शत्रु, भार ढोनेवाले, घरमें रहनेवाले पक्षी, चींटियाँ, मच्छर तथा कीट-पतङ्ग भी—सभी पावन बन जाते हैं॥ १५—१७॥

देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका भक्त ऐसे देशमें भी, जो ब्राह्मणके रहनेयोग्य नहीं है तथा जिसमें कृष्णसार मृग नहीं दिखायी देते अथवा सौवीर, कीकट (मगध) एवं म्लेच्छोंके देशमें रहनेपर भी लोगोंको पवित्र करनेवाला होता है॥ १८॥

राजन्! जो संत पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं, वे ज्ञानयोग, धर्म, तीर्थ एवं यज्ञसे वर्जित होते हुए भी भगवान् श्रीहरिके मन्दिर (धाम)-में चले जाते हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके भक्तोंकी महिमा मैंने कह सुनायी। इसके वर्णनसे ही मनुष्योंको चारों पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं। अब आगे क्या सुनना चाहते हो?॥ १९-२०॥

राजा उग्रसेनने पूछा—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा हैं। दुरात्मा दन्तवक्रकी ज्योति उनमें लीन हो गयी—ऐसी बात सुनी गयी है॥ २१॥

अहो महदिदं चित्रं सायुज्यं महतामपि।
योग्यं स्याद्विप्रमुख्येन्द्र कथं चान्येन शत्रुणा॥ २२

विप्रवर! यह महान् आश्चर्यकी बात है; क्योंकि महात्मा पुरुषोंको प्राप्त होने योग्य सायुज्य-पद अन्य किसी साधारण व्यक्तिको, और वह भी एक शत्रुको, कैसे सुलभ हो गया?॥ २२॥

श्रीव्यास उवाच

ममाहमिति वैषम्यं भूतानां त्रिगुणात्मनाम्।
क्रोधाद्यैर्वर्तते राजन्न हरौ परमात्मनि॥ २३

हरौ केनापि भावेन मनो लग्नं करोति यः।
याति तद्रूपतां सोऽपि भृङ्गिणः कीटको यथा॥ २४

श्रीव्यासजी बोले—राजन्! 'यह मेरा है और यह मैं हूँ'—यह विषमता त्रिगुणात्मक प्राणियोंमें रहती है; क्योंकि वे काम-क्रोधादिमें रचे-पचे रहते हैं। परम प्रभु श्रीहरिके अंदर ऐसी भावना नहीं होती। जो किसी भी भावसे भगवान्‌में अपना मन लगाता है, उसे श्रीहरिकी सरूपता उपलब्ध हो जाती है—ठीक उसी प्रकार, जैसे कीड़ा भृङ्गीके रूपमें परिणत हो जाता है॥ २३-२४॥

स्नेहं कामं भयं क्रोधमैक्यं सौहृदमेव च।
कृत्वा तन्मयतां यान्ति सांख्ययोगं विना जनाः॥ २५

स्नेहान्नन्दयशोदाद्या वसुदेवादयोऽपरे।
कामाद्गोप्यो हरिं प्राप्ता न तु ब्रह्मतया नृप॥ २६

सांख्ययोगके साधनके बिना भी मनुष्य स्नेह, काम, भय, क्रोध, एकता तथा सुहृदताका भाव रखकर भगवान्‌में तन्मयता प्राप्त कर लेते हैं। राजन्! नन्द-यशोदा आदिने तथा वसुदेव आदि दूसरे-दूसरे लोगोंने स्नेहसे और गोपियोंने कामभावसे भगवान्‌को प्राप्त किया, न कि ब्रह्मभावनासे॥ २५-२६॥

तद्रूपगुणमाधुर्यभावसंलग्नमानसाः।
भयात्कंसस्तव सुतस्तत्सायुज्यं जगाम ह॥ २७

क्रोधादयं दन्तवक्रः शिशुपालादयोऽपरे।
ऐक्याच्च यादवा यूयं सौहृदाच्च वयं तथा॥ २८

कारण यह है कि वे भगवान्‌के रूप, गुण एवं माधुर्यभावमें अपना मन भलीभाँति लगाये रहते थे। तुम्हारे पुत्र कंसको भयके कारण उनका सायुज्य प्राप्त हुआ। इस दन्तवक्रको और शिशुपाल आदि दूसरोंको क्रोधसे, तुम सभी यादवोंको एकता—सजातीयताके भावसे तथा हमलोगोंको सुहृदतासे भगवान् सुलभ हुए हैं॥ २७-२८॥

तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।
अहर्निशं हि स्मरणं भवेच्छत्रोर्न कर्हिचित्।
शत्रुभावं हरौ तस्मात्कुर्वन्ति दनुजादयः॥ २९

अतएव किसी भी उपायसे भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाना चाहिये। रात-दिन स्मरण करते रहना—यह शत्रुके लिये ही सम्भव है; और कहीं ऐसा नहीं होता। यही कारण है कि दैत्यगण भगवान् श्रीहरिमें शत्रुभाव किया करते हैं॥ २९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे श्रीव्यासोग्रसेनसंवादे भक्तमाहात्म्यं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत श्रीव्यास-उग्रसेन-संवादमें 'भक्तकी महिमाका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

भक्तिकी महिमाका वर्णन

श्रीव्यास उवाच

वत्साघधेनुकबकीबककेशिकाला-
रिष्टप्रलम्बकपिबल्वलशङ्खशाल्वाः।
वैरेण यं किमुत भक्तियुता नरेन्द्र
प्रापुः परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम्॥ १

पूर्वासुरावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ
स्वर्णाक्षहेमकशिपू च तथापरौ च।
वैरं विधाय नृप रावणकुम्भकर्णौ
विष्णोः किलापतुरलं परमं पदं हि॥ २

के के न विष्णुपदमागतवन्त आदौ
प्रह्लादबाणबलियक्षविभीषणाद्याः।
सत्सङ्गसङ्गनिरता बहुमानपात्र-
श्रीमत्पदाब्जमकरन्दरजोविलुब्धाः॥ ३

देवर्षिगीष्पतिवसिष्ठपराशराद्याः
सांख्यायनासितशुकाः सनकादयश्च।
निष्कारणा भुवि चरन्त्यरविन्दनेत्र
पादारविन्दमकरन्दमिलिन्दमुख्याः॥ ४

यत्युत्कलाङ्गभरतार्जुनमैथिलाश्च
गाधिप्रियव्रतयदुप्रमुखाम्बरीषाः।
निष्कारणाः परमहंसवराश्चरन्ति
श्रीकृष्णचन्द्रचरितामृतपानमत्ताः॥ ५

मन्दोदरी च शबरी च मतङ्गशिष्या
तारा तथात्रिवनिता निपुणा त्वहल्या।
कुन्ती तथा द्रुपदराजसुता सुभक्ता
एताः परं परमहंससमाः प्रसिद्धाः॥ ६

सुग्रीवबालिसुतवातसुतर्क्षराज-
नागारिगृध्रवरकाकभुशुण्डिमुख्याः।

श्रीव्यासजीने कहा—राजन्! वत्सासुर, अघासुर, धेनुकासुर, पूतना, बकासुर, केशी, काल-यवन, अरिष्टासुर, प्रलम्बासुर, द्विविद नामक बंदर, बल्वल, शङ्ख और शाल्व—इन सभीने जब प्रकृति और पुरुषसे परे प्रभुको वैरभावसे प्राप्त कर लिया, तब फिर भक्तिभाव रखनेवाले उन्हें प्राप्त कर लें, इसमें कहना ही क्या है। राजन्! पूर्वकालकी बात है—अत्यन्त बलशाली मधु और कैटभ नामके दानव, इसी प्रकार हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु तथा रावण और कुम्भकर्ण भी भगवान् विष्णुके साथ वैर ठानकर उनके परमपदको प्राप्त हो गये॥ १-२॥

फिर जो सदा सत्सङ्गसे प्रेम करते थे तथा अत्यन्त आदरणीय भगवान्‌के शोभायुक्त चरण-कमलोंके मकरन्द एवं परागमें जिनका मन लुभाया रहता था—ऐसे प्रह्लाद, बाणासुर, राजा बलि, शङ्खचूड़ एवं विभीषण आदि किस-किसने भगवान् विष्णुके धामको नहीं प्राप्त किया? देवर्षि नारद, बृहस्पति, वसिष्ठ, पराशर आदि तथा सांख्यायन, असित, शुकदेव एवं सनक प्रभृति निष्काम भक्त—जो कमल-लोचन भगवान्‌के चरण-कमलोंके मकरन्दके प्रधान भ्रमर कहे जाते हैं—भूमण्डलमें बिना ही स्वार्थके भ्रमण करते रहते हैं॥ ३-४॥

यति, उत्कल, अङ्ग, भरत, अर्जुन, जनकजी, गाधि, प्रियव्रत, यदु आदि एवं अम्बरीष तथा अन्य निष्काम भक्त एवं श्रेष्ठ परमहंस गण भगवान् श्रीकृष्णकी अमृतमयी कथाके पानसे मस्त हुए घूमते हैं। मन्दोदरी, मतङ्गमुनिकी शिष्या भक्तिमती शबरी, तारा, अत्रिमुनिकी प्रिया साध्वी अनसूया, अहल्या, कुन्ती और द्रुपदराज-कुमारी द्रौपदी—ये सभी प्रशंसनीय भक्त-महिलाएँ हो चुकी हैं। परमहंसोंके समान ही इनकी भी ख्याति है॥ ५-६॥

सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, जाम्बवान्, गरुड़, जटायु, काकभुशुण्डि आदि तिर्यक् योनियोंके संत,

कुब्जादिवायकसुदामगुहादयोऽन्ये
तत्सङ्गमेत्य हरिभक्तवरा बभूवुः॥ ७

कृष्णं न रोधयति धर्मस्तपो न योगः
सांख्यं न यज्ञ उत तीर्थयमव्रतानि।
छन्दांसि पूर्तनियमावथ दक्षिणा च
नेष्टं न दानमथ भक्तिमृते न कश्चित्॥ ८

यज्ञव्रताध्ययनतीर्थतपोनियोगै-
रिष्टस्वधर्मनियमादिकसांख्ययोगैः।
यत्प्राप्यते तदखिलं भवतीह भक्त्या
भक्तेः पदं हि कर्हिचिन्न भवेत्किलैभिः॥ ९

उद्धारिणी यमपुरस्य च विश्वपापा-
दुत्तारिणी भवमहार्णववारिवेगात्।
संहारिणी विषयसञ्चितकर्मणां च
सत्कारिणी हरिपदस्य परात्परस्य॥ १०

श्रीकृष्णदर्शनरसोत्सुकभावराज-
दुद्यद्वसन्तपरमोत्सवपञ्चमीयम्।
दिव्या लतातिफलपल्लवभारनम्रा
संराजते हि सततं कुसुमाकरस्य॥ ११

सम्मोहकालघनमध्यतडित्स्फुरन्ती
शास्त्रार्थदर्शवचसां पददीपिकेयम्।
दीपावलिर्विजयते जयकार्तिकस्य
जेतुं गुणान् विजयिनो दशमी जयस्य॥ १२

सांख्यं च योग इति पार्श्वगते हि दण्डे
कीलानि चात्र शतशो गुणभावभेदाः।
अस्याः क्रमान्नवकथाश्रवणादयश्च
श्रेणीयमस्ति सरला भगवत्पदस्य॥ १३

कुब्जा, वायक, सुदामा माली तथा गुह आदि भी भक्तोंका सङ्ग पाकर श्रीहरिके उत्तम भक्त बन गये॥ ७॥

धर्म, तप, योग, सांख्य, यज्ञ, तीर्थयात्रा, यम-नियम, चान्द्रायण आदि व्रत, वेदपाठ, दक्षिणा, पूजा अथवा दान—भक्तिके बिना ये कोई भी भगवान् श्रीकृष्णको वशमें नहीं कर सकते। यज्ञ, व्रत, स्वाध्याय, तप, तीर्थ, योग, पूजा, नियमादि और सांख्ययोग—इनसे जो फल मिलता है, वह सब-का-सब इस संसारमें भक्तिसे सुलभ है। इतना ही नहीं, भक्तिसे जिस पदकी उपलब्धि होती है, वह इन साधनोंसे कभी उपलब्ध नहीं हो सकता॥ ८-९॥

यह भक्ति जगत्‌भरके पापोंसे अधमोंका उद्धार करनेवाली, जगत्‌से तारनेवाली, संसाररूपी महासागरके भव-जल-प्रवाहसे उबारनेवाली, विषयसेवनके द्वारा संचित कर्मोंका नाश करनेवाली तथा परात्पर परम प्रभु भगवान्‌का पद प्रदान करनेवाली है। यह भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनरूपी रसके प्रति औत्सुक्यसे सुशोभित परम उत्सव मनानेके लिये वसन्तपञ्चमीके समान है। साथ ही यह प्रचुर फल एवं पल्लवोंके भारसे झुकी हुई वसन्तकालीन दिव्य लताके समान सदा शोभा पाती है॥ १०-११॥

मोहरूपी काले बादलके बीच चमकती हुई बिजलीकी भाँति यह भक्ति शास्त्रोंमें छिपे हुए रहस्योंके वचनोंको प्रकट करनेवाली ज्योतिके समान है। इसे विजयरूप कार्तिककी दीपावली तथा सर्वजयी गुणोंपर विजय पानेके लिये विजयादशमी भी कह सकते हैं। सांख्य और योग जिसके अगल-बगलमें लगे हुए डंडे हैं, सैकड़ों गुणों और भावोंके भेद जिसकी कीलें हैं, नवधा भक्तिके श्रवण-कीर्तन आदि जो नौ भेद हैं, वे ही जिसके बीचके दण्ड (पैर टिकनेके पाये) हैं, भगवद्धामको पहुँचानेवाली ऐसी यह सरल सीढ़ी है॥ १२-१३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे व्यासोग्रसेनसंवादे भक्त्युत्कर्षवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत व्यास-उग्रसेन-संवादमें 'भक्तिकी महिमाका वर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

मन्दिर-निर्माण तथा विग्रहप्रतिष्ठा एवं पूजाकी विधि

उग्रसेन उवाच

कर्मग्रहो गृहस्थोऽयं श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
सेवां वै केन विधिना कुर्यात्तद्ब्रूहि मे मुने॥ १

भक्त्यङ्कुरो यस्य नास्ति वास्ति तस्य न वर्धते।
तस्य केन प्रकारेण प्रसन्नः स्याद्धरिः स्वयम्॥ २

राजा उग्रसेनने पूछा—मुने! गृहस्थ कर्म-ग्रहसे ग्रस्त रहता है। ऐसी कौन-सी विधि है, जिसके द्वारा यह कर्मासक्त गृहस्थ महात्मा श्रीकृष्णकी सेवा कर सके? उसे कहनेकी कृपा कीजिये। (साथ ही यह भी बताइये कि) जिसके जीवनमें भक्तिका अङ्कुर ही नहीं है अथवा है तो वह बढ़ता नहीं, ऐसे व्यक्तिसे स्वयं श्रीहरि किस प्रकार प्रसन्न हो सकते हैं?॥ १-२॥

श्रीव्यास उवाच

यदि भक्त्यङ्कुरो न स्यात्सत्सङ्गेन स जायते।
बलाद्विवर्धते तस्मात्सतां सङ्गं समाचरेत्॥ ३

कृष्णसेवाविधिं तुभ्यं वक्ष्यामि सुलभं परम्।
यथा गृहस्थोऽयं शीघ्रं श्रीकृष्णं प्राप्नुयान्नृप॥ ४

श्रीव्यासजी बोले—यदि भक्तिका अङ्कुर न हो तो सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये। सत्सङ्गसे वह अङ्कुर उत्पन्न हो सकता है और वेगसे बढ़ भी जाता है। राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके सेवनकी विधि, जिसके प्रभावसे यह गृहस्थ भी शीघ्र भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त कर सकता है और जो अत्यन्त सुलभ है, वह तुम्हें मैं बतलाता हूँ॥ ३-४॥

आचार्यं कुलसम्भूतं श्रीकृष्णध्यानतत्परम्।
एतादृशं गुरुं कृत्वा सिद्धो भवति मानवः॥ ५

गुरोः सेवाविधिं शिक्षेच्छ्रीकृष्णस्य महात्मनः॥ ६

विष्णुदीक्षाविहीनस्य सर्वं भवति निष्फलम्।
निर्गुरोर्दर्शनं कृत्वा हतपुण्यो भवेन्नरः॥ ७

जिनकी आचार्यके सत्कुलमें उत्पत्ति हुई हो तथा जो भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें तत्पर हों, उनको गुरु बनाकर मनुष्य सिद्धि पाता है। मनुष्यको चाहिये कि वह ऐसे गुरुसे महात्मा श्रीकृष्णकी सेवा-विधि सीखे। जो भगवान् विष्णुकी दीक्षासे रहित है, उसका सब कुछ निष्फल हो जाता है। गुरुहीन मानवका दर्शन करनेपर पुरुषका पुण्य नष्ट हो जाता है॥ ५—७॥

उत्तराभिमुखं शश्वत्कारयेद्धरिमन्दिरम्।
तत्र सिंहासनं प्रोच्चं सपीठं कुम्भमण्डितम्॥ ८

सच्चिदानन्दनाम स्यात्सोपानत्रयभूषितम्।
महार्हवस्त्रैराच्छन्नं तत्र तुल्यासनं मृदु॥ ९

सनातन भगवान् श्रीहरिका मन्दिर उत्तरमुख बनवाना चाहिये। उसमें ऊँचा आसन स्थापित करके उसके ऊपर कलशसे सुशोभित पीठ स्थापित करे। उसमें तीन सीढ़ी बनाये, जिनके नाम सत्, चित् एवं आनन्द रखे। आसनको मूल्यवान् वस्त्रसे ढककर उसपर रूईकी गद्दी बिछा दे॥ ८-९॥

पार्श्वोपबर्हणयुतं स्फुरद्धेमाम्बरावृतम्।
नानाचित्रयुतैः कुड्यैरन्तःपटसमन्वितैः॥ १०

सर्वतो मण्डलैस्तद्वत्तोरणैः समलङ्कृतम्।
गवाक्षवारियन्त्राढ्यं चतुःशालसुजालकैः॥ ११

उसके आसपास तकिये लगाकर उन्हें स्वर्णके तारोंसे निर्मित वस्त्रसे ढक दे। दीवालोंपर भाँति-भाँतिके चित्र अङ्कित करे और भीतर पर्दा लगा दे। सब ओर मण्डप बनाये तथा तोरण-बंदनवार, झरोखे, जलके फुहारे तथा जालियोंसे मन्दिरको खूब सजाया जाय॥ १०-११॥

राजतप्राङ्गणो देशः सभामण्डपमण्डितः।
तत्र प्राङ्गणमध्ये तु तुलसीमन्दिरं शुभम्॥ १२

मन्दिरस्य बहिर्द्वारि कारयेच्च द्विपद्वयम्।
तथा वै कृत्रिमं राजन् सिंहद्वयमधिष्ठितम्॥ १३

सुवर्णशिखरस्याधश्चक्रं च शिखरोपरि।
द्वारेऽपि हरिनामानि प्रालेख्यानि शुभानि च॥ १४

शङ्खं पद्मं गदां शार्ङ्गमालेख्यं भित्तिपार्श्वयोः।
इषुधी च तथा बाणः सव्ये दक्षिण एव च॥ १५

तथा मन्दिरपृष्ठे वै शतचन्द्रं च नन्दकम्।
हलं च मुसलं चैव लेखनीयं प्रयत्नतः॥ १६

सिंहासनस्य पृष्ठे तु गोप्यो गावस्तथैव च।
गोपालास्तत्र सोपाने कपाटे विजयो जयः॥ १७

देहल्यां कल्पवृक्षश्च स्तम्भेषु च लताः शुभाः।
यत्र तत्र च कुड्येषु श्रीगङ्गा पापहारिणी॥ १८

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च।
तथा वै चीरहरणमालेख्यं रासमण्डलम्॥ १९

चित्रकूटः पञ्चवटी लेखनीयं प्रयत्नतः।
रामरावणयोर्युद्धं जानकीहरणं विना॥ २०

दशावतारचित्राणि नरनारायणाश्रमः।
सप्तपुर्यस्त्रयो ग्रामा नवारण्यं नवोषराः॥ २१

एवं लिखित्वा चित्राणि मन्दिरं कारयेद् बुधः।
वंशीभावोद्यतकरं वक्रीभूताङ्घ्रिदक्षिणम्॥ २२

किशोराकृति कृष्णस्य रूपं सेव्यतमं स्मृतम्।
तत्प्रतिष्ठां विधायाशु गुरुहस्तेन मन्दिरे॥ २३

भक्तः परमया भक्त्या स्थापयेत्तत्परो भवेत्।
तत्प्रसादे च रसनां घ्राणं च तुलसीदले।
न्यसेत्कर्णौ तत्कथायामेवं सेवापरो भवेत्॥ २४

मन्दिरके आँगनमें चाँदीके सुन्दर सभामण्डप बनाये जायँ। वहाँ आँगनके बीच तुलसीजीका मनोहर चबूतरा हो। मन्दिरके बाहरी द्वारपर दो हाथी बनवाने चाहिये। राजन्! वैसे ही बनावटी दो सिंह भी बैठा दे॥ १२-१३॥

मन्दिरका शिखर सोनेका हो। शिखरपर उसके नीचे चक्र बनवा दे। मन्दिरके द्वारपर अगल-बगल श्रीहरिके मङ्गलमय नाम लिखने चाहिये। दीवालपर एक ओर गदा, पद्म, शङ्ख और शार्ङ्गधनुष अङ्कित कराये। बायीं ओर तरकस और दाहिनी तरफ केवल बाणकी चित्रकारी बनवाये॥ १४-१५॥

मन्दिरके पिछले भागमें शतचन्द्र नामक ढाल, नन्दक नामवाली तलवार, हल और मुसल प्रयत्नपूर्वक अङ्कित कराये। सिंहासनकी पीठपर गोपियों तथा गौओंको, उसकी सीढ़ीपर गोपालोंको और किवाड़पर 'जय' एवं 'विजय' लिखे। देहलीपर कल्पवृक्ष, खंभोंपर मनोहर लताएँ, जहाँ-तहाँ दीवालोंपर पापनाशिनी गङ्गा, यमुना, वृन्दावन, गोवर्धन, चीरहरण तथा रासमण्डल आदिके लीलाचित्र अङ्कित कराये॥ १६—१९॥

फिर प्रयत्न करके चित्रकूट, पञ्चवटी, राम एवं रावणका युद्ध अङ्कित कराये, किंतु उसमें जानकीहरणका प्रसङ्ग अङ्कित न कराया जाय। दसों अवतारोंके चित्र, नरनारायणाश्रम (बदरिकाश्रम), सातों पुरियाँ, तीनों ग्राम, नौ वन और नौ ऊसरों [क्षेत्रविशेष]-के चित्र अङ्कित कराये॥ २०-२१॥

बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकारके चित्रोंको अङ्कित कराके मन्दिरका निर्माण कराये। तदनन्तर उसमें भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहकी स्थापना करे। श्रीकृष्णकी किशोर अवस्था हो और वे हाथमें बाँसुरी लिये उसे बजाना ही चाहते हों तथा उनका दाहिना पैर टेढ़ा हो—इस प्रकारका रूप सेवाके लिये सर्वोत्तम माना गया है। भक्त परम भक्तिके साथ इस प्रकारके विग्रहस्वरूपकी शीघ्र ही गुरुके द्वारा मन्दिरमें प्रतिष्ठा करा दे और फिर अत्यन्त भावके साथ सेवामें तत्पर हो जाय। जीभको भगवान्के प्रसादके रसमें, नासिकाको तुलसीदलकी सुगन्धमें और कानोंको भगवान्के कथा-श्रवणमें लगा दे। इस प्रकार सेवापरायण हो जाय॥ २२—२४॥

अहर्निशं कृष्णसेवां यः करोति च भाववित्।
तं प्रेमलक्षणं भक्तं विदुर्भागवतोत्तमाः॥ २५

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च।
राजन् श्रीकृष्णसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ २६

श्रीकृष्णदेशिकस्यापि यः कुर्याद्दर्शनं नरः।
कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ २७

देहान्ते तं समानेतुं श्यामसुन्दरविग्रहाः।
रथं नीत्वा प्रधावन्ति गोलोकात्कृष्णपार्षदाः॥ २८

भागवतोत्तम पुरुषोंका कहना है कि जो भावको जाननेवाला पुरुष रात-दिन श्रीकृष्णकी सेवा करता है, वही प्रेम-लक्षणसम्पन्न उत्तम भक्त है। राजन्! एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ भगवान् श्रीकृष्णके सेवनकी सोलहवीं कलाके एक अंशके बराबर भी नहीं हैं॥ २५-२६॥

जो मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाकथा तथा सेवाके उपदेशकका भी दर्शन कर लेता है, वह करोड़ों जन्मके किये हुए पापोंसे छूट जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है। देहावसान हो जानेपर उसे ले जानेके लिये श्यामसुन्दरके समान मनोहर विग्रहवाले भगवान्के पार्षद गोलोकसे रथ लेकर दौड़े आते हैं॥ २७-२८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे व्यासोग्रसेनसंवादे हरिमन्दिरप्रतिष्ठावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत व्यास-उग्रसेन-संवादमें 'हरिमन्दिरप्रतिष्ठा-वर्णन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

नित्यकर्म और पूजा-विधिका वर्णन

श्रीवेदव्यास उवाच

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय कशिपोश्च मुदा नृप।
गुरोर्नाम च गोविन्दनामानि प्रवदन् मुहुः॥ १

भूमिं नत्वा न्यसेत्पादं जलं स्पृष्ट्वा हरेर्जनः।
उपविश्यासने शीघ्रं सकामो यो यथासुखम्॥ २

हस्तावुत्सङ्ग आधाय श्वासजिद् ध्यानमास्थितः।
ज्ञानमुद्राधरं शान्तं श्रीगुरुं स्वस्तिकासनम्॥ ३

ध्यात्वा कृष्णं परं ध्यायेद्भक्त एकाग्रमानसः।
किशोरं श्यामलं हृद्यं वंशीवेत्रविभूषितम्॥ ४

एवं कृत्वा हरेर्ध्यानं पुनर्गच्छेद्बहिःस्थलम्।
तच्छौचं शृणु राजेन्द्र गृहस्थस्य यथातथम्॥ ५

श्रीवेदव्यासजी बोले—राजन्! ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शय्यामें रहते हुए गुरुदेव और भगवान् गोविन्दके नामोंका बारंबार उच्चारण करे। तत्पश्चात् वह हरिभक्त भूमिको प्रणाम करके जमीनपर पैर रखे। फिर वह सकाम भक्त आचमन करके तत्काल आनन्दपूर्वक आसनपर बैठ जाय॥ १-२॥

हाथोंको गोदमें रखकर श्वास रोककर (गुरुदेवका) ध्यान करे—'भगवान् गुरुदेव ज्ञानमुद्रा धारण किये हुए हैं, उनका स्वरूप अत्यन्त शान्त है और वे स्वस्तिकासनसे विराज रहे हैं'॥ ३॥

यों गुरुदेवका ध्यान करनेके पश्चात् भक्त एकाग्र-मन होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करे—'श्रीकृष्ण-चन्द्रकी अवस्था किशोर है, श्यामल श्रीविग्रह है, जो करोंमें वंशी एवं बेंतसे विभूषित, अत्यन्त ही मनोहर है।' इस प्रकार श्रीहरिका ध्यान करनेके पश्चात् बाहर चला जाय। महाराज! गृहस्थ पुरुष कैसे पवित्र होता है—अब उस विधानको पूरा-पूरा सुनो॥ ४-५॥

अश्वक्रान्तेति मन्त्रेण मृत्स्नया च जलेन च।
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश॥ ६

उभयोर्हस्तयोः सप्त तिस्रस्तिस्रः पदे पदे।
एतस्य द्विगुणं प्रोक्तं ब्रह्मचारिवनस्थयोः॥ ७

एतच्चतुर्गुणं प्रोक्तं यतीनां हरिसेविनाम्।
तदर्धं रोगिपान्थानां स्त्रीशूद्राणां तदर्धकम्॥ ८

शौचकर्मविहीनस्य सकला निष्फलाः क्रियाः।
मुखशुद्धिविहीनस्य मन्त्रा न फलदाः स्मृताः॥ ९

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥ १०

इति मन्त्रं समुच्चार्य कुर्याद्वै दन्तधावनम्।
कण्टकीक्षीरिकार्पासनिर्गुण्डीब्रह्मवृक्षकान्॥ ११

वटैरण्डविगन्धाद्यान् वर्जयेद् दन्तधावने।
हरितहयमन्त्रेण सूर्यं नत्वा कृताञ्जलिः॥ १२

प्रणमेद्धरिभक्तांश्च प्रह्लादादीन् समाहितः।
तुलसीमृत्तिकां नीत्वा ततः स्नानं समाचरेत्।
पठितव्यं प्रयत्नेन श्रीगङ्गायमुनाष्टकम्॥ १३

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥ १४

शालग्रामो महायोगे शम्भलो हरिमन्दिरे।
नन्दिग्रामः कौशले तु त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः॥ १५

दण्डकं सैन्धवारण्यं जम्बुमार्गं च पुष्कलम्।
उत्पलावर्तमारण्यं नैमिषं कुरुजाङ्गलम्॥ १६

अर्बुदं हेमवन्तं च नवारण्यानि वै विदुः।
एतानि तीर्थनामानि समुच्चार्य पुनः पुनः॥ १७

इत्थं स्नात्वा ततो बिभ्रदम्बरं क्षौममुत्तमम्।
द्वादशांस्तिलकान् बिभ्रदष्टमुद्राधरः परः॥ १८

मिट्टी लेकर '**अश्वक्रान्ते०**' इत्यादि मन्त्रसे शौचके अन्तमें एक बार लिङ्गमें, तीन बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें, सात बार दोनों हाथोंमें तथा तीन-तीन बार प्रत्येक पैरमें मिट्टी और जल लगाकर शुद्धि करे। ब्रह्मचारी और वानप्रस्थको इससे दूना करना चाहिये॥ ६-७॥

भगवान्‌की सेवा करनेवाले संन्यासीकी शुद्धि इससे चौगुना करनेपर होती है। रोगी और पथिकोंकी इसके आधेसे तथा शूद्र एवं स्त्रीका उससे भी आधेसे पवित्र होनेका विधान है। शौचकर्मसे रहित मनुष्यकी सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। मुखकी शुद्धि भी होनी चाहिये; क्योंकि मुखशुद्धिसे रहित मनुष्यको मन्त्र फल देनेवाले नहीं होते॥ ८-९॥

'वनस्पते! तुम मेरे लिये आयु, बल, यश, वीर्य, पुत्र, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान और प्रज्ञा प्रदान करो—इस मन्त्रका उच्चारण करके दातुन ग्रहण करे। बबूल, दूधवाले वृक्ष, कपास, निर्गुण्डी, आँवला, वट, एरंड और दुर्गन्धयुक्त वृक्ष दातुनके लिये निषिद्ध हैं। फिर हाथ जोड़े हुए '**हरितहय०**' इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भगवान् सूर्यको प्रणाम करे॥ १०—१२॥

तदनन्तर स्वस्थचित्त हो प्रह्लाद आदि भगवान् श्रीहरिके भक्तोंको प्रणाम करे। तुलसीकी मिट्टी लगाकर स्नान करे। स्नान करते समय 'श्रीगङ्गाष्टक' और 'यमुनाष्टक' का सविधि पाठ करना चाहिये। अयोध्या, मथुरा, मायावती (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारावतीपुरी (द्वारका)—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। (अतः इनका भी स्मरण करना चाहिये।) महायोगमें शालग्राम, हरिमन्दिरमें सम्भलग्राम और कोसलमें नन्दिग्राम—ये तीन ग्राम कहे गये हैं (इन तीन ग्रामोंका स्मरण करे)॥ १३—१५॥

दण्डकारण्य, सैन्धवारण्य, जम्बूमार्ग, पुष्कल, उत्पलावर्त, नैमिषारण्य, कुरुजाङ्गल, अर्बुद और हेमवन्त—ये नौ अरण्य माने गये हैं। इन सभी तीर्थोंके नाम बारंबार उच्चारण करके स्नान करे। स्नानके बाद उत्तम रेशमी (अहिंसायुक्त) वस्त्र पहने। बारह तिलक और आठ मुद्राएँ धारण करे॥ १६—१८॥

कृतसन्ध्यः शुचिर्मौनी गत्वा श्रीकृष्णमन्दिरम्।
घण्टावाद्यं जयारावं तलशब्दं विधाय च॥ १९

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द योगनिद्रां विहाय च।
उक्त्वापीमां स्मृतिं राजन् भक्त उत्थापयेद्धरिम्॥ २०

मङ्गलार्तिं समादाय भ्रामयंस्तन्मुखोपरि।
निवेद्य बहुपक्वान्नं नत्वा नत्वा पुनः पुनः॥ २१

फिर संध्या करके पवित्र हो मौन होकर भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरमें जाय। घण्टा-ताली बजाकर, 'जय हो, जय हो' इत्यादि शब्दोंका उच्चारण करते हुए कहे—'**उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द योगनिद्रां विहाय च।**' 'भगवान् गोविन्द! योगनिद्राका परित्याग करके उठिये—उठिये राजन्! भगवान्को उठानेका यह (स्मार्त) मन्त्र है। इसका उच्चारण करके श्रीहरिको जगाये। तत्पश्चात् मङ्गल-आरती लेकर भगवान्के मुखपर घुमाये और बार-बार प्रणाम करके विविध पक्वान्नोंका नैवेद्य निवेदित करे॥ १९—२१॥

ततः स्नानं कारयित्वा देशकालप्रभाववित्।
शृङ्गारं भाववित्कृत्वा वस्त्राभूषणमङ्गलैः॥ २२

तदनन्तर देश एवं कालके प्रभावको जाननेवाला तथा भावका ज्ञाता वह भक्त (तदनुकूल ही) भगवान्को स्नान कराकर मङ्गलमय वस्त्राभूषणोंके द्वारा भगवान्का शृंगार करे॥ २२॥

आर्तिक्यं तु ततः कृत्वा भोज्यान्नं च विधाय च।
ततो धृत्वा महाभोगं नानारसमयं परम्॥ २३

महाभोगार्तिकं कृत्वा कारयेच्छयनं हरेः।
ततः प्रसादं परमं तुलसीगन्धमिश्रितम्॥ २४

भुञ्जीत यो हरेर्नित्यं स कृतार्थो न संशयः।
राजभोगार्तिकं कृत्वा कारयेच्छयनं हरेः॥ २५

पश्चात् आरती करके भगवान्को अन्नभोग अर्पण करे। भाँति-भाँतिके रसमय उत्तम भोज्य पदार्थोंका महाभोग निवेदन करके महाभोगकी आरती करे। तदनन्तर भगवान्को शयन कराये। इसके बाद तुलसीकी गन्धसे युक्त परम प्रसादको नित्यप्रति स्वयं ग्रहण करे। जो नित्य इस प्रकार भगवान्की पूजा करता है, वह कृतार्थ हो जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं है। इसके बाद विधिवत् मध्याह्नका राजभोग निवेदन करके राजभोगकी आरती करे। फिर भगवान्को शयन कराये॥ २३—२५॥

चतुर्घट्यवशेषे तु दिन उत्थापयेद् हरिम्।
शङ्खनादेन विधिवद्भोगं धृत्वा यथाविधि॥ २६

दिनकी चार घड़ी शेष रहनेपर यथाविधि शङ्ख बजाकर श्रीहरिको उठाये और उन्हें विधिवत् नैवेद्य निवेदित करे॥ २६॥

ततः सन्ध्यार्तिकं कृत्वा दुग्धादीन् विनिवेद्य च।
ततः प्रदोषसमये पुनरार्तिकमाचरेत्॥ २७

तदनन्तर संध्याकी आरती करके दूध आदि निवेदन करे। प्रदोषकाल आनेपर प्रदोषकी आरती करे॥ २७॥

धृत्वा भोगं परं मिष्टं कारयेच्छयनं हरेः।
राजसी चैव राजेन्द्र राजसेवेयमस्ति वै॥ २८

रातमें उत्तम मिष्टान्नका भोग लगाकर श्रीहरिको शयन कराये। राजेन्द्र! यह राजसेवा है—राजाओंके लिये ही इस प्रकारकी सेवाका विधान है। अतः इसका नाम 'राजसी' है॥ २८॥

सर्वं श्रीकृष्णचन्द्रस्य सेवासंलग्नमानसः।
तारयित्वा कुलशतं याति चात्यन्तिकं पदम्॥ २९

जन्माष्टमी च कृष्णस्य श्रीरामनवमी तथा।
राधाष्टम्यन्नकूटं च द्वादशी वामनस्य च॥ ३०

चतुर्दशी नृसिंहस्य तथानन्तचतुर्दशी।
एषु कालेषु कृष्णस्य महापूजां समाचरेत्॥ ३१

भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें दत्तचित्त हो सम्यक् प्रकारसे लगा हुआ मनुष्य अपने सौ कुलोंको तारकर आत्यन्तिक परमपदको प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, श्रीरामनवमी, राधाष्टमी, अन्नकूट, वामन-द्वादशी, नृसिंहचतुर्दशी तथा अनन्तचतुर्दशी—इन अवसरोंपर भगवान् श्रीकृष्णकी महापूजा करनी चाहिये॥ २९—३१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे व्यासोग्रसेनसंवादे राजसेवावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत व्यास-उग्रसेन-संवादमें 'राजसेवा-वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

पूजा-विधिका वर्णन

श्रीवेदव्यास उवाच

अथ स्नात्वा च कृत्वा च नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम्।
पञ्चवर्णसमायुक्ते शुद्धे स्थण्डिलमण्डले॥ १

द्वात्रिंशद्दलसंयुक्तं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम्।
विधाय कमलं स्थाप्यं विधिवद्वेदसूक्तिभिः॥ २

कर्णिकायां न्यसेद्राजन् हरेः सिंहासनं शुभम्।
तत्र राधां रमां स्थाप्य भूदेवीं विरजां तथा॥ ३

तन्मध्ये स्थापयेत्साक्षाच्छ्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम्।
तथाष्टदलमध्ये तु राधिकाष्टसखीः शुभाः॥ ४

ततोऽष्टदलमध्ये तु श्रीकृष्णस्य तथा सखीन्।
तथा षोडशपर्णेषु सखीनां च द्वयं द्वयम्॥ ५

कमलस्य च पार्श्वेषु शङ्खं चक्रं गदां तथा।
पद्मं च नन्दकं शार्ङ्गं बाणांश्च मुसलं हलम्॥ ६

कौस्तुभं वनमालां च श्रीवत्सं नीलमम्बरम्।
पीताम्बरं तथा वंशीं वेत्रं च स्थापयेद् बुधः॥ ७

ततः पार्श्वेषु तालाङ्कं गरुडाङ्कं रथं तथा।
सुमतिं दारुकं सूतं गरुडं कुमुदं तथा॥ ८

नन्दं सुनन्दं चण्डं च प्रचण्डं च महाबलम्।
कुमुदाक्षं बलं चैव स्थापयेद्यत्नतः सुधीः॥ ९

श्रीव्यासजी बोले—तदनन्तर स्नान एवं नित्य-नैमित्तिक क्रियाका सम्पादन करके शुद्ध स्थण्डिलपर पाँच रंगोंसे युक्त मण्डल बनाये। वेदकी ऋचाओंद्वारा विधिवत् मङ्गलमय दिव्य उज्ज्वल कमलकी रचना करे। उसमें बत्तीस दल हों और वह केसर और कर्णिकासे युक्त हो॥ १-२॥

राजन्! कर्णिकाके ऊपर श्रीहरिका सुन्दर सिंहासन स्थापित करके उसपर राधा, रमा, भूदेवी और विरजाकी स्थापना करे। उन देवियोंके मध्यमें साक्षात् पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको प्रतिष्ठित करे। कमलके आठ दलोंमें राधिकाजीकी मङ्गलमयी आठ सुन्दरी सखियाँ रहें॥ ३-४॥

इसके बाद आठ दलोंमें भगवान् श्रीकृष्णके सखाओंकी स्थापना करे। इसी प्रकार सोलह दलोंपर सखियोंके दो-दो समुदाय रहें। फिर बुद्धिमान् पुरुष कमलके समीप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, नन्दक नामक तलवार, शार्ङ्गधनुष, बाण, मुसल, हल, कौस्तुभमणि, वनमाला, श्रीवत्स, नीलाम्बर, पीताम्बर, वंशी और बेंत—इन सबको स्थापित करे॥ ५—७॥

फिर उसके पार्श्वमें तालध्वज एवं गरुडध्वजसे युक्त रथ, सुमति एवं दारुक नामवाले सारथि, गरुड, कुमुद, नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, महाबल, कुमुदाक्ष और बलकी विद्वान् पुरुष यत्नपूर्वक स्थापना करे॥ ८-९॥

तथा दिक्षु च दिक्पालान् संस्थाप्य च पृथक् पृथक्।
विष्वक्सेनं शिवं मां च विधिं दुर्गां विनायकम्॥ १०

नवग्रहांश्च वरुणं तथा षोडश मातृकाः।
तत्पद्माग्रे वीतिहोत्रं स्थण्डिले स्थापयेद्बुधः॥ ११

आवाहनमासनं च पाद्यमर्घ्यं विशेषतः।
स्नानं च मधुपर्कं च धूपं दीपं तथैव च॥ १२

यज्ञोपवीतं वस्त्रं च भूषणं गन्धमेव च।
पुष्पं तथाक्षतांश्चैव नैवेद्यं च मनोहरम्॥ १३

आचमनं प्रदातव्यं ताम्बूलं दक्षिणां तथा।
प्रदक्षिणां प्रार्थनां च तथा नीराजनं स्मृतम्॥ १४

नमस्कारं ततः कुर्यात्कर्मणा च पृथक् पृथक्।
आवाहने तु पुष्पाणि आसने तु कुशद्वयम्॥ १५

पाद्ये श्यामां च दूर्वां च विष्णुक्रान्तां तथैव च।
सौगन्धिकानि पुष्पाणि अर्घ्ये योग्यानि यादव॥ १६

चन्दनोशीरकर्पूरकुङ्कुमागुरुमिश्रितम्।
एतादृशं जलं योग्यं स्नाने राजन् महामते॥ १७

मधुपर्के ह्यामलकमरविन्दं तथा मतम्।
धूपे गन्धाष्टकं देयं दीपे कर्पूरमेव च॥ १८

यज्ञोपवीतं पीतं च वस्त्रे पीताम्बरं मतम्।
भूषणे चैव सौवर्णं गन्धे कुङ्कुमचन्दने॥ १९

तुलसीमञ्जरी पुष्पेऽक्षतेषु स्युस्तु तण्डुलाः।
नैवेद्ये तु रसाः षट् च भोगा नानाविधा मताः॥ २०

जले गङ्गाजलं योग्यं यमुनाजलमेव च।
जातीफलं च कङ्कोलमन्ते चाचमने नृप॥ २१

ताम्बूले चोषणं त्वेला दक्षिणायां तु हाटकम्।
प्रदक्षिणायां भ्रमणं घृतं नीराजने गवाम्॥ २२

प्रार्थनायां हरेर्भक्तिः प्रेमलक्षणसंयुता।
नमस्कारे महाराज साष्टाङ्गनतविग्रहः॥ २३

इसी प्रकार सब दिशाओंमें पृथक्-पृथक् दिक्पालोंको पधराना चाहिये। फिर वहीं विष्वक्सेन, शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, लक्ष्मी, गणेश, नवग्रह, वरुण तथा षोडश मातृकाओंको आसन दे। कमलके अगले भागमें वेदीपर पण्डितजन वीतिहोत्रकी स्थापना करें॥ १०-११॥

इसके बाद आवाहन करके आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, यज्ञोपवीत, वस्त्र, चन्दन, अक्षत, मधुपर्क, फूल, धूप, दीप, आभूषण, स्वादिष्ट नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल और दक्षिणा समर्पण करे। प्रदक्षिणा और प्रार्थना करके आरती करे॥ १२—१४॥

फिर नमस्कार करे। हर-एक कर्मके लिये अलग-अलग विधान है—आवाहनमें पुष्प, आसनमें दो कुशा और पाद्यमें श्यामदूर्वा और अपराजिताका उपयोग करे। यादव! अर्घ्यके लिये सुन्दर गन्धवाले पुष्प रखने चाहिये॥ १५-१६॥

राजन्! स्नानके जलमें चन्दन, खस, कपूर, कुङ्कुम और अगुरु मिलाये। महामते! इसी प्रकारका जल स्नानके लिये उत्तम होता है। मधुपर्कमें आँवला एवं कमल, धूपमें अष्टगन्ध और दीपमें कपूर देना चाहिये। पीले रंगका यज्ञोपवीत, वस्त्रमें पीताम्बर, भूषणके स्थानपर सोना और गन्धके स्थानमें कुङ्कुम तथा चन्दन देने चाहिये॥ १७—१९॥

फूलोंमें तुलसीकी मञ्जरी, अक्षतोंमें चावल और नैवेद्यमें नाना प्रकारके पक्वान्न और षट्रस भोजन-पदार्थ उत्तम माने गये हैं। जलमें केवल गङ्गाजल और यमुनाजल। राजन्! भोजनोपरान्त आचमनके जलमें जायफल और कङ्कोल मिला दे॥ २०-२१॥

ताम्बूलमें लौंग और इलायची मिला दे। दक्षिणाके स्थानपर सुवर्ण अर्पण करे। प्रदक्षिणाके प्रकरणमें घूमना और आरतीमें गौका घृत लेना उचित है। महाराज! प्रार्थनामें भगवान् श्रीहरिकी प्रेमलक्षण-युक्त भक्ति करना और नमस्कारके स्थानपर अत्यन्त नम्र होकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये॥ २२-२३॥

द्वादशाक्षरमन्त्रेण शिखां बद्ध्वा शुचिः पुमान्।
उपचारान् पुरस्कृत्य श्रीमुखे सम्मुखो भवेत्॥ २४

तदनन्तर पूजकको चाहिये कि वह पवित्र होकर द्वादशाक्षर मन्त्रसे शिखा बाँध ले और पूजाकी सभी सामग्रियाँ आगे रखकर भगवान्‌के सामने बैठ जाय॥ २४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे व्यासोग्रसेनसंवादे महापूजाविधिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत व्यास-उग्रसेन-संवादमें 'महापूजा-विधिका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

पूजोपचार तथा पूजन-प्रकारका वर्णन

श्रीवेदव्यास उवाच

उपचारस्य मन्त्राणि वेदोक्तानि शुभानि च।
तुभ्यं वक्ष्यामि राजेन्द्र शृणुष्वैकाग्रमानसः॥ १

श्रीव्यासजी बोले—महाराज! पूजन-सामग्री अर्पण करनेके सुन्दर मन्त्र वेदमें कहे गये हैं। मैं तुम्हारे लिये उनका वर्णन करता हूँ। एकाग्र-मन होकर सुनो॥ १॥

अथावाहनम्

गोलोकधामाधिपते रमापते
गोविन्द दामोदर दीनवत्सल।
राधापते माधव सात्वतां पते
सिंहासनेऽस्मिन् मम सम्मुखो भव॥ २

आवाहन

गोविन्द! आप गोलोकधामके स्वामी हैं। दीनोंपर दया करना आपका स्वभाव है। दामोदर! आप लक्ष्मी एवं राधिकाजीके प्राणनाथ हैं। यादवोंके अधीश्वर हैं। माधव! इस सिंहासनपर मेरे सामने आप विराजमान होइये॥ २॥

अथासनम्

श्रीपद्मरागस्फुरदूर्ध्वपृष्ठं
महार्हवैडूर्यखचित्पदाब्जम्।
वैकुण्ठ वैकुण्ठपते गृहाण
पीतं तडिद्धाटककुम्भखण्डम्॥ ३

आसन

वैकुण्ठपते! इस आसनके ऊपरकी पीठपर पद्मराग चमक रहा है। पायोंमें महामूल्यवान् वैदूर्यमणि जड़ी गयी है। यह बिजलीके समान चमकती हुई पीतवर्णकी सुवर्णकी कलशियोंसे युक्त है। वैकुण्ठ! कृपया आप इसे ग्रहण कीजिये॥ ३॥

अथ पाद्यम्

परं स्थितं निर्मलरौक्मपात्रे
समाहृतं बिन्दुसरोवराद्धि।
योगेश देवेश जगन्निवास
गृहाण पाद्यं प्रणमामि पादौ॥ ४

पाद्य

देवेश! स्वच्छ सुवर्णके पात्रमें बिन्दुसरोवरसे लाकर उत्तम जल रखा गया है। योगेश! आप जगत्‌के अधिष्ठाता हैं। मैं आपके चरणोंको प्रणाम करता हूँ। आप इस पाद्यको स्वीकार करें॥ ४॥

अथार्घ्यम्

जलजचम्पकपुष्पसमन्वितं
विमलमर्घ्यमनर्घदरस्थितम्।
प्रतिगृहाण रमारमण प्रभो
यदुपते यदुनाथ यदूत्तम॥ ५

अर्घ्य

रमारमण प्रभो! यदुपते! यदुनाथ! यदूत्तम! कमल तथा चम्पाके पुष्पोंसे समन्वित तथा उत्तम शङ्खमें भरे हुए इस निर्मल उत्तम अर्घ्यको ग्रहण करें॥ ५॥

अथ स्नानम्

काश्मीरपाटीरविमिश्रितेन
सुमल्लिकोशीरवता जलेन।
स्नानं कुरु त्वं यदुनाथ देव
गोविन्द गोपालक तीर्थपाद॥ ६

स्नान

गोविन्द! आप यादवोंके स्वामी तथा गौओंकी रक्षा करनेवाले हैं। आपके चरण तीर्थस्वरूप हैं। भगवन्! केसर, चन्दन, चमेली और खससे सुवासित यह जल है। आप इससे स्नान कीजिये॥ ६॥

अथ मधुपर्कस्नानम्

मध्याह्नचण्डार्कभवश्रमापहं
सिताङ्गसम्पर्कमनोहरं परम्।
गृहाण विष्णो मधुपर्कमेनं
सन्दृश्य पीताम्बर सात्वतां पते॥ ७

मधुपर्क

यदुपते! आप पीताम्बर धारण करनेवाले हैं। आपके लिये मधुपर्क तैयार है। यह मध्याह्नके प्रचण्ड मार्तण्डके उत्तापजनित श्रमको दूर करनेवाला है। मिश्रीके मिल जानेसे यह अत्यन्त मनोहर हो गया है। भगवन्! आप इसकी ओर दृष्टि डालकर इसे स्वीकार करनेकी कृपा करें॥ ७॥

अथ वस्त्रम्

विभो सर्वतः प्रस्फुरत्प्रोज्ज्वलं च
स्फुरद्रश्मि शून्यं परं दुर्लभं च।
स्वतो निर्मितं पद्मकिञ्जल्कवर्णं
गृहाणाम्बरं देव पीताम्बराख्यम्॥ ८

वस्त्र

प्रभो! 'पीताम्बर' नामक वस्त्र प्रस्तुत है। इसकी प्रभा अत्यन्त उज्ज्वल है, इसकी किरणें सब ओर छिटक रही हैं। परम दुर्लभ यह वस्त्र अपने-आप बना हुआ है। कमलके केसर-जैसा इसका रंग है। कृपया आप इसे ग्रहण करें॥ ८॥

अथ यज्ञोपवीतम्

सुवर्णाभमापीतवर्णं सुमन्त्रैः
परं प्रोक्षितं वेदविन्निर्मितं च।
शुभं पञ्चकार्येषु नैमित्तिकेषु
प्रभो यज्ञ यज्ञोपवीतं गृहाण॥ ९

यज्ञोपवीत

यज्ञरूप भगवन्! सुवर्णके समान चमचमाता हुआ हलके पीले वर्णका यह यज्ञोपवीत है। उत्तम मन्त्रोंद्वारा भलीभाँति इसका प्रोक्षण हुआ है। वेदज्ञ ब्राह्मणोंने इसकी रचना की है। पाँच नैमित्तिककर्मोंमें इसका उपयोग कल्याणदायक होता है। प्रभो! आप इसे ग्रहण कीजिये॥ ९॥

अथ भूषणम्

कनकरत्नमयं मयनिर्मितं
मदनरुक्कदनं सदनं रुचाम्।
उषसि पूषसुवर्णविभूषणं
सकललोकविभूषण गृह्यताम्॥ १०

आभूषण

अखिललोकविभूषण! सोने एवं रत्नोंसे बना हुआ यह सुवर्णमय भूषण उपस्थित है। यह मयके हाथकी कारीगरी है। कामदेवकी कान्तिको फीका करनेवाला यह प्रभाका भंडार है। भगवन्! प्रातःकालीन सूर्यके समान चमचमाता यह भूषण आप स्वीकार कीजिये॥ १०॥

अथ गन्धम्

सन्ध्येन्दुशोभं बहुमङ्गलं श्री-
काश्मीरपाटीरकपङ्कयुक्तम् ।
स्वमण्डनं गन्धचयं गृहाण
समस्तभूमण्डलभारहारिन् ॥ ११

गन्ध

सायंकालके चन्द्रमाके समान शोभायमान, अनेक मङ्गलोंको देनेवाला, केसर एवं चन्दनसे युक्त यह गन्ध-राशि आपका अलंकार है। सम्पूर्ण लोकोंके भारको दूर करनेवाले भगवन्! आप इसे ग्रहण कीजिये॥ ११॥

अथाक्षतान्

ब्रह्मावर्ते ब्रह्मणा पूर्वमुप्तान्
ब्राह्मैस्तोयैः सिञ्चितान् विष्णुना च।
रुद्रेणारादृक्षितान् राक्षसेभ्यः
साक्षाद्भूमन्नक्षतांस्त्वं गृहाण॥ १२

अक्षत

पहले ब्रह्माने ब्रह्मावर्तदेशमें जिन्हें बोया था, भगवान् विष्णुने वेदमय जलसे जिनका सेचन किया तथा शंकरजीने समीप आकर राक्षसोंसे जिनकी रक्षा की, भगवन्! उन अक्षतोंको स्वयं आप ग्रहण कीजिये॥ १२॥

अथ पुष्पाणि

मन्दारसन्तानकपारिजात-
कल्पद्रुमश्रीहरिचन्दनानाम्।
गृहाण पुष्पाणि हरे तुलस्या
मिश्राणि साक्षान्नवमञ्जरीभिः॥ १३

पुष्प

भगवन्! मन्दार, संतानक, पारिजात, कल्पवृक्ष और हरिचन्दनके ये पुष्प उपस्थित हैं। नूतन मञ्जरियोंके साथ तुलसीपत्रोंका भी इनमें सम्मिश्रण हुआ है, आप इन्हें ग्रहण करें॥ १३॥

अथ धूपम्

लवङ्गपाटीरजचूर्णमिश्रं
मनुष्यदेवासुरसौख्यदं च।
सद्यः सुगन्धीकृतहर्म्यदेशं
द्वारावतीभूप गृहाण धूपम्॥ १४

धूप

द्वारकाधीश! जो लौंग एवं मलयागिरिके चूर्णसे मिश्रित है, देवता, दानव एवं मनुष्योंको आनन्दित करनेकी जिसमें शक्ति है तथा जो तत्काल महलोंको सुगन्धित बनानेवाला है, ऐसे धूपको आप ग्रहण कीजिये॥ १४॥

अथ दीपम्

तमोहारिणं ज्ञानमूर्तिं मनोज्ञं
लसद्वर्तिकर्पूरपूरं गवाज्यम्।
जगन्नाथ देव प्रभो विश्वदीप
स्फुरज्ज्योतिषं दीपमुख्यं गृहाण॥ १५

दीप

प्रभो! आप जगत्के स्वामी एवं विश्वको प्रकाशित करनेवाले हैं। अन्धकारका नाश करनेवाला ज्ञानस्वरूप यह प्रधान दीप आपके लिये तैयार है, जो बत्तियोंसे सजाया हुआ अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है। यह गायके घीसे पूर्ण है। साथ ही इसमें कपूर भी छोड़ा गया है। भगवन्! इस प्रकार चमचमाती हुई लौवाले इस दीपको स्वीकार करें॥ १५॥

अथ नैवेद्यम्

रसैः शरैर्भेदविधिव्यवस्थितं
रसै रसाढ्यं च यशोमतीकृतम्।
गृहाण नैवेद्यमिदं सुरोचकं
गव्यामृतं सुन्दर नन्दनन्दन॥ १६

नैवेद्य

नन्दनन्दन! षड्रससे युक्त एवं वेदोक्त विधिसे तैयार किया हुआ नैवेद्य आपके लिये उपस्थित है। यह रसोंसे भरपूर है और यशोदाजीने इसे बनाया है। स्वादिष्ट होनेके साथ गोघृतके प्रयोगसे यह अमृतमय बन गया है। अतः इसे आप ग्रहण कीजिये॥ १६॥

अथ जलम्

गङ्गोत्तरीवेगबलात्समुद्धृतं
सुवर्णपात्रेण हिमांशुशीतलम्।
सुनिर्मलाम्भो ह्यमृतोपमं जलं
गृहाण राधावर भक्तवत्सल॥ १७

जल

भक्तवत्सल! गङ्गोत्तरीकी धारासे यत्नपूर्वक प्राप्त किया हुआ यह अमृतमय जल है, जो चन्द्रमाकी भाँति शीतल है। यह सुवर्णके पात्रमें रखा गया है और इससे अति निर्मल आभा निकल रही है। राधावर! आप इसे स्वीकार कीजिये॥ १७॥

अथाचमनम्

राधापते श्रीविरजापते प्रभो
श्रियःपते सर्वपते च भूपते।
कङ्कोलजातीफलपुष्पवासितं
परं गृहाणाचमनं दयानिधे॥ १८

अथ ताम्बूलम्

जातीफलैलासुलवङ्गनाग-
वल्लीदलैः पूगफलैश्च संयुतम्।
मुक्तासुधाखादिरसारयुक्तं
गृहाण ताम्बूलमिदं रमेश॥ १९

अथ दक्षिणा

नाकपालवसुपालमौलिभि-
र्वन्दिताङ्घ्रियुगल प्रभो हरे।
दक्षिणां परिगृहाण माधव
लोकदक्ष वर दक्षिणापते॥ २०

अथ नीराजनम्

प्रस्फुरत्परमदीप्तिमङ्गलं
गोघृताक्तनवपञ्चवर्तिकम्।
आर्तिकं परिगृहाण चार्तिहन्
पुण्यकीर्तिविशदीकृतावने॥ २१

अथ नमस्कारः

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥ २२

अथ प्रदक्षिणा

समस्ततीर्थयज्ञदानपूर्तकादिजं फलम्।
लभेत्परस्य शाश्वतं करोति यः प्रदक्षिणाम्॥ २३

अथ प्रार्थना

हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ
तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी।
इति त्वं च मत्वा जगन्नाथ देव
यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम्॥ २४

आचमन

राधापते! आप भगवती विरजाके स्वामी हैं। सर्वेश्वर! आप लक्ष्मीजीके प्राणनाथ एवं भूदेवीके पति हैं। दयानिधे! कङ्कोल, जायफल और पुष्पोंसे सुवासित यह उत्तम आचमनीय प्रस्तुत है। प्रभो! इसे ग्रहण कीजिये॥ १८॥

ताम्बूल

रमेश! जायफल, इलायची, लौंग, नागकेसर, सुपारी, मोतीकी भस्म और खैरके सारसे युक्त यह ताम्बूल स्वीकार कीजिये॥ १९॥

दक्षिणा

प्रभो! हरे! नाकपाल और वसुपालोंके मुकुटोंसे आपके युगल चरण-कमलकी पूजा हुई है। आप दक्षिणाके पति हैं। प्राणियोंको धन प्रदान करनेमें आप बड़े कुशल हैं। माधव! आप यह दक्षिणा ग्रहण करें॥ २०॥

नीराजन

आर्तिहन्! श्रेष्ठ प्रकाशसे युक्त दीप्तिमयी यह मङ्गलमय आरती है। गायके घीसे भीगी हुई चौदह बत्तियाँ इसमें लगी हैं। अपनी पवित्र कीर्तिका विस्तार करनेवाले भगवन्! आप इसे ग्रहण कीजिये॥ २१॥

नमस्कार

जो अनन्त हैं, जिनके हजारों विग्रह हैं, जिनके चरण, जंघा, बाहु, ऊरु, मस्तक एवं नेत्रोंकी संख्या भी हजारोंकी है, जो नित्य हैं, जिनके हजारों नाम हैं तथा जो करोड़ों युगोंको धारण करनेवाले हैं, उन परम पुरुष भगवान्‌के लिये मेरा नमस्कार है॥ २२॥

प्रदक्षिणा

जो मनुष्य परम प्रभु भगवान्‌की प्रदक्षिणा करता है, उसके लिये सम्पूर्ण तीर्थ, यज्ञ, दान तथा पूर्त (कुआँ, बावली, पोखरा आदि खुदवाने, बगीचा लगवाने आदिसे उत्पन्न हुआ) फल सुलभ हो जाता है॥ २३॥

प्रार्थना

भगवन्! जगत्‌में मेरे समान कोई पापी नहीं है और आपके समान कोई पापका हरण करनेवाला भी नहीं है। प्रभो! यह समझकर, हे जगन्नाथ! फिर आपको जो उचित जान पड़े, वैसा ही मेरे साथ कीजिये॥ २४॥

अथ स्तुतिः

संज्ञानमात्रं सदसत्परं मह-
च्छश्वत्प्रशान्तं विभवं समं महत्।
त्वां ब्रह्म वन्दे हि सुदुर्गमं परं
सदा स्वधाम्ना परिभूतकैतवम्॥ २५

एवं सम्पूज्य देवेशमेभिर्मन्त्रैर्महामते।
प्रणम्य विष्णुं सर्वाङ्गपूजां कुर्यात्प्रयत्नतः॥ २६

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने।
विशुद्धसत्त्वधीस्थाय महाहंसाय धीमहि॥ २७

इति मन्त्रेण प्राणायामं कृत्वा

ॐ विष्णवे मधुसूदनाय वामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामोदराय सङ्कर्षणाय वासुदेवाय प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय अधोक्षजाय पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः। इति पादगुल्फजानूरुकट्युदरपृष्ठभुजाकन्धरकर्णनासिकाधरनेत्रशिरःसु पृथक् पृथक् पूजयामीति सर्वाङ्गपूजां कुर्यात्। तथा सखीसखशङ्खचक्रगदापद्मासिधनुर्बाणहलमुसलादीन् तथा कौस्तुभवनमालाश्रीवत्सपीताम्बरनीलाम्बरवंशीवेत्रादीन् तथा तालाङ्कगरुडाङ्करथदारुकसुमतिसारथिगरुडकुमुदनन्दसुनन्दचण्डमहाबलकुमुदाक्षादीन् प्रणवपूर्वेण चतुर्थ्यन्तेन नमःसंयुक्तेन नाम्ना तथा विष्वक्सेनशिवविधिदुर्गाविनायकदिक्पालवरुणनवग्रहमातृकादीन् मन्त्रैः पूजयेत्।

ॐ नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥ २८

इति मन्त्रेण शतमाहुतीर्जुहुयात्।

देवं प्रदक्षिणीकृत्य महाभोगं निधाय च।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥ २९

स्तुति

जो चेतनास्वरूप हैं, सत् एवं असत्से परे हैं, जो नित्य हैं, जिनका विराट्रूप है, जो शान्तमूर्ति हैं, ऐश्वर्यस्वरूप हैं, सर्वत्र सम हैं, जिन्हें पाना अत्यन्त कठिन है तथा जिन्होंने अपने तेजसे मायाको सदा तिरस्कृत कर रखा है, उन आप परम ब्रह्मकी मैं वन्दना करता हूँ॥ २५॥

महामते! इस प्रकार इन मन्त्रोंद्वारा देवेश्वर भगवान्‌की पूजा करे। फिर श्रीविष्णुको प्रणाम करके यत्नपूर्वक उनके सर्वाङ्गका पूजन करना चाहिये। फिर—'**ॐ नमो ''' धीमहि**॥'—इस मन्त्रका उच्चारण करके प्राणायाम करे॥ २६-२७॥

तदनन्तर भगवान् विष्णु, मधुसूदन, वामन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अधोक्षज और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके लिये मेरा नमस्कार है। (यों नमस्कार करना चाहिये।) इसी प्रकार पैर, गुल्फ, जानु, ऊरु, कटि, उदर, पीठ, भुजा, कन्धे, कान, नाक, अधर, नेत्र और भगवान्‌के सिरमें मैं अलग-अलग पूजा करता हूँ—यों कहकर सर्वाङ्ग-पूजा करनी चाहिये। फिर सखी, सखा, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, असि, धनुष, बाण, हल, मुसल, कौस्तुभमणि, वनमाला, श्रीवत्स, पीताम्बर, नीलाम्बर, वंशी, बेंत आदि तथा तालध्वज एवं गरुडध्वजसे युक्त रथ, दारुक और सुमति सारथि, गरुड, कुमुद, नन्द, सुनन्द, चण्ड, महाबल, कुमुदाक्ष आदिके नामके साथ ॐकार लगाकर चतुर्थ्यन्तका प्रयोग करके '**नमः**' शब्द जोड़कर पूजन करे एवं विष्वक्सेन, शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, दिक्पाल, वरुण, नवग्रह और षोडश-मातृकाओंका आवाहन करे। तत्पश्चात् मन्त्रोंद्वारा इनका पूजन करे। '**ॐ नमो''' नमः**'—इस मन्त्रसे सौ बार आहुति देनी चाहिये॥ २८॥

फिर भगवान्‌की प्रदक्षिणा करके महाभोग निवेदित करे। तत्पश्चात् पृथ्वीपर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करके यह मन्त्र पढ़े—'**ध्येयं सदा०**' इत्यादि। जो निरन्तर

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥ ३०

ध्यान करनेयोग्य हैं, जिनके प्रभावसे अपमानित नहीं होना पड़ता, जो मनोरथको पूर्ण करनेवाले हैं, जो तीर्थोंके आधार हैं, शिव एवं ब्रह्माजीने जिनका स्तवन किया है, जो शरण देनेमें कुशल हैं, भृत्योंका दुःख दूर करना जिनका स्वभाव है, जो प्रणतजनोंका पालन करनेवाले तथा संसाररूपी समुद्रके लिये जहाज हैं, भगवान् पुरुषोत्तम! आपके उन चरण-कमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २९-३०॥

इति नत्वा हरिं राजन् पुनर्नीराजनं हरेः।
कारयेद्विधिवद्भक्तो हरिभक्तजनैः सह॥ ३१

घटीवाद्यरणद्घण्टाकांस्यवीणादिकीचकैः।
करतालमृदङ्गाद्यैः कीर्तनं कारयेद्बुधः॥ ३२

राजन्! इस प्रकार भक्त भगवान्‌को प्रणाम करके भगवद्भक्तोंके साथ विधिवत् पुनः आरती करे। उस समय विवेकी पुरुषको चाहिये कि घड़ी, घण्टा, वीणा, बाँसुरी, करताल और मृदङ्ग आदि बाजोंके साथ भगवान्‌का कीर्तन करे॥ ३१-३२॥

नृत्यन्ति श्रीहरेरग्रे भक्ता वै प्रेमविह्वलाः।
जयध्वनिसमायुक्ताः सत्कथागानतत्पराः॥ ३३

पुनः प्रभुं नमस्कृत्य मन्दिरे तपनोज्ज्वले।
शयनं कारयेत्सम्यक् श्रीकृष्णस्य महात्मनः॥ ३४

उस समय भगवद्भक्तजन प्रेममें विह्वल हुए भगवान्‌के सामने नाचते हैं, उनके जय-जयकारकी ध्वनि प्रकट करते रहते हैं और वे भगवान्‌की सुन्दर लीला-कथाका गान करने लगते हैं। तदनन्तर प्रभुको पुनः नमस्कार करके सूर्यके समान उज्ज्वल मन्दिरमें महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको भलीभाँति शयन कराये॥ ३३-३४॥

एवं करोति श्रीकृष्णसेवां यो लग्नमानसः।
प्रणमन्ति च तं राजन् देवताः स्वर्गसम्भवाः॥ ३५

सोऽपि राजेन्द्र नाकेऽपि पदं धृत्वा हरेर्जनः।
अन्ते याति परं धाम गोलोकं योगिदुर्लभम्॥ ३६

राजन्! इस प्रकार जो दत्तचित होकर भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करता है, उसे स्वर्गके रहनेवाले देवतालोग प्रणाम किया करते हैं। महाराज! वह श्रीहरिका भक्त भी मृत्युके अवसरपर स्वर्गमें पैर रखकर भगवान्‌के परमधाम गोलोकको, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, चला जाता है॥ ३५-३६॥

इति श्रीकृष्णसेवाया विधानं वर्णितं मया।
चतुःपदार्थदं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३७

यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवाका विधान है। मैंने इसका वर्णन कर दिया। यह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला है। अब तुम फिर क्या सुनना चाहते हो?॥ ३७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे व्यासोग्रसेनसंवादे श्रीकृष्णसेवाविधानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत व्यास-उग्रसेन-संवादमें 'श्रीकृष्णसेवाविधानवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

परमात्माका स्वरूप-निरूपण

उग्रसेन उवाच

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया श्रीकृष्णरूपिणा।
श्रीकृष्णपद्धतिः साक्षाच्छ्रुता वै विधिवन्मया॥ १

अहो लोका महामूढा लोभमोहमदान्विताः।
नाप्नुवन्ति हि वैराग्यं भजन्ति न हरिं क्वचित्॥ २

भगवन्नस्य जगतो मोहकारणमद्भुतम्।
कथं जातं वद विभो कथमेतन्निवर्तते॥ ३

राजा उग्रसेनने कहा—आप भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप हैं। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की। आपके श्रीमुखसे साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा-पद्धति विस्तारपूर्वक मैंने सुन ली। इससे मैं सफल-जीवन हो गया। अहो! प्राणियोंमें बड़ी मूर्खता भरी हुई है। वे लोभ, मोह और मदके कारण मतवाले हो गये हैं। इसीसे उन्हें विराग उत्पन्न नहीं होता और न कभी वे भगवान्का भजन ही करते हैं। भगवन्! जगत्की यह मोहिका शक्ति बड़ी अद्भुत है। प्रभो! यह मोह कैसे उत्पन्न हुआ और किस प्रकार इसकी निवृत्ति होगी, यह बतानेकी कृपा कीजिये॥ १—३॥

श्रीव्यास उवाच

यथाम्भसि प्राप्तमदो विधोः स्वत-
स्तत्प्रेक्षते केवलमेव वेगतः।
तथा हि बिम्बः परमस्य मायया
ममेत्यहं भावगते प्रवर्तते॥ ४

प्रधानकालाशयदेहजैर्गुणैः
कुर्वन् विकर्माणि जनो निबद्ध्यते।
काचेऽर्भकं सैकत एव जीवनं
गुणे च सर्पं प्रतनोति सोऽक्षिभिः॥ ५

श्रीव्यासजी बोले—जिस प्रकार जलमें कई चन्द्रमा दिखायी पड़ते हैं, जलके चञ्चल वेगसे वे दृष्टिगोचर होते हैं, किंतु वास्तवमें हैं कुछ नहीं, बिलकुल प्रतिबिम्बमात्र हैं, ठीक वैसे ही परम प्रभुकी प्रतिबिम्बरूपी यह माया फैली हुई है। उसीके प्रभावसे 'मेरा और मैं' का भाव उत्पन्न हो जानेपर संसार कायम हो जाता है। माया, काल, अन्तःकरण और देहसे गुणोंकी उत्पत्ति होती है। मनुष्य इनके द्वारा विपरीत कर्म करता हुआ बन्धनमें पड़ जाता है। इन्द्रियोंका ही यह प्रभाव है कि दर्पणमें बालक, बालूमें जल और रस्सीमें साँपका भान होने लगता है॥ ४-५॥

राजन् जगन्मोहमयं रजोमयं
तमोमयं सत्त्वमयं तथा क्वचित्।
मनोविलासं विकृतं च विभ्रमं
विद्ध्याशिवदं लोलमलातचक्रवत्॥ ६

इदं करिष्यामि करोम्यभूवं
ममेदमस्तीति च वेदमाब्रुवन्।
अहं सुखी दुःखयुतः सुहृज्जनो
लोकस्त्वहङ्कारविमोहितो मतः॥ ७

राजन्! यह जगत् मोहमय है। इसमें रजोगुण और तमोगुण कूट-कूटकर भरे हैं। कभी-कभी सत्त्वगुणका भी प्रादुर्भाव होता है। यह मनका विलास है, विकारमात्र है और भ्रमरूप है। अलातचक्रके समान यह शीघ्रतापूर्वक परिवर्तित होता रहता है—इस प्रकार जानो। 'मैंने यह कर दिया, यह करता हूँ और यह करूँगा; यह मेरा है, यह तेरा है; मैं सुखी हूँ, मैं दुःखमें पड़ गया; लोग मुझसे बिना कारण प्रेम करनेवाले हैं'—इस प्रकार मनुष्य कहता रहता है। मेरा तो यह मत है कि मनुष्य अहंकारके कारण सुध-बुध खो बैठा है॥ ६-७॥

उग्रसेन उवाच

वद मे कृपया ब्रह्मँल्लक्षणं परमात्मनः।
कतिधा कवयः कृष्णं वदन्ति जपवर्त्मनि॥ ८

श्रीव्यास उवाच

सनातनस्यात्र न मृत्युजन्मनी
न शोकमोहौ न जरायुवादयः।
अहंमदो व्याधियुतो भयं सुखं
शुचः क्षुधेच्छा न रतिर्न चाधयः॥ ९

आत्मा निरीहो ह्यतनुः स सर्वगो
नाहंकृतिः शुद्धबलो गुणाश्रयः।
स्वयं परो निष्कल आत्ममङ्गलो
ज्ञानात्मको यो विदितो मुनीश्वरैः॥ १०

जागर्ति योऽस्मिञ्छयनं गते सति
नायं जनो वेद स वेद तं हि तम्।
पश्यन्तमाद्यं पुरुषं हि यं जनो
न पश्यति स्वच्छमलं च तं भजे॥ ११

यथा नभोऽग्निः पवनो न सज्जते
घटेन काष्ठेन रजोभिरावृतः।
तथा पुमान् सर्वगुणैश्च निर्मलो
वर्णैर्यथा स्यात्स्फटिकोपमोज्ज्वलः॥ १२

व्यंग्येन वा लक्षणया च वाक्पथै-
रर्थैः पदस्फोटपरायणैः परम्।
न ज्ञायते तद्गुणिनोत्तमेन सद्
वाच्यं ततो ब्रह्म कुतस्तु लौकिकैः॥ १३

वदन्ति केचिद्भुवि कर्मकर्तृ यत्
कालं च केचित्परमेव शोभनम्।
केचिद्विचारं प्रवदन्ति यच्च तद्
ब्रह्मेति वेदान्तविदो वदन्ति हि॥ १४

यं न स्पृशन्तीह गुणा न कालजा
मायेन्द्रियं चित्तमनो न बुद्धयः।
महन्न वेदो वदतीति तत्परं
विशन्ति सर्वेऽनलविस्फुलिङ्गवत्॥ १५

राजा उग्रसेनने पूछा—ब्रह्मन्! कृपापूर्वक मुझसे परमात्माके लक्षणोंका वर्णन कीजिये। साथ ही यह भी बताइये कि विद्वानोंने पूजा-पद्धतिमें भगवान् श्रीकृष्णके लक्षण कितने प्रकारके बतलाये हैं?॥ ८॥

श्रीव्यासजी बोले—सनातन प्रभु जन्म और मरणसे रहित हैं। शोक और मोह उनके पास भी नहीं फटकते। युवावस्था तथा बुढ़ापा आदिका कोई भेद उनमें नहीं है। अहंकार-मद, दुःख-सुख, भय, रोग, क्षुधा, पिपासा, कामना, रति और मानसिक व्याधि—इनके वे अविषय हैं। मुनीश्वरोंने जिस आत्माको पहचाना है, वह निरीह है, बिना देहका है, सर्वत्र उसकी गति है, वह अहंकारशून्य है, शुद्धबल है, उसमें सभी गुण रहते हैं, वह स्वतः सबसे परे है, निष्कल एवं स्वयं मङ्गलरूप है और ज्ञानका साकार विग्रह है॥ ९-१०॥

वह आत्मा इस जगत्के सो जानेपर भी जागता रहता है। यह देहधारी मनुष्य उसे नहीं जानता, किंतु वह सबको जानता रहता है। वही आद्यपुरुष है। वह सबको देखता है; किंतु यह प्राणी उसका साक्षात्कार नहीं कर पाता। उस मलसे रहित आत्माकी मैं उपासना करता हूँ॥ ११॥

जिस प्रकार घटसे आकाश, काष्ठसे अग्नि एवं धूलसे पवन व्याप्त नहीं होता तथा रंगोंसे स्वच्छ स्फटिकमणिमें किसी प्रकारकी विरूपता नहीं आती, ठीक वैसे ही यह सनातन पुरुष गुणोंके रहते हुए भी उनसे लिपायमान नहीं होता। वह 'सत्' शब्दसे वाच्य परमात्मा लक्षणा, व्यञ्जना, वाक्चातुरीयुक्त अर्थों, पदस्फोट-परायण शब्दों तथा सर्वोत्तम गुणियोंके द्वारा भी ज्ञानका विषय नहीं होता; फिर लौकिक प्राणी तो उसे जान ही कैसे सकता है?। भूमण्डलपर उसे कितने लोग 'कर्ता', कितने 'कर्म', कितने 'काल', कितने 'परम सुन्दर' तथा कितने 'विचार' कहते हैं। परंतु वेदान्तज्ञानी तो उसे 'ब्रह्म' ही कहते हैं॥ १२—१४॥

उस परब्रह्मको कालसे उत्पन्न होनेवाले गुण स्पर्श नहीं करते। माया, इन्द्रिय, चित्त, मन, बुद्धि और महत्तत्त्व भी उसका ग्रहण नहीं कर सकते, वेद वर्णन नहीं कर पाता तथा अग्निमें चिनगारीकी भाँति उसमें सभी प्राणी विलीन हो जाते हैं। वही परमात्मा सर्वोपरि विराजमान है॥ १५॥

हिरण्यगर्भः परमात्मतत्त्वं
यद्वासुदेवं प्रवदन्ति सन्तः।
विचार्य तद्देववरस्वरूपं
विसृज्य मोहं विचरेदसङ्गः॥ १६

यथेन्दुरेको जलपात्रवृन्दगो
यथाग्निरेको विदितः समिच्चये।
तथा परात्मा भगवाननेकवि-
दन्तर्बहिः स्यात्स्वकृतेषु देहिषु॥ १७

सूर्योदये नैशतमो विलीयते
प्रदृश्यते वस्तु गृहे यथा जनैः।
ज्ञानोदयेऽज्ञानतमः प्रलीयते
सम्प्राप्यते ब्रह्म परं तनौ तथा॥ १८

यथेन्द्रियाणां च पृथक्प्रवृत्तिभि-
र्नानेव तेऽर्थोऽतिगुणाश्रयः परः।
एकं ह्यनन्तस्य परस्य धाम तत्
तथा मुनीनां किल शास्त्रधर्मिभिः॥ १९

साक्षाद्धरिर्यः पुरुषोत्तमोत्तमः
श्रीकृष्णचन्द्रो निजभक्तवत्सलः।
कैवल्यनाथो नृगमुज्जहार तं
पूर्णं स्वयं ब्रह्म परं नमाम्यहम्॥ २०

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा तमनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणः।
पश्यतां यादवानां च तत्रैवान्तरधीयत॥ २१

इदं मया ते कथितं हरिभक्तिविवर्धनम्।
विज्ञानखण्डं विशदं श्रोतॄणां मोक्षदं स्मृतम्॥ २२

गर्गाचार्येण कथिता नाम्नेयं गर्गसंहिता।
सर्वदोषहरा पुण्या चतुर्वर्गफलप्रदा॥ २३

जिन्हें संत-जन हिरण्यगर्भ, परमात्मतत्त्व और भगवान् वासुदेव कहते हैं, उन्हीं श्रेष्ठतम देवके स्वरूपका विचार करके मोह छोड़कर आसक्तिरहित होकर विचरे॥ १६॥

जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा अनेक जलपात्रोंमें अलग-अलग दीखता है तथा एक ही अग्नि अनन्त काष्ठोंमें वर्तमान है, उसी प्रकार एक ही परम प्रभु भगवान् अपने द्वारा बनाये हुए विभिन्न जीवोंके भीतर एवं बाहर विराज रहे हैं॥ १७॥

जिस प्रकार सूर्योदय हो जानेपर रात्रिसम्बन्धी अन्धकार नष्ट हो जाता है और घरकी वस्तुएँ मनुष्योंको दृष्टिगोचर होने लगती हैं, ठीक वैसे ही ज्ञानका प्रादुर्भाव होते ही अज्ञानरूपी अन्धकार भाग जाता है। फिर तो शरीरमें ही मनुष्यको ब्रह्मकी उपलब्धि हो जाती है॥ १८॥

जैसे इन्द्रियोंकी प्रवृत्तियाँ अलग-अलग हैं, उनके भेदसे गुणोंके एक ही विषयमें नाना अर्थकी प्रतीति होती है, उसी प्रकार अनन्त परम प्रभु भगवान्का तेजोमय स्वरूप एक ही है, जबकि मुनियोंके शास्त्र अनेक हैं, जिनके कारण उसका भेदपूर्वक वर्णन किया गया है॥ १९॥

जो पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् श्रीहरि हैं, अपने भक्तोंपर कृपा करना जिनका स्वभाव बन गया है, जो कैवल्यनाथ हैं तथा जिन्होंने राजा नृगका उद्धार किया है, उन स्वयं पूर्णब्रह्म परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर भगवान् वेदव्यासजीने राजा उग्रसेनसे जानेके लिये स्वीकृति ली। तत्पश्चात् सम्पूर्ण यादवोंके देखते-देखते वे वहीं अन्तर्धान हो गये॥ २१॥

मैंने भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति बढ़ानेवाला यह 'विज्ञानखण्ड' तुम्हें कह सुनाया। इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। इसे श्रोतागणोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला कहा गया है। गर्गाचार्यने इसका वर्णन किया है। अतएव 'गर्गसंहिता' नामसे इस ग्रन्थकी प्रसिद्धि हुई है। यह संहिता सम्पूर्ण दोषोंको हरनेवाली, परम पवित्र तथा चारों प्रकारके पुरुषार्थोंको देनेवाली है॥ २२-२३॥

गोलोकवृन्दावनयोर्गिरीश्वर-
माधुर्ययोः श्रीमथुरापुरस्य च।
द्वारावतीविश्वजितोर्हलायुध-
विज्ञानयोः खण्डचयाः पृथङ् नव॥ २४
श्रीकृष्णमूर्तिः परमै रसैर्यथा
यथा च भूमिर्भरतादिभिर्भृशम्।
तथा हि शश्वन्मुनिगर्गसंहिता
विभाति खण्डैर्नवभिर्नृपेश्वर॥ २५
यथा हि रत्नैर्नवभिर्विराजते
देवाङ्गुलौ तप्तसुवर्णमुद्रिका।
तथा चतुर्वर्गफलप्रदे विधौ
सर्गैर्विसर्गैर्मुनिगर्गसंहिता॥ २६
नरेन्द्र शश्वन्मुनिसंहितां ये
शृण्वन्ति भक्त्या हि जनाः पुनीताः।
इहैव सौख्यं परमाप्नुवन्त-
स्ततस्तु गोलोकपुरं प्रयान्ति॥ २७
कृत्वाथ पीताम्बरवन्दनं त्विमां
शृणोति वन्ध्या बहुलालसा भृशम्।
ह्रस्वेन कालेन गृहाङ्गणे शिशून्
सञ्चारयन्ती विचरत्यहर्निशम्॥ २८
रोगी पुमान् रोगगणात्प्रमुच्यते
भीतो भयाद्बन्धगतश्च बन्धनात्।
श्रुत्वा कथां निर्धन एति वैभवं
मूर्खो भवेत्पण्डित एव सत्वरम्॥ २९
यः कार्तिके मासि नृपः श्रिया युतः
शृणोति शश्वन् मुनिगर्गसंहिताम्।
स चक्रवर्ती भविता न संशयो
नरेन्द्रहस्तोद्धृतचारुपादुकः॥ ३०
मनोजवैः सिन्धुतुरङ्गमैर्नवै-
र्द्विपैश्च विन्ध्याचलसम्भवैः परैः।
वैतालिकोद्गीतयशा महीतले
निषेवितो वारवधूजनैः सह॥ ३१
सुवर्णशृङ्गं वरताम्रपृष्ठं
सभूषणं रौप्यखुरं सवत्सम्।
ददाति खण्डं प्रति गोद्वयं यः
प्राप्नोति सर्वं हि मनोरथं सः॥ ३२
निष्कारणोऽसौ शृणुते विदेहराद्
सर्वामिमां वै मुनिगर्गसंहिताम्।

[अबतक] गोलोक, वृन्दावन, गिरिराज, माधुर्य, मथुरा, द्वारका, विश्वजित्, बलभद्र तथा विज्ञान—इन नौ खण्डोंमें इसका वर्णन हुआ है। महाराज! जिस प्रकार नौ उत्तम रसोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका श्रीविग्रह विभूषित है तथा भरत आदि नौ खण्डोंसे पृथ्वी अत्यन्त सुशोभित है, ठीक वैसे ही इन नौ खण्डोंद्वारा मुनिप्रणीत यह 'गर्गसंहिता' निरन्तर शोभा पा रही है॥ २४-२५॥

जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी अँगुलियोंमें तपाये हुए सुवर्णकी मुद्रिका नौ रत्नोंसे अलंकृत है, वैसे ही चतुर्वर्गफलको देनेवालीके रूपमें यह गर्गसंहिता सर्ग और विसर्ग आदि नौ अङ्गोंसे सुशोभित है। महाराज! जो पवित्र पुरुष भक्तिपूर्वक निरन्तर मुनिप्रणीत गर्गसंहिताका श्रवण करते हैं, उन्हें संसारमें प्रचुर सुख मिलता है और अन्तमें वे गोलोकधामको चले जाते हैं॥ २६-२७॥

यदि वन्ध्या स्त्री भी अनेक पुत्रोंकी उत्कट लालसासे युक्त हो पीताम्बरधर भगवान् श्रीकृष्णकी वन्दना करके इस संहिताका श्रवण करे तो वह शीघ्र ही अपने घरके आँगनमें बहुत-से बालकोंको घुमाती हुई निरन्तर उनके साथ-साथ घूमने लगती है॥ २८॥

इस कथाको सुनकर रोगी मनुष्य रोगोंसे, भयभीत पुरुष भयसे तथा बन्धनप्राप्त पुरुष बन्धनसे मुक्त हो जाता है। निर्धनको विपुल सम्पत्ति मिल जाती है और मूर्ख तुरंत ही पण्डित हो सकता है॥ २९॥

जो धनाढ्य राजा कार्तिकके महीनेमें मुनिप्रणीत 'गर्गसंहिता' का श्रवण करता है, निस्संदेह वह चक्रवर्ती राजा हो जायगा और बड़े-बड़े राजालोग उसकी चरणपादुकाको उठाकर रखेंगे। वह मनकी चालके समान तेज चलनेवाले सिन्धुदेशवासी घोड़ों और विन्ध्यगिरिपर उत्पन्न होनेवाले विशाल हाथियोंसे सम्पन्न होगा। वैतालिक आदि उसका यशोगान करेंगे और वारवधूजन उसकी सेवा करेंगी॥ ३०-३१॥

जिसके सोनेके सींग हों, ताँबेकी पीठ हो, चाँदीके खुर हों और जिसे आभूषणोंसे सजाया गया हो—जो प्रत्येक खण्डको सुननेके बाद ऐसी दो गौओंका दान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। जनकजी! वही यदि निष्कामभावसे समूची 'गर्गसंहिता' का श्रवण

हृत्पुण्डरीके वसतेऽस्य सर्वदा
श्रीकृष्णचन्द्रो निजभक्तवत्सलः॥ ३३

श्रीगर्ग उवाच

इत्युक्त्वा तमनुज्ञाप्य नारदो देवदर्शनः।
सर्वेषां पश्यतां ब्रह्मन्नम्बरं गतवान् मुनिः॥ ३४

बहुलाश्वो महाराजः श्रीकृष्णे लग्नमानसः।
सर्वतस्तु कृतार्थोऽभूच्छ्रुत्वेमां संहितां हरेः॥ ३५

तव प्रश्नोपरि ब्रह्मन् कथिता संहिता मया।
श्रुता वा पाठिता कैश्चित्कोटियज्ञफलप्रदा॥ ३६

श्रीशौनक उवाच

धन्योऽहं च कृतार्थोऽहं त्वत्सङ्गेन महामुने।
प्राप्नोमि परमां भक्तिं श्रीकृष्णप्रेमवर्धिनीम्॥ ३७

विशदहृदि मुनीनां मानसे राजहंसः
सकलसुखविराजन्नादमाधुर्यवंशः।
जगति विकलदंशः शूरवंशावतंसः
करबलहतकंसः पातु वः सत्प्रशंसः॥ ३८

इत्युक्त्वा तान्मुनीन् सर्वान् गर्गाचार्यो महामुनिः।
अनुज्ञाप्य प्रसन्नात्मा गन्तुमभ्युद्यतोऽभवत्॥ ३९

नवसर्गविसर्गाढ्यां स्वर्गभृद्गर्गसंहिताम्।
चतुर्वर्गप्रदामुक्त्वा गर्गो गर्गाचलं ययौ॥ ४०

शरद्विकचपङ्कजश्रियमतीव विद्वेषकं
मिलिन्दमुनिलेढितं कुलिशकञ्जचिह्नावृतम्।
स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्ततापत्रयं
चलद्द्युति पदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः॥ ४१

करता है तो भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसके हृदय-कमलपर सदा निवास करने लगते हैं॥ ३२-३३॥

श्रीगर्गजी बोले—ब्रह्मन्! ऐसा कहकर दिव्यदर्शी नारदमुनि राजासे अनुमति लेकर सबके देखते-देखते आकाशमें चले गये। तब महाराज बहुलाश्वने श्रीहरिकी इस संहिताको सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये हुए अपनेको भलीभाँति कृतकृत्य माना। ब्रह्मन्! तुम्हारे प्रश्न करनेपर मैंने यह संहिता कही है। किन्हींके द्वारा सुनने अथवा पाठ करानेसे भी यह करोड़ यज्ञोंका फल देनेवाली होती है॥ ३४—३६॥

श्रीशौनकजीने कहा—मुनिवर! आपका सङ्ग मिलनेपर मैं धन्य एवं कृतार्थ हो गया। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णमें प्रेम बढ़ानेवाली यह उत्तम भक्ति भी मुझे प्राप्त हो गयी। जो मुनियोंके विशाल हृदयरूपी मानसरोवरमें विचरनेवाले राजहंस हैं, सम्पूर्ण आनन्दोंसे पूर्ण मधुरनादिनी जिनकी बाँसुरी है, जिनकी कला संसारमें फैली हुई है, जिन्होंने शूरसेनके वंशमें अवतार धारण किया है तथा संत पुरुषोंने जिनकी प्रशंसा गायी है, वे अपने बाहुबलसे कंसका वध करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा करें। इस प्रकार मुनिवर गर्गाचार्यने सम्पूर्ण मुनियोंको आशीर्वाद दिया। साथ ही उनसे आज्ञा माँगी और प्रसन्नमन हो, जानेके लिये तैयार हो गये। फिर सर्ग-विसर्ग आदि नौ अङ्गोंसे युक्त 'गर्गसंहिता'का, जो स्वर्गप्रदा तथा चारों पदार्थोंको देनेमें कुशल है, प्रतिपादन करके गर्गजी गर्गाचलपर चले गये॥ ३७—४०॥

मैं भगवान् श्रीराधापतिके उन युगल चरणकमलोंको अपने हृदयमें स्थापित करता हूँ, जो शरद्-ऋतुके विकसित कमलोंकी शोभा धारण करनेके कारण उनके अत्यन्त द्वेषपात्र हो रहे हैं, मुनिरूपी भ्रमर जिनका निरन्तर सेवन करते हैं, जो वज्र और कमलके चिह्नोंसे आवृत हैं, जिनपर सोनेके नूपुर चमक रहे हैं, जिन्होंने भक्तोंके तापका सदा ही निवारण किया है तथा जिनकी दिव्य ज्योति छिटक रही है॥ ४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विज्ञानखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादान्तर्गतव्यासोग्रसेनसंवादे परब्रह्मनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें व्यास-उग्रसेन-संवादके अन्तर्गत 'परमात्माका स्वरूपनिरूपण नामक' दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

॥ विज्ञानखण्ड सम्पूर्ण ॥

श्रीगर्ग-संहिता

[दशम खण्ड]

अश्वमेधखण्ड

सखियोंके साथ श्रीकृष्णका स्वागत करतीं श्रीराधाजी

यादवसेनाका विमानद्वारा उपलंकामें पहुँचना [अश्वमेधख० अ० १८] अनिरुद्धका भीषणपर प्रहार [अश्वमेधख० अ० २०]

हाथीको चबाता हुआ बक [अश्वमेधख० अ० १९] भीषणद्वारा यज्ञीय अश्वका समर्पण [अश्वमेधख० अ० २०]

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीदामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

अश्वमेधखण्ड

पहला अध्याय

अश्वमेध-कथाका उपक्रम; गर्ग-वज्रनाभ-संवाद

मङ्गलाचरणम्

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ १

नमः श्रीकृष्णचन्द्राय नमः सङ्कर्षणाय च।
नमः प्रद्युम्नदेवायानिरुद्धाय नमो नमः॥ २

श्रीगर्ग उवाच

सभायामागतं वीक्ष्य रोमहर्षणनन्दनम्।
शौनकः परिपप्रच्छ प्रणिपत्याभिवाद्य च॥ १

शौनक उवाच

त्वन्मुखात्सर्वशास्त्राणि पुराणानि महामते।
नाना हरिचरित्राणि श्रुतानि विमलानि वै॥ २

पुरा गर्गेण कथिता ममाग्रे गर्गसंहिता।
राधामाधवयोर्यस्यां महिमा बहु वर्णितः॥ ३

अद्याहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तः कृष्णकथां पुनः।
सर्वदुःखहरां सौते कथयस्व विचार्य च॥ ४

श्रीगर्ग उवाच

अष्टाशीतिसहस्रैश्च मुनिभी रौमहर्षणिः।
पृष्टः प्रोवाच कृष्णस्य स्मरन् पादाम्बुजं हरेः॥ ५

मंगलाचरण

सर्वव्यापी भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, उनकी लीलाकथाको भाषामें अभिव्यक्त करनेवाली वाग्देवता सरस्वती तथा भगवदीय लीलाओंका विस्तारसे वर्णन करनेवाले मुनिवर वेदव्यासको प्रणाम करके जय (इतिहास-पुराण आदि)-का उच्चारण करे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार, संकर्षणको भी नमस्कार, प्रद्युम्नदेवको नमस्कार तथा अनिरुद्धको भी बारंबार नमस्कार है॥ १-२॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—एक समयकी बात है, ऋषियोंकी सभामें रोमहर्षण सूतके पुत्र उग्रश्रवाजी पधारे। उन्हें आया हुआ देख शौनकजीने उन्हें प्रणाम किया और (कुशल-प्रश्नके अनन्तर) अभिवादनपूर्वक इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

शौनक बोले—महामते! आपके मुखसे मैंने सम्पूर्ण शास्त्र, पुराण तथा श्रीहरिके नाना प्रकारके निर्मल लीला-चरित्र सुने। पूर्वकालमें गर्गाचार्यजीने मेरे सामने गर्ग-संहिता सुनायी थी, जिसमें श्रीराधा और माधवकी महिमाका अनेक प्रकारसे और अधिकाधिक वर्णन हुआ है। सूतनन्दन! आज मैं पुनः आपसे सब दुःखोंको हर लेनेवाली श्रीकृष्णकी कथा सुनना चाहता हूँ। आप सोच-विचारकर वह कथा मुझसे कहिये॥ २—४॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—[शौनकजीके साथ] अठासी हजार ऋषियोंने भी जब यही जिज्ञासा व्यक्त की, तब रोमहर्षणकुमार सूतने भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका स्मरण करके इस प्रकार कहा— ॥ ५ ॥

सौतिरुवाच

अहो शौनक धन्योऽसि यस्य ते मतिरीदृशी।
कृष्णचन्द्रपदद्वन्द्वमकरन्दस्पृहावती ॥ ६

सङ्गमं वैष्णवानां च देवाः श्रेष्ठं वदन्ति हि।
पापक्षयकरी यस्माच्छ्रीकृष्णस्य कथा भवेत्॥ ७

अनन्तं कृष्णचन्द्रस्य चरितं कल्मषापहम्।
किञ्चिज्जानाति ब्रह्मा च तथा किञ्चिदुमापतिः॥ ८

मशको मादृशः कोऽपि वासुदेवकथार्णवे।
मोहिता न वदिष्यन्ति यत्र ब्रह्मादयः सुराः॥ ९

श्रीगर्गो यादवेन्द्रस्य ह्युग्रसेनस्य भूपतेः।
अश्वमेधं क्रतुवरं दृष्ट्वा प्रत्याह चैकदा॥ १०

धन्यो राजा यादवेन्द्रो यश्चकार क्रतूत्तमम्।
श्रीकृष्णस्याज्ञया पुर्यां तेनाहं विस्मयं गतः॥ ११

मया वै संहितायां च कथाः कृष्णस्य वर्णिताः।
परिपूर्णतमस्यापि यथा दृष्टा यथा श्रुताः॥ १२

तस्यां वै वाजिमेधस्य कथा न कथिता मया।
अद्याहं कथयिष्यामि हयमेधकथां पुनः॥ १३

यस्याः श्रवणमात्रेण नराणां हि कलौ युगे।
भुक्तिं मुक्तिं च भगवाञ्छीघ्रमेव प्रयच्छति॥ १४

इत्युक्त्वा श्रीमुनिर्गर्गः कृष्णभक्त्या च शौनक।
उग्रसेनस्य यज्ञस्य चरित्रं स ह्यचीक्लृपत्॥ १५

हयमेधचरित्रस्य सुमेरुर्नाम सुन्दरम्।
धृत्वा गर्गस्तु भगवान् कृतकृत्योऽभवन्मुने॥ १६

कृत्वा कथामष्टदिनेन श्रीमुनि-
र्यदोर्गुरुर्बुद्धिमतां वरः परः।

सौति बोले—अहो शौनकजी! आप धन्य हैं, जिनकी बुद्धि इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रके युगल-चरणारविन्दोंका मकरन्दपान करनेके लिये लालायित है। वैष्णवजनोंका समागम प्राप्त हो, इसे देवतालोग श्रेष्ठ बताते हैं; क्योंकि वैष्णवोंके सङ्गसे भगवान् श्रीकृष्णकी वह कथा सुननेको मिलती है, जो समस्त पापोंका विनाश करनेवाली है॥ ६-७॥

श्रीकृष्णचन्द्रका अनन्त चरित्र समस्त कल्मषोंका निवारण करनेवाला है। उसको थोड़ा-थोड़ा ब्रह्माजी जानते हैं और थोड़ा-ही-थोड़ा भगवान् उमावल्लभ शिव। मेरे-जैसा कोई मच्छर उसे क्या जान सकेगा? भगवान् वासुदेवकी लीला-कथा एक समुद्र है, जिसमें डूबकर मोहित ब्रह्मा आदि देवता भी कुछ कह नहीं सकेंगे। (फिर मुझ-जैसा मनुष्य क्या कह सकता है?)॥ ८-९॥

यादवराज भूपालशिरोमणि उग्रसेनके यज्ञप्रवर अश्वमेधका अनुष्ठान देखकर लौटे हुए गर्गाचार्यने एक दिन अपने मनका उद्गार इस प्रकार प्रकट किया—'यादवेश्वर! राजा उग्रसेन धन्य हैं, जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे द्वारकापुरीमें क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेधका सम्पादन किया। उस यज्ञको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है॥ १०-११॥

मैंने अपनी संहितामें परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्यक्ष देखी-सुनी लीला-कथाओंका ठीक वैसा ही वर्णन किया है। उस संहितामें मैंने अश्वमेध-यज्ञकी कथाका उल्लेख नहीं किया है, अतः अब पुनः उस अश्वमेधकी ही कथा कहूँगा। कलियुगमें उस कथाके श्रवणमात्रसे भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्योंको शीघ्र ही भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं'॥ १२—१४॥

शौनक! ऐसा कहकर श्रीगर्गमुनिने श्रीकृष्णभक्ति-से प्रेरित हो उग्रसेनके अश्वमेध-यज्ञकी कथा कही। 'अश्वमेधचरित्र' का उन्होंने एक सुन्दर नाम रख दिया—'सुमेरु।' मुने! ऐसा करके भगवान् गर्गाचार्य कृतकृत्य हो गये॥ १५-१६॥

यादवकुलके परम गुरु तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीगर्गमुनिने आठ दिनोंतक अश्वमेध-यज्ञकी कथा

अथाययौ वै मथुरां हरेः पुरीं
वज्रं नृपेन्द्रं च निरीक्षितुं खलु॥ १७

अम्बरादागतं तत्र गर्गं ज्ञानवतां वरम्।
वीक्ष्योत्थाय नमश्चक्रे वज्रनाभो द्विजैः सह॥ १८

स्वर्णसिंहासनं दत्वावनिज्य तत्पदाम्बुजे।
अर्चयित्वा पुष्पस्त्रग्भिर्मिष्टान्नं च न्यवेदयत्॥ १९

तत्पादसलिलं नीत्वा शीर्षे धृत्वा कृताञ्जलिः।
भूत्वा श्रीवज्रनाभस्तु श्यामः पङ्कजलोचनः॥ २०

पुष्टदेहो बृहद्बाहुर्वीरः षोडशवार्षिकः।
इति होवाच स्वगुरुं शतसिंहसमोद्भटः॥ २१

कही; फिर वे नरेश्वर वज्रसे मिलनेके लिये श्रीहरिकी मथुरापुरीमें आये। ज्ञानिशिरोमणि गर्गमुनिको वहाँ आकाशसे उतरा देख वज्रनाभने द्विजोंके साथ उठकर उन्हें नमस्कार किया॥ १७-१८॥

बैठनेके लिये सोनेका सिंहासन देकर उन्होंने गुरुजीके दोनों चरण-कमल पखारे और फूल-मालाओंसे मुनिका पूजन करके उन्हें मिष्टान्न निवेदन किया। सोलह वर्षकी अवस्था और सुपुष्ट शरीरवाले विशालबाहु श्यामसुन्दर कमलनयन तथा सौ सिंहोंके समान उद्भट शक्तिशाली वज्रनाभने गुरुके चरणोदकको लेकर सिरपर रखा और दोनों हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा— ॥१९—२१॥

वज्रनाभ उवाच

नमस्तुभ्यं स्वागतं ते ब्रह्मन् किं करवाम ते।
मन्ये त्वां भगवद्रूपं ब्रह्मर्षीणां वरं परम्॥ २२

गुरुर्विधिर्गुरू रुद्रो गुरुरेव बृहस्पतिः।
गुरुर्नारायणः साक्षात्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ २३

नराणां च मुनिश्रेष्ठ दर्शनं तव दुर्लभम्।
अस्माकं नितरां देव विषयासक्तचेतसाम्॥ २४

गर्गाचार्य कुलाचार्य तेजस्विन् योगभास्कर।
त्वद्दर्शनादपि वयं पाविताः सकुटुम्बकाः॥ २५

वज्रनाभने कहा—ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। आपका स्वागत है। हम आपकी क्या सेवा करें? मैं आपको भगवत्स्वरूप मानता हूँ। आप ब्रह्मर्षियोंमें परम श्रेष्ठ हैं। गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु रुद्र हैं, गुरु ही बृहस्पति हैं तथा गुरुदेव साक्षात् नारायण हैं; उन श्रीगुरुको नमस्कार है॥ २२-२३॥

मुनिश्रेष्ठ! मनुष्योंके लिये आपका दर्शन दुर्लभ है। देव! विशेषतः हम-जैसे विषयासक्त चित्तवाले लोगोंके लिये तो वह अत्यन्त दुर्लभ है। गर्गाचार्य! मेरे कुलके आचार्य! तेजस्विन्! योगभास्कर! आपके दर्शनमात्रसे हम कुटुम्बसहित पवित्र हो गये॥ २४-२५॥

श्रुत्वा यदूनामृषभस्य वाक्यं
मुनीन्द्रवर्यस्तु महान् महात्मा।
स्मरन् हरेः श्रीचरणारविन्दं
मुदा नृपेन्द्रं निजगाद सद्यः॥ २६

युवराज महाराज यदुवंशशिरोमणे।
त्वया साधु कृतं सर्वं पालिताः पृथिवीजनाः॥ २७

स्थापितश्च त्वया वत्स धर्मो वै पृथिवीतले।
विष्णुरातश्च ते मित्रं नृपाश्चान्ये वशाः स्मृताः॥ २८

धन्यस्त्वं राजशार्दूल धन्या ते मथुरा पुरी।
धन्याश्च ते प्रजाः सर्वा धन्या वै व्रजभूश्च ते॥ २९

भुङ्क्ष्व भोगान् भजन् कृष्णं बलं प्रद्युम्नमेव च।
अनिरुद्धं च निःशङ्को भूत्वा राज्यं कुरु प्रभो॥ ३०

यदुकुलतिलक राजा वज्रनाभका वचन सुनकर मुनीन्द्रवर्य महान् महात्माने श्रीहरिके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए तत्काल नृपेश्वर वज्रनाभसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'युवराज! महाराज! यदुवंशशिरोमणे! तुमने सब सत्कर्म ही किया है; पृथ्वीपर रहनेवाले सब लोगोंका पालन किया है॥ २६-२७॥

वत्स! तुमने भूतलपर धर्मको स्थापित किया है। विष्णुरात (परीक्षित्) तुम्हारे मित्र होंगे तथा अन्य नरेश भी तुम्हारे वशमें रहेंगे। नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, तुम्हारी मथुरापुरी धन्य है, तुम्हारी सारी प्रजाएँ धन्य हैं तथा तुम्हारी व्रजभूमि धन्य है। तुम श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धका भजन करते हुए उत्तम भोग भोगो। नरेश्वर! निःशंक होकर राज्य करो'॥ २८—३०॥

सूत उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य गर्गस्य नृपसत्तमः।
सङ्कर्षणं च श्रीकृष्णं पितरं च पितामहम्॥ ३१

विरहेण स्मरन् राजा चाश्रुपूर्णमुखोऽभवत्।
तं नृपं दुःखितं दृष्ट्वा स्थितं भूमावधोमुखम्॥ ३२

गर्गस्तु विस्मितः प्राह दुःखं प्रशमयन्निव।

गर्ग उवाच

कस्माद्रोदिषि राजेन्द्र भयं किं ते मयि स्थिते॥ ३३

कारणं स्वस्य दुःखस्य वद सर्वं ममाग्रतः।
इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा न प्राह दुःखितः॥ ३४

पुनः पृष्टश्च गुरुणा प्राह गद्गदया गिरा।

राजोवाच

मां त्यक्त्वा यादवाः सर्वे कृष्णसङ्कर्षणादयः॥ ३५

गता देव परं लोकं तेनाहं दुःखितोऽभवम्।
स्वाम्यमात्यसुहृद्राष्ट्रकोशदुर्गबलानि च।
एकाकिनश्च मे ब्रह्मन्नेते प्रीतिकरा न हि॥ ३६

मया चरित्रं कृष्णस्य न दृष्टं न श्रुतं वद।
दृष्टो यादवसंहारः तस्माद् दुःखं न याति मे॥ ३७

चतुर्व्यूहेन हरिणा या पुरी शोभिता पुरा।
सापि मग्ना समुद्रे तु कृष्णो भक्तेः परं गतः॥ ३८

कस्य हेतोः किमर्थं च जीवामि शिष्यवत्सल।
अद्य यास्यामि गहनं राज्यं कर्तुं न मे मनः॥ ३९

सूत उवाच

ततो मुनीनामृषभो महात्मा
श्रुत्वा गिरं यादवसत्तमस्य।
संश्लाघ्य दुःखं शमयन् हि तुष्टो
गर्गोऽब्रवीद्भूपतिवज्रनाभम्॥ ४०

उग्रश्रवा सूतजी कहते हैं—गर्गजीकी यह बात सुनकर नृपश्रेष्ठ राजा वज्रनाभ श्रीकृष्ण, संकर्षण, पितामह प्रद्युम्न तथा पिता अनिरुद्धका विरहावस्थामें स्मरण करके गद्गदकण्ठ हो गये। उनका मुख आँसुओंकी धारासे परिपूर्ण हो गया। गर्गने देखा, राजा वज्रनाभ दुखी हो नीचेकी ओर मुख किये भूमिपर खड़े हैं। यह देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उनका दुःख शान्त करते हुए-से बोले॥ ३१—३२ १/२॥

गर्गने पूछा—राजेन्द्र! क्यों रो रहे हो? मेरे रहते तुम्हें क्या भय है? तुम अपने दुःखका समस्त कारण मेरे सामने कहो॥ ३३ १/२॥

उनकी यह बात सुनकर भी राजा दुःखमग्न होनेके कारण कुछ बोल न सके। जब गुरुने पुनः पूछा तो वे गद्गदवाणीमें इस प्रकार बोले॥ ३४ १/२॥

राजाने कहा—देव! श्रीकृष्ण-संकर्षण आदि समस्त यादव मुझे यहाँ छोड़ परलोकमें चले गये, यह सोचकर ही मैं दुखी हो गया। ब्रह्मन्! स्वामी, अमात्य, मित्र, राष्ट्र (जनपद), कोष, दुर्ग और सेना—राजाके ये सातों अङ्ग मुझ एकाकीके लिये प्रीतिकारक नहीं होते हैं॥ ३५-३६॥

मैंने भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र न तो देखा है और न किसीसे सुना ही है; आप वह चरित्र मुझसे कहिये। मैंने अपनी आँखोंसे तो केवल यादवोंका संहार ही देखा है, अतः मेरा दुःख दूर नहीं हो रहा है। चतुर्व्यूह-रूपधारी श्रीहरिने पहले जिस पुरीको सुशोभित किया था, वह भी समुद्रमें डूब गयी और भगवान् श्रीकृष्ण भी भक्तिके परमधाम गोलोकको चले गये॥ ३७-३८॥

शिष्यवत्सल गुरुदेव! आप ही बताइये, अब मैं किसके लिये जीवित रहूँ? आज ही वनको जाता हूँ। मेरे मनमें राज्य करनेकी इच्छा नहीं है॥ ३९॥

सूतजी कहते हैं—यदुकुलशिरोमणि वज्रनाभ-की यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ महात्मा गर्गने उनकी प्रशंसा की और उनका दुःख शान्त करते हुए-से वे संतुष्ट गर्गमुनि राजा वज्रनाभसे बोले—॥ ४०॥

गर्ग उवाच

वृष्णिप्रवर मद्वाक्यं शृणु शोकविनाशनम्।
सर्वपापहरं पुण्यं सावधानतया शुभम्॥ ४१

यो राजते कुशस्थल्यां कृष्णचन्द्रो हरिः पुरा।
विराजते स सर्वत्र भक्त्या तं पश्य भूपते॥ ४२

अद्य ते कथयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदां कथाम्।
शृणु त्वं वसुधानाथ श्रीकृष्णबलयोः पराम्॥ ४३

गर्गने कहा—वृष्णिवंशतिलक! मेरी बात सुनो; यह शोकका विनाश करनेवाली है। समस्त पापोंको हरनेवाली, पवित्र तथा शुभ है। तुम सावधानीके साथ इसे श्रवण करो। पूर्वकालमें जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुशस्थली (द्वारका) पुरीमें विराजते थे, वे सदा और सर्वत्र विराजमान हैं। भूपते! अब तुम भक्तिभावसे उनको देखो। आज मैं तुम्हें भगवान्‌की वह कथा सुनाऊँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। वसुधानाथ! श्रीकृष्ण तथा बलरामजीकी वह उत्तम कथा तुम सुनो॥ ४१—४३॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् गर्गो वज्राय स्वां च संहिताम्।
कथयामास विप्रेन्द्र पुण्यां नवदिनैः किल॥ ४४

सूतजी कहते हैं—विप्रवर शौनक! ऐसा कहकर भगवान् गर्गने वज्रनाभको नौ दिनोंतक अपनी पवित्र संहिता सुनायी॥ ४४॥

॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधचरित्रे सुमेरौ गर्गवज्रनाभसंवादे प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीमद्गर्गसंहितामें अश्वमेध-चरित्र-सुमेरु-प्रसङ्गमें 'गर्ग-वज्रनाभ-संवाद' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

श्रीकृष्णावतारकी पूर्वार्धगत लीलाओंका संक्षेपसे वर्णन

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वज्रनाभिर्मुनेः श्रीगर्गसंहिताम्।
भृशं मुमोदाथ गुरुं प्रत्युवाच प्रणम्य च॥ १

अद्य श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरित्रं तु श्रुतं मया।
त्वन्मुखान् मुनिशार्दूल तेन दुःखाश्च मे गताः॥ २

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार गर्गमुनिके मुखसे श्रीगर्गसंहिताकी कथा सुनकर राजा वज्रनाभ मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने गुरु गर्गाचार्यके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! मुनिश्रेष्ठ! आज मैंने आपके मुखारविन्दसे जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका चारु चरित्र सुना है, उससे मेरे सारे दुःख दूर हो गये॥ १-२॥

मे मनस्तु कृपानाथ पुनः श्रोतुं हरेर्यशः।
अतृप्तस्यापि कृष्णस्य वदस्व चरितं परम्॥ ३

द्वार्वत्यामुग्रसेनेन हयमेधः कृतः पुरा।
तच्चरित्रं वद मुने किञ्चित्पूर्वं श्रुतं मया॥ ४

अनुव्रतानां शिष्याणां सुतानां च मुनीश्वर।
ब्रूयुर्गुह्यमनापृष्टं गुरवः करुणामयाः॥ ५

कृपानाथ! मैं इस कथा-श्रवणसे अतृप्त रह गया हूँ; अतः मेरा मन पुनः श्रीहरिके यशको सुननेके लिये उत्सुक है। आप कृपापूर्वक श्रीकृष्णके परम उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये। मुने! द्वारकामें महाराज उग्रसेनने पहले अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया था, उसके विषयमें कुछ बातें मैंने पूर्वकालमें सुनी थीं। आप उस अश्वमेध-यज्ञका ही सम्पूर्ण चरित्र या वृत्तान्त मुझसे कहिये। मुनीश्वर! करुणामय गुरुजन अपने सेवापरायण शिष्यों तथा पुत्रोंसे उनके पूछे बिना भी गूढ़ रहस्यकी बातें बता दिया करते हैं'॥ ३—५॥

श्रीसूत उवाच

एवं भाषितमाकर्ण्य यादवानां गुरुर्मुनिः।
प्रीतः प्रत्याह राजेन्द्रं स्मरन् पादाम्बुजं हरेः॥ ६

श्रीसूतजी कहते हैं—यदुकुलगुरु गर्गमुनि वज्रनाभका ऐसा वचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और श्रीहरिके युगलचरणारविन्दोंका स्मरण करते हुए उन राजाधिराजसे इस प्रकार बोले—॥ ६॥

गर्ग उवाच

धन्यस्त्वं कृष्णचन्द्रस्य पादयोर्भक्तिरीदृशी।
जाता ते यादवश्रेष्ठ दिष्ट्या तु दुर्लभा नृणाम्॥ ७

कथयाम्यत्र ते राजन्नितिहासं शृणुष्व वै।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ८

गर्गजीने कहा—यादवश्रेष्ठ! तुम धन्य हो; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें तुम्हारी ऐसी अविचल भक्ति हुई है, जो दूसरे मनुष्योंके लिये दुर्लभ है। वह भक्ति तुम्हें सहज सुलभ है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। राजन्! इस विषयमें मैं तुमसे प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ, उसे सुनो। उसका श्रवण कर लेनेमात्रसे मनुष्य समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है॥ ७-८॥

द्वापरे पीडिता राजन् धरा भारेण पापिनाम्।
ब्रह्माग्रे कथयामास सोऽपि श्रुत्वा हरिं ययौ॥ ९

गत्वा च कथयामास श्रुत्वा श्रीराधिकापतिः।
महीमाश्वास्य देवैश्च भारं हर्तुं मनो दधे॥ १०

राजन्! द्वापरमें पापियोंके भारसे पीड़ित हुई वसुन्धराने ब्रह्माजीके सामने अपना दुःख प्रकट किया। उसे सुनकर ब्रह्माजी श्रीहरिकी शरणमें गये और वहाँ उन्होंने पृथ्वीका सारा कष्ट कह सुनाया। वह सब सुनकर श्रीराधिकावल्लभ श्रीकृष्णने वसुधाको आश्वासन दिया और देवताओंके सहयोगसे उसका भार उतारनेका निश्चय किया॥ ९-१०॥

विवाहो वसुदेवस्य मधुपुर्यामभूत्ततः।
कंसबोधनषट्पुत्रवधः कंसभयं नृप॥ ११

तदनन्तर मथुरामें वसुदेवका देवकीके साथ विवाह हुआ; फिर कंसको सावधान करनेवाली आकाशवाणी हुई। देवकीके पुत्रसे अपने वधकी बात जानकर कंसने क्रमशः उसके छः पुत्र मार डाले। नरेश्वर! कंसको भय होने लगा और उस भयके आवेशमें उसे सर्वत्र कृष्ण-ही-कृष्ण दीखने लगे॥ ११॥

मायाज्ञामनु देवादिस्तुतिः कृष्णसमुद्भवम्।
वर्णनं रूपकृष्णस्य वसुदेवस्य संस्तुतिः॥ १२

इसके बाद भगवान्ने योगमायाको आज्ञा दी, जिसके अनुसार उसने देवकीके गर्भका संकर्षण करके रोहिणीके गर्भमें उसे स्थापित कर दिया और स्वयं वह यशोदाके गर्भसे कन्याके रूपमें प्रकट हुई। इधर भगवान् देवकीके गर्भमें आविष्ट हुए और ब्रह्मा आदि देवताओंने आकर उनकी स्तुति की। फिर श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ। भगवान्के बालकृष्णरूपकी दिव्य झाँकीका वर्णन ऋषि वेदव्यासद्वारा किया गया है। वसुदेवने भगवान्के उस दिव्य रूपका स्तवन किया॥ १२॥

देवक्यादिपुराकृत्यकथनं जगदीशितुः।
गोकुलानयनं कन्यापातनं तद्विभाषणम्॥ १३

सान्त्वनं वसुदेवस्य मोचनं भार्यया सह।
कंसदुर्मन्त्रदैत्येषु साधु-बाल-उपद्रवः॥ १४

जगदीश्वर श्रीकृष्णने देवकी और वसुदेवके पूर्वजन्म-सम्बन्धी पुण्यकर्मोंका वर्णन किया। तदनन्तर भगवदीय आज्ञाके अनुसार वसुदेवजी बालकृष्णको गोकुल पहुँचा आये और वहाँसे यशोदाकी कन्या उठा लाये। कंसने उस कन्याको पत्थरपर दे मारा; परंतु वह आकाशमें उड़ गयी और कंसको यह बताती गयी कि 'तेरा काल कहीं प्रकट हो चुका है।' कंसका निकट जाकर वसुदेव-देवकीको सान्त्वना देना और पत्नीसहित वसुदेवको बन्धनमुक्त कर देना आदि बातें घटित हुईं। कंसने दैत्योंकी सभामें दुष्टतापूर्ण मन्त्रणा की और साधुपुरुषों तथा बालकोंके प्रति उपद्रव प्रारम्भ करवाया॥ १३-१४॥

प्रादुर्भूते व्रजे कृष्णे व्रजराजमहोत्सवः।
मथुरागमनं नन्दवसुदेवसमागमः॥ १५

पूतनासुपयःपानं नन्दगोपादिविस्मयः।
शकटव्यत्यये दैत्यचक्रवातवधः शिशोः॥ १६

संलालने मुखे धात्र्या जृम्भणे विश्वदर्शनम्।
रामकेशवयोर्नाम्नोः करणं केलिरेतयोः॥ १७

धौर्त्यं गोपवधूगेहे प्रसङ्गान्मृदभक्षणम्।
दर्शनं विश्वरूपस्य नन्दभाग्यपुराकथा॥ १८

व्रजमें श्रीकृष्णका प्राकट्य होनेपर व्रजराज नन्दके भवनमें महान् उत्सव मनाया गया। नन्दरायजी राजा कंसको भेंट देनेके लिये मथुरा गये और वहाँ वसुदेवजीके साथ उनकी भेंट हुई। उधर गोकुलमें विषमिश्रित स्तनपान करानेके लिये आयी हुई पूतनाके प्राणोंको भगवान् उसके दूधके साथ ही पी गये। उसके मरे हुए विकराल शरीरको देखकर मथुरासे लौटे हुए नन्दादि गोपोंको बड़ा विस्मय हुआ। उसके बाद एक दिन श्रीकृष्णके पैरोंका हलका-सा आघात पाकर दूध-दहीके मटकोंसे भरा हुआ छकड़ा उलट गया। बवंडर-रूपधारी 'तृणावर्त' नामक दैत्यका शिशु श्रीकृष्णके हाथों वध हुआ। एक दिन मैया यशोदा बाल-कृष्णको लाड़-प्यार कर रही थीं। इतनेमें ही उन्हें जँभाई आयी और उनके मुखमें माताको सम्पूर्ण विश्वका दर्शन हुआ। तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्णके नामकरण-संस्कार हुए। फिर व्रजभूमिमें इन दोनों भाइयोंकी बालक्रीड़ा होने लगी। गोपाङ्गनाओंके घरोंमें घुसकर धूर्ततापूर्ण व्यवहार—दही-माखन चुरानेके खेल चलने लगे। प्रसङ्गवश किसी दिन मिट्टी खा ली और माताको मुखमें सम्पूर्ण विश्वका दर्शन कराया। नन्द और यशोदाको श्रीकृष्णके लालन-पालनका सुख कैसे सुलभ हुआ, इस प्रसङ्गमें उन दोनोंके पूर्वजन्मसम्बन्धी सौभाग्यवर्धक सत्कर्मकी चर्चा हुई॥ १५—१८॥

चौर्यं हैयङ्गवस्याथ बन्धनं दामभिर्बलात्।
यमलार्जुनयोः शापो भङ्गश्चैव स्तुतिस्तयोः॥ १९

माखनकी चोरी, रस्सीसे कमरमें बलपूर्वक बाँधा जाना, 'यमलार्जुन' नामक वृक्षोंका भङ्ग होना, उनके शापकी निवृत्ति, उन दोनोंके द्वारा भगवान्‌की स्तुति की गयी॥ १९॥

बालक्रीडोपनन्दादिमन्त्रणं गमनं ततः।
वृन्दावने तयोः क्रीडा वयस्यैर्वत्सचारिणोः॥ २०

वत्सासुरस्य च वधो वकाघासुरयोरपि।
भोजनं सखिभिस्तीरे यमुनाया हरेर्मुदा॥ २१

वत्साद्याहरणं धात्रा कृष्णत्वं वत्सपालयोः।
ब्रह्मणो गमनं पश्चात्स्तुतिः कृष्णरतिर्गतिः॥ २२

गोचारणे महाक्रीडा धेनुकादिवधस्तथा।
व्रज आगमनं कृष्णगोपीनेत्रमहोत्सवः॥ २३

बालक्रीड़ा, उपनन्द आदिकी मन्त्रणा, वहाँसे वृन्दावन-गमन, वहाँ समवयस्क ग्वालबालोंके साथ बछड़े चराना, उसी प्रसङ्गमें वत्सासुर, वकासुर और अघासुरका वध, सखाओंके साथ श्रीहरिका यमुनातटपर प्रसन्नतापूर्वक भोजन, ब्रह्माजीके द्वारा बछड़ों और ग्वालबालोंका हरण, श्रीकृष्णका स्वयं ग्वालबाल और बछड़े बन जाना, ब्रह्माका जाना और फिर मोहनिवृत्त होनेपर लौटकर भगवान्‌की स्तुति करना, श्रीकृष्णका गोप-बालकोंके साथ विहार तथा व्रजमें गमन, गोचारणके प्रसङ्गमें बड़ी-बड़ी क्रीड़ाएँ, धेनुकासुर आदिका वध, संध्याके समय व्रजमें आगमन तथा श्रीकृष्णका गोपीजनोंके नेत्रोंमें महान् आनन्द प्रदान करना आदि वृत्तान्त घटित हुए॥ २०—२३॥

मृतान् विषाम्भःपानेन गोपान् हरिरजीवयत्।
कालीयदमने स्तोत्रं तद्भार्याणां प्रलापनम्॥ २४

ह्रदे कालीयसम्बन्धकथनं वह्निमोचनम्।
क्रीडाप्रलम्बनिधनं दावाग्नेर्मोचनं गवाम्॥ २५

कालियनागके विषसे दूषित जलको पीनेसे मरे हुए गोपोंको श्रीहरिने जिलाया; कालियनागका दमन किया। उस समय नागपत्नियोंने भगवान्‌की स्तुति की और उनके साथ वार्तालाप किया। फिर इस बातका वर्णन किया कि यमुनाके ह्रदमें कालियनागका सम्बन्ध कैसे हुआ? तदनन्तर मुञ्जाटवीमें फैली हुई दावाग्निको पीकर भगवान्‌ने किस प्रकार गोप-गोपियोंके जीवनकी रक्षा की, इस बातका प्रतिपादन हुआ है। तत्पश्चात् खेल-खेलमें ही प्रलम्बासुरका वध तथा दावानलसे गौओंकी रक्षा आदि लीलाएँ घटित हुईं॥ २४-२५॥

वर्षाशरद्वर्णनं च गोपीनां वचनामृतम्।
व्रतं गोकुलकन्यानां वस्त्राणां हरणं मुदा॥ २६

वनभाग्यकथा गोपप्रार्थना प्रेषणं मखे।
विप्रभार्याप्रसादश्च पश्चात्तापो द्विजन्मनाम्॥ २७

इसी क्रममें वर्षा-वर्णन, शरद्-वर्णन, गोपीगीत, गोकुलकी गोप-किशोरियोंद्वारा कात्यायनीव्रतका अनुष्ठान, उनके वस्त्रोंका अपहरण, वृन्दावनके सौभाग्यका वर्णन, ग्वालबालोंका भगवान्‌से भोजन माँगना और भगवान्‌का उन्हें ब्राह्मणोंके यज्ञमें भेजना, ब्राह्मण-पत्नियोंपर भगवान्‌का कृपा-प्रसाद, ब्राह्मणोंका अपनी मूढ़ताके लिये पश्चात्ताप आदि वर्णित है॥ २६-२७॥

यागभङ्गो महेन्द्रस्य धृतिर्गोवर्धनस्य च।
सुरेन्द्रगर्वहरणं गर्गजातकवर्णनम्॥ २८

गोपशङ्कापगमनमिन्द्रधेन्वाभियाचितम्।
नन्दस्य मोक्षणं गोपवैकुण्ठगमनं ततः॥ २९

पञ्चाध्यायनिशाक्रीडा सर्पान्नन्दस्य मोक्षणम्।
शङ्खचूडवधः पश्चाद्गोपीगीतं वृषार्दनम्॥ ३०

कंसनारदसंवादः कंसाक्रूरकथा ततः।
केशिनो निधनं कृष्णान्नारदर्षिकथा ततः॥ ३१

व्योमासुरवधोऽक्रूरागमनं गोकुलेषु च।
दर्शनानन्दहृष्टात्मा रोमाञ्चो गद्गदा गिरः॥ ३२

संवादो रामकृष्णाभ्यां वर्णितं कंसचेष्टितम्।
रामकृष्णप्रयाणं च तथा गोपीप्रलापनम्॥ ३३

मथुरागमनं मध्ये ह्रदे कृष्णस्य दर्शनम्।
स्तुतिः पुरा गतिः पश्चाद्दर्शनं पुरसम्पदः॥ ३४

रजकस्य शिरश्छेदो वायकस्य वरादयः।
सुदाम्नो वरदानं च कुब्जासन्दर्शनं हरेः॥ ३५

धनुर्भङ्गः सैन्यवधः कंसदुर्हेतुदर्शनम्।
रङ्गोत्सवः कुवलयापीडयुद्धविघातनम्॥ ३६

दर्शनं रामकृष्णस्य पौराणां प्रेमवर्धनम्।
मल्लानां निधनं रङ्गे कंसस्य सह बन्धुभिः॥ ३७

इसके उपरान्त इन्द्रके यज्ञकी प्रथा मिटाकर गोवर्धनपूजनका क्रम चलाना, कुपित हुए इन्द्रद्वारा की गयी घोर वृष्टिसे व्रजवासियोंकी रक्षाके लिये भगवान्‌का गोवर्धन पर्वतको छत्रकी भाँति धारण करना, देवराज इन्द्रके गर्वको चूर्ण करना, महर्षि गर्गके द्वारा नन्दरायके यहाँ उत्पन्न श्रीकृष्ण-बलरामके भावी जातकोक्त फलका वर्णन किया गया॥ २८॥

तदुपरान्त गोपोंकी शङ्का, भगवान्‌के द्वारा उसका निवारण, इन्द्रधेनु सुरभिके द्वारा भगवान्‌का गोविन्द-पदपर अभिषेक और स्तवन, नन्दजीको वरुणलोकसे छुड़ाकर लाना, गोपोंको वैकुण्ठलोकमें ले जाकर उसका दर्शन कराना, पाँच अध्यायोंमें रातमें होनेवाली रासक्रीड़ाका वर्णन, नन्दका अजगरके मुखसे उद्धार, शङ्खचूडका वध, गोपियोंके युगलगीत, अरिष्टासुरका वध, कंस और नारदका संवाद, कंस और अक्रूरकी बातचीत, श्रीकृष्णके द्वारा केशीका वध, नारद-ऋषिका श्रीकृष्णसे वार्तालाप हुआ॥ २९—३१॥

इसी क्रममें व्योमासुरका वध, अक्रूरका गोकुलमें आगमन, व्रजके दर्शनजनित आनन्दसे उनके शरीरका पुलकित होना, अन्तःकरणका हर्षसे खिल उठना, रोमाञ्च होना, गद्गदवाणीमें बोलना, बलराम और श्रीकृष्णके साथ उनकी बातचीत, उनके द्वारा कंसकी चेष्टाओंका वर्णन, बलराम और श्रीकृष्णका मथुराको प्रस्थान, गोपीजनोंका विलाप, मथुरागमन, मार्गमें ही यमुनाके ह्रदमें प्रविष्ट हुए अक्रूरको भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन, उनके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, फिर उन सबका मथुरापुरीमें आगमन, नगरका दर्शन, नगरकी सम्पत्तिका वर्णन, रजकका शिरश्छेदन, दर्जीको वरदान, सुदामा मालीको वरदान, कुब्जाको श्रीकृष्णका दर्शन हुआ॥ ३२—३५॥

कंसके धनुषका भञ्जन, उसके सैनिकोंका वध, कंसको दुर्निमित्तोंका दिखायी देना, कंसका रंगोत्सव, कुवलयापीड नामक हाथीका युद्धमें मारा जाना, पुरवासियोंको बलराम और श्रीकृष्णका दर्शन, उनके प्रति नागरिकोंके मनमें प्रेमकी वृद्धि, रंगशालामें मल्लोंका मारा जाना, बन्धुओंसहित कंसका वध, श्रीकृष्ण-बलरामद्वारा माता-पिताको आश्वासन तथा

पित्रोश्च सान्त्वनं सर्वसुहृदां चैव तोषणम्।
उग्रसेनाभिषेकं च नन्दादिव्रजप्रेषणम्॥ ३८

ईषद्द्विजातिसंस्कारं पठनं च गुरोर्गृहे।
मृतपुत्रप्रदानं च गुरोः पञ्चजनार्दनम्॥ ३९

पुनरागमनं शौरेर्मधुपुर्यां महोत्सवः।
उद्धवप्रेषणं गोपीविलापपरिसान्त्वनम्॥ ४०

मेलनार्थं तु कृष्णस्यागमनं नन्दगोकुले।
पुनर्वै कोलदैत्यस्य वधः पश्चात्प्रकीर्तितः॥ ४१

कुब्जारतिस्तथाक्रूरप्रेषणं गजसाह्वये।
पाण्डवेषु च वैषम्यं धृतराष्ट्रस्य बोधनम्॥ ४२

समस्त सुहृदोंको तोषदान, उग्रसेनका राजाके पदपर अभिषेक, नन्द आदि गोपोंको व्रजभूमिकी ओर लौटाना, श्रीकृष्ण-बलरामका किंचित् द्विजाति-संस्कार, गुरुके घर जाकर विद्याध्ययन, उनके मरे हुए पुत्रको यमलोकसे लाकर लौटाना, इसी प्रसङ्गमें 'पञ्चजन' नामक दैत्यका वध हुआ॥ ३६—३९॥

इसके पश्चात् श्रीकृष्णका मथुरा-आगमन, मधुपुरीमें महान् उत्सव, उद्धवको व्रजमें भेजना, गोपियोंका विलाप, उद्धवद्वारा उन्हें सान्त्वना-प्रदान, व्रजवासियोंसे मिलनेके लिये श्रीकृष्णका नन्दके गोकुलमें आना, फिर कोल-दैत्यका वध, कुब्जा-मिलन, अक्रूरको हस्तिनापुर भेजना तथा पाण्डवोंके प्रति विषमतापूर्ण बर्ताव रोकनेके लिये धृतराष्ट्रको समझाना इत्यादि प्रसङ्गोंका वर्णन किया गया है॥ ४०—४२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधचरित्रे सुमेरौ कृष्णलीलावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें अश्वमेध-चरित्र-सुमेरुमें 'श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

जरासंधके आक्रमणसे लेकर पारिजात-हरणतककी श्रीकृष्णलीलाओंका संक्षिप्त वर्णन

गर्ग उवाच

जामातृवधसन्तप्तजरासन्धचमूवधः।
बहुशः सेनयोर्युद्धे द्वारकादुर्गकारणम्॥ १

यवनस्य वधं दृष्ट्वा मुचुकुन्दस्य संस्तुतिः।
वरं दत्वा ततो म्लेच्छवधं कृत्वा धने ततः॥ २

नीयमाने वने दृप्तजरासन्धात्पलायनम्।
रैवतो रेवतीं कन्यां बलदेवसमर्पणम्॥ ३

गर्गजी कहते हैं—राजन्! अपने दामाद कंसके वधका समाचार सुनकर राजा जरासंध संतप्त हो उठा। उसने कई अक्षौहिणी सेनाएँ लेकर मथुरापुरीपर अनेक बार आक्रमण किया और उसकी समस्त सेनाओंका श्रीकृष्ण और बलरामने संहार कर डाला। उभय पक्षकी सेनाओंमें बारंबार युद्धका अवसर आनेपर श्रीकृष्णने विश्वकर्माद्वारा समुद्रमें 'द्वारका' नामक दुर्गकी रचना करवायी। इसी बीचमें कालयवनका भी आक्रमण हुआ और मुचुकुन्दद्वारा उसका वध करवाकर भगवान्ने उनके मुखसे अपना स्तवन सुना; फिर उन्हें वर देकर बदरिकाश्रम भेज दिया और वहाँसे लौटकर म्लेच्छ सैनिकोंका वध करके उन सबका धन द्वारकापुरीमें पहुँचानेकी व्यवस्था की। इतनेमें ही घमंडी राजा जरासंध आ पहुँचा। भगवान् किसी विशेष अभिप्रायसे अबकी बार युद्ध छोड़कर उसके सामनेसे पलायन कर गये। 'रैवत' नामवाले राजाने द्वारकापुरीमें आकर अपनी कन्या रेवती बलदेवजीके हाथमें समर्पित कर दी॥ १—३॥

रुक्मिणीप्रियसन्देशश्रवणादखिलान्नृपान् ।
निर्जित्य निर्गमो गेहात् हृतवानम्बिकागृहात्॥ ४

नृपैः सान्त्वनं चैद्यस्य ततो रुक्मीसमागमः।
युद्धापेक्षापराधाद्वै मुण्डनं तस्य कृष्णतः॥ ५

रुक्मिणीदुःखशमनं रामवाक्याच्च मोक्षणम्।
ततो विवाहो रुक्मिण्या विधिवत्स्वपुरे मुदा॥ ६

प्रद्युम्नोत्पत्तिकथनं हरणं सूतिकागृहात्।
मायावत्योक्तवृत्तान्तं शम्बरस्य वधस्ततः॥ ७

पुनरागमनं गेहे सन्तोषो द्वारकौकसाम्।
सूर्यात्स्यमन्तकप्राप्तिर्याचनं तस्य वै हरेः॥ ८

तत्सम्बन्धात्प्रसेनस्य वधोऽकीर्तिर्हरेस्तथा।
तन्मार्जनाय ऋक्षस्य गृहेषु गमनं हरेः॥ ९

युद्धे ज्ञात्वा लोकनाथं जाम्बवत्याः समर्पणम्।
सत्राजिताय च मणिः प्राप्ता श्रीहरिणा बिलात्॥ १०

विवाहः सत्यभामायाः पारिबर्हे तथा मणिः।
रामेण सह कृष्णस्य गमनं हस्तिनापुरे॥ ११

एक समय राजकुमारी रुक्मिणीका प्रेम-संदेश सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण कुण्डिनपुरमें गये और वहाँ अम्बिकादेवीके मन्दिरसे अपनी प्रेयसी रुक्मिणीका अपहरण करके, वहाँके समस्त राजाओंको जीतकर द्वारकापुरीको निकल गये। तब राजाओंने चेदिराज शिशुपालको सान्त्वना दी और उसे चुपचाप घर लौट जानेको कहा। तत्पश्चात् एक विशेष प्रतिज्ञाके साथ रुक्मी युद्धके मैदानमें उतरा। श्रीकृष्णने पहले तो उसके साथ युद्ध किया; फिर उसे रथमें बाँधकर उसका मुण्डन कर दिया॥ ४-५॥

इससे रुक्मिणीको बड़ा दुःख हुआ। बलरामजीने समझा-बुझाकर उन्हें शान्त किया और बलरामजीके ही कहनेसे रुक्मीको बन्धनसे छुटकारा मिला। इसके बाद द्वारकापुरीमें पहुँचकर श्रीकृष्णका रुक्मिणीके साथ बड़े आनन्दसे विधिपूर्वक विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ॥ ६॥

तत्पश्चात् प्रद्युम्नकी उत्पत्ति कही गयी। उनका सूतिकागारसे अपहरण हुआ। मायावतीके कथनसे अपने पूर्व-वृत्तान्तको जानकर प्रद्युम्नने शम्बरासुरका वध किया, फिर वे अपने घर लौट आये। इससे द्वारकावासियोंको बड़ा संतोष हुआ। सत्राजित् नामक यादवने भगवान् सूर्यकी कृपासे स्यमन्तकमणि प्राप्त की। उसे एक दिन श्रीहरिने माँगा॥ ७-८॥

उसी मणिको अपने गलेमें बाँधकर सत्राजित्के छोटे भाई प्रसेनजित् शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँ एक सिंहने उनको मार डाला। इससे श्रीहरिपर कलङ्क आया। उसका मार्जन करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण वनमें ऋक्षराजकी गुफामें गये। वहाँ उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। जाम्बवान्ने यह जानकर कि 'ये कोई साधारण मनुष्य नहीं, साक्षात् भगवान् हैं' इन्हें अपनी कन्या जाम्बवती समर्पित कर दी। भगवान्को जाम्बवान्की गुफासे जो मणि प्राप्त हुई थी, उसे उन्होंने सत्राजित्के यहाँ पहुँचा दिया। सत्राजित्ने अपनी बेटी सत्यभामाका विवाह श्रीकृष्णके साथ कर दिया और दहेजमें वह मणि उन्हें दे दी। तदनन्तर एक दिन बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने हस्तिनापुरकी यात्रा की॥ ९—११॥

अक्रूरकृतवर्मभ्यां शतधन्वा तु प्रेरितः।
सत्राजितं जघानाशु सोऽपि कृष्णेन मारितः॥ १२

रामस्तु मिथिलायां च गदाशिक्षा सुयोधने।
अक्रूरे मणिदानं च शक्रप्रस्थे हरिर्गतः॥ १३

कालिन्द्या सङ्गतिः शौरेर्विवाहः स्वपुरे ततः।
विवाहो मित्रविन्दायाः सत्यायाश्च तथैव च॥ १४

भद्राया लक्ष्मणायाश्च विवाहो हरिणा ततः।
पारिजातं तु सत्यायै शक्रं जित्वा ददौ हरिः॥ १५

वज्रनाभिरुवाच

प्रियायै दत्तवान् कस्माच्छक्रं जित्वा सुरद्रुमम्।
श्रीकृष्णस्तत्कथां सर्वां मुने मे ब्रूहि विस्तरात्॥ १६

श्रीगर्ग उवाच

पारिजातैककुसुमे चानीते नारदात्कदा।
दत्ते सति श्रीरुक्मिण्यै सत्या तु दुःखिताभवत्॥ १७

तां दृष्ट्वा कुपितां प्राह क्रोधागारगतां हरिः।
मा शोचं कुरु दास्यामि पारिजातद्रुमं च ते॥ १८

तदेव कथितं सर्वं कृष्णाग्रे भौमचेष्टितम्।
शक्रेण श्रुत्वा भगवान् प्राह पश्यन् कृताञ्जलिम्॥ १९

श्रीकृष्ण उवाच

मत्प्रियां दुःखितां पश्य रुदन्तीं वृत्रसूदन।
पारिजातस्य वृक्षार्थे किं करिष्याम्यहं वद।
यदास्यै पारिजातस्य वृक्षं दास्यसि त्वं हरे॥ २०

तदा भौमं ससैन्यं च हनिष्यामि न संशयः।
कृष्णभाषितमाकर्ण्य प्रहसन् प्राह वासवः॥ २१

इसी बीचमें अक्रूर और कृतवर्माकी प्रेरणासे शतधन्वाने सत्राजितको मार डाला। यह समाचार पाते ही श्रीकृष्णने तत्काल शतधन्वाको भी मौतके घाट उतार दिया। बलरामजी मिथिलामें रहकर दुर्योधनको गदायुद्धकी शिक्षा देने लगे। इधर भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरको मणि देकर स्वयं इन्द्रप्रस्थ चले गये॥ १२-१३॥

वहाँ उन्हें कालिन्दीकी प्राप्ति हुई। उसके साथ श्रीहरिने अपनी द्वारकापुरीमें विवाह किया। इसी प्रकार मित्रविन्दा और सत्याके साथ भी उनका विवाह हुआ। तदनन्तर भद्रा और लक्ष्मणाका भी श्रीहरिके साथ विवाह हुआ। एक समय श्रीकृष्णने देवराज इन्द्रको जीतकर उनके पारिजातको ले लिया और उसे द्वारकापुरीमें लाकर अपनी प्रिया सत्यभामाको दे दिया॥ १४-१५॥

वज्रनाभने पूछा—मुने! भगवान् श्रीकृष्णने देवराज इन्द्रको जीतकर उनके कल्पवृक्ष या पारिजातको लाकर जो अपनी प्रिया सत्यभामाको दिया, उसका क्या कारण है? यह सारी कथा मुझे विस्तारपूर्वक सुनाइये॥ १६॥

श्रीगर्गजीने कहा—किसी समय देवर्षि नारद स्वर्गसे पारिजातका एक फूल लेकर द्वारकापुरीमें आये। वह फूल लेकर श्रीकृष्णने अपनी पटरानी श्रीरुक्मिणीजीके हाथमें दे दिया। इससे सत्यभामाको बड़ा दुःख हुआ। वे कोपभवनमें चली गयीं। श्रीकृष्ण वहाँ जाकर कुपित हुई सत्यभामासे मिले और बोले—'तुम दुःख न मानो, मैं तुम्हें पारिजातका वृक्ष ही लाकर दे दूँगा।' उसी समय इन्द्रने आकर श्रीकृष्णके समक्ष भौमासुरकी सारी चेष्टाएँ बतायीं। यह सुनकर भगवान्‌ने हाथ जोड़े हुए इन्द्रकी ओर देखते हुए कहा॥ १७—१९॥

श्रीकृष्ण बोले—'वृत्रसूदन! देखिये, मेरी प्रिया सत्यभामा दुखी होकर रो रही है। इसका यह रोदन पारिजात वृक्षके लिये ही है। बताइये, मैं क्या करूँ? हरे! यदि आप सत्यभामाके लिये पारिजात वृक्ष दे देंगे तो मैं सेनासहित भौमासुरका संहार कर डालूँगा, इसमें संशय नहीं है।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र जोर-जोरसे हँसते हुए बोले॥ २०-२१॥

इन्द्र उवाच

पारिजातद्रुमाः सर्वे वर्तन्ते नन्दने च ये।
गृहाण तान् स्वतः कृष्ण त्वं हत्वा नरकासुरम्॥ २२

तथास्तु चोक्त्वा भगवान् सत्यभामासमन्वितः।
गरुडस्कन्धमारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ॥ २३

सत्यभामा हरिं प्राह स्वर्गमिन्द्रे गते सति।

सत्योवाच

पूर्वं गृहाण शक्रात्त्वं द्रुमराजं जगत्पते॥ २४

कार्ये भूते सति हरे न करिष्यति त्वत्प्रियम्।
प्रियावाक्यं समाकर्ण्य प्रियः प्राह प्रियां वचः॥ २५

श्रीकृष्ण उवाच

स पारिजातं यदि न प्रदास्यति
प्रयाच्यमानस्तु मयामरेश्वरः।
ततः शचीव्यामुदितानुलेपने
गदां विमोक्ष्यामि पुरन्दरोरसि॥ २६

इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णो भौमासुरपुरं गतः।
नानादुर्गैः सप्तभिश्च वेष्टितं च महासुरैः॥ २७

सर्वान् बिभेद दुर्गान् वै गदाचक्रशरादिभिः।
जघान मुरुदैत्यं च तत्पुत्राञ्छस्त्रसंयुतान्॥ २८

शस्त्रास्त्रवर्षं मुञ्चन्तं ससैन्यं नरकं हरिः।
क्षिप्त्वा चक्रं द्विधा चक्रे गरुडेन जघान च॥ २९

हत्वा भौमं जगन्नाथो वररत्नानि यादवः।
जग्राह तत्र कन्यानां समूहं वै ददर्श ह॥ ३०

दैत्यसिद्धनृपाणां च सहस्राणि च षोडश।
शताधिकानि कन्याश्च प्रेषयामास स्वां पुरीम्॥ ३१

गृहीत्वाथ मणिं छत्रं देवमातुश्च कुण्डले।
पारिजातद्रुमार्थे वै ययाविन्द्रपुरीं हरिः॥ ३२

इन्द्रने कहा—श्रीकृष्ण! तुम नरकासुरका वध करके नन्दनवनमें जो-जो पारिजातके वृक्ष हैं, उन सबको स्वतः ले लेना। 'एवमस्तु' कहकर भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाके साथ गरुड़के कंधेपर आरूढ़ हो प्राग्ज्योतिषपुरकी ओर चल दिये। जब इन्द्र स्वर्गको लौट गये, तब सत्यभामाने स्वयं श्रीहरिसे कहा—॥ २२—२३१/२॥

सत्यभामा बोली—'जगत्पते! आप पहले इन्द्रसे वृक्षराज पारिजातको ले लें। हरे! अपना काम निकल जानेपर इन्द्र आपका प्रिय कार्य नहीं करेंगे।' प्रियाकी यह बात सुनकर प्रियतमने उससे कहा—॥ २४-२५॥

श्रीकृष्ण बोले—यदि मेरे माँगनेपर अमरेश्वर इन्द्र पारिजात नहीं देंगे तो मैं पुरन्दरकी छातीपर, जहाँ शचीदेवी चन्दनका अनुलेप लगाती हैं, गदासे चोट करूँगा॥ २६॥

—ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण भौमासुरके नगरमें गये। वह नगर नाना प्रकारके सात दुर्गों और बड़े-बड़े असुरोंसे आवेष्टित था। श्रीकृष्णने गदा, चक्र और बाण आदिसे उन सातों दुर्गोंका भेदन कर दिया। मुरु दैत्य और उसके पुत्र अस्त्र-शस्त्र लेकर नगरकी रक्षामें नियुक्त थे। श्रीकृष्णने उन सबको कालके गालमें डाल दिया। तदनन्तर सेनासहित नरक अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करता हुआ सामने आया। श्रीहरिने चक्र चलाकर नरकासुरके दो टुकड़े कर डाले तथा गरुड़के द्वारा उसकी सारी सेनाका संहार कर डाला। भौमासुरको मारकर यदुकुलतिलक जगन्नाथने उसके सारे उत्तम रत्न ग्रहण कर लिये॥ २७—२९१/२॥

वहाँ उन्होंने कुमारी कन्याओंका एक विशाल समुदाय देखा। उनकी संख्या सोलह हजार एक सौ थी। वे दैत्यों, सिद्धों तथा नरेशोंकी कुमारियाँ थीं। श्रीहरिने उन सबको अपनी द्वारकापुरीमें भेज दिया। फिर वे इन्द्रकी मणि और छत्र लेकर तथा देवमाता अदितिके दोनों कुण्डल प्राप्त करके पारिजात वृक्ष लानेके लिये इन्द्रपुरीकी ओर चले॥ ३०—३२॥

॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधचरित्रे सुमेरौ कृष्णकथावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधचरित्र-सुमेरुमें 'श्रीकृष्णकी कथाका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

पारिजातहरण

श्रीगर्ग उवाच

गत्वा स्वर्गं तु शक्राय दत्वा छत्रं मणिं तथा।
अदित्यै कुण्डले कृष्णो दत्वाभिप्रायमब्रवीत्॥ १

अभिप्रायं हरेर्ज्ञात्वा वासवो न ददौ द्रुमम्।
देवाञ्जित्वा तदा पारिजातं जग्राह माधवः॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! स्वर्गमें जाकर इन्द्रको उनका छत्र और मणि देकर श्रीकृष्णने माता अदितिको उनके दोनों कुण्डल अर्पित कर दिये। उसके बाद अपना अभिप्राय व्यक्त किया। श्रीहरिके अभिप्रायको जानकर भी जब इन्द्रने पारिजात वृक्ष नहीं दिया, तब माधवने देवताओंको पराजित करके पारिजातको बलपूर्वक अपने अधिकारमें ले लिया॥ १-२॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा कथां राजा यादवो विस्मयान्वितः।
पप्रच्छ स्वगुरुं भूयः श्रद्दधानो हरेर्गुणे॥ ३

ब्रह्मञ्छक्रस्तु देवेन्द्रो जानन् कृष्णं हरिं परम्।
अपराधं तु कृतवान् स कथं ब्रूहि तत्त्वतः॥ ४

कृष्णाग्रे कथितं सत्यभामया शक्रचेष्टितम्।
तस्मान्मे विस्तराद्युद्धमिन्द्रमाधवयोर्वद॥ ५

सूतजी कहते हैं—शौनक! यह कथा सुनकर यादवनरेश वज्रको बड़ा विस्मय हुआ। श्रीहरिके गुणोंमें श्रद्धा रखते हुए उन्होंने पुनः अपने गुरुसे पूछा—'ब्रह्मन्! इन्द्र तो देवताओंके राजा हैं। वे यह जानते हैं कि श्रीकृष्ण साक्षात् परमेश्वर श्रीहरि हैं, तथापि उन्होंने भगवान्‌के प्रति अपराध कैसे किया? यह ठीक-ठीक बताइये। इन्द्रकी चेष्टाको सत्यभामाने पहले ही भाँप लिया था और श्रीकृष्णके सामने सुस्पष्ट बता भी दिया था। अतः इस प्रसङ्गको सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है। आप इन्द्र और माधवके इस युद्धका मेरे समक्ष विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ ३—५॥

श्रीगर्ग उवाच

अदित्या संस्तुतः कृष्णः शक्रवाक्याच्च नन्दनम्।
वनं गत्वा पारिजातान् सन्ददर्श बहून् द्रुमान्॥ ६

तेषां मध्ये महावृक्षं मञ्जरीपुञ्जधारिणम्।
क्षीरोदमथनाजातं पद्मगन्धसमन्वितम्॥ ७

श्रीगर्गजी बोले—राजन्! अदितिने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की और इन्द्रने भी पारिजात ले जानेके लिये स्वीकृति दे दी, तब भगवान् श्रीकृष्ण नन्दनवनमें गये और वहाँ बहुत-से पारिजात वृक्षोंका अवलोकन करने लगे। उन सबके बीचमें एक महान् वृक्ष था, जो बहुत-सी मञ्जरियोंके पुञ्जको धारण किये अनुपम शोभा पा रहा था। कहते हैं, वह वृक्ष क्षीरसागरके मन्थनसे प्रकट हुआ था। उससे कमलकी-सी सुगन्ध निकल रही थी॥ ६-७॥

सुराणां सुखदं ताम्रपल्लवैः परिवेष्टितम्।
वने विभूषणं दिव्यं वरं स्वर्णसमत्वचम्॥ ८

वह देवताओंके लिये सुखद वृक्ष ताँबेके समान रंगवाले नूतन पल्लवोंसे परिवेष्टित था। वह सुन्दर दिव्य वृक्ष उस वनका विभूषण था और उसकी छाल सुनहले रंगकी थी॥ ८॥

तं दृष्ट्वा माधवं प्राह सत्यभामा च मानिनी।
एनं गृह्णाम्यहं कृष्ण श्रेष्ठं सर्वं वने द्रुमम्॥ ९

इत्युक्तः प्रिययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति।
लीलयारोपयामास प्रहसञ्जगदीश्वरः॥ १०

तदैव कुपिताः सर्वे वनपालाः समुत्थिताः।
धनुर्बाणधराः कृष्णमूचुः प्रस्फुरिताधराः॥ ११

इन्द्रप्रियाया वृक्षश्च हृतः कस्मात्त्वया नर।
यदृच्छया किलास्माकं तृणीकृत्य क्व यास्यसि॥ १२

इन्द्राणीप्रीतये देवैः पुरा ह्युदधिमन्थने।
उत्पादितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वैनं भविष्यसि॥ १३

गिरीणां येन सर्वेषां पक्षाः पूर्वं निपातिताः।
तं किं वृत्रहणं वीरं जित्वा वृक्षं नयिष्यसि॥ १४

तस्माद्गच्छ महावीर पारिजातं विहाय च।
न दास्यामो द्रुमं तुभ्यं शक्रस्यानुचरा वयम्॥ १५

यदा दास्यति तुभ्यं वै पारिजातं पुरन्दरः।
न निषेधं करिष्यामो वनपाला वयं तदा॥ १६

तेषां भाषितमाकर्ण्य सत्यभामा रुषान्विता।
तूष्णीम्भूते सति हरावभीता प्राह तान्नृप॥ १७

सत्योवाच

का शची पारिजातस्य कः शक्रो वा सुरेश्वरः।
सामान्यः सर्वलोकानां यदीशोऽमृतमन्थने॥ १८

समुत्पन्नः सुरः कस्मादेको गृह्णाति वासवः।
यथा सुधा यथैवेन्दुर्यथा श्रीर्वनचारिणः॥ १९

सामान्यः सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुमः।
भर्तृबाहुमहागर्वा रुणद्ध्येनं मृषा शची॥ २०

उस पारिजात वृक्षको देखकर मानिनी सत्यभामाने माधवसे कहा—'श्रीकृष्ण! इस सम्पूर्ण वनमें यही वृक्ष सबसे श्रेष्ठ है। अतः मैं इसीको पसंद करती हूँ।' प्रियाके इस प्रकार कहनेपर जगदीश्वर श्रीकृष्णने हँसते हुए पारिजात वृक्षको उखाड़कर लीलापूर्वक गरुड़की पीठपर रख लिया॥ ९-१०॥

उसी समय क्रोधसे भरे हुए समस्त वनपाल धनुष-बाण धारण किये उठे और फड़कते हुए ओठोंसे श्रीकृष्णको सम्बोधित करके इस प्रकार कहने लगे—'ओ मनुष्य! यह इन्द्रवल्लभा महारानी शचीका वृक्ष है। तुमने क्यों इसका अपहरण किया है? अपनी इच्छासे अकस्मात् हम सबको तिनकेके समान समझकर—हमारा अपकार करके तुम कहाँ जाओगे? पूर्वकालमें समुद्र-मन्थनके समय देवताओंने इन्द्राणीकी प्रसन्नताके लिये इस वृक्षको उत्पन्न किया है। इसे लेकर तुम सकुशल नहीं रह सकोगे॥ ११—१३॥

जिन्होंने पहले समस्त पर्वतोंके पंख काट गिराये थे, उन वृत्रासुरनिषूदन वीर महेन्द्रको जीतकर ही तुम इस वृक्षको ले जा सकोगे। अतः महावीर! पारिजातको यहीं छोड़कर चले जाओ। हम देवराज इन्द्रके अनुचर हैं, इसलिये यह वृक्ष तुम्हें नहीं ले जाने देंगे। जब साक्षात् पुरन्दर यह पारिजात वृक्ष तुम्हें दे देंगे, तब हम नहीं रोकेंगे। उस दशामें हम केवल वनके रक्षक होंगे। इस वृक्षके नहीं'॥ १४—१६॥

वनरक्षकोंका यह भाषण सुनकर सत्यभामा रोषसे तमतमा उठीं। नरेश्वर! श्रीहरि तो चुप रह गये, किंतु सत्यभामा निर्भय होकर उन रक्षकोंसे बोलीं—॥ १७॥

सत्याने कहा—यदि यह पारिजात अमृत-मन्थनके समय समुद्रसे प्रकट हुआ है, तब तो यह सामान्यतः सम्पूर्ण लोकोंकी सम्पत्ति है। तुम्हारी शची अथवा देवराज इन्द्र इस पारिजातके कौन होते हैं? उन्हें अकेले इसपर अपना स्वत्व जतानेका क्या अधिकार है? समुद्रसे प्रकट हुई वस्तुको अकेले देवराज इन्द्र कैसे ले सकते हैं? वनरक्षको! जैसे अमृत, जैसे चन्द्रमा और जैसे लक्ष्मी समस्त संसारकी साधारण सम्पत्ति हैं, उसी प्रकार यह पारिजात वृक्ष भी। यदि अपने पतिके बाहुबलका भारी घमंड लेकर

तत्कथ्यतामलं क्षान्त्या सत्याहारप्रतिद्रुमम्।
कथ्यतां च द्रुतं गत्वा पौलोम्यै वचनं मम॥ २१

सत्यभामा वदत्येतदतिगर्वोद्धताक्षरम्।
यदि त्वं दयिता भर्तुर्यदि वश्यः पतिस्तव॥ २२

मद्भर्तुर्हरतो वृक्षं तत्कारय निवारणम्।
जानामि ते पतिं शक्रं युष्माञ्जानामि तत्त्वतः॥ २३

पारिजातं तथाप्येनं मानुषी हारयामि ते।

श्रीगर्ग उवाच

कृष्णप्रियाया वचनं वनपाला निशम्य च॥ २४

इन्द्राणीनिकटं गत्वा प्रोचुः सर्वं यथोदितम्।
रक्षकाणां वचः श्रुत्वा शची प्राह रुषान्विता॥ २५

कृष्णं निवारणार्थाय न यास्यन्तं पुरन्दरम्।

शच्युवाच

मदीयं पारिजातं वै माधवेन बलीयसा॥ २६

गृहीतं स्वप्रियार्थे वै त्वां तृणीकृत्य वज्रिणम्।
तस्मान् मोचय वृक्षेशं पाकसूदन वृत्रहन्॥ २७

सत्यभामावशं कृष्णं विनिर्जित्य महारणे।
त्वया वै पूर्वमद्रीणां पक्षा वज्रेण शातिताः॥ २८

भयं विसृज्य युद्धाय गच्छ तस्मात्सुरैर्वृतः।
इति श्रुत्वा शचीवाक्यं शक्रो नमुचिसूदनः॥ २९

न चकार तु युद्धाय मनो भयसमन्वितः।
ततश्च बहुशः पत्न्या प्रेरितः कोपयुक्तया॥ ३०

तदा कोपेन श्रीकृष्णं निन्दन् प्राह मदान्वितः।

शची झूठे ही इसे अपने वशमें रोक रखना चाहती हैं तो जाओ, कह दो, क्षमा करनेकी आवश्यकता नहीं है; उनसे जो कुछ करते बने, कर लें। सत्यभामा पारिजात वृक्षका अपहरण करवा रही है। तुम शीघ्र जाकर उस पुलोम दानवकी पुत्रीको मेरी यह बात कह सुनाओ॥ १८—२१॥

जिसका एक-एक अक्षर अत्यन्त गर्व और उद्दण्डतासे भरा हुआ है, वह यह वचन सत्यभामा कहती है। यदि तुम पतिकी प्राणवल्लभा हो और यदि पतिदेव तुम्हारे वशमें हैं तो पारिजातका अपहरण करनेवाले मेरे पतिके हाथसे इस वृक्षको रोक लो। मैं तुम्हारे पति इन्द्रको भी जानती हूँ। तुम सब देवता क्या हो? यह सब मैं अच्छी तरह समझती हूँ तथापि मैं मानुषी होकर भी तुम्हारे इस पारिजातका अपहरण करवा रही हूँ। (तुम रोक सको तो, रोको)॥ २२—२३½॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—श्रीकृष्णवल्लभाकी यह बात सुनकर बेचारे वनरक्षक सन्न हो गये। उन्होंने इन्द्राणीके निकट जाकर उनकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। रक्षकोंकी बात सुनकर शचीको बड़ा रोष हुआ। देवराज इन्द्र श्रीकृष्णको रोकनेके लिये नहीं जा रहे थे; अतः वे खीझकर बोलीं॥ २४—२५½॥

शचीने कहा—देवराज! तुम वज्रधारी हो। पाकशासन और वृत्रासुरके विनाशक हो। तुम्हें तिनकेके समान समझकर अत्यन्त बलशाली माधवने अपनी प्रियतमा सत्यभामाके लिये मेरा पारिजात ले लिया है; अतः तुम उस वृक्षराजको उनके हाथसे छुड़ाओ—छीन लो। श्रीकृष्ण सत्यभामाके वशमें रहनेवाले हैं—वे नारीके हाथके खिलौने हैं। तुम महासमरमें उन्हें पराजित करके पारिजातको अपने अधिकारमें कर लो। तुमने पूर्वकालमें वज्रसे पर्वतोंके पंख काट डाले हैं, अतः भय छोड़कर देवताओंकी सेना साथ ले युद्धके लिये जाओ॥ २६—२८½॥

शचीकी यह बात सुनकर नमुचिसूदन इन्द्रने भयभीत होनेके कारण जब युद्धके लिये मन नहीं उठाया, तब कोपभरी पत्नीने उन्हें बारंबार प्रेरित किया, तब इन्द्र मदमत्त हो क्रोधपूर्वक श्रीकृष्णकी निन्दा करते हुए बोले॥ २९—३०½॥

इन्द्र उवाच

येन ते पारिजातं वै गृहीतं सुन्दरानने॥ ३१

मृधे तं पातयिष्यामि वज्रेण शतपर्वणा।
इत्युक्त्वा वासवो राजन्नारुह्यैरावतं गजम्॥ ३२

शुण्डादण्डैस्त्रिभिर्युक्तं रक्तकम्बलमण्डितम्।
चतुर्भिः शोभितं दन्तैर्हिमाद्रिसदृशं शुभम्॥ ३३

स्वर्णशृङ्खलया जुष्टं शुशुभे निर्जरैर्वृतः।
तथा मरुद्गणाः सर्वे यमाग्निवरुणादयः॥ ३४

रुद्राश्च द्वादशात्मानो वसवो धनदादयः।
विद्याधराश्च गन्धर्वाः साध्याः पितृगणादयः॥ ३५

त्रयस्त्रिंशत्कोटिसंख्याः शक्रस्यानुचराः सुराः।
एते समागताः क्रुद्धा योद्धुं श्रीकृष्णसम्मुखे॥ ३६

आहूताः केऽपि शक्रेण सहायार्थं तु स्वात्मनः।
तथा तु नारदेनापि केचिद्देवास्तु प्रेषिताः॥ ३७

ततः परिघनिस्त्रिंशगदाशूलपरश्वधैः।
बभूवुस्त्रिदशाः सज्जाः शक्रे वज्रकरे स्थिते॥ ३८

इन्द्रने कहा—सुमुखि! जिसने तुम्हारा पारिजात लिया है, उसे युद्धभूमिमें सौ पर्ववाले वज्रसे मैं निश्चय ही मार गिराऊँगा। राजन्! ऐसा कहकर इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हुए॥ ३१-३२॥

उस हाथीके तीन शुण्डा-दण्ड थे। उसकी पीठपर लाल रंगका कम्बल या कालीन शोभा पाता था। चार दाँत उस गजराजकी शोभा बढ़ाते थे। वह सुन्दर हाथी अपनी श्वेत प्रभाके कारण हिमालय पर्वतके समान प्रतीत होता था, सोनेकी साँकलसे उसके पाँवकी बड़ी शोभा होती थी। उस समय देवराज इन्द्र देवताओंसे घिरे हुए सुशोभित हो रहे थे। यम, अग्नि और वरुण तथा समस्त मरुद्गण देवराजके साथ हो गये। ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, आठ वसु, कुबेर आदि लोकपाल, विद्याधर, गन्धर्व, साध्यगण तथा पितृगण आदि तैंतीस करोड़ देवता इन्द्रका अनुसरण करनेके लिये आये। ये सब-के-सब कुपित हो श्रीकृष्णके सम्मुख युद्ध करनेके लिये पधारे थे॥ ३३—३६॥

इनमेंसे कुछ देवताओंको तो देवराज इन्द्रने अपनी सहायताके लिये बुलवाया था और कुछको देवर्षि नारदजीने स्वयं प्रेरणा देकर भेजा था। इन्द्र हाथमें वज्र लेकर खड़े हुए। साथ ही दूसरे-दूसरे देवता परिघ, खड्ग, गदा, शूल और फरसे लेकर युद्धके लिये तैयार हो गये॥ ३७-३८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधचरित्रे सुमेरौ पारिजातहरणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधचरित्र-सुमेरुमें 'पारिजात-हरण' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

देवराज और उनकी देवसेनाके साथ श्रीकृष्णका युद्ध तथा विजयलाभ; पारिजातका द्वारकापुरीमें आरोपण

श्रीगर्ग उवाच

अथ दृष्ट्वा कृष्णचन्द्रो गजेन्द्रोपरि शोभितम्।
इन्द्रं देवपरीवारं युद्धाय समुपस्थितम्॥ १

शङ्खं दध्मौ स्वयं कृष्णः शब्देनापूरयन् दिशः।
मुमोच च शरव्रातं सहस्रायुधसम्मितम्॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रने जब देखा कि देवराज इन्द्र गजराज ऐरावतपर विराजमान हो देवताओंसे घिरकर युद्धके लिये उपस्थित हैं, तब उन्होंने स्वयं शङ्ख बजाया और उसकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको भर दिया। साथ ही वज्रोपम बाण-समूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी॥ १-२॥

ततो दिशश्च गगनं दृष्ट्वा बाणशतान्वितम्।
मुमुचुर्विबुधाः सर्वे शरांश्चक्रायुधोपरि॥ ३

एकैकमस्त्रं शस्त्रं च सुरैर्मुक्तं सहस्रधा।
स्वबाणैर्भगवान् कृष्णश्चिच्छेद नृप लीलया॥ ४

पाशिनश्चाहिपाशं च चिच्छिदे पन्नगाशनः।
यमराजेन प्रहितं दण्डं लोकभयङ्करम्॥ ५

गदया पातयामास भूमौ कृष्णस्तु लीलया।
चक्रेण धनदस्यापि शिबिकां तिलशो बहु॥ ६

चकार कृष्णः सूर्यं च कोपदृष्ट्या हतौजसम्।
महाग्निमागतं वीक्ष्य मुखेन च पपौ हरिः॥ ७

ततो रुद्रगणैर्मुक्ताञ्छूलांश्चिच्छेद वै रुषा।
चक्रेण च हरी रुद्रान् पातयामास बाहुना॥ ८

ततो मरुद्गणा देवाः साध्या विद्याधरास्तथा।
मुमुचुर्बाणपटलान् माधवोपरि भूपते॥ ९

शरवर्षं प्रमुञ्चन्तीं सेनां सर्वां समागताम्।
विलोक्य सत्यभामा तु भयं प्राप तदा मृधे॥ १०

तां भीतां प्राह गोविन्दः सत्ये त्वं मा भयं कुरु।
आगतां शक्रसेनां वै हनिष्यामि न संशयः॥ ११

इत्युक्त्वा भगवान् क्रुद्धो बाणैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः।
ताडयामास विबुधान् क्रोष्टून् सिंहो नखैर्यथा॥ १२

ततः प्रत्याह गरुडं कंसहा कोपपूरितः।
वैनतेय त्वया युद्धं न कृतं रणमण्डले॥ १३

तच्छ्रुत्वा तु सभार्यं च स्कन्धे सन्धारयन् हरिम्।
कोपाद्विष्णुरथः सद्यः पक्षाभ्यां नखराङ्कुरैः॥ १४

उस समय दिशाओं और आकाशको बहुसंख्यक बाणोंसे व्याप्त देख समस्त देवता चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे। नरेश्वर! भगवान् श्रीकृष्णने देवताओंके छोड़े हुए एक-एक अस्त्र-शस्त्रके अपने बाणोंद्वारा लीलापूर्वक सहस्र-सहस्र टुकड़े कर डाले॥ ३-४॥

पाशधारी वरुणके नागपाशको सर्पभोजी गरुड़ काट डालते थे। यमराजके चलाये हुए लोक-भयंकर दण्डको भगवान् श्रीकृष्णने गदाके आघातसे अनायास ही भूमिपर गिरा दिया। फिर चक्रका प्रहार करके कुबेरकी शिबिकाको तिल-तिल करके काट डाला॥ ५-६॥

सूर्यदेवको क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखकर श्रीकृष्णने हतप्रतिभ कर दिया। महान् अग्निदेवको सामने आया देख श्रीहरिने मुखसे पी लिया। तदनन्तर रुद्रगणोंके द्वारा छोड़े गये त्रिशूलोंको श्रीहरिने रोषपूर्वक चक्रसे छिन्न-भिन्न कर डाला और भुजाओंसे मार-मारकर रुद्रोंको धराशायी कर दिया॥ ७-८॥

भूपते! तदनन्तर मरुद्गण, साध्यदेव और विद्याधरोंने माधवके ऊपर बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ की। बाणोंकी वर्षा करती हुई समस्त देवसेनाको सामने आयी देख सत्यभामाको युद्धस्थलमें बड़ा भारी भय हो गया। उन्हें डरी हुई देख गोविन्दने कहा—'सत्ये! तुम भय न करो। मैं यहाँ आयी हुई सारी देवसेनाका संहार कर डालूँगा, इसमें संशय नहीं है'॥ ९—११॥

—ऐसा कहकर कुपित हुए भगवान् श्रीकृष्णने शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा देवताओंको उसी प्रकार मार भगाया, जैसे सिंह अपने पञ्जोंकी मारसे सियारोंको खदेड़ देता है। तदनन्तर कंस-निषूदन श्रीकृष्णने कुपित होकर गरुड़से कहा—'विनतानन्दन! तुमने इस रणमण्डलमें युद्ध नहीं किया'॥ १२-१३॥

यह सुनकर विष्णुरथ गरुड़ने कुपित हो पत्नीसहित श्रीकृष्णको कंधेपर धारण किये हुए ही पञ्जों और पंखोंसे तत्काल युद्ध आरम्भ कर दिया॥ १४॥

2260 Grag Sanhita sanuwad_Section_29_1_Back

तुण्डेन भक्षयन् देवांस्ताडयन् विचचार वै।
ततश्च दुद्रुवुर्देवा हन्यमाना गरुत्मता॥ १५

अथ बाणैर्महीपाल इन्द्रोपेन्द्रौ महाबलौ।
परस्परं च वर्षन्तौ धाराभिरिव तोयदौ॥ १६

ऐरावतेन राजेन्द्र सुपर्णो युयुधे तदा।
गजस्तार्क्ष्यं तु दशनैर्जघान गरुडस्तथा॥ १७

गजं तु तुण्डपक्षैश्च छिन्नं भिन्नं चकार ह।
सुरैः समस्तैर्युयुधे वज्रिणा च यदूत्तमः॥ १८

भगवान् मघवन्तं वै मघवा मधूसूदनम्।
बाणैर्ववृषतुः क्रुद्धावन्योऽन्यविजिगीषिणौ॥ १९

छिन्नेष्वस्त्रेषु बाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु च त्वरम्।
वज्रं जग्राह मघवा भगवाँश्चक्रमेव च॥ २०

हाहाकारस्तदैवासीत्त्रैलोक्ये सचराचरे।
वज्रचक्रधरौ वीक्ष्य सुरेश्वरनरेश्वरौ॥ २१

जग्राह वामहस्तेन क्षिप्तं वज्रं च वज्रिणा।
न मुमोच हरिश्चक्रं तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच च॥ २२

लज्जितं वज्रहीनं च तार्क्ष्येण क्षतवाहनम्।
भीतं पलायमानं चालोक्य सत्या जहास वै॥ २३

शची वीक्ष्यागतं शक्रं प्राह कोपेन पूरिता।
एकाकिना माधवेन प्रधने तु विनिर्जितः॥ २४

महासैन्ययुतस्त्वं वै तस्मात्ते धिग्बलं सुर।
अहं गत्वा रणे कृष्णं विनिर्जित्य सुरद्रुमम्॥ २५

मोचयामि न सन्देहः पश्य त्वं च सुराधम।

वे अपनी चोंचसे देवताओंको चबाते और घायल करते हुए युद्धभूमिमें विचरने लगे। गरुड़की मार खाकर देवतालोग इधर-उधर भागने लगे। राजन्! इन्द्र और उपेन्द्र दोनों महाबली वीर एक-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करते हुए जलकी धारा बरसानेवाले दो मेघोंके समान शोभा पाते थे। राजेन्द्र! उस समय गरुड़ ऐरावत हाथीके साथ युद्ध करने लगे। हाथीने अपने दाँतोंके आघातसे गरुड़को चोट पहुँचायी और गरुड़ने भी अपनी चोंच और पंखोंकी मारसे ऐरावतको छिन्न-भिन्न कर डाला॥ १५—१७१/२॥

यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण अकेले ही समस्त देवताओं तथा वज्रधारी इन्द्रके साथ जूझ रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रपर और इन्द्र मधुसूदन श्रीकृष्णपर क्रोधपूर्वक बाणोंकी वर्षा करने लगे। वे दोनों एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छा लिये जूझ रहे थे। जब सारे अस्त्र-शस्त्र और बाण कट गये, तब इन्द्रने तत्काल ही वज्र उठा लिया और भगवान् श्रीकृष्णने चक्र हाथमें ले लिया॥ १८—२०॥

देवेश्वरको वज्र और नरेश्वर श्रीकृष्णको चक्र हाथमें लिये देख उस समय चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। वज्रधारी इन्द्रके चलाये हुए वज्रको भगवान् श्रीकृष्णने बायें हाथसे पकड़ लिया, परंतु अपना चक्र उनपर नहीं छोड़ा। केवल इतना ही कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह।' इन्द्रके हाथमें वज्र नहीं था। गरुड़ने उनके वाहनको क्षत-विक्षत कर दिया था। वे लज्जित और भयभीत होकर भागने लगे। उन्हें इस दशामें देखकर सत्यभामा हँसने लगीं॥ २१—२३॥

राजन्! उधर शचीने जब देखा कि इन्द्र युद्धमें पीठ दिखाकर चले आये, तो वे रोषसे आगबबूला हो गयीं और फटकारकर बोलीं—'देवेश्वर! आप देवताओंकी विशाल सेनाके साथ रहकर माधवके साथ युद्ध कर रहे थे, तथापि उन्होंने अकेले ही रणक्षेत्रमें आपको पराजित कर दिया। अतः आपके बल-पराक्रमको धिक्कार है। देवाधम! तुम चुपचाप तमाशा देखो। मैं स्वयं युद्धस्थलमें जाकर श्रीकृष्णको परास्त करूँगी और पारिजातको छुड़ा लाऊँगी, इसमें संदेह नहीं'॥ २४—२५१/२॥

श्रीगर्ग उवाच

इत्युक्त्वा शिविकां शीघ्रमारुह्य कुपिता शची ॥ २६

योद्धुकामा ययौ राजन् पुनः सुरगणैर्वृता।
तामागतां वीक्ष्य कृष्णो युद्धाय न दधे मनः ॥ २७

ततः सत्या हरिं प्राह रुषा प्रस्फुरिताधरा।
अद्य युद्धं करिष्यामि शच्या सार्धमहं प्रभो ॥ २८

तच्छ्रुत्वा प्रहसन् कृष्णो दत्वा तस्यै सुदर्शनम्।
स्थापयित्वा सुपर्णे च जग्राह द्युतरुं स्वयम् ॥ २९

यदा हरिप्रिया क्रुद्धा युद्धं कर्तुं समागता।
तदा सर्वत्र ब्रह्माण्डे चासीत्कोलाहलो महान् ॥ ३०

भयं प्रापुः सुराः सर्वे विधिशक्रादयो नृप।
तदैव गीष्पती राजन्नाययौ शक्रनोदितः ॥ ३१

आगत्य वारयामास योद्धुकामां पुलोमजाम्।

श्रीबृहस्पतिरुवाच

शची शृणु मदीयं वै वचनं बहुबुद्धिदम् ॥ ३२

कृष्णस्तु भगवान् साक्षात्सत्यभामा च धीमती।
तया सार्धं कथं युद्धं करिष्यसि हरिप्रिये ॥ ३३

तस्मादवज्ञां सन्त्यज्य ऋभुक्षे त्वं गृहं व्रज।
सत्यां वै पारिजातं च दत्वा रक्ष सुरान् भयात् ॥ ३४

यद्भयाद्वाति पवनो वह्निर्दहति यद्भयात्।
भयाद्यन्मृत्युश्चरति ब्रध्नो व्रजति यद्भयात् ॥ ३५

यस्माद् बिभेति ब्रह्मा वै कपर्दी च पुरन्दरः।
तं न जानासि कृष्णं वै भौमं हत्वा समागतम् ॥ ३६

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा शची वाक्यं भामां कृष्णं च लज्जया।
नत्वा जगाम सदनमात्मानं च विगर्हती ॥ ३७

ततः शक्रं नमन्तं च व्रीडितं वीक्ष्य माधवी।
उवाच शक्र मा व्रीडां गते च भिदुरे कुरु ॥ ३८

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर क्रोधसे भरी हुई शची शीघ्र ही शिविकापर आरूढ़ हो युद्धकी इच्छासे प्रस्थित हुईं। फिर समस्त देवता उनके साथ युद्धके मैदानमें गये। शचीको आयी देख श्रीकृष्णके मनमें युद्धके लिये उत्साह नहीं हुआ। तब सत्यभामाके अधर रोषसे फड़कने लगे। वे श्रीहरिसे बोलीं—'प्रभो! अब मैं शचीके साथ युद्ध करूँगी'॥ २६—२८॥

उनकी बात सुनकर श्रीकृष्णने हँसते हुए सुदर्शन चक्र उनके हाथमें दे दिया और स्वयं पारिजातको गरुडपर रखकर उसे पकड़ लिया। जब श्रीहरिप्रिया सत्यभामा क्रोधपूर्वक युद्ध करनेपर उतर आयीं, तब ब्रह्माण्डमें सर्वत्र महान् कोलाहल मच गया। नरेश्वर! ब्रह्मा और इन्द्र आदि सब देवता भयभीत हो गये। राजन्! उसी समय इन्द्रकी प्रेरणासे देवगुरु बृहस्पतिजी वहाँ आये। आकर उन्होंने युद्धकी इच्छा रखनेवाली पुलोमपुत्री शचीको रोका॥ २९—३१½॥

श्रीबृहस्पति बोले—शची! मेरी बात सुनो। यह अनेक प्रकारकी बुद्धि और विचार देनेवाली है। श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं और बुद्धिमती सत्यभामा साक्षात् लक्ष्मी। इन्द्रप्रिये! तुम उनके साथ कैसे युद्ध करोगी? अतः [श्रीकृष्णके प्रति] अवहेलना छोड़कर घरको लौट चलो। देवेन्द्रवल्लभे! सत्यभामाको पारिजात देकर समस्त देवताओंकी भयसे रक्षा करो॥ ३२—३४॥

जिनके भयसे हवा चलती है, जिनके डरसे आग जलती और जलाती है, जिनके भयसे मृत्यु सर्वत्र विचरती है, जिनके डरसे सूर्यदेव तपते हैं तथा ब्रह्मा, शिव एवं इन्द्र जिनसे सदा भयभीत रहते हैं, उन श्रीकृष्णको जो भौमासुरका वध करके यहाँ आये हैं, तुम अच्छी तरह नहीं जानती॥ ३५-३६॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—देवगुरुकी यह बात सुनकर शची लज्जित हो सत्यभामा और श्रीकृष्णको नमस्कार करके अपने-आपको धिक्कारती हुई घरको लौट गयीं। तत्पश्चात् लज्जित हुए इन्द्रको नमस्कार करते देख श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामाने कहा—'देवेन्द्र! अपने हाथसे वज्रके निकल जानेसे लज्जाका अनुभव न करो॥ ३७-३८॥

द्वन्द्वयुद्धे हि चैकस्य भविष्यति पराजयः।
इति श्रुत्वा च प्रोवाच वचनं पाकशासनः॥ ३९

द्वन्द्व-युद्धमें दोमेंसे एककी पराजय अवश्यम्भावी है।' उनका यह कथन सुनकर पाकशासन बोले॥ ३९॥

इन्द्र उवाच

यस्मिञ्जगत्सकलमेतदनादिमध्ये
यस्माद्यतश्च न भविष्यति सर्वभूतात्।
तेनोद्भवप्रलयपालनकारणेन
व्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य॥ ४०

सकलभुवनसूतेर्मूर्तिरन्यातिसूक्ष्मा
विदितसकलवेद्यैर्ज्ञायते यस्य नान्यैः।
तमजमकृतमीशं शाश्वतं स्वेच्छयैनं
जगदुपकृतिमर्त्यं को विजेतुं समर्थः॥ ४१

इन्द्रने कहा—देवि! जिस आदि और मध्यसे रहित परमात्मामें यह सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है, जिनसे इसकी उत्पत्ति हुई है तथा जिन सर्वभूतमय परमेश्वरसे ही इसका संहार होनेवाला है, उन सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत परमेश्वरसे पराजित हुए पुरुषको लज्जा कैसे हो सकती है? जो समस्त भुवनोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं, जिनकी अत्यन्त सूक्ष्म मूर्ति—जिनका निर्गुण-निराकार शरीर कुछ और ही है, अर्थात् अनिर्वचनीय होनेके कारण जिसका शब्दोंद्वारा प्रतिपादन नहीं हो सकता, जो समस्त ज्ञातव्य तत्त्वोंके जानकार हैं, ऐसे सर्वज्ञ महात्मा ही जिनके उस स्वरूपको जान पाते हैं, दूसरे लोग उसे कदापि नहीं जानते हैं, उन्हीं अजन्मा, नित्य, सनातन परमेश्वरको, जो स्वेच्छासे ही जगत्के उपकारके लिये मानव-शरीर धारण करके विराज रहे हैं, कौन जीत सकता है?॥ ४०-४१॥

इत्युक्त्वा सत्यभामां वै शक्रस्तूष्णीं बभूव ह।
ततः प्रहस्य भगवान् प्राह गम्भीरया गिरा॥ ४२

भवान् देवाधिपः शक्र वयं भूमिनिवासिनः।
क्षन्तव्यमपराधं तद्भवता च कृतं मया॥ ४३

भोः शक्र पारिजातश्च नीयतामुचितास्पदम्।
गृहीतोऽयं मया सत्यभामावचनकारणात्॥ ४४

गृहाण कुलिशं चेदं प्रहितं यत्त्वया मयि।
तवैवास्त्रं शुनासीर तद्वैरिषु निवारणम्॥ ४५

सत्यभामासे ऐसा कहकर इन्द्र चुप हो गये, तब भगवान् श्रीकृष्ण हँसकर गम्भीर वाणीमें बोले—'शक्र! आप देवताओंके राजा हैं और हमलोग भूतलवासी मनुष्य। मैंने यहाँ आकर जो अपराध किया है, उसे क्षमा कर दें। देवराज! यह रहा आपका पारिजात, इसे इसके योग्य स्थानपर ले जाइये। मैंने तो सत्यभामाके कहनेसे इसको ले लिया था। आपने मुझपर जिसका प्रहार किया था, वह वज्र यह रहा; इसे ग्रहण कीजिये। शुनासीर! यह आपका ही अस्त्र है और आपके वैरियोंपर प्रयुक्त होकर यह उनका निवारण कर सकता है'॥ ४२—४५॥

इन्द्र उवाच

कृष्ण किं मोहयसि मां नरोऽहमिति किं वद।
जानीमस्त्वां जगन्नाथं न तु सूक्ष्मविदो वयम्॥ ४६

योऽसि सोऽसि जगत्त्राणप्रवृत्तौ नाथ संस्थितिः।
विश्वस्य शल्यनिष्कर्षं करोषि गरुडध्वज॥ ४७

अयं च नीयतां कृष्ण पारिजातः कुशस्थलीम्।
नरलोके त्वया त्यक्ते नायं संस्थास्यते भुवि॥ ४८

इन्द्रने कहा—श्रीकृष्ण! अपने विषयमें 'मैं मनुष्य हूँ'—ऐसा कहकर आप क्यों मुझे मोहमें डाल रहे हैं? हम जानते हैं, आप जगदीश्वर हैं। हम आपके सूक्ष्म स्वरूपको नहीं जानते। नाथ! आप जो हों, सो हों, जगत्के उद्धारकार्यमें आप लगे हुए हैं। गरुड़ध्वज! आप जगत्के कण्टकोंका शोधन करते हैं। श्रीकृष्ण! इस पारिजातको आप द्वारकापुरीमें ले जाइये। जब आप मनुष्यलोकको त्याग देंगे, तब यह भूतलपर नहीं रहेगा।

आगमिष्यति गोविन्द स्वयमेव त्रिविष्टपम्।

श्रीगर्ग उवाच

तच्छ्रुत्वा वज्रिणे वज्रं दत्वा सोऽप्याजगाम कौ॥ ४९

द्वारकां द्वारकानाथः स्तूयमानः सुरेश्वरैः।
उपाध्माय ततः कम्बुं संस्थितो द्वारकोपरि॥ ५०

उत्पादयामास मुदं द्वारकावासिनां नृप।
सुपर्णादवतीर्याथ कृष्णो भामासमन्वितः॥ ५१

पारिजातं च निष्कूटे स्थापयामास लीलया।
जुष्टं सुरद्रुमं कृष्णो भ्रमरैः स्वर्गपक्षिभिः॥ ५२

अथैकस्मिन् मुहूर्ते वै माधवे माधवः स्वयम्।
उवाह राजकन्याश्च पृथग्गेहेषु धर्मतः॥ ५३

षोडशस्त्रीसहस्त्राणि अष्टाधिकशतानि च।
तावन्ति चक्रे रूपाणि परिपूर्णतमो हरिः॥ ५४

एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान्।
यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः॥ ५५

गोविन्द! उस समय यह स्वयं ही स्वर्गलोकमें आ जायगा॥ ४६—४८ १/२॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! यह विनययुक्त वचन सुनकर वज्रधारीको उनका वज्र लौटाकर, देवेश्वरोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए द्वारकानाथ श्रीकृष्ण द्वारकामें लौट आये। वहाँके आकाशमें स्थित होकर उन्होंने शङ्ख बजाया॥ ४९-५०॥

नरेश्वर! उस शङ्खध्वनिसे उन्होंने द्वारकावासियोंके हृदयमें आनन्द उत्पन्न किया और गरुड़से उतरकर सत्यभामाके साथ महलमें आये। उन्होंने सत्यभामाके गृहोद्यानमें पारिजातको आरोपित कर दिया। उसपर स्वर्गीय पक्षी निवास करते थे और वहींके भ्रमर उसके सुगन्धित मकरन्दका पान करते थे॥ ५१-५२॥

माधवने माधवमासमें एक ही मुहूर्तके भीतर अलग-अलग घरोंमें उन समस्त राजकन्याओंके साथ धर्मतः विवाह किया, जिन्हें वे प्राग्ज्योतिषपुरसे द्वारकामें लाये थे। उनकी रानियोंकी संख्या सोलह हजार एक सौ आठ थी। परिपूर्णतम श्रीहरिने उतने ही रूप बनाकर उनके साथ विवाह किया। उन अमोघगति परमेश्वरने जितनी अपनी भार्याएँ थीं, उनमेंसे प्रत्येकके गर्भसे दस-दस पुत्र उत्पन्न किये॥ ५३—५५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे श्रीगर्ग-वज्रनाभसंवादे पारिजातानयनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें श्रीगर्ग-वज्रनाभ-संवादमें 'पारिजातका आनयन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

श्रीकृष्णके अनेक चरित्रोंका संक्षेपसे वर्णन

श्रीगर्ग उवाच

पुनस्ते कथयिष्यामि यशः सङ्क्षेपतो हरेः।
चकार हास्यं भगवान् रुक्मिण्या सह चाद्भुतम्॥ १

अनिरुद्धविवाहे चावधीद्भ्रात्रा तु रुक्मिणम्।
ऊषास्वप्नकथा चित्रलेखया हरणं हरेः॥ २

श्रीगर्गजी बोले—राजन्! अब मैं पुनः तुम्हारे समक्ष श्रीहरिके यशका संक्षेपसे वर्णन करूँगा। एक समय भगवान् श्रीकृष्णने रुक्मिणीके साथ अद्भुत हास्य-विनोद किया था। अनिरुद्धके विवाहमें उन्होंने अपने भाई बलरामजीद्वारा रुक्मिणीके भाई रुक्मीका वध करा दिया। बाणासुरकी पुत्री ऊषाने एक स्वप्न देखा और उसकी चर्चा अपनी सखी चित्रलेखासे की। चित्रलेखाने श्रीहरिके पौत्र अनिरुद्धका अपहरण कर लिया॥ १-२॥

पौत्रस्य बन्धनं चापि बाणयादवसंयुगः।
कृष्णशङ्करयोर्युद्धे ज्वरसंस्तवनं ततः॥ ३

बाणबाहुच्छिदी रुद्रस्तुतिर्बाणस्य रक्षणे।
ऊषाप्राप्तिर्नृगाख्यानं बलस्य च व्रजागमम्॥ ४

गोपीविलापो रामस्य स्तुतिर्गोपीभिरेव च।
यमुनाकर्षणं काशीपतिपौण्ड्रकघातनम्॥ ५

कृत्योत्पत्तिर्दाहनं च काश्याः कपिवधस्ततः।
साम्बस्य बन्धने रामविक्रमो गजसाह्वये॥ ६

उग्रसेनराजसूये जघान शकुनिं हरिः।
नारदेन हरेर्लीलादर्शनं गृहमेधिनाम्॥ ७

आह्निकं वासुदेवस्य राजदूतेन वै स्तुतिः।
इन्द्रप्रस्थे च गमनमुद्धवेन च यादवैः॥ ८

जरासन्धं च भीमेन निजघान गिरिव्रजे।
सहदेवाभिषेकं च राजभिश्च कृता स्तुतिः॥ ९

कन्याके अन्तःपुरमें पाये जानेके कारण बाणासुरने उन्हें कारागारमें डाल दिया। फिर तो बाणासुरके साथ यादवोंका घोर युद्ध हुआ। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तथा शंकरजीमें युद्ध छिड़ गया। उस समय माहेश्वर-ज्वर और वैष्णव-ज्वर भी आपसमें लड़ गये। पराजित हुए माहेश्वर-ज्वरने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की॥ ३॥

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा जब बाणासुरकी भुजाओंका छेदन होने लगा, तब उस असुरकी जीवन-रक्षाके लिये रुद्रदेवने भगवान्‌का स्तवन किया। अनिरुद्धको ऊषाकी प्राप्ति हुई। यादव-बालकोंके समक्ष भगवान्‌ने राजा नृगकी कथा कही और उनका उद्धार किया। बलरामजीने एक समय व्रजकी यात्रा की, उस समय दीर्घकालके बाद उन्हें देखकर गोपियोंने विलाप किया। गोपियोंद्वारा उनका स्तवन भी किया गया। बलरामजीने वृन्दावन-विहारके लिये यमुनाजीकी धाराको हलके अग्रभागसे खींच लिया। भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा काशिराज एवं पौण्ड्रकका वध किया गया॥ ४-५॥

काशिराजके पुत्रोंने पुरश्चरण करके कृत्या उत्पन्न की, जिसने द्वारकापर आक्रमण किया। फिर सुदर्शनचक्रने कृत्याको जलाकर काशीपुरीको भी दग्ध कर दिया। रैवतक पर्वतपर बलरामने 'द्विविद' नामक वानरका वध किया। दुर्योधन आदिने जब साम्बको हस्तिनापुरके बन्धनागारमें बंद कर दिया, तब वहाँ बलरामजीका पराक्रम प्रकट हुआ। उग्रसेनके राजसूय यज्ञ-प्रसंगमें श्रीहरिने शकुनिका वध किया। देवर्षि नारदने द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णकी गृहस्थजनोचित लीलाओंका दर्शन किया॥ ६-७॥

भगवान् श्रीकृष्णकी दिनचर्या, बंदी राजाओंके द्वारा भेजे गये दूतके मुखसे श्रीहरिकी स्तुति, भगवान्‌का यादवों तथा उद्धवके साथ इन्द्रप्रस्थगमन, गिरिव्रजमें भीमसेनके द्वारा जरासंधका वध, जरासंधपुत्र सहदेव-का राज्याभिषेक, बन्धनमुक्त हुए राजाओंद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति की गयी॥ ८-९॥

राजसूये हरेः पूजा शिशुपालवधस्तथा।
दुर्योधनाभिमानस्य भङ्गः प्रद्युम्नशाल्वयोः॥ १०

युद्धं त्रिनवरात्रं च कृष्णस्यागमनं ततः।
शाल्वस्य दन्तवक्रस्य तद्भ्रातुर्लीलया वधः॥ ११

ततो गजाह्वये राजन् दुर्द्यूतेन च कौरवैः।
विनिर्जितो भ्रातृयुक्तः सभार्यस्तु युधिष्ठिरः॥ १२

वनं जगाम संस्थाप्य पृथां च विदुरगृहे।
गत्वारण्ये निवासं वै चकार बहुभिर्दिनैः॥ १३

ततश्च पालयामास महीं दुर्योधनो मुदा।
प्रजास्तं नाभ्यनन्दन् स्म पाण्डुपुत्रे गते सति॥ १४

अरण्ये वर्तमानान् वै पाण्डवान् दुःखकर्षितान्।
मिलित्वाश्वासयामास ह्यनन्तश्चैकदा हरिः॥ १५

दृष्ट्वाथ पाण्डवान् कृष्णो ह्याजगाम कुशस्थलीम्।
उग्रसेनसुधर्मायां शशंस चेष्टितं च तत्॥ १६

तच्च श्रुत्वा यादवाश्च प्रोचुः सर्वे हि विस्मिताः।

यादवा ऊचुः

किं कृतं धृतराष्ट्रेण दीना भ्रातृसुता अहो॥ १७

दुर्द्यूतेन विनिर्जित्याधर्मान्निष्कासिता गृहात्।
स्वाधर्मेण विनश्यन्ति कौरवा राज्यलोलुपाः॥ १८

पाण्डवेभ्यस्तु भगवांस्तस्माद्दास्यति सम्पदम्।

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा यादवानां वाक्यं च मधुसूदनः॥ १९

आययौ वै स्वभवनं सायङ्काले नृपेश्वर।
आगतं स्वात्मजं वीक्ष्य नमन्तं देवकी मुदा॥ २०

दत्वाशिषं भोजनं च कारयामास वै सती॥ २१

ततः स चाययौ कृष्णः स्वस्त्रीणां मन्दिराणि च।
प्रियाभिः पूजितस्तत्र चकार शयनं किल॥ २२

राजसूय यज्ञमें श्रीहरिकी अग्रपूजा, शिशुपालका वध, दुर्योधनके अभिमानका खण्डन, प्रद्युम्न और शाल्वका सत्ताईस दिनोंतक युद्ध, श्रीकृष्णका द्वारकामें आगमन, शाल्व, दन्तवक्र और उसके भाई विदूरथका श्रीकृष्णके हाथसे लीलापूर्वक वध आदि वृत्तान्त घटित हुए॥ १०-११॥

राजन्! तदनन्तर कौरवोंने हस्तिनापुरमें कपट-द्यूतका आयोजन करके उसमें भाइयों और भार्यासहित युधिष्ठिरको हराया तथा वे अपनी माता कुन्तीको विदुरके घरमें रखकर वनको चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने बहुत दिनोंतक विभिन्न वन्यप्रदेशोंमें निवास किया॥ १२-१३॥

तत्पश्चात् दुर्योधन राजा बन बैठा और बड़ी प्रसन्नताके साथ पृथ्वीका पालन करने लगा; परंतु पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके चले जानेपर प्रजाजनोंने उसका अभिनन्दन नहीं किया। वनमें रहकर कष्ट उठानेवाले पाण्डवोंसे एकदिन बलराम और श्रीकृष्ण मिले और दोनोंने उन्हें धीरज बँधाया। पाण्डवोंसे मिलकर श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये। उन्होंने उग्रसेनकी सुधर्मा-सभामें कौरवोंकी सारी कुचेष्टाएँ कह सुनायीं। वह सब सुनकर समस्त यादव विस्मित होकर बोले—॥ १४—१६ १/२॥

यादवोंने कहा—अहो! राजा धृतराष्ट्रने यह क्या किया? उन्होंने दीन-दयनीय भतीजोंको कपटद्यूतमें जीतकर अधर्मपूर्वक घरसे निकाल दिया। राज्यलोलुप कौरव अपने अधर्मसे नष्ट हो जायँगे और भगवान् पाण्डवोंको राज्यसम्पत्ति प्रदान करेंगे॥ १७—१८ १/२॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपेश्वर! यादवोंकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण सायंकाल अपने घरमें आये और माताको प्रणाम किया। पुत्रको आया और प्रणाम करता देख देवकीने प्रसन्नतापूर्वक शुभ आशीर्वाद दिया और उस सती-साध्वी देवीने बड़े प्यारसे उनको भोजन कराया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अपनी रानियोंके महलमें आये और प्रियाजनोंसे पूजित हो वहीं शयन किया॥ १९—२२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे श्रीकृष्णचरित्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अंतर्गत अश्वमेधखण्डमें 'श्रीकृष्णचरित्र-वर्णन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

देवर्षि नारदका ब्रह्मलोकसे आगमन; राजा उग्रसेनद्वारा उनका सत्कार; देवर्षिद्वारा अश्वमेध-यज्ञकी महत्ताका वर्णन; श्रीकृष्णकी अनुमति एवं नारदजीद्वारा अश्वमेध-यज्ञकी विधिका वर्णन

श्रीगर्ग उवाच

देवर्षिश्चैकदा राजन् दृष्ट्वा रामं च केशवम्।
स्ववीणां वादयन् कृष्णगाथां गायन् समाययौ॥ १

ब्रह्मलोकात्सर्वलोकान् पश्यन् भास्करसन्निभः।
साकं तुम्बुरुणा पिङ्गजटाभारेण शोभितः॥ २

किञ्चिच्छ्यामो मृगाक्षश्च काश्मीरतिलकैर्वृतः।
पीतेन धौतवस्त्रेण तथा पीताम्बरेण च॥ ३

रङ्गवल्लीमालया च व्रजस्त्रीचन्दनेन च।
वृद्धः पञ्चदशाब्दैश्च मण्डितः शुशुभे बहु॥ ४

दृष्ट्वा तमागतं राजा शक्रसिंहासने स्थितः।
सुधर्मायां स चोत्थाय नत्वा सिंहासनं ददौ॥ ५

तदङ्घ्री चावनिज्याथ कृत्वा पूजनमुत्तमम्।
तज्जलं मस्तके धृत्वा चोग्रसेनस्तमब्रवीत्॥ ६

श्रीउग्रसेन उवाच

अद्य मे सफलं जन्म सफलं सदनं च मे।
अद्य मे सफलश्चात्मा देवर्षे तव दर्शनात्॥ ७

नमस्तस्मै भगवते नारदाय महात्मने।
कामक्रोधविहीनाय ऋषीणां प्रवराय च॥ ८

किमर्थमागतोऽसि त्वमाज्ञां कुरु ममोपरि।
निशम्य वचनं तस्य ऋषिर्निर्जरदर्शनः॥ ९

उवाच नृपशार्दूलं मनसा नोदितो हरेः।

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! एक समय देवर्षि नारद बलराम और श्रीकृष्णके दर्शनके लिये अपनी वीणा बजाते और श्रीकृष्णलीलाओंका गान करते हुए ब्रह्मलोकसे चलकर समस्त लोकोंको देखते हुए भूतलपर आये। वे सूर्यदेवके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उनके साथ तुम्बुरु भी थे। पिङ्गलवर्णकी जटाओंका भार उनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहा था॥ १-२॥

उनकी अङ्गकान्ति कुछ-कुछ श्याम थी, नेत्र मृगोंके नयनोंके समान विशाल थे, भालदेशमें केसरके तिलक शोभा दे रहे थे। वे पीले रंगके धौतवस्त्र तथा रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे। रंगवल्लीकी माला और गोपीचन्दनसे मण्डित देवर्षि पंद्रह वर्षकी-सी अवस्थासे अत्यन्त सुशोभित होते थे॥ ३-४॥

राजा उग्रसेन सुधर्मा-सभामें देवराजके दिये सिंहासनपर विराजमान थे। देवर्षिको आया देख वे उठकर खड़े हो गये और चरणोंमें प्रणाम करके उन्हें बैठनेके लिये सिंहासन दिया। फिर उनके चरण पखारकर उत्तम विधिसे पूजन किया और चरणोदक मस्तकपर रखकर राजा उग्रसेन नारदजीसे बोले—॥ ५-६॥

श्रीउग्रसेनने कहा—देवर्षे! आपके दर्शनसे आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा सदन सार्थक हो गया और मेरा तन-मन एवं जीवन कृतार्थ हो गया। जो काम तथा क्रोधसे रहित हैं, उन देवर्षिशिरोमणि महात्मा भगवान् नारदको नमस्कार है। प्रभो! आज्ञा कीजिये, आप किस प्रयोजनसे यहाँ पधारे हैं?॥ ७—८ १/२॥

देवताओंके समान देदीप्यमान दिखायी देनेवाले देवर्षि नारद राजाका यह विनययुक्त वचन सुनकर मन-ही-मन श्रीहरिसे प्रेरित हो उन नृपश्रेष्ठसे बोले—॥ ९ १/२॥

श्रीनारद उवाच

यादवेन्द्र महाराज धन्यस्त्वं पृथिवीपते॥ १०

त्वद्भक्त्या कौ निवसति बलेन सह केशवः।
राजसूयः क्रतुवरः पुरा मद्वचनात्त्वया॥ ११

कृतः श्रीकृष्णकृपया द्वारकायां सुखेन च।
येन त्रिलोके ते कीर्तिर्नृप विस्तारिता भुवि॥ १२

राजसूयाश्वमेधौ च कठिनौ मण्डलेश्वरैः।
हरिभक्तस्य राजेन्द्र सुलभौ चक्रवर्तिनः॥ १३

द्वयोर्मध्ये कृतश्चैको राजसूयस्त्वया नृप।
तथा युधिष्ठिरेणापि कृतः कृष्णाज्ञया ततः॥ १४

द्वापरान्ते भारते तु हयमेधः क्रतूत्तमः।
न कृतः केन राज्ञापि मुक्तिदस्त्वघनाशनः॥ १५

द्विजहा विश्वहा गोघ्नो वाजिमेधेन शुद्ध्यति।
तस्माद्वरं च यज्ञानां हयमेधं वदन्ति हि॥ १६

निष्कारणं नृपश्रेष्ठ वाजिमेधं करोति यः।
व्रजेत्सुपर्णकेतोः स सदनं सिद्धदुर्लभम्॥ १७

इति देवर्षिवचनमुग्रसेनो निशम्य च।
हयमेधं यज्ञवरं कर्तुं चक्रे मतिं नृप॥ १८

तदैव सह रामेण कृष्णं वीक्ष्यागतं नृपः।
पूजयित्वासने स्थाप्य साकं च ऋषिणाब्रवीत्॥ १९

उग्रसेन उवाच

देवदेव जगन्नाथ जगदीश जगन्मय।
वासुदेव त्रिलोकेश शृणुष्व वचनं मम॥ २०

मत्पुत्रेण च कंसेन बालकाश्च सहस्रशः।
विनापराधेन हरे मारिताश्च महासुरैः॥ २१

तस्य मुक्तिश्च गोविन्द कथं भवति पापिनः।
कस्मिँल्लोके गतः कंसो बालघाती वदस्व मे॥ २२

श्रीनारदजीने कहा—यादवराज! महाराज! पृथ्वीनाथ! तुम धन्य हो; तुम्हारे भक्तिभावके कारण ही भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ इस भूतलपर निवास करते हैं। तुमने पूर्वकालमें मेरे ही कहनेसे क्रतुश्रेष्ठ राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान किया था, जो भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे द्वारकापुरीमें सुखपूर्वक सम्पादित हुआ था। उस यज्ञके अनुष्ठानसे तीनों लोकोंमें तुम्हारी कीर्ति फैल गयी थी॥ १०—१२॥

राजसूय तथा अश्वमेध—इन दो यज्ञोंका सम्पादन चक्रवर्ती नरेशोंके लिये अत्यन्त कठिन होता है। परंतु राजेन्द्र! तुम हरिभक्तसम्राट् हो; अतः तुम्हारे लिये दोनों सुलभ हैं। नरेश्वर! दोनों यज्ञोंमेंसे एक—राजसूय यज्ञको तो तुमने और राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे पूर्ण कर लिया है॥ १३-१४॥

युधिष्ठिरके बाद द्वापरके अन्तमें यज्ञप्रवर अश्वमेधका अनुष्ठान भारतवर्षमें दूसरे किसी भी राजाने नहीं किया है। वह यज्ञ समस्त पापोंका नाश करनेवाला तथा मोक्षदायक है। द्विजघाती, विश्वहन्ता तथा गोहत्यारे भी अश्वमेध-यज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं; इसलिये सम्पूर्ण यज्ञोंमें अश्वमेधको सर्वश्रेष्ठ बताया जाता है। नृपश्रेष्ठ! जो निष्कामभावसे अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करता है, वह भगवान् गरुड़ध्वजके उस परमधाममें जाता है, जो सिद्धोंके लिये भी दुर्लभ है॥ १५—१७॥

नरेश्वर! देवर्षिका यह वचन सुनकर राजा उग्रसेनने यज्ञप्रवर अश्वमेधके अनुष्ठानका विचार किया। उसी समय बलरामसहित श्रीकृष्णको अपने निकट आया देख राजा उग्रसेनने उनका पूजन करके उन्हें आसनपर बिठाया और देवर्षिके साथ इस प्रकार कहा— ॥ १८-१९॥

उग्रसेन बोले—देवदेव! जगन्नाथ! जगदीश्वर! जगन्मय! वासुदेव! त्रिलोकीनाथ! मेरी बात सुनिये। हरे! मेरे बेटे कंसने बड़े-बड़े असुरोंके साथ मिलकर बिना अपराधके सहस्रों बालक मार डाले हैं। गोविन्द! उस पापीकी मुक्ति कैसे होगी? बालघाती कंस किस लोकमें गया है, यह मुझे बताइये॥ २०—२२॥

तस्य पापेनाहमपि भीतोऽस्मि जगदीश्वर।
पुत्रस्य पापेन पिता नरके पततिध्रुवम्॥ २३

पितुः पापेन पतति निरये हि तथा सुतः।
तस्माच्च किं करिष्येऽहमुपायं वद माधव॥ २४

कथितं नारदेनाद्य तच्छृणुष्व जगत्पते।
विप्रहा विश्वहा गोघ्नो हयमेधेन शुध्यति॥ २५

तस्मिन् यज्ञे मनो मेऽस्ति यदि चाज्ञां प्रदास्यसि।

श्रीगर्ग उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा मुदा मदनमोहनः॥ २६

मनसि प्राह सम्पश्यन् धरां भारेण पीडिताम्।
अहो मया तु बहुशो धराभारोऽवतारितः॥ २७

तथापि सति कौ मध्ये सोऽश्वमेधेन नश्यति।
नाहं हनिष्ये शत्रून् वै स्वहस्तेन मृधाङ्गणे॥ २८

इति प्रतिज्ञा तु कृता विदूरथवधे मया।
तस्माच्च प्रेषयिष्यामि स्वपुत्रान् यादवांस्तथा॥ २९

जेतुं वसुन्धरां सर्वां हयमेधमिषेण च।
इति वार्तां वज्रनाभे विष्वक्सेनो विचार्य च॥ ३०

सुधर्मायां च प्रहसन्नुग्रसेनमुवाच वै।

श्रीकृष्ण उवाच

मया हतो महाराज कंसो वैकुण्ठमन्दिरम्॥ ३१

गतो भूत्वा ममाकारः नित्यं वसति तत्र वै।
तथा त्वमपि राजेन्द्र विपापो दर्शनान्मम॥ ३२

तथापि हयमेधं त्वं यशोऽर्थे कुरु भूपते।
यज्ञेन ते महत्कीर्तिः पृथिव्यां च भविष्यति॥ ३३

इति तत्कथितं श्रुत्वा कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः।
उवाच परमं वाक्यमुग्रसेनो मुदा नृप॥ ३४

जगदीश्वर! उसके पापसे मैं भी डर गया हूँ। पुत्रके पापसे पिता निश्चय ही नरकमें पड़ता है। इसी प्रकार पिताके पापसे पुत्रको नरकमें गिरना पड़ता है। अतः माधव! कृपापूर्वक बताइये, मैं कंसके उद्धारके लिये किस उपायका अवलम्बन करूँ? जगत्पते! आज नारदजीने जो बात बतायी है, उसे सुनिये—'ब्रह्महत्यारा, विश्वघाती तथा गोघातक भी अश्वमेध-यज्ञके अनुष्ठानसे शुद्ध हो जाता है।' उस यज्ञमें मेरा मन लग गया है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं उसका अनुष्ठान करूँ॥ २३—२५½॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—उग्रसेनकी यह बात सुनकर मदनमोहन भगवान् श्रीकृष्ण मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और पृथ्वीको भारसे पीड़ित देख इस प्रकार विचार करने लगे—"अहो! मैंने अनेक बार पृथ्वीका भार उतारा है, तथापि वह भार भूमण्डलमें अबतक है ही; उसका निवारण अश्वमेध-यज्ञसे ही होगा॥ २६—२७½॥

विदूरथके वधके अवसरपर मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'अब मैं युद्धके मैदानमें शत्रुओंको अपने हाथसे नहीं मारूँगा'। इस कारण स्वयं तो युद्धके लिये नहीं जाऊँगा; परंतु अपने पुत्रों तथा अन्य यदुवंशियोंको अवश्य युद्धके लिये भेजूँगा। अश्वमेध तो एक बहाना होगा। मैं उसीकी आड़में सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतनेका प्रयास करूँगा।" वज्रनाभि! मन-ही-मन ऐसा सोचकर भगवान् श्रीकृष्ण सुधर्मा-सभामें हँसते हुए उग्रसेनसे बोले॥ २८—३०½॥

श्रीकृष्णने कहा—महाराज! कंस मेरे हाथसे मारा गया है, अतः निश्चय ही वैकुण्ठधामको गया है और वहाँ मेरे-जैसा स्वरूप धारण करके नित्य निवास करता है। राजेन्द्र! प्रतिदिन मेरा दर्शन करनेके कारण तुम भी पापरहित हो, तथापि तुम अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान अवश्य करो। पापनाश या कंसके उद्धारके लिये नहीं, अपने यशके विस्तारके लिये करो। भूपाल! इस यज्ञसे भूतलपर तुम्हारी विशाल कीर्ति फैलेगी॥ ३१—३३॥

राजन्! अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर उस समय राजा उग्रसेन बड़े प्रसन्न हुए और यह उत्तम वचन बोले॥ ३४॥

राजोवाच

अद्य देव करिष्येऽहमश्वमेधं क्रतूत्तमम्।
स भविष्यति शीघ्रं वै गोविन्द कृपया तव॥ ३५

हयमेधस्य च विधिं सर्वं मे ब्रूहि विस्तरात्।
इति श्रुत्वा च तद्वाक्यमवोचद्विष्टरश्रवाः॥ ३६

हयमेधविधिं पृच्छ देवर्षिं नारदं प्रति।
स तवाग्रे च वदति सर्वज्ञाता यदूद्वह॥ ३७

इति वाक्यं हरेः श्रुत्वा यदुराजो मुदान्वितः।
सभायां संस्थितं राजन् देवर्षिं निजगाद ह॥ ३८

तुरङ्गः कीदृशो भाव्यः कतिसंख्या द्विजोत्तमाः।
दक्षिणा कीदृशी ब्रह्मन् वद मे कीदृशं व्रतम्॥ ३९

उग्रसेनस्य वचनमाकर्ण्य देवदर्शनः।
स्मयमान इव प्राह प्रीत्या कृष्णं विलोकयन्॥ ४०

श्रीनारद उवाच

चन्द्रवर्णं रक्तमुखं पीतपुच्छं मनोहरम्।
सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यं श्यामकर्णं सुलोचनम्॥ ४१

प्रवदन्ति महाराज यज्ञेऽस्मिन् हयमीदृशम्।
मधुमासे पूर्णिमायां मोच्योऽयं घोटको नृप॥ ४२

महावीरैः पालनीयो वर्षमात्रं हयोत्तमः।
अश्वस्यागमनं यावद्भविष्यति स्वके पुरे॥ ४३

निवसेद्धैर्यसंयुक्तस्तावत्कर्ता प्रयत्नतः।
यत्र यत्र पुरीषं च मूत्रं च कुरुते हयः॥ ४४

कर्तव्यं हवनं विप्रैर्दातव्यं गोसहस्रकम्।
संलिख्य काञ्चनं पत्रं स्वनामबलचिह्नितम्॥ ४५

राजाने कहा—गोविन्ददेव! अब मैं यज्ञोंमें श्रेष्ठ अश्वमेधका अनुष्ठान अवश्य करूँगा और वह आपकी कृपासे शीघ्र पूर्ण हो जायगा। अब आप अश्वमेधका सारा विधिविधान मुझे विस्तारपूर्वक बताइये। राजाका यह वचन सुनकर विस्तृत यशवाले भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'यदुकुलतिलक महाराज! अश्वमेध-यज्ञकी विधि आप देवर्षि नारदजीसे पूछिये। ये सब कुछ जानते हैं, अतः आपके सामने उसका वर्णन करेंगे'॥ ३५—३७॥

राजन्! श्रीहरिका यह वचन सुनकर यदुराज उग्रसेन आनन्दमग्न हो गये। नरेश्वर! उन्होंने सभामें बैठे हुए देवर्षिसे इस प्रकार पूछा—'देवर्षे! अश्वमेध-यज्ञमें घोड़ा कैसा होना चाहिये? उसमें भाग लेनेवाले श्रेष्ठ द्विजोंकी संख्या कितनी होनी चाहिये? ब्रह्मन्! उसमें दक्षिणा कैसी हो तथा मुझ यजमानको किस तरहके व्रतका पालन करना चाहिये, यह सब बताइये'॥ ३८-३९॥

उग्रसेनकी यह बात सुनकर देवताओंके समान दर्शनीय देवर्षि नारद श्रीकृष्णके ऊपर प्रेमपूर्ण दृष्टि डालकर मुसकराते हुए-से बोले—॥ ४०॥

श्रीनारदजीने कहा—महाराज! विज्ञ पुरुषोंका कथन है कि इस यज्ञमें चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णवाले अश्वका उपयोग होना चाहिये। उसका मुख लाल हो, पूँछ पीले रंगकी हो तथा वह देखनेमें मनोहर, सर्वाङ्ग-सुन्दर एवं दिव्य हो। उसके कान श्यामवर्णके तथा नेत्र सुन्दर होने चाहिये। नरेश्वर! चैत्रमासकी पूर्णिमा तिथिको वह अश्व स्वच्छन्द विचरनेके लिये छोड़ा जाना चाहिये॥ ४१-४२॥

बड़े-बड़े वीर योद्धा एक वर्षतक साथ रहकर उस उत्तम अश्वकी रक्षा करें। जबतक वह अपने नगरमें न लौट आये, तबतक उसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिये॥ ४३॥

यजमान उतने कालतक धैर्यसे रहे और अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करे। वह अश्व जहाँ-जहाँ मूत्र और पुरीष करे, वहाँ-वहाँ ब्राह्मणोंद्वारा हवन कराना तथा एक सहस्र गौओंका दान करना चाहिये। सोनेके पत्रपर अपने नाम और बल-पराक्रमका

हयस्य भाले बद्ध्वा च कथनीयमिदं वचः।
सर्वे शृणुत राजानो विमुक्तोऽस्ति हयो मया॥ ४६

कश्चिद्भूयः श्यामकर्णं प्रतिगृह्णातु चेद्बलात्।
गृह्णाति यस्तं मानेन स जेतव्यो बलात्स्वयम्॥ ४७

विप्रा विंशतिसाहस्रा यज्ञादौ कीर्तिता नृप।
वेदज्ञाः सर्वशास्त्रज्ञाः कुलीनाश्च तपस्विनः॥ ४८

अत्र ते कथयिष्यामि समर्थस्त्वं शृणुष्व च।
वाजिमेधे महाराज विप्राणां दीर्घदक्षिणाम्॥ ४९

तुरगाणां सहस्रं च गजानां शतमेव च।
द्विशतं स्यन्दनानां च सहस्रं च गवां तथा॥ ५०

विंशद्भारं सुवर्णानां प्रदातव्यं द्विजे द्विजे।
यज्ञस्यादौ तथा चान्ते ईदृशी दक्षिणा मता॥ ५१

असिपत्रव्रतं कृत्वा ब्रह्मचर्यसमन्वितः।
कौ पत्न्या सार्धमेकत्र कुर्याच्च शयनं निशि॥ ५२

वर्षमात्रं महाराज कर्तव्यं व्रतमीदृशम्।
दीनानां च प्रदातव्यमन्नं वा बहुशो धनम्॥ ५३

विधिनानेन राजेन्द्र क्रतुरेष भविष्यति।
असिपत्रव्रतयुतो बहुपुत्रफलप्रदः॥ ५४

भीष्मं विना हि मदनं को विजेतुं भवेन्नरः।
तस्माद्भीता न कुर्वन्ति कठिनं चैनमद्भुतम्॥ ५५

कामं प्रतिविजेतुं वै शक्तिस्ते विद्यते यदि।
कुरु गर्गं समाहूय यज्ञारम्भं नृपोत्तम॥ ५६

सूचक वाक्य लिखकर उस अश्वके भालमें बाँध देना चाहिये तथा जगह-जगह यह घोषणा करानी चाहिये—'समस्त राजालोग सुनें, मैंने यह अश्व छोड़ा है। यदि कोई राजा मेरे श्यामकर्ण अश्वको अभिमानवश बलपूर्वक पकड़ लेगा, उसे बलात् परास्त किया जायगा'॥ ४४—४७॥

नरेश्वर! इस यज्ञके आरम्भमें बीस हजार ऐसे ब्राह्मणोंके वरण करनेका विधान है, जो वेदोंके विद्वान्, सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, कुलीन और तपस्वी हों॥ ४८॥

अब मैं इस यज्ञमें दी जानेवाली दक्षिणाके विषयमें बताता हूँ। तुम समर्थ हो, अतः सुनो। महाराज! अश्वमेध-यज्ञमें ब्राह्मणोंकी दीर्घ दक्षिणा इस प्रकार है—प्रत्येक द्विजको एक हजार घोड़े, सौ हाथी, दो सौ रथ, एक-एक सहस्र गौ तथा बीस-बीस भार सुवर्ण देने चाहिये। यह यज्ञके प्रारम्भकी दक्षिणा है। यज्ञ समाप्त होनेपर भी इतनी ही दक्षिणा देनी चाहिये॥ ४९—५१॥

असिपत्रव्रतका नियम लेकर ब्रह्मचर्यपालन-पूर्वक रात्रिमें पत्नीके साथ भूतलपर एक साथ शयन करना चाहिये॥ ५२॥

महाराज! एक वर्षतक ऐसे व्रतका पालन आवश्यक है। दीनजनोंको अन्न एवं बहुत धन देना चाहिये॥ ५३॥

राजेन्द्र! इस विधिसे यह यज्ञ पूर्ण होगा। असिपत्र-व्रतसे युक्त होनेपर यह यज्ञ बहुसंख्यक पुत्ररूपी फल प्रदान करनेवाला है॥ ५४॥

भीष्मके बिना दूसरा कौन ऐसा मनुष्य है, जो कामदेवको जीत सके। इसलिये भीरु हृदयके लोग इस कठिन एवं अद्भुत व्रतका पालन नहीं करते हैं॥ ५५॥

नृपश्रेष्ठ! यदि आपमें कामदेवको जीतनेकी शक्ति हो तो आप गर्गाचार्यको बुलाकर यज्ञका आरम्भ कर दीजिये॥ ५६॥

॥ इति श्रीगर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे यज्ञोद्योगवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यज्ञ-सम्बन्धी उद्योग-वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

यज्ञके योग्य श्यामकर्ण अश्वका अवलोकन

श्रीगर्ग उवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य स्पष्टाक्षरसमन्वितम्।
राजर्षिः प्राह देवर्षिं विस्मितः प्रहसन्निव॥ १

राजोवाच

मुने यज्ञं करिष्येऽहं यज्ञयोग्यं तुरङ्गमम्।
गत्वा ममाश्वशालायां हयांश्च त्वं विलोकय॥ २

नृपस्य वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा च नारदः।
वाजिशालां ययौ तेन द्रष्टुं कृष्णेन घोटकम्॥ ३

स गत्वा तत्र तुरगान् धूम्रवर्णान् मनोहरान्।
श्यामवर्णान् कृष्णवर्णान् पद्मवर्णान् ददर्श वै॥ ४

तथा चान्यत्र शालायां दुग्धाभाञ्जलसन्निभान्।
हरिद्राभान् कुङ्कुमाभान् पलाशकुसुमप्रभान्॥ ५

तथा चित्रविचित्राङ्गान् स्फटिकाङ्गान् मनोजवान्।
हरिद्वर्णांस्ताम्रवर्णान् कौसुम्भाङ्गाञ्छुकप्रभान्॥ ६

इन्द्रगोपनिभान् गौरान् दिव्यान् पूर्णशशिप्रभान्।
सिन्दूराङ्गानग्निवर्णान् बालसूर्यसमान्नृप॥ ७

ईदृशांश्च हयान् दृष्ट्वा नारदो विस्मयान्वितः।
उवाच कृष्णसहितमुग्रसेनं हसन्निव॥ ८

श्रीनारद उवाच

वाजिनस्ते महाराज सर्वे हि बहुसुन्दराः।
ईदृशा नैव स्वर्लोके पृथिव्यां च रसातले॥ ९

श्रीगर्गजी कहते हैं—देवर्षि नारदजीका सुस्पष्ट अक्षरोंसे युक्त यह वचन सुनकर राजर्षि उग्रसेन चकित हो गये। उन्होंने हँसते हुए-से उनसे कहा— ॥ १ ॥

राजा बोले—मुने! मैं अश्वमेध-यज्ञ करूँगा। आप इस यज्ञके योग्य अश्वको मेरी अश्वशालामें जाकर देखिये। बहुत-से अश्वोंके बीचमेंसे उसको छाँट लीजिये ॥ २ ॥

राजाकी यह बात सुनकर 'बहुत अच्छा' कहकर देवर्षि नारद यज्ञके योग्य अश्व देखनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णके साथ अश्वशालामें गये। वहाँ जाकर उन्होंने धूम्रवर्ण, श्यामवर्ण, कृष्णवर्ण और पद्मवर्णके बहुत-से मनोहर अश्व देखे ॥ ३-४ ॥

फिर वहाँसे दूसरी अश्वशालामें गये। वहाँ दूध, जल, हल्दी, केसर तथा पलाशके फूलकी-सी कान्तिवाले बहुत-से अश्व दृष्टिगोचर हुए। कई घोड़े चितकबरे रंगके थे। कितनोंके अङ्ग स्फटिक शिलाके समान स्वच्छ थे। वे सभी मनके समान वेगशाली थे। कितने ही अश्व हरे और ताँबेके समान वर्णवाले थे। कुछ घोड़ोंके रंग कुसुम्भ-जैसे और कुछके तोतेके पंख-जैसे थे ॥ ५-६ ॥

कोई इन्द्रगोपके समान लाल थे, कोई गौरवर्णके थे तथा कितने ही पूर्ण चन्द्रमाके समान धवल कान्तिवाले और दिव्य थे। बहुत-से अश्व सिन्दूरी रंगके थे। कितनोंकी कान्ति प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ती थी। कितने ही अश्व प्रातःकालिक सूर्यके समान अरुणवर्णके थे। नरेश्वर! ऐसे घोड़ोंको देखकर नारदजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे श्रीकृष्णसहित राजा उग्रसेनसे हँसते हुए-से बोले— ॥ ७-८ ॥

श्रीनारदजीने कहा—महाराज! आपके सभी घोड़े बड़े सुन्दर हैं। ऐसे अश्व पृथ्वीपर अन्यत्र नहीं हैं। स्वर्गलोक और रसातलमें भी ऐसे घोड़े नहीं दिखायी देते ॥ ९ ॥

वर्तन्ते वाजिशालायां कृष्णस्य कृपया तव।
एकोऽपि श्यामकर्णस्तु तेषां मध्ये न दृश्यते॥ १०

श्रीगर्ग उवाच

निशम्य वाक्यं देवर्षेर्नृपस्तु दुःखितोऽभवत्।
यज्ञो भविष्यति कथं मनसीति विचारयन्॥ ११

उदासीनं नृपं दृष्ट्वा भगवान् मधुसूदनः।
अवोचत्प्रहसञ्छीघ्रं मेघगम्भीरया गिरा॥ १२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु मद्वचनं राजन् सर्वं शोकं विहाय च।
गत्वा ममाश्वशालां वै श्यामकर्णं विलोकय॥ १३

इत्युदीरितमाकर्ण्य कृष्णेन च सुरर्षिणा।
हरेश्च वाजिशालां हि जगाम नृपसत्तमः॥ १४

ददर्श तां स गत्वा च यज्ञयोग्यान् सहस्रशः।
श्यामकर्णान् पीतपुच्छांश्चन्द्रवर्णान् मनोजवान्॥ १५

सर्वाङ्गसुन्दरान् दिव्याँस्तप्तहेममुखाञ्छुभान्।
एतान् दृष्ट्वा हयान् राजा विस्मयं परमं गतः॥ १६

हर्षेण महता युक्तः कृष्णं नत्वाब्रवीद्वचः।

राजोवाच

श्यामकर्णाश्च बहुशो मया चाद्य निरीक्षिताः॥ १७

दुर्लभं किं जगन्नाथ त्वद्भक्तानां धरातले।
यथा मनोरथः पूर्वं प्रह्लादस्य ध्रुवस्य च॥ १८

आसीत्त्वत्कृपया कृष्ण तथा मम मनोरथः।
इति श्रुत्वा हरी राजन् शार्ङ्गी भूपमवोचत॥ १९

श्रीकृष्ण उवाच

एकं त्वं श्यामकर्णानामश्वानां चन्द्रवर्चसाम्।
गृहीत्वा नृपशार्दूल कुरु यज्ञं ममाज्ञया॥ २०

यह श्रीकृष्णकी कृपा है, जिससे आपकी अश्वशालामें ऐसे-ऐसे अश्व शोभा पाते हैं। परंतु इन सबमें एक भी ऐसा अश्व नहीं दिखायी देता, जो श्यामकर्ण हो॥ १०॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—देवर्षिका यह वचन सुनकर राजा उग्रसेन दुखी हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि 'अब मेरा यज्ञ कैसे होगा?' राजाको उदास देख भगवान् मधुसूदन हँसते हुए शीघ्र ही मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—॥ ११-१२॥

श्रीकृष्णने कहा—राजन्! मेरी बात सुनिये और सारी चिन्ता छोड़कर मेरी अश्वशालामें चलकर श्यामकर्ण घोड़ेको देखिये॥ १३॥

—यह सुनकर नृपश्रेष्ठ उग्रसेन श्रीकृष्ण और देवर्षि नारदके साथ उनकी अश्वशालामें गये। वहाँ जाकर उन्होंने यज्ञके योग्य सहस्रों श्यामकर्ण घोड़े देखे, जिनकी पूँछ पीली, अङ्गकान्ति चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा गति मनके समान तीव्र थी। उन सबके मुख तपाये हुए सुवर्णके समान जान पड़ते थे। ऐसे शुभ-लक्षणसम्पन्न सर्वाङ्गसुन्दर और दिव्य अश्व देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे महान् हर्षसे उल्लसित हो श्रीकृष्णको मस्तक झुकाकर बोले—॥ १४—१६½॥

राजाने कहा—जगन्नाथ! आज मैंने यहाँ बहुत-से श्यामकर्ण घोड़े देखे। भला, आपके भक्तोंके लिये इस भूतलपर कौन-सी वस्तु दुर्लभ होगी। श्रीकृष्ण! जैसे पूर्वकालमें प्रह्लाद और ध्रुवका मनोरथ पूर्ण हुआ था, उसी प्रकार आपकी कृपासे मेरा भी मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा॥ १७—१८½॥

राजन्! ऐसा सुनकर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले श्रीहरि राजासे इस प्रकार बोले—॥ १९॥

श्रीकृष्णने कहा—नृपश्रेष्ठ! आप मेरी आज्ञासे इन चन्द्रके समान कान्तिमान् श्यामवर्ण अश्वोंमेंसे एकको लेकर यज्ञ आरम्भ कीजिये॥ २०॥

श्रीगर्ग उवाच

श्रुत्वा वाक्यं हरिं प्राह करिष्येऽहं क्रतूत्तमम्।
इत्युक्त्वा तेन सहितो नारदेन सभां ययौ॥ २१

ततः कृष्णमनुज्ञाप्य नारदः सहतुम्बुरुः।
राजानमाशिषं दत्वा स्वयम्भूसदनं ययौ॥ २२

श्रीगर्गजी कहते हैं—श्रीहरिका यह आदेश सुनकर राजा उनसे बोले—'प्रभो! अब मैं क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेधका अनुष्ठान करूँगा।' ऐसा कहकर वे श्रीकृष्ण और नारदजीके साथ राजसभामें गये। वहाँ तुम्बुरुसहित नारदजी श्रीकृष्णसे विदा ले राजाको आशीर्वाद देकर ब्रह्मलोकको चले गये॥ २१-२२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे तुरङ्गदर्शनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'श्यामकर्ण अश्वका अवलोकन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

गर्गाचार्यका द्वारकापुरीमें आगमन तथा अनिरुद्धका अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके लिये कृतप्रतिज्ञ होना

श्रीगर्ग उवाच

अथ राजा कुशस्थल्यां गते देवर्षिसत्तमे।
स्वदूतान् प्रेषयामास मामानेतुं नृपेश्वरः॥ १

त ऊचुरुग्रसेनस्य ममाग्रे वचनं नराः।

दूता ऊचुः

देवदेव मुने ब्रह्मन् भूदेवानां शिरोमणे॥ २

अस्माकं वचनं सर्वं कृपया शृणु विस्तरात्।
कृष्णेच्छया द्वारकायामुग्रसेनेन भो मुने॥ ३

निरूपितं क्रतुवरं तव शिष्येण धीमता।
त्वमागच्छ मुने शीघ्रं तस्मिन् यज्ञमहोत्सवे॥ ४

श्रीगर्ग उवाच

तेषामहं वचः श्रुत्वा जग्मिवान् द्वारकां पुरीम्।
गर्गाचलान्नृपश्रेष्ठ यज्ञकौतुकसंयुतः॥ ५

ततो दृष्टा पुरी दूराच्चानर्ते द्वारका मया।
नानाद्रुमगणैर्जुष्टा नानाचोपवनैर्युता॥ ६

नानातडागैर्वापीभिर्नानापक्षिगणैस्तथा।
नीलरक्तसिताम्भोजैः पीतपद्मैः सरोवराः।
राजन्ते कुमुदैश्चैव शुकपुष्पैर्नृपेश्वर॥ ७

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर द्वारकापुरीमें देवर्षिप्रवर नारदजीके चले जानेपर राजाधिराज उग्रसेनने मुझे बुलानेके लिये अपने दूतों-को भेजा। उग्रसेनके वे दूत मेरे सामने आकर इस प्रकार बोले—॥ १½॥

दूतोंने कहा—देवदेव! ब्रह्मन्! भूदेव-शिरोमणे! मुने! कृपया हमारी सारी बातें विस्तारपूर्वक सुनिये—मुनीश्वर! द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे आपके बुद्धिमान् शिष्य महाराज उग्रसेनने क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेधके अनुष्ठानका निश्चय किया है, मुने! उस यज्ञ-महोत्सवमें आप शीघ्र पधारें॥ २—४॥

श्रीगर्गमुनिने कहा—उन दूतोंका यह कथन सुनकर मैं गर्गाचलसे द्वारकापुरीकी ओर चला। नृपश्रेष्ठ! उस यज्ञको देखनेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल था। तदनन्तर आनर्तदेशमें दूरसे ही मुझे द्वारकापुरी दिखायी दी, जो नाना प्रकारके वृक्षों तथा अनेकानेक उपवनोंसे सुशोभित थी॥ ५-६॥

बहुत-से सरोवर, बावलियाँ तथा नाना प्रकारके पक्षी उस पुरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। नृपेश्वर! वहाँके सरोवरमें नीलकमल, रक्तकमल, श्वेतकमल और पीतकमल खिले हुए थे। कुमुद और शुकपुष्प भी उनकी शोभा बढ़ाते थे॥ ७॥

बिल्वैः कदम्बैर्न्यग्रोधैः शालैस्तालैस्तमालकैः।
बकुलैर्नागपुन्नागैः कोविदारैश्च पिप्पलैः।
जम्बीरैर्हारसिङ्गारैराम्रैराम्रातकैरपि ॥ ८

केतकीभिर्गोस्तनीभिः कदलीभिश्च जम्बुभिः।
श्रीफलैः पिण्डखर्जूरैः खदिरैः पत्रबिन्दुभिः॥ ९

अगरैस्तगरैश्चैव चन्दनै रक्तचन्दनैः।
पलाशैश्च कपित्थैश्च प्लक्षैर्वेत्रैश्च वेणुभिः॥ १०

मल्लिकाभिर्यूथिकाभिर्मोदिनीभिर्महीरुहैः।
तथा मदनबाणैश्च सहस्रांशुमुखद्रुमैः॥ ११

प्रियावंशैर्गुल्मवंशैः कर्णिकारैश्च पुष्पितैः।
सहस्राख्यैः कन्दुकैर्वै चागस्त्यैश्च सुदर्शनैः॥ १२

चन्द्रकाख्यैश्च कुन्दैश्च कर्णपुष्पैश्च दाडिमैः।
अनुजीरैर्नागरङ्गैराडुकीजानकीफलैः ॥ १३

पूगीफलैर्बदामैश्च तूलै राजादनैर्द्रुमैः।
एलाभिः सेवतीभिश्च तथा वै देवदारुभिः॥ १४

ईदृशैश्च महावृक्षैः शोभिता नगरी हरेः।
कूजन्ति यत्र राजेन्द्र मयूराः सारसाः शुकाः॥ १५

हंसाः पारावताश्चैव कपोताः कोकिलास्तथा।
सारिकाश्चक्रवाकाश्च खञ्जनाश्चटकाः किल॥ १६

एते पक्षिगणाः सर्वे वैकुण्ठाच्च समागताः।
कृष्ण कृष्णेति मधुरां वाणीं गायन्ति यत्र हि॥ १७

इत्थं पश्यन् व्रजन् राजन् ददर्श द्वारकामहम्।
ताम्ररौप्यसुवर्णैश्च त्रिभिर्दुर्गैश्च वेष्टिताम्॥ १८

गिरिणा रैवतेनापि देववृक्षमयेन च।
रत्नाकरेण गोमत्यावृतां परिखभूतया॥ १९

कृष्णस्य नगरीं रम्यां कृतकौतुकतोरणाम्।
मुदायुक्तजनाकीर्णां सुवर्णभवनैर्युताम्॥ २०

तथा हाटकहट्टाभिः पताकाभिश्च मण्डिताम्।
विष्णोश्च मन्दिरैः प्रोच्चैर्महेशस्यालयैर्युताम्॥ २१

यदुभिश्च महाशूरैर्विमानैश्च सहस्रशः।
शतशृङ्गाटकैश्चैव कलशैर्भर्मकर्बुरैः॥ २२

बिल्व, कदम्ब, बरगद, साखू, ताड़, तमाल, बकुल (मौलसिरी), नागकेसर, पुन्नाग, कोविदार, पीपल, जम्बीर (नीबू), हरसिंगार, आम, आमड़ा, केवड़ा, गोस्तनी, कदली, जामुन, श्रीफल, पिण्ड-खर्जूर, खदिर, पत्रबिन्दु, अगर-तगर, चन्दन, रक्तचन्दन, पलाश, कपित्थ, पाकर, बेंत, बाँस, मल्लिका, जूही, मोदिनी (मोगरा), मदनबाण, सूर्यमुखी, प्रियावंश, गुल्मवंश, खिले हुए कर्णिकार (कनेर), सहस्र कन्दुक, अगस्त्य पुष्प, सुदर्शन, चन्द्रक, कुन्द, कर्णपुष्प, दाडिम (अनार), अनुजीर (अञ्जीर), नागरंग (नारंगी), आडुकी, सीताफल, पूगीफल, बादाम, तूल, राजादन, एला, सेवती, देवदारु तथा इसी तरहके अन्यान्य छोटे और बड़े वृक्षोंसे श्रीहरिकी नगरी द्वारका शोभा पा रही थी। राजेन्द्र! वहाँ मोर, सारस और शुक कलरव करते थे। हंस, परेवा, कबूतर, कोयल, मैना, चकवा, खञ्जरीट तथा चटक (गौरैया) आदि समस्त सुन्दर पक्षियोंके समुदाय वहाँ वैकुण्ठसे आये थे, जो मधुर वाणीमें 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' गा रहे थे॥ ८—१७॥

राजन्! इस तरह चलते-चलते मैंने द्वारकापुरी देखी, जो ताँबे, चाँदी और सुवर्णके बने हुए तीन दुर्गों (परकोटों)-से घिरी हुई थी। दिव्य वृक्षोंसे परिपूर्ण रैवतक पर्वत (गिरनार), समुद्र तथा खाईका काम देनेवाली गोमती—इन सबसे घिरी हुई श्रीकृष्णनगरी द्वारकापुरी अत्यन्त रमणीय दिखायी देती थी। उस पुरीमें मङ्गलमय उत्सवकी सूचक बन्दनवारें लगी थीं। वहाँ सोनेके महल शोभा पाते थे और सदा हृष्ट-पुष्ट रहनेवाले लोगोंसे वह पुरी भरी हुई थी॥ १८—२०॥

सोनेके हाट-बाजारों तथा सुन्दर ध्वजा-पताकाओंसे द्वारकापुरीकी अनुपम शोभा हो रही थी। वहाँ बहुत-से ऊँचे-ऊँचे विष्णु-मन्दिर तथा शिव-मन्दिर दृष्टिगोचर होते थे। बड़े-बड़े शौर्यसम्पन्न यादव-वीर उस पुरीकी शोभा थे। सहस्रों विमान, सैकड़ों चौराहे तथा चितकबरे कलश उस पुरीकी शोभामें चार चाँद लगा रहे थे॥ २१-२२॥

रथ्याभिर्मन्दुराभिश्च दन्तिशालाभिरेव च।
गोशालाभिश्च शालाभिः सुरौप्यपथिभिर्युताम्॥ २३

प्रासादैर्नवलक्षैश्च कृष्णस्य परमात्मनः।
तथा षोडशसाहस्त्रैर्भवनैर्वेष्टितां पुरीम्॥ २४

द्वारे द्वारे द्वारकायां शूरा वीराश्च कोटिशः।
रक्षन्त्यहर्निशं राजन् सर्वशस्त्रधराः किल॥ २५

प्रगायन्ति जनाः सर्वे श्रीकृष्णबलदेवयोः।
गृहे गृहे च नामानि शृण्वन्ति चरितानि च॥ २६

इत्थं विलोकयन् सर्वान् सुधर्मायामहं गतः।
कृष्णेति पादुकारूढतुलसीमालया जपन्॥ २७

अथोग्रसेनो राजर्षिर्दृष्ट्वा मां च समागतम्।
समुत्थाय मुदा युक्तः शक्रसिंहासनात्किल॥ २८

षट्पञ्चाशत्कोटिसंख्यैर्यादवैः सह भूपते।
नत्वा सिंहासने स्थाप्य पूजयामास चाहुकः॥ २९

मदङ्घ्री चावनिज्याथ यादवानां च सन्निधौ।
पादोदकं स्वशिरसि धृत्वा प्राह नृपेश्वरः॥ ३०

उग्रसेन उवाच

विप्रेन्द्र नारदमुखाच्छ्रुतं यस्य महत्फलम्।
तं यज्ञमश्वमेधाख्यं करिष्येऽहं तवाज्ञया॥ ३१

यस्याङ्घ्रिसेवया पूर्वे मनोरथमहार्णवम्।
तेरुर्जगत्तृणीकृत्य स कृष्णश्चात्र वर्तते॥ ३२

श्रीगर्ग उवाच

यादवेन्द्र महाराज सम्यग्व्यवसितं त्वया।
हयमेधेन ते कीर्तिस्त्रिलोक्यां सम्भविष्यति॥ ३३

कः प्रयास्यति रक्षार्थं तुरगस्य नृपेश्वर।
बहवः शत्रवः सन्ति तस्मात्तं निश्चयं कुरु॥ ३४

वर्षमात्रं प्रकर्तव्यमसिपत्रव्रतं त्वया।
तदा तु कुशलेनापि भविष्यति क्रतूत्तमः॥ ३५

सड़कों, अश्वशालाओं, गजशालाओं, गोशालाओं तथा अन्यान्य शालाओंसे सुशोभित द्वारकापुरीकी सड़कोंपर सुन्दर चाँदीके पत्र जड़े गये थे। उस पुरीमें नौ लाख सुन्दर महल थे। परमात्मा श्रीकृष्णके सोलह हजार एक सौ आठ भव्य भवनोंसे द्वारकापुरी वेष्टित-सी दिखायी देती थी॥ २३-२४॥

राजन्! उस नगरीके द्वार-द्वारपर नियुक्त करोड़ों शूरवीर सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये दिन-रात रक्षा करते थे। वहाँके सब लोग घर-घरमें भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके यश गाते और नाम तथा लीलाओंका कीर्तन सुनते थे॥ २५-२६॥

इस प्रकार सब कुछ देखता हुआ मैं सुधर्मा-सभामें गया। भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित तुलसीकी मालासे 'कृष्ण' नामका मैं जप कर रहा था। राजर्षि उग्रसेन मुझे आया देख बड़े प्रसन्न हुए और इन्द्रके सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। भूपाल! उनके साथ छप्पन करोड़ अन्य यादव भी थे। उन्होंने नमस्कार करके मुझे सिंहासनपर बिठाया और मेरी पूजा की। समस्त यादवोंके समीप मेरे दोनों चरण धोकर राजाधिराज उग्रसेनने चरणोदकको सिरपर चढ़ाया और कहा—॥ २७—३०॥

उग्रसेन बोले—विप्रेन्द्र! मैं देवर्षि नारदके मुखसे जिसके महान् फलका वर्णन सुन चुका हूँ, उस 'अश्वमेध' नामक यज्ञका आपकी आज्ञासे अनुष्ठान करूँगा। जिनके चरणोंकी सेवा करके पूर्ववर्ती भूपालोंने जगत्‌को तिनकेके समान मानकर अपने मनोरथके महासागरको पार कर लिया था, वे भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ साक्षात् विद्यमान हैं॥ ३१-३२॥

श्रीगर्गजी (मैं)-ने कहा—महाराज! यादव-नरेश! आपने बहुत उत्तम निश्चय किया है। अश्वमेध यज्ञ करनेसे आपकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैल जायगी। नृपेश्वर! अश्वकी रक्षाके लिये कौन जायगा, इस बातका निश्चय कर लीजिये; क्योंकि भूमण्डलमें आपके शत्रु बहुत अधिक हैं। पूरे एक वर्षतक आपको असिपत्र-व्रतका पालन करना होगा, तभी यह श्रेष्ठ यज्ञ सकुशल सम्पन्न हो सकेगा॥ ३३—३५॥

प्रद्युम्नेन राजसूये जिता सर्वा मही पुरा।
तुरङ्गस्याद्य रथार्थं तं पुनः किं नियोक्ष्यसि॥ ३६

इति मद्वचनं श्रुत्वा राजा चिन्तापरायणः।
ददर्श संस्थितं नृणां सर्वदुःखहरं हरिम्॥ ३७

तदैव भगवान् दृष्ट्वा शोकेनापूरितं नृपम्।
ताम्बूलवीटकं नीत्वा प्रहसन्निदमब्रवीत्॥ ३८

श्रीकृष्ण उवाच

भोः शूरा यादवाः सर्वे बलिनो रणकोविदाः।
उग्रसेनस्य चाग्रे वै शृण्वन्तु मम भाषितम्॥ ३९

यो मोचयति राजभ्यो हयमेधतुरङ्गमम्।
महारथी मनस्वी च स मे गृह्णातु वीटकम्॥ ४०

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं यादवा युद्धकोविदाः।
परस्परं प्रपश्यन्तो गतमानाः पुनः पुनः॥ ४१

संस्थितो घटिकामात्रं रेजे ताम्बूलवीटकः।
कृष्णस्य सुन्दरे हस्ते यथा तामरसे शुकः॥ ४२

ततश्च सर्वेषु गतेषु तूष्णी-
मुषापतिश्चापधरो महात्मा।
प्रगृह्य ताम्बूलचयं नृपेन्द्रं
नत्वा च कृष्णं निजगाद सद्यः॥ ४३

श्रीअनिरुद्ध उवाच

अहं हि श्यामकर्णस्य राजन्येभ्यश्च पालनम्।
करिष्यामि जगन्नाथ तस्मान्मां त्वं नियोजय॥ ४४

न करिष्ये घोटकस्य पालनं यदि तच्छृणु।
प्रतिज्ञां मम गोविन्द दीनस्य दीनवत्सल॥ ४५

ब्राह्मणीगमनात्क्षत्री वैश्यश्च शूद्र एव च।
यां गतिं प्राप्नुयान्नूनं तामहं दुःखदायिनीम्॥ ४६

विप्रं कृत्वा गुरुं पूर्वं पश्चात्तं यो न सेवते।
स याति यां गतिं देव प्राप्नुयां तामहं ध्रुवम्॥ ४७

पूर्वकालमें राजसूय-यज्ञके अवसरपर प्रद्युम्नने समस्त भूमण्डलपर विजय पायी थी। इस बार अश्वकी रक्षाके लिये क्या आप पुनः उन्हींकी नियुक्ति करेंगे?॥ ३६॥

मेरी बात सुनकर राजा चिन्तामें पड़ गये और वहाँ बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णकी ओर, जो मनुष्योंके समस्त दुःख दूर करनेवाले हैं, देखने लगे। राजाको चिन्तामग्न देख, भगवान्‌ने तत्काल पानका बीड़ा लेकर हँसते हुए कहा— ॥ ३७-३८॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे बलवान्! युद्ध-कुशल समग्र यादववीरो! महाराज उग्रसेनके सामने मेरी बात सुनो—'जो मनस्वी एवं महारथी वीर भूमण्डलके समस्त राजाओंसे अश्वमेध-यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको छुड़ा लेनेमें समर्थ हो, वह इस पानके बीड़ेको ग्रहण करे'॥ ३९-४०॥

श्रीहरिका यह वचन सुनकर युद्धकुशल यादव-वीर अभिमानशून्य हो बार-बार एक-दूसरेका मुँह देखने लगे। भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर हाथमें वह पानका बीड़ा एक घड़ीतक रखा रह गया; ऐसा लगता था मानो कमलके फूलपर तोता बैठा हो। जब सब लोग चुप रह गये, तब धनुष धारण किये ऊषापति महात्मा अनिरुद्धने महाराज उग्रसेनको नमस्कार करके वह पानका बीड़ा ले लिया और श्रीकृष्णके चरणोंमें मस्तक झुकाकर तत्काल इस प्रकार कहा— ॥ ४१—४३॥

श्रीअनिरुद्ध बोले—जगदीश्वर! मैं समस्त राजाओंसे श्यामकर्णकी रक्षा करूँगा। आप मुझे इस कार्यमें नियुक्त कीजिये। दीनवत्सल गोविन्द! यदि मैं घोड़ेका पालन नहीं कर सकूँ तो उस दशामें मुझ दीनकी यह प्रतिज्ञा सुनिये—'क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किसी ब्राह्मणीके साथ व्यभिचार करनेसे जिस दुःखदायिनी दुर्गतिको प्राप्त होते हैं, निश्चय वही गति मुझे भी मिले॥ ४४—४६॥

देव! जो ब्राह्मणको गुरु बनाकर पीछे उसकी सेवा नहीं करता है, वह जिस गतिको प्राप्त होता है, अवश्य वही गति मैं भी पाऊँ'॥ ४७॥

श्रीगर्ग उवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य यादवा विस्मयं गताः।
तदैव कृष्णः सन्तुष्टो जग्राह पौत्रमेव च॥ ४८

ततो हरिः सुधर्मायामनिरुद्धं कृताञ्जलिम्।
सर्वेषां शृण्वतां प्राह घननिर्ह्रादया गिरा॥ ४९

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! अनिरुद्धका वह ओजस्वी वचन सुनकर समस्त यादव आश्चर्यचकित हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने तत्काल अपने पौत्रके सिरपर हाथ रखा। अनिरुद्ध सुधर्मा-सभामें हाथ जोड़कर खड़े थे। उस समय श्रीहरिने सबके समक्ष मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहा—॥ ४८-४९॥

श्रीकृष्ण उवाच

अनिरुद्ध तुरङ्गस्य वर्षमात्रं च पालनम्।
राजन्येभ्यश्च कृत्वा त्वं पुनरागच्छ चात्र वै॥ ५०

श्रीकृष्ण बोले—अनिरुद्ध! तुम एक वर्षतक अश्वमेधीय अश्वकी समस्त राजाओंसे रक्षा करते हुए फिर यहाँ लौट आओ॥ ५०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधचरित्रे सुमेरौ गर्गागमनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधचरित्रमय सुमेरुमें 'गर्गजीका आगमन' नामक नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

उग्रसेनकी सभामें देवताओंका शुभागमन; अनिरुद्धके शरीरमें चन्द्रमा और ब्रह्माका विलय तथा राजा और रानीकी बातचीत

श्रीगर्ग उवाच

इति ब्रुवति श्रीकृष्णे हंसस्थश्चतुराननः।
आजगाम कुशस्थल्यामीश्वरेण समन्वितः॥ १

तत इन्द्रः कुबेरश्च यमो वरुण एव च।
वायुर्वायुसखश्चैव नैर्ऋतश्च निशाकरः॥ २

एते समाययू राजन् कृष्णदर्शनकाङ्क्षया।
ततश्च द्वादशादित्या वेतालाश्च मरुद्गणाः॥ ३

विश्वेदेवाश्च साध्याश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा।
विद्याधराश्च मुनयः श्रीकृष्णं द्रष्टुमाययुः॥ ४

श्रीगर्गजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि हंसपर बैठे हुए भगवान् ब्रह्मा महादेवजीके साथ द्वारकापुरीमें आ पहुँचे। राजन्! तदनन्तर इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, वायु, अग्नि, निर्ऋति और चन्द्रमा—ये दिक्पाल श्रीकृष्ण-दर्शनकी इच्छासे वहाँ आये। फिर बारह आदित्य, वेताल, मरुद्गण, विश्वेदेव, साध्यगण, गन्धर्व, किंनर, विद्याधर तथा बहुत-से ऋषि-मुनि भी श्रीकृष्णके दर्शनके लिये आये॥ १—४॥

तत्रागतानां देवानामुग्रसेनेन माधवः।
यथाविध्युपसङ्गम्य सर्वेषां मानमादधे॥ ५

आसनेषूपविष्टेषु सभायां निर्जरेष्वथ।
श्लाघां चकार सर्वेषां लीलानरवपुर्हरिः॥ ६

अथ ब्रह्मा हरेः पार्श्वे स्थितः शक्रेण नोदितः।
प्रत्युवाच जगन्नाथं बलभद्रसमन्वितम्॥ ७

राजा उग्रसेनके साथ भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ पधारे हुए देवताओंसे विधिपूर्वक मिलकर उन सबका समादर किया। जब सब देवता अपने-अपने आसनपर विराजमान हो गये, तब लीलाके लिये नरदेह धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरिने उन सबकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तदनन्तर श्रीहरिके पार्श्वभागमें बैठे हुए ब्रह्माजी इन्द्रसे प्रेरित हो बलरामसहित जगदीश्वर श्रीकृष्णसे बोले—॥ ५—७॥

ब्रह्मोवाच

पौत्रस्ते बालकः कृष्ण राजन्येभ्यश्च पालनम्।
कठिनं श्यामकर्णस्य करिष्यति कथं हरे॥ ८

ब्रह्माजीने कहा—श्रीकृष्ण! आपका पौत्र अनिरुद्ध अभी बालक है। भूमण्डलके राजाओंसे श्यामकर्ण अश्वकी रक्षाका कार्य बहुत कठिन है। हरे! यह इस दुष्कर कार्यको कैसे कर सकेगा?॥ ८॥

मा तं प्रेषय तस्मात्त्वं रक्षणाय हयस्य वै।
विघ्नाश्च बहवः सन्ति प्रद्युम्नं प्रेषयस्व च॥ ९

सङ्कर्षणं वा गोविन्द ह्यथवा रक्ष त्वं हयम्।
इति तद्वचनं श्रुत्वा निजगौ प्रहसन् हरिः॥ १०

अतः आप इसे अश्वकी रक्षाके लिये न भेजिये; क्योंकि इस कार्यमें विघ्न बहुत हैं। गोविन्द! आप चाहे प्रद्युम्नको भेजिये, चाहे बलरामजीको भेजिये अथवा स्वयं जाकर अश्वकी रक्षा कीजिये। ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर श्रीहरि हँसते हुए-से बोले— ॥ ९-१० ॥

श्रीभगवानुवाच

अनिरुद्धो हठाद्याति मन्निषेधं न मन्यते।
तस्मात्तन्निकटे गत्वा निषेधं कुरु यत्नतः॥ ११

श्रीभगवान् बोले—अनिरुद्ध हठपूर्वक जा रहा है। इस विषयमें वह मेरा निषेध नहीं मानता है, अतः आप स्वयं उसके पास जाकर यत्नपूर्वक उसे मना कीजिये॥ ११ ॥

श्रीगर्ग उवाच

कृष्णस्य वाक्यमाकर्ण्य विधिश्चन्द्रसमन्वितः।
ययौ निवारणार्थायानिरुद्धं कार्ष्णिनन्दनम्॥ १२

यदागतौ समीपे तु सुरज्येष्ठकलानिधी।
विग्रहे ह्यनिरुद्धस्य सद्यस्तौ लीनतां गतौ॥ १३

बभूवुर्विस्मिताः सर्वे शिवशक्रादयः सुराः।
यादवा मुनयश्चैव ह्युग्रसेनादयो नृपाः॥ १४

वज्रनाभ त्वत्पितरं संस्तुवन्ति गणाः किल।
परिपूर्णतमं तस्मादनिरुद्धं वदन्ति हि॥ १५

श्रीगर्गजी कहते हैं—श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर ब्रह्माजी चन्द्रमाको साथ लेकर प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धको रोकनेके लिये गये। ब्रह्मा और चन्द्रमा ज्यों-ही अनिरुद्धजीके समीप गये। त्यों-ही अनिरुद्धके श्रीविग्रहमें वे तत्काल विलीन हो गये, यह देख शिव और इन्द्र आदि सब देवता विस्मयमें पड़ गये। समस्त यादवों, मुनियों और उग्रसेन आदि नरेशोंको भी महान् आश्चर्य हुआ। वज्रनाभ! सब लोग तुम्हारे पिताकी स्तुति करने लगे। इसीलिये मनीषी मुनि तुम्हारे पिता अनिरुद्धको परिपूर्णतम परमात्मा बताते हैं॥ १२—१५ ॥

श्रीगर्ग उवाच

अथोग्रसेनो नृपतिः सभातला-
दुत्थाय कृष्णं मनसा प्रणम्य च।
स्वान्तःपुरं सुन्दररत्नवेष्टितं
जगाम राजन् क्रतुकौतुकावृतः॥ १६

गत्वा ह्यन्तःपुरे राजा सुरेन्द्रसदनोपमे।
पर्यङ्कस्थां रुचिमतीं शचीतुल्यां वराननाम्॥ १७

दासीभिः सेवितां राज्ञीं वस्त्रालङ्कारवेष्टिताम्।
वीजितां चामरैः शुक्लैर्ददर्श नृपसत्तमः॥ १८

श्रीगर्गजीने कहा—राजन्! तदनन्तर राजा उग्रसेन सभासे उठकर मन-ही-मन श्रीकृष्णको प्रणाम करके यज्ञ-सम्बन्धी कौतुकसे युक्त हो सुन्दर रत्नोंसे जटित अपने अन्तःपुरमें गये। वह अन्तःपुर अपने वैभवसे देवराज इन्द्रके भवनको भी लज्जित कर रहा था। वहाँ जाकर नृपश्रेष्ठ उग्रसेनने वस्त्राभूषणोंसे विभूषित, दासियोंसे सेवित तथा श्वेत चामरोंसे वीजित शचीके समान मनोहर मुखवाली रानी रुचिमतीको देखा, जो पर्यङ्कपर विराजमान थीं॥ १६—१८ ॥

सा विलोक्यागतं तत्र स्वपतिं यादवेश्वरम्।
उत्थाय चादरं राजंश्चकार विधिना किल॥ १९

ततः स्थित्वा स पर्यङ्के वृष्णीशो स्वां प्रियां पराम्।
प्रोवाच प्रहसन् वाण्या घनशब्दगभीरया॥ २०

हयमेधं करिष्येऽहं प्रिये कृष्णाज्ञयाद्य वै।
नरो यस्य प्रतापेन लभते वाञ्छितं फलम्॥ २१

नरेश्वर! अपने पति यादवराज उग्रसेनको वहाँ आया देख रानी सहसा उठकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने यथोचित रीतिसे महाराजका समादर किया, तब पर्यङ्कपर बैठकर वृष्णिवंशियोंके स्वामी राजा उग्रसेन हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें अपनी परमप्रिया रुचिमतीसे बोले—'प्रिये! मैं भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे आज अश्वमेध-यज्ञका आरम्भ करूँगा, जिसके प्रतापसे मनुष्य मनोवाञ्छित फल पा लेता है'॥ १९—२१ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा पुत्रदुःखेन दुःखिता।
स्मरन्ती कृपणा पुत्रान् प्रत्युवाच नृपेश्वरम्॥ २२

राज्ञ्युवाच

पुत्रदर्शनहीनाया राजन् मे सर्वसम्पदः।
न रोचन्ते सुरैः प्रार्थ्याः सुखेन त्वं क्रतुं कुरु॥ २३

यदि यज्ञप्रतापेन पुत्रो भवति सुन्दरः।
तदा प्रसन्नचित्ताहं भविष्यामि नृपेश्वर॥ २४

तस्या वाक्यं समाकर्ण्य नृपः खिन्नमना ह्यभूत्।
पुनराह प्रियां तत्र श्रद्धां श्राद्धसुरो यथा॥ २५

राजोवाच

शृणु भद्रे त्विमामाशां पुत्राणां बहुदुःखदाम्।
त्यक्त्वा विमुक्तिदं साक्षात्कृष्णं भज परात्परम्॥ २६

अहं वृद्धस्तु त्वं वृद्धा कथं पुत्रो भविष्यति।
तस्मादज्ञानजं शोकं त्यज बन्धनकारणम्॥ २७

श्रुत्वा तु यादवेन्द्रस्य वाक्यं विज्ञानदं परम्।
राजन् रुचिमती प्राह यदूनां प्रवरं पतिम्॥ २८

रुचिमत्युवाच

राजन् यज्ञप्रतापेन प्राप्यते वाञ्छितं फलम्।
अहं तु कामये द्रष्टुं हतपुत्रान् समागतान्॥ २९

यदि त्वमीदृशं वाक्यं मृतानां दर्शनं कुतः।
वदिष्यसि मदग्रे हि ततोऽन्यच्छृणु मन्मुखात्॥ ३०

कृष्णेन दत्तं तत्पुत्रं गुरवे गुरुदक्षिणाम्।
तद्वत्स्वपुत्रान् राजेन्द्र कामये द्रष्टुमागतान्॥ ३१

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजाकी यह बात सुनकर पुत्रशोकसे संतप्त हुई दीन-दुखी रानीने अपने पुत्रोंका स्मरण करते हुए राजाधिराज उग्रसेनसे कहा— ॥ २२ ॥

रानी बोली—महाराज! मैं पुत्रोंके दर्शनसे वञ्चित हूँ; अतः मुझे ये सारी सम्पत्तियाँ, जो देवताओंके लिये भी प्रार्थनीय हैं, नहीं रुचती हैं। आप सुखपूर्वक यज्ञका अनुष्ठान कीजिये (मुझे इससे कोई मतलब नहीं है)। नृपेश्वर! जब इस यज्ञके प्रतापसे सुन्दर पुत्र प्राप्त होता हो, तब तो मैं प्रसन्नचित्त होकर इसके अनुष्ठानमें आपके साथ रहूँगी॥ २३-२४॥

रानीकी यह बात सुनकर राजाका मन उदास हो गया। जैसे श्राद्धदेव मनु अपनी पत्नी श्रद्धासे वार्तालाप करते हैं, उसी प्रकार वे पुनः अपनी प्रियासे बोले— ॥ २५ ॥

राजाने कहा—भद्रे! मैं जो कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। पुत्रोंकी कामना बहुत दुःखदायिनी होती है। अतः उसे छोड़कर तुम साक्षात् मुक्तिदाता परात्पर परमात्मा श्रीकृष्णका भजन करो। मैं बूढ़ा हो गया और तुम भी वृद्धा हुई। फिर पुत्र कैसे होगा? इसलिये बन्धनके कारणभूत अज्ञानजनित शोकको त्याग दो॥ २६-२७॥

राजन्! यादवराज उग्रसेनका यह विज्ञानप्रद उत्तम वचन सुनकर रानी रुचिमती अपने यदुकुलतिलक पतिसे बोली— ॥ २८ ॥

रुचिमतीने कहा—राजन्! यदि इस यज्ञके प्रतापसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है तो मेरी भी एक मनोवाञ्छा है। मैं चाहती हूँ कि मेरे मारे गये पुत्र यहाँ आयें और मैं उन्हें देखूँ। यदि आप मेरे सामने ऐसी बात कहें कि 'मरे हुए लोगोंका दर्शन कैसे हो सकता है?' तो इसका उत्तर भी मेरे ही मुँहसे सुन लें। राजेन्द्र! भगवान् श्रीकृष्णने अपने गुरुको गुरु-दक्षिणाके रूपमें उनके मरे हुए पुत्रको लाकर दे दिया था, उसी प्रकार मैं भी अपने पुत्रोंको सामने आया देखना चाहती हूँ॥ २९—३१ ॥

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वाह्वयामास मां च कृष्णं बृहच्छ्रवाः।
तयोः सपर्यां महतीमागताभ्यां चकार ह॥ ३२

तौ पूजयित्वाभिप्रायं ताभ्यां सर्वं न्यवेदयत्।
उग्रसेनस्य वाक्यं वै श्रुत्वा मद्वचनाद्धरिः॥ ३३

उपशक्रो यथा शक्रं प्राह तद्वन्नृपेश्वर।

श्रीभगवानुवाच

शृणु राजँस्तव सुताः प्रधने निहताः पुरा॥ ३४

ते सर्वे दिव्यदेहेन वर्तन्ते दिवि देववत्।
तस्मात्त्वं नृपशार्दूल पुत्रशोकं विहाय च॥ ३५

अश्वमेधं क्रतुवरं कुरु धैर्येण भूपते।
दर्शयिष्याम्यहं सर्वान् यज्ञस्यान्ते च ते सुतान्॥ ३६

निशम्य कृष्णवचनमुर्वीशः स्वां प्रियां मुदा।
आश्वास्य च शुभैर्वाक्यैः सुधर्मां सुजनैर्ययौ॥ ३७

आगतं तु नृपं वीक्ष्य श्रीकृष्णेन समन्वितम्।
दिक्पालाश्च प्रणेमुर्वै रामेशानादयः सुराः॥ ३८

उग्रसेनस्य भूपस्य वज्रनाभे तपः परम्।
किं वर्णयामि यं सर्वे श्रीकृष्णाद्या नमन्ति हि॥ ३९

यादवेन्द्रस्तु सर्वान् वै देवान्नत्वा विलज्जितः।
शक्रसिंहासने दिव्ये नारुरोह विचारयन्॥ ४०

तदैव कृष्णो भगवान् गृहीत्वा पाणिना नृपम्।
स्वभक्तं स्थापयामास तस्मिन् वै वासवासने॥ ४१

श्रीगर्गजी कहते हैं—रानीकी बात सुनकर महायशस्वी महाराज उग्रसेनने मुझको और श्रीकृष्णको अन्तःपुरमें बुलवाया। हम दोनोंके जानेपर उन्होंने बड़ा भारी स्वागत-सत्कार किया। हम दोनोंका पूजन करके राजाने हमसे अपना सारा अभिप्राय निवेदन किया। उग्रसेनकी कही हुई बात सुनकर मैंने श्रीहरिको कुछ कहनेके लिये प्रेरणा दी। नृपेश्वर! जैसे उपेन्द्र इन्द्रसे बोलते हैं, उसी प्रकार उस समय उन्होंने राजासे कहा—॥ ३२—३३ १/२ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजन्! सुनिये; पूर्वकालमें आपके जो-जो पुत्र संग्राममें मारे गये हैं, वे सब-के-सब दिव्य देह धारण करके स्वर्गलोकमें देवताके समान विद्यमान हैं। अतः नृपश्रेष्ठ! आप पुत्रशोक छोड़कर धैर्यपूर्वक क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेधका अनुष्ठान कीजिये। हे पृथ्वीपते! यज्ञके अन्तमें मैं आपको आपके सभी पुत्रोंके दर्शन कराऊँगा॥ ३४—३६ ॥

श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर पृथ्वीपति उग्रसेन बड़े प्रसन्न हुए और अपनी प्रियाको सुन्दर वचनोंद्वारा आश्वासन दे, श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ सुधर्मा-सभामें गये। श्रीकृष्णसहित राजा उग्रसेनको आया देख दिक्पालों तथा बलराम और शिव आदि देवताओंने प्रणाम किया॥ ३७-३८ ॥

वज्रनाभ! राजा उग्रसेनके उत्तम तपका मैं क्या वर्णन करूँ। इन्हें श्रीकृष्ण आदि सब लोग प्रणाम करते रहे हैं॥ ३९ ॥

यादवराज भी समस्त देवताओंको नमस्कार करके लज्जित हो कुछ सोचकर इन्द्रके दिये हुए दिव्य सिंहासनपर नहीं बैठे॥ ४० ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने उसी क्षण हाथ पकड़-कर अपने भक्त नरेशको उस इन्द्रके सिंहासनपर बिठाया॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे राजराज्ञीसंवादे दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'राजा-रानीका संवाद' विषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

ऋत्विजोंका वरण-पूजन; श्यामकर्ण अश्वका आनयन और अर्चन; ब्राह्मणोंको दक्षिणादान; अश्वके भालदेशमें बँधे हुए स्वर्णपत्रपर गर्गजीके द्वारा उग्रसेनके बल-पराक्रमका उल्लेख तथा अनिरुद्धको अश्वकी रक्षाके लिये आदेश

श्रीगर्ग उवाच

अथ राजा सुधर्मायां वासुदेवेन नोदितः।
संस्थितानृत्विजो वव्रे मूर्ध्नानम्य प्रसाद्य च॥ १
पराशरश्च व्यासश्च देवलश्च्यवनोऽसितः।
शतानन्दो गालवश्च याज्ञवल्क्यो बृहस्पतिः॥ २
अगस्त्यो वामदेवश्च मैत्रेयो लोमशः कविः।
अहं क्रतुर्जैमिनिश्च वैशम्पायन एव च॥ ३
पैलः सुमन्तुः कण्वश्च भृगू रामोऽकृतव्रणः।
मधुच्छन्दा वीतिहोत्रो कवषो धौम्य आसुरिः॥ ४
जाबालिर्वीरसेनश्च पुलस्त्यः पुलहस्तथा।
दुर्वासाश्च मरीचिश्च ह्येकतश्च द्वितस्त्रितः॥ ५
अङ्गिरा नारदश्चैव पर्वतः कपिलो मुनिः।
जातूकर्ण्यो ह्युतथ्यश्च संवर्तश्च मृगीसुतः॥ ६
शाण्डिल्यः प्राड्विपाकश्च कहोडः सुरतो मनुः।
कचः स्थूलशिराश्चैव स्थूलाक्षः प्रतिमर्दनः॥ ७
बकदाल्भ्यश्च कौण्डिन्यो रैभ्यो द्रोणः कृपस्तथा।
प्रकटाक्षो यवक्रीतो वसुधन्वा च मित्रभूः॥ ८
अपान्तरतमो दत्तो मार्कण्डेयो महामुनिः।
जमदग्निः कश्यपश्च भरद्वाजश्च गौतमः॥ ९
अत्रिर्मुनिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रः पतञ्जलिः।
कात्यायनिः पाणिनिश्च वाल्मीक्याद्याश्च ऋत्विजः॥ १०
पूजिता यादवेन्द्रेण प्रसन्नास्तेऽभवन्नृप।
ततः सर्वे ऋत्विजश्च नृपमूचुर्निमन्त्रिताः॥ ११

मुनय ऊचुः

उग्रसेन महाराज सुरासुरनमस्कृत।
यज्ञं कृष्णस्य कृपया कुरु सोऽपि भविष्यति॥ १२
इति तेषां वचः श्रुत्वा परितुष्टाखिलेन्द्रियः।
सर्वान् वै क्रतुसम्भारानाजहारान्धकेश्वरः॥ १३
ततः कृष्ट्वा यज्ञभूमिं विप्राः कनकलाङ्गलैः।
पिण्डारके यथान्यायं दीक्षयाञ्चक्रिरे नृपम्॥ १४

श्रीगर्गजी कहते हैं—तदनन्तर सुधर्मा-सभामें वासुदेवसे प्रेरित हो राजा उग्रसेनने वहाँ पधारे हुए ऋत्विजोंको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके प्रसन्न किया और विधिवत् उन सबका वरण किया। पराशर, व्यास, देवल, च्यवन, असित, शतानन्द, गालव, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, अगस्त्य, वामदेव, मैत्रेय, लोमश, कवि (शुक्राचार्य), मैं (गर्ग), क्रतु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सुमन्तु, कण्व, भृगु, परशुराम, अकृतव्रण, मधुच्छन्दा, वीतिहोत्र, कवष, धौम्य, आसुरि, जाबालि, वीरसेन, पुलस्त्य, पुलह, दुर्वासा, मरीचि, एकत, द्वित, त्रित, अङ्गिरा, नारद, पर्वत, कपिलमुनि, जातूकर्ण्य, उतथ्य, संवर्त, ऋष्यशृङ्ग, शाण्डिल्य, प्राड्विपाक, कहोड, सुरत, मनु, कच, स्थूलशिरा, स्थूलाक्ष, प्रतिमर्दन, बकदाल्भ्य, कौण्डिन्य, रैभ्य, द्रोण, कृप, प्रकटाक्ष, यवक्रीत, वसुधन्वा, मित्रभू, अपान्तरतमा, दत्तात्रेय, महामुनि मार्कण्डेय, जमदग्नि, कश्यप, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, मुनि वसिष्ठ, विश्वामित्र, पतञ्जलि, कात्यायन, पाणिनि और वाल्मीकि आदि ऋत्विजोंका यादवराज उग्रसेनने पूजन किया। नरेश्वर! वे सभी निमन्त्रित ऋत्विज बड़े प्रसन्न होकर राजासे बोले— ॥ १—११ ॥

मुनियोंने कहा—देव-दानव-वन्दित महाराज उग्रसेन! तुम यज्ञ आरम्भ करो। श्रीकृष्णकी कृपासे वह अवश्य पूर्ण होगा॥ १२॥

उन महर्षियोंका यह वचन सुनकर अन्धककुलके स्वामी राजा उग्रसेनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ संतुष्ट हो गयीं। उन्होंने यज्ञकी सारी सामग्री एकत्र की। तदनन्तर ब्राह्मणोंने सोनेके हलोंसे यज्ञकी भूमि जोती तथा पिण्डारक तीर्थके समीप विधिपूर्वक राजाको यज्ञकी दीक्षा दी॥ १३-१४॥

चतुर्योजनपर्यन्तं विलिख्य बहुशो महीम्।
यज्ञस्यार्थे नृपस्तत्र रचयामास मण्डपान्॥ १५

योनिमेखलया युक्तं मध्यकुण्डं विधाय च।
तस्मिन् वै स्थापयामास विधिना जातवेदसम्॥ १६

रत्नानेकैर्विरचितां पताकाभिर्युतां सभाम्।
मम वाक्याद्वज्रनाभे रचयामास चाहुकः॥ १७

अथ दृष्ट्वा सभां कृष्णो निजगौ स्वसुतं प्रति।

श्रीकृष्ण उवाच

प्रद्युम्न शृणु मद्वाक्यं तन्निशम्य कुरु त्वरम्॥ १८

गत्वा शस्त्रधरैः शूरैर्यत्नेन हयमानय।

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं प्रद्युम्नो धन्विनां वरः॥ १९

तथेत्युक्त्वा हयं नेतुं वाजिशालां जगाम ह।
ततः कृष्णेन रक्षार्थं स्वपुत्राश्च हयस्य वै॥ २०

प्रेषिता वाजिशालायां भानुसाम्बादयो नृप।
स गत्वा वाजिशालायां रुक्मिणीनन्दनो बली॥ २१

स्वर्णशृङ्खलया बद्धाञ्छ्यामकर्णान् सहस्रशः।
विलोक्यैकं स्वहस्तेन यज्ञयोग्यं तुरङ्गमम्॥ २२

प्रहसन् मोचयामास बन्धनान्नृप लीलया।
स हयो निर्ययौ मुक्तो शालायाश्च शनैः शनैः॥ २३

रक्ताननो पीतपुच्छः श्यामकर्णो मनोहरः।
स्रग्भिर्मुक्ताफलानाञ्च शोभितो दिव्यदर्शनः॥ २४

श्वेतातपत्रेण युतो चामरैः समलङ्कृतः।
अग्रतो मध्यतश्चैव पृष्ठतश्च हरेः सुताः॥ २५

सेवन्ते हरिराजं वै सुराः सर्वे हरिं यथा।
तथान्यै रक्षमाणस्तु मण्डलेशैस्तुरङ्गमः॥ २६

प्राप्तोऽथ मण्डपं कुर्वन् खुरक्षततलां महीम्।
नृपो वीक्ष्यागतं तत्र श्यामकर्णं मुदान्वितः॥ २७

प्रेषयामास मां राजन् क्रियाकर्तव्यतां प्रति।
सोऽहं नृपं च संस्थाप्य रुचिमत्या समन्वितम्॥ २८

चार योजनतककी विशाल भूमिको जोतकर राजाने वहाँ यज्ञके लिये मण्डप बनवाये। योनि और मेखलासे युक्त मध्यकुण्डका निर्माण करके उसमें विधिपूर्वक अग्निकी स्थापना की। वज्रनाभि! मेरे कहनेसे राजा उग्रसेनने अनेक रत्नोंसे विभूषित और ध्वजा-पताकाओंसे मण्डित सभामण्डप बनवाया। उस सभाभवनको देखकर श्रीकृष्णने अपने पुत्रसे कहा— ॥ १५—१७½ ॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रद्युम्न! मेरी बात सुनो और सुनकर तत्काल उसका पालन करो। जाओ, शस्त्रधारी शूरवीरोंके साथ यत्नपूर्वक अश्वमेधीय अश्वको यहाँ ले आओ॥ १८½ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—श्रीहरिका यह आदेश सुनकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न 'बहुत अच्छा' कहकर घोड़ा लानेके लिये घुड़सालमें गये। नरेश्वर! तदनन्तर श्रीकृष्णने उस अश्वकी रक्षाके लिये अपने पुत्र भानु और साम्ब आदिको अश्वशालामें भेजा। अश्वशालामें जाकर बलवान् रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने सोनेकी साँकलोंमें बँधे हुए सहस्रों श्यामकर्ण अश्व देखकर उनमेंसे यज्ञके योग्य एक अश्वको अपने हाथसे हँसते हुए अनायास ही बन्धनमुक्त कर दिया॥ १९—२२½ ॥

बन्धनसे छूटनेपर वह अश्व धीरे-धीरे अश्वशालासे बाहर निकला। उसका मुख लाल, पूँछ पीली और कान श्यामवर्णके थे। मुक्ताफलोंकी मालाओंसे सुशोभित वह दिव्य अश्व अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था॥ २३-२४ ॥

वह श्वेत छत्रसे युक्त और चामरोंसे अलंकृत था। उसके आगे, पीछे और बीचमें उपस्थित श्रीहरिके पुत्र उस अश्वराजकी उसी प्रकार सेवा करते थे, जैसे समस्त देवता श्रीहरिकी। अन्यान्य मण्डलेश्वरोंसे भी सुरक्षित हुआ वह अश्व भूतलको अपनी टापोंसे खोदता हुआ सभामण्डपके पास आया॥ २५—२६½ ॥

राजन्! श्यामकर्ण अश्वको वहाँ आया देख राजा उग्रसेनने प्रसन्न होकर मुझे आवश्यक विधिका सम्पादन करनेके लिये भेजा। तब मैंने रानी रुचिमतीसहित

पिण्डारके प्रयोगं वै कारयामास धर्मतः।
नृपश्चैत्रे पूर्णिमायां दीक्षितोऽजिनसंवृतः॥ २९

असिपत्रव्रतं राजन् स चकार मदाज्ञया।
अहं तु यादवेन्द्रस्य कुलपूर्वगुरुर्मुनिः॥ ३०

सर्वेषां चैव विप्राणामाचार्यो ह्यभवं नृप।
अथ विप्रा ब्रह्मघोषैः श्रीकृष्णस्याज्ञया स्थिताः॥ ३१

सर्वे प्रपूजयामासुर्हेरम्बादीन् सुरान् पृथक्।
ततः सर्वे मुनिगणाः संस्थाप्य तुरगं नृप।
काश्मीरचन्दनेनापि पुष्पस्त्रग्भिश्च तन्दुलैः॥ ३२

नीराजनादिभिर्धूपैः सुधाकुण्डलिकादिभिः।
पूजयित्वा हयं भूपं दानार्थे तु ह्यनोदयन्॥ ३३

ततः श्रुत्वाहुकः शीघ्रं पूर्वं मह्यं ददौ धनम्।
एकलक्षं तुरङ्गाणां सहस्रं हस्तिनां तथा॥ ३४

द्विसहस्रं रथानां च धेनूनां लक्षमेव च।
शतभारं सुवर्णानामीदृशीं दक्षिणां नृपः॥ ३५

निमन्त्रितेभ्यो विप्रेभ्य उग्रसेनो नृपस्ततः।
यथोक्तां दक्षिणां राजन् प्रददौ तां च त्वं शृणु॥ ३६

घोटकानां सहस्रं च द्विपानां शतमेव च।
रथानां द्विशतं चैव सहस्रं च गवां तथा॥ ३७

विंशद्भारं च हेमानामीदृशीं दक्षिणां पुनः।
अथागतेभ्यो विप्रेभ्यो नत्वा राजा विधानतः॥ ३८

गजमेकं रथं गां च स्वर्णभारं च घोटकम्।
एकैकस्मै च विप्राय दक्षिणां प्रददौ नृपः॥ ३९

एवं कृत्वा तु दानं वै ललाटे तुरगस्य च।
कमनीयं कुङ्कुमाद्यैः स्वर्णपत्रं बबन्ध ह॥ ४०

तत्राहमुग्रसेनस्य प्रतापं वीर्यमूर्जितम्।
ततोऽलिखं सभायां वै यादवानां च पश्यताम्॥ ४१

महाराज उग्रसेनको योग्य आसनपर बिठाकर पिण्डारक तीर्थमें धर्मके अनुसार समस्त प्रयोग करवाया। राजा उग्रसेन चैत्रमासकी पूर्णिमाको मृगचर्म धारण किये यज्ञके लिये दीक्षित हुए। राजन्! उन्होंने मेरी आज्ञासे 'असिपत्र-व्रत' का नियम लिया। नरेश्वर! मैं यादवेन्द्रकुलका पूर्वगुरु होनेके कारण उस यज्ञमें समस्त ब्राह्मणोंका आचार्य बनाया गया॥ २७—३०१/२॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे समस्त ब्राह्मण वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए अपने-अपने आसनपर बैठे। उन सबने गणेश आदि देवताओंका पृथक्-पृथक् पूजन किया। राजन्! फिर सब मुनियोंने अश्वकी स्थापना करके उसपर केसर, चन्दन, फूल माला और चावल चढ़ाये, धूप निवेदित किये। सुधा*-कुण्डलिका आदिका नैवेद्य लगाया और आरती आदि-के द्वारा उस अश्वकी विधिपूर्वक पूजा करके राजाको दानके लिये प्रेरित किया॥ ३१—३३॥

उनका यह आदेश सुनकर उग्रसेनने शीघ्रतापूर्वक पहले मुझे धनका दान किया। एक लाख घोड़े, एक हजार हाथी, दो हजार रथ, एक लाख दुधारू गाय और सौ भार सुवर्ण—इतनी दक्षिणा राजाने मुझको दी। राजन्! तदनन्तर निमन्त्रित ब्राह्मणोंको महाराज उग्रसेनने जो शास्त्रोक्त दक्षिणा दी, उसका वर्णन सुनो॥ ३४—३६॥

प्रत्येकको एक हजार घोड़े, दो सौ हाथी, दो सौ रथ, एक हजार गौएँ और बीस भार सुवर्ण—इतनी दक्षिणा दी गयी। तत्पश्चात् जो अनिमन्त्रित ब्राह्मण आये थे, उनको नमस्कार करके राजाने विधिपूर्वक एक हाथी, एक रथ, एक गौ, एक भार सुवर्ण और एक घोड़ा—इतनी दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मणके लिये दी। इस प्रकार दान करके राजाने घोड़ेके ललाटपर सोनेका पत्र बाँधा, जो कुङ्कुम आदिके कारण अत्यन्त कमनीय दिखायी देता था॥ ३७—४०॥

उस पत्रपर मैंने सभामण्डपमें समस्त यादवोंके समक्ष महाराज उग्रसेनके बढ़े-चढ़े बल-पराक्रम तथा प्रतापका इस प्रकार उल्लेख किया—॥ ४१॥

* मिष्टान्न (इमरती या जलेबी आदि) एक मधुर खाद्य पदार्थका नाम।

चन्द्रवंशे यदुकुले उग्रसेनो विराजते।
इन्द्रादयः सुरगणा यस्यादेशानुवर्तिनः॥ ४२

'चन्द्रवंशके अन्तर्गत यदुकुलमें राजा उग्रसेन विराजमान हैं, जिनके आदेशका इन्द्र आदि देवता भी अनुसरण करते हैं॥ ४२॥

सहायो यस्य भगवाञ्छ्रीकृष्णो भक्तपालकः।
अस्ति वै द्वारकापुर्यां तद्भक्त्या निवसन् हरिः॥ ४३

तद्वाक्याद्धयमेधं स उग्रसेनो नृपेश्वरः।
चक्रवर्ती हठाद्यज्ञं स्वयशोऽर्थे करोति हि॥ ४४

भक्तपालक भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सहायक हैं और उन्हींकी भक्तिसे बँधकर वे श्रीहरि सदा द्वारकापुरीमें निवास करते हैं। उन्हींकी आज्ञासे चक्रवर्ती राजाधिराज उग्रसेन अपने यशका विस्तार करनेके लिये हठात् अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करते हैं॥ ४३-४४॥

मोचितस्तेन तुरगो हयानां प्रवरः शुभः।
तद्रक्षकः कृष्णपौत्रोऽनिरुद्धो वृकदैत्यहा॥ ४५

उन्होंने ही यह अश्वोंमें श्रेष्ठ शुभलक्षण-सम्पन्न श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा है। इस अश्वके रक्षक हैं, श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्ध, जिन्होंने 'वृक' दैत्यका वध किया था॥ ४५॥

गजाश्वरथवीराणां सेनासङ्घसमन्वितः।
राजानो ये करिष्यन्ति राज्यं कौ शूरमानिनः॥ ४६

ते गृह्णन्तु यज्ञहयं स्वबलात्पत्रशोभितम्।
तं मोचयति धर्मात्मा गृहीतं च हयं नृपैः॥ ४७

स्वबाहुबलवीर्येणानिरुद्धो लीलया हठात्।
तस्यान्यथा च पदयोः पतित्वा यान्तु धन्विनः॥ ४८

वे हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-वीरोंकी चतुरङ्गिणी सेनाओंके साथ हैं। इस भूतलपर जो-जो राजा राज्य करते हैं और अपनेको शूरवीर मानते हैं, वे इस स्वर्णपत्रशोभित अश्वमेधीय अश्वको अपने बलसे रोकें। धर्मात्मा अनिरुद्ध अपने बाहुबल और पराक्रमसे हठपूर्वक अनायास ही राजाओंद्वारा पकड़े गये इस अश्वको छुड़ा लेंगे। जो धनुर्धर नरेश इस अश्वको नहीं पकड़ सकें, वे अनिरुद्धजीके चरणोंमें प्रणाम करके सकुशल लौट जायँ'॥ ४६—४८॥

इति पत्रे च लिखिते दध्मुः शङ्खान् यदूत्तमाः।
कांस्यतालमृदङ्गाद्या नेदुर्भेर्यश्च गोमुखाः॥ ४९

जब इस प्रकार स्वर्णपत्रपर लिख दिया गया, तब श्रेष्ठ यदुवंशी वीरोंने शङ्ख बजाये। झाँझ, मृदङ्ग, भेरी और गोमुख आदि बाजे बज उठे॥ ४९॥

मङ्गलानि चरित्राणि श्रीकृष्णबलदेवयोः।
गन्धर्वास्तत्र गायन्ति ननृतुरप्सरसो मुदा॥ ५०

गन्धर्वगण श्रीकृष्ण और बलदेवके मङ्गलमय चरित्रोंका गान करने लगे और अप्सराएँ भी वहाँ आनन्दविभोर होकर नृत्य करने लगीं॥ ५०॥

अथानिरुद्धं तुरगस्य पालने
भूत्वा प्रसन्नः किल कार्ष्णिनन्दनम्।
समादिदेशाच्युत एव संस्थितं
यदूत्तमानामधिपस्य पश्यतः॥ ५१

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त प्रसन्न होकर यादवराज उग्रसेनके सामने ही वहाँ खड़े हुए प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको उस यज्ञ-सम्बन्धी अश्वके सर्वथा संरक्षणका आदेश दिया॥ ५१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधचरित्रे सुमेरौ हयपूजनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधचरित्र-सुमेरुमें 'अश्वका पूजन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

अश्वमोचन तथा उसकी रक्षाके लिये सेनापति अनिरुद्धका विजयाभिषेक

श्रीगर्ग उवाच

अथ राजा कुशस्थल्यां पूजयित्वा तुरङ्गमम्।
मुमोच ब्रह्मघोषेण विधिना बद्धचामरम्॥ १

सुधाकुण्डलिकाः सोऽपि भुक्त्वा तुरगराट् ततः।
निर्ययौ स्वर्णमालाभिः शोभितः कुङ्कुमेन च॥ २

रक्षणार्थं हयस्याथ चादरेण नृपेश्वरः।
अनिरुद्धं वृकहणमूचे रक्षार्थमुद्यतम्॥ ३

श्रीगर्गजी कहते हैं—तदनन्तर राजा उग्रसेनने द्वारकापुरीमें, जिसके ऊपर विधिपूर्वक चामर बँधे हुए थे, उस अश्वका पूजन करके वेदमन्त्रोंके उद्‌घोषके साथ उसे छोड़ा। वह अश्वराज भी सुधाकुण्डलिका (इमरती या जलेबी आदि) खाकर, सोनेकी मालाओं तथा कुङ्कुमसे सुशोभित हो उस स्थानसे निकला। उस अश्वकी रक्षाके लिये उद्यत हुए वृकहन्ता अनिरुद्धसे राजाधिराज उग्रसेनने अश्वरक्षाके विषयमें आदरपूर्वक कहा—॥ १—३॥

उग्रसेन उवाच

श्रीकृष्णपौत्र प्राद्युम्ने त्वया यत्कथितं वचः।
पालनार्थे तुरङ्गस्य स्वेच्छया तत्कुरु त्वरम्॥ ४

मद्राजसूये पूर्वं वै प्रद्युम्नेन जिता मही।
त्वं तु शूरोऽसि बलवान् धन्वी तस्यात्मजो महान्॥ ५

श्रीउग्रसेन बोले—श्रीकृष्णपौत्र प्रद्युम्नकुमार! तुमने अश्वकी रक्षाके लिये स्वेच्छासे जो बात कही थी, उसे शीघ्र पूर्ण करो। पहले मेरे राजसूय-यज्ञके समय तुम्हारे पिता प्रद्युम्नने पृथ्वीपर विजय पायी थी। तुम उन्हींके महान् बलवान् एवं शूरवीर पुत्र हो॥ ४-५॥

वृकस्तु शकुनेर्भ्राता महादैत्यो हतस्त्वया।
राजानश्च जिताः सर्वे भीष्मो युद्धे हि तोषितः॥ ६

अहो मृगाङ्कलोकेशौ यस्मिन् संलीनतां गतौ।
तस्मात्त्वामृषयः सर्वे परिपूर्णं वदन्ति हि॥ ७

तुमने शकुनिके भाई महादैत्य वृकका वध किया था। समस्त राजाओंको जीता था और भीष्मको भी युद्धमें संतुष्ट कर दिया था। अहो! चन्द्रमा और ब्रह्माजी जिनके भीतर विलीन हो गये, उनकी महिमाका क्या वर्णन किया जाय। इसीलिये समस्त ऋषि-मुनि तुम्हें 'परिपूर्ण' कहते हैं॥ ६-७॥

तस्मात्पालय त्वं वीर सेनया च परीवृतः।
राजन्येभ्यश्च सर्वेभ्यो हयमेधतुरङ्गमम्॥ ८

अर्भकान् विरथान् भीतान् प्रपन्नान् दीनमानसान्।
सुप्तान् प्रमत्तानुन्मत्तान् रणे तान्मा निपातय॥ ९

श्रीकृष्णस्य प्रतापेन निर्विघ्नं तेऽस्तु कार्ष्णिज।
साश्वस्त्वं पुनरागच्छ कुशली सेनयान्वितः॥ १०

अतः तुम वीर-सेनासे घिरे हुए आगे बढ़ो और समस्त राजाओंसे अश्वमेधीय अश्वकी रक्षा करो। जो बालक, रथहीन, भयभीत, शरणागत, दीनचित्त, सुप्त, प्रमत्त और उन्मत्त हों, उन्हें युद्धमें न मारना। प्रद्युम्ननन्दन! श्रीकृष्णके प्रतापसे तुम्हारा मार्ग निर्विघ्न हो और तुम घोड़े तथा सेनाके साथ पुनः यहाँ सकुशल लौट आओ॥ ८—१०॥

श्रीगर्ग उवाच

ततः श्रुत्वानिरुद्धस्तु नृपस्य वचनं शुभम्।
तथेत्युक्त्वा हयस्यापि पालनार्थं मनो दधे॥ ११

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजाकी यह उत्तम बात सुनकर अनिरुद्ध बोले—'बहुत अच्छा'। फिर उन्होंने अश्वकी रक्षाके लिये चित्तको एकाग्र किया॥ ११॥

अथानिरुद्धं ते विप्राः कृष्णचन्द्राज्ञया त्वरम्।
तं मन्त्रैः स्नापयित्वा च पूजां चक्रुर्मुदान्विताः॥ १२

अनिरुद्धस्य तिलकं कृत्वा राजा विधानतः।
बलिं दत्वा च युद्धाय करवालं ददौ ततः॥ १३

शूरो ददौ रत्नमालां तस्मै शौरिश्च कुण्डले।
बलदेवश्च कवचं स्वचक्रं हरिरेव च॥ १४

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धाय कृष्णदत्तं धनुर्ददौ।
तथा स्वतूणौ राजेन्द्र तस्मै चाक्षयसायकौ॥ १५

स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्य त्रिशूलं प्रमथाधिपः।
उद्धवश्च किरीटं वै पीतवस्त्रं च देवकः॥ १६

प्रचेता नागपाशं च शक्तिं शक्तिधरः किल।
श्वसनो व्यजने दिव्ये स्वदण्डं यमराट् पुनः॥ १७

हीरहारं राजराजो परिघं तु धनञ्जयः।
भद्रकाली गदां गुर्वीं ददौ कुन्तं दिवाकरः॥ १८

भूः पादुके योगमय्यौ पद्मं दिव्यं गणाधिपः।
शङ्खं च दक्षिणावर्तमक्रूरो विजयप्रदम्॥ १९

सहस्रवाजिसंयुक्तं विश्वकर्मविनिर्मितम्।
सहस्रचक्रं स्वर्णाढ्यं ब्रह्माण्डान्तर्बहिर्गतिम्॥ २०

छत्रेण शातकुम्भैश्च पताकाभिः शतैरपि।
शोभितं मेघनिर्घोषं घण्टामञ्जीरनादितम्॥ २१

मनोवेगं महादिव्यं जैत्रं रत्नमयं रथम्।
अनिरुद्धाय प्रददौ द्वारकायां पुरन्दरः॥ २२

तदनन्तर उन ब्राह्मण ऋत्विजोंने श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे तत्काल अनिरुद्धको मन्त्रपाठपूर्वक स्नान करवाया और प्रसन्नतापूर्वक उनकी अर्चना की॥ १२॥

अनिरुद्धका तिलक करके राजाने उन्हें विधिपूर्वक भेंट दी और युद्धके लिये एक खड्ग हाथमें दिया। शूरसेनने उन्हें रत्नोंकी माला दी। वसुदेवजीने दो कुण्डल प्रदान किये। बलरामने कवच और श्रीहरिने अपना चक्र दिया॥ १३-१४॥

प्रद्युम्नने अनिरुद्धको श्रीकृष्णका दिया हुआ धनुष प्रदान किया। राजेन्द्र! इतना ही नहीं, उन्होंने अपने दोनों तरकस भी दे दिये, जिनमें कभी बाण समाप्त नहीं होते थे। भगवान् शंकरने अपने त्रिशूलसे एक दूसरा त्रिशूल उत्पन्न करके दे दिया। उद्धवने किरीट और देवकने पीताम्बर दिया॥ १५-१६॥

वरुणने नागपाश तथा शक्तिधारी स्कन्दने शक्ति दी। वायुदेवने दो दिव्य व्यजन भेंट किये। यमराजने अपना दण्ड दे दिया। कुबेरने हीरेका हार और धनञ्जयने परिघ अर्पित किया। भद्रकालीने एक भारी गदा दी। सूर्यदेवने एक भाला दिया॥ १७-१८॥

पृथ्वीदेवीने दो योगमयी पादुकाएँ दीं। गणेशजीने दिव्य कमल प्रदान किया। अक्रूरने विजयदायक दक्षिणावर्त शङ्ख दिया॥ १९॥

द्वारकामें देवराज इन्द्रने अनिरुद्धको एक विजयशील महादिव्य रत्नमय रथ प्रदान किया, जो मनके समान वेगशाली था। उस रथका निर्माण साक्षात् विश्वकर्माने किया था। उसमें एक हजार घोड़े जुते हुए थे। एक हजार पहिये लगे थे। वह सुवर्णसे मण्डित था। ब्रह्माण्डके बाहर और भीतर सर्वत्र उसकी गति थी। वह छत्रसे सुशोभित था। उसमें स्वर्णनिर्मित सैकड़ों ध्वजा-पताकाएँ शोभा दे रही थीं। उससे मेघकी गर्जनाके समान उद्घोष होता था। उस रथमें घंटों और मंजीरोंकी ध्वनि होती थी॥ २०—२२॥

कम्बुदुन्दुभयो नेदुः कांस्यवीणादयस्तदा।
मृदङ्गवेणवो रागैर्जयध्वनिसमाकुलैः॥ २३
ब्रह्मघोषैर्लाजपुष्पैर्मुक्तावर्षसमन्वितैः।
अनिरुद्धोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ २४

उस समय शङ्ख और दुन्दुभियाँ बज उठीं। झाँझ और वीणा आदि भी बजने लगे। मृदङ्गोंके शब्द और वंशीके मधुर रागोंके साथ जय-जयकारकी ध्वनि सब ओर छा गयी। वेद-मन्त्रोंका घोष होने लगा। लावा, फूल और मोतियोंकी वर्षा होने लगी। देवतालोग अनिरुद्धके ऊपर दिव्य पुष्प बरसाने लगे॥ २३-२४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डेऽनिरुद्धविजयाभिषेको नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अनिरुद्धका विजयाभिषेक' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

अनिरुद्धका अन्तःपुरसे आज्ञा लेकर अश्वकी रक्षाके लिये प्रस्थान; उनकी सहायताके लिये साम्बका कृतप्रतिज्ञ होना; लक्ष्मणाका उन्हें सम्मुख युद्धके लिये प्रोत्साहन देना; श्रीकृष्णके भाइयों और पुत्रोंका भी श्रीकृष्णकी आज्ञासे प्रस्थान करना तथा यादवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका विस्तृत वर्णन

श्रीगर्ग उवाच

अथ नत्वा गुरून् सोऽपि प्रायात्प्रष्टुं च देवकीम्।
रोहिणीं रुक्मिणीं भामामन्याः सर्वा हरिप्रियाः॥ १
नत्वा रतिं रुक्मवतीमहं गच्छाम्युवाच ह।
राज्ञादिष्टः पालनार्थं हयस्य सह यादवैः॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर गुरुजनोंको नमस्कार करके अनिरुद्ध देवकी, रोहिणी, रुक्मिणी, सत्यभामा तथा अन्य सम्पूर्ण श्रीहरि-वल्लभाओंसे आज्ञा लेनेके लिये अन्तःपुरमें गये। वहाँ उन सबकी आज्ञा ले, अपनी माता रति तथा रुक्मवती-को प्रणाम करके उनसे बोले—'मैं अश्वकी रक्षा करनेके लिये जाता हूँ। इसके लिये महाराजने मुझे आज्ञा दी है। मेरे साथ अन्य बहुत-से यदुवंशी वीर जा रहे हैं'॥ १-२॥

ताश्च गद्गदभाषिण्यस्तं परिष्वज्य कार्ष्णिजम्।
आशिषं प्रददू राजंस्तस्मै च प्रणताय वै॥ ३
नत्वा ताश्च ययौ सोऽपि भार्याणां भवनानि च।
तमागतं स्वभर्तारं तिस्रः पत्न्यो विलोक्य च॥ ४
आदरं तस्य ताश्चक्रुर्विरहात्खिन्नमानसाः।
आश्वासयित्वा ताः सोऽपि चाजगाम सभां किल॥ ५

राजन्! अनिरुद्धका यह कथन सुनकर माताओंने उन्हें हृदयसे लगा लिया और गद्गदकण्ठसे उन प्रणत प्रद्युम्नकुमारको जानेकी आज्ञा देते हुए आशीर्वाद प्रदान किया। माताओंको नमस्कार करके वे अपनी पत्नियोंके महलोंमें गये॥ ३१/२॥

अपने पतिको आया देखकर ऊषा आदि तीनों पत्नियोंने उनका समादर किया। परंतु विरहकी सम्भावनासे उन सबका मन उदास हो गया। अनिरुद्ध उन प्यारी पत्नियोंको आश्वासन दे राजसभामें लौट आये॥ ४-५॥

श्रीगर्ग उवाच

अथाध्वरार्थे राजेन्द्र मुनिभिः कृतमङ्गलः।
सर्वान्नृषीन् गुरूंश्चैव नृपेन्द्रं शूरमेव च॥ ६

वसुदेवं च हलिनं कृष्णं स्वपितरं तथा।
अन्यांश्च यादवान् पूज्यानिरुद्धः प्रणम्य च॥ ७

पूजितो नागरैः सर्वैर्धनुष्पाणिः शरी नृप।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः कवची कुण्डलावृतः॥ ८

उपानद्गूढपादश्च पञ्चास्यसमविक्रमः।
करवालधरश्चर्मी किरीटी शक्तिहस्तकः॥ ९

महावीरः सुवर्णस्य ह्यलङ्कारैरलङ्कृतः।
पुरन्दररथेनापि निर्ययौ स्वपुराद्बहिः॥ १०

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण कार्ष्णिजम्।
यास्यन्तं चामरैर्युक्तं ददृशुः पुरवासिनः॥ ११

ततः श्रीकृष्णचन्द्रेण प्रेषिता उद्धवादयः।
भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकाः॥ १२

अथ राजा यदून् प्राहानिरुद्धस्य च यादवाः।
सहायार्थं तु प्रधने वदतात्कः प्रयास्यति॥ १३

उग्रसेनवचः श्रुत्वा साम्बो जाम्बवतीसुतः।
सर्वेषां पश्यतां नत्वा नृपं वचनमब्रवीत्॥ १४

साम्ब उवाच

अनिरुद्धस्य राजेन्द्र सहायमहमेव च।
महारणे च शत्रुभ्यः करिष्ये सर्वदा किल॥ १५

यद्यहं तस्य रक्षां वै न करिष्ये रणाङ्गणे।
प्रतिज्ञां मम राजेन्द्र शृणुष्व सत्यवादिनः॥ १६

त्याज्यां तु दशमीविद्धां यः कृत्वैकादशीं नरः।
प्रयाति यां गतिं राजंस्तामहं प्राप्नुयां ध्रुवम्॥ १७

गोहन्तॄणां गतिर्या तु या गतिर्ब्रह्मघातिनाम्।
सा गतिर्मम भूयाद्वै न कुर्यां कर्म चेदिदम्॥ १८

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजेन्द्र! उसके बाद यज्ञ-सम्बन्धी अश्वकी रक्षाके लिये यात्राके निमित्त ऋषि-मुनियोंने अनिरुद्धके उद्देश्यसे मङ्गलपाठ किया। फिर वे समस्त महर्षियों, गुरुजनों, महाराज उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण, अपने पिता प्रद्युम्न तथा अन्यान्य पूजनीय यादवोंको प्रणाम करके समस्त नागरिकोंद्वारा पूजित हुए। नरेश्वर! उन्होंने हाथोंमें धनुष-बाण लिये, अँगुलियोंमें गोधाके चर्मसे बने हुए दस्ताने पहन लिये, कवच-कुण्डल धारण किये और पैरोंमें जूते पहनकर सिंहके समान पराक्रमी महावीर अनिरुद्धने ढाल, तलवार एवं हाथमें शक्ति ले, सोनेके बने हुए आभूषण और किरीट धारण किये। फिर वे इन्द्रके दिये हुए दिव्य रथके द्वारा अपनी पुरीसे बाहर निकले॥ ६—१०॥

उस समय गाजे-बाजेकी आवाज और वेदमन्त्रोंके घोषके साथ यात्रा करते हुए अनिरुद्धपर चारों ओरसे चँवर डुलाये जा रहे थे। समस्त पुरवासी उनकी इस यात्राको देख रहे थे। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उनके साथ जानेके लिये उद्धव आदि मन्त्री तथा भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन और दशार्हकुलमें उत्पन्न वीर योद्धा भेजे॥ ११-१२॥

तदनन्तर राजा उग्रसेनने यदुवंशी वीरोंको सम्बोधित करके पूछा—'यादवो! बताओ, युद्धमें अनिरुद्धकी सहायता करनेके लिये कौन जायगा?' उग्रसेनकी यह बात सुनकर जाम्बवतीकुमार साम्बने सबके देखते-देखते राजाको नमस्कार करके यह बात कही—॥ १३-१४॥

साम्ब बोले—राजेन्द्र! मैं महासमरमें सदा संनद्ध रहकर शत्रुओंसे अनिरुद्धकी रक्षा एवं सहायता करूँगा। यदि समराङ्गणमें मैं इनकी रक्षा न करूँ तो महाराज! उस दशामें मुझ सत्यवादीकी यह प्रतिज्ञा सुन लीजिये—॥ १५-१६॥

'मनुष्य त्याग देनेयोग्य दशमीविद्धा एकादशीका व्रत करके जिस गतिको प्राप्त होता है, मुझे भी निश्चय वही गति मिले। गोहत्यारों और ब्रह्महत्यारोंकी जो गति होती है, वही गति यदि मैं यह रक्षणकार्य न कर सकूँ, तो मेरी भी हो'॥ १७-१८॥

श्रीगर्ग उवाच

इत्युक्त्वा वचनं सोऽपि ययौ चान्तःपुरं ततः।
नत्वा च मातरं सर्वमभिप्रायं न्यवेदयत्॥ १९

श्रुत्वा सा तं परिष्वज्य विरहादाशिषं ददौ।
ततो मातॄस्तु ताः सर्वा नत्वा पत्नीगृहं गतः॥ २०

सा तमायान्तमालोक्य लक्ष्मणा वरलक्षणा।
दत्वासनं वाष्पकण्ठी न तु किञ्चिदुवाच ह॥ २१

आश्वासयित्वा तां साम्बो ह्यभिप्रायमवर्णयत्।
इति श्रुत्वा पतिं प्राह विरहात् खिन्नमानसा॥ २२

लक्ष्मणोवाच

अनिरुद्धस्य तुरगो रक्षणीयस्त्वया पते।
युद्धं हि सम्मुखं कार्यं विमुखं न कदाचन॥ २३

त्वद्भ्रातॄणां स्त्रियः सन्ति मानवत्यः सहस्रशः।
सङ्ग्रामे यदि ते नाथ निशम्य च पराजयम्॥ २४

स्मिताननाः भविष्यन्ति दृष्ट्वा मां च तव प्रियाम्।
तदा दुःखतमेनाथ मरणं तु भविष्यति॥ २५

श्रुत्वैतद्वचनं साम्बो प्रत्युवाच प्रियां हसन्।

साम्ब उवाच

प्रधने मम सम्प्राप्तं त्रैलोक्यं सम्मुखं किल॥ २६

श्रोष्यसे त्वं मया भद्रे सर्वं च विदलीकृतम्।
यदि साम्बो रणाच्छूरो विमुखो जायते शुभे॥ २७

तदा सोऽस्तु स्वपापेन ब्रह्मविप्रविनिन्दकः।
पुनस्त्वहं न पश्यामि चन्द्राकारं तवाननम्॥ २८

श्रीगर्ग उवाच

इत्याश्वास्य प्रियां साम्बो द्वितीयां च प्रयत्नतः।
अभिमन्युं सुभद्रां च मिलित्वा निर्ययौ गृहात्॥ २९

चापी नैस्त्रिंशकः सज्जो स्यन्दनी यादवैर्वृतः।
प्राप्तश्चोपवने साम्बोऽनिरुद्धो यत्र वर्तते॥ ३०

श्रीगर्गजी कहते हैं—ऐसी बात कहकर साम्ब वहाँसे अन्तःपुरमें गये। वहाँ माता जाम्बवतीको प्रणाम करके उन्होंने सारा अभिप्राय निवेदन किया। उनकी बात सुनकर माताने विरहकी अनुभूति करके बेटेको हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद दिया। तदनन्तर समस्त माताओंको नमस्कार करके वे पत्नीके घरमें गये॥ १९-२०॥

उन्हें आते देख शुभलक्षणा लक्ष्मणा बैठनेके लिये आसन दे आँसुओंसे कण्ठ अवरुद्ध हो जानेके कारण कुछ भी नहीं बोली। साम्बने उसे आश्वासन दे अपना अभिप्राय कह सुनाया। सुनकर विरहकी सम्भावनासे खिन्नचित्त हो वह पतिसे बोली—॥ २१-२२॥

लक्ष्मणाने कहा—पतिदेव! आपको अनिरुद्धके अश्वकी सदा रक्षा करनी चाहिये। आप युद्धका अवसर आये तो सम्मुख होकर युद्ध करें। रणभूमिसे कभी विमुख न हों॥ २३॥

आपके सहस्रों भाई हैं और उन सबकी सहस्रों मानवती स्त्रियाँ हैं। नाथ! यदि युद्धमें आपकी पराजय सुनकर आपकी प्रियतमा होनेके कारण मेरी ओर देखकर वे मुसकरा देंगी तो उस समय दुःखके कारण मेरी मृत्यु हो जायगी। लक्ष्मणाकी यह बात सुनकर साम्ब हँसते हुए अपनी प्राण-वल्लभासे बोले—॥ २४—२५ १/२॥

साम्बने कहा—भद्रे! युद्धभूमिमें मेरा सामना करनेके लिये यदि सारी त्रिलोकी उमड़ आये तो भी तुम सुनोगी कि मैंने उन सबका विदलन (संहार) कर दिया है। शुभे! यदि शूरवीर साम्ब रणभूमिसे विमुख हो जाय तो वह अपने पापसे वेद और ब्राह्मणोंका निन्दक माना जाय। उस दशामें मैं फिर तुम्हारे इस चन्द्रोपम मुखका दर्शन नहीं करूँगा॥ २६—२८॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—इस प्रकार अपनी पहली प्रियाको आश्वासन दे साम्बने दूसरी प्रियाको भी धीरज बँधाया। फिर वे अभिमन्यु और सुभद्रासे मिलकर घरसे निकले। धनुष और तलवार ले यात्राके लिये सुसज्जित साम्ब रथपर बैठे और यादवोंसे घिरे हुए उस उपवनमें गये, जहाँ अनिरुद्ध विद्यमान थे॥ २९-३०॥

ततः स्वभ्रातरः सर्वे श्रीकृष्णेन गदादयः।
प्रेषिता आत्मजाश्चैव भानुदीप्तिमदादयः॥ ३१

सर्वे हि धन्विनः शूरा दंशिता युद्धकोविदाः।
चतुरङ्गबलोपेता निर्जग्मुः कोटिशः पुरात्॥ ३२

तालहंसमीनबर्हिमृगराजध्वजै रथैः।
दिव्यैश्च कनकाङ्गैश्च चतुर्वाजिसमन्वितैः॥ ३३

महोच्चैर्देवधिष्ण्याभैश्छत्रचामरसंयुतैः।
सूर्याभैश्च सुवर्णस्य कुम्भैर्जालकतोरणैः॥ ३४

रेजुः सर्वे कृष्णसुताः कुशस्थल्या विनिर्गताः।
ततश्च निर्ययू राजन् हेमनीडाश्च हस्तिनः॥ ३५

गोमूत्रचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखाः।
अञ्जनाभाः कज्जलाभा घनश्यामा मदच्युताः॥ ३६

राजीवमूलसदृशाः शुक्लदन्ता मृगद्विपाः।
महोच्चाः पर्वताकारा रणद्घण्टा महोद्भटाः॥ ३७

ऐरावतकुलेभाश्च त्रिशुण्डाश्चापि पाण्डुराः।
चतुर्दन्तास्तु कृष्णेन भौमान्नीताश्च निर्ययुः॥ ३८

ध्वजयुक्ता लक्षगजा लक्षदुन्दुभिसंयुताः।
लक्षाः शून्या महामात्यैः स्वर्णकम्बलमण्डिताः॥ ३९

ततः शूरैश्च संयुक्ता गजेन्द्रा एककोटयः।
इतस्ततो विरेजुस्ते बलेऽब्धौ मकरा यथा॥ ४०

तदनन्तर श्रीकृष्णने अपने गद आदि समस्त भाइयोंको और भानु तथा दीप्तिमान् आदि सभी पुत्रोंको भेजा। वे सब-के-सब शौर्यसम्पन्न और युद्धकुशल थे। उन्होंने धनुष धारण करके कवच बाँध लिया और चतुरङ्गिणी सेनाके साथ करोड़ोंकी संख्यामें वे नगरसे बाहर निकले॥ ३१-३२॥

उनके दिव्य रथ ताल, हंस, मीन, मयूर और सिंहके चिह्नवाले ध्वजोंसे सुशोभित थे। उन रथोंका अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुवर्णमण्डित था। प्रत्येक रथमें चार-चार घोड़े जुते थे। वे सभी रथ बहुत ऊँचे और देवताओंके विमानोंके समान सुशोभित थे। उनमें छत्र और चँवर लगे हुए थे। उन रथोंके ऊपर सोनेके कलश थे, जो सूर्यके समान चमक रहे थे। उनमें जालीदार बन्दनवारें लगायी गयी थीं। ऐसे रथोंद्वारा श्रीकृष्णके सभी पुत्र कुशस्थलीसे बाहर निकलकर सुशोभित हुए॥ ३३—३४ १/२॥

राजन्! तदनन्तर सोनेके हौदोंसे सुशोभित हाथी निकले, जिनके मुखपर गोमूत्र, सिन्दूर और कस्तूरीसे पत्ररचना की गयी थी। वे हाथी अञ्जन, काजल और सजल जलधरोंके समान काले थे। सबके गण्डस्थलसे मद झर रहे थे। उनके श्वेत दाँत कमलकी नालके समान जान पड़ते थे। मृगद्विपजातिके हाथी अत्यन्त ऊँचे होनेके कारण पर्वताकार दिखायी देते थे। उनके घंटे बज रहे थे और वे अत्यन्त उद्भट जान पड़ते थे॥ ३५—३७॥

ऐरावतकुलमें उत्पन्न हाथी श्वेत वर्णके थे। उनके तीन-तीन शुण्डदण्ड और चार-चार दाँत थे। उन सबको भगवान् श्रीकृष्ण भौमासुरकी राजधानीसे लाये थे। वे सब-के-सब पुरीसे बाहर निकले। एक लाख हाथी ऐसे थे, जिनकी पीठपर ध्वज फहरा रहे थे और उनके ऊपर एक लाख दुन्दुभियाँ रखी गयी थीं। लाख हाथी ऐसे थे, जिनपर कोई महावत नहीं बैठे थे। वे भी सुनहरी झूलोंसे अलंकृत थे॥ ३८-३९॥

तदनन्तर एक करोड़ गजराज ऐसे निकले, जिनके ऊपर शूरवीर योद्धा सवार थे। जैसे समुद्रमें मगर विचरते हैं, उसी प्रकार उस सेनामें वे गजराज इधर-उधर घूमते विराज रहे थे॥ ४०॥

उत्पाट्य गुल्माञ्छुण्डैश्च क्षेपयन्तो नभस्तले।
महीं पादैः कम्पयन्त आर्द्रीकृत्य मदैरपि॥ ४१

प्रासाददुर्गशैलाङ्गान् पातयन्तः शिरःस्थलैः।
रिपूणां च बलं सर्वं खण्डयन्तो महाबलाः॥ ४२

श्यामपीतकृष्णशुक्लरक्तवर्णैश्च कम्बलैः।
सुवर्णशृङ्खलैर्युक्ता रेजुरेतादृशा गजाः॥ ४३

ततस्तुरङ्गमा ये वै नारदेन विलोकिताः।
ते सर्वे निर्गता राजन् स्वर्णहारैश्च संयुताः॥ ४४

केचिद्वै चञ्चलाङ्गाश्च धूम्रवर्णा मनोहराः।
श्यामवर्णाः पद्मवर्णाः कृष्णवर्णाः सुकन्धराः॥ ४५

दुग्धाभा घोटकाः केचित्तथा कीलालसन्निभाः।
हरिद्राभाः कुङ्कुमाभाः पालाशकुसुमप्रभाः॥ ४६

केचिच्चित्रविचित्राङ्गाः स्फटिकाङ्गा मनोजवाः।
हरिद्वर्णास्ताम्रवर्णाः कौसुम्भाभाः शुकप्रभाः॥ ४७

इन्द्रगोपनिभा गौरा दिव्याः पूर्णेन्दुसन्निभाः।
सिन्दूराङ्गाश्चाग्निवर्णा रविबालसमप्रभाः॥ ४८

एते तुरङ्गमा राजन् सर्वदेशात्समागताः।
पुर्यां कृष्णप्रतापेन ते तु सर्वे विनिर्गताः॥ ४९

कृष्णस्य वाजिशालासु ये वर्तन्ते च ते हयाः।
वैकुण्ठवासिनश्चैव श्वेतद्वीपनिवासिनः॥ ५०

वे अपने शुण्डदण्डोंसे गुल्मोंको उखाड़कर आकाशमें फेंकते थे और मदकी धारासे पृथ्वीको भिगोते हुए पैरोंके आघातसे उसे कम्पित-सी कर रहे थे। अपने मस्तकोंकी टक्करसे महलों, दुर्गों और पर्वतशिखरोंको भी वे धराशायी करनेमें समर्थ थे। वे महाबली गजराज शत्रुओंकी सारी सेनाको कुचल देनेवाले थे। उनपर पड़ी हुई झूलें नीली, पीली, काली, सफेद और लाल थीं। वे सोनेकी साँकलोंसे युक्त थे और बड़ी शोभा पाते थे॥ ४१—४३॥

राजन्! तत्पश्चात् जिन्हें नारदजीने अश्वशालामें देखा था, वे सभी अश्व सोनेके हारोंसे अलंकृत हो नगरसे बाहर निकले। कोई घोड़े बड़े चञ्चल थे, किन्हींका वर्ण धुएँके रंगका था और वे देखनेमें बड़े मनोहर थे। किन्हींके रंग काले और किन्हींके श्याम थे। कोई-कोई कमलके समान कान्तिवाले थे। उन सबके कंधे बड़े सुन्दर थे॥ ४४-४५॥

कुछ घोड़े दूधके समान सफेद थे। कितने ही पानीके समान प्रतीत होते थे। किन्हींकी कान्ति हल्दीके समान पीली थी। कोई केसरिया रंगके थे और कुछ घोड़े पलाशके फूलके समान लाल थे। किन्हींके अङ्ग चितकबरे थे और किन्हींके स्फटिकमणिके समान स्वच्छ। वे सभी मनके समान वेगशाली थे। कोई हरे, कोई ताँबेके समान रंगवाले, कोई कुसुम्भकी-सी कान्तिवाले और कोई तोतेकी पाँखके समान प्रभावाले थे॥ ४६-४७॥

कोई वीरबहूटीके समान लाल, कोई गौर और कोई पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल थे। वे सभी अश्व दिव्य थे। किन्हींके अङ्ग सिन्दूरके समान रंगवाले थे। कोई प्रज्वलित अग्नि और कोई बाल सूर्यके समान कान्तिमान् थे। राजन्! ये घोड़े सभी देशोंसे द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णके प्रतापसे आये थे। वे सभी उस दिन यात्राके लिये निकले॥ ४८-४९॥

श्रीकृष्णकी अश्वशालामें जो घोड़े विद्यमान थे, वे वैकुण्ठवासी तथा श्वेतद्वीपनिवासी थे॥ ५०॥

केचिन्मयूरवर्णाश्च नीलकण्ठनिभास्तथा।
विद्युद्वर्णास्ताक्ष्यवर्णाः सर्वे पक्षैरलङ्कृताः॥ ५१

शिखामणिधराः शुक्लचामरैः समलङ्कृताः।
स्रग्भिर्मुक्ताफलानां च रक्तवस्त्रैर्विभूषिताः॥ ५२

स्वर्णेन मण्डिताः पुच्छमुखपट्टस्फुरत्प्रभाः।
सर्वाङ्गसुन्दरा दिव्या निर्गतास्ते सहस्रशः॥ ५३

न स्पृशन्तः पदैर्भूमिं ह्येते कृष्णहया नृप।
चञ्चला वायुवेगाश्च मनोवेगा मनोहराः॥ ५४

बुद्बुदेष्वतिगाश्चैवापक्वसूत्रेषु भूपते।
लूताजालेषु केचिद्वै चलन्तः पारदं ह्यनु॥ ५५

स्फारावारिषु दृश्यन्ते निराधारा नृपेश्वर।
अन्येऽपि निर्गता राजन् म्लेच्छदेशभवा हयाः॥ ५६

शतयोजनगाश्चैव कोटिशः कोटिशो नृप।
गर्तदुर्गनदीसौधशैलादींश्च हरेर्हयाः।
उल्लङ्घयन्तो नृपते सवीरास्ते तुरङ्गमाः॥ ५७

ततश्च निर्ययुः सर्वे द्वारकायाः पदातिनः।
धन्विनो दंशिताः शूरा महाबलपराक्रमाः॥ ५८

खड्गचर्मधरा उच्चा लौहकञ्चुकमण्डिताः।
सङ्ग्रामे बहुशत्रूणां जेतारो गजसन्निभाः॥ ५९

इत्थं विनिर्गतं सैन्यं यादवानां निरीक्ष्य च।
देवदैत्यनराः सर्वे विस्मयं परमं गताः॥ ६०

उनमेंसे कोई मयूरके समान कान्तिवाले थे और कोई नीलकण्ठके समान। किन्हींके वर्ण बिजलीके समान दीप्तिमान् थे और किन्हींके गरुड़के समान। वे सभी अश्व दिव्य पंखोंसे अलंकृत थे॥ ५१॥

उनकी शिखाओंमें मणि प्रकाशित होती थी। वे श्वेत चामरोंसे अलंकृत थे। मुक्ताफलोंकी मालाओं तथा लाल रंगके वस्त्रोंसे विभूषित थे। उन सबका सुवर्णसे शृङ्गार किया गया था। उनकी पूँछ और मुखपट्टसे दिव्य प्रभा फैल रही थी। वे सर्वाङ्गसुन्दर दिव्य अश्व सहस्रोंकी संख्यामें बाहर निकले॥ ५२-५३॥

नरेश्वर! श्रीकृष्णके ये अश्व अपने पैरोंसे भूमिका स्पर्श नहीं करते थे। वे वायु और मनके समान वेगशाली, चञ्चल और मनोहर थे। राजन्! वे पानीके बबूलोंपर चल सकते थे, कच्चे सूतोंपर दौड़ सकते थे। कितने ही ऐसे थे, जो मकड़ीके जालों और पारदपर भी चलनेमें समर्थ थे॥ ५४-५५॥

नृपेश्वर! वे समुद्रोंके जलपर भी निराधार चलते देखे जाते थे। राजन्! कुछ म्लेच्छ देशोंमें उत्पन्न अश्व भी वहाँ मौजूद थे, जो उस यात्रामें पुरीसे बाहर निकले। राजन्! उनमें कोटि-कोटि अश्व ऐसे थे, जो प्रतिदिन सौ योजन अविराम गतिसे दौड़ सकते थे। नरेश्वर! भगवान् श्रीकृष्णके घोड़े गड्ढे, दुर्गम भूमि, नदी, ऊँचे-ऊँचे महल तथा पर्वत आदिको भी लाँघ जाते थे। उन सभी घोड़ोंपर वीर योद्धा सवार थे॥ ५६-५७॥

इसके बाद द्वारकापुरीसे समस्त पैदल-सैनिक बाहर निकले। वे धनुष और कवचसे सुसज्जित शूरवीर तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके कद ऊँचे थे। ढाल और तलवार धारण किये वे योद्धा लोहेके कवचसे मण्डित थे। हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले थे और युद्धमें बहुत-से शत्रुओंपर विजय पानेकी शक्ति रखते थे, इस प्रकार पुरीसे बाहर निकली हुई यादवोंकी उस विशाल सेनाको देखकर देवता, दैत्य और मनुष्य सबको महान् विस्मय हुआ॥ ५८—६०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधचरित्रे यदुसैन्यनिर्गमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यादव-सेनाका निर्गमन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

अनिरुद्धका सेनासहित अश्वकी रक्षाके लिये प्रयाण; माहिष्मतीपुरीके राजकुमारका अश्वको बाँधना तथा अनिरुद्धका राजा इन्द्रनीलसे युद्धके लिये उद्यत होना

श्रीगर्ग उवाच

अथ तन्मिलनार्थं वै उग्रसेनाज्ञया नृप।
वसुदेवः कामपालः श्रीकृष्णः कार्ष्णिरेव च॥ १

अन्येऽपि यादवा राजन् रथैः सर्वे विनिर्ययुः।
गत्वानिरुद्धं ददृशुः सेनया तु परीवृतम्॥ २

प्रद्युम्नाय राजसूये या नीतिः कथिता पुरा।
तां सर्वामनिरुद्धाय कथयामास माधवः॥ ३

इति श्रुत्वा च कृष्णस्य शासनं सर्वयादवाः।
शिरसा जगृहू राजन्ननिरुद्धादयो मुदा॥ ४

अथ गर्गं मुनींश्चैव वसुदेवं हलायुधम्।
श्रीकृष्णचन्द्रं कार्ष्णिं च प्राद्युम्निः प्रणनाम ह॥ ५

वसुदेवरामकृष्णप्रद्युम्नाद्याः शुभाशिषम्।
अनिरुद्धाय दत्वा च प्रविष्टास्ते पुरीं रथैः॥ ६

अथानिरुद्धस्य हयो देशे देशे गतो नृप।
न केऽपि जगृहुस्तं वै भयात् कृष्णस्य भूमिपाः॥ ७

यत्र यत्र गतो वाजी तत्र तत्र ससैनिकः।
कार्ष्णिजः पृष्ठतस्तस्य जेतुं शत्रून् गतः किल॥ ८

इत्थं विलोकयन् राज्याननिरुद्धतुरङ्गमः।
राजितां नर्मदातीरे ययौ माहिष्मतीं पुरीम्॥ ९

चातुर्वर्ण्यसमाकीर्णामश्मदुर्गेण मण्डिताम्।
सदनैर्गगनस्पर्शैर्महेशस्यालयैर्वृताम्॥ १०

इन्द्रनीलेन राज्ञापि पालितां पञ्चयोजनाम्।
शालैस्तालैस्तमालैश्च वटैर्बिल्वैश्च पिप्पलैः॥ ११

तडागैश्चैव वापीभिर्घुष्टां पक्षिगणैस्तथा।
ईदृशीं नगरीमश्वो ददर्शोपवने गतः॥ १२

श्रीगर्गजी कहते हैं—नरेश्वर! तदनन्तर राजा उग्रसेनकी आज्ञासे अनिरुद्धसे मिलनेके लिये वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न तथा अन्य सब यादव रथोंद्वारा नगरसे बाहर निकले। वहाँ जाकर उन्होंने सेनासे घिरे हुए अनिरुद्धको देखा। भगवान् श्रीकृष्णने पहले राजसूय-यज्ञके अवसरपर प्रद्युम्नको जिस नीतिका उपदेश दिया था, वही सारी नीति उस समय अनिरुद्धसे कह सुनायी॥ १—३॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्णका वह उपदेश सुनकर अनिरुद्ध आदि समस्त यादवोंने प्रसन्नतापूर्वक उसे शिरोधार्य किया। तत्पश्चात् मुनिवर गर्ग, अन्यान्य मुनिवृन्द, वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्णचन्द्र तथा प्रद्युम्नको अनिरुद्धने प्रणाम किया॥ ४-५॥

वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न आदि यादव अनिरुद्धको शुभाशीर्वाद देकर रथोंद्वारा पुरीमें लौट आये। नरेश्वर! अनिरुद्धका अश्व देश-देशमें गया; किंतु श्रीकृष्णके भयसे कोई भूपाल उसे पकड़नेका साहस न कर सके। जहाँ-जहाँ वह घोड़ा गया, वहाँ-वहाँ सैनिकोंसहित अनिरुद्ध उसके पीछे शत्रुओंको जीतनेके लिये गये॥ ६—८॥

इस प्रकार विभिन्न राज्योंका अवलोकन करता हुआ अनिरुद्धका वह अश्व नर्मदाके तटपर विराजमान माहिष्मतीपुरीको गया। उस पुरीमें चारों वर्णोंके लोग भरे थे और वह भवनों तथा प्रस्तरनिर्मित दुर्गसे मण्डित थी। भगवान् शंकरके गगनचुम्बी मन्दिर उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे॥ ९-१०॥

पाँच योजन विस्तृत माहिष्मतीपुरी राजा इन्द्रनीलसे परिपालित थी। शाल, ताल, तमाल, वट, बिल्व और पीपल आदि वृक्ष उसकी श्रेयवृद्धि कर रहे थे। बहुत-से पोखरे और बावड़ियाँ वहाँ शोभा पाती थीं, जिनमें पक्षी कलरव करते थे। ऐसी नगरीको वहाँके उपवनमें पहुँचकर अश्वने देखा॥ ११-१२॥

इन्द्रनीलस्य तनयो नाम्ना नीलध्वजो बली।
पुर्याः सहस्रवीरैश्च मृगयार्थी विनिर्गतः॥ १३

ततो ददर्श तुरगं सपत्रं नृपनन्दनः।
प्रफुल्लिते चोपवने कदम्बस्य तले स्थितम्॥ १४

चरन्तं चामरैर्युक्तं सौरभेयीपयःप्रभम्।
स्त्रीणां कुङ्कुमहस्तैश्च मुक्ताहारैरलङ्कृतम्॥ १५

हयं दृष्ट्वा राजसुतो स्ववाहादवतीर्य च।
केशेषु तं निजग्राह हर्षेण नृप लीलया॥ १६

तत्पत्रं वाचयामास यादवेन्द्रेण यत्कृतम्।
द्वारकाधिपती राजा सर्वशूरशिरोमणिः॥ १७

नान्योऽस्ति तत्समः कोऽपि चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः।
विमोचितस्तुरगराट् तेनासौ पत्रसंयुतः॥ १८

पाल्यमानोऽनिरुद्धेन गृह्णन्तु सबला नृपाः।
तस्यान्यथा प्रपदयोः पतित्वा यान्तु क्षत्रियाः॥ १९

इत्यभिप्रायमालोक्य कोपेनाह नृपात्मजः।
अनिरुद्धो धनुर्धारी धन्विनो न वयं स्मृताः॥ २०

मत्पितरि स्थिते मह्यां कस्तु गर्वं समाचरेत्।

श्रीगर्ग उवाच

इत्युक्त्वा स हयं नीत्वा प्रययौ नृपसन्निधौ॥ २१

कथयामास वृत्तान्तं पितुरग्रे हयस्य च।
श्रुत्वा पुत्रस्य वचनमिन्द्रनीलो महीश्वरः॥ २२

शिवभक्तो महामानी पुत्रं प्राह महाबलः।

इन्द्रनील उवाच

समर्थेन पुरा दत्तं राजसूये क्रतूत्तमे॥ २३

प्रद्युम्नाय बलिं किञ्चित्कुमन्त्रिवचनान्मया।
अद्यानिरुद्धस्तु हयं पालयन् पुनरागतः॥ २४

राजा इन्द्रनीलके बलवान् पुत्रका नाम नीलध्वज था। वह सहस्रों वीरोंके साथ शिकार खेलनेके लिये पुरीसे बाहर निकला॥ १३॥

उस राजकुमारने भालमें बँधे हुए पत्रके साथ श्यामकर्ण घोड़ेको देखा, जो फूलोंसे भरे उपवनमें कदम्बके नीचे खड़ा था। उसकी अङ्ग-कान्ति गायके दूधकी भाँति श्वेत थी। अनेक चामरोंसे अलंकृत वह अश्व वहाँ घूमता हुआ आ गया था। उसके शरीरपर स्त्रियोंके कुङ्कुमलिप्त हाथोंके छाप शोभा दे रहे थे तथा वह मोतीकी मालाओंसे मण्डित था॥ १४-१५॥

उस घोड़ेको देख राजकुमार नीलध्वजने अपने वाहनसे उतरकर बड़े हर्षके साथ खेल-खेलमें ही उसके सिरका बाल पकड़ लिया। उसके भालमें यादवराज उग्रसेनने जो पत्र लगा दिया था, उसको राजकुमार पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—'द्वारकाके अधिपति, राजा उग्रसेन समस्त शूरवीरोंके शिरोमणि हैं॥ १६-१७॥

उनके समान महायशस्वी और चक्रवर्ती राजा दूसरा कोई नहीं है। उन्होंने पत्रसहित इस अश्वराजको स्वतन्त्र विचरनेके लिये छोड़ा है। अनिरुद्ध इसका पालन करते हैं। जो राजा अपनेको सबल समझते हों, वे इसे पकड़ें; अन्यथा अनिरुद्धके चरणोंमें प्रणाम करके लौट जायँ।' यह अभिप्राय देखकर राजकुमार क्रोधसे बोल उठा—'क्या अनिरुद्ध ही धनुर्धर हैं? हमलोग धनुर्धर नहीं हैं? पृथ्वीपर मेरे पिताजीके रहते हुए कौन इस प्रकार वीरताका गर्व कर सकता है?'॥ १८—२०$^{१}/_{२}$॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर राजकुमार घोड़ेको लेकर राजाके पास गया और उसने पिताके आगे उस घोड़ेका वृत्तान्त कह सुनाया। पुत्रका वचन सुनकर महाबली महामानी शिवभक्त राजा नीलने अपने पुत्रसे इस प्रकार कहा— ॥ २१—२२$^{१}/_{२}$॥

इन्द्रनील बोले—बेटा! पहले क्रतुश्रेष्ठ राजसूयके अवसरपर समर्थ होते हुए भी मैंने अपने कुबुद्धि मन्त्रीके कहनेसे प्रद्युम्नको कुछ भेंट दे दी थी। अब पुनः घोड़ेकी रक्षा करता हुआ अनिरुद्ध आ धमका है॥ २३-२४॥

अहो दैवबलं येन किन्न भूयाद्विपर्ययः।
गता वृद्धिं द्वारकायामल्पकालेन वृष्णयः॥ २५

तस्मात्सर्वान् विजेष्यामि कार्ष्णिजप्रमुखान् यदून्।
श्यामकर्णं न दास्यामि तस्मै मानवृताय च॥ २६

पालयिष्यति मां युद्धे भक्त्या सन्तोषितः शिवः।
इत्युक्त्वा सेनया युक्तो वीरो माहिष्मतीपतिः॥ २७

स्वर्णदाम्ना हयं बद्ध्वा युद्धं कर्तुं मनो दधे।
ततोऽनिरुद्धः सम्प्राप्तो तुरगं च विलोकयन्॥ २८

अक्षौहिणीशतयुतो नर्मदायास्तटे नृप।
साम्बो मधुर्बृहद्बाहुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः॥ २९

सङ्ग्रामजित्सुमित्रश्च दीप्तिमान् भानुरेव च।
वेदबाहुः पुष्करश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः॥ ३०

विरूपश्चित्रबाहुश्च न्यग्रोधश्च कविस्तथा।
एते समाययू राजन्ननिरुद्धसहायिनः॥ ३१

गदश्च सारणोऽक्रूरः कृतवर्मा हि चोद्धवः।
युयुधानः सात्यकिश्च शूरा एते च वृष्णयः॥ ३२

सहायमनिरुद्धस्य कर्तुं सर्वे समागताः।
स्थित्वा ते नर्मदातीरे भोजवृष्ण्यन्धकादयः॥ ३३

श्यामकर्णमपश्यन्तस्त्वब्रुवन् विस्मयान्विताः।
केन नीतः सपत्राश्व उग्रसेनस्य भूपतेः॥ ३४

तस्मान्मित्राणि सोऽप्यत्र श्यामकर्णो न दृश्यते।
राजसूये पुरा यस्मै नरदैत्यसुरादयः॥ ३५

नवखण्डाधिपाश्चैव निर्जिताश्च बलिं ददुः।
यस्य वै शासनं चण्डं तिरस्कृत्य कुधीर्नृपः॥ ३६

तुरगं हृतवान् मानात्स स्तेनो दण्डमर्हति।
सर्वेषामिति वाक्यं तु श्रुत्वा दृष्ट्वा पुरीं पुरः॥ ३७

उद्धवं मन्त्रिणां श्रेष्ठं प्राह रुक्मवतीसुतः।

अहो! दैवबल कैसा अद्भुत है? उससे कौन-सा उलट-फेर नहीं हो सकता है? अभी थोड़े ही दिन हुए द्वारकामें वृष्णिवंशी बढ़ गये। अतः आज मैं अनिरुद्ध आदि समस्त यादवोंको परास्त करूँगा। उस मानीको श्यामकर्ण अश्व कदापि नहीं लौटाऊँगा। मैंने भक्ति-भावसे भगवान् शंकरको संतुष्ट किया है। वे युद्धमें मेरी रक्षा करेंगे॥ २५—२६ १/२॥

ऐसा कहकर माहिष्मतीपुरीके वीर नरेशने सोनेकी रस्सीसे घोड़ेको बाँध लिया और सेनासहित जाकर युद्ध करनेका निश्चय किया। नरेश्वर! इतनेमें ही घोड़ेको देखते हुए सौ अक्षौहिणी सेनाके साथ अनिरुद्ध नर्मदाके तटपर आ पहुँचे। राजन्! साम्ब, मधु, बृहद्बाहु, चित्रभानु, वृक, अरुण, संग्रामजित्, सुमित्र, दीप्तिमान्, भानु, वेदबाहु, पुष्कर, श्रुतदेव, सुनन्दन, विरूप, चित्रबाहु, न्यग्रोध तथा कवि—ये अनिरुद्धके सहायक भी वहाँ आ गये॥ २७—३१॥

गद, सारण, अक्रूर, कृतवर्मा, उद्धव और युयुधान नामवाले सात्यकि—ये सब वृष्णिवंशी शूरवीर भी अनिरुद्धकी सहायता करनेके लिये आ पहुँचे। वे भोज, वृष्णि तथा अन्धकआदि यादव नर्मदाके तटपर खड़े हो श्यामकर्ण अश्वको न देखनेके कारण बड़े आश्चर्यमें पड़े और आपसमें इस प्रकार कहने लगे—'मित्रो! महाराज उग्रसेनके पत्रसहित अश्वको कौन ले गया, जिससे वह श्यामकर्ण अश्व यहाँ हमें दिखायी नहीं देता है?॥ ३२—३४ १/२॥

पहले राजसूय-यज्ञके अवसरपर मानव, दैत्य और देवताओं आदिने तथा नौ खण्डोंके अधिपतियोंने भी परास्त होकर जिनके लिये भेंट दी थी, उन्हींके प्रचण्ड शासनका तिरस्कार करके जिस कुबुद्धि नरेशने अभिमानवश अश्वका अपहरण किया है, वह चोर है। उसे चोरीका दण्ड मिलना चाहिये।' सबके मुँहसे यही बात सुनकर और सामने पुरीकी ओर देखकर रुक्मवतीनन्दन अनिरुद्ध मन्त्रि-प्रवर उद्धवसे बोले—॥ ३५—३७ १/२॥

अनिरुद्ध उवाच

नगरीयं नदीतीरे कस्य भूपस्य राजते॥ ३८

तुरङ्गमो गतोऽस्त्यस्यामिति मन्ये त्वहं किल।
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राह कृष्णसखो मुदा॥ ३९

उद्धव उवाच

इन्द्रनीलस्य नगरी नाम्ना माहिष्मती शुभा।
महेशपूजनरता वर्णा यस्यां वसन्ति हि॥ ४०

नृपेणानेन वृष्णीश नर्मदायास्तटे पुरा।
द्वादशवर्षपर्यन्तं पूजितो नर्मदेश्वरः॥ ४१

ततः शिवः प्रसन्नोऽभूदुपचारैश्च षोडशैः।
तस्मै स्वदर्शनं दत्वा वरार्थं तमनोदयत्॥ ४२

महेशस्य वचः श्रुत्वा नृपो माहिष्मतीपतिः।
भूत्वा कृताञ्जली रुद्रं प्राह गद्गदया गिरा॥ ४३

ईशान त्वां नमस्येऽहं नर्मदेशं जगद्गुरुम्।
पुरुषाणां सकामानां कामरूपसुरद्रुमम्॥ ४४

त्वत्तः प्रदातुः काङ्क्षेऽहं वरमेतन्महेश्वर।
देवदैत्यनरेभ्यस्त्वं रक्ष मां सर्वदा भयात्॥ ४५

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य कृत्तिवासा मुदान्वितः।
तथास्तु चोक्त्वा राजेन्द्र ततश्चान्तरधीयत॥ ४६

तस्मादेष नृपः शूरो हयं तुभ्यं न दास्यति।
विना युद्धेन रुद्रस्य वरात्कन्दर्पनन्दन॥ ४७

इत्थमौपगवेर्वाक्यमनिरुद्धो निशम्य च।
बली धैर्येण प्रत्याह यादवानां च शृण्वताम्॥ ४८

अनिरुद्ध उवाच

नृपस्यैतस्य रुद्रस्तु सहायस्ते ह्युदाहृतः।
तथा कृष्णास्तु भगवाञ्छृणु मन्त्रिन् ममोपरि॥ ४९

अनिरुद्धने कहा—नर्मदा नदीके तटपर यह किस राजाकी नगरी शोभा पाती है? मालूम होता है कि हमारा अश्व अवश्य इसी नगरीमें गया है॥ ३८$^{1}/_{2}$॥

अनिरुद्धका यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण-सखा उद्धव अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले॥ ३९॥

उद्धवने कहा—यह राजा इन्द्रनीलकी नगरी है और इसका शुभ नाम 'माहिष्मतीपुरी' है। इसमें रहनेवाले सभी वर्णोंके लोग भगवान् महेश्वरके पूजनमें रत रहते हैं। वृष्णिकुलवल्लभ! इन राजाने पूर्वकालमें नर्मदाके तटपर बारह वर्षोंतक नर्मदेश्वरकी पूजा की थी॥ ४०-४१॥

उनके षोडशोपचार पूजनसे भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और उन्हें दर्शन देकर वर माँगनेके लिये प्रेरित करने लगे। भगवान् शिवका वचन सुनकर माहिष्मती-पुरीके पालकनरेशने हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें उन रुद्रदेवसे कहा—॥ ४२-४३॥

'ईशान! आप सम्पूर्ण जगत्के गुरु तथा नर्मदेश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सकाम पुरुषोंके कामनापूरक कल्पवृक्ष हैं। महेश्वर! आप दाता हैं। मैं आपसे यह वर चाहता हूँ कि आप सदा देवता, दैत्य और मनुष्योंसे प्राप्त होनेवाले भयसे मेरी रक्षा करें'॥ ४४-४५॥

राजाकी यह बात सुनकर भगवान् शंकरने प्रसन्न हो 'तथास्तु' कह दिया। राजेन्द्र! ऐसा कहकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। कन्दर्पनन्दन! इस कारण भगवान् रुद्रके वरसे प्रभावित वह शूरवीर नरेश युद्ध किये बिना तुम्हें अश्व नहीं लौटायेगा। उद्धवजीका यह कथन सुनकर बलवान् अनिरुद्धने समस्त यादवोंके समक्ष धैर्यपूर्वक कहा—॥ ४६—४८॥

अनिरुद्ध बोले—मन्त्रिप्रवर! सुनिये, आपने यह बताया है कि इस राजाके सहायक साक्षात् भगवान् शिव हैं। परंतु जैसे इनपर शिवकी कृपा है, उसी प्रकार मेरे ऊपर भगवान् श्रीकृष्ण कृपा रखते हैं॥ ४९॥

इत्युक्त्वा यादवैः सार्धं वीरो रुक्मवतीसुतः।
हयस्य मोचनार्थं वै नृपं जेतुं मनो दधे॥ ५०

ततः परिघनिस्त्रिंशगदाचापपरश्वधैः।
बभूवुर्यादवाः सज्जाः प्राद्युम्नौ दंशिते स्थिते॥ ५१

—ऐसा कहकर यादवोंसहित वीर रुक्मवती-कुमारने अश्वको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये राजा इन्द्रनीलको जीतनेका विचार किया। जब प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध कवच बाँधकर खड़े हुए तब समस्त यादव-योद्धा परिघ, खड्ग, गदा, धनुष और फरसे लेकर युद्धके लिये संनद्ध हो गये॥ ५०-५१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे अनिरुद्धप्रयाणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अनिरुद्धका प्रयाण' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

अनिरुद्ध और साम्बका शौर्य; माहिष्मती-नरेशपर इनकी विजय

श्रीगर्ग उवाच

अथेन्द्रनीलस्य सुतो महाबलो
ह्यक्षौहिणीभिस्त्रिभिरेव संयुतः।
यदून् विजेतुं स्वपुराद्विनिर्गतो
पितुश्च वाक्याद् बहुरोषपूरितः॥ १

तमागतं वीक्ष्य नृपस्य पुत्रं
श्रीकृष्णपौत्रस्तु धनुर्गृहीत्वा।
युद्धं प्रकर्तुं प्रययौ स एको
वृत्रं विजेतुं च यथा बिडौजाः॥ २

गत्वानिरुद्धः सङ्ग्रामे शत्रूणामुपरि त्वरम्।
मुमोच बाणपटलान् सर्वेषां त्रासयन् मनः॥ ३

ततश्च दुद्रुवुः सर्वे नीलकेतोश्च सैनिकाः।
रणाद्भीताः स्वशङ्खं च दध्मौ प्रद्युम्ननन्दनः॥ ४

पलायमानां स्वां सेनां दृष्ट्वा नीलध्वजो बली।
चापं टङ्कारयञ्छीघ्रमाययौ रणमण्डले॥ ५

सेनां स्वां नोदयामास पुनः सोऽपि धनुर्ज्यया।
द्विषां मध्येऽनिरुद्धं तं दृष्ट्वा साम्बोऽत्यमर्षितः॥ ६

धनुष्टङ्कारयन् प्राप्तो ह्यक्षौहिण्यावृतो रुषा।
विंशद्बाणैर्नीलकेतुं पञ्चभिः पञ्चभी रथान्॥ ७

अताडयद्गजांश्चैव तथा सुतुरगान्नरान्।
भूम्यां निपेतुस्ते सर्वे साम्बबाणैः प्रताडिताः॥ ८

श्रीगर्गजी कहते हैं—तदनन्तर इन्द्रनीलका पुत्र महाबली नीलध्वज तीन अक्षौहिणी सेना साथ लेकर यादवोंको जीतनेके लिये अपने नगरसे बाहर निकला। वह अपने पिताजीकी बात सुनकर यदुवंशियोंके प्रति अत्यन्त रोषसे भरा था॥ १॥

उस राजकुमारको आया देख श्रीकृष्ण-पौत्र अनिरुद्ध धनुष हाथमें लेकर अकेले ही उसके साथ युद्ध करनेके लिये गये, मानो इन्द्र वृत्रासुरपर विजय पानेके लिये प्रस्थित हुए हों॥ २॥

संग्राम-भूमिमें जाकर अनिरुद्ध शत्रुओंके ऊपर तत्काल बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे। इससे उन सबके हृदयमें त्रास छा गया। फिर तो नीलध्वजके समस्त सैनिक भयभीत हो रणभूमिसे भागने लगे और प्रद्युम्नकुमारने विजयसूचक अपना शङ्ख बजाया॥ ३-४॥

अपनी सेनाको भागती देख बलवान् नीलध्वज धनुष टंकारता हुआ शीघ्र ही संग्राममण्डलमें आया। उसने धनुषकी प्रत्यञ्चासे अपनी सेनाको पुनः युद्धमें लौटनेके लिये प्रेरित किया। अनिरुद्धको शत्रुओंके बीचमें घिरा हुआ देख साम्बके रोषकी सीमा न रही॥ ५-६॥

वे एक अक्षौहिणी सेनासे घिरे रोषपूर्वक धनुष टंकारते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने बीस बाणोंसे नील-ध्वजको और पाँच-पाँच बाणोंसे रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदलोंको घायल कर दिया। साम्बके बाणोंकी चोट खाकर वे सब-के-सब धराशायी हो गये॥ ७-८॥

गजोपरि गजाः केचिद्रथोपरि रथास्तथा।
हयोपरि हयाश्चैव नरोपरि नराश्च वै॥ ९

तत्क्षणेनाप्यभूद्भूमी रुधिरौघपरिप्लुता।
पतितैश्छिन्नभिन्नैश्च द्विपाश्वरथपत्तिभिः॥ १०

ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य
नीलध्वजो भूप धनुर्गृहीत्वा।
बाणान् विमुञ्चन् किल यादवानां
जेतुं मनो यस्य स चागमद्वै॥ ११

स गत्वा प्रधने राजन् दशबाणै रुषान्वितः।
चापं साम्बस्य चिच्छेद प्रेम दुर्वचनैरिव॥ १२

चतुर्भिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां केतुं रथं शतैः।
एकेन जघ्ने सूतं स इन्द्रनीलसुतो बली॥ १३

एवं कृत्वा च विरथं साम्बं वै नृपनन्दनः।
पुनः समागतां तस्य सेनां बाणैर्जघान ह॥ १४

अथ नीलध्वजस्यापि सेना सर्वा समागता।
यादवानां बलं संख्ये जघान निशितैः शरैः॥ १५

ततः समभवद्युद्धमुभयोः सेनयोर्मृधे।
निस्त्रिंशैः परिघैर्बाणैर्गदापरुषशक्तिभिः॥ १६

साम्बोऽन्यं रथमारुह्य सज्जं कृत्वा धनुर्दृढम्।
तद्रथं चूर्णयामास शतबाणै रणे बली॥ १७

स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामुद्यम्य वेगवान्।
अभ्यधावद्रणे क्रुद्धो साम्बस्योपरि मानद॥ १८

तदैव साम्बः सहसावतीर्याथ रथाद् गदाम्।
नीत्वा नीलध्वजस्यापि सम्मुखे गतवान् रुषा॥ १९

हाथीके ऊपर हाथी, रथोंके ऊपर रथ, घोड़ोंपर घोड़े और पैदल मनुष्योंपर मनुष्य गिरने लगे। क्षणभरमें वहाँकी भूमिपर रक्तकी धारा बह चली। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल छिन्न-भिन्न होकर वहाँ पड़े थे॥ ९-१०॥

राजन्! फिर अपनी सेनामें भगदड़ मची हुई देख नीलध्वज जिसके मनमें यादवोंको जीतनेकी बड़ी इच्छा थी, धनुष लेकर बाणोंकी वर्षा करता हुआ शत्रु-सेनाके सम्मुख आया। राजन्! युद्धस्थलमें पहुँचकर रोषसे भरे हुए उस राजकुमारने दस बाणोंसे साम्बके धनुषको उसी तरह काट दिया, जैसे कोई दुर्वचनद्वारा प्रेम-सम्बन्धको छिन्न-भिन्न कर दे। बलवान् इन्द्रनील-कुमारने चार बाणोंसे साम्बके चारों घोड़े मार दिये, दो बाणोंसे उनके रथकी ध्वजा काट गिरायी, सौ बाणोंसे रथकी धज्जियाँ उड़ा दीं और एक बाणसे सारथिको कालके गालमें भेज दिया॥ ११—१३॥

इस प्रकार साम्बको रथहीन करके राजकुमार नीलध्वजने पुनः सामने आयी हुई साम्बकी सेनाको बाणोंसे घायल करना आरम्भ किया। इतनेमें ही नीलध्वजकी सारी सेना भी लौट आयी और युद्ध-स्थलमें यादवोंकी विशाल वाहिनीको तीखे बाणोंसे घायल कर दिया॥ १४-१५॥

फिर तो रणक्षेत्रमें दोनों सेनाओंके बीच घमासान युद्ध होने लगा। खड्ग, परिघ, बाण, गदा और तीखी शक्तियोंद्वारा उभयपक्षके सैनिक परस्पर प्रहार करने लगे। साम्ब दूसरे रथपर आरूढ़ हो सुदृढ़ धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर रणक्षेत्रमें आये। वे बड़े बलवान् थे। उन्होंने सौ बाण मारकर नीलध्वजके रथको चूर-चूर कर दिया॥ १६-१७॥

मानद नरेश! उसका धनुष भी कट गया, तब उस रथहीन राजकुमारने गदा उठाकर क्रुद्ध हो युद्धस्थलमें बड़े वेगसे साम्बपर धावा किया। उसी समय साम्ब भी सहसा रथसे उतरकर गदा लिये नीलध्वजका सामना करनेके लिये रोषपूर्वक आगे बढ़े॥ १८-१९॥

ततताड गदया साम्बमागतं वीक्ष्य भूपजः।
न चचाल प्रहारेण मालाहतगजो यथा॥ २०

ततः साम्बस्तु गदया तताड नृपनन्दनम्।
तत्प्रहारेण पतितो मूर्च्छां प्राप्तो रणे तु सः॥ २१

सैनिका दुद्रुवुस्तस्य हाहाकारं समुच्चरन्।
ततो युद्धाय सङ्क्रुद्ध इन्द्रनीलः समागतः॥ २२

साकमक्षौहिणीभ्यां च विमुञ्चन् धनुषा शरान्।
तमागतं विलोक्याथ मधुः कृष्णसुतो बली॥ २३

धानुष्को विरथं चक्र इन्द्रनीलं शिलीमुखैः।
सेनां समागतां तस्य युयुधानोऽर्जुनप्रियः॥ २४

शरैर्विव्याध समरे मैत्रीं दुर्वचनैरिव।
ततश्च यादवैर्मुक्तो नृपो माहिष्मतीं ययौ॥ २५

गत्वा पुर्यां च दुःखार्तः सस्मार स्वपतिं शिवम्।
अथ तस्मै शिवः साक्षाद् दत्वा दर्शनमुत्तमम्॥ २६

पप्रच्छ सर्ववृत्तान्तं श्रुत्वा स तु न्यवेदयत्।
इत्थं निशम्य वचनं प्रत्याह प्रमथेश्वरः॥ २७

शिव उवाच

शोकं मा कुरु राजेन्द्र मद्वरोऽपि मृषा न हि।
देवदैत्यनराः सर्वे त्वां विजेतुं न च क्षमाः॥ २८

एते कृष्णसुता राजञ्छ्रीकृष्णस्यांशसम्भवाः।
न देवा ये महाराज न दैत्या न च मानुषाः॥ २९

एतैर्विनिर्जितस्त्वं तु दुर्मना भव मा नृप।
अपराधं तु कृष्णस्य कर्तुं नार्हसि भूपते॥ ३०

साम्बको आया देख राजकुमारने उनपर गदासे चोट की, परंतु फूलकी मालासे चोट करनेपर जैसे हाथी विचलित नहीं होता, उसी प्रकार साम्व उस प्रहारसे विचलित न हो सके। तदनन्तर साम्वने अपनी गदासे राजकुमारपर आघात किया। उनके उस प्रहारसे राजकुमार रणभूमिमें गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। फिर तो उसके सैनिक हाहाकार करते हुए भाग चले॥ २०—२१ १/२॥

तब अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए राजा इन्द्रनील स्वयं युद्धके लिये आये। उनके साथ दो अक्षौहिणी सेना थी और वे अपने धनुषसे बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। उन्हें आया देख बलवान् धनुर्धर वीर श्रीकृष्णकुमार मधुने अपने बाणोंकी मारसे इन्द्रनीलको रथहीन कर दिया॥ २२—२३ १/२॥

साथ ही अर्जुनके प्रिय शिष्य युयुधान सात्यकिने समराङ्गणमें आयी हुई इन्द्रनीलकी सेनाको अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार क्षत-विक्षत कर दिया, जैसे किसीने कटुवचनोंसे मित्रताको छिन्न-भिन्न कर दिया हो। तदनन्तर यादवोंके छोड़ देनेपर राजा इन्द्रनील माहिष्मतीपुरीको लौट गये॥ २४-२५॥

वे दुःखसे व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने पुरीमें पहुँचकर अपने स्वामी भगवान् शिवका स्मरण किया। तब भगवान् शिवने उन्हें परम उत्तम साक्षात् दर्शन देकर उनसे सारा वृत्तान्त पूछा। शिवजीकी बात सुनकर राजाने उनके समक्ष सारा वृत्तान्त निवेदन किया। इस प्रकार इन्द्रनीलका कथन सुनकर प्रमथोंके स्वामी भगवान् शिव बोले— ॥ २६-२७॥

शिवने कहा—राजेन्द्र! तुम शोक न करो। मेरा वरदान भी मिथ्या नहीं होगा। देवता, दैत्य और मनुष्य सब मिलकर भी तुम्हें जीतनेमें समर्थ नहीं हैं। महाराज! ये जो श्रीकृष्णके पुत्र हैं; ये उन्हींके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। ये न तो देवता हैं, न दैत्य हैं और न मनुष्य ही हैं॥ २८-२९॥

नरेश्वर! इनसे पराजित होनेके कारण तुम मनमें दुखी न होओ। भूपाल! तुम्हें श्रीकृष्णका अपराध नहीं करना चाहिये॥ ३०॥

समागतेभ्य एतेभ्यस्तस्मात्त्वं विधिना नृप।
शीघ्रं प्रयच्छ भद्रं ते हयमेधतुरङ्गमम्॥ ३१

इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रो नृपो ज्ञात्वा जगत्पतेः।
माहात्म्यं च मुदा युक्तो गृहीत्वा क्रतुवाहनम्॥ ३२

नीलध्वजेन सहितो रत्नान्यादाय भूरिशः।
स्वर्णभारशतं चैव मतङ्गजसहस्रकम्॥ ३३

नियुतं घोटकानां च ह्यादाय स्यन्दनायुतम्।
यत्रानिरुद्धः प्रययौ नमस्कर्तुं जनैर्वृतः॥ ३४

अनिरुद्धस्य निकटे गत्वा राजा विधानतः।
सर्वं निवेदयामास नत्वा वचनमब्रवीत्॥ ३५

इन्द्रनील उवाच

नमः कृष्णाय रामाय प्रद्युम्नाय महात्मने।
नमो नमोऽनिरुद्धाय सात्वतां प्रवराय च॥ ३६

आदेशो दीयतां मह्यं किं करोम्यसुरार्दन।
अनिरुद्धस्तु तं प्राह मया सह नृपोत्तम॥ ३७

शत्रुभ्यश्च मित्रहयं पालय त्वं हि मामकम्।

श्रीगर्ग उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा नृपो नृप॥ ३८

नीलध्वजाय राज्यं तु दत्वा गन्तुं मनो दधे॥ ३९

राजन्! इसलिये तुम शीघ्र ही विधिपूर्वक इन समागत यादव वीरोंको अश्वमेधका घोड़ा लौटा दो; इससे तुम्हारा भला होगा॥ ३१॥

—ऐसा कहकर भगवान् रुद्र अदृश्य हो गये। उनके मुखसे जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णका माहात्म्य जानकर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे यज्ञका घोड़ा, बहुत-से रत्न, सौ भार सुवर्ण, एक हजार मतवाले हाथी, एक लाख घोड़े और दस हजार रथ लेकर नीलध्वजके साथ जहाँ अनिरुद्ध थे, वहाँ उन्हें नमस्कार करनेके लिये गये। राजाके साथ और भी बहुत-से लोग थे॥ ३२—३४॥

अनिरुद्धके निकट जाकर राजाने विधिपूर्वक सारी वस्तुएँ निवेदित कीं और प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥ ३५॥

इन्द्रनील बोले—श्रीकृष्ण, बलराम और महात्मा प्रद्युम्नको नमस्कार है। यदुकुलतिलक अनिरुद्धको बारंबार नमस्कार है। दैत्यसूदन! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?॥ ३६१/२॥

तब अनिरुद्धने उनसे कहा—नृपश्रेष्ठ! आप मेरे साथ रहकर मेरे इस अश्वको एक मित्रका अश्व मानकर शत्रुओंके हाथसे इसकी रक्षा कीजिये॥ ३७१/२॥॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—नरेश्वर! अनिरुद्धकी यह बात सुनकर राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली और नीलध्वजको राज्य देकर स्वयं यादव-सेनाके साथ जानेका निश्चय किया॥ ३८-३९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डेऽनिरुद्धविजयवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अनिरुद्धकी विजयका वर्णन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

चम्पावतीपुरीके राजाद्वारा अश्वका पकड़ा जाना; यादवोंके साथ हेमाङ्गदके सैनिकोंका घोर युद्ध; अनिरुद्ध और श्रीकृष्णपुत्रोंके शौर्यसे पराजित राजाका उनकी शरणमें आना

श्रीगर्ग उवाच

अथ मुक्तस्तु तुरगो देशान् सर्वान् विलोकयन्।
उशीनरे च विषये प्राप्तश्चम्पावतीं पुरीम्॥ १

राज्ञा हेमाङ्गदेनापि पालितां दुर्गमण्डिताम्।
चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णां प्रासादैः परिवेष्टिताम्॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! वहाँसे छूटनेपर वह अश्व सब देशोंका अवलोकन करता हुआ उशीनर-जनपदके अन्तर्गत चम्पावतीपुरीमें जा पहुँचा। राजा हेमाङ्गदसे परिपालित वह पुरी विशाल दुर्गसे मण्डित थी। उसके भीतर चारों वर्णोंके लोग निवास करते थे। वह पुरी गगनचुम्बी प्रासादोंसे परिवेष्टित थी॥ १-२॥

यत्र हेमाङ्गदो राजा पुत्रेण हंसकेतुना।
राज्यं करोति सुकृतिर्महाशूरजनैर्वृतः॥ ३

गृहीतस्तेन तुरगोऽनिरुद्धस्य महात्मनः।
स्वपुर्यां लीलया राजन् यादवानगणय्य च॥ ४

बद्ध्वा हेमाङ्गदो राजा स्वर्णदाम्ना च वाजिनम्।
द्वारेषु च कपाटादीन् दत्वा क्रोधेन पूरितः॥ ५

यादवानां विनाशाय दुर्गभित्तिषु मानद।
शतघ्न्यश्च द्विलक्षाणि धृत्वा युद्धाय वै मनः॥ ६

ततः प्राप्तोऽनिरुद्धस्तु ससैन्योऽश्वं विलोकयन्।
चम्पावत्या ह्युपवने शिबिरोऽभूच्च तस्य वै॥ ७

अथ प्रद्युम्नतनयस्तत्रादृष्ट्वा तुरङ्गमम्।
उद्धवं कृष्णचन्द्रस्य सखायमिदमब्रवीत्॥ ८

अनिरुद्ध उवाच

कस्येयं नगरी मन्त्रिन् केन नीतो हयो मम।
त्वं जानासि महाबुद्धे कथयस्व विचार्य च॥ ९

इत्थं निशम्य तद्वाक्यमुद्धवो बुद्धिसत्तमः।
ज्ञात्वा वार्तां च शत्रूणामिदं वचनमब्रवीत्॥ १०

उद्धव उवाच

इयं चम्पावती नाम्ना नगरी द्वारकेश्वर।
हंसध्वजेन पुत्रेण यत्र हेमाङ्गदो नृपः॥ ११

करोति राज्यं तेनापि गृहीतस्तुरगस्तव।
एष राजा महाशूरो यज्ञस्याश्वं न दास्यति॥ १२

पुर्यां स्थित्वा भुशुण्डीभिर्बहु युद्धं करिष्यति।
न निर्गमिष्यति बहिर्युद्धाय स नृपः पुरात्॥ १३

तस्मात्तवेच्छा नृपते यथा भूयात्तथा कुरु।
इति तद्वचनं श्रुत्वा स उवाच रुषान्वितः॥ १४

अनिरुद्ध उवाच

अहं सर्वान् हनिष्यामि दुर्गयुक्तान् बहून् द्विषः।
लौहशक्तिसमैर्बाणैः प्रहरार्धेन सत्तम॥ १५

इत्थं तद्वाक्यमाकर्ण्य यादवः क्रोधपूरितः।
पुरीं हन्तुं ययौ शीघ्रं मुमोचेषूंश्च कोटिशः॥ १६

वहाँ पुण्यात्मा राजा हेमाङ्गद महान् शूरवीरोंसे घिरे रहकर अपने पुत्र हंसकेतुके साथ राज्य करते थे। नरेश्वर! उन्होंने यादवोंकी अवहेलना करके महात्मा अनिरुद्धके उस अश्वको अनायास ही पकड़ लिया॥ ३-४॥

मानद! राजा हेमाङ्गदने सोनेकी जंजीरसे घोड़ेको बाँधकर नगरके सभी दरवाजोंमें कपाट और अर्गला आदि दे दिये तथा यादवोंके विनाशके लिये दुर्गकी दीवारोंपर दो लाख शतघ्नियाँ (तोपें) लगवा दीं और युद्धका ही निश्चय किया॥ ५-६॥

तत्पश्चात् सेनासहित अनिरुद्ध घोड़ेकी राह देखते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने चम्पावतीके उपवनमें डेरा डाल दिया। वहाँ घोड़ेको न देखकर प्रद्युम्न-कुमारने श्रीकृष्णचन्द्रके सखा उद्धवसे इस प्रकार पूछा— ॥ ७-८॥

अनिरुद्ध बोले—मन्त्रिप्रवर! यह किसकी नगरी है? कौन मेरा घोड़ा ले गया है? महामते! आप जानते होंगे; सोच-विचारकर बताइये॥ ९॥

उनका यह प्रश्न सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धवने शत्रुओंके वृत्तान्तको समझकर यह बात कही॥ १०॥

उद्धव बोले—द्वारकानाथ! इस नगरीका नाम 'चम्पावती' है। यहाँ अपने पुत्र हंसध्वजके साथ राजा हेमाङ्गद राज्य करते हैं। उन्होंने ही तुम्हारा घोड़ा पकड़ा है। यह राजा बड़ा शूरवीर है। युद्ध किये बिना यज्ञका घोड़ा नहीं देगा। यह नगरमें ही रहकर भुशुण्डियोंद्वारा दीर्घकालतक युद्ध करेगा। वह नरेश युद्धके लिये नगरसे बाहर नहीं निकलेगा। अतः नरेश्वर! तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। उद्धवजीकी यह बात सुनकर अनिरुद्ध रोषपूर्वक बोले— ॥ ११—१४॥

अनिरुद्धने कहा—सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ उद्धवजी! दुर्गमें रहकर युद्धमें लगे हुए इन बहुसंख्यक शत्रुओंको लोहेकी बनी हुई शक्तिके समान बाणोंद्वारा मैं आधे पहरमें मार गिराऊँगा॥ १५॥

उद्धवजीकी पूर्वोक्त बात सुनकर इस प्रकार रोषमें भरे हुए यदुकुलतिलक अनिरुद्ध उस पुरीका विध्वंस करनेके लिये शीघ्र ही गये और कोटि-कोटि बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ १६॥

अन्धकानां च बाणौघैः पुर्यां कोलाहलोऽप्यभूत्।
शत्रवः शङ्किताः सर्वे वीरा हंसध्वजादयः॥ १७

ततो नृपस्य वचनाद्वीरास्ते साहसेन वै।
दुर्गभित्तिष्वथारुह्य यादवान् ददृशुर्बहिः॥ १८

अन्धकवंशी वीरोंके बाण-समूहोंसे उस पुरीमें कोलाहल मच गया। वीर हंसध्वज आदि समस्त शत्रु शङ्कित हो गये। तदनन्तर राजाके कहनेसे उन वीरोंने साहसपूर्वक दुर्गकी दीवारोंपर चढ़कर बाहर जमे हुए यादव-सैनिकोंको देखा॥ १७-१८॥

दृष्ट्वा ते च भयं प्रापुः सन्नद्धान् यदुपुङ्गवान्।
शस्त्रवर्षं प्रकुर्वन्तः सर्वतः परिमण्डितान्॥ १९

तेभ्यः शतघ्नीर्व्यसृजंश्चतुर्दिक्षु च वह्निना।
सर्वानेव हनिष्यामो न दास्यामो हयं वयम्॥ २०

यदुकुलके श्रेष्ठ वीरोंको कवच आदिसे सुसज्जित देख वे सब-के-सब भयभीत हो उठे। यादव-योद्धा अस्त्र-शस्त्रोंसे परिमण्डित हो शस्त्रोंकी वृष्टि कर रहे थे। हेमाङ्गदके सैनिकोंने उनपर चारों ओरसे शतघ्नियोंद्वारा आग बरसाना आरम्भ किया। वे इस निश्चयपर पहुँच गये कि हम सभी शत्रुओंको मौतके घाट उतार देंगे, घोड़ेको कदापि नही लौटायेंगे॥ १९-२०॥

अथानिरुद्धसेनायां हाहाकारो महानभूत्।
विह्वला वृष्णयः सर्वे शतघ्नीभिः प्रताडिताः॥ २१

सञ्छिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः केचिद्युद्धात्पलायिताः।
केचिन्मूर्च्छां गता राजन् केचिद्वै निधनं गताः॥ २२

उस समय अनिरुद्धकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया। शतघ्नियोंसे ताड़ित हो समस्त वृष्णिवंशी वीर विह्वल हो गये। उनके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। कितने ही योद्धा युद्धसे भाग चले। राजन्! कुछ सैनिक मूर्च्छित हो गये और कितने ही अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे॥ २१-२२॥

केचित्प्रज्वलिता युद्धे भस्मीभूतास्तथापरे।
केचिद्वै पादहीनाश्च करहीना विबाहवः॥ २३

निःशस्त्राः पतिताश्चैव केचिज्ज्वलितकञ्चुकाः।
हाहेति वादिनः केचिद्रामकृष्णेति वादिनः॥ २४

कोई युद्धमें जल गये और कोई भस्मीभूत हो गये। कितने ही लोगोंके हाथ-पैर और भुजाएँ कट गयीं। कुछ लोग शस्त्रहीन होकर गिर पड़े। कितनोंके कवच जल गये। कितने ही हाय-हाय करने लगे और कितने ही योद्धा बलराम तथा श्रीकृष्णके नाम ले-लेकर पुकारने लगे॥ २३-२४॥

शतघ्नीभिर्विशीर्णाङ्गा गजाः केचिन्मृधाङ्गणे।
दुद्रुवन्तश्च पतिता मूर्च्छिता निधनं गताः॥ २५

उत्पतन्तो दुद्रुवन्तश्छिन्नदेहास्तुरङ्गमाः।
मृधे मृत्युं गताः केचिद्विशीर्णाः पतिता रथाः॥ २६

उस युद्धक्षेत्रमें शतघ्नियोंकी मार खाकर सारे अङ्ग जर्जर हो जानेके कारण कितने ही हाथी भागते हुए गिर पड़े और मूर्च्छित होकर मर गये। संग्राममें उछलते-भागते हुए घोड़े शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण मौतके मुखमें चले गये। कितने ही रथ चूर-चूर होकर धराशायी हो गये। सारी यादव-सेना आगकी लपेटमें आकर भयानक दिखायी देने लगी॥ २५—२६ $^1/_2$ ॥

अग्निना पूरितं सर्वं यदुसैन्यं भयानकम्।
दृष्ट्वानिरुद्धः सङ्ग्रामे शुशोच संस्मरन् हरिम्॥ २७

ततः कृष्णस्य कृपया बुद्धिं प्राप्त उषापतिः।
प्रतिशार्ङ्गं गृहीत्वा वै निषङ्गाच्छरमेव च॥ २८

यह सब देखकर अनिरुद्ध संग्राम-भूमिमें श्रीहरिका स्मरण करते हुए कुछ सोचने लगे। तब श्रीकृष्ण-कृपासे उषावल्लभ अनिरुद्धको कर्तव्यबुद्धि सूझ गयी। उन्होंने शार्ङ्गधनुष लेकर तरकससे बाण निकाला

नीत्वा निधाय कोदण्डे पर्जन्यास्त्रं समादधे॥ २९

बाणे प्रमुक्ते सति वै बलाहकः
समागतो वै यदुसैन्यमण्डले।
जलं ववर्षाथ यदून् प्रपालयन्
कृपीटयोनिं किल शान्तयन्नृप॥ ३०

ततस्तेऽग्निभयान् मुक्ताः शीतलाङ्गाश्च वृष्णयः।
श्लाघां कृत्वानिरुद्धस्य युद्धं कर्तुं समुत्थिताः॥ ३१

तान् प्रत्याहानिरुद्धस्तु ह्यहं यास्ये पुरीं प्रति।
अर्वेण पक्षयुक्तेनैको विजेतुं द्विषां पतिम्॥ ३२

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य साम्बाद्याः कृष्णनन्दनाः।
प्रोचुः सर्वे च तं राजन्नष्टादश महारथाः॥ ३३

हरिपुत्रा ऊचुः

गन्तुं नार्हसि त्वं राजञ्शत्रूणां नगरीं प्रति।
प्रयास्यामो वयं सर्वे विजेतुं चाततायिनम्॥ ३४

इत्युक्त्वा कुपिताः सर्वे सहसारुह्य घोटकान्।
सपक्षान् धन्विनो वीरा दंशिता युद्धकोविदाः॥ ३५

उल्लङ्घयित्वा प्राकारं पुर्यां प्राप्ता हरेः सुताः।
गत्वा जघ्नुर्द्विषः सर्वान् बाणैरुरगसन्निभैः॥ ३६

ते शत्रवस्तु सहसा नृपस्य वचनान्नृप।
युद्धार्थे धन्विनः क्रुद्धा आगता एककोटयः॥ ३७

तानागतान् बहून् वीरान् कुपितानुद्यतायुधान्।
साम्बो मधुर्बृहद्बाहुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः॥ ३८

सङ्ग्रामजित्सुमित्रश्च दीप्तिमान् भानुरेव च।
वेदबाहुः पुष्करश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः॥ ३९

विरूपश्चित्रबाहुश्च न्यग्रोधश्च कविस्तथा।
एते कृष्णसुताः सर्वे जघ्नुर्बाणैर्निरीक्ष्य च॥ ४०

ततः पुर्यां च वीराणां रुधिरेण भयङ्करा।
नदी बभूव राजेन्द्र पुरद्वाराद्विनिःसृता॥ ४१

और उसे धनुषपर रखकर उसमें पर्जन्यास्त्रका संधान किया। उस बाणके छूटते ही यादवसेनाके ऊपर मेघ छा गये। नरेश्वर! उन मेघोंने यादव-सैनिकोंकी रक्षा करते हुए भूरि-भूरि जलकी वर्षा की और चारों ओर फैली हुई आगको बुझा दिया॥ २७—३०॥

तब वृष्णिवंशी सैनिकोंके अङ्ग-अङ्ग शीतल हो गये। वे आगके भयसे छूट गये और अनिरुद्धकी प्रशंसा करते हुए पुनः युद्धके लिये उठ खड़े हुए। उन सबको सम्बोधित करके अनिरुद्धने कहा—'मैं पंखवाले घोड़ेपर चढ़कर अकेला ही शत्रुओंके राजाको जीतनेके लिये चम्पावतीपुरीमें प्रवेश करूँगा'॥ ३१-३२॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! अनिरुद्धकी यह बात सुनकर समस्त कृष्णकुमार साम्ब आदि अठारह महारथी उनसे बोल उठे॥ ३३॥

हरिपुत्रोंने कहा—राजन्! तुम शत्रुओंकी नगरीमें न जाओ। हम सब लोग उस आततायी नरेशको जीतनेके लिये वहाँ जायँगे॥ ३४॥

—ऐसा कहकर रोषसे भरे हुए वे सब वीर हरिपुत्र सहसा पंखवाले घोड़ोंपर चढ़कर दुर्गके परकोटेको लाँघते हुए चम्पावतीपुरीमें जा पहुँचे। वे सभी धनुर्धर, कवचधारी और युद्धकुशल थे। उन्होंने जाते ही सर्पाकार बाणोंसे शत्रुओंको मारना आरम्भ किया॥ ३५-३६॥

नरेश्वर! वे शत्रु भी राजाकी आज्ञासे सहसा युद्धके लिये धनुष धारण किये क्रोधपूर्वक आ पहुँचे। उनकी संख्या एक करोड़ थी॥ ३७॥

रोषसे भरे और अस्त्र-शस्त्र उठाये उन बहुसंख्यक वीरोंको वहाँ आया देख साम्ब, मधु, बृहद्बाहु, चित्रभानु, वृक, अरुण, संग्रामजित्, सुमित्र, दीप्तिमान्, भानु, वेदबाहु, पुष्कर, श्रुतदेव, सुनन्दन, विरूप, चित्रबाहु, न्यग्रोध और कवि—इन समस्त श्रीकृष्णपुत्रोंने बाणोंद्वारा मारना आरम्भ किया॥ ३८—४०॥

राजेन्द्र! फिर तो उस नगरीमें वीरोंके रक्तसे भयंकर नदी प्रकट हो गयी, जो नगरद्वारसे बाहर निकली॥ ४१॥

तामागतां नदीं घोरामनिरुद्धस्तु शङ्कितः।
प्रत्युवाच रुषा राजन् मुखेन परिशुष्यता॥ ४२

मत्पितृभ्रातरः सर्वे रणे किं निहता अहो।
तस्मादस्मान् प्लावयितुं नदी घोरा समागता॥ ४३

एतामग्निमयैर्बाणैः शोषयिष्ये न संशयः।
पातयिष्यामि नगरीमहं गिरिसमैर्गजैः॥ ४४

ततोऽनिरुद्धवचनाद्धस्तिपैर्लक्षहस्तिनः।
महोच्चाश्च मदोन्मत्ताः कज्जलाद्रिसमप्रभाः॥ ४५

करैर्गुल्मान् समुत्पाट्य क्षेपयन्तश्च तत्पुरे।
कम्पयन्तो भुवं पादैः पुरोपरि समागताः॥ ४६

गत्वा ते कुञ्जराः सर्वे हेमाङ्गदपुरीं रुषा।
सर्वतः पातयामासुः शीघ्रं कुम्भस्थलैर्नृप॥ ४७

कपाटाः पतिताः सर्वे द्वाराणां दृढशृङ्खलाः।
दुर्गस्य पातिताः पुर्या गजैः पाषाणभित्तयः॥ ४८

पातयित्वा कपाटादीन् दुर्गं चैव हरेर्गजाः।
पुर्यां प्राप्ता नृपश्रेष्ठ रिपुगेहान्यपातयन्॥ ४९

हाहाकारो महानासीच्चम्पावत्यां तदैव हि।
भयभीता जनाः सर्वे नृपाद्या विस्मयं गताः॥ ५०

तदा तु धर्षितो राजा स्त्रजा बद्ध्वा करद्वयम्।
सम्मुखे हरिपुत्राणामाययौ पाहि मां ब्रुवन्॥ ५१

तमागतं नृपं वीक्ष्य रणे साम्बस्तु धर्मवित्।
भ्रातॄन्निवारयामास दीनहन्तॄंश्च हस्तिपान्॥ ५२

निवारयित्वा सर्वान् स राजानमिदमब्रवीत्।

साम्ब उवाच

आगच्छ राजन् भद्रं ते नीत्वा मम तुरङ्गमम्॥ ५३

गच्छानिरुद्धनिकटे ततः श्रेयो भविष्यति।
इति श्रुत्वा स तद्वाक्यं नीत्वा यज्ञतुरङ्गमम्।
हरिपुत्रैर्युतो राजा निश्चक्राम पुराद्बहिः॥ ५४

राजन्! उस घोर नदीको बहकर आती देख अनिरुद्ध शङ्कित हो गये। उनका मुँह सूख गया और वे रोषपूर्वक बोले—'अहो! क्या मेरे पिताके सभी भाई मारे गये, जिसके कारण यह घोर नदी प्रकट हो हम सबको बहा ले जानेके लिये इधर ही आ रही है? मैं इस नदीको अपने अग्निमय बाणोंद्वारा सोख लूँगा, इसमें संशय नहीं है। अपने पर्वतोपम गजराजोंद्वारा इस नगरीको ढहवा दूँगा॥ ४२—४४॥

तदनन्तर अनिरुद्धके आदेशसे महावतोंसे प्रेरित हो बड़े-बड़े ऊँचे मदोन्मत्त और कज्जलगिरिके समान काले लाखों हाथी अपनी सूँड़ोंसे छोटे-छोटे वृक्षों एवं गुल्मोंको उखाड़-उखाड़कर उस नगरमें फेंकने लगे। वे अपने पैरोंके आघातसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए नगरके ऊपर जा चढ़े॥ ४५-४६॥

नरेश्वर! वहाँ पहुँचकर उन समस्त गजराजोंने अपने कुम्भ-स्थलोंसे रोषपूर्वक सब ओरसे शीघ्र ही उस हेमांगदकी पुरीको ढहा दिया। सारे कपाट टूट-टूटकर गिर गये। द्वारोंकी सुदृढ़ शृङ्खलाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं। पुरीके दुर्गकी पथरीली दीवारें उन हाथियोंने तोड़ गिरायीं॥ ४७-४८॥

नृपश्रेष्ठ! श्रीहरिके गजराजोंने किवाड़ों, अर्गलाओं और दुर्गको धराशायी करके पुरीमें पहुँचकर शत्रुओंके घरोंको गिराना आरम्भ किया। उस समय चम्पावतीमें महान् हाहाकार मच गया। राजा आदि सब लोग भयभीत हो बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ ४९-५०॥

तब पराजित हुए राजा हेमाङ्गद फूलोंके हारसे अपने दोनों हाथ बाँधकर 'पाहि माम्' कहते हुए हरिपुत्रोंके सम्मुख आये। उन नरेशको आया हुआ देख रणभूमिमें धर्मवेत्ता साम्बने भाइयोंको तथा दीनजनोंकी हत्या करनेवाले महावतोंको भी रोका। सबको रोककर वे राजासे इस प्रकार बोले— ॥ ५१—५२½॥

साम्बने कहा—राजन्! आओ, तुम्हारा भला हो। मेरा घोड़ा लेकर अनिरुद्धके समीप चलो, तब तुम्हारे लिये श्रेष्ठ परिणाम निकलेगा। साम्बकी यह बात सुनकर राजा यज्ञका घोड़ा लिये हरिपुत्रोंके साथ पुरीसे बाहर निकले॥ ५३-५४॥

गत्वानिरुद्धनिकटे साकं पुत्रेण भूपतिः।
हयं निवेदयामास स्वर्णकोटिं च मानद॥ ५५
अनिरुद्धस्तु राजेन्द्र नीतिविद्दीनवत्सलः।
तत्करौ मालया बद्धौ मोचयित्वेदमब्रवीत्॥ ५६
मया सह नृपश्रेष्ठ पालयैनं तुरङ्गमम्।
राजन्येभ्यश्च शत्रुभ्यः कृष्णस्य प्रीतिहेतवे॥ ५७
श्रुत्वानिरुद्धस्य वचो महात्मा
हेमाङ्गदो बुद्धिमतां वरिष्ठः।
दत्वा च राज्यं स्वसुताय प्रीत्या
गन्तुं मनस्तत्र चकार तेन॥ ५८

राजन्! पुत्रके साथ अनिरुद्धके निकट जाकर राजाने घोड़ा और उसके साथ एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ भी अर्पित कीं। राजेन्द्र! तदनन्तर नीतिवेत्ता दीनवत्सल अनिरुद्धने पुष्पमालासे बँधे हुए उनके दोनों हाथ खोलकर इस प्रकार कहा—'नृपश्रेष्ठ! मेरे साथ चलकर श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये शत्रु-राजाओंसे इस घोड़ेकी रक्षा करो'॥ ५५—५७॥

अनिरुद्धकी बात सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजा हेमाङ्गदने अपने पुत्रको राज्य देकर प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ जानेका विचार किया॥ ५८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे चम्पावतीविजयवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'चम्पावती-विजय-वर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

स्त्री-राज्यपर विजय और वहाँकी कुमारी रानी सुरूपाका अनिरुद्धकी प्रिया होनेके लिये द्वारकाको जाना

श्रीगर्ग उवाच

अथानिरुद्धस्य हयो विमुक्तो
यदुप्रवीरैश्च महोज्ज्वलाङ्गः।
उशीनराद्वीरवरान् प्रपश्यन्
विनिर्गतः सोऽपि शनैः शनैश्च॥ १

एवं स विचरन् राजन् राष्ट्रे राष्ट्रे हयोत्तमः।
नृपैश्च बहुभी राजन् गृहीतश्च विमोचितः॥ २

इन्द्रनीलं जितं श्रुत्वा तथा हेमाङ्गदं नृपम्।
नृपाश्चान्ये मण्डलेशाः प्राप्तं न जगृहुर्हयम्॥ ३

वीरहीनान् बहून् देशान् विलोक्य तुरगोत्तमः।
यदृच्छया नृपश्रेष्ठ स्त्रीराज्यं तु जगाम ह॥ ४

राजन्यकन्या काचिद्वै सुरूपा नाम सुन्दरी।
राज्यं सा कुरुते स्वैरं राजा तत्र न जीवति॥ ५

तत्र देशे स्त्रियं प्राप्य यस्तां भजति कामतः।
ऊर्ध्वं संवत्सराद्राजन्न कदापि स जीवति॥ ६

तत्पुरे तुरगो गत्वा ह्युद्याने पुष्पसङ्कुले।
लवङ्गलतिकावृन्दे स्वेलागन्धसमाकुले॥ ७

श्रीगर्गजी कहते हैं—तदनन्तर वहाँसे छूटनेपर परम उज्ज्वल अङ्गोंवाला अनिरुद्धका अश्व यदुकुलके प्रमुख वीरोंके साथ उशीनर-जनपदसे बड़े-बड़े वीरोंको देखता हुआ धीरे-धीरे बाहर निकला॥ १॥

राजन्! इस प्रकार विचरता हुआ वह श्रेष्ठ अश्व प्रत्येक राज्यमें गया और बहुत-से नरेशोंने उसको पकड़ा तथा छोड़ा। राजा इन्द्रनील और हेमाङ्गदको पराजित हुआ सुनकर अन्य मण्डलेश्वर नरेश अपने यहाँ आनेपर भी उस घोड़ेको पकड़नेका साहस न कर सके॥ २-३॥

नृपश्रेष्ठ! बहुत-से वीरविहीन देशोंका अवलोकन करके वह श्रेष्ठ घोड़ा स्वेच्छासे घूमता हुआ स्त्रीराज्यमें जा पहुँचा। वहाँ कोई 'सुरूपा' नामवाली सुन्दरी राजकन्या राज्य करती थी। कहते हैं, वहाँ कोई पुरुष राजा जीवित नहीं रहता॥ ४-५॥

वज्रनाभ! उस देशमें किसी स्त्रीको पाकर जो कामभावसे उसका सेवन करता है, वह एक वर्षके बाद कदापि जीवित नहीं रहता। स्त्रीराज्यके नगरमें फूलोंसे भरा हुआ एक सुन्दर उद्यान था, जहाँ लवङ्ग-लताएँ फैली थीं और इलायचीकी सुगन्ध भीनी रहती थी॥ ६-७॥

पक्षिभिर्मधुपैर्घुष्टे स्थितोऽभूच्चिञ्चिणीतले।
ददृशुः स्त्रीजनाः सर्वे श्यामकर्णं मनोहरम्॥ ८

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रष्टुं समागताः।
हयं दृष्ट्वा स्त्रियो गत्वा स्वामिनीमवदन्नृप॥ ९

श्रुत्वा राज्ञी रथे स्थित्वा छत्रचामरवीजिता।
नारीकोटिसमायुक्ता हयं द्रष्टुं समाययौ॥ १०

अश्वं दृष्ट्वा च तत्पत्रं वाचयित्वा रुषान्विता।
पुनः पुरे हयं बद्ध्वा युद्धं कर्तुं मनो दधे॥ ११

काश्चिन्नार्यो गजारूढा रथारूढाः समाययुः।
हयारूढास्तथा काश्चिद्दंशिताः शस्त्रसंयुताः॥ १२

ताः सर्वाः कुपिता वीक्ष्य शस्त्रवर्षं प्रकुर्वतीः।
आगता ह्यनिरुद्धस्तु हेमाङ्गदमुवाच ह॥ १३

अनिरुद्ध उवाच

राजन्नेताश्च का नार्यो युद्धं कर्तुं समागताः।
विस्तरेणापि कथय येन मे स्याच्छिवं त्विह॥ १४

हेमाङ्गद उवाच

अत्र देशे च कुरुते राज्ञी राज्यं नृपेश्वर।
न जीवति नृपो राज्ये तस्मात्स्त्रीभिः समन्विता॥ १५

हयं गृहीत्वा ते सा च सङ्ग्रामं कर्तुमागता।
इति श्रुत्वानिरुद्धस्तु राजानमिदमब्रवीत्॥ १६

अनिरुद्ध उवाच

कस्मात्स्त्री कुरुते राज्यं राजा कस्मान्न जीवति।
एतां विस्तरतो वार्तां यत्त्वं जानासि तद्वद॥ १७

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य राजा हेमाङ्गदोऽब्रवीत्।
संस्मरन् याज्ञवल्क्यस्य स्वगुरोश्च पदाम्बुजम्॥ १८

यादवेन्द्र पुरावृत्तं याज्ञवल्क्यमुखाच्छ्रुतम्।
चम्पकायां मया पूर्वं कथयिष्यामि तच्छृणु॥ १९

पक्षियों और भ्रमरोंकी मीठी बोली वहाँ गूँज रही थी। उस नगरमें पहुँचकर घोड़ा उस उद्यानमें एक इमली वृक्षके नीचे खड़ा हो गया। वहाँकी सब स्त्रियोंने देखा, बड़ा मनोहर श्यामकर्ण घोड़ा खड़ा है। वहाँके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी उसे देखनेके लिये गये। नरेश्वर! उस घोड़ेको देखकर स्त्रियोंने अपनी स्वामिनीसे उसकी चर्चा की॥ ८-९॥

वह चर्चा सुनकर रानी छत्र और चँवरसे वीजित हो रथपर बैठीं और करोड़ों स्त्रियोंके साथ उस घोड़ेको देखनेके लिये गयीं। घोड़ेको देखकर और उसके भालमें बँधे हुए पत्रको पढ़कर रानीको बड़ा रोष हुआ। उन्होंने नगरमें घोड़ेको बाँधकर उसके प्रतिपालकोंके साथ युद्ध करनेका निश्चय किया॥ १०-११॥

कोई स्त्रियाँ हाथीपर, कोई रथपर और कोई घोड़ेपर आरूढ़ हो कवच बाँधकर अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हो युद्धके लिये आयीं। वे सब स्त्रियाँ कुपित हो अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करती हुई आयीं। उन्हें देखकर अनिरुद्धने हेमाङ्गदसे पूछा—॥ १२-१३॥

अनिरुद्ध बोले—राजन्! ये कौन-सी स्त्रियाँ हैं, जो युद्ध करनेके लिये आयी हैं? जिस उपायसे यहाँ मेरा कल्याण हो, वह विस्तारपूर्वक बताइये॥ १४॥

हेमाङ्गदने कहा—नृपेश्वर! इस देशमें रानी राज्य करती है; क्योंकि राजा यहाँ जीवित नहीं रहता है। इसीलिये वह स्त्रियोंसे घिरी हुई आयी है। आपके घोड़ेको पकड़कर वह संग्राम करनेके लिये उपस्थित है। यह सुनकर अनिरुद्ध राजासे इस प्रकार बोले॥ १५-१६॥

अनिरुद्धने कहा—राजन्! यहाँपर स्त्री राज्य क्यों करती है तथा राजा क्यों जीवित नहीं रहता है? यह बात विस्तारपूर्वक बतलाइये; क्योंकि आप सब कुछ जानते हैं॥ १७॥

अनिरुद्धकी यह बात सुनकर राजा हेमाङ्गदने अपने गुरु याज्ञवल्क्यजीके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए कहा—'यादवेन्द्र! इस विषयका प्राचीन इतिहास मैंने चम्पापुरीमें पहले गुरुवर याज्ञवल्क्यजीके मुखसे सुना था, वही तुमसे कहूँगा; ध्यान देकर सुनो॥ १८-१९॥

पुरा कृतयुगे राजन्नत्र देशे बभूव ह।
नारीपाल इति ख्यातो राजा तु मण्डलेश्वरः॥ २०

तस्यासीन् मोहिनी भार्या सिंहलद्वीपसम्भवा।
पद्मिनी हंसगमना पूर्णचन्द्रनिभानना॥ २१

तस्याः सौन्दर्यजलधौ मग्नो भूत्वा महीपतिः।
अहर्निशमविज्ञाय रेमे तां शतवत्सरैः॥ २२

न चकार प्रजानां वै न्यायं कामेन मोहितः।
तदा सर्वाः प्रजा राजन् बभूवुर्दुःखपीडिताः॥ २३

प्रजानां कदनं वीक्ष्य मोहिनी नृपवल्लभा।
न्यायं चकार सर्वासां स्वशक्त्या यादवेश्वर॥ २४

एकदा तं नृपं द्रष्टुमष्टावक्रो महामुनिः।
आजगाम नृपस्यापि प्राप्तश्चान्तःपुरे किल॥ २५

तमागतं मुनिं दृष्ट्वा नृपः स्त्रीलग्नमानसः।
विजहास कुरूपोऽयं कस्मात्प्राप्त इति ब्रुवन्॥ २६

ततो रुषा मुनिः प्राह शृणु मूढ नपुंसक।
मुनीनां स्त्रीजितो भूत्वापमानं किं करिष्यसि॥ २७

त्वद्देशे च सदा राज्यं नार्यः कुर्वन्तु नित्यशः।
न जीवति नृपो राज्ये तस्माद्गच्छ त्वमालयात्॥ २८

अत्र देशे स्त्रियं प्राप्य यस्तां भजति नित्यशः।
स तु संवत्सरान्ते वै न जीवति न संशयः॥ २९

श्रीगर्ग उवाच

इत्युक्त्वा स्वाश्रमं सोऽपि प्रययौ मुनिसत्तमः।
गते मुनौ नृपस्तत्र क्लीबोऽभूत्तस्य शापतः॥ ३०

सर्वं मुनिकृतं ज्ञात्वा गर्हयामास भूपतिः।
आत्मानमात्मना चैव स दीनो दुःखदुःखितः॥ ३१

राजन्! प्राचीन सत्ययुगकी बात है, इस देशमें 'नारीपाल' नामसे विख्यात एक मण्डलेश्वर राजा हुए थे। उनके मोहिनी नामवाली पत्नी थी, जिसका जन्म सिंहलद्वीपमें हुआ था। वह पद्मिनी नायिका थी। उसकी चाल हंसके समान थी और मुख पूर्णचन्द्रके समान मनोहर था॥ २०-२१॥

राजा उसके सौन्दर्यके महासागरमें डूबकर यह भी नहीं जान पाते थे कि कब दिन बीता और कब रात समाप्त हुई? वे सैकड़ों वर्षोंतक उसके साथ रमण करते रहे। काममोहित होनेके कारण वे प्रजाजनोंका न्याय भी नहीं करते थे। राजन्! उस समय सारी प्रजा दुःखसे पीड़ित हो रही थी॥ २२-२३॥

यादवेश्वर! प्रजाजनोंका पारस्परिक कलहसे विनाश होता देख राजवल्लभा मोहिनी अपनी शक्तिके अनुसार सारी प्रजाका न्यायकार्य स्वयं ही सँभालने लगी। एक दिन उस नरेशसे मिलनेके लिये महामुनि अष्टावक्र उनके अन्तःपुरमें आये। राजाका मन स्त्रीमें ही आसक्त रहता था। वे मुनिको आया देख जोर-जोरसे हँसने लगे और बोले—'यह कुरूप यहाँ कैसे आ गया?'॥ २४—२६॥

तब मुनि रुष्ट होकर बोले—'अरे! ओ मूर्ख नपुंसक! मेरी बात सुन ले, तू स्त्रियोंके हाथका खिलौना होकर मुनियोंका अपमान क्यों कर रहा है? तुम्हारे देशमें सदा स्त्रियाँ राज्य करेंगी। इस राज्यमें पुरुष-राजा जीवित नहीं रहेगा। अतः तू अभी इस राजभवनसे निकल जा॥ २७-२८॥

इस देशमें स्त्रीको पाकर जो प्रतिदिन उसका सेवन करेगा, वह एक वर्ष बीतनेके बाद निस्संदेह जीवित नहीं रहेगा'॥ २९॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ अष्टावक्र अपने आश्रमको चले गये। मुनिके चले जानेपर राजा उनके शापसे नपुंसक हो गये। 'यह सब दुर्दशा मुनिने ही की है'—ऐसा जानकर राजा अत्यन्त दीन एवं दुःखसे व्याकुल हो गये और स्वयं ही अपनी निन्दा करने लगे॥ ३०-३१॥

नारीपाल उवाच

किं कृतं मन्दभाग्येन स्त्रीजितेन मया ह्यहो।
मुनीनां पूजनं त्यक्त्वा तथा निरययायिनम्॥ ३२

अद्य मां पापिनं दुष्टं यमदूतैर्विलोकितम्।
दृष्ट्वा वैतरणीयोग्यं कः प्रतापात्प्रमोक्ष्यति॥ ३३

इत्युक्त्वा स गृहं त्यक्त्वा विचचार वने वने।
भजन् विमुक्तिदं विष्णुं लेभे चान्ते हरेः पदम्॥ ३४

अत्र देशे च राजानो राज्यं शापभयान्विताः।
न करिष्यन्ति नार्यश्च करिष्यन्ति न संशयः॥ ३५

श्रीगर्ग उवाच

एवं तयोः कथयतोर्नार्यः क्रुद्धाः समागताः।
व्यमुञ्चन् धनुषैर्बाणान् पुंश्चल्यः क्रोधपूरिताः॥ ३६

ताः स्त्रीर्वीक्ष्यानिरुद्धस्तु विस्मितोऽभूद्भयान्वितः।
कथं करिष्ये युद्धं वै स्त्रीभिः सार्धमिति ब्रुवन्॥ ३७

तदैव तस्य निकटे सुरूपा मण्डलेश्वरी।
स्त्रीभिः प्राप्ता चानिरुद्धं दृष्ट्वा वचनमब्रवीत्॥ ३८

राज्ञ्युवाच

तिष्ठ तिष्ठ रणे वीर कुरु युद्धं मया सह।
सेनायुक्तस्तथापि त्वं किं शोचसि वृथा रणे॥ ३९

अहं त्वां मानिनं जित्वा प्रधने वृष्णिभिर्युतम्।
क्रीडामृगं करिष्यामि मदनज्वरपीडिता॥ ४०

इति तस्या वचः श्रुत्वानिरुद्धो भयविह्वलः।
प्रत्याह दीनया वाचा सर्वविन्मण्डलेश्वरीम्॥ ४१

तुरगं कृष्णचन्द्रस्य सर्वदेवेश्वरस्य च।
मह्यं प्रयच्छ हे राज्ञि क्रतोरर्थे तु स्वेच्छया॥ ४२

नारीपाल बोले—अहो! स्त्रीके वशीभूत रहनेवाले मुझ मन्दभाग्यने यह क्या किया? मुनियोंकी पूजा छोड़कर नरककी राह पकड़ ली। आज मुझ दुष्ट पापात्मापर यमदूतोंकी दृष्टि पड़ी है। अब मैं वैतरणीमें गिराये जानेयोग्य हो गया हूँ। इस दशामें देखकर मुझे कौन अपने तेजसे इस कष्टसे छुड़ायेगा?॥ ३२-३३॥

ऐसा उद्गार प्रकट करके राजा घर छोड़कर वन-वनमें विचरने लगे। वे मुक्तिदाता भगवान् विष्णुके भजनमें लग गये और अन्तमें उन्होंने श्रीहरिका पद प्राप्त कर लिया। उस शापके भयसे राजालोग इस देशमें राज्य नहीं करेंगे; केवल नारियाँ ही यहाँ शासन करेंगी, इसमें संशय नहीं है॥ ३४-३५॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—अनिरुद्ध और हेमाङ्गद इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि रोषसे भरी हुई वहाँकी पुंश्चली नारियाँ इनके पास आ गयीं और क्रोधपूर्वक अपने धनुषोंसे बाणोंकी वर्षा करने लगीं। उन स्त्रियोंको देखकर अनिरुद्ध विस्मित हो गये और 'मैं स्त्रियोंके साथ युद्ध कैसे करूँगा'—ऐसा कहते हुए वे भयभीत-से हो गये॥ ३६-३७॥

उसी समय मण्डलेश्वरी सुरूपा स्त्रियोंके साथ उनके निकट आ गयी और अनिरुद्धको देखकर बोली॥ ३८॥

रानीने कहा—वीर! रणभूमिमें खड़े हो जाओ, खड़े हो जाओ। मेरे साथ युद्ध करो। तुम तो बहुत बड़ी सेनाके साथ हो। फिर युद्धस्थलमें व्यर्थ सोचमें क्यों पड़ गये हो? तुम बड़े मानी हो। मैं इस समराङ्गणमें वृष्णिवंशी योद्धाओंसहित तुमको पराजित करके अपना क्रीड़ामृग बनाऊँगी; क्योंकि तुम्हें देखकर मैं मदन-ज्वरसे पीड़ित हो गयी हूँ॥ ३९-४०॥

उसकी यह बात सुनकर अनिरुद्ध भयसे विह्वल हो गये। वे सब कुछ जान गये और दीन वाणीमें उस मण्डलेश्वरीसे बोले—'रानी! तुम सर्वदेवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अश्वको यज्ञके लिये अपनी ही इच्छासे मुझे लौटा दो॥ ४१-४२॥

नाहं करिष्ये युद्धं वै त्वया सार्धं वरानने।
गच्छ द्वारावतीं तस्माद्दर्शनार्थं हरेश्च वै॥ ४३

यन्नामस्मरणाद्भद्रे नरो याति कृतार्थताम्।
तस्य वै दर्शनस्यापि फलं किं कथयामि ते॥ ४४

इति सा चानिरुद्धेन बोधिता निपुणेन वै।
पूर्ववार्तां स्मरन्त्याह ब्रह्माणं मोहिनी यथा॥ ४५

सुरूपोवाच

अहं पुराऽभवं देव स्वर्वेश्या पूर्वजन्मनि।
मोहिनी नाम विख्याता कञ्जाङ्गा कञ्जलोचना॥ ४६

एकदा हंसयानेन व्रजन्तं पद्मसम्भवम्।
दृष्ट्वा तन्निकटे गत्वा भज मामित्युवाच ह॥ ४७

यदा न जगृहे ब्रह्मा शापं दत्वा तदा ह्यहम्।
गत्वा ककुद्मतीतीरे चकार दुष्करं तपः॥ ४८

तपसा तोषितो ब्रह्मा तपोऽन्ते च समागतः।
तपस्विनीं प्रसन्नात्मा वरं ब्रूहीत्युवाच ह॥ ४९

तच्छ्रुत्वा मोहिनी प्राह देवदेव नमोऽस्तु ते।
वरं वरय लोकेश दीनां मां तपसि स्थिताम्॥ ५०

यदि मां त्वं न गृह्णासि दुःखितां शरणागताम्।
तदा रोषेण त्यक्ष्यामि तपसा च कृशां तनुम्॥ ५१

इति श्रुत्वा विधिः प्राह शोकं मा कुरु भामिनि।
अन्यजन्मनि ते भद्रे भविष्यति मनोरथः॥ ५२

अहं पौत्रो भविष्यामि द्वारकायां हरेश्च वै।
सुवर्णश्चानिरुद्धाख्यः स्त्रीराज्ये त्वं भविष्यसि॥ ५३

ततो गृह्णामि त्वां भद्रे नानृतं वचनं मम।
इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं जाताहं पृथिवीतले॥ ५४

ब्रह्मा त्वं यादवश्रेष्ठ मदर्थे च समागतः।

सुमुखि! मैं तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करूँगा; अतः तुम श्रीहरिके दर्शनके लिये द्वारका जाओ। भद्रे! जिनके नामका स्मरण करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है, साक्षात् उन्हींके दर्शनका कैसा महान् फल है। यह तुम्हें क्या बताऊँ!' वार्तालापमें चतुर अनिरुद्धके इस प्रकार समझानेपर उसे पूर्वजन्मकी वार्ताका स्मरण हो आया और वह अनिरुद्धसे उसी प्रकार बोली—जैसे ब्रह्माजीसे मोहिनी बोली थी॥ ४३—४५॥

सुरूपाने कहा—देव! मैं पूर्वजन्ममें स्वर्गकी एक प्रसिद्ध अप्सरा थी। मेरा नाम 'मोहिनी' था। मेरे अङ्ग कमलके समान प्रफुल्ल एवं सुगन्धित थे। मेरे नेत्र भी कमलदलके समान विकसित एवं विशाल थे। एक दिनकी बात है—पद्मयोनि ब्रह्माजी हंसपर आरूढ़ हो कहीं जा रहे थे। उन्हें देखकर मैं उनके निकट गयी और बोली—'आप मुझे अङ्गीकार करें।'॥ ४६-४७॥

जब ब्रह्माजीने मुझे ग्रहण नहीं किया, तब मैं शाप देकर 'ककुद्मती' नदीके तटपर गयी और वहाँ दुष्कर तपस्या करने लगी। मेरी तपस्यासे ब्रह्माजी संतुष्ट हो गये। वे तपस्याके अन्तमें मेरे पास आये और प्रसन्नचित्त हो मुझ तपस्विनीसे बोले—'वर माँगो'॥ ४८-४९॥

उनका यह कथन सुनकर मैं (मोहिनी) बोली—'देवदेव! आपको नमस्कार है। लोकेश! मैं यही वर माँगती हूँ कि आप मुझ दीन तपस्विनीका वरण करें। मैं दुःखित होकर आपकी शरणमें आयी हूँ। यदि आप मुझे ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं तपस्यासे क्षीण हुए इस शरीरको रोषपूर्वक त्याग दूँगी'॥ ५०-५१॥

मेरी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'भामिनि! शोक न करो। भद्रे! दूसरे जन्ममें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। मैं द्वारकामें श्रीहरिका सुन्दर पौत्र होऊँगा। उस समय मेरा नाम 'अनिरुद्ध' होगा और तुम स्त्रीराज्यकी रानी होओगी। भद्रे! उस समय मैं तुम्हें ग्रहण करूँगा। मेरी यह बात झूठी नहीं है।' यह सुनकर मैं इस भूतलपर उत्पन्न हुई। यादवश्रेष्ठ! आप साक्षात् ब्रह्माजी हैं और मेरे लिये ही यहाँ पधारे हैं॥ ५२—५४१/२॥

श्रीगर्ग उवाच

वाक्यं तस्याः समाकर्ण्य यादवा विस्मयं ययुः ॥ ५५

अनिरुद्धस्तु धर्मात्मा प्रत्याह विमलं वचः।

अनिरुद्ध उवाच

गच्छ श्रीद्वारकां भद्रे तत्र गृह्णामि त्वां प्रियाम्।
अद्य यास्यामि तुरगं राजन्येभ्यश्च पालयन्॥ ५६

ततः सा तस्य वाक्येन प्रमिलां मन्त्रिणीं वराम्।
राज्ये कृत्वा तुरङ्गं च दत्वा द्वारावतीं ययौ॥ ५७

श्रीगर्गजी कहते हैं—सुरूपाका यह कथन सुनकर समस्त यादव आश्चर्यचकित हो गये। तब धर्मात्मा अनिरुद्धने उससे यह निर्मल वचन कहा॥ ५५ १/२ ॥

अनिरुद्ध बोले—भद्रे! तुम श्रीद्वारकाको जाओ। मैं वहाँ अपनी प्रियाके रूपमें तुम्हें ग्रहण करूँगा। इस समय तो मैं राजाओंसे अश्वकी रक्षा करते हुए उसीके साथ जाऊँगा॥ ५६ ॥

तदनन्तर सुरूपा अनिरुद्धकी आज्ञासे अपनी श्रेष्ठ मन्त्रिणी प्रमिलाको राज्यपर स्थापित करके घोड़ा लौटाकर स्वयं द्वारकाको चली गयी॥ ५७ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे स्त्रीराज्यविजयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'स्त्रीराज्यपर विजय' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

राक्षस भीषणद्वारा यज्ञीय अश्वका अपहरण तथा विमानद्वारा यादव-वीरोंकी उपलङ्कापर चढ़ाई

श्रीगर्ग उवाच

अथ मुक्तोऽनिरुद्धेन क्रतोर्वाजी पयःप्रभः।
सिंहलद्वीपनिकटे विचचार यदृच्छया॥ १

तृषार्तस्तुरगस्तत्र दृष्ट्वा वापीं जलान्विताम्।
वृक्षैश्च बहुभिर्गुप्तां दृष्ट्वा तोयं पपौ स्वयम्॥ २

वाप्यामश्वं विलोक्याथ भीषणो नाम राक्षसः।
वाचयित्वा च तत्पत्रं जग्राह तुरगं मुदा॥ ३

तदैव यादवाः सर्वे तं पश्यन्तः समागताः।
राक्षसेन गृहीतं वै ददृशुः क्रतुवाजिनम्॥ ४

ततस्ते कौणपं प्राहुर्यादवा युद्धशालिनः।

यादवा ऊचुः

कस्त्वं श्रीयादवेन्द्रस्य ह्युग्रसेनस्य भूपतेः॥ ५

सिंहस्य वस्तु क्रोष्टेव हयं नीत्वा क्व यास्यसि।
तिष्ठ तिष्ठ रणं धूर्त अस्माभिः कुरु धैर्यतः॥ ६

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर अनिरुद्धके प्रयाससे छूटा हुआ वह दुग्धके समान उज्ज्वल यज्ञसम्बन्धी अश्व स्वेच्छासे सिंहलद्वीपके निकट विचरने लगा। वह प्याससे पीड़ित था। घोड़ेने देखा, सामने ही बहुतसे वृक्षोंद्वारा आवृत और जलसे भरी हुई एक बावड़ी है। उसे देख, वह स्वयं जाकर उसका पानी पीने लगा॥ १-२ ॥

बावड़ीमें अश्वको देखकर 'भीषण' नामवाले एक राक्षसने उसके भालमें लगे हुए पत्रको पढ़ा और बड़ी प्रसन्नतासे उस घोड़ेको पकड़ लिया। उसी समय सब यादव, जिनकी दृष्टि घोड़ेपर ही लगी हुई थी, वहाँ आ पहुँचे। आकर उन्होंने देखा—'यज्ञके अश्वको एक राक्षसने पकड़ रखा है।' तब वे युद्धशाली यादव उस राक्षससे बोले—॥ ३—४ १/२ ॥

यादवोंने कहा—अरे! तू कौन है? जैसे सिंहकी वस्तुको सियार ले जाय, उसी तरह यादवेन्द्र महाराज उग्रसेनके घोड़ेको लेकर तू कहाँ जायगा? धूर्त! खड़ा रह, खड़ा रह। हमारे साथ धैर्यपूर्वक युद्ध कर!॥ ५-६ ॥

तुरगं मोचयिष्यामो वधिष्यामो रणे च त्वाम्।
शकुनिर्भ्रातृसहितो नरको बाण एव च॥ ७

कलङ्कश्चैव राजान एतेऽस्माभिर्विनाशिताः।
तस्मान्न गणयिष्यामो युद्धे त्वां च तृणोपमम्॥ ८

गच्छ गच्छ हयं दत्वा घातयामो न चेत्खलु।
तेषां भाषितमाकर्ण्य भीषणः सुरभीषणः॥ ९

शूली गदाधरः खड्गी तान् प्रत्याह रुषान्वितः।

भीषण उवाच

के यूयं प्रतियोद्धारो मम भक्ष्या नराः स्मृताः॥ १०

सम्मुखे राक्षसानां ते किं करिष्यन्ति पौरुषम्।
यदा विश्वजितं यज्ञं यादवेन कृतं पुरा॥ ११

तदाहं कौणपान्नेतुं लङ्कायां च गतः किल।
यदाहं राक्षसान्नीत्वा स्वपुर्यां च समागतः॥ १२

तदाशृणोन्नारदाद्वै यज्ञं पूर्णं बभूव ह।
पुनर्वै हयमेधस्य प्रयासं च वृथा कृतम्॥ १३

युष्मत्सु मद्गृहीतं च तुरगं मोचयन्ति के।
तस्माद्धयाशां त्यक्त्वा तु यूयं गच्छत गच्छत॥ १४

न चेत्सर्वान् प्रभक्ष्यन्ति चतुर्लक्षा ममानुगाः।
अत्र स्थानात्समुद्रे तु पुरी द्वादशयोजने॥ १५

उपलङ्का च नाम्ना वै वर्तते मम निर्मिता।
निशाचरगणैर्युक्ता सर्पैर्भोगवती यथा॥ १६

इत्युक्त्वा स हयं नीत्वा सहसा स्वपुरीं ययौ।
आकाशमार्गेण नृप शोकं चक्रुश्च यादवाः॥ १७

अनिरुद्धस्ततः प्राह भोजराजतुरङ्गमम्।
निशाचरेण नीतं वै मोचयामो वयं कथम्॥ १८

इति श्रुत्वा च साम्बाद्याः प्रत्याहुर्नयकोविदाः।
शोकं मा कुरु ते राजन् स्थितेष्वस्मासु किं भयम्॥ १९

हम घोड़ेको तेरे हाथसे छुड़ा लेंगे तथा रणभूमिमें तेरा वध कर डालेंगे। भाइयोंसहित शकुनि, नरकासुर, बाणासुर और कलङ्क—ये समस्त राक्षस-राज हमारे हाथसे मारे जा चुके हैं। तू तो उनके सामने तिनकेके तुल्य है। अतः हम युद्धमें तुझे कुछ भी नहीं गिनेंगे। तू घोड़ा देकर चला जा, चला जा, नहीं तो हम तुझे मार डालेंगे॥ ७—८१/२॥

उनका यह भाषण सुनकर देवताओंको भी भयभीत करनेवाले भीषणने शूल, गदा और खड्ग लेकर बड़े रोषके साथ उन सबसे कहा॥ ९१/२॥

भीषण बोला—अरे! तुमलोग क्या मेरा सामना कर सकते हो। मनुष्य तो हमारे भोजन हैं। वे राक्षसोंके सामने कौन-सा पुरुषार्थ प्रकट करेंगे? पहले जब यादवराजने 'विश्वजित् यज्ञ' किया था, तब मैं राक्षसोंको लानेके लिये लङ्का चला गया था। उन्हें लेकर जब मैं अपनी पुरीमें लौटा तो नारदजीके मुखसे सुना कि वह यज्ञ पूरा हो गया। अब तुमलोगोंने पुनः अश्वमेध-यज्ञ करनेका प्रयास व्यर्थ ही किया है॥ १०—१३॥

तुमलोगोंमें कौन ऐसे वीर हैं, जो मेरे पकड़े हुए घोड़ेको छुड़ा सकें! अतः घोड़ेकी आशा छोड़कर तुमलोग जाओ, चले जाओ। नहीं तो मेरे चार लाख अनुयायी राक्षस तुम सबको खा जायँगे। इस स्थानसे बारह योजन दूर समुद्रमें मेरी बनायी हुई पुरी है, जिसका नाम 'उपलङ्का' है। जैसे भोगवतीपुरी सर्पोंसे भरी रहती है, उसी प्रकार उपलङ्का निशाचरगणोंसे परिपूर्ण है॥ १४—१६॥

राजन्! ऐसा कहकर घोड़ा लिये आकाशमार्गसे वह सहसा अपनी पुरीको चला गया और समस्त यादव शोक करने लगे। तब अनिरुद्ध कहने लगे—'भोजराजके इस अश्वको, जिसे निशाचर ले गया है, हम कैसे छुड़ायेंगे?'॥ १७-१८॥

उनका यह वचन सुनकर नीतिकुशल साम्ब आदि उनसे बोले—राजन्! चिन्ता छोड़ो। हमारे रहते तुम्हें क्या भय है?॥ १९॥

हयाः सपक्षास्त्वत्सैन्ये विमानानि शरास्तथा।
शूराः सन्ति महावीरा लोकद्वयजिगीषवः॥ २०

अश्वैर्वयं गमिष्यामः सेतुं कृत्वाथवा शरैः।
विष्णुदत्तेन वा राजञ्छत्रूणां नगरीं प्रति॥ २१

सर्वेषां वचनं श्रुत्वानिरुद्धो धन्विनां वरः।
उद्धवं मन्त्रिणां श्रेष्ठं समाहूयेदमब्रवीत्॥ २२

अनिरुद्ध उवाच

किं करिष्याम्यहं मन्त्रिञ्छ्यामकर्णे गते सति।
त्वच्छासने भगवता प्रेरितोऽहं वदस्व तत्॥ २३

मत्पितृभ्रातरः सर्वे उपायं प्रवदन्ति हि।
यदि दास्यसि त्वं चाज्ञां तदा सर्वं करोम्यहम्॥ २४

उद्धवस्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विलज्जितः।
अहं कृष्णस्य पुत्राणां पौत्राणां च विशेषतः॥ २५

सदा दासोऽस्मि नितरामाज्ञावर्ती वदामि किम्।
यदिच्छा तव चैतेषां कुरु सा च भविष्यति॥ २६

ततः प्राहानिरुद्धस्तु यास्येऽहं दैत्यपत्तनम्।
अक्षौहिणीदशयुतो विष्णुदत्तेन यादवाः॥ २७

सारणः कृतवर्मा च युयुधानश्च सात्यकिः।
अक्रूरसहिता एते सेनां रक्षन्तु चात्र हि॥ २८

इत्युक्त्वा स विमानं त्वारुरोह सह सेनया।
अष्टादशैर्हरेः पुत्रैरुद्धवेन गदेन च॥ २९

रेजे ततो भास्करबिम्बतुल्यं
धनेशयानं स्वबलेन नीतम्।
श्रीकृष्णपौत्रेण यदुप्रवीरै-
र्यथा च रामेण पुरा कपीन्द्रैः॥ ३०

तुम्हारी सेनामें पंखदार घोड़े हैं, विमान हैं और बाण हैं। दोनों लोकोंपर विजय पानेवाले शौर्यसम्पन्न महान् वीर विद्यमान हैं॥ २०॥

राजन्! हमलोग घोड़ोंसे यात्रा करेंगे अथवा बाणोंसे पुल बाँधकर जायँगे; या भगवान् विष्णुके दिये हुए विमानसे शत्रुओंकी नगरीपर आक्रमण करेंगे। सबकी बात सुनकर धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने मन्त्रि-प्रवर उद्धवको बुलाकर इस प्रकार पूछा॥ २१-२२॥

अनिरुद्ध बोले—मन्त्रिवर! श्यामकर्ण हमारे हाथसे चला गया। अब हम क्या करें? भगवान्‌ने आपके आदेशानुसार ही कार्य करनेकी आज्ञा दी थी; अतः आप कोई उपाय बताइये। मेरे सब चाचा लोग जो उपाय बता रहे हैं, वह आपने भी सुना है। यदि आपकी भी आज्ञा हो जाय तो मैं वह सब करूँ॥ २३-२४॥

अनिरुद्धकी यह बात सुनकर उद्धवजी लज्जित होकर बोले—भैया! मैं तो श्रीकृष्णका और विशेषतः उनके पुत्रों तथा पौत्रोंका भी सदा दास हूँ। निरन्तर आज्ञामें रहनेवाला सेवक हूँ। मैं क्या बताऊँगा। जो तुम्हारी और इन सबकी इच्छा हो, वह करो। निश्चय ही वह सफल होगी॥ २५-२६॥

तब अनिरुद्धने कहा—यादवो! मैं भगवान् विष्णुके दिये हुए विमानद्वारा दस अक्षौहिणी सेनाके साथ दैत्यनगरी (उपलङ्का)-में जाऊँगा। सारण, कृतवर्मा तथा सत्यकपुत्र युयुधान—ये लोग अक्रूरके साथ यहीं रहकर शेष सेनाकी रक्षा करें॥ २७-२८॥

ऐसा कहकर अनिरुद्ध श्रीहरिके अठारह पुत्रों, उद्धव, गद और विशाल सेनाके साथ भगवान् विष्णुके दिये हुए विमानपर आरूढ़ हुए। श्रीकृष्णके पौत्र तथा यादव-वीरोंसे युक्त वह सूर्य-बिम्बके समान तेजस्वी विमान अपनी शक्तिसे चालित होकर उसी प्रकार शोभा पाने लगा, जैसे पूर्वकालमें कुबेरका विमान पुष्पक श्रीराम और कपिराजोंसे युक्त होकर सुशोभित होता था॥ २९-३०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे विमानारोहणं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'विमानपर आरोहण' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

यादवों और निशाचरोंका घोर युद्ध; अनिरुद्ध और भीषणकी मूर्च्छा तथा चेतना एवं रणभूमिमें बकका आगमन

श्रीगर्ग उवाच

अथ रुक्मवतीपुत्रो महत्या सेनया वृतः।
उपलङ्कां विमानेन प्रययौ धनदो यथा॥ १

यदुभिस्तत्र गत्वा स शरैराशीविषोपमैः।
बभञ्ज नगरीं राजन् वनान्युपवनानि च॥ २

क्रीडास्थानानि द्वाराणि सदनाट्टालतोलिकाः।
गोपुराणि विमानाग्रान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः॥ ३

मुशलाः शक्तयश्चैव परिघाश्च शराः शिलाः।
चण्डवायुरभूद्राजन् रजसाच्छादिता दिशः॥ ४

इत्यर्द्यमाना यदुभिर्भीषणस्य पुरी भृशम्।
नाभ्यपद्यत कल्याणं यथा शाल्वैश्च द्वारिका॥ ५

हाहाकारस्तदैवासीन्नगर्यां नृपसत्तम।
असुरा भीषणाद्याश्च बभूवुर्भयविह्वलाः॥ ६

बाध्यमानां च नगरीं दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवः।
माभैष्टेत्यभयं दत्वा राक्षसैः सह निर्ययौ॥ ७

ततः प्रववृते युद्धं यादवानां निशाचरैः।
तत्पुर्यां चैव लङ्कायां कपिभी रक्षसां यथा॥ ८

वृष्णीनां चैव बाणौघै राक्षसाश्छिन्नकन्धराः।
निपेतुस्ते समुद्रे वै वृक्षा वातहता इव॥ ९

केचित्पृथिव्यां पतिताः केचित्पुर्यामधोमुखाः।
केचिदूर्ध्वमुखा राजन् केचिद्वै पञ्चतां गताः॥ १०

तत्र तेषां शोणितेन दुर्नदी च भयङ्करा।
बभूव सा च दुष्पारा महावैतरणी यथा॥ ११

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर रुक्मवतीकुमार अनिरुद्ध कुबेरके समान विमानद्वारा विशाल सेनाके साथ उपलङ्कामें गये। नरेश्वर! वहाँ जाकर यादवोंसहित अनिरुद्धने विषधर सर्पके समान विषाक्त बाणोंद्वारा उस नगरीका और वहाँके वन-उपवनोंका विध्वंस आरम्भ कर दिया॥ १-२॥

वहाँके क्रीडास्थानों, द्वारों, भवनों, अट्टालिकाओं, छज्जों तथा गोपुरोंपर उस विमानके अग्रभागसे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी। मुसल, शक्ति, परिघ, बाण और शिलाएँ भी निरन्तर पड़ने लगीं। राजन्! वहाँ प्रचण्ड वायु चलने लगी और सम्पूर्ण दिशाएँ धूलसे आच्छादित हो गयीं॥ ३-४॥

इस प्रकार यादवोंद्वारा की गयी अस्त्र-वर्षासे अत्यन्त पीड़ित हुई भीषणकी वह नगरी कहीं भी कल्याण (परित्राण) नहीं पा रही थी। उसकी वही दशा हो गयी थी, जैसे पूर्वकालमें शाल्वदेशीय योद्धाओंके आक्रमणसे द्वारकापुरीकी हुई थी॥ ५॥

नृपश्रेष्ठ! उस समय उस नगरीमें हाहाकार मच गया। भीषण आदि असुर भयसे विह्वल हो गये। सारी नगरीको पीड़ित देख राक्षसराज भीषण 'डरो मत'—इस प्रकार अभयदान दे राक्षसोंके साथ बाहर निकला॥ ६-७॥

फिर तो उसकी पुरीमें निशाचरोंके साथ यादवोंका घोर युद्ध होने लगा। ठीक उसी तरह, जैसे पहले लंकामें वानरों और राक्षसोंमें युद्ध हुआ था। वृष्णिवंशी योद्धाओंके बाणसमूहोंसे कंधे कट जानेके कारण राक्षस आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति समुद्रमें गिरने लगे॥ ८-९॥

कुछ निशाचर पृथ्वीपर गिर गये, कुछ औंधे मुँह उस पुरीमें ही धराशायी हो गये। राजन्! कोई उत्तान होकर गिरे और कोई तत्काल पञ्चत्वको प्राप्त हो गये। वहाँ उन राक्षसोंके रक्तसे एक भयंकर दूषित नदी प्रकट हो गयी, जो महावैतरणीकी भाँति दुष्पार थी॥ १०-११॥

तत्र तेषां बलं वीक्ष्य भीषणो विस्मयं गतः।
तिरश्चीनेन नेत्रेण दृष्ट्वा प्राह यदूनिदम्॥ १२

भवद्भिश्च कृतं युद्धमाकाशान्निर्बलैरिव।
अश्लाघनीयं च वृथा यूयं मानं करिष्यथ॥ १३

युष्माकं यदि देहेषु शक्तिश्चेद्विद्यते शृणु।
महीतले तदागत्य मया कुरुत वै रणम्॥ १४

इत्याकर्ण्य वचः सोऽपि कार्ष्णिजः करुणामयः।
विमानं भूतले कृत्वा प्रत्युवाच महासुरम्॥ १५

अनिरुद्ध उवाच

सहसा त्वं मया सार्धं रणं कुरु महारणे।
किं विचारेण भवति भयं त्यक्त्वा महासुर॥ १६

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य भीषणो भीमविक्रमः।
धनुषा पञ्च नाराचांस्तस्योपरि मुमोच ह॥ १७

अनिरुद्धो निरीक्ष्याथ स्वबाणैस्तान् द्विधाकरोत्।
चिच्छेद च धनुस्तस्य शरेणैकेन लीलया॥ १८

सोऽप्यन्यं धनुरादाय सज्जं कृत्वा निशाचरः।
सर्पाकारैः शतशरैर्जघान कार्ष्णिनन्दनम्॥ १९

रथस्तु तस्य भग्नोऽभूत्सारथी पञ्चतां गतः।
हया मृत्युं गताः सर्वे प्राद्युम्निर्मूर्च्छितोऽभवत्॥ २०

तदैव वृष्णयः सर्वे स्फुरिताधरपल्लवाः।
स्वनाथं पतितं दृष्ट्वेषून् मुञ्चन्तः समागताः॥ २१

तानागतान् बहून् दृष्ट्वा चापं धृत्वासुरो रुषा।
गदया पोथयामास दंष्ट्रयेव मृगान् हरिः॥ २२

गदाप्रहारव्यथिता यादवाः पतिता भुवि।
सम्भिन्नच्छिन्नसर्वाङ्गाः केचिन्निपतिता रणे॥ २३

वहाँ यादवोंका बल देखकर भीषणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने टेढ़ी आँखोंसे यादवोंकी ओर देखकर कहा—'तुमलोगोंने निर्बलोंकी भाँति आकाशमें खड़े होकर युद्ध किया है। तुमलोग जो व्यर्थ वीरताका अभिमान करते हो, वह प्रशंसाके योग्य नहीं है॥ १२-१३॥

तुमलोगोंके शरीरोंमें यदि शक्ति हो तो सुनो—पृथ्वीपर उतर आओ और मेरे साथ युद्ध करो।' उसकी यह बात सुनकर करुणामय प्रद्युम्न-कुमार भूतलपर विमान उतारकर उस महान् असुरसे बोले—॥ १४-१५॥

अनिरुद्धने कहा—महान् असुर! बहुत विचार करनेसे क्या होगा? तुम महासमरमें भय छोड़कर शीघ्र मेरे साथ युद्ध करो॥ १६॥

उनकी यह बात सुनकर भयंकर पराक्रमी भीषणने अपने धनुषसे पाँच नाराच बाण अनिरुद्धके ऊपर चलाये। अनिरुद्धने उन्हें देखकर अपने बाणोंद्वारा उन नाराचोंके दो-दो टुकड़े कर दिये और खेल-खेलमें ही एक बाणसे उसके धनुषको काट दिया॥ १७-१८॥

भीषणने भी दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और सर्पाकार सौ बाणोंद्वारा प्रद्युम्नकुमारको घायल कर दिया। उनका रथ खण्डित हो गया, सारथि मारा गया, सब घोड़े भी कालके गालमें चले गये और अनिरुद्ध मूर्च्छित हो गये॥ १९-२०॥

उस समय अपने सेनानायकको गिरा हुआ देख समस्त वृष्णिवंशी यादवोंके अधर-पल्लव रोषसे फड़क उठे और वे बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन बहुसंख्यक वीरोंको आया देख उस असुरने रोषपूर्वक धनुषको रखकर गदासे ही उन सबको मार गिराया, जैसे सिंह अपनी दाढ़ोंसे ही मृगोंको कुचल देता है॥ २१-२२॥

गदाकी मारसे पीड़ित हो यादव-सैनिक भूतलपर गिर पड़े। उनके सारे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये थे। कितने ही योद्धा रणक्षेत्रमें धराशायी हो गये॥ २३॥

ततो गृहीत्वा स्वगदां गदः सङ्कर्षणानुजः।
ताडयामास समरे भीषणस्य च मूर्धनि॥ २४

गदाप्रहारव्यथितः स पपात महीतले।
चालयन् वसुधां राजन् यथा वज्रहतो गिरिः॥ २५

भीषणं पतितं दृष्ट्वा मूर्च्छितं भग्नशीर्षकम्।
असुरास्ते गदं हन्तुं प्राप्ताः शस्त्रधराः किल॥ २६

तान्सर्वान् पोथयामास गदया वज्रकल्पया।
रामानुजो यथा राजन्नृसिंहो दंष्ट्रया गजान्॥ २७

अथोत्थितोऽनिरुद्धस्तु ब्रुवन् धन्वी क्षणेन वै।
भीषणो मम शत्रुर्वै क्व गतः स महाखलः॥ २८

उत्थितं च हरेः पौत्रं दृष्ट्वा यादवपुङ्गवाः।
चक्रुर्जयजयारावं देवाः सर्वे च हर्षिताः॥ २९

ततो नारदवाक्याद्वै बको नाम निशाचरः।
भीषणस्य पितारण्यात् क्रुद्धस्तत्राजगाम ह॥ ३०

कज्जलाद्रिसमो राजन् तालवृक्षदशोच्छ्रितः।
ललज्जिह्वश्च दुर्नेत्रस्त्रिशूली च गदाधरः॥ ३१

हस्तिनं वामहस्तेन गृहीत्वा च मुखेन वै।
प्रभक्षन् रुधिराक्रान्तः पिशाचसदृशो महान्॥ ३२

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन् पृथिवीतलम्।
भयप्रदश्च देवानां जनकालो व्यदृश्यत॥ ३३

तमायान्तं विलोक्याथ शङ्कितास्तत्र यादवाः।
प्रोचुः परस्परं सर्वे स्मृत्वा कृष्णपदाम्बुजम्॥ ३४

यादवा ऊचुः

कोऽयं मित्राणि गदत निकटे च समागतः।
महाबीभत्सरूपी वै कृतान्त इव निर्भयः॥ ३५

तब बलरामजीके छोटे भाई गदने अपनी गदा लेकर समरभूमिमें राक्षस भीषणके मस्तकपर प्रहार किया। राजन्! गदाके उस प्रहारसे व्यथित हो वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति वह असुर वसुधाको कम्पित करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २४-२५॥

भीषणका सिर फट गया था। उसे मूर्च्छित होकर पड़ा देख वे असुर शस्त्र धारण किये गदको मारनेके लिये आ पहुँचे। परंतु नरेश्वर! नृसिंहने जैसे अपनी दाढ़से हाथियोंको मार गिराया था, उसी प्रकार बलरामके छोटे भाई गदने अपनी वज्र-सरीखी गदासे उन सब असुरोंको धराशायी कर दिया॥ २६-२७॥

इसके बाद अनिरुद्ध होशमें आकर खड़े हो गये और क्षणभरमें धनुष लेकर बोल उठे—'मेरा शत्रु दुष्ट भीषण कहाँ गया, कहाँ गया?' श्रीहरिके पौत्रको खड़ा हुआ देख यादवपुंगव जय-जयकार करने लगे और समस्त देवताओंको भी बड़ा हर्ष हुआ॥ २८-२९॥

तदनन्तर नारदजीसे सूचना पाकर भीषणका पिता निशाचर 'बक' जंगलसे कुपित होकर वहाँ आया। महाराज! वह कज्जलगिरिके समान काला और दस ताड़के बराबर ऊँचा था। उसकी जीभ लपलपा रही थी, नेत्र भयंकर हो गये थे तथा वह त्रिशूल और गदा लिये हुए था॥ ३०-३१॥

एक हाथीको बायें हाथसे पकड़कर मुँहसे चबाता हुआ वह राक्षस रक्तसे नहा गया था और बड़े भारी पिशाचके समान दिखायी देता था। उसके दोनों पैर ताड़के बराबर बड़े थे। वह उनकी धमकसे भूतलको कम्पित कर रहा था। देवताओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला वह निशाचर जनताके लिये काल-सा दिखायी देता था॥ ३२-३३॥

उसको आते देख वहाँ सब यादव आतङ्कित हो गये और श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंका स्मरण करते हुए वे सब आपसमें इस प्रकार कहने लगे॥ ३४॥

यादव बोले—मित्रो! बताओ, यह कौन हमारे निकट आ पहुँचा है? इसका रूप बड़ा ही बीभत्स है और यह कालके समान निर्भय प्रतीत होता है॥ ३५॥

इति ब्रुवत्सु सर्वेषु आसीत्कोलाहलो महान्।
प्रसन्नास्तं निरीक्ष्याथ बभूवुस्ते निशाचराः॥ ३६

भीषणं मूर्च्छितं दृष्ट्वा बको राक्षसपुङ्गवः।
शुशोच राजन् सङ्ग्रामे हा दैवेति मुहुर्वदन्॥ ३७

इस प्रकार जब सब लोग बोलने लगे तो वहाँ महान् कोलाहल छा गया। बकको देखकर वे सब निशाचर प्रसन्न हो गये। राजन्! भीषणको मूर्च्छित देख राक्षसराज बक संग्राममें बारंबार 'हा दैव! हा दैव!' कहता हुआ शोकमग्न हो गया॥ ३६-३७॥

ततो मूर्च्छां मुहूर्तेन विहाय भीषणो नृप।
उत्थितस्तु ब्रुवन् वाक्यं गदः कुत्र गतो भयात्॥ ३८

स्वपुत्रमुत्थितं दृष्ट्वा पुरुषादस्तु हर्षितः।
आलिङ्ग्याश्वासयामास सुवाक्यैर्वाक्यकोविदः॥ ३९

नरेश्वर! तत्पश्चात् दो घड़ीमें मूर्च्छा त्यागकर भीषण उठा और कहने लगा—'मेरे भयसे गद कहाँ भाग गया?' अपने पुत्रको उठा देख उस नरभक्षी राक्षसको बड़ा हर्ष हुआ। वह बोलनेमें बहुत कुशल था। उसने बेटेको हृदयसे लगाकर उत्तम वचनोंद्वारा उसे आश्वासन दिया॥ ३८-३९॥

भीषणः पितरं दृष्ट्वा सहायार्थं समागतम्।
नमश्चक्रे महाराज भूत्वा स च प्रसन्नधीः॥ ४०

महाराज! पिताको सहायताके लिये आया देख भीषणने प्रसन्नचित्त होकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे बकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'बकका आगमन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

बक और भीषणकी पराजय तथा यादवोंका घोड़ा लेकर आकाशमार्गसे लौटना

श्रीगर्ग उवाच

अथासुराणां मध्ये वै स्थित्वा राजन् रुषान्वितः।
अभिप्रायं भीषणं च बकः पप्रच्छ राक्षसः॥ १

किमर्थं यादवैः सार्धं युद्धमासीत्तृणोपमैः।
त्वं च यत्र गतो मूर्च्छां राक्षसा निहता अहो॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर असुरोंके बीचमें खड़े होकर राक्षस बकने भीषणसे युद्धका अभिप्राय (कारण) पूछा—'बेटा! इन तिनकोंके समान यादवोंके साथ किसलिये युद्ध हुआ था, जिससे तुम मूर्च्छित हो गये और बहुत-से राक्षस मारे गये? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है!'॥ १-२॥

इत्युक्तः स बकेनापि भूत्वा राजन्नवाङ्मुखः।
हयमेधतुरङ्गस्य वार्तां सर्वामवर्णयत्॥ ३

श्रुत्वा पुत्रस्य वचनं गृहीत्वा स्वगदां बकः।
विवेश यदुसैन्ये वै ज्वलनस्तु यथा वने॥ ४

राजन्! बकके इस प्रकार पूछनेपर भीषणने मुँह नीचे करके अश्वमेधके घोड़ेको पकड़ लानेके सम्बन्धमें सारी बात बतायी। पुत्रकी बात सुनकर बकने अपनी गदा ले ली और यादव-सेनामें उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे जंगलमें दावानल प्रकट हो जाता है।॥ ३-४॥

पद्भ्यां ममर्द पाणिभ्यां यादवान् सम्मुखे गतान्।
भुजाभ्यां गदया सिंहो प्रसुप्तांश्च मृगान् यथा॥ ५

जैसे सिंह सोये हुए मृगोंको रौंद डालता है, उसी प्रकार सामने आये हुए यादवोंको बकने दोनों पैरोंसे, हाथोंसे, भुजाओंसे और गदाके आघातसे कुचल डाला॥ ५॥

हयाँश्चिक्षेप गगने गजाँश्चैव रथाँस्तथा।
नराँश्च भक्षयन् युद्धे शब्दं चक्रे बको बली॥ ६

ननाद तेन लोकैश्च विश्वं शब्देन यादव।
जाता च बधिरीभूता पृथिव्यां जनमण्डली॥ ७

अथ तस्यापि युद्धेन विपरीतेन यादवाः।
हाहेति वादिनः सर्वे बभूवुः खिन्नमानसाः॥ ८

बाध्यमानां च स्वां सेनां राक्षसेन दुरात्मना।
भृशं निरीक्ष्य तप्तोऽभूत्साम्बो जाम्बवतीसुतः॥ ९

गृहीत्वा पञ्च नाराचान् कोदण्डे चण्डविक्रमः।
निधायाशु मुमोचाथ बकस्योपरि मानद॥ १०

ते बाणास्तच्छरीरं वै भित्त्वा राजन् महीतलम्।
विविशुस्ते तु गत्वा वै पपुर्भोगवतीजलम्॥ ११

स हतस्तु शरै राजन् पपात चालयन् महीम्।
पुनरुत्थाय च बको ननाद जलदस्वनः॥ १२

पुनर्जाम्बवतीपुत्रो जघ्ने तं पञ्चभिः शरैः।
तैर्बाणैर्विभ्रमन् सोऽपि लङ्कायां निपपात ह॥ १३

आगत्य त्रिशिखं रक्षस्त्रिशूलं ज्वलनप्रभम्।
राजन् साम्बाय चिक्षेप प्रसूनमिव हस्तिने॥ १४

त्रिशूलमागतं दृष्ट्वा साम्बो बाणेन लीलया।
चिच्छेद प्रधने शीघ्रं नागं नागान्तको यथा॥ १५

ततो नीत्वा गदां गुर्वीं बकस्तु रणदुर्मदः।
साम्बस्य तुरगान् राजञ्जघान सारथिं तथा॥ १६

रथं चैव पताकां च हत्वा साम्बमुवाच ह।
रथमन्यं समारुह्य युद्धं कुरु मया सह॥ १७

वह घोड़ोंको पकड़कर आकाशमें फेंक देता था, हाथियों तथा रथोंकी भी यही दशा करता था। बलवान् बक युद्धमें मनुष्योंको अपना भक्ष्य बनाता हुआ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। यदुकुलतिलक वज्रनाभ! उस राक्षसकी गर्जनासे लोकोंसहित सम्पूर्ण विश्व गूँज उठा। भूमण्डलकी जनमण्डली बहरी हो गयी॥ ६-७॥

उसके इस विपरीत युद्धसे समस्त यादव हाहाकार करने लगे और मनमें अत्यन्त खिन्न हो गये॥ ८॥

मानद नरेश! उस दुरात्मा राक्षससे अपनी सेनाको अत्यन्त पीड़ित होती देख प्रचण्ड पराक्रमी जाम्बवतीनन्दन साम्बने क्रुद्ध होकर पाँच नाराच ले अपने धनुषपर रखकर तत्काल ही बकको लक्ष्य करके छोड़े॥ ९-१०॥

वे बाण उसके शरीरको विदीर्ण करते हुए तत्काल भूतलमें घुस गये और भोगवती गङ्गाका जल पीने लगे॥ ११॥

राजन्! उन बाणोंके आघातसे बक पृथ्वीको कम्पित करता हुआ गिर पड़ा, किंतु पुनः उठकर मेघगर्जनाके समान सिंहनाद करने लगा। तब पुनः जाम्बवतीकुमारने उसे पाँच बाण मारे। उन बाणोंके आघातसे चक्कर काटता हुआ बक लङ्कामें जा गिरा॥ १२-१३॥

नरेश्वर! वहाँसे आकर उस राक्षसने अग्निके समान प्रज्वलित तीन शिखाओंवाले त्रिशूलको लेकर साम्बपर दे मारा, जैसे किसीने फूलसे हाथीपर आघात किया हो॥ १४॥

त्रिशूलको आते देख साम्बने शीघ्र बाण मारकर अनायास ही युद्धस्थलमें उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, जैसे गरुडने किसी नागको छिन्न-भिन्न कर डाला हो॥ १५॥

महाराज! तब रणदुर्मद बकने भारी गदा लेकर साम्बके घोड़ों और सारथिको मार डाला। फिर रथ और पताकाको भी चूर-चूर करके वह साम्बसे बोला—'तुम दूसरे रथपर बैठकर मेरे साथ युद्ध करो।

विरथं त्वामधर्मेण न हनिष्याम्यहं रणे।
इतीरितोऽसौ दैत्येन हसन् किञ्चिद्रुषान्वितः॥ १८

शीघ्रं जघान गदया हृत्कपाटे बकस्य च।
गदाहतो बको युद्धे किञ्चिद् व्याकुलमानसः॥ १९

अगणय्य ततः साम्बं यदुसैन्ये विवेश ह।
स गत्वा तत्र गदया गजवाजिरथान्नरान्॥ २०

कौणपः पोथयामास मृगेन्द्रस्तु यथा मृगान्।
हाहाकारस्तदैवासीद्यदुसैन्ये नृपेश्वर॥ २१

ततो विलोक्य रोषेण राजन् रुक्मवतीसुतः।
तत्रागतोऽभयं कुर्वन् रथेनाक्षौहिणीयुतः॥ २२

अनिरुद्ध उवाच

किं करिष्यसि हे मूढ त्यक्त्वा वीरस्य सम्मुखम्।
भीतानां मारणे श्लाघा न भविष्यति तेऽसुर॥ २३

यदि शक्तिश्च त्वद्देहे विद्यते शृणु मद्वचः।
मत्सम्मुखे समागत्य कुरु युद्धं प्रयत्नतः॥ २४

इति श्रुत्वानिरुद्धस्य वाक्यं राजन् बकासुरः।
रुषा स्फुरत्सर्प इव युद्धार्थं शीघ्रमाययौ॥ २५

आगतं तं विलोक्याथानिरुद्धो धन्विनां वरः।
नाराचैर्दशभी राजञ्जघान प्रधने रुषा॥ २६

ते शरास्तच्छरीरं वै शीघ्रं भित्त्वा बहिर्गताः।
पुनस्ते भीषणं भित्त्वा विविशुर्वै महीतलम्॥ २७

ततः पपात स बको भीषणेन समन्वितः।
पृथिव्यां मूर्च्छितो भूत्वा यथा वज्रहतो गिरिः॥ २८

तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह।
नेदुर्दुन्दुभयश्चैव भेर्यः शङ्खाश्च गोमुखाः॥ २९

ततश्च राक्षसाः सर्वे क्रोधपूरितमानसाः।
स्वनाथौ पतितौ दृष्ट्वा यदून् हन्तुं समाययुः॥ ३०

इस समय तुम रथहीन हो, इसलिये रणभूमिमें मैं अधर्म या अन्यायसे तुम्हें नहीं मारूँगा'॥ १६—१७$^{1}/_{2}$॥

उस दैत्यके ऐसा कहनेपर हँसते हुए साम्बने किंचित् कुपित होकर बककी कपाट-जैसी छातीपर शीघ्र ही गदासे आघात किया। युद्धस्थलमें उस गदासे आहत हुआ बक मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा॥ १८-१९॥

फिर वह साम्बकी कोई परवा न करके यादव-सेनामें जा घुसा। वहाँ पहुँचकर उस निशाचरने गदाके आघातसे बहुतसे हाथियों, घोड़ों, रथों और मनुष्योंको उसी तरह मार गिराया, जैसे मृगराज सिंह मृगोंके समुदायको धराशायी कर देता है। नृपेश्वर! उस समय यादव-सेनामें हाहाकार मच गया। राजन्! यह देख रुक्मवतीनन्दन अनिरुद्ध रोषपूर्वक एक अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ आये और सबको अभय देते हुए बोले—॥ २०—२२॥

अनिरुद्धने कहा—रे मूढ़! तू वीरपुरुषका सामना छोड़कर क्या युद्ध करेगा? निशाचर! भयभीतोंको मारनेसे तेरी प्रशंसा नहीं होगी। यदि तेरे शरीरमें शक्ति है तो मेरी बात सुन। मेरे सामने आकर यत्नपूर्वक युद्ध कर॥ २३-२४॥

राजन्! इस प्रकार अनिरुद्धकी बात सुनकर बकासुर रोषसे सर्पकी भाँति फुफकारता हुआ उनके सामने शीघ्र युद्धके लिये आया। युद्धस्थलमें उसे आया देख धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने रोषपूर्वक उसे दस नाराच मारे॥ २५-२६॥

वे बाण शीघ्र ही उसके शरीरको छेदकर बाहर निकले और फिर भीषणको भी विदीर्ण करते हुए भूतलमें समा गये। तब भीषणसहित बक मूर्च्छित हो वज्रसे आहत हुए पर्वतके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २७-२८॥

उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगा। दुन्दुभियाँ बज उठीं, नगाड़े पीटे जाने लगे और शङ्खों तथा गोमुखोंकी ध्वनि होने लगी। अपने दोनों स्वामियोंको गिरा हुआ देख समस्त राक्षसोंका हृदय क्रोधसे भर गया। वे यादवोंको मारनेके लिये एक साथ ही उनपर टूट पड़े॥ २९-३०॥

ततः समभवद्युद्धमुभयोः सेनयोर्मृधे।
बाणैः खड्गैर्गदाभिश्च शक्तिभिर्भिन्दिपालकैः॥ ३१

फिर तो समराङ्गणमें दोनों सेनाओंके बीच घोर युद्ध होने लगा। बाण, खड्ग, गदा, शक्ति और भिन्दिपालोंद्वारा परस्पर आघात-प्रत्याघात होने लगे॥ ३१॥

राक्षसानां बलं तीव्रं दृष्ट्वा राजन् हरेः सुताः।
अष्टादश च साम्बाद्या निजघ्नुर्निशितैः शरैः॥ ३२

तत्र तेषां च बाणौघैः कौणपाः पतिता मृधे।
केचिन् मृत्युं गताः केचिद्दुद्रुवुर्जीवितैषिणः॥ ३३

राजन्! राक्षसोंके तीव्र बलको देखकर श्रीहरिके साम्ब आदि अठारह पुत्र तीखे बाणोंद्वारा उनपर प्रहार करने लगे। वहाँ उन सबके बाणसमूहोंसे घायल हो बहुत-से राक्षस युद्धस्थलमें सदाके लिये सो गये। कुछ तो मौतके मुखमें पड़ गये और कुछ जीवित रहनेकी इच्छासे मैदान छोड़कर भाग गये॥ ३२-३३॥

अथोत्थितो मुहूर्त्तेन बको राजन् भयङ्करः।
त्वरं जगाम शत्रोश्चानिरुद्धस्य तु सम्मुखे॥ ३४

तत्र गत्वा गदां गुर्वीं चिक्षेप तच्छिरोपरि।
बाहुना च बको राजन् हतोऽसीति ब्रुवन् वचः॥ ३५

राजन्! तदनन्तर दो घड़ीके बाद उठकर भयंकर असुर बक तत्काल ही अपने शत्रु अनिरुद्धके सम्मुख गया। वहाँ जाकर बकने अपने हाथमें एक भारी गदा लेकर उसे अनिरुद्धके सिरपर फेंका और कहा— 'लो अब तुम मारे गये'॥ ३४-३५॥

तामागतां विलोक्याथ यमदण्डेन माधवः।
चिच्छेद सहसा राजन् कुवाक्येनेव मित्रताम्॥ ३६

ततः क्रुद्धो बको युद्धे प्रसार्य मुखमण्डलम्।
दुद्राव तं भक्षयितुं राहुश्चन्द्रमिव क्वचित्॥ ३७

महाराज! उस गदाको अपने ऊपर आती देख अनिरुद्धने यमदण्डसे उसे उसी तरह चूर-चूर कर दिया, जैसे कटुवचनसे मित्रता नष्ट कर दी जाती है। तब क्रोधसे भरा हुआ बक अपना मुखमण्डल फैलाकर अनिरुद्धको खा जानेके लिये उनकी ओर दौड़ा, मानो राहुने कहीं चन्द्रमापर ग्रहण लगानेके लिये आक्रमण किया हो॥ ३६-३७॥

आगतं तं निरीक्ष्याथानिरुद्धो धन्विनां वरः।
यमदण्डं पुनर्नीत्वा ताडयामास तेन तम्॥ ३८

ततो भग्नशिरा भूत्वा ह्युद्वमन् रुधिरं मुखात्।
चालयन् वसुधां राजन् पतितो मूर्च्छितोऽभवत्॥ ३९

उसे निकट आया देख धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने फिर यमदण्ड उठाकर उससे उसके ऊपर आघात किया। राजन्! उस आघातसे बकका मस्तक फट गया और वह मुखसे रक्त वमन करता तथा पृथ्वीको कँपाता हुआ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा॥ ३८-३९॥

ततश्च भीषणो रोषात्पितरं वीक्ष्य मूर्च्छितम्।
परिघेण रणे राजन्निजघान तु यादवान्॥ ४०

ततोऽनिरुद्धो बलवान्नागपाशेन रोषतः।
चकर्ष भीषणं बद्ध्वा नागं विष्णुरथो यथा। ४१

वज्रनाभ! पिताको मूर्च्छित हुए देख भीषणने रणक्षेत्रमें परिघ लेकर यादवोंका संहार आरम्भ किया। तब बलवान् अनिरुद्धने रोषपूर्वक नागपाशसे भीषणको बाँधकर उसी प्रकार खींचा, जैसे गरुड़ सर्पको खींचते हैं॥ ४०-४१॥

तं बद्धं पाशिनः पाशैर्भग्नमानमधोमुखम्।
विनिर्जितं हीनबलं साम्बो वचनमब्रवीत्॥ ४२

असुरेन्द्रानिरुद्धस्य हयमेधतुरङ्गमम्।
शीघ्रं प्रयच्छ भद्रं ते पुरीं गत्वा विधानतः॥ ४३

वरुणके पाशसे बँधकर उसने हतोत्साह होकर अपना मुँह नीचे कर लिया। उसे पराजित और बलहीन देख साम्ब बोले— असुरेन्द्र! तुम्हारा भला हो। तुम अपनी पुरीमें जाकर शीघ्र विधिपूर्वक अनिरुद्धके यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको लौटा दो॥ ४२-४३॥

अनिरुद्धं हरेः पौत्रं श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
नृणां प्रदर्शयन् रूपं विचरन्तं मिषेण च॥ ४४

यं नमन्ति समागत्य देवदैत्यनराः सुराः।
तं विद्धि कृष्णसदृशं नृणां पापप्रणाशनम्॥ ४५

तेन त्वं निर्जितो युद्धे दुःखं मा कुरु राक्षस।
अस्माभिः सहितो गच्छ कर्तुं कृष्णस्य दर्शनम्॥ ४६

श्रीगर्ग उवाच

बोधितः सोऽपि साम्बेन मुक्तः पाशैश्च वारुणैः।
पुरीं गत्वा ददौ तस्मै द्रव्ययुक्तं तुरङ्गमम्॥ ४७

ततः सोऽप्यनिरुद्धेन तुरङ्गस्य तु पालने।
प्रार्थितो भीषणो राजन् प्रत्युवाच विचार्य तम्॥ ४८

भीषण उवाच

यदा भवति चैतन्यो मत्पितासुरपालकः।
तदाहं तस्य वचनादागमिष्ये न संशयः॥ ४९

इतीरितोऽसौ किल भीषणेन
प्रद्युम्नपुत्रः क्रतुवाहनं च।
कृत्वा विमाने यदुसेनया वै
स्वयं समारुह्य जगाम खं हि॥ ५०

अनिरुद्ध महात्मा श्रीकृष्ण हरिके पौत्र हैं। ये घोड़ेकी रक्षाके बहाने मनुष्योंको अपने स्वरूपका दर्शन करानेके लिये विचर रहे हैं॥ ४४॥

देवता, दैत्य और मनुष्य सभी आकर इनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। ये मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। तुम इन्हें श्रीकृष्णके समान ही समझो। राक्षस! 'तुम युद्धमें श्रीकृष्णसे पराजित हुए हो'—ऐसा समझकर दुःख और चिन्ता त्याग दो और हमलोगोंके साथ श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये चलो॥ ४५-४६॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! साम्बके इस प्रकार समझाने और वरुणपाशसे मुक्त कर दिये जानेपर भीषणने पुरीमें जाकर वहाँसे द्रव्यराशिके साथ घोड़ा लाकर अनिरुद्धको लौटा दिया। तब अनिरुद्धने उससे भी अश्वकी रक्षाके लिये चलनेका अनुरोध किया। नरेश्वर! उनके इस प्रकार अनुरोध करनेपर भीषणने कुछ सोच-विचारकर उत्तर दिया॥ ४७-४८॥

भीषणने कहा—'मेरे असुरपालक पिता जब सचेत हो जायँगे, तब मैं उनकी आज्ञा लेकर आऊँगा, इसमें संशय नहीं है।' भीषणके ऐसा कहनेपर प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धने यादवसेनाके साथ यज्ञके घोड़ेको विमानपर चढ़ा लिया और स्वयं भी उसपर आरूढ़ हो, वे आकाशमार्गसे चल दिये॥ ४९-५०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे उपलङ्काविजयो नाम विंशतितमोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'उपलङ्कापर विजय' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

भद्रावतीपुरी तथा राजा यौवनाश्वपर अनिरुद्धकी विजय

श्रीगर्ग उवाच

ततः प्राप्तः स्वसेनायां विमानस्थ उषापतिः।
शीघ्रं चाकाशमार्गेण नादयञ्जयदुन्दुभीन्॥ १

दृष्ट्वा तानागतान् सर्वे ह्यक्रूराद्याश्च यादवाः।
मिलित्वा कुशलं सर्वं पप्रच्छुस्ते न्यवेदयन्॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—तदनन्तर विमानपर बैठे हुए उषावल्लभ अनिरुद्ध अपनी विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए आकाशमार्गसे शीघ्र ही अपनी सेनाके पास आ गये। उन सबको आया देख अक्रूर आदि यादवोंने मिलकर सारा कुशलसमाचार पूछा और उन लोगोंने सब कुछ बता दिया॥ १-२॥

ततस्त्यक्त्वा विमूर्च्छां वै बकस्तु सहसोत्थितः।
अदृष्ट्वा यादवांस्तत्र पुत्रं पप्रच्छ रोषतः॥ ३

ततः पित्रे भीषणो वै वार्तां सर्वामवर्णयत्।
श्रुत्वा वचः प्राह बको रुषा प्रस्फुरिताधरः॥ ४

अहं जानामि यदवो विमानेन कुशस्थलीम्।
मद्भयाच्च गताः पुत्र यथा सिंहभयान्मृगाः॥ ५

तस्मादयादवीं पृथ्वीं करिष्येऽहं न संशयः।
हनिष्यामि यदून् सर्वान् गत्वा कृष्णस्य द्वारकाम्॥ ६

भीषण उवाच

मन्युं नियच्छ भो राजन्नस्माकं समयो न हि।
प्रसीदति यदा देवो तदा जेष्याम यादवान्॥ ७

श्रीगर्ग उवाच

बोधितः सोऽपि पुत्रेण तूष्णीं भूत्वा बकासुरः।
विचचार वने राजन् वनजन्तून् प्रभक्षयन्॥ ८

ततस्तुरङ्गं विधिनाभिषिच्य
दानानि दत्वा द्विजपुङ्गवेभ्यः।
विमोचयामास पुनर्जयाय
प्रद्युम्नपुत्रो विजयी नृपेन्द्र॥ ९

हयस्तु मुक्तः किल कार्ष्णिजेन
स्वरं प्रकुर्वन्नृप धैवतं च।
पश्यन् स देशान् बहुवीरयुक्तान्
भद्रावतीं नाम पुरीं जगाम॥ १०

तत्र भद्रावतीमश्वो नानाचोपवनैर्वृताम्।
गिरिदुर्गेण राजेन्द्र तथा रजतमन्दिरैः॥ ११

महावीरजनैर्युक्तां यौवनाश्वेन पालिताम्।
दृढां लौहकपाटैश्च नृपस्याग्रे स्थितोऽभवत्॥ १२

तं गृहीत्वा तु तस्यापि वार्तां ज्ञात्वा नृपेश्वरः।
युद्धं कर्तुं च कुपितः ससैन्यो निर्ययौ पुरात्॥ १३

ससैन्यमागतं दृष्ट्वा यौवनाश्वं महाबलम्।
आहूय मन्त्रिणं प्राह कृष्णभक्तं हि कार्ष्णिजः॥ १४

तत्पश्चात् मूर्च्छा त्यागकर बक सहसा उठ खड़ा हुआ। वहाँ यादवोंको न देखकर उसने पुत्रसे रोषपूर्वक उनके चले जानेका कारण पूछा। तब भीषणने पितासे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। उसकी बात सुनकर रोषसे बकके ओठ फड़कने लगे और वह कुपित होकर बोला— ॥ ३-४ ॥

'मैं जानता हूँ, जैसे सिंहके डरसे हरिण भागते हैं, उसी प्रकार यादव मेरे भयसे विमानद्वारा भागकर कुशस्थलीको चले गये हैं। इसलिये मैं पृथ्वीको यादवोंसे सूनी कर दूँगा, इसमें संशय नहीं है। अब मैं कृष्णकी द्वारकामें जाकर समस्त यादवोंका संहार करूँगा' ॥ ५-६ ॥

भीषणने कहा—महाराज! क्रोधको रोकिये, यह समय हमारे अनुकूल नहीं है। जब दैव प्रसन्न होगा, तब हम यादवोंको जीतेंगे ॥ ७ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! पुत्रके इस प्रकार समझानेपर बकासुर चुप हो गया और वन-जन्तुओंको खाता हुआ वनमें विचरने लगा ॥ ८ ॥

नृपेन्द्र! तदनन्तर अश्वका विधिपूर्वक अभिषेक करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दे, विजयी प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धने पुनः विजययात्राके लिये उसको छोड़ा। प्रद्युम्नकुमारके छोड़नेपर वह अश्व धैवत स्वरसे हिनहिनाता और बहुतसे वीरयुक्त देशोंका दर्शन करता हुआ भद्रावतीपुरीमें जा पहुँचा ॥ ९-१० ॥

राजेन्द्र! भद्रावतीपुरी अनेक उपवनोंसे सुशोभित थी। पर्वत, दुर्गसे घिरी हुई थी तथा रजतमय मन्दिर उसकी शोभा बढ़ाते थे। बड़े-बड़े वीर पुरुष उसमें निवास करते थे। राजा यौवनाश्व उस पुरीके रक्षक थे। लोहेके बने हुए कपाटोंसे वह पुरी अत्यन्त दृढ़ थी। उसमें जाकर वह अश्व राजाके सम्मुख खड़ा हो गया ॥ ११-१२ ॥

राजाने उसे पकड़ा और सब बात जानकर वे क्रोधपूर्वक युद्ध करनेके लिये सेनासहित पुरीसे बाहर निकले। महाबली यौवनाश्वको सेनासहित सामने आया देख प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धने श्रीकृष्णभक्त मन्त्री उद्धवको बुलाकर पूछा ॥ १३-१४ ॥

अनिरुद्ध उवाच

कोऽयं समागतो मन्त्रिन् सम्मुखे सह सेनया।
हयहर्ता शत्रुमुख्यो तत्सर्वं कथयस्व च॥ १५

अनिरुद्धने कहा—मन्त्रीजी! यह सेनाके साथ कौन हमारे सम्मुख आया है? इसने अश्वका अपहरण किया है और यह हमारे शत्रुओंमें मुख्य है; अतः इसके विषयमें आप सारी बातें बताइये॥ १५॥

उद्धव उवाच

नृपोऽयं यौवनाश्वाख्यो मरुधन्वपतेः सुतः।
अत्र राज्यं च कुरुते मृते पितरि सत्तम॥ १६

उद्धव बोले—सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध! इस राजाका नाम 'यौवनाश्व' है। यह मरुधन्वदेशके स्वामीका पुत्र है और अपने पिताके दिवंगत होनेपर यहाँ राज्य करता है॥ १६॥

अयं षोडशवर्षीयो कुमन्त्रिवचनाद्रणम्।
करिष्यति महाराज मारणीयः स न त्वया॥ १७

महाराज! अभी यह सोलह वर्षकी अवस्थाका है। अपने दुष्ट मन्त्रीके कहनेसे यह युद्ध अवश्य करेगा; परंतु आप इसका वध कदापि न करें॥ १७॥

इति श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा यौवनाश्वेन कार्ष्णिजः।
युद्धं चकार प्रधने यथा नागेन नागहा। १८

यह सुनकर 'बहुत अच्छा' कहकर अनिरुद्ध युद्ध-स्थलमें यौवनाश्वके साथ उसी प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे सिंह हाथीसे लड़ रहा हो॥ १८॥

तं तु वै विरथं चक्रे हत्वा चाक्षौहिणीत्रयम्।
प्रत्याह विमलं वाक्यं यौवनाश्वमुषापतिः॥ १९

उषापति अनिरुद्धने यौवनाश्वकी तीन अक्षौहिणी सेनाका संहार करके उसे रथहीन कर दिया और राजकुमारसे यह उत्तम बात कही—॥ १९॥

अनिरुद्ध उवाच

राजन् प्रयच्छ तुरगं युद्धं कुरु न चेन्मया।
वाक्यं श्रुत्वा हरेः पौत्रं ज्ञात्वा राजा भयान्वितः॥ २०

अर्पयामास विधिना तस्मै यज्ञतुरङ्गमम्।
भूत्वा कृताञ्जली राजा प्रार्थितस्तेन चाब्रवीत्॥ २१

अनिरुद्ध बोले—राजन्! मुझे घोड़ा लौटा दो, अन्यथा मेरे साथ युद्ध करो। उनकी यह बात सुनकर और उन्हें श्रीकृष्णका पौत्र जान राजाको बड़ा भय हुआ। उसने अनिरुद्धको विधिपूर्वक यज्ञका घोड़ा समर्पित कर दिया और उनसे निमन्त्रित हो उस राजाने हाथ जोड़कर कहा॥ २०-२१॥

यौवनाश्व उवाच

द्वारकायां यदा यज्ञो भविष्यति नृपेश्वर।
तदाहं चागमिष्यामि कृष्णस्याङ्घ्री विलोकितुम्॥ २२

यौवनाश्व बोला—नृपेश्वर! जब द्वारकामें यज्ञ होगा, उस समय मैं भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेके लिये आऊँगा॥ २२॥

ततश्च कृत्वा तं राज्ये वन्दितस्तेन कार्ष्णिजः।
मुमुचे वाजिनं श्रेष्ठं विजयी विजयाय च॥ २३

तदनन्तर अनिरुद्धने उसे उसके राज्यपर प्रतिष्ठित कर दिया। यौवनाश्वने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और विजयी अनिरुद्धने उस श्रेष्ठ घोड़ेको पुनः विजयके लिये छोड़ा॥ २३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे भद्रावतीविजयो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'भद्रावतीपर विजय' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

यज्ञके घोड़ेका अवन्तीपुरीमें जाना और वहाँ अवन्तीनरेशकी ओरसे सेनासहित यादवोंका पूर्ण सत्कार होना

श्रीगर्ग उवाच

यदुप्रवीरस्य तुरङ्गमो वै
विलोकयन् राजपुरं जगाम।
निरीक्ष्य मार्गे सफरां नदीं च
ह्यवन्तिकाया विपिने स्थितोऽभूत्॥ १

तदैव तत्रागतवान् महात्मा
सान्दीपनिः कृष्णगुरुर्द्विजेन्द्रः।
स्नातुं गृहाच्छ्रीतुलसीस्त्रजाढ्यः
सधौतवस्त्रः प्रजपन् हि कृष्णम्॥ २

ददर्श तत्रापि जलं पिबन्तं
तुरङ्गमं वै धवलं सपत्रम्।
वाक्यं ब्रुवन्नेष क्रतोश्च वाजी
विमोचितः केन नृपेश्वरेण॥ ३

तत्र स्नानं प्रकुर्वन्तं दृष्ट्वा बिन्दुं नृपात्मजम्।
हयस्यार्थे मुनिर्गत्वा नोदयामास तं नृप॥ ४

ततः सर्वैर्बहुभिश्च राजन्
राजाधिदेवीतनयश्च शूरः।
जग्राह वाहं सहसा निरीक्ष्य
नत्वा गुरुं तद्वचसा प्रसन्नः॥ ५

हयं गृहीत्वा गुरवे दर्शयामास हर्षितः।
स पत्रं वाचयित्वाह नृपं सान्दीपनिर्मुदा॥ ६

सान्दीपनिरुवाच

उग्रसेनस्य तुरगं विद्धि प्राद्युम्निपालितम्।
यदृच्छयागतं राजन् कार्ष्णिजोऽत्रागमिष्यति॥ ७

आगमिष्यन्ति बहवो यादवा युद्धशालिनः।
मित्रविन्दात्मजाश्चैव पश्यन्तस्ते तुरङ्गमम्॥ ८

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! यदुकुलतिलक वीरवर अनिरुद्धका वह घोड़ा अनेक जनपदोंका अवलोकन करता हुआ 'राजपुर' जनपदमें जा पहुँचा। मार्गमें सफरा (शिप्रा) नदीका दर्शन करके वह अवन्तिका (उज्जयिनी)-के उपवनमें जा खड़ा हुआ। उसी समय श्रीकृष्णके गुरु महात्मा विप्रवर सान्दीपनि स्नान करनेके लिये घरसे चलकर वहाँ आये। उन्होंने तुलसीकी माला पहन रखी थी। कंधेपर धौत वस्त्र रख छोड़ा था और मुखसे वे श्रीकृष्ण-नामका जप कर रहे थे॥ १-२॥

उन्होंने वहाँ पानी पीते हुए श्वेत एवं श्यामकर्ण घोड़ेको, जिसके भालदेशमें पत्र बँधा हुआ था, देखा। देखकर पूछा—'किस नृपेश्वरने इस यज्ञके घोड़ेको छोड़ा है?'॥ ३॥

नरेश्वर! वहाँ राजकुमार बिन्दुको स्नान करते देख उन्हें घोड़ेके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये जाकर प्रेरित किया। महाराज! तब राजाधिदेवीके वीर पुत्र बिन्दुने अन्य बहुत-से वीरोंके साथ जाकर सहसा उस घोड़ेको पकड़ा और उसका भलीभाँति निरीक्षण करके लौटकर गुरु सान्दीपनिको प्रणाम करके उसके विषयमें बताया। तत्पश्चात् गुरुके आदेशसे प्रसन्न हो राजकुमार घोड़ा लेकर आये और हर्षपूर्वक गुरुजीको दिखलाने लगे। सान्दीपनिने भालपत्र पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक राजाको बताया॥ ४—६॥

सान्दीपनि बोले—राजन्! इसे राजा उग्रसेनका घोड़ा समझो। प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध इसकी रक्षामें आये हैं। यह अश्व अपने इच्छानुसार घूमता हुआ यहाँतक आ गया है। अब अनिरुद्ध भी यहाँ आयेंगे। उनके साथ और भी बहुत-से युद्धशाली यादव-वीर पधारेंगे। घोड़ेका निरीक्षण करते हुए [तुम्हारी बहन] मित्रविन्दाके पुत्र भी आयेंगे॥ ७-८॥

पूजनीयास्त्वया सर्वे कृष्णचन्द्रस्य नन्दनाः।
मद्वाक्याद्युद्धबुद्धिं त्वं त्यक्त्वा देहि तुरङ्गमम्॥ ९

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं धन्वी शूरो नृपात्मजः।
हयं नेतुं मनो यस्य तत्र तूष्णीं बभूव ह॥ १०

तदैव यदुसेनायाः शब्दोऽभूल्लोकमानहा।
महानादं दुन्दुभीनां टङ्कारं धनुषां तथा॥ ११

चीत्कारं दन्तिनां चैव हयानां ह्रेषणं तथा।
झणत्कारं रथानां च वीराणां गर्जनं तथा॥ १२

शतघ्नीनां महाशब्दं लोकानां भयदायकम्।
श्रुत्वा राजकुमारस्तु विस्मयं परमं गतः॥ १३

ततः समागताः सर्वे रथिभिश्च गजैर्हयैः।
भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकाः॥ १४

रजोभिश्च नभो व्याप्तं कुर्वन्तश्चलितां महीम्।
केन नीतः कुत्र गतो हयः सर्वेऽब्रुवन् वचः॥ १५

ततश्च ददृशुः सर्वे घोटकं बद्धचामरम्।
महाद्भुते चोपवने पुष्पितद्रुमसङ्कुले॥ १६

गृहीतं लीलया तत्र नृपपुत्रेण बिन्दुना।
दृष्ट्वानिरुद्धं निकटे गत्वा सर्वे ह्यवर्णयन्॥ १७

इति श्रुत्वानिरुद्धस्तु विस्मितः प्रहसन्नृप।
उद्धवं प्रेषयामास बिन्दोः पार्श्वे च धर्मवित्॥ १८

ततः पुर्यां महाराज चासीत्कोलाहलो महान्।
भयभीता जनाः सर्वे सेनां वीक्ष्य भयङ्कराम्॥ १९

अथ वै भ्रातरं द्रष्टुं ह्यनुबिन्दुर्भयान्वितः।
कोटिवीरगणैः सार्धं स्वपुर्या निर्ययौ बहिः॥ २०

दृष्ट्वा यज्ञहयं तत्र सपत्रं च पयःप्रभम्।
भ्रात्रा गृहीतं च भयान्निषेधं स चकार ह॥ २१

तुम्हें यहाँ श्रीकृष्णचन्द्रके सभी पुत्रोंका आदर-सत्कार करना चाहिये। मेरे कहनेसे तुम युद्धका विचार छोड़कर घोड़ा उन्हें लौटा देना। गुरुका यह कथन सुनकर धनुर्धर शूरवीर राजकुमार वहाँ चुप रह गया। उसका मन घोड़ेको पकड़ ले जानेका था॥ ९-१०॥

उसी समय यादव-सेनाका कोलाहल सुनायी पड़ा, जो समस्त लोकोंके मानका मर्दन करनेवाला था। दुन्दुभियोंका महानाद, धनुषोंकी टंकार, हाथियोंका चीत्कार, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथोंका झणत्कार, वीरोंकी गर्जना तथा शतघ्नियोंका महानाद—इन सबका तुमुल शब्द समस्त लोकोंके लिये भयदायक था। उसे सुनकर राजकुमार बिन्दुको बड़ा विस्मय हुआ॥ ११—१३॥

इतनेमें ही रथियों, हाथियों और घोड़ोंके साथ भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्हवंशके समस्त यादव वहाँ आ पहुँचे। वे सेनाकी धूलिसे आकाशको व्याप्त तथा पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए आये और सब-के-सब पूछने लगे—'यज्ञका घोड़ा कौन ले गया, कहाँ गया?'॥ १४-१५॥

उस समय समस्त अन्वेषकोंने पुष्पवाले वृक्षोंसे व्याप्त अत्यन्त अद्भुत उपवनमें चामर बँधे हुए घोड़ेको देखा, जिसे राजकुमार बिन्दुने अनायास ही पकड़ लिया था। यह देखकर सबने अनिरुद्धके निकट जाकर इसकी सूचना दी॥ १६-१७॥

सूचना पाकर धर्मज्ञ अनिरुद्ध विस्मित हुए। उन्होंने हँसते हुए बिन्दुके पास उद्धवजीको भेजा। महाराज! उस समय अवन्तीपुरीमें महान् कोलाहल छा गया। वहाँ एकत्र हुई भयंकर सेनाको देखकर सब लोग भयभीत हो उठे थे॥ १८-१९॥

इसी समय अपने भाईकी खोज-खबर लेनेके लिये भयभीत अनुबिन्दु एक करोड़ वीरोंके साथ अपनी पुरीसे बाहर निकला। वह दुग्धराशिके समान धवल एवं भालपत्रसे युक्त यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको वहाँ अपने भाईके द्वारा पकड़ा गया देख उसे मना करता हुआ बोला—॥ २०-२१॥

2260 Grag Sanhita sanuwad_Section_31_2_Front

अनुबिन्दुरुवाच

यदूनां कृष्णदेवानां भ्रातर्मोचय घोटकम्।
सम्बन्धस्य मिषेणापि कुलकौशलहेतवे॥ २२

यादवानां बलं पश्य देवदैत्यनरासुराः।
पुरा यज्ञे राजसूये सर्वे भ्रातर्विनिर्जिताः॥ २३

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य बिन्दुर्ज्येष्ठोऽतिधर्षितः।
आगतं ह्युद्धवं दृष्ट्वा हयस्थं प्रत्युवाच ह॥ २४

बिन्दुरुवाच

मया गृहीतस्तुरगो मित्राणां मिलनाय च।
तस्मान्निमन्त्रिताः सर्वे स्थितिं कुरुत चात्र वै॥ २५

इति श्रुत्वोद्धवो राजन् बिन्दुं संश्लाघ्य हर्षितः।
अनिरुद्धस्य निकटे गत्वा सर्वमुवाच ह॥ २६

श्रुत्वानिरुद्धस्तद्वाक्यं भूत्वा राजन् प्रसन्नधीः।
सेनयावन्तिकायां च नदीतीरेऽवसत्किल॥ २७

अनेके शिबिरा राजंस्तत्र वै दशयोजने।
नानावर्णाः सकलशा ह्यभूवन्नद्भुताः शुभाः॥ २८

भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च चोष्यमेतैश्च भोजनैः।
आगतेभ्यश्च सर्वेभ्यो बिन्दुरर्हणमाहरत्॥ २९

तथा चैव तृणान्नादीन् पशुभ्यो दत्तवान्नृपः।
ईदृग्विधं च सत्कारं वृष्णीनां स चकार ह॥ ३०

नृपो राजाधिदेवी च द्वौ तथा नृपनन्दनौ।
भृशं मुमुदिरे सर्वे वीक्ष्य सर्वान् हरेः सुतान्॥ ३१

ततो निशायां किल कार्ष्णिपुत्रो
विद्यागुरुं च स्वपितामहस्य।

अनुबिन्दुने कहा—भैया! भगवान् श्रीकृष्ण जिनके देवता हैं, उन यादवोंका यह घोड़ा है। आप उनके साथ जो हमारा सम्बन्ध है, उसके बहाने या अपने कुलकी कुशलताके लिये इस घोड़ेको छोड़ दीजिये। यादवोंकी यह सेना तो देखिये। भैया! पहले जो राजसूय-यज्ञ हुआ था, उसमें इन यादवोंने देवता, दैत्य, मनुष्य और असुर—सबपर विजय पायी थी॥ २२-२३॥

अनुबिन्दुकी यह बात सुनकर बड़ा भाई बिन्दु हार मान गया। उसने घोड़ेपर चढ़कर आये हुए उद्धवजीसे कहा—॥ २४॥

बिन्दु बोला—मन्त्रिवर! मैंने मित्रोंके साथ मिलनके लिये घोड़ेको पकड़ रखा है। अतः आप सब लोगोंको निमन्त्रित किया जाता है। आज आपलोग यहीं ठहरें॥ २५॥

राजन्! यह सुनकर उद्धव बिन्दुकी सराहना करके बड़े प्रसन्न हुए और अनिरुद्धके निकट जाकर उन्होंने सब समाचार बताया। नरेश्वर! उद्धवजीका कथन सुनकर अनिरुद्धका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने सेनासहित अवन्तीपुरीमें शिप्रा नदीके तटपर पड़ाव डाल दिया॥ २६-२७॥

महाराज! वहाँ दस योजन दूरतकके भूभागमें रंग-बिरंगे अनेक शिविर पड़ गये। सभी सुवर्णकलशोंसे युक्त थे। वे सुन्दर शिविर वहाँ अद्भुत शोभा पा रहे थे। राजकुमार बिन्दुने वहाँ आये हुए सब लोगोंका भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—इन चारों प्रकारके भोजनोंद्वारा आतिथ्य-सत्कार किया॥ २८-२९॥

इसी तरह अवन्तीनरेशने सेनावर्ती पशुओंको भी घास-पात और अन्न आदि प्रदान किये। उन्होंने वृष्णिवंशी वीरोंका इस प्रकार स्वागत-सत्कार किया। राजाधिदेवी, उनके पति तथा दोनों राजकुमार—सब-के-सब श्रीहरिके समस्त पुत्रोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए॥ ३०-३१॥

तदनन्तर रातमें प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धने अपने बाबाके गुरु सान्दीपनि मुनिको बुलाकर उनके चरणोंमें प्रणाम

आहूय नत्वासनमेव दत्वा
प्रत्याह कृत्वा वरपूजनं च॥ ३२
भगवन् द्वारकायां च कृष्णवाक्यात् क्रतूत्तमम्।
करोति हयमेधाख्यं चक्रवर्ती यदूत्तमः॥ ३३
तस्मिन् क्रतुवरे ब्रह्मन् कृपां कृत्वा ममोपरि।
त्वं तु गच्छ मुनिश्रेष्ठ पुत्रेण च समन्वितः॥ ३४
अनिरुद्धस्य वचनं श्रुत्वा सान्दीपनिर्मुनिः।
कृष्णदर्शनकाङ्क्षी च चलितुं स मनो दधे॥ ३५

किया। उन्हें आसन देकर बैठाया और उत्तम रीतिसे उनका पूजन करके कहा—'भगवन्! द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे चक्रवर्ती यदुकुलतिलक महाराज उग्रसेन अश्वमेध-यज्ञ कर रहे हैं॥ ३२-३३॥

ब्रह्मन्! मुनिश्रेष्ठ! आप मुझपर कृपा करके उस श्रेष्ठ यज्ञमें अपने पुत्रसहित अवश्य पधारें।' अनिरुद्धका यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण-दर्शनके अभिलाषी सान्दीपनि मुनिने वहाँ चलनेका निश्चय किया॥ ३४-३५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे अवन्तिकागमनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अवन्तिकागमन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

अनिरुद्धके पूछनेपर सान्दीपनिद्वारा श्रीकृष्ण-तत्त्वका निरूपण; श्रीकृष्णकी परब्रह्मता एवं भजनीयताका प्रतिपादन करके जगत्से वैराग्य और भगवान्के भजनका उपदेश

श्रीगर्ग उवाच

अथ सान्दीपनिं तत्र कृष्णपौत्रोऽब्रवीद्वचः।
स्मृत्वा तु किञ्चित्सन्देहं गुरुं वृद्धश्रवा इव॥ १

अनिरुद्ध उवाच

भगवन् ब्रूहि मे सारं येनानन्दे रमाम्यहम्।
विहाय चास्य जगतः सुखान् स्वप्नोपमान् मुने॥ २

इतीरितोऽनिरुद्धेन राजन् सान्दीपनिर्मुनिः।
प्रत्याह प्रहसन् प्रीत्या कुमारः पृथुना यथा॥ ३

सान्दीपनिरुवाच

आदिदेवस्त्वमेवासि श्रीहरेर्नाभिपङ्कजात्।
तस्मात्तवाग्रे लोकेश कथयिष्यामि किं त्वहम्॥ ४

तथापि वर्णयिष्यामि राजंस्त्वद्वाक्यगौरवात्।
कल्याणार्थं नराणां च सर्वेषां दीनचेतसाम्॥ ५

त्वया पृष्टं च यद्राजँस्तच्छृणुष्व मुखान्मम।
कृष्णचन्द्रस्य पदयोः सारमस्ति हि सेवनम्॥ ६

ययोः पूजनमात्रेण ध्रुवो ध्रुवपदं ययौ।
प्रह्लादश्चाम्बरीषश्च गयश्चैव यदुस्तथा॥ ७

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् वहाँ श्रीकृष्णपौत्र अनिरुद्धने मनमें कुछ संदेह लेकर सान्दीपनिमुनिसे उसी प्रकार प्रश्न किया, जैसे देवराज इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिसे अपने मनका संदेह पूछा करते हैं॥ १॥

अनिरुद्ध बोले—'भगवन्! मुने! मुझे उस सारतत्त्वका उपदेश दीजिये, जिससे मैं जगत्के स्वप्न-तुल्य सुखोंको त्यागकर नित्यानन्दस्वरूपमें रमण करूँ।' राजन्! अनिरुद्धके इस प्रकार पूछनेपर सान्दीपनिमुनि हँसते हुए उसी प्रकार उन्हें उपदेश देने लगे, जैसे पूर्वकालमें राजा पृथुके पूछनेपर सनत्कुमार-ने उन्हें प्रसन्नतापूर्वक उपदेश दिया था॥ २-३॥

सान्दीपनि बोले—लोकेश! तुम्हीं श्रीहरिके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए आदिदेव हो; अतः तुम्हारे सामने मैं सारतत्त्वकी बात क्या कह सकूँगा। राजन्! तथापि तुम्हारे वचनका गौरव मानकर समस्त दीनचेता मनुष्योंके कल्याणके लिये कुछ कहूँगा॥ ४-५॥

नरेश्वर! तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब मेरे मुखसे सुनो। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका सेवन ही सारतत्त्व है, जिन चरणोंके पूजनमात्रसे ध्रुवजीने ध्रुवपद प्राप्त कर लिया। प्रह्लाद, अम्बरीष, गय और यदुने भी अक्षयपद प्राप्त किया॥ ६-७॥

तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र श्रीकृष्णस्य च सेवनम्।
सर्वेषां साररूपं यन्मनसा कुरु यत्नतः॥ ८

यूयं लोके भूरिभागाः श्रीकृष्णस्य च वंशजाः।
ज्ञातिसम्बन्धिनश्चैव जीवन्मुक्ता हरिप्रियाः॥ ९

केचिज्जानन्ति श्रीकृष्णं तनयं केऽपि भ्रातरम्।
पितरं केऽपि मित्रं च किं कर्तव्यं परं च तैः॥ १०

अनिरुद्ध उवाच

कः कर्ता चास्य जगत आदिरूपः सनातनः।
यस्मादासीत्पूर्वमिदं तन्मे वर्णय विस्तरात्॥ ११

केन केनापि रूपेण भगवाञ्जगदीश्वरः।
युगे युगे मुने धर्मं करोतीति वदस्व नः॥ १२

सान्दीपनिरुवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च यस्मादासीद्यदूद्वह।
स ईश्वरः परब्रह्म भगवानेक एव च॥ १३

युगे युगे भवन्त्येते दक्षाद्या नृपसत्तम।
पुनश्चैव निरुद्ध्यन्ते विद्वाँस्तत्र न मुह्यति॥ १४

राजन् कृष्णः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत्।
जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिँश्च लयमेष्यति॥ १५

तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत्परमं पदम्।
यस्य सर्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम्॥ १६

स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः।
तस्मिन्नेव लयं सर्वं याति तत्रैव तिष्ठति॥ १७

यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम्।
कारणं सकलस्यास्य स मे कृष्णः प्रसीदतु॥ १८

राजेन्द्र! इसलिये तुम भी मनसे यत्नपूर्वक श्रीकृष्णकी सेवा करो; क्योंकि यही सब साधनोंका सारभूत है। तुम सब लोग इस जगत्में बड़े सौभाग्यशाली हो; क्योंकि श्रीकृष्णके वंशमें उत्पन्न हुए हो, उनके कुटुम्बी और सम्बन्धी हो। श्रीहरिके प्रिय होनेके कारण तुम सब-के-सब जीवन्मुक्त हो॥ ८-९॥

तुम यादवोंमेंसे कोई तो श्रीकृष्णको अपना बेटा समझते हैं, कोई भाई मानते हैं और कोई उन्हें पिता एवं मित्रके रूपमें जानते हैं। यदि उनका यह भाव सुदृढ़ रहा तो उनके लिये इससे बढ़कर उत्तम कर्तव्य और क्या होगा?॥ १०॥

अनिरुद्धने पूछा—मुने! इस जगत्का आदि-भूत सनातन कर्ता कौन है, जिससे पूर्वकालमें इसका प्राकट्य हुआ था, इस बातका मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। महर्षे! भगवान् जगदीश्वर प्रत्येक युगमें किस-किस रूपसे धर्मका अनुष्ठान करते हैं, यह हम सब लोगोंको बताइये॥ ११-१२॥

सान्दीपनि बोले—यदुकुलतिलक अनिरुद्ध! जिनसे जगत्की उत्पत्ति और संहार होते रहते हैं, वह ईश्वर, परब्रह्म एवं भगवान् एक ही है। नृपश्रेष्ठ! युग-युगमें (प्रत्येक कल्पमें) ये दक्ष आदि प्रजापति उन्हींसे प्रकट होते हैं और फिर उन्हींमें लीन हो जाते हैं। विद्वान् पुरुष इस विषयमें कभी मोहित नहीं होता॥ १३-१४॥

राजन्! श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म हैं। जिनसे यह सारा जगत् प्रकट हुआ है, जो स्वयं ही जगत्स्वरूप हैं, जिनमें यह सारा जगत् स्थित है तथा जिनमें ही इस जगत्का लय होगा। वह ब्रह्म परमधाम है। वही सत्-असत्से परे परमपद है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उससे भिन्न नहीं है॥ १५-१६॥

वही मूल प्रकृति है और वही व्यक्तरूपवाला संसार है। उसीमें सबका लय होता है और उसीमें सबकी स्थिति है। जिनसे प्रकृति और पुरुष प्रकट होते हैं, जिनसे चराचर जगत्का प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो इस सकल दृश्य-प्रपञ्चके कारण हैं, वे परमात्मा श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों॥ १७-१८॥

चतुर्युगेऽप्यसौ विष्णुः स्थितिव्यापारलक्षणः।
युगव्यवस्थां कुरुते यथा राजेन्द्र तच्छृणु॥ १९

कृते युगे परं ज्ञानं कपिलादिस्वरूपधृक्।
ददाति सर्वभूतात्मा सर्वभूतहिते रतः॥ २०

चक्रवर्तिस्वरूपेण त्रेतायामपि स प्रभुः।
दुष्टानां निग्रहं कुर्वन् परिपाति जगत्त्रयम्॥ २१

वेदमेकं चतुर्भेदं कृत्वा स शतधा विभुः।
करोति बहुलं भूयो वेदव्यासस्वरूपधृक्॥ २२

वेदांश्च द्वापरे न्यस्य कलेरन्ते पुनर्हरिः।
कल्किस्वरूपी दुर्वृत्तान् मार्गे स्थापयति प्रभुः॥ २३

एवं कृष्णो जगत्सर्वं जगत्पाति करोति च।
हन्ति चान्तेष्वनन्तात्मा नान्यस्माद्व्यतिरेकतः॥ २४

नमोऽस्तु हरये तस्मै यस्माद्भिन्नमिदं जगत्।
ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः॥ २५

तस्मान्नृपेन्द्र हरिपौत्र मनोमयं च
सर्वं विहाय जगतश्च सुखं च दुःखम्।
मोक्षप्रदं सुरवरं किल सर्वदं त्वं
द्वारावतीनरपतिं भज कृष्णचन्द्रम्॥ २६

इति कृष्णस्य हरेश्च वृत्तसारं
कथयति यश्च शृणोति भक्तियुक्तः।
स विमलमतिरेति नात्ममोहं
भवति च संस्मरणेषु भक्तियोग्यः॥ २७

राजेन्द्र! चारों युगोंमें वे ही श्रीविष्णुरूपसे पालनरूप व्यापारका संचालन करते हैं। वे जिस प्रकार युगव्यवस्था करते हैं, वह सुनो। सत्ययुगमें समस्त भूतोंके हितमें तत्पर रहनेवाले वे सर्वभूतात्मा श्रीहरि कपिल आदिका स्वरूप धारण करके उत्तम ज्ञान प्रदान करते हैं॥ १९-२०॥

त्रेतामें चक्रवर्ती सम्राट्‌के रूपमें प्रकट हो वे ही प्रभु दुष्टोंका निग्रह करते हुए तीनों लोकोंका परिपालन करते हैं। द्वापरमें वेदव्यासका स्वरूप धारण करके वे विभु एक वेदके चार वेद करके फिर शाखा-प्रशाखारूपसे उसके सैकड़ों भेद करते हैं। फिर उसका बहुत विस्तार कर देते हैं॥ २१-२२॥

इस प्रकार वेदोंका व्यास (विस्तार) करके कलियुगके अन्तमें वे श्रीहरि पुनः कल्किरूपसे प्रकट होते हैं और वे प्रभु दुष्टोंको सन्मार्गमें स्थापित करते हैं। इस प्रकार अनन्तात्मा श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि, पालन और अन्तमें संहार करते हैं। उनसे भिन्न दूसरे किसीसे ये सृष्टि आदि कार्य नहीं सम्पादित होते हैं॥ २३-२४॥

उन सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है, जिनसे यह [प्राकृत या जड़] जगत् भिन्न है। समस्त लोकोंके आदिकारण वे श्रीकृष्ण ही सबके ध्येय हैं। वे अविनाशी परमात्मा मुझपर प्रसन्न हों॥ २५॥

इसलिये नृपेन्द्र! हरिपौत्र! जगत्‌के सम्पूर्ण मनोमय सुख-दुःखको छोड़कर तुम मोक्षदाता देवेश्वर एवं सब कुछ देनेवाले द्वारावतीनरेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भजन करो॥ २६॥

इस प्रकार जो भक्तियुक्त पुरुष भगवान् श्रीकृष्णके इस वृत्तसारका वर्णन करता और सुनता है, उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है। उसे कभी आत्माके विषयमें मोह नहीं होता। वह भगवत्स्मरणमें संलग्न रहकर अविचल भक्तिकी योग्यता प्राप्त कर लेता है॥ २७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे वैराग्यकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'वैराग्य-कथन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

अनुशाल्व और यादव-वीरोंमें घोर युद्ध

श्रीगर्ग उवाच

इतीदं वचनं श्रुत्वानिरुद्धस्तु मुदान्वितः।
निवेश्य कृष्णपदयोः स्वमनः प्राह तं मुनिम्॥ १

गतः शत्रुश्च मे मोहस्त्वद्वाक्येनासिना विभो।
अद्य त्वं गच्छ कृष्णस्य पुरीं पुत्रेण संयुतः॥ २

तस्य वाक्यं समाकर्ण्य मुदा सान्दीपनिर्मुनिः।
कृष्णदत्तेन पुत्रेण रथस्थो द्वारकां ययौ॥ ३

स पुर्यां रामकृष्णाभ्यामादरेण निवासितः।
पूजितो यादवैः सर्वैर्भोजेन्द्रेण विधानतः॥ ४

अथ प्रद्युम्नतनयः श्यामकर्णं महोज्ज्वलम्।
स्वर्णशृङ्खलया बद्धं मुमोच विजयाय च॥ ५

हयश्च शीघ्रं प्रव्रजन्नृपेन्द्र-
यशो ब्रुवन् राजपुरे गतः सः।
यत्रानुशाल्वो नृपतिश्च राज्यं
शाल्वस्य भ्राता कुरुते च नित्यम्॥ ६

तत्र वै तुरगं प्राप्तमनुशाल्वो यदृच्छया।
गृहीत्वा वाचयामास तत्पत्रं च प्रहर्षितः॥ ७

अभिप्रायं निरीक्ष्यैव तिरश्चीनेन चक्षुषा।
स्वसैनिकान् प्रत्युवाच रुषा प्रस्फुरिताधरः॥ ८

दिष्ट्या दिष्ट्या शत्रवो मे सर्वे चात्र समागताः।
घातयिष्यामि तान् सर्वान् यैर्मे भ्राता च मारितः॥ ९

इत्युक्त्वा सेनया युक्तो निश्चक्राम पुराद्बहिः।
अक्षौहिणीभिर्दशभिस्तृणीकृत्य तु यादवान्॥ १०

तदैव वृष्णयः सर्वे दृष्ट्वा सेनां समागताम्।
बाणवर्षां प्रमुञ्चन्तीं मुमुचुस्ते शरांश्च वै॥ ११

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! सान्दीपनिमुनिका यह वचन सुनकर अनिरुद्धको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपना मन लगाकर उन मुनीश्वरसे कहा—'प्रभो! आपके उपदेशरूपी खड्गसे मेरा मोहरूपी शत्रु नष्ट हो गया। अब आप आज ही अपने पुत्रके साथ श्रीकृष्णपुरी द्वारकाको पधारिये'॥ १-२॥

उनकी यह बात सुनकर सान्दीपनिमुनि प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णके दिये हुए पुत्रके साथ रथपर बैठकर द्वारकापुरीको गये। द्वारकापुरीमें बलराम और श्रीकृष्णने बड़े आदरके साथ उन्हें ठहराया। समस्त यादवों तथा भोजराज उग्रसेनने विधिपूर्वक उनका पूजन किया॥ ३-४॥

इधर प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धने सोनेकी साँकलमें बँधे हुए अत्यन्त उज्ज्वल श्यामकर्ण अश्वको विजय-यात्राके लिये खोल दिया। वह घोड़ा राजाधिराज उग्रसेनदेवका वैभव सूचित करता हुआ वेगपूर्वक आगे बढ़ा और उस 'राजपुर' में चला गया, जहाँ शाल्वका भाई राजा अनुशाल्व नित्य राज्य करता था॥ ५-६॥

स्वेच्छानुसार वहाँ पहुँचे हुए उस अश्वको अनुशाल्वने पकड़ लिया और उसके भालमें बँधे हुए पत्रको बाँचा। बाँचकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। सारा अभिप्राय समझकर रोषसे उसके ओठ फड़कने लगे। वह टेढ़ी आँखोंसे देखता हुआ अपने सैनिकोंसे बोला—'बड़े सौभाग्यकी बात है कि मेरे सारे शत्रु स्वयं यहाँ आ गये। मैं उन सबको मार डालूँगा, जिन्होंने मेरे भाईका वध किया है'॥ ७—९॥

—ऐसा कहकर और यादवोंको तिनकेके समान मानकर दस अक्षौहिणी सेनाके साथ वह नगरसे बाहर निकला। उसी समय समस्त वृष्णिवंशियोंने देखा, सामने विशाल सेना आयी है और बाणवर्षा कर रही है, तब उन्होंने भी बाण बरसाना आरम्भ किया॥ १०-११॥

उभयोः सेनयोर्युद्धं ततः समभवन् मृधे।
खड्गैर्बाणैर्गदाभिश्च शक्तिभिर्भिन्दिपालकैः॥ १२

पलायमानां स्वां सेनामनुशाल्वो महाबलः।
वारयित्वा नदन् युद्धे चाजगाम रथेन वै॥ १३

तमागतं विलोक्याथ दीप्तिमान् कृष्णनन्दनः।
तेन सार्धं रणं कर्तुं तदैव सम्मुखोऽभवत्॥ १४

दीप्तिमन्तं रणे वीक्ष्य धनुषा दशभिः शरैः।
तताडामर्षितः सोऽपि द्विपं द्वीपी नखैरिव॥ १५

ताडितस्तैः शरौघैस्तु रुधिरोक्षितबाहुना।
नीत्वा शरासनं सद्यो बाणाञ्जग्राह रोषतः॥ १६

निधाय किल कोदण्डे दश बाणान् मुमोच ह।
ते शरास्तच्छरीरं वै भित्त्वा राजन् बहिर्गताः॥ १७

यथा तृणगृहं राजन् सहसा पन्नगाशनः।
तैर्बाणैर्निहतो युद्धेऽनुशाल्वो मूर्च्छितोऽभवत्॥ १८

ततस्तत्सैनिकाः सर्वे रुषा प्रस्फुरिताधराः।
दीप्तिमन्तं रणे जघ्नुश्चित्रशस्त्रैः शरैरपि॥ १९

तत्रागत्य हरेः पुत्रो भानुः सर्वान् रिपूञ्छरैः।
नीहाराभ्रान् भानुरिव छिन्नभिन्नांश्चकार ह॥ २०

ततश्च दुद्रुवुः सर्वेऽनुशाल्वस्य तु सैनिकाः।
तदैव तस्य मन्त्री वै प्रचण्डो नाम रोषतः॥ २१

शक्त्या जघान समरे सत्यभामात्मजं नृप।
भानोश्च हृदयं भित्त्वा सा विवेश महीतले॥ २२

स चापि मूर्च्छितो भूत्वा निपपात रथाद्रणे।
स एवं कौतुकं वीक्ष्य साम्बस्तत्र रुषा ज्वलन्॥ २३

शीघ्रं गृहीत्वा कोदण्डमाजगाम रथेन वै।
प्रचण्डस्य रथं साम्बः सतुरङ्गं ससारथिम्॥ २४

सध्वजं शतबाणैश्च सर्वं चूर्णीचकार ह।
रथे भग्ने गदां नीत्वा प्रचण्डो रणदुर्मदः॥ २५

उस रणक्षेत्रमें दोनों सेनाओंके बीच खड्ग, बाण, शक्ति और भिन्दिपालोंद्वारा घोर युद्ध होने लगा। अनुशाल्वकी सेना भाग चली। यह देख महाबली अनुशाल्वने उसे रोका और सिंहनाद करते हुए रथके द्वारा वह स्वयं युद्धके मैदानमें आया॥ १२-१३॥

उसे आया देख श्रीकृष्णनन्दन दीप्तिमान् उसके साथ युद्ध करनेके लिये तत्काल सामने जा पहुँचे। दीप्तिमान्‌को युद्धभूमिमें देखकर अनुशाल्व अमर्षसे भर गया और अपने धनुषसे चलाये गये दस बाणोंद्वारा उनपर आघात किया। मानो किसी बाघने हाथीपर पंजे मार दिये हों॥ १४-१५॥

उन बाणसमूहोंसे ताड़ित होनेपर दीप्तिमान्‌की भुजा क्षत-विक्षत हो खूनसे लथपथ हो गयी। उन्होंने तत्काल धनुष उठाकर रोषपूर्वक दस बाण हाथमें लिये। उन बाणोंको कोदण्डपर रखकर दीप्तिमान्‌ने छोड़ा। राजन्! वे बाण अनुशाल्वके शरीरको विदीर्ण करके वैसे ही बाहर निकल गये जैसे अनेक गरुड घोंसले छोड़कर सहसा बाहर चले गये हों॥ १६—१७½॥

उन बाणोंसे घायल हुआ अनुशाल्व रणभूमिमें मूर्च्छित हो गया; तब उसके समस्त सैनिकोंके ओठ रोषसे फड़कने लगे और वे चित्र-विचित्र शस्त्रों और बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें दीप्तिमान्‌पर चोट करने लगे॥ १८-१९॥

उस समय श्रीहरिके पुत्र भानुने आकर जैसे भानु (सूर्य) कुहासेके बादलोंको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अपने बाणोंद्वारा समस्त शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर तो अनुशाल्वके सारे सैनिक भाग चले। नरेश्वर! उसी समय अनुशाल्वके 'प्रचण्ड' नामक मन्त्रीने कुपित हो समराङ्गणमें सत्यभामाकुमार भानुपर शक्तिसे प्रहार किया। वह शक्ति भानुकी छाती छेदकर धरतीमें समा गयी और वे भी रणक्षेत्रमें मूर्च्छित होकर रथसे नीचे गिर पड़े॥ २०—२२½॥

ऐसा कौतुक देख साम्ब वहाँ रोषसे जल उठे। वे शीघ्र ही हाथमें कोदण्ड लिये रथके द्वारा वहाँ आ पहुँचे। साम्बने सौ बाण मारकर प्रचण्डके ध्वज, सारथि और घोड़ोंसहित सम्पूर्ण रथको चूर्ण-चूर्ण कर डाला। रथ नष्ट हो जानेपर रणदुर्मद प्रचण्ड गदा

आजगाम रिपुं हन्तुं पतङ्ग इव पावकम्।
आगतं तं विलोक्याथ चन्द्रार्काकारवर्चसा॥ २६

शरेणैकेन साम्बस्तु जहार तच्छिरो मृधे।
हाहाकारस्तदैवासीत्तत्सेनायां नृपेश्वर॥ २७

अथोत्थितोऽनुशाल्वस्तु मूर्च्छां त्यक्त्वा मुहूर्ततः।
ददर्श मन्त्रिणं तत्र साम्बेन निहतं मृधे॥ २८

निरीक्ष्य रथमारुह्य धन्वी खड्गी च दंशितः।
शिलीमुखैश्चतुर्भिश्च साम्बस्य चतुरो हयान्॥ २९

द्वाभ्यां केतुं त्रिभिः सूतं पञ्चभिश्च शरासनम्।
त्रिंशद्भिश्च शरैर्यानं जघान समरे नृपः॥ ३०

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
रथं चान्यं समारुह्य रेजे जाम्बवतीसुतः॥ ३१

ततो गृहीत्वा कोदण्डं शतबाणैरमर्षितः।
तताड स रिपुं युद्धे सर्पं पक्षैर्यथा विराट्॥ ३२

यानस्तस्यापि भग्नोऽभूत्तुरङ्गाः पञ्चतां गताः।
सूतो मृत्युं गतो युद्धेऽनुशाल्वो मूर्च्छितोऽभवत्॥ ३३

ततस्तत्सैनिकाः सर्वे गृध्रपक्षैः स्फुरत्प्रभैः।
आशीविषसमैर्बाणैः साम्बं जघ्नू रुषान्विताः॥ ३४

साम्बमेकं रणे वीक्ष्य मधुः कृष्णसुतो रुषा।
पारावतसमेनापि हयेनागतवान् मृधे॥ ३५

साकं साम्बेन तान् सर्वान्निस्त्रिंशेन रिपून् खलान्।
प्रहरार्धेन राजेन्द्र मारयन् विचचार ह॥ ३६

ततोऽनुशाल्व उत्थाय दृष्ट्वा स्वस्य पराजयम्।
सलिलेन शुचिर्भूत्वा हन्तुं सर्वान् मनो दधे॥ ३७

लेकर अपने शत्रु साम्बको मारनेके लिये उसी प्रकार आया, जैसे पतंग अग्निपर टूट पड़ा हो। उसे आया देख साम्बने चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी एक ही बाणसे समरभूमिमें उसका मस्तक काट दिया। नृपेश्वर! उस समय उसकी सेनामें हाहाकार मच गया॥ २३—२७॥

तदनन्तर अनुशाल्व दो घड़ीमें मूर्च्छा त्यागकर उठ खड़ा हुआ। उसने देखा मेरा मन्त्री साम्बके हाथसे युद्धमें मारा गया। यह देख उस राजाने रथपर आरूढ़ हो कवच बाँधकर धनुष और खड्ग लेकर धावा किया तथा समरमें चार बाणोंद्वारा साम्बके चार घोड़ों, दो बाणोंसे उसके ध्वज, तीन बाणोंसे सारथि, पाँच बाणोंसे धनुष तथा तीस बाणोंसे रथकी धज्जियाँ उड़ा दीं॥ २८—३०॥

धनुष कट गया, रथ नष्ट हो गया और घोड़े तथा सारथि मारे गये, तब जाम्बवतीकुमार साम्ब दूसरे रथपर आरूढ़ हो शोभा पाने लगे। तदनन्तर उन्होंने कुपित हो धनुष लेकर युद्धस्थलमें सौ बाणोंद्वारा अपने शत्रुपर प्रहार किया, मानो गरुड़ने अपने पंखोंकी मारसे सर्पको चोट पहुँचायी हो॥ ३१-३२॥

उस प्रहारसे अनुशाल्वका भी रथ टूट गया, घोड़े कालके गालमें चले गये, सारथि दिवंगत हो गया और स्वयं अनुशाल्व रणभूमिमें मूर्च्छित हो गया। तब उसके समस्त सैनिक गीधकी पाँखोंसे युक्त और विषधर सर्पके समान तीखे चमकीले बाणोंद्वारा रोषपूर्वक साम्बपर प्रहार करने लगे॥ ३३-३४॥

युद्धस्थलमें साम्बको अकेला देख कृष्णपुत्र मधु रोषसे भर गया और वह कबूतरके समान रंगवाले घोड़ेपर चढ़कर युद्धस्थलमें आ पहुँचा। राजेन्द्र! साम्बके साथ मिलकर मधु सारे दुष्ट शत्रुओंको तलवारकी चोटसे मौतके घाट उतारता हुआ आधे पहरतक समराङ्गणमें विचरता रहा॥ ३५-३६॥

तत्पश्चात् अनुशाल्वने मूर्च्छासे उठकर अपनी पराजय देख, जलसे आचमनकर शुद्ध हो, समस्त शत्रुओंको मार डालनेका निश्चय किया॥ ३७॥

ब्रह्मास्त्रं सन्दधे रोषान् मयदैत्येन शिक्षितम्।
अजानंस्तस्य नाशं च सम्प्राप्ते प्राणसङ्कटे॥ ३८

तस्यापि दारुणं तेजो त्रींल्लोकान् प्रदहन्महत्।
चचार ह्यन्तरिक्षे च द्वादशादित्यसन्निभम्॥ ३९

तत्तेजसा दुर्विषहेण सर्वे
सन्दह्यमाना यदवश्च भीताः।
प्राद्युम्निपार्श्वं प्रययुर्बुवन्तो
रक्षस्व दुःखान्नृहरे महात्मन्॥ ४०

ततः कृत्वाभयं राजन् वीरो रुक्मवतीसुतः।
ब्रह्मास्त्रेण तु ब्रह्मास्त्रं जहार प्रधने रुषा॥ ४१

वह्न्यस्त्रं सोऽपि चिक्षेप वह्निना पूरितं नभः।
दह्यमाना च भूस्तत्र ज्वालाभिरिव खाण्डवम्॥ ४२

ततोऽनिरुद्धो बलवान् वारुणास्त्रं पुनर्दधे।
प्रचण्डमेघधाराभिर्वह्निः शीतलतां गतः॥ ४३

मण्डूकाः कोकिलाश्चैव मयूराः सारसादयः।
प्रत्यनन्दन् महामेघैर्वर्षां ज्ञात्वा पुनः पुनः॥ ४४

ततोऽनुशाल्वो मायावी पवनास्त्रं समादधे।
दृष्ट्वानिरुद्धो युयुधे पर्वतास्त्रेण सर्वतः॥ ४५

ततो भारसहस्राढ्यां नीत्वा सोऽपि गदां मृधे।
अनिरुद्धं शूरमणिं क्रुद्धो वचनमब्रवीत्॥ ४६

त्वत्सैन्ये नास्ति राजेन्द्र गदायुद्धविशारदः।
यदि चास्ति तर्हि मह्यं तं तु शीघ्रं प्रदर्शय॥ ४७

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गदाधारी गदो महान्।
उवाच चाग्रतो भूत्वानिरुद्धस्य प्रपश्यतः॥ ४८

अत्र वै बहवः सन्ति सर्वशस्त्रविशारदाः।
मानं मा कुरु दैत्येन्द्र त्वमेकाकी रणेऽसि हि॥ ४९

उसने मयासुरसे ब्रह्मास्त्रकी शिक्षा पायी थी, किंतु उसका निवारण करना वह नहीं जानता था। तथापि प्राणसङ्कट प्राप्त होनेपर उसने रोषपूर्वक ब्रह्मास्त्रका संधान किया। उस अस्त्रका दारुण और महान् तेज तीनों लोकोंको दग्ध करता हुआ-सा बारह सूर्योंके समान अन्तरिक्षमें फैलने लगा॥ ३८-३९॥

उसके दुस्सह तेजसे जलते हुए समस्त यादव प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धके पास गये और कहने लगे—'नरहरे! महात्मन्! इस दुःखसे हमारी रक्षा कीजिये।' राजन्! तब रुक्मवतीकुमार वीर अनिरुद्धने उन सबको अभय दे, समराङ्गणमें रोषपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाकर उस ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया॥ ४०-४१॥

तब अनुशाल्वने आग्नेयास्त्र चलाया। उस अस्त्रके प्रभावसे आकाशमण्डल अग्निसे व्याप्त हो गया। सारी भूमि आगसे जलने लगी, मानो खाण्डववन आगकी लपटोंमें आ गया हो। यह देख बलवान् अनिरुद्धने फिर वारुणास्त्रका प्रयोग किया। उससे प्रचण्ड मेघ उत्पन्न हो गये और उनकी बरसायी हुई जलधाराओंसे वह आग बुझ गयी॥ ४२-४३॥

उस समय महामेघोंद्वारा वर्षा-ऋतुका आगमन जानकर मेंढक, कोकिल, मोर और सारस आदि बार-बार बोलकर अपनी आन्तरिक प्रसन्नता प्रकट करने लगे। तब मायावी अनुशाल्वने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। यह देख अनिरुद्ध सब ओर पर्वतास्त्रद्वारा युद्ध करने लगे॥ ४४-४५॥

इसके बाद अनुशाल्वने हजार भारसे युक्त भारी गदा हाथमें लेकर युद्धस्थलमें शूरवीरोंके मुकुटमणि अनिरुद्धसे क्रुद्ध होकर कहा—'राजेन्द्र! तुम्हारी सेनामें कोई ऐसा वीर नहीं है, जो गदायुद्धमें कुशल हो। यदि कोई है तो उसे शीघ्र मेरे सामने लाओ'॥ ४६-४७॥

उसका यह वचन सुनकर महान् गदाधारी गद अनिरुद्धके देखते-देखते आगे होकर बोले—'दैत्यराज! इस सेनामें बहुत-से ऐसे वीर हैं, जिन्हें सम्पूर्ण शस्त्रोंमें निपुणता प्राप्त है। घमंड न करो; क्योंकि तुम रणक्षेत्रमें अकेले हो॥ ४८-४९॥

न मन्यसे त्वं मद्वाक्यं मया साकं रणेऽसुर।
कुरु पूर्वं गदायुद्धं ततोऽन्यान् द्रष्टुमर्हसि॥ ५०

इत्युक्त्वा स गदां नीत्वा लक्षभारमयीं दृढाम्।
तथानुशाल्वं जघ्ने तु मूर्ध्नि वक्षःस्थले नृप॥ ५१

अनुशाल्वस्तु गदया जघान समरे गदम्।
ततोऽन्योऽन्यं गदाभ्यां च जघ्नतुः क्रोधमूर्च्छितौ॥ ५२

ततो गदः समुत्थाप्यानुशाल्वं गगनेऽक्षिपत्।
भ्रामयित्वा शतगुणं निपपात महीतले॥ ५३

ततोऽनुशाल्व उत्थाय गृहीत्वा रोहिणीसुतम्।
भूमौ ममर्द राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत्॥ ५४

गदो गजं गृहीत्वैकमनुशाल्वोपरि चाक्षिपत्।
तमायान्तं गजं नीत्वा चिक्षेप स बलानुजे॥ ५५

जानुभिर्मुष्टिभिर्घोरैः प्रहारैस्तौ च जघ्नतुः।
मर्दितौ तावुभौ मह्यां पतितौ मूर्च्छनां गतौ॥ ५६

असुर! यदि तुम मेरी बात नहीं मानते हो तो पहले मेरे साथ गदायुद्ध कर लो, फिर दूसरोंको देखना'॥ ५०॥

नरेश्वर! ऐसा कहकर गदने लाख भारकी सुदृढ़ गदा हाथमें ली और उसके द्वारा अनुशाल्वके मस्तकपर तथा छातीमें चोट की। अनुशाल्वने भी समराङ्गणमें गदपर गदासे आघात किया। फिर तो वे दोनों क्रोधसे मूर्च्छित हो एक-दूसरेपर अपनी-अपनी गदासे चोट करने लगे॥ ५१-५२॥

इतनेमें ही गदने अनुशाल्वको उठा लिया और उसे सौ बार घुमाकर आकाशमें फेंक दिया। अनुशाल्व पृथ्वीपर गिर पड़ा। राजेन्द्र! तदनन्तर उसने भी रोहिणीकुमार गदको पकड़कर धरतीपर खूब रगड़ा। वह एक अद्भुत-सा दृश्य था!॥ ५३-५४॥

तत्पश्चात् गदने एक हाथीको पकड़कर अनुशाल्वके ऊपर फेंका। अनुशाल्वने अपने ऊपर आते हुए हाथीको हाथमें ले लिया और पुनः उसे गदपर ही दे मारा। वे दोनों परस्पर घुटनों और मुक्कोंके घोर प्रहारोंद्वारा चोट पहुँचाने लगे। दोनों दोनोंके द्वारा धरतीपर रौंदे गये। फिर दोनों ही गिरकर मूर्च्छित हो गये॥ ५५-५६॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे राजपुरविजयो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'राजपुर-विजय' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

अनुशाल्वद्वारा प्रद्युम्नको उपहारसहित अश्वका अर्पण तथा बल्वल दैत्यके द्वारा उस अश्वका अपहरण

श्रीगर्ग उवाच

एवं दृष्ट्वा तयोर्युद्धं यादवाः परसैनिकाः।
ऊचुः परस्परं धन्योऽनुशाल्वस्तु गदो महान्॥ १

इति ब्रुवत्सु सर्वेषु गदस्तत्रैव चोत्थितः।
क्व गतः क्व गतः शत्रुर्हत्वा मां च ब्रुवन् रणात्॥ २

ततोऽनुशाल्वं हस्तेन गृहीत्वाकृष्य रोषतः।
अनिरुद्धस्य निकटे पातयामास वेगतः॥ ३

श्रीगर्गजी कहते हैं—उन दोनोंका युद्ध देखकर यादव परस्पर कहने लगे—'अनुशाल्व धन्य है।' शत्रुसैनिक आपसमें चर्चा करने लगे कि 'गद महान् वीर हैं।' वे सब इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि गद वहीं सचेत होकर उठे और बोल पड़े—'मेरा शत्रु मुझपर प्रहार करके रणक्षेत्रसे कहाँ गया? कहाँ गया?'॥ १-२॥

—ऐसा कहकर उन्होंने अनुशाल्वको हाथसे पकड़कर रोषपूर्वक खींचा और अनिरुद्धके निकट बड़े वेगसे दे मारा॥ ३॥

पतितं मूर्च्छितं दृष्ट्वा ह्यनिरुद्धस्त्वधोमुखम्।
कारयामास चैतन्यं व्यजनैः सलिलेन च॥ ४

तदैव स प्रबुद्धोऽभूदनुशाल्वोऽसुरेश्वरः।
दृष्ट्वाग्रे सुन्दरं सोऽपि कृष्णपौत्रं घनप्रभम्॥ ५

नत्वा प्रत्याह वचनं त्वं तु मे प्राणरक्षकः।
अनिरुद्ध हरेः पौत्र अपराधं क्षमस्व मे॥ ६

ॐ नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः॥ ७

गृहाण वै तुरङ्गं तमहं यास्यामि पालयन्।
इत्युक्त्वा स्वपुरं गत्वा ददौ तस्मै तुरङ्गमम्॥ ८

अयुतं हस्तिनां चैव हयानां नियुतं तथा।
अर्धलक्षं रथानां च शिबिकानां सहस्रकम्॥ ९

उष्ट्राणां हि सहस्रं च गवयानां सहस्रकम्।
पञ्जरे संस्थितानां च सिंहानां द्विसहस्रकम्॥ १०

मृगयासारमेयाणां सहस्रं नृपसत्तम।
शिबिराणां सहस्रं च शिञ्जिनां नियुतं तथा॥ ११

जवनिकानामयुतं धेनूनां लक्षमेव च।
सहस्रभारं स्वर्णानां रजतानां चतुर्गुणम्॥ १२

मुक्तानां भारमेकं चानिरुद्धाय ददौ नृपः।
अनिरुद्धस्ततस्तस्मै मणिहारं ददौ मुदा॥ १३

अनुशाल्वः स्वराज्ये तु कृत्वा वै सचिवं वरम्।
यादवैः सहितः सोऽपि देशानन्याञ्जगाम ह॥ १४

ततो विमुक्तस्तुरगो मणिकाञ्चनभूषितः।
देशानन्यान् वीरयुक्तान् पश्यन् बभ्राम भूपते॥ १५

अनुशाल्वं जितं श्रुत्वा यौवनाश्वं च भीषणम्।
राजानोऽन्ये मण्डलेशाः प्राप्तं न जगृहुर्हयम्॥ १६

इत्येवं भ्रमतस्तस्य तुरगस्य विशां पते।
मासाश्च प्रगताः षड् वै तादृशाश्चावशेषिताः॥ १७

अनुशाल्व औंधे मुँह गिरा और मूर्च्छित हो गया। यह देख अनिरुद्धने स्वयं पानी छिड़ककर और व्यजन डुलवाकर उसे होश कराया। उसी समय असुरेश्वर अनुशाल्व मूर्च्छासे जाग उठा और अपने सामने मेघके समान श्यामवर्णवाले परम-सुन्दर श्रीकृष्णपौत्रको देखकर उन्हें प्रणाम करके बोला— 'श्रीकृष्णपौत्र अनिरुद्ध! आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा की है, अतः मैंने जो अपराध किया है उसे क्षमा कर दें॥ ४—६॥

सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। संकर्षणको प्रणाम है। प्रद्युम्नको नमस्कार है और आप अनिरुद्धको भी प्रणाम है। आप अपना घोड़ा लीजिये और मैं भी इसकी रक्षाके लिये आपके साथ चलूँगा'। ऐसा कह उसने नगरमें जाकर अनिरुद्धको घोड़ा लौटा दिया॥ ७-८॥

साथ ही दस हजार हाथी, एक लाख घोड़े, पचास हजार रथ तथा एक सहस्र शिविकाएँ उन्हें भेंट कीं। नृपश्रेष्ठ! इनके अतिरिक्त राजा अनुशाल्वने एक हजार ऊँट, एक सहस्र गवय (वनगाय अथवा घड़रोज), पिँजड़ेमें बंद दो हजार सिंह, एक हजार शिकारी कुत्ते, एक सहस्र शिविर (तम्बू-कनात), एक लाख रुनझुन शब्द करती हुई धनुषकी प्रत्यञ्चाएँ, दस हजार परदे, एक लाख दुधारू गौएँ, सहस्र भार सुवर्ण, चार सहस्र भार चाँदी और एक भार मोती अनिरुद्धको अर्पित किये। तब अनिरुद्धने अत्यन्त प्रसन्न हो उसे मणिमय हार भेंट किया॥ ९—१३॥

अनुशाल्व अपने राज्यपर श्रेष्ठ सचिवको स्थापित करके यादवोंके साथ स्वयं भी अन्यान्य देशोंको गया। भूपते! तत्पश्चात् छूटा हुआ मणिमय और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित वह अश्व वीरोंसे भरे दूसरे-दूसरे देशोंका दर्शन करता हुआ भ्रमण करने लगा। 'अनुशाल्व हार गया, यौवनाश्व तथा भीषण भी परास्त हो गये'—यह सुनकर अन्यान्य मण्डलेश्वर नरेशोंने अपने यहाँ आनेपर भी उस घोड़ेको नहीं पकड़ा। महाराज! इस तरह घूमते हुए उस घोड़ेके छः मास बीत गये और उतने ही शेष रह गये॥ १४—१७॥

हयो मणिपुरेशेन गृहीतश्च विमोचितः।
तथा रत्नपुरेशेन ह्यनिरुद्धभयान्नृप॥ १८

राष्ट्रान् सर्वानशूरांश्च विहाय तुरगोत्तमः।
ययौ प्राचीं दिशं राजन् बल्वलो यत्र दैत्यराट्॥ १९

सोऽपि दैत्यो हयस्यापि वार्तां श्रुत्वा च नारदात्।
यज्ञं शीघ्रं नाशयित्वा नैमिषाच्चाजगाम ह॥ २०

स्थितं त्रिवेण्यां सलिलं पिबन्तं
प्रयागतीर्थे क्रतुवाहनं च।
विलोक्य राजन् किल बल्वलाख्यो
जग्राह शीघ्रं ह्यगणय्य कृष्णम्॥ २१

तदैव वृष्णयः सर्वे दण्डकं च व्यलोकयन्।
चर्मण्वतीं समुत्तीर्य चित्रकूटं समाययुः॥ २२

रामक्षेत्रे च दानानि कृत्वाश्वं चावलोकयन्।
तस्यापि पृष्ठतो लग्ना आजग्मुस्तीर्थवासवम्॥ २३

ददृशुस्तत्र तुरगं सपत्रं यदुसत्तमाः।
गृहीतं स्वबलाद्राजन्नसुरेण दुरात्मना॥ २४

ततस्ते बल्वलं दृष्ट्वा नीलाञ्जनचयोपमम्।
योजनद्वयमुच्चाङ्गमुग्रमङ्गारलोचनम्॥ २५

तप्तताम्रशिखाश्मश्रुदंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम्।
ब्रह्मद्रुहं ललज्जिह्वं गजायुतसमं बलम्॥ २६

तमूचुर्यादवा रोषात्स्फुरिताधरपल्लवाः।
कस्त्वं यज्ञपशुं नीत्वा ह्यस्माकं च क्व यास्यसि॥ २७

तस्मान्मोचय तं शीघ्रं न चेद्धन्मो रणे च त्वाम्।
इति श्रुत्वासुरश्चाह वचः शृणुत मे नराः॥ २८

बल्वल उवाच

अहं तु बल्वलो दैत्यो देवानां दुःखदायकः।
यस्याग्रे मानुषाः सर्वे भवन्ति भयविह्वलाः॥ २९

नरेश्वर! मणिपुरके राजा तथा रत्नपुरके भूपालने घोड़ेको पकड़ा; किंतु अनिरुद्धके भयसे उसको छोड़ दिया। राजन्! वह श्रेष्ठ अश्व शूरवीरोंसे रहित समस्त राष्ट्रोंको छोड़कर प्राची दिशामें गया, जहाँ दैत्यराज बल्वल निवास करता था॥ १८-१९॥

यह दैत्य नारदजीके मुखसे यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेका समाचार सुनकर नैमिषारण्यमें होनेवाले यज्ञका विनाश करके वहाँसे शीघ्र ही अपने नगरको लौटा। रास्तेमें उसने देखा, वह यज्ञसम्बन्धी घोड़ा प्रयागतीर्थमें त्रिवेणीका जल पी रहा है। राजन्! उसे देखते ही बल्वलने भगवान् श्रीकृष्णकी कोई परवा न करके उसे शीघ्र ही जा पकड़ा। २०-२१॥

उसी समय समस्त वृष्णिवंशी योद्धा दण्डकारण्यका दर्शन करते हुए चर्मण्वती नदी पार करके चित्रकूटमें आ पहुँचे। वहाँ श्रीरामक्षेत्रमें दान करके अश्वको देखते हुए उसके पीछे लगे वे सब लोग तीर्थराज प्रयागमें आ गये॥ २२-२३॥

राजन्! वहाँ पहुँचकर उन श्रेष्ठतम यादव-वीरोंने देखा कि 'पत्रसहित अश्वको दुरात्मा असुर बल्वलने बलपूर्वक पकड़ रखा है।' बल्वल नील अञ्जनके ढेरकी भाँति दिखायी पड़ता था। उसके शरीरकी ऊँचाई दो योजनकी थी। उस उग्र दैत्यके नेत्र अङ्गारके समान जान पड़ते थे॥ २४-२५॥

उसकी दाढ़ी-मूँछ तपायी हुई ताम्रशिखाके समान दिखायी देती थी। बड़ी-बड़ी दाढ़ और उग्र भ्रुकुटिके कारण उसका मुख भयंकर प्रतीत होता था। वह ब्राह्मणद्रोही असुर अपनी जीभ लपलपा रहा था और उसमें दस हजार हाथियोंके समान बल था। उसे देखते ही यादवोंके अधर-पल्लव रोषसे फड़क उठे और वे बोले—'अरे! तू कौन है? हमारा यह यज्ञपशु लेकर तू कहाँ जायगा?॥ २६-२७॥

अतः इसे शीघ्र छोड़ दे, नहीं तो हमलोग युद्धमें तुझे मार डालेंगे।' यह सुनकर उस असुरने कहा—'मनुष्यो! मेरी बात सुनो'॥ २८॥

बल्वलने कहा—मैं देवताओंको दुःख देनेवाला दैत्य बल्वल हूँ, जिसके सामने सारे मनुष्य भयसे व्याकुल हो जाते हैं॥ २९॥

इति श्रुत्वा च यदवो जघ्नुर्बाणैश्च बल्वलम्।
स हतस्तैश्च सहसा सहयोऽन्तर्दधे नृप॥ ३०

यह सुनकर यादवोंने बल्वलको बाणोंसे मारना आरम्भ किया। नरेश्वर! उनके बाणोंकी चोट खाकर बल्वल घोड़ेसहित सहसा अन्तर्धान हो गया॥ ३०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे बल्वलेन तुरगहरणं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'बल्वलके द्वारा अश्वका अपहरण' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

नारदजीके मुखसे बल्वलके निवासस्थानका पता पाकर यादवोंका अनेक तीर्थोंमें स्नान-दान करते हुए कपिलाश्रमतक जाना और वहाँ कपिलमुनिको प्रणाम करके सागरके तटपर सेनाका पड़ाव डालना

श्रीगर्ग उवाच

अथ सर्वे यदुगणा गते क्रतुपशौ नृप।
शोकं चक्रुः क्व गच्छामः करिष्यामश्च किं भुवि॥ १

न तत्प्रतिविधिं सर्वेऽनिरुद्धाद्या विदुस्ततः।
तदा नारदरूपी वै भगवानागमन्नृप॥ २

तमागतं मुनिं दृष्ट्वानिरुद्धो यादवैर्वृतः।
पूजयित्वासने स्थाप्य प्रीतः प्राह मुनीश्वरम्॥ ३

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! यज्ञपशुके अपहृत हो जानेपर समस्त यादवगण शोक करने लगे कि 'हम कहाँ जायँ और इस पृथ्वीपर क्या करें?' अनिरुद्ध आदि सब लोगोंको उस समय कोई उपाय नहीं सूझा। नरेश्वर! तब श्रीनारदरूपधारी भगवान् वहाँ आ पहुँचे। देवर्षि नारदको आया देख यादवोंसहित अनिरुद्धने आसनपर बैठाकर उनका पूजन किया और बड़े प्रसन्न होकर वे उन मुनीश्वरसे बोले—॥ १—३॥

अनिरुद्ध उवाच

भगवन् यज्ञतुरगो बल्वलेन दुरात्मना।
नीतः कुत्र गतः सर्वं वद मे वदतां वर॥ ४

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीं दिव्यदर्शनः।
अन्तश्चरो वायुरिव ह्यात्मसाक्षी च सर्ववित्।
तस्मात्कथय सर्वं मे श्रुत्वा सोऽप्याह माधवम्॥ ५

अनिरुद्धने कहा—भगवन्! वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुने! दुरात्मा दैत्य बल्वल हमारा घोड़ा लेकर कहाँ चला गया है? यह सब मुझे बताइये। आपका दर्शन दिव्य है। आप सूर्यदेवकी भाँति तीनों लोकोंमें विचरते हैं। त्रिभुवनके भीतर वायुके समान विचरण करनेवाले आप सर्वज्ञ तथा आत्मसाक्षी हैं। इसलिये सब बात मुझसे कहिये। अनिरुद्धका यह प्रश्न सुनकर नारदजी माधव प्रद्युम्नकुमारसे बोले—॥ ४-५॥

श्रीनारद उवाच

राजंस्तव तुरङ्गो वै बल्वलेन निवेशितः॥ ६

उपद्वीपे पाञ्चजन्ये सिन्धुमध्ये नृपेश्वर।
मृते मित्रे च शकुनौ यादवानां वधाय च॥ ७

सुतलाच्च समाहूय दैत्यवृन्दान् महासुरः।
राज्यं करोति तत्रापि शिवस्य वरदर्पितः॥ ८

श्रीनारदजीने कहा—नृपेश्वर! बल्वलने तुम्हारे घोड़ेको समुद्रके बीचमें बसे हुए 'पाञ्चजन्य' नामक उपद्वीपमें ले जाकर रख दिया है। उसका मित्र या बन्धु शकुनि यादवोंके हाथसे मारा गया था, अतः यादवोंका वध करनेके लिये उसने यह कार्य किया है। वह महान् असुर सुतललोकसे दैत्यसमूहोंको बुलाकर वहाँ राज्य करता है। भगवान् शिवका वरदान पाकर वह घमंडसे भरा रहता है॥ ६—८॥

इति श्रुत्वानिरुद्धस्तु वचः प्रोवाच शङ्कितः।

अनिरुद्ध उवाच

तस्मै चन्द्रललामेन किं दत्तं प्रवरं वरम्॥ ९

तन्ममाख्याहि देवर्षे कस्मात्सन्तोषितोऽभवत्।
ततो बभाषे स मुनिः शृणु राजन् वचो मम॥ १०

कैलासे चैकदा दैत्यो ह्येकपादेन संस्थितः।
वर्षद्वादशपर्यन्तं तपश्चक्रे सुदारुणम्॥ ११

ततश्च तोषितो देवो वरं ब्रूहीत्युवाच ह।
तच्छ्रुत्वा स उवाचाथ सदाशिव नमोऽस्तु ते॥ १२

महामृधे च मां देव पाययस्व कृपानिधे।
तथास्तु चोक्त्वा देवस्तु तत्रैवान्तर्दधे नृप॥ १३

स दैत्यो पाञ्चजन्ये वै राज्यं चक्रे बलात्ततः।
स्वतस्तुभ्यं न तुरगं विना युद्धेन दास्यति॥ १४

अनिरुद्धस्तु प्रोवाच हत्वा दुष्टं च बल्वलम्।
ससैन्यं च मुनिश्रेष्ठ मोचयिष्ये तुरङ्गमम्॥ १५

स शिवस्य वरेणापि यदि युद्धं करिष्यति।
न पालयिष्यति मृधे शिवः कृष्णद्विषं खलम्॥ १६

इत्युक्त्वा चानिरुद्धो वै प्रयाणार्थे जयाय च।
यादवेभ्यश्च सर्वेभ्यः सहसाज्ञां चकार ह॥ १७

ततोऽनुज्ञाप्य देवर्षिः युद्धकौतुकसंयुतः।
ययौ चाकाशमार्गेण तत्र स्थानं नृपेश्वर॥ १८

तदैव यादवाः सर्वे सज्जीभूता रुषान्विताः।
स्नात्वा कृत्वा च दानानि तीर्थराजे विधानतः॥ १९

उपद्वीपं ययू राजन् रथिभिश्च गजैर्हयैः।
द्विलक्षा मार्गकाराश्च मार्गं चक्रुर्दिने दिने॥ २०

भिन्दिपालैश्च सर्वत्र सेनायाः पूर्वमेव हि।
सुखेन यत्र गच्छन्ति गजवाजितुरङ्गमाः॥ २१

यह सुनकर अनिरुद्धने शङ्कित होकर पूछा॥ ८ १/२॥

अनिरुद्ध बोले—देवर्षे! चन्द्रमौलि भगवान् शिवने उस दैत्यको कौन-सा श्रेष्ठ वर प्रदान किया है? उसके किस कार्यसे शिवजी संतुष्ट हो गये थे॥ ९ १/२॥

तब मुनिवर नारदने कहा—प्रद्युम्नकुमार! मेरी बात सुनो। एक समय उस दैत्यने कैलासपर्वतपर एक पैरसे खड़े रहकर बारह वर्षोंतक अत्यन्त कठोर तप किया। उस तपस्यासे संतुष्ट होकर महादेवजीने कहा—'वर माँगो'। उनकी बात सुनकर वह बोला 'सदाशिव! आपको नमस्कार है॥ १०—१२॥

कृपानिधान! देव! महासमरमें आप मेरी रक्षा करें।' नरेश्वर! तब 'तथास्तु' कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर वह दैत्य पाञ्चजन्य उपद्वीपमें बलपूर्वक राज्य करने लगा। वह युद्धके बिना स्वतः तुम्हें घोड़ा नहीं देगा॥ १३-१४॥

तब अनिरुद्ध कहने लगे—मुनिश्रेष्ठ! मैं सेना-सहित दुष्ट बल्वलको मारकर घोड़ा छुड़ा लूँगा। यदि यह भगवान् शिवके वरदानसे युद्ध करेगा तो मुझे विश्वास है कि शिवजी युद्धमें उस श्रीकृष्णद्रोही दुष्टकी रक्षा नहीं करेंगे॥ १५-१६॥

—ऐसा कहकर अनिरुद्धने विजययात्राके लिये सहसा समस्त यादवोंको आज्ञा दी। नृपेश्वर! नारदजीके हृदयमें युद्ध देखनेका कौतूहल था। वे अनिरुद्धसे विदा ले आकाशमार्गसे उस स्थानपर गये। समस्त यादव तत्काल तीर्थराजमें विधिवत् स्नान-दान करके रोषपूर्वक युद्धयात्राके लिये सुसज्जित हो गये॥ १७—१९॥

राजन्! वे हाथियों, घोड़ों तथा रथोंके द्वारा उस उपद्वीपमें गये। प्रतिदिन दो लाख सिपाही उनके जानेके लिये मार्ग तैयार करते थे। वे भिन्दिपालोंकी सहायतासे सर्वत्र सेनाके लिये पहले ही मार्ग तैयार कर देते थे, जिसपर रथ, हाथी और घोड़े सुखसे यात्रा करते थे॥ २०-२१॥

पदातयश्च राजेन्द्र मार्गे निष्कण्टके त्वरम्।
इत्थं तु यदुसेनायाः शेषो भारेण पीडितः॥ २२

इति होवाच मनसि किं बभूव धरातले।
अनिरुद्धोऽग्रतो भूत्वालक्षितः प्रययौ नृप॥ २३

हयरक्षापदेशाद्वै नाशयन्निव पापिनः।
यत्र यत्र गतो राजन् हयस्यार्थे च कार्ष्णिजः॥ २४

तत्र तत्रोपशृण्वानः श्रीकृष्णस्य यशोऽखिलम्।
श्लाघां ये वै करिष्यन्ति गोविन्दबलदेवयोः॥ २५

ददौ तेभ्यश्च रत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च।
यत्किञ्चित्तस्य सैन्येषु वसुमात्रमनुत्तमम्॥ २६

तत्सर्वमददात्प्रीतः कृष्णगाथाहृताशयः।
इत्थं शृण्वन् हरेर्गाथां काशीं पश्यन् गयां तथा॥ २७

कुर्वन् दानानि राजेन्द्र काष्ठां प्राचीं जगाम सः।
इत्थं भयङ्करीं सेनां यादवानां विलोक्य च॥ २८

गिरिव्रजपुराधीशः सहदेवस्तु शङ्कितः।
भूत्वा कृताञ्जलिर्नीत्वा रत्नानि विविधानि च॥ २९

अनिरुद्धस्य पदयोः पपात भयविह्वलः।
अनिरुद्धस्ततस्तस्मै रत्नमालां ददौ मुदा॥ ३०

राज्ये कृत्वा च तं शीघ्रं शरणागतवत्सलः।
समन्वितो वृष्णिवरैर्जगाम कपिलाश्रमम्॥ ३१

स्नात्वा च तत्रैव यदुप्रवीरो
भागीरथीसागरसङ्गमे च।
विलोक्य सिद्धं कपिलं मुनीन्द्रं
स्वसेनया सोऽपि नमश्चकार॥ ३२

तत्र स्थानाद्दक्षिणस्यां सिन्धुतीरे च तस्य वै।
बभूवुः शिविरा राजन्नुच्चाः प्रासादसन्निभाः॥ ३३

शिविरेष्वनिरुद्धाद्या यादवास्तत्र सानुगाः।
चक्रुर्निवासं राजेन्द्र शूराः सर्वे जयैषिणः॥ ३४

राजेन्द्र! उस निष्कण्टक मार्गमें पैदल सिपाही भी तीव्रगतिसे चलते थे। यादव-सेनाके भारसे पीड़ित हो शेषनाग मन-ही-मन कहते थे—'न जाने भूतलपर क्या हो गया है?' नरेश्वर! अनिरुद्ध सेनाके आगे होकर अलक्षित भावसे चलते थे॥ २२-२३॥

वे अश्वकी रक्षाके बहाने पापियोंका विनाश-सा करते थे। राजन्! प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध अश्वकी रक्षाके लिये जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ वे श्रीकृष्णके समग्र यशका गान सुनते थे, जो लोग श्रीकृष्ण और बलरामकी प्रशंसा करते थे। उनको वे रत्न, वस्त्र और आभूषण बाँटते थे। उनकी सेनाओंमें जो कुछ भी उत्तम धन था, वह सब श्रीकृष्णकथासे आकृष्टचित्त हो वे प्रसन्नतापूर्वक दे डालते थे॥ २४—२६१/२॥

राजन्! इस प्रकार श्रीहरिका यशोगान सुनते और काशी तथा गया आदि तीर्थोंको देखते हुए वहाँ अनेक प्रकारके दान दे, वे पूर्वदिशाकी ओर चले गये। यादवोंकी ऐसी भयंकर सेना देखकर गिरिव्रजपुरके स्वामी जरासंधपुत्र सहदेव शङ्कित हो गये। वे नाना प्रकारके रत्नोंकी भेंट ले, भयसे विह्वल हो, दोनों हाथ जोड़कर अनिरुद्धके चरणोंमें गिर पड़े॥ २७—२९१/२॥

शरणागतवत्सल अनिरुद्धने सहदेवको प्रसन्नतापूर्वक रत्नमयी माला भेंट की और उन्हें उनके राज्यपर स्थापित करके शीघ्र ही श्रेष्ठ वृष्णिवंशी वीरोंके साथ वे कपिलाश्रमको गये। उन श्रेष्ठ यादव-वीरने वहाँ गङ्गा-सागर-सङ्गममें स्नान किया और सिद्ध मुनीन्द्र कपिलका दर्शन करके अपनी सेनासहित उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया॥ ३०—३२॥

राजन्! उस स्थानसे दक्षिण दिशामें समुद्रके तटपर महलोंके समान ऊँचे-ऊँचे शिविर लग गये। राजेन्द्र! उन शिविरोंमें अनुयायियोंसहित अनिरुद्ध आदि शूरवीर और विजयाभिलाषी समस्त यादवोंने निवास किया॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे तुरगार्थमुपद्वीपगमनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अश्वके लिये उपद्वीपमें गमन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

यादवोंद्वारा समुद्रपर बाणमय सेतुका निर्माण

श्रीगर्ग उवाच

अथानिरुद्धो यदुराट् प्रातःकाले विशां पते।
उद्धवं तु समाहूय प्राह गम्भीरया गिरा॥ १

कति दूरं पाञ्चजन्यं तन्ममाख्याहि सत्तम।
यस्मिन् मदीयो तुरगो नीतो दैत्येन वर्तते॥ २

इत्युदाहृतमाकर्ण्य मन्त्री कृष्णसुहृत्सखः।
मनसा कृष्णपादाब्जं स्मृत्वा प्रोवाच माधवम्॥ ३

प्रभो सर्वज्ञ भगवन्नहं त्वद्वाक्यगौरवात्।
कथयिष्यामि लोकेश यथा मार्गे श्रुतं तथा॥ ४

त्रिंशद्योजनविस्तीर्णात्सागरात्पारमेव च।
उपद्वीपं पाञ्चजन्यं दक्षिणेऽस्ति नृपेश्वर॥ ५

उद्धवस्य वचः श्रुत्वानिरुद्धो धन्विनां वरः।
बली धैर्यधरः क्रुद्धो प्राहेदं यदुपुङ्गवान्॥ ६

अनिरुद्ध उवाच

अहं यास्यामि पारं वै तस्माद्यादवसत्तमाः।
सेतुं कुरुत शीघ्रं तु सागरस्य शरैरपि॥ ७

इति तद्वचनं श्रुत्वा यादवा युद्धकोविदाः।
सागरे मुमुचुर्बाणान् प्रहसन्तः परस्परम्॥ ८

ततः सर्वे जलचरास्तीक्ष्णबाणैः प्रताडिताः।
कोलाहलं प्रकुर्वन्तो दुद्रुवुस्ते चतुर्दिशम्॥ ९

न केषां प्रगता बाणाः पारं वै सागरस्य च।
इति वै कथितं वाक्यं खस्थेन च सुरर्षिणा॥ १०

तदाक्रूरो हृदीकश्च सात्यकिश्चोद्धवो बली।
कृतवर्मा सारणश्चयुयुधानादयो नृप॥ ११

हेमाङ्गद इन्द्रनीलोऽनुशाल्वाद्याश्च भूपते।
गतमाना बभूवुर्वै नारदोक्तं निशम्य च॥ १२

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! तत्पश्चात् यादवराज अनिरुद्धने उद्धवजीको बुलाकर गम्भीर वाणीमें पूछा—'साधुशिरोमणे! पाञ्चजन्य द्वीप कितनी दूर है, जिसमें उस दैत्यने मेरा घोड़ा ले जाकर रखा है?'॥ १-२॥

उनका यह प्रश्न सुनकर श्रीकृष्णके मन्त्री, सुहृद् और सखा उद्धव मन-ही-मन श्रीकृष्णचरणारविन्दोंका चिन्तन करके यदुकुलनन्दन अनिरुद्धसे बोले—भगवन्! सर्वज्ञ! प्रभो! लोकेश! मैं आपकी बातका गौरव रखनेके लिये मार्गमें जैसा सुना है, वैसा बता रहा हूँ। नृपेश्वर! तीस योजन विस्तृत सागरके उस पार दक्षिण दिशामें 'पाञ्चजन्य' नामक उपद्वीप है॥ ३—५॥

उद्धवकी बात सुनकर बलवान्, धैर्यशाली तथा धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध रोष और उत्साहसे भरकर श्रेष्ठ यादव वीरोंसे बोले— ॥ ६॥

अनिरुद्धने कहा—श्रेष्ठतम वीर यादवो! मैं समुद्रके पार जाऊँगा। इसलिये तुमलोग शीघ्र ही बाणोंद्वारा समुद्रके ऊपर सेतुका निर्माण करो॥ ७॥

उनकी यह बात सुनकर युद्धकुशल यादव परस्पर हँसते हुए समुद्रके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब समस्त जलचर जन्तु तीखे बाणोंसे घायल हो चीत्कार करते हुए चारों दिशाओंमें भाग चले। देवर्षि नारद आकाशमें खड़े होकर यह सब कौतुक देख रहे थे। वे बड़े जोरसे बोले—'तुमलोगोंमेंसे किसीके बाण अभी समुद्रके पारतक नहीं पहुँचे हैं'॥ ८—१०॥

नरेश्वर! उस समय नारदजीकी बात सुनकर अक्रूर, हृदीक, युयुधान, सात्यकि, उद्धव, बलवान् कृतवर्मा और सारण आदि वीरों तथा हेमाङ्गद, इन्द्रनील और अनुशाल्व आदि भूपालोंका घमण्ड चूर-चूर हो गया॥ ११-१२॥

ततोऽनिरुद्धो बलवान् स्मरन् कृष्णपदाम्बुजम्।
प्रतिशार्ङ्गं गृहीत्वा वै दिव्यान् बाणान् मुमोच ह॥ १३

ततो दृष्ट्वा ऋषिः प्राह ह्यनिरुद्धशिलीमुखाः।
पारं गत्वा समुद्रस्य विविशुस्ते च तत्तटम्॥ १४

इति श्रुत्वा ऋषेर्वाक्यं साम्बदीप्तिमदादयः।
मुमुचुस्ते शरान् राजंस्तेषां पारं गताः शराः॥ १५

शरेषु च शरा राजन् कोटिशः कोटिशः किल।
विविशुर्वीक्ष्य सर्वेऽपि धन्विनो विस्मयं गताः॥ १६

चक्रुः सेतुं च ते सर्वे त्रिंशद्योजनलम्बितम्।
दृढं जलाच्चान्तरिक्षमेकयोजनविस्तृतम्॥ १७

बद्ध्वा ततश्च ते सेतुं चतुर्भिः प्रहरैरपि।
अनिरुद्धादयो रात्रौ सुषुपुः शिविरेषु वै॥ १८

तस्माद्वै पुत्रपौत्राणां कृष्णस्य परमात्मनः।
शूराणां कृष्णबिम्बानां किं बलं कथयाम्यहम्॥ १९

तब बलवान् अनिरुद्धने श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका चिन्तन करके शार्ङ्गधनुषके तुल्य कोदण्ड लेकर उसके द्वारा दिव्य बाण छोड़े। उन बाणोंको देखकर देवर्षि बोले—'अनिरुद्धके बाण समुद्रके पार जाकर उसकी तटवर्ती भूमिमें प्रविष्ट हो गये हैं'॥ १३-१४॥

राजन्! देवर्षिका यह वचन सुनकर साम्ब और दीप्तिमान् आदि यादवोंने भी बाण छोड़े। उनके भी वे बाण समुद्रके उस पार पहुँच गये। महाराज! यों करोड़ों बाण घुसते चले गये। यह देख समस्त धनुर्धर आश्चर्यचकित हो गये॥ १५-१६॥

इस प्रकार सब यादवोंने जलके ऊपर आकाशमें तीस योजन लंबा और एक योजन चौड़ा पुल तैयार कर दिया। चार पहरमें इतना बड़ा पुल बाँधकर अनिरुद्ध आदि यादव रात्रिके समय अपने शिविरोंमें सोये। अतः परमात्मा श्रीकृष्णके शूरवीर पुत्र-पौत्रोंके, जो श्रीकृष्णके ही प्रतिबिम्ब हैं, बलका मैं क्या वर्णन करूँ?॥ १७—१९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे सेतुबन्धनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'सेतु-बन्धन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

यादवोंका पाञ्चजन्य उपद्वीपमें जाना; दैत्योंकी परस्पर मन्त्रणा; मयासुरका बल्वलको घोड़ा लौटा देनेके लिये सलाह देना; परंतु बल्वलका युद्धके निश्चयपर ही अडिग रहना

श्रीगर्ग उवाच

कृत्वा तु शौचादिकमेव कर्म प्रभातकाले यदुनन्दनश्च।
जगाम पारं यदुभिश्च सिन्धो रामो यथा वै कपिभिर्नृपेन्द्र॥ १

ददृशुस्तत्र ते गत्वानिरुद्धाद्याश्च यादवाः।
उपद्वीपं पाञ्चजन्यं शतयोजनविस्तृतम्॥ २

राजते तत्र राजेन्द्र नाम्ना वै चासुरी पुरी।
विंशद्योजनविस्तीर्णा दैत्यवृन्दसमाकुला॥ ३

पुन्नागैर्नागचम्पैश्च तिलकैर्देवदारुभिः।
अशोकैः पाटलैराम्रैर्मन्दारैः कोविदारकैः॥ ४

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपेन्द्र! प्रातःकाल शौचादि-कर्म करके यदुनन्दन अनिरुद्ध यादवोंके साथ उसी प्रकार सागरके उस पार गये, जैसे पूर्वकालमें कपियोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी गये थे। वहाँ जाकर उन अनिरुद्ध आदि यादवोंने पाञ्चजन्य उपद्वीप देखा, जिसका विस्तार सौ योजन था॥ १-२॥

राजेन्द्र! उस उपद्वीपमें आसुरी पुरी शोभा पाती थी, जो बीस योजनतक फैली हुई थी। उसमें दैत्योंके समुदाय निवास करते थे। पुंनाग, नागकेसर, चम्पा, तिलक, देवदारु, अशोक, पाटल, आम, मन्दार, कोविदार,

निम्बजम्बूकदम्बैश्च प्रियालपनसैस्तथा।
सालैस्तालैस्तमालैश्च मल्लिकाजातियूथिकैः॥ ५

नीपैः कदम्बैर्बकुलैश्चम्पकैर्मदनाभिधैः।
शोभिता नगरी रम्या रत्नप्रासादसंयुता॥ ६

यदून् समागताञ्छ्रुत्वा मयं मायाविनं खलः।
प्रेषयामास गणितुं यादवानां महात्मनाम्॥ ७

स चापि शुकरूपेण गत्वा दृष्ट्वा यदूत्तमान्।
आगत्य स्वपुरीमध्ये बल्वलं विस्मितोऽब्रवीत्॥ ८

मय उवाच

कः करिष्यति संख्यां वै वृष्णीनां बलिनां नृप।
नियुतानां च नियुतकोटिनास्ते स कार्ष्णिजः॥ ९

सेतुं कृत्वा शरैः सिन्धोः प्राप्ताः सर्वे तवोपरि।
तेषां पश्य बलं राजन् देवविस्मयकारकम्॥ १०

सागरस्य शरैः सेतुं न दृष्टं न श्रुतं कृतम्।
वृद्धेन च मया राजंस्त्वदग्रेऽद्य विलोकितम्॥ ११

राघवेण पुरा सेतुं पाषाणैर्द्रुमवेष्टितम्।
स्वनाम्नश्च प्रतापेन लङ्काया निकटे कृतम्॥ १२

तत्सर्वं च मया दृष्टमद्य दृष्टं हि चाद्भुतम्।
श्रीकृष्णेन पुरा राजन् कंसाद्याः शकुनादयः॥ १३

मारिताः सङ्गरे दैत्या नृपाः सर्वे विनिर्जिताः।
कृष्णस्तु भगवान् साक्षाद् ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा॥ १४

गोलोकादागतो भूमौ भक्तानां रक्षणाय च।
अकृतानां च नाशाय कुशस्थल्यां विराजते॥ १५

तस्माद्यदूत्तमाः सर्वेऽनिरुद्धाद्या महाबलाः।
भीषणं च बकं जित्वा ह्यन्याञ्जित्वात्र चागताः॥ १६

निम्ब, जम्बू, कदम्ब, प्रियाल, पनस (कटहल), साल, ताल, तमाल, मल्लिका, जाति (चमेली), जूही, नीप, मौलश्री, चम्पक तथा मदन नामवाले वृक्ष एवं पुष्प उस रमणीय नगरीकी शोभा बढ़ाते थे। उसमें रत्नोंके महल बने हुए थे॥ ३—६॥

यादवोंका आगमन सुनकर दुष्ट बल्वलने महात्मा यादवोंकी सेनाकी गणना करनेके लिये मायावी मयको भेजा। उसने तोतेका रूप धारण करके वहाँ जाकर सब यादवोंको देखा और लौटकर अत्यन्त विस्मित हो पुरीके भीतर बल्वलसे कहा— ॥७-८॥

मय बोला—दैत्यराज! बलवान् वृष्णिवंशी योद्धाओंकी गणना कौन कर सकता है? जहाँ वे प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्ध लाख-लाख करोड़ सैनिकोंके साथ सुशोभित हैं। समस्त यादव समुद्रके ऊपर बाणोंसे सेतुका निर्माण करके तुम्हारे ऊपर चढ़ आये हैं। राजन्! देखो, उनकी सेना देवताओंको भी विस्मयमें डालनेवाली है॥ ९-१०॥

दैत्यराज! मैं बूढ़ा हो गया, परंतु आजतक सागरके ऊपर बाणोंका बना हुआ पुल न तो देखा था और न सुना ही था। आज तुम्हारे सामने ही यह देखनेको मिला है। रघुकुलशिरोमणि श्रीरामने पूर्वकालमें लङ्काके निकट जो सेतु-निर्माण किया था, वह पत्थरों और वृक्षोंसे बनाया गया था और उनके नामके प्रतापसे पानीके ऊपर प्रस्तर ठहर सके थे॥ ११-१२॥

वह सारा सेतु मैंने प्रत्यक्ष देखा था; परंतु आज जो देखा है, वह तो बहुत ही अद्भुत है। राजन्! पूर्वकालमें श्रीकृष्णने कंस आदि तथा शकुनि आदि दैत्योंको युद्धमें मारा था और समस्त राजाओंको परास्त कर दिया था। श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर वे अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये गोलोकसे भूमिपर पधारे हैं। वे दुष्ट पापियोंका विनाश करनेके लिये कुशस्थलीमें विराजमान हैं॥ १३—१५॥

इसीलिये अनिरुद्ध आदि महाबली समस्त श्रेष्ठ यादव भीषण, बक तथा अन्य नरेशोंको परास्त करके यहाँ आये हैं॥ १६॥

पुत्राः पौत्राश्च कृष्णस्य ज्ञातयश्च यदूत्तमाः।
आकाशं जेतुमिच्छन्ति का वार्ता भूतलस्य च॥ १७

अनिरुद्धाय तस्माद्वै तुरगं देहि बल्वल।
दैत्यानां हतशेषाणां कुलकौशल्यहेतवे॥ १८

ततोऽनिरुद्धाय हयं च दत्वा
सुरद्विषां वै सुखहेतवे च।
श्रीकृष्णचन्द्रं प्रभजंश्च भुङ्क्ष्व
राज्यं स्वकीयं तपसा नु लब्धम्॥ १९

एवं शुभैश्च वचनैर्बोध्यमानोऽपि बल्वलः।
निःश्वस्योवाच रोषेण मयं कृष्णपराङ्मुखः॥ २०

बल्वल उवाच

विना युद्धेन त्वं दैत्य कथं भीतो भविष्यसि।
वदिष्यसि ममाग्रे त्वं शूरहास्यकरं वचः॥ २१

त्वं बुद्धिबलहीनश्च वृद्धत्वाच्छठतां गतः।
तस्मात्त्वदीयं वचनं नाहं गृह्णामि साम्प्रतम्॥ २२

यदि कृष्णो हरिः साक्षादेते कृष्णस्य वंशजाः।
ममाग्रे शिवभक्तस्य किं करिष्यन्ति पौरुषम्॥ २३

भयं मा कुरु तस्मात्त्वं मायाः कुत्र गतास्तव।
अहं तवाश्रयेणापि युद्धं कर्तुं व्रजामि वै॥ २४

अनिरुद्धो महाशूरः शूराः किं न वयं स्मृताः।
स्थिते मयि महीमध्ये कोऽयं गर्वोऽभवन् महत्॥ २५

फलं गर्वस्य प्राप्नोतु मम निर्मुक्तसायकैः।
अद्य मे निशिता बाणा अनिरुद्धं च मानिनम्॥ २६

प्रकुर्वन्ति रणे दैत्य रक्ताङ्गं छिन्नकञ्चुकम्।
यथा किंशुकवृक्षं वै वसन्तदिवसाः किल॥ २७

दारयन्तु कपोलानि नाराचा मम हस्तिनाम्।
हयान् पश्यन्तु शतशो रुधिरौघपरिप्लुतान्॥ २८

श्रीकृष्णके पुत्र, पौत्र तथा जाति-भाई श्रेष्ठ यादव आकाशको भी जीतनेका हौसला रखते हैं, फिर भूतलपर विजय पानेकी तो बात ही क्या? अतः बल्वल! तुम मरनेसे बचे हुए दैत्योंकी भलाई और अपने कुलकी कुशलताके लिये अनिरुद्धको घोड़ा लौटा दो। देवद्रोही दैत्योंको सुख मिले, इस उद्देश्यसे अनिरुद्धको घोड़ा देकर श्रीकृष्णचन्द्रका भजन करते हुए तपस्यासे प्राप्त हुए अपने राज्यको भोगो॥ १७—१९॥

इस प्रकार शुभ वचनोंसे समझाये जानेपर भी श्रीकृष्णसे विमुख बल्वल लंबी साँस खींचकर मयसे रोषपूर्वक बोला—॥ २०॥

बल्वलने कहा—दैत्य! तुम बिना युद्धके ही कैसे भयभीत हो रहे हो, और मेरे सामने ऐसी बात बोल रहे हो जो शूरवीरोंके लिये हास्यजनक है। तुम बुढ़ापेके कारण बुद्धि और बल दोनोंसे हीन हो गये हो; इसलिये इस समय मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकता॥ २१-२२॥

यद्यपि श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं और ये यादव श्रीकृष्णके ही वंशज हैं, तथापि मैं शिवजीका भक्त हूँ। मेरे सामने ये क्या पुरुषार्थ करेंगे? इसलिये तुम भय न करो। तुम्हारी मायाएँ कहाँ चली गयीं? मैं तो तुम्हारे सहारे ही युद्ध करने जा रहा हूँ॥ २३-२४॥

अनिरुद्ध बड़े शूरवीर हैं तो क्या हमलोग शौर्यसे सम्पन्न नहीं हैं? मेरे रहते इस भूमण्डलमें यादवोंका यह बड़ा भारी गर्व क्या है? मेरे धनुषसे छूटे हुए सायकोंद्वारा अनिरुद्ध अपनी वीरताके गर्वका फल प्राप्त करें॥ २५$^{1}/_{2}$॥

दैत्यप्रवर! आज रणभूमिमें मेरे तीखे बाण मानी अनिरुद्धको उसके कवचको छिन्न-भिन्न करके रक्तसे वैसे ही लथपथ कर देंगे, जैसे वसन्तकालीन पलाशवृक्ष पुष्पित होनेपर रक्तवर्णका हो जाता है। आज मेरे बाण हाथियोंके गण्डस्थलोंका भेदन करें तथा [बाणोंसे छिन्न-भिन्न] रक्तरंजित सैकड़ों घोड़ोंको [आप सभी] देखें॥ २६—२८॥

पिबन्तु योगिनीवृन्दा रुधिराणि नृमस्तकैः।
काली भवतु सन्तुष्टा मद्वैरिक्रव्यभक्षणैः॥ २९

मम बाहुबलं सर्वे पश्यन्तु सुभटाः किल।
महाकोदण्डनिर्मुक्तभल्लकोटीर्विमुञ्चतः ॥ ३०

आज योगिनियोंके झुंड मनुष्योंकी खोपड़ियोंसे जी भरकर रक्तपान करें। मेरे वैरियोंके कच्चे मांसको चबाकर आज महाकाली संतुष्ट हो जायँ। अपने महान् कोदण्डसे करोड़ों भल्लोंकी वर्षा करते हुए मुझ वीरके बाहुबलको समस्त सुभट प्रत्यक्ष देखें॥ २९-३०॥

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य मयो मायी महामतिः।
जानन् कृष्णस्य माहात्म्यं मदान्धं चेदमब्रवीत्॥ ३१

बल्वलकी यह बात सुनकर महाबुद्धिमान् मायावी मय श्रीकृष्णके माहात्म्यको जाननेके कारण उस मदान्ध दैत्यसे इस प्रकार बोला— ॥ ३१ ॥

मय उवाच

यदा विजेष्यसि रणे कृष्णपुत्रांश्च यादवान्।
आगमिष्यति श्रीकृष्णो जेतुं त्वां वा बलश्च वै॥ ३२

मयने कहा—जब तुम रणक्षेत्रमें श्रीकृष्णके पुत्रों एवं यादवोंको जीत लोगे तब तुम्हें परास्त करनेके लिये श्रीकृष्ण अथवा बलराम यहाँ पदार्पण करेंगे॥ ३२॥

इति श्रुत्वा महादैत्यः सत्यं हितकरं वचः।
कालपाशेन सम्बद्धो न जग्राह रुषा ज्वलन्॥ ३३

मयकी बात सच्ची और हितकारक थी तो भी कालपाशसे बँधे हुए उस महादैत्यने उसे सुनकर भी नहीं स्वीकार किया; उलटे वह रोषसे जल उठा॥ ३३॥

बल्वल उवाच

ममारी रामकृष्णौ च शत्रवो वृष्णयश्च मे।
तान् सर्वान् मारयिष्यामि यैर्मे मित्राश्च मारिताः॥ ३४

हत्वा च यादवानत्र पश्चाद्यज्ञं करोम्यहम्।
तस्य दिग्विजयेनापि विजेष्यामि हरेः पुरीम्॥ ३५

बल्वलने कहा—बलराम और श्रीकृष्ण मेरे शत्रु हैं। समस्त वृष्णिवंशी यादव मेरे वैरी हैं। जिन्होंने मेरे मित्रोंको मारा है, मैं उन सबको मौतके घाट उतार दूँगा। यहाँ यादवोंका वध करके पीछे मैं भी यज्ञ करूँगा और उस यज्ञके दिग्विजय-प्रसङ्गमें मैं द्वारका-पुरीपर विजय पाऊँगा॥ ३४-३५॥

मय उवाच

मानं मा कुरु दैत्येन्द्र कालरूपस्तुरङ्गमः।
प्राप्तस्तव पुरे हन्तुं हतशेषान् महासुरान्॥ ३६

अनिरुद्धशराः सर्वे सद्यस्तव पुरीं नृप।
छिन्नां भिन्नां शूरहीनां करिष्यन्ति न संशयः॥ ३७

मय बोला—दैत्यराज! घमंड न करो। यह कालरूपी घोड़ा तुम्हारे नगरमें आया है। अबतक मरनेसे जो बच गये हैं, उन महान् असुरोंको मरवा डालनेके लिये ही इसका यहाँ पदार्पण हुआ है। असुरेश्वर! अनिरुद्धके समस्त बाण इसी क्षण तुम्हारी पुरीको छिन्न-भिन्न तथा शूरवीरोंसे हीन कर डालेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ३६-३७॥

हिरण्याक्षादयो दैत्या रावणाद्या निशाचराः।
मारिता येन सः कृष्णो जातो यदुकुले श्रुतम्॥ ३८

किञ्चिद्राज्यस्य मानेन त्वं न जानासि बल्वल।
प्रयच्छ तुरगं तस्मै न युद्धसमयोऽस्ति हि॥ ३९

जिन्होंने हिरण्याक्ष आदि दैत्यों तथा रावण आदि निशाचरोंको कालके गालमें भेजा था, वे ही श्रीकृष्ण यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं, ऐसा मैंने सुना है। बल्वल! इस छोटेसे राज्यके अभिमानमें आकर तुम उन्हें नहीं जानते हो। मेरे कहनेसे घोड़ा अनिरुद्धको दे दो। यह हमारे लिये युद्धका समय नहीं है॥ ३८-३९॥

बल्वल उवाच

अहं जानामि त्वद्वार्तां युद्धं तैर्न करिष्यसि।
अनिरुद्धं गच्छ तस्मात्त्वं विभीषणवत्किल॥ ४०

श्रीगर्ग उवाच

बल्वलस्य वचः श्रुत्वा मयो मायाविदां वरः।
प्रतिव्योढुं तत्र दुःखमिदमेवान्वपद्यत॥ ४१

वैरभावेन पूर्वं वै वैकुण्ठं बहवो गताः।
निशाचराश्च दैत्याश्च तं भावं यः करोति हि॥ ४२

इत्थं विचार्य सहसा स उवाच महासुरम्।

मय उवाच

अद्य त्वां च महावीरं न निषेधं करोम्यहम्॥ ४३

युद्धं कुरु रणे गत्वा यदून् मारय सायकैः।
अहमेव करिष्यामि युद्धं त्वद्वाक्यतो मृधे।
इत्युक्त्वा वचनं सोऽपि विरराम प्रहर्षयन्॥ ४४

ऊर्ध्वकेशो नदः सिंहः कुशाम्बाद्याश्च मन्त्रिणः।
ऊचुः प्रकुपिताः सर्वे चत्वारो बल्वलं नृप॥ ४५

मन्त्रिण ऊचुः

पूर्वं वयं गमिष्यामो हन्तुं सर्वान् यदूत्तमान्।
बहुभिर्दिवसै राजन् सङ्ग्रामं न कृतं यतः॥ ४६

चिन्तां मा कुरु राजेन्द्र मयदैत्येन संयुतः।
क्षणेन मारयिष्यामः कोटिशः कोटिशो नरान्॥ ४७

श्रीगर्ग उवाच

तेषां भाषितमाकर्ण्य बल्वलस्तु मुदान्वितः।
चकाराज्ञां नृपश्रेष्ठ रणार्थे रणकोविदः॥ ४८

बल्वल बोला—मैं तुम्हारी बात समझता हूँ। तुम यादवोंके साथ युद्ध नहीं करोगे। इसलिये पूर्वकालमें जैसे रावणका भाई विभीषण श्रीरामके पास चला गया था, उसी प्रकार तुम भी अनिरुद्धके पास चले जाओ॥ ४०॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! बल्वलकी यह बात सुनकर मायावियोंमें श्रेष्ठ मयने वहाँ अपने मानसिक दुःखको दूर करनेके लिये इस प्रकार विचार किया—'पूर्वकालमें वैरभावसे भगवच्चिन्तन करनेके कारण बहुत-से निशाचर और दैत्य वैकुण्ठधामको जा पहुँचे। अतः जो भी उस भावको अपने हृदयमें स्थान देता है, उसकी अवश्य उत्तम गति होती है।' ऐसा विचार करके मयासुरने सहसा उस महान् असुरसे कहा—॥ ४१—४२१/२॥

मयासुर बोला—बल्वल! तुम महान् वीर हो। अब मैं तुम्हें युद्धसे नहीं रोकूँगा। तुम रणभूमिमें जाकर युद्ध करो और अपने सायकोंसे यादवोंको मार डालो। अब मैं भी तुम्हारे कहनेसे संग्रामभूमिमें जाकर युद्ध ही करूँगा॥ ४३१/२॥

—ऐसा कहकर बल्वलको हर्ष प्रदान करता हुआ मयासुर मौन हो गया। राजन्! तब ऊर्ध्वकेश, नद, सिंह और कुशाम्ब आदि चार मन्त्रियोंने अत्यन्त कुपित होकर बल्वलसे कहा—॥ ४४-४५॥

मन्त्री बोले—दैत्यराज! पहले हमलोग समस्त श्रेष्ठ यादवोंका वध करनेके लिये युद्धके मुहानेपर जायँगे; क्योंकि हमें बहुत दिनोंसे संग्राम करनेका अवसर नहीं मिला है। राजेन्द्र! चिन्ता मत करो। हमलोग मयदैत्यके साथ रहकर कोटि-कोटि मनुष्योंको क्षणभरमें मार गिरायेंगे॥ ४६-४७॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! उन मन्त्रियोंका भाषण सुनकर बल्वलको बड़ी प्रसन्नता हुई। उस रणकोविद दैत्यने उन्हें युद्ध करनेके लिये आज्ञा दे दी॥ ४८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे दैत्यमन्त्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'दैत्योंकी मन्त्रणाका वर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

यादवों और असुरोंका घोर संग्राम तथा ऊर्ध्वकेश एवं अनिरुद्धका द्वन्द्वयुद्ध

श्रीगर्ग उवाच

अथ युद्धाय राजेन्द्र चत्वारः किल मन्त्रिणः।
दैत्यकोटिसमायुक्ता निर्जग्मुर्दंशिताः पुरात्॥ १

सर्वे हि धन्विनः शूरा विद्याधरसमाः किल।
खड्गैः शूलैर्गदाभिश्च परिघैर्मुद्गरैर्नृप॥ २

एकघ्नीभिर्दशघ्नीभिः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः।
कुन्तैश्च भिन्दिपालैश्च चक्रसायकशक्तिभिः॥ ३

संयुताः सर्वशस्त्रैश्च लौहकञ्चुकमण्डिताः।
रथैर्गजैस्तुरङ्गैश्च गवयैर्महिषैर्मृगैः॥ ४

उष्ट्रैः खरैः सूकरैश्च वृकैः सिंहैश्च क्रोष्टुभिः।
महागृध्रैः कङ्कचिल्लैर्मकरैश्च तिमिङ्गिलैः॥ ५

एतैश्च वाहनै राजन् संयुक्ता रणकर्कशाः।
शङ्खदुन्दुभिनादेन वीराणां गर्जनेन च॥ ६

शतघ्नीनां च शब्देन चचाल वसुधा भृशम्।
इत्थं भयङ्करीं सेनामसुराणां विलोक्य च॥ ७

भयं प्रापुः सुराः सर्वे महेन्द्रधनदादयः।
यादवास्तेऽपि बलिनो निर्जिता यैश्च भूः पुरा॥ ८

विषण्णमनसोऽभूवन् दैत्यसेनां निरीक्ष्य च।
प्रद्युम्नेन राजसूये चन्द्रावत्यां पुरा नृप॥ ९

यादवेभ्यः प्रकथितं यन्नीतिधैर्यवर्धनम्।
तत्सर्वं कथयामास यदुभ्यः कार्ष्णिजः पुनः॥ १०

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा च यदवः शस्त्राणि जगृहुस्त्वरम्।
मृत्युं वरं मन्यमाना विजयाच्च पलायनात्॥ ११

ततः समभवद्युद्धं दैत्यानां यदुभिः सह।
पाञ्चजन्ये च लङ्कायां रक्षसां कपिभिर्यथा॥ १२

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर ऊर्ध्वकेश आदि चारों मन्त्री कवच बाँधकर करोड़ों दैत्योंकी सेनाके साथ युद्धके लिये नगरसे बाहर निकले। नरेश्वर! वे सब-के-सब धनुर्धर तथा विद्याधरोंके समान शौर्यसम्पन्न थे॥ १$^{1}/_{2}$॥

लोहेका कवच बाँधकर खड्ग, शूल, गदा, परिघ, मुद्गर, एकघ्नी, दशघ्नी, शतघ्नी, भुशुण्डी, भाले, भिन्दिपाल, चक्र, सायक, शक्ति आदि सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे। हाथी, घोड़े, रथ, नीलगाय, भैंस, मृग, ऊँट, गधे, सूअर, भेड़िये, सिंह, सियार, बड़े-बड़े गीध, कंक, चील, मगर और तिमिङ्गल—इन वाहनोंपर चढ़कर वे रणकर्कश दैत्य युद्धके मैदानमें उतरे॥ २—५$^{1}/_{2}$॥

उस समय शङ्ख और दुन्दुभियोंके नादसे, वीरोंकी सिंहगर्जनासे और शतघ्नियों (तोपों)-की आवाजसे धरती बार-बार हिलने लगी। असुरोंकी ऐसी भयंकर सेना देखकर महेन्द्र, कुबेर आदि सब देवता भयभीत हो गये॥ ६—७$^{1}/_{2}$॥

जिन्होंने अनेक बार भूतलपर विजय पायी थी, वे बलवान् यादव भी दैत्योंकी सेना देखकर मन-ही-मन विषादका अनुभव करने लगे। पहले प्रद्युम्नने राजसूय-यज्ञके अवसरपर चन्द्रावती नगरीमें जो यादवोंके प्रति नीति और धैर्य बढ़ानेवाली बात कही थी, वह सब प्रद्युम्नकुमारने पुनः उनके समक्ष दुहरायी॥ ८—१०॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर यादवोंने तुरंत अस्त्र-शस्त्र उठा लिये। उन्होंने उसके द्वारा जीते जाने और भागनेकी अपेक्षा मौतको श्रेष्ठ माना। फिर तो दैत्योंका यादवोंके साथ उस 'पाञ्चजन्य' नामक उपद्वीपमें घोर युद्ध होने लगा। ठीक उसी तरह, जैसे पहले लङ्कामें निशाचरोंका वानरोंके साथ युद्ध हुआ था॥ ११-१२॥

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः पत्तयो मृधे।
हया हयैरिभाश्चेभैर्युयुधुस्ते परस्परम्॥ १३

केचिद्वै दन्तिनो मत्ताः शुण्डादण्डैरितस्ततः।
जघ्नू रथांस्तुरङ्गांश्च वीरान् राजन् महामृधे॥ १४

शुण्डादण्डैः सङ्गृहीत्वा रथान् साश्वान् ससारथीन्।
निपात्य भूमावुत्थाप्य गगने चिक्षिपुर्बलात्॥ १५

कांश्चिन्ममर्दुः पादाभ्यां संविदार्य करैर्दृढैः।
सक्षताश्च गजा राजन् प्रधावन्तो रणाङ्गणात्॥ १६

तुरगास्तत्र धावन्तः सवीरास्ते नृपेश्वर।
उल्लङ्घयन्तश्च रथान् प्रोत्पतन्तो गजान् प्रति॥ १७

अम्बष्ठं गजिनं युद्धे मर्दयन्तश्च सिंहवत्।
उत्पतन्तश्च तुरगा गजवृन्दं महाबलाः॥ १८

असिप्रहारं कुर्वन्तो विदार्य च रिपून् बहून्।
वाजिपृष्ठे न दृश्यन्ते ते दृश्यन्ते नटा इव॥ १९

केचिद्वीरास्तु खड्गैश्च द्विधाकुर्वंस्तुरङ्गमान्।
केचिद् दन्तान् सङ्गृहीत्वा कुम्भेषु करिणां गताः॥ २०

तुरगस्थाः केऽपि बलं संविदार्य विनिर्गताः।
खड्गवेगैः कञ्जवनं लीलाभिर्वायवो यथा॥ २१

बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम्।
बाणैर्गदाभिः परिघैः खड्गैः शूलैश्च शक्तिभिः॥ २२

युद्धे गजाश्च गर्जन्ति हर्षन्ति तुरगा भृशम्।
हा हा वीराः प्रकुर्वन्ति नदन्ति रथनेमयः॥ २३

सैन्यपादरजोवृन्दैरन्धीभूतं नभोऽभवत्।
तत्र स्वीयो न पारक्यो दृश्यते च मृधाङ्गणे॥ २४

वहाँ युद्धमें रथियोंके साथ रथी, पैदलोंके साथ पैदल, घोड़ोंके साथ घोड़े और हाथियोंके साथ हाथी—सभी आपसमें जूझने लगे। राजन्! उस महासमरमें कितने ही मतवाले हाथियोंने अपने शुण्डदण्डसे रथोंको चकनाचूर कर दिया तथा घोड़ों और पैदल-वीरोंको मार गिराया॥ १३-१४॥

घोड़ों और सारथियों सहित रथोंको सूँड़में लपेटकर वे धरतीपर गिरा देते और फिर बलपूर्वक उठाकर आकाशमें फेंक देते थे। राजन्! कितने ही क्षत-विक्षत गजराज समराङ्गणसे बाहर भाग रहे थे। उन्होंने कितनोंको अपनी सुदृढ़ सूँड़ोंसे विदीर्ण करके दो पैरोंसे मसल डाला॥ १५-१६॥

नृपेश्वर! वीर सवारोंसहित घोड़े वहाँ दौड़ते हुए रथोंको लाँघ जाते और उछलकर हाथियोंपर चढ़ जाते थे। वे सिंहकी भाँति युद्धमें महावत और हाथीसवारको रौंदते जाते थे। महाबली अश्व उछलते हुए हाथियोंकी सेनामें घुस जाते और उनके सवार खड्गप्रहार करके बहुत-से शत्रुओंको विदीर्ण कर डालते थे। वे नटोंकी भाँति कभी तो घोड़ोंकी पीठपर नहीं दिखायी देते और कभी दिखायी देते थे॥ १७—१९॥

कितने ही वीर खड्गसे घोड़ोंके दो टुकड़े कर डालते और कितने ही हाथियोंके दाँत पकड़कर उनके कुम्भस्थलोंपर चढ़ जाते थे। कितने ही घुड़सवार योद्धा भी तलवारोंको बड़े वेगसे चलाकर शत्रुसेनाको विदीर्ण करते हुए बाहर निकल जाते थे, जैसे हवा कमलोंके वनमें समाकर अनायास ही निकल जाती है॥ २०-२१॥

उन दोनों सेनाओंमें बाणों, गदाओं, परिघों, खड्गों, शूलों और शक्तियोंद्वारा अद्भुत तथा रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध होने लगा। उस युद्धके मैदानमें हाथी चिग्घाड़ते और घोड़े जोर-जोरसे हिनहिनाते थे। बहुत-से पैदल वीर हाय-हाय करते और रथोंकी नेमियाँ (पहियोंके ऊपरी भाग) घरघराहट पैदा करती थीं॥ २२-२३॥

सेनाके पैरोंकी धूलराशिसे आकाश अन्धा-सा हो गया था। वहाँ समराङ्गणमें कोई अपना-पराया नहीं सूझता था॥ २४॥

परस्परं च बाणौघैः केचिद्वीरा द्विधा कृताः।
तिर्यग्भूता रथा युद्धे निपेतुः पादपा इव।
वीरोपरि गता वीरा हयोपरि हयाश्च वै॥ २५

उत्पेतुस्तत्र शूराणां कबन्धाश्च भयङ्कराः।
पातयन्तः खड्गहस्ता हयान् वीरान् महारणे॥ २६

हस्तिनां भिन्नकुम्भानां मौक्तिकानि पतन्ति खात्।
शस्त्रान्धकारे प्रधने रात्रौ तारागणा इव॥ २७

ततश्च सेनयोर्मध्ये रुधिराणां नदी ह्यभूत्।
वेतालाः शिवमालार्थं जगृहुस्ते शिरांसि च॥ २८

मृगेन्द्रस्था महाकाली डाकिनीभिः समागता।
कपालेनापि रुधिरं पिबन्ती दृश्यते मृधे॥ २९

डाकिन्यो रुधिरं तप्तं पाययन्त्यः सुतान् मृधे।
मा रोदीरिति वादिन्यो नेत्राण्यपि तदामृजन्॥ ३०

विद्याधर्यस्त्वम्बरस्था गन्धर्व्योऽप्सरसस्तथा।
क्षत्रधर्मस्थिताञ्छूरान् वव्रिरे देवरूपिणः॥ ३१

परस्परं कलिरभूत्तासां पत्यर्थमम्बरे।
ममानुरूपो नायं व इति विह्वलचेतसाम्॥ ३२

केऽपि शूरा धर्मपरा रणाद्राजन्न चालिताः।
जग्मुस्ते वैष्णवं लोकं भित्त्वा तपनमण्डलम्॥ ३३

केचिद्वीरा महायुद्धं दृष्ट्वा युद्धात्पलायिताः।
तप्तबालुकमार्गेण जग्मुस्ते निरयं नृप॥ ३४

एवं दैत्यान् महावीराञ्जघ्नुः सर्वे यदूत्तमाः।
तथा यदून् महायुद्धे नानाशस्त्रैश्च दानवाः॥ ३५

रणे मृत्युं गताः सर्वे राजन् दैत्याश्च कोटिशः।
तथा मृत्युं गता युद्धे यादवाश्च सहस्रशः॥ ३६

परस्पर बाणसमूहोंकी वर्षासे कितने ही वीरोंके दो-दो टुकड़े हो गये थे। युद्धस्थलमें टेढ़े हुए रथ वृक्षोंकी भाँति गिर पड़ते थे। वीरोंके ऊपर वीर और घोड़ोंके ऊपर घोड़े गिरे थे। उस युद्धके मैदानमें शूरवीरोंके भयंकर कबन्ध उछल रहे थे। वे उस महासमरमें खड्गहस्त हो घोड़ों और वीरोंको धराशायी कर रहे थे। वहाँ शस्त्रोंके प्रहारसे घना अन्धकार छा गया था। हाथियोंके कुम्भस्थल फट जानेसे उनके भीतरी छिद्रसे [गोल-गोल] मोती गिर रहे थे, मानो रातमें आकाशसे तारागण बिखर रहे हों॥ २५—२७॥

तदनन्तर दोनों सेनाओंमें रक्तकी नदी बह चली और वेतालगण भगवान् शिवकी माला बनानेके लिये कटे हुए मुण्डोंका संग्रह करने लगे। सिंहवाहिनी महाकाली डाकिनियोंके साथ युद्धस्थलमें आकर खप्परसे रक्तपान करती हुई दिखायी देती थीं॥ २८-२९॥

डाकिनियाँ भी वहाँ अपने बच्चोंको गरम-गरम रक्त पिलातीं और 'मत रोओ, चुप रहो'—ऐसा कहती हुई उनके नेत्र पोंछती थीं। विद्याधरियाँ, गन्धर्वियाँ और अप्सराएँ आकाशमें खड़ी हो, क्षत्रियधर्ममें स्थित रहकर वीरगतिको पानेवाले देवरूपधारी शूरवीरोंका वरण करती थीं॥ ३०-३१॥

उनमें परस्पर पतिके लिये झगड़ा हो जाता था। वे आकाशमें विह्वलचित्त होकर एक-दूसरीसे कहतीं—'यह वीर तो मेरे ही योग्य है, तुम्हारे योग्य नहीं'। राजन्! कितने ही धर्मपरायण शूरवीर युद्धभूमिसे विचलित नहीं हुए और वीरगतिको प्राप्त हो सूर्यमण्डलका भेदन करके विष्णुधाममें चले गये॥ ३२-३३॥

नरेश्वर! कितने ही वीर उस महायुद्धको देखकर रणभूमिसे भागते हुए मारे गये। वे यमलोकके तप्त-बालुकावाले मार्गसे नरकमें गये। इस प्रकार समस्त यदुकुलशिरोमणि वीरोंने महान् दैत्यवीरोंका संहार कर डाला। इसी तरह उस महायुद्धमें दानवोंने भी नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा यादव-सैनिकोंको भी कालके गालमें भेज दिया॥ ३४-३५॥

राजन्! करोड़ोंकी संख्यामें युद्धके लिये आये हुए समस्त दैत्य उस समराङ्गणमें मृत्युके ग्रास बन गये तथा सहस्रों यादव भी रणभूमिमें मारे गये॥ ३६॥

बाणान्धकारे सञ्जातेऽनिरुद्धो धन्विनां वरः।
ऊर्ध्वकेशेन युयुधे यथा वृत्रेण वासवः॥ ३७

नदेन च गदो राजन् सिंहेन वृक एव च।
कुशाम्बेन च साम्बो वै युयुधे रणमण्डले॥ ३८

एवं परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं महत्।
ऊर्ध्वकेशस्तदा राजन् धनुष्टङ्कारयन् मुहुः॥ ३९

कार्ष्णिजं ताडयामास नाराचैर्दशभिर्मृधे।
तान् प्रचिच्छेद भगवान् धन्वी रुक्मवतीसुतः॥ ४०

ऊर्ध्वकेशः पुनस्तस्य कवचे सायकान् दश।
निचखान स्वर्णपुङ्खान् भित्त्वा वर्म तनौ गतान्॥ ४१

चतुर्भिश्च शरैस्तस्य जघान चतुरो हयान्।
चिच्छेद बाणैर्विंशद्भिः कोदण्डं सगुणं परम्॥ ४२

अनिरुद्धस्य राजेन्द्र बल्वलस्यानुगो बली।
अनिरुद्धस्तु तं त्यक्त्वा रथं चान्यं समारुहत्॥ ४३

शक्रदत्तं नृपश्रेष्ठ प्रतिशार्ङ्गधरो महान्।
कृष्णदत्ते च कोदण्डे शरमेकं निधाय च॥ ४४

तद्रथे निचखानाथ रुषाढ्यो हस्तलाघवात्।
सायकस्तद्रथं नीत्वा भ्रामयित्वा घटीद्वयम्॥ ४५

गगनात्पातयामास काचपात्रं यथार्भकः।
अङ्गारवद्रथस्तस्य विशीर्णोऽभूद्धयाश्च वै॥ ४६

ससूताश्च नृपश्रेष्ठ पञ्चतां प्रापुरग्रतः।
ऊर्ध्वकेशस्तु पतनान्मूर्च्छितोऽभूद्रणाङ्गणे॥ ४७

जब वहाँ बाण-वर्षासे अन्धकार छा गया, तब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध ऊर्ध्वकेशके साथ उसी प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे वृत्रासुरके साथ इन्द्रने किया था। नृपेश्वर! नदके साथ गद, सिंहके साथ वृक और कुशाम्बके साथ साम्ब उस समराङ्गणमें लोहा लेने लगे। इस प्रकार उनमें परस्पर बड़ा भारी तुमुल युद्ध छिड़ गया॥ ३७—३८$^{1}/_{2}$॥

महाराज! उस समय बारंबार धनुष टंकारते हुए ऊर्ध्वकेशने युद्धस्थलमें प्रद्युम्नकुमारको दस नाराच मारे। परंतु श्रेष्ठ धनुर्धर रुक्मवतीनन्दन भगवान् अनिरुद्धने उन सबको काट गिराया॥ ३९-४०॥

तब ऊर्ध्वकेशने पुनः उनके कवचपर दस बाण मारे। वे सभी सोनेके पंखोंसे विभूषित थे और अनिरुद्धका कवच काटकर उनके शरीरमें घुस गये थे। फिर उसने चार बाणोंसे उनके चार घोड़ोंको मार गिराया। बीस बाणोंद्वारा प्रत्यञ्चासहित उनके श्रेष्ठ धनुषको खण्डित कर दिया। राजेन्द्र! बल्वलके उस बलवान् सेवकने जब अनिरुद्धके रथको बेकार कर दिया, तब वे उस रथको छोड़कर दूसरे रथपर आरूढ़ हो गये॥ ४१—४३॥

नृपश्रेष्ठ! वह रथ इन्द्रका दिया हुआ था। उसपर चढ़कर महान् वीर अनिरुद्धने 'प्रतिशार्ङ्ग' नामक धनुष हाथमें लिया। श्रीकृष्णके दिये हुए उस कोदण्डपर एक बाण रखकर रोषसे भरे हुए प्रद्युम्नकुमारने हाथकी फुर्ती दिखाकर ऊर्ध्वकेशके रथपर चलाया। उस सायकने ऊर्ध्वकेशके रथको ऊपर ले जाकर दो घड़ीतक घुमाया॥ ४४-४५॥

फिर जैसे कोई बालक शीशेका बर्तन पटक देता है, उसी प्रकार उसे आकाशसे पृथ्वीपर गिरा दिया। ऊर्ध्वकेशका रथ अङ्गारकी तरह बिखर गया। नृपश्रेष्ठ! सारथिसहित उसके घोड़े भी उसके सामने ही पञ्चत्वको प्राप्त हो गये। ऊर्ध्वकेश आकाशसे गिरनेके कारण समराङ्गणमें मूर्च्छित हो गया॥ ४६-४७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे यादवासुरसङ्ग्रामवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यादवों तथा असुरोंके संग्रामका वर्णन' नामक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

ऊर्ध्वकेश और अनिरुद्धका तथा नद और गदका घोर युद्ध; ऊर्ध्वकेश और नदका वध

श्रीगर्ग उवाच

तदोत्थितश्चोर्ध्वकेशो रथं चान्यं समाश्रितः।
अनिरुद्धस्य सङ्ग्रामे यावदायाति सम्मुखम्॥ १

तावद्‌बभञ्ज निशितैर्नाराचैस्तद्रथं पुनः।
स भग्नं स्यन्दनं दृष्ट्वा पुनरन्यं समाश्रितः॥ २

सोऽपि भग्नः शरैराशु कार्ष्णिजेन रणे नृप।
एवं नव रथा भग्ना ऊर्ध्वकेशस्य वै रणे॥ ३

ततः क्रुद्धो रणे दैत्यः शक्तिं चिक्षेप सत्वरम्।
दृष्ट्वा तामागतां वीरो नाराचैर्दशधाच्छिनत्॥ ४

ऊर्ध्वकेशस्तदा संख्ये स्थित्वा रुक्ममये रथे।
आजगाम स वेगेनानिरुद्धं प्रतियोधितुम्॥ ५

कार्ष्णिजं पञ्चभिर्बाणैस्ताडयामास हर्षितः।
शरैस्तैर्निहतः सोऽपि कश्मलं परमं गतः॥ ६

सङ्क्रुद्धो धनुरुद्यम्य चित्रवाजाञ्छरान् दश।
मुमोच हृदये तस्य सहसा हस्तलाघवात्॥ ७

शरास्ते पपुरेतस्य रुधिरं बहुदारुणाः।
पीत्वा पेतुर्यथा भूमौ कूटसाक्ष्यस्य पूर्वजाः॥ ८

ऊर्ध्वकेशः पुनः क्रुद्धः तिष्ठ तिष्ठेति च ब्रुवन्।
बाणैस्तु दशसंख्यैश्च तताड तस्य मूर्धनि॥ ९

सायकास्तेऽनिरुद्धस्य ह्युष्णीषे परिनिष्ठिताः।
विराजन्ते स्म राजेन्द्र दशशाखास्तरोरिव॥ १०

न विव्यथे स तैर्बाणैर्युद्धे रुक्मवतीसुतः।
यथा पुष्पैश्च प्रहतो द्विरदो नृपसत्तम॥ ११

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! तब ऊर्ध्वकेश मूर्च्छासे उठकर, दूसरे रथपर आरूढ़ हो ज्यों-ही अनिरुद्धके सामने संग्रामके लिये आया, त्यों-ही उन्होंने अपने तीखे नाराचोंसे उसके रथके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। नरेश्वर! रथको टूटा देख उसने पुनः दूसरे रथका आश्रय लिया। परंतु प्रद्युम्नकुमारने रणभूमिमें तत्काल ही बाण मारकर उसके उस रथको भी खण्डित कर दिया। इस प्रकार समराङ्गणमें ऊर्ध्वकेशके नौ रथ अनिरुद्धके द्वारा तोड़े गये॥ १—३॥

तब उस दैत्यने कुपित होकर रणक्षेत्रमें अनिरुद्धपर तीव्रगतिसे शक्तिका प्रहार किया। उस शक्तिको अपने ऊपर आती देख वीर अनिरुद्धने अनेक नाराचोंसे उसके दस टुकड़े कर डाले। तब युद्धस्थलमें सुवर्णमय रथपर आरूढ़ हो ऊर्ध्वकेश अनिरुद्धका सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आया॥ ४-५॥

आते ही हर्षोत्साहसे भरकर उसने अनिरुद्धको पाँच बाणोंसे घायल कर दिया। उन बाणोंके आघातसे अनिरुद्धको बड़ी वेदना हुई। तब कुपित हुए अनिरुद्धने धनुष उठाकर सहसा हाथकी फुर्ती दिखाते हुए ऊर्ध्वकेशकी छातीमें विचित्र पाँखवाले दस बाण मारे। उन अत्यन्त दारुण बाणोंने उसका रक्त पी लिया और पीकर उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े, जैसे झूठी गवाही देनेवालोंके पूर्वज नरकमें गिरते हैं॥ ६—८॥

तदनन्तर पुनः कुपित हुए ऊर्ध्वकेशने 'खड़ा रह, खड़ा रह'—ऐसा कहते हुए दस बाणोंद्वारा अनिरुद्धके मस्तकपर प्रहार किया। राजेन्द्र! वे दसों बाण अनिरुद्धकी पगड़ीमें गड़ गये और वृक्षकी दस शाखाओंके समान शोभा पाने लगे॥ ९-१०॥

नृपश्रेष्ठ! जैसे फूलोंद्वारा प्रहार करनेपर हाथीको कोई पीड़ा नहीं होती, उसी प्रकार युद्धस्थलमें उन बाणोंके आघातसे रुक्मवतीकुमार अनिरुद्धको व्यथा नहीं हुई॥ ११॥

बाणाञ्छतं स्वधनुषि निधायाकृष्य माधवः।
चित्रवाजान् स्वर्णपुङ्खान् मुमोच बहुरोषतः॥ १२

ते बाणास्तस्य सर्वाङ्गं भित्त्वा शीघ्रमधोगताः।
रुधिराक्ता यथा राजन् कृष्णभक्तिपराङ्मुखाः॥ १३

शरसङ्घैश्च स हतो पञ्चतां प्रधने गतः।
हाहाकारश्च तत्सैन्ये बभूव नृपसत्तम॥ १४

तदा जयजयारावो यादवानां बभूव ह।
अनिरुद्धोपरि सुराः पुष्पवर्षां प्रचक्रिरे॥ १५

ऊर्ध्वकेशस्तु प्रधनाद्दिव्यदेहेन यादव।
ययौ विमानमारुह्य स्वर्गं सुकृतिनां पदम्॥ १६

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा नदः शोकेन पूरितः।
कुञ्जरस्थो गदं बाणैः कुञ्जरस्थं जघान ह॥ १७

आगतान् सायकान् दृष्ट्वा धनुर्धारी गदो महान्।
तान् प्रचिच्छेद बाणेनानिरुद्धस्य प्रपश्यतः॥ १८

नदस्तदैव सङ्क्रुद्धो भ्रातृशोकपरिप्लुतः।
अकरोद्विगजं बाणैः सङ्ग्रामे रोहिणीसुतम्॥ १९

गजस्तु शतबाणैश्च भिन्नाङ्गः पञ्चतां गतः।
निपपात गदो भूमौ तदद्भुतमिवाभवत्॥ २०

ततः क्रुद्धो गदां नीत्वा हन्तुं शत्रुं रणे गदः।
आजगाम ज्वलञ्छीघ्रं सिंहः सिंहं वने यथा॥ २१

आगतं तं गृहीत्वा तु शुण्डादण्डेन तद्गजः।
चिक्षेप स गदं राजन्नाकाशे शतयोजनम्॥ २२

पतितः खात्समुत्थाय शुण्डादण्डं प्रगृह्य सः।
पातयामास भूपृष्ठे भ्रामयित्वा गजं गदः॥ २३

माधव अनिरुद्धने अत्यन्त रोषसे भरकर विचित्र पाँखवाले तथा सुवर्णमय पंखवाले सौ बाण अपने धनुषपर रखकर प्रत्यञ्चा खींचकर छोड़े। राजन्! वे बाण ऊर्ध्वकेशके सारे अङ्गोंका भेदन करके रक्तरञ्जित हो शीघ्र ही नीचे गिर गये; ठीक उसी तरह, जैसे श्रीकृष्ण-भक्तिसे विमुख मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होते हैं॥ १२-१३॥

उन बाणसमूहोंसे आहत होनेपर युद्धस्थलमें ऊर्ध्वकेशके प्राणपखेरू उड़ गये। नृपश्रेष्ठ! उस समय दैत्यसेनामें हाहाकार मच गया। यादवोंकी सेनामें 'जय हो, जय हो' की ध्वनि गूँज उठी और देवतालोग अनिरुद्धके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। यादवराज! ऊर्ध्वकेश उस युद्धस्थलसे दिव्य देह धारण करके विमानपर आरूढ़ हो पुण्यात्माओंके निवासस्थान स्वर्गलोकमें चला गया॥ १४—१६॥

भाईको मारा गया देख नद शोकसे भर गया। हाथीपर बैठे हुए उस दैत्यने गजराजपर विराजमान गदको लक्ष्य करके अनेक बाण छोड़े। उन बाणोंको अपने ऊपर आया देख महान् धनुर्धर गदने अनिरुद्धके देखते-देखते एक ही बाणसे उन सबको काट दिया॥ १७-१८॥

भाईके शोकमें डूबे हुए नदने अत्यन्त कुपित होकर संग्राममें अपने बाणोंके प्रहारसे रोहिणीनन्दन गदको गजहीन कर दिया—उनके हाथीको मार गिराया। सैकड़ों बाणोंके आघातसे उस हाथीके अङ्ग-अङ्ग विदीर्ण हो गये थे, इसलिये वह पञ्चत्वको प्राप्त हो गया और गद उसके साथ ही भूमिपर गिर पड़े। वह अद्भुत-सी घटना घटित हुई॥ १९-२०॥

तब गद क्रोधसे जल उठे और रणभूमिमें गदा लेकर शत्रुको मारनेके लिये उसी तरह आगे बढ़े, जैसे वनमें एक सिंह दूसरे सिंहपर आक्रमण करता है॥ २१॥

राजन्! गदके आते ही नदके हाथीने उन्हें अपनी सूँड़में लपेटकर आकाशमें सौ योजन ऊपर फेंक दिया। आकाशसे गिरनेपर गदने उठकर हाथीके शुण्डदण्डको पकड़ लिया और उसे घुमाकर पृथ्वीपर दे मारा॥ २२-२३॥

गजो मृत्युं गतो युद्धे विस्मितोऽभून्महासुरः।
जग्राह स्वगदां गुर्वीं श्लाघां कृत्वा गदस्य च॥ २४

शीघ्रं तमाह्वयामास गदं वीरं गदाधरम्।
तथा सोऽपि नदं दैत्यं सङ्ग्रामार्थे विशां पते॥ २५

नदः प्रत्याह वचनं त्वं मनुष्योऽसि यादव।
तस्माल्लज्जां करिष्यामि कथं युद्धं करिष्यसि॥ २६

पूर्वं प्रहारं कुरु मे पश्चात्त्वं तु न जीवसि।
इति श्रुत्वा गदः प्राह यथा वृत्रं पुरन्दरः॥ २७

गद उवाच

न किञ्चित्ते प्रकुर्वन्ति ये वदन्ति मुखेन वै।
न वदन्ति रणे शूरा दर्शयन्ति पराक्रमम्॥ २८

इति श्रुत्वा नदः क्रुद्धो गदस्य हृदये नदन्।
ताडयामास राजेन्द्र गरिष्ठां महतीं गदाम्॥ २९

गदया ताडितो वीरो न चचाल मृधे गदः।
मदोन्मत्तो यथा हस्ती बालेन मालया हतः॥ ३०

कथयामास वीराग्र्यो दानवं वीक्ष्य लज्जितम्।
सहस्वैकं प्रहारं मे यदि वीरः परन्तप॥ ३१

इत्युक्त्वा निजघानाथ ललाटे गदया भृशम्।
स चापि तं रुषा स्कन्धे ताडयामास धर्मवित्॥ ३२

एवं भृशं प्रकुर्वन्तौ गदायुद्धविशारदौ।
गदायुद्धं प्रकुर्वाणौ परस्परवधैषिणौ॥ ३३

अन्योऽन्यघातविमतौ क्रोधयुक्तौ जयोद्यतौ।
न को वै तत्र जीयेत न प्रहीयेत कोऽपि तु॥ ३४

उस हाथीकी युद्धस्थलमें तत्काल मृत्यु हो गयी। यह देखकर महान् असुर नदको आश्चर्य हुआ। उसने गदकी प्रशंसा करके एक भारी गदा हाथमें ली और शीघ्र ही गदाधारी वीर गदको युद्धके लिये ललकारा। प्रजानाथ! इसी प्रकार गदने भी दैत्य नदका अपने साथ संग्रामके लिये आह्वान किया॥ २४-२५॥

नदने गदको उत्तर दिया—'यादव! तू मनुष्य है। अतः तेरे साथ युद्ध करनेमें मुझे लज्जाका अनुभव हो रहा है। भला तू कैसे मेरे साथ युद्ध करेगा? पहले तू मुझपर प्रहार कर; क्योंकि बादमें प्रहार करनेके लिये तू जीवित नहीं रह सकेगा'॥ २६१/२॥

यह सुनकर गदने उससे उसी प्रकार बात की, जैसे देवराज इन्द्रने वृत्रासुरसे वार्तालाप किया था॥ २७॥

गद बोले—दैत्य! जो मुँहसे बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं, वे कुछ कर नहीं पाते। जो शूरवीर हैं, वे रणभूमिमें डींग नहीं हाँकते हैं; अपना पराक्रम दिखाते हैं॥ २८॥

राजेन्द्र! यह सुनकर नद कुपित हो उठा। उसने गर्जना करते हुए अपनी भारी और विशाल गदा गदकी छातीपर दे मारी। गदाकी चोट खाकर भी वीरवर गद युद्धभूमिमें उसी प्रकार विचलित नहीं हुए, जैसे मदोन्मत्त हाथी किसी बालकद्वारा फूलसे मारे जानेपर उसकी कोई परवाह नहीं करता। दानव लज्जित हो गया था। उसकी ओर देखकर वीरशिरोमणि गदने कहा—'परंतप! यदि तुम वीर हो तो मेरा भी एक प्रहार सहन कर लो'॥ २९—३१॥

ऐसा कहकर गदने गदासे उसके ललाटपर भारी चोट पहुँचायी। धर्मज्ञ नदने भी कुपित होकर गदके कंधेपर गदा मारी। वे दोनों वीर गदायुद्धमें कुशल थे और इस प्रकार भारी आघात करते हुए एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे गदायुद्धमें लगे रहे॥ ३२-३३॥

दोनों परस्परके आघातसे खिन्न हो क्रोधसे भरकर विजयके प्रयत्नमें तत्पर रहे। परंतु वहाँ उनमेंसे कोई भी न तो हारता था और न उत्साहहीन ही होता था॥ ३४॥

भाले स्कन्धे तथा मूर्ध्नि हृदि गात्रेषु सर्वतः।
रुधिरौघप्लुतौ क्लिन्नौ किंशुकाविव पुष्पितौ॥ ३५

तयोरासीन्महायुद्धं गदाभ्यामेव संयुगे।
विस्फुलिङ्गान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः॥ ३६

तयोर्युद्धमभूद् घोरं बाहुभ्यां गददैत्ययोः।
तदा रामानुजः क्रुद्धो भुजाभ्यामुपगृह्य तम्॥ ३७

पातयामास भूपृष्ठे महिषं हरिराड्यथा।
तदा दैत्यस्तु तस्यापि हृदि जघ्ने प्रमुष्टिना॥ ३८

तदा सोऽपि शिरस्येकं मुष्टिं बद्ध्वा जघान ह।
मुष्टिभिर्जानुभिः पादैस्तालस्फोटैश्च बाहुभिः॥ ३९

परस्परं जघ्नतुस्तौ सन्दष्टाधरपल्लवौ।
ततः क्रुद्धो रणे दैत्यो गदस्य चरणं बलात्॥ ४०

गृहीत्वा भ्रामयित्वा च पातयामास भूतले।
तदा गदः समुत्थाय गृहीत्वा चरणं रिपोः॥ ४१

भ्रामयित्वा गजोपस्थे निजघान रुषा ज्वलन्।
पुनर्दैत्यः समुत्थाय गृहीत्वा रोहिणीसुतम्॥ ४२

चिक्षेप चौजसा राजन् गगने शतयोजनम्।
पतितोऽपि स वज्राङ्गः किञ्चिद्व्याकुलमानसः॥ ४३

चिक्षेप गगने दैत्यं योजनानां सहस्रकम्।
पतितोऽपि समुत्थाय पुनर्युद्धं चकार सः॥ ४४

गदो नदं नदो गदं निजघ्नतुः परस्परम्।
प्रमुष्टिभिश्च दारुणैर्महद्रणे नृपेश्वर॥ ४५

दण्डादण्डि मुष्टामुष्टि केशाकेशि नखानखि।
दन्तादन्त्युभयोर्युद्धं घोरमेवं बभूव ह॥ ४६

भालपर, कंधेपर, मस्तकपर, वक्षःस्थलमें तथा सम्पूर्ण अङ्गोंमें आघात लगनेसे वे लहूलुहान हो रक्तसे भीग गये थे और दो खिले हुए पलाश वृक्षोंके समान दिखायी पड़ते थे। समराङ्गणमें गदाओंद्वारा उन दोनोंका महान् युद्ध चल रहा था। उनकी दोनों गदाएँ आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई परस्पर चूर-चूर हो गयीं॥ ३५-३६॥

तब उन दोनों—गद यादव और नद दैत्यमें घोर बाहुयुद्ध होने लगा। उस समय रोषसे भरे हुए बलरामके छोटे भाई गदने नदको अपनी बाँहोंसे पकड़कर उसी तरह पृथ्वीपर दे मारा, जैसे सिंहराज किसी भैंसेको पटक देता है। तब दैत्यने गदकी छातीमें मुक्केसे प्रहार किया॥ ३७-३८॥

लगे हाथ गदने भी उसके मस्तकपर एक बँधा हुआ मुक्का जड़ दिया। मुक्कों, घुटनों, पैरों, तमाचों और भुजाओंसे वे दोनों एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे और दोनों ही रोषसे अपने अधरपल्लव दबाये हुए थे। तब समरभूमिमें दैत्यने कुपित हो बलपूर्वक गदका एक पैर पकड़ लिया और घुमाकर उन्हें धरतीपर दे मारा। उसी समय रोषसे जलते हुए गदने भी उठकर शत्रुका एक पैर पकड़कर उसे घुमाते हुए हाथीके पृष्ठभागपर पटक दिया॥ ३९—४१ १/२॥

राजन्! दैत्यने फिर उठकर रोहिणीकुमारको जा पकड़ा और बलपूर्वक आकाशमें उन्हें सौ योजन ऊपर फेंक दिया। वहाँसे गिरनेपर भी वज्रके समान अङ्गवाले गदको कोई चोट नहीं पहुँची; किंचिन्मात्र मनमें व्याकुलता हुई॥ ४२-४३॥

फिर उन्होंने उस दैत्यको भी एक सहस्र योजन ऊपर उछाल दिया। उतनी ऊँचाईसे गिरनेपर भी वह दैत्य फिर उठकर युद्ध करने लगा। गद नदको और नद गदको पारस्परिक आघातोंद्वारा चोट पहुँचाते रहे। नृपेश्वर! भयंकर घूँसोंकी मारसे उन दोनोंमें महान् युद्ध छिड़ा हुआ था। दोनोंमें लाठा-लाठी, मुक्का-मुक्की, केशा-केशि (झोंटा-झोंटी) नखा-नखि (बकोटा-बकोटी) और दाँता-दाँती होने लगी। इस प्रकार घोर युद्ध छिड़ा हुआ था॥ ४४—४६॥

इत्थं नियुद्धमानौ तौ प्रकुर्वन्तौ रणं पुनः।
पादे पादं हृदि हृदं करे करं मुखे मुखम्॥ ४७

अन्योऽन्यमित्थं संलग्नौ परस्परवधैषिणौ।
बलाक्रान्तावुभौ तौ द्वौ पतितौ च मुमूर्च्छतुः॥ ४८

इत्थं दृष्ट्वा तयोर्युद्धं यादवाश्चैव दानवाः।
गदो धन्यो नदो धन्यः प्रोचुर्वाक्यमिदं नृप॥ ४९

गदं निपतितं दृष्ट्वानिरुद्धः शोकपूरितः।
चैतन्यं कारयामास जलेन व्यजनेन च॥ ५०

तदैव सोऽपि राजेन्द्र उत्थितः क्षणमात्रतः।
क्व नदः क्व नदो यातो त्यक्त्वा युद्धं भयान्मम॥ ५१

निरीक्ष्य दानवं तत्र मूर्च्छितं पञ्चतां गतम्।
चक्रुर्जयजयारावं यादवाश्चैव देवताः॥ ५२

इस तरह जूझते हुए वे दोनों योद्धा बारंबार मारा-मारी कर रहे थे। एक-दूसरेके वधकी इच्छासे दोनों आपसमें इस प्रकार गुँथ गये कि पैरपर पैर, छातीपर छाती, हाथपर हाथ और मुँहपर मुँह सट गया था। बलपूर्वक आक्रमणके शिकार होकर वे दोनों गिरे और मूर्च्छित हो गये। नरेश्वर! उन दोनोंका ऐसा युद्ध देखकर यादव और दानव बोलने लगे—'गद धन्य है, नद धन्य है'॥ ४७—४९॥

गदको गिरा देख अनिरुद्ध शोकमें डूब गये। उन्होंने जल छिड़ककर और व्यजन डुलाकर गदको होशमें लानेकी चेष्टा की। राजेन्द्र! वे तत्काल क्षणभरमें उठकर खड़े हो गये और बोल उठे—'कहाँ नद है, कहाँ नद है? वह मेरे भयसे युद्ध छोड़कर भाग तो नहीं गया?' लोगोंने देखा वह दानव वहाँ मूर्च्छित होकर प्राणशून्य हो गया था। फिर तो यादव और देवतालोग जय-जयकार करने लगे॥ ५०—५२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे ऊर्ध्वकेशनददैत्यवधो नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'ऊर्ध्वकेश और नददैत्यका वध' नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

वृकद्वारा सिंहका और साम्बद्वारा कुशाम्बका वध

श्रीगर्ग उवाच

स्वस्याः पराजयं दृष्ट्वा सिंहो दैत्यो रुषान्वितः।
निजघान वृकं बाणै रथस्थं खरवाहनः॥ १

दृष्ट्वा समागतान् बाणान् वृको वै कृष्णनन्दनः।
चिच्छेद तान् स्वबाणैश्च लीलया प्रधने नृप॥ २

पुनश्चिक्षेप बाणान् वै तांश्च चिच्छेद कृष्णजः।
ततः क्रुद्धो रणे राजन् सिंहनामासुरेश्वरः॥ ३

शरासने समाधत्त वसुसंख्याञ्छिलीमुखान्।
चतुर्भिस्तुरगान् वीरो वृकस्य ह्यनयत्क्षयम्॥ ४

एकेन ध्वजमत्युग्रं चिच्छेद तरसा हसन्।
एकेन सारथेः कायाच्छिरो भूमावपातयत्॥ ५

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! अपनी सेनाकी पराजय होती देख गदहेपर चढ़ा हुआ 'सिंह' नामक दैत्य रोषसे आगबबूला हो उठा और रथपर बैठे हुए वृकपर बाणोंद्वारा प्रहार करने लगा। नरेश्वर! उन बाणोंको अपने ऊपर आया देख युद्धस्थलमें श्रीकृष्ण-नन्दन वृकने खेल-खेलमें ही बाण मारकर उन्हें काट गिराया। सिंहने फिर बाण मारे और श्रीकृष्णकुमारने फिर उन्हें काट डाला॥ १—२$^{1}/_{2}$॥

राजन्! फिर तो रणक्षेत्रमें असुरराज सिंहके क्रोधकी सीमा न रही। उसने धनुषपर आठ बाण रखे। उनमेंसे चार बाणोंद्वारा उस वीरने वृकके घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया, एक बाणसे हँसते हुए उसने वेगपूर्वक उनके रथकी बहुत ही ऊँची और भयंकर ध्वजा काट डाली और एक बाणसे सारथिका सिर धड़से अलग करके पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ३—५॥

एकेन सगुणं चापमच्छिनत्प्रधने रुषा।
एकेन हृदि विव्याध वृकस्य वेगवान्नृप॥ ६

तस्य कर्माद्भुतं दृष्ट्वा वीरा विस्मयमागताः।
वृकस्तदैव सहसा दैत्यं शक्त्या जघान ह॥ ७

सा शक्तिस्तत्तनुं भित्त्वा खरं भित्त्वा विनिर्गता।
विवेश भूतले राजन् विवरं पन्नगो यथा॥ ८

खरो मृत्युं गतस्तत्र दैत्यः शीघ्रं पपात ह।
जगर्ज पुनरुत्थाय सिंहः सिंह इव स्फुटम्॥ ९

गृहीत्वा विशिखं शूलं चिक्षेप स वृकोपरि।
तमापतन्तं जग्राह वृको वामकरेण वै॥ १०

तेनैव शत्रुं निजघान राजन्
कृष्णस्य पुत्रो बहुरोषयुक्तः।
निर्भिन्नदेहो निपपात भूमौ
हा हा प्रकुर्वन् स जगाम मृत्युम्॥ ११

हाहाकारस्तदैवासीद्दानवानां रणाङ्गणे।
पुष्पवर्षं सुराश्चक्रुः जयारावं यदूत्तमाः॥ १२

तदा कुशाम्बः सङ्क्रुद्धो साम्बादीन् यादवान् मृधे।
रथस्थः शीघ्रमागत्य सर्वान् विव्याध सायकैः॥ १३

तस्य बाणैश्च बहवः पेतुश्छिन्ना महागजाः।
तिर्यग्भूता रथा युद्धे तुरगाश्छिन्नकन्धराः॥ १४

तथा पदातयस्तत्र शिरोहीना विबाहवः।
इत्थं स मारयन् राजन्ननेकान् विचचार ह॥ १५

एवं पराक्रमं दृष्ट्वा साम्बो जाम्बवतीसुतः।
कुशाम्बं चाह्वयामास युद्धार्थे युद्धकोविदः॥ १६

हे राजन्! फिर एक बाणसे रोषपूर्वक रणभूमिमें उनके प्रत्यञ्चासहित धनुषको काट दिया और एक बाणसे उस वेगशाली दैत्यने वृककी छातीमें चोट पहुँचायी॥ ६॥

उसके उस अद्भुत कर्मको देखकर सब वीरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय वृकने सहसा उस दैत्यपर शक्तिसे आघात किया। वह शक्ति उसके शरीरको छेदकर और गदहेको भी विदीर्ण करके बाहर निकल गयी। राजन्! जैसे साँप बिलमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह शक्ति [सिंहको घायल करके] धरतीमें समा गयी॥ ७-८॥

गदहा तो वहीं मर गया और दैत्य भी तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा। परंतु वह दैत्य पुनः उठकर सिंहके समान जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। उसने वृकके ऊपर एक शिखारहित शूल लेकर चलाया। अपने ऊपर आते हुए उस शूलको वृकने समराङ्गणमें अपने बायें हाथसे पकड़ लिया॥ ९-१०॥

राजन्! फिर उसी शूलसे अत्यन्त कुपित हुए कृष्णकुमारने शत्रुपर आघात किया। सिंहका शरीर विदीर्ण हो गया। वह हाय-हाय करता हुआ पृथ्वीपर गिरा और मर गया। उसी समय समराङ्गणमें दानवोंका महान् हाहाकार प्रकट हुआ। देवताओंने फूलोंकी वर्षा की और श्रेष्ठ यादव-वीर 'जय-जयकार' करने लगे॥ ११-१२॥

तब क्रोधसे भरे हुए कुशाम्बने युद्धके मैदानमें रथपर आरूढ़ हो शीघ्र आकर साम्ब आदि समस्त यादवोंको अपने सायकोंद्वारा बींधना आरम्भ किया। उसके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर बहुत-से विशाल गजराज धराशायी हो गये, रथ उलट गये और युद्धमें बहुत-से घोड़ोंकी गर्दनें कट गयीं तथा बहुत-से पैदल योद्धा बिना सिर और भुजाओंके हो गये। राजन्! इस प्रकार कुशाम्ब अनेक वीरोंको मारता-काटता हुआ युद्धभूमिमें विचरने लगा॥ १३—१५॥

उसका ऐसा पराक्रम देखकर युद्धकुशल जाम्बवतीनन्दन साम्बने युद्धके लिये कुशाम्बको ललकारा॥ १६॥

साम्ब उवाच

आगच्छ वीर सहसा मया सह रणं कुरु।
किमन्यैस्त्रासितैर्दीनैर्निहतैः कोटिभिर्नरैः॥ १७

इत्युक्तवन्तमालोक्य कुशाम्बः प्रहसन् बली।
जघान हृदये तस्य वसुसंख्याञ्छिलीमुखान्॥ १८

तदमृष्यन् हरेः पुत्रः स्वकोदण्डे दधञ्छरान्।
तताड सप्तभिः शत्रुं दानवं वक्षसोऽन्तरे॥ १९

उभौ समरसंरब्धावुभावपि जयैषिणौ।
रेजाते तौ हि सङ्ग्रामे यथा षण्मुखतारकौ॥ २०

साम्बः कुशाम्बं प्रधने कुशाम्बः साम्बमेव च।
अन्योऽन्यं सर्पसदृशैर्बाणैरपि ववर्षतुः॥ २१

बाणान् धनुषि सन्धाय शतसंख्यान् स्फुरत्प्रभान्।
अकरोद्विरथं तैश्च साम्बं छिन्नशरासनम्॥ २२

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
आरुरोह रथं चान्यं कुपितश्चापसंयुतः॥ २३

साम्ब उवाच

कुत्र यास्यसि त्वं दैत्य कृत्वा दीर्घं पराक्रमम्।
क्षणमात्रं रणे स्थित्वा पश्य मे विक्रमं परम्॥ २४

इत्युक्त्वा सायकं चोग्रं स्वकोदण्डे निधाय च।
मन्त्रयित्वा च मन्त्रेण तद्रथे निचखान ह॥ २५

अलातचक्रवद्भूमौ तेन बाणेन तद्रथः।
बभ्राम योजने शीघ्रं ससूतः सतुरङ्गमः॥ २६

भ्रमन्तं सरथं दैत्यं दृष्ट्वा प्राह हसन्मुखः।
साम्बो जाम्बवतीपुत्रो बाणं कृत्वा शरासने॥ २७

साम्ब उवाच

त्वादृशाश्च महावीराः स्वर्गयोग्या भवन्ति हि।
न राजन्ते महीमध्ये शक्रतुल्यपराक्रमाः॥ २८

साम्ब बोले—वीर! आओ और सहसा मेरे साथ युद्ध करो। दूसरे करोड़ों दीन मनुष्योंको डराने या मारनेसे क्या लाभ होगा?॥ १७॥

—ऐसा कहते हुए साम्बकी ओर देखकर बलवान् कुशाम्ब हँसने लगा। उसने साम्बकी छातीमें आठ बाण मारे। श्रीहरिके पुत्र साम्ब उसकी इस धृष्टताको सहन न कर सके। उन्होंने अपने कोदण्डपर सात बाणोंका संधान करके उनके द्वारा उस शत्रुभूत दानवकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ १८-१९॥

दोनों ही युद्धके लिये रोषावेशसे भरे थे और दोनों ही अपनी-अपनी जीत चाहते थे। संग्रामभूमिमें वे दोनों योद्धा स्कन्द तथा तारकासुरके समान शोभा पाते थे। युद्धस्थलमें साम्बने कुशाम्बपर और कुशाम्बने साम्बपर आपसमें सर्पसदृश बाणोंकी वर्षा आरम्भ की॥ २०-२१॥

कुशाम्बने अपने धनुषपर सौ चमकीले बाणोंका संधान करके उनके द्वारा साम्बको रथहीन कर दिया और उनके धनुषको भी काट डाला। जब धनुष कट गया, रथ टूट गया तथा घोड़े और सारथि मारे गये, तब साम्ब दूसरे रथपर आरूढ़ हुए तथा कुपित हो धनुष हाथमें लेकर बोले—॥ २२-२३॥

साम्बने कहा—दैत्य! ऐसा विशाल पराक्रम प्रकट करके अब तुम कहाँ जा रहे हो? क्षणभर संग्रामभूमिमें ठहरकर मेरा उत्तम पराक्रम देख लो॥ २४॥

—ऐसा कहकर साम्बने अपने कोदण्डपर एक उग्र सायकका संधान किया और उसे दिव्य-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके कुशाम्बके रथपर छोड़ दिया। उस बाणसे आहत हो कुशाम्बका रथ घोड़े और सारथिसहित अलातचक्रकी भाँति भूतलपर चक्कर काटने लगा। चक्कर काटते-काटते वह शीघ्र ही एक योजनतक चला गया। रथसहित दैत्यको घूमते देख जाम्बवतीनन्दन साम्बके मुखपर हास्यकी छटा छा गयी और वे धनुषपर एक बाण रखकर बोले—॥ २५—२७॥

साम्बने कहा—असुरेश्वर! तुम्हारे-जैसे महान् वीर, जो देवेन्द्रके तुल्य पराक्रमी हैं, स्वर्गलोकमें रहनेके योग्य हैं। इस धरतीपर उनकी शोभा नहीं होती है।

तस्माच्च मम बाणेन द्वितीयेन दिवं व्रज।
सरथस्त्वं सदेहश्च मत्कृपातोऽसुरेश्वर॥ २९

गगनप्रापकं चास्त्रमित्युक्त्वा विमुमोच सः।
शरेण तेन सरथो विभ्रमन् भूतलान्नृप॥ ३०

लोकान् बहूनतिक्रम्य जगाम रविमण्डलम्।
सहयः सूतसहितस्तत्र सूर्यस्य ज्वालया॥ ३१

दग्धोऽभूत्तद्रथः सद्यो दैत्यो दग्धकलेवरः।
पपात भूतले पुर्यां बल्वलस्य च सन्निधौ॥ ३२

तस्मिन्निपतिते पापे गते मृत्युं च दानवे।
हाहाकारं ततश्चक्रुर्दैत्याः सर्वे भयान्विताः॥ ३३

यादवानां ततः सैन्ये नेदुर्दुन्दुभयो मुहुः।
पुष्पवर्षं मुदा चक्रुः साम्बस्योपरि निर्जराः॥ ३४

अतः मेरे इस दूसरे बाणसे रथसहित तुम सदेह स्वर्गमें चले जाओ। यह तुम्हारे ऊपर मेरी बड़ी कृपा होगी॥ २८-२९॥

—ऐसा कहकर साम्बने आकाशमें पहुँचानेवाला दिव्यास्त्र छोड़ा। नरेश्वर! उस बाणसे रथसहित कुशाम्ब चक्कर काटता हुआ धरतीसे ऊपरको उठा और बहुत-से लोकोंको लाँघकर सूर्यमण्डलमें जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर घोड़े और सारथिसहित उसका रथ सूर्यकी ज्वालामें जल गया तथा उस दैत्यका शरीर भी तत्काल दग्ध होकर पृथ्वीपर आसुरी पुरीमें बल्वलके समीप गिर पड़ा॥ ३०—३२॥

उस पापी दानवके गिरने और मर जानेपर समस्त दैत्य भयभीत हो हाहाकार करने लगे। उस समय यादवोंकी सेनामें बार-बार दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवता साम्बके रथपर सानन्द पुष्पवर्षा करने लगे॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे सिंहकुशाम्बवधो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'सिंह और कुशाम्बका वध' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

मयका बल्वलको समझाना; बल्वलकी युद्धघोषणा; समस्त दैत्योंका युद्धके लिये निर्गमन; विलम्बके कारण सैन्यपालके पुत्रका वध तथा दुखी सैन्यपालको मन्त्रिपुत्रोंका विवेकपूर्वक धैर्य बँधाना

श्रीगर्ग उवाच

अथ वै बल्वलं दैत्यं शोचन्तं काञ्चनासने।
मयः प्रत्याह वचनं ज्येष्ठं कुम्भश्रुतिर्यथा॥ १

अद्य दृष्टं त्वया राजन् यदूनां बलमेव हि।
दैत्यवृन्दैश्च निहताश्चत्वारो मन्त्रिणस्तव॥ २

अवशेषस्त्वमेवासि ह्यथवाहं च त्वत्पुरे।
तस्मात्तवेच्छा दैत्येन्द्र यथा भूयात्तथा कुरु॥ ३

बल्वलः प्राह वचनमद्य यास्याम्यहं रणे।
शीघ्रं हन्तुं यदून् सर्वांस्त्वं गुप्तो भव मन्दिरे॥ ४

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर सोनेके सिंहासनपर बैठे और शोकमें डूबे हुए दैत्य बल्वलसे मय उसी प्रकार बोला, जैसे कुम्भश्रुति (कुम्भकर्ण) अपने ज्येष्ठ बन्धुसे बात कर रहा हो॥ १॥

नरेश्वर! आज तुमने यादवोंका बल देख लिया। दैत्यसमूहोंसहित तुम्हारे चार मन्त्री मारे गये। अब तुम्हारे नगरमें प्रमुख लोगोंमेंसे तुम बचे हो और मैं। दैत्यराज! अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो॥ २-३॥

बल्वल बोला—अब मैं यादवोंका शीघ्र विनाश करनेके लिये रणभूमिमें जाऊँगा। तुम महलमें छिपे रहो॥ ४॥

हरिः कृष्णस्तु नन्दस्य पुरा पुत्रः प्रकीर्तितः।
वसुदेवो मन्यते तं मत्पुत्रोऽयं गतत्रपः॥ ५

हैयङ्गवीनदुग्धाज्यदधितक्रादिकं तु सः।
चोरयामास गोपीनां रसिको रासमण्डले॥ ६

जरासुतभयात्सोऽपि समुद्रं शरणं गतः।
मारितो मातुलो येन किं करिष्यति पौरुषम्॥ ७

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य मयः प्रकुपितोऽब्रवीत्।

मय उवाच

यस्माद् बिभेति ब्रह्मा च शिवो माया पुरन्दरः॥ ८

भयदं निर्भयं कृष्णं तं विनिन्दसि निन्दक।
कृष्णं निन्दति यो मूढो ह्यज्ञानाच्च कुसङ्गतः॥ ९

कुम्भीपाके स पतति यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥ १०

चण्डपालशिशुपालमण्डली-
भञ्जनं दनुजदर्पखण्डनम्।
माधवं मदनमोहनं परं
त्वं भजस्व कुलकौशलाय च॥ ११

मयस्य वचनं श्रुत्वा ज्ञानं प्राप्तोऽपि बल्वलः।
क्षणं विचार्य राजेन्द्र प्रोवाच प्रहसन्निव॥ १२

बल्वल उवाच

जानाम्यहं विश्वपतिं च कृष्णं
शेषं बलं वै मदनं च कार्ष्णिम्।
अत्रागतं पद्मभवं हि चैषां
वध्या वयं तेन हयो हतोऽयम्॥ १३

एषां बाणैश्च निहतो यदाहं निधनं गतः।
तदा सुखेन यास्यामि शीघ्रं विष्णोः परं पदम्॥ १४

पुरा च वैरभावेन वैकुण्ठं बहवो गताः।
दानवा राक्षसाश्चैव तं च भावं करोम्यहम्॥ १५

हरि श्रीकृष्ण तो पहले 'नन्दका पुत्र' कहा जाता था। अब यह निर्लज्ज वसुदेव उसे अपना पुत्र मानता है। वह गोपियोंके घरसे माखन, दूध, घी, दही और तक्र आदि चुराया करता था। रासमण्डलमें रसिया बनकर नाचता था। अब जरासंधके भयसे उसने समुद्रकी शरण ली है। जिसने अपने मामाको मारा है, वह क्या पुरुषार्थ करेगा!॥ ५—७॥

बल्वलकी यह बात सुनकर मयको बड़ा क्रोध हुआ। वह बोला—॥ ७१/२॥

मयने कहा—ओ निन्दक! जिससे ब्रह्मा, शिव, माया (दुर्गा) और इन्द्र भी डरते हैं, ऐसे सबको भय देनेवाले नित्य निर्भय श्रीकृष्णकी तू निन्दा कर रहा है। जो मूर्ख अज्ञानवश और कुसङ्गके कारण श्रीकृष्णकी निन्दा करता है, वह तबतक कुम्भीपाकमें पड़ा रहता है, जबतक ब्रह्माजीकी आयु पूरी नहीं हो जाती॥ ८—१०॥

जिन्होंने चण्डपाल और शिशुपालकी मण्डलीका खण्डन किया है, जो दानवोंके दर्पका दमन करनेवाले हैं, उन परमात्मा मदनमोहन माधवका तू अपने कुलकी कुशलताके लिये भजन कर॥ ११॥

मयका यह वचन सुनकर बल्वल परम ज्ञानको प्राप्त हो गया। राजेन्द्र! उसने क्षणभर विचार करके हँसते हुए-से कहा॥ १२॥

बल्वल बोला—मैं जानता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण विश्वके पालक हैं, बलरामजी साक्षात् भगवान् शेषनाग हैं, प्रद्युम्न कामदेवके अवतार हैं और यहाँ आये हुए अनिरुद्ध साक्षात् ब्रह्माजी हैं। इन्हींके हाथसे हमारा वध होनेवाला है, यह सोचकर ही मैंने इस अश्वका अपहरण किया है। उनके बाणोंसे मारा जाकर यदि मैं मृत्युको प्राप्त होऊँगा, तो शीघ्र ही सुखपूर्वक भगवान् विष्णुके परमपदको चला जाऊँगा॥ १३-१४॥

पहले भी बहुत-से दानव तथा राक्षस वैर-भावसे भगवान्‌का भजन करके वैकुण्ठधाममें जा चुके हैं। अतः मैं भी उसी वैरभावका आश्रय ले रहा हूँ॥ १५॥

इत्युक्त्वा दंशितो भूत्वा दानवानां शिरोमणिः।
स्वसैन्यपालकं तूर्णं समाहूयेदमब्रवीत्॥ १६

पटहेन ममाज्ञां त्वं पुर्यां देहि प्रयत्नतः।
अनिरुद्धेन युद्धाय वीरेषु सैन्यपालक॥ १७

ये ममाज्ञां न मन्यन्ते ते वधार्हा रणं विना।
आत्मजा वा भ्रातरो वा ह्यन्येषां चैव का कथा॥ १८

—ऐसा कह कवच धारण करके दानवशिरोमणि बल्वलने तुरंत ही अपने सेनापतिको बुलाया और इस प्रकार कहा—"सेनापते! तुम प्रयत्नपूर्वक ढिंढोरा पिटवाकर इस पुरीमें मेरा यह आदेश प्रसारित कर दो कि 'वीरोंमेंसे जो लोग भी बच गये हैं, वे अनिरुद्धके साथ युद्धके लिये चलें।' जो मेरी आज्ञा नहीं मानेंगे, वे बेटे अथवा भाई ही क्यों न हों, युद्ध किये बिना वधके योग्य समझे जायँगे"॥ १६—१८॥

इति श्रुत्वा स तद्वाक्यं रथ्यां रथ्यां गृहे गृहे।
पटहेनापि तस्याज्ञां घोषयामास वेगतः॥ १९

श्रुत्वा पटहनिर्घोषं दैत्याः शीघ्रं भयातुराः।
गृहीत्वा सर्वशस्त्राणि ह्याजग्मुस्ते सभातलम्॥ २०

बल्वलका ऐसा आदेश सुनकर सेनापतिने गली-गली और घर-घरमें डंका बजाकर बड़े वेगसे उसकी आज्ञा घोषित कर दी। ढिंढोरेके साथ की गयी इस घोषणाको सुनकर समस्त दैत्य भयसे आतुर हो गये और शीघ्र ही सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर वे बल्वलके सभाभवनमें आ गये॥ १९-२०॥

सैन्यपालस्ततः पूर्वं लक्षदैत्यैः समावृतः।
रथेन कवची धन्वी निर्जगाम पुराद्बहिः॥ २१

दुर्नेत्रो दुर्मुखश्चैव दुःस्वभावश्च दुर्मदः।
एते वै मन्त्रिणां पुत्राश्चत्वारस्ते विनिर्ययुः॥ २२

तब सबसे पहले सैन्यपाल लाख दैत्योंसे घिरकर, कवच और धनुषसे सुसज्जित हो, रथके द्वारा नगरसे बाहर निकला। दुर्नेत्र, दुर्मुख, दुःस्वभाव और दुर्मद—ये मन्त्रियोंके चार पुत्र भी युद्धके लिये निकले॥ २१-२२॥

मतङ्गजैर्महामत्तैश्चञ्चलाङ्गैस्तुरङ्गमैः।
रथैश्च देवधिष्ण्याभैर्विद्याधरसमैर्नरैः॥ २३

सद्यः कामगयानेन मयदत्तेन बल्वलः।
स्वयं जगाम युद्धार्थे चतुर्लक्षैर्महासुरैः॥ २४

बल्वलके साथ महामत्त गजराज, चपल अङ्गवाले तुरङ्ग तथा देवविमानोंके समान आकारवाले रथ थे। विद्याधरोंके समान पैदल योद्धा भी साथ चल रहे थे। इस चतुरङ्गिणी सेनाके साथ तत्काल मयके दिये हुए एवं इच्छानुसार चलनेवाले यानपर बैठकर बल्वल स्वयं युद्धके लिये प्रस्थित हुआ। उसके साथ चार लाख बड़े-बड़े असुर थे॥ २३-२४॥

सैन्यपालस्य पुत्रस्तु भोजनं कुरुते गृहे।
बुभुक्षितश्च युद्धाय शीघ्रं सोऽपि न निर्गतः॥ २५

नागतं तं विलोक्याथ सैन्ये बल्वलसैनिकाः।
नृपाय कथयामासुस्तस्य वार्तां च शङ्किताः॥ २६

सैन्यपालका पुत्र भूखा था और घरपर भोजन कर रहा था, इसलिये युद्धके निमित्त शीघ्र नहीं निकल सका। सेनामें उसे नहीं आया देख बल्वलके सैनिकोंने डरते-डरते दैत्यराजसे उसके अनुपस्थित होनेकी बात बतायी॥ २५-२६॥

ततस्तद्वचनाद्वीरा बद्ध्वा तं दामभी रुषा।
नृपाग्रे चानयामासुः प्रफुल्लवदनेक्षणाः॥ २७

तं दृष्ट्वा भर्त्सयित्वा च बल्वलश्चण्डशासनः।
भुशुण्डीं वदने चापि मारयामास वेगतः॥ २८

तब बल्वलके आदेशसे कई वीर गये और उसे रोषपूर्वक रस्सियोंसे बाँधकर राजाके सामने ले आये। इस सफलतासे उनके मुख और नेत्र खिल उठे थे। सैन्यपालके पुत्रको देखकर प्रचण्ड शासक बल्वलने बहुत फटकारा और वेगपूर्वक उसके मुखपर भुशुण्डी मार दी॥ २७-२८॥

दैत्याः सर्वे भयं प्रापुर्वधं तस्य निरीक्ष्य च।
सैन्यपालस्तु सङ्ग्रामे मृतं पुत्रं निशम्य च॥ २९

रथात्पपात दुःखार्तस्ताडयन् मस्तकं करैः।
विललाप भृशं सोऽपि पुत्रदुःखेन दुःखितः॥ ३०

हा पुत्र वीर पितरं त्यक्त्वा मां जरठं रणे।
गतः शतघ्नीमार्गेण स्वर्गे मामविलोक्य च॥ ३१

विना युद्धेन हे पुत्र क्व गतो नृपशासनात्।
इत्येवं विलपंस्तत्र रुरोद रणमण्डले॥ ३२

ततश्च मन्त्रिणां पुत्राः शोचन्तं प्रोचुरग्रतः।

मन्त्रिपुत्रा ऊचुः

रोदनं मा कुरु रणे शूरोऽसि त्वं तु पालक॥ ३३

दुःखे कृते च त्वत्पार्श्वे नागमिष्यति वै मृतः।
आजन्मतश्च जन्तूनां मृत्युर्भवति साम्प्रतम्॥ ३४

धीरास्तत्र न शोचन्ति मूर्खाः शोचन्ति नित्यशः।
गर्भेऽपि च मृताः केचित्केचिद्वै जन्ममात्रतः॥ ३५

बालत्वे यौवनत्वे च वृद्धत्वे केचिदेव हि।
केचिच्छस्त्रेण रोगेण दुःखेन पतनेन च॥ ३६

सर्वे मृत्युं गमिष्यन्ति दैवात्कर्मवशा नराः।
को वा कस्य पिता पुत्रः को वा कस्य प्रिया प्रसूः॥ ३७

संयुनक्ति विधाता वै वियुनक्ति च कर्मणा।
संयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसङ्कटम्॥ ३८

शश्वद्भवति मूढस्य नात्मारामस्य निश्चितम्।
आत्मघाती यदा भूत्वा प्राणांस्त्यजसि दुःखितः॥ ३९

सैन्यपालके पुत्रका वध हुआ देख सब दैत्य भयभीत हो उठे। सैन्यपाल संग्राममें अपने पुत्रको मार दिया गया सुनकर दुःखसे आतुर हो हाथोंसे माथा पीटता हुआ रथसे गिर पड़ा। वह पुत्रके दुःखसे दुखी हो अत्यन्त विलाप करने लगा—॥ २९-३०॥

'हा पुत्र! हा वीर! मुझ वृद्ध पिताको छोड़कर रणक्षेत्रमें शतघ्नीके मार्गसे तुम स्वर्गको चले गये। मेरा दर्शनतक नहीं किया। बेटा! तुम राजाके शासनसे युद्ध किये बिना ही कहाँ चले गये?' इस तरह विलाप करता हुआ सैन्यपाल समराङ्गणमें रो रहा था। तब मन्त्रियोंके पुत्रोंने शोकमग्न सैन्यपालके सामने आकर कहा॥ ३१—३२½॥

मन्त्रिपुत्र बोले—सेनापते! तुम तो शूरवीर हो, रणभूमिमें आकर रोदन न करो। शोक करनेपर भी जो मर गया, वह तुम्हारे पास लौटकर नहीं आयेगा। मृत्यु जीवधारियोंके पीछे जन्मकालसे ही लगी रहती है। वही इस समय प्राप्त हुई है॥ ३३-३४॥

धीर पुरुष मृत्युके लिये शोक नहीं करते हैं। मूर्खलोग ही मृत पुरुषके लिये सदा शोकमें डूबे रहते हैं। कोई गर्भमें मर जाते हैं, किसीकी जन्म लेते ही मृत्यु हो जाती है, कोई बचपनमें और कोई जवानीमें ही काल-कवलित हो जाते हैं, कोई-कोई ही बुढ़ापेमें मरते हैं। कोई शस्त्रसे, कोई रोगसे, कोई दुःखसे और कोई ऊँचे स्थानसे गिरनेके कारण मृत्युके वशीभूत होते हैं॥ ३५-३६॥

दैववश कर्मके अधीन हुए सभी जीव एक दिन मृत्युको प्राप्त होंगे। कौन किसका पिता और पुत्र है? अथवा कौन किसकी माता या प्रियतमा पत्नी है। विधाता कर्मके अनुसार प्राणियोंमें संयोग और वियोग कराया करता है। संयोगमें बड़ा आनन्द मिलता है और वियोगमें प्राण-संकटकी घड़ी आ जाती है॥ ३७-३८॥

ऐसी अवस्था सदा मूर्खोंकी ही हुआ करती है। आत्माराम पुरुष निश्चय ही हर्ष-शोकके वशीभूत नहीं होते हैं। तुम दुखी होकर जब अपने प्राणोंका त्याग कर रहे हो तो आत्मघाती बनोगे॥ ३९॥

पुनर्जन्म च निरयं व्रजिष्यसि न संशयः।
तस्माद्यदूत्तमैः सार्धं युद्धं कुरु महारणे॥ ४०

क्षत्रियस्य परं श्रेयो धर्मयुद्धान्न विद्यते।
धर्मयुद्धेन सङ्ग्रामे ये हताः शत्रुसम्मुखे॥ ४१

व्रजन्ति ते विष्णुपदं लोकान् सर्वान् विहाय च।

श्रीगर्ग उवाच

एवं सम्बोधितो दैत्यैः शोकं सर्वं विहाय च॥ ४२

सर्वान् वीरानागतांश्च ददर्श रोषपूरितः।
दृष्ट्वा सर्वान् स सङ्ग्रामे शीघ्रं प्राह रुषा ज्वलन्॥ ४३

इसका परिणाम यह होगा कि नरकमें पड़ोगे और फिर जन्म लोगे, इसमें संशय नहीं है। इसलिये इस महासमरमें तुम श्रेष्ठ यादव-वीरोंके साथ युद्ध करो। क्षत्रियवृत्तिवाले लोगोंके लिये धर्मयुद्धसे बढ़कर परम कल्याणका साधन दूसरा कोई नहीं है। जो समराङ्गणमें धर्मयुद्ध करते हुए शत्रुके सामने वीरगतिको प्राप्त होते हैं, वे समस्त लोकोंको लाँघकर भगवान् विष्णुके परम धाममें चले जाते हैं॥ ४०—४१ $^{1}/_{2}$॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! उन दैत्योंके इस प्रकार समझानेपर सैन्यपालने सब शोक त्याग दिया तथा रोषसे भरकर वहाँ आये हुए समस्त वीरोंका निरीक्षण किया। संग्रामभूमिमें सबपर दृष्टिपात करके रोषसे जलते हुए सैन्यपालने शीघ्र ही यह बात कही॥ ४२-४३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे सैन्यपालसुतवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'सैन्यपालके पुत्रका वध' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी कृपासे दैत्यराजकुमार कुनन्दनके जीवनकी रक्षा

सैन्यपाल उवाच

अत्रागताश्च सर्वेऽपि धन्विनो युद्धदुर्मदाः।
युवराजो नृपसुतो रणे चात्र न दृश्यते॥ १

स किं करिष्यति गृहे मारयित्वा च मत्सुतम्।
स भुशुण्डीमुखेनापि तन्मार्गं किं न यास्यति॥ २

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो ग्रहीतुं नृपनन्दनम्।
जगाम नगरीं शीघ्रं सैन्यपालः प्रहर्षितः॥ ३

स राजपुत्रो मदिरां पीत्वा वै भोजनान्तरे।
चकार शयनं रात्रौ विस्मृतो मदविह्वलः॥ ४

तत्पत्नी बोधयामास भर्तारं नृपनन्दनम्।
श्रुत्वा पटहनिर्घोषं रुदती भयविह्वला॥ ५

सैन्यपालने कहा—यहाँ सभी रणदुर्मद धनुर्धर वीर तो आ गये हैं, केवल राजाके पुत्र युवराज इस रणभूमिमें नहीं दिखायी देते हैं। वे मेरे बेटेको मरवाकर घरमें बैठे क्या कर रहे हैं? क्या वे भुशुण्डीके मुँहमें पड़कर मेरे पुत्रके ही रास्तेपर नहीं जायँगे?॥ १-२॥

ऐसा कहकर रोषसे आँखें लाल किये सैन्यपाल बड़े हर्षके साथ राजकुमारको पकड़नेके लिये शीघ्र ही पुरीमें जा पहुँचा। उस राजकुमारने रातमें भोजनके बीचमें ही मदिरा पीकर शयन किया था; अतः मदमत्त होनेके कारण वह राजाकी आज्ञाको भूल गया था॥ ३-४॥

ढिंढोरेपर की गयी घोषणा सुनकर उसकी पत्नी भयसे विह्वल हो रो पड़ी और अपने पति राजकुमारको जगाने लगी—॥ ५॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे वीर प्रातःकालो बभूव ह।
त्वत्पितुः शासनं पुर्यां भेरीघोषेण श्रूयते॥ ६

ये न यास्यन्ति युद्धार्थं ते वधार्हाः सुतादयः।
तस्मात्प्रयाहि शीघ्रं त्वं गत्वा तातं विलोकय॥ ७

प्रियया बोधितः सोऽपि चैतन्यो न बभूव ह।
पुनः सा बोधयामास ससैन्ये बल्वले गते॥ ८

ततः स निद्रां च विहाय चोत्थितः
सद्यो गृहीत्वा सशरं धनुः किल।
शिवं गणेशं मनसा च संस्मर-
ञ्जगाम युद्धाय रथेन भूपजः॥ ९

तमागतं वीक्ष्य नृपस्य नन्दन-
मुवाच रोषेण तु सैन्यपालकः।
कथं त्वया दैत्यवरस्य शासनं
विलोपितं केन बलेन मां वद॥ १०

मत्सुतस्त्वादृशो भूत्वा शीघ्रं नागतवान् मृधे।
स मारितो बल्वलेन शतघ्नीप्रमुखेन च॥ ११

तस्माद्गच्छ पितुः पार्श्वं सत्यवादी पिता तव।
मारयिष्यति शीघ्रं वै नेतुं त्वां प्रेषितोऽस्म्यहम्॥ १२

वचस्तीक्ष्णं समाकर्ण्य भयाच्छुष्कमुखस्तु सः।
पितुः सकाशात्स ययौ सुधन्वा दुःखितो यथा॥ १३

ददर्श पितरं गत्वा दैत्यवृन्दैः समावृतम्।
रथस्थं कुपितं तत्र ह्यनिरुद्धजयोत्सुकम्॥ १४

दृष्ट्वा तातं नमस्कृत्य व्रीडितो भयविह्वलः।
अधोमुखः स्थितो भूमौ दानवेन्द्रस्य पश्यतः॥ १५

बल्वलः कुपितः प्राह दन्तान् दन्तैर्विनिष्पिषन्।
आज्ञाभङ्गस्त्वया केन कृतः स्वात्मविघातने॥ १६

तस्माद्विभीतं किल युद्धमण्डलाद्
गृहे गतं प्राणपरीप्सया सुतम्।
कुनन्दनं शत्रुसमं मलीमसं
हित्वा शतघ्नीवदनेन हन्म्यहम्॥ १७

"हे वीर! उठो! उठो! प्रातःकाल हो गया। नगाड़ेकी आवाजके साथ तुम्हारे पिताका यह शासन पुरीमें सुनायी देता है—'जो युद्धके लिये नहीं जायँगे, वे पुत्र आदि ही क्यों न हों, वधके योग्य होंगे'। इसलिये शीघ्र जाओ और पिताका दर्शन करो"॥ ६-७॥

अपनी प्यारी पत्नीके जगानेपर भी उसको कुछ होश न हुआ। जब बल्वलकी सेना चली गयी, तब उसकी पत्नीने उसे पुनः जगाया। तब निद्रा त्यागकर राजकुमार उठा और तुरंत धनुष-बाण लेकर मन-ही-मन भगवान् शिव तथा गणेशजीका स्मरण करता हुआ रथके द्वारा युद्धके लिये चला॥ ८-९॥

राजकुमारको आया देख सैन्यपालने रोषपूर्वक पूछा—'तुमने दैत्यराजके शासनका किस बलसे और क्यों उल्लंघन किया है? वह मुझे बताओ। मेरा बेटा भी तुम्हारे ही समान विलम्ब करके शीघ्र रणभूमिमें नहीं पहुँचा था, इसलिये बल्वलने उसे शतघ्नीके मुँहपर खड़ा करके मार डाला; अतः पिताके पास चलो। तुम्हारे पिता बड़े सत्यवादी हैं। उन्होंने तुम्हें पकड़ लानेके लिये मुझे भेजा है; अतः वे शीघ्र ही तुम्हें मार डालेंगे'॥ १०—१२॥

सैन्यपालकी तीखी बात सुनकर भयके कारण राजकुमारका मुँह सूख गया। वह दुखी सुधन्वाकी भाँति पिताके पास गया। दैत्य-समुदायसे घिरे हुए उसके पिता अनिरुद्धको जीतनेके लिये उत्सुक हो रोषपूर्वक रथपर बैठे थे॥ १३-१४॥

उनके पास जाकर राजकुमारने पिताका दर्शन किया। पिताको देखकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर राजकुमार लज्जित तथा भयसे विह्वल हो गया। दानवेन्द्रके सामने वह पृथ्वीपर नीचे मुँह किये खड़ा था। बल्वल कुपित हो दाँतोंसे दाँत पीसता हुआ बोला—'अरे! अपने विनाशके लिये तूने मेरी आज्ञाका उल्लंघन क्यों किया? तेरे इस अपराधके कारण मैं तुझे दण्ड दूँगा। निश्चय ही तू डरकर रणक्षेत्रसे प्राण बचानेके लिये घरमें जा घुसा था। कुनन्दन! तू पुत्र नहीं, कुपुत्र है, शत्रुके समान है और अत्यन्त मलिन है। मैं तुझे त्यागकर शतघ्नीके मुखसे अभी मार डालूँगा'॥ १५—१७॥

इत्युक्त्वा स्वसुतं वीरो दुःखादश्रुपरिप्लुतः।
खिन्नः प्रत्याह मनसि प्रतिज्ञा किं कृता मया॥ १८

अहो विनापराधेन सैन्यपालसुतो हतः।
तेन पापेन मत्पुत्रो मरिष्यति न संशयः॥ १९

मोचयिष्ये यदि सुतं वीरं मृत्युमुखाद्बलात्।
तदा मत्सैनिकाः सर्वे मां शपन्ति हसन्ति च॥ २०

शोचन्तमित्थं नृपतिं च दुःखितं
स्वपुत्रशोकेन तु खिन्नमानसम्।
विलोक्य रोषेण हसन्नमर्षितो
ह्युवाच वाक्यं किल सैन्यपालकः॥ २१

सैन्यपाल उवाच

एनं मारय शीघ्रं त्वं स्वपुत्रं च कुनन्दनम्।
पश्चाद्भवति सङ्ग्रामो यादवानां च दानवैः॥ २२

त्वं सत्यवादी दैत्येन्द्र इदं कर्म च दारुणम्।
न करिष्यसि दुःखेन निरयस्ते भविष्यति॥ २३

सत्याद्रामसमं पुत्रं तत्याज कोसलेश्वरः।
हरिश्चन्द्रः प्रियां पुत्रं स्वात्मानं चैव भूपते॥ २४

बलिश्चैव महीं सर्वां जीवनं च विरोचनः।
स्वकीर्तिं च शिबिश्चैव दधीचिः स्वतनुं तथा॥ २५

पृषध्रं तु गुरुश्चैव रन्तिदेवश्च भोजनम्।
आज्ञाभङ्गकरं पुत्रं तथा मारय त्वं नृप॥ २६

त्वया पूर्वं च यत्प्रोक्तं स्वपुत्रमपि भ्रातरम्।
आज्ञाभङ्गकरं हन्मि शीघ्रमन्यस्य का कथा॥ २७

तस्मिन् देशे च वस्तव्यं यस्मिन् भूपश्च सत्यवाक्।
तस्मिन् देशे न वस्तव्यं यस्मिन् भूपो ह्यसत्यवाक्॥ २८

अपने बेटेसे ऐसा कहकर वीर बल्वल दुःखसे आँसू बहाने लगा और मन-ही-मन खिन्न होकर बोला—'हाय! मैंने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की? अहो! सैन्यपालके बेटेको मैंने बिना अपराधके ही मार डाला; उसी पापसे मेरा पुत्र भी मरेगा, इसमें संशय नहीं है॥ १८-१९॥

यदि अपने वीर पुत्रको मैं बलपूर्वक मृत्युके मुखसे छुड़ा लूँगा तो मेरे समस्त सैनिक मुझे गाली देंगे और मुझपर हँसेंगे।' दैत्यराजको इस प्रकार शोकमग्न, दुखी तथा अपने पुत्रके लिये खिन्नचित्त देखकर रोष और अमर्षसे भरा हुआ सैन्यपाल हँसता हुआ बोला॥ २०-२१॥

सैन्यपालने कहा—राजन्! पहले अपने इस पुत्र कुनन्दनको शीघ्र मार डालो। इसके बाद यादवोंका दानवोंके साथ संग्राम होगा। दैत्येन्द्र! तुम सत्यवादी हो और यह कर्म अत्यन्त दारुण है। यदि दुःखके कारण तुम इसे नहीं करोगे तो तुम्हें नरकमें जाना पड़ेगा॥ २२-२३॥

भूपाल! कोसलपति राजा दशरथने सत्यकी रक्षाके लिये श्रीराम-जैसे बेटेको त्याग दिया। सत्यके बन्धनमें बँधे हुए हरिश्चन्द्रने अपनी प्यारी पत्नीको, पुत्रको और अपने-आपको भी बेच दिया था। बलिने सत्यके कारण सारी पृथ्वी दे डाली। विरोचनने अपना जीवन दे दिया। राजा शिबिने अपनी कीर्तिका तथा दधीचिने अपने शरीरका त्याग कर दिया था॥ २४-२५॥

जैसे गुरु वसिष्ठने पृषध्रको तथा राजा रन्तिदेवने भोजनको त्याग दिया था, उसी प्रकार दैत्यराज! तुम भी आज्ञा भङ्ग करनेवाले इस पुत्रका मोह छोड़कर इसे मार डालो। तुमने पहले जो यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं अपनी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले बेटे और भाईको भी तत्काल मार डालूँगा, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है?' उस देशमें निवास करना चाहिये, जहाँ राजा सत्यवादी हो। उस देशमें कदापि नहीं रहना चाहिये, जहाँका राजा मिथ्यावादी हो॥ २६—२८॥

श्रीगर्ग उवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य बल्वलः खिन्नमानसः।
मारणार्थं तु तस्यापि तस्मै चाज्ञां चकार ह॥ २९

ततो जगाम दुःखाढ्यो यदूनां सम्मुखे तु सः।
सैन्यपालस्तु तस्याज्ञां तत्पुत्राग्रे न्यवेदयत्॥ ३०

श्रुत्वा प्रत्याह वचनं शीघ्रं तस्मै कुनन्दनः।

राजपुत्र उवाच

कर्तव्या च नृपस्याज्ञा त्वया परवशेन वै॥ ३१

रामेण तु हतं शीर्षं स्वमातुः पितुराज्ञया।
सैन्यपाल प्रतीतोऽहं कृता धर्मक्रिया मया॥ ३२

मरणान्न भयं मह्यं शतघ्न्यां च निवेशय।
इत्युक्त्वा राजपुत्रस्तु स्वकिरीटं तथाङ्गदम्॥ ३३

मुक्ताहारं स्वर्णहारं कुण्डले कटकानि च।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ सर्वं ते दुःखादाशिषं ददुः॥ ३४

ततः स्नात्वा स तीर्थस्य लेपयित्वा च मृत्तिकाम्।
तुलसीपल्लवं मालां मुखे कण्ठे निधाय च॥ ३५

ब्रुवञ्छ्रीकृष्ण रामेति चकार स्मरणं हरेः।
सैन्यपालस्तु तं शीघ्रं गृहीत्वा भुजयोर्बलात्॥ ३६

कारयामास राजेन्द्र शतघ्नीवदने रुषा।
हाहाकारस्तदैवासीत्सैनिका रुरुदुर्भृशम्॥ ३७

रुरोद बल्वलस्तत्र रुरुदुस्ते द्विजातयः।
दृष्ट्वा शतघ्नीं तत्रापि प्रतप्तां मदपूरिताम्॥ ३८

ताम्रगोलकसंयुक्तामग्नियुक्तां भयङ्कराम्।
स राजपुत्रः श्रीकृष्णं सर्वव्यापिनमीश्वरम्॥ ३९

अश्रुपूर्णमुखो भूत्वा प्रत्याह विमलं वचः॥ ४०

कृष्णं मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
शङ्खेन्दुकुन्ददशनं नरनाथवेषम्।

श्रीगर्गजी कहते हैं—सैन्यपालकी बात सुनकर बल्वलने खिन्नचित्त हो अपने उस पुत्रका भी वध करनेके लिये उसीको आज्ञा दे दी। तदनन्तर बल्वल दुखी हो यादवोंके सामने गया। इधर सैन्यपालने राजकुमारके आगे उसके पिताकी दी हुई आज्ञा सुना दी। यह सुनकर कुनन्दनने उसे शीघ्र ही इस प्रकार उत्तर दिया॥ २९—३०१/२॥

राजपुत्र बोला—सेनापते! तुम पराधीन हो; इसलिये तुम्हें राजाकी आज्ञाका अवश्य पालन करना चाहिये। परशुरामजीने अपने पिताकी आज्ञासे माताका मस्तक काट लिया था। सैन्यपाल! मैं निश्चिन्त हूँ। मैंने धर्मकार्यका पालन कर लिया है। अब मुझे मृत्युसे कोई भय नहीं है। तुम मुझे शतघ्नीमें झोंक दो॥ ३१—३२१/२॥

—ऐसा कहकर राजकुमारने अपना किरीट, भुजबंद, मोतियोंका हार, सुवर्णमयी माला तथा कुण्डल और कड़े आदि सब आभूषण ब्राह्मणोंको दान कर दिये। उन ब्राह्मणोंने बड़े दुःखसे उस राजकुमारको आशीर्वाद दिया॥ ३३-३४॥

तदनन्तर स्नान करके, अपने शरीरमें तीर्थकी मिट्टी पोतकर, मुखमें तुलसीदल और कण्ठमें तुलसीकी माला पहनकर राजकुमार 'श्रीकृष्ण! हे राम!'—इस प्रकार कहता हुआ भगवान् श्रीहरिका स्मरण करने लगा। राजेन्द्र! सैन्यपालने बलपूर्वक उसकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं और रोषपूर्वक उसे शतघ्नीके मुखमें डाल दिया। उसी समय हाहाकार मच गया। समस्त सैनिक फूट-फूटकर रोने लगे॥ ३५—३७॥

बल्वल भी रो उठा और वहाँ खड़े हुए ब्राह्मण भी रोदन करने लगे। शतघ्नीमें बारूद भरकर उसमें ताँबेके गोले डाल दिये गये और वह अग्नियुक्त होकर तप गयी। उस दशामें उस भयंकर शतघ्नीको देखकर राजकुमार कुनन्दन सर्वव्यापी परमेश्वर श्रीकृष्णको याद करके आँसू बहाता हुआ यह निर्मल वचन बोला—॥ ३८—४०॥

'जिनके नेत्र प्रफुल्लित कमलदलके समान विशाल हैं, दाँतोंकी पङ्क्ति शङ्ख, कुन्दपुष्प और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल है, जो नरेन्द्रके वेषमें रहते

इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपद्मं
प्राणप्रयाणसमये च हरिं स्मरामि॥ ४१

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
श्रीकृष्ण गोविन्द कुशस्थलीश।
श्रीकृष्ण गोविन्द व्रजेश भूप
श्रीकृष्ण गोविन्द भयात्प्रपाहि॥ ४२

स्मरणात्तव गोविन्द ग्राहान्मुक्तो मतङ्गजः।
स्वायम्भुवश्च प्रह्लादो ह्यम्बरीषो ध्रुवस्तथा॥ ४३

आनर्तश्चैव कक्षीवान् मृगेन्द्राद्बहुला तथा।
रैवतश्चन्द्रहासश्च तथाहं शरणं गतः। ४४

पूर्वं भवति मे मृत्युः सङ्ग्रामं च विना ह्यहो।
न तोषितश्च प्रधनेऽनिरुद्धो विशिखैर्मया॥ ४५

न तोषिता यादवाश्च न दृष्टाः कृष्णनन्दनाः।
शार्ङ्गमुक्तैश्च विशिखैर्न देहः शकलीकृतः॥ ४६

कुनन्दनस्य शूरस्य स्तेनस्येवाभवद्गतिः।
त्वद्भक्तं मां च पापिष्ठास्तस्मात्सर्वे हसन्ति हि॥ ४७

यं वीक्ष्य भूमौ च पलायते वै
यमो मरिष्यन्ति विनायकाश्च।
निरङ्कुशं कृष्णजनं च पूज्यं
कथं शतघ्नी किल मां हनिष्यति॥ ४८

श्रीगर्ग उवाच

इत्थं वदति शूरे वै सैन्यपालस्य चाज्ञया।
शतघ्नीं मुमुचे कश्चिद्धाहाशब्दस्तदाभवत्॥ ४९

स्मरणात्कृष्णचन्द्रस्य चित्रमेकं बभूव ह।
शतघ्नी शीतला जाता ज्वाला शान्तिं गता नृप॥ ५०

दृष्ट्वाश्चर्यं च तत्रापि जनाः सर्वे नृपादयः।
विसिष्मू राजशार्दूल सैन्यपालस्तदाब्रवीत्॥ ५१

हैं तथा जिनके चरणारविन्दोंकी इन्द्रादि देववृन्द भी वन्दना करते हैं, उन श्रीकृष्ण मुकुन्द हरिका आज मैं प्राणान्तकालमें चिन्तन करता हूँ। हे श्रीकृष्ण! हे गोविन्द! हे हरे! हे मुरारे! हे द्वारकानाथ श्रीकृष्ण गोविन्द! हे व्रजेश्वर श्रीकृष्ण गोविन्द! तथा हे पृथ्वीपालक श्रीकृष्ण गोविन्द! आप भयसे मेरी रक्षा कीजिये॥ ४१-४२॥

गोविन्द! आपके स्मरणसे हाथी ग्राहके संकटसे छूट गया था। स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, अम्बरीष, ध्रुव, आनर्तराज कक्षीवान् भी भयसे मुक्त हुए थे। बहुला सिंहके चंगुलसे छूटी थी। रैवत और चन्द्रहासकी भी आपकी शरणमें जानेसे रक्षा हुई थी, उसी प्रकार मैं भी आपकी शरणमें आया हूँ॥ ४३-४४॥

अहो! यदि युद्ध किये बिना पहले ही मेरी मृत्यु हो जाती है तो यह उचित नहीं है। अभी मैंने युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा अनिरुद्धको संतुष्ट नहीं किया। यादवोंको संतोष नहीं दिलाया। श्रीकृष्णके पुत्रोंके दर्शन नहीं किये। शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा अपने इस शरीरके टुकड़े-टुकड़े नहीं करवाये॥ ४५-४६॥

ऐसी दशामें शूरवीर कुनन्दनकी यह चोरके समान गति हो गयी! भगवन्! मैं आपका भक्त हूँ। मेरी दुर्गति देखकर समस्त पापिष्ठ मुझपर हँसते हैं। जिसे भूमिपर देखकर यमराज भी पलायन कर जाते हैं, विघ्न डालनेवाले विनायकगण मर जाते हैं, उस पूजनीय एवं निरंकुश कृष्णभक्त मुझ कुनन्दनको शतघ्नी कैसे मार डालेगी?'॥ ४७-४८॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! वह शूरवीर कुनन्दन जब ऐसी बात कह रहा था, उसी समय सैन्यपालकी आज्ञासे किसीने शतघ्नीको छोड़ा। छोड़नेके साथ ही हाहाकार मच गया। नरेश्वर! उस समय श्रीकृष्णचन्द्रके स्मरणसे एक विचित्र बात हो गयी! शतघ्नी शीतल हो चुकी थी और आगकी ज्वाला बुझ गयी थी। राजसिंह! यह आश्चर्य देखकर वहाँ खड़े हुए राजा आदि सब लोग बड़े विस्मित हुए। तब सैन्यपाल बोला— ॥ ४९—५१॥

शतघ्न्यां शुष्कमदिरा गोलकेन समन्विता।
न विद्यते त्वसौ तस्मान्न मृतो रणमण्डले॥ ५२

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वीरा रुषान्विताः।
अयं निष्किल्बिषः शूरः कृष्णभक्तो महामतिः॥ ५३

रक्षितस्तेन दुःखाद्वै पुनर्हन्तुं च नार्हसि।
तेषां वाक्यं समाकर्ण्य सैन्यपालो रुषान्वितः॥ ५४

ददर्श राजपुत्रं वै शतघ्नीवदने स्थितम्।
जपन्तं कृष्ण कृष्णेति स्त्रजा मीलितलोचनम्॥ ५५

दृष्ट्वा तं च पुनर्हन्तुं शतघ्नीं मुमुचे खलः।
सा शतघ्नी तदा भिन्ना शब्दो वज्रनिपातवत्॥ ५६

बभूव सैन्यपालस्तु गोलकेन मृतोऽभवत्।
तथा तदनुगास्तस्य ज्वालया ज्वलिताः किल॥ ५७

हा हा शब्दं प्रकुर्वन्तो दुद्रुवुः केचिदेव हि।
केचिद्वै बधिरीभूताः केचिद् धूमेन विह्वलाः॥ ५८

ततश्च ददृशुः सर्वे नृपपुत्रं च निर्भयम्।
चक्रुर्जयजयारावं बल्वलाद्या नृपेश्वर॥ ५९

दैत्या ऊचुः

यं च रक्षति श्रीकृष्णस्तं को भक्षति मानवः।
भक्तं हन्तुं चागतो यः स विनश्यति दैवतः॥ ६०

तस्मात्कृष्णसमो नास्ति येनायं रक्षितो भयात्।
सर्वे वयं नमस्यामस्तं कृष्णं भक्तवत्सलम्॥ ६१

'शतघ्नीकी बारूद सूखी पड़ी है और उसमें गोले भी ज्यों-के-त्यों हैं, किंतु राजकुमार वहाँ नहीं है। इससे सिद्ध है कि वह रणक्षेत्रमें मारा नहीं गया है'॥ ५२॥

उसकी बात सुनकर वीरगण रुष्ट होकर बोले—'यह परम बुद्धिमान् पापशून्य शूरवीर राजकुमार भगवान् श्रीकृष्णका भक्त है। इसलिये भगवान्‌ने ही उसे दुःखसे बचाया है। अब फिर तुम्हें इसका वध नहीं करना चाहिये'॥ ५३½॥

उन वीरोंकी बात सुनकर सैन्यपालको बड़ा रोष हुआ। उसने जब पुनः दृष्टिपात किया तो राजकुमार शतघ्नीके मुखमें बैठा दिखायी दिया। उसके नेत्र बंद थे और वह माला लेकर 'कृष्ण, कृष्ण' जप रहा था॥ ५४-५५॥

उसे देखकर उस दुष्ट सैन्यपालने फिर उसे मारनेके लिये शतघ्नी दाग दी। किंतु उस समय शतघ्नी फट गयी और उससे वज्रपातके समान शब्द हुआ। शतघ्नीके गोलेसे सैन्यपालकी मृत्यु हो गयी और उसकी ज्वालासे उसका अनुसरण करनेवाले सैनिक जल गये॥ ५६-५७॥

कोई 'हाय-हाय' करते हुए भागे, कोई धड़ाकेकी आवाजसे बहरे हो गये और कितने ही धुएँसे घबरा गये। नृपेश्वर! उस समय सबने राजकुमारको निर्भय देखा। यह देखकर बल्वल आदि सभी वीर जय-जयकार करने लगे॥ ५८-५९॥

दैत्य बोले—जिसकी रक्षा श्रीकृष्ण करते हैं, उसे कौन मनुष्य मार सकता है? जो भक्तका वध करनेके लिये आता है, वह दैवयोगसे आप ही नष्ट हो जाता है॥ ६०॥

अतः कृष्णके समान अन्य कोई नहीं है, जिन्होंने भयसे इस राजकुमारकी रक्षा की है, उन भक्तवत्सल श्रीकृष्णको हम सब लोग नमस्कार करते हैं॥ ६१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे राजपुत्रजीवनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'राजकुमारके जीवनकी रक्षा' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

दैत्यों और यादवोंका घोर युद्ध; बल्वल, कुनन्दन तथा अनिरुद्धका अद्भुत पराक्रम

श्रीगर्ग उवाच

अथ वै बल्वलः पुत्रं रोहयित्वा रथे मुदा।
तेन सार्धं ससैन्यस्तु युद्धार्थं प्रययौ त्वरम्॥ १

नानाशस्त्रधराः सर्वे नानावाहनसंस्थिताः।
नानाकञ्चुकसंयुक्ता नानारूपा भयङ्कराः॥ २

गजेन्द्रसदृशाः पुष्टा मृगेन्द्रसमविक्रमाः।
कम्पयन्तश्च पृथिवीं वृष्णीनां सम्मुखे ययुः॥ ३

तानागतान् बहून् दैत्याननिरुद्धस्तु शङ्कितः।
रक्षणार्थं च सर्वेषां चक्रव्यूहमकल्पयत्॥ ४

सर्वतो यादवाः शूराः सर्वशस्त्रधराः किल।
गजै रथैस्तुरङ्गैश्च बभूवुः परिमण्डिताः॥ ५

तेषां मध्ये स्थिता राजन्निन्द्रनीलादयो नृपाः।
अक्रूरकृतवर्माद्यास्तेषां मध्ये स्थिताः शुभाः॥ ६

तेषां मध्ये च राजेन्द्र गदाद्याः कृष्णभ्रातरः।
तेषां मध्ये महावीराः साम्बदीप्तिमदादयः॥ ७

चक्रव्यूहं विनिर्माय चेदृशं तत्र भूपते।
तन्मध्ये कार्ष्णिपुत्रस्तु दंशितः संस्थितोऽभवत्॥ ८

बभूव तुमुलं युद्धं तत्र सिन्धुतटे नृप।
यदुभिर्दानवानां च ह्यब्धीनामब्धिभिर्यथा॥ ९

रथिनो रथिभिस्तत्र गजवाहा गजैः सह।
अश्ववाहैरश्ववाहा वीरा वीरैः परस्परम्॥ १०

युयुधुस्तीक्ष्णबाणैश्च खड्गचर्मगदर्ष्टिभिः।
पाशैः परश्वधै राजञ्छतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः॥ ११

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् बल्वलने बड़ी प्रसन्नताके साथ पुत्रको रथपर चढ़ाया और उसके साथ ही अपनी सेना लेकर बड़ी उतावलीके साथ वह युद्धके लिये चला। उसके समस्त सैनिक नाना प्रकारके शस्त्र लिये हुए थे। वे अनेक प्रकारके वाहनोंपर बैठे थे तथा भाँति-भाँतिके कवचोंसे सुसज्जित हो नाना प्रकारके रूपोंमें बड़े भयंकर दिखायी देते थे॥ १-२॥

वे गजराजके समान हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले और सिंहके समान पराक्रमी थे। वे पृथ्वीको कम्पित करते हुए वृष्णिवंशी यादवोंके सम्मुख गये। उन बहुत-से दैत्योंको आया हुआ देख अनिरुद्ध शङ्कित हो गये और उन्होंने समस्त यादवोंकी रक्षाके लिये चक्रव्यूहकी रचना की॥ ३-४॥

चारों ओरसे शूरवीर यादव सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हाथी, घोड़े और रथोंद्वारा खड़े होकर बड़ी शोभा पाने लगे। राजन्! उनके मध्यभागमें इन्द्रनील आदि राजा खड़े हुए। उनके बीचमें अक्रूर और कृतवर्मा आदि अच्छे वीर स्थित हुए। राजेन्द्र! उनके बीचमें गद आदि श्रीकृष्णके भाई विराजित हुए। उनके मध्यभागमें साम्ब और दीप्तिमान् आदि महान् वीर खड़े हुए॥ ५—७॥

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार चक्रव्यूह बनाकर उसके मध्यमें प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध कवच धारण करके खड़े हुए। नरेश्वर! वहाँ सागरके तटपर यादवोंके साथ दानवोंका बड़ा घोर युद्ध हुआ, मानो अनेक समुद्रोंके साथ बहुत-से दूसरे समुद्र जूझ रहे हों॥ ८-९॥

उस संग्रामस्थलमें रथी रथियोंके साथ, हाथी-सवार हाथी-सवारोंके साथ, अश्वारोही अश्वारोहियोंके साथ और पैदल-वीर पैदल-वीरोंके साथ परस्पर युद्ध करने लगे। राजन्! तीखे बाणों, ढाल-तलवारों, गदाओं, ऋष्टियों, पाशों, फरसों, शतघ्नियों और भुशुण्डियोंद्वारा

हन्यमानाश्च यदुभिर्बल्वलस्य च सैनिकाः।
सर्वे स्वं स्वं रणं त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते भयान्विताः॥ १२

रुरोध गगनं सूर्यं सैन्यपादरजो भृशम्।
अन्धकारे महादैत्या रणात्सर्वे पराङ्मुखाः॥ १३

केचिन्निपतिताः कूपे केचिद्गर्ते ह्यधोमुखाः।
केचित्तडागे वाप्यां वै यदूनां सायकैर्हताः॥ १४

ततो दृष्ट्वा बलं भग्नं बल्वलो रोषपूरितः।
चतुर्भिर्मन्त्रिणां पुत्रैः स्वपुत्रेणाजगाम ह॥ १५

अनिरुद्धो बल्वलेन तत्रायुद्ध्यन् महामृधे।
दुर्नेत्रेण बृहद्बाहुर्दुर्मुखेनारुणो बली॥ १६

न्यग्रोधो दुःस्वभावेन दुर्मदेन कविस्तथा।
कुनन्दनेन सङ्ग्रामे कृष्णपुत्रः सुनन्दनः॥ १७

एवं बभूव संग्रामो देवविस्मयकारकः।
प्रगतास्तत्र राजेन्द्र सर्वे कार्तिकवासराः॥ १८

बल्वलः कुपितो राजन् धनुष्टङ्कारयन् मुहुः।
इन्द्रनीलं त्रिभिर्बाणैः षड्भिर्हेमाङ्गदं मृधे॥ १९

अनुशाल्वं च दशभिरक्रूरं दशभिस्तथा।
गदं द्वादशभिर्बाणैर्युयुधानं च पञ्चभिः॥ २०

पञ्चभिः कृतवर्माणमुद्धवं दशभिः शरैः।
कार्ष्णिजं शतबाणैश्च विव्याध समरेऽसुरः॥ २१

तच्छरैः सरथाः सर्वे बभ्रमुर्घटिकाद्वयम्।
तुरगाः पञ्चतां प्राप्ताश्चूर्णीभूता रथा रणे॥ २२

तद्धस्तलाघवं दृष्ट्वा यादवा विस्मयं गताः।
रथानारुरुहुः सर्वेऽनिरुद्धाद्याश्च मानद॥ २३

बल्वलोऽपि ययौ राजन्नन्यान् वीरान् विलोकितुम्।
अनिरुद्धस्ततः प्राह क्रोधादरुणलोचनः॥ २४

यादव-वीर बल्वलके सैनिकोंका वध करने लगे। उनकी मार खाकर भयभीत हो वे सब-के-सब अपना-अपना रणस्थल छोड़कर भाग चले॥ १०—१२॥

सैनिकोंके पैरोंसे उड़ी हुई बहुत-सी धूलराशिने आकाश और सूर्यको ढक दिया। सब ओर अन्धकार फैल गया और उस अँधेरेमें समस्त महादैत्य युद्धसे पीठ दिखाकर पलायन करने लगे। यादवोंके सायकोंसे घायल होकर उन असुरोंमेंसे कितने ही कुएँमें गिर गये, कई औंधे मुँह होकर गड्ढेमें गिर पड़े और कितने ही पोखरे तथा बावलीमें डूब गये॥ १३-१४॥

अपनी सेनामें भगदड़ मची देख बल्वल रोषसे भर गया और चारों मन्त्रिकुमारों तथा अपने पुत्रके साथ यादवोंका सामना करनेके लिये आया॥ १५॥

उस महासमरमें बल्वलके साथ अनिरुद्ध, दुर्नेत्रके साथ बृहद्बाहु, दुर्मुखके साथ बलवान् अरुण, दुःस्वभावके साथ न्यग्रोध, दुर्मदके साथ कवि तथा कुनन्दनके साथ श्रीकृष्णपुत्र सुनन्दन युद्ध करने लगे॥ १६-१७॥

राजेन्द्र! इस प्रकार वहाँ देवताओंको भी विस्मयमें डाल देनेवाला संग्राम छिड़ गया। कार्तिकमासके सम्पूर्ण दिन वहाँ युद्धमें ही व्यतीत हो गये। राजन्! बारंबार अपना धनुष टंकारते हुए बल्वलने कुपित हो रणभूमिमें इन्द्रनीलको तीन और हेमाङ्गदको छः बाण मारे॥ १८-१९॥

अनुशाल्वको दस, अक्रूरको दस, गदको बारह, युयुधानको पाँच, कृतवर्माको पाँच, उद्धवको दस और अनिरुद्धको सौ बाणोंद्वारा समराङ्गणमें उस असुरने घायल कर दिया॥ २०-२१॥

उसके बाणोंके आघातसे रथोंसहित वे सभी वीर दो घड़ीतक चक्कर काटते रहे। रणभूमिमें उनके घोड़े मर गये तथा रथ चूर-चूर हो गये। मानद नरेश! उसके हाथकी फुर्ती देखकर अनिरुद्ध आदि समस्त यादव चकित हो गये। फिर वे सब-के-सब दूसरे रथोंपर आरूढ़ हुए। राजन्! उधर बल्वल भी दूसरे-दूसरे वीरोंको देखनेके लिये चला। तब क्रोधसे लाल आँखें किये अनिरुद्धने कहा—॥ २२—२४॥

तिष्ठ तिष्ठ ममाग्रेऽद्य दर्शयित्वा पराक्रमम्।
कुत्र यास्यसि हे दैत्य पश्य मन्निशिताञ्छरान्॥ २५

इति तस्य वचः श्रुत्वा युवराजः कुनन्दनः।
उवाच वचनं शीघ्रं बल्वलस्य च पश्यतः॥ २६

राजपुत्र उवाच

दैत्येन्द्रं च रणे द्रष्टुं त्वं च नार्हसि कार्ष्णिज।
तस्मान् मदीयं च बलं पूर्वं पश्य मृधाङ्गणे॥ २७

अनिरुद्ध उवाच

त्वं बालोऽसि दैत्यपुत्र युद्धं कर्तुं च नार्हसि।
तस्माच्च स्वगृहं गत्वा क्रीडनं कुरु कृत्रिमैः॥ २८

राजपुत्र उवाच

अत्र पश्य महावीरैर्बालस्य मम क्रीडनम्।
गृहे यदि करिष्यामि तत्र कोऽपि न पश्यति॥ २९

इत्युक्त्वा चण्डकोदण्डे दधार शतसायकान्।
ताताड कार्ष्णिजं तैश्च रथस्थं दर्शयन् बलम्॥ ३०

तैर्बाणैः सरथः सोऽपि ससूतः सतुरङ्गमः।
विभ्रमन्नभमार्गेण पपात कपिलाश्रमे॥ ३१

हाहाकारस्तदैवासीदनिरुद्धे गते सति।
ततः क्रुद्धाश्च तं हन्तुं साम्बाद्या आययुर्मृधे॥ ३२

आगतांस्तान् बहून् दृष्ट्वा युवराजः प्रहर्षितः।
साम्बं च दशभिर्बाणैः पञ्चभिश्च मधुं तथा॥ ३३

बृहद्बाहुं त्रिभिर्बाणैश्चित्रभानुं च पञ्चभिः।
वृकं च दशभिर्युद्धे सप्तभिश्चारुणं शरैः॥ ३४

पञ्चभिः सङ्ग्रामजितं सुमित्रं च त्रिभिः शरैः।
दीप्तिमन्तं त्रिभिर्बाणैर्भानुं च दशभिर्मृधे॥ ३५

वेदबाहुं पञ्चभिश्च पुष्करं सप्तभिः शरैः।
अष्टभिः श्रुतदेवं च सम्मुखस्थं सुनन्दनम्॥ ३६

विंशत्या सायकैस्तीक्ष्णैर्विरूपं दशभिस्तथा।
चित्रबाहुं च नवभिर्न्यग्रोधं दशभिः शरैः॥ ३७

कविं च नवभिर्बाणैस्तताड प्रधने बली।
शङ्खं दध्मौ मुदायुक्तो नदन् मानी कुनन्दनः॥ ३८

तद्बाणैर्विभ्रमन्तश्च सरथाः सतुरङ्गमाः।
पेतुः केचिद्योजने च पञ्चक्रोशे द्वियोजने॥ ३९

'ओ दैत्य! मेरे सामने खड़ा रह, खड़ा रह। पराक्रम दिखाकर तू कहाँ जायगा? मेरे तीखे बाणोंको भी देख ले।' अनिरुद्धकी यह बात सुनकर दैत्य युवराज कुनन्दन बल्वलके देखते-देखते शीघ्र ही बोल उठा—॥ २५-२६॥

राजपुत्रने कहा—प्रद्युम्ननन्दन! रणभूमिमें दैत्यराजको देखनेकी योग्यता तुममें नहीं है। इसलिये पहले इस युद्धस्थलमें तुम मेरा बल देख लो॥ २७॥

अनिरुद्ध बोले—दैत्यकुमार! तू अभी बालक है। युद्ध करनेकी योग्यता नहीं रखता है। अतः अपने घर जाकर कृत्रिम खिलौनोंसे खेल॥ २८॥

राजकुमारने कहा—आज तुम यहाँ बड़े-बड़े वीरोंके साथ मुझ बालकका खेल देखो। यदि घर जाकर खेलूँगा तो वहाँ कोई नहीं देखेगा॥ २९॥

—ऐसा कहकर कुनन्दनने अपने प्रचण्ड कोदण्ड-पर सौ सायक रखे और उनके द्वारा अपना बल दिखाते हुए उसने रथपर बैठे हुए अनिरुद्धको घायल कर दिया। उन बाणोंके आघातसे सारथि, घोड़े तथा रथके साथ वे स्वयं भी आकाशमार्गसे चक्कर काटते हुए कपिलाश्रममें जा गिरे। अनिरुद्धके चले जानेपर तत्काल हाहाकार मच गया॥ ३०—३१$^{1}/_{2}$॥

तब रणस्थलमें कुपित हुए साम्ब आदि यादव उस दैत्यकुमारको मारनेके लिये आये। उन बहुसंख्यक योद्धाओंको आया देख युवराजको बड़ा हर्ष हुआ। उस बलवान् वीरने युद्धस्थलमें साम्बको दस, मधुको पाँच, बृहद्बाहुको तीन, चित्रभानुको पाँच, वृकको दस, अरुणको सात, संग्रामजित्‌को पाँच, सुमित्रको तीन, दीप्तिमान्‌को तीन, भानुको दस, वेदबाहुको पाँच, पुष्करको सात, श्रुतदेवको आठ, सामने खड़े हुए सुनन्दनको बीस, विरूपको दस, चित्रबाहुको नौ, न्यग्रोधको दस तथा कविको नौ तीखे बाणोंद्वारा घायल कर दिया। साथ ही उस मानी कुनन्दनने बड़ी प्रसन्नताके साथ विजयसूचक शङ्खध्वनि की। उसके बाणोंसे रथ और घोड़ोंसहित चक्कर काटते हुए कोई एक योजनपर गिरे, कोई पाँच कोसपर और कोई दो योजनपर॥ ३२—३९॥

हाहाकारे तदा याते सेनायां नृपसत्तम।
रुरुदुर्यादवाः सर्वे रामकृष्णेति वादिनः॥ ४०

नृपश्रेष्ठ! उस समय यादव-सेनामें हाहाकार होने लगा। सब यादव बलराम और श्रीकृष्णका नाम ले-लेकर रोने लगे॥ ४०॥

तदा गदादयः सर्वे मुञ्चन्तो निशिताञ्छरान्।
इन्द्रनीलादयश्चैव ह्याजग्मुः क्रोधपूरिताः॥ ४१

उस समय गद आदि सब योद्धा तथा इन्द्रनील आदि राजा क्रोधसे भरे हुए आये और तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ४१॥

दृष्ट्वा समागतान् वीरान् राजपुत्रो महाबलः।
विव्याध सायकैः सर्वे ह्यभूवन् मूर्च्छिता रणे॥ ४२

उन सभी वीरोंको आया देख महाबली राजकुमारने सायकोंसे उन्हें बींध डाला। वे सब-के-सब रणभूमिमें मूर्च्छित हो गये॥ ४२॥

तत्पश्चाद्यादवाञ्छूरान् बाणौघैर्बल्वलात्मजः।
तताड तच्छरै राजन् बहवः पञ्चतां गताः॥ ४३

राजन्! तत्पश्चात् बल्वलकुमारने अपने बाण-समूहोंद्वारा यादव-वीरोंको मारना आरम्भ किया। उसके आघातसे बहुसंख्यक योद्धा पञ्चत्वको प्राप्त हो गये॥ ४३॥

सङ्ग्रामे तस्य बाणौघै रुधिराणां नदी ह्यभूत्।
हस्तिनो यत्र मग्नाश्च सजीवास्ते म्रियन्ति च॥ ४४

हाहाकारस्तदैवासीत्सेनायां च नभस्तले।
महेन्द्रवरुणाद्याश्च भयं प्रापुश्च विस्मिताः॥ ४५

जयं दृष्ट्वासुराः सर्वे बभूवुर्मुदिताननाः।

संग्रामभूमिमें उसके बाणसमूहोंद्वारा रक्तकी नदी प्रकट हो गयी, जिसमें जीवित हाथी डूबकर मर जाते थे। उस समय यादव-सेना तथा आकाशमें 'हाय-हाय'की आवाज गूँजने लगी। इन्द्र और वरुण आदि देवता भी आश्चर्यचकित हो भयभीत हो गये। अपनी विजय देखकर समस्त असुरोंके मुखपर प्रसन्नता छा गयी॥ ४४—४५½॥

श्रीगर्ग उवाच

अथ वै मूर्च्छितं दृष्ट्वानिरुद्धं कपिलो मुनिः॥ ४६

हतयानं निपतितं शरनिर्भिन्नवक्षसम्।
चकार तं तु चैतन्यं हस्तेन तपसा मुनिः॥ ४७

श्रीगर्गजी कहते हैं—उधर कपिलमुनिने देखा कि अनिरुद्ध मूर्च्छित पड़े हैं। इनका रथ नष्ट हो गया है तथा बाणोंसे इनका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया है। तब उन कृपालु मुनिने अपने तपोबलसे हाथद्वारा स्पर्श करके अनिरुद्धको चैतन्ययुक्त कर दिया॥ ४६-४७॥

ततः सोऽपि समुत्थाय सिद्धं नत्वा यदूत्तमः।
सेतुमार्गेणाजगाम यदून् सर्वान् प्रहर्षयन्॥ ४८

तदनन्तर यदुकुलतिलक अनिरुद्धने उठकर उन सिद्ध महर्षिको नमस्कार किया और समस्त यादवोंको हर्ष प्रदान करते हुए वे सेतुमार्गसे रणक्षेत्रमें आ गये॥ ४८॥

अथान्यं रथमारुह्य प्रतिशार्ङ्गधरो बली।
निचखान शरं चैकं राजपुत्ररथे रुषा॥ ४९

स शरस्तद्रथं नीत्वा ससूतं सतुरङ्गमम्।
चतुर्मुहूर्तपर्यन्तं भ्रामयामास चाम्बरे॥ ५०

राजन्! तत्पश्चात् दूसरे रथपर आरूढ़ हो बलवान् अनिरुद्धने 'प्रतिशार्ङ्ग' नामक धनुष उठाया और रोषपूर्वक दैत्य-राजकुमारके रथपर एक बाण मारा। उस बाणने सारथि और घोड़ोंसहित उसके रथको लेकर आकाशमें चार मुहूर्त (आठ घड़ी)-तक चक्कर कटाया॥ ४९-५०॥

ततश्च ददृशुः सर्वे दानवाश्चैव वृष्णयः।
गगने विभ्रमन्तं वै सरथं च कुनन्दनम्॥ ५१

अथ साम्बादयो वीरा रथानारुह्य वेगतः।
अनुशाल्वादयश्चैवाजग्मुः सर्वे धनुर्धराः॥ ५२

उस समय समस्त दानवों और वृष्णिवंशी वीरोंने यह प्रत्यक्ष देखा कि रथसहित कुनन्दन आकाशमें चक्कर काट रहा है॥ ५१॥

उसके बाद साम्ब आदि वीर दूसरे रथोंपर आरूढ़ हो वेगपूर्वक आये। साथ ही अनुशाल्व आदि समस्त धनुर्धर भी तत्काल आ पहुँचे॥ ५२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे दैत्ययादवयुद्धवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'दैत्यों और यादवोंके युद्धका वर्णन' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

बल्वलके चारों मन्त्रिकुमारोंका वध; बल्वलद्वारा मायामय युद्ध तथा अनिरुद्धके द्वारा उसकी पराजय

श्रीगर्ग उवाच

अथ वै तत्र सङ्ग्रामेऽनुशाल्वो दुर्मुखेन च।
युयुधे चेन्द्रनीलस्तु दुर्नेत्रेण दुरात्मना॥ १

हेमाङ्गदो दुर्मदेन दुःस्वभावेन सारणः।
एवं परस्परं युद्धं बभूव रणमण्डले॥ २

सारणो गदया दैत्यं मारयामास वेगतः।
हेमाङ्गदस्त्रिभिर्बाणैस्तताड दुर्मदं मृधे॥ ३

स स्वबाणैर्मृधे तं तु सोऽपि शक्त्या जघान तम्।
इन्द्रनीलश्च दुर्नेत्रं जघान लीलया शरैः॥ ४

दुर्मुखं चानुशाल्वो वै चकार विरथं शरैः।
स चान्यं रथमारुह्य चक्रे तं विरथं शरैः॥ ५

परिघेणानुशाल्वस्तु जघान दुर्मुखं मृधे।
दुर्नेत्रे दुःस्वभावे च दुर्मुखे दुर्मदे हते॥ ६

अवशेषा दुद्रुवुर्वै दैत्याः प्राणपरीप्सया।
ततः पपात चाकाशाद्राजपुत्रश्च विभ्रमन्॥ ७

मूर्च्छितोऽभूद्रणे राजन्नुद्वमन् रुधिरं मुखात्।
रथश्चाङ्गारवत्तस्य भग्नोऽभूत्तुरगा हताः॥ ८

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! तदनन्तर उस संग्राममें अनुशाल्व दुर्मुखसे, इन्द्रनील दुरात्मा दुर्नेत्रसे, हेमाङ्गद दुर्मदसे और सारण दुःस्वभावसे युद्ध करने लगे। इस प्रकार रणक्षेत्रमें परस्पर द्वन्द्वयुद्ध होने लगा॥ १-२॥

सारणने बड़े वेगसे अपनी गदाद्वारा दैत्य दुःस्वभावको मार डाला। हेमाङ्गदने युद्धस्थलमें दुर्मदको तीन बाणोंसे पीड़ित किया। दुर्मदने भी रणक्षेत्रमें हेमाङ्गदको अपने बाणोंसे घायल किया। फिर हेमाङ्गदने शक्तिद्वारा उस दैत्यका वध कर डाला। इन्द्रनीलने खेल-खेलमें ही दुर्नेत्रको अपने बाणोंसे कालके गालमें भेज दिया॥ ३-४॥

अनुशाल्वने बाण मारकर दुर्मुखको रथहीन कर डाला। फिर दुर्मुखने भी दूसरे रथपर आरूढ़ हो बाणोंद्वारा अनुशाल्वको रथहीन कर दिया। तब अनुशाल्वने एक परिघ लेकर युद्धस्थलमें दुर्मुखको मार डाला। इस प्रकार दुर्नेत्र, दुःस्वभाव, दुर्मुख और दुर्मदके मारे जानेपर शेष दैत्य प्राण बचानेके लिये भाग चले॥ ५—६ १/२॥

राजन्! इसी समय राजकुमार कुनन्दन आकाशसे चक्कर काटता हुआ गिरा और मुँहसे रक्त वमन करता हुआ रणक्षेत्रमें मूर्च्छित हो गया। उसका रथ अङ्गारकी भाँति बिखर गया और घोड़े तत्काल मर गये॥ ७-८॥

ततश्च बल्वलः क्रुद्धः पुत्रं दृष्ट्वा च मूर्च्छितम्।
मुमोच धनुषा बाणाननिरुद्धाय वेगतः॥ ९

तानागतान् दश शरान् दृष्ट्वा रुक्मवतीसुतः।
स्वबाणैस्तीक्ष्णधारैश्च चिच्छेद स्वर्णभूषितैः॥ १०

ततो दैत्यो रुषाविष्टश्चापे धृत्वा पुनः शरम्।
उवाच माधवं युद्धे प्रद्युम्नं शकुनिर्यथा॥ ११

बल्वल उवाच

अनेन बाणेन यदुप्रवीर
धनुर्धरं त्वां रणमानिनं च।
मृधे हनिष्ये न वदाम्यसत्यं
रक्षस्व प्राणान् यदि जीवितेच्छा॥ १२

सोऽपि श्रुत्वा स्वकोदण्डे शरमेकं निधाय च।
प्रत्याह प्रहसन् वाक्यं प्रद्युम्नः शकुनिं यथा॥ १३

अनिरुद्ध उवाच

कः केन हन्यते जन्तुस्तथा कः केन रक्ष्यते।
हनिष्यति सदा कालस्तथा रक्षति दुःखतः॥ १४

अहं करोमि कर्ताहं हर्ताहं पालकोऽप्यहम्।
यो वदेच्चेदृशं वाक्यं स विनश्यति कालतः॥ १५

नाहं त्वां तु विजेष्यामि
न विजेष्यसि त्वं तु माम्।
त्वां मां जेष्यति विश्वात्मा
कालरूपो जगत्पतिः॥ १६

न जाने कस्य कुरुते जयं वा च पराजयम्।
कालस्तं मनसा वन्दे विजयार्थे च दानव॥ १७

तस्मादवेहि मनसा कालं हि बलिनां वरम्।
मद्वाक्याच्च महाज्ञानं विहाय त्वं रणं कुरु॥ १८

इति तस्य वचः श्रुत्वा बल्वलो विस्मयान्वितः।
तमाह तोषितः प्रीतो यथा त्वाष्ट्रो मरुत्पतिम्॥ १९

पुत्रको मूर्च्छित हुआ देख बल्वल कुपित हो उठा। उसने अनिरुद्धपर बड़े वेगसे धनुषद्वारा दस बाण चलाये॥ ९॥

उन दसों बाणोंको आया देख रुक्मवतीकुमार अनिरुद्धने अपने तेज धारवाले सुवर्णभूषित सायकोंद्वारा काट डाला। तब रोषसे भरे हुए दैत्य बल्वलने पुनः धनुषपर बाणका संधान करके अनिरुद्धसे इसी प्रकार कहा, जैसे पहले युद्धमें प्रद्युम्नसे शकुनिने कहा था॥ १०-११॥

बल्वल बोला—'यदुकुलके प्रमुख वीर! तुम युद्धके अभिमानी और धनुर्धर हो। आज इस बाणसे समरभूमिमें तुम्हें मार डालूँगा। मैं झूठ नहीं बोलता। यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो अपने प्राणोंकी रक्षा करो।' उसकी बात सुनकर अनिरुद्धने भी अपने कोदण्डपर एक बाण रखा और जैसे प्रद्युम्नने शकुनिको उत्तर दिया था, उसी प्रकार बल्वलसे हँसते हुए कहा— ॥ १२-१३॥

अनिरुद्ध बोले—कौन प्राणी किसके द्वारा मारा जाता है और कौन किससे रक्षित होता है? सदा काल ही सबको मारता है और वही संकटसे सबकी रक्षा करता है। 'मैं करूँगा, मैं कर्ता हूँ, संहर्ता हूँ और पालक भी मैं ही हूँ'—जो ऐसी बात कहता है, वह कालसे ही विनाशको प्राप्त होता है॥ १४-१५॥

मैं तुमको नहीं जीत सकूँगा और तुम भी मुझे नहीं जीत सकोगे। विश्वात्मा कालरूपी जगदीश्वर ही तुमको और मुझको जीतेंगे। दानव! न जाने वे कालपुरुष किसको जय अथवा पराजय देते हैं। मैं तो अपनी विजयके लिये उन कालदेवताकी ही मनसे वन्दना करता हूँ। अतः तुम भी अपने मनसे कालको ही बलवानोंमें श्रेष्ठ समझो और मेरी बात मानकर अपने बड़े भारी अज्ञानको त्यागकर युद्ध करो॥ १६—१८॥

अनिरुद्धकी यह बात सुनकर बल्वलको आश्चर्य हुआ। उनके वचनोंसे संतोष प्राप्त करके उसने प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा—ठीक उसी तरह, जैसे वृत्रासुरने देवराज इन्द्रसे वार्तालाप किया था॥ १९॥

बल्वल उवाच

कर्म प्रधानं भूमध्ये कर्मैव गुरुरीश्वरः।
उच्चावचत्वं भवति कर्मणा वै यदूत्तम॥ २०

सहस्रेषु गवां वत्सः यथा विन्दति मातरम्।
तथा शुभाशुभं येन कृतं तिष्ठत्सु पश्यति॥ २१

ततो जेष्यामि सङ्ग्रामे भवन्तं दृढकर्मणा।
मया कृतश्च शपथः प्रतीकारं कुरु त्वरम्॥ २२

अनिरुद्ध उवाच

प्रधानं मन्यसे कर्म विना कालेन तत्फलम्।
न विद्यते यथा पाके कृते स्याद्विघ्नता क्वचित्॥ २३

पाकप्रकारे पाकश्च विना कर्त्रा न जायते।
तस्माद्वदन्ति कर्तारं कर्मकालात्परं वरम्॥ २४

स कर्ता कृष्णचन्द्रस्तु गोलोकेशः परात्परः।
येन वै निर्मिताः सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥ २५

बल्वल उवाच

श्रीकृष्णपौत्र धन्यस्त्वमृषीन् वाक्यैर्विडम्बयन्।
त्रिभिर्गुणैः पृथग्भूतः स्वभावो दुस्त्यजो नृणाम्॥ २६

सावधानतया चाद्य पश्य प्राणहरं शरम्।
सम्प्राप्तं यादवश्रेष्ठ कृत्वा युद्धे मनः स्वकम्॥ २७

इत्युक्त्वा व्यसृजन् मायां स्वबाणेन मयस्य च।
तदाभवत्तमस्तीव्रं तत्र कोऽपि न लक्ष्यते॥ २८

न च स्वीयो न पारक्यो विदामास जनान् बहून्।
शिलाः पर्वततुङ्गाभाः पतन्ति सुभटोपरि॥ २९

वार्भिर्हताश्च सर्वेऽपि व्याकुलाश्च समन्ततः।
विद्युतो विलसन्त्यत्र गर्जन्ति वारिदा भृशम्॥ ३०

बल्वल बोला—यदुकुलतिलक! इस भूतलपर 'कर्म' ही प्रधान है। कर्म ही गुरु और ईश्वर है। कर्मसे ही लोगोंको ऊँची और नीची स्थिति प्राप्त होती है। जैसे बछड़ा हजारों गायोंके बीचमें अपनी माताको ढूँढ़ लेता है, उसी प्रकार जिसने शुभ या अशुभ कर्म किया है, उसका वह 'कर्म' विद्यमान रहकर फल-प्रदानके समय उसको खोज लेता है। अतः मैं अपने सुदृढ़ कर्मके द्वारा संग्रामभूमिमें तुमपर विजय पाऊँगा। मैंने तो प्रतिज्ञा कर ली। अब तुम तुरंत उसका प्रतीकार करो॥ २०—२२॥

अनिरुद्धने कहा—दैत्य! तुम 'कर्म'को प्रधान मानते हो, परंतु कालके बिना उसका कोई फल नहीं मिलता; जैसे भोजन बना लेनेपर भी कभी-कभी उसकी प्राप्तिमें विघ्न पड़ जाता है। पाकके विभिन्न प्रकार हैं। उनकी सिद्धिके लिये जो पाकका निर्माण किया जाता है, वह बिना कर्ताके सम्भव नहीं होता। अतः बहुत-से विद्वान् 'कर्म' और 'काल' की अपेक्षा 'कर्ता'को ही श्रेष्ठ बताते हैं। वह 'कर्ता' भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं, जो गोलोकधामके स्वामी तथा परात्पर परमेश्वर हैं। उन्होंने ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि समस्त देवताओंकी सृष्टि की है॥ २३—२५॥

बल्वल बोला—श्रीकृष्णपौत्र! तुम धन्य हो और अपने वचनोंद्वारा ऋषियोंका अनुकरण करते हो। तुम तीनों गुणोंसे अतीत हो, तथापि प्राणियोंके लिये अपने स्वभावका परित्याग दुष्कर होता है। यादवश्रेष्ठ! अब सावधान होकर अपने ऊपर प्राप्त होनेवाले मेरे इस प्राणसंहारी बाणको देखो और अपना मन युद्धमें ही लगाये रखो॥ २६-२७॥

ऐसा कहकर बल्वलने अपने बाणद्वारा मयासुरकी माया प्रकट की। उस समय घोर अन्धकार छा गया। कोई भी दिखायी नहीं देता था। बहुत-से लोगोंको यह भी पता नहीं चलता था कि 'कौन अपना है और कौन पराया'। योद्धाओंके ऊपर ऊँचे पर्वतोंके समान शिलाएँ गिर रही थीं। बरसती हुई जलधाराओंके कारण चारों ओरसे सब लोग व्याकुल हो गये थे। बिजलियाँ चमकतीं और बादल जोर-जोरसे गर्जना करते थे॥ २८—३०॥

वर्षन्ति रुधिरं चोष्णं मुञ्चन्ति सशकृज्जलम्।
गगनात्पतमानानि कबन्धानि शिरांसि च॥ ३१

तदा व्याकुलिताः सर्वे परस्परभयातुराः।
पलायनपरा जाताः सङ्ग्रामे च यदूत्तमाः॥ ३२

तदानिरुद्धः प्रधने स्मृत्वा कृष्णपदद्वयम्।
मायां तां स विधूयाथ मोहनास्त्रेण लीलया॥ ३३

तदा दिशः प्रसेदुस्ताः सूर्यस्त्वपरिवेषवान्।
मेघा यथागतं याताश्चपलाः शान्तिमागताः॥ ३४

तदा दैत्यश्च पुरतो दृश्यते दानवैर्युतः।
नानायुधधरो राजन् मायावी चण्डविक्रमः॥ ३५

ब्रह्मास्त्रं सन्दधे क्रुद्धो यादवानां वधाय च।
ब्रह्मास्त्रेण तु ब्रह्मास्त्रं जहार माधवः पुनः॥ ३६

ततश्च बल्वलः क्रुद्धो गान्धर्वीं मोहिनीं पराम्।
विजयार्थे च सङ्ग्रामे मायां सोऽपि चकार ह॥ ३७

गन्धर्वनगरं यत्र दृश्यते नृपसत्तम।
न दृश्यते च सङ्ग्रामः स्वर्णसौधानि कोटिशः॥ ३८

बभूवुस्तत्र गन्धर्व्यो नृत्यन्त्यो गानतत्पराः।
वीणातालमृदङ्गैश्च कलकण्ठैश्च कन्दुकैः॥ ३९

हावभावकटाक्षैश्च कटिवेणीनिदर्शनैः।
तोषयन्त्यो जनान् सर्वान् सुन्दर्यः कञ्जलोचनाः॥ ४०

तासां दृष्ट्वा च सौन्दर्यं यादवाः स्मरविह्वलाः।
ऊचुः परस्परं सर्वे धृत्वा शस्त्राणि भूतले॥ ४१

वयं कुत्रागताः सर्वे स्वर्लोके किं तु दैवतः।
यत्र नृत्यन्ति सुन्दर्यः कलकण्ठ्यो मनोहराः॥ ४२

आसां लावण्यजलधौ वयं मग्नाः स्मरातुराः।
कथं भविष्यति जयो रणं चात्र न दृश्यते॥ ४३

वे बादल गरम रक्तकी और मलमिश्रित जलकी वर्षा करते थे। आकाशसे रुण्ड और मुण्ड गिर रहे थे। उस समय समस्त श्रेष्ठ यादव संग्राममें परस्पर व्याकुल और भयातुर हो वहाँसे पलायन करने लगे॥ ३१-३२॥

तब अनिरुद्धने उस संग्रामभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णके युगल-चरणारविन्दोंका चिन्तन करके लीलापूर्वक मोहनास्त्रद्वारा उस मायाको नष्ट कर दिया। उस समय सारी दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं। सूर्यमण्डलका घेरा समाप्त हो गया। बादल जैसे आये थे, वैसे ही विलीन हो गये और चपलाएँ शान्त हो गयीं॥ ३३-३४॥

राजन्! माया दूर हो जानेपर वह प्रचण्ड पराक्रमी मायावी दैत्य दानवोंके साथ सामने दिखायी दिया। उसने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र ले रखे थे। बल्वलने कुपित होकर यादवोंके वधके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया, परंतु अनिरुद्धने पुनः ब्रह्मास्त्र चलाकर उस ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया॥ ३५-३६॥

इससे बल्वलका क्रोध उद्दीप्त हो उठा। उसने युद्धमें विजय पानेके लिये अत्यन्त मोहमें डालनेवाली 'गान्धर्वी माया' प्रकट की। नृपश्रेष्ठ! अब वहाँ गन्धर्वनगर दिखायी देने लगा। संग्रामका कोई चिह्न नहीं दीखता था। करोड़ों सुवर्णमय महल दृष्टिगोचर होने लगे॥ ३७-३८॥

उस नगरमें बहुत-सी गन्धर्व-सुन्दरियाँ वीणा, ताल और मृदङ्गकी ध्वनिके साथ नृत्य करती हुई मधुर कण्ठसे गीत गाने लगीं। कन्दुककी क्रीडाओं, हाव-भाव और कटाक्षों तथा कटि और वेणीके प्रदर्शनोंद्वारा वे कमलनयनी सुन्दरियाँ सब लोगोंका मनोरञ्जन करने लगीं॥ ३९-४०॥

उनका सौन्दर्य देखकर यादव-वीर कामवेदनासे विह्वल हो गये और अस्त्र-शस्त्रोंको भूमिपर डालकर आपसमें कहने लगे—'हम सब लोग कहाँ आ गये? दैवयोगसे स्वर्गलोकमें तो नहीं पहुँच गये, जहाँ मनको मोह लेनेवाली अति सुन्दरी कलकण्ठी सुराङ्गनाएँ नृत्य करती हैं?॥ ४१-४२॥

इनके लावण्य-जलधिमें मग्न होकर हम कामवेदनासे व्याकुल हो रहे हैं। हमारी विजय कैसे होगी? यहाँ रणक्षेत्र तो दिखायी ही नहीं देता है'॥ ४३॥

इति ब्रुवत्सु सर्वेषु बल्वलः क्रोधपूरितः।
शीघ्रं निस्त्रिंशमादाय हन्तुं सर्वान् समाययौ॥ ४४

जब सब लोग इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय क्रोधसे भरा हुआ बल्वल तलवार हाथमें लेकर समस्त यादवोंको शीघ्र मार डालनेके लिये आया॥ ४४॥

आगत्य खड्गेन यदुप्रवीरान्
विमोहितान् सोऽपि सहस्रशश्च।
जघान युद्धे यदि ते निपेतु-
र्दृष्ट्वानिरुद्धस्तु रुषा तमूचे॥ ४५

किं करिष्यसि सङ्ग्रामेऽधर्मं सद्भिर्विगर्हितम्।
मोहितानां मारणे च न श्लाघा ते भविष्यति॥ ४६

यदि शक्तिः शरीरेऽस्ति मया सार्धं रणं कुरु।

आकर उसने उस तलवारसे सहस्रों मोहित यादव-वीरोंको युद्धस्थलमें मार डाला और वे पृथ्वीपर गिर पड़े। यह देखकर अनिरुद्धने रोषपूर्वक उससे कहा— 'अरे! क्या तुम संग्रामभूमिमें अधर्म-युद्ध करोगे, जिसकी सभी श्रेष्ठ पुरुषोंने निन्दा की है? मोहितोंको मारनेसे तुम्हारी प्रशंसा नहीं होगी। यदि तुम्हारे शरीरमें शक्ति है तो आओ, मेरे साथ युद्ध करो'॥ ४५—४६ १/२॥

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य बल्वलो बलदर्पितः।
आजगाम पदातिर्वै खड्गचर्मधरो नदन्॥ ४७

तमापतन्तं स निरीक्ष्य रोषा-
द्रथादवप्लुत्य मनोजपुत्रः।
कृतान्तदण्डेन जघान दैत्यं
यथा महेन्द्रो भिदुरेण शैलम्॥ ४८

अनिरुद्धकी यह बात सुनकर बलके घमंडसे भरा हुआ बल्वल पैदल ही ढाल और तलवार लिये गर्जना करता हुआ अनिरुद्धपर चढ़ आया। उसे आते देख प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्ध रोषपूर्वक रथसे कूद पड़े और जैसे देवराज इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतको विदीर्ण करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने कालदण्डसे उस दैत्यपर प्रहार किया॥ ४७-४८॥

निर्भिन्नहृदयो दैत्यः पपात चालयन् महीम्।
चतुर्वासरपर्यन्तं मूर्च्छितोऽभूद्रणाङ्गणे॥ ४९

तदा निपतिते दैत्ये माया शान्तिं गता स्वतः।
युद्धं प्रदृश्यते तत्र यादवा विस्मयं गताः॥ ५०

उस आघातसे दैत्यकी छाती फट गयी और वह पृथ्वीको कम्पित करता हुआ गिर पड़ा तथा चार दिनोंतक संग्रामभूमिमें मूर्च्छित पड़ा रहा। उस समय उस दैत्यके गिरते ही सारी माया स्वतः शान्त हो गयी। युद्धस्थल दिखायी देने लगा और वहाँ खड़े हुए यादव आश्चर्यसे चकित हो गये॥ ४९-५०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डेऽनिरुद्धजयो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अनिरुद्धकी विजय' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णपुत्र सुनन्दनद्वारा दैत्यपुत्र कुनन्दनका वध

श्रीगर्ग उवाच

कुनन्दनोऽपि सम्मूर्च्छां त्यक्त्वागाद्रणमण्डले।
रथस्थः क्रोधसंयुक्तः प्रवर्षन् धनुषा शरान्॥ १

दृष्ट्वा तमागतं वीरोऽनिरुद्धः परवीरहा।
पप्रच्छ सेवकांस्तस्य वार्तां रोषेण दीपितः॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! इसी समय कुनन्दन भी मूर्च्छा त्यागकर रथारूढ़ हो क्रोधपूर्वक धनुषसे बाणोंकी वर्षा करता हुआ युद्धस्थलमें आया। शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले वीर अनिरुद्ध उसको आया देख रोषसे आगबबूला हो उठे तथा अपने सेवकोंसे उसकी बात पूछने लगे॥ १-२॥

सेवकास्ते ततः प्रोचुरेष बल्वलनन्दनः।
त्वया सार्धं महाराज युद्धं कर्तुं समागतः॥ ३

श्रुत्वानिरुद्धः प्रोवाच हनिष्येऽहं कुनन्दनम्।
तदैव तमुवाचाथ कृष्णपुत्रः सुनन्दनः॥ ४

सुनन्दन उवाच

राजन् कोऽयं दैत्यपुत्रः क्वेदं परिमितं बलम्।
जेष्येऽहं त्वत्प्रतापेन तस्माद् गच्छाम्यहं प्रभो॥ ५

राजञ्छृणु प्रतिज्ञां मे तवानन्दप्रदायिनीम्।
न चेत्कुनन्दनं जेष्ये बहुसङ्ग्रामकोविदम्॥ ६

कृष्णस्य चरणाम्भोजमध्वास्वादवियोगिनाम्।
यत्पापञ्च भवेत्तन्मे न जये यदि दानवम्॥ ७

यो गुरुं भवहर्तारं पितरं च न सेवते।
यदघं तु भवेत्तस्य तन्मे भूयाज्जयेन वै॥ ८

इति प्रतिज्ञामाकर्ण्यानिरुद्धस्तस्य भूपते।
जहर्ष चित्ते तं वीरं निर्दिदेश रणं प्रति॥ ९

इत्याज्ञप्तोऽनिरुद्धेन चैकाकी कृष्णनन्दनः।
जगाम दंशितस्तत्र यत्रास्ते बल्वलात्मजः॥ १०

कुनन्दनस्तमाज्ञाय त्वागतं प्रधने रुषा।
प्रत्युज्जगाम वीराग्र्यो रथी शूरशिरोमणिः॥ ११

अन्योऽन्यं तौ सम्मिलितौ रथस्थौ चापधारिणौ।
रेजाते राजशार्दूल यथा दमनपुष्कलौ॥ १२

उभौ सायकभिन्नाङ्गावुभौ रुधिरविप्लुतौ।
मुञ्चन्तौ शरकोटीश्च सन्धन्तौ तरसा शरान्॥ १३

आदानं नैव सन्धानं मोचनं च न भूपते।
दृश्येते तौ महाशूरौ कुण्डलीकृतकार्मुकौ॥ १४

सेवकोंने कहा—'महाराज! यह बल्वलनन्दन कुनन्दन है और आपके साथ युद्ध करनेके लिये आया है।' यह सुनकर अनिरुद्ध बोले—'मैं कुनन्दनको मार डालूँगा।' उसी समय श्रीकृष्णपुत्र सुनन्दनने उनसे कहा— ॥ ३-४॥

सुनन्दन बोले—राजन्! यह दैत्यपुत्र क्या है? तथा इसकी यह थोड़ी-सी सेना क्या बिसात रखती है? प्रभो! मैं आपके प्रतापसे इसको जीत लूँगा। अतः मैं ही युद्धके लिये जाता हूँ। राजन्! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये। यह आपके लिये आनन्ददायिनी होगी—'यदि मैं अधिक संग्रामकुशल कुनन्दनको न जीत लूँ तो श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंके मकरन्दका आस्वादन करनेसे विरत रहनेवाले मनुष्योंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे॥ ५—७॥

यदि मैं इस दानवको परास्त न कर दूँ तो भवबन्धन हर लेनेवाले गुरु और पिताकी सेवासे विमुख पुरुषको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे'॥ ८॥

पृथ्वीनाथ! सुनन्दनकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर अनिरुद्ध मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उस वीरको युद्धके लिये आदेश दे दिया। इस प्रकार अनिरुद्धकी आज्ञा पाकर श्रीकृष्णनन्दन सुनन्दन कवच धारणकर अकेले ही उस स्थानपर गये, जहाँ बल्वलनन्दन कुनन्दन विद्यमान था॥ ९-१०॥

कुनन्दन सुनन्दनको युद्धके लिये आया देख रोषपूर्वक उनकी अगवानीके लिये आगे बढ़ा; क्योंकि वह वीरोंमें श्रेष्ठ, रथी एवं शूरशिरोमणि था। राजसिंह! रथपर बैठे और धनुष धारण किये वे दोनों वीर एक-दूसरेसे मिलकर दमन और पुष्कलके समान शोभा पाने लगे॥ ११-१२॥

दोनोंके अङ्ग सायकोंसे विदीर्ण हो रहे थे। दोनों ही खूनसे लथपथ दिखायी देते थे तथा दोनों ही बड़े वेगसे करोड़ों बाणोंका संधान करते ओर छोड़ते थे। पृथ्वीनाथ! वे कब बाण-लेते हैं, धनुषपर रखते हैं और कब छोड़ते हैं, यह किसीको ज्ञात नहीं होता था। वे दोनों महान् शूरवीर धनुषको खींचकर कुण्डलाकार किये दिखायी देते थे॥ १३-१४॥

तद्रथं राजपुत्रस्तु भ्रामकास्त्रेण शोभिना।
भूतले भ्रामयामास कुम्भकारस्य चक्रवत्॥ १५

भ्रान्त्वा मुहूर्तमात्रं तु तद्रथो वाजिसंयुतः।
स्थितिं लेभे ततः कार्ष्णिर्जघान तद्रथे शरम्॥ १६

स यानस्तेन बाणेन खे बभ्राम मतङ्गवत्।
पपात कौ विशीर्णोऽभूद्यथा वै काचभाजनम्॥ १७

उत्थितः सोऽपि विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अन्यं रथं समारुह्य यावदायाति सम्मुखम्॥ १८

बभञ्ज तावद्बाणैश्च तद्रथं कृष्णनन्दनः।
एवं सप्त रथा भग्ना दैत्यपुत्रस्य वै रणे॥ १९

तदा कुनन्दनः संख्ये स्थित्वा याने विचित्रिते।
आययौ नृप वेगेन कृष्णपुत्रं नियोधितुम्॥ २०

आगत्य दशभिर्बाणैस्ताडयामास तं मृधे।
शरैस्तैः सोऽपि निहतः परं कश्मलतां गतः॥ २१

ततः स धनुरुद्यम्य गृहीत्वा दश सायकान्।
मुमोच तस्य हृदये क्रुद्धः कृष्णात्मजो बली॥ २२

ते शरा रुधिरं पीत्वा निपेतुर्वै महीतले।
यथा हि पितरो राजन्नरके कूटसाक्षिणः॥ २३

कुनन्दनः सुनन्दनं सुनन्दनः कुनन्दनम्।
महद्रणे महच्छैर्निजघ्नतुः परस्परम्॥ २४

एवं हि तौ द्वौ शरभिन्नगात्रौ
रक्ताप्लुतौ चापधरौ रुषाढ्यौ।
प्रचक्रतुर्युद्धवरं शरैश्च
कुशाम्बसाम्बाविव संयुगे वै॥ २५

ततः कृष्णात्मजो वीरः कोदण्डे स्वर्णनिर्मिते।
मृगाङ्कार्धमुखं बाणं धृत्वा शीघ्रं तमब्रवीत्॥ २६

दैत्य राजकुमारने शोभाशाली भ्रामकास्त्रके द्वारा सुनन्दनके रथको भूतलपर कुम्हारके चाककी भाँति घुमाया। उनका रथ दो घड़ीतक चक्कर काटनेके बाद घोड़ोंसहित सुस्थिर हो गया। तब श्रीकृष्णकुमारने कुनन्दनके रथपर बाण मारा॥ १५-१६॥

उस बाणसे आहत हो वह रथ घोड़ोंसहित आकाशमें जाकर मतवाले हाथीकी भाँति चक्कर काटने लगा और पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते ही शीशेके बर्तनकी भाँति चूर-चूर हो गया॥ १७॥

रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर कुनन्दन उठा और दूसरे रथपर आरूढ़ हो ज्यों-ही सामने आया, त्यों-ही कृष्णनन्दन सुनन्दनने बहुत-से बाण मारकर उसके रथकी धज्जियाँ उड़ा दीं। इस तरह उस रणभूमिमें दैत्यकुमारके सात रथ नष्ट हो गये॥ १८-१९॥

नरेश्वर! तब कुनन्दन एक विचित्र यानमें बैठकर युद्धस्थलमें श्रीकृष्णपुत्रका सामना करनेके लिये वेगपूर्वक आया। आते ही कुनन्दनने सुनन्दनको युद्धस्थलमें दस बाण मारे। उन बाणोंसे घायल होनेपर उन्हें बड़ी वेदना हुई॥ २०-२१॥

तब कुपित हुए बलवान् कृष्णकुमारने धनुष उठाकर दस सायक हाथमें ले उन्हें कुनन्दनकी छातीको लक्ष्य करके छोड़ा। राजन्! वे बाण उस दैत्यका रक्त पीकर उसी तरह पृथ्वीपर गिर पड़े, जैसे झूठी गवाही देनेवालेके पितर नरकमें गिरते हैं। कुनन्दन सुनन्दनको और सुनन्दन कुनन्दनको उस महासमरमें विशाल बाणोंद्वारा परस्पर घायल करने लगे॥ २२—२४॥

इस प्रकार उन दोनोंके शरीर बाणोंके आघातसे क्षत-विक्षत हो गये थे। दोनों रक्तसे नहा गये थे और दोनों ही धनुष लिये रोषपूर्वक एक-दूसरेको बाण मारते हुए घोर युद्ध कर रहे थे। उस समराङ्गणमें कुनन्दन और सुनन्दन कुशाम्ब और साम्बके समान शोभा पाते थे। तदनन्तर कृष्णकुमार वीर सुनन्दनने सुवर्णनिर्मित कोदण्डपर अर्धचन्द्राकार बाण रखकर शीघ्र ही कुनन्दनसे कहा—॥ २५-२६॥

सुनन्दन उवाच

श्रृणु मद्वचनं वीर बाणेनानेन त्वच्छिरः।
सद्यश्छिन्नं करिष्येऽहं शिरो रक्ष बली यदि॥ २७

यदि मद्वचनं सत्यं प्रधने त्वं न मन्यसे।
तदा श्रृणु प्रतिज्ञां मे तव मृत्युविषूचिकाम्॥ २८

सतीं च गुरुपत्नीं च यो दूषयति कामतः।
स याति यातनां यां वै यमराजस्य सन्निधौ॥ २९

सा यातना च मे भूयात्सत्यं मम प्रतिश्रुतम्।
यः समर्थश्च स्वगुरुं पितरं च न पालयेत्॥ ३०

तस्य पापं ममैवास्तु न हनिष्ये च त्वां रणे।
इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं दैत्य आह रुषा ज्वलन्॥ ३१

राजपुत्र उवाच

बिभेमि नाहं रणात्सङ्ग्रामे शत्रुसम्मुखे।
प्राणिनां चैव सर्वेषां मृत्युर्भवति साम्प्रतम्॥ ३२

यदि मुञ्चसि सङ्ग्रामे मद्वधार्थे महाशरम्।
तदाहं स्वशरेणापि शीघ्रं छेद्मि न संशयः॥ ३३

एकादश्यां च ये मानादन्नं भुञ्जन्ति भूतले।
मातरं भ्रातृपत्नीं च भगिनीं च सुतां तथा।
पापं तेषां ममैवास्तु न छेद्मि यदि त्वच्छरम्॥ ३४

इति तस्य वचः स्पष्टं श्रुत्वा शङ्कितमानसः।
प्रत्युवाच पुनर्वाक्यं श्रीकृष्णं सोऽपि संस्मरन्॥ ३५

सुनन्दन उवाच

मया कृष्णाङ्घ्रियुगलं सेवितं मनसा यदि।
कपटेन विना तर्हि सत्यं भूयाद्वचो मम॥ ३६

स्वपत्नीं च विना वीर नान्यां पश्यामि कामतः।
तेन सत्येन सङ्ग्रामे वाक्यं भूयादृतं मम॥ ३७

इत्युक्त्वा सायकं तीक्ष्णं विमुमोच सुनन्दनः।
मन्त्रयित्वा च मन्त्रेण महाकालानलोपमम्॥ ३८

सुनन्दन बोले—वीर! मेरी बात सुनो। मैं इस बाणके द्वारा इसी क्षण तुम्हारा मस्तक काट लूँगा। यदि बलवान् हो तो अपने सिरकी रक्षा करो॥ २७॥

यदि इस रणक्षेत्रमें तुम मेरी कही बातको सत्य नहीं मानते तो तुम्हारी मृत्युकी सूचना देनेवाली मेरी इस प्रतिज्ञाको सुन लो—'जो सती-साध्वी, पतिव्रता तथा गुरुपत्नीको कामभावसे दूषित करता है, वह यमराजके समीप जिस यातनामें डाला जाता है, वही यातना मुझे भी मिले; यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है, जो सामर्थ्य रहते हुए गुरु और पिताका पालन नहीं करता, उसका पाप मुझे ही लगे, यदि रणभूमिमें मैं तुझे मार न डालूँ'॥ २८—३०१/२॥

सुनन्दनकी यह बात सुनकर दैत्य रोषसे जल उठा और बोला—॥ ३१॥

दैत्य राजकुमारने कहा—मैं शत्रुके सम्मुख संग्राममें मरनेसे नहीं डरता। मृत्यु तो सभी प्राणियोंकी होती ही है; परंतु तुम इस समय संग्राममें मेरे वधके लिये जो भी महान् बाण छोड़ोगे, उसे मैं अपने बाणसे उसी क्षण शीघ्र काट दूँगा, इसमें संशय नहीं है। जो लोग अभिमानवश इस पृथ्वीपर एकादशीको अन्न खाते हैं तथा माता, भौजाई, बहन और बेटीके साथ पाप करते हैं, उन सबका पाप मुझे ही लगे, यदि मैं तुम्हारे बाणको न काट डालूँ॥ ३२—३४॥

यह सुस्पष्ट बात सुनकर सुनन्दनके मनमें शङ्का हो गयी। अतः वे भी श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए फिर बोले—॥ ३५॥

सुनन्दनने कहा—यदि मैंने छल-कपट छोड़कर सच्चे मनसे श्रीकृष्णके युगल-चरणारविन्दोंका सेवन किया हो तो मेरी बात सत्य हो। वीर! यदि मैं अपनी पत्नीको छोड़कर दूसरी किसी स्त्रीको कामभावसे न देखता होऊँ तो इस सत्यके प्रभावसे संग्रामभूमिमें मेरा यह कथन अवश्य सत्य हो॥ ३६-३७॥

—ऐसा कहकर सुनन्दनने महाकालाग्निके समान एक तीखे सायकको मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके छोड़ा॥ ३८॥

प्रमुक्तं वीक्ष्य विशिखं स्वबाणेन नृपात्मजः।
सद्यश्चिच्छेद हि यथा सर्पं पक्षेण पक्षिराट्॥ ३९

उस बाणको छूटा हुआ देख दैत्य राजकुमारने अपने बाणसे तत्काल काट दिया; ठीक उसी तरह, जैसे पक्षिराज गरुड़ अपने पंखसे सर्पके दो टुकड़े कर डालते हैं॥ ३९॥

छिन्ने तस्मिञ्छरे राजन् हाहाकारस्तदाभवत्।
चचाल पृथिवी लोकैर्देवास्ते विस्मयं गताः॥ ४०

परार्धः पतितो बाणः पूर्वार्धः फलसंयुतः।
शिरश्चिच्छेद दैत्यस्य तरोः स्कन्धं यथा गजः॥ ४१

राजन्! उस बाणके कटते ही तुरंत हाहाकार मच गया। लोकोंसहित पृथ्वी डोलने लगी और वे देवता भी विस्मयमें पड़ गये। बाणका नीचेवाला आधा भाग तो कटकर गिर पड़ा, किंतु फलयुक्त पूर्वार्ध भागने उस दैत्यके मस्तकको उसी तरह काट गिराया, जैसे हाथी किसी वृक्षके स्कन्ध (मोटी डाली)-को तोड़ डालता है॥ ४०-४१॥

किरीटकुण्डलैर्युक्तं पतितं तस्य मस्तकम्।
निरीक्ष्य हा हा शब्दं वै चक्रुर्दैत्याश्च दुःखिताः॥ ४२

कुनन्दनकबन्धस्तु शीघ्रमुत्थाय संयुगे।
खड्गेन मुष्टिभिः पादैर्बहूञ्छत्रूञ्जघान ह॥ ४३

उसके किरीट और कुण्डलोंसे युक्त मस्तकको कटकर गिरा देख समस्त दैत्य दुखी होकर हाय-हाय करने लगे। कुनन्दनके धड़ने युद्धस्थलमें शीघ्र उठकर खड्गसे, घूँसोंसे और लातोंकी मारसे बहुत-से शत्रुओंको मौतके घाट उतार दिया॥ ४२-४३॥

ततश्च यदुसेनायां नेदुर्दुन्दुभयो मुहुः।
सुनन्दनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ४४

तत्पश्चात् यादव-सेनामें बार-बार दुन्दुभि बजने लगी और सुनन्दनके ऊपर देवताओंने फूलोंकी वर्षा की॥ ४४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे दैत्यपुत्रवधवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'दैत्यपुत्रके वधका वर्णन' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवका अपने गणोंके साथ बल्वलकी ओरसे युद्धस्थलमें आना और शिवगणों तथा यादवोंका घोर युद्ध; दीप्तिमान्‌का शिवगणोंको मार भगाना और अनिरुद्धका भैरवको जृम्भणास्त्रसे मोहित करना

वज्रनाभिरुवाच

कुनन्दने हते ब्रह्मन् बल्वले मूर्च्छिते रणे।
न कृतं तु सहायं वै रुद्रेण करुणात्मना॥ १

कस्मान्न चागतो रुद्रो यज्ञः पूर्णः कथं भवेत्।
कथं विमुक्तस्तुरगस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ २

वज्रनाभिने पूछा—ब्रह्मन्! कुनन्दनके मारे जाने और बल्वलके रणभूमिमें मूर्च्छित हो जानेपर करुणामय भगवान् शिवने उसकी सहायता क्यों नहीं की! भगवान् शिव वहाँ आये क्यों नहीं? दैत्योंने घोड़ेको कैसे छोड़ा? और यज्ञ किस तरह पूर्ण हुआ?—ये सब बातें विस्तारपूर्वक मुझे बतानेकी कृपा करें॥ १-२॥

सौतिरुवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा गर्गो ज्ञानवतां वरः।
स्मृत्वा सर्वां कथां ब्रह्मन्नुवाच यदुसत्तमम्॥ ३

सौति कहते हैं—ब्रह्मन्! वज्रनाभिका यह प्रश्न सुनकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ गर्गजी सम्पूर्ण कथाका स्मरण करके उन यादवशिरोमणिसे बोले—॥ ३॥

श्रीगर्ग उवाच

बल्वले मूर्च्छिते राजन् हते शूरे कुनन्दने।
महाकोपं शिवश्चक्रे प्रेरितस्तु सुरर्षिणा॥ ४

आरुह्य नन्दिनं क्रुद्धो भक्तरक्षाकरः शिवः।
चन्द्ररेखां वहन् मूर्ध्नि जटाजूटान्तरे नृप॥ ५

सर्पहारैर्मुण्डहारैर्भस्मलिप्तो भयङ्करः।
दशबाहुः पञ्चमुखो नेत्रैः पञ्चदशैर्वृतः॥ ६

सिंहचर्माम्बरधरो मदमत्तो भयङ्करः।
त्रिशूलपट्टिशधरो धनुर्बाणधरः परः॥ ७

कुठारपाशपरिघभिन्दिपालैर्विभूषितः।
सहस्त्ररविसङ्काशः सर्वभूतगणावृतः॥ ८

हन्तुं सर्वान् वृष्णिवरान् कार्ष्णिजप्रमुखान् मृधे।
कैलासादाययौ शीघ्रं चालयन् पृथिवीतलम्॥ ९

कोलाहलो महानासीदाकाशे भूतले नृप।
देवदैत्यनराः सर्वे भयं प्रापुश्च विस्मिताः॥ १०

सगणं सपरीवारमागतं वीक्ष्य शङ्करम्।
क्रुद्धं प्रलयकर्तारं भयं प्रापुर्यदूत्तमाः॥ ११

अनिरुद्धस्य च मुखं निस्तेजस्कमभूद्भयात्।
चकम्पे हृदयं तस्य दुःखितस्य रणाङ्गणे॥ १२

ततः प्रत्याह वचनं निष्ठुरं सर्वयादवान्।
शूलं गृहीत्वा हस्तेन गिरीशः क्रोधपूरितः॥ १३

शङ्कर उवाच

अनिरुद्धः कुत्र गतो गतः कुत्र सुनन्दनः।
साम्बादयः कुत्र गता भक्तं हत्वा कुनन्दनम्॥ १४

बल्वलं मूर्च्छितं कृत्वा मद्भक्तं दैत्यसत्तमम्।
तस्यानुगान्मृधे हत्वा कुत्र यास्यन्ति वृष्णयः॥ १५

तस्मात्सर्वान् हनिष्यामि मद्भक्तानां रिपून् मृधे।
अहं विष्णुर्विधिश्चैते भक्तं रक्षन्ति दुःखतः॥ १६

श्रीगर्गजीने कहा—राजन्! जब बल्वल मूर्च्छित हो गया और शूरवीर कुनन्दन मारा गया, तब देवर्षि नारदकी प्रेरणासे भगवान् शिवने बड़ा कोप किया। नरेश्वर! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले शिव क्रोधपूर्वक नन्दीपर आरूढ़ हो, मस्तकपर जटाजूटके भीतर चन्द्रलेखा धारण किये, सर्पोंके हार और मुण्डमालासे अलंकृत हो, सारे अङ्गमें भस्म रमाये भयंकररूपसे आये॥ ४—५ $^{1}/_{2}$ ॥

दस बाँह, पाँच मुख और पंद्रह नेत्रोंसे युक्त रुद्रदेव सिंहके चर्मका वस्त्र धारण किये मदमस्त एवं भयकारक प्रतीत होते थे। उनके हाथोंमें त्रिशूल, पट्टिश, धनुष,बाण, कुठार, पाश, परिघ और भिन्दिपाल शोभा दे रहे थे। वे सहस्रों सूर्योंके तुल्य तेजस्वी और समस्त भूतगणोंसे आवृत थे॥ ६—८॥

अनिरुद्ध आदि समस्त श्रेष्ठ वृष्णिवंशी वीरोंका युद्धस्थलमें वध करनेके लिये वे बड़ी उतावलीके साथ कैलाससे पृथ्वीतलको कम्पित करते हुए आये॥ ९॥

नरेश्वर! उस समय आकाश और भूतलपर बड़ा हंगामा मचा। देवता, दैत्य और मनुष्य सभी विस्मित और भयभीत हो उठे। समस्त गणों और परिवारके साथ प्रलयंकर शंकरको रोषपूर्वक आया देख श्रेष्ठ यादवोंको बड़ा भय हो गया॥ १०-११॥

अनिरुद्धका मुँह भयके कारण निस्तेज हो गया। समराङ्गणमें वे दुखी हो गये और उनका हृदय काँपने लगा। उस समय क्रोधसे भरे हुए गिरीशने हाथमें त्रिशूल लेकर समस्त यादवोंसे यह निष्ठुर बात कही—॥१२-१३॥

शंकर बोले—कहाँ गये अनिरुद्ध और कहाँ गये सुनन्दन? मेरे भक्त कुनन्दनका वध करके साम्ब आदि यादव कहाँ चले गये? मेरे भक्त दैत्यशिरोमणि बल्वलको मूर्च्छित करके और उसके सेवकोंको युद्धमें मारकर वृष्णिवंशी जायँगे कहाँ? मैं युद्धस्थलमें अपने भक्तोंके इन सभी शत्रुओंको मार डालूँगा। मैं, विष्णु और ब्रह्मा—ये सभी संकटसे भक्तजनोंकी रक्षा करते हैं॥ १४—१६॥

श्रीगर्ग उवाच

इत्युदीर्यानिरुद्धं स प््रेषयामास भैरवम्।
त्वं हि योद्धुं गच्छ शूर कार्ष्णिजं जयिनं मृधे॥ १७

सुनन्दनं नन्दिनं च प्रेषयामास रोषतः।
गदं च वीरभद्रं वै साम्बं च शिखिवाहनम्॥ १८

भानुञ्च भृङ्गिणं युद्धे विरूपाक्षः समादिशत्।
यदूंश्च प्रेषयामास भूतप्रेतांस्ततः शिवः॥ १९

ततस्ते रुद्रवचनाद् भूतप्रेतविनायकाः।
भैरवाः प्रमथाश्चैव वेताला ब्रह्मराक्षसाः॥ २०

उन्मादाश्चैव कूष्माण्डा आग्जमुः कोटिशो मृधे।
भूतानि जघ्नुश्चाङ्गारैर्यादवांश्च विनायकाः॥ २१

पट्टिशैर्भैरवाः शूलैः खट्वाङ्गैः प्रमथाः किल।
जनानश्वान् गृहीत्वा तु भक्षन्ति ब्रह्मराक्षसाः॥ २२

यातुधानाश्चर्वयन्तो मनुष्याणां शिरांसि च।
कपालैस्तत्र वेतालाः पिबन्तो रुधिरं रणे॥ २३

पिशाचास्तत्र नृत्यन्ति प्रेता गायन्ति एव हि।
शिरांसि कन्दुकानीव क्षेपयन्तो मुहुर्मुहुः॥ २४

अट्टहासं प्रकुर्वन्तः प्रधावन्त इतस्ततः।
गजान् रथांश्चर्वयन्तो दृश्यन्ते रणमण्डले॥ २५

रक्तं पिशाच्यो डाकिन्यः पाययन्त्यः सुतान् मृधे।
मा रोदीरिति वादिन्य अक्षीणि च तदामृजन्॥ २६

उन्मादाश्चैव कूष्माण्डा निर्माय मुण्डकैः स्त्रजः।
संयच्छन्ति महेशाय शूराणां स्वर्गगामिनाम्॥ २७

हाहाकारस्तदैवासीद्यदुसैन्ये नृपेश्वर।
दुद्रुवन्तो भयादश्वा धावन्तस्तत्र दन्तिनः॥ २८

वीराः प्रपतिता युद्धे गता मृत्युं सहस्त्रशः।
दृष्ट्वा चेत्थं गणबलं दीप्तिमान् माधवात्मजः॥ २९

चापे निधाय विशिखान् मुमुचे परमाद्भुतान्।
ते शरा विविशुस्तिग्मा भूतप्रेतविनायकान्॥ ३०

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर रुद्रदेवने अनिरुद्धके पास भैरवको भेजा और कहा—'शूर! तुम समराङ्गणमें विजयी प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धसे युद्ध करनेके लिये जाओ।' फिर उन्होंने सुनन्दनसे युद्ध करनेके लिये नन्दीको रोषपूर्वक भेजा, गदसे लोहा लेनेके लिये वीरभद्रको और साम्बसे लड़नेके लिये मयूरवाहन कार्तिकेयको प्रेरित किया॥ १७-१८॥

उन विरूपाक्ष शिवने भानुके साथ युद्ध करनेके लिये भृङ्गीको आदेश दिया और अन्य यादव-सैनिकोंसे जूझनेके लिये भूतों और प्रेतोंको प्रेषित किया॥ १९॥

भगवान् रुद्रकी आज्ञा पाकर वे भूत, प्रेत, विनायक, भैरव, प्रमथ, वेताल, ब्रह्मराक्षस, उन्माद और कूष्माण्ड करोड़ोंकी संख्यामें युद्धमें आये। भूत यादवोंको अंगारोंसे मारने लगे। विनायक पट्टिशोंसे, भैरव शूलोंसे और प्रमथ खट्वाङ्गोंसे प्रहार करने लगे। ब्रह्मराक्षस मनुष्यों और घोड़ोंको पकड़कर खा जाते थे॥ २०—२२॥

यातुधान समराङ्गणमें मनुष्योंके मुण्ड चबाते और बेताल खप्परोंमें रक्त ले-लेकर पीते थे। पिशाच वहाँ नाचते और प्रेत गीत गाते थे। वे बारंबार योद्धाओंके मस्तकोंको गेंदकी भाँति इधर-उधर फेंकते थे॥ २३-२४॥

अट्टहास करते हुए चारों ओर दौड़ते और हाथियों तथा रथारोहियोंको रणमण्डलमें चबाते हुए दिखायी देते थे। पिशाचिनी और डाकिनियाँ युद्धस्थलमें अपने बालकोंको रक्त पिलातीं और 'रोओ मत'—ऐसा कहती हुई उनकी आँखें पोंछती थीं। उन्माद और कूष्माण्ड स्वर्गगामी शूरवीरोंके मुण्डोंकी मालाएँ तैयार करके भगवान् शंकरको भेंट करते थे॥ २५—२७॥

नृपेश्वर! उस समय यादव-सेनामें हाहाकार मच गया। भयसे भागते हुए घोड़े, हाथी और पैदल-वीर सहस्रोंकी संख्यामें युद्धक्षेत्रमें गिरकर मृत्युको प्राप्त हो गये। शिवगणोंका ऐसा बल देखकर श्रीकृष्णकुमार दीप्तिमान्ने अपने धनुषपर अत्यन्त अद्भुत बाणोंका संधान करके छोड़ना आरम्भ किया। राजन्! वे तीखे बाण कोटि-कोटि भूतों, प्रेतों और विनायकोंके शरीरमें

कोटिशः कोटिशो राजन् यथारण्यं शिखण्डिनः।
ततश्च दुद्रुवुर्भिन्नाः सर्वे भूतगणाः शरैः॥ ३१

केचिन्निपतिता युद्धे केचिद्वै निधनं गताः।
न हताश्च शरैः केऽपि पतिताः पूर्वमेव च॥ ३२

पलायिते प्रेतगणे भैरवः क्रोधपूरितः।
त्रिशूली सारमेयस्थ आजगाम कृतान्तवत्॥ ३३

तं दृष्ट्वा कालरूपं च भैरवं तु भयङ्करम्।
न कोऽपि युयुधे तेनानिरुद्धो युयुधे नृप॥ ३४

अनिरुद्धः पञ्चशरैस्तताड भैरवं मृधे।
स चापि परिघेणापि बभञ्ज तद्रथं वरम्॥ ३५

सोऽप्यन्यं रथमारुह्य सज्जं कृत्वा धनुर्दृढम्।
तताड दशभिर्बाणै रौद्रं मायाविनं मृधे॥ ३६

तैर्बाणैर्निहतः सोऽपि किञ्चित्कश्मलतां गतः।
त्रिशूलं त्रिशिखं तस्मै चिक्षेप ज्वलनप्रभम्॥ ३७

शूलं समागतं दृष्ट्वा बाणैश्चिच्छेद कार्ष्णिजः।
छिन्नं स्वीयं त्रिशूलं वै दृष्ट्वा रुद्रसुतो बली॥ ३८

ससृजे मायया तत्र मुखादनलमेव च।
तेनाग्निना जज्वलुश्च मही वृक्षा दिशो दश॥ ३९

पदातीनां रथानां च हयानां दन्तिनां तथा।
जज्वलुश्च शरीराणि मञ्जुपुष्पप्रतूलवत्॥ ४०

केचित्प्रज्वलिता वीराः केचिद्वै भस्मतां गताः।
अग्निना पूरितं सैन्यं कृष्णं केचित्स्मरन्ति हि॥ ४१

सेनां भयातुरां दृष्ट्वानिरुद्धो धन्विनां वरः।
दधार विशिखं चापे ज्ञात्वा मायां विनिर्मिताम्॥ ४२

उसी तरह घुसने लगे, जैसे वनमें मोर प्रवेश करते हैं। बाणोंसे विदीर्ण होकर समस्त भूतगण भागने लगे॥ २८—३१॥

कोई युद्धस्थलमें गिर गये और कोई मर गये। कितने ही बाणोंका आघात लगनेसे पहले ही धराशायी हो गये॥ ३२॥

प्रेतगणोंके पलायन कर जानेपर भैरव क्रोधसे भर गये। वे कुत्तेपर सवार हो, त्रिशूल हाथमें लिये कालकी भाँति आ पहुँचे। नरेश्वर! उन कालरूप भयंकर भैरवको देखकर कोई भी उनके साथ जूझनेके लिये तैयार नहीं हुआ। केवल अनिरुद्ध उनके साथ युद्ध करने लगे॥ ३३-३४॥

अनिरुद्धने युद्धस्थलमें भैरवको पाँच बाण मारे। भैरवने भी परिघके प्रहारसे उनके उत्तम रथको चूर-चूर कर दिया। फिर अनिरुद्धने भी दूसरे रथपर आरूढ़ हो अपने सुदृढ़ धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर मायावी भैरवको रणभूमिमें दस बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥ ३५-३६॥

उन बाणोंसे आहत हो भैरवको कुछ मूर्च्छा-सी आ गयी। फिर उन्होंने अग्निके समान प्रज्वलित तीन शिखाओंवाला त्रिशूल अनिरुद्धपर फेंका। शूलको आया देख प्रद्युम्नकुमारने अपने बाणोंद्वारा उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। अपने त्रिशूलको छिन्न-भिन्न हुआ देख बलवान् रुद्रकुमार भैरवने मायाद्वारा अपने मुखसे अग्निकी सृष्टि की॥ ३७—३९ १/२॥

उस अग्निसे भूमि, वृक्ष और दसों दिशाएँ जलने लगीं। पैदल-वीरों, रथारोहियों, घोड़ों तथा हाथियोंके शरीर सुन्दर फूलवाले सेमरकी रूईके समान जलने लगे। कितने ही वीर आगकी ज्वालाकी लपेटमें आ गये और कितने ही भस्म हो गये। सारी सेना अग्निज्वालासे व्याप्त हो गयी। कितने ही योद्धा भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करने लगे॥ ४०-४१॥

अपनी सेनाको भयसे व्याकुल देख और भैरवकी रची हुई मायाको जानकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने अपने धनुषपर एक बाण रखा॥ ४२॥

मन्त्रयित्वा च मन्त्रेण पर्जन्यास्त्रेण सायकम्।
मुमोच गगने शीघ्रं स्मरन् कृष्णपदाम्बुजम्॥ ४३

उस सायकको पर्जन्यास्त्रसे अभिमन्त्रित करके श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए शीघ्र ही आकाशमें छोड़ दिया॥ ४३॥

शरे मुक्ते समागत्य मेघाः प्रववृषुर्जलम्।
अग्निः शान्तिं गतो राजन् यथा प्रावृट् तथा बभौ॥ ४४

शिखण्डिनः कोकिलाश्च चातकाः सारसादयः।
मण्डूकाद्याश्च प्रजगुरिन्द्रगोपा विरेजिरे॥ ४५

राजन्! उस बाणके छूटते ही मेघ प्रकट होकर पानी बरसाने लगे। आग बुझ गयी और ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वर्षाकाल आ गया हो। मोर, कोयल, चातक, सारस और मेढक आदि बोलने लगे। यत्र-तत्र इन्द्रगोप (वीरबहूटी नामक कीड़े) शोभा पाने लगे॥ ४४-४५॥

पुरन्दरस्य चापेन सौदामिन्या बभौ नभः।
प्रयासं निष्फलं दृष्ट्वा भैरवो भैरवं रवम्॥ ४६

चकार स्वमुखेनापि सर्वेषां त्रासयन् मनः।
ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह॥ ४७

आकाश इन्द्रधनुष और बिजलीकी चमकसे दीप्तिमान् हो उठा। अपना प्रयास निष्फल हुआ देख भैरवने अपने मुखसे भैरव-गर्जना की, जिससे सबका मन संत्रस्त हो उठा। उस भैरवनादसे समस्त लोकों और पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा॥ ४६-४७॥

विचेलुर्दिग्गजास्तारा एजद्भूखण्डमण्डलम्।
तदैव बधिरीभूता बभूवुः पतिता नराः॥ ४८

दिग्गज विचलित हो उठे, तारे टूटने लगे और उनसे भूखण्ड-मण्डल काँप उठा। उसी समय समस्त मनुष्य बहरे हो गये और गिर गये॥ ४८॥

पुनश्च भैरवः क्रुद्धो हस्तं हस्तेन पीडयन्।
निष्पिषन्नधरं दन्तैर्लेलिहानः स्वजिह्वया॥ ४९

नेत्राभ्यां रक्तवर्णाभ्यां पश्यन् सर्पैर्विभूषितः।
जग्राह परशुं तीक्ष्णं तृणीकृत्य यदूत्तमम्॥ ५०

फिर सर्पोंसे विभूषित भैरवने क्रुद्ध हो हाथसे हाथको दबाते, दाँतोंसे ओठको चबाते, जीभ लपलपाते और लाल-लाल नेत्रोंसे देखते हुए यदुकुल-तिलक अनिरुद्धको तिनकेके समान समझकर एक तीखा फरसा हाथमें लिया॥ ४९-५०॥

तदैव जृम्भणास्त्रेणानिरुद्धो रणकोविदः।
भैरवं मोहयामास श्रीकृष्ण इव शङ्करम्॥ ५१

तेनास्त्रेण रणे राजन्ननिरुद्धस्य पश्यतः।
पपात भूतले रौद्रो जृम्भितो निद्रितोऽभवत्॥ ५२

उसी समय रणनीतिमें कुशल अनिरुद्धने जृम्भणास्त्रका प्रयोग करके भैरवको उसी प्रकार मोहाच्छन्न कर दिया, जैसे भगवान् श्रीकृष्णने बाणासुर-विजयके अवसरपर भगवान् शंकरको मोहित कर दिया था। राजन्! उस अस्त्रके प्रभावसे अनिरुद्धके देखते-देखते भैरव रणभूमिमें गिर पड़े और जँभाई लेते हुए निद्रासुखका आस्वादन करने लगे॥ ५१—५२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे भैरवमोहनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'भैरव-मोहन' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वरद्वारा सुनन्दनका वध; भगवान् शिवके त्रिशूलसे आहत हुए अनिरुद्धकी मूर्च्छा; साम्बद्वारा शिवकी भर्त्सना; साम्ब और शिवका युद्ध तथा रणक्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णका शुभागमन

श्रीगर्ग उवाच

तदा मृत्युञ्जयः क्रुद्धो भैरवं वीक्ष्य निद्रितम्।
वृषभं प्रेरयामास कार्ष्णिजं शूरमानिनम्॥ १

तदैव वृषभः कोपाच्छृङ्गाभ्यां मारयन् यदून्।
दन्तैः पश्चिमपादाभ्यां सेनायां विचचार ह॥ २

त्वरं जघान शृङ्गेण सम्मुखस्थं सुनन्दनम्।
शृङ्गेण भिन्नहृदयः पपात पञ्चतां गतः॥ ३

तदाजगाम सङ्क्रुद्धोऽनिरुद्धो गजसंस्थितः।
धनुर्धरो दंशितश्च माभैर्माभैरिति ब्रुवन्॥ ४

दृष्ट्वा तत्र हतं वीरं कृष्णपुत्रं सुनन्दनम्।
प्राप्तो दुःखं मृधेऽत्यन्तं कम्पितः शोकपूरितः॥ ५

हते तस्मिन् महावीरे शोचन्तं तं शिवोऽब्रवीत्।
मा कृथास्त्वं रणे शोकमनिरुद्ध महाबल॥ ६

रणमध्ये पातनं च शूराणां कीर्तये स्मृतम्।
तस्मात्त्वमपि सङ्ग्रामे मया युद्ध्यस्व यत्नतः॥ ७

प्रयातान् रक्ष स्वप्राणान् ममाग्रे युद्धकाङ्क्षया।

श्रीगर्ग उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शोकं त्यक्त्वा यदूत्तमः॥ ८

निचखान पञ्च बाणान् शिवस्य मस्तके नृप।
नाराचास्ते महेशस्य जटाजूटेषु निष्ठिताः॥ ९

दृश्यन्ते गृध्रपक्षाढ्याः शाखा इव वनस्पतेः।
ततो रुद्रः स्वकोदण्डे बाणमेकं निधाय च॥ १०

चिच्छेद तेन सहसा तस्य चापस्य शिञ्जिनीम्।
अनिरुद्धः पुनः शीघ्रं सज्यं कृत्वा धनुर्दृढम्॥ ११

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! भैरवको निद्रित देख मृत्युञ्जय शिव कुपित हो उठे। उन्होंने वीरमानी अनिरुद्धपर आक्रमण करनेके लिये अपने वृषभ नन्दिकेश्वरको प्रेरित किया। वृषभ उसी समय क्रोधसे भरकर दोनों सींगों, दाँतों और पिछले पैरोंसे यादवोंपर प्रहार करता हुआ सेनामें विचरने लगा॥ १-२॥

उसने सामने खड़े हुए सुनन्दनपर अपने एक सींगसे शीघ्र ही आघात किया। उस सींगके आघातसे सुनन्दनका वक्ष विदीर्ण हो गया और वे पञ्चत्वको प्राप्त हो गये॥ ३॥

तब हाथीपर बैठे हुए अनिरुद्ध धनुष लिये, कवच बाँधकर 'मत डरो, मत डरो'—ऐसा कहते हुए अत्यन्त क्रोधपूर्वक वहाँ आये। श्रीकृष्णपुत्र वीर सुनन्दनको वहाँ मारा गया देख अनिरुद्धको बड़ा दुःख हुआ। वे शोकमें डूबकर काँपने लगे॥ ४-५॥

उस महावीरके मारे जानेपर शोकमें पड़े हुए अनिरुद्धसे शिवजीने कहा—'महाबली अनिरुद्ध! तुम रणक्षेत्रमें शोक न करो। युद्धमें मर जाना शूरवीरोंके लिये कीर्तिकारक माना गया है। इसलिये तुम भी संग्रामस्थलमें मेरे साथ यत्नपूर्वक युद्ध करो। मेरे सामने युद्धकी अभिलाषासे आये हुए तुम्हारे भी प्राण जानेवाले ही हैं। तुम उनकी रक्षा करो'॥ ६—७½॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! भगवान् शिवकी यह बात सुनकर यदुकुलतिलक अनिरुद्धने शोक त्याग दिया और शिवजीके मस्तकपर पाँच बाण मारे। वे पाँचों बाण महेश्वरके जटाजूटमें उलझ गये और गीधके पंखोंसे युक्त वनस्पतिकी शाखाके समान दिखायी देने लगे। तब रुद्रदेवने अपने कोदण्डपर एक बाण रखा और उसके द्वारा सहसा अनिरुद्धके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट दी। अनिरुद्धने फिर शीघ्र ही अपने सुदृढ़ धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा ली और एक

उग्रचापस्य चिच्छेद शिञ्जिनीं सायकेन च।
ततः श्रुत्वा तयोर्युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम्॥ १२

विमानस्थाश्च शक्राद्या आजग्मुः कौतुकान्विताः।
ऊचुः परस्परं खस्था निरीक्ष्य भयविह्वलाः॥ १३

देवा ऊचुः

अमू लोकत्रयस्यापि ह्युत्पत्तिलयकारकौ।
एतयोश्च रणं तस्माद्विफलं रणमण्डले॥ १४

को विजेष्यति सङ्ग्रामं प्राप्स्यते कः पराजयम्।

श्रीगर्ग उवाच

ततस्त्रिदिनपर्यन्तं युद्धमासीत्तयोर्भृशम्॥ १५

पुनः शरासनं रुद्रः सज्जं कृत्वा रुषान्वितः।
ब्रह्मास्त्रं सन्दधे तत्र लोकप्रलयकारकम्॥ १६

ब्रह्मास्त्रेण तु ब्रह्मास्त्रं भिदुरास्त्रेण पार्वतम्।
पर्जन्यास्त्रेण चाग्नेयमनिरुद्धो जहार ह॥ १७

तदा प्रकुपितोऽत्यन्तं पिनाकी प्रज्वलन्निव।
त्रिशिखेन त्रिशूलेन जघान कार्ष्णिनन्दनम्॥ १८

स त्रिशूलश्च तं भित्त्वा गजं भित्त्वा विनिर्गतः।
स्थितोऽभूच्च तयोर्मध्ये ऊर्ध्वपुङ्ख अधोमुखः॥ १९

गजो मृत्युं गतो युद्धेऽनिरुद्धो मूर्च्छितोऽभवत्।
पेततुस्तौ च संलग्नौ भिन्नवक्षःस्थलौ मृधे॥ २०

हाहाकारस्तदैवासीद्रुरुदुः सर्वयादवाः।
रुद्रस्याग्रे यथा भीता यमस्याग्रे च पापिनः॥ २१

अनिरुद्धं निपतितं मृततुल्यं विमूर्च्छितम्।
श्रुत्वा ययौ शङ्कितश्च साम्बः स्कन्दं विहाय च॥ २२

सायकद्वारा शंकरजीके धनुषकी प्रत्यञ्चाको भी खण्डित कर दिया॥ ८—११ $^{१}/_{२}$॥

तब उन दोनोंमें अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी युद्धका समाचार सुनकर विमानपर बैठे हुए इन्द्र आदि देवता कौतूहलवश वहाँ आ गये और आकाशमें स्थित हो वह युद्ध देखकर भयसे विह्वल हो परस्पर कहने लगे॥ १२-१३॥

देवता बोले—ये दोनों त्रिभुवनकी सृष्टि और संहार करनेवाले हैं। इसलिये रणमण्डलमें इन दोनोंका युद्ध निष्फल है। कौन इस युद्धको जीतेगा और किसकी पराजय होगी? (यह कैसे कहा जा सकता है)॥ १४ $^{१}/_{२}$॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर तीन दिनोंतक उन दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध हुआ। फिर रुद्रदेवने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर रोषपूर्वक ब्रह्मास्त्रका संधान किया, जो वहाँ तीनों लोकोंका प्रलय करनेमें समर्थ था॥ १५-१६॥

परंतु अनिरुद्धने ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्रका, वज्रास्त्रसे पर्वतास्त्रका और पर्जन्यास्त्रसे आग्नेयास्त्रका निवारण कर दिया। तब पिनाकधारी शिव अत्यन्त क्रोधके कारण प्रज्वलित-से हो उठे। उन्होंने तीन शिखाओं-वाले त्रिशूलसे प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धपर आघात किया॥ १७-१८॥

वह त्रिशूल अनिरुद्धको विदीर्ण करके हाथीको भी चीरता हुआ निकल गया और उन दोनोंके बीचमें ऊपरको पुङ्खभाग तथा नीचेको मुख किये स्थित हो गया। हाथीकी तत्काल मृत्यु हो गयी और युद्धस्थलमें अनिरुद्ध भी मूर्च्छित हो गये। वे दोनों रणभूमिमें वक्षःस्थल विदीर्ण हो जानेके कारण एक-दूसरेसे लगे हुए ही गिर पड़े॥ १९-२०॥

उस समय हाहाकार मच गया। सब यादव रोने लगे। जैसे यमराजके आगे पापी डर जाते हैं, उसी प्रकार रुद्रदेवके आगे सब यादव भयभीत हो गये। अनिरुद्ध मृतकके समान मूर्च्छित होकर गिर पड़े हैं, यह समाचार सुनकर साम्ब शङ्कित हो स्कन्दको छोड़कर वहाँ गये॥ २१-२२॥

मूर्च्छितं यदुवीरं तु वीक्ष्य क्रोधपरिप्लुतः।
अश्रुपूर्णमुखः साम्बः शर्वं प्राह धनुर्धरः॥ २३

कस्मात्करिष्यसे रुद्र दानवानां हि पालनम्।
हत्वानिरुद्धं सङ्ग्रामे वीरं चैव सुनन्दनम्॥ २४

वेदे भागवते शास्त्रे पुरा विप्रैः श्रुतं मया।
श्रीकृष्णाख्यं परं नित्यं शिवः सेवति वैष्णवः॥ २५

मृषा जातं हि तत्सर्वं कार्ष्णिजे पतिते सति।
सुनन्दनः कृष्णसुतः सोऽपि युद्धे त्वया हतः॥ २६

वृथा करिष्यसे युद्धं धिक्त्वां तस्मान् महेश्वर।
अहं त्वां पातयिष्यामि रणे कृष्णपराङ्मुखम्॥ २७

क्षुरप्रैः सायकैः शीघ्रं तिष्ठ तिष्ठ रणे शिव।
एतद्वचः समाकर्ण्य प्रसन्नः शङ्करोऽब्रवीत्॥ २८

शिव उवाच

धन्यस्त्वं यादवश्रेष्ठ सत्यं वदति नो भवान्।
मन्नाथः कृष्णचन्द्रोऽयं देवदानववन्दितः॥ २९

कुनन्दने च निहते बल्वले मूर्च्छिते रणे।
सहायार्थमहं वीर भक्तरक्षार्थमागतः॥ ३०

सत्यं कर्तुं स्ववचनं किञ्चित्कोपेन पूरितः।
करोमि प्रधने युद्धं भक्तप्रियचिकीर्षया॥ ३१

इत्थं वदति भूतेशे साम्बो रोषप्रपूरितः।
तताड शीघ्रं चापेन क्षुरप्रैः सायकैर्मृडम्॥ ३२

तैर्बाणैर्निहतो रुद्रो न किञ्चित्कश्मलं गतः।
यथा मतङ्गजः पुष्पैर्जग्राह स्वधनुः शिवः॥ ३३

तताड निशितैर्बाणैर्युद्धे जाम्बवतीसुतम्।
साम्बः शिवं शिवः साम्बं जघ्नतुस्तौ परस्परम्॥ ३४

यादववीरको मूर्च्छित हुआ देख साम्बके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली और वे धनुष हाथमें लेकर क्रोधपूर्वक शिवसे बोले—"रुद्र! संग्राममें अनिरुद्ध तथा वीर सुनन्दनको मारकर तुम दानवोंका पालन कैसे करोगे?॥२३-२४॥

मैंने पहले वेदमें और भागवत-शास्त्रमें ब्राह्मणोंके मुँहसे सुन रखा था कि शिव वैष्णव हैं और वे सदा 'श्रीकृष्ण' संज्ञक परब्रह्मका भजन-सेवन करते हैं। आज प्रद्युम्नकुमारके धराशायी होनेपर वह सब कुछ व्यर्थ हो गया। सुनन्दन श्रीकृष्णके पुत्र हैं, किंतु उन्हें भी तुमने युद्धमें मार डाला॥ २५-२६॥

महेश्वर! शिव! तुम व्यर्थ युद्ध करते हो। तुम्हें धिक्कार है! तुम श्रीकृष्णसे विमुख हो; अतः मैं रणभूमिमें क्षुरप्रों तथा सायकोंद्वारा तुम्हें शीघ्र ही मार गिराऊँगा। तुम खड़े रहो, खड़े रहो"। साम्बकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये और इस प्रकार बोले—॥ २७-२८॥

शिवने कहा—यादवश्रेष्ठ! तुम धन्य हो। तुम मुझसे जो कुछ कह रहे हो, वह सब सत्य है। देव-दानव-वन्दित ये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे स्वामी हैं। किंतु वीर! जब कुनन्दन मारा गया तथा रणक्षेत्रमें बल्वल मूर्च्छित हो गया, तब मैं उसकी सहायताके लिये, अथवा यों कहो कि भक्तकी रक्षाके लिये यहाँ आ गया॥ २९-३०॥

मैं अपने दिये हुए वचनको सत्य करनेके लिये आया हूँ और भक्तका प्रिय करनेकी इच्छासे समराङ्गणमें किंचित् कुपित होकर युद्ध करता हूँ॥ ३१॥

भगवान् भूतनाथ शिव जब इस प्रकार कह रहे थे, तभी रोषसे भरे हुए साम्बने बड़ी शीघ्रताके साथ अपने धनुषसे छूटे हुए क्षुरप्रों एवं सायकोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया। उन बाणोंसे आहत होनेपर भी रुद्रदेवको थोड़ी-सी भी वेदना नहीं हुई, जैसे फूलोंसे मारनेपर गजराजको कुछ पता नहीं चलता है। अब शिवने अपना धनुष उठाया और युद्धमें जाम्बवतीकुमारको अनेक तीखे बाण मारे। साम्ब शिवको और शिव साम्बको परस्पर घायल करने लगे॥ ३२—३४॥

दृष्ट्वा युद्धं तयोर्लोकसंहारं मेनिरेऽमराः।
भूतले गगने राजन् महान् कोलाहलोऽभवत्॥ ३५

भीताश्च वृष्णयस्तत्र नाथं कृष्णं स्मरन्ति हि॥ ३६

तदा हरिः श्रीयदुपालकश्च
ज्ञात्वा यदूनां च महाविपत्तिम्।
रथेन तत्रागतवान् रिपुघ्नो
युक्तेन वै सूततुरङ्गमैश्च॥ ३७

श्यामः किरीटी नवकञ्जनेत्रो
नवार्ककोटिद्युतिमादधानः।
कौमोदकीशङ्खरथाङ्गपद्म-
कोदण्डबाणैर्नियुतोऽसिधारी॥ ३८

श्रीवत्सचिह्नेन तु कौस्तुभेन
पीताम्बरेणापि च मालयाढ्यः।
नीलालकैः कुण्डलकङ्कणाद्यै-
र्विभूषितः कोटिमनोजतुल्यः॥ ३९

समुद्गलद्भिः सितफेनशीकरान्
मुक्ताफलानीव च राजहंसकैः।
सुग्रीवमुख्यैरतिवेगवत्तरै-
र्हयैर्युतः सुन्दरसामगायनैः॥ ४०

दृष्ट्वा स्वनाथं यदवः स्वागतं हर्षविह्वलाः।
बभूवुः सुखिनः सर्वे शीतभीता रविं यथा॥ ४१

तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह।
प्रचक्रिरे पुष्पवर्षं गगनस्थाश्च देवताः॥ ४२

दृष्ट्वा साम्बस्तु श्रीकृष्णं सहायार्थं समागतम्।
पपात पादयोस्तस्य चापं त्यक्त्वा प्रहर्षतः॥ ४३

उन दोनोंका युद्ध देखकर देवता ऐसा मानने लगे कि अब समस्त लोकोंका संहार होनेवाला है। राजन्! पृथ्वीपर और आकाशमें महान् कोलाहल मच गया। समस्त वृष्णिवंशी भयभीत हो अपने रक्षक भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करने लगे॥ ३५-३६॥

तब यादवोंपर महान् विपत्ति आयी हुई जानकर श्रीयदुकुलपालक शत्रुसूदन घोड़े और सारथिसे युक्त रथके द्वारा वहाँ आ पहुँचे॥ ३७॥

उनकी अङ्गकान्ति श्याम थी। मस्तकपर किरीट शोभा पा रहा था। नेत्र नूतन नील कमलकी शोभा छीन लेते थे। करोड़ों नवीन सूर्यकी कान्ति धारण किये भगवान् श्यामसुन्दर हाथोंमें कौमोदकी गदा, शङ्ख, चक्र, पद्म, धनुष, बाण और खड्ग लिये हुए थे॥ ३८॥

श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभमणि, पीताम्बर तथा वनमालासे अलंकृत श्रीहरि नीली अलकों तथा कुण्डल, कङ्कण आदि आभूषणोंसे विभूषित हो, करोड़ों कामदेवोंके समान शोभा पा रहे थे॥ ३९॥

जैसे राजहंस मुखसे मुक्ताफल गिरा रहे हों, उसी प्रकार श्वेत फेनकणोंको उगलनेवाले सुग्रीव आदि अत्यन्त वेगशाली तथा सुन्दर सामगान करनेवाले घोड़ोंसे उनका रथ जुता हुआ था॥ ४०॥

जैसे सर्दीसे डरे हुए लोग सूर्यका उदय देखकर सुखी हो जाते हैं, उसी प्रकार यादव अपने स्वामी श्रीकृष्णका शुभागमन देखकर हर्षसे विह्वल हो गये। उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगा। आकाशमें स्थित हुए देवता फूलोंकी वृष्टि करने लगे॥ ४१-४२॥

भगवान् श्रीकृष्णको अपनी सहायताके लिये आया जान साम्ब हर्षसे उत्फुल्ल हो उठे और धनुष त्यागकर उनके चरणोंमें गिर पड़े॥ ४३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डेऽनिरुद्धादिसाहाय्यार्थं श्रीकृष्णागमनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अनिरुद्ध आदिकी सहायताके लिये श्रीकृष्णका आगमन' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

भगवान् शंकरद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन; शिव और श्रीकृष्णकी एकता; श्रीकृष्णद्वारा सुनन्दन, अनिरुद्ध एवं अन्य सब यादवोंको जीवनदान देना तथा बल्वलद्वारा यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका लौटाया जाना

श्रीगर्ग उवाच

कृष्णं दृष्ट्वा हरस्तत्र भीतः शङ्कितमानसः।
त्यक्त्वा चापत्रिशूलादीन् भक्त्या श्रीनाथमब्रवीत्॥ १

शङ्कर उवाच

ॐ अविनयमपनय विष्णो
दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥ २

दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे॥ ३

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥ ४

उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः॥ ५

मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्॥ ६

दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द।
भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे॥ ७

नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु॥ ८

श्रीगर्गजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णको वहाँ उपस्थित देख महादेवजी भयभीत एवं शङ्कितचित्त हो गये और धनुष तथा त्रिशूल आदि त्यागकर उन श्रीपतिसे भक्तिपूर्वक बोले—॥ १॥

शंकरने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वत्र व्यापक विष्णुदेव! मेरे अविनयको दूर कीजिये। मनको दबाइये और विषयोंकी मृगतृष्णा शान्त कीजिये। प्राणियोंके प्रति मेरे हृदयमें दयाका विस्तार कीजिये और मुझे संसार-सागरसे उबारिये। देवनदी गङ्गा जिनकी मकरन्दराशि है, जिनका मनोहर सौरभ-समूह सच्चिदानन्दमय है तथा जो भवबन्धनके भय एवं खेदका छेदन करनेवाले हैं, श्रीपतिके उन चरणारविन्दोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥ २-३॥

प्रभो! परमार्थदृष्टिसे आपमें और मुझमें कोई भेद न होनेपर भी मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं; क्योंकि समुद्रकी ही तरङ्गें हुआ करती हैं, तरङ्गोंका समुद्र कहीं नहीं होता। हे गोवर्धनपर्वत धारण करनेवाले! हे पर्वतभेदी इन्द्रके अनुज! हे दानव-कुलके शत्रु! तथा हे सूर्य और चन्द्रमाको नेत्रोंके रूपमें धारण करनेवाले परमेश्वर! आप प्रभुका दर्शन हो जानेपर क्या इस संसारका तिरस्कार नहीं हो जाता है?॥ ४-५॥

परमेश्वर! मैं भवतापसे भीत हूँ और आप मत्स्य आदि अवतारोंद्वारा अवतारी होकर सदा वसुधाका पालन करते हैं, अतः मेरा भी पालन कीजिये। दामोदर! गुणोंके मन्दिर! सुन्दर वदनारविन्द! गोविन्द! भवसागरको मथ डालनेके लिये मन्दराचलरूप श्रीकृष्ण! आप मेरे बड़े भारी भयको भगाइये। नारायण! करुणामय! मैं आपके युगल-चरणोंकी शरण लूँ। यह छः पदोंवाली स्तुतिरूपिणी षट्पदी (भ्रमरी) मेरे मुखरूपी कमलमें सदा निवास करे॥ ६—८॥

इति स्तुतः शङ्करेण प्रीतः सङ्कर्षणानुजः।
पप्रच्छ सर्वाभिप्रायं नमन्तं चन्द्रशेखरम्॥ ९

भगवान् शंकरके इस प्रकार स्तुति करनेपर बलरामके छोटे भाई श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर अपने चरणोंमें झुके हुए चन्द्रशेखर शिवसे सारा अभिप्राय पूछा॥ ९॥

श्रीकृष्ण उवाच

किं कृतस्तेऽपराधो वै मत्पुत्रेण कुबुद्धिना।
यतस्त्वया हतः संख्येऽनिरुद्धो मूर्च्छितः कृतः॥ १०

हतं यदुबलं कस्मात्कस्मात्त्वं चागतो रणे।
कस्माद्युद्धं च कृतवांस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ११

श्रीकृष्ण बोले—[शिव!] मेरे कुबुद्धि पुत्रने तुम्हारा क्या अपराध किया था, जिससे तुमने युद्धमें उसे मार डाला और अनिरुद्धको मूर्च्छित कर दिया? किसलिये यादव सेनाका विनाश किया? तुम युद्धस्थलमें आये ही क्यों? और आये भी तो युद्ध क्यों करने लगे? यह सब बात विस्तारपूर्वक मुझे बताओ॥ १०-११॥

इत्थं श्रीकृष्णवचनं निशम्य प्रमथेश्वरः।
उवाच लज्जितो भूत्वा विचार्य मधुसूदनम्॥ १२

श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर प्रमथनाथ शिव लज्जित हो गये और कुछ सोच-विचारकर उन मधुसूदनसे बोले—॥ १२॥

शङ्कर उवाच

देवदेव जगन्नाथ राधिकेश जगन्मय।
पाहि पाहि कृपाकारिन्निस्त्रपं मां कृतागसम्॥ १३

त्वं न जानासि किं देव कथयिष्यामि किं त्वहम्।
भक्तस्य पालनं कर्तुं मायया तव मोहितः॥ १४

शंकरजीने कहा—देवदेव! जगन्नाथ! राधिका-वल्लभ! जगन्मय! करुणाकर! मैं निर्लज्ज हूँ, अपराधी हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। देव! क्या आप नहीं जानते, मैं आपके सामने क्या कहूँगा? प्रभो! आपकी मायासे मोहित होकर मैं भक्तकी रक्षा करनेके लिये यहाँ आया था; आप मेरे इस सारे अपराधको क्षमा कर दीजिये॥ १३—१४½॥

अहमागतवान् देव त्वं सर्वं क्षन्तुमर्हसि।
शास्ताहं सर्वलोकस्य मानादिति मया हरे॥ १५

मारिताः सङ्गरे शूरा वृष्णयः कृष्णदेवताः।
तस्मात्सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्यमीप्सितम्॥ १६

ध्यायन्ते सततं कृष्ण पादाब्जं ते निरापदम्।
सुखं दुःखं नृणां तावद्यावत्कृष्णे न मानसम्॥ १७

हरे! 'मैं ही सम्पूर्ण जगत्का शासक हूँ' इस अभिमानसे मैंने युद्धस्थलमें, जिनके श्रीकृष्ण ही देवता हैं, उन शूरवीर वृष्णिवंशियोंको मारा है। श्रीकृष्ण! यही कारण है कि संत पुरुष परमवाञ्छित महान् ऐश्वर्यको स्वयं छोड़कर आपके निर्भय चरणकमलका सदा चिन्तन करते हैं। मनुष्योंको सुख और दुःख तभीतक प्राप्त होते हैं, जबतक उनका मन श्रीकृष्णमें नहीं लगता है॥ १५—१७॥

कृष्णे मनसि सञ्जातो भक्तिखड्गो दुरत्ययः।
नराणां कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोति यः॥ १८

मद्भक्तिबलदर्पिष्ठा मत्प्रभुं त्वां यदूत्तमम्।
न मन्यन्ते च ते सर्वे यास्यन्ति निरयं ध्रुवम्॥ १९

श्रीकृष्णमें मन लग जानेपर वह दुर्जय भक्तियोगरूपी खड्ग प्राप्त होता है, जो मनुष्योंके कर्मरूपी वृक्षोंका मूलोच्छेद कर डालता है। जो लोग मेरी भक्तिके बलसे घमंडमें आकर आप मेरे स्वामी यदुकुलतिलकका अपमान करते हैं, वे सब निश्चय ही नरकमें जायँगे॥ १८-१९॥

इत्युक्त्वा शङ्करस्तूष्णीं भूत्वा कृष्णस्य पादयोः।
पपात दण्डवद्भक्त्या ह्यश्रुपूर्णाकुलेक्षणः॥ २०

उत्थाप्याश्वास्य तं रुद्रं पार्श्वतस्तत्प्रदर्शनात्।
मिलित्वा भगवान् कृष्ण आलुलोक सुधार्द्रदृक्॥ २१

—ऐसा कहकर भगवान् शंकर चुप हो नेत्रोंमें आँसू भरकर भक्तिभावसे श्रीकृष्णके युगल चरणारविन्दोंमें दण्डकी भाँति प्रणत हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने रुद्रदेवको उठाकर अपने पास खड़ा किया और उन्हें आश्वासन देकर, मिलकर उनकी ओर सुधाभरी दृष्टिसे देखा॥ २०-२१॥

आह कृष्णः सुराः सर्वे कुर्वन्ति भक्तपालनम्।
त्वया जुगुप्सितं कर्म किं कृतं भक्तपालने॥ २२

ममासि हृदये त्वं तु भवतो हृदये ह्यहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥ २३

त्वां नमन्ति च मद्भक्तास्त्वद्भक्ता मां सदाशिव।
ये न मन्यन्ति मद्वाक्यं यास्यन्ति नरकं च ते॥ २४

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण बोले—शिव! सभी देवता अपने भक्तका पालन करते हैं। तुमने भी यदि भक्तका पालन किया तो इसमें कौन-सा निन्दित कर्म कर डाला? तुम मेरे हृदयमें हो और मैं तुम्हारे हृदयमें। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। खोटी बुद्धिवाले मूढ़ पुरुष ही हम दोनोंमें अन्तर या भेद देखते हैं। सदाशिव! मेरे भक्त तुमको नमस्कार करते हैं और तुम्हारे भक्त मुझको। जो मेरी इस बातको नहीं मानते हैं, वे नरकमें पड़ेंगे॥ २२—२४॥

इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णो हतं पुत्रं सुनन्दनम्।
दृष्ट्या पीयूषवर्षिण्या जीवयामास संयुगे॥ २५

तत्पश्चादनिरुद्धस्य हृदयाच्छूलमेव च।
शनैः शनैः समाकृष्य जीवयामास तं हरिः॥ २६

—ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें मारे गये अपने पुत्र सुनन्दनको अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर जीवित कर दिया। तत्पश्चात् अनिरुद्धके हृदयसे शूलको धीरे-धीरे खींचा और उन्हें भी जीवनदान दिया॥ २५-२६॥

तत्पश्चाद्यादवान् सर्वान्निहतान् संयुगे भृशम्।
अजीवयत्सुधादृष्ट्या कृष्णस्तु प्रभुरीश्वरः॥ २७

तावत्सदुन्दुभिरवं पुष्पवृष्टिं दिवौकसः।
उत्साहलक्षणां चक्रुः प्रसाद्य गरुडध्वजम्॥ २८

प्रभुं त्रैलोक्यनेतारं कृष्णं दृष्ट्वा यदूत्तमाः।
उत्थाय सम्भ्रमाच्चक्रुर्जयारावं मुदान्विताः॥ २९

इसके बाद सर्वसमर्थ परमेश्वर श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें मारे गये समस्त यादवोंको सुधावर्षिणी दृष्टिसे देखकर जीवित कर दिया। इतनेमें ही दुन्दुभिनादके साथ देवता उत्साहसूचक पुष्पवर्षा करने लगे। ऐसा करके उन्होंने भगवान् गरुडध्वजको प्रसन्न किया। सम्पूर्ण त्रिलोकीके नेता भगवान् श्रीकृष्णको आया देख वे श्रेष्ठ यादव वेगपूर्वक उठकर खड़े हो गये और प्रसन्नताके साथ जय-जयकार करने लगे॥ २७—२९॥

अथोत्थितो बल्वलस्तु महादेवेन रक्षितः।
क्व गतश्चानिरुद्धो वै ब्रुवन् वाक्यं रुषान्वितः॥ ३०

ततः शर्वेण दैत्यस्तु बोधितो वचनैः शुभैः।
ज्ञात्वा कृष्णस्य माहात्म्यं मुदितोऽभून्महामनाः॥ ३१

तदनन्तर महादेवजीसे सुरक्षित हो बल्वल उठा और रोषपूर्वक कहने लगा—'अनिरुद्ध कहाँ गया?' तब शंकरजीने अपने शुभ वचनोंद्वारा उस दैत्यको समझाया और श्रीकृष्णकी महिमाको जानकर वह महामनस्वी दैत्य आनन्दित हो गया॥ ३०-३१॥

ततः प्रणम्य गोविन्दं स्तुत्वा दैत्यस्तु बल्वलः।
तुरगं प्रददौ राजन् बहुद्रव्येण संयुतम्॥ ३२

राजन्! तदनन्तर गोविन्दको प्रणाम और उनकी स्तुति करके दैत्य बल्वलने बहुत-सी द्रव्यराशिके साथ घोड़ा लौटा दिया॥ ३२॥

ततो यज्ञहयं नीत्वा पुत्रपौत्रसमन्वितः।
सेतुमार्गेण कृष्णस्तु प्रययौ पश्चिमां दिशम्॥ ३३

कृष्णे गते भगवति राज्ये संस्थाप्य बल्वलम्।
कैलासं प्रययौ रुद्रः सगणस्तु सभैरवः॥ ३४

एतत्कृष्णचरित्रं तु ये शृण्वन्ति गृहे जनाः।
तेषां सहायं भगवान् करिष्यति सदा हरिः॥ ३५

इसके बाद यज्ञके घोड़ेको साथ लेकर भगवान् श्रीकृष्ण पुत्र-पौत्रोंके साथ सेतुमार्गसे समुद्रके तटपर आये। वहाँसे वे पश्चिम दिशाकी ओर चले गये। भगवान् श्रीकृष्णके चले जानेपर रुद्रदेव बल्वलको उसके राज्यपर स्थापित करके अपने गणों और भैरवके साथ कैलासको चले गये॥ ३३-३४॥

जो लोग भगवान् श्रीकृष्णके इस चरित्रको अपने घरपर सुनते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण उनकी सदा सहायता करेंगे॥ ३५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डेऽनिरुद्धविजयवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अनिरुद्ध-विजय-वर्णन' नामक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका व्रजमण्डलमें वृन्दावनके भीतर प्रवेश; श्रीदामाका उसे बाँधकर नन्दजीके पास ले जाना; नन्दजीका समस्त यादवों और श्रीकृष्णसे सानन्द मिलना; यादव-सेनाका वृन्दावनमें और श्रीकृष्णका नन्दपत्तनमें निवास

श्रीगर्ग उवाच

मुक्तस्तुरङ्गः कृष्णेन पत्रचामरभूषितः।
प्रययौ स बहून् देशान्नेत्राभ्यां च विलोकयन्॥ १

बल्वलं निर्जितं श्रुत्वा नानादेशाधिपा नृपाः।
हयं न जगृहुः प्राप्तं श्रीकृष्णस्य भयान्नृप॥ २

इत्थं व्रजन् भारते वै यदुवीरतुरङ्गमः।
एकमासेन राजेन्द्र प्राप्तोऽभूद् व्रजमण्डले॥ ३

ततः कृष्णां समुत्तीर्य दृष्ट्वा वृन्दावनं वनम्।
तमालस्य तले राजन् स्थितोऽभूद्धयसत्तमः॥ ४

दूर्वां चरन्तं तुरगं विलोक्य
विहाय गास्ते किल गोपबालाः।
समाययुस्ते नृप कौतुकेन
हयस्य पार्श्वे करताडनैश्च॥ ५

इति पश्यत्सु सर्वेषु श्रीदामा गोपनायकः।
जग्राह लीलया राजञ्चरन्तं चञ्चलं हयम्॥ ६

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णके द्वारा मुक्त हुआ पत्र और चामरोंसे विभूषित वह अश्व सम्पूर्ण देशोंका नेत्रोंसे अवलोकन करता हुआ आगे बढ़ा। नरेश्वर बल्वलको पराजित हुआ सुनकर अनेक देशोंके नरेश भगवान् श्रीकृष्णके भयसे अपने यहाँ आये हुए अश्वको पकड़ न सके॥ १-२॥

राजेन्द्र! इस प्रकार आगे-आगे जाता हुआ यदुवीर उग्रसेनका अश्व एक महीनेमें भारतवर्षके अन्तर्गत व्रजमण्डलमें जा पहुँचा। राजन्! वहाँसे यमुनाको पारकर वृन्दावनका दर्शन करते हुए वह श्रेष्ठ अश्व एक तमाल वृक्षके नीचे खड़ा हो गया॥ ३-४॥

वहाँ दूब चरते हुए घोड़ेको देखकर बहुत-से ग्वाल-बाल गौएँ चराना छोड़कर कौतूहलवश उसके पास आ गये और ताली पीटने लगे। राजन्! इस प्रकार जब सब ग्वाल-बाल घोड़ेको देख रहे थे, उसी समय गोपनायक श्रीदामा वहाँ आये और उन्होंने वहाँ विचरते हुए उस चञ्चल अश्वको अनायास ही पकड़ लिया॥ ५-६॥

गोपाशेन हयं बद्ध्वा गले गोपैः समन्वितः।
केनोत्सृष्टो वदन् वाक्यं नन्दस्य निकटं ययौ॥ ७

आगतं वाजिनं दृष्ट्वा नन्दोऽपि हर्षपूरितः।
तत्पत्रं वाचयित्वाह सर्वान् गद्गदया गिरा॥ ८

उग्रसेनहयश्चैष पुरे मम समागतः।
पालितो ह्यनिरुद्धेन मत्प्रपौत्रेण सर्वतः॥ ९

गृह्णामि यज्ञतुरगं मित्राणां मिलनाय च।
ततः प्रपौत्रं पश्यामि कृष्णाकारं प्रियङ्करम्॥ १०

इत्युक्त्वा नन्दराजस्तु द्रष्टुं गोपैः समन्वितः।
कथयित्वा यशोदाग्रेऽभिप्रायं निर्ययौ पुरात्॥ ११

तदैव यादवाः सर्वे भोजवृष्ण्यन्धकादयः।
हयस्य पृष्ठतो लग्नास्तत्राजग्मुर्नृपेश्वर॥ १२

विलोकयन्तो नयपालतीर्थं
तथा च मार्गे मिथिलामयोध्याम्।
बर्हिष्मतीं चैव हि कान्यकुब्जं
साङ्कर्षणं गोकुलमेव राजन्॥ १३

मार्तण्डकन्यां मथुरां पुरीं च
विराजते यत्र तु केशवश्च।
वृन्दावने नन्दपुरे नृपेन्द्र
समागताः कृष्णयुताश्च सर्वे॥ १४

नन्दग्रामं तत्र दृष्ट्वा रथस्थो नन्दनन्दनः।
सर्वेषामग्रतो भूत्वा ह्यायये यादवैर्वृतः॥ १५

ददर्श तत्र पुरतो गोपालैः पितरं हरिः।
संस्थितं तु पुरस्कृत्य वारणेन्द्रमलङ्कृतम्॥ १६

वादित्रैः शङ्खशब्दैश्च जयशब्दैर्नृपेश्वर।
पुष्पालङ्कारकलशलाजाद्यैः परिभूषितम्॥ १७

ततश्च यादवाः सर्वे नेमुर्नन्दं निरीक्ष्य च।
हर्षाश्रुविप्लुता राजन्नुद्धवाद्याश्च तत्र वै॥ १८

गाय बाँधनेवाली रस्सीको घोड़ेके गलेमें बाँधकर वे अन्य गोपोंके साथ 'किसने इसको छोड़ा है'—यह बातचीत करते हुए नन्दरायके निकट गये। उस घोड़ेको आया देख नन्दरायजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसके भालमें बँधे हुए पत्रको बाँचकर गद्गद-वाणीमें सब लोगोंसे कहा—॥ ७-८॥

'यह उग्रसेनका घोड़ा है, जो मेरे गाँवमें आ गया है। मेरे प्रपौत्र अनिरुद्ध सब ओरसे इसका पालन करते हैं। मैं मित्रोंसे मिलनेके लिये इस यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको ग्रहण करता हूँ। इसके बाद श्रीकृष्णकी-सी आकृतिवाले प्रियकारी प्रपौत्र अनिरुद्धको देखूँगा।' ऐसा कहकर और यशोदाके सामने सारा अभिप्राय बताकर नन्दरायजी अनिरुद्धको देखनेके लिये अन्यान्य गोपोंके साथ नन्दगाँवसे बाहर निकले॥ ९—११॥

नृपेश्वर! उसी समय भोज, वृष्णि तथा अन्धक आदि कुलोंके समस्त यादव घोड़ेके पीछे लगे वहाँ आ पहुँचे। नृपेन्द्र! गङ्गासागरसे लौटते समय मार्गमें नैपाल तीर्थ, मिथिला, अयोध्या, बर्हिष्मती, कान्य-कुब्ज (कन्नौज), बलभद्रजीके स्थान (दाऊजी), गोकुल (महावन), सूर्यकन्या यमुना तथा जहाँ भगवान् केशवदेव विराजते हैं, उस मथुरापुरीका भी दर्शन करते हुए श्रीकृष्णसहित सब लोग वृन्दावन होते हुए नन्दगाँवमें आये॥ १२—१४॥

नन्दग्रामको दूरसे देखकर रथारूढ़ नन्दनन्दन श्रीकृष्ण सबसे आगे होकर यादवोंके साथ वहाँ आये। निकट पहुँचकर श्रीहरिने सामने देखा—पिता नन्दरायजी एक सुसज्जित गजराजको आगे रखकर गोपोंके साथ खड़े हैं॥ १५-१६॥

नृपेश्वर! तरह-तरहके बाजे बजवाते, शङ्खनाद कराते, जय-जयकारकी ध्वनि फैलाते नन्दरायजी फूलोंके हार, मङ्गल कलश तथा लाजा आदिसे विभूषित थे। राजन्! उस समय नन्दजीका दर्शन करके उद्धव आदि समस्त यादवोंने उनको नमस्कार किया। सबके नेत्रोंमें हर्षके आँसू छलक आये थे॥ १७-१८॥

तदैव नन्दराजस्य दक्षिणाङ्गमथास्फुरत्।
उवाच दृष्ट्वा मनसि ह्युत्तमं शकुनं नृप॥ १९

अद्य पश्यामि नेत्राभ्यां कृष्णं किं प्रियवादिनम्।
यस्मान् ममाक्षिः स्फुरति दक्षिणश्च प्रियङ्करः॥ २०

मन्नेत्रगोचरः कृष्णो यदा भूयात्तदा ह्यहम्।
गवां लक्षं प्रदास्यामि ब्राह्मणेभ्यो ह्यलङ्कृतम्॥ २१

इत्युक्त्वा वचनं नन्दो विरराम यदा नृप।
तदाश्रृणोत्स्वपुत्रस्यागमनं व्रजवासिभिः॥ २२

श्रीकृष्णागमनं श्रुत्वा नन्दो विरहविप्लुतः।
पश्यन् हरिं च सर्वेषां विचचार रुदन्निव॥ २३

वदन् कृष्णेति कृष्णेति गिरा गद्‌गदया भृशम्।
हे कृष्णचन्द्र क्व गतो दुःखितं मां न पश्यसि॥ २४

ततो निरीक्ष्य पितरं श्रीकृष्णः पितृवत्सलः।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं पपात चरणौ पितुः॥ २५

श्रीनन्दराजस्तनयं समुत्थाप्य चिरागतम्।
स्नापयामास सलिलैः कृत्वा वक्षसि नेत्रयोः॥ २६

अक्षिभ्यां कृष्णचन्द्रस्तु मुमोचाश्रु घृणातुरः।
श्रीदामादीन् सखीन् दृष्ट्वा पश्चात्प्रेमपरिप्लुतान्॥ २७

पृथक्पृथक्परिरेभे कृष्णः प्रेमपरिप्लुतः।
भक्तानां कोऽस्ति माहात्म्यमहो वक्तुं धरातले॥ २८

नन्दाद्या रुरुदुर्गोपाः श्रीकृष्णाद्याश्च यादवाः।
प्रवक्तुं न समर्थास्ते सर्वे विरहविक्लवाः॥ २९

अश्रुपूर्णमुखः कृष्णो गोपान् गद्‌गदया गिरा।
सर्वानाश्वासयामास प्रेमानन्दसमाकुलान्॥ ३०

परिपूर्णतमं साक्षाच्छ्रीकृष्णं जगदीश्वरम्।
तादृशं ददृशुः सर्वे यादृशो मथुरां गतः॥ ३१

उसी समय नन्दरायका दाहिना अङ्ग फड़क उठा। नरेश्वर! वह उत्तम शकुन देखकर वे मन-ही-मन कहने लगे—'क्या मैं आज अपने नेत्रोंसे प्रियवादी श्रीकृष्णको देखूँगा? क्योंकि प्रियकी सूचना देनेवाला मेरा दाहिना नेत्र फड़क रहा है। यदि श्रीकृष्ण मेरे नेत्रोंके समक्ष आ जायँ तो आज मैं ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत एक लाख गौएँ दान दूँगा'॥ १९—२१॥

नरेश्वर! ऐसा संकल्प करके जब नन्दजी चुप हुए, तभी व्रजवासियोंके मुखसे उन्होंने अपने पुत्रके शुभागमनका समाचार सुना। श्रीकृष्णका आगमन सुनकर विरहमें डूबे हुए नन्दराय उन श्रीहरिको देखनेके लिये रोते हुए-से सबके आगे चलने लगे। वे गद्गद वाणीसे बार-बार कह रहे थे—'हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे कृष्णचन्द्र! तुम कहाँ चले गये थे? क्या मुझ दुखियाको नहीं देखते हो!'॥ २२—२४॥

पिताको देखकर पितृवत्सल श्रीकृष्ण रथसे कूदकर तत्काल उनके चरणोंमें गिर पड़े। श्रीनन्दरायने सुदीर्घकालके बाद आये हुए अपने पुत्रको उठाया और उन्हें छातीसे लगाकर वे नेत्रोंके जलसे नहलाने लगे॥ २५-२६॥

श्रीकृष्णचन्द्र भी करुणासे आकुल हो नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाने लगे। तत्पश्चात् प्रेममें डूबे हुए श्रीदामा आदि मित्रोंको देखकर प्रेमपरिप्लुत श्रीकृष्णने उन सबको बारी-बारीसे अपने हृदयसे लगाया। अहो! इस भूतलपर कौन ऐसा मनुष्य है, जो भक्तोंके माहात्म्यका वर्णन कर सके?॥ २७-२८॥

एक ओरसे नन्द आदि गोप रो रहे थे और दूसरी ओरसे श्रीकृष्ण आदि यादव। सब लोग विरहसे व्याकुल होनेके कारण परस्पर कुछ बोल नहीं पाते थे॥ २९॥

श्रीकृष्णके मुखपर आँसुओंकी अविरल धारा बह रही थी। उन्होंने गद्गद वाणीसे प्रेमानन्दमें डूबे हुए समस्त गोपोंको आश्वासन दिया। उन सबने साक्षात् परिपूर्णतम जगदीश्वर श्रीकृष्णको वैसा ही देखा, जैसा वे मथुरा जाते समय दिखायी दिये थे॥ ३०-३१॥

नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम्।
शरत्प्रभातकमलकान्तिमोचनलोचनम् ॥ ३२

शरत्पूर्णेन्दुशोभाढ्यं शोभास्वाच्छादनाननम्।
कोटिमन्मथलावण्यं लीलानन्दितसुन्दरम्॥ ३३

सस्मितं मुरलीहस्तं द्विभुजं ह्यतिसुन्दरम्।
तडिद्वस्त्रधरं देवं मत्स्यकुण्डलिनं हरिम्॥ ३४

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम्।
आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् ॥ ३५

मयूरपिच्छचूडं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्।
पक्वबिम्बाधिकोष्ठं च नासिकोन्नतशोभनम्॥ ३६

एवं कृष्णस्य राजेन्द्र रूपं नेत्रैर्व्रजौकसः।
पपुरानन्दसम्मग्नाः पीयूषं मानवा इव॥ ३७

अनिरुद्धं ततो नन्दः साम्बादींश्चैव यादवान्।
आशिषं प्रददौ राजन् प्रीतः प्रेमपरिप्लुतः॥ ३८

ततः सर्वैश्च यदुभिः पुत्रपौत्रसमन्वितः।
विवेश स्वपुरं नन्दो गतदुःखो महामतिः॥ ३९

अवप्लुत्य रथात् कृष्णः साम्बाद्यैः परिभूषितः।
त्वरं स्वमातुर्भवनमानन्दं प्रददन् ययौ॥ ४०

दृष्ट्वा स्वमातरं कृष्णो गृहद्वारे समागताम्।
रुदतीं वाष्पकण्ठीं तां ननाम प्ररुदन् हरिः॥ ४१

नूतन जलधरके समान उनकी श्याम कान्ति थी। वे किशोर अवस्थाके बालक-से प्रतीत होते थे। उनके नेत्र शरत्कालके प्रभातमें खिले हुए कमलोंकी कान्तिको छीने लेते थे। उनका मुख अपनी छबिसे शरत्पूर्णिमाके शोभासम्पन्न पूर्ण चन्द्रमण्डलकी छबिको आच्छादित किये लेता था। करोड़ों कामदेवोंका लावण्य उनके लावण्यमें विलीन हो गया था। लीला-जनित आनन्दसे वे और भी सुन्दर प्रतीत होते थे॥ ३२-३३॥

अधरोंपर मुस्कराहट और हाथोंमें मुरली लिये द्विभुज श्रीकृष्ण अत्यन्त मनोहर दिखायी देते थे। विद्युत्की-सी पीत कान्तिसे सुशोभित वस्त्र तथा मीनाकार कुण्डल धारण किये भगवान् श्रीहरिका सारा अङ्ग चन्दनसे अनुलिप्त तथा कौस्तुभमणिसे दीप्तिमान् था। घुटनोंतक लटकती हुई मालतीसुमनोंकी माला और वनमालासे वे विभूषित थे॥ ३४-३५॥

मस्तकपर मोरपंखका मुकुट तथा उत्तम रत्नोंका बना हुआ किरीट जगमगा रहा था। ओठ परिपक्व बिम्बाफलसे भी अधिक लाल थे तथा ऊँची नासिकासे उनका मुखमण्डल अद्भुत शोभा पा रहा था। राजेन्द्र! श्रीकृष्णके ऐसे रूपामृतका, आनन्दमें डूबे हुए व्रजवासी नेत्रोंसे पान कर रहे थे, मानो साधारण मानव वसुधापर सुलभ हुई सुधाका पान कर रहे हों॥ ३६-३७॥

राजन्! तत्पश्चात् प्रेमरसमें डूबे हुए नन्दरायजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ अनिरुद्धको और साम्ब आदि समस्त यादवोंको शुभाशीर्वाद दिया। इसके बाद समस्त यादवों और पुत्र-पौत्रोंसे घिरे हुए महाबुद्धिमान् नन्दजी अपनी पुरीमें प्रविष्ट हुए। उस समय उनके मनका सम्पूर्ण दुःख दूर हो गया था॥ ३८-३९॥

द्वारपर पहुँचते ही श्रीकृष्ण रथसे कूद पड़े और साम्ब आदिके साथ माताको आनन्द प्रदान करते हुए तुरंत उनके भवनमें जा पहुँचे। माता यशोदा घरके द्वारतक आ गयी थीं। वे रो रही थीं और उनका गला रुँध गया था। उस दशामें उन्हें देखकर श्रीकृष्ण फूट-फूटकर रोते हुए माताके चरणोंमें पड़ गये॥ ४०-४१॥

यशोदा तस्य जननी स्वप्राणेभ्यः प्रियं सुतम्।
उपगूह्य ददौ तस्मै गिरा गद्गदयाशिषः॥ ४२

नन्दस्तथोपनन्दश्च तथा षड् वृषभानवः।
वृषभानुवरश्चैव ह्येते द्रष्टुं समाययुः॥ ४३

तत्रागतानां गोपानां श्रीकृष्णो यादवैर्वृतः।
यथाविध्युपसङ्गम्य सर्वेषां मानमादधे॥ ४४

ते तु कृष्णस्य कुशलं पप्रच्छुर्मुदिताननाः।
तेषां कृष्णस्तु भगवान् पप्रच्छ कुशलं परम्॥ ४५

ततश्च यमुनातीरे वृन्दारण्ये नृपेश्वर।
बभूवुः शिबिराः सर्वेऽनिरुद्धस्य महात्मनः॥ ४६

शिविरेष्वनिरुद्धाद्याः साम्बाद्याश्चोद्धवादयः।
निवासं चक्रिरे कृष्णः स्थितोऽभून्नन्दपत्तने॥ ४७

आगतेभ्यश्च सर्वेभ्यो नन्दः कृष्णेन संयुतः।
भोजनं प्रददौ राजन् पशुभ्यश्च तृणानि च॥ ४८

श्रीकृष्णकी माता यशोदाने अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रको छातीसे लगाकर उन्हें गद्गद कण्ठसे आशीर्वाद दिया। नन्द, उपनन्द, छहों वृषभानु तथा वृषभानुवर—ये सब लोग श्रीकृष्णको देखनेके लिये आये॥ ४२-४३॥

यादवोंसहित श्रीकृष्णने वहाँ पधारे हुए गोपोंसे विधिपूर्वक मिलकर उन सबका समादर किया। उन सबने प्रसन्नमुख होकर श्रीकृष्णकी कुशल पूछी और भगवान् श्रीकृष्णने भी उन सबका उत्तम कुशल-समाचार पूछा॥ ४४-४५॥

नृपेश्वर! तत्पश्चात् वृन्दावनमें यमुनाके तटपर महात्मा अनिरुद्धकी सेनाके सारे शिविर लग गये। अनिरुद्ध, साम्ब और उद्धव आदिने तो शिविरोंमें ही निवास किया, किंतु भगवान् श्रीकृष्ण नन्दनगरमें ही ठहरे॥ ४६-४७॥

राजन्! श्रीकृष्णसहित नन्दरायजीने वहाँ पधारे हुए समस्त यादव-सैनिकोंको भोजन दिया और पशुओंके लिये भी चारे-दाने आदिका प्रबन्ध कर दिया॥ ४८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे व्रजप्रवेशो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'व्रजमण्डलमें प्रवेश' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीराधा और श्रीकृष्णका मिलन

श्रीगर्ग उवाच

आहूतो राधया कृष्णः सन्ध्यायां नन्दनन्दनः।
जगाम शश्वदेकान्ते शीतलं कदलीवनम्॥ १

रम्भादलैश्चन्दनस्य पङ्कयुक्तं मनोहरम्।
स्फारास्फुरन्नभ्रगेहं यमुनावायुशीकरम्॥ २

एतादृशं राधिकायाः सुन्दरं मेघमन्दिरम्।
सर्वं दुःखाग्निना नित्यं भस्मीभूतं बभूव ह॥ ३

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! संध्याके समय श्रीराधाने नन्दनन्दन श्रीकृष्णको बुलवाया। उनका आमन्त्रण पाकर नित्य एकान्तस्थलमें, जहाँ शीतल कदलीवन था, श्रीकृष्ण वहाँ गये। कदलीवनमें एक मेघ-महल बना था, जिसमें चन्दनपंकका छिड़काव हुआ था। केलेके पत्तोंसे सज्जित होनेके कारण वह भवन बड़ा मनोहर लगता था। अपनी विशालतासे सुशोभित उस मेघभवनमें यमुनाजलका स्पर्श करके बहती हुई वायु पानीके फुहारे बिखेरती रहती थी॥ १-२॥

श्रीराधिकाका ऐसा सुन्दर सारा मेघमन्दिर उनके विरह-दुःखकी आगसे सदा भस्मीभूत हुआ-सा प्रतीत होता था॥ ३॥

श्रीदामशापेन नृप दुःखेन वृषभानुजा।
तनुं रक्षति तत्रापि कृष्णागमनहेतवे॥ ४

निशम्य कृष्णं स्ववने समागतं
सखीमुखाच्छ्रीवृषभानुनन्दिनी।
आनेतुमुत्थाय वरासनात्त्वरं
द्वारे सखीभिर्नृप सा जगाम ह॥ ५

ददौ ह्यासनपाद्याद्यानुपचारान् व्रजेश्वरी।
वदन्ती कुशलं वाक्यं कृष्णा कृष्णं व्रजेश्वरम्॥ ६

परिपूर्णतमं दृष्ट्वा परिपूर्णतमा नृप।
जहौ विरहजं दुःखं संयोगे हर्षपूरिता॥ ७

चकार स्वस्याः शृङ्गारं वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
कुशस्थल्यां गते नाथे शृङ्गारो न कृतस्तया॥ ८

पुरा तया न भुक्तं च ताम्बूलं मिष्टभोजनम्।
कृतं न शय्याशयनं क्वचिद्धास्यं न वा कृतम्॥ ९

सिंहासने स्थितं राधा देवं मदनमोहनम्।
हर्षाश्रूणि प्रमुञ्चन्ती जगौ गद्गदया गिरा॥ १०

राधोवाच

गोकुलं मथुरां त्यक्त्वा गतः कस्मात्कुशस्थलीम्।
वद तन्मे हृषीकेश त्वं साक्षाद्गोकुलेश्वरः॥ ११

क्षणं युगसमं नाथ जानामि त्वद्वियोगतः।
घटीं मन्वन्तरसमां द्विपरार्धसमं दिनम्॥ १२

कस्मिन् कुकाले विरहो मे बभूव च दुःखदः।
येन त्वच्चरणौ देव न पश्यामि सुखप्रदौ॥ १३

यथा रामं तु सीतेव मानसं वरटेव च।
तथा रासेश्वरं त्वां तु मानदं हि समुत्सहे॥ १४

नरेश्वर! [गोलोकमें प्राप्त हुए] श्रीदामाके शापसे वृषभानुनन्दिनीको श्रीकृष्णविरहका दुःख भोगना पड़ रहा था। उस दशामें भी वे वहाँ अपने शरीरकी रक्षा इसलिये कर रही थीं कि किसी-न-किसी दिन श्रीकृष्ण यहाँ आयेंगे॥ ४॥

सखीके मुखसे जब यह संवाद मिला कि श्रीकृष्ण अपने विपिनमें पधारे हैं, तब श्रीवृषभानुनन्दिनी उन्हें लानेके लिये अपने श्रेष्ठ आसनसे तत्काल उठकर खड़ी हो गयीं और सहेलियोंके साथ दरवाजेपर आयीं। व्रजेश्वरी श्यामाने व्रजवल्लभ श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको उनका कुशल-समाचार पूछते हुए आसन दिया और क्रमशः पाद्य, अर्घ्य आदि उपचार अर्पित किये॥ ५-६॥

नरेश्वर! परिपूर्णतमा श्रीराधाने परिपूर्णतम श्रीकृष्णका दर्शन पाकर विरहजनित दुःखको त्याग दिया और संयोग पाकर वे हर्षोल्लाससे भर गयीं। उन्होंने वस्त्र, आभूषण और चन्दनसे अपना शृङ्गार किया। प्राणनाथ श्रीकृष्णके कुशस्थली चले जानेके बादसे श्रीराधाने कभी शृङ्गार धारण नहीं किया था॥ ७-८॥

इस दिनसे पहले उन्होंने कभी पान नहीं खाया, मिष्टान्न भोजन नहीं किया, शय्यापर नहीं सोयीं और कभी हास-परिहास नहीं किया था। इस समय सिंहासनपर विराजमान मदनमोहनदेवसे श्रीराधाने हर्षके आँसू बहाते हुए गद्गद कण्ठसे पूछा—॥ ९-१०॥

श्रीराधा बोलीं—हृषीकेश! तुम तो साक्षात् गोकुलेश्वर हो; फिर गोकुल और मथुरा छोड़कर कुशस्थली क्यों चले गये? इसका कारण मुझे बताओ। नाथ! तुम्हारे वियोगसे मुझे एक-एक क्षण युगके समान जान पड़ता है। एक-एक घड़ी एक-एक मन्वन्तरके तुल्य प्रतीत होती है और एक दिन मेरे लिये दो परार्धके समान व्यतीत होता है॥ ११-१२॥

देव! किस कुसमयमें मुझे दुःखदायी विरह प्राप्त हुआ, जिसके कारण मैं तुम्हारे सुखदायी चरणारविन्दोंका दर्शन नहीं कर पाती हूँ। जैसे सीता श्रीरामको और हंसिनी मानसरोवरको चाहती है, उसी तरह मैं तुम मानदाता रासेश्वरसे नित्यमिलनकी इच्छा रखती हूँ॥ १३-१४॥

सर्वं जानासि सर्वज्ञ किं दुःखं कथयाम्यहम्।
शतवर्षं गतं नाथ वियोगो न गतो मम॥ १५

तुम तो सर्वज्ञ हो, सब कुछ जानते हो। मैं तुमसे अपना दुःख क्या कहूँ? नाथ! सौ वर्ष बीत गये, किंतु मेरे वियोगका अन्त नहीं हुआ॥ १५॥

इत्युक्त्वा वचनं राजन् स्वामिनी स्वामिनं परम्।
वियोगखिन्ना दुःखानि स्मरन्ती सा रुरोद ह॥ १६

दृष्ट्वा प्रियां रुदन्तीं तां प्रियः प्राह प्रियं वचः।
तस्याश्च शमयन् वाक्यैः कृष्णः कश्मलमेव च॥ १७

राजन्! अपने परम प्रियतम स्वामी श्यामसुन्दरसे ऐसा वचन कहकर स्वामिनी श्रीराधा विरहावस्थाके दुःखोंको स्मरण करके अत्यन्त खिन्न हो फूट-फूटकर रोने लगीं। प्रियाको रोते देख प्रियतम श्रीकृष्णने अपने वचनोंद्वारा उनके मानसिक क्लेशको शान्त करते हुए यह प्रिय बात कही— ॥ १६-१७॥

श्रीकृष्ण उवाच

न कर्तव्यस्त्वया राधे शोकश्च तनुशोषकः।
तेजश्चैकं द्विधाभूतमावयोर्ऋषयो विदुः॥ १८

यत्राहं त्वं सदा तत्र यत्र त्वं ह्यहमेव च।
वियोग आवयोर्नास्ति मायापुरुषयोर्यथा॥ १९

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये राधे! यह शोक शरीरको सुखा देनेवाला है; अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। हम दोनोंका तेज एक है, जो दो रूपोंमें प्रकट हुआ है; इस बातको ऋषि-महर्षि जानते हैं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ सदा तुम हो और जहाँ तुम हो, वहाँ सदा मैं हूँ। हम दोनोंमें प्रकृति और पुरुषकी भाँति कभी वियोग नहीं होता॥ १८-१९॥

भेदं हि चावयोर्मध्ये ये पश्यन्ति नराधमाः।
देहान्ते नरकान् राधे ते प्रयान्ति स्वदोषतः॥ २०

राधे! जो नराधम हम दोनोंके बीचमें भेद देखते हैं, वे शरीरका अन्त होनेपर अपनी उस दोषदृष्टिके कारण नरकोंमें पड़ते हैं॥ २०॥

अथातस्त्वं तु मां राधे नित्यं द्रक्ष्यसि चान्तिके।
प्रभाते चक्रवाकीव चक्रवाकं प्रियङ्करम्॥ २१

किञ्चित्कालेन दयिते गोपगोपीभिरेव च।
साकं त्वयाक्षरं ब्रह्म श्रीगोलोकं व्रजाम्यहम्॥ २२

श्रीराधिके! जैसे चकई प्रतिदिन प्रातःकाल अपने प्यारे चक्रवाकको देखती है, उसी तरह आजसे तुम भी मुझे सदा अपने निकट देखोगी। प्राणवल्लभे! थोड़े ही दिनोंके बाद मैं समस्त गोप-गोपियोंके और तुम्हारे साथ अविनाशी ब्रह्मस्वरूप श्रीगोलोकधाममें चलूँगा॥ २१-२२॥

श्रीगर्ग उवाच

माधवस्य वचः श्रुत्वा गोपीभिः सह राधिका।
प्रसन्ना पूजयामास रमेशं च रमा यथा॥ २३

श्रीराधया पुनः कृष्णो रासार्थं प्रार्थितो नृप।
प्रसन्नो वृन्दकारण्ये रासं कर्तुं मनो दधे॥ २४

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! माधवकी यह बात सुनकर गोपियोंसहित श्रीराधिकाने प्रसन्न हो प्यारे श्यामसुन्दरका उसी प्रकार पूजन किया, जैसे रमादेवी रमापतिकी पूजा करती हैं। नरेश्वर! श्रीराधिकाने पुनः श्रीकृष्णसे रासक्रीडाके लिये प्रार्थना की। तब प्रसन्न हुए रासेश्वरने वृन्दावनमें रास करनेका विचार किया॥ २३-२४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे राधाकृष्णमेलनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'श्रीराधा-कृष्णका मिलन' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

रासक्रीडाके प्रसङ्गमें श्रीवृन्दावन, यमुना-पुलिन, वंशीवट, निकुञ्जभवन आदिकी शोभाका वर्णन; गोपसुन्दरियों, श्यामसुन्दर तथा श्रीराधाकी छबिका चिन्तन

श्रीगर्ग उवाच

हेमन्ते मासि पूर्वस्मिन् राकायां राधिकेश्वरः।
वंशीं वशकरीं दध्मौ यथा वृन्दावने पुरा॥ १

ध्वनिर्बभूव तस्याश्च सर्वेषामाहरन् मनः।
निशम्य गोप्यः संखिन्नाः कामखेदेन तत्रसुः॥ २

रुन्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन् मुहुस्तुम्बुरुं
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम्।
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं चटुलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन्
भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः॥ ३

अथोदगाच्चन्द्रमास्तु चर्षणीनां शुचो मृजन्।
यथा प्रियाया राजेन्द्र विदेशादागतः प्रियः॥ ४

तदैव यमुना राजंस्तनुं दिव्यं दधार ह।
वृन्दावनं गिरीन्द्रश्च व्रजभूमिश्च मानद॥ ५

कृष्णा नदी जयति यत्र मणीन्द्रमुक्ता-
माणिक्यशुभ्रहरिताकरतोलिकाभिः।
वैदूर्यनीलकहरिद्धरिवज्रपीत-
सोपानमण्डपयुताभिरतिस्फुरन्ती ॥ ६

स्वच्छन्दसूत्पतितमत्स्यगणैर्वहन्ती
सच्छ्यामलेन वपुषाघगणं हरन्ती।
उत्तुङ्गलोललहरी कमलैर्लसन्ती
कृष्णा नदी जयति कृष्णगृहे लुठन्ती॥ ७

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! हेमन्त-ऋतुके प्रथम मासमें पूर्णिमाकी रातको राधिकावल्लभ श्यामसुन्दरने वृन्दावनमें पहलेकी ही भाँति सबको वशमें कर लेनेवाली वंशी बजायी। वह वंशीध्वनि सबके मनको आकृष्ट करती हुई सब ओर फैल गयी। उसे सुनकर गोपसुन्दरियाँ प्रेमवेदनासे पीड़ित एवं त्रस्त हो गयीं॥ १-२॥

मेघोंकी गतिको रोकती, तुम्बुरुको बार-बार आश्चर्यमें डालती, सनक-सनन्दन आदिके ध्यानमें बाधा पहुँचाती, ब्रह्माजीको विस्मित करती, उत्कण्ठावलियोंसे राजा बलिको भी चपल बनाती, नागराज शेषमें चञ्चलता लाती तथा ब्रह्माण्डकटाहकी भित्तियोंका भेदन करती हुई वह वंशीध्वनि सब ओर फैल गयी॥ ३॥

राजेन्द्र! इतनेमें ही चराचर प्राणियोंके सूर्यकिरण-जनित संतापका मार्जन करते हुए चन्द्रमाका उदय हुआ; जैसे परदेशसे आया हुआ प्रियतम अपनी प्रियाके विरह-शोकको दूर कर देता है। दूसरोंको मान देनेवाले नरेश! उसी समय यमुनाने दिव्य रूप धारण किया। वृन्दावन, गिरिराज और व्रजभूमिका स्वरूप भी दिव्य हो गया॥ ४-५॥

श्यामवर्णा यमुनानदीका उत्कर्ष बहुत बढ़ गया। वहाँ मणियोंमें श्रेष्ठ रत्न, मोती, माणिक्य, शुभ्र-रत्न (हीरा), हरितरत्न (पन्ना) आदिसे निर्मित करतोलिकाओंसे, जो वैदूर्य, नीलम, हरिन्मणि, इन्द्रनील, वज्रमणि और पीतमणियोंसे निर्मित सोपानों एवं रत्नमण्डपोंसे युक्त थीं, यमुनाजीकी अतिशय शोभा हो रही थी। यमुना-नदी वहाँ श्रीकृष्णसदनमें लोटती हुई सब नदियोंसे उत्कृष्ट शोभा पा रही थीं। स्वच्छन्द उछलते हुए मत्स्यगणोंके साथ बहती तथा सुन्दर श्यामल अङ्गसे पापराशिका हरण करती हुई वे अपनी ऊँची-ऊँची चञ्चल लहरों तथा प्रफुल्ल कमलोंसे सुशोभित थीं॥ ६-७॥

गोवर्धनं भज गिरिं शतचन्द्रयुक्तं
मन्दारचन्दनलतावृतकल्पवृक्षम् ।
श्रीरासमण्डलयुतं मणिमण्डपाढ्यं
कोटीरमञ्जुलनिकुञ्जकुटीरकोटिम्॥ ८

वृन्दावनं च यमुनातटनीरतीर-
सम्पृक्तमन्दगमनैरतिगन्धवातैः ।
तत्कम्पितं च सुरभीकृतसर्वदेशं
श्रीखण्डकुंकुममृदागुरुचर्चितं तम्॥ ९

जुष्टं वसन्तनवपल्लवपुष्परङ्गै-
र्मन्दारचन्दनसुचम्पकनीपनिम्बैः ।
आम्रातकाम्रपनसागुरुनागरङ्गैः
श्रीतालपिप्पलवटैर्नवनारिकेलैः ॥ १०

खर्जूरश्रीफललवङ्गविराजमान-
मञ्जीरशालकतमालकदम्बयुक्तम्।
सन्तानकुन्दबदरीकदलीसिताढ्यं
श्रीशाल्मलीबकुलकेतकिसच्छिरीषम्॥ ११

सम्मोदिनीजलजवृन्दमनोहराभं
वृन्दारकं वरवनं तुलसीलताढ्यम्।
श्रीमल्लिकामृतलतामधुमाधवीभिः
संराजितं स्मर नृपेन्द्र व्रजस्य मध्ये॥ १२

वंशीवटं च कलकण्ठविहङ्गमैश्च
कृष्णातटे च पुलिनं किल बालुकाढ्यम्।
श्रीपाटलैर्मधुककिंशुकसत्प्रियालै-
रौदुम्बरैः क्रमुकद्राक्षकपित्थयुक्तम्॥ १३

श्रीकोविदारपिचुमन्दलतार्जुनैश्च
प्लक्षैरशोकसरलैः सुरदारुभिश्च।
जम्बूसुवेत्रनलकुब्जकस्वर्णयूथी-
पुन्नागनागकुटजैः कुरबैर्वृतं च॥ १४

चक्राह्वसारसशुकैः सितराजहंसैः
कारण्डवैश्च जलकुक्कुटकूजितं च॥ १५

उस गोवर्धनगिरिका भजन-सेवन करो, जो शत-शत चन्द्रमाओंके प्रकाशसे युक्त है, मन्दार और चन्दन लताओंसे वेष्टित कल्पवृक्ष जहाँ अद्भुत शोभा पाते हैं, जहाँ रासमण्डल तथा मणिमय मण्डप विद्यमान हैं तथा जिसके शिखरपर करोड़ों मञ्जुल निकुञ्ज कुटीर दीप्तिमान् हैं॥ ८॥

यमुनाजीके तटप्रदेश, नीरराशि तथा तीरके सम्पर्कमें आकर मन्दगतिसे प्रवाहित होनेवाली अत्यन्त सुगन्धित वायुसे कम्पित वृन्दावनका सारा भाग सुवासित है तथा श्रीखण्ड, कुङ्कुमयुक्त मृत्तिका एवं अगुरुसे चर्चित होकर वह वन परम कल्याणमय जान पड़ता है॥ ९॥

वसन्त-ऋतुमें सुलभ नूतन पल्लवों और फूलोंके रंगोंसे सेवित वृन्दावन मन्दार, चन्दन, चम्पा, कदम्ब, निम्ब, अमड़ा, आम, कटहल, अगुरु, नारंगी, श्रीफल, ताड़, पीपल, बरगद और नवल नारियलसे सुशोभित है। खजूर, श्रीफल (बेल) और लवङ्गलताएँ उस वनकी शोभा बढ़ाती थीं। अंजीर, साल, तमाल, कदम्ब, सन्तान (कल्पवृक्ष), कुन्द, बेर, केला और बेलासे वह सम्पन्न था। सेमल, मौलसिरी, केतकी और शिरीष आदि वृक्ष उसके वैभव थे॥ १०-११॥

नृपेन्द्र! सत्पुरुषोंके मनको मोद प्रदान करनेवाली लता-वल्लरी और कमलोंके समूहसे जिसकी आभा मनोहारिणी प्रतीत होती है, वह तुलसी-लतासे सम्पन्न श्रेष्ठ वृन्दावन श्रीमल्लिका, अमृतलता और मधुमयी माधवी-लताओंसे सुशोभित है। व्रजमण्डलके मध्य-भागमें तुम ऐसे वृन्दावनका चिन्तन करो॥ १२॥

यमुनाके तटपर मधुर कण्ठवाले विहङ्गमोंसे युक्त वंशीवट शोभा पाता है। उसका पुलिन बालुकाओंसे सम्पन्न है। श्रीपाटल, महुआ, पलाश, प्रियाल, गूलर, सुपारी, दाख और कपित्थ (कैथ) आदि वृक्ष यमुना-तटकी शोभा बढ़ाते हैं। कोविदार (कचनार), पिचुमन्द (नीम), लता-जाल, अर्जुन, पाकड़, अशोक, सरल, देवदारु, जामुन, सुन्दर बेंत, नरकुल, कुब्जक, स्वर्णयूथी, पुन्नाग, नागकेसर, कुटज और कुरबकसे भी वह आवृत है। चक्रवाक, सारस, तोते, श्वेत राजहंस, कारण्डव और जलकुक्कुट यमुना-तटपर सदा कल-कूजन किया करते हैं॥ १३—१५॥

दात्यूहकोकिलकपोतकनीलकण्ठै-
नृत्यन्मयूरकलरावвृतं स्मर त्वम्॥ १६

श्यामाचकोरकलखञ्जनसारिकाभिः
पारावतैर्भ्रमरतित्तिरतित्तिरीभिः ।
श्रीकाञ्चनीमधुलतामधुयूथिकाभिः
संवेष्टितं हरिणमर्कटमर्कटीभिः॥ १७

श्रीपद्मरागशिखरं च निकुञ्जगेहं
श्रीकौस्तुभेन्द्रमणिराजिविराजमानम्।
कोटीन्दुमण्डलवितानगणैश्च हैमैः
श्रीपट्टसूत्ररचितैर्मणितोरणाढ्यम्॥ १८

मुक्तावृतैः कनकपीतपतत्पताकैः
पारावतैः सितपतत्रिभिरावृतञ्च।
मन्दारकुन्दकरवीरकयूथिकानां
मालाविचित्ररचितं नवचम्पकानाम्॥ १९

नागेशपद्महरिचन्दनपल्लवानां
श्रीमालतीकुरबकाञ्चनयूथिकानाम्।
मालाभिरावृतमनङ्गहरं गृहं तत्
सद्रत्नदर्पणवृतं सितचामरैश्च॥ २०

सिंहासनैश्च नवपल्लवपुष्पयुक्तैः
शय्यासनैः कनकविद्रुमपादवृन्दैः।
श्रीचन्दनागुरुजलैर्मकरन्दसङ्घैः
कस्तूरिकामुदितकुङ्कुमचर्चितं तत्॥ २१

एजद्वसन्ततरुपल्लवमेव वातैः
शीतैर्गजेन्द्रगमनैः सुरभीकृताङ्गम्।
एतादृशं हरिनिकुञ्जगृहं स्मर त्वं
सन्नम्रशाखतरुयुक्तमतीव पुष्पैः॥ २२

दात्यूह (पपीहा), कोयल, कबूतर, नीलकण्ठ और नाचते हुए मोरोंके कलरवसे मुखरित यमुनापुलिनका तुम सदा स्मरण करो॥ १६॥

श्यामा, चकोर, खञ्जरीट, सारिका (मैना), पारावत (परेवा), भ्रमर, तीतर, तीतरी, कनकलता, मधुलता, मधुयुक्त जूही—इन सबसे जो आवेष्टित है, हरिण, मर्कट और मर्कटियाँ जहाँ सदा विचरती रहती हैं और पद्मरागमणिके शिखर जिसकी शोभा बढ़ाते हैं, वह वृन्दावनका निकुञ्जभवन, श्रीकौस्तुमणि और इन्द्रनील मणियोंसे अलंकृत है। वहाँ कोटि-कोटि चन्द्रमण्डलकी शोभासे युक्त सुनहरे चँदोवे लगे हैं, जो रेशमके सूतसे निर्मित हुए हैं। उस निकुञ्ज-भवनका द्वार मणिमय बन्दनवारोंसे विलसित है॥ १७-१८॥

मोतियोंकी झालरोंसे युक्त सुवर्णके समान पीली पताकाएँ वहाँ फहराती रहती हैं। कबूतर और हंस आदि पक्षी उसे घेरे रहते हैं। मन्दार, कुन्द, कनेर, जूही और नूतन चम्पाके फूलोंकी विचित्र मालाओंसे उस निकुञ्ज-भवनकी सुन्दर सजावट की गयी है॥ १९॥

नागकेसर, कमल और हरिचन्दनके पल्लवोंकी मालाओंसे तथा श्रीमालती, कुरबक तथा काञ्चनयूथिकाके फूलोंके हारोंसे आवृत वह निकुञ्ज-भवन कामदेवके मनको भी मोह लेनेवाला है। वहाँ दीवारोंपर सुन्दर रत्नमय दर्पण लगे हैं और श्वेत चामर उस भवनकी शोभा बढ़ाते हैं॥ २०॥

नूतन पल्लवों और पुष्पोंसे अलंकृत सिंहासनों, शय्यासनोंमें सुवर्ण और मूँगेके पाये लगे हैं, जिनसे उस भवनकी अनुपम शोभा होती है। श्रीचन्दन और अगुरुके जल, सुगन्धित पुष्पोंकी मकरन्दराशि तथा कस्तूरीके सौरभसे आमोदित केसरपङ्कसे उस भवनमें सब ओर छिड़काव किया गया है। हिलते हुए वसन्त-वृक्षोंके पल्लवोंसे जिनका अनुमान होता है, ऐसे शीतल तथा गजराजकी-सी गतिवाले मन्द-मन्द समीरणसे उस भवनका सर्वाङ्ग सुगन्धसे भीना हुआ था। वहाँके वृक्षोंकी शाखाएँ अत्यन्त नम्र—झुकी हुई थीं तथा अधिकाधिक पुष्पसमूहोंसे वह अलंकृत था। श्रीहरिके ऐसे निकुञ्ज-भवनका तुम चिन्तन करो॥ २१-२२॥

श्रीवेणुगीतं बहुकामवर्धनं
निशम्य सर्वा व्रजयोषितो नृप।
श्रीकृष्णकान्तेन गृहीतमानसा
विसृज्य कर्माणि समाययुर्वने॥ २३

रुद्धा याः पतिभी राजन् कृष्णेन हृतमानसाः।
स्थूलं शरीरं तास्त्यक्त्वा त्वरं कृष्णान्तिकं ययुः॥ २४

सिंहासने हेमदुकूलसंयुते
मध्ये स्थितं सुन्दरनन्दनन्दनम्।
श्रीसुन्दरीराधिकया समं परं
गले दधानं मधुमालतीस्रजम्॥ २५

श्यामं प्रभातार्ककिरीटिनं हरिं
स्फुरत्प्रभं श्रीमुरलीमनोहरम्।
पीताम्बरं मन्मथराशिमोहनं
व्रजस्त्रियस्तं ददृशुः समागताः॥ २६

दृष्ट्वा प्रियाप्रियतमं मत्स्यकुण्डलिनं हरिम्।
गोप्यो मूर्च्छां गताः सद्यो भूप चालक्षितोद्यमाः॥ २७

सान्त्वयामास ताः कृष्णो मिष्टवाक्यैः सुधासमैः।
तदा गोप्यो वनोद्देशे सर्वाश्चैतन्यतां गताः॥ २८

कृष्णं गद्गदया वाचा स्तुत्वा भीताः स्त्रियो वराः।
त्यक्त्वा विरहजं दुःखं गोविन्दं ददृशुः प्रियम्॥ २९

वृन्दावने भ्राजमाने मालतीवनसङ्कुले।
दिव्यद्रुमलताजाले मधुपध्वनिनादिते॥ ३०

विचचार हरिः साक्षाद्देवो मदनमोहनः।
पद्माभं पद्महस्तेन गृहीत्वा राधिकाकरम्॥ ३१

प्रहसन् भगवान् साक्षादाययौ यमुनातटम्।
कृष्णातीरे निकुञ्जे वै श्रीकृष्णो निषसाद ह॥ ३२

नरेश्वर! श्रीहरिके वेणुवादनसे निकला हुआ गीत प्रेमोन्मादकी अत्यन्त वृद्धि करनेवाला था। उसे सुनकर समस्त व्रजसुन्दरियोंका मन प्रियतम श्रीकृष्णके वशमें हो गया। वे घरका सारा काम-काज छोड़कर व्रजमें चली आयीं। राजन्! जिन्हें पतियोंने रोक लिया, वे भी प्रियतम श्रीकृष्णके द्वारा हृदय हर लिये जानेके कारण स्थूल शरीर छोड़कर तत्काल श्रीकृष्णके पास चली गयीं॥ २३-२४॥

जिसपर सुनहरा दुकूल बिछा हुआ था, उस सिंहासनपर, उसके मध्यभागमें श्यामसुन्दर नन्दनन्दन सुन्दरी श्रीराधिकाके साथ बैठे थे। उनके गलेमें मकरन्दपूरित मालतीकी माला शोभा पा रही थी। उनकी अङ्गकान्ति श्याम थी। वे प्रातःकालके सूर्यके समान दीप्तिमान् किरीटसे सुशोभित थे। उनकी प्रभा चारों ओर फैल रही थी। अधरसे लगी हुई श्रीमुरलीके कारण उन श्रीहरिकी मनोहरता और भी बढ़ गयी थी। वहाँ आयी हुई व्रजसुन्दरियोंने कोटि-कोटि कामदेवके समूहोंको मोहित करनेवाले पीताम्बरधारी श्यामसुन्दरको देखा॥ २५-२६॥

राजन्! मीनाकार कुण्डलधारी प्रिया-प्रियतम श्रीहरिको देखकर गोपियाँ तत्काल मूर्च्छित हो गयीं। उनके अङ्गोंमें किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं दिखायी देती थी। तब श्रीकृष्णने अमृतके समान मधुर वचनोंद्वारा उन सबको सान्त्वना दी—धीरज बँधाया। तब समस्त गोपसुन्दरियाँ उस वनप्रान्तमें चेतनाको प्राप्त हुईं॥ २७-२८॥

गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णकी स्तुति करके डरी हुई-सी उन गोपसुन्दरियोंने विरहजनित दुःखका परित्यागकर प्राणवल्लभ गोविन्दकी ओर बड़े प्यारसे देखा। मालती-वनसे व्याप्त दिव्य वृक्षों एवं दिव्य लताओंके जालसे मण्डित तथा भ्रमरोंकी गुञ्जारोंसे मुखरित शोभाशाली वृन्दावनमें साक्षात् मदनमोहनदेव श्रीहरि गोपाङ्गनाओंके साथ विचरने लगे। अपने हस्तकमलसे श्रीराधिकाके करकमलको पकड़कर हँसते हुए साक्षात् भगवान् नन्दनन्दन यमुनाजीके तटपर आये। यमुनाके किनारे शोभायमान निकुञ्ज-भवनमें श्रीकृष्ण विराजमान हुए॥ २९—३२॥

तस्मिन् गृहे मधुपतेः शृणु गोपिकानां
श्रीकृष्णचन्द्रचरणस्मरणावृतानाम्।
झङ्कारनूपुरझणत्करकङ्कणानां
मञ्जीररत्नविचलत्कटिकिङ्किणीनाम्॥ ३३

राजन्! मधुपतिके उस भवनमें श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें संलग्न हुई गोपाङ्गनाओंके पैरोंमें झनकारते हुए नूपुरोंकी ध्वनिके साथ खनखनाते हुए हाथके कंगनों, पाँवके मञ्जीरों और कटिप्रदेशकी रत्ननिर्मित चञ्चल किंकिणियोंके मधुर रवको तुम मनके कानोंसे सुनो॥ ३३॥

स्मेरद्युतिस्फुटचमत्कृतगण्डदेशैः
श्रीदन्तपङ्क्तिविलसत्तडितालिलेशैः।
कोटीरहारहरिताङ्गदभूषितानां
बालार्कमण्डलविकुण्डलमण्डितानाम्॥ ३४

तासां तु कापि युवती कथिता च मुग्धा
मध्यापि कापि तरुणी रुचिरा प्रगल्भा।
काचित्तरुं विनयती मधुरं हसन्ती
काचित्सखी मदयुता सुवने व्रजन्ती॥ ३५

मन्द-मन्द मुसकानकी कान्तिसे उन गोपसुन्दरियोंके कोमल कपोल-प्रान्त सुस्पष्ट चमकते या चमत्कारपूर्ण शोभा धारण करते थे। शोभामयी दन्तपङ्क्तिसे विद्युद्विलास-सा प्रकट करनेवाली उन सखियोंके वेष बड़े मनोहर थे। कोटीर रत्नके हार और हरितमणिके बाजूबंदसे विभूषित तथा सूर्यमण्डलके समान दीप्तिमान् कुण्डलोंसे मण्डित हुई उन गोपसुन्दरियोंमें कोई-कोई युवती 'मुग्धा' बतायी गयी है। कोई तरुणी 'मध्या' और कोई सुन्दरी 'प्रगल्भा' नायिका थी। कोई तरुणी तरुको भी विनयकी शिक्षा देती थी। कोई सखी उस सुन्दर वनमें अपने मधुर हासकी छटा बिखेरती थी और कोई मदमत्त होकर चलती थी॥ ३४-३५॥

सन्ताड्य तामपि करेण तु काप्यधावत्
सङ्गृह्य कापि भुवने कमलैर्जघान।
काचिच्छ्लथत्कनकहारमुपाजहार
काचित्प्रमुक्तकबरी तु विहारमत्ता॥ ३६

श्रीजाह्नवी च यमुना मधुमाधवी च
शीला रमा शशिमुखी विरजा सुशीला।
चन्द्रानना च ललिता त्वचला विशाखा
मायाल्प एव कथिता भवने त्वसंख्याः॥ ३७

कोई उसे भी हाथसे ठोंककर आगे दौड़ जाती थी और कोई उसको भी पकड़कर उस निकुञ्ज-भवनमें कमलके फूलोंसे पीटती थी। कोई किसीके ढीले या टूटते हुए सुवर्णहारको हँसी-हँसीमें खींच लेती और कोई उस वन-विहारमें इस तरह मतवाली होकर दौड़ती कि उसके बँधे हुए केशपाश खुल जाते थे। उस निकुञ्ज-भवनमें श्रीजाह्नवी (गङ्गा), यमुना, मधु-माधवी, शीला, रमा, शशिमुखी, विरजा, सुशीला, चन्द्रानना, ललिता, अचला, विशाखा और माया आदि असंख्य गोपियाँ थीं। मैंने यहाँ थोड़ी-सी गोपाङ्गनाओंके ही नाम बताये हैं॥ ३६-३७॥

लीलातपत्रमतिमौक्तिकदामजालं
नीत्वा चलन्ति मणिभूमिषु तत्र काश्चित्।
श्रीचामरव्यजनदण्डधरा वयस्याः
काश्चिद् व्रजन्ति धृतपीतपतत्पताकाः॥ ३८

वहाँकी मणिमयी भूमियोंपर कोई लीलाछत्र लेकर और कोई अतिमौक्तिक लता (मौगरा आदि)-के फूलोंकी मालाएँ लेकर चलती थी। कितनी ही सखियाँ चामर, व्यजन, दण्ड और फहराती हुई पीली पताकाएँ लिये चल रही थीं॥ ३८॥

नृत्यन्ति तत्र हरिवेषधरास्तु काश्चि-
द्वीणाकरा मधुरतालमृदङ्गहस्ताः।
वंशीधराश्च वृषभानुसुताः सुवेषाः
केयूरकुण्डलयुता मणिवेत्रहस्ताः॥ ३९

कुछ गोपाङ्गनाएँ वहाँ श्रीहरि (नटवर नन्दकिशोर)-का वेष धारण करके नाचती थीं। कोई हाथमें वीणा लेकर बजातीं, कोई हाथसे ताल देतीं और कोई मृदङ्गवादनकी कला दिखाती थीं। कितनी ही सखियाँ वृषभानुनन्दिनीका-सा वेष धारण किये, केयूर और कुण्डलोंसे अलंकृत हो वंशी लेकर बजातीं और कई मणिमण्डित बेंतकी छड़ी हाथमें लेकर चलती थीं॥ ३९॥

सद्भावभावरसतालयुतस्मिताक्तै-
र्झङ्कारनूपुरयुतैर्विशदैः कटाक्षैः।
सङ्गीतनृत्यविदितैर्भ्रुकुटीविभङ्गै
राधां हरिं च सततं परितोषयन्त्यः॥ ४०

सुन्दर हाव-भाव, रस और तालसे युक्त मन्द मुसकानके रससे सिक्त तथा झंकारते हुए नूपुरोंके शब्दसे युक्त विशद कटाक्षों, भौंहोंके कुटिल विलासों एवं संगीत-नृत्यकलाके ज्ञानोंद्वारा गोपाङ्गनाएँ वहाँ श्रीराधा तथा माधवको सतत संतुष्ट कर रही थीं॥ ४०॥

तस्मिन्निकुञ्जभवने यमुनातटेऽपि
वंशीवटे वनधरानिकटे हरिं तम्।
श्रीराधया च गिरिराजतटं व्रजन्तं
नन्दात्मजं च नटवेषधरं स्मर त्वम्॥ ४१

यमुनाके तटपर उस निकुञ्ज-भवनमें वंशीवटके पासकी वनभूमिके निकट नटवरवेषधारी नन्दनन्दन श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ गिरिराजकी घाटीमें विचर रहे हैं। इस झाँकीमें तुम उनका चिन्तन करो॥ ४१॥

श्रीपद्मरागनखदीप्तिपदारविन्दं
झङ्कारनूपुरधरं स्फुरदङ्गदेशम्।
कुर्वन्तमेव तु पदारुणभूमिदेशं
श्रीमत्परागसुरुचालमितस्ततस्तु ॥ ४२

श्रीपद्मरागमणिके समान अरुण आभावाले चमकीले नखोंसे जिनके चरणारविन्द उद्दीप्त जान पड़ते हैं, जो अपने पैरोंमें झंकारते हुए नूपुर धारण किये हुए हैं, जिनके सम्पूर्ण अङ्गदेशसे दिव्य दीप्ति झर रही है, जो विचरणकालमें अपने लाल-लाल पादतलोंसे भूप्रदेशको अरुण रंगसे रञ्जित कर रहे हैं, शोभाशाली चरणपरागकी सुन्दर कान्ति बिखेरते हुए इधर-उधर टहल रहे हैं॥ ४२॥

लक्ष्मीकराब्जपरिलालितजानुदेशं
रम्भोरुपीतवसनं तु कृशोदराभम्।
रोमावलिभ्रमरनाभिसरस्त्रिरेखं
काञ्चीधरं भृगुपदं मणिकौस्तुभाढ्यम्॥ ४३

जिनका युगल जानुदेश लक्ष्मीजीके करकमलोंद्वारा सब ओरसे लालित होता—दुलारा जाता है, जिनके रम्भा [कदली]-के समान जाँघोंपर पीताम्बर शोभा पाता है, जिनका उदरभाग अत्यन्त कृश है, नाभिसरोवर रोमावलिरूपी भ्रमरोंसे सुशोभित है, जो उदरमें त्रिवेणीमयी तीन रेखा धारण करते हैं, जिन्होंने कमरमें करधनी धारण कर रखी है, जिनका वक्षःस्थल भृगुके चरणचिह्न तथा कौस्तुभमणिसे अलंकृत है॥ ४३॥

श्रीवत्सहाररुचिरं नवमेघनीलं
पीताम्बरं करिकरस्फुटबाहुदण्डम्।

श्रीवत्सचिह्न एवं हारोंसे अत्यन्त रुचिर दिखायी देता है, जिनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति नूतन मेघमालाके समान नील है, जो रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं, जिनके विशाल भुजदण्ड हाथीकी सूँड़के समान प्रतीत होते हैं॥ ४३१/२॥

रत्नाङ्गदं च मणिकङ्कणपद्महस्तं
श्रीराजहंसवरकन्धरशोभमानम् ॥ ४४

श्रीकम्बुकण्ठललितं विलसत्कपोलं
मध्यं तु निम्नचिबुकं किल कुन्ददन्तम्।
बिम्बाधरं स्मितलसच्छुकचञ्चुनासं
पीयूषकल्पवचनं प्रचलत्कटाक्षम्॥ ४५

जो रत्नमय बाजूबंद और मणिमय कंगन धारण करते हैं, जिनके एक हाथमें दिव्य कमल है तथा दूसरे हाथमें दिव्य शङ्ख कमलपर विराजित राजहंसके समान शोभा पाता है, जो शङ्खाकार ग्रीवासे सुन्दर दिखायी देते हैं, जिनके कपोलोंका मध्यभाग अत्यन्त शोभाशाली है, चिबुक (ठोढ़ी)-का भाग गहरा है और दाँत कुन्दके समान चमकीले हैं, पके हुए बिम्बफलको अपनी अरुणिमासे लज्जित करनेवाले अधर मन्द मुसकानकी छटासे सुशोभित हैं, नासिका तोतेकी चोंचके समान नुकीली है और जिनके वचनोंसे मानो अमृत झरता रहता है, कटाक्ष अत्यन्त चञ्चल हैं॥ ४४-४५॥

श्रीपुण्डरीकदलनेत्रमनङ्गलीलं
भ्रूमण्डलस्मितगुणावृतकामचापम्।
विद्युच्छटोच्छलितरत्नकिरीटकोटिं
मार्तण्डमण्डलविकुण्डलमण्डिताभम्॥ ४६

नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान मनोहर हैं, जिनकी प्रत्येक लीला उनके प्रति प्रेमकी वृद्धि करनेवाली है और भ्रूमण्डल मानो मन्द-मुसकानरूपी प्रत्यञ्चासे युक्त कामदेवके धनुष हैं, जिनके मस्तकपर धारित रत्नमय किरीट विद्युत्की छटाको विलज्जित कर रहा है तथा जो मार्तण्डमण्डलके समान कान्तिमान् कुण्डलोंसे मण्डित हैं॥ ४६॥

वंशीधरं त्वहिविलोलगुडालकाढ्यं
राधापतिं सजलपद्ममुखं चलन्तम्।
कन्दर्पकोटिघनमानहरं कृशाङ्गं
वंशीवटे नटवरं भज सर्वथा त्वम्॥ ४७

जिनके अधरपर वंशी विराजमान है, काली-काली घुँघराली अलकें चञ्चल भुजङ्गके समान जान पड़ती हैं, जिनका मुख सजल पद्मपत्रके समान स्वेद बिन्दुओंसे विलसित है, जो करोड़ों कामदेवोंके घनीभूत सौन्दर्याभिमानको हर लेनेवाले हैं, जिनका श्रीविग्रह पतला है तथा जो वृन्दावनमें वंशीवटके समीप विचर रहे हैं, उन राधावल्लभ नटवर नन्दकिशोरका तुम सब प्रकारसे भजन-सेवन करो॥ ४७॥

आरक्तरक्तनखचन्द्रपदाब्जशोभां
मञ्जीरनूपुररणत्कटिकिङ्किणीकाम्।
श्रीघण्टिकाकनककङ्कणशब्दयुक्तां
राधां दधामि तरुपुञ्जनिकुञ्जमध्ये॥ ४८

जिनके लाल-लाल नखचन्द्रोंसे युक्त चरणारविन्दकी शोभा कुछ-कुछ लाल दिखायी देती है, मञ्जीर और नूपुरोंकी झङ्कारके साथ जिनके कटिप्रदेशकी किंकिणी खनकती रहती है, घुँघुरू और सोनेके कंगनोंके मधुर शब्दसे शोभित होनेवाली तथा तरुपुञ्जोंके निकुञ्जमें विराजमान उन श्रीराधारानीका मैं ध्यान करता हूँ॥ ४८॥

नीलाम्बरैः कनकरश्मितटस्फुरद्भिः
श्रीभानुजातटमरुद्गतिचञ्चलाङ्गैः।

श्रीराधाके शरीरपर नीले रंगके वस्त्र शोभा पाते हैं, जो सुनहरे किनारोंके कारण सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। यमुनातटपर प्रवाहित होनेवाली वायुकी गतिसे वे वस्त्र चञ्चल हो गये हैं—उड़ रहे हैं।

सूक्ष्मस्वरूपललितैरतिगौरवर्णां
रासेश्वरीं भज मनोहरमन्दहासाम्॥ ४९

और अत्यन्त सूक्ष्म (महीन) होनेके कारण बहुत ही ललित (सुन्दर) दीख पड़ते हैं। ऐसे वस्त्रोंसे सुशोभित, अतिशय गौरवर्णा एवं मनोहर मन्द हासवाली रासेश्वरी श्रीराधाका भजन करो॥ ४९॥

बालार्कमण्डलमहाङ्गदरत्नहारां
ताटङ्कतोरणमणीन्द्रमनोहराभाम्।
श्रीकण्ठमालसुमनोनवपञ्चदाम्नीं
रत्नाङ्गुलीयललितां व्रजराजपत्नीम्॥ ५०

जिनके बहुमूल्य मणिमय अङ्गद तथा रत्नमय हार प्रात:कालके सूर्यमण्डलकी भाँति दीप्तिमान् हैं, जो कानोंके ताटङ्क (बाली) और कण्ठमें सुशोभित मणिराज कौस्तुभके कारण अत्यन्त मनोहर छबि धारण करती हैं, जिनके गलेमें रत्नमयी कण्ठमाला तथा फूलोंके चौदह लड़ोंके हार शोभा पाते हैं तथा जो रत्ननिर्मित मुद्रिकासे ललित (अत्यन्त आकर्षक) प्रतीत होती हैं, उन व्रजराज नन्दनन्दनकी पत्नी श्रीराधाका स्मरण करो॥ ५०॥

चूडामणिद्युतिलसत्स्फुरदर्धचन्द्रं
ग्रैवेयकालपनपत्रविचित्ररूपाम्।
श्रीपट्टसूत्रमणिपट्टचलद्द्विदाम्नीं
स्फूर्जत्सहस्त्रदलपद्मधरां भजस्व॥ ५१

जिनके मस्तकपर चूड़ामणिकी कान्तिसे लसित अर्धचन्द्राकार भूषण जगमगा रहा है, कण्ठगत आभूषणों और मुखमण्डलमें की गयी पत्ररचनासे जिनका रूप-सौन्दर्य विचित्र (अद्भुत) जान पड़ता है, जो श्रीपट्टसूत्र और मणिमय पट्टसूत्रोंद्वारा निर्मित दो लड़ोंकी चञ्चल माला धारण करती हैं तथा जिन्होंने अपने एक हाथमें प्रकाशमान सहस्त्रदल कमलको धारण कर रखा है, उन श्रीराधाका भजन करो॥ ५१॥

श्रीबाहुकङ्कणलसत्कुचरत्नदीप्तिं
श्रीनासिकाभरणभूषितगण्डदेशाम्।
सद्यौवनालसगतिं कलसर्पवेणीं
सन्ध्येन्दुकोटिवदनां स्फुटचम्पकाभाम्॥ ५२

श्रीयुक्त भुजाओंके मणिमय कंगनोंसे कुचमण्डलमें विलसित रत्नमय हारकी दीप्ति द्विगुणित हो उठती है, सुन्दर नासिकाके नकबेसर आदि आभूषण समूचे कपोलमण्डलको उद्भासित करते हैं। उत्तम यौवनावस्थाके अनुरूप उनकी मन्द-मन्द गति है। सिरपर बँधी हुई सुन्दर वेणी नागिनके समान शोभा पाती है। खिली हुई चम्पाके फूलोंकी-सी अङ्गोंकी पीत-गौर आभा है तथा मुखकी शोभा संध्याकालमें उदित करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिको तिरस्कृत करती है, ऐसी श्रीराधाका भजन करो॥ ५२॥

सद्भावभावसहितां नवपद्मनेत्रां
स्फूर्जत्स्मितद्युतिकलां प्रचलत्कटाक्षाम्।
कृष्णप्रियां ललितकुन्तलकुन्तलाभां
मन्दारहारमधुरभ्रमरीरवाढ्याम्॥ ५३

जो सुन्दर हावभावसे सुशोभित, नव विकसित नीलकमलके समान नेत्रवाली, मन्द मुसकानकी कान्तिमती कलाको प्रकाशित करनेवाली तथा चञ्चल कटाक्षोंके कारण कमनीय हैं, जिनकी कुन्तलराशिकी श्याम आभा बड़ी मनोहर है तथा जो पारिजातके हारोंके मधुर मकरन्दपर लुभायी हुई भ्रमरीके गुञ्जारवसे सुशोभित हैं, उन श्रीकृष्णवल्लभा राधाका चिन्तन करो॥ ५३॥

श्रीखण्डकुङ्कुममृदागुरुवारिसिक्तां
श्रीबिन्दुकीरुचिरपत्रविचित्रचित्राम्।
सन्तानपत्ररुचिराममलाञ्जनाभां
रासेश्वरीं गजगतिं भज पद्मिनीं ताम्॥ ५४

एतादृशीं रतिवरां तु समेत्य कृष्णो
गच्छन्निकुञ्जवनजालविलोकनाय ।
धावन्ति तत्र मणिछत्रधराश्च गोप्यो
नीत्वा तथा चमरचारुपतत्पताकाः॥ ५५

षड्रागमेव वरधैवतमध्यमाद्यै-
र्गायन्तमादिपुरुषं भज नन्दपुत्रम्।
षट्त्रिंशतस्तदनुवर्तितरागिणीनां
वंशीरवेण ललितेन वरं व्रजन्तम्॥ ५६

शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यरौद्र-
बीभत्सशान्तकभयानकनित्ययुक्तम्।
भक्तप्रियं व्रजवधूमुखपद्मभृङ्गं
योगीन्द्रहृत्कमलविस्फुरदङ्घ्रियुग्मम्॥ ५७

क्षेत्रज्ञमादिपुरुषं स्वधियज्ञरूपं
सर्वेश्वरं सकलकारणकारणेशम्।
कृष्णं हरिं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसं
सर्वं निरस्तकपटं निजतेजसेह॥ ५८

यं वै स्तुवन्ति शिवधर्मसुरेशशेष-
लोकेशसिद्धिदगणेशसुरादयोऽपि ।
राधारमाप्रकृतिभूविरजास्वराद्या
वेदा भजन्ति सततं तमहं भजामि॥ ५९

श्रीखण्डचन्दन, केसरपङ्क तथा अगुरुमिश्रित जलसे जिनका अभिषेक हुआ है, भालदेशमें जो कुङ्कुमकी वेणी धारण करती हैं तथा जिनके मुख-मण्डलमें रुचिर पत्ररचनाके रूपमें विचित्र चित्र चित्रित किया गया है, कल्पवृक्षके पत्रोंके समान जिनकी रुचिर गौर कान्ति है तथा जो नेत्रोंमें पूर्णरूपसे अञ्जनकी शोभा धारण करती हैं, उन गजगामिनी, पद्मिनी नायिका रासेश्वरी श्रीराधाका भजन करो॥ ५४॥

ऐसी रतिसे भी अधिक सुन्दर श्रीराधाको साथ लेकर श्रीकृष्ण निकुञ्जवनकी शोभा देखनेके लिये जब जा रहे थे, तब वहाँ गोपाङ्गनाएँ मणिमय छत्र धारण किये, मनोहर चँवर लिये तथा फहराती हुई पताकाएँ ग्रहण किये उनके साथ-साथ दौड़ने लगीं॥ ५५॥

आदिपुरुष नन्दनन्दन उत्तम धैवत और मध्यम आदि स्वरोंसे छः राग तथा उनका अनुगमन करनेवाली छत्तीसों रागिनियोंका ललित वंशीरवके द्वारा गान करते हुए चल रहे थे, ऐसे श्रीकृष्णका ध्यान करो। जो शृङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, रौद्र, बीभत्स और भयानक रसोंसे नित्य युक्त हैं, व्रजवधुओंके मुखारविन्दके भ्रमर हैं और जिनके युगल चरण योगीश्वरोंके हृदयकमलमें सदा प्रकाशित होते हैं, उन भक्तप्रिय भगवान्‌का भजन करो॥ ५६-५७॥

जो समस्त क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञरूपसे निवास करते हैं, आदिपुरुष हैं, अधियज्ञस्वरूप हैं, समस्त कारणोंके भी कारणेश्वर हैं, प्रकृति और पुरुषमेंसे पुरुषरूप हैं तथा जिन्होंने अपने तेजसे यहाँ समस्त छल-कपट—काम-कैतवको निरस्त कर दिया है, उन सर्वेश्वर श्रीकृष्ण हरिका भजन करो। शिव, धर्म, इन्द्र, शेष, ब्रह्मा, सिद्धिदाता गणेश तथा अन्य देवता आदि भी जिनकी ही स्तुति करते हैं; श्रीराधा, लक्ष्मी, दुर्गा, भूदेवी, विरजा, सरस्वती आदि तथा सम्पूर्ण वेद सदा जिनका भजन करते हैं, उन श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ॥ ५८-५९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायामश्वमेधखण्डे रासक्रीडायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'रासक्रीडा-विषयक' बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका श्रीराधा और गोपियोंके साथ विहार तथा मानवती गोपियोंके अभिमानपूर्ण वचन सुनकर श्रीराधाके साथ उनका अन्तर्धान होना

श्रीगर्ग उवाच

वृन्दावने वृक्षलतालिसङ्कुले
मन्दानिले वीजति शीतले नृप।
रन्ध्राणि वेणोः किल पूरयन् हरि-
र्मुहुर्हरत्येव दिवौकसां मनः॥ १

वेणुगीतं ततः श्रुत्वा श्रीराधा कीर्तिनन्दिनी।
भुजाभ्यां नन्दसूनुं वै जग्राहानङ्गविह्वला॥ २

गोकुलस्य चकोरीं तां कृष्णो गोकुलचन्द्रमाः।
दृष्ट्वा कुसुमपर्यङ्के तया रेमे हरन् मनः॥ ३

श्रीकृष्णस्य विहारेण ब्रह्मानन्देन स्वामिनी।
मुदं लेभे महात्यन्तं तथा स्वामी वशीकृतः॥ ४

रमणीयं रतिकरं रासे रामा रमेश्वरम्।
जगृहुः सर्वतो राजञ्छतयूथाश्च योषितः॥ ५

ताभिः सार्धं हरी रम्यो रेमे वै रासमण्डले।
तावद्रूपधरो राजन् यावत्यो व्रजयोषितः॥ ६

विरहिण्यश्च ताः सर्वा विरहेण विहारिणः।
ब्रह्मानन्देन सन्मर्त्या आनन्दं लेभिरे यथा॥ ७

श्रीकराभ्यां श्रीकराभ्यां श्रीशः श्रीश्यामसुन्दरः।
दधार हृदये सर्वास्ताभिर्भक्त्या वशीकृतः॥ ८

स्वेदयुक्तान्याननानि तासां प्रीत्या व्रजेश्वरः।
प्रामृजत्पीतवस्त्रेण किं वदामि तपःफलम्॥ ९

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! वृक्षों, लताओं और भ्रमरोंसे व्याप्त तथा शीतल-मन्द पवनसे वीजित वृन्दावनमें मुरलीके छिद्रोंको मुखोद्गत समीरसे भरते—वेणु बजाते हुए नन्दनन्दन श्रीहरि बारंबार देवताओंका मन मोहने लगे। तदनन्तर वेणुगीत सुनकर प्रेमविह्वला कीर्तिनन्दिनी श्रीराधाने प्रियतम नन्दनन्दनको दोनों बाँहोंमें भर लिया॥ १-२॥

गोकुलचन्द्र श्रीकृष्णने गोकुलकी चकोरी राधाको प्रेमपूर्वक निहारते हुए फूलोंकी सेजपर उनके मनको लुभाते हुए उनके साथ आनन्दमयी दिव्य क्रीडा की। श्रीकृष्णके साथ विहारका सुख पाकर स्वामिनी श्रीराधा ब्रह्मानन्दमें निमग्न हो गयीं। उन्होंने स्वामीको वशमें कर लिया और वे परमानन्दका अनुभव करने लगीं॥ ३-४॥

राजन्! प्रेमानन्द प्रदान करनेवाले रमणीय रमावल्लभ श्रीहरिको गोपरामाओंने रासमण्डलमें सब ओरसे पकड़ लिया। उनमें सौ यूथोंकी युवतियाँ विद्यमान थीं। नरेश्वर! रमणीय नन्दनन्दन श्रीहरिने रासमण्डलमें जितनी व्रजसुन्दरियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके उनके साथ विहार किया। जैसे संत पुरुष ब्रह्मका साक्षात्कार करके परमानन्दमें निमग्न हो जाते हैं, उसी प्रकार वे वृन्दावनविहारिणी समस्त गोप-सुन्दरियाँ बाँकेविहारीके साथ विहारका सुख पाकर ब्रह्मानन्दमें डूब गयीं॥ ५—७॥

श्रीवल्लभ श्यामसुन्दरने अपने शोभाशाली युगलकरकमलोंद्वारा उन सम्पूर्ण व्रज-वनिताओंको अपने हृदयसे लगाया; क्योंकि उन्होंने अपनी भक्तिसे भगवान्‌को वशमें कर लिया था। उन गोपसुन्दरियोंके मुखोंपर पसीनेकी बूँदें छा रही थीं। व्रजवल्लभ श्रीकृष्णने बड़े प्यारसे अपने पीताम्बरद्वारा उन पसीनोंको पोंछा। उन गोपाङ्गनाओंकी तपस्याके फलका मैं क्या वर्णन कर सकता हूँ?॥ ८-९॥

विना सांख्येन योगेन तपसा श्रवणेन च।
विना तीर्थेन दानेन प्राप्ताः कामेन ता हरिम्॥ १०

ततो गोपीजनाः सर्वा मानवत्यः परस्परम्।
कुवाक्यं कथयामासुः कृष्णं तृप्ता विहारतः॥ ११

अस्मांस्त्यक्त्वा पुरा कृष्णो गतः श्रीमथुरां पुरीम्।
विलोकितुं रूपिणीश्च सुन्दरीः स्त्रीश्च सुन्दरः॥ १२

न दृष्टास्तेन सुन्दर्यो जगाम द्वारकां पुनः।
न दृष्टास्तेन तास्तत्र विवाहं कृतवान् पुनः॥ १३

रुक्मिणीं भीष्मकसुतां न मत्वा तां तु रूपिणीम्।
पुनर्विवाहान् कृतवान् सहस्राणि च षोडश॥ १४

न मत्वा रूपिणीस्ताश्च शोकं कुर्वन् पुनः पुनः।
व्रजमागतवान् सख्यः श्रीकृष्णोऽस्मान् विलोकितुम्॥ १५

दृष्ट्वा रूपाणि चास्माकं सर्वद्रष्टा रमेश्वरः।
प्रसन्नोऽभूत्तथा सख्यो यथा रासे हरिः पुरा॥ १६

तस्माद्वयं च सर्वासां सुन्दरीणां वराः स्मृताः।
सुनेत्राश्चन्द्रवदनाः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः॥ १७

अस्मत्तुल्याश्च रूपिण्यो नैव देवाङ्गनाश्च खे।
याभिः शीघ्रं कटाक्षैश्च कृष्णः कामी वशीकृतः॥ १८

अहो वै येन हंसेन मुक्ताः पूर्वं प्रभक्षिताः।
स एवान्यत्कथं वस्तु भक्षयिष्यति दुःखतः॥ १९

न सन्ति मुक्ताः सर्वत्र सन्ति मानसरोवरे।
तथा वरस्त्रियो भूमौ न सन्ति सन्ति चात्र हि॥ २०

उन्होंने सांख्य, योग, तप, उपदेश-श्रवण, तीर्थसेवन तथा दान आदिके बिना ही केवल प्रेममूलक कामनासे श्रीहरिको प्राप्त कर लिया॥ १०॥

तदनन्तर समस्त गोपियाँ अभिमानमें आकर परस्पर ओछी बातें करने लगीं; क्योंकि वे श्रीकृष्णके विहार-सुखसे पूर्णतः परितृप्त थीं। वे कहने लगीं—'सखियो! पहले श्रीकृष्ण हमलोगोंको छोड़कर मथुरापुरी चले गये थे, जानती हो क्यों? क्योंकि वे स्वयं परम सुन्दर हैं; अतः नगरमें परमसुन्दरी रूपवती स्त्रियोंको देखने गये थे॥ ११-१२॥

परंतु वहाँ जानेपर भी उन्हें मनके अनुरूप सुन्दरियाँ नहीं दिखायी दीं। तब वे फिर वहाँसे द्वारका चले गये। जब वहाँ भी सुन्दरियाँ नहीं दृष्टिगोचर हुईं, तब उन्होंने एक सुन्दरी राजकुमारीके साथ विवाह किया। वह थी—भीष्मक-राजनन्दिनी रुक्मिणी! किंतु उसे भी रूपवती न मानकर इन्होंने पुनः बहुत-से विवाह किये। सोलह हजार स्त्रियाँ घरमें ला बिठायीं॥ १३-१४॥

किंतु सखियो! उन सबको भी मनके अनुकूल रूपवती न पाकर बारंबार शोक करते हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण पुनः हमें देखनेके लिये व्रजमें आये हैं। सर्वद्रष्टा रमेश्वर हरि हमारे रूपको देखकर उसी तरह प्रसन्न हुए हैं, जैसे पहले रासमें हुआ करते थे॥ १५-१६॥

इसलिये हमलोग त्रिभुवनकी समस्त सुन्दरियोंमें श्रेष्ठ, सुलोचना, चन्द्रमुखी तथा नित्य सुस्थिरयौवना मानी गयी हैं। हमारे समान रूपवती स्वर्गलोककी देवाङ्गनाएँ भी नहीं हैं; क्योंकि हमने अपने कटाक्षोंद्वारा श्रीकृष्णको शीघ्र ही वशमें कर लिया और कामुक बना दिया॥ १७-१८॥

अहो! जिस हंसने पहले मोती चुग लिये हैं, वही दुःखपूर्वक दूसरी वस्तु कैसे खायेगा? हर जगह मोती नहीं सुलभ होते। वे तो केवल मानसरोवरमें ही मिलते हैं; उसी प्रकार भूतलपर सर्वत्र सुन्दरी स्त्रियाँ नहीं होतीं। यदि कहीं हैं तो इस व्रजमें ही हैं॥ १९-२०॥

श्रीगर्ग उवाच

इति मानवतीनां च स्वात्मारामो जगत्पतिः।
वचः शृण्वन् राधया च तत्रैवान्तरधीयत॥ २१

निर्धनोऽपि धनं लब्ध्वा मानं प्रकुरुते नृप।
यस्य नारायणः प्राप्तो तस्य किं कथयाम्यहम्॥ २२

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! जगदीश्वर श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। वे उन मानवती गोपसुन्दरियोंका ऐसा कथन सुनकर श्रीराधाके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये। नरेश्वर! निर्धन मनुष्य भी धन पाकर अभिमानसे फूल उठता है; फिर जिसको साक्षात् नारायण प्राप्त हो गये, उसके लिये क्या कहना है!॥ २१-२२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे रासक्रीडायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'रासक्रीडाविषयक' तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

गोपियोंका श्रीकृष्णको खोजते हुए वंशीवटके निकट आना और श्रीकृष्णका मानवती राधाको त्यागकर अन्तर्धान होना

वज्रनाभिरुवाच

अद्भुतं कृष्णचरितं मया त्वन्मुखतः श्रुतम्।
किं चक्रुर्गोपिकास्तासां स कथं दर्शनं ददौ॥ १

तत्सर्वं मुनिशार्दूल मह्यं श्रद्धालवे वद।
धन्यास्ते ये हि शृण्वन्ति कर्णे कृष्णकथां सदा॥ २

मुखेन कृष्णचन्द्रस्य नामानि प्रजपन्ति हि।
हस्तैः श्रीकृष्णसेवां वै ये प्रकुर्वन्ति नित्यशः॥ ३

नित्यं कुर्वन्ति कृष्णस्य ध्यानं दर्शनमेव च।
पादोदकं प्रसादं च ये प्रभुञ्जन्ति नित्यशः॥ ४

इतीदृशेन भावेन श्रमेण जगदीश्वरम्।
ये भजन्ति मुनिश्रेष्ठ ते प्रयान्ति हरेः पदम्॥ ५

संसारे ये प्रभुञ्जन्ति भोगान्नानाविधान् मुने।
श्रवणादीन्न कुर्वन्ति देहसौख्येन दुर्मदाः॥ ६

ते चान्ते यमदूतैश्च गृहीताश्च भयानकैः।
पतिताः कालसूत्रे वै यावद्रविनिशाकरौ॥ ७

सूत उवाच

इत्युक्तवन्तं राजानं प्रत्युवाच मुनीश्वरः।
गद्गदस्वरया वाण्या प्रशंस्य चरितं हरेः॥ ८

वज्रनाभि बोले—ब्रह्मन्! मैंने आपके मुखसे श्रीकृष्णका अद्भुत चरित्र सुना। भगवान्‌के अदृश्य हो जानेपर गोपियोंने क्या किया? उन्होंने गोपाङ्गनाओं-को कैसे दर्शन दिया? मुनिश्रेष्ठ! मुझ श्रद्धालु भक्तको वह सारा प्रसङ्ग सुनाइये। संसारमें वे लोग धन्य हैं, जो सदा अपने कानोंसे श्रीकृष्णकी कथा सुनते हैं॥ १-२॥

मुखसे श्रीकृष्णचन्द्रके नाम जपते हैं, हाथोंसे प्रतिदिन श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं, नित्यप्रति उनका ध्यान और दर्शन करते हैं तथा प्रतिदिन उन भगवान्‌का चरणोदक पीते और प्रसाद खाते हैं॥ ३-४॥

मुनिप्रवर! इस भावसे श्रम करके जो लोग जगदीश्वर श्रीकृष्णका भजन करते हैं, वे उनके परमधाममें जाते हैं। मुने! जो शारीरिक सौख्यसे उन्मत्त होकर संसारमें नाना प्रकारके भोग भोगते हैं और श्रवण-मनन आदि साधन नहीं करते, वे शरीरका अन्त होनेपर भयंकर यमदूतोंद्वारा पकड़े जाते हैं और जबतक सूर्य तथा चन्द्रमाकी स्थिति है, तबतकके लिये कालसूत्र नरकमें डाल दिये जाते हैं॥ ५—७॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रश्न करनेवाले राजा वज्रनाभिकी प्रशंसा करके मुनीश्वर गर्गजी गद्गदवाणीसे उन्हें श्रीहरिका चरित्र सुनाने लगे॥ ८॥

श्रीगर्ग उवाच

कृष्णे चान्तर्हिते राजंस्त्वरं सर्वाश्च गोपिकाः।
आचक्षाणाश्च तं तप्ता हरिण्यो हरिणं यथा॥ ९

अन्तर्हितं हरिं ज्ञात्वा गोप्यः सर्वाश्च पूर्ववत्।
यूथीभूता विचिक्युर्वै सर्वतस्तं वने वने॥ १०

पप्रच्छुर्भूरुहान् सर्वान् मिलित्वा तु परस्परम्।
हत्वा ह्यस्मान् कटाक्षेण क्व गतो नन्दनन्दनः॥ ११

तदस्माकं च वदत यूयं सर्वे वनेश्वराः।
मार्तण्डकन्ये त्वजिरे गोपालो गाश्च चारयन्॥ १२

नित्यं चकार लीलां तु स गतः कुत्र नो वद।
शतशृङ्ग गिरीन्द्रस्त्वं श्रीनाथेन धृतः पुरा॥ १३

वामहस्ते रक्षणार्थं वासवाद्व्रजवासिनाम्।
न जहाति हरिस्त्वां तु स्वपुत्रं हृदयोद्भवम्॥ १४

स गतो वद कुत्रास्ते विहाय विपिने च नः।
हे मयूराश्च हरिणा हे गावो हे मृगाः खगाः॥ १५

किरीटी ह्यलकी कृष्णो युष्माभिः किं विलोकितः।
वदत सोऽपि कुत्रास्ते वने कस्मिन् मनोहरः॥ १६

श्रीगर्ग उवाच

एतैस्तु वाक्यैः सम्पृष्टाः कठिनास्तीर्थवासिनः।
उत्तरं नैव दास्यन्ति सर्वे ते मोहिताः किल॥ १७

एवं सर्वा हि पृच्छन्त्यः कृष्णचन्द्रं वने वने।
वदन्त्यः कृष्ण कृष्णेति बभूवुस्तन्मयास्ततः॥ १८

चक्रुः कृष्णचरित्राणि तत्र कृष्णमयाः स्त्रियः।
यमुनाबालुकायां च पदानि ददृशुर्हरेः॥ १९

श्रीगर्गजी बोले—राजन्! श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर समस्त गोपाङ्गनाएँ उन्हें न देखकर उसी तरह संतप्त हो उठीं, जैसे हरिणियाँ यूथपति हरिणको न पाकर दुःखमग्न हो जाती हैं॥ ९॥

'भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये'—यह जानकर समस्त गोपसुन्दरियाँ पूर्ववत् यूथ बनाकर चारों ओर वन-वनमें उनकी खोज करने लगीं। परस्पर मिलकर वे समस्त वृक्षोंसे पूछने लगीं—'वृक्षगण! नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हमको अपने कटाक्ष-बाणसे घायल करके कहाँ चले गये?॥ १०-११॥

यह बात हमें बता दो; क्योंकि तुम सब लोग इस वनके स्वामी हो। सूर्यनन्दिनि यमुने! तुम्हारे पुलिनके प्राङ्गणमें प्रतिदिन गौएँ चराते हुए जो तरह-तरहकी लीलाएँ किया करते थे, वे गोपाल श्रीकृष्ण कहाँ चले गये? यह हमें बताओ। सैकड़ों शिखरोंसे सुशोभित होनेके कारण 'शतशृङ्ग' नामसे विख्यात गोवर्द्धन! तुम गिरिराज हो। तुम्हें पूर्वकालमें इन्द्रके कोपसे व्रजवासियोंकी रक्षा करनेके लिये श्रीनाथजीने अपने बायें हाथपर धारण किया था। तुम श्रीहरिके औरस पुत्र हो; इसलिये वे कभी तुमको छोड़ते नहीं हैं। अतः तुम्हीं बताओ, वे नन्दनन्दन हमें वनमें छोड़कर कहाँ गये और इस समय कहाँ हैं? हे मयूर! हरिण! गौओ! मृगो! तथा विहङ्गमो! क्या तुमने काली-काली घुँघराली अलकोंसे सुशोभित किरीटधारी श्रीकृष्णको देखा है? बताओ! वे हमारे मनमोहन इस समय कहाँ, किस वनमें हैं?'॥ १२—१६॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! इन वचनोंद्वारा पूछे जानेपर भी वे कठोर तीर्थवासी प्राणी कोई उत्तर नहीं दे रहे थे; क्योंकि वे सभी मोहके वशीभूत थे॥ १७॥

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका पता पूछती हुई समस्त गोपसुन्दरियाँ 'कृष्ण! कृष्ण!' पुकारते कृष्णमयी हो गयीं। वे कृष्णस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ वहाँ श्रीकृष्णके लीला-चरित्रोंका अनुकरण करने लगीं। फिर वे यमुनाकी रेतीमें गयीं और वहाँ उन्हें श्रीहरिके पदचिह्न दिखायी दिये॥ १८-१९॥

वज्रध्वजांकुशाद्यैश्च चिह्नितानि महात्मनः।
तत्पदान्यनुसारेण पश्यन्त्यः प्रययुस्त्वरम्॥ २०

कृष्णाङ्घ्रिरेणवो नीत्वा मूर्ध्नि धृत्वा व्रजस्त्रियः।
पदान्यन्यानि ददृशुश्चान्यचिह्नयुतानि हि॥ २१

निरीक्ष्याहुः प्रियासार्धं गतः प्रियतमो ह्यसौ।
एवं वदन्त्यः पश्यन्त्यो गोप्यस्तालवनं गताः॥ २२

व्रजन्नग्रे व्रजेन्द्रस्तु व्रजेश्वर्या व्रजे नृप।
कोलाहलं च गोपीनां श्रुत्वा प्रत्याह स्वामिनीम्॥ २३

शीघ्रं गच्छ प्रिये त्वं तु कोटिचन्द्रसमप्रभे।
आगता व्रजनार्यो हि नेतुं त्वां मां च सर्वतः॥ २४

ततः प्रिया हरेः पूर्वं शृङ्गारं कुसुमैर्नृप।
चकार सुन्दरं दिव्यं वृन्दारण्ये च पूर्ववत्॥ २५

नन्दसूनुः प्रियायाश्च दिव्यं शृङ्गारमेव च।
चकार बहुभिः पुष्पैर्भाण्डीरे च यथा पुरा॥ २६

केशप्रसाधनाद्यैश्च स्त्रक्ताम्बूलानुलेपनैः।
सुन्दरी सुन्दरेणापि बभूवात्यन्तसुन्दरी॥ २७

ततः कृष्णास्तु मुदितः पुष्पवृक्षतले नृप।
शय्यां पुष्पमयीं कृत्वा तया रेमे रमेश्वरः॥ २८

वृन्दावने गोवर्धने कृष्णायाः पुलिने तथा।
नन्दीश्वरे बृहत्सानौ तथा रोहितपर्वते॥ २९

वज्र, ध्वज और अङ्कुश आदि चिह्नोंसे उपलक्षित महात्मा श्रीकृष्णके चरण देखती और उनका अनुसरण करती हुई व्रजाङ्गनाएँ तीव्र गतिसे आगे बढ़ीं। वे श्रीकृष्णकी चरणरेणु लेकर अपने मस्तकपर रखती जाती थीं। इतनेमें ही अन्य चिह्नोंसे उपलक्षित दूसरे पदचिह्न भी उनके दृष्टिपथमें आये। उन चरण-चिह्नोंको देखकर वे आपसमें कहने लगीं—'मालूम होता है, प्रियतम श्यामसुन्दर प्रियाके साथ गये हैं' इस तरह बात करती और चरणचिह्न देखती हुई वे गोपाङ्गनाएँ तालवनमें जा पहुँचीं॥ २०—२२॥

नरेश्वर! व्रजेश्वरी श्रीराधाके साथ व्रजमें आगे-आगे जाते हुए व्रजेन्द्र श्रीकृष्ण पीछे आती हुई गोपियोंका कोलाहल सुनकर स्वामिनी श्रीलाड़िलीजीसे बोले—करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्ति धारण करनेवाली प्रियतमे! जल्दी-जल्दी चलो। तुमको और मुझको साथ ले जानेके लिये व्रजसुन्दरियाँ सब ओरसे यहाँ आ पहुँची हैं॥ २३-२४॥

नरेश्वर! तब प्रियाजीने पहले प्रियतम श्याम-सुन्दरका फूलोंसे शृङ्गार किया। शृङ्गार करके वृन्दावनमें उन्हें पूर्ववत् दिव्य सुन्दर बना दिया॥ २५॥

इसके बाद नन्दनन्दनने बहुत-से पुष्प लाकर उनके द्वारा प्रियाको भी दिव्य शृङ्गार धारण कराया। जैसे पूर्वकालमें उन्होंने भाण्डीरवनमें प्रियाका शृङ्गार किया था, उसी प्रकार उन्होंने पहले तो उनके केश सँवारे; फिर उनमें फूलोंके गजरे लगा दिये। इसके बाद प्राणवल्लभाके अङ्ग-अङ्गमें अनुरूप अनुलेपन एवं अङ्गराग धारण कराये। फिर पानका बीड़ा खिलाया। श्यामसुन्दरके द्वारा सुन्दर शृङ्गार धारण कराये जानेपर गौरसुन्दरी श्रीराधा अत्यन्त सुन्दरी हो गयीं। सुन्दरताकी पराकाष्ठाको पहुँच गयीं॥ २६-२७॥

महाराज! इसके बाद प्रमोदपूरित रमावल्लभ श्रीकृष्णने एक फूलके वृक्षके नीचे पुष्पमयी शय्या तैयार करके उसके ऊपर प्रियतमाके साथ प्रेममयी दिव्य क्रीडा की। वृन्दावन, गिरिराज, गोवर्धन, यमुना-पुलिन, नन्दीश्वरगिरि, बृहत्सानुगिरि और रोहितपर्वतपर

अरण्येषु द्वादशसु सर्वत्र व्रजमण्डले।
कान्तया विचरन् कान्तो वंशीवटतले स्थितः॥ ३०

तत्र शुश्राव गोपीनां वदन्तीनां रवं परम्।
स्वामिन्या सह राजेन्द्र श्रीगोपीजनवल्लभः॥ ३१

पुनः प्राह प्रियां प्रेम्णा गच्छ गच्छ प्रिये त्वरम्।
कृष्णवाक्यं ततः श्रुत्वा प्राह भूत्वा च मानिनी॥ ३२

श्रीराधोवाच

न समर्था प्रचलितुं क्वचिद्गेहान्न निर्गता।
नय मां ते मनो यत्र दुर्बलां दीनवत्सल॥ ३३

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य रामां रामानुजस्ततः।
स्वेन पीताम्बरेणापि बीजयामास स्वेदतः॥ ३४

प्रगृह्य पाणिना प्राह सर्प राज्ञि यथासुखम्।
इति सा हरिणा प्रोक्ता मत्वात्मानं वरं परम्॥ ३५

हित्वासौ स्त्रीजनान् रात्रौ भजते मां रहःस्थले।
इति मत्वा तु हरये भूत्वा तूष्णीं व्रजेश्वरी॥ ३६

वस्त्रेणाननमाच्छाद्य पृष्ठं दत्वा स्थिताभवत्।
पुनराह हरिस्तां तु प्रिये गच्छ मया सह॥ ३७

भजामि त्वामहं भद्रे वियोगार्तां तु शापतः।
विहाय गोपीः सर्वाश्च लग्नास्त्वां तु भजाम्यहम्॥ ३८

त्वं तु मे स्कन्धमारुह्य सुखं व्रज रहःस्थले।
इत्युक्त्वा मानिनीं मानी स्कन्धयानमभीप्सतीम्॥ ३९

त्यक्त्वा ह्यन्तर्दधे राजन् स्वात्मारामः स्वलीलया।
अन्तर्हिते भगवति सहसा सा वधूर्नृप॥ ४०

तथा व्रजमण्डलके बारह वनोंमें सर्वत्र प्राणवल्लभाके साथ विचरण करके प्रियतम श्यामसुन्दर वंशीवटके नीचे आकर खड़े हुए थे॥ २८—३०॥

राजेन्द्र! वहाँ स्वामिनीसहित श्रीगोपीजनवल्लभ माधवने 'कृष्ण, कृष्ण' का कीर्तन करती हुई गोपियोंका महान् कोलाहल सुना। फिर वे प्रियासे प्रेमपूर्वक बोले—'प्रियतमे! जल्दी-जल्दी चलो!' श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर श्रीराधा मानवती होकर बोलीं— ॥ ३१-३२॥

श्रीराधाने कहा—दीनवत्सल! अब मैं चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गयी हूँ। आजतक कभी घरसे नहीं निकली थी। मैं दुर्बल हूँ। अतः तुम्हारा जहाँ मन हो, वहाँ स्वयं मुझे ले चलो। उनका यह कथन सुनकर रामानुज श्रीकृष्ण रामाशिरोमणि श्रीराधिकाको अपने पीताम्बरसे हवा करने लगे; क्योंकि वे पसीने-पसीने हो गयी थीं॥ ३३-३४॥

फिर वे उन्हें हाथसे पकड़कर कहने लगे—'रानी! जिसमें तुम्हें सुख मिले, उसी तरह चलो।' श्रीहरिके इस प्रकार कहनेपर उन्होंने अपने-आपको सबसे अधिक श्रेष्ठ मानकर मन-ही-मन सोचा—'ये प्रियतम अन्य समस्त सुन्दरियोंको छोड़कर रात्रिमें इस एकान्त स्थलमें मेरी सेवा करते हैं।' मनमें ऐसा सोचकर वे श्रीहरिसे कुछ नहीं बोलीं। व्रजेश्वरी राधा चुपचाप आँचलसे मुँह ढककर श्यामसुन्दरकी ओर पीठ करके खड़ी हो गयीं। तब श्रीहरिने उनसे फिर कहा—'प्रिये! मेरे साथ चलो॥ ३५—३७॥

भद्रे! तुम शापवश वियोगसे पीड़ित हो; इसलिये मैं तुम्हारा सदा साथ दे रहा हूँ। पीछे लगी हुई समस्त गोपियोंको छोड़कर तुम्हारी सेवा करता हूँ। तुम चाहो तो मेरे कंधेपर बैठकर सुखपूर्वक एकान्त स्थलमें चलो'। राजन्! मानी श्यामसुन्दरने अपनी मानवती प्रियासे ऐसा कहकर जब देखा कि 'ये कंधेपर चढ़नेको उत्सुक हैं', तब वे आत्माराम पुरुषोत्तम अपनी लीला दिखाते हुए उन्हें छोड़कर अन्तर्धान हो गये॥ ३८—३९१/२॥

नरेश्वर! भगवान्‌के अन्तर्धान हो जानेपर वधू राधिकाका सारा मान जाता रहा। वे शोकसे संतप्त हो

अन्वतप्यत दुःखार्ता गतमाना रुरोद ह।
ततस्तद्रोदनं श्रुत्वा वंशीवटतटे त्वरम्॥ ४१

आजग्मुर्गोपिकाः सर्वा ददृशुस्तां च दुःखिताम्।
चक्रुः स्त्रियस्तदङ्गेषु वायुं व्यजनचामरैः॥ ४२

उठीं और दुःखसे आतुर होकर रोने लगीं। तब श्रीराधाका रोदन सुनकर समस्त गोपसुन्दरियाँ वंशीवटके तटपर तुरंत आ पहुँचीं। आकर उन्होंने श्रीराधाको बहुत दुखी देखा। वे सब गोपियाँ व्यजन और चँवर लेकर श्रीराधाके अङ्गोंपर हवा करने लगीं॥ ४०—४२॥

स्नापयित्वा तु तां प्रेम्णा काश्मीरसलिलेन च।
सिषिचुर्मकरन्दैस्तां चन्दनद्रवशीकरैः॥ ४३

पुनर्वाक्यैः समाश्वास्य गोप्यः कर्मसु कोविदाः।
निशम्य तन्मुखाद्यानं गोविन्दस्य च मानतः॥ ४४

मानिन्यो गोपिकाः सर्वा विस्मयं परमं ययुः।
विहाय मानं ताः सर्वा आगत्य पुलिनं नृप।
स्वरैर्जगुः कृष्णगुणाँस्तदागमनहेतवे॥ ४५

उन्हें प्रेमपूर्वक केसरमिश्रित जलसे नहलाकर वे फूलोंके मकरन्दों तथा चन्दनद्रवके फुहारोंसे उनके अङ्गोंपर छींटा देने लगीं। परिचर्या-कर्ममें कुशल गोपकिशोरियोंने मीठे वचनोंद्वारा श्रीराधाको आश्वासन दिया। उनके मुखसे उन्हींके अभिमानके कारण गोविन्दके चले जानेकी बात सुनकर उन सम्पूर्ण मानवती गोपियोंको बड़ा विस्मय हुआ। नरेश्वर! वे सब-की-सब मान त्यागकर यमुना-पुलिनपर आयीं और श्रीकृष्णके लौट आनेके लिये मधुर स्वरसे उनके गुणोंका गान करने लगीं॥ ४३—४५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे रासक्रीडायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'रासक्रीडाविषयक' चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

गोपाङ्गनाओंद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए उनका आह्वान और श्रीकृष्णका उनके बीचमें आविर्भाव

गोप्य ऊचुः

अधरबिम्बविडम्बितविद्रुमं
मधुरवेणुनिनादविनोदितम्।
कमलकोमलनीलमुखाम्बुजं
तमपि गोपकुमारमुपास्महे॥ १

गोपियाँ बोलीं—जो अपने अधरबिम्बकी लालिमासे मूँगेको लज्जित करते हैं और मधुर मुरली-नादसे विनोद मानते—आनन्द पाते हैं, जिनका मुखारविन्द नीलकमलके समान कोमल तथा श्याम है, उन गोपकुमार श्यामसुन्दरकी हम उपासना करती हैं॥ १॥

श्यामलं विपिनकेलिलम्पटं
कोमलं कमलपत्रलोचनम्।
कामदं व्रजविलासिनीदृशां
शीतलं मतिहरं भजामहे॥ २

जिनकी अङ्गकान्ति साँवली है, जो वनविहारके रसिक हैं, जिनका अङ्ग-अङ्ग कोमल है, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर एवं विशाल हैं, जो भक्तजनोंकी अभीष्ट कामना पूर्ण कर देते हैं, व्रज-सुन्दरियोंके नेत्रोंको शीतल करनेवाले हैं, उन मनमोहन श्रीकृष्णका हम भजन करती हैं॥ २॥

तं विसञ्चलितलोचनाञ्चलं
सामिकुड्मलितकोमलाधरम्।

जिनके लोचनाञ्चल विशेष चञ्चल हैं और कोमल अधर अर्धविकसित कमलकी शोभा धारण करते हैं,

वंशवल्गितकराङ्गुलीमुखं
वेणुनादरसिकं भजामहे॥ ३

ईषदङ्कुरितदन्तकुड्मलं भूषणं भुवनमङ्गलश्रियम्।
घोषसौरभमनोहरं हरेर्वेषमेव मृगयामहे वयम्॥ ४

अस्तु नित्यमरविन्दलोचनः
श्रेयसे हि तु सुरार्चिताकृतिः।
यस्य पादसरसीरुहामृतं
सेव्यमानमनिशं मुनीश्वरैः॥ ५

गोपकै रचितमल्लसङ्गरं
सङ्गरे जितविदग्धयौवनम्।
चिन्तयामि मनसा सदैव तं
दैवतं निखिलयोगिनामपि॥ ६

उल्लसन्नवपयोदमेव तं
फुल्लतामरसलोचनाञ्चलम्।
बल्लवीहृदयपश्यतोहरं
पल्लवाधरमुपास्महे वयम्॥ ७

यद्धनञ्जयरथस्य मण्डनं
खण्डनं तदपि सञ्चितैनसाम्।
जीवनं श्रुतिगिरां सदामलं
श्यामलं मनसि मेऽस्तु तन्महः॥ ८

गोपिकास्तनविलोललोचन-
प्रान्तलोचनपरम्परावृतम्।
बालकेलिरसलालसम्भ्रमं
माधवं तमनिशं विभावये॥ ९

नीलकण्ठकृतपिच्छशेखरं
नीलमेघतुलिताङ्गवैभवम्।
नीलपङ्कजपलाशलोचनं
नीलकुन्तलधरं भजामहे॥ १०

जिनके हाथोंकी अँगुलियाँ और मुख बाँसुरीसे सुशोभित हैं, उन वेणुवादनरसिक माधवका हम चिन्तन करती हैं॥ ३॥

जिनके दाँत किंचित् अंकुरित हुई कुन्दकलिकाके समान उज्ज्वल हैं, जो व्रजभूमिका भूषण है, अखिल भुवनके लिये मङ्गलमयी शोभासे सम्पन्न है, जो अपने शब्द और सौरभसे मनको हर लेता है, श्रीहरिके उस सुन्दर वेषको ही हम गोपाङ्गनाएँ खोज रही हैं। जिनकी आकृति देवताओंद्वारा पूजित होती है, जिनके चरणारविन्दोंके अमृतका मुनीश्वरगण नित्य-निरन्तर सेवन करते रहते हैं, वे कमलनयन भगवान् श्यामसुन्दर नित्य हम सबका कल्याण करें॥ ४-५॥

जो गोपोंके साथ मल्लयुद्धका आयोजन करते हैं, जिन्होंने युद्धमें बड़े-बड़े चतुर जवानोंको परास्त किया है तथा जो सम्पूर्ण योगियोंके भी आराध्य-देवता हैं, उन श्रीहरिका हम सदैव सेवन करती हैं। उमड़ते हुए नूतन मेघके समान जिनकी आभा है, जिनका लोचनाञ्चल प्रफुल्ल कमलकी शोभाको छीने लेता है, जो गोपाङ्गनाओंके हृदयको देखते-देखते चुरा लेते हैं तथा जिनका अधर नूतन पल्लवोंकी शोभाको तिरस्कृत कर देता है, उन श्यामसुन्दरकी हम उपासना करती हैं॥ ६-७॥

जो अर्जुनके रथकी शोभा है, समस्त संचित पापोंको तत्काल खण्डित कर देनेवाला है और वेदकी वाणीका जीवन है, वह निर्मल श्यामल तेज हमारे मनमें सदा स्फुरित होता रहे। जिनकी दृष्टि-परम्परा गोपिकाओंके वक्षःस्थल और चञ्चल लोचनोंके प्रान्तमें पड़ती रहती है तथा जो बाल-क्रीडाके रसकी लालसासे इधर-उधर घूमते रहते हैं, उन माधवका हम दिन-रात ध्यान करती हैं॥ ८-९॥

जिनके मस्तकपर नीलकण्ठ (मोर)-के पंखका मुकुट शोभा पाता है, जिनके अङ्ग-वैभव (कान्ति)-को नीलमेघकी उपमा दी जाती है, जिनके नेत्र नीलकमलदलके समान शोभा पाते हैं, उन नील केश-पाशधारी श्यामसुन्दरका हम भजन करती हैं॥ १०॥

घोषयोषिदनुगीतवैभवं
कोमलस्वरितवेणुनिःस्वनम्।
सारभूतमभिरामसम्पदां
धाम तामरसलोचनं भजे॥ ११

मोहनं मनसि शार्ङ्गिणं परं
निर्गतं किल विहाय मानिनीः।
नारदादिमुनिभिश्च सेवितं
नन्दगोपतनयं भजामहे॥ १२

श्रीहरिस्तु रमणीभिरावृतो
यस्तु वै जयति रासमण्डले।
राधया सह वने च दुःखिता-
स्तं प्रियं हि मृगयामहे वयम्॥ १३

देवदेव व्रजराजनन्दन
देहि दर्शनमलं च नो हरे।
सर्वदुःखहरणं च पूर्ववत्
सन्निरीक्ष्य तव शुल्कदासिकाः॥ १४

क्षितितलोद्धरणाय दधार यः
सकलयज्ञवराहवपुः परम्।
दितिसुतं विददार च दंष्ट्रया
स तु सदोद्धरणाय क्षमोऽस्तु नः॥ १५

मनुमपाद्रुचिजो दिविजैः सह
वसु दुदोह धरामपि यः पृथुः।
श्रुतिमपाद्धृतमत्स्यवपुः परं
स शरणं किल नोऽस्त्वशुभक्षणे॥ १६

अवहदब्धिमहो गिरिमूर्जितं
कमठरूपधरः परमस्तु यः।
असुहरं नृहरिः समदण्डयत्
स च हरिः परमं शरणं च नः॥ १७

नृपबलिं छलयन् दलयन्नरीन्
मुनिजनाननुगृह्य चचार यः।

व्रजकी युवतियाँ जिनके लीला-वैभवका सदा गान करती हैं, जो कोमल स्वरमें मुरली बजाया करते हैं तथा जो मनोऽभिराम सम्पदाओंके धाम हैं, उन सब सारस्वरूप कमलनयन श्रीकृष्णका हम भजन करती हैं। जो मनपर मोहनी डालनेवाले और उत्तम शार्ङ्गधनुषधारी हैं, जो मानवती गोपाङ्गनाओंको छोड़कर निकल गये हैं तथा नारद आदि मुनि जिनका सदा भजन-सेवन करते हैं, उन नन्दगोपनन्दनका हम भजन करती हैं॥ ११-१२॥

जो श्रीहरि असंख्य रमणियोंसे घिरे रहकर रासमण्डलमें सबपर विजय पाते हैं, उन्हीं प्रियतम श्यामसुन्दरको वनमें राधासहित दुःख उठाती हुई हम व्रजवनिताएँ ढूँढ़ रही हैं। देवदेव! व्रजराजनन्दन! हरे! हमें पूर्णरूपसे दर्शन दीजिये, जो सब दुःखोंको हर लेनेवाला है। हम आपकी क्रीत दासियाँ हैं। आप पूर्ववत् हमारी ओर देखकर हमें अपनाइये॥ १३-१४॥

जिन्होंने एकार्णवके जलसे इस भूमण्डलका उद्धार करनेके लिये परम उत्तम सम्पूर्ण यज्ञवाराहस्वरूप धारण किया था और अपनी तीखी दाढ़से 'हिरण्याक्ष' नामक दैत्यको विदीर्ण कर डाला था, वे भगवान् श्रीहरि ही हम सबका उद्धार करनेमें समर्थ हों। रुचि प्रजापतिके पुत्ररूपमें उत्पन्न जिन भगवान् यज्ञने तपस्यारत मनु-शतरूपाकी राक्षसोंसे रक्षा की, जिन्होंने वेनकी दाहिनी बाँहसे स्वेच्छापूर्वक पृथुरूपमें प्रकट हो देवताओंसहित इस पृथ्वीका दोहन किया और मत्स्यरूप धारण करके वेदोंकी रक्षा की, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण इस अशुभ वेलामें हम गोपियोंके लिये शरणदाता हों॥ १५-१६॥

अहो! जिन परम प्रभुने समुद्र-मन्थनके समय कच्छपरूप धारण करके बड़े भारी पर्वत मन्दराचलको अपनी पीठपर ढोया था और नृसिंहरूप धारण करके अपने भक्तके प्राण लेनेको उद्यत हुए असुर हिरण्यकशिपुको प्राणदण्डसे दण्डित किया, वे ही श्रीहरि हम सबको परम आश्रय देनेवाले हों। जिन्होंने राजा बलिको छला—तीन पग भूमिके व्याजसे त्रिलोकीका राज्य उनसे छीन लिया तथा देवद्रोहियोंका दलन करके मुनिजनोंपर अनुग्रह करते हुए भूमण्डलपर विचरण किया,

कुरुपुरं च हलेन विकर्षयन्
यदुवरः स गतिर्मम सर्वथा॥ १८

जो यदुकुलतिलक बलरामजीके रूपमें प्रकट हुए हैं और जिन्होंने उसी रूपसे कौरवपुरी हस्तिनापुरको हलसे खींचते हुए उसे गङ्गाजीमें डुबा देनेका विचार किया था, वे भगवान् श्रीकृष्ण सर्वथा हमारे रक्षक हों॥ १७-१८॥

व्रजपशून् गिरिराजमथोद्धरन्
व्रजपगोपजनं च जुगोप यः।
द्रुपदराजसुतां कुरुकश्मलाद्
भवतु तच्चरणाब्जरतिश्च नः॥ १९

जिन्होंने गिरिराज गोवर्द्धनको उठाकर व्रजके पशुओंका उद्धार किया तथा व्रजपति नन्दरायकी, अन्यान्य गोपजनोंकी तथा हम गोपाङ्गनाओंकी भी रक्षा की थी, फिर आगे चलकर जिन्होंने कौरवोंद्वारा उत्पन्न किये गये संकटसे द्रुपदराजकुमारी पाञ्चालीके प्राण बचाये—भरी सभामें उसकी लज्जा रखी, उन्हींके चरणारविन्दोंमें हमारा सदा अनन्य अनुराग बना रहे॥ १९॥

विषमहाग्निमहास्त्रविपद्‌गणात्
सकलपाण्डुसुताः परिरक्षिताः।
यदुवरेण परेण च येन वै
भवतु तच्चरणः शरणं च नः॥ २०

जिन परमपुरुष यदुवंशविभूषणने समस्त पाण्डवोंकी विषसे, लाक्षागृहकी महाभयंकर अग्निसे, बड़े-बड़े अस्त्रोंसे तथा अनेकानेक विपत्तियोंसे पूर्णतः रक्षा की, उन्हींके चरण हम सबके लिये शरण हों॥ २०॥

मालां बर्हिमनोज्ञकुन्तलभरां वन्यप्रसूनोषितां
शैलेयागुरुक्लृप्तचित्रतिलकां शश्वन्मनोहारिणीम्।
लीलावेणुरवामृतैकरसिकां लावण्यलक्ष्मीमयीं
बालां बालतमालनीलवपुषं वन्दामहे देवताम्॥ २१

हम उस बालरूपिणी देवमूर्तिकी वन्दना करती हैं, जो वनमाला, मोरपंख तथा परमसुन्दर केशपाश धारण करती है, वृन्दावनके फूलोंके आभूषण पहनती है, शिलासे उत्पन्न गन्धद्रव्य, अगुरु एवं कस्तूरी आदिके द्वारा रचित विचित्र तिलकसे अलंकृत होती है, सदा भक्तजनोंके मनको अपनी ओर खींचती रहती है, लीलामृत तथा वेणुनादामृतके वितरणके लिये जो एकमात्र रसिक है, जिसकी आकृति लावण्यलक्ष्मीमयी है तथा अङ्गकान्ति बाल तमालके समान नीली है॥ २१॥

श्रीगर्ग उवाच

इति स्त्रीभी रुदन्तीभी रेवतीरमणानुजः।
आविर्बभूव चाहूतस्तासां मध्ये च भक्तितः॥ २२

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! यों रोती हुई गोपसुन्दरियोंके इस प्रकार भक्तिपूर्वक आह्वान करनेपर रेवतीरमण बलरामके छोटे भाई श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण उनके बीचमें प्रकट हो गये॥ २२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे रासक्रीडायां कृष्णागमनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'श्रीरासक्रीडाके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णका आगमन' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके आगमनसे गोपियोंको उल्लास; श्रीहरिके वेणुगीतकी चर्चासे श्रीराधाकी मूर्च्छाका निवारण; श्रीहरिका श्रीराधा आदि गोपसुन्दरियोंके साथ वन-विहार, स्थल-विहार, जल-विहार, पर्वत-विहार और रासक्रीडा

श्रीगर्ग उवाच

कृष्णं समागतं दृष्ट्वा ताः समुत्थाय हर्षिताः।
चक्रुर्जयजयारावं गोप्यो दुःखं विसृज्य च॥ १

दृष्ट्वा सम्मूर्च्छितां राधां गोपीभिः प्रार्थितो हरिः।
चैतन्यार्थे व्रजे तत्र चकार मुरलीरवम्॥ २

नोत्थितां राधिकां दृष्ट्वा श्रीराधावल्लभो हरिः।
तस्यै संश्रावयामास वेणुगीतं पुनः पुनः॥ ३

ततः समुत्थिता राधा स्मृत्वा दुःखं वियोगजम्।
बभूव मूर्च्छिता राजन् माधवस्य प्रपश्यतः॥ ४

ततः कृष्णस्य वचनात्सद्यश्चन्द्रानना सखी।
चन्द्रावलीं प्रत्युवाच प्रसन्ना कृष्णवेणुना॥ ५

चन्द्राननोवाच

कृष्णचन्द्रः पुरा निर्गतो मानतो
ह्यागतः सोऽपि राधे युगान्ते पुनः।
नाशयन् सर्वदुःखानि ते सन्निधौ
सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥ ६

छुङ्गछुङ्गेतिनादं मृदङ्गे कलं
वाद्यमाने सुरस्त्रीजनैः सेवितः।
रासरम्याङ्गणे नृत्यकृन्माधवः
सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥ ७

चारुचामीकराभासिवासा विभु-
र्वैजयन्तीभराभासितोरःस्थलः।
नन्दवृन्दावने गोपिकामध्यगः
सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥ ८

चारुचन्द्रावलीलोचनाचुम्बितो
गोपगोवृन्दगोपालिकावल्लभः।
कंसवंशाटवीदाहदावानलः
सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥ ९

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णको आया देख वे सब गोपसुन्दरियाँ हर्षसे उल्लसित होकर उठीं और दुःख त्यागकर जय-जयकार करने लगीं। श्रीराधा मूर्च्छामें ही पड़ी थीं। उनकी अवस्था देख गोपाङ्गनाओंके प्रार्थना करनेपर श्रीहरि उन्हें होशमें लानेके लिये उस व्रजभूमिमें वंशीनाद करने लगे॥ १-२॥

तब भी राधिका नहीं उठीं। यह देख श्रीराधावल्लभ हरि उन्हें बार-बार वेणुगीत सुनाने लगे। राजन्! वह गीत सुनकर श्रीराधा उठीं; किंतु वियोगजनित दुःखका स्मरण करके माधवके देखते-देखते फिर मूर्च्छित हो गयीं। तब श्रीकृष्णके वेणुगीतसे प्रसन्न हुई चन्द्रानना नामवाली सखी उनका आदेश पाकर तत्काल चन्द्रावलीके प्रति श्रीराधाको ही सम्बोधित करके बोली—॥ ३—५॥

चन्द्राननाने कहा—हे राधे! जो श्रीकृष्णचन्द्र पहले तुम्हारे मानसे रूठकर चले गये थे, वे मानो एक युगके बाद फिर आ गये हैं। उन्हीं देवकीनन्दनने तुम्हारे समस्त दुःखोंका नाश करनेके लिये निकट बैठकर वेणु बजाते हुए गीत गाया है। रासके रमणीय प्राङ्गणमें छुंग-छुंग ध्वनिके साथ मधुर स्वरमें मृदङ्ग बजाया जा रहा है और देवाङ्गनाओंसे सेवित देवकीनन्दन माधव नृत्य करते हुए वेणुगीत सुना रहे हैं॥ ६-७॥

वे मनोहर सुवर्णकी-सी कान्तिवाले पीताम्बरसे सुशोभित हैं। उनके वक्षःस्थलमें वैजयन्तीकी मालाएँ शोभा दे रही हैं। उन देवकीनन्दनने नन्दके वृन्दावनमें गोपिका-मण्डलीके मध्यमें विराजमान होकर वेणु बजाते हुए गीत गाया है। मनोहर चन्द्रावलीके लोचनोंसे चुम्बित, गोप, गौओं तथा गोपाङ्गनाओंके वल्लभ और कंस-वंशरूपी वनको जलानेके लिये दावानलरूप देवकीनन्दनने वेणु बजाते हुए गीत गाया है॥ ८-९॥

बालिकातालिकाताललीलालया-
सङ्गसन्दर्शितभ्रूलताविभ्रमः।
गोपिकागीतदत्तावधानः स्वयं
सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥ १०

मौलिमालाङ्गदैः किङ्किणीकुण्डलै-
र्भूषितो नन्दनो नन्दराजस्य च।
प्रीतिकृत् सुन्दरो देवि प्रीत्या तव
सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥ ११

पारिजातं समुद्धृत्य राधावरो
रोपयामास भामाभयादङ्गणे।
वल्लवीवृन्दवृन्दारिकाकामुकः
सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥ १२

ऋक्षराजं विनिर्जित्य नीत्वा मणिं
सन्ददौ भीतवद्भूमिनाथाय च।
सोऽपि रासे समागत्य रासेश्वरो
सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥ १३

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा राधिका तु महिमां वेणुवादिनः।
प्रसन्ना हि समुत्थाय परिरेभे प्रियं प्रिया॥ १४

वृन्दावनेशो गोविन्दो रेमे वृन्दावने वने।
वृन्दावननिवासिन्या पश्यन् वृन्दावनद्रुमान्॥ १५

ततः कृष्णं च जगृहुः सर्वतो व्रजयोषितः।
वर्षाकाले नृपश्रेष्ठ सौदामिन्यो यथा घनम्॥ १६

यावतीस्तत्र गोप्यश्च तावद्रूपधरो हरिः।
यमुनापुलिनं राजँस्ताभिः साकं समाययौ॥ १७

बभूवुर्मुदिता नार्यो यथा च श्रुतयः पुरा।
स्ववस्त्रैः कृष्णचन्द्राय ह्यासनं ता अचीक्लृपन्॥ १८

श्रीराधारमणस्तस्मिन्नासने सह राधया।
निषसाद ह्यहो राजंस्ताभिर्भक्त्या वशीकृतः॥ १९

गोपबालिकाएँ ताली बजाकर ताल दे रही हैं और उस ताल-लीलाके लयके साथ-साथ जो अपनी भ्रूलताओंका विभ्रम-विलास प्रदर्शित कर रहे हैं, वे देवकीनन्दन गोपाङ्गनाओंके गीतोंकी ओर ध्यान देकर स्वयं भी वेणु बजाते हुए गा रहे हैं। देवि! जो तुम्हारे प्रेमी हैं, उन परमसुन्दर नन्दराजकुमार देवकीनन्दनने मुकुट, माला, बाजूबंद, करधनी और कुण्डल आदि आभूषणोंसे विभूषित हो तुम्हारी प्रसन्नताके लिये वेणुगीत आरम्भ किया है॥ १०-११॥

जिन श्रीराधावल्लभने सत्यभामाके भयसे स्वर्गीय पारिजात उखाड़कर उनके आँगनमें लगा दिया है, गोपाङ्गनाओं और देवाङ्गनाओंके कामपूरक उन देवकीनन्दनने वेणुद्वारा गीत गाया है। जिन्होंने ऋक्षराजको जीतकर उनके यहाँसे स्यमन्तकमणि ले आकर भयभीतकी भाँति भूमिनाथ उग्रसेनको अर्पित की थी, वे ही रासेश्वर देवकीनन्दन आज रासमण्डलमें पधारकर वेणुके स्वरोंमें गीत गा रहे हैं॥ १२-१३॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! वेणु बजानेवाले श्यामसुन्दरकी महिमाका वर्णन सुनकर प्रिया श्रीराधा प्रसन्न होकर उठीं और उन्होंने प्रियतमका गाढ़ आलिङ्गन किया। तत्पश्चात् वृन्दावनाधीश्वर गोविन्द वृन्दावनमें वृन्दावनवासिनी प्राणवल्लभाके साथ उस वनके वृक्षोंकी शोभा देखते हुए विहार करने लगे॥ १४-१५॥

नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर व्रजकी युवतियोंने सब ओरसे श्रीकृष्णको उसी तरह जा पकड़ा, जैसे वर्षाकालमें चपलाएँ मेघको घेर लेती हैं। राजन्! वहाँ जितनी गोपियाँ विद्यमान थीं, उतने ही रूप धारण करके श्यामसुन्दर उन सबके साथ यमुनापुलिनपर आये। जैसे पूर्वकालमें श्रुतियाँ भगवान्से मिलकर प्रसन्न हुई थीं, उसी प्रकार गोपाङ्गनाएँ श्यामसुन्दरके साथ परम आनन्दका अनुभव करने लगीं। उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रको अपने-अपने वस्त्रोंका आसन दिया॥ १६—१८॥

राजन्! उस आसनपर श्रीराधारमण नन्दनन्दन राधाके साथ बैठे। अहो! उन गोपसुन्दरियोंने अपनी भक्तिसे भगवान्को वशमें कर लिया था॥ १९॥

गोलोके यादृशं रूपं दर्शयामास तादृशम्।
गोपीनां राधया सार्धं कृष्णं त्रैलोक्यमोहनम्॥ २०

दृष्ट्वा गोकुलचन्द्रस्य सुरूपं परमाद्भुतम्।
स्वात्मानं नाविदन् गोप्यो ब्रह्मानन्देन निर्वृताः॥ २१

स्थले कृत्वा विहारं तु विवेश यमुनाजलम्।
ताभिर्भक्त्या वशीभूतो गोपीभिः सह राधया॥ २२

वारां विहारं भगवान् स्त्रीभिः सार्धं चकार ह।
मन्दाकिन्यां यथा शक्रो ह्यप्सरोभिर्वृतो दिवि॥ २३

माधवो माधवीं राजन् माधवी माधवं जले।
अन्योऽन्यं तौ सिषिचितुः सलिले सलिलैस्त्वरम्॥ २४

कबरीकेशपाशाभ्यां प्रच्युतैः कुसुमैर्बभौ।
यमुना चित्रवर्णैश्च यथोष्णिङ्मुद्रिता नृप॥ २५

विद्याधर्यो देवपत्न्यः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे।
प्रश्लथद्वस्त्रनीव्यस्ता मोहं प्राप्ताः स्मरातुराः॥ २६

अथ कृष्णो वारिलीलां कृत्वा वै लीलया युतः।
जलान्निष्क्रम्य राजेन्द्र गिरिं गोवर्धनं ययौ॥ २७

अनुजग्मुर्गोपिकास्तं सहचर्यो नृपेश्वर।
काश्चिद्व्यजनहस्ताश्च काश्चिच्चामरवाहिकाः॥ २८

काश्चित्ताम्बूलहस्ताश्च काश्चिद्दर्पणवाहिकाः।
काश्चिद्भूषणहस्ताश्च काश्चित्कुसुमवाहिकाः॥ २९

काश्चिच्चन्दनहस्ताश्च काश्चिद्भाजनवाहिकाः।
काश्चिद्यावकहस्ताश्च काश्चिदम्बरवाहिकाः॥ ३०

काश्चिन्मृदङ्गहस्ताश्च काश्चित्कांस्यधराश्च वै।
मुरयष्टिधराः काश्चित्काश्चिद्वीणाधराः पराः॥ ३१

श्रीकृष्णने गोलोकमें जैसा रूप दिखाया था, वैसा ही श्यामल त्रिभुवनमोहन रूप उन्होंने उस समय राधासहित गोपाङ्गनाओंके समक्ष प्रकट किया। गोकुलचन्द्रका वह परम अद्भुत सुन्दर रूप देखकर गोपसुन्दरियाँ ब्रह्मानन्दमें निमग्न हो अपने-आपमें भूल गयीं॥ २०-२१॥

उनके साथ स्थलमें विहार करके उनकी भक्तिके वशीभूत हुए श्यामसुन्दरने श्रीराधा और गोपाङ्गनाओंके साथ यमुनाके जलमें प्रवेश किया। भगवान्‌ने वहाँ उन व्रजसुन्दरियोंके साथ उसी प्रकार विहार किया, जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र अप्सराओंके साथ मन्दाकिनीके जलमें करते हैं॥ २२-२३॥

राजन्! माधव माधवीको और माधवी माधवको जलमें परस्पर भिगोने लगे। वे दोनों बड़ी उतावलीके साथ एक-दूसरेपर पानी उछालते थे। नरेश्वर! गोपाङ्गनाओंकी वेणी और केशपाशसे गिरे हुए फूलोंसे यमुनाजीकी वैसी ही विचित्र शोभा हुई, जैसे अनेक रंगोंके छापसे छपी हुई नीली पगड़ी शोभा पाती है॥ २४-२५॥

विद्याधरियाँ और देवाङ्गनाएँ फूल बरसाने लगीं। उनकी साड़ियोंकी नीवी ढीली पड़ गयी और वे प्रेमावेशसे व्याकुल हो मोहको प्राप्त हो गयीं॥ २६॥

राजेन्द्र! तदनन्तर जल-विहार समाप्त करके श्यामसुन्दर लीलापूर्वक यमुनाजलसे बाहर निकले और गोवर्धनपर्वतपर गये। नृपेश्वर! उनकी सहचरी गोपियाँ भी उनके साथ-साथ गयीं। किन्हींके हाथोंमें व्यजन थे और कितनी ही चँवर डुलाती चल रही थीं॥ २७-२८॥

किन्हींके हाथोंमें पानके बीड़े थे। बहुत-सी गोपियाँ दर्पण लिये चलती थीं। कितनोंके हाथोंमें नाना प्रकारके आभूषणोंके पात्र थे और कितनी ही पुष्पभार लिये जा रही थीं। कुछ गोपियोंके हाथोंमें चन्दनके पात्र थे और कुछ विविध प्रकारके बर्तनोंका भार ढो रही थीं। कोई महावर लिये जाती थीं और कोई वस्त्र। किन्हींके हाथोंमें मृदंग थे, तो कोई झाँझ लिये हुए थीं। कोई मुरयष्टिधारिणी थीं तो कोई वीणाधारिणी॥ २९—३१॥

करतालकराः काश्चित्काश्चिद्गानपरायणाः।
षट्त्रिंशद्रागरागिण्यो व्रजस्त्रीरूपधारिकाः॥ ३२

गोलोकाद्भारते पूर्वमागता राधया सह।
जगुस्ता ननृतुस्तत्र श्रीराधेश्वरसन्निधौ॥ ३३

ननर्त मध्ये तासां च कृष्णो मदनमोहनः।
प्रगायन् वेणुना गीतं त्रिलोकीं मोहयन् हरिः॥ ३४

वादित्रैः किङ्किणीभिश्च वलयनूपुरकङ्कणैः।
गीतैर्मिश्रितशब्दोऽभूत्तुमुलो रासमण्डले॥ ३५

देवाश्च देवपत्न्यश्च रासं दृष्ट्वा हरेरपि।
बभूवुर्मूर्च्छिता राजन् गगने स्मरपीडिताः॥ ३६

चन्द्रिकायां तु चन्द्रस्य चतुरश्चञ्चलश्चलन्।
चन्द्रावल्या बभौ चैव घनश्चञ्चलयैव च॥ ३७

राधायास्तत्र शृङ्गारं स्त्रग्भिर्यावककज्जलैः।
चक्रे कमलपत्राद्यैर्गिरौ गिरिधरो महान्॥ ३८

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्दनाद्यैश्च राधिका।
चक्रे कमलपत्रं वै श्रीकृष्णस्यानने वरम्॥ ३९

ततश्च सस्मिता राधा सस्मितं भगवन्मुखम्।
पश्यन्ती नागवल्ल्याश्च वीटकं प्रददौ मुदा॥ ४०

प्रियाप्रदत्तं ताम्बूलं बुभुजे नन्दनन्दनः।
कृष्णदत्तं च ताम्बूलं चखाद राधिका मुदा॥ ४१

कृष्णचर्वितताम्बूलं नीत्वा राधा बलात्पुनः।
जघास भक्त्या सा शीघ्रं सती पतिपरायणा॥ ४२

प्रियाचर्वितताम्बूलं ययाचे भगवान् हरिः।
राधा ददौ न तं भीता पपात तत्पदाम्बुजे॥ ४३

पद्मा पद्मावती नन्दी आनन्दी सुखदायिनी।
चन्द्रावली चन्द्रकला वन्द्या ह्येता हरिप्रियाः॥ ४४

कोई करताल लिये चलती थीं और कोई गीत गाती जा रही थीं। छत्तीसों राग-रागिनियाँ व्रजसुन्दरियोंका रूप धारण करके उस यूथमें सम्मिलित हो गयी थीं। जो गोपियाँ पूर्वकालमें श्रीराधाके साथ गोलोकसे भारतवर्षमें आयी थीं, वे श्रीराधावल्लभके समीप गान तथा नृत्य कर रही थीं॥ ३२-३३॥

उन सबके बीचमें वेणुसे गीत गाते और त्रिलोकीको मोहित करते हुए मदनमोहन श्रीकृष्ण हरि नृत्य करने लगे। रासमण्डलमें बाजों, करधनियों, कड़ों, कंगनों और नूपुरोंकी झनकारोंसे युक्त गीतमिश्रित शब्दकी तुमुल ध्वनि होने लगी॥ ३४-३५॥

राजन्! देवता और देवाङ्गनाएँ श्रीहरिका रास देखकर आकाशमें प्रेमवेदनासे पीड़ित हो मूर्च्छित हो गयीं। चन्द्रमाकी चाँदनीमें चतुर चञ्चल श्रीकृष्ण नृत्यकी गतिसे चलते हुए गोपाङ्गनारूपी चन्द्रावलीसे घिरकर उसी तरह शोभा पाते थे, जैसे विद्युन्मालासे आवेष्टित मेघ सुशोभित हो रहा हो॥ ३६-३७॥

उस पर्वतपर महान् गिरिधर श्यामसुन्दरने फूलोंके हार, महावर, काजल और कमलपत्र आदिके द्वारा श्रीराधाका शृङ्गार किया। श्रीराधिकाने भी कुङ्कुम, अगुरु और चन्दन आदिके द्वारा श्रीकृष्णके मुखमण्डलमें सुन्दर कमलपत्रकी रचना की॥ ३८-३९॥

तब मुसकराती हुई राधाने मन्दहासकी छटासे युक्त भगवान्के मुखकी ओर देखते हुए उन्हें प्रसन्नतापूर्वक पानका बीड़ा दिया। प्रियतमाके दिये हुए उस ताम्बूलको नन्दनन्दन श्रीहरिने बड़े प्रेमसे खाया। फिर श्रीकृष्णद्वारा अर्पित ताम्बूलको श्रीराधिकाने भी प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया॥ ४०-४१॥

पतिपरायणा सती श्रीराधाने भक्तिभावसे प्रेरित हो श्रीकृष्णके चबाये हुए ताम्बूलको हठात् लेकर शीघ्र अपने मुँहमें रख लिया। तब भगवान्ने भी प्रियाके द्वारा चबाये हुए ताम्बूलको उनसे माँगा; किंतु श्रीराधाने उन्हें नहीं दिया। वे भयभीत होकर उनके चरण-कमलमें गिर पड़ीं। पद्मा, पद्मावती, नन्दी, आनन्दी, सुखदायिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकला तथा वन्द्या—ये गोपाङ्गनाएँ श्रीहरिकी प्राणवल्लभा हैं॥ ४२—४४॥

वृन्दावने हरिस्ताभिर्वसन्तर्तुप्रपूरिते।
नानाप्रकारं शृङ्गारं स चकार मनोजवत्॥ ४५

काश्चित्पिबन्ति गोप्यस्तु श्रीकृष्णस्याधरामृतम्।
काश्चिद्बालिङ्गनं चक्रुः कृष्णस्य परमात्मनः॥ ४६

ततः कृष्णास्तु भगवान् गोपीनां कुचकुङ्कुमैः।
सुवर्णवर्णो भूत्वा वै रेजे मदनमोहनः॥ ४७

श्रीहरिने वसन्त-ऋतुके वैभवसे भरे वृन्दावनमें उन सबके साथ नाना प्रकारका शृङ्गार धारण किया। वे कामदेवसे भी अधिक मनोहर लगते थे। कुछ गोपियाँ श्रीकृष्णका अधरामृत पान करती थीं और कितनी ही उन परमात्मा श्रीकृष्णको अपने बाहुपाशमें बाँध लेती थीं। फिर तो मदनमोहन भगवान् श्रीकृष्ण गोपाङ्गनाओंके वक्षःस्थलमें लगे हुए केसरोंसे लिप्त होकर सुनहरे रंगके हो गये और अनुपम शोभा पाने लगे॥ ४५—४७॥

पुनर्गोपीजनैः सार्धं श्रीगोपीजनवल्लभः।
रासं चकार राजेन्द्र सुन्दरे कदलीवने॥ ४८

एवं हेमन्तरजनी गोपीनां रासमण्डले।
व्यतीता क्षणवद्राजन्नित्यानन्देन तत्र वै॥ ४९

राजेन्द्र! फिर सुन्दर कदलीवनमें गोपीजनोंके साथ श्रीगोपीजनवल्लभने रास किया। नरेश्वर! इस प्रकार रासमण्डलमें नित्यानन्दमय श्यामसुन्दरके साथ गोपियोंकी वह हेमन्त-ऋतुकी रात एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी॥ ४८-४९॥

अथ नन्दस्य सदनं रासं कृत्वा ययौ हरिः।
वृषभानुपुरं राधा तथा गोप्यो गृहान् ययुः॥ ५०

न जानन्ति व्रजे गोपा रासवार्तां हरेरपि।
स्वान् स्वान् दारान् स्वपार्श्वस्थान् मन्यमाना नृपेश्वर॥ ५१

इदं शृङ्गारचरितं राधामाधवयोः परम्।
ये पठन्ति च शृण्वन्ति ते व्रजिष्यन्ति चाक्षरम्॥ ५२

इस प्रकार रास करनेके पश्चात् नन्दनन्दन श्रीहरि नन्दभवनको चले गये। श्रीराधा वृषभानुपुरमें लौट गयीं तथा अन्यान्य गोपाङ्गनाएँ भी अपने-अपने घरको चली गयीं। नृपेश्वर! व्रजके गोप श्रीहरिकी इस रासवार्ताको बिलकुल नहीं जान सके। उन्हें अपनी-अपनी स्त्रियाँ अपने पास ही सोती प्रतीत हुईं। राधामाधवके इस परम उत्तम शृङ्गारचरित्रको जो लोग पढ़ते और सुनते हैं, वे अक्षय धाम गोलोकको प्राप्त होंगे॥ ५०—५२॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे रासक्रीडासम्पूर्तिर्नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'रासक्रीडाकी सम्पूर्ति' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णसहित यादवोंका व्रजवासियोंको आश्वासन देकर वहाँसे प्रस्थान

श्रीगर्ग उवाच

इदं कृष्णस्य चरितं गुप्तं शास्त्रेषु वर्णितम्।
मया तवाग्रे राजेन्द्र अथान्यच्छृणु विस्तरात्॥ १

एवं स्थित्वा दिनान्यष्टौ श्रीकृष्णो नन्दपत्तने।
आनन्दं प्रददन्नॄणां पुनर्गन्तुं मनो दधे॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजेन्द्र! श्रीकृष्णका यह चरित्र शास्त्रोंमें गुप्तरूपसे वर्णित है, जिसे मैंने तुम्हारे सामने प्रस्तुत किया है। अब तुम भगवान्‌के अन्य चरित्रोंको विस्तारपूर्वक सुनो। इस प्रकार श्रीकृष्ण नन्दनगरमें आठ दिनोंतक रहकर सब लोगोंको आनन्द प्रदान करते रहे। इसके बाद पुनः उन्होंने वहाँसे जानेका विचार किया॥ १-२॥

यशोमती कृष्णमाता प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम्।
गन्तुमभ्युदितं दृष्ट्वा रुरोदोच्चैर्यथा पुरा॥ ३

रुरुदुस्तत्र गोप्यश्च वाष्पपर्याकुलेक्षणाः।
स्मरन्त्यः पूर्वदुःखानि गेहे गेहे नृपेश्वर॥ ४

यावत्यो व्रजनार्यश्च तावद्रूपधरो हरिः।
पृथगाश्वासयामास तथा राधां स कोविदः॥ ५

मातरं प्राह भगवान् मातः शोकं तु मा कुरु।
शीघ्रमत्रागमिष्यामि कारयित्वा क्रतूत्तमम्॥ ६

त्वं न मन्यसे चेन्मातर्नित्यं द्रक्ष्यसि चान्तिके।
पुत्ररूपं च मां भक्त्या कृतान्तभयभञ्जनम्॥ ७

एवं तां तु समाश्वास्य निष्क्रम्य सदनाद्धरिः।
गोपैर्युक्तोऽश्रुपूर्णाक्षः पौत्रसेनां जगाम ह॥ ८

गत्वानिरुद्धसेनायां यादवान् हयमोचने।
ददावाज्ञां नृपश्रेष्ठ साक्षान्नारायणो हरिः॥ ९

नोदितः कृष्णचन्द्रेण हयं सम्पूज्य यत्नतः।
पुनर्मुमोच तत्पौत्रो विजयार्थे हि पूर्ववत्॥ १०

यादवाश्चानिरुद्धाद्या नन्दं नत्वाश्रुपूरिताः।
गन्तुमारुरुहुः सर्वे वाहनानि च कृच्छ्रतः॥ ११

कृष्णाकारान् कृष्णपुत्रान् कृष्णपौत्रांश्च सुन्दरान्।
गन्तुमभ्युदितान् सर्वान् कृष्णेन सहितान् यदून्॥ १२

दृष्ट्वा ते रुरुदुर्गोपा गोविन्दविरहातुराः।
स्मरन्तः पूर्वदुःखानि शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः॥ १३

रुरोद नन्दराजोऽपि वाष्पव्याकुललोचनः।
न किञ्चिदूचे दुःखार्तो मुखेन परिशुष्यता॥ १४

श्रीकृष्णकी माता यशोदा अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रको जानेके लिये उद्यत देख पहलेकी ही भाँति उच्चस्वरसे रोदन करने लगीं। नृपेश्वर! वहाँ गोपियोंके भी नेत्र आँसुओंसे भर आये और वे घर-घरमें पहलेके दुःखोंको याद करके करुणभावसे रोदन करने लगीं॥ ३-४॥

सान्त्वना देनेमें कुशल श्रीहरिने जितनी व्रजाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके उन सबको पृथक्-पृथक् आश्वासन दिया तथा श्रीराधाको भी धीरज बँधाया। इसके बाद भगवान् माता यशोदासे बोले—"मैया! शोक न करो। मैं इस उत्तम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान पूरा करवाकर शीघ्र ही यहाँ आऊँगा॥ ५-६॥

यदि तुम नहीं विश्वास करती हो तो मेरी यह बात सुन लो—'मैया! आजसे तुम प्रतिदिन मुझे पुत्ररूपमें अपने पास ही देखोगी।' मैं भक्तिभावसे स्मरण करनेपर कालके भयका भी नाश करनेवाला हूँ"॥ ७॥

इस प्रकार यशोदाजीको आश्वासन देकर नेत्रोंमें आँसूभरे श्रीहरि नन्दसदनसे बाहर निकले और गोपोंके साथ अपने पोते अनिरुद्धकी सेनामें गये। नृपश्रेष्ठ! अनिरुद्धकी सेनामें पहुँचकर साक्षात् नारायण श्रीहरिने यादवोंको घोड़ा छोड़नेके लिये आज्ञा दी। श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रेरित होकर उनके पौत्र अनिरुद्धने यत्नपूर्वक अश्वका पूजन किया और पुनः पूर्ववत् विजययात्राके लिये उसे छोड़ दिया॥ ८—१०॥

अनिरुद्ध आदि सब यादव नेत्रोंमें आँसूभरे नन्दको नमस्कार करके बड़े कष्टसे वहाँसे जानेके लिये अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ हुए। श्रीकृष्णके पुत्र और पौत्र सबके आकार उन्हींके समान सुन्दर थे। श्रीकृष्णके साथ उन सब यादवोंको जानेके लिये उद्यत देख, गोविन्दके विरहसे व्याकुल हो, वे गोपगण वहाँ फूट-फूटकर रोने लगे। पहलेके विरहजनित दुःखोंको याद करके उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे॥ ११—१३॥

नन्दराजके नेत्रोंमें भी आँसू छलक रहे थे। वे दुःखसे पीड़ित हो सूखे हुए मुँहसे कुछ बोल न सके; केवल रोदन करने लगे॥ १४॥

सर्वानाश्वासयामास कृष्णोऽप्यश्रुपरिप्लुतः।
आयास्य इति वाक्यैश्च मिलित्वा तु पृथक्पृथक्॥ १५

श्रीकृष्ण भी आँसू बहाते हुए 'मैं फिर आऊँगा'— ऐसा कहकर सबसे पृथक्-पृथक् मिले और सबको आश्वासन दिया॥१५॥

चैत्रमासे यदा यज्ञो द्वारकायां भविष्यति।
आह्वयिष्यामि गोपाला युष्मान् सर्वान्न संशयः॥ १६

गोपाला गोकुले नित्यं गोपालं मां हि द्रक्ष्यथ।
तस्मान्निवासं कुरुत अत्रैव व्रजमण्डले॥ १७

उन्होंने कहा—गोपालगण! चैत्रमासमें जब द्वारकापुरीमें यज्ञ आरम्भ होगा, तब मैं तुम सबको बुलवाऊँगा, इसमें संशय नहीं है। मेरे मित्र गोपगण! तुम सब लोग प्रतिदिन गोकुलमें मुझ गोपालको देखोगे। अतः अभी यहीं व्रजमण्डलमें निवास करो॥ १६-१७॥

एवमाश्वास्य तैर्दत्तं पारिबर्हं प्रगृह्य च।
नन्दं नत्वा रथे स्थित्वा प्रायाद्वृष्णिवरैर्हरिः॥ १८

नन्दाद्या दुःखिता गोपाः कृष्णस्य चरणाम्बुजे।
क्षिप्तं मनः पुनर्हर्तुमनीशा गोकुलं ययुः॥ १९

गोपा गोप्यश्च श्रीकृष्णं प्रेममग्नाश्च नित्यशः।
समीपे नृप पश्यन्ति योगिनामपि दुर्लभम्॥ २०

इस प्रकार आश्वासन दे, उनके दिये हुए उपहारको लेकर, नन्दजीको प्रणाम करके श्रीहरि वृष्णिवंशियोंके साथ रथपर बैठकर, वहाँसे चल दिये। नन्द आदि दुखी गोप श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलमें लगे हुए मनको पुनः हटानेमें असमर्थ हो केवल शरीरसे गोकुलको लौटे। नरेश्वर! उस दिनसे प्रेममग्न गोप और गोपीगण योगियोंके लिये भी परम दुर्लभ श्रीकृष्णको अपने समीप देखने लगे॥ १८—२०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे व्रजादन्यत्र गमनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यादवोंका व्रजसे अन्यत्र गमन' नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

अश्वका हस्तिनापुरीमें जाना; उसके भालपत्रको पढ़कर दुर्योधन आदिका रोषपूर्वक अश्वको पकड़ लेना तथा यादव-सैनिकोंका कौरवोंको घायल करना

श्रीगर्ग उवाच

कृष्णां समुत्तीर्य ततः प्रपश्य-
ञ्जगाम वाजी कुरुपत्तनञ्च।
करोति राज्यं नृपचक्रवर्ती
वैचित्रवीर्यो बलवान् हि यत्र॥ १

ततो ददर्श तुरगः कौरवाणां पुरं वरम्।
तं नानोपवनैर्युक्तं तडागैश्च सरोवरैः॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर यमुना नदीको पार करके वह अश्व आस-पासके देशोंका निरीक्षण करता हुआ कुरुदेशकी राजधानीमें गया, जहाँ बलवान् विचित्रवीर्यकुमार चक्रवर्ती राजा धृतराष्ट्र राज्य करते थे। वहाँ उस अश्वने अनेकानेक उपवनों, तड़ागों और सरोवरोंसे युक्त सुन्दर कौरव-नगरको देखा॥ १-२॥

दुर्गेण गङ्गया युक्तं तथा परिखया नृप।
सुवर्णरौप्यसदनैर्महाशूरजनैर्वृतम्॥ ३

सुयोधनस्तत्र पुराद्विनिर्गतो
हन्तुं मृगान् वै वनगोचरान्नृप।

नरेश्वर! वह नगर दुर्गसे तथा गङ्गारूपिणी खाईसे घिरा हुआ था। वहाँ सोने-चाँदीके महल थे और बड़े-बड़े शूरवीर वहाँ निवास करते थे। राजन्! उस कौरवनगरसे वनवासी मृगोंका शिकार करनेके लिये सुयोधन निकला।

ददर्श यज्ञस्य हयं सपत्रकं
रथस्थितो वीरजनैर्विभूषितः॥ ४

दृष्ट्वा तुरङ्गमं प्रीतः स्वरथादवतीर्य च।
मानी दुर्योधनो राजंस्त्वरं जग्राह लीलया॥ ५

कर्णभीष्मकृपद्रोणभूरिदुःशासनादिभिः।
युक्तस्तद्भालपत्रं च वाचयामास हर्षितः॥ ६

चन्द्रवंशे यदुकुल उग्रसेनो विराजते।
इन्द्रादयः सुरगणा यस्यादेशानुवर्तिनः॥ ७

सहायो यस्य भगवाञ्छ्रीकृष्णो भक्तपालकः।
अस्ति वै द्वारकापुर्यां तद्भक्त्या निवसन् हरिः॥ ८

तद्वाक्याद्धयमेधं स उग्रसेनो नृपेश्वरः।
चक्रवर्ती हठाद्यज्ञं स्वयशोऽर्थे करोति हि॥ ९

मोचितस्तेन तुरगो हयानां प्रवरः शुभः।
तद्रक्षकः कृष्णपौत्रोऽनिरुद्धो वृकदैत्यहा॥ १०

गजाश्वरथवीराणां सेनासङ्घसमन्वितः।
राजानो ये करिष्यन्ति राज्यं कौ शूरमानिनः॥ ११

ते गृह्णन्तु यज्ञहयं स्वबलात्पत्रशोभितम्।
तं मोचयति धर्मात्मा गृहीतं च हयं नृपैः॥ १२

स्वबाहुबलवीर्येणानिरुद्धो लीलया हठात्।
तस्यान्यथा च पदयोः पतित्वा यान्तु धन्विनः॥ १३

श्रीगर्ग उवाच

तत्पत्रं वाचयित्वैवं कौरवास्ते तु शत्रवः।
ऊचुः परस्परं क्रुद्धा मानिनो रक्तलोचनाः॥ १४

कौरवा ऊचुः

अहो किं लिखितं धृष्टैर्भालपत्रे हयस्य च।
न सन्ति किं हि राजानो यादवानां च सम्मुखे॥ १५

राजसूये पुरास्माभिर्यादवा ये विनिर्जिताः।
हयमेधं करिष्यन्ति पुनस्ते गतबुद्धयः॥ १६

तस्मात्सर्वान् विजेष्यामो न दास्यामस्तुरङ्गमम्।
पश्चाद्वयं करिष्यामो हयमेधं क्रतूत्तमम्॥ १७

वह वीरजनोंसे युक्त हो रथपर बैठा था। उसने उस यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको भालपत्रसहित देखा॥ ३—४॥

महाराज! दुर्योधन बड़ा मानी था। घोड़ेको देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने रथसे उतरकर अनायास ही घोड़ेको पकड़ लिया। कर्ण, भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, भूरि और दुःशासन आदिके साथ उसने हर्षित होकर उसका भालपत्र पढ़ा॥ ५-६॥

उसमें लिखा था—'चन्द्रवंशके अन्तर्गत यादव-कुलमें राजा उग्रसेन विराजते हैं। इन्द्र आदि देवता भी जिनकी आज्ञाके पालक हैं, भक्तपरिपालक भगवान् श्रीकृष्ण उनके सहायक हैं। वे उन्हींकी भक्तिसे आकृष्ट हो द्वारकापुरीमें निवास करते हैं॥ ७-८॥

उन्हींकी आज्ञासे राजाधिराज चक्रवर्ती उग्रसेन हठपूर्वक अपने यशके विस्तारके लिये अश्वमेध यज्ञ करते हैं। उन्होंने यह श्रेष्ठ और शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न घोड़ा छोड़ा है। उस घोड़ेके रक्षक हैं श्रीकृष्णपौत्र अनिरुद्ध, जो वृकदैत्यका वध करनेवाले हैं॥ ९-१०॥

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-वीरोंकी अनेक चतुरङ्गिणी सेनाओंके साथ अनिरुद्ध अश्वकी रक्षामें चल रहे हैं। जो राजा इस पृथ्वीपर राज्य करते हैं और अपनेको शूरवीर मानते हैं, वे भालपत्रसे शोभित इस यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको बलपूर्वक ग्रहण करें। धर्मात्मा अनिरुद्ध राजाओंद्वारा पकड़े गये उस अश्वको अपने बाहुबल और पराक्रमसे अनायास ही हठपूर्वक छुड़ा लेंगे। जो घोड़ेको न पकड़ सकें, वे धनुर्धर अनिरुद्धके चरणोंमें नतमस्तक होकर चले जायँ'॥ ११—१३॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—उस पत्रको बाँचकर वे शत्रुभूत कौरव क्रुद्ध हो उठे। उन मानियोंके नेत्र लाल हो गये और वे परस्पर कहने लगे—॥ १४॥

कौरव बोले—अहो! इन धृष्ट यादवोंने घोड़ेके भालपत्रमें क्या लिख रखा है? क्या यादवोंके सामने कोई राजा ही नहीं है? पूर्वकालमें अपने राजसूय-यज्ञमें हमने जिन यादवोंको परास्त किया है, वे ही मूर्ख अब फिर अश्वमेध करने चले हैं। इसलिये हम इन सबको जीतेंगे। घोड़ेको कदापि वापस नहीं देंगे। यादवोंको जीतनेके पश्चात् हमलोग स्वयं यज्ञोंमें उत्तम अश्वमेध यज्ञ करेंगे॥ १५—१७॥

क उग्रसेनः कः कृष्णो हयरक्षाकरस्तु कः।
यादवैः सहिता ह्येते किं करिष्यन्ति पौरुषम्॥ १८

कृष्णाद्या यादवाः सर्वे विहाय मथुरां पुरीम्।
गताः समुद्रं शरणं युद्धं त्यक्त्वा भयाच्च नः॥ १९

राज्यं दत्तं पुरा ह्येषामस्माभिश्च कृपान्वितैः।
कृतघ्नास्ते च मन्यन्ते स्वात्मानं चक्रवर्तिनम्॥ २०

पाण्डवानां च सम्मानाद्यादवा न हि मारिताः।
निष्कासिताश्च तेऽस्माभिः पाण्डवाः शत्रवः किल॥ २१

यदूनद्य विनिर्जित्य सङ्ग्रामे च पलायितान्।
दर्शयामश्चाहुकाय सहसा चक्रवर्तिताम्॥ २२

एवं श्रीकृष्णविमुखा वाचः सर्वे वदन्ति हि।
दृप्तास्ते कौरवा राजञ्छ्रिया राजविभूतिभिः॥ २३

ततश्च जगृहुः सर्वे नानाशस्त्राणि वेगतः।
हयं प्रवेशयामासुः पुरे तत्र तु संस्थिताः॥ २४

गते च तुरगे दूरं साम्बः कृष्णेन नोदितः।
त्वरं कृष्णां समुत्तीर्य गम्भीरां मार्गदायिनीम्॥ २५

अक्षौहिणीभिर्दशभिः पृष्ठतो दंशितो रुषा।
हस्तिनापुरमक्रूरयुयुधानादिभिर्ययौ ॥ २६

एवं ते यादवाः सर्वे हस्तिनापुरसन्निधौ।
आयाता हयहर्तृंश्च कौरवान् ददृशुः स्थितान्॥ २७

ऊचुस्ते वीक्ष्य बलिनो लोकद्वयजिगीषवः।
तान् सर्वांश्च तृणीकृत्य यादवाः कृष्णदेवताः॥ २८

अहो बबन्ध कश्चाश्वं कस्य हृष्टः कृतान्तराट्।
प्राप्स्यते कस्तु सङ्ग्रामे नाराचैः परमां व्यथाम्॥ २९

कौन है उग्रसेन? कौन है कृष्ण? और वह घोड़ेकी रक्षा करनेवाला भी कौन है? समस्त यादवोंके साथ आकर ये लोग हमारे सामने क्या पौरुष दिखायेंगे? कृष्ण आदि समस्त यदुवंशी [जरासंध]-के डरसे मथुरापुरी छोड़कर समुद्रकी शरणमें गये हैं। वे हमलोगोंके ही भयसे युद्ध छोड़कर भाग खड़े हुए हैं॥ १८-१९॥

पहले हमलोगोंने कृपा करके इन यादवोंको राज्य दे दिया और अब वे कृतघ्न यादव अपनेको चक्रवर्ती मानने लगे हैं। पाण्डवोंका मान रखनेके लिये हमने पहले यादवोंको नहीं मारा था; किंतु वे पाण्डव भी हमारे शत्रु ही हैं। अतः हमने उन्हें देशनिकाला दे दिया है। इन भागे हुए यादवोंको आज युद्धमें पराजित करके हम उग्रसेनको सहसा उनके चक्रवर्तीपनका मजा चखायेंगे॥ २०—२२॥

राजन्! वे समस्त श्रीकृष्णविमुख कौरव लक्ष्मी और राजवैभवके घमंडमें आकर ऐसी बातें कहने लगे। फिर सबने शीघ्र ही नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र ले लिये और उस घोड़ेको नगरमें प्रवेश कराया। इसके बाद वे वहीं ठहर गये॥ २३-२४॥

अश्वके दूर चले जानेपर श्रीकृष्णकी प्रेरणासे साम्ब तुरंत ही मार्ग प्रदान करनेवाली गहरी यमुना नदीको पार करके दस अक्षौहिणी सेना पीछे लिये, कवच बाँध, अक्रूर और युयुधान आदिके साथ रोषपूर्वक हस्तिनापुरकी ओर गये॥ २५-२६॥

इस प्रकार वे समस्त यादव हस्तिनापुरके निकट आ पहुँचे। उन्होंने देखा—घोड़ा चुरानेवाले कौरव सामने खड़े हैं। श्रीकृष्ण ही जिनके आराध्यदेव हैं तथा जो लोक और परलोक दोनोंपर विजय पानेके इच्छुक हैं, उन बलवान् यादवोंने कौरवोंको देखकर उन सबको तिनकेके समान समझते हुए कहा— ॥ २७-२८॥

'अहो! किसने हमारे घोड़ेको बाँधा है? किसके ऊपर आज यमराज प्रसन्न हुए हैं और कौन युद्धस्थलमें नाराचोंद्वारा बड़ी भारी पीड़ा प्राप्त करनेके लिये उत्सुक है?॥ २९॥

अहो वै किं न जानन्ति वृष्णीन्द्रं चक्रवर्तिनम्।
उग्रसेनं राजराजं देवदानववन्दितम्॥ ३०

राजसूयस्य कर्तारमद्वितीयं नृपेश्वरम्।
नृपाः स्वात्मविनाशाय गृह्णन्ति तुरगं ततः॥ ३१

हेमाङ्गदश्चेन्द्रनीलो बको भीषण एव च।
बल्वलश्च नृपाः सर्वे रणेऽस्माभिर्विनिर्जिताः॥ ३२

इति श्रुत्वा कौरवास्ते क्रोधप्रस्फुरिताधराः।
प्रत्यूचुस्तान् हि पश्यन्तस्तिरश्चीनैश्च चक्षुभिः॥ ३३

कौरवानुगा ऊचुः

गृहीतस्तुरगोऽस्माभिर्यूयं किं नु करिष्यथ।
युष्मान् सर्वान्नयिष्यामः सायकैर्यमसादनम्॥ ३४

उग्रसेनः कतिदिनै राज्यं लब्ध्वा तु कृष्णतः।
मानं करोति तं बद्ध्वा राज्यं कुर्मो वयं किल॥ ३५

अनिरुद्धस्तु कुत्रास्ते ह्यस्माकं च भयाद्गतः।
वदतैनं शरैर्युद्धे पूजयामो न संशयः॥ ३६

श्रीगर्ग उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा यादवाः क्रोधमूर्च्छिताः।
चिक्षिपुः सायकांश्चापैः कौरवाणां मुखेषु च॥ ३७

केचिद्बभूवुर्बाणैश्च छिन्नजिह्वाश्च कौरवाः।
भग्नदन्ताश्छिन्नमुखा वमन्तो रुधिरं बहु॥ ३८

दुर्योधनं छिन्नमुखा निहतास्ते ययुर्द्रुतम्।
पृष्टास्ते कथयामासुर्यादवैः प्रकृतं च तत्॥ ३९

अहो! जिनके चरणोंकी देवता और दानव भी वन्दना करते हैं, जो पहले राजसूय-यज्ञ कर चुके हैं, जिनकी समानता करनेवाला संसारमें दूसरा कोई नहीं है तथा जो नरेशोंके भी ईश्वर हैं, उन वृष्णिकुलतिलक चक्रवर्ती राजाधिराज उग्रसेनको क्या वे राजा नहीं जानते, जो अपने ही विनाशके लिये घोड़ेको पकड़ रहे हैं? हेमाङ्गद, इन्द्रनील, बक, भीषण और बल्वल— इन समस्त नरेशोंको हमने संग्रामभूमिमें पराजित किया है'॥ ३०—३२॥

यादवोंकी यह बात सुनकर कौरवोंके अधर क्रोधसे फड़क उठे। वे यादवोंकी ओर टेढ़ी आँखोंसे देखते हुए उन्हें इस प्रकार उत्तर देने लगे— ॥ ३३॥

कौरवोंके अनुगामी बोले—हमलोगोंने ही घोड़ेको पकड़ा है। तुमलोग हमारा क्या कर लोगे? हम अपने सायकोंद्वारा तुम सब यादवोंको यमलोक पहुँचा देंगे॥ ३४॥

उग्रसेन कितने दिनोंसे श्रीकृष्णके हाथसे राज्य पाकर घमंड करने लगा है? हम उसे बाँधकर स्वयं राज्य करेंगे। अनिरुद्ध हमारे भयसे कहाँ भाग गया है? बताओ, हम युद्धमें अपने बाणोंद्वारा उसकी पूजा करेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ३५-३६॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! कौरवोंकी यह बात सुनकर यादव क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे। उन्होंने कौरवसैनिकोंके मुखोंपर धनुषसे अनेक बाण फेकें॥ ३७॥

उन बाणोंसे कितने ही कौरवोंकी जीभें कट गयीं, किन्हींके दाँत टूट गये और किन्हींके मुख छिन्न-भिन्न हो गये। वे अधिक मात्रामें रक्त-वमन करते हुए घायल हो अपना क्षत-विक्षत मुँह लिये शीघ्र ही दुर्योधनके पास गये और पूछनेपर बताया कि यादवोंने हमारी यह दुर्दशा की है॥ ३८-३९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे कौरवैः श्यामकर्णग्रहणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'कौरवोंद्वारा श्यामकर्ण अश्वका अपहरण' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

यादवों और कौरवोंका घोर युद्ध

श्रीगर्ग उवाच

दुर्योधनः स्ववीराणां भीष्मद्रोणकृपादिभिः।
दृष्ट्वा मुखानि भग्नानि कोपं कृत्वेदमब्रवीत्॥ १

अहो वै यादवास्तुच्छा आगता मृत्युसम्मुखे।
किं न जानन्ति ते मूढा धृतराष्ट्रबलं महत्॥ २

इत्युक्त्वा प्रेषयामास स्वां सेनां चतुरङ्गिणीम्।
गजाश्वरथवीरैश्च युक्तां युद्धे च यादवान्॥ ३

सा चचाल महासेना कम्पयन्ती महीतलम्।
अक्षौहिणीभिर्दशभिस्त्रासयन्ती बलाद्रिपून्॥ ४

आयान्तीं तां ततो दृष्ट्वा साम्बो जाम्बवतीसुतः।
स्वां सेनां नोदयामास हर्षाद्वीरैर्विभूषितः॥ ५

ततश्च कौरवाः सर्वे रक्षणार्थं तु स्वात्मनः।
क्रौञ्चव्यूहं विनिर्माय तत्र सर्वे हि संस्थिताः॥ ६

आसीत्तस्य मुखे भीष्मो ग्रीवायां द्रोण एव च।
पक्षयोः कर्णशकुनी तस्य पुच्छे सुयोधनः॥ ७

मध्ये तस्य महासेना चतुरङ्गबलैर्युता।
कृतं हि ददृशुर्व्यूहं क्रौञ्चं वै शत्रुदुर्जयम्॥ ८

क्रौञ्चव्यूहं तत्र दृष्ट्वा यदवो युद्धशङ्किताः।
ऊचुर्हे साम्ब त्वमपि कुरु व्यूहं प्रयत्नतः॥ ९

इति तेषां वचः श्रुत्वा साम्बः सङ्ग्रामकोविदः।
न चकार रणे व्यूहं कौरवानगणय्य च॥ १०

युद्धं कर्तुं प्रचलिते ते द्वे सेने यदा नृप।
तदा मुहूर्तपर्यन्तं चकम्पे वसुधा भृशम्॥ ११

जघ्नुर्भेर्यश्च शङ्खाश्च ह्युभयोः सेनयोस्तदा।
टङ्कारश्चैव चापानां श्रूयन्ते तत्र तत्र ह॥ १२

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! भीष्म, द्रोण और कृप आदिके साथ दुर्योधनने अपने वीरोंके भग्न हुए मुखोंको देखकर क्रोधपूर्वक कहा—'आश्चर्यकी बात है कि नीच यादव स्वयं मौतके मुखमें चले आये। क्या वे मूर्ख महाराज धृतराष्ट्रके महान् बलको नहीं जानते हैं?'॥ १-२॥

—ऐसा कहकर दुर्योधनने घोड़े, हाथी, रथ और पैदल वीरोंसे युक्त अपनी चतुरङ्गिणी सेना युद्धमें यादवोंका सामना करनेके लिये भेजी। वह विशाल सेना दस अक्षौहिणियोंके द्वारा भूतलको कम्पित करती और शत्रुओंको डराती हुई बलपूर्वक आगे बढ़ी। उसे आती देख वीरोंसे विभूषित जाम्बवतीनन्दन साम्बने बड़े हर्ष और उत्साहसे अपनी सेनाको युद्धके लिये प्रेरणा दी॥ ३—५॥

तब समस्त कौरव अपनी रक्षाके लिये क्रौञ्च-व्यूहका निर्माण करके उसीमें सब-के-सब खड़े हो गये। उसके मुखभागमें भीष्म खड़े हुए और ग्रीवाभागमें आचार्य द्रोण। दोनों पंखोंकी जगह कर्ण तथा शकुनि स्थित हुए और पुच्छभागमें दुर्योधन॥ ६-७॥

उस क्रौञ्चव्यूहके मध्यभागमें चतुरङ्ग सैनिकोंके साथ कौरवोंकी विशाल वाहिनी खड़ी हुई। यादवोंने जब शत्रुओंके लिये दुर्जय उस क्रौञ्चव्यूहका निर्माण हुआ देखा, तब वे युद्धसे शङ्कित हो उस क्रौञ्चव्यूहपर दृष्टि रखते हुए साम्बसे बोले—'तुम भी यत्नपूर्वक व्यूह बना लो।' साम्ब युद्धकी कलामें बड़े निपुण थे। उन्होंने अपने सैनिकोंकी व्यूह-रचना-विषयक बात सुनकर भी कौरवोंको कुछ न गिनते हुए रणक्षेत्रमें व्यूहका निर्माण नहीं किया॥ ८—१०॥

नरेश्वर! जब दोनों ओरकी सेनाएँ युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ीं, तब दो घड़ीतक सारी पृथ्वी जोर-जोरसे काँपती रही। दोनों सेनाओंमें तत्काल रणभेरियाँ बज उठीं और शङ्खनाद होने लगे। सब ओर जगह-जगह धनुषोंकी टंकारें सुनायी देने लगीं॥ ११-१२॥

गर्जन्ति दन्तिनस्तत्र हया ह्रेषन्ति तत्र ह।
शब्दं शूराः प्रकुर्वन्ति नदन्ति रथनेमयः॥ १३

सैन्यपादरजोभिश्च ह्यन्धकारोऽभवद्रणे।
मलिनं गगनं भूत्वा सूर्यस्तत्र न दृश्यते॥ १४

उभयोः सेनयोर्युद्धं ततः समभवद् भृशम्।
बाणैर्गदाभिः परिघैः शतघ्नीभिश्च शक्तिभिः॥ १५

परस्परं ते युयुधुराहवे निशितैः शरैः।
गजा गजै रथा रथैर्हया हयैर्नरा नरैः॥ १६

शरान्धकारे सञ्जाते साम्बो बाणैर्धनुर्धरः।
रणे भीष्मेण युयुधेऽक्रूरः कर्णेन तत्र च॥ १७

युयुधानः शकुनिना द्रोणाचार्येण सारणः।
दुर्योधनेन सङ्ग्रामे सात्यकिः शीघ्रमेव च॥ १८

बली दुःशासनेनापि कृतवर्मा तु भूरिणा।
एवं परस्परं ह्यासीत्सङ्ग्रामो भयकारकः॥ १९

ततः साम्बस्तु सङ्क्रुद्धः सज्जं कृत्वा धनुर्दृढम्।
टङ्कारयामास तदा शूराणां कम्पयन् हृदि॥ २०

श्रीकृष्णं प्रथमं नत्वा मुमुचे सायकान् दश।
तानागताञ्छरान् भीष्मश्चिच्छेद स्वशरैरपि॥ २१

रणे साम्बः पुनस्तस्य कवचे सायकान् दश।
निचखान स्वर्णमयान्नादं कृत्वा तु सिंहवत्॥ २२

चतुर्भिः सायकैस्तस्य निजघ्ने चतुरो हयान्।
चिच्छेद बाणैर्दशभिस्तत्कोदण्डं गुणान्वितम्॥ २३

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
उत्थाय भीष्मः सहसा गदां जग्राह रोषतः॥ २४

साम्बः प्राह त्वया सार्धं कथं युद्धं करोम्यहम्।
पदातिना रथं चान्यं तुभ्यं दास्यामि संयुगे॥ २५

वहाँ हाथी चिंघाड़ते और घोड़े हिनहिनाते थे। शूरवीर सिंहनाद करते और रथोंकी नेमियाँ (पहिये) घरघराहट उत्पन्न करती थीं। सैनिकोंकी पदधूलिसे युद्धस्थलमें अन्धकार छा गया। आकाश मलिन हो गया और वहाँ सूर्यका दीखना बंद हो गया॥ १३-१४॥

फिर तो दोनों सेनाओंमें घोर घमासान युद्ध होने लगा। समराङ्गणमें उभय पक्षके सैनिक एक-दूसरेपर बाणों, गदाओं, परिघों, शतघ्नियों, शक्तियों तथा तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे। गजारोही गजारोहियोंसे, रथी रथियोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे तथा पैदल-योद्धा पैदलोंसे जूझने लगे॥ १५-१६॥

बाणोंसे अन्धकार छा जानेपर धनुर्धर वीर साम्ब बाणवर्षा करते हुए रणक्षेत्रमें भीष्मके साथ और अक्रूर कर्णके साथ युद्ध करने लगे। युयुधान शकुनिके साथ, सारण द्रोणाचार्यके साथ तथा सात्यकि संग्राम-भूमिमें दुर्योधनके साथ शीघ्रतापूर्वक लड़ने लगे॥ १७-१८॥

बली दुःशासनके साथ और कृतवर्मा भूरिके साथ भिड़ गये। इस प्रकार उनमें परस्पर भयंकर द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। तब साम्बने अत्यन्त कुपित होकर अपने सुदृढ़ धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और शूरवीरोंके हृदयमें कम्प उत्पन्न करते हुए टंकार-ध्वनि की॥ १९-२०॥

उन्होंने पहले श्रीकृष्णको नमस्कार करके दस बाण छोड़े। अपने ऊपर आये हुए उन बाणोंको भीष्मने अपने सायकोंसे काट डाला। तब रणक्षेत्रमें साम्बने सिंहनाद करके पुनः दस सुवर्णमय बाण भीष्मके कवचपर मारे॥ २१-२२॥

चार सायकोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया तथा दस बाणोंसे उनके प्रत्यञ्चासहित कोदण्डको खण्डित कर दिया। धनुष कट जाने तथा घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए भीष्मने सहसा उठकर बड़े रोषसे गदा हाथमें ली॥ २३-२४॥

तब साम्बने कहा—'आप पैदल हैं, अतः आपके साथ मैं युद्ध कैसे करूँगा? मैं युद्धस्थलमें आपको दूसरा रथ दूँगा॥ २५॥

सशस्त्रं स्यन्दनं युद्धे त्वं गृहाण कुरूद्वह।
जय मां निस्त्रपं मूढं वृद्धस्त्वं पूज्य एव च॥ २६

स उवाच ततः साम्बं क्रोधात्प्रस्फुरिताधरः।
दन्तान्दन्तैर्लिहन्नोष्ठं जिह्वया रक्तलोचनः॥ २७

त्वद्दत्ते स्यन्दने स्थित्वा यदा युद्धं करोम्यहम्।
तदा भवति मेऽकीर्तिः पापं निरयमेव च॥ २८

प्रतिग्रहपरा विप्रा दातारश्च वयं स्मृताः।
दत्तं राज्यं यदुभ्यश्च पुरास्माभिः कृपालुभिः॥ २९

श्रुत्वा तद्वचनं साम्बः प्रत्युवाच रुषान्वितः।
भयाद्राज्यं प्रदास्यन्ति राजानो मण्डलेश्वराः॥ ३०

निरीक्ष्य भूमौ शास्तारं संस्थितं चक्रवर्तिनम्।
इत्येवं वाक्यमाकर्ण्य भीष्मः शूरशिरोमणिः॥ ३१

जघान गदया गुर्व्या साम्बवक्षःस्थले नृप।
गदाप्रहारव्यथितः साम्बः सम्मूर्च्छितोऽभवत्॥ ३२

सारथिस्तं रथे कृत्वापोवाह शङ्कितो रणात्।
कोलाहलस्तदैवासीद्यदुसैन्ये नृपेश्वर॥ ३३

भीष्मोऽन्यं रथमारुह्य दंशितः सशरासनः।
ययौ सुयोधनं शीघ्रं यादवान् मारयन् पथि॥ ३४

सङ्ग्रामे तत्र राजेन्द्र सात्यकिश्च सुयोधनम्।
चक्रे बाणैश्च विरथं गृध्रपक्षैः स्फुरत्प्रभैः॥ ३५

विरथोऽपि रथं चान्यं स समारुह्य वेगतः।
तं शत्रुं विरथं चक्रे शरैराशीविषोपमैः॥ ३६

स चान्यं रथमारुह्य सात्यकिः शीघ्रविक्रमः।
बाणेनैकेन तद्यानं चिक्षेप नृप योजनम्॥ ३७

कुरुश्रेष्ठ! आप समराङ्गणमें मुझसे सशस्त्र रथ लीजिये और मुझ मूढ़ निर्लज्जपर विजय पाइये। आप वृद्ध होनेके कारण मेरे लिये सदा पूजनीय ही हैं'॥ २६॥

यह सुनकर क्रोधसे भीष्मका अधर फड़कने लगा। वे दाँतोंसे दाँत पीसते और जीभसे ओठ चाटते हुए आँखें लाल करके साम्बसे बोले—'तुम्हारे दिये हुए रथपर बैठकर जब मैं युद्ध करूँगा तो मेरी अपकीर्ति होगी तथा मुझे पाप और नरक ही प्राप्त होगा॥ २७-२८॥

प्रतिग्रह तो ब्राह्मण लेते हैं। हमलोग तो दाता माने गये हैं। हमने पहले कृपा करके ही यादवोंको राज्य दिया था।' उनकी बात सुनकर साम्बने रोषपूर्वक उत्तर दिया—'भूतलपर किसी चक्रवर्ती शासकको विद्यमान देख मण्डलेश्वर राजालोग भयके कारण उन्हें अपना राज्य दे डालते हैं। (किंतु ऐसा करके वे दाता नहीं माने जाते।)'॥ २९—३० १/२॥

नरेश्वर! साम्बका यह वचन सुनकर शूरशिरोमणि भीष्मने अपनी भारी गदासे साम्बके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। उस गदाकी चोटसे व्यथित हो साम्ब मूर्च्छित हो गये॥ ३१-३२॥

सारथिने उन्हें रथपर सँभालके लिटा दिया और उनके जीवनके लिये आशङ्कित हो वह उन्हें रणक्षेत्रसे बाहर हटा ले गया। नृपेश्वर! उसी समय यादव-सेनामें भारी कोलाहल मचा। भीष्म दूसरे रथपर आरूढ़ हो, कवच बाँध, शरासन हाथमें ले, मार्गमें यादवोंको मारते हुए शीघ्र ही दुर्योधनके पास जा पहुँचे॥ ३३-३४॥

राजेन्द्र! उस संग्राममें सात्यकिने गीधकी पाँख लगे हुए चमकीले बाणोंद्वारा दुर्योधनको रथहीन कर दिया। रथहीन होनेपर भी दुर्योधन वेगपूर्वक दूसरे रथपर जा चढ़ा और विषधर सर्पके समान बाणोंद्वारा उसने अपने उस शत्रुको भी रथहीन कर दिया॥ ३५-३६॥

नरेश्वर! शीघ्र पराक्रम प्रकट करनेवाले सात्यकिने भी दूसरे रथपर आरूढ़ हो एक बाण मारकर दुर्योधनके रथको चार कोस दूर फेंक दिया॥ ३७॥

रथः पपात भूमध्ये ससूतः सतुरङ्गमः।
अङ्गारवद्विशीर्णोऽभून्मूर्च्छितोऽभूत्सुयोधनः॥ ३८

तदा द्रोणस्तु सङ्क्रुद्धो बाणेनाग्निमयेन च।
जघान सात्यकिं युद्धे स्वशत्रुं तु विहाय वै॥ ३९

रथस्तु तस्य दग्धोऽभूत्सतुरङ्गः ससारथिः।
अभवन् मूर्च्छितः सोऽपि दग्धाङ्गो बाणज्वालया॥ ४०

कृतवर्मा ततः क्रुद्धो भूरिं जित्वा रणाङ्गणे।
आजगाम नदन् राजन् द्रोणोपरि रुषान्वितः॥ ४१

स गत्वा प्रधने रोषाद्द्रोणाचार्यं शरैरपि।
चक्रे पदातिनं वीरो निःशस्त्रं छिन्नकञ्चुकम्॥ ४२

ततः कर्णस्तु सङ्क्रुद्धस्त्यक्त्वाक्रूरं रणाङ्गणे।
तताड कृतवर्माणं शक्त्या शक्तीव तारकम्॥ ४३

सा शक्तिस्तत्तनुं भित्त्वा विवेश धरणीतले।
निर्भिन्नहृदयो भूत्वा कृतवर्मा पपात ह॥ ४४

युयुधानस्ततः कोपान्निर्जित्य शकुनिं मृधे।
कर्णस्योपरि राजेन्द्र ह्याजगाम रथेन च॥ ४५

गत्वा शरासनेनापि मुमुचे सायकान् दश।
वीक्ष्य तानागतान् कर्णो निजघान स्वसायकैः॥ ४६

सङ्घृष्टास्तत्र सङ्ग्रामे तयोर्बाणाः परस्परम्।
विस्फुलिङ्गान् क्षरन्तस्ते भ्रमन्तेऽलातचक्रवत्॥ ४७

युयुधानस्ततः कोपात्कर्णस्य जगतीपते।
जघान कवचे बाणान् काकपक्षयुताञ्छितान्॥ ४८

ते शराः कर्णकवचे न लग्नाः पतिता भुवि।
राजन् पापस्य कर्तारो न स्वर्गे निरये यथा॥ ४९

ततः प्रहस्य कर्णस्तु युयुधानं च विस्मितम्।
चकार विरथं युद्धे शरैर्नानास्त्रयोजितैः॥ ५०

आकाशसे उसका रथ भूतलपर गिरा और सारथि तथा घोड़ोंसहित अंगारके समान बिखर गया। उस रथसे गिरनेपर दुर्योधनको तत्काल मूर्च्छा आ गयी। तब अत्यन्त कुपित हुए द्रोणाचार्यने अपने शत्रु सारणको समराङ्गणमें छोड़कर अग्निमय बाणसे सात्यकिपर प्रहार किया॥ ३८-३९॥

उस बाणसे सात्यकिका रथ घोड़ों और सारथिसहित जलकर भस्म हो गया और सात्यकि भी बाणकी ज्वालासे अङ्ग-अङ्ग झुलस जानेके कारण मूर्च्छित हो गये। राजन्! तब कुपित हुआ कृतवर्मा समराङ्गणमें भूरिको परास्त करके द्रोणके ऊपर अधिक रुष्ट हो सिंहनाद करता हुआ आया॥ ४०-४१॥

उस वीरने आते ही युद्धक्षेत्रमें रोषपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके आचार्य द्रोणको शस्त्रहीन एवं रथहीन कर दिया और उनका कवच भी काट डाला। तब कर्ण अत्यन्त कुपित हो उठा और उसने रणाङ्गणमें अक्रूरको छोड़कर कृतवर्माके ऊपर उसी प्रकार शक्तिसे प्रहार किया, जैसे स्वामी कार्तिकेयने तारकासुरको शक्तिसे चोट पहुँचायी थी। वह शक्ति कृतवर्माके शरीरका भेदन करके धरतीमें घुस गयी। हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण कृतवर्मा भूमिपर गिर पड़ा॥ ४२—४४॥

राजेन्द्र! तब युयुधानने युद्धमें क्रोधपूर्वक शकुनिको परास्त करके रथद्वारा कर्णके ऊपर चढ़ाई की। उन्होंने आते ही अपने शरासनसे दस सायक छोड़े। उन सायकोंको अपने ऊपर आया देख कर्णने उनपर अपने सायकोंद्वारा प्रहार किया॥ ४५-४६॥

संग्रामभूमिमें उन दोनोंके बाण परस्पर रगड़ उठे और चिनगारियाँ बरसाते हुए अलातचक्रकी भाँति आकाशमें घूमने लगे। पृथ्वीनाथ! तब युयुधानने क्रोध करके कर्णके कवचपर काकपक्षयुक्त तीखे बाण मारे। राजन्! वे बाण कर्णके कवचपर न लगकर उसी तरह पृथ्वीपर गिर गये, जैसे पापी स्वर्गमें न जाकर नरकमें ही गिरते हैं॥ ४७—४९॥

युयुधान बड़े विस्मयमें पड़ गये और कर्णने हँसकर युद्धस्थलमें नाना प्रकारके शस्त्रोंसे योजित बाणोंद्वारा उन्हें रथहीन कर दिया॥ ५०॥

दुःशासनं बलिश्चैव कृत्वा युद्धे विमूर्च्छितम्।
आययौ संयुगे कर्णं रथेनानलवर्चसा॥ ५१

यह देख बलिने युद्धस्थलमें दुःशासनको मूर्च्छित करके अग्नितुल्य तेजस्वी रथके द्वारा कर्णपर आक्रमण किया॥ ५१॥

आगतं बलिनं दृष्ट्वा कर्णो भास्करनन्दनः।
पवनास्त्रेण बाणेन तं चिक्षेप सवाहनम्॥ ५२

पपात योजने सोऽपि साम्बस्तत्रागमत्पुनः।
अन्धकारं शरैः कुर्वन् कौरवान् मारयन् रुषा॥ ५३

भास्करनन्दन कर्णने बलिको आया देख पवनास्त्रयुक्त बाणसे उन्हें रथसहित दूर फेंक दिया। बली एक योजन दूर जा गिरे। इतनेमें ही साम्ब रोषपूर्वक कौरवोंको मारते और बाणोंद्वारा अन्धकार प्रकट करते हुए फिर वहाँ आ पहुँचे॥ ५२-५३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे यदुकुरुसंग्रामवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यादवों और कौरवोंके संग्रामका वर्णन' नामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

कौरवोंकी पराजय और उनका भगवान् श्रीकृष्णसे मिलकर भेंटसहित अश्वको लौटा देना

श्रीगर्ग उवाच

तदैव वृष्णयः सर्वे भोजवृष्ण्यन्धकादयः।
माथुराः शूरसेनाद्याः समुत्तीर्य यमस्वसाम्॥ १

रजोभिश्च नभो व्याप्तं कुर्वन्तश्च महीतलम्।
चालयन्तश्च बलिनो महासङ्ग्रामकर्कशाः॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपेश्वर! उसी समय भोज, वृष्णि और अन्धक आदि समस्त यादव तथा मथुरा और शूरसेन-प्रदेशके महासंग्रामकर्कश एवं बलवान् योद्धा यमुनाजीको पार करके पैरोंकी धूलिसे आकाशको व्याप्त और पृथ्वीको कम्पित करते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ १-२॥

विलोकयन्तस्तुरगं सर्वतस्ते महाबलाः।
आजग्मुश्चानिरुद्धाद्याः श्रीकृष्णाद्या नृपेश्वर॥ ३

वृष्णयस्तत्र युद्धस्य महाघोषं भयङ्करम्।
शरासनानां टङ्कारं शतघ्नीनां रवं तथा॥ ४

शूराणां गर्जनं चैव शस्त्राणां चट्चटं तथा।
कोलाहलं च हाकारं श्रुत्वा ते विस्मयं ययुः॥ ५

नृपेश्वर! घोड़ेको सब ओर देखते और खोजते हुए महाबलवान् श्रीकृष्ण आदि और अनिरुद्ध आदि महावीर भी आ गये। वृष्णिवंशियोंने दूरसे ही वहाँ युद्धका भयंकर महाघोष, कोदण्डोंकी टंकार, शतघ्नियोंकी गूँजती हुई आवाज, शूरोंकी सिंहगर्जना, शस्त्रोंके परस्पर टकरानेके चट-चट शब्द, कोलाहल और हाहाकार सुना। सुनकर वे बड़े ही विस्मित हुए॥ ३—५॥

मत्वा ते युद्धमासीद्वै यादवानां च कौरवैः।
शङ्किता अनिरुद्धाद्याः कृष्णाद्या आययुर्द्रुतम्॥ ६

श्रीकृष्णमागतं दृष्ट्वानिरुद्धाद्यैः समन्वितम्।
ससैन्यं च सहायार्थं नेमुः साम्बादयो नृप॥ ७

जब उन्हें मालूम हुआ कि यादवोंका कौरवोंके साथ घोर युद्ध छिड़ गया है तो अनिष्टकी शङ्का मनमें लिये अनिरुद्ध और श्रीकृष्ण आदि यदुकुलशिरोमणि महापुरुष बड़े वेगसे वहाँ आये। नरेश्वर! 'अनिरुद्ध आदिके साथ हमारी सहायता करनेके लिये सेनासहित श्रीकृष्ण आ पहुँचे हैं', यह देखकर साम्ब आदिने उनको प्रणाम किया॥ ६-७॥

कृष्णे समागते नेदुर्भेर्यः शङ्खाश्च गोमुखाः।
पुष्पवर्षं जयारावं देवाश्चक्रुश्च यादवाः॥ ८

दृष्ट्वानिरुद्धं प्रधने समागतं
ह्यक्षौहिणीभिः शतभिः समन्वितम्।
प्रचालयन्तं वसुधां महाबलं
विदुद्रुवुस्ते तु भयाच्च कौरवाः॥ ९

प्रलयाब्धिसमं सैन्यमन्धकानां विलोक्य च।
भीताश्च दुद्रुवुर्वैश्या गेहे गेहे कृतार्गलाः॥ १०

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या वृषलाः स्त्रीजनास्तथा।
दुर्योधनं शपन्तश्च रुरुदुर्निर्गता गृहात्॥ ११

ततो विहाय मूर्च्छां वै मृधे दुःशासनाग्रजः।
सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ यदुसैन्यं ददर्श ह॥ १२

दृष्ट्वा भयङ्करां सेनां यादवानां सुयोधनः।
स्वपुरं शङ्कितो भूत्वा पद्भ्यां भीतस्त्वरं ययौ॥ १३

कर्णभीष्मकृपद्रोणभूरिदुर्योधनादयः।
सभायां धृतराष्ट्रं वै नत्वा सर्वमवर्णयन्॥ १४

स्वानां पराजयं श्रुत्वा यादवानां जयं तथा।
कृष्णस्यागमनं चैव नृपो विदुरमब्रवीत्॥ १५

धृतराष्ट्र उवाच

अक्षौहिणीशतयुते वासुदेवे समागते।
कुपितेऽद्य वयं वीर करिष्यामश्च किं वद॥ १६

नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य विदुरोऽब्रवीत्।

विदुर उवाच

पुरा रामेण चैकेन कुपितेन गजाह्वयम्॥ १७

विकर्षितं च गङ्गायां तस्य भ्राता हि चागतः।
हृत्कञ्जकोशाद्देवक्यां जातो यः स हरिर्नृप॥ १८

श्रीकृष्णके पधारनेपर रणभेरियाँ बजने लगीं, शङ्ख और गोमुखोंके शब्द गूँज उठे, आकाशमें स्थित देवता फूलोंकी वर्षा तथा भूतलपर विद्यमान यादव जय-जयकार करने लगे॥ ८॥

समराङ्गणमें सौ अक्षौहिणी सेनाके साथ भूतलको कम्पित करते हुए महाबली अनिरुद्ध आ पहुँचे हैं— यह देख कौरव योद्धा भयसे भागने लगे। प्रलयकालके समुद्रकी भाँति उमड़ती हुई अन्धकवंशियोंकी उस विशाल वाहिनीको देखकर वैश्यलोग डरके मारे भाग गये। घर-घरमें अर्गला लग गयी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्रीसमुदाय दुर्योधनको कोसते और गाली देते हुए घरसे निकल गये तथा रोदन करने लगे॥ ९—११॥

तदनन्तर मूर्च्छा छोड़कर दुःशासनका बड़ा भाई दुर्योधन तत्काल सोकर उठे हुएके समान जाग उठा। उस समय यादव सेनापर उसकी दृष्टि पड़ी। यादवोंकी वह विशाल सेना देखते ही दुर्योधन आशङ्कित हो गया और डरके मारे शीघ्रतापूर्वक पैदल ही अपने नगरमें चला गया॥ १२-१३॥

कर्ण, भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, भूरि और दुर्योधन आदिने सभाभवनमें जाकर धृतराष्ट्रको नमस्कार करके सारा हाल कह सुनाया। अपने पक्षकी पराजय, यादवोंकी विजय तथा श्रीकृष्णका शुभागमन सुनकर राजाने विदुरसे पूछा— ॥ १४-१५॥

धृतराष्ट्र बोले—वीर! सौ अक्षौहिणी सेना लेकर क्रोधसे भरे हुए वासुदेव श्रीकृष्ण यहाँ चढ़ आये हैं। ऐसी दशामें हमलोग क्या करें? यह बताओ॥ १६॥

महाराज धृतराष्ट्रकी यह बात सुनकर विदुर ठहाका मारकर हँस पड़े और बोले— ॥ १६ १/२ ॥

विदुरने कहा—महाराज! पहले तो अकेले बलरामजी ही कुपित होकर आये थे, जिन्होंने हस्तिनापुरीको हलसे खींचकर गङ्गाकी ओर झुका दिया। अब उन्हींके भाई आ पहुँचे हैं, जिन्होंने देवकीके हृदय-कमल-कोषसे अवतार ग्रहण किया है। वे श्रीकृष्ण साक्षात् श्रीहरि हैं॥ १७-१८॥

येन वै संयुगे राजन् कंसाद्याः शकुनादयः।
मारिता बहवो दैत्या निर्जिताश्च नृपाः सुराः॥ १९

तस्माद्युद्धस्य समयो नास्ति राजन् विलोकय।
कौरवैः श्यामकर्णं तु कृष्णाय दातुमर्हसि॥ २०

माभूत्कुरूणां वृष्णीनां कलहो नाशकारकः।
एवं राजा बोधितस्तु विदुरेणानुजेन वै॥ २१

उवाच कौरवान् प्राज्ञो देशकालोचितं वचः।

धृतराष्ट्र उवाच

गत्वा कृष्णस्य निकटे तुरगं दातुमर्हथ॥ २२

सम्मुखे देवदेवस्य युद्धं कर्तुं च नार्हथ।
यादवानां सहायार्थमागतं कुपितं हरिम्॥ २३

यूयं प्रसन्नं कुरुत गत्वा तन्निकटं शनैः।
कौरवेन्द्रस्य वचनं कौरवास्ते निशम्य च॥ २४

विविधानुपचारांश्च गन्धाक्षतयुतान् किल।
गृहीत्वा दिव्यवस्त्राणि रत्नानि विविधानि च॥ २५

वदन्तः पुण्यनामानि रामकेशवयोर्मुदा।
पद्भिर्विनिर्ययुः सर्वे कृष्णं द्रष्टुं भयान्विताः॥ २६

आगतान् कौरवान् दृष्ट्वा यादवाः क्रोधपूरिताः।
नानाशस्त्राणि जगृहुस्तत्र युद्धाय वेगतः॥ २७

ऊचुस्तान् कौरवाः सर्वे वयं युद्धाय नागताः।
करिष्यामश्च कृष्णस्य दर्शनं दुःखनाशनम्॥ २८

इति तेषां वचः श्रुत्वा यादवा विस्मयं गताः।
कृष्णाय कथयामासुः कौरवाणां विचेष्टितम्॥ २९

ततः कृष्णस्य वचसा कौरवान् यदुसत्तमाः।
आह्वयामासुस्ते प्रीता निःशस्त्रानागतान्नृप॥ ३०

आहूतास्ते तु हरिणा गत्वा श्रीकृष्णसन्निधौ।
लज्जयावाङ्मुखाः सर्वे प्रणम्योचुः पृथक्पृथक्॥ ३१

राजन्! जिन्होंने युद्धमें कंस और शकुनि आदि बहुत-से दैत्योंको मार गिराया तथा अनेकानेक नरेशों एवं देवताओंको भी परास्त किया है। इसलिये महाराज! देखिये, हमारे लिये यह युद्धका समय नहीं है। आप कौरवोंद्वारा श्यामकर्ण अश्व श्रीकृष्णको लौटा दीजिये। इससे कौरवों और यादवोंका विनाशकारी युद्ध नहीं होगा॥ १९—२०½॥

अपने भाई विदुरके इस प्रकार समझानेपर बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने कौरवोंसे यह देशकालोचित बात कही—॥ २१½॥

धृतराष्ट्र बोले—तुमलोग श्रीकृष्णके निकट जाकर घोड़ा लौटा दो। देवाधिदेव श्रीहरिके सामने युद्ध करना तुम्हारे बलबूतेके बाहर है। श्रीहरि यादवोंकी सहायताके लिये कुपित होकर आये हैं, तुम धीरेसे उनके निकट जाकर उन्हें प्रसन्न करो॥ २२—२३½॥

कौरवेन्द्रका ऐसा आदेश सुनकर समस्त कौरव भयभीत हो गये। वे गन्ध, अक्षतसहित दिव्य वस्त्र और नाना प्रकारके रत्न आदि विविध उपचार लेकर बलराम और श्रीकृष्णके पवित्र नामोंका कीर्तन करते हुए सब-के-सब श्रीकृष्णके दर्शनार्थ पैदल ही गये॥ २४—२६॥

कौरवोंको आया देख यादव क्रोधसे भर गये और उन्होंने शीघ्र ही युद्धके लिये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र ले लिये। तब समस्त कौरवोंने उनसे कहा—हमलोग युद्धके लिये नहीं आये हैं। हम भगवान् श्रीकृष्णका शुभ दर्शन करेंगे, जो समस्त दुःखोंका नाश करनेवाला है॥ २७-२८॥

उनकी यह बात सुनकर यादवोंको आश्चर्य हुआ। उन्होंने कौरवोंकी वह सारी चेष्टा भगवान् श्रीकृष्णको बतायी। नरेश्वर! तब श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर उन श्रेष्ठ यादव वीरोंने निहत्थे आये हुए कौरवोंको प्रेमपूर्वक बुलाया। श्रीकृष्णके बुलानेपर वे उनके पास गये। उन सबके मुख लज्जासे नीचेको झुके हुए थे। उन्होंने पृथक्-पृथक् प्रणाम करके कहा—॥ २९—३१॥

पूर्वं द्रोण उवाचाथ कृष्ण भद्र जगत्पते।
रक्ष मां कौरवान् रक्ष मायया तव मोहितान्॥ ३२

सबसे पहले आचार्य द्रोण बोले—जगदीश्वर श्रीकृष्ण! भद्र! मेरी रक्षा कीजिये। आपकी मायासे मोहित हुए इन कौरवोंको भी बचाइये॥ ३२॥

कृपाचार्य उवाच

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ॥ ३३

कृपाचार्य बोले—मधुसूदन! कैटभनाशन! लोकनाथ! मेरे जन्मका यही फल है, यही हमारी प्रार्थनीय वस्तु है और यही मुझपर आपका अनुग्रह है कि आप मुझे अपने भृत्यके भृत्यके परिचारकके दासके—दासके दासका—दास मानकर इसी रूपमें याद रखें॥ ३३॥

कर्ण उवाच

भक्तस्यार्थे धनं क्षीणं स्वदारगतयौवनम्।
स्वामिकार्ये गताः प्राणा अन्ते तिष्ठतु माधव॥ ३४

कर्णने कहा—माधव! मेरा धन अपने भक्तके लिये क्षीण हो, अर्थात् उन्हींके काम आये। मेरा यौवन अपनी ही पत्नीके उपयोगमें आये तथा मेरे प्राण अपने स्वामीके कार्यमें ही चले जायँ और अन्तमें आप मेरे लिये प्राप्तव्य वस्तुके रूपमें शेष रहें॥ ३४॥

भूरिरुवाच

याचामहे वरद किञ्चिदनन्यलभ्यं
नाथ प्रसीद सुमुखी यदि दिव्यदृष्टिः।
अस्माभिरञ्जलिरयं विवशैर्निबद्ध
एषैव मे भवतु देव भवान्तरेऽपि॥ ३५

भूरि बोले—वरद! नाथ! हम आपसे कोई ऐसी वस्तु माँग रहे हैं जो दूसरोंसे नहीं मिल सकती। यदि आपकी मुझपर सुमुखी दिव्य दृष्टि है तो वही दीजिये। देव! हमने आज विवश होकर आपके सामने यह अञ्जलि बाँधी है। जन्मान्तरमें भी मेरी यह अञ्जलि आपके सामने इसी प्रकार बँधी रहे॥ ३५॥

दुर्योधन उवाच

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-
र्जानामि पापं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥ ३६

यन्त्रस्य गुणदोषेण क्षम्यतां मधुसूदन।
अहं यन्त्रो भवान् यन्त्री मम दोषो न दीयताम्॥ ३७

दुर्योधनने कहा—मैं धर्मको जानता हूँ, किंतु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं पापको भी समझता हूँ, किंतु उससे निवृत्त नहीं हो पाता हूँ। कोई देवता मेरे हृदयमें बैठकर मुझे जिस काममें लगाता है, मैं वही काम करता हूँ। मधुसूदन! यन्त्रके गुण-दोषसे प्रभावित न होकर मुझे क्षमा कीजिये। मैं यन्त्र हूँ और आप यन्त्री हैं (गुण-दोषका उत्तरदायी यन्त्री ही होता है, यन्त्र नहीं।), अतः आप मुझे दोष न दीजियेगा॥ ३६-३७॥

भीष्म उवाच

रागान्धगोपीजनचुम्बिताभ्यां
योगीन्द्रभोगीन्द्रनिषेविताभ्याम्।
आताम्रपङ्केरुहकोमलाभ्यां
चाभ्यां पदाभ्यामयमञ्जलिर्मे॥ ३८

भीष्म बोले—जिन्हें गोपियोंने रागान्ध होकर चूमा है, योगीन्द्र और भोगीन्द्र (शेषनाग) जिनका मनसे सेवन करते हैं तथा जो कुछ-कुछ लाल कमलके समान कोमल हैं, उन्हीं आपके इन चरणोंके लिये मेरी यह अञ्जलि जुड़ी हुई है॥ ३८॥

विदुर उवाच

आस्तेति विक्रयकृतां सुकृतानि तानि
ये ब्रह्म बालमिव तत्परिपालयन्ति।
यद्दैत्यदेवमुनिभिर्मनसाप्यगम्यं
यन्नेति नेति च वदन्नहि वेद वेदः॥ ३९

विदुरने कहा—जो लोग छोटे बालककी भाँति ब्रह्मका परिपालन करते हैं, अर्थात् जैसे माता-पिता बच्चेकी सदा सँभाल रखते हैं, उसी तरह जो निरन्तर ब्रह्म-चिन्तनमें लगे रहते हैं, उनके शुभाशुभ कर्म वैसे ही हैं, जैसे बेचनेवालोंकी वस्तुएँ। तात्पर्य यह है कि जैसे बिकी हुई वस्तुपर विक्रेताका स्वत्व नहीं होता, उसी प्रकार अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मपर ब्रह्मनिष्ठ पुरुष अहंता-ममताका भाव नहीं रखते हैं। (अतः उनके वे कर्म बन्धन-कारक नहीं होते हैं।) ब्रह्म कैसा है? इसके उत्तरमें इतना ही कहा जा सकता है कि वह दैत्य, देवता और मुनियोंके लिये मनसे भी अगम्य है। वेद 'नेति-नेति' कहकर उसका वर्णन करता है। किंतु उसको जान नहीं पाता। (प्रभो! वह ब्रह्म आप ही हैं)॥ ३९॥

श्रीगर्ग उवाच

एवं सम्प्रार्थितः कृष्णः कौरवैः शरणागतैः।
प्रीतः प्रत्याह तान् राजन् मेघनिर्ह्रादया गिरा॥ ४०

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! शरणमें आये हुए कौरवोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे बोले—॥ ४०॥

श्रीकृष्ण उवाच

आर्याः श्रृणुत मद्वाक्यमहमागतवान् यतः।
युद्धं वारयितुं चात्र नारदेन प्रणोदितः॥ ४१

श्रीकृष्णने कहा—आर्यपुरुषो! मेरी बात सुनिये। मैं नारदजीसे प्रेरित होकर यहाँ युद्ध रोकनेके लिये ही आया हूँ—॥ ४१॥

न मन्यन्ते ममाज्ञां वै मत्पुत्राश्च निरङ्कुशाः।
दीर्घाणां च प्रकुर्वन्ति ह्यपराधं च दूषणम्॥ ४२

मेरे पुत्र निरङ्कुश (स्वच्छन्द) हो गये हैं, अतः मेरी आज्ञा नहीं मानते हैं। ये बड़े-बड़े लोगोंका अपराध कर बैठते हैं, जो बड़ा भारी दोष है॥ ४२॥

यूयं धन्याश्च मान्याश्च मिलनार्थं समागताः।
मत्पुत्रैश्च कृतं यद्वै तत्सर्वं क्षन्तुमर्हथ॥ ४३

उग्रसेनहयं वीराः कृपया च विमुच्यताम्।
पालनार्थं तु तस्यापि यूयं गच्छत गच्छत॥ ४४

आपलोग धन्य और माननीय हैं कि हमसे मिलनेके लिये आये हैं। मेरे पुत्रोंने जो कुछ किया है, वह सब आपलोग क्षमा कर दें। वीरो! उग्रसेनका घोड़ा आपलोग कृपापूर्वक छोड़ दें और इसकी रक्षा करनेके लिये आपलोग भी चलें, अवश्य चलें॥ ४३-४४॥

यादवाः कौरवा मित्राः कलहं तु परस्परम्।
प्रकर्तुं नैव चार्हन्ति पूर्वप्रेम विलोक्य च॥ ४५

यादव और कौरव तो मित्र हैं। पहलेसे चले आते हुए प्रेम-सम्बन्धको दृष्टिमें रखकर इन्हें आपसमें कलह नहीं करना चाहिये॥ ४५॥

एवं ते कृष्णदेवेन मिष्टवाक्यैश्च तोषिताः।
तुरगं च ददुः प्रीताः पारिबर्हेण संयुतम्॥ ४६

दत्वा तुरङ्गमं सर्वे कौरवाः खिन्नमानसाः।
स्वपुरं विविशू राजन् भीष्मो गन्तुं मनो दधे॥ ४७

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने जब मीठे वचनोंद्वारा संतोष प्रदान किया तब कौरवोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ बहुमूल्य भेंट सामग्रीसहित अश्वको लौटा दिया। राजन्! घोड़ा लौटाकर अन्य सब कौरव तो मन-ही-मन खेदका अनुभव करते हुए अपने नगरमें चले गये। परंतु भीष्मजीने यादव सेनाके साथ अश्वकी रक्षाके लिये जानेका विचार किया॥ ४६-४७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे हस्तिनापुरविजयो नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'हस्तिनापुरविजय' नामक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

यादवोंका द्वैतवनमें राजा युधिष्ठिरसे मिलकर घोड़ेके पीछे-पीछे अन्यान्य देशोंमें जाना तथा अश्वका कौन्तलपुरमें प्रवेश

श्रीगर्ग उवाच

अथ कृष्णस्तु भगवान् यादवानां च पालनम्।
कृत्वा मिलित्वा प्रययौ रथेनापि कुशस्थलीम्॥ १

कृष्णे गतेऽनिरुद्धस्तु हयं सम्पूज्य यत्नतः।
बन्धनान्मोचयामास विजयार्थे नृपेश्वर॥ २

श्रीगर्गजी कहते हैं—नृपेश्वर! तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण यादवोंकी रक्षा करके सबसे मिल-जुलकर रथके द्वारा कुशस्थलीपुरीको चल दिये। उनके चले जानेपर अनिरुद्धने अश्वका यत्नपूर्वक पूजन किया और विजय-यात्राके लिये पुनः उसे बन्धनमुक्त कर दिया॥ १-२॥

मुक्तस्तुरङ्गः प्रययौ देशान् देशान् विलोकयन्।
पृष्ठतस्तस्य राजेन्द्र त्वरं जग्मुश्च वृष्णयः॥ ३

दुर्योधनं जितं श्रुत्वा भूपास्तु तं तुरङ्गमम्।
प्राप्तं न जगृहू राष्ट्रे कृष्णस्य बलिनो भयात्॥ ४

छूटनेपर वह घोड़ा अनेकानेक देशोंको देखता हुआ तीव्र गतिसे आगे बढ़ा। राजेन्द्र! उसके पीछे वृष्णिवंशी यादव भी वेगपूर्वक चले। दुर्योधनकी पराजय सुनकर दूसरे-दूसरे भूपाल महाबली श्रीकृष्णके भयसे अपने राज्यमें आनेपर भी उस घोड़ेको पकड़ न सके॥ ३-४॥

अथाव्रजत्तुरङ्गोऽयं शृण्वन् पश्यन्नितस्ततः।
सम्प्राप्तोऽभूद्द्वैतवने यत्र राजा युधिष्ठिरः॥ ५

भ्रातृभिर्भार्यया सार्धं वनवासं करोति हि।
तस्मिन् वने भीमसेनो वनद्विपगणैः सह॥ ६

नित्यं करोति क्रीडां वै बालः क्रीडनकैरिव।
ददर्श तुरगं तत्र तं वनं गह्वरं महत्॥ ७

तदनन्तर यज्ञका वह घोड़ा इधर-उधर देखता-सुनता हुआ द्वैतवनमें जा पहुँचा, जहाँ राजा युधिष्ठिर भाइयों और पत्नीके साथ वनवास करते थे। उस द्वैतवनमें भीमसेन प्रतिदिन हाथियोंके समुदायोंके साथ उसी तरह क्रीडा करते थे, जैसे बालक खिलौनोंसे खेलता है। उन्होंने वहाँ उस घोड़ेको देखा। वह वन बड़ा ही विशाल और घना था॥ ५—७॥

न्यग्रोधाश्वत्थबिल्वैश्च खर्जूरपनसैस्तथा।
वकुलैः सप्तपर्णैश्च तिन्दुकैस्तिलकैरपि॥ ८

शालैस्तालैस्तमालैश्च बदरीलोध्रपाटलैः।
बब्बूरशाल्मलीवेणुपलाशादिभिरन्वितम्॥ ९

बरगद, पीपल, बेल, खजूर, कटहल, मौलसिरी, छितवन, तिन्दुक, तिलक, साल, ताल, तमाल, बेर, लोध, पाटल, बबूल, सेमर, बाँस और पलाश आदि वृक्षोंसे भरा था॥ ८-९॥

आगतं घोटकं दृष्ट्वा दुर्जरे निर्जने वने।
वराहमृगशार्दूलवृकसर्पगणैर्युते ॥ १०

झिल्लीझङ्कारसंयुक्ते गृध्रचिल्लादिभिर्युते।
वृते तथा भुजङ्गैश्च वल्मीकादर्धनिःसृतैः ॥ ११

शृगालमर्कमहिषगवयादिभिरन्विते ।
नीलगोगजभल्लूकमार्जारैर्वनमानुषैः ॥ १२

युक्ते भयङ्करे राजन् भीमो भीमपराक्रमः।
अश्वं जग्राह केशेषु सपत्रं नृप लीलया॥ १३

केनोत्सृष्टं वदन् वाक्यं स्वाश्रमं प्रययौ शनैः।
तदैव चानिरुद्धाद्या आजग्मुः सर्वयादवाः॥ १४

पश्यन्तो यज्ञगन्धर्वमरण्ये नृप कृच्छ्रतः।
दृष्ट्वा गृहीतं तुरगमूचुस्ते तु परस्परम्॥ १५

अहो वनचरो ह्येष दृश्यते भीमसेनवत्।
बृहद्बाहुर्महापुष्टो महोच्चो रक्तलोचनः॥ १६

महागौरः कृच्छ्रधरो धूलिलिप्तो गदाधरः।
इत्थं ब्रुवन्तस्ते सर्वे पुनरूचुश्च तं जनम्॥ १७

कस्त्वं श्रीराजराजन्यहयं नीत्वा क्व यास्यसि।
तस्मान्मोचय शीघ्रं त्वां न चेद्धन्मो शिलीमुखैः॥ १८

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य हयं बद्ध्वा च गह्वरे।
जगाम स्वगदां गुर्वीं भारायुतसमन्विताम्॥ १९

तया जघान सङ्ग्रामे यादवान् भीमविक्रमः।
निपेतुर्वृष्णयस्तत्र भीमेन निहताश्च ये॥ २०

उस दुर्जर-निर्जन वनमें, जहाँ सूअर, हिरण, व्याघ्र, भेड़िये और सर्प रहते थे, जहाँ झींगुरोंकी झीनी झनकार गूँजती रहती थी, जिसमें गीध और चील आदि पक्षी रहा करते थे, बाँबीसे आधा शरीर निकाले हुए अगणित सर्प भरे थे। सियार, वानर, भैंसे, गवय आदि जिस वनकी शोभा बढ़ाते थे तथा राजन्! नीलगाय, हाथी, भालू, बिलाव और वनमानुष आदिके रहनेसे जो बड़ा भयंकर प्रतीत होता था, उस वनमें उस घोड़ेको आया हुआ देख भयानक पराक्रमी भीमसेनने उसका केश पकड़ लिया। नरेश्वर! भालपत्रसहित उस अश्वको अनायास ही काबूमें करके 'किसने इसे छोड़ा है'—ऐसी बात कहते हुए वे उसे लेकर धीरे-धीरे आश्रमकी ओर चले॥ १०—१३१/२ ॥

राजन्! उसी समय उस वनमें यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका बड़े कष्टसे अवलोकन करते हुए अनिरुद्ध आदि समस्त यादव वहाँ आ पहुँचे। घोड़ेको पकड़ा गया देख वे आपसमें कहने लगे—'अहो! यह वनेचर तो भीमसेनके समान दिखायी देता है॥ १४—१५१/२ ॥

बड़ी-बड़ी बाँहें, अत्यन्त पुष्ट शरीर, बहुत ऊँचा कद, लाल आँखें और महान् गौरवर्ण—सब उन्हींके समान हैं। यह कठिनाइयोंको झेलनेमें समर्थ है। इसके सारे अङ्गमें धूल लिपटी हुई है तथा इसने भीमकी ही भाँति गदा भी ले रखी है।' परस्पर ऐसी बातें कहते हुए वे सब लोग फिर उस वनेचरसे बोले— ॥ १६-१७ ॥

'अरे भाई! तुम कौन हो? राजाधिराजके इस अश्वको लेकर कहाँ जाओगे? अतः शीघ्र इसे छोड़ दो, नहीं तो हमलोग तुम्हें बाणोंसे मारेंगे'॥ १८॥

उनकी यह बात सुनकर भीमने घने जंगलमें घोड़ेको बाँध दिया और दस हजार भार लोहेकी बनी हुई अपनी भारी गदा लेकर वे उनके सामने गये। पराक्रमी भीमने संग्राममें यादव-सैनिकोंको गदासे मारना आरम्भ किया। भीमकी चोट जिनपर पड़ गयी, वे सब यादव वहीं ढेर हो गये॥ १९-२० ॥

अनिरुद्धस्ततः क्रुद्धो दृष्ट्वा तस्य पराक्रमम्।
सहस्रवारणान् मत्तान्नोदयामास शत्रवे॥ २१

ततः सदिग्गजैः सोऽपि भूभृच्छिखरसन्निभैः।
पातितो धरणीपृष्ठे विषाणैरवपीड्यते॥ २२

ततो भीमः समुत्थाय क्रोधात्प्रस्फुरिताधरः।
मत्तान् गजाञ्जघानाथ गदया वज्रकल्पया॥ २३

काँश्चिच्चिक्षेप गगने काँश्चिद्भूमौ व्यपोथयत्।
काँश्चिन्ममर्द पादाभ्यां गजान् काँश्चिद् गजेषु च॥ २४

ततश्च दुद्रुवुः सर्वे वारणा भयविह्वलाः।
तदाजगाम सङ्क्रुद्धो गदस्तत्र गदाधरः॥ २५

गत्वा तत्सन्निधौ सोऽपि ज्ञात्वा भीमं तु शङ्कितः।
उवाच नत्वा हे वीर कस्त्वं वद ममाग्रतः॥ २६

सोऽब्रवीद्भीमसेनोऽहं जित्वा द्यूतेन हे गद।
दुर्योधनेन रिपुणा पुरान्निष्कासिता वयम्॥ २७

अत्र स्थानाद्योजने तु भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः।
करोति वनवासं वै ह्यहो दैवस्य मायया॥ २८

वने वर्षा गताश्चाष्टौ चत्वारस्त्ववशेषिताः।
वर्षमात्रं करिष्यामोऽज्ञातवासं वयं पुनः॥ २९

अर्जुनस्तु गतः स्वर्गमाहूतो वासवेन च।
अहं न जाने तु कदागमिष्यति महीतले॥ ३०

गद त्वं तु यदूनां च कुशलं कथयस्व नः।
तुरगः कस्य भूपस्य किमर्थं यूयमागताः॥ ३१

इत्युक्त्वा भीमसेनस्तु रुरोदाश्रुपरिप्लुतः।
दुर्योधनकृतान् क्लेशान् संस्मरन् दुःखपूरितः॥ ३२

इति श्रुत्वा स तद्वाक्यं तं समाश्वास्य दुःखितः।
भीमाय कथयामास वार्तां सर्वां च विस्तरात्॥ ३३

उस वनेचरका पराक्रम देख अनिरुद्ध कुपित हो उठे। उन्होंने अपने उस शत्रुके ऊपर एक हजार मतवाले हाथी हाँक दिये॥ २१॥

वे हाथी क्या थे, दिग्गज थे और पर्वतके शिखरके समान दिखायी देते थे। उन्होंने भीमसेनको पृथ्वीपर पटक दिया और दाँतोंसे दबाना आरम्भ किया। यह देख भीमसेन सहसा उठकर खड़े हो गये और क्रोधसे उनके ओठ फड़कने लगे। उन्होंने अपनी वज्र-सरीखी गदासे उन मतवाले हाथियोंको पीटना आरम्भ किया॥ २२-२३॥

किन्हींको उठाकर आकाशमें फेंक दिया और कितनोंको वहीं पृथ्वीपर दे मारा। कुछ हाथियोंको उन्होंने पैरोंसे मसल दिया और कितनोंको उठाकर दूसरे हाथियोंपर फेंक दिया। फिर तो सारे हाथी भयसे व्याकुल हो भागने लगे। तब अत्यन्त कुपित हो गदाधारी गद वहाँ आ पहुँचे। निकट जाकर उन्होंने भीमसेनको पहचान लिया। फिर भी मनमें शङ्का बनी रही। अतः उन्होंने नमस्कार करके पूछा—'हे वीर! तुम कौन हो? यह मेरे सामने ठीक-ठीक बताओ'॥ २४—२६॥

वे बोले—'हे गद! मैं भीमसेन हूँ। हमारे शत्रु दुर्योधनने हमें जुएमें जीतकर नगरसे निकाल दिया। यहाँसे एक योजनकी दूरीपर भाइयोंसहित युधिष्ठिर वनवास करते हैं। देखो न, यह भगवान्‌की कैसी विचित्र माया है!॥ २७-२८॥

वनमें निवास करते हुए आठ वर्ष बीत गये हैं। अभी चार वर्ष शेष हैं। इसके बाद हमें पुनः एक वर्षतक अज्ञातवास करना होगा। अर्जुन इन्द्रके बुलानेसे स्वर्गलोकमें गये हैं। मैं नहीं जानता कि वे इस भूतलपर कबतक लौटेंगे॥ २९-३०॥

गद! तुम हमें यादवोंका कुशल-समाचार बताओ। यह किस राजाका घोड़ा है? और तुमलोग किसलिये यहाँ आये हो?' ऐसा कहकर भीमसेन दुर्योधनके दिये हुए क्लेशोंको याद करके दुखी हो अश्रुधारा बहाते हुए रोने लगे॥ ३१-३२॥

उनकी ये बातें सुनकर गद भी दुखी हो गये और

श्रुत्वा भीमस्तु मुदितोऽनिरुद्धाद्यैर्यदूत्तमैः।
समन्वितस्तु प्रययौ धर्मपुत्रस्य सन्निधौ॥ ३४

आगतान् यादवाञ्छ्रुत्वाजातशत्रुः प्रहर्षितः।
आनेतुं निर्ययौ राजन्नकुलाद्यैः समन्वितः॥ ३५

नेमुस्तं यादवाः सर्वे सोऽपि दत्वा वराशिषम्।
निवासयामास मुदा सर्वान् द्वैतवने नृप॥ ३६

आगतेभ्यश्च सर्वेभ्यो यथायोग्यं यथारुचि।
प्रददौ भोजनं राजा स्थाल्या भास्करदत्तया॥ ३७

उषित्वा रजनीमेकां प्रभाते कार्ष्णिनन्दनः।
क्रतोर्निमन्त्रणं दत्वा पाण्डवेभ्यः परन्तप॥ ३८

यादवैः सहितः शीघ्रं मोचयित्वा तुरङ्गमम्।
ययौ सारस्वतान् देशान् तुरगस्य च पृष्ठतः॥ ३९

अशूराँश्च बहून् देशांस्त्यक्त्वा तुरगराट् ततः।
स्वेच्छया विचरन् राजन् ययौ कौन्तलकं पुरम्॥ ४०

तस्मिन् पुरे महाराज चन्द्रहासश्च वैष्णवः।
पालितो यः कुलिन्देन केरलाधिपतेः सुतः॥ ४१

कृष्णदेवप्रसादेन राज्यं तत्र करोति हि।
कथास्तस्यापि भक्तस्य राजञ्जैमिनिभारते॥ ४२

अर्जुनाग्रे विस्तराद्वै नारदेन तु वर्णिताः।
तस्मिन् पुरे नराः सर्वे कृष्णभक्ता वसन्ति हि॥ ४३

ब्रह्मण्याः पुण्यकर्तारः परदारपराङ्मुखाः।
स्वदारनिरताः सर्वे कृष्णपूजनतत्पराः॥ ४४

गोविन्दगाथां शृण्वन्ति पुराणानि तथैव च।
जपन्ति तत्र नामानि राधामाधवयोर्मुदा॥ ४५

भीमको आश्वासन देकर उन्होंने सारी बातें विस्तारपूर्वक कह सुनायीं। वह सब सुनकर भीमसेनको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अनिरुद्ध आदि श्रेष्ठ यादव-वीरोंको साथ लेकर धर्मनन्दन युधिष्ठिरके समीप गये॥ ३३-३४॥

राजन्! यादवोंका आगमन सुनकर अजातशत्रु युधिष्ठिरको बड़ा हर्ष हुआ और वे नकुल आदिके साथ उनकी अगवानीके लिये आश्रमसे बाहर निकले। नरेश्वर! समस्त यादवोंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और युधिष्ठिरने उन्हें उत्तम आशीर्वाद दे बड़ी प्रसन्नताके साथ उन सबको द्वैतवनमें ठहराया॥ ३५-३६॥

राजा युधिष्ठिरने सूर्यदेवकी दी हुई बटलोईके प्रभावसे वहाँ आये हुए सब अतिथियोंको यथायोग्य उनकी रुचिके अनुरूप भोजन दिया॥ ३७॥

परंतप! वहाँ एक रात रहकर प्रातःकाल प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध पाण्डवोंको यज्ञका निमन्त्रण दे, घोड़ेको मुक्त कराकर यादवोंके साथ वहाँसे शीघ्र चल दिये और घोड़ेके पीछे-पीछे सारस्वत-देशोंमें गये॥ ३८-३९॥

राजन्! बहुत-से वीर-विहीन देशोंको छोड़कर वह अश्वराज इच्छानुसार विचरता हुआ कौन्तलपुरमें गया। महाराज! उस नगरमें 'चन्द्रहास' नामक वैष्णव राजा राज्य करता था, जो केरल-देशके राजाका पुत्र था और कुलिन्दने उसका पालन किया था॥ ४०-४१॥

वह भगवान् श्रीकृष्णके प्रसादसे वहाँ राज्य करता था। राजन्! भक्त चन्द्रहासकी कथा 'जैमिनी महाभारत' में वर्णित है। नारदजीने अर्जुनके सामने चन्द्रहासके जीवनवृत्तका विस्तारपूर्वक वर्णन किया था। उस कौन्तलपुरमें सब लोग श्रीकृष्णके भक्त होकर रहते हैं॥ ४२-४३॥

वे सब-के-सब ब्राह्मणभक्त, पुण्यपरायण, परस्त्रीपराङ्मुख, अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखनेवाले तथा सतत श्रीकृष्णकी समाराधनामें संलग्न रहनेवाले थे। वे गोविन्दकी गाथाएँ और पुराण-कथा सुनते तथा बड़े आनन्दसे श्रीराधा और माधवके नाम जपते थे॥ ४४-४५॥

तुलसीमालिकाभिश्च ह्यूर्ध्वपुण्ड्रधरा द्विजाः।
गोपीचन्दनकाश्मीरैर्हरिचन्दनचर्चिताः ॥ ४६

श्यामबिन्दुधराः सर्वे श्रीधराः केचिदेव हि।
तिलकैर्द्वादशैर्युक्ताश्चाष्टमुद्राधराः पराः॥ ४७

गृहस्थाः शीतलां मुद्रां गोपीचन्दनसंयुताम्।
नित्यं विप्रादयो वर्णाः प्रभाते धारयन्ति हि॥ ४८

अग्निसंस्करणार्थं तु विरक्ताः केचिदेव हि।
तप्तमुद्रां धारयन्ति केचित्संन्यासिनस्तथा॥ ४९

तस्मिन् पुरे हयः पश्यन् प्राप्तोऽभूद्राजमन्दिरे।
यत्र राजति राजा तु चन्द्रहासश्च चन्द्रवत्॥ ५०

वहाँके द्विज ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते, तुलसीकी मालाएँ पहनते और गोपीचन्दन, केसर तथा हरिचन्दनसे चर्चित रहते थे। वे सब ललाटमें श्याम-बिन्दु धारण करते, उनमेंसे कोई-ही-कोई ऐसे थे, जो श्रीतिलक लगाते थे। वहाँके सभी वैष्णव बारह तिलक और आठ मुद्राएँ धारण करते थे॥ ४६-४७॥

ब्राह्मण आदि वर्णके गृहस्थलोग प्रतिदिन प्रातःकाल गोपीचन्दनसे युक्त शीतल मुद्रा धारण करते थे। कोई-कोई विरक्त और संन्यासी साधु अग्निसंस्कारके लिये तप्तमुद्रा धारण करते थे। उस नगरमें इधर-उधर देखता हुआ वह घोड़ा राजभवनमें जा पहुँचा, जहाँ राजा चन्द्रहास चन्द्रमाके समान शोभा पाता था॥ ४८—५०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे कौन्तलपुरगमनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'अश्वका कौन्तलपुरमें गमन' नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ अध्याय

श्यामकर्ण अश्वका कौन्तलपुरमें जाना और भक्तराज चन्द्रहासका बहुत-सी भेंट-सामग्रीके साथ अश्वको अनिरुद्धकी सेवामें अर्पित करना और वहाँसे उन सबका प्रस्थान

श्रीगर्ग उवाच

समागतं यज्ञहयं विलोक्य
श्रीचन्द्रहासो व्रजचन्द्रदासः।
सद्यो गृहीत्वा किल तस्य पत्रं
स वाचयामास तदैव हृष्टः॥ १

तत्पत्रं वाचयित्वाह महाभागवतो नृप।
अहो पश्यामि नेत्राभ्यां पौत्रं श्रीपरमात्मनः॥ २

केन पुण्येन पूर्वेण कृष्णतुल्यं यदूत्तमम्।
मया न दृष्टः श्रीकृष्णो मायामानुषविग्रहः॥ ३

सहितः कार्ष्णिजेनाहं तस्माद्गच्छामि द्वारकाम्।
तत्र पश्यामि श्रीकृष्णं बलं प्रद्युम्नमेव च॥ ४

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! वहाँ आये हुए घोड़ेको देखकर व्रजचन्द्र श्रीकृष्णके दास राजा चन्द्रहासने उसे तत्काल पकड़ लिया और प्रसन्नतापूर्वक उसके भालपत्रको पढ़ा। नरेश्वर! उस पत्रको पढ़कर उस महाभगवद्भक्त नरेशने कहा—अहो! बड़े सौभाग्यकी बात है कि मैं आज भगवान् श्रीकृष्णके पौत्रको अपने नेत्रोंसे देखूँगा॥ १-२॥

पता नहीं, पूर्वकालमें मेरे द्वारा कौन-सा ऐसा पुण्य बन गया है, जिससे मुझे श्रीकृष्णतुल्य यदुकुलतिलक अनिरुद्धके दर्शनका अवसर मिल रहा है। मैंने आजतक मायासे मानव-शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन नहीं किया है। इसलिये मैं प्रद्युम्नकुमारके साथ द्वारका जाऊँगा और वहाँ श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न

उग्रसेनं महाराजं श्रीकृष्णेनापि पूजितम्।
इत्युक्त्वा निर्ययौ राजा ह्यनिरुद्धं विलोकितुम्॥ ५

गृहीत्वा चोपचारांश्च गन्धपुष्पाक्षतादिकान्।
दिव्यवस्त्राणि रत्नानि गृहीत्वा तुरगं च सः॥ ६

सर्वैः पुरजनैः सार्धं मालातिलकशोभितैः।
गीतवादित्रघोषैश्च पद्भ्यां राजा जगाम ह॥ ७

आगतं तं नृपं दृष्ट्वा नागरैः सहितं नृप।
अनिरुद्धो मुदा युक्तो मन्त्रिणं चेदमब्रवीत्॥ ८

अनिरुद्ध उवाच

कोऽयं राजा महामन्त्रिन् सर्वैः पुरजनैः सह।
आगतो मिलनार्थं वा तस्य वार्तां वदस्व नः॥ ९

उद्धव उवाच

नृपोऽयं चन्द्रहासाख्यो केरलाधिपतेः सुतः।
मृतयोर्मातृपित्रोश्च कुलिन्देनानुपालितः॥ १०

आबाल्यात्कृष्णचन्द्रस्य भक्तस्तेनापि रक्षितः।
दुष्टबुद्धेः प्रधानस्य सुतां यः परिणीतवान्॥ ११

यस्मै कुन्तलको राजा राज्यं दत्वा वनं ययौ।
तस्याख्यानं द्वारकायां मया कृष्णमुखाच्छ्रुतम्॥ १२

यस्मै स्वदर्शनं दातुं श्रीकृष्णोऽत्रागमिष्यति।
उद्धवस्य वचः श्रुत्वा विस्मितोऽभूद्यदूत्तमः॥ १३

गत्वानिरुद्धनिकटे चन्द्रहासो जनैर्वृतः।
श्यामकर्णं ददौ प्रीतो धनानि बहुशस्तथा॥ १४

गजानामर्धलक्षं च रथानां लक्षमेव च।
तुरगाणामेककोटिं मुद्राणां हि सहस्त्रकम्॥ १५

गवयानां सहस्त्रं च शिबिकानां सहस्त्रकम्।
धेनूनां दशलक्षं च शिञ्जानामयुतं तथा॥ १६

एककोटिं सुवर्णानां रौप्याणां च चतुर्गुणम्।
लक्षमाभरणानां च माधवाय ददौ नृपः॥ १७

तथा उन महाराज उग्रसेनका भी दर्शन करूँगा, जो भगवान् श्रीकृष्णसे भी पूजित हैं॥ ३—४१/२॥

—ऐसा कहकर राजा चन्द्रहास गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि उपचार, दिव्य वस्त्र, दिव्य रत्न और उस घोड़ेको भी साथ लेकर माला-तिलकसे सुशोभित समस्त पुरजनोंसहित अनिरुद्धका दर्शन करनेके लिये नगरसे बाहर निकला। गीत और बाजोंकी मङ्गलमयी ध्वनिके साथ राजा पैदल ही गया॥ ५—७॥

नरेश्वर! नागरिकोंसहित राजाको आया देख अनिरुद्धको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे मन्त्री उद्धवजीसे पूछने लगे— ॥ ८॥

अनिरुद्धने कहा—महामन्त्रिन्! यह कौन राजा है, जो समस्त पुरवासियोंके साथ हमसे मिलनेके लिये आया है? आप इसका वृत्तान्त हमें बतायें॥ ९॥

उद्धव बोले—[प्रद्युम्नकुमार!] यह केरलके राजाका पुत्र 'चन्द्रहास' नामक नरेश है। इसके माता-पिता बचपनमें ही परलोकवासी हो गये; अतः कुलिन्दने इसका पालन किया है॥ १०॥

यह बाल्यावस्थासे ही भगवान् श्रीकृष्णका भक्त है और उन्होंने ही इसकी रक्षा की है। दुष्टबुद्धिवाले मन्त्रीकी पुत्रीके साथ इसने विवाह किया है। कुन्तल-देशके राजा इसे अपना राज्य देकर वनमें चले गये थे। उस राजाका वृत्तान्त मैंने द्वारकामें श्रीकृष्णके ही मुखसे सुना था। उसे दर्शन देनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं यहाँ पधारेंगे॥ ११—१२१/२॥

उद्धवकी यह बात सुनकर यादवप्रवर अनिरुद्ध चकित हो गये। समस्त पुरवासियोंसे घिरे हुए राजा चन्द्रहासने अनिरुद्धके निकट जाकर श्यामकर्ण घोड़ा दिया और प्रसन्नतापूर्वक बहुत धन-राशि भी भेंट की। पचास हजार हाथी, एक लाख रथ, एक करोड़ घोड़े, एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ, एक हजार गवय, एक हजार शिबिकाएँ, दस लाख धेनु, दस हजार प्रत्यञ्चा, एक करोड़भर सोना, चार करोड़भर चाँदी और एक लाख आभूषण—उस राजाने माधव अनिरुद्धको भेंटमें दिये॥ १३—१७॥

चन्द्रहास उवाच

नमोऽनिरुद्धाय सुरोत्तमाय
श्रीकृष्णपौत्राय जनेश्वराय।
प्रद्युम्नपुत्राय यदूत्तमाय
देवाय पूर्णाय नमः पराय॥ १८

चन्द्रहासने कहा—जो समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ, श्रीकृष्णपौत्र, लोकेश्वर, प्रद्युम्नपुत्र, यदुकुलतिलक तथा पूर्ण परमात्मदेव हैं, उन अनिरुद्धको बारंबार मेरा नमस्कार है॥ १८॥

इति भक्तवचः श्रुत्वा प्रसन्नो मदनात्मजः।
संश्लाघ्य प्रददौ तस्मै प्रदीप्तां रत्नमालिकाम्॥ १९

चन्द्रहासस्तु राजेन्द्र राज्ये कृत्वा तु मन्त्रिणम्।
स्वपुराद्यादवैः सार्धं गन्तुं चालं मनोऽकरोत्॥ २०

उषित्वा तत्पुरे सर्वे ह्येकरात्रं यदूत्तमाः।
प्रातःकाले ययू राजंश्चन्द्रहासेन संयुताः॥ २१

भक्तका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुए प्रद्युम्नकुमारने उसकी प्रशंसा करके उसे एक देदीप्यमान रत्नमाला अर्पित की। राजेन्द्र! चन्द्रहासने अपने राज्यपर मन्त्रीको नियुक्त करके अपने नगरसे यादवोंके साथ जानेका विचार किया। वे समस्त श्रेष्ठ यादव उस नगरमें एक रात रहकर प्रातःकाल चन्द्रहासके साथ वहाँसे प्रस्थित हो गये॥ १९—२१॥

जगाम ह्यग्रतस्तेभ्यो तुरगः पत्रशोभितः।
ततः सप्तवतीं दृष्ट्वा ह्यावर्तशतसङ्कुलाम्॥ २२

तटं तरङ्गैर्निघ्नन्तीं दीर्घवेगां दुरत्ययाम्।
नौकाभिः संयुतां दृष्ट्वा वीरः प्रद्युम्ननन्दनः॥ २३

अक्षौहिणीशतयुतः पारं गन्तुं मनो दधे।

भालपत्रसे सुशोभित घोड़ा उनके आगे-आगे चला और सैकड़ों आवर्तों (भँवरों)-से व्याप्त 'सप्तवती' के पास जा पहुँचा। वह नदी अपनी तरङ्गोंसे तटभूमिको तोड़ रही थी। उसका वेग बहुत प्रबल था और उसे पार करना सबके लिये कठिन था। उसके किनारे बहुत-सी नौकाएँ बँधी थीं। उस नदीका दर्शन करके वीर प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धने सौ अक्षौहिणी सेनाके साथ उसके पार जानेका विचार किया॥ २२—२३½॥

स पूर्वं गजमारुह्य साम्बाद्यैः परिवेष्टितः॥ २४

नावं त्यक्त्वा नृपश्रेष्ठ प्रविवेश नदीजले।
प्रथमं सलिलं तस्यां समलं च बभूव ह॥ २५

ततः पङ्कद्रवा भूमिश्चित्रमेतद्बभूव ह।
हसन्तो यादवाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः॥ २६

नृपश्रेष्ठ! अनिरुद्ध पहले साम्ब आदिसे घिरकर हाथीपर सवार हुए और नाव छोड़कर उन्होंने नदीके जलमें प्रवेश किया। पहले तो उसका जल उस सेनासे मथित होकर गँदला हो गया। फिर वह नदी पङ्किल भूमि-मात्र रह गयी। यह विचित्र घटना घटित हुई। समस्त यादव हँसते हुए बड़े विस्मयमें पड़ गये॥ २४—२६॥

अथ व्रजंस्तुरङ्गस्तु स जगाम शनैः शनैः।
नारायणसरो यत्र मध्ये सिन्धुसमुद्रयोः॥ २७

पपौ तीर्थजलं तत्र तुरगश्च तृषातुरः।
ततस्तत्राययुः सर्वेऽनिरुद्धाद्या यदूत्तमाः॥ २८

धर्मद्वेषकरान्नीचान् म्लेच्छाञ्जित्वा मृधाङ्गणे।
दृष्ट्वा तुरङ्गमं तत्र स्नानं चक्रुः सरोवरे॥ २९

तदनन्तर वह घोड़ा धीरे-धीरे आगे बढ़ा और जाते-जाते जहाँ सिन्धु नदी एवं समुद्रके मध्यमें नारायण-सरोवर है, वहाँ पहुँच गया। वह प्यासससे व्याकुल हो रहा था। उसने उस तीर्थका जल पिया। इतनेमें ही अनिरुद्ध आदि समस्त यादव वहाँ आ गये। उन्हें मार्गमें धर्मद्वेषी नीच म्लेच्छोंसे लोहा लेना पड़ा और उन्हें परास्त करके वे वहाँ आये थे। वहाँ घोड़ेको देखकर उन सबने नारायण-सरोवरमें स्नान किया॥ २७—२९॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे नारायणसरोगमनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'नारायणसरोगमन' नामक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

उद्धवकी सलाहसे समस्त यादवोंका द्वारकापुरीकी ओर प्रस्थान तथा अनिरुद्धकी प्रेरणासे उद्धवका पहले द्वारकापुरीमें पहुँचकर यात्राका वृत्तान्त सुनाना

श्रीगर्ग उवाच

पश्यन्नृपान् महावीरानुग्रसेनतुरङ्गमः।
विचरन् भारते वर्षे देशानन्याञ्जगाम ह॥ १

एवं विचरतस्तस्य हयस्य च विशां पते।
आगतः फाल्गुनो मासः सर्वेषां गृहदर्शिकः॥ २

आगतं फाल्गुनं दृष्ट्वा चानिरुद्धस्तु शङ्कितः।
उवाच मन्त्रिप्रवरमुद्धवं बुद्धिसत्तमम्॥ ३

अनिरुद्ध उवाच

चैत्रे श्रीयादवेन्द्रस्तु मन्त्रिन् यज्ञं करिष्यति।
वयं तु किं करिष्यामो दिवसा बहवो न हि॥ ४

भूमौ तुरङ्गहर्तारो नृपाः के केऽवशेषिताः।
तेषां च वद नामानि मह्यं शुश्रूषवे त्वरम्॥ ५

उद्धव उवाच

न सन्ति भूतले शूरा गगने सन्ति वा हरे।
तस्माद्यदुपुरीं गच्छ स्वर्णद्वारां च द्वारकाम्॥ ६

इति तस्य वचः श्रुत्वा ह्यनिरुद्धः प्रहर्षितः।
तस्यापि वचनं राजन्नश्वाग्रे पुनरब्रवीत्॥ ७

एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य सर्वज्ञाता तुरङ्गमः।
प्रययौ द्वारकां शीघ्रं किष्किन्धां हनुमानिव॥ ८

तस्यापि पृष्ठतः शूरा दुद्रुवुस्ते तुरङ्गमैः।
वायुवेगैर्मनोवेगैर्भानुसाम्बादयो नृप॥ ९

गृहीत्वा तुरगं सर्वे बद्ध्वा तं स्वर्णदामभिः।
सेनायामन्तरे कृत्वा शङ्किताः स्वपुरीं ययुः॥ १०

श्रीगर्गजी कहते हैं—[महाराज!] राजा उग्रसेनका घोड़ा बड़े-बड़े वीर नरेशोंका दर्शन करता तथा भारतवर्षमें विचरता हुआ अन्यान्य देशोंमें गया॥ १॥

प्रजानाथ! इस तरह भ्रमण करते हुए उस अश्वको बहुत काल व्यतीत हो गया और फाल्गुनका महीना आ पहुँचा, जो सबको घरकी याद दिलानेवाला है। फाल्गुनमास आया हुआ देख अनिरुद्ध शङ्कित हो गये और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ मन्त्रिप्रवर उद्धवसे बोले—॥ २-३॥

अनिरुद्धने कहा—मन्त्रिप्रवर! यादवराज उग्रसेन चैत्रमें ही यज्ञ करेंगे। हमलोग क्या करें? अब अधिक दिन शेष नहीं रह गये हैं। इस भूतलपर अश्वका अपहरण करनेवाले राजा कितने शेष रह गये हैं, मैं सुनना चाहता हूँ। आप शीघ्र उनके नाम बतायें॥ ४-५॥

उद्धव बोले—हरे! अब भूतलपर या आकाशमें अश्वका अपहरण करनेवाले शूरवीर शेष नहीं रह गये हैं। इसलिये अब तुम सोनेके हारोंसे अलंकृत द्वारवाली यादवोंकी द्वारकापुरीको चलो॥ ६॥

उनकी यह बात सुनकर अनिरुद्धको बड़ा हर्ष हुआ। राजन्! अनिरुद्धने अश्वके आगे भी उद्धवजीकी कही हुई बात दोहरायी। इस प्रकार अनिरुद्धका कथन सुनकर वह सर्वज्ञ अश्व उसी तरह शीघ्रतापूर्वक द्वारकाको चल दिया, जैसे लङ्कासे लौटे हुए हनुमान्‌जी बड़े वेगसे किष्किन्धापुरीमें आये थे॥ ७-८॥

नरेश्वर! उसके पीछे-पीछे भानु और साम्ब आदि शूरवीर वायु तथा मनके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा दौड़ने लगे। उन सब लोगोंने अश्वके अपहरणकी आशङ्कासे उसको पकड़कर सोनेकी रस्सियोंसे बाँध दिया और उसे सेनाके बीचमें करके अपनी पुरीकी ओर प्रस्थान किया॥ ९-१०॥

गीतवादित्रघोषैश्च नादयन्तश्च दुन्दुभीन्।
चालयन्तश्च पृथिवीं त्रासयन्तः खलान् रिपून्॥ ११

व्रजन्तं यादवैः सार्धं तुरगं वीक्ष्य नारदः।
दूतवत्कलहार्थाय प्रययौ शक्रसन्निधिम्॥ १२

तस्याग्रे कथयामास वाजिवार्तां स विस्तरात्।
श्रुत्वा शक्रस्तु राजेन्द्र हयं हर्तुं मनो दधे॥ १३

आययौ भूतले शीघ्रं द्रष्टुं भूत्वा तिरोहितः।
अहो विष्णोर्मायया च सर्वे मुह्यन्ति देवताः॥ १४

कुबेरब्रह्मशक्राद्या भूजनानां तु का कथा।
स गत्वा तत्र वृष्णीनां सेनां सर्वां ददर्श ह॥ १५

प्रलयाब्धिसमां रौद्रां वृतां शूरैश्च कोटिभिः।
यादवानां महासेनामुद्भटां वीक्ष्य शङ्कितः॥ १६

ययौ कृष्णभयाद्राजञ्छीघ्रं शक्रोऽमरावतीम्।
कृष्णदेवस्य कृपया युद्धस्याशां विसृज्य च॥ १७

अथ व्रजन्ती चतुरङ्गिणीभिः
सेनानिरुद्धस्य महात्मनश्च।
गजै रथैर्वै तुरगैर्नरैश्च
रेजे मघोनः पृतनेव स्वर्गे॥ १८

गजाः सर्वे पृथग्भूताः पृथग्भूता रथास्तथा।
पृथग्भूतास्तुरङ्गाश्च पृथग्भूताः पदातयः॥ १९

अनुजग्मुर्द्वारकां ते हर्षिताः कृष्णपोतकाः।
जम्बूद्वीपस्य जेतारो लोकद्वयजिगीषवः॥ २०

अग्रे वाहं पुरस्कृत्य वादित्रैर्विविधैरपि।
गीतनृत्यादिभी राजन् संयुक्तास्ते यदूत्तमाः॥ २१

गाजे-बाजेकी आवाजके साथ दुन्दुभियाँ बजवाते, पृथ्वीको कम्पित करते तथा दुष्ट शत्रुओंके मनमें त्रास भरते हुए यादवगण आगे बढ़ रहे थे। यादवोंके साथ जाते हुए उस घोड़ेको देखकर नारदजी नया कलह या विवाद खड़ा करनेके लिये दूतकी भाँति इन्द्रके पास गये॥ ११-१२॥

उनके सामने घोड़ेका वृत्तान्त उन्होंने विस्तारपूर्वक कहा। राजेन्द्र! वह वृत्तान्त सुनकर इन्द्रने उस घोड़ेको चुरा ले जानेका विचार किया। वे शीघ्र ही अदृश्य होकर अश्वको देखनेके लिये भूतलपर आये। अहो! भगवान् विष्णुकी मायासे सब देवता भी मोहित रहते हैं॥ १३-१४॥

कुबेर, ब्रह्मा और इन्द्र आदि भी जब भगवान्की मायासे मोहित हो जाते हैं, तब भूतलके साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? इन्द्रने वहाँ जाकर वृष्णिवंशियोंकी सम्पूर्ण सेनाका निरीक्षण किया। वह सेना प्रलयकालके समुद्रकी भाँति भयंकर तथा करोड़ों शूरवीरोंसे भरी हुई थी। यादवोंकी उस उद्भट एवं विशाल सेनाको देखकर इन्द्र डर गये॥ १५-१६॥

राजन्! श्रीकृष्णके भयसे देवेन्द्र अविलम्ब अमरावतीपुरीको लौट गये। यह भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा थी, जिससे उन्होंने युद्धकी आशा छोड़कर चुपचाप बैठ रहनेकी नीति अपनायी॥ १७॥

अनेक चतुरङ्गिणी टुकड़ियोंसे युक्त हो यात्रा करती हुई महात्मा अनिरुद्धकी वह विशाल सेना हाथियों, रथों, घोड़ों और पैदल वीरोंके द्वारा स्वर्गलोकमें इन्द्रकी सेनाके समान सुशोभित हो रही थी। सम्पूर्ण हाथी अलग हो गये। रथ, घोड़े और पैदल भी अलग-अलग होकर चलने लगे॥ १८-१९॥

श्रीकृष्णके पुत्रगण हर्षोल्लाससे भरकर द्वारकाके पथका अनुसरण कर रहे थे। वे जम्बूद्वीपके विजेता थे और लोक-परलोक—दोनोंपर विजय पाना चाहते थे। राजन्! वे श्रेष्ठ यादव अग्रगामी वाहन—श्यामकर्ण अश्वको आगे करके भाँति-भाँतिके बाजे बजाते तथा नाच-गान आदि उत्सव करते हुए जा रहे थे॥ २०-२१॥

अनिरुद्धस्तु साम्बाद्यैरिन्द्रनीलादिभिर्नृप।
चन्द्रहासादिभिर्भूपैः सहस्त्रैरभिभूषितः॥ २२

साम्बस्यानुमतेनापि चानर्ते सम्प्रविश्य च।
उद्धवं प्रेषयामास द्वारकां योजनद्वयात्॥ २३

एवं प्रणोदितः सोऽपि नत्वा रुक्मवतीसुतम्।
शिबिकां शीघ्रमारुह्य हर्षितः प्रययौ पुरीम्॥ २४

यत्रास्ते ह्युग्रसेनस्तु मुनिभिः परिवारितः।
श्रेष्ठे पिण्डारकक्षेत्रे सभामण्डपभूषिते॥ २५

वासुदेवादयो यत्र रामकृष्णादयो नृप।
प्रद्युम्नाद्याश्च बलिनो यज्ञं रक्षन्ति नित्यशः॥ २६

गत्वा नृपसभां तत्र यादवेन्द्रं प्रणम्य च।
वसुदेवं बलं कृष्णं प्रद्युम्नादीन् यदूत्तमान्॥ २७

सर्वान्नत्वा यथायोग्यं तेषामग्रे स संस्थितः।
कथयामास वृत्तान्तं पृष्टस्तैर्हृष्टमानसैः॥ २८

उद्धव उवाच

आगतस्तव राजेन्द्र निर्विघ्नेन तुरङ्गमः।
आगताश्चानिरुद्धाद्याः कुशलेन यदूत्तमाः॥ २९

गोविन्दस्यापि कृपया चेन्द्रनीलः समागतः।
हेमाङ्गदः सुरूपा च ह्यागता मण्डलेश्वरी॥ ३०

निर्जितस्तु बको युद्धे भीषणेन समन्वितः।
बिन्दुश्चैवानुशाल्वश्च स्वपुराद्द्वौ समागतौ॥ ३१

उपद्वीपे पाञ्चजन्ये बल्वलो निर्जितोऽसुरैः।
तस्मिन् युद्धे महेशेन ह्यनिरुद्धसुनन्दनौ॥ ३२

निहतौ च रुषाढ्येन यादवाश्चैव मारिताः।
तत्र गत्वा त्वसौ कृष्णो जीवयामास यादवान्॥ ३३

तस्मात्कृष्णस्य कृपया वयं सर्वे समागताः।
निर्जिताः कौरवाः सर्वे भीष्मो ह्यत्र समागतः॥ ३४

नरेश्वर! साम्ब आदि श्रीकृष्णपुत्रों तथा इन्द्रनील एवं चन्द्रहास आदि सहस्रों भूपालोंसे विभूषित हो अनिरुद्धने आनर्तदेशमें प्रवेश करके साम्बकी अनुमतिसे उद्धवजीको द्वारका भेजा। अभी वह पुरी वहाँसे दो योजन दूर थी॥ २२-२३॥

उनके द्वारा इस प्रकार प्रेरित हो उद्धवजी उन रुक्मवतीकुमार अनिरुद्धको नमस्कार करके शीघ्र ही एक शिबिकापर आरूढ़ हुए और हर्षपूर्वक पुरीकी ओर चल दिये, जहाँ मुनियोंसे घिरे हुए महाराज उग्रसेन सभामण्डपसे भूषित श्रेष्ठ पिण्डारक क्षेत्रमें निवास करते थे॥ २४-२५॥

राजन्! जहाँ वसुदेव आदि, बलराम और श्रीकृष्ण आदि तथा बलवान् प्रद्युम्न आदि प्रतिदिन यज्ञकी रक्षा करते थे, वहाँ उद्धवजी राजसभामें गये॥ २६॥

उन्होंने यादवेन्द्र उग्रसेनको प्रणाम करके वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण तथा प्रद्युम्न आदि समस्त उत्तम यादवोंको यथायोग्य प्रणाम किया और उनके सामने खड़े हो गये। उन्हें देखकर सबका मन प्रसन्न हो गया। फिर उनके पूछनेपर उद्धवने सब वृत्तान्त बताया॥ २७-२८॥

उद्धव बोले—राजेन्द्र! आपका श्यामकर्ण अश्व निर्विघ्न लौट आया। अनिरुद्ध आदि श्रेष्ठ यादव भी कुशलपूर्वक आ गये हैं। गोविन्दकी कृपासे राजा इन्द्रनील और हेमाङ्गद आये हैं। स्त्रीराज्यकी साम्राज्ञी सुरूपा भी आ पहुँची है॥ २९-३०॥

भीषणसहित बक भी युद्धमें परास्त हुआ है। बिन्दु और अनुशाल्व—ये दो वीर अपने-अपने नगरसे पधारे हैं। 'पाञ्चजन्य' नामक उपद्वीपमें असुरोंसहित बल्वलको जीत लिया गया है। उस युद्धमें भगवान् शंकरने रुष्ट होकर अनिरुद्ध और सुनन्दनका वध कर दिया था तथा और भी बहुतसे यादव मार डाले थे; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ पहुँचकर समस्त यादवोंको जीवनदान दिया॥ ३१—३३॥

अतः यह ध्यान देनेयोग्य है कि श्रीकृष्णकी कृपासे ही हम सब लोग सकुशल लौटे हैं। समस्त कौरव परास्त हो गये और भीष्मजी हमारे साथ ही यहाँ पधारे हैं॥ ३४॥

दृष्टा द्वैतवनेऽस्माभिः पाण्डवा दुःखकर्शिताः।
व्रजे गोपगणाश्चैव कृष्णविक्षेपविह्वलाः॥ ३५

आबाल्यात्कृष्णभक्तस्तु चन्द्रहासः समागतः।
भीताश्च बहवो भूपा आगतास्ते भयात्तव॥ ३६

हमने द्वैतवनमें दुःखपीड़ित पाण्डवोंको देखा और व्रजमें श्रीकृष्णविरहसे व्याकुल गोपगणोंका भी दर्शन किया। जो बाल्यावस्थासे ही भगवान् श्रीकृष्णका भक्त है, वह राजा चन्द्रहास भी हमारे साथ यहाँ आया है। और भी बहुत-से भूपाल आपके भयसे यहाँ आये हैं॥ ३५-३६॥

श्रीगर्ग उवाच

इति कृष्णगुणाञ्छ्रुत्वा ह्युद्धवाद्यादवेश्वरः।
न किञ्चिदूचे प्रेम्णा तु मग्नश्चानन्दसागरे॥ ३७

मणिहारं ददौ तस्मै रत्नानि चाम्बराणि च।
शिबिकावारणरथहयादीनुद्धवाय सः॥ ३८

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! उद्धवजीके मुखसे इस प्रकार श्रीकृष्णके गुणोंका गान सुनकर यादवेश्वर उग्रसेन प्रेमसे विह्वल हो कुछ बोल न सके। वे आनन्दके महासागरमें मग्न हो गये। उन्होंने उद्धवको मणिमय हार दिया। रत्न, वस्त्र, शिबिका, हाथी, घोड़े और रथ भी दिये॥ ३७-३८॥

ततः कृष्णस्तु भगवाञ्छीघ्रमुत्थाय हर्षितः।
सख्या सार्धं सभायां च चकार परिरम्भणम्॥ ३९

उग्रसेन उवाचाथ गोविन्दं हर्षपूरितः।
आनेतुं चानिरुद्धं वै गच्छ श्रीकृष्ण यादवैः॥ ४०

तब भगवान् श्रीकृष्णने शीघ्र ही उठकर हर्षोल्लाससे पूरित हो भरी सभामें मित्र उद्धवसे मिलकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। इसके बाद हर्षसे भरे हुए उग्रसेनने गोविन्दसे कहा—'श्रीकृष्ण! तुम यादवोंके साथ अनिरुद्धको ले आनेके लिये जाओ'॥ ३९-४०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे उद्धवागमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें अश्वमेधखण्डके अन्तर्गत 'उद्धवका आगमन' नामक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ अध्याय

वसुदेव आदिके द्वारा अनिरुद्धकी अगवानी; सेना और अश्वसहित यादवोंका द्वारकापुरीमें लौटकर सबसे मिलना तथा श्रीकृष्ण और उग्रसेन आदिके द्वारा समागत नरेशोंका सत्कार

श्रीगर्ग उवाच

अथोग्रसेनवचनाद्वसुदेवादयो नृप।
नेतुं विनिर्ययुः सर्वे ह्यनिरुद्धं समागतम्॥ १

श्रीगर्गजी कहते हैं—नरेश्वर! तदनन्तर उग्रसेनके आदेशसे वसुदेव आदि समस्त श्रेष्ठ यादव विजय-यात्रासे लौटे हुए अनिरुद्धको लानेके लिये द्वारकापुरीसे निकले॥ १॥

गजै रथैस्तुरङ्गैश्च शिबिकाभिर्यदूत्तमाः।
श्रीकृष्णबलदेवाद्याः प्रद्युम्नाद्या नृपेश्वर॥ २

उद्धवाद्या गजस्थाश्च हयं द्रष्टुं विनिर्गताः।
देवकीप्रमुखा नार्यो मातरः कृष्णरामयोः॥ ३

शिबिकाभिर्विचित्राभिर्निर्ययुर्नृपसत्तम।
रुक्मिणीसत्यभामाद्या नार्यः कृष्णस्य एव हि॥ ४

वे हाथी, घोड़ों, रथों और शिबिकाओंपर बैठे थे। नृपेश्वर! उनके साथ बलदेव, श्रीकृष्ण आदि, प्रद्युम्न आदि तथा उद्धव आदि हाथीपर आरूढ़ हो श्यामकर्ण अश्वको देखनेके लिये निकले। नृपश्रेष्ठ! श्रीकृष्ण और बलरामकी माताएँ, देवकी आदि प्रमुख नारियाँ विचित्र शिबिकाओंपर बैठकर नगरसे निकलीं। भगवान् श्रीकृष्णकी जो रुक्मिणी और सत्यभामा

शिबिकाभिर्ययुः सर्वाः सहस्राणि च षोडश।
लाजानां मौक्तिकानां च कुसुमानां नृपेश्वर।
वर्षां कर्तुं ययुः शीघ्रं गजस्थाश्च कुमारिकाः॥ ५

कलशैर्जलहारिण्यो निर्ययुर्जलपूरितैः।
सौभाग्यवत्यो ब्राह्मण्यो गन्धपुष्पाक्षताङ्कुरैः॥ ६

वाराङ्गनाश्च रूपिण्यो नृत्यं कर्तुं विनिर्ययुः।
शोभिताः सर्वशृङ्गारैर्गायन्त्यश्च गुणान् हरेः॥ ७

शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण यादवाः।
वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य गर्गाद्यैर्मुनिभिर्युताः॥ ८

विलोकयन्तः स्वपुरीं पताकाभिश्च मण्डिताम्।
सिक्तमार्गां गन्धजलै रम्भातोरणशोभिताम्॥ ९

प्रदीप्तां मणिदीपैश्च वितानैर्विविधैरपि।
दिव्यनारीनरैर्युक्तां सुवर्णवसनैर्वृताम्॥ १०

पक्षिणां कलशब्देन धूम्रेणागुरुगन्धिना।
शोभितां कृष्णनगरीं शक्रस्येवामरावतीम्॥ ११

इत्थं विलोकयन्तस्ते प्राप्ताः शीघ्रं च यादवाः।
यत्रानिरुद्धः सहयो वर्तते सेनयावृतः॥ १२

तान् दृष्ट्वा चानिरुद्धस्तु स्वरथादवतीर्य च।
पुरस्कृत्य हयं चाग्रे नृपैः सार्धं समाययौ॥ १३

पूर्वं नत्वा कुलाचार्यं वसुदेवं बलं तथा।
श्रीकृष्णं पितरं चैव तेभ्यश्चाश्वं ददौ पुनः॥ १४

आदि पटरानियाँ तथा सोलह हजार अन्य रानियाँ थीं, वे सब-की-सब शिबिकाओंपर आरूढ़ हो उन लोगोंके साथ गयीं। नृपेश्वर! बहुत-सी कुमारियाँ हाथियोंपर बैठकर लावा, मोती और फूलोंकी वर्षा करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक गयीं॥ २—५॥

पनिहारिनें (पानी ढोनेवाली स्त्रियाँ) जलसे भरे हुए कलश लेकर निकलीं। सौभाग्यवती ब्राह्मणपत्नियाँ गन्ध, पुष्प, अक्षत और दूर्वाङ्कुर लेकर गयीं। रूपवती वाराङ्गनाएँ सब प्रकारके शृङ्गारोंसे सुशोभित हो श्रीहरिके गुणोंका गान करती हुईं नृत्य करनेके लिये निकलीं॥ ६-७॥

समस्त यादव शङ्खनाद, दुन्दुभियोंके शब्द और वेदमन्त्रोंके घोषके साथ एक गजराजको आगे करके गर्गाचार्य आदि मुनियोंसहित अपनी पुरीकी शोभा निहारते हुए गये। द्वारकापुरी ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत थी। उसकी सड़कोंपर सुगन्धित जलका छिड़काव किया गया था। पुरीका प्रत्येक भवन केलेके खम्भों और बन्दनवारोंसे शोभित था॥ ८-९॥

रत्नमय दीपों और भाँति-भाँतिके चँदोवोंसे द्वारकापुरी उद्दीप्त हो रही थी। वहाँकी दिव्य नारियाँ और दिव्य पुरुष सुनहरे रंगके पीताम्बर धारण किये नगरकी शोभा बढ़ाते थे। पक्षियोंके कलरव और अगुरुकी गन्धसे व्याप्त धूमजालसे श्रीकृष्णकी वह नगरी इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान सुशोभित थी॥ १०-११॥

इस तरह नगरीकी शोभा-सज्जाका अवलोकन करते हुए यादव शीघ्र उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ श्यामकर्ण अश्वसहित अनिरुद्ध सेनासे घिरे हुए विराजमान थे। उन गुरुजनोंको आये देख अनिरुद्ध अपने रथसे उतर गये और यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको आगे करके अन्यान्य नरेशोंके साथ पैदल ही चलने लगे॥ १२-१३॥

पहले उन्होंने यदुकुलके आचार्य गर्गमुनिको नमस्कार किया। तत्पश्चात् वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण और अपने पिता प्रद्युम्नको प्रणाम करके वह अश्व उन्हें अर्पित कर दिया॥ १४॥

शुभाशिषो ददुस्ते तु प्रीताः प्रेमपरिप्लुताः।
त्वया साधु कृतं वत्स सर्वाञ्जित्वा रिपून्नृपान्॥ १५

आनयामास तुरगं मध्ये संवत्सरस्य च।
इति तद्वचनं श्रुत्वानिरुद्धः प्राह मां पुनः॥ १६

कृपया तव विप्रेन्द्र मार्गे मार्गे मृधे मृधे।
बहुभिः शत्रुभिश्चाश्वो गृहीतोऽपि विमोचितः॥ १७

गुरोरनुग्रहेणैव सुखी भवति मानवः।
तस्माद्गुरुं च विधिना यथाशक्त्या प्रपूजयेत्॥ १८

भूपास्ततः समागत्य समीपे रामकृष्णयोः।
नेमुः पृथक्पृथक्सर्वे प्रीताः प्रेमपरिप्लुताः॥ १९

सर्वान् दृष्ट्वा नतान् भूपाञ्छ्रीकृष्णो बलसंयुतः।
चन्द्रहासं च गाङ्गेयं बिन्दुं चैवानुशाल्वकम्॥ २०

हेमाङ्गदं चेन्द्रनीलं परिरेभे हरिर्मुदा।
कृष्णभक्तात्परः कोऽपि तस्माद्भूमौ न विद्यते॥ २१

ततोऽनिरुद्धं जयिनं समागतं
गजे समारोप्य कुशस्थलीं ययौ।
शौरिः प्रसन्नः किल सर्वयादवैः
पुत्रैश्च पौत्रैर्मुदितैर्नृपेश्वर॥ २२

पुष्पाणां मकरन्दानां वर्षां चक्रुः सुरस्त्रियः।
लाजानां मौक्तिकानां च कुञ्जरस्थाः कुमारिकाः॥ २३

नृत्यवादित्रगीतेन ब्रह्मघोषेण शोभिताः।
पश्यन्तः सिक्तमार्गां तां पुरीं पिण्डारकं ययुः॥ २४

नृपाः सर्वे यदूनां च वैभवं देवदुर्लभम्।
विलोक्य वैभवं स्वं स्वं गर्हयन्ति च विस्मिताः॥ २५

यज्ञस्थलं ते ददृशुर्धूम्रेण घृतगन्धिना।
व्याप्तं ब्राह्मणघोषेण ह्यसिपत्रव्रतेन च॥ २६

निरीक्ष्य तत्र भूपालमुग्रसेनं यदूत्तमम्।
पुरन्दरसमं दान्तं पुष्टं गौरं स्फुरत्प्रभम्॥ २७

उन सब लोगोंने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्ण हृदयसे अनिरुद्धको शुभाशीर्वाद दिया और कहा—'वत्स! तुमने बड़ा अच्छा किया कि समस्त शत्रुनरेशोंको जीतकर यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको एक वर्षके भीतर ही यहाँ वापस ला दिया'। उन सबका यह वचन सुनकर अनिरुद्ध मेरी ओर देखते हुए बोले— ॥ १५-१६ ॥

'विप्रवर! आपकी कृपासे ही मार्ग-मार्गमें और प्रत्येक युद्धमें बहुत-से शत्रुओंद्वारा पकड़ा जानेपर भी यह अश्व उनसे छुड़ा लिया गया है। गुरुके अनुग्रहसे ही मनुष्य सुखी होता है। इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक गुरुदेवका पूजन करना चाहिये' ॥१७-१८॥

इसके बाद अन्य सब भूपाल बलराम और श्रीकृष्णके समीप आये तथा सब लोगोंने प्रसन्न एवं प्रेममग्न होकर अलग-अलग बारी-बारीसे उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उन समस्त भूपालोंको नतमस्तक देख बलरामसहित श्रीकृष्णने चन्द्रहास, भीष्म, बिन्दु, अनुशाल्व, हेमाङ्गद और इन्द्रनील आदि सबको बड़े हर्षके साथ हृदयसे लगाया। अतः श्रीकृष्णभक्तसे बढ़कर दूसरा कोई इस भूतलपर नहीं है॥ १९—२१ ॥

नृपेश्वर! तदनन्तर उस यात्रासे विजयी होकर लौटे हुए अनिरुद्धको हाथीपर बिठाकर वसुदेवजी समस्त यादवों तथा मुदित पुत्र-पौत्रोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक कुशस्थलीपुरीमें गये। उस समय देवाङ्गनाएँ उन सबके ऊपर फूलों और मकरन्दोंकी वर्षा करने लगीं तथा हाथियोंपर बैठी हुई कुमारियोंने खीलों और मोतियोंकी वृष्टि की॥ २२-२३ ॥

वे सब लोग नृत्य, वाद्य, गीत और वेदमन्त्रोंके घोषसे सुशोभित हो, जिसकी सड़कोंपर छिड़काव किया गया था, उस द्वारकापुरीकी शोभा निहारते हुए पिण्डारक क्षेत्रमें गये। सब राजा यादवोंके उस देवदुर्लभ वैभवको देखकर आश्चर्यचकित हो अपने-अपने वैभवकी निन्दा करने लगे॥ २४-२५ ॥

उन्होंने यज्ञस्थलको भी देखा, जो घीकी सुगन्धसे भरे धूमजाल तथा ब्राह्मणोंके मन्त्रघोषसे व्याप्त था। फिर वहाँ असिपत्रव्रतधारी यदुकुलतिलक महाराज उग्रसेनको भी उन्होंने देखा, जो इन्द्रके समान तेजस्वी, जितेन्द्रिय, हृष्ट-पुष्ट, गौरवर्ण और दीप्तिमान् थे॥ २६-२७॥

कुशासनस्थं सुभगं नियमे न्यस्तभूषणम्।
संयुक्तं मृगशृङ्गेण मृगचर्मणि भार्यया॥ २८

कुर्वन्तं पूजनं चाग्नेर्घृतगन्धाक्षतादिभिः।
मण्डपे मुनिभिर्युक्तं धूम्रेणारुणलोचनम्॥ २९

तं सर्वे चानिरुद्धाद्याः कृत्वाग्रे यज्ञघोटकम्।
वाहनेभ्यः समुत्तीर्य नेमुः प्रीताः पृथक्पृथक्॥ ३०

ततः श्रीयदुराजस्तु सर्वान् दृष्ट्वा नृपान् यदून्।
सर्वेषामादधे मानं यथायोग्यं यथाबलम्॥ ३१

अनिरुद्धस्ततो नत्वा शीघ्रं भूत्वा कृताञ्जलिः।
सर्वेषां शृण्वतां प्राह जम्बूद्वीपपतिं नृपम्॥ ३२

अनिरुद्ध उवाच

एनं पश्य महाराज इन्द्रनीलं नृपोत्तमम्।
पादयोः पतितं प्रेम्णा समुत्थापय देववत्॥ ३३

हेमाङ्गदं चानुशाल्वं बिन्दुं श्रीचन्द्रहासकम्।
एनं देवव्रतं पश्य चागतं तव सन्निधौ॥ ३४

मम रक्षाकरं पश्य साम्बं जाम्बवतीसुतम्।
रुद्रेण निहतं मां च पश्य कृष्णेन जीवितम्॥ ३५

तथा रुद्रहतं पश्य जीवितं च सुनन्दनम्।
अन्यान् पश्य यदून् सर्वान् कृष्णस्य कृपयागतान्॥ ३६

गृहाण यज्ञतुरगं निर्विघ्नेन समागतम्।
दत्तं युद्धाय निस्त्रिंशं तं गृहाण नमोऽस्तु ते॥ ३७

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य यदुराजः प्रहर्षितः।
संश्लाघ्य तं नृपांश्चैव यथायोग्याशिषं ददौ॥ ३८

वे कुशासनपर बैठे बड़े सुन्दर लग रहे थे। उन्होंने नियम-निर्वाहके लिये आभूषण उतार दिये थे। हाथमें मृगका शृङ्ग ले रखा था और अपनी रानीके साथ मृगछालापर ही वे विराजमान थे, जो उक्त कुशासनके ऊपर बिछा था। महाराज उग्रसेन घृत, गन्ध और अक्षत आदिसे यज्ञ-मण्डपमें अग्नि की पूजा कर रहे थे। उनके साथ ऋषि-मुनि बैठे थे और उनके नेत्र धुआँ लगनेके कारण लाल हो गये थे॥ २८-२९॥

अनिरुद्ध आदि यादवोंने वाहनोंसे उतरकर यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको आगे करके बड़ी प्रसन्नताके साथ महाराजको पृथक्-पृथक् प्रणाम किया॥ ३०॥

इसके बाद यादवराज श्रीउग्रसेनने उन समस्त नरेशों और यादवोंका अपनी शक्तिके अनुसार यथा-योग्य सम्मान किया। तत्पश्चात् अनिरुद्धने शीघ्रता-पूर्वक नमस्कार करके, दोनों हाथ जोड़कर सबके सुनते हुए उन जम्बूद्वीपके स्वामी महाराज उग्रसेनसे कहा—॥ ३१-३२॥

अनिरुद्ध बोले—महाराज! इनकी ओर देखिये। ये नरपतियोंमें श्रेष्ठ राजा इन्द्रनील बड़े प्रेमसे आपके चरणोंमें पड़े हैं; आप देवताकी भाँति इन्हें उठाइये। हेमाङ्गद, अनुशाल्व, बिन्दु, श्रीचन्द्रहास तथा ये देवव्रत भीष्मजी भी आपके समीप आये हैं; आप इनपर दृष्टिपात कीजिये। ये मेरे रक्षक जाम्बवतीनन्दन साम्ब पधारे हैं; इनकी ओर देखिये। श्रीरुद्रदेवने इनको और मुझको भी मार डाला था, किंतु परमात्मा श्रीकृष्णने हमें जीवनदान दिया॥ ३३—३५॥

इसी तरह रुद्रद्वारा मारे गये और श्रीकृष्ण-कृपासे जीवित हुए, इन सुनन्दनपर भी दृष्टिपात कीजिये और अन्य समस्त यादवोंको भी देखिये, जो श्रीकृष्ण-कृपासे ही यहाँ लौटकर आये हैं। निर्विघ्न लौटे हुए इस यज्ञके घोड़ेको ग्रहण कीजिये तथा आपने युद्धके लिये जो तलवार दी थी, उसको भी ले लीजिये। आपको नमस्कार है॥ ३६-३७॥

अनिरुद्धका यह वचन सुनकर यादवराज उग्रसेन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उनकी प्रशंसा करके अन्यान्य नरेशोंको भी यथायोग्य आशीर्वाद दिया॥ ३८॥

पूजयित्वा नृपान् सर्वांस्ततो भीष्ममुवाच ह।
एहि भीष्म मया सार्धं कुरु त्वं परिरम्भणम्॥ ३९

इत्युक्त्वा तं समुत्थाय परिरेभे यदूत्तमः।
ततस्ते दानमानाभ्यां पूजिता यदवो नृपाः॥ ४०

निवासं चक्रिरे प्रीता द्वारकायां गृहे गृहे।
ततो दृष्ट्वानिरुद्धं वै प्राप्तं साम्बादिभिर्नृप॥ ४१

देवकी रोहिणी चैव रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो वराः।
अन्याश्च रुक्मवत्याद्याः परिष्वज्य मुदं ययुः॥ ४२

सुरूपा रोचना ह्यूषा राजन्नेता मुदं गताः।
साम्बश्लाघां ततः श्रुत्वा सुयोधनसुता भृशम्॥ ४३

मुदं ययौ स्वनेत्राभ्यां मुञ्चन्ती हर्षजं जलम्।
बभूव मङ्गलं राजन् द्वारकायां गृहे गृहे।
ससैन्ये नृपशार्दूल ह्यनिरुद्धे समागते॥ ४४

फिर समस्त नरेशोंका पूजन करके वे देवव्रत भीष्मसे बोले—'भीष्मजी! आइये और मेरे साथ हृदय-से-हृदय लगाकर मिलिये।' यों कहकर यदुकुल-तिलक उग्रसेनने उठकर उनका गाढ़ आलिङ्गन किया। इसके बाद दान-मानसे सम्मानित हुए वे राजा तथा यादव बड़ी प्रसन्नताके साथ द्वारकापुरीके विभिन्न गृहोंमें निवास करने लगे॥ ३९—४०१/२॥

नरेश्वर! तदनन्तर अनिरुद्धको साम्ब आदिके साथ आया देख देवकी, रोहिणी, रुक्मिणी तथा रुक्मवती आदि पूजनीया स्त्रियोंने उन्हें हृदयसे लगाकर बड़े हर्षका अनुभव किया॥ ४१-४२॥

राजन्! सुरूपा, रोचना और ऊषा—इन सबको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। साम्बकी प्रशंसा सुनकर दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणा नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई अत्यन्त हर्षका अनुभव करने लगी। नृपश्रेष्ठ! सेनासहित अनिरुद्धके लौट आनेसे द्वारकाके घर-घरमें मङ्गलोत्सव मनाया जाने लगा॥ ४३-४४॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे द्वारकायां तुरगागमनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका द्वारकामें आगमन' नामक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ अध्याय

व्यासजीका मुनि-दम्पती तथा राज-दम्पतियोंको गोमतीका जल लानेके लिये आदेश देना; नारदजीका मोह और भगवान्‌द्वारा उस मोहका भंजन; श्रीकृष्णकी कृपासे रानियोंका कलशमें जल भरकर लाना

श्रीगर्ग उवाच

अथ वै मण्डपे रम्ये द्वारैरष्टभिरन्विते।
पतत्पताके कुण्डाढ्ये याज्ञिकैरष्टकैर्युते॥ १

पलाशजैर्बिल्वजैश्च तथा श्लेष्मातकैर्नृप।
वेदिकाभिस्तथा यूपैश्चषालैरपि भूषिते॥ २

स्रुक्चर्मकुशमुसलोलूखलाद्यैर्विशाम्पते।
अन्यैः सम्भृतसम्भारैर्नानावस्तुभिरन्विते॥ ३

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् आठ द्वारोंसे युक्त, फहराती हुई पताकाओंसे सुशोभित, अग्निकुण्डोंसे सम्पन्न और आठ याज्ञिकोंसे युक्त रमणीय यज्ञमण्डपमें, जहाँ पलाश, बेल तथा बहुवारके यूप शोभा दे रहे थे, अनेकानेक वेदिकाओं तथा चषालों (यज्ञस्तम्भोंके ऊपर लगे हुए काष्ठमय वलयों) से जो विभूषित था तथा जिसमें स्रुवा, मृगचर्म, कुश, मूसल और उलूखल आदि वस्तुएँ संकलित थीं और इनके अतिरिक्त भी जहाँ बहुत-सी सामग्रियों और नाना प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह किया गया था,

उग्रसेनस्तु राजर्षिर्ऋषिभिर्वेदपारगैः।
यादवैश्चामरावत्यां रेजे शक्र इवामरैः॥ ४

आहूताः कृष्णचन्द्रेण गोपा नन्दादयस्ततः।
वृषभानुवराद्याश्च श्रीदामाद्याः समाययुः॥ ५

यशोमती राधिका च ह्यन्याः सर्वा व्रजस्त्रियः।
द्वारकामाययुः प्रीताः शिबिकाभी रथैरपि॥ ६

आहूतो धृतराष्ट्रस्तु कौरवैश्च सुतैर्युतः।
आजगाम कुशस्थल्यां नृपाश्चान्ये समागताः॥ ७

युधिष्ठिरो भीमसेनश्चार्जुनो नकुलस्तथा।
सहदेवो वनादेते ह्याजग्मुर्भार्यया सह॥ ८

श्रीकृष्णेन समाहूताः प्रेषयित्वा च नारदम्।
शक्रादयोऽष्टौ दिक्पाला वसवो रवयस्तथा॥ ९

यज्ञे सनत्कुमाराद्या रुद्राश्चैकादशापि हि।
मरुद्गणाश्च वेताला गन्धर्वाः किन्नरास्तथा॥ १०

विश्वेदेवाश्च साध्याश्च सर्वे विद्याधरास्तथा।
देवाश्च देवपत्न्यश्च गन्धर्व्योऽप्सरसस्तथा॥ ११

आजग्मुर्द्वारकां राजन् कृष्णदर्शनकाङ्क्षया।
कैलासाच्च समाहूतः सर्वमङ्गलया शिवः॥ १२

सुतलाद्दैत्यवृन्दैश्च प्रह्लादो बलिरेव च।
विभीषणो भीषणश्च मयो बल्वल एव च॥ १३

जाम्बवान् दंष्ट्रिभिः सार्धं हनूमान् वानरैर्युतः।
पक्षिभिः पक्षिराट् तत्र तथा सर्पैश्च वासुकिः॥ १४

धेनुभिः सहिता राजन् धेनुरूपधरा धरा।
मेरुः शैलैर्हिमगिरिर्वटः साक्षाद्द्रुमैर्वृतः॥ १५

रत्नाकरो रत्नयुतो नदीभिः स्वर्धुनी तथा।
तीर्थैः सर्वैश्च राजेन्द्र तीर्थराजश्च पुष्करः॥ १६

एते सर्वे समाहूता आजग्मुर्मुदिताः क्रतौ।
ततः कृष्णेन चाहूता व्रजभूमिः समागता॥ १७

राजर्षि उग्रसेन वेदोंके पारंगत महर्षियों तथा यादवोंके साथ वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे अमरावतीपुरीमें देवराज इन्द्र देवताओंके साथ सुशोभित होते हैं॥ १—४॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आमन्त्रणपर नन्द आदि गोप, वृषभानुवर आदि श्रेष्ठ पुरुष तथा श्रीदामा आदि ग्वाल-बाल द्वारकापुरीमें आये। यशोदा, राधिका तथा अन्य सब व्रजाङ्गनाएँ शिबिकाओं और रथोंपर आरूढ़ हो प्रसन्नतापूर्वक द्वारका [कुशस्थली]-में आयीं॥ ५-६॥

बुलावा जानेपर अपने पुत्रों और कौरवोंके साथ राजा धृतराष्ट्र भी वहाँ आये। अन्यान्य नरेश भी निमन्त्रण पाकर कुशस्थलीमें पधारे। श्रीकृष्णसे आमन्त्रित हो युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव अपनी पत्नी द्रौपदीके साथ वनसे वहाँ आये।॥ ७-८॥

श्रीकृष्णने नारदजीको भेजकर इन्द्र आदि आठ दिक्पालों, आठ वसुओं, बारह आदित्यों, चारों सनत्कुमारों, ग्यारह रुद्रों, मरुद्गणों, वेतालों, गन्धर्वों, किन्नरों, विश्वेदेवों, समस्त साध्यगणों, विद्याधरों, देवताओं, देवपत्नियों, गन्धर्वियों और अप्सराओंको बुलवाया॥ ९—११॥

राजन्! वे सब लोग श्रीकृष्णदर्शनकी अभिलाषासे द्वारकामें पधारे। कैलाससे सर्वमङ्गला पार्वतीके साथ भगवान् शिव भी बुलाये गये। सुतललोकसे दैत्य-समुदायके साथ प्रह्लाद और बलि आये। विभीषण, भीषण, मय और बल्वलका भी वहाँ आगमन हुआ॥ १२-१३॥

दंष्ट्राधारी वनजन्तुओंके साथ जाम्बवान्, वानरोंके साथ हनुमान्, पक्षियोंके साथ पक्षिराज गरुड तथा सर्पोंके साथ नागराज वासुकि भी वहाँ पधारे॥ १४॥

महाराज! धेनुओंके साथ धेनुरूपधारिणी धरा देवी भी उपस्थित हुईं। पर्वतोंके साथ मेरु और हिमालय, वृक्षोंके साथ बरगद, रत्नयुक्त रत्नाकर (समुद्र), नदियोंके साथ स्वर्धुनी (गङ्गा), समस्त तीर्थोंके साथ तीर्थराज प्रयाग और पुष्कर—ये सब आमन्त्रित होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उस यज्ञमें आये। फिर श्रीकृष्णके आवाहनपर व्रजभूमि भी वहाँ आ गयी॥ १५—१७॥

कृष्णयज्ञोत्सवं द्रष्टुं यमुना शमनस्वसा।
सर्वान् दृष्ट्वागतान् प्रीतो वासयामास चाहुकः॥ १८

शिबिरेषु मन्दिरेषु विमानेषु वनेषु च।
अथाचार्यः कृतो व्यासो बकदाल्भ्यो विधिर्मया॥ १९

ऋत्विजश्च कृता दिव्या ये वै पूर्वं निमन्त्रिताः।
अथ यज्ञेऽनिरुद्धस्तु श्रीकृष्णस्येच्छया नृप॥ २०

विधेर्विधोश्च स्वस्यापि कृत्वा रूपत्रयं बभौ।
दृष्ट्वा लीलां कार्ष्णिजस्य देवाश्च यदवो नृपाः॥ २१

विस्मिताः कथयामासुः कर्णे कर्णे परस्परम्।
व्यासः प्रत्याह राजानं शृणु यादवसत्तम॥ २२

उपविष्टा नृपा विप्रा यथास्थाने विभागशः।
चतुष्षष्टिर्दम्पतीनां यातु वै गोमतीतटे॥ २३

आहर्तुं सलिलं तस्या मयादिष्टं यथोचितम्।
अदित्या कश्यपश्चैव वसिष्ठोऽरुन्धतीयुतः॥ २४

द्रोणाचार्यस्तु कृप्या च ह्यत्रिश्चैवानसूयया।
रुक्मिण्या कृष्णचन्द्रस्तु रेवत्या राम एव च॥ २५

मायावत्या च प्रद्युम्न ऊषया कार्ष्णिजस्तथा।
सुभद्रयार्जुनश्चैव साम्बो लक्ष्मणया तथा॥ २६

तथा हेमाङ्गदाद्याश्च यान्तु वै स्वस्वभार्यया।

श्रीगर्ग उवाच

एवं ते व्यासवचनात्सपत्नीका द्विजा नृपाः॥ २७

आनेतुं गोमतीतोयं प्रययुर्बद्धपल्लवाः।
देवकीं रोहिणीं कुन्तीं गान्धारीं च यशोमतीम्॥ २८

पुरस्कृत्य तु जग्राह कुम्भो भैष्म्या युतो हरिः।
तथा रामस्तु रेवत्या सस्त्रीका येऽपि भूमिपाः॥ २९

सुवर्णरौप्यकलशैः सपुष्पैश्च सपल्लवैः।
रुक्मिण्या सहितं यान्तं कृष्णं दृष्ट्वा समागमे॥ ३०

श्रीकृष्णका यज्ञोत्सव देखनेके लिये यमराजकी बहिन यमुनाजी भी आयीं। उन सबको आया देख राजा उग्रसेनने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें यथायोग्य स्थानोंमें ठहराया॥ १८॥

किन्हींको शिविरोंमें, किन्हींको मन्दिरोंमें, किन्हींको विमानोंमें और किन्हींको उपवनोंमें आवासस्थान दिया गया। उस यज्ञमें मैंने वेदव्यासजीको आचार्य बनाया और बकदाल्भ्यको ब्रह्मा तथा पहले जिन लोगोंको निमन्त्रित किया गया था, वे दिव्य ऋषि-महर्षि ऋत्विज् बनाये गये। नरेश्वर! इसके बाद यज्ञमें श्रीकृष्णकी इच्छासे अनिरुद्ध ब्रह्माका, चन्द्रमाका और अपना भी पृथक्-पृथक् रूप धारण करके तीन रूपोंमें सुशोभित हुए। प्रद्युम्नकुमारकी यह लीला देखकर देवता, यादव और भूपगण आश्चर्यचकित हो परस्पर एक-दूसरेके कानमें इसी बातकी चर्चा करने लगे॥ १९—२१½॥

व्यासजीने राजासे कहा—यादवश्रेष्ठ! मेरी बात सुनो। यहाँ जो राजा और ब्राह्मण यथायोग्य स्थानपर अलग-अलग बैठे हैं, इनमेंसे चौंसठ दम्पती गोमतीके तटपर मेरे आदेशके अनुसार यथोचित जल लानेके लिये जायँ॥ २२—२३½॥

अदितिके साथ कश्यप, अरुन्धतीके साथ वसिष्ठ, कृपीके साथ द्रोणाचार्य, अनसूयाके साथ अत्रि, रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णचन्द्र, रेवतीके साथ बलराम, मायावतीके साथ प्रद्युम्न, ऊषाके साथ अनिरुद्ध, सुभद्राके साथ अर्जुन, लक्ष्मणाके साथ साम्ब और अपनी-अपनी भार्याओंके साथ हेमाङ्गद आदि राजा भी जायँ॥ २४—२६½॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार व्यासजीके कहनेसे सपत्नीक ब्राह्मण और राजा पल्लव बाँधकर गोमतीका जल लानेके लिये गये। देवकी, रोहिणी, कुन्ती, गान्धारी और यशोदाको आगे करके रुक्मिणी-सहित श्रीकृष्णने कलश उठाया॥ २७—२८½॥

इसी प्रकार रेवतीके साथ बलराम तथा जो भी सपत्नीक भूपाल थे—उन सबने फूल और पल्लवोंसहित सोने-चाँदीके कलश लेकर गोमती-तटको प्रस्थान किया। उस भीड़में रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णको जाते

नारदः कलहं कर्तुं सत्यभामागृहं ययौ।
दृष्ट्वा चैकां हरेर्भार्यां सम्पृष्टः स तयाब्रवीत्॥ ३१

श्रीनारद उवाच

आदरं सदने नास्ति सत्राजितसुते तव।
गतः कृष्णस्तु रुक्मिण्या चाहर्तुं गोमतीजलम्॥ ३२

बहुभिर्याचिता त्वं तु पारिजातकहारिणी।
कृष्णसङ्कल्पकरणी मणियुक्ता च मानिनी॥ ३३

ईदृशीं त्वां वरारोहां गरुडोपरि गामिनीम्।
विहाय भैष्म्या श्रीकृष्णः शोभां द्रष्टुं जगाम ह॥ ३४

यस्याः पुत्रश्च प्रद्युम्नो यस्याः पौत्रोऽनिरुद्धकः।
सा दर्शयति भो मातर्वार्तां मानं च गौरवम्॥ ३५

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा प्राणनाथं रुक्मिण्या सहितं गतम्॥ ३६

रुरोद दुःखिता राजन् सत्यभामा रुषान्विता।
तदैव कृष्णो भगवाञ्ज्ञात्वा नारदचेष्टितम्॥ ३७

सत्यभामागृहं शीघ्रं रूपेणैकेन चागमत्।
गत्वा प्रत्याह वचनं सर्वज्ञाता रमेश्वरः॥ ३८

न गतोऽहं समाजे वै रुक्मिण्या सहितः प्रिये।
आगतो भोजनं कर्तुं गतो रामश्च भार्यया॥ ३९

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य सत्यभामा मुदं गता।
भीतो नारद उत्थाय गेहं चान्यं जगाम ह॥ ४०

गत्वा जाम्बवतीगेहं तस्याग्रे सर्वमब्रवीत्।
श्रुत्वा हसन्ती सा प्राह मृषा मा वद हे मुने॥ ४१

करोति शयनं गेहे श्रीनाथो भोजनान्तरे।
इति श्रुत्वा शङ्कितस्तु त्वरं निर्गत्य नारदः॥ ४२

मित्रविन्दागृहे गत्वा प्रत्युवाच विलोकयन्।

देख नारदजी झगड़ा लगानेके लिये सत्यभामाके भवनमें गये। भगवान्‌की उन भार्याको घरमें अकेली देख उनके द्वारा आगमनका कारण पूछे जानेपर वे बोले— ॥ २९—३१ ॥

श्रीनारदजीने कहा—सत्राजितनन्दिनी! मैं देखता हूँ, इस घरमें तुम्हारा कोई आदर नहीं है। श्रीकृष्ण रुक्मिणीके साथ गोमतीका जल लानेके लिये गये हैं। बहुत-से लोग तुम्हारे पास याचना करने आते हैं। तुम स्वर्गसे पारिजात वृक्ष अपने यहाँ लानेमें सफल हुई हो। श्रीकृष्णके संकल्पको सिद्ध करनेवाली, स्यमन्तक मणिसे मण्डित तथा मानिनी हो॥ ३२-३३॥

ऐसी तुम परमसुन्दरीको, जो गरुड़पर यात्रा कर चुकी है, छोड़कर श्रीकृष्ण रुक्मिणीके साथ शोभा देखनेके लिये चले गये। माँ सत्यभामिनि! जिसके पुत्र प्रद्युम्न हैं और जिसके पौत्र अनिरुद्ध हैं, वह रुक्मिणी अपनी बात, मान और गौरवका सर्वोपरि प्रदर्शन करती है॥ ३४-३५ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—'महाराज! मेरे प्राणनाथ रुक्मिणीके साथ गये हैं'—यह बात सुनकर सत्यभामाको बड़ा रोष हुआ। वे दुखी होकर रोने लगीं। इसी समय नारदजीकी चेष्टा जानकर भगवान् श्रीकृष्ण एक रूपसे तत्काल सत्यभामाके भवनमें चले आये। उन सर्वज्ञ परमेश्वरने वहाँ आते ही यह बात कही— ॥ ३६—३८ ॥

'प्रिये! मैं उस समाज (जुलूस)-में रुक्मिणीके साथ नहीं गया। भोजन करनेके लिये आ गया हूँ। केवल सपत्नीक भैया बलरामजी गये हैं'॥ ३९ ॥

उनकी यह बात सुनकर सत्यभामा प्रसन्न हो गयी और नारदजी भयभीत होकर उठे तथा दूसरे भवनमें चले गये। जाम्बवतीके घरमें जाकर उसके आगे सारा समाचार कहा। सुनकर वह हँसने लगी और बोली— 'मुनिजी महाराज! झूठ मत बोलिये, श्रीनाथजी तो भोजन करके घरमें सो रहे हैं।' यह सुनकर डरे हुए नारदजी तुरंत वहाँसे निकलकर मित्रविन्दाके घरमें जा पहुँचे और चारों ओर देखते हुए बोले— ॥ ४०—४२½ ॥

श्रीनारद उवाच

न गतासि नृपस्थानं मातर्गेहे स्थितासि किम्॥ ४३

आहर्तुं गोमतीतोयं प्रयाति यत्र माधवः।
भैष्मीं सत्यां जाम्बवतीं सह नेष्यति तत्र वै॥ ४४

मित्रविन्दोवाच

केशवस्य प्रियाः सर्वा गन्तासौ यां विहाय च।
सा न जीवति कृष्णस्तु पौत्रं लालयति गृहे॥ ४५

ततो मुनिः समुत्थाय सर्वाणि मन्दिराणि च।
बभ्राम कृष्णभार्याणां सकृष्णानीत्यमन्यत॥ ४६

पुनर्विचार्य देवर्षिर्गोपीनां मन्दिराणि च।
प्रययौ कथितुं वार्ता राधिकायै च मानद॥ ४७

तत्र दीव्यन्तमक्षैश्च राधया नन्दनन्दनम्।
गोपीभिः सहितं वीक्ष्य ऋषिर्गन्तुं मनो दधे॥ ४८

तदैव कृष्ण उत्थाय गृहीत्वा पाणिना मुनिम्।
तत्रैव स्थापयामास पूजयित्वा यथाविधि॥ ४९

श्रीकृष्ण उवाच

किं करिष्यसि विप्रेन्द्र वृथा भ्रमसि मोहितः।
गेहे गेहे स्वपत्नीनां मया त्वं तु विलोकितः॥ ५०

मया धृतानि रूपाणि त्वद्भयादृषिसत्तम।
नाहं दास्ये दमं तुभ्यं विप्रत्वात्प्रार्थयाम्यहम्॥ ५१

सर्वेषां चैव देवोऽहं मम देवाश्च ब्राह्मणाः।
ये द्रुह्यन्ति द्विजान् मूढाः सन्ति ते मम शत्रवः॥ ५२

ये पूजयन्ति विप्रांश्च मम भावेन भूजनाः।
ते भुञ्जन्ति सुखं चात्र ह्यन्ते यास्यन्ति तत्पदम्॥ ५३

मायया मम पुर्यां त्वं मोहितश्चापि मा खिदः।
सर्वे मुह्यन्ति देवर्षे ब्रह्मरुद्रादयः सुराः॥ ५४

श्रीनारदजीने कहा—मैया! जहाँ राजा और रानियोंका समाज जुटा है, वहाँ नहीं गयीं क्या? घरमें क्यों बैठी हो? वहाँ रमावल्लभ श्रीकृष्ण गोमतीका जल लानेके लिये जा रहे हैं। वे अपने साथ रुक्मिणी, सत्यभामा तथा जाम्बवतीको भी ले जायँगे॥ ४३-४४॥

मित्रविन्दा बोली—देवर्षिजी! केशवकी तो सभी प्यारी हैं। वे जिसको भी छोड़कर चले जायँगे, वही जीवित नहीं रह सकेगी। उधर घरमें देखिये, श्रीकृष्ण अपने पोतेको लाड़ लड़ा रहे हैं॥ ४५॥

तब मुनि उठकर श्रीकृष्णपत्नियोंके सभी घरोंमें चक्कर लगाते रहे, परंतु उन सबमें उन्हें श्रीकृष्णकी उपस्थिति जान पड़ी। फिर सोच-विचारकर देवर्षि श्रीराधाको यह समाचार देनेके लिये गोपाङ्गनाओंके महलोंमें गये; परंतु वहाँ श्रीराधा तथा गोपियोंके साथ नन्दनन्दन चौपड़ खेलते दिखायी दिये। उन्हें देखकर देवर्षिने ज्योंही वहाँसे खिसक जानेका विचार किया, त्योंही श्रीकृष्णने तुरंत उन्हें हाथसे पकड़ लिया और वहीं बैठाया। फिर विधिवत् उनकी पूजा करके वे बोले— ॥ ४६—४९॥

श्रीकृष्ण बोले—विप्रवर! तुम यह क्या कर रहे हो? व्यर्थ ही मोहित होकर इधर-उधर घूम रहे हो। मैंने अपनी पत्नियोंके घर-घरमें तुम्हें देखा है। मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारे ही डरसे मैंने अनेक रूप धारण किये हैं। तुम ब्राह्मण हो; इसलिये तुम्हें दण्ड तो नहीं दूँगा, परंतु प्रार्थना अवश्य करूँगा॥ ५०-५१॥

मैं सबका देवता हूँ और ब्राह्मण मेरे देवता हैं। जो मूढ़ मानव ब्राह्मणोंसे द्रोह करते हैं, वे मेरे शत्रु हैं। जो लोग ब्राह्मणोंको मेरा स्वरूप समझकर उनका पूजन करते हैं, वे इहलोकमें सुख भोगते हैं और अन्तमें मेरे परमधाममें चले जायँगे॥ ५२-५३॥

देवर्षे! तुम मेरी पुरीमें मेरी ही मायासे मोहित हो गये, यह सोचकर खेद न करना; क्योंकि ब्रह्मा तथा रुद्र आदि सब देवता मेरी मायासे मोहित हो जाते हैं॥ ५४॥

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य संस्तुतः स महामुनिः।
आययौ मण्डपे तूष्णीं भूत्वा ऋत्विग्जनैर्वृते॥ ५५

भगवान्‌का यह वचन सुनकर, उनसे प्रशंसित हो वे महामुनि चुपचाप ऋत्विजोंसे भरे हुए यज्ञमण्डपमें चले आये॥ ५५॥

अथ ते गोमतीतीरं जग्मुः कृष्णादयो नृपाः।
रुक्मिण्याद्याः स्त्रियश्चैव वादित्रैर्विविधैरपि॥ ५६

नारीणां चैव वृन्देन गायन्तीनां हरेर्यशः।
वलयानां नूपुराणां शब्दोऽभून्मधुरध्वनिः॥ ५७

उधर वे श्रीकृष्ण आदि राजा और रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ नाना प्रकारके बाजों-गाजोंके साथ गोमतीके तटपर गयीं। भगवान् गोविन्दके यशका गान करनेवाली झुंड-की-झुंड स्त्रियोंके कड़ों और नूपुरोंका मधुर मनोहर शब्द वहाँ गूँजने लगा॥ ५६-५७॥

पूजयित्वा जलसुरान् व्यासः सार्धं मया मुनिः।
कलशं तोयसंयुक्तमनसूयाकरे ददौ॥ ५८

ततश्च जगृहुः कुम्भान् रेवत्याद्याश्च योषितः।
नोत्थिताः कलशाः सर्वे कोमलैश्च करैरपि॥ ५९

मेरे साथ मुनिवर व्यासने जल-सम्बन्धी देवताओंका पूजन करवाकर जलसे भरा हुआ एक घड़ा अनसूयाजीके हाथमें दिया। तत्पश्चात् रेवती आदि सभी स्त्रियोंने कलश पकड़े, किंतु उनके कोमल हाथोंसे वे सभी कलश नहीं उठ सके॥ ५८-५९॥

धारयन्ति कथं कुम्भं पुष्पभारेण पीडिताः।
ततश्च जहसू राज्यो नृपाणां च परस्परम्॥ ६०

कथं यामो यज्ञवाटमित्यूचुः कलशैर्विना।
रुक्मिण्याद्याः स्त्रियः सर्वास्ता ऊचुर्मनसा हरिम्॥ ६१

जो फूलोंके भारसे पीड़ित हो जाती हैं, वे कोमलाङ्गी स्त्रियाँ कलशका बोझ कैसे उठा सकती हैं? तब वे राजरानियाँ एक-दूसरेकी ओर देखकर हँसने लगीं और बोलीं—'अब हमलोग कलशके बिना यज्ञमण्डपमें कैसे जायँगी?' उस समय रुक्मिणी आदि सभी स्त्रियोंने मन-ही-मन श्रीकृष्णसे प्रार्थना की— ॥ ६०-६१॥

हे श्रीकृष्ण जगन्नाथ भक्तकष्टविनाशन।
सबलस्त्वं चक्रधारी ह्यस्मान् पालय सङ्कटे॥ ६२

'हे श्रीकृष्ण! हे जगन्नाथ! हे भक्तोंके कष्टका निवारण करनेवाले चक्रधारी देव! आप सर्वशक्तिमान् हैं। इस सङ्कटमें हमारी रक्षा कीजिये'॥ ६२॥

एवं ब्रुवन्त्यो जगृहुः सकलान् भारवर्जितान्।
स्वे स्वे शिरसि सन्धाय संयुक्तैर्मणिमौक्तिकैः॥ ६३

यज्ञवाटं समाजग्मुर्नार्यः शीघ्रं सभर्तृकाः।
यत्र भेर्यश्च शङ्खाद्या वाद्यन्ते पणवादयः॥ ६४

आनीय गोमतीतोयं प्रापितास्तत्र तैर्नृप।
श्यामकर्णेन सहितो यत्र वै यादवेश्वरः॥ ६५

इस प्रकार कहती हुई उन स्त्रियोंने जब कलशमें हाथ लगाये, तब वे सभी भारहीन हो गये। उन्होंने रत्नों तथा मोतियोंसे विभूषित अपने-अपने मस्तकपर उन कलशोंको उठाकर रख लिया और अपने पतियोंके साथ वे शीघ्रतापूर्वक यज्ञमण्डपमें चली आयीं, जहाँ भेरी, शङ्ख और पणव आदि बाजे बज रहे थे। राजन्! गोमतीका जल लाकर उन सबने उस स्थानपर पहुँचा दिया, जहाँ श्यामकर्ण अश्वके साथ यादवराज उग्रसेन विराजमान थे॥ ६३—६५॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे गोमतीजलानयनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'गोमतीके जलका आनयन' नामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

राजाद्वारा यज्ञमें विभिन्न बन्धु-बान्धवोंको भिन्न-भिन्न कार्योंमें लगाना; श्रीकृष्णका ब्राह्मणोंके चरण पखारना; घीकी आहुतिसे अग्निदेवको अजीर्ण होना; यज्ञपशुके तेजका श्रीकृष्णमें प्रवेश; उसके शरीरका कर्पूरके रूपमें परिवर्तन; उसकी आहुति और यज्ञकी समाप्तिपर अवभृथस्नान

श्रीगर्ग उवाच

उग्रसेनस्य यज्ञे वै हयमेधे महात्मनः।
तस्यासन् परिचर्यायां बान्धवाः प्रेमबन्धनाः॥ १

ततश्चकार यदुराणनानाकर्मसु बान्धवान्।
भीमं महानसाध्यक्षं धर्मं धर्मस्य पालने॥ २

शुश्रूषणे सतां जिष्णुं नकुलं द्रव्यसाधने।
पूजने सहदेवं च धनाध्यक्षं सुयोधनम्॥ ३

दाने च दानिनं कर्णं द्रौपदीं परिवेषणे।
रक्षायां कृष्णपुत्रान् वै ह्यष्टादश महारथान्॥ ४

युयुधानं विकर्णं च हृदीकं विदुरं तथा।
अक्रूरमुद्धवं चैव नानाकर्मसु भूपतिः॥ ५

कृत्वा प्रत्याह श्रीकृष्णं देव त्वं किं करिष्यसि।
श्रुत्वा कृष्ण उवाचाथ ब्राह्मणानां करोम्यहम्॥ ६

पादप्रक्षालनं राजन्निन्द्रप्रस्थे कृतं मया।
इति श्रुत्वा च ब्रह्माद्या जहसुर्भूजनास्तथा॥ ७

श्रीगर्ग उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् साक्षादृषीणां च तपस्विनाम्।
पादप्रक्षालनं कृत्वा स्थापयामास तान्नृप॥ ८

आसनेषूपविष्टास्ते वासांसि परिधाय च।
तिलकैर्द्वादशैर्युक्ता दिव्याभरणभूषिताः॥ ९

नानामतानां मालाभिर्युक्ताः कर्पूरवीटकान्।
भुक्त्वा ते रेजिरे यज्ञे देवा इव महीसुराः॥ १०

श्रीगर्गजी कहते हैं—महाराज! महात्मा राजा उग्रसेनके यज्ञमें उनकी परिचर्यामें प्रेमके बन्धनसे बँधे हुए समस्त बन्धु-बान्धव लगे रहे। उन यादवराजने विभिन्न कर्मोंमें सगे-सम्बन्धी भाई-बन्धुओंको लगाया। भीमसेन रसोईघरके अध्यक्ष बनाये गये। धर्मराज युधिष्ठिरको धर्मपालन-सम्बन्धी कर्ममें नियुक्त किया गया॥ १-२॥

राजाने सत्पुरुषोंकी सेवा-शुश्रूषामें अर्जुनको, विभिन्न द्रव्योंको प्रस्तुत करनेमें नकुलको, पूजन-कर्ममें सहदेवको और धनाध्यक्षके स्थानमें दुर्योधनको नियुक्त किया। दानकर्ममें दानी कर्णको, परोसनेके कार्यमें द्रौपदीको तथा रक्षाके कार्यमें श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंको लगाया॥ ३-४॥

तत्पश्चात् भूपालने युयुधान, विकर्ण, हृदीक, विदुर, अक्रूर और उद्धवको भी अनेक कर्मोंमें लगाकर श्रीकृष्णसे पूछा—'देव! आप कौन-सा कार्य अपने हाथमें लेंगे?' उनकी बात सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'राजन्! मैं तो ब्राह्मणोंके चरण पखारनेका कार्य करूँगा। इन्द्रप्रस्थमें भी मैंने यही काम किया था।' यह सुनकर ब्रह्मा आदि देवता और भूतलके मनुष्य हँसने लगे॥ ५—७॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने तपस्वी ऋषि-मुनियोंके चरण धोकर उन सबको यथायोग्य आसनोंपर बिठाया। नये-नये वस्त्र पहन, बारह तिलक लगा, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो नाना मतोंकी मालाएँ—अनेक प्रकारकी कलाओंसे निर्मित पुष्पहार धारण किये। अनेक आसनोंपर बैठे हुए वे ब्राह्मण पानके बीड़े चबाकर यज्ञमण्डपमें देवताओंके समान शोभा पाने लगे॥ ८—१०॥

ततोऽर्थिनो भिक्षवश्च विरक्ताश्च बुभुक्षिताः।
कुर्वन्ति याचनां सर्वे दूरदेशात्समागताः॥ ११
ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं नरेश्वर।
उपानहश्च पात्राणि वस्त्राणि कम्बलानि च॥ १२
उग्रसेनस्य यज्ञे वै मुनिवृन्दैर्नृपैर्वृते।
तेषां तां करुणां वाचं निशम्य यदुसत्तमः॥ १३
सुवर्णं रजतं चैव वस्त्राणि भाजनानि च।
गजाश्वरथगोछत्रशिबिकादीनि हर्षितः॥ १४
येषां येषां प्रियं यद्वै तेभ्यस्तेभ्यो ददौ नृपः।
उग्रसेनः कृतस्नानः क्रतुकर्मणि दीक्षितः॥ १५
असिपत्रव्रतधरो रुचिमत्या बभौ ततः।
विप्रा विंशतिसाहस्रा वेदशास्त्रविशारदाः॥ १६
व्यासगर्गादयश्चैव कारयन्ति क्रतूत्तमम्।
हस्तिशुण्डासमा धारा ह्यग्निकुण्डे पपात ह॥ १७
घृतस्य च नृपश्रेष्ठ मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः।
तद्यज्ञे कृष्णकृपया ह्यनलोऽजीर्णतां ययौ॥ १८
ततः प्रोवाच वह्निस्तु सर्वेषां शृण्वतां नृपम्।
प्रसन्नोऽहं प्रसन्नोऽहं पशुं मम प्रयच्छ वै॥ १९
निशम्य चाग्नेर्वचनं सभायां
श्रीयादवेन्द्रो मुनिभिः समं च।
बद्धं तुरङ्गं तपनीययूपे
हिरण्यदाम्ना च तमाह भूपः॥ २०

उग्रसेन उवाच

अग्नेर्वाक्यं शृणु हय शुद्धं त्वां च पशुं क्रतोः।
भक्षयिष्यति वह्निस्तु घृतैस्तृप्तोऽपि चाध्वरे॥ २१
नृपस्य वचनं श्रुत्वा श्यामकर्णस्तुरङ्गमः।
कृष्णं विलोकयन् प्रीतः कम्पयामास स्वाननम्॥ २२
ततो हयमतं ज्ञात्वा वेदव्यासः समं मया।
मण्डपे मुनिभिर्युक्ते श्रीकृष्णाद्यैर्नृपैर्वृते॥ २३
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्यज्ञदिदृक्षुभिः।
स्त्रीभिर्युतं प्रलम्बघ्नं प्राह द्वैपायनो मुनिः॥ २४

तदनन्तर विभिन्न वस्तुओंके प्रयोजनवाले अर्थी, भिक्षुक, विरक्त और भूखे—ये सभी दूर देशसे आकर वहाँ याचना करने लगे—'नरेश्वर! हमें अन्न दो, अन्न दो, अन्न दो। उपानह, पात्र, वस्त्र तथा कम्बल दो'॥ ११-१२॥

मुनिवृन्दों तथा राजाओंसे भरे हुए उग्रसेनके उस यज्ञमें उन याचकोंकी वह करुण याचना सुनकर यदुकुलतिलक महाराजने बड़े हर्ष और उत्साहके साथ उन्हें सोना, चाँदी, वस्त्र, बर्तन, हाथी, घोड़े, रथ, गौ, छत्र और शिबिका आदि प्रदान किये। जिनको-जिनको जो-जो वस्तु प्रिय थी, उनको-उनको राजाने वही वस्तु दी॥ १३—१४१/२॥

यज्ञकर्ममें दीक्षित असिपत्रव्रतधारी राजा उग्रसेन स्नान करके रानी रुचिमतीके साथ बड़ी शोभा पा रहे थे। वेदशास्त्रोंमें विशारद व्यास और गर्ग आदि बीस हजार ब्राह्मण वह श्रेष्ठ यज्ञ करा रहे थे॥ १५—१६१/२॥

नृपश्रेष्ठ! अग्निकुण्डमें हाथीकी सूँड़के समान मोटी घृतकी धारा गिर रही थी और ब्रह्मवादी मुनि उसे गिरवा रहे थे। श्रीकृष्णकी कृपासे उस यज्ञमें अग्निदेवको अजीर्ण हो गया॥ १७-१८॥

वे सबके सुनते हुए राजासे बोले—'मैं प्रसन्न हूँ, मैं प्रसन्न हूँ। अब मुझे पशु प्रदान करो।'—यज्ञसभामें अग्निका यह वचन सुनकर मुनियोंसहित यादवेन्द्र उग्रसेन सोनेके यूपमें सुवर्णमयी डोरीसे बँधे हुए उस घोड़ेसे बोले—॥ १९-२०॥

उग्रसेनने कहा—हे अश्व! तुम अग्निदेवकी बात सुनो। यज्ञमें घीसे तृप्त होनेपर भी अग्निदेव तुझ विशुद्ध यज्ञपशुको अपना आहार बनायेंगे॥ २१॥

राजाकी बात सुनकर श्यामकर्ण अश्वने प्रसन्न हो श्रीकृष्णकी ओर देखते और अपनी स्वीकृति सूचित करते हुए सिर हिलाया। [अश्वकी इस चेष्टासे] उसकी स्वीकृति जानकर मुनिजनों तथा श्रीकृष्ण आदि [यादववीरों]-से युक्त मण्डपमें मेरे (गर्गमुनिके) साथ बैठे हुए व्यासजी यज्ञ देखनेके इच्छुक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्रियोंके साथ स्थित प्रलम्बासुरका वध करनेवाले बलरामजीसे कहने लगे—॥ २२—२४॥

व्यास उवाच

उत्तिष्ठ बलभद्र त्वं करवालं प्रगृह्य च।
छिन्धि कं वाजिनश्चाग्नेः प्रीतये ह्यधुना त्वरम्॥ २५

निहते तुरगे राम हवने च कृते सति।
यज्ञावतारः कृष्णस्तु प्रसन्नो भवति क्रतौ॥ २६

श्रीगर्ग उवाच

एवं व्यासवचः श्रुत्वा बलः खड्गेन सत्त्वरम्।
शिरो हयस्य चिच्छेद तच्छिरो गगनं ययौ॥ २७

गत्वार्धं नृपशार्दूल लीनं तद्रविमण्डले।
देवदैत्यनराः सर्वे तं दृष्ट्वा विस्मयं गताः॥ २८

हयस्य हृदये शूलं निजघान हसन् हरिः।
मकरन्दसमा धारा राजँस्तत्र विनिर्गता॥ २९

ततश्च निर्गता ज्योतिस्तुरगस्य कलेवरात्।
पश्यतां चैव सर्वेषां विवेश मधुसूदने॥ ३०

पश्चाद्भूत्वा च कर्पूरं शरीरं पतितं पशोः।
गात्राच्च्युता यथा राजन् विभूतिः शङ्करस्य च॥ ३१

दृष्ट्वा च कर्पूरसमूहमद्भुतं
सभां सुगन्धेन वृतां च द्वारकाम्।
व्यासादयस्ते मुनयः प्रहर्षिता
ऊचुर्नृपं वै क्रतुकर्मणि स्थितम्॥ ३२

दिष्ट्या ते नृपशार्दूल सफलोऽभूत्क्रतूत्तमः।
कर्पूरेणापि हवनं करिष्यामश्च त्वं कुरु॥ ३३

इत्युक्त्वा ऋत्विजः सर्वे यज्ञकुण्डे च तत्क्षणात्।
घनसारं हि जुहुवुः पूर्वं यज्ञेश्वराय च॥ ३४

यत्र यज्ञेश्वरः कृष्णश्चतुर्व्यूहधरः परः।
रेजे पुत्रैश्च पौत्रैश्च तत्र किं दुर्लभं नृप॥ ३५

तस्मिन् यज्ञे महेन्द्राय वचः प्रकथितं मया।
गृहाण शक्र यज्ञेऽस्मिन् कर्पूरस्याहुतिं विभो॥ ३६

एहि राज्ञार्पितां चैनां कलावग्रे हि दुर्लभाम्।
इति श्रुत्वा च वचनं शक्रः प्रोवाच सस्मितम्॥ ३७

व्यासजी बोले—हे बलभद्र! आप उठिये और खड्ग लेकर शीघ्र ही अग्निदेवकी प्रसन्नताके लिये इस यज्ञाश्वका शिरश्छेद कीजिये। राम! इस यज्ञमें आलभनपूर्वक इस यज्ञीय अश्वका होम करनेपर यज्ञावतार भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो जायँगे॥ २५-२६॥

श्रीगर्गजी बोले—व्यासजीकी यह बात सुनकर बलरामजीने शीघ्र खड्ग लेकर अश्वका शिरश्च्छेद कर दिया। अश्वका सिर छिन्न होते ही आकाशमें चला गया। हे नृपसिंह! वह सिर [आकाशमें जाकर] सूर्यमण्डलमें विलीन हो गया; यह देख देवता, दैत्य तथा मनुष्य—सभी आश्चर्यचकित हो गये॥ २७-२८॥

तत्पश्चात् [व्यासजीकी आज्ञासे] हँसते हुए भगवान् श्रीकृष्णने उस अश्वके हृदयस्थलको शूलद्वारा विदीर्ण किया, राजन्! तब उससे मकरन्दके जैसा द्रव निकलने लगा तत्पश्चात् घोड़ेके शरीरसे एक ज्योति प्रकट हुई, जो सबके देखते-देखते मधुसूदन श्रीकृष्णमें समा गयी। इसके बाद घोड़ेका शरीर कर्पूर होकर गिर पड़ा। मानो भगवान् शंकरके शरीरसे विभूति झड़ गयी हो॥ २९—३१॥

उस अद्भुत कर्पूरराशिको देखकर और उसकी सुगन्धसे यज्ञशाला तथा द्वारकापुरीको सुवासित हुई जानकर वे व्यास आदि महर्षि अत्यन्त हर्षित हो, यज्ञकर्ममें संलग्न राजासे बोले—'नृपश्रेष्ठ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा यह उत्तम यज्ञ सफल हो गया। अब हम इस कर्पूरसे ही हवन करेंगे और तुम भी करो'—ऐसा कहकर समस्त ऋत्विजोंने उस यज्ञकुण्डमें उसी क्षण पहले यज्ञेश्वरके उद्देश्यसे घनसार (कर्पूर)-की आहुतियाँ दीं। राजा वज्रनाभ! जहाँ चतुर्व्यूहरूपधारी साक्षात् परमेश्वर परमात्मा श्रीकृष्ण अपने पुत्र और पौत्रोंके साथ विराजमान थे, वहाँ कौन-सी वस्तु दुर्लभ थी?॥ ३२—३५॥

उस यज्ञमें मैंने महेन्द्रसे कहा—'भगवन् शक्र! इस यज्ञमें कर्पूरकी आहुति ग्रहण कीजिये। आइये, राजा उग्रसेनकी दी हुई इस आहुतिको स्वीकार कीजिये; अब आगे कलियुगमें यह दुर्लभ हो जायगी'॥ ३६½॥

मेरी बात सुनकर इन्द्रने मुसकराते हुए कहा—

पुनर्गृह्णामि मुनयो धर्मराजक्रतूत्तमे।
कुलक्षये गजपुरे प्रदत्तामाहुतिं द्विजैः॥ ३८

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं सत्यं मत्वा मुनीश्वराः।
सर्वान् देवान्नृपश्रेष्ठ ह्यध्वरे चाहुतिं ददुः॥ ३९

अन्ये केऽपि न जानन्ति वज्रिणा कथितं च किम्।
अग्नये स्वाहेति मन्त्रैश्च सर्वानेवाहुतीर्ददुः॥ ४०

कर्पूरहवनेनापि प्रीतं विश्वं चराचरम्।
उग्रसेनस्तु राजा वै निर्ऋणोऽभून् महाध्वरे॥ ४१

यज्ञान्तेऽवभृथस्नानमुग्रसेनो द्विजोत्तमैः।
कृष्णाद्यैर्यादवैर्भूपैस्तीर्थे पिण्डारकेऽकरोत्॥ ४२

भार्यया सहितः स्नात्वा वेदोक्तविधिना नृपः।
धृत्वा क्षौमाम्बरं रेजे यज्ञो दक्षिणया यथा॥ ४३

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तदा।
उग्रसेनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ४४

कारयित्वा स्वधापानं प्राशयित्वा यथाक्रमम्।
सर्वेभ्यश्च पुरोडाशं दत्वा शेषमथासृजत्॥ ४५

उग्रसेनं च वादित्रैस्तुष्टुवुर्वन्दिनो मुदा।
ततो नीराजनं चक्रुर्देवक्याद्याश्च योषितः॥ ४६

अलङ्कारांश्च रत्नानि वस्त्राणि विविधानि च।
नीराजनान्ते प्रददौ ताभ्यः प्रीतो नृपेश्वरः॥ ४७

'महर्षियो! जब कौरव-पाण्डव-युद्धमें कौरवकुलका क्षय होगा और धर्मराज युधिष्ठिर हस्तिनापुरमें उत्तम अश्वमेध यज्ञ करेंगे, उस समय ब्राह्मणोंकी दी हुई ऐसी आहुति मैं पुनः ग्रहण करूँगा। [आप इसे दुर्लभ क्यों बता रहे हैं?'] ॥ ३७-३८ ॥

नृपश्रेष्ठ! इन्द्रका यह वचन सुनकर सब मुनीश्वरोंने इसे सच माना और उस यज्ञमें सम्पूर्ण देवताओंके लिये आहुतियाँ दीं ॥ ३९ ॥

दूसरे लोगोंने यह नहीं समझा कि इन्द्रने क्या कहा है। **'अग्नये स्वाहा'**—इन मन्त्रोंसे सभी देवताओंके लिये ब्राह्मणोंने आहुतियाँ दीं। उस कर्पूरके होमसे भी समस्त चराचर विश्व प्रसन्न हो गया। राजा उग्रसेन उस महान् यज्ञमें उर्ऋण हो गये ॥ ४०-४१ ॥

तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणों, श्रीकृष्ण आदि यादवों तथा अन्य भूपालोंके साथ महाराज उग्रसेनने यज्ञकी समाप्तिपर पिण्डारकतीर्थमें अवभृथस्नान किया ॥ ४२ ॥

वेदोक्त विधिसे पत्नीसहित स्नान करके, रेशमी वस्त्र धारणकर राजा उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे दक्षिणाके साथ यज्ञदेवता सुशोभित होते हैं ॥ ४३ ॥

उस समय देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। सब देवता राजा उग्रसेनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। इसके बाद स्वधा-पान कराकर और पुरोडाशका प्राशन करवाकर व्यासजीने सब लोगोंको क्रमशः यज्ञशेष पुरोडाशका प्रसाद बाँटा ॥ ४४-४५ ॥

गाजे-बाजेके साथ बन्दीजनोंने प्रसन्नतापूर्वक राजा उग्रसेनकी स्तुति की। फिर देवकी आदि स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी ॥ ४६ ॥

आरतीके बाद प्रसन्न हुए महाराजने उन सब स्त्रियोंको नाना प्रकारके रत्न, वस्त्र और अलंकार दिये ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे यज्ञपूर्तौ नृपस्याभिषेको नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'यज्ञकी पूर्ति होनेपर राजाका अभिषेक' नामक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय

ब्राह्मणभोजन, दक्षिणा-दान, पुरस्कार-वितरण, सम्बन्धियोंका सम्मान तथा देवता आदि सबका अपने-अपने निवास-स्थानको प्रस्थान

श्रीगर्ग उवाच

ततः कृष्णेन भीमेन प्रार्थयित्वा द्विजान्नृपान्।
भोजयामास यदुराड्भोजनैर्विविधैरपि॥ १

सच्छष्कुलीपायसतण्डुलाभैः
संयावकापूपसुसूपकाद्यैः।
सत्फेणिकाद्यैस्तु निमन्त्र्य विप्रान्
सम्भोजयामास विशेषमन्नम्॥ २

शिखरिणीघृतपूरसुशक्तिकाः
सुपटिनीदधिकूपकलप्सिकाः।
सुवृतसुन्दरचन्द्रसुहालिका
बटकमोदकपर्पटकैरदात्॥ ३

केचित्फलाशनास्तत्र शुष्कपर्णाशनास्तथा।
केचिज्जलाशना विप्राः केचिद्दूर्वारसाशनाः॥ ४

केचिद्वाताशना राजञ्जन्मतश्च तपस्विनः।
भोजनानां च नामानि ते न जानन्ति विस्मिताः॥ ५

भक्तं च मेनिरे केचिन्मालत्याः कुसुमानि च।
मोदकाँश्च द्विजाः केचिदुदुम्बरफलानि च॥ ६

पायसं फेणिकां दृष्ट्वा चन्द्रबिम्बं च मेनिरे।
पर्पटान् फेणिका दृष्ट्वा पत्राणि किंशुकस्य वै॥ ७

मेनिरेऽर्कफलानीति दृष्ट्वा च मधुशीर्षकान्।
प्रलेहिकां लप्सिकां च ऋषयश्चन्दनद्रवम्॥ ८

दृष्ट्वा ते मिष्टचूर्णं वै बालुकां मुनिसत्तमाः।
इति मत्वा द्विजाः सर्वे बुभुजुर्भोजनानि च॥ ९

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीकृष्ण और भीमसेनके साथ यादवराज उग्रसेनने ब्राह्मणों और राजाओंसे प्रार्थना करके उन्हें भाँति-भाँतिके पदार्थ भोजन कराये। उन्होंने ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके उत्तम शष्कुली (पूड़ी), खीर, भात, अच्छी दाल और कढ़ी, हलुआ, मालपूआ तथा सुन्दर फेणिका आदि विशेष अन्न परोसकर भलीभाँति भोजन कराया॥ १-२॥

शिखरिणी (सिखरन), घृतपूर (घेवर), सुशक्तिका (अच्छी-अच्छी साग-सब्जी), सुपटिनी (चटनी आदि), दधिकूप (दहीबड़ा), लप्सी तथा गोल, सुन्दर और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल सोहारी आदिको बड़े, लड्डू और पापड़के साथ परोसा॥ ३॥

उन ब्राह्मणोंमेंसे कुछ तो फलाहारी थे, कुछ सूखे पत्ते खानेवाले थे, कोई केवल जल पीकर रहनेवाले और कोई दूर्वाके रसका आस्वादन करनेवाले (दुर्वासा) थे। कोई हवा पीकर रहनेवाले जन्मकालसे ही तपस्वी थे। कितने तो भोजनों (भोज्यपदार्थों)-के नामतक नहीं जानते थे। जब उनके सामने भाँति-भाँतिके भोजन परोसे गये, तब उन्हें देखकर वे बड़े विस्मित हुए॥ ४-५॥

कोई भातको मालतीके फूल समझने लगे, कई लड्डुओंको गूलरके फल मानने लगे, किन्हींने खीर और फेणिका देखकर उसे चन्द्रमाका बिम्ब समझा, कई ब्राह्मणोंने पापड़ फेणिकाको देखकर उन्हें पलाशके पत्ते समझा और 'मधुशीर्षक' नामक मिष्टान्नको आकका फल मान लिया, चटनी और लप्सी देखकर कितने ही ऋषि उन्हें घिसा हुआ चन्दन समझने लगे॥ ६—८॥

कितने ही मुनिश्रेष्ठ मीठा चूरन या शक्कर देखकर बालू समझने लगे। इस प्रकारकी भावना मनमें लेकर वे सब ब्राह्मण वहाँ भोजन कर रहे थे॥ ९॥

केचित्पिबन्ति दुग्धं तु केचिद् द्राक्षारसं तथा।
केचिदाम्ररसं विप्राः प्रहसन्ति लुठन्ति वै॥ १०

ततः कृष्णस्तु भगवान् भीमेन प्रहसन् मुदा।
चकार हास्यं विप्राणां संस्थितानां तपस्विनाम्॥ ११

भोजनानां च नामानि मुनयो वदत त्वरम्।
तान् प्रयच्छामि युष्मभ्यं भीमेन सहितोऽप्यहम्॥ १२

श्रीकृष्णभीमयोर्वाक्यं निशम्य मुनिसत्तमाः।
न किञ्चिदूचुर्मुदिताः प्रपश्यन्तः परस्परम्॥ १३

तैलङ्गकर्णाटकगुर्जराद्या-
न्न्यान् द्विजान् गौडसनाढ्यकादीन्।
सम्पूज्य हेमाम्बररत्नवृन्दै-
र्नृपेश्वरो विप्रवराननाम ह॥ १४

एकलक्षं हयानां च गजानां च सहस्रकम्।
द्विसहस्रं रथानां च गवां लक्षं विधानतः॥ १५

शतभारं सुवर्णानामीदृशीं दक्षिणां नृप।
उग्रसेनस्तु यज्ञान्ते पूर्वं मह्यं ददौ किल॥ १६

मदर्धं बकदाल्भ्याय ददौ व्यासाय वै तथा।
तुरगाणां सहस्रं च गजानां शतमेव च॥ १७

द्विशतं स्यन्दनानां च धेनूनां च सहस्रकम्।
विंशद्भारं सुवर्णानामीदृशीं दक्षिणां पुनः॥ १८

निमन्त्रितेभ्यो विप्रेभ्य उग्रसेनो ददौ मुदा।
गजमेकं रथं गां च स्वर्णभारं च घोटकम्॥ १९

द्विभारं रजतं चैव यादवेन्द्रः प्रहर्षितः।
ईदृशीं दक्षिणां राजन् ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ॥ २०

महाध्वरे कृष्णपुरी तदा बभौ
महीतले खे ह्यमरावती यथा।
तदागता मागधसूतकादयो
बन्दीजना गायकवारयोषितः॥ २१

तदा नृपद्वारि महोत्सवोऽभून्
मृदङ्गवीणामुरयष्टिवेणुभिः।
सुतालशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः
सङ्गीतनृत्यादिकवाद्यगीतकैः॥ २२

कोई दूध पीते और कोई दाखका रस। कोई-कोई ब्राह्मण आमका रस पीते हुए जोर-जोरसे हँसते और लोट जाते थे॥ १०॥

तब भीमसेनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण सानन्द हँसते हुए वहाँ बैठे तपस्वी ब्राह्मणोंके साथ परिहास करने लगे—'मुनियो! आप जल्दीसे इन भोजनोंके नाम तो बताइये। आप जिनके नाम बतायेंगे, वे ही भोजन भीमसेनके साथ मैं आपके सामने प्रस्तुत करूँगा'॥ ११-१२॥

श्रीकृष्ण और भीमसेनकी बात सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ कुछ बोल न सके; केवल आनन्दित होकर परस्पर एक-दूसरेका मुँह देखने लगे। तैलङ्ग, कर्णाटकी, गुजराती, गौड़ और सनाढ्य आदि अनेक जातिके विभिन्न ब्राह्मणशिरोमणियोंका राजाधिराज उग्रसेनने सुवर्ण, वस्त्र तथा रत्नराशियोंद्वारा पूजन करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया॥ १३-१४॥

नरेश्वर! यज्ञके अन्तमें राजा उग्रसेनने सबसे पहले मुझे एक लाख घोड़े, एक हजार हाथी, दो हजार रथ, एक लाख धेनु और सौ भार सुवर्ण—इतनी दक्षिणा विधिपूर्वक दी॥ १५-१६॥

मुझसे आधी दक्षिणा बकदाल्भ्य और व्यासजीको दी। तत्पश्चात् उग्रसेनने निमन्त्रित ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकको प्रसन्नतापूर्वक एक हजार घोड़े, सौ हाथी, दो सौ रथ, एक हजार धेनु और बीस भार सुवर्ण—इतनी दक्षिणा दी॥ १७—१८१/२॥

राजन्! फिर हर्षसे भरे यादवराजने प्रत्येक ब्राह्मणको एक हाथी, एक रथ, एक गौ, एक घोड़ा, एक भार सुवर्ण और दो भार चाँदी—इतनी-इतनी दक्षिणा दी॥ १९-२०॥

उस महान् यज्ञके अवसरपर श्रीकृष्णपुरी द्वारका भूतलपर उसी तरह सुशोभित हुई, जैसे स्वर्गमें अमरावतीपुरी। उस समय मागध, सूत, बन्दीजन, गायक और वाराङ्गनाएँ राजद्वारपर आयीं। फिर तो मृदङ्ग, वीणा, मुरयष्टि, वेणु, ताल, शङ्ख, आनक और दुन्दुभिकी ध्वनियों तथा संगीत, नृत्य एवं वाद्यगीतोंके शब्दोंसे युक्त महान् उत्सव होने लगा॥ २१-२२॥

जगुः सुकण्ठैर्ननृतुः सुतालैः
सङ्गीतगीताक्षरसामगीतैः ।
कौसुम्भवस्त्राणि विचालयन्त्यः
सङ्गीतनृत्येन परिस्फुरन्त्यः ॥ २३

बन्दीजना मागधगायकाश्च
ये चागतास्तेभ्य उपागतेभ्यः ।
प्रादाद्धिरण्यं बहुरत्नवृन्दं
तथागता ह्यप्सरसश्च ताभ्यः ॥ २४

सूतेभ्यो मागधेभ्यश्च सर्वेभ्यो बहुलं धनम् ।
ववर्ष घनवद्राजा हयमेधप्रहर्षितः ॥ २५

तत्पश्चाद्यादवेन्द्रस्तु ह्युग्रसेनो महीश्वरः ।
नियुतं तुरगाणां च सहस्रं हस्तिनां तथा ॥ २६

शिबिकानां शतं चैव कुण्डले कटकानि च ।
त्रिंशद्भारं सुवर्णानां भूपे भूपे ददौ मुदा ॥ २७

द्विगुणेन यदून् सर्वान्नन्दादींश्चैव भूपतिः ।
यशोदाद्याश्च गोप्यश्च देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ २८

रुक्मिण्याद्या राधिकाद्याः पट्टराज्यो हरेरपि ।
दिव्याम्बरैरलङ्कारै राज्ञा सर्वाश्च तोषिताः ॥ २९

पुनर्ददौ च गर्गाय राजा ग्रामशतं मुदा ।
स सर्वं ब्राह्मणेभ्यश्च प्रददौ हि क्रमादृषिः ॥ ३०

ततः सम्पूजयामास कृष्णं सङ्कर्षणान्वितम् ।
वस्त्रालङ्कारतिलकैः स्रग्भिर्नीराजनादिभिः ॥ ३१

उवाच कृष्णः प्रहसन् मह्यं राजन् महाध्वरे ।
समर्थेन त्वया ह्यत्र न दत्तं किञ्चिदेव हि ॥ ३२

इति श्रुत्वा नृपः प्राह रामेण सह माधवम् ।
यथोक्तां दक्षिणां शीघ्रं गृहाण जगदीश्वर ॥ ३३

इत्युक्त्वा प्रददौ राजा हर्षितः प्रेमविह्वलः ।
फलं सर्वं कृष्णकरे राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३४

वाराङ्गनाएँ मधुर कण्ठसे गाने लगीं, सुन्दर तालोंके साथ नृत्य करने लगीं। संगीत और गीतके अक्षरोंके साथ सामवेदके गीत गूँज उठे। नर्तकियाँ अपने कुसुम्भ रंगके वस्त्र हिलाती हुई संगीत और नृत्यके साथ सब ओर प्रकाशित हो उठीं ॥ २३ ॥

उस उत्सवमें जो बन्दीजन, मागध और गायक आये थे, उन्हें अपने निकट आनेपर राजाने बहुत-सा सुवर्ण और रत्न दिये तथा जो अप्सराएँ आयी थीं, उनको भी बहुमूल्य पुरस्कार समर्पित किया। सूतों, मागधों और समस्त बंदीजनोंको भी अश्वमेधसे प्रसन्न हुए राजाने बहुत धन दिया। जैसे बादल पानी बरसाता है, उस तरह महाराज उग्रसेन धनकी वृष्टि कर रहे थे ॥ २४-२५ ॥

तत्पश्चात् यादवराज भूपालशिरोमणि उग्रसेनने अपने यहाँ आये हुए प्रत्येक राजाको एक लाख घोड़े, एक हजार हाथी, सौ-सौ शिबिकाएँ, कुण्डल, कड़े और तीस भार सुवर्ण सानन्द भेंट किये ॥ २६-२७ ॥

इससे दूना उपहार महाराजने [गद आदि] समस्त यादवों तथा नन्द आदि गोपोंको दिया। यशोदा आदि गोपाङ्गनाओं, देवकी आदि यदुकुलकी स्त्रियों तथा रुक्मिणी आदि श्रीहरिकी पटरानियों और राधिका आदिको भी राजाने बहुत-से दिव्य वस्त्र और अलंकार देकर सबको संतुष्ट किया ॥ २८-२९ ॥

अन्तमें राजाने फिर प्रसन्न होकर मुझ गर्गाचार्यको सौ ग्राम दिये। वह सब मैंने क्रमशः वहाँके ब्राह्मणोंको बाँट दिया। इसके बाद राजाने श्रीकृष्ण और बलभद्रका वस्त्र, आभूषण, तिलक, पुष्पहार और नीराजना आदि उपचारोंसे पूजन किया ॥ ३०-३१ ॥

राजन्! तब श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले—महाराज! इस महायज्ञमें समर्थ होते हुए भी आपने मुझे कुछ नहीं दिया ॥ ३२ ॥

यह सुनकर राजा बोले—जगदीश्वर! माधव! आप बलरामजीके साथ शीघ्र ही यथोक्त दक्षिणा ग्रहण कीजिये—ऐसा कहकर हर्षसे उल्लसित और प्रेमसे विह्वल हुए राजाने राजसूय तथा अश्वमेध—दोनों यज्ञोंका सारा फल श्रीकृष्णके हाथमें दे दिया ॥ ३३-३४ ॥

तदा जयजयारावो द्वारकायां बभूव ह।
सद्यः सुराश्च सन्तुष्टाः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे॥ ३५

सर्वाश्च देवतास्तुष्टाः प्राप्तभागा दिवङ्गताः।
रक्षोदैत्या दंष्ट्रिणश्च खगा मर्का विलेशयाः॥ ३६

शैला गावो वृक्षसङ्घा नद्यस्तीर्थानि सिन्धवः।
सन्तुष्टाः प्राप्तभागा ये सर्वे स्वं स्वं गृहं गताः॥ ३७

पूजिता दानमानाभ्यां राजानो ये समागताः।
जग्मुः स्वं स्वं गृहं सैन्यैः कम्पयन्तो महीतलम्॥ ३८

सर्वे गोपाश्च नन्दाद्या यशोदाद्या व्रजस्त्रियः।
कृष्णेन पूजिता राजन् विरहार्ता व्रजं ययुः॥ ३९

एवं राजा यादवेन्द्रो मनोरथमहार्णवम्।
दुस्तरं च समुत्तीर्य हरिणासीद्गतव्यथः॥ ४०

उस समय द्वारकामें जय-जयकार होने लगी। तत्काल संतुष्ट हुए समस्त देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ३५॥

तदनन्तर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो अपना-अपना भाग लेकर स्वर्गलोकको चले गये। इसी तरह राक्षस, दैत्य, दाढ़वाले पशु, पक्षी, वानर, बिलमें रहनेवाले सर्प आदि जीव, पर्वत, गौ, वृक्ष-समुदाय, नदियाँ, तीर्थ और समुद्र—सभी अपना-अपना भाग ले, संतुष्ट हो, अपने-अपने निवासस्थानको चले गये॥ ३६-३७॥

जो-जो राजा वहाँ आये थे, वे सब दान-मानसे पूजित हो सेनाओंद्वारा भूतलको कम्पित करते हुए अपनी-अपनी राजधानीको लौट गये॥ ३८॥

राजन्! नन्द आदि समस्त गोप और यशोदा आदि व्रजाङ्गनाएँ श्रीकृष्णसे पूजित हो उनके विरह-जनित कष्टका अनुभव करती हुई व्रजको चली गयीं। इस प्रकार यादवराज उग्रसेन श्रीहरिकी कृपासे मनोरथके दुस्तर महासागरको पार करके निश्चिन्त हो गये॥ ३९-४०॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे विश्वभोज्यदक्षिणावर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'विश्वभोज्यदक्षिणाका वर्णन' नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

श्रीकृष्णद्वारा कंस आदिका आवाहन और उनका श्रीकृष्णको ही परमपिता बताकर इस लोकके माता-पितासे मिले बिना ही वैकुण्ठलोकको प्रस्थान

श्रीगर्ग उवाच

ततः सर्वे समाहूताः श्रीकृष्णेन महात्मना।
वैकुण्ठादाययुः शीघ्रं कंसाद्या नव भ्रातरः॥ १

दृष्ट्वा तानागतान् सर्वे विस्मयं परमं ययुः।
ते समागत्य श्रीकृष्णं बलं प्रद्युम्नमेव च॥ २

अनिरुद्धं च कंसाद्या नेमुः सर्वे पृथक् पृथक्।
ददर्श चोग्रसेनस्तु सुधर्मायां सुतान्नृप॥ ३

शक्रसिंहासनस्थो वै रुचिमत्या समन्वितः।
कंसादीन् स्वसुतान् प्रीतः कृष्णाकारांश्चतुर्भुजान्॥ ४

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद महात्मा श्रीकृष्णके आवाहन करनेपर कंस आदि नौ भाई सब-के-सब वैकुण्ठसे शीघ्र ही वहाँ आ गये। उनको आया देख वहाँ सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। द्वारकामें पहुँचकर उन कंस आदि सब भाइयोंने बारी-बारीसे श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्धको प्रणाम किया॥ १—२½॥

नरेश्वर! सुधर्मा-सभामें इन्द्रके सिंहासनपर रानी रुचिमतीके साथ बैठे हुए महाराज उग्रसेनने अपने कंस आदि पुत्रोंको श्रीकृष्णस्वरूप एवं चार भुजाधारी देखा। देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ३-४॥

शङ्खचक्रगदापद्मैर्भूषितान् पीतवाससः।
कृष्णपार्श्वे स्थितान् पुत्रानाह्वयामास भूपतिः॥ ५

ततः कृष्णस्तु भगवान् कंसादीन् प्राह सस्मितः।
पश्य स्वमातापितरौ युष्माकं दर्शनोत्सुकौ॥ ६

गत्वा समीपे हे वीरा यूयं नमत भक्तितः।
इति कृष्णस्य वचनं कृष्णभृत्या निशम्य च॥ ७

ऊचुः प्रहर्षिताः सर्वे कंसन्यग्रोधकादयः।

कंसाद्या ऊचुः

ईदृशाः पितरोऽस्माकमीदृश्यो मातरश्च वै॥ ८

बहवश्चाभवन्नाथ भ्रमतां तव मायया।
हरिः पिता तु जीवस्य श्रुतिरेषा सनातनी॥ ९

तस्माच्चान्यं न पश्यामो वयं त्वन्निकटे स्थिताः।
पुरा विलोकितस्त्वं वै सङ्ग्रामे बलसंयुतः॥ १०

पश्चाज्जातौ द्वारकायां न दृष्टौ कार्ष्णिकार्ष्णिजौ।
तस्माद्द्रष्टुं चतुर्व्यूहं वयमत्र समागताः॥ ११

श्रीकृष्णो बलभद्रश्च श्रीप्रद्युम्न उषापतिः।
परिपूर्णतमा एते ह्यहोऽस्माभिर्विलोकिताः॥ १२

केन पूर्वेण पुण्येन दृष्टो यो दुर्लभः सताम्।
परिपूर्णश्चतुर्व्यूहो न जानीमो वयं किल॥ १३

हे सङ्कर्षण हे कृष्ण हे प्रद्युम्न उषापते।
मूढानां नः कुबुद्धीनामपराधं क्षमस्व च॥ १४

गच्छ गोविन्द वैकुण्ठं शून्यं ते धाम सुन्दरम्।
धन्या त्वया द्वारका तु वैकुण्ठाच्च कृताधिका॥ १५

यदर्चितं ब्रह्मशचीशवह्निभि-
रादित्यगौरीशमरुद्यमादिभिः।
पौलस्त्यतारेशजलेशपूजितं
पादारविन्दं सततं भजामहे॥ १६

वे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे विभूषित थे तथा पीताम्बर धारण किये श्रीकृष्णके पास खड़े थे। राजाने अपने उन पुत्रोंको निकट बुलाया। तब भगवान् श्रीकृष्णने मन्द मुस्कानके साथ कंस आदिसे कहा—'देखो, वे दोनों तुम्हारे माता-पिता हैं और तुम्हें देखनेके लिये उत्सुक हैं। वीरो! तुम उनके निकट जाकर भक्तिभावसे नमन करो'॥ ५—६१/२॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर उन्हींके किंकरभावको प्राप्त हुए वे कंस, न्यग्रोध आदि सब भाई बड़े हर्षसे भरकर बोले— ॥ ७१/२॥

कंस आदिने कहा—नाथ! आपकी मायासे संसारचक्रमें घूमते हुए हमें ऐसे पिता और ऐसी माताएँ बहुत प्राप्त हो चुकी हैं। 'श्रीहरि ही जीवमात्रके वास्तविक पिता हैं'—ऐसी सनातन श्रुति है॥ ८-९॥

अतः हमलोग आपके निकट रहकर अब दूसरे किसी माता-पिताको नहीं देखेंगे। पूर्वकालमें युद्धके अवसरपर हमने बलरामसहित आपका दर्शन किया था। उसके बाद द्वारकामें प्रद्युम्न और अनिरुद्धजीका प्रादुर्भाव हुआ, जिन्हें हमलोगोंने नहीं देखा था। अतः चतुर्व्यूहरूपमें आपका दर्शन करनेके लिये हमलोग यहाँ आये हैं॥ १०-११॥

अहो! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज हमलोगोंने श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चारों परिपूर्णतम महापुरुषोंका दर्शन किया। हम नहीं जानते कि किस पूर्वपुण्यके प्रभावसे इन परिपूर्णतम चतुर्व्यूहस्वरूप परमात्माका, जो बड़े-बड़े संतोंके लिये भी दुर्लभ हैं, हमें दर्शन मिला है॥ १२-१३॥

हे संकर्षण! हे श्रीकृष्ण! हे प्रद्युम्न! और हे उषा-वल्लभ अनिरुद्ध! हम मूढ़ हैं, कुबुद्धि हैं। आप हमारे अपराधको क्षमा करें। गोविन्द! अब वैकुण्ठमें पधारिये। आपका वह सुन्दर धाम आपके बिना सूना लग रहा है। आपके रहनेसे द्वारकापुरी वैकुण्ठसे भी अधिक वैभवशालिनी और धन्य हो गयी है। ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, शिव, मरुद्गण, यम, कुबेर, चन्द्रमा तथा वरुण आदिने जिनका पूजन किया है, आपके उन्हीं चरणारविन्दोंका हम सदा भजन करते हैं॥ १४—१६॥

मुनीन्द्रलक्ष्मीसुरभक्तसात्त्वतैः
सुपूजितं चन्दनगन्धधूपकैः।
लाजाक्षतैश्चाङ्कुरपूगचर्चितं
पादारविन्दं सततं भजामहे॥ १७

बड़े-बड़े मुनीश्वर, लक्ष्मी, देवता, भक्तजन तथा सात्त्वतवंशियोंने गन्ध, चन्दन, धूप, लावा, अक्षत, दूर्वांकुर और सुपारी आदिसे जिनका भलीभाँति पूजन किया है, आपके उन्हीं चरणारविन्दोंका हम सदा भजन करते हैं॥ १७॥

श्रीगर्ग उवाच

इत्युक्त्वा ते च कंसाद्या वैकुण्ठं प्रययुर्नृप।
सर्वेषां पश्यतां राजा विस्मितोऽभूत्स भार्यया॥ १८

श्रीगर्गजी कहते हैं—नरेश्वर! ऐसा कहकर वे कंस आदि सब भाई सबके देखते-देखते वैकुण्ठ-धामको चले गये तथा पत्नीसहित राजा उग्रसेन आश्चर्यसे चकित रह गये॥ १८॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे कंसादिदर्शनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'कंसादिका दर्शन' नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

गर्गाचार्यके द्वारा राजा उग्रसेनके प्रति भगवान् श्रीकृष्णके सहस्त्र नामोंका वर्णन

श्रीगर्ग उवाच

अथोग्रसेनो नृपतिः पुत्रस्याशां विसृज्य च।
व्यासं पप्रच्छ सन्देहं ज्ञात्वा विश्वं मनोमयम्॥ १

उग्रसेन उवाच

ब्रह्मन् केन प्रकारेण हित्वा च जगतः सुखम्।
भजेत्कृष्णं परं ब्रह्म तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ २

व्यास उवाच

त्वदग्रे कथयिष्यामि सत्यं हितकरं वचः।
उग्रसेन महाराज शृणुष्वैकाग्रमानसः॥ ३

सेवनं कुरु राजेन्द्र राधाश्रीकृष्णयोः परम्।
नित्यं सहस्त्रनामभ्यामुभयोर्भक्तितः किल॥ ४

सहस्त्रनाम राधाया विधिर्जानाति भूपते।
शङ्करो नारदश्चैव केचिद्वै चास्मदादयः॥ ५

उग्रसेन उवाच

राधिकानामसाहस्त्रं नारदाच्च पुरा श्रुतम्।
एकान्ते दिव्यशिविरे कुरुक्षेत्रे रविग्रहे॥ ६

न श्रुतं नामसाहस्त्रं कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः।
वद तन्मे च कृपया येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ ७

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! तब राजा उग्रसेनने पुत्रकी आशा छोड़कर सम्पूर्ण विश्वको मनका संकल्प-मात्र जानकर व्यासजीसे अपना संदेह पूछा॥ १॥

उग्रसेनने कहा—'ब्रह्मन्! किस प्रकारसे लौकिक सुखका परित्याग करके मनुष्य परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णका भजन करे, यह मुझे विश्वासपूर्वक बतानेकी कृपा करें'॥ २॥

व्यासजी बोले—महाराज उग्रसेन! मैं तुम्हारे सामने सत्य और हितकर बात कह रहा हूँ, इसे एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ ३॥

राजेन्द्र! तुम श्रीराधा और श्रीकृष्णकी उत्कृष्ट आराधना करो। इन दोनोंके पृथक्-पृथक् सहस्त्रनाम हैं। उनके द्वारा तुम दोनोंका भक्तिभावसे भजन करो। भूपते! राधाके सहस्त्रनामको ब्रह्मा, शंकर, नारद और कोई-कोई मेरे-जैसे लोग भी जानते हैं॥ ४-५॥

उग्रसेनने कहा—ब्रह्मन्! मैंने पूर्वकालमें सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रके एकान्त दिव्य शिविरमें नारदजीके मुखसे 'राधिकासहस्त्रनाम'का श्रवण किया था; परंतु अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके सहस्त्रनामको मैंने नहीं सुना है। अतः कृपा करके मेरे सामने उसीका वर्णन कीजिये, जिससे मैं कल्याणका भागी हो सकूँ॥ ६-७॥

श्रीगर्ग उवाच

श्रुत्वोग्रसेनवचनं वेदव्यासो महामुनिः।
प्रशस्य तं प्रीतमनाः प्राह कृष्णं विलोकयन्॥ ८

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि सहस्रं नाम सुन्दरम्।
पुरा स्वधाम्नि राधायै कृष्णेनानेन निर्मितम्॥ ९

श्रीभगवानुवाच

इदं रहस्यं किल गोपनीयं
दत्ते च हानिः सततं भवेद्धि।
मोक्षप्रदं सर्वसुखप्रदं शं-
परं परार्थं पुरुषार्थदं च॥ १०

रूपं च मे कृष्णसहस्रनाम
पठेत्तु मद्रूप इव प्रसिद्धः।
दातव्यमेवं न शठाय कुत्र
न दाम्भिकायोपदिशेत्कदापि॥ ११

दातव्यमेवं करुणावृताय
गुर्वङ्घ्रिभक्तिप्रपरायणाय ।
श्रीकृष्णभक्ताय सतां पराय
तथा मदक्रोधविवर्जिताय॥ १२

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीकृष्णसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य नारायणऋषिर्भुजङ्गप्रयातं छन्दः श्रीकृष्णचन्द्रो देवता वासुदेवो बीजं श्रीराधा शक्तिः मन्मथः कीलकं श्रीपूर्णब्रह्मकृष्णचन्द्रभक्तिजन्यफलप्राप्तये जपे विनियोगः॥

ध्यानम्

शिखिमुकुटविशेषं नीलपद्माङ्गदेशं
विधुमुखकृतकेशं कौस्तुभापीतवेशम्।

श्रीगर्गजी कहते हैं—उग्रसेनकी यह बात सुनकर महामुनि वेदव्यासने प्रसन्नचित्त होकर उनकी प्रशंसा की और श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए कहा— ॥ ८ ॥

व्यासजी बोले—राजन्! सुनो। मैं तुम्हें श्रीकृष्णका सुन्दर सहस्रनामस्तोत्र सुनाऊँगा, जिसे पहले अपने परमधाम गोलोकमें इन भगवान् श्रीकृष्णने श्रीराधाके लिये प्रकट किया था॥ ९ ॥

श्रीभगवान् बोले—प्रिये! यह सहस्रनामस्तोत्र, जो अभी बताया जायगा, गोपनीय रहस्य है। इसे हर एकके सामने प्रकट कर दिया जाय तो सदा हानि ही उठानी पड़ेगी। अधिकारीके सामने प्रकट किया गया यह स्तोत्र सम्पूर्ण सुखोंको देनेवाला, मोक्षदायक, कल्याणस्वरूप, उत्कृष्ट परमार्थरूप और समस्त पुरुषार्थोंको देनेवाला है॥ १० ॥

श्रीकृष्णसहस्रनाम मेरा रूप है। जो इसका पाठ करेगा, वह मेरा स्वरूप होकर ही प्रसिद्ध होगा। कहीं किसी शठ और दाम्भिकको इसका उपदेश कदापि नहीं देना चाहिये॥ ११ ॥

जो करुणासे भरा हुआ तथा गुरुके चरणोंमें निरन्तर भक्ति रखनेवाला है, उस संतोंके सेवक और मद एवं क्रोधसे रहित मुझ श्रीकृष्णके भक्तको ही इसका उपदेश देना चाहिये॥ १२ ॥

विनियोग

इस 'श्रीकृष्णसहस्रनामस्तोत्रमन्त्र'के नारायण ऋषि हैं, भुजङ्गप्रयात छन्द है, श्रीकृष्णचन्द्र देवता हैं, वासुदेव बीज, श्रीराधा शक्ति और मन्मथ कीलक है। श्रीपूर्णब्रह्म कृष्णचन्द्रके भक्तिजन्य फलकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है।

ध्यान

जिनके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट विशेष शोभा देता है, जिनका अङ्गदेश (सम्पूर्ण शरीर) नीलकमलके समान श्याम है, चन्द्रमाके समान मनोहर मुखपर कुञ्चित केश सुशोभित हैं, कौस्तुभ-मणिकी सुनहरी आभासे जिनका वेश कुछ पीतवर्णका दिखायी देता है (अथवा जो पीताम्बरधारी हैं),

मधुररवकलेशं शं भजे भ्रातृशेषं
व्रजजनवनितेशं माधवं राधिकेशम्॥ १३

जो मीठी धुनमें मुरली बजा रहे हैं, कल्याणस्वरूप हैं, शेषावतार बलराम जिनके भाई हैं तथा जो व्रजवनिताओंके वल्लभ हैं, उन राधिकाके प्राणेश्वर माधवका मैं भजन (चिन्तन) करता हूँ॥ १३॥

सहस्रनामस्तोत्रारम्भः

हरिर्देवकीनन्दनः कंसहन्ता
परात्मा च पीताम्बरः पूर्णदेवः।
रमेशस्तु कृष्णः परेशः पुराणः
सुरेशोऽच्युतो वासुदेवश्च देवः॥ १४

सहस्रनामस्तोत्र प्रारम्भ

१. हरिः=भक्तोंके पाप-तापका हरण करनेवाले, २. देवकीनन्दनः=अपने आविर्भावसे माता देवकी एवं यशोदाको आनन्द प्रदान करनेवाले, ३. कंस-हन्ता=कंसका वध करनेवाले, ४. परात्मा=परमात्मा, ५. पीताम्बरः=पीतवस्त्रधारी, ६. पूर्णदेवः=परिपूर्णदेवता श्रीकृष्ण, ७. रमेशः=रमावल्लभ, ८. कृष्णः=सबको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले, ९. परेशः= सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मा आदि देवताओंके भी नियन्ता, १०. पुराणः=पुरातन पुरुष या अनादिसिद्ध, ११. सुरेशः=देवताओंपर भी शासन करनेवाले, १२. अच्युतः=अपनी महिमा या मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले, १३. वासुदेवः= वसुदेवनन्दन अथवा सबके अन्तःकरणमें निवास करनेवाले देवता, चार व्यूहोंमें-से प्रथम व्यूहस्वरूप, १४. देवः=प्रकाशस्वरूप परम देवता॥ १४॥

धराभारहर्ता कृती राधिकेशः
परो भूवरो दिव्यगोलोकनाथः।
सुदाम्नस्तथा राधिकाशापहेतु-
र्घृणी मानिनीमानदो दिव्यलोकः॥ १५

१५. धराभारहर्ता=पृथ्वीका भार हरण करनेवाले, १६. कृती=कृतकृत्य अथवा पुण्यात्मा, १७. राधिकेशः= राधाप्राणवल्लभ, १८. परः=सर्वोत्कृष्ट, १९. भूवरः=पृथ्वीके स्वामी, २०. दिव्यगोलोकनाथः=दिव्यधाम गोलोकके स्वामी, २१. सुदाम्नस्तथा राधिकाशापहेतुः=सुदामा तथा राधिकाके पारस्परिक शापमें कारण, २२. घृणी= दयालु, २३. मानिनीमानदः=मानिनीको मान देनेवाले, २४. दिव्यलोकः=दिव्यधामस्वरूप॥ १५॥

लसद्गोपवेषो ह्यजो राधिकात्मा
चलत्कुण्डलः कुन्तली कुन्तलस्रक्।
रथस्थः कदा राधया दिव्यरत्नः
सुधासौधभूचारणो दिव्यवासाः॥ १६

२५. लसद्गोपवेषः=सुन्दर गोपवेषधारी, २६. अजः=अजन्मा, २७. राधिकात्मा=राधिकाके आत्मा अथवा राधिका हैं आत्मा जिनकी, वे, २८. चलत्-कुण्डलः=हिलते हुए कुण्डलोंसे सुशोभित, २९. कुन्तली= घुँघराली अलकोंसे शोभायमान, ३०.कुन्तलस्रक्= केशराशिमें फूलोंके हार धारण करनेवाले, ३१. कदाचिद् राधया रथस्थः=कभी-कभी राधिकाके साथ रथमें विराजमान, ३२. दिव्यरत्नः= दिव्यमणि—कौस्तुभ धारण करनेवाले अथवा अखिल जगत्के दिव्यरत्नस्वरूप, ३३. सुधासौधभूचारणः=चूनेसे लिपे-पुते छतकी महलपर घूमनेवाले, ३४. दिव्यवासाः=दिव्य वस्त्रधारी॥ १६॥

कदा वृन्दकारण्यचारी स्वलोके
महारत्नसिंहासनस्थः प्रशान्तः।
महाहंसभैश्चामरैर्वीज्यमान-
श्चलच्छत्रमुक्तावलीशोभमानः ॥ १७

३५. कदा वृन्दकारण्यचारी=कभी-कभी वृन्दावनमें विचरनेवाले, ३६. स्वलोके महारत्नसिंहासनस्थः=अपने धाममें महामूल्यवान् एवं विशाल रत्नमय सिंहासनपर विराजमान, ३७. प्रशान्तः=परम शान्त, ३८. महाहंस-भैश्चामरैर्वीज्यमानः=महान् हंसोंके समान श्वेत चामरोंसे जिनके ऊपर हवा की जाती है, ऐसे भगवान्, ३९. चलच्छत्रमुक्तावलीशोभमानः=हिलते हुए श्वेतच्छत्र तथा मुक्ताकी मालाओंसे शोभित होनेवाले ॥ १७ ॥

सुखी कोटिकन्दर्पलीलाभिरामः
क्वणन्नूपुरालङ्कृताङ्घ्रिः शुभाङ्घ्रिः।
सुजानुश्च रम्भाशुभोरुः कृशाङ्गः
प्रतापीभशुण्डासुदोर्दण्डखण्डः ॥ १८

४०. सुखी=आनन्दस्वरूप, ४१. कोटिकंदर्प-लीलाभिरामः=करोड़ों कामदेवोंके समान ललित लीलाओंके कारण अतिशय मनोहर, ४२. क्वणन्नूपुरालं-कृताङ्घ्रिः=झंकारते हुए नूपुरोंसे अलंकृत चरणवाले, ४३. शुभाङ्घ्रिः=शुभ लक्षणसम्पन्न पैरवाले, ४४. सुजानुः=सुन्दर घुटनोंवाले, ४५. रम्भाशुभोरुः=केलेके समान परम सुन्दर ऊरुयुगल (जाँघ)-वाले, ४६. कृशाङ्गः=दुबले-पतले, ४७. प्रतापी=तेजस्वी एवं प्रतापशाली, ४८. इभशुण्डासुदोर्दण्डखण्डः=हाथीकी सूँड़के समान सुन्दर भुजदण्डमण्डलवाले ॥ १८ ॥

जपापुष्पहस्तश्च शातोदरश्री-
र्महापद्मवक्षःस्थलश्चन्द्रहासः ।
लसत्कुन्ददन्तश्च बिम्बाधरश्रीः
शरत्पद्मनेत्रः किरीटोज्ज्वलाभः ॥ १९

४९. जपापुष्पहस्तः=अड़हुलके फूलके समान लाल-लाल हथेलीवाले, ५०. शातोदरश्रीः=पतली कमरकी शोभासे सम्पन्न, ५१. महापद्मवक्षःस्थलः=वक्षःस्थलमें प्रफुल्ल विशाल कमलकी मालासे अलंकृत, अथवा जिनका हृदयकमल विशाल है, ऐसे, ५२. चन्द्रहासः=जिनके हँसते समय चन्द्रमाकी चाँदनीकी-सी छटा छिटक जाती है, ऐसे, ५३. लसत्कुन्ददन्तः=शोभामयी कुन्दकलिकाके समान उज्ज्वल दाँतवाले, ५४. बिम्बाधरश्रीः=जिनके अधरकी शोभा पक्व बिम्ब-फलसे अधिक अरुण है, ऐसे, ५५. शरत्पद्मनेत्रः=शरत्कालके प्रफुल्ल कमलके सदृश नेत्रवाले, ५६. किरीटोज्ज्वलाभः=कान्तिमान् किरीटकी उज्ज्वल आभा धारण करनेवाले ॥ १९ ॥

सखीकोटिभिर्वर्तमानो निकुञ्जे
प्रियाराधया राससक्तो नवाङ्गः।

५७. सखीकोटिभिर्वर्तमानः=करोड़ों सखियोंके साथ रहकर शोभा पानेवाले, ५८. निकुञ्जे प्रियाराधया राससक्तः=निकुञ्जमें प्राणवल्लभा श्रीराधाके साथ रास-लीलामें तत्पर, ५९. नवाङ्गः=अपने दिव्य अङ्गोंमें

धराब्रह्मरुद्रादिभिः प्रार्थितः सन्
धराभारदूरीक्रियार्थं प्रजातः॥ २०

नित्य नूतन रमणीयता धारण करनेवाले, ६०. धराब्रह्मरुद्रादिभिः प्रार्थितः सन् धराभारदूरीक्रियार्थं प्रजातः=पृथ्वी, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भूमिका भार दूर करनेके लिये अवतार ग्रहण करनेवाले॥ २०॥

यदुर्देवकीसौख्यदो बन्धनच्छित्
सशेषो विभुर्योगमायी च विष्णुः।
व्रजे नन्दपुत्रो यशोदासुताख्यो
महासौख्यदो बालरूपः शुभाङ्गः॥ २१

६१. यदुः=यादवकुलके प्रवर्तक राजा यदु जिनकी विभूति हैं, वे, ६२. देवकीसौख्यदः=देवकीको सुख देनेवाले, ६३. बन्धनच्छित् =भवबन्धनका उच्छेद करनेवाले अथवा अवतारकालमें माता-पिताके बन्धनको काट देनेवाले, ६४. सशेषः=शेषावतार बलरामजीके साथ विराजमान, ६५. विभुः=व्यापक अथवा सर्वसमर्थ, ६६. योगमायी=योगमायाके प्रवर्तक तथा स्वामी, ६७. विष्णुः=व्यापक या वैकुण्ठनाथ विष्णुस्वरूप, ६८. व्रजे नन्दपुत्रः=व्रज-मण्डलमें नन्दनन्दनके रूपमें लीला करनेवाले, ६९. यशोदासुताख्यः=यशोदाजीके पुत्ररूपमें विख्यात, ७०. महासौख्यदः=महान् सौख्य प्रदान करनेवाले, ७१. बालरूपः=शिशुरूपधारी, ७२. शुभाङ्गः= सुन्दर एवं शुभ लक्षणसम्पन्न शरीरवाले॥ २१॥

तथा पूतनामोक्षदः श्यामरूपो
दयालुस्त्वनोभञ्जनः पल्लवाङ्घ्रिः।
तृणावर्तसंहारकारी च गोपो
यशोदायशो विश्वरूपप्रदर्शी॥ २२

७३. पूतनामोक्षदः=पूतनाको मोक्ष देनेवाले, ७४. श्यामरूपः=श्याम मनोहर रूपवाले, ७५. दयालुः=कृपालु, ७६. अनोभञ्जनः=शकट-भङ्ग करनेवाले, ७७. पल्लवाङ्घ्रिः=नूतन पल्लवोंके समान कोमल एवं अरुण चरणवाले, ७८. तृणावर्तसंहारकारी=तृणावर्तका संहार करनेवाले, ७९. गोपः= गोपालरूप, ८०. यशोदायशः= यशोदाके यशरूप, ८१. विश्वरूपप्रदर्शी=माताको अपने मुखमें (तथा अर्जुन, धृतराष्ट्र और उत्तङ्कको) सम्पूर्ण विश्वरूपका दर्शन करानेवाले॥ २२॥

तथा गर्गदिष्टश्च भाग्योदयश्री-
र्लसद्बालकेलिः सरामः सुवाचः।
क्वणन्नूपुरैः शब्दयुग्रिङ्गमाण-
स्तथा जानुहस्तैर्व्रजेशाङ्गणे वा॥ २३

८२. गर्गदिष्टः=गर्गजीके द्वारा जिनका नामकरण-संस्कार एवं भावी फलादेश किया गया, ऐसे, ८३. भाग्योदयश्रीः=भाग्योदयसूचक शोभासे सम्पन्न, ८४. लसद्बालकेलिः=सुन्दर बालोचित क्रीडा करनेवाले, ८५. सरामः=बलरामजीके साथ विचरनेवाले, ८६. सुवाचः=मनोहर बात करनेवाले, ८७. क्वणन्नूपुरैः शब्दयुक्=खनकते हुए नूपुरोंसे शब्दयुक्त, ८८. जानुहस्तैर्व्रजेशाङ्गणे रिङ्गमाणः=घुटनों और हाथोंके बलपर व्रजराज नन्दके आँगनमें रेंगने या चलनेवाले॥ २३॥

दधिस्पृक्च हैयङ्गवीदुग्धभोक्ता
दधिस्तेयकृद्दुग्धभुग्भाण्डभेत्ता ।
मृदं भुक्तवान् गोपजो विश्वरूपः
प्रचण्डांशुचण्डप्रभामण्डिताङ्गः ॥ २४

८९. दधिस्पृक्=दहीका स्पर्श (दान) करनेवाले, ९०. हैयंगवीदुग्धभोक्ता=ताजा माखन खानेवाले और दूध पीनेवाले, ९१. दधिस्तेयकृत्=व्रजाङ्गनाओंको सुख देनेके लिये दहीकी चोरी-लीला करनेवाले, ९२. दुग्धभुक्=दूधका भोग आरोगनेवाले, ९३. भाण्डभेत्ता=दही-दूध आदिके मटके फोड़नेवाले, ९४. मृदं भुक्तवान्=मिट्टी खानेवाले, ९५. गोपजः=नन्दगोपके पुत्र, ९६. विश्वरूपः=सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है, ऐसे, ९७. प्रचण्डांशुचण्डप्रभामण्डिताङ्गः=सूर्यकी प्रखर किरणोंसे सुशोभित शरीरवाले ॥ २४ ॥

यशोदाकरैर्बन्धनप्राप्त आद्यो
मणिग्रीवमुक्तिप्रदो दामबद्धः।
कदा नृत्यमानो व्रजे गोपिकाभिः
कदा नन्दसन्नन्दकैर्लाल्यमानः ॥ २५

९८. यशोदाकरैर्बन्धनप्राप्तः=यशोदाके हाथों ओखलीमें बाँधे गये, ९९. आद्यः=आदिपुरुष या सबके आदिकारण, १००. मणिग्रीवमुक्तिप्रदः=कुबेरपुत्र मणिग्रीव और नलकूबरका शापसे उद्धार करनेवाले, १०१. दामबद्धः=यशोदाद्वारा रस्सीसे बाँधे गये, १०२. कदा व्रजे गोपिकाभिः नृत्यमानः=कभी व्रजमें गोपिकाओंके साथ नृत्य करनेवाले, १०३. कदा नन्दसन्नन्दकैर्लाल्यमानः=कभी नन्द और सन्नन्द आदिके द्वारा लाड़ लड़ाये जानेवाले ॥ २५ ॥

कदा गोपनन्दाङ्कगोपालरूपी
कलिन्दाङ्गजाकूलगो वर्तमानः।
घनैर्मारुतैश्छन्नभाण्डीरदेशे
गृहीतो वरो राधया नन्दहस्तात् ॥ २६

१०४. कदा गोपनन्दाङ्कः=कभी गोपराज नन्दकी गोदमें समोद विराजमान, १०५. गोपालरूपी=ग्वाल-रूपधारी, १०६. कलिन्दाङ्गजाकूलगः=कलिन्द-नन्दिनी यमुनाके तटपर विहार करनेवाले, १०७. वर्तमानः=नित्य सत्तावाले, १०८. घनैर्मारुतैश्छन्नभाण्डीर-देशे नन्दहस्ताद् राधया गृहीतो वरः=एक समय प्रचण्ड वायु और घने बादलोंसे आच्छादित भाण्डीरवनके प्रदेशमें नन्दजीके हाथसे श्रीराधाद्वारा गृहीत वर-स्वरूप ॥ २६ ॥

निकुञ्जे च गोलोकलोकागतेऽपि
महारत्नसङ्घैः कदम्बावृतेऽपि।
तदा ब्रह्मणा राधिकासद्विवाहे
प्रतिष्ठां गतः पूजितः साममन्त्रैः ॥ २७

१०९. गोलोकलोकागते महारत्नसंघैर्युते कदम्बा-वृते निकुञ्जे राधिकासद्विवाहे ब्रह्मणा प्रतिष्ठां गतः=गोलोक-धामसे आये महान् रत्नसमूहोंसे शोभित तथा कदम्ब-वृक्षोंसे आवृत निकुञ्जमें राधिकाजीके साथ विवाहके अवसरपर ब्रह्माजीके द्वारा सादर स्थापित, ११०. साममन्त्रैः पूजितः=सामवेदके मन्त्रोंद्वारा पूजित ॥ २७ ॥

रसी रासयुङ्मालतीनां वनेऽपि
प्रियाराधया राधिकार्थं रमेशः।
धरानाथ आनन्ददः श्रीनिकेतो
वनेशो धनी सुन्दरो गोपिकेशः॥ २८

१११. रसी=विविध रसोंके अधिष्ठान, परम रसिक, ११२. मालतीनां वनेऽपि प्रियाराधया सह राधिकार्थं रासयुक्=मालती-वनमें भी प्रियतमा राधिकाके साथ उन्हींको सुख पहुँचानेके लिये रास-विलासमें संलग्न, ११३. रमेशः धरानाथः=लक्ष्मीके पति और पृथ्वीके स्वामी, ११४. आनन्ददः=आनन्द प्रदान करनेवाले, ११५. श्रीनिकेतः=रमानिवास, ११६. वनेशः=वृन्दावनके स्वामी, ११७. धनी=सीमातीत धन और ऐश्वर्यके स्वामी, ११८. सुन्दरः=अप्रतिम सौन्दर्यकी निधि, ११९. गोपिकेशः=गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ॥ २८॥

कदा राधया प्रापितो नन्दगेहे
यशोदाकरैर्लालितो मन्दहासः।
भयी क्वापि वृन्दारकारण्यवासी
महामन्दिरे वासकृद्देवपूज्यः॥ २९

१२०. कदा राधया नन्दगेहे प्रापितः=किसी समय राधिकाद्वारा नन्दके घरमें पहुँचाये गये, १२१. यशोदाकरैर्लालितः=यशोदाके हाथों दुलारे गये, १२२. मन्दहासः=मन्द-मन्द मनोरम हाससे सुशोभित, १२३. क्वापि भयी=कहीं-कहीं डरे हुएकी भाँति लीला करनेवाले, १२४. वृन्दारकारण्यवासी=वृन्दावनमें निवास करनेवाले, १२५. महामन्दिरे वासकृत्=नन्दरायके विशाल भवनमें रहनेवाले, १२६. देवपूज्यः=देवताओंके पूजनीय॥ २९॥

वने वत्सचारी महावत्सहारी
बकारिः सुरैः पूजितोऽघारिनामा।
वने वत्सकृद्गोपकृद्गोपवेषः
कदा ब्रह्मणा संस्तुतः पद्मनाभः॥ ३०

१२७. वने वत्सचारी=वनमें बछड़े चरानेवाले, १२८. महावत्सहारी=महान् बछड़ेका रूप धारण करके आये हुए वत्सासुरके विनाशक, १२९. बकारिः= बकासुरके शत्रु, १३०. सुरैः पूजितः=देवगणोंद्वारा सम्मानित, १३१. अघारिनामा=अघासुरका वध करके 'अघारि' नामसे प्रसिद्ध, १३२. वने वत्सकृत्=वनमें नूतन बछड़ोंकी सृष्टि करनेवाले, १३३. गोपकृत्=नूतन ग्वाल-बालोंका निर्माण करनेवाले, १३४. गोपवेशः= ग्वालवेषधारी, १३५. कदा ब्रह्मणा संस्तुतः=किसी समय ब्रह्माजीके मुखसे अपना गुणगान सुननेवाले, १३६. पद्मनाभः=एकार्णवके जलमें अपनी नाभिसे कमल प्रकट करनेवाले॥ ३०॥

विहारी तथा तालभुग्धेनुकारिः
सदा रक्षको गोविषार्तिप्रणाशी।

१३७. विहारी=वृन्दावनमें विचरण करनेवाले और भक्तोंके साथ नाना प्रकार विहार करनेवाले, १३८. तालभुक्=ताड़का फल खानेवाले, १३९. धेनुकारिः= धेनुकासुरके शत्रु, १४०. सदा रक्षकः= सदा सबके रक्षक, १४१. गोविषार्तिप्रणाशी=यमुनाजीका विषाक्त जल पीनेसे गौओंके भीतर व्याप्त विषजनित पीड़ाका

कलिन्दाङ्गजाकूलगः कालियस्य
दमी नृत्यकारी फणेषु प्रसिद्धः ॥ ३१

नाश करनेवाले, कलिन्दाङ्गजाकूलगः=कलिन्दकन्या यमुनाके तटपर जानेवाले, १४२. कालियस्य दमी=कालियनागका दमन करनेवाले, १४३. फणेषु नृत्यकारी=कालियनागके फणोंपर नृत्य करनेवाले, १४४. प्रसिद्धः=सर्वत्र प्रसिद्धिको प्राप्त॥ ३१ ॥

सलीलः शमी ज्ञानदः कामपूर-
स्तथा गोपयुग्गोप आनन्दकारी।
स्थिरो ह्यग्निभुक्पालको बाललीलः
सुरागश्च वंशीधरः पुष्पशीलः॥ ३२

१४५. सलीलः=लीलापरायण, १४६. शमी=स्वभावतः शान्त, १४७. ज्ञानदः=ज्ञानदाता, १४८. कामपूः=कामनाओंके पूरक, १४९. गोपयुक्=गोपोंके साथ विराजमान, १५०. गोपः=गोपस्वरूप या गौओंके पालक, १५१. आनन्दकारी=आनन्ददायिनी लीला प्रस्तुत करनेवाले, १५२. स्थिरः=स्थैर्ययुक्त, १५३. अग्निभुक्=दावानलको पी जानेवाले, १५४. पालकः=रक्षक, १५५. बाललीलः=बालकों-जैसी क्रीडा करनेवाले, १५६. सुरागः=मुरलीके स्वरोंमें सुन्दर राग गानेवाले, १५७. वंशीधरः=मुरलीधारी, १५८. पुष्पशीलः=स्वभावतः फूलोंका शृङ्गार धारण करनेवाले॥ ३२ ॥

प्रलम्बप्रभानाशको गौरवर्णो
बलो रोहिणीजश्च रामश्च शेषः।
बली पद्मनेत्रश्च कृष्णाग्रजश्च
धरेशः फणीशस्तु नीलाम्बराभः॥ ३३

१५९. प्रलम्बप्रभानाशकः=बलरामरूपसे प्रलम्बासुरकी प्रभाके नाशक, १६०. गौरवर्णः=गोरे वर्णवाले बलराम, १६१. बलः=बलस्वरूप या बलभद्र, १६२. रोहिणीजः=रोहिणीनन्दन, १६३. रामः=बलराम, १६४. शेषः=शेषके अवतार, १६५. बली=बलवान्, १६६. पद्मनेत्रः=कमलनयन, १६७. कृष्णाग्रजः=श्रीकृष्णके बड़े भाई, १६८.धरेशः=धरणीधर, १६९. फणीशः=नागराज, १७०.नीलाम्बराभः=नीलवस्त्रकी शोभासे युक्त॥ ३३ ॥

महासौख्यदो ह्यग्निहारो व्रजेशः
शरद्ग्रीष्मवर्षाकरः कृष्णवर्णः।
व्रजे गोपिकापूजितश्चीरहर्ता
कदम्बे स्थितश्चीरदः सुन्दरीशः॥ ३४

महासौख्यदः=महान् सौख्य देनेवाले, १७१. अग्निहारः=मुञ्जाटवीमें लगी हुई आगको हर लेनेवाले, १७२. व्रजेशः=व्रजके स्वामी, १७३. शरद्ग्रीष्मवर्षाकरः=शरद्, ग्रीष्म और वर्षा प्रकट करनेवाले, १७४. कृष्णवर्णः=श्यामसुन्दर, १७५. व्रजे गोपिकापूजितः=व्रजमण्डलमें गोप-सुन्दरियोंद्वारा पूजित, १७६. चीरहर्ता=चीरहरणकी लीला करनेवाले १७७. कदम्बे स्थितः=चीर लेकर कदम्बपर जा बैठनेवाले, १७८. चीरदः=गोप-किशोरियोंके माँगनेपर उन्हें चीर लौटा देनेवाले, १७९. सुन्दरीशः=सुन्दरी गोपकुमारियोंके प्राणेश्वर॥ ३४॥

क्षुधानाशकृद्यज्ञपत्नीमनःस्पृक्
कृपाकारकः केलिकर्तावनीशः।
व्रजे शक्रयागप्रणाशीऽमिताशी
शुनासीरमोहप्रदो बालरूपी॥ ३५

१८०. क्षुधानाशकृत्=ग्वाल-बालोंकी भूख मिटानेवाले, १८१. यज्ञपत्नीमनःस्पृक्=यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके मनका स्पर्श करनेवाले—उनके मन-मन्दिरमें बस जानेवाले, १८२. कृपाकारकः= दया करनेवाले, १८३. केलिकर्ता=क्रीडापरायण, १८४. अवनीशः=भूस्वामी, १८५. व्रजे शक्रयाग-प्रणाशः=व्रजमण्डलमें इन्द्रयागकी परम्पराको मिटा देनेवाले, १८६. अमिताशी=गोवर्धन-पूजामें समर्पित अपरिमित भोजन-राशिको आरोग लेनेवाले, १८७. शुनासीरमोहप्रदः=इन्द्रको मोह प्रदान करनेवाले अथवा उनके मोहका खण्डन करनेवाले, १८८. बालरूपी= बालरूपधारी॥ ३५॥

गिरेः पूजको नन्दपुत्रो ह्यगध्रः
कृपाकृच्च गोवर्धनोद्धारिनामा।
तथा वातवर्षाहरो रक्षकश्च
व्रजाधीशगोपाङ्गनाशङ्कितः सन्॥ ३६

१८९. गिरेः पूजकः=गिरिराज गोवर्धनकी पूजा करनेवाले, १९०. नन्दपुत्रः=नन्दरायजीके बेटे, १९१. अगध्रः=गिरिवरधारी, १९२. कृपाकृत्=कृपा करनेवाले, १९३. गोवर्धनोद्धारिनामा='गोवर्धनोद्धारी' नामवाले, १९४. वातवर्षाहरः=आँधी और वर्षाके कष्टको हर लेनेवाले, १९५. रक्षकः= व्रजवासियोंकी रक्षा करनेवाले, १९६. व्रजाधीशगोपाङ्गनाशङ्कितः=व्रजराज नन्द और गोपाङ्गनाओंसे डरनेवाले, अथवा गोवर्धन उठानेके अलौकिक कर्मको देखकर व्रजराज नन्द तथा गोपियोंको जिनके प्रति यह शङ्का हुई थी कि ये साधारण गोप नहीं, साक्षात् नारायण हो सकते हैं, इस तरहकी शङ्काके पात्र॥ ३६॥

अगेन्द्रोपरि शक्रपूज्यः स्तुतः प्राङ्
मृषाशिक्षको देवगोविन्दनामा।
व्रजाधीशरक्षाकरः पाशिपूज्योऽ-
नुगैर्गोपजैर्दिव्यवैकुण्ठदर्शी॥ ३७

१९७. अगेन्द्रोपरि शक्रपूज्यः=गिरिराज गोवर्धनके ऊपर इन्द्रके द्वारा पूजनीय, १९८. प्राक्स्तुतः= पहले जिनका स्तवन हुआ है, ऐसे, १९९. मृषा-शिक्षकः=अपने ऊपर शङ्का करनेवाले नन्दादि गोपोंको व्यर्थकी बातोंसे बहला देनेवाले, २००. देवगोविन्द-नामा='गोविन्ददेव' नाम धारण करनेवाले, २०१. व्रजाधीशरक्षाकरः=व्रजराज नन्दकी रक्षा करनेवाले (उन्हें वरुणलोकसे छुड़ाकर लानेवाले), २०२. पाशि-पूज्यः=पाशधारी वरुणके द्वारा पूजनीय, २०३. अनुगै-र्गोपजैः दिव्यवैकुण्ठदर्शी=अनुगामी ग्वालबालोंके साथ जाकर उन्हें दिव्य वैकुण्ठधामका दर्शन कराने-वाले॥ ३७॥

चलच्चारुवंशीक्वणः कामिनीशो
व्रजे कामिनीमोहदः कामरूपः।
रसाक्तो रसी रासकृद्राधिकेशो
महामोहदो मानिनीमानहारी॥ ३८

२०४. चलच्चारुवंशीक्वणः=मनोहर वंशीकी ध्वनि-को चारों ओर फैलानेवाले, २०५. कामिनीशः=गोप-सुन्दरियोंके प्राणेश्वर, २०६. व्रजे कामिनीमोहदः=व्रजकी कामिनियोंको मोह प्रदान करनेवाले, २०७. कामरूपः= कामदेवसे भी सुन्दर रूपवाले, २०८. रसाक्तः=रसमग्न, २०९. रसी रासकृत्=रासक्रीडा करनेवाले रसोंके निधि, २१०. राधिकेशः=राधिकाके स्वामी, २११. महामोहदः= महान् मोह प्रदान करनेवाले, २१२. मानिनीमान-हारी=मानिनियोंके मान हर लेनेवाले॥ ३८॥

विहारीवरो मानहृद्राधिकाङ्गो
धराद्वीपगः खण्डचारी वनस्थः।
प्रियो ह्यष्टवक्रर्षिद्रष्टा सराधो
महामोक्षदः पद्महारी प्रियार्थम्॥ ३९

२१३. विहारी वरः=विहारशील श्रेष्ठ पुरुष, २१४. मानहृत्=मान हर लेनेवाले, २१५. राधिकाङ्गः= श्रीराधिका जिनकी वामाङ्गस्वरूपा हैं, वे, २१६. धराद्वीपगः=भू-मण्डलके सभी द्वीपोंमें जानेवाले, २१७. खण्डचारी=विभिन्न वनखण्डोंमें विचरनेवाले, २१८. वनस्थः=वनवासी, २१९. प्रियः=सबके प्रियतम, २२०. अष्टवक्रर्षिद्रष्टा=अष्टावक्र ऋषिका दर्शन करनेवाले, २२१. सराधः=राधिकाके साथ विचरने-वाले, २२२. महामोक्षदः=महामोक्ष प्रदान करनेवाले, २२३. प्रियार्थं पद्महारी=प्रियतमाकी प्रसन्नताके लिये कमलका फूल लानेवाले॥ ३९॥

वटस्थः सुरश्चन्दनाक्तः प्रसक्तो
व्रजं ह्यागतो राधया मोहिनीषु।
महामोहकृद्गोपिकागीतकीर्ती
रसस्थः पटी दुःखिताकामिनीशः॥ ४०

२२४. वटस्थः=वटवृक्षपर विराजमान, २२५. सुरः=देवता, २२६. चन्दनाक्तः=चन्दनसे चर्चित, २२७. प्रसक्तः=श्रीराधाके प्रति अधिक अनुरक्त, २२८. राधया व्रजं ह्यागतः=श्रीराधाके साथ व्रज-मण्डलमें अवतीर्ण, २२९. मोहिनीषु महामोहकृत्=मोहिनियोंमें महामोह उत्पन्न करनेवाले, २३०. गोपिकागीत-कीर्तिः=गोपिकाओंद्वारा गायी गयी कीर्तिवाले, २३१. रसस्थः=अपने स्वरूपभूत रसमें स्थित, २३२. पटी=पीताम्बरधारी, २३३. दुःखिताकामिनीशः=दुखिया नारियोंके रक्षक॥ ४०॥

वने गोपिकात्यागकृत्पादचिह्न-
प्रदर्शी कलाकारकः काममोही।

२३४. वने गोपिकात्यागकृत्=वनमें गोपियोंका त्याग करनेवाले, २३५. पादचिह्नप्रदर्शी=वनमें ढूँढ़ती हुई गोपिकाओंको अपना चरणचिह्न प्रदर्शित करनेवाले, २३६. कलाकारकः=चौंसठ कलाओंके कलाकार, २३७. काममोही=अपने रूप-लावण्यसे कामदेवको

वशी गोपिकामध्यगः पेशवाचः
प्रियाप्रीतिकृद्रासरक्तः कलेशः ॥ ४१

भी मोहित करनेवाले, २३८. वशी=मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, २३९. गोपिकामध्यगः=गोपाङ्गनाओंके बीचमें विराजमान, २४०. पेशवाचः=मधुरभाषी, २४१. प्रियाप्रीतिकृत्=प्रिया श्रीराधासे प्रेम करनेवाले अथवा प्रियाकी प्रसन्नताके लिये कार्य करनेवाले, २४२. रासरक्तः=रासके रंगमें रँगे हुए, २४३. कलेशः=सम्पूर्ण कलाओंके स्वामी ॥ ४१ ॥

रसारक्तचित्तो ह्यनन्तस्वरूपः
स्रजा संवृतो बल्लवीमध्यसंस्थः।
सुबाहुः सुपादः सुवेशः सुकेशो
व्रजेशः सखा वल्लभेशः सुदेशः ॥ ४२

२४४. रसारक्तचित्तः=रसमग्र चित्तवाले, २४५. अनन्तस्वरूपः=अनन्त रूपवाले अथवा शेषनागस्वरूप, २४६. स्रजा संवृतः=आजानुलम्बिनी वनमाला धारण करनेवाले, २४७. बल्लवीमध्यसंस्थः= गोपाङ्गनामण्डलके मध्य बैठे हुए, २४८. सुबाहुः=सुन्दर बाँहवाले, २४९. सुपादः=सुन्दर चरणवाले, २५०. सुवेशः=सुन्दर वेश-वाले, २५१. सुकेशो व्रजेशः=सुन्दर केशवाले व्रज-मण्डलके स्वामी, २५२. सखा=सख्य-रतिके आलम्बन, २५३. वल्लभेशः=प्राणवल्लभा श्रीराधाके हृदयेश, २५४. सुदेशः=सर्वोत्कृष्ट देशस्वरूप ॥ ४२ ॥

क्वणत्किङ्किणीजालभृन्नूपुराढ्यो
लसत्कङ्कणो ह्यङ्गदी हारभारः।
किरीटी चलत्कुण्डलश्चाङ्गुलीय-
स्फुरत्कौस्तुभो मालतीमण्डिताङ्गः ॥ ४३

२५५. क्वणत्किङ्किणीजालभृत्=झनकारती हुई किङ्किणीकी लड़ोंको धारण करनेवाले, २५६. नूपुराढ्यः= चरणोंमें नूपुरोंकी शोभासे सम्पन्न, २५७. लसत्कङ्कणः= कलाइयोंमें सुन्दर कंगन धारण करनेवाले, २५८. अङ्गदी= बाजूबंदधारी, २५९. हारभारः=हारोंके भारसे विभूषित, २६०. किरीटी=मुकुटधारी, २६१.चलत्कुण्डलः=कानोंमें हिलते हुए कुण्डलोंसे सुशोभित, २६२. अङ्गुलीयस्फुरत्-कौस्तुभः=हाथोंमें अँगूठीके साथ वक्षःस्थलपर जगमगाती हुई कौस्तुभमणि धारण करनेवाले, २६३. मालतीमण्डि-ताङ्गः=मालतीकी मालासे अलंकृत शरीरवाले ॥ ४३ ॥

महानृत्यकृद्रासरङ्गः कलाढ्य-
श्चलद्धारभो भामिनीनृत्ययुक्तः।
कलिन्दाङ्गजाकेलिकृत्कुंकुमश्रीः
सुरैर्नायिकानायकैर्गीयमानः ॥ ४४

२६४. महानृत्यकृत्=महारास-नृत्य करनेवाले, २६५. रासरङ्गः=रासरंगमें तत्पर, २६६. कलाढ्यः=समस्त कलाओंसे सम्पन्न, २६७. चलद्धारभः=हिलते हुए रत्न-हारकी छटा छिटकानेवाले, २६८. भामिनीनृत्ययुक्तः= भामिनियोंके साथ नृत्यमें संलग्न , २६९. कलिन्दाङ्गजा-केलिकृत्=कलिन्दनन्दिनी यमुनाजीके जलमें क्रीडा करने-वाले, २७०. कुंकुमश्रीः=केसर-कुंकुमकी शोभासे सम्पन्न, २७१. सुरैर्नायिकानायकैर्गीयमानः=नायिकाओंके नायक, अर्थात् अपनी प्राणवल्लभाओंके साथ सुशोभित देवताओं-द्वारा जिनके यशका गान किया जाता है, वे ॥ ४४ ॥

सुखाढ्यस्तु राधापतिः पूर्णबोधः
कटाक्षस्मिती वल्गितभ्रूविलासः।
सुरम्योऽलिभिः कुन्तलालोलकेशः
स्फुरद्बर्हकुन्दस्रजा चारुवेषः॥ ४५

२७२. सुखाढ्यः=स्वरूपभूत सुखसे सम्पन्न, २७३. राधापतिः=राधिकाके प्राणवल्लभ, २७४. पूर्णबोधः=पूर्ण ज्ञानस्वरूप, २७५. कटाक्षस्मिती=कुटिल कटाक्षके साथ मन्द मुसकान—शोभा प्रकट करनेवाले, २७६. वल्गितभ्रूविलासः=नचायी हुई भौंहोंके विलाससे शोभायमान, २७७. सुरम्यः=अत्यन्त रमणीय, २७८. अलिभिः कुन्तलालोलकेशः=मँडराते भ्रमरोंसे युक्त कुछ हिलते घुँघराले केशवाले, २७९. स्फुरद्बर्हकुन्दस्रजाचारुवेशः=फरफराते हुए मोरपंखके मुकुट और कुन्दकुसुमोंकी मालासे मनोहर वेषवाले॥ ४५॥

महासर्पतो नन्दरक्षापराङ्घ्रिः
सदा मोक्षदः शङ्खचूडप्रणाशी।
प्रजारक्षको गोपिकागीयमानः
ककुद्मिप्रणाशप्रयासः सुरेज्यः॥ ४६

२८०. महासर्पतो नन्दरक्षापराङ्घ्रिः=जिनके चरण महान् अजगरके भयसे नन्दकी रक्षा करनेवाले हैं, वे, २८१. सदा मोक्षदः=सतत मोक्ष प्रदान करनेवाले, २८२. शङ्खचूडप्रणाशी='शङ्खचूड़' नामक यक्षको मार भगानेवाले, २८३. प्रजारक्षकः=प्रजाजनोंके प्रतिपालक, २८४. गोपिकागीयमानः=गोपाङ्गनाओंद्वारा जिनके यशका गान किया जाता है, वे, २८५. ककुद्मिप्रणाशप्रयासः=अरिष्टासुरके वधके लिये प्रयास करनेवाले, २८६. सुरेज्यः=देवताओंके पूजनीय॥ ४६॥

कलिः क्रोधकृत्कंसमन्त्रोपदेष्टा
तथाक्रूरमन्त्रोपदेशी सुरार्थः।
बली केशिहा पुष्पवर्षामलश्री-
स्तथा नारदादेशतो व्योमहन्ता॥ ४७

२८७. कलिः=कलिस्वरूप, २८८. क्रोधकृत्=दुष्टोंपर क्रोध करनेवाले, २८९. कंसमन्त्रोपदेष्टा=नारदरूपसे कंसको मन्त्रोपदेश करनेवाले, २९०. अक्रूरमन्त्रोपदेशी=अक्रूरको अपने नाम-मन्त्रका उपदेश करनेवाले अथवा उनको मन्त्रणा देनेवाले, २९१. सुरार्थः=देवताओंका प्रयोजन सिद्ध करनेवाले, २९२. बली केशिहा=केशीका नाश करनेवाले महान् बलवान्, २९३. पुष्पवर्षः=देवताओंद्वारा जिनपर पुष्पवर्षा की गयी है, वे भगवान्, २९४. अमलश्रीः=उज्ज्वल शोभासे सम्पन्न, २९५. नारदादेशतो व्योमहन्ता=नारदजीके कहनेसे व्योमासुरका वध करनेवाले॥ ४७॥

तथाक्रूरसेवापरः सर्वदर्शी
व्रजे गोपिकामोहदः कूलवर्ती।

२९६. अक्रूरसेवापरः=नन्द-व्रजमें आये हुए अक्रूरकी सेवामें संलग्न, २९७. सर्वदर्शी=सबके द्रष्टा, २९८. व्रजे गोपिकामोहदः=व्रजमें गोपाङ्गनाओंको मोहित करनेवाले, २९९. कूलवर्ती=यमुनाके तटपर

सतीराधिकाबोधदः स्वप्नकर्ता
विलासी महामोहनाशी स्वबोधः ॥ ४८

विद्यमान, ३००. सतीराधिकाबोधदः=मथुरा जाते समय सती राधिकाको बोध (आश्वासन) देनेवाले, ३०१. स्वप्नकर्ता=श्रीराधिकाके लिये सुखमय स्वप्नकी सृष्टि करनेवाले, ३०२. विलासी=लीला-विलासपरायण, ३०३. महामोहनाशी=महामोहके नाशक, ३०४. स्वबोधः= आत्मबोधस्वरूप ॥ ४८ ॥

व्रजे शापतस्त्यक्तराधासकाशो
महामोहदावाग्निदग्धापतिश्च ।
सखीबन्धनान् मोचिताक्रूर आरात्
सखीकङ्कणैस्ताडिताक्रूररक्षी ॥ ४९

३०५. व्रजे शापतस्त्यक्तराधासकाशः=व्रजमें शापवश राधाके समीप निवासका त्याग करनेवाले, ३०६. महामोहदावाग्निदग्धापतिः=श्रीकृष्णविषयक महा-मोहरूप दावानलसे दग्ध होनेवाली श्रीराधाके पालक या प्राणरक्षक, ३०७. सखीबन्धनान्मोचिताक्रूरः=सखियों-के बन्धनसे अक्रूरको छुड़ानेवाले, ३०८. आरात् सखी-कङ्कणैस्ताडिताक्रूररक्षी=निकट आयी हुई सखियोंके कंगनोंकी मारसे पीड़ित अक्रूरकी रक्षा करनेवाले ॥ ४९ ॥

रथस्थो व्रजे राधया कृष्णचन्द्रः
सुगुप्तो गमी गोपकैश्चारुलीलः ।
जलेऽक्रूरसन्दर्शितो दिव्यरूपो
दिदृक्षुः पुरीमोहिनीचित्तमोही ॥ ५०

३०९. व्रजे राधया रथस्थः=व्रजमें राधाके साथ रथपर विराजमान, ३१०. कृष्णचन्द्रः=श्रीकृष्णचन्द्र, ३११. गोपकैः सुगुप्तो गमी=ग्वाल-बालोंके साथ अत्यन्त गुप्तरूपसे मथुराकी यात्रा करनेवाले, ३१२. चारुलीलः=मनोहर लीलाएँ करनेवाले, ३१३. जलेऽक्रूर-संदर्शितः=यमुनाके जलमें अक्रूरको अपने रूपका दर्शन करानेवाले, ३१४. दिव्यरूपः=दिव्यरूपधारी, ३१५. दिदृक्षुः=मथुरापुरी देखनेके इच्छुक, ३१६. पुरी-मोहिनीचित्तमोही=मथुरापुरीकी मोहिनी स्त्रियोंके भी चित्तको मोह लेनेवाले ॥ ५० ॥

तथा रङ्गकारप्रणाशी सुवस्त्रः
स्त्रजी वायकप्रीतिकृन्मालिपूज्यः ।
महाकीर्तिदश्चापि कुब्जाविनोदी
स्फुरच्चण्डकोदण्डरुग्णः प्रचण्डः ॥ ५१

३१७. रङ्गकारप्रणाशी=कंसके रंगकार या धोबीको नष्ट करनेवाले, ३१८. सुवस्त्रः=सुन्दर वस्त्रधारी, ३१९. स्त्रजी=माली सुदामाकी दी हुई माला धारण करनेवाले, ३२०. वायकप्रीतिकृत्=दर्जीको प्रसन्न करने-वाले, ३२१. मालिपूज्यः=मालीके द्वारा पूजित, ३२२. महाकीर्तिदः=मालीको महान् सुयश प्रदान करनेवाले, ३२३. कुब्जाविनोदी=कुब्जाके साथ हास-विनोद करने-वाले, ३२४. स्फुरच्चण्डकोदण्डरुग्णः=कंसके कान्ति-मान् कोदण्डका खण्डन (धनुष-भङ्ग) करनेवाले, ३२५. प्रचण्डः=प्रचण्ड (महान् बलवान्) दिखायी देनेवाले ॥ ५१ ॥

भटार्तिप्रदः कंसदुःस्वप्नकारी
महामल्लवेषः करीन्द्रप्रहारी।
महामात्यहा रङ्गभूमिप्रवेशी
रसाढ्यो यशःस्पृग्बलीवाक्पटुश्रीः॥ ५२

३२६. भटार्तिप्रदः=कंसके मल्ल योद्धाओंको पीड़ा देनेवाले, ३२७. कंसदुःस्वप्नकारी=कंसको बुरे सपने दिखानेवाले, ३२८. महामल्लवेषः=महान् मल्लोंके समान वेष धारण करनेवाले, ३२९. करीन्द्रप्रहारी=गजराज कुवलयापीडपर प्रहार करनेवाले, ३३०. महामात्यहा=महावतोंको मारनेवाले, ३३१. रङ्गभूमिप्रवेशी=कंसकी मल्लशालामें प्रवेश करनेवाले, ३३२. रसाढ्यः=नौ रसोंसे सम्पन्न (भिन्न-भिन्न द्रष्टाओंको विभिन्न रसोंके आलम्बनके रूपमें दिखायी देनेवाले), ३३३. यशःस्पृक्=यशस्वी, ३३४. बलीवाक्पटुश्रीः=अनन्त शक्तिसे सम्पन्न और बातचीत करनेमें प्रवीण ऐश्वर्यवान्॥ ५२॥

महामल्लहा युद्धकृत्स्त्रीवचोऽर्थी
धरानायकः कंसहन्ता यदुः प्राक्।
सदा पूजितो ह्युग्रसेनप्रसिद्धो
धराराज्यदो यादवैर्मण्डिताङ्गः॥ ५३

३३५. महामल्लहा=बड़े-बड़े मल्ल चाणूर और मुष्टिक आदिका वध करनेवाले, ३३६. युद्धकृत्=युद्ध करनेवाले, ३३७. स्त्रीवचोऽर्थी=रंगोत्सव देखनेके लिये आयी हुई स्त्रियोंके वचनोंको सुननेकी इच्छावाले, ३३८. धरानायकः कंसहन्ता=कंसका हनन करनेवाले तथा भूतलके स्वामी, ३३९. प्राग्यदुः=पूर्ववर्ती राजा यदुस्वरूप, ३४०. सदा पूजितः=सदा सबसे पूजित, ३४१. उग्रसेनप्रसिद्धः=उग्रसेनकी प्रसिद्धिके कारण, ३४२. धराराज्यदः=उग्रसेनको भूमण्डलका राज्य देने-वाले, ३४३. यादवैर्मण्डिताङ्गः=यादवोंसे सुशोभित शरीरवाले॥ ५३॥

गुरोः पुत्रदो ब्रह्मविद्ब्रह्मपाठी
महाशङ्खहा दण्डधृक्पूज्य एव।
व्रजे ह्युद्धवप्रेषिता गोपमोही
यशोदाघृणी गोपिकाज्ञानदेशी॥ ५४

३४४. गुरोः पुत्रदः=गुरुको पुत्र प्रदान करनेवाले, ३४५. ब्रह्मविद्=ब्रह्मवेत्ता, ३४६. ब्रह्मपाठी=वेदपाठ करनेवाले, ३४७. महाशङ्खहा=महान् राक्षस शङ्खासुरका वध करनेवाले, ३४८. दण्डधृक् पूज्यः=दण्डधारी यमराजके लिये पूजनीय, ३४९. व्रजे उद्धवप्रेषिता=व्रजमें वहाँका समाचार जाननेके लिये उद्धवको भेजनेवाले, ३५०. गोपमोही=अपने रूप, गुण और सद्भावसे गोपगणोंको मोह लेनेवाले, ३५१. यशोदाघृणी=मैया यशोदाके प्रति अत्यन्त कृपालु, ३५२. गोपिकाज्ञान-देशी=गोपाङ्गनाओंको ज्ञानोपदेश करनेवाले॥ ५४॥

सदा स्नेहकृत्कुब्जया पूजिताङ्ग-
स्तथाक्रूरगेहङ्गमी मन्त्रवेत्ता।

३५३. सदा स्नेहकृत्=सदा स्नेह करनेवाले, ३५४. कुब्जया पूजिताङ्गः=कुब्जाके द्वारा पूजित अङ्गवाले, ३५५. अक्रूरगेहंगमी=अक्रूरके घर पधारनेवाले, ३५६. मन्त्रवेत्ता=

तथा पाण्डवप्रेषिताक्रूर एव
सुखी सर्वदर्शी नृपानन्दकारी ॥ ५५

मन्त्रणाके मर्मज्ञ, ३५७. पाण्डवप्रेषिताक्रूरः=पाण्डवोंका समाचार लानेके लिये अक्रूरको भेजनेवाले, ३५८. सुखी सर्वदर्शी=सौख्ययुक्त, सबके साक्षी अथवा सर्वज्ञ, ३५९. नृपानन्दकारी=राजा उग्रसेनको आनन्द देनेवाले ॥ ५५ ॥

महाक्षौहिणीहा जरासन्धमानो-
द्धरो द्वारकाकारको मोक्षकर्ता।
रणी सार्वभौमस्तुतो ज्ञानदाता
जरासन्धसङ्कल्पकृद्धावदङ्घ्रिः ॥ ५६

३६०. महाक्षौहिणीहा=जरासंधकी तीस अक्षौहिणी सेनाका विनाश करनेवाले, ३६१. जरासंधमानोद्धरः=जरासंधका मान भङ्ग करनेवाले, ३६२. द्वारकाकारकः=द्वारकापुरीका निर्माण करनेवाले, ३६३. मोक्षकर्ता=भव-बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाले, ३६४. रणी=युद्धके लिये सदा उद्यत, ३६५. सार्वभौमस्तुतः=सत्ययुगके चक्रवर्ती राजा मुचुकुन्दने जिनकी स्तुति की, ऐसे, ३६६. ज्ञानदाता=मुचुकुन्दको ज्ञान प्रदान करनेवाले, ३६७. जरासंधसंकल्पकृत्=एक बार अपनी पराजयका अभिनय करके जरासंधके संकल्पकी पूर्ति करनेवाले, ३६८. धावदङ्घ्रिः=पैदल भागनेवाले ॥ ५६ ॥

नगादुत्पतन्द्वारकामध्यवर्ती
तथा रेवतीभूषणस्तालचिह्नः।
यदू रुक्मिणीहारकश्चैद्यभेद्य-
स्तथा रुक्मिरूपप्रणाशी सुखाशी ॥ ५७

३६९. नगादुत्पतन्द्वारकामध्यवर्ती=प्रवर्षणगिरिसे उछलकर द्वारकापुरीके बीच विराजमान, ३७०. रेवती-भूषणः=बलरामरूपसे रेवतीके सौभाग्यभूषण, ३७१. तालचिह्नो यदुः=तालके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले यदुवीर, ३७२. रुक्मिणीहारकः=रुक्मिणीका अपहरण करनेवाले, ३७३. चैद्यभेद्यः=चेदिराज शिशुपाल जिनका वध्य है, वे, ३७४. रुक्मिरूपप्रणाशी=रुक्मीकी आधी मूँछ मूँड़कर उसे कुरूप बनानेवाले, ३७५. सुखाशी=स्वरूपभूत आनन्दके आस्वादक ॥ ५७ ॥

अनन्तश्च मारश्च कार्ष्णिश्च कामो
मनोजस्तथा शम्बरारी रतीशः।
रथी मन्मथो मीनकेतुः शरी च
स्मरो दर्पको मानहा पञ्चबाणः ॥ ५८

३७६ अनन्तः=शेषनागस्वरूप, ३७७. मारः=कामदेवावतार, ३७८. कार्ष्णिः=कृष्णकुमार प्रद्युम्न, ३७९. कामः=कामदेव, ३८०. मनोजः=काम, ३८१. शम्बरारिः=शम्बरासुरके शत्रु कामदेव, ३८२. रतीशः=रतिके स्वामी, ३८३. रथी=रथारूढ़, ३८४. मन्मथः=मनको मथ देनेवाले, ३८५. मीनकेतुः= मत्स्यचिह्न ध्वजासे युक्त, ३८६. शरी=बाणधारी, ३८७. स्मरः=काम, ३८८. दर्पकः=कामदेव, ३८९. मानहा=मानमर्दन करनेवाले, ३९०. पञ्चबाणः= पञ्चबाणधारी कामदेव (ये सब नाम प्रद्युम्नस्वरूप श्रीहरिके पर्यायवाची हैं) ॥ ५८ ॥

प्रियः सत्यभामापतिर्यादवेशोऽ-
थ सत्राजितः प्रेमपूरः प्रहासः।
महारत्नदो जाम्बवद्युद्धकारी
महाचक्रधृक्खड्गधृग् रामसन्धिः॥ ५९

३९१. प्रियः सत्यभामापतिः=सत्यभामाके प्रिय पति, ३९२. यादवेशः=यादवोंके स्वामी, ३९३. सत्राजित्प्रेमपूरः=सत्राजित्के प्रेमको पूर्ण करनेवाले, ३९४. प्रहासः=उत्कृष्ट हासवाले, ३९५. महारत्नदः=महारत्न स्यमन्तकको ढूँढ़कर ला देनेवाले, ३९६. जाम्बवद्युद्धकारी=जाम्बवान्‌से युद्ध करनेवाले, ३९७. महाचक्रधृक्=महान् सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले, ३९८. खड्गधृक्='नन्दक' नामक खड्ग धारण करनेवाले, ३९९. रामसंधिः=बलरामजीके साथ संधि करनेवाले॥ ५९॥

विहारस्थितः पाण्डवप्रेमकारी
कलिन्दाङ्गजामोहनः खाण्डवार्थी।
सखा फाल्गुनप्रीतिकृन्नग्नकर्ता
तथा मित्रविन्दापतिः क्रीडनार्थी॥ ६०

४००. विहारस्थितः=लीलाविहारपरायण, ४०१. पाण्डवप्रेमकारी=पाण्डवोंसे प्रेम करनेवाले, ४०२. कलिन्दाङ्गजामोहनः=कालिन्दीके मनको मोह लेनेवाले, ४०३. खाण्डवार्थी=खाण्डववनको अग्निदेवके लिये अर्पित करनेके इच्छुक, ४०४. फाल्गुनप्रीतिकृत् सखा=अर्जुनपर प्रेम रखनेवाले उनके सखा, ४०५. नग्नकर्ता=खाण्डव-वनको जलाकर नग्न (शून्य) करनेवाले, ४०६. मित्रविन्दापतिः='मित्रविन्दा' नामवाली अवन्तीदेशकी राजकुमारीके पति, ४०७. क्रीडनार्थी=क्रीडा या खेलके इच्छुक॥ ६०॥

नृपप्रेमकृद्गोजितः सप्तरूपोऽ-
थ सत्यापतिः पारिबर्ही यथेष्टम्।
नृपैः संवृतश्चापि भद्रापतिस्तु
विलासी मधोर्मानिनीशो जनेशः॥ ६१

४०८. नृपप्रेमकृत्=राजा नग्नजित्‌से प्रेम करनेवाले, ४०९. सप्तरूपो गोजयी=सात रूप धारण करके सात बिगड़ैल बैलोंको एक ही साथ नाथकर काबूमें कर लेनेवाले, ४१०. सत्यापतिः=नग्नजित्कुमारी सत्याके पति, ४११. पारिबर्ही=राजा नग्नजित्‌के द्वारा दिये दहेजको ग्रहण करनेवाले, ४१२. यथेष्टम्=पूर्ण, ४१३. नृपैः संवृतः=सत्याको लेकर लौटते समय मार्गमें युद्धार्थी राजाओंद्वारा घेर लिये जानेवाले, ४१४. भद्रापतिः=भद्राके स्वामी, ४१५. मधोर्विलासी=मधुमास चैत्रकी पूर्णिमाको रासविलास करनेवाले, ४१६. मानिनीशः=मानिनी जनोंके प्राणवल्लभ, ४१७. जनेशः=प्रजाजनोंके स्वामी॥ ६१॥

शुनासीरमोहावृतः सत्सभार्यः
सताक्ष्यो मुरारिः पुरीसङ्घभेत्ता।

४१८. शुनासीरमोहावृतः=इन्द्रके प्रति मोह (स्नेह एवं कृपाभाव)-से युक्त, ४१९. सत्सभार्यः=सती भार्यासे युक्त, ४२०. सताक्ष्यः=गरुडपर आरूढ़, ४२१. मुरारिः=मुर दैत्यका नाश करनेवाले, ४२२. पुरीसंघभेत्ता=भौमासुरकी पुरीके दुर्गसमुदायका भेदन करने-

सुवीरः शिरःखण्डनो दैत्यनाशी
शरी भौमहा चण्डवेगः प्रवीरः ॥ ६२

वाले, ४२३. सुवीरः शिरःखण्डनः=श्रेष्ठ वीर तथा असुरोंका मस्तक काटनेवाले, ४२४. दैत्यनाशी=दैत्योंका नाश करनेवाले, ४२५. शरी भौमहा= सायकधारी होकर भौमासुरका वध करनेवाले, ४२६. चण्डवेगः=प्रचण्ड वेगशाली, ४२७. प्रवीरः=उत्कृष्ट वीर ॥ ६२ ॥

धरासंस्तुतः कुण्डलच्छत्रहर्ता
महारत्नयुग् राजकन्याभिरामः।
शचीपूजितः शक्रजिन्मानहर्ता
तथा पारिजातापहारी रमेशः ॥ ६३

४२८. धरासंस्तुतः=पृथ्वीदेवीके मुखसे अपना गुणगान सुननेवाले, ४२९. कुण्डलच्छत्रहर्ता=अदितिके कुण्डल और इन्द्रके छत्रको भौमासुरकी राजधानीसे लेकर उसे स्वर्गलोकतक पहुँचानेवाले, ४३०. महारत्नयुक्=महान् मणिरत्नोंसे सम्पन्न, ४३१. राजकन्याभिरामः=सोलह हजार राजकुमारियोंके सुन्दर पति, ४३२. शचीपूजितः=स्वर्गमें इन्द्रपत्नी शचीके द्वारा सम्मानित, ४३३. शक्रजित्=पारिजातके लिये होनेवाले युद्धमें इन्द्रको जीतनेवाले, ४३४. मानहर्ता=इन्द्रका अभिमान चूर्ण कर देनेवाले, ४३५. पारिजातापहारी रमेशः= पारिजातका अपहरण करनेवाले रमावल्लभ ॥ ६३ ॥

गृही चामरैः शोभितो भीष्मकन्या-
पतिर्हास्यकृन्मानिनीमानकारी ।
तथा रुक्मिणीवाक्पटुः प्रेमगेहः
सतीमोहनः कामदेवापरश्रीः ॥ ६४

४३६. गृही चामरैः शोभितः=गृहस्थरूपमें रहकर श्वेत चँवर डुलाये जानेके कारण अतिशय शोभायमान, ४३७. भीष्मककन्यापतिः=राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीके पति, ४३८. हास्यकृत्=रुक्मिणीके साथ परिहास करनेवाले, ४३९. मानिनीमानकारी=मानिनी रुक्मिणीको मान देनेवाले, ४४०. रुक्मिणीवाक्पटुः= रुक्मिणीको अपनी बातोंसे रिझानेमें कुशल, ४४१. प्रेमगेहः=प्रेमके अधिष्ठान, ४४२. सतीमोहनः=सतियोंको भी मोह लेनेवाले, ४४३. कामदेवापरश्रीः=दूसरे कामदेवके समान मनोरम सुषमासे सम्पन्न ॥ ६४ ॥

सुदेष्णः सुचारुस्तथा चारुदेष्णोऽ-
परश्चारुदेहो बली चारुगुप्तः।
सुती भद्रचारुस्तथा चारुचन्द्रो
विचारुश्च चारू रथी पुत्ररूपः ॥ ६५

४४४. सुदेष्णः='सुदेष्ण' नामक श्रीकृष्ण-पुत्र, ४४५. सुचारुः=सुचारु, ४४६. चारुदेष्णः=चारुदेष्ण, ४४७. चारुदेहः=चारुदेह, ४४८. बली चारुगुप्तः=बली चारुगुप्त, ४४९. सुती भद्रचारुः=पुत्रवान् भद्रचारु, ४५०. चारुचन्द्रः=चारुचन्द्र, ४५१. विचारुः=विचारु, ४५२. चारुः=चारु, ४५३. रथी पुत्ररूपः=रथी पुत्रस्वरूप ॥ ६५ ॥

सुभानुः प्रभानुस्तथा चन्द्रभानु-
र्बृहद्भानुरेवाष्टभानुश्च साम्बः।

४५४. सुभानुः=सुभानु, ४५५. प्रभानुः=प्रभानु, ४५६. चन्द्रभानुः=चन्द्रभानु, ४५७. बृहद्भानुः=बृहद्भानु, ४५८. अष्टभानुः=अष्टभानु, ४५९. साम्बः=साम्ब,

सुमित्रः क्रतुश्चित्रकेतुस्तु वीरोऽ-
श्वसेनो वृषश्चित्रगुश्चन्द्रबिम्बः ॥ ६६

४६०. सुमित्रः=सुमित्र, ४६१. क्रतुः=क्रतु, ४६२. चित्रकेतुः=चित्रकेतु, ४६३. वीरः अश्वसेनः=वीर अश्वसेन, ४६४. वृषः=वृष, ४६५. चित्रगुः= चित्रगु, ४६६. चन्द्रबिम्बः=चन्द्रबिम्ब ॥ ६६ ॥

विशंकुर्वसुश्च श्रुतो भद्र एकः
सुबाहुर्वृषः पूर्णमासस्तु सोमः।
वरः शान्तिरेव प्रघोषोऽथ सिंहो
बलो ह्यूर्ध्वगो वर्धनोन्नाद एव ॥ ६७

४६७. विशङ्कुः=विशंकु, ४६८. वसुः=वसु, ४६९. श्रुतः=श्रुत, ४७०. भद्रः एकः=एकमात्र कल्याणस्वरूप, ४७१. सुबाहुः वृषः=उत्तम भुजाओंयुक्त वृष, ४७२. पूर्णमासः=पूर्णमास, ४७३. सोमः वरः=श्रेष्ठ सोम, ४७४. शान्तिः=शान्ति, ४७५. प्रघोषः= प्रघोष, ४७६. सिंहः=सिंह, ४७७. बलः ऊर्ध्वगः=बल और ऊर्ध्वग, ४७८. वर्धनः=वर्धन, ४७९. उन्नादः= उन्नाद ॥ ६७ ॥

महाशो वृकः पावनो वह्निमित्रः
क्षुधिर्हर्षकश्चानिलोऽमित्रजिच्च ।
सुभद्रो जयः सत्यको वाम आयु-
र्यदुः कोटिशः पुत्रपौत्रप्रसिद्धः ॥ ६८

४८०. महाशः=महाश, ४८१. वृकः=वृक, ४८२. पावनः=पावन, ४८३. वह्निमित्रः=वह्निमित्र, ४८४. क्षुधिः= क्षुधि, ४८५. हर्षकः=हर्षक, ४८६. अनिलः=अनिल, ४८७. अमित्रजित्=अमित्रजित्, ४८८. सुभद्रः=सुभद्र, ४८९. जयः=जय, ४९०. सत्यकः=सत्यक, ४९१. वामः=वाम, ४९२.आयुः=आयु, यदुः=यदु, ४९३. कोटिशः पुत्रपौत्रैः प्रसिद्धः=इस प्रकार करोड़ों पुत्र-पौत्रोंसे प्रसिद्ध ॥ ६८ ॥

हली दण्डधृग्रुक्मिहा चानिरुद्ध-
स्तथा राजभिर्हास्यगो द्यूतकर्ता।
मधुर्ब्रह्मसूर्बाणपुत्रीपतिश्च
महासुन्दरः कामपुत्रो बलीशः ॥ ६९

४९४. हली दण्डधृक्=ईषादण्डधारी हलधर बलराम, ४९५. रुक्मिहा=रुक्मीका वध करनेवाले, ४९६. अनिरुद्धः=किसीके द्वारा रोके न जा सकनेवाले, ४९७. राजभिर्हास्यगः=अनिरुद्धके विवाहमें द्यूतक्रीड़ाके समय राजाओंने जिनकी हँसी उड़ायी, वे, ४९८. द्यूतकर्ता=विनोदके लिये द्यूत-क्रीड़ामें भाग लेनेवाले बलरामजी, ४९९. मधुः=मधुवंशमें अवतीर्ण, ५००. ब्रह्मसूः=ब्रह्माजीके अवतार अनिरुद्ध, ५०१. बाणपुत्रीपतिः=बाणासुरकी कन्या ऊषाके स्वामी, ५०२. महासुन्दरः=अतिशय सौन्दर्यशाली, ५०३. कामपुत्रः=प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धरूप, ५०४. बलीशः=बलवानोंके ईश्वर ॥ ६९ ॥

महादैत्यसङ्ग्रामकृद्यादवेशः
पुरीभञ्जनो भूतसन्त्रासकारी।

५०५. महादैत्यसंग्रामकृद् यादवेशः=बड़े-बड़े दैत्योंके साथ युद्ध करनेवाले यादवोंके स्वामी, ५०६. पुरीभञ्जनः=बाणासुरकी नगरीको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले, ५०७. भूतसंत्रासकारी=भूतगणोंको संत्रस्त कर देनेवाले,

मृधे रुद्रजिद्रुद्रमोही मृधार्थी
तथा स्कन्दजित्कूपकर्णप्रहारी॥ ७०

५०८. मृधे रुद्रजित्=युद्धमें रुद्रको जीतनेवाले, ५०९. रुद्रमोही=जृम्भणास्त्रके प्रयोगसे रुद्रदेवको मोहित करनेवाले, ५१०. मृधार्थी= युद्धाभिलाषी, ५११. स्कन्द-जित्=कुमार कार्तिकेयको परास्त करनेवाले, ५१२. कूपकर्णप्रहारी='कूपकर्ण' नामक प्रमथगणपर प्रहार करनेवाले॥ ७०॥

धनुर्भञ्जनो बाणमानप्रहारी
ज्वरोत्पत्तिकृत्संस्तुतस्तु ज्वरेण।
भुजाछेदकृद्बाणसन्त्रासकर्ता
मृडप्रस्तुतो युद्धकृद्भूमिभर्ता॥ ७१

५१३. धनुर्भञ्जनः=धनुष भङ्ग करनेवाले, ५१४. बाणमानप्रहारी=बाणासुरके अभिमानको चूर्ण कर देनेवाले, ५१५. ज्वरोत्पत्तिकृत्=ज्वरकी उत्पत्ति करनेवाले, ५१६. ज्वरेण संस्तुतः=रुद्रके ज्वरद्वारा जिनकी स्तुति की गयी, वे, ५१७. भुजाछेदकृत्=बाणासुरकी बाँहोंको काट देनेवाले, ५१८. बाणसंत्रासकर्ता=बाणासुरके मनमें त्रास उत्पन्न कर देनेवाले, ५१९. मृडप्रस्तुतः=भगवान् शिवके द्वारा स्तुत, ५२०. युद्धकृत्=युद्ध करनेवाले, ५२१. भूमिभर्त्ता=भूमण्डलका भरण-पोषण करनेवाले, अथवा भूदेवीके पति॥ ७१॥

नृगं मुक्तिदो ज्ञानदो यादवानां
रथस्थो व्रजप्रेमपो गोपमुख्यः।
महासुन्दरीक्रीडितः पुष्पमाली
कलिन्दाङ्गजाभेदनः सीरपाणिः॥ ७२

५२२. नृगं मुक्तिदः=राजा नृगका उद्धार करनेवाले, ५२३. यादवानां ज्ञानदः=यादवोंको ज्ञान देने-वाले, ५२४. रथस्थः=दिव्य रथपर आरूढ, ५२५. व्रज-प्रेमपः=व्रजविषयक प्रेमके पालक अथवा व्रजवासियोंके प्रेमरसका पान करनेवाले, ५२६. गोपमुख्यः=गोप-शिरोमणि, ५२७. महासुन्दरीक्रीडितः=अपनी प्रेयसी परम सुन्दरियोंके साथ क्रीडा करनेवाले बलरामजी, ५२८. पुष्पमाली=पुष्पमालाओंसे अलंकृत, ५२९. कलिन्दाङ्गजाभेदनः=कालिन्दीकी धाराको फोड़कर अपनी ओर खींच लानेवाले, ५३०. सीरपाणिः=हाथमें हल धारण करनेवाले॥ ७२॥

महादम्भिहा पौण्ड्रमानप्रहारी
शिरश्छेदकः काशिराजप्रणाशी।
महाक्षौहिणीध्वंसकृच्चक्रहस्तः
पुरीदीपको राक्षसीनाशकर्ता॥ ७३

५३१. महादम्भिहा=बड़े-बड़े दम्भी-पाखण्डियोंका दमन करनेवाले, ५३२. पौण्ड्रमानप्रहारी=पौण्ड्रकके घमंडको चूर्ण कर देनेवाले, ५३३. शिरश्छेदकः=उसके मस्तकको काट देनेवाले, ५३४. काशिराजप्रणाशी=काशिराजका नाश करनेवाले, ५३५. महाक्षौहिणी-ध्वंसकृत्=शत्रुओंकी विशाल अक्षौहिणी सेनाका विनाश करनेवाले, ५३६. चक्रहस्तः=चक्रपाणि, ५३७. पुरी-दीपकः=काशीपुरीको जलानेवाले, ५३८. राक्षसीनाश-कर्ता=राक्षसीके नाशक॥ ७३॥

अनन्तो महीध्रः फणी वानरारिः
स्फुरद्गौरवर्णो महापद्मनेत्रः।
कुरुग्रामतिर्यग्गतिः गौरवार्थं
स्तुतः कौरवैः पारिबर्ही ससाम्बः॥ ७४

५३९. अनन्तः=शेषनागरूप, ५४०. महीध्रः=धरणीको धारण करनेवाले, ५४१. फणी=फणधारी, ५४२. वानरारिः='द्विविद' नामक वानरके शत्रु, ५४३. स्फुरद्गौरवर्णः=प्रकाशमान गौरवर्णवाले, ५४४. महापद्मनेत्रः=प्रफुल्ल कमलके समान विशाल नेत्रवाले, ५४५. कुरुग्रामतिर्यग्गतिः=कौरवोंके निवासस्थल हस्तिनापुरको गङ्गाकी ओर तिरछी दिशामें खींच लेनेवाले, ५४६. गौरवार्थं कौरवैः स्तुतः=जिनका गौरव प्रकट करनेके लिये कौरवोंने स्तुति की, वे बलरामजी, ५४७. ससाम्बः पारिबर्ही=साम्बके साथ कौरवोंसे दहेज लेकर लौटनेवाले॥ ७४॥

महावैभवी द्वारकेशो ह्यनेक-
श्चलन्नारदः श्रीप्रभादर्शकस्तु।
महर्षिस्तुतो ब्रह्मदेवः पुराणः
सदा षोडशस्त्रीसहस्रस्थितश्च॥ ७५

५४८. महावैभवी=महान् वैभवशाली, ५४९. द्वारकेशः=द्वारकानाथ, ५५०. अनेकः=अनेक रूपधारी, ५५१. चलन्नारदः=नारदजीको विचलित कर देनेवाले, ५५२. श्रीप्रभादर्शकः=अपनी लक्ष्मी तथा प्रभावको दिखानेवाले, ५५३. महर्षिस्तुतः=महर्षियोंसे संस्तुत, ५५४. ब्रह्मदेवः=ब्राह्मणोंको देवता माननेवाले अथवा ब्रह्माजीके आराध्यदेव, ५५५. पुराणः=पुराणपुरुष, ५५६. सदा षोडशस्त्रीसहस्रस्थितः=सर्वदा सोलह हजार पत्नियोंके साथ रहनेवाले॥ ७५॥

गृही लोकरक्षापरो लोकरीतिः
प्रभुर्ह्युग्रसेनावृतो दुर्गयुक्तः।
तथा राजदूतस्तुतो बन्धभेत्ता
स्थितो नारदप्रस्तुतः पाण्डवार्थी॥ ७६

५५७. गृही=आदर्श गृहस्थ, ५५८. लोकरक्षापरः=समस्त लोकोंकी रक्षामें तत्पर, ५५९. लोकरीतिः=लौकिक रीतिका अनुसरण करनेवाले, ५६०. प्रभुः=अखिल विश्वके स्वामी, ५६१. उग्रसेनावृतः=उग्र सेनाओंसे घिरे हुए, ५६२. दुर्गयुक्तः=दुर्गसे युक्त, ५६३. राजदूतस्तुतः=जरासंधके बंदी राजाओंद्वारा भेजे गये दूतने जिनकी स्तुति की, वे, ५६४. बन्धभेत्ता स्थितः=बन्दी राजाओंके बन्धन काटकर उनके लिये मुक्तिदाताके रूपमें स्थित नित्य विद्यमान, ५६५. नारदप्रस्तुतः=नारदजीके द्वारा संस्तुत, ५६६. पाण्डवार्थी=पाण्डवोंका अर्थ सिद्ध करनेवाले॥ ७६॥

नृपैर्मन्त्रकृद्ध्युद्धवप्रीतिपूर्णो
वृतः पुत्रपौत्रैः कुरुग्रामगन्ता।

५६७. नृपैर्मन्त्रकृत्=राजाओंके साथ सलाह करनेवाले, ५६८. उद्धवप्रीतिपूर्णः=उद्धवकी प्रीतिसे परिपूर्ण, ५६९. पुत्रपौत्रैर्वृतः=पुत्र-पौत्रोंसे घिरे हुए, ५७०. कुरुग्रामगन्ता घृणी=कुरुग्राम—इन्द्रप्रस्थमें जानेवाले दयालु,

घृणी धर्मराजस्तुतो भीमयुक्तः
परानन्ददो मन्त्रकृद्धर्मजेन ॥ ७७

५७१. धर्मराजस्तुतः=धर्मराज युधिष्ठिरसे संस्तुत, ५७२. भीमयुक्तः=भीमसेनसे सप्रेम मिलनेवाले, ५७३. परानन्ददः=परमानन्द प्रदान करनेवाले, ५७४. धर्मजेन मन्त्रकृत्=धर्मराज युधिष्ठिरसे सलाह करनेवाले ॥ ७७ ॥

दिशाजिद्बली राजसूयार्थकारी
जरासन्धहा भीमसेनस्वरूपः।
तथा विप्ररूपो गदायुद्धकर्ता
कृपालुर्महाबन्धनच्छेदकारी ॥ ७८

५७५. दिशाजित् बली=दिग्विजयी बलवान्, ५७६. राजसूयार्थकारी=युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञ-सम्बन्धी कार्यको सिद्ध करनेवाले, ५७७. जरासंधहा=जरासंधका वध करनेवाले, ५७८. भीमसेनस्वरूपः= भीमसेनस्वरूप, ५७९. विप्ररूपः=ब्राह्मणका रूप धारण करके जरासंधके पास जानेवाले, ५८०. गदायुद्धकर्ता=भीमरूपसे गदा-युद्ध करनेवाले, ५८१. कृपालुः=दयालु, ५८२. महाबन्धनच्छेदकारी=बड़े-बड़े बन्धनोंको काट देनेवाले अथवा महान् भवबन्धनका उच्छेद करनेवाले ॥ ७८ ॥

नृपैः संस्तुतो ह्यागतो धर्मगेहं
द्विजैः संवृतो यज्ञसम्भारकर्ता।
जनैः पूजितश्चैद्यदुर्वाक्क्षमश्च
महामोक्षदोऽरेः शिरश्छेदकारी ॥ ७९

५८३. नृपैः संस्तुतः=जरासंधके कारागारसे मुक्त राजाओंद्वारा संस्तुत, ५८४. धर्मगेहमागतः=धर्मराजके घरमें आये हुए, ५८५. द्विजैः संवृतः=ब्राह्मणोंसे घिरे हुए, ५८६. यज्ञसम्भारकर्ता=यज्ञके उपकरण जुटानेवाले, ५८७. जनैः पूजितः=सब लोगोंसे पूजित, ५८८. चैद्यदुर्वाक्क्षमः=चेदिराज शिशुपालके दुर्वचनोंको सह लेनेवाले, ५८९. महामोक्षदः=उसे महान् मोक्ष देनेवाले, ५९०. अरेः शिरश्छेदकारी=सुदर्शन चक्रसे शत्रु शिशुपालका सिर काट लेनेवाले ॥ ७९ ॥

महायज्ञशोभाकरश्चक्रवर्ती
नृपानन्दकारी विहारी सुहारी।
सभासंवृतो मानहृत्कौरवस्य
तथा शाल्वसंहारको यानहन्ता ॥ ८०

५९१. महायज्ञशोभाकरः=युधिष्ठिरके महान् यज्ञकी शोभा बढ़ानेवाले, ५९२. चक्रवर्ती नृपानन्दकारी=राजाओंको आनन्द प्रदान करनेवाले सार्वभौम सम्राट्, ५९३. सुहारी विहारी=सुन्दर हारसे सुशोभित विहारपरायण प्रभु, ५९४. सभासंवृतः=सभासदोंसे घिरे हुए, ५९५. कौरवस्य मानहृत्=कुरुराज दुर्योधनका मान हर लेनेवाले, ५९६. शाल्वसंहारकः=राजा शाल्वका संहार करनेवाले, ५९७. यानहन्ता=शाल्वके सौभ विमानको तोड़ डालनेवाले ॥ ८० ॥

सभोजश्च वृष्णिर्मधुः शूरसेनो
दशार्हो यदुर्ह्यन्धको लोकजिच्च।

५९८. सभोजः=भोजवंशियोंसहित, ५९९. वृष्णिः=वृष्णिवंशी, ६००. मधुः=मधुवंशी, ६०१. शूरसेनः=शूरवीर सेनासे संयुक्त, अथवा शूरसेनवंशी, ६०२. दशार्हः=दशार्हवंशी, ६०३. यदुः अन्धकः=यदुवंशी तथा अन्धकवंशी, ६०४. लोकजित्=लोकविजयी,

द्युमन्मानहा वर्मधृग्दिव्यशस्त्री
स्वबोधः सदा रक्षको दैत्यहन्ता॥ ८१

६०५. द्युमन्मानहा=द्युमान्‌का मान हर लेनेवाले, ६०६. वर्मधृक्=कवचधारी, ६०७. दिव्यशस्त्री=दिव्य आयुधधारी, ६०८. स्वबोधः=आत्मबोधस्वरूप, ६०९. सदा रक्षकः=साधुपुरुषोंकी सदा रक्षा करनेवाले, ६१०. दैत्यहन्ता=दैत्योंका वध करनेवाले॥ ८१॥

तथा दन्तवक्त्रप्रणाशी गदाधृग्
जगत्तीर्थयात्राकरः पद्महारः।
कुशी सूतहन्ता कृपाकृत्स्मृतीशोऽ-
मलो बल्वलाङ्गप्रभाखण्डकारी॥ ८२

६११. दन्तवक्त्रप्रणाशी=दन्तवक्त्रका नाश करनेवाले, ६१२. गदाधृक्=गदाधारी, ६१३. जगत्तीर्थयात्राकरः=सम्पूर्ण जगत्‌की तीर्थयात्रा करनेवाले बलरामजी, ६१४. पद्महारः=कमलकी माला धारण करनेवाले, ६१५. कुशी सूतहन्ता=कुश हाथमें लेकर रोमहर्षण सूतका वध करनेवाले, ६१६. कृपाकृत्=कृपा करनेवाले, ६१७. स्मृतीशः= धर्मशास्त्रोंके स्वामी, ६१८. अमलः= निर्मल स्वरूप, ६१९. बल्वलाङ्गप्रभाखण्डकारी= बल्वलकी अङ्गकान्तिको खण्डित करनेवाले॥ ८२॥

तथा भीमदुर्योधनज्ञानदाता-
परो रोहिणीसौख्यदो रेवतीशः।
महादानकृद्विप्रदारिद्र्यहा च
सदा प्रेमयुक् श्रीसुदाम्नः सहायः॥ ८३

६२०. भीमदुर्योधनज्ञानदाता=भीमसेन और दुर्योधनको ज्ञान देनेवाले, ६२१. अपरः=जिनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है, ऐसे, ६२२. रोहिणीसौख्यदः=माता रोहिणीको सुख देनेवाले, ६२३. रेवतीशः=रेवतीके पति बलरामजी, ६२४. महादानकृत्=बड़े भारी दानी, ६२५. विप्रदारिद्र्यहा=सुदामा ब्राह्मणकी दरिद्रता दूर कर देनेवाले, ६२६. सदा प्रेमयुक्=नित्य प्रेमी, ६२७. श्रीसुदाम्नः सहायः=श्रीसुदामाके सहायक॥ ८३॥

तथा भार्गवक्षेत्रगन्ता सरामोऽ-
थ सूर्योपरागश्रुतः सर्वदर्शी।
महासेनया चास्थितः स्नानयुक्तो
महादानकृन्मित्रसम्मेलनार्थी ॥ ८४

६२८. सरामः भार्गवक्षेत्रगन्ता=बलरामसहित परशुरामजीके शूर्पारकक्षेत्रकी यात्रा करनेवाले, ६२९. श्रुते सूर्योपरागे सर्वदर्शी=विख्यात सूर्यग्रहणके अवसरपर सबसे मिलनेवाले, ६३०. महासेनयाऽऽस्थितः=विशाल सेनाके साथ विद्यमान, ६३१. स्नानयुक्तः महादानकृत्=सूर्यग्रहणपर्वपर स्नान करके महान् दान करनेवाले, ६३२. मित्रसम्मेलनार्थी=मित्रोंके साथ मिलनेके लिये इच्छुक अथवा मित्रसम्मेलनरूप प्रयोजनवाले॥ ८४॥

तथा पाण्डवप्रीतिदः कुन्तिजार्थी
विशालाक्षमोहप्रदः शान्तिदश्च।

६३३. पाण्डवप्रीतिदः=पाण्डवोंको प्रीति प्रदान करनेवाले, ६३४. कुन्तिजार्थी=कुन्ती और उनके पुत्रोंका अर्थ सिद्ध करनेवाले, ६३५. विशालाक्षमोहप्रदः= विशालाक्षको मोहमें डालनेवाले, ६३६. शान्तिदः=शान्ति

वटे राधिकाराधनो गोपिकाभिः
सखीकोटिभी राधिकाप्राणनाथः॥ ८५

सखीमोहदावाग्निहा वैभवेशः
स्फुरत्कोटिकन्दर्पलीलाविशेषः।
सखीराधिकादुःखनाशी विलासी
सखीमध्यगः शापहा माधवीशः॥ ८६

शतं वर्षविक्षेपहृन्नन्दपुत्र-
स्तथा नन्दवक्षोगतः शीतलाङ्गः।
यशोदाशुचःस्नानकृद्दुःखहन्ता
सदा गोपिकानेत्रलग्नो व्रजेशः॥ ८७

स्तुतो देवकीरोहिणीभ्यां सुरेन्द्रो
रहो गोपिकाज्ञानदो मानदश्च।
तथा संस्तुतः पट्टराज्ञीभिरारा-
द्धनी लक्ष्मणाप्राणनाथः सदा हि॥ ८८

सदा षोडशस्त्रीसहस्रस्तुताङ्गः
शुको व्यासदेवः सुमन्तुः सितश्च।

देनेवाले, ६३७. सखीकोटिभिः गोपिकाभिः सह वटे राधिकाराधनः=सखीस्वरूप कोटिशः गोपकिशोरियोंके साथ वटके नीचे श्रीराधिकाकी आराधना करनेवाले, ६३८. राधिकाप्राणनाथः=श्रीराधाके प्राणेश्वर॥ ८५॥

६३९. सखीमोहदावाग्निहा=सखियोंके मोहरूपी दावानलको नष्ट करनेवाले, ६४०. वैभवेशः=वैभवके स्वामी, ६४१. स्फुरत्कोटिकन्दर्पलीलाविशेषः=कोटि-कोटि कान्तिमान् कामदेवोंसे भी बढ़कर लीला-विशेष प्रकट करनेवाले, ६४२. सखीराधिकादुःखनाशी=सखियोंसहित श्रीराधाके दुःखका नाश करनेवाले, ६४३. विलासी=विलासशाली, ६४४. सखीमध्यगः=सखियोंकी मण्डलीमें विराजमान, ६४५. शापहा=शाप दूर करनेवाले, ६४६. माधवीशः=माधवी श्रीराधाके स्वामी॥ ८६॥

६४७. शतं वर्षविक्षेपहृत्=सौ वर्षोंकी वियोग-व्यथाको हर लेनेवाले, ६४८. नन्दपुत्रः=नन्दकुमार, ६४९. नन्दवक्षोगतः=नन्दकी गोदमें बैठनेवाले, ६५०. शीतलाङ्गः=शीतल शरीरवाले, ६५१. यशोदाशुचः-स्नानकृत्=यशोदाजीके प्रेमाश्रुओंसे नहानेवाले, ६५२. दुःखहन्ता=दुःख दूर करनेवाले, ६५३. सदा गोपिका-नेत्रलग्नः व्रजेशः=नित्यनिरन्तर गोपाङ्गनाओंके नेत्रमें बसे रहनेवाले व्रजेश्वर॥ ८७॥

६५४. देवकीरोहिणीभ्यां स्तुतः=देवकी और रोहिणीसे संस्तुत, ६५५. सुरेन्द्रः=देवताओंके स्वामी, ६५६. रहो गोपिकाज्ञानदः=एकान्तमें गोपिकाओंको ज्ञान देनेवाले, ६५७. मानदः=मान देनेवाले अथवा मानका खण्डन करनेवाले, ६५८. पट्टराज्ञीभिः आरात् संस्तुतः धनी=पटरानियोंद्वारा निकट और दूरसे भी संस्तुत तथा परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न, ६५९. सदा लक्ष्मणा-प्राणनाथः=सदैव लक्ष्मणाके प्राणवल्लभ॥ ८८॥

६६०. सदा षोडशस्त्रीसहस्रस्तुताङ्गः=सोलह हजार रानियोंद्वारा जिनके श्रीविग्रहकी सदा स्तुति की गयी है, वे, ६६१. शुकः=शुकमुनिस्वरूप, ६६२. व्यासदेवः=व्यासदेवरूप, (इसी प्रकार अन्य ऋषियोंके नामोंमें भी स्वरूप जोड़ लेना चाहिये) ६६३. सुमन्तुः=सुमन्तु,

भरद्वाजको गौतमो ह्यासुरिः सद्-
वसिष्ठः शतानन्द आद्यः सरामः ॥ ८९

६६४. सितः=सित, ६६५. भरद्वाजकः=भरद्वाज, ६६६. गौतमः=गौतम, ६६७. आसुरिः=आसुरि, ६६८. सद्-वसिष्ठः=श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि, ६६९. शतानन्दः=शतानन्द, ६७०. आद्यः रामः=आद्य रामके रूपमें प्रसिद्ध परशु-राम ॥ ८९ ॥

मुनिः पर्वतो नारदो धौम्य इन्द्रोऽ-
सितोऽत्रिर्विभाण्डः प्रचेताः कृपश्च।
कुमारः सनन्दस्तथा याज्ञवल्क्य
ऋभुर्ह्यङ्गिरा देवलः श्रीमृकण्डः ॥ ९०

६७१. पर्वतो मुनिः=पर्वतमुनि, ६७२. नारदः=नारदमुनि, ६७३. धौम्यः=धौम्यमुनि, ६७४. इन्द्रः=इन्द्र-मुनि, ६७५. असितः=असित, ६७६. अत्रिः= अत्रि, ६७७. विभाण्डः=विभाण्ड, ६७८. प्रचेताः=प्रचेता, ६७९. कृपः=कृप, ६८०. कुमारः=सनत्कुमार, ६८१. सनन्दः=सनन्दन, ६८२. याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य, ६८३. ऋभुः=ऋभु, ६८४. अङ्गिराः=अङ्गिरा, ६८५. देवलः=देवल, ६८६. श्रीमृकण्डः=श्रीमृकण्ड ॥ ९० ॥

मरीचिः क्रतुश्चौर्वको लोमशश्च
पुलस्त्यो भृगुर्ब्रह्मरातो वसिष्ठः।
नरश्चापि नारायणो दत्त एव
तथा पाणिनिः पिङ्गलो भाष्यकारः ॥ ९१

६८७. मरीचिः=मरीचि, ६८८. क्रतुः=क्रतु, ६८९. और्वकः=और्व, ६९०. लोमशः=लोमश, ६९१. पुलस्त्यः=पुलस्त्य, ६९२. भृगुः=भृगु, ६९३. ब्रह्मरातः=ब्रह्मरात, वसिष्ठः=वसिष्ठ, ६९४. नरः-नारायणः=नर-नारायण, ६९५. दत्तः=दत्तात्रेय, ६९६. पाणिनिः=व्या-करणसूत्रकार पाणिनि, ६९७. पिङ्गलः=छन्दःसूत्रकार महर्षि पिङ्गल, ६९८. भाष्यकारः= महाभाष्यकार पतञ्जलि ॥ ९१ ॥

स कात्यायनो विप्रपातञ्जलिश्चा-
थ गर्गो गुरुर्गीष्पतिर्गौतमीशः।
मुनिर्जाजलिः कश्यपो गालवश्च
द्विजः सौभरिश्चर्ष्यशृङ्गश्च कण्वः ॥ ९२

६९९. कात्यायनः=वार्तिककार कात्यायन, ७००. विप्रपातञ्जलिः=ब्राह्मण पतञ्जलि, ७०१. गर्गः= यदुकुलके आचार्य गर्ग, ७०२. गुरुः=बृहस्पति, ७०३. गीष्पतिः=वाचस्पति बृहस्पति, ७०४. गौतमीशः=गौतमीके स्वामी, ७०५. मुनिः जाजलिः=महर्षि जाजलि, ७०६. कश्यपः=कश्यप, ७०७. गालवः=गालव, ७०८. द्विजः सौभरिः=ब्रह्मर्षि सौभरि, ७०९. ऋष्यशृङ्गः=ऋष्यशृङ्ग, ७१०. कण्वः=कण्व ॥ ९२ ॥

द्वितश्चैकतश्चापि जातूद्भवश्च
घनः कर्दमस्यात्मजः कर्दमश्च।
तथा भार्गवः कौत्सकश्चारुणिस्तु
शुचिः पिप्पलादो मृकण्डस्य पुत्रः ॥ ९३

७११. द्वितः=द्वित, ७१२. एकतः=एकत, ७१३. जातूद्भवः=जातूकर्ण्य, ७१४. घनः=घन, ७१५. कर्दम-स्य आत्मजः=कर्दमपुत्र कपिल, ७१६. कर्दमः= कपिलके पिता महर्षि कर्दम, ७१७. भार्गवः=भृगुपुत्र च्यवन, ७१८. कौत्स्यः=कौत्स्य, ७१९. आरुणिः= आरुणि, ७२०. शुचिः पिप्पलादः=पवित्र पिप्पलाद मुनि, ७२१. मृकण्डस्य पुत्रः=मार्कण्डेय ॥ ९३ ॥

सपैलस्तथा जैमिनिः सत्सुमन्तु-
वरो गाङ्गलः स्फोटगेहः फलादः।
सदा पूजितो ब्राह्मणः सर्वरूपी
मुनीशो महामोहनाशोऽमरः प्राक्॥ ९४

७२२. पैलः=पैल, ७२३. जैमिनिः=जैमिनि, ७२४. सत् सुमन्तुः=सत्सुमन्तु, ७२५. वरो गाङ्गलः=श्रेष्ठ गाङ्गल मुनि, ७२६. स्फोटगेहः फलादः=फल खानेवाले स्फोटगेह, ७२७. सदा पूजितः ब्राह्मणः= नित्यपूजित ब्राह्मणस्वरूप, ७२८. सर्वरूपी=सर्वरूपधारी, ७२९. महामोहनाशः मुनीशः=महान् मोहका नाश करनेवाले मुनीश्वर, ७३०. प्रागमरः=पूर्वदेवता, जो उपेन्द्रावतारमें देवतारूपमें थे॥ ९४॥

मुनीशस्तुतः शौरिविज्ञानदाता
महायज्ञकृच्चाभृथस्नानपूज्यः ।
सदा दक्षिणादो नृपैः पारिबर्ही
व्रजानन्ददो द्वारकागेहदर्शी॥ ९५

७३१. मुनीशस्तुतः=मुनीश्वरोंद्वारा संस्तुत, ७३२. शौरिविज्ञानदाता=वसुदेवजीको ज्ञान देनेवाले, ७३३. महा-यज्ञकृत्=महान् यज्ञ करनेवाले, ७३४. आभृथस्नानपूज्यः= यज्ञान्तमें किये जानेवाले अवभृथस्नानके द्वारा पूजनीय, ७३५. सदा दक्षिणादः=सदा दक्षिणा देनेवाले, ७३६. नृपैः पारिबर्ही=राजाओंसे भेंट लेनेवाले, ७३७. व्रजानन्ददः= व्रजको आनन्द देनेवाले, ७३८. द्वारकागेहदर्शी=द्वारका-पुरीके भवनोंको देखनेवाले॥ ९५॥

महाज्ञानदो देवकीपुत्रदश्चा-
सुरैः पूजितोऽहीन्द्रसेनादृतश्च।
सदा फाल्गुनप्रीतिकृत्सत्सुभद्रा-
विवाहे द्विपाश्वप्रदो मानयानः॥ ९६

७३९. महाज्ञानदः=महान् ज्ञान प्रदान करनेवाले, ७४०. देवकीपुत्रदः=देवकीको उनके मरे हुए पुत्र लाकर देनेवाले, ७४१. असुरैः पूजितः=असुरोंसे पूजित, ७४२. इन्द्रसेनादृतः=राजा बलिसे सम्मानित, ७४३. सदा-फाल्गुनप्रीतिकृत्=अर्जुनसे सदा प्रेम करनेवाले, ७४४. सत्सुभद्राविवाहे द्विपाश्वप्रदः=सुभद्राके शुभ विवाहमें दहेजके रूपमें हाथी, घोड़े देनेवाले, ७४५. मानयानः= वरपक्षको सम्मानित करनेवाले अथवा मानयुक्त वाहन अर्पित करनेवाले॥ ९६॥

भुवं दर्शको मैथिलेन प्रयुक्तो
द्विजेनाशु राज्ञा स्थितो ब्राह्मणैश्च।
कृती मैथिले लोकवेदोपदेशी
सदा वेदवाक्यैः स्तुतः शेषशायी॥ ९७

७४६. भुवं दर्शकः=भूमण्डलको देखने और दिखानेवाले, ७४७. मैथिलेन प्रयुक्तः=मिथिलापति राजा बहुलाश्व तथा मिथिलानिवासी ब्राह्मण श्रुतदेवसे एक ही समय दर्शन देनेके लिये प्रार्थित, ७४८. आशु ब्राह्मणैः सह राज्ञा स्थितः ब्राह्मणैश्च स्थितः=उसी क्षण एक ही साथ राजा बहुलाश्वके साथ विराजमान तथा श्रुतदेव ब्राह्मणके साथ ब्राह्मणोंमें विराजमान, ७४९. मैथिले कृती= मैथिल राजा और मैथिल ब्राह्मणके प्रति कर्तव्यका पालन करनेवाले, ७५०. लोकवेदोपदेशी=लोक और वेदका उपदेश करनेवाले, ७५१. सदा वेदवाक्यैः स्तुतः= सदा वेदवचनोंद्वारा स्तुत, ७५२. शेषशायी=शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले॥ ९७॥

परीक्षावृतो ब्राह्मणैश्चामरेषु
भृगुप्रार्थितो दैत्यहा चेशरक्षी।
सखा चार्जुनस्यापि मानप्रहारी
तथा विप्रपुत्रप्रदो धामगन्ता॥ ९८

७५३. अमरेषु ब्राह्मणैः परीक्षावृतः=भृगु आदि ब्राह्मणोंने परीक्षा करके सब देवताओंमें श्रेष्ठरूपसे जिनका वरण किया है, ७५४. भृगुप्रार्थितः=भृगुसे प्रार्थित, ७५५. दैत्यहा=दैत्यनाशक, ७५६. ईशरक्षी=भस्मासुरको भस्म करके शिवजीकी रक्षा करनेवाले, ७५७. अर्जुनस्य सखा=अर्जुनके मित्र, ७५८. अर्जुनस्यापि मानप्रहारी=अर्जुनका भी अभिमान भङ्ग करनेवाले, ७५९. विप्रपुत्रप्रदः=ब्राह्मणको पुत्र प्रदान करनेवाले, ७६०. धामगन्ता=ब्राह्मणके पुत्रोंको लानेके लिये अपने दिव्यधाममें जानेवाले॥ ९८॥

विहारस्थितो माधवीभिः कलाङ्गो
महामोहदावाग्निदग्धाभिरामः ।
यदुर्ह्युग्रसेनो नृपोऽक्रूर एव
तथा चोद्धवः शूरसेनश्च शूरः॥ ९९

७६१. माधवीभिर्विहारस्थितः=अपनी भार्यास्वरूपा मधुकुलकी स्त्रियोंके साथ समुद्रमें जल-विहार करनेवाले, ७६२. कलाङ्गः=कलाएँ जिनके अङ्ग हैं, वे, ७६३. महामोहदावाग्निदग्धाभिरामः=महामोहमय दावानलसे दग्ध (नष्ट) हुए लोगोंके भी मनको आकर्षित करनेवाले, ७६४. यदुः उग्रसेनः नृपः=यदु, उग्रसेन, नृपति, ७६५. अक्रूरः=अक्रूर अथवा क्रूरतारहित, ७६६. उद्धवः=उद्धव अथवा उत्सवरूप, ७६७. शूरसेनः=शूरसेन, ७६८. शूरः=शूर॥ ९९॥

हृदीकश्च सत्राजितश्चाप्रमेयो
गदः सारणः सात्यकिर्देवभागः।
तथा मानसः सञ्जयः श्यामकश्च
वृको वत्सको देवको भद्रसेनः॥ १००

७६९. हृदीकः=कृतवर्माके पिता हृदीक (समस्त यादव भगवत्स्वरूप या भगवान्‌की विभूति हैं, इसलिये इन नामोंमें इनकी गणना की गयी है), ७७०. सत्राजितः=सत्राजित, ७७१. अप्रमेयः=प्रमाणातीत, ७७२. गदः=बलरामजीके छोटे भाई गद, ७७३. सारणः=सारण, ७७४. सात्यकि :=सत्यकपुत्र, ७७५. देवभागः= देवभाग, ७७६. मानसः=मानस, ७७७. संजयः=संजय, ७७८. श्यामकः=श्यामक, ७७९. वृकः=वृक, ७८०. वत्सकः= वत्सक, ७८१. देवकः=देवक, ७८२. भद्रसेनः= भद्रसेन॥ १००॥

नृपोऽजातशत्रुर्जयो माद्रिपुत्रोऽ-
थ भीष्मः कृपो बुद्धिचक्षुश्च पाण्डुः।
तथा शान्तनुर्देवबाह्लीक एवा-
थ भूरिश्रवाश्चित्रवीर्यो विचित्रः॥ १०१

७८३.नृप अजातशत्रुः=राजा युधिष्ठिर, ७८४. जयः=जय (अर्जुन), ७८५. माद्रीपुत्रः=नकुल-सहदेव, ७८६. भीष्मः=दुर्योधन आदिके पितामह देवव्रत, ७८७. कृपः=कृपाचार्य, ७८८. बुद्धिचक्षुः= प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र, ७८९. पाण्डुः=पाण्डवोंके पिता राजा पाण्डु, ७९०. शांतनुः=भीष्मके पिता राजा शांतनु, ७९१. देवो बाह्लीकः=देवस्वरूप बाह्लीक, ७९२. भूरिश्रवाः=भूरिश्रवा, ७९३. चित्रवीर्यः=विचित्रवीर्य, ७९४. विचित्रः=विचित्र या चित्राङ्गद॥ १०१॥

शलश्चापि दुर्योधनः कर्ण एव
सुभद्रासुतो विष्णुरातः प्रसिद्धः।
स जन्मेजयः पाण्डवः कौरवश्च
तथा सर्वतेजा हरिः सर्वरूपी॥ १०२

७९५. शलः=शल, ७९६. दुर्योधनः=जिसके साथ युद्ध करना कठिन हो, वह राजा दुर्योधन, ७९७. कर्णः=कर्ण, ७९८. सुभद्रासुतः=सुभद्राकुमार अभिमन्यु, ७९९. प्रसिद्धः विष्णुरातः=भगवान् श्रीकृष्णने जिन्हें जीवनदान दिया था, वे सुप्रसिद्ध राजा परीक्षित्, ८००. जन्मेजयः=परीक्षित्के पुत्र राजा जनमेजय, ८०१. पाण्डवः=पाँचों पाण्डव, ८०२. कौरवः=कुरुकुलमें उत्पन्न क्षत्रियसमुदाय, ८०३. सर्वतेजाः हरिः=सम्पूर्ण तेजसे सम्पन्न एवं भक्तोंके चित्तका हरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण, ८०४. सर्वरूपी=सर्वस्वरूप॥ १०२॥

व्रजं ह्यागतो राधया पूर्णदेवो
वरो रासलीलापरो दिव्यरूपी।
रथस्थो नवद्वीपखण्डप्रदर्शी
महामानदो गोपजो विश्वरूपः॥ १०३

राधया व्रजं ह्यागतः=श्रीराधाके साथ व्रजमें अवतीर्ण, ८०५. पूर्णदेवः=परिपूर्णतम परमात्मा, ८०६. वरः=सबके वरणीय, ८०७. रासलीलापरः= रासक्रीडा-परायण, ८०८. दिव्यरूपी=दिव्य रूपवाले, ८०९. रथस्थः=रथपर विराजमान, ८१०. नवद्वीपखण्डप्रदर्शी= जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंको देखने-दिखानेवाले, ८११. महामानदः=बहुत सम्मान देनेवाले अथवा महामानका खण्डन करनेवाले, ८१२. गोपजः=गोपनन्दन, ८१३. विश्वरूपः=स्वयं ही विश्वके रूपमें प्रकाशमान॥ १०३॥

सनन्दश्च नन्दो वृषो वल्लवेशः
सुदामार्जुनः सौबलः स्तोक एव।
सकृष्णोंऽशुकः सद्विशालर्षभाख्यः
सुतेजस्विकः कृष्णमित्रो वरूथः॥ १०४

८१४. सनन्दः=सनन्द, ८१५. नन्दः=नन्द, ८१६. वृषः=वृषभानु, ८१७. वल्लवेशः=गोपेश्वर, ८१८. सुदामा= 'श्रीदामा' नामक गोप, ८१९. अर्जुनः=अर्जुन गोप, ८२०. सौबलः=सुबल, ८२१. सकृष्णः स्तोकः=स्तोक-कृष्ण, ८२२. अंशुकः=अंशुक, ८२३. सद्विशालर्षभाख्यः=विशाल और ऋषभ नामक दो सखाओंवाले, ८२४. सुतेजस्विकः=श्रेष्ठ तेजस्वी, ८२५. कृष्णमित्रो वरूथः=श्रीकृष्णके सखा वरूथ॥ १०४॥

कुशेशो वनेशस्तु वृन्दावनेश-
स्तथा माथुरेशाधिपो गोकुलेशः।
सदा गोगणो गोपतिर्गोपिकेशोऽ-
थ गोवर्धनो गोपतिः कन्यकेशः॥ १०५

८२६. कुशेशः=कुशेश्वर, ८२७. वनेशः=वनेश्वर, ८२८. वृन्दावनेशः=वृन्दावनेश्वर, ८२९. माथुरेशाधिपः= मथुरामण्डलके राजाधिराज, ८३०. गोकुलेशः=गोकुलके स्वामी, ८३१. सदा गोगणः=सदा गौओंके समुदायके साथ रहनेवाले, ८३२. गोपतिः=गोस्वामी, ८३३. गोपि-केशः=गोपाङ्गनावल्लभ, ८३४. गोवर्धनः=गौओंकी वृद्धि करनेवाले; गिरिराज गोवर्धन अथवा गोवर्धन नामधारी गोप, ८३५. गोपतिः=गौओंके पालक, ८३६. कन्यकेशः= गोपकिशोरियोंके प्राणवल्लभ॥ १०५॥

अनादिस्तु चात्मा हरिः पूरुषश्च
परो निर्गुणो ज्योतिरूपो निरीहः।
सदा निर्विकारः प्रपञ्चात्परश्च
ससत्यस्तु पूर्णः परेशस्तु सूक्ष्मः॥ १०६

८३७. अनादिः=जिनका कोई आदिकारण नहीं तथा जो सबके आदि हैं, वे, ८३८. आत्मा=अन्तर्यामी परमात्मा, ८३९. हरिः=श्यामवर्ण श्रीकृष्ण, ८४०. परः पूरुषः=परम पुरुष, ८४१. निर्गुणः=प्राकृत गुणोंसे अतीत, ८४२. ज्योतिरूपः=ज्योतिर्मय विग्रहवाले, ८४३. निरीहः= चेष्टा या कामनासे रहित, ८४४. सदा निर्विकारः= सतत विकारशून्य, ८४५. प्रपञ्चात्परः=सकल दृश्यप्रपञ्चसे परे विराजमान, ८४६. ससत्यः= सत्ययुक्त अथवा सत्यायुक्त या सत्यभामासे संयुक्त, ८४७. पूर्णः=परिपूर्ण, ८४८. परेशः=परमेश्वर, ८४९. सूक्ष्मः=सूक्ष्मस्वरूप॥ १०६॥

द्वारकायां तथा चाश्वमेधस्य कर्ता
नृपेणापि पौत्रेण भूभारहर्ता।
पुनः श्रीव्रजे रासरङ्गस्य कर्ता
हरी राधया गोपिकानां च भर्ता॥ १०७

८५०. द्वारकायां नृपेण अश्वमेधस्य कर्ता=द्वारकामें राजा उग्रसेनके द्वारा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले, ८५१. अपि पौत्रेण भूभारहर्ता=पुत्र एवं पौत्रके सहयोगसे भूमिका भार उतारनेवाले, ८५२. पुनः श्रीव्रजे राधया रासरङ्गस्य कर्ता हरिः=पुनः श्रीव्रजमें श्रीराधिकाके साथ रास-रङ्ग करनेवाले श्रीहरि, ६५३. गोपिकानां च भर्ता=श्रीराधा तथा अन्य गोपकिशोरियोंके पति॥ १०७॥

सदैकस्त्वनेकः प्रभापूरिताङ्ग-
स्तथा योगमायाकरः कालजिच्च।
सुदृष्टिर्महत्तत्त्वरूपः प्रजातः
स कूटस्थ आद्याङ्कुरो वृक्षरूपः॥ १०८

८५४. सदैकः=सदा एकमात्र अद्वितीय, ८५५. अनेकः=अनेक रूपोंमें प्रकट, ८५६. प्रभापूरिताङ्गः= प्रकाशपूर्ण अङ्गवाले, ८५७. योगमायाकरः=योगमायाके उद्भावक, ८५८. कालजित्=कालविजयी, ८५९. सुदृष्टिः= उत्तम दृष्टिवाले, ८६०.महत्तत्त्वरूपः= महत्तत्त्वस्वरूप, ८६१. प्रजातः=उत्कृष्ट अवतारधारी, ८६२. कूटस्थः= कूटस्थ (निर्विकार), ८६३. आद्यांकुरः=विश्ववृक्षके प्रथम अङ्कुर, ब्रह्मा, ८६४. वृक्षरूपः=विश्व-वृक्षरूप॥ १०८॥

विकारस्थितश्च ह्यहङ्कार एव
स वैकारिकस्तैजसस्तामसश्च।
नभो दिक्समीरस्तु सूर्यः प्रचेतोऽ-
श्विवह्निश्च शक्रो ह्युपेन्द्रस्तु मित्रः॥ १०९

८६५. विकारस्थितः=विकारों (कार्यों)-में भी कारणरूपसे विद्यमान, ८६६. वैकारिकस्तैजसस्तामसश्च अहंकारः=वैकारिक, तैजस और तामस (अथवा सात्त्विक,राजस, तामस) त्रिविध अहंकाररूप, ८६७. नभः=आकाशस्वरूप, ८६८. दिक्=दिशास्वरूप, ८६९. समीरः=वायुरूप, ८७०. सूर्यः=सूर्यस्वरूप, ८७१. प्रचेतोऽश्विवह्निः=वरुण, अश्विनीकुमार एवं अग्निस्वरूप, ८७२. शक्रः=इन्द्र, ८७३. उपेन्द्रः=भगवान् वामन, ८७४. मित्रः=मित्रदेवता॥ १०९॥

श्रुतिस्त्वक्च दृग्घ्राणजिह्वागिरश्च
भुजामेढ्रकः पायुरङ्घ्रिः सचेष्टः।
धरा व्योमवार्मारुतश्चैव तेजोऽ-
थ रूपं रसो गन्धशब्दस्पृशश्च॥ ११०

८७५. श्रुतिः=श्रवणेन्द्रिय ८७६. त्वक्=त्वगिन्द्रिय, ८७७. दृक्=नेत्रेन्द्रिय, ८७८. घ्राणः=नासिकेन्द्रिय, ८७९. जिह्वा=रसनेन्द्रिय, ८८०. गिरः=वागिन्द्रिय, ८८१. भुजा=हस्तस्वरूप, ८८२. मेढ्रकः=जननेन्द्रियरूप, ८८३. पायुः='पायु' नामक कर्मेन्द्रिय (गुदा) रूप, ८८४. अङ्घ्रिः='चरण' नामक कर्मेन्द्रियरूप, ८८५. सचेष्टः=चेष्टाशील, ८८६.धरा=पृथ्वी, ८८७. व्योम=आकाश, ८८८. वाः=जल, ८८९. मारुतः=वायु, ८९०. तेजः=अग्नि (पञ्चभूत-रूप), ८९१. रूपम्=रूप, ८९२. रसः=रस, ८९३. गन्धः=गन्ध, ८९४. शब्दः=शब्द, ८९५. स्पर्शः=स्पर्श-विषयरूप॥ ११०॥

सचित्तश्च बुद्धिर्विराट् कालरूप-
स्तथा वासुदेवो जगत्कृद्धताङ्गः।
तथाण्डे शयानः सशेषः सहस्र-
स्वरूपो रमानाथ आद्योऽवतारः॥ १११

८९६. सचित्तः=चित्तयुक्त, ८९७. बुद्धिः=बुद्धि, ८९८. विराट्=विराट्, ८९९. कालरूपः=कालस्वरूप, ९००. वासुदेवः=सर्वव्यापी भगवान्, ९०१. जगत्कृत् हतांगः=संसारके स्रष्टा होकर भी देहहीन, ९०२. अण्डे शयानः=ब्रह्माण्डके गर्भमें शयन करनेवाले ब्रह्माजी, ९०३. सशेषः= शेषके साथ रहनेवाले (शेषशय्याशायी), ९०४. सहस्रस्वरूपः=सहस्रों स्वरूप धारण करनेवाले, ९०५. रमानाथः=लक्ष्मीपति, ९०६. आद्योऽवतारः= ब्रह्मा-रूपमें जिनका प्रथम बार अवतार हुआ, वे श्रीहरि॥ १११॥

सदा सर्गकृत्पद्मजः कर्मकर्ता
तथा नाभिपद्मोद्भवो दिव्यवर्णः।
कविर्लोककृत्कालकृत्सूर्यरूपोऽ-
निमेषोऽभवो वत्सरान्तो महीयान्॥ ११२

९०७. सदा सर्गकृत्=विधाताके रूपमें सदा सृष्टि करनेवाले, ९०८. पद्मजः=दिव्य कमलसे उत्पन्न ब्रह्मा, ९०९. कर्मकर्ता=निरन्तर कर्म करनेवाले, ९१०. नाभि-पद्मोद्भवः=नारायणके नाभिकमलसे प्रकट ब्रह्मा, ९११. दिव्यवर्णः=दिव्य कान्तिसे सम्पन्न, ९१२. कविः=त्रिकालदर्शी अथवा विश्वरूप काव्यके निर्माता आदिकवि, ९१३. लोककृत्=जगत्स्रष्टा, ९१४. कालकृत्=कालके निर्माता, ९१५. सूर्यरूपः=सूर्यस्वरूप, ९१६. अनिमेषः=निमेषरहित, ९१७. अभवः=जन्मरहित, ९१८. वत्स-रान्तः=संवत्सरके लयस्थान ९१९. महीयान्=महान्से भी अत्यन्त महान्॥ ११२॥

तिथिर्वारनक्षत्रयोगाश्च लग्नोऽ-
थ मासो घटी च क्षणः काष्ठिका च।

९२०. तिथिः=तिथिस्वरूप, ९२१. वारः=दिन, ९२२. नक्षत्रम्=नक्षत्र, ९२३. योगः=योग, ९२४. लग्नः=लग्नस्वरूप, ९२५. मासः=मासस्वरूप, ९२६. घटी=अर्धमुहूर्तरूप, ९२७. क्षणः=क्षणरूप, ९२८. काष्ठिका=

मुहूर्तस्तु यामो ग्रहा यामिनी च
दिनं चर्क्षमालागतो देवपुत्रः॥ ११३

काष्ठा, ९२९. मुहूर्तः=दो घड़ीका समय, ९३०. यामः=प्रहर, ९३१. ग्रहाः=ग्रहस्वरूप, ९३२. यामिनी=रात्रिरूप, ९३३. दिनम्=दिनरूप, ९३४. ऋक्षमालागतः=नक्षत्र-पङ्क्तियोंमें गमन करनेवाले ग्रहरूप, ९३५. देवपुत्रः=वसुदेवनन्दन॥ ११३॥

कृतो द्वापरस्तु त्रितस्तत्कलिस्तु
सहस्त्रं युगस्तत्र मन्वन्तरश्च।
लयः पालनं सत्कृतिस्तत्परार्धं
सदोत्पत्तिकृद्व्यक्षरो ब्रह्मरूपः॥ ११४

९३६. कृतः=सत्ययुगरूप, ९३७. द्वापरः=द्वापररूप, ९३८. त्रेत्रितः=त्रेता, ९३९. असौ कलिः=यह कलि-युग, ९४०. युगानां सहस्रम्=सहस्र चतुर्युग (ब्रह्माजीका एक दिन), ९४१. मन्वन्तरम्=मन्वन्तरकाल, ९४२. लयः=संहाररूप, ९४३. पालनम्=पालनकर्मस्वरूप, ९४४. सत्कृतिः=उत्तम सृष्टिरूप, ९४५. परार्धम्=परार्धकालरूप, ९४६. सदोत्पत्तिकृत्=सदा सृष्टि करनेवाले, ९४७. द्व्यक्षरः ब्रह्मरूपः=दो अक्षरवाला 'कृष्ण' नामक ब्रह्म-स्वरूप॥ ११४॥

तथा रुद्रसर्गस्तु कौमारसर्गो
मुनेः सर्गकृद् देवकृत्प्राकृतस्तु।
श्रुतिस्तु स्मृतिः स्तोत्रमेवं पुराणं
धनुर्वेद इज्याथ गान्धर्ववेदः॥ ११५

९४८. रुद्रसर्गः[1]=रुद्रसर्ग, ९४९. कौमारसर्गः[2]=कौमारसर्ग, ९५०. मुनेः सर्गकृत्=मुनिसर्गके कर्ता, ९५१. देवकृत्=देवसर्गके रचयिता, ९५२. प्राकृतः=प्राकृतसर्गरूपी, ९५३. श्रुतिः=वेद, ९५४. स्मृतिः=धर्मशास्त्र, ९५५. स्तोत्रम्=स्तुति, ९५६. पुराणम्=पुराण, ९५७. धनुर्वेदः=धनुर्वेद, ९५८. इज्या=यज्ञ, ९५९. गान्धर्ववेदः=गान्धर्ववेद (संगीतशास्त्र)॥ ११५॥

विधाता च नारायणः सत्कुमारो
वराहस्तथा नारदो धर्मपुत्रः।
मुनिः कर्दमस्यात्मजो दत्त एव
सयज्ञोऽमरो नाभिजः श्रीपृथुश्च॥ ११६

९६०.विधाता=ब्रह्मा, ९६१. नारायणः=विष्णु, ९६२. सत्कुमारः=सनत्कुमार आदि, ९६३. वराहः= वराहावतार, नारदः=देवर्षि नारदरूप, ९६४. धर्मपुत्रः= धर्मके पुत्र नर-नारायण आदि, ९६५. मुनिः कर्दमस्यात्मजः=कर्दमकुमार कपिल मुनि, ९६६. सयज्ञो दत्तः= यज्ञस्वरूप और दत्तात्रेय, ९६७. अमरो नाभिजः= अविनाशी ऋषभदेव, ९६८. श्रीपृथुः=श्रीमान् राजा पृथु॥ ११६॥

सुमत्स्यश्च कूर्मश्च धन्वन्तरिश्च
तथा मोहिनी नारसिंहः प्रतापी।
द्विजो वामनो रेणुकापुत्ररूपो
मुनिर्व्यासदेवः श्रुतिस्तोत्रकर्ता॥ ११७

९६९. सुमत्स्यः=सुन्दर मत्स्यावतार, ९७०. कूर्मः=कच्छपावतार, ९७१. धन्वन्तरिः=धन्वन्तरि-अवतार, ९७२. मोहिनी=मोहिनी नारीका अवतार, ९७३. प्रतापी नारसिंहः=प्रतापी नृसिंहावतार, ९७४. द्विजो वामनः=ब्राह्मणजातीय वामनावतार, ९७५.रेणुकापुत्ररूपः=परशु-रामरूप, ९७६. श्रुतिस्तोत्रकर्ता मुनिः व्यासदेवः=वेदोंके विभाजक तथा स्तोत्र आदिके निर्माता मुनिवर व्यास-देव॥ ११७॥

१. रुद्रोंकी सृष्टि। २. सनत्कुमार आदिकी सृष्टि।

धनुर्वेदभाग् रामचन्द्रावतारः
स सीतापतिर्भारहृद्रावणारिः।
नृपः सेतुकृद्वानरेन्द्रप्रहारी
महायज्ञकृद्राघवेन्द्रः प्रचण्डः॥ ११८

बलः कृष्णचन्द्रस्तु कल्किः कलेश-
स्तु बुद्धः प्रसिद्धस्तु हंसस्तथाश्वः।
ऋषीन्द्रोऽजितो देववैकुण्ठनाथो
ह्यमूर्तिश्च मन्वन्तरस्यावतारः॥ ११९

गजोद्धारणः श्रीमनुर्ब्रह्मपुत्रो
नृपेन्द्रस्तु दुष्यन्तजो दानशीलः।
सदृष्टः श्रुतो भूत एवं भविष्यद्
भवत्स्थावरो जङ्गमोऽल्पं महच्च॥ १२०

इति श्रीभुजङ्गप्रयातेन चोक्तं
हरे राधिकेशस्य नाम्नां सहस्रम्।
पठेद्भक्तियुक्तो द्विजः सर्वदा हि
कृतार्थो भवेत्कृष्णचन्द्रस्वरूपः॥ १२१

महापापराशिं भिनत्ति श्रुतं यत्
सदा वैष्णवानां प्रियं मङ्गलं च।
इदं रासराकादिने चाश्विनस्य
तथा कृष्णजन्माष्टमीमध्य एव॥ १२२

तथा चैत्रमासस्य राकादिने वा-
थ भाद्रे च राधाष्टमीसद्दिने वा।
पठेद्भक्तियुक्तस्त्विदं पूजयित्वा
चतुर्धा सुमुक्तिं तनोति प्रशस्तः॥ १२३

९७७. धनुर्वेदभाग् रामचन्द्रावतारः=धनुर्वेदके ज्ञाता श्रीरामचन्द्रावतार, ९७८. सीतापतिः=जनकनन्दिनी सीताके पति, ९७९. भारहृत्=भूभार हरण करनेवाले, ९८०. रावणारिः=रावणके शत्रु, ९८१. नृपः सेतुकृत्=समुद्रपर पुल बाँधनेवाले नरेश, ९८२. वानरेन्द्रप्रहारी=वानरराज (बालि)-को मारनेवाले, ९८३. महायज्ञ-कृत्=महान् अश्वमेध-यज्ञ करनेवाले श्रीराम, ९८४. प्रचण्डः राघवेन्द्रः=प्रचण्ड-पराक्रमी रघुनाथजी॥ ११८॥

९८५. बलः कृष्णचन्द्रः=बलरामसहित साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण, ९८६. कल्किः='कल्कि' नामक अवतार, कलेशः=कलाओंके स्वामी, ९८७. प्रसिद्धो बुद्धः=प्रसिद्ध बुद्धावतार, ९८८. हंसः=हंसावतार, ९८९. अश्वः=हयग्रीवावतार, ९९०. ऋषीन्द्रोऽजितः=ऋषिप्रवर पुलहपुत्र अजित, ९९१. देववैकुण्ठनाथः=देवलोक तथा वैकुण्ठलोकके अधिपति, ९९२. अमूर्तिः=निराकार, ९९३. मन्वन्तरस्यावतारः=मन्वन्तरावतार॥ ११९॥

९९४. गजोद्धारणः=गज और ग्राहके युद्धमें हाथीको उबारनेवाले हरि-अवतार, ९९५. ब्रह्मपुत्रः श्रीमनुः=ब्रह्माजीके पुत्र श्रीस्वायम्भुव मनु, ९९६. दानशीलः=दानशील, ९९७. दुष्यन्तजो नृपेन्द्रः=दुष्यन्त-कुमार महाराज भरत, ९९८. सदृष्टः श्रुतः भूतः एवं भविष्यत् भवत्=दृष्ट, श्रुत, भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान-स्वरूप, ९९९. स्थावरो जङ्गमः=स्थावर-जङ्गमरूप, १०००. अल्पं च महत्=अल्प और महान्॥ १२०॥

इस प्रकार श्रीभुजङ्गप्रयात छन्दमें कहे गये राधिकावल्लभ श्रीकृष्णके सहस्र नामोंका जो द्विज सर्वदा भक्तिभावसे पाठ करता है, वह कृतार्थ एवं श्रीकृष्णस्वरूप हो जाता है॥ १२१॥

यह श्रवणमात्रसे बहुत बड़ी पापराशिका भेदन कर डालता है। वैष्णवोंके लिये तो यह सदा प्रिय तथा मङ्गलकारी है। आश्विनमासकी रासपूर्णिमाके दिन, श्रीकृष्णकी जन्माष्टमीमें, चैत्रकी रासपूर्णिमाके दिन तथा भाद्रपदमासमें राधाष्टमीके दिन जो भक्तियुक्त पुरुष इस सहस्रनामका पूजन करके पाठ करता है, वह प्रशस्त होकर चारों प्रकारके मोक्षसुखका अनुभव करता है॥ १२२-१२३॥

पठेत्कृष्णपुर्यां च वृन्दावने वा
व्रजे गोकुले वापि वंशीवटे वा।
वटे वाक्षये वा तटे सूर्यपुत्र्याः
स भक्तोऽथ गोलोकधाम प्रयाति॥ १२४

भजेद्भक्तिभावाच्च सर्वत्र भूमौ
हरिं कुत्र चानेन गेहे वने वा।
जहाति क्षणं नो हरिस्तं च भक्तं
सुवश्यो भवेन्माधवः कृष्णचन्द्रः॥ १२५

सदा गोपनीयं सदा गोपनीयं
सदा गोपनीयं प्रयत्नेन भक्तैः।
प्रकाश्यं न नाम्नां सहस्रं हरेश्च
न दातव्यमेवं कदा लम्पटाय॥ १२६

इदं पुस्तकं यत्र गेहेऽपि तिष्ठेद्
वसेद्राधिकानाथ आद्यस्तु तत्र।
तथा षड्गुणाः सिद्धयो द्वादशापि
गुणैस्त्रिंशतैर्लक्षणैस्तु प्रयान्ति॥ १२७

जो श्रीकृष्णपुरी मथुरामें, वृन्दावनमें, व्रजमें, गोकुलमें, वंशीवटके निकट, अक्षयवटके पास अथवा सूर्यपुत्री यमुनाके तटपर इस सहस्रनामका पाठ करता है, वह भक्त पुरुष गोलोकधाममें जाता है। जो भूमण्डलमें, सर्वत्र, किसी भी स्थानमें, घरमें या वनमें भक्तिभावसे इस स्तोत्रके पाठद्वारा भगवान्‌का भजन करता है, उस भक्तको भगवान् श्रीहरि एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ते। श्रीकृष्णचन्द्र माधव उसके वशीभूत हो जाते हैं॥ १२४-१२५॥

भक्त पुरुषोंके लिये यह सहस्रनामस्तोत्र प्रयत्नपूर्वक सदा गोपनीय है, सदा गोपनीय है, सदा गोपनीय है। यह न तो सबके समक्ष प्रकाशनके योग्य है और न कभी किसी लम्पटको इसका उपदेश ही देना चाहिये। इस सहस्रनामकी पुस्तक जिस घरमें भी रहती है, वहाँ राधिकानाथ आदिपुरुष श्रीकृष्ण सदा निवास करते हैं तथा उस घरमें छहों गुण और बारहों सिद्धियाँ तीसों शुभलक्षणात्मक गुणोंके साथ स्वयं पहुँच जाती हैं॥ १२६-१२७॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे श्रीकृष्णसहस्रनामवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'श्रीकृष्णसहस्रनामका वर्णन' नामक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५९॥

साठवाँ अध्याय

कौरवोंके संहार, पाण्डवोंके स्वर्गगमन तथा यादवोंके संहार आदिका संक्षिप्त वृत्तान्त; श्रीराधा तथा व्रजवासियोंसहित भगवान् श्रीकृष्णका गोलोकधाममें गमन

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा व्यासमुखात्कृष्णनाम्नां सहस्रकम्।
सम्पूज्य तं यादवेन्द्रो भक्त्या कृष्णे मनो दधे॥ १

ततः स मिथिलायां च बहुलाश्वश्रुतदेवयोः।
दत्वा स्वदर्शनं कृष्ण आययौ द्वारकां पुरीम्॥ २

ततश्च पाण्डवाः सर्वे द्रौपद्या सह भार्यया।
द्वारकाया विनिर्गत्य विचेरुस्ते वने वने॥ ३

भुक्त्वा च वनवासं तेऽज्ञातवासं तथैव च।
विराटनगरे सर्वे ससैन्यास्तेऽभवन्नृप॥ ४

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! व्यासजीके मुखसे इस प्रकार श्रीकृष्णसहस्रनामका निरूपण सुनकर यादवेन्द्र उग्रसेनने उनकी पूजा करके भगवान् श्रीकृष्णमें भक्तिपूर्वक मन लगाया॥ १॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने मिथिलामें जाकर राजा बहुलाश्व तथा श्रुतदेवको दर्शन दिया। इसके बाद वे द्वारकापुरीको लौट आये। तत्पश्चात् समस्त पाण्डव अपनी पत्नी द्रौपदीके साथ द्वारकासे निकलकर वन-वनमें विचरने लगे। नरेश्वर! वनवास और अज्ञातवासका कष्ट भोगकर वे सब सेनासहित विराट-नगरमें एकत्र हुए॥ २—४॥

ततश्च कौरवाः सर्वे श्रीकृष्णेनापि प्रार्थिताः।
न तेषां प्रददू राज्यमर्धार्धं च तदर्धकम्॥ ५

पाण्डवानां कौरवाणां ज्ञात्वा युद्धं जनार्दनः।
निरायुधोऽभूद्यात्रायां बलोऽहन् सूतबल्वलौ॥ ६

इधर श्रीकृष्णके प्रार्थना करनेपर भी समस्त कौरवोंने पाण्डवोंको उनके राज्यके आधेके-आधेका आधा भी नहीं दिया। तब पाण्डवों और कौरवोंमें युद्ध होना अनिवार्य हो गया। यह जानकर श्रीकृष्णने हथियार न उठानेकी प्रतिज्ञा कर ली और बलरामजी तीर्थयात्राको चले गये। उसी यात्रामें उन्होंने रोमहर्षण सूतजी और बल्वल [नामक दैत्य]-को मार डाला॥ ५-६॥

ततः सर्वे कुरुक्षेत्रे धर्मक्षेत्रे प्रविश्य च।
कौरवाः पाण्डवाश्चैव युद्धं चक्रुः परस्परम्॥ ७

जयः कृष्णस्य कृपया पाण्डवानां बभूव ह।
भारते च मृताः सर्वे कौरवाः कृतकिल्बिषाः॥ ८

इसके बाद समस्त कौरव और पाण्डव धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें प्रविष्ट हो परस्पर युद्ध करने लगे। श्रीकृष्णकी कृपासे पाण्डवोंकी विजय हुई तथा पापी और अपराधी सब कौरव महाभारत-युद्धमें मारे गये॥ ७-८॥

ततश्च नव वर्षाणि धर्मो राज्यं चकार ह।
हयमेधत्रयं चक्रे तेन शुद्धोऽभवन्नृप॥ ९

ततः कृष्णेच्छया राजन् द्वारकायां किलैकदा।
यादवेभ्यश्च सर्वेभ्यो विप्रशापोऽभवन् महान्॥ १०

नरेश्वर! तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने नौ वर्षोंतक राज्य किया। इस बीचमें उन्होंने तीन अश्वमेध-यज्ञ किये, जिससे वे ज्ञाति-बन्धुओंके वधके दोषसे शुद्ध हुए। राजन्! इसके बाद एक दिन द्वारकामें श्रीकृष्णकी इच्छासे ही समस्त यादवोंके लिये ब्रह्मर्षियोंका महान् शाप प्राप्त हुआ॥ ९-१०॥

ततः कृष्णस्तु भगवान् प्रपन्नायोद्धवाय च।
अश्वत्थे कथयामास श्रीमद्भागवतं परम्॥ ११

ततो बभूव सङ्ग्रामो यादवानां परस्परम्।
निहतास्ते प्रभासे वै शस्त्रैर्नानाविधैरपि॥ १२

शापके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने शरणागत भक्त उद्धवको अश्वत्थवृक्षके नीचे परम उत्तम श्रीमद्भागवत-धर्मका उपदेश दिया। कुछ दिनोंके बाद यादवोंमें परस्पर संग्राम छिड़ गया। वे प्रभासक्षेत्रमें नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा एक-दूसरेपर प्रहार करके मारे गये॥ ११-१२॥

बलः शरीरं मानुष्यं त्यक्त्वा धाम जगाम ह।
देवाँस्तत्रागतान् दृष्ट्वा हरिरन्तरधीयत॥ १३

व्रजे गत्वा हरिर्नन्दं यशोदां राधिकां तथा।
गोपान् गोपीर्मिलित्वाह प्रेम्णा प्रेमी प्रियान् स्वकान्॥ १४

बलरामजी मानव-शरीरको छोड़कर अपने धामको चले गये। वहाँ देवताओंको आया देख श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। व्रजमें जाकर श्रीहरि नन्द, यशोदा, राधिका तथा गोपियोंसहित गोपोंसे मिले और उन प्रेमी भगवान्ने अपने प्रियजनोंसे प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहा॥ १३-१४॥

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छ नन्द यशोदे त्वं पुत्रबुद्धिं विहाय च।
गोलोकं परमं धाम सार्धं गोकुलवासिभिः॥ १५

अग्रे कलियुगो घोरश्चागमिष्यति दुःखदः।
यस्मिन् वै पापिनो मर्त्या भविष्यन्ति न संशयः॥ १६

स्त्रीपुंसोर्नियमो नास्ति वर्णानां च तथैव च।
तस्माद्गच्छाशु मद्धाम जरामृत्युहरं परम्॥ १७

श्रीकृष्ण बोले—नन्द और यशोदे! अब तुम मुझमें पुत्रबुद्धि छोड़कर समस्त गोकुलवासियोंके साथ मेरे परमधाम गोलोकको जाओ। अब आगे सबको दुःख देनेवाला घोर कलियुग आयेगा, जिसमें मनुष्य प्रायः पापी हो जायँगे; इसमें संशय नहीं है। उस समय परस्पर सम्पर्क स्थापित करनेके लिये स्त्री-पुरुषका तथा वर्णका कोई नियम नहीं रह जायगा। इसलिये जरा और मृत्युको हर लेनेवाले मेरे उत्तम गोलोकमें तुमलोग शीघ्र चले जाओ॥ १५—१७॥

इति ब्रुवति श्रीकृष्णे रथं च परमाद्भुतम्।
पञ्चयोजनविस्तीर्णं पञ्चयोजनमूर्ध्वगम्॥ १८

वज्रनिर्मलसङ्काशं मुक्तारत्नविभूषितम्।
मन्दिरैर्नवलक्षैश्च दीपैर्मणिमयैर्युतम्॥ १९

सहस्रद्वयचक्रं च सहस्रद्वयघोटकम्।
सूक्ष्मवस्त्राच्छादितं च सखीकोटिभिरावृतम्॥ २०

गोलोकादागतं गोपा ददृशुस्ते मुदान्विताः।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णदेहाद्विनिर्गतः॥ २१

देवश्चतुर्भुजो राजन् कोटिमन्मथसन्निभः।
शङ्खचक्रधरः श्रीमाँल्लक्ष्म्या सार्धं जगत्पतिः॥ २२

क्षीरोदं प्रययौ शीघ्रं रथमारुह्य सुन्दरम्।
तथा च विष्णुरूपेण श्रीकृष्णो भगवान् हरिः॥ २३

लक्ष्म्या गरुडमारुह्य वैकुण्ठं प्रययौ नृप।
ततो भूत्वा हरिः कृष्णो नरनारायणावृषी॥ २४

कल्याणार्थं नराणां च प्रययौ बद्रिकाश्रमम्।
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो राधया युतः॥ २५

गोलोकादागतं यानमारुरोह जगत्पतिः।
सर्वे गोपाश्च नन्दाद्या यशोदाद्या व्रजस्त्रियः॥ २६

त्यक्त्वा तत्र शरीराणि दिव्यदेहाश्च तेऽभवन्।
स्थापयित्वा रथे दिव्ये नन्दादीन् भगवान् हरिः॥ २७

गोलोकं प्रययौ शीघ्रं गोपालो गोकुलान्वितः।
ब्रह्माण्डेभ्यो बहिर्गत्वा ददर्श विरजां नदीम्॥ २८

शेषोत्सङ्गे महालोकं सुखदं दुःखनाशनम्।
दृष्ट्वा रथात्समुत्तीर्य सार्धं गोकुलवासिभिः॥ २९

विवेश राधया कृष्णः पश्यन्न्यग्रोधमक्षयम्।
शतशृङ्गं गिरिवरं तथा श्रीरासमण्डलम्॥ ३०

श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि गोलोकसे एक परम अद्भुत रथ उतर आया, जिसे गोपोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ देखा। उसका विस्तार पाँच योजनका था और ऊँचाई भी उतनी ही थी। वह वज्रमणि (हीरे)-के समान निर्मल और मुक्ता-रत्नोंसे विभूषित था। उसमें नौ लाख मन्दिर थे और उन घरोंमें मणिमय दीप जल रहे थे। उस रथमें दो हजार पहिये लगे थे और दो ही हजार घोड़े जुते हुए थे। उस रथपर महीन वस्त्रका आच्छादन (परदा) पड़ा था। करोड़ों सखियाँ उसे घेरे हुए थीं॥ १८—२०½॥

राजन्! इसी समय श्रीकृष्णके शरीरसे करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर चार भुजाधारी 'श्रीविष्णु' प्रकट हुए, जिन्होंने शङ्ख और चक्र धारण कर रखे थे। वे जगदीश्वर श्रीमान् विष्णु लक्ष्मीके साथ एक सुन्दर रथपर आरूढ़ हो शीघ्र ही क्षीरसागरको चल दिये॥ २१—२२½॥

इसी प्रकार 'नारायण' रूपधारी भगवान् श्रीकृष्ण हरि महालक्ष्मीके साथ गरुडपर बैठकर वैकुण्ठधामको चले गये। नरेश्वर! इसके बाद श्रीकृष्ण हरि 'नर और नारायण'—दो ऋषियोंके रूपमें अभिव्यक्त हो मानवोंके कल्याणार्थ बदरिकाश्रमको गये। तदनन्तर साक्षात् परिपूर्णतम जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ गोलोकसे आये हुए रथपर आरूढ़ हुए॥ २३—२५½॥

नन्द आदि समस्त गोप तथा यशोदा आदि व्रजाङ्गनाएँ सब-के-सब वहाँ भौतिक शरीरोंका त्याग करके दिव्यदेहधारी हो गये। तब गोपाल भगवान् श्रीहरि नन्द आदिको उस दिव्य रथपर बिठाकर गोकुलके साथ शीघ्र ही गोलोकधामको चले गये। ब्रह्माण्डोंसे बाहर जाकर उन सबने विरजा नदीको देखा। साथ ही शेषनागकी गोदमें महालोक गोलोक दृष्टिगोचर हुआ, जो दुःखोंका नाशक तथा परम सुखदायक है॥ २६—२८½॥

उसे देखकर गोकुलवासियोंसहित श्रीकृष्ण उस रथसे उतर पड़े और श्रीराधाके साथ अक्षयवटका दर्शन करते हुए उस परमधाममें प्रविष्ट हुए। गिरिवर शतशृङ्ग तथा श्रीरासमण्डलको देखते

ततो ययौ कियद्दूरं श्रीमद्वृन्दावनं वनम्।
वनैर्द्वादशभिर्युक्तं द्रुमैः कामदुघैर्वृतम्॥ ३१

नद्या यमुनया युक्तं वसन्तानिलमण्डितम्।
पुष्पकुञ्जनिकुञ्जं च गोपीगोपजनैर्वृतम्॥ ३२

तदा जयजयारावः श्रीगोलोके बभूव ह।
शून्यीभूते पुरा धाम्नि श्रीकृष्णे च समागते॥ ३३

ततश्च यदुपत्न्यश्च चितामारुह्य दुःखतः।
पतिलोकं ययुः सर्वा देवक्याद्याश्च योषितः॥ ३४

बन्धूनां नष्टगोत्राणां चकार साम्परायिकम्।
गीताज्ञानेन स्वात्मानं शान्तयित्वा स दुःखतः॥ ३५

अर्जुनः स्वपुरं गत्वा तमुवाच युधिष्ठिरम्।
स राजा भ्रातृभिः सार्धं ययौ स्वर्गं च भार्यया॥ ३६

प्लावयद्द्वारकां सिन्धू रैवतेन समन्विताम्।
विहाय नृपशार्दूल गेहं श्रीरुक्मिणीपतेः॥ ३७

अद्यापि श्रूयते घोषो द्वार्वत्यामर्णवे हरेः।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः॥ ३८

विष्णुस्वामी हरेरंशः कलेरादौ महार्णवे।
गत्वा नीत्वा हरेरर्चां द्वार्वत्यां स्थापयिष्यति॥ ३९

तं द्वारकेशं पश्यन्ति मनुजा ये कलौ युगे।
सर्वे कृतार्थतां यान्ति तत्र गत्वा नृपेश्वर॥ ४०

यः शृणोति चरित्रं वै गोलोकारोहणं हरेः।
मुक्तिं यदूनां गोपानां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४१

हुए वे कुछ दूर स्थित श्रीमद्वृन्दावनमें गये, जो बारह वनोंसे संयुक्त तथा कामपूरक वृक्षोंसे भरा हुआ था॥ २९—३१॥

यमुना नदी उसे छूकर बह रही थी। वसन्त-ऋतु और मलयानिल उस वनकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ फूलोंसे भरे कितने ही कुञ्ज और निकुञ्ज थे। वह वन गोपियों और गोपोंसे भरा था। जो पहले सूना-सा लगता था, उस श्रीगोलोकधाममें श्रीकृष्णके पधारनेपर जय-जयकारकी ध्वनि गूँज उठी॥ ३२-३३॥

तदनन्तर द्वारकामें यदुकुलकी पत्नियाँ—देवकी आदि सभी स्त्रियाँ दुःखसे व्याकुल हो चितापर चढ़कर पतिलोकको चली गयीं। जिनके गोत्र नष्ट हो गये थे, उन यादव-बन्धुओंका पारलौकिक कृत्य अर्जुनने किया। वे गीताके ज्ञानसे अपने मनको शान्त करके बड़े दुःखसे सबका अन्त्येष्टि-संस्कार कर सके। जब अर्जुनने अपने निवासस्थान हस्तिनापुरमें जाकर राजा युधिष्ठिरको यह सब समाचार बताया तब वे पत्नी और भाइयोंके साथ स्वर्गलोकको चले गये॥ ३४—३६॥

नृपश्रेष्ठ! इधर समुद्रने श्रीरुक्मिणीवल्लभ श्रीकृष्णके निवास-गृहको छोड़ रैवतक पर्वतसहित शेष सारी द्वारकापुरीको अपने जलमें डुबाकर आत्मसात् कर लिया। आज भी द्वारकाके समुद्रमें श्रीहरिका यह घोष सुनायी पड़ता है कि 'ब्राह्मण विद्यावान् हो या विद्याहीन, वह मेरा ही शरीर है'॥ ३७-३८॥

कलियुगके प्रारम्भिक कालमें ही श्रीहरिके अंशावतार विष्णुस्वामी महासागरमें जाकर श्रीहरिकी प्रतिमाको प्राप्त करेंगे और द्वारकापुरीमें उसकी स्थापना कर देंगे। नृपेश्वर! कलियुगमें उन द्वारकानाथका जो मनुष्य वहाँ जाकर दर्शन करते हैं, वे सब कृतार्थ हो जाते हैं। जो श्रीहरिके गोलोकधाम पधारनेका चरित्र सुनते हैं तथा यादवों और गोपोंकी मुक्तिका वृत्तान्त पढ़ते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ३९—४१॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे राधाकृष्णयोर्गोलोकारोहणं नाम षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'श्रीराधा और श्रीकृष्णका गोलोकारोहण' नामक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ अध्याय

भगवान्‌के श्यामवर्ण होनेका रहस्य; कलियुगकी पापमयी प्रवृत्ति; उससे बचनेके लिये श्रीकृष्णकी समाराधना तथा एकादशी-व्रतका माहात्म्य

वज्रनाभिरुवाच

ब्रह्मन्नारायणः कृष्णो भगवान् प्रकृतेः परः।
तस्य रूपं कथं श्यामं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १

त्वादृशा मुनयो ब्रह्मञ्जानन्ति चरितं हरेः।
तथा कृष्णस्य देवस्य न वयं कर्ममोहिताः॥ २

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेन संस्तुतः स मुनिर्मुने।
तत्त्वज्ञानाय तत्त्वज्ञः करुणः प्रत्यभाषत॥ ३

श्रीगर्ग उवाच

श्यामं तु शृङ्गाररसस्य रूपं
श्रीकृष्णदेवं कथितं मुनीन्द्रैः।
लावण्यसङ्घाच्च तथोज्ज्वलत्वा-
च्छ्यामं सुरूपं हि तथा हरेश्च॥ ४

यथा दूरतो दृश्यते श्यामरूपं
घटायास्तथेदं नदस्यापि गर्ते।
यथाकाशरूपं महच्छ्यामलं वा
जलं चाम्बरं चोज्ज्वलं नापि कृष्णम्॥ ५

यथा धौतवस्त्रे परे श्यामला हि
छविर्दृश्यते चैव भावैः परस्य।
तथा कोटिकन्दर्पलीलाशयत्वा-
द्धरेः श्यामरूपं तु सन्तो वदन्ति॥ ६

वज्रनाभिरुवाच

तव वाक्यान्मुनिश्रेष्ठ सन्देहश्च गतो मम।
अग्रे ब्रह्मन् कलिर्घोर आगमिष्यति भूतले॥ ७

तस्मिन् मर्त्याः कीदृशाश्च भविष्यन्ति मुने वद।
त्वं जानासि भविष्यं च तस्मात्त्वां प्रणमाम्यहम्॥ ८

वज्रनाभिने पूछा—ब्रह्मन्! नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण तो प्रकृतिसे परे हैं, फिर उनका रूप श्याम कैसे हुआ? यह मुझे विस्तारपूर्वक बताइये। विप्रवर! आप-जैसे मुनि श्रीकृष्णदेव श्रीहरिके चरित्रको जैसा जानते हैं, वैसा हम-जैसे लोग कर्मसे मोहित होनेके कारण नहीं जान पाते॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—मुने! वज्रनाभिका यह वचन सुनकर उनसे प्रशंसित हो, उन तत्त्वज्ञ तथा कृपालु मुनिने तत्त्वज्ञान करानेके लिये इस प्रकार कहा॥ ३॥

श्रीगर्गजी बोले—राजन्! 'शृङ्गाररस' का रूप भरतादि मुनीश्वरोंने 'श्याम' बताया है। उसके देवता श्रीकृष्ण हैं। लावण्यकी राशि तथा उज्ज्वल होनेके कारण श्रीहरिका सुन्दर रूप उस तरह श्याम है, जैसे मेघोंकी घटाका रूप दूरसे श्याम दिखायी देता है, जैसे नदका जल कुण्डविशेषमें श्याम दृष्टिगोचर होता है तथा जैसे महान् आकाशका रूप श्यामल प्रतीत होता है; परंतु जल या आकाश उज्ज्वल ही है, कृष्णवर्ण कदापि नहीं है॥ ४-५॥

इसी प्रकार उज्ज्वल लावण्यसिन्धु श्रीकृष्ण श्यामसुन्दर दिखायी देते हैं। जैसे उत्कृष्ट श्वेत वस्त्रमें दूसरेको भावनानुसार श्याम आभा दृष्टिगोचर होती है, उसी प्रकार करोड़ों कामदेवोंकी लीलाका आधार होनेके कारण संतजन श्रीहरिका श्यामरूप बताते हैं॥ ६॥

वज्रनाभिने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! आपके इस वचनसे मेरे मनका संदेह दूर हो गया। ब्रह्मन्! अब आगे चलकर भूतलपर घोर कलियुग आनेवाला है। मुने! उसमें मनुष्य कैसे होंगे, यह बताइये? आप भविष्यको भी जानते हैं; अतः मैं आपसे पूछता हूँ और आपको प्रणाम करता हूँ॥ ७-८॥

श्रीगर्ग उवाच

कलेर्दशसहस्राणि जगन्नाथस्तु तिष्ठति।
तदर्धं जाह्नवीतोयं तदर्धं ग्रामदेवता:॥ ९

ततः सर्वे भविष्यन्ति पापिनः कलिमोहिताः।
नरकांस्ते प्रयास्यन्ति सर्वे चाल्पायुषो नराः॥ १०

विप्राः स्वकन्यां दास्यन्ति ब्राह्मणाय च मौल्यतः।
क्षत्रियाश्चैव पुत्रीं स्वां मारयिष्यन्ति लोलुपाः॥ ११

मृषा कुर्वन्ति वाणिज्यं वैश्या ब्रह्मस्वतत्पराः।
शूद्राश्च म्लेच्छसङ्गेन दूषयिष्यन्ति ब्राह्मणान्॥ १२

ब्राह्मणाः शास्त्रहीनाश्च राज्यहीनाश्च क्षत्रियाः।
वैश्याश्च द्रव्यहीना वै शूद्रा नाथस्य दुःखदाः॥ १३

दिने व्यवायनिरता विरता धर्मकर्मणि।
स्त्रियः स्वच्छन्दगामिन्यः पुरुषा योनिलम्पटाः॥ १४

पितृणामर्चनं चैव देवानामृत्विजां तथा।
विष्णोश्च वैष्णवानां च तुलस्याश्च गवां तथा॥ १५

न प्रायेण करिष्यन्ति मानवाः कलिमोहिताः।
गणिकासु परस्त्रीषु परवित्तेषु मोहिताः॥ १६

एकवर्णा भविष्यन्ति महाशूद्रसमाः किल।
सस्यहीना भवेत्पृथ्वी शिलावृष्ट्या निरन्तरम्॥ १७

फलहीनोऽपि वृक्षश्च जलहीना सरित्तथा।
प्रजाभिस्ताडितो भूपो भूपेन ताडिताः प्रजाः॥ १८

राजोवाच

केनोपायेन जीवानां कलौ मुक्तिर्भविष्यति।
तन्ममाख्याहि विप्रेन्द्र त्वं परावरवित्तमः॥ १९

श्रीगर्गजीने कहा—राजन्! कलियुगके दस हजार वर्ष बीतनेतक भगवान् जगन्नाथ भूतलपर स्थित रहते हैं (उसके बाद सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी अविद्यमानकी भाँति उसके ऊपर नियंत्रण करना छोड़ देते हैं)। उसके आधे समय (पाँच हजार वर्ष)-तक गङ्गाजीके जलमें उसकी अधिष्ठात्री देवी गङ्गाका निवास रहेगा। उसके आधे समय (ढाई हजार वर्षों) तक ग्रामदेवता रहेंगे (उसके बाद उनका प्रभाव कम हो जायगा)॥ ९॥

तदनन्तर कलिसे मोहित होकर सब लोग पापी हो जायँगे; अतः नरकोंमें गिरेंगे। सबकी आयु बहुत कम हो जायगी। ब्राह्मण ब्राह्मणसे मूल्य लेकर उसे अपनी कन्या देंगे। क्षत्रियलोग अत्यन्त लोलुप होकर अपनी पुत्रीको मार डालेंगे॥ १०-११॥

वैश्य ब्राह्मणके धनका हरण करनेमें तत्पर हो झूठा व्यापार करेंगे। शूद्रलोग म्लेच्छोंके सङ्गसे ब्राह्मणोंको दूषित करेंगे। ब्राह्मण शास्त्रज्ञानसे शून्य, क्षत्रिय राज्याधिकारसे वञ्चित, वैश्य निर्धन तथा शूद्र अपने स्वामीको दुःख देनेवाले होंगे॥ १२-१३॥

सब लोग धर्म-कर्मसे दूर रहकर दिनमें ही मैथुन करेंगे। स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी और पुरुष योनिलम्पट होंगे। देवताओं, पितरों तथा ऋत्विजोंका, भगवान् विष्णुका, वैष्णवजनोंका, तुलसीका तथा गौओंका पूजन एवं सेवा-सत्कार कलिमोहित मनुष्य प्रायः नहीं करेंगे। लोग वेश्याओंमें, परस्त्रियोंमें तथा पराये धनमें आसक्त होंगे॥ १४—१६॥

प्रायः सब मनुष्य शूद्रके समान एक वर्ण हो जायँगे। निरन्तर ओले और पत्थरोंकी वर्षासे पृथ्वी सस्यहीन होगी। खेती-बारी चौपट हो जायगी। वृक्षोंमें फल नहीं लगेंगे। नदियोंका पानी सूख जायगा। प्रजा राजाको मारेगी और राजा प्रजाको॥ १७-१८॥

राजा वज्रनाभने पूछा—विप्रेन्द्र! आप भूत और भविष्यके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः मुझे यह बताइये कि 'कलियुगमें जीवोंकी मुक्ति किस उपायसे होगी?'॥ १९॥

श्रीगर्ग उवाच

युधिष्ठिरो विक्रमश्च तथा वै शालिवाहनः।
विजयाभिनन्दनश्चैव तथा नागार्जुनो नृपः॥ २०

तथा कल्किश्च भगवानेते वै शकबन्धिनः।
करिष्यन्ति कलौ भूपा धर्मस्थापनमेव च॥ २१

अभूद्युधिष्ठिरो राजा भविष्यन्ति नृपाश्च ते।
अधर्मं नाशयिष्यन्ति भूत्वा वै चक्रवर्तिनः॥ २२

वामनश्च विधिः शेषः सनको विष्णुवाक्यतः।
धर्मार्थहेतवे चैते भविष्यन्ति द्विजाः कलौ॥ २३

विष्णुस्वामी वामनांशस्तथा माध्वस्तु ब्रह्मणः।
रामानुजस्तु शेषांशो निम्बार्कः सनकस्य च॥ २४

एते कलौ युगे भाव्याः सम्प्रदायप्रवर्तकाः।
संवत्सरे विक्रमस्य चत्वारः क्षितिपावनाः॥ २५

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फलाः स्मृताः।
तस्माच्च गमनं ह्यस्ति सम्प्रदाये नरैरपि॥ २६

पापक्षयकरी यत्र श्रीकृष्णस्य कथा भवेत्।
वैष्णवैर्विप्रमुख्यैश्च नारायणपरायणैः॥ २७

कृते तु लिप्यते देशस्त्रेतायां ग्राम एव च।
द्वापरे च कुलं प्रोक्तं कलौ कर्तैव लिप्यते॥ २८

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम्॥ २९

कृते यद्दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन च।
द्वापरे चैकमासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ॥ ३०

घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते।
वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशयः॥ ३१

श्रीगर्गजीने कहा—राजा युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन, विजयाभिनन्दन, राजा नागार्जुन तथा भगवान् कल्कि—ये संवत्सरके प्रवर्तक होंगे। ये ही भूपाल पदपर प्रतिष्ठित हो कलिमें धर्मकी स्थापना करेंगे। राजा युधिष्ठिर तो हो चुके। शेष राजा भविष्यकालमें यथासमय होंगे। वे चक्रवर्ती होकर अधर्मका नाश करेंगे॥ २०—२२॥

वामन, ब्रह्मा, शेषनाग और सनकादि—ये भगवान् विष्णुके आदेशसे धर्मकी स्थापना एवं रक्षाके लिये कलियुगमें ब्राह्मण होंगे। वामनके अंशसे विष्णुस्वामी और ब्रह्माजीके अंशसे मध्वाचार्य होंगे। शेषनागका अंश रामानुजाचार्यके रूपमें प्रकट होगा तथा सनकादिका अंश निम्बार्काचार्यके रूपमें॥ २३-२४॥

ये कलियुगमें सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य होंगे। ये चारों विक्रम संवत्सरके प्रारम्भिक कालमें ही होंगे और इस भूतलको अपने सम्पर्कसे पावन बनायेंगे। सम्प्रदायविहीन मन्त्र निष्फल माने गये हैं; अतः सभी मनुष्योंको सम्प्रदायके मार्गसे ही चलना चाहिये॥ २५-२६॥

इन सम्प्रदायोंमें पापोंका नाश करनेवाली श्रीकृष्ण-कथा होती है। ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ नारायणपरायण वैष्णवजन इन कथाओंका प्रवचन एवं प्रसार करते हैं। सत्ययुगमें किसीके किये हुए पापसे सारा देश लिप्त होता है। त्रेतामें ग्राम, द्वापरमें कुल और कलियुगमें केवल कर्ता ही उस पापसे लिप्त होता है॥ २७-२८॥

सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें भगवान्की अर्चना करके मनुष्य जिस पुण्यफलका भागी होता है, उसीको कलियुगमें केवल 'केशव'का नाम-कीर्तन करके मनुष्य पा लेता है॥ २९-३०॥

सत्ययुगमें जो सत्यकर्म दस वर्षोंमें सफल होता है,वह त्रेतामें एक ही वर्षमें, द्वापरमें एक ही मासमें तथा कलियुगमें केवल एक दिन-रातमें सफल हो जाता है। सब धर्मोंसे रहित घोर कलियुग प्राप्त होनेपर जो मानव भगवान् वासुदेवकी आराधनामें तत्पर रहते हैं, वे निस्संदेह कृतार्थ हो जाते हैं॥ ३१॥

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति स्मारयन्ते ये हरेर्नामानि वै कलौ॥ ३२

कृषिश्च सर्ववचनो णकारश्चात्मवाचकः।
सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्णः प्रकीर्तितः॥ ३३

सञ्जप्यं ब्रह्म परमं वेदसारं परात्परम्।
परं नास्तीति नास्तीति कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्॥ ३४

तावद्गर्भे वसेत्कामी तावती यमयातना।
तावद्गृही च भोगार्थी यावत्कृष्णं न सेवते॥ ३५

नश्वरो विषयः सत्यं भोगश्च बन्धवो भुवि।
स्वयं त्यक्ताः सुखायैव दुःखाय त्याजिताः परैः॥ ३६

श्रुत्वा दैवान् महन्निन्दां श्रीकृष्णस्मरणाद् बुधः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नान्यथा रौरवं व्रजेत्॥ ३७

न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां न काञ्चने।
यत्र भावस्तत्र हरिस्तस्माद्भावं हि कारयेत्॥ ३८

सकृदुच्चरितं येन कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥ ३९

सरोगता साधुजनेषु वैरं
परोपतापो द्विजवेदनिन्दा।
अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी
नरस्य चिह्नं नरके गतस्य॥ ४०

स्वर्गागतानामिह जीवलोके
चत्वारि चिह्नानि सदा वसन्ति।
दानप्रसङ्गो मधुरा च वाणी
देवार्चनं ब्राह्मणपूजनं च॥ ४१

नरेश्वर! मनुष्योंमें वे लोग निश्चय ही सौभाग्यशाली और कृतार्थ हैं, जो कलियुगमें श्रीहरिके नामोंका स्मरण करते और कराते हैं। 'कृष्' शब्द 'सर्व' का वाचक है और 'ण'कार 'आत्मा' का। इसलिये जो सर्वात्मा परब्रह्म है, वही 'कृष्ण' कहा गया है॥ ३२-३३॥

परब्रह्मस्वरूप, वेदोंका सारतत्त्व तथा परात्पर वस्तु 'कृष्ण'—ये दो अक्षर ही सम्यक्‌रूपसे जपनेके योग्य हैं। इससे बढ़कर दूसरा कोई तत्त्व नहीं है, नहीं है। कामासक्त मनुष्य तभीतक गर्भवासकी यन्त्रणा झेलता है, तभीतक यमयातना भोगता है तथा गृहस्थ मनुष्य तभीतक भोगार्थी रहता है, जबतक वह श्रीकृष्णकी सेवा नहीं करता है॥ ३४-३५॥

विषय, भोगोपकरण और बन्धु-बान्धव—ये सभी इस भूतलपर विनाशशील हैं, यह बात सत्य है, तथापि यदि इन्हें स्वयं छोड़ दिया जाय तो ये सुखदायक होते हैं; परंतु यदि दूसरोंने इन्हें छुड़वा दिया तो इनका वियोग दुःख देनेवाला होता है। यदि दैववश महापुरुषोंकी निन्दा सुन लेनेपर विज्ञ पुरुष भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण कर लेता है तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; अन्यथा रौरव नरकमें पड़ता है॥ ३६-३७॥

देवता काष्ठ, पत्थर या सोनेकी प्रतिमामें नहीं हुआ करता है; जहाँ भी मनुष्यका भगवद्भाव हो जाय, वहीं श्रीहरि विद्यमान हैं। इसलिये मनुष्य भाव ही करे या कराये। जिसने एक बार भी 'कृष्ण'—इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षतक पहुँचनेके लिये कमर कस ली॥ ३८-३९॥

रोगी होना, सत्पुरुषोंसे वैर बाँधना, दूसरोंको ताप देना, ब्राह्मण और वेदकी निन्दा करना, अत्यन्त क्रोधी होना और कटुवचन बोलना—ये सब नरकगामी मनुष्यके लक्षण हैं। जो इस जीव-जगत्‌में स्वर्गलोकसे लौटकर आये हैं, उनमें ये चार चिह्न सदा रहते हैं—१-दानका प्रसङ्ग, २-मधुर वचन, ३-देवपूजा और ४-ब्राह्मणोंका सत्कार॥ ४०-४१॥

राजोवाच

व्रतेषु किं वरं ब्रह्मन् सत्सु तीर्थेषु किं महत्।
देवेषु पूजनीयेषु को मुख्यः कथयस्व नः॥ ४२

श्रीगर्ग उवाच

एकादशी वरा ह्यस्ति व्रतेषु यदुनन्दन।
भागीरथी च तीर्थेषु देवभक्तेषु वैष्णवः॥ ४३
सुरेषु विष्णुर्भगवान् पूजनीयेषु श्रीगुरुः।
इमां वार्तां न मन्यन्ते कुम्भीपाके पतन्ति ते॥ ४४

राजोवाच

एकादश्यास्तु माहात्म्यमन्येषां चैव मे मुने।
कथयस्व प्रसादेन गुरुदेव नमोऽस्तु ते॥ ४५

श्रीगर्ग उवाच

कथयिष्याम्यहं सर्वं शृणुष्व यदुनन्दन।
एकादश्यां न भोक्तव्यमन्नं चैव फलं तथा॥ ४६
यथोक्तविधिना कुर्यादेकादशीं मुदा नरः।
तदा सा तस्य फलदा भवति नृपसत्तम॥ ४७

वज्रनाभिरुवाच

फलाहारं च कुर्वन्ति ये नरा हरिवासरे।
तेषां गतिः का भवति तन्नो वर्णय विस्तरात्॥ ४८

ऋषिरुवाच

समस्तं चोपवासेन यथोक्तं लभते फलम्।
फलाहारेण चार्धं स्यात्किञ्चिन्न्यूनं जलेन च॥ ४९
अन्नान् सर्वान् वर्जयित्वा गोधूमाद्यान्नृपेश्वर।
एकादश्यां प्रकुर्वीत फलाहारं मुदा नरः॥ ५०
अन्नं भुनक्ति यो राजन्नेकादश्यां नराधमः।
इह लोके स चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम्॥ ५१
दधि दुग्धं तथा मिष्टं कूटं कर्कटिकां तथा।
वास्तूकं पद्ममूलं च रसालं जानकीफलम्॥ ५२
गङ्गाफलं पत्रनिम्बू दाडिमञ्च विशेषतः।
शृङ्गाटकं नागरङ्गं सैन्धवं कदलीफलम्॥ ५३
आम्रातकमार्द्रकं च तूलं च बदरीफलम्।
जम्बूफलमामलकं पटोलं त्रिकुशं तथा॥ ५४
रतालूं शर्कराकन्दमिक्षुदण्डं तथैव च।
द्राक्षादीनि हि चान्यानि पवित्रं सुफलं तथा॥ ५५
एकवारं च राजेन्द्र भोक्तव्यं हरिवासरे।
तृतीये प्रहरेऽतीते प्रस्थस्य च फलस्य च॥ ५६

राजाने पूछा—ब्रह्मन्! व्रतोंमें कौन-सा व्रत श्रेष्ठ है, उत्तम तीर्थोंमें कौन महान् है और पूजनीय देवताओंमें कौन मुख्य है? यह मुझे बताइये॥ ४२॥

श्रीगर्गजीने कहा—यदुनन्दन! व्रतोंमें 'एकादशी' सबसे श्रेष्ठ है। तीर्थोंमें भागीरथी 'गङ्गा', देवभक्तोंमें 'वैष्णव', देवताओंमें 'भगवान् विष्णु' और पूजनीयोंमें 'श्रीगुरु' सबसे महान् हैं। जो इस बातको नहीं मानते हैं, वे 'कुम्भीपाक' नरकमें गिरते हैं॥ ४३-४४॥

राजा बोले—मुने! गुरुदेव! एकादशीका तथा अन्य भागीरथी आदिका माहात्म्य कृपा करके मुझसे कहिये; आपको नमस्कार है॥ ४५॥

श्रीगर्गजीने कहा—यदुनन्दन! मैं सब कुछ बताता हूँ, सुनो। एकादशीके दिन अन्न तथा फल कुछ भी नहीं खाना चाहिये। नृपश्रेष्ठ! जो शास्त्रोक्त विधिसे प्रसन्नतापूर्वक एकादशी-व्रतका पालन करता है, उसके लिये वह सदा फलदायिनी होती है॥ ४६-४७॥

वज्रनाभि बोले—[महर्षे!] जो मनुष्य एकादशीको फलाहार करते हैं, उनकी क्या गति होती है? यह हमें विस्तारपूर्वक बताइये॥ ४८॥

श्रीगर्गमुनिने कहा—उपवास करनेसे एकादशी-व्रतका शास्त्रोक्त फल पूरा-पूरा मिलता है, फलाहार करनेसे आधा मिलता है और पानी पीकर रहनेसे सम्पूर्णकी अपेक्षा कुछ-कुछ कम फल प्राप्त होता है। नृपेश्वर! गेहूँ आदि सब अन्नोंको त्यागकर एकादशीके दिन मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक फलाहार करे॥ ४९-५०॥

राजन्! जो नराधम एकादशीको अन्न खाता है, वह इस लोकमें चाण्डालके समान है और मरनेपर उसे दुर्गति प्राप्त होती है॥ ५१॥

राजेन्द्र! दही, दूध, मिठाई, कूट, ककड़ी, बथुआ, कमलगट्टा, आम, सीताफल, गङ्गाफल, नीबूका पत्ता, अनार, सिंघाड़ा, नारंगी, सेंधा नमक, केला, अमड़ा, अदरख, तूल, बेर, जामुन, आँवला, परवल, त्रिकुश, रतालु, सकरकन्द, गन्ना और दाख आदि तथा अन्यान्य पवित्र फल एकादशीको एक बार खाने चाहिये। दिनका तीसरा पहर व्यतीत होनेपर एक सेर

द्विजाय चार्धं दातव्यमर्धमात्मनि भोजनम्।
द्विवारं जलमश्नीयादेकवारं फलं तथा॥ ५७

समाचरेज्जागरणं पूजयित्वा जनार्दनम्।
द्विवारं वा त्रिवारं वा यो नरो हरिवासरे॥ ५८

करोति च फलाहारं तस्य किञ्चित्फलं न हि।
अन्नभुक्तेन यत्पापं जातं पञ्चदशैर्दिनैः॥ ५९

एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं भवेत्।
भोजनं ब्राह्मणे दत्वा ह्युपवासं समाचरेत्॥ ६०

श्रुत्वा तस्याश्च माहात्म्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
द्रव्यार्थी लभते द्रव्यं सुतार्थी लभते सुतम्।
मोक्षार्थी लभते मोक्षमेकादश्या व्रतेन वै॥ ६१

फलका आधा भाग तो ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये और आधा अपने लिये भोजनके काममें लेना चाहिये। एकादशीको एक बार फल खाय और दो बार पानी पीये। भगवान् विष्णुका पूजन करके रातमें जागरण करे॥ ५२—५७१/२॥

जो मनुष्य एकादशीको दो बार या तीन बार फलाहार करता है, उसको कोई फल नहीं मिलता। पंद्रह दिनोंतक अन्न खानेसे जो पाप लगता है, वह सब-का-सब एकादशीके उपवाससे नष्ट हो जाता है॥ ५८—५९१/२॥

भोजनका ब्राह्मणको दान करके स्वयं उपवास करे और एकादशीका माहात्म्य सुने। ऐसा करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। एकादशीके व्रतसे धनार्थी धन पाता है, पुत्रार्थीको पुत्र प्राप्त होता है और मोक्षार्थी मोक्ष पा लेता है॥ ६०-६१॥

॥ इति श्रीश्रीगर्गसंहितायां हयमेधखण्डे एकादशीमाहात्म्यं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥ ६१॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहिताके अन्तर्गत अश्वमेधखण्डमें 'एकादशीका माहात्म्य' नामक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ अध्याय

गुरु और गङ्गाकी महिमा; श्रीवज्रनाभद्वारा कृतज्ञता-प्रकाशन और गुरुदेवका पूजन तथा श्रीकृष्णके भजन-चिन्तन एवं संहिताका माहात्म्य

श्रीगर्ग उवाच

तपः कृतं पुरा येन दुर्जरं पूर्वजन्मनि।
इह लोके च तस्याशु गुरोर्भक्तिर्हि जायते॥ १

गुरोः सेवां न कुरुते स्वगुरुं यो न मन्यते।
यः समर्थश्च पतति कुम्भीपाके च सर्वदा॥ २

गुरोरभक्तं प्रगतं दृष्ट्वा गोघ्नो भवेन्नरः।
स्नात्वा गङ्गां च यमुनां तदा भवति निर्मलः॥ ३

द्रव्यलाभस्तु शिष्यस्य भवेद्वै यत्र यत्र च।
दशांशं च गुरोस्तस्मिन् गृहद्रव्ये तथा हि नः॥ ४

तं भुञ्जति बलाच्छिष्यो न दास्यति गुरुं पृथक्।
स महारौरवं याति हीनः सर्वसुखैरिह॥ ५

श्रीगर्गजी कहते हैं—राजन्! जिसने पूर्वजन्ममें अक्षय तप किया है, इस लोकमें उसीकी गुरुके प्रति भक्ति होती है। जो समर्थ होकर भी गुरुकी सेवा नहीं करता, अपने गुरुको नहीं मानता, वह सदा 'कुम्भीपाक' नरकमें गिरता है। जो गुरुके प्रति भक्ति न रखनेवाले पुरुषको अपने सामने आया हुआ देख लेता है, उसे गोहत्याका पाप लगता है। वह गङ्गा और यमुनामें स्नान करके उस पापसे शुद्ध होता है॥ १—३॥

शिष्यको जहाँ-जहाँ जितना द्रव्य उपलब्ध होता है, उसका दशांश भाग गुरुका समझना चाहिये। हमारे घरके द्रव्यमें भी इसी तरह दशांश भाग गुरुका है। जो शिष्य बलपूर्वक उसे भोगता है, गुरुको अलगसे निकालकर नहीं देता है, वह 'महारौरव' नरकमें जाता है और सब सुखोंसे वञ्चित हो जाता है॥ ४-५॥

हरौ कुर्वन्ति ये नित्यं भक्तिं च नवलक्षणाम्।
संसारसागरं राजंस्ते तरन्ति सुखेन वै॥ ६

ज्ञातिं विद्यां महत्त्वं च रूपं यौवनमेव च।
यत्नेन परिवर्जेत पञ्चैते भक्तिकण्टकाः॥ ७

भक्त्या कृष्णस्य राजेन्द्र प्रसादं चरणोदकम्।
ये गृह्णन्ति भवेयुर्भूपावना नात्र संशयः॥ ८

गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत्।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः॥ ९

तावद्भ्रमन्ति संसारे पितरः पिण्डतत्पराः।
यावद्वंशे सुतः कृष्णभक्तियुक्तो न जायते॥ १०

स किं गुरुः स किं तातः स किं पुत्रः स किं सखा।
स किं राजा स किं बन्धुर्न दद्याद्यो हरौ मतिम्॥ ११

विद्याधनागारकुलाभिमानिनो
रूपादिदारासुतनित्यबुद्धयः ।
दृष्ट्वान्यदेवान् फलकामिनश्च
जीवन्मृतास्ते न भजन्ति केशवम्॥ १२

हयमेधचरित्रस्य सुमेरुः कथितो मया।
व्याप्तः कृष्णचरित्रैश्च तवाग्रे नृपसत्तम॥ १३

यस्य श्रवणमात्रेण कृष्णभक्तिर्भविष्यति।
नराणां नृपशार्दूल शोकमोहभयापहा॥ १४

अनेन चरितेनापि लभते वाञ्छितं फलम्।
धनं धान्यं सुतं भक्तिं तथा शत्रुक्षयं नरः॥ १५

तस्माद्भजाशु राजेन्द्र श्रीकृष्णं जगदीश्वरम्।
भक्त्या गृहे वा विपिने ज्ञात्वा विश्वं मनोमयम्॥ १६

राजन्! जो नित्य श्रीहरिमें नवधाभक्ति करते हैं, वे अनायास ही संसार-सागरको पार कर जाते हैं। ज्ञाति (कुटुम्बीजन), विद्या, महत्त्व, रूप और यौवन—इनका यत्नपूर्वक परित्याग करे; क्योंकि ये पाँच भक्तिमार्गके कण्टक हैं॥ ६-७॥

राजेन्द्र! जो भक्तिभावसे भगवान् श्रीकृष्णका प्रसाद और चरणोदक लेते हैं, वे इस पृथ्वीको पावन करनेवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है। गङ्गा पापका, चन्द्रमा तापका और कल्पवृक्ष दीनताके अभिशापका अपहरण करता है, परंतु सत्सङ्ग पाप, ताप और दैन्य—तीनोंका तत्काल नाश कर देता है॥ ८-९॥

मनुष्योंके पितृगण पिण्ड पानेकी इच्छासे तभीतक संसारमें चक्कर लगाते हैं, जबतक कि उनके कुलमें कृष्णभक्त पुत्र जन्म नहीं लेता। वह कैसा गुरु, कैसा पिता, कैसा बेटा, कैसा मित्र, कैसा राजा और कैसा बन्धु है, जो श्रीहरिमें मन नहीं लगा देता?॥ १०-११॥

जो विद्या, धन, गृह तथा कुलका अभिमान रखनेवाले हैं तथा रूप आदि विषय एवं स्त्री-पुत्रोंमें नित्यबुद्धि रखते हैं और जो फलकी कामनासे अन्य देवताओंकी ओर देखते रहते हैं, भगवान् केशवका भजन नहीं करते हैं, वे जीते-जी मरे हुएके समान हैं॥ १२॥

नृपश्रेष्ठ! यह मैंने तुम्हारे सामने अश्वमेध-खण्डका 'सुमेरु' कहा है, जो श्रीकृष्णके लीलाचरित्रोंसे व्याप्त है। नृपसिंह! इसके श्रवणमात्रसे शोक, मोह और भयका निवारण करनेवाली श्रीकृष्णभक्ति मनुष्योंको प्राप्त हो जाती है॥ १३-१४॥

मनुष्य केवल इस चरित्रके श्रवण और पठनसे भी मनोवाञ्छित फल—धन-धान्य, पुत्र, भक्ति तथा शत्रुसंहार प्राप्त कर लेता है। राजेन्द्र! इसलिये तुम शीघ्र ही भक्तिभावसे घर या वनमें रहकर, सारे विश्वको मनके संकल्पका विलासमात्र जानकर शीघ्र ही जगदीश्वर श्रीकृष्णके भजनमें लग जाओ॥ १५-१६॥

आयुस्ते नरवीर वर्धतु सदा हेमन्तरात्रिर्यथा
लोकानां प्रियदर्शनो भव सदा हेमन्तसूर्यो यथा।
शत्रूणामतिदुःसहो भव सदा हेमन्ततोयं यथा
नाशं यान्तु तवारयोऽपि सततं हेमन्तपद्मं यथा॥ १७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वज्रनाभिर्हर्षितः प्रेमविह्वलः।
स्मरन् कृष्णस्य माहात्म्यं नत्वा गुरुमथाब्रवीत्॥ १८

राजोवाच

धन्योऽहं च कृतार्थोऽहं भवता करुणात्मना।
श्रुत्वा कृष्णस्य माहात्म्यं लग्नं कृष्णे च नो मनः॥ १९

सूत उवाच

इत्युक्त्वा पूजयामास गर्गाचार्यं नृपोत्तमः।
गन्धाक्षतैः पुष्पहारैस्तथा जालकमालया॥ २०

गजै रथैस्तुरङ्गैश्च शिबिकाभिश्च मन्दिरैः।
रौप्याणां चैव भारैश्च स्वर्णभारैश्च शौनक॥ २१

तथा रत्नैश्च ग्रामैश्च ह्यात्मना हर्षपूरितः।
प्रदक्षिणाप्रणामैश्च तथा नीराजनादिभिः॥ २२

सूत उवाच

ततश्च गर्ग उत्थाय दत्वा वज्राय चाशिषम्।
भूपेन वन्दितः सोऽपि ययौ दक्षिणया युतः॥ २३

स गत्वा यमुनातीरे तीर्थे विश्रान्तिसंज्ञके।
माथुरेभ्यश्च विप्रेभ्यो मुनिः सर्वं धनं ददौ॥ २४

गर्गवाक्यात्ततो वज्रो मथुरायां मुनीश्वरैः।
चकार हयमेधं वै यथा नागपुरेश्वरः॥ २५

ततः स मथुरायां च दीर्घविष्णुं च केशवम्।
वृन्दावने च गोविन्दं हरिदेवं गिरीश्वरे॥ २६

गोकुले गोकुलेशं च गोकुलाद्योजने बलम्।
स्थापयामास वज्रस्तु हरेश्च प्रतिमाश्च षट्॥ २७

नरवीर! तुम्हारी आयु हेमन्त-ऋतुकी रात्रिके समान उत्तरोत्तर बढ़ती रहे और हेमन्त-ऋतुके सूर्यकी भाँति लोगोंको तुम्हारा दर्शन सदा प्रिय लगे। तुम शत्रुओंके लिये हेमन्त-ऋतुके जलकी भाँति सदा अत्यन्त दुस्सह बने रहो और तुम्हारे शत्रु हेमन्त-ऋतुके कमलकी भाँति सदा नष्ट होते रहें॥ १७॥

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर राजा वज्रनाभि श्रीकृष्णके माहात्म्यका स्मरण करते हुए हर्षसे उल्लसित तथा प्रेमसे विह्वल हो गये। वे गुरुके चरणोंमें प्रणाम करके बोले॥ १८॥

राजाने कहा—भगवन्! आप करुणामय गुरुदेवके मुखसे श्रीकृष्णका माहात्म्य सुनकर मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। श्रीकृष्णमें मेरा मन लग गया॥ १९॥

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर नृपश्रेष्ठ वज्रनाभिने गन्ध, अक्षत, पुष्पहार तथा जालीदार सुवर्णकी मालासे गुरु गर्गाचार्यका पूजन किया॥ २०॥

शौनक! उन्होंने घोड़े, हाथी, रथ, शिबिकाएँ, भव्य भवन, चाँदी, सोनेके भार, रत्न और ग्राम देकर गुरुका पूजन किया और स्वयं हर्षसे भरे हुए उन्होंने उनको प्रणाम और परिक्रमा करके उनकी नीराजना (आरती) आदि की॥ २१-२२॥

सूतजी बोले—तदनन्तर गर्गाचार्यजीने उठकर वज्रनाभिको आशीर्वाद दिया और भूपालसे वन्दित हो दक्षिणाके साथ वहाँसे चले गये। यमुनाके तटपर 'विश्रामघाट' नामक तीर्थमें पहुँचकर मुनीश्वरने मथुरावासी ब्राह्मणोंको सारा धन बाँट दिया॥ २३-२४॥

तदनन्तर गर्गजीके कहनेसे वज्रनाभिने मथुरामें उसी प्रकार अश्वमेध-यज्ञ किया, जैसे हस्तिनापुरके राजा युधिष्ठिरने किया था। इसके बाद मथुरामें 'दीर्घविष्णु' और 'केशवदेव' के, वृन्दावनमें 'गोविन्द-देव'के, गिरिराज गोवर्धनपर 'हरिदेवजी' के, गोकुलमें 'गोकुलेश्वर'के और गोकुलसे एक योजन दूर 'बलदाऊजी'के अर्चाविग्रहोंकी उन्होंने स्थापना की। ये श्रीहरिकी छः प्रतिमाएँ राजा वज्रनाभिके द्वारा

बलस्य प्रतिमाश्चान्याः पञ्च वै व्रजमण्डले।
नृणां शुभाय वज्रस्तु स्थापयामास हर्षितः॥ २८

अब्दाश्चतुःसहस्राणि कलौ पञ्चशतानि च।
गते गिरिवरे हि श्रीनाथः प्रादुर्भविष्यति॥ २९

तं पूजयिष्यति व्रजे विष्णुस्वामी रवेस्तनुः।
वल्लभाद्याश्च तच्छिष्याश्चान्ये गोकुलस्वामिनः॥ ३०

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिं दृष्ट्वा वज्रः परीक्षितः।
वैराग्येणापि मुनयो राज्यं त्यक्तुं मनो दधे॥ ३१

तदाययौ चौपगविर्नरनारायणाश्रमात्।
पादुकां मस्तके बिभ्रत्कृष्णचन्द्रस्य वैष्णवः॥ ३२

भूपेन वन्दितः सोऽपि प्रत्युत्थानासनादिभिः।
कथयामास वज्राग्रे श्रीमद्भागवतं मुदा॥ ३३

श्रुत्वोद्धवाद्भागवतं वज्रः प्रोवाच हर्षितः।
श्रुता मया पुरा तात सुसभायां परीक्षितः॥ ३४

समाधिभाषा व्यासस्य शुकदेवेन वर्णिता।
पुनस्त्वयापि कथिता कृतार्थोऽहं बभूव ह॥ ३५

इत्युक्त्वा वज्रनाभिस्तु स्वराज्यं प्रतिबाहवे।
दत्वा जगाम गोलोकं विमानेनापि चोद्धवः॥ ३६

चकार राज्यं धर्मेण मथुरायां च दक्षिणे।
प्रतिबाहुः सुतस्तस्य चोत्तरे जनमेजयः॥ ३७

अग्रे कलियुगो ब्रह्मन्नागमिष्यति दारुणः।
परन्तु चैकं निर्वाहं दृश्यते पापनाशनम्॥ ३८

स्थापित की गयी हैं। वज्रने हर्षसे भरकर लोगोंके कल्याणके लिये व्रजमण्डलमें बलदाऊजीकी पाँच अन्य प्रतिमाएँ भी स्थापित कीं॥ २५—२८॥

कलियुगके चार हजार पाँच सौ वर्ष व्यतीत होनेपर गिरिराजके ऊपर श्रीनाथजीका प्रादुर्भाव होगा। उस प्रतिमाका व्रजमें सूर्यके स्वरूपभूत श्रीविष्णुस्वामी पूजन करेंगे। तदनन्तर वल्लभ आदि अन्य गोकुलवासी गोस्वामी उन्हींके शिष्य होकर श्रीनाथजीकी पूजा करेंगे॥२९-३०॥

मुनिगणो! श्रीमद्भागवतके श्रवणसे राजा परीक्षित्‌की मुक्ति हुई देख वज्रनाभिने वैराग्यके कारण अपने राज्यको त्याग देनेका विचार किया। इसके बाद औपगवपुत्र परम वैष्णव उद्धवजी अपने मस्तकपर श्रीकृष्णकी चरणपादुका धारण किये नर-नारायणके आश्रमसे वहाँ आये॥ ३१-३२॥

राजाने प्रत्युत्थान और आसन आदि उपचारोंसे उद्धवजीकी पूजा करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् उद्धवजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ वज्रनाभिके सामने श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायी॥ ३३॥

उद्धवजीद्वारा भागवत-कथा सुनकर वज्रको बड़ा हर्ष हुआ और वे बोले—'तात! पहले राजा परीक्षित्‌की सभामें मैंने यह कथा सुनी थी। शुकदेवने व्यासजीकी समाधिभाषाका वहाँ वर्णन किया था। फिर आपने भी वह कथा सुनायी। अब मैं पूर्णतः कृतार्थ हो गया'॥ ३४-३५॥

—ऐसा कहकर वज्रनाभि प्रतिबाहुको अपना राज्य दे विमानद्वारा गोलोकधामको चले गये। उनके साथ उद्धवजी भी गये। मथुराके दक्षिण भागमें वज्रनाभिपुत्र प्रतिबाहुने धर्मपूर्वक राज्य किया और उत्तरभागमें परीक्षित्पुत्र जनमेजयने॥ ३६-३७॥

शौनकजी! अब आगे बड़ा दारुण कलियुग आयेगा, परंतु एक निर्वाह दिखायी देता है, जिससे सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जायगा॥ ३८॥

यावद्भागवतं शास्त्रं यावद्गोकुलस्वामिनः।
यावद्गोवर्धनो गङ्गा तावत्कलियुगं न हि॥ ३९

भारतानां च खण्डानां जम्बूद्वीपे यथा मुने।
मध्ये संराजते मेरुः सौवर्णः पद्मपुष्पवत्॥ ४०

तथा गोलोकखण्डानां संहितायां महामुनेः।
हयमेधचरित्रस्य मध्ये मेरुर्विराजते॥ ४१

अस्याः श्रवणमात्रेण विप्रहा गुरुतल्पगः।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता मुच्यते सर्वपातकैः॥ ४२

विप्रस्तु लभते विद्यां राज्यं राजन्य एव च।
श्रवणाच्च धनं वैश्यो धर्मं शूद्रस्तथैव च॥ ४३

नदीषु च यथा गङ्गा देवेषु भगवान् यथा।
तीर्थेषु वै तीर्थराज इयं वै संहितासु च॥ ४४

अस्याः श्रवणमात्रेण तृप्तिं याति नरोत्तमः।
न सज्जेतान्यशास्त्रेषु यथा भागवतान्मुने॥ ४५

तस्माद्भजत पादाब्जं श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
कल्याणार्थं च मुनयो भक्तदुःखहरस्य च॥ ४६

श्रीगर्ग उवाच

इति श्रुत्वा शौनकाद्या मुनयश्चरितं हरेः।
श्लाघां वै सूतपुत्रस्य चक्रुर्हर्षितमानसाः॥ ४७

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे।
कालग्रहगृहीताङ्गं त्राहि विष्णो नमोऽस्तु ते॥ ४८

अनुगृह्णीष्व नः साधो त्वं ह्यनाथस्य वल्लभः।
त्रैलोक्यस्याभयं दद्याद्यथा स्वामी तथा कुरु॥ ४९

जबतक श्रीमद्भागवत-शास्त्र रहेगा, जबतक गोकुलमें गोस्वामी-लोग रहेंगे और जबतक गोवर्धन तथा गङ्गानदीकी स्थिति रहेगी, तबतक कलियुगका कोई (विशेष) प्रभाव नहीं पड़ेगा॥ ३९॥

मुने! जैसे भारतके नौ खण्डोंमें जम्बूद्वीपके मध्यभागमें कमलपुष्पकी भाँति सुवर्णमय यह मेरुगिरि शोभा पाता है, उसी प्रकार महामुनि गर्गकी 'गोलोक आदि खण्डोंवाली संहिता'में अर्थात् श्रीगर्गसंहितामें यह 'अश्वमेध' का चरित्र मध्यभागमें सुमेरुकी भाँति विराजमान है॥ ४०-४१॥

इसके श्रवणमात्रसे ब्रह्महत्यारा, गुरुपत्नीगामी, स्त्रीहन्ता, राजहन्ता, पितृहन्ता और गोहत्यारा भी समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाता है। इसके सुननेमात्रसे ब्राह्मण विद्याको, क्षत्रिय राज्यको, वैश्य धनको और शूद्र धर्मको प्राप्त करता है। जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ हैं, देवताओंमें भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं तथा तीर्थोंमें तीर्थराज प्रयाग उत्तम है, उसी प्रकार समस्त संहिताओंमें यह संहिता सर्वोत्तम है॥ ४२—४४॥

इसका श्रवण करनेमात्रसे श्रेष्ठ मनुष्यको बड़ी तृप्ति प्राप्त होती है। मुने! जैसे भागवतके अध्ययनसे दूसरे शास्त्रोंमें आसक्ति नहीं होती, उसी प्रकार इसके स्वाध्यायसे भी कहीं अन्यत्र आसक्ति नहीं रहती है। अतः महर्षियो! भक्तोंका दुःख हर लेनेवाले परमात्मा श्रीकृष्णके चरणारविन्दका अपने कल्याणके लिये भजन करें॥ ४५-४६॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—शौनक आदि मुनियोंने इस प्रकार श्रीहरिके चरित्रको सुनकर प्रसन्नचित्त हो सूतपुत्र उग्रश्रवाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। करुणानिधे! नारायण! मैं संसारसागरमें डूबकर अत्यन्त दयनीय एवं दुखी हो गया हूँ। कालरूपी ग्राहने मेरे अङ्ग-अङ्गको जकड़ लिया है। आप मेरा उद्धार कीजिये; आपको नमस्कार है॥ ४७-४८॥

साधुशिरोमणि! गुरुदेव! आप अनाथोंके वल्लभ हैं, हमलोगोंपर अनुग्रह कीजिये। जैसे जगदीश्वर तीनों लोकोंको अभय देते हैं, उसी प्रकार आप मुझे भी अनुग्रह प्रदान करें॥ ४९॥

श्रीगुरोः कृपया हि श्रीमदनमोहनसेवया।
बभूव वाङ् मम हरेस्तया चरितमीरितम्॥ ५०

वाल्मीक्याद्याश्च व्यासाद्या लघूक्तां कवितां मम।
पश्यन्तु दृष्ट्वा यूयं चापराधं क्षन्तुमर्हथ॥ ५१

श्रीमाधवं व्रजपतिं नवमेघगात्रं
राधापतिं सुरपतिं मुरलीधरञ्च।
भक्तार्तिहञ्च परमार्थमनन्तदेवं
कृष्णं नमामि शिरसा मनसा च भक्त्या॥ ५२

षड्विंशच्च शता रामापि सप्ताशीतिसुप्रिया:।
श्लोकाश्चरित्रमेरोर्वै श्रीकृष्णस्य महात्मनः॥ ५३

श्रीगुरुदेवकी कृपा और श्रीमदनमोहनजीकी सेवाके पुण्यसे जैसा मेरी वाणीसे बन सका है, वैसा श्रीहरिका चरित्र मैंने कहा है। वाल्मीकि आदि तथा वेद-व्यास आदि महर्षियो! आप मेरी इस तुच्छ कवितापर दृष्टिपात करें और मेरे अपराधको क्षमा कर दें॥ ५०-५१॥

जो व्रजके पालक, नूतन जलधरके समान श्याम रंगवाले, देवताओंके स्वामी, मुरलीको धारण करनेवाले, भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा परमार्थस्वरूप हैं, उन अनन्तदेव श्रीराधावल्लभ माधव श्रीकृष्णको मैं मस्तक झुकाकर मनसे और भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ। महात्मा श्रीकृष्णके इस चरित्र-मेरुमें सत्ताईस सौ सत्तासी श्लोक हैं, जिनमें उनके लीला-चरित्रोंका गान किया गया है॥ ५२-५३॥

॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां हयमेधखण्डे सुमेरुसम्पूर्तिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

॥ इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें अश्वमेधखण्डके अन्तर्गत 'सुमेरु-सम्पूर्ति' नामक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६२॥

॥ अश्वमेधखण्ड सम्पूर्ण॥

॥ सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः॥

॥ गर्गसंहिता सम्पूर्ण॥

श्रीगोविन्दस्तोत्रम्

[वेदसारस्तुतिः]

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १॥

[**ब्रह्माजी कहते हैं—**] मैं उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द (श्रीकृष्ण)-की शरण लेता हूँ, जिनकी लाखों कल्पवृक्षोंसे आवृत एवं चिन्तामणिसमूहसे निर्मित भवनोंसे लाखों लक्ष्मी-सदृश युवतियोंके द्वारा निरन्तर सेवा होती रहती है और जो स्वयं वन-वनमें घूम-घूमकर गौओंकी सेवा करते हैं॥ १॥

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं
बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दराङ्गम्।
कंदर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ २॥

जो वंशीमें स्वर फूँक रहे हैं, कमलकी पंखुड़ियोंके समान बड़े-बड़े जिनके नेत्र हैं, जो मोरपंखका मुकुट धारण किये रहते हैं, मेघके समान श्यामसुन्दर जिनके श्रीअङ्ग हैं, जिनकी विशेष शोभा करोड़ों कामदेवोंके द्वारा भी स्पृहणीय है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ २॥

आलोलचन्द्रकलसद्वनमाल्यवंशी-
रत्नाङ्गदं प्रणयकेलिकलाविलासम्।
श्यामं त्रिभङ्गललितं नियतप्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ ३॥

जो हवासे अठखेलियाँ करते हुए मोरपंख, सुन्दर वनमाला, वंशी एवं रत्नमय बाजूबंदसे सुशोभित हैं, जो प्रणयकेलि-कला-विलासमें दक्ष हैं, जिनका त्रिभङ्गललित श्यामसुन्दर विग्रह है और जिनका प्रकाश कभी फीका नहीं होता—सदा स्थिर रहता है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय लेता हूँ॥ ३॥

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ ४॥

जिनका सच्चिदानन्दमय प्रकाशयुक्त श्रीविग्रह है तथा सम्पूर्ण इन्द्रिय-वृत्तियोंसे युक्त जिनके श्रीअङ्ग दीर्घकालतक विभिन्न लोकोंपर दृष्टि रखते हैं, उनकी रक्षा करते हैं तथा उनका ध्यान रखते हैं, उन आदि-पुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ ४॥

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप-
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ ५॥

जो द्वैतसे रहित हैं, अपने स्वरूपसे कभी च्युत नहीं होते, जो सबके आदि हैं, परंतु जिनका कहीं आदि नहीं है और जो अनन्त रूपोंमें प्रकाशित हैं, जो पुराण (सनातन) पुरुष होते हुए भी नित्य नवयुवक हैं, जिनका स्वरूप वेदोंमें भी प्राप्त नहीं होता (निषेधमुखसे ही वेद जिनका वर्णन करते हैं), किंतु अपनी भक्ति प्राप्त हो जानेपर जो दुर्लभ नहीं रह जाते—अपने भक्तोंके लिये जो सुलभ हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ ५॥

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसम्प्रगम्यो
वायोरथापि मनसो मुनिपुंगवानाम्।
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वे
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ ६॥

[भगवत्प्राप्तिके] जिस मार्गको बड़े-बड़े मुनि प्राणायाम तथा चित्तनिरोधके द्वारा अरबों वर्षोंमें प्राप्त करते हैं, वही मार्ग जिनके अचिन्त्य माहात्म्ययुक्त चरणोंके अग्रभागकी सीमामें स्थित रहता है, उन आदि-पुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ ६॥

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं
यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः।
अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ ७॥

जो यद्यपि सर्वथा एक हैं—उनके सिवा दूसरा कोई नहीं है, फिर भी जो (अपनी महिमासे) करोड़ों ब्रह्माण्डोंको रचनेकी शक्ति रखते हैं—यही नहीं, ब्रह्माण्डोंके समूह

जिनके भीतर रहते हैं; साथ ही जो ब्रह्माण्डोंके भीतर रहनेवाले परमाणु-समूहके भी भीतर स्थित रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ॥ ७॥

यद्भावभावितधियो मनुजास्तथैव
सम्प्राप्य रूपमहिमासनयानभूषाः।
सूक्तैर्यमेव निगमप्रथितैः स्तुवन्ति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ ८॥

जिनकी भक्तिसे भावित बुद्धिवाले मनुष्य उनके रूप, महिमा, आसन, यान (वाहन) अथवा भूषणोंकी झाँकी प्राप्त करके वेदप्रसिद्ध सूक्तों (मन्त्रों)-द्वारा स्तुति करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ ८॥

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ ९॥

जो सर्वात्मा होकर भी आनन्दचिन्मयरस-प्रतिभावित अपनी ही स्वरूपभूता उन प्रसिद्ध कलाओं (गोप, गोपी एवं गौओं)-के साथ गोलोकमें ही निवास करते हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ ९॥

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेऽपि विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १०॥

संतजन प्रेमरूपी अञ्जनसे सुशोभित भक्तिरूपी नेत्रोंसे सदा-सर्वदा जिनका अपने हृदयमें ही दर्शन करते रहते हैं, जिनका श्यामसुन्दर विग्रह है तथा जिनके स्वरूप एवं गुणोंका यथार्थरूपसे चिन्तन भी नहीं हो सकता, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ १०॥

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किंतु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ ११॥

जिन्होंने श्रीरामादि-विग्रहोंमें नियत संख्याकी कलारूपसे स्थित रहकर भिन्न-भिन्न भुवनोंमें अवतार ग्रहण किया, परंतु जो परात्पर पुरुष भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें स्वयं प्रकट हुए, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ ११॥

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १२॥

जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें पृथिवी आदि समस्त विभूतियोंके रूपमें भिन्न-भिन्न दिखायी देता है, वह निष्कल (अखण्ड), अनन्त एवं अशेष ब्रह्म जिन सर्वसमर्थ प्रभुकी प्रभा है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ॥ १२॥

माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते
त्रैगुण्यतद्विषयवेदवितायमाना ।
सत्त्वावलम्बिपरसत्त्वविशुद्धसत्त्वं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १३॥

सत्त्व, रज एवं तमके रूपमें उन्हीं तीनों गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले वेदोंके द्वारा विस्तारित जिनकी माया सैकड़ों ब्रह्माण्डोंका सर्जन करती है, उन सत्त्वगुणका आश्रय लेनेवाले, सत्त्वसे परे एवं विशुद्धसत्त्वस्वरूप आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ १३॥

आनन्दचिन्मयरसात्मतया मनस्सु
यः प्राणिनां प्रतिफलन् स्मरतामुपेत्य।
लीलायितेन भुवनानि जयत्यजस्रं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १४॥

जो स्मरण करनेवाले प्राणियोंके मनोंमें अपने आनन्द-चिन्मयरसात्मक-स्वरूपसे प्रतिबिम्बित होते हैं तथा अपने लीलाचरित्रके द्वारा निरन्तर समस्त भुवनोंको वशीभूत करते रहते हैं, उन आदि-पुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ १४॥

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु च।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १५॥

जिन्होंने गोलोक नामक अपने धाममें तथा उसके नीचे स्थित देवीलोक, कैलास तथा वैकुण्ठ नामक

विभिन्न धामोंमें विभिन्न ऐश्वर्योंकी सृष्टि की, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ॥ १५॥

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १६॥

सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयकारिणी शक्तिरूपा भगवती दुर्गा, जिनकी छायाकी भाँति समस्त लोकोंका धारण-पोषण करती हैं और जिनकी इच्छाके अनुसार चेष्टा करती हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ १६॥

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्
संजायते नहि ततः पृथगस्ति हेतोः।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १७॥

जावन आदि विशेष प्रकारके विकारोंके संयोगसे दूध जैसे दहीके रूपमें परिवर्तित हो जाता है, किंतु अपने कारण (दूध)-से फिर भी विजातीय नहीं बन जाता, उसी प्रकार जो (संहाररूप) प्रयोजनको लेकर भगवान् शंकरके स्वरूपको प्राप्त हो जाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ १७॥

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा।
यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १८॥

जैसे एक दीपककी लौ दूसरी बत्तीका संयोग पाकर दूसरा दीपक बन जाती है, जिसमें अपने कारण (पहले दीपक)-के गुण प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार जो अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही विष्णुरूपमें दिखायी देने लगते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ १८॥

यः कारणार्णवजले भजति स्म योग-
निद्रामनन्तजगदण्डसरोमकूपः ।
आधारशक्तिमवलम्ब्य परां स्वमूर्तिं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ १९॥

आधारशक्तिरूपा अपनी (नारायणरूप) श्रेष्ठ मूर्तिको धारण करके जो कारणार्णवके जलमें योगनिद्राके वशीभूत होकर स्थित रहते हैं और उस समय उनके एक-एक रोमकूपमें अनन्त ब्रह्माण्ड समाये रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ॥ १९॥

यस्यैकनिश्श्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ २०॥

जिनके रोमकूपोंसे प्रकट हुए विभिन्न ब्रह्माण्डोंके स्वामी (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) जिनके एक श्वास-जितने कालतक ही जीवन धारण करते हैं तथा सर्वविदित महान् विष्णु जिनकी एक विशिष्ट कलामात्र हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ २०॥

भास्वान् यथाश्मशकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ २१॥

जैसे सूर्य सूर्यकान्त नामक मणियोंमें अपने तेजका किंचित् अंश ही प्रकट करते हैं, उसी प्रकार एक ब्रह्माण्डका शासन करनेवाले ब्रह्मा भी अपने अंदर जिनके तेजका किंचित् अंश प्रकट करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ २१॥

यत्पादपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ-
द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः।
विघ्नान् निहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ २२॥

प्रणाम करते समय जिनके चरणयुगलको अपने मस्तकके दोनों भागोंपर रखकर सर्वसिद्धिप्रद भगवान् गणपति इन तीनों लोकोंके विघ्नोंका विनाश करनेमें समर्थ होते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ २२॥

अग्निर्मही गगनमम्बुमरुद्दिशश्च
कालस्तथाऽऽत्ममनसीति जगत्त्रयाणि।
यस्माद् भवन्ति विभवन्ति विशन्ति यं च
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ २३॥

अग्नि, पृथिवी, आकाश, जल, वायु एवं चारों दिशाएँ; काल, बुद्धि, मन, पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं

स्वर्गरूप तीनों लोक जिनसे उत्पन्न होते हैं, समृद्ध (पुष्ट) होते हैं तथा जिनमें पुनः लीन हो जाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ॥ २३॥

यच्चक्षुरेव सविता सकलग्रहाणां
राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः।
यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ २४॥

जिनके नेत्ररूप सूर्य, जो समस्त ग्रहोंके अधिपति, सम्पूर्ण देवताओंके प्रतीक एवं सम्पूर्ण तेजःस्वरूप तथा कालचक्रके प्रवर्तक होते हुए भी जिनकी आज्ञासे लोकोंमें चक्कर लगाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ॥ २४॥

धर्मोऽथ पापनिचयः श्रुतयस्तपांसि
ब्रह्मादिकीटपतगावधयश्च जीवाः।
यद्दत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ २५॥

धर्म एवं पाप-समूह, वेदकी ऋचाएँ, नाना प्रकारके तप तथा ब्रह्मासे लेकर कीट-पतङ्गतक सम्पूर्ण जीव जिनकी दी हुई शक्तिके द्वारा ही अपना-अपना प्रभाव प्रकट करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ २५॥

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-
बद्धानुरूपफलभाजनमातनोति।
कर्माणि निर्दहति किंतु च भक्तिभाजां
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ २६॥

जो एक वीरबहूटीको एवं देवराज इन्द्रको भी अपने-अपने कर्म-बन्धनके अनुरूप फल प्रदान करते हैं, किंतु जो अपने भक्तोंके कर्मोंको निःशेषरूपसे जला डालते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ २६॥

यं क्रोधकामसहजप्रणयादिभीति-
वात्सल्यमोहगुरुगौरवसेव्यभावैः।
संचिन्त्य तस्य सदृशीं तनुमापुरेते
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ २७॥

क्रोध, काम, सहज स्नेह आदि, भय, वात्सल्य, मोह (सर्वविस्मृति), गुरु-गौरव (बड़ोंके प्रति होनेवाली गौरव-बुद्धिके सदृश महान् सम्मान) तथा सेव्य-बुद्धिसे (अपनेको दास मानकर) जिनका चिन्तन करके लोग उन्हींके समान रूपको प्राप्त हो गये, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ २७॥

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्।
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च॥ २८॥
स यत्र क्षीराब्धिः स्त्रवति सुरभीभ्यश्च सुमहान्
निमेषार्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः।
भजे श्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमिति यं
विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये॥ २९॥

जिस स्थानपर [अनन्तानन्त] लक्ष्मीगण ही गोपवधुएँ हैं, जहाँ परमपुरुष श्रीहरि ही उनके प्रियतम गोविन्द हैं, जहाँ कल्पवृक्ष ही [वन-उपवनादिमें विद्यमान] तरुरूप हैं, चिन्तामणियोंकी राशि ही जहाँकी भूमि है, जहाँ अमृत ही [स्नान-पानादिके लिये अपेक्षित] जल है, जहाँ [गोविन्दकी उदार] लीलाकथाएँ ही गायी जानेवाली गीतियाँ हैं, जहाँ गमन अर्थात् चलना-फिरना आदि चेष्टाएँ ही [शास्त्रीय रीतिसे सम्पन्न होनेवाला] अभिनय है, जहाँ वंशी ही उन गोपवधुओंकी [प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलानेवाली दूतीस्वरूपा] प्रिय सखी है, चिदानन्दस्वरूप परमतत्त्व ब्रह्म ही जहाँ [सूर्य, चन्द्र, दीपक आदिके सदृश तमोध्वंसी] प्रकाश है और वही चिदानन्दमयी ज्योति जहाँपर प्रकाशित होनेवाले घट-पटादिके रूपमें भी अवस्थित है एवं वह चिन्मय आनन्द ही जहाँ भक्ष्य-भोज्यादि वस्तुओंके रूपमें आस्वादनीय है।

जहाँकी [गायें ही कामधेनु हैं और उन] धेनुओंके स्तनोंसे अविरल बहता हुआ अपरिमित क्षीर ही क्षीरसागर है, जहाँ आधे निमेषके भी परिमाणवाला काल नहीं बीतता अर्थात् कालकी जहाँ गति न होनेके कारण चिदानन्दरसका आस्वादन करते हुए लोग समयका अनुमानतक नहीं कर पाते और इस पृथ्वीतलपर कतिपय बिरले श्रेष्ठ साधक ही जिसे 'यह गोलोक है' इस प्रकार जानते हैं, उस भगवद्धाम श्वेतद्वीपकी मैं शरण लेता हूँ॥ २८-२९॥ **[ब्रह्मसंहिता ५। ३८—६६]**